क्या [redacted] है ? इस पर यदि [redacted] तो बात
युक्ति[redacted]
[redacted]
वृत्र को मारा—जीतने [redacted]
मह[redacted] मुझे सौंप दो। [redacted]
यदि [redacted] दूं तो फि[redacted]
कि [redacted] हो कि मैं पि[redacted]
बन जाओ। एवं अनिर्वचनी[redacted]
के लिये क शब्द का प्रयोग [redacted]
का तात्पर्य अनिश्चित अर्थ के [redacted]
प्रदर्शन में होता है—प्रजापति परमात्मा भी ऐसे ही हैं—उनकी विभूति–उनके गुण-महिमा इतने महान् हैं कि वाणी वहां पर मूक होजाती है "न तत्र वाग् गच्छति न मनो न विद्मो न विजानीमः"। "किम्" अनिर्वचनीय का वाचक है ऐसे ही भगवान् भी अवाङ्मनगोचर हैं। इसलिए सायणाचार्य पर किया गया मेक्समूलर का कटाक्ष उनके कविप्रतिमा के आधार में विद्यमान तत्वज्ञान को न समझने के कारण ही है।

(२) एक और उदाहरण लीजिये—

सृष्टि विषयक प्रकरण में छान्दोग्यउपनिषत्कार ने एक आख्यायिका दी है वह इस प्रकार है—

आदित्यो ब्रह्म इत्यादेशः, तस्योपव्याख्यानम्, असदेवेदमग्र आसीत्, तत्सदासीत्, तत्समभवत्, तदाण्डं निरवर्तत, तत्संवत्सरस्य मात्रामशयत्, तत् निरभिद्यत ते आण्डकपाले रजतं सुवर्णं चाभवताम्। १। तत् यद्रजतं सेयं पृथिवी यत्सुवर्णं सा द्यौः ॥२॥ ६.३.१६

अर्थ—"आदित्य प्रकृति है-यह मूल आदेश है। व्याख्या यह है कि यह सृष्टि के प्रारम्भ में न था वह (कारण अवस्था में) था, वह कार्य अवस्था में आया। वह अण्डाकार हुआ, वह एक संवत्सर तक ऐसा रहा, तब वह टूट गया, अण्डे के दो भाग हो गए एक चांदी का (श्वेत), दूसरा सोने का (पीला)। जो चांदी का था वह पृथ्वी बना, जो सुनहरा था वह सूर्य बना।"

ऊपर से देखने से आख्यायिका निस्सार प्रतीत होती है, वस्तुतः आख्यायिका में सृष्टि उत्पत्ति का विज्ञान भरा पड़ा है। सूर्य विश्व ब्रह्माण्ड का आदि कारण है। कारण से कार्य दिशा में परिणत होती प्रकृति अण्डाकार हुई, अतः इसे ब्रह्म-अण्ड कहते है। वैज्ञानिक लोग (१८ वीं सदी के अन्त में) सृष्टि उत्पत्ति के विषय में नेबुलर थ्योरी को मानते हैं। इसके अनुसार Nebula (नीहारिका) का रूप भी अंडे जैसा होता है अतएव अंग्रेजी में Elliptical कहते हैं। इस अण्डाकार स्वरूप के विकास का उपनिषत्कार ने कविता की अद्भुत छटा में वर्णन किया हैं। अण्डे के दो भाग हो गए उन्हें "कपाल" कहा गया है (कोश में कपाल का अर्थ (Shell) दिया है) नेबुलर थ्योरी में कपाल के लिए संभवतः Ring (चक्र) शब्द प्रयुक्त किया गया है। किसी भी अण्डे की रचना को देखें तो उसका ऊपर का खोल

सफेद [redacted]
[redacted]प्रसिद्ध तेज[redacted]
[redacted] है। सूर्य [redacted]
[redacted]एकमभवदिमम्)
[redacted] जो कम तेजस्वी
[redacted]रूपक है ? उपनि-
[redacted]शताब्दी के लेप्लेस
[redacted] की झांकी स्पष्ट
[redacted]यिका में संसार
[redacted] बताई गई है ?
कविता की [redacted] विज्ञान का विज्ञान।

एक और [redacted]

छान्दोग्योपनि[redacted]" शब्द वाच्य ब्रह्म की उपासना कही गई है [redacted]मित्येतदक्षरमुद्गी[redacted]मुपासीतामिति १।१।१

स एष रसानां रसतमः परमः। परार्ध्योऽष्टमो यदुद्गीथ।"

उद्गीथ का अर्थ है—बाहिर प्रगट हुआ उत्तम ज्ञान यह विश्व ब्रह्माण्ड में सूर्य चन्द्र नक्षत्र आदि महान् पदार्थ प्रभु के स्वाभाविक ज्ञान नहीं है ? नैय्यायिक लोग प्रभु की सत्ता को कुम्भकार (कुम्हार) के रूपक से समझाया करते हैं—जैसे घड़ा चेतन कुम्हार के बिना नहीं बन सकता है वैसे ही विश्व भी चेतन प्रभु के बिना नहीं बन सकता है। अंग्रेज दार्शनिक पेली ने इस बात को घड़ीसाज के दृष्टान्त से समझाया है—घड़ीसाज की बुद्धि के चातुर्य के बिना घड़ी नियमित काम नहीं कर सकती है ठीक इसी प्रकार प्रभु रूपी चेतन की आवश्यकता है परन्तु प्रभु का कवि (कविर्मनीषी परिभूः स्वयंभूः) तथा संगीतकार (उद्गीथ) के रूप में याद करना और भी अधिक भव्य तथा सुन्दर है। उपर्युक्त दोनों रूपकों में तटस्थेश्वरवाद के उपस्थित होने की सम्भावना रह जाती है। परन्तु प्रभु को क्रान्तदर्शी कवि अथवा विश्व का गायक (उद्गीथ) कल्पित करने में हम सत्य के अधिक समीप पहुंच जाते हैं। संसार प्रभु का अकृत्रिम गान ही तो है ? संसार की उत्पत्ति में प्रभु (स्वाभाविकी ज्ञान बल क्रिया च) अपनी स्वाभाविक शक्ति का परिचय दिया है। संसार दुःख का धाम नहीं अपितु आनन्द का धाम है—प्रभु की सुन्दर लीला है। इस प्रकार के अन्य अनेक भाव (उद्गीथ) शब्द में समाविष्ट हैं। विश्व अपने अनन्त विभूति द्वारा से प्रभु की महिमा का वर्णन करता है इस लिये वह "उद्गीथ" है। कवि के इन तीन शब्दों में तत्वज्ञान के अमूल्य रत्न छिपे हुए हैं। इस प्रकार अनेक उदाहरण प्राचीन साहित्य में दिखाई देते हैं जिनमें कविता की भाषा द्वारा विश्व के चरम सत्य समझाये गये हैं।

श्री डा० चन्दूलाल जी देसाई का भाषण

[गुरुकुल सूपा के १४ वें वार्षिक महोत्सव पर "नवस्नातक स्वागत सम्मेलन" के अध्यक्ष पद से गुर्जरप्रांत के सुप्रसिद्ध कांग्रेसी कार्यकर्ता श्री डा० चन्दूलाल जी देसाई द्वारा दिया गया भाषण]'

मेरे लिए जो कुछ कहा गया है उसके योग्य मैं नहीं हूं। इस संस्था के संचालक मुझे कई सालों से निमन्त्रित कर रहे थे पर मैं नहीं आ सका। इस वर्ष मैंने आना स्वीकार किया था, यही कारण है कि मैं अनेक कार्यों को छोड़कर यहां उपस्थित हुआ हूं।

आज जो भाई स्नातक बनकर यहां आए हैं मैं उनको अभिनन्दन देता हूं। इन्होंने गुरुकुल जीवन में कई सालों तक ब्रह्मचर्य का पालन किया है, अनेक कष्ट सहन कर जीवन बिताया है और अपने को शिक्षा दीक्षा से दीक्षित किया है। अब वे भाई जीवन संग्राम में आ रहे हैं। बाहर के विश्वविद्यालयों में भी पढ़कर विद्यार्थी स्नातक होते हैं। वे भी अपने महाविद्यालय जीवन की ऊंची भावना और आदर्श को अपने सामने रखते हैं। अभी कुछ दिन पहले मुझे एक भाई मिले थे उन्होंने कहा कि जब मैं कौलेज में था तब मेरे सामने भी उच्च भावना और आदर्श थे पर आज सब नष्ट हो गये हैं।

इन स्नातक भाइयों ने नवीन पद्धति से शिक्षा पाई है। इनका आदर्श प्राचीन है। जिस जीवन में अनेक भव्य आदर्श हैं, जिसमें सेवा और त्याग का आदर्श है, ये आदर्श भारत में फैले हुए हैं। कई ऐसे भी होते हैं जो धन के लोभ में फंस जाते हैं। धन के हाथ में आ जाने पर वे त्याग को भूल जाते हैं। मैंने ऐसे अनेक संन्यासी देखे हैं जो विलासी जीवन बिताते हैं पर कहते हैं अपने को संन्यासी।

मैं नव-स्नातक भाइयों से यही कहता हूं कि आप ऐसे त्यागी न बनना। सच्चे त्यागी बनिये। आप सेवा और त्याग की मूर्ति बनिये। आप ऐसे बनेंगे तभी गुरुकुल के स्नातक कहलायेंगे। आप देशभक्त बनिये पर महन्त नहीं। मुझे महन्तों से बहुत डर लगता है। आपके सामने त्याग और सेवा का आदर्श है अतः मुझे यह विश्वास है कि आप तो देश सेवा करेंगे ही। गुरुकुल में तो देश सेवा का पाठ शुरु से ही पढ़ाया जाता है। यदि हम अपनी काया देश-सेवा के लिए देने को तैयार नहीं हैं तो हम जीने के योग्य भी नहीं हैं। मैं तो यही समझता हूं कि जो जन देश सेवा नहीं कर सकता उसे तो जीने का भी अधिकार नहीं है। भारतवर्ष पराधीन देश है। हमारे हज़ारों भाई, बहिन भूखे मरते हैं। ऐसे समय आपको देश सेवा करनी चाहिए—ऐसे समय आपको आराम से नहीं बैठे रहना चाहिए। आपके दिल में यह भावना होनी चाहिये कि हमारे देश में विदेशी का क्या काम! कदम २ पर विदेशी लोग रोड़े अटकाते हैं। आज़ादी की भावना जागृत होनी चाहिए। अन्य देशों को देखिए, जर्मनी, तुर्किस्तान आदि-वहां पर कोई विदेशी शासन नहीं है। आप स्नातक भाइयों को विदेशी शासन खटकना चाहिए, क्योंकि आप की शिक्षा एक स्वतन्त्र संस्था में हुई है। यह याद रखिए कि सबसे मुख्य कर्तव्य देश को स्वतन्त्र करने का है। यदि स्नातक लोग अपने आदर्शों को भूल जायंगे तो सच्ची शिक्षा नहीं मिली है, यही कहना पड़ेगा। अतः आप आदर्शों को मत भूलिये —आप में से कोई भी महन्त मत बनें—देश सेवक बनें। भारत में तो लाखों महन्त हैं। आप लोग ग़रीब से ग़रीब मनुष्य की सेवा करने की वृत्ति को जागृत कीजिए। अन्दर कुछ और बाहर कुछ यह नहीं होना चाहिये। झूठे देशसेवकों की आज देश में कमी नहीं है। आप सच्चे सेवक बनिए। आपको विश्वास हो कि परमात्मा के यहाँ सब समान हैं-ब्रह्म सर्वव्यापक है तो उस ब्रह्म को समझ लें। अद्वितीय ब्रह्म की भावना धारण करके सच्चे सेवक बनें।

किसी भी मनुष्य की उन्नति या अवनति का आधार उसका चरित्र है। चरित्र के आधार पर ही हम किसी को उन्नत या अवनत कह सकते हैं। अतः मैं आपसे कहूँगा कि आप अपनी उन्नति कीजिये-आप अपने चरित्र को शुद्ध रक्खें। मैं आपसे कहूँगा कि आप जहां कहीं जावें अपने चरित्र की सुगन्ध को फैलाइए। आप अपने चरित्र को गुलाब और चमेली के फूल की सुगन्ध की तरह फैलावें। इस सुगन्ध से ही आप लोगों की प्रतिष्ठा होगी। आप यदि चरित्रवान् होंगे तो आपकी पूजा होगी, आपका मान होगा। पर इस संसार में ऐसे मनुष्यों की कमी नहीं है जो मुख से तो चरित्र की खूब प्रशंसा करते हैं पर पालन में वे वैसे नहीं होते। मंदिरों में जाकर चार चार बार टीके लगाते हैं पर उनका आत्मा दूषित होता है। आप ऐसे न बनिये। आप अणु अणु में चरित्रवान बनेंगे तभी मेरा यह कहना सार्थक होगा। व्याख्यान देकर ही चरित्रवान् मत बनिए—पर वास्तव में चरित्रवान् बनिए।

हमारे देश में धर्म की बातें कहने वाले देखे गए हैं। वे लोग धर्म की बात बहुत करते हैं पर दया, करुणा या उदारता नहीं बतलाते हैं। ऐसा धर्म ठीक नहीं है। यदि आप लोग ठीक तरह धर्म का पालन न कर सकें तो पहिले ही कह देना—पर धार्मिक बनने का आडम्बर न करिये। आप जिसे ठीक समझें, जिसे आदर्श समझें—उसके लिए प्राणों की आहुति देने का अवसर आए तो प्राण भी दीजिये। आपको उसके लिए सर्वदा तैय्यार रहना चाहिए। आप अपने सिद्धान्त के ध्येय को कभी मत छोड़िये। मैं तो कुछ ऐसा समझता हूँ कि हमारे देश में बहादुर आदमी कम हैं। असहयोग के दिनों में ३५ करोड़ में से एक लाख या डेढ़ लाख आदमी जेल गए होंगे। लोग इसे ही पर्याप्त समझने लगे। पर मैं आप लोगों से पूछता हूं, कितने गए थे? एक प्रतिशतक या सवा प्रतिशतक। इस अवस्था में कैसे कहा जाय कि हमारे देश में बहादुर लोगों की संख्या बहुत है। महायुद्ध के समय मैं इङ्गलैण्ड में ही था। उस समय एक ही दिन में तीस लाख मनुष्य देश के लिए लड़ने को मैदान में आए। यह दृश्य मेरी आंखों के सामने गुज़रा है, यह कोई पुस्तक की घटना नहीं है।

[शेष पृ० ६ पर]

गुरुकुल

२० मई शुक्रवार १९३८

नव-वर्ष प्रवेश

आज हम इस अंक के साथ 'गुरुकुल' के नए वर्ष में पदार्पण कर रहे हैं। इस अवसर को—पुण्य अवसर कहना चाहिये—हम अपने पाठकों से क्या निवेदन करें? कोई मासिक पत्रिका होती तो वह अपना "प्रवेशांक" निकालती, कोई और साप्ताहिक पत्र होता तो वह अपना विशेषांक निकालता; पर हम आज भी अपने पाठकों के सामने उसी सीधे-साधे सामान्य वेष में पहुंचना चाहते हैं। हमें विश्वास है कि हमारे पाठकों को यह सादगी पसन्द है।

समय के अनन्त सागर में जिसमें लम्बी-लम्बी शताब्दियों का महत्व भी नगण्य होता है—ये दो-तीन वर्ष क्या हैं! क्या ये दो-तीन वर्ष उस अथाह सागर की दो-तीन बूंदे नहीं हैं? इन दो-तीन बून्दों में भी क्या कुछ कम भरा है! माना कि हम आज 'गुरुकुल' के तृतीय वर्ष में प्रवेश कर रहे हैं, पर हमारा और हमारे पाठकों का सम्बन्ध नित्य है, निष्काम है। समय ज्यों २ आगे बढ़ता जायेगा त्यों त्यों संसार में परिवर्तन आते जायेंगे। पर हमारे इस पारस्परिक सम्बन्ध में अन्तर नहीं आयेगा। कारण? क्योंकि हम अपने पाठकों से किसी भौतिक स्वार्थ के कारण बंधे हुए नहीं हैं। हमारे सम्बन्ध को ग्रथित करने वाला और सूत्र है—जिसे अलौकिक कह देने से भी शायद काम न चले। हम तो इतना जानते हैं कि सकल ब्रह्माण्ड गतिमय है, मनुष्य गतिशील है। हम भी लगातार आगे ही बढ़ते चलेंगे।

हमारे पाठकों ने जिस सहृदयता से अब तक हमारा साथ दिया है, उसी का सम्बल लेकर हम भविष्य में कार्य-तत्पर होंगे, और साथ ही यह विश्वास भी दिलाते हैं कि 'गुरुकुल' पत्र अब तक जिस लगन और उत्साह से पाठकों की सेवा करता रहा है, भविष्य में भी उसी प्रकार, और उससे भी कहीं अधिक सेवा करने में समर्थ हो सकेगा। यदि हमें इसी प्रकार सहयोग प्राप्त होता रहा।

आज—जब आम्र-मञ्जरियां पीली पड़ कर झड़ चुकी हैं और राजवृक्ष की शाखाओं पर लटकते हुए सुन्दर पीत पुष्प-गुच्छ प्रकृति को शृंगार से पुनरपि वंचित नहीं रहने देना चाहते—हम अपने पाठकों का स्वागत करते हैं, और नये उत्साह के साथ सम्मिलित होकर नए वर्ष की देहली पर साथ ही चरण रखते हैं।

(कांगड़ी की कथा)

[श्री वीरेश्वर विद्यालङ्कार]

अनेक वर्षों के बाद जब हम अपने किसी स्नेही बांधव से मिलते हैं तो हृदय में जो उमङ्ग और आनन्द उत्पन्न होता है उसे वही अनुभव कर पाते हैं जिन्हें इतने दीर्घ काल तक प्रवास में रहने का अवसर प्राप्त हुआ हो। यों तो प्रवास में रहता हुआ भी मनुष्य स्मृति द्वारा अथवा पत्रादि द्वारा अपने एकाकीपन के भाव को कुछ हलका कर सकता है, परन्तु प्रत्यक्ष और साक्षात्कार (जिसे मैं आमने सामने व समीपस्थ होना कहूँगा) के मुकाबले में स्मृति व पत्र हमें उस वस्तु स्थान व व्यक्ति की केवल धुँधली सी रूपरेखा व काल्पनिक झलक दिखाने में ही समर्थ होते हैं। यही कारण है कि सुनी व पढ़ी बातों की अपेक्षा हम 'आंखों देखी' बात पर अधिक विश्वास और आस्था करते हैं। यह भी देखा जाता है कि इन्द्रियों द्वारा विवेक—बुद्धि व प्रज्ञा प्राप्त कराने में दर्शन (प्रत्यक्ष-साक्षात्कार) सबसे अधिक सहायक होता है। मतलब यह कि मनुष्य स्वभावतः प्रथम "आंखों देखी" से अधिक से अधिक प्रभावित होता है। इसी नियम के वशीभूत हुआ २ मैं गत ११ अप्रैल सोमवार कल उत्सो-त्सव के दिन १३ वर्ष के उपरान्त अपराह्ण समय में गुरुकुल कांगड़ी के दर्शनार्थ पहुंचा। चिरकाल से गुरुकुल भूमि को देखने की अभिलाषा थी। कौतूहल इसलिए था कि उस भूमि में जहां शैशव और किशोर वय व्यतीत किया, जहां प्रकृति के मुक्ताञ्चल में बैठ विद्या-मधु का पान किया, जहां जीवन की उमङ्ग भरी अद्भुत झांकियां देखीं—जहां गुरुओं के शिक्षण, अनुशासन तथा प्रेम ने हमें मनुष्य के रूप में एक नया जन्म दिया—उस स्थान का रूप परिवर्तन होकर, वह कैसा हो गया है? क्या यह परिवर्तन अच्छे के लिये या बुरे के लिये हुआ है? इस परिवर्तन की तह में क्या सन्देश है, क्या व्यङ्ग और क्या प्रेरणा है? इत्यादि बातें सोचते २ ही जब मैं गङ्गनीय नाला पार कर रहा था त्योंही सामने दृष्टिपथ में खड़ी हुई प्राचीन धर्मशाला दृष्टिगोचर हुई। वही रहट वाला मधु-जल-कूप, वही शाला का आँगन वही उद्यान तथा द्रुमराजि, सब कुछ अपने २ स्थान पर बैठे हुए जैसे उस सूने पन की शिकायत कर रहे हों। मैंने उस शून्य में एक दो ग्रामीण कृषकों को अपनी बागवानी में व्यस्त देखा और आगे बढ़ा। अब मैं क्या देखता हूँ कि वही पुरातन स्नानागार तथा कूप जो किसी समय सुबह ढाई बजे से अपने रहट-गान द्वारा ब्रह्मचारियों को स्नानार्थ आमन्त्रित किया करता था—आज न केवल ढही हुई दीवारों वाला खण्डहर हो गया है अपितु अपने जीवन-प्रद दाता समीप वाले कूप से टूटे फूटे हृदय से अपनी हालत पर रोता रो रहा है। कूप में जल तो था पर स्नानागार के

पास इस शोक में अश्रु जल भी न था। कुछ आगे बढ़ कर मैंने कुल-वाटिका के चिर परिचित वृक्षों को नाम ले २ कर पुकारा तो उत्तर में इस हतभाग्य द्रुमराजि ने मुझे एक ही उत्तर दिया कि जिन हरित शाखों पर झूल कर तू फल-पुष्पों के रसास्वादन से तृप्त हुआ करता था आज उन सूखी शाखों पर काक और उलूक विष्ठा करके हमें कटु शब्दों से उलाहना देते रहते हैं कि 'हे उद्यान द्रुमो! आज हम भी तुम पर सवार हैं, तुम में जङ्गली पेड़ों में क्या अन्तर'? इन फल वृक्षों के झुरमुट में से होकर जब आगे जाता हूँ तब देखता हूं कि वही सुपरिचित आश्रम वीथि का मुख्य सिंहद्वार जो कि कुल की सबसे पुरातन इमारतों में से एक को अपने सबल स्कन्धों पर थामे हुए था, बड़े परिचत भाव से कह रहा था कि प्रिय! यह निवास, यह आश्रम, यह अपना घर मैंने तुम्हारे लिए बड़े प्रेम-श्रम से तय्यार किया था, परन्तु न जाने तुम इसे छोड़ कर कहां चले गये? क्या मुझसे कोई अपराध हुआ, व संरक्षा में भूल हुई, जो तुम मेरी इस स्निग्ध श्यामल गोद को छोड़ कर चले गये! मेरी इस निरन्तर रक्षा को अस्वीकार कर चले गये?' यह शब्द जब मेरे कानों में पड़े तो ऐसा प्रतीत हुआ कि दो वानप्रस्थ [illegible] वेष में 'वन-देवता और कुल-माता' के रूप में इस आँगन में मध्य-वर्ती यज्ञशाला के बिल्व द्रुमों के नीचे कुछ मौन स्वरों में वार्तालाप कर रहे हैं। दोनों बड़े निश्चेष्ट भाव से, आश्चर्य और पीड़ा से सारे कुल-कानन को अपने शून्य मौन भाव कह रहे थे कि 'भाई! मैं तो नहीं [illegible] था, यहाँ [illegible] इसने मुझे भेजा था [illegible] अब भी नहीं की [illegible] रही' मुझे नहीं मालूम कि यह मौन—आलाप कब समाप्त हुआ? ....

इस दृश्य को देख कर महाविद्यालय के विशाल प्रांगण वट के नीचे आकर खड़ा हुआ। उस वृद्ध वृक्ष के तले से भवन के भाल पर जब मैंने दृष्टिपात किया तो स्वर्णिम 'ओ३म्' नाम के दर्शन कर नतमस्तक हो मैंने कहा—'हे विद्या मन्दिर के अधिष्ठातृ देव! विशाल उदार हृदय में बिठा कर तूने हमारी जन्मघुंटी में क्या भरा था। तिनके-ढेले-और पौधों पर्वतों की ही नहीं पर प्रकृति—पुरुष की भी तनिक सी छवि जो दिखा दी थी तभी से हम उस झलक के दीवाने हो गये? कहो आज भी कुछ दिखायेंगे? विद्या-मन्दिर ने मूक भाव से अपने व्रणविद्ध और मलिन शरीर की ओर अंगुली निर्देश कर कहा अब तो मेरा शरीर जरा रोग से ग्रसित हो चला है। एक दिन था जब मैं शरणदाता था आज मैं ही शरणागत हूं—जीवन का भिक्षुक हूँ मेरी रक्षा हो।' इस आवेदन की सत्यता को भग्नमस्त कपोतकुल ने बड़े करुण कूजन में निवेदन किया। विद्या-मन्दिर की विशाल शाला से अवकाश प्राप्त कर मैं पश्चिम की ओर बढ़ रहा था तो क्या देखता हूं कि एक 'कुटीर' अपनी भग्नप्राय अवस्था में भूमिसात् होने को तय्यार है। उसको अपनी दुखद अवस्था की तनिक भी चिन्ता नहीं। पर वह मौन भाव में बड़ी दृढ़ता से किसी सत्य को बार २ कह रही थी। मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि भ्रमरों के मधुर गुञ्जार में कोई यति हो मन्त्र जाप कर रहा हो। कुटीर की काया जीर्ण शीर्ण हो रही थी, वह भग्न प्राय थी परन्तु वहां अवस्थित अन्तरात्मा समस्त वनप्रांतर को लक्ष्य करके कह रही थी कि "मेरे लिये दुख न करना, खिन्न मत होना मैं जीर्ण शीर्ण शरीर वाला भी आत्मा हूं; मैं बिछुड़ों को मिलाता हूँ, भूले-भटकों को राह दिखाता हूं, मैं पुरानों को नवीन बना देता हूं, मैले को उजला करता हूँ, मैं स्वयं धो-धुल कर अपनी प्रकृति को अलंकृत करता हूँ, मैं स्वयं रो-हला कर जन मानव को परिसान्त्वना देता हूँ। मैं जल कर उत्कृष्ट रूप में चमकता हूँ, मैं खाद बन कर पुष्प फल रसमयी सृष्टि करता हूँ। रोओ मत दुखी मत होना, इस उदासी को दूर करो, इस चीत्कार और पुकार में इस तड़प और वेदना में उस वसन्तवनी कोकिला की कूक सुनो, यह वेदना और विछोह में भी करुणावर्षी आनन्द की अजस्र धारा प्रवाहित करती है। देखो! मैं जीर्ण शीर्ण हुआ हूँ पर फिर भी अन्तर में आत्मा हूं। हे प्रेक्षक! मेरा क्रन्दन और मेरी पुकार इस वन की काया में, सुन्दर और नवीन अंग बनकर, आशा और श्रद्धा के सुमन बनकर पुनर्विकास और प्रगति के पथ में फिर २ बलिहारी हो!"

तदुपरान्त सायंतनीन सघन वेला में दान धनी श्री मुंशी राम सिंह जी की शान्त कुटीर को अभिलक्ष्य करके चला। उस सर्वस्व दानी को मन ही मन वन्दन किया। फिर परिवार गृहों के मध्यवर्ती बिल्व-वन के नीचे किञ्चित् विश्राम करके, कामदुघा गोशाला की प्राचीर को पार करके कांगड़ी ग्राम में आन कर विश्राम किया। रात्रि में सुख निद्रा प्राप्त हुई। प्रभात से सन्ध्या तक समय कुलभूमि के पुनर्दर्शन में व्यतीत हुआ। फिर कांगड़ी को गोधूलि में कुलभूमि और कुल गांव से विदा मांग कर गंगा के उस पार से इस पार लौट आया।

———❀o❀———

समालोचना
(समा०—श्री वीरेश जी विद्यालंकार)

योगोपनिषद् योगदर्शनः—

प्रकाशक—मा० शिवचरणदास जी, हौज़ काजी देहली।

यह योगोपनिषद् यजुर्वेद अ० ११, म० १-८ के आधार पर लिखी गई है। मन्त्रों की व्याख्या में जिस शैली का अनुसरण किया गया है वह ऋषि दयानन्द की वेदभाष्य शैली है। योग-विज्ञान का मूल वेदों में पाया जाता है और उसकी सामान्य प्रक्रिया भी यत्र तत्र निर्दिष्ट हुई है इस विषय को संक्षेप में दिखाया गया है।

भूमिका में 'उपनिषद्' शब्द का अर्थ (ज्ञान और उपासना विधायक श्रुतियां हैं) इस मन्तव्य को पुष्ट करने के लिये श्री स्वामी वेदानन्द जी तीर्थ ने केवल मनु और दयानन्द का उद्धरण देकर ऐसा मान लिया है। अच्छा होता यदि वह इस मन्तव्य को युक्ति-प्रमाणों द्वारा अधिक पुष्ट और दृढ़ मूल करते क्योंकि प्रचलित विद्वद्भिमत अर्थ उपनिषदों में ही रूढ़ी है।

योगोपनिषद् यजुर्वेदीय योग विषयक ८ मन्त्रों की व्याख्या है अतएव सरल और संक्षिप्त है। योग विषयक अन्य वेद-मन्त्रों का भी दिग्दर्शन कराया जाता तो विषय विशद होकर वैदिक योग विज्ञान पर अधिक प्रकाश पड़ता। परिशिष्ट में मंत्रों में आये शब्दों की नाना निरुक्तियां देकर शब्दों के भिन्न २ अर्थ द्योतित किये हैं। मन्त्रों का प्रायः एकार्थक संगतिकरण हुआ है अनेकार्थक नहीं।

संपूर्ण योगदर्शन के सूत्रों का सरल भाषा में अर्थ करके योग को सामान्य जन सुलभ बनाने का प्रयत्न सराहनीय है। योगमार्गियों के लिए पुस्तक अवश्य रुचिकर सिद्ध होगी. पाठकों को प्रेरणा प्रदान करेगी। पुस्तक का मूल्य ॥।) सजिल्द १) पता—गुरुकुल पुस्तक भण्डार गुरुकुल कांगड़ी (सहारनपुर)

(पृष्ठ ३ का शेष)

आप सब पर आर्यसमाज के प्रवर्तक ऋषि दयानन्द की कृपा है। यह सब ऋषि का ही प्रताप है। ऋषि दयानन्द महान पुरुष थे, बड़े भारी तपस्वी थे। आप भी गुरु ऋषि दयानन्द के समान महान् पुरुष और तपस्वी बनिये। विश्वविद्यालय कांगड़ी भी उन्हीं की शुभ प्रेरणा का फल है। आज आप उसी संस्था से विद्यापान कर स्नातक होकर यहां आए हैं। मैं आपसे कहता हूँ कि आप सब महर्षि के आदर्शों को ध्यान में रखते हुए चलिए। स्नातको! मैं आप से एक ही वस्तु मांगता हूं और वह यह कि आप में सच्चा स्वदेशाभिमान आवे। इन पैंतीस करोड़ भारतीयों की सेवा का व्रत धारण करें। हमारे देश से विदेशियों के शासन को दूर करने में सहायक हों, उसके लिये ईश्वर आपको बल देवें। आप स्नातक भाइयों में कुछ आयुर्वेदालंकार हैं। मैं उनसे कहूंगा कि आपको ऐसा वैद्य बनना चाहिए कि आपके यहां से कोई भी रोगी बिना दवा के न चला जावे। आपको धन कमाने की चिन्ता नहीं करनी चाहिए। आपकी Practice तो Noble Practice होनी चाहिए। फीस के लिए चिन्ता नहीं करनी चाहिए। आपके उपकार का बदला तो भगवान् देगा ही। आपको तो निष्काम सेवा करते जाना चाहिए। आप लोग गावों में जाकर अच्छा कार्य कर सकते हैं। यदि आप ऐसा करेंगे तो संसार का बहुत अधिक उपकार कर जायंगे। अब आपकी सच्ची परीक्षा का समय आ गया है।

आप में से कुछ वेदालंकार हैं। मैं उन्हें कहूँगा कि चारों वेदों का प्रचार कीजिये। आप प्रचार करेंगे तो आपकी शिक्षा सार्थक होगी। हम प्राचीन ऋषि मुनियों द्वारा रचित वेद को पवित्र समझते हैं। वैदिक काल में हमारा देश शिरोमणि था। उन ऋषियों जैसी तपस्या अपने में ग्रहण कीजिए। हमने तो अपनी प्राचीन भूमिका पर ही आधुनिक मकान खड़ा करना है। इस भूमिका पर मकान खड़ा करने के लिए आप सब सहायता दीजिए। हमारी प्राचीन बातों को आज सब अच्छा मानने लगे हैं। इतना होते हुए भी मैं आपसे कहूँगा कि पश्चिम में जो कुछ अच्छाई हो उसे अवश्यमेव ग्रहण करना चाहिए। "गुण शत्रु के भी ग्रहण करने चाहिए और दोष मित्र के भी छोड़ देने चाहिए।" पश्चिम वाले हमारे बाप दादों को मूर्ख बतलाते हैं पर मैं इसे मानने को तैयार नहीं हूं। पश्चिम के लोग जब वस्त्र भी पहिनना नहीं जानते थे उस समय हमारी सभ्यता आजकल की पश्चिमीय सभ्यता से भी अधिक उन्नत थी। सत्य, प्रेम, उदारता और अहिंसा का पाठ जो हमारे प्राचीन देश ने पढ़ाया है उसे हमें याद रखना चाहिए। मैं तो यही कहता हूं कि यदि भारतवर्ष अपना अस्तित्व रखना चाहता है तो उसे अपनी प्राचीन संस्कृति को अपनाना पड़ेगा।

हे नवस्नातको! अन्त में मैं आपसे कहता हूँ कि आप भारत की सेवा कीजिए, गुरुकुल की शिक्षा को फैलाइए, अपने सिद्धान्तों को समझाइए, गुरुकुल से जाते हुए आप द्वारा की हुई इन प्रतिज्ञाओं को सदा ध्यान में रखते हुए चलिए और अपने कुल का गौरव बढ़ाइए।

सूचना

जिन किन्हीं सज्जनों को निम्न स्नातकों का पता मालूम हो वे मुझे सूचित करने की कृपा करें और यदि स्नातक ही इस सूचना को पढ़ लेवें तो वे स्वयं अपना पता देवें तथा गुरुकुल में मुझसे आकर मिल लेवें—

१ श्री पं० विवेकानन्द जी विद्यालंकार सं० श्री स्वामी-ब्रह्मानन्द जी

२ श्री पं० कृष्णचन्द्र जी (के सी वर्मा) लुधियाना निवासी

३. श्री पं० वेदप्रकाश जी वि०अ० सं०म० धर्मभिक्षु जी

निवेदक—
स्वामी अभयदेव
आचार्य गुरुकुल कांगड़ी

गुरुकुल समाचार

स्वास्थ्य समाचार

नाम रोगी	श्रेणी	नाम रोग
रमेशचन्द्र	१२	चोट
गुरुदत्त	११	मलेरिया
यशपाल	५	"
जगदीश	५	"
आनन्दप्रकाश	४	"
ज्योतिस्वरूप	३	"
सुरेन्द्र	४	"
अरुण	२	नेत्राभिष्यन्द
नारायण	४	आन्त्रज्वर

अब सब स्वस्थ हैं।

गर्मी बहुत अधिक पड़ने लगी है। लेकिन लू अधिक नहीं चलनी प्रारम्भ हुई। साधारणतया ब्रह्मचारी स्वस्थ तथा प्रसन्न मालूम होते हैं।

२३ मई से गुरुकुल में सत्रान्तावकाश की छुट्टियां प्रारम्भ हो जावेंगी। महाविद्यालय विभाग के ब्रह्मचारी यात्रार्थ विभिन्न स्थानों के लिये पार्टियां बना रहे हैं। पार्टियां रास्ते में हाकी वगैरह के सम्मुख करती जावेंगी। इस समय तक डलहौजी, नीलगिरी तथा बम्बई जाने वाले तीन दल बन चुके हैं।

उत्सव के बाद से श्री स्वामी ब्रह्मपुरी जी महाराज गुरुकुल में ठहरे हुए हैं। सभी विषयों में आपका ज्ञान अति गम्भीर है। उत्सव के बाद से महाविद्यालय के स्वाध्याय सम्मेलन में आपके ही व्याख्यान व उपदेश हो रहे हैं जो कि ब्रह्मचारियों के लिये बहुत ही लाभदायक सिद्ध हुए हैं। ब्रह्मचारी प्रतिदिन आपके संसर्ग से लाभ प्राप्त कर रहे हैं। इसी शुक्रवार को महाविद्यालय की सभा गोष्ठी का विशेषाधिवेशन होगा जिसमें उपाध्याय तथा ब्रह्मचारी वर्ग सभी हिस्सा ले रहे हैं। इस सप्ताह राष्ट्रीय महासभा के प्रधानमन्त्री का चुनाव हुआ। चुनाव में श्री सत्यपाल जी उपस्नातक प्रधानमंत्री तथा श्री वेदरत्न जी विरोधी दल के नेता चुने गये। महासभा के अधिवेशन अगस्त के अन्तिम सप्ताह में होंगे।

२० तथा २१ मई को गुरुकुल की तरफ से पञ्चपुरी तैरी सम्मेलन होगा। जिसमें हरिद्वार, कनखल ज्वालापुर आदि बस्तियों के तैराक भारी संख्या में हिस्सा ले रहे हैं। ब्रह्मचारी भी इसके लिए खूब तय्यारी कर रहे हैं। प्रथम तीन विजेताओं को पुरस्कार दिये जावेंगे।

श्री आचार्य अभयदेव जी का त्यागपत्र स्वीकृत हो गया है।

गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ—

२२ मई से १॥ मास के लिए ग्रीष्मावकाश के कारण विद्यालय बन्द रहेगा। ६ष्ठ, ७म तथा ८म के ब्रह्मचारियों को पहाड़ी यात्रा पर भेजा जायेगा। ६म तथा १०म के ब्रह्मचारियों को जो संरक्षक महोदय घर बुलावेंगे उन्हें घर जाने की आज्ञा है।

इस सप्ताह निम्न ब्रह्मचारी हस्पताल में रहे।

ब्र० राघवेन्द्र ६म श्रेणी बुखार
ब्र० ओ३म्प्रकाश ६ष्ठ श्रेणी बुखार
ब्र० नारायणदेव ६ष्ठ " "
ब्र० ईश्वरदत्त " " "
ब्र० रामचन्द्र गिरडी ७म श्रेणी कर्णशूल

गुरुकुल चित्तौड़गढ़—

ऋतु सुहावनी है। समस्त कुलवासी स्वस्थ तथा प्रसन्न हैं। विद्यालय का कार्य भलीभांति चल रहा है। अखाड़े में मल्लयुद्ध नियमित रूप से हो रहा है। लाठी का अभ्यास भी एक सुयोग्य लाठी शिक्षक की अध्यक्षता में ब्रह्मचारियों को कराया जा रहा है। वार्षिक अवकाश ग्रीष्म ऋतु में न होकर कार्तिक मास में होगा जबकि आर्य प्रतिनिधि सभा राजस्थान की स्वर्णजयन्ती में सम्मिलित होने के लिए सब ब्रह्मचारी आवेंगे।

गुरुकुल सूपा का वार्षिकमहोत्सव

गुरुकुल सूपा का वार्षिकोत्सव ता० २३,२४ और २५ अप्रैल को कुलभूमि में विशेष समारोह पूर्वक सम्पन्न हुआ। इस वर्ष प्रतिवर्ष की अपेक्षा जनता कुछ कम आई थी। परन्तु परिस्थिति को देखते हुए उत्सव को सफल कहा जा सकता है। उत्सव में श्रीस्वामी ब्रह्मानन्दजी, श्री डा० चन्दूलालजी देसाई, श्री पं० परभुभाई जी, श्री पं० कन्हैयालालजी कोठारी, श्री पं० बिहारीलालजी शास्त्री, श्री पं० चन्द्रकान्त जी वेदवाचस्पति, श्री पं० राजेन्द्रजी आदि व्याख्याता आये थे। जनता पर इन विद्वानों के व्याख्यानों का उत्तम प्रभाव पड़ा। २५ तारीख को गुरुकुल के प्रथम स्नातकों का दीक्षान्त संस्कार हुआ। दीक्षान्त भाषण बम्बई प्रांत के कांग्रेसी प्रसिद्ध नेता श्री डा० चन्दूलाल जी ने दिया। श्री स्वामी शंकरानन्दजी महाराज की अपील पर लगभग ८०००) आठ हजार रुपये दान में प्राप्त हुआ।

गुर्जरप्रान्तीय गुरुकुल स्नातक मण्डल का वार्षिक साधारण अधिवेशन २६ अप्रैल को गुरुकुल सूपा में हुआ था। आगामी वर्ष के लिए निम्न प्रकार अधिकारी चुने गए हैं।

प्रधान श्री प० प्रियव्रत जी विद्यालंकार आचार्य गुरुकुल सूपा।

उपप्रधान श्री पं० चन्द्रकांत जी वेदवाचस्पति आचार्य गुरुकुल सोनगढ़।

उपप्रधान श्री स्नातिका शान्ताबहिन आचार्या कन्या गुरुकुल पोरबन्दर।

मंत्री श्री पं० देवनाथ जी विद्यालंकार
उपमंत्री श्री पं० सत्यप्रिय जी वेदालंकार
कोषाध्यक्ष श्री पं० रविशंकर जी विद्यालंकार

अन्तरंग सभा के सदस्य इन से अलग हैं। आगामी वर्ष के लिए कई उत्तम योजना तैयार की गई हैं। आशा है नवीन कार्यकर्ता उत्साह से कार्य करेंगे।

चौधरी दुलासराय के प्रबन्ध से गुरुकुल यन्त्रालय गुरुकुल कांगड़ी में मुद्रित तथा प्रकाशित।

* ओ३म् *

"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत" Reg. No. A. 2927

गुरुकुल

सम्पादक—भारतभूषण वेदालङ्कार

एक प्रति का मूल्य -) [गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख-पत्र] वार्षिक मूल्य २॥)

वर्ष ३] गुरुकुल काङ्गड़ी, शुक्रवार १४ ज्येष्ठ १९९५ ; २७ मई १९३८ [संख्या २

नाहं मन्ये सुवेदेति नोन वेदेति वेद च ॥

[ले०—श्री स्वामी ब्रह्मपुरी जी महाराज]

ॐ शन्नोमित्रः शं वरुणः ॥ शं नो भवत्वर्यमा ॥ शं न इन्द्रो बृहस्पतिः ॥ शं नो विष्णुरुरुक्रमः ॥ नमो ब्रह्मणे ॥ नमस्ते वायो । त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि ॥ त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्म वदिष्यामि ॥ ऋतं वदिष्यामि ॥ सत्यं वदिष्यामि ॥ तन्मामवतु ॥ तद्वक्तारमवतु ॥ अवतुमाम्॥ अवतुवक्तारम् ॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

आर्ष ग्रन्थों में तैत्तिरीय उपनिषद् नामक एक ग्रन्थ है जिसका शान्तिपाठ ऊपर बताया गया है। शान्तिपाठ समाप्त होकर प्रथम अनुवाक में "सत्य वदिष्यामि ऋतञ्च" केवल इतना ही लेख है और उसके बाद द्वितीय अनुवाक शुरु हो जाता है।

दूसरे अनुवाक में "ॐ शिक्षां व्याख्यास्यामः" कह कर शिक्षा अध्याय प्रारम्भ किया जाता है। इस लेख में हम इस शिक्षा अध्याय पर विचार करेंगे।

शिक्षा अध्याय में केवल निम्नलिखित ६ शब्द ही हैं—

"वर्णः स्वरः मात्रा बलं साम सन्तानः"॥

उपरोक्त शब्दों पर विचार करने से ऐसा प्रतीत होता है कि ग्रन्थ रचयिता की भावना यह होनी चाहिये कि बालक की शिक्षा वर्णों से अर्थात् अक्षरों से आरम्भ होनी चाहिए और उसके बाद उसको 'स्वर-बोध कराना चाहिये।

शिशु को वर्ण बोध किस प्रकार कराया जाय इस विषय पर तो आज के युग में कई प्रकार की नयी नयी कल्पनाएं (किन्डर गार्टेन पद्धति इत्यादि) प्रचलित हो रही हैं और वर्णबोध कराना माता का कर्त्तव्य है। इसलिए प्रत्येक पठित मनुष्य का धर्म है कि वह अपने घर का वातावरण ऐसा बनावे कि जिसमें प्रत्येक माता अपने नवजात बालक को कबूतर का 'क', खरगोश का "ख", गाय का "ग" और घोड़े का "घ" इत्यादि परिचित वस्तुओं के नाम से सारी वर्णमाला सिखा सकें और फिर ताश के पत्तों में इसी प्रकार के चित्र बना कर और चित्र के पास ही विशाल और स्थूल स्वरूप में वर्णों को भी लिख दिया जाय और माताएं उन चित्रों की सहायता से प्रत्येक वर्ण की शकल भी सिखा दें।

उपरोक्त रीति से माता द्वारा वर्णमाला सिखलाये जाने के बाद बच्चे के उसके पिता ने स्वर बोध कराना चाहिए। स्वरों का ज्ञान कराने का सरल उपाय यह है कि छोटी आयु के बालक को खेल ही खेल में यह कहा जाय कि तुम अपने मुख से "आ" इस प्रकार करो जैसे गवैये लोग गाने में किया करते हैं और फिर इसी प्रकार उसे "का" की ध्वनि करने को भी कहा जाय। फिर उसको यह समझाने का यत्न किया जाय कि "आ" तथा "का" बड़ी देर तक एक सांस से बोलते रहने से ऐसा मालूम पड़ता है कि "आ" की ध्वनि तो निर्विघ्न हमारे मुख से लगातार यकसां निकलती रहती है, परन्तु "का" की ध्वनि को यह सौभाग्य प्राप्त नहीं है। "का" बोलने में "क" की आवाज़ तो हमारे मुख से ज़रा सी निकलती है और आगे "आ" की ध्वनि चलती है। अर्थात् "क" ऐसी ध्वनि है कि जो बिना "अ" या "आ" के योग के मुख से निकलना ही कठिन है परन्तु "अ" या "आ" की ध्वनि इस प्रकार अशक्त नहीं है।

यह बात जब बच्चे की समझ में आजाय तो उससे कहना चाहिए कि तुमने अपनी माता से जो वर्णमाला सीखी है उसमें तलाश करो कि "अ" की जाति के कितने अक्षर हैं और "क" की जाति के कितने अक्षर हैं। अर्थात् कितने वर्ण ऐसे हैं कि जो "अ" या "आ" की भांति निर्विघ्न सरलता से अपने आप बोले जा सकते हैं और कितने वर्ण ऐसे हैं कि जो "क" या "का" की तरह अशक्त हैं, और जब तक उनका योग "अ" या "आ" से न हो तो वे बोले ही नहीं जा सकते। यह बात जब बालक ठीक २ समझ लेगा तो सारी वर्णमाला में से "क" की

जाति के तमाम अक्षर बतला देगा और "अ" की जाति के भी तमाम अक्षर बतला देगा। फिर उसको कहना चाहिए कि जो वर्ण तुमने अपनी वर्णमाला में ऐसे देखे जो अपनी निज सत्ता से बोले जा सकते हैं उनको तुमने "स्वर" समझना और जो अशक्त हैं तथा लंगड़े हैं कि जो बिना किसी स्वर के योग के आगे ही नहीं चल सकते उनको तुमने "व्यञ्जन" समझना। इसको "स्वर बोध" कराना कहते हैं।

उपनिषत् में जो वर्णबोध और स्वर बोध कराये जाने के बाद मात्रा का बोध कराना ऐसा निर्देश है और विचार करने से मालूम होता है स्वर की मात्रा का बोध गवैये लोग ही ठीक २ प्रकार से करवा सकते हैं। परन्तु यदि यत्न किया जाय तो भजन गाने के समय बच्चों को ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत का बोध कराया जा सकता है या खेल में कुछ ऐसे शब्द बोल कर ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत की मात्राओं का भेद समझाया जावे कि जो हमेशा बोलने के काम भी आते हों जैसे "कुत्ता" इसमें "कु" की आवाज बहुत थोड़ी है और 'त्ता" की आवाज़ उससे कुछ अधिक आयु रखती है, तो चूँकि "कु" की आवाज़ एक छोटी हस्ती है इसलिए उसे "ह्रस्व" कहना चाहिये और "त्ता" की आवाज़ उससे कुछ अधिक समय जीवित रहती है इसलिए उसे "दीर्घ कहना चाहिये और भजन गाने में जो तान लगायी जाती है उसे "प्लुत" कहना चाहिये।

उपरोक्त रीति पर लेख में "ह्रस्व, दीर्घ और "प्लुत" मात्राओं का बोध कराने के बाद बच्चे को उन स्वर-मात्राओं का व्यञ्जनों से योग कराना सिखलाना चाहिये। प्रत्येक स्वर का एक २ चिह्न प्रत्येक व्यञ्जन के साथ मिला कर लिखना और उसको मुख से बोलना और बालकों को समझाते जाना ही इसके लिए पर्याप्त हैं। इस प्रकार प्रत्येक व्यञ्जन के १२ स्वर-चिह्न मिलने से १२ शकलें बन जाती हैं। उन १२ शकल वाले व्यञ्जनों की सारी वर्णमाला जब तय्यार हो जाय तो बच्चे को समझाना चाहिये यह "१२ अक्षरी" विद्या है जिसमें कि प्रत्येक व्यञ्जन की १२ शकलें बनाना (स्वरों के योग से) सिखलाया जाता है। इस १२ अक्षरी विद्या का अपभ्रंश होकर अब "१२ खड़ी" कहलाता है। वर्णमाला और १२ खड़ी तो बालक को अपने माता पिता से घर में ही सीख लेनी चाहिये। अब उसे उपनिषत् के निर्देशानुसार "बलम्" (Accent) को सीखना है। उसके लिये वर्णमाला तथा १२ अक्षरी विद्या में सीखे हुए अक्षरों (Syllables) को आपस में मिला २ कर पहिले शब्द रचना करनी होगी। इसका सीखने का सरल उपाय यह है कि शिक्षक अपने मुख से अक्षर "घो" बोलें और बालकों को कहें कि तुम इसको अपनी १२ खड़ी में तलाश करके उसे अपनी स्लेट पर लिखो और फिर इसी प्रकार "ड़ा" बोलें और लड़कों से लिखवायें और उसे पढ़ने को कहें तो बच्चा झट बोल उठेगा "घोड़ा" ऐसे ही जब मौका मिले शब्द-रचना कराते रहना चाहिये। ऐसा करने से व्यञ्जन का और स्वर का बल बच्चे की समझ में आ जायगा और वह स्वर तथा व्यञ्जन दोनों ही वर्णों की उपयुक्तता को समझने लगेगा और उसको यह समझाने का यत्न करते रहना चाहिये कि स्वर एक अजर, अमर और अटल ध्वनि है। परन्तु शब्द संसार की रचना में बिलकुल असमर्थ है। इसके साथ ही व्यञ्जन एक बिलकुल निर्जीव और नाशवान् आवाज़ है कि जो कण्ठ और जिह्वा से निकलने से ही मर जाती है। परन्तु मर्त्य होते हुए भी अपने में ऐसा विलक्षण सामर्थ्य रखता है कि बिना उसके अस्तित्व के स्वर बेचारा अकेला ही शब्द-संसार की रचना नहीं कर सकता। जैसे स्वर वर्ण मात्रा रखते हैं वैसे ही व्यञ्जन वर्ण बल रखते हैं, और व्यञ्जनों के बल से ध्वनि शरीर के अन्दर उत्पन्न होती है और स्वरों के प्रवाह की धारा मात्राओं द्वारा ध्वनि का मुख से आगे को संचार करते हैं। इस प्रकार स्वर और व्यञ्जन के योग से मात्रा और बलयुक्त होकर शब्द-संसार की रचना होती है।

यह बात शिशु अवस्था में बालकों के मस्तिष्क पर अङ्कित हो जाय तो परिणाम स्वरूप में उपनिषत् के "साम-सन्तान." की अवस्था को पहुंचा जा सकता है।

क्रमशः

वास्तविक शिक्षा

[श्री पं० ब्रह्मानन्द जी व्याकरणोपाध्याय]

आजकल भारतवर्ष में जो स्कूलों, कालेजों में शिक्षायें प्रचलित हैं वे राष्ट्र की शक्ति का कितनी बुरी तरह नाश कर रही हैं, यह उनके परिणाम से स्पष्ट है। जिस प्रकार गधे पर बोझ लादा जाता है उसी तरह स्कूलों और कालेजों में लड़कों के मस्तिष्क में पुस्तकों के विचारों का बोझ बुरी तरह से लाद दिया जाता है। शिक्षा का उद्देश्य है अपने शरीर, मन और आत्मा की शक्तियों के ज्ञान का विकास। किन्तु आधुनिक भारतीय विश्वविद्यालयों के पढ़े हुए नवयुवक उस उद्देश्य की प्राप्ति से अधिकांश वञ्चित पाये जाते हैं। संसार का प्रत्येक मनुष्य अपने जीवन के द्वारा संसार को कुछ नवीन सन्देश देने के लिए आया है। शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जिससे हरेक मनुष्य के अन्दर जो संसार को कुछ नवीन सन्देश देने की दिव्य शक्ति वर्तमान है उसका ज्ञान और विकास हो सके। आजकल तो जो शिक्षा दी जाती है उसका यह अभिप्राय मालूम होता है कि हमारे जीवन का अपना कोई महत्त्व ही नहीं है, उसके अस्तित्व की सार्थकता तो सिर्फ दूसरों के जीवन के अनुभवों एवं विचारों का बोझ उठाने में ही है। प्राचीन काल के भारतीयों में स्वतन्त्र विचार शक्ति तथा मौलिकता थी, इसी से वे उपनिषदों, दर्शनों तथा सूत्रादि ग्रन्थों का आविष्कार कर सके थे। मध्यकालीन भारतीयों ने स्वतन्त्र विचार

तथा मौलिकता का परित्याग कर सिर्फ पुराने ग्रन्थों की टीकायें लिखने में ही अपना समय व्यतीत किया। अर्थात् वे संसार के सामने अपने जीवन के द्वारा नवीन सन्देश उपस्थित कर शिक्षा के वास्तविक उद्देश्य को पूरा न कर सके।

आजकल भी काशी के पुराने ढंग के पण्डितों तथा उनकी शिक्षा प्रणालियों की यही परिस्थिति है। इसका यह मतलब नहीं कि अंग्रेजी पढ़ने वालों की अच्छी स्थिति है। जैसे संस्कृत पढ़ने वाले प्राचीन भारतीय साहित्य के अध्ययन तथा अनुसरण में यन्त्रवत् लगे रहते हैं वैसे ही अंग्रेजी पढ़ने वाले यूरोपीय साहित्य तथा संस्कृति के गुलाम हो जाते हैं। मेरे विचार में तो पुस्तकों को शिक्षा का साधन बनाना बहुत हानिकारक है। जैसे कागज़ के रूप में काल्पनिक रुपयों से भारतवर्ष वास्तविक सम्पत्ति से धीरे २ रहित हो रहा है वैसे ही पुस्तकों की लकीरों के शक्ल में आये हुए काल्पनिक ज्ञान से भी वास्तविक ज्ञान की दरिद्रता बढ़ती जा रही है। यह ठीक है कि इसकी भी सहायता लेनी आवश्यक है, किन्तु इस का पूर्णतया ध्यान रखना चाहिए कि कहीं यह सहायक के स्थान में बाधक तो नहीं हो रहा है। मेरे विचार में शिक्षा के लिए पुस्तकों की बहुत कम आवश्यकता होनी चाहिए। हमारी इन्द्रियों का वस्तुओं के साथ सीधा सम्बन्ध होना चाहिए. पुस्तकों की लकीरों के द्वारा किसी वस्तु का हमारे मन के साथ सम्बन्ध वास्तविक फलदायक नहीं हो सकता। इस किताबी शिक्षा के द्वारा लड़कपन से ही किताबों की काली २ लकीरों का ऐसा संस्कार दृढ़ हो जाता है कि हम जब किसी वस्तु का नाम लेते हैं तो उस वस्तु के संकेत के लिये कल्पित किताबी लकीरें हमारे दिमाग़ में चली आती हैं और कुछ क्षणों तक तो ऐसा जान पड़ता है कि मानो इन लकीरों का समुदाय ही वह वस्तु है। मनुष्य के सामने सर्वदा किसी वस्तु के काल्पनिक रूप को ही रखने से उस काल्पनिक रूप में ही उसे वास्तविकता का आभास होने लगता है। जैसे मूर्त्तिपूजकों ने ईश्वर की मूर्त्ति के रूप में कल्पना करके पूजा करना प्रारम्भ किया, पीछे वे उस मूर्त्ति में ही ईश्वर की वास्तविकता का आभास पाने लगे। अतः हमें इन सब गम्भीर तथ्यों पर ध्यान देते हुए यथाशक्ति शिक्षा के समय किसी वस्तु के यथार्थ रूप को ही रखने का प्रयत्न करना चाहिये। जिससे बालकों के मन में वस्तु के यथार्थ स्वरूप का ही संस्कार दृढ़ होवे। एक तो शब्द ही वस्तु का काल्पनिक रूप है और किताबी लकीर तो उस काल्पनिक रूप का भी काल्पनिक रूप है। इस तरह वास्तविकता से हमारी दूरी द्विगुणित होती जा रही है। जैसे नोट के प्रचार से हमारे देश से सोना चांदी, निकलता जा रहा है और हम कागज को ही वास्तविक संपत्ति समझ भ्रम में पड़े हुए हैं वैसे ही किताबी लकीरों के प्रचार से हम वास्तविक ज्ञान से दूर होते जा रहे हैं और उन लकीरों में ही वास्तविकता का आभास पा रहे हैं। यदि शाब्दिक शिक्षा दी जावे तो यह इस लिपिमयी शिक्षा से अवश्य उत्कृष्ट कही जा सकती है किन्तु आखिर शब्द भी तो वस्तु के काल्पनिक रूप ही हैं। यदि किसी वस्तु के साथ हमारे मन और इन्द्रियों का साक्षात् सम्बन्ध कराकर उस वस्तु की शिक्षा दी जावे तभी वह उपयुक्त हो सकती है अन्यथा नहीं।

और दूसरी बात यह कि शिक्षा का केन्द्रीकरण होना चाहिए क्योंकि शिक्षा हमारे लिए है, हम शिक्षा के लिए नहीं हैं। हमारे लिये उतनी ही शिक्षा उपादेय है जो कि हमारे उद्देश्य की पूर्ति में सहायक हो। अतः जो हमारा उद्देश्य हो उसी पर सारी शिक्षा को केन्द्रित करना चाहिए। यदि हम सारी मानव जाति की दृष्टि से 'शिक्षा का केन्द्र क्या हो ?' इस विषय पर विचार करें तो हमें यह देखना होगा कि मानव जाति के जीवन का क्या उद्देश्य है। मेरे विचार में मानव जाति का उद्देश्य अपनी अन्तर्निहित शक्तियों को विकसित कर क्रमशः पूर्णता को प्राप्त करना है। और इसीलिये मेरे विचार में शिक्षा का केन्द्र मनुष्य का व्यक्तिगत जीवन होना चाहिए। अर्थात् हमें जो कुछ भी शिक्षा प्राप्त हो उसका आधार हमारे जीवन की घटनाओं को बनाया जावे। वर्धा-शिक्षण समिति में महात्मा गांधी ने जो शिक्षा का केन्द्र उद्योग को बनाने का विचार प्रकट किया है, वह मूलतः इस विचार से भिन्न नहीं है, क्योंकि वर्तमान भारतीय जीवन की सामान्य घटना के आधार पर ही उन्होंने ऐसा कहा है। उनके उस विचार में अव्यक्त रूप से कार्य करता हुआ व्यापक सत्य तो यही है कि शिक्षा का केन्द्र मनुष्य का जीवन होना चाहिये।

गु रु कु ल

२७ मई शुक्रवार १९३८

औद्योगिक शिक्षा

[श्री पं० केशवदेव शास्त्री, मद्रास]

दुनिया झुकती है झुकाने वाला चाहिये। मुद्दत से हम देख रहे थे कि देश में वर्तमान शिक्षा प्रणाली से असन्तोष है। व्यर्थ में विद्यार्थियों का समय, शक्ति व धन का नाश हो रहा है। और ज्यों २ लोग अधिक शिक्षित होते जा रहे हैं त्यों २ बेरोज़गारी भी बढ़ती जा रही है। अनेक शिक्षा शास्त्रियों ने इस विकट समस्या को सुलझाना चाहा। परन्तु गांठ कड़ी होती गई ज्यों २ खोलने की कोशिश की गई। आख़िर यह कार्य-भार भी महात्मा गांधी के ज़िम्मे पड़ा। और उनके प्रयत्नों का फल इस समय "वर्धा शिक्षण प्रणाली" के के रूप में देश के सामने है। इस नवीन शिक्षा प्रणाली की विशेषता यह है कि इसके द्वारा विद्यार्थियों में औद्योगिक प्रवृत्ति उत्पन्न की जाएगी।

× × × ×

वर्तमान में मद्रास की कांग्रेसी सरकार के मन्त्री दिन रात इसी चिन्ता में हैं कि किस प्रकार मद्रास—प्रान्त में उद्योग-शालाएं खोली जायें। अभी हाल ही में घोषणा निकली है कि सरकार की ओर से वज़ीफे देकर अनेक युवकों को वर्धा भेजा जाएगा। इसके लिए दरख़्वास्तें मांगी गई हैं। दूसरी ओर स्थानीय सरकार ने दयाल बाग़, आगरा के अधिकारियों को लिखा है कि यदि वो अपनी शाखा मद्रास में खोलने का प्रबन्ध करें तो सरकार उन्हें पुष्कल ज़मीन मुफ्त देगी। प्रतीत होता है कि दयाल बाग़ वालों ने भी मान लिया है। और अब शीघ्र ही वहां डेरीफ़ार्म, लैदर फैक्टरी, तथा अन्य कार्य प्रारम्भ होंगे। इसी प्रकार रेशम के व्यापार और हाथ की बुनाई का कानूनन विशेष प्रोत्साहन दिया जा रहा है।

× × × ×

यह बात केवल मद्रास में हो सो नहीं। सब प्रान्तों में है। हमें श्री पन्त जी के वो शब्द नहीं भूलते जो उन्होंने इसी वर्ष दीक्षान्त भाषण में कहे थे:—

"मैं चाहता हूं कि आपके गुरुकुल में इंजनीयरिंग तथा अन्य उपयोगी शिल्प-विद्याओं के केन्द्र खुलें।"

उपरोक्त शब्दों से दो भाव स्पष्ट होते हैं। एकः—श्री पंत जी अपने संयुक्तप्रान्त को औद्योगिक दृष्टि से उन्नत बनाना चाहते हैं। २यः—उनकी इच्छा है कि गुरुकुल भी देश को शिल्प विद्या सिखाने में भाग ले।

आज समस्त प्रान्तों की दृष्टि वर्धा की ओर है क्योंकि वहां महात्मा गांधी जी के नेतृत्व में देश के हित के लिये अनेक परीक्षण हो रहे हैं। क्या ही अच्छा होता यदि हमारा गुरुकुल भी क्रियात्मक शिल्प-शिक्षा की दृष्टि से देश का नेतृत्व कर सकता। आज भी कुछ नहीं बिगड़ा है। आज देश को ऐसे अनेक कार्यकर्ताओं की आवश्यकता है जो देश-भक्ति के भावों से प्रेरित होकर शिल्प-कला-शालाओं को चलायें और देश को शीघ्र ही उद्योगोन्मुख करें। गुरुकुल ऐसे कार्यकर्ताओं को आसानी से दे सकता है यदि इस दिशा में तनिक प्रयत्न किया जाय।

कभी २ हम सोचते हैं कि गुरुकुल के संचालकों ने अत्यधिक भावुकता से काम लिया है। इस समय उस शिक्षा प्रणाली को हम पूर्ण सफल शिक्षा प्रणाली नहीं कह सकते हैं जिसमें १४ वर्ष पढ़ने के बाद भी युवक को अपनी रोटी कमाने में कठिनाई पड़े। यह ठीक है कि शिक्षा का उद्देश्य केवलमात्र रोटी कमाना नहीं है। परन्तु खाली पेट भी तो कुछ काम नहीं होता। यह शरीर एक अत्यन्त उपयोगी साधन है और इसे स्वस्थ तथा सुखी रखना हमारा कर्त्तव्य है।

× × × ×

अस्तु। हमारी नम्र सम्मतियों में इस समय गुरुकुल के अधिकारियों को चाहिये कि एक "कमीशन बैठा कर विचार करें कि किस प्रकार गुरुकुल में शिल्प विद्यालय की स्थापना की जा सकती है? इस सम्बन्ध में यू० पी० सरकार के लेबर-मिनिस्टर तथा प्रीमियर से भी यदि विचार-विनिमय किया जाय तो कुछ अनुचित नहीं। स्कीम बन जाने पर उसके भिन्न २ पहलुओं यथाः—धन, कार्यकर्त्ता आदि की प्राप्ति का उचित प्रयत्न किया जाय। इस कार्य के लिए एक-दो पृथक् कर्मचारियों की नियुक्ति अत्यावश्यक होगी।

सरकारी सहयोग ढूंढते समय स्वतः ही विचार उठता है कि अब 'ग्रांट" अथवा आर्थिक सहायता प्रान्तीय शिक्षा-विभाग से लेनी चाहिये या नहीं। हमारी नम्र सम्मति में यदि प्रान्तीय शिक्षा विभाग गुरुकुल-शिक्षा-प्रणाली को प्रोत्साहित करने के लिए आर्थिक सहायता देना स्वीकार करे तो हमें उज्र न करना चाहिये। गुरुकुल भी श्री रवीन्द्र के शान्ति निकेतन और श्री कार्वे की महिला यूनिवर्सिटी के समान प्राचीन सभ्यता व संस्कृति का एक केन्द्र है। अतएव सरकार का यह परम कर्त्तव्य है कि भारतीय संस्कृति की रक्षा के लिए इन संस्थाओं की आर्थिक सहायता करे। इस सम्बन्ध में हम तो चाहते हैं कि यदि उपरोक्त संस्थाओं का संगठित प्रयत्न हो तो अवश्य लाभ हो सकता है। इस विषय में एक डैपूटेशन महात्मा गांधी से मिलना चाहिये।

× × × ×

गुरुकुल में अनेक उद्योग चल सकते हैं। हरिद्वार कच्ची औषधियों का केन्द्र है। अतएव कच्ची व तयार

औषधियों का व्यापार आसानी से चल सकता है। यही हाल रसायनशाला का है। प्रसन्नता की बात है कि गुरुकुल ने कई वर्षों से इस ओर कदम उठाया हुआ है।

सहारनपुर ज़िला गन्ने के लिए प्रसिद्ध है। इसलिए गुरुकुल में स्वदेशी, पवित्र शक्कर आसानी से बनाई जा सकती है।

हरिद्वार-हृषिकेश-देहरादून के जङ्गलों में बांस बहुत होता है इसलिये स्वदेशी कागज़ बखूबी बनाया जा सकता है।

यही हाल लकड़ी का है जो फर्नीचर के काम आती है। इसलिए चटाइयां वग़ैरह बन सकती हैं।

फिर ज़िला मुरादाबाद व बिजनौर बरतनों व गिल्ट के लिए प्रसिद्ध हैं। उस काम को ढंग से चला कर उम्दा "कटलरी" और 'शल्य यन्त्र" (Surgical instruments) बनाए जा सकते हैं।

इस इलाके में दूध सस्ता है। इसलिए डेरीफार्म की चीजें:—मक्खन मलाई, घनीभूत दूध आदि का व्यापार खूब चल सकता है।

यही हाल चमड़े की कारीगरी का है ऊपर की चीजें हमने नमूने के लिए गिनाई हैं। यदि "कमीशन" बैठाया गया तो वह स्वयं ही विवेचना कर लेगा। औद्योगिक-शिक्षा की आज देश को आवश्यकता है इसमें तो तनिक भी सन्देह नहीं। परन्तु क्या गुरुकुल इस ओर अग्रसर होगा? इसका उत्तर तो अधिकारी वर्ग के प्रयत्न के साथ आर्य जनता की सहायता व सहयोग से ही प्राप्त हो सकता है।

———:❀:———

मधुमक्खी पालन

[लेखक—श्रीयुत रामेश वेदी आयुर्वेदालङ्कार]

भारत में मधु मक्खी पालन की ओर पिछले चालीस सालों से लोगों का ध्यान खिंचा और सरकार ने भी इसमें तभी से दिलचस्पी लेनी प्रारम्भ की। वर्तमान समय में यह व्यवसाय भारत में कई स्थानों पर सफलता पूर्वक चलाया जा रहा है। मधुमक्खी पालन के लिये हमारे देश में अभी बहुत अधिक क्षेत्र है, विशेषकर पर्वतीय प्रदेशों में यह अच्छी सफलताओं के साथ चलाया जा सकता है। उत्तर भारत में हिमालय में काश्मीर, काङ्गड़ा, कुल्लू, होशियारपुर, मण्डी स्टेट, मसूरी, गढ़वाल, नैनीताल आदि में इसके लिए उपयुक्त स्थान है। पहाड़ों पर मक्खियां अधिक अच्छा और परिमाण में भी अधिक शहद उत्पन्न करती हैं। दक्षिण भारत में त्रावनकोर, नीलगिरी, कोयम्बटूर, सेलम, कुर्ग आदि पश्चिम घाट के नौ सौ मील लम्बे क्षेत्र में और पूर्व और पश्चिम घाट में तथा आबू, विन्ध्य आदि पहाड़ों में भी यह उद्योग चलाया जा सकता है। उपरोक्त स्थानों में कई जगह अच्छी सफलता मिली है। गृह उद्योग के अतिरिक्त व्यापारिक परिमाण में भी शहद इन स्थानों से बाज़ार में आने लगा है।

यह एक ऐसा उद्योग है जिसमें अमीर ग़रीब सब लाभ उठा सकते हैं। इसके लिये बड़ी पूंजी और लम्बे चौड़े स्थान की आवश्यकता नहीं होती। थोड़े से परिश्रम और ध्यान से यह कार्य कोई भी व्यक्ति अपने कमाने के धन्धे को करता हुआ भी इसे सहायक उद्योग के रूप में सुगमता से कर सकता है। माली, किसान, बढ़ई, घड़ीसाज़, वकील, व्यापारी, मिशनरी, सरकारी उच्च ऑफ़िसर, कौलेज के प्रोफ़ेसर, स्कूल के मास्टर और विद्यार्थी आदि सभी प्रकार के वर्गों के व्यक्तियों को हमने मधु मक्खियां पालते देखा है। इन में से कुछ यूरोपियन भी हैं।

अवकाश के समय इस गृह उद्योग का अभ्यास मनोरञ्जन के साथ २ हमें दुनियादारी की चिन्ताओं से भी कुछ देर के लिए मुक्त कर देता है। खेती और बाग़बानी का काम करने वालों के लिए यह धन्धा बहुत लाभप्रद है। परिश्रमी मक्खियां फूलों के पुंकेसर को मादा केसर से मिलाकर उन्हें अधिक उपजाऊ बना देता है। परिणामतः फ़सल की पैदावार बहुत अधिक बढ़ जाती है। इस बात को ध्यान में रखते हुए दक्षिण भारत के कई स्थानों पर ग़रीब किसानों और फलों की खेती करने वालों ने इसी उद्देश से मक्खियों का पालना प्रारम्भ किया है। ग्रामवासियों को इस उद्योग के कारण एक मूल्यवान् पदार्थ मधु तो मिलता ही है परन्तु उनकी आय को भी यह उद्योग काफ़ी बढ़ा देता है, विशेष कर हमारे देश में जहां कि और देशों के मुकाबले में मधु मक्खियां अधिक होती हैं।

बहुत प्राचीन समय से पृथिवी के प्रत्येक भाग में मधु का आदर होता आया है। भारत में शहद का प्रयोग कई हज़ार वर्षों से हो रहा है। वैदिक काल में यह औषधि तथा खाद्य पदार्थ के रूप में इस्तेमाल किया जाता था। हिन्दुओं की पूजाविधि तथा पञ्चामृत अभिषेक में यह मुख्य पदार्थ है। श्राद्ध में स्वर्गस्थ आत्मा की तृप्ति के लिये जो पिण्डदान दिया जाता है उसमें मधु के बिना काम नहीं चलता। कई पर्वतीय प्रदेशों में विवाह के समय मधु, मधुमक्खी का छत्ता या रानी मक्खी देने का रिवाज़ है जिस प्रकार हिन्दुओं के विवाह में गौ देने की प्रथा है। पहिले मधु नित्य प्रयोजनीय वस्तुओं में था परन्तु अनेक कारणों से इस समय देश में इसका उतना प्रचार नहीं है। आयुर्वेद में इसका प्रयोग बहुत विस्तृत रूप में मिलता है। च्यवनप्राश आदि अवलेह, मकरध्वज आदि रस तथा अनेकानेक चूर्ण, वटी, कषाय आदि सिद्ध औषधियों के साथ इसका प्रयोग होता है। इसके बिना भारतीय चिकित्साशास्त्र पंगु है। हिन्दु चिकित्सा के सर्वोत्तम प्राचीन ग्रन्थ सुश्रुत के अध्ययन से हमें मालूम होता है कि उस काल के लोगों ने इस विषय का बहुत विस्तृत ज्ञान प्राप्त किया था। मधु उत्पन्न करने वाली मक्खियों के भेद और विभिन्न प्रकार के शहदों के ऊपर विद्वान् लेखक ने बहुत उत्तमता से विचार किया है। यह ग्रन्थ लगभग तीन हज़ार साल पहिले का लिखा हुआ

है। इससे मालूम होता है कि संसार के किसी भी देश की जाति की अपेक्षा सब से पूर्व भारतीयों ने इस विषय के अध्ययन की ओर ध्यान दिया था।

वर्तमान समय में भारत के पर्वतीय ग्रामों में किसी किसी स्थान पर यह उद्योग देखने में आता है। बड़े बड़े मटकों, दीवार के छिद्रों और लकड़ी के खोखलों में मक्खी पाली जाती हैं। मधु इकट्ठा हो जाने पर साल में दो या तीन बार छत्ते काट कर शहद निचोड़ लिया जाता है और छत्ते फेंक दिये जाते हैं। इस विधि में निम्न दोष हैं:—

१–छत्ते के निचोड़ने में मक्खियों के अण्डों, बच्चों के पिस जाने की पूर्ण सम्भावना रहती है जिससे शहद शुद्ध नहीं प्राप्त हो सकता।

२–यह शहद जल्दी ही बिगड़ जाता है। खमीर उठ कर दुर्गन्ध आने लगती है और स्वाद खट्टा हो जाता है।

३–अण्डे बच्चे मर जाने से मक्खियों के वंश का नाश हो जाता है और हिंसा का पाप लगता है।

४–परिमाण में शहद कम प्राप्त होता है। नये तरीके में इसकी अपेक्षा पांच गुणा अधिक निकलता है। इस प्रकार की कई हानियां इसमें हैं जिन्हें पाठक आगे के लेखों के पढ़ने से क्रमशः समझ सकेंगे।

अमेरिका, यूरोप, आस्ट्रेलिया और न्यूज़ीलैण्ड जैसे देशों में यह व्यवसाय उन्नत विधियों के अनुसार सफलता पूर्वक किया जा रहा है। वहां शहद की पैदावार टनों और वैगनों में तोली जाती है। अमेरिका में हर साल छः करोड़ रुपये का शहद पैदा होता है और मधुमक्खी पालने से कुल लाभ नब्बे करोड़ रुपये का प्रतिवर्ष होता है। वहां बहुत से लोगों के पास सैकड़ों और हज़ारों की संख्या में, पेटी पाली हुई शहद की मक्खी के छत्ते होते हैं। इन देशों में मक्खी पालने की नई किस्म की पेटियों और शहद निकालने के बिजली के यन्त्रों का आविष्कार हो जाने से इस व्यवसाय में बहुत तरक्की हुई है और आजकल तो मनोरञ्जन और आर्थिक लाभ प्रत्येक दृष्टि से यह उद्योग इतना अधिक लोकप्रिय हो गया है कि लाखों नर नारियों द्वारा किया जा रहा है। लाखों बेकारों को इससे प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से काम भी मिलता है। किन्तु अभी तक भारत इसके प्रारम्भिक ज्ञान से भी बिलकुल अनभिज्ञ है, यद्यपि यहां पर इस व्यवसाय के लिए बड़ा भारी क्षेत्र विद्यमान है और यदि आधुनिक साधनों का उपयोग करके इसका प्रचार किया जाय तो बहुत अधिक शहद पैदा किया जा सकता है, और विदेशों से हर साल भारत में आने वाले लाखों रुपये के आयात को बन्द करके भारत की आमदनी में वृद्धि की जा सकती है।

(क्रमशः)

दो दिन दुनिया में रहना है

[श्रीयुत सत्यभूषण 'योगी']

दो दिन दुनिया में रहना है!
सचमुच दो दिन ही रहना है!!

कौन अरे, इसमें है किसका,
स्वार्थ सभी का अपना अपना,
आगे बढ़ 'योगी' मत रुकना,
रास्तों ने कब तक रहना है!
दो दिन दुनिया में रहना है!

ओ पागल मन, रुक जा मत फँस,
आकर्षक मधु चीज़ों का रस,
दूर दूर से ही ले ले बस,
अरे, पास जाना मरना है!
दो दिन दुनिया में रहना है!

मत तू अपना मान किसी को,
अपना सगी जान किसी को,
देना दिल का दान किसी को,
जग में एकाकी चलना है!
दो दिन दुनिया में रहना है!

इकले आना, इकले रहना,
इकले ही सब कर्म भुगतना,
इकले ही दुनिया से जाना,
संग अहा, किसने चलना है!
दो दिन दुनिया में रहना है!
सचमुच दो दिन ही रहना है!!

गुरुकुल समाचार

गर्मी खूब पड़ रही है। लू भी चल रही है। छुट्टियां प्रारम्भ हो चुकी हैं। उपाध्याय महोदय, तथा महाविद्यालय विभाग के ब्रह्मचारी अपने २ घरों को जा रहे हैं। एक दल अर्थशास्त्र के क्रियात्मक ज्ञान के लिये कलकत्ता, बर्धा आदि की तरफ गया है। इस दल के अध्यक्ष अर्थशास्त्र के उपाध्याय श्री प्रो० केशवदेव जी हैं। इसके अतिरिक्त नयनारी, लाहौर, कुल्लू, काश्मीर, मसूरी, डलहौजी इन स्थानों की पार्टियां भी प्रस्थान कर रही हैं। इन सब दलों के जाने बाद गुरुकुल के महाविद्यालय विभाग के कुछ ही ब्रह्मचारी शेष रह जायेंगे। १५ दिन बाद छोटे ब्रह्मचारियों की भी छुट्टियां प्रारम्भ हो जायेंगी।

गत सप्ताह गुरुकुल की तरफ से पंचपुरी तैरी सम्मुख हुआ जिसमें कि गुरुकुल के एकादश श्रेणी के छात्र प्रथम द्वितीय तथा तृतीय नम्बर पर आये। तैरी में सर्वप्रथम रहने वाले विद्यार्थियों को मैडल व रुपये इनाम में दिये गये। सिंह तैरी तथा डुबकी तैरी में श्री अशोक जी ने कमाल दिखाया। डुबकी लगाने में श्री जगदीशचन्द्र जी वेदालंकार प्रथम रहे। ये २ मिनट १६ सेकण्ड पानी के अन्दर बैठे रहे। तैरी सम्मुख दर्शकों के लिए बड़ा

आकर्षक रहा। आजकल भी अवशिष्ट ब्रह्मचारी मध्याह्न साथ तैरी का आनन्द लेते हैं।

मुख्याधिष्ठाता श्री प्रो० सत्यव्रत जी दीर्घावकाश से कुछ पहले अपने रुग्णावकाश से वापिस आगये। कुछ दिन गुरुकुल में रह कर पुनः दीर्घावकाश की छुट्टियां व्यतीत करने बाहिर चले गये हैं।

गुरुकुल सूपा से पं० यज्ञदत्त जी, पं० सुखदेव जी, पं० सत्यप्रिय जी, पं० सुधीरकुमार जी, पं० रणजित् जी इन दिनों गुरुकुल कांगड़ी में पधारे। आप सब अपनी कुलमाता के दर्शन कर अति प्रसन्न हुए। श्री प० वीरेन्द्र जी दर्शनवाचस्पति भी बुधवार १२ ज्येष्ठ को गुरुकुल में पधारे।

पिछले दिनों भू०पू० राजनैतिक कैदी श्री शेरजंग जी गुरुकुल में पधारे। सोशलिज़्म पर आपका महाविद्यालय आश्रम में बड़ा रोचक व्याख्यान हुआ। व्याख्यान के बाद किये गये प्रश्नों के उत्तर आपने बहुत ही उत्तम ढंग से दिये। आपने इच्छा प्रकट की कि गुरुकुल के छात्र देश-सेवा के भावों से ओत प्रोत हों।

स्वास्थ्य समाचार

नाम रोगी	श्रेणी	नाम रोग
सत्यवान	५	चोट
सत्यभूषण	५	मलेरिया
प्रताप	४	"
यशपाल	३	"
रमेशचन्द्र	३	"
योगेश्वर	३	"
धुरेन्द्र	३	"
यशपाल	१	"
दयानन्द	१	"
धर्मेन्द्रनाथ (जलालपुर)	४	व्रण
सत्यपाल	१	मस्स
जितेन्द्र	२	"
ज्योतिस्वरूप	३	टाइफायड

अब सब अच्छे हैं।

गुरुकुल चित्तौड़गढ़ में रिक्त छात्रवृत्ति

सब गुरुकुल प्रेमियों को सूचना दी जाती है कि इस समय गुरुकुल चित्तौड़गढ़ में एक छात्रवृत्ति रिक्त है। यह छात्रवृत्ति निम्न योग्यता के बालक को दी जावेगी—

आयु ७ से कम व ६ वर्ष से अधिक न हो। सच्च सुशील और बुद्धिमान् हो और जिसका पालक अति निर्धन हो। आवेदन पत्र आर्यसमाज के प्रधान के प्रमाण-पत्र के साथ जून मास के अन्तिम सप्ताह तक निम्न पते पर पहुंच जाने चाहियें।

मुख्याधिष्ठाता—गुरुकुल चित्तौड़गढ़
(मेवाड़ राजपूताना)

अदालती नोटिस

ब अदालत जनाब सय्यद अनवर अहमद साहब बहादुर जमेल असिस्टेन्ट कलक्टर दर्जा अव्वल सहारनपुर

समन बगरज इन्फ़िसाल मुकदमा

(आर्डर ५ कवायद १ व ५ मजमुआ ज़ाब्ता दीवानी सन् १६०८ ई०)

नम्बर मुक़दमा—१४१ सन् १६३८ ई० बेदखली दफा ४४ ऐक्ट ३ सन् १६२६ मौजा लखनौती कलां—
परगना सहारनपुर

ब अदालत—जनाब सय्यद अनवर अहमद साहब बहादुर जमेल असिस्टन्ट कलक्टर दर्जा अव्वल।
मुकाम सहारनपुर ज़ि० सहारनपुर

मुसम्मात चम्पा देवी बेवा हुकमचन्द कौम खत्री साकिन सहारनपुर मोहल्ला पीर अमीवार लखनौती कलां मुद्दई—

बनाम—वीरसिंह[1] पिसर मत्थू, तुलसा[2] पिसर नागर, सरदारा[3] पिसर गेन्दा, मुसम्मात भरतो[4] बेवा गेन्दा, मुसम्मात सुरजान[5] बेवा नवल अक़वाम राजपूत साकिन लखनौती कलां परगना सहारनपुर मुद्दाअलहुम—

बाज़े हो कि मुद्दई ने तुम्हारे नाम एक नालिश बाबत दखल कामिल व हरजा दफा ४४ के दायर की है, लिहाज़ा तुमको हुक्म होता है कि तुम बतारीख ११ माह जून सन् १६३८ ई० व वक्त १० बजे दिन ब मुकाम सहारनपुर असालतन या मारफत वकील के जो मुकदमे के हालात से करार वाक़ई किया गया हो और जो कुल अमूर अहम मुतल्लका मुक़दमे का जवाब दे सके या जिसके साथ कोई और शख्स हो कि जवाब ऐसे सवालात का दे सके हाज़िर हो और जवाब देही दावे की करे। और हरगाह वही तारीख जो तुम्हारी हाज़री के लिये मुकर्रर है वास्ते इन्फ़साल कतई मुक़दमे के तजवीज़ हुई है पस तुमको लाज़िम है कि उसी रोज़ अपने जुमला गवाहों को जिनकी शहादत नीज़ जुमला दस्तावेज़ात जिन पर तुम बताईद अपने जवाब देने के इस्तदलाल करना चाहते हो पेश करो।

और तुमको इत्तला दी जाती है कि अगर बरोज़ मज़कूर तुम हाज़िर न होगे तो मुक़दमा बगैर हाज़िरी तुम्हारे मसमूअ और फैसल होगा।

यह समन मेरे दस्तखत और मुहर अदालत के आज बतारीख १६ माह मई सन् १६३८ ई० जारी किया गया।

दस्तखत जनाब सय्यद अनवर अहमद साहब जमेल बहादुर असिस्टन्ट कलक्टर दर्जा-अव्वल, सहारनपुर

इत्तलाअ

१—अगर तुमको यह अन्देशा हो कि तुम्हारे गवाह अपनी मर्ज़ी से हाज़िर न होंगे तो तुम अदालत हाज़ा से समन बई मुराद जारी करा सकते हो कि जो गवाह न हाज़िर हो वह जबरन हाज़िर कराया जावे। और जिस दस्तावेज़ को किसी गवाह से पेश कराने का तुम इस्तहकाक़ रखते हो उससे पेश कराई जावे, बशर्ते कि तुम खर्चा ज़रूरी अदालत में दाखिल करके इस अमर की दरख्वास्त गुज़रानो।

२—अगर तुम मतालबा मुद्दई को तसलीम करते हो तो तुमको लाज़िम है कि रुपया मय खर्चा नालिश अदालत में दाखिल करो, ताकि कारवाई इजराय डिगरी की जो तुम्हारी ज़ात या माल या दोनों पर हो करना न पड़े।

चौधरी दुलासराय के प्रबन्ध से गुरुकुल प्रेस गुरुकुल कांगड़ी में मुद्रित तथा प्रकाशित।

* ओ३म् *

"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत" Reg. No A. 2927

गुरुकुल

सम्पादक—भारतभूषण वेदालङ्कार

एक प्रति का मूल्य -) [गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख-पत्र] वार्षिक मूल्य २॥)

वर्ष ३] गुरुकुल काङ्गड़ी, शुक्रवार २१ ज्येष्ठ १९९५ ; ३ जून १९३८ [संख्या ३

नाहं मन्ये सुवेदेति नोन वेदेति वेद च ॥

[ले०—श्री स्वामी ब्रह्मपुरी जी महाराज]

(गतांक से आगे)

"साम सन्तानः" इन शब्दों पर विचार किया जाय तो ऐसा प्रतीत होता है कि यदि वर्ण, स्वर, मात्रा और बल इन सबको बीज समझा जाय तो उसके फलस्वरूप में "साम" की प्राप्ति होती है। "साम" नामक एक वेद है यह तो हम सब भलीभांति जानते ही हैं इसलिये यदि हमको सामवेदज्ञ बनना है या अपनी सन्तान को सामवेदज्ञ बनाना है तो हमें वर्ण, स्वर, मात्रा तथा बल यह चार बातें सबसे प्रथम अच्छी तरह से सीख लेना चाहिए और अपनी सन्तान को भी सबसे प्रथम यही चार बातें सिखाना चाहिये। इनमें से प्रथम दो (वर्ण और स्वर) तो सामान्यतया किसी न किसी स्वरूप में सिखा ही दिये जाते हैं परन्तु मात्रा और बल पर पूरा लक्ष २ दिये जाने ही से भाषा की ठीक २ रचना हो सकती है वर्ना नहीं।

इसी शब्द "साम सन्तान" का यह भी अर्थ हो सकता है कि वर्ण, स्वर, मात्रा और बल इन बातों को ठीक ठीक तौर पर सीख लेने से बालक का "शीन काफ़" दुरुस्त होकर वह "साम" अर्थात् वेद पढ़ने का अधिकारी हो सकता है। और इसी कारण से आर्यों के पूर्वजों ने शिशु-अवस्था वाले विद्यार्थी को पहिले उसका 'शीन काफ़' दुरुस्त करने के बाद उसको उपनयन संस्कार कर वेदारम्भ करने की परिपाटी प्रचलित की थी। और वेदारम्भ संस्कार करने के साथ ही उसे गायत्री मन्त्र सिखा देने की पद्धति परम्परा से चली आती है।

वेदारम्भ संस्कार होने के बाद बच्चे को यह सिखाना चाहिये कि जिस प्रकार तुमने अपनी बारहखड़ी में से अक्षर "घो" तथा अक्षर "ड़ा" तलाश करके अपनी स्लेट पर लिखाथा उसी प्रकार जो कुछ आवाज़ तुम अपने मुख से निकालो उसको लिखने के लिये वही अक्षर बारहखड़ी में से तलाश करके लिखते जाओ। फिर उसके बाद लक्ष इस बात पर दो कि कितने अक्षर तुम्हारे मुंह से एक साथ निकलते हैं फिर उनको स्लेट पर इकट्ठे एक ही यत्न में एक ही रेखा के नीचे लिखो। जैसे कि तुम बोले कि "घोड़ा दौड़ता है" तो चूंकि "घोड़ा" यह दो अक्षर हम इकट्ठे बोलते हैं इसलिये हमको अक्षर "घो" तथा अक्षर "ड़ा" एक ही रेखा के नीचे लिखना चाहिये और इसी प्रकार अक्षर "दौ" तथा अक्षर "ड़" तथा अक्षर "ता" इनको भी एक ही रेखा के नीचे (दौड़ता) लिखना चाहिये क्योंकि इन तीनों ही वर्णों को तुम अपने मुंह से एक साथ ही बोलते हो। इस प्रकार के कई एक दृष्टान्त देकर अन्त में बालक को समझाना चाहिये कि जितने वर्ण तुमने इकट्ठे एक लाइन के नीचे लिखे हैं उन सब वर्ण समूह को "शब्द" कहते हैं। इसके बाद विद्यार्थी को यह समझाना चाहिये कि जैसे कई एक अक्षरों को मिलाकर तुमने एक शब्द बनाया है उसी प्रकार कई एक शब्दों को एकत्र मिलाकर लिखने से जो रचना बनती है उसको "वाक्य" कहते हैं।

फिर बालक को यह समझाया जाय कि जैसे तुम अपने मुख से वाक्यों को बोलते हो वैसे ही तुमको अपनी कलम से कागज़ के ऊपर वाक्यों को लिखना चाहिये और फिर अपने किसी मित्र को उसे पढ़ने को कहना चाहिये और तुमको लक्ष देना चाहिये कि जो कुछ बात तुमने अपने मन से उत्पन्न करके वाक्यों द्वारा कागज़ पर लिखी थी वही बात तुम्हारा मित्र पढ़ रहा है या क्योंकर। यदि कागज़ पर लिखे हुए वाक्यों को पढ़ने पर तुम्हारा मित्र तुम्हारे मन की बात ठीक तौर पर नहीं पढ़ रहा तो तुमको समझना चाहिये कि तुम्हारा लेख अशुद्ध है और तुमने मात्रा या बल अर्थात् स्वर और व्यञ्जन की मिलावट में कुछ भूल की है और उस भूल को अपने मुख से शब्दों के उच्चारण द्वारा समझकर शुद्ध कर लेना चाहिये।

इस बात से बालक को एक और भी बात समझायी जा सकती है कि जो कोई विचार तुम्हारे मन में उत्पन्न होता है उसको प्रगट करने का साधन तुम्हारा मुख है जिसके द्वारा तुम अपने मित्र को अपने हृदय का भाव बोलकर समझा सकते हो परन्तु यदि कोई बात तुम्हें अपने ऐसे मित्र को कहनी है जो कि विदेश में है या तुम से दूर है तो तुम उसे वह बात कह तो सकते नहीं इस लिए लिखकर उसको अपने मित्र के पास भेजना पड़ेगा तो इससे यह सिद्ध होता है कि जो आवाज कि हमारे मुख से निकलती है उसका कागज पर लिखने के लिये हमने कुछ चिन्ह नियत किये हैं और उन प्रत्येक चिन्हों का प्रत्येक आवाज से घनिष्ठ सम्बन्ध है और यह संबन्ध परम्परागत अनादि काल से चला आता है। अर्थात् हमारे मुँह से आवाज़ निकलती है "क" तो उस आवाज़ के लिये लिखने को "क" नामक चिन्ह बनाया गया है। यह एक संकेत है और इस संकेत को परम्परा से काम में लिये जाने के कारण यह संकेत कुछ प्राकृत से बन गये हैं और हमने पहिले जो कोई विद्वान हुए उन्होंने इन्हीं संकेतों से काम लिया है और यह सब रचना मिलकर हमारी भाषा बन गयी है।

जैसे तुमने अपने हृदय का भाव अपने दूरवर्ती मित्र पर प्रगट करने के लिए इन्हीं संकेतों से काम लेकर एक पत्र लिखा था वैसे ही तुम अपने विचारों को चिरस्थायी रखने के लिये इन्हीं संकेतों द्वारा लिखकर किसी सुरक्षित स्थान में रख सकते हो। और यही काम आर्यों के पुरखाओं ने किया है। अर्थात् प्राचीन आर्यों को अपने जीवन में जो जो कुछ अनुभव होते गये उनको वे लिख २ कर रखते गये और चूंकि यह कार्यक्रम बहुत प्राचीन समय से चलता चला आ रहा है इसलिये इस समय आर्यों के पास अपने पूर्वजों का अनुभव एक बहुत बड़े साहित्य के रूप में विद्यमान है उस भण्डार को खोलकर देखने और उससे लाभ उठाने के लिये हमको उस भाषा को ठीक २ रीति पर सीखना पड़ेगा जिस भाषा में कि वे लिखे गये हैं और उसको सीखने का बहुत ही सरल मार्ग यह है कि जैसे तुमने अपने विचारों को प्रगट करने के लिये स्वरों और व्यञ्जनों को मिलाकर मात्रा तथा बल की सहायता से अपने निज के वाक्य और अपनी निज की भाषा बनायी थी वैसे ही समझ लेना चाहिये कि दूसरे व्यक्ति ने भी ऐसा ही किया होगा इसलिये उसकी रचना को समझने के लिये हमें उसकी भाषा में से वाक्यों को और शब्दों को पृथक पृथक् कर शब्दों को भी उनकी मात्रा तथा बल देख कर खण्ड खण्ड कर देना चाहिए तो तुम्हारे पास बारहखड़ी के अक्षर ही अक्षर बच जावेंगे इस क्रिया को "सन्धिच्छेद" कहते हैं।

जैसे पहिले बालकों को वर्ण, स्वर, मात्रा और बल का "योग" कर शब्द और वाक्य रचना सिखायी गई थी कि जिसके द्वारा विद्यार्थी अपने हृदय का भाव लिखकर प्रगट कर सके उसी प्रकार दूसरे को लिखी हुई अति प्राचीन रचना के भाव को समझने के लिये भी इन्हीं नियमों द्वारा 'सन्धिच्छेद करना सिखाना चाहिये कि जिसकी सहायता से बच्चा बड़े बड़े गहन वाक्यों को खण्ड खण्ड कर एक २ अक्षर (Syllabic) में विभक्त कर सके। ऐसा करने से लाभ यह होगा कि शिशु आयु के बालक को बारहखड़ी के प्रत्येक अक्षर का अर्थ याद करा देने से वह सन्धिच्छेद द्वारा काव्य की रचना को समझ सकने के योग्य बन सकेगा और फिर सन्धि के नियमों को भली प्रकार समझ लेने के बाद अपनी कृति की कविता तथा छन्द भी बना सकेगा और जब विद्यार्थी अपनी रचना भी कर सकेगा और प्राचीन रचना को भी समझ सकेगा तो वह उत्तरोत्तर उन्नति करता हुआ वेदों के अर्थों को भी समझ सकेगा और समझा सकेगा। इस प्रकार उन्नति करके आपका बालक जब आपको सामवेद का मधुरगान सुना कर उन शब्दों में भरे हुए भाव भी आपको समझ सकेगा तो आपने समझना कि आपको "साम सन्तान" की प्राप्ति हुई है।

(क्रमशः)

सूचना

गुरुकुल के स्नातकों के प्रति

शिक्षा पटल का निर्वाचन प्रति तीन वर्ष बाद होता है। नियमों के अनुसार स्नातकों के दो प्रतिनिधि शिक्षा पटल में होते हैं। उन सब स्नातकों को वोट देने का अधिकार है जिन्हें स्नातक बने कम से कम तीन वर्ष व्यतीत हो चुके हों। वाचस्पति उपाधि प्राप्त स्नातकों के लिये यह बाधा नहीं है। इस वर्ष शिक्षा-पटल का नया चुनाव होना है। जो स्नातक इसके लिये प्रतिनिधि होना चाहें वे अपने नाम प्रस्तावक व अनुमोदक समेत ५ आषाढ़ या १८ जून तक प्रस्तोता कार्यालय में भिजवा देवें। इन उम्मेदवारों के नाम गुरुकुल पत्र में प्रकाशित किये जायेंगे कि जिससे प्रत्येक वोटर स्नातक को वोट देने की सुविधा रहे।

गत तीन वर्षों में श्री पं० अमरनाथ जी विद्यालङ्कार तथा श्री प० चन्द्रगुप्त जी विद्यालङ्कार स्नातकों की ओर से शिक्षा पटल के सदस्य रहे हैं।

नोट—निम्नलिखित स्नातक अन्य प्रकार से शिक्षा पटल के सदस्य हो चुके हैं अतः अपना वोट देते हुए इसका ध्यान रखना चाहिये।

पं० सत्यव्रत सिद्धान्तालङ्कार (मुख्याधिष्ठाता होने के कारण)
पं० वागीश्वर विद्यालङ्कार (प्रस्तोता होने के कारण)
पं० धर्मदत्त सिद्धान्तालङ्कार (अध्यक्ष आयुर्वेद म० वि०)
पं० बुद्धदेव विद्यालङ्कार (सेवासदन के प्रतिनिधि)
प० विश्वनाथ विद्यालङ्कार (उपाध्यायों के प्रतिनिधि)

भवदीय
वागीश्वर
प्रस्तोता

योद्धाओं का राष्ट्र बना डालो

[ले०—लक्ष्मी नारायण शुक्ल]

कोई देश इस आदर्श को तभी प्राप्त हो सकता है जब उसके समस्त नर-नारी व्यायाम एवं सदाचार प्रेमी हों। सामाजिक व्यायाम का जातीय शक्ति पर एक असाधारण प्रभाव पड़ता है। यूरोप अमेरिका के व्यायामाचार्यों ने अपने देशवासियों को इस दौड़ में बहुत आगे दौड़ा दिया और हम भारतीय अपनी परम्परागत शारीरिक तथा मानसिक शक्ति-उपार्जन प्रणाली एवं अध्ययन प्रणाली को भूल बैठे।

इस जागृति के उदयकाल में भी कौन नहीं जानता कि विश्वविजयी प्रोफेसर राममूर्ति (और विश्वविख्यात पहलवान जेबिस्को) को हरा देने वाला भारतीय पहलवान् 'गामा' ही तो है। किन्तु यह नितान्त दुःख की बात है कि आज भारत के वे नवयुवक कि जिनके ऊपर भारत स्वतन्त्र होना चाहता है वे ही राष्ट्र स्तम्भ नवयुवक विदेशी नवयुवकों के सम्मुख मैदान में हाथापाई के अयोग्य पाए जाते हैं कारण कि उनमें सैनिक शक्ति नहीं।

पाश्चात्य बुद्धिबल से उत्पन्न हुए सैनिक विज्ञान द्वारा उनके हाथों को मैशीन—गनें, तोपें, बमवर्षक हवाई जहाज़ और करोड़ों मन विस्फोटक पदार्थ यदि हमारे सम्मुख आ जायें तो हम क्या कर सकते हैं। अंग्रेज़ों की २०० वर्ष की गुलामी और उस्तादी में हम कुछ नहीं सीख सके अभी तक हम वहां के वहीं खड़े हैं कुछ नहीं सीख सके, बड़े आश्चर्य का विषय तो यह है कि हमारे राष्ट्रीय-नेता भी अभी तक कुछ नहीं करसके। अंग्रेज़ी राज्य की नाममात्र की दी हुई स्वतन्त्रता के बल पर जब देश का जिह्वा बल ऊटपटांग बकने लगता है तो उनका उत्तेजनात्मक बल उनके बाहु-बल के सामने सिर झुका देता है। कहने का प्रयोजन यह है कि जिह्वा बल को सीमाबद्ध रख कर बाहुबल की वृद्धि की योजना तैयार की जाय।

हमारे अंग्रेज़ी गुरुओं ने हमें बताया है (God helps them who help themselves.) ईश्वर उन्हीं की रक्षा करता है जो अपनी रक्षा आप ही करते हैं अतः परम आवश्यकता तो यह है कि हम अपने पैरों पर आप खड़े हों। सम्राट् औरंगजेब ने शिवा जी का पराक्रम नष्ट करने को जब दक्षिण में असंख्य सेना भेजी तो एक राष्ट्रीय संन्यासी के शिष्य ने प्रणव के भगुए झण्डे की छाया में ऐसी सुशिक्षित और साहसी सेना का संगठन आरम्भ किया कि जिसकी रणनिपुणता, फुर्ती, सदाचार तथा आज्ञापालन के सम्मुख शत्रु की सेना ठहर नहीं सकी। सिद्धान्त यह था कि My Strength is the stoength of ten because my heart is futre. जिसका एक सिपाही शत्रुसैना के दस सिपाहियों से बढ़ कर निकला।

हमारा ध्यान इस समय, १० फरवरी को हिन्दू कालेज दिल्ली में दिये, श्री सावरकर के उस भाषण की ओर जा पड़ा और उनके शब्द हम यहां पर फिर दुहराना चाहते हैं और भारतीय प्रेस व प्लेटफ़ार्म से भी आशा रखते हैं कि वे भी इस ओर ध्यान दें। आपने कहा कि हमें "योद्धाओं का राष्ट्र चाहिये" अतएव हम सिपाही और योद्धाओं का एक राष्ट्र तैयार करना चाहते हैं। हम अपने नवयुवकों की आन्तरिक शक्ति का विकास इस प्रकार चाहते हैं कि वे लड़ाकू प्रवृत्ति के बन जाएं ताकि देश भविष्य में राष्ट्रीय उत्कर्ष में लाभ उठा सके। अपने वक्तव्य की पुष्टि में उन्होंने इटली, स्विटज़रलैण्ड, और पोलैण्ड के उदाहरण पेश किये यह भी कहा कि भारतवासियों को अन्तर्राष्ट्रीय आधुनिक परिस्थितियों से जानकारी रखनी चाहिये। जापान का उत्थान, जर्मनी की जागृति तथा इटली की सीमा बढ़ाने की नीति का भी ज़िक्र किया और भारत पर जापानी आक्रमण का ख़ाका खींचा। सब से बड़ी बात यह बताई कि हमला होते ही भारत सरकार राष्ट्रीय सेना के निर्माण के लिये स्वयं बाध्य हो जायेगी।

उन्होंने नवयुवकों को प्रत्येक संस्था में रायफ़ल क्लब खोल कर रायफ़लमेन बनने की सलाह दी और कहा कि शस्त्र कानून को रद्द कराने का आन्दोलन करते हुए सैनिक शिक्षा पर बहुत बल दिया।

"The strong man does not care for any one" बलवान मनुष्य किसी की परवाह नहीं करता, अत हमको यही चाहिये कि हम अपनी शारीरिक तथा मानसिक शक्ति के विकास के लिए सतत उद्योग करते रहें ताकि हम अपने धार्मिक तथा सामाजिक कार्यों को अच्छी तरह कर सकें। ऋषि दयानन्द ने भी यही नियम बताया है अर्थात् शारीरिक, आत्मिक तथा सामाजिक उन्नति करना।

यदि पाठक वृन्द देश की तथा अपनी उन्नति चाहते हैं तो निर्भीकता के साथ राष्ट्र के सच्चे भक्त बनें। सर्व प्रथम अपनी इन्द्रियों पर विजय प्राप्त कर हमारी सैनिक शिक्षा में हाथ बटायें।

यूरोपीय समस्त राष्ट्र एक अज्ञात आपत्ति का सामना करने के लिये तैयार हो रहे हैं। क्योंकि युद्ध के बादलों की घनघोर घटायें उमड रही हैं, कौन नहीं जानता कि अबीसीनिया पर बिजली गिरी है, स्पेन पर अग्नि वर्षा हो रही है, चीन पर गोलों की गड़गड़ाहट हो रही है। इटली ने १५ से ५५ वर्ष तक की आयु के प्रत्येक नागरिक को सेना में भरती होने की आज्ञा दी है रूस ने आठ वर्ष की छोटी सी आयु के बच्चों को भी सैनिक शिक्षा देकर समस्त देशों को मात कर दिया है। किसी निकट भविष्य में यदि जङ्ग छिड़ी और सरकार ने अपनी समस्त दासी फ़ौजी ताकत को अपनी ओर लगा लिया तो भारत की रक्षा कैसे होगी? इसीलिये तो सरकार का कहना है कि तुम भारतीय आत्म-रक्षा नहीं कर सकते इसी लिये तुम पूर्ण स्वराज्य के अधिकारी नहीं।

समस्त भारतीयों का ध्यान अब इस ओर आकर्षित होना चाहिये और देश के बालकों को भी अन्य देशों की भांति सैनिक शिक्षा देने और दिलाने का स्वयमेव प्रबन्ध करना चाहिये।

गु रु कु ल

३ जून शुक्रवार १९३८

आचार्य जी का अन्तिम भाषण

बहुत सम्भव है कि अब मुझे तुम से सामूहिक रूप से मिलने का अन्य कोई अवसर न मिले, अतः कुल मन्त्री के विशेष आग्रह के अनुसार मैं जाते समय कुछ तुम्हें कह जाने के लिये खड़ा हुआ हूं। कुछ भी कृत्रिम कार्य करना मुझे बहुत नापसन्द है अतःयह सोचने पर कि जाते समय तुम्हें क्या कह जाना चाहिये मेरे अन्दर से स्वभावतः जो कुछ निकला है वह ये दो वाक्य हैं जो कि मैं लिख कर लाया हूँ। पर इन दो पंक्तियों के पढ़ देने मात्र से कुल मन्त्री को और तुम्हें संतोष नहीं होगा और मुझे फिर दिक़ किया जाएगा इसका मुझे पूरा डर है। इस लिये मैंने सोचा है कि अपने इस अति संक्षिप्त वक्तव्य की भूमिका के तौर पर मैं कुछ अधिक बात भी बोल दूं जिस से कि तुम समझो कि मैंने कुछ बोला है।

कुल मंत्री ने मुझे बार बार कहा है कि ब्रह्मचारी मुझे अभिनन्दन पत्र देना चाहते हैं। हर बार ही मैंने उन्हें मना किया है। जो कुछ मैंने उन्हें कहा है वही ज़रा व्याख्या सहित तुम सबको बता देता हूं। गुरुकुल में मैं गत १७वर्षों से आचार्य उपाचार्य या सहायक आचार्य आदि रूप से सम्बन्धित रहा हूं पर इन १७ वर्षों में मैंने कई बार गुरुकुल छोड़ा है। और फिर गुरुकुल लौट आया हूँ। एक बार योग की धुन सवार हुई थी इस लिये एक साल की अवैतनिक छुट्टी लेकर अज्ञात वास किया,पर उसके बाद वहां आकर त्याग पत्र दे दिया और एक साल और बाहर रहा। दूसरी बार सत्याग्रह में जेल गया और लौटने के बाद गांधी सेवाश्रम की स्थापना कर ग्राम सेवा कार्य करने लगा। फिर बाकायदा आचार्य पद से त्याग पत्र भी दे दिया और डेढ़ वर्ष बाद फिर आगया इस लिये इस बार भी यद्यपि यह ठीक है कि मैंने दिसम्बर से त्याग पत्र दे रखा है और ८ मई को वह स्वीकृत भी हो चुका है तो भी

'आठ मरा जब जानिये जब तेरही हो जाय'

मुझे लगता है कि तुम अभिनन्दन पत्र दे कर मेरी तेरहीं कर डालने की जल्दी कर रहे हो। और यह तो तुम देखते ही हो कि कल तक और आज शाम तक भी मैं कइयों को दण्ड देता रहा हूं तुम्हारी कई इच्छाओं का प्रति घात कर अपनी चलाता रहा हूँ-डांटता फटकारता रहा हूं—मानों मैंने अनन्त काल तक इसी तरह तुम्हारा आचार्यत्व करते रहना है। तो ऐसे जीते जागते आदमी को और ऐसे ख़राब आदमी को अभिनन्दन पत्र देने की हिम्मत भी तुम कैसे कर सकते हो मुझे यह समझ में नहीं आता।

ख़ैर, यह तो मोटी भाषा में समझना हुआ-यदि मैं ऐसे न समझाऊं तो तुम में से बहुतों को वस्तुतः बतला न सकूं कि मैंने अभिनन्दन पत्र लेना क्यों नहीं माना। पर सात्विक शब्दों में कहुं तो इस का कारण यह है कि मेरा गुरुकुल के साथ ऐसा घनिष्ठ, स्वाभाविक पवित्र सम्बन्ध है कि उस में अभिनन्दन पत्र की चर्चा उठाना तक अशोभायमान लगता है। यह कार्य इतना कृत्रिम लगता है जैसे सुन्दर रेशमी कपड़े में एक टाट का पैवन्द लगाया जा रहा हो। इसी स्वाभाविक सम्बन्ध के कारण गतबार जब मैंने गुरुकुल छोड़ा था तो मुझे अभिनन्दन पत्र के लिये कुछ भी विशेष आग्रह नहीं किया गया था। इस बार के पुनः पुनः आग्रह से तो मुझे कुछ ऐसा लगा मानो गुरुकुल से मेरा सम्बन्ध कुछ बिगड़ गया है अस्तु। और मैं आध्यात्मिक दृष्टि से कहूं तो इतना ही है कि यह कार्य अन्दर से स्वीकृत नहीं होता। आध्यात्मिक दृष्टि में पाप पुण्य, अच्छा बुरा यह कुछ भी नहीं कहा जाता, वहां तो प्रत्येक बात पर अन्दर की आत्मा बिना किसी तर्कना या युक्ति के सहज भाव से हां या ना करती जाती है। अतः उस दृष्टि से मैं सिर्फ यही कहता हूं कि यह कार्य मुझे ठीक नहीं लगता, हां नहीं होती। उपर्युक्त तर्कना तो मैं पीछे से करता हूं।

हां, यदि तुम यह जानना चाहो कि मेरे अभिनन्दन करने का सच्चा तरीका क्या है तो तुम ऐसे अवसर पर गत बार कहे मेरे भाषण को अब भी याद कर सकते हो, पढ़ सकते हो उसे दोहराने का अवसर नहीं है मुझे अपना वह कथन अब भी तुम्हारे लिये वैसा ही ताज़ा लगता है, कई ग्रीष्म ऋतुएं बीता जाने पर भी वह अब भी वैसा ही हरा भरा दीखता है। जब मेरा वह भाषण अलंकार में (तथा कहीं अन्यत्र भी) छपा था तो उसे पढ़ कर एक स्नातक ने मुझे लिखा था कि मैं अपने को काफी कड़े दिल का समझता हूं-पर उस भाषण को पढ़ कर न जाने क्यों मेरे भी अश्रु आ गए शायद उस का कारण यह था। कि उन भाषण को मुझ से करवाने वाली मेरे अन्दर से उस भाषण को निकलवाने वाली, एक या कई ब्रह्मचारियों का सच्ची, अश्रु पूर्ण हार्दिक प्रार्थना थी जो बिना दीखावे के एकान्त में की गई थी। आज कोई ऐसी चीज़ मेरे अन्दर से नहीं उठ रही और न वैसी परिस्थिति ही है।

अन्त में मैं तुम्हें यह कह देना चाहता हूं कि मेरे गुरुकुल से जाने का कारण शुद्ध आध्यात्मिक है, अध्यात्मिक मांग हुई है जिसे पूरा करने के लिये मुझे जाना पड़ता है। तुम ब्रह्मचारियों की तरफ से ऐसी कोई बात

शेष पृष्ठ ७ पर देखो

आचार्य जी का जाते समय

गुरुकुल के ब्रह्मचारियों को सन्देश

यदि तुमने मुझ से कभी कुछ पाया है तो उसे कायम रखना सच्ची कोशिश कर के उसे कायम रखना। परमात्मा तुम्हें पथ भ्रष्ट होने से बचाते रहें।

अभय

२०-५-३८

मधु मक्खी पालन

[लेखक—श्रीयुत रामेश वेदी आयुर्वेदालङ्कार]

हिन्दुस्तान में कीड़ों की तीन मुख्य श्रेणियां हैं जो मनुष्य समाज के लिए उपयोगी हो सकती हैं। वे इस प्रकार हैं:—

१-रेशम का कीड़ा २-लाख का कीड़ा ३-मधु मक्खी।

शहद की मक्खी एक छोटा सा उड़ने वाला सामाजिक प्राणी है। इसका प्रत्येक सेल हर एक अणु क्रियाशीलता, भविष्य और धैर्य से सराबोर होता है। इसके त्रिभुजाकृति चेहरे के पीछे छोटे से सिर में समस्त पशु जगत् में सबसे अधिक उन्नत और विकसित मस्तिष्क होता है। अधिक समृद्ध खण्डों और गहरी रेखाओं वाले संकुचित मस्तिष्क का भार इसके शरीर के भार का एक सौ पैंसठवां हिस्सा बनता है जबकि चींटी में यह दो सौ छियास्सीवां हिस्सा होता है।

इन आश्चर्यजनक प्राणियों के सहवास से हमें जो अनेक प्रकार के लाभ होते हैं वे तो इनके शहद से भी अधिक मूल्यवान् हैं। यदि आप प्रेम की महान् कला की उपासना करना चाहते हैं; उदार और विवेकशील बनना चाहते हैं; मन, मस्तिष्क और हाथों की शक्ति को विकसित करना चाहते हैं और सच्चे अर्थों में सभ्य बनना चाहते हैं तो मधु मक्खियों का पालना सीखिये। इन मक्खियों के जीवन और इनके रीति रिवाज़ों का अवलोकन और मनन करने से मनुष्य को व्यवसाय, सहयोग स्वामिभक्ति, उद्यम और संयम का अत्यन्त अनूठी शिक्षायें मिलती हैं। समय की कद्र, सेवा का महत्व, कर्तव्य का गुरुत्व, ऐक्य का सार समझने वाला यह एक उपयोगी, सीधा सादा और हानि रहित निर्दोष प्राणी है।

मधु मक्खियों के प्रकार—

१-सारंग मक्खी (The Rock Bee = Apis Dorsata)
२-भुनगा मक्खी (The Little Bee = Apis Florea)
३-छोटी भुनगा (The Dommar Bee = Apis Mellifica)
४-खैरा मक्खी (The Indian Bee = Apis Indica)

सारंग मक्खी—दुनिया में सबसे बड़े आकार वाली और सबसे अधिक शहद इकट्ठा करने वाली यही एक मक्खी है। स्वतन्त्र रूप से रहना पसन्द करती है और सामान्यतया खुले स्थान पर बड़े २ वृक्षों की मोटी टहनियों पर, ऊंचे मकानों की बगल में और पहाड़ों की उभरी हुई चट्टानों पर छत्ता लगाती है। चार इञ्च मोटा और तीन से बारह फ़ीट तक लम्बा तथा दो से छः फीट चौड़ा एकाकी छत्ता बनाती है। इस में बदला लेने की आदत ज़बरदस्त होती है और अपने छत्ते को छेड़ने वाले को बिना सज़ा दिये नहीं छोड़ती। पानी में घुस जाने पर भी पीछा करती है। इसके डङ्क मारने पर कभी २ मृत्यु हो जाने के समाचार भी मिले हैं। इसकी आदतों को देखने से मालूम हुआ है कि यह प्रयत्न करने पर भी पाली नहीं जा सकती।

भुनगा मक्खी—सारङ्ग मक्खी की तरह खुले स्थान पर एक छोटा सा छत्ता बनाती है। छत्ते में शहद बहुत कम होता है। सारङ्ग की तरह इसका भी पालने का स्वभाव नहीं और आर्थिक दृष्टि से लाभ भी नहीं हो सकता। सारङ्ग और खैरा से छोटी और इसके पीठ पर काली, सफेद और भूरी रेखाएं होती हैं। इसका डङ्क सारङ्ग की तरह घातक नहीं होता।

छोटी भुनगा—वायु और प्रकाश से बच कर पेड़ों की पुरानी खोहों, पुरानी दीवारों के छिद्रों आदि में बिल्कुल अंधेरी जगह में रहने वाली अपेक्षा कृत बहुत छोटी और रङ्ग में काली मक्खी है। शहद मात्रा में बहुत कम और स्वाद में खट्टा होता है। औषध उपयोग के लिये अच्छा समझा जाता है। इसके छत्ते किसी व्यवस्थित क्रम में नहीं होते। डङ्क नहीं मारती परन्तु छेड़ने वाले के नाक कान में घुसकर बहुत परेशान करती है।

खैरा मक्खी (पालने योग्य)—पीठ पर काले और हरे रङ्ग की धारियों वाली सारङ्ग से छोटी आधा इञ्च लम्बी होती है। यही एक मक्खी है जो शहद के लिए पाली जा सकती है। अन्य मक्खियों की तरह इसका केवल एक छत्ता नहीं होता। एक दूसरे के पास पास नौ से तेरह तक समानान्तर छत्ते लगे होते हैं। अंधेरे में रहना पसन्द करती है। पेड़ की खोहों, मिट्टी की दीवारों के खोखले स्थानों, उपयोग में न आने वाली पुरानी पड़ी हुई लकड़ियों की पेटियों, टाइप राइटर के ढकनों, देर से उल्टे पड़े हुए मटकों, मकान की चिमनियों आदि में हमने प्राकृतिक रूप में इनके छत्ते देखे हैं। सारङ्ग मक्खी की तरह यह अस्थिर स्वभाव की नहीं होती। एक ही स्थान पर कई सालों तक दस ग्यारह मास से भी अधिक रहती हुई देखी गई हैं।

मधु मक्खी पालने के नये साधन—

इसमें हमारा उद्देश्य यह होता है कि मक्खी को हर प्रकार की सुविधाएं प्रदान करते हुए उसे अधिक शहद इकट्ठा करने के लिए प्रोत्साहन दिया जाय। इसमें निम्न लाभ हैं:—

(१) छत्तों को बिना हानि पहुँचाए शहद निकाला जाता है। इससे मक्खियों को बार २ छत्ता बनाने में व्यर्थ का समय और परिश्रम व्यय नहीं करना पड़ता। एक पौंड छत्ता बनाने में मक्खियों को सात से दस पौंड तक शहद व्यय करना पड़ता है। नवीन उन्नत विधियों से छत्ते में से शहद निकाल कर मक्खियों को शहद इकट्ठा करने के लिए फिर वही छत्ता दे दिया जाता है। शहद भर जाने पर छत्ते को सुरक्षित रखते हुए शहद फिर निकाल लिया जाता है। इस प्रकार सामान्य ग्रामीण तरीकों द्वारा शहद निकालने की अपेक्षा इस नवीन विधि में साल भर में पांच छः गुणा अधिक शहद प्राप्त किया जाता है। किसी २ स्थान पर एक ही छत्ते में से साल में बारह बार तक शहद निकाला जाता है।

(२) अण्डों और बच्चों का शहद के भण्डार से पृथक् निवास स्थान होने से उन्हें हानि नहीं पहुंचती।

(३) शहद शुद्ध प्राप्त होता है।

(४) चींटियां, छिपकली, भूण्ड, मोम तितली (Waxmoth) और पक्षी आदि कई प्रकार के मधु मक्खियों के दुश्मनों से इनकी रक्षा पेटी में अधिक अच्छी तरह हो सकती है। (क्रमशः)

मैडिकल स्कूल लुधियाना

व उसका

धर्मार्थ हस्पताल (औषधालय व रोगी गृह)

लुधियाना पंजाब का एक बड़ा प्रसिद्ध व तिजारती नगर है और यह शिक्षा का केन्द्र है। लुधियाने की आर्य समाज भारत वर्ष की शक्तिशाली समाजों में से एक है। इसके आधीन लड़कों का हाई स्कूल और लड़कियों की कन्या पाठशाला बहुत वर्षों से चल रहे हैं। यह दोनों स्कूल पञ्जाब भर में उच्च कोटि की संस्थाएं हैं। गत वर्ष से आर्य-समाज लुधियाना ने एक ऐसी अपूर्व संस्था अपने हाथ में ले ली है जो इस देश में किसी भी आर्य समाज या इसाइयों के सिवा किसी और सोसाइटी ने नहीं खोली है। यह संस्था मैडिकल स्कूल है। जिसको पञ्जाब सरकार ने स्वीकृत कर लिया है और जिसके छात्र सरकारी मैडिकल परीक्षा देते हैं। सरकारी मैडिकल स्कूल के अतिरिक्त लुध्याना का मैडीकल (डाक्टरी) स्कूल ही उत्तरीय भारत में एक ऐसी संस्था है जिसमें पंजाब व पश्चिम उत्तरीय, देहली प्रान्तों के युवक प्रविष्ट होकर डाक्टरी शिक्षा प्राप्त कर सकते हैं।

मैडिकल स्कूल के अध्यापक उच्च डाक्टरी पद्वियां प्राप्त किये हुए हैं और हर प्रकार से योग्य हैं। इसके शिक्षा परिणाम सन्तोष जनक रहते हैं। मैडिकल स्कूल का अपना भवन है जिस पर ४७०००) व्यय हो चुका है। यह भवन स्कूल के लिए पर्याप्त है परन्तु इसका हस्पताल एक किराए के मकान में है जिसका १२२) मासिक किराया देना पड़ता है। हस्पताल में रोगियों की चिकित्सा मुफ्त की जाती है और गरीबों को भोजन व वस्त्र भी हस्पताल की ओर से दिये जाते हैं। इस में ५० रोगियों के रहने का प्रबन्ध है। गत वर्ष ६०४०६ रोगियों को मुफ्त चिकित्सा की गई। मैडिकल स्कूल का व्यय २५००) मासिक है। और औषधालय का व्यय ११००) मासिक है।

हस्पताल का किराए का मकान दिन प्रति दिन बढ़ती हुई मांग के लिए पर्याप्त नहीं है। इसके अतिरिक्त पञ्जाब मैडिकल कौंसल (Punjab Medical Council) ने आग्रह किया है कि हस्पताल के लिए अपना भवन तैय्यार किया जावे जिस में रोगियों की चिकित्सा के लिये हर प्रकार की सुविधाएं प्राप्त हों। अतः मैडिकल स्कूल की प्रबन्ध-कर्तृ-सभा ने (जिसके प्रधान राय बहादुर लाला रंगीलाल जी एम० ए० रिटायर्ड जज हाईकोर्ट पञ्जाब हैं) हस्पताल का भवन बनाने का निश्चय कर लिया है और एक उचित स्थान का प्रबन्ध कर लिया है जिसमें यह हस्पताल बनाया जावेगा। इस हस्पताल पर १५००००) व्यय होगा। इस हस्पताल में ११२ रोगियों के रहने का प्रबन्ध होगा और हर प्रकार के नवीन से नवीन चिकित्सा के साधनों का प्रबन्ध किया जावेगा। हस्पताल के भवन के लिये धन संग्रह का कार्य प्रारम्भ हो गया है और दानी सज्जनों ने हस्पताल में रोगी गृह और कमरे बनवाने के लिए धन देने का वचन दिया है। परन्तु धन की बहुत बड़ी राशि अभी एकत्र करनी बाकी है। अतः देश के उन महानुभावों और दानशील पुरुषों से जो जाति और देश के निर्धन दुःखियों और रोग ग्रस्त नर नारियों और बाल व वृद्धों से सहानुभूति रखते हैं हम सानुरोध प्रार्थना करते हैं कि वह इस पवित्र और शुभ कार्य में स्वयं दिल खोल कर दान देवें और अपने इष्ट मित्रों से भी इस के निमित्त दान दिलावें। जो महानुभाव अपने किसी प्रिय सम्बन्धी तथा मित्र की यादगार मेंकोई कमरा अथवा ब्लाक बनवाना चाहें वह भी हमारे धन्यवाद के पात्र होंगे। एक कमरे पर न्यून से न्यून १०००) व्यय होगा। न्यूनातिन्यून रकम भी धन्यवाद पूर्वक स्वीकार की जायगी। आशा है कि जनता हमारी अपील पर बड़े विशाल हृदय से सहायता करेगी।

रामलाल सैक्रेटरी,

लुधियाना मैडिकल स्कूल व धर्मार्थ हस्पताल,

लुधियाना (पञ्जाब)

सङ्गीत—सागर

सम्पादक—प्रभूलाल गर्ग
प्रकाशक—संगीत कार्यालय हाथरस
मूल्य—चार रुपये पृष्ठ सं० ३३६

हिन्दी में संगीत के साहित्य का अभाव बहुत ही खटकता है 'संगीत कार्यालय' इस अभाव की पूर्ति में सराहनीय प्रयत्न कर रहा है। प्रस्तुत पुस्तक भी इसी कार्यालय से प्रकाशित हुई है। पुस्तक को पांच अध्यायों में बांटा गया है। प्रथम अध्याय में नाद, स्वर, श्रुति, मूर्च्छना, राग और रागनियों पर प्रकाश डाला गया है तथा च इस अध्याय में संगीत के प्रवेशार्थियों के लिए सरगमों के प्रस्तार देकर इसकी उपयोगिता बढ़ा दी गयी है। दूसरे अध्याय में पक्के गानों की स्वर लिपियां तथा तीसरे अध्याय में फिल्मी गानों की स्वर लिपियां दी हैं। चौथे अध्याय में तबला, सितार, बेला, बांसुरी, जल तरङ्ग, बीन और बैन्डों के बजाने की विधियां दी गई हैं। पांचवे में नृत्य पर प्रकाश डाला गया है।

पुस्तक के उपयोगी होते हुये भी पुस्तक के मनन में हमें कई स्थलों पर विशेष आपत्ति रही है। पुस्तक में नाद, स्वर, श्रुति, मुर्च्छना आदि पर विशेष प्रकाश नहीं डाला गया ये वस्तुएं बहुत ही अस्पष्ट रह गई मालूम होती हैं, कम से कम इतना तो हम अवश्य कहेंगे कि संगीत का प्रवेशार्थी उन्हें कभी भी समझ नहीं सकता साथ ही इसमें जो तीसरा अध्याय फिल्मी गानों का रखा गया है उसकी तो बिलकुल ही आवश्यकता न थी, हम ये चीज़ केवल भावुकतावश नहीं

लिख रहे अपितु कुछ एक सिद्धान्तों और युक्तियों के आधार पर लिख रहे हैं। इसी पुस्तक में फिल्मी गाने जो कि संगृहीत हैं कितने ऐसे हैं जो कि शुद्ध राग हैं? यह तो सर्व विदित है कि भारतीय सङ्गीत पर फिल्मी गानों की छाया से उस सुन्दर कला का ह्रास ही हो रहा है न कि उन्नति। श्रीयुत् दिलीपचन्द्र जी वेदी बहुत काल से फिल्मी गानों में भारतीय सङ्गीत का कल्याणकर प्रभाव डालने के लिए इस योग में प्रवेश किये हुए हैं पर उन्हें कितनी सफलता मिल रही है या मिलेगी यह उनके ही मुंह से सुनना उपयुक्त होगा।

अब पञ्चम अध्याय के विषय में जो कि नृत्य पर लिखा गया है कुछ कहना अनुपयुक्त न होगा। ३५० पृष्ठों की पुस्तक में इस अध्याय को कुल १२ पृष्ठ ही मिले हैं। हमतो निःसङ्कोच ही कहेंगे कि इससे नृत्य पर कुछ भी प्रकाश नहीं पड़ा, केवल नृत्य की महिमा गा देने से ही नृत्य विषय स्पष्ट नहीं होता इस पर विशेष प्रकाश की आवश्यकता है चूंकि साधारण व्यक्ति अब भी इसे एक हेय वस्तु समझता है इसके एक २ अङ्ग पर प्रकाश डाल कर इसे समझाने की आवश्यकता थी।

छपाई सफाई उत्तम है कीमत भी ज़्यादा नहीं है।

———:o:———

गुरुकुल समाचार

स्वास्थ्य समाचार

नाम रोगी	श्रेणी	नाम रोग
गोविन्द	४	आन्त्रज्वर
योगेश्वर	१२	विषमज्वर
धर्मेन्द्र (देहरादून)	५	"
राजेन्द्र	३	"
जगदीशनारायण	३	"
सूर्यदेव	३	"
नारायण	३	"
कपिलदेव	२	नेत्र रोग
विश्वनाथ	२	विषमज्वर
योगेश्वर	३	आन्त्रज्वर

पब सब अच्छे हैं।

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब का वार्षिक चुनाव

प्रधान—श्रीवान बद्रीदास जी
उपप्रधान—पं० विश्वम्भरनाथ जी (सीनियर)
" म० कृष्ण और पं० रामू
(गुरुकुल सम्बन्धी कार्यों के लिए)
मन्त्री—पं० भीमसेन
कोषाध्यक्ष—म० बालमदास
पुस्तकाध्यक्ष—ला० अर्जुनदेव।

विद्या सभा में ऊपर निर्दिष्ट ७ पदाधिकारियों के सिवा शेष बीसों सदस्य ऐसे ही रक्खे गये हैं, जिनको गुरुकुल से विशेष दिलचस्पी है।

———

[पृष्ठ ४ का शेष]

नहीं है जिस के कारण मैंने गुरुकुल छोड़ने का निश्चय किया हो। यह तो तुम जानते ही हो कि मैं घबराने वाला आदमी नहीं हूं, तङ्ग हो जाने वाला भी नहीं हूँ। तुम्हारी खराबियां अच्छी तरह से जानता हूँ। मैं जानता हूँ कि तुम में सुधार की बहुत अधिक आवश्यकता है। गुरुकुलीय आदर्श की दृष्टि से देखूं तो तुम्हारा बहुत ही बुरा हाल है। यह नहीं कि मैं तुम्हारे गुण नहीं जानता। मैं तुम्हारे गुण भी जानता हूँ इसी लिये तुम्हारी खराबियां भी ठीक ठीक जानता हूं। पर इस सब से मैं ज़रा भी निराश नहीं हूँ। मैं इसे ठीक करना कुछ कठिन नहीं समझता। यहां के वायु मण्डल को बदल देना भी कुछ मुश्किल नहीं दीखता और परमेश्वर की कृपा से तो कुछ भी असम्भव सम्भव हो सकता है। मतलब यह है कि गुरुकुल छोड़ने का यदि मेरा कोई आन्तरिक (गुरुकुलीय) कारण है तो वह कुछ और है, तुम से वह सम्बन्ध नहीं रखता।

ऐसा कहते हुए मैं जहां तुम्हें एक प्रकार का अभिनन्दन पत्र दे रहा हूँ—और अपने आपको भी अभिनन्दन पत्र दे रहा हूं वहां साथ ही अपने को निन्दा पत्र भी दे रहा हूं। गांधी जी के हरिजन दौरे में जब उन्हें देहली में अभिनन्दन पत्र दिये जा रहे थे तो मैंने गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ की तरफ़ से एक निन्दा पत्र दिया था। वैसे ही भाव में आज मैं यह निन्दा पत्र भी स्वेच्छा से ले रहा हूँ। अस्तु, मैं यह कह चुका हूं कि मेरा इस समय गुरुकुल छोड़ने का अन्तिम और मूल कारण आध्यात्मिक है। अतः मेरे इस छोड़ने से किसी का भी अकल्याण होगा यह सोचा भी नहीं जा सकता। कल मान्य उपाध्याय पं० धर्मदत्त जी मुझ से कह रहे थे कि आप अपने लाभ के लिये गुरुकुल छोड़ रहे हैं सो आपके लिये ठीक है। इस पर जो कुछ उन्हें मैंने कहा वही तुम्हें कहता हूँ कि मेरा लाभ कोई जुदा लाभ नहीं है। किसी भी शुद्ध आध्यात्मिक प्रवृत्ति से सभी का एक प्रकार का भला होता है। नम्रता से कह सकता हूँ कि 'मैं' और 'मेरे' का ख्याल मुझ में नहीं रहता है—नहीं के बराबर रहता है इस लिये असंदिग्ध मन से मैं कह रहा हूँ कि जिस में मेरा निश्चित भला है उस में सबका भला है।

सूचना

आचार्य देवशर्मा जी गुरुकुल से इस सप्ताह विदा ले रहे हैं अतः गुरुकुल सम्बन्धी सब पत्र व्यवहार मुख्याधिष्ठाता गुरुकुल कांगड़ी के पते से होना चाहिये।

चौधरी दुलाराम के प्रबन्ध से गुरुकुल यन्त्रालय गुरुकुल कांगड़ी में मुद्रित तथा प्रकाशित।

* ओ३म् *

“ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत” Reg. No A. 2927

गुरुकुल

सम्पादक—भारतभूषण वेदालङ्कार

एक प्रति का मूल्य -) [गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख-पत्र] वार्षिक मूल्य २॥)

वर्ष ३] गुरुकुल कांगड़ी, शुक्रवार २८ ज्येष्ठ १९९५; १० जून १९३८ [संख्या ४

नाहं मन्ये सुवेदेति नो न वेदेति वेद च ॥

[ले०—श्री स्वामी ब्रह्मपुरी जी महाराज]

(गतांक से आगे)

संस्कृत साहित्य में तैत्तिरीय उपनिषत् जिस कोटि का ग्रन्थ माना गया है उस उच्च ब्रह्मविद्या, आत्मविद्या या ईश्वर विषयक विद्या का निरूपण करने वाले ग्रन्थ में प्रारम्भिक शिक्षा से सम्बन्ध रखने वाली उपरोक्त बातें क्यों लिखी गयी हैं यह प्रश्न सहसा उत्पन्न होता है। इस पर विचार करने से ऐसा मालूम होता है कि जैसे एक कौलिज का प्रिन्सिपल यह आशा रखता है कि स्कूल से उत्तीर्ण होकर जो विद्यार्थी उसकी संस्था में शिक्षार्थ प्रविष्ट हों उनकी स्कूल की पढ़ाई ऐसी पक्की होनी चाहिये कि जिससे कौलिज के अध्यापकों को कठिनता न पड़े और सरलता से विद्यार्थी को उच्च ज्ञान दिया जा सके और इसी प्रकार स्कूल का हेडमास्टर भी इच्छा करता है कि उसके स्कूल में ऊपर की श्रेणियों के विद्यार्थी प्रारम्भिक शिक्षा इस प्रकार प्राप्त कर के आवें कि जिससे मास्टरों को हरेक छोटी २ बातों में लड़कों के साथ माथा पच्ची न करना पड़े; ऐसे ही उपनिषत्कार भी अपने हृदय की इस भावना को प्रकट कर सकता है कि यदि किसी को ब्रह्मविद्या, आत्मविद्या या ईश्वर विषयक विद्या की कोटि तक शिक्षोपार्जन करना है तो उसे प्रारम्भिक शिक्षा पर सब से अधिक लक्ष्य देना चाहिये। इसी भावना को लेकर एक शिक्षणालय का आचार्य अपने अधीनस्थ अध्यापकों को निर्देश कर सकता है कि आप लोग कृपा करके अपने विद्यार्थियों को पढ़ाते समय प्रारम्भिक शिक्षा की ओर पूरा लक्ष्य दें और जो विद्यार्थी मेरे पास वेद आदि उच्च कोटि का साहित्य पढ़ने के लिये आवें उनको मात्रा तथा बल का बोध इस प्रकार से करा दीजिये कि ये बातें उनके मस्तिष्क में आयु भर के लिये अङ्कित हो जावें और हमें अपने शिक्षाक्रम में सरलता हो और बार बार लड़कों को प्रत्येक शब्द के स्पेलिङ्ग तथा अर्थ ही बतलाते रहने में अपने अमूल्य समय को नष्ट न करना पड़े।

इस भावना से उपनिषत्कार का यह उपदेश यों समझ में आता है कि वैदिक परिपाटी के पठन क्रम में “मात्रा तथा बल” पर पूरा लक्ष्य देकर व्याकरण छन्द इत्यादि शिक्षा द्वारा प्रारम्भिक शिक्षा होनी चाहिये तब ही काम चल सकता है। और यदि ऐसा न किया गया तो शिक्षा की नींव कच्ची रह कर विद्यार्थी उच्च-श्रेणियों में पहुंच जाने पर भी स्कूल को सकूल तथा स्टूल को सटूल ही बोलता रहेगा और 'यह टोपी तुमने कहां बनवायी और इसकी बनवाई क्या दी' में दोनों ही जगह 'बनवाई' ही लिखेगा और इस प्रकार की भूलें प्रायः बड़े२ समाचार पत्रों के लेखों में भी देखने में आती हैं। इस से ऐसा कहा जा सकता है कि प्रारम्भिक शिक्षा का बोझ जिन महानुभावों के सिर पर रक्खा गया है वे स्वयं तो 'साम सन्तान' हैं या क्योंकर यह बात शङ्कास्पद है।

उपरोक्त रीति पर प्रारम्भिक शिक्षा का कुछ तो शब्दों में निर्देश करने के बाद आगे के अनुवाद में प्रारम्भ में “सह नौ यशः। सह नौ ब्रह्मवर्चसम्” ॥ इस उपदेश के साथ उच्च शिक्षा का निर्देश आरम्भ होता है। इस से आचार्य का क्या भाव है यह भी विचार करने पर समझ में आ सकता है।

'सह नौ यशः। सह नौ ब्रह्मवर्चसम' इन शब्दों का अर्थ है कि हम दोनों को यश प्राप्त हो और हम दोनों को ब्रह्मबल प्राप्त हो। कैसी उच्च भावना है।

विद्यार्थी की प्रारम्भिक शिक्षा समाप्त होने तथा उच्च शिक्षा आरम्भ होने के बीच में बालक के जीवन में एक ऐसा युग आता है कि जिस के लिये प्रत्येक अनुभवी मनुष्य यह कह सकता है कि वह उमर बहुत जल्दी बिगाड़ पैदा करने वाली है और इस लिये उस नाजुक अवस्था में बालक के शिक्षण के साथ हो

उसके सदाचार की ओर भी पूरा लक्ष दिये जाने की आवश्यकता है। इस लिये उस युग में बालक को ऐसी शिक्षा दी जावे कि जिसके फलस्वरूप में पिता पुत्र का तथा गुरु शिष्य का आपस का सम्बन्ध बहुत मधुर हो और वह मिठास ऐसी पक्की नींव पर बनायी जावे कि वह आयु भर तक यथावत् बनी रहे और गुरु, पिता तथा बालक तीनों ही का जीवन आनन्दमय बना रहे। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये शिक्षणालय में प्रार्थना के समय गुरु तथा शिष्य ने एक साथ मिल कर उपरोक्त बात (कि हम दोनों का यश हो और हम दोनों को ब्रह्म-बल मिले) याचना रूप में ईश्वर से मांगना चाहिये तथा घर में सन्ध्या हवन इत्यादि नित्यकर्म करने के बाद पिता तथा पुत्र मिल कर परमात्मा से वही याचना करें जोकि गुरु तथा शिष्य ने मिलकर करना है। केवल शब्दों ही से काम नहीं चलेगा परन्तु भावना भी विद्यार्थी को सिखानी होगी। बालक को गुरु के महत्व को समझाने के लिये यह बात कहनी चाहिये कि यदि किसी मनुष्य के पास उसकी जेब में एक लाख रुपये के नोट हैं और एक दूसरा व्यक्ति उन नोटों को सब का सब या उन में से कुछ लेना चाहता है तो या तो वह व्यक्ति उस नोट वाले मनुष्य को ठोक पीट कर छीन कर ले सकता है या चुरा कर ले सकता है। परन्तु यदि किसी मनुष्य के मस्तिष्क में कोई बात रक्खी हुई है उस को लेने के लिये ऊपर लिखे हुए दो तरीकों में से एक भी काम में नहीं आ सकता; उसके लिये तो युक्ति, धैर्य तथा सेवा सुश्रूषा से ही काम लेना पड़ेगा। इस सिद्धान्त के अनुसार विद्या ठोक पीट कर या चुरा कर प्राप्त कभी नहीं की जासकती। विद्या प्राप्ति के लिये तो धैर्य तथा युक्ति के साथ गुरु की सेवा सुश्रुषा करने ही से काम चलेगा इसके सिवाय विद्वान् बनने का अन्य कोई मार्ग ही नहीं है।

इस स्थान पर एक दन्तकथा याद आती है जिस के सत्य होने या न होने पर हमारा लक्ष नहीं है परन्तु उसमें जो शिक्षाप्रद बात हमें मिलती है केवल उसी को देखने लिये हम उसका वर्णन करेंगे।

ऐसा कहा जाता है कि एक गुरु अपने कुछ शिष्यों सहित एक आश्रम में निवास करते हुए विद्या का प्रचार किया करते थे। उनका एक शिष्य पढ़ लिख कर अच्छा विद्वान हो गया था परन्तु धुरन्धर विद्वान् बनने के लिये वह आगे विद्योपार्जन कर रहा था। एक दिन किसी कारण उस छात्र के हृदय में अपने शिक्षक गुरु के प्रति कुछ दुर्भावना उत्पन्न हुई और इस कारण वह उन से विवाद कर उठा। गुरु को शिष्य के इस उच्छृंखलता के बर्ताव से क्रोध आ गया और विद्यार्थी भी विनीत होकर गुरु को प्रसन्न करने के बदले उद्दण्डता पर उतारु हो गया और व्यर्थ का वितंडावाद करने लग गया। बात यहां तक बढ़ी कि गुरु ने शिष्य से अपनी विद्या वापिस मांगी और शिष्य ने भी फौरन वमन द्वारा सब विद्या निकाल कर गुरु के सामने ढेर कर दिया और आश्रम से चलता बना। उसके बाद दूसरे जो विद्यार्थी वहां उपस्थित थे उन्हों ने तीतर बन कर उस वमन की हुई विद्या को चुग लिया और चूंकि वह विद्या इस उपनिषद् में वर्णन की गयी है इसलिये इसका नाम 'तैत्तिरीय उपनिषद्' है।

इस दन्त कथा से हम को विद्यार्थियों के उद्दण्ड तथा वितण्डावादी होने का उपनिषद्काल से ऐतिहासिक (या कल्पित) प्रमाण मिलता है। और उपनिषद्कार अपने इस कटु अनुभव के कारण अपनी कृति में अपने हृदय की भावना को उचित स्थान पर प्रकट करते हुए अपने भावी विद्यार्थी तथा विद्वन् मण्डली को सन्केत करने के लिये उपरोक्त प्रार्थना द्वारा गुरु तथा शिष्य का एकमत होकर करना वर्णन किया है। तैत्तिरीय उपनिषद् के रचयिता आचार्य के उक्त कटु अनुभव का प्रत्यक्ष दर्शन इस युग की शिक्षण पद्धति में पग पग पर हो रहा है। आज का 'तालिबइल्म' अपने हृदय में यह भावना बहुत दृढ़ रूप से लिये हुए हैं कि "हम पैसे देते हैं और पढ़ते हैं इस में हम पर किसी का कुछ भी अहसान नहीं है" (We give money and take education and we all exist on the principle of give and take) गोया यह एक लेनदेन है, सौदा है और एक प्रकार का धन्धा (Profession) है। इस दुर्भावना ने कितने ही घर उजाड़ दिये और बजाय विद्वान् युवक के वितण्डावादी लड़के इस समय संसार भर में अधिकता से दिखायी दे रहे हैं औ चूंकि यह बिगड़े हुए लड़के अपने शिक्षकों के प्रीति पात्र न होने के कारण कुछ पढ़ नहीं सके और निरे मूर्ख और अविद्वान् रह गये है और अब पढ़ने की आयु व्यतीत हो चुकी इस लिये अपनी इस कमजोरी को छिपाने के लिये 'राष्ट्रीय वाद' का पाखण्ड खड़ा कर जैसे तैसे अपना जीवन व्यतीत करते हुए बहुत से गुमराह लड़के इस समय संसार भर के प्रत्येक देश में विद्यमान हैं।

(क्रमशः)

अधम विषयों का वर्णन

(लेखक— श्रीयुत वामन मल्हार जोशी एम्. ए.)

गरुड़ पक्षी आकाश में अपने ऊंचे स्थान से पृथ्वी का शान्तिपूर्वक निरीक्षण करते हुए, निजा आत्मानन्द में निमग्न हो अपना घोंसला, अपने बच्चे इत्यादि सब कुछ भूल कर मण्डल भ्रमण करते हुए पांच या छह घण्टे उस 'उच्च' सुख का उपभोग करता रहेगा, पर अन्त में उसे भूमि पर तो उतरना पड़ना ही है न? दिन के चौबीसों घण्टे उस के लिये आकाश में विहार करते रहना संभव नहीं। उसके पङ्ख थक जाते हैं, उस के पेट में भूख सताने लग जाती है।

ठीक यही अवस्था ग्रन्थ लेखक की भी समझिये। उदात्त वस्तुवर्णन में उसे घड़ी दो घड़ी ब्रह्मानन्दतुल्य आनन्द होता अवश्य है; पर यह सुख उस का बहुत देर तक टिक कर रहता नहीं। एक तो उसकी कल्पना-शक्ति श्रान्त हो जाती है, और दूसरे उसकी दैहिक क्षुधा के तीव्र हो जाने पर उसे ऊंची उड़ान छोड़ कर भूमि पर उतरने की इच्छा हो जाती है।

पाठकों की दृष्टि से भी यह बात बुरी नहीं है। गरुड़ पक्षी की ऊंची उड़ान और शान्त आकाश भ्रमण को देखकर हम लोग उसमें दिलचस्पी लेते हैं; पर मिनिट दो मिनिट ऊपर आंख उठाकर उसकी ओर देखते रहने से आंखें थकता जाती हैं और हम लोग उस की ओर देखना बन्द कर देते हैं, अधिक हुआ तो, बीच २ में कभी उस की ओर देख लिया और उसके उड़ने की शाब्दिक प्रशंसा करदी।

मनुष्य को अकाशान्तर्वर्ती तारों की ओर टक टकी बाँध कर देखते रहने की अपेक्षा पृथ्वी पर के बाग़ बगीचों की ओर किंवा फूलों की ओर देखना अधिक प्रिय लगता है। गरुड़ अथवा मेघों के उच्च भ्रमण अथवा तारों की सूक्ष्म गति, इनके निरीक्षण की अपेक्षा गन्दे गधों का ज़मीन पर लौटना अथवा अनुकरण करने वाले बन्दरों की मर्कट चेष्टाएँ, इन के निरीक्षण में उसका समय अधिक आराम से बीतता है!

ग्रन्थकार को भी पृथिवी व पवित्र आश्रम, रम्य उद्यान, सुन्दर सुवासित पुष्प, भव्य तरुवर, विहरती हुई चिड़ियां इन सब के वर्णन करने में जितना आनन्द प्राप्त होता है, उतना आनन्द उसे छोटी सी झोंपड़ी, बदबूदार घूड़ा और भयानक श्मशान इत्यादि बातों के वर्णन में प्राप्त होता है। सात्विक धीरोदात्त नायक का शब्द चित्र खींचने में वह जितना स्तिमित रह जाता है, उतना ही धातु... एवं नीच 'शकार' के अथवा अन्य किसी नीच नर पशु के वर्णन में स्तिमित रह जाता है। पहले प्रकार के विषय उसे नातिदृष्ट्या किंवा पाविष्यदृष्ट्या अधिक प्रिय और पूज्य होते हैं; परन्तु कला की दृष्टि से दूसरे विषय भी उसे प्रिय हो लगते हैं। राम और सीता का वर्णन करने वाले कवि ने क्या रावण और ताड़का का वर्णन नहीं किया है?

ऐसा होते हुए भी नीच और दुष्ट लोगों की मनोवृत्ति और उनके कुत्सित आचरणों का वर्णन करते समय, कलम को जिस तरह चलना चाहिये, उस तरह उससे चलते नहीं बनता। लेखक को ऐसा लगने लगता है कि, मैं जो वर्णन कर रहा हूं, यदि वह न किया जाता तो ही अच्छा था। संसार में नीचवृत्ति के पुरुष क्या कम हैं और उनके अधम कृत्यों का क्या किसी को अनुभव नहीं है, जो उनको खोल कर वर्णन करना आवश्यक जान पड़े? जगत् में सज्जन थोड़े हैं, उनके सत्कृत्य गूढ़ रहते हैं, उनका ज्यादा ढिंढोरा नहीं पिटता, अतः कवि के द्वारा अपनी प्रतिभा के बल से धीरोदात्त नायक, वीर कवि ऋषि का निर्माण कर के उसके गुण का गान किया जाना, शोभा देता है; परन्तु नीच पुरुषों के 'गुणों का वर्णन' क्यों? तब बकुल बँधवाया गया तो साथ ही शौच कूप भी बंधवाया जावेगा ही। परन्तु वह किसी एकान्त कोने में ही रहता हुआ अच्छा नहीं क्या? उनका खुले आम रास्ते पर प्रदर्शन किस लिये और वक्त बे वक्त उसका सविस्तर वर्णन भी तो किस लिये?

संरक्षकों को आवश्यक सूचना

जिन संरक्षक महानुभावों को अपने ब्रह्मचारियों के फोटो की ज़रूरत हो—वे पत्र भेज कर मंगवा सकते हैं।

सारी श्रेणी का फोटो—१ प्रति—फुल साइज़ दाम १)

एक ब्रह्मचारी का फोटो ३ प्रति—क्वार्टर साइज़ दाम १॥)

पताः—प्रकाशचन्द्र वेदालंकार
अलङ्कार चित्रशाला गुरुकुल कांगड़ी
ज़ि० सहारनपुर (यू० पी०)

सूचना
गुरुकुल के स्नातकों के प्रति

शिक्षा पटल का निर्वाचन प्रति तीन वर्ष बाद होता है। नियमों के अनुसार स्नातकों के दो प्रतिनिधि शिक्षा पटल में होते हैं। उन सब स्नातकों को वोट देने का अधिकार है जिन्हें स्नातक बने कम से कम तीन वर्ष व्यतीत हो चुके हों। वाचस्पति उपाधि प्राप्त स्नातकों के लिए यह बाधा नहीं है। इस वर्ष शिक्षा पटल का नया चुनाव होना है। जो स्नातक इसके लिए प्रतिनिधि होना चाहें वे अपना नाम प्रस्तावक व अनुमोदक समेत ५ आषाढ़ या १८ जून तक प्रस्तोता कार्यालय में भिजवा देवें। इन उम्मीदवारों के नाम गुरुकुल पत्र में प्रकाशित किये जायंगे कि जिससे प्रत्येक वोटर स्नातक को वोट देने की सुविधा रहे।

गत तीन वर्षों में श्री पं० अमरनाथ जी विद्यालङ्कार तथा श्री पं० चन्द्रगुप्त जी विद्यालङ्कार स्नातकों की ओर से शिक्षा पटल के सदस्य रहे हैं।

नोट—निम्नलिखित स्नातक अन्य प्रकार से शिक्षा पटल के सदस्य हो चुके हैं अतः अपना वोट देते हुए इसका ध्यान रखना चाहिये।

पं० सत्यव्रत सिद्धान्तालङ्कार (मुख्याधिष्ठाता होने के कारण)
पं० वागीश्वर विद्यालङ्कार (प्रस्तोता होने के कारण)
पं० धर्मदत्त सिद्धान्तालङ्कार (अध्यक्ष आयुर्वेद म० वि०)
पं० विश्वनाथ विद्यालङ्कार (उपाध्यायों के प्रतिनिधि)

भवदीय
वागीश्वर
प्रस्तोता

[पृष्ठ ७ का शेष]

इन्हें फिर अन्दर डालना होता है। इस सारी प्रक्रिया में बहुत सावधानी, चतुराई और कोमलता से काम करना चाहिये। रानी मक्खी को अचानक ज़रा सी भी चोट लग गई तो यह सारा परिश्रम बेकार होगा।

कभी कभी पेटी को खोल कर मक्खियों के झुण्ड के ठीक ऊपर रखा जाता है और तब साफ़ पानी से हलकी हलकी पिचकारी की जाती है। इससे मक्खियां अपने आप ही पेटी के अन्दर के चौखटों में चली जाती हैं। पर्वतीय ग्रामों में आकाश में उड़ते हुए मक्खियों के झुण्ड पर धूल फेंक कर पकड़ लिया जाता है।

ज्यों ही सब मक्खियां अपने घर में आ जायं तो पेटी को अच्छी तरह बन्द करके नियत स्थान पर ले जा कर रख दें और इस बात का ध्यान रखें कि कम से कम चौबीस घण्टे तक जितना सम्भव हो उन्हें कम छेड़ा जाय।

गु रु कु ल

१० जून शुक्रवार १९३८

आर्य प्रतिनिधि सभा का चुनाव

हमारे दुर्भाग्य से आर्य समाज के हरेक क्षेत्र में विशेषकर सभाओं समाजों के पदाधिकारियों के चुनाव के अवसरों पर दलबन्दियां हो जाती हैं। यही हाल आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब में भी होता रहा है। दो दल बनते हैं एक दूसरे के दल को नीचा दिखाने व पराजित करने का प्रयत्न नहीं प्रत्युत अनुचित उपायों का भी कभी २ सहारा लिया जाता रहा है। अभी हाल ही में आर्यप्रतिनिधि सभा पंजाब का २८ मई को साधारण चुनाव था। पहले ही से दो दल बने बनाये तय्यार थे। आर्यसमाज को ऊंचा उठाने के लिये नहीं, महर्षि के कार्यक्रम को आगे बढ़ाने व फैलाने के लिये नहीं अपितु अपने ही भाइयों को नीचे गिराने के लिये ये दल थे। आर्यसमाज के बड़े से बड़े विद्वान् व जिम्मेवार महानुभाव भी आर्यसमाज के वास्तविक प्रोग्राम को भुला कर फूट बढ़ाने के लिये खाद का काम देने के लिये सन्नद्ध थे।

महाभारत के समय के दो दलों की विद्वेषाग्नि को दूर करने के लिये श्री कृष्ण ने महान् प्रयत्न किया था। सभा का सौभाग्य से वही कार्य प्रो० इन्द्र ने अपने प्रस्ताव को प्रस्तुत करते हुए किया। सर्व सम्मति से चुने गये प्रधान रायबहादुर श्री बद्रीदास जी के निष्पक्ष कन्धों पर पदाधिकारी निर्वाचन का भार सौंप दिया गया। और तदनुसार ही अधिकारी निर्वाचित कर लिये गये।

सभा का चुनाव समाप्त हो गया सम्भवतः विशेष अड़चनों या झगड़ों की नौबत नहीं आई। लेकिन क्या इस से आर्य भाइयों के दिल से विद्वेष की भावनायें भस्मीभूत होगईं। क्या इन पारस्परिक झगड़ों को अपने से कोसों दूर भगा कर ऋषि दयानन्द के कार्यों को आगे आगे बढ़ाने के लिये, आर्यसमाज के पवित्र उद्देश्यों को फैलाने के लिये उपस्थित आर्य भाइयों ने कोई संकल्प ग्रहण किया? यदि नहीं, यदि इस चुनाव के बाद भी आर्य भाइयों ने बदला लेने की भावनाओं को बढ़ाने का ही विचार जागृत किया है- तो यह कहना अनुचित न होगा कि इस प्रकार के चुनाव आर्य समाज को अन्धगर्त में डालने के ही साधन होंगे। आर्य भाई सोचें समझें और कर्तव्य पालन करें।

भारत का दारिद्र्य

हिन्द आज कैसे मृत्यु के मुख में चला जारहा है उसकी क्या कुछ कल्पना है? अपनी आयु कितनी है? २४ वर्ष। प्रतिवर्ष अपने भारत में कितने बच्चे पैदा होते हैं? ९० लाख। कितने मर जाते हैं? ६० लाख। ज्वर जैसे दूर हो सकने वाले रोगों से कितनों की मृत्यु होती है? १५० लाख की। गत महायुद्ध में कितने आदमी मारे गए? ११५८७२५८। भारत में १९१८ के इन्फ्लुएन्जा जैसे साधारण रोग से कितने मारे गए? सवा करोड़। युद्ध का मृत्यु परिमाण कितना होता है? १५ फी सदी और अपनी आर्यभूमि में सगर्भा माताओं का मृत्यु परिमाण क्या है? ३७ फीसदी। १९ वीं शताब्दी में संसार के युद्धों में कितने मनुष्य मारे गए? अधिक से अधिक दो करोड़। १९ वीं सदी के अन्तिम दस वर्ष में भूख, दुःख और साधारण रोगों से भारत में कितनी मृत्युएं हुईं? कोई २॥ करोड़। भारत में प्रतिक्षण कितने मनुष्य पैदा होते हैं? १९.५ और मरते कितने हैं? १८.९ और बचते कितने हैं? ६। भारत में संसार के अन्य देशों की अपेक्षा पांच गुना बालकों की मृत्यु प्रमाण क्यों? क्षय, मलेरिया, भूख आदि से मरण परिमाण कितना भयंकर है? ४। करोड़ विधवायें कैसे हुई और यह अवस्था कब तक रहेगी?

कोई कहेगा कि यह सब क्यों और किसके अभाव से हो रहा है? न्यून प्राणबल इसका कारण है। तो न्यून प्राणबल का कारण क्या है? पोषण का अभाव ही इनका मुख्य कारण है। भारत में कभी किसी ने पोषण की कल्पना की है? हमारे देश में दो दफे भोजन पाने वाले— एक समय में रूखी पानी वाले और निराहार रहने वाले कितने होंगे उनका कुछ ख्याल है? पेट भर रोटी जिस प्रजा के एक तिहाई हिस्से को भी नहीं मिलती दूध, घी, फल शाक जिस प्रजा के तीन चौथाई भाग को नहीं प्राप्त होता वह प्रजा काल के सामने कबतक और कितना सामना कर सकती है? यदि जठर के देवता यमराज को अन्न की आहुति न दें तो अन्न के अभाव में यह हम को प्रजा को न खाजाय तो भला खाये किसको? वह थोड़े ही उपवास करेगा?

यथा अन्नं तथा प्रजाः

भारत में न तो फलफूल ही होते हैं न तो अंडे मांस का ही उपयोग होता है। हिन्द तो केवल धान्य संग्रह करने वाला देश है। इतना होते हुए भी इसके निवासियों को भरपेट धान्य नहीं मिलता। भारत की एक चौथाई प्रजा को प्रतिवर्ष ११५ पौंड दूध और ८ पौंड घी प्रति मनुष्य मिलता है। सिर्फ रोजाना ६ तोला दूध और १॥ तोला घी का क्या हिसाब है? जिस प्रजा को दूध और घी ही नसीब न हो वह संसार के युद्ध में कैसे विजयी होगी? वह संसार की घुड़दौड़ में पीछे रहजाय तो आश्चर्य ही क्या? "अन्नं हि पुरुषः" जैसा अन्न वैसी प्रजा-क्या यह बात ठीक नहीं है? 'As the ration so the nation, poor the ration, poor the nation ration maketh a nation' इस सत्य की हम कब तक उपेक्षा कर सकते हैं? Full ration Swaraj is the H.C.F. of poorna swaraj यह बात अपने दिल में सदा रखनी चाहिये — और हमें यह न भूलना चाहिये कि जहां के मनुष्य दुर्बल होते हैं वहां की प्रजा भी दुर्बल होती है।

अपना आहार-आदर्श

यदि शक्ति की साधना ठीक ढंग से की होगी तो लक्ष्मी और सरस्वती आजायेगी। शक्ति के विषय में शारीरिक शक्ति कोई गौण या अन्य वस्तु नहीं है। वही एक आवश्यक बल्कि अनिवार्य वस्तु है– यह नहीं भूलना चाहिये।

हिन्द राष्ट्र के पोषण का आदर्श केवल वानस्पतिक आहार ही नहीं है। वह तो है कृष्यन्नों के साथ दुग्धान्नों का आदर्श। हिन्द में तो बहुत प्राचीन काल से दुग्धान्न अन्नों का सेवन चला आता है। इससे अच्छा, निर्दोष और सस्ता ऐसा अन्य आदर्श उसके भूअर्थशास्त्रीय वर्गों को देखते भी दिखाई नहीं देता।

दुग्धान्नों की कमी

दुग्धान्नों की कमी से और इससे पैदा होने वाली अन्य दिक्कतों से भारत दिन ब दिन दुर्दशा को प्राप्त हो रहा है। याद रक्खें कि दुग्धान्नों की यह तंगी दूध देने वाले पशुओं की नस्ल के खराब होने से है। भारत आज ऐसा गरीब होगया है कि वह अधिक दूध देने वाले पशुओं का पालन नहीं कर सकता इस दुर्दशा का स्पष्ट कारण तो यह है कि दूसरी ओर से मानव बस्ती की वृद्धि उत्पादन और बचत के परिमाण से अधिकाधिक हो रही है। यदि हिन्द की रक्षा करनी है तो कमजोर और अनावश्यक पशुओं के स्थान पर कम मगर बढ़िया पशुओं का पालन ही हो सकता है।

गौ और भैंस

हम भैंस को निभाने तो जाते हैं मगर गौ को खो देते हैं। गौ बैलों के लिए आवश्यक है ही। भैंस इतनी आवश्यक नहीं। दोनों की रक्षा करने में असमर्थ हों तो जो अधिक उपयोगी हो उस ही को बचाने का प्रयत्न करना चाहिये। इस तरह भैंस की अपेक्षा गौ की उपयोगिता अधिक सिद्ध होती है अतः उस की रक्षा करनी चाहिये।

गौ के ही घी दूध का उपयोग कर गौ का महत्व बढ़ाएंगे तो आजकल की दुर्बल गौओं की बजाय कामधेनु दृष्टि गोचर होगी। गौओं का घी दूध पालन पोषण आदि दृष्टियों से भैंस के घी दूध आदि की अपेक्षा बहुत अच्छा है ऐसा विज्ञान और अनुभव से सिद्ध हो चुका है।

पश्चिम की साधना

पश्चिम में भी आज से ५० वर्ष पूर्व ऐसी ही अवस्था थी जैसी कि आज हमारी है। अमरीका की पालन का इतिहास इसकी साक्षी दे रहा है। वहां की गौओं को तीन विभाग में बांट सकते हैं। एक विभाग है जो ४ से ८, दूसरा विभाग है जो ८ से २० और तृतीयविभाग है जो २० से ३७ पौण्ड तक दूध देने वाली गौओं का किया हुआ है।

यदि इस संबन्ध में पश्चिम के पुरुषार्थ की नकल करें तो भी देखते ही देखते हम अपना कल्याण कर सकते हैं। उन लोगों ने अपने पुरुषार्थ से अपनी ७५ सामान्य गौओं के समान जगप्रसिद्ध प्रोस्पेक्ट गौएं पैदा की थी। जिन्होंने सालाना ३७३८१ पौण्ड दूध दिया था। अपनी बहुत सी गौओं के दूध की अपेक्षा पांच गुना मक्खन देने वाली गौएं कैनेडा ने सरजाई थी। हमारे यहां भेड़ें सालाना पौण्ड दो पौण्ड ऊन दे सकती हैं– जब कि पश्चिम वालों ने ३५ पौण्ड ऊन देने वाला गाडर पैदा किया था। हमारे यहां की मुर्गियां वर्ष भर में ३० से ४५ अण्डे देता है जबकि पश्चिम में ३५४ से ३७० तक अण्डे देने वाली मुर्गी बन गयी हैं।

पुरुषार्थ का मूल्य

पशु प्राणी और वनस्पति के सुधार के सम्बन्ध में वे लोग ऐसे तो भगीरथ प्रयत्न करते हैं कि उसे देखकर तो हम सब दंग रह जांय। संतति सुधारने वाले मुर्गी खर घोड़ा और सांड की दस हजार से लेकर १ लाख रुपये तक उसका दाम प्राप्त करते हैं। वे लोग इतना अधिक मूल्य देकर अपने पशु प्राणी और वनस्पति की नस्ल सुधारते हैं। अमरीका ने सानन बकरेको एक औलाद को ऐसा सुधारा है कि उस नस्ल का श्रेष्ठ बकरी ने साल में १००० पौण्ड दूध और ११० पौण्ड मक्खन दिया था। यहां की गायों की अपेक्षा कम चारे में अपनी सामान्य गौओं से तीन चार गुनी पैदायश देने वाली वहां की बकरियां और कहां यहां की पूजक भारत वर्ष की आज की गौएं ?

पोषण भी

पश्चिम का औसतन आयु परिमाण हमारे यहां से दुगना है वे शारीरिक दृष्टि से हम से अच्छे भी हैं। प्राण शक्ति और उत्पादन आदि में हम को ठुकरा भी सकते हैं इसका पहिला और मुख्य कारण वहां की पोषण की प्रचुरता को गिना जा सकता है। उन लोगों मांस, मत्स्य, अण्डे, फल, आदि की तो कमी नहीं है। इसके सिवाय निम्न निर्दिष्ट मात्रा में उन्हें दुग्धान्न मिलता है

१९२९ में प्रत्येक अमेरिकन को ५४७ पौण्ड दूध १७ पौण्ड मक्खन ४ पौण्ड पनीर, १३ पौण्ड (कण्डेन्सु एण्ड इवेपोरेटेड) दूध और २८ पौण्ड आइसक्रीम मिला था। कहने का मतलब यह कि वहां प्रति मनुष्य को वर्ष में १०१२ पौण्ड दूध मिलता था– हमारे यहां ११५ पौण्ड ही वह भी जन संख्या के चौथाई हिस्से को।

हिन्द की साधना

जो पश्चिम में हुआ वह पूर्व में भी हो सकता है। वह भारत में क्यों नहीं ? आज भारत में भी अनेक स्थानों पर इस के लिये सुन्दर प्रयोग हो रहे हैं।

लोकसंस्थाओं की साधना

पश्चिम के सांढों से तो लखनऊ, इलाहाबाद, और पूना जैसे स्थानों पर प्रतिदिन ३० से ५० सेर दूध देने वाली गौएं तो बहुत ही देखी जाती हैं। देसी सांढों से भी यहां पर ढंग करदे ऐसे परिणाम ला सके हैं।

मधु मक्खी पालन

[लेखक—श्रीयुत रामेश बेदी आयुर्वेदालङ्कार]

मधु मक्खी पालने के उपकरण—

मधु मक्खी पालने का काम आरम्भ करने वालों को प्रारम्भ में निम्न सामान की आवश्यकता होगी।

१. मक्खी रखने की पेटी।
२ रबर के बने हाथों के दस्ताने।
३. जालीदार टोपी।
४. तेज़ छुरी।
५ मधु निस्सारक यन्त्र।
६. धूम्र यन्त्र (Smoker)।

प्रथम आइटम पर हम कुछ प्रकाश डालेंगे।

पेटी बनाने के लिए प्रयुक्त की जाने वाली कई प्रकार की लकड़ियां होती हैं। सामान्यतया इस चुनाव में सस्ती से सस्ती लकड़ी चुनी जाती है। परन्तु हमारी सम्मति में इसके लिए मज़बूत और टिकाऊ लकड़ी लेना अधिक अच्छा रहता है। हवा, धूप और बारिश के प्रभावों के प्रति पेटियों के हर समय खुले रहने के कारण मामूली लकड़ी शीघ्र ही ख़राब हो जाती है। लकड़ी का फट जाना, मुड़ जाना आदि कई प्रकार की शिकायतें आम तौर पर सुनने में आती हैं जिससे पेटी की बनावट में फ़र्क पड़ जाता है और वह उपयोग की नहीं रहती। सागोन (टीक) और शीशम की लकड़ियों की पेटियां हमारे अनुभव में अच्छी साबित हुई हैं।

पेटी में मोटे तौर पर निम्न भाग होते हैं—

१. आधार।
२. आधारीय तख़्ता।
३ मध्यवर्ती बॉक्स।
४. मधु बॉक्स।
५. ढालू छत।
६ आवरक बॉक्स।

मक्खियों वाली पेटी को नीचे ज़मीन पर न रखा जाकर ज़मीन से तीन चार फ़ुट ऊंचे स्टूल या तिपाई पर रखा जाता है। इस आधार के पैरों को पानी भरी हुई मट्टी की चौड़े मुख की प्यालियों में रख कर उस पर दो एक बून्द मट्टी के तेल की डाल देनी चाहिए जिससे चींटियां आदि मक्खी के दुश्मन पानी में से हो कर पेटी पर न चढ सकें। मट्टी के तेल की यह स्तर जल के वाष्पीभवन का अधिकता को भी कम करती है जिससे बार बार पानी डालने के झंझट से बच जाते हैं। तिपाई के ऊपर आधारीय तख़्ता रख कर उसके ऊपर मध्यवर्ती बॉक्स रखा जाता है। इस बॉक्स के अन्दर पास पास चौखटे रखे होते हैं जिनके अन्दर मक्खियां छत्ता बनाती हैं। इस छत्ते की कोठरियों के अन्दर मक्खियों के अण्डे बच्चे रहते हैं। मध्यवर्ती बॉक्स के ऊपर का बॉक्स भी रचना में ऐसा ही होता है परन्तु गहराई में कम होता है। इसे मधु बॉक्स इस लिए कहते हैं कि इसमें केवल शहद और मक्खियों के भोज्य पदार्थ रखे जाते हैं। इसमें अण्डे बच्चे नहीं रहते। मधु बॉक्स के चौखटे के छत्ते जब शहद से भर जाते हैं तो उन्हें मधुनिस्सारक में डाल कर शहद निकाल लिया जाता है और फिर चौखटे वहीं रख दिये जाते हैं। यदि मौसम अनुकूल हो, मक्खियां शहद बहुत अधिक इकट्ठा कर रही हों और मधु बॉक्स में शहद रखने का स्थान न रहे तो इसके ऊपर दूसरा मधु बॉक्स रख दिया जाता है। इस प्रकार नौ दस तक मधु बॉक्स मक्खियों की एक बस्ति (Colony) के लिए रखे जा सकते हैं। मक्खियां इनके अन्दर भी उसी तरह शहद संचित करती हैं। एक ही पेटी से साल भर में अधिक से अधिक निकाले शहद का परिमाण तीन सौ तरेसठ पौण्ड है और यह रिकौर्ड स्कौटलैण्ड का है।

मधु बॉक्स के ऊपर ढालूदार छत होती है जिस पर से वर्षा का पानी छत्ते को बिना किसी प्रकार की हानि पहुंचाए आसानी से बह जाता है। धूप, वर्षा आंधी आदि हर प्रकार के हानिकर प्रभावों से यह छत्ते की रक्षा करती है।

पेटी के सुरक्षित रहने के लिए पेटी के बाहर एक आवरक बॉक्स होता है। अधिक शीत में जब सरदी से मक्खियों के मर जाने का भय होता है तो पेटी की बाह्य दीवार और आवरक बॉक्स के बीच के खाली स्थान में भूसा भर दिया जाता है। यह छत्ते को गरम रखता है और मक्खियों को सरदी से मरने से बचाता है।

मधु मक्खी पकड़ने की विधि—

मक्खी पकड़ने का सब से अनुकूल समय दिन में तीन या चार बजे है। मक्खियों के छत्ते का प्रवेश द्वार एक छोटे से सूराख के रूप में होता है जिसमें से मक्खियां अपनी भोजन सामग्री के लिए अन्दर बाहर जा सकती हैं। इस द्वार को सब से पहिले खोला जाता है। धूम्र-यन्त्र से हलका सा धुआं करके और किसी पक्षी के पंख से मक्खियों को अलग करते हुए समानान्तर लगे हुए छत्तों को ऊपर से क्रमशः काट लिया जाता है। काटने के साथ इसी क्रम से पेटी के चौखटों में केले के रेशे से बांध कर रखते जाते हैं। पेटी में मक्खियों के अण्डों और बच्चों के रहने के कारण मक्खियां उनकी गन्ध को पहचान कर पेटी में चला जाता है। रानी मक्खी के पेटी में चले जाने पर शेष मक्खियां बिना किसी प्रयत्न के स्वयं चली जाती हैं। स्थान की सुविधा के अनुसार चौखटों में छत्ते बांध कर पेटी को मक्खियों के झुण्ड के ऊपर कुछ घण्टे तक रख देते हैं। कई बार हाथों और चम्मच से मक्खियों को भर कर पेटी में डाला जाता है। रानी मक्खी को किसी प्रकार की चोट या हानि नहीं पहुंचने का पूरा ध्यान रखना चाहिये इससे वह अण्डे देने से बेकार हो जाती है। मक्खियों को उनके घर से बाहर निकालने में धुआं भी सहायक होता है। इनके पेटी में आ जाने के बाद अंधेरा होने तक पेटी वहीं रखी रहने दी जाती है जिससे बाहर गई हुई सब मक्खियां वापिस आ सकें। फिर पेटी को अच्छी तरह बन्द करके अभीष्ट स्थान पर ले जाकर पूर्व दिशा की ओर मुंह करके रख दिया जाता है और पेटी का मुख खोल दिया जाता है। [२५ पृष्ठ २ के नीचे से]

गुरुकुल समाचार

स्वास्थ्य समाचार

नाम रोगी	श्रेणी	नाम रोग
यशपाल	३	टाइफायड
रमेशकुमार	३	"
योगेश्वर	३	"
गोविन्द	४	"
जगदीशनारायण	३	"
सूर्यदेव	३	"
नारायण	३	"
यतीन्द्र	२	"
कुलभूषण	५	"
सूर्यप्रकाश	३	"
रतनसिंह	२	"
कपिलदेव	२	नेत्र रोग
ज्ञानचन्द्र	१	"
विश्वनाथ	२	विषमज्वर
श्यामबिहारी	१	"
प्रेमपाल	३	"
अरुण	२	"
रामप्रकाश	५	"
सत्यधीर	३	"
चेतनदेव	१	मम्पस

ब्र० जगदीशनारायण तथा नारायण अधिक रोगी हैं। परन्तु पहिले से कुछ आराम है। ब्र० रमेशकुमार, गोविन्द, योगेश्वर, यतीन्द्र को ज्वर का आराम है। केवल निर्बलता है। सूर्यदेव, यशपाल का ज्वर कम हो रहा है। विश्वनाथ, श्यामबिहारी, प्रेमपाल अच्छे हो चुके हैं। ब्र० चेतनदेव को भी मम्पस का अब आराम है। आशा है कि शेष का भी शीघ्र आराम आ जावेगा। पिछले दिनों गर्मी पर्याप्त पड़ी। अधिकतम तापमान १०५ अंश फा० रहा। अब कुछ दिन से मौसम बदल रहा है। बादल छाए रहते हैं। दो वर्षा भी हो गई हैं।

मक्खी पकड़ने की दूसरी विधि इस प्रकार है—

एप्रिल और मई में मधुमक्खियां नया घर बनाने के उद्देश्य से अपने पुराने छत्ते को छोड़ कर बाहर उड़ जाती हैं। इसे हम मधु मक्खियों की उड़ान (Swarm) कहते हैं। आकाश मार्ग से शब्द के साथ उड़ते हुए इन के बड़े बड़े झुण्डों ने पाठकों का ध्यान कई बार आकर्षित किया होगा। किसी अनुकूल स्थान को देखकर यह झुण्ड आकाश से उतर कर वहां बैठ जाता है। कुछ देर तक मक्खियां वहां आस पास भिनभिनाती रहती हैं और स्थान की अनुकूलता देख कर सब इकट्ठी बैठ जाती हैं जिससे मालूम होता है कि मक्खियों का छत्ता यहां लग गया है। इस सम्बन्ध में यह छोटा सा उदाहरण पाठकों के लिए उपयोगी और मनोरञ्जक होगा—इसी प्रकार का मक्खियों का एक झुण्ड अपनी उड़ान समाप्त एक करके कमरे में रोशनदान से दाखिल हुआ। इस कमरे की खिड़कियां आदि सब प्रायः बन्द रहती थीं और अच्छा ठण्डा कुछ कुछ अन्धेरा कमरा था। लगभग एक घण्टे तक मक्खियां कमरे में भिन-भिनाती रहीं। चपरासियों के इन्हें वहां से भगाने का प्रयत्न करने पर कुछ देर बाद ये बाहर बरामदे की दीवार पर टंगे लेटर-बौक्स में घुस गईं। आधे घण्टे बाद पोस्टमैन लेटर बौक्स में से चिट्ठियां निकालने आया। कुछ आदमियों की सलाह से धुएं और आग की मदद से उसमें से मक्खियों को निकाल दिया गया। अगले दिन प्रातः वहां आ कर देखा तो दो अच्छी खासी बड़ी ढेरियों में मृत मक्खियां नीचे पड़ी थीं और लेटर बौक्स टांगने की किल्ली पर अवशिष्ट मक्खियों का झुण्ड बैठा था। लेटर बौक्स वहां से उठा लिया गया था पर मालूम होता था कि मक्खियों ने वहीं पर घर बनाने का दृढ़ संकल्प कर लिया था। औफिस के कर्मचारियों ने उन बची खुची मक्खियों को भी वहां से यह कह कर आग जला कर भगा दिया कि अरे ये तो हमें खा डालेंगी। ऐसे समय में जब मक्खियां उड़ान समाप्त करके किसी स्थान पर बैठने लगें तो इन्हें पेटी में पकड़ लिया जाता है। पेटी के अन्दर के चोखटों में पहले से ही मक्खियों के खाली या अण्डे बच्चों वाले छत्ते या मोम से बने छत्ते के आधार (Comb foundation) बांध कर तय्यार रखना चाहिए। इससे मक्खियों को पेटी के अन्दर रहने का एक आकर्षण हो जाता है और अण्डों बच्चों वाले छत्ते मिल सकें तो ये बहुत जल्दी आकर्षित हो जाती हैं। किसी मोटे वृक्ष के तने या दीवार पर मक्खियां बैठ गई हों तो नीचे नज़दीक ही पेटी पकड़ कर पंख की सहायता से मक्खियों को धीरे २ गिराया जाता है। एक लकड़ी के तख्ते पर लेकर भी इन्हें फिर पेटी में डाल दिया जाता है। कई बार हाथों में रबर के दस्ताने पहन कर हाथों से पकड़ कर इन्हें पेटी में डाला जाता है। प्रायः रानी मक्खी के अन्दर चले जाने पर शेष सब स्वयं ही अन्दर चली जाती हैं। मक्खियों का झुण्ड किसी वृक्ष की पतली टहनी पर बैठ जाय तो इसके नीचे तिनकों की बनी एक मुलायम टोकरी पकड़ कर टहनी पर पत्थर से प्रहार कर के जल्दी से एक तेज़ झटका दिया जाता है जिससे झटके में सारी मक्खियां टोकरी में गिर पड़ती हैं। टहनी बहुत पतली हो तो चाकू से कोमलता से धीरे धीरे काट कर पूरे गुच्छे को टोकरी में डाल लेते हैं। इस तिनके की टोकरी में मक्खियों का समूह अनाज की उस ढेरी जैसा मालूम होता है जिसका प्रत्येक कण जिवित और संगीतमय है। संगीतमयी इस टोकरी को पेटी में उलट दिया जाता है और मक्खियां स्वतः पेटी में लगे छत्तों में बैठ जाती हैं। मक्खियों को अन्दर डाल कर दो तीन मिनिट प्रतीक्षा करनी चाहिए। यदि ये बाहर निकल आयें तो

[शेष पृष्ठ ६ पर]

श्री ? दुलाराम के प्रबन्ध से गुरुकुल प्रेस गुरुकुल कांगड़ी में मुद्रित तथा प्रकाशित।

* ओ३म् *

"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत" Reg. No. A. 2927

गुरुकुल

सम्पादक—भारतभूषण वेदालङ्कार

एक प्रति का मूल्य -) [गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख-पत्र] वार्षिक मूल्य २॥)

वर्ष १] गुरुकुल कांगड़ी, शुक्रवार ४ ज्येष्ठ १९९५, १७ जून १९३८ [संख्या ५

नाहं मन्ये सुवेदेति नोन वेदेति वेद च ॥

[ले०— श्री ब्रह्मपुरी जी महाराज]

उपनिषद् युग में गुरु शिष्य भावना शंकास्पद होने के अनुमान तक हम उपरोक्त दम्भकथा द्वारा पहुंचते हैं और उसका पुष्टीकरण उपनिषद् गुरु के " सहनौ यशः सह नौ ब्रह्मवर्चसम् " इन शब्दों से होता है जिसका भाव यह प्रतीत होता है कि शिक्षणालय में प्रत्येक गुरु ने अपने एक अथवा अनेक शिष्यों के साथ ऐसा वात्सल्य भाव उत्पन्न करना चाहिये कि जिसके कारण गुरु तथा शिष्य में आपस में ऐसा प्रेम–सम्बन्ध बंध जाय कि दिन रात के २४ ही घण्टे सारे शिक्षणालय के छात्रों तथा गुरुओं को यही एक लक्ष्य बना रहे कि हम सब का एक साथ यश हो और हम सबको साथ ही ब्रह्म-बल की प्राप्ति हो। यदि संसार के किसी शिक्षणालय में यह भावना विद्यमान नहीं है तो वह संस्था शिक्षा की दृष्टि से अपना अस्तित्व बनाये रखने के योग्य नहीं है। इसी एक उच्च आदर्श को ले कर Boording Schools तथा Residentinl Universities में प्रायः प्रत्येक जाति तथा देश में धार्मिक शिक्षा एक अनिवार्य कार्यक्रम रक्खा गया है कि जिस के होने से प्रायः प्रत्येक छात्र को प्रारम्भ से ही और आगे चल कर पग २ पर यह भावना बनी रहने का अभ्यास सा पड़ जावे कि विश्व नियन्ता ईश्वर ही संसार का सब कुछ है और लड़का आस्तिक बना रहे। ईश्वर के अस्तित्व पर दृढ़ विश्वास रखने वाले बालकों के हृदयों में श्रद्धा पूज्यभावना और विश्वास की मात्रा यथोचित प्रमाण में बनी रहती है इसका प्रमाण देने की आवश्यकता नहीं है। इसी उपनिषद् में आये के अनुवाकों में जो शिक्षा क्रम हम देखेंगे उसमें माता पिता तथा गुरु और शिष्य के विषय में बहुत महत्व पूर्ण शिक्षा दी गयी है। इसका मतलब यह है कि ईश्वर, माता पिता तथा गुरु में आस्तिक भाव, श्रद्धा, विश्वास तथा पूज्यभावना बच्चे के हृदय में प्रारम्भिक शिक्षा समाप्त होते ही इस प्रकार ठूंस २ कर भर दी जावे कि जिस नींव पर हमने उस विद्यार्थी को माता पिता या गुरु की मार्फत ईश्वर का साक्षात्कार कराना है वह ऐसी पक्की बने कि जिसके द्वारा आत्म विद्या के पठन पाठन में सरलता हो और आचार्य गुरु अपने विद्वान् शिष्य के लिये ब्रह्म दर्शन, आत्म–दर्शन या ईश्वर दर्शन कराने में कोई झंझट या विकृत उत्पन्न न हो। साफ़ शब्दों में कहा जाय तो इसका भावार्थ यह कि जब तक युवक अपने माता पिता तथा गुरु द्वारा ईश्वर दर्शन करने की आकांक्षा नहीं रखता वह विद्यार्थी आत्म विद्या ब्रह्म— विद्या या ईश्वर विद्या के पठन पाठन का अधिकारी नहीं है।

यही बात हम को "प्रश्नोपनिषद्" नामक आर्ष ग्रन्थ में भी मिलती है। कथा यह है कि भारद्वाजगोत्रीय सुकेशा, शिवगोत्रीय सत्यकाम, सौर्यायण गोत्रीय गार्ग्य, कोशल गोत्रीय आश्वलायन, तथा विदर्भ गोत्रीय भृगु इत्यादि कुछ विद्वान् लोग " ब्रह्म विद्या" सीखने के लिये ब्रह्मनिष्ठ आचार्य पिप्पलाद के पास गये। ऐसा मालूम होता है कि उपनिषद् काल से ही यह प्रथा चली आ रही है कि जब कभी कोई भी व्यक्ति किसी आचार्य गुरु के पास कुछ पढ़ने लिये जावे तो उसे खाली हाथ जाकर सलाम कलाम करके ही बैठ जाना उचित नहीं है बल्कि कोई कुछ भी वस्तु आचार्य के भेंट स्वरूप में ले जा कर उनको वह भेंट देना और नम्र भाव से शिष्य रूप में हो कर उन से अपना मतलब निवेदन करना चाहिये। इसी प्रथा के अनुसार उपरोक्त विद्वन्मण्डली जब आचार्य गुरु पिप्पलाद के निकट पहुंची तो आते ही उनको हवन की सामग्री भेंट की और कुशलसमाचार पूछने के बाद उनसे प्रार्थना की कि आप कृपा कर हम सब को "ब्रह्म विद्या" का उपदेश कीजिये। आचार्य गुरु पिप्पलाद ने भेंट स्वीकार करते हुए यह उत्तर दिया कि आप लोग मेरे यहां सालभर

मेरे अतिथि बन कर मेरे आश्रम में निवास कीजिये यदि इतने अवसर में आप का और हमारा दिल मिल जायगा तो "ब्रह्मविद्या" कुछ दूर नहीं है।

उपरोक्त ऐतिहासिक घटना से यह अनुमान किया जा सकता है कि आचार्य गुरु पिप्पलाद ने कोई "नाइट्स्कूल" नहीं खोल रक्खा था कि जिसमें प्रतिदिन अपराह्न तथा सायंकाल में कुछ वार्तविवादी तथा तर्कवादी एकत्र हों और महर्षि पिप्पलाद का अमूल्य समय "ब्रह्म और माया" की सारगर्भित "गोष्ठी" में में समाप्त कर निशि का अपने घरों में जाकर मुलायम बिस्तर पर गहरी नींद के खर्राटे लें। इस लिये शायद विद्वानों ने यह नियम सा बना रक्खा होगा कि यदि वास्तव में किसी को हम से कुछ प्राप्त करना है तो उसे पहिले हमारा हृदय प्राप्त करना चाहिये। यदि आप हमारा हृदय प्राप्त कर सकते हैं तो हमारा मस्तिष्क भी आप ही का है। बिना हृदय के मस्तिष्क कभी नहीं मिल सकता इस लिये गुरुओं का शिष्यों के प्रति अनादि काल से यही उपदेश चला आरहा है कि यदि आप लोगों को हम लोगों के मस्तिष्क में भरी हुई विद्या की आवश्यकता है तो आप लोग पहिले हमारे दिल पर कब्जा कीजिये तो हमारी विद्या आप से दूर नहीं है।

इसी भावना की मजबूत नींव पर पौराणिक गुरु शिष्य सम्बन्ध आजतक किसी न किसी स्वरूप में अजर अमर और अटल बना हुआ चला आरहा है। यह भावना हमको अपने आर्य समूह में Microscopic minority में देखने में आती है। यह बात स्वीकार करते हुए हमें लज्जा नहीं आनी चाहिये।

गुरु शिष्य परम्परा सम्बन्ध में यदि हम उस संस्था का दिग्दर्शन करें कि जिसके सदस्य हमारे पूज्यपाद महर्षि श्री दयानन्द सरस्वती जी थे तो कुछ अनुचित न होगा। महर्षि जी सरस्वती नामा दशनामी सन्यासी थे, जिस नामावलि में प्रथम संन्यासी (सरस्वती नाम वाले) आचार्य गुरु श्री विद्यानन्द जी सरस्वती थे। जो कि श्री शृङ्गेरी मठ के प्रथम आचार्य गुरु श्री पृथ्वीधराचार्य के पट्ट शिष्य थे। स्वामी पृथ्वीधराचार्य जी जगद्गुरु आदि शंकराचार्य के पट्ट शिष्य थे।

पूज्यपाद जगद्गुरु आदि शंकराचार्य के स्थापित किये हुए "शांकर मठों" में जो प्राचीन शिक्षा प्रणाली थी उसका किसी अंश में अब तक भी विद्यमान रहना कहीं २ दृष्टिगोचर होता है। जैसे कि उपनिषद् काल में विद्वानों को १२ महीने आश्रम में रहकर सब प्रकार से घुल मिल जाने के बाद गुरुमन्त्र दिये जाने की प्रथा थी, वैसे ही जगद्गुरु आदि शंकराचार्य के समय से इस प्रथा ने यह स्वरूप धारण किया कि गृहस्थ ने अपने अल्पायु बालक को वेदारम्भ संस्कार कराकर "श्री शंकर मठ" में ब्रह्मचारी बनाकर रखना और उस लड़के ने वहीं बारह बरस तक रहना, ईश्वर उपासना करना, गुरु सेवा करना तथा विद्या पढ़ना। और यह गृहस्थ प्रायः ब्राह्मण ही हुआ करते थे। क्षत्रिय या वैश्य यद्यपि इस पठन क्रम में आसकते थे परन्तु उनके पढ़ने की पद्धति नहीं थी। केवल ब्राह्मणों के ही बालक इन शिक्षणालयों का लाभ उठाया करते थे। इसी प्रकार विद्वान् ब्राह्मण लोग भी अपने घरों में विद्यार्थियों को पढ़ाया करते थे और वह पढ़ाई भी १२ बरस की ही हुआ करती थी। उसमें पठन-क्रम यह था कि पहिले लड़के को वेद-पाठ का "संहित क्रम" सिखाये जाने के साथ ही कुछ सन्धिच्छेद तथा धातुओं और शब्दों के रूप सिखाने के बाद विद्यार्थी की रुचि देखी जाती थी। यदि वह तर्कवादी होता तो उसे व्याकरण तथा न्याय पढ़ाया जाता था और इसी में उसके बारह बरस पूरे होते थे। यदि कोई विद्यार्थी गणित में रस लेने वाला होता तो उसे ज्योतिष सिखाया जाता। इसका भी कोर्स १२ बरस का ही होता था। और यदि कोई लड़का शरीर-विज्ञान सम्बन्ध में जिज्ञासु मालूम पड़ता तो उसे आयुर्वेद के पढ़ने में ही १२ बरस पूरे करने पड़ते थे। यह शिक्षा क्रम ब्राह्मण तथा सन्यासियों में ही घिरा हुआ था। इस सृष्टि से बाहर नहीं दीखता था; इसलिये विद्वान् ब्राह्मण तथा विद्वान् साधु एक मत होकर धार्मिक नाव चलाने के साथ ही जाति का पठन पाठन क्रम भी अपने हाथ में रक्खे हुए थे। यह उस युग की बात है कि जब सारे संसार में ही राष्ट्र की शिक्षा का बोझ धर्म अपने कब्जे में किये हुए था। हम अपने अड़ौस पड़ौस के रहने वालों में देखें तो वहां भी पूर्व में भिक्षु लोगों का आचार्य गुरु होना और पश्चिम में मौलवी मुल्लाओं का मकतब चलाना दीखता है। यदि थोड़ा और दूर देखें तो वहां भी पादरियों का राजा तथा प्रजा दोनों पर धार्मिक प्रभुत्व होने के साथ ही दोनों की शिक्षा का प्रबन्ध भी "चर्च" ही करता था ऐसा दिखाई देगा। (क्रमशः)

भारत के सीमान्त में

जिस दर्रे से गौरी, गुलाम, खिलजी, लोदी, मुगल वंश जैसे प्रबल आक्रान्ता इस भारत भूमि में आये, और जिससे चंगेजखां, महमूद, अब्दाली जैसे लुटेरे इस शस्य श्यामला मातृभूमि में आये, उसी प्रसिद्ध दर्रे को देखने की देर से अभिलाषा थी। सौभाग्य से इस समय पश्चिमोत्तर सीमाप्रांत में राष्ट्रीय महासभा के आधीन कार्य क्रमों पर चलने वाली राष्ट्रीय सरकार विद्यमान थी।

उस दिन सुबह जब नींद खुली तो गाड़ी धड़धड़ाती हुई ऊंचे नीचे ऊबड़ खाबड़ प्रदेशों को पार करती हुई हिमालय की हरी भरी उपत्यका में भागी आरही थी, बड़े शहर कोलाहल से भरे जनाकीर्ण पथ दूर छोड़ती हुई हमारी गाड़ी ३१ मई के सुनहरे प्रभात में पिण्डी के स्टेशन पर आ खड़ी हुई। रावलपिण्डी विभिन्न मार्गों का संगम स्थान है। यहां से पृथ्वी के स्वर्ग काश्मीर को राजपथ जाता है। सीमान्त की दोनों राजधानियां पुरुषपुर (पेशावर) तथा नथियागली को भी यहां से ही सीधा रास्ता जाता है। पिण्डी से पेशावर को रेल भी जाती है और मोटर का रास्ता भी। रेल मोटर प्रतिस्पर्धा यहां

बहुत ज्यादह है जिसके कारण यहां मोटर का किराया बहुत ही कम है, किन्तु अनजान भोले भाले यात्री मस सर्विस एजेण्टों के मोह जाल में पड़कर बुरी तरह फंस जाते हैं, यदि स्थानीय सज्जनों की सलाह के अनुसार कार्य किया जाये तो निसन्देह यात्रा विषयक कई कठिनाइयां दूर होसकती हैं।

अटक का किला आज तक भारत की हद् के रूप में कहावत के तौर पर कहा जाता है। कभी यह हिन्दु राजाओं का सीमा स्थित दुर्ग था, पता नहीं कितनी बार अटक नदी के प्रबल प्रवाहों को पार कर अटक के सुदृढ़ दुर्ग को लक्ष्य कर आती हुई प्रबल शत्रु वाहिनियों का यहीं के दुर्ग पर हिन्दु राजाओं ने रोका था। इस समय उसी अटक सेतु के भग्नावशेष नज़र आरहे थे जिस किले से कभी स्कन्दगुप्त ने प्रबल हूण शत्रुओं को रोक कर गुप्त साम्राज्य को अक्षुण्ण किया था आज वहां यूनियन जैक फहरा रहा था और दुर्ग पर एक अंग्रेज़ प्रहरी। केवल आह भरकर ही आदमी रह जाता है। पुराने पुल से ३ मील नीचे प्रबल चट्टानों पर नया सीमेन्ट का पुल बनाया गया है यह पुल रेल और मोटर दोनों ही कार्यों में प्रयुक्त किया जाता है। पुल के दोनों ओर नङ्गी संगीनों का कड़ा पहरा है, एक समय में एक ओर से एक ही गाडी जा सकती है, यह पुल पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्त से सम्बन्ध स्थापित करने में अपना बहुत महत्व रखता है। पुल पार करते ही आप सीमा प्रान्त की हद् में प्रवेश पा जाते हैं। यह पठानों का मुल्क है, पंजाब पीछे छुट गया। अब आगे रास्ते पर नज़र रखिये, यह इठलाती २ अटक नदी बहती जा रही है, उसी के साथ कभी नीचे कभी ऊपर चक्कर में दौड़ती हुई हमारी गाड़ी भागी जारही है, ऊजड़ इलाका सारा पीछे छूट गया अब सरसब्ज़ प्रदेश दीख पड़ता है। चारों ओर हरियाली ही हरियाली है, आड़ू खुमानी के लदे पेड़ नज़र आ पड़ने लगे, यह एक परिश्रमी पठान का मुल्क है, यहां पर वह मेहनत करता है ज़मीन को सरसब्ज़ करता है वह एक आज़ाद कौम का आज़ाद नुमाइन्दा है, उसे शक्तिशाली ब्रिटिश सरकार भी झुका न सकी है, उसे इसकी सहायता आज भी अपेक्षित है, बिना इसके आज उसका फ्रन्टियर में निस्तार नहीं। देखा यह क्या, यह नौशहरा का शहर है, अच्छी बड़ी बस्ती है, छावनी है यहां से पेशावर १७ मील ही रह गया। कुछ दिन हुए यहां से ही महात्मा जी उतर कर लाल कुर्तियों के विराट् एवं अहिंसक स्वागत प्रदर्शन को देखते हुए पेशावर गये थे। यहां पर कांग्रेस सरकार का साफ़ पता पड़ता है, खुफिया पुलिस की दौड़ धूप का यहां पता न था, ड्यूटी पर का पठान सिपाही विनम्रता की साक्षात् मूर्ति लगता था वह जनता का पथ प्रदर्शक था शासक न था, केवल सेवक था, इशारों पर नाचने वाला जनता का सहायक था। एक घन्टे का रास्ता सीमान्त की इस बदली दशा पर बात चीत में किसी को कुछ भी भारी न पड़ा। छावनी में स्थित सदर आर्यसमाज में जा डेरा डाल दिया।

४, ५ साल पहिले सीमाप्रान्त चीफ़ कमिश्नर का प्रान्त था, आज तो इस प्रान्त में अन्य बड़े प्रान्तों की भांति अपनी व्यवस्थापिका सभा है, गवर्नर है। आज यहां डिक्टेटर गुरुमुख सरकार भी नहीं है। अब्दुलकय्यूम की मिनिस्टरी भी नहीं है यहां कांग्रेस राज है। सभा सोसाइटियों पर, भाषण और लेखन पर यहां किसी प्रकार की कोई रोक नहीं है। आप कांग्रेस की आलोचना भरपेट कर लेंगे तो भी आप अपने पर नज़र रखने वाला किसी को न पायेंगे।

पेशावर तिजारती शहर है, यह अफगानिस्तान और हिन्दुस्तान का माध्यम है। यहां बाहिर से मेवे आते हैं, यहां से अन्य सामान उसके बदले में वहां जाता है। लाखों का व्यापार यहां पर होता है। अफगानिस्तान के सिक्के भी यहां के बाज़ार में आपको नज़र आवेंगे। वहां का रुपया यहां ६ आने की कीमत रखता है। अन्य कपड़ा यहां से ऊंट, टट्टू आदि पर लदकर विभिन्न काफलों में खैबर को पार करता है।

शाही मेहमानघर, संग्रहालय किला, पंच तीर्थ, गोरखनाथ का तालाब, शाही बाग आदि यहां की दर्शनीय वस्तुएं हैं जो यहां पर आने वाला प्रत्येक यात्री अवश्य ही देख लेता है।

भारत का पश्चिमोत्तर सीमान्त यहां से ३८॥ मील दूर है यहां पर पहुंचने के लिये लण्डीकोतल तक सप्ताह में ३ बार रेल जाती है, और मोटर तो प्रतिदिन ही जा सकती है। यहां की रेल पठानों की अपनी बपोती है वे इसे रोककर जहां उतरना चाहें उतर जाते हैं और चढ़ आते हैं रेल की चाल यहां बहुत धीमी है। सुरङ्गों को पार कर खैबर के दर्रे से गुज़रती हुई रेल आगे चली चलती है।

मोटर का रास्ता ऊपर नीचे होते हुए टेढे मेढे रास्तों से गुज़रता हुआ कभी रेल के साथ तो कभी बिलकुल उसे छोड़ता हुआ अफगानिस्तान की ओर चला जाता है तीसरा एक और रास्ता है, जिस पर से होते हुए अनन्त काल से न जाने कितने काफले कितनी सेनाएं भारत का आर्थिक दोहन करने के लिये चली आयी हैं यह तीसरा रास्ता भी इसी मोटर के रास्ते से दूसरी ओर को होता हुआ भारत अफगानिस्तान को मिलाता हुआ चला गया है। पश्चिमोत्तर हद् तक पहुंचते पहुंचते जमरुद का किला बौद्ध मन्दिर शम्बाई के किले से दर्शनीय स्थान यहां दीख जाते हैं। यह खैबर दर्रा है, यहां से पश्चिमोत्तर को जाने वाले प्रत्येक यात्री को गुज़रना आवश्यक है और यदि यह सजीव होकर बोलने की ताकत रखता तो शायद कह सकता कि कितने आक्रान्ता, कितने विजेता उसे पददलित करते हुए गर्व से आगे बढ़े और कितने भाग्य के मारे दर दर के भिखारी इस रास्ते से लौटे। काश खैबर दर्रा मूक न होता। लण्डीकोतल तक रेल जाती है, यहां से लण्डीखाना या तुरखाम् तक जाने के लिये विशेष आज्ञा आवश्यक है,

शेष पृष्ठ ६ पर

गुरुकुल

१७ जून शुक्रवार १६३८

हिन्दी की अनिवार्यता

हमारे देश के आधे दर्जन से अधिक प्रान्तों में कांग्रेसी मन्त्रिमण्डल कायम है। इन्हें स्थापित हुए यद्यपि अभी एक वर्ष नहीं हुआ है तो भी इस अल्पकाल में ही अनेक लोकोपकारी कार्य इन मन्त्रियों द्वारा हो चुके हैं। इन मन्त्रिमण्डलों में मद्रास का मन्त्रिमण्डल प्रमुख है। श्री राजगोपालाचार्य की योग्यता, प्रतिभा व प्रखर जन-हिताय बुद्धि ही इस प्रमुखता का मुख्य कारण है। यद्यपि मद्रास हमारे ही देश का एक अङ्ग है किन्तु हमारी राष्ट्रभाषा हिन्दी का उस प्रदेश में कम ही प्रचार रहा है। पिछले पन्द्रह वर्ष से महात्मा गान्धी के निरीक्षण में दक्षिण भारत हिन्दी सभा के अनवरत उद्योग से आन्ध्र, कर्नाटक, तामिलनाड व केरल में जो हिन्दी का प्रचार हो सका है उसकी प्रशंसा सभी देश-हितैषियों ने की है किन्तु सभा का यह उद्योग कुछ उत्साही जनों का संगठित प्रयत्न मात्र था। प्रसन्नता की बात है कि अब श्री राजगोपालाचार्य के नेतृत्व में मद्रास की कांग्रेस सरकार ने अब उस प्रान्त के मिडिल स्कूलों में ६ से आठ श्रेणी तक हिन्दी हिन्दुस्तानी की शिक्षा को अनिवार्य कर दिया है। यह ठीक है कि शुरू २ में इसे अनिवार्य करना उस प्रान्त के अनेक निवासियों को बहुत अखरा है और इसके लिये उन्होंने मद्रास सरकार की इस आज्ञा के खिलाफ़ सत्याग्रह जारी किया है किन्तु लक्षणों से यही जान पड़ता है कि मद्रास प्रान्त की अधिकांश जनता ने वहां की सरकार के अनिवार्य हिन्दी शिक्षा के प्रबन्ध का स्वागत ही किया है। उत्तर भारत की मुख्य भाषा हिन्दी है इस नाते हमें यह उचित गर्व है कि हमारी मातृभाषा जल्दी ही सारे देश की भाषा बनने वाली है। मद्रास सरकार का उपर्युक्त हुक्म इसी का परिचय देता है। हम मद्रास सरकार की इस आवश्यक आज्ञा का अभिनन्दन करते हैं। हमें निश्चय है कि निकट भविष्य में ही हिन्दी हिन्दुस्तानी देश में राष्ट्रभाषा का स्थान ग्रहण करेगी ताकि हमारे देश की एक भाषा विषयक यह समस्या शीघ्र हल हो सके और हमारा देश यथार्थ में उन्नति के पथ पर अग्रसर हो सके।

स्वागत !

गुरुकुल के इतिहास के उपाध्याय पण्डित सत्यकेतु जी विद्यालङ्कार आज से डेढ़ वर्ष पूर्व यहां से अवकाश लेकर इतिहास के उच्च अध्ययन के लिये योरोप गये थे। वहां आपने फ्रांस की राजधानी पेरिस के सुविख्यात विश्वविद्यालय में प्रवेश किया। साथ ही लन्दन के ब्रिटिश म्यूज़ियम में भी कुछ दिन अनुसन्धान में तल्लीन किये। अब आप विशेष सम्मान के साथ पेरिस की डा. लिट् उपाधि लेकर अपनी मातृभूमि भारत को वापिस आये हैं। भाई सत्यकेतु जी अपने विद्यार्थी काल में ही होनहार रहे हैं। उन की योग्यता, विद्वत्ता व प्रगाढ़ अनुसन्धान शक्ति का परिचय हिन्दी जगत् को बहुत दिनों से है। योग्यता के साथ २ अपने जीवन में कुछ कर दिखाने की या दुनियां को कुछ स्थिर वस्तु दे जाने की शुभ आकांक्षा भी उन के हृदय में है। यद्यपि अभी अवकाशकाल होने कारण वे कुल में नहीं आ सके हैं किन्तु हम वह दिन देखने के लिए उत्सुक हैं जब कि वे पुनः गुरुकुल में पधार कर अपनी अध्ययन शक्ति व योग्यता के द्वारा जहां हमारे सन्मुख एक अनुपम आदर्श रख सकेंगे वहां उनके द्वारा कुल भी अपने को प्रतिष्ठित समझेगा। हम भाई सत्यकेतु जी का स्वदेश आगमन पर हृदय से स्वागत करते हैं।

वीरेन्द्र जी का विदेश प्रवास !

आर्यसमाज ने गुरुकुल की स्थापना की है अतः राष्ट्रीयता के साथ २ धार्मिक क्षेत्र में भी गुरुकुल के स्नातक सर्वदा प्रमुख रहे हैं। यही कारण है कि पंजाब के अतिरिक्त आन्ध्र, कर्नाटक, तामिलनाड पूर्वी अफ्रीका बरमा, व फिजी में हम गुरुकुल के एक दर्जन से अधिक स्नातकों को वैदिक धर्म तथा आर्य संस्कृति का सन्देश सुनाते देखते हैं। यह निःसन्देह कहा जा सकता है कि इन सुदूर प्रदेशों में आर्यसमाज ने जो प्रगति प्राप्त की है उसका अधिकांश श्रेय हमारे कुल के स्नातकों को ही है। इनमें से कई प्रदेश तो ऐसे हैं जिनमें आर्यसमाज की प्रगति का एक मात्र कारण हमारे स्नातक ही हैं। अब आर्यसमाज के मिशनरियों की इस लड़ी में एक और स्नातक ने अपने जीवन को अर्पण कर दिया है। श्री प० वीरेन्द्र जी वेदालंकार सहारनपुर जिले के रहने वाले हैं। आर्थिक दृष्टि से उनका कुटुम्ब पर्याप्त सम्पन्न है। इसलिये उनके कुटुम्बियों की यह प्रबल इच्छा थी कि भाई वीरेन्द्र आर्य समाज के प्रचार में अपना जीवन अर्पण करें। सौभाग्य से वीरेन्द्र जी के दिल में भी यह भावना बचपन से विद्यमान थी। यह प्रसन्नता की बात है कि भाई वीरेन्द्र जी सार्वदेशिक सभा के तत्त्वावधान में मलाया प्रदेश के केन्द्र सिंगापुर में रहकर वैदिक धर्म का प्रचार करने जारहे हैं। मलाया के साथ जावा, सुमात्रा बाली, स्याम व फिलिपाइन में भी उनका कार्यक्षेत्र रहेगा ताकि प्राचीन आर्य संस्कृति के इन अवशेषों में पुनः आर्य मर्यादा का प्रादुर्भाव हो सके। वीरेन्द्र जी की धर्मपत्नी श्रीमती कमला ने देहरादून के कन्या गुरुकुल में शिक्षा पायी है। वे नारसन के प्रसिद्ध आर्य चौ० लालसिंह जी की योग्य कन्या हैं। भाई वीरेन्द्र जी के एक पत्र से ज्ञात होता है कि वे सपरिवार सिंगापुर पहुंच गये हैं और अपने कार्यों में दिलो जान से लग गये हैं। हम भाई वीरेन्द्र जी के विदेश प्रवास की मंगल कामना करते हुए हृदय से इस क्षेत्र में उनकी सफलता चाहते हैं।

सरस्वती यात्रा

[ले०—वीरेश जी विद्यालङ्कार]

जिस प्रकार एक संग्रहालय व जन्तु-शाला का अवलोकन करने से मनुष्य अपना मनोरञ्जन करने के साथ २ वहां उपस्थित वस्तुओं के द्वारा नवीन ज्ञान और उनका परिचय प्राप्त करता है उसी प्रकार किसी निर्दिष्ट देश व स्थान का यात्री भी इसी उमङ्ग से यात्रा पथ पर आरूढ़ होता है कि वह वहां जाकर दर्शनीय दृश्यों और वस्तुओं को देख कर उनका परिचय पाने के साथ साथ ज्ञानोपलब्धि भी करेगा। भारत में अति प्राचीन काल से यात्रा का उपक्रम जारी है। यहां के प्राचीन निवासी विविध दृष्टिकोणों से प्रभावित हो यात्रा किया करते थे। हमारे देश के साहित्य व इतिहास में कहीं तो धार्मिक प्रवृत्ति वाले लोग धर्म-यात्रा (जिसे तीर्थ करना कहते हैं) करते देखे जाते हैं तो कहीं विजयेच्छु वीर शत्रु-दलन की इच्छा से युद्ध यात्रा करते दीखते हैं। दोनों प्रकार की यात्राओं से हमारे प्राचीन और नवीन इतिहास अङ्कित हैं। प्राचीन आर्यों ने, फिर बौद्धों ने और मध्य कालीन हिन्दु राजाओं ने, तथा इदानींतन हिन्दू-मुसलमान तथा इसाइयों ने अपने मनोरथ रूपी रथ पर सवार होकर विविध यात्राओं द्वारा अपने अभीष्ट की सिद्धि की। कुछ लोग तीर्थों में जाकर धर्म-यात्रा का प्रयोजन सिद्ध करते थे तो दूसरे गिरि-दुर्ग व दुर्गम घाटियों को पार कर युद्ध यात्रा का उपक्रम करते थे।

आजकल लोग स्वास्थ्य सुधार के उद्देश्य से स्थान-परिवर्तन तथा ऋतु परिवर्तन द्वारा यात्रा करते देखे जाते हैं। कोई तो शहर या कस्बों की तंग गलियों या दम घोटक आबो हवा से तंग आकर शहर से बाहर समीप ही किसी खुली जगह में आ बसते हैं तो कोई गांवों की गन्दगी, बेरौनकी तथा (उनके शब्दों में) गंवारूपन से ऊब कर शहरों की तरफ प्रस्थान करते दीखते हैं। इनके अतिरिक्त आजकल धनियों तथा उच्च मध्यम-वर्ग के लोगों का गर्मी की मौसम में पहाड़ी प्रदेशों की तरफ प्रस्थित होना भी जल वायु के परिवर्तनार्थ की गई यात्रा कही जा सकती है। गर्मी तथा शीत की अधिकता से बचने के लिए लोगों का सर्द तथा गर्म स्थानों की ओर बढ़ना नितान्त स्वाभाविक है। इसके अतिरिक्त प्रकृति-निरीक्षण के लिए, विश्व के मोहक सौन्दर्य का पान करने के लिए तथा शरद्-पावस तथा वसन्तादि ऋतुओं की नव २ झलक देखने के लिये भी मानवीय मन उत्कण्ठित हो उठता है। भारत में मधुमास के आगमन पर वसन्त यात्रा तथा युद्ध-यात्रा शरदागमन काल में विजयादशमी की सोत्सव-यात्रा कितने सुन्दर-उदार और विजयी भावों को यात्रोत्सव में सम्मिलित जनों के हृदय में उपजाती है यह भारतीय आबाल वृद्ध सभी जानते हैं। रथ-यात्रा की प्राचीन पद्धति जो कि पूर्वोत्तरीय तथा दक्षिणीय भारत में तथा बर्मा, मलय स्याम तथा सुदूर पूर्व के जावा बाली, सुमात्रा आदि द्वीपों में आज भी प्रचलित है एक धार्मिक यात्रा के रूप में नगरों की वीथियों में तथा मन्दिरों के गोपुरों में उत्साह पूर्वक प्रयुक्त होती देखी जाती है। हमारे समाज में बरात नाम से वर-यात्रा की पद्धति प्राचीन काल से प्रचलित है। आज यातायात की सुगमता से इसका प्रचार बढ़ गया है। परन्तु साथ ही मध्यम वर्ग के लोगों तथा निर्धनों के लिए यह यात्रा घोर आर्थिक-कष्ट का कारण सिद्ध हो रही है इसलिए यह संपन्न लोगों के लिए ही भली होगी गरीबों को तो अपनी स्थिति के अनुकूल कोई यात्रा ईजाद कर लेनी चाहिये। आधुनिक काल में महात्मा गांधी जी की "डांडी यात्रा" को भारत का बच्चा २ जानता है। इस यात्रा में अनुशासन, प्रेम, सम्मेलन, संगठन तथा सत्य-पथ पर आरूढ़ होकर अहिंसा के प्रयोग द्वारा सत्य के लिए आग्रह पूर्वक किस प्रकार बढ़ा जा सकता है इसका विशाल प्रयोग किया गया था। यात्रा में सम्मिलित यात्रियों ने जहां प्राचीनधर्म व तीर्थ यात्रियों की धर्म-भावना को हमारे सन्मुख उपस्थित किया उनके साथ ही दीन-दुःखियों को उनके स्वाभाविक न्यूनतम अधिकार को प्रदान कराने में योग देकर उनके साथ जिस भाईचारे तथा तदात्मता का परिचय दिया था इतिहास इसका साक्षी है। इस यात्रा की खूबी यह थी कि इसमें सभी उदात्त प्रेरणाओं का समावेश था सभी पीड़ाएं जो गरीबों की बेबसी से उपजी थी उनको दूर करने की सद्भावना थी, तथा हमारी आजदिन की नैतिक-आर्थिक सामाजिक तथा धार्मिक ग्रंथियों को खोलने तथा रूढ़ियों को मिटा देने की प्रबल उमङ्ग थी। निस्सन्देह यह आधुनिक युग की गङ्गा—जमुना के संग सरस्वती—यात्रा थी।

आज महात्मा जी देश में उद्योग द्वारा प्रारम्भिक शिक्षा देने की योजना उपस्थित कर रहे हैं—यदि देश ने इस योजना को कबूल कर जल्दी ही व्यावहारिक रूप देने का निश्चय कर लिया तो भावी सरस्वती-यात्रा भी हमारी आंखों के सन्मुख प्रारम्भ होगी। कितना शुभ होगा कि शिक्षा जैसी कीमती वस्तु सर्व जन-सुलभ होगी और दरिद्र भारत के लाखों परिवारों का दर्दनाक आर्थिक संकट इस यात्रा से दूर होना प्रारम्भ होगा।

बड़े २ अन्तर्राष्ट्रीय मिशन विश्व शान्ति, मित्रता सहयोग, ऐक्य तथा अधिकार विनिमय की सदिच्छाओं से प्रेरित होकर यात्रा करते हैं। परिस्थिति की अनुकूलता व प्रतिकूलता से कहीं उन्हें सफलता कहीं असफलता भी प्राप्त होती है। विफलता होने पर मिशन व यात्रा के प्रयोजन को दोष न देकर परिस्थिति की अधिक अनुकूलता साधनी चाहिये।

गुरुकुल की सरस्वती-यात्रा शायद जिस दिन गुरुकुल कांगड़ी के जंगलों में प्रथम २० ब्रह्मचारी आकर बसे थे उस दिन से प्रारम्भ होती है। सरस्वती-यात्रा का स्वरूप पहिले तो ग्रीष्मावकाश जल वायु परिवर्तनार्थ पहाड़ों पर पैदल यात्रा करना होता था जिससे स्वास्थ्य उन्नत हो-शरीरांग सुदृढ़ हों और प्रकृति के भव्य रूप के दर्शन कर प्रकृति निरीक्षण की शक्ति विकसित हो। पश्चात् इस

यात्रा का मार्ग नगरों तथा उन ऐतिहासिक स्थानों की ओर हुआ जहां प्राचीन तथा अर्वाचीन भारतीय स्थापत्य कला इञ्जीनियरिङ्ग तथा वास्तु संग्रहालयों के नमूने विद्यमान थे। विविध शिक्षा केन्द्रों से सम्बन्ध स्थापित हुआ यात्राओं द्वारा ब्रह्मचारियों को चाक्षुष-मानस तथा बौद्धिक और आत्मिक जागृति प्राप्त होती रही। आज तो हमें प्रवाहित करने वाली सरस्वती में स्नान करने के उद्देश्य से जल-स्थान, आकाश-पाताल, घर-बाहर और मन आत्मा के केन्द्रों की यात्रा कर ज्ञानोपार्जन, नियमित जीवन, कर्तव्य पालन तथा लोक सेवा के मन्त्र को सीख लेना चाहिये जिसके बिना मानव संसार-पथ में एक क़दम भी आगे नहीं बढ़ सकता।

[पृष्ठ ३ का शेष]

वह आज्ञा हमें आसानी से पोलिटिकल ऐजेन्ट के द्वारा मिल गई जिससे कि हम ठेठ सरहद तक पहुंचने में समर्थ हो सके।

सरहद में स्थान स्थान पर क़िलेबन्दी है। जगह २ फौज के अड्डे हैं, ऐसी मज़बूत क़िलेबन्दी उत्तर भारत में अन्यत्र कहीं भी देखने को न मिलेगी यहां पर प्रत्येक पहाड़ की चोटी पर मज़बूत किले बनाये गये हैं जहां पर रात दिन अंगरेज़ी फौज़ डेरा डाले रखती है। लण्डीकोतल में ज़बरदस्त फौजी छावनी है यहां से भारत की सीमान्त पर जाने वाले इने गिने ही होते हैं, सब को वहां तक पहुंचने की इजाज़त नहीं मिलती है। तुरखाम या लण्डीखाना सीमा की अन्तिम छोर पर स्थित है। यहां तक भारतीय सरकार एक भारतीय की जान माल की जिम्मेदार है। यहां पर एक बोर्ड Front of India का लगा हुआ है इससे आगे बढ़ने पर भरी हुई बन्दूक वाले यदि अफरीदी सन्तरी आपका निशाना बना डालते हैं तो उस की सरकार पर जिम्मेवारी नहीं है। व्यक्ति की अपनी जिम्मेवारी है आगे बढ़ने पर। ऊपर पहाड़ी पर चढ़ने पर सफेद २ पत्थरों की दूर तक जाती हुई भारतीय सीमा जिससे डच्यूरेण्ड लाइन कहा जाता है—चली जाती है—यह आज भी विवाद का विषय बनी हुई है। निश्चित सीमा अब तक भी निर्धारित नहीं हुई है।

लौटते वक्त लण्डीकोतल में श्रद्धालु सिक्ख गुरुद्वारे में ले गये और परसाद बांटा।

सीमा प्रान्त की गर्मियों की राजधानी नथियागली थी जिसका कि कांग्रेस सरकार ने बहिष्कार कर दिया था। आज वहां गवर्नर रहता है, सीमान्त प्रान्त की यात्रा का एक महत्वपूर्ण अंग है इसे देखे बिना यह कथा अधूरी ही रहती है। नथियागली जाने के लिये पंजासाहिब जाना आवश्यक है। वहां से तक्षशिला से हवेलियां होती हुई एबटाबाद नथियागली को मोटर चली जाती है।

पंजासाहिब सिक्खों का तीर्थ है। यहां के लिये प्रसिद्ध है कि कभी गुरु नानक के चेले मर्दाना को ३ बार पहाड़ी पर के पीर के पास पानी पाने के लिये भेजने पर लगातार उस के इन्कार कर देने पर गुरु नानक ने पंजा मारा और एक अजस्र स्रोत प्रवाहित हो उठा। आज प्रत्येक सिक्ख यहां आना अपना परम धार्मिक कर्त्तव्य समझता है और पवित्र पंजे के स्पर्श से अपने को पवित्र करना चाहता है। यहां पर एक विशाल लंगर है जिस में प्रत्येक हिन्दु सिक्ख परसाद पा सकता है। प्रतिदिन सहस्रों व्यक्ति यहां पर उदर पूर्ति करते हैं। महात्मा जी के पूछने पर कि यहां का खर्चा कैसे चलता है तो यहां के प्रबन्धकों ने कहा था करतार देता है उनकी कृपा से ईश के भक्तों को कभी कोई रुकावट नहीं। जहां लंगर का धार्मिक महत्व है वहां यह मानने में कोई असत्य नहीं कि यह बेकारी को निठल्लेपन को प्राश्रय देता है।

तक्षशिला प्रत्येक इतिहास के प्रेमी की कहानी है। जिस विशाल विश्वविद्यालय में देश देशान्तर के तीस हजार विद्यार्थी विश्व साहित्य, इतिहास, आयुर्वेद के अध्ययन के लिये आते थे। आज वहां मीलों में खण्डहर पड़े सो रहे हैं। आज भी वहां पर पुरातन भारतीय संस्कृति का संदेश लिया जा सकता है। यहां पर एक संग्रहालय भी है जहां पर तक्षिला के विशाल खण्डरों से निकले अवशेष अपना सन्देश दे रहे हैं। बुद्ध की विशाल प्रस्तर मूर्तियां, विभिन्न स्तूप, आभूषण आदि कभी न भूलने वाली चीज़े हैं। जौलयान सिरकप के मठ और विशाल नगरों की भांति आज भी देखी जा सकती है। कुनाल और धर्मराजिका स्तूपों को देख आज भी दान्तों तले अंगुली दबानी पड़ती है। तक्षिला के विस्तृत अवशेषों को देखने के लिये ३० मील का पैदल सफर एक इतिहास प्रेमी को ज्यादह दिक्कत नहीं देगा। प्रत्येक इतिहास के विद्यार्थी को यह स्थान अवश्य ही देखना चाहिये। यहां से नथियागली का पैदल रास्ता तीन दिन का है करीब ६८ मील। एबटाबाद बीच में एक अच्छी बस्ती आती है। यह ६४०० फीट ऊंचाई पर स्थित है। यहां का मौसम बहुत अच्छा है यहां का आर्यसमाज शानदार है। यहां की आबादी २५००० है जिस में से १५००० के करीब हिन्दू और सिक्ख हैं यहां से नथियागली एक दिन में पहुँचा जा सकता है। यह समुद्रतल से ८००० फीट पर है यहां का जलवायु बहुत ही अच्छा है। सीमाप्रान्त में कांग्रेस राज होने पर भी गवर्नर की विशेषाज्ञा से यहां आने वाले प्रत्येक यात्री पर कड़ी देख रेख रक्खी जाती है। यहां पर चोटी पर बने गवर्नमेन्ट हाउस और सेक्रेटरियेट दर्शनीय स्थान है। बाजार छोटा है। बस्ती नयी है। दूध घी सस्ता है। मरी से यह २२ मील है पैदल चल कर १ दिन में पहुंचा जा सकता है। फिर पंजाब प्रारम्भ हो जाता है।

गुरुकुल समाचार

ऋतु सुहावनी है। वर्षा प्रारम्भ हो गई है। महाविद्यालय विभाग के लगभग १५ ब्रह्मचारी ही इस समय गुरुकुल में ठहरे हुए हैं। शेष सब यात्राओं पर या अपने २ घरों को चले गये हैं। यात्रा पर गये हुए दलों के सकुशल पहुंचने के समाचार आ रहे हैं।

विद्यालय विभाग की छुट्टियां प्रारम्भ हुए सप्ताह हो चुका है। बुधवार २ आषढ़ को पहली पांच श्रेणियां राजपुर चली गई हैं। यह स्थान स्वास्थ्य की दृष्टि से बहुत उत्तम है। आशा है वहां रहते हुए विद्यार्थीगण अपने स्वास्थ्य में विशेष उन्नति करेंगे। इस समय विद्यालय आश्रम बिल्कुल बन्द पड़ा हुआ है। कुछ ब्रह्मचारी जो कि पिछले दिनों ज्वर टाइफाइड् वगैरह से रुग्ण थे अभी राजपुर नहीं गए हैं। विद्यालय तथा महाविद्यालय के छात्रों के यात्रादि पर बाहर चले जाने से गुरुकुल भूमि नीरव एकान्त सी मालूम होती है।

स्वास्थ्य समाचार

गत दो सप्ताहों में जो ब्रह्मचारी टाइफायड से रोगी हुए थे। उनमें से ब्र० सूर्यप्रकाश ३श्रेणी को निमानिया हो जाने से अधिक तकलीफ है शेष को धीरे धीरे आराम आ रहा है। ब्र० सुमतकुमार २ य श्रेणी का मलेरिया की शिकायत हुई थी। अब आराम है।

गुरुकुल सूपा समाचार

ग्रीष्मावकाश समाप्त हो गया है। विद्यालय नियम पूर्वक शुरु हो गया है। वर्षा ऋतु का प्रारम्भ हो चुका है। अवकाश से प्रायः सभी ब्रह्मचारी लौट आए हैं। जो महानुभाव अपने बालकों को गुरुकुल में प्रविष्ट कराना चाहते हों उनको २० जून तक गुरुकुल में अपने बालक को लेकर आ जाना चाहिए।

गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी के कुछ ब्रह्मचारी अपने अवकाश के दिनों में यहां आए हुए हैं। उनके ज्ञान तथा अनुभव का लाभ लिया जा रहा है।

गुरुकुल कांगड़ी के स्नातक श्री प्रो० सत्यकेतु जी विद्यालङ्कार जो फ्रांस से पी० एच० डी० की उपाधि लेकर लौटे हैं उनका स्वागत गुर्जर प्रांतीय स्नातक मण्डल की ओर से किया गया था।

पिछले मास गुरुकुल में अवकाश था—उन दिनों गुरुकुल की ओर से श्री पं० प्रियव्रत जी और श्री पं० शंकरदेव जी बाहर प्रचारार्थ जाते रहे हैं—जिससे गुरुकुल तथा समाज का काफी प्रचार हुआ है।

आवश्यकता

हिन्दी प्रचार के लिए कुछ स्नातकों की आवश्यकता है। प्रचारक को तीन मास के लिए वर्धा में प्रान्तीय भाषा सीखने के लिए रहना होगा। बाद में हिन्दी प्रचार समिति के मातहत काम करना होगा। प्रार्थना पत्र—२४ जून तक आ जाने चाहियें।

मुख्याधिष्ठाता
गुरुकुल कांगड़ी

नैराश्य गीत

[ले०—श्री आनन्द, गुरुकुल कांगड़ी]

अकारण यह निराशा की निशा क्यों छा रही है;
बढ़ी इस ओर ही क्यों वह अँधेरी आ रही है;
उमड़ती सी, घुमड़ती सी घनी वह अभ्रमाला,
बनी सी द्रव हृदय का क्यों बरसने जा रही है?

न सीखी थी कभी सचमुच रुदन की रीति मैंने;
कुचल दी थी कलुष की वृत्तियां विपरीत मैंने;
न जाने हो रहा क्यों यों विकल फिर चित्त मेरा,
न गाये थे कभी क्या वे विजय के गीत मैंने?

अरे है कौन वह जिसको नहीं मैंने जिलाया;
दिलासा टूटते दिल को नहीं जिसके दिलाया;
चराचर में बतादो एक भी प्राणी मुझे तुम,
न जिसको काव्य का मैंने कभी मधुरस पिलाया?

किया है पीड़ितों में हर्ष का सञ्चार मैंने;
किया है दीन में उत्कर्ष का संचार मैंने;
लिए उत्साह, आशा और दृढ़ विश्वास भारी,
किया है पापियों से भी निरन्तर प्यार मैंने।

हंसाया विश्व को; पर आज मैं हो रो रहा हूँ;
जगा कर लोक भर को हाय, मैं ही सो रहा हूँ;
बता दो नाथ, है वह कौनसा अपराध मेरा;
लिए आलोक भी जो आज अन्धा हो रहा हूँ।

त्रिदिव का मैं मधुर संवाद बनने जा रहा था;
विषम अवसाद का अवसाद बनने जा रहा था;
अहो, आया समझ में,—विश्व के जो ध्रुव नियम हैं,
उन्हीं का एक मैं अपवाद बनने जा रहा था।

भला, अपवाद बन कर कौन जग में रह सका है;
प्रवाहों में न जग के कौन परवश बह सका है;
अरे, सुख दुख के संघात इस अद्भुत जगत् में,
विवशता की कथा तक कौन किससे कह सका है?

चौधरी दुलाराम के प्रबन्ध से गुरुकुल यन्त्रालय गुरुकुल कांगड़ी में मुद्रित तथा प्रकाशित।

* ओ३म् *

"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत"   Reg. No A. 2927

गुरुकुल

सम्पादक—भारतभूषण वेदालङ्कार

एक प्रति का मूल्य -)   [गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख-पत्र]   वार्षिक मूल्य २॥)

वर्ष ३]   गुरुकुल काङ्गड़ी, शुक्रवार ११ ज्येष्ठ १९९५ ; २४ जून १९३८   [संख्या ६

शिव संकल्प के मन्त्र

[ले०—श्री प्रो० लालचन्द जी एम. ए.]

इस तरह से कुल ६ वेद मन्त्र हैं जिन के पीछे यह शब्द आते हैं। ऐसा जो मेरा मन है वह शुभ संकल्पों वाला है। पहले मन्त्र में इस मन के बारे में कहा गया है कि वह दूर जाने वाला और अद्वितीय ज्योति है इसमें तेज़ी है और प्रकाश है। दूसरे मन्त्र में कहा है कि इस मन के द्वारा कर्मशील बुद्धिमान् यज्ञ में और धैर्य वाले शूरवीर युद्धों तथा राजसभाओं में अनेक विध कर्मों को करते हैं। यह सब प्राणियों के अन्दर अद्भुत पूज्य वस्तु है। तीसरे मन्त्र में बताया है कि यह मन ज्ञान का उत्तम साधन और चिन्तन-शक्ति वाला है। इसमें अगाध धैर्य है यह प्राणियों के भीतर एक अमर ज्योति है। इसके बिना कोई भी काम नहीं किया जाता। चौथे मन्त्र में बताया कि इस अमर ज्योति ने यह सब भूत भविष्यत और वर्तमान जगत सब ओर से पकड़ा हुआ है। यह सात होताओं वाले शरीरयज्ञ को पूरा करता है। पांचवें मन्त्र में लिखा है इस मन में सब ऋचायें सब साम सब यजु मंत्र रथ की नाभि में अरों की नाईं ठहरे हुए हैं। इनमें प्राणियों का सब ज्ञान पिरोया हुआ है। अन्तिम मंत्र में यह बताया है कि जैसे चतुर सारथी बागडोर से वेग वाले घोड़ों को ले जाता है वैसे ही यह मन मनुष्यों को इधर उधर ले जाता है। यह हृदय में स्थित है। यह कभी बूढ़ा नहीं होता और अत्यन्त वेगवान है।

> यद् जाग्रतो दुरमुदैति दैवं,
> तदु सुप्तस्य तथैव एति,
> दूरंगमं ज्योतिषां ज्योति एकं,
> तन्मे मनः शिव संकल्पमस्तु ।

ये मन्त्र वस्तुतः अद्भुत मंत्र हैं। दो प्रश्न उठते हैं—मन की इतनी महिमा क्यों गाई गई और शिव संकल्प क्या हों। पहला प्रश्न है—मन की महिमा इतनी क्यों गाई, गई—बात यह है कि ऋषियों ने साधना से मन की असलियत को जान लिया था और जान कर अनुभव के आधार पर यह स्तुति की है। जिसके मन का विकास हो गया है, जो मन की अमूल्य शक्तियों को जागृत कर चुका है जो अपने अन्दर के ख़ज़ाने को ले चुका है वह यदि मन की तारीफ़ न करे तो और कौन करे। साधारणतया हम देखते हैं कि लोग मन को कोसते हैं बुरा भला कहते हैं, गालियां निकालते हैं क्योंकि उन्होंने साधना नहीं की होती, और साधना से जो अपनी शक्ति की असलियत खुलती है उसका अभी उन्हें पता नहीं होता। मन में शिव-संकल्प तो तभी उठेंगे यदि मन के बारे में हमारी राय अच्छी होगी। यदि हम सदा यही ख़याल करते रहें कि हमारा मन गन्दा है तो हमारे अन्दर शिव संकल्प कैसे उठ सकते हैं। मनुष्य जैसा विचार करता है वैसा बन जाता है। जो अपने आपको दीन हीन समझते हैं वे बहादुर कैसे बन सकते हैं जो अपने आपको सदा पापी और पतित ख़याल करते हैं उनके अन्दर उच्च भावनायें कैसे पैदा हो सकती हैं। वैदिक धर्म आशा का, शक्ति का, उत्साह का, साहस का, बहादुरी का, प्रकाश का धर्म है। वेद के मन्त्रों में आत्मा को उद्बुद्ध करने का आत्मा में शक्ति और स्फूर्ति के संचार करने का अनन्त सामर्थ्य है।

अर्थ—जो दिव्य शक्ति वाला मन जागते हुए पुरुष का दूर २ उड़ता फिरता है और जो सोए हुए पुरुष का वैसे ही दूर २ चला आता है जो दूर पहुंचने वाला और ज्योतियों में अद्वितीय ज्योति है वह मेरा मन शुभ संकल्प वाला हो।

शिव संकल्प वाले मंत्रों में जो मन की महिमा गाई गई है उसका यदि सच्चे दिल से मनन किया जाय तो मनुष्य के अन्दर से खराब खयाल ऐसे भाग जायें जैसे शेर के आने पर गीदड़। शेर का बच्चा गीदड़ों में जा मिला अपने आपको गीदड़ ही समझने लग पड़ा। पर वह गीदड़ नहीं था वह तो शेर था। जब एक शेर उधर आ निकला और उसने उस बच्चे को पकड़ लिया तब उसे पता लगा कि मैं तो शेर हूँ गीदड़ नहीं हूँ। इसी तरह हम भी जब अपने बुजुर्गों के वाक्यों को पढ़ते हैं तो हमें पता चलता है कि हम दीन हीन नहीं हैं हमारा मन तो ज्ञान का सार और पुरुषार्थ का आधार है। हमें अपने पुरुषार्थ से अपने आपको पाना है सब ज्ञान को पाना है। यह बहुत दूर दूर तक जाता है बहुत दूर २ ऊपर को उड़ता है। जाने दो क्या हर्ज है, ज्योति भी तो है, वहां जाकर अपने ज्ञान का प्रकाश फैंक कर मालूम कर लेगा कि क्या सत्य है। सब से पहले मंत्र में इशारा कर दिया कि इस मन को रोकने क्यों हो। इस अद्भुत संसार में यह सब कुछ देखने के लिए आया है जाने दो, देखने दो, अपनी उत्सुकता पूरी करने दो, अपने ज्ञान की प्यास बुझाने दो, यह मन क्या है बिजली की गति वाली एक आंख है, यह पल भर में दूर से दूर जा पहुंचने वाली ज्योति है। जो मन अपने इस स्वरूप को जानता है उसको खराब खयालों के लिए फुर्सत ही कहां है उसके सामने तो अज्ञान संसार का असीम समुद्र लहर मार रहा है उसने तो बहुत दूर तक पहुंचना है। समुद्र की तह में क्या है, पृथिवी के अन्दर क्या है, आसमान के ऊपर क्या है, उस सबके पास मन ने अपनी ज्योति की टार्च को लेकर सब जगह पहुंचना है और सत्य को प्राप्त करना है। इन मंत्रों में दो बातें बहुत स्पष्ट दिखाई देती हैं कि मन में ब्राह्म तेज और क्षात्र तेज दोनों हैं, तेज और तेज़ी, ज्ञान और कर्म, ज्योति और पराक्रम। जो चाहे कि उसके मन में सदा शिव संकल्प ही उठा करें उसे चाहिये कि ब्रह्म तेज या क्षात्र तेज या दोनों अपने अन्दर विकसित करे। आदर्श ब्राह्मण का शिव संकल्प रखे, पूर्व पश्चिम का सब ज्ञान मैंने पाना है, सब वेद मेरे अन्दर हैं उनको मैंने वहां पढ़ना है अनुभव करना है. भूत, भविष्यत, वर्तमान सबका ज्ञान मेरे अन्दर है सब कुछ मैंने जानना है, ज्ञानी बन कर अन्दर की दुनिया और बाहर की दुनिया सबको समझ कर सब ज्ञान का संसार में प्रचार और विस्तार करना है और लोगों को सन्मार्ग दिखाना है।

या

यह कि मैंने आदर्श क्षत्रिय बनना है, अपने शरीर अपने मन की शक्ति को विकसित करके अपनी समाज को, जाति को व्यवस्थित करना है, संगठित करना है। देश के दुश्मनों को परास्त करना है, अत्याचारियों का केवल अपने देश में ही नहीं सब संसार में खातमा करना है, संसार में से अन्याय को हटा कर न्याय का राज्य स्थापित करना है, बड़ा पराक्रमी बन कर बहुत रोब से इज़्ज़त से जीवन गुज़ारना है और अपना, अपने कुल का, अपनी समाज का, अपनी जाति का संसार में नाम रोशन करना है और सिर ऊंचा करना है।

अगर किसी के अन्दर ऐसे आदर्श ब्राह्मण या आदर्श क्षत्रिय का बनने का शिवसंकल्प हो उसके मन में बुरे खयाल कैसे आ सकते हैं। उसने तो बहुत से अच्छे काम करने हैं बहुत सी अपनी और समाज की उन्नति करनी है। उसके मन में यदि शिव संकल्प न उठेंगे तो और किस के मन में उठेंगे। धन्य हैं वे जिन्हें कोई अच्छी धुन सवार है।

जीवन में जब तक कोई उद्देश्य नहीं है, कोई महत्वाकांक्षा नहीं है, तब तक संकल्प शिव कैसे हो सकते हैं। शिव संकल्प वाले मन्त्रों में खूबी यह है कि इनका मनन करते हुए मनुष्य बार बार उसकी अद्भुत शक्तियों का चिन्तन करता है और चिन्तन करते करते यह खयाल आता है अरे यार मेरे पास तो मन क्या है एक कल्पवृक्ष, एक कामधेनु, एक बड़ा भारी खज़ाना, जिससे जन्म जन्मान्तरों की गरीबी दूर हो सकती है। गरीबी ही नहीं, जहालत, अज्ञान, बेबसी, दीनता, उदासी सब एकदम दूर हो सकते हैं। मैं क्या नहीं कर सकता जो मनुष्य पहले कर आये हैं वह मैं भी कर सकता हूं। नहीं उनसे भी आगे बढ़ सकता हूं सिर्फ हिम्मत करने की बात है। साधन सब मौजूद हैं प्रयत्न की देरी है। मेरे मन में अथाह ज्ञान है मैं इसे विकसित करूंगा। मेरे मन में असीम शक्ति है मैं इसे अनुभव करूंगा और अनुभव करके दुनिया में बड़े बड़े शासन के और संगठन के काम करूंगा दुनिया में प्रकाश फैलाऊंगा और अज्ञान मिटाऊंगा, दुनिया से कलह मिटाकर दुनिया में शान्ति का राज्य स्थापित करूंगा। बहुत भूला रहा घर में खज़ाना दबा था पता न था और दर दर का भिखारी बना था। उठ पराक्रमी ज्योति जाग अपने आपको पहचान और अपनी दीप्ति से सब विश्व को देदीप्यमान कर दे।

नाहं मन्ये सुवेदेति नो न वेदेति वेद च॥

[ले०— श्री मजूरी जी महाराज]

जिस जमाने में दुनिया भर में धर्माचार्यों के हाथ में प्रजा के "शिक्षण" का बोझा था, उस समय यह चर्च टेम्पल, मकतब, और मठ आदि ऐसी शक्ति सम्पन्न संस्थाएं हुआ करती थीं कि जिसे अधिकार चाहे उसी को शिक्षणालय में प्रविष्ट किया जा सकता था। यही नहीं बल्कि नौका संचालकों को यह भी अधिकार हुआ करता था कि यदि कोई राजा इनके मन्तव्य के अनुकूल न होता तो ये लोग उसको पद-भ्रष्ट भी कर सकते थे या उसका धार्मिक तथा सामाजिक बहिष्कार भी कर सकते थे। ऐसे Despotic वातावरण में जनता की शिक्षा का संसार भर में क्या हाल होगा उसे तो वही लोग जाने जोकि उस समय विद्यमान थे

परन्तु हमारे यहां के "शंकर मठ" जिस काल में अपनी पूर्ण युवावस्था में होंगे उस समय का चित्र हम का ऐसा मिलता है कि जिन ब्राह्मण बालकों को ब्रह्मचारी बना कर छात्रालयों में प्रविष्ट किया जाता था उनको सन्यासी लोग पढ़ाया करते थे और ये सन्यासी किसी न किसी मठ के आजीवन शिष्य तथा सदस्य हुआ करते थे। इन ब्रह्मचारियों को उनको अपने नाम के साथ "चैतन्य, प्रकाश, नन्द या स्वरूप" में से कोई भी एक उपाधि अपने मठ के अनुसार लगानी पड़ती थी; जिससे कि उसका नाम तथा उपाधि सुनते ही एक विद्वान् को यह विदित हो जाय कि वह कौन से मठ के शिक्षणालय का ब्रह्मचारी है। इसके बाद जब वह लड़का पढ लिख कर विद्वान् बन जाता तो उसे संन्यासी बनाया जाता था। ब्रह्मचर्यव्रत या विद्यार्थी अवस्था के सम्पूर्ण होने पर संन्यास लेना कोई अनिवार्य कार्य क्रम नहीं था क्योंकि जिन ब्राह्मण बालकों के संरक्षक उनके शिक्षण की ओर लक्ष रखते थे, वे तो प्रायः पण्डित होकर पाठशाला खोल कर अध्यापक का कार्य किया करते थे। परन्तु जिन को यह सुभीता न होता उनके लिये शिक्षणालय में कुछ शिक्षा ही ऐसे ढंग से दी जाती थी कि जिस के परिणाम स्वरूप में लड़के को मठ का पठन पाठन क्रम समाप्त करने के बाद संन्यास ही लेना पड़ता था। ऐसे उत्तीर्ण स्नातक जब सन्यासी बनाये जाते तो यदि वह लड़का अच्छा Orator होता तो उसे "सरस्वति" की पदवी मिलती थी और यदि वह अच्छा विचारक होता तो उसे "पुरी" की पदवी मिलती थी, इसी प्रकार जो स्नातक राष्ट्रीय कार्य में रस लेने वाले होते उनको "भारती" की उपाधि मिलती। जिन स्नातकों को शास्त्रार्थ या शस्त्रार्थ का शौक हुआ करता था और उनको अपने पक्ष समर्थन में इतना योग्य समझा जाता था कि वे अपने विपक्षियों पर पहाड़ की तरह से टूट पड़ें या समुद्र की तरह फैल जांय उनको "गिरि, पर्वत, या सागर" की उपाधि मिलती थी। और जो शान्त प्रकृति के विद्वान स्नातक केवल विद्या का ही प्रचार करने के लिये किसी तीर्थ स्थान पर या अन्यत्र कहीं भी आश्रम या मठ बना कर रहने के उत्सुक होते उनको "तीर्थ, आश्रम, बन या आरण्य" में से कोई भी उपाधि मिलती। और यही दस उपाधियां संन्यासियों के "दश नाम" कहलाते हैं। और इन्हीं दस नामों के कारण कभी २ संन्यासियों को "दशनामी" साधु भी कहा जाता है।

उपरोक्त रीति पर शिक्षा पाये हुए सन्यासी देशाटन भी किया करते थे, और उनका यह एक कर्त्तव्य समझा गया था कि वे छोटे २ ग्रामों में फिर कर देश की शिक्षण पद्धति को यथा क्रम बनाये रखने का प्रचार करें।

ब्राह्मणों की शिक्षा पद्धति में प्रारम्भिक शिक्षा देने के लिये प्रायः प्रत्येक ग्राम में एक या अधिक "पाण्ड्या" लोग हुआ करते थे। जिनको "गौर जी या गुरु जी कहा जाता था। यह लोग हिसाब की पद्धति बहुत अच्छी जानते थे कि जिसको हिन्दुस्तान के बनिये ने Recognize कर रक्खा था और महाजनों के बालक प्रायः इन्हीं "गुरु" लोगों से "लेखा" सीखा करते थे। हिसाब के साथ ही कुछ मामूली लिखना पढ़ना भी गुरु लोग सिखाया करते थे। परन्तु इस प्रारम्भिक शिक्षा में ईश्वर की ओर आस्तिकता का भाव तथा गुरु की ओर श्रद्धा का भाव और माता पिता की ओर पूज्यभाव बने रहने की शिक्षा प्रारम्भ ही से ऐसी कूट २ कर भरदी जाती थी कि लड़का उमर भर आस्तिक बना रहता और विद्वानों तथा वयोवृद्धों का सदा आदर करता था। यही कारण है कि अब तक भी देहाती लोग बिना ही शिक्षा ईश्वर भक्त, तथा गुरु-पूजक दिखायी दे रहे हैं।

ब्राह्मणों की इस प्रारम्भिक शिक्षा के बाद का शिक्षा-क्रम तो हम पहिले ही देख चुके हैं उस परम्परा में पण्डित लोग जिस २ एक खास विषय में प्रखर हुआ करते थे उस २ विषय की पाठशाला खोल कर विद्यार्थियों को पढ़ाया करते थे। कहीं व्याकरण की पाठशाला है तो कहीं ज्योतिष की, तो कहीं तर्क की, तो कहीं काव्य की और कहीं वैद्यक (आयुर्वेद) के शिक्षणालय हुआ करते थे। इसमें सुभीता यह था कि बालक की या उसके माता पिता की रुचि जिस ओर होती उसी विषय के शिक्षणालय में बालक को आरम्भ ही से लगा दिया जा सकता था।

परन्तु उपरोक्त पठन पाठन पद्धति का परिणाम यह होता था कि लड़का पढ़ने के बाद या तो सन्यासी बनता या पण्डित बनता था। इसके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं बन सकता था और दोनों ही अवस्थाओं में इन स्नातकों को "धर्म" का ही मुंह देखते रहना पड़ता था, क्योंकि यदि लोग धार्मिक रहेंगे तो ही विद्वान् की पूछ होगी इसलिये इन विद्वान् स्नातकों को "धर्म" का आमरा ही करना पड़ता था।

उस समय के विद्वान् जो २ विद्याएं जानते थे, उन उन के द्वारा अपनी उदर पूरणा करने का साधन या तो 'वेदान्त आदि" गूढ़ विषयों का 'प्रवचन" होता था या "भागवत" आदि रोचक विषयों की "कथा" या चर्चा हुआ करती थी या जन्मपत्रिका बनाना तथा ग्रहों की शान्ति आदि कराना होता था या ऐसा ही और कुछ पूजा पाठ करना धरना होता था। इस सब कार्य-क्रम की पीठ पर एक "धर्म" ही हुआ करता था, जो कि एक बहुत बलवान् "सखा" थी। इतना सब कुछ होते हुए भी यह एक भिक्षुक वृत्ति समझी जाती थी क्योंकि जब कभी किसी विद्वान् सन्यासी या पण्डित से उसका धन्धा (Profession) या वृत्ति किसी ने पूछी तो उन्होंने अपने आप को भिक्षुक (Beggars) ही लिखवाया है और हमारे देश का वर्णन विदेशी यात्रियों ने

[शेष पृष्ठ ७ पर]

गु रु कु ल

२४ जून शुक्रवार १९३८

गुरुकुल और उच्च शिक्षा

वर्धा शिक्षण योजना देश के शिक्षाविज्ञों का ध्यान अपनी ओर खींच रही है। इस योजना को अनेक दृष्टिकोणों से परखा जा रहा है। गुरुकुल को इस बात का गर्व है कि महात्मा गांधी के नेतृत्व में वर्तमान शिक्षा-प्रणाली से असन्तोष प्रकट कर जिस नयी योजना की नींव रखी जा रही है, हमारे कुलपिता स्वामी श्रद्धानन्द ने ने उसी योजना को क्रियात्मक रूप देने के लिए आज से ३७ वर्ष पूर्व गुरुकुल की स्थापना की थी।

इस शिक्षण योजना से देश के सामने उच्च शिक्षा के सम्बन्ध में कई समस्यायें उत्पन्न हो गयी हैं। अन्नामलाय विश्वविद्यालय के कुलपति माननीय श्री निवास शास्त्री ने १८ जून को मद्रास से आकाश वाणी (रेडियो) द्वारा एक भाषण देते हुए इन समस्याओं का बड़े सुन्दर ढंग से प्रतिपादन किया है। यहां पर हम केवल उसके एक पहलू—शिक्षा के माध्यम—पर ही विचार करेंगे।

भारतवर्ष का यह दुर्भाग्य है कि विदेशी शासन के साथ २ उसे विदेशी भाषा का बोझा भी बर्दाश्त करना पड़ा है। १०० वर्ष से हमारी शिक्षा का माध्यम वह अंग्रेजी भाषा चली आ रही है जिसके वर्णविन्यास, वाक्यरचना और व्याकरण में नियमों की अपेक्षा अपवाद ज्यादा हैं। बरसों उसके सीखने में लग जाते हैं और फिर भी वह नहीं सीखी जाती। विद्यार्थी का शिक्षा का सब से अधिक उपयोगी समय अंग्रेजी भाषा के बेढंगे नियम घोटने तथा अंग्रेजी के वाक्यांशों को कण्ठस्थ करने में बीत जाता है।

अंग्रेजी भाषा में अन्य विषयों की शिक्षा होने से वह उन्हें भी ठीक २ नहीं समझ पाता। मातृभाषा में शिक्षा देना स्वाभाविक है किन्तु मानसिक परतन्त्रता में पड़े हुए भारतीय मातृभाषा में शिक्षा की कल्पना नहीं कर सकते थे। गुरुकुल ने इस दिशा में नया मार्ग दिखाया। १९१७ में माननीय श्री निवास शास्त्री ने गुरुकुल में आकर पहली बार यह अनुभव किया कि उच्च शिक्षा भी मातृभाषा में दी जा सकती है। अपने उपरोक्त भाषण के अन्त में उन्होंने यह भी कहा 'उत्तर भारत में गुरुकुल कर्वे के स्त्री विद्यालय तथा उस्मानिया यूनिवर्सिटी ने मातृभाषा द्वारा उच्च शिक्षा देने के क्षेत्र में अग्रणी का कार्य किया है। परन्तु उन्हें आशंका है कि अभी तक देशी भाषा में उपयुक्त पाठ्य पुस्तकें तय्यार नहीं हो सकी हैं।

क्या गुरुकुल उनकी इस आशंका को मिथ्या सिद्ध करने का क्रियात्मक प्रयत्न करेगा?

विश्व की अशान्ति

आज विश्व में अशान्ति है। सभी देश दूसरे देशों के कार्यों को जहां सन्देह की दृष्टि से देखते हैं वहां साथ ही अपने देश के लिए घातक समझते हैं। हरेक देश अपने को सैनिक दृष्टि से, युद्ध सामग्री की दृष्टि से मज़बूत बना रहा है—इटली और जर्मनी की गुटबन्दी से, इनकी सैनिक तय्यारी से इङ्गलैंड, फ्रांस, रशिया वगैरह देश अपने को खतरे में समझते हैं। इसलिए वे भी देश रक्षा का बहाना कर अपनी सैनिक शक्ति को दृढ़ करने में व्यस्त हैं। प्रजा पर अधिकाधिक टैक्स लगाए जा रहे हैं और उस धन से जंगी जहाज़, हवाई जहाज़ आदि लड़ाई का सामान तय्यार किया जा रहा है।

लेकिन यह सब किस लिए? किस कारण से प्रजा के धन को इस प्रकार के सामान तय्यार करने में नष्ट किया जा रहा है। इस सब अशान्ति का, एक दूसरे के प्रति अविश्वास तथा सन्देह का कारण शक्तिशाली राष्ट्रों की इस प्रकार की महत्वाकांक्षायें हैं जिनसे प्रेरित होकर वे दूसरे छोटे २ देशों को हड़पने के लिए हर वक्त मुंह बाये बैठे रहते हैं? और दूसरे कमज़ोर या तुल्य शक्ति वाले राष्ट्रों को भी बाधित करते हैं कि अपनी रक्षा के नाम पर वे भी उसी प्रकार की युद्ध-सामग्री तय्यार करें अन्यथा उनकी स्वतन्त्रता हर वक्त खतरे में बनी रहेगी।

छोटे २ देशों को हड़पने में जो रहस्य अन्तर्निहित है वह स्पष्टतया आर्थिक ही है। इंगलैंड आज भारत को इसीलिए अपने शिकंजे में जकड़े हुए है क्योंकि इससे उसे आर्थिक लाभ है। भारत के बिना वह मुर्दा है। जर्मनी अपनी शक्ति को मज़बूत करके दूसरे समीपस्थ छोटे २ देशों को अपने कब्जे में करने के लिये हर वक्त ताक लगाए बैठा है। इटली ने एबिसीनिया पर आधिपत्य किस लिए जमाया केवल आर्थिक लाभ के लिए। जापान और चीन की लड़ाई भी इसी पर आश्रित है। जापान चीन को हड़प करके अपना आधिपत्य जमा करके आर्थिक लाभ प्राप्त करना चाहता है। इसी लिए कोई भी बहाना करके युद्ध छेड़े हुए है।

आज संसार भर में युद्ध के बादल मंडरा रहे हैं हर वक्त विश्व व्यापी संग्राम का खतरा बना हुआ है। इस विश्व व्यापी संग्राम की आशंका को दूर करने का उपाय कई बार अपनी २ शक्तियों को मज़बूत बनाना तथा अपने देश की किलेबन्दी करना बताया जाता है। लेकिन वस्तुतः इन उपायों से महासमर की आशंकाएं बढ़ती ही हैं घटती नहीं। आवश्यकता से अधिक युद्ध की सामग्री, जंगी जहाज, सैनिक तय्यारी ही इस बात का प्रमाण हैं कि संसार कितनी शीघ्रता से महासमर को आह्वान कर रहा है और उसके लिए पूर्ण रूप से तय्यार हो रहा है।

इन बड़े २ देशों को अपनी आर्थिक समस्या को हल करने के लिए दूसरे देशों पर अधिकार करने की आवश्यकता क्या इस लिए अनुभव होती है कि वे भूखे मरते हैं और उनके पास जीवन निर्वाह के लिए आवश्यक पदार्थों की कमी है? क्या इसलिए दूसरे देशों से छीन २ कर अपना पेट भरना चाहते हैं? नहीं। इनके पास जितनी धन दौलत है उससे वे अपना ही नहीं अपितु अन्य कई देशों का भी पेट पालन कर सकते हैं। इसी शक्ति से ही ये दूसरों पर आधिपत्य चाहते हैं। इनके पास बड़े २ कारखाने हैं बड़े २ यन्त्र हैं जिनसे कि थोड़े से ही समय में थोड़े से ही परिश्रम से आवश्यकता से अधिक माल पैदा कर लेते हैं। उस तय्यार माल के अपने देश में न खप सकने के कारण से उन्हें दूसरे २ बाज़ार—देश ढूंढने पड़ते हैं जिन पर आधिपत्य करके वे अपने माल को खपा सकें और बदले में अन्य आवश्यक धन सामग्री प्राप्त कर सकें। बाज़ारों के न मिलने से या मिले हुए स्थानों के छिनने के डर से ही ये सब युद्ध के साज सजाये जा रहे हैं। युद्ध के भय को मिटाने के लिए आवश्यक है कि इस प्रकार के यन्त्रों का प्रयोग जिनसे कि आवश्यकता से अधिक सामान तय्यार हो जाता है बन्द किया जाय। देश अपने लिए ही आवश्यक सामग्री तय्यार करें, बाज़ारों की प्राप्ति की लालसा बन्द करें तो अशान्ति का कारण ही नहीं रहता है युद्ध का मूल ही नष्ट हो जाता है उसकी आशङ्का ही नहीं रह सकती। प्रभु ने हरेक देश के लिए आवश्यकतानुसार सामग्री उसके घर में ही पैदा की हुई है इसी में सन्तोष की भावना चाहिये। यही शान्ति का मूल मन्त्र है।

सौन्दर्य का रहस्य

मसूरी

[लेखक — चितश]

पहले उस समय की बात कहूँ —

सन् १९३६, दिसम्बर का महीना। अन्तिम कड़ाके का जाड़ा। मूसलाधार वर्षा और ओले। तब हम निकले मसूरी की यात्रा को। एक विचित्र दीवानों का दल था। लोग मसूरी जाते हैं— मैदान की गर्मी से तंग आकर, अपने दिल व दिमाग़ को ठण्डा करने के लिये— गर्मियों में— मई और जून के महीने में। लेकिन यह दल निकला दिसम्बर के अन्तिम महीने में, जब शीत बढ़ते बढ़ते अपनी सीमा पर पहुँच जाता है। इसलिये कहता हूँ कि यह एक दीवानों का दल था। खैर—

जब यह दीवाने मसूरी पहुँचे तो देखा कि सारी सड़कें बर्फ़ से आच्छादित हैं— जैसे कि सफ़ेद संगमरमर का फ़र्श सब सड़कों पर बिछा हुआ हो। मकानों की छतें बर्फ़ से लदी पड़ी थीं, पेड़ों की टहनियों पर बर्फ़ ने सफेद रुई के से घोंसले बनाये हुए थे— और तब, घाटियों में, न जाने उतना दूध किसने उँडेल दिया था कि वह जमकर सफ़ेद-सफ़ेद ठोस पदार्थ बन गया। जिससे सारी की सारी घाटियां ऊपर से लेकर नीचे तक ओत-प्रोत थी, और दूर दृष्टि के क्षितिज से भी परे तक बहुत परे तक सिवाय उस श्वेत ठोस के और कुछ नज़र नहीं आता था।

और मसूरी के बाज़ार— चारों ओर श्मशान की-सी शान्ति —नीरव, निर्जन और कोलाहल-शून्य। किसी दुकान पर हलवाई लोग रज़ाई ओढ़े भट्टी के चारों ओर बैठकर हुक्का गुड़गुड़ा रहे हैं— खाद्य [मिठाई आदि] पदार्थ के नाम पर वहां भी हड़ताल है। अवशिष्ट सब दुकानों पर और मकानों पर ताले पड़े हुए हैं— ऐसे लगता है जैसे कि इनके निवासी किसी आकस्मिक भय से भयभीत होकर भाग गये हैं और इस नगर को सुनसान बनाकर चले गये हैं। सारी की सारी चीज़ें वैसी की वैसी पड़ी हैं—सारे मकान अपने उसी रंगरूप में खड़े हैं—वे होटल, वे रेस्तरां, वे काफे और वे नाचघर और सिनेमा— सब के सब चुप होकर खड़े हैं जैसे कि अभी गुज़रे दिनों की स्मृति में विभोर हों, और कुछ महीने बाद फिर अपने यौवन के उन रंगीन दिनों की प्रतीक्षा में इस जड़ीभूत जीवन को यथाकथंचित् धारण कर रहे हों। ऐसे समय में, माल रोड के मध्य में दीखने वाला ठीक पहाड़ की चोटी के ऊपर बना हुआ वह छोटा-सा बंगला कितना सुन्दर लगता है— जिस का आधार केवल एक शिला है और वह सारी की सारी शिला सड़क के ऊपर इस तरह झांक रही है कि अब गिरी और तब गिरी। उस बंगले की मनोमोहकता का रहस्य क्या है? यही तो कि वह सामान्य लौकिक वातावरण में इतना ऊंचा उठा हुआ है, अब या तब गिर पड़ने वाली एक शिला उसका आश्रय है पर वह स्वयं कैसी शान से गर्दन ऊंची करके उस शिला के ऊपर ऐसे जम कर खड़ा है कि इस काल के अनन्त प्रवाह में युग-युगान्तर तो खिसक जायेंगे पर जैसे वह स्वयं नहीं खिसकेगा। ऐसी स्थिरता— जब चारों ओर ऐसी अस्थिरतायें खड़ी हुई निगल जाने के लिये अपनी जिह्वायें लपलपा रही हों— उस समय की यह दृढ़ स्थिरता तो लोक-दुर्लभ है। और साथ ही यह नीरव निर्जनता! सौन्दर्य लौकिक वस्तु है, और वह इतना ऊंचा उठना— वह स्थिरता और वह संघर्ष शून्यता— ये भी तो लोकातीत वस्तुएं हैं। बस यही उसकी सुन्दरता का रहस्य है।

और इस प्रकार की मसूरी में, उस १९३६ के दिसम्बर की अन्तिम रातें हमने बिताईं थीं, अन्तिम दो रातें— ठण्ड हड्डियों तक चीर देने वाली— चारों ओर बर्फ़ ही बर्फ़ जब बिछी हुई थी— श्मशान की-सी शान्ति चारों ओर छाई थी और मनु की सन्तान यदि कहीं दिखती थी तो रज़ाई ओढ़ कर भट्टी के चारों ओर बैठी हुई हुक्का गुड़गुड़ाने वाली मण्डली में ही— उस समय की वे दो रातें अभी तक स्मृति-पट पर ज्यों-की त्यों अंकित हैं।

× × × ×

उसी समय— जब सन् १९३६ की रात को हम मसूरी

में थे और अगले दिन जब गुरुकुल की सीमा में पैर रखा तो १९३७ का प्रथम सूर्योदय नवल प्रभात को साथ लेकर वसुधा पर अवतीर्ण हो रहा था- उसी समय यह भी विचार आया था कि इस सूनी मसूरी देखने के बाद एक बार वह भरी पूरी मसूरी भी अवश्य देखनी है जब शहज़ादे और शहज़ादियां यहां आकर चहल पहल मचा देती हैं, नाचघर और-सिनेमा और रेस्तरां कोलाहल से परिपूर्ण हो जाते हैं, दुकानदारों के भाग्य जैसे सोते से जाग जाते हैं- और सारे वातावरण का रंग एक दम बदल जाता है। वह निश्चय इतना शीघ्र कार्यरूप में परिणत हो जायगा यह आशा नहीं थी।

अब मई के अन्तिम सप्ताह में आया। लगभग डेढ़ साल पहले दिसम्बर के अन्तिम दिनों में मसूरी का जो नग्न सौन्दर्य देखा था- मेरी आंखों में अब तक वही स्मृति बन कर झूल रहा था। अब आने पर अपनी आंखों की पुतलियों पर बने हुए उस मानचित्र में कई जगह रंग गहरा करना पड़ा, कई जगह फीका करना पड़ा, और किसी २ जगह के चिह्न को तो धो कर साफ़ भी कर देना पड़ा। और इस प्रकार के परिवर्तन की गुंजायश तो हरेक निष्पक्ष द्रष्टा को हमेशा रखनी ही चाहिये !

× × × ×

एक कहावत है— 'विनायकं प्रकुर्वाणो रचयामास वानरम् ।' एक महाशय गणेश जी की मूर्ति बनाने चले थे, पर बना बैठे बन्दर। ठीक यही हाल कुछ इस साढ़े तीन हाथ के मिट्टी के पुतले का भी है। मनुष्य अपने आप को सुन्दर बनाना चाहता है। बाल संवारता है- बड़ी २ नहरें और खाइयां सिर के ऊपर खोदी जाती हैं, फिर रंग बिरंगे कपड़े पहनता है, तरह २ की गन्ध, पाउडर और क्रीम लगाता है, गले में नकटाई, कोट, पतलून और फिर आंखों को चश्मा चढ़ाकर हाथ में पतली सी छड़ी लेकर वह हवाखोरी के लिए निकलता है— पैदल नहीं, रिकशा पर। और फिर अपनी श्रीमती के साथ गिटपिट गिटपिट अंगरेज़ी बोलता हुआ वह समझता है कि अब मैं अप टु-डेटजैण्टिलमेन बन गया हूं, पर उसे इस बात का शायद स्वप्न में भी ख़याल नहीं आता कि मैंने अपने आपको एक जीता जागता कार्टून बना डाला है। यही तो है— 'विनायकं प्रकुर्वाणो रचयामास वानरम् ।'

इतना ही क्यों ?

मना करने पर भी आदम ने ज्ञान का फल खा ही तो लिया और फिर अपने उस अकिञ्चन से पाप का इतना बड़ा बोझ अपनी सन्तान पर डाल गया कि ये आदमज़ाद सृष्टि के आदि से उसका फल भोगते चले आ रहे हैं, पर अभी तक—वह चुक गया है या त्रिकाल में भी कभी चुक सकेगा—ऐसा कहने का साहस किस में है ?

हां तो, आदम ने मार्ग दिखाया और अब मनुष्य जानबूझ कर उसी काम को करता है जिसके लिये उसे मना किया जाता है। कितनी बार उसे कहा—इस फूल को न छूना—यह देवता की पूजा के लिये है, देवता पर अनाघ्रात पुष्प ही चढ़ सकता है। पर उसने नहीं माना। सुन्दर पुष्प को छू दिया—छू ही नहीं दिया—उसे तोड़ कर अपने बगले वाले उद्यान में लगा दिया। क्या वाहियात ! वह फूल खिलता अब भी है, पर उसमें वह सौन्दर्य कहां है ? एकदम कृत्रिम—अरे ! अब वह फूल देवता पर नहीं चढ़ाया जा सकता।

× × × ×

उस फूल के रूप में यह सारी प्रकृति आज मनुष्य के सामने हाथ जोड़े खड़ी है और भिक्षा मांग रही है— 'मुझे स्पर्श मत करो। इन दुनियावी हाथों से छूकर मुझे कृत्रिम न बनाओ। उस परमदेव की उपासना के लिये मुझे अछूता ही रहने दो।' दीवारों के शायद कान होते हैं, पर इस दो टांग वाली दीवार के—मनुष्य के कान होते हुए भी उसे सुनाई नहीं देता। तभी तो इसने पर्वतों को तोड़ फोड़कर सड़कें बना डालीं, जंगलों को नष्ट भ्रष्ट कर के नगर बना डाले और उद्दाम गति से बहने वाली स्वतन्त्र सरिता के प्रवाह को परतन्त्र बना कर नहरें निकाल डालीं और इस चीज़ को उसने सभ्यता का नाम दिया।

वाह री सभ्यता ! तुझ में चमक-दमक तो बहुत है, पर वह सब कृत्रिम ही तो है न ! सब बाहरी दिखावा। माना कि तेरी जादू की छड़ी का स्पर्श पाते ही चीज़ें चमक उठती हैं, पर वह क्या उनका सत्य स्वरूप है ? तूने अपनी चमक से सत्य को छिपा लिया है—'हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम् ।' ····आज कला तेरे इशारे पर नाचती है, समय आने दे कि वह कफ़न फाड़ कर अपने विद्रोह और क्रान्ति के स्वर में पुकार उठेगी— 'यह सब मिथ्या है, यह सब कृत्रिम है। कला की हत्या कर के तुम सौन्दर्य को जन्म देना चाहते हो—असम्भव है।'

× × × ×

और मैं सोचता हूं—उस बगले की सुन्दरता का रहस्य क्या था—यही न ! कि वह लौकिक वातावरण से ऊंचा उठा हुआ था, इतनी अस्थिरताओं में वह स्थिर होकर खड़ा था—ओह उसकी निर्जनता। नीरवता संघर्षशून्यता ! —वे तो लोक दुर्लभ हैं। लोकातीत ही सुन्दर है, क्योंकि सौन्दर्य इस लोक की वस्तु नहीं है। जिसमें कुछ अलौकिक नहीं है, वह सुन्दर कैसा ?

गुरुकुल समाचार

स्वास्थ्य समाचार

ऋतु साधारणतया अच्छी है। वर्षा इन दिनों अधिक नही हुई है। टाइफाइड् ज्वर के बीमार ब्रह्मचारी रतनसिंह २य श्रेणी, कुल भूषण ५म श्रेणी तथा नारायण २य श्रेणी अब पहले से बहुत अधिक स्वस्थ हैं। कमज़ोरी शेष है। विद्यालय तथा महाविद्यालय के लगभग सभी ब्रह्मचारी यात्राओं या घरों पर गये हुए हैं। महाविद्यालय में १२-१५ ब्रह्मचारी ही शेष हैं। राजपुर में विद्यालय विभाग के ब्रह्मचारी आनन्द प्रसन्न हैं। प्रति दिन वर्षा होती रहती है। वर्षा के कारण इन दिनों भ्रमण अधिक नहीं कर सके हैं। इस समय राजपुर में ज्ञानिवान तथा ब्र० प्रेमपाल टाइफाइड् ज्वर से रुग्ण है शेष सभी ब्रह्मचारी साधारणतया स्वस्थ हैं। श्री दीनदयालु जी शास्त्री मुख्याधिष्ठात गुरुकुल मगलवार ८ ६-३८ को ब्रह्मचारियों के अवलोकनार्थ राजपुर गये।

शिमला यात्री दल- गुरुकुल से २८ मई को एक दल मसूरी से शिमला जाने के लिये रवाना हुआ। चकरौता पहुंच कर इन्हें ज्ञात हुआ कि रास्ते में हैजा फैला हुआ है। यात्रियों को आगे नहीं जाने दिया जाता था। अतः उन्हें मसूरी से शिमला यात्रा का विचार छोड़ना पड़ा। परन्तु यात्रा तो करनी ही थी इस लिये शिमला से कुल्लू और डलहौजी की यात्रा का निश्चय करके वे मोटर में बैठ कर सहारनपुर पहुंचे और सहारनपुर से गाड़ी में कालका। कालका से पैदल चलकर दो दिन में शिमला। मार्ग में हैजा न हुआ तो २०जून के लगभग शिमला से कुल्लू के लिये रवाना हो चुके होंगे। इस यात्री दल में श्री हरिवंश जी, ब्र० क्षेत्रपाल जी, ब्र० भारतेन्दु आत्मदेव, विद्यारत्न, शंकरदेव, धर्मवीर, योगेश्वर, रघुनाथ हैं।

कुल्लू यात्री दल- २६ मई को कुल भूमि से यह दल रवाना हुआ। लाहौर का इजलास देखने के बाद पठान कोट से कुल्लू आ रहा है। मार्ग में धर्मशाला, कांगड़ा, योगेन्द्र नगर आदि देखते हुए इन का कुल्लू घाटी में कई दिन बिताने का विचार है। इस दल में श्री प० जगन्नाथ जी अध्यक्ष, ब्र० सत्यभूषण योगी, अनन्तानन्द, धीरेन्द्र, महेन्द्रनाथ (आज़ाद) ओमप्रकाश, प्रियव्रत, देवराज, दिनेश, योगेश हैं।

काश्मीर यात्री दल- २७ मई को यह दल गुरुकुल से रवाना हुआ। खैबर दर्रा, डयूरेण्ड लाइन, तक्षशिला आदि दर्शनीय स्थान देखते हुए एबटाबाद और मरी के मार्ग से यह दल काश्मीर जा रहा है। इस यात्री दल में श्री पं० गण पति जी विद्यालंकार अध्यक्ष, ब्र० नरेन्द्र, नाथ, श्री जगदीश जी वेदालंकार धर्मप्रकाश, ओमप्रकाश, सत्यव्रत, रमेशचन्द्र, रणधीर, चन्द्रगुप्त, हरिमोहन हैं।

अर्थशास्त्र यात्री दल- गुरुकुल विश्वविद्यालय के अर्थशास्त्र के विद्यार्थी अर्थशास्त्र का क्रियात्मक एवं व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त करने के लिये भारतवर्ष के प्रसिद्ध औद्योगिक शहरों की यात्रा किया करते हैं। कारखानों में जाकर मिल मालिकों, मजदूरों श्रमजीवी सगठनों की पेचीदी समस्याओं का अध्ययन अपने उपाध्याय के तत्वावधान में किया जाता है। इस समय देश में मजदूरों की समस्या विशेष रूप से विकट है। सयुक्त प्रान्त में कानपुर के ४० हजार से ऊपर मजदूरों ने हड़ताल कर एक विचित्र परिस्थिति पैदा कर दी है। इस समस्या का अध्ययन अर्थशास्त्र के विद्यार्थियों के लिये उपयोगी तथा आवश्यक भी है। अतः इस वर्ष अर्थशास्त्र के विद्यार्थियों की यात्रा एक विशेष महत्व रखता है। श्री पं० केशव देव जी वेदालंकार उपाध्याय अर्थशास्त्र की अध्यक्षता में कलकत्ता की ओर एक दल इन समस्याओं का अध्ययन करने के लिये गया हुआ है। इस यात्री दल में- श्री उपाध्याय केशवदेव जी वेदालंकार अध्यक्ष तथा ब्र० महेश चन्द्र, वीरेन्द्र, आनन्द हैं। इस दल ने अपनी यात्रा सफलता पूर्वक समाप्त करली है।

[पृष्ठ ३ का शेष]

अन्यत्र आकर प्रकाशित किया है उसमें हम सबों के लिये यही शब्द काम में लिये गये हैं।

परन्तु चूंकि उपरोक्त पद्धति की शिक्षा "धर्म के बल" पर अपना अस्तित्व बनाये हुए थी, इसलिये यह भिक्षुक वृत्ति हम लोगों को ज्यादा अखरती नहीं थी और यही हाल संसार भर का था, इसलिये इसमें कोई विलक्षणता भी नहीं दीखती थी। परन्तु इतना जरूर देखने में आता है कि उस Despotic शिक्षा-युग में भी गुरु शिष्य परम्परा में उपनिषद् काल की न्याईं गुरु तथा शिष्य दोनों को एक दूसरे के परीक्षण के लिये १२ मास की अवधि नियत थी क्योंकि जिसको हम पौराणिक युग कहते हैं उसके महत्वपूर्ण ग्रन्थ शिव पुराण में गुरु शिष्य आपस में एक दूसरे की साल भर तक जांच करें और यथाभिमत न जंचने पर उस अवधि के बाद यथा रुचि परिवर्तन करें ऐसी आज्ञा है।

इस प्रकार की पठन पाठन पद्धति में वास्तविक विद्या क्या थी या विद्वान् कौन थे उसको जानने के बदले अधिक "धर्मचुस्त" कौन है यह देखा जाने लगा। तो परिणाम स्वरूप में संसार भर में धार्मिक लोगों की भरमार हो गयी और भारतवर्ष में जहां चार जगत् गुरु थे वहां अब (Lorry load of) जगत गुरुओं की भरमार दीख रही है और जहां ४ मठ थे वहां अब असंख्य मठ दीख रहे हैं। इतना ही नहीं बल्कि इन मठों में से बावन (५२) मढ़ियां और उत्पन्न हो गयी हैं, जिन्हें बावन धूनि भी कहते हैं। इनमें से आनन्द वार सम्प्रदाय नामक अट्ठाईस (२८) मढ़ियों में तिब्बत के "लामा गुरू" को 'वेद गिरि' की मढ़ि मानकर सम्मिलित कर लिया गया है। ऐसा क्यों हुआ इससे हमें कोई प्रयोजन नही हमें सिर्फ यह देखना है कि शिक्षा के दृष्टिकोण से इन सबका क्या मूल्य है। [क्रमशः]

चौधरी दुलाराराय के प्रबन्ध से गुरुकुल यन्त्रालय गुरुकुल कांगड़ी में मुद्रित तथा प्रकाशित।

* ओ३म् *

"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत" Reg. No A 2927

गुरुकुल

सम्पादक—भारतभूषण वेदालङ्कार

एक प्रति का मूल्य -) [गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख-पत्र] वार्षिक मूल्य २॥)

वर्ष ३] गुरुकुल काङ्गड़ी, शुक्रवार १८ आषाढ़ १९९५, १ जौलाई १९३८ [संख्या ७

बीच में है यमुना

(मसूरी से चकरौता)

[ले०—श्री चक्रधर]

उसने इससे कहा और इसने उससे—कानों कान यह बात फैल गई कि यह भी एक यात्रा करने योग्य रास्ता है।

सबसे पहले पंजाब के गवर्नर सर मालकम हेली ने मसूरी से शिमला की पहाड़ी रास्ते से यात्रा की, और फिर उनके प्रशंसा तथा आग्रह करने से लार्ड इरविन ने भी उसी मार्ग से शिमला की यात्रा की। इसके बाद से पहाडी यात्राओं के शौकीनों में 'मसूरी से शिमला' का शौक बढ़ चला।

वैसे तो कैलाश-यात्रा करके इस प्रकार से पहाडी यात्रा की इतिश्री कर चुके थे, पर उसी यात्रा का परिणाम था कि उसने नगरों के कोलाहलमय वातावरण से परे सुन्दर प्रकृति की उत्सुक नृत्यशाला—पहाड़ों के प्रति एक अद्भुत आकर्षण पैदा कर दिया। कहते हैं—अति परिचय से मान घट जाता है, पर यहां तो 'मर्ज बढ़ता ही गया ज्यों २ दवा की।'

तो इस बार जब मई के अन्तिम सप्ताह के प्रारम्भ के साथ २ हमारा ग्रीष्मावकाश भी प्रारम्भ हो गया, और धीरे-धीरे उस सप्ताह की समाप्ति होते न होते तक सब यात्री-दल गुरुकुल से विदाई ले चुके—कोई काश्मीर, कोई डलहौज़ी, कोई कुल्लू और कोई बम्बई—तो उस सुनसान वातावरण में रहने से अपने राम भी मचल उठे। अचानक कान में पड़ा कि मसूरी से शिमला की पैदल यात्रा के लिये एक दल तय्यार हो रहा है, तो न आगा देखा न पीछा—तत्काल नाम लिखा दिया। और फिर उसी दिन यह दल भी एक महीने के लिए अपने साथियों से नमस्ते करके गुरुकुल से रवाना हो गया।

२९ मई को गुरुकुल से चल कर गाडी से देहरादून पर पहुंचे—आप भी इसे शुभ शकुन ही मानेंगे कि उसी दिन हरिद्वार और देहरादून की भूमि ने इस वर्ष की प्रथम वर्षा से अपना अभिषेक किया। देहरादून में एक रात बिता कर ३० को राजपुरा होते हुए मसूरी पहुंचे। हमारी पैदल-यात्रा राजपुरा से ही शुरू हो गई, पर रहने दीजिये, आप मसूरी पैदल चल कर क्या करेंगे—सात मील की कठिन चढ़ाई है, इतना चढ़ कर आप में इतनी हिम्मत कहां रहेगी कि मेरी यात्रा सुन सकें।

मसूरी एक बार तब देखी थी जब चारों ओर बर्फ़ ही बर्फ़ थी—१९३६ के अन्तिम महीने के अन्तिम सप्ताह में, एक बार—१९३८ के मई के अन्तिम सप्ताह में जब जब चारों ओर चहलपहल है। दो रातें बिताईं। कुलड़ी बाज़ार, कैमल बैक रोड और डिपो आदि सब स्थान घूम कर देखे, और देखा एक विषमता का संसार कि कुछ लोग तो तो रिक्शा उठा कर कङ्करीली सड़क पर नंगे पैर दौड़ते चले जा रहे हैं और कुछ लोग उनके अन्दर आराम से टांगें फैला कर बैठे हुए सिगरेट के धुएं से अपने निकटवर्ती वायुमण्डल को दुर्गन्धित करते जाते हैं। यह विषमता का राज्य क्या चिरकाल तक ऐसा ही बना रहेगा?

आवश्यक सामान शिमला आर्य समाज के पते से ही पार्सल कर दिया, और आवश्यक सामान के लिए एक कुली करके प्रथम जून को मसूरी से चकरौते के लिए विदा हुये।

मसूरी की हद को पार करते ही उतार शुरू हो गया। उतार में गर्मी काफ़ी थी। तीन मील बाद टिहरी रियासत की चौकी आई—व्यापार के लिये सामान ले जाने वालों के ऊपर चुंगी लगती है चौकीदार ने एक कुली को आगे जाने से रोक रखा था, उसके पास खुमानियों का टोकरा भरा था जिसकी चुंगी ६ पैसे थी और उस समय उसके पास एक भी पैसा नहीं था। लाचार हमने ६ पैसे की खुमानियां ख़रीदी और वे ६ पैसे चौकीदार को दिये, तब कहीं उस बिचारे का पीछा छूटा।

सात मील के बाद कैम्पटी फॉल है—यह मसूरी का प्रसिद्ध फॉल है, और प्रायः इसे देखने के लिए सैलानी लोग मसूरी से यहां आते रहते हैं। सामने की पहाड़ी पर प्रपात की शतशः धारायें दर्शक के मन को बरबस अपनी ओर खींच लेती हैं। चारों ओर सुन्दर हरियाली है। वहीं सड़क के किनारे होटल भी बना हुआ है। प्रपात तक पहुंचने के लिए लगभग १॥ मी घाटी में जाना पड़ता है, अभी बरसात शुरू न होने के कारण पानी थोड़ा था और आगे चलना भी काफी था—अतः वहां नहीं गये।

चार मील और चलने के बाद एक छोटी-सी नदी आती है। मध्याह्न का सूर्य तेज़ी से सिर को तपा रहा था, घाटी में होने के कारण गर्मी वैसे ही काफी थी। वहीं एक पेड की छाया में बैठ गये। नदी में नहाने का प्रोग्राम बना। कसा लंगोटा और कूद पड़े धारा में।

'अरे! यहां बहुत पानी है'—कोई ऊपर से चिल्लाया। सबके सब वहां पहुँचे। देखा तो एक गहरा कुण्ड-सा बना हुआ है। खूब छलांगे मार २ कर नहाये। पर तृष्णा बढ़ चली। और ऊपर बढ़े—देखा तो अवाक् रह गये। पूरी की पूरी धारा एक बड़ी चट्टान से होकर नीचे गिर रही थी और नीचे उससे बन गया था एक बड़ा तालाब—अतल नील जल की राशि! और पार्श्व में खड़ी हुई थी एक ३० फीट ऊंची सीधी चट्टान। बन्दरों की तरह उस ऊंची चट्टान पर चढ़ गये। एक प्रस्ताव हुआ इस ऊंचाई से उस तालाब में कूदा जाय। पर साहस? हां, साहस भी है—मस्त मौला हरिवंश में। आव देखा न ताव—छलांग जो मारी तो अगले ही सैकण्ड में उस गहरे पानी के गर्भ में। फिर क्या था, अब तो रास्ता खुल गया और अब हरेक इतनी ऊंचाई से कूदने को तय्यार हो गया। और फिर लगा लगना-एक कूदा—छप्प, दूसरा कूदा—छप्प, और फिर तीसरा कूदा......, पर ओह! यह क्या हो गया। बिना देखे कूदने का यही फल होता है। इतना मोटा आदमी आकर गिरा उस किनारे डेढ़ हड्डी के आदमी पर!—उसकी गर्दन में मचकोड़ आगई, सिर भन्ना गया, और मेरुदण्ड जैसे मचक कर टेढ़ा हो गया।

बस अब स्नान समाप्त। पानी के बीच में ही उठी हुई चट्टानों पर बैठ कर पूरियां खाईं। और फिर वहीं पेड की छाया में लेट रहे। एक दो घण्टे आराम करके उठ बैठे और अपने रास्ते पर चल खड़े हुए। गिमनी प्रपात (Compty fall) से एक रास्ता यहां आकर मिलता है, यदि हम उससे आते तो दो मील बच जाते।

मसूरी से लखवाड़ १६ मील है। ११ मील हम चल चुके थे, ५ मील चलना और बाकी था। पर ये ५ मील अब तक के ११ मील की अपेक्षा अधिक कठिन थे क्योंकि ग्यारह मील तक लगातार उतार ही उतार था और अब आगे चढ़ाई थी। पहले १॥ मील तक खासी मुश्किल चढ़ाई है। रास्ते में कहीं पानी नहीं, कहीं कोई पेड़ नहीं कि उसकी छाया में बैठ कर ही कुछ थकान दूर की जा सके। पहाड़ बिल्कुल नंगे पड़े हैं—मानों गर्मी के मारे झुलस गये हों। और फिर ऊपर से सीधी पड रही थी धूप। पसीने से नहा गये। प्यास के मारे गला सूख गया। पर हम सीधे चुपचाप चलते गये क्योंकि पता था कि आध मील के बाद यमुना की शीतल सलिल धारा बह रही है।

आध मील के सख्त उतार के बाद घाटी में पुल के नीचे बहती हुई नील जल की धारा देख पड़ी। देखते ही आंखें चमक उठीं। दौड़ कर तट पर पहुंचे। पानी की लहरों के ऊपर से बह कर आती हुई ठण्डी २ हवा के झोंकों ने सारा पसीना सुखा दिया और थकावट दूर कर दी। जी भर कर पानी पिया।

यह वही यमुना है जिसका प्रयाग में मन्दाकिनी के साथ संगम होता है। जिन्होंने प्रयाग में गङ्गा और यमुना का वह संगम देखा है उसकी निराली छवि का वे वर्णन करें और भले ही अनेक उपमाओं से और नाना रूपों से उस छवि को कविता के रूप में चित्रित करके वे अपनी लेखनी के गौरव को अमर कर दें; पर जिसने गंगा को अलकनन्दा के रूप में व्याकुल होकर बल खाते हुए और मार्ग श्रम से तरल होकर अपने प्रियतम की खोज में इधर उधर भटकते हुए नहीं देखा, और जिसने प्रबल प्रतापी दिवाकर की पुत्री इस यमुना को इधर पहाड़ों में अपने यौवन के मद से इठलाते हुए और अपने श्याम अञ्चल को पर्वतीय उपत्यकाओं में लहराते हुए नहीं देखा, उसका यह वर्णन केवल कवि-कल्पना है, वास्तविक तथ्य नहीं। वास्तविक तथ्य को जानने के लिए गहराई में जाना होता है, वह गहराई अन्यत्र और कहां मिलेगी? असली सौन्दर्य तो कोई यहां आकर देखे—बाल बिखरे हुए हैं, वस्त्र अस्तव्यस्त हैं और यह अपनी उद्दाम लहरों की भुजायें फैलाये बेतहाशा दौड़ी जा रही है। मार्ग में चट्टानें आती हैं, उनको यह छाती से धकेलती जाती है और इसी तरह उद्भ्रान्त होकर यह तब तक दौड़ती चली जायेगी जब तक मैदान नहीं आ जावेगा। वहां तो तट पर भारतवर्ष की राजधानी खड़ी है। सभ्य लोगों की भीड़ में इसे अपना यह असभ्य-उच्छृङ्खल और असंयत वेष त्यागना पड़ेगा। आधुनिक सभ्य कहा जाने वाला भारतवर्ष स्वतन्त्रता को पसन्द नहीं करता। जा, यमुना! तू जा और जाकर हमारे देशवासियों को स्वतन्त्रता का सन्देश सुना।

आगे ३ मील की सख्त चढ़ाई के बाद लखवाड़ पहुंचे। सायङ्काल का झुटमुटा हो चला था। एक स्कूल में जाकर ठहरे। रसद का सारा सामान बनिये की दुकान से मिल जाता है। रात्रि को ८ बजे के करीब वर्षा शुरू हुई, हमें डर लगा कि यदि हमारा कुली न आया तो रात्रि को कैसे सोयेंगे और सारे कपड़े वर्षा में गीले हो जायेंगे। पर उस समय हमें कितनी खुशी हुई जब थोड़ी देर बाद ही उस बरसते आंधी-पानी में हमारा कुली आता दिखाई दिया। रात आराम से कटी। यहां का पानी बहुत अच्छा है।

सवेरे उठ कर चले। आज का रास्ता चढ़ाई का था शुरू से ही हल्की २ चढ़ाई पड़ती है। दो मील जाने के बाद अचानक ही ढोल-दमाकों की आवाज़ सुनाई दी।

हैरानी हुई कि पहाड़ों के हृदय में यह शादी-ब्याह के से बाजों गाजों की आवाज़ कैसी? ज्यों २ आगे बढ़ते गये त्यों २ आवाज़ पास आती गई। अन्त में पता लगा कि एक ४०-५० आदमियों का समूह अपने २ कन्धे पर लकड़ी के स्लीपर उठाये ला रहा है। और उसके आगे आगे ढोल बजते आ रहे हैं। खुशी का कारण यह था कि ये स्लीपर देवबन से उठा कर लाए जा रहे थे—जो उस स्थान से ४० मील दूर ६००० हज़ार की ऊंचाई पर एक घन जंगल है।'

यदि गर्मी भी साथ हो तो चढ़ाई और अधिक तंग करती है, और उस पर भी यदि रास्ते में कहीं पानी न मिले तो यात्री क्या २ सोचता हुआ और किस किस को गाली देता हुआ चलता है, यह यात्री के दिल से पूछो। पूरे तीन मील बाद नागथाट पड़ाव आया। यहां सुन्दर डाकबंगला बना है और एक बनिये की दूकान भी है। पानी बहुत नीचे खड्ड में है। दूकान से बाल्टी लेकर वहां से पानी लाए और प्रातराश खाया।

नागथाट से ६ मील दूर चुराणी है। यद्यपि मध्याह्न का समय निकट आता जा रहा था पर गर्मी नहीं लगा क्योंकि आज सड़क काफी ऊंचाई पर जा रही थी। और रास्ता भी बहुत हरा-भरा था। २ मील के बाद कालसी के लिए सड़क फटती है। यहां एक छोटी सी पगडण्डी लखवाड़ से आती है जिसमें केवल ३ मील चलना पड़ता है, पर वहां हमें ६ मील अब तक चलना पड़ा है। यहां बैठ कर थोड़ी देर ठण्डी २ हवा का स्वाद लेते हैं और मन में दुःख होता है कि इस लघु मार्ग का हमें पता क्यों नहीं लगा। पर बीती ताहि बिसारि दे आगे की सुधि ले।'

७००० फीट की ऊंचाई पर एक सुन्दर बंगला बना है, चारों ओर ऊंचे २ चीड़ के पेड़ खड़े हैं और उनके बीच में से सांय २ करके आती हुई शीतल समीर। यही है चुराणी। बंगले के सिवाय और कोई बस्ती नहीं। दो घिनट उन पेड़ों के बीच बैठे। और उतने में ही सर्दी का अनुभव होने लगा, कम्बल ओढ़ने की आवश्यकता अनुभव हुई। पानी लेने के लिए भी एक मील दूर नीचे जाना पड़ता है और वहां भी एक-एक बूंद करके पानी टपकता है।

दुपहर की रोटी खाई दो घण्टे आराम किया और इतनी ठण्डी हवा के अनिल श्वास से शरीर को आपूरित करके पहाड़ झाड़ा और चकरौता को प्रस्थान। चकरौता यहां से १० मील है। पहले २ मील तक सड़क उतार है और फिर लगातार ८ मील तक चढ़ाई। पानी का कहीं नाम नहीं। सारे रास्ते ठण्डी ठण्डी हवा चलती रही।

चकरौता २ मील रह गया तो मूसलाधार वर्षा पड़ने लगी। पहाड़ी वर्षा जब ज़ोर पर होती है तो बरसाती और छाते सब फेल हो जाते हैं। शहर में प्रवेश करते ही वर्षा थम गई। ठीक ६ बजे समाज-मन्दिर में घुसे।

कन्या गुरुकुल समाचार

देहरादून में ६ जून से १८ जून तक प्रारम्भिक शिक्षा और माध्यमिक शिक्षाओं के परिवर्तन के सम्बन्ध में यू० पी० सरकार द्वारा नियत समितियों की सम्मलित बैठकें होती रही हैं।

शिक्षा समिति के प्रधान आचार्य नरेन्द्रदेव जी १८ जून को कन्या गुरुकुल देखने के लिये आये। आपने कन्याओं की रहन सहन रहन कौशल, व्यायाम-शिक्षा आदि सभी अंगों का ध्यान से निरीक्षण किया। देश की सामयिक समस्याओं के बारे में कन्याओं से प्रश्न भी किये। आप सब बातों से बहुत प्रभावित हुये। कन्याओं ने आपका हृदय से स्वागत किया, अभिनन्दन पत्र भी भेंट किया जिसमें आपके विचारों से असहमति प्रगट करते हुये भी आपके त्याग देशप्रेम आदि की प्रशंसा की गई थी। आचार्य जी का एशिया में स्वतन्त्रता आन्दोलन विषय पर एक घण्टे तक ऐतिहासिक खोजपूर्ण व्याख्यान भी हुआ। आचार्य नरेन्द्रदेव जी ने कन्यागुरुकुल के सम्बन्ध में निम्न सम्मति दी है: —

मैंने १८ जून को कन्या गुरुकुल का निरीक्षण किया—यहां की व्यवस्था देखकर तबियत बहुत खुश हुई। वातावरण शुद्ध राष्ट्रीय पाया। यहाँ कन्याओं से १५) मासिक लिया जाता है। इतने थोड़े रुपये में शिक्षा के अतिरिक्त उनके भोजन और वस्त्र का भी प्रबन्ध किया जाता है। स्थान की सफ़ाई पर काफी ध्यान दिया जाता है। उनके लिये खेल का भी प्रबन्ध किया जाता है। शिक्षा की अच्छी व्यवस्था है। कन्याओं की योग्यता की मैंने साधारण रीति से जांच की और मुझे सन्तोष हुआ। हिंदी और संस्कृत में अच्छा निबन्ध लिख लेती हैं। उच्च कक्षा की कन्यायें साधारण रीति से अच्छा भाषण भी दे लेती हैं। निम्न मध्यम श्रेणी के लोगों के लिये इस प्रांत में यही एक उत्तम संस्था है। ऐसी संस्थाओं की हमारे प्रांत में बहुत आवश्यकता है। कन्याओं की शिक्षा पर आजकल विशेष ध्यान दिया जाता है। आशा है जो महानुभाव कन्याओं के लिये शिक्षासंस्था खोलने का विचार करेंगे एक बार इस संस्था का अवश्य निरीक्षण करेंगे। मैं संस्थापकों को ऐसी उत्तम संस्था के संचालन पर बधाई देता हूं। मेरी शुभ कामना संस्था के साथ है। आशा है उत्तरोत्तर इसकी वृद्धि होगी।

शिक्षा समिति के अन्य सदस्य भी गुरुकुल देखने के लिये आये जिनमें आचार्य रामशरण जी एम० एल० ए० प्रो० बीरबलसिंह जी एम० एल० ए०, श्री रघुनाथ विनायक धुलेकर एम० एल० ए० तथा श्री मालवीय मुख्य हैं। आप लोग भी कन्यागुरुकुल का निरीक्षण करके कन्याओं की राष्ट्रिय वृत्ति, सादगी, शिक्षा आदि के सम्बन्ध में बहुत प्रभावित हुये। आप महानुभावों ने भी कन्या गुरुकुल के सम्बन्ध में अपनी अच्छी सम्मति लिखी है।

ता० २२ जून को गांधी सेवा संघ (वर्धा) के प्रधान मंत्री श्री रघुनाथ श्रीधरधोत्रे महोदय कन्यागुरुकुल को विशेष रूप से देखने के लिये ही देहरादून आये कन्यागुरुकुल के अतिथि रहे।

कन्या गुरुकुल का निरीक्षण करके आप प्रभावित हुये। विशेषतः साधारण चर्खा चलाना तथा हाथ से खादी के वस्त्रों पर किया गया कौशल देखकर आप

[शेष पृष्ठ ९ के नीचे]

गुरुकुल

१ जौलाई शुक्रवार १९३८

श्रद्धांजलि

'वन्देमातरम्' के अमर गायक को हमारा शतशः प्रणाम है। बंग भारती के प्रथम उपासक के आगे हम श्रद्धा से सिर झुकाते हैं। राष्ट्रीयता के अग्रदूत की हम उनकी शतवर्षी के समारोह पर सादर वन्दना करते हैं।

बंकिम बाबू एक सर्वतोमुखी प्रतिमा लेकर आज से १०० वर्ष पूर्व बंग भूमि पर अवतीर्ण हुए थे। उन्होंने साहित्य के किसी भी क्षेत्र को अछूता न छोड़ा और जिस क्षेत्र को छुआ उसी में उत्कृष्ट कोटि की रचना की। वे एक ही साथ कुशल उपन्यास लेखक, सरस कवि, खरे समालोचक तथा चुटीला व्यंग लिखने वाले थे। पर वे केवल साहित्यिक ही नहीं थे, साहित्यक के अतिरिक्त वे हिन्दु संस्कृति के रक्षक, धार्मिक समाज सुधारक और दार्शनिक भी थे। इन सब से बढ़ कर वे एक मनुष्य थे। धार्मिक, देशभक्त, सहृदय, उदार, और स्वाभिमानी मनुष्य। उनके जीवन में तीनों रूपों का सुन्दर समन्वय था। इनमें से पहले दो को आज हम संक्षेप से देखेंगे।

बंकिम के साहित्यक रूप से जनता अधिक; परिचित है। 'दुर्गेशनन्दिनी' 'कपाल कुण्डल' 'चन्द्रशेखर' 'आनन्द मठ' 'सीताराम' 'देवी चौधरानी' ने बंग साहित्य में हलचल पैदा कर दी थी। उनके मौलिक उपन्यास सर्वत्र चाव से पढ़े जाते थे और आज तक बड़े चाव से पढ़े जाते हैं। साहित्य सेवा के रूप में यह बात विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि उन्होंने जो कुछ लिखा अपनी मातृभाषा बङ्गला में ही लिखा। अंग्रेजी शिक्षा ने लोगों को अपनी भाषा से घृणा करना सिखा दिया था। उन पर भी अंग्रेज़ी नशा थोड़ी देर सवार रहा और उन्होंने पहला उपन्यास का 'राज मोहन की स्त्री' (राज मोहन्स वाईफ) अंग्रेजी में ही लिखा। परन्तु जल्दी ही उनका यह नशा उतर गया। बंग भाषा का सुन्दर, परिष्कृत और सुललित गद्य लिखने वालों में वे अग्रणी थे। 'लोक रहस्य' और चाबे के चिट्ठे में समाज की बुराइयों पर उन्होंने फबतियां कसी हैं। सूक्ष्म, सुन्दर और शिष्ट व्यंग लिखने वालों में बंकिम का स्थान बहुत ऊंचा है। साहित्य के प्रत्येक क्षेत्र को उन्होंने पूर्ण किया। श्री रवीन्द्रनाथ ने उनके साहित्यक कर्तृत्व पर जो कुछ लिखा है उसे हम उद्धृत करने का लोभ संवरण नहीं कर सकते। "एक दिन बंग भाषा एक तारे की तरह एक ही तार में बंधी हुई थी। बंकिम ने अपने हाथ से उसमें एक २ तार चढ़ा कर आज उसे वीणा का रूप दे दिया है पहले जिस में स्थानीय ग्राम्य सुर थे, आज वह विश्व सभा में सुनाने योग्य ध्रुपद और रागनियां रखती हैं। उन्होंने उसकी पराश्रया दशा मिटा कर उसे गौरवशालिनी बना दिया है।"

उन के धार्मिक और दार्शनिक रूपों का दिग्दर्शन 'धर्म तत्व' 'गीताभाष्य' 'कृष्णचरित्र' में होता है। अंगरेज़ी शिक्षा और सभ्यता के प्रभाव से बंगालियों में अपने धर्म का तिरस्कार करने की खिल्ली उड़ाने की तथा नास्तिकता की भावना ज़ोर पकड़ रही थी। बंकिम ने इस लहर को बदलने का प्रयत्न किया। 'स्टेट्मैस्न' में हेस्टी साहब ने हिन्दु धर्म पर कुछ कटाक्ष किये। बंकिम बाबू इसे सह न सके। उन्हों ने एक कृत्रिम नाम से जवाब में एक लेख माला लिखनी शुरु की। हेस्टी साहब का मुंह बन्द होगया। इस वाद विवाद में लोगों ने इतनी दिलचस्पी ली कि 'स्टेट्स्मैन' के विशेष संस्करण निकालने पड़े। 'कृष्ण चरित्र, में उन्होने गोपियों के साथ रास करने वाले, राधा के पति श्रीकृष्ण को उन सब लाञ्छनों से मुक्त कर लोकोत्तर आदर्श व्यक्ति के रूप में चित्रित किया है। उन का कथन था कि—"मुझे' यह भी मालूम हो गया है कि ऐसा सर्व गुणान्वित और सर्वपाप रहित आदर्श चरित्र और कहीं नहीं है। न किसी देश के इतिहास में और न किसी काव्य में (कृष्णचरित्र पृ० ३) वे 'कृष्णस्तु भगवान् स्वयं' के सिद्धान्त को मानते थे। अवतारवाद में उनकी दृढ़ आस्था थी। सीमित सान्त और अपूर्ण मनुष्य असीम अनन्त और पूर्ण भगवान् को नहीं जान सकता। भगवान् अपना ज्ञान कराने के लिये मनुष्य रूप में अवतरित होते हैं। भले हो हम उनके अवतारवाद सम्बन्धी विचारों से सहमत न हों किन्तु उन द्वारा प्रतिपादित श्री कृष्ण भगवान् के उज्वल चरित्र से हम अवश्य सभी सहमत होंगे।

हम उस अमर कलाकार और हिन्दु धर्म के रक्षक को एक बार फिर वन्दना करते हैं।

धर्म को तिलाञ्जलि

प्राचीन समय से ही भारत को धर्म प्रधान देश माना जाता रहा है। इसके निवासी सच्चे ईश्वरीय धर्म में विश्वास रखने वाले उसके अनुसार ही अपना क्रियात्मक जीवन व्यतीत करने वाले रहे हैं। आज से कुछ सदी पहले तक भारत की यही अवस्था थी। कालान्तर में धर्म में अन्ध विश्वास पैदा, होगया धर्म के वास्तविक स्वरूप को न समझ लोगों ने परम्परा तथा रूढ़ियों को ही धर्म समझ लिया। इस समय उनकी क्रिया में धर्म का स्थान न था: धर्म नामक किसी अज्ञात तत्व पर विश्वास अवश्य था। इसी ने नाना मत मतान्तरों को जन्म दिया। धर्म के नाम पर लड़ाई झगड़े हुए, खून की नदियां तक बहीं। भारत में ही नहीं संसार के अन्य देशों में भी धर्म के नाम पर अन्धविश्वासों के लिये अवैज्ञानिक सिद्धान्तों के लिये जन संहारक युद्ध हुए। परिणामतः बहुत से लोगों ने युद्धों की वास्तविक तह तक न पहुंचते हुए, सत्य के मूल को न पाते हुए धर्म को ही सब झगड़ों की जड़ समझकर उसके सर्वथा परित्याग के निश्चय को क्रिया में परिणत करना प्रारम्भ किया। धर्म और ईश्वर के प्रति क्रोध प्रदर्शित

किया गया। ईश्वर की सत्ता के विरुद्ध प्रबलतमि आन्दोलन के साथ उद्योग किया गया। परिणामतः कई देशों में उनका यह कार्य सफल हुआ। ईश्वर से सम्बन्धित धर्म तत्व का उन स्थानों से लोप होगया। प्रकृति तत्व ने उसका स्थान ले लिया। धर्म को, ईश्वर को तिलांजलि देने वालों में रशिया का नाम सबसे पहले लिया जा सकता है। ईश्वर है ही नहीं यही भावना वहां पर प्रबलतम उग्र रूप में विद्वानों से लेकर जनसाधारण तक में जागृत है। ईश्वर की सत्ता से इन्कार करते हुए भी उन्होंने धर्म के नियमों से सत्य अहिंसा आदि की सत्ता को किसी न किसी रूप में स्वीकार ही किया है और इन्हें क्रिया में लाना उत्तम समझते हुए किन्हीं २ अंशों में लाने का प्रयत्न भी किया है। ऐसे व्यक्ति सम्भवतः उन देशों में भी नहीं मिलेंगे जो कि सत्य आदि की सत्ता को या समाज की भलाई की दृष्टि से इनके व्यवहार में लाने के सिद्धांत को अङ्गीकार न करते हों। समाज की उन्नति के विचार से उन्हें इन व्यावहारिक सत्य नियमों को मानना ही पड़ता है।

भारत की अवस्था यहां की परिस्थितियां आज भी भिन्न ही हैं। अन्धविश्वासों के कारण किसी अज्ञात धर्म के नाम पर आज भी यहां पर लड़ाई झगड़ों ने विकट परिस्थितियां पैदा कर रक्खी हैं। हिन्दु, मुसलमान, सिक्ख आर्य समाजी, सभी एक दूसरे के प्रति अविश्वास का कारण बने हुए हैं। यद्यपि सच्चे अर्थों में अपने२ विश्वासों के अनुसार क्रियात्मक जीवन व्यतीत करने वाले व्यक्ति पारस्परिक झगड़ों से कोसों दूर किन्हीं अज्ञात पर्ण-कुटीर में ही अपने जीवन को शान्ति के साथ व्यतीत करते होंगे। धर्म के नाम पर और धर्म के स्थान पर कलह करने व्यक्ति सम्भवतः जहां अपने जीवन को उन्नत और द्वेषभाव रहित नहीं बना सकते वहां समाज का भी उपकार नहीं कर सकते। इस विषय में दूर जाने की आवश्यकता नहीं—दूसरे धर्म या मतमतांतरों के छिद्रान्वेषण की आवश्यकता नहीं, अपने ही घर में अपने ही समाज में इस कटु सत्य का पक्षपात-शून्य दृष्ट्या देखना चाहिए।

आज से ५०–६० वर्ष पूर्व महर्षि दयानन्द ने जिस उच्च भावना के साथ सच्चे ईश्वरीय धर्म को प्रसारित करने- ईश्वर भक्त पैदा करने- अपना आचरण भी उसी के अनुरूप बनाने के लिये और इस प्रकार समष्टि रूप से समाज को उन्नत करने के लिये कठिनतम प्रयत्न किया था, क्या वही भावना आज भी हमारे समाज में कहीं भी पाई जाती है? कहना न होगा कि वह उच्च भावना आज अनन्त में विलीन हो चुकी है। और जन-साधारण की दृष्टि में भी वर्तमान में आर्यसमाज की प्रगति रुक चुकी है। इस बात से तो सहमत होना ही चाहिये कि महर्षि प्रदर्शित मार्ग सत्य और वेदानुकूल है और वही संसार के उपकार के लिये जन समाज को उन्नत करने के लिये श्रेष्ठतम सुन्दर सोपान है। लेकिन वर्तमान में आर्यसमाज के अन्दर से धर्म नामक तत्व का सच्चे अर्थों में लोप सा हो रहा है। क्रिया में धर्म को स्थान नहीं दिया जा रहा है। आज आर्यसमाज के कर्ण-धारों के जीवन दिखावे के जीवन के साथ जनसाधारण के लिये अनुकरणीय नहीं रहे हैं। आर्यसमाज में उपदेशकों की कमी नहीं है। बड़े २ शास्त्रार्थ महारथी आर्यसमाज में गरजते हैं लेकिन अपने जीवन से उपदेश देने वाला, अपने क्रियात्मक दिव्य जीवन से देदीप्यमान करने वाला निराला ही दृष्टि गोचर होगा। आर्यसमाज के सिद्धान्तों से तो साधारण आर्यजनता भी परिचित हो चुकी है। लेकिन इन सिद्धान्तों के स्रोत वेदों से तो आर्यसमाज के सर्वेसर्वा भी अपरिचित ही हैं। वर्तमान में भी आर्यसमाज के प्रधान मन्त्री आदि उच्च पदाधिकारी तक भी वेदों में निहित सत्य से नितान्त अनभिज्ञ हो हैं। आर्यसमाज के उपदेशक भी इस दिशा में बहुत अधिक नहीं बढ़ पाये हैं। वेदों, उपनिषदों ब्राह्मणग्रन्थ आदि धार्मिक पुस्तकों का विचार छोड़िये इनके प्रकाण्ड पण्डित तो सम्भवतः उंगलियों पर भी न गिनाये जा सकें सन्ध्या और हवन तक से वास्तविक अर्थों में साधारण जनता ही नहीं आर्यसमाज के कर्णधार उपदेशक एवं प्रधान आदि भी बहुत से परिचित नहीं हैं। किन्ही अंशों में यह कहा जा सकता है कि आर्यजनता की अधिकांश संख्या संध्या और अग्निहोत्र से परिचित हो। लेकिन मेरा अभिप्राय संध्या और अग्निहोत्र के मूलपाठ से नहीं है क्योंकि यह तो तोता रटन्त है। मेरा प्रश्न तो महर्षि की उस सन्ध्या और अग्निहोत्र से है जिस के करने से जिस पर मनन करने से असीम शान्ति प्राप्त होती है। यह एक कटु सत्य है कि उपदेशकों, गुरुकुल के स्नातकों तथा कुछ अन्य इने गिने लोगों के अतिरिक्त इनके अर्थों को जानने वाले आर्यसमाज में न के बराबर हैं। बिना अर्थ जाने, बिना मतलब समझे संध्या अग्निहोत्र के पाठ का ईश्वर की प्रार्थना या ईश्वर का भजन नाम तो दिया ही नहीं जा सकता इसका तो कुछ और ही नाम रखना पड़ेगा। अस्तु।

आर्यजनता धर्माचार्यों के– उपदेशकों के उपदेश सुनती २ उब सी गई है। और अब इनसे दूर भागने लगी है। इसका क्या कारण? किस का दोष? कमी दोनों में ही होते हुए भी यह सत्य है कि धर्माचार्यों के जीवन जनता के जीवन को उज्वल बनाने में असमर्थ हैं। कितने उपदेशक आज आर्य जनता को सन्ध्या अग्निहोत्र के लिये प्रेरणा देते हैं। लेकिन कितने ऐसे हैं, जो सच्चे दिल से निडर होकर यह कह सकते हैं कि वह नियमपूर्वक इसके अर्थों को जानते हुए इस व्रत को निभाते रहे हैं? साधारण जनता के जीवन से उनके जीवन उच्च हो सकते हैं लेकिन आदर्श नहीं, पथ प्रदर्शक नहीं।

यह तो एक दैनिक कार्य है जिस के विषय में ही आर्य जनता की ऐसी शोचनीय अवस्था है। (अपूर्ण)

[पृष्ट १ का शेष]

मुग्ध होगये। श्री घोत्रे ने कन्या गुरुकुल के सम्बन्ध में निम्न सम्मिति दी है:—

कन्यागुरुकुल देखने की कई दिनों से इच्छा थी। वह आज पूरी हुई। देखकर बहुत प्रसन्नता हुई। संस्था में शुद्ध

राष्ट्रीयता का तथा धर्मपरायणता का वायुमण्डल छाया हुआ है। हमारे देश की शिक्षासंस्थायें देश की वास्तविक परिस्थिति से दूर और अस्पृष्ट रहती हुई नजर आती हैं। यह बड़ा भारी दोष है। मुझे यह देखकर अत्यन्त आनन्द हुआ कि कन्या गुरुकुल में शिक्षा का शान्त तथा उत्तम वायु मण्डल कायम रहते हुए छात्रायें देश की वर्तमान परिस्थिति से अवगत परिचित हैं।

अजगर का शिकार

(१५ जून को जिन्दा पकड़े गये अजगर का विवरण)

[लेखक— एक द्रष्टा]

अमावस से पहली चौदस की रात। चारों ओर गाढ़ा अन्धकार। घना जंगल और अजगर के लपेटों में जकड़ा हुआ कराहता हुए एक शृगाल बड़े दिनों बाद अजगर को एक शिकार मिला था। मस्ती से वह अपनी जगह पर शिकार की घात में बैठा था। बदकिस्मती से भोजन की तलाश करता हुआ एक शृगाल दम्पति उधर आ निकला। उन्हें क्या पता था कि अपना भोजन ढूंढते २ वे स्वयं किसी दूसरे का भोजन बनने वाले हैं। जंगल का नियम है "जीवो जीवस्य भोजनम्"। वहां मात्स्य न्याय का दौरदौरा है। कदम २ पर मौत मुंह बाये खड़ी है। शिकारी शिकार बन जाता है। शृगाल दम्पति के साथ भी यही हुआ। अचानक अजगर शृगाल पर झपटा। व लपेट दे कर उसे मजबूती से जकड़ना शुरु किया। उस भीमकाय अजगर के सामने छोटे से शृगाल की भला क्या बिसात? वह फौलादी शिकंजा कसता ही गया। बुरी तरह पिसने की पीड़ा से व्याकुल हो उस ने सहायता के लिये चीखना शुरु किया। पास में खड़ी शृगाली इस दृश्य को देख कर चुप न रह सकी। प्रेम की अनुभूति पर मनुष्य का ही एकाधिकार नहीं। पशु पक्षियों में शायद वह मनुष्यों से अधिक है। पति के दुःख से उसका हृदय विदीर्ण हो रहा था। उसने भी आर्त्तस्वर से चीखना शुरु किया। उन वेदना भरी चीत्कारों से आकाश गूंज उठा। कठोर से कठोर पाषाण हृदय भी उनसे पिघल जाता। पर अजगर पर इसका क्या प्रभाव पड़ता। वह तो न जाने कितनी बार इस प्रकार करुणाक्रन्दन सुन चुका था और उन्हें सुनते २ अपना दिल पत्थर बना चुका था। वह अच्छी तरह जानता था भौंकना चिल्लाना और रोना ही निर्बलों का बल है। बलवान् इन की परवाह न करते हुए अपना सीधा काम करता है। कुत्ते भौंकते रहते हैं और काफिले निकल जाते हैं। शृगाली और शृगाल चिल्लाते रहेंगे और मैं शान्ति से इस को निगल जाऊंगा। आज का शिकार पर्याप्त हो चुका था। अतः उसे चिल्लाती गीदड़ी को लेने कोई इच्छा न थी। पशुओं में मनुष्यों की तरह संग्रहालय की प्रवृत्ति नहीं होती।

महाविद्यालय की छत पर बैठे हुए ये चीखें हमारे कानों में पड़ीं। एक २ चीख कान में पड़ती और कलेजे को चीरती जाती। कुछ समझ न पड़ा क्या मामला है। इतने में नहर की ओर से दौड़ कर आता हुआ नौकर दिखाई दिया। उस का दम फूल रहा था उसने हांफते २ बतलाया कि एक अजगर ने शृगाल को पकड़ रखा है। शृगाल और शृगाली चीख रही हैं। यह सुनते ही हम नहर की तरफ दौड़े। कोलतार, कालिख और तवे के जापान से भी गाढ़ अंधेरा। हाथ को हाथ न सूझता था। चौदस की रात को आकाश में जो थोड़े बहुत टिमटिमाने वाले तारे थे उन्हें बादलों ने घेर रखा था कभी २ बिजली चमकती तो रास्ता दिख जाता। एक दो बिजली की बत्तियां (टार्च) भी थे पर उस घने अंधेरे में उनसे क्या हो सकता था? रास्ते में ठोकर खाते, गिरते पड़ते हम आवाज की ओर भागे जा रहे थे। चिल्लाने की आवाज धीरे धीरे कम होती जा रही थी। ऐसा लगता था कि चिल्लाने वाला बेदम हो रहा है झाड़ियों से उलझते हुए हम आवाज की ओर बढ़ते गये। एक जोर की चीख के साथ चिल्लाना और कराहना बन्द हो गया। यह बुझते दीपक की अन्तिम चमक थी। आहट सुनते ही शृगाली भी चला गया। हम ने मरे शृगाल को अजगर के लपेटों में जकड़ा हुआ पाया। अजगर का कायदा है कि वह अपने शिकार को लपेटों में जकड़ कर मारता है और फिर मजे से बैठ कर खाता है। ऐसे समय एकाएक विदेशियों का आगमन उसे बहुत अखरा। उस ने फुंकारों से अपनी नापसन्दगी जाहिर करनी शुरु की। पर हम फिर भी वहां खड़े रहे। जब बड़ी फुंकारों का कोई भी असर न हुआ तो उसने अपना शिकार छोड़ कर जाना ही उचित समझा। उस शृगाल को लपेटों से छोड़कर वह धीरे २ रेंगने लगा। उस विशाल प्राणी को जमीन पर घिसटते देख कर सहसा उसे छोड़ने की हिम्मत न पड़ी। हम भी उस के साथ २ चलने लगे। पर एक सज्जन ने साहस कर उस की पूंछ को छू ही दिया। छूते ही न जाने उस में फुर्ती आगयी। बिजली तरह पल भर देखते ही देखते वह आंखों से ओझल होगया।

उस घने अन्धकार में अपनी दो तीन बिजली की बत्तियों से उसको खोजना कितना खतरनाक था इस की सहज में ही कल्पना की जा सकती है। एक तो भूखा और फिर खिजा हुआ। करेला और फिर नीम चढ़ा। उस अंधेरे में न जाने किधर से झपट पड़े। हम में से किसी को अपनी लपेट में दबोच लेता तो हम क्या कर सकते थे। हमारे पास था भी क्या? बस दो चार लाठियां ही तो। इन से उसका बिगाड़ता। नंगे पैर उस भयावने जंगल में चलते डर लगता था। अचानक किसी कोमल टहनी से पांव छू जाता तो हम उछल पड़ते। कहीं यह गुदगुदा स्पर्श अजगर या किसी दूसरे सांप का ही न हो। शंकर के ब्रह्मज्ञान और अद्वैतानि का उस रात पूरा अनुभव हुआ। बहुत देर तक खोजने पर भी उस का कुछ पता न लगा। निराश होकर हम लौटने ही वाले थे कि सहसा एक सज्जन को पेड़ के पास एक झाड़ी में वह सरकता नजर आया।

फिर, चारों ओर शोर मच गया। उसे जिन्दा पकड़ने की इच्छा तीव्र हो उठी। चारों ओर घेरा डाल दिया।

अब उसका निकलना असम्भव था। हम अभी सोच ही रहे थे कि उसे किस प्रकार काबू करें कि वह पेड़ पर चढ़ गया। हमारी पहुंच से दूर एक बहुत ऊंची शाखा पर, लिपट कर बैठ गया। सुन रखा था कि अफ्रीका के जंगलों में बड़े २ अजगर पेड़ों पर बैठ जाते हैं और ज्योंही पेड़ के नीचे से उनका शिकार गुजरता है तो एकदम झपटकर उसके गले को दबोच लेते हैं। अरना भैंसे जैसे बलवान शत्रु उनसे अपनी अदावत इसी ढंग से उतारते हैं। डर था कहीं हमसे भी वैसा ही बदला न लेले। पेड़ पर चढ़ा हुआ अजगर पहले से कई गुना भयंकर लगने लगा। सब से सुगम उपाय गोली से मारना था। पर वहां न तो कोई बन्दूक थी और न ही कोई बन्दूक चलाने वाला। बड़ी दूर से एक महानुभाव बुलाये गये पर उनके पास सिर्फ चिड़िमार बन्दूक थी और वह भी घर की औरतों ने न लाने दी। मनु ने कहा है-एकः योधयते प्राकारस्थो धनुर्धरः।' अजगर भी अपने उस सुरक्षित किले पर बैठा हमारे सब प्रयत्न विफल कर रहा था। वह समझता था यहां से हटना या गिरना अपनी मौत बुलाना है। पहले उस पर रस्सी से फंदा डालना चाहा। पर एक भी फंदा ठीक न बैठा। रस्सी उसकी कोमल त्वचा से खिसक जाती। फिर कुछ मशालें जलायी। डंडों के सहारे उन्हें उसके मुख के पास लेगये। मुख झुलसने लगा पर वह टस से मस न हुआ।

अन्त में एक उपाय सूझा। एक लम्बा बांस लेकर उसके साथ तीस, चालीस अंश का कोण बनाते हुए एक और बांस का टुकड़ा मजबूती से बांध दिया। झुके हुए सिगनल के आकार के उस फंदे में उसके शरीर को फंसाकर नीचे खींचा वह अपने पूरे जोर से शाखा के साथ लिपटा हुआ था। सबने मिलकर जोर लगाया तो वह धड़ाम से नीचे आ गिरा।

अब उसका शिकार आसान था। इतनी देर तक संघर्ष करके वह थक चुका था। मशालों से मुख भी झुलसा हुआ था। डण्डों से मुख काबू करके कमर में एक मजबूत रस्सी बांध दी गयी। उसे महाविद्यालय की ओर घसीटना शुरू किया। कई बार उसको रस्सी फिसली जगह २ झाड़ियों में अटककर उसने छूटने का प्रयत्न किया। वह प्रयत्न ठीक वैसा ही था जैसा कि कुछ घंटे पहले शृगाल उसके फौलादी शिकंजे से छूटने का कर रहा था। पर जैसे शृगाल का छूटना असम्भव था वैसे ही इसका छूटना भी।

अब वह बन्दी की तरह आश्रम में एक पिंजड़े में पड़ा है। कहते हैं किसी की रोटी छीनना महा पाप है। आप किसी की रोटी छीनिये वह आपसे नाराज होजायगा, सीधे मुंह बात न करेगा, आपका जानी दुश्मन बन जायगा अजगर भी अपना भोजन शृगाल छिन जाने के कारण से सख्त नाराज हैं नाराज होकर भूख हड़ताल कर बैठा है। आमरण अनशन ही। वहां मरा हुआ शृगाल उसके सामने कई बार डाला है, पर वह उसे छूता तक नहीं मेंढक उसपर उछलते हैं, कूदते हैं, उसके मुंह के नीचे भी बैठ जाते हैं पर वह उनकी ओर देखता तक नहीं। लोग आते हैं, उसे देखते हैं, छेड़ते हैं पर वह चुपचाप पड़ा रहता है। केवल कातर दृष्टि से उनकी ओर ताकता रहता है ज्यादा छेड़ने पर कई बार अपना रोष प्रकट करने के लिये जोर २ से फुंकारें मारता है पर पिंजरे में बन्द शेर की दहाड़ की तरह वे व्यर्थ ही जान पड़ती हैं।

गुरुकुल समाचार

स्वास्थ्य समाचार

पिछले दिनों से राजपुर देहरादून में निम्न ब्रह्मचारी रुग्ण हैं

नाम	श्रेणी	रोग
कान्ति कृष्ण	१	मम्स
सुरेन्द्र	२	,,
रामप्रकाश	२	,,
रामनन्दन	१	,,
देवेन्द्र अम्बाला	२	,,
महेन्द्रपाल	३	,,
श्यामबिहारी	१	,,
सुरेश	२	,,
भक्तसिंह	२	,,
चन्द्रकेतु	२	,,
श्यामसुन्दर	२	,,
श्रीनिवास	३	टाइफाइड ज्वर
प्रेमप्रकाश	२	,,
यशपाल	४	,,
इन्द्रदेव	५	ज्वर
सुरेन्द्र	४	,,
दानवीर	५	,,
तिलक	३	चोट ज्वर
सत्य भूषण	५	,,
तेजसिंह	४	नेत्र
मोहनचन्द्र	२	खुजली

मम्स वालों में कान्ति कृष्ण, देवेन्द्र, भक्तसिंह, चन्द्रकेतु को ज्वर भी है। चिन्ता की कोई बात नहीं है। चिकित्सा होरही है।

गुरुकुलभूमि में, जिन ब्र० को मियादी बुखार की शिकायत थी। सबको आराम होरहा है। ब्र० सूर्य्यप्रकाश ३ श्रेणी को इसही में निमोनिया होजाने से अधिक कष्ट था। अब उसे भी पहिले से आराम है।

इधर अभी वर्षा अच्छी तरह प्रारम्भ नहीं हुई। गर्मी पर्य्याप्त है अभी अधिक तम तापमान ६० फा० हो जाता है।

संरक्षकों को आवश्यक सूचना

जिन संरक्षक महानुभावों को अपने ब्रह्मचारियों के फोटो की ज़रूरत हो—वे पत्र भेज कर मगवा सकते हैं—

सारी श्रेणी का फोटो—१ प्रति—फुल साइज़ दाम १)

एक ब्रह्मचारी का फोटो ३ प्रति-कार्टर साइज़ दाम १॥)

पता -प्रकाशचन्द्र वेदालङ्कार
अलङ्कार चित्रशाला, गुरुकुल कांगड़ी
ज़ि० सहारनपुर (यू० पी०)

सूचना

गुरुकुल कांगड़ी में सेवा कार्य के लिये बहुत से सज्जनों के प्रार्थना पत्र आते रहते हैं। ऐसे सज्जनों को उत्तर के लिए टिकट अवश्य भेजने चाहिये। उत्तर न मिलने की अवस्था में स्थानाभाव ही समझना चाहिये।

मुख्याधिष्ठाता
गुरुकुल कांगड़ी

चौधरी हुलासराय के प्रबन्ध से गुरुकुल यन्त्रालय गुरुकुल कांगड़ी में मुद्रित तथा प्रकाशित।

* ओ३म् *

"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत"   Reg. No. A. 2927

गुरुकुल

सम्पादक—भारतभूषण वेदालङ्कार

एक प्रति का मूल्य -)   [गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख-पत्र]   वार्षिक मूल्य २||)

वर्ष ३]   गुरुकुल काङ्गड़ी, शुक्रवार २५ आषाढ़ १९९५; ७ जौलाई १९३८   [संख्या ८

कबीर-जयन्ती के दिन

[१३ जून को शिमला में दिया गया भाषण]

[ले०—क्षितीश उपस्नातक]

एक मनुष्य पारस पत्थर की खोज में निकला। अनन्त रेगिस्तान में रेत का महासमुद्र पार करने के बाद अचानक उसे एक तालाब मिला और पूछ ताछ करने पर पता लगा कि यही वह तालाब है जिसमें पारस पत्थर और पत्थरों के साथ पानी के नीचे छिपा पड़ा है। वह लुब्ध और भोला मनुष्य उसी तालाब के किनारे बैठ गया और उस तालाब में से एक-एक पत्थर निकाल निकाल कर देखने लगा कि वह पारस है या नहीं। यह देख कर कि यह पारस नहीं है, वह पुनः तालाब में फेंक देता। इस प्रकार बार बार पत्थर तालाब में से निकालना, उसे पारस न देख कर तालाब में फेंक देना—यही क्रम बड़ी देर तक चलता रहा। पर पारस उसके हाथ नहीं आया। लेकिन तब भी उसकी इस क्रिया में कोई अन्तर नहीं आया—तालाब में से पत्थर निकालना और उसे पुनः उसी तालाब में फेंक देना-बार बार उसी क्रिया को दुहराना, और बार २ वही निराशा! पर वह हिम्मत हारने वाला नहीं था उसे विश्वास था कि कभी न कभी तो पारस हाथ आयेगा ही, और इसी विश्वास के आधार पर वह सायङ्काल तक उस तालाब के किनारे बैठा हुआ लगातार बार २ पत्थर उठाता और फेंकता रहा। अंधेरा जब धीरे २ बढ़ा आ रहा था तब अकस्मात् ही दूर पेड़ों के झुरमुट में खड़े हुए एक ग्रामीण ग्वाले ने—जो देर से इस लुब्ध मनुष्य के पागलपन को देख रहा था—देखा कि इसके हाथ में, अन्त में पारस पत्थर आ ही गया है। लेकिन उस पारस पत्थर को भी अन्य पत्थरों की तरह तालाब में फेंका जाता हुआ देख कर वह ग्रामीण ग्वाला दौड़ा और निकट ही था कि वह लुब्ध मनुष्य के हाथ को पकड़ लेता और कहता कि यही तो वह पत्थर है जिसके पीछे तुमने दर २ भटक कर इतनी ठोकरें खाई हैं, इतना बड़ा रेगिस्तान का समुद्र पार किया है और इतनी बड़ी बड़ी तपस्यायें की हैं। पर इसके पहले कि वह ग्रामीण उसके पास पहुंच पाता; उस लालची और अविवेकी पुरुष ने वह पारस पत्थर भी उसी तालाब में फेंक दिया।

ठीक ऐसा ही कुछ हम भारतवासियों ने भी किया है। हम भारतवासी स्वतन्त्रता की खोज में निकले—बड़े २ सत्याग्रह किये, बड़े २ बलिदान किये और बड़े २ कष्ट भोगे, पर अन्त में जब वह पारस हमारे हाथ में आया जिसके द्वारा हम भारत-माता की परतन्त्रता की बेड़ियों को छिन्न-भिन्न कर सकते थे और जिसके द्वारा हमारा राष्ट्र स्वतन्त्रता के स्वर्गीय सुख का उपभोग कर सकता था, स्वातन्त्र्य-प्राप्ति के एक मात्र साधन—उस पारस को—अपने 'साहित्य' को हमने तालाब में फेंक दिया, हम एक दम भुला बैठे। अरे!

अंधकार है वहां, जहां आदित्य नहीं है।
है मुर्दा वह देश, जहां साहित्य नहीं है॥

हां, आप लोग ताली पीटिये, पर आज मैं अपना माथा पीटता हूं कि इस माथे पर कुछ ऐसी दुर्भाग्य की लम्बी रेखा खिंची हुई है कि आज मुझे अपने देश को मुर्दा कहना पड़ रहा है। ऐ मेरी ज़बान! तेरे कट कर हज़ारों टुकड़े क्यों नहीं हो जाते! मेरे मुंह से निकाल कर तुझे कोई ज़मीन पर क्यों नहीं बिछा देता!—कि आज तुझे ऐसे अपशब्द कहने पड़ रहे हैं—'यह देश मुर्दा है।' ऐ सुनने वालो! तुम कान खोल कर सुन लो कि यह हम भारतवासियों का प्यारा देश, हम भारतवासियों की मातृभूमि आज मर गई है। पैंतीस करोड़ पुत्रों के रहते हुए भी, नदी-वन-पर्वतों का यह हरा भरा संसार का सबसे सुन्दर देश ज़िन्दा नहीं रह सका। ज़िन्दा नहीं रह सकता, क्योंकि इसके पुत्रों ने स्वयं अपने ही हाथ से इसके गले पर छुरी फेर दी है। कहां तो कार्लाइल यह कहता है कि—"मेरे एक हाथ में सारा

ब्रिटिश-साम्राज्य हो और दूसरे हाथ में शेक्सपियर का लिट्रेचर, और मेरे से पूछा जाय कि तुम इन दोनों में से किसको चुनते हो, तो मैं खुशी से ब्रिटिश-साम्राज्य को तिलाञ्जलि देने को तय्यार हूँ। शेक्सपियर के लिट्रेचर को मैं नहीं छोड़ सकता। मैं क्या कोई भी अंग्रेज़ बच्चा नहीं छोड़ सकता।" छोटे से लेकर बड़े से बड़े साम्राज्य और बेशुमार ज़मीन और जायदाद-यह सब क्या है? यह सब एक ऐसी सम्पत्ति है जो आज तो है, पर कल नहीं रहेगी। यह जड़ीभूत सम्पत्ति तो आज मेरे हाथ में है, पर कल किसी और के हाथ में चली जायेगी। ऐसी सम्पत्ति तो एक जाति से दूसरी जाति के हाथ में दिन रात आती और जाती रहती है और इस प्रकार की सम्पत्ति को प्राप्त करने के लिये जातियां एक दूसरे को खून की प्यासी बन जाती हैं। ठीक है आज तक दुनियां में जितने भी महाभारत और क़त्ले आम हुए हैं वे सब इस प्रकार की सम्पत्ति को प्राप्त करने के लिए केवल स्वल्प-से प्रयत्न की भूमिका-मात्र हैं, और इन भूमिकाओं में लिखे हुए कारनामों से इतिहास का पृष्ठ-पृष्ठ आज रंगा पड़ा है। लेकिन मुझे कहने दीजिये कि एक सम्पत्ति यह भी है जिसको प्राप्त करने के लिये किसी रक्तपात की आवश्यकता नहीं होती, आवश्यकता होती है अपनी संस्कृति को समुन्नत करने की, और उसको जातियों ने प्राप्त किया होता है सदियों की एकनिष्ठ साधना से। एक या दो दिन में बनने बिगड़ने वाली यह सम्पत्ति नहीं होती। यह सम्पत्ति जातीय साहित्य की सम्पत्ति है, वह नेशनल वैल्थ (National wealth) है। इस काल के अनन्त प्रवाह में सैकड़ों युग और सैकड़ों शताब्दियां पानी की छोटी २ तरंगों की तरह आकर खिसक जायेंगी, पर यह जातीय साहित्य की सम्पत्ति उसी प्रकार अविचल बनी रहेगी। उसी के लिए तो वेद भगवान पुकार उठे हैं—

पश्य देवस्य काव्यं न ममार न जीर्यति।

अरे! देख, यह उस दिव्य पुरुष का काव्य देख जो कभी नष्ट नहीं होता, कभी जीर्ण नहीं होता। यह तो अजर है और अमर है। क्यों नहीं तू भी इसे अपना कर अजर और अमर बन जाता? क्यों नहीं बन्धनों से मुक्त हो जाता? तुझे स्वतन्त्रता की चाह है—ले पकड़ अपने साहित्य को और आगे बढ़ा चल। वह सामने स्वतन्त्रता की देवी जयमाला लिए तेरी प्रतीक्षा में खड़ी है। बढ़ा चल, बढ़ा चल, जयमाला तेरे गले में पड़ेगी।

× × × ×

लेकिन, आज तो कबीर-जयन्ती का दिन है। सच तो यह है कि मैं बोलने खड़ा हुआ था कबीर-जयन्ती पर ही, पर मुझे डर लगा कि मैं कहीं विदेश में तो भाषण नहीं कर रहा हूँ। जिस देश के—नगर के कह लीजिये—लोग कालीदास और भवभूति को नहीं जानते, सूर और तुलसी को नहीं जानते, पर हां, मिल्टन को जानते हैं, शेक्सपियर को जानते हैं, डैण्टे को जानते हैं और गेटे को जानते हैं—उस नगर में कबीर के विषय में कुछ कहना अपनी फ़ज़ीहत कराना ही होगा। अच्छा होता, और यहां के लोग सचमुच उस महापुरुष के विषय में कुछ सुनना पसन्द करते, जहां लार्ड बिशप ऑफ़ केण्टर बरी सर्व-धर्म-सम्मेलन में यह कहता है—'मुझे कबीर के दोहों को पढ़ कर जितना सन्तोष प्राप्त होता है उतना दुनियां की और किसी चीज़ से नहीं।' जिनके सामने मैं भाषण दे रहा हूं—वे बेशक विदेश के रहने वाले हों, पर फिर भी मेरे अन्दर यह ग़लत विश्वास न जाने कहां से आकर जम गया है कि उन श्रोताओं के विदेशी होते हुए भी उनके कान स्वदेशी हैं और स्वदेश के किसी महापुरुष के विषय में कुछ सुनना उन्हें सह्य है।

× × × ×

एक अंग्रेज़ लेखक ने लिखा है—

मैं पहाड़ की तलहटी में खड़ा था। दूर से मैंने देखा कि उस पहाड़ की चोटी पर से एक बड़ा भयंकर दैत्य मेरी ओर आ रहा है। मैं डर गया। धीरे धीरे जब वह दैत्य आकृति निकट आई तो पता लगा कि यह दैत्य न होकर है तो कोई मनुष्य ही, पर मनुष्य भी वह है जो कभी मेरा दुश्मन रह चुका है। बहुत दिनों से मैं उससे अपने बैर का बदला लेने की प्रतीक्षा में था। आज अचानक ही अनायास यह अवसर हाथ आया। अपनी बाहें ऊपर चढ़ा कर मैंने लड़ने की पूरी तय्यारी करली और इस ताक में खड़ा होगया कि वह आये और मैं उसे धड़ाम से ज़मीन पर दे पटकूं। लेकिन मेरे आश्चर्य की हद न रही जब उस आकृति के बिलकुल पास आने पर मैंने देखा कि यह न तो कोई दैत्य है, न ही मेरा दुश्मन है, बल्कि वह तो मेरा सगा भाई है। मैं खुशी के मारे दौड़ा और एक दम उसके गले से लिपट गया।

यही हाल आज संसार के राष्ट्रों का है आज यूरोप का प्रत्येक राष्ट्र एक दूसरे की ओर लाल २ आंखों से देखता है और भूखे व्याघ्र की तरह दूसरे को हड़प जाने को तय्यार है। आत्म रक्षा के नाम पर शस्त्रों के कारख़ाने दिन दूनी रात चौगनी उन्नति कर रहे हैं और दिनों दिन महाप्रलय उपस्थित करने के लिये नये से नये साधन तय्यार कर रहे हैं। ज़हरीली गैसें, टैंक्स, हवाई जहाज़, मशीन गन आदि २— ये सब क्या हैं? इस प्रलयंकर भावी महायुद्ध के ये छोटे २ अग्रदूत हैं जिनमें मनुष्यों की लड़ाई न होकर इन सब साधनों की परस्पर लड़ाई होगी। इटली ने अबीसीनिया को हड़प कर ही लिया है, जर्मनी आस्ट्रिया को हड़प चुका है, और जापान के दांत चीन में भली भांति गड़ चुके हैं। राजनीतिज्ञों का कहना है कि आज समग्र यूरोप एक ऐसे बम के गोले के ऊपर खड़ा है जिसमें न जाने किस क्षण में छोटी सी चिनगारी लग जाय और सारा का सारा यूरोप एक धड़ाके में स्वाहा हो जाय। शायद वह समय दूर नहीं है जब राजनीतिज्ञों की यह भविष्यवाणी चरितार्थ हो जायगी।

यह तो राजनीति का क्षेत्र है। एक दूसरा भी क्षेत्र है जिसे मज़हब का क्षेत्र कहा जा सकता है। संसार में

कितने भिन्न २ मत-मतान्तर और सम्प्रदाय हैं। तू हिन्दू है, मैं मुसलमान हूँ, यह ईसाई है और यह यहूदी है। हम परमात्मा के स्वरूप के विषय में लड़ते हैं, कोई निराकार की उपासना करता है कोई साकार की, निर्गुण या सगुण के पचड़े से फुरसत नहीं, लेकिन हर एक मज़हब वाला यह अवश्य कहता है—तुम मेरे मत में विश्वास लाओ तो तुम्हारे गुनाह माफ़ कर दिये जायेंगे और तुम्हें स्वर्ग मिलेगा। और यही एक आपस की तू तू मैं मैं है जो कठमुल्लों को चैन से बैठने नहीं देती। किसी दूसरे मतवादी को देखते ही उनकी त्यौरियां बदल जाती हैं और म्यान में वह चमकीली सी धात खड़क जाती है जिसमें अब पानी का लेश भी नहीं रहा है। आये दिन होने वाले हिन्दू-मुस्लिम दंगे इस बात के प्रमाण हैं। किसी शायर ने कहा कहा है—

क्यों लड़ता है मूरख बन्दे! यह तेरी ख़ामख़याली है।
है पेड़ की जड़ तो एक वही, हर मज़हब एक एक डाली है ॥

इस में कोई शक नहीं कि संसार के किन्हीं दो व्यक्तियों में भी सर्वांश में समानता नहीं दिखाई जा सकती। हरेक दूसरे से भिन्न है। और यह भिन्नता ही तो सृष्टि की उत्पत्ति का रहस्य है। 'एकोऽहं बहु स्यां प्रजायेय, ही तो इस भिन्नता का मूल है। वस्तुतः तो वह एक है, और एक ही नाना नाम रूपों से शरीर धारण करके विचरण कर रहा है। अविवेकी इसे माया कह देते हैं। भिन्न भिन्न रंग, भिन्न २ सम्प्रदाय, भिन्न २ मत, भिन्न २ जाति और भिन्न २ व्यक्ति होते हुए भी इस सारे ब्रह्माण्ड-मण्डल में एक ऐसी समानता है जो एक सिरे से लेकर दूसरे सिरे तक ओतप्रोत है। मैं मुसलमान हूँ, मैंने हिन्दू को अपना दुश्मन समझा—कारण यही है कि मैंने उसे दूर खड़े होकर देखा है। काश! कि मैं उसके निकट खड़ा होकर उसके अन्दर झांक सकता! तब तो मैं पाता कि मैं मुसलमान नहीं हूं, वह हिन्दू नहीं है, बल्कि हम दोनों मनुष्य हैं, और मनुष्यता के नाते हम एक दूसरे के दुश्मन नहीं, भाई भाई हैं। एक पर्वत के ऊपर रहता है, दूसरा समुद्र की लहरों पर विचर रहा है; एक रेगिस्तान की तप्त बालुका-राशि को पार कर रहा है और दूसरा कहीं किसी जंगल की खाक छान रहा है — और इस प्रकार हज़ारों मील का व्यवधान होने पर भी मनुष्यता के नाते से सब मेरे भाई हैं। यह सारी वसुधा मेरा कुटुम्ब है। सब के अन्दर एक ही तो सूत्रात्मा वायु संचरण कर रहा है।

इस प्रकार निकट खड़े होकर जब मैं देखता हूँ कि वह दूर पर्वत की चोटी से मेरी ओर आने वाली आकृति कोई दैत्य नहीं है, न ही कोई मेरा वैरी है, बल्कि मेरा सगा भाई है। और तब मैं प्रेम के आवेश में दौड़ पड़ता हूँ – अपने भाई के गले से लिपट जाता हूं। इसी अवस्था को उपनिषद् ने कहा है—

तत्र को मोहः कः शोकः एकत्वमनुपश्यतः।

और इस प्रकार के विश्व प्रेम के प्रथम प्रचारक महात्मा कबीरदास ने इसी बात को अपने निराले बांके ढंग से कहा है—

लाली मेरे लाल की जित देखूं तित लाल।
लाली देखन मैं चली मैं भी होगई लाल ॥

उस महापुरुष ने विश्व को यही एकत्व का पाठ पढ़ाया है। उसने सारी सृष्टि को एक सूत्र में ग्रथित देखा और विश्वप्रेम का प्रचार किया। यही कारण था कि उसके मरने पर इधर से हिन्दू पहुँचे कि यह हिन्दू है, इसलिये इसके शव को हम ले जायेंगे और श्मशान में ले जाकर जलायेंगे; उधर से मुसलमान पहुंचे कि यह मुसलमान है, इस लिये इसके शव को हम लेजायेंगे और ज़मीन में दफ़नायेंगें। वह न तो हिन्दू था, न मुसलमान था। वह न जुलाहा था, न कुछ और था। वह तो—'लाली मेरे लाल की ...', वह कुछ नहीं था और सब कुछ था।

× × ×

सूचना

गुरुकुल के स्नातकों के प्रति

२८ ज्येष्ठ तदनुसार १० जून के गुरुकुल पत्र में स्नातक भाइयों से प्रार्थना की गई थी कि वे ५ आषाढ़ १८ जून तक शिक्षापटल के प्रतिनिधि के लिये उम्मीदवारों का नाम प्रस्तावक तथा अनुमोदक समेत भेज दें। यह अवधि एक मास के लिए और बढ़ा दी गई है। अब जो स्नातक महानुभाव प्रतिनिधि बनना चाहें वे अपना नाम प्रस्तोता कार्यालय में १८ जुलाई तक भेज सकेंगे। उसके बाद इन उम्मीदवारों के नाम गुरुकुल पत्र में प्रकाशित किये जावेंगे ताकि वोटर महानुभाव उनमें के किन्हीं दो के लिए अपना वोट दे सकें।

भवदीय
वागीश्वर
प्रोस्तोता

पुस्तक परिचय

देवचतुर्दशी

लेखक—श्री स्वामी सत्यदेव जी परिव्राजक

प्रकाशक सत्यज्ञान निकेतन ज्वालापुर

देवचतुर्दशी (निकेतन रत्नमालका पंचम पुष्प) समालोचना के लिये प्राप्त हुई है। पुस्तक में चौदह उपदेश-प्रद कहानिया हैं और स्वामी जी के अपने विदेश यात्रा के अनुभवों के आधार पर लिखी गई मालूम होती हैं। उपदेशों को कहानी का रूप दे दिया गया है। सारी पुस्तक भर में कहीं भी अश्लीलता का नाम निशान तक भी न होना इस की अपनी ही विशेषता है। भाषा बहुत ही सरल तथा मनोरंजक है।

कई कहानियां गुलाम हिन्दुस्तानियों के सामने आदर्श उपस्थित करने वाली हैं। पुस्तक उपादेय है। ३३० पृष्ठ की पुस्तक का मूल्य एक रुपया ठीक ही है। पुस्तकभंडार गुरुकुल कांगड़ी [सहारनपुर] से भी पुस्तक मिल सकती है।

गुरुकुल

८ जौलाई शुक्रवार १९३८

समाज सुधार

आर्य माज ने वर्तमान में भी कई प्रकार के समाज सुधार के कार्य अपने हाथों में लिये हुए हैं। स्कूल, कालिज, अनाथालय, विधवा सहायक सभा, वेद-प्रचार, हिन्दीप्रचार अछूतोद्धार आदि अनेकों कार्य इस समय आर्यसममाज द्वारा संचालित किये जा रहे हैं। इन कार्यों के करने का आर्यसमाज को श्रेय मिलना ही चाहिये। लेकिन इन सब लोकोपकारी कार्यों को करते हुए भी आज आर्यसमाज की अवस्था को शोचनीय हो कहा जा रहा है। जहां ५ समाजी भाई मिले वहीं आर्य-समाज की बुराइयों इस की कमजोरियों की गणना प्रारम्भ हो जाती है? आर्यसमाज के उत्सवों में जाइये वहां भी यही रोना रोया जाता है। कोई आर्यसमाज के गृहकलह की शिकायत करता है तो कोई २ आर्यसमाजी होने पर ही आक्षेप शुरु कर देता है।

महर्षि दयानन्द ने पुरानी कुरीतियों और अन्ध विश्वासों के प्रति उग्रतम आन्दोलन करते हुए और इन को जड़ से उखाड़ने पर समस्त शक्ति लगाते हुए इन कुरीतियों और अन्धविश्वासों के स्थान पर कुछ सत्य आदर्श उपस्थित किये थे उन्हीं आदर्शों के अनुसार जीवन पथ पर आरूढ़ होने के लिये उपदेश किये थे। मूर्तिपूजा के स्थान पर एक ईश्वर पूजा ईश्वर भक्ति सिखलाई। मृतक श्राद्ध के स्थान पर जीवित श्राद्ध मन्य बुज़ुर्गों का आदर सत्कार सिखलाया। बाल विवाह के स्थान पर २५ वर्ष तक ब्रह्मचर्य के बाद गृहस्थ प्रवेश का अधिकार बतलाया। इत्यादि। इन के साथ ही अपने जीवन को उच्चतम आदर्श जीवन बनाने पर बल दिया था।

समाज सुधार के कार्य को करते हुए आज आर्य-समाज ने व्यक्तित्व को ऊंचा उठाने के लिए क्या क्रियात्मक प्रयत्न किये हैं यह प्रश्न वस्तुत: गम्भीर होता हुआ विचारणीय है। आर्यसमाज ने इसके उपदेशकों ने मूर्ति-पूजा को शास्त्र विरुद्ध बतलाते हुए उसके स्थान पर क्या दिया? सूत्र रूप में कहा जाय तो आर्यसमाज ने हरेक खण्डनीय चीज़ का खण्डन करते हुए क्रियात्मक रूप से किस चीज़ का मण्डन किया? बातों से मण्डन करना कुछ मतलब नहीं रखता। मूर्ति पूजा पर से श्रद्धा हटाते हुए कितने अंश तक ईश्वर के प्रति सच्चे अर्थों में श्रद्धा पैदा की है? और क्यों आज आर्यसमाज में से श्रद्धा का अंश काफूर हो गया है?

मनुष्यों के वैयक्तिक जीवन को उन्नत बनाने के लिये प्रेरणा पैदा करने की आज बड़ी आवश्यकता है। वर्तमान में साधारण जनता भी आर्यसमाज के सिद्धान्तों से परिचित हो चुकी है ऐसी अवस्था में खंडन के कार्य से मंडन का कार्य अधिक लाभदायक सिद्ध हो सकता है। बिना मंडन के खंडन का कार्य शुष्क तथा द्वेष भावना पैदा करने वाला होता है। यदि आर्यसमाज के उपदेशक अपनी कार्य दिशा में ज़रा सा परिवर्तन करलेवें—जनता के मनों को भाने वाले सुन्दर २ व्याख्यानों के स्थान पर जनता को कटु लगने वाले सत्य तथा जीवन को उज्वल बनाने वाले उपदेशों को अपने जीवन तथा वाणी दोनों से ही किया करें तो जहां वे आर्यजनता का महान् उपकार करेंगे वहां आर्यसमाज के प्रति जनता की श्रद्धा की भावना को भी पैदा करेंगे। और इस प्रकार शहरों के कलुषित जीवन व वातावरण को अपने दिव्य जीवन व प्रवचन से उन्नत बनाते हुए महर्षि दयानन्द के कार्य क्रम को [जिसकी तरफ कि आर्य समाज का ध्यान बहुत अधिक नहीं गया है] पूरा करने में सहायक हो सकेंगे।

लेकिन इसका यह अभिप्राय कदापि नहीं लेना चाहिये कि आर्यसमाज का वर्तमान कार्य क्रम अच्छा नहीं है? यह अच्छा तो है ही लेकिन इसे और अधिक सुन्दर किया जा सकता है। उपदेशक लोग अपनी वाणी से ही उपदेश न करें परन्तु अपने जीवन से लोगों को उपदेश करें। व्याख्यान देकर थोड़ी देर के लिए जनता को प्रभावित करने की अपेक्षा जीवन से उपदेश करना कठिन अवश्य है लेकिन अपना स्थिर अमिट प्रभाव पैदा करने वाला है लोगों के जीवन को उच्च बनाने वाला है। पं० गुरुदत्त विद्यार्थी को आस्तिकवाद के सिद्धान्त ईश्वर की सत्ता के विषय में दो गई युक्तियां प्रभावित न कर सकीं उन्हें आस्तिक न बना सकीं लेकिन महर्षि के ज्योतिर्मय जीवन के क्षणिक दर्शन ने एक चमत्कारिक प्रभाव कर दिखाया उन्हें क्षण भर में ही पक्का ईश्वरभक्त आस्तिक बना दिया। इस कार्य के लिए बहुत अधिक तय्यारी की आवश्यकता है। अपने आपको तपाने की आवश्यकता है समाज के वर्तमान गृहकलह, राग द्वेष आदि से पृथक् रहने की आवश्यकता है। तभी सच्चे अर्थों में सुधार का कार्य हो सकता है।

श्री देवराज सेठी की सफलता —

पंजाब के झङ्ग के इलाके से श्री देवराज जी सेठी भू० पू० स० मुख्याधिष्ठाता गुरुकुल कांगड़ी पिछले दिनों कांग्रेस की तरफ से एसेम्बली के लिए उम्मीदवार के रूप में खड़े हुए थे। बड़ी प्रसन्नता की बात है कि आप उक्त इलाकों में निर्विरोध चुन लिए गये हैं। राजनैतिक कार्य क्षेत्र में पदार्पण करने से पहले गुरुकुल कांगड़ी में रहते हुए भी आप पूर्ण रूप से कांग्रेस के सिद्धान्तों में विश्वास रखते थे। इतना ही नहीं समय २ पर आप कांग्रेस के आदेशों के अनुसार कार्य करते हुए जेल यात्रा भी कर चुके हैं। गुरुकुल से आने के बाद से तो आपका जीवन विशुद्ध राजनैतिक हो हो गया है। लोक सेवक संघ के आजीवन सदस्य बन कर आज तक जो आपने कांग्रेस के कार्यक्रम के अनुसार देश की सेवायें की हैं उनको देखते हुए आपके लिए यह पद उपयुक्त ही है। हम आपकी इस सफलता का हृदय से स्वागत करते हैं।

यहां से वहां

(ले०—श्री 'चक्रचरण')

विश्वासघात सब से बड़ा पाप है। मैंने अपने पाठकों को मसूरी से शिमला लेजाने का विश्वास दिलाया था। किन्तु मैं विश्वासघाती नहीं हूं—यह आगे सिद्ध करूंगा, पहले मेरे साथ चकरौता में दो तीन दिन बिता लीजिये। चकरौता में हम २ जून की शाम को आये थे, आज ३ जून है—चलिये चकरौते का प्रसिद्ध प्रपात देखने चलें।

शहर से लगभग १ मील चलने के बाद 'मैकमिलन्स एण्ड को' के पास से प्रपात के लिये पगडण्डी फटती है। यहां से वह प्रपात—जिसे यहां वाले लम्बा-पानी कहते हैं—करीब ४ मील दूर है। १ मील तक तो रास्ता सीधा साधा नीचे उतरता जाता है, पर इसके बाद लगातार ३ मील तक सख्त उतार है और उस पर भी रास्ता कोई ठीक पता नहीं लगता। जो जिधर से उतरना शुरु करदे उसके लिये वही रास्ता है। १० बजे के आस पास ठीक घाटी में उतर चुके, कुछ प्रपात की-सी आवाज़ भी आने लगी, पर एक दम मोड़ पर होने के कारण वह लम्बा पानी इतना लम्बा होने पर भी तबतक नजर नहीं आया जब तक उसके बिलकुल सामने ही नहीं पहुंच गये। यद्यपि, वह ४० फीट ऊंचे से गिरने वाली जलकी धारा दीखती तो तभी है जब उसके बिलकुल सामने पहुंच जाते हैं, पर उसके शिशिर सलिल-सीकर तो दूर से ही पथिक का स्वागत करने लगते हैं। ३ मील तक लगातार उतरने के बाद इतनी गर्मी में जो पसीना आगया है वह भी शीतल जल-कणों से मिश्रित हवा का स्पर्श पाते ही हवा होजाता है। प्रपात के पास तक पहुंचने के लिये आवश्यक है कि खुला छाता आगे करके बढ़ें, नहीं तो सारे कपड़े गीले होजायंगे। एक ऊंची सी चट्टान पर बैठकर इसका निकट दूर से अवलोकन करते हैं।

एक साथी कह रहा है—आज से दो साल पहिले जब हम यहां आये थे, तब भी इसकी शतशः धारायें इसी प्रकार गिर रही थी उतनी ही ऊंचाई से उसी प्रकार टेढ़ी मेढ़ी होती हुई और उतने ही वेग से। तब से अब तक इसमें कोई अन्तर नहीं आया। हां इसमें कोई अन्तर नहीं आया। काल के अनन्त प्रवाह में सैकड़ों युग और सैकड़ों शताब्दियां उसी प्रकार विलीन होती चली जायेंगी जिस प्रकार इसकी एक २ छोटी से छोटी धारा नीचे की अतल जल-राशि में विलीन होती चली जाती है। परन्तु इसके वेग में अन्तर नहीं आयेगा। समय बदलेगा—राज्य उलट पुलट होजायेंगे, पुरानी संस्थायें तहस नहस होजायेंगी और उनका स्थान नई संस्थायें लेलेंगी, एक वाक्य में—संसार का मानचित्र बदल जायेगा। कितना ही लम्बा अरसा गुजर जावे, पर जैसे यह लम्बा पानी नहीं बदलेगा, इसका वेग इसी प्रकार अक्षुण्ण रहेगा और यह अनन्तकाल तक योंही गिरता चला जायेगा। गिरना इसका धर्म है।……जब पेड़ों में से छनकी २ सूरज की किरणें छनकर आती हैं और इसके उड़ते हुए शीकर संघात से अपने अधरों का स्पर्श करता है, तो कैसी इन्द्रधनुष की पंक्तियां सी आकाश में झिलमिल २ उड़ती चली जाती हैं! जब रवि रश्मि एक२ बूंद में प्रतिबिम्बित होतीहै और फिर विचलित होजाती है, तो सातों रंग किस प्रकार एक दूसरे के ऊपर अपना आवरण डालते चले जाते हैं!……घण्टों इसी प्रकार बैठे रहे। संतोष नहीं होता।

थोड़ा नीचे की ओर आकर कपड़े धोये, धोकर सूखने को धूप में डाल दिये। जब तक ये सूखें तब तक हम इस लम्बे पानी की लम्बाई नापें। पहुंचे पास स्नान के लिये, उस ४०० फीट की ऊंचाई से गिरती हुई धारा की ओर धीरे धीरे बढ़ने लगे। ज्यों २ आगे बढ़ते गये त्यों २ पानी पीछे की ओर धकेलने लगा। कुछ और आगे बढ़ने की हिम्मत की। अरे ओ! देख कहीं उसके नीचे सिर न देना, नहीं तो खोपड़ी उड़ जायेगी। नहीं माने, थोड़ी और हिम्मत की, कुछ और आगे बढ़े अबकी बार उस धारा के प्रवाह ने इतने ज़ोर का धक्का दिया कि अब दुबारा वहां तक जाने की हिम्मत कोई नहीं कर सका। उसी समय दो अंग्रेज़ अचानक आनिकले कहीं से कैमरा लेकर इस दुस्साहसी टोली की छाया कैमरे में बन्द करली गई।

फिर रोटी बोटी खाने में भी बहुत देर लग गई। पर चलो, अब चलें, ज्यादा देर नहीं करनी चाहिये। इतनी चढ़ाई चढ़नी है। और फिर शाम को समाज मन्दिर में व्याख्यान भी तो देना है।

× × ×

हां तो, मैं विश्वासघाती क्यों नहीं हूं। जानते हैं आप कि इस बार हरिद्वार में जो कुम्भ का महामेला हुआ था, उसका प्रसाद लोगों को क्या मिला है? उसी कुम्भ का परिणाम है कि क्या मैदान में और क्या पहाड़ में—सभी जगह हैजा फैला हुआ है। अभी हम से पहले भी कई यात्री चकरौता से पैदल शिमला जा रहे थे, पर उन्हें मुण्डाली से वापिस लौटना पड़ा है। वे ही बताते हैं कि त्यूनी में इतने ज़ोर का हैजा है कि सड़क पर लाशें बिछी पड़ी हैं और उन्हें कोई दफ़नाने वाला नहीं मिलता। तहसील की रिपोर्ट भी इसी बात को प्रमाणित करती है। ऐसी अवस्था में स्थानीय आर्य भाई हम से अनुरोध करते हैं कि हम इस मार्ग से न जायें। लाचार होकर प्रोग्राम बदलना पड़ा। इस विवशता को भी क्या विश्वासघात कहा जायगा? इस लिये मैं कहता हूं कि यद्यपि मैंने अपने पाठकों को मसूरी से शिमला ले चलने का विश्वास दिलाया था। पर विश्वासघाती तो कम से कम मैं नहीं हूं।

वह बिचारा कुली जिसने हमारा सामान ले कर हमारे साथ शिमला तक जाना था, अब उसे यहीं से लौटना पड़ेगा। अब से तीन साल पहले गुरुकुल से एक दल गंगोत्री गया था तब भी यही कुली साथ था।

अब फिर वही हमारे साथ जा रहा था। नाम है उसका जयधन। दो तीन दिन की मजदूरी उसे दे दी, ऊपर से बख़्शीश दे कर उसे खुश भी कर दिया, पर जब हम से अलग होने का मौक़ा आया तो कहने लगा— "ब्रह्मचारी बाबू! तुम्हें छोड़ कर जाने की मर्जी नहीं होती। तुम बड़ा भला-भला आदमी है। फिर कभी कहीं आना तो मुझे भी याद करना।" पर कहते हैं कि समय और ज्वारभाटा कभी किसी की प्रतीक्षा नहीं करते, हमारी भी नहीं की। समय आया और ४ जून की दुपहर को हम भी चकरौता से विदा हुए, लारी में बैठकर ५ घण्टे के अन्दर २ सहारनपुर जा उतरे।

उसी रात १० की गाड़ी में बैठकर सहारनपुर से अम्बाला और फिर अम्बाला से ३ बजे की गाड़ी में बैठ कर सवेरा होते न होते कालका पहुंच गये। नहाने-धोने में दुपहर होगई। रोटी खा-पीकर ठीक १२ बजे कालका से पैदल रवाना हुये सोलन को। १८ मील बाद-धर्मपुर आया, वहां तक पहुँचने में शाम होगई, वहां रात्रि का भोजन किया और फिर आगे चल पड़े। समाज के प्रधान श्री पं० केशवदास जी का प्रेम प्रशंसनीय था। अभी सोलन ९ मील और बचा था। ये २७ मील पार करके जब सोलन के समाजमन्दिर में पैर रखा तो रात के १० बजे थे।

सोलन में श्री स्नातक विद्याधर जी ने अच्छा स्वागत किया। अगले दिन सवेरे एक भिखारी के सुमधुर प्रभाती गान से आंखें खुलीं। उठे और चल पड़े। कल दुपहर को उस चिलचिलाती धूप में कोलतार की सड़क पर नंगे पैर चलने के कारण कइयों के तलवों में छाले पड़ गये हैं, लाचार उन्हें सोलन से मोटर में बैठना पड़ा।

१० मील बाद आता है कण्डाघाट यहां अचानक आर्यसमाज के प्रसिद्ध रंगोनज्ञ श्री पं० धर्मवीर जी के के दर्शन होगये। अपने निवास स्थान से ३ मील दूर होने पर भी आपने अच्छा आतिथ्य किया। फिर आगे शिमला २० मील बच गया। शिमला से ५ मील उधर तारादेवी स्थान है जहां बड़ी अच्छी डेयरी है, और सारे शिमले को कैण्टर-मिल्क तथा मक्खन आदि सब यहीं से सप्लाई होता है। शाम को वायसराय की नगरी में पैर रखा।

और पहाड़ी स्थान (Hill stations) अपने सौन्दर्य में या स्वास्थ्यप्रद जलवायु में चाहे कितने ही बढ़े चढ़े क्यों न हों, पर चहल पहल में शिमला का मुक़ाबला नहीं कर सकते। आख़िर वायसराय की नगरी है न! ९ जून को सम्राट् का जन्म-दिवस था, माल रोड की दुकानों पर उस दिन फहराते हुये यूनियन जैकों को देख कर एक सच्चे भारतवासी के हृदय में क्या कुछ उठना चाहिये- यह बताया जा सकता, यदि सारी मालरोड पर मक्खियों के छत्ते की तरह जगह जगह पुलिसमैन न छाये होते और जहां वायसराय की ओर से 'God save the king' की प्रार्थना होती थी उस विशिष्ट स्थान पर जाने से आम दर्शकों के लिये रोक न होती तो। किन्तु जाने दीजिये, इस ग्रीष्म की राजधानी के विषय में आप स्वयं भी बहुत कुछ जानते हैं, जो कुछ कमी रहती है उसे समाचार-पत्र पूरा कर देते हैं, इसलिये 'अत्र मौनं हि शोभते'।

× × × ×

चकरौता से शिमला अर्थात् यहां से वहां' तो हो चुका। पर क्या यात्रा यहीं समाप्त होगी? हैजे के कारण 'मसूरी से शिमला' नहीं आसके तो क्या, उस 'शिमला से कुल्लू' की तय्यारी है। यात्रा अभी समाप्त नहीं, प्रारम्भ होगी। शिमला में कुछ अधिक दिन ठहरना पड़ गया। १५ जून को समाज के मन्त्री जी से विदा लेकर उनके सहानुभूति-पूर्ण व्यवहार के लिये धन्यवाद देते हुए शिमला से रवाना हुए। संजोली से आगे नारकण्डा के रास्ते पर चलने लगे। हां चलने तो लगे, पर उस ग्यारह बजे की धूप में भी श्री मन्त्री जी का हम गुरुकुल के ब्रह्मचारियों के प्रति सदय और प्रेम-पूर्ण व्यवहार रह रह कर याद आता रहा।

संजोली से २ मील चलने के बाद सड़क के दो भाग हो जाते हैं। बायें हाथ वाला रास्ता यशोत्वरा जाता है। दृश्य बहुत अच्छा है, देवदारु का घना जंगल देखते ही बनता है। प्रायः सैलानी लोग शिमला से यशोवरा का राउण्ड (Round) लगाने आते हैं। हमने वहां नहीं जाना था, हम दायें हाथ वाली सड़क पर आगे बढ़े। धीरे धीरे चढ़ाई शुरू होती है। लगभग दो-तीन मील तक तो दुपहर होने के कारण काफी गर्मी का सामना पड़ा, पर पीछे जब चीड़ का जंगल आना शुरू हुआ तो कहीं किसी घने पेड़ की छाया में बैठने पर शीत लगने लगा। सारा रास्ता लगभग ८००० फीट की ऊंचाई पर चलता है। बीच में खच्चरों पर सामान ले जाते हुए कुली बहुतायत से मिलते हैं, क्योंकि इधर उधर की रियासतों से और सीधा कुल्लू से जो सामान आता जाता है वह सब इसी सड़क के द्वारा होता है। ठेठ हिन्दुस्तान के अन्त तक— जहां तिब्बत और हिन्दुस्तान की सीमाएं मिलती हैं वहां तक एक मात्र यही एक सड़क जाती है। इसका नाम ही ग्रेट तिब्बतन रोड (Great Tibetan Road) है।

आठ मील के बाद कुफरी पड़ाव आता है, इसकी ऊंचाई ८२१८ फीट है। पानी बड़ा ठण्डा है। चीड़ की छाया में बैठ कर दुपहर का भोजन किया, कुछ ठण्ड-सी लगी तो कम्बल ओढ़ कर वहीं लेट गये। डेढ़-दो घण्टे आराम करके आगे बढ़े।

पर्वत-यात्रा का स्वाद पैदल चलने में है। मैं एक बात कहना भूल गया हूं कि शिमला से चलते हुए हमने अपना सारा सामान पैक करके गुरुकुल वापिस भेज दिया था। और अपने कन्धे पर एक कम्बल डाल कर चल खड़े हुए थे। हाथ में छाता, कन्धे पर एक कम्बल—

कहिये है न पक्का यात्री-दल ! कुली कुली का कोई टण्टा ही नहीं।

जहां देखा तवा—परात ।
वहीं बिताई सारी रात ॥

कुफरी से आगे ४ मील है फागू। हलका उतार है। चीड़ का जङ्गल बड़ा सुन्दर है। रास्ते में कहीं पानी नहीं मिलता और उसकी कोई आवश्यकता भी नहीं पड़ती। फागू में सुन्दर डाक बंगला बना है। ठण्डी २ हवा सनसनाती हुई चलती है। सर्दियों में, कहते हैं कि आस पास के इलाकों में सब से अधिक बर्फ यहीं पड़ती है यद्यपि ऊंचाई सिर्फ ८१२५ फी० है, पर कई बार ६-९ फीट गहरी बर्फ पड़ जाती है। कारण यही है कि यह स्थान चारों ओर से खुला हुआ है और हवा भी खूब चलती है। इसी डर से गांव पहाड़ की ओट में बसा है।

आगे ५ मील है थ्योग। आज के दिन का पड़ाव यही है। सारा रास्ता बिल्कुल गंजा है। कहीं हरियाली नहीं। इधर उधर ऊपर नीचे कहीं कोई एकाध झोंपड़ी दीख जाती है, नहीं तो बस्ती भी कहीं नहीं है। बस्ती कहां से हो, जब पैदावार ही कुछ नहीं। इधर की बहुत-सी रियासतों का यही हाल है। शायद ये रियासतें स्वतन्त्र हैं भी इसीलिए कि इनसे कोई आमदनी नहीं, नहीं तो ब्रिटिश गवर्नमेंट क्या कभी छोड़ने वाली थी। थ्योग की ऊंचाई ७४८० फी० है, फागू से काफी नीचे है। शाम को पहुंचे, स्कूल के बोर्डिङ्ग में हमें ठहराया गया। देख कर आश्चर्य हुआ कि यहां भी समाज-मन्दिर है। श्री म० रलाराम जी समाज के मन्त्री हैं। आपने ही हमारे ठहरने का और भोजनादि का प्रबन्ध कर दिया। स्थानीय पोस्टमास्टर भी आप ही हैं। आपका प्रेम-पूर्ण व्यवहार प्रशंसनीय था।

सवेरे उठ कर चले। आज नारकण्डा पहुंचना था। थ्योग से नारकण्डा २२ मील है। ११ मील बाद मतियाना पड़ाव आता है। मार्ग सुन्दर और हरा भरा है। डाक बंगला भी अच्छा बना है। दुपहर की रोटी वहीं पकाई और खाई। मतियाना से ३ बजे चले, ११ मील चलना था। थोड़ी २ चढ़ाई पड़ती है। मार्ग में सेबों के बाग़ भी आते हैं। देवदारुओं में जैसे होड़ लगी है कि कौन ऊंचा है।

शाम के सात बजे, और हम भी पड़ाव पर पहुँच लिये। इस स्थान की ऊंचाई है ९१२० फीट। ठण्ड काफी है। पानी बहुत ही ठण्डा है। नारकण्डा का डाक बंगला दर्शनीय है। यहां तक वायसराय भी आ चुका है। यही कारण है कि अब तक इतनी चौड़ी सड़क चली आई है और स्थान स्थान पर डाकबंगले भी बने हैं।

× × × ×

वास्तव में तो अब 'यहां से वहां' पूरा हुआ चकरौता से शिमला और शिमला से नारकण्डा, अर्थात् चकरौता से नारकण्डा। कहां से कहां ? यहां से यहां।

यहां जो मील का पत्थर लगा है उस पर लिखा है—कुल्लू ८३ मील।

गुरुकुल समाचार

स्वास्थ्य समाचार

ऋतु साधारण है। गर्मी काफी पड़ रही है। वर्षा नहीं हो रही है। वर्षा के लक्षण भी नहीं नज़र आते। गत सप्ताह अधिकतम तापमान १०० फा० रहा है। गुरुकुल के चिकित्सालय में ब्र० नारायण, सूर्यदेव, जगदीश कुलभूषण अब बिल्कुल स्वस्थ हैं। ब्र० सूर्यप्रकाश को भी पहले से अधिक आराम है, आशा है शीघ्र ही कमज़ोरी आदि दूर होकर पूर्ण स्वस्थ हो जावेगा।

विद्यालय विभाग की श्रेणियां जो कि राजपुर में हैं आराम से हैं पहले के बीमार ब्रह्मचारी अब अपेक्षया अधिक अच्छे हो गये हैं। ब्र० दानवीर गत सप्ताह उन्माद रोग से पीड़ित रहा है आशा है वह शीघ्र ही स्वस्थ हो जावेगा। मुख्याधिष्ठाता श्री दीनदयालु जी शास्त्री ब्रह्मचारियों के निरीक्षण व अवलोकन के लिए कुछ दिन से राजपुर गए गए थे अब वापिस आ गये हैं।

महाविद्यालय विभाग के कुछ ब्रह्मचारी यात्राओं से वापिस आ गये हैं। काश्मीर और कुल्लू यात्रा के ब्रह्मचारी सकुशल गुरुकुल पहुंच चुके हैं। इस समय ब्रह्मचारियों की संख्या लगभग ४० हो चुकी है।

मुख्याधिष्ठाता श्री प्रो० सत्यव्रत जी गुरुकुल में आ गये हैं। अन्य उपाध्याय महोदय तथा ब्रह्मचारी भी कुछ दिनों में गुरुकुल पहुंच जायगे।

गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ

यहां एकदो वर्षा होने से ऋतु सुहावनी और ठंडी होगई है। ग्रीष्मावकाश के पश्चात् गुरुकुल १५ आषाढ़ १५९५ तदनुसार ८ जुलाई १९३८ को खुलेगा। पर्वतीय यात्राओं की पार्टियां १ म जुलाई तक गुरुकुल लौट आई हैं। ग्रीष्मावकाश में जो ब्रह्मचारी अवकाश पर घर गये हुये हैं उनके ५ जुलाई तक अवश्य गुरुकुल आश्रम में पहुंच जाना चाहिये। संरक्षक महोदय यथा समय अपने ब्रह्मचारियों को गुरुकुल पहुंचा देना चाहिये और उनके रहन सहन तथा नियम पालन सम्बन्धी अपनी सम्मति भी भेजने का अनुग्रह करें।

यात्रा के प्रेमियों से

मैं अगस्त के शुरू में काश्मीर की सिन्ध लिदर व लोलाब घाटियों में घूमने के लिए जाना चाहता हूँ। मुझे प्रसन्नता होगी यदि कुछ स्नातक भाई इस सुन्दर यात्रा में मेरा साथ दे सकें। यात्रा में एक मास से कुछ अधिक समय लगेगा। यात्री मित्र मुझ से पत्र व्यवहार कर सकते हैं—

निवेदक—
दीनदयालु शास्त्री
गुरुकुल कांगड़ी

चौधरी दुलामराय के प्रबन्ध से गुरुकुल प्रेस गुरुकुल कांगड़ी में मुद्रित तथा प्रकाशित।

* ओ३म् *

"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत" Reg. No. A. 2927

गुरुकुल

सम्पादक—भारतभूषण वेदालङ्कार

एक प्रति का मूल्य -) [गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख-पत्र] वार्षिक मूल्य २॥)

वर्ष ३] गुरुकुल काङ्गड़ी, शुक्रवार ३२ आषाढ़ १९९५; १५ जौलाई १९३८ [संख्या ९

नाहं मन्ये सुवेदेति नोन वेदेति वेद च ॥

[ले०— श्री ब्रह्मपुरी जी महाराज]

[गताङ्क से आगे]

धर्म का प्रचार चलाने के लिये तो यह सब व्यवस्था ठीक है परन्तु वास्तविक विद्यार्थी को विद्वान् बनने के लिये ऐसे समाज में क्या २ कठिनाइयां पेश आती होंगी उसकी कल्पना हम पूज्यपाद् स्वामी दयानन्द जी सरस्वती की जीवनी में से देख सकते हैं। औदीच्य ब्राह्मण का बालक मूलशङ्कर १२-१३ बरस की अल्पायु में अपनी माता की गोद में से भाग खड़ा होता है, उसे आजकल के विद्यार्थियों की तरह मां बाप ज़बरदस्ती बोर्डिङ्ग स्कूल में नहीं भेज रहे हैं। वहां से चलकर जब हम उसी व्यक्ति का स्वामी दयानन्द सरस्वती के रूप में दर्शन करते हैं तो इस बड़े विशाल जीवन में उन पर क्या २ बीती होंगी इसकी कल्पना आज का किसी बोर्डिङ्ग स्कूल का लड़का कदापि नहीं कर सकता, क्योंकि उसके लिये पलङ्ग, मेज, कुर्सी, बिजली की रोशनी, पङ्खा, सुराही, नौकर तथा स्वादिष्ट परिपक्व भाजन आदि सुख साधन विपुल रूप से विद्यमान हैं। वहां पर गुरु शिष्य सम्बन्ध का चित्र भी आदर्श मिलता है।

गुरु भी हों तो पूज्यपाद स्वामी विरजानन्द जी जैसे हों कि आप अपने विद्या के मद में ऐसे चकचूर हैं कि अपना प्रज्ञाचक्षु होकर शरीर के एक मुख्य अङ्ग से अपङ्ग होना भी भूल सकते हैं और Despotic Lord की तरह गाली गुफ्ता तथा मार पीट का कार्यक्रम जारी रखते हैं; और शिष्य भी हों तो स्वामी दयानन्द जी जैसा हो कि जो अपने "सूत्र-रटन" की समाधि में हर वक्त ऐसा जुटा हुआ रहे कि जिसके कारण से पग २ पर गुरु को नाराज करने का मौका देवे परन्तु "धुन" के पक्के दोनों ही ऐसे थे कि जब पढ़ने पढ़ाने बैठते तो दोनों अपने कार्य में पूर्ण प्रयत्न करते। मतलब यह है कि ऐसे हो-हल्ले के युग में पढ़ने वाले तथा पढ़ाने वाले बहुत कम हो गये थे। संसार भर का यही हाल था। परन्तु इस स्थिति में परिवर्तन पहिले युरोप से आरम्भ हुआ। यह परिवर्तन अच्छा हुआ या बुरा हुआ इस ओर लक्ष न देते हुए हम अब यह परिवर्तन कैसे हुआ इस ओर लक्ष देंगे।

धर्माचार्यों के अधिकार में जनता की शिक्षा का प्रबन्ध कब से चलता चला आ रहा है इसका निश्चित समय स्थिर करना थोड़ा सा कठिन कार्य है; इसलिये इसको "अनादि काल" से कह दें तो कुछ हर्ज नहीं मालूम पड़ता, परन्तु इस व्यवस्था में परिवर्तन का युग विक्रम की पन्द्रहवीं शताब्दि से आरम्भ होता है। जब क्रिस्टोफर कोलम्बस अमेरिका पहुँचा और वास्को डे-गामा भारतवर्ष में आया तो युरोप में एक ऐसे ऐतिहासिक नवीन युग का आरम्भ हुआ कि जिसने सारे संसार भर में धीरे २ समूचा ही परिवर्तन कर डाला और इस परिवर्तित अवस्था ने परिणाम स्वरूप में व्यापारिक स्वतन्त्रता का पक्ष धारण किया।

इस नवीन वाणिज्य प्रधान युग के आरम्भ में युरोप की सबसे प्रथम आवश्यकता अपने देशों में ऐसे मनुष्यों को उत्पन्न करने की थी कि जिनके द्वारा इतर देशों से अपने देशों में धन का आकर्षण किया जा सके। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये उस युग के युरोप के व्यापारियों को राजनीतिक क्षेत्र में पद संचार करना पड़ा। व्यापारी लोगों ने युरोप के राज्य वंशों को कैसे निर्बल बना कर "प्रजासत्ता" के नाम से देश में अपना आधिपत्य स्थापित किया यह देखना इस समय हमारा ध्येय नहीं है, परन्तु लक्ष इस ओर है कि इस राजनीतिक परिवर्तन के साथ ही शिक्षणालयों की व्यवस्था में कैसे परिवर्तन हुआ।

वह ऐसा समय था जिसमें युरोप का प्रत्येक साहसी मनुष्य अपनी निज की उन्नति के लिए युरोप के देशों से पूर्व में या पश्चिम में अपनी भाग्य परीक्षा के लिये जाने को उद्यत था, साथ ही इसके युरोप की प्रजा राजाओं

तथा धर्माचार्यों से कुछ उकतायी हुई सी थी। इस मनोवृत्ति का लाभ यूरोप के बनियों ने पूरा ही उठाया। जहां एक तरफ अमीर उमराव तथा राजवंशीय सरदार जमींदारों की ओर से ग्लानि तथा घृणा का भाव उत्पन्न करने तथा उसका विस्तार करने का प्रचार कार्य बड़े जोर शोर से चलाया जा रहा था वहीं दूसरी ओर धर्म गुरुओं तथा पण्डित आचार्यों के पाखण्ड की पोल प्रकाशित करने का आन्दोलन भी बडी सरगर्मी के साथ जारी था। इसका मतलब यह है पन्द्रहवीं शताब्दि में यूरोप भर में ब्राह्मण तथा क्षत्रिय राज्य की "इति श्री" होकर "वणिक्-राज्य" का "श्रीगणेश" आरम्भ होता है।

इन बनियों ने अपने देश के राजाओं तथा धर्म गुरुओं को निर्मूलकर एक तरफ बिठा दिया और राज्य की बागडोर "प्रजा सत्ता" के नाम से अपने हाथ में लेकर प्रजा के शिक्षण की व्यवस्था भी हस्तगत करली। जहां पहिले प्रजा के शिक्षण के विषय में राजाओं तक को बोलने का अधिकार न था वहां "सुधार" के नाम से शिक्षणालयों की समूची ही व्यवस्था इन बनियों की मनोवृत्ति के अनुकूल बनायी गयी। जैसा कि पहिले कहा जा चुका है बनियों को आवश्यकता थी उन आदमियों की जो उत्तर के देशों से धन लाकर योरोप के देशों को दें। इस मतलब को पूरा करने के लिये उन्होंने धर्म गुरुओं से छीनकर शिक्षणालयों को विश्वविद्यालयों के सपुर्द कर दिया, और यह विश्वविद्यालय सरकारी संस्थाएं समझी जाने लगी, और "सरकारों" ने अपने "मनोनीत विश्वविद्यालयों को उत्तेजना देने तथा सर्वस्व बनाने के लिये इन संस्थाओं से उत्तीर्ण स्नातकों को बड़े २ राज्य पद देने आरम्भ कर दिये। इसका परिणाम यह हुआ कि यूरोप भर में व्यक्तिगत रूप से पठन पाठन की पद्धति कुछ जुदा सी हो गयी और जिस किसी को कुछ भी पढ़ाना होता उसे इन विश्वविद्यालयों का ही आश्रय लेना पड़ता था। सरकारी विश्वविद्यालयों के अतिरिक्त अन्य किसी संस्था में शिक्षण पाये हुए युवक की कुछ भी बूझ नहीं होती थी। इसलिये धीरे २ यूरोप के प्रत्येक देश में शिक्षणालय "सर्विस" के ढांचे बन गये और इन ढांचों में इस प्रकार के स्नातक तय्यार होने लगे कि जिन्होंने उत्तर देशों में जाकर अपने देश-वासियों का आडम्बर प्रसिद्ध करना तथा अपना प्रभुत्व बतलाना और वाणिज्य वृद्धि करना बराबर जारी रक्खा। "सर्विस" एक ऐसा शिक्षा क्रम बन गया कि जिस में समय आने पर कुछ हुकूमत की लालसा भी घुस गयी।

उपरोक्त रीति पर शिक्षा पाये हुए "मुनीम" लोगों ने भारतवर्ष में आकर अपने "सेठ" लोगों के हित चिन्तन करने के साथ ही अपनी निज की महत्वाकांक्षा को भी पूर्ण करना चाहा और इन दोनों उद्देश्यों की पूर्ति के लिये भारतवर्ष में भी इन महानुभावों ने "शिक्षा का प्रचार" कार्य आरम्भ कर दिया। इन यूरोप निवासियों ने जैसा अपने देशों में किया था वैसा ही भारत-वर्ष में भी किया।

यूरोप में व्यवस्था यह थी कि जिसे अपने देश ही में रह कर अपने देश की सेवा (सरकारी नौकरी) करनी है, उसे और प्रकार का शिक्षण दिया जाता था और जिसे अमेरिका या उत्तर के उपनिवेशों में अपने देश हितार्थ (Exploitation) करने जाना होता उसे अन्य प्रकार की शिक्षा दी जाती और जिससे भारत वर्ष में अपने वंश का प्रभुत्व स्थापन करने या बनाये रखने के लिये (साम्राज्यवाद के ध्येय से) आना है उनको भिन्न शिक्षा दी जाती थी। इसी सिद्धान्त को लक्ष्य में रख कर भारतवर्ष में इस प्रकार का शिक्षण जारी किया गया कि जिस के फलस्वरूप में यूरोप के "मुनीम" लोगों को उनके अपने कार्य में सहायता देने के लिये उनके आधीनस्थ कर्मचारी मण्डल तय्यार हों।

यूरोप की इस मनोवृत्ति का प्रभाव भारतवर्ष की जनता पर जादू की तरह से पड़ने लगा। यूरोप की न्याईं भारत की जनता भी अपने राजाओं तथा धर्म-गुरुओं से बहुत कुछ डरगयी थी क्योंकि धार्मिक शिक्षण या धर्माचार्यों द्वारा प्राप्त किया हुआ शिक्षण सिवाय "भिक्षा वृत्ति" के और कुछ सांसारिक परिणाम नहीं दिखलाता था और लोगों को कुछ श्रद्धा और कुछ भय के साथ अपना प्राचीन पठन पाठन क्रम निभाने रहना पड़ता था। ऐसे अधिकार के युग में जब "साहब बहादुर" के पढ़ाये हुए युवक थोड़ी बहुत अंगरेजी पढ़ जाने के बाद धड़ाधड़ नौकरियें प्राप्त करने लगे तो अंगरेजी शिक्षण का प्रभाव उस समय के भारतवासियों पर जादू की तरह पड़ने लगा और अच्छे २ भले आदमियों ने अपनी सन्तान को अंगरेजी पढ़ाना बहुत हितकर समझा।

भारत-वासियों की इस मनोवृत्ति का जब यूरोप के "सेठ" लोगों को पूरा २ पता लग गया कि यह लोग भी "सर्विस" के चक्कर में फंसने लगे हैं तो इन्होंने "एक पत्थर से दो पक्षी मारने" की नीति को काम में लिया। यूरोप में शिक्षण पद्धति में परिवर्तन हो जाने के कारण जो विपुल धन राशि पहिले वहां के धर्माचार्यों के हस्तगत था उस पर भी जब इन महानुभावों का अधिकार हो गया तो इन्होंने अपने देश की धर्मशिक्षा का भी स्वरूप बदल दिया और धर्माचार्यों को भी राजाओं की तरह बनाये रक्खा और जब आवश्यकता प्रतीत हुई तो इन्हीं धार्मिक संस्थाओं के धन से पादरी इत्यादि धार्मिक पण्डितों को व्यवस्थित रूप में धर्मशिक्षा देकर उन्हें भारत आदि उत्तर देशों में "शिक्षा प्रचार" के बहाने से भेज दिया कि जिस से एक ओर तो अपने देश के धार्मिक विद्वानों का उदर निर्वाह का हल हो और दूसरी ओर इन्हीं लोगों द्वारा भारत की अबोध प्रजा को "शिक्षा-प्रचार" के नाम से अपनाया जा सके। बड़े २ सरकारी अफसरों ने तथा उपरोक्त पादरियों ने मिल कर भारतवर्ष को शिक्षित बनाने का ठेका ले लिया।

कबीर-जयन्ती के दिन

[१३ जून को शिमला में दिया गया भाषण]

[ले०—क्षितीश उपस्नातक]

लोगों ने कबीर को रहस्यवादी कहा है। रहस्यवाद क्या है और क्या नहीं, इसकी व्याख्या करने का यहां समय नहीं है, इसके लिये तो एक अलग व्याख्या की आवश्यकता होगी। फिर भी यहां इतना कह देना तो आवश्यक है कि जिन समालोचकों ने कविता की परिभाषा करते हुये रस की रचना शब्द-विन्यास-अलंकारादि बाह्य उपकरणों पर ज़ोर दिया है वे कविता के मर्म को नहीं समझते। कविता में तो सब से अधिक आवश्यक यदि कोई वस्तु है तो वह है रस, और रस तो है ही आन्तरिक अनुभूति की चीज़। एक समालोचक ने कहा है—जिस कविता में आश्चर्य (wonder) नहीं है, वह कविता नहीं है। और एक दूसरे विद्वान् जिनका नाम है पल्टन-कहते हैं-जिस कविता में किंचित् आध्यात्मिक स्पर्श (Metaphysical touch) नहीं है, वह कविता नहीं है। यदि इन दोनों महानुभावों के आधार पर कविता को कसौटी पर कसा जाय, तब तो शायद असली कविता रह ही कबीर की जाती है।

बहुतों को रहस्यवाद से चिढ़ है। यह बात जाने दीजिये कि जब आकाश में बादल छा जाते हैं और सारी दिशायें उनके अन्धकार से ढक जाती हैं, एवं जब धीरे से आसमान से वर्षा की पहली बूंद पृथ्वी पर गिर पड़ती है, तब हर्ष से पृथ्वी उच्छ्वसित हो उठती है या नहीं-यह बात जाने दीजिये। और यह बात भी जाने दीजिये कि जब गगन-मण्डल तारों से व्याप्त होजाता है, चारों ओर की दुनियां गहरी नींद में मस्त होती है और होता है सब ओर बिलकुल सुनसान—उस नीरव निशीथ के समय यदि कहीं से एक झिल्ली की झङ्कार कान में पड़ जाय तो किसी प्रतीक्षा करने वाले को लगता है या नहीं कि यह मेरे किसी की पद-चाप है-यह बात भी जाने दीजिये। पर ज़रा कल्पना की सीढ़ी पर चढ़कर मेरे साथ उस कुटिया में तो चलिये जिसमें एक जुलाहा बैठा हुआ अपना ताना-बाना बुन रहा है। एक बार सूत की पतली सी ओर पकड़कर वह इधर से उधर लेजाता है और एक बार उधर से इधर लाता है। फिर सूत की दूसरी पतली सी डोर पकड़ कर वह एक बार ऊपर से नीचे लाता है और एक बार नीचे से ऊपर और इस प्रकार इधर से उधर और उधर से इधर ऊपर से नीचे और नीचे से ऊपर-यही है ताना और बाना। इसी ताने बाने को करते हुए उसका ध्यान चला जाता है अपने शरीर पर-इसकी भी तो कोई चीज़ इधर से उधर और उधर से इधर, ऊपर से नीचे और नीचे से ऊपर ओत प्रोत है। और अपने शरीर से उसका ध्यान चला जाता है इस सारे विश्व पर। सारे विश्व में भी वह उसी सूत्र को ओत प्रोत पाता है और तब धीरे से वह गुनगुना उठता है—

झीनी झीनी बीनी चदरिया।
काहे का ताना काहे का बाना ......॥

अब यह जो 'काहे का ताना और काहे का बाना' है क्या यह रहस्यवाद है, ऐसा रहस्यवाद जो समझ में नहीं आसकता? यह तो सीधा साधा यथार्थवाद है-यह विश्व एक चादर है, उसमें एक ही ताना है और एक ही बाना, और 'सर्वस्य हृदि सन्निविष्टः' वह एक सूत्रात्मा चारों ओर व्याप्त है-'स ओतः प्रोतश्च विभुः प्रजासु'।

अंत में समाप्त करने से पहिले मुझे रवीन्द्रनाथ टैगोर का एक गीत याद आरहा है—

"रात काली हो चली। दिनभर का काम काज समाप्त होगया। हमने समझा कि अन्तिम अतिथि ग्राम में प्रविष्ट होचुका है, और ग्राम के सब द्वार बन्द कर दिये गये। एक ने कहा—अभी सम्राट् नहीं आया है।" हम हंस पड़े और कहने लगे—"नहीं, यह नहीं होसकता।"

द्वार पर किसी के खटखटाने की-सी आवाज़ आई हमने कहा-"कुछ नहीं हवा है।" हमने अपने दीपक बुझा दिये और सोने की तय्यारी करने लगे। किसी ने कहा—"उसका अग्रदूत आया है।" हम हंसे और कहने लगे—"नहीं, यह हवा है, और कुछ नहीं।"

—मध्य रात्रि में एक आवाज़ आई। निद्रितावस्था में हमने समझा कि कहीं दूर पर बादल गरज रहा है। पृथ्वी कांप उठी, दीवारें हिल पड़ीं, और हमारी निद्रा भंग होगई। किसी ने कहा-"यह उसके रथ के पहियों की आवाज़ है।" हम नींद में बड़बड़ाये-"नहीं, यह बादलों की गड़गड़ाहट है।"

—रात तब भी अंधेरी थी जब ढोल-ढमाके बजने लगे। आवाज आई—"उठो जागो, देर मत करो।" हमने अपनी छाती पर हाथ रखा और डर के मारे कांप उठे। किसी ने कहा-"वह देखो सम्राट की पताका है।" हम अपने पैरों के बल खड़े होगये और एक दम चिल्ला उठे-"अब विलम्ब का समय नहीं है।"

—सम्राट् आचुका है-परन्तु रोशनी कहां है? आजादी कहां है? उसको बैठाने के लिये सिंहासन कहां है? स्वागत के लिये प्रासाद कहां है? सजावट कहां है? कोई कह रहा है?—"अब चिल्लाना व्यर्थ है। खाली हाथों से उसका स्वागत करो, शून्य प्रासाद में उसका आवाहन करो।"

—द्वार खोलदो, शंख बजने दो। रात्रि के अंधकार में हमारा सम्राट् आया है। आकाश में बादल गरज रहे हैं अन्धेरा बिजली के डर से कांप रहा है। एक फटा हुआ चटाई का टुकड़ा लाओ और बाहर आंगन में ही बिछाओ। तूफान के साथ ही अकस्मात् हमारा सम्राट् भी आया है।"

अब कबीर जयन्ती के दिन हमारा भी सम्राट् अकस्मात् ही आगया है। बोलो उसका स्वागत कैसे करोगे?

गु रु कु ल

१५ जौलाई शुक्रवार १६३८

उच्च शिक्षा

[लेखक—मो० क० गान्धी]

उच्च शिक्षा के विषय में जो मेरे विचार हैं उन्हें मैं पहले से भी अधिक पूर्णता से व्यक्त कर दूं ताकि पाठक मेरे विचारों को भली भांति समझ लेवें।

मैं अपने उन निष्कर्षों को बता दूं जिन पर कि मैं कई बरसों से पहुंचा हुआ हूँ, और जब भी कभी मौका मिला है उनको अमल में लाने की कोशिश की है।

(१) दुनिया में प्राप्त हो सकने वाली ऊंची से ऊंची शिक्षा का भी मैं विरोधी नहीं हूं।

(२) राज को जहां भी निश्चित रूप से इसकी ज़रूरत हो वहां इसका खर्च उठाना चाहिए।

(३) साधारण आमदनी द्वारा सारी उच्च शिक्षा का खर्च चलाने के मैं ख़िलाफ़ हूं।

(४) मेरा यह निश्चित विश्वास है कि हमारे कालिजों में साहित्य की जो इतनी सारी तथाकथित शिक्षा दी जाती है वह सब बिलकुल व्यर्थ है और उसका परिणाम शिक्षित वर्गों की बेकारी के रूप में हमारे सामने आया है। यही नहीं, बल्कि जिन लड़के-लड़कियों को हमारे कालिजों की चक्की में पिसने का दुर्भाग्य प्राप्त हुआ है उनके मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य को भी इसने चौपट कर दिया है।

(५) विदेशी भाषा के माध्यम से, जिसके जरिये कि भारत में उच्च शिक्षा दी जाती है, हमारे राष्ट्र को हद से ज्यादा बौद्धिक और नैतिक आघात पहुँचाया है। अभी हम अपने इस ज़माने के इतने नज़दीक हैं कि इस नुकसान का निर्णय नहीं कर सकते। और, फिर, ऐसी शिक्षा पाने वाले हमीं को इसका शिकार और न्यायाधीश दोनों बनना है, जो कि लगभग असम्भव काम है।

अब मेरे लिए यह बतलाना आवश्यक है कि मैं इन निष्कर्षों पर क्यों पहुंचा। यह शायद अपने कुछ अनुभवों के द्वारा ही मैं सब से अच्छी तरह बतला सकता हूं।

१२ बरस की उम्र तक मैंने जो भी शिक्षा पाई वह मातृभाषा गुजराती में पाई थी। उस वक्त गणित, इतिहास और भूगोल का मुझे थोड़ा थोड़ा ज्ञान था। इसके बाद मैं एक हाईस्कूल में दाखिल हुआ। इसमें भी पहले तीन साल तक तो मातृभाषा ही शिक्षा का माध्यम रही लेकिन स्कूल मास्टर का काम तो विद्यार्थियों के दिमाग़ में ज़बरदस्ती अंग्रेज़ी ठूंसना था। इसलिए हमारा आधे से अधिक समय अंग्रेज़ी और उसके मनमाने हिज्जों तथा उच्चारण पर काबू पाने में लगाया जाता था। ऐसी भाषा का पढ़ना हमारे लिए एक कष्टपूर्ण अनुभव था जिसका उच्चारण ठीक उसी तरह नहीं होता जैसी कि वह लिखी जाती है। हिज्जों को कण्ठस्थ करना एक अजीब सा अनुभव था। लेकिन यह तो मैं प्रसंगवश कह गया, वस्तुतः मेरी दलील से इसका कोई सम्बन्ध नहीं है। मगर पहले तीन साल तो तुलनात्मक रूप में ठीक ही निकल गये।

जिल्लत तो चौथे साल से शुरु हुई। अलजबरा, (बीजगणित), केमिस्ट्री (रसायन शास्त्र), एस्ट्रानामी (ज्योतिष), हिस्ट्री (इतिहास) ज्याग्राफी (भूगोल) हरेक विषय मातृभाषा के बजाय अंग्रेज़ी में ही पढ़ना पड़ा। कक्षा में अगर कोई विद्यार्थी गुजराती जिसे कि वह समझता था, बोलता तो उसे सज़ा दी जाती थी। हां, अंग्रेज़ी को, जिसे न तो वह पूरी तरह समझ सकता था, और न शुद्ध बोल सकता था, अगर वह बुरी तरह बोलता तो भी शिक्षक को कोई आपत्ति नहीं होती थी। शिक्षक भला इस बात की फिक्र क्यों करे? क्योंकि ख़ुद उसकी ही अंग्रेज़ी निर्दोष नहीं थी। इसके सिवाय और हो भी क्या सकता था? क्योंकि अंग्रेज़ी उसके लिए भी उसी तरह विदेशी भाषा थी जिस तरह कि उसके विद्यार्थियों के लिए थी। इससे बड़ी गड़बड़ होती। हम विद्यार्थियों को अनेक बातें कण्ठस्थ करनी पड़तीं, हालां कि हम उन्हें पूरी तरह नहीं समझ सकते थे और कभी कभी तो बिलकुल ही नहीं समझते थे। शिक्षक के हमें ज्यामेटरी (रेखागणित) समझाने की भरपूर कोशिश करने पर मेरा सिर घूमने लगता। सच तो यह है कि यूक्लिड (रेखागणित) की पहली पुस्तक के १३वें साध्य तक जब तक हम न पहुँच गये, मेरी समझ में ज्यामेटरी बिलकुल नहीं आई। और पाठकों के सामने मुझे यह मंजूर करना ही चाहिए कि मातृभाषा के अपने सारे प्रेम के बावजूद आज भी मैं यह नहीं जानता कि ज्यामेटरी, अलजबरा आदि की पारिभाषिक बातों को गुजराती में क्या कहते हैं। हां, यह अब मैं ज़रूर देखता हूं कि जितना गणित, रेखागणित, बीजगणित, रसायनशास्त्र और ज्योतिष सीखने में मुझे चार साल लगे, अगर अंग्रेज़ी के बजाय गुजराती में मैंने उन्हें पढ़ा होता तो उतना मैंने एक ही साल में आसानी से सीख लिया होता। उस हालत में मैं आसानी और स्पष्टता के साथ इन विषयों को समझ लेता। गुजराती का मेरा शब्द-ज्ञान कहीं समृद्ध होगया होता और उस ज्ञान का मैंने अपने घर में उपयोग किया होता। लेकिन इस अंग्रेज़ी के माध्यम ने तो मेरे और मेरे कुटुम्बियों के बीच, जो कि अंग्रेज़ी स्कूलों में नहीं पढ़े थे, एक अगम्य खाई खड़ी कर दी। मेरे पिता को यह कुछ पता न था कि मैं क्या कर रहा हूं। मैं चाहता तो भी अपने पिता की इस बात में दिलचस्पी पैदा नहीं कर सकता था कि मैं क्या पढ़ रहा हूं। क्योंकि यद्यपि बुद्धि की उनमें कोई कमी न थी, मगर वह अंग्रेज़ी नहीं जानते थे। इस प्रकार अपने ही घर में मैं बड़ी तेजी के साथ अजनबी बनता जा रहा था। निश्चय ही मैं औरों से ऊँचा आदमी बन गया था। यहां तक कि मेरी पोशाक भी अपने आप बदलने लगी। लेकिन मेरा

जो हाल हुआ वह कोई असाधारण अनुभव नहीं था, बल्कि अधिकांश का यही हाल होता है।

हाईस्कूल के प्रथम तीन वर्षों में मेरे सामान्य ज्ञान में बहुत कम वृद्धि हुई। यह समय तो लड़कों को हरेक चीज़ अंग्रेज़ी के ज़रिये सीखने की तैयारी का था। हाईस्कूल तो अंग्रेज़ों की सांस्कृतिक विजय के लिए थे। मेरे हाईस्कूल के तीन सौ विद्यार्थियों ने जो ज्ञान प्राप्त किया वह तो हमीं तक सीमित रहा, वह सर्वसाधारण तक पहुंचाने के लिए नहीं था।

एक दो शब्द साहित्य के बारे में भी। अंग्रेज़ी गद्य और पद्य की हमें कई किताबें पढ़नी पड़ी थीं। इसमें शक नहीं कि वह सब बढ़िया साहित्य था। लेकिन सर्वसाधारण की सेवा या उसके संपर्क में आने में उस ज्ञान का मेरे लिए कोई उपयोग नहीं हुआ है। मैं यह कहने में असमर्थ हूं कि मैंने अंग्रेज़ी गद्य और पद्य न पढ़ा होता तो मैं एक बेशक़ीमत खज़ाने से वंचित रह जाता। इसके बजाय, सच तो यह है कि अगर वह सात साल मैंने गुजराती पर प्रभुत्व प्राप्त करने में लगाये होते और गणित, विज्ञान तथा संस्कृत आदि विषयों को गुजराती में पढ़ा होता तो इस तरह प्राप्त किये हुए ज्ञान में मैंने अपने अड़ोसी-पड़ोसियों को आसानी से हिस्सेदार बनाया होता। उस हालत में मैंने गुजराती साहित्य को समृद्ध किया होता, और कौन कह सकता है कि अमल में उतारने की अपनी आदत तथा देश और मातृभाषा के प्रति अपने बेहद प्रेम के कारण सर्वसाधारण की सेवा में और भी अधिक अपनी देन क्यों न दे सकता?

यह हर्गिज़ न समझना चाहिए कि अंग्रेज़ी या उसके श्रेष्ठ साहित्य का मैं विरोधी हूँ। 'हरिजन' मेरे अंग्रेज़ी-प्रेम का पर्याप्त प्रमाण है। लेकिन उसके साहित्य की महत्ता भारतीय राष्ट्र के लिए उससे अधिक उपयोगी नहीं जितना कि इङ्गलैण्ड के लिए उसका समशीतोष्ण जलवायु या वहां के सुन्दर दृश्य हैं। भारत को तो अपने ही जलवायु, दृश्यों और साहित्य में तरक्क़ी करनी होगी, फिर चाहे ये अंग्रेज़ी जलवायु, दृश्यों और साहित्य से घटिया दर्जे के ही क्यों न हों। हमें और हमारे बच्चों को तो अपनी ख़ुद की ही विरासत बनानी चाहिए। अगर हम दूसरों की विरासत लेंगे, तो अपनी नष्ट हो जायगी। सच तो यह है कि विदेशी सामग्री पर हम कभी उन्नति नहीं कर सकते। मैं तो चाहता हूं कि राष्ट्र अपनी ही भाषा का का कोष भरे और इसके लिए संसार की अन्य भाषाओं का कोष भी अपनी ही देशी भाषाओं में संचित करे। रवीन्द्रनाथ की अनुपम कृतियों का सौन्दर्य जानने के लिए मुझे बङ्गाली पढ़ने की कोई ज़रूरत नहीं, क्योंकि सुन्दर अनुवादों के द्वारा मैं उसे पा लेता हूँ। इसी तरह टाल्सटाय की संक्षिप्त कहानियों की क़द्र करने के लिए गुजराती लड़के-लड़कियों को रूसी भाषा पढ़ने की कोई ज़रूरत नहीं, क्योंकि अच्छे अनुवादकों के ज़रिये वे उन्हें पढ़ लेते हैं। अंग्रेज़ों को इस बात का फ़ख़ है कि संसार की सर्वोत्तम साहित्यिक रचनाएं प्रकाशित होने के एक सप्ताह के अन्दर-अन्दर सरल अंग्रेज़ी में उनके हाथों में आ पहुंचती हैं। ऐसी हालत में शेक्सपीयर और मिल्टन के सर्वोत्तम विचारों और रचनाओं के लिए मुझे अंग्रेज़ी पढ़ने की ज़रूरत क्यों हो?

यह एक तरह की अच्छी मितव्ययता होगी कि ऐसे विद्यार्थियों का अलग ही एक वर्ग कर दिया जाय, जिनका काम यह हो कि संसार की विभिन्न भाषाओं में पढ़ने लायक जो सर्वोत्तम सामग्री हो उसको पढ़ें और देशी भाषाओं में उसका अनुवाद करें। हमारे प्रभुओं ने तो हमारे लिए गलत ही रास्ता चुना है, और आदत पड़ जाने के कारण गलती ही हमें ठीक मालूम पड़ने लगी है।

हमारी इस झूठी अभारतीय शिक्षा से लाखों आदमियों का दिन-दिन जो लगातार नुकसान हो रहा है, उसके तो रोज़ ही मैं प्रमाण पा रहा हूँ। जो ग्रेजुएट मेरे आदरणीय साथी हैं, उन्हें जब अपने आन्तरिक विचारों को व्यक्त करना पड़ता है तो वही ख़ुद परेशान हो जाते हैं वे तो अपने ही घरों में अजनबी हैं। अपनी मातृभाषा के शब्दों का उनका ज्ञान इतना सीमित है कि अंग्रेज़ी शब्दों और वाक्यों तक का सहारा लिये बग़ैर वे अपने भाषण को समाप्त नहीं कर सकते। न अंग्रेज़ी किताबों के बग़ैर वे रह सकते हैं। आपस में भी वे अक्सर अंग्रेज़ी में लिखा पढ़ी करते हैं। अपने साथियों का उदाहरण मैं यह बताने के लिए दे रहा हूं कि इस बुराई ने कितनी गहरी जड़ जमाली है। क्योंकि हम लोगों ने अपने को सुधारने का ख़ुद जान-बूझकर प्रयत्न किया है!

हमारे कालिजों में जो यह समय की बर्बादी होती है उसके पक्ष में दलील यह दी जाती है कि कालिजों में पढ़ने के कारण इतने विद्यार्थियों में से अगर एक जगदीश बोस भी पैदा हो सके तो हमें इस बर्बादी की चिन्ता करने की ज़रूरत नहीं। अगर यह बर्बादी अनिवार्य होती तो मैं भी ज़रूर इस दलील का समर्थन करता। लेकिन मैं आशा करता हूं कि मैंने यह बतला दिया है कि यह न तो अनिवार्य थी और न अभी ही अनिवार्य है। क्योंकि जगदीश बोस कोई वर्त्तमान शिक्षा की उपज नहीं थे। वह तो भयंकर कठनाइयों और बाधाओं के बावजूद अपने परिश्रम की बदौलत ऊंचे उठे, और उनका ज्ञान लगभग ऐसा बन गया जो सर्वसाधारण तक नहीं पहुँच सका। बल्कि मालूम ऐसा पड़ता है कि हम यह सोचने लगेहैं कि जब तक कोई अंग्रेज़ी न जाने तब तक वह बोस के सदृश महान् वैज्ञानिक होने की आशा नहीं कर सकता। यह ऐसी मिथ्या धारणा है जिससे अधिक की मैं कल्पना ही नहीं कर सकता। जिस तरह हम अपने को लाचार समझते मालूम पड़ते हैं, उस तरह एक भी जापानी अपने को नहीं समझता।

यह बुराई, जिसका कि मैंने वर्णन करने की कोशिश की है, इतनी गहरी पैठी हुई है कि कोई साहस पूर्ण उपाय ग्रहण किये बिना काम नहीं चल सकता। हां,

कांग्रेसी मन्त्री चाहें तो, इस बुराई को दूर न भी कर सकें, तो इसे कम तो कर ही सकते हैं।

विश्वविद्यालयों को स्वावलम्बी ज़रूर बनाना चाहिए राज्य को तो साधारणतः उन्हीं को शिक्षा देनी चाहिए जिनकी सेवाओं की उसे आवश्यकता हो। अन्य सब विशाओं के अध्ययन के लिए उसे खानगी प्रयत्न को प्रोत्साहन देना चाहिए। शिक्षा का माध्यम तो एकदम और हर हालत में बदला जाना चाहिए, और प्रान्तीय भाषाओं को उनका वाजिब स्थान मिलना चाहिए। यह जो काबिले सज़ा बर्बादी रोज़-ब-रोज़ होरही है इसके बजाय तो स्थायी रूप से अव्यवस्था होजाना भी मैं पसन्द करूंगा।

प्रान्तीय भाषाओं का दरजा और व्यावहारिक मूल्य बढ़ाने के लिए मैं चाहूंगा कि अदालतों की कार्रवाही अपने-अपने प्रांत की ही भाषा में हो। प्रांतीय धारासभाओं की कार्रवाई भी प्रांतीय भाषा या, जहां एक से अधिक भाषाएं प्रचलित हों, उनमें होनी चाहिए। धारासभाओं के सदस्य को मैं कहना चाहता हूं कि वे चाहें तो एक महीने के अन्दर-अन्दर अपने प्रांतों की भाषाएं भली भांति समझ सकते हैं। तामिलभाषी के लिए ऐसी कोई रुकावट नहीं, जो वह तेलगु मलयालम और कन्नड के, जो कि सब तामिल से मिलती-जुलती हुई ही हैं, मामूली व्याकरण और कुछ सौ शब्दों को आसानी से न सीख सके।

मेरी सम्मति में यह कोई ऐसा प्रश्न नहीं है जिसका निर्णय साहित्यज्ञों के द्वारा हो। वे इस बात का निर्णय नहीं कर सकते कि किस स्थान के लड़के लड़कियों की पढ़ाई किस भाषा में हो। क्योंकि इस प्रश्न का निर्णय तो हरेक स्वतन्त्र देश में, पहले ही हो चुका है। न वे यही निर्णय कर सकते हैं, कि किन विषयों की पढ़ाई हो, क्योंकि यह उस देश की आवश्यकताओं पर निर्भर करता है जिस देश के बालकों की पढ़ाई होती है। उन्हें तो बस यही सुविधा प्राप्त है कि राष्ट्र की इच्छा को यथा सम्भव सर्वोत्तम रूप में अमल में लायें। अतः जब हमारा देश वस्तुतः स्वतन्त्र होगा, तब शिक्षा के माध्यम का प्रश्न केवल एक ही तरह से हल होगा। साहित्यिक लोग पाठ्य क्रम बनायेंगे और फिर उसके अनुसार पाठ्य पुस्तकें तैयार करेंगे, और स्वतन्त्र भारत को शिक्षा पाने वाले विदेशी शासकों को करारा जवाब देंगे। जब तक हम शिक्षित वर्ग इस प्रश्न के साथ खेलवाड़ करते रहेंगे, मुझे इस बात का बहुत भय है कि हम जिस स्वतन्त्र और स्वस्थ भारत का स्वप्न देखते हैं उसका निर्माण नहीं कर पायेंगे। हमें तो सतत प्रयत्नपूर्वक अपनी गुलामी से मुक्त होना है, फिर वह चाहे शिक्षणात्मक हो या आर्थिक अथवा सामाजिक या राजनीतिक। तीन चौथाई लड़ाई तो वही प्रयत्न होगा जोकि इसके लिए किया जायगा।

इस प्रकार मैं इस बात का दावा करता हूँ कि मैं उच्च शिक्षा का विरोधी नहीं हूँ। लेकिन उस उच्च शिक्षा का मैं ज़रूर विरोधी हूं जोकि इस देश में दी जारही है। मेरी योजना के अन्दर तो अब से अधिक और अच्छे पुस्तकालय होंगे, अधिक संख्या में और अच्छी रसायनशालाएं और प्रयोगशालाएं होंगी। उसके अन्तर्गत हमारे पास ऐसे रसायनज्ञ स्त्रियों, इंजीनियरों तथा अन्य विशेषज्ञों की फौज-की फौज़ होनी चाहिए जो राष्ट्र के सच्चे सेवक हों और उस प्रजा की बढ़ती हुई विविध आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकें जो अपने अधिकारों और अपनी आवश्यकताओं को दिन-दिन अधिकाधिक अनुभव करती जारही है। और ये सब विशेषज्ञ विदेशी भाषा नहीं बल्कि जनता की ही भाषा बोलेंगे। ये लोग जो ज्ञान प्राप्त करेंगे वह सबकी संयुक्त सम्पत्ति होगी। तब खाली नकल की जगह सच्चा असली काम होगा, और उसका खर्च न्यायपूर्वक समान रूप से विभाजित होगा। "हरिजन सेवक" से

जहां गन्धर्व रहते हैं

[ले०—श्री 'चक्र-चरण']

कभी एक कहानी सुनी थी—

एक था गंजा। दुपहर को जब धूप तेज हो रही तो टाँट तपने लगी। छाया की खोज करता हुआ वह एक नारियल के पेड़ के नीचे पहुंचा। बेचारा बैठा ही था कि ऊपर से जो पका नारियल गिरा उसने सिर ही फोड़ दिया। दुर्भाग्य जिनके पीछे लगा होता है उनका यही हाल होता है।

हम चकरौता से शिमला पैदल नहीं जा सके, क्योंकि बीच में हैजा था। अब यहां नारकण्डा में आने पर पता लगा कि आगे सात मील दूर जो कुमारसेन रियासत आती है उसमें हैज़े के डर से किसी बाहर के आदमी को नहीं घुसने दिया जाता। हाय दुर्भाग्य! इतो भ्रष्टस्ततो भ्रष्टः। कितने संघर्षों में हमारी यात्रा प्रारम्भ हुई, मार्ग में भी अनेक विघ्न-बाधायें आईं, बड़ी मुश्किल से यहां तक पहुंचे तो यह वज्र-प्रहार। लूरी में जहां सतलज को पुल से पार करना होता है वहां पुलिस का पहरा है और कोई यात्री न तो उधर से इधर आ सकता है और न ही इधर से उधर जा सकता है। लगता है—इस लाचारी में कहीं शिमला से कुल्लू का पुरोगम भी स्थगित न करना पड़े।

पर अमृत-पुत्रों ने किसी से हार मानना नहीं सीखा। अब एक बार कदम आगे बढ़ा दिया है तो पीछे नहीं हटाया जा सकता। होने दो पुल पर पहरा। ५ मील दूर जो रस्से का पुल है उससे नदी को पार करेंगे, और यदि यह भी न हो सका तो भरी गङ्गा में तैरने का अभ्यास किस लिए किया है? लहरें कितनी ही भयानक क्यों न हों—और पहाड़ी नदियां सचमुच ही भयानक होती हैं—पर हम भी दिखा देंगे कि हम कच्चे भात के नहीं बने हैं। पर इसका एक मात्र उपाय यही है कि कुमारसेन रियासत को बीच में न आने दिया जाय—क्योंकि वहां से किसी को गुज़रने नहीं दिया जाता।

लगभग १० मील का चक्कर काट कर थानाधार होकर जाना पड़ेगा।

नारकण्डा से थानाधार ११ मील है। इसकी २ उतराई अच्छी है। मार्ग बड़ा सुन्दर है।

पाठक कहेंगे कि लेखक के पास शब्दों का दारिद्र्य है। बार २ यही दुहराना पड़ता है—मार्ग बड़ा सुन्दर है। क्या इसके सिवाय उसके पास और कोई शब्द ही नहीं! और लेखक अपने इस दारिद्र्य को स्वीकार करता है—करे क्या? कुछ नहीं जानता कि किसी सुन्दर दृश्य का यदि वर्णन करना हो तो उसे सुन्दर के सिवाय और क्या कहा जाय? हां, आज इतना अन्तर अवश्य था कि और दिन जहां चीड़ के ऊंचे २ पेड़ ही केवल मार्ग के चारों ओर होते थे, वहां आज उन पेड़ों के साथ लतायें और लिपट गई हैं और उनकी ऊंचाई भी कुछ इस हद तक बढ़ गई है कि प्रत्येक वृक्ष को औरों से पृथक् एक भिन्न व्यक्ति के रूप में देखने पर लगता है कि जैसे आज पृथ्वी-माता के ये सतत-ऊर्ध्व असंख्य हस्त-शिशु कहीं दूरातिदूर गगन में लटके हुए किसी चन्द्र-खिलौने को लेने के लिए प्रयत्न का अभ्यास कर रहे हैं। लेकिन, आप कहेंगे—यह कविता हो गई। चलिये, रहने दीजिये।

दुपहर को ११ बजे थानाधार पहुंचे। किसी देवता की पूजा के निमित्त ढोल-दमाके बज रहे थे। गांव से १ मील दूर ऊपर स्टोक साहब का बंगला है। आप गुरुकुल के पुराने परिचित-प्रेमी हैं, आज आपके यहां ही अतिथि बनने का विचार था।

मैंने कहा तो है—'स्टाक साहब।' पर यह ग़लत है, क्योंकि अब वे स्टोक साहब न होकर पण्डित सत्यानन्द बन चुके हैं। मनसा-वाचा-कर्मणा हिन्दू बने हुए उन्हें अर्सा गुज़र गया। पहले वे अमेरिका से मिशनरी बन कर आए थे। यहां आकर हिन्दुओं की प्राचीन संस्कृति ने आपके ऊपर इतना असर डाला कि आप एक दम हिन्दू बन गये। मौक़ा पड़ने पर अपने ग्रामीण भाइयों की सेवा करते हुए उन्हें जेल का कष्ट भी भोगना पड़ा, पर वे अपने विश्वास पर अटल रहे। अब भी ग्रामीण जनता को शिक्षित करने के लिए आपने एक प्राइमरी स्कूल खोल रखा है जिसमें ग्राम के सब बालक और बालिकाएं पढ़ने आते हैं। आपका परिवार एक हिन्दू-परिवार है और सद्गृहस्थ की तरह उन सब रीति-रिवाजों का पालन करता है जो प्राचीन हिन्दू संस्कृति से सम्बन्ध रखते हैं।

हम पहुंचे तो पता लगा कि आप उसी दिन सवेरे कार्यवश कोटगढ़ चले गये हैं, शाम को लौटकर आयेंगे। उनके बड़े पुत्र प्रीतमचन्द जी से भेंट हुई, आपने एक दम हमारे ठहरने का और खाने पीने का समुचित प्रबन्ध कर दिया।

पुस्तकालय में प्रवेश करते ही चारों ओर जो नज़र गई तो एक आदर्श हिन्दू गृहस्थ के निवास स्थान का चित्र आंखों के सामने आगया। एक ओर तुलसीदास का यह प्रसिद्ध पद लिखा था:—

मन हरि-पद अनुरागु, करहु त्यागि नसा कपट।
महा मोह-निशि जागु, सोवत बीते काल बहु॥

—तो दूसरी ओर के द्वार से आते और जाते इस पद पर नज़र पड़ती थी—

होइ विवेक मोह भ्रम भागा॥
अस विचारि नहिं कीजिय रोषू
बादि काहु नहिं दीजिय दोषू॥
मोह निशा सब सोवनि हारा।
देखहिं स्वप्न अनेक प्रकारा॥

दुपहर को यहीं आराम करने लगे। थकान के कारण सबकी आंखों में नींद का ख़ुमार था। धीरे २ जब सब सोगये तो लेखक की घ्राण-वृत्ति तब भी जागती रही। इतना बड़ा ज्ञान का भण्डार सामने खुला देखकर उसे नींद न आसकी। बारी २ से एक-एक पुस्तक को उसने सूंघना शुरू किया। घण्टों तक सूंघ २ कर उसने कई अलमारियां ख़त्म कर डाली और यह देखकर वह हैरान रह गया कि एक अकेले व्यक्ति ने भिन्न २ विषयों का कितना अधिक गम्भीर साहित्य संगृहीत किया है—पुराणों, उपनिषदों और भारतीय दर्शनों को देखकर उसे खुशी हुई और यह जानकर तो उसके हर्ष का पार न रहा कि इस समय पं० सत्यानन्द गीता का एक मौलिक भाष्य तय्यार कर रहे हैं।

शाम को पण्डित जी कोटगढ़ से लौटे। एक शुद्ध खद्दर धारी भव्य मूर्ति के मुख से टकसाली हिन्दी में वार्तालाप बड़ी मनोरञ्जक रही। आपके आग्रह से वह रात वहीं बिताई।

गुरुकुल समाचार

स्वास्थ्य समाचार

ब्र० विष्णुदत्त ५म, धर्मेन्द्र (ज्वा०) ४र्थ, राजेश्वर ४र्थ, ओंकारनाथ ३य, महेन्द्र (भ्रमापुर) ३य, ईश्वरदत्त ३य, देवेन्द्र (कसौली) ३य, सुरेशचन्द्र ३य मम्स से; ब्र० हरिश्चन्द्र ५म, योगेश्वर ३य, नारायणमूर्ति ३य, सत्यभूषण ५म, सत्यप्रकाश ३य चोट से; ब्र०यशपाल ४र्थ, श्रीनिवास ३य, ज्ञानचन्द्र १म, जगदीश (बिजनौर) ५म ज्वर से; ब्र० रामकृष्ण १म नेत्र से ब्र० ओम्प्रकाश २य खुजली से ब्र० भीमसेन २य गला से तथा ब्र दानवीर ५म, श्यामबिहारी १म टायफाइड से रोगी हुए थे। मम्स के ब्रह्मचारी अब अच्छे हैं शेष भी साधारण हैं। ब्र० यशपाल तथा श्रीनिवास दोनों टायफाइड से अच्छे होगये हैं निर्बलता शेष है। ब्र० दानवीर की दशा असाधारण है उसको उन्माद भी होजाता है चिकित्सा बराबर हो रही है।

आवश्यकता

हम शीघ्र ही लखनऊ, पटना व इलाहाबाद में गुरुकुल फार्मेसी की शाखायें खोलने जा रहे हैं। इसके लिए हमें चतुर ईमानदार व योग्य सेल्समैन चाहिये। सेल्समैन को पांचसौ रुपये की ज़मानत जमा करनी होगी। गुरुकुल के स्नातकों को विशेषता दी जायेगी। पत्र व्यवहार के लिए दो आने का टिकट भेजिये।

निवेदक—मुख्याधिष्ठाता, गुरुकुल कांगड़ी

चौधरी दुलासराय के प्रबन्ध से गुरुकुल यन्त्रालय गुरुकुल कांगड़ी में मुद्रित तथा प्रकाशित।

* ओ३म् *

"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत"   Reg. No. A. 2927

गुरुकुल

सम्पादक—भारतभूषण वेदालङ्कार

एक प्रति का मूल्य -)   [गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख-पत्र]   वार्षिक मूल्य २॥)

वर्ष ३]   गुरुकुल काङ्गड़ी, शुक्रवार ७ श्रावण १९९५; २२ जौलाई १९३८   [संख्या १०

शक्ति सञ्चय

[ले०—प्रो० बालचन्द्र जी]

संसार और उसके वैभव वीरों के लिए हैं कमज़ोरों के लिये कायरों के लिए नहीं, यही नहीं, आत्मा भी बलहीन को नहीं मिलता। बाहर का सुख अथवा अन्दर का सुख भोगने के लिए ज़रूरी है कि मनुष्य बलवान हो। सवार पर घोड़ा सवार न हो, सवार में बल हो कि घोड़े पर सवार होकर उसे जिधर चाहे चला सके। बहुत से मनुष्य जो बीमार रहते हैं कमज़ोर होते हैं हाज़मा खराब होता है, संसार के किसी काम को सफलता से नहीं कर सकते हैं वह योग शुरु कर देते हैं मानो योग करना बहुत सरल वस्तु है। भाई योग के लिए भी तो आसन जमा कर सीधा बैठना ज़रूरी है, अगर कमर में ताकत ही नहीं तो आसन कैसे लगेगा और कब तक।

संसार की चलायमान वस्तुएं चित्त को चलायमान कर देती हैं। संग का रंग ज़रूर चढ़ता है, इस संसार में निश्चल, स्थिर क्या है, इस जगत में सब कुछ गतिमान है केवल इसे गति देने वाला इसे चलाने वाला ईश्वर ही अचल है। जो जगत् में फंसा है वह अचल कैसे हो सकता है। सुख में फूला नहीं समाता, दुःख में व्याकुल हो जाता है, भय से भागता है, प्रलोभन के सन्मुख बेबस हुआ हुआ खिचा चला आता है, राग द्वेष से चंचल चित्त रहता है। जिसका मन चंचल रहता हो उसे अपने विचारों पर काबू नहीं होता। जिसे अपने विचारों पर काबू नहीं उसे अपने वीर्य पर काबू कहां। जिसे अपने वीर्य पर काबू नहीं उसमें शारीरिक और मानसिक दृढ़ता कहां से हो जाएगी।

हे दृढ़ प्रभो! इस जगत के विषयों में फंस कर बहुत भटका हूं बहुत व्याकुल हो चुका हूं, बहुत तंग आ चुका हूं मैं विषयों का फुटबाल बन कर खूब ठोकरें खा चुका हूं खूब ज़लील बन चुका हूं दुनिया का मखौल बन गया हूं, सवार घोड़ा बन गया है, स्वामी गुलाम बन गया है, अमीर दर दर का भिखारी हो गया है, हे दृढ़ प्रभो अब अपनी दृढ़ता का आश्रय दे, अपनी दृढ़ता से पक्की मुहब्बत पैदा कर दे, सदा मैं तेरे दृढ़ स्वरूप का ध्यान करूं मैं फिर तपस्वी बन जाऊं, फिर स्वराट बन जाऊं, फिर शेर बन जाऊं, फिर शूर बन जाऊं, मैं चट्टान की तरह दृढ़ बन जाऊं। सुख, दुख, भय, प्रलोभन मुझ चट्टान पर आक्रमण करें और मिट्टी के ढेले की तरह टकरा कर चकनाचूर हो जायें, मुझे वह स्थिरता दे वह धैर्य दे वह समता दे कि विषयों के अन्दर भी मैं तुझ चितचोर को देख सकूं और शान्त रहूं और अपने हृदय की गुफा में भी मैं तुझ चोर की तरह छिपे हुए को प्राप्त कर सकूं।

दृढ़ बन कर मैं चाहता हूँ कि मैं तेरी देख रेख में चिरकाल तक जीता रहूँ। विषयों की गुलामी बहुत हो चुकी बहुत भटक चुका अब अटकना चाहता हूं। अब तो बस तेरा सेवक होकर जीना चाहता हूँ। जो दृढ़ नहीं है शरीर से मन से, वह चिरंजीव कैसे हो सकता है और उसे तेरी सेवा करने का तेरी देख रेख में लम्बी आयु व्यतीत करने का मज़ा कैसे आ सकता है। दृढ़ भगवान को दृढ़ सेवकों की ज़रूरत है। स्वामी श्रद्धानन्द जी के साथ पं० धर्मपाल रहा करते थे, स्वामी और सेवक दोनों आनन्द से रहते थे। दोनों निर्भीक, दोनों दृढ़, दोनों तपस्वी। स्वामी श्रद्धानन्द जी का नाम कौन रोशन करेगा, स्वामी श्रद्धानन्द स्वर्ग से किस ब्रह्मचारी पर खुश होगा, उसी पर जिसका शरीर और मन तप और

दृते दृंह मा,
ज्योक्ते संदृशि जीव्यासं,
ज्योक्ते संदृशि जीव्यासम्॥

(दृते) हे समर्थ परम दृढ़ परमेश्वर! (मा) मुझे (दृंह) दृढ़ बना दे, जिससे कि मैं (ते संदृशि) तेरे संदर्शन में, तेरी ठीक दृष्टि में (ज्योक्) चिरकाल तक (जीव्यासं) जीता रहूँ (ते संदृशि ज्योक् जीव्यासं) तेरे सम्यक् दर्शन में दीर्घ आयु तक जीवित रहूँ।

ब्रह्मचर्य से दृढ़ और देदीप्यमान है। पिलपिले, नाजुक बदन विद्यार्थी अपने कुल की अपनी भारत माता की सेवा के अयोग्य हैं भगवान की सेवा क्या खाक करेंगे। बहुत से उम्मीदवार खड़े हैं मालिक के दर पर आज कल बेकारी बहुत है चलो भक्त ही बन जायें साधू बन जायें काषाय वस्त्र धारण कर लें। भोले भाइयों क्यों मुफ्त में यहां खड़े हो। योग्यता क्या है और लालसा किस पद की। इस दृढ़ भगवान को दृढ़ सेवकों की ज़रूरत है तुम्हारे तो शरीर में बल नहीं मन में सामर्थ्य नहीं तुम प्रभु की सेवा क्या खाक करोगे। ऐसे प्रभो की सेवा करना क्या मखौल है। जाओ भाग जाओ पहले योग्य बनो, दृढ़ बनो, चट्टान की तरह मुसीबतों के तूफ़ान में अचल रहने का अभ्यास करो और फिर प्रभु के दरबार में अपना प्रार्थना पत्र पेश करना। First deserve then desire पहले अधिकारी बनो फिर इच्छा करो।

दृढ़ होकर तेरे साथ नज़र से नज़र मिलाए हुए, तुझे सदा स्मरण रखते हुए, तुझे हर समय हर स्थान पर हाज़र नाज़र जानते हुए तुझे रिझाने का जिनको मज़ा आ जाता है उनके लिए यह दुनिया स्वर्ग बन जाती है उन्हें मर कर स्वर्ग भोगने की इच्छा नहीं रहती वह तो यहां ही सदा रहना चाहते हैं। इधर ताकत का नशा उधर इबादत का नशा, एक तरफ शक्ति का गरूर दूसरी तरफ भक्ति का सरूर। भुजाओं में बल है शरीर में दृढ़ता है मन में स्थिरता है तमन्ना है तो बस यही--

तू मुझको देखता रहे मैं तुझको देखता रहूँ।

तुझे कभी न भूलूं तुझे सदा प्रसन्न रखूं और अपने अन्दर सदा इस भाव से प्रसादयुक्त रहूँ कि मेरी हरएक चेष्टा से तू प्रसन्न है।

हे प्रभो बारबार तेरे चरणों में अब यही प्रार्थना है कि मैं तेरी देख रेख में चिरकाल तक जीऊं।

नाहं मन्ये सुवेदेति नोन वेदेति वेद च॥

[ले०—श्री ब्रह्मपुरी जी महाराज]

[गताङ्क से आगे]

सरकारी मदरसे बने और चर्च मिशन के मदरसे बन और धड़ाधड़ सरकारी विश्वविद्यालय भी बन गये, जिनके नियन्त्रण में रह कर इन संस्थाओं ने आंगलभाषा के धुरन्धर स्नातक उत्पन्न करना आरम्भ कर दिया। सरकारी विश्वविद्यालयों में उत्तीर्ण होने वाले स्नातकों को सरकारी ओहदे मिलने लगे और "सर्विस" की चाट सब को लग गयी। यह परिस्थिति देख कर धार्मिक मनोवृत्ति के भारतवासी कुछ घबरा से उठे और धर्माचार्य इत्यादि प्राचीन पद्धति के शिक्षक लोग धीरे २ दुर्बल से होते हुए दीखने लगे। यूरोप के अधार्मिक वातावरण का पूरा प्रभाव भारत पर फैल गया और धर्माचार्यों की बातों को ठुकराया जाने लगा। बाबू लोग सिवाय अंग्रेज़ी के और कोई बात नहीं करना चाहते थे और पण्डित लोग बाबू लोगों के तर्कवाद के सामने ठहर न सकते थे।

भला ऐसे शिक्षा क्रम में कहीं गुरु शिष्य भावना ढूंढो हुई भी मिल सकती था?

जिस प्रकार यूरोप में विश्वविद्यालयों को दान देना एक पुण्य कार्य समझा जाता था वैसे ही भारतवर्ष में भी धार्मिक दान विश्वविद्यालयों को दिये जाने लगे और बम्बई प्रांत में अच्छे २ धनी पारसी सेठ लोगों ने विपुल राशि दान में देकर बम्बई विश्वविद्यालय जैसे कई एक महत्व पूर्ण शिक्षणालय खोले। ऐसा ही बंगाल के धनी लोगों ने भी किया। यही प्रक्रिया देश भर में फैल गयी। ऐसे गड़बड़ी के समय में जबकि भारत की जनता एक ऐसी अवस्था में से गुजर रही थी कि उसे यह मालूम न था कि मेरे लिये हितकर शिक्षा कौनसी है संसार के प्रत्येक धर्म के प्रचारक लोग विश्वविद्यालय की शिक्षा के साथ ही अपने धर्म की शिक्षा का भी संचार करने लगे। हालांकि धर्म की ओर प्रत्यक्ष में तो रुचि बहुत कम मनुष्यों की दिखाई देती थी क्योंकि सर्विस के आगे धर्म कुछ फीका सा पड़ गया था, तथापि किसी किसी न किसी लालच के कारण भारतवर्ष के कुछ निर्बल मनुष्य अपना धर्म परिवर्तन भी करने लग गये। उस समय की भारतवर्ष की धार्मिक संस्थाएं इतनी अशक्त सी होरहीं थीं कि इनसे इस धर्म परिवर्तन के क्षेत्र में कुछ करते धरते नहीं बनता था और इस दिशा में वे उदासीन से दिखाई देते थे। वास्तविक बात तो यह है कि जिन लोगों ने अपने धर्म का प्रचार भारतवर्ष में आकर किया वे ही लोग अपने देशों से अपने धर्म को निर्वासित कर चुके थे, परन्तु चूंकि भारतवर्ष में धार्मिक मनोवृत्ति फिर भी कुछ जीवित था, इसका लाभ उठाया जारहा था कि जिसके कारण सर्विस का वाड़ा और भी मजबूत बने।

यद्यपि सरकारी विश्वविद्यालयों में शिक्षण इस प्रकार का दिया जाता था कि यहां के स्नातक ऐसे बनें कि जो "यूरोपियन सर्विस" के अधीनस्थ "सबोर्डिनेट सर्विस" के सदस्य ही बने रहें तथापि कुछ लोग इन्हीं विश्वविद्यालयों से कुछ वास्तविक बोध भी प्राप्त कर सके और ऐसे विद्वानों को अपने देश का शिक्षण पद्धति देखकर चिन्ता हो उठी और उसमें परिवर्तन करने का बोझ उठाया। परन्तु परिवर्तन करने पर भी शिक्षक लोग तो वे ही थे जो कि सरकारी शिक्षणालयों के स्नातक थे इसलिये परिस्थिति में यथ भिमत सुधार न होसका और चिल्लाहट बदस्तूर जारी रही। ऐसे युग में पूज्यपाद स्वामी दयानन्द जी सरस्वती का प्रादुर्भाव हुआ और उन्होंने धार्मिक शिक्षा या भारतवर्ष की प्राचीन शिक्षा प्रणाली की एक निश्चित रेखा कायम कर पंजाब के विश्वविद्यालयों में उत्तीर्ण स्नातकों के समक्ष रक्खी, जिसको एक दम स्वीकार किया गया। परन्तु उसे कार्य रूप में परिणत करने के लिये उचित परिस्थिति विद्यमान न होने के कारण केवल "वैदिक कौलिज" या "वैदिक हाइस्कूल" या "वैदिक पाठशाला" या "वैदिक बोर्डिङ्ग हाउस" या "वैदिक कन्या पाठशाला" आदि संस्थाएं स्थापित कर देश में जागृति फैलाने का भरसक यत्न किया गया। इसमें कहीं २ किसी न किसी स्वरूप में गुरु शिष्य भावना का

दर्शन होता रहा। चूंकि "सर्विस" का मधुबिन्दु सबके तालु को चिपका हुआ था इसलिये इन संस्थाओं को भी सरकारी विश्वविद्यालयों के नियन्त्रण में देना पड़ा। इसका परिणाम यह हुआ कि जो काम सरकार अपने पैसे खर्च कर करती थी उसी कार्य में पैसे की सहायता देना आरम्भ किया है ऐसा समझ में आने लगा। कई एक विद्वानों को जब यह बात अनुभव सिद्ध हुई तो उन्होंने सरकारी विश्व विद्यालयों से स्वतन्त्र अपने निज के धार्मिक विश्वविद्यालय स्थापन कर उनमें प्राचीन पद्धति के अनुसार गुरु शिष्य भावना के साथ विद्या के पठन पाठन का क्रम जारी करने का विचार किया और बहुत कुछ परामर्श के बाद पूज्यपाद स्वामी श्रद्धानन्द जी के नेतृत्व में पंजाब की आर्य जनता ने "गुरुकुल विश्वविद्यालय" नामक धार्मिक विश्वविद्यालय की स्थापना की। यह अपने ढंग की स्थापना थी। इस अपने ढंग की एक नई संस्था के बनने के बाद "गतानुगतिको लोकः" के अनुसार पीली धोती पहिनने वाले विद्यार्थियों की कई एक संस्थाएं बन गईं और सरकारी विश्वविद्यालयों से स्वतन्त्र धार्मिक विश्वविद्यालय बनाने की प्रथा चल पड़ी। जितना कुछ दिग्दर्शन हम कर चुके उससे हमको पता यह चलता है कि "शिक्षा विभाग" कभी भी एक स्वतन्त्र संस्था नहीं रही बल्कि यह प्रोपेगैण्डा का एक क्षेत्र रहा है। अनादिकाल से शिक्षणालय ब्राह्मणों और क्षत्रियों के महत्व को बनाए रखने का प्रोपेगैण्डा करने वाली संस्थाएं बनी हुई चली आ रही थीं जिसमें ब्राह्मण परमात्मा का मुंह होने के कारण पूजनीय बना हुआ था, और क्षत्रिय विष्णु का अवतार होने के कारण संसार का स्वामी समझा जाता था और यह दोनों "मन तुरा हाजी बगोयम तू मरा हाजी बगो" के असूल पर अपना अस्तित्व बनाये बैठे थे। और शिक्षणालयों में यही धार्मिक प्रोपेगैण्डा था "जिसको वणिक राज्य" ने नीति कुशलता से बन्द कर अपना नित का प्रोपेगैण्डा चला दिया जिसमें कि प्रत्यक्ष में तो "प्रजासत्ता" का पाखण्ड रक्खा गया और अंतरङ्ग कार्य क्रम में exploitation का भाव मुख्य रहा और इसकी पूर्ति के लिये बनियोंने तार्किक (Bemster) लोगों को तथा वैज्ञानिक (Inventor) लोगों को अपने हाथ में रक्खा और रखने आपस में बांट २ कर विदेशों से प्राप्त किये हुए धन का खूब ही उपयोग किया। इस "विदेश वणिक राज्य" के प्रभाव शाली छत्र की शीतल छाया में हिन्दुस्तान के धर्माचार्यों तथा नरेन्द्रों ने तो खूब गहरी नींद का आस्वादन लिया अर्थात् ब्राह्मण न तो धर्मगुरु रहा और न शिक्षणाचार्य ही रहा बल्कि भिक्षुक बन गया और ईश्वर के अवतार होने का दावा रखने वाले नरेन्द्रगण मण्डलीक बन गये। इस प्रकार हिन्दुस्तान के बनिये के हाथ से Market control भी फिसल कर यूरोप और अमेरिका के बनियों के हाथ में चला गया और गरीब बेचारे भारतवासी के पास सिवाय "सर्विस" के और कोई भी साधन अपने उदर निर्वाह का न रहा।

उपरोक्त परिस्थिति हिन्दुस्तान के कुछ वकील बैरिस्टरों के ध्यान में पहिले आई और उन्होंने कुछ बनियों को भी तय्यार किया और इन दोनों ने मिलकर सबसे पहिले शिक्षणालयों को अपने हस्तगत कर उनमें अपना मनोनीत प्रोपेगैण्डा जारी करना उचित समझा जैसे राजनैतिक वातावरण में गुरुकुल आदि स्वतन्त्र विश्वविद्यालय बनने लगे थे और वे धार्मिक शिक्षणालय समझे जाते थे। सरकार से या सरकारी विश्वविद्यालयों से इसका कोई सम्बन्ध न था।

इसी राजनीतिक परिवर्तन के युग में महामना मालवीय जी ने बनारस हिन्दु विश्वविद्यालय बनाया और महात्मा गांधी जीने गुजरात विद्यापीठ बनाया और राष्ट्रीय शिक्षा का एक नया वातावरण फैलने लगा। इस रोशनी ने भारतवर्ष के युवक के मस्तिष्क में राष्ट्रीय भावना का एक ऐसा भूत भर दिया कि जिसने पहिले के सब प्रोपेगैण्डा को बन्द कर दिया और देश की स्वतन्त्रता का कार्य करना जीवन का मुख्य उद्देश्य बन गया।

जब २ कभी किसी को कुछ भी प्रोपेगैण्डा करना होता है तो वह अपने कार्य का श्रीगणेश शिक्षणालयों से ही करता है। इसका हमें निजी अनुभव इस प्रकार से है कि हमारे विद्यार्थी जीवन के समय में हमको याद है कि एक दिन अंग्रेजी ने हमारे स्कूल में आकर हैडमास्टर को यह कहा कि मैं आपके स्कूल के विद्यार्थियों को कुछ भेंट देना चाहता हूं और प्रत्येक विद्यार्थी को एक २ टिक्की सनलाइट सोप की उस व्यापारी महाशय ने दी बिना मूल्य साबुन की बट्टी मिल जाने से स्कूल के लडके बहुत खुश हो गये। इस बात को सम इकत्तीस बरस का हो गया और आज हम देखते हैं कि सनलाइट सोप भारतवर्ष के प्रायः प्रत्येक घर में एक आवश्यक वस्तु बना हुआ दीख रहा है। इससे हमको मानना पड़ता है कि प्रोपेगैण्डा इसको कहते हैं।

धर्माचार्यों का प्रचार कार्य सरकार ने छीन लिया। यह बात समझ में आने पर पूज्यपाद स्वामी श्रद्धानन्द जी ने सरकार से स्वतन्त्र धार्मिक विश्वविद्यालयों की नींव डाली। उसका क्या परिणाम होता है इसको देखने का पूरा अवसर भी न मिला था कि "राष्ट्रीय शिक्षण" का युग आरम्भ हो गया और प्रचार ऐसे विलक्षण ढंग से होने लगा कि जो लोग "शिक्षा प्रेम" या "विद्या प्रेमी" थे उनको चिन्ता हो उठी कि आगे को क्या होगा।

पठन पाठन क्रम में यह एक प्राकृतिक नियम है कि विद्यार्थी यदि बूढ़ा भी हो जाय तो भी कोई दिन वह अनध्याय करना चाहता ही है। प्रायः विद्यार्थी छुट्टी से बहुत राज़ी होते हैं ऐसे लड़कों को जब सरकारी शिक्षणालयों के बहिष्कार करने का लाइसेन्स मिला तो वे बड़े प्रसन्न हो गये और राष्ट्रीय कार्य में तन मन से

[शेष पृष्ठ सात पर]

गुरुकुल

२२ जौलाई शुक्रवार १९३८

हिन्दी भाषा का प्रयोग

भारत को एक सूत्र में ग्रथित करने के लिये सम्पूर्ण देश भर में एक भाषा का होना अनिवार्य है। हिन्दीभाषा हो विभिन्न प्रांतों के लोगों के विचार विनिमय कराने तथा अन्य कार्यों के लिये भी सरलतम उपाय है। इस का बोलना तथा लिखना दोनों ही इतने आसान हैं कि अधिक से अधिक एक साल में ही इसका पर्याप्त ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। यही कारण है कि आज हिन्दी का ही भारत की एक भाषा के रूप में स्वीकार किया जा चुका है। अहिन्दीभाषाभाषी प्रान्त भी बड़ी शीघ्रता से इस भाषा के सीखने में अपनी दिलचस्पी दिखा रहे हैं। स्कूल आदि में इसकी शिक्षा को विशेष स्थान देने का प्रयत्न किया जा रहा है। जहां भी कांग्रेसी सरकारें स्थापित हो गई हैं या हो रही हैं वहां पर हिन्दी भाषा की उन्नति के लिये भी प्रयत्न किये ही जा रहे हैं। जिन अहिन्दीभाषाभाषी प्रान्तों में कांग्रेसी मंत्रिमण्डल स्थापित हैं उन प्रांतों में तो इसके प्रचार का प्रयत्न अवश्य ही सराहनीय है।

इतना सब कुछ होते हुए भी अभी इस विषय में और अधिक ध्यान देने की तथा प्रयत्न करने की आवश्यकता है। बल्कि यूं कहना चाहिये कि अभी तक कई विभाग ऐसे हैं जिनमें आवश्यक रूप से सम्पूर्ण कार्य हिन्दी भाषा में किये जा सकते हैं।

हिन्दी भाषाभाषी प्रान्तों में संयुक्त प्रान्त का नाम सब से पहले लिया जाता है। लेकिन इस प्रान्त की ही यह अवस्था है कि जहां सरकारी कार्य अंग्रेज़ी भाषा में किये जाते हैं वहां हिन्दी भाषा में लिखे गये पत्रों का उत्तर भी हिन्दी में न दिया जाकर अंग्रेज़ी में ही दिया जाता है। इसके लिये संयुक्त प्रान्त के न्यायालयों का उदाहरण ही पर्याप्त है। सरकारी अदालतों में पत्र, प्रार्थनापत्र आदि हिन्दी में लिखे जा सकते हैं और लिखे जाते हैं। लेकिन दुःख इस बात का है कि अधिकारी वर्ग हिन्दी के पत्रों का उत्तर हिन्दी भाषा में देना अनावश्यक समझ कर अंग्रेज़ी में ही उनका उत्तर भेजते भिजवाते हैं। हिन्दी भाषा का ज्ञान रखते हुए भी इस के प्रयोग के लिये लापरवाही दिखाई जाती है। होना तो यह चाहिये था कि हिन्दी के प्रान्त में सभी कार्य हिन्दी में किये जावें। उच्च अधिकारी लोगों के लिये भी हिन्दी भाषा का ज्ञान आवश्यक हो और अंग्रेज़ी में लिखे गये पत्रों के उत्तर भी हिन्दी में दिये जावें। परन्तु इस से विपरीत अवस्था कदापि स्वीकार्य नहीं हो सकती।

यह हम लोगों का भी दुर्भाग्य है कि हम यत्किञ्चित् हिन्दीज्ञान के साथ अंग्रेज़ी भाषा को जानते हैं। और अंग्रेज़ी के प्रयोग के लिये हिन्दी को बलि करते हैं। बहुत से भाई तो हिन्दी का आवश्यक ज्ञान रखते हुए भी टूटी फूटी अंग्रेज़ी में ही हरेक कार्य करने के आदी हो गए हैं। हमारे गुलाम दिमाग ही इस बात का कारण हैं कि हममें एक विदेशी भाषा के प्रति इतना प्रेम पैदा हो गया है कि उसके लिये अपनी मातृभाषा की भी बलि करते हुए हिचकते नहीं हैं।

पञ्जाब ने तो ऐसा मालूम होता है कि हिन्दी के विरोध के लिये कमर ही कसी हुई है। इसमें तो कोई सन्देह ही नहीं कि पञ्जाब में कुछ भाइयों ने हिन्दी के प्रचार के लिये जी जान से प्रयत्न किये हैं। लेकिन ऐसे लोगों की संख्या ही कितनी है? साधारणतया पञ्जाब अपनी हिन्दी के लिये बदनाम ही है। उर्दू को ही वहां पर एकमात्र सर्वोपरि स्थान दिया जाता रहा है। लेकिन वर्तमान में तो देश की स्वतन्त्रता के लिये पञ्जाब में भी हिंदी भाषा का अधिक से अधिक प्रचार इसका व्यवहार होना ही चाहिये। हिंदी के मुकाबले में उर्दू को प्रधानता देना स्वीकार नहीं हो सकता। अभी कुछ दिन पहले पञ्जाब एसेम्बली में जहां उर्दू में भाषण की आज्ञा दो गई वहां शुद्ध हिन्दी भाषा में भाषण की स्वीकृति भी दी ही जानी चाहिये थी। ऐसा न करना देश की स्वतंत्रता के लिये हितकर नहीं कहा जा सकता। पञ्जाब के हिंदी प्रेमियों को इस तरफ प्रयत्न करने की आवश्यकता है। उन्हें यह बात प्रमाणित कर देनी चाहिये कि आज पञ्जाब में भी हिंदी की उर्दू से कहीं अधिक आवश्यकता है और हरेक विभाग में, हरेक क्षेत्र में इसके व्यवहार की स्वीकृति होनी चाहिये।

भारत की स्वतंत्रता के लिये हरेक प्रान्त में हिंदी को ऊंचा स्थान दिया ही जाना चाहिये। भारतीय स्वतंत्रता के पुजारियों को इस तरफ विशेष प्रयत्न करना चाहिये और वर्तमान सरकारों का ध्यान आकर्षित करना चाहिये।

पान्थ

[ले० श्री अगुपन्था]

वह पथिक है
केवल देखने आया है
देखना किसे?
दृश्य वस्तु को
दृश्यावलि ने उससे कब परदा किया—
जो आंखों के सामने खिंच जाते
वह दर्शक है,
उसे तो देखना है और आगे जाना है।
वह कहां ठहरे?
किस सराय में बैठ विश्राम करे?
कूच का बिगुल तो रह रह कर सुन पड़ता है,

और कहीं देर होगई
सांझ हो जायगी,
रात के अंधेरे में वह रातकटी कैसे करेगा।
इकला और रात अंधेरी;
मारग की भूल भुलैयां
इधर सराय की चैन-मस्ती और चहल पहल
उधर आलस और नींद की खुमारी;
आज कहां पहुंचना है?
रे, चूक गया तो पिछड़ जायगा,
देखना कहीं पहले न चल देना
रास्ते में किसी छांह में पड़ा सो रहे तो ``
सांझ भी चली जाय।
दूर जाना है।
कुछ पता है, कहां?
वहां, जहां पहिले चलने की ठानी थी;
पर देखना लोग कहते हैं, यह पड़ाव लंबा है।
समय पर चलना;
धीरज बांध रखना-
एक कहता है बीच में घना जंगल है;
दूसरा कहता है वहां सराय अच्छी है नहीं;
तीसरी सुनाता है कि बटिया में लुटेरे पड़ते हैं।
रे बटोही, यात्रा बन्द करदे।
ना जी, चलना तो है
क्यों न चलें?
चल ही रहे हैं।
बिना चले कैसे काम चले।
अपने तो राम भैया के आसरे आगे जाना है।
राम भैया नाराज हों तो आहस्ते, आहस्ते;
खुश हों तो तेज रफ्तार-
बस अपने हिस्से तो चलना ही लिखा
रात को जा पहुंचे तो
सराय मालिक को पुकारा``````
दिन लगे आ निकले तो सराय की चहल पहल
दोपहरी में आ पहुँचे तो हाट-बाट की आट;
देखना-भालना चलना फिरना,
सोना जागना, उठना-बैठना,
यही विरासत में मिला है।
साजो-सामान, शानो-शौकत, राग-रंग
उसे कहां बदा।
बस इन्हें सराह २ कर चले चलता है-
कहता है:—
चल चल प्यारे चल चल॥
नवल नवल पगडंडी है मग में
निर्झरिणी की कल कल
जंगल मंगलमय हैं दिखलाते
हरित-नील जल थल॥
गांव नगरिया नदिया तट पर
बालक खेलें दल-बल
हलवाही हैं हल चला रहे सब
अहो! गा रहे हिल मिल।
देख देख पान्थ कब चलना है
आगे पीछे चहल पहल।
पहुंच सराय आकर सोना है
सुख सपना जी बहल बहल॥
कल ना पड़ती पर उस बन्दे को
पथ सम्मुख है पड़ा अटल
दिन के ढलते ढलते क्या देरी
बस चल पन्था पलपल॥
चल चल प्यारे चल चल॥

जहां गन्धर्व रहते हैं

['ले०— श्री 'चक्र चरण']

[गताङ्क से आगे]

सवेरे उनसे विदा लेकर चले—ऐसी विदा जो अब तक आंखों में झूल रही है। जाना था लूरी, सड़क से १३ मील पड़ता था। किन्तु एक छोटी पगडण्डी से केवल ६ मील। पगडण्डी से उतरना शुरु किया। रास्ता बेढब था, ऊबड़ खाबड़ कहीं पत्थर कहीं खड्ड। ऊपर से होने लगी वर्षा-धड़ाधड़ कहीं २ आती थी चिकनी मिट्टी-फिसलन उतराई वैसे ही तेजी से जारहे थे। उस धड़ाधड़ वर्षा में, ऊबड़- खाबड़ पत्थरों में और फिसलन वाले रास्ते में उस दिन कितनी हा माटी २ बोरियां लुढ़की—छाता कहीं, थैला कहीं कम्बल कहीं, और स्वयं अपने आप भी कहीं के कहीं पहुंचकर सिर नीचे टाँगें ऊपर। ज्योंही ऐसे किसी दृश्य की सूचना मिलती तो सब खड़े होकर स्वाद लेने लगते और उस बरसते में भी अपने अट्टहास से दिशायें गुंजा देते! पर लेखक का दुर्भाग्य! यह इस सब में कोई भाग न ले सका। वह और दिनों की अपेक्षा उस दिन कुछ ज्यादा तेजी में था, उतराई में बेतहाशा भागा जारहा था ज्योंही एक ऊंची सी चट्टान से कूदा कि पैर में मोच आगई। बहुत आगे बढ़ने का फल मिल गया। लेखक की बधिया बैठ गई पर लेखक स्वयं नहीं बैठा—यथाकथंचित् हिम्मत का हाथ पकड़कर चलता ही रहा।

दुपहर को लूरी पहुंचे ७५०० फीट से एक दम २३७० फीट तक उतर आये। बड़ी गर्मी लगने लगी। और आपको जानकर आश्चर्य होगा कि जिस हैजे से डर कर हमें कालान्तर का चक्कर लगाना था और जिसके कारण हमें बताया गया था कि लूरी के पुल पर पुलिस का कड़ा पहरा है--उसका यहां नामोनिशां तक न मिला। हां, कुमारसेन में रुकावट थी इतना तो सच है। और तो कुछ नहीं सिर्फ इस बात का अफसोस रह गया कि भरी गंगा में जो तैरने का अभ्यास किया था उसकी परीक्षा सतलज को नहीं देनी पड़ी। और क्या, माता जाह्नवी पतितपावनी गंगा तो शिक्षा दे और उसकी परीक्षा ले मानसरोवर की दुधमुंही बच्ची सतलुज! नहीं, यह नहीं हो सकता— एक दम अनुचित!

दुपहर का भोजन लूरी में किया। काफी देर होगई गर्मी भी काफी थी। आज आनी पहुंचना था। यहां से आनी १२ मील है। रास्ता सतलुज के किनारे २ जाता है। वास्तव में तो अब हमने कुल्लू की ओर कदम बढ़ाया है।

२ मील बाद बाहू नामक छोटा सा पड़ाव आता है एक दुकान थी। लेखक को लंगड़ा कर चलते हुए देखकर दुकानदार ने पूछा--"पैर में यह क्या होगया है?"

"कुछ नहीं, यों ही थोड़ी मोच आगई है"

"कहिये तो हम ठीक करदें—सिर्फ २ मिनट में। दर्द जरा सा भी हो तो कान पकड़ लीजिये।"

आश्चर्य के स्वर में मैंने कहा—"क्या सचमुच? तब तो भाई! अन्धे को क्या चाहिये। दो आंखें। नेकी और पूछ-पूछ।"

और तब फिर जैसे २ उसने कहा कि इस तरह लेटो टांग को इस तरह मोड़ो, अंगूठा सीधा रखो—वैसे २ मैं सब कुछ करता चलता गया। दो मिनट के बाद, सत्य ही मैंने पाया कि मेरे पैर में आराम है।" फिर आगे बढ़े, एक रास्ता सुकेत के लिये फटता है, और यहीं सतलुज से भी विदा लेनी पड़ती है इसमें कोई शक नहीं कि यह शतद्रु नदी शतधा द्रवित होकर बहती है, पर जिन्होंने मानस के तट पर इसका वह उद्गम देखा है जहां पूरा पैर रख दिन भर स इसका स्रोत बन्द होसकता था, उनके लिये यह तो आवश्यक नहीं है कि उद्गम देखने के पश्चात् अबके इसका अन्त भी देखते जायें। और अन्त तो किसी का भी नहीं देखना चाहिये।

दिन जल्दी २ भागा जारहा था। दो-तीन मील और चले होंगे कि इतने में ही 'बीत चली संध्या' की वेला।

अभी ४-५ मील अवशिष्ट थे आनी आने में। अंधेरा धीरे २ उपत्यकाओं में से निकल कर पर्वतों की चोटियों पर बिछता जाता था। थोड़ी देर में सड़क पर बिलकुल अंधेरा होगया, पर हम तेज़ी से बढ़े जा रहे थे। अचानक सब से आगे चलने वाले का सड़क के बीच में पड़ी हुई किसी लम्बी लुचलुची सी चीज से पैर छू गया। वह उछल कर पड़ा। एक दम टार्च जला कर देखा तो देखा कि ठीक सड़क के बीचोंबीच एक कृष्णकाय विशाल विषधर सर्प पड़ा हुआ है। इस से पहिले कि उस पर एक भी लाठी का प्रहार हो वह द्रुतगति से नीचे की झाड़ियों में सरक गया। तब ध्यान आया कि किसी ने कहा था— 'नारकण्डा के बाद सांप बहुत होते हैं।', ठीक है- जहां गन्धर्व रहते हैं वहां सांपों का रहना भी आवश्यक है। गन्धर्व लोक और नागलोक ये एक दूसरे के पार्श्ववर्ती ही होने चाहियें।

रात को ६ बजे आनी पहुंचे। अच्छी दुकानें हैं। खाने पीने का सामान सब मिल जाता है। कल इस मार्ग की सबसे कठिन चढ़ाई-जलौरी जोत पार करनी है, ६ मील पर खनाग पड़ाव आता है-पर वहां खाने पीने की कोई चीज नहीं मिलती। इसलिये आज रात को ही १२ बजे तक जाग कर कल के लिये भी परांवठे तय्यार कर लिये।

× × ×

मैंने जब २ हिमालय के अन्तरतम प्रदेशों में प्रवेश किया है तब २ वहां कालिदास की आत्मा को मूर्त रूप में बैठे हुए मूक-भाव से कुछ गुन-गुन गान गाते हुए पाया है। एक-एक पेड़ के पीछे, एक-एक चट्टान के पीछे, एक-एक निर्झर के पीछे और एक एक समीर के झोंके के पीछे मुझे सुनाई देता है कि कोई गा रहा है

'पृक्तस्तुषारैर्गिरिनिर्झराणाम्
अनोकहाकम्पितपुष्पगन्धि।'

और फिर जब अकस्मात् ही ऊपर की ओर नज़र उठ जाती है तो आसमान में वह काला २ हाथी का बच्चा सा एकदम यही प्रतीत होता है कि कहीं कोई 'मेघ-दूत' किसी का सन्देश लिये पहाड़ों की चोटियों को लांघता भागता चला जाता है। कालिदास को लोगों ने कवि कहा है और कहा है कि उस के लिखे ग्रन्थ काव्य हैं पर मेरी क्षुद्र सम्मति में तो वह एक मात्र फ़ोटोग्राफ़र है और उसके लिखे ग्रन्थ काव्य नहीं बल्कि पेन एल्बम हैं जिनका उसने जो कुछ देखा उसी की फ़ोटो उतार कर उनका संग्रह कर लिया पर यह तो मुझे भी मानना पड़ेगा कि उन दृश्यों की फ़ोटो लेने में जो मसाला काम आया उसका नाम है केवल 'शब्द', और शब्द की महत्ता को तो रसिक ही जाने।

× × ×

हां आनी से खनाग ६ मील है। ३ मील तक तो रास्ता सीधा है, फिर चढ़ाई शुरु होती है। हमें बताया गया था कि ५ वें मील पर एक पगडण्डी कटती है, उससे दो मील बच जाते हैं। कुछ साथी धोखा खा गये। एक जगह छोटी-सी ऊपर चढ़ती हुई पगडण्डी को देखकर उन्होंने समझा कि यही वह लघुमार्ग है एक दम चढ़ गये ऊपर। जो समझदार थे उन्होंने सड़क से जाना ही उचित समझा। पीछे पता लगा तो छोटा रास्ता चाहने वालों को खूब इधर उधर भटकना पड़ा। अन्ततोगत्वा दोनों खनाग में मिल ही गये, जोत की चढ़ाई अभी ४ मील और बची थी—सख्त कठिन, और सीधी। खूब तेज़ चले, करीब साढ़े चार बजे हम जोत की चोटी तक पहुँच सके। दस हजार फ़ीट की ऊंचाई, ठण्डी हवा का झोंका और दूर तक फैले हुए नीले जामनी और श्वेत पुष्प। चोटी पर कुछ पत्थर इकट्ठे करके उनके बीच में एक बांस गाड़ कर लाल पीली झण्डियां उस पर बन्धी हुई हैं। यह जोत का देवता है। यात्री आता है, सख्त चढ़ाई के कारण उसका सांस फूल रहा होता है, पर फिर भी मार्ग में से कुछ फूल तोड़ लाता है और आते ही भक्तिभाव से देवता पर उन्हें चढ़ाकर हाथ जोड़ कर कुछ मन ही मन अस्पष्ट उच्चारण करता है। किसी अदृश्य सत्ता के प्रति अपने आपको समर्पित कर देने की प्रवृत्ति शायद मनुष्य में सृष्टि के आदि से रही है।

आगे ४ मील है सोजा, ऊंचाई ८६०० फ़ीट, और

फिर वहां से ५ मील है बनजार- लगातार उतराई ही उतराई। सड़क के दोनों ओर फूलों के उपवन-दरबार में सब रंगबिरंगी पोशाक पहन कर हाजिर हुए हैं- कोई नीली, कोई आसमानी, कोई श्वेत और कोई लाल। आज भी रात को पहाड़ पर पहुंचते २ नौ बज गये। शिमला से चलने के बाद बनजार ही पहला पड़ाव था जहां हलवाई दुकान में पड़े हुए थे।

बनजार से १४ मील औट, औट से १८ मील कुल्लू। औट से मोटर मिल जाती है, पर हमने तो पैदल ही जाना था। २० जून— ३२ मील चल कर रात को ८ बजे कुल्लू पहुँचे—देवताओं की घाटी में, जहां गन्धर्व रहते हैं।

गुरुकुल समाचार

स्वास्थ्य समाचार

ब्र० सूर्यप्रकाश ३य श्रेणी, श्यामस्वरूप १म श्रेणी, यशपाल ४र्थ श्रेणी, श्रीनिवास ३य श्रेणी आन्त्र ज्वर से; देवेन्द्र २य श्रेणी, सुदर्शन ४र्थ कृष्णानन्द ५म विषम ज्वर से; सत्यभूषण ५म, कृष्णमूर्ति ५म, हरिप्रकाश ४र्थ, सत्यप्रकाश ३य चोट से; तथा वेदप्रकाश १म श्रेणी ज्वर से पीड़ित है। आशा है शीघ्र ही आराम हो जावेगा। शेष सब ब्रह्मचारी अच्छे हैं।

गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ

ग्रीष्मावकाश पश्चात् गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ विद्यालय ८ जौलाई ३८ को नियम पूर्वक खुल चुका है। पढ़ाइयां प्रारम्भ हो गई हैं। ग्रीष्मावकाश में घर गए हुए सभी ब्रह्मचारी गुरुकुल लौट आए हैं। दो सप्ताह से वर्षा का अभाव अनुभव किया जा रहा था परन्तु अब अच्छी वर्षा हो गई है। ऋतु वातावरण स्वास्थ्यप्रद और आस पास के दृश्य सुन्दर और सुहावने प्रतीत हो रहे हैं। वर्षा की अभी और ज़रूरत है। चिकित्सालय में कोई रोगी नहीं।

६ष्ठ श्रेणी सोलन पर्वत की यात्रा पर गई थी सब विद्यालय खुलने से एक सप्ताह पूर्व सकुशल लौट आए थे। इस पार्टी को आर्यसमाज धर्मपुर आर्यसमाज कसौली आर्यसमाज डगशाई और विशेषकर आर्यसमाज सोलन के आर्य बन्धुओं ने उचित अवस्था में पर्याप्त सहायता की है। गुरुकुल के अधिकारी इन समाजों के अधिकारियों के सद्व्यवहार के लिए कृतज्ञ हैं।

७म सम श्रेणी के ब्रह्मचारी श्री पं० हरिशरण जी की अध्यक्षता में कुल्लू पर्वत की यात्रा पर गए थे, इन्होंने मनीकरण, व्यासकरण ज्वालामुखी आदि प्रसिद्ध धार्मिक स्थान देखे और हिमालय पर्वत के बर्फीले पहाड़ों का आनन्द उठाया। यह पार्टी जहां भी गई वहां की आर्यसमाज ने विशेष उत्साह और प्रेम से उनका हर प्रकार से सत्कार किया। श्री म० गुरदत्तसिंह जी श्री ला० कुलदीपचन्द्र जी और श्री प्रधान जी आर्यसमाज योगेन्द्र नगर विशेष धन्यवाद के पात्र हैं। गुरुकुल सदा आर्यबन्धुओं का हृदय से कृतज्ञ है।

गुरुकुल चित्तौड़गढ़

ऋतु अत्यन्त सुहावनी है। लगभग १॥ मास से वर्षा हो रही है। इस कारण चित्तौड़ दुर्ग और गुरुकुल भूमि के चारों ओर के जंगलों में सर्वत्र हरियाली ही हरियाली छा रही है।

सब ब्रह्मचारी पूर्ण स्वस्थ प्रसन्न हैं विद्यालय तथा आश्रम के सभी काम नियमित रूप से हो रहे हैं। ब्रह्मचारी षाण्मासिक परीक्षा की तैय्यारी में संलग्न हैं।

वेदाङ्ग विद्यालय भवन की छत तय्यार हो रही है और शीघ्र ही पहिली मञ्जिल बन कर तय्यार होने वाली है। यहां जो एक छात्रवृत्ति रिक्त है उसके लिए बालकों का चुनाव १६-२० जौलाई को हो चुका है।

पिछले सप्ताह जयपुर के आर्य समाज के पूर्व प्रधान तथा सैशन जज गुरुकुल के अतिथि बने। आपने प्रत्येक विभाग को ध्यान पूर्वक देख कर प्रसन्नता प्रकट की और स्थायी रूप से वार्षिक सहायता देने का वचन दिया। इस समय अतिथि भवन में देहली निवासी श्रीमान् गणेशदास जी खन्ना ठहरे हुये हैं आपका विचार यहां दो मास तक ठहरने का है।

गुरुकुल सूपा

नवीन सत्र की पढ़ाइयां शुरू हो गई हैं। वर्षा ठीक ठीक परिमाण में हो रही है। पूर्णा नदी में पर्याप्त पानी आ रहा है। ब्रह्मचारी तैरने का अभ्यास करते हैं। दिवस शीतल और सुहावने हो गए हैं। छात्रों का स्वास्थ्य अच्छा है।

देशभक्त श्री गणेश श्रीकृष्ण खापर्डे की मृत्यु पर कुलवासियों ने शोक सूचक प्रस्ताव पास किया है।

[पृष्ठ ३ का शेष]

जुट गये। समझदार भारतवासी यह जान रहा था कि यह लड़के जब तक सरकारी विश्व विद्यालयों में थे तब तक तो वे योरोप के बनियों तथा बैरिस्टरों के प्रचार का साधन बने हुए हैं। यदि शिक्षा तब न थी तो शिक्षा अब भी नहीं है। सम्भव है कि इसी कारण महात्मा गांधी जी ने अपना विद्या पीठ बन्द कर दिया हो।

यह सब कुछ देख कर हमें फिर से यह कहना पड़ता है कि शिक्षा की दृष्टि से इन सब संस्थाओं का मूल्य क्या है। क्योंकि धर्माचार्यों के युग में जैसा हम देख चुके हैं कि देखा यह जाता था कि मनुष्य धार्मिक कितना है, न कि शिक्षित कितना है। वैसे ही आज देखने में यह आता है कि राष्ट्रीय नेतृत्व केवल राष्ट्रीयता ही देखना चाहता है शिक्षण की ओर विशेष लक्ष्य नहीं है—जिसका परिणाम धार्मिक दम्भ के बदले राष्ट्रीय विचार देखने में आता है। ऐसे विलक्षण मनोवृत्ति के वातावरण में "गुरु शिष्य भावना" का पता लगाने के लिए भगीरथ प्रयत्न करना पड़ेगा।

[क्रमशः]

चौधरी दुलासराय के प्रबन्ध से गुरुकुल यन्त्रालय गुरुकुल कांगड़ी में मुद्रित तथा प्रकाशित।

* ओ३म् *

"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत" Reg. No. A. 2927

गुरुकुल

सम्पादक—भारतभूषण वेदालङ्कार

एक प्रति का मूल्य -) [गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख-पत्र] वार्षिक मूल्य २॥)

वर्ष ३] गुरुकुल काङ्गड़ी, शुक्रवार १४ श्रावण १९९५; २९ जौलाई १९३८ [संख्या ११

महेश्वर को जानें

(श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी के धर्मोपदेश से उद्धृत)

क्या वह पुरुष जिसे अपनी शक्तियां प्रयोग में लाने का मौका ही नहीं मिला या वह जो सचाई के मार्ग से भटका हुआ है जिसने अपनी शक्तियों को अनुचित रूप से प्रयोग किया है ? क्या वह कभी भी सर्वशक्तियों के मालिक को जान सकता है ? पहले इसके कि सर्वशक्तिमान् की महानता को समझने का साहस कर सके, मनुष्य के लिये आवश्यक है कि वह स्वयं, शक्ति की महानता का अनुभव करके उसका उचित प्रयोग सीखे और उस पर आचरण करे । कौन मनुष्य है जिसे ताकत अन्धा नहीं कर देती ?

तमीश्वराणां परमं महेश्वरं,
तं देवतानां परमञ्च दैवतम् ।
पतिं पतीनां परमं पुरस्तात्,
विदाम देवं भुवनेशमीड्यम् ॥

"अस नर कोउ उपज्यो जग नाहीं, प्रभुता पाय जाहि मद नाहीं ।" मननशील, सच्चा मनुष्य वही है जिसने ताकत के रहस्य को समझा है। इन्द्रियों की दासता में फंसे हुये, विषयों की मजबूत जञ्जीरों के अन्दर जकड़ हुये, पशु भाव को प्राप्त हुये पुरुष अविद्या के गढ़े में गिर कर समझ लेते हैं कि विषयों को अन्धाधुन्ध भोगना ही ताकत का प्रगट करना है । जिन वीर पुरुषों ने अपने मन को हर प्रकार के मल विक्षेप और आवरण से पृथक् करके परमपिता के केवल चौथे जागृत पाद पर ही विचार किया है । और इसकी विचित्र महिमा के लेशमात्र भी दर्शन किये हैं, उनका अनुभव है कि आनन्द ताकत को नष्ट करने में नहीं है; अपितु उसके सुरक्षित रखने के अन्दर ही सच्चा आनन्द है । परमात्मा क्यों आनन्दस्वरूप है ? इसलिये कि सांसारिक कर्म बन्धन के अन्दर फंसना उसके स्वभाव के विरुद्ध है । अतः सामर्थ्य के अभिलाषियों के लिये अत्यन्त आवश्यक है कि परम शक्तिमान् परमात्मा के शक्ति स्वरूप को अनुभव करने का प्रयत्न करें ।

फिर उस परमात्मा के दैवीय स्वरूप के दर्शन कौन कर सकता है ? जो स्वयं प्रकाश से अलग रहता है, जिसने अपनी आयु अन्धेरे में नष्ट की है, वह सब प्रकाशकों के प्रकाशक, महादेव को कैसे जान सकता है ? प्रकाश स्वरूप तक पहुंचने के लिये सब से पहले हृदय के अन्दर प्रकाश को धारण करने की सामर्थ्य होनी चाहिये । किसी शीशे के अन्दर प्रकाश का ठीक यथार्थ प्रकाश होता है । उसके अन्दर नहीं जिसके मुंह पर मैल ने चमक ही बाकी नहीं छोड़ी ? परम रक्षक परमात्मा को किसने समझा है ? जिसने दीनों को दबाने में अपनी शक्ति को नष्ट किया है और अनाथों को लूटने में ही पुरुषार्थ को खर्च किया वह रक्षा धर्म को क्या समझ सकता है ? जिसकी हमदर्दी का क्षेत्र विस्तृत नहीं हुआ ? जिसने मनुष्यों को ही केवल अपना भाई समझ कर बेज़बान पशु पक्षियों की गर्दन पर बिना कारण छुरी चलाना अपना हक समझा हुआ है, वह क्या समझ सकता है ? परमात्मा की उस शक्ति को, जिसके द्वारा वह सारे संसार की रक्षा करते हैं किसने समझा है ? संसार में अनगिनत मनुष्य हैं जो मन द्वारा शक्ति के पृथक् पृथक् पहलुओं पर विचार कर सकते हैं लेकिन उनके अन्दर एक मूर्ख नेकनियत इन्सान जितनी शक्ति भी नहीं है । सैकड़ों दार्शनिक विद्वान् हैं जो आकाश के हरेक बाह्य प्रकाश को बड़ी खूबी से बयान कर सकते हैं । परन्तु यदि वे अपने मन के अन्दर के भावों को प्रगट

(ईश्वराणाम्) शक्तिमानों में (तं परम महेश्वरम्) उस परम शक्ति (देवतानां) देवताओं में (तं परमं दैवतम्) उस बड़े देव (पतीनां) रक्षकों में (तं परमं पतिम्) उस परम रक्षक (भुवनेशम्) सारे संसार के मालिक (ईड्यम्) स्तुति योग्य (देव ( ) देव को (पुरस्तात्) सर्व प्रथम (विदाम) हम जानें ।

करें, तो उसके अन्धकार का केवल विचार करने से ही शरीर कांप उठता है। मैंने हजारों सुडौल और दृढ़ शरीरधारी देखे जो कुश्ती के हर किस्म के दाव पेच में निपुणता रखते हुये भी दूसरों की तो और रही, अपने शरीर की रक्षा के योग्य भी न सिद्ध हुये। इसका कारण क्या है? यही कि केवल ज्ञान से उद्देश्य की प्राप्ति नहीं होती, बल्कि जब इसके साथ साधन और कर्तव्य सम्मिलित हो जायें, तब मनुष्य जीवन के उद्देश्य को प्राप्त करता है। विद्या बिना आचरण के, बजाय सुख के, दुःख का साधन बन जाती है। इसलिये अगर शक्तिमान्, प्रकाशस्वरूप, परमरक्षक परमात्मा तक पहुँचना है तो शक्ति, प्रकाश और रक्षा धर्म को अपने अन्दर धारण करो।

वहां मौत खड़ी थी

[ले०— श्री 'चक-चरण']

उस दिन मैं कहते-कहते रह गया--

औट से ६ मील दूर टकाली नामक स्थान है। जिस दिन हम इस स्थान से गुजर रहे थे उस दिन यहां मेला था। मेला देखने के लिये थोड़ी देर रुक गये।

दूर दूर से स्त्री-पुरुषों के झुण्ड टोली बाँध बाँध कर आ रहे हैं, व्यास नदी के किनारे मण्डलियां लगी हुई हैं। पुरुष अपने सिरों पर फूलों की मालायें बाँधते हैं, स्त्रियां नये से नये रंगबिरंगे कपड़े पहनकर आती हैं और उनके सिरों पर एक काले रंग का रुमाल बँधा होता है। जगह २ लकड़ी के गोल झूले लगे हैं और उनके ऊपर बच्चे-बूढ़े सब चाव से झूल रहे हैं। चीजें बेचने वाले अपनी दुकान सजाये बैठे हैं। चारों ओर चहल-पहल, हँसी-खुशी गप-शप आना - जाना और आमोद-प्रमोद।

किन्तु पर्दा हटा और दृश्य का एक दूसरा भाग भी देखने को मिला। पार्श्व में ही अपनी छोटी २ झोंपड़ियां डाले हुए कुछ दुकानदार पड़े हैं। इनके हाथ के नीचे बड़े २ मिट्टी के घड़े रखे हुए हैं, साथ ही छोटे २ सकोरे। ग्राहक आते हैं और दुकानदार घड़े में से सकोरे भर भर कर देते जाते हैं। और पी पीकर अनेक स्त्री-पुरुष पास हो औंधे मुँह बेहोश होकर पड़े हैं। कुत्ते आकर उनके मुँह को सूंघते हैं और मक्खियां भिनभिना कर चली जाती हैं।

उन बड़े २ घड़ों में क्या है? उनमें है लुंगड़ी (शराब), और लुंगड़ी पी पीकर ही लोग बेहोश होकर पड़े हैं। यह यहां का आम रिवाज है और सैंकड़ों में शायद कोई एक ही बिरला होगा— क्या स्त्री क्या पुरुष— जो शराब न पीता हो। जहां पर्वतों में बहुत-सी अच्छाइयां हैं वहीं पर एक ऐसा दुर्व्यसन भी है जिसकी जड़ें इतनी गहरी जम चुकी हैं कि उस को दूर करने के लिये न जाने कितनी सदियां उधार मांगनी पड़ेंगी।

व्यास-नदी का सुहावना तट और कुल्लू की सुन्दर घाटी, और उसपर यह बहुरंगी दृश्य! शायद इसीलिये उस दिन ३२ मील चलकर भी कोई थकान मालूम नहीं हुई।

अगले दिन शाम को स्थानीय गवर्मेण्ट हाईस्कूल से हाकी का मैच हुआ, जिसमें गुरुकुल दल दो गोलों से विजयी रहा। जनता के हर्ष का पार न रहा। खेल समाप्त होते ही तालों की गड़गड़ाहट से और वैदिक-धर्म तथा गुरुकुल-माता के गगनभेदी जयकारों से लोगों ने दिशाओं को बहरा कर दिया।

× × ×

वहां मौत खड़ी है। कैसे? पहले थोड़ा-सा परिचय—

कुल्लू से २३ मील की दूरी पर मनाली नामक स्थान है जहां अंग्रेजों के बंगले बने हुए हैं और सेबों के बाग़ हैं। यहां से एक रास्ता रोहतंग जोत (Rohtang pass) होकर तिब्बत को जाता है। इस मार्ग का अन्तिम डाकखाना केलिंग है, यहां हिन्दुस्तान की हद खत्म होती है। वहां तक पहुँचने के लिये बीच में यह जोत पार करनी पड़ती है और इस पर अनन्त वर्फ बिछी पड़ी है। इसीलिये इस जोत का नाम है 'रोहतंग'— जिसका अर्थ है 'मौत का मार्ग'। इस जोत के एक पार्श्व में व्यास कुण्ड है जहां से व्यास नदी निकली है। हमने कुल्लू से व्यास-कुण्ड जाने का निश्चय किया, मनाली तक तो मोटर भी जाती है।

२२ जून को सवेरे सुल्तानपुर [कुल्लू] से मनाली के लिये चले। मार्ग व्यास नदी के किनारे किनारे जाता है। ११ मील के बाद कटराई नामक स्थान आता है। यहां डाकबंगला भी है और छोटी-मोटी दुकानें भी। यहां से २ मील के अन्तर पर है नगर, जहां कुछ रशियन बौद्ध रहते हैं। यहींपर विश्व विख्यात चित्रकार और रूसी कलाकार मि रोरिक का निवास स्थान है, साथ ही रोरिक-चित्रशाला भी। भारतीय संस्कृति के पुजारी इस महान् कलाकार की भव्यमूर्ति का दर्शन कर हमने अपने को कृतार्थ माना। आस पास का दृश्य बड़ा ही सुन्दर है। नगर से लौट कर फिर कटराई आये और आगे बढ़े।

इस गन्धर्वों की घाटी में दूर तक मैदान ही मैदान बिछा पड़ा है। हरे हरे खेत लहलहा रहे हैं और रंगबि रंगी पोशाक पहने हुए स्त्रियां और पुरुष उनमें काम कर रहे हैं। हरी-हरी गुलाब की टहनी पर हिलते हुए लाल २ गुलाब के फूल हों जैसे;— या हरे मखमल के कालीन पर रेंगती हुई लाल-लाल बीरबहूटियां हों जैसे— वैसे ही दूर से देखने पर हरे - हरे खेतों में काम करती हुई वे स्त्रियां लगती हैं कुछ-कुछ, जिनके सिरों पर लाल रुमाल बँधे हुए हैं।··· और फिर वही व्यास का तट, घना जंगल— बीच में बहती हुई व्यास की अनेकधा विभक्त धारायें —पतली-पतली या मोटी-मोटी, कुछ इठलाती हुई-सी और पेड़ों के आलवाल में आकर कुछ रुक कर बहती हुई मोतियों के गुच्छे उँडेलती हुई-सी; और फिर झुरमुट के बीच में कलरव करती हुई चिड़ियायें— दो-रंगी और बहु रंगी भी, और अन्य अनेक प्रकार के पंछी क्या यह सचमुच ही गन्धर्वलोक

नहीं है ? और फिर वही ऊंचे २ चीड़ और देवदार के पेड़- जैसे धरती माता के सतत-ऊर्ध्व असंख्य हस्त-शिशु, या जैसे इस लोक से भी ऊपर एक और लोक है– उस ओर निर्देश करते हुए किसी सौन्दर्य मूर्ति के लम्बे-लम्बे अंगुलि प्रतीक, या जैसे······

इस प्रकार कब मनाली पहुँच गये कुछ पता भी न लगा। यहां से व्यास-कुण्ड १८ मील है। यदि कल कल में व्यास-कुण्ड देखकर फिर मनाली भी लौट कर आना है तो अच्छा है कि अभी से कुछ दूर और आगे चलकर ठहरें, जिससे कल दिक्कत न हो। अभी तो सांझ होने में थोड़ी देर है।

व्यास के दायें किनारे चलना शुरू किया, और फिर मनाली से ३ मील आगे बुरुआ नामक गांव में जाकर रुके। रास्ते में एक मील पहले वसिष्ठ-कुण्ड आया जहां गर्म जल का स्रोत था। लोग दूर दूर से रोग-निवारण के लिये इसके गरम जल में स्नान करने आते हैं। फिर थोड़ी दूर पर मनु ऋषि का मन्दिर आया। पर इन को विशेष महत्त्व न देते हुए हम सीधे बुरुआ पहुंचे।

और गांव में जाकर व्यास-कुण्ड के लिये गाइड की तलाश की, क्योंकि सवेरे ही उठकर चल पड़ना था। एक छोर से लेकर दूसरे छोर तक घूम गये, कहीं कोई पथ-प्रदर्शक बनने को तय्यार नहीं हुआ। ऊपर से बड़े २ बूढ़ों ने कहना शुरू किया––"अरे बाबा! क्यों जान जोखिम में डालते हो! भला! आजकल भी कोई व्यास-कुण्ड जा सकता है! आजकल तो देवता प्रकुपित हैं और इतनी बर्फ बिछी पड़ी है कि कोई वहां पहुंच ही नहीं सकता। अभी उस दिन वह दुर्भाग्य का मारा गडरिया वहां चला गया, और फिर अन्धा होकर लौटा। इसी प्रकार कोई लंगड़ा होकर लौटा और कोई बिलकुल लौटा ही नहीं। जब देवता के प्रकोप का समय होता है तब जो उस पर चढ़ने का दुस्साहस करता है उसका यही हाल होता है। इसलिये भला चाहो तो वहां जाने का नाम न लो।" यह कह कह कर उन बड़े-बूढ़े बुजुर्गों ने इतना डरा दिया कि जो एक-दो आदमी रुपये के लोभ से हमारा पथ-प्रदर्शन करने को तय्यार भी हुए— उन्होंने भी मना कर दिया। धर्मशाला कोई है नहीं, कोई दुकान भी नहीं है, और कोई एक रात के लिये अपने घर में जगह देने को भी तय्यार नहीं है। तो क्या किया जाय?

अन्त में बड़ी मुश्किल से एक आदमी हमारा पथ-प्रदर्शक बनने को तैयार होगया, और फिर उसी ने रात बिताने के लिए अपने घर में जगह भी दी।

सवेरे उठ कर चले। गाइड आगे २ और हम पीछे पीछे। दो मील बाद गांव आया सोलंग। बस, इसके बाद बस्ती नहीं है। छोटी सी पगडण्डी—कभी व्यास के दायें और और कभी बायें—कहीं दिखती है और कहीं नहीं।

४ मील और आगे जाने के बाद एक बर्फ का पुल आया। नीचे व्यास की तरल धारा बह रही थी और ऊपर बर्फ का पुल। इसे पार करके अब व्यास के दायें किनारे पर हो लिए। अब तो लगातार बर्फ के पुल आने लगे। दूर से लगता था कि संगमरमर है, पास जाने पर श्वेत हिम। पर आश्चर्य! कि किस प्रकार से बर्फ की गोल २ मिहरावें बनी हुई हैं, और मिहरावों के बीच में किस प्रकार से बर्फ के ही शुभ्र स्तम्भ! न जाने किस कारीगर ने यहां बैठ कर इनको किस प्रकार घड़ा होगा और हिम की शिलाओं में अपनी अदृश्य तूलिका से सौन्दर्य भर दिया होगा? शायद उस कारीगर का नाम है–पानी, जो इस व्यास नदी की धारा में बह रहा है।

लगातार २ घण्टे का रास्ता और, और फिर एक ऊँची चोटी का चरण-तल। यहां आकर गाइड ने आगे जाने से इंकार कर दिया। देवता-प्रकोप असह्य था उसके लिये। और हम अब इतनी दूर आ चुके थे कि लौटना पागलपन होता।

× × ×

१ मील तक सीधी चढ़ाई–सख्त, कठिन। ख्याल था कि यहीं कहीं व्यास-कुण्ड होगा पर सामने एक और चोटी झांकने लगी। हवा हल्की थी, सांस फूलने लगा। ऐसी ३ मील की चढ़ाई पार करके अन्त में एक विशाल हिमाच्छादित कुण्ड पर पहुंच ही गये।

वहीं एक विशाल हिम शिला पर चढ़ कर बैठ गये। अपने साथ जो खांड और मिश्री लाए थे उसके साथ शिला पर से बर्फ तोड़ २ कर खाने लगे। दुपहर के ११ बज गये थे। सूरज की गर्मी से लगातार बर्फ पिघल रही थी। अब ठण्डी २ हवा चलनी शुरू हुई, सांय २ करती हुई। ११ बजे के लगभग यहां हवा चलनी शुरू होती है और इस हवा के कारण ही यह 'मौत का मार्ग' कहलाता है।'' थोड़ी देर में जिस विशाल शिला पर हम बैठे थे, वह हिलने लगी। अरे राम! यहां भी भूकम्प। क्या सचमुच देवता प्रकुपित होगया है? उस शिला पर से उछल कर नीचे उतरे। और नीचे उतरे ही, कि वह शिला खस-खस करके खिसक पड़ी। एक मिनट बाद धड़ाम। और फिर धड़ाम। और फिर थोड़ी देर बाद धड़ड़ड़ड़ड़ धम्म–जैसे तोप का गोला छूटा हो। फिर तो चारों ओर से तोपों के गोले छूटने लगे। आंखों के सामने ही सौ-सौ मन की चट्टानें धड़ाम २ करके नीचे को लुढ़कने लगीं। हाय! अब क्या करें! यहां तो सचमुच मौत खड़ी है। भागो, भागो—बर्फ पिघल रहा है, यह देवता के प्रकोप का समय है। भागे। भागते २ एक जगह बर्फ पर पैर रखते ही वहां एक दरार सी फट गई और देखते-न-देखते सुधीर उसमें कमर तक धंस गया। जल्दी से किसी तरह उसे निकाला और फिर भागे। पीछे से विशालदैत्याकार चट्टानें लुढ़कती आ रही थीं और गोलों के छूटने की आवाज़ चारों ओर से कानों को बहरा कर रही थी। अरे भाई भागो! अब तक तो यहां मौत खड़ी थी, पर अब देखो वह उस शिला-दैत्य के रूप में हमारे पीछे २ लपकी आ रही है। भागो भागो! प्रतिध्वनि भी कहने लगी–'भागो २'

और हम लगातार नीचे की ओर भागते चले गये।

गु रु कु ल

२१ जौलाई शुक्रवार १९३८

दिवंगत श्री मास्टर आत्माराम जी !

आर्य सामाजिक जगत् के वयोवृद्ध नेता राज्यरत्न राज्यमित्र पण्डित आत्माराम जी अमृतसरी का ७२ वर्ष की अवस्था में स्वर्गवास हो गया। पंजाब के पुराने आर्य समाजियों में से आजकल श्री मास्टर जी ही बचे हुए देश एवं समाज की सेवा कर रहे थे। पञ्जाब के विषाक्त वातावरण से तंग आकर तथा वहां के वाद विवादों से दूर रहने की इच्छा से आप कुछ वर्ष पूर्व अपनी जन्म-भूमि छोड़ कर बड़ौदा में आ बसे थे। इन दिनों आप बड़ौदा रियासत के नागरिक बन चुके थे। पण्डित आनन्दप्रिय जी, पण्डित शान्तिप्रिय जी, देवी सुशीला देवी जी, आदि प्रसिद्ध व्यक्तियों का भी आप ही की सन्तान रत्न होने का सौभाग्य प्राप्त है।

कहा जाता है कि आर्यसमाज में सुलझे हुए विचारकों का अभाव है किन्तु इस उक्ति के मान्य राज्यरत्न जी अपवाद स्वरूप थे। आपके उत्कृष्ट विचारों का यदि नमूना देखना हो तो महर्षि कृत संस्कार विधि की व्याख्यापुस्तक संस्कार चन्द्रिका देखनी चाहिये। वैसे तो आपने सृष्टि विज्ञान आदि दर्जन भर पुस्तकें लिख आर्यसमाज के पुस्तकालय की एक कमी को पूर्ण किया है। विभिन्न लेख तथा छोटी छोटी पुस्तिकाओं के द्वारा आपने अपने लम्बे जीवन में बहुत कुछ आर्य जगत् को दिया है। बड़ौदा जैसी रियासत में आर्य-समाज की जड़ों को बहुत गहरा पहुंचा कर अन्त तक इसे हरा भरा रखने के प्रयत्न में मास्टर जी का जीवन व्यतीत हुआ। आर्यसमाज का एक विद्वान् विचारक हमारे से बिछुड़ गया, इसे आज प्रत्येक व्यक्ति अनुभव कर रहा है। पिछले दिनों हमारी क्षति ही क्षति हुई, वृद्धि बिलकुल नहीं। मास्टर जी के स्वर्गवास से तो मध्य-भारत आर्यसमाजिक जगत् का एक आधार स्तम्भ टूट गया। आपकी विद्वत्ता और त्याग हमें नव जीवन के लिए कुछ सन्देश दे सकते हैं, जिनके अनुसार चलने पर निस्सन्देह सफलता मिलेगी ही।

डाक्टर नारायणदत्त जी की सफलता—

डा० नारायणदत्त आयुर्वेदालंकार अपने गुरुकुलीय जीवन में एक होनहार विद्यार्थी रहे हैं। हॉकी आदि खेलों से आपको विशेष प्रेम था और अपने समय के आप हाकी के एक प्रसिद्ध खिलाड़ी थे। गुरुकुल से स्नातक होने के बाद से हैदराबाद दक्षिण में आपने अपनी प्रेक्टिस शुरू की। आपको इस कार्य में आशा से अधिक सफलता मिली। हैदराबाद में आप एक प्रसिद्ध डाक्टर माने जाने लगे। यह सब कार्य आप सेवा भाव से ही करते थे धनप्राप्ति के विचार से नहीं। डाक्टरी के पेशे को करते हुए गुरुकुलीय जीवन के हॉकी खेल के लिये अवकाश न मिल सकने के कारण आपको इससे छुट्टी लेनी पड़ी। गंगा के अथाह जल में उसकी ऊंची २ लहरों में आप तैरने का अभ्यास किया था। वह भी छूट ही गया था।

गतवर्ष आपके दिल में नया जोश पैदा हुआ। अपनी उन्नति के लिये महत्वाकांक्षायें उत्पन्न हुई और अपने छोटे भाई पं० सुरेशचन्द्र विद्यालंकार के साथ उच्च शिक्षा के लिये जर्मनी जाने का विचार स्थिर किया। फलतः मास अक्टूबर १९३७ में आप जर्मनी पहुंचे। म्यूनिच विश्वविद्यालय में एम डी. की परीक्षा के लिए प्रविष्ट हुए।

म्यूनिच विश्वविद्यालय में अध्ययन के साथ गुरुकुल की कीर्ति को उज्वल करने का भी आप भरसक प्रयत्न करते ही रहे। गुरुकुलीय जीवन के खेलों के शौक ने आपकी सहायता की। हाल में मई मास में जर्मनी भर में एक हाकी टूर्नामैन्ट हुआ था। जर्मनी के सब हाकी दलों ने इसमें भाग लिया था। म्यूनिच विश्वविद्यालय के दल ने भी हिस्सा लिया। आपके क्रीड़ा चातुर्य से म्यूनिच विश्वविद्यालय दल अन्त में विजयी रहा। हाकी के खेल में सर्वप्रथम सर्वश्रेष्ठ रहने के कारण आपको स्वर्णपदक दिये गये। विश्वविद्यालय द्वारा जुलूस आदि के रूप में आपका खूब ही स्वागत किया गया।

तैरी में भी जर्मनी भर का साम्मुख्य था। बड़े २ तैराक उपस्थित थे। आपने यद्यपि तैरना कई सालों से बन्द किया हुआ था तो भी इस साम्मुख्य में आप तृतीय नम्बर पर रहे। आपको पदक दिये गये। म्यूनिच विश्व-विद्यालय का भी परस्पर एक तैरी साम्मुख्य हुआ इस में भी आप सर्वप्रथम रहे और विश्वविद्यालय के वाइस चांसलर ने आपको स्वर्णपदक दिये।

गुरुकुलीय जीवन के ये जौहर थे जो कि डाक्टर साहब ने गुरुकुल में सीखकर जर्मनी को दिखलाये। इस से न केवल मान्य भाई ने अपनी विजय पताका को जर्मनी में फहराया है न केवल अपना नाम पैदा किया है अपितु अपनी कुलमाता के यश को भी कहीं अधिक उज्वल किया है साथ ही यह प्रत्यक्ष कर दिखाया है कि गुरुकुल का स्नातक क्या कुछ नहीं कर सकता। गुरुकुल को उनकी इस सफलता पर गर्व है और हम चाहते हैं कि मान्य भाई इसी प्रकार के बहादुरी के कार्य करते हुए कुलमाता का नाम उज्वल करते रहें।

एक विचार

(ले० श्री आनन्द जी)

हमारे गांव में एक मास्टर साहब हैं, श्री यशवन्तराव। मराठी भाषा का वे इतना सुन्दर और श्रुतिमधुर उच्चारण करते हैं कि, उसका अनुकरण करने की इच्छा हो उठती है। उन्होंने एक बार मुझे बतलाया कि, 'पुणें' की मराठी बड़ी उत्तम है, और उसको सीखने के लिये केवल 'पुणें' में कुछ महीने निवास करना ही पर्याप्त है। यह सुन कर मेरी बड़ी इच्छा हुई कि, किसी तरह 'पुणें' का दर्शन किया जावे और वहां की मराठी का लहजा सुना जावे। उत्तरोत्तर यह इच्छा बलवती होती गई। और मैं अवसर ढूंढने लगा कि, कब शीघ्र से शीघ्र अपनी इस इच्छा की पूर्त्ति की जाय।

× × ×

आखिर एक दिन आया। दशहरा समाप्त हो चुका था और जी० आई० पी० रेलवे के साढ़े सात रुपये में १५ दिन तक एक नियत क्षेत्र के अन्दर जहां मर्जी घूमने के टिकट बंटने प्रारम्भ हो गये थे। मैंने भी एक टिकिट खरीदा और सवार हो गया, मद्रास मेल पर। मुझे मुम्बई में अपने एक सम्बन्धी के घर जाना था। रास्ते में शोलापुर पर उतर कर अपने निकट के सम्बन्धियों से मुम्बई के विषय में सम्पूर्ण माहिती प्राप्त की तथा रात के एक बजे मुम्बई एक्सप्रेस में बैठ कर चल पड़ा। सबेरे के समय गाड़ी 'पुणें' स्टेशन पर पहुँची। मैंने 'पुणें' शहर की ओर आंख उठा कर देखा, चारों ओर कुहरा छाया हुआ था, ठण्ड सी लग रही थी, इस समय वहां पर उतरने की इच्छा नहीं हुई। मैं सीधा मुम्बई पहुंचा तथा अपने सम्बन्धी के यहां जाकर अपना सामान इत्यादि सुरक्षित रखवाने के बाद भोजन से निवृत्त हो मैं 'पुणें' के लिये लौट पड़ा।

× × ×

स्टेशन से पुल पार कर जब मैं तांगे के अड्डे पर पहुंचा तो सब से प्रथम मुझे तांगे वालों से पाला पड़ा। वे अपढ़ तांगे वाले भी आह, कितना सुन्दर मराठी बोलते थे! एक तांगे वाला मिला, जिसकी मातृभाषा मराठी नहीं थी, हिन्दी थी। वह इलाहाबाद का रहने वाला था। लेकिन उसे भी इतनी बढ़िया मराठी बोलनी आती थी कि, देखकर मुझे कुछ दर्द सा अनुभव हुआ। मेरी मातृभाषा मराठी है, और मुझे बोलनी तक नहीं आती, और यह तांगे वाला, दुर्भाग्य का मारा, मातृभाषा न होते हुए भी मेरी अपेक्षा कितनी शुद्ध मराठी बोल लेता है। मैं उसी के तांगे पर सवार हुआ। मेरी लड़खड़ाती, तथा अशुद्ध मराठी को सुन कर और यह देखकर कि, मेरी वेशभूषा पुणेंकरों की तरह न होकर कुछ हिन्दुस्तानियों की तरह है, उस तांगे वाले ने भी ताड़ लिया कि, मैं उसकी ही जन्मभूमि में रहने वाला हूं। वह मेरे साथ हिन्दी में ही बातचीत करने लगा। मुझको यह जान कर कि, मुझे महाराष्ट्र का निवासी न समझ कर यह व्यक्ति यू० पी० का ही समझ रहा है, अपने दुर्भाग्य पर और भी दुःख हुआ।

× × ×

उसी तांगे में एक और आदमी अपनी एक लड़की को लिये हुए सवार हुआ। मैंने ध्यान देकर, इस पुणेंकर पिता पुत्री की बात चीत को सुनना प्रारम्भ किया। ओह, वह छोटी सी बच्ची अपने बाप के साथ मराठी में बात क्या रही थी, मानों कुछ अमृत सा उंडेल रही थी। मुझे उस समय अपनी जन्मभाषा के माधुर्य से वञ्चित रह जाने के कारण जितना क्लेश हो रहा था, वह मैं ही जानता हूँ। मुझे ऐसा लगने लगा कि, मराठी जैसी रत्नमाला का परित्याग करके मैं व्यर्थ ही हिन्दी जैसी भाषा को सीखने की कोशिश में लगा हुआ हूँ। सचमुच हम, जिनकी मातृभाषा मराठी है, उत्तरभारत में रह कर धोबी के कुत्ते की तरह हो गये हैं। न हमको अपनी मातृभाषा मराठी ही आती है, न हिन्दी ही। हमने अवश्य किसी जन्म में कुछ अपुण्य किया होगा जिसके फलस्वरूप हमें अपनी मां के दूध से भी अधिक पवित्र इस समृद्ध मातृभाषा से हाथ धोना पड़ा है। बात ठीक ही है— त्रिशङ्कु इव भोगाय न चोर्ध्वं न भूरपि।

× × ×

दूसरे दिन जब मैं 'पुणें' में घूमने निकला, मैंने देखा, वाकई 'पुणें' की भाषा, उसका लहजा, उसका श्रुति मधुर उच्चारण सब कुछ आश्चर्य के लायक था, 'पुणें' सम्पूर्ण महाराष्ट्र संस्कृति का केन्द्र नगर है। जब मैं 'पुणें' की सड़कों पर घूमते हुए प्रत्येक व्यक्ति के उच्चारण को ध्यान पूर्वक सुन रहा था, और अपने महाराष्ट्र पर गर्व कर रहा था, उसी समय मेरे दिल में एक विचार आया, मैं सोचने लगा, क्या गुरुकुल कांगड़ी को हिन्दी का 'पुणें' नहीं बनाया जा सकता? जिस प्रकार मराठी भाषा का केन्द्र 'पुणें' है, उससे भी बढ़ कर क्या गुरुकुल को हिन्दी भाषा का केन्द्र नहीं बनाया जा सकता? हमने सुना है कि, हिन्दी भाषा को माध्यम बना कर उच्च विषयों की शिक्षा देने के क्षेत्र में सर्वप्रथम प्रयत्न गुरुकुल कांगड़ी ने ही किया है, तो क्यों न हिन्दीभाषा के परिष्कार, एवं उच्चारण माधुर्य के क्षेत्र में भी सर्वापेक्षया उत्कृष्ट स्थान इसी को प्राप्त हो? संसार में कोई भी कार्य असम्भव नहीं है। यदि हमारा थोड़ा सा भी ध्यान इस ओर आकृष्ट हो जावे तो अल्प आयास से ही हम गुरुकुल कांगड़ी को हिन्दी भाषा का केन्द्र बना सकते हैं। हमारी तो यह प्रबल अभिलाषा है कि, गुरुकुल की हिन्दी उन्नत हो, गुरुकुल का उच्चारण मधुर हो, शुद्ध हो, पवित्र हो, और प्रामाणिक हो लोगों का यदि अच्छी हिन्दी सीखने की इच्छा हो तो वे इसके लिये गुरुकुल में ही आया करें। और प्रयोगशरण वैयाकरण लोगों को भी गुरुकुल का ही आश्रय लेना पड़े।

× × ×

हमने इतिहास पढ़ा है, और देखा है कि, अनेक महान् कार्यों का सूत्रपात ऐसी २ घटनाओं से ही हुआ है जिनको कि हम बहुत ही क्षुद्र गिन सकते हैं। क्या हमारा भी यह क्षुद्र किन्तु पवित्र विचार, गुरुकुल को हिन्दी का

केन्द्र बनने जैसे महान् कार्य का सूत्रपात करने वाला नहीं सिद्ध होगा? अनेक ऐतिहासिक उदाहरणों को देख कर हमें पूर्ण विश्वास है कि, एक न एक दिन हमारे मस्तिष्क में उठने वाला यह विचारांकुर वट वृक्ष का रूप धारण करेगा एवं युग के निवर्त्त की उस नवीन आशा में हमारा राष्ट्र दीखेगा कि, गुरुकुल कांगड़ी हिन्दी भाषा का एक महान् केन्द्र बन गया है।

क्या मैं एक असाधारण लेख नहीं लिख सकता?

[श्री सत्यभूषण 'योगी']

क्या मैं एक असाधारण लेख नहीं लिख सकता? आज सहसा मेरे मन में विचार आया है कि क्या मैं एक ऐसा लेख नहीं लिख सकता, जिसे पढ़ कर सारा संसार विस्मय मुग्ध हो जाए! कलम मेरे हाथ में है; मैं बैठा यही सोच रहा हूं—अभी अभी मैं एक बहुत सुन्दर ललित-पदावली-समलङ्कृत, मनोरञ्जक, ओजस्वी, योग्यता पूर्ण एवं प्रवाह युक्त लेख नहीं लिख सकता? लेख! लेख क्या है? अक्षरों को जोड़ कर शब्द और शब्दों को जोड़ कर वाक्य बनाना—यही तीन, कि और कुछ? हां, दिमाग और दिल की भी जरूरत होती है; ये दोनों भी मेरे पास हैं। तो? तो, इसका मतलब यह है कि मैं एक बहुत अच्छा लेख लिख सकता हूं। पर, ओह, हाय, मेरी तो यहीं 'टांय टांय फिस' होने लगी—कुछ सूझता ही नहीं—क्या लिखूं? मैं अपनी गंजी खोपड़ी को बुरी तरह खुजा रहा हूं कि कुछ मुझे सूझ जाए और मैं एक असाधारण—रवीन्द्र और बर्नार्डशा से टक्कर लेने वाला, विश्व विस्मयकारी लेख लिख साहित्य को दे दूं।

पर, मुझे तो कुछ नहीं सूझता। दिमाग विचारों से खाली मालूम पड़ता है और दिल भावों से। और लो कमबख्ती! अभी २ एक सज्जन मेरे पास आए हैं—(नाम है 'भीष्म'—देखने ही डर लगता है) मिठाई खा रहे हैं और कुछ अपनी भी कह रहे हैं—मेरा भी एक लेख लिखने का विचार है—जिसका शीर्षक होगा—'पंजाब कांग्रेस'—खुदा बचाए! सरस्वती देवी सांड-वाहन कब से बन गई!!

जी हां, मुझे यह तो पूर्ण निश्चय हो गया है कि मैं अत्यन्त अच्छा, चमत्कारिक सुन्दर एवं अद्भुत लेख लिख सकता हूं—पर मुझे उस लेख का शीर्षक नहीं सूझता। आखिर, लिखूं मैं किस विषय पर? वे कौन सौभाग्यशाली विषय हैं जो मेरे लेख का विषय बनेगा और इस नश्वर जगती में अमरत्व के पद को प्राप्त करेगा?

पर, मुझे बारबार, रह रह कर, यही डर लग रहा है कि कोई साधारण बात मेरे लेख में न आ जावे—असाधारण लेख जो लिखना है! पर; मैं असाधारण बातों तथा चीजों के बारे में सोचता हूं। दुनिया में असाधारण चीजें कौनसी हैं?—मैं चारों तरफ अपनी उत्सुक नज़र दौड़ाता हूं, आसमान में कुछ कुछ काले बादल छाये हुए हैं—सामने ही एक कुत्ता एक कुतिया तथा उनका छोटा सा एक पिल्ला बैठे खेल कर रहे हैं—और वे दो व्यक्ति भ्रमण करने जा रहे हैं—पास ही में बांसुरी की लय सुनाई दे रही है—चिड़ियां चहचहा रही हैं—कोयल आम्र कुञ्ज में से पञ्चम में 'कुऊ' कर उठती है। सामने हिमाद्रि अपना शुभ्र धवल अविजेय पुण्य भाल उठाए खड़ा है, और इधर परिश्रमी कृषक-पसीने से तरबतर हल चला रहा है। और ठीक मेरे सामने—तीन गज की दूरी पर—एक पक्षी पींजरे में बद्ध, व्याकुलता से इधर से उधर और उधर से इधर घूम रहा है। हाय, मानव! सभ्यताभिमानी धिक्कार है तुझे और तेरी इस सभ्यता को—तूने इस दीन पंछी का पारिवारिक प्रेमाह्लाद, उन्मुक्त व्योम में स्वच्छन्द विहार, रस भरे खेतों में घूम घूम कर सुनहरी धूप में विविध रस वाले अन्न खाना सब तूने छीन लिया है और बन्द कर दिया है इसे सोने के सींकचों में, धर दिया है इस के आगे कटोरी में दूध। आ मानव, दिल सोने से नहीं खरीदा जा सकता। यदि तुझ में दिल है तो समझ ले कि इस पंछी का दिल सोने के पींजरे से और बहुमूल्य भोजनों से प्रसन्न नहीं है—हो ही नहीं सकता।

इस समय मेरे मन में एक विचार उठ रहा है (बात सच्ची कहनी चाहिए) कि इस पिंजरे को खोल दूं—फिर यह विहंग एक बार फिर से जीवन की मादक हाला में मस्त स्वर्णिल उषा में विस्मृतिमग्न मधुर तराने गाएगा। लो मैं पिंजरे को खोल दूं, इसको बन्द करने वाला—इसका प्रेमी (या द्वेषी) मालिक मुझ से लड़ेगा—मेरी सारी चीजें उठाकर फैंक देगा......

... अरे, न जाने फिर किस झमेले में पड़ गया—हां तो मैं उन्मुक्त नयनों से चारों तरफ की चीजों को निहार रहा हूं कि मुझे कोई असाधारण बातें मिल जाएं कि मैं असाधारण लेख लिख सकूं—

पर यहां तो कुछ भी असाधारण नहीं दिख रहा। लिखना है असाधारण—चीजें हैं सब साधारण। तो अपने अन्दर देखूं; शायद कुछ असाधारण चामत्कारिक बातें मिल जाएं—पर, यहां भी सब कुछ साधारण है, हृदय धक धक कर रहा है—सांस चल रही है—कानों में कुछ शब्द सुनाई देता है और अन्दर देखूं—शायद कुछ असाधारण चामत्कारिक बातें मिल जावें—हाय, यहां भी सब कुछ साधारण है—हृदय धक् धक् कर रहा है—सांस चल रही है—और अन्दर देखूं—नाना भावनायें उठ रही हैं—पाप की, पुण्य की, राग की, द्वेष की—और, और क्या? कुछ नहीं। यही तो मैं हूं—तो फिर मैं क्या लिखूं, कैसे लिखूं, कुछ समझ नहीं आता। मैं लिख सकता हूं पर असाधारण लेख लिखने में अपने आपको असमर्थ पा रहा हूं। असमर्थ कैसे, मेरा दिमाग तो बहुत अच्छा है, बहुतों को मैंने उसकी तारीफ करते हुए सुना है—मैं आज असाधारण लेख लिखूंगा—दिन रात एक कर दूंगा।

अरे, यह कौन जोर से मेरे कन्धे को हिला रहा है—ओह, यह तो हमारे अंतरंग मित्रवर हैं (नाम है रामरटन, काम है पर्यटन, धाम है धानपुर) कह रहे हैं—चलो घूमने, लेख फेख तो पीछे भी लिखे जा सकते हैं और

क्यों फ़ालतू स्याही खराब कर रहे हो। अरे भाई, लेख लिखना किसी ऐरे गैरे नत्थू खैरे का काम नहीं है कि कलम ली और घसीट दी—है तो भिखारी और शौक चढ़ आया है राजगद्दी पर बैठने का—।

आप, मैं अपने दोस्त की बात सुन कर सोच रहा हूँ कि क्या मैं एक असाधारण लेख नहीं लिख सकता।

साम्यवाद और गान्धीवाद

[ले०—श्री प० ब्रह्मानन्द जी]

आज कल जो हमें विश्व में घोर अशान्ति के लक्षण दिखाई पड़ रहे हैं, और सभी अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति के जानकारों को हर एक क्षण विश्वव्यापी महायुद्ध की शङ्का से उद्विग्न है, इसका प्रतिकार कैसे हो? यह विचार प्रत्येक विचारक के मन में उठता है। अतीत में भी इस प्रश्न पर बहुत से विचारकों ने विचार किया है। जिनमें कार्लमार्क्स आदि गम्भीर विचारकों ने इस अशान्ति का कारण आर्थिक विषमता को समझा। और यह कहा कि यदि आर्थिक दृष्टि से सभी मनुष्यों को समान कर दिया जावे तो इस अशान्ति का निराकरण हो सकता है। उस विचार का क्रियात्मक रूप लेनिन आदि महापुरुषों के प्रभाव से आज हमें रूस में दिखाई पड़ रहा है। ऊँच-नीच, धनी-निर्धन आदि विषमताओं से भरे हुए संसार में समानता के प्रकाश को डालता हुआ रूस आज संसार के सभी देशों में शिरोमणि के रूप में मालूम हो रहा है। जब हम रूस के साम्यवादी राज्य का वर्णन पढ़ते हैं तो हमारे मन में यह भाव आता है कि भला इस दुःखमय संसार में ऐसा भी स्वर्गीय दृश्य प्राप्त हो सकता है? आज हमारे देश के तथा अन्य देशों के भी बहुत से लोग यह समझ रहे हैं कि वस्तुतः विश्व को शान्ति तभी मिल सकती है जब कि सर्वत्र उसी प्रकार साम्यवादी राज्य की स्थापना कर दी जावे जैसी रूस में है।

इन सब बातों के होते हुए भी इस रूसी साम्यवाद से बहुत से विचारक मत भेद रखते हैं और उनके मतभेद उपेक्षणीय नहीं कहे जा सकते। मैं जिन के विचार की ओर इस समय निर्देश कर रहा हूं वे आधुनिक संसार के सर्वश्रेष्ठ महापुरुष महात्मा गान्धी हैं।

महात्मा गान्धी का कथन है कि मैं साम्यवाद से तो सहमत हूँ किन्तु मैं उसे हिंसा से प्राप्त करना नहीं चाहता। मार्क्स और लेनिन के साम्यवाद से गान्धीवाद का यही मौलिक अन्तर है। हिंसा से साम्य की प्राप्ति हो ही नहीं सकती। इसीलिए रूस में स्टालिन अपने से भिन्न ट्राट्स्की आदि विचारकों के प्रति नृशंसता का व्यवहार कर रहा है। यह तो वस्तुतः साम्राज्यवाद का ही रूपान्तर है। यदि स्टालिन को अपने से विरोधी विचार वालों को नष्ट कर देने का अधिकार है तो दूसरों को क्यों नहीं? इसका विचार करने पर हिंसा के अन्दर कार्य करती हुई सूक्ष्म साम्राज्यवादिनी मनोवृत्ति का आभास हमें प्राप्त हो जायेगा। अतः हमें यदि वास्तविक साम्य की प्राप्ति करनी है तो सत्य और अहिंसा का अवलम्बन लेना होगा। हम लोगों को इस समय सत्य और अहिंसा को व्यावहारिक रूप देना असम्भव सा लगता है, किन्तु जितने भी नवीन विचार हैं उन्हें व्यावहारिक रूप देने के समय प्रारम्भ में यही स्थिति होती है। असत्य और हिंसा के वातावरण में रहने के कारण हमें सत्य और अहिंसा को व्यावहारिक रूप देना वस्तुतः असम्भव न होते हुए भी असम्भव जान पड़ता है, धीरे २ अभ्यास से सम्भव प्रतीत होने लगेगा; यह यह जब से भारतीय राजनीति में गान्धी जी का प्रवेश हुआ है तब से आज तक के भारतीय इतिहास को देखने से स्पष्ट विदित होता है। अतः गान्धीवाद, जो कि सत्य और अहिंसा से मिश्रित साम्यवाद का पर्यायवाची है, से ही संसार को शान्ति प्राप्त हो सकती है। ऐसा मुझे अब तक के विचार से निश्चय हो रहा है।

गुरुकुल समाचार

स्वास्थ्य समाचार

ऋतु मनोहर है। वर्षा इस वर्ष बहुत कम हो रही है यद्यपि सर्वथा अभाव नहीं है। सत्रान्तावकाश समाप्त हो चुका है और पढ़ाइयां नियम पूर्वक प्रारम्भ हो चुकी हैं। महाविद्यालय विभाग के लिए शीघ्र ही दो नये उपाध्याय महानुभाव नियुक्त होकर गुरुकुल में आ रहे हैं। ब्रह्मचारी साधारणतया सब स्वस्थ तथा प्रसन्न मालूम होते हैं। इस समय कुछ ब्रह्मचारी मम्स के रोगी हैं जिन्हें कि अन्य ब्रह्मचारियों से पृथक् रखा गया है ताकि यह बीमारी बच्चों में फैलने न पावे। इस सप्ताह चिकित्सालय में निम्न ब्रह्मचारी रुग्ण हुए—

ब्र० वेदप्रकाश २य श्रेणी, ब्र० हरिमोहन ४र्थ श्रेणी टाइफायड से, सुरेन्द्र ४र्थ देवेन्द्र २य, कृष्णानन्द ५म, मलेरिया से कर्मवीर ४र्थ, रवीन्द्रनाथ १म, गुरुदेव ३य, उदयवीर १य, यशपाल ३य, आत्मानन्द ३य, मम्स से रोगी हैं।

इस सप्ताह उपरोक्त ब्र० रोगी हुए थे। ब्र० वेदप्रकाश तथा हरिमोहन को अभी ज्वर है। शेष सब अच्छे हैं।

शोक सभा

कुलवासियों की यह शोक सभा बड़ौदा के राजरत्न मा० आत्माराम जी के देहावसान पर गहरा दुःख प्रकट करती है। आप समाज के उन आधारभूत स्तम्भों में से थे जिन पर आर्यसमाज गर्व कर सकता है। आपकी विद्वत्ता और त्याग आदर्श है। यह सभा आपके सन्तप्त परिवार से सहानुभूति प्रकट करती है और परमात्मा से प्रार्थना करती है कि उनकी दिवंगत आत्मा को शान्ति प्रदान करें।

चौधरी दुलाराम के प्रबन्ध से गुरुकुल यन्त्रालय गुरुकुल कांगड़ी में मुद्रित तथा प्रकाशित।

* ओ३म् *

"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत" Reg. No. A. 2927

गुरुकुल

सम्पादक—भारतभूषण वेदालङ्कार

एक प्रति का मूल्य -) [गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख-पत्र] वार्षिक मूल्य २॥)

वर्ष ३] गुरुकुल काङ्गड़ी, शुक्रवार २१ श्रावण १९९५; ५ अगस्त १९३८ [संख्या १२

तत्

[ले० श्री० प्रो० लालचन्द जी]

तत् शब्द बहुत महत्व पूर्ण है, यह सब शास्त्रों में स्थान स्थान पर ईश्वर की ओर संकेत के लिये प्रयुक्त हुआ है। एक जगह बुल्लेशाह ने लिखा है—

"बुल्लेआ रब्ब दा की पावना
एधों पुट्ट के ओथे लावना।"

अर्थात् ईश्वर का पाना क्या है? मनको इधर से हटाकर उधर जोड़ देना। एक 'यह' है और एक 'वह' है एक प्रकृति है और एक पुरुष है। उस पुरुष की ओर ध्यान खींचने में यह 'तत्' शब्द बहुत सहायक है। परम हंस रामकृष्ण जी कहा करते थे कि 'ओ३म् तत् सत्' कहते हुए जब मैं तत् पर पहुंचता हूँ तो ध्यान ऐसा प्रभु में जुट जाता है जैसे निशाने में तीर। तत् बहुत ज़बरदस्त बहुत शक्तिशाली शब्द है। इसका ठीक उच्चारण—श्रद्धा से उच्चारण एकदम कांटा बदल देता है और ध्यान को बहुत जल्दी प्रभु की ओर मोड़ देता है। एक और महत्व पूर्ण वाक्य में तत् शब्द बहुत ज़ोर से प्रयुक्त हुआ है। "तत् त्वं असि" तू वह है। पहले वाक्य में भी 'तत्' पहले स्थानपर है, इसमें भी 'तत्' पहले स्थान में है। एक तो शब्द इतना ज़ोर वाला, दूसरा स्थान इतना महत्वपूर्ण, इसलिये इसका बल बहुत ज्यादा है। "तत् त्वं असि" का एक तो साधारण अर्थ है जिससे मनुष्य अपने आपको इधर से हटाकर प्रभु से एक करता है और अपनी आन्तरीय अथवा गहरी असलीयत का स्मरण करता है। तू शरीर नहीं है तू इन्द्रियों से भिन्न है, तू मन नहीं है, तू बुद्धि नहीं है, अन्नमय कोष, प्राणमय कोष, मनोमय कोष, विज्ञानमय कोष इन सब से तू न्यारा है, तू तो इन सब के अन्दर चोर की तरह छिपा हुआ शुद्ध बुद्ध आत्मा है, पुरुष है। तत् त्वं असि तू वह है तू यह नहीं है कहां गफ़लत में सोया है, किस भ्रम में पड़ा है, अपने असली स्वरूप को भूलकर दीन हुआ हुआ है, दर दर का भिखारी बना हुआ है, उठ जाग अपने स्वरूप को पहचान, तू तो शेर है, तू तो बादशाह है, तू तो सूर्य है तू पुरुष है—तत् त्वं असि।

तत् त्वं असि का स्वामी रामतीर्थजीने बहुत सुन्दर अर्थ किया है वह कहते हैं ए मनुष्य तू राग द्वेष क्यों करता है क्यों किसी की ओर तो तू बेबस हुआ हुआ खिंचा चला जाता है और किसी से तू अत्यन्त घृणा क्यों करता है। तू जिसका भी चिन्तन करता है जिसको भी देखता है सुन्दर या कुरूप है 'तत् त्वं असि' वह सब तू है। क्योंकि असल में तो सबके अन्दर आत्मा है उसमें भेद नहीं। भेद बल्बों में है, भेद बिजली में नहीं, भेद मनकों में है भेद सूत्र में नहीं। अनेक आत्मा मानने वाले भी आत्मा आत्मा में स्वरूप से भिन्नता नहीं मानते, और एक ही आत्मा मानने वालों के लिये तो भेद का कोई सवाल ही नहीं। इसलिये तत्वदर्शी के लिये रागद्वेष का कोई अर्थ नहीं। जब वास्तव में सब एक में या एक से हैं तो किसका किससे राग और किसका किससे द्वेष। तत्वदर्शी को जो सब में असलीयत है वह ऐसे दीखती है जैसे कांच के मनकों वाली माला में सूत्र। जैसे वह हर एक मनके में स्पष्ट सूत्र देखता है ऐसे ही हर एक व्यक्ति में वह स्पष्ट आत्मा देखता है इस भेद में अभेद भाव के अभ्यास के लिये 'तत् त्वं असि' बहुत सहायक है।

गायत्री मंत्र में भी यह महत्वपूर्ण शब्द उसी महत्व पूर्ण स्थान अर्थात् सबसे पहले प्रयुक्त हुआ है। ऐसा मालूम होता है कि यह शब्द ऋषियोंका प्यारा शब्द था जिसे बल पूर्वक उच्चारण करके वे अपने ध्यान को एक दम प्रभु के चरणों में जुटा देते थे। गायत्री मंत्र में भक्त प्रभु से प्रार्थना करता है कि हे प्रभु! हे पिता! हम तेरे उस वरने योग्य तेज का ध्यान करते हैं वो तेज हमारी बुद्धियों को सन्मार्ग पर लगावे।

योगतत्त्व निदर्शन

[ले०—श्री ब्र० दिलीपकुमार जी गुरुकुल सोनगढ़]

इस ब्रह्माण्ड के अन्तर्गत काल की अपरिमित विस्तीर्ण सरिता के अन्दर वासना रूप संसार का प्रबलतम प्रवाह अनादि काल से चला आ रहा है, परन्तु कोई विरला ही ऐसा पुरुष होता है जो कि इस अपार सागर के प्रचण्ड प्रवाह से स्वानुकूल श्रेयस्कर उपायों को उपलब्ध कर अपनी सम्पूर्ण तितर बितर होती हुई शक्तियों को अपने में केन्द्रित करके उससे बाहर तैर जाता है। परन्तु जब तक मनुष्य के अस्थि-मांस और रुधिर से बने हुए शरीर के अन्दर विद्यमान इस सर्वोच्च दिव्य शक्ति का उसको प्रकाश (भान) नहीं होता तब तक वह गाढ़ अन्धकार के अन्दर ही निमग्न रहता हुआ संसार रूपी इस व्यूहचक्र के अन्दर पथ भ्रष्ट होकर इधर से उधर टकराता हुआ असन्तोष के कारण महत्तम दुःख को प्राप्त होता है। इस प्रकार जब मनुष्य पर पदार्थों के अन्दर ही आत्मानुभूति करके अपने सत्य स्वरूप का भान नहीं होने से नानाविध घबराहटों में आकर उनसे मुक्त होने का चाहता है, तब आत्मस्वरूप का प्रत्यक्ष करके जीवन की उच्चतम भूमिका के ऊपर विहार करने वाले योगी महर्षि अपने नैसर्गिक करुणामय स्वभाव के कारण दीन दुःखित मनुष्यों को सत्य का दर्शन कराने के लिए अपने आत्मीय अनुभव के आधार पर विभिन्न मार्गों का 'दर्शन शास्त्रों' के रूप में दर्शन कराते हैं।

जिस प्रकार गीता तथा वेदादि शास्त्रों के अन्दर व्यक्तियों के अधिकार भेद के कारण ज्ञान, कर्म तथा भक्ति आदि विभिन्न काण्डों द्वारा एक ही ब्रह्म की प्राप्ति का निरूपण किया गया है, उसी प्रकार इन दार्शनिकों ने भी 'रुचीनां वैचित्र्यात्' के अनुसार भिन्न भिन्न स्वभाव वाले मनुष्यों के लिए परमात्म प्राप्ति या मोक्ष-प्राप्ति के लिए विभिन्न दर्शनों की रचना की है। यद्यपि उपनिषदें तथा वेदादि शास्त्रों के अन्दर दर्शनों के मूल-भूत सिद्धान्त अवश्य ही दृष्टिगोचर होते हैं, परन्तु उन सूक्ष्मतम विचारों को साधारण लौकिक जनों के लिए भी सुगम करने के उद्देश्य से दार्शनिकों ने अनेक दृष्टि-कोणों से सोच कर—चार्वाक, जैन, बौद्ध, पूर्वमीमांसा, वैशेषिक, न्याय, सांख्य, योग तथा वेदान्त (उत्तरमीमांसा) आदि अनेक दर्शनों की रचना की है। परन्तु इस लेख के अन्दर हम प्रत्येक अलग अलग दर्शन के ऊपर विचार न करके 'योगदर्शन' के ऊपर ही विचार करेंगे।

आज कल बहुत से साधारण मनुष्य, कुछ एक अंश में उदरपूर्ति करने के लिए भटकता हुई भिक्षुकों की जमात तथा फकीर आदि को देख कर तथा उनके विचारों को सुन कर—योग के विषय में अनेक प्रकार के मिथ्या ख्याल कर बैठते हैं। और 'योग' शब्द सुनते ही उनके दिल के अन्दर—शरीर को अत्यन्त कष्ट देने वाले तथा जन समाज के सर्व सम्बन्धों का मूलोच्छेदन करके, अरण्य के एकान्त नीरव कोने के अन्दर समाधि लगा करके बैठे हुए—कोई एक व्यक्ति विशेष का चित्र उनके सन्मुख उपस्थित होता है। इसी कारण से योगियों की इस प्रकार की उदासीन स्थिति जन समाज की उन्नति के लिए अत्यन्त हानिप्रद है, ऐसा सोच करके बहुत से लोग 'योग' शब्द से कुछ एक अंश में अरुचि प्रकट करते हैं। परन्तु यदि वास्तविक दृष्टि से देखा जाय तो योग के यथार्थ स्वरूप के रहस्य को नहीं जानने से तथा हठ योगादि देहदमन को ही सच्चा योग मान लेने से इस प्रकार के भ्रमात्मक विचार समाज के अंदर उत्पन्न होते हैं। और इसी कारण से जीवन विकास के अन्दर स्थिरता लाने के लिए अत्यन्त आवश्यक तथा उपयोगी गिने जाते हुए योग तत्त्व से वे लोग वंचित रहते हैं। परन्तु जन समाज के इस भ्रमात्मक विचार को दूर करते हुए योगेश्वर श्री कृष्ण अपनी भगवद् गीता के अन्दरः—

"नात्यश्नतस्तु योगोऽस्ति, न चैकांत मनश्नतः"

इस श्लोक में मन का हठ पूर्वक निरोध करने के लिए शरीर को अत्यन्त कष्ट देने वाले, तथा, 'योगः कर्मसु-कौशलम्' इस सिद्धान्त के अनुसार- योगी के नाम पर आलसी के समान निष्कर्मण्य जीवन व्यतीत करने वाले व्यक्तियों का स्पष्ट विरोध करते हैं।

यद्यपि अपनी निरर्थक नष्ट होती हुई शक्तियों का संचय तथा साधना करने के लिए "योग श्चित्तवृत्ति-निरोधः" के अनुसार बहिर्वृत्तियों का नाश करके अंतः वृत्तिक होने की अनुकूल परिस्थिति के लिए शान्तिमय तथा एकान्त जीवन की अत्यन्त आवश्यकता है, लेकिन फिर भी इस संचित शक्ति के प्रयोग क्षेत्र के तौर पर संसार तथा उसके व्यवहारों की कभी उपेक्षा नहीं की जा सकती। इसी कारण से नैष्कर्मण्य का उपदेश देते हुए भगवान् कृष्ण अकर्म तथा विकर्म को अस्वीकार करके आत्म प्राप्ति के सहायक रूप आभ्युदयिक तथा नैःश्रेयसिक सिद्धि को प्राप्त करने के लिए सत्कर्म के ऊपर बहुत ही जोर देते हुए प्रतीत होते हैं। जिस प्रकार सुषुप्ति की शान्त अवस्था से जाग कर-प्राप्त की हुई शक्ति जागृत अवस्था के अन्दर उपयोग में आती है उसी प्रकार योग की शान्त परिस्थिति के अन्दर प्राप्त की हुई ज्ञान साधना की वास्तविक सफलता सामाजिक व्यवहार के क्रियात्मक मार्ग में ही हो सकती है। जब ज्ञान को कर्म- में नहीं ढाला जाता तब तक ज्ञान कभी भी परिपूर्ण नहीं हो सकता, अर्थात् यह कह सकते हैं कि कर्म ही मनुष्य के यथार्थ ज्ञान की सच्ची कसौटी है। जो व्यक्ति व्यवहार की इस कठिन कसौटी में से आत्म प्राप्ति के शुभमार्ग को नहीं छोड़ता हुआ पार हो जाता है, वही सच्चा ज्ञानी है योगी है। जब तक इष्टानिष्ट ज्ञानका भान करने वाली भक्ति के द्वारा ज्ञान तथा कर्म का सुमेल साधने में नहीं आता तब तक कोई भी पुरुष सच्चा योगी नहीं कहा जा सकता। इस से प्रत्येक साधक के अन्दर ज्ञान, कर्म तथा भक्ति ये तीनों ही चीजें आवश्यक हैं।

यदि हम ऐतिहासिक दृष्टि कोण से अवलोकन करें तो हमें स्पष्ट ज्ञान होता है कि- चैतन्य महा-प्रभु, सन्त तुकाराम, कबीर, नानक, स्वामी विवेकानन्द, स्वामी दयानन्द, स्वामी रामतीर्थ [सुकरात], जरथुस्त्र, महात्मा ईसा, भगवान् बुद्ध, महावीर स्वामी- आदि अनेक महापुरुष अपना प्रारम्भिक जीवन संपूर्ण तरह से ज्ञान साधन के अन्दर लगा करके शेष जीवन कर्म अर्थात् सामाजिक क्षेत्र के अन्दर व्यतीत करते हुए प्रतीत होते हैं। सचमुच ज्ञान और कर्म का सुमेल साधने वाले ये महापुरुष सच्चे योगी हैं। इस प्रकार ऐतिहासिक तथा बौद्धिक (Historical and Logical) इन दोनों दृष्टि से देखते हुए प्रत्येक देश के जीवन क्रम के अन्दर योग की महत्ता स्पष्टतया झलक उठती है।

यद्यपि योग या आध्यात्मिक विचार धारा कोई देश विशेष या जाति विशेष का ठेकेदार नहीं है प्रायः प्रत्येक देश या जाति के अन्दर उसके विचार दृष्टिगोचर होते हैं। लेकिन तब भी योग या आध्यात्मिक क्षेत्र को सर्वांग परिपूर्ण बनाने का जो किसी को भी श्रेय हो सकता है तो वह आर्यावर्त को ही है। भारतवर्ष की आध्यात्मिक विचार धारा की तुलना में अन्य देश की गिनती तो सिन्धु के सामने एक छोटी सी नदी के समान ही प्रतीत होती है। आर्यावर्त- वासियों की इस आध्यात्मिक लगन के कारण ही उनके तत्त्वज्ञान, आचार-विचार, नाटक, काव्य, इतिहास आदि प्रत्येक साहित्यिक क्षेत्र के अन्दर उसका अंतिम लक्ष्य-बिन्दु मोक्ष ही दृष्टिगोचर होता है। इतना ही नहीं प्रत्युत युद्ध क्षेत्र के अन्दर भी भगवान् कृष्ण अर्जुन को आध्यात्मिक भावना से परिपूर्ण विचारों का बोध देते हुए दृष्टिगोचर होते हैं। और बाणों की शैय्या पर सोते हुए भीष्म पितामह भी युधिष्ठिर को आध्यात्मिक विचारों का पान कराते हैं। इस प्रकार आर्यावर्त के अन्दर अत्यन्त प्राचीन काल से योग के विचार बहुत ही गहरी जड़ें डालकर पड़े हुए अवगत होते हैं। इस के सिवाय यदि योग की सर्वव्यापकता के ऊपर दृष्टि फेंकें तो स्पष्ट प्रतीत होता है कि प्रायः प्रत्येक सम्प्रदाय [मतावलंबी] ने अपने अपने मार्ग के अनुसार योग के तत्त्वों को किसी भी तरह के बिना विरोध के अपनाया है, और प्रत्येक दर्शन ने भी इस का स्वीकार करके अपने दर्शन के कलेवर के अन्दर इसको उचित स्थान दिया है। जिस प्रकार एक वटवृक्ष के तने में से अनेक छोटी बड़ी शाखायें निकल करके फैलती हैं उसी प्रकार इस योगतत्त्वरूप एक महावृक्ष के तने में से अनेकों प्रकार की राजयोग मन्त्रयोग, लययोग, हठयोगादि विभिन्न तथा विस्तृत कितनी ही छोटी बड़ी शाखायें उत्पन्न होती हैं। केवल एक भगवद्गीता के अन्दर ही कितने ही प्रकार के योगों का दिग्दर्शन कराया गया है। और इसके अठारह अध्याय भी एक एक योग ही हैं किन्तु यहां हम अनेक प्रकार के योगों का महत्त्व नहीं दिखला कर सर्वप्रथम 'पातञ्जल योगदर्शन' का न्याय, वैशिक, सांख्य, मीमांसा तथा वेदांत दर्शनों के साथ यत्किञ्चित् संबन्ध पता कर राज योग के ऊपर ही विचार करेंगे।

सर्व प्रथम यदि हम प्राचीन दर्शनों के ऊपर विचार करें तो हम उन्हें—

(१) प्रकृति (Matter) या आत्मा का निरूपण करने वाले तथा—

(२) पुरुष, आत्मा (Mind, spirit) या प्रलय का निरूपण करने वाले इन दो विभागों के अन्दर विभक्त कर सकते हैं।

(१) पूर्व मीमांसा, न्याय तथा वैशेषिक दर्शन सब प्रकृति के ही गुण धर्मों की विस्तार पूर्वक व्याख्या करके पदार्थ के साधर्म्य तथा वैधर्म्य निरूपण करते हैं।

(२) सांख्य, योग तथा वेदान्त दर्शन आत्मा— अनात्मा, या प्रकृति—पुरुष के अन्दर विवेक बुद्धि को उत्पन्न करा करके, आत्म प्राप्ति के सच्चे उपायों का निरूपण करके अन्त में 'ब्राह्मी स्थिति' को प्राप्त कराते हैं। इस प्रकार इन छहों दर्शनों के अन्दर एक क्रम-विशेष होने के कारण प्रत्येक दर्शन एक दूसरे के साथ मिले हुए हैं। इसी कारण से—तत्त्वज्ञान या सत्यासत्य की निर्णायक बुद्धि को उत्पन्न करने वाले न्यायदर्शन; पदार्थ के साधर्म्य तथा वैधर्म्य ज्ञान के मार्ग को बताने वाले वैशेषिक दर्शन, इहलौकिक तथा पारलौकिक उन्नति-मूलक, कर्म के अन्दर सावधानता का पाठ पढ़ाने वाले पूर्वमीमांसा; प्रकृति अर्थात् अनात्मा से उत्पन्न होने वाले अन्तः जगत् तथा बहिः जगत् का सविस्तार वर्णन करके प्रकृति तथा पुरुष का विवेक ज्ञान उत्पन्न कराने वाले सांख्य दर्शन; और अन्त में 'तत्त्वमसि' तथा 'अहं ब्रह्मास्मि' का भाव कराने वाले—वेदान्त इत्यादि समदर्शनों के साथ आत्मसाक्षात्कार के क्रियात्मक उपायों को बतलाने वाले योगदर्शन का अत्यन्त घना संबंध प्रतीत होता है। परन्तु इन सब दर्शनों की अपेक्षा पातञ्जल योग दर्शन की यदि कुछ विशेष महत्ता हो सकता है तो वह यही है कि क्लेश के दावानल के अन्दर पथभ्रष्ट पथिक को आत्मसाक्षात्कार के शीतल जल का पान कराने के लिए क्रियात्मक उपायों के द्वारा मुक्तिपथ के द्वार को खोल कर निरतिशय आनन्द की प्राप्ति कराना है। परन्तु इन छहों दर्शनों के अन्दर अनादि काल से चले आते हुए माया अज्ञान (अज्ञान-अविद्या) के बन्धनों को तोड़ने के लिए Subject तथा Object के विषय में सर्वप्रथम विचार करने वाले सांख्य दर्शन के साथ योगदर्शन की अत्यन्त समानता प्रतीत होती है। इतना ही नहीं प्रत्युत कपिल प्रतिपादित पुरुष और प्रकृति के तत्त्वविचार को प्रायः स्वतः सिद्ध मान कर उसका सम्पूर्णतया स्वीकार करके ही योग दर्शन आगे चलता है। 'अपूर्ण'

गु रु कु ल

५ अगस्त शुक्रवार १६३८

तुलसीदास

हिन्दी साहित्य में तुलसी का स्थान इतना ही ऊंचा है जितना संस्कृत और अंग्रेजी साहित्य में क्रमशः कालिदास और शेक्सपियर का है। कालिदास और शेक्सपियर का नाम विश्व-साहित्य के निर्माताओं में है आज हिन्दुओं को और अंग्रेजों को कालिदास और शेक्सपियर पर गर्व है और होना भी चाहिये। परन्तु इनकी रचना किसी म्रियमाण जाति का उद्धार नहीं कर सकी। इसके विपरीत हम देखते हैं कि तुलसी की रचना मरती हुई हिन्दू जाति को जीवन प्रदान करती है। यदि आज रामचरितमानस को नष्ट कर दिया जाय तो हिन्दू जाति दीया लेकर ढूंढने पर भी नहीं मिलेगी। भूषण ने भी इस बात का सराहनीय प्रयत्न किया है जिसकी कि उपेक्षा नहीं की जा सकती, फिर भी तुलसी भूषण से बढ़ गये थे।

तुलसी के जीवन के विषय में इतना ही कहा जा सकता है कि उनका शैशव आजकल के जनसाधारण के बालकों की तरह विद्यालयों में नियमित पढ़ते हुए नहीं बीता था परन्तु इन्होंने अपने ही प्रयत्न से सब कुछ सीखा। जिस प्रकार कालिदास का भौगोलिक ज्ञान असाधारण रूप से था उसी प्रकार तुलसी को भी इसका अध्ययन भली भांति था। तुलसी ने यह भी किसी गुरु मुख से सीखा हो ऐसा न था परन्तु यह उनके भ्रमण का परिणाम था। इन्होंने उत्तर में मानसरोवर से लेकर दक्षिण में सेतुबन्ध रामेश्वरम् तक पैदल घूम घूम कर यात्रा की थी। इनके इस तीर्थाटन का परिणाम बड़ा सुन्दर हुआ. इससे इनका व्यावहारिक ज्ञान बहुत बढ़ गया दूसरा इन्होंने अनेक भाषाओं का ज्ञान प्राप्त कर लिया। यही कारण है कि इनकी भाषा साफ़ और भाव चुभने वाले हैं।

तुलसी ने अपने ग्रंथों में अवधी और ब्रज इन्हीं दो भाषाओं का प्रयोग किया है, यद्यपि तुलसी का ब्रज भाषा पर जो अधिकार था वह अध्ययन से ही था फिर भी उसमें प्रचुर मात्रा में रस है। सूर की तरह इनकी भाषा उखड़ी हुई नहीं है किन्तु बहुत सुन्दर गठन है। सूरदास ने तुकान्त के लिए शब्दों को तोड़ा मरोड़ा है। अन्य भी बहुत से कवियों ने नये नये मनमाने शब्द रचे हैं पर तुलसी में ऐसी बुरी प्रवृत्ति नहीं है। इसमें शक नहीं कि कहीं २ कुछ शब्द विवश होकर तोड़ने पड़े हैं पर उनका स्वरूप बहुत अधिक नहीं बिगड़ा है।

सूर ने भगवान् की स्तुति एक सखा के रूप में की है, परन्तु तुलसी ने प्रभु के दर्शन सेवक के रूप में, निरंतर उनके चरणों में रह कर किए हैं, न कि सूर की तरह खेलते या खाते हुए। फिर भी सूरदास की कल्पना कम नहीं है। यदि एक अनुपम है तो दूसरी भव्य है एक स्वर्गीय है तो दूसरी नैसर्गिक है। यदि तुलसी के प्रेम-विह्वल नयनों में भगवान् का दर्शन करने के लिए कोई उत्सुक है तो मिट्टी में खेलते हुए धूसर, तथा चुरा कर माखन खाते हुए सूर के भगवान को देखना न चाहे ऐसी बात नहीं है। दोनों का कोई मुकाबला नहीं है दोनों एक ही वस्तु के पूरक हैं. दोनों ही उत्कृष्ट और महान् हैं।

तुलसी अपनी कविता में रखते तो हैं सीधी सादी रातदिन व्यवहार में बरती जाने वाली बातें, पर उनका संयोग ऐसे प्रसंग में करते हैं कि ये साधारण बातें भी एक महत्व को पकड़ लेती हैं।

भाषा को रसानुकूल बनाने के लिए माधुर्य, प्रसाद तथा ओज का ध्यान रखना आवश्यक हो जाता है। तुलसी ने कवितावलि में इस बात का ध्यान अपने अन्य सब ग्रन्थों से अधिक रक्खा है। राम के बालरूप वर्णन में माधुर्य कूट २ कर भरा है। लंका काण्ड में ओजगुण का प्रयोग कवि की चातुरी का निदर्शक है, और प्रसाद गुण तो सारी पुस्तक भर में है। तुलसी ने अपने ग्रन्थों को और भी अधिक माधुर्यरस पूर्ण बनाने के लिए संस्कृत की कोमल कान्त पदावली का जगह जगह प्रयोग किया है। परन्तु अर्थ गौरव शब्द जाल में उलझना नहीं है। किन्तु शब्दों में अर्थ को प्रकट करने की शक्ति और भी अधिक बढ़ जाती है। तुलसी किसी वस्तु का वर्णन करने में किसी से पीछे नहीं है। कालीदास जहां नारी रूप वर्णन में आचार्य है और भवभूति पुरुष या शिशु रूप वर्णन में सिद्धहस्त है वहां तुलसी दोनों वस्तुओं का वर्णन करने में श्रेष्ठ है।

तुलसी ने सभी रसों में कविता की है और हर एक में कमाल हासिल किया है, जिस रस को लिया है, उसे उपयुक्त स्थान पर ही लिया है और उसकी धारा बहा दी है, यहां तक कि एक यही ऐसे कवि माने जाते हैं जिन्होंने पवित्र और सात्विक शृंगार रस में कविता की है।

रामचरित मानस को तुलसी ने केवल बाल्मीकि रामायण के आधार पर बनाया हो ऐसी बात नहीं, कथानक तो यही है परन्तु उसमें अपने चित्र और उपमाओं द्वारा जो एक सजीव सी वस्तु तय्यार कर दी है उसको देखकर उन्हें प्रतिभाशून्य नहीं कहा जा सकता।

तुलसी ने रामचरित मानस केवल अपने विरह व्यथित हृदय के फफोले फोड़ने मात्र के लिए—(पत्नि-वियोग) नहीं बनाई थी। उन्हें व्यथा अवश्य थी परन्तु वह और प्रकार की थी। उन्होंने घूम फिर कर भारत के पीड़ित मनुष्यों की आहों को सुना था, अनाथ अबलाओं की करुण पुकार उनके कानों तक पहुंचती थी, परन्तु शायद इतना ही होता तो रामचरित मानस की उत्पत्ति नहीं होती, परन्तु उन्होंने यह आर्तनाद समाज की आड़ में होता हुआ सुना। तुलसी को समाज तथा जाति की गिरती हुई अवस्था देखना असह्य था। अतः इन्हें पुनः

जागृत करने के लिए एक ठोस कार्य की आवश्यकता थी। जिसका अनुभव उन्होंने भलिभांति किया था।

इस अवस्था में एक विचारणीय प्रश्न यह हो सकता है कि तुलसी ने इस कार्य के लिए राम को ही क्यों चुना क्या कृष्ण इसके लिए अनुपयुक्त थे? कृष्ण को ही लेकर उनकी भक्ति में–सूर, रसखान आदि की तरह लिखाजा सकता था। इसका उत्तर यही है कि उस समय मत-मतान्तर सम्बधो इतनी विच्छृङ्खलताएं छाई हुई थी कि उसी मार्ग पर आगे चलना असम्भव था। अतः तुलसी ने प्रचलित वस्तु का एक दम प्रतिरोध न कर एक आदर्श को सामने रखते हुए पुराने आदर्श को ठुकराया नहीं किन्तु विनय पत्रिका आदि में परिमार्जित रूप में रख कर अपनी उदारता का परिचय दिया है और सब धर्मों में एक बहुत सुन्दर सांमजस्य कर दिखाया है। तुलसी धर्म के नाम पर अथवा संप्रदाय के नाम पर होने वाले अत्याचारों के विरोधी थे यह इनकी इसी मनोवृत्ति का परिचायक है।

इतना होने पर भी कई लोग कहते हैं कि तुलसी ने जो कुछ लिखा है वह सब स्वान्तः सुखाय ही है, क्योंकि उपदेश देने की अभिलाषा से अथवा कवित्व प्रदर्शन की कामना से जो कविता की जाती है उसमें आत्मा की प्रेरणा न होने के कारण स्थायित्व नहीं रहता है। यह बात ठीक है किन्तु तुलसी में उपदेश की प्रवृत्ति मनुष्यों की दुरावस्था से उत्पन्न कसक का परिणाम है और इसी कसक के कारण ही तुलसी के उपदेश में हृदय की गहरी अनुभूतियां छिपी नहीं रह सकी हैं और तुलसी की इसी रोम २ से निकलती कसक के ही कारण, उनकी कृति में मनुष्य जीवन के दिव्य अमर आदर्श भरे पड़े हैं जिनके कारण वे स्वयं और उनका काव्य दोनों ही चिरकाल तक इस विश्वसाहित्य वृक्ष के एक अंग होकर रहेंगे।

तुलसी की प्रसिद्ध उनके जीवन काल में ही होने लगा था। और यदि इस बात पर विचार करें कि उस समय के संस्कृत के विद्वान् भाषा की कविता को हेय समझते थे तब इनका मान होना इनके महत्व को और भी अधिक बढ़ देता है। तुलसी का जीवन काल में ही जो प्रसिद्ध मिली वह निरन्तर बढ़ती चली गई, और अब यह दिग्दिगन्त व्यापिनी होरहा है

आज भी छोटे २ हिन्दुओं के गृहों में कर्मनिष्ठ गृहपति तथा कर्त्तव्यपरायणा गृहलक्ष्मी रात को दीए के टिमटिम ते प्रकाश में रामचरित मानस को पढ़ते हैं और इसे एक दैनिक धार्मिक कर्तव्य समझते हैं। प्राचीन रूढ़ियों से घिरी हुई एक हिन्दू रमणी अपनी शिक्षा के विषय में इतना ही जानना पर्य्याप्त समझती है कि वह रामचरित मानस को अपनी आत्मा की शान्ति के लिए, अपनी धुंधली आंखों से जीवन संध्या के अन्तिम क्षणों में पढ़ सके।

तुलसीदास जी हिन्दू जाति, हिन्दू धर्म, और हिन्दू संस्कृति के अक्षुण्ण रखने वाले हमारे प्रतिनिधि कवि हैं। तुलसी के बाद हिन्दी में कोई ऐसा कवि नहीं हुआ जो कम से कम इनकी समकक्षता कर सकता। हिन्दी कवित्व के कीर्ति मंदिर में तुलसी का स्थान सबसे ऊंचा और सब से विशिष्ट है।

संक्षेप में हम तुलसी को केवल इतने २ छू पाए हैं। अन्त में यही कहा जा सकता है कि तुलसी की यशः प्रशस्ति अमिट अक्षरों में प्रत्येक हिन्दी भाषा भाषी के हृदय पटल पर अनन्त काल तक अंकित रहेगी इसमें कोई शक नहीं।

जल्दी में

[ले०– श्री 'चक्र - चरण']

प्रायः लोग मुझ से पूछते हैं कि तुमने पहाड़ों में क्या देखा? अब इस 'क्या' का एक वाक्य में उत्तर देना बड़ा मुश्किल है। जिस यात्रा को करने में इतने दिन लग जावें, उसका सार एक वाक्य में निकाल कर बता देना–और वह भी ऐसा कि उससे किसी का मतभेद न हो–बहुत मुश्किल है। हां, उस 'क्या' का उत्तर एक वाक्य में तो दिया नहीं जा सकता, तो फिर विस्तार में ही सही। पर जब मनुष्य जल्दी में हो तब यह भी सम्भव नहीं।

२५ जून तक हम कुल्लू में थे। महीने के अन्त तक यात्रा समाप्त करनी थी, और अभी कल्लू से डलहौजी का पुरोगम अवशिष्ट था।

सवेरे जब चले तो आकाश में बादल छाये हुए थे। मोटर - रोड से योगेन्द्रनगर ८० मील से भी अधिक पड़ता है, पगडण्डी से ४१ मील है। कुल्लू से ६ मील बाद कडौन आता है और इस के १४ मील बाद सिलबुधवानी। एक समय था जबकि एक मात्र यह सिलबुधवानी वाला रास्ता ही था, पर जब से मोटर आगई है तब से यह रास्ता परित्यक्त-सा और निर्जन-सा हो गया है। सिलबुधवानी तक जाने में जो कठिन चढ़ाई पड़ती है वह 'बज्जू की जोत' के नाम से मशहूर है। चढ़ाई चढ़ने के बाद ठीक चोटी पर जो अत्यन्त शीतल जल का स्रोत आता है उसका पानी तो बस पीते ही बनता है। यह सर्वरोगहारक है। २३ मील चलने के बाद भी सन्तोष नहीं हुआ, और फिर अगले दिन के मार्ग को बचत के लोभ से ५ मील और चले। वह ५ मील कठिन चढ़ाई थी, यह ५ मील कठिन उतार है। और कइयों के अनुभव में तो उस चढ़ाई की अपेक्षा उतार ही अधिक महँगा पड़ा -- जगह २ पत्थर और ऊबड़खाबड़ रास्ता। धर्मेट जाकर रुके। सुन्दर डाक बगला देखकर यहीं रुकने की मर्ज़ी हुई, पर अभी दिन थोड़ा-सा बचा था। इसलिये फिर चले।

७ मील चलने के बाद कुछ चढ़ाई पर झटींगरी आया। आजकल यहां मण्डी रियासत का राजा गर्मी बिताने के लिये आया हुआ था। इन राजाओं का भी क्या हिसाब है– आज इस महल को आबाद किया और कल उसे उजाड़ कर उसको, परसों फिर किसी दूसरे को। इस समय मण्डी के राजमहल में तो उल्लू बोलते होंगे!

और ये ३५ मील कुछ पता भी न लगे। अगले दिन सवेरे उठकर ५ मील बाद गुमा पहुँचे। यहां से योगेन्द्रनगर केवल ५ मील ही और बचा था। १० बजे से पहले २ पहुंच गये। सोचा था कि यहां का बिजली घर आज ही आज देखलेंगे और कल फिर आगे चल पड़ेंगे। पर १० बजे के बाद कोई प्रबन्ध नहीं हो सकता था।

अगले दिन सवेरे १० बजे से लेकर शाम के ४ बजे तक समय कितना भरा रहा, और किस प्रकार ट्रक पर चढ़ कर निचकैम्प होते हुए ब्रांट पहुँचे-जहां ३ मील लम्बी सुरंग- जिस में पूरी की पूरी नदी बँधकर चलती है, और फिर २००० फ़ीट की ऊंचाई से आने वाले वे ६ फ़ीट व्यास के नल जिनके द्वारा सारा पानी इतनी ऊंचाई से नीचे बिजली घर तक पहुंचता है, और फिर अभी सद्यानिर्मित १ फर्लांग की सुरंग जिसमें ६ करोड़रुपया खर्च हुआ है और निकटतम भविष्य में बनाई जाने वाली वह झील जिसको बनाने के लिये अमेरिका से इंजिनीयर आ रहे हैं—ये सब क्या कुछ चलते-फिरते चलचित्रों की बातें हैं? इसके लिये तो एक अलग लेख की आवश्यकता होगी। यहाँ तो हम कुछ महानुभावों के नाम लिखकर उन्हें धन्यवाद देना चाहते हैं जिन्हों ने हमारे साथ गृह-निर्विशेष बर्ताव किया- जिसकी मधुरता अभी तक आंखों में झूल रही है, जो भुलाये नहीं भूलती- और यह निश्चय है कि यदि उन सहृदय सज्जनों की दयालुता हमारे साथ न होती तो हमें काफ़ी तंग होना पड़ता। श्री महाशय गुहराम-दास जी जिनकी कृपा से हमें पास सरलता से प्राप्त हो सके, फिर हीरालाल गुप्ता और शिवनारायण पी डब्ल्यू आई, बाबू अब्दुलअज़ीज़ ओवरसियर, सोढ़ी साहब असिस्टेण्ट इंजिनीयर और श्री मंगल सिंह जी तथा किरपाराम जी ठेकेदार—इन महानुभावों को धन्यवाद किन शब्दों में दिया जाय? उन की महत्ता को बताने के लिये शब्द ओछे पड़ रहे हैं। और फिर इस तालिका में स्वामी निर्मलानन्दजी और आयसराज के मंत्री मिलखी राम जी का नाम भी सम्मिलित है।

उसी शाम को वहां से बैजनाथ के लिए चल पड़े-१३ मील है। शहर से १ मील दूर बैजनाथ जी का प्रसिद्ध मन्दिर है। अगले दिन सवेरे १२ मील दूर पालमपुर पहुंचे। अच्छा शिलस्तान है। लम्बे २ चीड़ के पेड़ और चाय के खेतों की हरियाली इसके भावी सौभाग्य की सूचक हैं और आशा है कि कुछ ही दिनों में यह भी शिमला और नैनीताल से टक्कर लेने लगेगा—क्योंकि यह भी अंग्रेजों की गुणग्राही नज़र में चढ़ गया है। उसी शाम को लारी में बैठ कर कांगड़ा प्रदेश की सुन्दर हरी भरी घाटियों में से होते हुए ५५ मील पार करके नूरपुर पहुँचे। ज्वालामुखी और धर्मशाला रास्ते में ही छूट गए।

श्री महाशय रत्नसिंह जी और म० धर्मवीर जी के सौजन्य से सब प्रबन्ध हो गया। अगले दिन चम्बा और डलहौज़ी की तय्यारी थी। रात को इन्हीं स्थानों का स्वप्न लेते हुए सोये।

× × × ×

सवेरे ४ बजे उठ कर चले। दो मील तक मोटर की सड़क पर चलने के बाद चम्बा के लिए रास्ता फटता है। यहां से चम्बा ३४ मील है। काफी चौड़ा रास्ता, दोनों ओर आम्र वृक्षों की पंक्ति और सवेरे का सुहावना समय। चलते गये। पर अभी ६ मील भी न चल पाए होंगे कि एक नदी की धारा सामने दिखाई दी, और धारा के उस पार आता हुआ एक ग्रामीण, उसके सिर पर रक्खा हुआ आमों का टोकरा। हम बड़ी दूर से आ रहे थे—इतने दिनों से लगातार पहाड़ों ही पहाड़ों में। कहीं आमों के दर्शन नहीं हुए थे। और इधर प्रातराश का समय भी लगभग हो ही गया था, बस ६ आने में दो सौ ढाई सौ आम वहीं धारा के बीच में डलवा लिये, और फिर यह चण्डाल चौकड़ी ऐसी जम कर बैठी कि तब तक उठने का नाम न लिया जब तक वहां एक भी आम बचा रहा। इतने में एक दूसरा ग्रामीण आया- उसके सिर पर भी आमों का टोकरा। इसके आम और भी मीठे थे। उससे भी वहीं डलवा लिए और फिर जम गए। पर अबकी बार ख़त्म नहीं कर पाये। देर काफ़ी हो गई थी और और आज चलना भी काफी था। बचे हुए आमों को वहीं छोड़ छाड़ कर आगे बढ़े—उन्हें उठाकर कौन ले जाता?

आगे सीधा चुआड़ी जाकर रुकना था, पर अभी चुआड़ी आने में ११ मील बचे थे। मार्ग की मैं पहले प्रशंसा कर आया हूँ, अब उसकी निन्दा नहीं करूंगा। पर समय बढ़ने के साथ साथ जब गर्मी भी बढ़ने लगी और फिर धीरे २ इतनी बढ़ गई कि वह असह्य हो उठी, तो बिचारा मार्ग इसका क्या इलाज करता? इतनी तेज़ धूप छाता ताने चले जा रहे हैं पर जैसे कि आसमान में लटके हुए उस आग के गोल की तप्त-तप्त किरणें उस छाते को भेद कर भी नीचे आ माथा तपा देती हैं। शरीर से पसीने की धारायें बह निकलती हैं—सारे पञ्जाब में भी मिला कर उतनी नदियां कदाचित् नहीं होंगी जितनी नदियां इस अकेले शरीर में स्वेद बन कर झरझर करके बह रही हैं। ऊपर से प्यास के मारे गला सूखा जा रहा है। पानी कहीं मिलता नहीं। दस कदम चले नहीं कि गर्मी इतना तंग कर देती कि आगे बढ़ना मुश्किल हो जाता। सोचा था कि ११ बजे से पहले २ चुआड़ी पहुंच जायेंगे, वहां से चम्बा १८ मील बच जायेगा। बस शाम तक चम्बा। पर उस दिन दो बजे चुआड़ी पहुंचे।

मध्यान्ह का भोजन करके आगे बढ़े गर्मी के मारे तंग आ चुके थे, अब धूप में चलने की हिम्मत नहीं रही थी। आगे ६ मील तक सीधी चढ़ाई थी, खड़ालाठी इसका नाम है—जैसे सचमुच सीधी लाठी खड़ी हो। ४ बजे चले। लग-भग घण्टे-डेढ़ घण्टे तक गर्मी ने वही सवेरे वाला हाल रक्खा, पर फिर 'साथी! सांझ लगी अब होने।' और फिर ऊंचाई पर आजाने के

कारण थे ही पर्वत-यात्रा के सदा के साथी चीड़ और देवदार के पेड़ ! तब भला गर्मी कैसी ।

रात को ८ बजे जोत पर पहुंचे। एक साथी पीछे रह गया। अंधेरा इतना बढ़ गया था कि बिना किसी कारण के भी डर लगता था। दुकानदार ने कहा-'यहां' रीछ बहुत होते हैं। अभी दो दिन पहले एक रीछ एक आदमी की खोपड़ी साफ़ कर गया। और जंगली जानवरों का कोई विश्राम भी नहीं है। अतः अच्छा हो, यदि दो-तीन मिलकर वापिस लौटकर अपने साथी को बुला लाओ। पर हिम्मत जवाब दे रही थी। अंत में किसी तरह जब मिल-मिलाकर जाने को तय्यार हुए तभी एक चीख सुनाई दी। यह चीख क्या थी ? उस पिछड़े हुए साथी ने रोशनी देख जान बूझकर शरारत की थी।

अगला दिन। ६ मील सख्त उतार—और फिर सबकी एक स्वर से इस अनुभव की घोषणा कि इधर के मील और स्थानों की अपेक्षा लम्बे हैं। ८ बजे चम्बा पहुंचे। इसकी जितनी तारीफ़ सुनी थी, उससे कहीं बढ़ा हुआ इसे पाया। यह अपने सौन्दर्य के लिये प्रसिद्ध है।

मैंने कहा न, कि मैं जल्दी में हूं। इसीलिये जहां इतनी भगदड़ करनी पड़ रही है वहां आपको भी अपने लोभ का संवरण करना पड़ेगा। दो घण्टे चम्बा ठहर कर डलहौजी को चल दिये जो वहां से २२ मील दूर था। इन दोनों स्थानों के बीच में है खज्यार-एक तालाब जिसमें एक टीला तैरता है। इसके विषय में इतना ही कहना काफ़ी होगा कि इसे देखने के लिये लोग विलायत तक से आते हैं। इतना सुन्दर स्थान अब तक और कोई नहीं देखा।

२ जुलाई को डलहौजी पहुंचे। २ दिन वहां ठहरे और तीसरे दिन पठानकोट उतर आये—एक दिन ५२ मील। अन्तिम दिन भी लम्बा हाथ मारा। रात को १२ बजे पठानकोट की आर्यसमाज में पैर रखा। और समझना चाहिये कि तभी यह 'चक्रचरण' की पर्वत-यात्रा समाप्त होगई।

लोग अपने सब कामों का साक्षी सूर्य भगवान को बनाते हैं। हमारी यह ५०० मील की यात्रा समाप्त हुई रात्रि के ठीक १२ बजे-जब सूर्य भगवान् भी नहीं होते। तो अपनी यात्रा की समाप्ति का साथी हम किसे बनायें ? बताइये !

गुरुकुल समाचार

स्वास्थ्य समाचार

ब्र० धमन्द्रनाथ (ज्वालापुर) ४र्थ श्रेणी, जगदीश १म, यतीन्द्र ३य, शम्भुदत्त २य, रामपाल ३य, हरिकृष्ण ४र्थ, हरिशरण २य, मम्पूल से सुखदेव २य तथा रामप्रकाश ५म श्रेणी विषमज्वर से पीड़ित हैं आशा है कि शीघ्र ही आराम हो जावेगा। शेष सब ब्र० अच्छे हैं।

गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ

ऋतु सुहावनी है आस पास हरियाली अति सुन्दर प्रतीत होती है। दो तीन अच्छी वर्षा हो चुकी हैं परन्तु अभी वर्षा की जरूरत है। मौसम स्वास्थ्यप्रद है। चिकित्सालय में ब्रह्मचारी हरिकृष्ण ६म मभ्य से रोगी है शेष सब स्वस्थ और नीरोग हैं। विद्यालय आश्रम का सब कार्य नियम पूर्वक चल रहा है।

आर्यसमाज के प्रसिद्ध विद्वान् श्री मास्टर आत्मा-राम जी अमृतसरी के स्वर्गवास का समाचार पढ़ कर गुरुकुल में शोक सभा की गई। सब गुरुकुल वासियों ने खड़े होकर निम्न प्रस्ताव पास किया—

कुल वासियों की यह सभा श्री पूज्य मास्टर आत्मा-राम जी अमृतसरी के देहान्त का शोक समाचार पाकर अत्यन्त दुःख अनुभव करती है। आप आर्यसमाज के प्रतिष्ठित विद्वानों में अपना विशेष स्थान रखते थे। आपका सम्पूर्ण जीवन शिक्षा एवं आर्यसमाज के साहित्य के निर्माण में ही व्यतीत हुआ है। आपके देहावसान से आर्य जगत् को विशेष क्षति पहुंची है। अतएव आपके शोक सन्तप्त परिवार से पूर्ण समवेदना प्रकट करते हुए परम पिता परमात्मा से हमारी यही प्रार्थना है कि वह दिवगत आत्मा को शुभ गति प्रदान करें, और उनके परिवार को शान्ति दें।

स्नातक भाइयों के प्रति आवश्यक सूचना

गुरुकुल के पिछले दो अंकों द्वारा स्नातक बन्धुओं से प्रार्थना की गई थी कि वे आगामी तीन वर्षों के शिक्षापटल के लिए दो प्रतिनिधियों का नाम उम्मीदवार के रूप में प्रस्तावक तथा अनुमोदक के हस्ताक्षरों के सहित भेजने की कृपा करें। निम्न महानुभावों के नाम कार्यालय में पहुंचे। निवेदन है कि सभी स्नातक महानुभाव अपना वोट किन्हीं दो उम्मीदवारों के पक्ष में प्रस्तोता कार्यालय में १ सितम्बर १९३८ तदनुसार १७ भाद्रपद १९९५ तक भेज देने की कृपा करें। इसके बाद प्राप्त हुए वोट नहीं गिने जावेंगे। आशा है सभी महानुभाव इस चुनाव में उत्साहपूर्वक भाग लेंगे।

सूचना—जिनको स्नातक बने तीन वर्ष नहीं हुए उन्हें वोट का अधिकार नही है।

उम्मीदवारों के नाम—

१. श्री पं० दीनदयालु जी सिद्धान्तालंकार गुरुकुल कांगड़ी
२. श्री पं० सुखदेव जी दर्शन वाचस्पति गुरुकुल कांगड़ी
३. श्री पं० चन्द्रमणि जी विद्यालंकार—देहरादून
४. श्री पं० सत्यदेव जी विद्यालंकार—रेलवे रोड लाहौर
५. श्री पं० इन्द्रसेन जी आयुर्वेदालंकार—भेरा—पंजाब
६. श्री पं० जयदेव जी विद्यालंकार गुरुदत्त भवन लाहौर

चौधरी दुलासराय के प्रबन्ध से गुरुकुल प्रेस गुरुकुल कांगड़ी में मुद्रित तथा प्रकाशित।

* ओ३म् *

"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत" Reg. No. A. 2927

गुरुकुल

सम्पादक—भारतभूषण वेदालङ्कार

एक प्रति का मूल्य -) [गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख-पत्र] वार्षिक मूल्य २॥)

वर्ष ३] गुरुकुल काङ्गड़ी, शुक्रवार २८ श्रावण १९९५; १२ अगस्त १९३८ [संख्या १३

उद्बोधन

(ले०—आचार्य देवशर्मा जी 'अभय' विद्यालंकार)

> मेह नो अद्य बोधय,
> उषो राये दिवित्मती ।
> यथा चिन्नो अबोधयः सत्यश्रवसि
> वाय्ये सुजाते अश्वसूनृते ॥ ऋग्वेद ।

हे उषः ! तू मुझे आज महान् ऐश्वर्य के लिए जगा। हे जगाने वाली देवि ! तू मुझे ऐसा जागृत कर कि मेरे लिये आज आत्मज्ञान का प्रकाश हो जावे, मुझे आज अपने ज्ञान में प्रकाशित करो, मुझे वह आत्मज्ञान मिल जावे जो सब ऐश्वर्यों का ऐश्वर्य है, जो बड़े से बड़ा ऐश्वर्य है। तू तो 'दिवित्मती' है, दिव्य प्रकाश को रखने वाली देवी है। तू मुझे अपने इस सर्वश्रेष्ठ दिव्य प्रकाश को और कब प्राप्त करावेगी ? जिस तरह तू मुझे समय समय पर जगाती रही है, मुझ में नये नये ज्ञान प्रकाश को चमकाती रही है, मुझे दिव्य उद्बोधनों से ठीक समय पर प्रबुद्ध करती रही है; उसी तरह तू आज हे सुजाते ! हे अश्वसूनृते ! तू आज मेरे इस 'सत्यश्रवावाय्य' जीवन में उस अपनी परम ज्योति को भी जगा दे, उसे जगाकर मेरे इस जीवन को भी सफल कर दे। मेरा जीवन सत्य पर ही आश्रित है, सदा सत्य श्रवण के अनुसार चलने वाला 'सत्य श्रवा' है। इसलिये यह अवश्य तुझ द्वारा 'वाय्य' है, निरन्तर प्रापणीय है, अविच्छिन्नरूप से विस्तारणीय है। तू तो महान् व्यापक प्रियसत्यात्मिका वाणी है, तू महान् सत्य संकल्प-रूपा है। तो मैं अपने इस 'सत्य श्रवस्' जीवन के अविच्छिन्न विस्तार के लिये तुझ से प्रार्थना न करूं तो किस से प्रार्थना करूं ? इसलिये, हे अश्वसूनृते ! आज तो तू मुझे अपने उस परम सत्य को भी सुना दे। हे सुजाते ! हे सुन्दर प्रकाश के साथ जन्मने वाली ! हे उत्तम ज्ञान के साथ प्रकट होने वाली ! तू मेरे लिये और किस दिन सुजाता होवेगी ? देख, भौतिक धनों की तो मैं ने कभी चाहना ही नहीं की है, ऋद्धि सिद्धि के दिव्य ऐश्वर्यों की कामना को छोड़े हुवे भी मुझे बहुत समय हो गया है, तो अब तो मैं अवश्य तेरे इस परम ऐश्वर्य का अधिकारी बन चुका हूँगा। इसलिये हे उषः ! तू मुझे आज अवश्य जगा, मुझे आत्मज्ञान के महान् ऐश्वर्य में जगा, जिसे प्राप्त कर सब महात्मा लोग मालामाल होते रहे हैं, जिस में जागकर सब मुक्तजीव निहाल होते रहे हैं। हे उषः ! तू मुझे आज ऐसा ही जगा, ऐसे ही निहाल करने वाले महान् धन के लिये जगा।

(उषः) हे उषः ! (दिवित्मती) दिव्य प्रकाशवाली तू (न.) हमें (अद्य) आज (महे राये) महान् ऐश्वर्य के लिये (बोधय) जगा [यथाचित्) जिस प्रकार तू पहले (नः) हमें (अबोधयः) जगाती रही है उसी प्रकार (सुजाते) हे सुन्दर प्रकाश के साथ जन्मने वाली ! (अश्वसूनृते) हे महान् व्यापक प्रिय सत्यात्मिका वाणि ! तू आज मेरे इस (सत्यश्रवसि) सत्य ज्ञान वाले (वाय्ये) निरन्तर विस्तारणीय जीवन में [प्रकट हो]।

योगतत्व निदर्शन

[ले०—श्री ब्र० दिलीपकुमार जी गु० सोनगढ]

(गताङ्क से आगे)

यद्यपि (१) सृष्टि की उत्पत्ति का क्रम (२) सूक्ष्म शरीर की विवेचना तथा (३) ईश्वरादि विषयों के अन्दर सांख्य तथा योगदर्शन के अन्दर परस्पर अवश्य भेद प्रतीत होता है लेकिन फिर भी उन दोनों में परस्पर इतनी भारी समानता है कि बहुत से विचारक योग-दर्शन को 'सेश्वर सांख्य' ही कहते हैं। इसलिए अनात्मा का विवेचन करने वाला सांख्य दर्शन आत्मविषयक निरूपण करने वाला योग दर्शन—ये दोनों परस्पर भिन्न नहीं किन्तु एक दूसरे के पूरक Complementary प्रतीत होते हैं। सांख्य जबकि विचारात्मक (Theoretical) दर्शन है तब योगदर्शन क्रियात्मक (Practical) दर्शन है, सांख्यदर्शन जबकि पूर्वपीठिका है तो योग दर्शन उत्तर पीठिका है। इस प्रकार ये दोनों दर्शन एक दूसरे के पूरक प्रतीत होते हैं।

तर्क के आधार पर तत्वों का विवेचन करने वाला सांख्य दर्शन जब अन्तः प्रवृत्ति वाले (Introvert) अपने 'तपः स्वाध्याय ईश्वर प्रणिधान' आदि क्रियायोग, तथा ध्यान, धारणा, समाधि आदि अष्टांग योग के अन्तरंग साधनों के द्वारा उस मनुष्य की आत्मिक पिपासा को बुझाने का पूर्ण प्रयत्न करता है। मानसिक चित्तवृत्तियों की अस्थिरता तथा अशांति के कारण ही दुःख की उत्पत्ति मानने वाला यह दर्शन 'क्लिष्टा क्लिष्ट' चित्तवृत्तियों का सर्वथा निरोध करने के लिए 'योगश्चित्त वृत्ति निरोधः' के अनुसार चित्तवृत्तियों का निरोध यही सच्चा योग है ऐसा प्रतिपादित करता है।

यदि हम 'योग' के शब्द पर विचार करें तो योग शब्द दो धातुओं से सिद्ध होता हुआ प्रतीत होता है।

'युजिर् योगे' से सिद्ध होता हुआ योग शब्द जबकि नर तथा नारायण का एकता रूप मोक्ष का भान करता है, तब

(२) पातञ्जल योगदर्शन के विचारानुसार 'युज्-समाधौ' से निष्पन्न होता हुआ योग शब्द समाधि की मुक्त अवस्था का सूचन करता है।

इस प्रकार चितिशक्ति की स्वरूपावस्था या कैवल्य-पद की प्राप्ति करानेवाला योगदर्शन क्लेशों के हेतु स्वरूप कर्माशय को उत्पन्न कराने वाले 'अविद्यास्मिता राग द्वेषाभिनिवेशाः' इत्यादि पञ्चविध क्लेशों का तथा क्लेशों से उत्पन्न हुए 'जात्यायुर्भोगः' का समूलोन्मूलन करने के लिए चित्तवृत्ति के निरोध के ऊपर ही सम्पूर्ण जोर रखता है। यदि हम 'चित्तवृत्ति निरोध के उपायों पर विचार करने से पूर्व प्रसंगानुसार 'चित्त-वृत्तिनिरोध' के अर्थ पर दृष्टिपात करें तो हमें स्पष्ट प्रतीत होता है कि चित्त स्वभाव से ही अस्थिरता धर्मवाला नहीं है। किन्तु उसका स्वभाव किसी न किसी विषय के अन्दर लग जाने का होने से रुचिवाले कार्यों के अन्दर वह अपने आपही लग जाता है। इससे 'चित्तवृत्तिनिरोध' का अर्थ चित्त की वृत्तियों का सर्वथा विनाश कर देना अभीष्ट नहीं कि "चित्तनदीनामोभयतो वाहिनी वहति कल्याणाय पापायच" इस वाक्यानुसार चित्त रूपी नदी को प्रबलतम प्रयत्न के द्वारा पाप क्षेत्र में से पुण्य क्षेत्र के अन्दर बहाना; अनात्मा या प्रकृति विषयस्थ चित्तवृत्ति को हटा करके आत्मा या पुरुष के अन्दर ही उसको लगाना; अर्थात् दूसरे शब्दों में कहें तो मन के ऊपर संपूर्ण रीति से प्रभुत्व (Control of mind) का होना ही चित्तवृत्ति निरोध कहलाता है। इस प्रकार इस प्रवृत्तिस्थितिशील स्वभाव वाले चित्त को सत्व, रजस् तथा तमादि त्रिगुणात्मक प्रकृति से पर करके निस्त्रैगुण्यस्वरूप परमात्मतत्व के अन्दर लीन कर देना यही सच्चा योग है। इस प्रकार चित्त के (१) Intellectual तथा (२) Emotional इन दोनों प्रकार के कार्यों (Functions) को निरोध करने के लिए योगदर्शन के अन्दर 'अभ्यास वैराग्याभ्यांतन्निरोध' इस सूत्र के द्वारा अभ्यास तथा वैराग्य इन दोनों प्रकार के उपायों का प्रतिपादन किया गया है। श्रीमद्-भगवद्गीता के अन्दर भी मन के प्रबल वेग को बाह्य संसार से रोक कर अन्तः संसार की ओर लाने के लिए 'अभ्यासेन तु कौंतेय वैराग्येण च गृह्यते' इस श्लोक के अनुसार अभ्यास तथा वैराग्य का स्पष्ट रीति से उल्लेख करने में आया है।

इस प्रकार बहिः संसार से चित्तवृत्तियों को अभ्यास के द्वारा हटाने के लिए चित्तवृत्तिनिरोध के साधनभूत यम और नियम की अत्यन्त आवश्यकता मानी गई है। जब तक साधक के जीवन के अंदर सामाजिक धर्म का निर्देश करने वाले 'यम' तथा वैयक्तिक धर्म का प्रतिपादन करने वाले 'नियम' का मनसावाचा कर्मणा यथा योग्य रीति से पालन न किया जाय तब तक वास्तविक दृष्टि से वह योग का अधिकारी हो ही नहीं सकता। इन यम नियमों के साथ ही साथ चित्तवृत्तिनिरोध के अन्य उपायों का दिग्दर्शन कराता हुआ योगदर्शन 'तत्प्रतिषेधार्थमेकतत्वाभ्यासः' के अनुसार किसी भी रुचि वाले सूक्ष्मतत्व महाभूत के अन्दर चित्त को स्थिर करने से चित्तवृत्ति का प्रारम्भिक निरोध हो सकता है ऐसा बतलाता है। तदुपरांत चित्त की निर्मलता या शुक्ल-धर्मता के लिए 'वीतराग विषय' या प्राणायामादि अन्य साधनों का प्रतिपादन करने वाला योगदर्शन 'ईश्वर-प्रणिधानाद्वा' इस सूत्र के अनुसार सर्वज्ञानी परमात्मा के अन्दर ध्यान लगाने से भी चित्तवृत्ति का निरोध हो सकता है ऐसा साबित करता है। इस प्रकार सांख्य के पच्चीस तत्वों से आगे जाकर 'क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुष विशेष ईश्वरः' इसके अनुसार योगदर्शन एक छब्बीसवें परमात्मतत्व की स्थापना करता है।

[अपूर्ण]

बम्बई का स्नातक मंडल

बम्बई नगर में रहने वाले स्नातकों तथा गुरुकुल कांगड़ी व उसकी शाखाओं में पढ़े हुए सज्जनों की एक सभा २३-७-३८ शनिवार सायं ५ बजे श्री डाक्टर विवेकानन्द जी सिनहा के दवाखाने में हुई। निम्नलिखित महानुभाव उपस्थित थे—

१–श्री प्रो० इन्द्र जी विद्यावाचस्पति
२–श्री पं० रामचन्द्र जी सिद्धान्तालंकार
३– " दीनानाथ जी "
४– " विवेकानन्द जी विद्यालंकार
५– " नरेन्द्रदेव जी "
६– " शिवदत्त जी आयुर्वेदालंकार
७– " हरिबन्धु जी शर्मा (मेधावी जी)
८– " अनिरुद्धकुमार जी
९– " निरञ्जनदेव जी
१०– " विपिनचन्द्र जी

(श्री पं० सत्यकाम जी विद्यालंकार आवश्यक कार्य-वश नहीं आ सके)

श्री पं० रामचन्द्र जी ने स्नातक मंडल बम्बई की ओर से श्री प्रो० इन्द्र जी के बम्बई आगमन पर हर्ष प्रकट करते हुए स्वागत और अभिनन्दन किया तथा आज की सभा का अध्यक्ष पद ग्रहण करने की प्रार्थना की। अनुमोदन और समर्थन के पश्चात् श्री प्रो० इन्द्र जी ने सभापति का आसन ग्रहण किया।

आगामी वर्ष के लिए स्नातक मंडल के अधिकारियों का चुनाव निम्न प्रकार हुआ—

संरक्षक—श्री पं० विवेकानन्द जी सिनहा
प्रधान—श्री पं० रामचन्द्र जी सिद्धान्तालंकार
मंत्री—श्री पं० दीनानाथ जी "
कोषाध्यक्ष—श्री पं० नरेन्द्रदेव जी विद्यालंकार

निश्चय हुआ कि गुरुकुल कांगड़ी में स्नातक भवन बनवाने के लिए गुरुकुल के अधिकारियों से अनुरोध किया जावे तथा प्रत्येक प्रान्त के स्नातक मंडल पर इस भवन के व्यय का हिस्सा डालने के लिए मुख्य स्नातक मंडल से अनुरोध किया जावे। बम्बई का स्नातक मंडल अपने हिस्से की धनराशि इकट्ठी करने को सदा उद्यत है।

निश्चय हुआ कि स्थानीय स्नातक मंडल गुरुकुल कांगड़ी तथा उनकी शाखाओं के अधिकारियों से अनुरोध करता है कि जब कभी वहां के ब्रह्मचारी बम्बई आवें तो उनकी सूचना स्नातक मंडल बम्बई को नियम पूर्वक दी जावे ताकि इन ब्रह्मचारियों की सहायता संचालन और ठहरने आदि की व्यवस्था के लिए स्थानीय स्नातक मंडल यथोचित प्रबन्ध कर सके।

निश्चय हुआ कि स्नातक मंडल बम्बई गुरुकुल कांगड़ी के धन संग्रह करने में सहायता करने के लिए बम्बई में क्षेत्र तय्यार करता रहे।

निश्चय हुआ कि बम्बई में रहने वाले स्नातक अपने नगर व उपनगर की आर्यसमाज के सभासद् अवश्य बनें और सदा उनमें क्रियात्मक भाग लेते रहें।

श्री प० विवेकानन्द जी सिनहा ने अपने खर्च से एक कमरा स्नातक मंडल के लिए ले देने का वचन दिया। मंडल की ओर से श्री पण्डित जी को इसके लिए बहुत २ धन्यवाद दिया गया।

स्नातक मंडल के कार्यालय के लिए श्री पं० विपिनचन्द्र जी ने एक साइनबोर्ड बनाकर देने का वचन दिया। अतः उन्हें भी मंडल की ओर से धन्यवाद दिया गया।

निश्चय हुआ कि स्नातक मंडल का वार्षिक चन्दा १) रक्खा जावे।

निश्चय हुआ कि मंडल के सभासद् गुरुकुल कांगड़ी के स्नातकों के अतिरिक्त गुरुकुल व उसकी शाखाओं से शिक्षा प्राप्त उपस्नातक महानुभाव भी जो बम्बई में रहते हैं हो सकते हैं।

स्नातक मंडल व प्रो० इन्द्र जी के स्वागत के उपलक्ष्य में श्री पं० विवेकानन्द जी व पं० हरिबन्धु जी ने जलपान की उत्तम व्यवस्था की। अन्त में सभापति जी को धन्यवाद देने के पश्चात् मंडल की कार्यवाही समाप्त हुई।

पं० दीनानाथ सिद्धान्तालंकार
मंत्री
स्नातक मण्डल बम्बई

राखी की साखी

राखी की मैं साखी मानूं।

दिन नीके कैसे ये बीते
अब कहि हिये लजाऊं।

जो में जी की करमधुनी बहि
साखी कर बिरमाऊं।

देही खेले जिस काया में
उसके लिये रिझाऊं।

जग दुखड़ा पै रोना रोवे
मैं रो हंस-हंसाऊं।

कारज हित यह तन मन पाया
मैं भूला बहु भरमाऊं।

पकड़ि हाथ तुम संगी कीन्हा
हो इकला बिलपाऊं।

अब बांधो मैं प्रभू बंधाऊं
राखी को बलि जाऊं।

—हिरेफ

गुरुकुल

१२ अगस्त शुक्रवार १९३८

राखी

[ले०—श्री वीरेश विद्यालङ्कार]

आज रक्षाबन्धन का पुनीत दिन है। भारतीय त्यौहारों में सरस्वती पंचमी तथा गोपाष्टमी की तरह ही इस पर्व की विशेष पवित्रता मानी गई है। इस पर्व का वैदिक काल में क्या रूप रहा होगा यह इसके प्राचीन 'श्रावणी' नाम से विदित होता है। 'श्रावणी उपाकर्म' न केवल उस समय पर्व के ही रूप में मनाया जाता था अपितु यह एक उत्कृष्ट कोटि का व्रत समझा जाता था जिसे वैदिक स्वाध्याय के रूप में निभाया जाता था। वेदों तथा ऋषिकृत शास्त्रों के पठन-पाठन द्वारा गुरुपरम्परा जहां अविच्छिन्न रहती थी वहां, साथ ही वेदशास्त्रों की निरन्तर रक्षा होती थी। उस समय आर्यजाति इस स्वाध्याय को न केवल वैयक्तिक कर्तव्य ही समझती थी, अपितु इसे सामाजिक कर्तव्य के रूप में निभाकर इस पर्व की प्रतिष्ठा करती थी। वैदिक काल में इस पर्व का संबन्ध केवल ब्राह्मण वर्ग से ही नहीं था, परन्तु जो भी वेदशास्त्र का अभ्यासी मनुष्य स्वाध्याय की प्रवृत्ति रखता था वह इस चातुर्मास्य के प्रारम्भ में स्वाध्यायशील होने का व्रत लेता था और व्रतपति भगवान को साक्षी कर उसे निभाने की चेष्टा करता था। उस समय इस त्यौहार के साथ एक ऐसे संकल्प का संबन्ध था जिसकी पूर्ति ही श्रावणी का उपाकर्म और चातुर्मास के उपरान्त उत्सर्जन कर्म होता था। इस आर्ष परिपाटी के प्रचलित होने से वेदों की तथा वेद संबन्धी विद्याओं की रक्षा हुई परन्तु आज तो वेदों की रक्षा तथा शास्त्रीय संवाद की चर्चा तो दूर है इसके स्थान में वेदों का लेकर ही विवाद तथा नाना शास्त्रीय पन्थों का जाल सा बिछ रहा दीखता है। क्या यह श्रावणी का पर्व जो कि 'वेद माता' का प्रतीक कहा जा सकता है हमें आज वैदिक श्रावणी के रूप में कुछ ऐसी शिक्षा न देगा जिससे कि आर्यजाति वेद माता की सच्चे अर्थों में सेवा करने का पुरुषार्थ कर सके। इन अकाल-अपुष्ट विवाद बातों से तो इनका न करना ही उत्तम है। प्राचीन संवाद की रीति तो प्रेम से शास्त्रचर्चा है जो कि बिना गम्भीर स्वाध्याय के संभावित नहीं। श्रावणी की कोई ललकार या आह्वान नहीं है, वह तो वेद माता की सेवा और शास्त्रार्थ भिक्षा चाहती है। उसे सुयश अपयश जय-पराजय, तथा मानापमान से कुछ सरोकार नहीं वह आर्यजाति में स्वाध्याय की प्रवृत्ति पैदा करदे बस उसका यही कर्तव्य है।

याज्ञिक काल में तथा इसके पीछे मध्यकालीन युग में यह पर्व स्वाध्याय यज्ञ के साथ २ एक सामाजिक रीति के रूप में परिवर्तित होता हुआ दीखता है। ब्राह्मण व क्षत्रियादि द्वारा यज्ञोपवीत का धारण करना-कराना तथा बहिन द्वारा भाई या कृतक बन्धु के हाथों में राखी का बांधना-बंधवाना श्रावणी पर्व में दीक्षित होने या शामिल होने का आवश्यक चिन्ह समझा जाने लगा। इस सूत्र दान व सूत्र बंधन के रिवाज के पीछे जहां स्वाध्याय का सत्य संकल्प रहा था, अब यह सामाजिक बन्धन के रूप में बदल गया। समाज में परस्पर प्रेम व रक्षा के अभिलाषी व्यक्ति परस्पर सहायता के संबन्ध को स्थिर करने के लिये इसके सामाजिक रूप को दृढ़तर बनाने में कारण हुए। मुगलकाल में तो यह राखी इतनी बढ़ी और मज़बूत हुई कि राजपूतों और मुगलों के दरबार तक में इस राखी ने स्थान पाया और इसने इतना गहरा स्थान पाया कि अपनों की, बजाय हमारे राजपूत भाई अपने समाज और देश की साखी रख दूसरों की राखी करने में अपना सर्वस्व अर्पण करने को तय्यार तक रहते थे। काल की गति विचित्र है और राजा की गति उससे भी न्यारी है। परिणाम यह हुआ कि धर्मपरायण हिन्दू राजपूत राखी के बंधन में बंधकर अपनी भी राखी न रख सके।

यह तो हुई मध्ययुग की बात। प्रश्न यह है, आज हमें किस राखी की ज़रूरत है? क्या बौद्धयुग के उन याज्ञिकों की 'राखी' जो अग्निदेव को प्रसन्न करने के लिये हज़ारों बेज़ुबान प्राणियों को तलवार के घाट उतार कर अपने हिंसाव्रत की राखी करते थे या मध्ययुग के उन ईर्ष्या द्वेष करने में वीर क्षत्रियों की 'राखी' जो अपनों की राखी करने में अपना अपमान समझ दूसरों की राखी लेने देने के लिये लालायित रहते थे। यह सच है कि आज राखी का त्यौहार हमारे सन्मुख ऐसे विकृत रूप में आ खड़ा हुआ है जिसके शायद हम योग्य हों। हमने अपने वेद की सच्ची राखी नहीं की, तो अपनी विशुद्ध वैदिक संस्कृति की राखी कैसे करते। अपने घर की राखी नहीं की तो देश की कैसे राखी होती। अपने ईमान की राखी नहीं की तो धर्म की खाक राखी करते। अपने भाई चारे व बन्धुभाव को न निभाया तो दुनियां की राखी बंधाने से क्या फायदा। अपने से छोटों व दीन दलितों, अनाथ विधवाओं की राखी द्वारा सुध नहीं तो हमें मानवता के नाम पर यही कुछ मिलना था जो अब हमारे पास है। आज भी हम अपने देशवासी बन्धुओं, पर गुमराहों को प्रेम से राह पर लाने और राखी देने के बजाय दुत्कार कर या अपमानित करके अपने ईमान, धर्म और देश की रक्षा करने के लिये उतावले हैं क्या ऐसा होना संभव है?

यह सवाल है जो आज की श्रावणी के दिन अपनी राखी रखाने के लिये हमारे सन्मुख उपस्थित है। यह समस्यायें अपना ठीक २ हल चाहती हैं। कुछ का हल हुआ-कुछ का अधूरा हुआ—कुछ हार की हैं पर अभी बहुत बाकी है। इसलिये इस बाकी का हल करने के लिये यत्नवान् होना ही अपने उद्देश्य की-कर्तव्य की सच्ची राखी है। वैसे तो हज़ारों सालों तक राखी का पर्व मनाते रहने से भी सच्ची राखी न हो सकेगी।

लोक-मान्य बाल गङ्गाधर तिलक

लोक मान्य तिलक का स्थान भारतीय इतिहास में सदा अमर रहेगा। उनकी देश के प्रति उत्कट अनुराग बुद्धि, त्याग, तपस्या, कष्ट सहिष्णुता एवम् अगाध पाण्डित्य चिरकाल तक स्मरणीय बने रहेंगे। वे केवल महाराष्ट्र के ही नहीं; प्रत्युत सम्पूर्ण भारत वर्ष के एक निखरे हुए रत्न थे। उन्हों ने भारत वर्ष के राजनीतिक क्षेत्र में पदार्पण किया, तो युग विप्लव ही उपस्थित कर दिया। राजनीतिक क्षेत्र में उन के प्रवेश करने से पूर्व, जन सामान्य का भारतीय राजनीति के साथ कोई व्यापक सम्पर्क नहीं था। भारत वर्ष की राजनीतिक समस्यायें कुछ एक राजनीति के विशिष्ट विद्वानों की ही विवाद करने की वस्तु रह गई थी। लोक मान्य उन व्यक्तियों में वस्तुतः सर्व मान्य प्रथम थे, जिन्हों ने यह अनुभव किया कि, बिना भारतीय जन सामान्य का अपने साथ लिये, हम राजनीति क्षेत्र में सफलता नहीं प्राप्त कर सकते। इस युग में महात्मा गान्धी को राजनीतिक क्षेत्र में जो कुछ भी सफलता उपलब्ध हो रही है, उसके मूल में लोक मान्य तिलक की साधनाओं का बड़ा ही ज़बर्दस्त हाथ है।

लोकमान्य केवल राजनीतिक नेता ही हों यह बात नहीं; वे एक गम्भीर विद्वान् भी थे। गीता रहस्य, जिसे उन्होंने अपनी कारामन्दिर निवास यात्रा के दिनों में माण्डले के क़िले में बैठे हुए लिखा था, भारतीय साहित्य को एक अपूर्व दान है। यदि किसी को लोकमान्य तिलक के जीवन को समग्र दृष्टि का अनुशीलन करना हो, यदि यह जानना हो कि, लोक मान्य का जीवन यन्त्र किन यन्त्र खण्डों से युक्त होकर के बना है तथा यदि यह जानना हो कि, कौन से वे तत्व थे जिन्होंने लोकमान्य का निर्माण किया है, तो इसके लिये 'गीता रहस्य' बड़ा अच्छा साधन होगा। 'वेद काल निर्णय' तथा 'आर्यों का आदिम निवास स्थान' इन दो विषयों पर श्री लोकमान्य ने मौलिक अन्वेषण-पूर्ण निबन्धों की रचना की थी। यदि भारत वर्ष का राजनीतिक क्षेत्र इतना सङ्कट सङ्कुल न होता तो कदाचित् हम लोकमान्य को आज किसी दूसरी ही शक्ल में अवतीर्ण हुआ देखते।

लोक मान्य एक सच्चे ब्राह्मण थे। उनकी नस २ में ब्राह्मणोचित तेज कार्य कर रहा था। नवीन विचारों के साथ घनतर सम्पर्क में रहते हुए भी उन्हों ने ब्राह्मणों के पुराने आदर्शों को तिलाञ्जली नहीं दी। उनकी सादगी, उनकी प्राचीनता के प्रति प्रेम उनका वेदोक्त, 'इदं मे ब्रह्म च क्षत्रमुभेश्रियमश्नुताम्' के अनुसार सिद्ध जीवन, बलात् हमारा सिर श्रद्धा से झुका देता है। उन्होंने उस युग में, जबकि, कारागारों में जाने के सम्बन्ध में कोई आकर्षण नहीं था, अनेकों बार कारा के कष्टों को सहर्ष स्वीकृत किया है। कारागार में ही उन्हें अपनी पति गत प्राणा पत्नी की देहावसान की सूचना मिली, तब भी उस अलौकिक तपस्वी की धीरता तद्वत् अक्षुण्ण बनी रही। उनके छाया चित्र को ज़रा गौर से देखिये, कुछ विलक्षण सी रेखाएं उनकी आकृति पर खिंची हुई नज़र आती हैं उनकी आकृति पर गर्व के साथ आभासित होने वाली अदम्य दृढ़ता की उन रेखाओं के पीछे हिल मिल करके झांकती हुई वह निदारुण यन्त्रणाओं की सघन छाया हम लोगों के हृदयों को लगातार रुला देती है! पत्थर से पत्थर भी लोकमान्य का— मुख मुद्रा को देख कर पसीजे बिना नहीं रहेगा! उस महान् आत्माने अपने जीवन में न जाने कितनी बार किस २ प्रकार के असह्य कष्टों का अपने हृदय से स्वागत किया है; क्यों? केवल हमीं अधन्य लोगों के लिये! इसी पारतन्त्र्य निपीडिता भारत जननी की लोह शृङ्खलाओं को विदलित करने के लिये! और वह भी हंसते हंसते!

हम भारत वासी अपने उस अखण्ड अग्निस्नान के सदृश तेजो राशि का उद्दीपन करने वाले सौम्यचित्र मूर्ति लोकमान्य बाल गङ्गाधर तिलक के पावन चरणों में प्रणाम करते हैं।

राजनीति और सत्य

भारतीय साहित्य तथा इतिहास को देखने से यह विदित होता है कि भारत जैसे धर्म परायण देश में भी राजनीति में सर्वथा सत्य व्यवहार के औचित्य को किसी भी भारतीय राजनीतिज्ञ ने स्वीकार नहीं किया है। श्री कृष्ण ने भी युधिष्ठिर को असत्य बोलने की सलाह दी थी। राजनीति में भी सर्वथा सत्य वादिता की उपयोगिता का स्वीकार करने तथा उसके अनुसार आचरण करने वाले आज तक उपलब्ध भारतीय इतिहास में महात्मा गान्धी के अतिरिक्त दूसरा कोई दृष्टिगोचर नहीं होता। भारत से भिन्न देशों में तो ऐसे उदाहरणों का मिलना और भी कठिन जान पड़ता है। आज कल की पश्चिमीय राजनीति में तो कूटनीति का पूर्ण विकास हो गया सा प्रतीत होता है इस कूटनीति के पूर्ण विकास-युग की प्रति क्रिया के रूप में महात्मा जी के सदृश सत्य परायण व्यक्ति की बड़ी आवश्यकता थी।

राजनीति में सर्वथा सत्याचरण लोगों को इतना अव्यवहार्य जान पड़ता है कि गान्धी जी के सत्य और अहिंसात्मक उपायों से स्वराज्य के प्रस्ताव को मानना भारत के राजनीतिक नेताओं को सन् १९२१ ई० से आज (सन् १९३८ ई०) तक सतत प्रयत्न करने पर भी मानना कठिन रहा है। इस का क्या कारण है? इसका कारण यह है कि अभी तक हमें ऐसा कोई ऐतिहासिक दृष्टान्त नहीं मिलता जिसमें कि सत्य और अहिंसा का पूर्णतया पालन करते हुए कोई राष्ट्र स्वतन्त्र हुआ हो। इस में इतिहास लेखन कला की त्रुटि भी कारण है। आजतक ऐतिहासिक सिर्फ़ राजाओं के जीवन तथा उनके पारस्परिक संग्रामों का ही इतिहास लिखते रहे, जो कि मानव जाति के इतिहास में समुद्र में फेनराशि के सदृश है। सामान्य जनता का जीवन तो प्रायः सत्य

और अहिंसा पर ही अवलम्बित रहता है, उस का इतिहास में वर्णन नहीं आता। अतः इतिहास के पढ़ने वालों को ऐसा ज्ञात पड़ता है कि असत्य और हिंसा में ही शक्ति है। अब इतिहास-लेखकों को किसी देश का इतिहास लिखते हुए उस देश की जनता के जीवन को अपना वर्णनीय विषय बनाना चाहिये।

अब तो हमें गान्धी जी की सत्य और अहिंसा पर अवलम्बित राजनीति के प्रभावों का प्रत्यक्ष दर्शन करने का अवसर प्राप्त हो रहा है। उसका ऐसी राजनीति से सामना है जो असत्य और हिंसा पर आश्रित है। इन दोनों के प्रभावों की तुलना करने से हम इस परिणाम पर पहुंच सकते हैं कि असत्य और हिंसा पर अवलम्बित तथा सत्य और अहिंसा पर अवलम्बित राजनीति में कौन अधिक उपादेय है? अतीत तथा वर्त्तमान काल में जिन्होंने हिंसा और असत्य का सहारा लेकर अपने देश को स्वतन्त्र किया है, उनकी तथा गान्धी जी की राजनीति में कौन अधिक सफलता को प्राप्त हुई है? इस का भी विचार इसके निर्णय में होगा। रिचार्ड बी ग्रेग ने 'अहिंसा की शक्ति' (The Power of Non-violence) नामक पुस्तक में गान्धी जी की सफलता का बहुत अधिक वर्णन किया है।

राजनीति में सत्य पर दृढ़ रहने का एक लाभ यह होता है कि उससे जनता की श्रद्धा उस पर अधिकाधिक बढ़ जाती है, और राजनीति के अन्दर जनता की श्रद्धा का बहुत अधिक महत्त्व है। यह ठीक है कि इस लाभ को तो झूठा मनुष्य भी धोखा दे कर पा सकता है, और संसार के इतिहास में ऐसा अबतक होता चला आ रहा है, लेकिन वह चिर स्थायी नहीं होती। क्योंकि कोई अपने स्वरूप को चाहे जितना भी छिपावे, कभी न कभी प्रकाशित होगा ही। जैसे कि तुलसी दास ने कहा है कि- "उघरहिं अन्त होय निबाहू। कालनेमि जिमि रावण राहू।" और यह तो सिर्फ़ उसका बाह्य फल है, इसके लिये जो सत्यवादी बनेगा उसके सर्वदा सत्य पर पूर्ण दृढ़ रहने की सम्भावना नहीं है। उसका आन्तरिक फल यह है कि सत्य पर स्थित रहने से हमारी आत्मा निर्भय और बलवान् होती है। और राजनीति में निर्भयता तथा आत्मिक बल बहुत काम देते हैं। बहुत सी युक्तियों के द्वारा जो कार्य सिद्ध नहीं होते वे निर्भयता और आत्मिक बल के द्वारा बड़ी आसानी से सिद्ध हो जाते हैं।

बहुत से लोग सत्यवादिता और भोले पन को एक चीज़ समझते हैं, लेकिन वस्तुतः इन दोनों में आकाश-पाताल का अन्तर है। भोलापन अज्ञानता का परिणाम है और सत्यवादिता गम्भीर ज्ञान का परिणाम है।

सिंहावलोकन

[ले०—श्री 'चक्र-धरण' जी]

मैं उस दिन कह रहा था कि प्रायः लोग मेरे से पूछते हैं कि तुमने पहाड़ों में क्या देखा, और यह कि यह सब एक वाक्य में बताना बड़ा मुश्किल है। पर आज जब मैं सोचकर देखता हूं तो यही पाता हूं कि एक वाक्य की बात तो अलग रही; एक सुविस्तृत लेख में भी यह बताने में अशक्त हूं कि मैंने पहाड़ों में क्या देखा। प्रश्नकर्ता नाराज़ हो हो जाते हैं, पर मैं अपने आपको सत्य का अपलाप करने में ही क्यों सशक्त सिद्ध करूं? हां, इतना जानता हूं कि अब भी पर्वतों के प्रति वही आकर्षण बना हुआ है, और कुछ स्मृति-चित्र हैं जो आसपास ही मानस पटल पर इस प्रकार आकर अङ्कित हो गये हैं कि उन्हें भुलाया नहीं जा सकता। वे स्मृति चित्र भी कोई ख़ास वैयक्तिक घटनायें नहीं, अपितु ऐसे दृश्य जो पर्वतों में यत्र-तत्र बिखरे पड़े रहते हैं—और उनके साथ नित्य-नव प्रकृति का अद्भुत शृंगारिक रूप—कभी उषा और कभी सन्ध्या—एक दूसरे के बिल्कुल विरुद्ध, पर आसमान में कुङ्कुम घोल कर तो कोई दोनों ही समय उडेल देता है। नहीं तो, सवेरे और शाम प्रकृति का नील गगनाञ्चल रक्त रञ्जित क्यों?

और फिर, कभी दुपहर का समय—जब चारों ओर से आग बरस रही हो। 'स तपोऽतप्यत'—वह जो घोर तम के परे आदित्यवर्ण महापुरुष दीखता है—उसने तप किया—पञ्चाग्नि तप। ऊपर आग, नीचे आग, और दायें बायें भट्टी के पास की सी गरम हवा! जब गर्मी के मारे पांच कदम चलने के बाद विश्राम करना अनिवार्य हो जाता था।

साथ ही, इससे ठीक उल्टा दृश्य—हलकी २ रिमझिम। पहले तो रिमझिम रिमझिम, फिर एकदम धड़ाधड़। कहां बरसाती, कहां छाता! सारे कपड़े गीले। अरे पर्जन्य-देव बरस पड़े हैं! कौन जानता है—उन्होंने कितने जीवन के सन्ताप सहे हैं जिनके कारण उनके द्रवीभूत हृदय का रक्त आज पानी बन बन कर भगवती वसुन्धरा की पीठ पर असंख्य धाराओं के रूप में निरन्तर बरस रहा है। हाय! सर्द आहों के ठण्डे आंसू!" वृक्ष नहा धोकर अपने हरित वेश में खड़े हैं, लज्जाशील प्रकृति प्रत्यग्र-स्नान से शुभ्र होकर पर्वतों की ओट ढूंढ रही है—इतने में उस पर्वत की घाटी में दूर से आते हुए दिखाई देते हैं अपनी त्वचा को फड़फड़ाते हुए चौपाये। और उनके पीछे काली कमलिया ओढ़े हुए हाथ में डण्डा लेकर उन्हें हांकता हुआ ग्वाला। ग्वाले के हाथ में है वंशी, वंशी का मुख और ग्वाले का मुख दोनों मिले हुए—और फिर दिशाओं को मूर्छित करती हुई सी स्वरें वायु-मण्डल में ऊंची उठती जाती हैं। हवा स्थिर है, वृक्ष झूमना भूल गये हैं, चोटियां हिम में खोई-सी खड़ी हैं और यों जहां जहां वह वंशी की तान पहुंची अपने साथ जड़ता और मादकता लेती

गई। और जो आसमान होगया बिल्कुल साफ--तो आसपास की सबसे ऊंची चट्टान पर गोल घेरा बांध कर एक दूसरे का हाथ पकड़े नाचती और गाती हुई पार्वत्य बालक-बालिकायें!

अरे! पर्वतों में भी कितनी मादकता भरी है कि वह छलक छलक कर झरनों के रूप में बाहर बह निकली है। और फिर वह मादकता उन झरनों से भी तो नहीं संभलती--वे अपने आपको सरिता को समर्पित कर देते हैं। और फिर सरितायें पागल होकर समुद्र की ओर दौड़ पड़ती हैं।

× × × ×

ऐसे ही कुछ स्मृति चित्र यत्रतत्र बिखरे हुए हैं। पर अब उन सबको संजोने से क्या? अबतो 'चक्रचरण' भी दिनरात के चक्र में बंध गये हैं। अपने दैनिक कार्यों के और 'पुनः प्रभातं पुनरेव शर्वरी' के चक्कर ने उनके चरणों को ऐसा शृंखलित कर दिया है कि अब उन चित्रों को याद करने के लिए भी अतिरिक्त समय की आवश्यकता होती है।

गुरुकुल समाचार

स्वास्थ्य समाचार

प्रकाशचन्द्र ५म श्रेणी मलेरिया ज्वर से सत्यव्रत ५म, नरेन्द्र ३य, आनन्दप्रकाश ३य, व्रण से। यशपाल ५म टान्सिल से। हरिश्चन्द्र ५म, ज्ञानचन्द्र २य, चोट से कृष्णवर्मा ५म, महेन्द्र (आगरा, ३य, टाइफाइड से प्रेमप्रकाश २य, दयानन्द २य, ज्वर से तथा लाजपतराय १म श्रेणी नेत्र रोग से पीड़ित हैं।

गत सप्ताह उपरोक्त ८० रोगी हुए थे। इनमें से कृष्णवर्मा, प्रेमप्रकाश, दयानन्द को ज्वर होता है। महेन्द्र (आगरा) को अब आराम है। ज्ञानचन्द्र को गिरने से चोट लगी थी अब आराम है।

लोकमान्य बाल गङ्गाधर तिलक की बरसी पहली अगस्त को कुल में बड़े समारोह से मनाई गई। इस अवसर पर शास्त्री दीनदयालु जी सिद्धान्तालङ्कार तथा उपाध्याय वेदव्रत जी वेदालङ्कार ने देश की वर्तमान परिस्थिति का सिंहावलोकन कराते हुए भारतीय स्वातन्त्र्यान्दोलन में महाराष्ट्र गण नायक का कर्तृत्व बताया। मध्य प्रान्त सम्बन्धी वैधानिक संकट का आन्तरिक कारण बताते हुए मान्य वक्ताओं ने महाराष्ट्र देश का स्वाभाविक नेतृत्व प्रेम दिखाते हुए एक नया दृष्टि से विचार किया।

तुलसी-जयन्ती पर रामचरित मानस के महान् गायक का गुणगान करते हुए हिन्दू जाति के वर्तमान जीवन का कारण गोस्वामी जी की अमर कृति को बताया गया।

६ अगस्त शनिवार को साहित्य परिषद् की ओर से गुरुकुल में धर्म सम्मेलन मनाया गया। इसके सभापति श्रद्धेय पं० इन्द्र जी विद्या वाचस्पति थे। इस अवसर पर विभिन्न धर्मों पर लेख पढ़े गये। कई भावात्मक लेख भी इस अवसर पर सुनने में आए। अन्त में श्री सभापति जी ने धर्मों के अनुशीलन में तुलनात्मक विवेचन पर बल देते हुए निबन्धों का ध्यान अध्ययन लेखन आदि में किसी आधार का होना आवश्यक बताया।

इसी दिन सायंकाल मान्य पं० जी ने भारत की वर्तमान राजनैतिक समस्यायें विषय पर एक व्याख्यान दिया। युक्तप्रान्त, पंजाब, बिहार की वर्तमान किसान ज़मींदार समस्यायें और वहां अंग्रेज़ी सरकार का आंतरिक दृष्टिकोण प्रदर्शित करते हुये मध्यप्रान्त की वर्तमान दशा पर राष्ट्रीय महासभा के अनुशासनात्मक निर्णय को वर्तमान समय में सर्वथा उचित बताया। भाषण करते हुए आपने कहा इस समय तक जनता का राष्ट्रीय महासभा द्वारा मनोनीत मन्त्री मण्डलों पर पूर्ण भरोसा है किन्तु निकट भविष्य में यदि मन्त्री मण्डलों ने उचित कानून इस विषय में न बनाये तो भविष्य अन्धकार पूर्ण सा प्रतीत होता है।

इस सप्ताह गुरुकुल में ही 'विद्या सभा' होने से आर्यसामाजिक जगत् के अधिकांश बड़े २ विद्वान् कुल में पधारे हुए थे। इससे कुल का वातावरण पिछले दिनों काफी उत्साहपूर्ण रहा।

ऋतु परम मनोहारी है। भागीरथी की उत्ताल तरंगें अपने पूरे यौवन पर हैं। दिन भर आकाश मेघाच्छन्न रहता है। रिमझिम पानी बरसता रहता है। पहाड़ियां भी हरितमाति हो रही हैं।

गुरुकुल कुरुक्षेत्र

पिछले दिनों वर्षा न होने से चिन्ता हो गई थी—पर पिछले २०-२५ दिनों से पर्याप्त वर्षा हो रही है।

ऋतु अत्युत्तम है। आकाश के बादलों से ढके रहने तथा लगातार हवा चलते रहने से गर्मी सर्वथा भाग गई है। लगभग सभी ब्रह्मचारियों का स्वास्थ्य उत्तम है। गुरुकुल की गौशाला को अधिक उन्नत करने तथा फलों के बाग आदि लगाने के कार्य के लिए एक अनुभवी सज्जन को नियुक्त कर लिया गया है। और कार्य प्रारम्भ कर दिया गया है।

षाण्मासिक परीक्षाएं हो चुकी हैं। २० की यात्राएं अगस्त के प्रथम सप्ताह में होंगी। छोटे ब्रह्मचारी (१म से ५म तक) २ अगस्त को पलाद पहाड़ पर जायेंगे। बड़े ब्रह्मचारी ४ अगस्त को क्वेटा जाएंगे।

सात्विक दान

श्री ला० जगदीशराम जी अग्रवाल सर्राफ करनाल ने ५०) गुरुकुल पुस्तकालय के लिए दान दिया है। इस रुपये से धार्मिक पुस्तकें मंगा ली गई हैं। दानी महाशय का हम धन्यवाद करते हैं।

चौधरी दुलासराय के प्रबन्ध से गुरुकुल प्रेस गुरुकुल कांगड़ी में मुद्रित तथा प्रकाशित।

* ओ३म् *

"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत" Reg. No A. 2927

गुरुकुल

सम्पादक—भारतभूषण वेदालङ्कार

एक प्रति का मूल्य -) [गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख-पत्र] वार्षिक मूल्य २॥)

वर्ष ३] गुरुकुल काङ्गड़ी, शुक्रवार ४ भाद्रपद १९९५; १९ अगस्त १९३८ [संख्या १४

यज्ञोपवीत

[ले०—श्री प्रो० ताराचन्द जी एम० ए०]

आजकल बहुत से लोग यज्ञोपवीत का उपहास करते हैं और कहते हैं कि यह क्या धागा सा लटका रक्खा है। पर यह एक महत्व पूर्ण चिन्ह है एक महत्व पूर्ण भावना का। संसार सब भावनामय है। यदि किसी बात से उसकी भावना को निकाल दें तो वह निर्जीव हो जाती है। यदि कौमी झण्डे में से देशभक्ति की भावना को निकाल दिया जाय तो वह केवल एक डण्डा और एक कपड़ा ही रह जाते हैं और भावनाशून्य आदमी के लिए उपहासमात्र हो जाते हैं। अब हमने यह देखना है कि यज्ञोपवीत में क्या भावना भरी है।

हमारे बुजुर्ग बहुत पुराने काल से यज्ञोपवीत के साथ यह भावना जोड़ते चले आए हैं कि यह हमें बार बार याद दिलाने के लिए है कि हम अपने ऊपर ३ ऋण लेकर आये हैं और हम मुक्त नहीं हो सकते जब तक वह तीनों ऋण चुका न लें वह ऋण कौनसे हैं? पितृ ऋण, ऋषि ऋण, देव ऋण इन ऋणों के चुकाने के बारे में ३ बातों का ख्याल करना है, ऋण चुकाते समय हम जो रुपये दें वे खरे हों खोटे न हों। दूसरी बात यह कि हम सूद के साथ ऋण चुकाएं। तीसरी बात यह कि ऋण चुकाने के बाद हम दीन हीन न हो जायें।

पहले पितृ ऋण को ही ले लीजिये। मोटा अभिप्राय यह है कि हरएक को उत्तम सन्तान पैदा करनी है इसके लिए अति आवश्यक है कि हम अपने वीर्य की बड़ी सावधानी से रक्षा करें और इसकी रक्षा का सबसे सरल ढंग यह है कि एक तो हम मित आहारी हों और नियम पूर्वक व्यायाम तथा स्वाध्याय करें और दूसरे हम सदा अपनी शक्ति को किसी रचनात्मक काम में, चाहे वह मानसिक हो चाहे शारीरिक, लगाये रखें क्योंकि बेकारी बुरी बला है यह देव को भी दानव बना देती है। यदि हम ऐसी सावधानी से अपने वीर्य की रक्षा नहीं करेंगे और अपने आप स्वस्थ सबल चरित्रवान् विद्वान् नहीं बनेंगे तो हमारी सन्तान उत्तम कैसे बनेगी। वीर्यहीन की सन्तान अव्वल तो होगी ही नहीं अगर हो भी गई तो रोगी विषयी और बुद्धिहीन होगी। यही जाली नोट है यही खोटे रुपये हैं इस तरह से हम ऋण से मुक्त नहीं हो सकते। सबल बुद्धिमान चरित्रवान बन कर ही हम सबल तेजस्वी सन्तान पैदा कर सकते हैं। हमारी सन्तान हमारी असलीयत को खोल देती है और हमें स्पष्ट बता देती है कि हम किस पानी में हैं। सूद के साथ ऋण चुकाने का यह अर्थ नहीं कि यदि हमारे बाप ने दस बच्चे पैदा किये तो हम बीस पैदा करें। इसका अर्थ यह है कि गिनती में भले ही ज़्यादा न हों पर गुण में ज़्यादा हों। चांदी के बीस रुपयों की अपेक्षा सोने के दो पौण्ड ज़्यादा मूल्यवान हैं। हज़ार भेड़ों की अपेक्षा एक सिंह ज़्यादा यशस्वी और शक्तिशाली है। फिर हमने यह भी ध्यान रखना है कि ऋण चुकाने के बाद हम दीन हीन न हो जायें। बहुत से भाई गृहस्थ में इतने निस्तेज हो जाते हैं कि वानप्रस्थ की तपस्या के बिल्कुल अयोग्य हो जाते हैं। हमें संभल कर चलना चाहिये जिससे सौ वर्ष और इससे भी अधिक अदीन होकर जी सकें। दो घड़ी के विषय सुख के लिए हम अपनी सारी ज़िन्दगी का आनन्द खो बैठते हैं और सारी बाकी आयु रोते हुए, रोगी होकर बिस्तरे पर गुज़ारते हैं। बल के बिना शक्ति के बिना सामर्थ्य के बिना सुख कहां, बलहीन हर जगह धक्के खाते हैं और जीवन दुःख में गुज़ारते हैं। उक्त प्रकार से पितृ ऋण चुकाने की भावना (Birth control) का सब से उत्तम ढंग है क्योंकि इस भावना के दृढ़ होने से अपने आप बिना बुलाये कोई सन्तान नहीं हो सकती। केवल हम उतनी ही उत्तम सन्तान पैदा करेंगे जितनी हम अच्छे ढंग से पाल सकते हैं। शेष फिर

गुरुकुल में आवश्यक सामयिक सुधार

(ले०—श्री रामनारायन कुठारी)

गुरुकुल संस्था की विशेषता मेरी समझ में यह है कि वह देश के बालकों को देश की आवश्यकता के अनुरूप शिक्षित करने का प्रयत्न करती है, वह इस बात पर विश्वास करती है कि जगत में सच्चे सुख व शान्ति के लिये प्राचीन वैदिक संस्कृति सबसे अधिक उपयोगी है। इसे मानते हुए आप के पत्र का अन्तिम ध्येय जब इस संस्कृति का पुनरुद्धार हो जाता है तब आपका तत्कालीन कर्तव्य इस संस्था को सुदृढ़ बनाने का भी हो जाता है।

मैं आप के पत्र को गत एक वर्ष से ध्यान पूर्वक पढ़ता आया हूं और मैं कह सकता हूं कि इसके लेख ऐसे ही उत्तम भावों व आदर्शों से पूर्ण रहे हैं। पर मैं यह अनुभव करता हूँ कि उन्हें पुर असर बनाने के लिये उनके पीछे एक जीवित सुसंगठित शक्ति का होना आवश्यक है, अन्यथा ज्ञान का अगाध भंडार तो संसार की अनेक पुस्तकों में भरा ही पड़ा है।

इसके लिये मेरा सुझाव है कि एक ओर तो आप गुरुकुल के ब्रह्मचारियों को उनके योग्य अधिष्ठाताओं के नेतृत्व में संगठित करें और दूसरी ओर उनके मार्ग को सरल करने के लिये अपने पत्र द्वारा यथेष्ट प्रचार करें देश में ऐसी अनेक गुरुकुल संस्थायें हैं जो गुरुकुल कांगड़ी से पथ प्रदर्शन की आशा रखती हैं तथा उसकी सत्ता को स्वीकार करती हैं। आप इन सब से आग्रह कर सकते हैं कि वे अपने अपने विद्यालयों में विद्यार्थी संघ बनायें इनको मिला कर एक अखिल भारतीय गुरुकुल विद्यार्थी संघ बनाया जाय और इसका सम्बन्ध अखिल भारतीय विद्यार्थी संघ तथा विश्व विद्यार्थी संघ से स्थापित किया जाय। यदि आप को अपनी संस्कृति के ऊपर गर्व और अपने सिपाहियों के ऊपर भरोसा है तो उसे आजमाइश की दौड़ में दौड़ने का अवसर देना चाहिये, केवल अपने मुंह मियां मिट्ठू बन कर हम बाज़ी नहीं जीत सकते। आपके विद्यार्थी उस विश्व प्लेटफार्म से आपका विशेष रणवाद्य बजा कर विश्व के हृदय को आनन्दित करें।

उन्हें इस योग्य बनाने के लिये आपके विश्वविद्यालय को भी सतत प्रयत्न करना होगा। जब कि वह अपने आधार भूत सिद्धान्तों पर दृढ़ व अचल रह सकता है, उसे अपने ऊपरी ढांचे के निर्माण में अत्यन्त उदार व विशाल हृदय से कार्य करना होगा ताकि वह अपने आपको परिवर्तित अवस्थाओं के अनुकूल बनाता रहे। ऐसा करना उसकी उन्नति के लिये ही आवश्यक नहीं है प्रत्युत उससे भी अधिक उसकी जीवन रक्षा के लिये भी अनिवार्य प्रतीत होता है। भारतवर्ष में इस समय एक क्रान्ति हो रही है और वह सब कुछ जो प्रगतिशील नहीं है अतीत के इतिहास में शामिल हो जायगा।

आप अपने पत्र के प्रचार द्वारा भी विश्वविद्यालय की महान् सेवा कर सकते हैं। उसे जनता तक तथा जनता को उस तक पहुंचा कर दोनों में घनिष्ठता उत्पन्न कर सकते हैं। गुरुकुल में प्रतिदिन क्या होता है तथा वह क्या क्या करना चाहता है यह देश जानता रहे तथा देश उससे क्या आशा रखता है यह गुरुकुल जानता रहे, इस प्रकार का सहयोग स्थापित करके ही आप उसे देश का कृपा पात्र बना सकते हैं। आप पथ प्रदर्शन के लिये शिक्षा विशारदों के विचार तथा उनकी आलोचनायें प्राप्त कर शिक्षा के भिन्न भिन्न अंगों पर प्रकाश डाल सकते हैं। आप गुरुकुल के संरक्षकों की सम्मतियें तथा उनकी गुरुकुल से आशाओं को जानने की भी व्यवस्था करें क्योंकि वे ही इस संस्था की यथार्थ शक्ति हैं। मैं स्वयं एक संरक्षक के नाते जोर के साथ कह सकता हूं कि हमारे हृदयों में गुरुकुल के प्रति केवल सहानुभूति ही नहीं बल्कि महामोह भरा पड़ा है, क्योंकि हमारा सम्बन्ध उसके साथ स्वयं हमारे रक्त के द्वारा जुड़ा हुआ होता है, अतः उनकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। इसके अतिरिक्त आप यदि संसार के अनेक विश्वविद्यालयों के विकास के इतिहास, उनकी वर्तमान दशा, उनके नियन्त्रण तथा उनकी शासन प्रणाली इत्यादि विषयों पर सामग्री एकत्रित कर तथा उन्हें समय समय पर अपने पत्र में प्रकाशित करें तो देश की गुरुकुल संस्थायें उससे बहुत कुछ लाभ उठा सकती हैं।

मैं समझता हूं कि वे सब गुरुकुल जिनके आदर्श समान हैं अपने पारस्परिक सहयोग व संगठन से अपनी स्थिति को दृढ़ बनायें तब ही वे देश की बढ़ी हुई आकांक्षाओं को पूरा करने में समर्थ हो सकेंगे। इस योग्यता के अभाव में उन्हें अपने अस्तित्व की रक्षा करना कठिन हो सकता है। उदाहरण के लिये मान लीजिये कि देश वर्तमान अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों के कारण यह समझने लगा है कि उसकी दशा उस अनाथ की जैसी है जो संकट के समय अपनी रक्षा करने में सर्वथा असमर्थ है और वह इस बात को अपने लिये एक जातीय कलंक समझने लगा हो। अब मान लीजिये कि श्री कृष्णकान्त मालवीय जी जाति में आत्म विश्वास उत्पन्न करने के लिये अपनी हवाई योजना पेश करते हैं. वे हिन्दुस्तानी विश्वविद्यालयों को भी इसमें योग देने का आवाहन करते हैं। यदि विश्वविद्यालय इस बात को एक कान से सुनता है और दूसरे से निकाल देता है तो फिर उस पर बोलने वाला कौन रह जाता है। इस प्रकार अनेक ही स्कीमें बनती रहती हैं और बनते ही रद्दी की टोकरी में फेंक दी जाती हैं। इसका परिणाम यह होता है कि शान्ति के समय की प्रगतिशील संस्था क्रान्ति के समय धीरे २ अपनी महत्ता को बैठती है, जनता उससे उदासीन होती जाती है और वह अपने स्थान से च्युत हो विस्मृति के खड्ड में लुप्त हो जाती है। पर यदि आप सतर्क हैं, आपने विद्यार्थियों को संगठित कर रक्खा है तथा भिन्न भिन्न गुरुकुलों में सहयोग व सहमंत्रण की

भावना भर रक्खी है, यदि आपने संरक्षकों का विश्वास व सद्भाव प्राप्त कर रक्खा है तो और युनिवर्सिटी चाहे करें या न करें पर आप यदि चाहें तो इन सब के सम्मिलित प्रयत्न से गुरुकुल संस्थाओं के लिये दो चार 'ग्लाइडर्स' वायुयान सरलता से जुटा सकते हैं और इस प्रकार आप अपने विश्वविद्यालय को देश के साथ कदम से कदम मिला कर चलने के योग्य बना सकते हैं। देश में आप के प्रति दिलचस्पी पैदा हो जायगी और उसे यह विश्वास हो जायगा कि जिस गुरुकुल के स्नातक शान्ति के समय दया व धर्म के दूत बन संसार में एक कल्याणकारी संस्कृति का प्रचार करते हैं, संकट के समय उसी के ब्रह्मचारी देश की रक्षा में भी अपने प्राणों को न्योछावर कर सकते हैं। देश ऐसी संस्थाओं के हाथ में न केवल अपने धन को ही बल्कि अपनी जान व आन दोनों का ही सुरक्षित समझने लगेगा। परन्तु यह केवल एक उदाहरण है उस नीति का जिसके सहारे आप अपने के प्रयत्न द्वारा अपनी संस्था का गौरवान्वित कर सकते हैं।

आशा है आप इस पर विचार करने की कृपा करेंगे तथा अपने पत्र के अमूल्य पृष्ठों को केवल बड़े बड़े सिद्धान्तों की व्याख्या में ही नहीं बल्कि छोटे छोटे अनेक कल्याणकारी कामों के प्रचार में भी लगाने की कृपा करेंगे और इस प्रकार अपनी सभा की कार्यदक्षता का बढ़ा शिक्षा के क्षेत्र में अब भी अगवा बना रहने में सहायता करेंगे।

योगतत्त्व निदर्शन

[ले०—श्री ब्र० दिलीपकुमार जी गु० सोनगढ़]

(गताङ्क से आगे)

यद्यपि ईश्वर के विषय में विचार करते हुए 'हेगल' आदि विचारक (Real is rational) अर्थात् जो वास्तविक है वह बुद्धिगम्य होता ही है, ऐसा मान कर अदृष्ट तथा बुद्धि से अगम्य ऐसे परमात्म तत्त्व को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं होते परन्तु विचार करने से स्पष्ट मालूम होता है कि प्रकृति के विकास स्वरूप बुद्धि तत्त्व से, परमात्मा जैसे प्रकृति से पर पदार्थ का कैसे अनुभव हो सकता है? इसी कारण को लेकर के आजकल के बहुत से विचारक (Real is rational) को न मान कर (Real is above rational) को ही मानते हैं। हमारे शास्त्रों के अन्दर भी 'न तत्र वाक् गच्छति नो मनो न विद्मो न विजानीमः' इत्यादि अनेक मन्त्रों के अन्दर बुद्धि से परे ऐसे एक चेतनमय परमात्मतत्त्व की कल्पना की गई है। इसी अदृश्य सत्ता के ऊपर विचार करते हुए आजकल के अनेक विचारकों ने उसी के विषय में विभिन्न प्रकार की कल्पना करके द्वैत, अद्वैत, विशिष्टाद्वैत, शुद्धाद्वैत, Theism, Polytheism, Pantheism, Mysticism, Deism, Pluralism, Idealism इत्यादि विभिन्न वादों की स्थापना की है। परन्तु महर्षि पतञ्जलि ने अपनी विशाल एवं कुशाग्रबुद्धि से उस समय के समाज का झुकाव ईश्वर की ओर होने के कारण अपने दर्शन के कलेवर के अन्दर ईश्वर को स्थान देकर उचित ही किया है। साधक 'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन' के अनुसार फल-संन्यास की भावना से तथा ईश्वरार्पण-बुद्धि से कर्म करता हुआ अपने चित्त का सर्वथा निरोध कर सकता है। इस प्रकार से उपनिषद् के 'भोक्ता भोग्यं प्रेरितारं च मत्वा' के त्रित्व को स्वीकार करता हुआ योग दर्शन, सांख्य दर्शन से आगे बढ़ कर जीव (भोक्ता); प्रकृति (भोग्य) तथा परमात्मा (प्रेरिता) ऐसी तीन अनादि वस्तुओं की स्थापना करता है।

इतना ही नहीं किन्तु इसके सिवाय भी चित्तवृत्ति को अंतर्मुख करने के उपायों को बतलाते हुए योगदर्शन के अष्टाङ्गों का इतना भारी महत्व है कि प्राय प्रत्येक दर्शन ने अपने दर्शन के कलेवर के अन्दर योग के इन अष्टांगों को अच्छा स्थान दिया है। "योगांगानुष्ठानादशुद्धिक्षये ज्ञानदीप्तिराविवेकख्यातेः" के अनुसार साधक को विवेक ख्याति का भान कराने वाले इन अष्टांगों के ऊपर यदि हम विचार करें तो हमें उसकी महत्ता स्पष्ट दिखाई देती है। जब तक सामाजिक धर्म का मान या भान कराने वाले 'यम' तथा व्यक्तिगत धर्म का ज्ञान कराने वाले 'नियम' का जीवन के अन्दर यथार्थ रीति से पालन करने में न आवे तब तक साधक के जीवन के आध्यात्मिक क्षेत्र के अन्दर प्रवेश करने की योग्यता आ ही नहीं सकती। इसका अभिप्राय यह है कि जीवन के अन्दर आंतरिक विकास को उत्पन्न करने वाले 'यम' के साथ ही साथ जीवन का समता (Harmony) में लाने के लिए 'नियम' की आवश्यकता है।

इसके अतिरिक्त आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान तथा समाधि आदि विभिन्न उपायों द्वारा शरीरस्थ अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय तथा आनन्दमय कोषों के बहार के आधारों का विच्छेद करके आत्मा के अन्दर ही प्रत्येक प्रकार के कोषों का आधार करने में आता है। और आत्मा को ही सब प्रकार के कोषों का आधार बना देने के कारण साधक पूर्णतया अंतःवृत्तिक हो सकता है। इससे हम इस परिणाम पर आ सकते हैं कि अन्तः-संसार पर विचार करते हुए योगदर्शन के अन्दर इतना सारा मनोविज्ञान (Psychology) भरा हुआ है कि आजकल के मनोविज्ञान-वेत्ता भी अंतः-तत्त्व का प्रत्यक्ष करने वाले हमारे प्राचीन ऋषि मुनियों के इस सूक्ष्म दर्शन की बराबरी नहीं कर सके हैं।

अपूर्ण

गुरुकुल

१६ अगस्त शुक्रवार १६३८

भारतीय शिक्षा की दिशा

[श्री स्वामी अभयदेव जी संन्यासी]

हमारे राष्ट्र की शिक्षा पद्धति कैसी हो इस बात की तरफ़ आजकल काफी विचार और ध्यान दिया जा रहा है। विशेषतः कांग्रेसी सरकारें अनुकूल अवसर को पाकर अपनी शक्ति भर शिक्षण क्षेत्र में क्रान्ति कर देने का यत्न कर रही हैं। महात्मा गांधी के नेतृत्व में एक प्रसिद्ध शिक्षा योजना बनी है जो 'वर्धा योजना' के नाम से कही जाती है। यह वस्तुतः बहुत अच्छी है। हमारे देश की वर्तमान स्थिति में साधारण रूप से हमारी शिक्षा की सभी कमियों को यह दूर कर सकेगी ऐसी आशा करनी चाहिये। अतः इसका क्रियात्मक रूप से जितना अधिक और जल्दी प्रचार हो उतना अच्छा है।

पर शिक्षा की इस वर्धा योजना को भी हमें शाब्दिक रूप में या कट्टरपने के साथ नहीं लेना है किन्तु इसके पीछे जो भारतीय शिक्षा का एक महान् आदर्श है उसे सदा सामने रखते हुए अपनाना है। असली वस्तु भारतीय शिक्षा का वह ध्येय है जहां कई क्रमों से विकसित होते हुए भारतीय शिक्षा पद्धति ने पहुंचना है। वर्धा योजना तो वहां पहुंचने के लिये शिक्षा की दिशा को वर्तमान काल के लिये ठीक कर देने वाली है, अतः तात्कालिक रूप में वर्धा योजना को सब कुछ समझते हुए भी हमें अपनी दृष्टि भारतीय शिक्षा के उस आदर्श पर लगाए रखनी है जिस से यदि विचलित हो गये तो वर्धा योजना को भी ठीक अर्थ में हम कभी सफल नहीं कर सकेंगे। वह आदर्श क्या है ?

आज भी ऐसे लोग मौजूद हैं जो कि यह सुन कर हंसेंगे, हमें दकियानूसीपन समझेंगे यदि यह कहा जाए कि शिक्षा के प्रारम्भ, मध्य और अन्त में ब्रह्मचर्य-साधन ही एक सर्वोपरि वस्तु है। किन्तु भारतीय शिक्षा के आदर्श को हम इस सुन्दर शब्द के बिना चित्रित ही नहीं कर सकते। हमारे तत्वज्ञान के अनुसार ज्ञान कहीं बाहर से आने वाली वस्तु नहीं है, अनन्त रूप में ज्ञान अन्दर विद्यमान है। शिक्षण द्वारा उसे केवल उद्घाटित किया जाता है, प्रादुर्भाव किया जाता है। सांख्य के शब्दों में कहें तो ज्ञानी होने का मतलब है सत्वगुण का बाकी दो गुणों के मुकाबिले में अधिक और बलवान होना। इसके अनुसार शिक्षक का कार्य इतना होता है कि वह ऐसी तरकीब करे कि विद्यार्थी के अन्दर के तमोगुण दब जाएं, रजोगुण काबू में आ जाए और सत्वगुण का राज्य हो जाए। यह बड़ा कठिन और लम्बा कार्य है। पर कार्य भी यही है। इस में जितनी सफलता मिले उतना ही कोई शिक्षित हुआ है यह समझना चाहिये। पर इसका साधन है ब्रह्मचर्य या तपस्या। अच्छे गुरु की आंखों के नीचे तप और संयम का परमेश्वर-परायण जीवन बिताने से ही मनुष्य के अन्दर का सत्वगुण तथा सब दैवी शक्तियां विकसित होती हैं। शारीरिक, वाचिक, मानसिक, बौद्धिक ब्रह्मचर्य से शारीरिक बल, वाचिक प्रभाव, मानसिक तेज, बौद्धिक ज्ञान शक्ति प्राप्त होती है। इन सब क्षेत्रों में वीर्यलाभ होता है। आज कल जो नपुंसक पाण्डित्य, विलास या कौतूहल के लिये की गई जानकारियों के संग्रह या कभी जीवन में परिणत न होने वाला स्वाध्याय चारों तरफ दिखाई देता है यह उस शिक्षण पद्धति का परिणाम है जिस में आन्तरिक ब्रह्मचर्य का कोई स्थान नहीं। जब शारीरिक वीर्य शरीर का यथावत पोषण कर शेष तेज, ओज आदि रूप धारण कर ऊर्ध्वगामी होता है तब मनुष्य की उच्च और दिव्य शक्ति जागृत होती है, तब उसकी बुद्धि में सच्चा, बलवान, रचना शक्ति रखने वाला ज्ञान उदित होता है, उसके मन में दृढ़ संकल्प शक्ति होता है, वाणी में तेज होता है, शरीर में जीवन और सामर्थ्य। जिस दिन भारत के प्रत्येक बालक बालिका के लिये ऐसी पवित्र और सच्ची शिक्षा का प्रबन्ध हो सकेगा तब हम कह सकेंगे कि आज भारत को उसकी अपनी शिक्षा प्रणाली मिल गई। आशा है हम इस वर्धा योजना से उसी दिशा में जाएंगे। इसके अनुसार भारतीय बालक जो हाथ से काम किया करेंगे वह उनकी शारीरिक तपस्या होगी, वे जो जीवनोपयोगी तरीके से मानसिक शिक्षण पाएंगे उससे उनके मन ताज़ा और सजीव रहेंगे और मानसिक ब्रह्मचर्य साधन कर सकने योग्य बन जाएंगे। तात्पर्य यह कि भारतीय शिक्षा के इस आदर्श को सन्मुख रखते हुए ही हमें सदा भारतीय शिक्षा की दिशा का निश्चय करना होगा।

विश्वविद्यालय गुरुकुल कांगड़ी की उपाधियों को सरकार स्वीकार कर सकती है।

[श्रीयुत केशवदेव शास्त्री सिद्धान्तालंकार]

प्रान्तीय शासन की बागडोर हाथों में लेने पर कांग्रेस ने अनेक सुधारों का प्रयत्न किया है। किसानों की रक्षा, मजदूरों की बेहतरी, मद्यनिषेध, स्वदेशी प्रोत्साहन, आदि आदि। शिक्षा के क्षेत्र में भी हिन्दी-हिन्दुस्तानी को राष्ट्र भाषा बनाने का प्रयत्न तथा वर्धा शिक्षण-परीक्षण मुख्य हैं। अस्तु।

गत कुछ समय से बम्बई प्रान्त में भूतपूर्व सत्याग्रहियों ने कांग्रेसी सरकार के सामने यह प्रश्न रखा था कि "जातीय शिक्षणालयों की उपाधियों को भी क्यों न स्वीकार किया जाय ?" उनका कहना था कि सरकारी व ग़ैर-सरकारी नौकरियों में जातीय शिक्षणालयों से शिक्षा-प्राप्त युवकों को वही अवसर दिये जांय जो अन्यों

को दिये जाते हैं। इसी प्रकार "वोट" (Franchise) के विषय में, अथवा पोस्ट-ग्रेजुएट कोर्स में प्रवेशार्थ तथा अन्य सब प्रकार से जातीय शिक्षणालयों की उपाधियों का उतना ही मान किया जाय जितना कि अन्य सरकारी संस्थाओं की उपाधियों का।

बड़े हर्ष का विषय है कि बम्बई सरकार ने इस मांग को स्वीकार करके हाल ही में एक (G.O.) आज्ञा जारी की है जिसके अनुसार गुजरात विद्यापीठ तथा महाराष्ट्र विद्यापीठ के उपाधि प्राप्त युवकों को उपरोक्त सब अधिकार दिये गये हैं।

यदि बम्बई में ऐसा हो सकता है तो संयुक्त प्रान्त में क्यों न हो? वहां भी तो कांग्रेस सरकार है। शायद एक भेद है। बम्बई की जातीय संस्थाओं के साथ महात्मा गांधी, श्रीयुत पटेल, काका कालेलकर आदि प्रभावशाली व्यक्तियों के नाम हैं। परन्तु हमारी गुरुकुल शिक्षा-प्रणाली के साथ शायद कोई बड़ा नाम नहीं। श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी की मृत्यु के बाद आर्यसमाज का जातीय क्षेत्र में कोई सत्ता नहीं रहा। आपस की फूट और ईर्ष्या द्वेष ने आर्यसमाज को जर्जरित कर दिया है। और फिर गुरुकुल तो आर्यसामाजिक संस्था है। इसे हमने पूर्णतः जातीय रूप अब तक भी नहीं दिया।

पुनश्च, पंजाब प्रतिनिधि सभा के कई सदस्य सरकारी स्वीकृति के नाम से ही घबराते हैं। हमारा विचार है कि यदि आन्तरिक स्वतन्त्रता के सिद्धान्त को सरकार स्वीकार कर ले तो गुरुकुल विश्वविद्यालय को अन्य बातों में कांग्रेसी शासन के सहयोग में आक्षेप न होना चाहिये।

योगेश्वर कृष्ण

[ले०—श्री ब्र० वर्मा' अयोवश श्रेणी]

धर्मशास्त्रकारों और नीति शास्त्रकारों का कथन है कि—

'गुणाः पूजास्थानं गुणिषु न च लिङ्गं न च वयः।'

अर्थात् किसी उच्च महात्मा का आदर सभ्य समाज जिस लिए करता है, वह उस महात्मा के गुणों की दृष्टि से है। मनुष्य का आदर लिङ्गादि से नहीं होता है और ना ही होता है आयुष्य आदि से। जिस उच्च व्यक्ति ने अपने आपको जीवन की विभिन्न आपत्तियों की प्रदीप्त भट्टियों में से गुज़ार कर अपने को खूब ठोक-बजाकर खरा सोना सिद्ध कर दिखाया है उसके सदा सिद्ध होने की कसौटी में जो २ साधनरूप गुण-प्रवृत्तियां और उसके कर्म शुभ रूप से किन्तु साधारणतः कार्य कर रहे होते हैं, वे गुण ही यथार्थतः प्रशंसा अनुकरणीय और मान्य हुआ करते हैं। चाहिये भी ऐसा ही, कि जिन गुणों के प्राधान्य और परम अनुभाव से वह महात्मा प्रातः स्मरणीयता की पदवी पर आसीन हुआ है—वे गुण ही सदा सबत्र सराहे जाते रहेंगे।

इस दृष्टि से हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि प्रत्येक महान् आत्मा के गुणों का सूक्ष्म निरीक्षण कर करके उनको अपने में धारण करने का यथा शक्ति प्रयत्न तथा एतदर्थ व्रत ग्रहण करना परम कर्त्तव्य समझना चाहिए। यह है तथ्य और वास्तविक तात्पर्य किसी महानात्मा के नाम पर पुण्य पर्व मनाने का।

× × × ×

आज हम सब भारतीय अपने अवतार भगवान कृष्ण की पुण्य जन्मतिथि मना रहे हैं। किन्तु दुःख और शोक का विषय है कि जिसे हमने परमात्मा के अवतार रूप में प्रत्येक भारतीय ने प्रत्येक घर के प्रत्येक बच्चे २ के मुंह पर रटा कर प्रकट कराया है, उसके वास्तविक स्वरूप को हम स्वयं नहीं समझ रहे हैं। और स्वयं वास्तविक आशय से अनभिज्ञ होने से हमें अपनी सन्तति को भी मूर्खतापूर्ण और अश्लीलतामय रूपों में—भगवान कृष्ण के वास्तविक ? (किन्तु उपहास्पद) रूप का चित्रण कराने का यत्न करते हैं।

भगवान् कृष्ण के सच्चे स्वरूप का ध्यान करते हुए हम यह भूल जाते हैं कि हमने उनका नाम गाया सही, परन्तु यह गायन सर्वथा अश्लीलता पूर्ण होता है। अरे! जब किसी की पूजा तो सही पर उसे पैशाचिक रूप में—तो नहीं समझ में आता कि उस महानात्मा की गुण गरिमा कहां गई? "गुणों की कसौटी पर महात्मा का जीवन और उसका यश कसा जाता है।" पर हम लोग अपने विकृत-कलुषित मस्तकों में वासनामय और कामादिकों से अश्लीलतापूर्ण चित्र चित्रित करके अपने को धन्य कह २ कर किसी महानात्मा का दिन मनाते हैं। नहीं जानते हैं कि हम मूढ़, कि दिन मना कर हम एक भयंकर भूल—नहीं—एक ब्रह्महत्या के समान नारकीय कर्म और घोर पातक कर रहे हैं। हम पर तो उलटी दोहरी मार पड़ती है। परिणामतः हमारी जाति—हिन्दू समाज दिन प्रति दिन अधोगति की ओर अग्रसर होता आ रहा है। हिन्दू जाति ने श्री भगवान् कृष्ण का बड़ा विकृत चित्र कल्पित कर रक्खा है। चोर जार, शिरोमणि, माखनचोर, सोलह हज़ार से ऊपर रानियों का स्वामी,—गोपियों के साथ बनों में जाकर अहर्निश रात आनन्द करने और रासलीला का रचयिता, झूठ और सच की परवाह न करके कपट कलुषित राजनीति द्वारा शत्रु-कुल-घातक, बाल क्रीड़ाओं द्वारा सबका मनोरंजन दिल बहलाव करने वाला तथा असुरों का मान मर्दन करने वाला भगवान् कृष्ण? हां हमारा एक मात्र पूज्य है!!!

परन्तु क्या वस्तुतः इन्हीं कुशासन मय कार्यों से ही कृष्ण पूर्णावतार माना जाता है। 'भगवान् कृष्ण' रूप में पूजा जाता है। वल्लभ, चैतन्य, सूर रसखान, जयदेव और भारतेन्दु आदि कवियों द्वारा पूजा बना है। अथवा गीता के सब दोहे हुए ज्ञानामृत का, षड्दर्शनों के सार रूप ज्ञान को—अर्जुन वत्स को पिलाने वाला, गोपाल कृष्ण पूज्य है। भौमासुर द्वारा त्रासित राज-

कन्याओं का, दुःशासन द्वारा अपमानित द्रौपदी का, जरासंध द्वारा बन्दी कृत राजकुमारों का, दुर्योधन द्वारा बारम्बार अपमानित पाण्डवों का, कंस द्वारा सताए हुए वृद्धों तथा पूज्य पितरों का, असुरों द्वारा पीड़ित प्रजाओं का—एक ही वाक्य में कहना चाहें तो—सकल दीनों का नाथ—कृष्ण पूज्य है। धर्म की ग्लानि तथा अधर्म का अभ्युत्थान निवारणकर्त्ता, 'यतो धर्मस्ततो जयः' का संदेश वाहक, लोक संग्रहार्थ कर्त्तव्य भावना से ईश्वरार्पण बुद्धि से सदा पाप के विपक्ष में प्रयत्नरत, अनासक्त–निष्काम भाव से अपने सम्बन्धी यादवों का नाशयिता, जन्मसिद्ध योगी कृष्ण पूज्य है। सुदामा के साथ रात्रि के १२ बजे भी वर्षा में लकड़ी काट कर लाने वाला, गरीब सर्वथा निःसहाय संकोचशील विद्वान् सुदामा का मान करने वाला गरीब अमीर के भेद का उन्मूलन करने वाला, कृष्ण वस्तुतः मान्य और पूजनीय एवं जगद्वन्द्य है। कृषि प्रधान भारत की अमूल्य सम्पत्ति गौ माता का त्राता—पालयिता कृष्ण आज भी भारतवर्ष का नहीं—अपितु सकल संसार का वन्द्य बन सकता है। यादव प्रजातन्त्र का संचालक, राजसूय यज्ञ में सर्व पूज्य और मान्य होते हुए भी सब सभागत राजा द्विज के पांव धुलाने वाला, दुर्योधन के पकवानों को छोड़ कर भीलनी के बेरों की भांति सीधे साधे विदुर की सूखी सब्जी को प्रेम और श्रद्धा से ग्रहण करने वाला, मृत्यु शय्या पर लेटे हुए भीष्म पितामह से सम्मान पूर्वक, सम्पूर्ण भारतीय राजनैतिक, मानसिक आध्यात्मिक और व्यावहारिक ज्ञान शक्ति के अथाह भण्डार को समेट लेने के लिए प्रेरणा देने वाला कृष्ण आज भी अनायास ही प्रत्येक भारतीय के मन में एक गुदगुदी और हलचल सी मचा देता है।

आज आवश्यकता है कि भारतीय जनता अपनी सदियों की पुरानी नींद से उठे और अपने भगवान् को उसके वास्तविक सारे सात्विक किन्तु अज्ञान तिमिर से निकाल कर ज्ञान का प्रकाश करने वाले स्वरूप का ध्यान करके अपने को भी उद्बुद्ध कर दिखाए। हमारे लिए यही वास्तविक दिन मनाना होगा। तभी हमारी यह आज का 'कृष्ण जन्माष्टमी का महोत्सव और पुरातन पर्व' सफल हुआ सिद्ध होगा।

समालोचना

दयानन्ददिग्विजयम् (महाकाव्य) पूर्वार्द्ध लेखक-कविरत्न श्री पं० मेधाव्रत आचार्य आर्य कन्या महाविद्यालय बड़ौदा प्राप्तिस्थान—पं० सत्यव्रत जगजीवन आर्य-येवला ज़ि० नासिक.

जब यह पुस्तक हमारे पास समालोचनार्थ आई तो हमने कुछ अनमने से इस भार को स्वीकार किया। एक तो महाकाव्य, वह भी संस्कृत में, और फिर इस युग में जिसमें कि लोगों की संस्कृत के प्रति पूज्य बुद्धि तो शायद रह गई है पर अभ्यास नाम को भी नहीं। हमने सोचा कि ऐसे ही किसी को खाली बैठे २ खाज सवार हुई और उसने अपनी खाज मिटाली। पर पुस्तक पर नाम देखा आचार्य मेधाव्रत जी कविरत्न का, तो सहसा ही सम्मति बदल गई।

कविरत्न जी से हमारा व्यक्तिक परिचय नहीं के बराबर है। यद्यपि नाम तो पहले भी इधर उधर पत्र-पत्रिकाओं में देखा और सुना था, पर आज से ठीक ३ साल पहले ग्रीष्मावकाश के दिनों में बम्बई की ओर जाते हुए जब बड़ौदा के आर्य कन्या महाविद्यालय में दर्शक रूप से घूमते हुए हमें आप का परिचय कराया गया और बताया गया कि आप ही कन्या महाविद्यालय के आचार्य हैं, तब मेरे साथ एक गुजराती बन्धु को देखकर आप के मुख से जो छन्दोबद्ध पंक्ति निकली थी—'प्रासो दृशां नः पथि चन्द्रकेतुः'— मेरे साथी का नाम चन्द्रकेतु था — उसे सुनकर मुझे आश्चर्य अवश्य हुआ था कि यह व्यक्ति इस दिशा में असाधारण प्रतिभा रखता है।

और फिर इन पंक्तियों के लेखक को वह समय याद आया जब वह गुरुकुल कुरुक्षेत्र में आठवीं श्रेणी में पढ़ता था, और उसने कविरत्न जी के बनाये 'कुमुदिनी चन्द्र' नामक उपन्यास का अधिकांश हिस्सा हिन्दी में अनूदित कर डाला था— केवल शौकिया तौर, पर इसलिये कि यह उपन्यास उसे पसन्द आया था।

तो मतलब यह कि कविरत्नजी पुराने महारथी हैं। पर हम 'दयानन्ददिग्विजय' की समालोचना करने जा रहे हैं— यह ध्यान में आते ही हमने अपना कर्तव्य समझा कि कम से कम एक बार तो इस महाकाव्य के अथ से इति तक गुज़र जाएं और हमारे पाठकों को जानकर आश्चर्य होगा कि हमने ज्यों २ इसका पारायण किया है हमें अधिकाधिक रस आता गया है, और तभी से हमने इस पुस्तक को अपनी प्राइवेट स्टडी के लिये सुरक्षित रख लिया है।

आधुनिक पाश्चात्य शिक्षा में दीक्षित अहम्मन्य, किन्तु प्रत्येक बात में पर-मुखापेक्षी जो नवयुवक संस्कृत को मृत भाषा कहकर नाक भौं सिकोड़ते हैं उनके पास वैसा कहने का प्रबल प्रमाण यह है कि आजकल न तो लोग संस्कृत ही जानते ही हैं और जो कुछ जानते भी हैं उन्हें लिखने बोलने का अभ्यास नहीं है। पर यदि यह काव्य उनकी दृष्टि में पड़ जावे तो उनकी सब धारणायें निर्मूल सिद्ध हो जावें। इतना अधिक लालित्य, इतना अधिक माधुर्य और इतना अधिक प्रसाद उसमें भरा है कि पाठक झूम २ जाता है और अपने भाग्य को सराहता है कि प्रभु ने कविरत्न जी के द्वारा महायज्ञ का यह महाप्रसाद जनता को प्रदान किया है।

इच्छा तो होती है कि उसके आन्तरिक भाग पर भी कुछ कहें, पर स्थान कम और समय थोड़ा। यह बहुत ही अच्छा हुआ कि आधुनिक वैज्ञानिक मनोवृत्ति को भी यह महाकाव्य सन्तुष्ट रखता है, क्योंकि लेखक कहीं भी साहित्यिक सत्य के पीछे ऐतिहासिक सत्य को नहीं

भुलाता। क्या ही अच्छा होता यदि यह सर्वाङ्गपूर्ण महाकाव्य गुरुकुलों के पाठ्य विभाग में स्थान पाता! क्या गुरुकुलों के अधिकारी इस ओर ध्यान देंगे?

अन्त में एक अप्रिय सत्य भी। इसी पुस्तक में श्लोकों के हिन्दी अनुवादकर्ता का आचार्य जी को आधुनिक युग का अमरवाणी का महाकवि सिद्ध करना कुछ जँचता नहीं, बेशक उसकी सत्यता हमारे लिये विवादार्ह नहीं है। कुछ ऐसा-सा असर पड़ता है कि लेखक ने स्वयमेव अपने विषय में लिखवा लिया है। अच्छा होता पाठक को इस असर से बचाया जाता! पर इससे इस की उपयोगिता में तो अन्तर नहीं आता। आर्यसमाज इसका उचित आदर करेगा- यह तो पुनरुक्ति ही होनी चाहिये। अभी तो कविरत्न जी से बहुत २ आशायें हैं। देखें उत्तरार्ध कब निकलता है? 'पद्म वेदालङ्कार'

गुरुकुल समाचार

स्वास्थ्य समाचार

ब्र० भारतेन्दु १४वीं श्रेणी, पुरुषोत्तम १२वीं, हरगोविन्द ५म, सुभाषचन्द्र (धनौरा) ४र्थ, सुखदेव ४र्थ, महावीर ४र्थ, इनफ्लुएञ्जा से। जगदीश ५म ज्वर से यशपाल ५म व्रण से नारायणदेव ३य मम्पस से धर्मपाल ३य, चोट से, सुरेश २य, टॉन्सिल से तथा यशपाल १म (रावलपिण्डी) टायफाइड से रोगी है।

गत सप्ताह उपरोक्त ब्र० रोगी हुए थे। इनमें से ब्र० यशपाल १म श्रेणी का ६ दिन से हिस्ट्रीया रहता है। शेष सबको आराम आ रहा है।

श्रावणी के महान् पर्व पर कुल में वृहद् यज्ञ, श्री आचार्य जी का सामयिक प्रवचन, तथा अन्य सभी पुरोगम सदा की भांति सम्पन्न हुए थे इस वर्ष महाविद्यालय के ब्रह्मचारियों ने अपने हाथों से यज्ञोपवीत बनाकर इस अवसर एक आदर्श समुपस्थित किया था।

साहित्य परिषद् की ओर से प्रतिवर्ष महाविद्यालय के ब्रह्मचारियों को धारा-सभादि के कार्यों से अवगत रखने के लिये तथा इस में स्वयं क्रियात्मक अनुभव पाने लिये राष्ट्र प्रतिनिधि सभा (पार्लियामेन्ट का आयोजन किया जाता है। इस वर्ष राष्ट्र प्रतिनिधि सभा के अधिवेशन २७ २८ तथा २६ अगस्त को होंगे। इस अवसर पर गुरुकुलीय साम्यवादी दल की ओर से ब्र० देवपाल भारत रक्षण विधान उपस्थित कर रहे हैं। इस अवसर पर ब्र० विद्या सागर भी भारतीय व्यवसाय विधान राष्ट्रप्रतिनिधि सभा में पेश कर रहे हैं। राष्ट्र प्रतिनिधि सभा के अध्यक्ष उपाध्याय वेदव्रत जी वेदालंकार हैं तथा मंत्री ब्र० धीरेन्द्र कुमार जी हैं। आशा है इस वर्ष रा० प्र० सभा कुल वासियों को धारा सभा सम्बन्धी परम्पराओं तथा नियमों से भली भांति परिचित कर आदर्श व्यवस्थापक रूप में उपस्थित करेगी।

श्रावण के साथ ही वर्षा का जोर भी कुछ कम हो चला है। कृष्ण मेघ मण्डल उत्तरायण के पथ पर चले गये हैं। कहीं २ सफेद बादलों के टुकड़े इधर उधर चक्कर लगाते नज़र आ रहे हैं। गर्मी खूब बढ़ गई है। पिछले दिनों की रोग वृद्धि पर ध्यान देते हुए प्रत्येक कुलबन्धु को ऋतु परिवर्तन के इस अवसर पर सचेत रहना चाहिये। भागीरथी की नहर फिर पूरी भर कर चल रही है कुल की नौका भी जल में डाल दी गई है। कुल के ब्रह्मचारी (खेवट) नौकादि चला कर अपने व्यायाम का कलात्मक रूप से प्रदर्शित करते हुए नौका संचालन विद्या में पर्याप्त दक्षता पा रहे हैं।

गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ समाचार

गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ में ऋतु अति उत्तम है। आकाश बादलों से घिरा रहता है। परन्तु ज़ोरदार वर्षा का अभाव अनुभव किया जा रहा है।

चिकित्सालय में दो तीन मामूली रोगी हैं, शेष सब स्वस्थ हैं। सब कार्य नियम पूर्वक हो रहा है।

श्री प० वियोगी हरि जी सुपरिन्टैन्डेन्ट हरिजन उद्योगशाला, सम्पादक "हरिजन सेवक" यहां पधारे आपने अति मनोहर शिक्षाप्रद उपदेश ब्रह्मचारियों को दिया कि सब कार्य अपने हाथों करना चाहिये जैसे सफ़ाई, बर्तन साफ़ करना आदि।

११ अगस्त को श्रावणी महोत्सव बड़े समारोह से मनाया गया। "ओ३म्" और "कुलपताका" के झन्डे तबदील किए गए। श्रावणी का वृहद्यज्ञ सब कुल वासियों ने सम्मिलित हो कर किया।

गुरुकुल सूपा

गत वर्ष की अपेक्षा इस वर्ष इन्द्रदेव कुछ विशेष नियम से वर्षा कर रहे हैं। अपनी इच्छानुसार भगवान को फल देते देख किसान लोग खूब आनन्दित तथा आशावादी प्रतीत होते हैं। प्रकृति देवी भी अपने शोभित हरित वस्त्रों से आवेष्टित हो सबको मन्त्र मुग्ध बना रही है। ज्वार, चावल तथ कपास के लहलहाते क्षेत्र पथिक जनों के नयन युगल को सहसा आकर्षित कर लेते हैं। सूर्य भगवान के दर्शन भी दुर्लभ हो गये हैं। ५-६ दिन की अनवरत झड़ी ने पूर्णा को भी क्षुब्ध बना दिया है। काले तथा भयानक मेघपटल भारी वृष्टि की धमकी दे रहे हैं।

कुल के लिये भी यह सप्ताह विशेष महत्त्व रखता है। आज हमारे अधिकारी श्रेणी पास ब्रह्मचारियों का विदाई दिवस है। १० वर्ष के एकाग्रचित्त के अध्ययन के बाद आज उन्हें अपनी शैशव क्रीड़ा स्थली छोड़नी है। 'विदा' कितना दुखदायी शब्द है, इसका वास्तविक अनुभव आज प्रत्येक कुलवासी कर रहा है। मान्य प्रीति भोज के मधुर आल्हादक संस्मरणों के साथ प्रत्येक कुलवासी अपने अंगभूत भाइयों को भावभीनी विदा देने के लिये पवित्र पूर्णा तट पर खड़ा है। सायंकालीन अंधकार में किरणें विलीन हो गई और "शिवास्ते पन्थानः सन्तु" की मंगल कामना करते हुवे सब कुलवासी निद्रा देवी की सुखद गोद में सो गये।

चौधरी हुलासराय के प्रबन्ध से गुरुकुल प्रेस गुरुकुल कांगड़ी में मुद्रित तथा प्रकाशित।

* ओ३म् *

"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत" Reg. No. A. 2927

गुरुकुल

सम्पादक—भारतभूषण वेदालङ्कार

एक प्रति का मूल्य -) [गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख-पत्र] वार्षिक मूल्य २॥)

वर्ष ३] गुरुकुल काङ्गड़ी, शुक्रवार ११ भाद्रपद १९९५; २६ अगस्त १९३८ [संख्या १५

यज्ञोपवीत

[ले०—श्री प्रो० ज्ञानचन्द जी एम० ए०]

यज्ञोपवीत के ३ धागे हमें याद कराते हैं कि हमने तीन ऋण चुकाने हैं पितृ ऋण, ऋषि ऋण और देव ऋण। पितृ ऋण की व्याख्या हो चुकी।

दूसरा ऋण जो हमने चुकाना है वह है ऋषि ऋण उसे कैसे चुकाना है। जो विद्या हमने पढ़ी है उसे औरों को पढ़ाएं। मगर विद्या से क्या अभिप्राय है और ऋषि से क्या अभिप्राय है। विद्या का अर्थ यह नहीं है कि हम बहुत सा ज्ञान घोट कर स्मृति में रख लें या बड़े बड़े प्रतिभाशाली लेखकों के उदाहरण दे कर औरों पर रोब डालें। विद्या का अर्थ तो है बोध, देखना, असलीयत का पता लगाना और ऋषि का अर्थ है ठीक २ देखने वाला, असलीयत को देखने वाला, तत्त्वदर्शी। ऋषि ऋण चुकाने के लिये हमें खुद ऋषि बनना होगा असलीयत को देखना होगा बात की तह तक पहुँचना होगा सत्य का का दर्शन करना होगा अपनी आंखों पर से अज्ञान का पर्दा हटाना होगा। जिसे खुद दीखता नहीं वह औरों को क्या दिखायेगा, जो खुद बुझा है वह औरों को क्या जलायेगा। आज कल लोग पढ़ते तो बहुत हैं पर उसे हज़म करने की उन्हें फुर्सत नहीं, पढ़े हुए, सुने हुए, पर यदि मनन न किया जाय यदि उसे अपने जीवन का अंग न बना लिया जाय तो वह पढ़ा हुआ सुना हुआ बोध में नहीं बदल सका वह तो दिमाग में ऐसे ही रहता है जैसे गधे पर लदी हुई किताबें, जो बुजुर्गों ने हमें दिया उसको अच्छी तरह जानें उसका हमें यथार्थ बोध हो, इतना ही नहीं बल्कि हम अपनी दृष्टि को और विस्तृत और गहरा करें और नये नये सत्यों की खोज करें और यह सब विद्या बढ़ा कर हम इसे आगे औरों को दें और सरस्वती की सरिता को बहाते चले जायें यह है ढंग ऋषि ऋण चुकाने का। हमारे इर्द गिर्द अनन्त गुप्तज्ञान पड़ा है, हमें ज़बरदस्त उत्सुकता होनी चाहिये कि हम सब कुछ जानें, हमारे अन्दर ज्ञान का प्रकाश हो हम ज्ञान के प्रकाश स्तम्भ हों और हम ज्ञान को देश-देशान्तरों में और दिग-दिगन्तरों में फैलायें। खरे रुपये ऋण चुकाने के लिये देने से यह मतलब है कि हम जो सत्य विद्या फैलायें वह हमारे अनुभव की वस्तु हो केवल याद की हुई न हो। सूद के साथ ऋण के चुकाने का यहां भाव यह है कि हम न केवल पूर्वजों के ज्ञान को ठीक ठीक यथार्थ जानें पर अपने विचार और खोज से उसे बढ़ा कर विस्तृत कर के उसे आगे फैलायें और यहां लुत्फ़ की बात यह है, कि इस ऋण चुकाने में हम जितना दें उतना हमारा ज्ञान बढ़ता है। यह देने और लेने का अजीब सिलसिला है, हम जितनी सत्य और अनुभूत विद्या देते हैं उतना ही हमारा बोध बढ़ता है, हमारी दृष्टि स्वच्छ तीव्र और गहरी होती है। जो जानता है और कहता नहीं वह अपने ज्ञान को धुंधला बनाता है जो ठीक जानता नहीं और कहता है वह खोटे रुपयों से ऋण चुकाता है पर जो जानता है और कहता है वह अपने खज़ाने अपने तेज को, अपने बोध को बढ़ाता है और सहज ही ऋषि ऋण से मुक्त हो जाता है।

तीसरा ऋण जिसे चुकाने की यज्ञोपवीत हमें याद दिलाते हैं वह है देव ऋण। हर एक आर्य का कर्तव्य है कि वह हर रोज़ हवन करके देव ऋण चुकायें। पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, सूर्य, चन्द्रमा इन सब के हम पर अगणित उपकार हैं। उन उपकारों के धन्यवाद के रूप में हमें नित्यप्रति ही हवन करना चाहिये। अग्नि हमारी भेंट सूक्ष्म करके सब देवताओं तक पहुंचा देती है और हमें देव ऋण से मुक्त करने में सहायक होती है। अग्नि के नीचे पृथिवी और जल देवता अग्नि की अपेक्षा स्थूल हैं, और उसके ऊपर वायु और आकाश उसकी अपेक्षा सूक्ष्म हैं। अग्नि देवता स्थूल और सूक्ष्म सृष्टि में माध्यम है, मनुष्यों और देवों के बीच में भी माध्यम है हमारी भेंट उन तक पहुंचाती है और उनकी अमृत वर्षा हम पर करती है। पर हमारी भेंट कैसी हो खोटे रुपये या खरे रुपये? यह है असली सवाल। चर्बी वाला घी, गीली घुन

वाली समिधायें, पुरानी सुसरी वाली सामग्री यदि इन से हवन होता है तो ऋण चुकने की बजाय और बढ़ता है, देवों ने रीझना तो क्या उनका उलटा प्रकोप होगा। ऐसे हवन से तो न करना ही भला। शुद्ध गाय का घी हो, सूखी साफ समिधायें हों, शुद्ध हवन सामग्री हो तभी हवन सफल होता है और तभी देव ऋण चुकता है। ऋण वही ठीक चुका सकता है जिसके पास कुछ हो। इस लिये सबसे पहले हमें वीर्य, विद्या और धन से सम्पन्न होना चाहिये। जिसके पास ब्रह्मचर्य का बल नहीं वह पितृ ऋण क्या चुकायेगा, जिसके पास विद्या का भंडार नहीं वह ऋषि ऋण कैसे चुकायेगा, जिस के पास रोटी नहीं वह देव ऋण कैसे चुकायेगा। मनुष्य को पुरुषार्थ कर के वीर्य सम्पन्न, विद्या सम्पन्न और धनवान होना चाहिये तभी वह ठीक रीति से, खरे रुपयों से ऋण उतार कर यज्ञोपवीत के पहनने को सार्थक कर सकता है अन्यथा यज्ञोपवीत केवल ३ धागे हैं और इसके सिवाय कुछ नहीं। यज्ञोपवीत के साथ जो असली भावना को जोड़ते हैं वे सुपुत्रों से, विद्या से धन से सम्पन्न हो जाते हैं।

वेद में कविता

[ले० —श्रीयुत आनन्द

आज हम वेदों के उस अंश किंवा विषय पर संक्षेप से प्रकाश डालना चाहते हैं, जिस पर बहुत कम विचार किया जाता है। वह है वेद की कविता।

वेद क्या है, हमारे पूर्वजों की निधि है। वेद के प्रायः समस्त भक्त जन उसको सृष्टि के प्रारम्भ में भगवान् के द्वारा ऋषियों को प्रदान किया गया काव्यात्मक ज्ञान ही समझते हैं। स्वतः वेद ने भी श्लेषपूर्वक 'पश्य देवस्य काव्यं न ममार न जीर्यति' कह कर जहां संसार को भगवान् का अजरामर काव्य बतलाया है, वहां स्वतः अपनी ओर भी निर्देश किया है वेद भी तो भगवान् का ही काव्य है? अनेक जन वेदों का इतना उच्च और प्रतिष्ठित आसन प्रदान नहीं करना चाहते। वे वेदों को भगवान् का काव्य न कह कर गडरियों का काव्य बतलाते हैं। वेद चाहे भगवान् का काव्य हो चाहे गडरियों का, इसमें किसी प्रकार की विप्रतिपत्ति नहीं कि, वेद काव्य है। और काव्य प्रत्यक्ष ही, लौकिक रचनाओं से उत्कृष्ट होता है।

जो बन्धु कवि हैं किंवा जिनका कविता से घनिष्ट सम्पर्क रहता है, उन सबका अनुभव यह बतलाता होगा कि, कविता के निर्माण में रचयिता का अपना प्रयत्न कितने अंश में काम किया करता है। कविता की एक आकृति तय्यार करने के लिए कवि प्रयत्न करता है। कवि का यह प्रयत्न भावों के आकलन में व्यय नहीं होता। कवि लोग जानते हैं कि, अवसर विशेष पर कविता लिखने की एक परिस्थिति बन जाती है, उस समय कविता के भाव स्वयं स्फुरित होते हैं। शब्दों के संचय में मनुष्य का प्रयत्न खर्च होता है, कौन से छन्द में कविता बनाई जाय इस बात में अथवा छन्दों के नियमों के यथावत पालन में मनुष्य का प्रयत्न खर्च होता है; किन्तु भावों के लिए मनुष्य का प्रयत्न कभी खर्च नहीं होता। जब कविता की मनोवृत्ति होती है, तब जितनी मात्रा में मनुष्य के अन्दर भावों का आविर्भाव होता है उतने ही भावों को वह अपनी भाषा और छन्दों में लेख बद्ध कर सकता है, उससे अधिक नहीं। भाषा और छन्दों पर ही कवि का अधिकार रहता है, भावों पर नहीं। भाव किसी कवि के अपने प्रयत्न से निर्मित होने वाली वस्तु नहीं है।

भाषा तो मनुष्य दिन रात बोलता रहता है, चाहे तो उसको थोड़े से श्रम से छन्दोबद्ध कर सकता है। किन्तु छन्दोबद्ध भाषा तब तक कविता नहीं कहला सकती जब तक उसमें भाव न हों। भाषा और छन्द ये तो कहना चाहिये प्राणिमात्र को उपलब्ध हैं, कवि की विशेषता ही इस बात में है कि, उसे भाव भी उपलब्ध हो जाते हैं।

भाव प्रत्येक जीव के अन्दर उठते रहते हैं। जो व्यक्ति इस सुख—दुःख के समाहार भूत संसार में उत्पन्न हुआ है, यह असम्भव है कि, उसके अन्दर किसी भी प्रकार के भावों का उदय न हो। ऐसी अवस्था में, प्रत्येक प्राणी को भाव और भाषा दोनों कविता निर्माण के अपरिहार्य उपादान उपलब्ध हैं; किन्तु सब लोग कवि नहीं होते। भावों के उत्पन्न होते ही जो व्यक्ति उनको भाषा के द्वारा वशवर्त्ती बना लेता है, वही कवि है। कविता या काव्य के निर्माण में, मनुष्य न तो भाषा का निर्माण करता है, न भावों का। समय समय पर जो भाव तीव्र रूप में उसके मन में आते हैं उनको वह तत्काल भाषा के द्वारा पञ्जर-बद्ध कर लेता है उन भावों को प्रकट करने वाली भाषा ही कविता कहलाती है। और कवि का कविता के साथ केवल इतना ही सम्बन्ध रहता है कि, उसने ही भाषा और भावों का आपस में सम्पर्क दृढ़ कर दिया है। वस्तुतः कविता को कवि यह नहीं कह सकता कि यह मेरी अपनी स्वतन्त्रतया निर्मित वस्तु है। कविता पर मानव का आधिपत्य नही है; प्रत्युत कवि स्वयं कविता का दास है।

ये भाव कहां से आते हैं? निश्चय से ये किसी अलौकिक शक्ति की प्रेरणा से ही मानव को उपलब्ध होते हैं। जो विचारवान् कवि हैं वे जानते हैं कि, भावों के लिए उन्हें रत्ती मात्र भी बुद्धि का या प्रयत्न का व्यय नहीं करना पड़ता। किसी अलौकिक शक्ति की अनुकम्पा से उनके पास भाव आते हैं और वे भाषा के द्वारा उनको जकड़ डालते हैं।

मनुष्य को जो भाषा मिली हुई है, वह भी उस अलौकिक शक्ति के प्रसाद का ही फल है। भाषा के ऊपर भी मनुष्य का कोई अधिकार नहीं रहता। यदि वस्तुतः भाषा पर हम लोगों का पूरा अधिकार होता तो संसार में ऐसे मनुष्य क्यों उत्पन्न होते हैं जो गूंगे हैं, जो किसी भी भाषा का एक अक्षर भी मुंह से निकाल नहीं सकते। उन लोगों पर उस अलौकिक शक्ति का,

जिसने सब प्राणियों को भाषा प्रदान की है, प्रसाद न होता। इसी लिए ये लोग भाषा-सदृश सम्पत्ति से वंचित रह गए हैं।

इस प्रकार जब भाषा भी मनुष्य की स्वनिर्मित वस्तु नहीं है, और भाव भी, तब भाषा और भावों के सम्पर्क से बनी कविता को हम कैसे कह सकते हैं कि, वह मनुष्य की बनाई हुई है? फलतः यह सिद्ध हुआ कि, जिस अलौकिक शक्ति ने भावों का और भाषा का प्रसवन किया है, कविता भी उसी शक्ति की प्रसूति है।

वेद की कविता के विषय में भी यही है। वेद की कविता का प्रसवन उसी अलौकिक शक्ति के अनुग्रह का परिणाम है। हमारे प्राचीन पूर्वजों ने क्योंकि, भाषा भी साक्षात् उसी अलौकिक शक्ति से प्राप्त की थी और भाव तो प्राप्त होते ही उससे हैं, अतः वेदों को उसी अलौकिक शक्ति की रचना कहा जाता है। यद्यपि आजकल होने वाली कविता भी उसी अलौकिक शक्ति के प्रसाद का परिणाम है, तो भी भाषा हमें साक्षात् उस अलौकिक शक्ति से ही प्राप्त होती है ऐसा हम नहीं समझते। हम समझते हैं कि भाषा हमें अपने माता-पिताओं ने सिखाई है। इसलिए कविता का एक उपादान हमें अलौकिक शक्ति से नहीं मिला वह लौकिक शक्तियों से हमें मिलता है। अतः हम लोग आधुनिक कविता को अलौकिक मानने के लिए तय्यार नहीं होते। आजकल तो भाषा सम्पत्ति हमें अपने पूर्वजों से मिल जाती है, और हमें वह सम्पत्ति प्रदान करने के लिए लौकिक उपाय विद्यमान हैं। परन्तु निसर्ग के प्रारम्भ में, आदिम उद्भूत प्राणियों को भाषा प्रदान करनेवाली कोई लौकिक शक्ति विद्यमान नहीं थी उस समय तो भाषा अलौकिक शक्ति ने ही उन्हें प्रदान की थी। वह अलौकिक शक्ति वही है जिसे हम भगवान् कहते हैं। अतः वेदों को भगवान् का ही काव्य कहा जाता है।

आज तक वेदों की अनेक भाष्यकारों ने अनेकानेक व्याख्याएं की हैं। हम सुदूर प्राचीन काल की बात नहीं जानते; किन्तु वर्त्तमान काल के भाष्यकारों को बात हम जानते हैं। कदाचित् ही कोई भाष्यकार परिश्रम-पूर्वक अवगाहन करने में ऐसा मिलेगा जिसने वेदमन्त्रों के अर्थ निर्देश के सिवाय वेदों पर इस प्रकार की समालोचना लिखी हो जैसी कि, किसी सरस काव्य ग्रन्थ की होनी चाहिये। समालोचना की तो बात जाने दीजिये वेद मन्त्रों का विवेचन भी वेद को काव्य समझ कर नहीं किया जाता। साहित्य दर्पण के प्रारम्भ में जहां दर्पणकार ने काव्य की उपयोगिता का निरूपण किया है, वहां उसने वेदों के विषय में इस प्रकार पंक्तियां लिखी हैं—

'चतुर्वर्गप्राप्तिर्हि वेदशास्त्रेभ्यो नीरसतया दुःखादेव परिणतबुद्धीनामेव जायते। परमानन्दसन्दोहजनकतया सुखादेव सुकुमार बुद्धीनामपि पुनः काव्यादेव। ननु तर्हि परिणतबुद्धिभिः सत्सु वेदशास्त्रेषु किमिति काव्ये यत्नः करणीय इत्यादि न वक्तव्यम्। कटुकौषधोप शमनीयस्य रोगस्य सितशर्करोपशमनीयत्वे कस्य वा रोगिणः सितशर्कराप्रवृत्तिः साधीयसी न स्यात्?'

इन पंक्तियों में दर्पणकार ने वेदों को अकाव्य ही नहीं समझा उसे एक कड़वी खुराक बतला कर लोगों को उकसाने की चेष्टा की है कि वे मीठी खुराक की तरह जो काव्य ग्रन्थ हैं उन्हीं के सेवन में प्रवृत्त हों।

वेदों के विषय में इस प्रकार के उद्गार अस्वाभाविक नहीं हैं। इस का कारण यह है कि अद्यावधि वेदों का काव्यत्वेन विवेचन करने का श्रम ही नहीं उठाया गया। हम तो कहते हैं कि, वेदों को काव्य ही नहीं समझा गया। बीच में एक ऐसा समय भी आया जब आर्यजाति वेदों के ऊपर प्रयत्न करने से पराङ्मुख हो गई। इसका मूल हेतु वेदों के वे भाष्यकार ही हैं, जिन्होंने वेदों को काव्य न समझ कर धर्मोपदेश का एक सूखा और नीरस निबन्ध-ग्रन्थ ही समझा। वस्तुतः यह वेदों का दोष नहीं है यास्क के शब्दों में—

नैष स्थाणोरपराधो यदेनमन्धो न पश्यति।

आजकल के बहुत सारे वेदविवेचक जन नानाविध उपहास्यास्पद उपायों से वेदों के अन्दर से वह अर्थ निकालने का असफल प्रयास करते हैं जिसकी कल्पना निसर्ग की आरम्भ वेला में कोई कर भी नहीं सकता था। ऐसा करने में पहले तो उनके समीप कोई ठोस हेतु नहीं होता और यदि कुछ होता है तो वह हेत्वाभासों का पुलिन्दा होता है। फिर, यह सब किया जाता है वेदों पर दिखावटी श्रद्धा के नाम से। हमारी तुच्छ सम्मति में, वे लोग वेद के अन्तःशत्रु हैं जो दुराग्रहवश वेदों के विषय में कुछ भी कार्य करते हैं, किंवा जन-भय से वेदों पर निष्पक्ष विचार करने से कतराते हैं। वेद हमारी जातीय निधि है, उस पर मुक्त मस्तिष्क से गवेषणाएं की जानी चाहियें। वेदों को कोई जनसमाज किसी निश्चित दृष्टि बिन्दु से देखता है, उसी दृष्टि से उसके अर्थ करने के लिए विवश होना यह स्पष्ट अन्याय और वेदों पर भीषण अत्याचार है। वेद एक काव्य है; उसमें विश्वात्मा के आभ्यन्तर भावों की अभिव्यक्ति हुई है; इस बात को लक्ष्य में न रख कर वेद के स्वभावसिद्ध सौन्दर्य को भुलाते हुए वेद के यथार्थ विवेचन में किसी भी प्रकार की कोताही करना एक असह्य अपराध है। अतः हम इस लेख में काव्यत्वेन वेदों के विषय में कुछ विचार उपस्थित करना चाहते हैं। संस्कृत के बड़े २ कवियों ने इस आदिम काव्य से सुन्दर २ प्रेरणायें प्राप्त की हैं, जब उस काल में कवियों को वेदों से काव्य विषयक उत्तमोत्तम प्रेरणायें प्राप्त हो चुकी हैं तो इस काल में हमें तादृश प्रेरणाएँ उपलब्ध क्यों नहीं होंगी?

अपूर्ण

गुरुकुल

२६ अगस्त शुक्रवार १९३८

श्री वसु जिन्हा का पत्र व्यवहार

भारत का दुर्भाग्य रहा है कि यहां कभी भी एकता नहीं रही है। जिस समय देश में एक विदेशी शक्ति का राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक अधिपत्य छाया हुआ है, हमारी एकता ही एक मात्र स्वतन्त्रता का उपाय है। सर्वजनीन एकता को अक्षुण्ण रखने के लिए पिछले युरोपियन महाभारत के समय से देश की एकमात्र प्रतिनिधि संस्था राष्ट्रीय महासभा सभी प्रकार के सम्भव उपाय करती रही है। एतद्विषयक मौखिक क्रियात्मक सभी तरह के सम्भव हल रखने के प्रयत्न इस संस्था के महान् नेताओं ने अब तक किये हैं। एकता कान्फ्रेंसें, सांम्प्रदायिक बटवारे के आश्वासन तथा पारस्परिक वार्तालाप आदि सभी कुछ असफल सिद्ध हुआ है।

ब्रिटिश सरकार भारत को जो संघ-शासन-विधान देने जा रही है उसका सन्निहित विरोध करने के लिए पिछले दिनों भूतपूर्व राष्ट्रपति पं० जवाहरलाल ने मुसलमानों को देश के एक झण्डे के नीचे लाने का प्रयत्न किया था। परिणामतः पण्डित नेहरू जी और महात्मा गान्धी जी ने श्री जिन्हा से पत्र व्यवहार किया। और इसी सिलसिले में महात्मा जी अपने स्वास्थ्य की परवाह न करते हुए भी समझौता करने के लिए श्री जिन्हा से मिले। दुःख का विषय है जो कि बातचीत प्रारम्भ में पूर्ण राष्ट्रीय वातावरण में प्रारम्भ हुई थी। श्री सुभास वसु तथा श्री जिन्हा के बीच जाकर जिन्हीं मुसलिम लीग का एकमात्र प्रतिनिधि मुसलमान संस्था माना जाय जैसे तुच्छ से प्रश्न पर खटाई में पड़ गई। मुसलिम लीग आज मुसलमानों की एकमात्र प्रतिनिधि संस्था नहीं है। जमीयत उल उलेमा, इत्तहाद ए मिल्लत, खुदाई खिदमतगार आदि लाखों सक्रिय संस्थाएं भी मुसलमानों की हैं जो कि मुसलिम लीग के इस दावे को मानने से इन्कार करती करती हैं। श्री वसु जिन्हा का पत्र व्यवहार आज हमारे सामने है। कोई भी राष्ट्राभिमानी भारतीय इस तुच्छ से मामले पर इस समझौते के टूटने से व्यथित हुए बिना न रहेगा। संघ विधान के मुकाबले के लिए राष्ट्र की सम्पूर्ण शक्तियों का एकीकरण परमावश्यक है। श्री जिन्हा की केन्द्रीय असेम्बलि में सेना में रंगरूट प्रवेश सम्बन्ध मसविदे पर निर्धारित नीति आज हमें उनके राष्ट्रीय व्यक्तित्व में सन्देह डालती है। हमें सन् १६ के राष्ट्रीय नेता श्री जिन्हा चाहियें न कि आज के साम्प्रदायिक मनोवृत्ति के आधार पर अपनी लीडरी के चिन्तक मि० जिन्हा।

भारत रक्षण व्यय

भारत की कुल राष्ट्रीय आय का आधा हिस्सा सेना पर आज व्यय होता है। पिछले दिनों भारतीय घुड़सवार सेना को आधुनिक वैज्ञानिक शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित करने की नई योजना प्रकाशित हुई थी। इस योजना के कारण भारतीय करदाताओं पर व्यय पड़ना स्वाभाविक ही है। अभी तक केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभा भारत के रक्षण व्यय पर किसी हद तक सम्मति दे सकती थी। नये विधान के उषः काल में यह अधिकार छीन कर सम्मति प्रदान का थोड़ा सा अधिकार भी छीन लिया गया है। केन्द्रीय धारा सभा ने सम्पूर्ण बजट पर विचार करने से इन्कार कर भारतीय मतदाता का उचित प्रतिनिधित्व किया था।

भारतीय सरकार आज जल तथा स्थल सेना में नवीन परिवर्तन कर उसे उपादेय योग्य और उपयुक्त बनाने का सतत यत्न कर रही है। सेना की भर्ती में किसी प्रकार का कोई विघ्न उपस्थित न हो इस लिए एक नया मसविदा केन्द्रीय व्यवस्थापिका परिषद् में उपस्थित है। सेना सम्बन्धी आय व्यय पर भारतीय प्रतिनिधियों की आवाज़ का आज कुछ मूल्य नहीं। भारत की सेना का उपयोग भारत की रक्षा के लिए किया जाय या ब्रिटिश साम्राज्य की रक्षा के लिये इसमें भी भारत का कुछ दखल नहीं।

आज सब तरह से भारतीय सरकार भारत का रक्षण व्यय बढ़ा रही है। राष्ट्र निर्माणकारी कार्यों के लिए भारत के कोष में प्रथम कुछ नहीं। प्रति दिन प्रान्त राष्ट्रोपयोगी कार्यों को धन की कमी के कारण करने में अपने को असमर्थ पा रहे हैं सर जेम्स ग्रिग जैसे कुशल अर्थ सचिव वर्ष दो वर्ष तक प्रान्तों के भविष्य की आशा दिला सकते हैं आगे प्रान्तों की लगातार बढ़ती हुई आवाज़ का केन्द्रीय सरकार के पास क्या उत्तर है। माना, भारत रक्षण आवश्यक है किन्तु उसमें अनावश्यक विदेशी सेना पर व्यय बढ़ाने की अपेक्षा यदि सेना का भारतीय करण किया जाये तो समस्या हल हो सकती है। किन्तु बड़े पैमाने पर केवल स्थल सेना की वृद्धि कर आकाश सेना को पूर्णतः उपेक्षित कर भारतीय सरकार की वर्तमान कार्यपद्धति हमें सन्देह में डालती है। इस विषय में कुछ विचारणीय प्रश्न निम्न हैं। इस सेना पर किसका भारतीय मन्त्रियों का या ब्रिटेन की साम्राज्य सरकार का नियन्त्रण रहना है, तथा इस सेना का उपयोग भारत की रक्षा के लिए होना है या यूरोपीय राजनीति में ब्रिटिश जाति की शक्ति बढ़ाने के लिए होना है, भर्ती की हुई सेना देशहित की भावना से युद्धभूमि में जायेगी या कुछ वेतन के लालच में जायगी।

अभिमान

[ले०—सर्वं खल्विदमहम्]

एक बार अंग्रेजी में एक वाक्य पढ़ा था –

'जब किसी गंजे को यह पता लग जाये कि उसकी खोपड़ी के बाल गिन लिए गये हैं, तो वह अपना हैट उतार कर चलता है।'

जिस समय यह वाक्य पढ़ा उस समय तो इसका अर्थ समझ में नहीं आया, परन्तु उसके बाद न जाने कितनी बार खास २ घटनायें घटने पर इसका अर्थ मेरे मन में इतना स्पष्ट हो उठा है कि मैं स्वयं हैरान रह गया हूँ। उसके बाद कई बार तो मुझे यह भी ध्यान आया कि हिन्दी में जो 'पगड़ी उछालने' का मुहाविरा है उसकी भी व्याख्या इस उपरोक्त वाक्य से ही हो जानी चाहिये। सो कैसे—यह तो मैं नहीं जानता, क्योंकि वैसा करना मुश्किल है। 'पगड़ी उछालने' में तो यह होता है कि कोई अन्य व्यक्ति किसी अन्य व्यक्ति के सिर से पगड़ी उतार लेता है, पर यहां तो जिसकी खोपड़ी के बाल गिन लिए गये हैं वह गंजा स्वयं अपना हैट सिर से उतार कर चलता है। ठीक ही तो है, जिन बालों को गुप्त रखने के लिए हैट सिर पर रखा था, जब उन्हीं का भेद खुल गया तो फिर क्यों कोई बुद्धिमान् आदमी फूस और गत्ते की बनी टोकरी को अपने सिर पर उलटा लटकाए फिरे! इसी प्रकार जब किसी के पुण्य और पाप के सारे भेद खुल चुके हों—'पगड़ी' सिर पर रही ही न हो, तो कोई क्यों अपनी पगड़ी उछलने की शिकायत करे? नंगा क्या नहावे और क्या निचोड़े!

मेरे पाठक कहेंगे कि इस बात का अभिमान के प्रकरण में क्या सम्बन्ध है? मैं भी कहता हूं—शायद कोई भी सम्बन्ध न हो, पर मैं जो कुछ कहना चाहता हूँ वह यही है कि कई बार ऐसी परिस्थितियां आ जाती हैं कि मनुष्य चारों ओर से ताड़ित होता है सब तरफ से उसका विरोध किया जाता है—अपमानित, निन्दित, समालोचित—वह भी किसी द्वेष भाव से नहीं, सिर्फ औचित्य के कारण, पर वह एक मनुष्य अपनी किसी हठ पर अड़ा रहता है,—एक अकेले अपने सामने बाकी सबको तुच्छ समझता है। उस समय यदि वह अपनी 'पगड़ी' की फिक्र करे तो बताइये उसे कहां तक संभाल सकता है। इसी लिये मैं कहता हूँ कि जब गंजे की खोपड़ी के बाल गिन लिए जाते हैं तब वह इस बात की परवाह नहीं करता कि मेरा हैट मेरे सिर पर है या नहीं—भले ही वह उतर कर गन्दी नाली में डुबकी लगाने पहुँच जायें!

आप शायद कहेंगे—वह बेशर्म है। मैं कहता हूँ—वह अभिमानी है। क्योंकि वह अन्त तक यही समझता रहता है कि मेरी पगड़ी नहीं उछली, नहीं उछल सकती, कोई नहीं उछाल सकता।

× × × ×

दुनियां में अभिमान कितनी तरह का है? कलियुग में जब परमात्मा ने, कोई फायदा न देख कर—क्योंकि लोग पाप तो हर हालत में करेंगे ही—अपनी सर्वव्यापकता का गुण छोड़ दिया, तब अभिमान ने वह सर्वव्यापकता उनसे उधार मांग ली और अब इसी लिए जहां देखो वहां अभिमान ही अभिमान। कोई भला गिना सकता है कि दुनियां में अभिमान कितनी तरह का है! किसी को अभिमान है कि मेरे जैसा विद्वान् कोई नहीं, कोई समझता है कि लेखक तो दुनिया में एक मैं ही हुआ, वक्ता ने समझा कि सारी दुनियां के लोगों को परमात्मा ने कान इस लिए दिए हैं कि वे मेरी वक्तृता को सुनें और ज़बान इस लिए दी है कि वे यह कह सकें—ऐसा अच्छा वक्ता आज तक दुनियां में कोई नहीं हुआ।' उसको इसका अभिमान है और इसको उसका। गर्ज़ यह कि हरेक को हो किसी न किसी चीज़ का अभिमान है। कइयों को अपनी सुन्दरता का अभिमान होता है—भले ही दर्पण कुछ और साक्षी देता हो। कइयों को अपनी प्रबन्धशक्ति का अभिमान होता है। वे समझते हैं कि उनके जैसा प्रबन्धक इस निरवधि काल के किसी दूरातिदूर आगामी क्षण में हो जाय तो हो जाय, किन्तु इतना वे खम ठोक कर कह सकते हैं कि कम से कम आज तक उनके जैसा और कोई नहीं हुआ।

आप कहेंगे—लेखक अभिमान की निन्दा कर रहा है जब कि हरेक व्यक्ति को देश और जाति का अभिमान होना चाहिये। कहा भी है—

'जिसको न निज गौरव तथा
निज जाति का अभिमान है।
वह नर नहीं नर-पशु निरा है
और मृतक समान है॥'

तो इतना विश्वास रखिये कि आप जिस व्यक्ति का लेख पढ़ रहे हैं वह इतना बुद्धू नहीं है कि अपने को और आपको 'नर-पशु' बनने का उपदेश दे। उसने कब कहा है कि अभिमान बुरा है? वह तो उदार हृदय से स्वीकार करता है कि अभिमान होना चाहिये। जिस व्यक्ति में आत्माभिमान नहीं है उसमें और पत्थर में इतना ही फर्क है कि वह चलता फिरता है और यह एक जगह पड़ा २ वर्षा-हिम-आतप सब समान भाव से मूक होकर सहता चला जाता है। जिस व्यक्ति में व्यक्तित्व (Personality) नहीं, वह व्यक्ति नहीं, और व्यक्तित्व तथा आत्माभिमान एक ही चीज़ के दो पर्याय हैं।

तो फिर अभिमान का मतलब क्या है? यही कि अपने आप को किसी से छोटा न समझो पर छोटा न समझने का मतलब यह तो नहीं कि तुम अपने आपको सब से बड़ा समझने लगो। छोटा न समझना और बात है, और अपने को औरों से बड़ा समझना और। छोटे तुम किसी से हो नहीं, क्योंकि 'शृण्वन्तु सर्वे अमृतस्य पुत्राः' सब अमृत-पुत्र हैं; पर फिर फ़ालतू अपने आपको

औरों से बड़ा समझने का अधिकार भी तुम्हें किसने दिया ?

× × ×

इसीलिये मैं कहता हूँ कि अभिमान की निन्दा मैं नहीं करता। लेकिन इतना जानता हूँ कि उस दिन जब आकाश में काले २ बादल घिर आये थे- जैसे कृष्णकाय महादैत्य, और उनकी भयंकर गर्जना ने दिशाओं को बहरा कर दिया था-मानों कि दुन्दुभि बजा २ कर महाप्रलय की घोषणा की जा रही है; उस समय बिचारे दीन कृषक उस घनघोर गर्जन को सुन कर अपने २ घट लेकर खड़े हो गये थे और प्रकाश के बजाय आशा की ज्योति उनकी आंखों में टकटकी लगाये ऊपर की ओर देख रही थी-सारी रात इसी तरह वे खड़े रहे, और अन्त में जब सवेरा हुआ तो देखा कि वह सारी काली घटा उस भूखण्ड पर एक भी बूंद बिना बरसाये यों ही चली गई है—तब मैं इस परिणाम पर पहुँचा कि जो गरजते हैं वे बरसते नहीं हैं।

यह तो खैर उस दिन की बात हुई ! आपने सुना है क्या, कि अमुक प्रान्त में बाढ़ आगई ? और उसका कारण आप को पता है ? एक छोटी-सी पहाड़ी नदी थी, घुटने-घुटने जल था उस में। अचानक एक दिन जो वर्षा के रूप में आस्मान से कुत्ते और बिल्ली बरसे तो उस पहाड़ी नदी में बाढ़ आगई और फिर वह जो इतरा इतरा कर चली तो अपने साथ सारे प्रान्त को बहा ले गई। ओह ! उस क्षुद्र-नदी की करामात ! क्या कहने हैं अभिमान के !! पर कभी सुना है कि हिन्दमहासागर में बाढ़ आ गई ? यही तो बड़प्पन की निशानी है—हमेशा मर्यादा में रहना। नहीं तो, ज़रा सोचिये— यदि किसी दिन समुद्र में बाढ़ आ जावे तो क्या हो ? लेकिन नहीं, वह क्षुद्र नहीं है। छलकती वही गगरी है जो आधी खाली होती है।

× × ×

वेदान्तियों का सिद्धान्त है—'सर्वं खल्विदं ब्रह्म'—यह सब ब्रह्म ही ब्रह्म है। पता नहीं उनके ब्रह्म को भी इतना अभिमान सहन होगा या नहीं ! कौन कह सकता है ? पर आज लेखक का अभिमान उनके सामने आकर खड़ा हो गया है और कहता है — भले ही यह सब ब्रह्म ही ब्रह्म न हो, पर यह सब मैं ही मैं अवश्य हूँ। और इसी लिये अब से लेखक ने अपना नाम 'सर्वं खल्विदमहम्' रख लिया है। आप क्या इस नाम से सहमत हैं ?

आवश्यकता है

गुरुकुल चिकित्सालय के लिये दो कम्पौण्डरों की ज़रूरत है जो हिन्दी और अंगरेज़ी जानते हों ड्रेसिंग तथा डिस्पेन्सिङ्ग कर सकते हों, अच्छे स्वभाव तथा सेवाभाव से काम करने वाले हों। वेतन १५ से २५ रुपया तक। प्रमाण पत्रों सहित प्रार्थना पत्र भेजिये।

योगतत्त्व निदर्शन

[ले०—श्री ब्र० दिलीपकुमार जी गु० सोनगढ़]

(गताङ्क से आगे)

जब योग के अंतिम अंग स्वरूप समाधि के अंदर साधक प्रवेश करता है तब समाधि के (१) संप्रज्ञात तथा (२) असंप्रज्ञात इन दो प्रकार के भेद होने के कारण सर्व प्रथम संप्रज्ञात समाधि के अंदर स्थूल से सूक्ष्मतम पदार्थों के अन्दर प्रवेश करने के लिए उद्यत होता है। संप्रज्ञात समाधि के अवांतर भेद स्वरूप सवितर्क समाधि में जब साधक शब्दार्थ ज्ञान पूर्वक स्थूल पदार्थ का प्रत्यक्ष करके निर्वितर्क समाधि के अन्दर ज्ञानमात्र से ही सब स्थूल पदार्थों का प्रत्यक्ष करता है, तब सविचार समाधि के अन्दर सूक्ष्मतम प्रकृति का ज्ञानमात्र से ही वह प्रत्यक्ष करता है। उसके बाद आनन्द तथा अस्मितानुगत समाधि के अन्दर साधक के अन्दर सात्विक वृत्ति प्रधान रहता है। इस प्रकार अपर वैराग्य के फलस्वरूप संप्रज्ञात समाधि के अन्दर साधक के चित्त में से राजस तथा तामस इन दोनों वृत्तियों का अभिभव हो जाने के कारण सात्त्विक वृत्ति ही रह जाती है। परन्तु साधक के जीवन के अन्दर ज्यों ज्यों साधना का तीव्र संवेग होता जाता है त्यों त्यों 'तत्परं पुरुषख्यातेर्गुणवैतृष्ण्यम्' के अनुसार संप्रज्ञात समाधि के अन्दर रही हुई सात्त्विक वृत्ति को सुवर्णमय बन्धन जान करके उसको भी तोड़ने के लिए पर वैराग्य का अनुष्ठान करता है। जिस प्रकार सुवर्ण को गरम करने से उसके अन्दर मिलाये हुए उत्तमोत्तम सुगन्धित रासायनिक पदार्थ नष्ट हो जाते हैं उसी प्रकार साधक के दिव्यादिव्य विषय से परे होकर अन्त में वशीकार संज्ञा को प्राप्त हुए हुए चित्त के अन्दर सात्त्विक वृत्ति का भी नाश हो जाता है। इस पर-वैराग्य के फलस्वरूप असंप्रज्ञात समाधि के अन्दर साधक का चित्त सर्वथा निर्मल हो जाने के कारण उसमें किसी भी तरह के संस्कार रहने नहीं पाते। 'इस अन्तिम अवस्थारूप असंप्रज्ञात समाधि को ही योगदर्शन के अन्दर निर्बीज, निरालम्बन आदि शब्दों से पुकारा गया है। धर्म-मेघ समाधि के फलस्वरूप इस निर्बीज अवस्था के अन्दर 'वृत्तिसंस्कारबीज' का समूलोन्मूलन हो जाने के कारण भव बन्धनों के क्लेश से मुक्त होकर मोक्ष की निरतिशय सुख की अवस्था को प्राप्त होता है। इस प्रकार प्रज्ञा प्रसाद के ऊपर आरूढ़ हुआ साधक ही सच्चा योगी है। श्रीमद्-भगवद्गीता के अन्दर भी:—

तपस्विभ्योऽधिको योगी,
ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः।
कर्मिभ्यश्चाधिको योगी,
तस्माद् योगी भवार्जुन ॥

इस श्लोक से योगी को सर्वोत्कृष्ट स्थान देकर उसकी महत्ता का प्रतिपादन किया है। इस प्रकार अकेली गीता में ही नहीं किन्तु प्रायः प्रत्येक धार्मिक, सामाजिक तथा

राजनैतिक विषयों के पुस्तकों के अन्दर भी यौगिक जीवन की श्रेष्ठता को स्पष्टतया स्वीकार किया गया है।

इस तरह प्रत्येक क्षेत्र के अन्दर योग की आवश्यकता होने के कारण योग की विचार धारा प्रायः सर्वत्र दिख ई देती है। यदि हम योग की विचार धारा के ऊपर दृष्टि पात करें तो हमें स्पष्ट मालूम पड़ता है कि सर्वप्रथम वैदिक संहिता से उत्पन्न हुई योग की विचार धारा उपनिषदों के अन्दर उत्पन्न सुव्यक्त रूप धारण करती है। और अन्त में योग दर्शन के के रूप में हमारे सामने प्रकट होती है। किन्तु यह धारा यहीं नहीं रुक गई किन्तु यहां से भी आगे जाकर अनेक ग्रंथकारों की रचना से परिपुष्ट होती हुई सर्व साधारण लौकिक जनों की पिपासा को बुझाने के लिये बहुत सी प्रांतिक भाषाओं में भी बही हुई दिखाई देती है। इस प्रकार हम देख सकते हैं कि वैदिक काल से लेकर आजतक यह योग की प्रथम विचार धारा अनेक प्रकार के पहाड़ों और खाइयों को पार करती हुई आज तक भी पुण्य-सलिला भागीरथी के समान हमारी श्रद्धा तथा भक्ति का पात्र बनी हुई है।

गुरुकुल समाचार

स्वास्थ्य समाचार

ब्र० गिरधर ११वीं श्रेणी लूताविष से। धर्मेन्द्र ५म, रामदेव ५म, सत्यानन्द ३य, नारायणमूर्ति ३य, कृष्णचन्द्र ३य, गुरुदेव ३य, रामप्रकाश २य, श्लेष्म ज्वर से। तथा रामनन्दन १म, यशपाल ५म, रामप्रकाश ४र्थ, व्रण रोग से पीड़ित हैं।

गत सप्ताह उपरोक्त ब्र० रोगी हुए थे। इनमें से ब्र० रामानन्द तथा ब्र० रामप्रकाश को अभी जखम है। चिकित्सा भलिभांति हो रही है। आशा है शीघ्र ही आराम आ जावेगा। शेष ब्र० को खांसी, जुकाम तथा ज्वर था अब आराम है। इस सप्ताह वर्षा न होने से पर्याप्त गर्मी रही।

सात दिन की कड़ी धूप के बाद एक बार फिर आकाश में बादल छा गये हैं। भागीरथी का जल साफ हो पुनः मटियाला पड़ गया है। भाद्रपद का प्रारम्भ है। गङ्गा पूर्ण यौवन पर है। नीलधारा दूधिया चन्द्र के साथ टकराती जीवन का नया सन्देश देती हुई पूरे वेग में चली आ रही है। परमात्मा की महती कृपा से महाविद्यालय के ब्रह्मचारी तो इस समय में पूर्णतया स्वस्थ हैं। छोटी ५ श्रेणियों के ब्रह्मचारी भी इस समय स्वास्थ्य लाभ कर रहे हैं। पिछले दिनों का रोगी गृह खाली हो चला है, परमेश्वर से प्रार्थना है कि कुल का रोगी गृह सदा ही खाली रहे और ब्र० निरोग व प्रसन्न रहें।

पिछले दिनों से उपाचार्य उपाध्याय लालचन्द जी एम० ए० महाविद्यालय में आश्रमाध्यक्ष का कार्य कर रहे हैं। इससे आश्रम का कार्य सुचारु रूप से तथा नियमपूर्वक चल रहा है।

राष्ट्र प्रतिनिधि सभा की तैय्यारियां कुल वासी बहुत जोरों से कर रहे हैं। मन्त्री मण्डल और विरोधीदल की ओर से प्रति दिन पत्रिकाएं प्रकाशित होती हैं। व्यंगचित्र प्रहसन, कविता, गम्भीर विवेचनात्मक तथा आलोचनात्मक सभी प्रकार के लेख बड़ी सजधज के साथ चित्राकार रूप में इन पत्रिकाओं में प्रकाशित हो रहे हैं। राष्ट्र प्रतिनिधि सभा के कारण महाविद्यालय के वातावरण में एक नया जोश, एक नयी हलचल जारी हो गई है। शनिवार २७ अगस्त से राष्ट्र प्रतिनिधि सभा का २१ वां वार्षिक अधिवेशन प्रारम्भ होने जा रहा है।

गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ

ऋतु अच्छी है परन्तु वर्षा का अभाव अनुभव किया जा रहा है। वर्षा अधिक न होने से मलेरिया का प्रकोप नहीं फैला। चिकित्सालय में एक दो मामूली (dysentry) के रोगी हैं शेष सब स्वस्थ हैं।

कृष्ण जन्म दिवस विशेष समारोह से मनाया गया। सब कुल वासियों ने सम्मिलित यज्ञ किया। गीता का पाठ हुआ, समयानुकूल सुन्दर उपदेश हुआ।

२३ सितम्बर से षाण्मासिक परीक्षा शुरु है अब सब अध्यापक महानुभाव तथा ब्रह्मचारी विशेष परिश्रम से पठन पाठन में लगे हुए हैं।

गुरुकुल चित्तौड़गढ़

ऋतु अत्यन्त सुहावनी है। चतुर्दिक् में मेघमण्डल का ही पूर्ण साम्राज्य है। गुरुकुल की गम्भीरी नदी ने भी ग्रीष्म ऋतु के जीर्ण शीर्ण वेष का परित्याग कर नवीन वेष धारण कर लिया है। चित्तौड़ दुर्ग और निकटवर्ती कानन की शोभा इस समय निराली ही रङ्ग ला रही है जिधर देखो उधर हरियाली का ही राज्य छा रहा है।

सब ब्रह्मचारी पूर्ण स्वस्थ और प्रसन्न हैं। आतुरालय बिलकुल खाली पड़ा है। आश्रम तथा विद्यालय के कार्य नियमित रूप से हो रहे हैं। ब्रह्मचारी षाण्मासिक परीक्षा की तैयारी में संलग्न हैं।

गुरुकुल के मान्य आचार्य श्री स्वामी व्रतानन्द जी भिक्षा झोली को लेकर देहली की ओर गये हैं। इनकी झोली भरना गुरुकुल शिक्षा प्रेमियों का कर्त्तव्य है।

आश्रम भवन के व्यय में २०००) की अभी और कमी है जो सज्जन ५००) या इससे अधिक धन प्रदान करने की उदारता प्रकट करेंगे उनके नाम का पत्थर आश्रम भवन पर लगा दिया जावेगा। इसी प्रकार ३०००) की लागत से भोजन भण्डार भी बन कर तैयार हो गया है इसके लिए भी सहायता प्रदान कर दानियों को अपने कर्त्तव्य का पालन करना चाहिये।

आवश्यकता

चौधरी दुलाराय के प्रबन्ध से गुरुकुल प्रेस गुरुकुल कांगड़ी में मुद्रित तथा प्रकाशित।

* ओ३म् *

"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत"

Reg. No A. 2927

गुरुकुल

सम्पादक—भारतभूषण वेदालङ्कार

एक प्रति का मूल्य -) [गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख-पत्र] वार्षिक मूल्य २।।)

वर्ष ३] गुरुकुल काङ्गड़ी, शुक्रवार १८ भाद्रपद १९९५; २ सितम्बर १९३८ [संख्या १६

उपदेश का अधिकार

[श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी के धर्मोपदेश से उद्धृत]

इस समय प्रायः संसार को बहुत बोलने वालों ने वश में कर रक्खा है। पश्चिमीय अनुकरण में प्रत्येक शिक्षित भारतवासी सारे संसार को शिक्षा देना अपना कर्तव्य समझता है। और जो गरीब चुप रहने का स्वभाव रखते हैं उनको भी इस प्रकार तंग किया जाता है कि वे बोलने के लिये बाधित हो जाते हैं। इस समय भारतवर्ष में विशेषतः उपदेशक ही उपदेशक दिखाई देते हैं। हर प्रकार के सुधार के लिये धाराप्रवाह वक्तृतायें होती हैं। परन्तु शोक है कि इतने अधिक उपदेशकों के होते हुए भी किसी प्रकार की भी दशा सुधरती दिखाई नहीं देती। इसका कारण क्या है? यही मनु का निश्चित किया हुआ सिद्धान्त कि बिना पूछे नहीं बोलना चाहिये। जब तक कि किसी को यह अनुभव न हो कि परमात्मा की ओर से उसे किसी कार्य के लिये विशेष बल मिला है और जब तक उसने वैदिक साधनों से यह निश्चय न कर लिया हो कि उसका विचार धोखे के आधार पर नहीं है बल्कि उसके पूर्व कर्मों का ही परिणाम है, तब तक उसे मनुष्यों के सुधार के लिये क्षेत्र में कदाचित् नहीं उतरना चाहिये। ऐसा मनुष्य जब कार्य आरम्भ करेगा तब अपने बल को सोच समझकर प्रयोग करेगा। भारत के प्राचीन ऋषियों के इतिहास पढ़ जाइये। आपको ज्ञात होगा कि वे अपने आश्रम में बैठे हुए ही उपदेश किया करते थे और वहां भी उपदेश देने से पहले जिज्ञासु की योग्यता की पड़ताल करके ही, पात्र के अतिरिक्त किसी को सम्बोधन नहीं करते थे। ईसा ने भी अपने उपदेशों में यही कहा था कि "सूअर के आगे मोती नहीं बखेरने चाहियें" परन्तु इस समय उनके अनुयायी स्टेज पर खड़े होकर हर अच्छे बुरे को अपने जत्थे के अन्दर बुलाने का यत्न कर रहे हैं। इन ईसाइयों के अनुकरण में आर्यसन्तान ने भी अपने काम करने का ढंग बना छोड़ा है। आर्यसमाज के सभासदों को न्यून से न्यून मनु जी के ऊपर कहे हुये वाक्य का बड़ा मान करना चाहिये। ऋषि दयानन्द का अधिकार था कि वह प्रत्येक मनुष्य को अपनी प्रबल आकर्षण शक्ति से खींचने की कोशिश करते। परन्तु यहां प्रत्येक बुरा भला इसी अधिकार के साथ खड़ा होता है जो कि एक सच्चे संन्यासी को ही शोभा है। इसमें सन्देह नहीं कि उत्तम उपदेशकों के अभाव से ही संसार के अन्दर अन्धकार फैलता है परन्तु इस में भी सन्देह नहीं कि जब तक सच्ची श्रद्धा से सुनने वाले श्रोता नहीं होते तब तक सच्चे उपदेशक का यत्न भी बहुत कम फल लाता है, बुद्धिमान् किसान भूमि में बीज बोने से पहले खाद आदि डाल और हल चला कर भूमि को इस योग्य बना लेता है, जिससे बीज बोने से पूरा लाभ हो सके। इसी तरह पर प्रत्येक उपदेशक के लिये आवश्यक है कि पहले इसके कि वह मनुष्यों को उपदेश देने के लिये उद्यत हो उसका क्रियात्मक जीवन ऐसा बना ले कि लोग सुगमता से उसके उपदेश का ग्रहण कर सकें। परन्तु जहां प्रत्येक मनुष्य अपने आपको उपदेश देने योग्य समझता हो और उपदेश सुनने के लिये कोई भी तय्यार न हो वहां यदि बहुत ही दुर्दशा हो तो कुछ आश्चर्य नहीं समझना चाहिये। और भारतवर्ष में प्रत्येक मनुष्य क्यों अपने आपको उपदेशक समझता है? इसलिये कि उनके अन्दर स्वयं क्रियात्मक जीवन बहुत कम देखा

> नापृष्टः कस्यचिद् ब्रूयात्
> नचान्यायेन पृच्छतः।
> जानन्नपि हि मेधावी
> जडवल्लोक आचरेत् ॥

(अपृष्टः) मनुष्य बिना पूछे (कस्यचित् न ब्रूयात्) किसी से वार्तालाप न करे (न च) और नहीं (अन्यायेन पृच्छतः) अन्याय से पूछने वाले के साथ बात करे। अपितु (मेधावी) बुद्धिमान् मनुष्य (जानन्नपि) जानकार होकर भी इन लोगों के साथ (जडवत् आचरेत्) जड़ मूर्ख की तरह आचरण करे।

जाता है और जिनके अन्दर क्रियात्मक जीवन न होवे वे सिवाय जिह्वा के और किस इन्द्रिय का प्रयोग कर सकते हैं ? हरेक मनुष्य को ज़बर्दस्ती सुनाकर उसे सीधे मार्ग पर लाने वाले संसार में बहुत कम मनुष्य हैं। यही कारण है कि पूर्ण वैरागी के लिये संन्यास आश्रम में प्रवेश पाने की आज्ञा थी और उपदेश का अधिकार भी उसी को था और वह इसलिये कि संन्यासी हर प्रकार के दिखावे से मुक्त हुआ करता है। न उसे आत्मसम्मान का विचार है और न किसी के पक्षपात का विचार वह हर समय सत्य के प्रचार में आरूढ़ रहता है और इसलिये आवश्यकता के समय केवल वही उपदेश करता है। उपदेशक बड़ा दृढ़ होना चाहिये। इसलिये मनु जी की आज्ञा है कि जहां अन्याय से कुछ पूछा जाय वहां भी कुछ उत्तर न देना चाहिये। भारतवर्ष के प्रतिष्ठित महानुभावों में श्री बहराम जी मालाबारी पारसी की भी गणना है। यह पहले सज्जन हैं जिन्होंने गवर्नमेंट के खिताब मिलने पर विशेष आत्मिक सिद्धान्तों के अनुसार उसके ग्रहण करने से इन्कार कर दिया था उनके विषय में यह बात प्रसिद्ध है कि एक अंगरेज़ साथी यात्री ने बड़े अभिमान और घृणा के ढंग पर उनका नाम पूछा तो उन्होंने उत्तर में मौन से काम लिया। अर्थात् जैसे को तैसा जवाब देना एक बुद्धिमान् का ढंग नहीं होना चाहिये और नहीं दब कर बोलना एक धार्मिक मनुष्य का। यदि अन्याय से ज़बरदस्ती पूछा जाय तो जहां क्रोध को समीप न आने दे वहां नेक पुरुष के लिये यह भी आज्ञा है कि ऐसी अवस्था में बिलकुल बोले ही नहीं। जिससे कि उसके वचनों पर किसी प्रकार का भी बाह्य प्रभाव न पड़ सके। केवल दिखावा और व्यर्थ प्रलाप के जीवन में तो मनुष्य भला पशु पक्षियों का क्या मुकाबला कर सकेगा। स्वाभाविक ताज जो विशेष चरिन्दों को मिला है क्या उसके मुकाबिले में दुनिया के बड़े से बड़े ताज का कोई वकत है ? क्या मोर की मस्तानी चाल का आज तक किसी मनुष्य ने मुकाबिला किया है। क्या कोयल की हृदयवेधक सुरीली आवाज़ का उत्तर कुछ भी मानवीय जगत् में उपस्थित है ?

प्रिय पाठकगण ! थोड़ी देर के लिये विचार करो कि हम सब किस गढ़े में गिरे चले जाते हैं !

वेद भगवान् ने बतलाया है कि सारे संसार का प्राण वाणी है। परमात्मा के दिये हुए ज्ञान के भंडार वेद के प्रकाश करने का साधन वही वाणी (ऊर्जम् वाचम्) है। इसलिये उसकी रक्षा के लिये हर समय दृढ़ता से सचेत रहना चाहिए। बहुमूल्य वस्तु को आवश्यकता के बिना बुद्धिमान् मनुष्य खर्च नहीं करता। जिस पर संसार की भलाई और बुराई अधिक निर्भर हो उसके प्रयोग में जितना सावधान रहे थोड़ा है। मनुष्य का एक एक पल परमात्मा के समीप पहुंचने के लिये दिया गया है। यह कर्मयोनी इसलिये दी गई है कि मनुष्य अपने आदर्श की ओर चल सके। मार्ग विकट और दूर है। मानवीय आयु इस मार्ग की कठिनाइयों का अनुमान लगाकर निश्चित की गयी है। ऐसे उत्तम समय को भी अगर हम व्यर्थ दिखावे और व्यर्थ प्रलाप में गंवावें तो हमसे बढ़कर मूर्ख कौन है ? वाणी को जितना अधिक बखेरा जावे उतना ही उसका बल कम हो जाता है। जितनी उसकी रक्षा की जाय और जितना उसका बेमौका प्रयोग बन्द किया जाय उतना ही उसका बल बढ़ता है। इसलिये भारतवर्ष के हरेक समाजसंशोधक का कर्तव्य है कि वह अपनी वाणी का आवश्यकतानुसार ही प्रयोग करे और यह तब हो सकता है जबकि अभिमान प्रतिष्ठा और दिखावे के विचारों को दिल से निकाल दिया जाय। कृपासागर ! हम सब भारतनिवासी गुमराह हैं, अपने कर्तव्य को भूले हुये हैं। जल, वायु, अग्नि और पृथिवी का अनन्त दान देने वाले आप ही समर्थ हैं कि हमारे मन्द कर्मों को दृष्टि में रखते हुये हम सब को ब्रह्मचर्य का सर्वोत्तम दान दें। जिससे हम सब अपनी वाणी को वश में करते हुये आपकी आज्ञा पालन करने के योग्य होकर अपने और अपने भाइयों (सब प्राणधारियों) के कल्याण का साधन बन सकें।

सांसारिक दुःख और परमेश्वर की दयालुता

[ले०—श्री ब्र० ओ३म्प्रकाश जी १२ब]

हमारी अन्तरात्मा परमेश्वर की सत्ता और उसके नेक स्वभाव में विश्वास करने के लिए हमें बाधित करती है। परन्तु संसार में हमें सुख और दुःख दोनों का अनुभव करना पड़ता है—इसलिए संसार में कुछ ऐसे लोग हैं जो सुखों के स्वाद को इन दुःखों के कारण किरकिरा अनुभव करते हुए कह देते हैं कि ये दुःख या पीड़ाए एक मात्र बुरा वस्तु हैं। वे पीड़ा को केवल पापों का परिणाम नहीं मानते—इस सिद्धान्त की पुष्टि में मन्दबुद्धि लोग यह कह कर करते हैं—कि Ethics की दृष्टि से पशु पक्षी सर्वथा निष्पाप हैं क्योंकि उनमें बुद्धि नहीं है—परन्तु फिर भी हम देखते हैं कि उन्हें भी पीड़ा अनुभव करना पड़ती है। इसके अतिरिक्त हम देखते हैं कि मनुष्य को आँख कान आदि इन्द्रियां भी कभी कभी असह्य पीड़ाजनक हो उठती हैं इन कारणों से वे (परमपिता परमात्मा) संसार के रचयिता को पूर्ण एवं निर्दयी कहने लगते हैं—किन्तु हम इन कूपमण्डूकों से सहमत नहीं हैं हम उन महाशयों के सम्मुख हाथ बांध कर सविनय प्रार्थना करते हैं कि वे ऐसे बुरे काम से बाज आएं। उन्हें चाहिये कि वे पीड़ा के ऊपरी आकार को देख कर अपनी कूपमण्डूकता का परिचय न दें। उन्हें चाहिये कि वे इस पीड़ा का परिणाम देखें और निश्चय करें कि क्या यह पीड़ा किसी घातक घटना की सूचक है अथवा स्वयमेव घातक रूप है ? कई लोग कहते हैं कि जानवरों को बिना पीड़ा के बनाया जा सकता था किन्तु हम इस मृगतृष्णा में प्रणयग्रस्त नहीं होना चाहते और बुद्धिमत्ता भी इसीमें है। क्योंकि यदि पीड़ा को संसार से सर्वथा पृथक्

कर दिया जाय तो मनुष्य एक बार में ही नष्ट हो जाय—उसका जीवन दुर्लभ हो जाय। प्रथम बार अग्नि में हाथ डाल कर पीड़ा अनुभव करने से हम आगे के लिए सावधान हो जाते हैं तो जिस चीज़ का जीवन रक्षा विषयक इतना बड़ा उपयोग है उसे व्यर्थ किस आधार पर कहा जाय। मन हमारे शरीररूपी दुर्ग का चौकीदार है यह अपने आप में कोई उद्देश्य नहीं अपितु हमारी जीवन रक्षा में साधन रूप है। दर्द को देखने से उसका कर्त्ता बुद्धिमान् प्रतीत होता है।

कष्ट हमें पूर्णता की ओर ले जाने में अत्यधिक सहायक है। यह हमारी कमियों को बताता है। यदि पीड़ा न होती तो खरगोश इतना तेज़ कैसे दौड़ता, शेर इतना बली क्यों होता, मनुष्य इतना बुद्धिमान कैसे होता। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि पीड़ा का उद्देश्य है—वह स्वयं भी अच्छी चीज़ है। वस्तुतः तो पूर्णता बहुत अच्छी चीज़ है। यदि कोई कहे कि मनुष्य को बिल्कुल पीड़ा न होती तो वह बिल्कुल निर्शिङ्क होता—तो हम कहेंगे कि वह मनुष्य न होता किन्तु एक सूअर की तरह होता जिसे मल-भक्षण के लिए कोई रुकावट न होती।

सुख तो पूर्णता में है—संघर्ष में है—जो जितना अधिक संघर्ष करके सुख लाभ करेगा उसका सुख उतना अधिक घना एवं उच्च होगा। पीड़ा तो बड़े भारी सुख का साधन है। वह पीड़ा जिससे प्रेरित होकर मनुष्य कोई क्रिया करता है या जो पीड़ा क्रिया करते समय कर्त्ता को अनुभव होती है—आगे चल कर वह सुखदायी होती है। हम उस महाकवि से सहमत हैं जिसने कहा कि—

"दुःखमेवास्ति न सुखं यस्मात्तदुपलक्ष्यते।
दुःखार्त्तस्य प्रतीकारे सुख संज्ञा विधीयते॥"

जिसने कभी पीड़ा का अनुभव नहीं किया वह सुख का अनुभव कैसे करेगा। जिसने किसी रस का उपभोग नहीं किया वह गुड़ को मीठा कैसे अनुभव करेगा। यही पीड़ा ही मदान्ध प्राणियों को नम्र बनाती है। हमारे अन्दर धैर्य और दृढ़ता पीड़ा से उत्पन्न होती हैं। हमारी सहानुभूतियां पीड़ा से विकसित होती हैं। पीड़ा हमारे अन्दर धार्मिक भावनाओं को स्फुरणा देती है और इस प्रकार मनुष्य का स्वभाव परिष्कृत एवं परिमार्जित हो जाता है। शुद्ध सोना बनने के लिए पीड़ा रूपी भट्टी में तपना अनिवार्य है। मनुष्य जाति के महापुरुष यह कह कर कि Our pains are our possessions प्रगट करते हैं कि वे पीड़ा को सम्पत्ति समझते हैं। यदि हम सोच कर देखें तो यह स्पष्ट है कि कभी ऐसा नहीं होता कि परमात्मा किसी निर्बल व्यक्ति पर आफ़तों का पहाड़ ढहा दे। प्रायः करके बड़े २ दुःख वही भोगा करते हैं जिन्होंने महापुरुष बनना होता है—किसी कविवर ने ठीक कहा है कि—

सम्पदो महतामेव महतामेव चापदः।
वर्धते क्षीयते चन्द्रो न तु तारागणाः क्वचित्॥

यदि वैज्ञानिकों का विकासवाद सही है तो पीड़ा का उपयोग या महत्व स्वयंसिद्ध है। उसके बताने में हमें अत्यधिक दिमाग़ी व्यायाम नहीं करना पड़ेगा। हमने पहले कहा है कि यदि पीड़ा न होती तो जानवर उन्नति की ओर कैसे अभ्यास करते। यदि विकासवाद हमारे अनुकूल न भी हो तो भी और तरीकों से यह सिद्ध किया जा सकता है कि सब चीज़ें परस्परानुकूल हैं—यहां तक कि जीवित चीज़ें भी परस्पराश्रित हैं—जैसे पौदे और जानवरों में परस्पराश्रितत्व है। ऐसे प्रतीत होता है कि सब एक समष्टि के अवयव हैं।

इस दृष्टि से तो मृत्यु भी अभीष्ट वस्तु सिद्ध होती है। एक बूढ़े खुर्राट एवं अशक्त मनुष्य की जगह एक खूबसूरत और सशक्त आदमी का आ जाना क्या आपको अच्छा नहीं लगता। यदि लगता है तो मृत्यु बहुत अच्छी चीज़ माननी पड़ेगी। यदि मृत्यु न हो तो संसार में भीड़ हो जाय और कोई आराम से न रहने पाये—सब भूखों मरने लगें। यदि मृत्यु न होती तो उस संसार की ज़रा कल्पना तो कीजिये जिसमें कि चारों दिशाओं में बूढ़ों का जमघट दिखाई देता। इस प्रकार मृत्यु के ये सद्गुण प्राणियों के सुख को अत्यधिक बढ़ा देते हैं।

तो ज़रा हठ छोड़ कर बताइये कि क्या पीड़ा और मृत्यु आदि भयानक प्रतीत होने वाली चीज़ों का कर्त्ता कोई बुद्धिमान् एवं दयालु व्यक्ति नहीं है। यदि आप मानते हैं कि आकाश में छाये हुए ये काले बादल यद्यपि देखने में भयानक हैं तो भी इनके पीछे सुखसागर या अमृत की वर्षा अथवा परमात्मा का दयालु रूप छिपा है तो आपको यह विश्वास करने में संकोच नहीं करना चाहिये कि मृत्यु और पीड़ा आदि सब चीजें अच्छी हैं और परमात्मा की दयालुता के प्रतीक हैं।

अपूर्ण

'देशदूत'

गुरुकुल

२ सितम्बर शुक्रवार १९३८

दिल्ली का शिवमन्दिर

लगभग एक महीना होने को आया भारत की राजधानी में एक दिन प्रातःकाल सुनने में आया था कि रातोंरात पुलिस ने क्वीन्स पार्क के शिवमन्दिर को भूमिसात् कर दिया था। हम नहीं कह सकते कि वस्तुस्थिति क्या थी। बाग की उस भूमि पर मन्दिर था या नहीं। किन्तु आज राजधानी के हिन्दुओं के धार्मिक अधिकार खतरे में हैं—यह हर कोई दिल्ली से प्राप्त समाचारों को सुन कर कह सकता है

चीफ कमिश्नर के वक्तव्य से प्रतीत होता है कि मन्दिर सम्बन्धी सब समझौते के प्रयत्न असफल हो गये हैं। दिल्ली सरकार ने हिन्दु मुसलमानों की एक समझौता समिति बनाई थी। समिति की सर्वसम्मत रिपोर्ट जिससे हिन्दु और मुसलमान पूर्णतः सहमत थे—सरकार को सौंपी गई। सरकार ने इस एकमत समझौते को मानने से इन्कार किया और अपना एक नया फैसला सुनाया। जिसे मानने से हिंदु प्रतिनिधियों ने इन्कार किया। जिसके परिणाम स्वरूप समझौते का यह सरकारी प्रयत्न बीच में रह गया। सरकारी प्रस्ताव में कहा गया था कि 'इस विषय में अभी कोई निर्णय नहीं हुआ कि विवाद-स्थल पर हिन्दु मन्दिर था या मस्जिद। दूसरे वहां पर शंख बजाने तथा सामूहिक आरती करने से समीप की मस्जिद की प्रार्थना में विघ्न होता है।' जहां तक इस विषय में मुसलमानों की मांग का प्रश्न—दिल्ली के किसी भी भारतीय अखबार में मुसलमानों की ऐसी मांग का पता नहीं पड़ा। अलबत्ता अंग्रेजी पत्रों ने इस बारे में कुछ खबरें दी हैं। क्या सरकार कुछ ही समाचार-पत्रों की खबरों पर जिम्मेवार रहकर अपने से ही नियुक्त समझौता समिति की रिपोर्ट को अस्वीकृत करने का प्रयत्न भी कर सकती है? यह भी कुछ हमें दिल्ली के शिवमन्दिर के मामले में देखने से मिला। समझौते के यत्नों के ही असफल होने का एकमात्र कारण अब स्थानीय सरकार है।

दिल्ली की स्थिति प्रति दिन खराब होती जा रही है। हिन्दुओं के हित खतरे में हैं। हिन्दु लोग प्रतिवाद स्वरूप हड़ताल-जलूस तथा सभा आदि कर रहे हैं। हिन्दु व्यापारियों की प्रतिदिन व्यापारिक क्षति हो रही है। दिल्ली उत्तरीय भारत का व्यापारिक केन्द्र है और सारा व्यापार हिन्दुओं के हाथ में है। इस धार्मिक और आर्थिक क्षति का मूल कारण कौन है? यदि इसका उत्तर स्थानीय सरकार हो तो उसे इस मसले का जल्दी सन्तोषजनक हल करवाना चाहिये नहीं तो मामला तूल पकड़ने पर मुश्किल से सुलझेगा। हिन्दुओं में दब्बूपन अब नहीं रह गया है, वे अपने अधिकारों के प्रति सजग हैं। प्रति दिन की भारी तादाद में होने वाली गिरफ्तारियां इसका प्रमाण हैं।

पंजाब में कांग्रेस संगठन—

पंजाब में राष्ट्रीय जागृति के चिह्न पिछले दिनों कुछ प्रकट हुए थे। श्री जयरामदास दौलतराम के सफल प्रयत्नों से पिछले दिनों पंजाब में पारस्परिक एकता तथा बन्धुभाव का जो दृश्य दिखाई दिया था, उससे आशा होने लगी थी कि अब पंजाब भी अन्य प्रान्तों के समान भारतीय स्वातन्त्र्य संग्राम में कन्धे से कन्धा मिला कर एक बार खड़ा हो जायगा। किन्तु यह समझना भूल सिद्ध हुई, पंजाब में आज विचित्र प्रकार का राजनैतिक संकट उपस्थित हो गया है। इसका कारण भले ही कुछ हो, भारत राष्ट्र का हित रखते हुए पंजाब के कांग्रेसियों का कर्तव्य है कि वे पुरानी बातों को भुला कर रचनात्मक कार्यों में जुट जांय—तभी शान्ति स्थापित हो सकेगी।

बधाई!

पिछले दिनों गुरुकुल के आयुर्वेदमहाविद्यालय में श्री डा० इन्द्रसेन जी आयुर्वेदालंकार एम बी. बी. एस. शारीरशास्त्र के उपाध्याय पद पर नियुक्त हुए हैं। श्री इन्द्रसेन जी अपनी छात्रावस्था में अपने साहस, अध्यवसाय व लगन के लिये प्रसिद्ध थे। इसी अध्यवसाय के बल पर उन्होंने आयुर्वेद विषय में अपने सहपाठियों में प्रथम स्थान प्राप्त किया था। गुरुकुल से स्नातक होने के बाद भी उन्होंने अपना अध्ययन न छोड़ा। पाश्चात्य चिकित्सा उन्हें घरसे ही विरासत में मिली है। उनके पिता फौज में डाक्टर रहे हैं और उनके दोनों बड़े भाई आज भी फौजी महकमे के डाक्टरों में अपना विशेष स्थान रखते हैं। स्नातक होने के बाद श्री इन्द्रसेन जी ने भी पाश्चात्य चिकित्सा में अपने भाइयों के समान निष्णात होने की ठानी। वे अपने इरादे के पक्के थे। अतः पंजाब यूनिवर्सिटी से एफ.एस.सी. पास कर लाहौर के मैडिकल कालिज में दाखिल हो गये। उनके अध्यवसाय ने इस बड़ी उम्र में भी उनका साथ दिया और आज से दो वर्ष पूर्व वे सफलता से एम.बी.बी.एस. परीक्षा में उत्तीर्ण हुए।

आज अपने ही एक भाई को पाश्चात्य चिकित्सा में निष्णात तथा गुरुकुल में उपाध्याय पद पर नियुक्त हुए देखकर किस कुलबन्धु को प्रसन्नता न होगी। हम श्री इन्द्रसेन जी को इस नियुक्ति पर बधाई देते हैं और आशा करते हैं कि आयुर्वेद व पाश्चात्य चिकित्सा के उनके तुलनात्मक अध्ययन से हमारे विद्यार्थी विशेष लाभ उठा सकेंगे।

वेद में कविता

[ले०—श्रीयुत आनन्द

(गताङ्क से आगे)

ऋग्वेद के ७ वें मण्डल के १०३ सूक्त में सबसे पहला मन्त्र है,—

संवत्सरं शशयाना ब्राह्मणा व्रतचारिणः ।
वाचं पर्जन्यजिन्वितां प्र मण्डूका अवादिषु ॥

महर्षि बाल्मीकि ने अपने रामायण में वर्षा का वर्णन करते हुए इस मन्त्र के आधार पर एक श्लोक बनाया है जो निम्न प्रकार है—

स्वनैर्घनानां प्लवगाः प्रबुद्धाः,
विहाय निद्रां चिरसंनिरुद्धाम् ।
अनेकरूपाकृतिवर्णनादः,
नवाम्बुधाराभिहता नदन्ति ॥

इससे यह झलकता है कि वाल्मीकि सदृश कवियों ने वेदों का परिशीलन काव्य रूप में अवश्य किया होगा तथा अपने काव्य के निर्माण में यत्र तत्र वेदों से भी सहायता उठाई होगी।

आज के इस संक्षिप्त विवेचन में हम वेदों की कविता की आलोचना करने में समर्थ नहीं हो सकते; क्योंकि इस कार्य के लिए श्रम, समय और प्रतिभा इन तीनों की बहुत आवश्यकता है। अतः इस निबन्ध में हम अधिक से अधिक वेदों के कतिपय उन स्थलों पर संकेत ही कर सकेंगे जहां पाठकों को काव्य की सुविस्पष्ट उपलब्धि हो सके।

सुगमता के लिए हम अपने विषय को चार भागों में विभक्त करते हैं—

(१) रस ।
(२) अलङ्कार ।
(३) प्रकृति चित्रण ।
(४) शैली ।

वेद में वीर रस बहुत स्थानों पर हमें उपलब्ध होता है। वेद एक आशावाद को लेकर चलने वाला काव्य है, वहां आपको निराशावाद की कविता कदाचित् ही उपलब्ध हो। ऐसी अवस्था में, अपने ऊपर विश्वास, उत्साह तथा वीरतापूर्ण उक्तियों का वेदों के अन्दर पदे पदे उपलब्ध होना अनिवार्य हो है। देखिये दुन्दुभि के ऊपर वीर रस में लिखी गई पंक्तियां कितनी सुन्दर हैं—

उपश्वासय पृथिवीं मुत द्यां ।
पुरुत्रा ते मनुतां विष्ठितं जगत् ॥
स दुन्दुभे, सजूरिन्द्रेण देवै—
र्दूराद्दवीयो अपसेध शत्रून् ॥

अर्थात् हे दुन्दुभे, तू इतनी जोर से आघोष कर जिससे ज़मीन और आस्मान के कुलाबे एक हो जावें—गगन मण्डल गूँज उठे; सम्पूर्ण चराचर दहल जावे, इन्द्र और देव अर्थात् सेनापति और सेना के सदृश इसके द्वारा निकलता हुआ तेरा शब्द इतना विकट हो कि, शत्रु लोग डर के मारे दूर से दूर भाग जावें।

धनुष पर वेद में देखिये क्या लिखा है—

धन्वना गा धन्वनाजिं जयेम।
धन्वना तीव्राः समदो जयेम ॥
धनुः शत्रो रपकामं कृणोति।
धन्वना सर्वाः प्रदिशो जयेम ॥

धनुष के बल पर हम लोग गौवें जीतें। धनुष के बल पर हम बड़ी २ लड़ाइयां जीतें, धनुष के बल पर हम तीव्र से तीव्र शत्रुओं को परास्त करें, हमारे धनुष से अमित्रों के छक्के छूट जाते हैं, धनुष के बल पर हम सम्पूर्ण दिशाओं को जीत लेवें।

इसी प्रकार वेद में आपको इषु, इषुधि, ज्या इत्यादि युद्धोपयोगी वस्तुओं का बड़ा अच्छा और वीरोचित वर्णन मिलेगा।

निम्न मन्त्र में देखिये, अपने अन्दर उत्साह भरने के लिए किस प्रकार गर्व पूर्वक कोई कह रहा है—

हन्ताहं पृथिवीमिमां,
निदधानीह वेह वा।
कुवित्सोमस्यापामिति ॥

मैंने आज इतना सोम पी लिया है, चाहूँ तो पृथिवी को आन की आन में इधर से उधर कर डालूं।

वेद में शृङ्गार रस के भी मन्त्र उपलब्ध होते हैं—

अभ्रातेव पुंस एति प्रतीची,
गर्तारुगिव सनये धनानाम् ।
जायेव पत्य उशती सुवासा,
उषा हस्रेव निरिणीते अप्सः ॥

जिस प्रकार भ्रातृरहिता स्त्री धनप्राप्ति के लिए, लौट कर मनुष्यों के समक्ष पतिपुत्रविहीना स्त्री न्याय-मण्डप के समक्ष, उत्तमोत्तम वस्त्राभरणों से विभूषिता रमणी पति के समक्ष अपने रूप को, एवं स्मयमान-वदना स्त्री अपनी मुक्तासदृश दन्तपंक्ति को प्रकट करती है उसी प्रकार उषा अपने स्वरूप को प्रकट कर रही है। कैसा सुन्दर शृंगार है। इस प्रकार के उदाहरण हमें अनेक स्थानों पर दिखाई देते हैं।

ऋग्वेद के द्यूत सूक्त में हमें निर्वेद का बड़ा ही रोमाञ्चकारी वर्णन मिलता है। इस सूक्त में मानव हृदय का अत्यन्त स्पष्ट चित्राङ्कण है। जुआरी स्वयं अपने विषय में कहता है—

'मैं जानता हूँ कि, मैं जो कुछ कर रहा हूँ उसका परिणाम अत्यधिक भयङ्कर है, तथापि मैं क्या करूं, जुआ खेलने में मुझे जो आनन्द आता है, मैं उसके लोभ को संवृत नहीं कर सकता।

यह द्यूत सूक्त के प्रथम मन्त्र का सार है; मनुष्य की मानसिक दुर्बलताओं का क्या यह नग्न चित्र नहीं है? कितने मनुष्य हैं जो इस बात को नहीं जानते कि पापाचरण का परिणाम सदा बुरा ही होता है; किन्तु उन बुराइयों को जानते हुए भी कितने मनुष्य हैं जो बलवान् सांसारिक प्रलोभनों के आगे सिर झुकाने के लिए अपने आपको विवश नहीं पाते?

अगले मन्त्रों में उन कटुफलों का वर्णन है जो मनुष्य को जुआ खेलने से प्राप्त होते हैं। उस वर्णन को पढ़ने पर जुए के जो दुष्परिणाम हमारी आंखों के आगे नाचने लग जाते हैं उन्हें देख कर रोमाञ्च खड़े हो जाते है। यह सूक्त करुणा और निर्वेद का बड़ा सुन्दर निदर्शन है।

इसी प्रकार भिन्न २ रसों के मन्त्र हमें वेदों में उपलब्ध होते हैं। उन सबका उल्लेख यहां सम्भव नहीं है।

अब हम अलङ्कारों पर आते हैं। उपमा-अलङ्कार के उदाहरण हमें वेदों में बहुत उपलब्ध होते हैं। उपमा के कुछ उदाहरण देखिये—

'अग्निरिव मन्यो त्विषितः सहस्व,
सेनानीर्नः सहुरे हूत एधि,
हत्वाय शत्रून् विभजस्व वेद,
ओजोमिमानो विमृधो नुदस्व।'

यहां 'अग्निरिव' इस स्थान पर तेजस्वी राजा को धधकती हुई आग से उपमा दी गई है। और भी देखिये—

'स नः पितेव सूनवे,
अग्ने सूपायनो भव,
सचस्वा नः स्वस्तये।

इस मन्त्र में अग्नि रूप जो परमात्मा है, उसको पिता से उपमा दी गई है। तथा जो भक्त लोग हैं उनको पुत्र से उपमा दी गई है। यह हुए श्रेष्ठोपमा के उदाहरण।

वेद में हीनोपमाओं का भी बाहुल्य हमें उपलब्ध होता है। अर्थात् वेदों में ऐसी उपमाएं आपको बहुधा दृष्टिगोचर होंगी जहां किसी श्रेष्ठ पदार्थ की हीन पदार्थ से उपमा दी गई है। तद्यथा—

तनूत्यजेव तस्करा वनर्गू,
रशनाभिर्दशभिरभ्यधीताम्;
इयन्ते अग्ने नव्यसी मनीषा,
युक्ष्वा रथं न शुचयद्भि रङ्गैः॥

इस स्थान पर वनस्थ की शरीर की परवाह न करना इस गुण के कारण चोर से उपमा दी गई है। यहां श्रेष्ठ जो वनस्थ है, उसको हीन जो चोर है उसके साथ उपमा दी गई है।

रूपक अलङ्कार का उदाहरण निम्न है—

चतुष्कपर्दा युवतिः सुपेशा,
घृतप्रतीका वयुनानि वस्ते,
तस्यां सुपर्णा वृषणा निषेदतुः
यत्र देवा दधिरे भागधेयम्।

इस वेद मन्त्र में वेदवाणी को एक युवति का रूपक दिया गया है।

अरण्यानी सूक्त में उत्प्रेक्षा का एक बड़ा सुन्दर उदाहरण है, देखिये—

वृषारवाय वदते यदुपावति चिच्चिकः।
आघाटिभिरिव धावयन्नरण्यानिर्महीयते॥

जब मेघ गरजने लगते हैं तो झींगुर भी अपना झाङ्कार प्रारम्भ कर देते हैं. उस समय ऐसा प्रतीत होता है, मानों सारी की सारी वनस्थली सितार के तारों से स्वर शोधन कर रही हो। कितनी रम्य उत्प्रेक्षा है।

श्लेष अलङ्कार के उदाहरण तो आपको वेदों में असंख्य मिल जावेंगे; फिर भी एक उदाहरण लीजिये—

य ईं चकार न सो अस्य वेद,
य ईं ददर्श हिरुगिन्नु तस्मात्;
स मातुर्योना परिवीतो अन्त-
र्बहुप्रजा निर्ऋतिमाविवेश।

इस एक ही मन्त्र के, श्लेष होने के कारण, दो अर्थ होते हैं। पहला अर्थ आध्यात्मिक पक्ष में लगता है, और दूसरा अर्थ आधिदैविक पक्ष में।

क्रम से इस मन्त्र के ये दोनों प्रकार के अर्थ निम्न प्रकार से हैं—

(यः ईम्चकार) जो मनुष्य वीर्य सेचन करता है, (स अस्य न वेद) उसको इसके विषय में कुछ भी ज्ञान नहीं है। (य ईम् ददर्श) जिसने इस तत्व को जान लिया (तस्मात् हिरुक् इत् नु) वह उससे पृथक् ही रहता है। (सः मातु र्योनाअन्तः परिवीतः) वह जीव जो मां के पेट में लिपटा पड़ा है। (बहुप्रजाः) नाना विध जन्मों वाला होकर (निर्ऋतिमाविवेश) कष्ट को प्राप्त होता है।

इस अर्थ में आध्यात्मिक सन्देश दिया गया है। अब दूसरे अर्थ को लीजिये—

(यः ईम् चकार) जो विद्युत् जल को बरसाता है (सः अस्य न वेद) वह इस वृष्टि के तत्व को नहीं जानता। (यः ईम् ददर्श) और जो इस तत्व को जानता है (तस्मात् हिरुक् इत् नु) वह निश्चय से उसके अन्दर ही विद्यमान है। (सः मातुः योना अन्तः परिवीतः) वह मेघ अन्तरिक्ष प्रदेश में वायु से परिवेष्टित हुआ २ (बहुप्रजा) नानाविध औषधियों को उत्पन्न करने वाला होकर (निर्ऋतिमाविवेश) पृथिवी में प्रविष्ट होता है।

ये दोनों अर्थ वेद के प्रमेय पर अच्छा प्रकाश डालते हैं। इस मन्त्र में ईम्, हिरुक्, चकार, माता, बहुप्रजाः तथा निर्ऋति ये शब्द श्लिष्ट हैं।

अपूर्ण

गुरुकुल समाचार

स्वास्थ्य समाचार

इस सप्ताह ब्र० योगेश्वर १२ वीं श्रेणी, युद्धवीर २य श्रेणी श्लेष्म ज्वर से तथा ब्र० राजेन्द्र ३य श्रेणी ज्वर से रोगी हुए। अभी राजेन्द्र को ज्वर है। शेष सबको आराम है। इस सप्ताह गर्मी पर्याप्त पड़ रही है।

राष्ट्र प्रतिनिधि सभा के वर्षाकालीन अधिवेशन से इस सप्ताह कुल के वातावरण में एक विशेष हलचल दिखाई पड़ी। शनि, रवि, सोम को इसकी विभिन्न बैठकें थीं। मन्त्री मण्डल की ओर से प्रधान मन्त्री ब्र० क्षेत्रपाल ने भारत रक्षण विधान उपस्थित किया था। ब्र० सत्यभूषण के सफल विरोध के बावजूद भी माननीय प० दीनदयालु जी के पल्लड़ भार की सहायता से विधान तीसरे दिन राष्ट्रप्रतिनिधि सभा में स्वीकृत हुआ। इस पार्लियामेन्ट के सचालन में उपाध्याय वेदव्रत जी वेदालङ्कार ने जो सभापति का कार्य कर रहे थे-प्रत्येक कुलवासी को शिक्षा लेनी चाहिये। उत्तम वक्ता तथा श्रेष्ठ व्यवस्थापक होने के दो प्रथम पुरस्कार ब्र० छत्रपाल को मिले। इस बार ब्रह्मचारियों और उपाध्यायों ने पूरे ज़ोर से भाग लिया। उपस्थिति पिछले सालों में इतनी कभी नहीं हुई थी—प्रारम्भ से अन्त तक सदस्य पूरे मनोयोग से भाग लेते रहे।

इन दिनों श्री मुलखराज जी बी० एस० सी० तथा डा० मनोहरदास जी आए हुए हैं जिन्होंने अपने शिक्षाप्रद एवं मनोरञ्जक व्याख्यानों से कुलवासियों को बहुत लाभ पहुंचाया है। पिछले सज्जन ने मैजिक लैन्टर्न द्वारा अफ्रीका का भौगोलिक तथा राजनैतिक वर्णन चित्रित किया जिसका असर बहुत अच्छा रहा।

गुरुकुल सूपा समाचार

बहुत लम्बे अरसे के बाद दो तीन दिन से वर्षा हो रही है इस कारण कृशकाय पूर्णा भी अपने पूर्ण यौवन पर है। कृषक मुख प्रसन्न वदन दिखाई देते हैं। ब्रह्मचारियों का स्वास्थ्य अच्छा है।

प्रतिवर्ष की भांति इस वर्ष भी "कृष्णजन्माष्टमी" का पर्व विशेष उत्साह से मनाया गया। उस दिन विशेष प्रोग्राम रक्खा गया था। सभा में कई उत्तमोत्तम वक्तृताएं भी हुई थीं।

गुरुकुल का हाकी दल सूरत और भरुच पुलिस टीम का निमन्त्रण पाकर सूरत और भरुच गई थी। वहां पर सुबह अनाविल आश्रम को हस्तकन्दूक में पराजित करके, सायंकाल सूरत पुलिसटीम को दण्डक्रीडा में दो गोलों से पराजित किया। दूसरे दिन भरुच पुलिस टीम को एक गोल से पराजित कर गुरुकुल-दल गुरुकुल का नाम उज्ज्वल करता हुआ कुल में आ गया है।

षाण्मासिक परीक्षा १३ सितम्बर से शुरु होने वाली है अतः ब्रह्मचारीगण आजकल परीक्षा की तैयारी कर रहे हैं।

हे सुन्दरतम !

[ले०—श्री सत्यभूषण 'योगी']

हे सुन्दरतम लीलाधाम,
भावुक रसमय तुम्हें प्रणाम।
कुंज कुंज में बसी लेकर,
गाते गीत सुरीले मनहर,
जीवन को भी जीवन देकर,
भरा नित्य जीवन का जाम।
हे सुन्दरतम लीलाधाम !
वे कैसे सुन्दर सपने थे;
जिनमें सब प्राणी अपने थे,
वे तप स्वयं तपे तपने थे,
था जिनसे चिर मधु विश्राम।
हे सुन्दरतम लीलाधाम !
शुष्क विरस जीवन के पथ पर,
कांप कांप पग पग पर डर कर,
नर अनेक जाते आंसू भर,
जीवन उनको जड़ अंजाम।
हे सुन्दरतम लीलाधाम !
मुक्त मधुर जीवन अभिसार,
वह रसमय स्वच्छन्द विहार,
विगतकलुष वह प्रेम अपार,
वह प्रकाश मोहन अभिराम !
हे सुन्दरतम लीलाधाम !
तुमने हमें सिखाया जीना,
दी हमको वह वृत्ति अदीना,
सुन पड़ता है झीना झीना,
अब भी वह गायन अविराम—
हे सुन्दरतम लीलाधाम !
यह दुनिया तो क्रीड़ास्थल है,
इसमें सुख ही सुख प्रतिपल है
दुःख कल्पित है मन का छल है,
है क्या फिर रोने का काम।
हे सुन्दरतम लीलाधाम !
मधुवन में वे मधुमय अभिनय,
लय जीवन में जीवन में लय,
भोग-याग का अजब समन्वय।
स्थितप्रज्ञ योगेश ललाम !
हे सुन्दरतम लीलाधाम !
भावुक रसमय तुम्हें प्रणाम !!

सूचना

गुरुकुल विश्वविद्यालय के स्नातकों की ओर से शिक्षा-पटल के लिए निम्नलिखित दो प्रतिनिधि निर्वाचित हुए हैं।

१. श्री पं० दीनदयालु जी सिद्धान्तालंकार।
२. श्री पं० सत्यदेव जी विद्यालंकार रेलवे रोड लाहौर।

वागीश्वर विद्यालंकार
प्रस्तोता

चौधरी दुलारसाय के प्रबन्ध से गुरुकुल प्रेस गुरुकुल कांगड़ी में मुद्रित तथा प्रकाशित।

* ओ३म् *

"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत" Reg. No. A 2927

गुरुकुल

सम्पादक—भारतभूषण वेदालङ्कार

एक प्रति का मूल्य -) [गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख-पत्र] वार्षिक मूल्य ३॥)

वर्ष ३] गुरुकुल-कांगड़ी, शुक्रवार २१ भाद्रपद १९९५, ९ सितम्बर १९३८ [संख्या १७

गुरुकुल में आवश्यक सुधार

(ले० —श्री स्वामी अभयदेव जी)

गुरुकुल कांगड़ी में जिस आवश्यक सुधार की तरफ़ मैं गत तीन वर्षों से अधिकारियों का ध्यान खींचता रहा हूं उसकी चर्चा मैं इस लेख द्वारा श्री मुख्याधिष्ठाता जी गुरुकुल कांगड़ी की अनुमति पाकर कर देना चाहता हूँ। इसके लिए मैं गुरुकुल तिथि पर (१९-४-३८) को हुई विद्यासभा की बैठक में तथा उसके बाद हुई (२०-४-३८) गुरुकुलीय उपाध्याय महोदयों की समिति (विश्वविद्यालय समिति) में मैंने जो कुछ विचार प्रकट किये थे लगभग उन्हें ही लेखबद्ध कर रहा हूं।

'अभय'

गुरुकुल की उन्नति और रक्षा के लिये इस समय सबसे अधिक आवश्यक बात यह है कि हम सब से अधिक ध्यान इस बात पर दें कि गुरुकुल के गुरु [उपाध्याय व अध्यापक वर्ग] बहुत ऊंचे दर्जे के हों। इसके बिना अब गुरुकुल आगे अपनी स्वस्थ उन्नति नहीं कर सकता। यदि ऐसे गुरु मिलना सचमुच सम्भव न हो तो गुरुकुल को बन्द कर देना उचित है 'गुरुकुल' नाम लेना छोड़ देना चाहिये। पर यह तो पूरी तरह से सम्भव है।

अभी तक गुरुकुल की कुछ गौण विशेषताएं ही ऐसी थीं जो जमाने के लिए नई थीं जैसे गुरुकुल की राष्ट्रीयता, इसमें हिन्दी भाषा माध्यम से शिक्षा, कुछ धार्मिक शिक्षा आदि—अतएव इन गौण कारणों से भी गुरुकुल जनता का प्यारा था और वस्तुतः उनकी कुछ ज़रूरतों को पूरा करने वाला था। पर अब शीघ्र जमाना आ रहा है बल्कि बहुत कुछ आ चुका है कि गुरुकुल की ये विशेषतायें कोई विशेषतायें नहीं रही हैं। ये बातें अन्य संस्थाओं ने भी अपना ली हैं। और कांग्रेसी सरकारें तो शिक्षा को राष्ट्रीय बनाने में इतना बड़ा कदम उठा रही हैं कि हम में इस दिशा में कुछ भी विशेषता नहीं रहेगी बल्कि हम पिछड़ जाएंगे। इसलिए अब गुरुकुल तभी कायम रह सकता है, यदि वह अपने असली निजी रंग में चमके। गुरुकुल अपनी गौण नहीं मुख्य असली विशेषताओं के आधार पर खड़ा हो और यह तभी सम्भव है जबकि गुरुकुल के गुरु गुरुकुलीय आदर्शों (ब्रह्मचर्य, वैदिक संस्कृति, कुल भावना आदि) में इतने उन्नत हों कि गुरुकुलीय शिष्यों पर अपने जीवन का प्रबल प्रभाव डाल सकें। अन्यथा यह तो हो सकता है कि गुरुकुल भी अन्य बहुत से अखाड़ों व मठों की तरह चलता रहे पर यह उसका जीवन जीवन नहीं होगा, वह मृत समान होगा, बल्कि उस तरह के गुरुकुल के जीने से उसका बन्द हो जाना अच्छा है। कई भाई गुरुकुल को इस लिए चलाते रखना चाहते हैं क्योंकि वे उससे किसी कारण सम्बद्ध हो गए हैं, कुछ हैं जो इसे अपने दल (पार्टी) की चीज़ समझते हैं। पर मैं विनयपूर्वक कहना चाहता हूं कि गुरुकुल शिक्षा प्रणाली का विचार इतना महान् है कि वह तुच्छ विचारों द्वारा परिमित नहीं किया जा सकता। गुरुकुल शिक्षण पद्धति इतनी विशाल वस्तु है कि इसकी न केवल भारतवर्ष को या आर्यसमाज को जरूरत है किन्तु सारे जगत् को इसकी जरूरत है। निःसन्देह यह सर्वोत्तम शिक्षाप्रणाली है और अब समय आ गया है [ज्यों ज्यों भारत अपनी पराधीनता की बेड़ियां काटता जाता है त्यों त्यों वह समय बड़ी शीघ्रता से आ रहा है] जबकि यह अपने वास्तविक रूप को प्रकट कर सके। यदि हमें गुरुकुल में सच्ची श्रद्धा है तो अभी वह समय आ पहुंचा है जबकि हमें तपस्या करके गुरुकुल को इसके सच्चे रूप में जगत् के सामने लाकर रखना चाहिये। पर उसके लिए एक हम अत्यन्त आवश्यकता यह है कि यहां के गुरु सचमुच गुरु हों। इस गौरवास्पद शिक्षा प्रणाली की सफलता न तो धन बहुत होने में है और न शिष्यों की संख्या बढ़ने में, किन्तु गुरुओं की उच्चता में है। इसी आशय को लेकर मैंने गुरुकुलीय सुधार के लिए निम्न दो प्रस्ताव गुरुकुल की प्रबन्धकर्तृ सभा, विद्या सभा में रक्खे थे —

१ उपाध्यायों का वेतन ७५) हो तथा—

२ उपाध्यायों को उनके बाहरी पाण्डित्य की अपेक्षा उनके उच्च जीवन की दृष्टि से रखा जाए।

पहिली बात के बारे में मेरा कहना यह रहा है कि गुरुकुल के गुरु ऊंचे से ऊंचे ब्राह्मण होने चाहिएं और ब्राह्मण तो भिक्षावृत्तिवाले होते हैं अर्थात् परमात्मा द्वारा दिये गये पर सन्तोष करने वाले होते हैं। कम से कम इस निर्धनतम देश के वर्तमान ब्राह्मण १५०) मासिक जितना वेतन पाना ज़रूरी समझें यह कितने आश्चर्य की बात है। यदि गुरुकुल के उपाध्याय अपना गुज़ारा ५०) से कम में नहीं कर सकते तो हम गुरुकुल के ब्रह्मचारियों को क्या त्याग का पाठ सिखा सकेंगे और जनता गुरुकुल के स्नातकों से त्याग की आशा कैसे लगा सकेगी। गुरुकुल का ही एक स्नातक जो विद्यालय विभाग में अध्यापक है और बालबच्चोंवाला है, उसका यदि ४०) या ५०) में खर्च चल सकता है तो एक उपाध्याय का ७५) में क्यों नहीं चल सकता, उसे १५०) ही क्यों चाहियें। यदि मैं देश की औसत आमदनी के हिसाब से बोलूं तब तो हमें यह पता लगेगा कि हमें १५) २०) में काम करना चाहिये। पर मैं क्रियात्मक बात कहना चाहता हूं अतः ७५) कहता हूं। देश की बहुत सी प्रतिष्ठित और ऊंचे दर्जे के सेवकों को रखने वाली संस्थाएं लगभग इतना ही वेतन देती हैं। मैंने सुना है कि सर्वेण्ट्स आफ इण्डिया सोसायटी के अध्यक्ष गोखले ७५) मासिक लेते थे। लाला लाजपतराय जी के लोक-सेवक-मण्डल के सेवक आज ५०) ७५) ही लेते हैं। इनकी योग्यता हमारे गुरुकुलीय उपाध्यायों से किसी तरह कम नहीं है। काशी विद्यापीठ में आगे वेतन कम किये जांय यह सोचा जा रहा है। वहां के वर्तमान आचार्य महोदय ने मुझे बताया है कि वे ७५) से ज़्यादा नहीं दे सकेंगे। बिहार विद्यापीठ में तो बहुत समय पहिले से वेतन ७५), ५०) ४०) हो चुके हैं। गांधी सेवा सघ में (जिसमें राजगोपालाचारी, राजेन्द्रबाबू, वल्लभभाई आदि सदस्य हैं) सेवक सदस्य के लिये अधिक से अधिक ७५) की मात्रा निश्चित है। युक्त प्रान्त (तथा कई अन्य प्रान्तों) के असेम्बली मेम्बरों का वेतन ७५) मासिक रखा गया है। चर्खा संघ में ऐसे ऊंचे, उच्च शिक्षा प्राप्त व्यक्ति भी काम कर रहे हैं जो अवश्य कहीं प्रोफ़ेसर पद भी पा सकते थे, पर उनमें ऐसे भी थोड़े ही हैं जो ५०) से अधिक लेते हों। ग्राम उद्योग संघ के कार्यकर्ता को तो १५) मासिक लेकर ही कार्य करना उचित है यह कहा जा रहा है और ऐसा ही किया जा रहा है और अभी हमने सुना है कि मध्यप्रान्त की सरकार ने नयी शिक्षा योजना चलाने के लिये ७० के करीब अध्यापक लेने थे पर उनके पास ५४०० से भी अधिक प्रार्थना पत्र आए। उनमें एम.ए. और बी.ए. लोगों के भी प्रार्थना पत्र थे—पर हमें मालूम है कि उनके साथ शर्त यह थी कि उन्हें २५ वर्ष तक १५) मासिक (मकान मुफ़्त) पर ही काम करने को तैयार होना होगा। इससे जहां हमारे देश की बेकारी की हालत का पता लगता है वहां देश की अन्य वास्तविक हालत का भी पता लगता है। क्या ऐसी हालत में हम ७५) को कम समझेंगे। मैं तो मनुष्यता की दृष्टि से पूछता हूँ कि हमारे कुल में वेतनों में इतना भारी भेद भी क्यों होना चाहिये कि एक उपाध्याय कुटुम्ब १५०) ले तथा एक हरिजन कुटुम्ब केवल १०) ले। मैंने चाहा है कि यह भेद अधिक से अधिक ७५) तथा कम से कम २०) रह जाए। यह बात तो हुई एक कुल की दृष्टि से पर वर्णाश्रम की दृष्टि से तो गुरुकुल में जो जितना बड़ा, पूज्य, ब्राह्मण हो वह उतना ही त्यागी, कम आवश्यकताओं वाला होना चाहिये। यदि वर्णाश्रम व्यवस्था गुरुकुल में ही न चली जाय तो कहां चली जाएगी। पर मैं तो गुरुकुल के वर्तमान उपाध्यायों को (आर्यसमाज के सर्वोच्च ब्राह्मणों को) भिक्षा करने को भी नहीं कह रहा हूँ किन्तु उन्हें ७५) मासिक नक़द स्वीकार करने को कह रहा हूँ इसमें क्या मुश्किल है यह मैं समझ नहीं सकता।

दूसरी बात और भी अधिक स्पष्ट है। हमारे यहां किताबी पाण्डित्य को कभी इतना महत्व नहीं दिया गया, उसे ज्ञान नहीं समझा गया हम तो सात्विक भाव के उद्रेक को, ईश्वरनिष्ठा को ही सच्चा ज्ञान मानते हैं। भगवद्गीता में अमानित्व, अदम्भित्व, अहिंसा क्षमा आदि को ज्ञान बताया है। किसी विषय की मालूमात (infor-mations) के संग्रह को नहीं। इसलिये मैं यहां तक कहता हूँ कि गुरुकुल में यदि किसी विषय के उपाध्याय या अध्यापक ऐसे न मिलें जिनका जीवन गुरुकुलीय वायुमण्डल को बनाने वाला हो तो उस विषय की पढ़ाई बेशक स्थगित रखी जाए पर अवांछनीय 'पण्डित' से उस विषय को पढ़वाना उचित नहीं। जब इन दो का मुकाबिला हो तो हमारे यहां किसी भी विषय का उतना महत्व नहीं है जितना उसके पढ़ाने वाले व्यक्ति का है। हम भी बाहर की नकल में यह समझते हैं कि यदि कभी कुछ समय के लिये हमें अपने विश्वविद्यालय में किसी विषय की पढ़ाई (उपर्युक्त आदर्शों के अभाव में) बन्द रखनी पड़े तो यह तो हमारे लिये बड़ी शर्म की बात है, पर यदि पढ़ाई का प्रबन्ध जारी रखा गया तो पढ़ानेवाले में मनुष्यता कितने घटिया दर्जे की है इसमें शर्मिन्दा होने की कोई बात नहीं मानी जाती। यह मैंने अपने आशय को स्पष्ट करने के लिये अति मात्रा का दृष्टान्त लेकर कहा। वैसे मैं यह नहीं समझता कि यदि इस दृष्टि से पूरा यत्न किया जाय तो किसी विषय के अध्यापन के लिये हमें गुरुकुलयोग्य व्यक्ति नहीं मिलेंगे और हम उसकी पढ़ाई स्थगित रखनी पड़ेगी। मेरे कथन का यह भी मतलब न लिया जाय कि गुरुकुल के वर्तमान अध्यापक व उपाध्यायों में से सब या कुछ भी रद्दी आदमी हैं। बाहरी स्थानों की दृष्टि से वे शायद सब बड़े अच्छे हैं। पर हमारा मानदण्ड बहुत ऊंचा है और ऊंचा होना चाहिए। अतः गुरुकुल के गुरु उतने उत्कृष्ट या उतने ऊंचे दर्जे के तो होने ही चाहिए जितने कि गुरुकुल जैसी संस्था से देश की जनता बल्कि दुनिया स्वाभाविक रूप से आशा करती है।

सांसारिक दुःख और परमेश्वर की दयालुता

[ले०—श्री ब्र० ओ३म्प्रकाश जी १२ब]

(गतांक से आगे)

इस प्रकार हमने देखा कि पीड़ा और मृत्यु की व्याख्या प्रेम और दया के द्वारा की जा सकती है। कोई यह आक्षेप कर सकता है कि क्या परमात्मा बिना पीड़ा के विश्व को नहीं बना सकता था। जब हम इस आक्षेप का उत्तर देने के लिए मुंह खोलते हैं तो हृदय कांप उठता है। हम अपने को उभयतोरज्जुपाशित पाते हैं। यदि नकारात्मक उत्तर दें तो हम परमात्मा को सर्वशक्तिमान् मानने से इनकार कर रहे होंगे और यदि हाँ में उत्तर दें तो करुणावरुणालय जगदीश्वर निर्दयी सिद्ध होगा। अस्तु।

हम इतना तो अवश्य कहेंगे कि चाहे कुछ हो ऐसे निराधार आक्षेप उथले दिल वाले लोग ही करते हैं। वे यह नहीं सोचते कि हम अल्पज्ञ हैं और जब तक हम परमात्मा और उसके बनाये हुए संसार के विषय में पर्याप्त ज्ञान नहीं प्राप्त कर लेते तब तक हम किसी दूसरे संसार की कल्पना निरापद रूप से नहीं कर सकते। इसमें कोई सन्देह या विवाद नहीं है कि पाप से कष्ट होता है क्योंकि यह तो हमारी अन्तरात्मा कहती है। किन्तु इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं। विस्मय तो इस बात को देख कर होना चाहिये कि हमारे किये पापों का फलरूप कष्ट बहुत कम प्राप्त होता है। लेकिन अब समस्या यह पैदा होती है कि दुनिया में पाप का क्या प्रयोजन है? पीड़ा से होने वाले लाभ तो हमें मालूम होगये किन्तु प्रश्न यह है कि पाप का क्या उपयोग है जिससे इसे भी परमात्मा ने उत्पन्न किया है यह कहा जा सके? पाप तो मनुष्य शैतान या फरिश्ते करते हैं परमात्मा के पाप करने का तो कोई उदाहरण नहीं मिलता। किन्तु फिर प्रश्न यह हो सकता है कि परमात्मा ने पाप कर सकने वाले प्राणियों का सर्जन क्यों किया—उसने पाप की फैलती हुई बाढ़ को शुरू में ही क्यों न रोक दिया?

हमारा तो निश्चय है कि विचारशील लोग बचपन में भले ही ऐसे निराधार प्रश्न करते हों मगर एक विशेष समय के पश्चात् वे इस आदत को त्याग देते हैं। हम मानते हैं कि पाप को जगत् पुण्य रह सकता है किन्तु प्रतिद्वन्द्वि रूप में अर्थात् पुण्य की सत्ता पाप की सत्ता के बगैर नहीं हो सकती। पाप दोष रूप है - प्रकृति का विकार है—उसका आवरण है। यह नियम नहीं है, नियम का भङ्ग है। परमेश्वर का तो स्वभाव ही अच्छा है, वह अच्छे मार्ग से कभी भटका हो नहीं। हां! पाप और परमात्मा के बीच माध्यम है मनुष्य जिनके द्वारा पाप किया जाता है। किन्तु साथ ही प्रत्येक व्यक्ति में स्वतन्त्रकर्तृत्व है। परमेश्वर तो अपने बनाए जीवों को अच्छी चीज़ें देता है किन्तु उसने साथ में एक स्वतन्त्रता भी दी है जो किसी अविवेकी के पास जाकर दूषित भी कर सकती है। यह स्वतन्त्रकर्तृत्व का दान भी परमोपयोगी है क्योंकि इसके बिना मनुष्य नैतिक (Moral) नहीं हो सकता। क्योंकि नैतिकता का अर्थ यही है कि 'हमें यह करना चाहिये - यह हमारा आदर्श है।' किन्तु यह कहना व्यर्थ ही होगा यदि मनुष्य उसे कर न सकता हो—उसमें स्वतन्त्रकर्तृत्व न हो। इस स्वतन्त्रकर्तृत्व का तात्पर्य है—परमात्मा की इच्छा का पूर्ण या अपूर्ण करना। परमेश्वर ने तो हमें इस प्रयोजन से स्वतन्त्रकर्तृत्व दिया है कि मनुष्य उसे एक उत्तम दिशा में स्वयं ही सीमित कर दे किन्तु बेसमझ मानव ने उसे नहीं समझा, उसका दुरुपयोग करके पापी कहलाया।

अपूर्ण

गांधी जी की आशङ्का

[लेखक—श्री पं० ब्रह्मानन्द जी]

अभी एक चीनी प्रोफेसर का गान्धी जी से संवाद अख़बारों में निकला है, जिसमें गांधी जी ने इस आशय की बात कही थी कि इस समय जो कुछ प्रान्तों में कांग्रेस को प्रान्तीय स्वराज्य प्राप्त हुआ है, मुझे तो आशङ्का है कि कहीं यह कांग्रेस को अपनी स्थिति से नीचे न गिरा दे। यह उनकी आशङ्का बहुत ही ध्यान देने योग्य है। यह एक स्वाभाविक बात है कि बहुत दिनों से पीड़ित मनुष्य को थोड़ा सा सुख मिलता है तो वह उसी में मस्त हो जाता है और आगे के सुख की चिन्ता नहीं करता। अन्ततः जो सुख उसे प्राप्त रहता है वह भी नष्ट हो जाता है। यह बहुत बड़ा भय है कि बहुत कष्ट-सहन करने के बाद कुछ प्रान्तों में आंशिक स्वराज्य को पाकर कांग्रेस भी इसी उपर्युक्त मनोवृत्ति का शिकार न हो जावे। हमारे बड़े २ राष्ट्रीय नेता समय २ पर इस आशङ्का को प्रकाशित करते रहे हैं। कुछ लोग तो इसी कारण से मन्त्रिपद ग्रहण तथा शासन-सुधारों के साथ सहयोग को शुरू से ही अनुचित बताते आ रहे हैं, जिनमें श्री प० जवाहरलाल जी का नाम विशेषतः उल्लेखनीय है। गांधी जी ने भी इस को विवशता की ही स्थिति में स्वीकार किया था। वर्तमान परिस्थिति में कौंसिल-प्रवेश तथा मन्त्रिपद ग्रहण उचित है या नहीं, इसका निर्णय तो सामयिक परिस्थिति को देखते हुए यही हो सकता है कि इस समय के लिये यह उचित ही है और यही सोचकर गांधी जी ने इसका समर्थन भी किया था। पर इस आशङ्का को, जो कि गांधी जी ने प्रकट की है, एक क्षण के लिये भी देश को नहीं भुलाना चाहिए। यद्यपि मनुष्य की आन्तरिक दूषित प्रवृत्तियों के कारण ऐसा होना कठिन लगता है, पर स्वतन्त्रता की प्राप्ति कोई खेल नहीं है, इसके लिये देश को प्रतिक्षण आत्मनिरीक्षण के लिये तत्पर होना पड़ेगा। राष्ट्रपति श्री सुभाषचन्द्र बोस ने कहीं भाषण देते हुए कहा था कि यह नहीं समझना चाहिये कि सरकार इस समय लापरवाह है, वह हमेशा मौके की ताक में है, जभी मौका देखेगी उस समय कांग्रेस को दबाने से न चूकेगी। और प्रमाद नहीं करना मनुष्य का किसी परिस्थिति विशेष में धर्म नहीं, अपितु हर समय के लिये धर्म है।

[शेष पृष्ठ सात पर]

गुरुकुल

६ सितम्बर शुक्रवार १९३८

महात्मा गांधी चिरंजीवी हों

आगामी २ अक्तूबर को महात्मा गांधी अपने अमूल्य जीवन के ६९ वर्ष समाप्त कर ७० वें वर्ष में प्रवेश करेंगे। सारे देश में उनकी ७०वीं वर्ष गांठ पिछले वर्षों से भी अधिक उत्साह और अनुभूति के साथ मनाई जायेगी और उनके दीर्घायुष्य और स्वास्थ्य के लिए प्रार्थनायें की जायेंगी। हम भी इस शुभ अवसर पर जगद्वन्द्य महात्मा जी के चरणों में अपने अकिञ्चन श्रद्धा-सुमन समर्पण करते हैं और उस अदृश्य शक्ति से जो कि समस्त ब्रह्माण्ड का संचालन करती है, भिक्षा मांगते हैं कि वह अभी न सिर्फ पददलित भारतवर्ष का अपितु समस्त मानव समाज का पथ-प्रदर्शन करने के लिए महात्मा जी को कई वर्षों तक हमारे बीच में रक्खे और उन्हें स्वास्थ्य प्रदान करें।

गांधी जी की आत्मा फैल कर इस समय समस्त भारत राष्ट्र को अनुप्राणित कर रही है। सिर्फ इतना ही नहीं, उनकी आत्मा भारत की सीमाओं से बाहिर भी एक सूक्ष्म स्पन्दन पैदा कर रही है। ज्यों ज्यों मानव समाज का सन्ताप बढ़ता चला जाता है, नैतिकता के ऊपर पाशविक शक्ति प्रबल होती चली जाती है, संसार सामरिक सज्जा से दबता चला जाता है, मनुष्यों व देशों की हिंसा वृत्ति सुरसा के बदन की भांति बढ़ती चली जाती है, त्यूं २ गांधी जी के चरित्र और विचारों की छाप संसार पर गहरी होती चली जाती है। वे अपने अन्तिम लक्ष्य तक पहुँचने में तत्काल सफल हों या न हों, उनके विचार किसी देशविशेष व युगविशेष के लिए चाहे उपादेय व व्यावहारिक न हों, लेकिन इतना स्पष्ट है कि उनकी शिक्षा उस ध्रुवतारे के समान है जिस तक मनुष्य जाति को पहुँचना है और जिस तक पहुंचने में मनुष्य जाति का कल्याण है। मनुष्य जाति के इतिहास में जब जब धर्मग्लानि को दूर करने का प्रयत्न व परीक्षण किया गया है तो वह इसी दिशा में किया गया है। गांधी जी उन विश्व विभूतियों में से हैं जो सर्वसाधारण के लिए बहुत कुछ रहस्यमय और पूजा के योग्य होती हैं। ऐसे व्यक्तियों को अपने कार्यों में तत्काल चाहे सफलता प्राप्त न हो लेकिन वे निर्विवाद रूप से मानव समाज को पहले से कुछ ऊंचा उठाती हैं। यही उनकी सफलता है। वे आटे में खमीर का काम करती हैं।

फिर गांधी जी की सफलता तो भारतवर्ष में और उससे बाहिर उनकी मान्यता और प्रतिष्ठा से स्पष्ट है। आज पददलित भारत राष्ट्र की श्रद्धा, साधना और आशा उनमें केन्द्रित है। उनके तो वे मसीहा हैं। उनका पिछले २० वर्षों का इतिहास भारतवर्ष का इतिहास है। उन्होंने अपने समस्त स्वार्थों, सुख-दुःखों व आकांक्षाओं को छोड़ कर अपने को देश के साथ एकसात् कर दिया है। ऐसा मालूम होता है कि सारे देश का प्राण वर्धा के पास सेगांव में केन्द्रित है। जब वे कहते हैं कि अब मेरे जीवन का अवसान निकट आ रहा है तो सारा राष्ट्र उत्पीड़ित हो उठता है। करोड़ों घरों से मूकध्वनि उठती है कि 'अभी गांधी जी की बहुत अधिक आवश्यकता है। परमप्रभु उन्हें दीर्घायुष्य और स्वास्थ्य प्रदान करें।' क्या पहले भी कभी किसी एक व्यक्ति के लिए इतने अधिक प्राणियों ने चिन्ता प्रकट की है?

मालूम तो ऐसा होता है कि गांधी जी के बिना भारतवर्ष का काम ही नहीं चल सकता। अभी देश को चलने के लिए उनकी अङ्गुली के सहारे की आवश्यकता है। इस समय देश के बहुत बड़े हिस्से में जो शासनयंत्र चल रहा है उसके पीछे उन्हीं का दिमाग़ है। उनके पास प्रत्येक राष्ट्रीय समस्या का हल है, क्योंकि उन्होंने अपने जीवन को इन्हीं समस्याओं के चिन्तन में लगा दिया है। आज इस डेढ़ हड्डी-पसली के आदमी के सामने विशाल ब्रिटिश साम्राज्य मात है और भारतवर्ष की राष्ट्र सभा भी उसके बिना पंगु है। इस समय नैतिक व आध्यात्मिक जगत् में भारतवर्ष की जो ऊंची साख है, और राजनीतिक जगत में भी जो उस का अस्तित्व अनुभव किया जाने लगा है वह सब गांधी जी की ही साधना, आत्मत्याग और प्रतिभा का परिणाम है। इसका श्रेय उन्हीं को है। उनके अनुयायी उनके भक्त हैं। उनके विरोधी उनके प्रशंसक हैं।

ऐसे व्यक्ति की अभी भारतवर्ष को और संसार को बहुत आवश्यकता है। वे भटके हुए मानव समाज के सामने उन चिरन्तन सत्यों को नये जामे और नये पैमाने में प्रकाशित कर रहे हैं जिनमें समाज को नष्ट होने से बचाने और ऊंचा उठाने की शक्ति है। वर्षों पूर्व कहे हुए अमेरिकन पादरी रेवरेण्ड डा० होम्स के शब्द आज भी उतने ही हैं—

"महात्मा गांधी समस्त संसार के जीवन के मध्य में खड़े हैं और कई शताब्दियों का भाग्य अपनी मुट्ठी में बन्द किये हुए हैं।"

महात्मा गांधी चिरंजीवी हों।

वेद में कविता

[ले०—श्रीयुत आनन्द]

(गताङ्क से आगे)

निम्न मन्त्र को ध्यानपूर्वक देखिये, वह ध्वनि का बहुत उत्तम उदाहरण है—

वयः सुपर्णा उपसेदुरिन्द्रं,
प्रियमेधा ऋषयो नाधमाना,
अपध्वान्तमूर्णु हि पूर्धि चक्षु,
र्मुमुग्ध्य स्मान् निधयेव बद्धान्

सुनहले पंखों वाली किरणें सूर्य के समीप पहुंची और उन्होंने याचना की कि, प्रभो सारे संसार में गाढ़ अन्धकार छा रहा है, सम्पूर्ण प्राणी नेत्र शक्ति से विहीन हो रहे हैं, हमें आज्ञा दीजिये कि हम अन्धकार को छिन्न विच्छिन्न करके संसार के प्राणियों को पुनः नेत्र शक्ति प्रदान करें। हमें जो आपने अपने पाश में जकड़ रखा है, उससे मुक्त कर दीजिये।

इस मन्त्र में किरणों के पृथ्वीतल पर आगमन के विषय में कितनी हृद्य कल्पना की गई है। इस कल्पना को पढ़ कर हमें इसमें से एक और बात की ध्वनि भी निकलती हुई दिखाई देती है। वह यह कि, नवस्नातक अपने आचार्य के चरणों में उपस्थित होते हैं और याचना करते हैं, गुरो, संसार में अज्ञानरूपी अन्धेरा छा रहा है। सबकी विवेक चक्षु विनष्ट हो गई है। कृपया हमें आदेश दीजिये अब हम आपसे दीक्षा ग्रहण कर संसार में जावें और संसार के सम्पूर्ण अज्ञानान्धकार को विलीन करके सर्वत्र ज्ञानरूपी प्रकाश को फैला दें। इस मन्त्र की जितनी प्रशंसा करें कम ही है।

एक अलङ्कार होता है, विरोधाभास अलङ्कार। इस अलङ्कार में विशेषता यह है कि रचयिता अपनी वाक्य रचना इस प्रकार करता है कि, उन वाक्यों में परस्पर विरोध दीख पड़े; किन्तु वास्तव में विरोध न हो। संस्कृत का एक श्लोक है—

वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि
लोकोत्तराणां चेतांसि कोहि विज्ञातुमर्हति ?

इस श्लोक में लोकोत्तर व्यक्तियों के चित्त को वज्र से भी कठिन और फूल से भी कोमल बतलाया गया है, दीखने में परस्पर विरोध प्रतीत होता है, किन्तु है नहीं। इसी प्रकार विरोधाभास का एक वैदिक उदाहरण भी लीजिये—

तदेजति तन्नैजति, तद्दूरे तद्वन्तिके।
तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः ॥

इस मन्त्र का अर्थ है, वह भगवान स्पन्दनशील है और स्पन्दनशील नहीं भी है; वह दूर से दूर होता हुआ भी समीप से समीप है; वह सम्पूर्ण चराचर चक्र के अन्दर निविष्ट है और इससे बहिर्गत भी है। इस विरोधाभास से भगवान् के स्वरूप पर बड़ा अच्छा प्रकाश पड़ता है

अब हम अलङ्कारों के विषय को समाप्त करके अगले विषय प्रकृति चित्रण पर आते हैं।

वेद में प्राकृतिक दृश्यों तथा प्रकृतिगत पदार्थों का बाहुल्य से वर्णन है। प्रकृति चित्रण पर आपको वेद में असंख्य सूक्त मिलेंगे। ये सूक्त इतने सुन्दर हैं कि, इच्छा होती है, उन सब सूक्तों का इन पृष्ठों पर उतार कर उनके सौन्दर्य का दिग्दर्शन कराया जावे; किन्तु यह सम्भव नहीं है। अतः हम कुछ एक प्राकृतिक चित्रों का दिग्दर्शन कराते हैं:—

वायु वर्णन—

वातस्य नु महिमानं रथस्य,
रुजन्नेति स्तनयन्नस्य घोषः।
दिविस्पृग् यात्यरुणानि कृण्वन्,
उतो एति पृथिव्या रेणुमस्यन्।
अन्तरिक्षे पथिभिरीयमानो,
न निविशते कतमच्चनाहः।
अपां सखा प्रथमजा ऋतावा
क्वस्विज्जातः कुत आ बभूव ?
आत्मा देवानां भुवनस्य गर्भो,
यथावशं चरति देव एषः।
घोषा इदस्य शृण्विरे न रूपम्।
तस्मै वाताय हविषा विधेम ॥

सूर्योदय वर्णन—

चित्रं देवाना मुदगादनीकं,
चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः।
आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं,
सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च ॥
सूर्यो देवी मुषसं रोचमानां,
मर्यो न योषामभ्येति पश्चात्।
यत्रा नरो देवयन्तो युगानि,
वितन्वते प्रतिभद्राय भद्रम् ॥
भद्रा अश्वा हरितः सूर्यस्य,
चित्रा एतग्वा अनुमाद्यासः।
नमस्यन्तो दिव आ पृष्ठमस्थुः,
परिद्यावा पृथिवी यन्ति सद्यः ॥

उषा वर्णन—

एषा दिवो दुहिता प्रत्यदर्शि
ज्योतिर्वसाना समना पुरस्तात्।
ऋतस्य पन्थामन्वेति साधु-
प्रजानतीव न दिशो मिनाति॥

इस उषा का वर्णन तो वेदों में बहुत स्थानों पर और बहुत सुन्दर किया गया है। हमने केवल निदर्शन के लिये यहां पर एक ही मन्त्र उपस्थित किया है। यदि किसी काव्यप्रेमी को आज से सहस्रों वर्ष पूर्व गाई जाने वाली कविताओं का रसास्वादन करना हो तो उसको उषा देवता वाले सूक्तों का अवश्य अध्ययन करना चाहिए।

पर्जन्य वर्णन—

वि वृक्षान् हन्त्युत हन्ति रक्षसो
विश्वं बिभाय भुवनं महावधात्।
उतानागा ईषते वृष्ण्यावतो
यत्पर्जन्यः स्तनयन् हन्ति दुष्कृतः॥

× × ×

यस्य व्रते पृथिवी नन्नमीति
यस्य व्रते शफवज्जर्भुरीति।
यस्य व्रत ओषधीर्विश्वरूपाः
स नः पर्जन्य महि शर्म यच्छ॥

नदी वर्णन—

प्र पर्वतानामुशती उपस्थात्
अश्वे इव विषिते हासमाने
गावेव शुभ्रे मातरा रिहाणे
विपाट्छुतुद्री पयसा जवेते।

इत्यादि नाना प्रकार के प्राकृतिक चित्रों का रेखाङ्कन किया हुआ आपको वेदों में मिलेगा। इन प्राकृतिक दृश्यों के वर्णन में किसी प्रकार की क्लिष्ट कल्पना किंवा कृत्रिमता नहीं मिलेगी। ऐसा स्वाभाविक, मनुष्यों के हृदय में उत्पन्न होने वाले भावों का चित्रण वैदिक काव्य की एक गौरवपूर्ण विशेषता है।

अब हम इस विषय को छोड़कर अगले विषय शैली पर आते हैं।

वेद में किसी जड़ पदार्थ को व्यक्ति मान कर प्रायः कविता की जाती है। अंग्रेजी भाषा में इसको 'पर्सोनिफिकेशन' कहते हैं। उदाहरण के लिये आप उस सूक्त को लीजिए जिसकी देवता 'नद्यः' हैं। इस सूक्त में—विश्वामित्र और नदियों के परस्पर वार्तालाप का बड़ा ही हृदयग्राही वर्णन है।

विश्वामित्र नदियों को सम्बोधन करके कहता है—

रमध्वं मे वचसे सोम्याय ऋतावरीरुप मुहूर्त्तमेवैः
प्रसिन्धुमच्छा बृहती मनीषा अवस्युरह्वे कुशिकस्य सूनुः

इस मन्त्र में जो 'कुशिकस्य सूनुः' शब्द आया हुआ है, उसको पढ़कर हमें तो कालिदास का स्मरण हो आता है; क्योंकि कालिदास भी इसी प्रकार लिखा करते हैं। निम्न श्लोक को देखिये—

तथेति कामं प्रतिशुश्रुवान्रघो
र्यथागतं मातलिसारथिर्ययौ।
नृपस्य नातिप्रमनाः सदोगृहं
सुदक्षिणासूनुरपि न्यवर्त्तत॥

यहां रघु के लिए कालिदास ने 'सुदक्षिणा सूनु' लिखा है। अस्तु। उपर्युक्त मन्त्र में विश्वामित्र कहता है—

हे प्रभूत जल वाली नदियो, मेरे सोम्य वचन को मानकर थोड़ी देर के लिये अपने वेग को मन्द कर दो। मैं कुशिक का पुत्र कौशिक विश्वामित्र, तुम्हारे ऊपर से आने जाने के लिए मार्ग बनाना चाहता हूँ, मैं दिल से कहता हूँ, तुम नदीसंगम के इस उत्कट वेग को कम कर दो।

इस पर नदियों ने विश्वामित्र को उत्तर दिया—

इन्द्रो अस्माँ अरदद्वज्रबाहुरपाहन्वृत्रं परिधिं नदीनाम्
देवोऽनयत्सविता सुपाणिस्तस्य वयं प्रसवे याम उर्वीः

उस वज्रबाहु इन्द्र ने खोदकर हमारा रास्ता तैयार किया है, उसी ने नदियों को घेरने वाले जो पर्वत या टीले इत्यादि आते हैं उनको तोड़ फोड़ कर साफ कर दिया है। वही सुवर्णपाणि सविता देव हमारा नेतृत्व करता है, हम उसी के आदेशानुसार बह रही हैं। इस का अभिप्राय यह हुआ कि, जिस देव ने हमें बहने के लिये नियुक्त किया है उस की आज्ञा के अतिरिक्त अन्य किसी की भी आज्ञा को मानने में हम समर्थ नहीं हैं।

अन्त में नदियों ने विश्वामित्र की बात मान ली और कहा—

आ ते कारो शृणवामा वचांसि, ययाथ दूरादनसा रथेन
नि ते नंसै पीप्यानेव योषा, मर्यायेव कन्या शश्वचै ते॥

हे कारो, हे महत्कार्य सम्पादन करने की आकांक्षा वाले विश्वामित्र, हम तेरी बातों को मान लेती हैं। तू बहुत दूर से आ रहा है, इसलिये अपने शकट और रथ के साथ निकल जा। यह ले हम तेरे लिये झुक जाती हैं, जैसे कि बच्चे को दूध पिलाने के लिये कोई माता झुक जाती है, या पुरुष का आलिङ्गन करने के लिये कोई कन्या झुक जाती है।

यह तो हुआ पर्सोनिफिकेशन का उदाहरण, अब कुछ उदाहरण पदमैत्री के भी सुन लीजिये। संस्कृत के कवियों ने पदमैत्री का अवलम्बन बहुत किया है। कालिदास का एक श्लोक है—

ततो मृगेन्द्रस्य मृगेन्द्रगामी
वधाय वध्यस्य शरं शरण्यः।
जाताभिषङ्गो नृपतिर्निषङ्गा
दुद्धर्तुमैच्छत्प्रसभोद्धृतारिः॥

इस श्लोक में कितनी पदमैत्री है! ठीक इसी प्रकार का वैदिक उदाहरण भी देखिये—

ऋचा कपोतं नुदत प्रणोदम्
इषं मदन्तः परि गां नयध्वम्।
संयोपयन्तो दुरितानि विश्वा
हित्वा न ऊर्जं प्रपतात्पतिष्ठः॥

'नुदत प्रणोदम्' और 'प्रपतात्पतिष्ठः' में पदमैत्री विद्यमान है।

[अपूर्ण]

गुरुकुल समाचार

स्वास्थ्य समाचार

ब्रह्मचारी आनन्दप्रिय १४ वीं श्रेणी इन्फ्लुएन्ज़ा ज्वर से। ब्र० सुखदेव ४र्थ, ब्र० वेदप्रकाश ७म श्रेणी से। तथा ब्र० नारायणदास ३य मलेरिया ज्वर से पीड़ित हैं।

गत सप्ताह उपरोक्त ब्रह्मचारी रोगी हुए थे पर अब सब अच्छे हैं।

यह सप्ताह विश्ववन्द्य महात्मा गान्धी जी की पुण्य जयन्ती का था। इस पुण्य अवसर पर एक विशाल चर्खा यज्ञ का आयोजन किया गया था। सातों दिन लगातार चर्खा यज्ञ कर दरिद्र नारायण के प्रति अपना श्रद्धा व प्रेम का उत्कृष्ट नमूना प्रदर्शित किया था। तकली तथा चर्खे दोनों से ही इस महोत्सव पर काम लिया गया था। महाविद्यालय के प्रथम वर्ष तथा द्वितीय वर्ष के बन्धुओं ने इस बार विशेष हिस्सा लिया है। इस महान् कार्य का उत्तम संचालन ब्र० वीरेन्द्र उपाध्याय ने किया था जिसके लिये वे सभी गुणग्राहकों के प्रशंसा के पात्र हैं।

रविवार ४ सितम्बर मध्याह्नकाल में दिल्ली तथा पंजाब के २०० के लगभग विद्यार्थी अपनी युक्त प्रान्त की शिक्षा यात्रा पर इस कुल में भी आये। कुल का शान्त तथा मनोरम वातावरण देख कर सब आगन्तुक महानुभाव बहुत ही प्रसन्न हुए। थोड़ी देर रुक कर पुनः सब अपनी यात्रा पर अग्रसर हो गये।

तीनों महाविद्यालयों की षाण्मासिक परीक्षा २३ सितम्बर से प्रारम्भ है। सब ब्रह्मचारी पूर्ण मनोयोग से परीक्षा की तैय्यारी में संलग्न हैं।

बरसात समाप्ति पर है, इधर सप्ताह भर से वर्षा बिलकुल नहीं हुई है। मौसम साफ हो गया है। कुछ दिनों से ऋतु परिवर्तन के अवसर पर कुछ ब्रह्मचारियों को खांसी जुकाम की हल्की सी शिकायत हो गई थी—जो कि साधारण चिकित्सा से अब दूर हो गई है। सायंकाल के समय नियमित रूप से कुश्ती, गेन्द बल्ला, हस्त कन्दुक, रिंगनी आदि व्यायाम व खेल होते हैं जिनमें कि सभी ब्रह्मचारी खूब दिलचस्पी लेते रहते हैं।

खेल, पढ़ाई, सभा, पत्रिका आदि से कुलवासी अपनी मानसिक तथा शारीरिक भूख को शान्त करते हैं। आयुर्वेद पत्रिका का 'नाम्बे अंक' स्वर्गीय डाक्टर गोपाल रामचन्द्र जी नाम्बे की पुण्य स्मृति में उनकी बरसी पर २३ सितम्बर को निकाला जा रहा है। इस अंक में उपाध्याय महानुभाव तथा महाविद्यालय के ब्रह्मचारी अपना २ हिस्सा ले रहे हैं।

गुरुकुल सूरत

विगत वर्षों की परम्परा के अनुसार इस वर्ष भी गुरुकुल का हौकी तथा वालीबाल का दल सूरत और भरूच की ओर विजय यात्रा के लिए २० अगस्त को निकल पड़ा। २१ अगस्त की प्रातःकाल सूरत के अनाविल बार्डिङ्ग के साथ वालीबाल का मैच हुआ। अनाविल बार्डिङ्ग सूरत का वालीबाल का चेम्पियन है। मैच बहुत ही मुकाबिले का हुआ। प्रारम्भ में गुरुकुल दल हारता हुआ नज़र आता था परन्तु धैर्य और हिम्मत ने पासा उलट दिया। प्रथम खेल के अन्त में बार्डिंग १६ वि २१ पाइन्ट से हार गया। दूसरा खेल भी बहुत उतार चढ़ाव वाला हुआ। बोर्डिंग ८ पाइन्ट बना गया और गुरुकुल अभी शून्य पर ही था। परन्तु भगवान ने हमारा साथ दिया। १२ पाइन्ट पर बार्डिंग को जा पकड़ा और अब असली कशाकशी शुरू हुई। कभी बार्डिंग आगे बढ़ जाता तो कभी गुरुकुल। २० वें पाइन्ट पर फिर दोनों मिल गए और खेल लम्बी होगई। अन्त में दूसरी खेल में भी गुरुकुल दल विजयी रहा।

दूसरा मैच हौकी का था। यह सायंकाल सूरत पुलिस टीम के साथ होना था। पुलिस अधिकारी प्रतिवर्ष गुरुकुल के साथ बड़े प्रेम का व्यवहार करते हैं। अपनी ओर से हर प्रकार की सुविधायें हमको देते हैं इसलिए हम उनके आभारी हैं। सायंकाल ५॥ बजे मैच प्रारम्भ हुआ। आधे समय से पूर्व ही पुलिस दल ने गुरुकुल दल पर एक गोल चढ़ा दिया, परन्तु अभी ५ मिनट भी न बीतने पाये कि गोल उतर गया। विश्राम काल के बाद फिर खेल प्रारम्भ हुआ। प्रथम ही मिनट में पुलिस पर एक गोल चढ़ गया और उसके बाद ही दूसरा भी हो गया। पुलिस पस्तहिम्मत होगई और गुरुकुल दल २ गोलों से जीत गया।

पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट के आग्रह से २१ अगस्त को प्रातः १० बजे फिर मैच प्रारम्भ हुआ। वही कल का किस्सा दुहराया गया। पुलिस ने पहल की परन्तु गोल उतर कर उन पर फिर २ गोल और हो गये। खेल समाप्ति तक पुलिस ने एक गोल तो उतार दिया परन्तु एक रह ही गया।

उसी दिन दुपहर की एक्सप्रेस से हम भरूच पहुंचे। कई दिन से दौड़ धूप करने के कारण पैरों ने जवाब दे दिया था। सवेरे १० बजे मैच खेल कर सायंकाल फिर खेलना दुस्साहस ही कहा जा सकता है। परन्तु छुट्टी के अभाव में और कुछ चारा भी न था। मैच प्रारम्भ हुआ। हमारे में जोश तो था परन्तु हिम्मत न थी। खैर, फिर किसी तरह एक गोल चढ़ाया और भगवान् का धन्यवाद दिया। गोल अन्त तक न उतर सका और भरूच टीम हार गई।

[पृष्ठ तीन का शेष]

प्रमाद रहित होने पर ही किसी व्यक्ति, समाज या राष्ट्र का अस्तित्व रह सकता है। खासकर, आजकल के वैज्ञानिक युग में, जब कि देश और काल की दूरी अधिकाधिक कम होती जा रही है, प्रमादी राष्ट्र के हमेशा दूसरे राष्ट्र के द्वारा ग्रसित हो जाने की आशङ्का है। अतः बुद्ध का यह वचन हमेशा सबको स्मरण रखने योग्य है कि—

"अप्पमादो अमत पदं, पमादो मच्चुनो पदं।
अप्पमत्ता न मीयन्ति, ये पमत्ता यथा मता।

अर्थ—अप्रमाद अमृत का मार्ग है और प्रमाद मृत्यु का। अप्रमत्त पुरुष मृत्यु को नहीं प्राप्त होते और जो प्रमत्त हैं वे मरे हुओं के सदृश हैं।

चौधरी हुलासराय के प्रबन्ध से गुरुकुल प्रेस गुरुकुल कांगड़ी में मुद्रित तथा प्रकाशित।

* ओ३म् *

"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत"   Reg. No. A. 2927

गुरुकुल

सम्पादक—भारतभूषण वेदालङ्कार

एक प्रति का मूल्य -)   [गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख-पत्र]   वार्षिक मूल्य २॥)

वर्ष ३]   गुरुकुल काङ्गड़ी, शुक्रवार १ आश्विन १९९५; १६ सितम्बर १९३८   [संख्या १८

गायत्री मन्त्र

[ले०—उपा० लालचन्द जी एम० ए०]

सविता देव के उस वरने योग्य शुद्ध तेज को हम धारण करते हैं, मन्त्र में सबसे पहले तत् शब्द का प्रयोग हुआ है। 'तत्' उस 'भर्गः' तेज को 'धीमहि' हम ध्यान करते या उसको धारण करते हैं और बिना ध्यान करने के वह तेज धारण हो भी कैसे सकता है। तत् शब्द के प्रयोग से मनुष्य का ध्यान बलपूर्वक और एकाग्रता से रूप रंग से हट कर रूप रंग के भीतर घुस कर उस प्रकाश की ओर जाता है जिससे ही सब रूप रंग आकर्षक हो रहे हैं। सविता देव ने कितनी महान और कितनी सुन्दर सृष्टि रची है। एक एक रूप, एक एक गंध, एक एक शब्द रसिक को पग २ पर मुग्ध कर देता है। कभी २ खयाल आता है मालिक कितना बेपर्वाह है, बनाने में तो मालिक है मगर बिगाड़ने में बालक है कितने सुन्दर रूप रच कर उनको मिट्टी में मिला देता है कैसा बेपरवाह है। अनन्त सृष्टियों में अनन्त सुन्दर और महान् रूप प्रभु ने रचे हैं। कभी कभी तो चलते समय विचार आता है जिस मिट्टी को तू पांव के नीचे रौंदता चला जा रहा है जाने कितने सुन्दर रूपों का वह आधार बनी है, ओह! बहुमूल्य मट्टी तू न होती तो प्रभु अपनी लीला कैसे दिखाता। प्रकृति और पुरुष के मेल का ही सब खेल है।

> ओ३म् भूर्भुवः स्वः,
> तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि
> धियो यो नः प्रचोदयात् ॥

यह अनेक सुन्दर रूप हमारे चित्त को अपनी ओर खींचते हैं हम एक एक पर मुग्ध होते हैं, एक एक को चुनते हैं, एक एक से प्यार करते हैं एक छोटे से दिल के करोड़ों टुकड़े कर देते हैं, परेशान होते हैं हैरान होते हैं इस अनन्त सौन्दर्य को कैसे अपने अन्दर धारण करें। भाई भीतर घुस, बाहर से यह सौन्दर्य नहीं पकड़ा जाने का, गहरी दृष्टि से देख और उस शुद्ध तेज को धारण कर जिसने अनन्त सौन्दर्य की लीला रचाई है सौन्दर्य का सार अन्दर है, उस सार से प्यार कर, वह सार ही चुनने योग्य है, अनन्त रूपों को कौन पकड़ सकता है यह तो चलायमान हैं। इनको पकड़ने की चेष्टा करने से तो तेरा चित्त चलायमान हो जायगा। एके साधे सब सधे, सब साधे सब जाये। मनका के अन्दर धागे को देख, धागा तुझे धोखा नहीं देगा, सूत्रात्मा ही वरने योग्य है, उसे पकड़ और ज़ोर से पकड़। इसे पकड़ेगा तो भवसागर से पार हो जायेगा। यह शुद्ध तेज तुझे मार्ग दिखाने के लिए टार्च का काम करेगा। हे प्रभो अनन्त जन्मों में मैंने अनन्त रूपों को पकड़ा मगर उन रूपों ने मुझे धोखा दिया मैं उनसे प्यार करता रहा मगर वह बदल गए या भाग गए और मैं विरह अग्नि में तपता रहा। अब तो प्रभो तेरे उस शुद्ध तेज को पकड़ने की तमन्ना है जो एकरस है जो सब रसों का रस है जो सब सौन्दर्य का सार है, उस प्रेममय प्रकाश को जो एक मात्र चुनने योग्य है हम अपने अन्दर धारण करते हैं। हम शान्त होकर आसन जमा कर एकाग्र होकर उस तेज को अपने अन्दर धारण करते हैं और अपने आपको इसके आगे समर्पित करते हैं यही हमारी बुद्धियों को और कर्मों को प्रेरित करे, इस तेज की सहायता से हम ठीक ठीक सम्मति बना सकें, ठीक ठीक निर्णय कर सकें, ठीक ठीक बोध प्राप्त कर सकें, हर एक वस्तु का हमें यथार्थ बोध प्राप्त हो और हम सारे कर्मों को ठीक ढंग से ज्ञान पूर्वक कर सकें।

(सवितुः) प्रेरक उत्पादक (देवस्य) परमात्मदेव के (तत्) उस (वरेण्यं) वरने योग्य (भर्गः) शुद्ध तेज को (धीमहि) हम धारण करते हैं (यः) जो धारण किया हुआ तेज (नः) हमारी (धियः) बुद्धियों को कर्मों को (प्रचोदयात्) सदा सन्मार्ग पर प्रेरित करता रहे।

वेद में कविता

[ले०—श्रीयुत आनन्द]

(गताङ्क से आगे)

निम्न वेद मन्त्र में:—

स वह्निभिर्ऋक्वभिर्गोषु शश्वन्,
मितज्ञुभिः पुरुकृत्वा जिगाय,
पुरः पुरोहा सखिभिः सखीयन्।
दृळ्हा रुरोज कविभिः कविः सन् ॥

'पुरः पुरोहा' 'सखिभिः सखीयन्' तथा 'कविभिः कविः सन्' को देखिये, पदमैत्री कितनी स्पष्ट है।

हिरण्यरूपः स हिरण्यसन्दृक्
अपां नपात्सेदु हिरण्यवर्णः।
हिरण्ययात्परि योनेर्निषद्या
हिरण्यदा ददत्यन्नमस्मै।

यहां, 'हिरण्यरूपः स हिरण्यसन्दृक्' 'अपां नपात्' और 'हिरण्यदा ददति' में पद मैत्री की गई है। तथा 'हिरण्य' इस मनोरम शब्द की पांच बार आवृत्ति की गई है। इससे मन्त्र की काया में विपुल सौन्दर्य आ गया है।

आशुः शिशानो वृषभो न भीमो
घनाघनः क्षोभणश्चर्षणीनाम्,
संक्रन्दनोऽनिमिष एकवीरः
शतं सेना अजयत्साकमिन्द्रः।

इस मन्त्र में गठे हुए पदों की मैत्री से सम्पूर्ण मन्त्र कितना सुगठित मालूम होता है।

जो लोग भाषण कला से अभिज्ञ हैं, वे लोग जानते हैं कि, श्रोताओं पर अपने भाषण का प्रभाव डालने के लिए किन २ उपायों का अवलम्बन किया जाता है। हमने देखा है कि, कई बार भाषणकलाभिज्ञ जन अपने आशय को दूसरों के दिलों में पक्का बिठाने के लिए एक ही बात को बार २ दुहरा कर बोलते हैं। यह आवृत्ति प्रायः वे लोग भाषण को समाप्त करते हुए ही किया करते हैं। यही शैली आपको वेद में भी उपलब्ध होगी।

• देखिये—

काण्डात्काण्डात्प्ररोहन्ती परुषः परुषस्परि।
एवा नो दूर्वे प्रतनु सहस्रेण शतेन च ॥

प्रथम दो चरणों में एक बात को सामर्थ्य प्रतिपादित करने के लिए प्रत्येक शब्द को किस प्रकार दुहरा कर कहा गया है।

भाषणकलाभिज्ञ जन कई बार प्रभाव डालने के लिये, समान गुणों से युक्त अनेक पदार्थों का नाम लेकर अभीष्ट पदार्थ में उस गुण की युक्तता दिखलाया करते हैं। वेद में इस शैली का मन्त्र सुनिये—

ध्रुवा द्यौः, ध्रुवा पृथिवी, ध्रुवासः पर्वता इमे।
ध्रुवं विश्वमिदं जगद्ध्रुवो राजा विशामयम् ॥

द्युलोक ध्रुव है, पृथिवी ध्रुव है, ये पर्वत ध्रुव हैं, किं बहुना, सम्पूर्ण संसार ध्रुव है, इसी प्रकार हमारा यह राजा भी ध्रुव है। यह शैली प्रायः प्रबोधात्मक भाषणों के अन्त में प्रयुक्त की जाती है।

ऐसे ही एक मन्त्र का उत्तरार्ध है, जिसमें विचित्र ही प्रकार से आवृत्ति की गई है—

'अधस्पदाम उद्वदत
मण्डूका इवोदकान्मण्डूका उदकादिव'

इन चरणों को पढ़ कर कविवर मैथिलीशरण जी के भारत भारती नामक ग्रंथ की दो पंक्तियां स्मरण हो आती हैं। गुप्त जी ने भी ठीक इसी प्रकार की आवृत्ति की है—

उन्नत रहा होगा कभी जो हो रहा अवनत अभी,
जो हो रहा अवनत अभी उन्नत रहा होगा कभी।

वेद में गीति काव्य की शैली से भी कविताएं की गई हैं। एक गीत देखिये—

इति वा इति मे मनो
गामश्वं सनुयामिति
कुवित्सोमस्यापामिति।
प्र वाता इव दोधत,
उन्मा पीता अयंसत;
कुवित्सोमस्यापामिति।
उन्मा पीता अयंसत;
रथमश्वा इवाशवः,
कुवित्सोमस्यापामिति।
उप मा मतिरस्थित
वाश्रा पुत्रमिव प्रियम्,
कुवित्सोमस्यापामिति।

दूसरा उदाहरण—

उभे यदिन्द्र रोदसी,
आपप्राथोषा इव,
महान्तं त्वा महीनां
सम्राजं चर्षणीनां,
देवी जनित्र्यजीजनत्
भद्रा जनित्र्यजीजनत् ॥
अवस्म दुर्हणायतो,
मर्तस्य तनुहि स्थिरम्,
अधस्पदं तमीं कृधि,
योऽस्माँ आदिदेशति
देवी जनित्र्यजीजनत्।
भद्रा जनित्र्यजीजनत् ॥
अव त्या बृहतीरिषो
विश्वश्चन्द्रा अमित्रहन्,
शचीभिः शक्र धूनुहि,
इन्द्र विश्वाभिरूतिभिः,
देवी जनित्र्यजीजनत्।
भद्रा जनित्र्यजीजनत् ॥

वेद में कहीं २ अन्त्यानुप्रास लगाने की प्रवृत्ति भी हमें दिखाई देती है। आधुनिक भाषाओं में तो अन्त्यानुप्रास युक्त पद्य लेखन की पद्धति विद्यमान ही है। लौकिक संस्कृत भी इससे अछूती नहीं रह पाई है। जिन्होंने उमर खैयाम की रुबाइयां पढ़ी होंगी उन्होंने देखा होगा कि, पहली दो पंक्तियों में और चौथी पंक्ति

में अन्त्यानुप्रास होता है; किन्तु तीसरी पंक्ति में अन्त्यानुप्रास नहीं डाला जाता। ऐसा करने से पद्य की अन्तिम पंक्ति में जोर बहुत आ जाता है। आज कल हिन्दी में भी अन्त्यानुप्रास लगाने की यह शैली प्रयुक्त हो रही है। वेद में भी अन्त्यानुप्रास की यह शैली हमें कई मन्त्रों में प्रयुक्त हुई दिखाई दी है। इसको स्पष्ट करने के लिए एक उदाहरण अपने छोटे भाई ब्र० रामकुमार जी की 'जग क्या है ?' इस शीर्षक की कविता से उद्धृत करना चाहते हैं—

हो गया कभी यह जग सपना,
फिर कभी स्वयं ही सत्य बना।
इस असमञ्जस में जग क्या है
खो गया ज्ञान भी अब अपना॥

इस उदाहरण में तीसरी पंक्ति पर अन्त्यानुप्रास टूट गया है। अब एक उदाहरण महाकवि भारवि का भी लीजिये—

विषमोऽपि विगाह्यते नयः
कृततीर्थः पयसामिवाशयः।
स तु तत्र विशेषदुर्लभः
सदुपन्यस्यति कृत्यवर्त्म यः।

यहां भी वही बात है, तीसरी पंक्ति में जाकर अन्त्यानुप्रास टूट गया है। ठीक इसी प्रकार के दो एक उदाहरण वेद के भी उपस्थित किए जाते हैं—

संक्रन्दनेनानिमिषेण जिष्णुना
युत्कारेण दुश्च्यवनेन धृष्णुना।
तदिन्द्रेण जयत तत्सहध्वं,
युधो नर इषुहस्तेन वृष्णा।

इससे भी अच्छा एक और उदाहरण लीजिये—

धन्वना गा धन्वनाजिं जयेम,
धन्वना तीव्राः समदो जयेम।
धनुः शत्रोरपकामं कृणोति
धन्वना सर्वाः प्रदिशो जयेम।

सामान्य अन्त्यानुप्रास का मन्त्र भी लीजिये—

सना देव देवताते पवस्व,
महे सोम प्सरस इन्द्र पानः।
कृण्वन्नपो वर्षयन्द्यामुतेमाम्,
उरोरा नो वरिवस्या पुनानः॥

इस प्रकार हमने वेद की कविता पर संक्षेप से कुछ प्रकाश क्षेपण करने की चेष्टा की है। हम नहीं कह सकते कि पाठकों की इससे कुछ सन्तुष्टि हो पाई है या नहीं। सम्भव है, अनुभव हीनता के कारण किंवा स्वाभाविक प्रमाद के कारण इस निबन्ध में बहुत सी त्रुटियाँ रह गई हों। अन्त में हम उन समस्त त्रुटियों के लिए कर बद्ध क्षमा प्रार्थना करते हैं। [समाप्त]

बुद्ध धर्म का प्रभाव व उसकी देन

[ले०—श्री ब्र० सत्यव्रत द्वादश श्रेणी]

किसी भी धर्म के प्रभावों तथा देनों का शुद्ध अवलोकन करने के लिए यह आवश्यक है कि तत्समकालीन देश की परिस्थितियों पर विहङ्गम दृष्टि से विचार कर लिया जाय। अतः बुद्ध धर्म के देश भर में फैलने के पूर्व किस दशा में भारत की गति थी, बुद्ध धर्म जो कि एक नवीन धर्म जैसा है, कैसे पनप सका, उसको अपनी रचना किन आधारों पर करनी पड़ी इत्यादि विचार करना अनिवार्य सा प्रतीत होता है। सबसे पूर्व हम भारत की तत्कालीन दशा व परिस्थिति पर विचार करते हैं।

भारतवर्ष के इतिहास में ईसा से पूर्व छठी शताब्दी चिरस्मरणीय रहेगी। इस शताब्दी के लगभग शाक्य वंश में बुद्ध ने अवतार लिया था। उस समय लोगों के मन में नवीन २ विचार व नई २ शङ्काएं उत्पन्न हो रही थीं। तत्कालीन प्रचलित धर्म में असन्तोष और अविश्वास फैला हुआ था। लोग नए २ विचारों और भावों से प्रेरित होकर परिवर्तन के लिए लालायित हो रहे थे। वे एक ऐसे पुरुष की प्रतीक्षा कर रहे थे जो अपने विचारों से उनकी शङ्काओं का समाधान कर सके। जो अपने उपदेशों से उनकी आत्मिक शान्ति की पिपासा को तृप्त कर सके। जो उनके सामने ऊंचा आदर्श रख कर जीवन को उन्नत कर सके। जब समाज की ऐसी अवस्था होती है तो किसी न किसी महापुरुष का आविर्भाव होता है। वह समाज के सामने अपना आदर्श रखता है। वह अपने समय में लोगों का मूर्तिमान् आदर्श होता है। अतएव किसी महान् पुरुष के जीवन को समझने के लिए यह आवश्यक है कि पहले हम तत्कालीन, राजकीय, सामाजिक, आर्थिक एवं धार्मिक दशा से परिचित हो जाएं। इसलिए यदि हम भगवान बुद्ध के जीवन चरित्र को अच्छी तरह समझना चाहते हैं तो यह आवश्यक है कि हम उनके समय में भारत की क्या दशा थी यह अच्छी तरह समझ लें। अतः इसी उद्देश्य से भारत की समकालीन, राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक तथा धार्मिक परिस्थितियों का कुछ दिग्दर्शन कराने की चेष्टा की जाती है।

उस समय भारतवर्ष तीन विभागों में बटा हुआ था। एक मध्य प्रदेश (मज्झिम पदेश) जो हिमालय तथा विन्ध्याचल के बीच का तथा सरस्वती नदी से पूर्व व प्रयाग के पश्चिम में था। दूसरा उत्तर प्रदेश जो उत्तर में था वह उत्तरापथ तथा तीसरा दक्षिण में स्थित दक्षिणापथ। उस समय देश में १६ राज्य थे। उनमें कई राज्य गणतन्त्र राज्य थे। महात्मा बुद्ध का पिता शुद्धोदन गणतन्त्र राज्य का स्वामी था। बूढ़े व जवान आदमी मिल कर किसी एक लायक व्यक्ति को चुन लेते थे जिसे वे इस काम के योग्य समझते थे। उन चुननेवालों में जो खास लोग होते थे जो 'गण राजानः' के नाम से व्यवहृत होते थे। इन गणतन्त्र राज्यों में एक राज्य जिसकी राजधानी कपिलवस्तु थी उसका राजा शुद्धोदन था। महात्मा बुद्ध भी एक क्षत्रिय होने के नाते तथा ऐसे गणतन्त्र राज्य में पालित होने के कारण गणतन्त्र राज्य से प्रभावित हुए। [अपूर्ण]

गुरुकुल

१६ सितम्बर शुक्रवार १९३८

कांग्रेस की हिन्दू नीति

वर्तमान काल में देश की जो तीन शक्तिशाली संस्थाएं हैं उनमें राष्ट्रीय महासभा का स्थान प्रथम है। ऐसा समझा जाता है, और यह बात ठीक भी है कि इसके जितने सदस्य हैं उतने विश्व में अन्य किसी भी संस्था के नहीं है। हमें इस बात पर विचार नहीं करना कि इतने सदस्य क्यों और किस प्रकार बने, परन्तु इतना तो स्पष्ट है कि राष्ट्रीय महासभा के साथ लोकमत है और यह लोकप्रिय संस्था है। लोकप्रियता के मूल में एक बात यह है कि राष्ट्रीय महासभा इस बात का दावा करती है कि वह स्वराज्य दिलायेगी जिससे भूखों को भरपेट रोटी और नंगों को पहिनने को कपड़े मिलेंगे, इस समय देश को इसी बात की आवश्यकता है। किन्तु हमारे देश के हृदय में एक और भी आकांक्षा है जिसके लिए वह भूख प्यास की उपेक्षा कर सकता है। हमारी आर्य संस्कृति संसार में प्राचीनतम है। हिन्दू जाति ने इसकी रक्षा के लिए हजारों साल कुर्बानियां की हैं हम अपने हाथों इसका नाश न करें। यह आकांक्षा समय समय पर बड़े प्रबल वेग से उठ खड़ी होती है यही कारण है कि हमारे देश में राजनैतिक क्रान्तियों की अपेक्षा धार्मिक और सामाजिक क्रान्तियां अधिक हुई हैं. सच तो यह है कि राजनैतिक क्रान्तियों के मूल में भी यही एक धार्मिक भावना काम करती थी, शिवाजी और महाराणा प्रताप मुसलमानों से इस लिए नहीं लड़े कि वे विदेशी थे अपितु इसलिए लड़े कि वे विधर्मी और विजातीय थे। इन भावनाओं को जो कि हमारे पूर्वजों की सबसे बड़ी देन है, जिसको कि हमने बड़े यत्न पूर्वक अपने हृदयों में पाया है, उनको हम निश्चय रूप से अपनी आंखों के सामने नष्ट होते हुए नहीं देख सकते।

भारत में हिन्दुओं की जन संख्या बहुत अधिक है हिन्दू लोग इसको अपना समझते आए हैं। हिन्दुओं ने हिमालय और गंगा यमुना के साथ ऐसा तादात्म्य सम्बन्ध स्थापित कर लिया है कि जन्म से ही प्रत्येक हिन्दू के लिए ये पवित्रतम वस्तुएं बन गई हैं। लोग कहते हैं कि भारत में राष्ट्रीयता तो वर्तमान विचार धारा से आई है इसको हम भी स्वीकार करते हैं। हमारी दृष्टि में आज कल जो राष्ट्रीयता का रूप है वह बहुत ही संकुचित है और विश्व के संघर्ष में इसका बहुत बड़ा हाथ है। इसका यह अभिप्राय कभी नहीं कि भारत में वर्तमान राष्ट्रीयता का अभाव था अतः वह पहले कभी एक रूप में नहीं हुआ। भारत ने इस राष्ट्रीयता को संकुचित विचारों द्वारा नहीं सोचा, किन्तु उसने इसे एक सामाजिक रूप दिया है, इसी सामाजिक रूप द्वारा भारत एक सूत्र में ग्रथित था और अब भी उसी रूप में है। हम हिन्दुओं के इतने आघात प्रत्याघात सहने पर भी जीवित रहने में यह भी एक मूल कारण है।

हमारा इतना कहने का अभिप्राय यही है कि हिन्दुओं में राष्ट्रीयता के मूल में धार्मिक भावनाएं ही काम करती हैं। हमारी जातीयता ही अब तक आर्यावर्त की सीमाओं की रक्षा करने में सफल हुई है। जातियां ही राष्ट्र और संस्कृति का निर्माण करती हैं। आज हिटलर जर्मनी की आर्य जाति को पुष्ट करके और भी अधिक संगठित करने का प्रयत्न कर रहा है, और भी जिन २ देशों ने इसको समझा है वे भी इस दिशा में बड़ी शीघ्रता से कदम बढ़ा रहे हैं। जाति और संस्कृति सर्वदा एक दूसरे की रक्षा करते चले आ रहे हैं। मुसलमानों की जातीयता देश के लिए घातक है क्योंकि उनकी जातीयता के मूल में राष्ट्रीयता की भावना नहीं है, परन्तु फिर भी उनकी अपनी और धर्म की रक्षा इससे अवश्य होती है। ऐसी अवस्था में समझ में नहीं आता कि हिन्दुओं की जिस जातीय भावना से देश का कल्याण है उसे, कुछ कांग्रेस के प्रतिष्ठित नेता घातक समझ कर अपने ही पैरों पर स्वयं ही कुठाराघात कर रहे हैं।

बहु संख्यक हिन्दुओं के अधिकारों की परवाह न करके, अपनी योग्यता और सामर्थ्य पर विश्वास न करके श्री जिन्ना तथा मुस्लिम लीग के अन्य कार्यकर्ताओं को मनाने को कांग्रेस व्यर्थ प्रयास करती रही है। मुस्लिम लीग के साथ साम्प्रदायिक और राजनीतिक समस्याओं पर विचार करते हुए हिन्दुओं, सिक्खों तथा अन्य जातियों के नेताओं की क्यों उपेक्षा की गई, कांग्रेस ने देश की प्रमुख राजनीतिक संस्था को साम्प्रदायिक उलझन में न पड़ने का तथा निष्पक्ष रहने का क्यों प्रयास न किया यह समझ नहीं आता।

कांग्रेस ने हिन्दुओं की संस्कृति को भी बड़ी बुरी तरह से पाल लिया है। इसके द्वारा बनाई गई पाठविधि तथा हिन्दुस्तानी भाषा के नए प्रयत्न से जो धक्का हमारी संस्कृति को पहुंचेगा वह कल्पना का विषय नहीं है।

इसमें कोई शक नहीं कि देश की वर्तमान समस्याओं में भाषा की समस्या भी अपना एक स्थान रखती है, और जब तक इसको न सुलझा लिया जाय तब तक देश की प्रगति में एक रुकावट नहीं आ सकती। केवल भाषा के ही लिए नहीं किन्तु किसी भी समस्या के होते हुए, तब तक वह समस्या के रूप में है, हम निर्बाध गति से आगे नहीं बढ़ सकते। भाषा के लिए यह विचार कि वह सुगम हो और काश्मीर से कन्या कुमारी तक के रहने वाले सब उसको व्यवहार में ला सकें बहुत सुन्दर है किन्तु हिन्दुस्थानी को राष्ट्र भाषा के रूप में प्रचार करना स्पष्ट शब्दों में यह घोषित करना है कि मुसलमानों की साम्प्रदायिक मनोवृत्ति को कांग्रेस पर जो अनावश्यक दबाव है उसी का यह परिणाम है। पहले कांग्रेस के जिन महारथियों ने हिन्दी को राष्ट्रभाषा घोषित किया था शायद अब उन्हें हिन्दी कठिन लगने लगी है जिससे कि अब इसे अनुपयोगी समझा गया। कांग्रेस क्या यह कह सकती है कि उसने मुसलमानों के कारण कितनी बार वदतोव्याघात किया है?

हमारे कुछ नेता देश की प्रत्येक वस्तु को अन्तःराष्ट्रीय दृष्टिकोण से विचारना चाहते हैं। आजकल जबकि सब देश अपनी वस्तुओं के विषय में अत्यन्त अनुराग हैं वहां पराधीन भारत के नेता अपनी संस्कृति को छोड़ कर दूसरों की संस्कृति अपनाने में बड़ी उदारता दिखा रहे हैं। कुछ तो यह कहने में भी नहीं चूके कि हमें अपनी लिपि भी छोड़ देनी चाहिए। हमको यह समझ लेना चाहिए कि हम अपनी संस्कृति, तथा अपनी शक्ति द्वारा ही स्वतन्त्रता प्राप्त कर सकते हैं अन्यथा परमुखापेक्षी रहकर हम भारत को सदियों पीछे रहने के लिए छोड़ देंगे।

हम कांग्रेस को यह कहना चाहते हैं कि वह जहां कुछ आदमियों को साथ लेकर चलने का प्रयत्न करती है वहां उसे यह नहीं भूलना चाहिए कि वह एक बहुत बड़े बहुमत की भावना के विरुद्ध चलने के लिए उकसा भी रही है।

संसार में दुःख और परमात्मा की दयालुता

[ले०—श्री ब्र० ओ३म्प्रकाश जी [illegible]]

(गतांक से आगे)

अब प्रश्न तो यह है कि उस परमात्मा ने ऐसे प्राणी क्यों बनाए जिन्हें वह अपनी सर्वज्ञता के द्वारा पाप करने वाला पहले से समझता था?

इसका समाधान इस प्रकार है कि हम यह नहीं कहते कि परमात्मा ऐसे प्राणी बनाने में असमर्थ था मगर हमें तो निश्चय है कि उसने देवता आदि ऐसे भी प्राणी बनाए हैं जिन्होंने हमेशा उसकी आज्ञा का पालन किया। अब यदि यह प्रश्न हो कि उसने सबको वैसा क्यों न बना दिया तो हम अपनी अल्पज्ञता के कारण अपने को इस प्रश्न का उत्तर देने में असमर्थ मानने में संकोच नहीं करेंगे। किन्तु यह प्रश्न दार्शनिक दृष्टि से अनुपयोगी एवं अनुत्तरणीय है। यह तो एक गोरख धन्धा है जिस का पार पाना कठिन है। इस के बाद एक और सवाल पैदा हो सकता है कि परमात्मा ने ऐसे प्राणी क्यों न बनाये जो उन फ़रिश्तों या देवताओं से भी अधिक परमात्मा के आज्ञाकारी होते। इस प्रकार तो अनवस्था दोष पैदा होगा हम जो धारी अल्पज्ञ हैं हम उस अनन्त परमात्मा को पूर्णतया समझ नहीं सकते। और उपर्युक्त आक्षेप करना तो काल्पनिक संसार की रचना करना है—इस प्रकार प्रश्न की शकल दी जा सकती है जिसमें नहीं तो निराधार संसार की कल्पनाएं तो केवल शेख चिल्ली की बातें हैं—विलकुल बेतुकी धारणाएं हैं। हमें अपने को सर्वज्ञ मानकर उस सर्वज्ञ परमात्मा के विषय में निर्णय नहीं करना चाहिये। एक थोड़ा बुद्धि वाले व्यक्ति को भी यह मानने में अब दिक्कत महसूस न होगी कि पाप आवश्यक है—अनिवार्य है, उसे संसार से हटाना असम्भव है। मनुष्य भले ही पाप किया करे परन्तु यह परमात्मा की इच्छा के प्रतिकूल है—उसे अभीष्ट नहीं है। वैसे तो पाप को जीत कर पुण्यात्मा बनने से ही पुण्य की कीमत बढ़ जाती है। पाप का मुकाबला करने से आत्मिक शक्तियां विकसित होती हैं। परमात्मा का नैतिक शासन अभी तो विकसित हो ही रहा है इसलिये यह संभव है कि कोई ऐसी भी अवस्था आ जाय जब संसार में पाप न रहे। इतिहास तो बताता है कि मनुष्य समाज उत्तरोत्तर सत्य श्रेष्ठता या पुण्य की ओर जा रहा है। तो क्या यह नहीं हो सकता कि किसी समय यह शिखर पर (सर्वात्मना पुण्य पर) पहुँच जायेगा। यदि नैतिकता ने पूर्ण होना है तो यह सिद्ध ही है कि पाप की अपूर्ण स्थिति पूर्ण की उसकी प्राप्ति में उपयोगी या आवश्यक है। उसकी तरक्कियें तो बहुत धीरे धीरे होती हैं क्योंकि उसके लिये तो १०० साल भी एक मिनट के समान है। मनुष्य में इतनी शक्ति नहीं कि वह बिना भटके सीधा ही पूर्ण नैतिकता रूपी पर्वतश्रृङ्ग पर पहुंच जाय बाइबल ने तो पाप की उत्पत्ति को एक ऐतिहासिक घटना का रूप दिया है अतः उसके विषय में युक्तियां देना दोनों के लिये अन्याय होगा।

जब मनुष्य को सत्य, पुण्य आदि में विश्वास नहीं रहता तो वह परमात्मा की सत्ता या उसके नैतिक स्वभाव को मान कर ही इन पर विश्वास कर सकता है।

कर्त्तव्य में विश्वास परमात्मा में विश्वास करने के लिये सहायता करता है—और परमात्मा में विश्वास रखने से कर्त्तव्य में विश्वास उत्पन्न होता है।

हमें निश्चय है कि दुःखों और सांसारिक बाधाओं से घबराने वाले लोग इस लेख को पढ़ कर वस्तुतत्त्व को समझ जाएंगे और समस्त कष्टों को धीरता और उदारता से सहन किया करेंगे—सुखों की अपेक्षा दुःखों में परमात्मा का अधिक धन्यवाद देते हुए उसकी दयालुता और बुद्धिमत्ता में कदाचित् शंका न करेंगे।

परीक्षा-पद्धति

[ले० श्री [illegible]]

आजकल परीक्षा-पद्धति समाज और स्कूलों के बीच में एक मुख्य श्रृङ्खला बन गई है। किसने कितना पढ़ा है न केवल इतना ही परीक्षा द्वारा जाना जाता है, अपितु कौन विद्यार्थी समाज में अमुक काम करने के लिये उपयुक्त है—यह भी परीक्षा द्वारा ही निश्चय किया जाता है। इस प्रकार, परीक्षा-पद्धति उपयोगी है या नहीं—इस समस्या का समाधान, समाज और स्कूल दोनों की ही दृष्टि से अत्यन्त आवश्यक है। यह और अधिक स्पष्ट हो सकेगा यदि हम केवलमात्र परीक्षा को न लेकर उन रिकार्डों पर कुछ विचार करें, जो कि विद्यार्थियों की योग्यता को सूचित करने के लिए स्कूलों में रखे जाते हैं।

सबसे पहला प्रश्न यह उठता है कि इस प्रकार के रिकार्डों की क्या आवश्यकता है? कुछ आधुनिक नई रोशनी के स्कूलों में तो यह समझा जाता है कि इस प्रकार के रिकार्डों को सम्भाल कर रखना न तो आवश्यक है और न ही सम्भव है। शिक्षा तो एक जीवन का नाम है, विकास का। जहां बच्चों के लिए ऐसी परिस्थितियां उत्पन्न की जाएंगी कि वे कोई भी काम करते समय सचरा

प्रफुल्ल और प्रसन्न रहें, वहां बच्चे खूब उन्नति करेंगे और फलें फूलेंगे। किसी नियन्त्रण की आवश्यकता नहीं। रिकार्ड रखने से लगातार उन्नति कैसे हो सकती है? यद्यपि इस प्रकार का दृष्टिकोण पाश्चिक है, और यह केवल समाज की उपेक्षा नहीं करता प्रत्युत उस वैयक्तिक स्वातन्त्र्य की भी उपेक्षा करता है जो कि इसके ऊपर आश्रित है। तो भी, छोटे से छोटे स्कूल में भी, वह सारा का सारा समुदाय उस बच्चे के विकास में सहायक है, जिस समुदाय का वह बच्चा स्वयं एक अङ्ग है। इस सारे समुदाय में उसकी कौनसी स्थिति है और क्या पोज़ीशन है—यह जानने के लिए वह बड़ा उत्सुक रहता है और इसके लिये उसे अपनी योग्यता को अपने साथ रहने वाले अन्य सहपाठियों की योग्यता के साथ तुलना करनी पड़ती है। एक बहुत छोटे स्कूल में तो जहां अध्यापक और विद्यार्थी एक दूसरे को बहुत निकट से जानते हैं, इस प्रकार के लिखित रिकार्डों का रखना कोई विशेष लाभप्रद नहीं लगता। क्योंकि उनका परस्पर निकट सम्पर्क होता रहता है और आपस के व्यवहारों की तुलना को अपनी स्मृति शक्ति की सहायता से वे याद रख सकते हैं।

किन्तु सामान्य स्कूलों में, जैसे कि अकसर बड़े २ शहरों में होते हैं; विद्यार्थी और अध्यापकों में घनिष्ठता का होना असम्भव होता है। क्योंकि विद्यार्थी इतने ज़्यादा होते हैं कि उनकी विशेषताएं याद नहीं रखी जा सकतीं। यही कारण है कि आजकल प्रायः हरेक स्कूल में तुलनात्मक रिकार्ड रखे जाते हैं, फिर वे स्कूल चाहे पुरानी चटशालाओं के ढंग के हों या आधुनिक ढंग के। जब हम आधुनिक समाज की जटिलता पर विचार करते हैं तो इस प्रकार के रिकार्डों की आवश्यकता साफ अनुभव होती है। क्योंकि जहां, पुराने ज़माने में हरेक सम्प्रदाय और हरेक ग्राम्य समुदाय इतना छोटा तथा इतना सम्बद्ध होता था कि हरेक आदमी हरेक से बड़ी अच्छी तरह मिल सकता था; वहां आधुनिक सभ्यता और आधुनिक नागरिकता की यह विशेषता है कि उस सुसंगठित समाज की गांठ ढीली पड़ रही है, और सदस्य लोग सदा बदलते रहते हैं—एक से नहीं रहते। परिणाम स्वरूप वह प्राचीन घनिष्ठता नष्ट हो गई और इससे एक बड़ी भारी समस्या खड़ी होगई कि किस प्रकार आधुनिक सभ्य संसार के इतने बड़े विस्तृत समाज में वह निकट सम्पर्क पैदा किया जा सकता है? राजनीतिक क्षेत्र में यह समस्या Representative Government के रूप में है। शिक्षा के क्षेत्र में यही समस्या Schoolrecords के रूप में है और यह परीक्षा पद्धति जिसमें कि आज हम आपाद मस्तक डूबे हुए हैं, उसी समस्या के हल करने का प्रथम प्रयास है।

हम स्वाभाविक रूप से यह जानना चाहते हैं कि हमारे में कितनी योग्यता है, और शिक्षा ने हमको कहां तक पहुंचा दिया है। जब इस प्रकार की जांच करनी होगी, तब इसके साथ २ हमें दूसरों की योग्यता के साथ तुलना करनी होगी। जब हम कोई काम करना चाहते हैं तो इन रिकार्डों के आधार पर हम पानी की गहराई नापते हैं और अपनी मनोवृत्ति का निश्चय करते हैं कि हमें किस प्रकार के काम में रुचि है और किसमें सफलता की अधिक आशा है। मनोवैज्ञानिक बताते हैं कि परिपक्व आयु वाले बड़े-बूढ़े भी कई बार अपनी भावनाओं और अनुभवों के वशीभूत होकर उचित कार्य को चुनने में असमर्थ देखे गये हैं फिर कच्ची उम्र के बच्चों का तो कहना ही क्या? और इसमें कितनी सच्चाई है कि बच्चों को भी पथ प्रदर्शन की आवश्यकता होती है, जिससे कि अपने प्रयत्नों को वे उचित दिशा में लगा सकें, अपने आपको सन्तुष्ट करने के लिए न सही, पर समाज की सेवा करने के लिए! सच तो यह है कि कोई भी मनुष्य तब तक पूर्ण या सन्तोषमय जीवन नहीं बिता सकता जब तक उसे यह विश्वास न हो जाय कि वह जो काम कर रहा है, उसे जनता आदर की दृष्टि से देख रही है।

इस प्रकार यह हमारे जीवन की मांग है कि हम अपनी शक्तियों को दूसरों की शक्तियों के साथ एक तुला में रखकर तोलें और देखें कि हम कितने पानी में हैं। बच्चे स्वाभाविक रूप से हमेशा इसके लिए सावधान रहते हैं और औरों के साथ अपना मुकाबला करते रहते हैं। शिक्षा में हमेशा परस्पर संघर्ष चलता रहता है और स्कूलों में रखे जाने वाले रिकार्ड इसी संघर्ष का तुलनात्मक इतिहास तय्यार करते हैं।

भारतवर्ष में शिक्षा कुल मिलाकर तीन चार भागों में विभक्त की जा सकती है। सबसे पहिले प्रारम्भिक शिक्षा होती है, फिर माध्यमिक। इसके बाद हाई स्कूल की Secondary education होती है और फिर विश्वविद्यालय की शिक्षा होती है, जो सर्वोच्च समझी जाती है। इस सब को समाप्त करने में लगभग १५ वर्ष लगते हैं ६ वर्ष की आयु से शिक्षा शुरू की जाती है और इस हिसाब से २१ तक समाप्त हो जाती है। २१ वें साल में विद्यार्थी को विश्वविद्यालय की उपाधि मिल जाती है जिसको लेकर वह समाज में अपनी स्थिति कायम रखता है और यह उपाधि परीक्षा परिणामों के अनुसार दी जाती है।

लगभग चौथी से लेकर चौदहवीं तक उसे हर साल दो बार परीक्षा देनी पड़ती है। इन परीक्षाओं के परिणाम के अनुसार ही उसकी योग्यता स्थिर की जाती है तथा सरकारी नौकरियों में और विवाह के बाजार में उसका मूल्य आँका जाता है। इस प्रकार समग्र भारतवर्ष में शिक्षा का बस केवल एक उद्देश्य रह गया है—विद्यार्थियों को परीक्षाओं के लिए तय्यार करना। यह सीधा आधुनिक शिक्षा-पद्धति का दुष्परिणाम है। प्रारम्भ में भारतवर्ष में जब यूनिवर्सिटियां खोली गई थीं तो वे एक दम अंग्रेज़ों की यूनिवर्सिटियों की तरह ऐसे क्लर्कों को पैदा करने के लिए खोली गई थीं जो हमारी इस स्वार्थपूर्ण सरकार के अन्याय पूर्ण राज्य को टिका सकने में सहायक हों। उसके बाद यद्यपि

इंगलैण्ड में तो कुछेक परिवर्तन हुए भी, पर भारी की सारी मशीन ऐसी बिगड़ी हुई है कि वह तेज चल ही नहीं सकती। उसी आंग्ल-पद्धति की हिन्दुस्तान में भी नकल की गई है, और फल स्वरूप वे सारी खराबियां और उससे भी कुछ अधिक हमारी शिक्षा पद्धति में घर कर गई हैं।

इसमें कोई शक नहीं कि किसी विद्यार्थी ने विद्यालय में रह कर कितना सीखा है तथा अब वह कितना योग्य हो गया है—इसके जानने के लिए हमारे पास परीक्षा के सिवाय और कोई साधन नहीं, पर इस परीक्षा से कभी भी विद्यार्थी की वैयक्तिक विशेषताओं और उसके आचरण की परीक्षा नहीं की जा सकती। ये चीज़ें तो परीक्षा से बहुत परे हैं। प्रायः परीक्षाओं में निबन्ध लिखवाये जाते हैं। परीक्षक का नाम छिपाकर रखा जाता है। परीक्षक विद्यार्थियों को नहीं जानते। एक कहीं होता है और दूसरा कहीं। इसतो दूर से ही परीक्षक परीक्षा ले लेता है। मोहर किए हुए बन्द प्रश्नपत्र भिन्न २ केन्द्रों में भेजे जाते हैं, और टकोर लगने के बाद प्रस्तोता परीक्षार्थियों के सामने अपने तेज कैंची से उस मोहर को काटता है। एक गहरी चुप्पी और श्मशान जैसी निस्तब्धता सारे परीक्षा-भवन में छा जाती है और प्रस्तोता महोदय यह कठोर निर्देश कर देते हैं कि इस प्रश्नपत्र से संबन्ध रखने वाला कोई प्रश्न अब यहां नहीं किया जा सकेगा। इसप्रकार परीक्षा के समय परीक्षार्थियों के लिए एक सारा का सारा कृत्रिम वातावरण तय्यार किया जाता है। सारा का सारा वातावरण, लगता है कि इसमें कोई रहस्य छिपा है जिसे देखते ही डर लगने लगता है। और उन तीन चार घण्टों में ही, सिर्फ उसकी सारे साल भर की शिक्षा का परिणाम निकाल कर रख दिया जाता है। इस कृत्रिम वातावरण में नये २ आदमी होते हैं क्यों कि दूर दूर से परीक्षा देने के लिए परीक्षार्थी उस स्थान पर आए हैं, नया स्थान होता है, प्रश्नों के मुहावरों को समझने में गलती हो जाती है, और जिस दृष्टिकोण से परीक्षार्थी ने उन प्रश्नों के उत्तर तय्यार किए हैं या जिस प्रकार के प्रश्नों से वह सोच रखता है — यदि वैसे प्रश्न नहीं आते तो यह परीक्षार्थी का दुर्भाग्य है। और परीक्षाओं का निबन्धात्मक ढंग पर होना, या प्रश्नों का उत्तर लिखते समय परीक्षार्थी का परिहास प्रिय होना, या परीक्षक के दृष्टिकोण का परीक्षार्थी के दृष्टिकोण से सर्वथा भिन्न होना– इन सब बातों को मिलाकर आधुनिक परीक्षा पद्धति किसी विद्यार्थी के ज्ञान को परखने के लिए सर्वथा असमर्थ है — यह निश्चय है। इससे न तो मानसिक ग्रहण शक्ति की परीक्षा होती है और न ही मानसिक कल्पना-शक्ति की।

आधुनिक परीक्षापद्धति विद्यार्थियों को इस बात के लिए प्रेरित करती है कि वे दिन रात घोटा लगाएं, इधर उधर से नोट इकट्ठे करें, बाजारू कुंजिकाएं खरीद कर काम चलाएं या फिर पूर्व वर्षों के प्रश्नों को देख देख कर परीक्षा में आने वाले प्रश्नों का अनुमान करें। वे कभी भी विषय को पूरी अच्छी तरह जानने का प्रयत्न नहीं करते और चाहते हैं कि किसी मन्त्र के बल से, या ज्योतिष की गणना से, या रिश्वत वगैरह किसी भी वाहियात से वाहियात तरीके से किसी तरह उन्हें प्रश्न पता लग जाए। यही कारण है कि ठीक परीक्षा से पहले कालेज के आश्रमों में लगातार एक पर्चियों का प्रवाह चलता है कि उपाध्याय महोदय को ध्यान से सुनने पर यह अनुमान होता है कि अमुक प्रश्न इसबार अवश्य आएगा। विद्यार्थी उन दिनों सवेरे सवेरे उठकर अक्सर कहा करते हैं कि मुझे रात का स्वप्न आया है—अबकी बार यह प्रश्न अवश्य आएगा। और कई बार तो गणित की परीक्षा से पहले, रात को स्वप्न में, विद्यार्थी १, २, ३ करके प्रश्नों के उत्तर चिल्लाते देखे गए हैं; जैसे कि स्वप्न में ही कोई परीक्षक आकर भूत की तरह उनके सिर पर चढ़ बैठा और पूछने लगा—'यह प्रश्न है बताओ इसका उत्तर क्या होगा। जल्दी।' गणित की मौखिक परीक्षा हो रही है, और विद्यार्थी भय से पीला पड़ कर जब छूटने का और कोई मार्ग नहीं पाता, तो विवश होकर चिल्ला पड़ता है - 'तीन हो यह तीन' हो तो उस प्रश्न का उत्तर है। ज्यों ही वह चिल्लाया कि उसकी नींद खुल गई और उसने देखा कि कोई परीक्षक सिर पर नहीं है। एक सन्तोष की सांस ली, और सोचा— कि अभी तो मौखिक परीक्षा का समय दूर है। पर वह समय कितना दूर है, सिर्फ सवेरा होने की देर है। [क्रमशः]

गुरुकुल समाचार

ऋतु सुहावनी तथा मनोरम है। सुन्दर स्वच्छ हवा बहने लगी है। भागीरथी जल निर्मल हो चला है, तैराक लोग सुबह शाम अपनी तैरने की इतने दिनों की अतृप्त अभिलाषा को मिटाने में लगे हुए हैं। पाणमासिक परीक्षा में केवल एक एक सप्ताह शेष है, सब ब्रह्मचारी इस की तैय्यारी में जी जान से लगे हुए हैं। इस रविवार को पत्रपुरी की एक चुना हुआ हस्तकुन्दुक (बाली बाल) का दल कुल में आया था। जिस सांमुख्य में हमारे कुल के खिलाड़ियों के सिर पर ही विजय का सेहरा बन्धा।

गत सप्ताह ब्र० धर्मवीर १० श्रेणी अतिसार, इन्द्रसेन १ विषमज्वर, गिरधर ११ व्रण; रामनारायण १म व्रण; विष्णुमित्र ३य तथा ब्र० नारायण ४र्थ टाइफायड ज्वर से रोगी हुए थे।

गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ

ऋतु अत्यन्त सुहावनी है- पाण्मासिक परीक्षा की तय्यारी में ब्रह्मचारी दत्तचित्त होकर लगे हुवे हैं। २३ सितम्बर से परीक्षा प्रारम्भ है।

वर्धा स्कीम के अनुसार शिक्षा ग्रहण करने वाले विद्यार्थी जो जामियामिल्लिया में भिन्न भिन्न प्रान्तों से आये हुवे हैं वह अपने उपाध्यायों सहित गत सप्ताह पधारे- ब्रह्मचारियों का बनाई हुई वस्तुओं को देख कर अत्यन्त प्रसन्न हुवे।

केवल दो ब्रह्मचारी हस्पताल में रोगी हैं- वह भी बिलकुल अच्छे हो गये हैं। १. ब्र. देवव्रत षष्ठ श्रेणी २ ब्र. जगत्प्रिय ६म. श्रेणी। शेष सब विद्यार्थी स्वस्थ हैं।

चौधरी दुलासराय के प्रबन्ध से गुरुकुल प्रेस गुरुकुल कांगड़ी में मुद्रित तथा प्रकाशित।

* ओ३म् *

"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत"

Reg. No A. 2927

गुरुकुल

सम्पादक— भारतभूषण वेदालङ्कार

एक प्रति का मूल्य -)   [गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख-पत्र]   वार्षिक मूल्य २॥)

वर्ष ३]   गुरुकुल काङ्गड़ी, शुक्रवार ८ आश्विन १९९५; २३ सितम्बर १९३८   [संख्या १९

"निर्मल मानस सरोवर"

[ले. पं० चन्द्रकान्त जी वेदवाचस्पति आचार्य गुरुकुल महा विद्यालय सोनगढ़]

विश्व-ब्रह्मांड के अन्तर्गत रोम रोम में- अणु अणु में रमे हुये- आनन्द धाम सौन्दर्य-निधान भगवान् हमारे अन्तर्यामी होते हुवे भी वासनामूलक अज्ञान के कारण ही दूर हुये हुवे हैं- "तद्दूरे तद्वन्तिके" प्रभु परमात्मा हम से कालकृत देशकृत व अवस्थाकृत दूरी से दूर नहीं- ज्ञानगत दूरी से दूर अवश्य हैं। अज्ञान का मेघ हटते ही सूर्यरूप में चमक उठते ही हैं- वासना-जाल कटते ही आत्म-सुपर्ण आनन्द-विभोर हो नाच उठते हैं। आन्तर तथा बाह्य भेद से वासन जाल अनेक-विध हैं। ये वासनायें आशय संस्कार वृत्ति भावना आदि अनेक नामों से वर्णित की गई हैं। वासना द्विमुखो-सर्पिणी है। एक मुख शुभ का तो दूसरा अशुभ का, एक विष का तो दूसरा अमृत का, एक पाप का तो दूसरा कल्याण का पातञ्जल योगदर्शन के समाधिपाद में "अभ्यास वैराग्याभ्यां तन्निरोधः (१२) सूत्र पर भाष्य करते हुवे व्यास ने स्पष्ट लिखा है कि- "चित्तनदी नाम उभयतोवाहिनी वहति कल्याणाय पापाय च" चित्त रूपी नदी में बसा हुवा-बहता हुवा वासना रूपी जल या तो कल्याण के उद्यान को सींचता है अथवा पाप के गर्त को भरता है। मनोविश्लेषण शास्त्र के विद्वान कहा करते हैं कि वृत्तियों का नाश न करके उनका Sublimation उर्ध्वीकरण करना चाहिये अर्थात् वृत्तियों के प्रवाह को सन्मार्ग के अभिमुख करना चाहिये। आन्तर एवं बाह्य वासनाओं के कालुष्य से मलिन मनोनदी "संसार-प्राग्भारा" तथा "अविवेकविषयनिम्ना" हुआ करती है। अतः बाह्य एवं आन्तर- मलिन वासनाओं को छोड़ कर निर्मल वासनाओं के द्वारा मन को पवित्र एवं समृद्ध बनाकर ही आत्म-कल्याण का पथिक अग्रेसर हुआ करता है।

पातञ्जल योग के समाधिपाद में "यस्य चित्तस्य अवस्थितस्य इदं शास्त्रेण परिकर्म निर्दिश्यते तत्कथम्" इन शब्दों में चित्तशुद्धि के सम्बन्ध में प्रश्न उठाकर उसका समाधान निम्न सूत्र में दिया गया है। "मैत्रीकरुणा-मुदितोपेक्षाणां सुखदुःखपुण्यापुण्यविषयाणां भावना-तश्चित्तप्रसादनम्" अर्थात् क्रमशः सुख दुःख, पुण्य तथा पाप के विषयों में मैत्री, करुणा, मुदिता और उपेक्षा की भावना करने से चित्तप्रसाद प्राप्त होता है।

सूत्र पर व्यास का निम्न भाष्य है- "तत्र सर्वप्राणिषु सुखसंभोगापन्नेषु मैत्रीं भावयेत्- दुःखितेषु करुणां पुण्यात्मकेषु मुदितां, अपुण्यात्मकेषु उपेक्षां, एवमस्य भावयतः शुक्लो धर्म उपजायते ततश्च चित्तं प्रसीदति प्रसन्नमेकाग्रं स्थितिपदं लभते"

उपरिलिखित सन्दर्भ में चित्त प्रसाद के सम्बन्ध में सूत्र के आशय को स्पष्ट किया गया है। चित्त प्रसाद शब्द में प्रसाद शब्द के आनन्द तथा निर्मलता दो मुख्य अर्थ हैं। इन अर्थों का परस्पर घनिष्ट सम्बन्ध है। जहां आनन्द होवे वहां निर्मलता भी हो यह आवश्यक नहीं है परन्तु निर्मलता में आनन्द अवश्य है। निर्मलता आनन्द की सिद्धि में आवश्यक प्रक्रिया है। इस दृष्टि से चित्त-प्रसाद शब्द में चित्त के आनन्द तथा चित्त की निर्मलता दोनों साध्य-साधनों का समावेश किया गया है। साधक पुरुष को विचारना है कि जो आनन्द उपलब्ध हुवा है वह परमात्मा से भिन्न किसी अन्य मलिन वस्तु का तो नहीं है। इस प्रकार से निरीक्षण करने वाले साधक को मैत्री-करुणा आदि भावना के सतत आचरण से चित्त-प्रसाद- अन्तःकरण का निर्मल आनन्द प्राप्त होता है। ऐसा पतञ्जलि मुनि का कथन है —

राग, द्वेष, पुण्य और पाप चित्त को मलिन करने वाले कषाय हैं राग तथा द्वेष के निम्न लक्षण पातञ्जलि ने किये हैं। "सुखानुशयी रागः", "दुःखानुशयी द्वेषः" ८ (साधन पाद)

प्राणीमात्र स्वभाव से सुख चाहते हैं। अतः सुख का अनुभव होने के पश्चात् स्वभावतः "मुझे हर प्रकार का

सुख हो यह वृत्ति उत्पन्न होती है। जिसे राग कहते हैं[१]। इसका संतोष सर्वथा आवश्यक है। क्योंकि सुख असंख्य हैं। कुछ अलभ्य, कुछ दुर्लभ, कुछ दुःखमिश्रित, कुछके दृष्ट, कुछ अदृष्ट। इन सुखों को प्राप्त करने के साधन के अभाव में चित्त दोलायमान हो जाता है। "परस्परवुत्कर्षो हि हीनसंपदं दुःखाकरोति" सुखसम्पत्ति सापेक्ष वस्तु होने से दूसरे के सुखों को देख कर भी मन राग के कालुष्य से कलुषित हो उठता है। राग के साथ कभी दूसरों के गुणों का सहन न करने की ईर्ष्यावृत्ति, कभी दूसरे के गुणों के स्थान पर दोष-दर्शन की असूयावृत्ति उत्पन्न होती है। इन राग ईर्ष्या तथा असूया वृत्तियों से मलिन हुवे चित्त को निर्मल करने का साधन "मैत्री भावना" है। वेद में स्पष्ट कहा है "मित्रस्य चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्" 'मित्रस्य चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे' समस्त प्राणीमात्र को मित्र की प्रेमभरी मधुर आंखों से देखने से ही आत्मा का विकास है सच्चा आह्लाद[२] है। मैत्री मानव जीवन के लिए[३] अमूल्य देन है[४]।

जिस समय मनुष्य सुखी प्राणियों में "ये समस्त सुख मेरे ही हैं" इस प्रकार की भावना करता है तब उस अन्यों का सुख भी अपना ही सुख लगने लगता है। जैसे गरीब पिता अपने पुत्र को अमीर देख कर प्रसन्न होता है उसके मन में किसी प्रकार की राग, ईर्ष्यावृत्ति की कालिमा पैदा नहीं होती है इसी प्रकार सर्वत्र मैत्री भावना करने से राग की निवृत्ति होकर मनःनदी शरद् ऋतु की निर्मल नदी के समान बहने लगती है।

दुःख का अनुभव होने के पश्चात् "यह दुःख मुझे कभी न हो" इस प्रकार की वृत्ति "द्वेष" नामक कही जाती है। "दुःखाभिज्ञस्य दुःखानुस्मृति पूर्वो दुःखे तत्साधने वा यः प्रतिघो मन्युः जिघांसा क्रोधः स द्वेषः (व्यास भाष्य) संसार में आध्यात्मिक आधिदैविक तथा आधिभौतिक भेद से तथा वाचिक कायिक मानसिक भेद से अनन्त दुःखराशि है। ईश्वरकृष्ण ने ठीक ही लिखा है- "मृष्यन्ते हि पुण्यसंभारोपनीतस्वर्गसुखा-महाह्रदावगाहिनः कुशलाः पापमात्रोपपादितां दुःखवन्हि-कणिकाम्" न्याय दर्शन में वात्स्यायन मुनिने भाष्य करते हुए स्पष्ट लिखा है- 'सर्वं सुखं दुःखेनानुषक्तं विषवदन्नं हेयम्' इतना ही नहीं अपितु पतञ्जलि मुनि ने तो विवेकी पुरुषों के लिये संसार का दुःखमय चित्र ही चित्रित किया है "परिणामतापसंस्कारदुःखैर्गुणवृत्तिविरोधाच्च दुःखमेव सर्वं विवेकिनः २ १५। इस प्रकार दुःखबहुल संसार में दुःख का सर्वथा निवारण करना अशक्य होने से उत्पन्न हुई द्वेषवृत्ति अन्तःकरण को जलाती रहती है परन्तु इस वृत्ति को 'मेरा जैसा दुःख किसी का न होवे' अथवा 'मुझे तो अभी दुःख ही कहां है- मेरे से अधिक दुःखमग्न न जाने कितने प्राणी हैं' इस प्रकार दुःखी प्राणियों में करुणा की भावना करने से द्वेषवृत्ति दूर जाती है और चित्त प्रसाद हो जाता है। अतएव इस करुणा तथा दया को हृदय में स्थान देनेवाले संत पुरुषों के "सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद्दुःखभाग् भवेत्" 'दया धर्म का मूल है पाप मूल अभिमान। तुलसी दया न छोड़िये जब लग घट में प्राण,, "आत्मोपम्येन सर्वत्र दयां कुर्वीत मानवः" के इन वचनों में करुणा एवं दया की उत्कट पुकार सुनाई देती है। इस करुणा की भावना से- "मैं सुखी हूं और शेष सभी दुःखी हैं" इस भाव से पैदा होनेवाला अभिमान "आढ्योऽभिजनवानस्मि कोऽन्योऽस्ति सदृशो मया" सर्वथा चकनाचूर हो जाता है।

संसार में प्राणिमात्र अविद्या के कारण पुण्य के मार्ग से च्युत हुआ करते हैं। अहंकार तथा अज्ञान पाप के मूल हैं।

मनुष्य पुण्य का फल सुख अवश्य चाहता है पर पुण्य कर्म करना नहीं चाहता। इसके विपरीत पाप के फल दुःख से बचना चाहता है पर पाप कर्म करने से चूकते नहीं। इस प्रकार पुण्य पाप के चक्कर में पड़ा हुवा मनुष्य पश्चात्ताप के अनल में जला करता है। सूरदास का क्या ही करुण रुदन है- "मो सम कौन कुटिल खल कामी" मानव हृदय में से एक धीमी आवाज (Small voice) उठा करती है। जो अघ रचना की सूचना दिया करती है- मैंने पुण्य क्यों न किया- पाप के मार्ग में क्यों पड़ा? इस प्रकार की ऊंची वृत्ति हर एक प्राणी में उठा करती है। धर्म शास्त्रों में जो प्रायश्चित्तों के विधान हैं उनके मूल में यही भावना है। अतः इस प्रकार की वृत्ति वाले पुरुषों में प्रीति रखने से इनके कार्यों को देखकर प्रसन्न होने से हर एक प्राणी में स्वतः मुदिता की भावना उत्पन्न होती है। जिस से यह स्वयं पुण्य के मार्ग में प्रवृत्त होता है- इसी प्रकार सातक पापी पुरुषों के प्रति उदासीन रहकर- इनके कार्यों की ओर अरुचि बनाकर स्वयं भी पाप से निवृत्त होता है- इस प्रकार उपेक्षावृत्ति रखने से पाप के कालुष्य से मन की निर्मलता को कलुषित न होने देना साधक का परम धर्म है- एवं मुदिता वृत्ति द्वारा पुण्य का उत्कर्ष होने से तथा उपेक्षा वृत्ति द्वारा पाप का अपकर्ष होने से निवृत्त रहने से पश्चात्ताप के कारण हट जाने पर चित्त नितान्त निर्मल रहता है- पुण्यशाली पुरुषों में मुदिता की भावना करने से पुण्य में प्रवृत्ति होती है। यह पुण्य का स्वकर्ममूलक नहीं प्रत्युत यमनियमाभिजन्य अशुक्ल कृष्ण कर्म से उत्पन्न होने वाला परिणाम है। ऐसा पुण्य उपादेय है हेय नहीं। पतञ्जलि मुनि ने लिखा है "कर्माशुक्लकृष्ण-

१. सुखाभिज्ञस्य सुखानुस्मृतिपूर्वः सुखे तत्साधने वा यो गर्धस्तृष्णा लोभः स राग इति" व्यासभाष्य, २, ७.
2. Friendship is the marriage of soul (voltaire)
3. The highest friendship must always lead us to the highest pleasure (Fielding, Amelia book viii chap 7.
4. Friendship is the gift of the gods and the most precious boon to man (Disraeli Speech in House of Commons July 16-18..)

योगिनस्त्रिविधमितरेषाम्" अर्थात् शुक्ल (विहित) कृष्ण (निषिद्ध) तथा शुक्लकृष्ण (मिश्र) ये त्रिविध कर्म सामान्य जनों के हैं योगियों के अशुक्लकृष्ण होते हैं। इस प्रकार के कर्म करने वाले साधकों में "मुदिता की भावना करने से शीघ्र ही मनःप्रसाद हुआ करता है।

एवं हम योगसूत्र के आधार पर इस परिणाम पर पहुंचते हैं कि मैत्री करुणा आदि की भावनाओं से चित्त को योग्य मार्ग पर प्रभु के अध्यात्मप्रसाद के मार्ग पर प्रेरित किया जा सकता है। जैसा रोग होता है औषधोपचार तदनुकूल ही होता है। भिन्न २ प्रकार की शुभवासनाओं के द्वारा मलिन वासनाओं को दूर करके चित्त की प्रसन्नता प्राप्त करना हर एक मानव का परम कर्त्तव्य है। गीता में कृष्ण ने मानसिक तप का वर्णन करते हुए कहा है– "मनःप्रसादःसौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रहः। भावसंशुद्धिरित्येतत्तपो मानसमुच्यते" (१७-१६) मनः प्रसाद को सब से प्रमुख स्थान दिया है। भक्त कबीर ने क्या ही सुन्दर कहा है- "कबीरा मन निर्मल भये जैसे गंगा नीर पाछे लागा हरि फिरे कहत कबीर कबीर" सचमुच मन की निर्मलता के बिना अध्यात्मप्रसाद प्राप्त करना नितांत अशक्य है। निर्मल मानस सरोवर में ही आत्महंस आनन्द लहरियों के साथ विहार कर सकते हैं। इसमें मानव जीवन की सार्थकता है।

प्रार्थना

[ले०—श्री प्रशान्तकुमार वेदालंकार]

प्रार्थना क्यों करनी चाहिये यह युक्तियों से समझाना सरल नहीं यह तो अपने आप अनुभव करने का विषय है। संगीत मनुष्य को स्वभाव से ही अच्छा लगता है वैसे ही प्रार्थना या उपासना करना भी। संगीत सुनकर मनुष्य का हृदय मस्त हो हिलोरें लेने लगता है तो प्रार्थना से भक्त के हृदय से सात्विक प्रसन्नता का झरना सा फूट उठता है। भक्त का हृदय भक्ति से परिप्लावित हो हृदय देश में स्थित जगन्नियन्ता का साक्षात्कार कर लेना है और प्रार्थना को उसकी प्राप्ति का साधन मानता है।

मनुष्य श्रद्धामय है उसमें जिस देवता के लिये श्रद्धा होती है वह देवता उसका उपास्य बन जाता है, मनुष्य उस देव की प्रार्थना करने लगता है। प्रार्थना मनुष्य के मन की स्वाभाविक क्रिया है इसीलिये यह सार्वकालिक या सार्वभौम भी है। सृष्टि जब से प्रारम्भ हुई है तभी से मनुष्य प्रार्थना करते आये हैं। प्रार्थना की भावना कभी भी विनष्ट न हुई रूप भले ही बदलता जाता है। मानवीय सभ्यता के साथ २ उसका स्वरूप भी परिष्कृत होता जाता है।

धर्मों का तुलनात्मक अध्ययन हमको बताता है कि धर्मों के सभी आदि प्रवर्तकों को प्रार्थना से नवीन रहस्य व सत्यों का प्रकाश हुआ करता था और होता है। महात्मा बुद्ध को समाधि में नवीन उद्बोधन व शक्तियां मिला करती थीं। समाधि प्रार्थना की उच्चतम अवस्था का ही नाम है उससे कोई भिन्न चीज़ नहीं।

प्रार्थना को प्रत्येक धर्म ने महत्वपूर्ण स्थान दिया है। आर्यसमाजियों में दिन में दो बार संध्योपासन करने का विधान है। मुसलमानों में दिन में ५ बार निमाज़ पढ़ने का नियम है। सूफी सम्प्रदाय वाले प्रार्थना की तीन अवस्थायें मानते हैं। प्रथम अवस्था में उच्चस्वर से जप द्वितीय में मन को दैवीय वस्तुओं पर एकाग्र करना. तृतीय अवस्था में उपास्यदेव के साथ एकता।

प्रार्थना सामयिक न होकर वह हमारे जीवन का दैनिक कर्तव्य हो जाना चाहिए। जब अकाल पड़ता है तो मनुष्य अन्न के लिए, अनावृष्टि हो तो वर्षा के लिए, कोई प्रियजन मरने वाला हो तो उसके स्वास्थ्य के लिए प्रार्थना करता है। दुःख से बचने का सच्चा तरीका यह नहीं, सुख में भी उपास्यदेव की प्रार्थना न भूलें यह ही दुःख से बचने का उत्तम उपाय। किसी कवि ने ठीक ही कहा है,–

'दुख में सब सुमिरन करें
सुख में करे न कोई
सुख में जो सुमिरन करें
तो दुःख काहे को होय।

सांसारिक सुखों की हमारे में जब तक इच्छायें हैं तब तक हमको शान्ति सुख व परमेश्वर की प्राप्ति नहीं हो सकती। अभिलाषाओं के रहते में परमेश्वर का कोई स्थान नहीं। क्योंकि 'जहां अभिलाषायें हैं वहां ईश्वर नहीं जहां ईश्वर है वहां अभिलाषायें नहीं, जैसे दिन और रात साथ नहीं रह सकते वैसे ईश्वर और अभिलाषायें साथ नहीं रह सकते।"

आवश्यकता इस बात की है कि हमारा सारा जीवन प्रार्थनामय हो जाय। जिसने तन मन बुद्धि परम प्रभु की उपासना में लगा दी उसकी कोई अभिलाषा रह ही नहीं जाती, प्रभु की इच्छा उसकी इच्छा हो जाती है। वह आप्तकाम हो जाता है। वह परमेश्वर का परम प्रिय भक्त बन जाता है।

संसार रूपी नदी को पार करना सरल काम नहीं। उसमें विषम चट्टाने हैं, उनका तो सामना करना ही होगा। जब दुनिया की मुसीबतों को झेलना ही है तो हंसकर क्यों न उनका मुकाबला किया जाय। जीवन तो संग्राम है फूलों की शय्या नहीं। सुख हो या दुःख प्रभु को न भूलें, हम उससे प्रार्थना करें कि तेरी इच्छा पूरी हो। क्योंकि उसकी इच्छा तो पूरी होकर ही रहेगी। यही पूर्णभक्ति की समर्पण की प्रार्थना सर्वश्रेष्ठ प्रार्थना है जो कि हमारे गुरु स्वामी दयानन्द ने इस संसार से विदा होते हुये हमको अमूल्य सम्पत्ति के रूप में दी थी।

गु रु कु ल

८ आश्विन शुक्रवार १९३८

शिमला हिन्दी साहित्य सम्मेलन

अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन का २८वां वार्षिक अधिवेशन पिछले दिनों १६, १७, १८ सितम्बर की तिथियों में शिमला शैल पर सम्पन्न हुआ। भारत की ग्रीष्म कालीन राजधानी में सम्मेलन के होने से इसे भारत के गण्यमान्य नेताओं का प्रश्रय प्राप्त था। सरकारी, गैरसरकारी बहुत से राष्ट्रसेवी हिन्दी भक्त इस अवसर पर उपस्थित हुए थे। सम्मेलन का आकर्षण इस वर्ष इसके यशस्वी सभापति में था। पिछले कुछ वर्षों से यह प्रथा सी चली आई थी कि भारत के किसी राजनैतिक नेता को इसका सभापति बनाया जाय। महात्मा गांधी जी, देशरत्न बाबू राजेन्द्रप्रसाद जी तथा श्री जमनालाल जी बजाज जैसे राष्ट्रनायकों का इसके सभापति बनाने में यही आन्तरिक रहस्य था। शिमला अधिवेशन के सभापति पद पर दैनिक हिन्दी पत्र 'आज' के सम्मानित प्रधान सम्पादक श्री बाबूराव विष्णु पराड़कर को बैठाकर सम्मेलन गौरवान्वित ही हुआ है।

हिन्दी साहित्य सम्मेलन की स्थापना दो आदर्शों को सामने रखकर हुई थी। हिन्दी साहित्य की अभिवृद्धि तथा हिन्दी भाषा का प्रचार। हिन्दी के साहित्यिक, कवि, लेखक तथा इसके प्रेमी मौलिक तथा अनूदित साहित्य के द्वारा हिन्दी साहित्य के भण्डार को भरने का प्रयत्न करते आये हैं। बुरा हो भारत की उस अज्ञान कलह का जो आज भारत के प्रत्येक क्षेत्र में अभिव्याप्त हो रही है, साहित्य सा पवित्र क्षेत्र भी इससे अछूता नहीं बचा है। साहित्यिकों में आज पार्टीबन्दी ने स्थान पा लिया है, हिन्दी साहित्य का प्रत्येक गौरवान्वित पद इससे दूषित हो रहा है, हिन्दी पत्रकार कला में भी दलबन्दी ने ही स्थान ले लिया है।

दूसरी ओर भारत राष्ट्र के स्वतन्त्रता की ओर अग्रसर होते हुए एक राष्ट्रभाषा का होना नितान्त आवश्यक है। भारत की राष्ट्रभाषा एक हो इसके लिये आवश्यक कार्य संचालन में राष्ट्रीय महासभा का एक बड़ा हाथ रहा है। भारत के ६ प्रान्तों में एक सी नीति सञ्चालित करते हुए राष्ट्रीय नेताओं की राष्ट्रभाषा पर भी दृष्टि है। भारत की राष्ट्रभाषा हिन्दी हो या हिन्दुस्तानी इस विषय पर बहुत वादविवाद हुआ है, विभिन्न तरीकों से प्रचार-कार्य किया गया है। राष्ट्रीय महासभा (कांग्रेस) के प्रान्तों में हिन्दुस्तानी भाषा जिसकी लिपि देवनागरी तथा फारसी दोनों ही हैं—स्वीकृत की गई है। इस विवेकपूर्ण नीति से कुछ मुसलमान शायद प्रसन्न हुए हों, हमें मालूम नहीं। बहुत से हिन्दुओं और मुसलमानों की ओर से इसका वैध व अवैध रीतियों से अवश्य ही घोर विरोध हुआ है। मौलाना अबुलकलाम आज़ाद, ख्वाजा हसन निज़ामी की (उर्दू) कथित हिन्दुस्तानी को एक औसत हिन्दी भाषा भाषी प्रान्तवासी भी समझने को अपने में असमर्थ पाता है, फिर संस्कृत की पुत्री भाषाओं के पालने में पलने वाले प्रान्तीयभाषाभाषियों के लिये तो यह भाषा और टेढ़ी खीर होगी। स्वर्गीय प्रेमचन्द जी की भाषा पिछले दिनों एक आदर्श राष्ट्रभाषा के रूप में समझी जाती थी। इस विषय में कोई मतभेद नहीं हो सकता। सच्ची राष्ट्रभाषा के लिये हमें गांवों की ओर जाना होगा। उत्तर भारत के गांवों में जो भाषा बोली जाती है वही भाषा राष्ट्रभाषा के रूप में स्थापित की जानी चाहिये। इसका नाम हिन्दी हो, हिन्दी हिन्दुस्तानी हो इसमें हमें विवाद नहीं है। शिमला हिन्दी साहित्य सम्मेलन पर सभापति जी का भाषण संस्कृतनिष्ठ हिन्दी भाषा के पक्ष का एक अच्छे से अच्छा नमूना था। कोई भी नीति हो इस विषय में सम्मेलन को एक स्पष्ट नीति का अनुसरण करना चाहिये। इसके सम्मानित पदाधिकारियों की जिम्मेदारी अधिवेशन तक ही सीमित न होनी चाहिये। हिन्दी साहित्य सेवियों तथा हिन्दी प्रचारकों को इससे पथ प्रदर्शन प्राप्त होना चाहिये। सम्मेलन इस विषय में सर्वोपरि संस्था है उसे अपने क्षेत्र में सतत जागृत रहने की आवश्यकता है। सम्मेलन का महान् कर्त्तव्य है कि वह साहित्यिकों की दलबन्दी दूर करे। हिन्दी प्रचारकों से चाहे वे किसी भी राष्ट्रीय या अन्य किसी भी शिक्षा व प्रचार संस्था में कार्य करते हों सीधा सम्बन्ध स्थापित करे। इस विषय का मासिक तथा साप्ताहिक या कम से कम वर्तमान दशा में पाक्षिक ही साहित्य पहुंचाये। इससे दो लाभ हो सकेंगे, हिन्दी के प्रचारक एक महान् संस्था के साथ सबद्ध हो जायेंगे। इसके प्रचार का कार्य बड़े पैमाने पर सुचारु रूप से सञ्चालित हो सकेगा।

पञ्जाब जैसे अहिन्दीभाषाभाषी प्रान्त में भी आज हिन्दी अच्छी तरह समझी जाती है। कुछ हिन्दी दैनिक पत्र भी नियमित रूप से इस भूमि से निकलते हैं। हिन्दी के प्रति आज पञ्जाब की अभिरुचि है जिसका बड़ा प्रमाण शिमला का सफल हिन्दी-साहित्य सम्मेलन है।

साहित्य सेवा तथा प्रचार दोनों दृष्टियों से इस बार का सम्मेलन काफी सफल रहा है। पंजाब की चुनी हुई जनता जो शिमला में इन दिनों रहती है उसने इसके कार्य क्रम में जो दिलचस्पी दिखाई वह स्मरणीय रहेगी। हिन्दी भाषा गिने चुने प्रमुख साहित्यिक भी इस अवसर पर शिमला शैल पर पहुँचे हुए थे, सभी का एक दृष्टिकोण था—एक ही लगन था, जिसको दृष्टि में रख कर सब कार्य कर रहे थे, हिन्दी भाषा सम्पन्न हो, इसका साहित्य पुष्ट हो, और राष्ट्रभाषा हिन्दी अमर हो।

परीक्षा-पद्धति

[ले० श्री क्षितीश १४श]

(२)

इस प्रकार दिनरात परीक्षाओं की चिन्ताओं का घेरा न तो मनुष्य के मन को स्वस्थ बनने देता है, और न ही मनुष्य के शरीर को। लगातार घोटते रहने से परीक्षाओं के आसपास विद्यार्थियों के मनों पर इतना विषैला प्रभाव पड़ता है कि उनका स्वास्थ्य बिल्कुल गिर जाता है। अच्छे लड़के फेल होने के डर से घबराते हैं, और यह घबराहट ही उनके स्नायुसंस्थान पर एक ऐसा प्रभाव डालती है कि हमेशा थकावट अनुभव होती रहती है। परीक्षाओं के दिनों में जाकर देखो, तो बड़ी आसानी से देख सकोगे कि कालिजों के होस्टलों में रात रात भर बिजली जलती रहती है। यदि क और ख दोनों एक कमरे में रहने वाले हैं, तो क तो आठ बजे सो जाता है, पर ख रात के दो बजे तक बीच बीच में चाय पीते रह कर पढ़ता रहता है, और ज्योंही सोने लगता है क को पहले जगा देता है और अब क तब तक पढ़ता रहता है जब तक सूरज की रोशनी उसके कमरे में आकर बिजली के प्रकाश को धीमा नहीं कर देती। इस प्रकार की शिक्षा भी क्या शिक्षा है—जिससे शरीर का नाश होता हो और मानसिक शक्ति पर कुठाराघात होता हो। यह कार्याधिक्य विद्यार्थी के वात संस्थान nervous system को हमेशा के लिए कमज़ोर बना देता है, और परिणाम यह होता है कि वे जीवन भर पूर्ण स्वास्थ्य तक नहीं पहुँच पाते। बहुत सारे विद्यार्थी परीक्षा के भय से या परीक्षा में अनुत्तीर्ण होने के भय से आत्मघात कर लेते हैं। आए दिन अखबारों में कितनी ऐसी घटनाएं आंखों के सामने से गुज़रती हैं—अमुक ने पेड़ में रस्सी डाल कर फांसी लगा ली, अमुक ने गंगा जी में कूद कर इस परीक्षा पिशाचिनी के प्रखर पंजे से हमेशा के लिए छुटकारा पाया, और अमुक ने रेलगाड़ी के नीचे आकर अपनी सारी चिन्ताओं का तथा फेल होने पर उसकी शिक्षा पर इतना अधिक खर्च होने के कारण -जो एकदम फिजूल है और जिसने मां-बाप को एकदम नंगा और भूखा बना दिया है—अपने उन मां-बाप और अन्य सम्बन्धियों की दिखाई जाने वाली लाल-पीली आंखें तथा अपने सहपाठियों का वह तिरस्कार—इन सबको ही उसने उस एञ्जिन के दैत्याकार कचकचाते हुए पहियों के नीचे एक साथ ही चकनाचूर कर दिया है। यद्यपि इस प्रकार की घटनाएं सार्वजनिक नहीं हैं—ये extreme cases हैं, पर फिर भी इस पद्धति से दिन रात लगातार पड़ता हुआ प्रभाव मनुष्य के जीवन को कितना कुण्ठित बना देता है इसकी कल्पना करी सकती हैं। यदि सचमुच ही अन्वेषण करने की इच्छा हो, तो परीक्षा की तिथि से एक दो महिने पहले लड़कों को तोल कर देखो तब पता लगेगा कि लड़कों का स्वास्थ्य कितना ज़्यादा गिर गया है। इस पद्धति के पक्ष में यदि और कुछ न भी कहा जा सके, तब भी क्या इस लगातार होने वाली मानसिक क्षति और शारीरिक क्षति की भी उपेक्षा की जा सकती है?

परीक्षा के दिनों में, अक्सर हर रोज़ कम से कम चार या पांच घण्टे खराब करने पड़ते हैं, और यूनिवर्सिटियों में दो—तीन सप्ताहों तक लगातार यही क्रम चलता रहता है। जिन दिनों परीक्षाएं होती हैं—गर्मी का मौसम होता है, सूर्य भगवान् बड़ी तेज़ी से अपनी आग पृथ्वी पर बरसा रहे होते हैं। उस समय तापमान १०० अंश से किसी प्रकार भी कम नहीं होता। और परीक्षा की तिथि की घोषणा होने से लेकर जब तक उसका परिणाम उद्घोषित नहीं हो जाता, तब तक परीक्षार्थी के मन पर चिन्ताएं और दुविधायें डेरा डाले पड़ी रहती हैं। एक तो परीक्षा से एक-दो महीने पहले उसमें पास होने की चिन्ता - यह तो किसी तरह तर्क-संगत मानी भी जा सकती है, पर परीक्षा हो चुकने पर फिर परिणाम के लिए दो तीन महीने टंगे रहना—यह कहां का न्याय है? परीक्षा के बाद के ये दो-तीन महीने कितने बुरे गुज़रते हैं—इसका अनुभव वही कर सकता है जिसने कभी परीक्षा देकर परिणाम की इतने समय तक इन्तज़ार की हो। 'जाके पैर न फटी बिवाई, सो क्या जाने पीर पराई।' वे, ऊपर से लेकर नीचे तक दुविधाओं से और संशयों से भरे हुए दो-तीन महीने! कैसे कटते हैं, यह भुक्तभोगी ही जानते हैं। यह अवस्था है हमारे विद्यार्थियों की, जिन्होंने आगे जाकर नागरिक बनना है और राष्ट्र का कर्णधार बनना है। और कई बार तो, यहां तक कि 'मिडिल स्कूल' में भी, एक ही दिन में, तीन २ विषयों की परीक्षा इकट्ठी देनी पड़ती है। एक अज्ञात परीक्षक—जिसका कुछ पता नहीं कि कौन है और कौन नहीं—विद्यार्थी ने जीवन में कितनी शिक्षा पाई है—इस बात की जांच करता है। और यदि भाग्यवश बिचारा दो अङ्कों से परीक्षा में पास होने से रह जाता है, तो उसे फिर सारे के सारे विषय दुबारा पढ़ने पड़ते हैं। यह मनुष्यशक्ति का कितना अपव्यय है? चाहिये तो यह कि स्कूल विद्यार्थियों को उनके भावी जीवन के लिये तय्यार करें और उन्हें किसी काम का आदमी बनाएं पर लगता ऐसा है जैसे कि आजकल के स्कूल ऐसी फैक्टरियां हैं—जहां दिनरात मानसिक तथा शारीरिक शक्तियों का ह्रास होता रहता है।

परिणामों की उद्घोषणा—यह नौजवानों को मारने के लिए उस मशीन का एक नया और अनोखा हथियार है। यूनिवर्सिटियों ने यह निश्चय किया हुआ है कि इतने प्रतिशत विद्यार्थी पास करने हैं, इससे अधिक नहीं। अपने उस निश्चय के अनुसार वे तिहाई से भी अधिक विद्यार्थियों को फेल करके और असहाय बनाकर इस दुनिया के रंगमंच पर फेंक देते हैं। ये निराश, मनोहताश और अर्धशिक्षित नवयुवक ही दिनदूनी रात चौगुनी बढ़ने वाली हमारे देश की बेकारी को लगातार बढ़ा रहे

है। डाक्टर Balead ने इतिहास की परीक्षा में एक रिकार्ड उपस्थित करके आधुनिक परीक्षा पद्धति के खोखलेपन का बिलकुल नंगा कर दिया है जब कि वह लिखता है—कि अमेरिकन यूनिवर्सिटी में, सन् १६२० की बात है, ६ प्रोफेसर निर्णायक थे और उन्होंने अपने में से ही एक प्रोफेसर को बिलकुल फेल कर दिया। बात यह थी कि विद्यार्थियों की सहायता के लिए उसने एक कापी तय्यार की थी, और वही कापी गलती से परीक्षार्थियों की कापी के बीच में मिल गई थी।

विद्यार्थी को श्रेणी में उन्नीत (Promote) करना यह एक और इस पद्धति की खराबी है। इतना ज्यादा अस्वाभाविक, शिक्षण की दृष्टि से अनिश्चयात्मक और मनोविज्ञान की दृष्टि से अवैज्ञानिक और कुछ नहीं हो सकता जितना कि किसी विद्यार्थी को फिर दुबारा उसी श्रेणी में पढ़ने के लिए बाधित करना जिसमें कि वह इस भाग्यवादी पद्धति से केवल मात्र दो-तीन अंकों से ही फेल हो गया हो। भारतवर्ष में आजकल जो शिक्षा पद्धति प्रचलित है वह १०० वर्षों से अधिक पुरानी नहीं है। आजकल हरेक शिक्षाविज्ञ जब किसी बच्चे के विषय में बातचीत करता है तब तो ऐसा लगता है कि वह बच्चा ही सारी शिक्षा का केन्द्र है, पर क्रियात्मक रूप में देखा तो व्यक्ति का कोई महत्त्व नहीं, उसे बिलकुल भुला दिया गया है। प्राचीन भारत के विश्वविद्यालयों में जो शिक्षा दी जाती थी वह आधुनिक ढंग से सर्वथा विपरीत था। विद्यार्थी उन विश्वविद्यालयों में उपाधियां लेने के लिये इकट्ठे नहीं होते थे जिस प्रकार आजकल होता है। वहाँ तो किसी खास गुरु और आचार्य के चरणों में अपना कुछ समय बिताने का सौभाग्य लूटने के लिए ही विद्यार्थी इकट्ठे होते थे और फिर वहां से निकलकर वे अपने उन आदर्शों और सिद्धान्तों का दुनिया में प्रचार करते थे जो उन्होंने उस गुरु के कुल में रहकर सीखे हैं। उस समय तो, 'मैं अमुक गुरु का शिष्य हूं' इतना बतला देना ही बहुत बड़ा प्रमाणपत्र था। गुरु लोग विद्यार्थियों की हीनताओं को और विशेषताओं को जानते थे और हरेक विद्यार्थी की हर रोज़ अलग २ वैयक्तिक ढंग से परीक्षा होती थी और उतने ही समय में विषय का क्रियात्मक ज्ञान भी प्राप्त किया जाता था। किसी विषय में दो तीन अङ्कों से रह जाने के कारण वहां साल के साल खराब नहीं करने पड़ते थे, वहां तो लगातार आगे बढ़ना था, लगातार उन्नति थी।

एक और खास बात है, और वह यह कि आधुनिक परीक्षा से ऋणात्मक प्रभाव होता है। कहने का मतलब यह है कि परीक्षा हमें बताती है कि विद्यार्थी ने कितना ज्ञान प्राप्त नहीं किया, उसने इतने प्रतिशत अंक प्राप्त किए हैं अर्थात् वह उचित Standard तक नहीं पहुँच सका। पर जो इस Standard तक नहीं पहुंचे हैं, उन्होंने क्या कुछ सीखा ही नहीं है? क्या दुनिया में वे किसी भी काम नहीं आ सकते? चाहिये तो यह कि हम विद्यार्थियों की योग्यता को जनता के सामने रखें, पर अब हो यह रहा है कि उनकी बुराई, उनकी हीनता और उनकी अयोग्यता तो जनता के सामने आजाती है, और उनकी विशेषता छिप जाती है।

हमारा उद्देश्य तो यह होता है कि हम एक साल के लिए कुछ कोर्स मुकर्रर कर दें, और परीक्षा लेकर देखते रहें कि वह पढ़ाई ठीक तरह चल रही है या नहीं। पर इसका मतलब समझ यह लिया जाता है कि परीक्षा नाम की एक पकड़ है, उसको हमने पास करना है, और पास करने के लिये ही उसे पास करना है, किसी और उद्देश्य के लिए नहीं। परिणाम यह होता है कि विद्यार्थियों में एक ऐसी मनोवृत्ति जाग जाती है जिसके कारण विद्यार्थी समझते हैं— जो परीक्षा के लिए उपयोगी नहीं है, उसके याद करने से कोई फायदा नहीं, केवल समय को व्यर्थ बरबाद करना है। यही कारण है—यदि कोई परीक्षक इंगलिश के मुहावरे की परीक्षा में पूछता है, तो सब के सब विद्यार्थी हज़ारों मुहावरे कण्ठ कर लेते हैं। यदि परीक्षक कोई व्याकरण की गहरी सिद्धियां पूछता है, तो लड़के सिद्धियां घोट लेते हैं, यदि कोई कारिका पूछता है तो कारिका घोट लेते हैं, और यदि कोई यङन्त या यङ्लुगन्त के कुछ रूप पूछ लेता है तो लड़के 'दाधर्त्ति और देधर्त्ति' का घोट मारते हैं। यदि कोई बीजगणित में छोटे २ Tuckey सवाल पूछ लेता है तो लड़के खोज खोज कर सारे साल ऐसे सवाल करते रहते हैं। जो अधिकारी परीक्षा देते हैं—उनसे पूछो कि यही हाल होती है या नहीं। सच तो यह है कि हमारी सम्पूर्ण शिक्षा के रास्ते में यदि कोई बड़ा से बड़ा रुकावट है तो यह अधिकारी परीक्षा ही है, Matriculation ही है, क्योंकि इसके बिना विद्यार्थी महाविद्यालय में प्रविष्ट नहीं हो सकता। जब तुम किसी स्कूल में जाते हो और देखते हो कि कोई बेवकूफ़ी का काम हो रहा है, तो पूछ कर देखो—यह क्यों?' उत्तर मिलेगा—मैट्रिकयूलेशन। विद्यार्थी क्यों इस लगातार इस पंक्ति के व्यर्थ के समास का विग्रह करने में अपना सारा समय खराब कर रहे हैं। उत्तर है 'अधिकारी परीक्षा'। लड़के इतिहास और सत्यार्थ प्रकाश को क्यों घोटा लगाते हैं? अधिकारी-परीक्षा। विद्यार्थी क्यों रात रात भर जाग कर तर्कभाषा और महाभाष्य घोटते हैं? उत्तर है—अधिकारी परीक्षा।

इस प्रकार की मनोवृत्ति स्कूल की सारी अच्छाइयों को नष्ट कर देती है। यह आचरण और शारीरिक विकास के लिए विघातक है, कल्पना शक्ति के लिए विघातक है, निरीक्षण-शक्ति और तर्क शक्ति के लिए विघातक है, जितनी भी सच्ची शिक्षा है—उन सब के लिए विघातक है। सच तो यह है कि यह परीक्षा-विधि एक अच्छा सेवक है पर साथ ही बुरा स्वामी भी है। इसलिए चाहिए यह कि इसे सेवक ही रहने दिया जाय—मास्टर यह न बन पाए। प्रश्नपत्र कुछ इसी ढंग के होने चाहिएं, कि यदि विद्यार्थी को सारी की सारी आवश्यक पाठ्यपुस्तकें परीक्षा के समय दे भी दी जायें, तो भी विद्यार्थी उन प्रश्नों का उत्तर देने में तबतक असमर्थ रहें जबतक उस विषय में उसने कुछ मौलिक विचार न

किया हो। श्रेणी में पढ़ाते हुए भी बोर्ड पर ऐसे प्रश्न लिखने चाहिएं कि उनके उत्तर के लिए विद्यार्थियों से कहा जा सके- 'अपनी अपनी पुस्तकें लेलो और पढ़ो, उस पर विचार करो और फिर उत्तर लिखो।' इस प्रकार विद्यार्थी में जहां, विचार, अन्वेषण और युक्ति करने की शक्ति बढ़ती है, वहां साथ ही साथ मानसिक विकास भी होता है। पर आधुनिक परीक्षक कुछ ऐसे प्रश्न पूछते हैं-जिनका जीवन में कोई लाभ नहीं, और वे इतने छिपे होते हैं कि उन पर कभी किसी का ध्यान नहीं जाता, कभी कोई याद नहीं करता। उस समय परीक्षक अपने जीवन से इस कहावत को चरितार्थ कर रहे होते हैं--'Fools run in where angels fear to tread.

[क्रमशः]

गुरुकुल समाचार

गत सप्ताह ब्र० इन्द्रसेन १३ श्रेणी टाईफाइड ज्वर, धर्मवीर १३ श्लेष्मज्वर, वीरेन्द्र ११ श्लेष्म ज्वर, पुरुषोत्तमदेव १३ मलेरिया ज्वर, कान्तिकृष्ण १ मलेरिया ज्वर, भूमित्र २ मलेरिया ज्वर से रोगी हुए थे। ब्रह्मचारी इन्द्रसेन को अभी ज्वर है शेष सब अच्छे हैं।

तीनों महाविद्यालयों की षाण्मासिक परीक्षा शुक्रवार ता० २३ सितम्बर से प्रारम्भ हो गई है। परीक्षा सप्ताह भर में समाप्त हो जायगी।

पिछले सप्ताह गुरुकुल कार्यालय में कोबरा जाति का एक फणाधर भयङ्कर तथा अत्यन्त ज़हरीला सांप निकल आया था। जिसे देख कर पास जाने से डर सा लगता था, प्रारम्भ में तो इस भयङ्कर जीव ने काफी हलचल मचा दी पर शीघ्र ही महाविद्यालय के कुछ साहसी ब्रह्मचारी रात्रि के उस गम्भीर अन्धकार में भी उस सांप को पकड़ ही तो ले आए। इस कृत्य का साहसपूर्ण नेतृत्व कर कुल के वीर क्षत्रिय रूप स्नातक पं० हरिवंश जी वेदालङ्कार ने सब कुलवासियों को साहस एवं वीरता का एक क्रियात्मक उदाहरण समुपस्थित किया था।

पिछले सप्ताह शिमला में हो रहे अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन में भाग लेने के लिए गुरुकुल विश्वविद्यालय तथा इससे सम्बद्ध हिन्दी साहित्य सम्मेलन का प्रतिनिधित्व करते हुए उपाध्याय श्री पं० वागीश्वर जी विद्यालङ्कार तथा श्री शास्त्री दीनदयालु जी सिद्धान्तालङ्कार गए थे। दोनों ही मान्य प्रतिनिधि सम्मेलन तथा इसकी विभिन्न हलचलों में हिस्सा लेते रहे हैं। उपाध्याय पं० वागीश्वर जी की कविता को सुन कर सभी परम प्रसन्न हुए। अब दोनों ही महानुभाव कुल में आ गये हैं।

बम्बई का स्नातक मण्डल

ता० ११-६-३८ रविवार को सायंकाल ४॥ बजे श्री प्रो० इन्द्र जी के कार्यालय (सर्वेन्ट्स् ऑफ इण्डिया सोसायटी, सेन्डहर्स्ट रोड बम्बई)-में श्री स्नातक रामचन्द्र जी के सभापतित्व में स्नातक मण्डल बम्बई की सभा हुई।

इस बैठक में निम्न सभासद उपस्थित थे। पं० रामचन्द्र जी सिद्धान्तालंकार, पं० दीनानाथ जी सिद्धान्तालङ्कार, डा० धर्मानन्द जी आयुर्वेदालङ्कार, पं० नरेन्द्रदेव जी विद्यालङ्कार, पं० अनिल कुमार जी, पं० निरञ्जन देव जी तथा पं० विपिनचन्द्र जी।

सबसे प्रथम गुजरात प्रान्तीय स्नातक मण्डल के प्रधान के पत्र पर विचार हुआ, जिसमें यह बताया गया था कि बम्बई स्नातक मण्डल को गु० प्रा० स्नातक मण्डल की शाखा हो जाना चाहिए और नियमित चन्दा भेज देना चाहिए। इस पर यह तय हुआ कि बम्बई स्नातक मण्डल का सम्बन्ध केवल बम्बई नगर से ही है। (नगर तथा उपनगर) अतः शाखा होने न होने का प्रश्न ही नहीं उठता। हां! सहयोग दृष्टि से वर्ष में एक बैठक बम्बई तथा एक बैठक गुरुकुल सूपा में दोनों मण्डलों की सम्मिलित होगी।

स्नातक नरेन्द्र देव जी को उनके एक समाचार पत्र "गुरुकुल" दान देने पर धन्यवाद दिया गया।

डा० धर्मानन्द जी आयुर्वेदालङ्कार को उनकी सफलता पर बधाई दी गई। डा० धर्मानन्द जी गुरुकुल कांगड़ी के सुयोग्य स्नातक हैं। उनकी इस सफलता से न केवल उनका नाम बल्कि गुरुकुल का नाम भी ऊँचा हुआ है। श्री डालमियां ने उनको हज़ारों में से चुना है। अब डा० धर्मानन्द जी अपने अध्ययन के लिए योरुप जा रहे हैं। आशा है योरुप जाकर वह और भी चमकेंगे।

स्नातक डा० धर्मानन्द जी का उसी बम्बई आर्य समाज में भी फूल हार द्वारा स्वागत किया गया। डा० धर्मानन्द जी ने कहा कि मैं अभी तक आर्य जनता की सेवा करता रहा और आगे भी करता रहूँगा।

प्रधान जी के धन्यवाद के साथ बैठक समाप्त हुई।

मन्त्री

पं० दीनानाथ जी सिद्धान्तालङ्कार

प्रभाती

[श्री 'सूर्य' श्रीवास्तव]

खोलो ! प्रिय ! खोलो !!
मदिर आलस अलस नयन-
जीवन जल—धो लो !!
खोलो ! प्रिय ! खोलो !!
स्वप्न जाल, तिमिर जाल,
आवृत विशाल काल।
करता मद मस्त तुम्हें,
निद्रा की सुरा ढाल।
बहता है मलय पवन,
उठ कर संग हो लो।
खोलो ! प्रिय ! खोलो !!

चौधरी दुलासराय के प्रबन्ध से गुरुकुल प्रेस गुरुकुल कांगड़ी में मुद्रित तथा प्रकाशित।

* ओ३म् *

"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत"   Reg. No. A. 2927

गुरुकुल

सम्पादक— भारतभूषण वेदालङ्कार

एक प्रति का मूल्य -)   [गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख-पत्र]   वार्षिक मूल्य २॥)

वर्ष ३]   गुरुकुल काङ्गड़ी, शुक्रवार १५ आश्विन १९९५; ३० सितम्बर १९३८   [संख्या २०

भगवान् बुद्ध के उपदेश

[ले०—श्री पं० ब्रह्मानन्द जी व्याकरणोपाध्याय]

अपने से हीन की संगति करने वाला हीन हो जाता है, और अपने सदृश की संगति करने वाला कभी हीनता को प्राप्त नहीं होता। अपने से श्रेष्ठ की संगति करने वाला शीघ्र उन्नति को प्राप्त होता है, अतः अपने से श्रेष्ठ की संगति करे।

× × × ×

तीन प्रकार के मनुष्य होते हैं—

१—अन्ध

२—एकचक्षु।

३—द्विचक्षु।

१-अन्ध उसे कहते हैं जो न सांसारिक सुखों का भोग करता है, और न पुण्य कर्म करता है। इस प्रकार वह ऐहलौकिक और पारलौकिक दोनों प्रकार के लाभों से वञ्चित हो जाता है।

२-एकचक्षु उसे कहते हैं जो धर्म और अधर्म, दोनों से भोगों की प्राप्ति के लिए प्रयत्न करता है—चोरी कपट, झूठ और हिंसा से मनमाने भोगों का भोग किया करता है। वह इस जन्म में तो सुखी रहता है, किन्तु परलोक में नरकगामी होता है।

३-द्विचक्षु उसे कहते हैं जो धर्मपूर्वक अपने परिश्रम से उपार्जित धन को श्रेष्ठ संकल्प और शान्त मन से युक्त होकर उत्तम कर्मों में दान देकर अवशिष्ट अंश का भोग करता है। अन्ध और एकचक्षु को दूर से ही छोड़ देना चाहिये, और द्विचक्षु का सेवन करना चाहिये।

× × × ×

तीन प्रकार के मनुष्य होते हैं—

१—अवकुब्जप्रज्ञ।

२—उत्सङ्गप्रज्ञ।

३—पृथुप्रज्ञ।

१—अवकुब्जप्रज्ञ उसे कहते हैं जो बार २ सभा में जाकर भी उपदेश के आदि, मध्य और अवसान का ग्रहण नहीं कर सकता, क्योंकि उसके बुद्धि नहीं होती।

२—उत्सङ्गप्रज्ञ वह है जो सभा में जाकर उपदेश के आदि, मध्य और अन्त को समझता है, किन्तु सभा से उठने पर भूल जाता है।

३—पृथुप्रज्ञ पुरुष इन दोनों की अपेक्षा श्रेष्ठ होता है, क्योंकि वह सभा में जाकर उपदेश के आदि, मध्य और अन्त को समझ लेता है, और उठने पर भी स्मरण रखता है।

× × × ×

सन्तानों पर कृपा करने वाले माता-पिता ब्रह्मा और पूज्य आचार्य हैं तथा पुत्रों के सम्माननीय हैं। अतः बुद्धिमान् पुरुष को यह उचित है कि इन्हें नमस्कार करे, तथा अन्न, पान, वस्त्र, शयन, स्नापन, पादप्रक्षालन, इत्यादि कर्मों के द्वारा इनकी सेवा करे। ऐसे मनुष्य की इस जन्म में प्रशंसा होती है, और मरने पर वह स्वर्गगामी होता है।

× × × ×

(प्रश्न) श्रद्धालु किसे कहते हैं? जो शीलवान् मनुष्यों का दर्शन करना तथा मत्सर-रहित हो कर सत्य धर्म का श्रवण करना चाहता है, उसी को श्रद्धालु कहते हैं।

(प्रश्न) कैसे मित्र की सेवा करनी चाहिये? तीन गुणों से युक्त मित्र की सेवा करनी चाहिये। किन तीन गुणों से? १—जिस वस्तु का देना कठिन हो उसे देता है। २ जिस कार्य को करना कठिन है उसे करता है। ३- जिस अपराध को क्षमा करना मुश्किल हो उसे क्षमा करता है।

× × × ×

संसार में तीन प्रकार के मनुष्य होते हैं—

१—पाषाणलेखोपम २—पृथिवीलेखोपम ३—उदकलेखोपम। १-पाषाणलेखोपम वह है जो हमेशा क्रोध करता रहे, तथा जिसका क्रोध सुचिरस्थायी हो। जैसे

पत्थर पर की लकीर वायु या जल से शीघ्र नष्ट नहीं होती, चिरस्थायिनी होती है। २-पृथिवीलेखोपम वह है जो क्रोधित तो हो पर उसका क्रोध चिरस्थायी न हो, जैसे पृथिवी पर की हुई रेखा वायु जल के प्रभाव से शीघ्र नष्ट हो जाती है। ३-उदकलेखोपम वह है जिसको कटुवचन या प्रतिकूल आचरण से भी क्रोध नहीं होता, एवम् उसकी आन्तरिक अवस्था में कोई विकृति नहीं आती। × × ×

एक बार 'उज्जाय' नामक कोई ब्राह्मण भगवान् के पास आया। कुशल-प्रश्न के अनन्तर उसने भगवान् से कहा "आप भी यज्ञ का समर्थन करते हैं?" भगवान् ने कहा—"हे ब्राह्मण! मैं सभी यज्ञों का समर्थन नहीं करता। जिस यज्ञ में गायों, बकरियों, भेड़ों, मुर्गों सूअरों, एवं विविध प्राणियों की हत्या होती है, ऐसे हिंसात्मक यज्ञ का मैं समर्थन नहीं करता। यह क्यों? क्योंकि इस प्रकार के यज्ञ में अर्हत् या अर्हन्मार्गगामी मनुष्य नहीं आते। मैं तो ऐसे यज्ञ का समर्थन करता हूँ जैसे कि नित्य दान करना।

× × × ×

पण्डित पुरुष जब तक नहीं बोलता, तब तक उसकी मूर्खों से विशेषता नहीं प्रतीत होती। किन्तु जब वह सत्योपदेश करता है तब लोग उसे जानते हैं। मनुष्य को उचित है कि वह सदा सत्य धर्म का प्रकाश किया करे। ऋषि लोग 'सुभाषितध्वज' होते हैं। धर्म ही ऋषियों की ध्वजा है।

× × × ×

जिस समय राजा लोग अधार्मिक होते हैं उस समय राजपुत्र भी अधार्मिक हो जाते हैं। राजपुत्रों के अधार्मिक होने पर ब्राह्मण गृहपति भी अधार्मिक हो जाते हैं। ब्राह्मण गृहपतियों के अधार्मिक हो जाने पर कस्बों तथा प्रान्तों के रहने वाले मनुष्य भी अधार्मिक हो जाते हैं। और जिस समय राजा लोग धार्मिक होते हैं उस समय राजपुत्र ब्राह्मण गृहपति तथा नगरवासी और ग्रामवासी, सभी मनुष्य धार्मिक हो जाते हैं।

× × × ×

चार धर्मों से युक्त मनुष्य को असत्पुरुष जानना चाहिये। किन चार धर्मों से? १- जो असत्पुरुष होता है वह दूसरे के अवगुणों को बिना पूछे हुए भी प्रकाशित कर देता है और पूछने पर तो बात ही क्या? पूछने पर बिना कुछ छोड़े हुए विस्तार से दूसरे के दोष को कहता है। २- जो दूसरे का सद्गुण होता है उसे पूछने पर भी प्रकाशित नहीं करता, और न पूछने पर तो बात ही क्या? और पूछने पर दूसरे के गुण को संक्षेप से बहुत सी बातों को छोड़ कर वर्णन करता है। ३- जो अपना दुर्गुण होता है उसे पूछने पर भी नहीं प्रकाशित करता, और न पूछने पर तो कहना ही क्या? और पूछने पर संक्षेप से तथा बहुत संकोचपूर्वक अपने अवगुण को प्रकाशित करता है।

४- जो अपनी प्रशंसा की बात होती है उसे बिना पूछे भी प्रकाशित कर देता है, और पूछने पर कहना क्या? पूछने पर बहुत विस्तार से अपनी प्रशंसा की बातों को कहता है। इन चार धर्मों से युक्त मनुष्य को असत्पुरुष जानना चाहिये। और जिन मनुष्यों में इन उपर्युक्त चार धर्मों से विपरीत धर्म हों उन्हें सत्पुरुष समझना चाहिये। (अङ्गुत्तरनिकाय से)

बुद्ध धर्म का प्रभाव व उसका देन—

[ले० ब्र० सत्यव्रत जी द्वादश]

(पूर्व प्रकाशित से आगे)

इसलिए भगवान् बुद्ध ने स्वतन्त्र विचार करने की शक्ति, संगठन शक्ति व एकता की शक्ति यहां पाई थी तथा इस ही वजह से उन्होंने भिक्षु सम्प्रदाय का संगठन भी इसी तरह गणतन्त्र राज्यों के आदर्श पर किया था।

बुद्ध के समय की तात्कालिक सामाजिक दशा का वर्णन करते हुए वर्णव्यवस्था का सबसे प्रथम नम्बर आता है। उस समय भी इस समय की भांति चार वर्ण थे। परन्तु ब्राह्मणों की अपेक्षा क्षत्रियों का पद ऊँचा था। ईसा से पूर्व ६ठी, ७वीं शताब्दी में अवश्यमेव ब्राह्मणों तथा क्षत्रियों में विद्वेष रहा होगा चूंकि बौद्धों तथा जैनों के धर्म ग्रन्थों से यह पता लगता है कि वे लोग ब्राह्मण ग्रंथों को भ्रममूलक तथा झूठे मानते थे। वे ब्राह्मण प्रथा को ब्राह्मणों की अपनी प्रशंसा, स्वार्थमयी दृष्टि तथा लक्षणों से भरपूर मानते थे। और यह भी वे मानते थे कि अर्हत लोग कभी शूद्र व ब्राह्मण वंश में जन्म नहीं लेते अपितु क्षत्रिय वंश में जन्म लेते थे। इन बातों से मालूम होता है कि बौद्धों के समय ब्राह्मणों में तथा क्षत्रियों के बीच एक विशेष प्रकार का विद्वेष होगा।

दूसरी बात यह है कि उस समय नीच जातियों के साथ बड़ा खराब सलूक किया जाता था। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र इन चार वर्णों के सिवाय और भी कई नीच जातियां वे मानते थे तथा उनको "हीन जाति" के नाम से पुकारते थे। एक समय की बात है जब कि दो उच्च कुलीन स्त्रियां दरवाजे में से बाहर निकल रही थीं कि एकाएक चाण्डाल उनको दृष्टिगोचर हुआ। यह देख कर वे लौट गईं तथा घर आकर अपनी आंखों को पानी से खूब मांज कर वहीं बैठ गईं जब आदमियों को यह भेद मालूम हुआ तो उस चाण्डाल को खूब पीटा। इस प्रकार नीच जाति के साथ होते हुए दुर्व्यवहार को देख कर महात्मा बुद्ध कहां सह सकते थे। एकदम उस बुरी प्रथा को दूर हटा कर अपना भिक्षु द्वार सबके लिए खोल दिया तथा ऊंच-नीच का भेद हटा कर सबको निर्वाणपद की प्राप्ति के लिए उपदेश दिया।

बुद्ध के समय धार्मिक प्रथा बड़ी बुरी थी। यज्ञ और पशुवध का प्रचार बहुतायत से विद्यमान था। सारे देश में यह प्रथा जारी थी। बेचारे अकिंचित्कर,

उसके कपड़े के झण्डे ध्वजारोहण की नकल में सम्मान समझ रहे हैं।

झण्डे को मैं राजनैतिक वस्तु इसलिये कहता हूं कि इसका कुछ लड़ाई के साथ सम्बन्ध है। यह ठीक है कि धर्म भी एक प्रकार की लड़ाई लड़ता है पर यह लड़ाई और तरह की होती है। उसमें जोश खरोश व राजसिकता राजनैतिक लड़ाई की तरह नहीं होती किन्तु उसमें दृढ़ किन्तु शान्त सङ्कल्प तथा सात्विकता होती है। इसलिये इस लड़ाई का चिन्ह अग्नि ही शोभा देता है। अग्नि का ऊपर उठने वाला शान्त प्रबल सङ्कल्प का प्रतीक सब जगह माना गया है। इसके अतिरिक्त वैसे भी जैसे मैंने ऊपर कहा कपड़े, कागज़, टीन आदियों के बने झण्डे झण्डियों की अपेक्षा अग्नि बहुत अधिक जीता जागता स्वाभाविक और उज्ज्वल केतु है।

इससे मेरा यह भी मतलब नहीं कि गुरुकुल में जो ओम् का झण्डा लगा हुआ है उसे उतार दिया जाय। यह जिन परिस्थितियों और अवस्थाओं में लगाया गया है वे ठीक थीं तब वह बड़े काम का था। उस झण्डे से अब भी बहुत लोगों को उद्बोधन मिलता है, उसे उतारना उनका अपमान करना होगा। परन्तु इस झण्डे के साथ और झण्डों की नकल में कुछ और प्रक्रिया जोड़ना, इस से तो हमें अवश्य बचना चाहिये। आजकल की भाषा में कहूँ तो इसे मुस्लिमलीग का झण्डा न बना देना चाहिये। ओम् का झण्डा कोई राष्ट्रीय झण्डे के मुकाबिले की चीज़ नहीं है। राष्ट्रीय झण्डा—झण्डा-तो देश में एक ही होना चाहिये। ओम् का या परमात्मा के नाम का झण्डा (केतु-प्रतीक) किसी देशविशेष से, परिमित देश से सम्बन्ध रखने वाली वस्तु नहीं किन्तु सार्वभौम वस्तु है। असल में तो, जैसे कि मैंने ऊपर कहा वह झंडे का विषय ही नहीं है। फिर इसका झंडा बनाना इतना ही नहीं किन्तु इसे अन्य झण्डों की बराबरी में इतने नीचे उतार लाना बहुत अच्छा लगता है। अभी अखबारों में पढ़ा था कि खुर्जा की म्युनिसिपेलिटी पर कांग्रेस का झण्डा लगा हुआ था उस पर मुस्लिम लीग वालों ने अपना झण्डा लगा दिया उन्हें देखकर सिक्खों, सनातन धर्म वालों और महावीर दल वालों ने भी अपने झण्डे लगा दिये। मुझे आशा है कि हमारे आर्यसमाजी भाई ऐसा तो नहीं करेंगे कि ऐसे समय पर वहां ओम् का झण्डा ले जाकर लगा दें, पर हम जिस तरफ़ झुक रहे हैं उससे अन्देशा होता है कि कहीं हम भी उसी तरफ़ न चले जाएं। यदि हमारे अग्निहोत्र की अग्नि के झण्डे में ऐसी शक्ति नहीं आई है कि वह सच्चा धार्मिक आकर्षण पैदा कर सके तो हमें ठहरना चाहिये और अधिक तपस्या करनी चाहिये पर ओम् के पवित्र झण्डे के साथ यह खिलवाड़ शुरु न कर देना चाहिये। हमें पूरे निश्चित रूप से समझ लेना चाहिये कि हमारा असली झण्डा—जिसमें आकर्षण करने की शक्ति किसी भी राजनैतिक झण्डे की अपेक्षा सहस्र गुणा अधिक है, क्योंकि स्वयं धार्मिक क्षेत्र ही राजनैतिक क्षेत्र की अपेक्षा बहुत व्यापक है-अग्नि है। इस झण्डे का, अग्नि का प्रभाव जगत्-व्यापक है। बेशक इस झण्डे को फहराना, इसकी स्थापना व आराधना करना और हृदय से निकले हुए वेदमंत्रों द्वारा इसकी सच्ची उपासना करना बड़ा कठिन है, बहुत तपस्या और आत्मिक बलिदान को चाहता है। पर हमारा असली धार्मिक (असाम्प्रदायिक सार्वभौम) झण्डा-प्रार्थना है यही।

यह कपड़े का ओम् का झण्डा भी चूंकि आज निरा पद है इसलिये भी कुछ लोग इसको महत्व देते हैं, इसे राष्ट्रीय झण्डे के मुकाबिले में रखकर इसे बढ़ाने में धार्मिक जोश दिखाते हैं परन्तु यदि कभी जैसे राष्ट्रीय झंडा खतरे की वस्तु रहा है और आगे भी हो सकता है वैसे यह ओम् की ध्वजा भी खतरनाक वस्तु हो जाए तो इसकी रक्षा करने वाले, इसके लिये जान दे देने वाले शायद वे ही आर्यवीर निकलेंगे जो कि राष्ट्रीय झंडे के लिए या देश के लिए कष्ट उठा चुके हैं, कुछ बलिदान कर चुके हैं या बलिदान करने को वस्तुतः तैयार हैं। (दूसरे तो शायद तब इसे कपड़े का टुकड़ा कह कर इस के लिए आग्रह करना, लड़ाई झगड़े में पड़ना मूर्खता-पूर्ण कार्य समझेंगे) अस्तु। मतलब यह है कि ये दोनों झण्डे वस्तुतः कोई मुकाबिले की चीज़ नहीं हैं बल्कि एक दूसरे के पूरक हैं। सच्चा आर्य आज वह है जो प्रतिदिन दैनिक अग्निहोत्र द्वारा, जगद्व्यापक प्रभाव रखने वाले महायज्ञ द्वारा अग्नि के झंडे की उपासना करता है तथा राष्ट्रीय महासभा द्वारा नियत अवसरों पर अपने राष्ट्रीय तिरंगे झंडे द्वारा राष्ट्रयज्ञ की इस प्रक्रिया में भी सम्मिलित होता है। उसे अग्नि में अपने राष्ट्र के पापों को भस्म करने वाली पवित्र शक्ति अनुभूत होती है और चर्खे से चिन्हित तिरंगे राष्ट्रीय झण्डे में भी ॐ का प्रकाश दीखता है।

डा० धर्मानन्द जी का प्रवास

डा० धर्मानन्द जी आयुर्वेदालङ्कार बचपन से ही होनहार हैं। गुरुकुल में यद्यपि वे आयुर्वेद के विद्यार्थी थे किन्तु उनका ज्ञान सर्वतोमुखी था। सभा सोसा-इटियों में भाग लेते समय उनकी इस प्रतिभा का प्रायः परिचय मिला करता था। स्नातक होने के बाद कुछ काल वे गुरुकुल सूपा में अध्यापक रहे और बाद में देहरादून में एक वैद्य के नाते प्रतिष्ठित हुए। एक सफल वैद्य के नाते डा० धर्मानन्द की उस नगर में जो विशेष प्रतिष्ठा हुई वहां उस स्थान के सार्वजनिक जीवन में भी उन्होंने विशेष ख्याति प्राप्त की। यह विशेष हर्ष का अवसर है कि दानवीर सेठ रामकृष्ण डालमिया ने डा० धर्मानन्द जी को चिकित्साशास्त्र में विशेष निपुणता प्राप्त करने के लिए छात्रवृत्ति प्रदान की है। डा० धर्मा-नन्द जी इसी सप्ताह चिकित्सा के विशेष अध्ययन के लिए बम्बई से जर्मनी जा रहे हैं। विदा देते समय देहरादून के प्रमुख नागरिकों ने डा० धर्मानन्द जी का जो अभिनन्दन किया था उससे डा० जी की ख्याति, प्रसिद्धि व प्रेम का पता चलता है। हम डा० धर्मानन्द जी को ज्ञानवृद्धि के लिए विदेश प्रवास पर बधाई देते हैं और इसमें उनकी हृदय से सफलता चाहते हैं।

सन्ध्या में मन न लगने के कारण

[लेखक—श्री पं० नित्यानन्दजी वेदालंकार]

[इस लेख का विद्वन् लेखक 'सन्ध्या सुमन' नामक पुस्तक लिख रहा है। यह लेख इस पुस्तक की भूमिका का एक अंश है। सम्पादक]

सन्ध्या करने वालों की सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि चाहते हुए भी सन्ध्या में मन नहीं लगता। चार घड़ी शान्त चित्त होकर बैठ सकना मुश्किल मालूम होता है। सन्ध्या का अर्थ है 'सम्यक् ध्यान'। परन्तु जब सन्ध्या करने बैठा तो मन लोक लोकान्तरों की सैर के लिए चल देता है। आंख मूंद कर ज़रा बैठे कि अगली पिछली सब एक एक करके याद आने लगती है। इधर उधर की सब चिन्ताएं आ घेरती हैं और सन्ध्या छूट जाती है।

इसका सबसे प्रथम कारण यह है कि हमने सन्ध्या को समझा ही नहीं। सैकड़ों में से ५, १० व्यक्ति ही भली भांति समझ कर सन्ध्या करते हैं, यह कहना शिक्षित वर्ग का शायद तिरस्कार समझा जाय। परन्तु इस कथन में सत्य का अंश अवश्य है। सर्वसाधारण की संध्या तोते की रटन्त से बढ़ कर नहीं। मन्त्रों के शब्द-जाल में गुंथी हुई भावनाओं को बिना समझे ही हम समाहित हुवा चाहते हैं; यह सम्भव नहीं।

मन लगा सकने के कारण सबसे प्रथम संध्या पर लिखी किसी उत्तम पुस्तक को उठा कर मन्त्रों के एक एक शब्द के गम्भीर आशय को समझना चाहिये। संध्या के शब्दों के सौन्दर्य, माधुर्य, और भाव गाम्भीर्य को समझ लेने पर यदि प्रयत्न हो तो, मन का समाहित हो सकना मुश्किल नहीं। मन्त्रों के शब्दजाल में ओत-प्रोत भावनाओं पर ध्यान रखने से, मन को दौड़ धूप के के लिए विस्तृत मैदान मिल जाने के कारण, मन थक थका कर एकाग्र होने लगता है। जिस मन्त्र के अर्थ से मन बचता हो उसका फिर पाठ कीजिये। जब तक मन्त्र एक बार हृदय में से गुज़र न जाय तब तक मन्त्र को न छोड़िये। इस प्रकार कुछ काल तक अभ्यास से मंत्र पर मन लगाते ही उसका गम्भीर अर्थ स्फुरित होगा, चित्त को चंचल बनाने वाले विचार और चिन्ताएं शान्त होंगी, और अन्तःकरण में अवर्णनीय आनन्द का अनुभव होगा। संध्या साधक के स्वभाव का अङ्ग बनती जायेगी, मन न लगने की शिकायत मिटती प्रतीत होगी।

इस शिकायत का दूसरा कारण सन्ध्या के लिए शान्त पवित्र और एकान्त स्थान का दुर्लभ होना है। सन्ध्या के लिए स्थान का निर्देश करते हुए मनु महाराज ने लिखा है:—

अपां समीपे नियतो नैत्यिकं विधिमास्थितः।
सावित्रीमप्यधीयीत गत्वारण्यं समाहितः॥

(मनु० २ १०४)

अर्थात् 'जंगल में जाकर जल के समीप बैठ कर नित्य कर्म से निवृत्त होकर एकाग्र चित्त से गायत्री का जाप करें'।

यह सिद्ध करने की यहां आवश्यकता नहीं कि जंगल की प्राकृतिक शोभा और नदी तट का आल्हादजनक रमणीय दृश्य चित्त को समाहित करने में बहुत सहायक है। सर्वसाधारण को ऐसे सुन्दर और स्वच्छ स्थान सुलभ नहीं। और वर्तमान समय में न इतनी धर्म परायणता ही है कि प्रातः-सायं सन्ध्या के लिए हम वन को चले जांय। यह ठीक है कि सन्ध्या में स्थान का स्थान बाह्य होने से गौण है परन्तु फिर भी योग्य स्थान का अभाव चंचल चित्तवृत्तियों को और अधिक चंचल बनाने में पर्याप्त है। जहां तहां बैठ कर सन्ध्या हो सकेगी यह सम्भव नहीं। स्थान अशुचि हो, वर्तमानों सनों की खट-पट हो, बच्चों का शोरगुल हो, और मन समाहित हो जाय यह असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है।

इस कठिनाई को दूर करने के लिए अपने घर में ही सब से पवित्र उज्ज्वल और शान्त स्थान सन्ध्योपासना के लिए निश्चित करना चाहिए। यह स्थान व कमरा केवल संध्योपासना के लिए ही नियत होना चाहिए। उपासना के लिए नियत इस 'देवघर' में सामान भी वही होना चाहिए-जिसका उपासना के लिए उपयोग हो सकता हो। लेखक बड़े दुःख से अनुभव करता है कि निर्धन भारतीयों में इतनी शक्ति नहीं कि वे अपने घरों में इस प्रकार के 'संध्यालय' बना सकें। जिन में शक्ति हो उन्हें अपने गृहों में 'संध्यालय' का प्रबन्ध करना चाहिए। साधारण जनों के लिए गली-गली में 'उपासना मन्दिर' बनने चाहिए जहां सर्वसाधारण आकर सन्ध्योपासना कर सकें। दानी महाशय इस पवित्र कार्य के लिए अपने धन का क्या सदुपयोग करेंगे।

सन्ध्या में मन न लगने का तीसरा और सबसे मुख्य कारण है जीवन का उद्देश्य ठीक न होना। सन्ध्या आध्यात्मिक भोजन है। परन्तु यह स्वादिष्ट नहीं लगता। कारण सच्ची भूख नहीं। भूख होने पर तो रोटी का सूखा टुकड़ा भी अमृत प्रतीत होता है।

सच्ची आध्यात्मिक भूख क्यों नहीं? कारण जीवन किसी उद्देश्य के लिए अर्पण नहीं। मनुष्य जीवन किस कठोर साधना का परिणाम है, हमने समझा ही नहीं। इसीलिए खा पीकर और मौज मजा करके अपने जीवन के अमूल्य दिनों को खो रहे हैं। जीवन के सामने कोई उच्च उद्देश्य ही नहीं।

यदि हमारे सामने जीवन का कोई उच्च उद्देश्य हो तो उस उद्देश्य को प्राप्त करवाने के लिए असाधारण शक्ति की आवश्यकता अनुभव होगी। मनुष्य की सब शक्तियां सीमित और साधारण हैं। सर्वसाधारण को असाधारण शक्ति की आवश्यकता प्रतीत न होने से अपनी शक्तियों की तुच्छता का अनुभव नहीं होता। यदि संकल्प की प्रदीप्त अग्नि प्रज्वलित हो और सम्पूर्ण जीवन किसी महान् उद्देश्य के लिए अर्पण किया हुवा हो तो व्यक्ति को अपनी शक्तियों की [illegible]ता का पहिचान होता है, निस्सहाय अवस्था का अनुभव होता है और असाधारण शक्ति पाने के लिए हृदय से पुकार उठती है। यजुर्वेद के निम्न मन्त्र में शक्ति

निरपराध, निर्बल पशुओं के ताज़े खून से रोज़ यज्ञ पूर्ण होता था। तथा बिना पशुवध किये यजमान का यज्ञ पूरा नहीं होता था। हरेक संस्कार के साथ यज्ञ का हिंसक विधान था। सर्वत्र हिंसा का राज्य था। ब्राह्मणों की दक्षिणाएँ बड़ी कड़ी थीं। उनको दक्षिणा में सुवर्ण, हीरे, जवाहरात, गायें आदि दिए जाते थे तथा वे ब्राह्मण सर्वथा यज्ञ कराने के लिए तत्पर रहते थे। मनुष्यों की धार्मिक दशा बहुत बिगड़ चुकी थी। बाह्याडम्बर ज़ोर पकड़ रहा था फिर आध्यात्मिक तथा मानसिक शक्ति कम रह सकती है। इस लिए लोगों ने नए उपाय ढूंढ निकाले तथा हर वक्त नए तरीकों के अनुसन्धान में ही अपना जीवनयापन करने लगे।

वे उपाय निम्न हैं। हठयोग और तपस्या –

उनमें से एक उपाय हठयोग है, हठ करके बड़ी से बड़ी शारीरिक आपत्ति को सहन करने से वे आत्मिक उन्नति तथा मुक्ति की कामना करते थे। कईयों का अभ्यास इतना बढ़ा चढ़ा था कि वे अपने मूछों व दाढ़ी के बाल हाथ से नोच कर उखाड़ देते थे तथा जितेन्द्रिय बनने के लिए विविध प्रकार के कष्ट सहन करते थे। उस समय लोगों का तपस्या पर विश्वास बहुत जमा हुआ था इसी कारण बुद्ध ने भी ६ साल तक घोर तपस्या की थी। पर अन्त में तपस्या की असारता को देख कर वे सत्य ज्ञान की खोज में चल दिए।

तीसरा ज्ञानमार्ग व दार्शनिक विचारः– जब देश में ऐसा अंधेरा छाया हुआ था तो कुछ ऊंचे लोगों को तपस्या व हठयोग से भी परमानन्द प्राप्त होता देख लोगों की रुचि प्रचलित धर्म से हट गई, लोग परमानन्द प्राप्त करने के लिए तथा निर्वाणपद की प्राप्ति के लिए प्रयत्न करने लगे। उस समय लोग प्रचलित धर्मों से खिन्न होकर सन्यासी हो गए। और इधर उधर परिभ्रमण करने से परिव्राजक कहलाए। लोगों में उनका बहुत मान रहा। उन के लिए जनता ने तथा राजा महाराजाओं ने नगर के बाहर आवास-स्थान बना दिए तथा खाने पान, सोने उठने बैठने की उत्तम व्यवस्था कर दी। लोग उनके दर्शन करने जाते तथा उनके धार्मिक उपदेशों का श्रवण करते। यदि दो चार विद्वान् सन्यासी मिल जाते तो उनका शास्त्रार्थ होता तथा वे अपने विचार बड़ी स्वतन्त्रता से व्यक्त करते थे। लोग इन विचारों तथा उपदेशों के प्रभाव से प्रभावित होकर प्रचलित धर्मों से विरक्त हो गए तथा परिवर्तन के लिए समुत्सुक हो गए। इसलिए प्रचलित धर्मों की नींव हिलने लगी। परिव्राजकों ने अपने उपदेशों से नये विचारों का बीज बोने के लिए क्षेत्र तैयार कर दिया। पर अभी बीज बोने वाले की कमी थी। लोग इस की प्रतीक्षा कर रहे थे।

उस समय लोगों के पास उपनिषदें थीं। चूंकि उपनिषदों में आत्मा, परमात्मा, प्रकृति आदि की उत्तमोत्तम बातें लिखी गई थीं तथा आध्यात्मिक विषयों पर खुल करके विचार किया गया था इसलिए लोगों में उपनिषद् का प्रचार खूब बढ़ा। पढ़ने वालों उपनिषद् की संख्या प्रचुर होगई तथा उपनिषदों का श्रवण, मनन तथा निदिध्यासन होता रहा। परन्तु उपनिषदों में से कई विद्वान् परिव्राजकों ने अद्वैतवाद पाया, किसी ने विशिष्टाद्वैत किसी ने विशुद्धाद्वैत निकाला जिससे उनमें कई मत हो गए। लोग आत्मा परमात्मा का चिन्तन करना भूल गए थे। पर उसपर शुष्क वितण्डावाद करने लगे थे। इतने मतमतान्तरों के होने पर भी बुद्ध के समय तीन मुख्य विचार-प्रवाह थे। वे ये हैं। १ यज्ञ और बलिदान। २. हठयोग व तपस्या ३ ज्ञानमार्ग और दार्शनिक विचार। उस समय लोग दुःख का कारण ढूँढ निकालने के लिए खूब यत्न करते थे। प्रथम विचार प्रवाह वाले यज्ञ और बलिदान वाले लोग कहते थे कि देवता प्रकुपित हैं उनको यज्ञ में भेंट देने से वे प्रसन्न होंगे। दूसरे हठयोग और तपस्या करने में इन्द्रियजय मान कर दुःखों से छुटकारा मानते थे। तीसरे ज्ञानमार्गी ज्ञान के द्वारा अज्ञान का नाश करने से मुक्ति मिल सकती है कहते थे। परन्तु ये तीनों विचार आदमी को सन्तुष्ट नहीं कर सकते। उस समय समाज में सब से बड़ी आवश्यकता थी सहानुभूति, दया व प्रेम की। समाज में नीरसता, निर्दयता व शुष्क ज्ञानमार्ग का प्रचार हो रहा था। उस समय समाज को एक ऐसे वैद्य की आवश्यकता थी जो इसके रोग की ठीक तरह से दवाई करता। भगवान् बुद्ध ने अवतार लेकर इस आवश्यकता को समझ कर दुनिया को जो बातें बताईं तथा जो उपदेश दिए वो ये थे कि जो भी आदमी धर्म-मार्ग में चलना चाहते हैं तथा परोपकार की जिन्दगी बसर करना चाहते हैं वे दयालु, परोपकारी तथा सदाचारी बनें। बुद्ध के पहले लोगों में, यज्ञों में, मन्त्रों में, तपस्याओं में तथा शुष्क ज्ञानमार्ग में श्रद्धा थी। पर बुद्ध ने यज्ञ, मन्त्र, कर्मकाण्ड तथा धर्माभास की जगह अन्तःकरण शुद्ध करने की शिक्षा दी। उन्होंने लोगों को दीनों की रक्षा करने, दरिद्रों की भलाई करने, बुराई से बचने के तथा सबके साथ भाई २ की तरह से व्यवहार करने का उपदेश दिया। महात्मा बुद्ध की दृष्टि में ऊँच नीच, अमीर गरीब, सब बराबर थे। उनके मत में पवित्र जीवन व्यतीत कर सकते थे, निर्वाण का पद प्राप्त कर सकते थे। वे सब को इस धर्म का उपदेश देते थे। महात्मा बुद्ध की शिक्षाओं का यह प्रभाव पड़ा कि कुछ ही शताब्दियों के अन्दर बुद्ध धर्म केवल एक ही जाति या धर्म का नहीं बल्कि समस्त एशिया का मुख्य धर्म होगया। अब हम महात्मा बुद्ध के समय की सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक तथा आर्थिक दशाओं पर विचार करने के अनन्तर तथा ज्ञान मार्ग व दार्शनिक तथ्यों पर दृष्टिपात करने के बाद बुद्ध धर्म के प्रभावों तथा उसकी देनों पर विचार करेंगे। (अपूर्ण)

गुरुकुल

१५ आश्विन शुक्रवार १९९५

ओ३म् की ध्वजा या यज्ञिय अग्नि

(श्री स्वामी अभयदेव जी संन्यासी)

गुरुकुल कांगड़ी के गत जन्मदिवस की सभा में एक स्नातक (पं० चन्द्रगुप्त वेदालंकार) ने कुछ ऐसी शिकायत की थी कि गुरुकुल में राष्ट्रीय झंडे की क़द्र बहुत है पर ओम् की ध्वजा की उपेक्षा की जाती है। इसका उत्तर देते हुए श्रीमान् मुख्याधिष्ठाता जी ने श्रोताओं का समाधान करा दिया था और बतलाया था कि गुरुकुल में ओम् की पताका तो सब से ऊंचे स्थान पर और सुदृढ़ ढङ्ग से लगी हुई है। श्री मान्य पं० इन्द्र जी ने भी इन दोनों झण्डों का गुरुकुल में कितना सुन्दर और उचित समन्वय है यह बतलाया था। इन दोनों महानुभावों के कथन का समर्थन करने के अतिरिक्त मैंने एक ही बात अग्नि के वास्तविक झण्डा होने के विषय में कही थी। उस बात पर और अधिक प्रकाश डालने की मांग गुजरात के एक प्रतिष्ठित आर्य की तरफ़ से आई है और वैसे भी आजकल जब कि अपने अपने झण्डे सार्वजनिक स्थानों पर लग ए जाने की एक होड़ सी चल पड़ी है अपने वे विचार प्रकट कर देना कुछ उपयोग का हो सकता है यह सोच कर मैं इन्हें पाठकों के लिये लेखबद्ध कर रहा हूं।

मेरी समझ में आर्यसमाज की तरफ़ से ओम् के झण्डे का ध्वजा या पताका का फहराया जाना स्पष्ट रूप से आजकल के बाह्य प्रभाव के कारण है, यह राजनैतिक प्रचारप्रणाली का अनुकरण है, धार्मिक तरीका नहीं बाह्य चिन्ह द्वारा अपने को उद्बोधन देना—इसे मैं बुरा नहीं कहता—यह तो किसी अंश में ज़रूरी है। पर ऐसा ही करने का धार्मिक तरीका कुछ और होता है। हम जो हवन की अग्नि प्रज्वलित करते हैं वह भी तो एक मुख्य अंश में बाहरी चिन्ह द्वारा अपने को उद्बोधन देना ही है। इसीलिए मैं कहता हूं कि हमारा झण्डा अग्नि है मैंने प्रथम बार गुरुकुल का आचार्य पद स्वीकार करते समय कोशिश की थी कि हम गुरुकुल में स्थायी रूप से अग्नि को स्थापित करें और उसे लेकर नित्य की आहवनीय अग्नि बना कर अग्निहोत्र किया करें पर यह चल नहीं सका। महाराज शाहपुराधीश ने तो इस कार्य के लिये—जिस में ऐसी अग्नि स्थापन हो ऐसी यज्ञशाला बनवाने के लिये—धन भी गुरुकुल को दे रखा है। जिस दिन इस तरह गुरुकुल में यज्ञिय नित्य अग्नि की स्थापना हो जाएगी उस दिन मैं समझूंगा कि गुरुकुल में सच्चा ओम् का झण्डा गड़ गया वेद में तो अग्नि या सूर्य को ही असली झण्डा, केतु बताया गया है। ये ही हमारे प्रकृति माता के दिये हुए, जीते जागते स्वाभाविक झण्डे हैं। मैं ऐसे बहुत से मंत्र पेश कर सकता हूँ जिन में अग्नि को यज्ञ का केतु कहा गया है। तो हम क्यों अपने केतु को भुला कर औरों की नकल में कपड़े के झण्डे पर आग्रह करें। अतः जब पं० चन्द्रगुप्त जी ने अपने भाषण के बाद यह ऐलान किया था कि मैं ५०) ओम् के नए और बड़े झंडे के लिये देने को तैयार हूँ—तो मैंने उन्हें यह सलाह दी थी कि वे ये रुपये अपने ही पास रखें और इन का उपयोग प्रतिदिन अग्निहोत्र करने में करें तो इस से जहां उन का अपना कल्याण हो सकता है वहां इस से गुरुकुल और समाज का भी भला हो सकता है न कि गुरुकुल में एक और ओम् का झंडा लगा देने से।

कई आर्य भाई न समझने के कारण मुझे गुरुकुल में या आर्यसमाज में राजनैतिकपन लानेवाला समझते रहे हैं। पर असल में तो राजनैतिकपन लाने का एक उदाहरण यह है कि हम भी राष्ट्रीय झण्डे के अनुकरण में ओम् पताका फहराने और ध्वजागीत गाने की रस्म करने लगें। देश की स्वाधीनता की इच्छा करना और उसे पाने के लिये बलिदान करना यह तो सच्चे धर्मभाव से भरे हुए हृदय से स्वभावतः निकलने वाली वस्तु है। पर चूँकि तिरंगे झण्डे की उपासना राजनैतिक क्षेत्र में बड़े उत्साह से की जाती है इसलिये हम भी ओम् के झण्डे के आगे वैसी ही धूमधाम और आकर्षण पैदा करें इस दृष्टि से आर्यसमाज में यह नई प्रथा चलाना राजनैतिकपने से भरे हुए दिमाग़ से ही निकली हुई वस्तु है।

दूसरी तरफ देखिये कि राजनैतिक क्षेत्र में काम करने वाले जो स्वभावतः धार्मिक पुरुष हैं वह क्या कर रहे हैं? पाठकों का ध्यान उधर गया है या नहीं पर मुझे तो बड़ी ही खुशी हुई जब मैंने पढ़ा कि फैजपुर कांग्रेस के अवसर पर बम्बई से (जहां कांग्रेस का जन्म हुआ था) अग्निशिखा पैदल स्वयंसेवकों द्वारा फैजपुर लाई गई और स्वागत के साथ स्थापित की गई। अब तो यह प्रथा (भारत जैसे धर्मप्राण देश की राजनीति को शोभा देने वाली यह प्रथा) चल पड़ी प्रतीत होती है क्योंकि सुना है उसके बाद हरिपुरा कांग्रेस में भी यह अग्निशिखा उसी तरह लाई गई और स्थापित की गई। ऐसा करने की प्रेरणा चाहे ओलम्पिक खेलों की ऐसी अग्निशिखा से ली गयी है पर मूलतः यह धार्मिक है और भारतीय संस्कृति के सर्वथा अनुकूल है। मैं देखता हूँ कि इस अग्निशिखा के रिवाज़ को ठीक तरह चलाने से हमारी राजनीति और अधिक धार्मिक ऊंचाई में उठ जायगी, जहां कि ओम् की ध्वजा को खड़ा करके और उसके चारों ओर राष्ट्र पताका गीत के बिलकुल नकल में बनाये हुए गीत के गाने और जय बोलने की प्रथा पूरी करने से हमारा धर्म राजनैतिक निचाई में उतर आता है। कांग्रेस हमारे असली झण्डे, अग्नि को अपना रही है पर हम

पाने के लिए व्याकुल हो उठे तथा निस्सहायता का अनुभव कर रहे किसी ऐसे ही भक्त के हृदय की पुकार है।

इमं मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृडय।
त्वामवस्यु राचके॥ [यजु.२१.१]

अर्थात् "हे वरुण! मेरी पुकार को सुन, आज तो मुझे सुखी कर। मैं तेरा शरण में आया हुवा तुझसे रक्षा व सहायता चाहता हुआ प्रार्थना कर रहा हूं।"

यह निस्सहाय अवस्था का अनुभव ही आध्यात्मिक भूख है। इस भूख के चमक उठने पर संध्यारूपी आध्यात्मिक भोजन ऐसा ही स्वादिष्ट लगने लगता है जैसे भूखे को रोटी का टुकड़ा। मंत्रों में मिठास मालूम देता है। मनन आरम्भ होता है। मंत्रों का रहस्य आप से आप खुलने लगता है। मन स्थिर और समाहित होता है।

प्रभु कृपा करें। हमें सच्ची आध्यात्मिक भूख लगे, जिससे संध्यारूपी आत्मिक भोजन का हम आनन्द ले सकें।

साहित्य समालोचना

विद्यापति की पदावली—संकलयिता-श्री रामवृक्ष शर्मा बेनीपुरी। प्रकाशक—पुस्तक भण्डार, लहेरिया सराय। पृष्ठ संख्या ३२७+४७ मूल्य २)

मैथिल भाषा के प्रसिद्ध कवि विद्यापति के पदों का संग्रह प्रस्तुत पुस्तक में किया गया है। जहां इस कवि श्रेष्ठ को हिन्दी भाषाभाषी अपनाने में अपना गौरव समझते हैं, वहां बंगभाषा भी इससे पीछे नहीं रहना चाहते और बंगाली लेखकों ने तो इन्हें बंगाली सिद्ध करने का निरर्थक प्रयत्न भी किया है।

कवि की कृतियां कृष्ण और राधा विषयक हैं। शृङ्गार रस का प्राधान्य है, कवि मंगलाचरण में भी शृङ्गार रस को नहीं छोड़ सका। तो भी कवि पर अश्लीलता का आक्षेप करना कवि के साथ अन्याय होगा। क्योंकि कवि द्वारा वर्णित प्रेम विकसित होते २ अलौकिक और दिव्य होता चला गया है। कवि की उपमाएं भी अपने ही ढंग की हैं।

इस पदावली के आरम्भ में संकलयिता महोदय ने विद्यापति का परिचय बहुत सुन्दर और रोचक शैली में दिया है। हमारी कवि के वैष्णव होने की धारणा इसके परिचय पढ़ने से नितान्त भ्रान्त सिद्ध होती है। हमारी ही नहीं अपितु कितने ही अन्य जनों की भी यह धारणा भ्रान्त सिद्ध होगी कि कवि वैष्णव नहीं अपितु शैव थे। इस परिचय से पुस्तक की उपादेयता बढ़ गई है। संकलयिता महोदय ने पाठकों को यह आशा दिलाई है कि वे शीघ्र ही 'विद्यापति' नाम से समालोचनात्मक ग्रन्थ लिख कर प्रस्तुत करेंगे, देखें कब वे हमारी इस आशा को पूरा करते हैं।

पुस्तक बहुत हो सुन्दर संगृहीत हुई है, एक बार शुरू कर देने पर छोड़ने की इच्छा नहीं होती। कवि की भाषा में और भावों में एक आकर्षण है जो पाठकों को आकृष्ट कर लेते हैं। —'श्री भिक्षु'

गुरुकुल समाचार

गत सप्ताह ब्रह्मचारी रामचन्द्र १ म श्रेणी श्लेष्म ज्वर, रामनन्दन १ म श्लेष्म ज्वर, सत्यभूषण १४ मलेरिया ज्वर, सत्यदेव ११ मलेरिया ज्वर, मोहनचन्द २ य खारिश, सत्यपाल १ म व्रण, सुरेन्द्र ४ व्रण से रोगी हुए थे। अब सब स्वस्थ हैं।

२३ सितम्बर को गुरुकुलीय आयुर्वेद महाविद्यालय के भूतपूर्व अध्यक्ष स्वर्गीय डाक्टर गोपाल रामचन्द्र ताम्बे की प्रथम निधन बरसी थी। इस अवसर पर आयुर्वेद परिषद् की ओर से उसके सम्पादकीय मण्डल ने 'ताम्बे' अंक प्रकाशित किया था। इस अंक से स्वर्गीय डाक्टर जी की मनस्विता तथा बड़प्पन का सरलता से अनुभव किया जा सकता है।

पाण्मासिक परीक्षायें समाप्त होगई हैं। दशहरा समीप है। इस अवसर पर कुल में देसी खेल तथा हाकी, वालीबाल, फुटबाल, क्रिकट आदि खेलों के सामुख्य होंगे। बड़े तथा छोटे लड़के सभी इसमें भाग लेंगे। कुल के उपाध्याय तथा अध्यापक महोदय भी इसमें हिस्सा लेंगे।

गुरुकुल मुलतान

नया परिवर्तन

ब्रह्मचारियों का स्वास्थ्य अच्छा है। कोई ब्रह्मचारी बीमार नहीं। अब गर्मी साधारण रह गई है वह भी दोपहर के समय। रात्रि को तो अच्छी ठंड हो जाती है। एक सप्ताह हुआ ब्रह्मचारियों की षाण्मासिक परीक्षा हुई। परिणाम सन्तोषजनक रहा।

श्री पं० विष्णुमित्र जी जिनका सारा जीवन ही गुरुकुल कांगड़ी और उनकी शाखाओं में कार्य करते बीता है तथा जिन्होंने प्रारम्भ में इस शाखा को चलाया था वे इस कुल में मु० मुख्याधिष्ठाता के पद पर आ गए हैं। आपके आने से ब्रह्मचारियों के स्वास्थ्य खानपान तथा पढ़ाई में सन्तोषजनक परिवर्तन आ गया है। आशा है कि अब यह कुल दिन पर दिन उन्नति करेगा।

गुरुकुल कांगड़ी के सुयोग्य स्नातक पं० जगन्नाथ जी वेदालङ्कार भी इस कुल की सेवा के लिए आ रहे हैं। उनके आने से वर्धा-शिक्षा-प्रणाली के अनुसार पढ़ाई में परिवर्तन किया जायगा जिसमें ब्रह्मचारी पढ़ाई के साथ २ आजीविका के प्रश्न को भी हल कर सकें।

अब गुरुकुलप्रेमियों का कर्तव्य है कि वह इस कुल की पूर्ववत् सहायता करें और अपने बालकों को भेज कर नई शिक्षाप्रणाली से लाभ उठावें।

डेरागाज़ीखां निवासी एक दानी सज्जन डेरागाज़ीखां-निवासी एक योग्य ब्रह्मचारी को छात्रवृत्ति देना चाहते हैं। अतः जो सज्जन अपने बालक को प्रविष्ट कराना चाहें वे गुरुकुल मुलतान से पत्रव्यवहार करें।

मन्त्री, गुरुकुल मुलतान

चौधरी हुलासराय के प्रबन्ध से गुरुकुल प्रेस गुरुकुल कांगड़ी में मुद्रित तथा प्रकाशित।

* ओ३म् *

"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत" Reg. No. A. 2927

गुरुकुल

सम्पादक— भारतभूषण वेदालङ्कार

एक प्रति का मूल्य -) [गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख-पत्र] वार्षिक मूल्य २॥)

वर्ष ३] गुरुकुल काङ्गड़ी, शुक्रवार २२ आश्विन १९९५; ७ अक्तूबर १९३८ [संख्या २१

भूल

[ले०—श्री प्रो० लालचन्द जी एम ए.]

"सब जग भुल्लनहार है इक अभुल्ल करतार" सिवाय प्रभु के भूल कौन नहीं करता। सबसे भूलें होती हैं। इसलिये मनुष्य को दयावान और क्षमावान होना शोभा देता है। भाई तू औरों पर इतना तेज़ होता है ज़रा अपने गरेबान में भी तो मुंह डाल कर देख—

"न थी हाल की जब हमें खबर
रहे देखते औरों के ऐबो हुनर
पड़ी अपनी बुराइयों पर जो नज़र
तो खयाल में कोई बुरा न रहा।"

बाइबिल में लिखा है कि एक बदचलन स्त्री कुएं पर पानी भरने आई तो वहां खड़े लोगों ने उसे मारने के लिये पत्थर उठाए। ईसामसीह भी इत्तफ़ाक से वहां खड़े थे उन्होंने पूछा भाई क्या करने लगे हो इस बेचारी को क्यों मारते हो। लोगों ने कहा शास्त्र में ऐसा लिखा है कि बदचलन स्त्री को पत्थरों से मारा जाए। ईसा ने कहा ठीक है पर पत्थर वही मारे जो खुद निष्पाप हो यह सुनकर सब मारनेवाले इधर उधर खिसक गये। इसका यह अर्थ नहीं कि संसार से दंड की प्रथा हट जाय और न्यायालय बन्द हो जांय। बहुत बार ऐसा होता है कि अपराधी को क्षमा करना समाज पर अत्याचार होता है पर जहां क्षमा करने से समाज का कुछ बिगड़ता नहीं परन्तु अपराधी का कल्याण होता है वहां क्षमा करना उचित ही है। जहां दण्ड देने वाले, बदला लेने वाले इन्साफ़ करने वाले को न्याय के साथ दया मिलानी चाहिये वहां अपराधी का क्या कर्तव्य है यह अब हमने देखना है।

यदि भूल हो जाय तो भूल स्वीकार करके प्रायश्चित्त कर अपने आपको शुद्ध कर लेना चाहिये पर बहुत से भाई भूल होने पर उसे छिपाते हैं। यदि बड़ा पूछे तो इन्कार कर देते हैं मैंने ऐसा किया ही नहीं। साधारण तौर पर यही या इसी अभिप्राय का उत्तर सुनने में आता है। यदि वे देखते हैं कि अब भांडा अवश्य फूटेगा तो पहले ही अपराध स्वीकार कर लेते हैं ताकि शराफ़त का श्रेय तो मिल जाय। यदि वे देखें कि बात काफी गुप्त है और यह राज़ नहीं निकलेगा तो एकदम भोले से बनकर हैरान होकर कह देते हैं जी मुझे तो इसका पता भी नहीं मुझ पर तो आप योंही सन्देह कर रहे हैं मालूम होता है किसी मेरे बैरी ने मेरे विरुद्ध आपके कान भर दिये हैं। कई तो इतने पक जाते हैं कि जिसकी शपथ खिलाओ निस्संकोच खाने को तैयार रहते हैं।

ये भाई ऐसा क्यों करते हैं क्या आदत से लाचार हैं। हो सकता है पर ध्यान से देखने से इसके दो कारण मालूम होते हैं। दण्ड का भय तथा आत्मसम्मान की हानि।

दण्ड का भय कायरता का सूचक है। बहादुर आदमी दण्ड का स्वागत करता है और दण्ड न मिले तो उचित प्रायश्चित्त करके अपने चित्त को शुद्ध करता है। हमें कायर नहीं बनना चाहिये हमें अपनी नज़रों मे गिरना नहीं चाहिए।

आत्मसम्मान के बारे में भी अजीब भ्रम है। पुरुष तो रसमय है पर हम छिलके को ही पुरुष समझते रहते हैं। आत्मा तो सूक्ष्म है पर हम स्थूल नाम रूप वाले शरीर को ही आत्मा समझते रहते हैं। आत्मसम्मान को चिन्ता करनेवाले भाइयो! आत्मा का सम्मान तो सत्य बोलने से अपराध स्वीकार कर प्रायश्चित्त कर लेने से होता है। जिस मूर्ति का हम आदर करते हैं उसे अव्वल तो गन्दा होने नहीं देते यदि हो जाय तो उसे साफ कर देते हैं उसी तरह से आत्मा का सम्मान करने वाले तो भूलों से बचते हैं यदि कभी भूल से उसे कलुषित कर दें तो फौरन स्वीकार और प्रतिकार द्वारा अपने आपको साफ़ कर लेते हैं।

जितना जिसको अधिक आत्मसम्मान का भाव होता है उतना वह जल्दी स्वीकार और प्रतिकार करता है।

अंग्रेज़ी में इसे atone करना कहते हैं। atone दो शब्दों से बनता है at और one यानी प्रायश्चित द्वारा जिस प्रभु को, जिस स्वामी को हमने नाराज़ कर दिया था उसे फिर रिझा लेना उसके साथ at one हो जाना, एक हो जाना। पाप से हम प्रभु से पृथक् हो जाते हैं, प्रायश्चित से फिर उसमें एक हो जाते हैं।

पर जो छिपाते हैं उनकी क्या गति होती है। उनकी पाप करने की आदत और बढ़ जाती है और जब बढ़ जाती है तो वह अपना रंग लाती है। एक दिन भांडा फूटता है और चारों ओर उनकी बदनामी होती है। उनका चित्त दिन-ब-दिन स्थूल होता जाता है और चित्त का स्थूल होना पशु बनना है जिसका जितना सूक्ष्म चित्त होगा उतना ही वह ऊंचा मनुष्य होगा। पाप को छिपाने से आत्मसम्मान नहीं होता आत्महनन होता है छिपाने वाला समझता है मैं अपने आपको बचा रहा हूँ। असल में वह अपने आपको मार रहा होता है। जब वह बाहर ढोंग वाले अपने आपको निर्दोष बनने के लिये हजार चालाकियां चल रहा होता है उस समय उसका असली आप घुप अन्धेरी कोठड़ी में पड़ा तड़प रहा होता है। जैसे मकान गंदा होने से शारीरिक स्वास्थ्य खराब होता है ऐसे ही मन गंदा होने से मानसिक स्वास्थ्य खराब होता है। पापी घृणित बनता जाता है।

ऐ भाई तू फल का रस है, छिलका नहीं है, तू बिजली है, बल्ब नहीं है, तू आत्मा है, शरीर नहीं है। पाना है तो रस को पी छिलके के लिये क्यों झूठ बोल बोलकर चालाकियां चल चलकर अपना सत्यानाश करता है अपने आत्मा का हनन करता है, दो दिन के लिये आया है कुछ नेक कमाई कर ले। जब आंखें मुंद गईं तो कौन जानता है ऐसा सुन्दर अवसर फिर मिले न मिले।

संगीत

[ले० – श्री 'सारङ्ग']

बहुत देर तक जहां भारत में राजनैतिक पतन हुआ वहां मानसिक पतन भी कम नहीं हुआ। प्राचीन काल में भारत में जो शिल्प कला आदि की उन्नति हुई थी, उसका भी धीरे २ हम देखते हैं ह्रास होता चला गया है। इन्हीं में ही संगीत भी आता है। अपने गौरव काल में इसने जो उन्नति की यद्यपि उसमें से अधिकांश हम बिसार बैठे हैं फिर भी जो कुछ हमारे पास बचा हुआ है उसे देखकर हम निःशंक कह सकते हैं कि संगीत ने किसी समय पूर्ण उन्नति की थी।

इस अवशिष्ट संगीत को भी आज पूर्ववत् तीन भागों में विभक्त करते हैं। इसके तीन भाग हैं – (१) गायन (२) वादन और (३) नर्त्तन।

गायन – प्रचलित गायन साधारणतया ६ भागों में विभक्त किया गया है। उनके नाम क्रमशः (१) ध्रुवपद (२) ख्याल (३) टप्पा (४) ठुमरी (५) होरी (६) ग़ज़ल (७) तराना (८) चतुरङ्ग (६) सरगम हैं।

इन में ध्रुवपद का स्थान सर्व प्रथम है। इस में चार अवयव (१) स्थायी (२) अन्तरा (३) सञ्चारी (४) आभोग प्रयुक्त होते हैं। किसी २ गायन में स्थायी और अन्तरा का ही प्रयोग होता है। इस में वीर, शृङ्गार व शान्त रस प्रधान होते हैं। इस में भाषा सुन्दर ललित होती है। ताल केवल चौताल, सूल फाग, झंपा, तेवरा, ब्रह्म और रुद्र आदि प्रयुक्त होते हैं। इस में तान का प्रयोग अनुपयुक्त होता है, तथा च दुगुन, तिगुन, चौगुन बोल तान और गमक इत्यादि इस में प्रयुक्त होते हैं। परन्तु ख्याल के अधिक लोक प्रिय हो जाने से ध्रुवपद की उन्नति रुक सी गई है। इसके बाद ख्याल का स्थान आता है। ख्याल अरबी का शब्द है, इसका अर्थ कल्पना या स्वेच्छाचार होता है। इस में शृङ्गार का प्रयोग अधिक होता है। इस में प्रायः स्थायी और अन्तरा ही होते हैं। इस में ताल त्रिताल, तिलवाड़ा [त्रिलम्बित त्रिताल] एक ताल, झूमरा, आड़ा चौताला आदि का प्रयोग होता है। साथ ही सरगम गिटकड़ी आदि के प्रयोग से गायन में सुन्दरता आ जाती है। टप्पे में इन्हीं तालों का प्रयोग होता है जिन का ख्याल में होता है। इस में केवल शृङ्गार रस होता है। साथ ही यह प्रायः काफ़ी, झिंझोटी, पीलू, बरवा, मांड, भैरवी और खम्माज आदि में ही गाया जाता है। इसके तान छोटे २ टुकड़ों के बने होते हैं और इसकी गति बहुत चपल होती है। इसके गाने का ढंग ख्याल व ध्रुवपद से बिल्कुल निराला है। ठुमरी में शृङ्गार रस की प्रधानता रहती है। पंजाबी त्रिताल में गाई जाती है, चपल गति की होती है। टप्पे वाले रागों में यह गाई जाती है। बनारस और लखनऊ शहर ठुमरी की गायकी के लिये प्रसिद्ध हैं। होली का ध्रुवपद के गायक धमार ताल में गाते हैं तथा ख्याल गायक दीपचन्दी ताल में गाते हैं और मनमानी तान बाज़ी करते हैं। इसमें प्रायः कृष्ण और गोपियों की फाल्गुन मास की लीला का वर्णन होता है। ग़ज़ल मुख्यतः पश्तो व दीपचन्दी तालों में गायी जाती है। मुख्य रस शृङ्गार है। इस में अन्तराओं की भरमार होती है जो कि एक समान गायी जाती हैं। जिन रागों में टप्पे, ठुमरियां गायी जाती हैं वे ही इस में भी प्रधान होते हैं। इस में आशिक व माशूक के प्रेमोद्गारों का वर्णन किया जाता है। तराना ख्याल गायक ही गाते हैं, इसके शब्दों का अधिक महत्व नहीं है, केवल राग और लयदारी का ही मज़ा है। तराने में ना, ता, रे, दानि, ओदानि, तानोम, यलली, यलोम, तदारे दानी इस तरह के शब्द रहते हैं। कभी तराने में मृदङ्ग के शब्द भी रख दिये जाते हैं। तराने का गायन सब को आनन्द दायक मालूम होता है। चतुरंग पद, सरगम, तराना और त्रिवट इन चार अङ्गों से युक्त होता है। पहले अङ्ग में गाने के शब्द दूसरे में जिस राग का चतुरङ्ग होता है उस राग में बंधा हुई छोटी सी सरगम होती है। तीसरे में तराने के शब्द होते हैं और चौथे अङ्ग में मृदङ्ग का छोटा सा परन होता है। इन्हें

ख्याल की तरह गाते हैं। सरगम किसी राग में लगने वाले स्वरों की तालबद्ध सुन्दर रचना होती है इस प्रकार के गानों में केवल स्वर ही होते हैं शब्द नहीं रहते। स्वर ज्ञान और राग ज्ञान ही इसका मुख्य उद्देश्य है।

वादन—में भिन्न २ वाद्यों का बजाया जाना है। ये वाद्य गायन की शोभा बढ़ाने के लिये होते हैं। आज कल केवल तम्बूरा, सारंगी, वीणा, सितार, दिलरुबा इसराज, सरोद, जलतरङ्ग, बेला, बांसुरी, तबला, मृदङ्ग आदि देशी वाद्यों का प्रयोग बच रहा है। इनके अतिरिक्त हारमोनियम का प्रचार बहुत बढ़ गया है। इसने तो सर्व साधारण के घर में प्रवेश पा लिया है। आज कल जापानी वाद्य टैं शीकैटो का प्रचार भी बहुत बढ़ रहा है।

नर्तन—अपने भावों का द्योतन करने के लिये इस का प्रयोग होता है। नर्तन कला के तीन भेद किये गये हैं—(१) नाट्य (२) नृत्य (३) नृत। फिर नृत्य के लास्य और ताण्डव दो भेद हैं। सुकुमार नृत्य को लास्य कहते हैं और यह अधिकतर स्त्रियों के लिये ही उपयुक्त है। उद्धत नृत्य को ताण्डव नृत्य कहते हैं और यह अधिकतर पुरुषों को ही शोभा देता है।

भारत में अभी दो प्रकार का नृत्य जीवित है। उत्तर भारत का कत्थक नाच और दक्षिण भारत का कथकाली। इसके सिवाय दक्षिण भारत में देवदासी नाच भी प्रसिद्ध है। तञ्जोर के इलाके का ताण्डव प्रकार का नृत्य भी बड़ा सुन्दर होता है। दूसरे नृत्य भी हैं जिन्हें लोक-नृत्य कहते हैं जैसे गुजरातियों का गर्बा नृत्य। कत्थक लास्य नृत्य और कथकाली अधिकतर ताण्डव है। कत्थक का अर्थ है दर्शाने वाला, इस में श्री कृष्ण तथा गोपियों की प्रेम लीला के भाव, गोवर्धन धारण, चीरहरण दृश्य आदि भाव अधिक दर्शाये जाते हैं। यह सब हाव भाव मुख और मुद्राओं द्वारा प्रदर्शित किये जाते हैं। इस कत्थक नृत्य का लखनऊ में अधिक प्रचार है। यही तीन मुख्य अङ्ग सङ्गीत के हैं।

परीक्षा पद्धति

[ले० श्री चिनीश १४श]

(३)

जिस प्रकार एक भेड़ को खूब खिलाकर फिर उसे एक दम गड़रिये के सामने उपस्थित कर दिया जाय कि जो कुछ उसने खाया है उसे वह एकदम उगल दे, जो घास आदि उसने खाई है वह पच कर दूध न बन पाए या उसकी शारीरिक वृद्धि को न करने पाए, अपितु एकदम उससे सारा का सारा वैसे का वैसा उगलवा लिया जाय; ठीक उसी प्रकार आजकल के परीक्षार्थी की हालत है। जो कुछ उसने पढ़ा है उसे वह अपने जीवन में तो नहीं ला पाता, assimilate तो नहीं कर पाता, पर जैसा उसने पढ़ा है ठीक वैसे का वैसा raw matter वह एक कागज़ से उठा कर दूसरे कागज़ में रख देता है। परीक्षा का उद्देश्य तो यह होना चाहिये कि उसमें मनुष्यों की शक्तियों की जांच की जा सके, उस चीज़ की परीक्षा होनी चाहिये जिसको विद्यार्थी पढ़ कर अपना अंग बना चुका है। पर आधुनिक परीक्षा-पद्धति एक बिना मूल का फूल है, जिसको किसी गैर के हाथों ने उगाया है, किसी गैर की ज़मीन में वह पनपा है, और वह परीक्षार्थी के पात्र में पूजा के लिए तब तक के लिए डाल दिया गया है जब तक वह मुरझा नहीं जाता।

इस प्रकार संक्षेप में, परीक्षा-पद्धति से न तो बुद्धि की परीक्षा होती है जो कि शिक्षा का असली उद्देश्य है, न इसमें Creative powers की परीक्षा होती है, और न ही कलात्मक मनोवृत्ति की परीक्षा होती है। योग्यता आचरण और व्यक्तित्व की तो इसमें बिल्कुल ही परीक्षा नहीं होती इसलिये विश्वविद्यालयों को परीक्षाओं में पास होने का प्रमाणपत्र नहीं देना चाहिए अपितु ऐसी कोशिश करनी चाहिए कि उनको आन्तरिक शक्तियों के विकास का प्रमाणपत्र दिया जाय, और उन्हें इस योग्य बनाया जाय कि विद्यार्थी अपने भविष्य के जीवन में राष्ट्र के लिए अच्छे नागरिक सिद्ध हो सकें। तभी इस परीक्षा पिशाचिनी के दुष्परिणामों से हम बच सकते हैं। आज हमारी इस परीक्षा-पद्धति में आमूलचूल परिवर्तन करने की आवश्यकता है।

हमने इस लेख-माला में विध्वंसात्मक विधि का ही प्रयोग किया है—अपने पाठकों के सामने हम आधुनिक परीक्षा पद्धति के दोषों का ही निरूपण करते रहे हैं—प्रश्न होता है—'तो फिर क्या करना चाहिये।' इसका उत्तर लेखक किसी अन्य लेख-माला में देने का प्रयत्न करेगा।

जैन बौद्ध तत्व ज्ञान (दो भाग)

लेखक—ब्रह्मचारी सीतलप्रसाद जी, प्रकाशक—मूलचन्द किसनदास कापड़िया मालिक, दिगम्बर जैन पुस्तकालय सूरत दोनों भागों का मूल्य १॥)

धार्मिक असहिष्णुता के इस युग में सभी धार्मिक लोगों का यह प्रयत्न रहता है कि अपने धर्म को सर्वश्रेष्ठ बता कर दूसरे धर्म को बुरा भला कहना जो कि एक साम्प्रदायिक विरोध को बढ़ाने में बहुत सहायक हो रहा है।

प्रस्तुत पुस्तक में इस प्रकार के विरोध को दूर करने का प्रयत्न किया गया है। लेखक महोदय ने बौद्ध तथा जैन ग्रन्थों के गम्भीर अध्ययन के पश्चात् तुलनात्मक दृष्टि से विचार करते हुए दोनों धर्मों में जो समानता है उसे दिखाने का सफल प्रयत्न किया है। यद्यपि प्रस्तुत की गई कई घटनाओं से मत भेद होने की काफ़ी गुञ्जाइश है फिर भी सम्पूर्णरूपेण इस प्रकार की पुस्तक के लिखने के लिए लेखक धन्यवाद के पात्र हैं। तुलनात्मक धर्मविज्ञान के पाठकों के लिए पठनीय है। पुस्तक की छपाई सुन्दर नहीं हुई, आशा है प्रकाशक महोदय अगले संस्करण में छपाई की ओर विशेष ध्यान देंगे।

'श्री भिक्षु'

गुरुकुल

२२ आश्विन शुक्रवार १९९५

जातीय पर्व– दशहरा

विजया दशमी त्योहार सम्पूर्ण भारत राष्ट्र में मनाया जाता है। बंगाल में महिषासुर की पापशक्ति को नष्ट करने की प्रतीकरूप दुर्गा की पूजा की जाती है। बंगाल के घर २ में, काली बाड़ियों में हम दुर्गा पूजा होते हुए देख सकते हैं। दक्षिण भारत तथा महाराष्ट्र में हम इस अवसर पर सरस्वती तथा शक्ति की पूजा देखते हैं। शक्ति को शस्त्ररूप में आधान कर इस अवसर पर महाराष्ट्र एवं पश्चिमी घाट में दशहरे का पर्व मनाया जाता है। मद्रास में यह त्यौहार अयोध्या पूजा नाम से कहलाता है।

दशहरे का त्यौहार उत्तर भारत में रामलीला खेल कर मनाया जाता है। मातृशक्ति की ओर से पुरुष शक्ति का इस अवसर पर सद्यःप्रसूत धान के गौरव से पूजा की जाती है। दशहरा शक्ति का- क्षत्रियत्व का त्यौहार है। इस पर्व पर क्षात्रबल को याद कर उद्बुद्ध किया जाता है। आगे सर्दियों का प्रारम्भ है शारीरिक, मानसिक बौद्धिक उन्नति इन्हीं दिनों में अपेक्षाकृत ज्यादह हो सकती है इसके लिए भी अभी व्रत लेने का समय होता है।

दशहरे का पर्व अपना आध्यात्मिक, विवेचनात्मक स्वरूप रखता है, इसके साथ इस का ऐतिहासिक महत्व है। भारत वर्ष का सांस्कृतिक तथा राजनैतिक विजय का यह त्यौहार चिह्न स्वरूप है। उत्तर भारत से जिस संस्कृति व साहित्य का सन्देश इस भूखण्ड के अन्य भागों में गया था उस विजय गूंज का यह पर्व सन्देश देता है। वाल्मीकि तथा मानस के रामचरित अयोध्या के राजा राम का गुणगाथा मात्र ही नहीं है। मानस के चरित्र नायक दीन-दलितों, असहायों के त्राता हैं। वे निषादराज, भील, आदि असभ्य जातियों में भी पूजे जाते हैं, पीड़ितों के, जंगलों में भटकने वालों के एक मात्र सहारे हैं। वे निर्बलों के बलराम हैं। राम की यही विशेषता है, इसी से वे सभी की दृष्टि में पूजनीय हैं वन्दनीय हैं, शक्ति के देने वाले हैं।

राम की शक्ति निर्बलों के लिये है आततायी के पोषण के लिये नहीं है। यूरोप के प्रजातन्त्र निर्बलों की रक्षा का वचन देकर भी शक्तिशाली आततायी का रास्ता आधुनिक समय में छोड़ सकते हैं विजया दशमी की विजय एक शक्तिशाली आततायी पर की विजय है, जिस शक्तिशाली के कारण प्रजाजन की शान्ति भङ्ग होती थी, प्रजा के जन्म सिद्ध अधिकारों को कुचलने वाले पर यह विजय थी। यह विजय नये युद्धों को प्रोत्साहित न करती थी, समर की नयी साज सज्जा को तैय्यार करने का कोई अध्याय इस से प्रारम्भ न होता था। यह विजया शुभ राम-राज्य के अवतरण की सूचना थी।

रामराज्य के विषय में सन्देह किया जाता है कि यह राज्य एक तंत्रात्मक शासन पद्धति रही होगी, जिस में कि एक बुद्धिमान् राजा राम होगया था–इस लिये इसकी ऐसी संज्ञा है। राम राज्य प्रजारञ्जक, प्रजापालक, नियामक बुद्धिमान् राज्यव्यवस्था को सूचित कराता है। राजा अपना कर्तव्य समझता था कि प्रजा के सम्पूर्ण कर्तव्य नियम से चलें। वह अपने व्यक्तिगत स्वार्थ को भी प्रजारंजन के हेतु हो कर सकता था, यही इस शासन की विशेषता थी।

विजया दशमी रामराज्य की दिवाली का प्रथम विजय घोष है। दुःखी प्रजाओं की शान्ति का साम्राज्य स्थापित किया गया था। इस रामराज्य की स्थापना में शक्ति तथा सच्चरित्रता का सुन्दर समन्वय कर उन से एक आक्रान्ता की शक्ति का समूल नाश किया था।

विजया दशमी न्याय की विजय है। बुद्धि और बल का सत्य के पोषणार्थ न्याय की रक्षा के लिये उपयोग यदि देखना हो तो मानस के रामचरित में देखो, जिस की पुण्य गाथा आज भी उत्तर भारत में न्याय की रक्षा में शक्ति के सर्वोत्कृष्ट उपयोग का निर्देश करती है। दशहरे का त्योहार सम्पूर्ण भारत में यही सन्देश देता है- इसी से इस युग में भी यह पर्व एक नूतन सन्देश दे रहा है।

श्रद्धाञ्जलि

७० वें शरद् में प्रवेश करने वाले हे महात्मन्! भारत राष्ट्र की आशायें, भारतीयों का भविष्य में कार्यक्रम, भारत मां के अरमान तुम में निहित हैं। तुम्हारा जीवन, तुम्हारे वचन, सत्य तथा अहिंसा से भरपूर होते हुए भी सदा ही जननी, जन्मभूमि की सेवा में लगे रहे हैं, तुम्हारा कर्मशील जीवन भारत राष्ट्र का निर्माण करने में सदा सहायक रहा है।

विश्ववंद्य तपोनिधि! संतप्त दुःखी, परतन्त्र भारतभूमि खुल सांस के लिये आज छटपटा रही है, वह अपने पुत्र का सहारा देख रही है। माता धरित्री के दुःखों का हरण करने वाला तुम सा और कौन पुत्र जन्मा है!

नरश्रेष्ठ! महात्मन! तपोनिधि! हे मोहन गांधि! तुम युग युग जीओ। भारत का उत्थान तुम्हारे योग्य पथ-प्रदर्शन की बाट जोह रहा है, तुम पहले से ही मां को सहारा देते आ रहे हो। तुम्हारा कर्तृत्व महान् है, तुम्हारी कार्यपद्धति विचित्र है, आकर्षक है और है सदा आगे बढ़ाने वाली। हम अपनी श्रद्धाञ्जलि को तुम्हारे प्रति समर्पित करते हैं, स्वीकार करो।

बधाई

श्री पंडित धर्मवीर वेदालङ्कार गुरुकुल के योग्य स्नातकों में हैं और आजकल बिहार के छोटा नागपुर प्रदेश की असभ्य जातियों के उत्थान कार्य में लगे हुए हैं। आपके कार्य का मुख्य केन्द्र रांची जिला है। पिछले दिनों बिहार की सरकार ने उनकी सेवाओं व योग्यता से मुग्ध होकर उन्हें रांची म्युनिसिपल्टी का सदस्य नामज़द किया है। यद्यपि लोकसत्ता के इस ज़माने में नामज़दगी का अधिक महत्व नहीं है किन्तु जहां यह नामज़दगी सेवा व लोकप्रियता पर निर्भर करती हो वहां यथार्थ में वह महत्वपूर्ण हो जाती है। हम भाई धर्मवीर जी को इस नामज़दगी के लिये बधाई देते हैं और आशा करते हैं कि वे अपनी सदस्यता के काल को सफलता से निभायेंगे।

हवाई शिक्षा

विज्ञान ने इतनी उन्नति की है कि रेल, मोटर का स्थान अब हवाई जहाज़ लेते जा रहा है। योरप के भिन्न भिन्न देशों में तो अब छोटे २ कस्बों के निवासी भी एक स्थान से दूसरे स्थान के प्रवास के लिए हवाई जहाज़ का आश्रय लेते हैं। पिछले कुछ वर्षों से हमारे देश में भी डाक के लिए हवाई जहाज़ का आश्रय लिया जाने लगा है और कुछ स्थानों पर तो मुसाफिर भी हवाईयान का आश्रय लेने लगे हैं। अब जब कि देश के भिन्न २ प्रान्तों में कांग्रेस का शासन स्थापित हुआ है प्रान्तीय सरकारों का ध्यान भी हवाईयानों की उन्नति व शिक्षण की ओर गया है। अभी पिछले ही दिनों युक्तप्रान्त की सरकार ने एक विज्ञप्ति प्रकाशित की है कि इस प्रान्त के सुयोग्य व होनहार विद्यार्थियों को हवाई शिक्षण के लिए छात्रवृत्ति दी जायेगी। हम अपने स्नातक भाइयों से निवेदन करेंगे कि वे इस साहसिक क्षेत्र की ओर अपना कदम बढ़ायें और युक्तप्रान्तीय सरकार द्वारा दी गयी छात्रवृत्ति का उपयोग कर के हवाई शिक्षण में प्रवृत्त हों। मौजूदा ज़माने में हवाई जहाज़ों की तरक्की देश की उन्नति का प्रमुख साधन है। हमें आशा है कि हमारे स्नातक भाई इससे लाभ उठाकर देश व राष्ट्र की उन्नति में मददगार होंगे। जो स्नातक भाई इस विषय में विशेष जानकारी प्राप्त करना चाहें वे डायरेक्टर यू. पी० फ़्लाइंग क्लब कानपुर से पत्र व्यवहार कर सकते हैं। यह ध्यान में रखने की बात है कि छात्रवृत्ति के लिये शीघ्र से शीघ्र प्रयत्न करने में ही लाभ रहेगा।

बुद्ध धर्म का प्रभाव व उसकी देन—

[ले० ब्र० सत्यव्रत जी द्वादश]

[गताङ्क से आगे]

महात्मा बुद्ध के जीवन प्रवाह को सरसरी निगाह से देखने पर सबसे पहली व मुख्य बात जो हमारे मन को प्रभावित करती है वह यह है कि उनकी शिक्षायें, विविध उपदेश एवं सिद्धान्त अत्यन्त सरल, सादे व प्रतिभा-सम्पन्न थे जिससे सामान्य से सामान्य जनता भी उन तथ्यों से हठात् आकृष्ट होती थी तथा उस विचार-सरणि पर अमल करने से वह भी जीवन का सात्विक मजा लूट सकती थी।

सदियों के उस ज़हरीले धार्मिक एवं सामाजिक वातावरण में पलकर जनता बेचैन हो रही थी। उनके दिमाग निरर्थक रूढ़िवाद की पाबन्द जंजीरों में जकड़े जाकर अकर्मण्य हो रहे थे। मानसिक प्रवृत्तियों ने किसी अजीब ढंग के प्रवाह में बहना शुरु कर दिया था एवं लोग किसी अदृश्य मनोवैज्ञानिक डाक्टर की आंखें बिछा कर बाट जोह रहे थे। भगवान ने बड़े ध्यान से अपने भक्तों की इस वर्तमान परिस्थिति को देख कर अपनी प्रतिज्ञाओं का स्मरण करके एक निष्णात व्यक्ति को स्वर्गलोक से इहलोक में भेज दिया जो पीछे से महात्मा बुद्ध नाम से सकल जगत् में पूजे गये।

महात्मा बुद्ध तत्कालीन धार्मिक एवं सामाजिक परिस्थितियों को खूब अच्छी तरह समझते थे। उनको इस बात की बड़ी चिन्ता थी कि किस प्रकार लोगों के व्यावहारिक कार्यकलापों में समुचित सुधार किये जांय। महात्मा बुद्ध संसार में अपने साथ एक अनमोल संदेश लेकर आये थे जिसको वे साधारण जनता को सुनाना चाहते थे। वह संदेश यह था कि लोगों के आचार (Conduct) में आवश्यक सुधार किया जाय जिससे वह शान्तिपूर्वक एवं उन्नति के सोपानों पर कदम बढ़ाते हुए अपना जीवन यापन कर सकें।

लोगों की दृष्टि महात्मा बुद्ध पर थी। वे सोच रहे थे कि देखें हमारा नायक किस ढंग से मार्ग प्रदर्शन करता है। उस प्रशान्त, धीरप्रतिज्ञ, शान्ति के दूत महान् हितकारी सुयोग्य नेता ने सावधानीपूर्वक सूक्ष्म एवं दूर दृष्टि से अपना प्रचार करना शुरु किया। उसने उस अशान्त उच्छृङ्खल जनसागर में अपनी जीवन नौका को छोड़ दिया। ऊपर तो झंझावात ने असमय ही व्योम के सौम्यत्व में खलबली मचा रक्खी थी एवं समुद्र की भीषण उत्ताल तरंगें भी अपने अतुलनीय गाम्भीर्य को तिलाञ्जलि दे रही थी। बीच में एक छोटी सी पनडुब्बी उस जगत्पालयिता परमात्मा के द्वारा सुरक्षित होकर आनन्दपूर्वक हिलोरें मारती हुई बढ़ी जा रही थी। मार्ग विकट था पर दिल में उत्साह एवं संसार को उन्नत करने वाली, महान् आत्मा की प्रेरणा थी। फिर क्या चाहिए। जनता तो पहले से ही नवीनता के लिए उत्सुक बैठी थी। उनको एक असाधारण नेता मिल गया जिससे प्रचार कार्य जोर शोर से बढ़ने लगा।

महात्मा बुद्ध की प्रचार शैली का प्रकार बड़ा ही अजीब एवं आकर्षक था। उन्होंने सदाचार, सत्य, अहिंसादि जीवन के उत्कृष्ट पहलुओं को जनता के सामने रखते हुए, विपक्षियों के धर्मों पर निरर्थक आक्षेपों की बौछार न करते हुए एवं अपने अहिंसात्मक तरीके से जनता की उन्नति का ख्याल करते हुए प्रचार क्षेत्र में

पदार्पण किया था। खण्डनात्मक कार्य को छोड़कर मण्डनात्मक प्रचार ने उनको पर्याप्त सहायता दी। हालाँकि उस समय भारत की परिस्थिति बड़ी नाजुक थी एवं बकरियां या वत्सतरियां यज्ञों में होम दी जाती थीं जैसा कि धार्मिक परिस्थिति में नीचे लिख आये हैं फिर भी महात्मा बुद्ध ने उन पर कुठाराघात न करके, उनके सिद्धान्तों का प्रत्यक्ष रूप से अवहेलना न करके शान्ति पूर्वक अपना धर्मकार्य शुरु रक्खा। इस प्रकार अपने मण्डनात्मक एवं अहिंसात्मक प्रचारों से लोग इतने प्रभावित होगये कि हज़ारों की तादाद में महात्मा बुद्ध के शिष्य बन गए और इतना ही नहीं; समकालीन राजा महाराजा बिम्बसार, अजातशत्रु आदि भी महात्मा बुद्ध की शरण आये एवं इन्होंने बुद्धधर्म प्रचार में पर्याप्त हाथ बटाया। महात्मा बुद्ध ने देश विदेश भ्रमण करके अपने धर्म का खूब प्रचार किया एवं भिक्षुओं के संघ बना २ कर जैसा कि उसने गणतन्त्र राज्य से शिक्षा पाई थी, भिक्षुओं को उपदेश दिए एवं कहा कि—"भिक्खुओ, अब तुम जाओ, घूमो; जनता के हित के लिए, जनता के सुख के लिए, देवों और मनुष्यों के कल्याण के लिए घूमो। कोई दो एक तरफ न जाओ। तुम लोग उस धर्म का उपदेश करो जो आदि में कल्याणमय है, मध्य में कल्याणमय, और पर्यवसान में कल्याणमय है।"

महात्मा बुद्ध ने कोई नवीन विचारधाराएं प्रवाहित नहीं की अपितु हमारे प्राचीन एवं गौरवपूर्ण युग के उन अग्रगण्य विशद तथा प्रांजल विचारों को, जिन पर अमल करके अमेरिका, जर्मनी, जापान एवं इंगलैण्ड इस प्रत्यक्ष उन्नति के उत्तुङ्ग शिखरों पर समारूढ़ हुए हैं, प्राधान्य रखकर एवं उस समय के अवनत संकुचित तथा दुराचार व हिंसापूर्ण विचारों को गौणत्व देकर भारत के विचारों में क्रान्ति की धूम मचा दी।

महात्मा बुद्ध अपने को नवीन युग का स्रष्टा, पैगम्बर या अवतार नहीं मानते थे। उनकी उपदेश शृङ्खला से यह भलीभांति परिचित होता है कि वे भी मानव की न्याईं अपनी उस महाकाय चिन्ता को हटाने के द्वारा अपना पवित्र स्वार्थ सम्पादन कर रहे थे। इस प्रकार प्रारम्भ के बाद अब हम यह देखेंगे कि महात्मा बुद्ध का सुधार किस प्रकार का था, उनमें विशेषता क्या थी?

महात्मा बुद्ध स्वयं रोगी भारत की हरेक नसों नाड़ियों से परिचित थे। इसलिए तदनुकूल चिकित्सा करने का उन्होंने भरसक प्रयत्न किया। सामाजिक तथा धार्मिक अवनति का ज़िक करते हुए हमने भारत की अवदशा को मार्क किया है। सब से प्रथम, वर्ण-व्यवस्था के विषय में तत्कालीन सुधार पर विचार विमर्श करते हैं।

वर्णव्यवस्थाः—

उस समय की घृणित एवं प्रगति बाधक जातपांत व्यवस्था को देखकर महात्मा बुद्ध तंग आगए। फिर भी जीवन की उलझनों में न पड़कर एवं जातपांत के निरर्थक झगड़ों के तोड़क नियम न बनाकरके, महात्मा बुद्ध अपनी उसी सरल एवं शुद्ध प्रचारशैली पर कदम बढ़ाते चले। सुत्तनिपात एवं धम्म पद में कई जगह उपदेश देते हुए या अमुक व्यक्ति के साथ धर्म चर्चा करते हुए बुद्ध ने ब्राह्मण आदि वर्णों का शुद्ध एवं निश्चयात्मक लक्षण किया है। महात्मा बुद्ध स्वयं अपने को शुद्ध ब्राह्मण एवं "आर्य" कहते थे। कहने का तात्पर्य यह है कि बुद्ध ने जन्म से व्यवस्था न मान कर गुणकर्म स्वभावानुसार वर्णव्यवस्था को स्वीकार किया था तदनुसार जगह २ प्रचार भी करते रहे।

निष्कामकर्मः—

नाना प्रकार के देवी देवताओं के मानने से फल फूल, मूलादि अर्घ्य देकर इष्ट देवता को प्रसन्न करने से तथा यज्ञयागादि में अजा को होम देने से इष्ट फल की प्राप्ति होती है। इस प्रकार के भ्रम मूलक सिद्धान्तों में भूलकर लोग निष्कर्मण्य हो गए थे तथा ऐशोआराम में जीवन यापन करते थे। महात्मा बुद्ध ने इस अकर्मण्यता तथा उदासीनता को परे भगाया। तीन प्रकार की इच्छाओं का (विलास प्रियता, अमरत्व की इच्छा एवं दुनियात्यागना) का समूलोन्मूलन न करके उनका दिशापरिवर्तन किया। अथ च निर्वाण [इच्छा का अभाव] प्राप्त करने के लिए उपदेश दिया। श्रीमद् भगवद् गीता में निष्काम कर्म की बड़ी महिमा गाई गई है। इसी प्राचीन तत्व को लाने का बुद्ध ने प्रयत्न किया। इस प्रकार निष्काम भाव से कर्म करने के कारण फिर एकबार उस अवनति पथ पर आरूढ़ भारत का सितारा चमक उठा, लोगों में नवीन क्रान्ति पैदा होगई एवं नूतन जीवन सञ्चारण करने वाली नवीन उषा के बाद शुभमुहूर्त का प्रादुर्भाव हुआ।

ब्रह्मचर्यः—

वैदिक धर्म में भी इस पर खूब विस्तार से विचार किया गया है। बुद्ध ने भी भिक्षुसंघ में ब्रह्मचर्य, व्रत पालन, प्रतिज्ञा पालन, आदि का प्रचार किया। चूंकि यह प्रचार अहिंसा, सत्य, व प्रेम आदि पर आश्रित था अतः अधिक पक्षपात या विरोध को छोड़कर सब एक मन होकर उपदेशों पर अमल करते थे।

इनके सिवाय कई अन्य भी बुद्ध धर्म के सुधार हैं। महात्मा बुद्ध ने सरलजीवन यापन करने के लिए आर्यअष्टांगिक मार्ग का प्रतिपादन किया है। यथा—सम्यग्दृष्टि, संकल्प, वाणी, कर्म, आजीविका, व्यायाम, स्मृति एवं समाधि। इसके साथ २ बुद्ध धर्म की खास देन मध्यममार्ग पर चलना है। जिस प्रकार वीणा के तार ढीले रखने से वीणा बज नहीं सकती तथा तार खूब कस देने से टूट जाती है अतः मध्यम मार्ग ही श्रेयस्कर है न जीवन को ढीला छोड़ना नहीं तपश्चर्यादि कठिन यातनाएं सहकर कसना ही अच्छा, अपितु मध्यम मार्ग ही लाभप्रद है।

(अपूर्ण)

गुरुकुल समाचार

गत सप्ताह देवेन्द्र (हैदराबाद) २य श्रेणी विषमज्वर; वेद राज १२ प्रवाहिका; श्यामसुन्दर २य विषमज्वर; अरविन्द ३श चोट से रोगी हुए थे। अब सब स्वस्थ हैं।

इस बार दशहरे के अवसर पर खेलों का विशेष आयोजन किया गया था। कबड्डी, रस्सा कशी, लंका विजय आदि देशी खेलों तथा हौकी, वौली बौल फुट बौल, क्रिकेट आदि खेलों में उपाध्यायों, बड़े तथा छोटे ब्रह्मचारियों, कुल के अन्य कर्मचारियों ने बड़े उत्साह से भाग लिया है। उपाध्यायों, स्नातकों और कर्मचारियों ने दो कबड्डी तथा रस्साकशी में महाविद्यालय के ब्रह्मचारियों से मुकाबला किया था, ब्रह्मचारियों का ही पलड़ा भारी रहा। हॉकी में ब्र० वेदरत्न तथा फुटबौल वौली बौल में ब्र० रघुनाथ १४ के दल विजयी रहे हैं।

छोटे ब्रह्मचारियों की 'लंका विजय' में तीसरी चौथी श्रेणी ने ५वीं श्रेणी को हराया है। इस बार की खेलों की विशेषता यह थी महाविद्यालय के अधिकांश विद्यार्थियों ने इसमें हिस्सा लिया था। क्रिकेट जैसी खेल में भी ४० से ज्यादह खिलाड़ियों ने हिस्सा लिया था। अन्य खेलों में तो सभी ने पूर्ण सहयोग प्रदान किया था। खेलों के इस सुन्दर भरे हुए प्रोग्राम की सफलता के मुख्य कारण वर्तमान क्रीडा मंत्री ब्र० अनन्तानन्द हैं।

दशहरे की सभा भी सप्ताह भर मुख्य हलचलों में से प्रमुख थी। उपाचार्य प्रो० लालचन्द जी इसके सभापति थे। यह सभा सारे समय कविताओं से सजीव रही। कई सुन्दर रचनायें भावमय वक्तायें इस अवसर पर पढ़ी गई। दर्शनोपाध्याय पं० सुखदेव जी विद्यावाचस्पति तथा मुख्याधिष्ठाता प्रो० सत्यव्रत जी सिद्धान्तालंकार ने उपसंहार करते हुए दशहरे के ऐतिहासिक महत्व पर बल दिया साथ ही उन्हों ने कहा कि प्राचीन भारतीय साहित्य का अध्ययन करते हुए पाठक को गवेषणात्मक आलोचना करनी चाहिये, इसी से हमारे त्यौहारों का महत्व स्पष्ट हो सकेगा।

देहरादून में क्रिकेट का साम्मुख्य करने के लिये कुल से १५ खिलाड़ियों का एक दल जा रहा है। इस दल में अच्छे चुने हुए खिलाड़ी हैं- इसकी विजय की पूर्ण आशा है।

गुरुकुल कुरुक्षेत्र

पाण्मासिक परीक्षा के बाद २ अगस्त को कुल में जन्मोत्सव बड़ी धूमधाम से मनाया गया। रा०सा० ला० अमृतराय जी ने सभापति का आसन ग्रहण किया। इस अवसर पर बहुत से आर्य सज्जन आसपास के शहरों से भी कुल में पधारे थे।

३ अगस्त को १म से ५म तक के छोटे ब्रह्मचारी पहाड़ यात्रा के लिये रवाना हुए और ५ अगस्त को बड़े ब्रह्मचारी क्वेटा यात्रा पर गये। दोनों पार्टियां अब यात्रा समाप्त करके वापिस आगई हैं। बड़े ब्रह्मचारियों के साथ पं० सोमदत्त जी मुख्याधिष्ठाता तथा श्री पं० विक्रम जी व्यायाम शिक्षक गये थे। क्वेटा के आर्यपुरुषों ने ब्रह्मचारियों का अच्छा स्वागत सत्कार किया। गुरुकुल के लिये लगभग ६००) दान में मिले। २५ सितम्बर को क्वेटा से चलकर मार्ग में सक्खर तथा नाभा में दर्शनीय स्थान देखते हुए १ अक्टूबर को कुलभूमि में वापिस आगये। क्वेटा, सक्खर तथा नाभा इन तीनों शहरों में ब्रह्मचारियों के शारीरिक व्यायाम की खेलों—लाठी की ड्रिल, लेजम के साथ संगीत, प्रपमेकिंग, जिमनास्टिक, बनैटी, तलवार की ड्रिल तथा नौरन्दाजी के खेलों को जनता ने बहुत पसंद किया। इन दोनो यात्राओं में जिन समाजों तथा महानुभावों ने सहायता की है उनका हम गुरुकुल की ओर से बहुत २ धन्यवाद करते हैं।

गुरुकुल चित्तौड़गढ़ समाचार

[श्री स्वामी अभयदेव जी आचार्य का शुभागमन]

अनेक वर्षों से श्री स्वामी अभयदेव जी के आने की प्रतीक्षा थी। अन्त को २७ सितम्बर को दोपहर की गाड़ी से श्री स्वामी जी ने शुभागमन किया स्टेशन पर स्वागतार्थ अध्यापक महानुभाव तथा उच्च कक्षा के ब्रह्मचारी उपस्थित थे श्री स्वामी जी ने तीन दिन तक निवास किया। इन दिनों आपके उत्तम सत्संग से गुरुकुल वासियों को विशेष लाभ रहा। प्रतिदिन प्रश्नोत्तर रूप में आपका आध्यात्मिक प्रवचन होता रहा। आपके द्वारा श्री अरविन्द आश्रम पाण्डिचेरी का विस्तृत वृत्तान्त भी ज्ञात हुआ जो बहुत उपयोगी रहा। गुरुकुल का भली भांति निरीक्षण करके आपने सम्मति पंजिका में निम्न सम्मति अंकित की—

"चित्तौड़ गुरुकुल को मैं इसके जन्मकाल से ही अपना समझता रहा हूं। अब २७ से ३० सितम्बर तक यहां रह कर ब्रह्मचारियों की सुशीलता, नम्रता, ज्ञान, धर्मभाव देख कर तथा अध्यापक वर्ग का प्रेम, धर्मपरायणता, ऋषि दयानन्द के प्रति भक्ति भी देख कर बड़ा आनन्द हुआ। यह भी उल्लेखनीय है कि गुरुकुलवासियों ने इन तीनों दिन मेरा पूरा उपयोग लिया और सदा प्रेम दर्शाया। इस गुरुकुल के उच्च ध्येय की मैं सफलता चाहता हूं" ॥

ऋतु सुहावनी है। सर्दी होने लगी है। ५ अक्तूबर से पाण्मासिक परीक्षा होने वाली है जिसकी तैयारी में सब ब्रह्मचारी लगे हुये हैं। १३ अक्तूबर से १ मास का अवकाश हो जायेगा और इस अवकाश के समय ब्रह्मचारी दो अध्यापक महोदयों के साथ पैदल जत्था बना कर स्वर्ण जयन्ती महोत्सव में सम्मिलित होने के लिये अजमेर की यात्रा करेंगे। मार्ग के ग्रामों और नगरों में प्रचार का प्रोग्राम भी बनाया गया है जिससे अधिक से अधिक जनता को श्री महर्षि दयानन्द का दिव्य संदेश सुनाया जा सकेगा।

छुट्टी की सूचना

दिवाली के अवसर पर गुरुकुल का आयुर्वेदांक निकल रहा है। इसका कार्य अधिक होने के कारण गुरुकुल पत्र एक सप्ताह की आवश्यक छुट्टी लेता है।

—सम्पादक

चौधरी दुलासराय के प्रबन्ध से गुरुकुल प्रेस गुरुकुल कांगड़ी में मुद्रित तथा प्रकाशित।

दिवाली

[लेखक—श्री पं० हरिदत्तजी वेदालङ्कार]

देवाली हिन्दुओं का एक मुख्य त्यौहार हा जाता है कि आज से हज़ारों वर्ष र्यादा पुरुषोत्तम भगवान् रामचन्द्र राक्षस ावण पर विजय पाकर चौदह साल के के बाद आज के दिन अयोध्या में हुए थे। जनता ने उनके आगमन पर शियां मनायीं। अमावस की अंधेरी ो भी दियों के प्रकाश से आलोकित था। उस दिन से आज तक प्रतिवर्ष वेजय की स्मृति को सदा अक्षुण्ण रखने के लिये यह पर्व मनाया ।

देवाली का यह इतिहास याद आते ही त्रों के आगे सुनहले अतीत का एक ा सा चित्र आ खड़ा होता है। उस ही आर्यजाति का पौरुष, विजय की भावना, दुष्टों का दलन, अनार्यों [illegible] पर विजय पाकर उन को आय [illegible] चीजें एक ाल आजाती हैं [illegible] की मनो- कल्पना दिलों में [illegible] पैदा कर । इतिहास में राम [illegible] और ज्य जैसे प्रजातन्त्र का दूसरा उदाहरण असंभव हैं। इस युग [illegible] कि मोर अधिनायकों का बोल बाला [illegible] ाक्ति मार्तीवाद, फासिज्म [illegible] रूपों में वैयक्तिक स्वतन्त्रता और क अधिकारों को कुचल रही है— ाय में वह रामराज्य जिस में एक ी आवाज भी महत्व रखती थी और सके अनुसार कार्य करने को वाध्य होता था केवल एक कपोल कल्पना ही प्रतीत हो तो इस में आश्चर्य ही क्या है। प्रभुता का मद बुरी बला है, उसके असर से बचना बड़ी कठिन चीज है। श्री रामचन्द्र जैसे लोकोत्तर पुरुष ही उसके विषैले प्रभाव से बच सकते हैं। सेना के जोर से प्रजा के असन्तोष को दबाना सर्वशक्ति-सम्पन्न श्री रामचन्द्र के लिये कुछ भी कठिन कार्य न था। परन्तु उन्होंने जनता की आवाज को महत्व दिया। राजा का मुख्य कर्तव्य ही जनता का रंजन है। उसके लिये उसे बड़े से बड़े त्याग के लिये तयार रहना चाहिये। इसलिये भगवान् रामचन्द्र ने अपनी प्रियतम चीजों को गिनाते हुए कहा—प्रजा के आराधन के लिये मुझे इन चीजों को छोड़ते हुए ज़रा भी क्लेश न होगा—'आराधनाय लोकानां मुञ्चतो नास्ति मे व्यथा'। दिवाली हमें ऐसे आदर्श, पतित पावन भगवान् रामचन्द्र और तत्कालीन भारतवर्ष के गौरव पूर्णकाल को स्मरण कराती है।

उस घटना को हुए हजारों वर्ष बीत गये उसके बाद भारतवर्ष के इतिहास में असंख्य परिवर्तन हुए— नयी जातियां आयीं— आक्रमण हुए—हजारों उथल पुथल और क्रान्तियां हुईं— नये २ साम्राज्य बने और बिगड़े परन्तु भारत वासियों की कृतज्ञता ने उस आदर्श चरित्र को क्षणभर के लिये भी विस्मृत नहीं किया। वह पर्व उसी शान से मनाया जाता रहा। क्या यह आर्यावर्त के इतिहास की अखण्डता का सूचक नहीं ? आज भी दिवाली के ये दिये उस अलौकिक विभूति को अर्घ्य प्रदान कर रहे हैं। उस की बाट जोह रहे हैं— अमावस की अंधेरी रात में वह कहीं रास्ता न भटक जाय अतः उस का मार्ग आलोकित कर रहे हैं।

परन्तु उस हर्ष के त्यौहार पर विषाद की गहरी छाया पड़ी हुई है। हमारे पौराणिक भाइयों ने इस त्योहार का यम के साथ सम्बन्ध जोड़ा है। धन तेरस, नरक चौदस; अमावस्या, प्रतिपदा और द्वितीया ये सब दिन किसी न किसी रूप से यम से सम्बन्ध हैं। पता नहीं उन की कथाओं में कहां तक सचाई है परन्तु हमारे लिये यम का सम्बन्ध अवश्यमेव सच है। आर्यसमाज के प्रवर्तक ऋषि दयानन्द ने दिवाली के दिन अपने भौतिक शरीर का परित्याग किया था। वर्तमान महावीर, तथा स्वामी रामतीर्थ की निधन तिथि भी यही बतलायी जाती है। इस प्रसन्नता के उत्सव पर इन पुण्यात्माओं का स्वर्गवास इस पर्व को फीका बना देता है। यह सब कुछ रंग में भंग करने वाला प्रतीत होता है। परन्तु साथ ही यह इस महान सत्य का भी उद्बोधन कराता है कि दुनियां में सुख के साथ दुःख हर्ष के साथ विषाद, लाभ के साथ हानि और विजय के साथ पराजय लगी हुई है। यह जगत् द्वन्द्वात्मक है। हमें सुख में खुशी से इतना फूल नहीं जाना चाहिये कि हम दुःख को भूल जांय। हर्ष के अवसरों पर भी हम संयत ही रहना चाहिये। संयम और द्वन्द्वातीतावस्था ही सच्चा सुख है।

दिवाली सफाई का त्यौहार है। दक्षिण की ओर कई प्रान्तों में दिवाली से नव वर्ष प्रारम्भ होता है। व्यापारी लोग बहीखातों का पिछला हिसाब साफ कर आजसे नया हिसाब शुरु करते है। दक्षिण के कई प्रान्तों में दिवाली से नव वर्ष प्रारम्भ होता है। हमें भी पुराना हिसाब किताब खतम कर शारीरिक मलों की शुद्धि कर नया हिसाब शुरू करना चाहिये। हृदयों से पुराना राग, द्वेष, ईर्ष्या, मात्सर्य आदि निकाल कर नये प्रेम और सद्भावना से नया वर्ष शुरू करना चाहिये। भगवान करे—नया वर्ष हम सब के लिये शुभ हो।

———

शान

[लेखक—श्री सत्यभूषण जी योगी]

यह धरणी रजनी में रोती कर प्रियतम का ध्यान
आता इसे हँसाता बांका पूरब का छविमान।
ऊषा की मुसकान मधुर मधु विहगगणों के गान;
कण कण में अब नाच रही है मीठी मोहन तान।
मंजु पुष्प मुसकाते करते सुषमा-सुरभि-प्रदान;
प्रात-पवन यह कंपित कर से करता है आदान।
पल्लव पल्लव ने पाया नव जीवन वर वरदान।
सन्मुख स्वर्णिल सुप्त हिमाचल अपने से अनजान।
चंचल सरि इठलाती गाती सुनते कवि के कान —
अस्थिर हूं मैं अस्थिर है तू, अस्थिरता अवसान!
श्यामल घनमाला में शम्पा का नर्तन द्युतिमान;
थक कर पातित खेद बिन्दुओं से धोणी का स्नान।
मुग्ध कलापी की केका मधुमत्त नृत्य रसखान।
रंग विरंगे इन्द्र धनुष की नवल छटा श्रीमान।
नीरव संन्ध्या की लाली का कुछ अस्फुट आह्वान।
थिरक रहा उडु-रत्न-सुसज्जित नीला व्योमवितान!
चन्द्र मलोना झांक रहा है मंजुलता का मान;
हो जाते हममे विलीन है कितने हिय अरमान।
मादक मधु बजती है रसमय तंत्री की तंतान;
विस्मृत जग यह झूम रहा है लय कर अपने प्राण।
प्रकृति सुन्दरी किम सुन्दर का करती है सन्मान?
कैसा है अभिसार सखे, यह किम छैले की शान!

राजयक्ष्मा-कृमि-संहार

लेखक – डा० राधाकृष्ण जी बी.एस.सी, आनर्स; एम बी., बी.एस औनर्स.

क्षयरोग का कृमि लम्बा, पतला और
ाकार है। यह शरीर के सब तन्तुओं में
ता है और कफ, मल, मूत्र तथा अन्य
र्थों द्वारा बाहर आता है। इन्हीं पदार्थों
ा यह रोगी से अन्य स्वस्थ व्यक्तियों में
श करता है। यह कृमि शरीर के अन्दर
कर दीर्घजीवी है क्योंकि जीवित तन्तुओं
भोजन ग्रहण कर सकता है। शरीर से
र अल्पजीवी है; क्यूंकि सड़े गले मृत
ुओं से भोजन प्राप्त नहीं कर सकता।
और शुद्ध वायु से शीघ्र ही मर जाता
यही कारण है कि अन्धेरे, गीले और
: स्थानों में देर तक रहता है।

रोगी से स्वस्थ व्यक्तियों में मुख्यतया
मार्गों से प्रवेश करता है:—

१ भोजन के साथ भोजन प्रणाली द्वारा।
गायें रुग्ण होती हैं। और उन के दूध में
। आ जाते हैं। यदि इस दूध को बिना
ले बच्चे को दिया जावे तो कृमि
ाशय और अन्तडियों में चले जाते हैं।
। पदार्थों पर यदि रोगी खांसे, इसे बनाये
परोसे या मक्खियां कृमि ले कर भोजन
ठें तो ये खाद्य पदार्थ भी कृमि युक्त
ाते हैं।

२. यदि काई रोगी खांसे और अपने
के आगे कपड़ा या रुमाल न रखे तो
कफ की फव्वार के साथ उडते हैं और
र्द के वायु मंडल में रहते हैं। रोगी
थूक जाये तो जब यह कफ सूख कर
कृमि रहते है इस प्रकार कृमि वायु द्वारा
श्वास के साथ फेफड़ों में प्रवेश करते हैं।

कृमि जिस मार्ग द्वारा शरीर में प्रवेश
करते हैं, पहले तो वहीं स्थित हो जाते हैं
और इसी स्थान का रोग उत्पन्न कर देते है।
जैसे फेफडे में प्रवेश करें तो राजयक्ष्मा, और
यदि अन्तडी में प्रवेश करें तो अन्तड़ियों का
क्षय रोग। शरीर इन्हीं स्थानों में कृमि को
मारने का यत्न करता है। यदि कृमि
बलवान् हों या शरीर में कृमि हर शक्ति
कम हो तो कृमि इन स्थानों से रक्त संचार
में पहुंच जाते हैं और व्यापि रोग उत्पन्न कर
देते हैं जो शीघ्र ही घातक हो जाता है।

प्रवेश स्थानो में कृमियों को मारने क्री
विधि विचित्र है। कृमि के इर्द गिर्द शरीर
वसा का आवरण बना कर इसे घेर लेता है।
इस से कृमि इधर उधर जाने में अशक्त हो
जाता है। यह घर देखने में एक दाना सा
प्रतीत होता है जिसे अंग्रेजी में टुबर्कल
(Tubercle) कहते हैं। इसी लिये अंग्रेज़ी
में क्षय रोग को टुबर्कयूलोसिस (Tubercu
losis) भी कहते हैं। इस दाने में कृमि
कैद तो हो जाता है परन्तु दीवार मृदु होने
के कारण इसे रक्त द्वारा भोजन मिलता रहता
है। धीरे धीरे दाने की दीवार में चूने के
लवण (Calcium Salts) एकत्रित होने
लग जाते हैं जिस से दीवार कठोर होती
जाती है। जब दीवार पूर्ण हो जाती है तो
कृमि को भोजन नहीं मिल सकता और
कुछ समय के पीछे कृमि मर जाता है।

इस वर्णन से स्पष्ट है कि कृमि संहार
की प्राकृतिक विधि में पहले वसा चाहिये जो

दानों की दीवार बना कर कृमि को गति रहित करती है और फिर चूना चाहिये जो कठोर दीवार बना कर कृमि को भोजन रहित कर देता है और कृमि मर जाता है। इसका यह अर्थ है कि शरीर में वसा और चूने की मात्रा पर्याप्त होनी चाहिये तभी कृमि मर सकते हैं। दुर्भाग्य से अभी तक कोई ऐसी औषधि नहीं मिली जो कृमियों के लिये विष का काम करे इसलिये इसी प्राकृतिक विधि का ही आश्रय लेना पड़ता है। रोगी को धूप और खुली वायु में तो रखना ही होता है, क्योंकि जैसा पहिले लिखा गया है, ये दोनों कृमियों के घातक हैं। इन के अतिरिक्त शरीर में दानों की पूर्ण रचना के लिये वसा और चूना भी देने पडते हैं। यह दोनों पदार्थ ऐसे ढंग से खिलाने चाहिये कि मल के साथ व्यर्थ में बाहर न जा सकें; बल्कि रक्त में आ कर दानों की दीवार बना सकें। महर्षि च्यवन ने दोनों पदार्थों को शरीर में प्रवेष्ट करने और स्थित रखने के लिये जो प्रयोग च्यवनप्राश बनाया था, वह विज्ञान के सिद्धान्तों के अनुसार ही था, इस में वसा और चूना दोनों उचित मात्रा में हैं और ऐसे रूप में हैं कि रक्त में निश्चित पहुंच जाते हैं। केवल इतनी बात है कि च्यवन प्राश महर्षि च्यवन की निर्धारित विधि के अनुसार बनाया जावे। सारांश यह है कि जब तक कृमियों की घातक विष या औषधि की अन्वेषणा नहीं होती तब तक और उस औषधि के साथ साथ भी हमें निम्नविधि से क्षयरोग की चिकित्सा करनी पड़ेगी—

१. रोगी को धूप और खुली वायु में रखें।

२. रोगी को उचित मात्रा और उचित विधि से वसा और चूना दें जिस के लिये

दान्त और स्वास्थ्य

(लेखक डा० सत्यपाल जी आयुर्वेदालंकार, चि० गुरुकुल कांगड़ी)

मनुष्य के मुख में ऊपर नीचे ३२ दांत होते हैं। सामने के दान्त वस्तु को काटने तथा पिछले दान्त चबाने का कार्य करते हैं। दान्तों का कार्य केवल चबाना ही नहीं है। इन्हें मुख की शोभा भी कहा जाता है; जो कि हंसने पर अधिक स्पष्ट होती है। पाठक बिना दान्त की मुखाकृति की कल्पना स्वयं कर सकते हैं। यह भी स्मरण रहे कि दांतों का वाणी के साथ भी विशेष सम्बन्ध है। इसी लिए दांत गिरने पर शब्दों के उच्चारण में अन्तर आजाता है। क्योंकि भिन्न २ दांत अलग २ समय में उगते हैं। अतः इन से व्यक्ति की आयु का भी अनुमान किया जाता है। इस तरह दांतों के भिन्न २ कार्यों में से भोजन चबाना उसकी मुख्य गति है। हम जो भोजन खाते हैं वह कई हिस्सों में बटा हुआ है। जैसे प्रोटीन, स्टार्च या कार्बोहाईड्रेट, फैट, साल्ट, विटामीन व जल मुख्य हैं पाठकों को मालूम है कि इन में से स्टार्च या निशास्ते का पचन मुख में ही होना आवश्यक है; क्योंकि आमाशय या अन्तड़ियों में इसे हज़म करने की ताकत नहीं है। इस लिए जब दांत भोजन को चबाते हैं, तो समीपस्थ सलाइवा ग्रन्थियों से प्रतिक्रिया द्वारा रस स्राव होता है; जो कि दांतों से महीन किये गये खाद्य पदार्थ के साथ मिल कर उसके निशास्ते को माल्टोज़ (एक प्रकार की खांड) में परिवर्तित कर देता है। यही कारण है कि भोजन जितनी अच्छी तरह चबाया जावे, उसका पचन उतना ही अधिक अच्छा होता है। पुरानी कहावत चली आती है कि प्रत्येक ग्रास को ३२ बार चबाना चाहिये। यदि भोजन ठीक तरह न चबावें तो निशास्ता अनपच अवस्था में आमाशय, अन्तड़ियों में जाकर रोग का कारण

केवल पाचन में ही सहायता ... दांत, मसूड़े, जबड़े और चेहरे ... की कसरत होती है। इस ... उन्नति होने से मुख की आकृ... होती है। साथ ही इन अंगों के ... से भावी भोजन के लिए अधिक ... होती है। अधिक देर तक चबा... ग्रन्थियां भी उचित व्यायाम हो... जाती हैं। जिससे पाचन क्रिया ... सहायता मिलती है। इस प्रका... भोजन अन्योन्याश्रयी समझे ... दान्त होने पेर भोजन अच्छी ... जाता है। फलतः स्थानिक ... अतिरिक्त शरीर का पोषण भी ... और इसका असर दान्त के ... पड़ता है। यदि हमारा भोजन ... चबाना ही न पड़े; जैसा कि वर्त... में दिनों दिन लोगों का ... (Polished), अधिक पके हुए ... भोजन की तरफ हो गया है; ... बिना चबाए आमाशय में चला ... परिणाम पाठक स्वयं समझ सकते ... के साथ मुख में सैलाइवा न मि... पाचन क्रिया ठीक न होने से ... जबड़े आदि की कसरत न होने ... रोग सताते हैं; दान्त जल्दी ही ... और पोपला सा मुंह बन जाता ... आवश्यक है कि भोजन कुछ ... चाहिये; जिसे चबाना पड़े। ... के लोग मोटा अनाज खाते थे, ... थे, कच्ची मूली, गाजर, तथा फल ... गन्ना चूसते थे। परिणामतः ... हमसे अधिक अच्छी थी। दांत ... से देर में गिरते थे। ध्यान रहे ... में दांत के पोषण के लिए

। दूध से प्राप्त होता है । हमारे यदि ताजी सब्जी विशेषत पत्र ल तथा दूध की पर्याप्त मात्रा शरीर के लिए आवश्यक कैल्शियम, फौसफोरस, तथा लोह । मात्रा मिल जाने से स्वास्थ्य ता है । नई सभ्यता में दूर २ से बन्द डिब्बों के भोजन में जहां की कमी होती है वहां चबाने की ो कम करनी पड़ती है । इस ही प में दान्तों के रोग अधिक हैं । । में भी जिन बड़े २ शहरों में ा के साथ २ टिन भोजन का ो रहा है दांतों की शिकायतें नी हैं । इसी तरह जिन बच्चों को की जगह टीन का दूध मिलता है । रोग बहुतायत से पाये जाते हैं । दान्तों के जीवन के लिए आवश्यक ई अधिक प्राकृतिक दूध दिया जावे। दूध ही सर्वश्रेष्ठ है । क्योंकि इसमें टामीन होते हैं और कैल्शियम था उचित मात्रा तथा इस शकल हैं जिसे शरीर तन्तु सुविधापूर्वक लेते हैं । यही कारण है कि माता र पले बच्चों के दान्त और स्वास्थ्य च्छे रहते हैं । बोतल का दूध दि) पिलाने से दांतों में दो प्रकार होती है । एक तो उसमें शरीर के तत्व माता के दूध से कम होते है । ूध में विटामीन के अलावा गाय के दूध ाा कैल्शियम होता है। बालक को इस म तत्व की बड़ी आवश्यकता होती ' क दूध म विटामीन कम होते हैं । पचाने की ताकत भी कम रहती है ती का दूध पिलाने से जहां माता य के संकुचित होने में सहायता वहां बालक के जबड़े मुख की मांस ा तालु आदि भी मजबूत और ते हैं । बोतल का दूध बिना मेहनत जाने से इनकी उन्नति ठीक नहीं च्चे की आयु के अनुसार उसे वस्तु देना भी आवश्यक है ताकि जिन बच्चों को माता का दूध देर तक दिया जाता है उनके दान्त अधिक स्वस्थ हैं। कोरिया में गाय बकरी आदि का दूध न मिलने से वहां ४-६ वर्ष की आयु के भी बालक अन्य भोजन के अतिरिक्त खड़े २ माता का दूध पीते आम देखे जाते हैं। उनके दान्त अधिक स्वस्थ हैं। यह भी ध्यान रहे कि बालक को दूध अच्छा मिले और माता का स्वास्थ्य भी ठीक रहे इसके लिए माता को बालक के गर्भ में आने पर ही चिन्ता कर लेनी चाहिये । पाठक जानते ही हैं कि बालक के दूधिया दान्त तीसरे मास में बनने लगते हैं। उचित भोजन के अभाव में माता के स्वास्थ्य पर बुरा असर होता है । सब से पहिले दान्त ही घुलते हैं। क्योंकि प्रकृति बालक को यथाशक्ति आवश्यक तत्व किसी न किसी तरह पूरा करने का प्रयत्न करती है । इसही लिए माता को १ से २ सेर तक दूध, ताजे शाक फल मक्खन और पनीरि रोटी आदि के साथ लेना बड़ा आवश्यक है । अन्यथा पीछे जाकर दन्त रोग तथा पाण्डु (Anaemia) आदि हो जाते हैं । जिसके लिए तरह २ की दवाई खाने पर भी उचित लाभ नहीं होता । कारण बताया जा चुका है कि दवाइयों के सारे शरीर तन्तु में जज्ब न होकर इनकी अधिक मात्रा शरीर के मल के साथ खारिज हो जाती है । इस तरह रकम खर्चने पर भी लाभ बहुत कम होता है । इन पंक्तियों से यह स्पष्ट है कि दान्त और शरीर के स्वास्थ्य के लिए मोटा अनाज (हाथ की चक्की का पिसा और कम छना हुआ आटा), घर की ओखली में कुटा धान (चावल), ताजे फल और शाक तथा पर्याप्त मात्रा में दूध आदि का लेना आवश्यक है । कुछ चीजें कच्चो भी खाना जरूरी हैं; जैसे मूली गाजर आदि, कच्चे भिगोकर या भूनकर दाने चबाना और गन्ना चूसना । इस सुन्दर भोजन से अन्य लाभ के साथ २ मलबन्ध की शिकायत भी हटती है । फिर आपको बीमैकस आदि के रूप में कीमती कानन न लेनी पड़ेगी । दूध की शक्ति बनाये रखने के लिए उसे तेज आंच पर न गरम कर

जब हम अपने भोजन का ठीक ध्यान नहीं रखते या मुख की सफाई नहीं करते तो दांतों के नाना विध रोग हो जाते हैं । जिन में से दांत में कीड़ा लगना तथा दांतों से पीप निकलना Pyorrhœ'a तथा मसूड़े सूजना या खून जाना आदि मुख्य हैं । जिन के परिणाम रूप में दांत शीघ्र गिर जाते हैं । इन से बचने के लिए आवश्यक है कि भोजन सुव्यवस्थित किया जावे । अजीर्ण या बदहजमी को ठीक किया जावे; मुख की अच्छी तरह सफाई की जावे । इसके लिए सब से अच्छी दातुन है, अभी तक हिन्दुस्तान में प्रातः दातुन बोहना पुण्य समझा जाता है । इस में सन्देह नहीं कि दांत साफ होने से स्वास्थ्य ठीक करने का पुण्य दानी को अवश्य मिलता है । दातुन कीकर, फलां, बबूल, नीम आदि की अच्छी होती हैं । दातुन करने से जहां दांत साफ होते हैं । वहां उस के रस के स्तम्भन गुण से (Astringent) मसूड़ों को भी लाभ होता है । दातुन १५ मिनट से अधिक नहीं करनी चाहिये, कई एक २ घंटे तक करते हैं । इससे मुख का सैलाइवा खराब हो जाता है । बालक जब तक दातुन न कर सके उसके दांत नमक के पानी में भीगे कपड़े से रगड़ कर साफ कर देने चाहियें । दातुन न मिलने की अवस्था में ब्रश में मंजन या पेस्ट लगा कर दांत साफ करने चाहियें । पेस्ट की अपेक्षा मंजन अधिक उपयुक्त है; दांत की सफाई की दृष्टि से । मंजन अच्छा बना हुआ होना चाहिये । मंजन में क्रमिहर क्षार तथा चाक आदि अधिक अच्छी रहती है । क्रमिहर कार्बोलिक एसिड सब से अच्छा है । क्षार के तौर पर खाने का सोडा, चाक, मंजन का आधार है । गुरुकुल आयुर्वेदिक फार्मेसी का **भीमसेनी मंजन** भी अच्छे वैज्ञानिक ढंग पर तैयार होने से व्यवहार में श्रेष्ठ है । नरम ब्रश से सख्त अधिक अच्छा रहता है । इसे व्यवहार में लाने के बाद नमक जल में भिगो कर धूप में सुखा लेना चाहिये । एक का ब्रश दूसरे व्यक्ति को प्रयोग में नहीं लाना चाहिये । एक मास बाद ब्रश बदल देना चाहिये । यदि मसूड़ों

प्रातः और सोते समय बारीक नमक को तेल में मिला कर दांत और मसूड़ों पर मलें। रोग की शिकायत न होने पर भी दातुन या ब्रश के बाद अंगुली से मसूड़ों को ५ मिनट तक मलना चाहिये। इस से वे ढीले नहीं पड़ते। खून जाने की अवस्था में रीठे के छिलके, योहर मूल तथा कड़वा कुट और नमक पीस कर मंजन कर सकते हैं। मौलश्री (बकुल), बड़ की दाढ़ी, नीम तथा अखरोट की छाल आदि से पकाये जल में सुहागा तथा खाने का सोडा डाल कर इस के गरारे भी अच्छे हैं। यदि दांत पर पथरी जम जावे या काले हो जावें तो मशीन से साफ करा लें। खाये हुए दांत भरे जा सकते हों; तो मसाले से भरवा लेने चाहियें। जिन दांतों में पीप पड़ गई हो, उनकी जड़ों का अधिक भाग मसूड़े से निकल गया हो और हिलते हों तो उन्हें निकलवाकर मसनूई दान्त लगवालें; ताकि आसपास के दान्त खराब न हों, और पीप भोजन के साथ अन्दर जाकर हानि न करे। दान्तों की रक्षा के लिए आवश्यक है कि भोजन में खांड कम खाई जावे और इसकी आवश्यकता फल शहद तथा गुड़ या गन्ने के रस से पूरी की जावे। विशेषतः रात्रि को मीठा खाकर न सोना चाहिये। योरुप की तरह हिन्दोस्तान में पान चबाकर लिपस्टिक तथा रुज का काम लिया जाता है। पान चबाना पर्याप्त हानिकारक है। इसमें मुख का मैल इवा जो भोजन के पचाने में लगना था, खाया जाता है। कत्थे से दान्तों पर रंग चढ़ कर खराब हो जाते हैं। चूने की मात्रा शरीर में अधिक हो जाने से दांतों पर पथरी जम जाती है। बार २ चबाने से मसूड़े ढीले होकर नीचे उतर आते हैं और दांतों का पतन जल्दी हो जाता है। सुपारी के निरन्तर चबाने से घातक रोग Carcinoma भी हो जाता है। यदि हम भोजन को ठीक रखें तो दांत टेढ़े मेढ़े या एक दूसरे पर न उग कर एक पंक्ति में सुन्दर उगेंगे। भोजन की ठीक व्यवस्था से बच्चों के दांत भी सुगमता से उगेंगे। इस प्रकार दांतों की

शिलाजीत

लेखक—कविराज श्री पं० अत्रिदेव जी विद्यालंकार, भिषग्रत्न.

ायि—गिरीज, शिलाजम्, शिला-
शलम्, शिलास्वेद आद्रिजम्, अश्म-
ाश्मोत्थम्।

ार्य चिकित्सा में यह एक नियम सा
दि किसी वनस्पति या शस्त्र, अथवा
जब नामकरण करते हैं, तो प्रायः इस
किया जाता है कि उस नाम से
स्वरूप का कुछ ज्ञान हो जाय। यथा-
र्थों में—वासक का नाम 'सिंहास्य'
चूंकि इसके फूल का आकार शेर
के समान होता है। इसी प्रकार एरण्ड
) हुए 'पञ्चाङ्गुल' दिया है, चूंकि
ंच विभाग [अंगुलियां] होते
ंकमुख, वड़िश आदि यन्त्रों
ानी चाहिये।

दृष्टान्त से शिलाजीत के जो नाम
स्पष्ट है कि यह वस्तु पर्वत में
है, और शिला का रस या स्वेद
शिला में से झरती या चूती है;
के पुरातन निम्ब में से रस बसन्त
है, या हाथियों के मस्तिष्क में मद
बहता है। संस्कृत साहित्य में या
यह कहावत प्रचलित है कि 'पत्थर
ड़े।

शिलाजीत सब प्रकार के पत्थर या
में से निकलता हो—यह बात नहीं, जिस
कि सब मृगों में कस्तूरी नहीं होती,
ों में से मद नहीं चूता, उसी प्रकार
ाओं में से स्राव नहीं होता। जिन
या पहाड़ों में स्वर्ण, रजत, ताम्र
इन धातुओं में से किसी एक का
होता है, उनमें इसकी उत्पत्ति होती
शास्त्रीय वचन है। × इन धातुओं
से उत्पन्न होने की भिन्नता के कारण इसके गुणों में भी अन्तर आ जाता है। इनमें लोह जन्य शिलाजीत उत्तम और रसायन गुण वाला है।

जिस प्रकार आम के वृक्ष पर फल अपनी मौसम में आते हैं, मौलसरी के फूल अपनी मौसम में बहार देते हैं, उसी प्रकार से शिलाजीत—शिला स्वेद उत्पन्न होने का भी समय होता है। जिस समय आदान काल होता है और सूर्य भगवान् अपनी प्रखर किरणों से सब चर-अचर पृथ्वी को संतापित कर रहे होते हैं, उस समय इनकी तेजी से पत्थर शिलायें भी पिघल पड़ती हैं। जिस प्रकार प्रखर अग्नि से तप्त होकर अभ्रक भी अपना सत्त्व छोड़ देता है, उसी प्रकार इन धातुओं में मिश्रित पत्थरों से भी धातुओं का निर्यास निकलने लगता है।

यह स्वेद या रस हमको विशुद्ध रूप में नहीं मिलता। चूंकि रस के बहुत ऊंचाई पर से झरने के कारण इसमें रास्ते की मलिनता मिल जाती है। इस मलिनता के कारण यह गाढ़ बन जाता है और जम जाता है। यह इसी अशुद्ध रूप में बाजार में मिलता है। इस अशुद्ध शिलाजीत को पुनः शुद्ध किया जाता है।

शुद्धि—जिस प्रकार स्वर्ण, रजत आदि धातुओं का शोधन-मारण रोग या कार्यानुसार भिन्न २ प्रकार से किया जाता है, उसी प्रकार इसका शोधन कार्य के अनुसार कई प्रकार से किया जाता है। परन्तु सब विधियों में सिद्धान्त एक ही है; अर्थात् शिलाजीत में से मलिन भाग पृथक् कर दिया जाय। इसके लिये शिलाजीत को किसी द्रव में घोलने का यत्न करते हैं। इसके लिये गोमूत्र या दूध अथवा त्रिफला क्वाथ लेकर पत्थरों को कूटकर इसमें डाल देते हैं और फिर आग पर या धूप में गरम करते हैं। गरम करने से मलिनता इसमें घुल जाती है और फिर ठण्डा करने पर वह नीचे बैठ जाती है। ऊपर के पानी को निथार कर दूसरे बर्तन में स्थिर होने देते हैं। इसमें जो मलिनता बैठनी होती है, बैठ जाती है, फिर तीसरे में और फिर चौथे में इसी प्रकार जब तक मलिनता बैठती जाती है, उसको नितारते जाते हैं। अन्त में पानी के ऊपर जो वह मलाई आती है, उसको पृथक् कर लेते हैं। यह शिलाजीत शुद्ध होता है। इस मलाई को सत शिलाजीत भी कहते हैं।

इसमें कुछ लोग खर्च और समय की किफायत करने के लिए, गोमूत्र में डालकर तीव्र अग्नि पर गरम करते हैं और फिर ठंडा होने देते हैं। इस पर जो मलाई आती है उसी को शिलाजीत के नाम से बाजार में बेचते हैं। यह ठीक है कि साधारण दृष्टि से प्रथम विधि और इस दूसरी विधि में कोई भेद नहीं आता, चूंकि सिद्धान्त एक से हैं, परन्तु एक ही दूध को हांडी में उपलों से गरम करने पर, उसी दूध को कड़ाही में मीठी आंच से गरम करने पर; उसी दूध को कोयले की तीव्र आंच पर पतीली में गरम करने से जो अन्तर स्वाद में आता है, वही अन्तर इस विधि में आता है।

शिलाजीत की कीमत उसकी शोधन विधि पर निर्भर है। जिस प्रकार कि भस्मों की गुण सम्पत् उनकी भावना और पुटों पर निर्भर है उसी प्रकार से शिलाजीत की गुण सम्पत् इसके शोधन द्रव्यों पर तथा सूर्य के ताप में तैयार करने पर है। **इसीलिये सूर्यतापी शिलाजीत को अग्नितापी शिलाजीत से उत्तम मानते हैं।***

हेम्नश्च रजतात् ताम्राद्वरात् कृष्णायसादपि। रसायनं तद्विधिभिस्तद्वृष्यं रोगनुत् परम्॥ (?)

पश्च स्वर्णादिनां मलभेदान् हेमरजत ताम्र सम्भवाश्चतुर्धा। तेषु हेमं जवा पुष्पाभं, वर्णं, ताम्रभवं बर्हिकण्ठाभम्, आयसञ्च श्रेष्ठम्।

×(१) हेमाद्या: सूर्य सन्तप्ता: स्रवन्ति गिरिधातवः॥ चरक॥

(२) निदाघे धर्म सन्तप्तं धातुसारं धराधराः। निर्यासं प्रमुञ्चन्ति, तच्छिलाजतु कीर्तितम्॥

× जिस प्रकार कस्तूरी, काश्मीर, नेपाल और आसाम होती है, उसी प्रकार शिलाजीत भी इन तीन स्थानों में—इनकी पर्वतमालाओं में मिलता है। इनमें से काश्मीर या लद्दाख के पहाड़ से मिलने वाला पत्थर अधिक उत्तम होता है। भूटानी या बद्रीनारायण

*शोधनविधि—(1) क्षालितानि रसाः सम्पूर्णाश्चोयं समूर्च्छितः कषाय,

शिलाजीत को गरम पानी से धोकर फिर गोदुग्ध, शुक्त, गोमूत्र, त्रिफलाक्वाथ, दशमूलक्वाथ, भांगरे का रस, आदि द्रव्यों को रोगानुसार इसके शोधन के लिये प्रयोग करना चाहिये।

शिलाजतु कटु-तीक्ष्ण रस, विपाक में कटु, रसायन, कफ को टुकडे टुकड़े कर बाहर निकालने वाला, योगवाही, कफ, मेद, अश्मरी रोग, पाण्डुरोग, और मूत्रकृच्छ्र को नष्ट करने वाला है।

शिलाजीत को सेवन करते समय कुछ बातों का विशेष ध्यान रखना चाहिये।

पथ्य—शिलाजीत अकेली या शिलाजीत मिले योगों का सेवन करते समय दूध का उपयोग विशेष रूप से करना चाहिये। इसको सेवन करते समय निम्न वस्तुओं का परित्याग करना चाहिये—

कुलत्थी, मकोय, विदाही और गुरू भोजन का त्याग करना चाहिये।

आजकल मोटापा (मेदरोग) को कम करने के बहुत से विज्ञापन निकलते हैं। यदि इस रोग के लिये शिलाजीत का प्रयोग कुछ समय के लिये किया जाये तो उत्तम है।

शिलाजतु प्रयोगस्तु साग्निमन्थ रसः परः।
अतिस्थौल्य विनाशाय·············॥

इसी प्रकार पाण्डु, मधुमेह और मूत्र-कृच्छ्र रोग के लिये भी यह एक अव्यर्थ औषध सुश्रुत में बताई है। यदि कोई मधुमेह का रोगी इस शिलाजीत का सेवन छः मास दूध का पथ्य लेकर सेवन कर लेवे तो निश्चित उसका मधुमेह रोग शान्त हो जायेगा।

इसके अतिरिक्त गुम चोट पर और दूध में हल्दी के साथ मि पीने के लिये यह दिया जाता है। सा तथा छोटे जख्मों पर भी गांवों में इसका हार किया जाता है। शिलाजीत की का घर में रखना आवश्यक है।

चरक में शिलाजीत के लिये यह है कि दुनिया में ऐसा कोई भी साध नहीं जो कि शिलाजीत से अच्छा पथरी, भगन्दर, मूत्र कृच्छ्र, दर्द गुर्दा दोष, मधुमेह, कमर दर्द, खून की क विविध दर्दों में विशेषकर प्रयुक्त होता

शीतकाल में दो रत्ती शिलाजीत भर दूध में घोलकर पी जाती है, उ और दूध पिया जाता है। इसके से समय प्रातःकाल खाली पेट या रात समय अच्छा है। गर्मियों में केवल लेना चाहिये।

---

(२) शिलाजतु समानीय सूक्ष्मं खण्ड विधायकम्।
निक्षिप्या दुष्णपानीये यामैकं स्थापयेत् सुधीः।
मर्दयित्वाततो नीरं गृह्णीयाद् वस्त्र गालितम्।
स्थापयित्वा च मृत्पात्रे धारयेदातपे बुधः॥
उपरिस्थ घनं बत्स्यात् तत् क्षिपेदन्य पात्रके।
एवं पुनः पुनः नीतं हिमाभाख्यं शिलाजतु।

तुलसी

(ले०—श्री रामेश वेदी आयुर्वेदालंकार)

नाम— हिन्दी-तुलसी

संस्कृत-परिचय ज्ञापक नाम—सुमञ्जरी (सुन्दर पुष्प मंजरियों वाली); बहुमंजरी (बहुत मंजरियों वाली); सुरभि, सुगन्धा (सुगन्धित पौदा); सुरसा (रसमय या सुगन्धित रस वाली)। गुण प्रकाशक नाम:- वृन्दा (एक पौराणिक गाथा के अनुसार विष्णु भगवान् से अभिशप्त वृन्दा नाम की एक सती स्त्री विष्णु पर पूजार्थ चढ़ाई जाने के लिए भूलोक में तुलसी के रूप में बन गई); वैष्णवी (विष्णु पर पूजार्थ चढ़ाई जाने वाली); विष्णु वल्लभा, विष्णु प्रिया (विष्णु की प्रिय); देवदुन्दुभि (देवताओं का नक्कारा, तुलसी वाले स्थान में देवता निवास करते हैं), भूतेष्टा (सब प्राणियों की प्रिय) पापघ्नी (रोग रूप पाप की नाशक)।

अंग्रेज़ी— Holy Basil (होलि बेसिल)।

लैटिन—Ocimum sanctum, Linn (ओसिमम सेक्टम, लिन)।

नैसर्गिक वर्ग— लिबिएटी (Libiatae)

प्राप्ति स्थान— भारत और लंका में सर्वत्र और हिमालय पर ६००० फीट की ऊंचाई तक होती है। धार्मिक कार्यों में उपयोग करने के लिए हिन्दु इसे बहुत बोते हैं और प्रायः जंगलों में भी स्वयं उगी हुई मिलती है। यह एक अत्यन्त पवित्र पौदा माना जाता है और प्रत्येक हिन्दु के बगीचे में, घर में और मन्दिरों के आसपास मिल जाता है। हिन्दुस्तान में लगभग प्रत्येक युरोपियन के भी गृह उद्यान में यह पौदा मिल जाता है और वहां यह हिन्दु मालियों द्वारा लगाया गया होता है। पश्चिमीय एशिया और ऐरेबिया से लगाया प्राय द्वीप और

वर्णन—यह एक सुन्दर छोटा एक से तीन फीट ऊंचा पौदा है जिसके पत्ते, शाखा आदि प्रत्येक भाग में से रुचिकर प्रिय गन्ध आती है। पौदे की शाखाओं और पत्तों के पृष्ठ पर बिखरे हुए छोटे ग्रन्थि युक्त (Glandular=ग्लैण्डुलर) रोमों में से स्रवित हुए एक उड़नशील तेल की उपस्थिति के कारण यह सुगन्ध होती है। इस तेल के अधिक भाग को पौदा छोटे छोटे खानों में इकट्ठा कर के रख लेता है। पौदे की तीव्र वृद्धि के समय जब उसे भोजन की भी अधिक आवश्यकता होती है वह काम आता है। ऐसा प्रायः तब होता है जब पौदे में बीज लगते हैं; प्रत्येक बीज को अधिक पोषक भोजन की आवश्यकता होती है। फूल- फलने के समय यह देखा जा सकता पौदे में गन्ध कम हो जाती है।

छाया में उगने वाले पौदों की . खुले स्थानों में उगने वाले पौदों उड़नशील तेल बहुत कम होता है। पौदे को पत्तों की वृद्धि करने के लिए करती है और इसलिए ऐसी अवस्था में पदार्थ की भी अधिक आवश्यकता जिससे भविष्य के लिए वह स्वादह ज हो सकता। इसलिए ऐसे पौदे खुले के पौदों की अपेक्षा जल्दी नहीं फूल

ग्रन्थियुक्त रोमों के अतिरिक्त सम्पूर्ण पृष्ठ ऊन जैसे सूक्ष्म सफेद भूरे के रोमों से आवृत होता है। खुले के सम्पर्क में आए हुए पत्तों के पृष्ठ वाले वाष्पी भवन को यह बालों कम करती है।

रासायनिक विश्लेषण— तुल पत्तों में एक पीताभ हरा उड़नशील तै है। कुछ समय तक रखा रहने से यह

र हो जाता है और तब उसे तुलसी, (Basi-Camphor=बेसि केम्फर) हैं। उडनशील तेल में एक तारपीन rpene) होता है।

उपयोगी भाग—पत्ते, मूल और बीज; तरे पंचांग।

संग्रह—ताजे पत्ते इकट्ठे कर सुखा लें न्द पात्र में रख दें।

—

ी लघुरूष्णा च रूक्षा कफ विनाशनी।
। दोषं निहन्त्येषा रुचि कृद्वह्नि दीपनी ॥
धन्वन्तरि निघण्टु ॥

ी कटुतिक्तोष्णा तुलसी श्लेष्म वातजित्।
भूत कृमिहरा रुचिकृद्वांति शान्ति कृत् ॥
राज निघण्टु ॥

ी कटुका तिक्ता हृद्योष्णा दाह पित्तकृत्।
कुष्ठ कृच्छ्रास्र पार्श्वरुक्कफ वातजित् ॥
भावप्रकाश ॥

ी पित्तकृत् वात किमि दौर्गन्ध्यनाशनी।
शूलाऽरति श्वास कास हिक्काविकारजित्
राजवल्लभ ॥

प्रभाव—मूल ज्वरहर है। बीज लुआब-ौर लेपक होते हैं। सूखा पौधा दीपक क निस्सारक होता है। पत्ते प्रतिश्याय-वरहर और कफ निस्सारक होते हैं।

मात्रा—दस से चालीस ग्रेन तक।

उपयोग—हिन्दु इस पौदे को बहुत पवित्र हैं और इस के लिए पूज्य भाव रखते ह विनय और पवित्रता की प्रतीक है। तथा कृष्ण पर पूजा में चढ़ाया जाता

तुलसी के पत्तों में कफ निस्सारक गुण और इनका रस हिन्दु वैद्य जुकाम में प्रयुक्त करते हैं। शहद, अदरक प्याज के रस के साथ इस के पत्तों की तम कफनिस्सारक औषधि बन जाती है [काम तथा श्वास प्रणाली की शोथ में ती है। खांसी में बलगम आती हो तो छोटी मक्खियों के शहद के साथ तुलसी देता है (चिकित्सित स्थान, अ १८, ७२)

— दस औषधियों में चरक ने इसका किया है (सूत्रस्थान, अध्याय ४, ३७)। ी, कण्टकारी मूल, भारंगी, गिलोय [illegible]

दिया जाता है। (चक्रदत्त, हिक्काश्वास, श्लोक ११) सूखे पौदे के दस में एक कषाय गले के विकार, प्रतिश्याय, कास और अतिसार की उत्तम औषधि है। खांसी और छाती के विकारों में निम्न चूर्ण प्रसिद्ध घरेलू दवा है—तुलसी बीज, गिलोय, सोंठ, कटैली की जड़ सब समभाग में लेकर चूर्ण बनाएं। इस की मात्रा आधा माशा है।

ताजे पत्ते सुलभ न हों तो पत्तों को तोड़ कर अच्छी तरह सुखा कर रख लिया जाता है और ये कषाय, वटी तेल आदि विभिन्न योगों में अकेले या अन्य द्रव्यों के साथ प्रयुक्त किये जाते हैं। चूर्णित शुष्क पत्र प्रतिश्याय और नासाकृमि में नस्य के रूप में दिये जाते हैं। शिरोविरेचनीय द्रव्यों में चरक ने तुलसी का परिगणन किया है (सूत्रस्थान, अ०२, श्लोक ४)। तुलसी पत्र कल्क, कण्टकारी मूल, दन्तीमूल, वच, ओमांजन, पिप्पली, सेंधानमक, कालीमिर्च और सोंठ से विधि पूर्वक सिद्ध किये तेल को प्रतिश्याय में प्रयोग करने के लिए चक्रदत्त सिफारिश करता है (नासा रोग, चिकित्सा श्लोक ४)। प्रवाहिका और अजीर्ण में एक तोला ताजे पत्तों का रस प्रतिदिन प्रातः-काल लेने से लाभ होता है। पत्तों का फान्ट दीपक के रूप में बच्चों के आमाशयिक रोगों और यकृत में दिया जाता है। बच्चों को उदर शूल में ताजा रस दिया जाता है। ताजा रस वमन को रोकता है और कहा जाता है कि आंतों के कीड़ों को भी मारता है। वमन में निम्न लिखित वटी लाभदायक समझी जाती है—तुलसी के पत्ते, बेर की गुठली, और खाण्ड प्रत्येक ३ माशा, कालीमिरच एक माशा, पानी के साथ मर्दन करके बेर जितनी बड़ी गोलियां बनाएं। गौ के दूध के साथ बीजों को घोट कर वमन और अतिसार में दिया जाता है, विशेष कर बच्चों के लिए। एक साल के बच्चे के लिए बीजों की मात्रा २ से ३ ग्रेन है और यह दिन में तीन या चार बार दी जा सकता है। दोपहर के भोजन के बाद य किसी भी समय तुलसी के चार पांच पत्ते प्रतिदिन चबा कर रस अन्दर लेना मन्दाग्नि, वमन और कै के लिए लाभकारी है। इससे मुख [illegible]

एक तोला तुलसी के पत्तों के रस के साथ थोड़ी सी काली मिरच मिला कर श्लैष्मिक ज्वरों और सतत ज्वरों की अवस्था में दिया जाता है। कुम्भी के फूलों और तुलसी पत्तों का कालीमिरच के साथ बनाया कषाय कोंकण में सतत ज्वरों में दिया जाता है। पुरातन ज्वर में एक तोला पत्र स्वरस प्रतिदिन प्रातःकाल लेने से लाभ होता है। मलेरिया ज्वरों में मूल का कषाय स्वेदक रूप में दिया जाता है। मलेरिया में पत्तों का फाण्ट भी देते हैं। तुलसी की विशिष्ट गन्ध के कारण इसके पास मच्छर नहीं आते, इस लिए घरों में या घरों के आसपास इस के पौदे लगाने से मलेरिया के मच्छरों का घर में प्रवेश कम होता है और मलेरिया से बचने में सहायता मिलती है। रात को बिस्तर में जाने से पूर्व मुख तथा बिना ढके नग्न भागों पर तुलसी के पत्तों को मल कर सोने से मच्छर दूर रहते हैं। कुछ पत्ते और छोटी छोटी शाखाएं बिस्तर में रख कर सोने से मच्छरों के आक्रमण और इसके हानिकारक प्रभाव को रोकने में सहायक होता है।

तुलसी पोषक और वाजीकरण गुण के लिए भी उपयोग की जाती है। थोड़ी सी इलायची और समभाग सालबमिश्री के चूर्ण के साथ पत्तों का कषाय प्रतिदिन लिया जाय तो यह एक पोषक वृष्य पेय है। इसके बीज लेसदार और लेपक होते हैं और उत्पादक अंगों तथा मूत्र संस्थान के विकारों में दिये जाते हैं। तुलसी बीज पांच भाग, मुसली चार भाग और मिश्री छह भाग का मिश्रित चूर्ण डेढ़ माशा की मात्रा में वीर्य की निर्बलता में दिया जाता है।

चरक के विष चिकित्सा अध्याय में तुलसी का कई स्थानों पर उल्लेख आता है और इसे जन्तुघ्न, कृमिघ्न तथा विषघ्न गुण दिये जाते हैं। ततय्ये आदि छोटे जानवरों के विष प्रभाव को कम करने के लिए इसका उपयोग होता है। इस स्थान पर पत्तों को रगड़ दिया जाता है। ताजे पत्ते, फूलों की मंजरी और सूक्ष्म जड़ों का स्वरस सर्पदंश में [illegible]

व्रणों पर से कृमियों को हटाने के लिए पत्तों का शुष्क सूक्ष्म चूर्ण छिड़का जाता है। पत्तों के कषाय वा फाण्ट से व्रणों को धोना भी लाभदायक होता है। दद्रु और त्वचा के रोगों में इसका रस त्वचा पर लगाया जाता है। पत्तों का नींबू के साथ कल्क बना कर भी दद्रु पर लेप किया जाता है। पत्तों का रस हलका गरम करके कान में डाला जाय तो कर्ण वेदना को शान्त करता है। शोटल इसका प्रयोग पूय युक्त और दुर्गन्ध वाले कानों के लिए भी करता है। कई धातुओं की भस्म बनाने और विभिन्न प्रकार की वटी या रस वटियों में इस के पत्तों के रस से भावना दी जाती है।

सहायक पुस्तकें—

१. इण्डियन मेडिसिनल प्लाण्ट्स, बसु और कीर्तिकर।

२. इण्डियन मैटीरिया मेडिका, के० एम० नाड्करणी।

३. दि लाइफ़ औफ़ इण्डियन प्लाण्ट्स, आई. फ्लीडरर।

४. फ्लारा औफ़ दि अपर गङ्गेटिक [illegible] जे०

५. इण्डिजीनस ड्रग्स औफ़ इण्डिया [illegible] कना

६. कम्पेरेटिव हिन्दु मैटीरिया मेडि[illegible] चन्द्र

७. फार्माकोपिया इण्डिका, कालिक

८. निघण्ट आदर्श (गुजराती),

९. चरक। १०. चक्रदत्त। ११. कैयदे[illegible] इत्यादि

गुरुकुल फार्मेसी की औषधियों पर

हजारों में से कुछ सम्मतियां

सेठ नैनसुख जी कनीराम, ग्रेन मर्चेन्ट, राम सागर पारा, रायपुर (सी. पी.)

आप से एक शीशी भीमसेनी सुरमा मगाया था, बहुत ही लाभदायक पाया।

श्री देवीदयाल जी राबनखेल— आडिटर, आफिस आफ दी एल. ए. ओ. बन्नू

मैंने मधुमेह के लिए आप का वसंतकुसुमाकर मंगाया था उस से बहुत लाभ हुवा।

श्री कृष्णदयाल जी ओवर सियर पी. डब्ल्यू. डी, नेकवान जि० हनेजादा लोअर बर्मा

आपके च्यवनप्राश ने दो तीन साल के पुराने सिर दर्द और जुकाम को दूर कर दिया है। मेहरबानी करके आधसेर और भेज दीजिए।

श्री गौरी शंकर जी मुख्तार, कलक्टरी कचहरी, जौनपुर

मैंने आपकी कई दवाइयों का सेवन किया, उनका लाभ अकथनीय है। विशेष कर च्यवनप्राश है जो अपने अमूल्य लाभ के लिए प्रसिद्ध है। इसके अलावा चन्द्रप्रभावटी और अभयारिष्ट बवासीर की अति उत्तम औषधि है। बवासीर के मरीजों को जो ना उम्मीद हो चुके हों मान लेना चाहिए कि उनकी परेशानी अकारण है।

श्री पं० चन्द्रशेखर जी द्विवेदी, रामपुर बारां बांकी

कृपा करके ४ शीशी ब्राह्मीतेल की भेज दीजिए आपका यह तेल मुझे बहुत लाभदायक सिद्ध हुवा है।

ठा० जगदीशसिंह बहरायच

मुझे यह लिखते हुए बड़ा प्रसन्नता होती है कि आपके स्टाक की औषधियां मीनन दायक हैं।

श्री जगदीश शुक्ल काव्यतीर्थ हेड पण्डित रा० रा० हाईस्कूल सूर्यपुरा शाहाबाद

मैंने आपके कार्यालय से सारिवाद्यासव मंगाया बहुत फायदा हुवा।

श्री ए. के. सरकार एम. ए. औनेररी मैजिस्ट्रेट हावड़ा, प्रोफेसर प्रेसिडेन्सी कालेज कलकत्ता।

मुझे यह लिखते हुए प्रसन्नता होती है कि गतवर्ष हरद्वार में मैंने आपका च्यवनप्राश खरीदा था। उस से मुझे बहुत लाभ हुवा।

श्री चण्डीप्रशाद जी मुख्तार, कासिया जि० गोरखपुर

लखनऊ की प्रदर्शिनी से आपका ब्राह्मीतेल खरीदा था वह दिमाग की तरावट के लिए बहुत लाभदायक रहा। कृपया ६ शीशियां और भेज दीजिए।

श्री रामरक्खामल जी दानी, बर्मा शेल एजेंट; कोटकपूरा, रियासत फरीद कोट

आपका भीमसेनी मंजन दांतों के लिए निहायत मुफीद साबित हुवा।

श्री कविराज भगवन्तराय जी जैन, वैद्य देश रक्षक औषधालय, मलेर कोटला।

मुझे आपकी सामग्री व्यवहार करके बड़ी प्रसन्नता हुई कि यह उत्तम, नवीन, तथा अत्यन्त सुगन्धित द्रव्यों से बनी हुई है। इसकी सुगंध तथा बाजारी सामग्री की गंध ही में विशेष अन्तर है। जनता को ऐसी ही पवित्र तथा उत्तम सामग्री के उपयोग से अधिक से अधिक लाभ उठाना चाहिए।

श्री पं० गणेशप्रसाद मिश्र राजवैद्य, पो० फतेहपुर, जि० बारांबांकी।

आपका भेजा हुवा ब्राह्मीहेयर आयल सचमुच अपना सानी नहीं रखता। सिरदर्द में तो रामबाण है। इसकी बड़ी मांग है। कृपया दो दर्जन शीशियां भेजिए।

श्री आर. डी कपूर सब पोस्ट मास्टर, लोहाट (दरभंगा)

आपकी १। मन से अधिक सामग्री मंगवा चुका हूं बीमारी रोकने में बहुत लाभदायक हुई। जिसके वास्ते धन्यवाद देता हूं।

श्री ला० रामेश्वरदास जी कपूर्थला

आपका भीमसेनी मंजन बहुत लाभदायक सिद्ध हुवा कृपया तीन शीशियां और भेजिए।

श्री नाग नारायण जी सिन्हा, आडिटर देवरिया, गोरखपुर

आपके च्यवनप्राश ने मेरे स्वास्थ्य पर आश्चर्य दायक प्रभाव दिखलाया।

स्वर्ण

[लेखक— पी. डी. मुलतानी]

आयुर्वेद ग्रन्थों में स्वर्ण प्राकृत, सहज, वन्हिसम्भव, खनिज (कृत्रिम) तथा पारदयोग जन्य भेद से पांच प्रकार का पाया जाता है। इन में प्रथम तीन भांति का दुर्लभ तथा शेष दो भांति का सुलभ माना जाता है।

ग्राह्य और अग्राह्य में भेद—सब धातुओं से ज्यादा भारी, रजत और ताम्र-मिश्रण रहित, रक्तपीताभ, स्निग्ध कोमल और कसौटी पर घिसने से पीला चमकीला या केसर सदृश वर्ण वाला ग्राह्य और अग्नि में तपाने पर श्वेतवर्ण, लघुभार, कठिन, ताम्र-आदि धातु मिश्रित स्वर्ण अग्राह्य समझना चाहिये।

शोधनविधि—उत्तमस्वर्ण के सुचीवेध पत्र बनाकर तपा करके पहिले साधार
द्रव्यों में शुद्ध कर लिया जाता है।
स्वर्ण की विशेष शुद्धि की जाती है
लिए स्वर्ण के चौड़े पत्र बनाकर उ
मृत्तिका पञ्चक (पक्की ईंट का चूर
गेरु, नमक और वल्मीक मट्टी) का
साथ मर्दन कर लेप करके सुखा लि
है। सूखने के बाद कपोतपुट में ७
देने से स्वर्ण की ताम्ररजत योगजन्
दूर हो जाती है। अथवा स्वर्णपत्र
सैन्धव तथा तन्त्रोत्पल भस्म की
के साथ मर्दित पिष्टिका का लेप कर

मट्टी के शरावों में रख कोयलों की आंच र कुक्कुट पुट में फूंकने से ७ वीं वार । स्वर्ण प्राप्त होता है।

स्मविधि—पारद के योग से धातुओं करना उत्तम, काष्ठौषधि से धातु भस्म ध्यम; धातु या ताल के योग से भस्म कृष्ट माना जाता है। पर आजकल कों के मत से काष्ठौषधि मारित स्वर्ण गुणयुक्त माना जाता है। कई विद्वान् योगवाही होने से पारद मारित भस्म ानते हैं। क्योंकि पारद स्वर्ण की को बढ़ाता है। पूर्वोक्त प्रकार से वर्णपत्र १ भाग, पारद शुद्ध १ भाग, निम्बुद्राव से मर्दन कर पश्चात् शीतल धोकर और सुखाकर पुट में रख दें। निश्चन्द्र होने तक फूंक दिया जाता ॥ स्वर्ण के छोटे २ पत्र बनाकर सम द के साथ निम्बुरस डालकर मर्दन के बाद उसमें समभाग मनःशिला, तथा $\frac{1}{4}$ भाग स्वर्णमाक्षिक मिला केदुग्ध से पीसकर, सम्पुट में बन्द ट में फूंक दिया जाता है। इस प्रकार पुट देने से स्वर्ण की भस्म हो । परन्तु प्रथम पुट के बाद उसमें क नहीं डलता। अथवा स्वर्ण पारद पूर्वोक्त विधि से मर्दन कर भांग के । १४ पुट देने से स्वर्ण की भस्म है।

त्रा—$\frac{1}{8}$ रत्ती से $\frac{1}{2}$ या १ रत्ती तक।

मयिक प्रयोग—अतिसार में जीरक , जीर्णज्वर में मधु, कफ ज्वर में ।, पित्त ज्वर में पर्पट स्वरस, वात बल्व त्वक् स्वरस, पाण्डु में गुडूची । में अभ्रक और वासास्वरस, गर्भाशय शीतल चीनी चूर्ण, श्वास में कर्पूर व य, रक्तपित्त में धात्री चूर्ण, योषा- ें ब्राह्मी, शंखपुष्पी; मूत्रशोथ में षाय, गर्भधारण के लिए नागकेसर, लिए स्तन्य कर औषधियां, उन्माद लवङ्ग, मरिच चूर्ण और मधु, नाडीमान्द्य र्ण खदिरसार, वृक्क रोगों में वरुण पञ्चतृणमूलकाथ, गर्भाशयशोथ में के साथ इसकी भस्म का सेवन

स्वर्ण के योग—

(i) **मृगाङ्करस**—मात्रा १ से २ रत्ती अनुपान–मरिच और मधु। रोग–क्षयजन्य दौर्बल्य।

(ii) **बृहद्वातचिन्तामणिरस**—मात्रा १ से २ रत्ती। अनुपान मधु रोग वातिक नैर्बल्य।

(iii) **वसन्तकुसुमाकर रस**—मात्रा १ से २ रत्ती। अनुपान नवनीत और मधु। रोग–शुक्रमेह तथा मधुमेह।

(iv) **श्री जयमङ्गलरस** — मात्रा २ रत्ती। अनुपान जीरक मधु। रोग जीर्ण ज्वर, क्षय।

(v) **स्वर्णमालती वसन्त**—मात्रा १ रत्ती। अनुपान–मधु पिप्पली। रोग क्षय।

(vi) **राजमृगाङ्करस**—मात्रा १ से २ रत्ती। अनुपान–मरिच, पिप्पली मधु। रोग क्षय।

(vii) **चिन्तामणि चतुर्मुखरस**—मात्रा १ रत्ती। अनुपान मधु पिप्पली। रोग वातरोग, मस्तिष्क रोग, अपस्मार, उन्माद हृदय तथा सर्वाङ्ग निर्बलता, वार्धक्य, क्षयरोग

भौतिक गुण—रस, मधुर कषाय। गुण, गुरु, स्निग्ध। शीतवीर्य। मधुरपाक तथा त्रिदोषहर है।

प्रभाव तथा उपयोग—स्वर्ण सर्वाङ्ग बल्य है। हृदय तथा मस्तिष्क के लिये विशेष तौर पर बल्य है। अतः स्वर्ण मेध्य, स्मृतिकर, उन्मादहर तथा अपस्मारहर है। इसको हृद्य होने के कारण हृत्कम्प में प्रयुक्त करते हैं। इसके अतिरिक्त यह रसायन तथा वार्धक्यहर भी है। शरीर में विद्यमान सब दोषों को दूर करता है। यह विशेषतया पुरातन तथा दूषीविष को दूर करने के लिये उपयोगी है।

स्वर्ण क्षयरोग के लिये विशेष औषधि है। इसका विशेषतया क्षयरोग में ही प्रयोग होता है। शंख, शुक्ति आदि खट के द्रव्य तथा मनःशिला आदि सोमल धातु के साथ बने हुए उसके रस विशेष उपयोगी हैं। उन्माद, अपस्मार, योषापस्मार आदि मानसिक दुर्बलता जन्य व्याधियों में ब्राह्मी रस, वचा, शतावरी के साथ स्वर्ण सेवन कराया जाता है। आन्त्रक्षय तथा ग्रहणी रोग में बृहद्ग्रहणीकपाट, स्वर्ण पर्पटी आदि रस उपयोगी हैं। छोटे २ बालकों की वृद्धि के लिये ब्राह्मी, वचा हरीतकी चूर्ण १-१ रत्ती और $\frac{1}{6}$ रत्ती स्वर्ण मिला कर एक मात्रा शहद के साथ कुछ दिन सेवन कराते हैं। वार्धक्य को दूर करने के लिए मकरध्वज में स्वर्ण मिला सेवन करते हैं। हृद्रोग की निर्बलता में स्वर्णभस्म या पत्रों को आमलकीरस या अर्जुन अथवा आमलकी कषाय या दूध के साथ प्रतिदिन एक बार सेवन करते हैं। इसी प्रकार वसन्तकुसुमाकर आमले के मुरब्बे के साथ सेवन किया जाता है। शरीर में किसी प्रकार के प्रविष्ट विष को दूर करने के लिये प्रथम वमन विरेचन देकर स्वर्णभस्म या पत्रों को तब तक मधु, आमलकी, और निर्विषी के साथ देते रहना चाहिए, जब तक कि विष लक्षण शांत न हों।

रोगियों को परामर्श

[कविराज श्री सत्यदेव जी वि०अ० वैद्यभूषण अध्यक्ष गुरुकुल फार्मेसी]

यद्यपि रोगी को बिना देखे उस की प्रकृति तथा रोग का निश्चय करना कठिन होता है तथापि पुराने रोगियों की चिकित्सा गुरुकुल फार्मेसी व औषधालय में बड़े प्रेम और यत्न से की जाती है। रोगी महानुभाव अपना विस्तृत वृत्तान्त लिख कर उचित परामर्श मंगवा कर लाभ उठा सकते हैं।

प्रतिदिन होने वाले साधारण रोगों पर कुछ अनुभूत शास्त्रीय योगों की व्यवस्था नीचे देने का यत्न किया जाता है। आशा है कि आयुर्वेदिक चिकित्सक तथा जनता इन को अपने व्यवहार में लाकर लाभ उठाएंगे।

मलबन्ध—कब्ज रहने या दस्त साफ न होने की शिकायत हो तो रात को एक तोला हरीतकीखण्ड या तीन माशा मधुयष्ट्यादि चूर्ण गरम पानी या दूध से लेना चाहिए।

अतिसार – दस्तों के प्रारम्भ में राम-बाण या आनन्द भैरव की एक २ गोली दिन में तीन बार शहद के साथ लेनी चाहिए। इसके बाद कर्पूर रस १ गोली दिन वार अर्क पोदीना के साथ तथा जात चूर्ण १ माशा पानी या मठे के साथ दो वार लेना चाहिए।

प्रवाहिका— आंव और दर्द दस्त होने पर प्रातः काल पंचामृत प रत्ती, शंख भस्म १ र० मिला कर साथ लेना चाहिए।

दिन में तीन चार गोलियां कु मठे या पानी के साथ लें।

अजीर्ण—खाना ठीक न पचत भोजन के बाद निंबू के साथ लवण लगा कर खाएं, अथवा दिन में गोलियां महाशंख वटी की चूसें।

पेट दर्द— हिंग्वष्टक चूर्ण शंखभस्म १ रत्ती मिलाकर गरम प

वटी दिन में तीन चार गोलियां

अम्लपित्त—गले या छाती में जलन ...रे खट्टे डकार आने पर प्रातः साय ...ता अविपत्तिकर चूर्ण ताजे पानी के ... । ...त को हरीतकीखण्ड १ तो॰ गरम ... लिया करें—

...वर— दिन में तीन २ घण्टे बाद ...की एक २ गोली गरम पानी या ... लेनी चाहिए। रात को ३ माशा ...ादि चूर्ण गरम दूध से लें।

...षम ज्वर—जाड़े के बुखार में तीन ... बाद तुलसी के रस के साथ एक २ ...त्युंजय की लें। सोते समय मधु- ... चूर्ण ३ माशा गरम दूध से ले। ...उतर जाने पर सुदर्शन चूर्ण ३ मा॰ ...हरताल १ र॰ मिला कर गरम पानी ... दिन में दो तीन बार लें।

...खार की कमजोरी को दूर करने के ...ज्वर हर लौह २ रत्ती अनार के रस ... लेना चाहिए। खाना खाने के बाद ...या अमृतारिष्ट १ तो॰ थोड़े पानी के ...ने से विषमज्वर के कारण यकृत तथा ...की भी सब खराबियां दूर हो जाती हैं—

...र्ण ज्वर— बुखार पुराना हो जाने ...ति २ हर समय बना रहता है— प्रातः ...लती वसंत १ रत्ती, प्रवाल भस्म ...सितोपलादि चूर्ण १ माशा मिला कर ... लें।

...खरम को एक गोली श्री जयमंगल रस ... रत्ती पुटपक्वविषमज्वरांतक लौह ... गिलोय के रस के साथ लें।

...क्षादि तल की मालिश शरीर पर नित्य

अर्शरस्—सूखी बवासीर में सुबह तथा सोते समय गरम पानी या दूध के साथ एक गोली चन्द्रप्रभा लें और भोजन के बाद दोनों समय अभयारिष्ट १ तोला थोड़े पानी के साथ पिएं।

खूनी बवासीर के लिये रात को चन्द्रप्रभा दूध से लें। प्रातः काल कुटजावलेह १ तो॰ मठे के साथ और दिन में दो बार एक माशा असली नाग केसर मठे के साथ लें।

सिर दर्द—रात को एक तोला हरीतकी खण्ड गरम दूध से लें। लक्ष्मीविलास १ गोली तीन २ घंटे बाद दूध से लें। सिर दर्द तेज हो तो गर्मियों में श्वेत चन्दन व कर्पूर घिस कर माथे पर लगाएं, सर्दियों में सोंठ व कर्पूर का कुछ गरम लेप करना चाहिए।

प्रतिश्याय— जुकाम में लंघन करें, या थोड़ा हलका भोजन करें। हरीतकी खण्ड १ तो॰ रात को गरम पानी के साथ लेना चाहिए। प्रारम्भ में दिन में कफकेतु १ गोली, व्योषादि चूर्ण १ मा॰ मिलाकर शहद या गरम पानी से लें। जुकाम के पक जाने पर लक्ष्मी विलास १ गोली प्रातः साय गरम पानी, शहद, या पान के रस से लेना चाहिए।

खांसी— सितोपलादि चूर्ण १॥ मा॰ दिन में दो तीन बार शहद से चाटें; गले में खारिश प्रतीत होती हो तो मरिचादि वटी दिन में दो तीन गोलियां चूसनी चाहिएं।

पुरानी खांसी—प्रातः काल १ तो॰ च्यवनप्राश शहद के साथ चाटा करें; भोजन के बाद एक तो॰ द्राक्षासव थोड़े पानी में मिलाकर पिया करें।

खांसी के साथ रक्त भी आता हो तो ...मावलेह या वासाखण्डकूष्मांड १ तो॰ की मात्रा में लेने से अच्छा लाभ होता है।

श्वास—दमे के लिए भारंगीगुड़ एक तोला प्रातः साय गरम पानी के साथ ...

और भोजन के बाद एक तोला कनकासव थोड़े पानी के साथ लिया करें। खाने में बादाम व मुनक्का का व्यवहार रखें। एक महीने तक ही इस प्रकार प्रयोग करने से बहुत लाभ प्रतीत होता है। पांच छः मास तक करने पर श्वास से छुटकारा मिल जाता है।

जिनका जुकाम अन्दर गिरता हो उनको सुबह शाम षड्बिन्दु तेल का नस्य भी लेना चाहिये।

आमवात—गठिया में रास्नासप्तकक्वाथ या गरम पानी के साथ योगराज गुग्गुलु १॥ मा॰ प्रातः सायं दिन में दो बार लेना चाहिये। नारायणतैल, विषगर्भतैल अथवा सैंधवादितैल को दर्दवाले स्थान पर मालिश करके एरण्ड के पत्ते बांधें।

रक्तविकार—खून खराब हो जाने से फोड़े फुन्सी या खुजली की शिकायत होने पर प्रातःकाल में मञ्जिष्ठादिक्वाथ डेढ़ पाव पानी में पकाकर डेढ़ छटांक रह जाने पर पिएं। भोजन के बाद दोनों समय सारिवाद्यासव १ तो॰ की मात्रा में थोड़े पानी के साथ पीना चाहिए।

प्रदर—प्रातःकाल ३ माशा पुष्यानुग चूर्ण चावलों की धोवन के साथ लेना चाहिए भोजन के बाद दोनों समय अशोकारिष्ट एक तोला थोड़े पानी में मिलाकर लेना चाहिए।

हिस्टीरिया—प्रातःकाल एक तोला ब्राह्मीघृत गाय के दूध से लें शाम को एक गोली चतुर्मुखरस की त्रिफला के पानी या अर्क सौंफ में थोड़ी मिश्री मिलाकर उसके साथ लें। रात को डेढ़ माशा सारस्वतचूर्ण गरम पानी या गाय के दूध से लिया करें। सिर पर गर्मियों में ब्राह्मी तेल तथा अन्य ऋतुओं में नारायणतैल लगाना अच्छा है।

मूर्च्छा की अवस्था में सारस्वत चूर्ण का नस्य लेना लाभप्रद है।

हमारी बेरोज़गारी और इसका इलाज

[श्री प्रो० एफ. सी. मेहन एम. एस. सी अध्यक्ष गुरुकुल केमिकल इंडस्ट्रीज़]

थोड़ी बहुत बेरोजगारी लगभग सब देशों में होती है परन्तु भारतवर्ष में बेरोजगारी निराले ढंग की है। पढ़े लिखे होते हुए भी हजारों नवयुवक बेरोजगार हैं। इतना समय और पिता की गाढ़ी कमाई खर्च करने पर भी बहुत से शिक्षित नवयुवक अपनी रोजी कमाने के योग्य नहीं बन सकते। केवल मामूली पढ़े लिखे ही नहीं बल्कि जिन्होंने टैक्नीकल शिक्षा प्राप्त की है उन में से भी अकसर ऐसे मिलेंगे जो बेरोजगार हैं। ऐसी शिक्षा प्राप्त करने का क्या फायदा? मामूली तालीम बेशक हर एक शहरी के लिए जरूरी है परन्तु ऊंचे दरजे की शिक्षा तो जरूर ही ऐसी होनी चाहिए जिससे कि रोज़ी का सवाल सबसे पहले हल हो। शिक्षा का यह निकम्मापन तो अच्छी तरह साबित हो चुका है। हर एक प्रान्त में कोशिश की जा रही है कि वर्तमान शिक्षा पद्धति को बदलकर अपनी अगली नसल को तो सुधारा जावे। कांग्रेसी मन्त्रिमण्डल वाले प्रान्तों के अन्दर तो खास कर बड़े उत्साह से काम हो रहा है। आशा की जाती है कि जल्द ही इस कोशिश का असर प्रकट हो जायेगा। वर्तमान समय में किसी भी मुल्क में शिल्प, कला व दस्तकारी ही वहां के निवासियों के रोजगार के प्रश्न को हल करती हैं। कृषि प्रधान मुल्कों में कृषि और इसके साथ सम्बन्ध रखने वाली दस्तकारियां भी काफी व्यक्तियों को काम पर लगाती हैं। परन्तु जिन्स के भाव गिर जाने से कृषि इतनी फायदेमन्द नहीं रही। कहीं कहीं और खासकर हिन्दुस्तान के कुछ हिस्सों में कृषि इतनी कम फायदेमन्द होगई है कि किसानों के लिये सरकारी लगान अदा करना भी मुश्किल हो रहा है। ऐसी हालत में हिन्दुस्तान की बेरोजगारी का सबसे प्रथम

है परन्तु मौजूदा जमाने के साथ एक समान तरक्की पर लाने के लिए कितने परिश्रम व अन्य साधनों की ज़रूरत है यह जापान की दस्तकारियों का इतिहास पढ़ने से मालूम हो सकता है। किस तरह से सरकार और पब्लिक ने मिलकर जान तोड़ कोशिश की और इस [illegible] पहुंचे। जापान की मिसाल हमारे लिए ज्यादा मुफीद इसलिए है कि हिन्दुस्तान और जापान के हालात बहुत कुछ मिलते जुलते हैं। हिन्दुस्तान एक बहुत बड़ी भारी मण्डी है। दुनिया भर के लगभग सब उन्नत देशों की तयार शुदा वस्तुएं यहां पर ज्यादा तादाद में बरआमद होती हैं। अगर यह सब चीजें यहां ही तयार की जा सकें तो इनका बेचना बहुत कठिन नहीं होगा। यूरुप की अकसर ताकतें आजकल इसी जद्दोजहद में लगी हुई हैं कि किसी तरह से उनको दूसरे देश मिल जावें जहां कि वे अपना व्यापार चला सकें या यों कहिए कि अपने वाशिन्दों का पेट पाल सकें। जब तक किसी चीज की बिक्री का पूरा प्रबन्ध नहीं होता तब तक उसे तयार करने का कोई फायदा नहीं है परन्तु यहां तो मांग बहुत है इसलिए कोई वजह नहीं है कि दस्तकारी असफल हो। दस्तकारी बगैर सरकार की मदद से नहीं चल सकती। हिन्दुस्तान के विषय में यह कहा जाता है कि यहां पर पूंजी इकट्ठी नहीं होती। लोग रुपये को जमीन में दबाकर रखते हैं। लेकिन पिछले सालों में इसके उलटा साबित होचुका है। ज्योंही भारत सरकार ने खांड पर टैक्स बढ़ाया फौरन ही इस कदर रुपया निकला कि काफी तादाद में खांड बनाने के कारखाने खुल गये; यहां तक कि अब मांग से भी ज्यादा खांड तयार हो जाने का खतरा हो रहा है। इस तरह से जिस दस्तकारी की [illegible]

चल सके। हिन्दुस्तान की सरकार [illegible]
हद तक सहायता दे रही है। लेकि[illegible]
भी ज्यादा मदद मिले तो विश्वास
बहुत ही जल्दी यहां की दस्तकारि[illegible]
दरजे पर पहुंच जाएं। लेकिन अकेली
भी कुछ नहीं कर सकती जब तक [illegible]
भी तयार न हो। किसी देश की सर
दस्तकारियों की नीचे लिखे प्रकार
यता कर सकती है। किस देश या
कौनसी दस्तकारियां ज्यादा फा[illegible]
सकती हैं इसका मालूम करना और
इसके विषय में परिचित कराना एक
आवश्यक काम है। इसके लिए दे[illegible]
होने वाली वस्तुओं की देखभाल
सहायता से भिन्न २ दस्तकारियों
के लिए खोज की भारी जरूरत
इस विभाग से जहां पर दस्तकारी
वालों को मदद मिलेगी वहां पर [illegible]
-सी तादाद पढ़े लिखे लोगों की [illegible]
जावेगी। इसके साथ २ इन [illegible]
को सिखाने के लिए टैकनीकल [illegible]
के शिक्षणालयों की भी बहु[illegible]
होती है।

लेकिन यह शिक्षा ऐसी न [illegible]
प्राप्त करने वाले को उलटा बेकार
हिन्दुस्तान के मौजूदा कारखानेदा[illegible]
सभी मिस्त्री को एक अच्छे इं[illegible]
अधिक योग्य समझते हैं क्योंकि
हैं कि क्रियात्मक अनुभव उस[illegible]
ज्यादा है और इंजीनियर साह[illegible]
काम करवाना ही जानते हैं खुद
उतना नहीं जानते। छोटी मोटी
को सिखाने का काम तो शा[illegible]
लयों में भी होना चाहिए ताकि
के अनुसार वहां से शिक्षाप्राप्त
पर कोई काम कर सकें। इसक[illegible]
अगर न भी हो सके तो शि[illegible]
पुस्तकालयों में तो शिल्प व [illegible]
क्रियात्मक पुस्तकें जो कि हि[illegible]
कोण से लिखी गई हों अवश्य
होनी चाहियें। अगर यह देशी
सकें तो और भी अच्छा है
[illegible] को दस्तकारियों का शौ[illegible]

लके लिए या यों कहिये कि देश हुत ही लाभदायक साबित होगा। कर्तव्य है कि अगर ऐसी पुस्तकें हों तो उनको योग्य लेखकों से और बहुत सस्ती बेचे या मुफ्त दस्तकारी की तरक्की के लिए यह के ऐसी कच्ची वस्तुओं पर जो कि न में पैदा न होती हों और बाहर पड़ती हों टैक्स बहुत कम हो। शीन भी बगैर टैक्स के मंगवाने ना होनी चाहिए। बाहर से तैयार शुदा माल पर ज्यादा टैक्स इस की कीमत बढ़ जाती है और क की अन्दरूनी दस्तकारी खूब ती है। सस्ती बिजली, अच्छी सड़कें अच्छे और सस्ते यातायात के रेलों के सस्ते किराये वगैरा) आदि से व्यापार और दस्तकारी को मदद भी ती है। मुल्क की बनी हुई चीजों की लिए नुमायश वगैरा बहुत ही मुफीद सरकार को चाहिए कि अपनी सरकारी सब सामान स्वदेशी ही काम में लाए विदेशी सामान से कुछ महंगा ही। हिन्दुस्तान में शिक्षा बहुत कम नौजवानों को अगर इस न क्षमता ने के काम पर लगा दिया जावे र इन को रोजगार मिल जावेगा क का एक बड़ा प्रश्न हल हो ऐसा ही डाक्टरों के बारे में है। कारियां गरीब हिन्दुस्तानियों को है इन में जहां पर डाक्टरों के र खुलेगा वहां पर मुल्क की एक जरूरत पूरी होगी।

कि ऊपर लिखा जा चुका है र खास कर पूंजीपतियों की मदद री भी मुल्क की गरीबी और दूर नहीं हुई। जब तक पूंजीपति ने रुपये का ठीक इस्तेमाल ाने में नहीं करते तब तक बे- नहीं हो सकती; आखिर सरकार कारियां कहां से लाये?

कारियों को दो श्रेणियों में बांटा चलाने में बहुत रुपये की जरूरत है; जैसे खांड, स्पिरिट, कागज, लोहा, सिमेंट, सोडा कास्टिक, क्लोरियन वगैरा वस्तुओं का त्यार करना आदि२। इनमें से कुछ एक तो ऐसी हैं जिनको अगर सरकार शुरू करे तो और भी अच्छा हो। वर्तमान समय में यह बहुत पूंजी की दस्तकारियां हैं और इनको अकसर शिक्षित नौजवान अकेले नहीं चला सकते (२) द्वितीय दर्जे के सरमाये से चल सकने वाली दस्तकारियां ऐसी हैं जिन को पांच दस हजार के सरमाये से चला कर पर्याप्त लाभ कमाया जा सकता है; ऐसी सब दस्तकारियां इस जमाअत में ख्याल की जा सकती है। इनमें से कुछ दस्तकारियां स्याही का त्यार करना, फिनायल त्यार करना, रंगाई, धुलाई, बटन वगैरा का त्यार करना आदि है। ये ऐसी दस्तकारियां हैं जो कि इस से भी बहुत कम मामूली दो चार सौ रुपये से चलाई जा सकती हैं। इन चीजों की मांग भी हर जगह है इस लिए इनकी बिक्री भी आसानी से हो जाती है। अगर यह जगह २ जगह शुरू की जायें तो काफी नौजवान इन से सम्मान पूर्वक रोजी कमा सकते हैं। कम सरमाये की दस्तकारियां निम्न लिखित तीन हिस्सों में बांटी जा सकती हैं।

(अ) कृषि संबन्धी दस्तकारियां

(ब) मकेनीकल और इलेक्ट्रीकल दस्तकारियां

(ज) केमीकल दस्तकारियां यानी किस्म २ मसालों का तयार करना।

कृषि सम्बन्धी दस्तकारियां—हिन्दुस्तान एक कृषिप्रधान देश है इसलिए आमतौर पर कृषि के साथ सम्बन्ध रखने वाली दस्तकारियां; उदाहरणार्थ जानवरों का पालना, डेरी फार्म (दूध दही घी मक्खन का त्यार करना) मुर्गी खाने, फलों की काश्त, उनका डब्बों और बोतलों में भरना, फलों और फूलों से शरबत रस मुरब्बा अचार वगैरा का त्यार करना, रद्दी तौर पर कागज का त्यार करना, टोकरियां रस्से मूंज की रस्सियां त्यार करना, तेल निकालना बढ़ई का काम वगैरा; ऐसी दस्तकारियां हैं जो कि गांव में खूब चल बड़े बड़े शहरों और कस्बों के नजदीक हैं, ऐसी दस्तकारियों के लिए बहुत ही ठीक हैं। किसानों और उनके मजदूरों के पास खाली समय काफी होता है उस खाली समय में जो भी काम किया जा सके अच्छा है। उपर्युक्त दस्तकारियों के अतिरिक्त निशास्ता का त्यार करना, चावल और गेहूं से कार्न फ्लावर व अनेक प्रकार के भोजन सामान का त्यार करना भी शुरू किया जा सकता है। इन चीजों की मांग शहरों में दिन प्रतिदिन बढ़ रही है; और फिलहाल सारी की सारी जरूरत सिर्फ विलायत से आई हुई चीजों से ही पूरी की जा रही हैं। छोटे पैमाने पर चमड़े का काम, रंगाई धुलाई का काम; (जिन की कि गांव के लोगों को हर समय जरूरत रहती है) भी चलाये जा सकते हैं। गांव के शिक्षित नौजवानों को चाहिए कि नौकरियों के लिए शहरों में मारे मारे न फिरें बल्कि अपने ही गांव में, जहां कि घरेलू खर्च बहुत कम होंगे, उपर्युक्त इन्डस्ट्रीज़ में से कोई एक उचित दस्तकारी शुरू कर देवें।

(ब) मेकनीकल व ऐलेक्ट्रीकल दस्तकारियां मामूली चीजों से लेकर कीमती से कीमती मशीनें त्यार की जा सकती हैं। कुछ साल पहले छोटी मोटी सब मशीनें विलायत से आती थीं; इस समय दवाई के कारखानों के काम की, साबुन तेल के कारखानों की, जुराब बनियान बुनने की, और सैकड़ों तरह की मशीनें हिन्दुस्तान में त्यार हो रही हैं। उन में मुनाफा काफी है और अभी गुंजाइश भी है—मेकनीकल शिक्षा प्राप्त करने के बाद काफी नौजवान अभी इस दस्तकारी में लग सकेंगे। मशीनों के इलावा छोटा मोटा इमारती सामान, बिजली का सामान वगैरा दस्तकारियां भी शुरू करनी कुछ मुश्किल नहीं हैं। इस समय देहली में इमारती सामान काफी परिमाण में त्यार किया जा रहा है जो कि सैकड़ों खानदानों को रोजी पर लगा रहा है। लोहे के ट्रंक, बालटी, टीन के डब्बे वगैरा भी त्यार किये जा सकते हैं। इनमें से बहुत सी चीजें तो ऐसी हैं जो कि

से बन कर आती है। हिन्दुस्तान में भी अगर ऐसा किया जावे तो काफ़ी तरक्क़ी हो सकती है। बिजली की काफ़ी तरक्क़ी हो रही है उस के लिए भिन्न २ वस्तुओं की जरूरत पड़ती है। इसके अतिरिक्त पंखे, बिजली के बटन वगैरा सैंकड़ों किस्म की चीजों का त्यार करना शुरू किया जा सकता है। एलेक्ट्रोप्लेटिङ्ग के कारखानों की भी बहुत जरूरत है।

(न) कैमीकल दस्तकारियां— इस श्रेणी में भी बेशुमार दस्तकारियां हैं। फार्मेसी का काम अथवा दवाइयों का त्यार करना-फिनायल स्याही-साबुन-बूट पालिश-रंग रोगन और निंबू सत बनाना इमली से टाटरी का त्यार करना परफ्युमरी वगैरा बेशुमार ऐसी दस्तकारियां हैं जो कि दरम्यानी दरजे के आदमी शुरू कर सकते हैं। इन में से कई तो ऐसी दस्तकारियां हैं जो कि अभी शुरू ही नहीं की गई।

गुरुकुल देश में दस्तकारियों की कमी को देर से अनुभव कर रहा था। इसको पूरा करने के लिए यहां इस तरह की शिक्षा का कुछ प्रबन्ध भी किया गया है। ब्रह्मचारियों से साबुन, स्याही फीनाइल आदि बनवा कर उनकी बिक्री की जाती है। इस में शिक्षा भी होती है और खर्च का भार भी नहीं बढ़ता। आशा है कि जनता देश में दस्तकारियों की उन्नति करने के हमारे इस प्रयास में सहयोग देगी।

हमारी फार्मेसी की दस्तकारी ने थोड़े समय में ही पर्याप्त उन्नति की है। जनता ने इसे अच्छा अपनाया है इस लिए आयुर्वेद की शिक्षा का भी पर्याप्त बोझ इसमें हलका होगया है। इसी प्रकार यदि यहां की और दस्तकारियां भी अपनाई जाएं तो शिक्षा का भार कम हो सकता है।

गुरुकुल फार्मेसी की औषधियों का सूची

—रस प्रकरण—

अग्निकुमार रस— रसेन्द्र सा० र० बदहजमी, दस्त और पेट के फूलने के लिए उपयोग है। मू० ।-) तोला

अग्नितुण्डी वटी— रसेन्द्र सा० स० यह पाचक अग्नि को ताकत देती है और मन्दाग्नि, शूल तथा निर्बलता के लिए लाभदायक है। मू० ।=) तोला

आनन्द भैरव— भैषज्य र० — ज्वर और दस्तों में इसका इस्तेमाल किया जाता है। मू० ।-) तोला

इच्छाभेदी —भैषज्य० र० उदर रोग। यह तेज जुलाब की औषधि है। सख्त कब्ज़ी होने पर प्रयोग करना चाहिये।

मू० ।-) तोला

कफकेतु—रसेन्द्र० सा० स० । कफ रोगों की उत्तम औषधि है। जुकाम, खांसी इन्फ्लुएन्ज़ा में बहुत प्रयोग होता है।

मूल्य ।-) तोला

कर्पूररस- भैषज्य० ० अतिसार। यह दस्तों की बहुत उत्तम दवा है।

मूल्य ।।।=) तोला

कस्तूरी भैरव— रसेन्द्र स० सं० ज्वर। श्लेष्म ज्वर (इन्फ्लुएन्ज़ा) आम ज्वर (निमोनिया) में इसका व्यवहार से विशेष लाभ होता है। मूल्य ६) तोला

कृमिमुद्गर रस भैषज्य र० कृमिरोग पेट के कीड़ों को नष्ट करता है।

मूल्य ।-) तोला

खदिर वटी चक्र० मुखरोग। मुख, जिह्वा, तालु और गले आदि के पक जाने तथा दांतों की कमज़ोरी में विशेष गुणकारी है।

मूल्य ।-) तोला

चतुर्मुख रस—रसेन्द्र सा० सं० वात० व्याधि। वातनाड़ियों की निर्बलता तथा उत्तेजना को दूर करता है। मूल्य ६) तोला

चन्द्रप्रभा वटी— भैषज्य र० अर्शो-धिकार। बवासीर खून की कमी, कमज़ोरी, तथा प्रमेह की अत्युत्तम दवा है। इस में शिलाजीत और लोह भस्म डाली गई है। के सेवन से बदन में चुस्ती फि लगती है। मूल्य ।।=

श्री जयमङ्गल रस—भैषज्य० जीर्णज्वर और विषम ज्वर में इसका किया जाता है। मूल्य १

ज्वरार्यभ्रक - रसेन्द्र सा० स० पुराने बुखार में ज्वर के साथ खांसी दिया जाता है। मूल्य

पूर्णचन्द्ररस (बृहत्)—रसेन्द्र रसायन। अम्लपित्त, संग्रहणी आ तथा साधारण अवस्था में शरीर की लिये इसे देना चाहिए।

मूल्य

प्राणदा गुटिका -भै० र० बादी बवासीर के लिए लाभप्रद है।

मूल्य

बृहत् वातचिन्तामणि—भै० रोग। वातिक दुर्बलता (Nervou ...) की उत्तम दवा है। मूल्य १

रामबाणरस—रसेन्द्र सा० सं० अजीर्ण रोग की उत्तम दवा है। प्रारम्भिक दशा में इससे बहुत लाभ

मूल्य

बृहत् लवंगादिवटी— भै० र० यह पाचक अग्नि को दीप्त करती है साथ दस्त होना, ढीला दस्त होना अफरना इत्यादि में तुरन्त लाभ हो

मूल्य

वातगजांकुश—र० सा० स० वायु रोगों के लिये ... है। मू

संजीवनी वटी—शा० त्रिदे दस्त, हैज़ा में दी जाती है। मू

हिंगुलेश्वर रसेन्द्र सा० आमज्वर में शरीर में दर्द होने बहुत लाभ होता है। मूल्य

आमकुठार—र० सा० सं दमे के लिये उत्तम औषधि है

मू

र्षमालती वसन्त—यो०र० ज्वर। , पुराने बुखार तथा क्षयरोग के लिये त उपयोगी है।

मू० १।) माशा, १२) तोला

सन्तकुसुमाकर—भै० र० रसायन। मूत्र और मधुमेह रोग की अव्यर्थ है और शरीर की नसों की कमज़ोरी कर समर्थ तथा बलवान् करता है।

मूल्य १८) तोला

त्युञ्जयरस—र० सा० सं० ज्वर। ार को उतारने के लिए बहुत उपयोगी

मूल्य।) तोला

हाशंख वटी—भै० र० अग्निमांद्य। फूलना, पेट दर्द केवल वा आंव के त आना और खट्टे डकारों के लिए च्छी है। अजीर्ण के रोगियों को सदा स रखनी चाहिए। मूल्य।~) तोला

क्ष्मीविलास रस—रसेन्द्र सा० सं० । सब तरह की खांसी, दमा और क्षय करता है। जुकाम और सिर दर्द के बहुत अच्छी दवा है।

मूल्य १। तोला

त्रैलोकनाथ रस—भै० र० यकृत्-धकार। बढ़े हुए जिगर और तिल्ली बहुत अच्छी दवा है। थोड़ी मात्रा में ह लिये भी उपयोगी है।

मूल्य १) तोला

रजःप्रवर्तनी वटी—भै०र० स्त्री रोग। र्म प्रवर्तक है, मासिकधर्म के न होने । होने की दशा में बहुत लाभदायक

मूल्य १) तोला

शीलौह—भै० र० अम्लपित्त (खट्टे डकार) की उत्तम दवा है।

मूल्य ॥~) तोला

राजगुग्गुलु [लघु]—चक्र० यह वातिक रोगों की अक्सीर दवा की दर्द, गठिया, अर्धाङ्ग (फालिज), लकवा), हाथ पैरों का कम्पन, आदि का दर्द, हाथ पांव की और जोड़ों का अकड़ना आदि वायु र्यों में इसके समान कोई दवा नहीं। द्ध करने के लिए भी फायदेमन्द

मूल्य १) छटांक

आमवात। यह लघु योगराज की अपेक्षा अधिक लाभदायक है। मूल्य १)

नवायस लौह—चरक सं० पाण्डुरोग। जिगर की कमजोरी, कामला, प्रमेह और पुराने बुखार में इसका सेवन किया जाता है। इस से जिगर की कमज़ोरी दूर होती है और खून अधिक बनता है। बच्चों के लिए भी यह बहुत लाभदायक है। मूल्य १) तोला

पञ्चामृत लौह मण्डूर—भै० र० पाण्डु-रोग। संग्रहणी, खून की कमी और शोथ रोग की उत्तम दवा है। मूल्य ॥।~) तोला

कुमार कल्याण रस—भै० र० बाल-रोग। बच्चों के लिए ताकत की उत्तम दवा है। दस्त, उलटी, बुखार आदि के कारण बच्चे के कृश हो जाने पर उसे देना चाहिये। तन्दुरुस्त बच्चों को देने से उनका शरीर पुष्ट होता है। मूल्य २) माशा

प्लीहशार्दूल रस—रसेन्द्र सा० सं० प्लीहरोग। तिल्ली रोग की उत्तम औषधि है। मूल्य।~) तोला

स्वर्णसिन्दूर (मकरध्वज)—भिन्न २ रोगों में भिन्न भिन्न अनुपानों के साथ इसका सेवन करने से आश्चर्यदायक लाभ होता है। निर्बलता के लिए विशेष उपयोगी है।

मूल्य ५) तोला

रस सिन्दूर—स्वर्ण सिन्दूर मकरध्वज की तरह यह भी भिन्न २ रोगों में काम आता है। मकरध्वज की अपेक्षा यह हीन वीर्य है।

मूल्य २॥) तोला

रस पर्पटी—ग्रहणी में लाभदायक है।

मूल्य ॥) तोला

पंचामृत पर्पटी—अतिसार, प्रवाहिका (पेचिश) सग्रहणी पाण्डु और तिल्ली के लिए बहुत अच्छी है। मूल्य १) तोला

स्वर्ण पर्पटी—संग्रहणी, पुराने दस्त, शोथ तथा क्षयरोग में इसका सेवन करने से विशेष लाभ होता है।

मूल्य १) माशा, १०) तोला

लौह पर्पटी—संग्रहणी रोग में खून की कमी हो जाने पर इस से विशेष लाभ होता है। मूल्य १) तोला

स्वर्णवंग—शुक्रमेह (Spermatorrhoea) तथा प्रमेह के लिए उत्तम दवा

लगता है। मूल्य २) तोला

श्वेत पर्पटी—खट्टे डकार, गले व छाती में जलन और पेशाब का जलन से आना इत्यादि कष्टों में इसके सेवन से तुरन्त लाभ होता है। मूल्य ॥) तोला

चन्दनादि लौह—रसेन्द्र० ज्वर०। मलेरिया के बाद कभी २ हलका ज्वर आता हो तो इसके सेवन से बहुत शीघ्र आराम होता है। मूल्य १) तोला

सर्वज्वरहर लौह—रसेन्द्र० ज्वर। जिगर व तिल्ली के बढ़ जाने से बुखार पुराना होगया हो तो इसका व्यवहार करना चाहिये, साधारण ज्वर के बाद कमजोरी दूर करने के लिए भी इसका सेवन किया जाता है।

मूल्य १।) तोला

वृ० यकृदरि लौह—भै० र० यकृत्-प्लीहाधिकार। बढ़े हुए जिगर व तिल्ली की उत्तम दवा है। मूल्य १।) तोला

महालक्ष्मीविलास—भै० र० रसायन। उत्तम रसायन है। सिर दर्द, खांसी, जुकाम, निर्बलता, हिस्टीरिया, योनिविकार आदि के लिये बहुत उत्तम है। मूल्य ५) तोला

पीयूषवल्लीरस—र० सा० संग्रहणीरोग। पुराने दस्त, खूनी दस्त, आंव और खून मिले दस्त संग्रहणी आदि रोगों के लिए बहुत लाभदायक है। मूल्य ॥) तोला

नृपतिवल्लभ रस—भै० र० ग्रहणी रोग। ग्रहणी रोग में शोथ तथा खांसी आदि उपद्रव होने पर इसका व्यवहार करना चाहिए।

मूल्य ॥) तोला

तारकेश्वर रस—भै० र० मूत्रकृच्छ्र रोग। मूत्र का दर्द के साथ या रुक कर आने की अवस्था में यह देना चाहिये। ॥।) तोला

राज मृगाङ्क—रसे० सा० सं० क्षयरोग। तपेदिक की अवस्था में देने से बहुत लाभ करता है। क्षयरोग की बहुत प्रसिद्ध तथा उत्तम औषध है। मूल्य १२) तो०

एलादि गुटिका—चक्र० रक्तपित्त। अरुचि, खांसी, खांसी के साथ गले या फेफड़े से खून आना आदि रोगों के लिए उत्तम है।

मूल्य ~)। तोला

रस राजरस—भै० र० वातरोग। पक्षाघात, अर्दित आदि वातरोगों में इसका प्रयोग होता है।

कांचनार गुग्गुल—चक्र० गलगण्ड रोग। कण्ठ माला और गिल्लड़ रोग के लिए विशेष लाभदायक है। मूल्य १) छटांक

सप्तविंशतिगुग्गुलु—भै० र०। भगन्दर बवासीर, नासूर आदि रोगों में इस के खाने से बहुत उपकार होता है। मूल्य १) छटांक

योगेन्द्र रस—भै० र० वातरोग। मूर्छा उन्माद, पक्षाघात आदि रोगों के लिए बहुत अच्छा है। मू० २४) तोला

सर्वांग सुन्दर रस—र० सा० सं० यक्ष्मारोग। क्षय रोग, जीर्ण ज्वर, ग्रहणी तथा प्रमेह, आदि रोगों में इस के प्रयोग से बहुत लाभ होता है। मू० ११।) माशा

चन्द्रकला रसः भै० र० प्रमेह। प्रमेह की अच्छी दवा है। मू० ।।।) तोला

भस्म प्रकरण

अभ्रक भस्म—यह उत्तम रसायन है। खांसी, दमा, द्व आदि रोगों में तथा निर्बलता में खास तौर पर दी जाती है। मू० २) तो०

लोह भस्म—जिगर की कमजोरी, खून की कमी, हृद्रोग, क्षय तथा साधारण निर्बलता के लिए उत्तम है। इस के सेवन से खून बनता है। मू० २) तोला

मुक्ता भस्म—खांसी, क्षय, दमा तथा साधारण निर्बलता में उपयोगी है मू० ३६) तो०

मुक्ताशुक्ति भस्म - क्षय और संग्रहणी के लिए उत्तम है। मू० ।।।) तोला

स्वर्ण भस्म - क्षय रोग, संग्रहणी और हृदय तथा वीर्य की निर्बलता में विशेष उपयोगी है। मू ६०) तोला

रजत भस्म साधारण निर्बलता में लाभदायक है। मू० ५) तोला

वङ्ग भस्म—प्रमेह की खास दवा है। मू० १) तो०

नाग भस्म—मूत्र सम्बन्धी रोगों के लिए बहुत अच्छी है। मू० ।।।) तोला

यशद भस्म—रक्तस्राव तथा मूत्रसम्बन्धी रोगों के लिए लाभदायक है। मू० ।।।) तो०

ताम्र भस्म—बुखार, खांसी तथा दमे के लिए विशेष उपयोगी है। मू० ।।=)

शंख भस्म—पेट के दर्द, आंव, खट्टे डकार आदि के लिए विशेष हितकारी है। मू० ।)तो

वराट भस्म—भूख न लगना, दस्त, पेट दर्द आदि के लिए उत्तम है। मू० =) तो०

गोदन्ती हरताल—खांसी और बुखार के लिए बहुत उत्तम है मू० ।) तोला

स्वर्ण माक्षिक भस्म—प्रमेह, पाण्डु, हृदय की निर्बलता, और गण्डमाला में उपयोगी है। मू ।।) तोला

मण्डूर भस्म—जिगर की खराबी, पित्त की अधिकता, खून की कमी, पाण्डु व कामला का विशेष औषध है। मू० ।।=) तोला

कासीस भस्म—पाण्डु व कामला के लिए विशेष उपयोगी है। मू ।=) तो

कुरंगशृङ्ग भस्म—पसलियों की दर्द के लिए लाभदायक है। मू० ।) तोला

चूर्ण

अविपत्तिकर चूर्ण—भै० र० अम्लपित्त के लिये रामबाण है। खट्टे डकार आना, छाती व गले में जलन होना, उलटी आना आदि शिकायतें शीघ्र ही दूर होती हैं।

मू० ॥ का १=), शीशी २॥ तो० =)

अष्टाङ्गलवण—चक्र० मदात्यय मदात्य रोग की अच्छी दवा है।

गंगाधर चूर्ण—शा० सं० अतिसार। दस्तों को बन्द करता है और पाचन शक्ति को बढ़ाता है। मू० ॥ का १); शीशी २॥ तो० =)

जातीफलादिचूर्ण—शा०सं० ग्रहणी रोग पुराने दस्तों के लिए बहुत मुफ़ीद है।

मू० ।।।) पाव; शीशी २॥ तोला =)

तालीशादि चूर्ण—चरक० क्षय। खांसी मन्दाग्नि तथा अरुचि के लिए बहुत अच्छा है

मू० १।) पाव; २॥ तो० =)

त्रिकटु चूर्ण—वायु और कफ की दर्द, खांसी, सर्दी आदि में बहुत अच्छा है।

।।।) पाव, शीशी २। तोला =)

त्रिफला चूर्णः—यह चूर्ण पेट को नियमित रखता है। मन्दाग्नि, मलबन्ध, पुराने दस्त, पेट दर्द में बहुत बरता जाता है। खून की उलटी आने पर भी लाभ दायक है। आंखों के रोगों में इस के खाने से विशेष लाभ होता है। मू० ।।=) पाव, शी० २॥ तो०=)

लवणभास्कर चूर्ण—चक्र० अग्निमान्द्य है और दस्त साफ आता है।

मू० ।।।) पाव, शी० २॥) तोला

सारस्वत चूर्ण—भै० र० उ मृगी तथा पागलपन के लिए बहुत उपयो

मूल्य १।) पाव, शी० २॥ तो०।

सितोपलादि चूर्ण—चक्र० खांसी, क्षय, पुराना बुखार अरुचि आ की निर्बलता के लिये अति उत्तम ह

मूल्य ५।।) पाव, शीशी २॥ तो

सुदर्शन चूर्ण—यो० र० ज्वर तिल्ली तथा मलेरिया ज्वर के लिये य बहुत लाभदायक है।

मूल्य १) पाव; शी० २॥ तो०

पुष्यानुग चूर्ण—यो० र० यो सफ़ेद लाल प्रदर आदि स्त्री रोगों में वि पर बरता जाता है।

मूल्य १।) पाव, शी० २॥ तो०

शतावर्यादि चूर्ण—शा०सं०ध धातु की निर्बलता में विशेष तौर पर ल है। पेशाब का जलन या दर्द से भ इसके सेवन से बन्द हो जाता है।

मूल्य १॥) पाव, शी० २॥ तो०

बालचातुर्भद्र चूर्ण—चक्र० बच्चों के दस्त, बुखार, खांसी तथा आदि रोगों में इसका बहुत व्यवहार है

मूल्य १।) पाव, शी० २॥ तोला

व्योषाद्य चूर्ण—भैष० र० ना जुकाम में नाक के बन्द रहने पर देना चाहिये।

मूल्य १।) पाव शीशी २॥ तो०

शृंग्यादि चूर्ण—चक्र० हिक्का खांसी, जुकाम, दमा तथा हिक्का आ के लिए यह चूर्ण विशेष लाभदायक बलगम तर होकर निकलने लगती है दमे का वेग शान्त रहता है।

मूल्य १। पाव, शी० २॥ तो०

हिंग्वष्टक चूर्ण चक्र० अ अपचन, दस्तों का आना व गुगोला अफरना तथा पेट दर्द आदि के लिए

मूल्य १।=) पाव, शी० २॥ त

लशुनाष्टक चूर्ण—मंदाग्नि, आध्यान (पेट का फूलना) पुराने हैजे के लिये उपयोगी है मू० १

फुन्सी, खाज, दद्रु, तथा कोढ़ आदि रोगों सेवन से बहुत लाभ होता है।

मूल्य १।) पाव, शीशी २॥ तोला ॥)

बिल्वकादि चूर्ण—भै० र० संग्रहणी रोग। ता है और दस्त को बांध कर लाता है।

मूल्य १।) पाव, शी० २॥ तोला ॥)

मधुयष्ट्यादि चूर्ण—कब्ज़ियत के लिए है। ज्वर में भी पेट साफ करने के लिए या जाता है।

मूल्य १) पाव, शी० २॥ तो० ॥)

लवंगादि चूर्ण—भै० यक्ष्मारोग। क्षय रोग, अजीर्ण, अतिसार व खांसी के लिए देना

मूल्य १) पाव, शी० २॥ तोला ॥)

दाडिमाष्टक चूर्ण—भै० र० ग्रहणीरोग। है, मल को बांधता है और खांसी व अरुचि रता है मूल्य १) पाव, शी० २॥ तो० ॥) है

हिंग्वादि चूर्ण—शा० र० गुल्म। पेट का गुगोला बवासीर रोगों के लिए हितकर है। मूल्य २) पाव, शी० २॥ तो० ।–)

तालीसाद्य—च० अरुचि रोग। यह पाचक चूर्ण है। इसके खाने में रुचि होती है भूख अधिक बढ़ती है। मू० १) पाव, शी० २॥ तो० ॥

यवक्षारादि चूर्ण—भै० र० प्रमेह। मूत्र रोगों के लिए बहुत उत्तम है। मूत्र शुद्ध होता मेह के कारण होने वाली फुंसियों को भी दूर

अश्वगन्धादि चूर्ण—शा० सं० वाजीकरण लता के लिए उत्तम है

मूल्य १॥) पाव, २॥ तोला ।)

आसवारिष्ट

अभयारिष्ट—भै० र० आमाम् रोग। यह बीमारियों तथा कब्ज़ को हटाता है और मस्सों को सुखाता है। मूल्य ॥) पाव

अशोकारिष्ट—भै० र० प्रदर। स्त्रियों के और सब प्रकार के योनि रोगों को उत्तम इसे गर्भाशय सन्तान के योग्य होता है ॥) पाव

अमृतारिष्ट—भै० र० ज्वर। पुराने बुखार तथा सब प्रभावों को हटाता है और भूख बढ़ाता है। मू० ॥) पाव

कनकासव—भै० र० श्वास। दमा और खांसी में उपयोगी है। मू० ॥) पाव

कुटजारिष्ट—भै० र० ग्रहणी या पुराने दस्तों में मुफ़ीद है पाचन शक्ति को बढ़ा कर दस्तों है। मूल्य ॥=) पाव

कुमार्यासव—शा० सं० गुल्मरोग। जिगर के लिये विशेष उपयोगी है। कब्ज़ बवासीर में अधिक बरता जाता है। जिन मासिक धर्म कम और तकलीफ से होता है भी बहुत लाभ प्रद है। मूल्य ॥ पाव

चन्दनासव—भै० र० शुक्रमेह। सुज़ाक में पेशाब हटाता है। पेशाब में खून या पीप आने रोकता है। मूल्य ॥।) पाव

द्राक्षासव—भै० र० राजयक्ष्मा। खांसी, हृदय दुर्बलता के लिए उत्तम है। प्रसूता में विशेष उपयोगी है। मूल्य १) पाव

के लिए निहायत मुफ़ीद है। मूल्य ॥) पाव १।) बोतल

लोहासव—शा० सं० पाण्डु रोग। जिगर व तिल्ली के विकार या ज्वर के कारण पाण्डु रोग होने पर यह विशेष लाभदायक है। मूल्य ।) पाव

सारस्वतारिष्ट—भै० र० स्वर भंग ब्राह्मी आदि बुद्धि और स्मृतिवर्धक औषधियों से बनता है। गले का बैठना, दिमाग़ का थकना तथा बात भूल जाना आदि शिकायतें दूर होती हैं और स्मृति तथा ज्योति बढ़ती हैं मूल्य १) पाव

पीप्पल्याद्यासव—भै० र० ग्रहणी रोग। संग्रहणी, बवासीर खून की कमी तथा कमज़ोरी के लिए उपयोगी है। मूल्य ॥=) पाव

अश्वगन्धारिष्ट—भै० र० मूर्च्छा रोग। मूर्छा, उन्माद (पागलपन)साधारण निर्बलता, ज्ञान तन्तुओं की निर्बलता और वायु की बीमारियों में यह अरिष्ट बहुत अच्छा है। मूल्य ॥।) पाव

खदिरारिष्ट—शा० सं० कुष्ठ। त्वचा की बीमारियों के लिए बहुत उत्तम है। मूल्य ॥=) पाव

रोहितकारिष्ट—भै० र० यकृत्प्लीहा० जिगर तिल्ली वायुगोला आदि उदर रोगों के लिए लाभदायक है। मूल्य ॥।) पाव

बलारिष्ट—भै० र० वातरोग। वातिक दुर्बलता के लिए बहुत अच्छा है। मूल्य ॥) पाव

घृत और तैल

पञ्चतिक्त घृत—भै० र० वीसर्प। फोड़े, फुंसी आदि खून की खराबी से होने वाले रोगों के लिए अच्छा है। मू० १॥) पाव

महात्रिफला घृत—चक्र० नेत्र रोग। आंखों की कमज़ोरी के कारण पढ़ने लिखने से दिमाग़ के थक जाने या सिर में चक्कर आने आदि के लिये बहुत मुफ़ीद है। मूल्य २) पाव

ब्राह्मी घृत—चरक० अपस्मार है। स्वरभंग, मृगी अपस्मार तथा हिस्टीरिया आदि रोगों में प्रयुक्त होता है। मूल्य २) पाव

फल घृत—चक्र० योनि रोग। जिन स्त्रियों के गर्भ नहीं ठहरता, या ठहर कर गिर जाता है या कमज़ोर सन्तान होती है उन के लिये यह एक ही चीज़ है। मूल्य २॥) पाव

बृ० शतावरी घृत—चक्र० रक्तपित्त। शरीर के किसी भाग से खून आना, सिर या किसी भाग में जलन होना, मूत्र का लग कर आना और धातु जाना आदि रोगों के लिए बहुत लाभदायक है। मूल्य २) पाव

सुकुमारकुमार घृत—चक्र० मूत्रकृच्छ्र, पेशाब का कष्ट से आना, कब्ज़, कमर दर्द, योनिशूल आदि के लिए विशेष उपयोगी है मूल्य २) पाव

कासीसादि तैल—शा० सं० अर्शरोग। बवासीर भगन्दर गुदपाक तथा घाव के लिये यह तैल बहुत उपयोगी है। मूल्य १॥) पाव

गुडूची तैल—चक्र० वातरोग। वायु के कारण खून के बिगड़ जाने पर यह तैल लगाया जाता है। मूल्य १।, पाव

माष तैल—चक्र० वातरोग। कमर दर्द, सिर दर्द हाथ पैर तथा सिर का कांपना और शरीर का सूखना आदि रोगों के लिए मशहूर है। मूल्य १॥) पाव

मरिच्यादि तैल—भै० र० कुष्ठरोग। खाज, फोड़े फुंसी तथा दाद वगैरह के लिए अक्सीर है। मू० १)

महालाक्षादि तैल—भै० र० ज्वर। पुराने बुखार और ज्वरांश इस तैल की मालिश करने से ज्वर तथा जलन दूर होते हैं। टायफाइड आदि ज्वरों के बाद इस तैल के इस्तेमाल से निर्बलता दूर होती है। कमज़ोर बच्चे इसकी मालिश करने से हृष्ट पुष्ट होते हैं। मूल्य १॥) पाव

महानारायण तैल—चक्र० वात रोग। वात पक्षाघात, अर्धांग, शरीर के किसी भाग का विकार होजाना गठिया आदि सब तरह के वायु रोगों की प्रसिद्ध औषध है। मूल्य ३) पाव

भृङ्गराज तैल—भै० र० बाल रोग। यह तैल भांगरा तथा त्रिफला आदि केशवर्धक औषधियों से तैयार किया जाता है। इस के लगाने से बाल सफेद नहीं होते और उनकी जड़ें मज़बूत होती हैं मू० १। पाव

षड्बिन्दु तैल—चक्र० शिरो रोग। पुराने जुकाम, सिर दर्द तथा आंखों की कमज़ोरी में इसका व्यवहार किया जाता है। मू० १॥) पाव

अश्वगन्धा तैल—चक्र० वात रोग इस तैल की मालिश करने से वातिक रोग नष्ट होते हैं और शरीर हृष्ट पुष्ट होता है। मूल्य १॥) पाव

बिल्व तैल—कर्ण रोग। कान से कम सुनना या कान का बहना इत्यादि रोगों में विशेष उपयोगी है मू० १।) पाव

जात्यादि तैल—शा० सं० नाड़ी रोग। ज़ख़्म, नासूर, तथा फोड़े फुंसी पर लगाने के लिए यह तैल अत्यन्त उपयोगी है।

धत्तूर तैल—भै० र० क्षुद्ररोग। सिर पर लगाने से जुएं नहीं रहते हैं। मूल्य १।) पाव

निर्गुण्डी तैल—भै० र० नाड़ी व्रण। नासूर गांठ कंठमाला आदि में यह तैल लगाया जाता है। १।) पाव

दशमूल तैल—भै० र० शिरोरोग। सब प्रकार की सिरदर्दों में यह तैल सिर पर लगाया जाता है और इससे कान का मुस्कार भी किया जाता है। मू० १॥) पाव

लाक्षा चन्दनादि तैल—भै० र० काम रोग। खांसी क्षय रोग। में या मुख से खून आने की दशा में इसकी मालिश की जाती है। मू० २।) पाव

सैंधवादि तैल—भै० र० वात व्याधि। वातिक दर्दों तथा गृध्रसी (Sciatica) के लिए व्यवहार होता है। मू० ।=) छटांक

कुङ्कुमादि तैल—चक्र० क्षुद्र रोग इसे मुख पर लगाने से झांई तथा दाग़ दूर होते हैं और मुख की कांति बढ़ती है। मू० १।।) छटांक

अवलेह तथा पाक

कण्टकार्यवलेह—शा० कास। खांसी, दमा आदि छाती के रोगों के लिए विशेष उपयोगी है। मूल्य १) पाव

कुटजावलेह—चक्र० अर्श रोग। खून के दस्त पुराने दस्त और खूनी बवासीर के लिए उत्तम है मूल्य १) पाव

वासावलेह—भै० र० कास रोग। दमा, पुरानी खांसी के साथ खून आना, ज्वर और तपेदिक में इसके सेवन से बहुत लाभ होता है। मू० ॥) पाव

च्यवनप्राश—चरक रसा०) यह कमज़ोरी की प्रसिद्ध दवा है। गले का बैठना, पुरानी खांसी, दमा, फेफड़ों की कमज़ोरी, धातु की क्षीणता, हृदय

॥ ओ३म् ॥

"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत" Reg No A 2927

गुरुकुल

सम्पादक— साहित्यरत्न प० हरिवंश वेदालङ्कार

एक प्रति का मूल्य -) [गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख पत्र] वार्षिक मूल्य २॥)

वर्ष ३] गुरुकुल काङ्गड़ी शुक्रवार ११ कार्तिक १९९५ २८ अक्टूबर १९३८ [संख्या २३

सफाई, कमाई

[लेखक—श्री प्रो० ताराचन्द जी]

दीवाली के अवसर पर हिन्दू लोग घर की अच्छी तरह सफाई करते हैं और सफाई करके लक्ष्मी की पूजा करते हैं लक्ष्मी को रिझाते हैं। आज हमने यह देखना है कि सफाई का कमाई के साथ क्या संबन्ध है।

बाह्य गंदगी और अव्यवस्था परे हटाने वाली चीज है। बाह्य सफाई और व्यवस्था खींचने वाली चीज़ें हैं। साफ दुकान द्वार से हर कोई माल खरीदना चाहता है, गन्दे से सब परहेज करते हैं बड़ी बड़ी फर्में जहां हजारों लाखों का माल रोज़ बिकता है सफाई का नमूना होती हैं। अन्दर जाते ही तबियत प्रसन्न होती है, सब चीजें यथा स्थान पड़ी होती हैं। क्रम और व्यवस्था में सौन्दर्य और आकर्षण का रहस्य निहित है। धन के अभिलाषी को बाह्य सफाई पर विशेष ध्यान देना चाहिये। क्यों न लोग उस दुकान पर आयेंगे वहां जाकर और जिसकी साफ व्यवस्थित चीजों को देख कर उनकी आंखों को और चित्त को आनन्द मिलता है। गन्दगी गड़बड़ को दूर करना, गरीबी को दूर करना है सफाई को लाना कमाई को बढ़ाता है।

बाह्य गन्दगी और अव्यवस्था से मन में गड़बड़ पैदा होती है। सफ़ाई, स्पष्ट विचार करने में, दूर तक गहरा देखने में, बात की तह तक पहुँचने में सहायक होती है। व्यापार में इस बात की बड़ी ज़रूरत होती है कि किस समय क्या करना चाहिये किस अवसर से क्या फायदा उठाना चाहिये, सफ़ाई मनुष्य को सतर्क कर देती है। उसका चित्त शान्त और प्रसन्न रहता है, शान्त और प्रसन्न चित्त मनुष्य यथोचित विचार करता है। किसी मौके को चूकता नहीं और मिले अवसर से पूरा लाभ उठा कर अपने आप को समृद्ध करता है। सफाई स्पष्ट गहरे और सम्यक् विचार करने में बहुत सहायक है। सफाई का अभाव प्रमाद का सूचक भी है और वर्धक भी। जहां प्रमाद है वहां लक्ष्मी कहां?

धन का सम्बन्ध केवल बाहर की सफाई से ही नहीं अन्दर की सफाई से, मन की सफाई से, नियत की सफाई से और भी गहरा है। सच्चे ईमानदार एक बात करने वाले दुकानदार की कुछ समय के बाद धाक बैठ जाती है और यद्यपि पहले उसे कुछ कठिनाई होती है पर धीरे धीरे उस का काम बढ़ जाता है और अच्छा चल पड़ता है—"The extension of a man's will is proportionate to his intention" अर्थात् किसी के काम का विस्तार उसकी नियत के अनुसार होता है, "नियत साफ मुराद हासिल" ठगी ज्यादा देर तक नहीं चल सकती, 'Honesty is the best policy" ईमानदारी उत्तम नीति है, ठगी से पैसा कमा भी लिया तो बुरे कामों में ज़ाया हो जाता है, "Ill got ill spent" 'माले हराम बूद बजाए हराम रफ्त" खराब ढंग से आया पैसा खराब ढंग से गया, बर्कत शान्ति, सन्तोष उसी पैसे में है जो नेक कमाई का हो। जो सचाई और मेहनत से कमाया जाये। समृद्धि सन्तोष से आती है। किसी के पास करोड़ों हों फिर भी व्याकुल हो ऐसी समृद्धि किस काम की?

नेक कमाई करले भाई

अन्दर बाहर खूब सफाई

गुरुकुल कांगड़ी को सेवायें—

श्री पं० सुखदेव जी वेदालंकार

गुरुकुल कांगड़ी के स्थापन होने से पूर्व अनेक गुरुकुल प्रेमियों के मन में एक आदर्श गुरुकुल की कल्पना थी, जो कि सब दृष्टियों से पूर्ण कही जा सके। परिणामस्वरूप गुरुकुल से जब दो ब्रह्मचारी सब से पूर्व स्नातक बन कर संसार में आये तब इस प्रकार के श्रद्धालु महानुभाव उन स्नातकों की प्रत्येक गतिविधि को बड़े आश्चर्य तथा ध्यान से देखते थे, यहां तक कि जब वे किसी स्नातक को हंसते हुए भी देख लेते थे तो उनको आश्चर्य होता था, और उनके हंसने को भी गुरुकुल के भक्त आक्षेपयोग्य समझते थे। क्यों कि गुरुकुल के स्नातक को कर्तव्य के सिवाय किसी और चीज़ का विचार भी नहीं करना चाहिये उसको तो २४ घंटे देश सेवा ही करनी चाहिये परन्तु समय बीता और गुरुकुल से शिक्षा प्राप्त नवयुवक जनता के सामने आये और वे उन सब आदर्शों को पूरा न कर सके जिनकी कि उन से आशा की गई थी. इस अवस्था में गुरुकुल के किन्हीं प्रेमियों को दुःख हुआ; और अन्त में स्थिति यहां तक पहुंची, कि गलत-समझी के कारण कुछ लोग गुरुकुल से निराश हो गये। इसके बाद इस विषय पर समय २ पर लोगों ने अनेक प्रकार के विचार प्रकट किये और अब तक गुरुकुल पर अनेक विध समालोचनायें की जाती हैं। यहां पर केवल उन्हीं बातों पर विचार किया जायेगा, जो कि देश तथा धर्म की सेवा के रूप में गुरुकुल ने कीं। वे बातें लेख में नहीं आ सकेंगी, जो कि गुरुकुल के आदर्श स्वरूप हैं और जिनको गुरुकुल अब तक पूर्ण रूप से क्रिया में नहीं ला सका है। अर्थात् गुरुकुल के इतिवृत्त के उज्ज्वल भाग पर प्रकाश डालने का ही प्रयत्न किया जायेगा।

गुरुकुल की स्थापना जब हुई थी उस समय देश में घोर अन्धकार छाया हुआ था तथा शारीरिक दासता के साथ २ मानसिक दासता भी देश में बढ़ रही थी, उस समय एक महात्मा ने गंगा के पवित्र तट पर 'ओ३म्' की पताका हाथ में लेकर देश और संस्कृति के कल्याण तथा पुनरुद्धार के लिये गुरुकुल की स्थापना की थी। उस समय विदेशी शासन का आतंक देश में इतना छाया हुआ था कि राजसत्ता से पृथक होकर किसी भी कार्य या संस्था के संचालन की किसी को कल्पना भी नहीं होती थी, तथा गुरुकुल को सरकारी शिक्षा के विद्रोह के रूप में समझा गया, तथा गुरुकुल पर विदेशी शासकों की सन्देह युक्त दृष्टि रहने लगी। उस अवस्था में भी गुरुकुल फला फूला; तथा उसने देश की जितनी सेवायें की उतनी सेवायें कोई भी अन्य शिक्षणालय नहीं कर सका है; यह बात निर्विवाद रूप से स्पष्ट है। उस समय गुरुकुल ने एक अनहोनी बात अपने आचरण द्वारा देश के सामने रक्खी, जिसकी क्रियात्मकता को ३५ वर्ष बाद भी देश के विद्वान् कठिनता से समझ रहे हैं। वह बात थी हिन्दी (राष्ट्रभाषा) द्वारा उच्च शिक्षण। शिक्षा के क्षेत्र में यह एक क्रान्तिकारी परीक्षण था, जिसको कि गुरुकुल ने सफलता पूर्वक किया और इसप्रकार देश की महान् सेवा की।

गुरुकुल क्योंकि आर्यसमाज की संस्था है। अतः कुछ अन्य मतावलम्बियों का ऐसा विश्वास था कि शायद गुरुकुल में साम्प्रदायिकता पूर्ण शिक्षण हो, तथा परिणाम स्वरूप गुरुकुल से शिक्षा प्राप्त नवयुवक साम्प्रदायिक असहिष्णुता को अपने से न निकाल सकें। वर्तमान समय में भी कई सज्जन जो कि गुरुकुल को वास्तविक रूप से नहीं जानते, और गुरुकुल के किसी प्रकार के सम्पर्क में कभी नहीं आये, वे इस विषय में अपने भ्रान्तिपूर्ण विचारों को अब भी रखते हैं—किन्तु वास्तविकता इस विषय में यह है कि इस विषय में गुरुकुल का शिक्षण आश्चर्य जनक रूप से अपने आदर्श के निकट रहा है। गुरुकुल के स्नातक में जन्म की जात पात के प्रति विरोधी भावना होती है जो इस संकीर्ण मनोवृत्ति की विरोधी होती है. अनेक स्नातकों को तो विद्यार्थी अवस्था के अन्ततक अपनी जातपात के विषय में पूरा ज्ञान भी नहीं होता। इसके अतिरिक्त हिन्दुओं में जो अनेक सम्प्रदाय हैं, उनके विचारों के प्रति गुरुकुल से शिक्षित प्रत्येक व्यक्ति की अन्दर उदार भावना होती है। अस्पृश्यता के विषय में तो गुरुकुल में अबतक जिस प्रकार का वातावरण तथा आचरण रहा है वह आदर्श से कम नहीं कहा जा सकता, किसी भी अछूत जाति के लड़के के प्रति गुरुकुल में भेद भाव सदा असम्भव रहा है। वर्तमान समय में भी गुरुकुल में ऐसे दृष्टांत हैं कि कई हरिजन बालकों के विषय में उनके सहपाठियों को बहुत समय तक ज्ञान भी नहीं होता, तथा अन्त तक उनके प्रति भ्रातृभाव रहता है—इस विषय में गुरुकुल में जो बात सारी हिन्दुजाति के प्रति है, वही बात भारत के अन्य सम्प्रदायों (मुसलमान आदि) के प्रति भी है। जेलों में गुरुकुल से शिक्षा प्राप्त ब्रह्मचारी मुसलमानों से आहार व्यवहार में बिना भेद भाव किये बरताव करते रहे है, इसी प्रकार के दृष्टान्त अन्यत्र भी उपलब्ध हैं। राजनैतिक दृष्टि से भी तथा मानव धर्म के विचार से भी यह बात देश में आवश्यक और हितकर है।

किसी भी देश के लिये सब से अधिक महत्व पूर्ण तथा आवश्यक बात सदाचार की वृद्धि है, जिस पर कि देश की उन्नति आश्रित है. जिस देश में आचार का ह्रास होता है, उस देश का नाश निश्चित है व्यक्ति के आचार से देश का आचार बनता है, जिस प्रकार कि जिस मकान की ईंटें अन्दर से दृढ़ हों उसका स्थायित्व निश्चित होता है। आजकल देश के अग्रणी तथा महापुरुष वैयक्तिक आचार की आवश्यकता बड़े ज़ोर से अनुभव कर रहे हैं और स्पष्ट तथा प्रभावशाली शब्दों में व्यक्त कर रहे हैं। यह तो नहीं कहा जा सकता कि गुरुकुल सदाचार तथा ब्रह्मचर्य के क्षेत्र में पूर्णतया सन्तोष जनक रहा है किन्तु यह बात तो निर्विवाद सिद्ध है कि इस विषय में किसी अन्य शिक्षण संस्था के लिये मार्ग दर्शक रहा है।

गुरुकुल का एक महान् कार्य वैदिक संस्कृति की सेवा है, यह संस्कृति की शिक्षा देने द्वारा सम्पन्न किया गया है। संस्कृत भाषा के पढ़ने से हमें वैदिक संस्कृति के ग्रन्थों के पढ़ने का सामर्थ्य तथा अवसर प्राप्त होता है, और हम जान सकते हैं कि हमारे पूर्वज किस प्रकार के आचार तथा विचार रखते थे, और उनके सिद्धान्त तथा आदर्श क्या थे; इस प्रकार हम अपने इतिहास के साथ अपनी अनुकूलता स्थापित कर सकते हैं। इसके साथ २ वैदिक धर्म की शिक्षा द्वारा भी गुरुकुल ने वैदिक संस्कृति की सेवा की है।

गुरुकुल के इतिहास को यदि इस दृष्टि से देखा जाय कि देश में समय २ पर नानाविध संकट उपस्थित होने पर गुरुकुल ने अनेक प्रकार से अपना कर्तव्य पालन करने का जो प्रयत्न किया है उसमें उसने कहां तक अपना कर्तव्य पालन किया है तो मालूम पड़ेगा कि गुरुकुल का इतिहास इस विषय में बहुत सन्तोषप्रद रहा है। गुरुकुल के स्थापन से ही गुरुकुल समीपस्थ ग्रामों की नानाविध सेवायें लगातार तथा संकट काल में विशेष रूप से करता रहा है। जब महात्मा गान्धी जी ने दक्षिण अफ्रीका में सत्याग्रह किया था उस समय कुल के सब वासियों ने हरिद्वार के समीपस्थ दुधियाबन्ध पर मजदूरी करके सत्याग्रह की सहायतार्थ एक अच्छी धन राशि भेजी थी। उसके बाद समय २ पर देश में दुर्भिक्ष दि संकट आने पर गुरुकुल सदा अपनी सेवायें सब प्रकार से देता रहा है। प्रथम असहयोग आन्दोलन के समय भी गुरुकुल का उससे सब प्रकार का मानसिक सहयोग रहा है।

सन् १९३० में जब महात्मा जी ने राष्ट्रीय महासभा की ओर से पुनः सत्याग्रह आन्दोलन उठाया तब गुरुकुल के स्नातकों के दल ने उस में बड़ा भाग लिया, तथा स्थिति बढ़ने पर ब्रह्मचारियों ने भी महाविद्यालय विभाग का अधिक अंश करके सत्याग्रह आन्दोलन में भाग लिया, तथा इस आन्दोलन में भाग लेने पर जाना कि ब्रह्मचारियों ने अन्य अनेक कष्ट सहन किये वहां पर अपने तीन भाइयों का अत्यन्त वियोग (मृत्यु होने द्वारा) भी सहन किया। उसके बाद सत्याग्रह स्थगित हो गया; और १९३२ में जब आन्दोलन चला तो उसमें भी महाविद्यालय विभाग के चौथाई ब्रह्मचारी गुरुकुल का अध्ययन बन्द करके जेलों में गये, और इस प्रकार उस अवसर पर भी गुरुकुल ने अपना कर्तव्य पालन किया।

इस प्रकार गुरुकुल ने विशेष रूप से समय २ पर तथा सामान्य रूप से लगातार ही देश की अनेक विध सेवायें की हैं, जो कि किसी भी राष्ट्रीय अथवा धार्मिक संस्था के गौरव का विषय है। इसके अतिरिक्त गुरुकुल के स्नातकों ने जो काम किया है और कर रहे हैं, वह तो स्पष्ट ही है। लिखने का अभिप्राय केवल इतना ही है कि अनेक अपूर्णताओं के होते हुए भी गुरुकुल ने देश की पर्याप्त सेवा की है, तथा इस प्रकार गुरुकुल का भविष्य भी उज्वल है।

मेरे दिल में रोज दिवाली !

[श्री सत्यभूषण 'योगी']

ना जाने कैसा मेरा दिल
जलता ही रहता पल प्रतिपल
फिर भी हाय, नहीं मिटती है जीवन की अंधियाली काली!
मेरे दिल में रोज दिवाली !

× × ×

जलना अरे, यही तो जीवन !
घोर मरण ही है ठण्डापन.
पर इस जलने की विधि अद्भुत, इस जलने की बात निराली
मेरे दिल में रोज दिवाली !

× × ×

दिल बन वाष्प अश्रु हो ढलना !
गाल अहा फिर मेरा जलना !!
अन्दर बाहर मैं जलता हूं, स्यात् राह दिख जाए आली !
मेरे दिल में रोज दिवाली !

बादल आये

[श्री ब्रह्मचारी नरोत्तमदेव, दशम श्रेणी]

बादल आये बादल आये
लो ठण्डी ठण्ठी हवा चली
कड़की तड़पी चमकी बिजली,
छा गई घटा काली काली,
लग गई झूमने कली कली,
लग गये नाचने मोर सुघर,
रंगीन परों को फैलाये। बादल आये।
शाखायें नाची लचक लचक
पक्षीगण भागे चहक चहक
लग गया हाल कहने अपना,
अवनी से अम्बर सिसक सिसक
संतप्त हृदय का ताप मिटा,
खिल गये उर-सुमन कुम्हलाये।
बादल आये बादल आये

देशदूत — (साप्ताहिक) वार्षिक मू. ३।।)

सम्पादक— ठाकुर श्री नाथसिंह
प्रकाशक— इण्डियन प्रेस प्रयाग

इण्डियन प्रेस ने गत ३० वर्षों में मासिक सरस्वती द्वारा हिन्दी साहित्य की जो अद्वितीय सेवा की है उस से कोई भी हिन्दी भाषी अपरिचित न होगा। अब इस ने साप्ताहिक देशदूत निकालना शुरु किया है इस इस साप्ताहिक की विशेषता जो कि अन्य हिन्दी साप्ताहिकों में नहीं पायी जाती उपयोगी चित्रों की बहुतायत है। इसके अतिरिक्त हमारे गांव, देश विदेश के समाचार मातृमन्दिर, हास परिहास, स्वास्थ्य और व्यायाम, उद्योगधन्धे, देशी रियासत आदि पत्र के स्थायी अंग हैं। पत्र की दृष्टि राष्ट्रीय है। छपाई भी सुन्दर है। पत्र ने अभी से साप्ताहिक पत्रों में विशेष स्थान बना लिया है। हम सहयोगी की हृदय से सफलता चाहते हैं।

गु रु कु ल

१२ कार्तिक शुक्रवार १९९५

प्रेमी पाठकों व ग्राहकों से

गुरुकुल साप्ताहिक गत तीन वर्ष से निकल रहा है। गुरुकुल जगत से सम्बन्ध रखने वाले समाचार, विचार तथा विविध हल चलों को गुरुकुल प्रेमियों तक पहुंचाने के लिये ही इस पत्र का प्रारम्भ किया गया था। इस दृष्टि से यह पत्र पूर्णतया सफल हुआ है ऐसा हम मानते हैं। प्रारम्भ से ही गुरुकुल में पढ़ने वाले विद्यार्थियों के संरक्षकों, स्नातकों व अन्य सहायकों का आश्रय इस पत्र को यथेष्ट रूप में मिलता रहा है सच तो यह है कि यदि इन महानुभावों की कृपा न होती तो शायद "गुरुकुल पत्र" पनप भी न पाता। इन सब का आश्रय पाकर यह पत्र पर्याप्त देर तक स्वावलम्बी रह सका है इस से ही हमें प्रसन्नता है, साथ ही इसके लिये गुरुकुल के अधिकारी, सब प्रेमी पाठकों व ग्राहकों के आभारी हैं। और पहले तीन वर्षों में यह क्रम रहा है कि इस साल के शुरु में गुरुकुल के स्नातकों, संरक्षकों तथा अन्य प्रेमियों को पत्र का वी. पी. भेजते रहे हैं और वे सब भाई अपना कर्तव्य समझ कर इसे छुड़ा कर अपने गुरुकुल पत्र के प्रति निज आस्था को प्रकट करते रहे हैं। अनेक संरक्षक व अन्य प्रेमी पाठक स्वयं भी धन भेज कर इस पत्र की मदद करते रहे हैं। किन्तु इस वर्ष प्रबन्ध की कुछ शिथिलता के कारण हम साल के शुरू में "गुरुकुल पत्र" वी० पी० से नहीं भेज सके। इसका परिणाम यह हुआ कि इस वर्ष अधिकांश ग्राहकों व प्रेमी पाठकों की वार्षिक भेंट पाने में हम असमर्थ रहे हैं। इस ढील के कारण पिछले महीनों में हमें गुरुकुल के संचालन में कुछ कठिनाइयां भी हुई हैं। इस लिये हमने यह निश्चय किया है कि दो सप्ताह के बाद स्नातकों, संरक्षकों व अन्य प्रेमी पाठकों के पास "गुरुकुल पत्र" क्रमशः वी० पी० द्वारा भेजा जाये। हमें आशा ही नहीं, निश्चय है कि इन दो सप्ताहों में हमारे हितैषी भाई पत्र का इस वर्ष का चन्दा जो केवल २॥) है हमें मनीआर्डर द्वारा भेजने की कृपा करेंगे अन्यथा हमें इजाज़त देंगे कि हम उन्हें वी० पी० भेजकर उन से यह तुच्छ भेंट प्राप्त करलें- आशा है कि गुरुकुल के प्रेमी पाठक हमारे इस निवेदन की ओर ध्यान देंगे और शीघ्र ही २॥) वार्षिक चन्दा भेजने की कृपा करेंगे।

श्री पं० भारतभूषण जी की विदाई:—

विगत १५ अक्टूबर को मान्य पण्डित जी बम्बई से अफ्रिका के लिये रवाना हो गए। अफ्रिका-प्रवास के पूर्व पं० जी गुरुकुल भी आये थे। समस्त कुल वासियों की सभा में पं० जी को अभिनन्दन पत्र दिया गया। पिछले तीन वर्षों से पं० जी गुरुकुल की अथक सेवा कर रहे थे। जिस लगन से उन्होंने "गुरुकुल पत्र" का संचालन किया वह सर्वथा स्तुत्य है। इन सब से बढ़ कर पं० जी में तप और त्याग की उत्कृष्ट भावना थी जो पग-पग पर झलकती थी। उनका सरल व्यवहार सबको स्मरणीय रहेगा। अफ्रिका के भारतीय भाइयों ने उन्हें साग्रह अपने यहां बुला लिया है। आशा है पं० जी जहां कहीं भी सेवा करेंगे अपने परिश्रम और अध्यवसाय से ऊंचा स्थान प्राप्त करेंगे। और कुल के नाम को उज्ज्वल करेंगे।

कुछ अपना वक्तव्य:— श्री पं० भारतभूषण जी के अफ्रिका चले जाने के पश्चात् 'जो बोले सो कुण्डा खोले' की कहावत के अनुसार यह कार्य हमें ही वहन करना पड़ा है। यद्यपि हम इसके बिलकुल ही अयोग्य थे। "गुरुकुल" पत्र के सम्पादन के विषय में पंडित जी का प्रयत्न श्लाघनीय था। यह किसी से छिपा नहीं है। इस कार्य को सम्भालते हुए हमें संकोच हो रहा है, कि हम कहीं स्खलित न हो जांय। हमें आर्य जनता, मान्य कुल बन्धु गण तथा संरक्षक महानुभावों का पूरा भरोसा है तभी इस कार्य भार को धारण करने के लिये हम अग्रसर हुए हैं। आशा है आप पूरी शक्ति से हमारा सहयोग देंगे।

सम्पादक।

दो स्नातक बन्धु जेल में

दिल्ली में टाउनहाल के निकट एक छोटा सा शिवमन्दिर है। बाबा श्यामपुरी ने यह मन्दिर चुंगी की ज़मीन में बना लिया है यह दिल्ली चुंगी के अधिकारियों का दावा रहा है। इस सम्बन्ध में बाबा जी तथा चुंगी वालों में मुकदमे बाज़ी भी चलती रही है जिस में चुंगी वाले हार चुके हैं। जब कानूनी तौर पर वे नाकामयाब हुए तो उन्होंने सरकार का आश्रय लिया। दिल्ली का डिप्टीकमिश्नर ही वहां की चुँगी का प्रधान भी है अतः "सइयां भये कोतवाल डर काहे का" चुँगी वालों की बन आयी और सरकारी हुक्म के मुताबिक शिवमन्दिर की पूजा बन्द करदी गयी और बाबा श्यामपुरी, हुक्म उदूली के नाम पर ९ महीने के लिये जेल में ठेल दिये गये। अब वहां मन्दिर में पूजा करने के नाम पर जो सत्याग्रह चल रहा है, सारे देश की सहानुभूति उसके साथ है। थोड़ी देर के लिये यदि हम यह मान भी लें कि चुंगी की ज़मीन पर मन्दिर बनाकर बाबा श्यामपुरी ने उचित नहीं किया फिर भी यह तो स्पष्ट ही है कि वह मन्दिर काफ़ी अरसे से वहां था और उसमें नियम पूर्वक पूजा हुआ करती थी। अदालती निर्णय के प्रतिकूल होने पर भी केवल धींगामस्ती से हिन्दुओं के पूजा करने के मन्दिर के अधिकार को छीन लेने की हिम्मत दिल्ली की सरकार ही कर सकती है। सरकार के इस रुख़ के खिलाफ़ विशाल रूप में सत्याग्रह का आयोजन होना चाहिये या नहीं इस बारे में हम कुछ नहीं कहा चाहते। किन्तु जो भाई दिल्ली सरकार के इस अवैध तरीके के आधार पर छीने गये मन्दिर पूजा के

अधिकार को पुनः प्राप्त किया चाहते हैं उन की हिम्मत की दाद दिये बिना भी हम नहीं रह सकते। इस सम्बन्ध में हमारे दो कुल बन्धु श्रीहरिश्चन्द्र विद्यालंकार (सम्पादक हिन्दू दिल्ली) तथा श्री चन्द्रगुप्त जी वेदालंकार भी आज दिल्ली सरकार के मेहमान हैं उन्होंने हिन्दुओं के इस पूजा अधिकार के लिये जो प्रयत्न किया है जो सेवा की है, दिल्ली सरकार ने उसके बदले उन्हें कारागार भेजा है। जनता के सेवक शासकों के इसी प्रकार मेहमान बना करते हैं। हमारे ये दोनों बन्धु भी जनता की सेवा में दिल्ली सरकार के इस प्रकार कृपापात्र बने इस के लिये उन्हें बधाई है। आशा है कि जेल से रिहा होने के बाद यह दोनों भाई जाति की सेवा में अधिक से समर्थ हो सकेंगे।

चीन का स्वाधीनता युद्धः—

जैकोस्लोवेकिया के प्रजातंत्र अङ्ग भंग के बाद जापान, चीन में चहुंओर से अपनी पूरी शक्ति के साथ अपने पैर पसारने लगा है। जापान का इस समय पूरा ध्यान चीन की नयी सैनिक राजधानी हांको पर केन्द्रित हो गया है। यूरोपियन राष्ट्रों की साहस हीनता का परिचय पाकर जापान हांगकांग में अंग्रेजों की नाक के नीचे से ही दक्षिणी चीन को हस्तगत करने के प्रयत्न में लगा है। यांग्त्सी नदी का उत्तर पूर्व का आक्रमण भी जारी है। केण्टन पर जापानी सेनाओं ने कब्जा कर लिया है। और हांको पर जापान का आक्रमण होने जा रहा है। चीन का यह स्वाधीनता युद्ध है। वह इस में सम्मान पूर्वक अपनी स्थिति के लिये जान की बाजी तक लगाने को तैयार है चांगकाईशेक के में तृत्व में चीन की विभिन्न शक्तियां जापान का हरतरह से विरोध कर रही हैं। जापान के नये आक्रमण से चीन को बाह्य सहायता का मिलना बन्द हो गया है। चीन का आज जीवन मरण का प्रश्न है। पिछले दिनों चीनी युद्ध विशारदों ने जापान के आक्रमण को विफल कर प्रत्याक्रमण प्रारम्भ किया था। परन्तु जापान चीन की विजय का दृढ़ संकल्प किये हुए है वह अपना सम्पूर्ण धन,जन, बल, इस में होम कर रहा है। यह सब क्यों।

प्रस्तुत पुस्तक के यशस्वी लेखक श्री कृष्णचन्द्र विद्यालंकार ने संक्षेप में चीन के पूर्व-इतिहास को बताते हुए चीन के अंग भंग की तैयारी, जापान की वर्तमान आक्रमण नीति का उद्देश्य बताते हुए इसी प्रश्न का उत्तर दिया है।

पुस्तक चीन के सुनहरे मध्याह्न काल से प्रारम्भ होती है। विदेशियों की लूट खसोट सनयात सेन और प्रजातंत्र की तैयारी, विद्रोह और प्रजातंत्र की स्थापना का वर्णन कर लेखक चीन के गृहयुद्धों से लाभ उठा जापान की गृध्र दृष्टि का वर्णन करता है।

पुस्तक के अन्त में यूरोपियन राष्ट्रों की विवशता, चीन की कमजोरी, और स्वतंत्र शक्तिशाली साम्यवादी चीन का ब्रिटेन पर आतंक जापान की निश्चित सैनिक पुरोगम की आलोचना करते हुए प्रकृत चीन जापान के युद्ध की विवेचना की गयी है।

भारत के स्वतन्त्रता संग्राम में चीन जापान युद्ध से काफी सबक मिल सकता है। महात्मा बुद्ध के सिद्धान्तों को मानने वाले दो देश किस प्रकार साम्राज्य वाद के परिणाम स्वरूप दुःख भागी हो रहे हैं। अहिंसा को अपनाने वाले भारत की दृष्टि इधर भी पड़नी चाहिये।

'चीन का स्वाधीनता युद्ध' विजय-पुस्तक-भण्डार अर्जुन प्रेस दिल्ली की क्रान्ति ग्र० माला का प्रथम पुष्प है। लेखक श्री कृष्णचन्द्र जी विद्यालंकार हैं। सम्पादन. अन्तरराष्ट्रीय परिस्थिति के विद्वान् श्री इन्द्र जी विद्यावाचस्पति ने किया है। २१२ पृष्ठ मूल्य १)

ससार से जानकारी रखने के इच्छुकों और विश्व इतिहास की झलक लेने वालों के लिये यह पुस्तक बहुत उपयोगी बन पड़ी है। श्री नरेन्द्र

वे कैसे मधुमय दिन थे

(ले० श्री अनन्त 'उपस्नातक')

मैं बहुत कम लिखता हूं, शायद इस लिये कि लिखने में भी परिश्रम करना पड़ता है। आज ज़रा यूं ही लिखने को दिल कर गया। लिखने को बैठा तो एक पुरानी घटना याद हो आई।

उस दिन शायद मनोहर दिन था। रात भर बारिश हो कर चुकी थी। सवेरा हो आया था पर बादलों के कारण अभी सूर्य की किरणें जमीन पर नहीं आसकी थीं। अब भी हलकी २ छोटी बूंदें झूलती हुई जमीन पर उतर रही थीं। गरमियों के दिन थे। इन दिनों ऐसा एक दिन हो जाना बड़े सौभाग्य की बात थी। भला आज कौन पढ़ता। लाचार, छुट्टी कर दी गई।

हां, तो उस दिन मनोहर दिन था। घूमने का मुझे शुरु से ही बड़ा शौक है, उस पर आज ऐसा दिन मिल गया। मैं घूमने के लिये चल खड़ा हुआ। मुख से सीटी बजाता, टहलता मैं चला जा रहा था। कुल के छोटे २ भाई मैदानों में खेल कूद रहे थे। कई बगीचों में काम कर रहे थे तो कई झूला झूल रहे थे। आज भी कुछ पढ़ाकू लड़के एकान्त ढूंढ पढ़ने में निमग्न थे। मुझे यह बात अच्छी नहीं लगी। दिल हुआ कि जाकर कान ऐंठ दू। इतने में एक लड़का भागा आया।

भाई जी कुछ पूछना है, डरते २ उसने कहा। मैंने कहा—बेधड़क पूछो, क्या पूछना है?

उसने बढ़ कर किताब हाथ में थमाते हुए एक जगह इशारा किया।

………………वर्णन, भाई जी इसका क्या अर्थ है? उसने प्रश्न किया।

मैंने एक सरसरी निगाह से पुस्तक को देखा, आर्य-भाषा पाठावली, गौ का पाठ, पाठ एक, इसका वर्णन ……। सहसा ध्यान हो आया ठीक यही शब्द हमने पण्डित जी से भी पूछा था जब हमने उनसे इसका अर्थ

पूछा था तो वे कितने सक पका गये थे। बासियों शब्द उन्होंने इधर के बोले पर हमारी समझ में खाक नहीं आया था। जब उन से सन्तोष नहीं हुआ तो औरों से पूछते फिरे थे और सबका वही पण्डित जी का सा हाल हुआ था। इस पर हमें याद है हमने अपनी खूब डींग हांकी थी।

धीरे २ वह गुज़रा जमाना आंखों के आगे चित्रपट की न्याईं घूमने लगा। .... हमारे रहने के स्थान के आगे एक बड़ा सा आम का पेड़ था। पंडित जी उसी के नीचे हमें पढ़ाया करते थे। एक दिन एक लड़के ने ऊपर से टपका एक आम वहीं चूस लिया था, इस पर पण्डित जी ने उसे खूब मारा था। वह बड़े सिर वाला मदन लड़का बड़ा ही शैतान था। उस दिन उस पर खूब सैंटियां पड़ी थीं। भाई जी आप अर्थ तो बताते ही नहीं, रूठते हुए लड़के ने ज़ोर से कहा।

वर्णन ...... वर्णन ...., इसका अर्थ है ....; इसका क्या अर्थ बताऊं, इतने सरल शब्द का भला मैं क्या अर्थ करूं?

इसका अर्थ है ......डिस क्रि...प...श...न। मैं यह क्या कहने लगा?

सुन भाई सुन, मैंने खांसते हुए कहना शुरु किया। इसका अर्थ तो मुझे मालूम नहीं पर इसका मतलब यह है कि किसी चीज़ के बारे में सिलसिले वार इस तरह से कहना कि उस चीज का हमें पूरा २ पता चल जाये। मैंने संतोष की सांस ली, शायद मैं अपने प्रयत्न में सफल रहा। मैं उसका मुख देखने लगा।

बच्चे ने अनमनापन दिखलाते हुए फिर पूछा भाई जी कोई छोटा सा शब्द बतला दीजिये।

इसके लिये छोटा सा शब्द ......। हां, हमने भी तो अपने पंडित जी से इसी छोटे शब्द के लिये आग्रह किया था। मैं पुस्तक के पन्ने पलटने लगा।

"आम" ...... "ईश्वर" ......सच्चा बालक ...... समय ....ओह, यही सब चीजें हमने भी तो पढ़ी थीं। "समय जो है चला जाता न फिर वह लौट कर आता" .... मैं गुनगुनाने लगा। उन दिनों इसको हम लोग बैठाकर खूब ... से गाया करते थे।

......."काली कोयल बुरी बिचारी, तदपि गुणों से सब को प्यारी" गाते २ हम लोग कोयल के लिये कितने करुणार्द्र हो जाया करते थे। ....'पुनः करो उद्योग', पण्डित जी ने एक फेल लड़के को इसी से ढाढ़स बंधाया था।

सारा गुज़रा जमाना आज आंखों के सामने से गुज़रने लगा। हम भी छोटे २ होते थे। बरसात में पास के गन्दे नाले में हम कितनी खुशी से तैरते फिरते थे। छुट्टियों में चिड़ियों के घोंसलों में बच्चों और अण्डों को ढूंढने में कितना मजा आता था। एक दिन वशिष्ठ का सिर जब एक कौए ने नोच लिया था तब हम कितना हंसे थे। एक गिलहरी का बच्चा हाथ से गिर जाने के कारण मर गया था, उस पर हम कितने उदास हो गये थे।

छुटपन की यह उछल कूद, हंसना गाना दिल में गुदगुदी पैदा करने लगे। आज हम बड़े हो गये हैं। दिन रात पढ़ाई—लिखाई, झगड़ा-झमेला, चिन्ता, इनसे फुरसत नहीं। वह कैसा निश्चिन्त जीवन था।

वे कैसे मधुमय दिन थे ... 'द्रुम फूलों से लद जाते थे, विहग वनों में भर जाते थे, हम उन में हंसते गाते थे, वे कैसे मधुमय दिन थे'.........। मैं गुनगुनाने लगा। मैंने बच्चे की ओर देखा, वह बड़ी २ आंखें फाड़े मेरी ओर देख रहा था। वही भोलापन, निष्कपटता। यह भी एक दिन मेरे जैसा हो जायेगा। फिर यह भी... भाई जी वर्णन ....। ओह, वर्णन ......। मेरा ध्यान टूट गया।

'भय्या मुझे भी इसका छोटा अर्थ तो मालूम नहीं, अपने पंडित जी से पूछना'— मैंने कहा। 'भाई जी आप क्या सोच रहे थे', उत्सुकता से उसने पूछा।

'यही ... कुछ नहीं, जाओ खेलो'—मैंने प्यार से कहा। बच्चा कूदता हुआ साथियों में खेलने दौड़ गया।

गुज़रे हुए ज़माने की यह स्मृति अब भी मन में एक टीस सी उत्पन्न कर देती है।

बुद्ध धर्म का प्रभाव व उसकी देन—

[ले० ब्र० सत्यव्रत जी द्वादश]

[गताङ्क से आगे]

उस समय की परिस्थियां ही ऐसी थी जिस से विवश होकर महात्मा बुद्ध को आत्मा, परमात्मा पर दीर्घकाल तक मनन करते रहना समुचित न जंचा। यद्यपि आज कल बुद्ध धर्म के विषय में यह गलतफ़हमी आम जनता में फैली हुई है कि संसार के बड़े २ यथा ख्रीस्ती धर्म व बुद्ध धर्म नास्तिक हैं। पर आश्चर्य बुद्ध धर्म के विषय में यह ठीक नहीं है। धम्मपद को आद्योपान्त पढ़ने से यह प्रतीत होता है कि महात्मा बुद्ध आत्मा परमात्मा को मानते थे। यह बात ठीक है कि उन्होंने उस समय एकमात्र परमात्मा की रट लगने के लिए ज़ोर न दिया हो। दूसरी बात यह कि उस समय की निष्कर्मण्यता को उखाड़ फैंकने के लिए एवं ब्राह्मणों के धर्माभास व आडम्बरों का परिहार करने के लिए बुद्ध विवश थे। कि वे उन्नति के लिए सर्व प्रथम आचार विचार में नवीनता लाए।

महात्मा बुद्ध एक जगह कहते हैं कि हे शिष्ययदि तुम्हें तीर लग जाए तो बिना तीर निकाले ही यह तीर कहां से आया, किसी ने मारा, विद्वेष से मारा या अचानक गलती से लग गया, यह तीर लोहे का बना हुआ है या मिश्रित धातु का, विष बुझा है या निर्विष इत्यादि बहुत प्रश्न पूछना अच्छा है या तीर एक दम निकाल लेना। शिष्य ने कहा- तीर एक दम निकाल देना अच्छा है।

अभिप्राय यह है कि हमें किसने उत्पन्न किया, हम कहां से टपक पड़े इत्यादि अनुचित प्रश्नों को छोड़ कर

अपने काम में लग जाना ज्यादा बेहतर है। घातक या घृणित विधि को हटाने के लिए, अन्य सब चीज़ों का उस समय के लिए त्याग करके, कटिबद्ध होकर दुगने ज़ोर से मुकाबला करना ज्यादा अच्छा है। अन्यथा मुकाबला शिथिल हो जाता है।

दूसरी मिसाल यह है कि यदि नदी वर्षा के कारण खूब किनारे तक बढ़ी हुई हो, और किसी व्यक्ति को आवश्यक काम के लिए उस पार से इस पार आना हो तो कहे 'ओ परले किनारे यहां चले आओ।' क्या यह प्रार्थना या ज़ोर युक्ति संगत है जिस प्रकार बिना प्रयास के वह नदी को पार नहीं कर सकता एवमेव बिना निष्काम भाव से कर्म किए आदमी मूर्खता पूर्ण प्रार्थना या डाट डपट से कभी भी परमात्मा को नहीं प्राप्त कर सकता। इस लिए कर्म ही प्रधान है। उसी को मुख्यता देकर आगे बढ़ते चलो।

इस प्रकार लग भग आधी शताब्दी तक अपने अथक परिश्रम एवं भगीरथ प्रयत्न के कारण उनके सिद्धान्तों उपदेशों व शिक्षाओं का इतना गहरा प्रभाव पड़ा कि लोग शान्ति पूर्वक निर्वाण के आनन्द का आस्वादन करते हुए सुख से जीवन पथ पर प्रयास करते रहे। बुद्ध ने मन्दिरादि से लोगों का कतई विश्वास हटा दिया। जिससे धर्म के नाम पर होने वाली अनेक विपत्तियों से लोग बच गए। वस्तुतः भ्रमात्मक धर्म के कारण जितनी आपत्तियां झेलनी पड़ती हैं एवं सामान्य जनता कितने दुःखों का शिकार होती है वह अगण्य है। इस प्रकार महात्मा बुद्ध ने सत्य, अहिंसा, निष्काम कर्म आदि सञ्जीवनोपयोगी आदेशामृत पिला कर जन सम्प्रदाय को उन्नति का मार्ग दिखाया।

महात्मा बुद्ध के बाद भी अशोक सम्राट ने देश विदेश में बुद्ध धर्म का प्रचार किया। उसका यह असर हुआ कि सम्पूर्ण भारत वर्ष जावा, सुमात्रा, लंका जापान, चीनादि देशों में बुद्ध धर्म की पताका फहराने लगी। पर ज्यों २ समय बीतता गया बुद्ध धर्म के अनुयायियों के द्वारा नमक मिर्च मिलाने से सात्विकता में तामसिकता की भी गन्ध आने लगी जिससे भारत वर्ष के लोगों का इस खिचड़ी धर्म से विश्वास हट गया फिर भी आज दुनिया का ¼ भाग बुद्ध धर्म को स्वीकार करता है। बुद्ध धर्म का सूर्य अभी अस्ताचल को नहीं गया। मुझे विश्वास है कि बुद्ध धर्म अनुयायी इस उन्नति के युग में जबकि यत्र तत्र सर्वत्र प्रगति की धाराएं द्रुततर वेग बह रहा है उसमें अपने को भी निमग्न करके पुनरपि बुद्ध धर्म के सच्चे सिद्धान्तों का देश २ में प्रचार करेंगे

[समाप्त]

गुरुकुल समाचार

ब्र० गोविन्द १३ श्रेणी श्वास, ब्र० धर्मवीर ११ श्रेणी प्रवाहिका, ब्र० वीरेन्द्र (मेरठ) ४ चोट, ब्र० सुरेशचन्द्र ३ श्रेणी Tonsil, ब्र० गुरुदेव ३ श्रेणी चोट, ब्र० रामनन्दन १ श्रेणी शोथ। अब सब अच्छे हैं।

दीपावलि-समारोह— चिर प्रतीक्षा के बाद दीपावली का त्यौहार आया। कुल में सर्वत्र नई उमंगें दृष्टि गोचर होने लगीं। शरदागम की खुशी में जब दिशाएं स्वच्छ हुईं, हिमालय की शुभ्र तुहिन राशि आंखों को शीतल और हृदय को प्रफुल्लित करने लगी, श्वेतकाश का स्थिर हास प्रकृति को मुस्करित सा करने लगा, गंगा के कल्लोलित जलने साम्र नीलिमा धारण की तब यह कैसे हो सकता था कि ब्रह्मचारियों के हृदय निरुल्लास रहें। दीपावली आई और सबके हृदय आलोकित होगए जल क्रीडाएं तथा स्थल क्रीड़ाएं खूब खुलकर हुईं। विजित भाइयों को पारितोषिक बांटे गए। हाकी में ब्र० महेन्द्र १४ श का दल सर्वविजयी रहा। इसी प्रकार फुटबाल में ब्र० सुरेश १४श का दल, वालीबाल में दया शंकर का दल, तथा ढाह कबड्डी में ब्र० सुरेन्द्र १४ श का दल सर्वविजयी रहा।

सभा—विगत २२ अक्टूबर को अमावस्या के दिन सायं काल ४ बजे से सभा की कार्यवाही प्रारम्भ हुई। प्रारम्भ में बृहद् यज्ञ हुआ। तत्पश्चात् छोटे ब्रह्मचारियों की एक मनोहर गीति के साथ दीपोत्सव का कार्यक्रम शुरू हुआ। सभा भवन खूब सजाया गया था। बड़े और छोटे सभी भाइयों ने बारी २ से ओजस्वी शब्दों में श्री रामचन्द्र जी का और श्री स्वामी रामतीर्थ जी का गुण गान किया। ६॥ बजे अन्धकार हो जाने के कारण सर्वत्र दीप जलाए गए, जिनकी छटा निहारते ही बनती थी। सभा का कार्य क्रम चालू रहा। सभा का कार्यक्रम इतना दिलचस्प था कि जब तक सभा समाप्त न हो गई तबतक कोई भी अपने स्थान से न हिला। बीच में एक छोटी सी घटना यह होगई थी कि एक मोटा सा चूहा न जाने कहां से सभा के बीच आकूदा, और उसने कईयों को काट भी लिया जिससे कुछ अशान्ति सी होगई थी थोड़ी देर बाद वह स्वयं वहां से चला गया। इस सभा के लिये छोटे ब्रह्मचारियों को संगीत का विशेष अभ्यास कराया गया था जिसका श्रेय ब्र० वेदभूषण १४ को है। अगले दिन ऋषि बोधोत्सव भी इसी सज धज के साथ मनाया गया। इस प्रकार इस बार की दिवाली ने हम में नव जीवन तथा नवस्फूर्ति का संचार कर हमारे पथ को अधिक आलोकित किया है।

चौधरी दुलाराम के प्रबन्ध से गुरुकुल प्रेस गुरुकुल कांगड़ी में मुद्रित तथा प्रकाशित।

* ओ३म् *

"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत" Reg. No. A. 2927

गुरुकुल

सम्पादक— साहित्यरत्न पं० हरिवंश वेदालङ्कार

एक प्रति का मूल्य -) [गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख-पत्र] वार्षिक मूल्य २॥)

वर्ष ३] गुरुकुल काङ्गड़ी, शुक्रवार १९ कार्तिक १९९५; ४ नवम्बर १९३८ [संख्या २४

बिहार के माननीय प्रधान मन्त्री गुरुकुल में—

गत २८ अक्टूबर को बिहार के प्रधान मन्त्री श्री बाबू श्री कृष्णसिंह जी गुरुकुल में पधारे। गुरुकुल विश्वविद्यालय के उपाध्यायों और विद्यार्थियों ने आपका शानदार स्वागत किया, जिससे प्रधान मन्त्री अत्यन्त प्रभावित हुए। विश्वविद्यालय के बैण्डबाजे के साथ आपका जलूस निकाला गया और रास्ते भर फूलों व मालाओं से स्वागत किया गया। जलूस की समाप्ति पर प्रधान मन्त्री महोदय ने राष्ट्रीय गीतों और बैण्डबाजे की उत्साह वर्धक ध्वनि के बीच, गुरुकुल भूमि के केन्द्र में स्थित अन्य राष्ट्रिय पताका का उद्घाटन किया। इसके बाद आप स्टाफ व अन्य स्थानीय प्रतिष्ठित नागरिकों के साथ सभा भवन में गए जहां आप को समस्त गुरुकुल वासियों की ओर से मानपत्र दिया गया। कुल वासियों की ओर से प्रधान मन्त्री महोदय का स्वागत करते हुए प्रोफेसर वेदव्रत जी ने बिहार प्रान्त की राजनीतिक और आर्थिक दशा का उल्लेख कर इस बात पर प्रकाश डाला कि किस प्रकार १॥ वर्ष के थोड़े समय में बाबू श्री कृष्णसिंह की अध्यक्षता में कांग्रेसी मन्त्री मंडल ने अनेक कानून व सरकारी आज्ञायें प्रचलित कर अपने प्रान्त की बाढ़, भूकम्प, बीमारी और भूमि के स्थायी बन्दोबस्त से पीड़ित गरीब जनता की दशा सुधारने का प्रशंसनीय प्रयत्न किया है। प्रोफेसर महोदय ने बिहार में कैदियों की रिहाई, प्रेट सर्कुलर और जमींदार किसान समस्या का उल्लेख कर आपकी शासन योग्यता और दृढ़ चरित्रता पर भी प्रकाश डाला। अन्त में, गुरुकुल के अबतक के इतिहास और कार्यों का उल्लेख कर आपने प्रधान मन्त्री महोदय का विश्वास दिलाया कि नव भारत-राष्ट्र-निर्माण के कार्य में गुरुकुल विश्वविद्यालय सब प्रकार से बलिदान करने और सहयोग देने को तैयार है। इसके बाद उपस्नातक ब्रह्मचारी क्षेत्रपाल ने भाव पूर्ण शब्दों में प्रधान मन्त्री महोदय का अभिनन्दन किया और निम्न लिखित अभिनन्दन पत्र पढ़ कर आपकी सेवा में भेंट किया—

मान्य अभ्यागत महोदय!

हमारे परम सौभाग्य हैं कि आज आपने अपने चरण कमलों से इस कुल भूमि को कृतार्थ किया है। आपकी मंगल मूर्ति के दर्शन कर हम जिस अलौकिक आनन्द का अनुभव कर रहे हैं उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। हम शत शत वन्दनों, सहस्र हृदयों तथा अनन्त भावनाओं से हिमाचल के इस अंचल में, पुण्य-सलिला-भगवती भागीरथी के पवित्र तट पर, अपनी इस कुल भूमि में आपका स्वागत करते हैं। हमारे हृदय प्रमोद पारावार की लहरियों में हिलोरे लेते हुए, इतने आनन्द विभोर हो रहे हैं कि हम यह भी नहीं समझ सकते कि आपका अभिनन्दन किस प्रकार किया जाय। भारतके एक सुविशाल प्रान्त का शासन-सूत्र आज आपके हाथ में है। हम अकिंचन वनवासी, राजसी ठाठ बाट से आप का सत्कार नहीं कर सकते, किन्तु हमें विश्वास है कि आप हम से बाहरी आडम्बर की अपेक्षा न करके हमारे-भाव को ही ग्रहण करेंगे। भगवान् श्री कृष्ण भी तो सुदामा के चार चावलों पर ही रीझ गए थे।

बिहार प्रान्त के अहोभाग्य हैं कि उसकी राजनीतिक तरणी को खेने के लिये उसे आप सरीखा सुनिपुण कर्णधार मिला है। आप जैसे कर्मण्य, कार्यकुशल, सेवाव्रती, स्वार्थ त्यागी, साधन धनी, अश्रान्त परिश्रमी, दृढ़ निश्चयी पुत्र रत्न को प्राप्त करके किस जननी जन्म भूमि का मस्तक अभिमान से उन्नत नहीं होता? भूकम्प, बाढ़, महामारी आदि आपत्तियों से निरन्तर निपीड़ित प्रजा के कष्टों को इतने छोटे समय में इतना अधिक दूर करने में आपने आशातीत सफलता प्राप्त की है। आपने निर्धन जनता की सहायता का व्रत लेकर जहां अपनी करुणार्द्र हृदयता का परिचय दिया है वहां परम्परागत दूषित शासन प्रणाली के यन्त्र द्वारा प्रजा पर होने वाले नाना प्रकारके अत्याचारों का दमन करनेमें अपनी दृढ़ चरित्रता

का भी प्रमाण दिया है। ध्वंसावशेष नौकरशाही के पुर्जों को नीचा दिखा कर, प्रान्तीय स्वायत्त शासन की प्रतिष्ठा बढ़ाते हुए आपने अपनी प्रशंसनीय नीतिनिपुणता का प्रकाशन किया है। बिहार प्रान्त के मिल मालिकों, मजदूरों किसानों, जमींदारों, शासकों, शासितों, तथा विभिन्न सम्प्रदायों में विद्यमान् पारस्परिक सद्भाव, आपकी शासन योग्यता को सूचित करता है। ऐसे पुरुष प्रकाण्ड को अपने बीच पाकर उसका अभिनन्दन कौन न करेगा?

श्रीमन्

जिस कुल भूमि में आप पधारे हैं उसका बीजारोपण आज से ४८ वर्ष पूर्व श्रद्धेय गुरु स्वर्गीय श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी ने अपने कर कमलों से इस पवित्र क्षेत्र में किया था। हमारे आचार्य ने आदर्श शिक्षा प्रणाली का नमूना उपस्थित करने के लिये इस संस्था का उद्घाटन किया था। ब्रह्मचर्य, भारतीय संस्कृति की रक्षा, मातृ भाषा द्वारा शिक्षा, शरीर, मन तथा आत्मा तीनों का स्वस्थ विकास, गुरु शिष्य का पवित्र सम्बन्ध इस संस्था की विशेषताएं हैं। वेदों के विद्वान् वैदिक धर्म के प्रचारक सदाचारी, उत्तम नागरिक उत्पन्न करना इसका लक्ष्य रहा है किन्तु देश के राष्ट्रीय यज्ञ में जब जब आहुति की आवश्यकता प्रतीत हुई तब २ यह कुल भी किसी राष्ट्रीय संस्था से पीछे नहीं रहा यह किसी से छिपा नहीं है। हमारे स्नातकों की योग्यता साधारणतया, अन्य विश्वविद्यालयों के स्नातकों से किसी भी विषय में न्यून तो होती ही नहीं, किन्तु दृढ़ चरित्रता, व्यवहार-शुद्धि तथा हिन्दी और संस्कृत का गम्भीर अनुशीलन, उनकी अपनी विशेषताएं हैं। जिन पर यह संस्था उचित गर्व कर सकती है। आज हमारा देश नवराष्ट्र निर्माण के कार्य में व्यग्र है। आपके बिहार में भी इस प्रान्त के लिये निरन्तर उद्योग हो रहा है। यदि इस कार्य क्षेत्र में आपको कार्य कर्ताओं और सहायकों की आवश्यकता हो तो आप पूर्ण विश्वास के साथ गुरुकुल की ओर आशा पूर्ण दृष्टि पात कर सकते हैं। यह संस्था इस में अपने को कृतार्थ समझेगी और नम्रक अकिंचन सेवाओं को आपके अर्पित करने में कुछ कोर कसर न करेगी। हमें आशा है कि देश की अन्य राष्ट्र शिक्षा संस्थाओं के भविष्य के विषय में विचार करते हुए आप इस अखिल भारतीय राष्ट्रिय संस्था का समुचित ध्यान रक्खेंगे।

यहां हम यह भी नम्र निवेदन कर देना चाहते हैं कि जहां इस संस्था का उद्देश्य अत्यन्त महान् है वहां दूसरी ओर इसके पास साधनों का प्रायः नितान्त अभाव सा है। इस कारण यह संस्था, राष्ट्रकर्मी, समर्थ महानुभावों की शुभ सम्मति, सहयोग और प्रोत्साहन पर ही निर्भर करती है। हमारा विश्वास है कि आज इस शुभ मुहूर्त में, आपके और हमारे बीच जिस प्रेममय सम्बन्ध की स्थापना हुई है, वह सदा सुदृढ़ होता चला जायगा।

अन्त में हम पुनः, अपनी इस मातृ संस्था में आपका स्वागत तथा अभिनन्दन करते हैं।

हम हैं आपके
कुल वासीगण

इसके बाद तुमुल करतल ध्वनि के बीच बाबू श्री कृष्णसिंह स्वागत का उत्तर देने खड़े हुए। कुलवासियों के प्रेम पूर्ण अभिनन्दन से आप अत्यन्त गद्गद और प्रभावित प्रतीत होते थे। गुरुकुल के उपाध्यायों, ब्रह्मचारियों व उपस्थित जनता को सम्बोधन करके आपने इस अवसर पर निम्न ओजस्वी और भावपूर्ण भाषण दिया—

"जैसा आप लोगों ने बयान किया यह ठीक है कि मैंने अपने जीवन में अनेक आडम्बर पूर्ण और राजसी ठाठ बाठ वाले स्वागत प्राप्त किये हैं। एक प्रान्त का शासन सूत्र संभालने के बाद से तो इन स्वागतों की संख्या बहुत बढ़ गई है। लेकिन सच्ची बात यह है कि मुझे यह नहीं मालूम था कि इस तपोवन में भी मेरे ऊपर इस कदर प्रेम बरसेगा। जब से मैंने इस पवित्र भूमि में पैर रखा है, ऐसा मालूम होता है कि मैं प्रेम की भागीरथी में गोते लगा रहा हूं। यह आपकी विनय है जो आप अपने प्रेम को फीका समझते हैं; मैं इसे ही अधिक महत्व पूर्ण समझता हूं। मुझे स्वीकार करना चाहिये कि मैं भावुक प्रकृति का व्यक्ति हूँ। आज मैं आपके प्रेम से ओतप्रोत और विह्वल होगया हूँ। इसे मैं जीवन पर्यन्त कभी भूल नहीं सकता। आपने मेरी प्रशंसा में जो शब्द कहे हैं मैं अपने को उनका अधिकारी नहीं पाता। मैं कुछ अस्वस्थ था, लेकिन आपके प्रेम का तकाजा है और मेरा दिल करता है कि मैं आपसे दो बातें करूं।

आपके विश्वविद्यालय का नाम मैंने तब से सुन रखा है जब मैं विद्यार्थी था आर्य समाजी सभाओं में बहुधा गुरुकुल की प्रशंसा का गीत सुनता था। तभी से आपकी संस्था के दर्शन करने की हृदय में लालसा थी। आज तो १० वर्ष का बालक भी निर्भय होकर महात्मा गांधी, भारत माता और कांग्रेस की जय के नारे लगाता है। लेकिन मैंने अपने व्यथित हृदय से वह जमाना भी देखा है जब सरकार की सी. आई. डी. के लोग देश भक्तों के मकानों के झरोखों से उनकी गति विधि को देखा करते थे और नाना प्रकार से उन्हें यातनायें देते व अपमानित करते थे, लेकिन तब कोई उन के साथ सहानुभूति तक प्रकट करने नहीं जाता था। मुझे उस समय की एक घटना स्मरण है कि किस प्रकार मेरे ५०,००० की आबादी वाले शहर में जब एक युवक को गिरफ्तार करके कहीं लेजाया गया तो एक नागरिक भी उसकी खोज करने नहीं गया। जब मैं उस युवक का पता लगाने गया तो लोग कहते थे कि यह युवक कभी फंसेगा। उस समय में भी मैं आपका नाम सुनता था। मुझे मालूम है कि उस समय की सरकार को सन्देह था कि जंगल में स्थित आपकी संस्था में क्रान्तिकारी लोग तैयार किये जाते हैं यह उनका भ्रम था, लेकिन इस में कोई शक नहीं कि यहां पर आप अपने आचरण और शिक्षा द्वारा ऐसे नवयुवक तैयार कर रहे हैं जो विदेशी सरकार के लिये भय और चिन्ता का कारण हो सकते हैं।

यद्यपि मैं पढ़ कर वकील बना और अब एक सूबे का प्रधान मन्त्री हूं लेकिन जब मैं पढ़ता था तब मेरी आकांक्षा थी कि मैं भी कालेज मे आचार्य या उपाध्याय बनूं, पुस्तकालयों के बीच में बैठ कर संसार के विचार संघर्षों का अध्ययन करूं और ऐसे वीर नवयुवक तैयार करूं जो हिमालय से भी निर्भीक होकर माथा भिड़ायें और हिमालय भी मोम बनकर उनका रास्ता छोड़ दें। आपकी संस्था में ऐसे युवकों को तैयार होता देख कर कुछ तसल्ली होती है।

बिहार जैसे गरीब सूबे की बागडोर थामने के बाद से तो मैं ऐसे साहसी और विवेकी युवकों की और भी अधिक आवश्यकता अनुभव करता हूँ। हमारे मार्ग में अनेक रुकावटें हैं। मैं अपने सूबे का मालिक हूँ, लेकिन हमारे पुराने सरकारी अधिकारी मुझे पूरा मालिक नहीं बनने देना चाहते। किन्तु मैं अपने अधिकारों को खूब समझता हूँ। मेरे सूबे में ३ करोड़ के करीब जाएं मेरे सिपुर्द हैं। लेकिन सूबे की आय केवल ४ करोड़ है। समझ नहीं आता कि मैं उनकी सहायता किस तरह करूं। अपर्याप्त भोजन, वस्त्र, मकान व अन्य सुख तो एक तरफ रहे, मैं उन्हें बीमारी के वक्त कुनीन भी नहीं दे सकता हूँ। मसूरी पर जब मैं खेलते उछलते स्वस्थ अंग्रेज बच्चों को देखता था तो मुझे अपने बिहारी बच्चों की याद सताती थी। मेरे प्रांत के किसान हिन्दुस्तान भर में सब से अधिक कर्जे के भार से लदे हुए हैं। मैं उनका कर्जे का भार कम करना चाहता हूँ। सिर्फ सूद कम कर देने से काम नहीं चलेगा उनको शिक्षित करने की आवश्यकता है। को-आपरेटिव सोसायटियां सहायक हो सकती हैं, लेकिन पिछली सरकार ने जो ऐसी सोसाटियां बनाई थीं वे मेरे रकबे में एक और बला हैं। उनके अन्दर गरीब लोगों का ६० लाख रुपया बन्द पड़ा है जो वापिस नहीं मिल रहा है। इन सब कामों के लिये हमें लाखों पागल क्रांतिकारी युवकों की आवश्यकता है जो परमात्मा को साक्षी करके देहातों में घुस पड़ें। आज आप लोगों में आकर मैं एक आशा किरण देखता हूं। आप से मैं यही भिक्षा मांगता हूं और आप मे जो बिहारी विद्यार्थी हैं उनका मैं आह्वान करता हूं कि वे शिक्षा समाप्त कर अपने प्रान्त की अवस्था को देखें और उसके सुधारने में कटिबद्ध होकर लग जायें। अभी तो हमें वास्तविक शक्ति विदेशियों के हाथ से छीननी है। यदि मुझे कानून बनाने के असली अधिकार प्राप्त हो जायें तो मैं १० साल में अपने सूबे के किसानों व मजदूरों की हालत सुधारने का दावा करता हूं। मेरे प्रान्त में छोटा नागपुर में ही करोड़ों की सम्पत्ति पड़ी है। धन्यवाद है आप के संस्थापक स्व० श्रद्धानन्द जी के नाम पर बने हुए ट्रस्ट का, जो वहां के निवासियों की अवस्था को सुधारने का प्रयत्न कर रहा है। मुझे इस बात की प्रसन्नता है कि आप के सुयोग्य स्नातक धर्मवीर जी वहां पर सराहनीय कार्य कर रहे हैं।

आप लोग एक विश्वविद्यालय में शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। ये विश्वविद्यालय ही नये विचारों के स्रोत होते हैं। आपके सामने दो मुख्य काम हैं। एक तो सर्वसाधारण जनता को जागृत करना, उन्हें अपने राजनीतिक अधिकारों से परिचित कराना। अब भारतवासी इन अधिकारों को समझने लगे हैं। जहां पहिले हमारे कलक्टर और पुलिस सुपरिण्टेण्डेण्ट हमें हथकड़ियां लगाते थे अब जब उन्हीं को देहाती हमारी बगलमें हमारे हुक्म की इन्तजार में खड़े देखते हैं तो उन्हें अधिक आत्मविश्वास होता है। दूसरा काम है नये विचारों का नेतृत्व करना आप अपने दिमाग को किसी का गुलाम मत बनाओ। दुनियां भर के विचार संघर्ष को पढ़ो और पढ़ कर ३५ करोड़ अपने देशवासियों का कल्याण करने और लोक संग्रह करने का सेवा व्रत लो आपका विश्वविद्यालय जिस महापुरुष स्व० स्वामीश्रद्धानन्द की यादगार है उसका यही आदर्श था। मैं उस विशाल कार्य और काषाय वस्त्र धारी सन्यासी की मूर्ति को नहीं भूल सकता। भारत वर्ष को इस समय ऐसे ही सन्यास धर्म की जरूरत है। मेरा आप से यही निवेदन है कि शिक्षा समाप्त करके निर्भीक बन कर देशोद्धार के काम में जुट जाओ। हजरत मुहम्मद के १२ अनुयायियों ने ही उस के धर्म को विश्वव्यापी धर्म बना डाला था।

अन्त में, मैं इस प्रेमपूर्ण स्वागत के लिये आपका धन्यवाद करता हूं। मैं आज के दृश्यको भूल नहीं सकता। इस श्रद्धानन्द-नगरी को मैं तो अपना तीर्थ क्षेत्र समझता हूं। और तीर्थ यात्री की भावना लेकर ही यहां आया हूँ।"

इस के बाद प्रधान मन्त्री महोदय ने गुरुकुल के उपाध्यायों और विद्यार्थियों के साथ बैठ कर उनके भोजनालय में सम्मिलित भोजन किया। उसके बाद आपने विश्वविद्यालय के भिन्न भिन्न विभागों का निरीक्षण किया। श्रद्धानन्द सेवाश्रम द्वारा आस पास के ग्रामीणों की सेवा के कार्य को तथा गुरुकुल की फार्मेसी और रसायनशाला द्वारा तैयार की गई चीजों को आपने बहुत पसन्द किया। आप को गुरुकुल से प्रकाशित पुस्तकों, फार्मेसी की औषधियों व रसायनशाला द्वारा तैयार की गई वस्तुओं का एक-एक सेट भेंट किया गया। इस प्रकार लगभग ४-५ घण्टे तक आपने गुरुकुलका आतिथ्य स्वीकार किया।

हरिद्वार के निकटस्थ अन्य दर्शनीय स्थानों को देख कर कल आप बिहार को प्रस्थान कर गए।

सहानुभूतिः—पिछले दिनों, गुरुकुल के सुयोग्य स्नातक प० धनराज जी विद्यालंकार के घर पर डाकुओं ने हमला किया और माल-असबाब लूट कर ले गए। पण्डित जी को भी काफी चोट लगी है। ऐसी अवस्था में हम सब की सहानुभूति पण्डित जी के साथ है। परमात्मा इन्हें शीघ्र ही निरोग करेंगे।

गु रु कु ल

१६ कार्तिक शुक्रवार १६६५

हैदराबाद आन्दोलन—

आजकल हैदराबाद-निजाम राज्य में जो आन्दोलन चल रहा है उससे परिचित होना प्रत्येक आर्य का कर्तव्य है। यह धांधली कई वर्षों से चलती आरही है। राज्य की ओर से हिन्दू प्रजा पर होने वाले अत्याचार दिनों दिन बढ़ रहे हैं। हिन्दुओं में भी आर्यसमाजी भाई, राज्य के विशेष कोप भाजन हैं। अत्याचारों को सहन करने का दुर्गुण आर्य समाजियों में प्रारम्भ से ही नहीं है। यही कारण है कि अपने धार्मिक अधिकारों पर किये गए अनुचित हस्ताक्षेपों को वे सहन न कर सके और इसके विरुद्ध उन्होंने सब से प्रथम आवाज़ उठाई। अभी कुछ दिनों की बात है कि वहां एक आर्य युवक का दिन दहाड़े बलिदान होगया और निजाम राज्य ने इसका कोई उचित प्रतिकार नहीं किया। यही कारण है कि आर्यों पर दिनों दिन अत्याचार बढ़ रहे हैं। क्या इसके लिये निजाम राज्य उत्तर दायी नहीं है? ऐसी अवस्था में यदि निजाम सरकार ध्यान नहीं देती तो आर्य जनता को शीघ्र जागरूक होजाना चाहिये और अपनी विख्यात संघशक्ति का परिचय देना चाहिये।

सत्याग्रह का पुरोगमः—

हैदराबाद में सत्याग्रह करने का पुरोगम, आर्य सार्वदेशिक सभा ने बनाया है। श्री महात्मा नारायण स्वामी जी को डिक्टेटर बनाया गया है। और उन्हीं की आज्ञाओं के अनुसार युद्ध-परिषद् काम करेगी। इस सत्याग्रह में आर्य संस्थाएं भी भाग लेंगी। अजमेर के जत्थे को सब से पूर्व भेजने का प्रस्ताव युद्ध परिषद् में आया है। आर्यरक्षा समिति भी इसके लिये पर्याप्त प्रयत्न शील है। [सम्पादक]

वैद्य चाहिये

१—युक्तप्रान्त की एक रियासत के लिये एक स्नातक वैद्य चाहिये। पांच वर्ष का अनुभव आवश्यक है। वेतन योग्यतानुसार।

२—सहारनपुर जिले के एक धर्मार्थ चिकित्सालय के लिये स्नातक वैद्य चाहिये वेतन ४०) मासिक।

दोनों पदों के प्रार्थी महानुभाव विशेष जानकारी के लिये दो आने का टिकट भेजें—

मुख्याधिष्ठाता
गुरुकुल कांगड़ी

खटुआ

[ले०—एक कुलपुत्र]

[ये हृदयोद्गार एक कुल बन्धु के हैं जब कि उन्होंने उस धराशायी खटुए के वृक्ष को देखा था जिसके नीचे कुलपिता श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी प्रणिधान किया करते थे—सम्पादक]

लोग कहते हैं—रोना कायरता है। पर मेरी समझ में नहीं आता कि आज मैं रोने के सिवाय और क्या करूं? बहुत रोकता हूँ, बहुत समझाता हूँ कि जो कुछ हो चुका उसके लिये रोने से क्या लाभ? पर हमेशा मनुष्य युक्ति पर ही तो नहीं चला करता। मैंने भी अपने दिल को कभी इस तरह और कभी उस तरह—संसार की अनित्यता को और वस्तुओं की क्षणभंगुरता को सोचते हुए, बार बार समझाया है; पर मैं करूं क्या? मेरे सामने बार बार वह दृश्य आंखों के आगे आकर नाच उठता है और तब बरबस आंखों में आसू छलछला आते हैं।

कैसे कहूं कि कुलपति का वह एकमात्र स्मारक पेड़ खटुआ आज इस दुनियां में नहीं रहा। अरे! नहीं रहा वह खटुआ—कुलपति का एकमात्र प्रतिनिधि, जिसने विषम समस्याओं में कुलपति के उद्भ्रान्त मानस को आश्वासन दिया था, जिसने अपनी शीतल छाया से उस मेरे प्रातः स्मरणीय आदि गुरु के चिन्ताव्यग्र उत्तप्त मस्तिष्क को शीतलता प्रदान करके इतना दृढ़ निश्चयी बनाया था। गर्मी-सर्दी बरसात—कितने दिन और कितनी रातें इस महाबोधि वृक्ष ने यों ही चुपचाप तपस्वी बनकर खड़े हुए बिताई थीं इस आशा में कि वे अमिताभ अपने निर्वाण पद से लौट कर फिर आयेंगे और मुझे सनाथ करेंगे। पर हायरी! निष्ठुर गङ्गा की धारा! तुझसे यह एक तापस की मूक तपस्या भी नहीं सही गई और तू उसे बहा ही लेगई। हाय! पहले तूने वह हरी-भरी वाटिका उजाड़ दी और अब उस नन्दन वन का एकमात्र पारिजात यह खटुआ भी ...

लो वनमाली! तुम्हारे पीछे यह तुम्हारा वृन्दावन तो उजड़ ही गया था, अब वह ऐतिहासिक पेड़ भी चल बसा जिसके नीचे तुम रास किया करते थे!

× × ×

कुल बन्धुओ! अपनी लेखनी तोड़कर फेंक दो—अब कविता करके क्या करोगे? क्योंकि कविता का एकमात्र विषय अब नहीं रहा!

कुल बन्धुओ! अपने हृदय को पैरों तले कुचल दो अब उसका याद करके क्या करोगे? क्योंकि आज तुम्हारी स्मृति में उसके स्थान पर एक बहुत बड़ा शून्य है।

× × ×

और इधर मैं चुपचाप उसके विरह में दिनरात आंसुओं की माला जपूंगा।

महाकवि कालिदास का समय और जन्मभूमि

[गत २५ अक्टूबर को गुरुकुल में कालिदास जयन्ती मनाई गई। जिस में श्री पं० वागीश्वर जी विद्यालंकार ने कविकुल गुरु के काव्यों की उत्तम आलोचना करते हुए, कवि के हृदय-स्पर्शी भावों का अनुसरण कर उनकी जन्मभूमि कनखल के पास, गंगा और हिमालय के मध्यवर्ती प्रदेश में सिद्ध की। प्रस्तुत लेख उनके व्याख्यान के आधार पर लिखा गया है सम्पादक]

पाश्चात्य विद्वानों ने बहुत समय तक भारतीय साहित्य को उपहासास्पद चित्रित किया है। लार्ड मैकाले के समान अंगरेज साहित्यिकों ने बहुत ही निन्दनीय शब्दों में इस विषय में अपने उद्गार प्रकट किये हैं। किन्तु आज पाश्चात्य आलोचक भी स्वीकार करते हैं कि भारतीय साहित्य संसार की किसी भी भाषा के उच्चतम साहित्य से टक्कर ले सकता है। इस धारणा को लाने में कविकुल शिरोमणि कालिदास की रचनाएं अनुपम सिद्ध हुई हैं। इस महान् भारतीय कलाकार की अमर लेखनी से प्रसूत साहित्य, विश्व भर के विद्वन्मण्डल में आज सन्मानित हो रहा है। भारत भी आज इस पर नाज़ कर सकता है।

महाकवि कालिदास की पुण्यस्मृति को सरस, मधुर एवं स्थिर बनाने के लिये देश के साहित्यिकों ने कालिदास जयन्ती का आयोजन करने की, प्राचीन भारतीय संस्कृति प्रेमियों से पिछले दिनों अपील की थी। जिस के परिणाम स्वरूप कार्तिक शुक्ला प्रतिपदा को जगह २ यह संस्मरणात्मक जयन्ती मनाई गई है। कार्तिक शुक्ला प्रतिपदा पर उज्जयिनी में बहुत समय से कालिदास जन्म दिवस मनाया जाता रहा है। इस तिथि पर कालिदास जयन्ती मनाने में उज्जयिनि की पुरानी परम्पराओं ने प्रकाश डाला है। पिछले दिनों लाहौर में कुछ प्रतिष्ठित साहित्यज्ञों ने प्रथम आषाढ़ के अवसर पर यह पुण्य पर्व मनाना प्रारम्भ किया था, क्योंकि मेघदूत में भी– जो कि कवि कालिदास की आत्म कहानी समझी जाती है– कथा का प्रारम्भ प्रथम आषाढ़ से ही है।

संस्कृत साहित्य के अन्य महान् कलाकारों की भांति कालिदास भी अपने जीवन के बारे में सर्वथा चुप है। कवि की जीवन विषयक नाना लोकोक्तियां प्रसिद्ध हैं। भोज प्रबन्ध में कालिदास की प्रशंसा नररूप सरस्वती कह कर की गयी है। प्रशंसा के लिये इस से सुन्दर प्रमाण-पत्र मिलना मुश्किल है। इस भोजप्रबन्ध-कार ने भी लौकिक या ऐतिहासिक सत्य का वर्णन न कर अन्तर्दृष्टि से संसार तथा लोक को देखा है– संसार के सूक्ष्म सत्यों का अनुभव किया है– यही एक कवि की विशेषता भी है। कालिदास के जीवन के बारे में स्पष्ट रूप से हमें कोई साधक प्रमाण उपलब्ध नहीं है।

कालिदास के जन्मस्थान के बारे में बहुत मतभेद है। कोई निश्चित जन्म भूमि न होने से विचारकों में इस प्रश्न को ले बहुत छानाझपटी होती रही है। बंग देश के विद्वान् विचारकों ने तो सत्य रूप से स्वीकार तक भी कर लिया– कि कालिदास बंगाली थे। महाराजा विक्रमादित्य की राजधानी विक्रम पुर रही होगी– कालिदास और विक्रम का साथ प्रसिद्ध है– इस से कालिदास की जन्मभूमि भी विक्रमपुर है, और वहां पर एतद् विषयक निर्देशक चिह्न तक उन्होंने स्थापित कर दिये। कवि की तथाकथित जन्म-भूमि- बंगाल का कवि ने स्वयं रघु की विजय यात्रा में वर्णन किया है। उस में बंगालियों की जो हीनता दिखाई है वह कवि कभी नहीं दिखाता, यदि बंगदेश उसकी जन्मभूमि होता। रघु की विजय यात्रा कोई ऐतिहासिक सत्य नहीं है। रामायण में इस का उल्लेख नहीं, इस हालत में तो उसे इस वर्णन द्वारा अपनी जन्मभूमि का ही अपकर्ष दिखाना होता, जो कभी भी मान्य नहीं ठहराया जा सकता। रघु की विजय यात्रा का कवि वर्णन करता जाता है। विजय यात्रा करते हुए रघु उड़ीसा, सेतुबन्ध रामेश्वर, फारस, अफगानिस्तान, काश्मीर, पंजाब होता हुआ हरिद्वार के पास गौरी गुरोः हिमालय, और गंगा के यहां पहुँचा-यहां के निवासियों को कवि सिंहों के समान बलवान् बताता है। वे रघु की अवहेलना करके रह गये। रघु का आगे बढ़ने पर, पीली-भीत के समीप शत्रुओं से मुठभेड़ हुई– यहां विजय प्राप्त कर कामरूप पर चढ़ाई की और जीता। रघु की यह विजय यात्रा है। कई कहते हैं कालिदास की जन्म भूमि काश्मीर थी, इस विजय यात्रा में भी और अन्यत्र भी कहीं काश्मीर का कवि ने प्रभावोत्पादक वर्णन नहीं किया है। कहा जाता है कवि ने मेघदूत में अपने आप को भली प्रकार अभिव्यंजित किया है। जहां से मेघदूत चला वह कालिदास की तत्कालीन काव्य रचना की स्थिति का निर्देश करता है, और इस का ग्रन्थ में नाम से निर्देश है। रामगिरि आश्रम मेघ की दिशा को निर्दिष्ट करता है। उस की अवस्थिति को नहीं। मालूम होता है कालिदास उस समय मगध साम्राज्य की राजधानी पाटलिपुत्र में राजाश्रय में रहे होंगे। कवि यहां से मेघदूत को उज्जयिनी को भेजता है। महामहोपाध्याय हरिप्रसाद शास्त्री आदि विद्वानों का मत उज्जयिनि के बारे में है। मेघदूत के वर्णन से प्रतीत होता है कालिदास यौवन के समय उज्जयिनी में रहा होगा, प्रारम्भिक वर्षों की स्मृति उसे विह्वल बना देती है। उज्जयिनी से मेघ उत्तर की ओर चलता है और ब्रह्मावर्त कुरुक्षेत्र में में पहुंचता है, और वहां से कनखल। कनखल प्राचीन साहित्य का प्रसिद्ध तीर्थ है, इस का वर्णन रामायण और महाभारत में भी है। मेघदूत यहां से काश्मीर की ओर नहीं जाता– उस ओर जाने में उसकी दिशा विचलित होती, काश्मीर को जन्मभूमि इस लिये नहीं माना जा सकता। मेघदूत कनखल से कुछ पूर्व उत्तर में होकर अलका में समाप्त हो गया मौलसिरी के वृक्ष और मोर जो कि कुछ गर्म जलवायु में होते हैं उनका अलका में वर्णन है। अलका का वर्णन न उज्जयिनी में घटता है और नाहीं काश्मीर में। काश्मीर की खास वस्तुओं यथा केसर, नौका

विहार आदि को भी कवि ने प्रश्रय नहीं दिया, साधारण वर्णन ही कर दिया। दूसरी ओर प्यालों का कालिदास बड़े चाव से वर्णन करता है। ये 'सब वस्तुएं' गंगा और हिमालय के पुण्य क्षेत्र में होती है। यही कालिदास की अलका है और यहीं पर कालिदास का मेघदूत समाप्त होता है। कालिदास के अधिकांश ग्रन्थों का क्षेत्र भी हिमालय के आंचल और गंगा के मैदान पर ही है। उज्जयिनी, काश्मीर, या बंगाल को कवि ने सार्वत्रिक महत्ता नहीं दी है। गंगा प्रयागान्त और गौरी गुरो हिमालय से उस का कुछ प्राकृत स्नेह उमड़ा सा प्रतीत होता है– और यह तभी हो सकता है जब कवि की जन्मभूमि यही समझी जाय।

महाकवि के काल निर्णय संबन्धी कल्पनायें अब बहुत सीमित होकर केवल दो रह गई हैं। ऐतिहासिकों का मत है, कि चन्द्रगुप्त द्वितीय 'विक्रमादित्य' जिन का शासन काल ४१० A D) से प्रारम्भ हुआ था– के समय में कालिदास हुए थे। दूसरा प्रसिद्ध प्राचीन भारतीय मत कालिदास के समय विक्रमीय संवत् के प्रारम्भ में निर्देश करता है। ऐतहासिकों का मत आजकल प्रामाणिक समझा जाता है– जो कि गलत प्रमाणों पर आश्रित है। ऐतिहासिकों ने मालविकाग्नि मित्र जो कि कालिदास की प्रसिद्ध रचना है को कोई ऐतिहासिक महत्व नहीं दिया। मालविकाग्नि-मित्र अन्य संस्कृत रचनाओं से अपने नियम में महान् विभेद रखता है। अधिकांश काव्य, नाटक, आदि रचनायें पुराने समय में रामायण और महाभारत को आधार लेकर होती थी, पीछे के साहित्य मीमांसकों ने तो नियम बना कर विषय तक का निधारण भी कर दिया महाकवि कालिदास की प्रसिद्ध रचना कालविकाग्नि मित्र इस का अपवाद है। अन्तिम मौर्य राजा बृहद्रथ के सेनापति पुष्यमित्र तथा उसके लड़के अग्निमित्र का वर्णन इसके कथानक में है। इतिहास तथा पिछला संस्कृत साहित्य जिस में बाण का हर्ष चरित्र भी सम्मिलित है पुष्य मित्र के बृहद्रथ को मार गद्दी पर बैठने का निर्देश है, इन सब में पुष्य मित्र को अनार्य और म्लेच्छ घोषित किया गया है दूसरी ओर कालिदास मालविकाग्नि मित्र में पुष्य मित्र को निर्दोष, स्वामी भक्त, स्वामी का सेना पति ही बताता है। इस से ज्ञात होता है कि पुष्पमित्र और कालिदास का कोई वैयक्तिक संबन्ध कभी रहा होगा। भरत वाक्य के लिये यह परम्परा रही है, कि इस में कवि अपने समय के कष्टों दुःखों का नाश करने की प्रार्थना करता हुआ राज्य में सुभिक्ष शान्ति आदि के स्थापन की कामना करता है। मालविकाग्नि मित्र के भरत वाक्य में कवि अग्निमित्र के राज्य में शान्ति की कामना करता है। कालिदास और अग्निमित्र के समकालीन होने से ही यह रचना ठीक ठहराई जा सकती है। विक्रमीय संवत् से अग्निमित्र के काल को ऐतिहासिकों ने ७०; ८० वर्ष पीछे डाला हुआ है जो कि सर्वथा काल्पनिक गणना पर आश्रित है, और ऐसी कल्पना में इतने सालों की गलती हो जाना संभव हो सकता है। कालिदास अग्निमित्र के आश्रय में पाटलि पुत्र में रहता है। उज्जयिनी में दोनों का परस्परिक सम्पर्क रहा होगा, जहां अग्निमित्र सेनापति था। शासक होने पर अग्निमित्र ने कालिदास को अपने आश्रय में ले लिया। कविकुल शिरोमणि कालिदास के काल और जन्म के संबन्ध में हमारी ऐसी धारणा बनी है। साहित्य तथा इतिहास के अधिकारी व्यक्तियों से प्रार्थना है इस मत पर भी वे सहानुभूति पूर्ण ढग से विचार करें।

विलक्षण, किन्तु सरल !

(लेखक— श्री आनन्द)

सांझ का वक्त था। गंगा की नहर पर जब मैं टहलने के लिये पहुंचा, मैंने देखा, घाट पर तीन छोटे लड़के जलक्रीड़ा का स्वाद ले रहे थे। एक उनमें से कपड़े पहने हुए किनारे पर ही खड़ा २ अपने अन्य दो साथियों का तैरना देख रहा था।

मैंने देखा, उस समय, पानी के ऊपर एक हल्की २ सी कुहरे की परत उड़ती हुई जा रही थी। दृश्य इतना मनोरम प्रतीत हो रहा था कि, मैंने टहलने का विचार स्थगित कर दिया, और घाट पर नीचे उतर कर, एक अच्छी सी जगह पर बैठे २ मैं उस प्राकृतिक शोभा का निरीक्षण करने में निमग्न हो गया।

कुछ दूरी पर, ब्रह्मचारी गण एक छोटी सी नाव खे रहे थे। गंगा की नहर; दोनों ओर सघन वृक्षों की कतारें; ऊपर कुहरे का चन्दोवा; और उस चन्दोवे के नीचे इधर से उधर और उधर से इधर तिरती हुई ब्रह्मचारियों की वह छोटी सी, किन्तु प्रिय नाव; कल्पना कीजिये, उस दृश्य के सौन्दर्य का! इतने में वे तीनों लड़के भी उसी जगह आ पहुँचे, जहां मैं बैठा हुआ था। यह स्वाभाविक ही था कि, मेरा ध्यान उस नाव पर से हट उन बच्चों की ओर आकृष्ट हो जावे। मैं उन बच्चों की बातों को रस पूर्वक सुनने लगा।

उन में से एक ने तो कपड़े पहने ही हुए थे; दो लड़कों ने गीली निकरें पहनी हुई थीं। वे दोनों, क्योंकि अभी २ नहर के ठण्डे पानी में स्नान करके आ रहे थे; अतः कुछ ठिठुर रहे थे। जिन लोगों ने कभी बच्चों को सर्दी के मारे ठिठुरते हुए देखा है, वे साफ जानते हैं। कि, उनका ठिठुरना हृदय के अन्दर किस प्रकार का एक मिश्रित स्नेहार्द्रता का भाव उत्पन्न कर देता है। उन दोनों बच्चों को ठिठुरते हुए देख कर मेरे मन में भी उसी के भाव उठ रहे थे; और मैं कहना चाहता था कि, भाई कपड़े पहन लो, काहे को ठिठुर रहे हो; लेकिन उसी वक्त एक दूसरा खयाल मेरे दिमाग में आया, जिस से मैंने यही ठीक समझा कि, बच्चों की आज़ादी में खलल नहीं डालना चाहिये।

अब तक सारी की सारी कुहरे की परत वहां से दूर, न जाने कहां, उड़ कर चली जा चुकी थी। उन तीनों में से एक ने, जो सब से छोटा था, पूछा, "भैया, ये बादल जो अभी पानी पर छा रहे थे, कहां चले गये ?"

उत्तर मिला, "ऊपर चले गये हैं।"

ऊपर के बादलों को देख कर, दूसरे लड़के ने पूछा, "क्यों शशी, उन में अब भी पानी भरा हुआ है,?"

"हां"

"तो फिर गिरता क्यों नहीं?" उसी लड़के ने दूसरी बार प्रश्न किया।

"हवा क्यों नहीं गिरती? धुआं क्यों नहीं गिरता" शशी ने जो उन तीनों में सब से ज्यादह समझदार था, अपनी अभिज्ञता के गर्व से भरी टोन में प्रश्नात्मक वाक्य द्वारा ज़वाब दिया।

उस लड़के ने बड़ी नम्रता पूर्ण जिज्ञासा से फिर पूछा, "तो शशी, फिर ये गिरते कब हैं?"

सब से छोटे लड़के ने, जो शशी का छोटा भाई था, और जिसे अपने बड़े भाई की अभिज्ञता पर नाज़ था, कहा, "ले तुझे इतना भी मालूम नहीं? भय्या, देखो, इसे इतना भी मालूम नहीं?

ज़वाब में, शशी ने बड़ी गम्भीरता तथा उपेक्षा पूर्वक, यह जतलाते हुए कि, यह तो अत्यन्त तुच्छ बात है कहा— "जब कभी ये बादल आपस में टकरा जाते हैं, तो पानी बना कर बरस पड़ते हैं।"

अब उस लड़के की समझ में, बात आ गई; उसने शशी से कहा, "ओ हो! मैं समझ गया, जिस तरह मेरा और तेरा सिर टकरा जावे तो दर्द के मारे हमारी आँखों से पानी गिरने लगता है, ऐसे ही; है न शशी?"

ओह! वह भोली समझ! मैं उस बच्चे की उस विलक्षण, किन्तु सरल बात को सुन कर क्षणभर के लिये अवाक हो गया! इतने में नहर के सपाट एवं तरङ्ग शून्य वक्षःस्थल पर, चप्पुओं से छोटी २ हिलकोरियां पैदा करती हुई वह नाव भी वहां आ लगी; उन छोटे बच्चों के बड़े भाई भी, जिन की प्रतीक्षा में आंखें बिछाये, वे बच्चे ठिठुराते हुए बैठे हुए थे, उसके साथ वहां पर आगये। वे तीनों 'आगये' 'आगये' कह कर उठ खड़े हुए; मैं भी उठ गया।

मैंने ऊपर आसमान की ओर अपनी आंख उठाई; देखा, वे बादल उन छोटे बच्चों द्वारा अपने ऊपर किये गये उन भोले भाले विचारों को सुन कर मुस्करा रहे थे। उनकी वह गुलाबी मुस्कराहट प्रत्येक व्यक्ति के अरुण कपोलों पर, हाथों के तल प्रदेशों पर, एड़ियों के पृष्ठ भागों पर, तथा प्रकृति के प्रत्येक पर्ण पर, प्रतिफलित हो रही थी।

बच्चों की भोली भाली बातों को सुन कर हंसने वाले उन बादलों ने शायद देखा होगा कि, इन पंक्तियों के लेखक इस अधन्य की अधम आंखों से आंसू की बूंदें छल छला रही थीं! किसे मालूम उन्होंने इस को क्या समझा होगा?

गुरुकुल कांगड़ी के लिये एक वैद्य अस्थाई तौरपर चाहिये। वेतन योग्यतानुसार होगी।

छोड़ दो पतवार नाविक!

श्री 'सुरेंकुमार'

छोड़ दो जीवन तरी को—
आगई मँझधार—नाविक!
छोड़दो पतवार—नाविक!
खींच दीं विधि ने सभी के
भाल पर—कुछ रेख अविचल
बह रहा जीवन यहां पर
है उन्हीं के बीच प्रतिपल,
मेट सकता क्या उसे—
यह व्यर्थ हाहाकार—नाविक!
और निर्धारित किया था
एक दिन प्रत्येक का मग,
देख उसको चल रहा—
बस—बस उसी पर यह सभी जग,
कर सकेगा—कौन वह
आदेश अस्वीकार—नाविक!
चाहते हो आज जीवन—
यान मेरा पार करना,
याद यह रखना कहीं
तुमको पड़े फिर व्याज भरना,
तीव्र धारा का किया—
करते नहीं प्रतिकार नाविक!!
छोड़दो पतवार नाविक!

गुरुकुल समाचार

ब्र० कुलभूषण तथा ब्र० कृष्णमूर्ति ५ म श्रेणी को मलेरिया ज्वर है। ब्र० रामप्रकाश ११ श्रेणी पांव में चोट के कारण रोगी है। आशा है कि शीघ्र ही तीनों को आराम आवेगा। शेष ब्र० स्वस्थ हैं।

ऋतु सुहावनी है। सर्दी धीरे २ बढ़ रही है जिसका ब्रह्मचारियों के स्वास्थ्य पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ रहा है। खेलें नियम पूर्वक प्रारम्भ हो चुकी हैं। गढ़मुक्तेश्वर तैरो सम्मुख के लिये यहां के दो प्रतिनिधि ब्र० रघुनाथ (४श०) और ब्र० नित्यानन्द ११श गए हैं आशा है जीत कर लौटेंगे। पिछले दिनों की बात्रू श्री कृष्ण सिंह जी के प्राइवेट सेक्रेटरी की रत्न जटित बहुमूल्य अंगूठी, गुरुकुल विभिन्न विभागों का निरीक्षण करते हुए कहीं गिर गई थी, जो अब एक ब्रह्मचारी को घास में पड़ी मिल गई। अंगूठी उन्हें भेज दी गई है।

गुरुकुल मुलतानः—पिछले दिनों दीपवली का त्योहार बड़ी सज धज के साथ मनाया गया सभा में कविता, गल्पों और समस्या पूर्त्तियों के कारण काफी रौनक रही। रात्री को 'प्रताप' नाटक भी खेला गया। गुरुकुल की अवस्था आशाजनक है।

गुरुकुल कांगड़ी की प्रसिद्ध औषधियां

ब्राह्मी तैल

स्नान के बाद सिर पर लगाने के लिए यह सुगन्धित तैल अत्युत्तम है। इससे दिमाग़ तरोताज़ा रहता है, स्मरण शक्ति बढ़ती है।

मूल्य ॥) शीशी

सुगन्धित
हवन सामग्री
॥) सेर

द्राक्षासव

यह स्फूर्तिदायक सुमधुर पेय है। भूख बढ़ाता है, चित्त को प्रसन्न करता है, पुरानी खांसी, कब्ज़, थकावट तथा कमजोरी में विशेष हितकर है। मूल्य १।) पौंड

च्यवनप्राश

हमारे यहां हिमालय की ताज़ी जड़ी बूटियों से तैयार किया जाता है। बलवर्द्धक स्वादिष्ट रसायन है। मूल्य ४) सेर

चन्द्रप्रभा

इन गोलियों में शिलाजीत और लोहभस्म की प्रधानता है। सब प्रकार के प्रमेह और स्वप्नदोषों की अत्युत्तम औषध है। शारीरिक दुर्बलता को दूर करती है।

मूल्य ।=) तोला

वर्द्धक
ब्राह्मी बूटी
सेर

सुपारीपाक

यह स्त्रियों के प्रदर (जरियान) रोग को प्रसिद्ध औषध है। इसके सेवन से शरीर की नष्ट हुई ताकत व चुस्ती पुनः आ जाती है।

मूल्य १॥) पात्र

पता—आयुर्वेदिक फार्मेसी, गुरुकुल कांगड़ी (सहारनपुर)

चौधरी हुलासराय के प्रबन्ध से गुरुकुल प्रेस गुरुकुल कांगड़ी में मुद्रित तथा प्रकाशित।

* ओ३म् *

"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत" Reg. No. A. 2927

गुरुकुल

सम्पादक— साहित्यरत्न पं० हरिवंश वेदालङ्कार

एक प्रति का मूल्य -) [गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख-पत्र] वार्षिक मूल्य २॥)

वर्ष ३] गुरुकुल काङ्गड़ी, शुक्रवार २६ कार्तिक १९९५, ११ नवम्बर १९३८ [संख्या २१

ऋषि का साध्य और साधन

(लेखक—श्री पं० श्रीपाद दामोदर सातवलेकर)

श्री स्वामी जी महाराज का कार्य केवल आर्यसमाज के धार्मिक क्षेत्र के चार दिवारों के अन्दर ही सीमित नहीं था। भारतीय राष्ट्र का पुनरुद्धार, धार्मिक सुधार द्वारा करना और इस साधन से आर्यों का वैदिक धर्मानुशासन से चलाया जाने वाला आसमुद्रक्षित का सार्वभौम साम्राज्य अति शीघ्र स्थापित करना ही एकमात्र प्रशंसनीय उद्देश श्री स्वामी जी महाराज का था। सूर्य चन्द्रवंशीय भारतीय राजा महाराजाओं का सुधार करके उनको धार्मिक शासनतत्पर बनाने से शीघ्र ही भारत का आधा भाग सुधर सकता है, ऐसा विचार करके, सबसे प्रथम राजपुताना के उदयपुरादि नरेशों के सुधार करने के प्रयत्नों में वे लगे थे। इस प्रयत्न में उनको सफलता भी बहुत कुछ हो चुकी थी, इस कारण जिनकी आर्थिक हानि हुई उनके द्वारा भयानक विष प्रयोग होने से श्री स्वामी जी का देहावसान हुआ! इस कार्य कारण भाव का विचार करने से भी उन्होंने थोड़े से दिनों में राजपूताना के राजाओं में कितना प्रचण्ड सुधार का कार्य किया था, इसकी कल्पना हरएक को हो सकती है।

विषप्रयोग करने के बिना उस स्थान के कुमार्गियों को दूसरा कोई मार्ग रहा ही नहीं था। इसलिये स्वार्थी कुमार्गियों ने इस अन्तिम उपाय की रचना की। इससे भारतीय राष्ट्र की अपरिमित हानि हो चुकी है, इसलिये आज इसके स्मरण करने से फिर किसी के मन मन में उनके भारतीय पुनरुत्थान के विचार स्फुरित हो जायेंगे और पुनः उनके कार्यका नये उत्साह से प्रारम्भ भी हो जायगा।

श्री स्वामी जी का आदर

हमारे मन के अन्दर जो महत्व का स्थान श्री स्वामी जी महाराज को मिला है, वह उनकी धार्मिक शिक्षा पूर्वक राष्ट्रीय पुनरुत्थान की प्रचण्ड और सर्वाङ्ग पूर्ण आयोजना के लिये ही है। यद्यपि आज वह आयोजना रही नहीं और चली भी नहीं है, परन्तु चलाना या न चलाना यह सर्वथा अनुयायियों की शक्ति पर अवलम्बित रहने वाली बात है। अतः हम सबसे पहिले भारत राष्ट्र के पुनरुत्थान की अपूर्व आयोजना का निर्माण करने के लिये ही श्री स्वामी जी का "ऋषि" कहते आये हैं। ऋषि वह होता है जो सब अन्य मार्गों को ठीक ठीक रीति से देखता है और उस मार्ग को उद्घोषित भी करता है। जो अन्य लोग डरके मारे उद्घोषित कर नहीं सकते, वह जो ऋषि होता है, वह सब जनता के लिये बड़े वेग के साथ उद्घोषित भी करता है। ऋषि दयानन्द जी के पूर्व इनके समान किसी भी नेताने भारत के पुनरुत्थान की इस प्रकार की निश्चित आयोजना नहीं की थी यही उनके श्रेष्ठ दूरदर्शिता का सुस्पष्ट चिह्न है।

हृदय खोलकर ईश-प्रार्थना

किसी मनुष्य का ध्येय, इष्ट अथवा हार्दिक कामना क्या है, यह निःसंदेह देखना हो, तो 'उनकी ईश्वर के सन्मुख प्रार्थना' क्या होती है, उसको देखना चाहिये। अन्य सपूर्ण व्यवहार अन्य मनुष्यों के साथ सम्बन्धित होते हैं, इसलिये उनमें अनन्त मर्यादाएँ बीच में खड़ी हो जाती हैं, परन्तु ईश प्रार्थना के समय मनुष्य के साथ दूसरा कोई नहीं रहता, माता के पास पुत्र जैसा प्रेम के साथ निर्भय होकर जाता है, वैसा भक्त परमेश्वर के पास जाता है और प्रेम से जो अपने हृदय का अभीष्ट है, वह मांगता है। इस समय उसकी प्रार्थना के लिये कोई प्रतिबन्ध नहीं हो सकता क्योंकि "भक्त" और भगवान् के अन्दर प्रतिबन्ध करने वाली दूसरी कोई वस्तु नहीं होती अतः प्रार्थना में ही हरएक का हार्दिक अभीष्ट व्यक्त होता है। इसी नियम के अनुसार श्री स्वामी जी का ध्येय उनकी प्रार्थना पुस्तक "आर्याभिविनय" में प्रकट हो गया है। देखिये उनकी प्रार्थनाएं किस प्रकार की थीं—

(१)...विद्या, शौर्य, धैर्य, चातुर्य, बल, पराक्रम और दृढांग, धर्मात्मा, न्याययुक्त तथा अत्यन्त वीर पुरुष हमें

[शेष पृष्ठ ६ पर देखिये]

तीन पदार्थ

[ले० — श्री सितांश उपस्नातक]

उस दिन जब श्री वेदोपाध्याय के मुख से सुना - 'उपह्वरे गिरीणां सङ्गमे च नदीनां धिया विप्रो अजायत।' तब मैं इस समस्या में पड़ गया कि गिरियों के उपह्वर से और नदियों के संगम से धी और विप्र का क्या सम्बन्ध है। मेरी समझ नहीं आया कि किसी तरह इन जड़ चीज़ों के साथ धी जैसी स्वयं चैतन्य चीज़ का भी सम्बन्ध हो सकता है! आख़िर पहाड़ और है ही क्या सिवाय पत्थरों के— यहां पत्थर, वहां पत्थर और ऊपर नीचे सब जगह पत्थर ही पत्थर! और पत्थर— जो कि सारे संसार में कठोरता और जड़ता का एक मात्र उदाहरण बनता है! भला ऐसी निर्जीव चीज़ से ज्ञान जैसी सजीव और सप्राण चीज़ का क्या सम्बन्ध!

और नदी?— जल की एक धारा मात्र। नदियों का संगम— जल की धाराओं का मिलन मात्र। परिणाम पानी की बहुत बड़ी राशि; और तो कुछ नहीं। तो, मेरी समझ में नहीं आया कि किस तरह पानी की अतुल राशि के पास बैठकर किसी की प्रतिभा का विकास हो सकता है! एक ओर पत्थर, दूसरी ओर पानी— एक ठोस, दूसरा द्रव— किन्तु जड़ दोनों ही। जड़ जगत् से चेतन जन्म लेगा, इस पर कौन विश्वास करेगा? क्योंकि 'आत्मा वै जायते पुत्रः', पुत्र को पिता पर ही होना चाहिये।

और प्रभूत ज्ञान - विज्ञान से ओत-प्रोत, विकास की दृष्टि से सर्वोन्नत इस भौतिकवाद के युग ने तो हमें बताया कि यदि ज्ञान प्राप्त करना है और अपने मन को सुसंस्कृत बनाना है, यदि सभ्य- नागरिकता की शिक्षा प्राप्त करनी है और दिन रात विषम से विषमतर होता हुई संसार-चक्र की समस्याओं को समझना है तो विश्वविद्यालयों में जाओ। और इसी युग ने बताया कि यदि अपनी आध्यात्मिक भूख शान्त करनी है, यदि किसी समस्त विश्वोपयोगी आदर्श सर्वोच्च संस्कृति को खोजना है तो पुस्तकालयों में जाओ। यदि स्वास्थ्य लाभ करना है तो चिकित्सालयों में जाओ, और बेकारी को दूर करना है तो कल- कारखानों में जाओ— इत्यादि।

और ये ही तो सब चीज़ें हैं जिन के द्वारा इस बात का निश्चय है होता है कि कौन देश कितना सभ्य है!

पर पहाड़ों की कन्दराओं से या नदियों के संगम से तो सभ्यता का और संस्कृति का कोई सम्बन्ध नहीं।

फिर वेद-भगवान् कैसे कह रहे हैं कि गिरयों के उपह्वर में और नदियों के संगम पर उस मेधावी आदि-पुरुष ने अपने ज्ञान का विकास किया!

× × ×

और इधर जब संस्कृत के काव्यों का अध्ययन किया तब भी यही पाया। जहां कहीं कोई कवि किसी उच्च आदर्श का या भारतीय संस्कृति का चित्रण करने लगता है तो वह एक दम पर्वतों की उपत्यकाओं में, या कल-कल निनादिनी स्रोतस्विनियों के तट पर, या तरु गहन गम्भीर वन पथों में अपने पाठकों को लाकर छोड़ देता है कि वे यथेच्छ वहां विचरण करें। महाकवि कालिदास के अमर ग्रन्थों में तो स्थान-स्थान पर 'गौरी गुरु' और 'गङ्गा' का ऐसा मार्मिक चित्रण आया है कि सहृदय पाठक ही जानते हैं। ऐसा लगता है कि इनके याद आते ही कवि की प्रतिभा मुखर हो उठती है और वह स्वयं अपने प्रति इतना विवश बन जाता है कि उनका वर्णन किये बिना रह नहीं सकता। वाणी स्वयमेव उस के मुख से निस्सृत होकर इनका वर्णन करने लग जाती है और अपने को कृतार्थ मानती है। इस का क्या कारण है कि उसकी अधिकांश अमर कृतियों का कथा-सूत्र हिमालय की उपत्यका और गंगा के तट से ही परिचालित होता है— कुमार-सम्भव, अभिज्ञान शाकुन्तल और विक्रमोर्वशीय तथा मेघदूत इसके स्पष्ट प्रमाण हैं।

इसका भी क्या कोई रहस्य है कि भारत वर्ष के सब प्राचीन ऐतिहासिक नगर और राजधानियां नदियों के तट पर ही बनाई गई थीं? कुछ तो रहस्य होना ही चाहिये। × × ×

हां, आज वह रहस्य समझ में आया। बहुत सोच-विचार के बाद आज मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूं कि तीन पदार्थ भारतीय संस्कृति की विशेषताएं हैं। आर्यावर्त की जगज्जननी वरदा संस्कृति को यह तीन पदार्थ ही जन्म देने वाले हैं। उन तीन पदार्थों में ही उसने जन्म लिया, वहीं वह फली-फूली, और अद्यावधि उसके प्राण उन तीन पदार्थों में ही बसते हैं। वे तीन पदार्थ कौन से हैं? वे तीन पदार्थ हैं—

पेड़ पानी और पर्वत।

ऐसा लगता है कि भारतवासियों ने अपने एकनिष्ठ तपोमय समग्र जीवन का रस देकर जिस संस्कृति को जन्म दिया वह आजन्म किसी पर्वत की उपत्यका में खड़े हुए पेड़ की छाया में बैठकर पास ही बहते हुए अजस्र-गति निर्झर का जल पीकर समाधि में लीन रही और उस समाधि में लीन रहते २ ही उसने वे ज्ञान के गुप्त भण्डार संसार को प्रदान किये कि संसार उनको पाकर चकित है और आज इस अबोध विश्वात्मा को निश्चय है कि यदि प्राची से वह ज्ञान की ज्योति उदित न हुई होती तो निश्चय ही यह सारा संसार अभी तक अन्धकार के काले पर्दे में पड़ा सो रहा होता। इन तीन पदार्थों में ही सर्वप्रथम साम का गान ऋषियों ने किया था, यहीं बैठकर सर्वप्रथम गुरु और शिष्य ने परस्पर ज्ञान - चर्चा और धर्मचर्चा की थी और सृष्टि के उन निगूढ़ रहस्यों का पता लगाया था जिन को जानने के लिये यह आज का दैनिक संघर्ष-ध्वस्त संसार तिलमिला रहा है। प्रकृति और पुरुष के अभेद को सब से पहले अनुभव करने वाला वही आदि मानव था जिसने एक-एक करके अनादि इन तीन पदार्थों के सम्पर्क में आकर अपने जीवन का परमार्थ क्रियात्मक में ला दिया।

इसीलिये जब मैं देखता हूँ कि कोई निर्झर कल कल छल छल करके पर्वत की कोख में से भागा चला आ रहा है और उसकी उन इठलाती हुई लहरियों के ऊपर किसी वृक्ष ने अपनी भुजायें फैलाकर छाया की हुई है तो मुझे एकदम यही ध्यान आता है कि उस वृक्ष के नीचे कोई वीतराग योगी ध्यानस्थ होकर बैठा है और इस पाप-तापमय जीवन के तथा सुख-दुःखमय संसार के तत्व चिन्तन में लगा हुआ है। ऐसी समस्याओं के समाधान के लिये बड़े बड़े नगर और बड़े बड़े प्रासाद अकिञ्चित्कर होंगे, और इन तीन पकारों से बढ़कर अधिक शान्तिमय तथा पुनीत स्थान और नहीं मिल सकता।

मैंने कहा था पर्वत भी जड़ है, नदी भी जड़ है, और वन भी जड़ है—इन तीनों जड़ों से चेतन का क्या सम्बन्ध? ज्ञान का क्या सम्बन्ध? पर आज मुझे भास होता है जैसे कि ज्ञान भी जगत् के अविद्या-मोह द्वेष से और प्रतिदिन एक राष्ट्र के दूसरे राष्ट्र पर होने वाले आक्रमणों से घबराता है और ऐसे ही पुनीत, एकान्त, शान्त वातावरण की खोज करके चुपके से इन तीन पकारों के बीच में आकर बैठ जाता है। यहां उसके प्रति इन्हीं काम-क्रोध-लोभ अपनी सेना लेकर तपस्या में बाधा डालने नहीं आ सकते। सच, मैं सोचता हूँ—अंग्रेजी के उस कवि ने ठीक ही कहा है—

There's a book in every brook,
There's a sermon in every stone.

इसीलिये मैं कहता हूँ कि जिस प्रकार हिमालय और गंगा को निकाल देने पर महाकवि कालिदास की कृतियां निष्प्राण हो जाती हैं, उसी प्रकार जिस दिन ये तीन पकार—पेड़, पानी और पर्वत भारतीय संस्कृति से अलग कर दिये जायेंगे उस दिन यह निष्प्राण हो जायगी। श्रुति ठीक ही कहती है—'उपह्वरे गिरीणां संगमे च नदीनां धिया विप्रो अजायत।' अन्य देशों की संस्कृतियां भले ही विश्वविद्यालय, पुस्तकालय और चिकित्सालय तथा हवाई जहाज़ और मोटर में पनपी हों, पर वैदिक संस्कृति के तो ये तीन पकार ही प्रतीक हैं और इनके बिना उसकी कल्पना नहीं की जा सकती।

× × ×

और यदि अप्रासंगिक न हो तो, क्या मेरे पाठक मुझे कहने देंगे कि शिक्षा के क्रान्तिकारी पिता अमर कुल-गुरु श्री स्वामी श्रद्धानन्द ने इन तीन पकारों का सर्वोत्तम समन्वय चुनकर ही अपनी मानस सन्तान—गुरुकुल संस्था का जन्म दिया था। वृद्ध पिता हिमालय की गोद, माता जाह्नवी का चंचल अञ्चल और चण्डी-वन का वह आमोद प्रमोद आज कहां है !!!

आवश्यकता

गुरुकुल के लिये एक वैद्य की स्थाई तौर पर आवश्यकता है। वेतन योग्यतानुसार होगी।

—मुख्याधिष्ठाता गुरुकुल कांगड़ी

प्रारम्भ

श्री 'विराज' एम॰ ए॰

[१]

ओ ठहर ठहर ओ ठहर ठहर।
ले बिना धैर्य तुम पड़े कूद,
देखा न इधर ली आंख मूंद,
यह है अगम्य, यह है अपार,
तुम फिसल रहे, है दूर धार,

तुम कहते हो है चाह; चाह
मतवालों की है अजब राह,
था सह कर तू जिस का प्रहार
गिर पड़ा न कुछ पाया सहार,
वह थी यौवन की प्रथम लहर।—
ओ ठहर ठहर ओ ठहर ठहर

[२]

हो गये अभी से ओ! श्रान्त,
श्रम से है प्रिय मुख म्लान क्लान्त,
आ रहा स्वेद, हैं थके चरण—
हो चले जारहे, जहां मरण,
पर रहे ध्यान है अभ दूर—

मंजिल तक होगे चूर-चूर
मध्याह्न दूर, फिर शाम कहीं
आवेगी; फिर आराम कहीं—
यह तो यौवन का प्रथम प्रहर।
ओ ठहर ठहर, ओ ठहर ठहर।

[३]

यह तो कुछ भी आघात नहीं,
तुझको कुछ भी तो ज्ञात नहीं,
ये हल्के बादल दीख रहे,
जो अभी कड़कना सीख रहे,
पर देख क्षितिज के पास कहीं

क्या मेघों का आभास नहीं!
वे गरज उठेंगे घन भीषण
जो सुनी अभी हलकी तर्जन
वह थी यौवन की प्रथम पहर—
ओ ठहर ठहर, ओ ठहर ठहर।

ओ मानव जीवन ....।

गुरुकुल

२६ कार्तिक शुक्रवार १९९५

हिसार का दुर्भिक्ष—

इस वर्ष प्रकृति देवी ने पंजाब के पूर्वी हिस्से में अपना प्रकोप दिखलाया है। बरसात का मौसम बिलकुल सूखा ही, हिसार तथा राजपूताने के उत्तरी रियासतों में गुजरा है। पूर्वी दक्षिणी पंजाब की फसलें सूख गई हैं। मवेशियों के लिये चारे का कोई प्रबन्ध नहीं है। परिणामतः प्रतिदिन अकाल से मरने वालों की संख्या में वृद्धि हो रही है। पशुधन जिसे हिन्दु जाति आदर की दृष्टि से देखती है आये दिन मौत का शिकार हो रहा है। इस इलाके की गौएं अपनी नस्ल के कारण प्रसिद्ध रही हैं दूध घृत पशु इस इलाके के स्थायी धन रहे हैं। इनका इस तरह से विनाश होते देख कौनसा भारतीय दुःखित न हो उठेगा। इस गोधन की रक्षा के लिये सब सहायता के कार्यों का होना परमावश्यक है। भारत के धनी मानी तथा दानी सज्जनों को इस ओर ध्यान देकर इस पुण्य कार्य में हिस्सा बंटाना चाहिये। पञ्जाब सरकार का भी यह कर्तव्य है कि यह इस विषय में आगे बढ़कर पथ प्रदर्शन का कार्य करे। इस विषय में अब तक की सरकारी सहायता अपर्याप्त है उसे इस विषय में और अधिक हाथ बढ़ाने की आवश्यकता है।

नागरिक स्वातंत्र्य पर कुठाराघात

हैदराबाद रियासत वर्षों से अपने प्रगति विरोधी कार्यों के लिये प्रसिद्ध रही है। इस मुस्लिम रियासत में धार्मिक सामाजिक अधिकारों को जो किसी जगह के भी नागरिक के लिये बडप्पन के चिह्न समझे जा सकते हैं- साम्प्रदायिक कह कर उन पर रोक लगा दी गयी है। हैदराबाद रियासत में विभिन्न सामाजिक एवं धार्मिक कृत्यों पर रोक है, किसी भी शान्त धार्मिक कृत्य में मजहबीपने की बू और साधारण सामाजिक कृत्यों में साम्प्रदायिकता की गन्ध रियासत के अधिकारियों को आती है। रियासत में स्टेट कांग्रेस के जैसी सर्वथा राजनैतिक नागरिक-स्वतंत्रता की रक्षक संस्था को साम्प्रदायिक कह कर निषिद्ध ठहराना कभी भी उचित नहीं नहीं कहा जा सकता।

रियासत के इन कार्यों का कोई भी व्यक्ति समर्थन नहीं कर सकता। नागरिक अधिकार किसी भी देशवासी के लिये गौरव की वस्तु हो सकते हैं। इन सामाजिक धार्मिक, तथा राजनैतिक नागरिकता के अधिकारों के लिये पिछले कई वर्षों से रियासत में एक आवाज उठ रही है। अधिकारी इस आवाज को साम्प्रदायिक कह कर थोड़े समय के लिये भले ही दबालें किन्तु भविष्य में यह बड़े भारी स्वातन्त्र्यान्दोलन का अवश्यमेव सूत्रपात् कर छोड़ेंगे।

रियासत के अधिकार शून्य नागरिकों की सहायता के लिये कुल के ३० बन्धुओं ने अपनी सेवायें सत्याग्रही नेताओं को सौंपी हैं। यह छोटा सा उदाहरण भी स्थिति की गम्भीरता और ब्रह्मचारियों के साहस पर प्रकाश डालता है।

श्री ला० जगतराम जी का स्वर्गवासः—

विगत ४ नवम्बर को फिरोजपुर में ला० जगतराम जी का स्वर्गवास हो गया। लाला जी आर्य समाज के उत्साही, दृढ़ चरित्र, त्यागी तपस्वी और मूककार्यकर्ता थे। उन्हें निन्दा और स्तुति की बिलकुल परवाह नहीं रहती थी। लाला जी का सारा जीवन आर्य समाज की सेवा में बीता है। लाला जी के देहान्त का समाचार जब गुरुकुल पहुंचा तब जिसने भी सुना सबको गहरा दुःख हुआ। उनके शोक में गुरुकुल के सब विभाग बन्द रहे। सब गुरुकुल वासियों की सभा हुई जिसमें सबने खड़े होकर निम्न प्रस्ताव पास कियाः—

यह कुल सभा आर्यसमाज के प्रसिद्ध कार्यकर्ता, निःस्वार्थ मूक सेवक, गुरुकुल के सच्चे हितचिन्तक श्री लाला जगतराम जी की असामयिक मृत्यु पर शोक प्रकट करती है और परमपिता परमात्मा से उनकी सद्गति की प्रार्थना करती है।

विजय गान

(विजयी बन्धुओं के स्वागत में)

श्री सत्यभूषण 'योगी'

हम विजय का गान गाएं !
इस खुशी से विश्व को खुशहाल करते बन्धु आए ॥
मञ्जु ऊषा खिल रही है
ले विजय सन्देश गौरव,
इस मधुर सन्देश को
गा गा विहग नभ में गुँजाएं !
हम विजय का गान गाएं।
खिल रहे हैं आज कुल के
फूल मद में झूलते-से,
हर्ष-पारावार का हम
आज कैसे कूल पाएं।
हम विजय का गान गाएं।
आज निज को भूल जाएं,
देव हो अनुकूल आएं,
देव पुत्रों की विजय में
फूल बरसाएं दिशाएं !
हम विजय का गान गाएं।
इस खुशी से विश्व को खुशहाल करते बन्धु आए।

तो यह दुनिया सचमुच नरक है !

(ले०--श्री सत्यभूषण जी 'योगी')

यदि मानव इतना अधःपतित है तो यह दुनिया सचमुच नरक है।

हां, आज तक मैंने इस दुनिया को स्वर्ग समझा था-मैं मुग्ध विस्मृत सा हो जाता था देखकर--सुन्दर ऊषा को-मनोहारिणी नीरव संध्यावेला को, तारक भरी रजनी को, पूर्ण चन्द्र की चांदनी से दूध में न्हाई सी वसुधा को झर झर झरते निर्झरों को, कल कल गान करती सरिताओं को रंग बिरंगे फूलों को और धवल हिमाच्छादित मंजुल पर्वतों को—तब मैं सोचता था कि यह दुनिया स्वर्ग है-इसमें सुख ही सुख है-सुन्दरी प्रेममयी जगन्मा ने इसे हमारे सुख के लिए बनाया है—इसमें दुःख कहां पाप कहां-सब आदमी अच्छे हैं—इस प्रकार मैं अपने प्रेममय कविता-संसार में मग्न था।

आज सहसा मुझे धक्का लगा, मेरी आंखों में आंसू हैं। मैं जीभर रो लेना चाहता हूं और अपनी वेदना के भार को हलका कर लेना चाहता हूँ। मुझे धक्का लगा-मेरी आंख खुली-मैंने देखा कि दुनिया में कुछ लोग ऐसे भी हैं जो अत्यन्त स्वार्थी होते हैं। जो कृत्रिम बनावटी जीवन बिताते हैं जो किसी से प्रेम करते हैं तो स्वार्थ की सिद्धि के लिए,किसी से मीठा बोलते हैं तो स्वार्थ की सिद्धि के लिए। मीठी मीठी बातों के जाल में वे औरों को बांध लेते हैं। कांटे के आगे आटा लगाकर वे मछलियों को पकड़ते हैं। उन्हें दीन धर्म की परवाह नहीं; स्वार्थसाधन ही उनका एकमात्र कर्म है। वे स्वार्थ के लिए नीच से नीच काम करने को तैयार हो जाएंगे-दूसरे आदमियों को ठगेंगे, जाल में फंसाएंगे-मीठी मीठी बातें बनाएंगे। फिर अन्त में स्वार्थ पूरा हो जाने पर ऐसा दिखाएंगे कि मानो उनका कोई संबन्ध ही नहीं रहा। उन्हें किसी की भी परवाह नहीं उन्हें समाज में आदर सहित प्रतिष्ठित होकर रहने की परवाह है-चाह है। चाहे इसके लिए कितनों को धोखा देना पड़े।

हाय, मानव का इतना पतन, मानव का मानव के साथ ऐसा व्यवहार !! मानव का मानव के साथ ईमानदारी से व्यवहार करना कोई अलौकिक चीज नहीं है कोई देवत्व नहीं है-केवल मनुष्यत्व है और मनुष्य का छोटा सा गुण एवं धर्म है।

हाय, जो इस ईमानदारी के व्यवहार को भी नहीं रख सकते, जो अपनी शान मान के लिए, गौरव प्रतिष्ठा के लिए किसी के भी साथ नीच से नीच, धोखे से दूषित कृत्रिमतायुक्त व्यवहार कर सकते हैं उनके बारे में क्या कहा जाय। जगन्माता उन्हें क्षमा करे, सन्मार्ग दिखाए।

पर, कितना दुःखद है-अफसोस है यह देखना कि कोई मनुष्य मनुष्यता से पतित होगया है। कमजोरियां-अपूर्णताएं तो हर एक आदमी में होती हैं क्योंकि कोई भी पूर्ण नहीं है। पर किसी में मनुष्यत्व का न रहना सहृदयों के दिलों को तोड़ डालना है। आज, इस रात के १२ बजे के समय मैं सूना सा बैठा हूं, आंखें थोड़ी थोड़ी गीली हो रही हैं। मैं रोना चाहता हूँ जी भर रोना चाहता हूँ। आज मेरा कविता का प्रेममय सुमधुर संसार नष्ट हो गया। हाय, यदि मानव इतना अधःपतित है (और 'है' – जैसा कि अभी थोड़ी देर पहले मैं अपनी आंखों से देख चुका हूं) तो यह दुनिया सचमुच नरक है।

पतझड़ के पत्ते

(ले० श्री अनन्त)

पतझड़ आई, वही मुर्दनी फिर छा गई। हमारे असंख्य साथियों में से बहुत से नीचे गिर चुके थे और कुछ अभी गिर रहे थे। हवा के हरेक झोंके के साथ हमारे में से बहुत से नीचे गिर जाते थे। एक बार मर मर की करुण ध्वनि होती और फिर वही भयंकर सन्नाटा !

× × ×

जब मैं नन्हा सा था, तो मेरे बुजुर्ग साथियों ने मुझे बतलाया था कि एक दिन सभी को यहां से नीचे गिरना होता है। यहां से गिरने के बाद क्या होता है, यह शायद वे भी नहीं जानते थे। हां, इतना वे अवश्य कहा करते थे कि अपने बहुत से साथियों को उन्होंने आंधी के साथ ऊपर-सुदूर आसमान में जाते देखा है, और फिर कभी लौटते नहीं देखा !

× × ×

हमारे पेड़ के साथ ही एक बड़ा सा आम का पेड़ था। बसन्त में जब उस पर बौर लगते और उषःकाल के साथ २ मृदु समीर के स्पर्श से चारों तरफ उसकी सुरभि बिखर जाती तो उसके पत्ते झूम २ कर बड़े अभिमान से हमसे कहा करते थे—'देखो, हम कितने सौभाग्य शाली हैं !" कोकिल की मधुर तान के साथ जब उस आमका एक २ पत्ता लहलहा उठता था, तब हम सिर झुका कर रो उठते थे कि हमारा इतना सौभाग्य कहां, हम अभागों को भला यह कहां नसीब !

आज इन बातों को बहुत दिन हो गये थे। बुढ़ापे के साथ २ हमारी कटुता भी बहुत कुछ समाप्त हो चुकी थी।

× × ×

आज वह भी इस पतझड़ में सिर झुकाये खड़ा था। उसके बहुत से पत्ते गिर चुके थे और वह इस समय एक निरा ठूंठ सा प्रतीत हो रहा था।

× × ×

एक अजीब सी उदासी सभी के चेहरों पर छाई हुई थी। किन्तु आम के पत्ते हम से कुछ अधिक उदास थे-कुछ अधिक पीले। शायद लाड़-प्यार में पले, सदा आमोद-प्रमोद में रहने वाले वे इस दुःख को नहीं सहार सके। आज कोकिल का पता नहीं था, शायद, सुख के साथी ऐसे ही होते हैं। मृदु समीर भी जो कभी-थपकियां दे २ कर उन्हें सुलाता था आज दारुण और शुष्क हो उनको झकोरता, मरोड़ता सा बह रहा था। उनकी क ण

मर मर ध्वनि इस गर्जन-तर्जन के बीच स्पष्ट सुना जा सकता थी।

× × ×

हमारा बचपन का साथी कौआ आज भी अपनी शाख २ स उसी तरह हम पर बैठा हमें ढाढ़स बंधा रहा था। जो कभी अप्रिय लगता था आज वही अपना सब से प्यारा बन्धु जान पड़ता था। हम सन्तुष्ट थे कि हमारा पुराना साथी आज भी हमें भूला नहीं है।

× × ×

सहसा वायु का झोंका आया। एक झटके के साथ मैं और मेरे बहुत स साथी नीचे गिरने लगे। मैं रो रहा था—शायद, अब हम कभी न मिल सकेंगे।

× × ×

मैं बहुत दिनों तक वहीं पड़ा रहा—उसी अपने पेड़ के नीचे। वर्षा और धूप ने मुझे बिल्कुल जीर्ण कर डाला था। मैं सोचता था, शायद मुझे भी इसी तरह मर जाना होगा। मेरे पास ही बहुत दूर तक फैला हुआ मिट्टी का एक ढेर था। मैं समझता हूं वह उनकी समाधि थी जो मुझ से बहुत पहिले कभी गिरे थे और दीमकों ने जिनकी यह दशा करदी थी।

× × ×

दिन बीतते जा रहे थे और मैं अपने जीवन से निराश हो चला था।

एक दिन एक बवंडर आया, मैं भी उड़ चला। आज मैं पहिली बार जमीन से ऊपर उठा। मैं घूमता हुआ ऊपर उठता जा रहा था। मैं ने सोचा—शायद, मैं भी वहीं जा रहा हूं जहांसे फिर कभीकोई नहीं लौटता। मेरा पेड़ मेरे से बहुत पीछे—नीचे छूट गया था।

× × ×

मैं बहुत देर तक उड़ता रहा, इधर-उधर न जाने कहां! मुझे लगा मैं धीरे २ गिर रहा हूँ। आखिर, मैं शीशम के पेड़ों के एक बड़े जङ्गल में गिरा। मैंने सिर उठा कर देखा—डाली २ में नई कोंपलें फूट रही हैं—वृक्ष का हृदय फूला नहीं समाता था। नन्हें २ पत्ते झूम रहे थे। मैं सोचने लगा—क्या, ये भी एक दिन मेरे जैसे हो जायेंगे? विश्वास तो नहीं हुआ, पर दिल धड़कता था, शायद "हां"! के सिवाय इसका कोई उत्तर न था।

पृष्ठ पहिले का शेष

प्राप्त हों, वैसे सुवर्ण रत्नादि तथा चक्रवर्ती राज्य और विज्ञान रूप धन को भी प्राप्त होवें ॥ ३ ॥ (पृ० २५-२६)

(२)...आप हमको सरल चक्रवर्ती राजाओं की नीति को प्राप्त कराओ,...हमको वरराज्य, वरनीति दो, हमको सत्य विद्या से युक्त सुनीति दे के साम्राज्याधिकारी सद्यः कीजिये। हमलबकी सहाय्यता करो कि जिससे सुनीतियुक्त होके हमारा स्वराज्य अत्यन्त बढ़े ॥ १८ ॥ (पृ० ६५-६७)

(३)...आओ सब मिलके अपने सब दुःखों का विनाश और अपने विजय के लिये ईश्वर को प्रसन्न करें, जो अपने को वह ईश्वर आशीर्वाद देवे, जिससे अपने शत्रु कभी न बढ़ें ॥ २२ ॥ (पृ० ७७)

(४) हमारे शत्रुओं को जीतने वाले हो, इस कारण से हमारा पराजय कभी नहीं हो सकता ॥ २६ ॥ (पृ० ८६)

(५)...पिता के समान हमारा पालन करो, हे भगवान्! आपकी उत्तम न्याय नीति में प्रवृत्त होके वीरों के चक्रवर्ती राज्य को आपके अनुग्रह से हम प्राप्त हों ॥ ४१ ॥ (पृ० १३२-१३३)

(६)...पुरुषार्थ को कभी मत छोड़ें, धर्मयुद्ध में शूरवीर होके . बड़ा अखण्ड साम्राज्य प्राप्त करके सब मनुष्यों का हित करें, सुनें और परमानन्द भोगें ॥ ५२ ॥ (पृ० १५५ १५६)

(७) हम लोगों का पठन पाठन विद्या बढ़ाने वाला हो तथा...हम सब संसार में सबसे अधिक प्रकाशित हों, अन्योन्य प्रीति से परमवीर्य पराक्रम से निष्कण्टक चक्रवर्ती राज्य भोगें, हममें सब पुरुष नीतिमान् और सज्जन हों, ..अच्छी प्रजा पुत्रादि, हस्त्यश्वगवादि, सर्वोत्कृष्ट विद्या, और चक्रवर्ती राज्यादि परमैश्वर्य को शीघ्र प्राप्त करें ..॥ १ ह (पृ० १६१ १६५)

(८) हम लोग शत वर्ष तक देखें, जीवें, सुनें, कहें, कभी पराधीन न हों,...सौ वर्ष के उपरान्त भी स्वाधीन ही रहें ॥ ३७ ॥ (पृ० २७६)

आर्यों का अखंड चक्रवर्ती राज्य

श्री स्वामी जी की बनाई प्रार्थनाएं ये हैं। यहां उनका हार्दिक ध्येय उत्तम रीति से प्रकट हो रहा है। हम आर्यों में बल, बुद्धि, चातुर्य, शौर्य, वीर्य, पुरुषार्थ बढ़े और आर्यों का अखण्ड चक्रवर्ती राज्य अति शीघ्र इस भूमण्डल पर हो। जिस विकट राजकीय परिस्थिति में श्री स्वामी जी महाराज का जन्म हुआ था, जिस देश की विलक्षण शोचनीय परिस्थिति में श्री स्वामी जी के जन्म स्थान के—कठियावाड़ गुजरात के—लोग विदेश के साथ होने वाले व्यापार व्यवहार द्वारा कमीशन प्राप्त करके धनाढ्य बनने की ही केवल एक मात्र इच्छा कर रहे थे, उस समय यह अकेला लंगोट बन्द ब्रह्मचारी तेजस्वी स्वामी, घरबार छोड़कर पूर्ण असंग होकर 'आर्यों के अखण्ड चक्रवर्ती राज्य की शीघ्र स्थापना करने का उपाय ढूंढ रहा था।' निःसंदेह यह उनकी ऋषि दृष्टि की सिद्धि करने वाला पर्याप्त प्रमाण है।

उस समय के राजकीय नेतागण विदेशी सरकार की प्रार्थना और याचना करने में, अर्जियां करने और उनकी कृपा से कुछ नौकरियां प्राप्त करने में हि अपना जीवनोद्देश्य सफल समझ रहे थे, स्वतन्त्र स्वराज्य स्थापन करने की कल्पना भी उद्भूत नहीं हुई थी। आज से ६०—७० वर्ष पूर्व का राजकीय क्षितिज पाठक देखेंगे, तो उन को स्वतन्त्र स्वराज्य कहीं भी नहीं दीखेगा। हाथजोड़ कर अंग्रेजों से प्रार्थना करने का वायुमण्डल ही उस समय के राजकीय नेताओं के मन में था। ऐसे घोर समय में यह लंगोट धारी सन्यासी आर्यों का अखण्ड चक्रवर्ती राज्य स्थापित करने के विचारों में मग्न होकर एकान्त सेवन कर रहा था।

जिस समय लोग विदेशी राज्य में रहना और उनकी नौकरियां करना ही अपना ध्येय मानते थे, उस समय जिसने आर्यों के अखण्ड चक्रवर्ती राज्य का मार्ग देखा, उसको भारतीय पुनरुत्थान का ऋषि न समझें तो दूसरे किसको समझें।

चक्रवती राज्य का मार्ग

श्री स्वामी दयानन्द महाराज ने केवल ईश्वर की प्रार्थना करके भी आर्यों का अखण्ड चक्रवर्ती राज्य इस भूमण्डल पर होने की सम्भावना कभी नहीं मानी थी। कोई वेद का वेत्ता ऐसा मान नहीं सकता। कोई सच्चा वेदवेत्ता विदेशी राज्य के अन्दर दास बन कर भी नहीं रह सकता। वेदज्ञान और पारतन्त्र्य स्वीकार, इनका सदा विरोध ही है। इसलिए स्वामी जी आर्यों का स्वतन्त्र और अखण्ड चक्रवर्ती राज्य अति शीघ्र इस भूमण्डल पर स्थापित करने के इच्छुक थे !

सब आर्य सायं प्रातः पवित्र होकर ऐसी प्रार्थना करें, इसी लिए यह आर्याभिविनय नामक तेजस्वी ग्रन्थ स्वामी जी ने निर्माण किया था ! लोग यदि आतुरता से ऐसी प्रार्थना करेंगे, तो वैसा ही स्वराज्य शीघ्र प्राप्त करने का वायुमण्डल देश भर में बनेगा, वैसा सामुदायिक प्रयत्न भी होगा। आर्यों के चक्रवर्ती राज्य की स्थापना का प्रारम्भ इसी तरह ईश प्रार्थना से हो सकता है।

ईश्वर उपासना

यहां पाठक कल्पना करें कि प्रत्येक घर में प्रातः सायं पारिवारिक प्रार्थना में घर के सब स्त्री पुरुष सम्मिलित होते हैं, और वहां अति शीघ्र चक्रवर्ती राज्य स्थापन करने का बल ईश्वर से मांगा जाता है। नगर के समाज भवन में सब नागरिक एक मन से अपने स्वतन्त्र स्वराज्य की स्थापना के विघ्न दूर करने की प्रार्थना करते हैं। इसी तरह प्रान्तों और राष्ट्रों के वार्षिक महोत्सव में लाखों भारतवासी सम्मिलित होते हैं और अपने चक्रवर्ती राज्य की स्थापना करने की प्रार्थना ईश्वर से करते हैं, तो उस राष्ट्र में कितना राजकीय स्वतन्त्रता का मानसिक भूमि में वायुमण्डल बन सकता है। पाठक इन स्वामी जी की मानसिक तैयारी करने की आयोजना का महत्व सोचें। इस तरह राष्ट्रीय मन तैयार हुआ, तो उस मन के द्वारा हरएक दिशा में स्वतन्त्रता प्राप्त करने के प्रयत्न होंगे और देश शीघ्र ही स्वतन्त्र होगा, इस में कोई सन्देह ही नहीं है।

राष्ट्रीय संघटना।

केवल मन के विचारों में उक्त प्रकार स्वातन्त्र्य प्रार्थना उत्पन्न होने से ही स्वराज्य स्थापना नहीं हो सकती,यह तो स्वामी जी जानते ही थे। इस लिये उन्होंने भारतीयों की संघटना का कार्य क्रम भी तैयार किया था।

गुरुकुल समाचार

ऋतु सुहावनी है। शरदागमन के कारण गंगा की धार परिमित हो गई है। जल अत्यन्त शीतल और स्वच्छ है। पिछले रविवार को यहां के ब्रह्मचारी पर्याप्त से अधिक संख्या में पुरानी कुल भूमि के दर्शनार्थ गए। वे पैदल गए थे, इन के साथ ही साथ जंगल में बदरी फल लोलुप भालुओं का भी डर रहता है। कुछ ग्रामवासियों ने ब्रह्मचारियों को बताया कि जंगल के अमुक स्थान पर भालू आए हुए हैं। जब ब्रह्मचारी वहां पहुंचे तब तक वे भाग चुके थे। पुरानी कुलभूमि को देखकर प्रत्येक बन्धु को आन्तरिक क्लेश हुआ। वह बरगद का वृक्ष— जिसने गुरुकुल के प्रारम्भ से ही सैकड़ों ब्रह्मचारियों को कुलपिता के साथ २ हजारों आत्माओं को शान्ति दी थी— गंगा की धार से उखड़ कर भाग-गामी हो गया। अब गंगा की धार स्वामी श्रद्धानन्द जी के बंगले की सीढ़ियों से टकराती है। यदि यहां कुछ ख्याल न किया दिये जायेंगे तो अगली बरसात में पुरानी भूमि का गंगा-नष्ट पुरातन-पावन चिन्हों से सर्वथा शून्य हो जायगा। ब्रह्मचारी पुरानी भूमि के भिन्न २ स्थानों पर भ्रमण कर सिद्धकुण्ड और सिद्धाश्रम के जंगलों की शोभा और नीरवता का अनुभव करते हुए, वापस लौटे।

विजयी भाइयों का स्वागत:—

विगत सोमवार को गढ़मुक्तेश्वर के तैरी सम्मुख्य में भाग लेने वाले गुरुकुल के दो प्रतिनिधि ब्र० रघुनाथ जी तथा ब्र० विद्यानन्द जी विजयी होकर लौटे। इस तैरी में ३५ तैराकों ने भाग लिया था जिनमें देहली का तैराक-दल और गढ़-मल्लाह-दल के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। लम्बी तैरी १ मील की थी। हमारे ब्रह्मचारियों को वहां की धार के उथलेपन का बिलकुल पता न था जिस से कई स्थानों पर वे बालू में फंस गए किन्तु अपने परिश्रम और अध्यवसाय के कारण इन बाधाओं का अतिक्रमण कर हाथ मारते हुए सब से आगे बढ़ गए और क्रमशः प्रथम और द्वितीय रहे। दूसरे दिन फिर तैरी हुई जिसमें तैरते हुए अन्य तैराक-दल के प्रतिनिधियों ने विचित्र प्रकार से, आगे बढ़ने में बाधा डाली। किन्तु इस तुमुल संघर्ष में भी हमारे दोनों भाई ही विजयी रहे। पिछले सोमवार को प्रातः काल ये दोनों भाई विजयोत्साह के साथ गुरुकुल पहुंचे। बैंड बाजे के साथ इनका स्वागत किया गया। "बन्धुवर ! स्वागत की माला आज हम पहिनायेंगे" के गान के साथ सभा में सुन्दर माला पहनाई गई। सब भाइयों ने अपने २ वर्ग की ओर से बधाई दी। हमारे भाइयों ने इस कशमकश में विजय-लाभ कर निस्सन्देह कुल का नाम उज्वल किया है। इस के लिए इन्हें बधाई है।

स्वास्थ्य समाचार

कृष्णमूर्ति ५ श्रेणी विषमज्वर, कुलभूषण ५ श्रेणी विषमज्वर, नारायणमूर्ति ३ श्रेणी विषमज्वर रामकृष्ण १ श्रेणी विषमज्वर, शङ्करदेव १२ श्रेणी विषमज्वर, रामप्रकाश ११ श्रेणी चोट, रामनाथ १२ श्रेणी चोट सत्येन्द्र १३ श्रेणी चोट, सत्यव्रत १२ श्रेणी श्लेष्मज्वर, मनोहर १२ श्रेणी खुजली,से रोगी हुए थे। इन में से रामकृष्ण और कुलभूषण को अभी ज्वर है शेष सब अच्छे हैं।

चौधरी हुलासराय के प्रबन्ध से गुरुकुल प्रेस गुरुकुल कांगड़ी में मुद्रित तथा प्रकाशित।

* ओ३म् *

"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत" Reg. No. A. 2927

गुरुकुल

सम्पादक— साहित्यरत्न पं० हरिवंश वेदालङ्कार

एक प्रति का मूल्य -) [गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख-पत्र] वार्षिक मूल्य ३॥)

वर्ष ३] गुरुकुल काङ्गड़ी, शुक्रवार ३ मार्गशीर्ष १९९५; १८ नवम्बर १९३८ [संख्या २६

काल

(ले० श्री प्रो० लालचन्द जी उपाचार्य)

योग वासिष्ठ में काल का यों वर्णन किया है। "काल का बड़ा आकार है। आकाश सिर है। पाताल चरण हैं। दशों दिशाएं इसकी भुजाएं हैं। सप्त समुद्र इसके हाथ में कंगन हैं। संपूर्ण पृथ्वी उस के हाथ में पात्र रूप है। उस के ऊपर जो जीव हैं, सो भोजन योग्य हैं। हिमालय और सुमेरु पर्वत दोनों कानों में बड़े रत्न हैं। चन्द्रमा सूर्य इसके लोचन हैं और सब तारागण इस के मस्तक में बिन्दु हैं"

पृथ्वी के पात्र में हम तो काल के लिये गाजर-मूली के समान हैं। हमारा क्या कर्त्तव्य है यह हमें पता नहीं है। काल बली किस समय किस को आ दबावे, यह कुछ भी निश्चत नहीं है। ऐसी अनिश्चितता की अवस्था में बेपरवाह होना महान् मूर्खता है। जब काल का बुलावा किसी भी समय आ सकता है तो सब से कीमती वस्तु को सदा अपने पास रखना चाहिये। और वह भी ऐसी जो साथ ले जाई जा सके। वह कौन सा रत्न है? वह है अपने आप का ज्ञान। जिसने कुछ करने से पहले अपना पता लगा लिया उसने अपना असली अर्थ सिद्ध कर लिया। दूसरों की हालत शोचनीय है।

भर्तृहरि जी कहते हैं कि काल सांप है। मनुष्य उस के मुख में मेंढक है, जिस का अगला भाग अर्थात् मुख और आंखें बाहर हैं। यह मेंढक जिसको पीछे से काल ने पकड़ा हुआ है अपने सामने मच्छरों को देखता है और उनकी ओर लपकता है। यही हालत हमारी है। काल बली के मुख में पड़े हुए भी हम इन्द्रियों के विषयों की ओर भागते हैं। उन को पकड़ने की चेष्टा करते हैं पर हमें किस ने पकड़ा हुआ है, यह भूले रहते हैं यदि यह याद रहे तो बेड़ा पार है।

दो बातन को भूल मत, जो चाहे कल्याण।
'नारायण' इक मौत को, दूजे श्री भगवान॥

महाभारत में लिखा है कि सब से अधिक आश्चर्य की बात यह है कि हम रोज़ लोगों को मरते देखते हैं पर समझते हैं कि हम ने तो मरना ही नहीं है।

महा कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने काल का वर्णन करते हुए एक बहुत सुन्दर बात कही है। जब माता बच्चे को एक स्तन से अलग करती है तो वह रोता है, पर उसे पता नहीं कि माता तत्काल ही दूसरे स्तन से मुख लगा देती है। इसी तरह प्रकृति माता मनुष्य को मरने पर एक स्थान से दूसरे स्तन पर ले जाती है जिस मनुष्य को यह ज्ञान हो जाता है वह रोता चिल्लाता नहीं, वह शान्ति से चला जाता है। योरप का एक बड़ा महापुरुष मरते समय पुकार उठा 'Light, more, light!' 'प्रकाश, और प्रकाश,' सचमुच प्रकाश के बिना ज्ञान के बिना, बोध के बिना, मनुष्य को शान्ति कहां? यदि आत्म ज्ञान न हो तो मरते समय मनुष्य ऐसा अनुभव करेगा। कि वह अंधकार के अथाह सागर में गोता लगाने लगा है।

जो असलीयत को जानता है जिसे अपनी आत्मा का अनुभव हो चुका है उसके लिये मरना केवल चोला बदलना मात्र है, या सांप का पुरानी केंचुली में से निकल जाना है, या बलवान घोड़े का एक खेत में से दौड़ कर दूसरे खेत में चले जाना है, या बाढ़ का किनारों को तोड़ कर लांघ जाना है

सदाचार और ज्ञान से जिसने अपने आप को पहिचान लिया, वह काल का भी काल बन गया। और काल पर विजय पा गया।

योगिराज श्री अरविन्द

(ले० श्री अम्बालाल पुराणी)

[गुरुकुल के पाठक इस बात से तो परिचित होंगे कि श्री अरविन्द वर्ष में तीन बार दर्शन दिया करते हैं। इन में २४ नवम्बर का दर्शन उनके सिद्धि दिवस का है इस लेख के लेखक श्री अरविन्दाश्रम के एक पुराने साधक और गुजराती के प्रसिद्ध लेखक हैं। आशा है पाठक इसे ध्यान पूर्वक पढ़ेंगे — सम्पादक]

महापुरुषों की जयन्तियां और उनके विशेष दिन मनाना जब एक रूढ़ि बन चुका हो तो ऐसे भाग्यवान विरले ही मिलते हैं जो उस का वास्तविक रहस्य समझ सकें। महापुरुष के जीवन में वास्तविक प्रेरक तत्व कौन से होते हैं? बाहर के संयोग या उनका स्थूल जीवन नहीं, अपितु उसके अन्दर के आध्यात्मिक तत्व ही जीवन के घड़ने में मुख्य भाग लेते हैं। परन्तु जब लोग उस की जयन्ती मनाने लगते हैं तो केवल उन के जीवन की घटनाओं और उसके दृश्य कार्यों में ही उलझ जाते हैं और जीवन की वास्तविक प्रेरक शक्तियों को भूल जाते हैं। इस प्रकार जान बूझ कर या अनजाने सबसे महत्वपूर्ण तत्वों की अवहेलना की जाती है,

दूसरी बड़ी कठिनाई यह है कि महापुरुष सीधे सादे तो होते नहीं, वे तो पहलदार हीरे की न्याई होते हैं। मनुष्य समाज किसी एक आध पहलू को ले कर बैठ जाता है, उसी में उनकी सारी महानता का रहस्य मान बैठता है और अन्य पहलुओं की उपेक्षा करता या उन्हें भूल जाता है। आध्यात्मिक जीवन बनाने वाले व्यक्ति के सम्बन्ध में तो यह भूल कहीं अधिक होती है।

आज इस छोटे से लेख में श्री अरविन्द के जीवन सन्देश को चित्रित करते हुए कुछ सङ्कोच का अनुभव करना स्वभाविक है, क्योंकि उनके जीवन का सन्देश चारों ओर फैला हुआ अनेक शाखाओं में प्रसारित, गम्भीर और विशाल है। हमारे देश का शिक्षित वर्ग तो अभी तक श्री अरविन्द को भारत के राजनैतिक नेताओं में ही गिनता है। श्री अरविन्द यह नाम लेते ही राष्ट्रीयता के आचार्य बङ्ग - भङ्ग विरोधी आन्दोलन के एक प्रचण्ड नेता, और देश के नवयुवकों के अन्दर एक नई प्रेरणा करने वाले आदर्शवादी का ही चित्र खिंच जाता है। भारतीय राष्ट्रीयता के आदिम युग में दिया हुआ वह सन्देश आज भी बहुत से कानों में गूंज रहा है जिस में उन्होंने कहा था "राष्ट्रीयता केवल राजनैतिक कार्यक्रम या मुकद्दमा का क्षेत्र नहीं है। राष्ट्रीयता जीवन का धर्म है; अपनी राष्ट्रीयता की प्रतिज्ञा अपने जीवन में उतारो, राष्ट्रीय सेवा कार्य को भगवान के चरणों में अर्पित कर दो। याद रखो कि भगवान् भारत का पुनरुत्थान चाहते हैं अतः हमें यह काम धर्म के रूप में ही लेना चाहिये।" श्री अरविन्द ने कहा 'अपने अन्दर सोई हुई भारत शक्ति को जगाओ; जीवन के अन्दर विदेशी छटा प्रतिबिम्बित करने की जगह भारत-शक्ति को प्रकट करो, उसके द्वारा नये भविष्य का सृजन करो और जगत के महान् प्रश्नों में भारत शक्ति का विशेष हिस्सा बटाओ। श्री अरविन्द के राष्ट्रीय सन्देश को ही बहुत लोग उनके जीवन का मुख्य सन्देश मानते हैं।

पर मुझे तो यही लगता है कि यह एक प्रचलित भूल है। उनके जीवन का मुख्य संदेश इससे कहीं गम्भीर, महान और मानव जाति की आत्मा के मौलिक तत्वों और प्रेरक शक्तियों को सम्बोधन करने वाला है। यह मुख्य स्वर बहुत व्यापक, विशाल और समन्वयात्मक है। संसार के आज आदर्शों, संस्कृतियों और प्रजाओं के बीच में कलह मचा हुआ है और मानव जाति का सारा भूत काल भट्टी में तप रहा है। आज मानव जाति की मुख्य आवश्यकता—मानव जीवन के परस्पर विरोधी तत्वों-विविध संस्कृतियों के-मौलिक तत्वों के समन्वय की ज़रूरत है। केवल बाह्य स्वरूप और केवल ऊपरी जीवन बिताने वाले, चाहे कुछ कहें पर इस में ज़रा भी संशय नहीं कि मनुष्य का अन्तरात्मा मन से परे की दिव्य भूमिका वाले संदेश का बाट जोह रहा है। मानव का मन मर्यादित, अपूर्ण और सत्यासत्य के मिश्रण की भूमिका है, परन्तु बुद्धि से परे जो सत्य है, उसके दर्शन, उसकी पुनः स्थापना और इस जगत में उसके आविर्भाव की मानव आत्मा प्रतीक्षा में है। राष्ट्रीयता और काल के बन्धनों को तोड़कर, संस्कृतियों के गौण बाह्य तत्वों को छोड़ मध्यस्थ सत्यों को एक लड़ी में पिरोने वाले किसी समर्थ व्यक्ति की आज आवश्यकता है। आज भावी दिशा की ओर अंगुलि निर्देश करने वाले, मानव जाति की वृत्तियों और प्रवृत्तियों को नई दिशा देने वाले किसी नेता की आवश्यकता दिखाई पड़ती है। समस्त मानव जाति की आध्यात्मिक अभीप्सा और आध्यात्मिक साक्षात्कार जिस में मूर्तिमान हो ऐसे व्यक्ति की आज संसार को आवश्यकता है।

जिन्होंने श्री अरविन्द के गम्भीर ग्रन्थों का अध्ययन किया है, जो उन की दीर्घ, अविश्रान्त, श्रद्धावान्, एकलक्षी और कठिन तपस्या के विषय में कुछ जानते हैं, उनके कार्य की प्रेरक प्रबल श्रद्धा को समझ सकते हैं उन्हें स्पष्ट दिखाई देगा। आज समस्त भारत में यदि कोई ऐसा व्यक्तित्व है तो वह श्री अरविन्द का है, पिछले वर्षों में शुरू किये हुए कार्य का जिन्हें पता है उन्हें तो इस विषय में पूरा सन्तोष हो चुका होगा।

श्री अरविन्द जैसी महान् विभूतियां मानव आत्मा में बसी हुई सनातन अध्यात्मिक प्यास को तृप्त करने वाले आशा और आश्वासन के पीयूष के समान हैं बाह्य जीवन में और जड़वाद की शुष्क, दिन बढ़ती हुई वृत्ति में अधिक से अधिक डूबते हुए इस युग में तो सनातन अध्यात्मिक सत्य की प्रत्यक्ष मूर्ति श्री अरविन्द जैसी विभूतियां तो भयङ्कर रेगिस्तान में नखलिस्तान जैसी

लगें, इस में आश्चर्य की बात ही क्या है। प्रभु प्राप्ति के लिये, दिव्य सत्य और ज्ञान ज्योति प्राप्त करने के लिये मानव आत्मा में जो सतत प्रेरणा चली आ रही है उसे श्री अरविन्द जैसे अलौकिक पुरुष जागृत रखते और सन्तुष्ट करते हैं। आध्यात्मिक जीवन के लिये आवश्यक दिव्य अग्नि-और शक्ति प्राप्त कराने वाली ब्रह्माग्नि को ऐसे महापुरुष मानव हृदय में जागृत करते हैं। मुझे तो यही लगता है कि मानव के चिन्तन का समन्वय, संस्कृतियों की प्रेरक और क्रियाशील शक्तियों का समन्वय यह श्री अरविन्द के जीवन का संदेश है। "आन्तरिक जीवन की ओर बढ़ो; अन्तर में डुबकी लगा कर वहां बसे हुए दिव्य शक्ति, ज्ञान और आनन्द को जीवन में प्रकट करो; भावी सृजन के लिये इस प्रकार का आध्यात्मिक जीवन अनिवार्य है।" यह है श्री-अरविन्द के जीवन का संदेश। आन्तरिक जीवन की नींव पर समस्त बाह्य जीवन (वैयक्तिक और राष्ट्रीय) को खड़ा करो" यह है श्री अरविन्द के जीवन-संदेश का प्रधान स्वर।

जड़वाद में फंसे हुए इस ज़माने को श्री अरविन्द ने बता दिया है कि आध्यात्मिक सत्य केवल अन्तर में प्राप्त करने की चीज़ नहीं बल्कि जीवन के सभी क्षेत्रों में, मानव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में वही एक सच्चा प्रेरक बल हो सकता है। जड़वाद के भी जो उत्तम तत्व हैं श्री अरविन्द उनका बहिष्कार नहीं करते। आत्मिक विजय का कोई भी मैदान उन से छूटता नहीं।

२९ नवम्बर के दिन यही शुभ कामना अन्तरात्मा में जागृत होती है कि जो अटूट श्रद्धा, असाधारण धैर्य, शान्त कठिन तपस्या, बुद्धि से परे के सत्य का अन्य दर्शन, देशकाल के बन्धनों को तोड़ कर किया गया मानव जीवन के तत्वों का समन्वय और प्रभु को सर्वभाव समर्पण करने का आदर्श आदि जो जो उत्तम तत्व श्री अरविन्द के अन्दर मूर्तिमान हैं वे सब के सब आज जगत भर के सत्य जिज्ञासुओं के हृदय में अवतरित हों।

जब इन भगीरथ प्रयत्नों का विचार आता है तो अन्तर में यही अभीप्सा जागती है, अन्दर यही पुकार उठती है कि हे सत्य और ज्ञान ज्योति, हे महान शक्ति और आनन्द स्रोत! तुम्हारी हम पर भी कृपा हो। मानव की आत्मा में प्रभु के लिये अधिकाधिक अभीप्सा जागृत करो, दिव्य जीवन के लिये मानव में तृषा पैदा करो, हे भव्य जीवन में ज्वलन्त आत्म समर्पण के रहस्य तुम भी हमें प्राप्त हो, प्रभु को सर्वस्व समर्पण करने वाली अग्नि हमारे जीवन में चमके। यह समर्पण का धर्म केवल शान्ति और विरक्ति में ही नहीं जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में, प्रत्येक क्षण में हमारे अन्दर जागृत रहे।"

२९ नवम्बर को अन्तर की अभीप्सा को दिन भर जागृत रखना यही इस दिन को मनाने का सर्वोत्तम ढंग है।

शार्ङ्गदेव के बाद

[ले० श्री नारद]

(विहंगावलोकन)

निःशङ्क शार्ङ्गदेव के समय मार्गी और देशी नाम से संगीत में दो पद्धतियां प्रचलित थीं। इन में से मार्गी पुरानी थी जिस का लगभग उस समय तक ह्रास हो चुका था और देशी पद्धति नवीन थी जिसका उस समय प्रचार था। इसका काल था १३ वीं सदी का उत्तरार्द्ध और लगभग १४वीं सदी का प्रारम्भ। इन के ग्रन्थ "संगीत रत्नाकर" के पढ़ने के बाद मालूम होता है कि ये नयी पद्धति के साथ पुरातन पद्धति का मेल जोड़ने का प्रयत्न कर रहे थे। इन्होंने अपने ग्रन्थ में न केवल देशी पद्धति पर विचार किया, अपितु उस पुरानी पद्धति को पुनः जीवन देने का प्रयत्न किया। उस समय के लिये यह वस्तु अच्छी रही या नहीं यह नहीं कहा जा सकता पर जिस पद्धति को इन्होंने जीवन देने का प्रयत्न किया वह जीवित न रह सकी और वर्तमान समय तक वह पद्धति लुप्त ही हो गई।

उस काल में आज कल की ख्याल पद्धति न थी। उस समय ध्रुपद का ही प्रचार था जो कि मार्गी का परिष्कृत रूप है। कई लोग ध्रुपद प्रणाली को २००० वर्ष पुराना बताते हैं पर इतना तो सही है कि शार्ङ्गदेव के समय भी यह प्रचलित था। यही ध्रुपद प्रणाली तानसेन के समय तक तथा उस के बाद भी कुछ समय तक सुरक्षित रही। इस ध्रुपद प्रणाली को सुरक्षित रखने में तानसेन वंश का बहुत बड़ा हाथ था। तानसेन के गुरु श्री स्वामी हरिदास जी इसी ध्रुपद प्रणाली के भारतीय आचार्य थे। यह काल अर्थात् १६ वीं शताब्दी इतिहास में महत्व पूर्ण स्थान रखता है। इसी समय अकबर जैसे यहां सम्राट हुए तथा श्री स्वामी हरिदास जैसे ध्रुपद प्रणाली के आचार्य हुए। इन्होंने अपनी विद्या को सुरक्षित रूप से अपने शिष्यों को दिया। इन के शिष्य लोक प्रसिद्ध तानसेन और बैजू बावरा थे। इस १६ वीं शताब्दी में ही मृदङ्ग ने तबले का रूप ले लिया, यद्यपि इस समय तबले का इतना प्रचार न हुआ था। पर बाद में इस का इतना प्रचार हुआ कि आज मृदङ्ग का नाम भी साधारण आदमी नहीं जानता। यह माना कि केवल तबले का ... जानना चाहिये कि इन तबलों से ध्रुपद प्रणाली का अत्यधिक नुकसान हुआ क्योंकि ध्रुपद का जोड़ तो मृदङ्ग की आड़ी कुआड़ी और परन आदि के साथ बैठता है। मृदङ्ग के प्रचार की कमी के साथ साथ ही ध्रुपद प्रणाली भी खतम होती चली गई है। वर्तमान समय में नाम मात्र को ही बच रहा है।

औरंगज़ेब की मृत्यु के बाद और सन् १८५७ के गदर के बीच ख्याल प्रणाली का आविष्कार हुआ। इसके आविष्कार का ठीक समय क्या है यह कहना कठिन है। इस के विषय में कहा जाता है कि इसे सदारंग नाम के मुसलमान ने सब से पहले गाया था। पर इन्होंने

(शेष पृष्ठ ६ पर)

गु रु कु ल

३ कार्तिक शुक्रवार १९९५

स्नातक भाइयों से —

युक्त प्रान्त की सरकार, अपने प्रान्त की देहाती जनता के हित के लिये कई उपयोगी योजनायें गत एक वर्ष से अमल में लारही हैं। इन योजनाओं को एक सूत्र में पिरोने के लिये एक प्रान्तीय देहात सुधार विभाग भी पिछले दिनों कायम किया गया है। इस विभाग की हिदायतों के अनुसार सूबे के ४८ जिलों में देहात सुधार का कार्य बड़ी सफलता से चल रहा है। देहाती जनता के स्वास्थ्य सुधार की ओर ध्यान देना इस विभाग की खास प्रवृत्तियों में से है। यही सोच कर प्रान्तीय सरकार ने यह निश्चय किया है कि आगामी आर्थिक साल के आरम्भ से अर्थात् सवत् १९९६ के चैत्र मास से सूबे भर के देहातों में २०० के लगभग देसी दवा खाने खोले जायें। इन औषधालयों में योग्य वैद्य हकीमों की नियुक्ति की जाएगी, जो ग्रामीण जनता की चिकित्सा सस्ती शुद्ध व प्रमाणित दवाइयों द्वारा किया करेंगे। जो वैद्य इन चिकित्सालयों में नियत होंगे, देहातियों की सेवा करना उनका मुख्य कार्य होगा। प्रान्तीय सरकार का यह भी विचार है कि आजकल मुल्क में ऐसे वैद्यों की भरमार है जो घर बैठे योंही पत्र पढ़कर वैद्य बन गये हैं और दो चार चूर्ण व दस्तावर दवाइयां अपनी मेज़पर रख कर चिकित्सा करने लगे हैं। ऐसे वैद्यों से रोग शान्त नहीं होता अपितु स्वास्थ्य को हानि पहुंचती है। अतः सरकार ने इस विषय में यह भी निश्चय किया है कि जो वैद्य लखनऊ के बोर्ड आफ इण्डियन मेडिसिन से "ए" दर्जे का लाइसेन्स पा चुके होंगे या जो बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी से आयुर्वेद में स्नातक हुए होंगे वे ही महानुभाव देहात सुधार विभाग के इन देसी दवाखानों में कार्य कर सकेंगे।

हमने ऊपर संक्षेप में प्रान्तीय सरकार की देहाती चिकित्सा की योजना का उल्लेख किया है। हम जानते हैं कि गुरुकुल के अनेक वैद्य स्नातक चाहते होंगे कि वे भी इस अवसर से लाभ उठायें और सूबे की ग्रामीण जनता की सेवा में थोड़ा बहुत मददगार बनें। हमारी ऐसे स्नातक भाइयों से प्रार्थना है कि यदि वे चाहें तो शीघ्र ही बोर्ड आफ इण्डियन मेडिसिन से पत्र व्यवहार करके "ए" दर्जे के वैद्य बनने का लाइसेन्स प्राप्त करलें। ऐसा होने पर उन्हें प्रान्तीय सरकार के इस देहात सुधारविभाग में कार्य करने का अवसर मिल सकेगा। वर्तमान अवस्था में हमारे स्नातकों के पास सिवाय इसके अन्य कोई साधन नहीं है किन्तु पिछले समय से गुरुकुल के अधिकारी इस प्रयत्न में लगे हुए हैं कि गुरुकुल के स्नातकों के मार्ग में इस प्रकार की जो बाधायें हैं वे हट जायें और योग्यता व शिक्षा के लिहाज़ से समकक्ष होने पर गुरुकुल के स्नातक भी सरकारी महकमों में वही स्थान पासकें जो बाहर की अन्य यूनिवर्सिटियों के स्नातकों को प्राप्त हैं और जिसे पाने का अधिकार राष्ट्रीय विद्यापीठों के हर एक स्नातक को भी होना चाहिये। गुरुकुल के अधिकारी अपने इस मिशन में कब सफल होंगे यह कहना अभी कठिन है. किन्तु भिन्न २ प्रान्तों के शासन सूत्र में जो राष्ट्रीय भावना आज विद्यमान है उसे देखते हुए हम यह निःसंकोच कहसकते हैं कि वह समय आने में अब देर नहीं है जब कि गुरुकुल का हर एक स्नातक अपनी योग्यता के आधार पर सरकारी किंवा गैर सरकारी क्षेत्र में निज उचित स्थान प्राप्त सकेगा।

ये वैद्य और हकीम ३१ मार्च १९३९ तक अस्थाई रूप से रखे जायेंगे। बाद में स्थाई भी किये जा सकेंगे। आवेदन पत्र ५ दिसम्बर १९३८ तक, निम्नपते पर पहुंच जाने चाहियें।

सेक्रेटरी,
पब्लिक सर्विस कमीशन,
इलाहबाद यू. पी.

पंजाब केसरी—

वीर प्रसविनी पचनद भूमि के स्वनामधन्य वीर पुत्र को शहीद हुए आज दश वर्ष हो गये। साईमन कमीशन का बायकाट करते हुए लाला जी पर लाठियों के जो प्रहार पड़े थे उन से उनका देह इस भूमि पर ज्यादह न टिक सका, लाला जी की आत्मा आज भी प्रबुद्ध भारत में जाग रही है। भारत को स्वाधीनता मन्दिर की बलिवेदी के प्रथम सोपान पर चढ़ने से जो सफलता मिल रही है। लाला जी की आहुति उस में बहुत अधिक सहायक सिद्ध हुई है।

पंजाब केसरी के अमर होने के बाद पंजाब के पथिक भर, बल को नेतृत्व कर पचनद भूमि को स्वाधीनता के वीर योद्धाओं की अगली पंक्ति में बिठाने वाला सर्वमान्य नेता आज तक भी पैदा नहीं हुआ है। पंजाब केसरी की जन्मभूमि को समुन्नत करने के लिये इस केसरी को हम सदा अपने आगे रखना होगा।

स्वर्गीय श्री प्रसाद जी —

स्वर्गीय बाबू जयशंकर प्रसाद को काशीवास किये हुए १ वर्ष हो गया है। इस बीच में कवि प्रसाद जी की स्वर्गीय आत्मा के प्रति हिन्दी साहित्य सम्मेलन तथा हिन्दी संसार की ओर से श्रद्धांजलि चढ़ाई गई है। और कवि प्रसाद को परिणाम समझा तो गया। प्रसाद जी आधुनिक हिन्दी कविता के पिता कहे जा सकते हैं—आज हिन्दी साहित्य के नवीनतम सूत्रधार और संचालक हुए थे, जटिलता के जटाजूट में उलझी हिन्दी काव्यधारा को मानव जीवन की घाटी में बहाने वाले वास्तव में प्रसाद जी थे। कामायनी, आँसू कवि प्रसाद की अनूठी रचनायें हैं। नाटक, कहानी और उपन्यास के क्षेत्र में भी कवि प्रसाद ने युग परिवर्तक कलाकार के समान नाम कमाया है। हिन्दी संसार को कविप्रसाद जी की थाती को सुरक्षित रख कर, नवीन भावना के उन्नायक साहित्य को जन्म देना होगा।

श्रद्धाञ्जलि

कुछ काल की मामूली बीमारी के बाद आर्यसमाज के सबसे अधिक प्राचीन महारथी तथा दयानन्द कालिज के आधार किंवा प्राण महात्मा हंसराज जी गत ३० कार्तिक को इहलीला संवरण कर गये। वे आर्यसमाज के उन कर्णधारों में से थे जिन्हें ऋषि दयानन्द से साक्षात् सत्संग का लाभ उठाने का अवसर प्राप्त हुआ था। इस साक्षात्कार से ही महात्मा हंसराज जी आर्यसमाज की शरण में आये और यावज्जीवन आर्यसमाज की सेवा में लगे रहे। ऋषि के अवसान के बाद जब पंजाब के आर्यों ने उनका स्मारक बनाना चाहा तब महात्मा हंसराज जी की निष्काम सेवा ने ही दयानन्द स्कूल व कालिज को जन्म दिया जिसकी शाखा व प्रशाखाओं का जाल हम पंजाब, युक्तप्रान्त अजमेर व कुर्ग तक भी बिछा हुआ देख पाते हैं। महात्मा जी लगातार तीस वर्ष तक दयानन्द कालिज के आचार्य रहे। इस बीच उनसे अनेक जीवन में अनेक शिष्यों ने लाभ उठाया और आर्यसमाज को कार्यकर्त्ताओं का वह समूह मिला जो आज भी हमारे देश के कोने २ में ज्ञान का प्रकाश फैलाने में एकाग्रचित्त से लगा हुआ है। आचार्य पद से अवसर प्राप्त करने के बाद महात्मा हंसराज जी ने आर्यसमाज के विशाल क्षेत्र में कार्य किया। गढ़वाल के दुर्भिक्ष, मलाबार के विप्लव तथा कांगड़ा के अनर्थकारी भूकम्प के ज़माने में हमारे इस महात्मा ने जो सेवायें मनुष्य जाति की की हैं उन्हें कौन भुला सकता है। यह सत्य है कि शिक्षा उनका मुख्य कार्य था किन्तु उसके साथ २ धार्मिक व सामाजिक क्षेत्र में भी उनकी सेवाओं की गहरी छाप थी। उनका देहावसान ७५ वर्ष की बड़ी उम्र में हुआ है। हमारे देश के व आर्यसमाज के ये सौभाग्य हैं कि महात्मा जी के इतने साथ ही दीर्घ क्रियात्मक जीवन से उन्हें लाभ उठाने का अवसर मिला है क्योंकि दुर्भाग्य से हमारे देश के नेताओं को प्रायः वह दीर्घ जीवन नहीं होता जिसका उदाहरण महात्मा हंसराज जी थे। आर्यसमाज के तो यह और भी दुर्भाग्य है कि उसके नेताओं की वह श्रेणी जिन्हें ऋषि दयानन्द के सत्संग व उपदेश श्रवण का सौभाग्य था हमसे धीरे २ बिदा ले रही है। महात्मा हंसराज जी इस शृङ्खला के प्रारम्भ में थे। आज उनके निधन से हम वह शृङ्खला समाप्त होती ही नज़र आती है। हम परमात्मा दिवंगत महात्मा जी की आत्मा को सद्गति दें और उनके परिवार को इस विपत्ति में ढाढस बंधायें, यही प्रार्थना है।

गुरुकुल में शोक सभा:--

आर्यसमाज के सर्वमान्य नेता महात्मा हंसराज जी के देहावसान का समाचार सुनकर गुरुकुल कांगड़ी में शोक छा गया। इस दुःख में गुरुकुल के विद्यालय, महाविद्यालय तथा अन्य सब विभाग बन्द रहे। दस बजे समस्त कुलवासियों की सभा आचार्य लालचन्द्र जी के सभापतित्व में हुई, जिसमें श्री उपाध्याय [illegible] जी, पं० विश्वनाथ जी विद्यालंकार व श्री वेदव्रत जी [illegible] व आचार्य जी ने दिवंगत आत्मा के प्रति अपनी श्रद्धाञ्जलियां पेश कीं। अन्त में निम्नलिखित प्रस्ताव स्वीकृत हुआ:--

"कुलवासियों की यह सभा आर्यसमाज के [illegible] नेता और दयानन्द एंग्लो-वैदिक कालिज के यशस्वी संस्थापक श्री महात्मा हंसराज जी के आकस्मिक देहावसान पर हार्दिक शोक प्रकट करती है और परमात्मा से दिवंगत आत्मा को सद्गति प्रदान करने की प्रार्थना करती है और उनके समस्त परिवार के साथ हार्दिक समवेदना प्रकट करती है।"

[illegible]

(ले० श्री सूर्यकुमार)

मैं इस उपवन का माली हूँ
मैंने इस में जीवन डाला।
उर-गागर से रस ढाल ढाल
फूलों को पाला करता हूँ,
मैं दीवाना, तन्मय हो कर—
इन को करता देखा भाला।
मैं एक खड़ा-हूँ देख रहा—
पर चाहक भ्रमर-अनेक यहां
रस सूख चुकेगा, जब तक मैं
पहुंचूगा हो कर-मतवाला।—
उन भ्रमरों-से भी स्नेह-मुझे
ये मेरे साथी, चिर-संगी—
इन से ही सुन्दर-लगती है
यह-हँसती-फूलों की माला।—
मैं उस उपवन का माली हूँ
मैंने इस में जीवन—डाला।

गुरुकुल का श्रद्धानन्दाङ्क

प्रति वर्ष की भांति श्रद्धानन्द बलिदान के शुभ अवसर पर इस वर्ष भी 'गुरुकुल' का श्रद्धानन्दाङ्क निकलेगा। इस वर्ष इस अङ्क में स्वर्गीय स्वामी जी के जीवन तथा उनके वर्णाश्रम पर अनेक उपयोगी लेख व कवितायें दी जायेंगी। देश के नेताओं के सदेश तथा स्मृतियां इस अंक की विशेषता होगी। अङ्क सचित्र होगा। और १६ दिसम्बर को प्रकाशित हो जायेगा।

एक आने का टिकट भेज कर जो सज्जन चाहें इस अङ्क को मँगा सकते हैं।

सम्पादक "गुरुकुल"

(पृष्ठ ३ का शेष)

स्वयं उस पद्धति का प्रचार न कर इसे सब से पहले दो भिक्षुक बालकों को सिखाया और इन्हीं भिक्षुक बालकों से इसका प्रचार हुआ (उस समय के तानसेन वंश के अतिरिक्त मुसलमान गायक) में हुआ। इसके बाद टप्पे और ध्रुपद के मेल से ख्याल पद्धति का आविष्कार हुआ, यही पद्धति इस समय अत्यधिक प्रचलित है। इस के प्रसिद्ध गायक बाद के काल में मुहम्मद खां दीवां वाले तथा हस्सू खां हद्दू खां ग्वालियर वाले हुए। कालान्तर में फिर ठुमरी आदि का आविष्कार हुआ। ठुमरी में ध्रुपद, टप्पा और ख्याल तीनों की खिचड़ी कर दी गई।

भारतीय संगीत को उस का आजकल प्रचलित रूप देने में मुसलमान गायकों का भी बहुत बड़ा भाग है। सन् १६१० की एक पुस्तक "रागविबोध" सोमनाथ कृत मिलती है उस में तत्कालीन मुसलमानों द्वारा प्रचारित हुसैनी, जिल्फ मुल्तानी आदि कई रागों का परिचय दिया है। इसी समय के पं० भावभट्ट कृत "अनुपम संगीत रत्नाकर" ग्रन्थ में सरफ़र्दा, नायकी, बागेश्वरी, अड़ाना, शहाना और काफ़ी आदि कई नई जातियों के रागों का परिचय मिलता है तथा इन्ही पुस्तकों में मुसलमानों द्वारा आविष्कृत नये २ तानों का उल्लेख है। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कि टप्पे, ख्याल और ठुमरी आदि का आविष्कार भी इसी काल में हुआ तथा तबले का आविष्कार भी इन्होंने किया। साथ ही सितार आदि अन्य वाद्यों का भी इस समय निर्माण हुआ। लगभग अकबर के समय से संगीत हिन्दुओं के हाथ से निकल कर मुसलमानों के हाथ में जा पहुँचा। इन्होंने उस भारतीय संगीत को बहुत कुछ अपने साथ लाई संस्कृति से रंगा। यही मुस्लिम संस्कृति से रंगा संगीत ही उत्तर भारत में आज २० वीं शताब्दी में प्रचलित है।

विचारी भारत् की दृष्टि से २० वीं शताब्दी में दो अन्य विभूतियां हुई जिन्होंने संगीत के क्षेत्र में बहुत काम किया। वे विभूतियां थीं — श्री विष्णु नारायण भातखण्डे और श्री विष्णु दिगम्बर पलुस्कर। श्री प० विष्णु दिगम्बर ने संगीत का उच्च श्रेणी में प्रचार करने का असाधारण प्रयत्न किया। इससे पहले संगीत निकृष्ट श्रेणी के लोगों के लिये समझा जाता था। पर जो काम १३ वीं शताब्दी में श्री निःशंक शार्ङ्गदेव ने किया उस काम को फिर यदि किसी ने किया तो वह थे श्री विष्णु नारायण भातखण्डे। इन्होंने प्राचीन पद्धति के साथ नवीन पद्धति का मेल बैठाने के लिये अध्ययन शुरू किया, दोनों पद्धतियों की आलोचना की, तथा इसकी खोज के लिये समस्त भारत का भ्रमण किया। इसी भ्रमण में उन्हें नये गुन गायकों को लिखने की आवश्यकता अनुभव हुई। उस समय इन्होंने इस समय प्रचलित स्वर लिपि का आविष्कार किया। ये आविष्कार साधारण चीज़ नहीं है इसके लिये आने वाली सन्तति सदियों तक इनकी ऋणी रहेगी। अब तक जो काम गुरू के सामने बिना नहीं हो सकता था उसे इन्हों ने लिख कर सीखने का मौका दिया। इनकी अमर कृति है 'हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति'। इसी ग्रन्थ के कारण लोग इन्हें शार्ङ्गदेव कहने लगे थे। इनकी मृत्यु से संगीत का अन्वेषण जो इन्होंने शुरू किया था बीच में ही अधूरा रह गया है।

वर्तमान समय में ध्रुपद, टप्पा, ख्याल और ठुमरी ये सभी प्रचलित हैं। ख्याल ने तो इस समय लोगों के हृदय में अद्वितीय स्थान बना लिया है। ठुमरी को भी लोगों ने कम नहीं अपनाया है। पञ्जाब में गजलें बहुत पसन्द की जाती हैं। नवाबों के आश्रय में पली ठुमरी ने अपना स्थान लखनऊ और बनारस में बनाया है। राजे महाराजाओं के दरबारों में ख्याल पद्धति ने आश्रय पाया और अब सर्व साधारण भी इसे अपनाने लगे हैं। ध्रुपद का इस समय न तो अधिक प्रचार है न ही इसके सुनने वाले अधिक हैं। इस के आदर्श गायक स्वर्गीय जाकिरुद्दीन खां थे। आप ध्रुपद की गायकी करते थे पर आप का रंग संगीत सम्मेलनों में प्रायः नहीं जमता था। इस का कारण क्या था नहीं कह सकते थे पर इससे इतना अवश्य ज्ञात होता है कि लोग ध्रुपद नापसन्द करते हैं। अब भी इस पद्धति के कुछ गाने वाले हैं पर सर्वसाधारण में से यह पद्धति लुप्त हुई मालूम होती है।

समालोचना

The Rural India सम्पादक—हरिशंकर त्रिवेदी, आदर्श सेवा संघ द्वारा प्रकाशित। सैण्डहर्स्ट रोड, गिरगांव, बम्बई ४) वार्षिक मूल्य ५)।

नवम्बर से यह पत्र अंग्रेज़ी में मासिक रूप से निकलना शुरू हुआ है। इसका प्रथम अंक हमारे सामने है। मुख पृष्ठ पर एक पार्श्व में नारियल के दो पेड़ और अवशिष्ट स्थान पर भारत का मान चित्र - बीच में एक वृत्त में दो ग्रामीण दृश्य—झोपड़ी के द्वार पर बैठ कर चर्खा चलाती हुई बुढ़िया, पनघट पर पानी भरती हुई पनिहारिन, पेड़ की छाया में बैठे हुए गाय बैल और खेत में हल चलाता हुआ किसान।

निस्सन्देह भारत की ९० जनता ग्रामों में रहती है, इस लिये कहना यही चाहिये कि असली भारतवर्ष ग्रामों में रहता है। किन्तु हमारे नेताओं का अब तक ग्रामों की ओर ध्यान नहीं गया था, इसी कारण जहां एक ओर नगरों में पाश्चात्य शिक्षा और ज्ञान विज्ञान की चकाचौंध से चमत्कृत अट्टालिकाओं में वैभव विलास करता था, वहां दूसरी ओर निरक्षरता के शाप से कलंकित ग्रामों की झोपड़ियों को घेरा हुआ भारत का भाग्य रो रहा था। महात्मा गांधी ने रोग का निदान पहिचाना और खुले शब्दों में कहा - 'भारतवर्ष का आत्मा झोपड़ियों में है।' यही वाक्य इस पत्र का मोटो है।

स्थान २ पर टगोर, बजाज, खेर, के० एम० मुंशी, आदि के शुभ सन्देश शोभित हैं। 'हमारे ग्राम' सब से पहिला लेख महात्मा गांधी का लिखा हुआ है जिस में ग्रामों में जीविका पाने के ख्याल से निराश होने वाले नवयुवकों को सान्त्वना दी है। डा० कुनैकोडि ने भविष्य में ग्रामों के विजय की भविष्य वाणी की है। 'पंजाब के ग्रामों में पुनर्निर्माण' लेख क्रियात्मकता की ओर निर्देश करता है। 'मैसूर का एक उन्नत ग्राम' भी पथ प्रदर्शक है ग्रामीण आर्थिक समस्याओं से सम्बन्ध रखने वाले अन्य लेख भी पठनीय हैं। हम हृदय से सहयोगी की सफलता चाहते हैं।

गुरुकुल समाचार

सायंकाल खेलें नियमपूर्वक हो रही हैं। इन में ब्रह्मचारी सोत्साह भाग लेते हैं। खेलों में धीरे धीरे अच्छा तरक्की हो रही है। पिछले सप्ताह से विद्यालय का समय विभाग बदल गया है। और पढ़ाई का समय १० बजे से ४ बजे तक रखा गया है। विद्यालय का उपयुक्त समय रखने के विषय में अभी विचार हो रहा है। आशा की जाती है कि ब्रह्मचारियों के स्वास्थ्य और सुविधा का ध्यान रख कर पुनः वही समय विभाग लागू किया जायगा। पिछले सप्ताह गुरुकुलमें श्री पं० के .वदेव ज्ञानी पधारे आपने दो मनोहारी व्याख्यान दिये जिनका विषय "वर्त्तमान राजनीति" और "अरविन्द का आश्रम" था। दोनों ही व्याख्यान मनोविनोद और उपयोगिता की दृष्टि से अच्छे थे। बीच २ में उपस्थित की गई शंकाओं से विषय का अच्छा स्पष्टीकरण हुआ।

गुरुकुल वैद्यनाथ धामः—

ए एस सिक परीक्षा समाप्त हो चुकी है। ब्रह्मचारियों ने त्रिकूटपर्वत, तपोवन तथा अजय नदी के किनारे दूर तक भ्रमण कर पर्याप्त स्वास्थ्य लाभ किया है। पढ़ाइयां नियमित शुरू हो चुकी हैं। गुरुकुल विद्या के आचार्य प्रो० कृष्णानन्द जी तथा स्वदेशी उद्योग धन्धों के विशेषज्ञ श्री बा० धनुषधारी जी बड़ी लगन से ब्रह्मचारियों को अपनी २ विद्या सिखा रहे हैं।

गुरुकुल कमालियाः—

गुरुकुल कमालिया इन दिनों अच्छी उन्नति कर रहा है। अपनी गोशाला होने के कारण ब्रह्मचारियों को पर्याप्त मात्रा में दूध, दही, मक्खन आदि दिया जा रहा है। गुरुकुल में साबुन बहुत अच्छा तय्यार होता है। गुरुकुलों के मान्य निरीक्षक ला. हरदयाल जी ने इस की बड़ी तारीफ की है। यह साबुन मंगाने पर बाहर भी भेजा जाता है। खेलों में ब्रह्मचारियों ने बाहर की अनेक पार्टियों को हराया है। महता जैमिनी जी ने गुरुकुल को देखा और परमप्रसन्न हो ५००) की पुस्तकें और ७५) नकद दान में दिये।

गुरुकुल सूपाः—

दीपमालिकोत्सव बड़े आनन्द के साथ समाप्त हुआ। कविता सम्मेलन में ब्र० राजेन्द्र और विश्वमूर्ति की कविताएं सर्वश्रेष्ठ रहीं। दीपावली के बाद से नवीन सत्र की पढ़ाई नियम पूर्वक शुरू हो गई है। ब्रह्मचारियों का स्वास्थ्य अच्छा है। कालियाकुई और संदलपुर नामक स्थानों की दो क्रिकेट की टीमें गुरुकुल से मुकाबले को आई। दोनों दलों को गुरुकुल-दल ने करारी हार दी।

गुरुकुल कुरुक्षेत्रः—

ब्रह्मचारियों का स्वास्थ्य बहुत उत्तम है। गुरुकुल को स्वावलम्बी बनाने की दिनों दिन अधिकाधिक कोशिश की जा रही है। गोशाला विभाग के लिये ८ उत्तम गायें मिण्टगुमरी से मंगाई गई हैं। आश्रम के सामने वाली जमीन को बराबर करके उसमें सन्तरे, माल्टे तथा नीबू के लग भग ४० वृक्ष लगवा दिये गये हैं। सिंचाई के लिये इंजन तथा पम्प भी खरीद लिया गया है। इन ५ वर्षों में ब्रह्मचारियों की संख्या पहले की अपेक्षा दुगनी हो गई है। गुरुकुल की इस व्यवस्था और उन्नति को देख कर प्रत्येक आगन्तुक का हृदय हर्षित हो जाता है।

स्वास्थ्य समाचार

ओम्प्रकाश १२ चचट, रामप्रकाश १३ शीतपित्त, भारतेन्दु १४ विषम ज्वर, विद्यारत्न १२मोच,प्रा मेशचन्द्र (सूपा) १३ विषम ज्वर, इस सप्ताह ये रोगी हुए थे अब सभी अच्छे हैं।

पुस्तक समालोचना

कापी और प्रूफ—(अंग्रेजी)

पृष्ठ सं० १५५ मूल्य २)

लेखक—श्री कृष्ण प्रसाद

प्रकाशक—दी इलाहाबाद लॉ जर्नल प्रेस, इलाहाबाद

प्रस्तुत पुस्तक में विराम, चिन्हों, गुरु अन्तरों, स्पेलिंग की दृष्टि से सम्भवित भूलों, संयुक्त शब्दों, संक्षिप्त चिन्हों आदि का भी, जिनका छपाई में साधारण सा भूलें हुआ करती हैं, लगभग ५० पृष्ठों में मुद्रण की दृष्टि से उपयोगी तालिकायें दी हैं। अन्त में ५० पृष्ठों में मुद्रण के उपयोगी पारिभाषिक शब्दों का स्पष्टीकरण किया है। जिन का भी यन्त्रालय से किसी प्रकार का सम्बन्ध पड़ता है उन सब के लिये उपयोगी सामग्री इस में सफलता से संगृहीत है।

लेखक महोदय भारत के एक प्रसिद्ध प्रेस के प्रबन्धक हैं। पुस्तक की अपनी छपाई ही आप के अनुभव की परिचायक है। यन्त्रालय के वर्तमान युग में उस के कार्य के सम्बन्ध में आने वालों को विषय का सामान्य ज्ञान हो जाता है पुस्तक की छपाई सुन्दर नहीं हुई, आशा है प्रकाशक महोदय अगले संस्करण में छपाई की ओर विशेष ध्यान देंगे। पुस्तक की सवा पांच सौ पृष्ठ संख्या देखते हुए मूल्य भी बहुत कम रखा गया है।

'श्री मित्र'

संरक्षकों से आवश्यक निवेदन

जिन संरक्षक महोदयों को अपने ब्रह्मचारियों के फोटुओं की आवश्यकता हो वे निम्नलिखित पते पर पत्र लिख कर प्राप्त कर सकते हैं।

कार्ड साइज ॥) रु० ३ प्रति, कैबिनेट साइज ३) प्रति, फुल साइज ६) रु० ३ प्रति।

पता—अलंकार चित्रशाला गु० कु० कांगड़ी

सहारनपुर

आवश्यकता

युक्त प्रान्त के पूर्वी जिलों के एक एम० एल० ए० महोदय के लिए एक प्राइवेट सेक्रेटरी की आवश्यकता है, जो सभाओं में भाषण और अखबारों में सवाद दे सकें। वेतन ४०) होगा। इस के साथ ही भोजन और आवास का प्रबन्ध भी कर दिया जायगा।

गुरुकुल कांगड़ी की प्रसिद्ध औषधियां

ब्राह्मी तैल

स्नान के बाद सिर पर लगाने के लिए यह सुगन्धित तैल अत्युत्तम है। इससे दिमाग़ तरोताज़ा रहता है, स्मरण शक्ति बढ़ती है।

मूल्य ॥) शीशी

सुगन्धित
हवन सामग्री
॥) सेर

द्राक्षासव

यह स्फूर्तिदायक सुमधुर पेय है। भूख बढ़ाता है, चित्त को प्रसन्न करता है, पुरानी खांसी, कब्ज़, थका-वट तथा कमजोरी में विशेष हितकर है। मूल्य १।) पौंड

च्यवनप्राश

हमारे यहां हिमालय की ताज़ी जड़ी बूटियों से तैयार किया जाता है। बलवर्द्धक स्वादिष्ट रसायन है। मूल्य ४) सेर

चन्द्रप्रभा

इन गोलियों में शिलाजीत और लोहभस्म की प्रधानता है। सब प्रकार के प्रमेह और स्वप्नदोषों की अत्युत्तम औषध है। शारीरिक दुर्बलता को दूर करती है।

मूल्य ॥=) तोला

बलवर्द्धक
ब्राह्मी बूटी
॥।) सेर

पता—आयुर्वेदिक फार्मेसी, गुरुकुल कांगड़ी (सहारनपुर)

चौधरी हुलासराय के प्रबन्ध से गुरुकुल प्रेस गुरुकुल कांगड़ी में मुद्रित तथा प्रकाशित।

* ओ३म् *

"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत" Reg. No A 2927

गुरुकुल

सम्पादक—साहित्यरत्न पं० हरिवंश वेदालङ्कार

एक प्रति का मूल्य -) [गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख-पत्र] वार्षिक मूल्य २॥)

वर्ष ३] गुरुकुल काङ्गड़ी, शुक्रवार १० मार्गशीर्ष १९९५; २५ नवम्बर १९३८ | संख्या २७

अहं ब्रह्मास्मि

[ले०—श्री सत्यभूषण 'योगी']

'यह तो चक्कर है, चलेगा ही। अभागे मानव को इसमें बेबस होकर घूमना ही पड़ेगा, 'पिसना ही पड़ेगा।'

नहीं, नहीं, झूठ ! सबको नहीं घूमना पड़ेगा। ऐ दैव को बलवान बताने वाले कवि ! मुझे तेरी इन बातों पर विश्वास नहीं है। तू झूठ कहता है, निःसन्देह झूठ कहता है।

मानव सर्वशक्तिमान है, वह जो चाहे कर सकता है। वह आसमान के तारे तोड़ सकता है-पर्वतों को धूलिसात कर सकता है-समुद्रों को सोख सकता है।

अरे, मुझे मत कहो कि मानव दीन हीन है। ओह, मत कहो-मैं इसे सुनना भी नहीं चाहता। मैं ऐसा कहने वालों का मुंह बन्द कर दूंगा। बल से नहीं—प्रेम से।

सर्वशक्तिमती जगन्मा की सर्वश्रेष्ठ प्रतिकृति मानव है। इसको दीन कहना उस मां का तिरस्कार करना है। अरे, चक्रवर्ती सम्राट की प्रतिकृति (Image) भिखारी कैसे हो सकती है।

मानव; तेरी शक्ति अनन्त है-अपरिमेय है।

मानव, आश्चर्य होता है-हां आश्चर्य होता है-जब तू छोटे बन्धनों में बंधता है-निःसार भौतिक प्रेम एवं आकर्षणों से खिंचा करता है।

मानव अपने अन्दर देख, तू शक्ति का भण्डार है। तू जब अपने को जान जाएगा तो आश्चर्य करेगा कि मैं अब तक किन बेवकूफ़ियों में पड़ा हुआ था। सच, तुझे अपने पर ही हँसी आएगी।

आंख खोलकर देख, तेरे दिव्य सौन्दर्य को देखकर ऊषा मुस्करा रही है। डालों पर झूल झूल कर अपने को भूले से रंगबिरंगे सुन्दर फूल तेरे स्वागत में नृत्य गान कर रहे हैं। ये चञ्चल पक्षी तेरी ही कीर्ति का गान गा रहे हैं। सन्ध्या तेरी ही सुषमा को देखकर लजा जाती है। रजनी-यह काली काली सलोनी रजनी पुजारिन सी अगणित पूजा के दीप लेकर तेरी ही आरती उतारती है सूरज और चांद तेरा ही शुभ दर्शन करने के लिए रोज इधर से उधर और उधर से इधर घूमा करते हैं। झर झर झरते झरने और कलगान करती सरिताएं तेरे ही गुणों को गाती प्रवाहित हो रही हैं। ये पर्वत सिर ऊँचा किये अपलक किसको देख रहे हैं-किसकी प्रतीक्षा में आँख बिछाए हैं?—तेरी ही और किसकी?

हे मानव तू महान है—तेरी शक्ति अनन्त है।

देख, ये दिशाएं अनन्त हैं-यह नीलाकाश अनन्त है-अनन्त हैं झिलमिलाते सितारे। समुद्र अनन्त है। यह सृष्टिव्यापी सत्य शिव सुन्दर गान अनन्त है और अनन्त है तू—

तू इन छोटे छोटे बन्धनों में बंधा है ! आश्चर्य ! अत्यन्त आश्चर्य !! अनन्त आश्चर्य !!! अनन्त सान्त में बंधा है ! आह, अब समझा अनन्त सान्त में नहीं बंधा अपितु अनन्त ने सान्त का हाथ पकड़ रखा है और भ्रम में-नशे में सोचता है कि सान्त ने मुझे पकड़ रखा है जकड़ रखा है।

तो फिर अनन्त मानव, उठ, छोड़ इन सान्त बन्धनों को-हंस कूद, गा, नाच ! देख, सारी दुनिया हंस रही है-ऊपर आसमान में देख—भासमान तारे खिलखिलाकर हँस रहे हैं !

ऐ मानव तू हंस-तू निर्बन्ध है-निःसीम है-अनन्त है-तू ऐसा ही रह। छोटे छोटे बन्धनों को स्वेच्छा से अपने साथ बांधकर व्यर्थ न रो, न चिल्ला। सर्वशक्तिमती सुन्दरी जगन्मा को बदनाम न कर।

हाँ तो हंस और खूब हंस-अपने अनन्त रूप को जान। फिर तू कह उठेगा—

'अहं ब्रह्मास्मि'

'अयमात्मा ब्रह्म'

'मैं ब्रह्म हूँ'। 'यह आत्मा ब्रह्म है' और

'हन्ताहं पृथिवीमिमां निदधानीह वेह वा

कुवित्सोमस्यापामिति'

श्री महात्मा हंसराज जी

[ले०—श्री प्रो० लालचन्द जी]

आर्यसमाज के एक उज्ज्वल रत्न, एक दीर्घ एवं सुन्दर जीवन व्यतीत करके प्रभु की गोद में सदा के लिए जा बैठे हैं। उनका उच्च चरित्र, सादा रहन सहन, नियमित आदर्श जीवन, सच्ची लगन, अनथक परिश्रम, अनुकरणीय त्याग, निस्वार्थ सेवा भाव, गुरु भक्ति, प्रभु भक्ति, कर्त्तव्य परायणता, नियन्त्रण शक्ति, संगठन शक्ति, व्यवहार कुशलता, स्वभाव की सरलता तथा सरसता, ऐसे २ उन के अन्दर अनेक गुण थे। जिन के कारण वे आर्य समाजियों ही नहीं अपितु सारी हिन्दू जाति के हृदयों में सदा के लिये एक उच्च स्थान बना गए है। आज कल जब कि M. A. और Ph. D. भी मामूली सी नौकरी के लिये मारे मारे फिरते हैं, जीवन दान देने तक का भी कोई विशेष महत्व नहीं, मगर जिस ज़माने में महात्मा जी ने अपना जीवन दान दिया और D. A. V. College की सेवा का व्रत लिया, उस ज़माने में तो सरकार को Graduates की बड़ी ज़रूरत थी, उन के prospects बड़े अच्छे होते थे और थोड़े ही वर्षों में बड़े ऊँचे २ पदों पर जा पहुंचते थे। मगर वीरों के आगे संसारी प्रलोभन कोई वस्तु नहीं। उन के अन्दर एक आग होती है, एक तड़प होती है, किसी उच्च आदर्श पर तन, मन, धन सब कुछ समर्पण करने की उत्कृष्ट अभिलाषा होती है। कालिज के Principal की हैसीयत से आपने अपनी विलक्षण नियन्त्रण शक्ति का परिचय दिया। अन्दर प्रेम से भरपूर, पर बाहर से इतना रोब था कि मजाल है कोई किसी प्रकार की अवज्ञा कर सके। सब विद्यार्थी, सब प्रोफेसर उन की दिल से इज्जत करते थे। डी. ए. वी. कालिज की मैनेजिंग कमेटी के प्रधान के तौर पर उन्हों ने अपनी संगठन शक्ति का परिचय दिया। जैसे मशीन के लिये तेल बहुत ज़रूरी होता है, जिस से वह ठीक प्रकार से चल सके इस तरह कमेटी में वे अपने चरित्र व्यक्तित्व, मधुर प्रेम युक्त व्यवहार के प्रभाव से, कमेटी के काम को बहुत सुन्दर रूप से निभाते रहे; और सब मेम्बरों को अपने स्नेह के सूत्र में पिरोए रखा।

जब वे मन्द मुस्कान से किसी के प्रणाम का उत्तर देते हुए पास से गुज़र जाते थे तो ऐसा मालूम होता था मानो कोई देवता गुज़र गया है। सचमुच जिस स्थान पर वे रहते थे। या जिस स्थान से वे गुज़र जाते थे, वह स्थान पवित्र हो जाता। वे सदा अपने साथ एक पवित्रता, दिव्यता का वातावरण लिये रहते थे।

जब आर्य समाज मन्दिर में बैठे हुए होते थे, तो सुन्दर, भव्य, देदीप्यमान प्रतीत होते थे। तेजस्वी मस्तक था। सिर दाँयें बाँयें प्रभु भक्ति में हिलोरे लेता झूमता रहता था। जब व्याख्यान देते थे कितनी शान्ति होती थी। व्याख्यान कितना सरल, और वक्तृत्व पूर्ण होता था। वह अक्सर ईसाई मिशनरियों की कुर्बानियों का वर्णन किया करते थे। जिस से आर्य समाजियों के अन्दर भी उसी प्रकार की कुर्बानी, त्याग, तपस्या का भाव पैदा हो।

शिक्षा संस्थायें जितनी ज्यादा खुलती थी, उतना उन का चित्त प्रसन्न होता था, क्यों कि वे कहते थे कि इन से रोशनी फैलती है और रोशनी के फैले बिना न व्यक्ति का कल्याण हो सकता है और न समाज का।

यदि डी० ए० वी० कालिज और उस की अनेक शाखाओं का पंजाब और यू०पी० में जाल न बिछ जाता तो इतने ज्यादा विद्यार्थी जो इन संस्थाओं से निकले हैं, और जिन पर आर्य समाज और भारत माता के प्रेम रँग चढ़ा है वे निस्सन्देह या तो नास्तिक हो जाते या ईसाई हो जाते।

अपने जीवन के पिछले भाग में वे गुरुकुलों से भी ऐसा ही प्रेम करने लग पड़े थे जैसे डी० ए० वी० कालिज और उस की शाखाओं से।

जब जब वे हरिद्वार आते, हम आदर से उन्हें निमन्त्रित करते और वे प्रेम से हमारे यहां आकर ब्रह्मचारियों को अपने पवित्र उपदेशों से कृतार्थ करते।

अन्तिम बार जब हम उनको लेने गये तो चूंकि उन की आंखों की रोशनी कम हो रही थी, मैंने कहा आप टोप क्यों नहीं इस्तेमाल करते उस से आंखों को धूप से रक्षा मिलती है। उन्होंने मुस्कराते हुए उत्तर दिया 'भाई, हम तो पुराने आदमी हैं, अब आप लोग टोप पहनिये' फिर उन्होंने एक बड़े प्रसिद्ध आदमी की बात सुनाई। अगर मैं गलती नहीं करता तो वे श्री टेकचन्द जी की थी। वे एक बार डा० बेलीराम जी के पास गए और उन्होंने कहा कि मेरे सिर दर्द रहती है, इस का कुछ इलाज बतला दीजिये। डा. जी ने कहा, टोप उतार दो, पगड़ी पहना करो चुनांचे ऐसा ही किया गया और लुत्फ़ की बात यह है कि सिर दर्द जाता रहा। यह कथा सुन कर मुझ पर बड़ा प्रभाव पड़ा मैंने भी एक टोप खरीद रखा था पर गुरुकुल में टोप पहन कर फिरना बड़ा विचित्र लगता है मैंने निश्चय कर लिया कि अब पगड़ी ही पहनूँगा।

हन्त, मैं इस पृथिवी को उठाकर यहां रख दूं कि वहां। जहां कहीं वहीं रखदूं। आज मस्त हूँ नशे में झूम रहा हूं। अमित शक्ति का निस्सीम प्रवाह मेरे अन्दर भर गया है मैंने खूब सोम पिया है। मैं अनन्त हो गया हूं निःसीम होगया हूं। मैं जो चाहे कर सकता हूं।

ऐ ब्रह्म भ्रम को छोड़, फिर अपने विभ्रम और विक्रम को देख। छोड़ इन छोटे छोटे बन्धनों को भौतिक चीज़ों के आकर्षणों को—

तू सर्वशक्तिमान है। जगन्मा की प्रतिकृति (Image) है। अपने गुलामों की गुलामी करके तू व्यर्थ ही क्यों दुःख पा रहा है। तू प्रेममयी जगन्मा की प्रतिकृति (Image) है—ब्रह्म है। मस्त होकर गा—

'अहं ब्रह्मास्मि'

एक चाण्डाल

(ले० श्री क्षितीश)

(१)

ऐसी सुन्दर जगह देख कर काश्मीर के राजा चन्द्रापीड ने वहां एक मनोरम उद्यान बनवाने का मन में ठानी। उसने आज्ञा दी—जाओ, परिचारको! नगर के बाहर उस रमणीय तालाब के पास मनोहर वाटिका बनवानी है। शिल्पी और मालियों को बुला लाओ। आगामी वसन्त ऋतु का कुसुमोत्सव वहीं हो मनाने की तय्यारी करो। लोगों के लिये यह स्थान मनोरंजक होगा!'

सारी तैयारी हो चुकी। शिल्पशास्त्र के नियमों के अनुसार शिल्पियों ने रूपरेखा खींच दी। स्वर्ग की नन्दन-जैसे पारिजात के वृक्षों से, उपवन को सजाने का निश्चय किया गया। जिस में केवल वृक्षों की पत्रावलि स्थान-स्थान पर शोभित हो उठे, ऐसी सुन्दर रचना हो गई।

उस में सब ने कहा—'रे शिल्पी! चण्डाल! इस जमीन में राजा ने उद्यान बनाने का हुक्म दिया है, इस लिये तू यहां से दूर हो जा। तेरे ये लत्तड़-पत्तड़ उठा ले और फिर न दिखाई दे, ऐसी जगह चला जा।'

चांडाल कुछ बोला नहीं। किन्तु दूसरे दिन भी वह वहां ही बैठा हुआ था। और बैठा बैठा जीर्ण वस्त्र संवार रहा था।

दूसरी बार सैनिक आये 'जाता है या नहीं? या धक्के खायगा?"

चांडाल ने दृढ़ उत्तर दिया: 'तुम मेरी झोंपड़ी मेरे ही हाथों से गिरवा नहीं सकते।'

'अच्छा तो क्या तेरी चांडाल की झोंपड़ी को हम हाथ लगायेंगे?

झोंपड़ी उठाने से पहले तो तुम्हें मेरा शव उठाना पड़ेगा। मैं यहां से नहीं हटूंगा!'

चन्द्रापीड के पास फरियाद आई, राजा ने पूछा: 'लेकिन उसको आपत्ति क्या है? उसकी जमीन की अपेक्षा तिगुनी जमीन उसे देदो फिर क्यों न जायेगा?

परिचारक फिर दौड़े गये। ले राजा ने कहा है—'तिगुनी जमीन ले, जितना चाहिये पैसा ले। फिर क्या आपत्ति है?"

चांडाल ने और अधिक दृढ़ता से केवल अपना सिर हिलाया और अपने काम में लग गया।

'धत!—मार पड़े बिना मानेगा'—अपनी ऐंठ दिखाते हुए सैनिक चले गये।

[२]

दूसरे दिन चंद्रापीड स्वयं वहां आये। चांडाल अपने एक मात्र जीर्ण वस्त्र को संवार रहा था अर्थात्—धागा अलग अलग चीथड़े लगा रहा था।

महाराज ने कहा: 'अरे भाई! चाण्डाल! यहां लोगों के लिये उद्यान बनेगा इस में तुझे झोंपड़ा देने में क्या आपत्ति है?—चाहिये तो तिगुनी जमीन ले ला।

वृद्ध चांडाल ने हाथ जोड़ कर राजा को नमस्कार किया। कहा:-'महाराज! जिस जगह तुम्हारा महल है उस जगह मुझे झोपड़ी बनाने के लिये दोगे?—आप यह जमीन ले लीजिये!"

ऐसी पागलपन की बात—ऐसी फालतू बात क्यों करता है?" महल में कितनी पीढ़ियां हो गुजरी है, और तेरी झोंपड़ी के लिये मैं महल गिरा दूं?"

'महाराज! आपके मन में तो यह झोंपड़ा है, किन्तु मेरे मन में तो यह महल ही है। मेरे बाप दादा यहीं रह गए है, उसका मूल्य हो ही नहीं सकता।'

"मैंने ऐसा सुना है कि यह धरती माता जैसी पवित्र है [illegible] राजदण्ड के भय से अथवा [illegible] [illegible] देता है वह मनुष्य रौरव नरक का अधिकारी बनता है। यदि मैं इस [illegible] सर्वोत्तम [illegible] दूं तो मेरी आत्मा की जीवन-भावना अवखण्डित रहता हो। मुझे अपने शरीर का लेश मात्र भी मोह नहीं है। इस का नाश। किंचित् भी शोक नहीं है। मैं तो यह जानता था कि आप जैसे अधिकारी जिस प्रकार पद के अधिकार में अत्यधिक उच्च मनोभाव रखते हैं उसी प्रकार न्याय और सत्कार में भी रत होंगे। इसी का आधार बना कर कुछ सन्द पड़ी हुई आप को रहती [illegible] मन जगत का ध्यान किया था। किन्तु राजदण्ड का भय या कोई मात्र प्रलोभन मुझे भ्रष्ट न करे इसी लिये मुझे स्पष्ट कह देना चाहिये कि भले ही तुम्हारे मन में यह मेरा झोंपड़ा हो किन्तु मेरे मन में यह बचपन से संभाल करने वाला प्यारा माता है। मोह से व्यग्र बनकर इसे छोड़ूंगा नहीं। शरीर तो आज नष्ट हो जाय या कल नष्ट हो जाय इसकी मुझे चिन्ता नहीं। मेरा माता का आदर ही यह नष्ट हो यह धर्मलोभ मेरे मन में अधिक महत्व पूर्ण है।

राजा और अधिकारी चांडाल की वाक्यावली सुनते रहे। यह वस्तु स्थिति से पहले हो स्वयं नहीं देख सका। उसमें राजा चन्द्रापीड को ग्लानि हुई। चाण्डाल इसी प्रकार गया?

'पर एक रास्ता है महाराज'

'क्या?

'आप के जैसे सधर्मा राजा तो पहले से यही प्रथा करते आये हैं?'

क्या?

मैंने सुना है कि जब पुराने समय में ऐसी सार्वजनिक वस्तु तैयार करनी होती थी तो मनाने के साथ राजा उसके मालिक के पास, नम्र याचना करने जाते थे।'

राजा की आंखें खुल गई। चांडाल की बात सच्ची लगी उसे समझ आ गया वह चुप चाप चल निकला।

[३]

दूसरे दिन राजा चन्द्रापीड और मुख्य मुख्य नागरिक, चाण्डाल के पास वह जमीन मांग रहे थे!—

और श्वेत केशों से शोभित हुआ हुआ वह वृद्ध चांडाल अपने एक मात्र जीर्ण वस्त्र को लेकर सब को नमस्कार करता हुआ वहां से चल निकला!

गुरुकुल

१० मार्गशीर्ष शुक्रवार १९९५

हिन्दू मुस्लिम समस्याः—

वर्तमान समय में, यदि कोई भी ऐसा काम होता है जो कि हमारी नैतिकता व देश की दृष्टि में बाधक है- तो सर्व प्रथम इसका दोष देश की अग्रणी स पर हो, जिस किसी प्रकार तर्क वितर्क कर, थापे जानें का प्रयत्न किया जाता है। चाहे इसमें स्पष्ट या अस्पष्ट रूप से कांग्रेस का कोई भी सम्बन्ध न हो।

हमें कांग्रेस की नीति के विषय में कुछ भी नहीं कहना है, मगर समझाने लगे हैं कि बात क्या है! कांग्रेस का उद्देश्य महान है, स्वतंत्रता प्राप्त करना ही उस का एक मात्र ध्येय है। दुर्भाग्य से साम्प्रदायिक समस्या इस काम में बहुत विषम परिस्थितियां उत्पन्न कर रही है। साम्प्रदायिक समस्या का हल करने के लिए यह निश्चित है कि दोनों जातियों को अपने २ उन जातीय स्वार्थों को छोड़ना चाहिए जिन से स्वराज्य प्राप्ति की प्रगति में बाधा पहुँचती है। इसके लिये कौन सी जाति अपने स्वार्थों का कहां तक और किन अंशों में छोड़ती है या नहीं छोड़ती है, इस में कांग्रेस दोषी नहीं है। यदि कांग्रेस इस बात के लिए प्रयत्न करती है कि ये जातियां अपने स्वार्थों को देश के नाम पर छोड़ दें, तब यह आवश्यक है कि हिन्दु मुसलमान दोनो के साथ समान रू . व्यवहार किया जाय। यदि इसके विपरीत वह मी जाति के स्वार्थों को छुड़वाने के लिए, दूसरी जाति की अपेक्षा अनावश्यक रूप से दबाव डालती है या शासन सूत्र के हाथ में आने से (जैसा कि आठ प्रान्तों में कांग्रेस का शासन है) इस प्रकार के नियम बनाती है जिस से एक जाति के स्वार्थों को दूसरी की अपेक्षा अधिक धक्का पहुंचता हो, चाहे वे हिन्दु हो या मुसलमान इसके लिए कांग्रेस को दोषी ठहराया जा सकता है, और ठहराना भी उचित है। अन्याय के विरोध में आवाज़ उठाना हमें कांग्रेस ने ही सिखाया है।

हम यह कहना नहीं चाहते कि ऐसा कहीं पर हुआ है या नहीं? यदि हुआ भी है तो उस का वास्तविक स्वरूप क्या है? हम तो कांग्रेस से यही आशा करते हैं कि वह सदा न्याय और सत्य का ही पक्ष लेगी। कांग्रेस के हिन्दु नेता अपनी ओर से हिन्दु मुस्लिम ऐक्य के लिए निरन्तर न्त प्रयत्नशील हैं, परन्तु उस में जो इतर जातीय भाई हैं उनको स्थान २ पर दी गई वक्तृताओं को है कि यह ऐक्य और देश की उन्नति के लिए प्रचार है अथवा अपने धर्म पर दृढ़ रखने के लिए सदुपदेश?

हम तो यही चाहते हैं कि सब को अपने धर्म और विचारों की स्वतंत्रता दी जानी चाहिए, परन्तु साथ में हमारी यह भी सम्मति है कि देश की इस समय की अवस्था को देख कर यह काम नहीं होना चाहिए, और फिर कम से कम जब कांग्रेस के नेताओं से हम सीधे देश के लिए ही जाति और धर्म भुलाकर काम करने की आशा लगाते हैं तब यह अवाञ्छनीय है। यह धर्म प्रचार का काम औरों के लिए रहने देना चाहिये। सम्भव है, हमारे समझने में कोई गलती हो। यद्यपि कांग्रेस हिन्दु मुस्लिम ऐक्य के लिए प्रतिक्षण तैय्यार है और इसके लिए एक भी अवसर नहीं खोना चाहती। फिर भी जाने या अनजाने यह समस्या जटिल होती जा रही है। इन सब बातों को देख कर यही लगता है कि ज्यों २ दवा की जा रही है, मर्ज बढ़ता जा रहा है। अब यह साम्प्रदायिक विद्वेष की भावना शहरों की तंग गलियों से निकल कर गांवों के स्वतन्त्र वायु मण्डल मे रहने वाले हिन्दु और मुसलमानों में भी छूत की बीमारी की तरह फैलती जा रही है। यह ठीक है कि अब होने वाले दंगे शीघ्र ही शान्त हो जाते हैं।

कांग्रेस को अब अपने इतने दीर्घ काल के अनुभव के बाद कोई अन्य उपाय ढूंढ निकालना चाहिए। अन्यथा यह कहते रहने से कि- 'देश के नाम पर अपने २ जातीय स्वार्थों को छोड़ दो' कुछ भी परिणाम नहीं निकलेगा। किन्तु इसके विपरीत अपनी जाति के गौरव तथा संस्कृति को किसी भी शर्त पर न छोड़ने वाले इन बातों से सतर्क होकर अपनी संस्कृति और विचारों को अधिक दृढ़ बना लेंगे। इन बातों पर अधिकाधिक ध्यान दिए जाने पर हमारे धर्म और संस्कृति की खाइयां और अधिक गहरी तथा बढ़ती चली जायेंगी। ऐसी अवस्था में हमारे अलग हुए २ दिल अपनी संस्कृति और धर्म को छोड़ कर किसी अन्य रूप में मिलजायें, किन्तु हिन्दु और मुसलमान इस रूप में कभी भी नहीं मिल सकेंगे और हमारा हिन्दु-मुस्लिम-ऐक्य स्वप्न केवल स्वप्न ही रह जायगा।

वर्तमान उपाय से तो ऐसा प्रतीत होता है कि हमारी यह समस्या घूम फिर कर अत्यन्त जटिल बनती जा रही है और इसका सुलझाना कुछ असंभव सा लगता है। यह उपाय विचार में जितना स्पष्ट है क्रियात्मक रूप में उतना ही कठिन है। अब अपने जातीय अधिकारों के लिए ..., एक जाति मांग पेश करती है तो दूसरी जाति स्वाभाविक तौर पर उसमें अड़ंगा लगाने का प्रयत्न करती है। इस स्वाभाविक प्रवृत्ति को हटाने के लिए अभी वर्षों लगेंगे। यह कहना कि जाति . . . को बिलकुल भुलादो कुछ समझ में आता है किन्तु इसको धर्म तथा जाति के स्वयम्भू ठेकेदार भला क्यों मानने लगे? हम तो ऐसा समझते हैं कि कांग्रेस द्वारा चलाया गया संग्राम एक परीक्षण है, एक परीक्षण के असफल सिद्ध होने पर दूसरा किया जायगा जोकि अहिंसात्मक ही होगा। इस ऐक्य के प्रयत्न में भी यही बात है। यह अब तक कुछ क्या बहुत अंशों में

ऋषि का साध्य और साधन

(लेखक—श्री पं० श्रीपाद दामोदर सातवलेकर)

[गतांक से आगे]

नगर नगर में आर्यसमाज स्थापन करना और धर्मार्य सभा, विद्यार्यसभा, न्यायार्यसभा तथा राजार्यसभा आदि संस्थाएं स्थापन करके अपने ग्रामका सब कार्यव्यवहार स्वयं चलाना। वेदमंत्रों द्वारा इन सभाओं के स्थापन करने का उपदेश श्री स्वामीजी ने अपने सत्यार्थप्रकाशादि ग्रंथों में पर्याप्त रूप से दिया है, जिसे हरएक इस समय भी देख सकता है, इस लिये उनके इस विषय के वचन यहां उद्धृत करने की कोई आवश्यकता नहीं है। जिन्होंने सत्यार्थप्रकाश, वेदभाष्यादि देखा है, उनको इन सभाओं की स्थापना करने के उपदेश का पता है। अतः अब हम देखते हैं, कि आर्यसमाज की इन सभाओं का कार्य क्या है—

१ धर्मार्यसभा—वेद में कथित मानवधर्म का विकास यह संस्था करे और प्रत्येक सदस्य अपनी धर्ममर्यादा में सुस्थिर रहता है या नहीं यह देखे, और समझा कर सब लोगों को धर्म में रखे और धर्म में लाने का यत्न करे। वेद का अर्थ करना, वेद प्रचार करना आदि कार्य इस सभा के हैं।

जनता को अधर्म से बचाना, संस्कारों से सबको सुसघटित करना, सत्य धर्म का प्रचार करके वेद के शुभ उपदेशों से सब लोगों को उन्नत करना आदि कार्य इस धर्म सभा के हैं।

[२] विद्यार्यसभा—इस विद्यासभा का कार्य राष्ट्र के बालकों और बालिकाओं के विद्याध्ययन का सुयोग्य प्रबन्ध करना है। प्राथमिक शिक्षा से प्रारम्भ होकर अन्तिम उच्च शिक्षा तक का सब प्रबन्ध करना इस विद्या सभा का कार्य है। ज्ञान विज्ञान, उद्योग कलाकौशल आदि सब आवश्यक १४ विद्याओं और ६४ कलाओं की अपने युवकों को शिक्षा देना इस विद्या सभा का कार्य है। कोई आर्य बालक या बालिका विदेशी राज प्रबन्ध द्वारा मिलने वाली शिक्षा न लेवें और विद्वानों द्वारा निश्चित की हुई, आर्य विद्वानों द्वारा चलाये जाने वाले गुरुकुलों में प्राप्त होने वाली, आर्यों के चक्रवर्ती राज्य की जिससे अति शीघ्र स्थापना हो सकती है, ऐसी सुशिक्षा आर्यों के तरुणों को प्राप्त हो, यह उद्देश्य इस में श्री स्वामी जी का था। जर्मनी में आर्य युवकों को भेज कर वहां की विज्ञान विद्या प्राप्त कराना भी स्वामीजी का उद्देश्य था।

[३] न्यायार्य सभा—आर्यों के अपने झगड़े विदेशी राजा के अदालतों में नहीं जाने चाहिये। आर्यों के झगड़े आर्यों द्वारा ही निर्णीत होने चाहिये, आर्यों के झगड़े निपटाने वाले म्लेच्छ नहीं हो सकते। यह शुद्ध और सरल आर्यत्व की दिशा है। इस लिये श्री स्वामीजी महाराज ने 'न्यायार्यसभा' की स्थापना करके इस सभा द्वारा आर्यों के आपस के झगड़ोंका निपटारा स्वयं आर्यों द्वारा कराने की प्रथमआज्ञा दी थी और यह आज्ञा वेदानुकूल ही थी।

[४] जो कार्य 'धर्मसभा' विद्यासभा, और न्यायार्यसभा के कार्य क्षेत्र में नहीं आते, उन सब शेष कार्यों के लिये 'राजार्यसभा' है। आर्यों के राजकीय क्षेत्र में जो स्वाभाविक न्यायानुकूल और नागरिकत्वादि अधिकार और हक हैं उनका संरक्षण करना इस सभा का कार्य है।

[ ] गोरक्षा से ही भारतीय किसानों की तथा भारतीय कृषिकी उन्नति हो सकती है, यह जान कर श्री स्वामीजी महाराज ने 'गोकरुणानिधि' नामक ग्रंथ निर्माण किया और आर्यों को गोरक्षा के लिये पर्याप्त प्रयत्न करना चाहिये, ऐसा शुभादेश दिया। गोरक्षा में केवल गौकी ही रक्षा आती है, ऐसा नहीं अपितु वेदानुकूल कामदुघा और घटोध्नी गौ निर्माण करना भी इस समाज का हेतु निःसदेह है गो दुग्ध भूमि के ऊपर का श्रेष्ठ अमृत है, इससे भारतीय जनता अकिञ्चन कभी न रहें, यह श्री स्वामीजी का गो आदि की रक्षा करने में विशाल हेतु था आर्य गोदुग्ध पान करके नीरोग और बलवान् बनें और स्वराज्य स्थापना का कार्य जोर से करें यह उद्देश्य यहां स्पष्ट है।

(६) भारतवर्ष में ही क्या और सम्पूर्ण पृथ्वी पर क्या प्रजानुकूल राजशासन हो जनता का सच्चा हित करने में समर्थ होगा, यह जान कर आर्यसमाज की नियमानियमावली श्री स्वामी जी ने ऐसी बनाई कि जिससे प्रजानियन्त्रित, प्रजासम्मत कार्यप्रणाली आर्यों का बने और ऐसी संस्था में काम करने वाले आर्य भारतीय शासन संस्था के लिये सुयोग्य सदस्य बनें। आर्यसमाज के सब कार्य इसी नियमानुसार लोकसम्मत कार्यप्रणाली, स्वामी जी ने बनाई थी। यह उनकी दूरदर्शिता ही है।

आर्य समाज नामक मुख्य संस्था के आधीन धर्म सभा, न्याय सभा और विद्या सभा कार्य करने लग जाता, और जैसा कि श्री स्वामी जी महाराज ने सोचा था, वैसा ये सब संस्थायें कार्य करने में समर्थ होतीं, तो आज आर्यों के आधीन कितना अधिकार आ जाता, यह भी इस स्थान पर जानने योग्य है।

न्यायार्य सभा कार्य करने वाली हो गई, तो सरकारी अदालतों का पूर्ण बहिष्कार, न करते हुए भी, हो सकता है। विद्यासभा कार्यक्षम हो गई, तो सरकारी विद्यालयों का बहिष्कार आपही आप हो सकता है। विद्या-

---

असफल रहा है। प्रति दिन हिन्दु मुस्लिम दंगे के समाचार सुनने में आते हैं। इस लिए हम चाहते हैं कि कोई अन्य उपाय बर्तना चाहिए, या इसमें ही कोई उत्तम सुधार किया जाय। यदि भविष्य में कोई ऐसा उपाय निकल आए जिससे ये दोनों जातियां जिनका सदियों से चोली दामन का साथ चला आ रहा है, फिर अपने आप ही विक्षेप को भुला कर मिल जांय तो हम उसका स्वागत करेंगे। यह तभी संभव है जबकि धार्मिक सहिष्णुता तथा एक दूसरे के संपर्क में रहने की भावना को उद्बुद्ध किया जाय।

सभा द्वारा १४ विद्या और ६४ कलाओं की शिक्षा शुरू होने पर अपने सब हुनर शुरू होने के कारण विदेशी वस्तुओं का स्वयं बहिष्कार हो जाता है। जो अपने पुत्रों को अपने स्वतन्त्र विद्यालयों में पढ़ाते, अपने हुनर से बने वस्त्रादि निर्माण करके उनको ही पहिनते, अपना न्याय सभा द्वारा अपने झगड़े निपटाते, ऐसे पूर्ण स्वतन्त्रता प्रिय आर्य. सरकारी नौकरी से अपना जीवन कभी भी अपवित्र नहीं करते और विदेशी सरकारी पदवियां धारण करके भी अपने आपको कभी कलंकित नहीं करते, तो क्या ही अच्छा होता। क्योंकि वैदिक धर्मी का विदेशी सरकार के आधीन रहना ही असम्भव है। इस दिशा में कार्य हुआ होता तो दिन प्रति दिन आर्य, सच्चे आर्य बन जाते।

स्वामी जी का यही उद्देश्य था. यह बात उनके ग्रन्थों में सर्वत्र स्पष्ट दीखती है। यदि यह श्री स्वामी जी का उद्देश्य इस समय सफल होता, तो श्री महात्मा गांधी जी को अपना पंचबहिष्कार घुमाने का अवसर ही न मिलता. क्योंकि आर्यसमाज द्वारा ये ही बहिष्कार महात्मा गांधी जी के भारतभूमि में अवतीर्ण होने के पूर्व ही सिद्ध होकर रहते। और महात्मा गांधी जी को दूसरा कार्यक्रम सोचना पड़ता। परन्तु ऐसा बना नहीं !

१ धर्मसभा द्वारा विदेशी प्रचार का प्रतिबन्ध।

२ न्यायसभा द्वारा अपने झगड़े स्वयं मिटाने के कारण विदेशी सरकार का बहिष्कार।

३ विद्यासभा द्वारा अपने गुरुकुलों के संचालन द्वारा अपने अपने आर्ययुवकों की शिक्षा होने के कारण विदेशी सरकार के शिक्षणालयों का बहिष्कार।

४ उक्त विद्यालयों में ६४ कलाओं की शिक्षा होने के कारण अपने लिये आवश्यक वस्तुओं के निर्माण होने से विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार।

५ आर्यों में अपने स्वतन्त्र चक्रवर्ती राज्य की अति शीघ्र स्थापना करने की तीव्र इच्छा प्रकट होने के कारण विदेशी सरकार की नौकरियों का बहिष्कार।

६ इसी उक्त कारण से उपाधी पदवियों का बहिष्कार। ये सब बहिष्कार जो महात्मा गांधी जी ने सन् १९२१ में घुमाये हैं, ये ही बहिष्कार श्री स्वामी दयानन्द जी महाराज ... करते हुए, कार्यव्यवहार में लाने का आयोजना ... वर्ष पूर्व ही शुरू की थी। जिस समय कांग्रेस का जन्म भी नहीं हुआ था, उस समय श्री स्वामी जी महाराज इस आयोजना को तैयार करके आर्यसमाज द्वारा प्रचलित करने का विचार कर रहे थे। यही उनके कृतित्व का ...

... आर्यसमाज, प्रान्त ... आंगिक सभा और अखिल भारत का नियन्त्रण करने के लिये अखिल भारतीय सार्वदेशिक प्रतिनिधि सभा होगा। इस तरह ग्राम से प्रारम्भ होकर अखिल भारतवर्ष का नियन्त्रण पूर्वोक्त धर्म विद्या-न्याय आदि सभाओं द्वारा स्वामी जी के आदेशानुसार होता, तो पाठक स्वयं जान सकते हैं कि यह एक आर्यों का 'स्वराज्यशासन' इस आर्यभूमि में आप ही आप शुरू होजाता। इस भरतखण्ड में विदेशी सरकार का राजकीय क्षेत्र में शासन होते हुए भी, धर्म-विद्या-न्याय-उद्योग आदि क्षेत्रों में आर्यों का स्वयंशासन शुरू हो जाता और यह एक आर्यों का समान-चलने वाला राज्यशासन (Parallel Government) का डंका बजाते हुये, और न बोलते हुए, शुरू होजाता और आज जो राष्ट्रियमहासभा (कांग्रेस) के अध्यक्ष अथवा सर्वाधिकारी श्री महात्मा गांधी जी एक ओर और दूसरी ओर ब्रिटिश सरकार के प्रतिनिधि श्री वाइसराय होते हैं, और बराबरी के नाते से राज्यशासन के विषय में निर्णय कर रहे हैं. ऐसी ही अवस्था, अर्थात् एक ओर सार्वदेशिकार्य प्रतिनिधि सभा के अध्यक्ष और दूसरी ओर वाइसराय रहकर भारतवर्ष के शासन का विचार बराबरी के नाते से करते। श्री स्वामी जी महाराज ने जिस समय अपने आर्यसमाज की रूपरेखा खींची थी उस समय उनके सामने यह दृश्य था !

कवि, अब मत गाओ ये गान

[श्री 'कुमार']

तुमने गाया 'जीवन सपना
जिसमें खाली प्रतिपल तपना,
निष्क्रिय जीव मृतक सा, यह तो लक्षित मिथ्या विश्व महान'
कवि, अब मत गाओ ये गान।

× × ×

तड़पन के तेरे नर्तन ने,
छन्द, ताल, सस्वर गायन ने,
हृदय मूल को क्षुब्ध किया, अहं! मुग्ध शून्य औ विनिष्प्राण'
कवि, अब मत गाओ ये गान।

× × ×

दर्द-भरी तेरी आहों से,
सर्द-भरी तेरी दाहों से,
दुःखित दग्ध हुआ विस्मित था, भूल गया सब, बना अजान!
कवि, अब मत गाओ ये गान।

× × ×

विस्मृति से आगे भी भागा,
भ्रान्त हुआ उफ! बना अभागा,
साध्य हुआ कुछ, साधन भी कुछ, जीवन का कुछ रहा न ध्यान!
कवि, अब मत गाओ ये गान।

× × ×

विस्मृत रहना अच्छा ही था,
बचपन भी हृदय-ग्राही था,
शून्य मार्ग पर चला चला भी, स्यात पा जाता अन्तिम ज्ञान !
कवि, अब मत गाओ ये गान।

भूल संशोधन— पिछले अंक की "कांग्रेस और प्रूफ" पुस्तक की समालोचना में कुछ भूल रह गई थी। पुस्तक की छपाई, सफ़ाई अत्युत्तम है। पुस्तक सब प्रकार से उपादेय है। पृष्ठ संख्या १५० है।

मुक्ति-गीत

श्री सत्यभूषण 'योगी'

हां, वे दिन अब चले गए।

जब मैं सिसका ही करता था,
सूने में आहें भरता था,
भगते मृगतृष्णा के पीछे, ये प्यासे दृग छले गए!
पर अब वे दिन चले गए!
हां, वे दिन अब चले गए!!

वह दुःखद कारा थी निर्मम,
था हा, भीषण तम जिस में तम,
छाया रहता था नित मातम, हम ग़म में ही गले गए!
पर अब वे दिन चले गए!
हां, वे दिन अब चले गए!

हँसना, नचना, प्रतिपल खिलना,
सब से स्नेह हृदय से मिलना,
मस्त झूमना काम सदा अब, हां, अब दिन आ भले गए!
वे दिन तो अब चले गए!
हां वे दिन अब चले गए!!

गुरुकुल समाचार

ब्र० महेन्द्र ३ य (आगरा) चोट, ब्र० वीरेन्द्र ३ य सिरदर्द, ब्र० ओम्प्रकाश ३ य, शीतपित्त, ब्र० रामप्रकाश ११ श चोट, ब्र० भारतेन्दु १४ श विषमज्वर, ब्र० विद्यारत्न १२ श मोच, ब्र० धर्मवीर १३ श विषमज्वर। अब सब अच्छे हैं।

ऋतु समाचार— सर्दी दिनों दिन बढ़ रही है। जिसके कारण भूख, खूब खुल कर लगती है। इस कारण आटे की एलाउंस बढ़ाई जा रही है। ब्रह्मचारी सब आनन्द प्रसन्न हैं। सर्दियों के लिये काश्मीर की ओर से गर्म-ऊनी वस्त्र मंगवाये गये थे, जो छोटे और बड़े ब्रह्मचारियों को दिये जा चुके हैं।

अखाड़ाः— इन दिनों गुरुकुल का अखाड़ा विभाग पर्याप्त उन्नति कर रहा है। बीस से अधिक ब्रह्मचारी, प्रतिदिन नियम पूर्वक पांच बजे से पूर्व ही मल्लविद्या सीखने के लिये अखाड़े में पहुँच जाते हैं। पहलवान जी भी यथा समय आकर बड़ी लगन और खूबी के साथ दांव पेंच सिखलाते हैं। ब्रह्मचारियों के शरीर हृष्ट पुष्ट और चुस्त हो रहे हैं। अखाड़े के लिये दिनों दिन ब्रह्मचारियों में शौक बढ़ता जा रहा है। सायंकाल ब्रह्मचारीगण अस्त्र विद्या के साथ २ बंगाली पहलवान जी से लाठी गतका और बेंट लिफ्टिंग सीखते हैं। इस प्रकार ब्रह्मचारी प्रतिदिन योग्यता हासिल कर रहे हैं।

गोष्ठी सभाः— इस सभा के पाक्षिक अधिवेशन प्रति १५ वें दिन नियम पूर्वक हो रहे हैं, जिसका श्रेय ब्र० अनन्तानन्द जी ही को मिलना चाहिये।

इधर कुछ दिनों से यह सभा आशातीत उन्नति कर गई है। जहां इसने महाविद्यालय के ब्रह्मचारियों को कविता के लिये प्रोत्साहित किया है वहां साथ ही साथ भाषा और भावों का भी पर्याप्त परिमार्जन किया है। करुण गीतों और शिष्ट-परिहासों से गोष्ठी में खूब रौनक रहती है। इस सभा के प्रयत्न से आज कल महाविद्यालय में कविता का अच्छा वायुमण्डल तैय्यार हो गया है। इसके प्रत्येक अधिवेशन में कवियों, गाल्पिकों, आख्यायिका लेखकों, प्रहसन तथा नाटककारों की भरमार रहती है, जिसमें सब महाविद्यालय के ब्रह्मचारी, अध्यापक, उपाध्याय तथा ऊपर के अधिकारी सोत्साह भाग लेते हैं और अधिवेशन के समाप्त होने पर, अगामी अधिवेशन की उत्सुकता को साथ लेकर जाते हैं। इस सभा की इस साहित्यिक उन्नति को देखकर हम सन्तोष की सांस लेते हैं, कि हिन्दी भाषा में दिनों दिन इतना उत्तम साहित्य तैय्यार हो रहा है। वह दिन अब दूर नहीं जबकि हमारा हिन्दी भाषा का साहित्य संसार के किसी भाषा के साहित्य से पिछड़ा न रहेगा। विगत २० नवम्बर को गोष्ठी सभा का साधारणाधिवेशन हुआ, जिसमें उत्कृष्ट श्रेणी के कविता पाठ के साथ २, मनोरञ्जक पद्यों और विनोदी प्रहसनों का पाठ हुआ। अधिवेशन में खूब मनोविनोद हुआ। ब्र० सत्यभूषण १४ श की "मुक्तिगीत" कविता अच्छी रही। साथ ही सूर्य कुमार ११ श की "पुरानी भूमि की सूखी धारा", ब्रह्मदत्त १२ श का गद्य काव्य, ब्र० सत्यदेव ११ श की कविता तथा प० हरिवंश वेदालंकार के "हिटलर-हनुमान् सम्वाद" पर्याप्त मनोरञ्जक रहा।

गुरुकुल-सूपा

आर्य समाज के महान् नेता और सुविदित शिक्षणालय डी. ए. वी. कालेज लाहौर के संस्थापक और प्राणस्वरूप महात्मा हंसराज जी के निधन का समाचार जान कर गुरुकुल सूपा में दुःख छागया। उनकी स्मृति और सम्मान में गुरुकुल के समस्त विभाग बन्द रहे। प्रार्थनालय में समस्त कुलवासियों ने सम्वेत होकर स्वर्गीय आत्मा के प्रति श्रद्धाञ्जलि अर्पित की। तथा उनके आत्मीय जनों के प्रति समवेदना के पत्र तथा प्रस्ताव भेजे हैं।

उसी दिन पंजाब केसरी लाला लाजपत राय जी की दसवीं बरसी के उपलक्ष्य में पं० केशवदेव जी ज्ञानी की अध्यक्षता में सभा हुई। छात्रों ने लाला जी के जीवन कार्यों पर विवेचना करने वाले लेख और भाषण पढ़े। सभापति जी ने उनके त्याग और सेवाओं का वर्णन किया।

स्वाध्याय के लिए उपयोगी पुस्तकें

वैदिक विनय (तीनों भाग)

ले०—श्री पं० देवशर्मा जी "अभय"

धार्मिक और आध्यात्मिक क्षुधा को शान्त करने के लिए यह पुस्तक अद्वितीय है। लेखक की वर्षों वर्ष की तपश्चर्या का फलरूप यह ग्रन्थ है। इस पुस्तक का प्रति दिन स्वाध्याय कर हजारों भक्त अलौकिक आनन्द लाभ कर रहे हैं। मू० १) प्रति खण्ड

वेद गीतांजलि

इस पुस्तक में वेद मन्त्रों के साथ २ उच्च कोटि के कवियों की कविताएं हृदय को आल्हादित कर देती हैं। पुस्तक अपने ढंग की निराली है। स्थान २ पर भावों को अभिव्यक्त करने वाले चित्र भी दिये गए हैं। प्राचीन भावों के साथ, नए विचारों का, छन्दोमयी भाषा द्वारा संगम, त्रिवेणी संगम है। मू० २) मात्र

स्तूप-निर्माणकला

(ले०—प्रो० नारायणराव जी)

इस पुस्तक में अनेक प्रकार के व्यायामों की विधियां लेख और चित्रों द्वारा बड़ी सरल रीति से समझाई गई हैं। इन व्यायामों के द्वारा शरीर-पुष्टि के साथ २ मनोरंजन भी खूब होता है। बढ़िया कागज पर छपी, १०८ चित्रों से विभूषित, सुन्दर पुस्तक का दाम केवल ३) है।

संध्या रहस्य

(ले०—श्री प्रो० विश्वनाथ जी)

इस पुस्तक में संध्या जैसे गूढ़ विषय को बड़े मनोरंजक ढंग से समझाया है। संध्या से सम्बद्ध ज्योतिष की बातों को भी नक्शा देकर बड़ी उत्तमता से समझाया गया है। पुस्तक प्रत्येक जिज्ञासु और अध्ययनशील व्यक्ति के लिए पठनीय है।

मूल्य केवल १)

मिलने का पता—

मैनेजर

पुस्तक भण्डार गुरुकुल कांगड़ी

जि० सहारनपुर

चौधरी हुलासराय के प्रबन्ध से गुरुकुल प्रेस गुरुकुल कांगड़ी में मुद्रित तथा प्रकाशित।

॥ ओ३म् ॥

"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत" Reg. No. A. 2927

गुरुकुल

सम्पादक—साहित्यरत्न पं० हरिवंश वेदालङ्कार

एक प्रति का मूल्य -) [गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख-पत्र] वार्षिक मूल्य २॥)

वर्ष ३] गुरुकुल काङ्गड़ी, शुक्रवार १७ मार्गशीर्ष १९९५, २ दिसम्बर १९३८ [संख्या २८

काल

(ले० श्री प्रो० लाल चन्द जी)

(२)

काल का अर्थ मृत्यु है, पर काल का अर्थ समय भी है। समय और मृत्यु का क्या सम्बन्ध है– समय इतना चुपके से बीतता चला जाता है कि जब तक मृत्यु सामने न आ जाय तब तक बहुत से मनुष्यों को पता ही नहीं चलता कि हमने कितना समय नष्ट कर दिया। जिन का यह ख्याल रहे कि काल सदा सिर पर सवार है वे समय व्यर्थ कैसे गंवा सकते हैं।

'क्या भरोसा है जिन्दगानी का।'
आदमी बुलबुला है पानी का॥"

यदि ऐसी बात है तो जो भी थोड़ा सा समय है उस का सदुपयोग करना चाहिये क्योंकि art is long and time is fleeting काम बहुत है और काल थोड़ा है।

वेद में लिखा है, काल रूपी घोड़ा कभी बूढ़ा नहीं होता। वह महाबली है और बहुत वेग से भागा चला जा रहा है। सब भुवनों में गति कर रहा है, पर विचित्र बात है इस सरपट दौड़ते हुए महाबली घोड़े के पांवों की आहट कोई नहीं सुनता। यह चोर की तरह आता है और हमारा सब खज़ाना चुरा कर ले जाता है। एक विद्वान् ने लिखा है, मनुष्य ने जब देखा कि काल तो चुपके चुपके भागता चला जाता है और कुछ बोलता नहीं तो मनुष्य ने काल को घंटी रूपी जिह्वा देदी, जिस से उसके चलने का भान होता रहे, स्कूलों में, कालिजों में, मंदिरों में, गिर्जों में, स्टेशनों पर, घड़ियों में, घड़ियालों में जो नाना विध घड़ियां और घंटे बजते हैं, ये काल की अनेक जिह्वाएं हैं जो पुकार पुकार कर चेतावनी दे रही हैं और मनुष्यों को कह रही हैं– सोने वालो जागो, और अपने लक्ष्य की ओर भागो—

"उठ जाग मुसाफिर भोर भई अब रैन कहां जो सोवत है।
जो जागत है सो पावत है, जो सोवत है सो खोवत है॥
टुक नींद से अखियां खोल ज़रा और अपने रब से ध्यान लगा।
यह प्रीत करन की रीत नहीं रब जागत है तू सोवत है॥
जो कल करना है आज कर ले, जो आज करना है अब करले।
जब चिड़ियों ने चुग खेत लिया, फिर पछताये क्या होवत है॥"

अंग्रेज़ी में एक कहावत है कि काल के माथे पर तो कुछ बाल हैं पर पीछे से गंजा है जो समय का पालन नहीं करते, जो हर बात में देर करते हैं। वे काल के पीछे पीछे भागते हैं कि उस को पकड़ लें पर पकड़ें तो कैसे ?– पीछे तो बाल हैं नहीं पीछे से तो गंजा है। इस लिये ऐसे आदमियों की दशा अत्यन्त शोचनीय हो जाती है और वे अपने जीवन में असफल होते हैं।

काल धन है, पर गुम हुआ धन फिर मिल सकता है, समय गवाया हुआ फिर हाथ नहीं आता है। समय इतना बहुमूल्य धन है कि प्रभु एक दम एक क्षण से ज्यादा किसी को नहीं देता। एक देवी ने अपनी डायरी में लिखा:—

'Lost somewhere between sunrise and sunset yesterday Two golden hours each set with sixty diamond minutes. No reward is offered for they are gone for ever.

कल सूर्योदय और सूर्यास्त के बीच किसी समय अनमोल और साठ २ रत्नों से जटित दो घण्टे गुम हो गये। पाने वाले को कोई इनाम नहीं, क्योंकि वे अब फिर लौटेंगे नहीं।

———

इन्द्रिय-संयम

[लेखक—श्री पं० ब्रह्मानन्द जी]

यदा संहरते चायं कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञाप्रतिष्ठिता ॥

बहुत प्राचीन काल से इस बात पर विचार होता चला आ रहा है, कि इन्द्रियों को विषयों से रोकना चाहिये या नहीं। एक पक्ष यह है कि हमें अपनी इन्द्रियों की स्वाभाविक गति को रोकने का यत्न नहीं करना चाहिये। जो कुछ स्वभावतः हो रहा है, उसे होने देना उचित है। हम उनकी स्वाभाविक गति को रोक कर उनकी शक्ति का नाश करते हैं और इसमें आत्म हनन भी है, क्योंकि हम अपनी आत्मा की इच्छा के विरुद्ध करते है। अपनी स्वाभाविक इच्छा के अनुसार कर्म करते जाने से इन्द्रिय, मन और आत्मा की शक्ति का विकास होता है, अतः इन्द्रिय-निग्रह का विचार भ्रान्तिमूलक है। पर बहुधा ऐसे अवसर आ जाया करते हैं, जब हमारी इन्द्रियों के सुख और हमारे उद्देश्य में विरोध हो जाता है। जैसे कि हमें चार बजे उठ कर नित्य प्रातःकाल प्रार्थना करनी है, किन्तु निद्रा सुख और आलस्य बहुधा हमें उस समय सोने के लिए प्रेरित करते रहते हैं। हमारा उद्देश्य आरोग्य की प्राप्ति है जो कि परिमित पथ्य भोजन से ही हो सकती है, किन्तु स्वाद-सुख-लिप्सा हमें अधिक तथा अपथ्य-भोजन के लिए प्रेरित करती है

इस तरह जहां इन्द्रियों के सुख और हमारे अभीष्ट लक्ष्य में विरोध होता है, वहां हम अपने को उभयतःपाशा रज्जु से बंधा हुआ पाते हैं। यदि इन्द्रियों के सुख को देखें तो हमारे प्रधान उद्देश्य की हानि होती है और यदि अपने प्रधान उद्देश्य को देखें तो इन्द्रियों के सुख की हानि होती है। ऐसे स्थान पर क्या किया जाय? यह प्रश्न होता है। इस प्रश्न के उत्तर में कोई भी बुद्धिमान् पुरुष कूपखानक न्याय का अनुसरण करने के सिवाय और क्या करेगा? अर्थात् जैसे कुआ खोदने में शरीर में मिट्टी और कीचड़ लगना अनिवार्य समझ कर उसे सहन किया जाता है, वैसे ही अपने प्रधान उद्देश्य की प्राप्ति के लिए भी इन्द्रिय-सुख का परित्याग करना अनिवार्य है। मनुष्य किसी प्रकार का भी अभ्युदय प्राप्त करना चाहे, उसके लिए उसे इन्द्रियों का निग्रह करना आवश्यक हो जावेगा। बिलकुल इन्द्रियों को स्वच्छन्द छोड़ देने पर वे अवशवर्ती घोड़े के समान हमें अपने लक्ष्य से इतस्ततः ही ले जावेंगी। छोटे से छोटे भी काम के लिए कुछ न कुछ इन्द्रियों को अपने नियन्त्रण में लाना पड़ता है। किन्तु यह देखने में आता है कि बाहरी इन्द्रियों को रोक लेने पर भी भीतरी इन्द्रिय मन अपने वश में नहीं आता। इस लिए अर्जुन ने कृष्ण से कहा था कि मन को रोकना वायु के रोकने से भी अधिक कठिन जान पड़ता है। और बिना अपने मन को वश में किये हुये हम अपनी इच्छा के अनुकूल विचार-क्रिया में असमर्थ रहते हैं। और आचार तो विचारों के ही अनुसार होता है, अतएव विचार हमारे वश में नहीं रहते तब अपने आचार पर भी यथेष्ट नियन्त्रण करने में हम असमर्थ रहते हैं। अतः मन को रोकने का उपाय करना चाहिये, बिना अपने मन को वश में किये हम किसी भी महान् लक्ष्य की पूर्ति नहीं कर सकते। शास्त्रों में तो मन को रोकने के बहुत से उपाय बतलाए गये हैं, पर मैं शास्त्रों को छोड़ कर अपने अनुभव के आधार पर इस विषय का विवेचन करता हूं। क्योंकि हमें शास्त्र आदि बाह्य पदार्थों को छोड़ कर अपने अन्दर से ही ज्ञान के अनुसन्धान करने का यत्न करना चाहिये, यदि शास्त्र आदि बाह्य वस्तु भी आनुषंगिक रूप से सहायक हों तो होवें, हमें न उनसे विरोध है और न अनुरोध है। इसी शैली से ज्ञान का अनुसन्धान करने पर हम उसे प्राप्त करने में समर्थ हो सकते हैं।

अस्तु मुझे ऐसा अनुभव है कि प्रातः और सायङ्काल कम से कम सात बार प्राणायाम करना तथा कम से कम आधा घण्टा ईश-प्रार्थना और सद्विचारों की भावना, मन को रोकने का बड़ा अच्छा साधन है। और प्रति दिन कुछ समय तक अपने मानसिक और शारीरिक कर्मों का निरीक्षण भी करना चाहिए। आत्मनिरीक्षण करने से अपने को संसार की घटनाओं से पृथक् साक्षी रूप में समझने की प्रवृत्ति बढ़ती है। और इस तरह अपना आत्मा को समस्त घटनाओं से असङ्ग रूप में देखने का अभ्यास होने पर संसार के सुख-दुःखों का मन पर स्थायी प्रभाव नहीं पड़ता, और निर्भयता की वृद्धि होती है। और अपने को संसार की घटनाओं से अलग समझने पर स्वभावतः उनसे वैराग्य होता जाता है, तथा मन की विषयों में प्रवृत्ति कम होती जाती है। अन्य उपायों से तो मन की चञ्चलता का समूल नाश नहीं होता, पर इस उपाय से समूल नाश होता है। क्योंकि मन की चञ्चलता का वास्तविक मूल अज्ञान है, और इस उपाय से हम उस अज्ञान का ही ज्ञान के द्वारा नाश करते हैं। इस स्थिति को प्राप्त करने के पूर्व यह तो प्रतिदिन स्पष्टतया अनुभव होता है कि जिस तरह घोड़े में प्रति दिन निरीक्षण तथा शिक्षण से संस्कारिता आती है और वह अपने वश में हो जाता है उसी तरह अपने शरीर और मन का निरीक्षण करने से उसमें संस्कारिता आती है।

आवश्यक सूचना

कार्यालय में प्रायः प्रमाण पत्र भेजने के विषय में पत्र आते रहते हैं। भविष्य में निम्न लिखित प्रमाण पत्र देने पर इस प्रकार व्यय लिया जायगा।

१. आयु प्रमाण पत्र ॥)
२. स्कूल सार्टिफिकेट ॥)
३. स्नातक का उपाधि पत्र दूसरी बार १)
४ योग्यता के भिन्न २ प्रमाण पत्र ॥)

मुख्याधिष्ठाता

वीर गाथा

वीरत्व की यह गाथा सुनने के बाद तो छोटी मुश्किलों की फ़रियाद करते हुए शरम आती है; बड़ी मुश्किलों का सामना करते हुए शरम आती है; मुश्किलें हैं और मुश्किलें नहीं हैं, यही मानों कि जीवन मंत्र बना रहता हो इस प्रकार हृदय हरघड़ी तरसता रहता है। वह वीरगाथा यों थी।

नदी वितस्ता ने वेदना का घाव सुना होगा; पर उसको याद रखने वाला रणघोष तो इस अनजान सैनिक का ही होगा।

'वाह गुरु की फतह!' इस वीर घोष से जब आकाश गूंज रहा था, तब सारे गांव में एक ही घर में शोक के बादल घूम रहे थे।

इस अनजान सिख सैनिक का, ठीक बीस-बाईस वर्ष का, फूटती जवानी का, उगते वीरत्व का इकलौता एक पुत्र मृतशय्या पर अन्तिम श्वास ले रहा था। दो घड़ी में उसने दुनियां तज दी। सगे सम्बन्धी और कुटुम्बी, मित्र और आप्तजनों को, महाशोक की छाया ने घेर लिया।

पर उस अनजान सैनिक ने धीमे से अपनी तलवार ली। उसको म्यान से बाहर निकाला; अपने प्रिय पुत्र के शव के पास घुटने टेक कर संसार को तजते हुए उस अनादि तत्व को उसने नमस्कार किया और 'वाह गुरु वाह!' इस वीर घोष के साथ घर के पास से निकलते हुए जत्थे में मिल गया; रण में खप जाने की इच्छा से नहीं; अपने नाद 'वाह गुरु वाह!' को वीर घोष में मिला देने के लिये, जीवन-बल से।

उसे पता था, उसे खूब पता था, कि जब परम करुणावस्था की घड़ी जीवन में आती है, तब उसमें गहरे मन्थन को जगा देने वाला गूढ़ रहस्य छिपा होता है; इसी कारण उसने अपने पुत्र के शव को अन्तिम नमन किया और चल निकला उसकी आवाज़ सब की अपेक्षा अलग सुनाई दे रही थी: वाह! गुरु की फतह!'

और गुरु ने जब यह जाना-और कोमल शब्दों में भर्त्सना की-'पुत्र का शव घर में छोड़ कर निकलने के लिये'-तब उसने इतना ही जबाब दिया; जिसका था उसके हाथ में सौंप दिया- उसकी अंगुलि पकड़ा दी- फिर किस चिन्ता के लिये एक घड़ी भी ठहरूं? वाह गुरु की फतह!'

सारी सेना के कण्ठ में से एक आवाज़ निकली! 'वाह गुरु की फतह!'

खून के आंसू

श्री सत्यभूषण 'योगी'

फूल मुसकाते सुरभि मधु,
बह रहा मलयज समीरण,
एक सुन्दर सुमन पर यह,
चल गया मेरा चपल मन!
कर बढ़ा—पर खून के
आंसू स्वयं ही रो पड़ा वह!
फूल के घायल हृदय का,
हुआ उसके बीच अंकन—
था लिखा—कुछ फूल ने दो
बस दिवस दो ही मिले हैं,
फिर मिलूंगा धूल में मैं
छोड़ यह सुन्दर मृदुल तन,
इस हृदय में भी बसी हैं
नव उमङ्गें, स्वप्न जीवन॥

कोयल

[श्री विद्याभूषण,]

१

कोयल! अपनी काली काया,
में जग को तूने उलझाया।
तेरा मादक मधुर-गीत यह,
जगती में जन-मन को भाया॥

× × ×

२

तेरी सुमधुर स्वर लहरी सुन-
मैं भी कर उठता कुछ गुनगुन।
शान्त मुदित हो जाता है यह-
मेरा चिर सगी उन्मन मन॥

× × ×

३

ओ काली कोयल! मतवाली
मधुर-मधुर कुछ गादे आली!
सुन तेरी मादक स्वर लहरी,
जगती ने नूतन गति पा ली॥

गुरुकुल

१७ मार्गशीर्ष शुक्रवार १९९५

अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति और भारत

विश्व में आज सर्वत्र उथल-पुथल मची हुई है। २० वें शतक में हुई महान् वैज्ञानिक, राजनैतिक, सामाजिक उन्नति का उपभोग लेने के लिए यूरोप के प्रगतिशील राष्ट्र सतत प्रयत्न कर रहे हैं। संसार की साम्राज्यवादी शक्तियां संसार के आर्थिक दोहन का फायदा उठाने में लगी हुई हैं। लूट खसोट की दौड़ में पीछे रहे राष्ट्र भी आगे आ, बाजी मारने का यत्न कर रहे हैं। दूसरी ओर संसार भर की पददलित जातियां स्वतन्त्र वातावरण में खुली सांस लेने के लिए भरसक यत्न कर रही हैं। विश्व के रंग मंच पर आज यही सब कुछ हो रहा है।

इङ्गलैण्ड, रूस, फ्रांस, अमरीका आदि विस्तीर्ण साम्राज्य वाले राष्ट्र अपने २ बृहद् आकार वाले प्रदेशों की सुरक्षा में लगे हुए हैं। इङ्गलैण्ड, साम्राज्य भर में व्याप्त समस्याओं में उलझा हुआ है। भारत फिलस्तीन आदि में स्वतन्त्रता की आवाज बुलन्द हो रही है। साम्राज्य के अन्य हिस्से विभिन्न अधिकारों को पाने का यत्न कर रहे हैं। ब्रिटेन अपनी घरेलू दशा से बेचैन है। वह किसी भी युद्ध से खौफ खाता है, युद्ध उसके विश्वव्यापी साम्राज्य के लिए खतरनाक सिद्ध हो सकता है।

रूस और अमरीका अपनी आन्तरिक स्थितियों में उलझे हुए हैं। और रहा फ्रांस वह अपने पड़ोसी जर्मनी को अकेला कुछ कहने में घबराता है।

जापान और इटली अपने साम्राज्यों को बढ़ाने के लिए क्रियात्मक पग बढ़ा रहे हैं। महायुद्ध में पराजित जर्मनी भी ताल ठोक कर यूरोप में फिर आ खड़ा हुआ है। अब तो जर्मनी का प्रादेशिक विस्तार भी बहुत बढ़ चुका है। सम्पूर्ण आस्ट्रिया तथा जेकोस्लोवेकिया के जर्मन भाषा भाषी हिस्से भी स्वस्तिक के जर्मन झंडे के नीचे आ गए हैं। जर्मनी समर्थ होकर महायुद्ध में खोए उपनिवेशों की मांग करने लगा है। जापान सुदूर पूर्व से पाश्चात्य शक्तियों को निकाल कर सर्वेसर्वा बनने के यत्न में लगा हुआ है।

इटली भी भूमध्यसागर में अपनी स्थिति को मज़बूत करने में लगा है। और इन सबका असर हो रहा है-संसार की पददलित जातियों पर, अशक्त राष्ट्रों पर चीन, स्पेन, जेकोस्लोवेकिया जैसे असहाय देशों का अङ्ग भङ्ग किया जा रहा है। फिलस्तीन में जीवन मरण का प्रश्न सुलझाया जा रहा है।

विश्व भर की ये हलचलें भारत को एक दिशा की ओर इशारा कर रही हैं—'यदि एक स्वतन्त्र, उन्नतिशाली राष्ट्र के रूप में जीना है तो इस स्वर्णावसर को मत खोओ।' भारत के राजनैतिक नेतागण भी भारत की एकता करने में पूरा यत्न कर रहे हैं। ब्रिटिश भारत के ११ प्रान्तों में से ८ प्रान्तों में राष्ट्रिय महासभा की नीति पर चलने वाली राष्ट्रीय सरकारें स्थापित हैं।

रियासतों में भी ब्रिटिश भारत की इस जागृति का असर हुआ है। कई रियासतों ने हवा का रुख देख कर उत्तरदायी शासन अपने राज्यों में जारी कर दिया है, अन्यत्र रूढ़िवादी स्वेच्छाचारी रियासतों में उत्तरदायी शासन की मांग जारी है और इसके लिए रियासतों की की प्रजाएं राष्ट्रीय महासभा के नेताओं के पथ प्रदर्शन में प्रयत्न कर रही हैं।

'भारत स्वाधीन होकर रहेगा' आज यही ध्वनि सर्वत्र व्याप्त है। प्रजा में उत्साह है, कार्यकर्ताओं में निस्वार्थ भाव है, नेताओं में उत्तम पथ प्रदर्शन की योग्यता मज़बूत है। इस समय केवल एक बात की आवश्यकता है, भारत की सम्पूर्ण शक्तियां, जातियां एक होकर इस स्वातन्त्र्य संग्राम में कूद पड़ें। एकता के लिए आज सर्वत्र प्रयत्न जारी है, इसकी सफलता और असफलता पर ही भारतीय स्वातन्त्र्य की जल्दी या देरी निर्भर करती है।

कमाल अतातुर्क—

स्वतन्त्र, शक्तिशाली, समुन्नत तथा समृद्धिशाली आधुनिक तुर्क राष्ट्र के त्राता एवं निर्माता मुस्तफा कमाल पाशा के स्वर्गवास का समाचार सर्वत्र ही खेद के साथ सुना गया है। महायुद्ध के अनन्तर पराजित तुर्क देश पर जब साम्राज्यवादी राष्ट्रों की गृद्ध दृष्टि थी और जब उसी समय ही यूनान देश ने इस असहाय देश से युद्ध की घोषणा की थी, उस समय मुस्तफा कमाल जन्मभूमि तुर्क देश के एकमात्र रक्षक के रूप में अवतीर्ण हुआ। तुर्कों को परिणाम स्वरूप अपने खोये हुए प्रदेशों पर पुनः अधिकार करने का अवसर मिला। इस विजय का लाभ उठा कर मुस्तफा ने बादशाहत को उखाड़ फेंका और प्रजातन्त्र की स्थापना की। इसी समय से, बादशाहत के खात्मे के साथ खिलाफत का भी खात्मा हो गया। कट्टरपन्थी मुस्लिम जगत् में इससे सर्वत्र ही अपूर्व हलचल उठ खड़ी हुई। सुधारक कमालपाशा ने इस पर बिल्कुल भी कान नहीं दिया। इस्लाम के तथाकथित बहु विवाह के सिद्धान्त को अमान्य ठहरा कर तुर्क देश से बुर्के का बहिष्कार कर, हरमों को भी अर्धचन्द्र देदिया। बालक बालिकाओं में सामान्य रूप से बड़े भारी पैमाने में शिक्षा का प्रसार करने का यत्न किया गया। विदेशी भाषा अरबी के स्थान पर राष्ट्रभाषा तुर्की को स्थान दिया गया। पुरानी लिपि की जगह रोमन लिपि का

प्रचलन किया गया। तुर्की टोपी का स्थान हैट को दिया गया। जुम्मे की जगह रविवार को राष्ट्रीय छुट्टी का दिन घोषित किया गया। मसजिदों आदि के साथ लगी हुई बड़ी २ जायदादों को देश के हित में लगाया गया। देश के उद्योगों को पुनर्जीवित किया गया। राष्ट्र रक्षक-सेना का भी पुनर्निमाण किया गया।

ठीक है, आज तुर्की देश का विस्तार अपने पहले के विस्तृत तुर्क साम्राज्य सा नहीं है, किन्तु आज तुर्क देश की स्वतन्त्रता पर वक्रदृष्टि रखनेवाला आज कोई भी नहीं है। स्वतन्त्रता का अमर मन्त्र तुर्कों में आज भी नवयुग का संदेश दे रहा है। इस अद्भुत् कर्तृत्व का निष्पादन करने वाला मुस्तफा कमाल पाशा ही था जिसने अपने नाम को तुर्की रूप कमाल अतातुर्क दिया था। अतातुर्क का अर्थ है 'तुर्कों के पिता। इस परिवर्तन के कमाल अधिकारी भी थे।

कमाल अतातुर्क बीसवीं सदी के संसार के कुछ गिने हुए महापुरुषों में से एक थे। इतिहास के पृष्ठों में आपका नाम लेनिन, गांधी, डी वेलेरा, रजाशाह पहलवी, हिटलर और मुसोलिनी के समकक्ष लिखा जायगा, जिन्होंने अपने पददलित राष्ट्र को पुनः सम्मान की उच्च स्थिति पर पहुंचाया। स्वतन्त्र भारत का स्वप्न देखने वाले हम भारतीयों को कमाल अतातुर्क के स्वाधीनता के सन्देश देने वाले जीवन से कुछ शिक्षा लेनी चाहिये।

दीपक

(ले० श्री भीष्म)

ऐ! दीपक! ऐ हंसमुख दीपक! यह तेरी ज्वाला है या मधुर मुस्कान, यह तेरी आभा है, यह तेरी शोभा है। यह पतंग तेरी आभा या शोभा से आकृष्ट हुआ हुआ तेरी ओर क्यों आ रहा है? क्यों तेरी ज्वाला का चुम्बन करना चाहता है! और तू क्यों इसके प्राणों का स्वाहा कर डालता है! या यह पतंग, यह चचल पतंग क्यों अपने आपको तुझे समर्पित कर देता है? यह, यह तो नहीं बता रहा, कि समस्त जगती को आलोकित करने वाला पतंग इस घोर अंधकार में तेरे में विलीन हो गया है, और अपने कर्त्तव्य का पालन कर रहा है? या उस मोहित पतंग को जला कर यह तो नहीं जतला रहा कि मोहितों के लिए, चञ्चल मानस के दासों के लिए अग्नि संस्कार ही श्रेयस्कर है?

पर, प्राण लेने तक की निर्दयता तेरे में कहां से आ गई? उस निर्दय मानव के प्रति तुझे आग लगाने वाले उस मानव के प्रति तो तेरी कोई निर्दयता नहीं दीख रही! अरे! उस क्रूर मानव ने एक काले पृष्ठ पर दियासलाई को रगड़ कर तेरे उत्तमाङ्ग से-तेरे सबसे ऊँचे भाग से-बिना किसी हिचकिचाहट के-स्पर्श कर दिया-तुझे निगल जाने वाली आग से संयुक्त कर दिया। पर, हे निगूढ़ भाव दीपक! तू बदले में मुस्कराता है-शुभ्रद्युति को प्रकट करता है—उस कठोर हृदय मानव को प्रकाश दे कर कृतार्थ कर देता है। यह तेरी कितनी परोपकार परायणता-दयालुता और निस्वार्थता है। फिर हे दयालु दीपक! तू उस निरपराधी क्षुद्र पतंग के साथ क्यों निर्दयता करता है? विचार करने से पता चलता है कि तेरे जैसा सहृदय इतनी निर्दयता नहीं कर सकता। अगर निर्दयता की है तो वह अपने कर्त्तव्य के पालन के लिए ही की है? ओह! तेरा सदयता और निर्दयता दोनों की पराकाष्ठा है। तू सचमुच उन महात्माओं की प्रतिमा है जिनका हृदय वज्र से भी कठोरतम और कुसुम से भी मृदुतर होता है। शायद इसीलिए पुनीत पर्व पर यत्र तत्र तुझे प्रदीप्त किया जाता है।

हे दीपक! यद्यपि तेरा जीवन क्षणिक है फिर भी वह सफल है। जब तक तू रहता है दूसरों के लिए क्षीण होता है-क्षीण होता हुआ भी तू चारों ओर उस आलोक को फैलाता जाता है जिसका जो चाहे वह मनचाहा कर उपयोग कर ले। तू, निगल जाने वाली आग से,-स्पर्श करने वाले क्रूर हृदय के प्रति भी उपकार ही करता है। पर, वह भी यदि तेरी ऊर्ध्व गमन करने वाली अनभिभूत द्युति के मार्ग को रोकना चाहता है-स्पर्श करना चाहता है-तो तू उसे भी स्वाद चखा देता है—यदि वह तेरा अपमान करना चाहे—तुझे पकड़ कर नीचा कर देना चाहे—तो तेरी वह मनोरम द्युति भयङ्कर रूप धारण कर ऊपर ही ऊपर को जाती है-अवशता में अपमान करने वाले की त्वचा को जला देती है या उस पर अपमान सूचक कालिमा का दाग लगा छोड़ती है।

हे महात्मन् दीपक! तूने अपने वीर्य रूप तैल को क्षीण के धागे के सहारे ऊपर चढ़ाया है। जो कि ऊपर जा कर चारों ओर दिव्य आभा फैला रहा है। जिस आभा का उपयोग करके पशु मानव हो सकता है, अज्ञ विज्ञ हो सकता है और कल्याण का मार्ग एकदम स्पष्ट हो जाता है। उस महात्मा की प्रतिमा-दीपक-को मेरा प्रणाम है।

हिन्दी शिक्षण पत्रिका -(मासिक)

सम्पादक-श्री गिजु भाई और तारा बहन। दक्षिणामूर्ति भवन, भावनगर से प्रकाशित। यों तो हिन्दी में सैंकड़ों पत्र-पत्रिकाएँ रोज रोज निकलती हैं और निकल रही हैं, पर स्थिर और ठोस साहित्य उपजाने वाली पत्रिकाएं अधिक नहीं हैं। पत्रिका के भाद्रपद से कार्तिक तक के तीन अंक हमारे सामने हैं। कवर का पृष्ठ पलटते ही सम्पादकों की आर्थिक कठिनाइयों का परिचय प्राप्त हो जाता है। ऐसी पत्रिका को स्वावलम्बी बनाने में सहायक होना प्रत्येक साहित्य-प्रेमी पाठक का कर्तव्य है।

शिक्षण पत्रिका ने हिन्दी-साहित्य की बहुत बड़ी न्यूनता को दूर करने का सफल प्रयास किया है। शिक्षकों और माता-पिताओं को बच्चों की विभिन्न मानसिक परिस्थितियों का दिग्दर्शन कराने और उन्हें समझाने के लिए पत्रिका के अंक बड़े उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं। पत्रिका का मैटर थोड़ा होते हुए भी प्रत्येक लेख गम्भीर विचार और सूझ भरा होने से बहुत कीमती हो जाता है। मूल्य १) भी न्यून ही है। हम हृदय से मध्य भारत की इस उपयोगी पत्रिका का उज्ज्वल भविष्य चाहते हैं।

— श्री धीरेन्द्र

ऋषि का साध्य और साधन

(लेखक—श्री पं० श्रीपाद दामोदर सातवलेकर)

[गतांक से आगे]

श्री स्वामी जी द्वारा उपदिष्ट भारतोद्धार का कार्य इतना प्रचण्ड था कि उसके शुरु होने पर उसमें सहस्रों ही नहीं, प्रत्युत लाखों मनुष्य रात दिन कार्य करते तो, भी वह कार्य और मनुष्यों की अपेक्षा करता। भारतीय जनता को अपने पावों पर अपने आत्मिक बल के सहारे अपनी शक्ति से खड़ा करना, यह कोई छोटा कार्य नहीं था। प्रत्येक ग्राम में तथा प्रत्येक स्थान में पूर्वोक्त तीनों सभाओं द्वारा, कार्य सम्पूर्ण कार्यक्षेत्र में करना; असंख्य मनुष्यों के अतुल आत्मसमर्पण से ही होनेवाला कार्य था। ऋषि के मस्तिष्क में जो अपूर्व कार्यक्रम शुरू हुआ था, वह वैसा ही प्रभावशाली था। परन्तु वह कुछ काल बाद क्षीण हुआ और उसको चलाने के योग्य महान् आत्मा जैसे चाहिये थे, वैसे नहीं मिले। ऐसा क्यों हुआ? भावना चाहिए।

आर्यसमाज में रायसाहेब, रायबहादुर और सरकारी ओहदेदार घुस गये जो विदेशी सरकार के धन से परिपुष्ट होने वाले थे, ठेकेदार जो विदेशी राज के धन से कारोबार करने वाले थे, दुकानदार जो विदेशी वस्तुओं का व्यवहार कर रहे थे, इन सबकी भीड़ आर्यसमाज में हो ही चुकी थी और उस भीड़ में विदेशी सरकार की अदालतों में आकर विदेशी सरकार का कानून ठीक लोकहितकारी है, ऐसा रात दिन बोलने वाले वकील और बैरिस्टरों ने भी बड़ी भीड़ बढ़ाई।

आर्यसमाज में इन लोगों की भीड़ बढ़ने से श्री स्वामी जी के स्वतन्त्र चक्रवर्ती राज्य के प्रोग्राम के लिये स्थान कहां मिलने वाला था?

उक्त सदस्यों में ऐसा कौन रायसाहब होगा कि जो 'यहां से विदेशी अंग्रेजी राज्य शीघ्र चला जावे और आर्यों का चक्रवर्ती राज्य अति शीघ्र यहां हो जावे। ऐसी स्वामी जी के आर्याभिविनय में लिखी प्रार्थनाएं प्रतिदिन करता, और तदनुसार श्री स्वामी जी द्वारा प्रवर्तित तीनों सभाओं के प्रोग्राम के अनुसार कार्य करता? क्या कभी वकील अपना अदालतों का कार्य छोड़कर न्यायार्यसभा का कार्य बढ़ा कर अपनी आमदनी घटाना चाहेंगे? क्या कभी रायबहादुर अपने पुत्रों को जंगल के गुरुकुल में १४ वर्ष बंद रखने की इच्छा कर सकेंगे? क्या कभी ठेकेदार अंग्रेजों का अप्रीति होने योग्य कार्य कर सकते हैं? और क्या ही ऐसे लोग समान शासन (Parallel Government) का विचार भी मन में ला सकते हैं? स्व० महात्मा मुन्शीराम जी अर्थात् स्वामी श्रद्धानन्द जी एक ही आत्मा थे कि जो अन्दर और बाहर से स्वामी जी के कार्य को बढ़ाने की चिन्ता करते थे, परन्तु अकेला भद्र पुरुष क्या कर सकता है?

कभी कोई समाज ५०६० वर्षों तक वैदिक धर्म के तेजस्वी जीवन में सचमुच आकर जीवित रहता हुआ विदेशी सरकार के अधीन रह सकता है? वैदिक धर्मी के लिए-वेद का धर्म जानने वाले के लिये दो ही मार्ग खुले होते हैं, एक, या तो वह अपना स्वतंत्र राज्य स्थापन करेगा अथवा दूसरा, मृत्यु के वश में-स्वतंत्र स्वराज्य के लिये कार्य करता हुआ-चला जायगा और अपने जीवन को अमर बनावेगा।

श्री स्वामी जी के आर्याभिविनय में 'आर्यों का स्वतंत्र चक्रवर्ती राज्य के अति शीघ्र होने की प्रार्थना है' वह रायसाहब किस तरह सिद्ध होने देंगे, और इनके कारण आर्यों में वैदिक धर्म की ज्योति किस तरह विशेष प्रदीप्त होती रहेगी और आचार्य जी का उद्देश्य भी किस तरह सिद्ध होगा? श्री स्वामी जी का उद्दिष्ट कार्य सिद्ध न होने का कारण यह है। और भी कारण हैं परन्तु उनके विचार करने की यहां आवश्यकता नहीं है।

परतन्त्रता के लिये स्थान नहीं

वैदिक धर्म पारतन्त्र्य को सह नहीं सकता, इसीलिये श्री स्वामी जी के रोम रोम में और वाक्य वाक्य में आर्यों के स्वतंत्र चक्रवर्ती राज्य अति शीघ्र स्थापित करने का भाव जागृत था। आर्यसमाज स्थापन करने का भी उद्देश्य यही था। परन्तु विदेशी सरकार को अपनी शक्ति अर्पण करने वाले बहुसंख्यक लोग इस संस्था में घुसने से स्वामी जी के सब कार्य इधर के उधर ही रह गये और सब कार्य रुक जाने से नाना प्रकार के आपस के झगड़े शुरू हुए।

स्वतन्त्र चक्रवर्ती राज्य स्थापन करने वाले विदेशी राजा की युनिवर्सिटी से अपना सम्बन्ध क्यों रखेंगे? परन्तु रायसाहब दूसरा क्या कर सकते हैं? वकीलों का धन, न्याय सभा से मिलने वाला नहीं है, इस कारण उनको न्यायार्यसभा से अरुचि होना नितान्त स्वाभाविक ही है। इसीलिये कालेज बढ़ गये, वकील बढ़ गये, रायसाहब बढ़ गये, नौकर बढ़ गये और सब मिलकर वही करने लगे कि जो श्री स्वामी जी ने कभी नहीं चाहा था।

गुरुकुल में धर्मशाला की आवश्यकता

गुरुकुल में यात्रियों की रिहायश के लिये दानियों की ओर से धर्मशालायें बनवाई गई हैं। यद्यपि अब तक कई धर्मशालायें निर्माण हो चुकी हैं परन्तु यह प्रतिदिन आये दर्शकों की भीड़ को देख कर अपर्याप्त हैं। हर समय जगह की तंगी महसूस होती रहती है। और वार्षिकोत्सव के समय तो बावजूद इतने डेरे तम्बुओं के होते हुए भी बड़ी कठिनाई होती रहती है। तीन धर्मशालाएं जिनमें १५×१२ के दस कमरे रसोई स्टोररूम, टट्टी और स्नानगृह भी बने हैं तैयार हो चुकी हैं। दो तो भिन्न भिन्न दानियों के नाम से बनवाई

गई हैं और एक धर्मशाला लाहौर के दानी सज्जन श्रीयुत् ए० आर० डावर साहिब ने बनवाई है। इस प्रकार की धर्मशाला पर ६५००) के लगभग व्यय आता है। धर्मशाला बनवाने का कितना महत्व है यह प्रायः सभी हिन्दु जनता जानती है। हरिद्वार के निकट ऐसी विश्व विख्यात संस्था में जहां देश के गण्य मान्य और छोटे बड़े सभी अतिथि पधारते रहते हैं, अपने किसी प्रिय की यादगार में बनवाना कितना श्रेयस्कर होगा। हमारी इच्छा है कि कम से कम दो, तीन धर्मशालाएं और बनवा दी जायं तो रिहायश की यह दिक्कत सदैव के लिये दूर हो जायगी और उधर दानी महानुभाव का नाम भी इस धार्मिक संस्था में चिरस्थाई रहेगा। जो सज्जन एक कमरा बनवाने के इच्छुक हों उन्हें १५ X १२ के ८ फुट वाले बरामदे सहित कमरे का ६००) भेज कर गुरुकुल की सहायता करते हुए अपने अथवा अपने किसी प्रिय सम्बन्धी के नाम को अमर करें। कमरों पर दानियों के नाम पत्थर लगवाये जायेंगे। मुझे आशा है, कि देश की जनता इस अपील का उदारता से परिचय देगी। इस के सम्बन्ध में सब पत्र-व्यवहार -- मुख्याधिष्ठाता गुरुकुल कांगड़ी के साथ होना चाहिये।

गुरुकुल समाचार

गत सप्ताह ब्र० देवराज, रामप्रकाश ४र्थ श्रेणी विषम ज्वर से, ब्र० प्रद्युम्न ३य चोट से, तथा ब्र० विश्वनाथ ओम्प्रकाश, चन्द्रकान्त, चन्द्रकेतु २य श्रेणी, खुजली से रोगी हुए थे। अब स्वस्थ हैं। महाविद्यालय के सब ब्रह्मचारी स्वस्थ हैं।

श्री मुख्याधिष्ठाता जी लगभग १॥ मास बाद स्वास्थ्य लाभ कर गुरुकुल लौट आए हैं।

इधर ३-४ दिनों से काफी सर्दी पड़ने लगी है। दिन और रात हवा भी तेजी से बह रही है। बुधवार को दोपहर श्री ए० के० पिल्ले गुरुकुल पधारे। आप आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय के ग्रेजुएट हैं। आपने गुरुकुल के सब विभागों का अच्छी तरह निरीक्षण किया। आपने ब्रह्मचारियों की सादगी, सफाई और नियम-परायणता की पर्याप्त प्रशंसा की। रात को ७ बजे आपका मनोरञ्जक व्याख्यान हुआ और १० बजे की गाड़ी से आप बरेली के लिये रवाना हो गये।

साप्ताहिक-कुलदूत :—महाविद्यालय से निकलने वाले शारदा, सर्वमित्र, राजहंस, देवगाथी आदि उत्तम हस्त लिखित पत्र पत्रिकाओं के अतिरिक्त, गुरुकुल में एक मास से "कुलदूत" नामक पत्र निकलने लगा है। यद्यपि इसे निकले अभी थोड़े ही दिन हुए हैं। तथापि महाविद्यालय के हलचल वाले वातावरण में इसने अपना अच्छा स्थान बना लिया है। एकांकी नाटकों, प्रहसनों, गल्प कविताओं और व्यग्योंक्तियों से इसका प्रत्येक पृष्ठ पूर्ण रहता है। इसके लिये इसके सम्पादक श्री विद्या सागर जी धन्यवाद के पात्र हैं।

गुरुकुल मुलतानः—

ब्रह्मचारी आनन्द प्रसन्न हैं। पढ़ाईमें अच्छा यत्न कर रहे हैं। सर्दी काफी पड़ने लगी है इस लिए प्रत्येक ब्रह्मचारी को जुराबें और खड़ावें दे दी गई हैं। सब के लिए एक जैसे गर्म पट्टी के कोट भी बन रहे हैं। एक सप्ताह तक वे भी बन कर तैयार हो जाएंगे।

ब्रह्मचारियों के लिए २५ मुरादाबादी लोटों की, और हवन के समय यज्ञशाला में बिछाने के लिए ३२ आसनों की बहुत जरूरत है। आशा है कि दानी महाशय इन आवश्यकताओं को जल्द पूरा करने का यत्न करेंगे।

अछूत जाति के दो आर्य पुरुष अपने बालकों को गुरुकुल में प्रविष्ट कराना चाहते हैं। यदि कोई दानी महाशय शुल्क देना स्वीकार करलें तो ये दोनों बालक गुरुकुल में ले लिए जावें।

१७ नवम्बर को प्रातःकाल श्री म० हंसराज जी की मृत्यु का समाचार मिला। उसी समय विद्यालय बन्द कर दिया गया। दो पहर को सब कुल वासियों ने मिल कर सभा की, जिस में शोक प्रस्ताव खड़े होकर पास किया गया। विष्णुमित्र, मुख्याधिष्ठाता।

समालोचना

सर्वोदय—सम्पादक, काका कालेलकर और दादा धर्माधिकारी। वार्षिक मूल्य ३) बजाजवाड़ी, वर्धा से प्रकाशित।

यह नया मासिक पत्र है। चोथा अङ्क हमारे सामने है। ग्रामोद्योग संघ के मन्त्री कुमार अप्पा, गांधी सेवा संघ के प्रधान श्री किशोर लाल मशरूवाला, कांग्रेस कार्य समिति के सदस्य तथा देशी राज्य प्रजा परिषद् के सभापति पट्टाभि सीतारामय्या, मध्यप्रान्त, गुजरात, राजपुताना के प्रसिद्ध विचारक विनोबा, नरहरि परीख, हरिभाऊ उपाध्याय के तथा विद्वान् सम्पादकों के लेख इस अङ्क में देश की विभिन्न समस्याओं पर दिये गये हैं। बीच बीच में चुनी हुई गांधी जी की सूक्तियां हैं। आगामी मासों में आकाश दर्शन पर लेख माला भी प्रकाशित होने वाली है। आज कल जब कि संसार में सैनिकवाद अनर्थ कर रहा रहा है, साम्राज्यवाद जबरदस्ती का उपयोग कर आर्थिक क्रान्ति करना चाहता है, झूठ के बिना व्यापार चलना असम्भव माना जाता है। विरोधियों के आर्थिक साम्राज्यों की जड़ें गहरी फैल रही हैं। ईश्वर पर विश्वास इस २० वीं सदी में ढोंग कहा जाता है। सर्वत्र निर्बलों का शोषण और परस्पर कलह बढ़ रहे हैं। कारीगरी के शिल्प को हीन, शिक्षा का ध्येय माना जा रहा है। भौतिक सभ्यता के प्रचार के लिए नित्य नये ढंग निकाल कर विभिन्न कलायें विद्यायें और शिक्षण संस्थायें प्रयत्न कर रही हैं, सब पारस्परिक सहयोग का आध्यात्मिक आधार का महत्व देकर, गांधी जी के सन्देशों का प्रचार करने में यह पत्र महत्व पूर्ण भाग लेगा ऐसी हमें पूर्ण आशा है। पत्र के लेखक गण सम्पूर्ण भारत के उच्च कोटि के विचारक हैं। पत्र समाज की एक मुख्य आवश्यकता को पूरा करता है। हम इसका खुले दिल से स्वागत करते हैं। और चाहते हैं कि अधिक भाई इसके ग्राहक बन कर ज्ञान प्रचार से लाभ उठायेंगे! श्री 'प्रभात'

स्वाध्याय के लिए उपयोगी पुस्तकें

वैदिक विनय (तीनों भाग)

ले०—श्री पं० देवशर्मा जी "अभय"

धार्मिक और आध्यात्मिक क्षुधा को शान्त करने के लिए यह पुस्तक अद्वितीय है। लेखक की बीसों वर्ष की तपश्चर्या का फलरूप यह ग्रन्थ है। इस पुस्तक का प्रति दिन स्वाध्याय कर हज़ारों भक्त अलौकिक आनन्द लाभ कर रहे हैं। मू० १) प्रति खण्ड

वेद गीतांजलि

इस पुस्तक में वेद मन्त्रों के साथ २ उच्च कोटि के कवियों की कविताएं हृदय को आल्हादित कर देती हैं। पुस्तक अपने ढंग की निराली है। स्थान २ पर भावों को अभिव्यक्त करने वाले चित्र भी दिये गए हैं। प्राचीन भावों के साथ, नए विचारों का, छन्दोमयी भाषा द्वारा संगम, त्रिवेणी संगम है। मू० २) मात्र

स्तूप-निर्माणकला

(ले०—प्रो० नारायणराव जी)

इस पुस्तक में अनेक प्रकार के व्यायामों की विधियां लेख और चित्रों द्वारा बड़ी सरल रीति से समझाई गई हैं। इन व्यायामों के द्वारा शरीर-पुष्टि के साथ २ मनोरंजन भी खूब होता है। बढ़िया कागज़ पर छपी, १०८ चित्रों से विभूषित, सुन्दर पुस्तक का दाम केवल ३) है।

संध्या रहस्य

(ले०—श्री प्रो० विश्वनाथ जी)

इस पुस्तक में संध्या जैसे गूढ़ विषय को बड़े मनोरंजक ढंग से समझाया है। संध्या से सम्बद्ध ज्योतिष की बातों को भी नक्शा देकर बड़ी उत्तमता से समझाया गया है। पुस्तक प्रत्येक जिज्ञासु और अध्ययनशील व्यक्ति के लिए पठनीय है।

मूल्य केवल १)

मिलने का पता—

मैनेजर

पुस्तक भण्डार गुरुकुल कांगड़ी

जि० सहारनपुर

चौधरी दुलासराय के प्रबन्ध से गुरुकुल प्रेस गुरुकुल कांगड़ी में मुद्रित तथा प्रकाशित।

* ओ३म् *

"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत" Reg. No. A. 2927

गुरुकुल

सम्पादक—साहित्यरत्न पं० हरिवंश वेदालङ्कार

एक प्रति का मूल्य -) [गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख-पत्र] वार्षिक मूल्य २।।)

वर्ष ३] गुरुकुल काङ्गड़ी, शुक्रवार २४ मार्गशीर्ष १९९५, ९ दिसम्बर १९३८ [संख्या २९

उपनिषद् की एक कहानी

[ले०—श्री रामनाथ जी वेदालङ्कार]

केन उपनिषद् में एक कहानी आती है। "ब्रह्म देवताओं के लिये विजयी हुआ। ब्रह्म की उस विजय से देवता शक्ति सम्पन्न और महिमाशाली हो गये। उनमें अभिमान का उदय हुआ, वे सोचने लगे यह तो हमारी ही विजय है, हमारी ही यह महिमा है। ब्रह्म देवों के इस अहंकार को जान गया। वह उनके सामने प्रकट हुआ। पर देवता नहीं जान सके कि यह यक्ष, यह पूज्यतम ज्योति कौन है। उन्होंने उसे जानने के लिये अग्नि को भेजा। यक्ष ने उससे पूछा—तू कौन है? उसने कहा-मैं अग्नि हूँ मैं जातवेदा हूँ। यक्ष ने पूछा-तेरे अन्दर क्या सामर्थ्य है? अग्नि ने कहा-पृथ्वी पर जो कुछ है सबको मैं क्षण भर में जला डालूं। यक्ष ने उसके आगे एक तिनका रक्खा और कहा, इसे जला। अग्नि अपनी पूरी शक्ति से उसके पास गया, पर उसे जला नहीं सका। वह लौट कर देवों के पास गया और बोला-मैं इसे नहीं जान सका, यह यक्ष कौन है! तब देवताओं ने वायु को भेजा। वायु से भी यक्ष ने प्रश्न किया, तू कौन है, तेरे अन्दर क्या सामर्थ्य है? वायु ने कहा, पृथ्वी पर जो कुछ है सबको मैं उड़ा सकता हूँ। यक्ष ने उसके आगे तिनका रख दिया। वायु ने अपना पूरा वेग लगाया, पर उसे उड़ा न सका। इसके बाद देवों ने अपने राजा इन्द्र को भेजा। इन्द्र के सामने से वह यक्ष छिप गया, अन्तर्धान होगया। इन्द्र ने सोचा अब क्या करूं। इन्द्र आकाश में स्वर्णाभूषणों से अलंकृत तेजस्विनी स्त्री 'उमा' को मिला और उससे पूछा, यह यक्ष कौन है? 'उमा' ने इन्द्र को बताया, यह ब्रह्म है, इसकी ही विजय में तुम महिमाशाली हुए हो।"

उपनिषद् की इस आलङ्कारिक कहानी में बताया है कि संसार में अग्नि, वायु, विद्युत् आदि देवों में जो आश्चर्यमय अपरिमित शक्ति और महिमा दीखती है उसका स्रोत परमेश्वर ही है। प्राकृतिक जगत् में सर्वत्र एक विकास और उल्लास सा दिखाई देता है, वह ईश्वरीय विजय का ही द्योतक है। ईश्वरीय विजय का ही परिणाम है कि ये सब देव महिमाशाली हो रहे हैं। अग्नि और आदित्य ने तेज, वायु ने वेग और विद्युत् ने चमक वहीं से प्राप्त की है। ठीक कहा है:—

"न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकम्,
नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः।
तमेव भान्तमनुभाति सर्वम्-
तस्य भासा सर्वमिदं विभाति ॥" मुण्डक २।२।१०

अग्नि आदि देवों ने ब्रह्म के आगे अपनी शक्ति का अभिमान किया तो उनकी शक्ति छोटी सी वस्तु तृण तक में अकिंचित्कर सिद्ध हुई। अग्नि ब्रह्म को नहीं जान सका, वायु भी नहीं जान सका और देवराज इन्द्र के सामने से वह ज्योति छिप ही गई। इन्द्र ने 'उमा' से जाना कि यह ब्रह्म है। यह उमा ब्रह्म की पत्नी-सर्वदा उसके साथ रहने वाली उसकी शक्ति ही है। अर्थात् ईश्वरीय शक्ति का आश्रय लेकर ही देव ब्रह्म को जान सके।

आध्यात्मिकभाव—अध्यात्म दृष्टि से यहां अग्नि वाणी है, वायु प्राण है और इन्द्र मन है। यह देखो हमारा शरीर देवासुर संग्राम की स्थली बना हुआ है। इस में जब कभी ईश्वरीय भावों का आसुरी भावों पर विजय होता है तो यह शरीर स्वर्गधाम बन जाता है। सब देव सब इन्द्रियां अपार शक्ति पा जाती हैं। यदि ये सब देव अभिमान में आकर इसे अपनी ही महिमा समझने लगें तो उनकी यह शक्ति नष्ट हो जाती है। ब्रह्म ने प्रकट होकर उनके अहंकार को दूर कर दिया। वाणी प्राण और मन उस आत्मिक ज्योति को नहीं जान सके। ठीक है—

"न तत्र चक्षुर्गच्छति न वाग् गच्छति नो मन ॥
यद् वाचाऽनभ्युदितं येन वागभ्युद्यते।
यन्मनसा न मनुते येनाहुर्मनो मतम्।
यत् प्राणेन न प्राणिति येन प्राणः प्रणीयते।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि ॥" केन०

"आत्मन्येवात्मनातुष्टः"

(श्री सत्यभूषण 'योगी')

हां, आज उसने मुझे भरी सभा में चोर कह दिया कि मैंने फलां आदमी के इतने रुपए चुराए हैं। पर, मैंने तो चोरी नहीं की। उसने द्वेष वश कहा है। पर, सुनने वालों के मन में तो यह बात जम गई कि मैं चोर हूं। इससे दिल बैठा जाता है। अब मैं कैसे लोगों के सामने गर्व से आंखें उठाए, छाती उभार कर, निडर चाल से चल सकूंगा, क्योंकि सब लोग मुझे चोर समझ रहे हैं। मेरे सामने से गुजरते ही सब लोग काना फूसी करने लगेंगे कि 'इसने चोरी की है'। तो कौनसा मुंह लेकर मैं उनके सामने से गुजरूंगा। इन में से कई पक्के चोर हैं- वे भी मुझ पर अंगुलियां उठाएंगे। क्योंकि वे चोर होते हुए भी चोर नहीं हैं। अभी मैं चोर न होते हुए भी चोर हूँ। हाय, दिल पर बड़ा भार सा रक्खा मालूम देता है।

ओह, न जाने, मैं किस फलतू उलझन में उलझ गया! समझा करें लोग मुझे चोर। जब मैंने चोरी की ही नहीं तो किस का डर और कैसा गम। अधिक से अधिक यही तो होगा कि लोग मुझे चोर कहेंगे, मेरी निन्दा करेंगे, मुझे नीच पतित समझेंगे। पर इससे क्या? इसमें तो मेरा कुछ जाता आता नहीं। मेरी आत्मा पवित्र है, मैं अपनी आत्मा के सामने निर्दोष हूं। दुनियां को मुँह मिला है, वह तो बोलेगी ही। हवा के प्रवाह और दुनियां की जीभ को कौन रोक सका है। पर दुनियां के कहने या न कहने से मेरा क्या बिगड़ता या बनता है। यदि मैं चोरी करूं और दुनियां मुझे धर्मात्मा समझे, इससे मैं धर्मात्मा तो नहीं हो जाता, मेरा दिल तो मुझे रह रह कर कहता है कि मैं चोर हूं और मैं किसी तरह भी निश्चित एवं शान्ति से बैठने नहीं पाता।

तो फिर, जब मैंने चोरी नहीं की और दुनिया मुझे चोर समझ रही है तो मुझे चिन्तित क्यों होना चाहिये। किसी बात के होने या समझे जाने में फ़रक है। कौन ऐसा सौभाग्य शाली पुरुष दुनिया में हुआ है, जिसके उज्वल चरित्र पर दुर्जनों ने कीचड़ न उछाला हो।

इस लिए, मैं निश्चिन्त हूं। दुनिया मुझे बड़े से बड़ा चोर, बुरे से बुरा, झूठा, पाखण्डी, दग़ाबाज, धोखेबाज, कुछ भी समझे, इससे मेरा कुछ बिगड़ेगा नहीं। मैंने भर पेट रोटी, मिठाई एवं माल खाए हों और दुनिया मुझे भूखा समझने लग जाए। इससे मैं भूखा तो हो नहीं जाऊंगा! मेरे हाथ में प्रकाशमान

वाणी उसका वर्णन नहीं कर सकती है। 'नेति नेति' कहकर ही रुकना पड़ता है। चर्मचक्षु से वह नहीं दीखता है। मन की पहुंच भी वहां तक नहीं है। मन को उमा ने बताया कि यह ब्रह्म है। 'उमा' यहां ब्रह्म-विद्या, आत्मिक शक्ति या मन की विशेष अन्तर्मुखी वृत्ति है। जब मन बाह्य जगत् से हटकर अन्तर्मुख होता है, तभी मन उसके विषय में कुछ सोच सकता है और तभी आत्मा को ब्रह्म का साक्षात्कार होता है। यही इस छोटी सी कहानी का रहस्य है।

दीपक हो और मैं अपना रास्ता तय कर रहा हूँ, पर दुनियां अपनी आंखें मीच कर मुझे दीपक रहित, प्रकाशहीन अन्धा समझले, इससे मैं राह भटक तो नहीं जाऊंगा, सचाई और ईमानदारी की जाज्वल्यमान दहकती हुई आग को दुनियां अपने अपवाद एवं बदनामी रूपी तिनकों द्वारा बुझा सकने में कब समर्थ हुई है। बड़ा भारी भी तिनकों का ढेर एक क्षण के लिए भले ही आग को घेर ले, पर दूसरे क्षण आग और भी ज्यादा वेग से धधकती हुई प्रकट होगी।

सच मैं अभी तक भ्रम में पड़ा चिन्ता कर रहा था। मैं वह हूं जोकि मैं हूँ। उसके सिवाय मैं और कुछ नहीं हूँ। 'मुझे अपने आप में सन्तुष्ट' (आत्मन्येवात्मना तुष्ट) रहना चाहिए। मेरे बारे में मेरी ही विवेकपूर्ण सम्मति सबसे ज्यादा प्रामाणिक है। कल दुनियां मुझे बड़ा भारी महात्मा समझती थी, पर बड़ा भारी महात्मा भी नहीं था। इस लिए मैं दुनिया को महत्व क्यों दूं। दुनिया तो काले को सफेद और सफेद को काला कह सकती है, समझ सकती है (चाहे क्षण भर के लिए ही!)

हां तो मुझे अपने में अपने द्वारा (आत्मा में आत्मा के द्वारा) सन्तुष्ट रहना चाहिए। पूर्ण रूप से सब बातों के लिए अपने पर आश्रित रहना चाहिए। दुनिया में पराश्रितता से बढ़कर कोई पाप नहीं। आज दुनियां मुझे खाई में डाल रही है, कल आसमान में भी चढ़ा सकती है। यदि उसके समझने के अनुसार मैं गिरने और चढ़ने लग जाऊं तो मेरा जीना ही मुश्किल हो जाए- और फिर मेरी सत्ता ही क्यों हुई? मैं आदमी न हुआ, तिनका हुआ कि हवा का झोंका जिस ओर चाहे, उड़ा ले जाए! मुझे अपने में ही प्रतिष्ठित होना चाहिए- अपनी प्रतिष्ठा (Self respect) करने का यही मतलब है।

जो अपने में स्थित नहीं, जिसके सुख दुःख, हर्ष-विषाद, दूसरे के कारण से होते हैं- बाह्य वस्तुओं (धन दौलत आदि) के कारण से होते हैं। वह सचमुच दयनीय है। वह जीवन के सुनहले अभिराम एवं चिर-संताप सुभूषित प्रकाश को कभी भी प्राप्त नहीं कर सकता। भ्रम और संदेह के जाल में ही उलझा हुआ वह विक्षिप्त सा घूमेगा।

इस लिए 'आत्मन्येवात्मना तुष्ट' होना ही सच्ची शान्ति का परम श्रेष्ठ उपाय है।

समालोचना

"इतना तो जानो हं।"

ले०—श्री जीवनाथ ओझा शास्त्री, प्रकाशक—शारदा मन्दिर लिमिटेड, नई सड़क देहली। पृष्ठ संख्या १ ५ मूल्य ।।=)

प्रस्तुत पुस्तक नागरिक शास्त्र की प्रारम्भिक शिक्षा देने के लिये लिखी गई है। इस पुस्तक में उन्हीं विषयों पर प्रकाश डाला गया है जिनकी दैनिक जीवन में आवश्यकता है। यद्यपि पुस्तक बच्चों के लिये लिखी गई है तो भी यह अन्य अवस्था के लोगों के लिये भी उपयोगी है। लेखक महोदय से आशा करेंगे कि वे एतद्विषयक अन्य पुस्तकें भी बड़ी अवस्था के लोगों के लिये लिखेंगे।

—श्री भिक्षु

कोयला

तुम आश्चर्यमुग्ध बन कर मेरी तेजरेखा देख रहे हो क्या ?

विश्व की अनेक तेजस्वी वस्तुओं के मुकाबले में मेरी प्रभा तुमको अनोखी ही लगती है क्यों ? मैंने अनेक लावण्य मूर्तियों को मुग्ध बनाया है, अनेक वीर पुरुषों के अन्तर में अभिलाषा को जन्म दिया है; अनेक वैभवशालियों को हलकेपन का भान कराया है।

मेरी काया का तेज - इन्द्र धनुष आकाश, पृथ्वी या जल कहीं से नहीं मिलता। किसी में यह नहीं मिलता। मेरी तेजरेखा मेरी ही है। और मेरी ही रहती है

मनुष्यों ने अनेक प्रयत्न किये हैं। अभी और करेंगे। मेरी अपेक्षा और अधिक तेजस्वी पदार्थ जन्म लेंगे; पर मेरे तेज की अजब शान्त मोहिनी कहीं मिलेगी नहीं।

मैंने काया पलट किया है। और इसमें मोहिनी का रहस्य छिपा है।

वर्षों वर्षों तक—और सदियों तक पृथ्वी के तलके नीचे नामोनिशान मिटाने के लिए मैंने भीषण तप किया है ... ...।

मैं जात का कोयला—जिसकी जात देख कर सब फेंक देंगे। मुंह देख कर मखौल उड़ायेंगे। रङ्ग देख कर धिक्कारेंगे।

काया पलट करने के लिए युग युग की तपश्चर्या की। किसी ने पहचाना नहीं, किसी ने जाना नहीं, किसी ने स्वीकार किया नहीं।

अधिकाधिक गहरे—पृथ्वी के अन्तर में, अब भी यदि नामनिशान मिट जायें तो फ़िकर नहीं, इस सङ्कल्प के साथ, अन्धकार घिरी गुफ़ा में अपने को डाल दिया।

डाल ही दिया; कोई देखे नहीं इसलिए, कोई माने नहीं ऐसे, कोई पहचाने नहीं ऐसे।

और फिर 'सूतो वा सूतपुत्रो वा' कहने वाले राजा कर्ण जैसे ने महाभारत के युद्ध में, नरपुंगवों का अलंकृत करने वाली, विचित्र रणभूमि में मुझे मुकुट में धारण किया। अन्य अनेकों ने भी मुझे खोजा, मेरा सत्कार किया, सन्मान किया। और मैं महामूल्यवान् बन गया।

उसके बाद तो वैभवशालियों को मेरे बिना न्यूनता भासने लगी, अद्भुत लावण्यवतियों को भी मेरे तेज के बिना जीवन फीका लगने लगा; वीर पुरुषों को मेरे बिना वेदना होने लगी।

पर मुझे नरपुंगवों के स्पर्श से जो आनन्द मिला वैसा आनन्द और कहीं नहीं मिला।

एक प्रकार से वे हमारे समान-धर्मा हैं। उन्होंने रजकण में से रत्नराज का निर्माण किया है। उन्होंने कायापलट करने के लिए मेरी ही तरह जीवन को दफना दिया है।

इनके स्पर्श से मुझे रोमाञ्च हो आता है। आनन्द आता है। इनकी वीर कथा सुन कर—और अधिक वीरत्व करने की इच्छा पैदा होती है।

—और अब-आज मेरा दुर्भाग्य तो देखो !

—मुझे वेश्याओं के कान में लटकाना—नकटे लम्पट पुरुषों के हाथ में खेलना—'प्रेम पंछी' को उड़ा देने के लिए मेरा ही आना जाना, और तीन तीन कौड़ी की स्त्रियां वैभवशाली दिखें इसलिए मेरा उनके कण्ठ में झूलना।

—और जिसने शंकर-पार्वती का स्नेह रमण देखा है, ऐसा मेरा हिमाद्रि की एकाध कन्दरा में से निकल कर, बाज़ारू प्रेम को सन्तोष देने के लिए, उस अगूठी में जड़ देना !

अरे ! मुझे फिर मेरी अंधेरी गुफा में कोई भेज दे ! मेरा जीवन यों ही बह जाय, इसकी अपेक्षा किसी अनजान कंदरा में मैं फिर दफ़नाया जाऊं !

मैं तो नरपुंगवों को खोजता हूं।

मुझे नरपुंगव ही धारण करें ऐसा चाहता हूं।

मैं बजारू मनुष्यों में रहूँ—इसकी अपेक्षा तो अच्छा है कि पृथ्वी के पेट में जाकर ऐसा बन जाऊं जैसे कि मानो कभी था भी या नहीं। फिर 'था-न था'-ऐसा बन जाऊं।

पुस्तक समालोचना

हज़रत मुहम्मद

लेखक—प० सुन्दरलाल जी, प्रकाशक—दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास। पृष्ठ संख्या ६० + ११ मू० ॥)

हिन्दु मुस्लिम अविश्वास के वर्तमान समय में देश की एकता की दृष्टि से इस्लाम के पैग़म्बर हज़रत मुहम्मद के प्रमाणिक जीवन चरित की देर से आवश्यकता अनुभव की जा रही थी। 'भारत में अंग्रेज़ी राज्य' के विद्वान् लेखक ने इस कमी को पूर्ण करते हुए इस संक्षिप्त जीवन चरित्र मुहम्मद साहब की राजनैतिक योग्यता, धार्मिक ईमानदारी, पवित्र और सादे जीवन पर अच्छा प्रकाश डाला है। लेखक महोदय ने भूमिका में अपनी अप्रकाशित, जिस पुस्तक का ज़िक्र किया है आशा है उसे शीघ्र ही प्रकाश में लायेंगे।

पुस्तक के अन्त में कठिन शब्दों की सूची देकर पुस्तक उपादेय बना दी गई है।

गुरुकुल

२४ मार्गशीर्ष शुक्रवार १९९५

राष्ट्र भाषा:—

यह हमारे देश का दुर्भाग्य है कि हमें कई ऐसे विषयों पर भी अपनी शक्ति का दुरुपयोग करना पड़ता है जो कि स्वयंसिद्ध होनी चाहिये। आज इङ्गलैण्ड, इटली, जर्मनी आदि प्रगतिशील स्वतन्त्र राष्ट्रों के सामने अपना एक राष्ट्र भाषा बनाने का प्रश्न ही उपस्थित नहीं होता, उन सब की अपनी २ एक राष्ट्र भाषा है। संसार में केवल एक हमारा ही ऐसा देश है जो अब तक अपनी राष्ट्र भाषा नहीं बना सका है। इसमें सब से अधिक बाधा यह है कि हमारे यहां एक ऐसी जाति आकर बस गई है जिसकी अपनी संस्कृति और अपना धर्म है, हमें किसी भी काम को करते हुए इनकी ओर भी देखना होता है और यह जानना होता है कि इस विषय में इनकी क्या सम्मति है, इस प्रकार स्वाभाविक रूप से हमारी समस्यायें दो विरोधी संस्कृतियों में उलझ कर आगे नहीं बढ़ सकती हैं।

कइयों की सम्मति है कि भाषा के प्रश्न को इतना तूल देने की आवश्यकता नहीं, वे समझते हैं कि यह राष्ट्र भाषा का प्रश्न अनायास ही सुलझाया जा सकता है, यह उनकी नादानी है। वस्तुतः ऐसी बात नहीं है, इस प्रगतिशील युग में हमारी अपनी एक राष्ट्र भाषा का शीघ्र से शीघ्र होना नितान्त आवश्यक है। यह राष्ट्र भाषा का प्रश्न यहीं तक सीमित नहीं है किन्तु दो संस्कृतियों के संघर्ष को मिटा कर उन्हें एक कर देने का भी प्रयत्न है।

जिस प्रकार अन्य बातें समय २ पर साम्प्रदायिक रूप लेकर भिन्न जातियों में बंट गई ठीक उसी प्रकार हिन्दी और उर्दू ये दोनों भाषाएं भी अवसर पाकर जातियों में विभक्त हो गईं। हिन्दुओं ने हिन्दी को अपना कर इसे संस्कृत के भारी भण्डार से शब्द लेकर पल्लवित करने का प्रयत्न किया और मुसलमानों ने उर्दू को लेकर अरबी फारसी के शब्द तथा अपनी उसी पुरानी संस्कृति में रंगना शुरू किया जो कि वे यहां पर अपने साथ लाए थे।

इन भाषाओं का विभाग प्रारम्भिक काल में जातियों के रूप में नहीं था, ये हिन्दू मुसलमानों की अलग २ भाषाएं न होकर विशेष २ स्थानों की बोलियां थीं। यदि पुराने साहित्य को उठा कर देखाय तो ज्ञात होगा कि उर्दू का बहुतसा साहित्य हिन्दू कवियों और लेखकों द्वारा ही विकसित हुआ है तथा हिन्दी का भी पर्याप्त साहित्य मुसलमानों द्वारा लिखा गया है।

उर्दू को राष्ट्र भाषा के निर्माण में कुछ श्रेय प्राप्त हो यह हम कभी भी स्वीकार नहीं कर सकते इसका कारण यही है कि उर्दू में भारतीयता नाम को भी नहीं है। हमारा यह अभिप्राय नहीं कि उर्दू विदेशी भाषा है। उर्दू की उत्पत्ति तो यहीं पर हुई है किन्तु उसका पोषण सर्वदा बाहर से ही होता रहा है, वह आपाद मस्तक विदेशी संस्कृति से ही रंगी हुई है, उर्दू ने यहां की होते हुए भी यहां का बन कर रहने का प्रयत्न नहीं किया है। उसने सदा एंग्लो इंडियन की तरह विदेशी शैली तथा रंग ढंग को ही पसन्द किया है। हम यह कभी नहीं कहेंगे कि विदेशी शब्दों का द्वार ही बन्द कर देना चाहिये। हम चाहे कितनी ही रुकावटें क्यों न डालें पर भाषायें तो प्रगतिशील हैं वे अपना मार्ग स्वयं बना लेती हैं। हमारी भाषा में इतने शब्द हैं कि हमें अन्य किसी भाषा का मुखापेक्षी होने की आवश्यकता नहीं है, हमारे पास संस्कृत का अपना अनन्त शब्द कोष है हम उसमें से अच्छे से अच्छे शब्द ले सकते हैं। जो हमारी इस बात की हंसी उड़ाने के लिए रेलगाड़ी को 'लौह पथ चालित गाड़ी यान यन्त्र' नाम देते हैं वे अपने अज्ञान एवं अपनी दासता पूर्ण मनोवृत्ति का परिचय आप देते हैं। इतना होने पर भी यदि किसी अच्छे शब्द को लेना ही पड़ेगा तो हम उसके लिए सहर्ष तैय्यार हैं। हमारी हिन्दी भाषा तो इस बात के लिए सदा से ही उदार रही है। परन्तु विदेशी भाषा के शब्दों को अपनाते हुए हमें उन्हें अपने ही ढंग से बदल लेना चाहिए, उस पर कोई न कोई अपनी संस्कृति की छाप होनी चाहिए जिससे कि उस शब्द का उच्चारण करते हुए हम भूल जायें कि यह शब्द विदेशी भाषा का है, अन्यथा उसी रूप में ले लेने से भाषा को अजीर्ण होने का डर रहता है।

वर्तमान काल में स्वतन्त्रता संग्राम के कारण एक विचित्र सी क्रान्ति हो गई है। और इस क्रान्ति में हमारी राष्ट्र भाषा की समस्या भी उलझ रही है। अभी कुछ दिन पहले हिन्दी राष्ट्र भाषा होने जा रही थी, परन्तु अब हिन्दुस्तानी का एक नया ही प्रवाह चल पड़ा है, और राष्ट्र के प्रमुख नेताओं द्वारा भी इसके लिए आन्दोलन किया जा रहा है।

सबसे बड़ी समस्या हिन्दुस्तानी के रूप निर्णय करने में है, यह इतनी अस्पष्ट है कि प्रत्येक व्यक्ति अपनी एक नई ही व्याख्या कर सकता है, स्वयं इसके प्रवर्तक भी इसके रूप को नहीं समझते हैं। यह एक ऐसी भाषा है जिसके आगे बनाने की कल्पना कर नाम पहले ही रख दिया गया है। इसी काल्पनिक रूप को लेकर सारा विवाद उठ खड़ा हुआ है, मद्रास के प्रसिद्ध कवि वल्लतोल ने हिन्दुस्तानी के पक्ष में भाषण देते हुए कहा था कि हिन्दुस्तानी का साहित्य बहुत ऊंचा है। उसमें तुलसी आदि प्रमुख महाकवियों की रचनाएं, अनन्तकाल तक अपने अमर रहने की घोषणा कर रही हैं। परन्तु उत्तर भारत के, हिन्दुस्तानी के पक्षपाती इस बात को कभी स्वीकार नहीं सकते कि तुलसी हिन्दुस्तानी

का कवि है, स्वयं गांधी जी भी इस बात को नहीं मानेंगे। इसी प्रकार पत्र पत्रिकाओं में एक लेख में एक एक ही अर्थ में हिन्दी-हिन्दुस्तानी का अलग २ प्रयोग हमें आश्चर्य में डाल देता है कि वस्तुतः यह क्या बला है।

हिन्दुस्तानी के पक्षपातियों का यह कहना है कि यह बोल चाल की भाषा है इस से हिन्दी उर्दू की साहित्यिक भाषा पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। यदि यही बात थी तो बोल चाल के दृष्टिकोण से हिन्दी ही सब से अधिक बोली जाती है, वही इस के योग्य है। परन्तु इस हिन्दुस्तानी में अरबी फारसी को यह समझ कर कि पंजाबी भाषा में उनका अधिक पुट रहता है स्थान देना एक बड़ी भारी भूल होगा, इसी प्रकार यह कहना कि मुसलमान बहुसंख्यक श्रोताओं के [illegible] भी अरबी फारसी प्रधान हिन्दुस्तानी बोली जायगी कुछ हास्यास्पद सा ही प्रतीत होता है। एक और बात यह है कि भिन्न २ स्थानों पर हिन्दुस्तानी के रूप भिन्न २ होंगे, इस प्रकार जब कभी देश में कोई संदेश देना होगा तो उस प्रत्येक प्रान्त का ध्यान में रखते हुए अनेकों पर्यायवाची, शब्द पर शब्द लिखने पड़ेंगे, इसी प्रकार एक वक्ता को भी कोई बात कहने के लिये समय अधिक लगेगा। इस प्रकार यह खिचड़ी भाषा क्या हमारे लिये उपयुक्त हो सकती है। और हम अपने भावों को जिस एक भाषा में प्रकट करना चाहते हैं क्या वह स्वयं इस प्रकार पूर्ण हो सकता है!

और सारांश यहां थोड़ा सा।

हमारे सम्पूर्ण कार्य जब हिन्दुस्तानी में ही होंगे तब तब क्या दोनों भाषाएं शुद्ध साहित्यिक रह जायेंगी? क्या ये बतला सकेंगे कि हिन्दी और उर्दू कहां की बोल चाल की भाषा समझी जायगी? इस प्रकार तो इन भाषाओं के प्रति अन्याय होगा। इनसे अधिक सौभाग्य-वती तो प्रान्तीय भाषाएं होंगी जो बोली भी जायगी और अपना साहित्य का निर्माण भी कर सकेंगी। इसके बाद यदि थोड़ा और विचार करें तो क्या इस राष्ट्रभाषा के पुनीत कार्य में अन्य प्रान्तीय भाषाएं बिल्कुल उपेक्षा के योग्य है? इन सब बातों को देखकर ऐसा स्पष्ट प्रतीत होता है कि यह एक राष्ट्रभाषा बनाने का प्रयत्न नहीं किन्तु मुसलमानों को मिलाने का प्रयत्न है, नहीं तो यह क्यों होता कि जो उर्दू भाषा थोड़े से आदमियों की भाषा है उसे राष्ट्रभाषा होने का एक बड़ा भारी हिस्सा प्राप्त होता।

यदि इसी प्रकार हिन्दुस्तानी फलना फूलना चाहेगी तो उसका राष्ट्रभाषा बनना असंभव है। जिस प्रकार अकबर का खिचड़ी धर्म उसके साथ ही समाप्त होगया, उसी प्रकार यह खिचड़ी भाषा भी कांग्रेस मिनिस्ट्री के साथ २ समाप्त हो जायेगी। राष्ट्रभाषा होने का गौरव हिन्दी के लिए अक्षुण्ण बना रहेगा।

दो गीत

श्री सत्यभूषण 'योगी'

(१)

मै धोखा देता अपने को !
मै बातें मोहक कह कह कर,
हां, तरह तरह की कह कह कर !
हूं समझ रहा हा, अमर सत्य,
उस पल भर के ही सपने को !
मै धोखा देता अपने को।

× × × ×

जीवन-नौका मंझधार पड़ी,
ये लहरें विकट कराल बड़ी,
मै बैठा इसमें आंख मींच,
यों तट पर आकर लगने को !
मै धोखा देता अपने को !

× × × ×

हूँ सरल, सरल, अत्यन्त सरल,
पी लेता अमृत समझ गरल !
पर कौन निवारण कर सकता,
गिर, रोने और तड़पने को !
मैं धोखा देता अपने को !

(२)

अब दिल में हलकापन आया।
वे दूर दूर सब दूर भार !
ये झनक रहे उर मन्द्र तार !!
चिर युग से सोए गायन को-
फिर मैने निज उर में पाया !
अब दिल में हलकापन आया !

जो मुझे घेर घन-अन्धकार,
था करता व्याकुल बार बार,
वह दूर भगा, पूरब में देखो,
बांका सूरज मुसकाया !
अब दिल में हलकापन आया !

वह बन्धन भीषण गया छूट,
सम्बन्ध रहा जिससे अटूट,
था बन्धन को मैने बांधा,
थी सारी मेरी ही माया !
अब दिल में हलकापन आया !

——:o:——

श्री अरविन्द सिद्धि दिवस

(पं० के० ज्ञानी मद्रास)

२४ नवम्बर पाण्डिचरी आश्रम में विशेष महत्त्व रखता है। इसी दिन आज से १२ वर्ष पहिले, श्री-अरविन्द ने सिद्धि प्राप्त की थी। सिद्धि क्या थी, संसार के लिये एक महान् आशा का सन्देश था। इस पार्थिव जगत् में, इस पांचभौतिक शरीर में भी दिव्यता का पूर्ण प्रकाश हो सकता है, यह संसार के लिये एक नवीन अनुभव था। इस सतत परिवर्तन शील और नाशवान् स्थूल प्रकृति को भी सनातन और अविनाशी बनाया जा सकता है। चंचल और विकार युक्त मानव स्वभाव को स्थिर और स्वच्छ किया जा सकता है। अहर्निश रहने वाली अशान्ति और व्याधि उपाधि के स्थान में, निरन्तर बहने वाले गम्भीर आनन्द की धारा प्रवाहित की जा सकती है। शायद् श्री अरविन्द के योग में इसी का नाम "पूर्ण परिवर्तन" है।

अस्तु, २४ नवम्बर की सुबह हम पाण्डिचरी पहुंचे। श्री अभय जी की तलाश में आश्रम का द्वार खटखटाया। पहुँचते ही कुछ उदासी का वायुमण्डल दिखाई दिया। पूछने पर पता चला कि आज के दर्शन बन्द हो गये हैं। कारणः- "श्री अरविन्द अति प्रातःकाल स्नानागार में फिसल गये हैं और उनके घुटने पर अधिक चोट आई है।" यह समाचार पहिले तो बम के गोले सा लगा। चारों ओर सुनसान हो गई। चहरों पर उदासी छा गई। दूर २ से आए व्यक्तियों को निराशा प्रतीत होने लगी। परन्तु शीघ्र ही निराशा का धुन्ध उठा और आशा पुनः संचरित होने लगी। हठात् हृदय में प्रश्न हुआ "क्या इस आकस्मिक घटना में कोई सन्देश छिपा है?" उत्तर में मस्तिष्क के चक्षु के सामने एक फ़िल्म गुज़रा— "श्री अरविन्द खाट पर लेटे हैं। घुटने पर पट्टी बंधी है। एक धोती और उत्तरीय पहिने हैं। आंखों में तेज और चहरे पर हलकी मुस्कराहट है। हम निराशा में डूबे हुए उनके चरणों के समीप बैठ गये। उन्होंने प्रश्नात्मिक दृष्टि से पूछा, ये निराशा क्यों? क्या आत्मिक विकास के लिये मेरे दर्शन इतने आवश्यक हैं? इन बाह्य साधन पर आश्रित होने की अपेक्षा आन्तरिक ज्योति का आश्रय कहीं अधिक स्वाभाविक है। मैंने भी तो उसी शक्ति का सहारा लिया है। मुझ पर भी उसी की कृपा है। उसी का आवाहन करना, उसी की प्रेरणा पर जीवन सञ्चालन करना, उसी की सत्ता में अपनी सत्ता मिला देना, यही तो उपाय है।"

इसके पश्चात् अपनी क्षुद्रता पर स्वयं एक लज्जा का भाव प्रतीत हुआ। फिर आशा और आत्म-विश्वास की भावना। घूमते हुए "प्रेक्षक-भवन" में पहुंचे। यहां श्री अरविन्द का एक भव्य चित्र रखा है। उसके सामने एक छोटा सा वाक्य दीवार पर टंगा है। वाक्य मानो गुरु का उपदेश है।

Love the mother. Always behave as if the mother was looking at you, because, she is indeed always present, अर्थात् माता-जगदम्बा से प्रेम करो। सदा ऐसा समझो कि वो तुम्हें देख रही हैं। वस्तुतः, वो सब जगह व्याप्त ही हैं।

भगवान् की इस मातृ-कल्पना में एक सहज आत्मीयता, कोमलपन, कृतज्ञता और सतत स्नेह की अद्भुत भावना है। मां की गोद में बैठकर भला दुःख कहां? जिस दिन साधक इस उत्तम भावना को अपना लेगा उस दिन वह इस भूमि से उठकर बहुत ऊंचे — सूर्य, चन्द्रादि लोकों में विचरेगा। यह भावना सम्पूर्ण समर्पण का परिणाम है। समर्पण श्रद्धा का। और श्रद्धा, सत्य और शान्ति में है। यही सिद्धि-दिवस का महात्म्य है।

मां, तेरा वह लाल!

(श्री सूर्यकुमार)

मां तेरा वह लाल।
कहां गया खोया अतीत में,
निर्मम काल कराल ॥१॥
माना कोई नहीं बचेगा,
इसमें निश्चित फंसना होगा,
कठिन, अरे यह बहुत जटिल है—
बना नियति का जाल ॥२॥
किन्तु नियन्ता क्या समझेगा
मां तेरे दिल की पीड़ायें
छीन चुका है छीन रहा है,
मां गोदी के बाल ॥३॥
मां तेरा वह लाल ॥
एक मिटा, पीछे हम भी हैं,
कुर्बानी की चाह बड़ी है,
नहीं झुकेगा, नहीं झुकेगा-
तेरा उन्नत भाल ॥४॥
मां तेरा वह लाल ॥
उस दिन तू चुपके चुपके मां—
शोणित के आंसू रोई थी,
आज हमें भी रो लेने दे
श्रद्धाञ्जलियां डाल ॥५॥
मां तेरा वह लाल ॥

गुरुकुल समाचार

गत सप्ताह ब्र० वेदराज १२, मलयबन्धु ब्र० प्रद्युम्नकुमार ३य चोट, ब्रह्मचारी काशीप्रसाद ३य विषमज्वर कृष्णमूर्ति ५म, विषमज्वर ब्रह्मचारी चन्द्रकान्त २य, ओमप्रकाश २य, विश्वनाथ २य, चन्द्रकेतु २य खुजली से रोगी हुए थे। अब सब स्वस्थ हैं।

ऋतु साधारणतया अच्छा है। गुरुकुल के चारों ओर खेतों में अच्छी हरियाली नज़र आती है। हिमालय की श्वेत-तुहिन-राजि विशद रूप में दृष्टिगोचर होकर हृदय को प्रफुल्लित कर देती है। वन पर्वतों की स्निग्ध-श्यामलता, हृदय को बरबस आकर्षित कर लेती है। झरनों का जल अत्यन्त स्वच्छ तथा मधुर है। पिछले रविवार को यहां के ब्रह्मचारी जंगलों और पहाड़ों में भ्रमणार्थ गये। आजकल वनों में भालू, चीत, शेर, हाथी आदि हिंस्र पशु अधिक उग्र रूप में पर्यटन करते हैं। पर जिन्हें वनों में घूमने का चसका लगा है वे विविध श्वापद संकुल अरण्यों में ही घूमने में विशेष आनन्द का अनुभव करते हैं। खूंखार पशुओं का सामना करने में ही उनके दिल की हवस पूरी होती है। यद्यपि २५ मील के पहाड़ों के परिभ्रमण में ब्रह्मचारियों को अनेक जन्तु मिले किन्तु किसी ने सामना न किया और भाग खड़े हुए। सायंकाल सब गुरुकुल लौट आये।

आजकल शरद् ऋतु होने के कारण चारों ओर फुल्ल कास का शुभ्र हास विलस रहा है। यद्यपि धीमे २ पतझड़ के आगमन के कारण चारों ओर के वृक्ष शुष्क से दीख रहे हैं, तथापि गुरुकुल की वाटिकाएं खूब लहलहा रही हैं नारङ्गियों के बहुत से वृक्षों पर छोटे २ फल भी लग गये हैं जो कि प्रथम साल की उपज हैं। आशा है कि एक दो साल बाद ये उद्यान खूब फूले फलेंगे और गुरुकुल में फलों की कमी को पूरी तरह दूर कर देंगे। इन दिनों शाक सब्जियों की उपज भी बहुत अच्छी हो रही है। गुरुकुल में प्रतिदिन खाई जाने वाली सब्जियों की एक बड़ी मात्रा को, यहां की उपजाई हुई ताजी एवं पौष्टिक सब्जियां ही पूरा करती हैं। शाक के खेतों से मूली टमाटर गोभी, बैंगन, पेठा आदि सब्जियां प्रति दिन बड़े परिमाण में उतर रही हैं।

सभाएँ:—इस सप्ताह, संस्कृतोत्साहिनी, आयुर्वेद परिषद्, साहित्य परिषद् तथा College Union के साधारण अधिवेशन हुए जिनमें प्रोफेसरों और ब्रह्मचारियों ने उत्साह से भाग लिया। विगत २ दिसम्बर को हमारे मान्य कुलबन्धु श्री पं० शङ्कर देव जी विद्यालङ्कार गुरुकुल में पधारे। आपने 'महाराष्ट्र में राजनैतिक विकास' के विषय में एक मनोरञ्जक व्याख्यान दिया। शनिवार को आपके सभापतित्व में गोष्ठी सभा का अधिवेशन हुआ। सभा के प्रारम्भ में आपने संसार की सर्वोत्तम कहानियों का कथानक वर्णन करते हुए बताया कि कितने सरल प्लॉट पर चतुर लेखकों ने कितना सुन्दर, अनुपम रंग चढ़ाया है। तत्पश्चात् गुरुकुल के प्रसिद्ध लेखकों और कवियों ने अपनी रचनाएं सुनाईं। सभा के अन्त में श्री पं० जी ने प्रत्येक लेखक की रचना का सादृश्य - प्राच्य तथा पाश्चात्य लेखकों से उद्धरण देकर—दिखलाया। और साहित्य रचना के लिये प्रोत्साहित किया।

विगत बृहस्पतिवार को गोष्ठी सभा का एक विशेष अधिवेशन कविवर श्रीयुत रविश के लिये हुआ। ब्रह्मचारियों की उत्तमोत्तम रचनाओं के अतिरिक्त गोष्ठी में श्री रविश जी ने अपनी चुनी २ कविताएँ सुनाईं। "आज़ादी गीत और गङ्गा" शीर्षक कविताएं बहुत अच्छी रहीं।

पाक्षिक तारकिता—यह हस्त लिखित पत्र गुरुकुल महाविद्यालय के विख्यात कवियों की ओर से निकाला जाता है। यद्यपि इसे निकले अभी थोड़े ही दिन हुए हैं तथापि साहित्यक्षेत्र में इस ने अच्छा स्थान बना लिया है। दिनों दिन इसके पांव साहित्य उपवन की सैर करते हुए अग्रसर हो रहे हैं। इसकी सूक्तियां और सुन्दर कविताएं स्वच्छ-हृदयाकाश में सचमुच बड़ी देर तक चमकती रहती हैं। यह पत्रिका अपने 'तारकिता' नाम को पूरी तरह सार्थक कर रही है।

गुरुकुल कुरुक्षेत्र

ऋतु अत्युत्तम है। प्रायः सभी ब्रह्मचारियों का स्वास्थ्य उत्तम है। गुरुकुल के व्यायाम शिक्षक पं० विक्रम जी को टाइफाइड ज्वर हो गया था अब वे सर्वथा रोग मुक्त हो चुके हैं।

विद्या सभा द्वारा नियुक्त गुरुकुलों के निरीक्षक ला० हरदयाल जी एम. ए ने तीन दिसम्बर को गुरुकुल का निरीक्षण कर, निम्न सम्मति दी है। 'मुझे यह देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई है कि यह गुरुकुल दिन प्रति दिन उन्नति कर रहा है जहां ब्रह्मचारियों की संख्या में बहुत उन्नति हुई है वहां उनके स्वास्थ्य में भी यथोचित वृद्धि हुई है। इस समय कोई ब्रह्मचारी रोगी नहीं है। सब प्रति सब मिलकर १२३ ब्रह्मचारी हैं। यह बड़ी सन्तोष जनक बात है कि अब ब्रह्मचारियों को गाय का दूध मिल रहा है और वह भी अपनी गोशाला का। मैं इसे बड़े महत्व की बात समझता हूँ। यह सौभाग्य कुछ गुरुकुलों को ही प्राप्त है। पढ़ाई बहुत ठीक ढंग से चल रहा है।"

वार्षिकोत्सव सम्भवतः २४-२५-२६-मार्च को होगा। सालाना परीक्षायें मार्च के २ य सप्ताह में होंगी। गोशाला में जो नया भवन बन रहा था वह बनकर तैयार हो गया है।

स्वाध्याय के लिए उपयोगी पुस्तकें

वैदिक विनय (तीनों भाग)

ले०—श्री पं० देवशर्मा जी "अभय"

धार्मिक और आध्यात्मिक क्षुधा को शान्त करने के लिए यह पुस्तक अद्वितीय है। लेखक की बीसों वर्ष की तपश्चर्या का फलरूप यह ग्रन्थ है। इस पुस्तक का प्रति दिन स्वाध्याय कर हजारों भक्त अलौकिक आनन्द लाभ कर रहे हैं। मू० १) प्रति खण्ड

वेद गीतांजलि

इस पुस्तक में वेद मन्त्रों के साथ २ उच्च कोटि के कवियों की कविताएं हृदय को आल्हादित कर देती हैं। पुस्तक अपने ढंग की निराली है। स्थान २ पर भावों को अभिव्यक्त करने वाले चित्र भी दिये गए हैं। प्राचीन भावों के साथ, नए विचारों का, छन्दो मयी भाषा द्वारा संगम, त्रिवेणी संगम है। मू० [illegible]) मात्र

स्तूप-निर्माणकला

(ले०—प्रो० नारायणराव जी)

इस पुस्तक में अनेक प्रकार के व्यायामों की विधियां लेख और चित्रों द्वारा बड़ी सरल रीति से समझाई गई हैं। इन व्यायामों के द्वारा शरीर-पुष्टि के साथ २ मनोरंजन भी खूब होता है। बढ़िया कागज़ पर छपी, १०८ चित्रों से विभूषित, सुन्दर पुस्तक का दाम केवल ३) है।

संध्या रहस्य

(ले०—श्री प्रो० विश्वनाथ जी)

इस पुस्तक में संध्या जैसे गूढ़ विषय को बड़े मनोरंजक ढंग से समझाया है। संध्या से सम्बद्ध ज्योतिष की बातों को भी नक्शा देकर बड़ी उत्तमता से समझाया गया है। पुस्तक प्रत्येक जिज्ञासु और अध्ययनशील व्यक्ति के लिए पठनीय है।

मूल्य केवल १)

मिलने का पता—

मैनेजर

पुस्तक भण्डार गुरुकुल कांगड़ी

जि० सहारनपुर

चौधरी दुलामराम के प्रबन्ध से गुरुकुल प्रेस गुरुकुल कांगड़ी में मुद्रित तथा प्रकाशित।

श्रद्धाञ्जलियां

मैं स्वामी श्रद्धानन्द जी की पवित्र स्मृति में सादर अंजलि समर्पित करता हूं और आशा करता हूं कि उनके उदाहरण को देश सामने रखकर उनके आदर्श से प्रेरणा लेगा।

—श्री पं० जवाहरलाल जी।

श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी का बलिदान दिवस हम मना रहे हैं। स्वामी जी की जिन्दगी का आदर्श हमारे सामने है। काम करो चाहे काम करने में जान भी चली जाय। काम ही संसार का सार है। कीर्ति प्राप्ति काम करने से होती है। दूसरों की सेवा करना हमारा धर्म है। यही स्वामी जी की जिन्दगी हमें सिखाती है। ईश्वर से हमारी प्रार्थना है कि स्वामी जी का उपदेश हमारे मार्ग का चिराग़ बना रहे। और इसकी रोशनी में हम अपने देश की सेवा, सचाई और प्रेम से करें।

—उमा नेहरु।

प्रत्येक वर्ष यह अवसर मेरे लिए बड़े आनन्द का होता है जबकि मैं अपने पक्के मित्र और भाई के समान स्वामी श्रद्धानन्द जी का स्मरण करता हूँ। गुरुकुल कांगड़ी में सर्वप्रथम मैंने महात्मा मुन्शीराम के रूप में उनके दर्शन किये थे। आज से लगभग ३५ साल पूर्व जबकि मैंने उनको जाना और उनके साथ रहा उस स्थान में मुझे वे ही सबसे अधिक प्रिय लगते थे। मैं उन्हीं के बंगले में ठहरा और उन्होंने मेरा बड़ा स्वागत किया।

उन्होंने अपना सारा का सारा जीवन अस्पृश्यता निवारण के और हिन्दुजाति में पतित समझे जाने वाले हरिजनों के दुःख दूर करने के पवित्र काम में लगा दिया। वे उन निर्धन, पतित और बिछुड़े हुवे भाइयों को अपने भाई और बहिनों के समान प्यार करते थे। यही करते हुवे हम उनकी स्मृति को ताजा रख सकते हैं।

—सी. एफ़ एण्ड्रू ज़।

"आर्य धर्म तथा आर्य आदर्श का संसार में प्रचार हो तथा आर्य साम्राज्य की भारत में फिर स्थापना हो यही प्रत्येक सच्चे आर्य धर्मी का प्रयत्न और ध्येय होना चाहिये"। संसार की सच्ची भलाई का यही मार्ग है।

—जुगलकिशोर बिड़ला।

अमर शहीद स्वामी श्रद्धानन्द जी के बलिदान दिवस के सम्बन्ध में कुलपुत्रों के लिये मेरा यही संदेश है कि उस महान् आत्मा का लक्ष्य यह था कि "नियम पालन करो और ब्रह्मचारी रहो" आशा है कि यह मेरा संदेश सुनकर उस पर सब कुलपुत्र आचरण करते हुवे देश जाति की सेवा के लिये अपने को तैयार करते रहेंगे।

—आचार्य रामदेव जी।

स्वर्गीय स्वामी श्रद्धानन्द का जीवन सर्वस्व समाज के लिये बलिदान करने का जीवन था। उन्होंने अपना कुछ भी अपने लिये न रखकर सभी समाज को अर्पित कर दिया था। यह आत्मबलिदान का सुनहरा नियम, मनुष्य के जीवन को सर्वोच्च बनाया करता है। इसी का अनुकरण आप में से प्रत्येक को करना चाहिये।

—श्री महात्मा नारायण स्वामी जी।

स्वामी श्रद्धानन्द जी के बलिदान-दिवस के सम्बन्ध में गुरुकुल के विद्यार्थियों के लिये मेरा यही संदेश है कि जिस अभिलाषा से प्रेरित हो कर स्वामी जी ने गुरुकुल की नींव डाली थी उसे वे सदा हृदय में रखें और अपने प्रति दिन के जीवन में आत्मनियन्त्रण का अभ्यास कर अपने को इतना शक्तिमान् बनायें कि वे देश के भविष्य निर्माण में ऊंचा भाग ले सकें।

—पुरुषोत्तमदास टंडन।

मैं श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी की स्मृति में अपनी नम्र श्रद्धाञ्जलि अर्पित करता हूं। स्वामी जी महात्मा थे और उन्होंने अपने जीवन को हिन्दु संगठन की बलिवेदी पर चढ़ा दिया था।

—बैरिस्टर सावरकर

श्री श्रद्धेय कुलपिता स्वामी श्रद्धानन्द जी का स्मरण करने से उनके वैदिक धर्म के असीम प्रेम का, उनकी देशभक्ति का, उनकी सिद्धान्तनिष्ठा का, उनके आत्मसमर्पण का और उनके महनीय आत्मविश्वास का स्मरण होता है। यदि गुरुकुल के ब्रह्मचारियों में इन शुभगुणों का भाव दिखाई देता है तो निःसंदेह वे अपने पवित्र कुलपिता का स्मरण कर रहे हैं। मेरा सब ब्रह्मचारियों से आग्रह पूर्वक अनुरोध है कि वे धीर गम्भीर स्वामी श्रद्धानन्द जी के शुभगुणों को अपनावें और उनका आचार्य ऋण अदा करें। ये ही गुण ब्रह्मचारियों को उच्च श्रेणी पर चढ़ाने में समर्थ होंगे। श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी के जीवन का आदर्श सबको श्रेष्ठ बनने का उत्साह प्रदान कर सकता है। श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी का यश बढ़े, उनके खोले हुए गुरुकुल कांगड़ी के द्वारा तेजस्वी दिग्विजयी ब्रह्मचारी बाहिर आकर धर्म की सेवा करें और वैदिकधर्म की ज्योति प्रतिदिन तेजस्वी होती रहे।

—श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

स्वामी श्रद्धानन्द जी एक महापुरुष थे। उन्हों ने अपना सारा समय हिन्दू जाति के उपकार और संगठन में लगा दिया और अन्त में इसी कारण उन्होंने अपने प्राण न्योछावर कर दिये। उनकी वर्षी मनाते समय उनके अनुयायियों के लिये मेरा यही संदेश है है कि सब निर्भिक जनता के सेवक बनने का यत्न करें।

बी. जी खेर, प्रीमियर बम्बई।

आगे रहो, आगे बढ़ो

[श्री पं० धीरेन्द्र जी विद्यावाचस्पति, आचार्य गुरुकुल वैद्यनाथ धाम

विपदोऽपि विगाह्यते नयः कृततीर्थः पयसामिवाशयः।
सतु तत्र विशेषदुर्लभो सदुपन्यस्यति कृत्यवर्त्म यः॥ माघ

चलती राह पर चलने वाले दुनिया में बहुत हैं बहती हुई धारा में बहते जाना आसान है। जिधर को हवा चले उधर उड़ते जाना कुछ कठिन नहीं। 'गतानुगतिको लोकः न लोकः पारमार्थिकः' यह इस संसार का माना हुआ सिद्धान्त है। परन्तु कांटों से भरे जंगल को साफ करके राह बनाने वाला कोई विरला ही होता है। धारा को बदलने के लिये भगीरथ प्रयत्न करना किसी असाधारण व्यक्ति का ही काम है। चलती हवा को रोककर अपना वातावरण तैयार करना किसी पुरुषसिंह के पुरुषार्थ के लिये ही सुरक्षित है। लोक को पारमार्थिक बनाने के लिये पथप्रदर्शन करना किसी विशेष शक्ति के ही हाथ में है। स्वामी श्रद्धानन्द उन्हीं में से थे जो कल्याणमार्ग का निर्माण, धारा का संचालन और वातावरण की रचना किया करते हैं। वह विशालकाय तेजोमय मूर्ति सर्वदा आगे ही आगे रही, उसने कभी पीछे रहना स्वीकार नहीं किया।

× × ×

भारतीय संस्कृति, भाषा और भूमि विदेशीयता से पादाक्रान्त हो रही थी। पाश्चात्य संस्कृति के प्रबल झोंके के सामने भारतीय-संस्कृति का दीप बुझने की तैयारी कर रहा था। मातृभाषा की जगह अंग्रेजी में बोलना सभ्य पुरुष का चिन्ह कहा जा रहा था। भारतभूमि पराधीनता की बेड़ी में जकड़ती जा रही थी। इस महान् विपत्तिसागर में किसी चतुर नाविक की खोज थी। उस समय सन् '५७ के क्रान्ति की स्वतंत्र भावना को गर्भ में लेकर उस मूर्ति ने पदार्पण किया। भारतीय संस्कृति, भाषा और भूमि के उद्धार का बीड़ा उठाया। प्राचीन गुरुकुलों के स्वप्न को मूर्त्त रूप दिया। लोगों ने कहा यह पागल है; इस समय घने जंगल में रहने वाले तपस्वी जीवन की क्या आवश्यकता है और यदि आवश्यकता है तो उसको पूरा करना मनुष्यसाध्य नहीं। उसने इन लोगों की बात पर ध्यान न दिया, भारतवासियों और दूर दूर का भिखारी बनकर जंगल में मङ्गल कर दिया हिमालय की उपत्यका में एक ज्योतिस्तम्भ खड़ा हो गया और चारों ओर भारतीयता का प्रकाश फैलने लगा। आज लोग समझते हैं कि उस प्रकाश की कितनी आवश्यकता है।

× × ×

यूरोप का महाभारत समाप्त हो चुका था। भारतवासियों की जन्मसिद्ध अधिकार-आशा पर रौलट एक्ट का तुषारपात दीख रहा था। पञ्जाब की वीरभूमि अत्याचारों से कांप उठी थी। अमृतसर में होने वाली भारतीय महासभा (कांग्रेस) के प्रबन्ध और सञ्चालन का कार्य असम्भव सा दीखता था। उस आड़े वक्त भी वही मूर्ति आगे हुई। स्वागत समिति के अध्यक्ष का काम अपने सिर लिया और असंभव को संभव कर दिखाया। स्वागताध्यक्ष की हैसियत से भाषण करते हुए सर्वप्रथम कांग्रेस में हिन्दी का प्रवेश किया। 'हम' को हिन्दू और मुसलमान से मिलकर बना हुआ बताया। बिना हिन्दू के हम का 'ह' नहीं और बिना मुसलमान के 'हम' का 'म' नहीं। इस एकता के पाठ में भी वह आगे रहा।

× × ×

सत्याग्रह आन्दोलन की घोषणा हुई। लोग विचारते थे यह किस तरह चलेगा। दिल्ली के चांदनी चौक में गोरखे सैनिकों की मशीनगनें अपने कमाण्डर की आज्ञा में खड़ी थीं। सबका दिल कांपता था कि इनका मुकाबला सत्याग्रह कैसे करेगा। आश्चर्य का ठिकाना न रहा, लोगों ने देखा एक विशाल मूर्ति बड़ी भारी भीड़ का नेतृत्व करती हुई आगे बढ़ रही है। विशाल साम्राज्य के गर्व से उन्नत संगीनें उसकी खुली छाती के सामने झुक गईं पर वह न झुकी और न पीछे हटी।

दिल्ली की जुम्मा मस्जिद के प्रार्थना वेदी पर जिसके लिये आर्यसमाजी लालायित रहते हैं—उसने अपना कदम रखा और हिन्दू तथा मुसलमानों की एकता का स्वर्गीय दृश्य उपस्थित कर दिया।

× × ×

'गुरु के बाग' का सत्याग्रह चल रहा था। मजबूत अकालियों के जत्थे के जत्थे डण्डों की मार से धराशायी हो रहे थे। सिक्खों के इस धार्मिक आन्दोलन में सहायता की आवश्यकता थी। कौन आगे बढ़े—यह प्रश्न था। वह मूर्ति फिर आगे बढ़ी और उसे 'मियांवाली' जेल की कथा लिखने का सौभाग्य मिला।

× × ×

भारतीय राजनीति में उतार आ गया। मुसलमानों ने 'हम' के 'ह' को भुलाकर हिन्दुओं पर आक्रमण करना शुरू किया। कोहाट और सहारनपुर के दंगों का दौरदौरा था। हिन्दुओं के लिये जीवन मरण का प्रश्न खड़ा हो गया। हिन्दू सोचने लगे क्या भारतवर्ष मुसलमानों के लिए ही है और हमारी रक्षा का कोई उपाय नहीं। मालाबार का भयङ्कर काण्ड हो गया। उस समय फिर वह मूर्त्ति आगे बढ़ी और हिन्दुओं को सहारा दिया। 'हिन्दुसंगठन' और 'शुद्धि' को जन्म दिया। मलकानों को शुद्ध करने के लिये मुस्लिम तलवारों की परवाह नहीं की। उसने कहा जब तक शरीर का एक अङ्ग कमजोर है वह अपने पर खड़ा नहीं हो सकता। शरीर के सभी अङ्गों की पुष्टि, शरीर की स्वस्थता और स्वतंत्रता के लिये आवश्यक है। भारत भी बिना हिन्दुओं और मुसलमानों—दोनों अङ्गों—की मजबूती के बिना स्वतन्त्र नहीं हो सकता। उसके नेतृत्व में हिन्दू खूब बढ़े और खूब शुद्धि चली

× × ×

रुग्णशय्या पर वह विशाल देह करवटें ले रही थी। जिसका जीवन सदा आगे रहने में बीता क्या उसका मरण पीछे रह जायगा—यह प्रश्न आंखों के सामने आ रहा था। एक मार्ग से भटके हुए मुसलमान ने प्रवेश

अमर शहीद श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी

१.

तुम इसी कलि-काल में फिर सत्य-युग लाने चले थे।
वेद के संदेश को जग बीच फैलाने चले थे॥
सभ्य जग को सभ्यता का स्रोत दिखलाने चले थे।
खोल कर गुरुकुल विगत इतिहास दुहराने चले थे॥

२.

आर्य्य-जीवन की तरंगें फिर उठाने तुम तुम चले थे।
मातृ-भाषा के लुटे अधिकार लाने तुम चले थे॥
जाह्नवी के तीर पर गुरुकुल बसाने तुम चले थे।
एक अपनी दूसरी गंगा बहाने तुम चले थे॥

३.

तुम चले थे भारती का फिर नया संस्कार करने।
पश्चिमी विज्ञान को श्रुति के गले का हार करने।
ज्ञान का फिर आत्मसंयम से विमल शृंगार करने।
बस इसी शिक्षा त्रिवेणी से दलित-उद्धार करने।

४.

तुम खिलाफ़त जख़्म को निज रक्त से भरने चले थे।
ऐक्य के सूखे विटप को फिर हरा करने चले थे॥
नोक पर संगीन की छाती खुली धरने चले थे।
तुम हमें जीना सिखाने के लिये मरने चले थे॥

५.

खोल कर गुरुकुल चले थे तुम न कोई यश कमाने।
पर चले थे इस तरह गुरुदेव का ऋषिऋण चुकाने॥
ब्रह्मचारी मूलशङ्कर का अलौकिक कुल चलाने।
एक के बदले अनेकों ब्रह्मचारी-गण बनाने॥

६.

सब जगह तुम ब्रह्म को साकार दिखलाने चले थे।
तुम हमें निर्भीकता अर्थात् सिखलाने चले थे॥
तुम हमें बलिदान का कुछ मर्म समझाने चले थे।
तुम अमरता की सभी में भावना लाने चले थे॥

७.

कर दिखाते थे वही जो बात दिल में ठानते थे।
गोलियों को भी हृदय से प्यार करना जानते थे॥
वीर भी इस बात में लोहा तुम्हारा मानते थे।
पर सरल इतना न मानो स्वयं को पहचानते थे॥

८.

थी खिलाफत युद्ध में आगे तुम्हारी ही सवारी।
जुम्मामसजिद में तुम्हारा ही हुआ सम्मान भारी॥
मुसलिमों से क्या शिकायत हो भला सकती हमारी।
एक ने मारा तुम्हें, की लाख ने पूजा तुम्हारी॥

९.

सर्वथा निर्दोष था वह जान का दुश्मन तुम्हारा।
तीसरे की बात में था आगया भोला बिचारा॥
भीष्म को था पार्थ ने जिस तौर छिप कर तीर मारा।
दूसरे का उस तरह लेना पड़ा, यम को सहारा॥

१०.

तुम मिटाने को चले थे देश की अपनी गुलामी।
राज्य से सहयोग के इस हेतु बन पाये न हामी॥
यह जगत क्या स्वर्ग तक फैली तुम्हारी नेक नामी।
मृत्यु ने भी ली तुम्हारी तीन वारों में सलामी॥

११.

शुद्धि हिंदू-संगठन उद्यान के हे दिव्य माली!
हिंदू-मुसलिम-ऐक्य की तुमने दिखाई छवि निराली।
शान से कोई तुम्हारी भी न होती बात खाली।
जिन्दगी भी थी निराली मौत भी थी शानवाली॥

१२.

आगया है पैर पर अपने हमें यद्यपि सम्हलना।
पर तुहारी गोद में फिर चाहता गुरुकुल उछलना॥
तुम कहीं "देखो न टलना, तुम कहीं देखो न टलना।"
है अभी भूला न हम को तात! बचपन का मचलना॥

श्री पं० जगन्नाथ जी' इन्द्रप्रस्थ।

[पृष्ठ ३ का शेष]

किया। धार्मिक पिपासा का तकाजा किया। पानी से उसकी प्यास न बुझी। उस पिपासा को बुझाने के लिये उस मूर्त्ति ने अपने सीने का खून दिया। वह मूर्त्ति इस लोक में सदा के लिए खो गई परन्तु अमरता के प्रशस्त पथ पर भी वही आगे बढ़ गई। अपने जीवन और मरण से सबको और विशेष कर कुलपुत्रों को सन्देश दे गई—आगे रहो, आगे बढ़ो।

उस मूर्त्ति के चरणों में श्रद्धा की, आनन्द से परिपूर्ण अञ्जलि शनवार समर्पित है।

अरे, मानवता के अभिशाप ?

श्री 'सूर्य कुमार'

तुम्हारा क्रन्दन ही है गान,
दुःखों की आह, सुरीली तान,
मिलेगी रोम रोम में व्याप्त, तुम्हारे हाय दुःखों की छाप।
अरे, मानवता के अभीशाप ?
विधाता तुम पर कितना क्रूर,
धनी क्या, धन के सपने दूर,
यहां सूखी रोटी भर पेट, तुम्हारे बनी सुखों की माप
अरे, मानवता के अभिशाप ?
तुम्हें इसमें भी है सन्तोष,
न देते कभी किसी को दोष,
उसे वह कर-विधना की देन, सहन कर लेते हो चुपचाप।
अरे, मानवता के अभिशाप!

कल्याण मार्ग के पथिक—

श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी

लेखक—आचार्य चन्द्रकान्त वेदवाचस्पति—
गुरुकुल महाविद्यालय सोनगढ़ [काठियावाड़]

ब्रह्म, क्षत्र के बिना अधूरा है और क्षत्र, ब्रह्म के बिना।" "यत्र ब्रह्म च क्षत्रञ्चसम्यञ्चौ चरतः सह" ब्रह्म तथा क्षत्र के मेल से ही कोई भी यज्ञ सर्वाङ्ग सम्पूर्ण हुआ करता है। स्वामी रामदास और परमहंस रामकृष्ण जी ब्रह्म शक्ति के प्रतिनिधि थे, तो क्रमशः छत्रपति शिवा जी और स्वामी विवेकानन्द जी क्षात्र शक्ति के प्रतिनिधि थे। विचारों का उद्भव ब्रह्म से होता है और उनका क्रिया व आचार में लाना क्षात्र शक्ति का कार्य है। महर्षि स्वामी दयानन्द जी ब्रह्म शक्ति के प्रतीक हैं तो स्वामी श्रद्धानन्द जी क्षात्र शक्ति के। इन युगलों ने ही विश्व में क्रान्ति मचाई है। विरजानन्द जी की कुटिया में दयानन्द जी ने ब्रह्म दीक्षा ली थी, वह महात्मा मुन्शीराम जैसे नरपुंगव शिष्य को पाकर ही पूर्ण हुई है। सच्चा शिष्य ही गुरु को गुरु बनाया करता है। गुरु से शिष्य जहां कुछ सीखता है वहां कुछ सीखाता भी है। दोनों एक दूसरे के बिना अपूर्ण हैं। आचार्यो 'ब्रह्मचर्येण ब्रह्मचारिणमिच्छते' महर्षि दयानन्द ने सर्वमेध यज्ञ की ज्वाला जगाई थी—स्वामी श्रद्धानन्द जी ने उसे अखण्ड बनाया है। दयानन्द सरस्वती के मूक घावों को श्रद्धानन्द जी के सीने पर लगी गोलियों ने भर दिया है। "Blood of the martyrs is the seed of the church इस कहावत को स्वामी जी ने अपने जीवन से चरितार्थ किया है। आर्य समाज के यज्ञ-पुरुष महर्षि दयानन्द जी ने शहादत की बेल को अपने तन, मन तथा धन के समर्पण से बोया था। उसे हुतात्मा स्वामी श्रद्धानन्द जी ने अपने क्षात्र-लहू से अमर बनाया है।

हुतात्मा श्रद्धानन्द जी शेर दिल थे। उनके सीने में क्षत्रिय माता का खून बह रहा था। उनके जीवन का सूत्र था Live dangerously। जिस समय लोग अपने मासूम बच्चों को दिल से जुदा करते हुए घबराते थे, पाश्चात्य संस्कृति के रंग में रंगे हुए थे। उस समय गंगा जी के पवित्र तट पर साधु मुन्शीराम ने उल्टी गंगा बहाई थी—लुधियाने की गली २ में महात्मा ने अलख जगाई थी। जंगल में मंगल कर दिखाना उन्हीं का काम था। वह विशाल भव्य मूर्ति आज पाले वस्त्र में गंगा जी के किनारे नहीं है परन्तु पलाश-पुष्प आज भी सन्यासी को निवापाञ्जलि दे रहे हैं।

गुरुकुल की आर्य प्रणाली का दिव्य दर्शन, महात्मा मुन्शी राम जी को युगद्रष्टा बना गया है। जातीय उत्थान में इस प्रणाली से बढ़ कर कोई भव्य कल्पना नहीं हुई है। गंगा जी के तट पर सदियों से यज्ञ ज्वालाएँ उठती रही हैं पर श्रद्धानन्द जी के यज्ञ की ज्वाला अनोखी ही थी। इस ज्वाला की चिनगारियों ने सैकड़ों अग्नि-पुत्र उत्पन्न कर दिए हैं। जिनके जीवन का लक्ष्य—Build your cities on the vesuvious है। विशाल मूर्ति स्वामी जी का हृदय सागर गम्भीर था। उनके हृदय में प्रेम की नदी बहा करती थी। अब्दुलरशीद की प्यास को इस धर्मवीर ने अपने खून से बुझाया। अशगरी बेगम को शान्ति देवी के रूप में बदलना, मोपला हत्याकाण्ड के बाद भी मुसलमानों के लिए परमात्मा से दुआ मांगना स्वामी जी का काम था। दिल्ली की जुमामस्जिद में हिन्दु तथा मुसलमानों के कल्याण के लिए वाएज़ पढ़ना—बेताज बादशाह श्रद्धानन्द के लिए ही सम्भव था। हरिजनों के आंसुओं में खून बहाना—आहों में आहें मिलाना—प्रेममूर्ति स्वामी जी से सीखा जा सकता है। किसी कवि ने ठीक ही कहा है "वह उर विशाल यह व्योम तन्त्र"। गोरखों की संगीनें, मुसलमानों के गुप्त आक्रमण, सनातनी भाइयों की पत्थर वर्षा श्रद्धानन्द को अमर बना गई है। आश्चर्य तो यह है कि विश्ववन्द्य गान्धी जी स्वामी जी के अमर बलिदान को स्पर्धा की चीज़ समझते हैं। "श्रद्धा" "सद्धर्म प्रचारक" तथा "लिबरेटर" में आज भी श्रद्धानन्द जी की आत्मा देखी जा सकती है—वह पुकार पुकार कर कह रही है:—

"उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत्।"

स्वामी जी आदर्शवक्ता की मूर्ति थे। आदर्श के लिए अपना सर्वस्व खो देना उनके बाएं हाथ का खेल था। 'कल्याण मार्ग के पथिक' ने अपने जीवनादर्श को आत्म शुद्धि की कुदाली में ढाल कर कुन्दन बनाया था। दुनिया के इतिहास में आदर्श जीवन चरित्र चार महापुरुषों के उपलब्ध होते हैं—बैंजमिन फ्रैंकलिन, महात्मा गांधी, पं० जवाहरलाल नेहरू और चौथे स्वामी श्रद्धानन्द जी। 'कल्याण मार्ग के पथिक' का मार्ग शेरों का मार्ग है। वह शेर अकेला ही भारत के अन्दर गरजता रहा और सोते भारत को जगा गया। उनके पद-चिन्ह—गुरुकुल के एक २ ब्रह्मचारी के हृदय मन्दिर में विराजमान हैं और रहेंगे।

दिल्ली की नगरी ने वह दिन भी देखा था जबकि एक सन्यासी का जनाज़ा उसकी छाती पर से गुज़रा था। सैकड़ों बादशाहों के जनाज़ों को वह लज्जित कर रहा था। हिन्दू सिख-पारसी-मुसलमान हर प्रकार के भारत माता के पुत्रों ने सन्यासी के गले में आंसुओं और भावनाओं की मालाएं पहराई थीं। यमुना जी के तट पर जलाई सन्यासी की चिता की राख भले ही बह गई हो पर सन्यासी तो आज भी जी रहा है। सचमुच स्वामी जी मरे नहीं हैं वे तो अक्षयवट के समान सैकड़ों शाखाओं में फूट चुके हैं। आओ! हम उनसे अमरपन का मार्ग पूछें।

ऋषि निर्दिष्ट मार्ग और हम

(ले० श्री पं० श्रीपाद दामोदर सातवलेकर)

ऋषि वह होता है जो सब से पहिले उन्नति का सच्चा मार्ग स्पष्ट देखता है और अमुक मार्ग से जाओ ऐसा कहना है। श्री स्वामी दयानन्दसरस्वती जी ने भारताभ्युत्थान का सच्चा मार्ग सब से पहिले देखा, और उस मार्ग पर से चल कर अपना साध्य प्राप्त करने की रीति भी बता दी। इस लिये उनको ऋषि कहना योग्य है। परन्तु जो लोग उनके बताये मार्ग से बिलकुल चलना नहीं चाहते, प्रत्युत विरुद्ध ही चलते हैं, उनके आदेश के अनुसार चलने के इच्छुक नहीं है, तथा उनकी 'आर्यों का चक्रवर्ती राज्य शीघ्र स्थापित करनेकी प्रार्थना भी प्रतिदिन नहीं करो' तीन सभाओं का कार्य नहीं करते, स्वदेश की गुलामी और परतन्त्रता बढ़ाने वाले विदेशी राज के प्रबन्ध में नौकरियां करते पेंशनें खाते, पदवियां धारण करते उनका युनिवर्सिटियों के कालेजों में स्वयं पढ़ते पढ़ाते और अपने पुत्रों को भेजते हैं, विदेशी वस्त्रादि परिधान करते हैं, अपनी पञ्चायतें न करते हुए सरकारी अदालतों में जाते और उस धंधे से धन कमाते, विदेशी वस्तुओंका व्यवहार करके धन कमाते, वेद का अध्ययन नहीं करते, न करने देते, न सहायता करते हैं, और विरोधी आचरण करते हुए उस पवित्र आत्मा ऋषि के नाम का गायन करते रहते हैं, क्या इस नाम जप से उस ऋषि का उपहास नहीं होता? 'ऋषि दयानन्द की जय' ऐसा वह कहे? जो उनके आदेशानुसार चलता है, उनके आदेशानुसार न चलने वाले जयजयकार करेंगे, तो उन से पूछना चाहिये जय तो तब होगी जब उनका कार्य चलता रहेगा, और सर्वाङ्गसंपूर्ण कार्य होता रहेगा। हमारे विचार से उनके बहुत से अनुयायियों ने ही इतना उनके विरुद्ध आचरण किया है कि उनका सर्वाङ्गसम्पूर्ण कार्यक्रम अब उनसे होना असंभव है, और जो वेद का कार्य अब तक उनके हाथों में रहा है, वह भी स्वतंत्र खोज के अभाव में होगा, ऐसा दीखता नहीं। इस लिये जय कैसे होगी? और भारतवर्ष के बाहर ओंकार का झंडा कब जायगा, जब अनुयायियों के हृदयों में ओंकार सुस्थिर नहीं रहा?

पाठक पूछेंगे कि अनुयायियों के हृदयों में ओंकार का झंडा खड़ा नहीं हुआ इसका प्रमाण क्या है? क्या ये प्रमाण देने चाहिये? पंजाब और युक्तप्रान्त में हिन्दी भाषा और देवनागरी अक्षरों का भी राज्य अभी तक नहीं हुआ तो देव भाषा-संस्कृतभाषा-का राज्य कहां होना है? अभी तक जो लोग अपसव्यगामी उर्दू से बाहर नहीं आ सके, वे संस्कृत का उद्धार क्या करेंगे? गुरुकुलों में २० और २५ वर्षों तक बड़े बड़े बड़े स्थानों पर विराजमान होते पर भी संस्कृत भाषा में प्रविष्ट नहीं होते, प्रतिनिधि-सभा में भी रहते हुए उर्दू को नहीं छोड़ते, वे संस्कृत में क्या करेंगे? और जो ६० वर्षों में संस्कृत अपना नहीं सके, वे वेद भाषा से क्या व्यवहार करेंगे।

जिनके हृदयों में सचमुच ओंकार का निवास हुआ है, वे छः मासों में हिन्दी का व्यवहार कर सकते हैं और एक वर्ष के अन्दर संस्कृत में प्रविष्ट हो सकते हैं। सम्पूर्ण भाषाओं से संस्कृत भाषा सुगम है। उर्दू, हिन्दी, मराठी, गुजराती से भी संस्कृत सुगम, और सुबोध भाषा में-देववाणी में-जो ५०।६० वर्षों में भी प्रविष्ट नहीं हो सके, उनके हृदयों में ओंकार का निवास कहां? श्री स्वामीजी की जन्म भाषा गुजराती थी, संस्कृत उनकी गुरु भाषा थी, परन्तु अपने राष्ट्रोन्नति के कार्य के लिये जब उन्होंने देखा कि आर्यभाषा की आवश्यकता है, तब उन्होंने ४ महीनों में हिन्दी सीखी और वेद भाष्य तक उस में लिखा।

कौन ऐसा है कि जो प्रतिदिन आधा घण्टा प्रयत्न करेगा तो एक साल के अन्दर संस्कृत भाषा में प्रविष्ट नहीं हो सकेगा? यदि सब लोग संस्कृत जान जायेंगे, तो पण्डितों में सच्चा कौन और धोखा देने वाला कौन, इस की परीक्षा वे तत्काल कर लेंगे। इसके लिये अन्तःकरण में तीव्र उत्सुकता चाहिये। वह कहां है?

धार्मिक संस्था

संपूर्ण जगत् की धार्मिक संस्थाओं की स्थिति देखिये, युरोप-अमेरिका के सब देशों में 'मिशन सोसायटीज' हैं। परन्तु उनके सब सदस्य उनके धर्मपुस्तकों को आद्योपान्त जानने वाले होते हैं। एक भी प्रचारक संस्था का सदस्य धर्मग्रन्थ का अनभिज्ञ नहीं होता। मुसलमानों के धर्म-प्रचारक संस्था के सदस्य भी उनके धर्मपुस्तक का आद्योपान्त अध्ययन करने वाले ही मौलवी होते हैं।

परन्तु यहां देखा जाय, तो प्रतिनिधिसभाओं के सदस्यों में आद्योपान्त वेद के ज्ञाता कितने हैं? जो स्वयं नहीं जानते, वह देशज्ञान की कठिनताओं को कैसे जानेंगे? हल करने के उपायों को कैसे सोचेंगे? आगे क्या करना चाहिये, इसका ज्ञान उसको कैसा होगा?

प्राचीन काल से चली आयी प्रथा यह है, वेदज्ञ ब्रह्म ही धर्म सभा की प्रबन्ध कारिणी का सदस्य हो। एक वेदज्ञ भी सहस्रों अनभिज्ञों की अपेक्षा अधिक मूल्य का संमति दे सकता है। मनु ने जो कहा है, वह यों ही नहीं कहा है। जब तक यह प्राचीन पद्धति प्रचलित थी तबतक वैदिक धर्म अस्तव्यस्त नहीं हुआ था, और जिस समय वेदश ब्रह्म स्वयं प्रबंधकारिणी सभा के सदस्य होंगे, उसके पश्चात् कठिनता ही नहीं होगी।

सच्चा विघ्न वैदिक धर्म की प्रगति में यदि किसी जगह है तो वह अज्ञानियों के हाथों में ज्ञानियों की गर्दनें जाने से है। यदि यह विघ्न दूर हो गया, तो सब ठीक हो जायगा।

हमारी दृष्टि

हमारी दृष्टि में आर्य समाज द्वारा संचलित गुरुकुल संस्थाएं तथा अन्य संस्थाएं अपने सुयोग्य स्थान पर विराजती हैं। श्री स्व० स्वा० श्रद्धानन्दजी महाराज, श्री स्व० ला० लाजपतराय, श्री महात्मा हंसराजजी तथा अन्यान्य महापुरुषों का अतुल स्वार्थ त्याग हमारे सामने है। पूर्वाश्रम के ला० मुन्शीरामजी वकील होते हुए भी गुरुकुल स्थापना के लिये कालेज पार्टी से किस तरह झगड़ते थे यह सब हमारे आंखों के सामने है। तो भी जब सामूहिक तौर पर

अतीत की याद

[ले०—श्री स्वामी स[illegible]देव जी परिव्राजक]

यह सितम्बर सन् १९२६ के दिसम्बर मास की बात है। उस वर्ष के चुनाव के अवसर पर जो सेवा मैंने कांग्रेस की की थी, स्वर्गीय पं० मोतीलाल जी नेहरू उसके कारण मुझ पर बहुत प्रसन्न थे। वे मुझसे बोले—

'सत्यदेव जी, चलिये इस वर्ष आपको गौहाटी कांग्रेस घुमा लावें। हमारा विचार कलकत्ता से स्टीमर पकड़ने का है, जो सुन्दरवन के बीच में से होता हुआ ब्रह्मपुत्र की अठखेलियों के दृश्य दिखलाता हुआ हमें ठीक निर्दिष्ट स्थान पर ले जायेगा। आपने भी लम्बी लम्बी यात्रायें की हैं; चलिये इस बार हम आपको अपने देश के एक अनोखे हिस्से की सैर करावें।"

मैं राजी होगया। मुझे आकर्षित करने के लिये सुन्दरवन का नाम ही काफ़ी था। मेरे शिला मन ने फौरन वहां की तसवीरें घड़ लीं। वहां के भयंकर बंगाली शेरों की गर्जना मेरे कानों में सुनाई देने लगी और क्रान्तिकारी बंगाली नवयुवकों की रहस्यपूर्ण गुफायें मेरे सामने नाचने लगीं। सुन्दरवन की यात्रा सचमुच मेरे लिए एक नई चीज़ थी और मैंने ऐसी यात्रा के मौके को अपना सौभाग्य समझा।

नियत तिथि पर एक छोटा सा स्टीमर किराये कर हमारी पार्टी आसाम की ओर चल पड़ी और रास्ते के विचित्र नज़ारों को देखती हुई सुन्दरवन के डेल्टे में घुसी और ब्रह्मपुत्र की धारा में प्रवेश किया। कई क्रान्तिकारी नवयुवक पण्डित जी से मिलने के लिए आये और उन्होंने जी खोलकर बातें की। पण्डित जी के आने का पता अखबारों द्वारा सारे देश में फैल चुका था, इस कारण क्रान्तिकारियों ने भी उस अवसर का लाभ ले लिया और हम लोगों ने भी उनकी कठिनाइयों से भरी हुई जीवनी की घटनायें सुन लीं। उन घोर दिनों में रातें बिताने की हिम्मत उन्हीं आत्माओं में हो सकती है जो जान को हथेली पर रख लेते हैं।

आर्यों के सुपुत्र विदेशी सरकार के कानूनों [illegible] वकील और बैरिस्टर आप कहलाते हुए अदालतों [illegible] हैं, आर्यों के मुकदमे अदालतों में चले जाते हैं, तब [illegible] से पता लगता है, श्री स्वामीजी की सदिच्छा सफल हो [illegible] कहां से हुआ है। यही यहां दशा है। कई अपवाद होंगे तो वह नियम को ही सिद्ध करेंगे।

आज [illegible] करने वालों के ऊपर बहिष्कार डाला जा रहा है, कठिनता बढ़ने के [illegible] यह आवश्यक समझा जा रहा है, परन्तु इस में भय यह है कि जो श्री स्वामीजी के कार्य की एक ही चीज़ 'यह' हमारे पास शेष रही है वह भी हमारे हाथों में नहीं रहेगा।

सोचने वाले सोचें, करने वाले करें। न [illegible] जो [illegible] [illegible], वही बनेगा। [illegible] सत्य [illegible] [illegible] से दब नहीं सकेगा।

ख़ैर, हम लोग गौहाटी पहुँच गये और प्रसिद्ध आसामी नेता भाई फूकन जी के घर पर ठहरे। बड़ा अच्छा प्रबन्ध था इनके घर पर। उस ऐतिहासिक दिन की सन्ध्या को मैं अपने कमरे में बैठा हुआ था कि मेरे पास एसोसियेटिड प्रेस का आदमी आया और उसने आकर स्वामी श्रद्धानन्द जी की शहादत के समाचार सुनाये। किस प्रकार अब्दुलरशीद ने धोखे से धर्म-जिज्ञासा के बहाने स्वामी जी को रिवाल्वर का निशाना बनाया। इस घटना का उसने सारा ब्योरा बतलाया और अन्त में प्रेस में भेजने के लिए मेरा सन्देश मांगा। मैं सन्न सा रह गया। कुछ समय तक मैं बोला नहीं। स्वामी जी के साथ मेरा बड़ा पुराना सम्बन्ध था—उस समय से जबकि वे वकालत करते थे। उनके जीवन की एक एक झांकी मुझे दिखलाई देने लगी। मस्तिष्क में छिपी हुई स्वामी श्रद्धानन्द रूपी फिल्म तत्काल खुल गई और सैकिण्डों में ही घटना चक्र मेरे सामने घूम गया। इस मृत्यु का रहस्य मुझ पर स्पष्ट होगया। सन् १८९७ में पण्डित लेखराम जी के बलिदान पर महात्मा मुन्शीराम ने ईश्वर के सामने वैसी ही प्रार्थना की थी। वह इच्छा उनकी पूर्ण हुई और ईश्वर ने उनके सिर पर बलिदान का मुकुट रख दिया। मैंने प्रेस के प्रतिनिधि से कहा—

"मैं स्वामी जी को बड़ा धन्य समझता हूँ कि उन्हें ऐसी मृत्यु प्राप्त हुई; काश कि मुझे भी ऐसे बलिदान का का अवसर मिले (I envy his death), क्योंकि इस मृत्यु ने स्वामी जी के पुनीत कार्यों पर उनके महान त्याग की मोहर लगा दी।"

मैंने इसी प्रकार के भाव प्रगट किये और उसने समाचारपत्रों में मेरा सन्देश भेज दिया। मैं अब भी यही मानता हूँ कि स्वामी श्रद्धानन्द जी को उनके विरोधी कभी भी न समझ पाते यदि उनकी मृत्यु अब्दुलरशीद के द्वारा न होती। प्रभु की लीला बड़ी विचित्र है उसके कार्य अद्भुत और चिरस्थायी होते हैं।

महान् व्यक्ति

सन् १९१२ में लाहौर के एक पत्र ने अपने पाठकों से एक प्रश्न किया था कि उनकी दृष्टि में भारत के [illegible] महापुरुष कौन कौन हैं? एक हज़ार [illegible] ने उस प्रश्न का उत्तर दिया था। [illegible] नामों के लिए प्राप्त सम्मतियों [illegible] [illegible] इस प्रकार निकला था—

श्री गुरु गोपाल कृष्ण गोखले—[illegible], सर [illegible] [illegible], लाला लाजपतराय—133, लो० बाल गंगाधर तिलक—[illegible], पं० मदनमोहन मालवीय—[illegible] और [illegible] गोरों जी [illegible]।

छुट्टी की सूचना।

कार्यभार के अधिक होने के कारण आगामी सप्ताह 'गुरुकुल' प्रकाशित न हो सकेगा। आशा है सहृदय पाठक इस के लिए उदारता पूर्वक क्षमा करेंगे।—सम्पादक

गुरुकुल

२ पौष शुक्रवार १९९५

हमारा कर्तव्य

महापुरुष किसी भी समुन्नति को चाहने वाली जाति के अभ्युत्थान में रीढ़ की हड्डी का कार्य करते हैं। प्रत्येक राष्ट्र अपने नेताओं पर जिन्होंने अपना जीवन मातृभूमि की सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, मानसिक दासता को नष्ट करने में लगा दिया होता है, गर्व करता है। राजनैतिक दासता की महामारी किसी देश के लिये जितनी बुरी है, उस से कहीं अधिक बुरी वस्तु सामाजिक और मानसिक दासता है। राजनैतिक दासता किसी राष्ट्र की आर्थिक और राजनैतिक विभिन्नता तथा क्षति को कर सकती है इसकी और दिमागी गुलामी मनुष्य को प्रत्येक क्रिया कलाप में परमुखापेक्षी बना जाती है। पहली दासता की प्रथा क्षणिक एवं अस्थायी होता है इसकी दासता मनुष्य को सदा का गुलाम बना जाती है। ऋषि दयानन्द सरस्वती तथा अमर शहीद स्वामी श्रद्धानन्द जी का कर्तृत्व भारत को सामाजिक तथा मानसिक गुलामी से मुक्त करने में था। दोनों समाज सुधारकों ने इस कार्य में अपने जीवन को भी उत्सर्ग कर दिया। ऋषी दयानन्द ने सब से पहले विदेशी संस्कृति, सभ्यता, भाषा, वेश, समाज के स्थान पर, स्वदेशी संस्कृति सभ्यता, भाषा, वेश, समाज का नाद गुंजाया था। प्राचीन आर्य संस्कृति, सभ्यता के पुनरभ्युत्थान का ऋषि ने भगीरथ प्रयत्न किया था, भारत की स्वाधीनता का स्वप्न, राष्ट्रभाषा हिन्दी का प्रयोग ऋषि ने उस गये बीते जमाने में किया था जब कि इस का कोई नाम भी नहीं जानता था। ऋषि दयानन्द वर्तमान भारत के बौद्धिक विकास के आन्दोलक तथा आदि गुरु थे।

ऋषि दयानन्द की मानस सन्तान को आगे ले जाने वालों में अमर शहीद स्वामी श्रद्धानन्द का नाम सब से पहले लिया जा सकता है। गुरुकुल शिक्षा प्रणाली, दलितोद्धार, विधवा विवाह आन्दोलन आदि अनेक क्रियात्मक कार्य कर भारत की प्राचीन संस्कृति सभ्यता को अक्षुण रखने का प्रयत्न स्वामी जी का भारत को देन है।

स्वामी श्रद्धानन्द जी का जीवन बहुत क्षेत्रों में व्याप्त था। पंजाब की वीर भूमि में राष्ट्रीय महा सभा का स्वागत करते हुए उन्होंने राष्ट्रीय आन्दोलन में साहस का एक नवीन मंत्र फूँका था। मार्शल ला के आतंक नाद के जमाने में उन्होंने राष्ट्रीय महासभा का राष्ट्रभाषा हिन्दी में सर्वप्रथम स्वागत किया था। यह उस जमाने में एक अनोखी चीज थी।

हिन्दु मुसलिम एकता के प्रतीकरूप में हम स्वामी जी को जामा मस्जिदकी वेदीसे भाषण करते देखते हैं। समय बदलने पर जब जातीय विद्वेष की भावना बढ़ती है स्वामी जी हिन्दु संगठन करते हैं शुद्धि आन्दोलन करते हैं-साथ २ राष्ट्रीय आन्दोलन में भी हिस्सा लेते रहते हैं फिर अन्त में स्वामी जी को एक धर्मान्ध मुस्लिमद्वारा शहीद किया जाते हुए देखते हैं।

स्वामी जी का जीवन भारत की सामाजिक तथा मानसिक दासता को हटाने में ही लगा। उन्होंने विभिन्न क्षेत्रों में कार्य किया, स्थूल दृष्टि से मालूम पड़ेगा कि वे भावुकता के प्रवाह में आकर जिस प्रवाह में वह गये-बस उसी प्रवाह में चलते गये, किन्तु यह स्थापना सूक्ष्म विवेचन से गलत प्रतीत होती है। स्वामी जी का प्रत्येक आन्दोलन में निश्चित उद्देश्य लगता है-किसी निश्चित ध्येय के लिये गहन लगन लगती प्रतीत होती है। अपने उद्देश्य के लिये उन्हें जो भी साधक वस्तु मिली उसके लिये उन्होंने कभी किसी खास वस्तु के प्रति अपना पक्षपात प्रकट नहीं किया।

स्वामी श्रद्धानन्द जी २०वीं सदी के भारतीय महापुरुषों में अपना स्थान रखते हैं। २० वीं शताब्दी की अपनी सभ्यता संस्कृति पर अभिमान करने वाले भारत को इस रूप में लाने वालों में एक बड़ा स्थान स्वामी जी का है—इस से इन्कार नहीं किया जा सकता। उन्हें इसी लिये शिक्षा का क्रान्तिकारी पिता कहा जाता है।

शिक्षा के उस क्रान्तिकारी कुल पिता के कुल पुत्र कहलाने का हमें सौभाग्य प्राप्त है। कुल पुत्र के नाते स्वामी जी की दिवंगत आत्मा के प्रति जो कि आज से १२ वर्ष पूर्व अमरता का सन्देश दे जा चुकी है-हमारा कुछ कर्तव्य है उनकी दी हुई पवित्र थाती को सुरक्षित रख उनके दिये दिव्य संदेश को हमें आगे ले जाना होगा।

श्रद्धानन्द बलिदानोत्सव पर हमारा यही परम कर्तव्य है, यदि इस ओर हम कुछ भी बढ़ सके तभी उनकी याद का उचित सम्मान है और कुल पुत्र कहलाने का सच्चा अधिकार भी तभी है, परमेश्वर करें, हमें अपना कर्त्तव्य सदा ध्यान में रहे।

श्रद्धानन्द की आग

[ले०—प्रो० विश्वनाथ जी विद्यालङ्कार]

स्वामी श्रद्धानन्द में एक आग थी, इसके समग्र जीवन में इस आग का दर्शन होता है। बाल्य काल से लेकर मरण पर्यन्त इसके जीवन की घटना २ में आग नजर आती है। बाल्य काल में इस आग ने बालक मुन्शीराम को खूब भटकाया पढ़ने से विमुख किया और फिरन्दरों का सरदार बनाया। चढ़ती जवानी में इस आग ने मुन्शीराम को नानाविध व्यसनों में फंसाया बरेली में महर्षि दयानन्द के दर्शन करने पर यह आग सात्विक रूप धारण कर गई। इस आग ने अब से अपना राजस और तामस रूप त्याग दिया। महर्षि के दर्शन-काल के पश्चात् यह आग इसे महर्षि के बताये ग्रन्थों में गहरा डुबा लेगई। इसके जीवन में पवित्रता का स्रोत एक दम फूट पड़ा। मांस-शराब आदि दुर्व्यसनों को एक दम तिलाञ्जलि दे दी। अब से यह आग आर्य समाज की सेवा की शक्ल में तबदील हो गई। जब मुन्शीराम लाहौर आर्यसमाज के सभासद बने तो उन्होंने सभासदी के दिन ही समाज में खड़े होकर कहा कि आर्यसमाजी वास्तव में वह है जो कि न केवल आर्य समाज के मन्तव्यों पर ही विश्वास रखता हो अपितु आचरण भी तदनुसार करता हो। मुन्शीराम की इस घोषणा ने बैठे सभासदों को सुझा दिया कि मुन्शीराम में वास्तव में ही एक आग विद्यमान है। मुन्शीराम की इस जलती आग ने मुन्शीराम को शास्त्रार्थों में — संस्कृत के पण्डित न होते हुए भी—पं० दीनदयाल तथा पण्डित गोपीनाथ जैसे पौराणिक व्याख्यान महारथियों के साथ भिड़ाया। आर्य समाज की आग इसमें ऐसी प्रचण्ड हुई कि इसकी वकालत पर पानी फेर गई। इसकी चमकती वकालत को बीच २ में मन्द कर देने वाली इसमें धर्म सम्बन्धी उग्र भावना की आग थी। मुन्शीराम की यह आग मार्ग की बाधाओं का भस्मीभूत करती हुई धर्म मार्ग में इसे आगे ही आगे उड़ाती ले गई। इसकी आग ने ही इसे तपोमूर्ति बना कर चण्डी पर्वत की तलैटी में वानप्रस्थी रूप में जंगलों में बसाया। इसकी आग ने जंगल को साफ कर उस स्थान में मङ्गल पैदा किया।

गुरुकुल के मुख्याधिष्ठाता की हैसियत से इस पर गुरुकुल के धन के गबन का दोषारोप हुआ। इस पर इसकी आग ने सर्वमेध रचा दिया। गुरुकुल में पढ़ते हुए अपने दो पुत्रों के भविष्य को परमात्मा के आश्रय छोड़ इस सच्चे त्यागी ने गुरुकुल के एक उत्सव पर सब जनता को रुलाते हुए अपनी चल और अचल सब श्री-सम्पत् का महात्याग कर दिया। गुरुकुल में रहता हुआ यह महात्मा गुरुकुल का देहधारी चलता फिरता प्राण ही दीखा करता था। इसकी दिव्यमूर्ति उन दिनों गुरुकुल को चार चांद लगाया करती थी। गुरुकुल का उत्सव जब तक रहता यह महात्मा दर्शन की प्यासी जनता से सदा घिरा रहता। जनता इसके आगे पीछे ऐसे रहती जैसे किसी की छाया उसके आगे पीछे रहती है। इसका गुरुकुल के आचार्यत्व का समग्र जीवन इसके भीतर संदीप्त एक अलौकिक अग्नि का चमत्कारी दृश्य है। समय आया कि महात्मा मुन्शीराम की यह आग एकदम और भड़क उठी उस आग ने गुरुकुल की ही चहारदीवारी में बन्द न होकर अपना स्वरूप समग्र संसार को दिखाना चाहा। उसने महात्मा मुंशीराम को श्रद्धा की मूर्ति स्वामी श्रद्धानन्द बना दिया। अब ये श्रद्धा और आनन्द ये दोनों दिव्य शक्तियां उसमें अपना राज्य करने लगीं। देशभक्ति मनुष्य मात्र की सेवा तथा विश्व प्रेम—इसकी श्रद्धा और आनन्दमय जीवन की भूमियें—एक दम फूट पड़े, और फूट कर महावृक्षों के रूप में दीख पड़े।

इनके नीचे अनाथिनों ने आश्रय पाया, दलितों ने आश्रय पाया, विद्यार्थियों ने आश्रय पाया, नौकरशाही के अत्याचारों से पीड़ित बालकों, वृद्धों तथा अबलाओं ने पञ्जाब में आश्रय पाया। अन्त में यह आग कैसे छिपी इसे भारत का बच्चा २ जानता है।

श्रद्धानन्द शारीरिक बीमारी के पराधीन होकर चारपाई पर कई हफ्तों से पड़े हैं। खून का प्यासा एक मुसलमान श्रद्धानन्द के रोग गृह की सीढ़ियों पर चढ़ना चाहता है और इसके लिए स्वामी भक्त भृत्य से नोक झोंक होती है। श्रद्धानन्द की आग बीमारी में ही पुकारती है—आने दो धर्म के प्यासे को आने दो। घातक ने जल मांगा। स्वामी भक्त भृत्य को हुकम हुआ कि जल लाओ। बस क्या था। घातक की प्यास का शिकार श्रद्धानन्द का ठण्डा खून बना और यह आग सदा के लिए अमर होगई। सच्ची आग की मूर्ति श्रद्धानन्द अपनी पवित्र आग से हम सबको पवित्र कर। तेरी भावनाओं के प्रति हम आत्म समर्पण कर सकने के योग्य बनें।

एक चमकता हुआ सितारा

ले०—श्री लब्भूराम जी नैय्यर

अमर शहीद श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज

स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज के जीवन में अनेक गुण थे। सबसे अधिक उनमें यह गुण था कि धर्म और ईश्वर में अत्यन्त श्रद्धा रखते थे। आपको सिवाय परमात्मा के किसी व्यक्ति से भय न था। एक बार उन्होंने अपने पूज्य पिता जी के ठाकुर जी को नमस्कार करने से साफ इनकार कर दिया। इसी तरह देहली में जब मार्शल ला था आप एक इजलास में भाषण कर रहे थे। तब एक आहदेदार ने कहा कि इसकी जिम्मेवारी किस पर है तब स्वामी जी महाराज ने स्पष्ट उत्तर दिया कि यदि "सरकारी कर्मचारी कुछ गड़बड़ न करें तो मुझ पर है अन्यथा वह स्वयं जिम्मेवार हैं।" जब जलूस बाजार को जा रहा था तो गोरखा सिपाही के संगीन तान कर खड़े होने पर वीर श्रद्धानन्द जी ने आगे बढ़ छाती तान कर कहा कि अगर संगीन का वार

(शेष पृष्ठ १५ पर)

रोमन–लिपि का प्रश्न

(ले० श्री भिक्षु)

कुछ समय से यह आवाज़ उठनी शुरू हुई है कि रोमन लिपि को भारत की राष्ट्रीय लिपि स्वीकार कर लेना चाहिये। हमारे ये शुभ चिन्तक भाई जो कि इस समय रोमन लिपि का सवाल उठा रहे हैं, यदि वे मौखिक बातें छोड़ कर क्रियात्मिक रूप से इस व्यवहार में लाने की कोशिश करें तो वे देखेंगे कि कितनी बड़ी गलती की जा रही है।

इस समय भारत में जितना देव नागरी लिपि का प्रचार है उतना किसी भी अन्य प्रान्तीय लिपि का नहीं है। इसका मुख्य कारण तो यह है कि सभी प्रान्तों में संस्कृत पढ़ी जाती है और संस्कृत पढ़ने के लिये प्रत्येक देवनागरी लिपि में पढ़ना है। साथ में यदि संस्कृत के ग्रन्थों को प्रान्तीय लिपियों में लिख भी लिया गया तो तो भी वे संस्कृत नागरीके परिवर्तित रूप हैं। उन लिपियों का जितना सादृश्य देवनागरीमें है उतना दुनियां की किसी भी लिपि से नहीं। इसी सादृश्य के कारण ही अन्य प्रान्तीय लोग देवनागरी लिपि को बहुत शीघ्र सीख जाते हैं। साक्षरता प्रचार के लिये भी यही लिपि सब से अधिक उपयुक्त है। इतना होते हुए भी रोमन लिपि का सवाल उठाया जा रहा है,यही आश्चर्य है। अभी २ विशाल भारत' के नवम्बर के अङ्क में, 'रोमन लिपि और राष्ट्रपति' एक लेख छापा है। उस में श्री सुभाष बाबू, जो युक्तियां रोमन लिपि के पक्ष में देते हैं। वे छपी हैं उन्हें देखेंगे कि वे कहां तक सही हैं।

एक युक्ति देते हुए वे लिखते हैं-'जो बोलते हैं वह सब लिखा नहीं जाता'-यह जो आक्षेप है उस के सम्बन्ध में तो बात यह है कि अंग्रेजी जबान तो अवैज्ञानिक होने से रोमन लिपि में उसको जैसा कहते हैं वैसा नहीं लिखा जाता। लेकिन यह दोष उस भाषा का है न कि रोमन लिपि का। जर्मनी में यह बात नहीं है वहां तो जैसा बोलते हैं वैसा लिखा भी जाता है। अतः यह स्पष्ट है कि रोमन लिपि राष्ट्र लिपि होने के लायक है।' इस के साथ ही वे कहते हैं 'यह ठीक है कि संस्कृत के लिये कठिनाई उपस्थित होगी, पर जैसे अन्य प्रान्तों में देवनागरी का प्रचार न होने से संस्कृत के अध्ययन के लिये लोग देवनागरी सीखते हैं। ऐसे ही यहां रोमन लिपि के प्रचलित होने पर संस्कृत के अध्ययन के लिये भी लोग देवनागरी लिपि सीख लिया करेंगे। आखिर अब भी जो भारतीय विद्यार्थी युरोप में संस्कृत साहित्य का अध्ययन करने जाते हैं उन्हें भी मजबूर होकर रोमन लिपि में संस्कृत साहित्य का अध्ययन करना पड़ता है।

यदि मान भी लें कि रोमन लिपि में ठीक वैसा ही लिखा जाता है तो देवनागरी लिपि से उसका विशेष गौरव क्या रहा? उसे अपनाना तो तभी श्रेयस्कर होगा जब कि उस में कुछ विशेषता हो। पर मुश्किल तो यह है कि रोमन लिपि में ठीक वैसा नहीं लिखा जाता जैसा बोला जाता है। दूर नहीं जाना होगा, आज कल हिन्दी पाठियों को यह भी नहीं मालूम कि धेनकनाल रियासत का नाम धेनकनाल है या ढेनकनाल है, अथवा धनकनाल, धनके नाल, ढंकानल, धंकनाल है और तिरुवनन्तपुरम् का ठीक नाम त्रिवेन्द्रम है या त्रिवन्द्रम्। इनका कारण यही है कि हमें इन नामों के लिये भी रोमन लिपि पर आश्रित होना पड़ता है। मुम्बई का बाम्बे, मथुरा का मुत्र भी इसी लिपि की कृपा से हुआ है। इन विकृत नामों का अन्त भी तो नहीं है।

तथा च, देवनागरी लिपि में एक उच्चारण के लिये एक व्यञ्जन या स्वर है, पर रोमन लिपि में एक उच्चारण के लिये दो दो व्यञ्जन या स्वर (तीन तक भी) आ जाते हैं। उदाहरणार्थ ख, घ, च, छ, थ, भ, भ आदि व्यञ्जनों के उच्चारण के लिये देवनागरी में तो एक ही व्यञ्जन है पर रोमन लिपि में इन के लिये क्रमशः kh, gh, ch, chh jh, th, dh, bh आदि दो दो व्यञ्जन प्रयुक्त होंगे, जो लिपि की वैज्ञानिकता के लिये बहुत घातक है। और त, ट, ठ, थ, ड, द; ढ, ध, तो रोमन लिपि में इतना घपला हो जाता है कि पढ़ने वाला भी चक्कर में पड़ जाता है। ङ, ञ, ण ख ग, ड़, ढ़, ळ आदि के लिये रोमन में कोई व्यञ्जन नहीं है। यदि रोमन लिपि में इन सब शब्दों के लिये, इन सब शब्दों के नये निशान बनाकर समस्या का हल करना चाहें तो कठिनाई बढ़ जाने के कारण समस्या बजाय सुलझने के और भी उलझ जायगी। और निशान आदि बना देने पर भी छपने की सुविधा तो हल करलेंगे पर लिखने में उनकी कौन पर्वाह करेगा। अब भी रोमन लिपि के घसीटे में लिखे को पढ़ना मुश्किलहो जाता है तब तो निशानों के बढ़ जाने से जो कठिनाई उपस्थित होगी उसकी कल्पना आप स्वयं कर लीजिये। एक और आपत्ति यह है कि इस में हमारी भाषा की दृष्टि से () एक व्यर्थ का अक्षर है, तथा v और w में से एक व्यर्थ है। इस लिये जो यह कहा जाता है कि जैसा बोला जाता है वैसा ही रोमन लिपि में लिखा जाता है तो कम से कम भारतीय भाषाओं और लिपियों की दृष्टि से यह बात अयुक्ति युक्त है।

और हमारा सारा का सारा धार्मिक साहित्य–जिस का वैदिक युग से अब तक जितना भी विकास हुआ है–संस्कृत में है। इसी साहित्य में हमारा जीवन और हमारी संस्कृति रखी हुई है। वह सारा साहित्य तो हम पढ़ें देवनागरी में, और अपनी आधुनिक भाषाका व्यवहार करें रोमन लिपि में। इसका अभिप्राय यह हुआ कि हम अपने दिमागों पर दुगना बोझ लाद दें। इस के अतिरिक्त हम इस साहित्य की लिपि को तभी छोड़ें, जब कि वह साहित्य मर गया हो, उसका हमारे जीवन के साथ कुछ भी सम्बन्ध न रह गयाहो, उसे हमें पढ़ना पढ़ाना भी न हो पर यहां तो ठीक उस से उलटा बात है वह साहित्य मरा नहीं, उसका हमारे जीवन के साथ घनिष्ट सम्बन्ध है, उसका पठन पाठन अब भी जारी है और जब तक दुनियां में आर्य संस्कृति, ब्राह्मण संस्कृति या हिन्दु–संस्कृति नाम की कोई चीज़ रहेगी तब तक उसका पठन पाठन जारी रहेगा। फिर उसका अध्ययन चूंकि विदेशी लोग रोमन लिपि में करते हैं इस लिये हम भी वैसा करें

यह बात कुछ जँचती नहीं है। यह भी देख लीजिये कि उस रोमन लिपि में अध्ययन करने वाले विदेशियों का उच्चारण कितना शुद्ध होता है। भारतीय लोगों के उच्चारण शुद्ध होने का एक बड़ा कारण देवनागरी लिपि का होना है। और जो यह युक्ति दी जाती है कि प्रान्तीय लोगों पर भी तो दो लिपियों का बोझ पड़ता है, यह भी ठीक नहीं क्यों कि प्रान्तीय लिपि प्रायः सभी एक जैसी हैं। प्रान्तीय लोग इस कारण देवनागरी लिपि को बहुत शीघ्र सीख लेते हैं। वे इतनी शीघ्रता पूर्वक सीखते हैं कि हम लोग उतना शीघ्र प्रान्तीय लिपि नहीं सीख पाते फिर प्रान्तीय भाषाओं में संस्कृत साहित्य को तो शुद्धता से लिखा भी जा सकता है।

रोमन लिपि के पक्ष में और जो महत्व पूर्ण युक्ति दी गई है वह केवल अन्तर्राष्ट्रीय एकता की दृष्टि से दी गई है। उस के लिये यही कहा जा सकता है कि घर में तो तेल नहीं है पर मियां मस्जिद में ज़रूर दिया जलाने जायेंगे। अन्तर्राष्ट्रीय एकता का ध्यान उन स्वतन्त्र राष्ट्रों–जापान चीन, रूस, बलगेरिया, जुगोस्लाविया और मुस्लिम देशों को तो नहीं है, यदि उसकी फिकर है तो वह केवल भारत को! कैसा अजब तमाशा है!!

यह कहना कि तीसरी लिपी के आजाने से नागरी–उर्दू का झगड़ा मिट जायेगा। इस की तो बिलकुल ही उम्मीद नहीं है। मद्रास के मुसलमान जिन्होंने जन्म भर शायद उर्दू लिपि देखी भी न होगी, उर्दू लिपि के लिये शोर मचाते हैं तो क्या आप यह उम्मीद करते हैं कि वे रोमन लिपि स्वीकार कर लेंगे? कभी नहीं। फिर ज्यों २ समय बीतता जायेगा, नागरी उर्दू–का तो समझौता हो कर रहेगा, क्यों कि दोनों जातियों–हिन्दू मुसलमानों को आखिर इसी देश में रहना है पर यह 'बन्दर बांट' नहीं सुहाती। फिर इस कल्पित झगड़े के नाम पर हम अपनी वैज्ञानिक लिपि को छोड़ एक अवैज्ञानिक लिपि को क्यों ग्रहण करें? हमारे सामने तुर्कों का उदाहरण पेश किया जाता है, चूंकि उसने रोमन लिपि स्वीकार कर ली है इस लिये हमें भी स्वीकार कर लेनी चाहिये। पर उन तुर्कों की अपनी कोई लिपि नहीं थी। उनके यहां यह उर्दू लिपि या अरबी फारसी लिपि जो भी कहिये एक गुलामी के चिह्न स्वरूप मौजूद थी उसी गुलामी के चिह्न को ही उन्होंने मिटाया। फिर हम पर उस गुलामी की छाप लगना तो हमारे साथ अन्याय करना है।

यदि सुभाष बाबू वस्तुतः ही रोमन लिपि को इतना अधिक उपयोगी समझते हैं तो हम उनसे प्रार्थना करेंगे कि वे बंगाल में इसे प्रचलित करके दिखा दें। फिर यदि यह लिपि वस्तुतः ही अत्यधिक उपयोगी सिद्ध होगी तो फिर इसे अपनाने में कौन आपत्ति करेगा।

पुस्तक समालोचना

राग विज्ञान (३, ४ भाग)

लेखक—श्री विनायक नारायण पटवर्धन। प्रकाशक—प्रबन्धक, गान्धर्व महाविद्यालय, ४१४ शनवार, पूना २ दोनों भागों का मूल्य २॥)

आज कल हिन्दी साहित्य में संगीत साहित्य की अत्यधिक कमी है। ऐसे समय में संगीत सम्बन्धी प्रामाणिक पुस्तक उपस्थित करना एक बहुत बड़े साहस का काम है। श्रीयुत् विनायक नारायण पटवर्धन उत्तर भारत के कुछ गिने चुने संगीतज्ञों में से हैं। महराष्ट्र होते हुए भी उन्होंने हिन्दी में जो संगीत सम्बन्धी ये पुस्तकें प्रस्तुत की हैं इसके लिए हिन्दी भाषी संसार उनके प्रति कृतज्ञ है।

पुस्तक सभी दृष्टियों से सम्पूर्ण है। प्रत्येक राग का वर्ज्यावर्ज्य, जाति, वादी, संवादी, समय, राग का मुख्य अङ्ग, आरोहावरोह, शास्त्रीय परिचय, आलाप और तान आदि देकर प्रत्येक राग को अच्छी प्रकार स्पष्ट कर दिया है। इस प्रकार का वर्णन अभी तक किसी भी हिन्दी की संगीत की पुस्तक में नहीं आया।

चतुर्थ भाग की भूमिका में जो कुछ उन्होंने लिखा है उससे हम अक्षरशः सहमत हैं। विशेषतः हम पाठकों का ध्यान स्वर लेखन की ओर आकृष्ट करेंगे। आज कल उत्तर भारतीय संगीत को लिखने की जटिल समस्या उपस्थित है। सभी लोग अपनी २ डफली अपना २ राग के अनुसार नूतनतम अपूर्ण और अवैज्ञानिक स्वर लेखन पद्धतियों का आविष्कार कर रहे हैं जो कि संगीत को नुकसान पहुँचाने वाली वस्तु है। हमारा पाठकों से अनुरोध है कि वे इस स्वर लेखन के विषय में सोचें और एक निश्चित पद्धति स्थिर करने का प्रयत्न करें।

अन्त में हम इस ग्रन्थ को अधिकाधिक संख्या में अपनाने के लिए पाठकों से पुरज़ोर अपील करेंगे।

—'श्री भिक्षु'

१. अन्तिम पाठ और २. तीरन्दाज़

ले०–गिजुभाई प्रकाशक–पुस्तक भण्डार, लहेरिया सराय।

दोनों पुस्तकों के लेखक गुजराती बाल साहित्य के यशस्वी लेखक आचार्य गिजूभाई हैं। दोनों ही पुस्तकों का अनुवाद भी सुन्दर हुआ है।

प्रथम पुस्तक में लेखक ने जिन आदर्श शिक्षकों की की कल्पना की है वस्तुतः उन्हीं आदर्श शिक्षकों की भारत को आज आवश्यकता है, जो भारत की नवीन सन्तति में शुद्ध देशभक्ति के भाव भर सकें। तीनों ही कहानियों में आदर्श शिक्षकों का सफल चित्रण किया है। लेखक स्वयं केवल इस प्रकार के आदर्श ही रखते हों यह बात नहीं, वे वर्षों से गुजरात की दक्षिणामूर्ति बालमन्दिर संस्था में बैठे इस प्रकार के शिक्षकों को पैदा करने की तपस्या कर रहे हैं।

दोनों ही पुस्तकों में लेखक उन बालकों के हृदय में घुस कर ठूंस २ कर देश भक्ति के भाव भर देना चाहता है। हम भी प्रभू से इस काम के लिए सफलता चाहते हैं।

प्रथम पुस्तिका का मूल्य तीन आने और द्वितीय पुस्तिका का मूल्य दो आने है।

—'श्री भि'

एक अमिट स्मृति

(ले० भारत मन्त्री स्व. श्री रैम्जे मैकडानेल्ड)

गुरुकुल

गुलाब और चमेली के पुष्पों से सुवासित मार्गों से भोजनालय और पुष्पवाटिकाओं में से होकर, गुरुकुल पहुंचते हैं। चारों ओर क्रीड़ाक्षेत्र हैं। मध्य में वर्गाकार शयनागार (छात्रावास) स्थित है सिंहद्वार (प्रवेशद्वार) पर वेदों के सनातन सूत्र, पवित्र "ओ३म्" नाम से अङ्कित ध्वजा फहराती है। संप्रति यहां ३०० बालक शिक्षा पा रहे हैं। प्रवेश के समय इनकी उमर अनिवार्यतः ६—१० वर्ष के अन्दर होनी चाहिए। पचीस वर्ष की आयु तक उन्हें यहां रहना होता है। उन्हें मुन्शीराम जी—जो कि अब "महात्मा जी" इस उपपद से प्रसिद्ध हैं—के न्यायोचित संरक्षण में छोड़ दिया जाता है। वह उनके पिता हैं और ये उनके सन्तान। चार बजे प्रातः वे अपनी कठोर चौड़ के तख्तों की शय्या छोड़ कर उठ बैठते हैं, व्यायाम करते हैं और शीतल जल में स्नान करते हैं। अब प्राभातिक संध्या (प्रार्थना) होती है उष्ण ऋतु में नंगे सिर और नंगे पांव चलते हैं।

"संभव है उन्हें संयोग वश कभी कठोर जीवन व्यतीत करना पड़े, अतः हमें उनको इसके लिये अभ्यास कराना चाहिये"—महात्मा जी ने सम्बोधित करते हुए मुझे कहा। पीताम्बर शिक्षणालय की मुद्रा (Badge) है। यहां रहते हुए विद्यार्थी, कभी ही अपने माता-पिता को देख पाते हैं। परन्तु यहां विद्यालय-भूमि में प्रतिवर्ष एक बड़ा मेला (उत्सव) भरता है। सहस्रों की संख्या में जनता आती है। माता-पिता इसमें सम्मिलित होते हैं। विशेष झोंपड़ियां तैयार की जाती हैं। प्राचीन अँगरेज़ी मेलों की-सी भीड़ एकत्र होती है। दीर्घावकाश में बालकों को उनके अध्यापक भारतभूमि के प्रसिद्ध स्थानों में ले जाते हैं। इन यात्राओं में वे काश्मीर तक भी हो आये हैं।

शासक-वर्ग के मानस और दृष्टि के लिए, यह सब एक अशान्ति-जनक समस्या है। कार्यकर्त्ताओं और अध्यापकों में कोई अँगरेज़ नहीं; अंगरेज़ी शिक्षा का माध्यम नहीं, पंजाब-विश्वविद्यालय द्वारा भारतीयों की उच्च शिक्षा के मूल स्तम्भ के तौर पर निर्दिष्ट अंगरेज़ी-साहित्य की पाठ्य पुस्तकें यहां प्रयुक्त नहीं होती; विद्यार्थी सरकारी विश्वविद्यालयों की परीक्षा में नहीं भेजे जाते; महाविद्यालय अपनी ही पदवियां देता है। यथार्थतः यह कानून भङ्ग है। आश्चर्य से स्तब्ध अधिकारियों का इसे एक ही सांस में राजद्रोह कहना अनिवार्य था, परन्तु उसे गुरुकुल पर अन्तिम निर्णय कदापि नहीं कह सकते। सन् १८३५ में मैकाले ने सरकारी पत्र में अपने विचार प्रस्तुत किए थे तब से भारतीय शिक्षा के सम्बन्ध में किये गये प्रयत्नों में यह सब से अधिक महत्त्वपूर्ण है। उन विचारों से भारत में प्रत्येक असन्तुष्ट है; परन्तु जहां तक मैं जान पाया हूं, गुरुकुल के प्रवर्तकों के अतिरिक्त अन्य किसी ने भी, अपने असन्तोष को नवीन प्रयोग के रूप में परिणत नहीं किया है।

हमारा प्रभावोत्पादक स्वागत

एक उन्नत काय दर्शनीय मूर्ति—मोहक आभा और हाव-भाव की प्रतिमा—हमसे भेंट करने आती है। आधुनिक सम्प्रदाय का कलाकार ईसा की प्रतिकृति घड़ने के लिए आदर्श के रूप में इसका स्वागत करता, और मध्यकालिक रुचि का चित्रकार इसमें सन्त पीटर का रूप देखता है। महात्मा जी हमें नमस्कार करते हैं; और हम उनके अभ्रकजटित "ओ३म्" नाम से अलंकृत, सादी साज सज्जा वाले कमरे में प्रवेश करते हैं। मुझे दिए गए कमरे में, शुभ्र वस्त्र से ढकी मेज़ पर उज्वल वर्ण की पत्तियों से मिश्रित, लाल फूलों से भरे, दो पुष्पपात्र (गुलदान) रखे हुए हैं। किसी अतिथि को कभी इससे अधिक मनोहर कोठरी नहीं मिली! एक सेवक हमारे हाथों पर पानी डालता है, और एक अंगोछा देता है। जूते बाहर उतार कर हम एक कमरे में प्रवेश करते हैं, जहां भोजन परोसा गया है। महात्मा जी भोजन से पूर्व प्रार्थना करते हैं; हमारा मस्तक नत हो जाता है। मैंने अनेक प्रार्थनाएँ सुनी हैं; पर ऐसी गम्भीर कभी न सुनी थी! हमारे यजमान की संस्कृतस्वरों पर तूल देती हुई, घन-गम्भीर वाणी, पाप शुद्धि के आभार-सम्बन्धी संगीत का पूरा पूरा अनुकरण कर रही है।

भोजन समाप्त होता है, और हम शिक्षणालय की परिक्रमा करने निकलते हैं। सर्वत्र सुव्यवस्था और प्रसन्नता है। उज्ज्वल, चमकीले नयनों वाले बाल बटु और प्रशान्त मुद्रावाले बड़े कुमार, कहीं मिट्टी में खिलौने बनाते हुए, कहीं मिल कर अपना पाठ दुहराते हुए, कहीं श्लोक पाठ करते हुए और अपने गुरुओं के व्याख्यान सुनते हुए— क्योंकि गुरुकुल में व्याख्यान द्वारा ही अधिकतर अध्यापन होता है— श्रेणियों में बैठे हैं। विद्यालय समाप्त होते ही तुरन्त ही ब्रह्मचारियों का, बड़ी उमंग से क्रीड़ाक्षेत्र की ओर धावा प्रारम्भ होता है। प्रत्येक छात्र गुज़रता हुआ अपने आचार्य के पांवों में पड़कर और अञ्जलिबद्ध हाथों को उठाकर अभिवादन करता है।

दुपहर ढल जाने पर हम वन में भ्रमणार्थ जाते हैं। महात्मा जी हम से सुनी गई बातों की चर्चा करते जाते हैं। वह परिधान, अंगों का वह घटन, वह चाल-ढाल, वह लम्बा दण्ड— किशोरावस्था में प्रति रविवार को प्रार्थनालय के द्वार पर देखे हुए— गेलिलि के भ्रमण के दृश्यों की साश्चर्य स्मृति कराते हैं। एक मैं ही—अपने अंग्रेज़ी वेश में—मण्डली और उसके अभिनयों में उपहास्यास्पद हो रहा हूं। प्रतीची दिशा, अस्तोन्मुख सूर्य के प्रभा-मण्डल से झलमला रही है। अर्धचन्द्र कब से ऊंचे, सिर पर आकर, म्लान, रजतवर्ण-चन्द्रिका छिटका रहा है। रात्रि का पतन तथा उसके साथ लम्बी

वनस्पतियां भी मौन धारण कर रही हैं। कम्पित वस्तुओं का मर्मर-रव स्पष्ट सुन पड़ता है। शीत हमारे ऊपर उतर रहा है। गुरुकुल अन्धकार में मग्न है। परन्तु छात्रावास के मध्य भाग में जलने वाली अग्निशिखाएं आश्रम के द्वारों में से दिखाई दे रही हैं! आंगन मन्त्रोच्चारण के शब्द से परिपूर्ण हो रहा है। घास पर चटाइयां बिछा कर बुद्ध की प्रतिमा-सी छोटी छोटी शुभ्र मूर्तियाँ बैठी हैं। उनमें गति नहीं है। वे हमारी ओर दृष्टि भी नहीं उठाते। उनकी सामूहिक प्रार्थना (संध्या) समाप्त हो चुकी है। अब वे अलग-अलग एकाग्रचित्त होकर ध्यान में मग्न हैं।

अन्दर फर्श में स्थित एक कुण्ड में अग्नि प्रज्वलित है। चारों ओर अध्यापक वृन्द और छात्र मण्डल बैठा है। वे अपने एक प्राचीन धर्म कार्य—अग्निहोत्र—का अनुष्ठान कर रहे हैं। ज्वाला के हलके प्रकाश में, अपने संमुख रखे हुए एक पात्र में चम्मच डुबाते हुए और अग्नि में कुछ डालते हुए अधिष्ठाता को हम निहारते हैं। सहसा लौ ऊपर उठती है। एक स्वर से कोमल वाणियां पुकारने लगती हैं—"सर्वज्ञ, ज्ञान के दाता, ज्योतियों के ज्योति, परमेश्वर को हम आत्मार्पण करते हैं।" अब कुछ काल विराम होता। ज्वाला नीचे उतरने लगती है। इतने में एक दूसरी आहुति डाली जाती है। ज्वाला पुनः लपक उठती है। कमरों की भित्तियों और छतों पर पीली आभा छा जाती है और प्रहसन के नृत्यों के से दृश्य, अंकित हो जाते हैं। पुनः तोतली बोलियां पुकारती हैं—"हे प्रभो, हम तुझे आत्मदान करते हैं, जो तू एक में रम रहा है।" इसी प्रकार क्रमशः विराम, प्रकाश और मंत्रपाठ होता है। अन्त में यज्ञ समाप्त होता है, अग्नि शान्त हो जाती है। गुरुकुल के आंगन को प्रकाशित करने के लिये अब एकमात्र तारे रह गए!

एक बार फिर हम अपने हाथ बाहर निकालते हैं नौकर उन पर पानी डालता है, जूते उतार कर हम उन्मुक्त पवन में, सायंकालिक भोजन के लिए, चटाइयों पर बैठते हैं। हमारे चरणों में गंगा आह्लादकारी कलकल करती हुई, पत्थरों में से होकर वेग से बह रही है। ऊंची २ घासों की ऊनी शिखाएं चन्द्र-ज्योत्स्ना को झेल रही हैं। वन-भूमि ओस से व्याप्त हुई सी झनझना रही है। दूर बहुत दूर से आते हुए, अस्फुट वन्य शब्द, भूतों और पथभ्रष्ट आत्माओं का भान कराते हैं। मानों स्वप्न में मैं किसी को कहते सुनता हूं—"हमें और कुछ न चाहिए। हमें शान्ति से प्रभु का भजन करने दो।" क्या यह राजद्रोह है?

उत्सव—सूचना

कन्या गुरुकुल महाविद्यालय देहरादून का ११ वां वार्षिकोत्सव बड़े दिनों की छुट्टियों में ता० २४, २५, २६ तथा २७ दिसम्बर १९३८, तदनुसार १०, ११, १२ तथा १३ पौष १९९५ वि० शनि, रवि, सोम, तथा मंगलवार को मनाया जाना निश्चित हुआ है, जिसमें आर्यसमाज के सन्यासी धुरन्धर विद्वान्, विदुषी देवियां तथा अन्य महानुभाव पधार कर उत्सव की शोभा बढ़ायेंगे। सरस्वती सम्मेलन तथा अन्य सम्मेलनों की अतिशय मनोरञ्जक विविध बैठकें होंगी। दीक्षान्त संस्कार के अवसर पर श्रीमती पूज्या कस्तूरी 'बा' गान्धी प्रधान पद को सुशोभित करेंगी और स्वदेशी शिल्प प्रदर्शनी का उद्घाटन भी अपने कर कमलों से करेंगी। नवीन कन्याओं का चुनाव ता० २३ दिसम्बर को होगा। अतः जो महानुभाव अपनी कन्याओं को प्रविष्ट कराने के इच्छुक हों उनसे निवेदन है कि कार्यालय कन्या गुरुकुल से प्रवेश फार्म शीघ्र मंगालें और भर कर भेज दें, ताकि उन पर शीघ्र विचार किया जा सके।

निवेदक :—
विद्यावती सेठ
आचार्या।
कन्या गुरुकुल देहरादून।

'माँ तू क्यों इतना रोई'

[यह कविता पुरानी भूमि की सूखी हुई गङ्गा की धारा को देखकर लिखी गई है। —

(१)

मां तेरा वह स्तन्य विमल,
कितना मीठा, स्नेह सरल,
पीते नहीं अघाते थे,
सूख गया वह गङ्गाजल।
हमें रुलाने को ही मां
तू रोई, इतना रोई
रो न सकेगा फिर कोई।
मां तू क्यों इतना रोई।

(२)

धूल भरे हम आते थे,
प्यार तुम्हारा पाते थे,
आंखों से मिलनाश्रु निकल,
मां हमको नहलाते थे,
हृदय उमड़ता था तेरा,
क्या उमड़ेगा फिर कोई।
मां तू क्यों इतना रोई।

(३)

मां तेरा जर्जर तन है,
खोया स्नेह अतुल धन है,
रोते हैं, हम रोते हैं,
रोना यह बालकपन है,
उस अतीत के अन्तर में—
तू खोई मां क्यों खोई,
ढूंढ सकेगा क्या कोई।
मां तू क्यों इतना रोई।

—'श्री सूर्यकुमार'

नन्दनवन

[श्री ब्रह्मदत्त जी]

था वह नन्दनवन, देवताओं का आराम—

प्रकृति के सर्वाङ्गसुन्दर अञ्चल में सजा हुआ। संसार भर का प्राकृतिक सौन्दर्य प्रविश्रुत सा उस भोले से वन में रहता था- जहां था शान्ति का राज्य तथा भोलेपन और सचाई का एकाधिपत्य।

उषा की सिन्दूरी अरुणिमा के साथ साथ उसमें रंग बिरंगी सुन्दरता आ जाती थी, छोटे-छोटे कोमल-कोमल फूलों की पंखड़ियां मुस्करा उठतीं थीं उन्नत भाल हिमाचल के अञ्चल और पुण्यतोया भागीरथी के पुनीत पुलिन से आने वाली शीतल और सुरभिमयी वायु से पवित्रता अनुप्राणित होती थी।

उषा की उस सिन्दूरी लाली से प्रकृति अपना सर्वाङ्गसुन्दर निखार करती थी- अपनी मांग में सिन्दूर लगाती, माथे पर बिन्दी टेकती, रंगबिरंगे फूलों को अपने केशों में गूंथती और सुगन्धित फूलों के गजरे पहन कर सजती। और उसके बाद स्वच्छ जलों के दर्पण में उसको प्रतिकृति कितनी सुन्दर लगती थी। इस सुन्दरता को देख कर फलों से लदे हुए पेड़ों पर बैठे पक्षी एक साथ ज़ोर से चहचहाने लगते थे। और इस प्रकार वह सुन्दर कानन मानों सजीव सा हो उठता था।

अहा! कितना सौन्दर्य था उसमें, कितना रस और कितना माधुर्य।

उस सुनहली उषा को शाद्वल प्रदेश अपनी मोतियों की नक्षत्रावली भेंट करते थे- और उस मोतियों के नौलखे हार में कितनी साध छिपी होती थी, कितना अनुराग टपकता था। इस नौलखे हार को पाकर प्रकृति मानों नव वधू की लज्जा से लाल गुलाबी सी हो उठती था। तब विस्मित से— मुग्ध से फूलों की पंखड़ियां शिथिल- सी टपक पड़ती थीं- और वह सब कुछ जैसे खिलखिलाकर हँस उठता था।

भगवान मरीचिमाली आते और यह देख कर मुस्करा उठते- चारों ओर लाली फैल जाती। धीरे धीरे वे अपने लम्बे रास्ते पर चल पड़ते द्रुतगति से- खोजते से हुए उस प्रकृति सुन्दरी को। नितान्त श्रम से उनकी गर्मी बढ़ती जाती, माथे पर स्वेद की बूंदे चमकने लगतीं- पर वह न मिलती। वे और द्रुतगति से दौड़ते उसे ढूंढते हुए— और धीमे धीमे दबेपांव उस पवित्र वनभूमि में उतर पड़ते उसे पाने की आशा से- और तब उस प्रकृति सुन्दरी के कपोल लज्जा से लाल हो उठते।

सिन्दूरी सांझ उन दोनों को अपनी गोद में लेलेती और रजनी के गर्भ में वे छिपा जाते। रजनी हंस उठती उनकी इस लीला को देख कर, उसके शुभ्र दांत चमक उठते और हंसी से वह सब कुछ आलोकित हो उठता— चांदनी छिटक जाती। कितनी शान्ति से सब कुछ तब इस लीला पर विचार करते।

उस वनभूमि के इस अपूर्व प्रताप को देखकर तारे उस वनभूमि की घास में आकर लोटने लगते और फिर वही सब कुछ।

कितनी मोहक सुन्दरता थी वह— कितनी अनुराग भरी कहानी।

और इस सब कुछ का अपूर्व आनन्द लेती हुई पुण्यतोया मन्दाकिनी हंसती हुई चली जाती अनन्त की ओर-- उनकी लहरें इस लीला को देख कर इस का अभ्यास करतीं, खेलतीं, कूदतीं, उछलतीं और शोर मचातीं।

और इसी अपूर्व मोहकता में सोता था वह शान्तिमय उपवन।

× × ×

इस नन्दनवाटिका की रमणीकता में देवताओं की आत्मा अनुप्राणित होती थी, सद्गुणों की प्रतिमाएं पलती थीं और-- और-- और-- न जाने क्या क्या--

× × ×

पागल ही तो थे वे सब।

[उषः कालीन] भगवान् मरीचिमाली की तेजोमयी किरणें उनमें तेज भरती थीं- हिमालय से आने वाली ठण्डी हवाएं उनमें तपस्या की भावना फूंकती थीं- पुण्यतोया भागीरथी की मन्द पयोमयी हवाएं उनमें प्राण अनुप्राणित करती थीं- तथा गहन वनों में से आने वाला सुरभिमय समीर उनमें रस और अनुराग की कोमल भावनायें भरता था।

× × ×

उन सब का था एक बाबा— लम्बा तड़ंगा, भव्याकृति और उन्नत विचारों वाला।

× × ×

विश्वामित्र के द्वितीय संसार का स्वर्ग था वहाँ। और इस स्वर्ग में था एक कल्पवृक्ष- किसी के विजन में बहाये हुए आँसुओं से सींचा हुआ। दुःख के प्रबल प्रवाह में था वह एक पवित्र अवरोध। चिन्तामय हृदय के लिये सहानुभूति पूर्ण आश्वासन, संसार को बहला देने वाले विचारों का भण्डार, कोमल से कोमल भावनाओं का घर और भयङ्कर से भयङ्कर तूफानों का जन्मदाता।

हाथ फैला कर वह पुनीत मन्दार छोटे और बड़ों को अपने सुमेध्य अजस्र आशीर्वाद देता था।

पुनीत आंसुओं से सिंचा वाले उस मन्दार से पुनीततोया भागरथी पवित्रता का पाठ पढ़ती थी और अजस्र आशीर्वाद ग्रहण करती थी।

इस सब कुछ से सजे स्वर्ग की रमणीयता कितनी मोहक थी-आकर्षक थी- आदर्श थी- और थी सत्पथ की प्रतीक।

और और और—

× × ×

बहुत दिनों बाद—

वह नन्दनवन उजड़ गया था। प्रकृति और भगवान् मरीचिमाली की वह लीला अब भी होती थी, वही सिन्दूरी उषा और सन्ध्या अब भी आती थीं, रंग-

चिरंगे फूल अब भी खिलते थे, मन्दाकिनी अब भी अपनी उसी गति में बहती थी— पर अब उस पवित्र वन की आत्मा कहीं खो गई थी। इसी लिये इस सब कुछ के होते हुए भी प्रकृति अपने उस निखरे सौन्दर्य में प्रकट नहीं होती थी, फूलों में वह मुस्कान नहीं रह गयी थी रजनी अब अपना शुभ्र हास नहीं दिखाती थी और नाहीं अब तारे सुसज्जित नक्षत्रावली ही पहनाते थे इस नन्दनवन को।

आह! अब वह पवित्र नन्दनवन अब एक दुःखान्त कहानी रह गई थी।

और रात को देवों की मौन गोष्ठी में भरे हुए दिलों के मूक क्रन्दन से वह दुःखी नन्दनवन विकल हो उठता था। और उषा के उदय के समय धरा पर उन दुःखी देवों के आंसुओं से शाद्वल प्रदेश भर जाते थे।

फिर फिर—
बहुत दिनों बाद
आज उस स्वर्ग के खंडहर होगये हैं।

आशीर्वाद का प्रतीक—दिव्यात्मा का अन्तिम चिन्ह वह पवित्र कल्पवृक्ष आज क्रूरहृदया मन्दाकिनी के निष्ठुर प्रवाह में बह गया है—

आह! उस पुनीत मन्दार से पवित्रता का पाठ पढ़ने वाली अधम मन्दाकिनी आज उसे ही निगल गई है।

ओ, लेखनी, रुक जा—रुक जा
ओ फैले हुए निष्ठुर आकाश तू जम जा
ओ प्रकृति, तू अपने सिंगार को नीचे डाल
ओ नन्दनवन के अवशेष, तू जल जा
ओ प्रचण्डदीप्तिनि आदित्य, तू समुद्र के अगाध जल में सदा के लिये डूब जा—

—आज वह नन्दनवन उजड़ गया है
—वह पुनीत मन्दार धराशायी हो गया है।

(पृष्ठ ९ का शेष)

करना है तो इस पर करो। ऐसी बहुत सी घटनाएं हैं जिनमें मर्द मैदान बन कर मेरे स्वामी ने धर्मपरायणता का परिचय दिया। आपका नाहीं कोई सम्बन्धी और नाही शक्ति विमुख कर सकते थे। राष्ट्रनायकों की नक्षत्रमाला में स्वामी जी एक चमकते हुए प्रमुख सितारे हैं। सफलता उनके साथ स्वाभाविक विद्यमान थी। अपनी सब सम्पत्ति आर्य समाज को अर्पण कर आर्य समाज अपनी प्रगति के लिए बहुत कुछ इन स्वामी जी महाराज के ही अनथक यत्न और घोर परिश्रम का ऋणी है। प्राचीन शिक्षा प्रणाली के पुनर्जीवन के उद्देश्य को सामने रख कर स्वामी जी ने गंगा तट पर गुरुकुल स्थापित किया था जो कि आपके जीवन के पवित्र आदर्शों के लिए विद्यमान उनकी गहरी भक्ति और सेवा का जीता जागता चिन्ह विद्यमान है। दलित जातियों का और अछूत कहे जाने वालों का पक्ष भी उन्हें बहुत प्रिय था जिनके लिये उन्होंने कोई भी कष्ट सहन करने में संकोच नहीं किया। इसके अतिरिक्त हिन्दु मुस्लिम मिलाप के लिए उन्होंने अपना सबकुछ लगा दिया था। जब आप रोग शय्या पर पड़े थे तो एक कायर मुस्लिम कातिल ने उन्हें शहादत का जाम पिलाया। इस प्रकार यह वीर रणक्षेत्र में लड़ता हुआ शहीद हुआ। आज उनकी पवित्र स्मृति में जब हम उत्सव मना रहे हैं तब उन गुणों का चिन्तन करके अपने जीवन में उन गुणों को धारण करने का प्रयत्न करना चाहिये।

* ओ३म् *

"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत"

Reg. No. A. 2927

गुरुकुल

सम्पादक—साहित्यरत्न पं० हरिवंश वेदालङ्कार

एक प्रति का मूल्य -)   [गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख-पत्र]   वार्षिक मूल्य २॥)

वर्ष ३]   गुरुकुल काङ्गड़ी, शुक्रवार १६ पौष १९९५; ३० दिसम्बर १९३८   [संख्या ३२

काल रूपी घोड़े की सवारी

[लेखक—श्री प्रो० लालचन्द जी एम्. ए. उपाचार्य]

वेद में काल रूपी घोड़े का बहुत सुन्दर वर्णन आता है। वह बहुत बली है, बहुत तेज़ है, इसको सवारी करना आसान काम नहीं है, पर जो इस पर सवार हो जाते हैं, वे जल्दी ही लक्ष्य पर पहुंच जाते हैं। हमारे पूर्वजों की एक बहुत सुन्दर प्रार्थना है।

"असतो मा सद् गमय,
तमसो मा ज्योतिर्गमय।
मृत्योर्मा अमृतं गमय" ॥ऋक्॥

हे प्रभु, मुझे असत् से सत् की ओर ले चल। अज्ञान से ज्ञान की ओर ले चल, मृत्यु से अमृत की ओर ले चल।

हम जहां हैं, वह बेबसी की हालत है अज्ञान की हालत है मृत्यु की हालत है, हमारे अन्दर जो छिपी हुई तीव्र इच्छा है वह सामर्थ्य, ज्ञान, अमृत पाने की है। हम मनुष्य से देव बनना चाहते हैं। इस लक्ष्य पर पहुंचने के लिये कालरूपी घोड़ा है, पर वेद में लिखा है इस महाबली घोड़े पर केवल कवि और विपश्चित् ही सवार हो सकते हैं। कवि और विपश्चित् बहुत महत्त्वपूर्ण शब्द हैं। जिसने इनका सार समझ लिया और उसे अपने अन्दर घटा लिया, वह तर गया। वह लक्ष्य पर पहुंच गया, वह कृतकृत्य होगया। इन दो महत्वपूर्ण शब्दों में क्या २ भाव छिपा है वह मुझे निम्न प्रकार मालूम होता है:—

कवि	विपश्चित्
कालदर्शी,	विशेष देखने वाला।
एकता को देखनेवाला,	अनेकता को देखनेवाला।
परा विद्या का वेत्ता,	अपरा विद्या का वेत्ता।
योग का जाननेवाला,	सांख्य का जाननेवाला।
त्रिकालदर्शी,	वर्तमान को जाननेवाला।
अदृश्य संसार को देखनेवाला,	दृश्य संसार को देखनेवाला,

पूर्व में कवि बहुत हुए हैं, पश्चिम में विपश्चित बहुत हुए हैं, पूर्व में मस्त योगी ब्रह्म में लीन, संसार को माया कह कर इससे अलग रहने वाले बहुत हुए हैं। पश्चिम में विपश्चित, इस संसार को वास्तविक जानकर उसकी छान बीन करके विविध विज्ञानों के विशेषज्ञ पैदा हुए हैं। पर धीर वह है जो दोनों को जाने, एक ओर झुक जाना आसान है, बीच में रहना कठिन है पर पूर्णता समता में है। हमें कवि तो होना ही है पर साथ में विपश्चित भी होना है। 'योगस्थः कुरु कर्माणि'। योग में "स्कम्भ" में स्थित हो कर विशेष तौर से अपनी वर्तमान स्थिति को देखकर कर्म करो। कवि तो अदृश्य संसार को अन्दर के ज्ञान के नेत्र से देखता है। विपश्चित संसार को गौर से, ध्यान से, विशेष ध्यान से देखता है। वैसे तो सभी देखते हैं पर जो विविध संसार को विशेष ध्यान से देखता है। वह विपश्चित है, वह वैज्ञानिक है, और जो इस दृश्य संसार में अदृश्य ब्रह्म को देखता है जो मनकों में सूत्र को देखता है वह कवि है।

काल की सवारी करना ज़रा टेढ़ी खीर है। कोई बड़ा शूर वीर ही इसकी सवारी कर सकता है। पर जो भाग्यवान इस पर सवार हो जाता है वह अमर हो जाता है। जीवन का असली रस लेता है। वह संसार की सैर करता है और सब भुवनों को आनन्द से देखता हुआ विचरता है।

सूचना—ग्राहकों से निवेदन है कि पिछले अंक श्रद्धानन्दांक की संख्या ३०, ३१ थी। प्रस्तुत अंक ३२ वां है।

मौनकालिक अनुभव

(ले० श्री प० ब्रह्मानन्द जी)

[मैं इस सन्देह में पड़ा हुआ हूँ कि इन मौनकालिक अनुभवों का प्रकाशित करूँ या नहीं ? प्रकाशित करने से अपनी साधना में क्षति होती है, ऐसा साधकों का विचार है। पर मेरे विचार में यदि यह प्रकाशन शुद्ध परोपकार की मनोवृत्ति से किया जाय, या ईश्वरार्पण-बुद्धि से किया जाय, तब कोई दोष नहीं है।

शुद्ध प्रेम जनित प्रेरणा मुझे ईश्वरीय प्रेरणा ही प्रतीत होती है। क्या यह प्रेम अज्ञान मूलक है ? हर्गिज नहीं, यदि वह निःस्वार्थ है तो कैसे अज्ञान मूलक हो सकता है ? जो कुछ हो, पर कभी २ ऐसी स्थिति आजाती है, जहां मेरे शुद्ध हृदय से उद्भूत विचार, समस्त बौद्धिक तर्कों को अलग कर मुझे किसी कार्य को करने के लिये बाध्य कर देते हैं। मैं उस स्थिति को ईश्वरीय प्रेरणा समझता हूं और भगवदर्पण बुद्धि से कर्म किया करता हूं। यह लेख मैं जो लिख रहा हूं वह ईश्वरार्पण बुद्धि से, या ईश्वरीय यन्त्र के रूप में वर्तमान मुझ द्वारा यह कर्म हो रहा है, ऐसा समझ कर ही लिखता हूँ। लेखक]

आज मौन के समय मैंने अपने को इस ब्रह्माण्ड रूपी समुद्र के एक तरङ्ग के रूप में अनुभव किया। और ऐसी प्रतीत हुई कि मेरी कोई स्वतन्त्र सत्ता नहीं है, अपितु विश्वात्मा के कार्यों का मैं एक तुच्छ यन्त्र मात्र हूं, तथा अपने को इसी स्थिति में समझना यथार्थ ज्ञान होगा। और इस विशाल विश्व के अन्दर एक बालुका-कण के सदृश अपने को अनुभव करने से अपने व्यक्तित्व के अहङ्कार में कुछ कमी होती हुई सी जान पड़ी। मौन से पूर्व तो ऐसा लगता है कि इस मौन से मुझे क्या लाभ होगा ? इससे तो निष्क्रियता के द्वारा हमारे अन्दर तमोगुण का सञ्चार होगा, पर जब मैं मौनावलम्बन करता हूँ तब ऐसा लगता है कि अपने तुच्छ व्यक्तित्व की स्वल्प शक्ति का परित्याग कर विश्वात्मा की अनन्त शक्ति के साथ तादात्म्य प्राप्त कर रहा हूं। तब आश्चर्य होता है कि मैं पहले कितने गहरे अज्ञान में था कि अपने व्यक्तित्व की सीमा से घिर कर उसी की शक्ति का बहुत बड़ी शक्ति समझ रहा था, और उसके चारों ओर बहते हुए अनन्त शक्ति के सागर का, जिस का मैं एक बिन्दु मात्र हूँ, अनुभव नहीं कर रहा था। और यह न समझ कर कि मैं इस अनन्त शक्ति का एक तुच्छ अंश मात्र हूँ, अपने को ही समस्त शक्तियों का केन्द्र समझ रहा था। । मैं तो शक्तिशाली तभी हो सकता हूँ जब कि उस अनन्त शक्ति के साथ अपने तादात्म्य का अनुभव करूँ।

पहले मैं समझता था कि जब मैं बोलता हूँ तब मुझे अपने शब्द सुनाई पड़ते हैं, और जब दूसरा बोलता है तब उसके शब्द सुनाई पड़ते हैं, और जब कोई कार्य करता हूं तब उस कार्य के विचारों से मेरा मन व्याप्त रहता है। जब तक क्रिया होती है तभी तक मुझमें शक्ति भी है, मौन होना तो अपने को शक्तिहीनता की ओर ले जाना है। पर मौन का अवलम्बन करने पर ऐसी अनुभूति हुई कि जब हम अपनी शक्ति से कार्य करना छोड़ देते हैं तब हमारे शरीर, मन और आत्मा को विश्वव्यापिनी अनन्तशक्ति अपने कार्यों का यन्त्र बना लेती है, और यदि हम स्वेच्छया अपने को विश्वात्मा की शक्ति का यन्त्र बन जाने दें, तब तो हम अनन्त शक्ति के भण्डार बन जावेंगे। जब हम इस बात को नहीं समझते तो भी उनके यन्त्र ही रहते हैं, पर इस बात को न समझने से अपने अन्दर शक्ति नहीं आती। लेकिन जब हम इस बात को समझते हैं तब उस अनन्त शक्ति के साथ अपने तादात्म्य का अनुभव करने से स्वयं अनन्त शक्ति के भण्डार बन जाते हैं।

भगवान को पूर्णतया आत्मसमर्पण करने की भावना से मौन करना चाहिये। भावना यह होनी चाहिये कि हम अपने शरीर, मन और आत्मा को भगवान् को पूर्णतया समर्पण कर रहे हैं। जब तक इस भावना से मौन न किया जावे तब तक पूर्ण-दृढ़ता पूर्वक मौन नहीं होता। क्योंकि मनुष्य अपने स्वार्थों का त्याग तभी कर सकता है जब उसे किसी बहुत उच्च वस्तु की प्राप्ति की आशा हो। लेकिन काम करते समय तो फल की आशा को अपने मन में नहीं आने देना चाहिये, क्योंकि इससे मन चञ्चल होता है, और व्यक्ति अपने कर्म को पूर्णतया नहीं करने पाता। अतः मौन के समय तो सिर्फ अपने प्रयत्न शैथिल्य की ही ओर ध्यान रहना चाहिये, उस समय तो भगवान् को आत्मसमर्पण करने की भावना भी अपने मन में न रखनी चाहिये, ऐसा होने पर ही तो पूर्णतया आत्मसमर्पण होगा। लेकिन ज़बरदस्ती, बहुत वेग से किसी भी विचार को रोकने का यत्न नहीं करना चाहिये। सभी विचारों को सिर्फ आध्यात्मिक सङ्कल्प के द्वारा ही रोकने का प्रयत्न करना चाहिये। तिस पर भी जो विचार आवें, उन्हें हठात् नहीं रोकना चाहिये, अर्थात् हमें सभी विचारों को रोकने के लिये सिर्फ अपनी आध्यात्मिक सङ्कल्प शक्ति (जिसमें मानसिक या शारीरिक क्रिया न रहे,) को काम में लाना चाहिए। इस प्रकार हम क्रमश मौन की पूर्णता तक पहुंच सकते हैं, और भगवान् को पूर्णरूपेण आत्मसमर्पण कर सकते हैं।

भगवान् को आत्मसमर्पण करने से भोगेच्छायें कम होती हैं, क्योंकि यह विचार उत्पन्न होता है कि मैं तो भगवान् के कार्य का यन्त्रमात्र हूं, फिर मुझे स्वतन्त्ररूप से इच्छायें करने का क्या अधिकार है ? इस प्रकार अपने को पूर्ण के साथ सम्बद्ध समझने से अपने में आत्मगौरव का भाव होता है। मैं कोई सामान्य वस्तु नहीं हूं, मैं तो पूर्ण सत्ता के कार्यों का यन्त्र हूं। और यह भी अनुभव होता है कि अपने को परमात्मा के कार्यों के यन्त्र रूप में अनुभव करने से बढ़ कर दूसरा आनन्दप्रद स्थिति नहीं हो सकती, अतः दूसरी चीज़ों की इच्छा अपने आप नष्ट होती जाती है। और तब गीता का यह श्लोक अधिक स्पष्ट समझ में आता है कि—

विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः।
रसवर्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते॥

स्वर्गीय पं० महावीर प्रसाद जी द्विवेदी

(ले० श्री सतीश)

संक्षिप्त परिचय—द्विवेदी जी का जन्म १८६४ के वैशाखमास में रायबरेली के एक छोटे से गांव दौलत पुर में हुआ था। इनके पिता गरीब कान्य कुब्ज ब्राह्मण थे। द्विवेदी जी ने निर्धनता के कारण ऊंची कक्षाओं में बैठ कर बहुत ऊंची शिक्षा तथा बड़ी २ पदवियां नहीं प्राप्त की थी, परन्तु अपने अध्ययन के कारण ही इन्होंने अपनी सर्वतोमुखी प्रतिभा का विकास किया था।

इनके जीवन की आरम्भिक दशा का ज्ञान तभी होता है जबकि इन्होंने १५) की नौकरी करके तार बाबू का कार्य प्रारम्भ किया था। उस समय कौन जानता था कि एक व्यक्ति जो एकान्त में अपने जीवन की गाड़ी को निरुद्देश्य उदर पूर्ति के लिए ही खींच रहा है, आगे चल कर भविष्य में हिन्दी साहित्य में एक महान् क्रान्ति उत्पन्न कर देगा।

द्विवेदी जी का बचपन का जीवन यद्यपि प्रतिभाशाली न था, तथापि साहित्य के विषय में इनकी अवश्य अभिरुचि थी, और यह छोटी मोटी तुकबन्दियां भी किया करते थे। इनकी यह अभिरुचि निरन्तर बढ़ती गई और झांसी में रहते हुए जब इन्होंने बंगला और मराठी का अध्ययन किया तबतो इनका विचार करने और लिखने के लिए एक विशेष धारा और लेखन शैली मिल गई जिनको कि द्विवेदी जी ने अपने पास न रख कर हिन्दी संसार को दिया।

शैली—द्विवेदी जी की इस शैली से ही हिन्दी का वर्तमान रूप निखर पड़ा है, और वह हिन्दी भाषा जो अपना मार्ग नहीं बना सकी, एक निश्चित दिशा की ओर बड़ी तीव्रता से बढ़ी और बढ़ती चली जा रही है। सम्पादक के आसन पर बैठने के कारण समालोचना करते हुए, तथा सदा अपने प्रतिपक्षियों से लोहा लेते रहने से इनकी भाषा बड़ी चुटीली बन गई थी। इस चुट-चुहाती भाषा को द्विवेदी जी जिस पर छोड़ देते, तेज़ भाले का काम करती थी। आप इसका प्रयोग तभी करते थे, जब कोई उच्छृंखल लेखक ऐसी बात लिख देता था जिससे साहित्य के सिद्धान्तों को आघात पहुंचता था। द्विवेदी जी की भाषा बड़ी परिमार्जित थी, दुस्सह से दुस्सह विषयों पर भी इनकी भाषा में प्रसाद गुण सदा बना रहता था और क्लिष्टता नहीं आती थी। इतना अवश्य था कि इस प्रकार के निबन्धों में संस्कृत की प्रधानता आ जाती थी, परन्तु फिर भी उन की भाषा का प्रवाह नैसर्गिक तथा निर्मल रहता था और उस पर उनकी अपनी व्यक्तिगत छाप रहती थी।

कार्य—द्विवेदी जी का साहित्यिक जीवन यद्यपि बहुत पहले से शुरु होता है परन्तु सार्वजनिक रूप से साहित्य में उनका आगमन १६०४ से होता है जबकि ये सम्पादक बने और सरस्वती की बागडोर अपने हाथ में ली। इसके बाद से लगातार इनका जीवन संघर्षमय रहा है। लगभग १६, १७ वर्षों तक, जब तक ये सरस्वती के सम्पादक रहे इन को अपने प्रति पक्षियों से बड़ा कटु विवाद होता रहा, तथा बड़ा विरोध सहना पड़ा। परन्तु धीमे २ इनकी साहित्यिक धाक लोगों के दिलों में बैठ गई। इन की लेखनी बराबर तब तक चलती रही, जबतक इन्होंने सब का उत्तर नहीं दे दिया। द्विवेदी जी ने जिस लगन से हिन्दी के लिए अपना जीवन अर्पण कर दिया, और हिन्दी के जिस अस्थिर रूप को स्थिर कर दिया उसके परिणाम स्वरूप हम आगे आने वालों के लिए एक ऐसी सड़क बन गई है, जिस पर हम आंख मूंद कर निश्शंक होकर भाग सकते हैं। द्विवेदी जी ने अपना काम पूरा करते ही हम लोगों के लिए मैदान छोड़ दिया। अब हमारा कर्त्तव्य है कि अगले कार्य को पूरा करें।

हिन्दी के लिए द्विवेदी जी का सम्पादन काल चिरस्मरणीय रहेगा। इसमें द्विवेदी जी ने अनेक नये २ लेखकों और कवियों को बनाया, जो कि आगे चलकर बड़े प्रसिद्ध हुए। इनमें सब से अधिक यशस्वी कविवर गुप्त-जी हैं। इसी प्रकार द्विवेदी जी ने अपने आप पुस्तकें लिख कर भी हिन्दी साहित्य के भण्डार की खूब श्री-वृद्धि की है। सब से पहले इन्होंने सम्पत्ति शास्त्र लिखा, जो इस विषय का शायदहिन्दी में पहला ग्रन्थ है। इसी प्रकार कुमार-संभव आदि के संस्कृत ग्रन्थों का अनुवाद भी बड़े अच्छे ढंग से किया। और हिन्दी का इतिहास भी सब से पहले इन्होंने ही लिखा, यद्यपि यह डाक्टर ग्रियर्सन के खोज के आधार पर ही था। परन्तु फिर भी इससे हिन्दी की एक बड़ी आवश्यकता पूर्ण हुई थी।

इस प्रकार द्विवेदी जी ने एक नहीं, अनेक प्रकार से आधुनिक हिन्दी साहित्य की श्री वृद्धि की है। हिन्दी में जो एक नया जीवन स्फुरित होता देख पड़ रहा है उसका अधिकांश श्रेय द्विवेदी जी को ही है।

यद्यपि इधर पिछले कई सालों से द्विवेदी जी हिन्दी संसार से कुछ अलग से होकर रहते थे, परन्तु इनका वरद-हस्त सर्वदा ही नये २ लेखकों और कवियों का प्रोत्साहित किया करता था। ये जिस किसी भी लेखक या कवि की कोई अच्छी वस्तु देख लेते थे उसे झट-बधाई की एक चिट्ठी लिख देते थे। मृत्यु पर्यन्त इन्हें हिन्दी की उन्नति की ही अभिलाषा थी। इन्होंने जो काम किया उसमें तो सफल हुए ही, और हिन्दी संसार ने भी इनका अच्छा मान किया। शायद द्विवेदी जी के लिए हमें ऐसा कहने का अवसर नहीं आयेगा कि हमने उनके जीवन में उनका मान नहीं किया। अभी १६३६ में उन की ७० वीं वर्ष गांठ मनाते हुए नागरीप्रचारिणी सभा की ओर से उन्हें द्विवेदीअभिनन्दनग्रन्थ भेंट किया गया था। इसी प्रकार प्रयाग में जो द्विवेदी अभिनन्दन मेला हुआ था उसमें मेला कमेटी की ओर से चांदी की तश्तरी में एक प्रमाण पत्र भेंट किया गया था।

यद्यपि आज हिन्दी का वह प्रचण्ड सूर्य हमारे बीच नहीं रहा है किन्तु उसकी अमर-हिन्दी जिसको वह अपने पैरों पर खड़ा होना सिखा गया है, चिरकाल तक उसकी याद दिलाती रहेगा।

गुरुकुल

१६ पौष शुक्रवार १९९५

आर्यसमाज और हैदराबाद:—

हैदराबाद रियासत क्षेत्रफल के विस्तार की दृष्टि से दूसरी तथा जनसंख्या व आमदनी में सर्वप्रथम है। रियासत की प्रजा हिन्दू है। पिछली १९३१ ई० की मतगणना के अनुसार हिन्दू १,२७४८,२५० तथा मुसलमान १५३४६६६ हैं। हिन्दू कुल जनसंख्या के ८५ प्रतिशतक हैं। हिन्दुओं की जनसंख्या सन् १८८१ ई० में ९० प्रतिशतक थी। रियासत की विषैली मजहबी नीति के ही कारण ५ प्रतिशत हिन्दुओं की संख्या में घटोतरी हुई है। रियासती आज्ञाओं को देखने से मालूम पड़ता है कि जिस जगह मुसलमानों की बस्ती है या बहुसंख्या है, वहां हिन्दुओं के मन्दिर मठ आदि नये नहीं बनाये जा सकते। ओ३म् का झण्डा फहराना निषिद्ध है, आर्यसमाज के कार्यकर्ताओं पर सख्त पाबन्दियां हैं। उन्हें हवालात में सड़ने के लिये डाल दिया जाता है। साम्प्रदायिक आन्दोलन के नाम पर अदालतें अत्याचार कर रही हैं। मुसलमान बनी स्त्री के पति को अदालती फर्मान मिलता है कि या तो इतनी अवधि में मुसलमान बनो या स्त्री से हाथ धोओ।

एक ओर रियासत के पदाधिकारियों द्वारा सब जातियों के प्रति समानता-पूर्ण-व्यवहार की घोषणा की जाती है, दूसरी ओर रियासत का धार्मिक कार्यों पर व्यय होने वाला सम्पूर्ण धन अधिकांश में मुसलमानों की मजहबी शिक्षादि कार्यों में व्यय होता है।

आर्यसामाजिक तथा हिन्दू पुस्तकें रियासत में निषिद्ध हैं। मुसलमानों की पुस्तकें जो विषैले साम्प्रदायिक वातावरण को उत्पन्न करती हैं उनके साथ दूसरा व्यवहार किया जाता है। हिन्दू जनता अपने स्कूल तथा पाठशालाएं भी नहीं खोल सकती। हिन्दु स्त्रियों और बच्चों का दिन दहाड़े उड़ाया जाता है। आर्य समाजियों को मौत के घाट उतारा जाता है। रियासत में हिंदू प्रजा की जान व माल खतरे में है।

इन अत्याचारों के विरोध में जनता देर से आन्दोलन कर रही है। आर्यसमाज ने रियासत में हिन्दू प्रजा के धार्मिक अधिकारों की रक्षा के लिये सत्याग्रह की घोषणा करदी है। इस समय रियासती प्रजा के धार्मिक अधिकारों के विषय में सम्पूर्ण भारत का ध्यान केन्द्रित होगया है। विगत २५ दिसम्बर को शोलापुर में सार्वदेशिक सभा की ओर से लोकनायक श्री माधव हरि अणे की अध्यक्षता में अखिल भारतीय आर्य सम्मेलन हुआ था। जिस में रियासत हैदराबाद की धार्मिक असहिष्णुता की नीति की निन्दा की गई थी। रियासत हैदराबाद की सम्प्रदाय विशेष के साथ पक्षपात पूर्ण रवैये पर घोर असन्तोष प्रकट किया गया। सम्मेलन में आर्य जनता ने निश्चय किया है कि रियासत की वर्तमान असन्तोष जनक तथा पक्षपात पूर्ण साम्प्रदायिक वतावरण को उत्साह देने वाली नीति को न बदलने की दशा में सत्याग्रह में भाग लेना चाहिये।

आर्य समाज के लिए हैदराबाद का प्रश्न जीवन मरण का है। पिछले वर्षों में किसी क्रियात्मक कार्य को न करने से तथा किसी भी ठोस काम को न करने से आर्य समाज की साख को बहुत धक्का पहुंचा है। आर्य समाज ने हैदराबाद के आन्दोलन का बीड़ा उठाया है। अब आर्य समाज का कर्तव्य है कि आन्दोलन को पूरे जोर से चलावे जिस से कि धार्मिक स्वतंत्रता स्थापित की जा सके।

हैदराबाद की निजाम सरकार को यह ध्यान देना चाहिए कि वह देर तक जनता के राजनैतिक और धार्मिक अधिकारों का अपहरण नहीं कर सकती। समय आयेगा कि सरकार को अपनी भूल ज्ञात होगी। इस भूल को अनुभव कराने के लिये जनता का प्रचण्ड आन्दोलन सहायक हो सकता है। २० वीं शताब्दी के इस क्रान्तिकारी समय में जनता को जन्म सिद्ध राजनैतिक और धार्मिक अधिकारों से वंचित नहीं किया जा सकता।

सत्याग्रह का निश्चय कर आर्य समाज ने अपने सिर पर जिम्मेवारी ले ली है, आर्यसमाज की प्रतिष्ठा भविष्य के सत्याग्रह की सफलता में है। सत्याग्रह की सफलता जनता के क्रियात्मिक सहयोग पर आश्रित है। प्रत्येक मानव स्वाधीनता के प्रेमी को आगे बढ़ना चाहिए।

गुरुकुल कांगड़ी हरिद्वार का
३७ वां वार्षिकोत्सव
ईस्टर की छुट्टियों में।

इस वर्ष ईस्टर की छुट्टियों में गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी हरिद्वार का ३७ वां वार्षिकोत्सव ७, ८, ९, १०, अप्रैल तदनुसार २५, २६, २७, २८ चैत्र, शुक्र, शनि, रवि, सोम को बड़ी धूम धाम से मनाया जायगा। उत्सव की तैय्यारियां अभी से प्रारम्भ हो गई हैं। नवीन प्रविष्ट होने वाले ब्रह्मचारियों का दाखिला भी शुरू हो गया है। गुरुकुल में प्रार्थना पत्र इतने आते हैं कि ब्रह्मचारियों को नियत संख्या ही ली जा सकती है। इस लिये जो महानुभाव ब्रह्मचारियों को प्रविष्ट कराना चाहें, वे अभी से प्रयत्न करें। नौ वर्ष से ऊपर के बालक नहीं लिये जाते। सात से नौ वर्ष तक के बालकों को ही प्रविष्ट किया जाता है।

इस वर्ष का उत्सव विशेष महत्व रखता है क्योंकि इस साल अनेक नवीन योजनाएं की जा रही हैं। देश के अनेक गण्य मान्य नेता पधार रहे हैं।

सत्यव्रत
मुख्याधिष्ठाता
गुरुकुल कांगड़ी।

पुस्तक-समालोचना

उत्तराखण्ड के पथ पर—लेखक-प्रो० मनोरंजन एम०ए० प्रकाशक—पुस्तक-भण्डार लहेरिया सराय पटना, मूल्य २)

पुस्तक दो वर्ष पहले विद्यापति-प्रेस से प्रकाशित हो चुकी है। काफ़ी पहले, इसी शीर्षक से कुछ लेख 'विशाल-भारत' में प्रकाशित हो चुके हैं, और जैसा कि इसकी भूमिका से ही पता लगा—कुछ काशी के साप्ताहिक 'सनातन धर्म' में भी प्रकाशित हुए थे, पर वे हमारे दृष्टिगोचर नहीं हुए।

लेखक महोदय हिन्दी-जगत में कवि के रूप में पर्याप्त ख्याति प्राप्त कर चुके हैं, और उनकी वह कवि-प्रकृति ही पुस्तक में यत्र-तत्र गीतों के रूप में प्रस्फुटित भी हो उठी है। लेखक ने जहां बद्रीनाथ यात्रा की दिनचर्या लिखकर यात्रियों को प्रत्येक आवश्यक सूचना से वञ्चित न रखने का निश्चय किया है, वहां साथ ही साथ वर्णन-शैली में मनोरंजन का ध्यान रखकर अपने 'मनोरंजन' नाम को भी सार्थक किया है। छोटे छोटे वाक्य शैली की विशेषता हैं। पढ़ते २ पाठक को लेखक के साथ सहानुभूति हो जाती है, और अन्त में "अथवा मनही में रह जायेंगे मन के अरमान"—पंक्ति पढ़ कर सचमुच दुःख होता है। खास कर कोई ऐसा पाठक जो बद्रीनाथ की यात्रा कर चुका हो वह तो पुस्तक को पढ़कर लेखक को कोसेगा ही कि क्यों उसने स्मृतियों को हरा करके मन में एक अभाव की अनुभूति पैदा कर दी है?

वैसे पुस्तक को सर्वाङ्ग सुन्दर बनाने में कुछ भी कसर नहीं उठा रखी गई है, छपाई सफाई अत्युत्तम है। शुद्धिपत्र देकर तो पुस्तक बिल्कुल complete कर दी गई है उसके बाद ध्यान से पढ़ने पर भी समालोचक को अशुद्धि नहीं मिलती, जिसका न मिलना हिन्दी की पुस्तकों में सचमुच सौभाग्य की चीज़ है। अन्त में हम लेखक को पुनः धन्यवाद देते हैं और हिन्दी-संसार में उचित स्वागत की आशा करते हैं।

श्री चक्र-चरण

कैलास दर्शन—ले० श्री शिवनन्दन प्रसाद बी.ए., प्रकाशक—पुस्तक भण्डार, लहेरिया सराय। मूल्य ॥)।

इसे प्रकाशित हुए चार साल हो चुके हैं। जहां तक ध्यान आता है 'कैलास दर्शन' शीर्षक से कम से कम एक लेख तो 'विशाल भारत' में इसका भी प्रकाशित हो चुका है।

लेखक ने भूमिका में स्वयं लिखा है—"मैं न हिन्दी का लेखक हूं ... " पर पाठक के मन ऐसा असर उन स्थलों को छोड़कर और कहीं नहीं पड़ता जहां उन्होंने किसी दृश्य का वर्णन करने के लिए किसी अन्य लेखक (यथा स्वा० सत्यदेव परिव्राजक) को उद्धृत किया है। अच्छा होता यदि पाठक को इस दारिद्र्य से अनभिज्ञ ही रहने दिया जाता। पुस्तक के प्रारम्भ में 'लेखक का परिचय' किसी पाठक के लिये तो, हमारी समझ में, अनावश्यक ही है। कुछ प्रान्तीय शब्द—यथा छरोदे, झींसी फूसी, निहोरा, लुनाई—सामान्य हिन्दी पढ़ने वालों को खटकेंगे। ६५ पृष्ठ की १६ वीं पंक्ति में "पड़े हड़े" शब्द कानों को विचित्र लगा—शायद 'पड़े पड़े" छपना चाहिये था।

किन्तु इससे पुस्तक की उपयोगिता में कमी नहीं आती। निस्सन्देह, लेखक ने अपनी ओर से विषय का अध्ययन करने के पश्चात् यात्रानुभवों को शब्द का रूप दिया है, पर आधुनिक शिक्षित जनता को इस विषय में केवल स्थानों की दूरी बता देने से, पौराणिक उपाख्यानों से या मार्ग को कठिन बता देने से सन्तुष्ट न करके कुछ वैज्ञानिक आधार देना चाहिये। पर कैलास और मानस जैसी भयंकर यात्राओं में यह सब दुस्साध्य है।

लेखक के जाने का और लौटने का मार्ग एक ही है, इसके कारण कुछ बेलुत्फी रही, लेखक भी हमारी इस बात से सहमत होंगे। आम यात्री ऐसा ही करते हैं। पर समालोचक को यह मनोरञ्जक प्रतीत नहीं हुआ, क्योंकि वह वैचित्र्य प्रेमी है अतएव वह स्वयं गया था नीतिम के रास्ते और लौटा था बद्रीनाथ के रास्ते।

स्वयं लेखक ने भी अपनी पुस्तक को 'सर्वाङ्ग-सुन्दर' नहीं समझा है, तो हम ही कैसे कह दें? पर एतद्विषयक साहित्य की कमी को देखते हुए इस पुस्तक की जितनी प्रशंसा की जाय, थोड़ी है। आशा है लेखक अगले संस्करण में इस पुस्तक को सर्वाङ्ग सुन्दर करने का प्रयत्न करेंगे।

'चक्र-चरण'

आत्मिक-शुद्धि

(श्री सच्चिदानन्द)

मनुष्य जब उत्पन्न होता है, तब वह एक बिलकुल निश्चिन्त अवस्था में भूख, प्यास, सुख दुःख, राग विराग, इत्यादि बातों से बिलकुल ऊपर होता है। उसे अपने तन की भी सुध नहीं होती है। यह समय मनुष्य का एक दिव्य समय होता है। इस समय में मनुष्य का अन्तरात्मा शुद्ध और निर्मल होता है। परन्तु ज्यों ज्यों देर होती जाती है और मनुष्य दिनों दिन वृद्धि को प्राप्त होता जाता है त्यों त्यों भूख प्यास इत्यादि उपरि-कथित-रोग उस को सताने लगते हैं और वह इन चमकीले-दमकीले विषयों तथा भोग विलास की वासनाओं में पड़ कर अपने जीवन के वास्तविक तत्व को भूल जाता है। वास्तव में बात यह होती है कि विषयों का एक आवरण सा उसके हृदय पर छा जाता है जो आवरण उसको इधर से उधर डुलाते रहता है। इस आवरण का निवारण पहले तो हमें ही करना चाहिये। परन्तु हमारा ध्यान उधर जब नहीं जाता है उस समय हमारी आत्मा इसका निवारण संसार में दुःखों को उपस्थित करके स्वयमेव ही कर देती है। हमारे अन्दर स्वाभावतः यह प्रवृत्ति होती है कि

हम दूसरों को देखकर उनके ऊपर कुछ दोषारोपण करें। उस दोषारोपण को करते समय हम अपने आप को भूल जाते हैं या हमारे अन्दर इतनी सामर्थ्य नहीं होती कि हम अपने आप पर विचार कर सकें। सचमुच यदि हम अपने बारे में नहीं सोच सकते तो कम से कम हमको देखना चाहिये कि हम जब दूसरों पर विचार करते हैं तो हम उनके गुणों पर विचार करते हैं अथवा दोषों पर। यदि दूसरों के दोषों पर विचार करते हैं तो हम एक स्वयमेव ही महान् दोष के भागी होते हैं।

ऐसा क्यों होता है। इसका हेतु यह है कि जिस वस्तु का चिन्तन किया जाता है हमारे हृदय पर उसकी परछाईं पड़ती है और धीरे धीरे वह वस्तु अथवा दोष हमारे अन्दर भी उत्पन्न हो जाते हैं। अन्त में वे दोष एक छोटी मात्रा से बड़ी मात्रा में समुद्र बन जाते हैं। इसके विपरीत गुणों पर विचार करने से हमारे अन्दर गुण उत्पन्न होते हैं। गुणवान् के प्रति श्रद्धा जागृत होती है। हृदय में प्रसन्नता और शान्ति होती है। इसलिये हमें दूसरों के गुणों पर ही विचार करना उचित है, न कि अब गुणों पर। क्योंकि गुणों का विचार आत्मिक शान्ति को बढ़ाने वाला होता है और अवगुणों का विचार आत्मिक अशान्ति को बढ़ाने वाला होता है।

आत्मिक अशान्ति के बढ़ने से ही हम में दूसरों के दोषों की प्रवृत्ति बढ़ती है। इसलिये मनुष्य को सब से पहले आत्म सुधार की आवश्यकता है। आत्मसुधार आत्मचिन्तन द्वारा होता है। यदि यह देखा जाय कि दोष हमारे अन्दर क्यों होते हैं, तो पता चलता है कि हम उन को जानते ही नहीं होते हैं। हमें दोष और गुणों की पहचान ही नहीं होती है। बस फिर दोषों को न जानते हुए उन दोषों में हमारी आसक्ति हो जाती है। यदि हम शरीर और मन के दोषों को जान कर उनमें से आसक्ति का त्याग करदें तो हृदय पवित्र हो सकता है। मन की प्रवृत्ति विषयों की ओर तत्पर रहती है। मन हमेशा विषयों की ओर जाता है इसलिये वेदों में "तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु" कहकर यह मेरा मन उत्तम विचारों वाला होवे, ऐसा कहा है। आज हमारी आत्मा अपने आप को भूल कर इन्द्रियों के भोग विलास में प्रवृत्त हुई हुई है। उससे उसको हटाना उचित है। इसका एक ही उपाय है कि हमारी आत्मा अपने अन्दर की ओर देखे। उसके लिये उपाय यह है कि सत्संग करना चाहिये परन्तु यदि सत्संग द्वारा फायदा न हो तो उस प्रकार के सत्संग का कोई फायदा नहीं है। अन्तर्दृष्टि करने का तरीका यह है कि हमारी चित्तवृत्तियां हमें जिधर अवास्तविक पथ की ओर खींचे ले जा रही हैं उस अवास्तविक पथ को नष्टभ्रष्ट कर दिया जाय अपनी चित्तवृत्तियों के ऊपर कड़ा पहरा रक्खा जाय। उनके ऊपर लात मार कर उनसे घृणा उत्पन्न की जाय। प्रतिक्षण आत्म निरीक्षण किया जाय। अपनी उन्नति से प्रसन्न हों और उस प्रसन्नता में थोड़ा सा अपने आपको सम्भाल लें जिस से कि अभिमान की मात्रा उत्पन्न न हो जावे। अपने दोषों के प्रति बुरा भला कहे। आत्म निरीक्षण के ऊपर दृढ़ आत्मविश्वास और दृढ़ श्रद्धा रक्खे। शान्त चित्त होकर एकान्त में जाकर अपने दोषों का चिन्तन करें। अपने दोषों को हटाने की प्रार्थना करें उसके लिये प्रायश्चित भी करें। क्योंकि क्रिया के प्रति प्रतिक्रिया करने से चित्त शान्त होता है। प्रायश्चित एक प्रकार की आध्यात्मिक प्रतिक्रिया है। जो चित्तवृत्तियों के अन्दर उत्पन्न होने वाले पाप हैं, उसका यह सफलता पूर्वक विरोध करता है। इस तरह से आध्यात्मिक उपायों द्वारा अपनी स्थिति को बनावे और हृदयस्थल को शान्त करे। यदि हमारा हृदय शान्त है तो हमको बाह्य संसार भी शान्त दिखाई देगा। इसलिये मन की पुरानी मैल को धोने की कोशिश करे और ऐसा उपाय करे जिससे कि नई मैल उत्पन्न न हो सके। यह किस तरह हो सकता है। इसका तरीका यह है कि जिन्होंने अपने जीवन के कष्टों को सहकर अपने लक्ष्य को पहचान लिया है उनके साथ हम सत्संग करें और उनके सत्संग से जब हम अपने आपको चञ्चल निर्लक्ष्य तथा सुख दुःख इत्यादि से युक्त पायेंगे तो हमारी दृष्टि स्वभाव से ही उस रोग की चिकित्सा करने के लिये दौड़ेगी और हम अपने आपको समझने लायक हो सकेंगे अर्थात् हम अपने आन्तरिक जगत् को देखने लायक बन सकेंगे। वह समय कब आवेगा जब हम अपने अन्तर को देखेंगे। सचमुच हमारा विश्वास है कि यदि हम अभी से ही सत्पुरुषों का संग और उसका क्रियात्मिक रूप जो कि एकान्त में जाकर अपने दोषों पर विचार करना और उस पर प्रायश्चित तथा प्रार्थना द्वारा चित्त की शुद्धि करने की कोशिश करेंगे तो वह दिन दूर नहीं होगा जब कि हम अपने आन्तरिक जगत को भी देख सकेंगे।

गुरुकुल समाचार

गत सप्ताह ब्र० जगदीश ९म श्रेणी चोट, ब्र० आनन्द प्रकाश १२ श्रेणी विषम ज्वर, ब्र० कुन्दनलाल ५ श्रेणी चोट, रणवीर १२ श्रेणी चोट, ओम्प्रकाश १२ श्रेणी मलबध, देवराज १३ श्रेणी मलबध, शंकरदेव १३ श्रेणी चोट, विद्याभूषण ११ श्रेणी कास से रोगी हुये थे। अब सब स्वस्थ हैं।

श्रद्धानन्द सप्ताह—ता० १६ दिसम्बर से २३ दिसम्बर तक गुरुकुल भूमि में, श्रद्धानन्द सप्ताह बड़ी धूमधाम के साथ मनाया गया। प्रतिदिन प्रातःकाल ६॥ बजे बड़े समारोह के साथ कुलपताकाभिवादन होता था, जिसमें सब कुलवासीगण सोत्साह भाग लेते रहे। प्रातः ७ से ११ तक तथा सायं ३ से ६ बजे तक खेलों का प्रोग्राम था, जिसमें भारतीय तथा अन्य देशीय खेलों के साम्मुख्य बड़े ज़ोर-शोर से हुए। हाकी में ब्र० गोविन्द सिंह जी, फुटबाल में पं० गणपति जी वालीबोल में सुरेशचन्द्र जी, रस्साकशी में महावीर जी, ढाह कबड्डी में रामचन्द्र जी की पार्टियां विजयी हुई। इसके अतिरिक्त वैय्यक्तिक होड़ों में भी ब्रह्मचारियों ने सोत्साह भाग लिया और अच्छे रिकार्ड रखे। २३ दिसम्बर के 'हिन्दुस्तान टाइम्स' में

प्रकाशित मेरठ-कालिज के रिकार्ड को देखते हुए हम सन्तोष पूर्वक कह सकते हैं कि हमारे कुल ने उनसे भी आगे बाजी मारी है। इन खेलों का परिणाम निम्न प्रकार है:—

बांस कूद—ब्र० रामचन्द्र ८ फीट ६ इंच।
१०० गज़ की तेज दौड़—प० हरिवंश १० सेकण्ड।
गेंद फैंकना—ब्र० धर्मवीर (मूपा) ९५ गज़।
ऊँची कूद—पं० हरिवंश ४ फीट १० इंच।
गोला फैंकना (७॥)—ब्र० बलदेव (रायकोटी) ३०फीट।
लम्बी कूद—पं० हरिवंश १८ फीट ६ इंच।

इस प्रकार खेलों का प्रोग्राम सन्तोषप्रद एवं मनोरञ्जक रहा। २३ दिस० की दोपहर को एक बड़ा जुलूस महाविद्यालय आश्रम से निकला। जिसमें मुख्याधिष्ठाता जी, आचार्य जी, उपाध्यायगण, महाविद्यालय तथा विद्यालय के सब ब्रह्मचारी, अध्यापक मण्डल तथा अन्यान्य सब कुल वासियों ने सोत्साह भाग लिया। जुलूस गुरुकुल की मुख्य २ सड़कों तथा छोटे ब्रह्मचारियों के आश्रम के बीच से गुज़रता हुआ कुलपताकाभिवन्दन के लिये कार्यालय के सामने पहुंचा। जहां "प्राणों से हमको प्यारा, कुल हो सदा हमारा" इस गीत के अनन्तर बैण्ड बाजे के तुमुल-निनाद के बीच कुल पताका का अभिवादन किया गया।

सभाः—सायंकाल ४ बजे सब कुलवासी सभा-भवन में उपस्थित हुए। सर्व प्रथम बृहद्यज्ञ किया गया। तत्पश्चात् छोटे ब्रह्मचारियों ने प्रभु-भक्ति की एक सुमधुर गीति गाई। तत्पश्चात् महाविद्यालय के ब्रह्मचारियों तथा उपाध्यायों ने मनोहर पद्यों तथा गम्भीर व्याख्यानमालाओं द्वारा कुलपिता के चरणों में अपनी २ श्रद्धाञ्जलि अर्पित की। कांगड़ी पाठशाला के अध्यापक पं० धर्मेश्वर जी तथा मूलचन्द जी ने स्वामी जी के जीवन की विविध घटनाओं का ओजस्वी भाव में वर्णन कर सभा में अच्छी रौनक की। रात्रि को ६॥ बजे सहभोज हुआ और यह समारोह सानन्द समाप्त हुआ।

नवीन क्रीड़ा मन्त्री का चुनावः — तारीख २६ दिसम्बर को नवीन क्रीड़ा मन्त्री का चुनाव हुआ और सर्व सम्मति से ब्र० गोविन्द सिंह क्रीड़ा मन्त्री निर्वाचित हुए। पहिले क्रीड़ा मन्त्री ब्र० सत्यानन्द जी को सब भाइयों ने धन्यवाद दिया, जिन्होंने इस कार्य भार को एक साल तक बड़ी योग्यता से चलाया। नवनिर्वाचित मन्त्री जी ने सब ब्रह्मचारियों से सहयोग एवं सहायता की आशा करते हुए इस गुरुतर पद को सहर्ष स्वीकार कर लिया।

गुरुकुल कुरुक्षेत्र—

गुरुकुल में श्रद्धानन्द सप्ताह बड़ी धूमधाम से मनाया गया। स्वामी जी के कार्य क्षेत्रों को दृष्टि में रख कर २१ दिसम्बर का दिन आर्य समाज दिवस, २२ का गुरुकुल दिवस तथा २३ का राष्ट्रीय दिवस मनाया गया। तीनों दिन क्रमशः ओ३म् पताका, कुलपताका तथा राष्ट्रीय पताका के अभिवादन से कार्य प्रारम्भ होता रहा। प्रतिदिन प्रातः से सायं तक विविध खेलों का आयोजन किया जाता रहा। २१ की रात को संगीत सम्मेलन किया गया। २२ की रात को स्वामी जी के जीवन पर ब्रह्मचारियों की भाषण में प्रतियोगिता थी। सर्वोत्तम ३ ब्रह्मचारियों ब्र० रामदेव ब्र० शम्भुनाथ तथा ब्र० सत्यकाम को इनाम दिये गये। २३ ता० को प्रातः प्रभातफेरी की गई और सायंकाल बृहत् हवन के पश्चात् सभा हुई। सभा में स्वामी जी के जीवन के सम्बन्ध में विविध महानुभावों के शिक्षाप्रद व्याख्यान हुए। सभा के बाद प्रीति भोज हुआ। २५ ता० की रात को ब्रह्मचारियों ने वीर अभिमन्यु का अभिनय किया। इस प्रकार कुल में श्रद्धानन्द सप्ताह बड़ी धूमधाम से मनाया गया। — प्रबन्ध कर्त्ता

गुरुकुल मुलतान—

ब्रह्मचारियों का स्वास्थ्य अच्छा है। मासिक तोल में सभी बढ़े हैं। पढ़ाई सभ्य-शिक्षा-प्रणाली के अनुसार हो रही है। यह दृश्य देखने लायक होता है जब कि वे पढ़ाई के साथ २ कोई न कोई आजीविका का साधन कपड़े बुनना, शीशे पर चित्र बनाना आदि सीख रहे होते हैं। राष्ट्रपति सुभाष बोस के मुलतान पहुंचने पर उनके गले में जो सूत की माला ब्रह्मचारियों ने डाली थी, जिसे देखकर वे बड़े प्रसन्न हुए थे वह सूत ब्रह्मचारियों के हाथ का ही कता हुआ था। ब्रह्मचारियों के शीशे पर बने हुए वेदमंत्र शहर में काफी तादाद में बिक चुके हैं और नये आर्डर आ रहे हैं। यदि कोई समाजें शीशे पर खूबसूरत वेदमंत्रादि बनवाना चाहें तो वे लिखें, बन कर भेज दिये जावेंगे।

ब्रह्मचारियों की संख्या बढ़ रही है। जो सज्जन आजीविका वाली इस शिक्षा-पद्धति से लाभ उठाना चाहें वे बालकों को शीघ्र प्रविष्ट करें। यहां की पढ़ाई वही है जो कि गुरुकुल कांगड़ी की है क्योंकि यह गुरुकुल कांगड़ी की शाखा है। विष्णुमित्र, मुख्याधिष्ठाता

गुरुकुल मूपा

मान्य अतिथि—श्रीयुत् लक्ष्मण भोपटकर का १६ दिसंबर को कुल में शुभागमन हुआ। आपने गुरुकुल देखकर निम्न सम्मति दी:—

'हमने आज गुरुकुल का निरीक्षण किया। हमें यह देख विशेष प्रसन्नता हुई कि यहां पर सभी विद्यार्थी नियम परायण तथा स्वस्थ हैं। उनके मुख पर तेज है। हिन्दू धर्म के आश्रम पद्धति के महत्वपूर्ण 'ब्रह्मचर्य आश्रम' का वे पालन करते हैं। हम इस संस्था की हृदय से सफलता चाहते हैं"

श्रद्धानन्द सप्ताह -- कुलपिता अमर शहीद स्वामी श्री श्रद्धानन्द जी का बलिदान पर्व बहुत उत्साह से मनाया गया। १६ से २३ दिसम्बर तक खेलों का विविध कार्यक्रम रखा गया था। २३ दिसंबर की रात को गुरुकुल के उपासना मन्दिर में उपाचार्य श्री पं० परमानन्द जी विद्यालंकार के सभापतित्व में एक सभा हुई। जिसमें सब कुलवासियों ने स्वर्गीय कुलपिता को अपनी २ श्रद्धाञ्जलि प्रदान की।

चौधरी दुलासराय के प्रबन्ध से गुरुकुल प्रेस गुरुकुल कांगड़ी में मुद्रित तथा प्रकाशित।

* ओ३म् *

"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत"   Reg. No. A. 2927

गुरुकुल

सम्पादक—साहित्यरत्न पं० हरिवंश वेदालङ्कार

एक प्रति का मूल्य -)   [गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख-पत्र]   वार्षिक मूल्य २॥)

वर्ष ३]   गुरुकुल काङ्गड़ी, शुक्रवार २३ पौष १९९५, ६ जनवरी १९३९   [संख्या ३३

शान्ति का आह्वान

[ले०—श्री रामनाथ जी वेदालङ्कार]

मैं चाहता हूँ, इस उमड़ते हुए तूफानी संसार के बीच में रहता हुआ भी मैं शान्त रहूं। जैसे चारों ओर से हाहाकार करते हुए प्रलयङ्कर तूफ़ानी समुद्र के बीच में शान्त, निश्चल, निर्लिप्त, स्थिर भाव से एक चट्टान खड़ी रहती है, वैसे ही मैं शान्त बना रहूँ। यह चारों ओर का अशान्त वातावरण मुझे शान्ति की मर्यादा से विचलित न कर सके। इसलिये मैं प्रकृति की प्रत्येक वस्तु के आगे पुकार मचा रहा हूं—हे देवो! तुम मेरे लिये शान्ति बरसाओ।

शं नः सूर्य उरुचक्षा उदेतु शं नो भवन्तु प्रदिशश्चतस्रः।
शं नः पर्वता ध्रुवयो भवन्तु शं नः सिन्धवः शमु सन्त्वापः॥

अरे, यह तेज का गोला सूर्य, यह दूर दूर तक ज्योति देने वाला सूर्य मेरे लिये शान्ति के प्रकाश को बखेरता हुआ उदय होवे। ये चारों दिशायें मेरे हृदय में शान्ति को गुंजाती रहें। ये आकाश को छूने वाले ऊंचे ऊंचे अचल पर्वतों की हिमाच्छिन्न धवल चोटियां, मुझे निरन्तर शान्ति का संदेश देती रहें। ये गम्भीर समुद्र कल-कल करके बहती हुई ये नदियों की धारायें और ये शान्ति के मूर्त रूप जल मेरे हृदय में सदा शान्ति का स्रोत बहाते रहें।

शं नो वातः पवतांशं शंनस्तपतु सूर्यः।
शं नः कनिक्रदद्देवः पर्जन्यो अभिवर्षतु॥

यह पवन जो कभी शीतल और मन्द झकोरों के साथ बहता है और कभी झञ्झावात का भयंकर रूप धारण कर लेता है, मेरे लिये शान्ति-रूप होकर बहे। यह कड़कड़ाता हुआ विद्युत् देव और पर्जन्य मेरे लिये शान्ति की ही अमृत-वर्षा करें।

अरे, मैं तो जड़-चेतन इस समस्त ब्रह्माण्ड के आगे शान्ति की भीख मांग रहा हूं। सूर्य के प्रकाश से जगमगाते हुए दिन, और चांद-तारों से खिली हुई भव्य रात्रियां मुझे शान्ति-रस से स्नान कराती रहें। अणु-अणु में जीवन-सञ्चार करती हुई ये उषायें मेरे मन में शान्ति की भावना को जगायें। द्यावापृथिवी और अन्तरिक्ष मेरे लिये शान्ति कारक हों। ओषधी और वनस्पतियां मुझे शान्ति की ही दिव्य अनुभूति करायें। इन्द्र शान्ति देने वाला हो, अग्नि मुझे शान्ति देवे, मित्र, वरुण, सोम, पूषा ये सब देव, मुझमें शान्ति का ही वास करायें। मैं जो कुछ बोलूं, सुनूं, चखूं, देखूं स्पर्श करूं वह सब मुझे शान्ति देने वाला हो। मेरा मन सदा शान्ति में ही रमे। मेरे अंग अंग में शान्ति का वास हो जाय। मैं शान्तिमय हो जाऊं।

एक तपस्वी ने क्या ही अच्छा कहा है—इस संसार में सब कुछ हमें सदा शान्ति प्रदान करता रहे। परन्तु वह शान्ति भी वास्तव में शान्ति ही होवे। वह झूठी या बनावटी शान्ति न होवे। अशान्ति को छिपाने के लिये जो दिखावटी शान्ति बनाई जाती है, वह झूठी शान्ति हमें नहीं चाहिए। हमें तो वही असली शान्ति चाहिये जो सच्ची शान्ति होवे और उचित शान्ति होवे।

गुरुकुल

(ले०-श्री वीरेश विद्यालंकार)

गुरुकुल एक प्राचीन भावना है जिसको पुनर्जन्म देने के लिए तथा वर्तमान अवस्थाओं में जिसकी अभिवृद्धि के लिए शिक्षा के क्षेत्र में मूर्त प्रयत्न जारी है।

हमें प्राचीन काल से अनेक भावनाएं और आदर्श प्राप्त हुए हैं, जिनमें कि एक गुरुकुल भी है। वे सब भावनाएं दिव्य हैं, उच्च हैं, उपादेय हैं, अतः हम सबका हित साधन करने में समर्थ हैं। उदाहरणार्थ वह प्राचीन सात्विक सरल जीवन और उच्च विचारों का आदर्श कितना सुन्दर है। स्वार्थ की अपेक्षा परार्थ और दोनों की अपेक्षा परमार्थ की साधना कितनी दिव्य है। भोगवाद की अपेक्षा संयम और तपस्या द्वारा दृढ़ता और सन्तोषमय जीवन बिताना कितना उपयोगी है और इसी प्रकार शारीरिक-मानसिक श्रम द्वारा सत्कर्म करते हुए परन्तु कर्म फल पाने की अभिलाषा का त्याग करते हुए सौ वर्ष तक जीने का सङ्कल्प करना मनुष्य जीवन का क्या ही अच्छा क्रियात्मक ध्येय है।

यह हैं कुछ एक भावनाएं जो कि हमें प्राचीनता के नाम पर हमारी संस्कृत रूपी छाननी में छन कर प्राप्त हुई हैं। इनके साथ ही हम गुरुकुल भावना को भी इस लड़ी में पिरो सकते हैं। कहा गया है कि गुरुकुल एक भावना है, एक सुन्दर संकल्प है, जो कि सद्विद्या व शुभ धन की तरह, जातीय परम्परा द्वारा हमें प्राप्त हुआ है। सो यह भावना क्या है? संक्षेप में कहा जाय तो यह भावना हमारी व्यक्ति जाति के जीवन का एक ध्येय है अतः व्यक्ति जाति तथा इसके उपरान्त विश्व के जीवन से सम्बन्धित है। यह भावना व्यक्ति और समाज की प्रवृत्तियों को ध्यान में रखते हुए इनके जीवन को दैशिक और जातीय संस्कृति द्वारा दीक्षित कर विकासोन्मुख करना है। जिससे अभ्युदय और सर्वोदय (अर्थात् सबसे सबको सुख लाभ हो) का वैयक्तिक और सार्वजनिक (Egoistic and altruistic end) लक्ष्य प्राप्त हो सके।

व्यक्ति का उपरोक्त कुलभावना से सम्बन्ध इसलिए है कि इस विद्या मन्दिर में माता पिता के समान गुरु की प्रेममयी संरक्षा में निवास करके श्रम-तपस्या-ब्रह्मचर्य-सदाचार तथा सद्विद्या और संस्कृति की प्राप्ति के साथ ही अपने लिए आजीवन सहायक-सेवा का पाठ भी यहां सीखता है।

समाज का सम्बन्ध इस कारण है कि जिस समाज का वह अङ्ग है उसका उपयोगी और उन्नतिशील अंग बन कर काम करने की प्रेरणा यहीं पाता है।

इसके साथ ही सर्वहित की भावना जो कि वस्तुतः विश्व बन्धुत्व की उदार भावना ही है वह उसे सहज ही प्राप्त हो सकती है। चूंकि उसकी शिक्षाशाला व आश्रम, राजा-रङ्क, धनी-निर्धन, ऊंच-नीच वर्ण में समानता तथा परस्पर प्रेममय सहयोग सिखाने का क्षेत्र है। जिस कारण वह अपने मन को समाज के हित के लिए और जन हित को विश्व परिवार की भावना उत्पन्न करने में सहायक समझता है, इसलिए वह सच्चे अर्थों में अभ्युदय और सर्वोदय के लक्ष्य तक मानव को पहुंचाने में कारण बन सका है।

वस्तुतः कुल भावना का प्रारम्भ एक सामूहिक परिवार की तरह होता है, जहां माता-पिता, पिता पुत्र भाई बहिन तथा भाई २ और बहिन २ इत्यादि सब परिवार के सम्बन्धी परस्पर-प्रेम-सहयोग-उपकारिता-सहायता सहानुभूति, निस्वार्थता तथा आत्मदान द्वारा परिवार की उन्नति और रक्षा के लिए प्रयत्न कर रहे होते हैं। इसी प्रकार कुल के बन्धु जिस विशाल परिवार में प्रेम और आत्म संयम का पाठ पढ़ते हैं, श्रम और तपस्या का अनथक अभ्यास करते हैं, सदाचार की रक्षा और ज्ञान का उपार्जन तथा वृद्धि करते हैं और साथ ही परस्पर सहयोग समान सुख दुःख और हानि-लाभ मानने के विचार को दृढ़ता से अपने चरित्र में धारण करके सेवा भाव को जीवन में ढाल कर किसी ऊंचे उद्देश्य के लिए आत्मदान की भिक्षा आने पर उसके लिए तत्पर रहते हैं, वहां कुलभावना सुप्रतिष्ठित होकर भली भांति पनप सकती है। गुरु गृह व आचार्य कुल की विशेषता ही यह है कि 'तस्मिन् देवाः अधि विश्वे समोताः' वहां दिव्य गुणों का दान करने वाले तथा दिव्य भावनाओं को बरसाने वालों का आवास है। वहां 'लोकान् संगृभ्य मुहुराचरिकत्' तथा श्रमेण लोकां स्तपसा पिपर्ति' के अनुसार धर्म धनी और कर्मवीर सेवाव्रती लोगों का संगठन होता है तथा इनकी कठिन साधना द्वारा व्यक्ति समाज राष्ट्र और विश्व को पूर्ण तृप्ति देने और सतोषामृत पिलाने वालों की एक श्रेणी खड़ी करने का आयोजन है। यदि आज भी हमारे आदर्श कहे जाने वाले शिक्षणालयों में यह भावना जागृत है, इसकी अग्नि शिखा प्रदीप्त है तो सचमुच शिक्षा के क्षेत्र में और हमारे सामूहिक जीवन में आने वाली नवीन २ समस्याओं का हल करने में यह सहायक सिद्ध हो सकते हैं

आजन्म वैरागी

उस समय मगध और बंगाल में महीपाल की सत्ता थी।

उसके आधीन रहकर माण्डलिक कल्याणश्री, विक्रमपुरी में राज करता था। कल्याणश्री के अपनी रानी प्रभावती से तीन पुत्र हुए। पद्मगर्भ, चन्द्रगर्भ और श्रीगर्भ।

विक्रमपुरी के 'काञ्चनध्वज' महल का त्याग करना, और भगवान् तथागत की तरह ज्ञानभिक्षु बन कर ऐच्छिक ग़रीबी स्वीकार करना, यह महाभाग्य कुमार चन्द्रगर्भ के के कपाल में लिखा था।

ऐसा महाभाग्य किसी को ही मिलता है। इस सर्व त्याग के महाधर्म को कोई ही स्वीकार करता है। कुमार चन्द्रगर्भ ने यह मार्ग स्वीकार किया।

एक दिन जंगल में घूमते घूमते उसे समाचार मिला कि महापण्डित जेतारि यहीं कहीं आस-पास रहते हैं।

खोजते खोजते राजकुमार महापण्डित से मिलने। चला उसके पास नम्रता पूर्वक अभिवादन करके बैठ गया।

जेतारि ने पूछाः—'कौन हो?'

कुमार चन्द्रगर्भ ने उत्तर दियाः-'इस देश के स्वामी का मैं द्वितीय पुत्र हूं!"

ऐसी वाणी सुनने की जिसे आदत न थी या आवश्यकता न थी, उस जेतारि ने शान्तवाणी में उत्तर दियाः-'हमारा कोई देश नहीं' कोई स्वामी नहीं, कोई दास नहीं। तू धरणीपति का पुत्र हो तो तुझे यहां से चला जाना चाहिये। हमारे लिये तो कोई धरणीपति नहीं!"

कुमार चन्द्रगर्भ ने वैरागी जेतारि के इन शब्दों में रहने वाले सर्वत्याग का सामर्थ्य देखा और वह उसके चरणों में लोट पड़ा 'भगवन्! अब आप ही मुझे मार्ग दर्शाओ। जिस उपासना के द्वारा सकल विश्व में कोई स्वामी के रूप में या कोई दास के रूप में नहीं रहता, वह ज्ञान आप ही मुझे दो!'

'इस ज्ञान की उपासना के लिये तुझे भगवान् तथागत की चरणधूलि से पवित्र हुई २ नालन्दा विद्यापीठ की भूमि में प्रवेश करना पड़ेगा। उसके बिना यह नहीं मिल सकता।'

कुमार चन्द्रगर्भ भिक्षु बनने के लिये चल निकला नालन्दा विद्यापीठ के स्थविर बोधिभद्र के सामने बारह वर्ष कोमल वय का बालक, आजन्म वैरागी का महाप्रशान्त मुखमुद्रा से जब खड़ा रहा, और जब नत मस्तक होकर 'श्रमण दीक्षा' के लिये उसने वस्त्र ग्रहण किया तब किसी के अन्तर में ख्याल भी न था कि यह छोटा-सा बालक-दीपंकर श्रीज्ञान-नालन्दा विद्यापीठ की दिगन्तव्यापिनी कीर्ति फैलाने वाले आचार्य शान्तरक्षित की तरह, हिमालय की तरह, हिमालय के उस पार भारतवर्ष का, विश्वशान्ति का सदेश ले जावेगा!——

जीवन-फुलवारी

(ले० श्री सच्चिदानन्द)

एक व्यक्ति को जब प्यास लगती है, उस समय वह अपने घर से लोटा डोरी उठाकर कूप की ओर भागा भागा जाता है, और वहां जाकर वह अपनी प्यास मिटाता है। जब डोरी लोटा खेंचते खेंचते थक जाता है तब उसकी स्वाभाविक इच्छा होती है कि कहीं से घड़ा प्राप्त कर लिया जाय। वह घड़े के लिये दौड़ा दौड़ा बाज़ार में जाता है। जब घड़े की दुकान पर पहुंचता है, उस समय घड़े को लगी हुई पंक्तियों को देखकर उसके दिल में एक स्वाभाविक प्रश्न उठता है कि इनमें से कौन सा घड़ा लिया जाय। वह घड़ों को छांटने बैठ जाता है और खूब देर तक घड़ों का ठाक-बजा कर उनकी परीक्षा करता है। क्योंकि वह जानता है कि यदि इस समय घड़ा उपयुक्त न चुना गया तो वह किस काम का होगा। जब परीक्षा कर चुकता है यानी घड़ों को अच्छी तरह से ठोक बजाकर देख लेता है तो उस घड़े को जो कि उस को सब से सुन्दर और दृढ़ लगा है, लेलेता है। और दुकानदार को उसका दाम देकर अपने घर वापिस आता है। ठीक इसी प्रकार हमारे जीवन की दशा है। जबतक हम मस्ती की नींद सोये होते हैं, तबतक हमको गुणों और अवगुणों का कुछ भी ख्याल नहीं होता है। जीवन ही मानों एक फुलवारी है उसके अन्दर गुण और और अवगुण रूपी बहुत से फूल उग रहे हैं। जबतक हमको अन्दर से प्यास नहीं लगती तब तक हम जिस मार्ग पर जा रहे होते हैं उसी पर कदम धरते चलते जाते हैं। परन्तु जिस समय हमको ज्ञानपिपासा की इच्छा उत्पन्न होती है त्यों ही हम किन्हीं सत्संगी पुरुषों और महात्माओं के पास दौड़े दौड़े जाते हैं। वहां पहुंच कर हम अपनी सम्पूर्ण दशा को कह सुनाते हैं परन्तु उन महात्माओं को भी यह जिज्ञासा उत्पन्न होती है कि यह वास्तव में इसके योग्य भी है अथवा नहीं। वे उनको नाना प्रकार से परीक्षा लेते हैं अर्थात् वे भी इनका खूब ठाक बजा कर देखते हैं जब उनको यह मालूम पड़ता है कि यह व्यक्ति वास्तव में इसके योग्य है तो उसको ज्ञान देते हैं और ऊंचे पथ पर जिस पर कि वे स्वयं जा रहे होते हैं ले जाने की कोशिश करते हैं। अन्त में एक समय ऐसा आता है कि वह सत्संगी पुरुष महात्माओं के प्रभाव से इस जीवन रूपी फुलवाड़ी में खूब फलता फूलता है और अपनी सुगन्ध द्वारा दूर दूर तक लोक लोकान्तरों को सुगन्धित करता है। यदि वह ऐसा न करे तो जीवन रूपी फुलवारी का सच्चा फूल कहलाने के योग्य नहीं हो सकता। और जिस प्रकार से बाज़ार में ठाक बजा कर घड़े को न ले जाने वाले व्यक्ति की दशा होती है अर्थात् वह व्यक्ति पीछे से बैठकर पछताता है ठीक इसी प्रकार से जिसने अपनी जीवन रूपी फुलवारी को अपने जीवन के अन्दर ठीक तरह से सुगन्धित न किया, पीछे से बुढ़ापा आने पर उसको भी पछताना पड़ता है परन्तु "अब पछताये होत क्या जब चिड़िया चुग गई खेत" वाली कहावत उसके ऊपर चरितार्थ होती है।

गुरुकुल

२३ पौष शुक्रवार १९९५

शिक्षा—

प्रारम्भिक शिक्षा, राष्ट्रीय शिक्षा का अङ्ग है। किसी भी देश की शिक्षा में 'प्रारम्भिक शिक्षा' का बहुत महत्व है। किसी देश की उन्नति उसकी प्रारम्भिक शिक्षा की अवस्था पर निर्भर है। किसी विद्वान् का कथन है कि 'जातियों का भविष्य उसकी प्रारम्भिक पाठशाला की दीवारों की प्रतिध्वनि में है। प्रारम्भिक शिक्षा का कार्य यह है कि बालक का शिक्षा में प्रवेश करावे, उसकी प्रसुप्त स्वाभाविक शक्तियों का प्रकाश और विकास करे। बालक के अन्दर ज्ञान सम्पादन के लिये तीव्र इच्छा उत्पन्न करे तथा बालक के चरित्र का विकास करे। इसलिये प्रारम्भिक शिक्षा में सब से आवश्यक बात यह है कि शिक्षा बालक की मातृभाषा में हो। जिस प्रकार एक पौदा बाह्य आवश्यक खाद्य सामग्री को लेकर अपने में से ही धीरे २ बढ़ कर एक विशाल वृक्ष के रूप में परिवर्तित होजाता है उसी प्रकार एक बालक भी प्रारम्भिक अवस्था में आवश्यक ज्ञान सामग्री को अपनाकर अपने में से ही, अपनी मातृभाषा द्वारा ही धीमे २ वृद्धि को पाकर इस बात के योग्य होता है कि वह अन्य साधनों से भी अपने लिये आवश्यक ज्ञान सामग्री सञ्चित कर सके। आजकल हमारे देश की पाठशालाओं में जो शिक्षा जिस भाषा में दी जाती है, उस भाषा में प्रवेश करने में हमारा बहुत समय लगता है और इतने समय तक हम केवल उसके द्वार पर खड़े होकर हथोड़ा पीटते और ताला खोलने की तरकीब का अभ्यास करते करते ही मर मिटना होता है। ठीक है, बाद में हम आगलभाष पर अपना अधिकार जमा लेते हैं, किन्तु विचारणीय बात है कि इतने दिनों तक हमारा मन कौन सी खुराक पाकर जीता रहता है। हम क्या सोच पाते हैं हमारा हृदय कौनसा रस खींचता रहता है और हमारा कल्पनावृत्ति क्षुद्र कार्य चलाने के लिये कौनसे उपकरण या साधन प्राप्त कर पाती है। दूसरी आवश्यक बात यह है कि प्रारम्भिक शिक्षा का अधिकांश भाग मौखिक एवं क्रियात्मक होना चाहिये। प्रारम्भिक शिक्षा में पुस्तकों पर अधिक ज़ोर देना उचित नहीं। हमारे देश के नवयुवकों में जो निराशा की छाया दिखाई पड़ती है, उसका एक मुख्य कारण यह भी है कि बचपन से ही पढ़ने के लिखने का काम शुरू हो जाता है। इस ज्ञान लाभ के साथ मन का कोई भी सम्बन्ध स्थापित नहीं होता। इसीलिये यह शिक्षा निराशाजनक है। विचारशक्ति और कल्पनाशक्ति ये दो बहुत ही आवश्यक वस्तुएं हैं। हमारे जीवन के समान ये भी क्रम २ से पैदा एवं उन्नत होती हैं। यदि हम बाल्यावस्था से ही विचार और कल्पना शक्ति पर ध्यान नहीं देंगे तो वे काम पड़ने पर हमें तय्यार न मिल सकेंगी। पुस्तकों का अनावश्यक भार लादकर हमें इन शक्तियों को दबा नहीं देना चाहिये। मनुष्य बनने, वास्तविक मनुष्यत्व प्राप्त करने के लिये इन दो शक्तियों के बिना कार्य नहीं चल सकता। अतएव यदि बालकों को मनुष्य बनाने की इच्छा हो तो बचपन से ही उन्हें मनुष्य बनाना प्रारम्भ करना चाहिये नहीं तो वे बालक ही रह जायेंगे, मनुष्य न बन सकेंगे। बचपन से ही स्मरणशक्ति के ऊपर सारा बोझा न लादकर बालकों को अपनी विचारशक्ति और कल्पनाशक्ति बढ़ाने का भी मौका देना चाहिये। जिस तरह खेत बोने योग्य करने के लिये सवेरे से शाम तक केवल हल चलाना और मिट्टी के ढेले फोड़ना ही काफी नहीं, कुछ रस भी होना चाहिये, उसी तरह इस मानव जन्म को कार्य योग्य बनाने के लिये इस दुर्लभ खेत को खूब उपजाऊ बनाने के लिये केवल रटना और परीक्षा पास कर लेना ही यथेष्ट नहीं। जब हृदय के नवीन अंकुर तिमिरावृत्त मातृभूमि से बाहर निकलकर विशाल पृथिवी और अनन्त आकाश की तरफ सिर उठाकर देखते हैं, जब नवीन विस्मय, नवीन स्नेह और नवीन कौतूहल उन्हें चारों ओर से घेर लेते हैं, तब यदि शुष्क धूलि और तप्त बालुका से—केवल नीरस व्याकरण तथा शब्दकोष से ढक जाते हैं (यथा काशी में) तो पीछे मूसलाधार वर्षा होने पर भी साहित्य के नवीन नवीन सजीव सत्यों की, विचित्र कल्पनाओं की और उच्च भावों की वृष्टि होने पर वे यथेष्ट सफलता प्राप्त नहीं कर सकते। इसलिये प्रारम्भिक शिक्षा में पहले ही नियम बना देने की जो रीति है, उसका पूर्णतः त्याग कर देना चाहिये। बुद्धि का विकास तभी हो सकता है जब अनुभव पूर्वक, प्रयोग पूर्वक, व्यक्ति विषयक ज्ञान होने पर फिर जाति विषयक नियम बताये जायं। धर्म का ज्ञान देने से पूर्व धर्मी का ज्ञान अत्यन्त आवश्यक है। इसी शिक्षा विषयक नीति का परिणाम है कि आज तक जितने इस विषयक सिद्धान्त एवं निर्णय निकले हैं, उन सब में, प्रारम्भिक शिक्षा में व्याकरण का स्थान नहीं दिया गया है। व्याकरण शिक्षा के विषय में 'थाइस' नामक सुप्रसिद्ध विद्वान ने लिखा है कि "व्याकरण शास्त्र और वाक्य रचना शास्त्र तो सूत्र एवं नियमों के समूह मात्र हैं। भाषा विषयक नियम भाषा से ही निकाले जाते हैं। इसलिये व्याकरण भाषा के ज्ञान का साधन नहीं, पर भाषा का ज्ञान होने पर उसको संस्कृत एवं नियमित करने के लिये है"। इसलिये यह आवश्यक है कि प्रारम्भिक शिक्षा में स्मरणशक्ति पर अत्यधिक भार लादकर विचारशक्ति एवं कल्पना शक्ति का विनाश न करना चाहिये अपितु जहां तक हो सके, प्रारम्भिक शिक्षा को सरल, आनन्दप्रद एवं उपयुक्त बनाना चाहिये। जिस प्रकार हवा खाने से पेट नहीं भरता, भोजन करने से ही पेट भरता है परन्तु भोजन को अच्छी तरह पचाने के लिये हवा खाने की जरूरत है। उसी प्रकार किसी शिक्षा विषयक पुस्तक का अथवा ज्ञान को भलीभांति पचाने के लिये—आत्मसात् करने के लिये—दूसरी आनन्दजनक बातों की भी आवश्यकता होती है। इसके लिये आवश्यक है कि पाठ्य पुस्तकों में वर्णित विषय

यथाशक्ति संक्षेप में किन्तु पूर्णता के साथ, सरल रीति से किन्तु विशुद्ध भाषा में, विशद रूप से किन्तु थोड़ी बातों में मधुर भाषा से लिखा जाना चाहिये, तथा उनमें अधिकतर ऐसी ही बातें होनी चाहिये जो बालकों के लिये सुगमता से ज्ञानगम्य, अनुभवगम्य तथा बहुत अंश तक क्रिया में परिणत की जासकें। जहां तक बालक की कल्पना बुद्धि और क्रिया साथ देती है उतने ज्ञान की अपेक्षा यदि अधिक ज्ञान दिया जाय तो बालक की स्वाभाविक शक्ति पर दबाव पड़ेगा और वह कुण्ठित होकर फिर विकास को न प्राप्त हो सकेगी। जो कुछ ज्ञान सीखा है उसको आत्मसात् करने का समय नहीं दिया जायेगा तो वह सफल नहीं हो सकता।

यदि आप इंगलिश शब्द "स्कूल" के निर्माण पर विचार करेंगे तो आपको मालूम पड़ेगा कि स्कूल शब्द ग्रीक से निकला है जिसका अर्थ "Leisure" है। यह शब्द ही बताता है कि शिक्षा देते समय हमें यह बात ध्यान में रखनी चाहिये कि उस छोटे से मानवीय अंकुर को अपनी शाखाओं प्रशाखाओं को फैलाने के लिये एवं फलफूल निर्माण के लिये भी मौका दे रहे हैं या नहीं। साथ ही हमको यह भी चाहिये कि हम बालक की मानसिक उन्नति के साथ २ शारीरिक एवं नैतिक उन्नति पर भी ध्यान दें। शारीरिक उन्नति, नैतिक उन्नति का साधन है। महान् तत्वज्ञानी प्लेटो ने एक जगह लिखा है कि "शिक्षा का उद्देश्य, सिर्फ मानसिक विकास करना नहीं है, अपितु इससे भी बढ़कर शारीरिक शक्तियों के विकास द्वारा मानसिक उन्नति करना भी इसका मुख्य उद्देश्य है।" इसलिये शारीरिक उन्नति पर भी हमको अत्यन्त ही ध्यान देना चाहिये। ताकि बालकों का शरीर सुदृढ़ हो, जिससे वे अपनी बुद्धि को उन्नत एवं शुद्ध कर सकें, और अपने भावी जीवन में शारीरिक दुर्बलता के कारण कर्तव्यों से च्युत न हो सकें। नीति की शिक्षा देना भी आवश्यक है, पर यह ध्यान में रखना चाहिये कि केवल नीति सम्बन्धी बातें, उपदेश, एक विरोधी विषय है। यह कभी मनोहर तथा सफल नहीं हो सकता। इससे केवल हमारा यह उपदेश देने का प्रयत्न ही निष्फल नहीं होता बल्कि कभी २ इससे उलटा अनिष्ट भी हो जाता है। नीत्युपदेश जैसी अच्छी बात बच्चों को बिना जरूरत और बिना समय देने का प्रयत्न करके नीरस और विफल बना दी जाती है। इसके लिये तो चाहिये कि बालकों को शुरू से ही शुद्ध स्थान में रखा जाये। संयम कराया जाये। शुद्ध एवं पवित्र बातें कही जायं तथा सब प्रकार से उनके चारों ओर की परिस्थिति को शुद्ध पवित्र एवं अनुकूल बनाया जाये। भ्रूण को गर्भ के भीतर और बीज को मिट्टी के भीतर अपने उपयुक्त खाद से परिवृत होकर गुप्त रहना पड़ता है। उस समय रात दिन इन दोनों का एकमात्र यही काम रहता है कि खाद्य को खींच कर अपने आपको आकाश के लिये और प्रकाश के लिये तय्यार करते रहें। उस समय वे आहरण नहीं करते, चारों ओर से शोषण करते हैं। प्रकृति ने इन्हें अनुकूल अन्तराल के भीतर आहार देकर लपेट रखा है। बाहर के अनेक आघात और अपघात उनपर चोट नहीं पहुंचा सकते। नाना आकर्षण में उनकी शक्ति विभक्त नहीं होती। बालकों का शिक्षा समय भी उनके लिये इसी प्रकार की मानसिक भ्रूणावस्था है। इस समय चारों ओर से सभी बातें उनके अनुकूल होनी चाहिये जिससे उनके मन का सब से आवश्यक कार्य होता रहे। अर्थात् वे जाने व अनजाने खाद्य शोषण करते रहें, ज्ञान को अपनावें, शक्ति संयम करते रहें और अपने आपको परिपुष्ट करते रहें।

आह की राह पर

(ले० श्री भीष्म)

लार्ड मेकाले ने भारतीय संस्कृति को कुचलने की ठान ली थी। उसने भारतीय शिक्षा पद्धति में आमूलचूल परिवर्तन कर दिया था। भारतीय बच्चों को भड़कीली पाश्चात्य संस्कृति दिखाई जाती थी। वे भोले भाले उसका भड़कीलापन देखकर लोभ में फस जाते थे। उसके पीछे ही सारी जिन्दगी न्योछावर कर देते थे। उसी सभ्यता के पोषकों के लिए जीवन भर काम करते थे। वृद्धा भारत माता का कोई सहारा न था। उसके गोद के अनेक लाल दूसरों के बन जाते थे। वह बेचारी क्या कर सकती थी? खून का घूंट पीकर रह जाती थी। उसके करोड़ों पुत्र थे, पर उसका अपना कोई न था।

आखिर उस बुढ़िया का दुःख रोका न रुका। एक दिन उसने अपने एक महात्मा पुत्र के सामने क्रन्दन प्रकट किया। कुमारी वेदकुमारी दौड़ी दौड़ी आई और गर्वपूर्वक उस महात्मा के सामने गाने लगी—

> एक बार ईसा ईसा बोल,
> तेरा क्या लागेगा मोल।
> ईसा मेरा राम रमिया,
> ईसा मेरा कृष्ण कन्हैया ॥

उस महात्मा ने इस में, अपनी सूक्ष्म दृष्टि से भारत माता की तड़पन देखी, एक दर्दभरी आह सुनी। बस, उसने अपने जीवन मार्ग को मोड़ दिया। वह उस राह पर चल दिया जहां दर्दभरी आह की आवाज़ आ रही थी। उसने माता की वेदना को दूर करने का संकल्प किया, भिक्षुक वृत्ति धारण की और द्वार द्वार पर अलख जगाया। उसने असम्भव काम को करने का बीड़ा उठाया। लोगों ने उसे पागल कहा। पर, वह तो धुन का धनी था। उसकी श्रद्धा अटल और अविचल थी। ऐसी श्रद्धा में ही उसे आनन्द आता था। उसने अपने सपने को मूर्त रूप दिया। और गंगा मैय्या की गोद में गुरुकुल की स्थापना हुई। सारे संसार ने उसे देखा और अचम्भा अनुभव किया। भारत माता को कुछ आशा बांधी। सत्था के लिए उसको अनेक आपत्तियों का सामना करना पड़ा। पर उस का बालबांका भी न हो सका। वह संस्था का पोधा, उसके खून से सींचा गया था। उसका विनाश असम्भव था। वह तो आज भी भारतीयों की दिमागी गुलामी को मटियामेट करने में

लगा हुआ है। आज भी वह मानवता को प्रकाश और जीवन दे रहा है।

× × × × × ×

वह तपस्वी कई वर्षों तक उस तपोवन में साधना करता रहा। सहसा, उसने एक आह सुनी। जन्मभूमि के देह पर रौलट एक्ट के डण्डे बरस रहे थे। उसने वैराग्य का अनुराग त्यागा और दीन जनता को सहाय देने की राह पकड़ी।

लोगों को निराशा की नींद में ही से जगा कर बेड़ी से जकड़ लिया जाता था। जिस पर सन्देह होता था उसको कारागार का अतिथि होना पड़ता था। उस काले कानून के सामने करोड़ों माता, पत्नी, बहन और भाईयों ने क्रन्दन किया। यह उससे न सुना गया। वह आस्तिकता का कवच पहने, अहिंसा का शरण लिए, रणक्षेत्र में कूद पड़ा। सन्यासी सेनापति बन गया। अगाध जन समुदाय उसके पीछे था।

वह धर्म की सेना आगे बढ़ी जा रही थी। उसके सामने एक शस्त्रसज्जित सेना आई। "पीछे हटो" की अधिकार के मद से भरी आवाज़ सुनाई दी। सन्यासी ने शान्ति सहित दृष्टि से सेना को आगे बढ़ने की आज्ञा दी। एक सशस्त्र गुरखा उनके सामने आ धमका। उस ने अपना अहिंसा का शस्त्र उठाया, ईश्वर विश्वास के कवच को सम्भाला– अपनी छाती पर से हटाया। और जोरदार शब्दों में आह्वान किया। सामने के शस्त्र व्यर्थ होगये। "श्रद्धानन्द की जय" का नारा लगाकर जन समाज आगे बढ़ा। हिंसा पर अहिंसा की विजय हुई। रण भेरी को सुन कर आगे आने वाले उस संन्यासी को जनता के हृदयों ने दिल्ली का बेताज का बादशाह बना दिया।

× × × × × ×

१९१९ का संवत्सर था। जलियान वाले बाग में आडायरशाही ने आलमगीर शाही को नीचा दिखाया था। उन काली करतूतों को देख, अनेक जीवत्मा अपने देहों को छोड़ चले गये थे। वहां के अनेक घायलों की आहों को हवा ने सन्यासी के कान तक पहुंचाया था। सारा पञ्जाब इस अत्याचार से त्रस्त होगया था। किसी में सिर उठाने की ताकत नहीथी। जो उठाता था उसे जेल म ढकल दिया जाता था।

ऐसे समय में राष्ट्रीय महासभा का अमृतसर में अधिवेशन होने वाला था। स्वागताध्यक्ष होना टेढ़ी खीर थी। जनता सरकार से कांपती थी, अधिवेशन हो सकना असम्भव सा प्रतीत होता था। किसी में इसकी आशा रखने तक का साहस न था। महामना मालवीय जी न इसके लिए प्रयत्न करना सर्वथा आवश्यक समझा था। जनता सरकार की कोप दृष्टि से बचना चाहती थी। इस लिए सहाय के विषय में निराशा ही थी। राष्ट्रीय महा सभा की आत्मा आहें भर रही थी। संन्यासी ने इसे सुना। उसने निश्चय किया कि यह अधिवेशन अमृतसर में हो हाकर रहेगा। वह भी दिसम्बर के अन्तिम सप्ताह में ही। यदि ऐसा न होगा तो जनता भीरु हो जायगी। राजनैतिक आन्दोलन अस्त हो जायेंगे।

उसने असम्भव को सम्भव कर दिखाया। अधिवेशन होने की घोषणा की गई। यात्री लोग दनादन आने लगे। इसी बीच में घनघोर वर्षा हुई। किया कराया सब मिट्टी में मिल गया। यात्रियों के ठहरने का स्थान कहां हो? नगरी के निवासीयों ने, उस सन्यासी की मांग पर, यात्रियों के लिए अपने घर खाली किये। महासभा को आश्वासन मिला।

× × × × × ×

सारा हिन्द आजादी की समस्या को हल करने में लगा हुआ था। आजादी के दीवानों की संख्या बढ़ रही थी। राष्ट्रीय महासभा नौकरशाही से, अनेक आन्दोलनों द्वारा अपना अधिकार पाना चाहती थी। लोग राजनैतिक आन्दोलनों में स्वार्पण करके अपने को सौभाग्यशाली बना रहे थे।

ब्रिटिश नौकरशाही की सम्पूर्ण शक्ति के साथ ईसाई मिशनरी हिन्दू जाति के तृतीयांश—अछूतों को धनादि का लालच दे ईसाइयों की संख्या की वृद्धि करने में लगे हुए थे। सर आगाखां अतुल धनराशि लिए हुए, अछूतों को अपनाने के लिए लालायित हो रहे थे। हिन्दूजाति का विनाश आसन्न था। हिन्दुओं और मुसलमानों की समसंख्या होने की निकट सम्भावना थी। फिर उनके लड़ते झगड़ते रहने से, स्वतन्त्र की अभिलाषा का सर्वथा लोप होने को पूरी पूरी आशङ्का थी। नौकरशाही की चाल सफल हो रही थी। हिन्दूजाति बेसुध अवस्था में थी, दबी हुई थी। उसके मानस में नीति का साम्राज्य था। मुकाबला करने का उसमें बल और साहस न था। वह पड़ी पड़ी बेबस रो रही थी। हरिजनों की वेदना उसे दुःखित कर रही थी। उसकी आह, उस सन्यासी ने सुनी।

सन्यासी ने सब कुछ छोड़ दिया और उसकी सहायतार्थ दौड़ा। उसने अमृतसर की महासभा के मञ्च से भारतीयों को सम्बोधित करते हुए कहा—

"उनकी (हरिजनों की) पुत्रियां और उनके पुत्र हमारी पाठशाला में पढ़ेंगे, उनके गृहस्थ नरनारी हमारी सभाओं में सम्मिलित होंगे, और हमारे स्वतन्त्रता प्राप्ति के युद्ध में कन्धे से कन्धा जोड़ेंगे, और हम सब एक दूसरे का हाथ पकड़े हुए ही अपने जातीय उद्देश्य को पूरा करेंगे। हे देवियो और सज्जन पुरुषो! मुझे आशीर्वाद दो कि ईश्वर की कृपा से मेरा यह स्वप्न पूरा हो।"

उसने कई बार महासभा में इस प्रश्न को उठाया। इस विषय में विश्ववन्द्य महात्मा गांधी से पत्रव्यवहार किया। पर कोई परिणाम नहीं! उसने जानलिया—महासभा इस विषय में कुछ नहीं कर सकती। वह परमपिता की सहायता पर भरोसा रखकर कार्यक्षेत्र में कूद पड़ा। सार्वदेशिक आर्यप्रतिनिधि सभा के प्रधान पद से धन की अपील की। स्थान २ पर दलितोद्धार और शुद्धि का कार्य होने लगा।

इस्लामी चौंक पड़े। सन्यासी को कत्ल की धमकी दी जाने लगी पर इसकी उसे कहां पर्वाह थी। वह अपने कार्यक्षेत्र में आगे ही आगे बढ़ता गया। दलितोद्धार का काम जोर शोर से होने लगा। सहस्त्रों वर्ष पुराना कलङ्क दूर करने की कोशिश हुई। दलितोद्धार ने भारत की एक मुख्य समस्या का रूप ले लिया। जो महाप्रभु चैतन्य, कबीर, नानक और गुरु गोविन्दसिंह न कर सके वह इस सन्यासी ने कर दिखाया।

उसने उद्घोषित किया कि—अस्पृश्यों का भी हिन्दुओं के समान अधिकार है। सदियों से नीची मानी जाने वाली अत्याचार और अन्याय से पीड़ित जाति में, उसने सब से प्रथम संकुचितता को हटाया। उनको मानवता की दीक्षा दी। उनके साथ बैठकर प्रीतिभोज किया।

दलितों की आहों को सुनकर उसने क्या नहीं किया। इसके लिये उसने अपनी प्राणप्यारी संस्था से विदा ली। वही पहला मानव था जिसने अपनी संस्था में वेद पढ़ने का द्वार उस जाति के लिए भी खोल दिया जो सहस्त्रों वर्षों से वेदग्रन्थों को छूने के भी अयोग्य समझी जाती थी। लोग इस बात का स्वप्न भी न ले सकते थे कि ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों के साथ दलित जाति कभी चौबीसों घंटे रह सकती है। पर, उसने तो इसे प्रत्यक्ष कर दिखाया। उसने हरिजनों की आहों को सुनकर उनके कष्ट निवारण के लिए अपने आपको स्वाहा कर दिया। यही नहीं, अवसान के दिवस भी उसके मुख से यही शब्द निकले थे।

"अब तो नया अवतार धारण कर शुद्धि का शेष कार्य समाप्त करने की इच्छा है।"

वह बटोही था—आह की राह का। उसने खिलाफत के आन्दोलन के साथ मुस्लिमों का, सरकार से सताये जाने वाले अकालियों की, भिन्न २ समय में भिन्न भिन्न लोगों की आहें सुनी और वह उनकी सहायता को दौड़ा दौड़ा आया। उन सब के लिए स्वार्पण किया। वह दीन दुखियों तथा अत्याचार पीड़ितों की आह को सुन चुपचाप न बैठ सकता था। बस, यही गुनाह था। इसलिए उसे भौतिक देह छोड़कर चला जाना पड़ा। पर अन्तकाल भी शुद्धि के लिए, उसकी इच्छा—उसके आत्मा के जन्मजन्मान्तर के कार्य का दिशा रही है। उसका आत्मा पददलितों, पीड़ितों की आहें सुनकर उन्हें आश्वासन और आधार देता तथा स्वाश्रयी बनाता था—बना रहा है और बनाता रहेगा।

गुरुकुल समाचार

इस सप्ताह ब्र० अरविन्द १३ श्रेणी वातिकशूल, ब्र० आनन्द प्रिय १४ श्रेणी आन्त्रगुल्म शोथ तथा ब्र० सत्यदेव ११ श्रेणी अतिसार रोग से रोगी हुए थे। अब सब स्वस्थ हैं।

इस सप्ताह के पूर्वार्द्ध में पर्याप्त सर्दी रही। इधर २-३ दिन से सर्दी कम है। प्रतिदिन आकाश में, कुछ देर के लिये बादल घिरे रहते हैं, पर धूप तेज़ होने पर सब अदृश्य हो जाते हैं। कृषकों का बारिश न होने की शिकायत है।

विगत रविवार को स्नातकों और उपस्नातकों का ब्रह्मचारियों से दायड़ा क्रीड़ा में साम्मुख्य हुआ। खेल अपूर्व उत्साह के साथ बड़े जोशोखरोश में हुई। स्नातक उपस्नातकों का दल एक गोल से विजयी रहा। सोमवार को मायापुर-सिलेक्टेड-टीम का यहां के ब और म सम्मिलित-दल से हाकी में साम्मुख्य हुआ। जिसमें यहां का दल ५ गोल से विजयी हुआ।

गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ

गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ में ऋतु उत्तम है। वायु चलने से सर्दी का प्रकोप मालूम देता है। चिकित्सालय में कोई रोगी नहीं। सब ब्रह्मचारी स्वास्थ्य लाभ कर रहे हैं। १६ जनवरी १९३९ से नवमासिक परीक्षा आरम्भ है। सब ब्रह्मचारी परीक्षा की तय्यारी में दत्तचित्त हो परिश्रम कर रहे हैं। अध्यापक महानुभाव खूब परिश्रम करवा रहे हैं।

श्रद्धानन्द सप्ताह के उपलक्ष में विद्यालय पांच दिन बन्द रहा। ब्रह्मचारियों ने दिन रात चारों वेदों का अखण्डयज्ञ किया इस की पूर्णाहुति २३ दिसम्बर १९३८ को ४॥ बजे दी गई। तत्पश्चात् प्रार्थना भवन में श्री युत डा० सुखदेव जी अध्यक्ष श्री गांधी धर्मार्थ हस्पताल के सभापतित्व में "बलिदान दिवस" की सभा मनाई गई। ब्रह्मचारियों ने अपने स्वर्गीय कुल पिता के पवित्र चरणों में श्रद्धाञ्जलि पेश की। अध्यापकों ने ब्रह्मचारियों को कुल पिता के बताये मार्ग पर चल कर देश, जाति और धर्म की सेवा करने का उपदेश दिया। सभापति का अन्तिम भाषण बड़ा मनोरंजक और अनुकरणीय था। ब्रह्मचारियों को उन के उपदेश से विशेष लाभ पहुँचा।

चूनीबाई टेकचन्द नागिया छात्रवृत्ति

डेरा गाज़ी खां निवासी श्रीमान् भाई टेकचन्द जी नागिया ने २५०००) रुपये गुरुकुल कांगड़ी को इस लिये दान दिया हुआ है कि इस छात्रवृत्ति पर ग़रीब और होनहार बालक गुरुकुल कांगड़ी में प्रविष्ट किये जायें। प्रार्थी निम्न बातों पर ध्यान रख कर प्रार्थना पत्र भेजें।

१: आधी छात्रवृत्ति प्राप्त करने वाले सज्जन ही प्रार्थना पत्र भेजें।

२: बालक तथा उसके संरक्षक के योग्य अधिकारी प्रमाणित होने तक छात्रवृत्ति निरन्तर दी जावेगी अन्यथा बन्द कर दी जायगी।

३: संरक्षक महाशय जो अपने प्रार्थना पत्र के साथ छात्रवृत्ति का अधिकारी होने सम्बन्धी अपनी निर्बल आर्थिक अवस्था का प्रमाण पत्र दें वह वहां की समाज के प्रधान महाशय का होना जरूरी है।

४: उत्तर के लिये डाक व्यय एक आना प्रार्थना पत्र के साथ भेजें।

५: प्रार्थना पत्र सीधे श्री० भाई टेकचन्द जी नागिया ब्लाक "जे" डेरा गाज़ी खां के पते पर भेजने चाहियें।

सत्यव्रत
मुख्याधिष्ठाता
गुरुकुल विश्व विद्यालय कांगड़ी सहारनपुर।

गुरुकुल कांगड़ी की प्रसिद्ध औषधियां

ब्राह्मी तैल

स्नान के बाद सिर पर लगाने के लिए यह सुगन्धित तैल अत्युत्तम है। इससे दिमाग़ तरोताज़ा रहता है, स्मरण शक्ति बढ़ती है।

मूल्य ॥) शीशी

सुगन्धित हवन सामग्री ॥) सेर

द्राक्षासव

यह स्फूर्तिदायक सुमधुर पेय है। भूख बढ़ाता है, चित्त को प्रसन्न करता है, पुरानी खांसी, कब्ज़, थकावट तथा कमजोरी में विशेष हितकर है। मूल्य १।) पौंड

च्यवनप्राश

हमारे यहां हिमालय की ताज़ी जड़ी बूटियों से तैयार किया जाता है। बलवर्द्धक स्वादिष्ट रसायन है। मूल्य ४) सेर

चन्द्रप्रभा

इन गोलियों में शिलाजीत और लोहभस्म की प्रधानता है। सब प्रकार के प्रमेह और स्वप्नदोषों की अत्युत्तम औषध है। शारीरिक दुर्बलता को दूर करती है।

मूल्य ॥=) तोला

बलवर्द्धक ब्राह्मी बूटी ॥।) सेर

पता—आयुर्वेदिक फार्मेसी, गुरुकुल कांगड़ी (सहारनपुर)

चौधरी दुलासराय के प्रबन्ध से गुरुकुल प्रेस गुरुकुल कांगड़ी में मुद्रित तथा प्रकाशित।

* ओ३म् *

"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत" Reg. No. A. 2927

गुरुकुल

सम्पादक—साहित्यरत्न पं० हरिवंश वेदालङ्कार

एक प्रति का मूल्य -) [गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख-पत्र] वार्षिक मूल्य २॥)

वर्ष ३] गुरुकुल कांगड़ी, शुक्रवार ३० पौष १९९५; १३ जनवरी १९३९ [संख्या ३४

दो दीवाने

[श्री पं० केशवदेव ज्ञानी]

गुरुकुल से अब तक सैंकड़ों स्नातक निकल चुके हैं। परन्तु मैं यहां केवल दो दीवानों का ही ज़िक्र करने लगा हूं। ये दो धन के दीवाने नहीं जैसे कि हममें से अनेक हैं। ये गृहस्थ के जंजाल से भी परे हैं। मैं इन्हें देश के दीवाने भी नहीं कहता क्योंकि इन्हें दूसरी ही लगन लगी है। ये हैं दयानन्द के दीवाने। उठते बैठते इन्हें दयानन्द के काम को पूरा करने की धुन है। इन दो दीवानों के नाम हैं श्री स्वामी व्रतानन्द जी और श्री पं० बुद्धदेव जी विद्यालङ्कार।

× × ×

बहुत समय से चित्तौरगढ़ देखने की इच्छा थी। परन्तु अनेक कार्यों में उलझे रहने से पूरी न हुई। अब के देहली में निश्चय किया कि दो दिन निकालकर चित्तौड़ देख ही डालें और एक सुबह वहां पहुंच ही गये। चित्तौरगढ़ स्टेशन के पास ही गुरुकुल है। उसके पूर्व-उत्तर में गम्भीरा नदी और उसके पीछे अरावली की पहाड़ियां। सामने की ओर हो किले की दीवार दिखाई देती है। थोड़ी चढ़ाई है और फिर पुराने किले के भग्नावशेष प्रारम्भ हो जाते हैं। पथ-प्रदर्शक (Guide) जो बिना बुलाए ही पीछे हो लेता है आपको पुराने राजपूती इतिहास की घटनाएं याद दिलाता है। 'इस जगह राणा प्रताप का जन्म हुआ था। यहां पन्ना धाई ने अपने पुत्र की कुर्बानी देकर राजकुमार उदयसिंह की रक्षा की थी। यह पद्मिनी का महल है और ये वे कुण्डियां हैं जहां राजपूतनियों ने जौहर किये थे। थोड़ी दूरी पर भक्त मीरा का मन्दिर है। इसी प्रकार दो विशाल विजय-स्तम्भ बने हैं जो हमारे पूर्वजों की वीर-कीर्ति के चिन्ह हैं। मुझे तो इन विजय-स्तम्भों से अपने पराजय की स्मृति हो उठी। कहां वे वीर राजपूत जो स्वाभिमान के लिए हज़ारों कष्ट झेलते रहे और कहां हम गुलामी में भी मस्त हैं।

× × ×

किले से उतरकर वापिस गुरुकुल आए। यह स्टेशन के पास ही एक खुली जगह पर है। ज़मीन पथरीली और सख़्त है, ठीक वैसे ही जैसे कि यहां के लोग। ये गरीबी और तकलीफों के बावजूद भी नरमाई और झुकना नहीं सीखे। फिर कोई परदेसी यहां आकर किसी नई योजना में इनका सहयोग पाए यह असम्भव है। इस असम्भव को भी श्री स्वामी व्रतानन्द जी ने सम्भव कर दिखाया यही तो आश्चर्य है।

सन् १९२५ में स्वामी व्रतानन्द जी स्नातक बने। उस समय इनका नाम पं० युधिष्ठिर जी था। सन्यास तो इन्होंने १२ वर्ष पीछे लिया। पं० युधिष्ठिर जी पढ़ाई में सबसे पीछे, स्वभाव में जिद्दी और खेलों में शून्य थे। किसी को स्वप्न भी न आ सकता था कि ऐसा अत्यन्त सामान्य व्यक्ति किसी दिन गुरुकुल-चित्तौड़ की स्थापना करेगा। परन्तु जैसा कि अंग्रेजी–बाइबिल में कहा है—'एक पत्थर जिसे राजों ने निरुपयोगी कहकर परे फेंक दिया था, पीछे से एक विशाल भवन की आधार-शिला बना।"

जवानी के दिनों में एक समय ऐसा आता है जब मनुष्य भविष्य की सुखद कल्पनाएं करता है। ऐसा ही समय पं० युधिष्ठिर जी का भी आया। वे स्वामी दयानन्द सरस्वती का जीवन चरित्र पढ़ रहे थे, प्रकरण आया चित्तौड़ का। दयानन्द अरावली की पहाड़ियों पर खड़े देश के भविष्य की चिन्ता कर रहे हैं। उनके सामने एक मात्र समस्या है कि भारत का सुवर्ण युग कैसे लौटे? जब तक भारत निवासी अशिक्षित हैं उन्नति असंभव है। वर्तमान अंग्रेजी शिक्षण-पद्धति से दयानन्द को सन्तोष नहीं। ऐसे समय वे अपने शिष्य स्वामी आत्मानन्द को सम्बोधन करके कहते हैं कि "मैं इस आदर्श वीरभूमि चित्तौरगढ़ में एक आदर्श गुरुकुल स्थापित करना चाहता हूं।"

कई बार एक भावना हमें क्यों इतना प्रभावित करती है इसे समझने के लिए मनोविज्ञानशास्त्र द्वारा हमें अपने अन्तःकरण की प्रसुप्त वृत्तियों का विश्लेषण करना होगा। अस्तु। स्वामी दयानन्द का कहना स्नातक युधिष्ठिर जी ने ऐसे ही समझा, मानो वे उन्हें ही लक्ष्य करके कहा गया था। उस दिन से उन्हें यही धुन रही। उठते बैठते यही विचार उनके मस्तिष्क में मंडराता रहा। इसके लिए उन्होंने घर-बार छोड़ा, माता-पिता का मोह छोड़ा, गृहस्थ की इच्छाएं छोड़ीं। सन्यासी बनकर मधूकरी हाथों में ली। जिन्हें संस्थाओं से सम्बन्ध है, वे भलीभांति जानते हैं कि इन सफेद हाथियों को बांधना आजकल कितना कठिन है।

गुरुकुल-चित्तौड़ स्थापित हो ही गया। स्वामीव्रतानन्द जी की इच्छाएं पूरी हुईं। आज पुराने चित्तौड़गढ़ के सामने एक नया गढ़ है जिसे हम लंगोट-बन्द दयानन्द का गढ़ कहते हैं। यहां के सिपाही ब्रह्मचारी हैं। यहां के हथियार ज्ञान और तपस्या हैं। यहां का राजा आदित्य है और यहां का आदर्श प्राणिमात्र को शान्ति व अभय देना है।

× × ×

अब हम दूसरे दीवाने की ओर आते हैं। हमें याद है कुछ अरसा हुआ। रेलगाड़ी में आ रहे थे। साथ में दो चार पंजाबी सज्जन भी थे। बात २ में बहस छिड़ गई। विषय-गुरुकुल कांगड़ी बना। एक महाशय जो थे महात्मा मुन्शीराम जी की दुहाई देकर समर्थन किया। दूसरे महाशय जी ने 'पब्लिक का लाखों रुपया नष्ट हो गया है' का रोना रोया। बहस लगभग आधा घंटा होती रही। इतने में दोनों पार्टियों का जोश काफी ठण्डा हो चुका था। हां, ज़िद्द बाकी थी। भाग्यवशात् एक वृद्ध सज्जन बोल उठे "सुनो जी! आप कहते हैं गुरुकुल से क्या हुआ? आप पं० बुद्धदेव जी विद्यालङ्कार को जानते हैं? जी हां! उनका व्याख्यान सुना है? जी हां! बस! हमारी राय में अगर गुरुकुल ने एक भी प० बुद्धदेव जी जैसा स्नातक पैदा कर दिया तो उस पर लाखों रुपये कुरबान हैं।

सुना? यह है दूसरे दीवाने की कीमत। पर उसकी भोली हालत को सुनकर आप हैरान होंगे! कभी २ तो शाम को खाना कहां होगा? और होगा भी? यह भी नहीं मालूम। तन पर एक फटा पुराना खद्दर का कुड़ता और नीचे आधी धोती। हाथों में एक माला जिसमें मूलवेद। यही ब्राह्मण की समस्त सम्पत्ति है। हां भगवान पर भरोसा अटूट है। उसी ने भेजा है उसी का काम कर रहे हैं और उसी का दिया खाएंगे।

प० बुद्धदेव जी लोगों की खुशामद करना नहीं जानते। चापलूसी से उन्हें नफ़रत है। पैसे वालों का अहंकार तोड़ना चाहते हैं। वे बनिये से ब्राह्मण को ऊंचा समझते हैं। बस यही उनकी खासियत है। आप इसे अच्छा कहें या बुरा इसकी उन्हें परवाह नहीं।

शायद हैदराबाद की घटना है। पं० माधवाचार्य से पं० बुद्धदेव जी शास्त्रार्थ कर रहे हैं। विषय-मूर्तिपूजा है। विपक्षी प्रश्न करता है "यदि आप मूर्ति पूजा नहीं करते तो दयानन्द के चित्र पर पैर मार सकते हैं?" जवाब मिलता है "पैर नहीं जूता मार सकता हूं।" पं० माधवाचार्य चैलेञ्ज करते हैं कि "लगाओ जूता यह चित्र है।" ऐसे समय कोई कमज़ोर दिल का होता तो पीछे हट जाता। पं० बुद्धदेव जी ने उठाया जूता और लगाया एक नहीं, तीन बार। और फिर पूछा विपक्षी से 'क्यों जी! अब आपकी बारी है। लगाइये शिवलिंग पर। नहीं तो मुझे कहिये मैं मरम्मत करूं।

यह है दीवाने की दीवानगी। लोग फुसफुस करते हैं "दयानन्द के चित्र पर जूता।" मैं कहता हूं "हां अगर दयानन्द के चित्र द्वारा भी मूर्ति पूजा होती हो तो उसे भी सदा के लिए नष्ट कर देना चाहिए।" दयानन्द एक सिद्धान्त को लेकर आये थे और वह सिद्धान्त दयानन्द की अपनी मूर्ति से भी अधिक मूल्यवान् है।

पं० बुद्धदेव जी को वेदों में अगाध श्रद्धा है। वह वस्तुतः ब्राह्मण की गौ हैं। जितनी उसकी सेवा को जाय उतना ही दुग्ध मृत मिलेगा। वेद की उनकी गवेषणाएं धीरे २ आर्यजनता के सामने आरही हैं। आजकल वो शतपथ ब्राह्मण और अथर्ववेद पर लगे हैं। जब उनका भाष्य प्रकाशित होगा तब लोगों को पता लगेगा कि कितने अमूल्य रत्न वैदिक-साहित्य में छिपे हैं।

कुछ समय पूर्व मैं उन्हें लाहौर में मिला। अपने आश्रम में धूनी रमाये बैठे थे। वेद की पुस्तक खुली थी। विचार हो रहा था। विषय सायण के मुकाबिले पर दयानन्द का भाष्य था। विषय बदला। पण्डित जी कहने लगे "अब हमारी एक इच्छा है कि वैदिक काल की एक आर्य-नगरी बसाई जाय, जिसमें चारों वर्णों का अपना २ स्थान हो। जिसमें गुरु दयानन्द प्रतिपादित तीनों आर्य-सभाएं स्थापित हों। जिस नगरी को हम अपने प्रचार का Model या आदर्श कहें।"

सम्भव है कि पाठक इसे स्वप्न कहकर हंसें। दीवाने की दीवानगी समझें। परन्तु सब महान् कार्य इसी तरह स्वप्न या कल्पना से ही प्रारम्भ होते हैं। कौन कह सकता है कि यह स्वप्न सच न होगा?

निजाम राज्य में धांधली

(ले० श्री सतीश)

निज़ाम सैस्थान के जो वर्तमान नवाब हैं, इनके पिता के समय हैदराबाद में किसी प्रकार का कोई अशान्ति न थी, न हिन्दुओं को कोई कष्ट था न अल्पमता-वलम्बियों का। इनके पिता बड़े दूरदर्शी और अच्छे राजा थे। वहां के हिन्दू भी इस बात को स्वीकार करते हैं कि पहले वे किसी भी प्रकार का कष्ट अनुभव नहीं करते थे। मुसलमान और हिन्दु कन्धे से कन्धा लगा कर काम करते थे और यह ध्यान ही नहीं रहता था कि कौन हिन्दू है और कौन मुसलमान। परन्तु अब, जबसे वर्तमान नवाब का शासन काल प्रारम्भ होता

है तब से वहां के हिन्दू निवासियों पर राजकर्मचारियों द्वारा जो नृशंस अत्याचार किये जाते हैं, उनकी कल्पना हम इतनी दूर बैठकर इस २० वीं शताब्दी में नहीं कर सकते हैं, दूसरे शब्दों में वह व्यवहार मानव के प्रति मानव का किसी भी अर्थ में नहीं कहा जा सकता है। वहां पर हिन्दुओं के धर्म तथा संस्कृति की खुले आम हत्या की जाती है। उन्हें कहा जाता है कि हिन्दू लोग नपुंसक हैं और जबर्दस्ती मुसलमान बनाया जाता है। इतना ही नहीं किन्तु जहां राज्य की ओर से उन इन बातों का विरोध होना चाहिए था वहां पर ऐसा दुर्व्यवहार करने वालों को प्रोत्साहना दी जाती है;

हैदराबाद में आर्यसमाज का प्रचार कोई पिछले ५० वर्षों से है। आज वहां पर हिन्दुओं में जितनी जागृति दिखाई देती है सब आर्यसमाज के अथक-परिश्रम का परिणाम है। परन्तु इस बात को मुस्लिम सरकार कैसे सहन कर सकती थी कि कोई उसके असभ्य एवं उद्धत कार्य का विरोध करे। वहां के अधिकारियों ने अधिक जोर शोर के समय अत्याचार किये जिन्हें देखकर औरङ्गजेब और अलाउद्दीन का शासन काल याद आजाता है।

हैदराबाद को बड़ा प्रगतिशील और उन्नतिशील संस्थान समझा जाता है, परन्तु वहां की शासनप्रणाली और आन्तरिक अवस्था इस बात को स्वयं उद्घोषित कर रही है कि वे अभी औरङ्गजेब के जमाने की ओर बढ़ रहे हैं। हैदराबाद में असभ्यता का जो नग्न नृत्य हो रहा है उसको देखकर आश्चर्य होता है कि अब भी ऐसी बातें संभव है।

हैदराबाद में हिन्दुओं की जनसंख्या ८७% है। तीन प्रतिशतक अन्य जातियों के हैं। मुसलमान कुल १० हैं। इतनी अधिक जनसंख्या के होने पर भी हिन्दुओं को वहां की शासन प्रणाली में नाममात्र को भी अधिकार नहीं है। पुलिस में ७५% मुसलमान हैं। इसी प्रकार अन्य अधिकारों पर भी मुसलमानों की संख्या बहुत अधिक और हिन्दुओं की दयनीय है।

वहां की कुछ घटनाओं को देखने से पता चलेगा कि हिन्दुओं को किस प्रकार जकड़ दिया गया है। हिन्दु लोग अपने त्यौहारों को नहीं मना सकते हैं। इसके लिए भी उन्हें आज्ञा लेनी पड़ती है। यदि दुर्भाग्य से हिन्दुओं के त्यौहार के साथ कोई मुसलमानी त्यौहार आगया तो हिन्दू अपना त्यौहार किसी भी अवस्था में नहीं मना सकते हैं। मुसलमानों की नई २ मस्जिदें धड़ाधड़ बन सकती हैं किन्तु हिन्दुओं को देवालय बनाने की आज्ञा तो देना दूर रहा उन्हें पुराने मन्दिरों की मरम्मत भी नहीं करने दी दी जाती है। इससे अधिक किसी जाति पर क्या अत्याचार किये जा सकते हैं कि उनके धार्मिक—विश्वासों को, उन पुरातन भावनाओं को—जो सदियों से उनके हृदयों में स्थान बनाये हुए चले आरहे हैं कुचल डाला जाय।

इस प्रकार आर्य समाजी अपनी दैनिक ईश्वरोपासना के लिए- आर्य समाजों को छोड़ दीजिए- हवन कुण्डों को अपने घरों में ही बनाते हैं, तब भी वहां की सरकार इस बात को नहीं सहन कर सकती है। वहां की सरकार हवन-कुण्ड को बड़ी रहस्यमयी दृष्टि से देखती है।

कोई भी उपदेशक अपने उपदेश को अधिकारियों को बिना सुनाये और बिना आज्ञा प्राप्त किये भाषण नहीं कर सकता है। कई बार तो पुलिस कर्मचारी ऐसी बातें करते हैं जिनको सुनकर हंसी क्षोभ और दुःख होता है कि कोई सरकार इतनी अशिक्षित हो सकती है। यज्ञोपवीत तोड़ना और हिन्दुओं पर इक्के दुक्के आक्रमण करना साधारण बात है। एक बार एक व्यक्ति को इस लिए दण्ड दिया गया कि उसने मुहर्रम के दिनों में विवाह किया है। विवाह के लिए इस प्रकार का प्रतिबन्ध एक विचित्र उदाहरण है।

आंकड़ों द्वारा यह स्पष्ट है कि वहां की सरकार इग्लैंण्ड में मस्जिद बनाने के लिए ८ लाख, तथा इसी प्रकार रियासत से बाहर हिंदू प्रजा के रुपयों को मुस्लिम उन्नति के लिए व्यय करती है।

कोमल से कोमल वस्तु भी दबकर कठोर होजाती है फिर मनुष्य का हृदय इस बात को कब तक स्वीकार कर सकता है। इतिहास इस बात का साक्षी है कि अत्याचारी क्रूर राजा कभी भी कृतकार्य नहीं हुए हैं। अत्याचारों के विरोध में ही वहां की जनता ने सत्याग्रह का बिगुल बजाया है। वह दिन दूर नहीं जब निजाम सरकार को मुंह की खानी पड़ेगी।

उठ मन

उठ मन, उठ मन क्यों सोवे रे,
भूल भूल यों अपनापन।
चल मन चलमन क्यों खोवे रे,
रम्य रूप के इस उपवन ॥ १
यहां नहीं सोने से मिलता,
ज्योतिरूप वह जीवन धन।
सोने से मिल खो जाता है,
खाक मोल बिक, वह छन छन ॥ २
मदमस्ती में भला किसी ने,
शम दम का सेवा सतगुन।
रह रह चञ्चल हो जाने में,
कौन कर सका प्रभु सुमिरन ॥ ३
सोने वाले तू क्या जाने,
पेंच-पेंच की इन्द्रिय गन।
उन से पूछो, जो सोते हैं,
जाग जाग कर लाख जतन ॥ ४
जो थे जाते सोतों के संग,
उन सपने पी भंग पवन।
जो आये थे जग २ रातें,
उन पाई, प्रियछवि, दर्शन ॥ ५

श्री 'विनय,'

गुरुकुल

३० पौष शुक्रवार १९९५

उत्तरदायी शासन तथा रियासतें—

बढ़ती हुई स्वातन्त्र्यभावना के नियन्त्रण तथा नियमन के लिए हमारी विदेशी सरकार ने भारत को संघ-शासन देना स्वीकार किया हुआ है। इस प्रस्तावित संघशासन में ब्रिटिश-भारत तथा रियासतों गंठ जोड़ा बनकर संघ शासन का रूप दिया जायगा। ब्रिटिश भारत के प्रान्तों में लगातार के आन्दोलनों के फलस्वरूप– कुछ-सीमित मात्रा में ही सही––प्रान्तीय-स्वशासन के अधिकार सौंप दिये गये हैं। दूसरी ओर संघ-शासन में प्रविष्ट होने वाले देशी रियासतों में अब भी मध्यकालीन निरङ्कुश-स्वेच्छाचारी शासन प्रचलित है। देशी रियासतें संघ शासन में जहां अपनी मर्जी पर तथा अपनी ही शर्तों पर प्रविष्ट होने के लिए स्वतंत्र हैं वहां ब्रिटिश भारत के प्रान्तों को जबर्दस्ती ही स्वातंत्र्य भावना को सदा के लिए कुचलने वाले नियमों को स्वीकार करते हुए संघ शासन में प्रविष्ट होना पड़ेगा।

प्रस्तावित संघशासन में देशी रियासतों का भाग प्रतिक्रियागामी तथा सदा सरकार के इशारे पर नाचने वाला होगा। देशी रियासतों की सरकारें रजवाड़ों के ईश्वर प्रदत्त (?) स्वत्वों को सदा के लिए सुरक्षित रखते हुए ही संघ-शासन में प्रविष्ट होना स्वीकार कर सकती हैं।

भारत को समुन्नति की दिशा में– स्वातन्त्र्य की छत्र छाया में फलते-फूलते देखने की उत्कट अभिलाषा वाले देशभक्त भारतीय, इस योजना को सर्वथा निराशा-जनक घोषित कर चुके हैं। समस्त प्रगति-शील संस्थाएं संघ-शासन को भारत के लिए सदा की परतन्त्रता की बेड़ी से उपमा देते हैं। भारत की सब से प्रमुख राज-नैतिक संस्था राष्ट्रीय-महा-सभा कांग्रेस ने, संघ-शासन का हर तरह से पूर्ण विरोध करने की ठान ली है। मुस्लिम लीग आदि अन्य संस्थाएं भी संघ शासन का पूर्ण विरोध कर रही हैं।

राष्ट्रीय महा सभा की ओर से प्रस्तावित संघ-शासन विधान में रियासतों वाले हिस्से में भी उत्तर दायी शासन की मांग की गई है। उत्तरदायी शासन के रियासतों में स्थापित होने से, संघशासन में प्रजा द्वारा चुने हुए प्रतिनिधियों का बहुमत हो सकता है तथा इस दशा में प्रस्तावित-संघ-शासन में सर्वोच्च सत्ता के अधिकारों को भी सीमित किया जा सकता है।

राष्ट्रीय महासभा द्वारा इस उत्तरदायी शासन की मांग को ब्रिटिश पार्ल्यामैण्ट ने रियासतों की स्थानीय सरकारों की इच्छा पर ही छोड़ा है। देशी रजवाड़ों की यदि इच्छा हो तो वे अपने राज्य में उत्तरदायी शासन की स्थापना कर सकते हैं– और ब्रिटिश सरकार उस में कोई हस्तक्षेप नहीं करेगी– ऐसा ब्रिटिश सरकार ने आश्वासन दिया है। राष्ट्रीय महासभा कांग्रेस भी रियासतों में हुई राजनैतिक जागृति का समुचित उपयोग लेने के लिये रियासतों की स्थानीय प्रजा द्वारा ही उत्तरदायी शासन की मांग के आन्दोलन का संचालन करने लगी है। समस्त भारतीय रियासतों में इस आन्दोलन के परिणाम स्वरूप राजनैतिक स्वत्वों के पाने के लिए आज एक आवाज़ उठ रही है। छोटी बड़ी सभी रियासतों की प्रजाएं, अपनी परतन्त्रता तथा अत्याचार का– अनुभव करती हुई स्वशासन को– उत्तर-दायी शासन को कायम करने की मांग करती आ रही हैं। मैसूर, ट्रावन्कोर, हैदराबाद, राजकोट आदि रियासतों में उत्तरदायी शासन का लाने के लिए वैध उपाय तथा सत्याग्रह किये जा चुके हैं। मैसूर ट्रावन-कोर में शासकों ने प्रजा को कुछ अधिकार दिए भी हैं। राजकोट में प्रजा के लगातार आन्दोलन करने पर वहां उत्तरदायी शासन की मांग को क्रियान्वित रूप देने का आश्वासन दे दिया गया है। कुछ रियासतें ऐसी भी हैं– जहां के प्रजा वत्सल शासकों ने अपने व्यक्तिगत लाभ की परवाह न करते हुए उत्तरदायी शासन सुधारों की घोषणा कर दी है; औंध जैसी प्रगतिशील रियासतें इस विषय में पथप्रदर्शन का कार्य कर रही हैं। उड़ीसा की रियासतों में भी धेनकनाल आदि में प्रजा के जन्म सिद्ध अधिकारों की जोरदार मांग हो रही है। किन्तु इस विषय में एक बात ध्यान देने योग्य है कि उत्तरदायी शासन को प्राप्त करने के लिए अहिंसात्मक उपायों का ही उपयोग लेना चाहिए। और इस में सफलता भी मिलती है। इसके लिए हमारे सामने राजकोट का उदाहरण विद्यमान है, जहां अंगरेज दीवान सर पैट्रिक कैडल के विरोध के बावजूद भी प्रजा के अहिंसात्मक आन्दोलन में डटे रहने से शानदार विजय मिली है। दूसरी ओर रनपुरा की रियासत का उदाहरण है, जहां उत्तेजित भीड़ द्वारा उड़ीसा के पालिटिकल एजेण्ट को चाहे उत्तेजित करने पर ही सही–मार डाला गया है। रनपुरा, रियासतों के स्वातन्त्र्य संग्राम में, दूसरा चौरी चौरा सिद्ध हो सकता है। रियासती कांग्रेस तथा प्रजामण्डलों का आन्दोलन केवल अहिंसात्मक आधार पर होना चाहिए। रनपुरा का स्वाधीनता संग्राम हिंसा का आश्रय लेने से बहुत निर्बल पड़ गया है।

रियासतों के उत्तरदायी शासन के आन्दोलन को कुछ संस्थाओं द्वारा प्रबल विरोध भी हो रहा है। मुस्लिम लीग, रियासतों में, कांग्रेस के आन्दोलन का सख्त विरोध कर चुकी है। लीग के इस प्रबल विरोध का कारण प्रतीत होता है कि उसे रियासतों में उत्तरदायी शासन की स्थापना से डर है कि प्रगतिशील राजनैतिक संस्थाओं का, जिस के प्रतिनिधियों पर जनता का पूर्ण विश्वास

है उनका कब्जा हो जायगा। मुस्लिम लीग आदि साम्प्रदायिक आधार पर खड़ी होने वाली संस्थाओं को पूछने वाला उस दशा में कोई न होगा। क्योंकि यह निश्चित है कि उत्तरदायी शासन की स्थापना होने पर प्रजा किसी खास नाम या सम्प्रदाय के नाम पर प्रजा के धन का दुरुपयोग करने वालों को आगे आने न देसकेगी। इन्हीं सब बातों को ध्यान में रखकर तथा मुस्लिम रियासतों में उत्तरदायी शासन की बढ़ती मांग देखकर मुस्लिम लीग ने राष्ट्रीय महासभा कांग्रेस की रियासतों में शासन अधिकारों की मांग का जबरदस्त विरोध किया है। मुस्लिम लीग के कर्णधार विरोध करते हुए यह भूल जाते हैं कि कुछ रियासतें ऐसी भी हैं जहां कि मुस्लिम प्रजा ही बहुमत में है। लीग को डर है कि इन मुस्लिम-प्रजा-प्रधान रियासतों में भी उत्तरदायी शासन की स्थापना होने पर जातिगत स्वार्थों को कोई न पूछेगा। इसलिए ये मुस्लिम प्रजा के अधिकारों की मांग का भी विरोध करते दीख पड़ते हैं।

दूसरी ओर हिन्दू महासभा है जो राष्ट्रीय महासभा कांग्रेस की नीति का इस आधार पर विरोध करती है कि वह मुख्यतया उत्तरदायी शासन के आन्दोलन को हिन्दू रियासतों में ही कर रही है। यह युक्ति भी कोई विचार-संगत नहीं प्रतीत होती कि अब तक मुस्लिम रियासतों में जहां अधिकतर हिन्दू प्रजा है उत्तरदायी शासन की स्थापना नहीं हो जाती हिन्दू रियासतों में भी इसके लिए आन्दोलन नहीं होना चाहिए।

मुस्लिम लीग तथा हिन्दू महासभा की यह भी शिकायत रही है कि रियासतों की प्रजाएं उनका आश्रय न लेकर राष्ट्रीय-महासभा का पल्ला ही क्यों पकड़ती हैं। वे इसके लिए राष्ट्रीय महासभा की नीति का तथा संस्था को भी कोसने से अघाती नहीं हैं।

रियासतों की प्रजाएं उत्तरदायी शासन के लिए तड़प रही हैं, इसके लिये जहां वे अपने पर भरोसा कर आन्दोलन कर रही हैं वहां वे प्रगतिशील राजनीतिक संस्थाओं की ओर भी पथ-प्रदर्शन के लिए देख रही हैं। यदि लीग और महासभा रियासत की प्रजाओं का सफलतापूर्वक पथ प्रदर्शन करती है तब तो ठीक बात है, नहीं तो मैदान राष्ट्रीय महासभा कांग्रेस के हाथ में है। जो अनवरत रियासती प्रजाओं के अधिकारों के लिये हर तरह के वैध तरीकों का आश्रय ले आन्दोलन का संचालन कर रही है। इस विषय में वह उत्तम बुद्धिमत्ता पूर्वक नेतृत्व के द्वारा उत्तरदायी शासन की मांग को सर्वत्र गुंजा रहा है। जिस तरह आन्दोलन का रुख है, उससे तो ऐसा ही प्रतीत होता है कि बृटिश भारत में राष्ट्रीय महासभा को जैसी सफलता प्राप्त हुई है उसी भांति रियासतों में भी होगी।

स्वास्थ्य

(ले०—श्री प्रो० वागीश्वर जी)

[यह हास्यरस-गर्भित तथा उपयोगी लेख आयुर्वेद परिषद् के जन्मोत्सव के अवसर पर पढ़ा गया था। —सम्पादक]

मन्त्री जी ने आज्ञा दी है कि आयुर्वेद परिषद् के जन्मोत्सव में मुझे कुछ कहना ही होगा। मैं न डाक्टर हूँ न वैद्य, यहां तक कि आयुर्वेद महाविद्यालय का विद्यार्थी भी मैं नहीं हूँ। फिर मुझे इस समारोह में बोलने का क्या अधिकार? मैं नहीं समझ सका कि मैं दाल भात में मसूरचन्द क्यों बनूं। अन्त में मुझे ध्यान आया कि बड़े आदमियों के रिश्तेदार सभी बनना चाहते हैं। मुझे भी जब ऐसा सुयोग, प्राप्त हो रहा है तो मैं क्यों कतराऊँ। मैंने आपकी परिषद् के साथ अपना एक सम्बन्ध ढूंढ निकाला है आशा है आप उसे स्वीकार करेंगे। अच्छा तो एक कहानी सुनिये— एक महाशय को कहीं जाना था। चलते चलते रात पड़ गई। सोचा कहीं विश्राम करना चाहिए। पास ही एक ग्राम था। उसके एक घर में जा पहुँचे। घर का मालिक कहीं बाहर गया हुआ था। स्त्रियां पर्दा करती थीं। एक बच्चे को बुलाकर कहा—देखो हम तुम्हारे रिश्तेदार हैं। बड़ी दूर से आये हैं। आज रात यहीं ठहरेंगे। बच्चा बड़ा खुश हुआ। उसने अपनी माता से सब समाचार कहा। उन्होंने भी समझा कि वस्तुतः ही कोई रिश्तेदार होंगे। बढ़िया भोजन का आयोजन हुआ। अतिथि महाशय ने खूब छक कर खाया। अगले दिन प्रातःकाल जब वे चलने लगे तो बच्चों ने पूछा कि यह तो बताते जाइये कि आप मेरे लगते क्या हैं। अतिथि महोदय ने कहा कि हमारा तुम्हारा बादरायण संबन्ध है।

अस्माकं बदरीचक्रं युष्माकं बदरीगृहे।
बादरायण सम्बन्धो यूयं यूयं वयं वयम् ॥

अर्थात् हमारे खेत में बेर का वृक्ष है और तुम्हारे घर में। बेरी के कारण होने वाला यही बादरायण सम्बन्ध है। इतना कहकर वे नौ दो ग्यारह हुये। आपके यहां भी कढ़ाई चढ़ी है, बढ़िया मालों की महक फैल रही है। मेरे बनाए पारमार्थ दर्शनके तृतीय अध्याय, २य पादका प्रथम सूत्र आपने सुना होगा 'जहां देखा तवा परात वहीं बिताई सारी रात"। ऐसी दशा में न होने पर भी कोई सम्बन्ध बना लेना चाहिए फिर मेरा आपका तो पुराना सम्बन्ध ठहरा। अच्छा तो वह सम्बन्ध क्या है? यह जानने की उतावली न कीजिए। कुछ ज्ञान रखना अच्छा है तो कुछ न जान रखना भी अच्छा है। नहीं तो संसार में प्रकाश के साथ अन्धकार क्यों बनाया गया?

आज स्वास्थ्य के सम्बन्ध में कुछ कहना सुनना अप्रासङ्गिक न होगा। प्राचीन काल से स्वास्थ्य का महत्व माना जा रहा है। एक कवि ने छः सुख गिनाए हैं:—

अर्थागमो नित्यमरोगिता च
प्रिया च भार्या प्रियवादिनी च ।
वश्यश्च पुत्रोऽर्थकरी च विद्या,
षड् जीवलोकस्य सुखानि राजन् ॥

संसार में प्रथम सुख धनागम है। जड़ चेतन सभी धन के लिए लालायित हैं।

दुन्दुभिस्तु सुतराम चेतन्
खान्मुखा दपि धन धन धनम् ।
इत्थ मेव निनदः प्रवर्त्तते,
किं नरस्य ननु यस्तु चेतनः ॥

जो स्वयं धन नहीं कमाते वे दूसरों की कमाई पर ही, सफ़ाई से हाथ साफ़ करते हैं। सांप स्वयं बिल क्यों बनाए जब चूहों के बिल उसके लिए हैं और चूहे उसके खाद्य। तभी तो कहा है 'जिसे मिले यों, वो खेती करे क्यों' तिस पर भी तुर्रा यह कि धन की निन्दा भी साथ ही साथ करनी चाहिये। उपेक्षा से प्रेम अधिक प्रबलता के साथ उबलता है। संसार में धन के बिना कोई काम नहीं चल सकता। महात्मा गांधी जैसे व्यक्ति को भी लाखों रुपयों की आवश्यकता होती है। बात यह है कि परलोक में परमात्मा और इस लोक में धन ही सब कुछ है। बिना धन के धर्म भी नहीं हो सकता। दूसरा सुख आरोग्यता अर्थात् स्वास्थ्य है। यदि स्वास्थ्य न हो तो धन दौलत भी सुख नहीं दे सकते। किन्तु जहां एक ओर स्वास्थ्य इतना मूल्यवान् पदार्थ है वहां दूसरी ओर उसके शत्रु भी उतने ही अधिक हैं। कपड़ा जितना कीमती हो उसे उतना ही कीड़ों से अधिक डर रहता है। रत्न जितना मूल्यवान् हो उसे चोरों से उतना ही भय है। इसी लिए मनु ने लिखा है कि "ब्राह्मणं कुशलं पृच्छेत् क्षत्र बन्धुमनामयम्" । अर्थात् पहले मिलते ही यह पूछना चाहिये कि आप स्वस्थ तो हैं? क्योंकि स्वास्थ्य को बिगड़ते देर नहीं लगती। कालिदास ने अपने मेघ का भी यही कहा है कि—"पूर्वा भाष्यं सुलभ विपदां प्राणिनां मेतदेव। जो भोजन स्वास्थ्य के लिए आवश्यक है वही कभी २ स्वास्थ्य को ले बैठता है।

विपदामापतन्तीनां प्रियो प्यायाति हेतुताम् ।
मातृजंघेव वत्सस्य स्तम्भी भवति बन्धने ॥

वैद्यों का कहना है कि भोजन की कमी से उतने लोग नहीं मरते जितने भोजन की अधिकता से। उत्तम भोजन करके व्यायाम न करना स्वास्थ्य के लिए हानिकर है। भोजन वही लाभकर है जो खाने वाले के शरीर का अंग बन जाए। यह काम व्यायाम बिना नहीं हो सकता। किन्तु बहुत व्यायाम करके उचित भोजन न करना भी ठीक नहीं। भोजन केवल पेट भरने के लिए ही नहीं, प्रसन्नता के लिए भी किया जाता है। आज कल बड़े २ भोजों का बड़ा महत्व समझा जाता है। कितनी ही महत्वपूर्ण मन्त्रणाएं जिन्होंने देशों के इतिहास को नई दिशा में परिवर्तित कर दिया है भोजन के प्रभाव से शून्य नहीं कही जा सकतीं। किसी बड़े आदमी से मिलने के लिए उसे भोजन के लिए निमन्त्रित करना चाहिए यह प्रायः नित्य सत्य है। जिसका खाया जाता है उसी का गाया जाता है। तबले के मुंह पर आटा लगाने से वह अच्छा बोलने लगता है। यह ठीक है कि कभी २ हथौड़ी की भी ज़रूरत पड़ती है। किन्तु चिकित्सा शास्त्र में ऐसे उदाहरणों का भी उल्लेख है जिनका हाजमा अत्यन्त तीव्र होता है वे खा कर डकार भी नहीं लेते। बात यह है कि जिन्होंने प्रति दिन कई २ के घर जाना पड़ता है वे किस २ की गाएं। जो दूसरों के यहां प्रायः खाते हैं उन्हें पीछे जाकर अजीर्ण रोग अवश्य होता है इस लिए स्वार्थ रक्षा के लिए आवश्यक है कि भोजन नियत समय पर उचित मात्रा में तथा ऋतु काल के अनुसार किया जाए।

स्वास्थ्य का एक शत्रु कार्याधिक्य भी है। जब शरीर समर्थ होता है मनुष्य स्वास्थ्य की परवाह न करके खूब काम करता रहता है। विश्राम की आवश्यकता उसे प्रतीत नहीं होती। वह समझता है कि उसका शरीर तो वज्र है, उसका स्वास्थ्य खराब हो ही नहीं सकता। उस पर भी यदि कभी ऐसा प्रतीत होने लगेगा तो वह तुरन्त सावधान हो जाएगा। किन्तु रोग कभी सामने से नहीं आता। जब वह गरदन पकड़ लेता है तभी उसके आने का पता लगता है। एक नवयुवक जब बूढ़ों को ये बातें करते देखता है कि अमुक भोजन गरम है, अमुक खुश्क, अमुक ठंडा और बादी, तो उसे हंसी आती है कि ये क्या व्यर्थ की बातें करते हैं। उसे भोजन ठंडा या गरम भले ही प्रतीत हो किन्तु बादी आदि परिभाषाओं को वह समझ नहीं समझ सकता, किन्तु उसी समय वह दिन भी, आड़ में कहीं पास ही खड़ा उस पर हंस रहा होता है जब वह नवयुवक भी प्रत्येक वस्तु के विषय में यही विचार करके डर रहा होगा।

चिन्ता भी स्वास्थ्य का नाश कर देती है। कहा भी है-
"चिता चिन्ता द्वयोर्मध्ये चिन्तैवाति गरीयसी चिता दहती निर्जीवं चिन्ता दहति जीवनम् ॥ चिन्तासमं नास्ति शरीर शोषणम् ॥"

चिन्ता भी सर्वव्यापक सी है। बच्चों को पढ़ाई की चिन्ता है। युवक को धन दौलत, स्त्री पुत्र की, राजा को राज्य की, तो साधु महात्मा को कौपीन कमण्डलु की। पेट की चिन्ता से तो कोई भी मुक्त नहीं। कोई अपनी चिन्ता में घुल रहा है तो किसी को दूसरों की चिन्ता दम नहीं लेने देती। कोई काज़ी जो शहर के अन्देशे से ही दुबले हुए जा रहे थे। भारत के बहुत से लिबरल लीडर देश की हितचिन्ता से सूख कर कुप्पे हुए जा रहे हैं।

पीते हैं चाय कुर्सियों पै बैठ हुक्काम के साथ।
ग़म है लीडर को बहुत मगर आराम के साथ ॥

[आगामी अङ्क में समाप्य]

गुरुकुल समाचार

शम्भूदत्त २य श्रेणी, महेशचन्द्र १३वीं विषम ज्वर इन्द्रसेन १३ वीं उदरशूल विद्यानन्द ११ वीं श्लेष्म ज्वर, ओमप्रकाश १३वीं Corn से सत्यवान् टांसिल महेन्द्रनाथ १२ वीं कास से पीड़ित हैं

उपरोक्त ब्रह्मचारी गत सप्ताह बीमार हुए थे अब सब स्वस्थ हैं।

इन दिनों सर्दी का ज़ोर है आकाश में बादल घिरे रहते हैं। रात्रि को थोड़ी बूंदाबांदी भी हुई। हवा तेज़ चल रही है। सर्दी अधिक होने पर भी ब्रह्मचारियों का स्वास्थ्य अच्छा है। प्रतिदिन आने वाले दर्शकों का हृदय छोटे और बड़े ब्रह्मचारियों का उत्तम स्वास्थ देखकर हर्षित हो जाता है।

संस्कृतोत्साहिनी का जन्मोत्सवः—

विगत २६ दिसम्बर को संस्कृतोत्साहिनी सभा का जन्मोत्सव श्री पंडित रामनाथ जी वेदालंकार के सभापतित्व में बड़ी तैय्यारी के साथ मनाया गया। ब्रह्मचारियों की गद्य-पद्य मयी रचनाएं अत्यन्त सन्तोषजनक रहीं। रचनाओं में सर्वप्रथम पुरस्कार ब्र० क्षेत्रपाल को मिला। तात्कालिक समस्याओं की पूर्ति करने में ब्र० भारतेन्दु को प्रथम पुरस्कार मिला। अन्य विजेताओं को भी योग्य पुरस्कार मिले।

आयुर्वेद-परिषद् का जन्मोत्सवः—

विगत रविवार को आयुर्वेद-परिषद् का जन्मोत्सव हरिद्वार के हेल्थआफिसर के सभापतित्व में धूम धाम के साथ मनाया गया। आयुर्वेद सम्बन्धी लेखों, गल्पों, प्रहसनों तथा कविताओं ने सभा में पर्याप्त विनोद रहा।

गुरुकुल काङ्गड़ी
३७ वां वार्षिकोत्सव

गुरुकुल विश्वविद्यालय काङ्गड़ी का ३७ वां वार्षिकोत्सव—

२५-२६-२७-२८ चैत्र १९९५ तदनुसार ७-८-९-१० अप्रैल १९३९ को ईस्टर की छुट्टियों में विशेष समारोह से मनाया जायेगा। इस अवसर पर अनेक उपयोगी सम्मेलन किये जायेंगे, और विद्वानों तथा राष्ट्र नेताओं के उपदेश व भाषण होंगे। उत्सव की सफलता के लिए अभी से कार्य प्रारम्भ कर दिया गया है। इस वर्ष पुस्तकों की दुकान छत सहित १२ × १२फु० का किराया ५) का होगा। और विशेष दुकान का किराया ६) प्रति दुकान होगा। इस बार ५ दुकानें विशेष नम्बर की रक्खी गई हैं। जिस क्रम से किराया प्राप्त होगा उसी क्रम से दुकानें रिज़र्व की जावेंगी। कृपया इस बात को नोट कर लीजिए कि पूरा किराया अगाऊ मिलने पर ही दुकान स्थिर तौर से रिज़र्व की जावेंगी।

उत्सव सम्बन्धी विशेष सूचनाएं समय समय पर दी जाया करेंगी।

मुख्याधिष्ठाता

गुरुकुल कांगड़ी की डिग्री के सम्बन्ध में आवश्यक सूचना

गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी ने नीचे लिखी डिग्रियों को भारत सरकार से बमूजिब ताज़ीरात हिन्द एक्ट १९२२ फर्द १ प० नं० की रू से रजिस्ट्री करवा लिया है। अतः सबको सूचना दी जाती है कि कोई सज्जन या संस्था ये नाम या इन डिग्रियों से मिलते जुलते नाम न रक्खें अन्यथा उन पर कानूनी कार्यवाही हो सकेगी।

१-सिद्धान्तालङ्कार २-विद्यावाचस्पति।
३-वेदालङ्कार ४-विद्यालङ्कार।
५-आयुर्वेदालङ्कार ६-वेदवाचस्पति।
७-न्यायवाचस्पति ८-मीमांसा वाचस्पति।
९-वेदान्त वाचस्पति १०-सांख्य वाचस्पति।
११-व्याकरण वाचस्पति १२-दर्शन वाचस्पति।
१३-आयुर्वेद भूषण।

सत्यव्रत
मुख्याधिष्ठाता, गुरुकुल कांगड़ी।

गुरुकुल - मुल्तान - का वार्षिकोत्सव

गुरुकुल मुल्तान का वार्षिकोत्सव १७,१८,१९ फरवरी १९३९ तदनुसार ६, ७, ८ फाल्गुन १९९५ शुक्र, शनि, रवि को शिवरात्रि की छुट्टियों में होना निश्चित हुआ है। विस्तृत समय विभाग फिर दिया जाएगा।

इस अवसर पर जो सज्जन अपने बालकों को प्रविष्ट करना चाहें तो नीचे लिखे पते से पत्र व्यवहार करें।

विष्णुमित्र
मुख्याधिष्ठाता

श्रीमती ईश्वरी देवी जी का देहावसानः—

११ जनवरी को दानवीर श्री मुन्शी अमनसिंह जी की धर्मपरायणा धर्मपत्नी श्रीमती ईश्वरी देवी जी के दिवंगत होने का समाचार गुरुकुल पहुंचा। प्रार्थना के बाद, सब कुलवासियों ने खड़े होकर निम्न प्रस्ताव स्वीकृत किया:—

यह कुलसभा आर्यसमाज के अनन्यभक्त तथा गुरुकुल कांगड़ी के आधारभूत दानवीर श्री मुन्शी अमनसिंह जी की धर्मशीला धर्मपत्नी श्रीमती ईश्वरी देवी के आत्मिक देहावसान पर हार्दिक शोक प्रकट करती है तथा उनके शोक संतप्त परिवार के साथ गहरी समवेदना प्रकट करती हुई परमात्मा से दिवंगत आत्मा को सद्गति प्रदान करने की प्रार्थना करती है।

चौधरी दुलासराय के प्रबन्ध से गुरुकुल प्रेस गुरुकुल कांगड़ी में मुद्रित तथा प्रकाशित।

* ओ३म् *

"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत" Reg. No. A. 2927

गुरुकुल

सम्पादक—साहित्यरत्न पं० हरिवंश वेदालङ्कार

एक प्रति का मूल्य -) [गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख-पत्र] वार्षिक मूल्य २॥)

वर्ष ३] गुरुकुल काङ्गड़ी, शुक्रवार ७ माघ १९९५; २० जनवरी १९३९ [संख्या ३५

सच्चाई और वीरता

[ले० श्री उपा० लालचन्द्र जी एम० ए०]

वेद में लिखा है "सत्यमूर्ध्वंनर एवा ही चक्रु" नर आदमियों ने, वीरों ने, बहादुरों ने सदा सच बोला है और ऐसा ही किया है, एक और स्थान पर वेद में भगवान् से भक्त प्रार्थना करता है "हे सहस्र वीर्य प्रभो हमें झूठ से बचा" जो कायर हैं, कमज़ोर हैं, डरपोक हैं वह सच कैसे बोल सकता है, मन वाणी और कर्म में सत्य के द्वारा एकता वही ला सकता है जो वीर है, वीर्यवान् है, बहादुर है। जो सदा झूठ और चालाकी से काम लेता है उसकी शक्ल ही मनहूस हो जाती है, उस पर कोई विश्वास नहीं करता, एक झूठ को ढकने के लिए वह अनेक झूठ और घड़ता है और इस लिये वह पूरी तरह से मस्त और निश्चिन्त नहीं हो सकता, उसका मन गंदा रहता है और अस्वस्थ हो जाता है और जब मन रोगी हुआ तो शरीर को रोगी होते भी देर नहीं लगती, मन और शरीर का आपस में बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध है, मन का शरीर पर और शरीर का मन पर बराबर असर होता रहता है, मेरे ख्याल में झूठे और चालाक आदमियों को प्रायः एक भ्रम होता है और वह यह कि वह अपने को बहुत ज्यादा चतुर और बुद्धिमान समझते हैं और औरों को बेवकूफ़। मगर बुद्धि तो प्रभु ने सब को थोड़ी बहुत दे रखी है और इस लिये चालाक और झूठे आदमी दुनिया की नज़रों में गिर जाते हैं, क्यों कि बहुत देर के लिये कोई भी सब लोगों की आंखों में धूल नहीं झोंक सकता, समय आता है जब उस की पोल खुल जाती है और वह ज़लील हो जाता है। बहुत चालाकियां चलने वाले अपनी चालाकियों के जाल में फंस जाते हैं और स्वयं अपने आप को अपमानित कर लेते हैं। मगर कायर और कमज़ोर यह सब कुछ सहते हैं पर सत्य के मार्ग का अवलम्बन नहीं लेते। यह बेबसी और दीनता ही है जो हमें झूठ बोलने के लिए बाधित करती है झूठ का मूल कायरता है, दिल की निर्बलता है, झूठ को मूल से

यौगिक कार्यक्षमता

[श्री पं० ब्रह्मानन्द जी]

प्रत्येक मनुष्य के अन्दर विविध प्रकार की कार्यक्षमतायें और धारणशक्तियां हैं जिनके विषय में उसे यथार्थ ज्ञान नहीं होता। मनुष्य शक्ति और ज्ञान का भण्डार है। जैसे २ उसका स्वरूप प्रकाशित होता जाता है वैसे २ वह नई शक्तियों, नई योग्यताओं और नये गुणों को प्रकट करता है। वह अपने वातावरणों को परिवर्तित कर सकता है। वह दूसरों को प्रभावित कर सकता है। वह दूसरों के मस्तिष्कों को अपने अधीन कर सकता है। वह दूसरों को स्वस्थ कर सकता है। वह बहुत भौतिक पदार्थों को प्राप्त कर सकता है। वह आन्तरिक और बाह्य प्रकृति को अपने वश में कर सकता है। किन्तु उसे पहले योगाभ्यास के द्वारा इन निद्रित शक्तियों और योग्यताओं को उद्बोधित करना आवश्यक है। उसे अपनी इच्छाशक्ति को उन्नत करना और अपने मन को अपने वश में करना पड़ेगा। उसे उचित है कि वह अपने को पवित्र करे। उसे नियमानुसार एकाग्रता का अभ्यास करना चाहिये। तब वह असाधारण या दिव्य मनुष्य बनेगा।

योग पूर्णतया आत्मोन्नति की एक क्रियात्मक प्रणाली है। आप इसके स्वाभाविक अभ्यास से अपने शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा की सामञ्जस्य पूर्ण उन्नति प्राप्त कर सकते हैं। योग एक शुद्ध विज्ञान है। यह प्राचीन भारतीय

(शेष पृ० ६ पर)

उखाड़ने के लिये चित्त के चिन्तन की ज़रूरत है तभी तो सत्य का प्रेमी भक्त ईश्वर को 'सहस्र वीर्य' कहकर पुकारता है और कहता है कि हे सर्वशक्तिमान् प्रभो, मुझ को वीर्यवान् बनादे मुझे भी बहादुर बनादे ताकि मैं झूठ को अपने अन्दर न आने दूं और सदा सत्य बोलकर तुझको रिझाता रहूं। सच्चा ब्रह्मचारी ही पूरा सत्य बोल सकता है। कृपा करो कि हम सच्चे ब्रह्मचारी हों और पूरे सत्यवादी हों।

हिन्दुस्तान की राष्ट्रभाषा

[पू० श्री काका कालेलकर ने सूरत के आर्यसमाज मन्दिर में हिन्दी प्रचारक मंडल सूरत, की तरफ से राष्ट्रभाषा की आवश्यकता और उसके भिन्न २ पहेलुओं को समझाते हुए गुजराती में एक मननीय भाषण दिया था। जिसका सारांश यहां दिया जाता है।]

व्याख्यान से पहले दो बातें स्पष्ट कर लूं। मैं हिन्दी या हिन्दुस्तानी किसी पद्धति से राष्ट्रभाषा सीखा नहीं हूँ। शुद्ध लिख भी नहीं सकता। इसी तरह मैंने गुजराती का भी कोई विशेष अभ्यास नहीं किया है। विद्यापीठ में रहा, वहां संस्कारी लोगों में बैठा और उनके सहवास से गुजराती का ज्ञान हो गया। हिन्दी में भी इसी तरह से हो रहा है। आज मैं हिन्दी का साहित्यकार नहीं हूं, फिर भी हिन्दी का महत्व समझा सकता हूं।

कालेज में अंग्रेजी पढ़ी, तब उसी के द्वारा स्वराज्य को साध्य समझते थे, परन्तु बाद में स्वराज्य की प्रवृत्ति के बढ़ने पर देशी भाषा के प्रति आकर्षण हुआ और उसका आदर बढ़ा। मेरी मातृभाषा मराठी है। बड़े होने पर गुजरात को कार्य क्षेत्र बनाया। मराठी के प्रति मातृ भक्ति है और गुजराती के प्रति भी प्रेम है। पर मैं भाषा भक्त नहीं हूँ। मैं तो सेवा वृत्ति वाला हूँ। जिस प्रान्त में जाऊंगा वहीं की भाषा द्वारा उसकी सेवा करूंगा। सेवा के लिए भाषा है यह मूल सूत्र है। भाषा बिना चल नहीं सकता। टूटी फूटी भाषा से भी काम न चलेगा। जो भाषा सीखें उसके पूर्ण ज्ञाता बनें। भाषा ऐसी हो जो लोगों के हृदय तक पहुंच उन्हें जागृत करे। मुर्दे दिल को जीवित बनाना, कायर को शूर बनाना यही तो भाषा और साहित्य का बल है।

हमारे देश में अनेक जातियां, पन्थ, धर्म, रीति रिवाज हैं। इन सब की सेवा कर सकें ऐसी भाषा होनी चाहिए। जनता के हृदय तक पहुँचने की शक्ति अरबी फारसी या संस्कृत से नहीं आयेगी। यह शक्ति तो प्रान्त भाषा में ही समाई हुई है। गुजरात की जनता में हिन्दी द्वारा नहीं पहुंच सकते। सूपा गुरुकुल में पहले केवल हिन्दी रखी गई थी, यह भूल थी। मैं वहां के अधिकारियों से इसके लिए लड़ा। गुजरात के लड़कों को सारी शिक्षा गुजराती में ही मिलनी चाहिए। कांगड़ी जाकर वे हिन्दी के पंडित बन जायेंगे। हर्ष की बात है कि उन्होंने पाठ्यक्रम में परिवर्तन किया है। गुजरात की सेवा गुजराती से ही हो सकती है। गुजरात के धाराड़ा भील आदि से क्या कहोगे कि पहले आर्य भाषा पढ़ो फिर वेद उसमें पढ़ायेंगे? यह बात तो मिशनरियों से सीख सकते हैं। दुनिया के कोने २ में जाकर जिस भाषा की लिपि नहीं है जिसका व्याकरण नहीं है जिस का कोश नहीं है उसको तैयार करके उस में बाईबल छपवाई। गुजरात में तो गुजराती ही प्रधान्य रूप में रहेगी। इसी तरह सब प्रान्तीय भाषाओं का महत्व न स्वीकार करें तो राष्ट्रभाषा का भी काम नहीं बन सकता।

हिन्दुस्तान में भिन्न २ जाति, धर्म, भाषाएं हैं परन्तु वह संस्कृति और राजनीति द्वारा एक हैं। एक संस्कृति परिपुष्ट करने के लिए एक सर्व सामान्य भाषा चाहिए। हमारे देश में पहले संस्कृत राष्ट्रभाषा थी। प्राकृत मागधी वगैरह भाषाओं के होते हुए भी शंकराचार्य ने चारों दिशाओं में संस्कृत के द्वारा अपना कार्य किया। धीरे २ संस्कृत लुप्त होती गई। बाद में तुलसी दास, सूरदास, कबीर, आदियों की भाषा हिन्दी बनी चाहे उसका जो रूप रहा हो। उस समय हमारे देश में पठान और मुगल आ चुके थे उन्होंने पर्शियन को राज्य भाषा बनाना चाहा पर यह अस्वाभाविक था। वह हारे वह थके। परन्तु उस समय राज्य कर्मचारी आदमियों ने उनके कई शब्द अपने में मिला लिये। वह फौज और बाजार की भाषा बनी। उसका तिरस्कार का नाम रखा उर्दू। परन्तु देश के लोगों ने उसे अपनाया। हिन्दू कायस्थ और मुसलमानों ने उसे साहित्य में स्थान दिया और वह एक ऊंची साहित्यिक भाषा बनगई। उर्दू शत्रु भाषा नहीं है। यह तो विदेशी भाषा पर स्वदेशी भाषा का विजय है– उर्दू स्वभाषा को विजय है। लिपि के बाद में हम बेपरवाह थे। हमने फारसी लिपि को भी स्थान दिया और वह सारे उत्तर भारत में फैल गई। इस प्रकार फारसी लिपि में लिखी हुई और जिस में अरबी पर्शियन शब्द की अधिकता थी उर्दू कहलाई और जो नागरी लिपि में लिखी गई जिसमें संस्कृत के शब्द अधिक थे हिन्दी कहलाई। वास्तव में इन में कोई फर्क नहीं है। भिन्न शब्द कोष होने से भाषा नहीं बदल जाती। शब्द तो बढ़ते ही रहते हैं। भाषा के लिए उपसर्ग, प्रत्यय, प्रयोग धातु काल मुख्य हैं। यही भाषा के मूल हैं। बाईबल और मैकाले की भाषा शैली भिन्न है यह दोनों भाषाएं एक ही हैं। [illegible] बन्द्रकार और रमण लाल देसाई (गुजराती के प्रसिद्ध उपन्यास कर्त्ता) की एक भाषा भिन्न शैली वाली है। शैली भिन्न होने से भाषा नहीं बदल जाती। इसी तरह हिन्दी की भी दो शैलियां हैं हमें दोनों शैलियां जाननी चाहिए उनको समझना चाहिये, फिर जो पसन्द हो उस को अपने व्यवहार में लावें।

संस्कृत कठिन भाषा है। फिर भी हमारे पूर्वजों की भाषा है। प्रांतों की भाषाएं उसकी सन्तान हैं। संस्कृत ही सबकी जननी है। हमारा मूल तो वही है। परन्तु अरबी फारसीमय उर्दू भी ऐतिहासिक परिणाम है। उसे भी यहां के लोगों ने अपनाया है। उसके प्रति कोई द्वेष भाव नहीं है। आज तो जनता के लिए भाषा चाहिए। स्वराज्य जनता के लिए है। स्वराज्य की भाषा–राष्ट्र भाषा-भी जनता के लिए होगी। जनता की भाषा सरल ही होनी चाहिए। उस में न अरबी शब्दों की भरमार होनी चाहिए न अबर्दस्ती संस्कृत शब्द घुसेड़ने चाहिए। राष्ट्र के सेवक का तो सेवा से सम्बन्ध है, शब्दों के झगड़ों से नहीं। सेवक जहां जायेगा वहां की जनता के उपयुक्त भाषा बना लेगा। उसे तो सेवा से मतलब है न कि शब्दों से। सिंध में मैं जाऊं वहां मुझे काम के लिए बैल चाहिए

तो यह कहूँगा कि मुझे 'ढाका' चाहिए क्यों कि मुझे काम से मतलब है। मेरा यदि भिन्न २ शैलियों से परिचय होगा तो मैं भिन्न २ क्षेत्र में काम कर सकूंगा। आज तो राष्ट्र सेवक को हिन्दी की दोनों शैलियों को जाननी जरूरी है। तभी वह सब लोगों से मिल कर काम कर सकता है।

राष्ट्र भाषा के सम्बन्ध में भी कई झगड़े उठ खड़े हुए हैं कोई कहता है हिन्दी नाम हो कोई कहता है उर्दू कोई हिन्दुस्तानी कहता है। कांग्रेस ने राष्ट्र भाषा का हिन्दुस्तानी नाम दिया है। वास्तव में तो नाम संबन्धी झगड़ा होना ही नहीं चाहिए। मेरे धर्म में परमात्मा का एक नाम नहीं है उस के तो हजारों नाम हैं। यदि मेरी राष्ट्र भाषा के दो चार नाम हो गए तो इस में मुझे क्या हर्ज होगा।

राष्ट्रभाषा को प्रथम गति दी गुजराती महर्षि दयानन्द ने। उसे दूसरी बार गति दी दूसरे गुजराती महात्मा जी ने। दयानन्द सरस्वती ने हिन्दी को उत्तर भारत में फैलाया। गांधी जी ने इसका प्रचार दक्षिण भारत में किया। इन्दौर में उन्होंने कहा दक्षिण में जाइए तभी यह वास्तव में राष्ट्र भाषा बन जायेगा। उस समय वहीं के लिए ४½ लाख रुपये इकट्ठे किये गये जिससे ७½ लाख आदमी हिन्दी पढ़ सके। मद्रास में आज हिन्दी का विरोध-बताया जाता है। परन्तु इसका मूल तो कांग्रेस के विरोध से ही है। इस विरोध का वहां कुछ भी प्रभाव नहीं है। हिन्दी के वहां तीन सौ केन्द्र खुले हुए हैं वहां रात दिन प्रेस चलता रहता है। प्रेस थक जाता है पर आदमी पुस्तकें लेते नहीं थकते। ३०-३० हजार प्रतियां एक एक पुस्तक की खप गई हैं। आज तो वहां टूटी-फूटी हिन्दी जानने वालों की भी बहुत मांग है। वहां हिन्दी सीखने का उत्साह तो सबसे ज्यादा बढ़ा हुआ है।

जिस गुजरात ने रास्ता दिखाया है वह स्वयं पिछड़ जाय यह स्तुत्य बात नहीं है। गुजराती थोड़ी बहुत हिन्दी समझ लेते हैं। पर अब इतने से काम न चलेगा। अभी तो गुजरातियों को इतनी हिन्दी आती है जिससे वे दूसरों का हंसा सकें। पर इस तरह हास्यास्पद बनने का समय गया। हमें तो लोगों के हृदय तक पहुँचना है अतः राष्ट्र भाषा के हृदय तक भी पहुँचना चाहिए। राष्ट्र भाषा के प्रभु हो इतनी हिन्दी तो आनी ही चाहिए। विद्यार्थी अध्यापक, कांग्रेस के स्वयंसेवक, समाचार पत्रों के सम्पादक और ग्रामनिधि तथा हरिजन कार्य कर्ता, चर्खा सघ के सब लोगों को हिन्दी जरूर सीखना चाहिए। क्यों कि आज तो उसी सेवक की जरूरत है जो हिन्दी जानता हो जिससे वह सारे देश में कार्य कर सके। बिहार में भूकम्प हुआ तो वहां सेवकों की जरूरत हुई। वहां हिन्दी जानने वाले भेजे गए। इसी तरह बंगाल, मद्रास महाराष्ट्र में जरूरत हो तो हिन्दी जानने वाला ही वहां जा सकता है। आज तो वही उत्तम सेवा कर सकता है। जो उत्तम हिन्दी जानता है।

आपका सूरत का प्रचारक मंडल दो वर्षों से बड़े उत्साह से कार्य कर रहा है। आप को इतना अच्छा हिन्दी सीखने का अवसर मिला है। समय रहते आप को इससे पूरा लाभ उठा लेना चाहिए।

साहित्य सत्कार

आचार्य की युरोप यात्रा—

हमने युरोप यात्रा के अनेक वृत्तान्त पढ़े हैं, किन्तु डाक्टर सत्यनारायण लिखित यह युरोप-यात्रा अपना विशेष महत्त्व रखती है। आज कल प्रायः ऐसे व्यक्ति ही भारत से युरोप को अध्ययन, भ्रमण या व्यापार के लिए जाते हैं जो वहां के भारी व्यय की ओर से कुछ निश्चिन्त हो सकते हैं। इसका स्वाभाविक परिणाम यह होता है कि वे वर्षों तक वहां रहकर भी वहां के समाज से सुपरिचित नहीं हो पाते। डाक्टर सत्यनारायण जिस समय जहां रहे वहां के समाज के भाग बन कर रहे। उन्होंने शास्त्रीय अध्ययन के साथ २ युरोप के लोगों की दैनिक समस्याओं, स्वभावों तथा चरित्रों का अनुशीलन भी उनके हृदय के अन्तरतम में बैठकर किया है। इस दृष्टि से यह वृत्तान्त अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

यदि किसी पुस्तक के पठन प्रारम्भ करने का श्रेय पाठक का है तो उसे समाप्त किए बिना न छोड़ने देने के श्रेय में कुछ अंश लेखक का भी अवश्य मानना पड़ता है। प्रस्तुत पुस्तक को पढ़ते हुए पाठक का हृदय वस्तुतः ही उपन्यास का सा आनन्द अनुभव करता है और एक परिच्छेद को समाप्त करते न करते दूसरे के विषय को जानने के लिए उत्सुकता उभरने लगती है। पुस्तक अत्यन्त मनोरंजक, उपयोगी तथा सग्राह्य है। सढ़े-तीन सौ पृष्ठ की पुस्तक, कागज़ छपाई सुन्दर उस पर भी दो दर्जन चित्र, यह देखते हुए २॥) कुछ अधिक नहीं।

मिलने का पता— पुस्तक भण्डार, लहेरिया सराय दरभंगा।

श्री प० वागीश्वर जी विद्यालंकार

'श्रद्धांजलि'

[आचार्य स्वर्गीय श्री महावीर प्रसाद जी द्विवेदी के निधन पर]

आंसुओं का हार यह लो।
गीत लाया हूँ बना, मेरा रुदन-उपहार यह लो॥

पूज्य तुम थे सूर्य, तुमने
थे खिलाये पद्म कितने,
भार कर साहित्य का
तुमने गुंजाये मधुप कितने,
आँसुओं का अर्घ्य मेरा हो तुम्हें स्वीकार यह लो।

थे पिता, आचार्य थे—
साहित्य के तुम हे तपस्वी!
और तुमको पा बनी यह
राष्ट्र भाषा भी यशस्वी,
क्या करूं गुण-गान, मेरे भाव हैं दो चार यह लो।

तुम स्वयं साहित्य उपवन
के बने थे दिव्य माली
पा नया मधुमास तुमसे
हँस उठे तरु पात डाली
एक-लघु खिलते सुमन के, स्निग्ध उर का प्यार यह लो।

श्री— 'सूर्य कुमार'

गुरुकुल

७ माघ शुक्रवार १९९५

युक्त प्रान्तीय सरकार और हिन्दी

इस समय युक्तप्रान्त में १७% तो मुसलमान हैं और ८३% हिन्दू हैं। इस हिसाब से यदि मुसलमानों की भाषा उर्दू मान ली जाय तो इस भाषा को युक्तप्रान्त में बोलने वाले १७ प्रतिशत होंगे, यद्यपि सभी मुसलमान उर्दू बोलने वाले नहीं हैं। यह एक आश्चर्य की बात है कि उर्दू को बनाने वाले हिन्दू हैं और हिन्दी को उत्पन्न करने वाले मुसलमान हैं। पर अब साम्प्रदायिक प्रचारकों की कृपा से तथा मुसलमानों में बढ़ती साम्प्रदायिकता के कारण मुसलमान अब अपनी भाषा उर्दू कहने लगे हैं। मि० जिन्ना ने जो १४ शर्तें बाबू राजेन्द्रप्रसाद के सामने रखी थी, उसमें ही सब से पहले यह आवाज़ उठाई गई थी कि मुसलमानों की भाषा उर्दू है। ऐसा न होते हुए भी यह स्वीकार किया जाने लगा है कि मुसलमानों की भाषा उर्दू है और हिन्दुओं की हिन्दी। यहां मुसलमानों की भाषा उर्दू इसी दृष्टि से स्वीकार कर रहे हैं।

हिन्दी भाषियों का युक्तप्रान्त में बहुमत होते हुए भी यहां उर्दू को ही राज्याश्रय दिया गया है। इस समय सारा का सारा सरकारी काम उर्दू में ही होता है। दफ्तरों में उर्दू जारी है, सूचनाएं उर्दू में निकलती हैं। रसीदें भी उर्दू में दी जाती हैं। नहर गंग के देहाती किसानों को रसीदें उर्दू में दी जाती हैं जिन्हें वे समझ नहीं सकते। अदालतों की भाषा उर्दू है। यद्यपि सरकार ने हिन्दी और उर्दू दोनों को स्थान देने की व्यवस्था कर रखी है, तथापि हिन्दी का अभी तक वहां प्रवेश नाममात्र को ही हुआ है। डिस्ट्रिक्ट बोर्डों में, म्युनिसिपैलिटियों में भी उर्दू व्यवहार में लाई जाती है। थाने में रिपोर्ट लिखाने जाते हैं तो वह भी उर्दू में लिखी जाती है। सरकारी नौकरियां उन्हें मिलती हैं जो उर्दू पढ़े होते हैं; हिन्दी पढ़े लिखे व्यक्तियों की कोई पूछ ही नहीं। उर्दू का राज्याश्रय मिलने पर भी वह पनप नहीं रही। साथ ही उसका साहित्य भी हिन्दी की अपेक्षा बहुत ही कम है। १९३९ के आंकड़े देखने से मालूम होता है कि इस वर्ष हिन्दी पुस्तकें तो २१३९ प्रकाशित हुई और उर्दू की प्रकाशित हुई २५२ पुस्तकें। फिर भी उर्दू को राज्याश्रय दिया गया है।

इस समय युक्तप्रान्त के स्कूलों में हिन्दी के साथ और अन्याय हो रहा है। स्कूलों में इस समय उर्दू और हिन्दी प्रत्येक बच्चे को पढ़ाई जाती है, पर उसमें सिवाय लिपि भेद के और कुछ नहीं होता। हिन्दुस्तानी के नाम पर हिन्दु बच्चों को भी उर्दू से लदी एक खिचड़ी भाषा पढ़ाई जाती है। वस्तुतः यह खिचड़ी भी नहीं होती अपितु शुद्ध उर्दू होती है जो कि देवनागरी लिपि में होती है और उर्दू पढ़ने वालों को शुद्ध उर्दू पढ़ाई जाती है और उसे संस्कृत तथा हिन्दी के शब्दों से अच्छी प्रकार बचाकर रखा जाता है। इस प्रकार हिन्दू बच्चों को हिन्दी न पढ़ा कर उर्दू ही उनके गले उतारी जा रही है। उचित तो यही था कि बहुमत की भाषा को राज्याश्रय मिलता तथा अल्पमत की भाषा को उचित संरक्षण दिया जाता। अर्थात् अल्पमत की भाषा को नष्ट न होने देकर उसकी केवल रक्षा ही की जाती, पर किया यह जा रहा है कि अल्पमत की भाषा को तो राज्याश्रय मिला हुआ है और बहुमत की भाषा को कोई संरक्षण भी नहीं दिया जा रहा। इस समय अंग्रेज़ी तो हट रही है इसलिये उसका तो कोई सवाल नहीं है, शेष रह जाती हैं उर्दू और हिन्दी। वर्तमान समय में उर्दू का प्रयोग हो रहा है जो कि बिल्कुल अनुचित है। दोनों को बराबर कर देने से कार्यभार दुगना हो जायेगा। ऐसी अवस्था में उचित यही है कि बहुमत की भाषा को स्थान दिया जाय। क्योंकि टैक्स देने वाले हिन्दी भाषी हैं। उनसे प्राप्त धन को उन पर न खर्च कर ऐसी भाषा पर खर्च करना जिसे कि बहुमत चाहता ही नहीं तो यह उनके साथ अन्याय है और उन पर अनावश्यक बोझ लादना है। बहुमत उर्दू को नापसन्द करता है इसे तो स्वयं सरकारी आंकड़े बता रहे हैं। (१९३९ के आंकड़े ऊपर बता रहे हैं) ये बताते हैं कि लोगों को उर्दू जबर्दस्ती केवल सरकारी कामों के लिये ही पढ़नी पड़ती है, पर ज्योंही उससे छुटकारा पाते हैं तो उससे मुँह मोड़ लेते हैं। उर्दू की केवल रक्षा करने के स्थान पर उसे आश्रय देकर हिन्दी भाषियों के रुपये का अपव्यय ही हुआ। इसका प्रमाण है हिन्दुस्तानी एकेडमी—इस एकेडमी का सञ्चालन तो होता है हिन्दी भाषियों के रुपये से पर इस में प्रोत्साहन उर्दू को दिया जाता है। उसमें उर्दू तो शुद्ध रूप में उर्दू रहती है पर हिन्दी के साथ जबर्दस्ती की जाती है। हिन्दी में अनावश्यक उर्दू के शब्द जोड़े जाते हैं।

निरन्तर सरकार और मुसलमानों की चालों के कारण हिन्दी को कुचलने की कोशिश की जाती रही है, पर अब तक वह सरकार इसमें असफल रही है। इस समय युक्तप्रान्त में लोक निर्वाचित सरकार ही काम कर रही है। विशेषतः सरकारी पार्टी (कांग्रेस पार्टी) के सदस्य तो उन हिन्दी भाषी मतदाताओं के मतों से असेम्बली में पहुंचे हैं इसलिये उनका कर्त्तव्य है कि वे हम हिन्दी भाषियों का प्रतिनिधित्व करते हुए हमारी भाषा हिन्दी को ही सरकारी महकमों में स्थान दिलायें।

हमारी तात्कालिक मांगें निम्न हैं—

(१) सरकारी नौकरियों के लिये उर्दू का पढ़ा होना अनावश्यक होकर हिन्दी का पढ़ा होना आवश्यक होना चाहिए।

स्वास्थ्य

(ले०—श्री प्रो० वागीश्वर जी)

(गतांक से आगे)

यह न समझिये कि ऐसे लीडर कांग्रेस में बिलकुल नहीं । "राजाभोज भरम के भूने घर घर हैं माटियाले चूल्हे ।" तभी तो महात्मा जी कांग्रेस को विरेचन देने का नुस्खा बार बार लिखते हैं ।

बूढ़े बाबा बेटों पोतों की चिन्ता से उनके गले के हार बने रहते हैं लड़के कहते हैं, कि अब आप भगवान् का भजन करें, पर वे नहीं मानते। ऐसे भी उदाहरण मिलते हैं कि लोगों ने लोकोपकार की चिन्ता में योग समाधि के सुख को भी लात मार दी है। लोक यदि उनसे अपना उपकार न करवाना चाहे तो यह लोगों की बुद्धि का दोष है।

स्वास्थ्य खराब होने का एक कारण सन्देह भी है। किसीके मन में यह बैठ जाए कि वह बीमार है तो वह पूरा बीमार हो जाएगा। एक सेठ जी थे उन्हें किसी ने कह दिया कि तुम्हारी कमर तो शीशे की होती चली जा रही है। बस उन्हें यही भूत सवार हो गया। खाना पीना सोना– सब अदृश्य हो गया। तरह तरह के इलाज होने लगे। मगर मर्ज़ बढ़ता ही गया ज्यों ज्यों दवा की। जो डाक्टर आता यह कहता कि तुम्हारी कमर तो ठीक है इस में कुछ भी रोग नहीं, उसे सेठ समझते कि यह या तो कुछ जानता ही नहीं,या जान कर मुझे बहका रहा है। एक दिन एक सयाना आया। उसने कहा कि सेठ जी मैं अपना इलाज करूंगा। आप अपनी कमर मुझे दिखा तो दें। कमर देख कर सयाने ने कहा—ओहो आप का रोग

(२) सम्पूर्ण सरकारी महकमों में हिन्दी का व्यवहार शुरू हो जाना चाहिए।

(३) तथा च निम्न चीजें एक दम लागू हो जानी चाहियें।

(i) कचहरियों में आवेदन पत्र आदि देने की हिन्दी में सुविधा हो जानी चाहिए और वादी प्रतिवादी के चाहने पर न्यायाधीशों के फैसलों की नकल देवनागरी लिपि में और हिन्दी में मिल जानी चाहिए ।

(ii) थाने आदि में रिपोर्टें हिन्दी में लिखी जानी चाहिए।

(iii) नहर के महकमे की तथा अन्य रसीदें एकदम हिन्दी में देनी शुरू कर देनी चाहिए ।

(iv) असेम्बली की कार्यवाही को हिन्दी में लेने के लिए हिन्दी के शार्ट हैण्ड जानने वाले रिपोर्टरों की नियुक्ति अधिकाधिक संख्या में होना चाहिए तथा समाचार पत्रों को हिन्दी में ही तार भेजने की सुविधाएं प्रदान करनी चाहिए।

हम आशा करेंगे कि युक्तप्रान्त की सरकार इस इस ओर ध्यान देगी और सरकारी भाषा का पद शीघ्र से शीघ्र हिन्दी को ही देगी ।

तो बहुत भयंकर है वाकई में सारी कमर बिलकुल शीशा हो गई है" सेठ जी बोले-तुम ठीक कहते हो। देखते नहीं, महीनों से मैं कमर के बल लेटकर सो नहीं सका। बैठे २ ज़रा ऊंघ लेता हूँ। कपड़ा पहनते समय कमर में जरा हाथ छू जाने से भी मैं बेताब हो जाता हूँ और ये लोग कहते हैं कि तुम्हें हुआ ही कुछ नहीं। सयाने ने कहा–सेठ जी मैं आप के रोग को समझ गया। सात दिन में आप बिलकुल ठीक हो जाओगे। उसने सेठ जी को झूठ मूठ ही कुछ चीज़ दवाई के नाम से खिलानी शुरू करदी सातवें दिन उसने कहा कि अब आप बिलकुल अच्छे हो गए। आपकी कमर जो शीशे की हो गई थी। उसके नीचे फिर नई कमर बन गई है। अब आप स्नान कर कपड़े बदल अपनी चौकी पर बैठिए। चौकी पर दीवार के साथ पर्दे के पीछे एक शीशा छिपा कर रख दिया गया। जब सेठ जी चौकी पर आकर बैठे तो सयाने ने उन के शरीर को धीरे २ परीक्षा करते हुए अचानक उस शीशे को तोड़ दिया। शीशे की टूटने की आवाज सुनते ही सेठ जी चिल्ला उठे हाय मेरी कमर टूट गई।" सयाने ने कहा–आपकी कमर का जो हिस्सा शीशा बन गया था। वह आज टूट गया और उसके नीचे नई कमर बन गई है। सेठ जी को विश्वास हो गया। उन्होंने सयाने को मुंह मांगा इनाम दिया। कोई यह न समझले कि सेठ जी अपढ़ गंवार थे। यह संदेह का रोग पढ़े लिखे बुद्धिमानों को भी हो जाता है।

किन्तु संसार में कोई भी वस्तु अच्छी ही अच्छी या बुरी ही बुरी नहीं होती। "विषमप्यमृतं क्वचिद्भवेदमृतं वा विषमीश्वरेच्छया।" कभी २ स्वास्थ्य का खराब होना भी लाभदायक ही होता है। स्वास्थ्य खराब होने से जेल में काफी आराम मिलता है। जिन का स्वास्थ्य ठीक नहीं ऐसे बच्चों को मलाई मक्खन अच्छी तरह मिलता है। विद्यार्थी ने यदि गृहकार्य न किया हो तो स्वास्थ्य खराब होने के बहाने से काफी रक्षा होती है। यदि आप कहीं जाना चाहें तो स्वास्थ्य ठीक न होने से बढ़ कर कौन सी युक्ति उस समय काम दे सकती है। सिर दर्द या पेट दर्द के कारण परीक्षा से छुट्टी मिल जाती है। स्वास्थ्य खराब होने का बहाना झूठ भी नहीं, क्यों कि संसार में पूर्ण है ही कौन ?

अधोऽधः पश्यतः कस्य महिमा नोपचीयते
उपर्युपरि पश्यन्तः सर्व एव दरिद्रति ॥

स्वास्थ्य खराब होनेका महत्व राजनीतिक क्षेत्र में भी कुछ कम नहीं। 'अफसर' और मातहत में घोर मतभेद हो जाने पर, सम्मान पूर्वक झगड़ा निबटाने के लिए स्वास्थ्य ही आता है। उन में से किसी एक का स्वास्थ्य तुरत खराब हो जाता है और वह छुट्टी ले लेता है। जब वाइसराय के स्वास्थ्य खराब होने की भनक समाचार पत्रों में सुनाई पड़ने लगे तो समझना चाहिए कि भारत मन्त्री के साथ किसी महत्वपूर्ण प्रश्न पर उनका मतभेद है। रियासतों में किसी राजा या अधिकारी के विरुद्ध यदि तीव्र असन्तोष उत्पन्न हो जाए तो प्रायः

उसका स्वास्थ्य खराब हो जाता है उसके लिए डाक्टर विलायत जाने की राय दे देते हैं। चाहे वह कितना ही हट्टा कट्टा क्यों न हो। हट्टा कट्टा होने से ही कोई निरोग नहीं होता। बड़े शरीर में रोग भी बड़ा रहता है। मैं एक दिन एक डाक्टर की दुकान पर गया। वहां दो महानुभाव बैठे थे एक दुबले पतले, एक खूब मोटे ताजे मैंने मोटे ताज़े व्यक्ति को डाक्टर समझ कर उन से अपनी शिकायत कहनी चाही। उन्होंने क्षमा मांगते हुए कहा कि जनाब मैं तो स्वयं रोगी हूं। डाक्टर साहब तो ये हैं। डाक्टर को मोटा ताजा होना चाहिए या पतला दुबला यहां इस प्रश्न को उठाना कुछ अप्रासंगिक होगा। यहां इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि निसर्ग में डाक्टर दोनों ही प्रकार का उपलब्ध होता है। हृष्ट पुष्ट डाक्टर पर रोगी को अधिक विश्वास होना स्वाभाविक ही है। दुबले पतले डाक्टर भी कह देते हैं कि हम अपने रोगियों की चिन्ता अधिक करते हैं हमारे खाने पीने सोने का कोई नियम नहीं रह सकता, इस लिए हम दुबले पतले हैं। उत्तर किसी अंश तक ठीक भी हो सकता है।

जिस के पास धन खर्च करने को अधिक हो उसका स्वास्थ्य भी प्रायः खराब होता रहता है। उनकी इच्छा जब युरोप जाने की होती है तभी उनका स्वास्थ्य खराब हो जाता है। वे शायद यह समझते हैं कि विलायत में न तो कोई बीमार होता है न मरता है। और भारतवर्ष में सभी बीमार या मरे हुए हैं। कहते हैं – 'अन्य क्षेत्रे कृतं पापं काशी क्षेत्रे विनश्यति। काशी क्षेत्रे कृतं पापं वज्रलेपं हि जायते।' अर्थात्, और स्थानों पर किया हुआ पाप काशी में आकर नष्ट हो जाता है किन्तु काशी में किया हुआ पाप फिर नहीं छूटता। भारत का रोगी विलायत जाकर अच्छा हो जाता है किन्तु विलायत का रोगी मरकर ही रहता है। विलायत का कपड़ा भले ही खराब हो किन्तु विलायत के मोटर, फर्नीचर, जलवायु, चालचाल, खाना पीना भारत के बड़े से बड़े देश भक्त के लिए भी अच्छा है। राष्ट्रीय दल के प्रधानों के भी स्वास्थ्य जब खराब होते हैं, वे हवाई जहाज में चढ़कर सीधे विलायत जाकर ही दम लेते हैं। इससे यह नहीं कहा जा सकता कि उन्हें भारत की भारतीयता से प्रेम नहीं। भारत के लिये ही तो वे जीते और मरते हैं। उनका एक २ श्वास भारत के लिये है। किन्तु अमीर माता के स्तनों का दूध दूभर हो जाता है उस बच्चों का सहारा धाय, गाय, गधी या बोतल को अपनी मां बनाना पड़ता है। इसमें बच्चे का क्या दोष। एक अमीर के पास कोई चन्दा लेने गए। अमीर महाशय ने कहा कि आप बहुत अच्छे काम के लिये चन्दा मांग रहे हैं। मेरी आप से पूर्ण सहानुभूति है। मैं इस के लिए जीवन तक दे सकता हूं। चन्दा मांगने वालों ने कहा कि अभी तो हमें कुछ धन ही चाहिये, जीवन की आवश्यकता नहीं। अमीर महाशय ने कहा –'धन जैसी वस्तु चाहे मैं ऐसे अच्छे काम के लिये नहीं दे सकता'। इसी प्रकार देश के लिए जान तो दी जा सकती है किन्तु विदेशीयता प्रेम नहीं छोड़ा जा सकता। जवाहर लाल नेहरू जैसे राष्ट्र-प्राण पुरुष विदेशी पहरावे के के लिये ललचाते हैं।

हमारे देश में एक रिवाज़ है। मिलने पर यह कहना ही चाहिये कि ओहो आप तो बहुत दुबले हो गए हैं। यदि किसी बालक को आप यह कह दें कि इसका स्वास्थ्य कितना अच्छा है तो उसकी माता आपसे लड़ पड़ेगी। किन्तु युरोप में इससे उलटी प्रथा है। मृत्यु शय्या पर लेटा हुआ रोगी भी यही चाहेगा कि आप उसे यही कहें कि आपका स्वास्थ्य तो आज पहले से बहुत अच्छा है। शायद यही कारण है कि वे जातियां प्रतिदिन नवजीवन प्राप्त कर रही हैं और हम मृत्यु की ओर अग्रसर हो रहे हैं।

किन्तु भारतीय पद्धति के अनुसार मेरा यह कहना अनुचित न होगा कि आप अब बहुत दुर्बल हैं मैं भी स्वस्थ नहीं हूं। आपकी सभा स्वास्थ्य की उन्नति के लिए बनी है। इसमें वह सफल हो। शायद अब आप यह पूछें कि मेरा और आपकी सभा का क्या सम्बंध है?

―――

(पृष्ठ ८ का शेष)

ऋषियों और योगियों के यौगिक अभ्यासों की प्रणाली है, जो कि सत्य सिद्धान्तों के आधार पर स्थित है। इस में कोई सन्दिग्ध सिद्धान्त नहीं है। यह प्रत्येक मनुष्य को जो कि इसका अभ्यास करता है, निश्चित व्यवस्थित ज्ञान, सुन्दर स्वास्थ्य, दीर्घ जीवन, बल और जीवन शक्ति देता है। आप योगाभ्यास के द्वारा प्रकृति पर पूर्ण अधिकार प्राप्त कर सकते हैं। यह आपको पूर्णता तथा मन की पूर्ण एकाग्रता प्राप्त करने में सहायता देगा और आपको अपनी विविध आध्यात्मिक शक्तियों को विकसित करने के योग्य बनावेगा। योग निराशों को आशा का सन्देश, दुःखितों को प्रसन्नता, दुर्बलों का बल और अज्ञानियों को ज्ञान देता है। यह मुक्ति की गुप्त अमोघ कुञ्जी है और स्वर्गीय आनन्द तथा गम्भीर स्थिर शान्ति का साम्राज्य है।

योगी या ज्ञानी सर्वदा जीवन की सभी स्थितियों और सभी दशाओं में अपने मन को सम स्थिति में रखता है। योगी की दृष्टि गम्भीरता पूर्वक पारदर्शिनी होती है क्योंकि वह धैर्य युक्त साधना के द्वारा प्राप्त यौगिक शिक्षा के द्वारा बुद्धि की समस्त विकीर्ण शक्तियों का एकत्रित कर चुका होता है। वह दूरस्थ और आन्तरिक पदार्थों का पूर्ण ज्ञान अविलम्ब प्राप्त कर सकता है। उसकी बुद्धि सच्चे लाइट के समान है। जिस प्रकार एक गोता खोर मोती के लिए गहरे समुद्र में गोता लगाता है और मोती लाता है, वैसे ही योगी की बुद्धि किसी पदार्थ में गम्भीरता से प्रवेश करती है और क्षण भर में उसकी वास्तविकता को आविष्कृत कर लेती है। यदि कोई चुम्बक बहुत शक्तिशाली हो तो वह लोहे के पत्रों को, चाहे वे बहुत दूर क्यों न रक्खे गये हों, अपनी ओर आकृष्ट करेगा। इसी प्रकार यदि योगी योग विद्या का विशेषज्ञ हो, तो वह जिन मनुष्यों के संसर्ग में आवेगा, उन्हें बहुत अधिक प्रभावित करेगा। वह दूरस्थ मनुष्यों पर भी अपने

प्रभाव का प्रयोग कर सकता है।

जो एकाग्रता का अभ्यास करते हैं वे विकास को शीघ्र प्राप्त करते हैं। वे कोई भी कार्य वैज्ञानिक सत्यता के साथ कर सकते हैं। जो कार्य दूसरे छः घण्टों में करते हैं, वह कार्य आधे घण्टे में उसके द्वारा किया जा सकता है, जिसे एकाग्रता की शक्तियां प्राप्त हैं। जिसे और लोग छः घण्टों में पढ़ सकते हैं, वे एकाग्रता के अभ्यासी मनुष्य के द्वारा आधे घण्टे में पढ़ा जा सकता है। एकाग्रता के उमड़ते हुए भाव-तरङ्गों को पवित्र और शान्त करती है, विचारों के प्रवाह को शक्तिशाली बनाती है तथा भावनाओं को स्वच्छ करती है। एकाग्रता मनुष्य की भौतिक उन्नति में सहायक होती है। वह उसके कार्य या कार्य के घण्टों के बीच में कार्य का बहुत अच्छा परिणाम दिखलायेगी। जो काम पहिले कठिन हो; वह आसान हो जाता है, और जो कार्य पहले जटिल, घबरा देने वाला तथा परेशान कर देने वाला हो, वह सहज में बुद्धि गृहीत एवं ज्ञात हो जाता है। आप एकाग्रता के द्वारा सारी वस्तुओं को प्राप्त कर सकते हैं। जो एकाग्रता का नियमित रूप से अभ्यास करता है, उसके लिए कुछ भी असम्भव नहीं है। जो इसका अभ्यास करता है उसे बहुत उत्तम स्वास्थ्य और बहुत स्वच्छ बौद्धिक दृष्टि प्राप्त होगी।

प्राणायाम के अभ्यास का शरीर, मन, बुद्धि और इन्द्रियों पर आश्चर्य जनक प्रभाव होता है। यह शारीरिक बीमारियों को हटाता है। तथा जीव कोषों और नसों को सर्वथा नया कर देता है। यह नई शक्तियों का बाहुल्य लाता है। यह मन को स्थिर करता है और उसकी अपवित्रताओं को दूर करता है। यह बुद्धि और बौद्धिक शक्तियों को बढ़ाता है। यह उत्पाती इन्द्रियों को शान्त करता है। यह उनकी बहिर्मुखी प्रवृत्तियों को रोकता है। इससे नाड़ियों की शुद्धि होती है।

दीर्घ श्वास के अभ्यास से फेफड़ों की उन्नति हो सकती है।

(स्वामी शिवानन्द के अंग्रेजी निबन्ध से अनूदित)

गुरुकुल समाचार

गत सप्ताह १० चन्द्रकान्त २य खुजली, वेदप्रकाश ५म विषमज्वर, विद्यानन्द ११ श्लेष्मज्वर, आनन्द द्वादश क्लास, महेन्द्र त्रयोदश क्लास, ओम्प्रकाश १३ Cann से रोगी हुए थे। अब सब स्वस्थ हैं।

रविवार १५ जनवरी को महाविद्यालयस्थ ब्रह्मचारियों की वक्तृत्व तथा लेखन शक्ति के विकासार्थ संस्थापित सभा श्रीमती 'वाग्वर्धिनी सभा' का जन्मोत्सव हुआ था। जन्मोत्सव के सभापति इतिहास-उपाध्याय श्री वेदव्रत जी वेदालंकार थे। ब्र० विजयसिंह की जोशीली कविता, ब्र० सत्यभूषण 'योगी' की भाव भरी देश प्रेम से सनी काव्यमयी रचना, ब्र० क्षेत्रपाल का सुन्दर प्रबन्ध, सभा की कुछ खास चीजें थीं। गुरुकुल की कवि गोष्ठी जन्मोत्सव में उत्साह पूर्वक भाग ले रही थी।

गुरुकुल का तिर्यग्दण्ड खिलाड़ी दल शाहजहांपुर में हो रहे अखिल भारतीय साम्मुख्य में भाग लेने गया हुआ है। कुल का यशस्वी दल पहले दो खेलों में सफलता प्राप्त कर चुका है। भरे भविष्य को हस्तगत करने के लिये कुल के खिलाड़ी जी जान से यत्न कर रहे हैं।

लोहड़ी का त्यौहार जो पुराने भारतीय वृहत् यज्ञों का अवशेष चिन्ह है, कुल में बड़े उत्साह के साथ गत शुक्रवार को मनाया गया। छोटे बड़े ब्रह्मचारियों ने दिन भर के लगातार के प्रयत्नों के फलस्वरूप लकड़ियों की विशाल दैत्याकार यज्ञ वेदी तैयार की थी। कुल के मान्य उपाध्यायों ने भी इस यज्ञ में अपना हिस्सा दिया था। इस यज्ञ को कुल के सभी सदस्यों ने मिलकर बड़ी रात तक मनाया।

गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ

गुरुकुल का २३ वां वार्षिकोत्सव २४, २५ और २६ फरवरी १९३९ को मनाया जाना निश्चित हुआ है। उत्सव को हर दृष्टि से लाभदायक और सफल बनाने का प्रयत्न किया जा रहा है। श्री स्वामी सर्वदानन्द जी महाराज और श्री स्वामी केवलानन्द जी महाराज ने उत्सव पर पधार कर अपने उपदेशों से जनता को कृतकृत्य करना स्वीकार कर लिया है। अनेक उपयोगी सम्मेलनों की योजना की जा रही है। देश के प्रसिद्ध नेताओं को निमन्त्रित किया गया है। कुश्ती, खेल का विशेष प्रबन्ध हो रहा है। यह उत्सव शिक्षित समाज एवं ग्रामीण जनता दोनों के लिये लाभदायक वा शिक्षाप्रद होगा। ब्रह्मचारियों के संरक्षकों से निवेदन है कि उत्सव पर अवश्य पधारें। गुरुकुल शिक्षा तथा प्राचीन संस्कृति प्रेमी जनता से प्रार्थना है कि वह उत्सव में सम्मिलित हो लाभ उठावें और कार्यकर्ताओं के उत्साह को बढ़ावें।

गुरुकुल सूपा समाचार

ऋतु– आज कल ठण्ड का जोर है। रात को और दिन को खूब ठण्ड होती है। अभी तक किसानगण प्रसन्नवदन दिखाई देते हैं।

राष्ट्रपति का स्वागत-- विगत २७ पौष को राष्ट्रपति सुभाषचन्द्र बोस का गुरुकुल के मुख्य द्वार पर गुरुकुल के ब्रह्मचारियों तथा कर्मचारियों ने उनके नवसारी से बारडोली जाते हुये स्वागत किया। आप के साथ ही सरदार श्री वल्लभ भाई पटेल और श्री भूलाभाई देसाई भी थे। कुलवासियों के अत्याग्रह के कारण आपके पास समय न होते हुए भी ३-४ मिनट तक मोटर रोकनी पड़ी। अन्त में "राष्ट्रपति की जय" 'महात्मा गांधी की जय' के जयनादों के बीच आप बारडोली के लिए रवाना हो गये।

उसी दिन भावनगर के दक्षिणामूर्ति संस्था के आचार्य श्री नृसिंह प्रसाद कालीदास भट्ट भी आये आपने संस्था का अवलोकन किया और संस्था देख प्रसन्न हुये।

आजकल मद्रास आर्यसमाज के प्रसिद्ध कार्य कर्ता श्री प० केशवदेव जी ज्ञानी आये हुये हैं। आपका एक व्याख्यान "आर्यन कांग्रेस शोलापुर का संदेश" इस विषय पर हुआ। इस व्याख्यान का सब पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा।

चौधरी दुलारराय के प्रबन्ध से गुरुकुल प्रेस गुरुकुल कांगड़ी में मुद्रित तथा प्रकाशित।

* ओ३म् *

"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत"

Reg. No. A. 2927

गुरुकुल

सम्पादक—साहित्यरत्न पं० हरिवंश वेदालङ्कार

एक प्रति का मूल्य -) [गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख-पत्र] वार्षिक मूल्य २।।)

वर्ष ३] गुरुकुल कांगड़ी, शुक्रवार १४ माघ १९९५; २७ जनवरी १९३९ [संख्या ३६

वसन्त गान

(फूलों का संवाद)

[श्री सत्यभूषण "योगी"]

[१]

सूरज आया; प्रेमी भ्रमरों ने मधु स्वागत गान किया;
झूम झूम कर कलि-फूलों ने साथ ताल-संधान किया,
विहगों ने भी वाह, वाह, -कह आगे को प्रस्थान किया!
पूर्ण हुआ प्रिय चहल पहल से धरती का कोना कोना!
बेशकीमती, बिखर पड़ा कण कण में सोना ही सोना!!

[२]

एक सिसकता फूल पड़ा था धरती तल पर मुरझाया,
गाना सुन भ्रमरों का उसके मन में जाने क्या आया!
बोला—गाओ ऊंचे, अब तो जीवन है अन्धी छाया!
किरण प्रिया से मिल पलभर फिर मुझको मिट्टी में खोना!
सोने सोने में कितना मैं लुटा चुका अपना सोना!

[३]

फिर ऊपर को देख साथियों से बोला—कुछ बात सुनो;
भ्रमरों के मीठे गाने में तुम हो पुलकितगात सुनो;
नीचे लखो जरा मेरी भी कुछ मर्मर अज्ञात सुनो;
भ्रमरों ने सीखा है केवल रस वालों का ही होना।
सोने सोने में कितना मैं लुटा चुका अपना सोना!

[४]

नहीं किसी का भी कोई है, बस इतना तुम याद रखो,
अपनी बस्ती को अपने ही भावों में आबाद रखो,
अपनेपन को सभी बन्धनों में प्रतिपल आजाद रखो,
किसको फुर्सत अपने में जो सुने दूसरों का रोना।
सोने सोने में कितना मैं लुटा चुका अपना सोना!

[५]

खिलो हँसो कलियो, फूलो, मैं तुम्हें न रोने को कहता;
भावी की चिन्ता में तुम्हें अभी से खोने को कहता;
निज उर में मैं तुम्हें बात बस एक सँजोने को कहता—
तुम भी समझ किसी को अपना मत मेरे जैसे रोना।
सोने सोने में कितना मैं लुटा चुका अपना सोना!

[६]

करना ही है प्यार अगर तो खुली आँख से प्यार करो;
अपने और पराए का तुम ठीक विवेक विचार करो,
इन सूरज की किरणों का तुम सदा प्यार स्वीकार करो,
मिट्टी में मिलने पर भी जो देती रहती हैं सोना!
सोने सोने में कितना मैं लुटा चुका अपना सोना!

(७)

भ्रमरों ने इन सब बातों को सुना अरे, या नहीं सुना!
या अपनी बेसुध मस्ती में सुन करके भी नहीं सुना!!
किसे पता है; हां, मैंने यह एक भ्रमर का गान सुना—
हम पूरा पी भी न सके; यह गिरा एक रस का दोना!
सोने सोने में कितना हम लुटा चुके अपना सोना!

[८]

यह सुन कहा दूसरे ने—क्या गिरे फूल की याद सखे!
गुलशन तो रहता है कलि फूलों से नित आबाद सखे!
पियो, पियो फिर पियो, समय क्यों करते हो बरबाद सखे!
खिलीं आज कितनी कलियां, रस-भरा अरे, दोना दोना!
सोने सोने में कितना हम लुटा चुके अपना सोना!

[९]

बोले फूल गिरे साथी से—हम मुख मोड़ नहीं सकते,
पता हमें सब; पर भ्रमरों से नाता तोड़ नहीं सकते,
हम लुटते, पर ना जाने क्यों बन्धन छोड़ नहीं सकते!
इस लाचारी, इस परवशता में हमको जीवन खोना!
लुटा चुके हम लुटा रहे हैं बेबस हो अपना सोना!

[१०]

अरे, हमारा जीवन ही क्या, जिस पर हम अभिमान करें!
पैरा गैरा राही भी तो तोड़ हमें अपमान करे!
हम किससे क्या कहें; न पलभर क्यों विस्मृत हो गान करें!
होगा जो होगा, उसके हित क्या रोना चिन्तित होना!
लुटा चुके हम लुटा रहे हैं अन्धे बन अपना सोना!

[११]

एक विहग ये सब बातें सुन, बोला—ओ कायर फूलो,
वर्त्तमान के हास लास में मत भावी को तुम भूलो,
अरे, तुम्हारी है परवशता की मत विस्मृति में झूलो,
इससे तो मरना अच्छा, क्या जीते जी ही मृत होना!
सोने सोने में कितना तुम लुटा चुके अपना सोना!

[१२]

दुनिया में कायर को जीने का कोई अधिकार नहीं;
वीर भोग्य वसुधा को कायर की बिलकुल दरकार नहीं,
वीर कभी होते सपने में भी बेबस लाचार नहीं,
वे तो ईश्वर से भी लोहा लेकर बन जाते सोना!
जागो, अधिक न लुटने पावे और तुम्हारा कुछ सोना!

महर्षि दयानन्द

(ले० श्री सर्वेश)

महापुरुषों से अधिक हमारा यह दौर्भाग्य है कि उनको उस समय के मनुष्य समझ नहीं सकते हैं, और पीछे आने वालों के लिए उन तक पहुँचना असम्भव हो जाता है। यही कारण है कि ये महापुरुष दीर्घ काल तक ध्रुव तारे के समान अटल रह कर अपने पद चिह्नों पर चलने वालों के लिए एक निश्चित दिशा का संकेत करते हैं जहां पर पहुंचना ही सबका उद्देश्य होता है। सम्भव है कि धीमे धीमे इन का स्थान उन महापुरुषों को मिल जाए जिन्होंने समाज की उस समय की आवश्यकताओं को पूरा करने का प्रयत्न किया है, और उस लक्ष्य तक पहुंचे हों जहां तक जाना वह मानव के उन्नति की सर्वोत्कृष्ट और अन्तिम सीमा समझता है. हम कह नहीं सकते कि यदि ये महापुरुष आजकल होते तो समाज में इनकी क्या स्थिति होती, और भविष्य में क्या होगी? परन्तु इसका अभिप्राय यह कदापि नहीं कि समाज महापुरुषों का निर्माण करता है या केवल महापुरुष ही समाज को एक नया रूप देता है, किन्तु ये दोनों ही एक दूसरे की आवश्यकताओं का अनुभव करते हुए एक दूसरे का निर्माण करते हुए चले जा रहे हैं।

वर्तमान महापुरुषों में ऋषि दयानन्द का स्थान हमारी दृष्टि में सब से ऊंचा है, उसका कारण जहां तक समझा जा सकता है यही है कि उनका प्राचीन आर्य धर्म, आर्य सभ्यता, और आर्य संस्कृति से प्रगाढ़ प्रेम होने के साथ २ मानव समाज की सर्वाङ्गीण उन्नति करना है। उन्होंने अपने जीवन काल में भारतवर्ष का राजनैतिक, समाजिक, धार्मिक और आर्थिक उन्नति के लिए जो सतत प्रयत्न किया था उसी का परिणाम आज हमें भारत की वर्तमान जागृति में दिखाई दे रहा है। स्वामी जी का यह दृढ़ विश्वास था कि आर्य धर्म अपनी आयु की दृष्टि से अपने विचार और कर्मों की दृष्टि से संसार में प्रचलित सब मत मतान्तरों से प्राचीन एवं पवित्रतम है।

इस वाक्य की सत्यता को आज भारत ने समझा है इसी लिए हमारे में स्वतंत्रता के लिए एक तड़पन है जोकि तभी शान्त होगी जबकि भारत पूर्ण स्वाधीन होगा।

इस जागृति के युग में भारत के आधुनिक नेता जिस स्वजातीय शिक्षा का अभाव तथा विदेशी भाषा का प्राबल्य अनुभव करते हुए इसमें दोष देख रहे हैं, उन्हें ऋषि ने अपने जीवन काल में ही अनुभव किया था। राष्ट्रीय शिक्षा तथा अनिवार्य शिक्षा के महत्त्व को यूरोप ने आज कल समझा है? जिस से कि वह स्वतंत्रता का उपभोग कर रहा है। परन्तु धन्य हैं ऋषि-दयानन्द जिन्होंने उस अन्धकार के समय में इन रत्नों की ज्योति को देखा।

महर्षि ने ही सर्व प्रथम एक भाषा और एक लिपि की आवाज उठाई थी, और अपनी मातृभाषा गुजराती होते हुए भी इस बात को ध्यान में रखकर उन्होंने अपनी सब पुस्तकें हिन्दी में लिखी। इसी प्रकार स्वामी जी के कदम २ पर हमें यह शिक्षा मिलती है कि वे जो कहते थे उसका यथावत् पालन भी करते थे, तात्कालिक समाज को ऋषि ने अपने व्याख्यानों तथा उपदेशों की अपेक्षा अपने जीवन से अधिक प्रभावित किया था। स्वामी जी के समय देश में राजनैतिक स्वतंत्रता की कोई भी गूंज न थी। भारतीयों में स्वतन्त्रता का अनुभव करने की शक्ति ही न थी. उनकी आत्माएं सुप्तप्राय अवस्था में ही जीवन के दिन काटती जा रही थी? उनका धर्म, उनकी शिक्षा और उनका धन सब विदेशी शासकों द्वारा नष्ट किया जा रहा था। इसको देश के लिए व्यथित ऋषि के हृदय ने सबसे पहले अनुभव किया और आमरण स्वतंत्रता का सन्देश सुनाते हुए कहा देश भाइयों! उठो! अपने पैरों पर खड़ा होना सीखो। ऋषि का हृदय इनके लिए कितना बेचैन था यह उनकी पुस्तकों में स्थान २ पर स्पष्ट झलकता है।

महर्षि को केवल मात्र धार्मिक नेता समझना उनके निष्कलंक एवं पूर्ण जीवन को एक दम अपूर्ण कर देना होगा। महर्षि के जीवन का प्रत्येक कार्य इसी परिणाम पर पहुंचता है कि हमारी संस्कृति हमारी सभ्यता और हमारा देश सम्पूर्ण विश्व के लिए सदा एक आदर्श होकर रहे। एक अंगरेज लेखक ने लिखा था कि "Swamy Dayanand was the first to proclaim India for Indians ऋषि दयानन्द प्रथम व्यक्ति था जिसने सिंह गर्जना के साथ कहा कि भारत भारतीयों के लिए है। House of commons में भाषण देते हुए पार्लियामेण्ट के एक सदस्य ने कहा था कि दयानन्द एक अद्भुत पुरुष है जिसको देख कर न चाहते हुए भी मस्तक झुक जाता है। यह हमारे राजनीति के प्रत्येक दांव पेंच को अच्छी प्रकार समझता है और भारतीयों को समझाने का प्रयत्न करता है। ऐसी अवस्था में ऋषि को केवल धर्म के क्षेत्र में ही प्रामाणिक मानना उनके प्रति अन्याय एवं उनकी दूरदर्शिता को सीमित करना होगा। अमर महर्षि का यह अमर वाक्य – कि बुरे से बुरा स्वदेशी राज्य भी अच्छे से अच्छे विदेशी राज्य से अच्छा है।

यह ऋषि देश के लिए ही नहीं अपितु विश्व के लिए पता नहीं कितनी वेदनाओं का भार लेकर अमर हो गया। क्या हम एक २ वेदना लेकर भी उसके पद चिह्नों पर नहीं चल सकते?

शिक्षा का क्या स्वरूप होना चाहिए

[ले०—श्री सच्चिदानन्द]

आजकल जब हम किसी से यह प्रश्न पूछते हैं कि भाई तुम किस लिये विद्याध्ययन करते हो तो हमको एकदम यह उत्तर मिलता है कि कुछ कमाकर पेटपूर्ति करने के लिये। यह उत्तर बिलकुल ठीक है। सचमुच देखा जाय तो हमें संसार में दिखाई देता है कि मनुष्य अशांति में किसी कार्य को ठीक प्रकार नहीं कर सकता है। सबसे ज्यादह और सबसे बड़ी अशान्ति यदि कोई है तो वह भर पेट भोजन का न मिलना है। इसीलिये सैकड़ों मनुष्य भूखे फिर रहे हैं। भोजन के न मिलने से कृश हो गये हैं। चिल्ला रहे हैं। बैठे बैठे हाथ फैलाये हुये हैं। कुछ कदम चलने की भी शक्ति नहीं है। जब इतना भीषण दुष्परिणाम हो रहा है तो आजकल के शिक्षितों के सामने पेटपूर्ति के प्रश्न का होना स्वाभाविक ही है। पेटपूर्ति के प्रश्न के लिये अब यह समस्या उत्पन्न होती है कि किस प्रकार की शिक्षा हो जिससे कि यह प्रश्न हल हो जाय। वह शिक्षा रोचक और वर्णानुसार होनी चाहिये! क्या सब के लिये शिक्षा एक तरह की ही दी जाय। नहीं, ऐसा कदापि नहीं होना चाहिये। हमारे शास्त्रों में चार वर्णों की व्यवस्था मानी गई है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। यह वर्णव्यवस्था हमारे शरीरों में भी काम कर रही है। मुख को ब्राह्मण माना है। हाथ को क्षत्रिय माना गया है। पेट को वैश्य माना गया है और पैरों को शूद्र माना गया है। यदि शरीरों में प्रत्येक अङ्ग आपस में मेल न रक्खें तो बड़ी गड़बड़ उत्पन्न हो जाय, मुख कहे कि मैं भोजन अन्दर नहीं लेता, हाथ कहे कि मैं मुख के पास भोजन नहीं ले जाता तो उस समय पेट बेचारे की क्या दशा होगी, पेट में भोजन न जाने से शरीर कमजोर हो जायगा, शरीर के कमजोर होने से पैर चलना फिरना बन्द कर देंगे, कुछ समय के बाद परिणाम यह होगा कि यह जीवन लीला समाप्त हो जायगी। कहने का तात्पर्य यह है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय इत्यादि जन समाज में सब जन शिक्षित हों, घृणा किसी से उत्पन्न न की जाय और शिक्षा वर्णानुसार दी जाय। जैसे ब्राह्मण का काम वेद पढ़ना पढ़ाना और शूद्र का काम सेवा करना है तो यह नहीं कि शूद्र से घृणा की जाय बल्कि उसको "सेवा" का पाठ पढ़ाया जाय ताकि वह तीन वर्णों की अच्छी प्रकार सेवा कर सके यदि इस प्रकार नहीं है तो हम शिक्षा में उन्नति की जगह अवनति ही कर रहे हैं। समस्या यह उत्पन्न होती है कि हमको कैसे मालूम पड़े कि अमुक व्यक्ति अमुक शिक्षा का अधिकारी है। तो इसका उत्तर यही है कि हम पहले तो उसको बाल्य काल में किसी गुरु के पास कुछ समय के लिये भेज दें। बालकों में यह स्वभावतः प्रवृत्ति होती है कि जिस वस्तु में उनकी बचपन से ही रुचि होती है वह प्रायः उधर ही अपनी उन्नति करने में समय को बिताता है। जब गुरु के पास जायगा तब जो कुछ उसका परिणाम होगा वह सब गुरु द्वारा हमको पता चल ही जायगा। इसके अनुसार उसको जिधर उसकी रुचि हो उधर ही उसकी प्रवृत्ति कराना उचित है। रुचि के अनुसार कार्य करने से उसका अपना एक उद्देश्य भी बन जाता है और वह अपने जीवन में सदा सुखी रहता है। किसी वस्तु में हम मन तभी लगा सकते हैं जबकि उस वस्तु की ओर हमारी रुचि अर्थात् प्रबल इच्छा हो। आजकल का तरीका जो जन समुदाय में प्रचलित है वह एक बड़ा गलत तरीका है। मनुष्य को जिधर उसकी रुचि न हो उधर ही उसको ढकेला जाता है इसका परिणाम यह होता है कि वह अपने बहुमूल्य समय को यों ही व्यर्थ गंवा देता है। ऐसा क्यों होता है? मनुष्य की एक स्वभाविक प्रवृत्ति है कि जिधर उसका मन नहीं लगता है वो उधर से निराश और घबड़ा जाता है और जब घबराता है तो उसकी आंखों के सामने अंधेरा छा जाता है। मस्तिष्क की विचार धारा परिवर्तित हो जाती है। और तब उसके सामने यह विचार हमेशा चक्कर काटता है कि ऐसी परिस्थिति में क्या किया जाय। घबराहट में मनुष्य उल्टे काम कर बैठता है। ऐसा लोक में देखा गया है कि उद्देश्य विहीन लोग अपने जीवन में घबड़ा कर आत्म हत्या कर लेते हैं। परन्तु आखिर साहस भी एक ऐसी चीज है जो कि मनुष्य को सान्त्वना दिलाये रखती है। जो साहसी पुरुष होता है वह ऐसी आत्महत्या नहीं करता। उपाय सोचता है और उसके निष्फल होने पर दूसरा सोचता है तीसरा सोचता है कहने का तात्पर्य यह है कि अनेकों उपाय सोचता है और अन्त में जो उपाय उसको सब से ज्यादह पसन्द आता है उसको अपने जीवन में जबकि वह स्वतंत्र हो जाता है घटाता है। इसी में उसकी सफलता होती है यदि शुरु में ही घबरा जाय तो आगे कुछ नहीं कर सकेगा। मान लीजिये किसी बालक को कहा कि तू डाक्टरी पढ़। यद्यपि उस बालक की उस में बिलकुल रुचि नहीं है, तो भी उसके ऊपर एक जबरदस्त कानून लगाया जाता है कि तुम को डाक्टरी पढ़नी ही पड़ेगी तो उस बालक की उस समय क्या दशा होगी यह दशा वह बालक ही जानता होगा। उतना कोई अन्य उसके विषय में नहीं जानता होगा। आजकल की शिक्षापद्धति का तरीका गलत है उसके ऊपर अरुचिकर विषयों तथा अधिक से अधिक पढ़ाई का बोझा डाल दिया जाता है परिणामतः उस बालक का स्वास्थ्य खराब हो जाता है क्योंकि वह इतने बोझ को सहार नहीं सकता। कइयों का तो इतना ज्यादह स्वास्थ्य खराब हो जाता है कि पढ़ाई के बोझ के मारे उनके मस्तिष्क चकरा जाते हैं और वह पागल तक हो जाते हैं। ऐसी भी क्या शिक्षा जो कि मनुष्य को भी ठीक रहना नहीं सिखा सकती, लोग समझते हैं कि जो जितना ज्यादह रात दिन सोते, जागते, उठते, बैठते शौच जाते समय तक पढ़ता ही रहता है और नाना विषयों का अध्ययन करता है एक बड़ा भारी विद्वान् और ज्ञान वाला होगा परन्तु वास्तव में देखा जाय तो यही सबसे बड़ी मूर्खता और अज्ञान अर्थात् नासमझ की स्थिति है क्यों कि वह अपनी सारी शक्ति पढ़ने पढ़ाने में ही व्यय करता है और संसार में सब से बड़ी शिक्षा इसी को

[शेष पृष्ठ ७ पर]

गुरुकुल

१४ माघ शुक्रवार १९९५

हैदराबाद सत्याग्रह

आज के इस लोकतन्त्रात्मक ज़माने में भी धार्मिक असहिष्णुता इतनी बढ़ी हुई है कि उसे देख, सुन कर दांतों तले उंगली दबानी पड़ती है। इतिहास में हमें पढ़ाया जाता है कि मध्यकाल में मुसलमानों ने हिन्दुओं पर इतने अत्याचार किये। उनके धार्मिक अधिकारों को हर तरह से कुचलने की चेष्टा की गई। पर उसे अब तक पढ़ते ही थे, सुनते ही थे, देखा न था। आज उसी दृश्य को, उसी मध्य युग के नज़ारे को देखना हो तो हैदराबाद (दक्षिण) से उपयुक्त कोई जगह न होगी।

आर्य समाज एक जलती अग्नि है। आर्यसमाज ने हिन्दुत्व की रक्षा के लिये समय समय पर जो आत्मत्याग किया है, निःसन्देह वह अतुलनीय है। आर्यसमाज ने देखा कि हैदराबाद में हिन्दुओं पर अत्याचार हो रहे हैं तो वह उसे रोकने को तैय्यार हुआ। वह हिन्दुओं की ढाल बन कर सामने आया। ढाल को वार सहने पड़ते हैं। आर्यसमाज पर तरह २ के हमले किये गए, पर वह ढाल उसे सहती गई। पर अब लाचार होकर उसे इस ढाल को छोड़ कर अस्त्र ग्रहण करना पड़ा। उसे अस्त्र क्यों ग्रहण करना पड़ा?

इसी लिए कि हैदराबाद रियासत में ८७% आबादी हिन्दुओं की होते हुए भी उन्हें कुछ भी तो अधिकार प्राप्त नहीं। इस राज्य की आमदनी इन्हीं ८७ o/o हिन्दुओं से है। इन्हीं हिन्दुओं की खून की कमाई पर टैक्स लगा कर राज्य हिन्दुओं के धर्म की रक्षा न कर एक विदेशी मुस्लिम धर्म को आश्रय देता है। उसी धर्म के प्रचार के लिए सरकारी आमदनी से नए २ विभाग खोलता है। इसके विपरीत हिन्दुओं के धर्म को, हिन्दु संस्कृति को, हिन्दु सभ्यता को हिन्दुओं की कमाई से नष्ट किया जाता है। मियां की जूती मियां के सिर पर पड़ती है। हिन्दु यदि अपने धर्म, संस्कृति और सभ्यता की रक्षार्थ अपने खर्च से, बिना सरकारी मदद लिए अपनी पाठशालाएं चलाते हैं तो वे पाठशालाएं सरकारी आज्ञा से बन्द कर दी जाती हैं। यदि हिन्दु अपनी रक्षा के लिए अपनी व्यायामशालाएं खोलते हैं तो उसका दण्ड उन्हें मृत्यु दण्ड मिलता है। आश्चर्य तो यही है खुले आम हिन्दुओं को लूटा जाता है, खुले आम उन्हें कत्ल किया जाता है, खुले आम उनकी मां बहन की इज़्ज़त उतारी जाती है। तो भी उन मुस्लिम अपराधियों को कोई दण्ड नहीं दिया जाता। दूसरी ओर आर्यसमाज के उन उत्साही कार्यकर्ताओं को मृत्यु दण्ड दिया जाता है, उनका अपराध यही है कि वे लोग अपनी जाति को जागृत करने में अपना जीवन व्यतीत कर रहे थे। सत्यार्थ प्रकाश आदि धार्मिक ग्रंथों का पठन पाठन मृत्यु का आह्वान है।

क्या दुनियां का कोई राज्य वर्तमान समय में ऐसा सुना गया है जहां ईश्वर की पूजा अपराध माना जाता हो। नास्तिक शिरोमणि रूस में भी ईश्वर की पूजा के लिए धार्मिक व्यक्तियों को छूट दी जाती है। पर दूसरी ओर इस गुलाम भारत की एक छोटी सी रियासत की हिमाकत देखिये—कि यदि हिन्दु अपने प्रभु की पूजा करने के लिए हवन कुण्ड का निर्माण करना चाहते हैं तो वह एक इतना बड़ा अपराध गिना जाता है कि उसके लिए किसी भी हिन्दु को वर्षों तक जेलों में सड़ाया जा सकता है। ईश्वर की पूजा के लिये कोई हिन्दु अपने मन्दिर को मरम्मत नहीं करा सकता। धार्मिक अनुष्ठानों के लिए निकाले जाने वाले जलूसों पर भी प्रतिबन्ध है। जब कभी मुहर्रम और दसहरा एक साथ आ पड़ते हैं तो हिन्दुओं को बिना बाजे के अपना पर्व मनाना होता है और 'सीमोल्लंघन' के लिये चुप चाप मातम पुरसी की हालत में जाना होता है। यह है उस रियासत की हिमाकत।

जेलों में हिन्दु कैदियों पर नाजायज दबाव डाल कर उन्हें मुसलमान बनाया जाता है। वहां बसने वाली अछूत जातियों को—जो कि हिन्दु हैं—नाना प्रकार से लालच आदि देकर मुसलमान बनाया जाता है। हिन्दुओं पर टैक्स लगा कर उन से रुपया वसूल करके मुस्लिम संस्कृति की रक्षा की जाती है। हिन्दु धर्म के प्रचारकों आर्य समाज के प्रचारकों पर दिन प्रतिदिन नये नये प्रतिबन्धन लगाये जाते हैं। अपने ही घर में हिन्दुओं को बोलने नहीं दिया जाता।

अब तक जो अत्याचार इतिहास में पढ़े थे, उन्हें आंखें खोल कर देखिये। औरंजेब को अपना आदर्श रखने वाले निज़ाम के अत्याचारों को भली भांति देखिये

मध्यकाल में औरंजेब ने हिन्दुओं पर अत्याचार किये परिणाम क्या हुआ? वह सोता हिन्दु-शेर जाग उठा उस अत्याचार का जवाब था वह मराठा साम्राज्य जिसने कि देहली के मुसलमान बादशाहों को आखीर तक अपनी अंगलियों पर नचाया। उस हिन्दु शेर ने उन अत्याचारियों को वह नाच नचाया कि जिसे आज भी वह नहीं भूला। फिर वह उसी को दुहराने की चेष्टा कर रहा है। वर्षों से सोए उस शेर को फिर जगा रहा है। जब गीदड़ की मौत आती है तो वह हमेशा गांव की ओर दौड़ती है। ठीक इसी तरह से आज ये अत्याचारी मृत्यु से खिलवाड़ कर रहे हैं, अब वह सोता हुआ हिन्दु शेर जाग उठा है। वह शेर उसी तरह एक बार फिर इन्हें एक नाच नचायेगा।

———

एक डाक्टर

[ले०—श्री क्षितीश]

(१)

दिल्ली जैसी विशाल महा नगरी। आधी रात। सब विलास भवनों के विद्युद्दीप बुझ चुके। चारों ओर सुनसान, गम्भीर नीरव रजनी का सन्नाटा। जहां दिन में भीड़ के मारे कन्धे से कन्धा छिलता था, और तांगे-मोटर-गाड़ी आदि सवारियों के तीव्र कर्णकटु कोलाहल से कानों के पर्दे फट जाते थे वहां इस समय केवल बिजली का प्रकाश प्रतिबिम्बित हो रहा है—सो भी इतना चुपचाप जैसे कि कोई दीपक अपने आंचल में छिपाये किसी नदी के पृष्ठ पर से इस तरह भागा चला जा रहा हो कि उसके पैरों की छपछपाहट भी न हो। सारी दुनिया गम्भीर निद्रा के सुख में मग्न। पर इस विशाल प्रसाद में एक सेठ राजाराम ही ऐसे हैं जो सुख की नींद और नींद के सुख दोनों से वञ्चित हैं।

सेठ राजाराम नगर के बड़े २ धनी-अमीर-पुरुषों की नाक समझे जाते हैं। लाखों की उनकी जायदाद है, हज़ारों उनके देनदार हैं, सैकड़ों जगह उनका कारोबार चल रहा है। पचासों उनकी कोठियां हैं। घर-बार भी सब बड़ी अच्छी तरह कुशल पूर्वक है। इतना सौभाग्य परमात्मा किसी सौभाग्यशाली को ही देता है। पत्नी उनकी बुद्धिमती है-और धनी पुरुषों को प्रायःजिस एक चीज़ की शिकायत होती है-वह शिकायत भी उन्हें नहीं है। परमात्मा ने उन्हें ५ पुत्र रत्न दिये हैं-वे एक से एक होनहार हैं। तो फिर उन्हें इस समय क्या चिन्ता है—चारों ओर से जब सुख बरसता हो तो बेचैनी की यह रात कैसी ?

बात यह है कि आज सेठ जी के सिर में दर्द है। और इसी कारण वे परेशान हो रहे हैं।

(२)

सिर-दर्द ? क्या मामूली सी चीज़ है? यह तो न जानें लोगों को दिन में कितनी बार होता है? पर इसके कारण कभी कोई इतना परेशान नहीं होता। और यहां एक ज़रा सा सिर-दर्द हो गया तो मानो आफ़त कर दी—सारा घर भर जाग रहा है। नौकर-चाकर इधर से उधर और उधर से इधर दौड़-धूप कर रहे हैं। कभी कोई डाक्टर आता है, कभी कोई हकीम आता है, कभी कोई वैद्य आता है। सब इसका इलाज करते हैं। पर यह शान्त नहीं होता।

असल में यह सिर-दर्द मामूली नहीं है। आज से कई साल पहले, सेठ जी के सिर में कानखजूरा घुस गया था। सिर का आपरेशन हुआ—कानखजूरा निकाल दिया गया। पर वह कानखजूरा सिर से निकलता हुआ हमेशा के लिए सिर में दर्द छोड़ गया। उसके बाद, दिन रात उठते-बैठते-सोते-जागते-खाते-पीते-लगातार यही सिर दर्द! सेठ जी परेशान हो गए। एक बार फिर कान्सलट किया गया। डाक्टरों ने कहा कि ऐसा लगता है उस कानखजूरे ने सिर में ही अपने अण्डे-बच्चे दे दिए होंगे और ऑपरेशन करते समय कोई अण्डा ग़लती से सिर में ही रह गया होगा-वही अब बड़ा होगया है जिसके कारण सिर-दर्द है।

फिर दुबारा ऑपरेशन।

लेकिन अगले दिन फिर वही हालत। अब भी लगातार उनके सिर में दर्द है। दिन रात माथा भन्नाता रहता है। दर्द के कारण कान सुन्न हुए जाते हैं। और वे कोई काम नहीं कर पाते।

एक बार फिर डाक्टरों को बुलाया गया और फिर तिबारा ऑपरेशन।

इस तरह न जाने कितनी बार सेठ जी के सिर का आपरेशन हुआ। पर उनका सिर दर्द शान्त नहीं हुआ। हर बार डाक्टर पिछले आपरेशन में कोई न कोई कमी निकाल देते थे—और कह देते थे आपको फिर सावधानी से आपरेशन करवाना चाहिये।

सेठ जी आपरेशन कराते २ तंग आ गये थे। रुपये की उन्हें पर्वाह नहीं थी। जहां कई लाख रुपया नक़द पड़ा हो—वहां यदि कुछ हज़ार डाक्टरों के हाथ में चला भी जाये तो कोई बड़ी बात थोड़ी है? पर तब भी बीमारी तो दूर होनी ही चाहिए।

इतनी लम्बी चौड़ी जायदाद, अनेक कोठियां, इतना फैला हुआ कारबार और यह सब भरा-पूरा-घर यह सब किस लिए है यदि बीमारी पीछे लगी है। उन्होंने अपनी ओर से सब कोशिशें आजमालीं, पर सब व्यर्थ। अन्त में वे जीवन से निराश हो चुके। और अब आत्महत्या करने पर तुले हैं। सगे सम्बन्धी आते हैं और उन्हें समझाते हैं। पत्नी और पुत्र रो रो कर उन्हें मनाते हैं—पर वे किसी तरह जीने को तैय्यार नहीं होते। इस तीव्र शिरोवेदना को लेकर वे जिए भी कैसे—आठ-पहर-चौबीस घड़ी तो यह उनके सिर पर सवार रहती है—न वे खा सकते हैं, न पी सकते हैं। जीवन का जो भी कुछ आनन्द है उससे वे वञ्चित हैं। फिर जी कर क्या करेंगे। सब आत्मीय जन भी हैरान हैं कि यह सिर दर्द की बला कहां से आगई—जो इतना प्रयत्न करने पर दूर नहीं होती

(३)

अन्तिम बार!

एक बार फिर सही। जहां अबतक इतने आपरेशन हुए हैं, वहां अब एक और सही! अबकी श्री डा० दीक्षित ने वचन दिया है कि वे अवश्य सेठ जी को स्वस्थ कर देंगे। सेठ जी भी एक बार फिर क्लोरोफार्म सूंघ कर जीवन की आशा करने लगे हैं। उन्होंने सोचा—जहां अब तक इतनी बार बेहोश हो होकर जीवन और मरण के बीच में लटक कर फिर २ जी गया हूं-और यह जीवन उस मरण की अपेक्षा भी अधिक दुस्सह हो उठा है, तो क्यों न एक बार फिर हिम्मत करूं। मरना तो आखिर है ही। पर जब निराशा बादल इस शरीर-कुटी को चारों ओर से ढक लेते हैं। चारों ओर अन्धेरा छा जाता है-कहीं कोई आसरा नज़र नहीं आता-उस दीन हीन-विपन्न उपेक्षित-तिरस्कृत

असहाय-अवस्था में भी उस कुटी के भीतर आशा की एक किरण किसी अज्ञात छिद्र से चुपचाप झांकती रहती है। और निराशा के उस भयंकर तूफान से भी मनुष्य आशा की पतवार पकड़ कर बेतहाशा आगे बढ़ा चला जाता है। वह उस आशा का परिणाम नहीं जानता भले ही उस छोटी-सी आशा के भविष्य में परिणाम स्वरूप एक पूर्वापेक्षया और अधिक बड़ी निराशा ही क्यों न खड़ी हो, पर मनुष्य उस लघु से भी लघु आशा के पीछे चलने लग जाता है यही मनुष्य का स्वभाव है।

सेठ जी को सब डाक्टर जवाब दे चुके थे और वे सब ओर से किनारा करके पावन-सरिता के कूल पर शीघ्र मरण की आशा से बैठे थे, तब डा० दीक्षितके इस आत्म विश्वास से ओतप्रोत वचन ने सब सम्बन्धियों को विश्वास दिया और सबने मिल कर इस अन्तिम आपरेशन के लिए सेठ जी को किसी न किसी तरह तैयार कर ही दिया।

आपरेशन-थियेटर—

(४)

सेठ जी को क्लोरोफार्म सुंघाया गया। सिर का आपरेशन हुआ। संभालकर टांके लगाए गए—सिर को अच्छी तरह सी दिया गया। अभी सेठ जी आपरेशन टेबिल पर पड़े हुए थे, क्लोरोफार्म का नशा अभी उतरा न था। आपरेशन की समाप्ति पर लोग बड़े उत्साह से और आशा भरी नजरों से डाक्टर के उस तेज चाकू से शोभित हाथ की ओर देख रहे थे। हां, यह अन्तिम वार! इस वार सेठ जी के जीने या मरने का निश्चय हो जायेगा अन्तिम वार! लोग हैरान थे-कि इस डाक्टरने भी तो वही सब कुछ किया है जो अब तक और डाक्टरों ने किया था औरों ने भी तो इतनी सावधानी से टांके लगाए थे, इतनी ही सावधानी से सीया था फिर इस डाक्टर ने कौनसी ऐसी खासीयत करदी है कि इसने सेठ जी को पूर्ण स्वास्थ्य का वचन दिया है। देखना यह है कि यह कौनसा जादू करता है।

थोड़ी देर में डाक्टर दीक्षित ने अपनी जेब से एक सरकारी दस्तावेज निकाला और इस प्रतीक्षा में खड़े रहे कि सेठ जी कब होश में आते हैं!

वह दस्तावेज क्या था।

हां मैं, इतना कहना पहले भूल गया हूँ कि डा० दीक्षित ने जिस शर्त पर आपरेशन करना स्वीकार किया था, वह यह थी कि उस दस्तावेज पर सब सम्बन्धियों को हस्ताक्षर करने होंगे—फिर चाहे उस पर कुछ भी क्यों न लिखा हो?

और इस शर्त के अनुसार सब सम्बन्धियों के हस्ताक्षर उस दस्तावेज पर थे। सेठ जी की धर्मपत्नी ने और उनके सब से बड़े पुत्र ने उस दस्तावेज पर हस्ताक्षर करने से मना किया। उन्हें बहुत समझाया गया। वे न माने। इस जालीदस्तावेज पर हम हस्ताक्षर नहीं कर सकते। पता नहीं इसके ऊपर क्या लिख दिया जाए। बिना सेठ जी की स्वीकृति के हम ऐसा नहीं कर सकते। पर जब उन्हें समझाया गया। कि तुम अपने पैसे और धन-दौलत की फिकर करते हो—यदि सेठ जी जीते रहे तो यह सब फिर हो जायेगा। और फिर रुपये पैसे की तुलना में क्या सेठजी का जीवन क्या अधिक पसंद नहीं? इस प्रकार बहुत समझाने-बुझाने पर आखिर उन्होंने भी हस्ताक्षर कर ही दिये।

और वह डाक्टर निकला बड़ा जालिम। उस दस्तावेज के ऊपर उसने लिखा हुआ था—सेठ जी के अच्छा होने पर इनकी सारी जायदाद मेरे अधिकार में समझी जाएगी-मैं उसका चाहे जो कुछ करूं। इनकी सारी कोठियां मेरी होंगी। इनका सारा माल-असबाब धन सम्पत्ति और नौकर-चाकर सब मेरे हो जायेंगे। इनके पुत्रों को इनकी सम्पत्ति से एक कानी कौड़ी भी नहीं मिलेगी। और अन्त में लिखा था कि-'इतना ही नहीं इन की घरवाली भी अबसे मेरी होगी।'

हायरे! क्रूर निर्दयी डाक्टर, क्या तेरे एक आपरेशन का इतना अधिक मूल्य है।

(५)

थोड़ी देर बाद जब सेठ जी होश में आये और उठ कर बैठे कि तत्काल ही उनकी आंखों के सामने वह दस्तावेज कर दिया गया। और उनके हाथ में कलम पकड़ा कर कहा गया कि इस पर हस्ताक्षर कर दीजिये।

सेठ जी ने उसे पढ़ना शुरू किया।—'सेठ जी के अच्छा होने पर इन की सारी जायदाद मेरी हो जायेगी सारा धन-सारी संपत्ति।' हायरे, वह 'लाखोंकी सम्पत्ति' सेठ जी की आंखों के आगे अन्धेरा छा गया। कागज उनके हाथसे छूटा जा रहा था-ज्यों त्यों करके वे अन्तिम वाक्य तक पहुंचे और उन्होंने पढ़ा—इनके पुत्रों को इन की सम्पत्ति से एक कानी कौड़ी भी नहीं मिलेगी। इतना ही नहीं—इनकी घरवाली भी अब से मेरी होगी।' कागज सेठ जी के हाथ से छूट पड़ा-और हाथ से छूटते हुए कागज में उन्होंने देखा कि उस दस्तावेज पर उनके सब पुत्रों के हस्ताक्षर हैं। स्वयं उनकी घरवाली के भी हस्ताक्षर हैं। हाय! इन सब ने मिल कर मेरे साथ षड्यन्त्र किया है। अरे और तो और, मेरी घरवाली के भी इस पर हस्ताक्षर हैं। षड्यन्त्र घोर षड्यन्त्र! धोखा, प्रचण्ड धोखा। अब मेरा कोई घर बार नहीं, कोई मेरा पुत्र नहीं—कोई मेरी पत्नी नहीं-तो मैं अब इस दुनियां में जी कर भी क्या करूंगा। और तब सेठ जी 'हा' कर पछाड़ खा कर गिर पड़े—फिर दुबारा बेहोश हो गये। टांकों पर जोर पड़ने पर टांके खुल गये और सेठ जी के सिर से खून की धार बह चली। लोग घबरा गये। लेकिन डा० खुशी के मारे उछल पड़ा। उसके चेहरे पर प्रसन्नता लहरें मारने लगीं। क्यों कि अब उसने गढ़ जीत लिया था।

सिर को दुबारा सिया गया। खून की धार बन्द हो गई।

थोड़े दिन बाद.

सेठ जी स्वस्थ और भले चंगे हो गये। अब उनके सिर का दर्द न जाने कहां चला गया। उनके सिर की एक नस स्थान भ्रष्ट हो गई थी, बार २ अपरेशन करने पर भी वह स्थान भ्रष्ट ही रहा। उस दिन सेठ जी एक-

दम धड़ाक से शोकावेश में पछाड़ खाकर जो गिर पड़े उनका सिर भन्ना गया और वह नस फिर अपने स्थान पर आगई। और अब सेठ जी को कभी सिर-दर्द की शिकायत नहीं हुई।

× × ×

सेठ जी के स्वस्थ होने पर वह दस्त वेज डा. दीक्षित ने सेठ जी को ज्यों का त्यों लौटा दिया-- और कहा-- मुझे आप की धन सम्पत्ति नहीं चाहिये, आपकी जायदाद नहीं चाहिये। आपकी सारी सम्पत्ति सम्भालिये आप की स्त्री भी नहीं चाहिये। आप अपनी चीज़ें सम्भालिये, और आनन्द से जीवन व्यतीत करिये। यह तो आप को स्वस्थ करने का एक बहाना था। उस समय आपकी आत्मा को जो कष्ट हुआ उसके लिये मुझे माफ़ करिये।

[पृष्ठ ३ का शेष]

समझता है। परन्तु वह यह नहीं जानता कि इसका मेरे जीवन पर क्या असर पड़ेगा। इसका अन्त में उसके जीवन पर बड़ा खराब असर पड़ता है तब वह कहता है "अरे यह क्या" कहने का तात्पर्य यह है कि शिक्षा का उद्देश्य केवल बहुत सारे विषयों का घोट लेना ही नहीं है परन्तु कुछ और भी साथ में है। इतना विचार करने के बाद यह विचारना है कि शिक्षा का वास्तविक स्वरूप क्या होना चाहिये। इससे पहिले यह बतलाना आवश्यक है कि शिक्षा तीन प्रकार की होती है। शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक। बस इसी क्रम के अनुसार यदि हम चलें तो हम अपने वास्तविक उद्देश्य को पहुंच सकते हैं। मनुष्य को सब से पहिले शरीर की उन्नति करनी चाहिए। यदि प्रारम्भ में ही हमने गड़बड़ की तो हम आगे एक कदम भी नहीं बढ़ सकते हैं। शरीर तो वास्तविक उद्देश्य तक पहुंचाने वाली सीढ़ी है। यदि हमने यह सीढ़ी मजबूत नहीं बनाई तो हम वास्तविक उद्देश्य तक नहीं पहुंच सकते हैं। यह सीढ़ी बिना स्वास्थ्य के मजबूत नहीं बन सकती और स्वास्थ्य को बनाने के लिए ब्रह्मचर्य का होना आवश्यक है। ब्रह्मचर्य से मतलब तपस्या वाले जीवन से है। यह सीढ़ी तप कर करके पकती है। यदि हमने इसको तप करके नहीं पकाया तो यह समझना चाहिये कि हमने वास्तविक उद्देश्य को अभी से ही खो दिया है और हम उसके लेने के अधिकारी भी नहीं हैं। शारीरिक ज्ञान के पश्चात् मानसिक ज्ञान की बारी आती है। मन के शुद्ध होने पर हम उस उद्देश्य के निकट से निकट पहुंचने की कोशिश करते हैं। मन का शुद्ध होना बड़ा मुश्किल होता है परन्तु महात्मा लोग पुनरपि इसको शुद्ध करने की कोशिश करते हैं और उसमें सफलता पाते हैं। मन का शुद्ध होना ज्ञान के ऊपर निर्भर है। यदि हमारे कर्णेन्द्रिय के अन्दर सदा अच्छा ज्ञान गूंजेगा तो हमारे मन पर भी अच्छे ज्ञान का असर पड़ेगा। इसलिये हमको हमेशा अच्छे शब्दों को सुनने और उसको धारण करने की कोशिश करनी चाहिये। अच्छी पुस्तकों का अध्ययन करना चाहिये। सत्पुरुषों और महात्माओं का संग करना चाहिये अर्थात् हमको सब ओर से अच्छा ही अच्छा देखने का प्रयत्न करना चाहिये। ताकि हमारे मन के ऊपर अच्छा प्रभाव पड़े और हम असली उद्देश्य में प्रवेश कर सकें। इस प्रकार अब हम शरीर और मन को अच्छी प्रकार सुव्यवस्थित करलें तब सबसे अन्त में आध्यात्मिक ज्ञान का नम्बर आता है यही शिक्षा का अन्तिम उद्देश्य है और मनुष्य जीवन का वास्तविक ध्येय है। इसमें क्यों कि सब तैय्यारी पूर्व में ही हो चुकी होती है इसलिये शरीर और मन को प्रभु के ऊपर छोड़ देना होता है। अपना मन अपने आप से दूर भग जाता है उसको सारा संसार ईश्वर की सत्ता से ढका हुआ दिखाई देता है और वह व्यक्ति वास्तव में देखा जाय तो तमाम लोक लोकान्तरों के उपकार के योग्य अब बनता है। उसको अपने तन की चिन्ता नहीं होती कीर्ति की इच्छा नहीं होती। किसी से राग वा द्वेष की भावना नहीं होती है। अर्थात् गीता के अनुसार वह निष्काम कर्म करता हुआ कदम पर कदम बढ़ाता हुआ चला जाता है और प्रत्येक क्षण प्रत्येक वस्तु में घट घट वासी प्रभु को देखता है। अन्त में वह इसी पथ पर जाता हुआ प्रभु से मिलने की इच्छा करता है। जहां उस की इच्छा प्रभु से मिलने की होती है वहीं उसकी शिक्षा सफल हो जाती है आगे उसको बाकी कुछ नहीं रह जाता है। उसका उद्देश्य पूरा हो चुका होता है और इसलोक से शीघ्र से शीघ्र परमात्मलोक को जाने की कोशिश करता है और अन्त में पहुँच जाता है। इसलिये शिक्षा का वास्तविक स्वरूप यही है कि मनुष्य शारीरिक, मानसिक और आत्मिक शक्तियों द्वारा अपने आप को पहचानकर उस प्रभु की शक्ति के साथ अपनी शक्ति को मिलादे।

गुरुकुल समाचार

ओमप्रकाश २ य श्रेणी खुजली तेजसिंह ४ र्थ. श्रेणी विषम ज्वर, सत्यव्रत १३ श श्रेणी मलेरिया। गत सप्ताह ये विद्यार्थी रोगी हुए थे। अब सब स्वस्थ हैं।

हैदराबाद दिवसः –

विगत २२ जनवरी को गुरुकुल कांगड़ी में हैदराबाद दिवस बड़ी धूम धाम से मनाया गया। उक्त दिवस को पचपुरी में सफलता पूर्वक मनाने के लिये गुरुकुल वासियों ने भरपूर प्रयत्न किया था। मध्याह्न को दो बजे, गुरुकुल के वाद्य दल के साथ एक बड़ा जलूस निकला, जोकि कनखल की मुख्य सड़क से होता हुआ चौक में पहुँचा। वहाँ पर श्री स्वामी सत्यदेव जी परिव्राजक के सभापतित्व में सभा हुई, जिस में हैदराबाद की हिन्दू प्रजा पर होने वाले अत्याचारों के विरोध में आशीले भाषण हुए। ब्र० लेखराज, ब्र० विद्यासागर, ब्र० क्षत्रपाल की वक्तृताएं बड़ी स्फूर्तिदायक थीं। जिससे जनता अत्यन्त प्रभावित हुई। अन्त में श्री स्वामी सत्यदेव जी का गम्भीर एवं ओजस्वी भाषण हुआ। उपस्थित जनता ने बड़े उत्साह के साथ तन मन धन से सत्याग्रह संग्राम में सहयोग देने का वचन दिया। इसी प्रकार ज्वालापुर और हरिद्वार में भी सभाएं हुईं।

चौधरी मुलासराय के प्रबन्ध से गुरुकुल प्रेस गुरुकुल कांगड़ी में मुद्रित तथा प्रकाशित।

* ओ३म् *

"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत"   Reg. No. A. 2927

गुरुकुल

सम्पादक—साहित्यरत्न पं० हरिवंश वेदालङ्कार

एक प्रति का मूल्य -) [गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख-पत्र] वार्षिक मूल्य २॥)

वर्ष ३] गुरुकुल काङ्गड़ी, शुक्रवार २१ माघ १९९५; ३ फरवरी १९३९ [संख्या ३७

गुरुकुल कांगड़ी का जत्था हैदराबाद को

महात्मा नारायण स्वामी जी स्वयं इसका नेतृत्व करेंगे

धर्मयुद्ध प्रारम्भ करने का सन्मान स्वामी जी ने गुरुकुल को दिया

गत २८ जनवरी का दिन, न केवल गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी के इतिहास में, अपितु आर्य समाज और हिन्दु जाति के इतिहास में एक चिरस्मरणीय दिन समझा जायगा। उस दिन गुरुकुल कांगड़ी के १५ वीर ब्रह्मचारियों ने पूजनीय महात्मा नारायण स्वामी जी महाराज के आह्वान और आदेश पर गुरुकुल भूमि से हैदराबाद सत्याग्रह के लिये कूच किया था।

हैदराबाद दक्खन के निज़ाम राज्य में, जिसे वहां के लोग 'मुग़लई' बोलते हैं, हिन्दु मात्र पर और खास कर आर्य समाजियों पर जो अत्याचार हो रहे हैं उनको अब गिनाने व बताने की जरूरत नहीं रही है। शोलापुर आर्यसम्मेलन और हैदराबाद-दिवस (२२ जनवरी) के बाद तमाम हिन्दुस्तान इस बात को भली भांति जान गया है कि हैदराबाद राज्य में आर्य समाजियों को नागरिकता के वे प्राथमिक अधिकार भी नहीं प्राप्त हैं जो उनसे मुसलमानी काल में भी नहीं छीने गये थे। आज हैदराबाद में हमारे आर्य भाई सार्वजनिक तौर पर सन्ध्या हवन नहीं कर सकते। अपने धार्मिक विधान के अनुसार परमात्मा की उपासना नहीं कर सकते। हवन कुण्डों का निर्माण नहीं कर सकते। नये समाज मन्दिर नहीं बना सकते; फूटे मन्दिरों की मरम्मत नहीं कर सकते। अपने बालकों को अपने धर्म और संस्कृति की, यहां तक कि अपनी मातृभाषा में शिक्षा नहीं दे सकते। अपनी समाजें, सत्संग व सभायें नहीं कर सकते। उन्हें अपने धर्म का प्रचार करने व अपने विचारों को प्रकट करने के लिये लिखने व बोलने के मामूली से मामूली अधिकार भी नहीं प्राप्त हैं। हिन्दुमात्र के ऊपर ये प्रतिबन्ध लगे हुए हैं। तमाशा यह है कि रियासत में ८७ प्रति शत आबादी हिन्दुओं की है। रियासत की खुशहाली और आमदनी हिन्दुओं के ही सिर पर है। हैदराबाद को मुसलमानी रियासत कहना बिल्कुल ग़लत है। वह हिन्दु रियासत है। वह ज़माना गया जब राज्यों की गणना उनके शासकों के आधार पर होती थी। इस प्रजातन्त्र युग में तो प्रजा ही राज्य का आधार समझी जाती है। पर हैदराबाद में हिन्दुओं को ही कुचला जाता है। रियासत की ओर से एक धर्म विभाग खुला हुआ है जिसके द्वारा हिन्दुओं की गाढ़ी कमाई से प्राप्त किया हुआ धन इस्लाम धर्म और मुसलमानी संस्कृति के प्रसार पर व्यय किया जाता है। यदि हिन्दु और आर्य भाई इसके विरोध में आवाज़ उठाते हैं या निज़ाम सरकार तक अपनी पुकार पहुंचाते हैं तो उन्हें जेलों में डाला जाता है और नानाविध पाशविक यातनायें दी जाती हैं। लिहाज़ा रियासत के अनेक उत्साही आर्यसमाजी कार्यकर्ताओं के खून हो चुके हैं और आर्यजनता अत्याचारों से पीड़ित हो उठी है। बाहर के आर्य भाइयों को मदद के लिए रियासत में नहीं आने दिया जाता। यह भीषण संकट है जिसका सामना इस समय आर्य-समाज को करना पड़ रहा है।

अनेक वर्षों से समस्त आर्यसमाजों की प्रतिनिधि संस्था 'आर्य सार्वदेशिक सभा' इस संकट को शान्ति-पूर्वक दूर करने का प्रयत्न करती रही है। इसके लिए निज़ाम राज्य से वर्षों तक पत्र व्यवहार व बात चीत की गई। भारत सरकार का द्वार खटखटाया गया। देश के बड़े २ राष्ट्रीय नेताओं का ध्यान इस ओर आकृष्ट किया गया। लेकिन कुछ फल नहीं निकला। मर्ज़ बढ़ता ही गया ज्यों २ दवा की। आख़िर, तंग आकर हाल में ही, रियासत की सीमा पर स्थित शोलापुर में लोकनायक श्री युत् अणे के सभापतित्व में एक आर्य-महा सम्मेलन किया गया जिससे सामूहिक रूप से आर्य जनता और हिन्दु जनता के कर्तव्य का निश्चय किया जा सके। महात्मा नारायण स्वामी जी सर्व-सम्मति से इस सामूहिक आन्दोलन का सञ्चालन करने के लिए प्रथम डिक्टेटर बनाए गए। उन्होंने फिर एक बार १५ दिन का समय देकर निज़ाम सरकार से सविनय प्रार्थना की कि हैदराबाद के आर्यों को अपने प्राथमिक अधिकार प्रदान किये जायें। इस बार उन्होंने यह स्पष्ट कर दिया कि यदि ये साधारण से अधिकार भी हमें न दिये गए तो हम लाचारी में अहिंसात्मक सत्याग्रह के उपाय का आश्रय लेने को बाधित होंगे। इस अल्टीमेटम का अन्तिम दिन २२ जनवरी था। २२ जनवरी निकल गई, लेकिन निज़ाम सरकार के कान पर जूं भी न रेंगी। हमारे मुतालबात का कोई उत्तर नहीं दिया गया। महात्मा नारायण स्वामी जी के आदेशानुसार २२ जनवरी को जिस उत्साह और शान के साथ समस्त भारतवर्ष में हैदराबाद दिवस मनाया गया वह हिन्दुओं की पादाक्रान्त भावनाओं का द्योतक था। इसमें सिखों, जैनियों, सनातनियों व सभी हिन्दु सम्प्रदायों ने आर्य समाजियों का साथ दिया और कई स्थानों पर धर्मान्ध मुसलमानों के आक्रमण भी सहे। गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी में भी यह दिवस अपूर्व जोश और संजीदगी के साथ मनाया गया। अनेक कुल-वासियों ने हैदराबाद के सत्याग्रह यज्ञ में अपनी आहुति देने की सूचना आचार्य महोदय को दी। कई कुलवासियों ने अपने वेतनों का कुछ भाग हैदराबाद सत्याग्रह के लिये अर्पण किया और कइयों ने सत्याग्रही स्वयंसेवकों के रूप में अपने को अर्पण किया।

२२ जनवरी के बाद लाचार होकर जब सत्याग्रह के प्रथम डिक्टेटर महात्मा नारायण स्वामी जी महाराज को सत्याग्रह की रण दुंदुभि बजानी पड़ी तो सब से प्रथम उनकी दृष्टि गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी पर पड़ी। उन्होंने गुरुकुल के आचार्य के नाम एक पत्र में अपनी यह इच्छा प्रकट की कि इस सत्याग्रह का प्रारम्भ गुरुकुल के जत्थे से हो, और लिखा कि वे स्वयं उस जत्थे का नेतृत्व करेंगे। इस आह्वान व आदेश को पाकर गुरुकुल वासियों की छाती गर्व से फूल गई कि उन्हें इतना योग्य, पवित्र और चरित्रवान् समझा गया है कि इस सत्याग्रह यज्ञ का प्रारम्भ उन्हीं से हो। उन्होंने शायद यह सोचा कि इस धर्म युद्ध के लिये एक सन्यासी के नेतृत्व में ब्रह्मचारियों के जत्थे से अधिक आदर्श और दृढ़ जत्था हो नहीं सकता। वार्षिक परीक्षाओं और उत्सव के अत्यन्त निकट होने पर भी १५ ब्रह्मचारियों का एक जत्था फौरन हैदराबाद जाने को और महात्मा नारायण स्वामी जी के नेतृत्व में अपने को धर्म और जाति की सेवा में कुर्बान करने को तैयार हो गया। जिन विद्यार्थियों को गुरुकुल में धर्म और जाति की सेवा करने का सबक सिखाया जाता है वे अपने नेता का आह्वान पाकर भी चुप कैसे रह सकते थे। इस अवसर पर उन्हें महात्मा नारायण स्वामी जी का मथुरा शताब्दी पर दिया हुआ सन्देश स्मरण हो आया कि अत्याचार करने वालों की अपेक्षा अत्याचार का सहने वाला अधिक पाप का भागी होता है। जिन गुरुकुल वासियों के हृदय कहीं पर भी दुर्भिक्ष का, भूकम्प, बाढ़ व अन्य किसी आपत्ति का नाम सुन कर द्रवित हो जाते रहे हैं और वे सेवा भाव से सदा अपने को अर्पण करने को तैयार रहे हैं वे अपने वैदिक धर्म और आर्य समाजियों के धार्मिक अधिकारों पर कुठाराघात होते कैसे देख सकते थे। उन्होंने समझा कि ऋषि ऋण और आर्य समाज के ऋण से उऋण होने का यह एक छोटा सा अवसर प्राप्त हुआ है। उनके इस कार्य ने गुरुकुल की कीर्ति पताका में और चार चांद लगा दिये हैं।

२८ जनवरी को जब इस जत्थे को गुरुकुल वासियों ने भरे हुए हृदयों से विदा किया तो एक अनुपम दृश्य उपस्थित हो गया, जिसे चित्रित नहीं किया जा सकता। एक कुल सभा में सत्याग्रही वीरों को बधाई दी गई और उनका अभिनन्दन किया गया। इन वीर ब्रह्मचारियों में ब्र० क्षेत्रपाल और ब्र० धारेन्द्र के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं, क्योंकि इन्होंने केवल २ मास के बाद स्नातक बनकर अपने शिक्षा काल को समाप्त कर देना था। लेकिन वे धर्म व जाति की सेवा करने को अपनी अन्तरात्मा की पुकार को रोक नहीं सके।

विदाई की सभा में ब्र० क्षेत्रपाल ने अपने भरे हुए दिल से जो भाषण दिया वह अत्यन्त मार्मिक और भावोत्तेजक था। उसने कहा कि हमारे कार्य को शायद अव्यावहारिक न समझा जाये,तो लेकिन नवयुवक हृदय सदा पुरानी और निर्जीव व्यावहारिकता की लकीर को छोड़ कर नवीन भयंकर रमणीयता की ओर अग्रसर होता है। उसने अपने स्नातक कक्षा के बन्धुओं को संबोधन करके कहा कि मैं १४ वर्ष तक आप लोगों के साथ खेला और पढ़ा हूं और अब जब कि सिर्फ दो मास शेष रह गए हैं आप से पृथक् हो रहा हूं, अर्थात् आपके साथ स्नातक होने का सौभाग्य मुझे प्राप्त नहीं होगा। आप लोगों ने यही समझ लेना कि आप की कक्षा में एक ब्रह्मचारी कम था। हम जो ब्रह्मचारी इस धर्म-युद्ध में जा रहे हैं वे यह समझ कर जा रहे हैं कि हम मृत्यु से आलिंगन कर रहे हैं, क्योंकि

इस निजाम हैदराबाद में होने वाले पाशविक अत्याचारों के वृत्तान्त हम सुन चुके हैं। श्र० जी के इस गंभीर भाषण ने समस्त कुलवासियों के हृदयों को हिला दिया सब ने एक स्वर से कहा कि हमारी दृष्टि में तुम अपनी कक्षा से दो मास पूर्व ही, अर्थात् अभी से ही गुरुकुल विश्वविद्यालय की स्नातक परीक्षा में पास हो गए हो।

ब्रह्मचारियों ने कुछ समय के लिये अपनी पढ़ाई को स्थगित करके अपने आप को आर्य समाज के इस धर्म युद्ध में Advance guard बना कर महान् बलिदान किया है। लेकिन उनका यह बलिदान यदि प्रसुप्त आर्य समाज को जगा सका, उस में एक नवजीवन का संचार कर सका, आर्यों के धार्मिक अधिकारों की रक्षा करने में सफल हो सका-और साथ में अपनी कुल माता गुरुकुल कांगड़ी को आर्य जनता में और अधिक प्रिय और प्रतिष्ठित बना सका -तो यह पूर्ण रूप से सफल समझा जायेगा। महात्मा नारायण स्वामी ने आज जब कि हजारों आर्य नर-नारी इस धर्म युद्ध में अपनी बली देने को तैयार हैं, तब गुरुकुल कांगड़ी को सर्व प्रथम आह्वान करके इस संस्था को जो सम्मान प्रदान किया है वह अपना विशेष महत्त्व रखता है। हमें पूर्ण विश्वास है कि गुरुकुल का लेशमात्र से किया गया यह उज्ज्वल बलिदान कभी व्यर्थ नहीं जायेगा।——

वृश्चामि तं कुलिशेनेव वृक्षम्

(ले० श्री रामनाथ जी वेदालङ्कार)

इदमिन्द्र शृणुहि सोमप यत् त्वा हृदा शोचता जोहवीमि।
वृश्चामि तं कुलिशेनेव वृक्षं योऽअस्माकं मन इदं हिनस्ति ॥
इदं देवाः शृणुत ये यज्ञिया स्थ भरद्वाजो मह्यमुक्थानि शंसति।
पाशे स बद्धो दुरिते नियुज्यतां योऽअस्माकं मन इदं हिनस्ति ॥

अथर्व ६। १२। २, २

आज मैं मोह-निद्रा से जाग गया हूं, मेरा मन बेचैन हो उठा है, हृदय में पश्चाताप की लहर उठ रही है और इसके बाद स्वभावतः मेरे हृदय से एक संकल्प उठ रहा है जिस में ओज है, शक्ति है और एक आत्मविश्वास की आभा है: हे सोम को पीने वाले इन्द्र! हे मेरे आत्मा इन्द्र! वह संकल्प मैं तुझे भी सुनाना चाहता हूं, बार २ पुकार कर सुना देना चाहता हूँ। वह मेरा संकल्प है— वृश्चामि तं कुलिशेनेव वृक्षं, यो अस्माकं मन इदं हिनस्ति "जैसे कुल्हाड़े से वृक्ष काट डालते हैं वैसे ही मैं उन्हें काट डालूंगा जो मेरे मन की हिंसा करने वाले हैं।"

क्या तुम जानते हो ये मन के हिंसक कौन हैं? यदि तुम मेरे मन की हिंसा करना चाहो तो शायद न कर सको, क्योंकि तलवार से मन की हिंसा नहीं होती है। ये मन के शत्रु तो अन्दर ही रहते हैं। भगवद्गीता के शब्दों में—

काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः।
महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम् ॥ ३। ३७

काम क्रोध मनुष्य के प्रबल मानसिक शत्रु हैं। काम क्रोध ही क्यों— राग, द्वेष, लोभ, मोह, मद, मत्सर, ईर्ष्या, असूया, अविद्या, संशय, प्रमाद, आलस्य, अहंकार-यह तो एक अनन्त सेना है। ये रिपु जब-तब मन में उदय हो कर शुभ संकल्पों को दबा कर उस पर अपना प्रभुत्व कर लेते हैं। मैं जानता हूँ मेरे छोटे छोटे संकल्प इनकी मार से कुण्ठित होते रहे हैं। आज कोई निश्चय करके कल ही मैं आलस्य आदि के वश होकर उससे च्युत होता रहा हूँ। पर आज तो मेरा मन जाग गया है और इनसे मुकाबला करने के लिये उठ खड़ा हुआ है। मेरे आगे से अपरिमित मानसिक शक्ति का द्वार खुल गया है और अब मैं देखता हूं कि पलभर में ही इन सब शत्रुओं का संहार कर सकता हूँ।

ओ मेरे जीवन-यज्ञ को चलाने वाले देवो (इन्द्रियो)! तुम भी सुनलो-मेरा मन मेरे लिये उक्थ, उत्तम संकल्प करने लग गया है। मन के रूप में शरीर के अन्दर विराजे हुए इन भरद्वाज ऋषि के तपोबल की अग्नि में आज सब दुष्ट वृत्तियां भस्म हो जायेंगी। हे इन्द्रियदेवो! तुम भी भारद्वाज ऋषि की शरण में आ जाओ। अब तुम्हें नये २ लुभावने रूप, रस, गन्ध आदि विषयों से इस मन का हरण नहीं कर सकोगे। यह देखो, जो भी इस मन की हिंसा करने के लिये आगे बढ़ेगा वह सात्त्विक वृत्तियों के पाश से जकड़ा जाकर दुर्गति को प्राप्त करेगा।——

(सोमप इन्द्र) हे सोम के पीने वाले इन्द्र (इदं शृणुहि) यह तू सुन ले (यत्त्वा शोचता हृदा जोहवीमि) जो कि मैं तुझे पश्चात्ताप-युक्त और संतप्त मन से बार २ पुकार कर कह रहा हूँ। (यः अस्माकम् इदं मनः हिनस्ति) जो हमारे इस मन का संहार करता है (तं कुलिशेन वृक्षम् इव वृश्चामि) उसे मैं कुल्हाड़े से वृक्ष की न्याई काट डालता हूं ॥

(देवाः) हे इन्द्ररूपी देवो! (ये यज्ञियाःस्थ) जोकि शरीर यज्ञ को चलाने वाले हो (इदं शृणुत) इसे सुन लो (भरद्वाजः-मह्यम् उक्थानि शंसति) मेरा मन मेरे लिये उत्तम संकल्पों को करने लग गया है। इस लिये (यः अस्माकम् इदं मनः हिनस्ति) जो हमारे इस मन की हिंसा करता है (स पाशे बद्धः) वह पाश में जकड़ा हुआ (दुरिते नियुज्यताम्) दुर्गति को प्राप्त हो ॥

गुरुकुलोत्सव पर आने वाले पुस्तक विक्रेताओं को सूचना

गुरुकुलोत्सव की तिथियों तथा दुकानों के किराये आदि के विषय में पहले सूचना दी जा चुकी है। इस बात को दोबारा सूचित किया जाता है कि केवल पत्र व्यवहार करने मात्र से दुकान रिजर्व नहीं की जावेगी और नाहीं किराये का कुछ भाग भेज देने से दुकान का नम्बर स्थिर हो सकेगा। बाजार का नक्शा केवल उन्हीं महानुभावों को भेजा जावेगा जिनका कि पूरा किराया अगाऊ रूप से कार्यालय गुरुकुल में पहुंच जावेगा। अभी तक केवल एक दुकानदार से पूरा किराया अगाऊ रूप से प्राप्त हुआ है।

उत्सव सम्बन्धी विशेष सूचनाएं समय समय पर दी जाया करेंगी। मुख्याधिष्ठाता

बसंत गीत

[ले०—श्री क्षितीश]

रे फिर आया वही बसंत !
वन-वन में, जन-जन के मन में-
अग-जग में यौवन-ज्वार लिए;
दिग्विजयी सेनानी आया,
प्रकृति प्रिया का प्यार लिये ।
अति निष्ठुर है, अति निष्ठुर है,
है मान कहाँ ? अपमान लिए;
यह क्रूर चला आया मुट्ठी में
प्रेमी-जन की जान लिए ।
हटो हटो हम भाग चलें,
छिप करके करलें कहीं त्राण;
या एक अकेले जन के बध को
पञ्च बाण के पञ्च बाण ।

× × ×

मेरा हास चुरा फूलों की
कलियों ने सीखा खिलना ।
छीन रुदन, है शान्त व्योम
क्यों रात-रात आँसू गिरना
मेरे स्वासों से श्वास मांग
दो मलयानिल ने लिए उधार;
उन दो के बल पर इटलाती
चलती है बहती बयार
मेरे प्राणों की चञ्चलता
आज कहां पर गई चली ?
देख लहर, तू जान सकेगा,
चञ्चलता साकार चली ।

× × ×

मैं आज कहां पर छिप जाऊँ
अपनापन विधि अनुरूप लिए ?
जब सभी जगह छाया बसन्त
मेरे मानव का रूप लिए ।
रे फिर आया है वही बसंत ।

बिदाई

जाओ जाओ बन्धु, हमारे !
सूरज बड़े प्रेम से जल को अपने पास खींच लेता है;
किन्तु बात पल भर ही करके उसे विदाई दे देता है—
जाओ मेघ, प्रतीक्षा करता प्यासी दुनिया आंख पसारे !
जाओ जाओ बन्धु हमारे !

(२)

प्राची बड़े प्रेम से सूरज को है अपने पास बुलाती,
पर मिलकर पलभर दे देती विदा उसे मुसकाती गाती—
जाओ: राह दिखाओ भटक रहे हैं जो तम में बेचारे !
जाओ जाओ बन्धु हमारे !

(३)

जाओ दिग्दिगन्त में जाओ विजय पताका को फहराते !
यौवन की उच्छृङ्खल लहरों में तुम दीवाने लहराते !!
नहीं अकेले जाते तुम; हैं हम सबके मन साथ तुम्हारे !
जाओ जाओ बन्धु हमारे !

—श्री सत्यभूषण 'योगी'

विजय गीत

आज वीर दक्षिण जायेंगे !

दस्यु दलों की मनमानी से
ऋषियों की पुनीत वाणी से
कर्कशता बिखरी है, उसको हटा जोश नव भर लायेंगे !
आज राम दक्षिण जायेंगे !
आज वीर दक्षिण जायेंगे !

× × ×

सायं हवन ज्वाल जो नभ में
असुरों से धूमिल कनकन में,
देख उगा चांदी सा चन्दा—दूर तिमिर सब भग जायेंगे !
आज राम दक्षिण जायेंगे
आज वीर दक्षिण जायेंगे ।

× × ×

यद्यपि विद्युद्दीप खिला है,
फिर भी अन्धकार निकला है,
यही देख विस्मित सूरज है—अंधकार भी लड़ पायेंगे !
आज राम दक्षिण जायेंगे
आज वीर दक्षिण जायेंगे ।

× × ×

है शैतान-ईश का संगर,
पाप-पुण्य का युद्ध भयंकर,
पत्ते भी हिलते, जाने को, मन सोचो, हम भी आयेंगे ।
आज बन्धु दक्षिण जायेंगे !
आज वीर दक्षिण जायेंगे !

× × ×

जाओ, जय-यात्रा पर जाओ !
पाओ धर्म सत्य जय पाओ !
मानस के शुभ-भाव-कुसुम ये पीछे पीछे खिल आयेंगे !
आज स्निग्ध दक्षिण जायेंगे !
आज वीर दक्षिण जायेंगे !

× × ×

हृदय शून्य सा पड़ा रहेगा,
किस से अपनी बात कहेगा,
गीली आँखें तुमको ढूढेंगीं, हम रोयेंगेगायेंगे !
आज प्राण दक्षिण जायेंगे !
आज वीर दक्षिण जायेंगे !

श्री "कुमार"

हिन्दी के सम्बन्ध में दो बातें

[ले०—प इन्द्रसेन जी आयुर्वेदालंकार]

कुछ दिन हुए मुझे एण्डेमन निवासी सज्जनों से बातचीत करने का मौका हुआ उनसे पहला प्रश्न जो मैंने किया वह यह था कि एण्डेमन में बोल चाल की भाषा क्या है? मुझे यह जान कर खेद हुआ कि वहां की बोलचाल की भाषा उर्दू है। वहां की अदालतों में, स्कूलों में और सरकारी दफ्तरों में उर्दू चलती है। इसके बाद दूसरा प्रश्न जो मैंने किया वह यह था कि आबादी हिन्दुओं की अधिक है या मुसलमानों की? आबादी मुख्यरूप से हिन्दुओं की है। पाठकों को यह मालूम हो कि अब एण्डेमन का द्वीप कैदियों का प्रवास कारावास नहीं रहा है। वहां पर भारत के सब प्रान्तों के निवासी अपने कारोबार की खोज में आकर बस गए हैं। हां पुराने कैदी जिन्होंने शादियां करली हैं वहां पर बस गए हैं।

मेरे लिए यह आश्चर्य का विषय है कि इस एण्डेमन द्वीप में उर्दू क्यों जन साधारण की भाषा है? अगर भारत के समुद्र तट को भी देखें तो यही परिणाम निकलता है कि इस द्वीप पर मद्रास, उड़ीसा या बङ्गाल का प्रभाव, सामीप्य के कारण अधिक होना चाहिए था। पर ऐसा नहीं है उन एण्डेमन के निवासियों ने यह बताया कि इसका कारण पढ़ाने वाले मौलवी हैं। जब शुरु शुरु में बच्चों की शिक्षा का प्रबन्ध हुआ तो वहां पढ़ाने वाले सब मौलवी थे जिन्होंने उर्दू की नींव रक्खी।

इस समय भारत में यह प्रश्न उठा हुआ है कि हिन्दी भारत की भाषा होनी चाहिए या उर्दू? एण्डेमन का उदाहरण उर्दू के दावे का जीता जागता सबूत बन रहा है? खैर इस विषय में मैं बहुत कुछ न कहता हुआ आर्यजनता एवं हिन्दी प्रचारकों का ध्यान इस ओर आकर्षित करता हूँ कि एण्डेमन द्वीप में आर्यधर्मप्रचारकों एवं हिन्दीभाषा प्रचारकों का भेजना बहुत आवश्यक है।

दो या तीन साल हुए मुझे किसी कार्यवश आई० सी० एस० परीक्षा के पत्रों को देखने का मौका हासिल हुआ था। मैंने इस परीक्षा के अनेकों विषयों के प्रश्न-पत्रों को देखते हुए साथ ही हिन्दी, संस्कृत और उर्दू के प्रश्न-पत्रों को भी खास दिलचस्पी से देखा। इसके बाद मैंने परीक्षा में बैठने वालों की संख्या, अर्थात् किन २ प्रान्तों से कितनी २ संख्या में बैठते हैं, हिन्दू और मुसलमान कितनी संख्या में बैठते हैं और उनमें से उर्दू, हिन्दी या संस्कृत विषयों को वे कितनी संख्या में लेते हैं; ध्यान पूर्वक देखा। इस निरीक्षण का सारांश हिन्दी भाषा के प्रेमियों को कड़वे घूंटों पीना पड़ेगा। हिन्दी विषय को लेने वालों की संख्या उर्दू विषय को लेने वालों से कहीं कम थी। होना तो यह चाहिए था कि यह संख्या कहीं ज्यादा होती पर वस्तुतः यह संख्या बराबर भी नहीं, कम भी नहीं पर बहुत कम थी।

पाठकों को यह स्मरण हो कि आई.सी.एस. से मतलब इण्डियन सिविल सर्विस है। यह कुल भारत की सर्विस है। नौकरी की तनख्वाह भी बहुत बड़ी होती है। इस परीक्षा में बैठने वाले भी भारत के छंटे हुए दिमाग होते हैं। और जब वे पास कर ओहदा पाते हैं तो सर्व जनसाधारण के लिये एक प्रकार के अनुकरणीय बनते हैं। न केवल अनुकरणीय बनते हैं पर ये अपने विचारों एवं व्यवहारों का साधारण जनता पर बड़ा प्रभाव डालते हैं। इन सब दृष्टियों को ध्यान में रखते हुए पाठक सोचें कि हिन्दी की दशा इस क्षेत्र में कितनी शोचनीय है? पर प्रश्न यह है कि इसका कारण क्या है? कारण की जांच जहां तक मैं लगा पाया हूं नीचे स्पष्ट करता हूं—

आई०सी०एस० की परीक्षा एक उत्तरणीय परीक्षा (Pass examination) नहीं है बल्कि प्रतिस्पर्द्धिक परीक्षा (Competitive Examination) है। परीक्षार्थी जो विषय चुनते हैं वो इस दृष्टि से चुनते हैं कि उन्हें कम मेहनत करनी पड़े और अधिक अङ्क प्राप्त हों। इस चुनाव में वे कई बातों का ध्यान रखते हैं। स्वयं वे किसी विषय को कितना जानते हैं। उस विषय के परीक्षक किस स्टैण्डर्ड का ज्ञान उस विषय में आवश्यक समझते हैं इत्यादि। सो इन बातों के निर्णय के लिए प्रत्येक परीक्षार्थी विषयों के प्रश्नपत्र मंगा कर देखता है तो सचमुच घबड़ा जाता है। उस पत्र में हिन्दी के चँदबरदाई के ज़माने के भी छन्द हैं तो उसके बाद कबीर, केशव, बिहारी, सूरदास, तुलसीदास और फिर वर्तमान कवियों तक की कृतियां हैं। इस पत्र को देख कर परीक्षार्थी मेरे ख्याल में तो यही सोचता होगा कि हिन्दी का विषय तैयार करना तो मानो ६, ७ भाषाओं का ज्ञाता बनना है। एक ही विषय ६,७ विषयों के बराबर का हो जाता है। इसके मुकाबले में उर्दू के प्रश्न पत्र में केवल (General) प्रश्न होते हैं और वे भी सब आधुनिक Modern उर्दू तक सीमित होते हैं। जो पाठक मेरी बात का पक्का सबूत लेना चाहते हों खुद I.C.S.के प्रश्न पत्रों को उठा कर देख लें। हाथ कंगन को आरसी क्या? इसी तरह उन प्रश्न पत्रों में संस्कृत का हाल है। एक ही पर्चे में वैदिक संस्कृत भी है, लौकिक संस्कृत भी और प्राकृत भी है। इसी लिए संस्कृत का विषय भी बहुत कम लेते हैं। एक तो संस्कृत वैसे ही कुछ कठिन भाषा है (चूंकि बोल चाल की भाषा नहीं रहा है) दूसरे फिर किसी २०-२२ वर्ष के नवयुवक के लिए संस्कृत का इतना ज्ञान प्राप्त करना कि वह वैदिक संस्कृत भी अच्छी तरह जानता हो, लौकिक भी और प्राकृत भी और ये सब केवल एक प्रश्न पत्र के लिए और इसके साथ और पांच छै अन्य विषयों का प्रातिस्पर्द्धिक ज्ञान भी रखना हो बहुत कठिन है। हिन्दी और संस्कृत के प्रेमियों को तथा नागरी प्रचारणी आदि संस्थाओं को इस सम्बन्ध में Public Service Commission के अधिकारियों से पत्र व्यवहार करना चाहिए और इस कठिनाई को जो I.C.S. के हिन्दी या संस्कृत जानने वाले उम्मेदवारों के सामने आती है दूर करा लेना चाहिए। नहीं तो परिणाम स्पष्ट ही है कि हिन्दी प्रेमी सज्जन I.C.S. में नहीं जा पायेंगे और भविष्य में इन्होंने जो कुछ हिन्दी के लिए करना होगा उस से हिन्दी वञ्चित रहेगी।

उपवास की प्राचीनता

[ले०—श्री 'देव']

दुनियां में इस समय तक 'ऋग्वेद' सबसे प्राचीन किताब मानी गई है। उसमें ब्रह्मचारी को गुरुकुल में दाखिल करते समय तीन दिन का उपवास कराने का विधान है। इसी प्रकार वैदिक काल में जितने भी व्रत धारण किए जाते थे उनसे पहिले एक दिन या अधिक दिनों का उपवास जरूर करवाया जाता था। इसका सिद्धान्त यह था कि उपवास से शरीर की शुद्धि होती है और बिना शरीर शुद्ध हुए मानसिक शुद्धि नहीं हो सकती।

इसके पश्चात् मध्य युग में आकर तो उपवास की प्रवृत्ति बहुत ही अधिक हो गई था। प्रत्येक हिन्दू को एक महीने के अन्दर ३.४ दिन तो उपवास ज़रूर ही करना पड़ता था। उन दिनों में लोगों ने उपवास का इतना अधिक महत्व समझा कि इसका सम्बन्ध धर्म के साथ कर दिया गया। स्मृतियों में प्रायः पापों के प्रायश्चित के लिए छोटे या बड़े उपवासों का भी विधान किया गया है। इसी प्रकार मध्यकाल में लिखे गए चिकित्सा ग्रन्थों में भी उपवास का बहुत अधिक वर्णन है। आयुर्वेद के प्रसिद्ध ग्रन्थ चरक और वाग्भट्ट में कई अध्याय उपवास की उपयोगिता पर लिखे गए हैं। सुश्रुत में आपरेशन से पहिले उपवास का विधान आता है, जो कि आजकल भी इसी रूप में प्रयुक्त होता है। इसी प्रकार मध्यकालीन अन्य चिकित्सकों ने भी इसकी उपयोगिता को स्पष्ट रूप से माना है।

यूरोप में सब से प्रथम ईसा से १५०० वर्ष पूर्व ल्यूगी कारनारो नामक पुरुष ने अपनी आयु बढ़ाने के लिए उपवास किया। उसके बाद यूरोप का मशहूर डाक्टर ल्यूगी कारनारो (Luigi Carnaro) औरतों की गौरे की बीमारियों के लिये भी उपवास का प्रयोग करता था। इसी प्रकार अरब का प्रसिद्ध चिकित्सक एवीना (Avicena) अपने सब बीमारों को उपवास के द्वारा ही ठीक किया करता था और रात को वह अपने बीमारों के चारों तरफ़ चक्कर काटा करता था कि कहीं कोई बीमार कुछ खा न ले।

आजकल तो पाश्चात्य तथा पौरस्त्य सभी डाक्टर चिकित्सा में उपवास का कुछ न कुछ प्रयोग करने लगे हैं। अमेरिका का मशहूर डाक्टर बरनार मैक फैडन (Bernarr macfadden) ४० साल से अपने बीमारों को उपवास के द्वारा ठीक करता आ रहा है। और इस प्रकार इसने उपवास की महत्ता को लोगों के सामने बहुत विस्तृत कर दिया है। वर्तमान उपवास चिकित्सा के पिता डा० एडवर्ड एच० देवे (Dr. Edward H. Davey—father of modern fasting) अब तक सहस्रों रोगियों को उपवास के द्वारा ठीक कर चुका है। इसी प्रकार अन्य भी अनेक सफल डाक्टरों के नाम पेश किये जा सकते हैं।

धर्म के साथ सम्बन्ध—

इसके साथ ही उपवास को धार्मिक महत्व भी इतना अधिक दिया गया है कि स्वभाविक तौर पर ही इसका प्रचार आम लोगों में हो गया है। हिन्दुओं के सभी धार्मिक ग्रन्थों में इसकी महत्ता को स्वीकृत किया गया है। वेदों से लेकर पाणिनि के सूत्रों तक सभी धर्म ग्रंथों में इसका महत्व वर्णित है। स्मृतियों में तो चान्द्रायण, पारायण तथा एकादशी चतुर्दशी, शिवरात्रि आदि में उपवास करने का विधान बड़े स्पष्ट रूप में है। बाईबिल में अनेक जगह उपवास करने का विधान है। रोमन कैथोलिक चर्च ने भी उपवास में विश्वास प्रगट किया है और बहुत से लोगों को इसके लिए प्रेरित किया है। इसी लिए वे लोग कैलेण्डर छपवाते समय उपवास के दिनों को भी छपवाते हैं। मशहूर ईसाई उपदेशक जौन कैलविन तथा वैज़ले ने आम लोगों तथा उपदेशकों के लिए उपवास स्वीकृत किया है। मुसलमानों के तो प्रायः सभी त्योहार उपवास करने के लिए होते हैं। और रमज़ान के दिनों में तो ३० दिन तक उपवास करने की इजाज़त है। जैनियों के धर्म ग्रन्थ 'महावीर चरितम्' में छोटे छोटे उपवासों के साथ २ बहुकाल व्यापी उपवासों का भी विधान है। बौद्ध धर्म के प्रवर्तक बुद्ध भगवान् ने स्वयं कई महीनों तक उपवास के द्वारा शरीर को शुद्ध करके धर्म का रहस्य समझा था। और इसी लिए बौद्धों के प्रसिद्ध ग्रन्थ 'धम्मपद' में जगह २ वे अपने भिक्षुओं को उपवास के लिए प्रेरित करते हैं। इसी प्रकार प्रायः सभी धर्मों में उपवास की महत्ता को स्वीकार किया गया है।

सत्याग्रही बन्धुओं को गिरफ्तारी!

हैदराबाद ३१ जनवरी।

सुलतान बाजार में सत्याग्रह करते हुए श्री महात्मा नारायण स्वामी जी गुरुकुल के १५ ब्रह्मचारियों तथा अन्य २९ सज्जनों के साथ गिरफ्तार कर लिये गये। विस्तृत समाचार अभी विदित नहीं हुए।

उत्सव सूचना

गुरुकुल कुरुक्षेत्र (थानेसर) का वार्षिकोत्सव २६ मार्च को बड़ी धूमधाम से करने का निश्चय किया गया है। सब आर्य जनता को पधार कर लाभ उठाना चाहिये। बालकों को प्रविष्ट करने वाले सज्जन प्रवेश फार्म मंगवा लें।

मुख्याधिष्ठाता

गुरुकुल समाचार

इस सप्ताह ब्रह्मचारी रामपाल ५म श्रेणी चोट से, ब्र० गोविन्द १३ वीं तथा ब्र० ब्रह्मदत्त १३ वीं काल रोग से पीड़ित हुए थे अब सब स्वस्थ हैं।

वीर सत्याग्रही बन्धुओं की विदाई—

विगत २८ जनवरी को हैदराबाद की ओर प्रस्थान करने वाले बन्धुओं की विदाई के उपलक्ष में एक सभा हुई। इस सभा में श्री मुख्याधिष्ठाता जी, आचार्य जी, उपाध्यायगण, अध्यापक वृन्द, विद्यालय तथा महाविद्यालय के सब ब्रह्मचारी सम्मिलित हुए थे। सब कुलवासियों ने सत्याग्रह-संग्राम में जाने वाले इन भाइयों के लिये मंगल कामनाएँ की और पूज्य जनों ने आशीर्वाद दिये।

रात्रि को ६॥ बजे माताओं ने आकर तिलक लगाया और मालाएँ पहनाई। इन दृढ़-व्रती भाइयों को विदाई देने के लिये महाविद्यालय के सब बन्धु ज्वालापुर स्टेशन तक गये।

इस सत्याग्रह में अपनी बली देने वाले बन्धुओं के नाम नीचे दिये जाते हैं:--

ब्र० क्षेत्रपाल १४, ब्र० धीरेन्द्र १४, ब्र० विद्यासागर १३, ब्र० इन्द्रसेन १३, ब्र० देवराज १३, ब्र० सत्येन्द्र १३, ब्र० ओम्प्रकाश १३, ब्र० उदयवीर १२, ब्र० सतीश कुमार १२, ब्र० रामनाथ १२, ब्र० विजय कुमार १२, ब्र० मनोहर १२, ब्र० विद्यारत्न १२, ब्र० विश्वमित्र ११, ब्र० चन्द्रगुप्त ११।

गुरुकुल चित्तौड़गढ़

ऋतु अत्यन्त सुहावनी है। कभी २ आकाश में घटाएँ छा जाती हैं और बूंदा बूंदी भी हो जाती है। सब ब्रह्मचारी पूर्ण रूप से दत्तचित्त होकर वार्षिक परीक्षा की तैयारी में संलग्न हैं जो कि चैत्र शुक्ला प्रतिपदा से प्रारम्भ होगी।

गुरुकुल का वेदाङ्ग विद्यालय भवन भी शीघ्र ही बन कर तैयार हो जायगा-इसके बन जाने पर पढ़ाई के स्थान की असुविधा भी दूर हो जायगी।

२२ जनवरीको हैदराबाद दिवस मनाया गया। प्रस्ताव पास किये गये जिन में हैदराबाद के भाइयों के साथ पूर्ण सहानुभूति प्रकट की गई तथा जनवरी मास की सहायता के २५) श्री नारायण स्वामी जी के पास शोलापुर भेज दिये गये। इसी प्रकार प्रतिमास सहायता भेजते रहने का निश्चय किया गया है।

मुख्याधिष्ठाता

गुरुकुल सूपा—

गुरुकुल सूपा का डेपूटेशन धन संग्रहार्थ अफ्रीका जा रहा है। इस डेपूटेशन में पं० प्रियव्रत जी आचार्य, पं० केशवदेव जी शास्त्री, पं० शंकरदेव जी तथा पं० रणधीर जी जा रहे हैं। गुरुकुल में २७ जनवरी को डेपूटेशन की विदाई में एक सभा हुई और स्वागत के साथ इसे विदा किया गया।

उत्सव—

गुरुकुल सूपा का १५ वां वार्षिक महोत्सव होली के दिनों में २, ३ और ४ मार्च तदनुसार ११, १२, १३ फाल्गुन, बृहस्पति, शुक्र तथा शनिवार को होना निश्चित हुआ है। इसमें अनेक आर्य नेताओं के पधारने की आशा है। जो सज्जन अपने बालकों को प्रविष्ट करवाना चाहते हैं वे शीघ्र प्रवेशार्थ प्रार्थनापत्र मंगाकर स्वीकृति ले लें।

आर्य जनता ध्यान दे—

गुरुकुल मटिण्डू ज़िला रोहतक ही गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी की एकमात्र ऐसी शाखा है जो कि २४ वर्ष से बिना फीस लिये छात्रों का भरण, पोषण तथा शिक्षा का कार्य सफलता पूर्वक कर रही है। इस शाखा की आधार शिला अमर शहीद श्री स्वा० श्रद्धानन्द जी के कर कमलों से रक्खी गई थी। अतएव वे समय २ पर यहां पधार कर अपनी कृपा का परिचय दिया करते थे। यह वर्णन करने की आवश्यकता नहीं कि इस संस्था के साथ उनका सम्बन्ध अत्यन्त घनिष्ट था। कई वर्षों के साधारण तथा गत वर्ष के असाधारण अकाल ने हरियाना (ज़ि० रोहतक तथा हिसार) प्रान्त की दशा अतिशोचनीय बनादी है। चारों ओर हाहाकार मचा हुआ है। प्रान्त की दशा के भीषण तथा दिल दहलाने वाले समाचार आपके कानों तक पहुंच चुके हैं। इस अवस्था में मैं आपका ध्यान इस स्वा० श्रद्धानन्द जी की प्रिय संस्था की ओर खींचना चाहता हूं। इसमें ८० छात्र विद्या प्राप्त कर रहे हैं तथा इसकी गोशाला में ३० पशु हैं। इन सबके पालन पोषण का भार प्रान्त के किसानों पर ही है, परन्तु इस भयंकर अकाल के कारण जब किसानों का अपना जीवन ही दूभर हो रहा है तो वे अपनी आश्रित संस्थाओं की क्या सहायता कर सकते हैं। इस अवस्था में समस्त दानी महानुभावों से मेरी प्रार्थना है कि वे अकाल पीड़ित पशुओं की रक्षा करने में हाथ बढ़ाकर पुण्यभागी बनें।

गुरुकुल का आगामी वार्षिकोत्सव २४, २५, २६ फर्वरी सन् ३९ को समारोह से मनाया जायगा। इसकी सफलता भी आर्य जनता की सहायता पर ही निर्भर है। अतः इस उत्सव के अवसर पर मेरी सम्पूर्ण दानवीरों से प्रार्थना है कि वे ऐसी दशा में अपनी सात्विक सहायता करते हुवे गुरुकुल की तथा गोशाला की रक्षा से दुगना पुण्य लाभ करेंगे। आशा है कि आर्य जनता इस प्रार्थना पर उचित ध्यान देगी तथा निराश न करेगी।

आर्य जनता का सेवक-
निरञ्जनदेवः
मुख्याधिष्ठाता

चाधरी हुलास प्रबन्ध से गुरुकुल प्रेस गुरुकुल कांगड़ी में मुद्रित व प्रकाशित।

॥ ओ३म् ॥

"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत"

Reg. No A. 2927

गुरुकुल

सम्पादक—साहित्यरत्न पं० हरिवंश वेदालङ्कार

एक प्रति का मूल्य -) [गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख-पत्र] वार्षिक मूल्य २॥)

वर्ष ३] गुरुकुल काङ्गड़ी, शुक्रवार २८ माघ १९९५; १० फरवरी १९३९ [संख्या ३८

चार उपदेष्टा

[लेखक—आचार्य प० चन्द्रकान्त जी वेदवाचस्पति]

छान्दोग्योपनिषत् प्रपाठक चतुर्थ के तृतीय खण्ड में कथा आती है कि जाबाला के पुत्र सत्यकाम ने ब्रह्मचर्याश्रम में प्रविष्ट होने से पूर्व अपनी माता से अपना गोत्र जानना चाहा। माता ने अनभिज्ञता बताई। सत्यकाम ने गौतम गोत्रोत्पन्न हारिद्रुमत ऋषि के पास जाकर कहा कि मैं ब्रह्मचर्यव्रत को पालन करने के लिये आपकी सेवा में आया हूं। गौतम ने सत्यकाम से गोत्र पूछा तो उसने सच्ची हकीकत कह सुनाई। गुरु ने कहा—सौम्य! तू ब्राह्मण है, समिधा ले आ, तुझे उपनयन दूंगा। उपनयन के अनुसार गुरु ने कृश दुर्बल गौओं में से चार सौ गायें निकालकर कहा कि इन्हें वन में ले जा। सत्यकाम उन्हें ले जाते हुए बोला हे गुरो! इन्हें हजार किये बिना मैं नहीं लौटूंगा। इस प्रकार वर्षों तक वह जंगल में घूमता रहा। इस समय में ब्रह्मचारी सत्यकाम को 'ऋषभ' ने पूर्व, पश्चिम, उत्तर तथा दक्षिण दिशा रूपी कला वाले चतुष्कल पाद प्रकाशवान् रूप से प्रसिद्ध ब्रह्म के स्वरूप को समझाया, 'अग्नि' ने भूमि, अन्तरिक्ष, द्यु और समुद्र रूपी चार कला से सम्पन्न अनन्तवान् नाम से प्रसिद्ध ब्रह्म का स्वरूप समझाया, 'हंस' ने अग्नि, सूर्य, चांद तथा बिजली इन चार कला वाले ज्योतिष्मान् ब्रह्म का स्वरूप बताया और 'मद्गु' ने प्राण, नेत्र, श्रोत्र तथा मन की कलाओं से युक्त आयतनवान् नाम ब्रह्म के स्वरूप को समझाया।

उपनिषत् की उपरिलिखित कथा में ब्रह्म (पूर्णता) की ओर प्रयाण करने वाले ब्रह्मचारी के चार उपदेष्टा बताये गये हैं। संसार तथा संसार के विविध पदार्थों को गुरु बना कर इनसे ज्ञान प्राप्त करने के विधान वैदिक सारस्वत में बहुत मिलते हैं। "उपह्वरे गिरीणां संगमे च नदीनाम्। धिया विप्रो अजायत" ज्ञानी पुरुष पर्वतों की गुफाओं और नदियों के मनोरम संगमस्थल में पैदा हुआ करते हैं। अथर्ववेद के ब्रह्मचर्य सूक्त (अथर्व० ११।५ सूक्त) को देखने से प्रतीत होता है कि सूर्य, चन्द्र, द्यु, पृथवी, मेघ आदि अधिभौतिक देव, बैल आदि पशु तथा पक्षी और औषधि वनस्पतियां आदि आधिभौतिक देव, ब्रह्मचर्य के पथ चलते हुए ब्रह्मचारी के पथप्रदर्शक बताये गये हैं। यूरोप के महाकवि शेक्सपीयर ने भी क्या ही सुन्दर कहा है—

'जंगल के मूक पत्थरों में-शांत वनराजियों और बहते हुए नदी नालों में ज्ञानी लोग अमर सन्देश सुना करते हैं।' ऐसा ही मधुमय उपदेश गुरु गोविन्द ने नर्मदा नदी के तट पर बैठकर उजियाली रात में अपने शिष्य शंकरस्वामी को भव्य तथा सुन्दर दृश्यों को बताकर दिखाया था। श्रीमद्भागवत में लिखा है कि दत्तात्रेय महाराज ने पृथ्वी-समुद्र-पर्वत-भ्रमर आदि २४ गुरु बनाये थे। इसी प्रकार उपनिषत् में ब्रह्मचारी सत्यकाम के ऋषभ-अग्नि-हंस और मद्गु ये चार गुरु बताये गये हैं। इन चारों का क्रमशः वायु, अग्नि सूर्य तथा जल के साथ सम्बन्ध है। ब्रह्म की प्राप्ति के लिये इन चारों देवों से विशेष २ गुण का आधान करते हुए अग्रसर होता जाता है। प्रबल प्रभंजन, पहाड़, समुद्र किसी की भी परवाह न करके वेग से आगे ही बढ़ता जाता है। वायु के समान वेग से चलने वाला 'वृषभ' अपने मार्ग से बालमात्र भी बिना हटे भार लेकर आगे ही आगे बढ़ता जाता है—इसी प्रकार ब्रह्म के मार्ग का राहगीर

आर्यसमाजों से निवेदन—

गुरुकुल का वर्ष समाप्त हो रहा है। कई आर्यसमाजों का २॥) वार्षिक चंदा अभी तक हमें प्राप्त नहीं हुआ है। आशा है मन्त्रीगण ध्यान देंगे और इस सूचना को पढ़ते ही २॥) मनीआर्डर द्वारा रवाना कर देंगे।

सम्पादक

कर्तव्यपरायण होकर आगे २ बढ़ता जाता है। मानव जीवन के उत्तरदायित्व को समझता हुआ तीव्र वेग से अपने मंजिले मकसूद तक दौड़ा जाता है। संसार के संकटों की परवाह किये बिना "देहं वा पातयामि कार्यं वा साधयामि" के वीरघोष को गुंजाता हुआ शूलों को फूलों की सेज बनाता है-संसार के मरुस्थल को नन्दन-वन समझता है। इस अवस्था में ब्रह्मचारी की ऋतंभरा प्रज्ञा भगवान् सविता के 'वरेण्य भर्ग' का प्रकाश करती है-यही अभयपद है-"अभयं वै जनक प्राप्तोऽसि" अब जीवन क्या और मरण क्या? प्रकाश क्या और छाया क्या? जीवन संग्राम है-There is but to do and die. कर्तव्य पथ पर चलते हुए सुख आवे, दुःख आवे-फूलों के समान हंसते २ खिलते २ जीना होगा। परन्तु "अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा न्याय्यात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः" धीर पुरुष न्याय के-कर्तव्य के मार्ग से च्युत नहीं हुआ करते हैं। परिणाम विषमय हो, या अमृतमय— परवाह नहीं। क्योंकि कर्तव्य की ज्योति आत्मा को प्रकाशमान और स्वच्छ बनाया करती है- जिस से फलतः साधक का रोम रोम आनन्द में पुलकित हो उठता है जीवन की अंधेरी रात्रि में निष्काम कर्म Duty clear of consequences) की मशाल ही इस पथिक का मार्ग रोशन किया करती है। इस अवस्था में साधक की आत्मा के अन्तस्तल में धीर गम्भीर समुद्र की शान्ति का राज्य छा जाता है- जीवन के सुख, लहरों के समान उठकर विलीन हो जाते हैं। उपनिषद् ने ऋषभ को गुरु बना कर सत्यकाम जाबाल को कर्तव्य के आग्रह का, शक्ति सञ्चय का उपदेश दिया है और "विपदि धैर्यं" का रहस्य समझाया है।

अग्नि की ज्वालायें आकाश को चूमती हुई अपनी भुजाओं से भगवान् का आलिंगन किया करती हैं- "अग्नेरूर्ध्वगमनम्"- अंधकार को छिन्न-भिन्न करके उठना- नहीं नहीं आनन्दघन सच्चिदानन्द के अभिमुख होकर अनेक शिखाओं से भगवान् की अपार महिमा का गान करना- यही जीवन की पवित्र ज्योति है- इस के बिना जीवन निर्जीव निस्सार है। "असन्नेव स भवति असद्-ब्रह्मेति वेदचेत्" जो साधक अपने से महान् को- भूमा- को नहीं मानते हैं वे अहंकार की गागर में सागर को भरने का वृथा यत्न करते हैं। महती सत्वशक्ति के अभाव में अल्प सत्वशक्ति का अहंकार तुच्छ सा है। सृष्टि के अणु २ और राम २ चेतन की प्रतिमा है। जड़ संसार चैतन्य की माया है- प्रतीक है- विश्व ब्रह्माण्ड प्रभु का विलास है- यह जान लेना ही सच्चा प्रकाश है ज्ञान है। प्रभु का सच्चा साक्षात्कार-To see God face to face-यही है। इस कोटि में ज्ञाता ज्ञेय का भेद कहां रहा?

"विज्ञातारमरे! केन विजानीयात्" "नान्योऽतोऽस्ति द्रष्टा नान्योऽतोऽस्ति विज्ञाता" इसी अवस्था में- एक रस होने में सच्चे आनन्द का उद्रेक होता है- आनन्द की पराकाष्ठा इसी ब्रह्मानुभूति में है- "एतस्यैवानन्दस्यान्यानि भूतानि मात्रामुपजीवन्ति" संसार के समस्त आनन्द इसी ब्रह्मानन्द के अनुभव के सामने फीके पड़ जाते हैं। यह न हो तो जीवन निस्सार हो जावे। "क एव मान्यात्कः प्राण्याद् यदेष आकाश आनन्दो न स्यात्"। सचमुच ज्ञानी पुरुष अग्नि के समान पार्थिव संसार के ऊपर उठकर ज्ञान, कर्म तथा भक्ति के प्रेरक सविता-स्वरूप परमात्मा के श्रेष्ठ ज्ञानरूपी प्रकाश में आप्लावित हुआ करते हैं। और स्वभावतः आत्मज्ञान की- सावित्री की पवित्र सरिता को बहाते हैं। इस प्रकार भगवान् का आलिंगन करने के लिये दौड़ना 'अग्नि' से सीखा जा सकता है। उपनिषद् ने ब्रह्मचारी का तीसरा उपदेष्टा हंस बताया है। हंस के विषय में पाश्चात्य कवि Doane ने क्या ही सुन्दर कहा है-

What is that, Mother! the swan, my love!
He is floating down, from his native grove;
No loved one how, no nestling high,
He is floating down, by himself to die:
Death darkens his eye, and unplumes his wings
Yet his sweetest song is the last he sings.
Live so, my love, that when death shall come,
Swan like and sweet, it may waft thee home.

पवित्र निर्मल हंस मौत की घड़ी में भी धीर गम्भीर शान्ति का अनुभव करता है- मधुरतम गान गाया करता है। इसी प्रकार ब्रह्मचारी के आत्मा-रूपी हंस का कोई अन्तर दमन नहीं करता- इसकी जीवन नौका को कोई भी तूफान डांवाडोल नहीं कर सकता। जीवन मरण, यश अपयश, हानि और लाभ में वह समान रहता है। त्रिलोकी का वैभव उसके लिये तिनके के समान है- "तृणीकृतजगत्त्रयसत्वसारः" (उ. रा.) वैराग्य की दृढ़ भूमि पर ज्ञान तथा कर्म के पंखों के द्वारा कोटि २ जन्मों में उड़ते हुए आत्मरूपी हंस को जन्म मरण नहीं सताते-सुख दुःख का लेप नहीं चढ़ता। जिस समय आत्मा की गुहा में परमात्मा की आनन्द-लहरियाँ प्रवेश करती हैं उस समय हंस किसी अपूर्व दिव्य शांति के मानस-सरोवर में हिलोरें मारने लगता है। इस अवस्था में संसार के पदार्थ क्षणभंगुर हो जाते हैं- यश कापूर और धन दौलत राख हो जाती है। "श्वो भावा मर्त्यस्य" "अपि सर्वं जीवितमल्पमेव" (कठ उपनिषत्) आयुष्यं जलधार विन्दुचपलं फेनोपमं जीवितम् (भर्तृहरि, इनका रहस्य साधक के सामने इसी अवस्था में खुला करता है। इस प्रकार उपनिषत् ने हंस के दृष्टान्त से विवेक तथा सविराग शांति का उपदेश दिया है। जब साधक को राजहंस के समान मृत्यु के समय शांत गम्भीर शांति का अनुभव होने लगता है तब उसका जीवन कैसा दिव्य हो जाता है।

ब्रह्मचारी सत्यकाम को अन्तिम उपदेश "मद्गु" से मिला है। यह जलचर पक्षी है। इससे प्रेम का- भक्ति

का पाठ सीखा जा सकता है। प्रेम की सरिता में रागद्वेष की मैल बह जाया करती है। समस्त भूतों को यही प्रेम रसमय और उज्वल बनाता है। परन्तु भगवान् की अव्यभिचारिणी भक्ति के बिना मानव जाति पर ऐकान्तिक प्रेम की गंगा बहाना नितान्त अशक्य है। अनन्त विपदाओं में प्रभु के प्रति क्षणमात्र के लिये तिल-भर भी प्रेम शिथिल न होने देना चाहिये। प्राकृतिक पदार्थों से उत्पन्न सुख दुःख की तरंगों से आत्मा को अस्पृश्य रखकर 'निस्त्रैगुण्यदशा का' अनुभव करना ही सच्चा प्रेम और सच्ची भक्ति है। इस अवस्था में दुःख का नाममात्र भी नहीं रहता है। प्रभु के प्रेम-पन्थ की ज्वाला में जलते हुए हुए साधक के लिये सुखदुःख का विचारमात्र भी सर्वथा अप्रासंगिक है। अब उसे तो भूनमात्र के सुख की न्यूनता से दुःख होता है- अपना दुःख दुःख नहीं लगता है। हम सब तो परमात्मा के विरहानल में नहीं जल रहे, घोर निद्रा में घूम रहे हैं। जिस समय प्रभु के अज्ञान की घोर निद्रा दूर होती है और प्रभु कहां है? इस प्रकार की स्वप्न की उत्कंठा उत्पन्न होता है तब प्रभु हमें अपनी सहस्र भुजाओं से आलिंगन करने लगते हैं। इस प्रकार भक्ति, ज्ञान की अनुगामिनी बन जाया करता है। एवं मद्गु को गुरु मान कर सत्यकाम को सच्चे एकनिष्ठ प्रेम का- पवित्र भक्ति का उपदेश दिया गया है। मद्गु पक्षी जल में निमग्न होकर प्राणन किया करता है ऐसे ही ब्रह्मचारी को भी प्रभु-भक्ति की नदी में डूब कर ही जीना चाहिये।

संक्षेप में उपनिषद् की कथा में 'ऋषभ' अग्नि, हंस तथा मद्गु' को गुरु बनाकर सत्यकाम जाबाल को 'कर्म' ज्ञान, विवेक और भक्ति' का उपदेश दिया गया है। इन से परमार्थ की प्राप्ति हो सकती है और यही ब्रह्मचारी के सच्चे पथप्रदर्शक हैं। ये चारों साधन पृथक् होते हुए भी एक ही है। ब्रह्म (पूर्णता) की प्राप्ति में ये चार ही मार्ग हैं। हम भी इन पर चल कर अपना कल्याण कर सकते हैं।

स्नातक बन्धुओं से निवेदन—

गुरुकुल का वर्ष समाप्त हो रहा है। कई स्नातक बन्धुओं से गुरुकुल पत्र का वार्षिक चन्दा अभी तक हमें प्राप्त नहीं हुआ है। इसलिये गुरुकुल पत्र के ग्राहक स्नातक भाइयों से हमारा नम्र निवेदन है कि वे इस सूचना को पढ़ते ही २॥) वार्षिक चन्दा मनीआर्डर द्वारा भेज दें।

सम्पादक

आओ नाथ

१.

छीन लई दुर्दैव ने मेरी प्रेमप्रसाद भरी थाली,
अस्त हुई वह विमल चन्द्रिका, छाई गाढ़ निशा काली।
नयनन की नहीं प्यास बुझी फिर कौन कहत है तुम आये,
जब हृदय-वेदना ही न मिटी, फिर प्रियतम क्या अमृत लाये॥

२.

नीरव कावेरी का वारी, गहन-गगन की चन्द्रप्रभा,
शान्त द्रुमालि, घन मधुपाली, साक्षी सारी देवसभा।
नदी तीर पद्मासन युत हो पत्थर पर कर जोर करी
पूजा, नाथ! हृदय मन्दिर में आवो मेरे एक घरी॥

३

स्नेह भरे दीपक नयनों से आरति नाथ उतारी थी,
सजल नयन और व्यथित हृदय में केवल याद तुम्हारी थी।
नाम माल जपने अरु करवट लेते रात गुज़ारी थी
दया दोहाई कम्पित स्वर में रो-रो हाय पुकारी थी॥

४.

विफल हुई आशाएं सारी आरति भी बेकार गई,
नयननीर की धार मेरी वह भीख हाय बेकार गई।
लुटे मेरे सौभाग्य दिवस, दुर्भाग दिवस की बारी है,
दुखिया की वह दीन कहानी सारी आज विसारी है॥

५

नेह नीर की थाह नहीं तुमरे जिस हृदय सरोवर में,
मानस-हंस तुम्हीं हो मेरे जीवन मानसरोवर में।
तुमरी मन मोहन मूरति पर श्रद्धा से सुमन चढ़ाता हूं,
हृदय झूलने में अपने मैं प्रियतम तुम्हें झुलाता हूं॥

६.

हाय अभागे मन्दमति अनमोल रतन क्यों खो डाला
मणि के लालचमें फँसकर क्यों यह काला नाग गले डाला।
हृदय दग्ध है दावानल से सूख गई कलियां सारी
जीवन नैया भंवर पड़ी है घिरी घोर है अंधियारी॥

७.

भूल भई की क्षमा याचना कितनी बेर करी तुमसे,
ऊंच नीच बिनु गिने निराशा में आशा चाही तुमसे।
नहीं पसीजा पत्थर दिल अरु नाहीं सुनी विनय मोरी
प्रेम-पन्थ में हार गये तुम आख़िर हुई विजय मोरी॥

८

सरस्वती देवी के वीणारव में रुदन सुनाने को
व्यथित दिनों की दीन कथाओं से ही तुम्हें रुलाने को।
स्नेह सुमन की अञ्जलि मञ्जुल लाया तुम्हें लुभाने को
बन कर चोर हृदय मन्दिर में आया तुम्हें चुराने को॥

९.

हृदय हीन हो जब पूजा के फूलों से इन्कार किया-
स्निग्धहृदय का जितना भी हो सका खूब अपमान किया।
हंसी कुमुदिनी देख सूखता फूल हज़ारा जाता है,
चन्द्र सूर्य के उदय अस्त का नजर नज़ारा आता है॥

१०.

बेर भई अब नाथ हृदय में मुरली मधुर बजा जाओ,
कुम्हलाती कोमल कलियों पर स्नेह सुधा बरसा जाओ।
भंवर पड़ी जीवन नैया यह मेरी पार लगा जाओ
मधुर चन्द्रिका में मुझको फिर आवो नाथ सुला जाओ॥

गुरुकुल

२८ माघ शुक्रवार १९९५

वीरों का आह्वान—

आज हैदराबाद की समरस्थली में रणभेरी बज चुकी है। युद्ध के काले-काले घनघोर बादल रियासत पर छा रहे हैं। शोलापुर से बिजली कड़क चुकी है, पर निज़ाम सरकार अभी तक अज्ञानान्धकार में ही पड़ी है और अपना दुराग्रह नहीं छोड़ती। अपनी शक्ति और धन के अभिमान में निज़ामशाही सब तरह से अत्याचार करने पर तुली हुई है। अभी कुछ मास पूर्व निज़ाम राज्य में आर्यवीरों के कत्ल करने का जो तांता बन्धा हुआ था उसमें एक और वृद्धि हुई है। बीदर जेल में श्री श्यामलाल जी को निराहार रखकर तथा बेतरह पीट कर बलि वेदी पर चढ़ा दिया गया। निज़ाम सरकार ने सोचा होगा कि इससे आर्य लोग डर जावेंगे और सब पर उनका आतङ्क छा जायगा। पर अब उसे पता लग जायगा कि यहां पर कच्ची धातु का बना कोई भी नहीं है। एक के मरने पर उसका स्थान लेने को यहां हज़ार २ आ कूदते हैं। इन अगणित भीषण अत्याचारों के बावजूद भी आर्ययुवकों में संग्राम में डटे रहने का महान् धैर्य तथा निरन्तर आगे बढ़ते रहने का उत्साह पूर्ण रूप से विद्यमान् है। उनके हृदयों में बड़ी २ उमंगें लहरें मार रही हैं जो बिना विजय प्राप्त किये शान्त होने वाली नहीं हैं। इस समय आवश्यकता इस बात की है कि प्रत्येक आर्यसमाजी अपने तन, मन, धन से इस संग्राम में आर्यवीरों की सहायतार्थ जुट जावे। अभी मालूम नहीं कि यह लड़ाई कितने दिनों तक और चलेगी। ऐसी अवस्था में प्रत्येक आर्यसमाजी का यह कर्तव्य हो जाता है कि वह अपनी पूरी शक्ति से जहां तक बन सके तन-मन-धन से सहायता करे। आर्यसमाज में इस समय किसी बात की कमी नहीं है। अच्छी जागृति है और भरपूर जोश है। आर्यसमाज की संघशक्ति व संगठन अन्य मतावलम्बियों के लिये ईर्षा की वस्तु है। श्री महात्मा नारायण स्वामी जी ने इस समय देश के समस्त आर्यवीरों को आगे आने का आदेश दिया है। तदनुसार आर्य सार्वदेशिक सभा जिन २ आर्यसमाजों को आज्ञा देगी, उन्हें उसी क्रम के अनुसार अपनी २ सहायता लेकर समराङ्गण की ओर अग्रसर होना चाहिये। इस समय देश के अन्दर उत्साह एवं जोश की बाढ़ सी आ रही है। इस लिए आर्य वीरों को धैर्य से काम लेना चाहिये। जिससे यह युद्ध बहुत दिनों तक चल सके और किसी प्रकार की शिथिलता न आने पावे।

श्री महात्मा नारायणस्वामी जी तथा कुछ बन्धुओं की गिरफ्तारी

गत ३१ जनवरी को महात्मा नारायण स्वामी जी स्पेशल हवाई जहाज़ द्वारा बम्बई से हैदराबाद पहुंचे और गुरुकुल कांगड़ी के २० ब्रह्मचारियों के साथ सत्याग्रह करते हुए सुलतान बाज़ार में गिरफ्तार कर लिए गए। इसमें कोई सन्देह नहीं कि पहिले जत्थे में जाने वाले वीर-ब्रह्मचारियों ने अपने जिन उच्चादर्शों को सामने रख कर इस सत्याग्रह यज्ञ में अपनी कुर्बानी की है वह आर्यसमाज के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखी जायगी। इनमें से कितनों के माता पिता, भाई बहिनों ने हर तरह से इन्हें सत्याग्रह में जाने से रोका, पर ये अपने प्रण के पक्के निकले और जेल जाकर ही विश्राम लिया। इसके लिए इनकी जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी है हमारे इन बन्धुओं की तपस्या व त्याग अन्य आर्य-वीरों के लिए अनुकरणीय वस्तु है।

हाल में आई खबरों से पता चला है कि महात्मा नारायण स्वामी जी शोलापुर लाकर छोड़ दिये गए।

चान्दकरण शारदा डिक्टेटर बने—

कुंवर चाँदकरण शारदा दूसरे डिक्टेटर घोषित हुए हैं। शोलापुर में आर्य सत्याग्रही सैनिकों की भीड़ बढ़ती जा रही है। १००० से अधिक गिरफ्तारियाँ हो चुकी हैं। कुंवर चांदकरण शारदा शोलापुर पहुंच गये हैं और सत्याग्रह शुरू कर दिया गया है।

जयपुर और राजकोट का सत्याग्रह—

इन दोनों रियासतों के आन्दोलनों ने सम्पूर्ण भारत का ध्यान आकर्षित कर रखा है। राजकोट में रेजिडेण्ट के अनुचित हस्तक्षेपों के कारण प्रजा में अत्यधिक असन्तोष बढ़ गया है और महात्मा गांधी जी इस राज्य में सत्याग्रह करने के लिए पूर्णकटिबद्ध हो गये हैं। राजकोट की सरकार को सावधान हो जाना चाहिये। इस समय प्रजाओं की मांग पूरी कर देने में ही भलाई है।

हाल में आए समाचारों से विदित होता है कि जयपुर की सरकार ने भी अपने कार्यों से अतिशय हीनता का परिचय दिया है। जमुनालाल जी बजाज के साथ जो दुर्व्यवहार हुआ है, उसके लिए वहां की सरकार ही जिम्मेवार है। इन दोनों राज्यों की सरकारों को चाहिये कि ऐसी विकट परिस्थिति में प्रजा के साथ समझौता करलें, नहीं तो ज़माना अनुकूल नहीं है। और उन्हें अपने किए का फल शीघ्र ही भोगना पड़ेगा।

———

परीक्षा

(ले० श्री सच्चिदानन्द)

पिछली बार शिक्षा के बारे में लिखते हुये लिखा था कि शिक्षापद्धति का आज कल का तरीका ग़लत है। क्यों कि पठन पाठन के विषयों के अत्यधिक मस्तिष्क पर बोझा डाल देने से विद्यार्थियों के सामने यह प्रश्न उपस्थित हो जाता है कि इसको कैसे हलका किया जाय। विद्यार्थिगण इस में अपने आपको हलका करने में असमर्थ पाते हैं और एक प्रकार घबराहट सी उपस्थित हो जाती है। जिस घबराहट के कारण याद तो करते हैं परन्तु मन से याद नहीं करते और सारा बोझ परीक्षा के समीप के लिये छोड़ देते हैं। जब परीक्षा पास आती है तो रात और दिन एक कर देते हैं। रात को निद्रा आने पर भी जबरदस्ती-उस नींद को रोकते हैं। परिणाम यह होता है कि उनका स्वास्थ्य ख़राब हो जाता है। और डाक्टरी के अनुसार उनके इस प्रकार के लक्षण प्रतीत होने लगते हैं भूख नहीं लगती, चेहरे की की चमक जाती रहती है, नेत्रों के सामने एक प्रकार के जन्तु उड़ते हुये दिखाई देते हैं नेत्रों की दशा विकृत हो जाती है, मुखमण्डल पीला पड़ जाता है इत्यादि लक्षण दिखाई पड़ते हैं। आज कल के सभ्य कहाने वाले पुरुष अपने आपको ताल ठोक कर सभ्य कहते हैं, परन्तु क्या उनकी यह सभ्यता इसी में भरी है कि रात को पढ़ा जाय और दिन में और काम किया जाय। यदि ऐसा है तो वह ईश्वर की व्यवस्था में बाधक हैं। परमात्मा ने दिन काम करने के लिए बनाया है और रात्रि आराम करने के लिये बनाई है। यदि ऐसा न हो तो हमें जैसा दिन में दीखता है वैसा रात्रि में भी दीखना चाहिये। परन्तु ऐसी बात नहीं है। हमारे मनुस्मृति इत्यादि धर्म शास्त्रों में भी रात्रि के पढ़ने का निषेध बताया गया है। परीक्षासिस्टम रात्रि के पढ़ने की दृष्टि से एक प्रकार से हमारे सारे शरीर का सत्यानाश करने वाला सिद्ध होता है। यहां कहने का यह तात्पर्य कदापि नहीं है कि परीक्षा सिस्टम हटा दिया जाय, परन्तु हां उसको उचित तरीके के अनुसार व्यवहार में लाया जाय। परीक्षाकी सहचारिणी एक चिन्ता नाम की व्याधि है। जब किसी भी व्यक्ति की परीक्षा होती तो यह चिन्ता तत्काल वहां पहुँच जाती है और उस परिक्षार्थी को धीरे धीरे खाना शुरू करती है। यह चिन्ता कभी कभी परीक्षार्थी को इतना अधिक खा जाती है कि उस परीक्षार्थी की हड्डी मात्र शेष रह जाता है अर्थात् परीक्षार्थी चिन्ता नाम की व्याधि से ग्रसित होकर अपने आप को मौत के मुख में भेज देते हैं और आत्महत्या तक कर बैठते हैं। यह तो चिन्ता नाम की व्याधि का वर्णन हुआ। परन्तु जिसने सब जग के ऊपर अधिकार किया हुआ है उसको ज़रा भी किसी बात की इच्छा नहीं। उसी ने जग को पैदा किया और वही इसका पोषण कर्ता है हम सब का माता पिता भी वही है। वही प्रभू हमारा प्रत्येक क्षण का परीक्षक है। उसकी परीक्षा में कोई आदमी फेलहै अथवा पास यह इस तरह जाना जा सकता है कि उस पुरुष का बुढ़ापा कैसा गुजरा। मनुष्य सारी जिन्दगी भर भोग विलासों में पड़े रहते हैं और जब बुढ़ापा आता है तो सख़्त बीमारी द्वारा उनको मृत्यु हो जाती है। क्यों कि जवानी में उन्होंने अपनी इन्द्रियों को भोग विलास में फंसा कर उन से मधुर रस चूस लिया होता है। जवानी में हम इतने मस्त होते हैं कि हमको उस बात का ध्यान तक नहीं होता कि आगे हमारा कभी बुढ़ापा भी आना है। प्रभु की परीक्षा में उत्तीर्ण कौन है जिस का बुढ़ापा एक बचपन की तरह से गुज़रा है और प्रसन्नता पूर्वक बुढ़ापे में भी जवान होने की शक्ति दिखाई पड़ी है।

जिन्होंने अपने जीवन को तपस्या पूर्वक बिताया है जिन्होंने प्राकृतिक कष्टों का मुकाबला किया है। वे उत्तीर्ण हैं। असल में जीवन का उद्देश्य प्रभु का सहारा ही होता है। इस दिव्य शक्ति के सहारे संसार का कौनसा ऐसा कार्य है जो सफल नहीं हो सकता। जिन महापुरुषों ने इस शक्ति को पहिचाना है वही महापुरुष इसजीवन रूपी सागर को पार कर सके हैं। अनेक लोक लोकान्तरों में कोई कोई जीव उनकी प्राप्ति के लिये यत्न करता है और वह जीवन को सफल करता है।

उसकी परीक्षा में उत्तीर्ण होना कोई मखौल की बात नहीं है। उसकी परीक्षा एक वास्तविक परीक्षा है। असली उत्तीर्ण वही है जो उस में उत्तीर्ण है। वे परीक्षक लोग परीक्षकों के समान नहीं है। लोक-परीक्षकों में जिस प्रकार न्याय और अन्याय की प्रवृत्ति होती है कृपाङ्कों की जगह होती है। इस परीक्षक के यहां न्याय के सिवाय और कुछ नहीं है। कृपाङ्कों का तो नाम निशान भी नहीं है। यह बिलकुल ठीक नपे तुले नम्बर परीक्षार्थी को देता है और निरन्तर प्रतिक्षण अपना कार्य करता हुआ चला जाता है। सचमुच देखा जाय तो यहां तक पहुँचने के और सब साधन मात्र हैं असली परीक्षा यही है। अन्त में जो इस में उत्तीर्ण होता है वही वास्तव में उत्तीर्ण होता है और उसी का जीवन इस लोक में सफल होता है और परलोक में सफल होता है। और यहां से जाने के बाद परलोक में भी अपने साथ अच्छी कमाई ले जाता है।

गुरुकुल विश्वविद्यालय में संयुक्त प्रान्त के शिक्षा मन्त्री दीक्षान्त अभिभाषण देंगे।

गुरुकुल विश्व विद्यालय कांगड़ी (हरिद्वार) का ३७ वां वार्षिकोत्सव ईस्टर की छुट्टियों में ७, ८, ९, १० अप्रैल को मनाया जाना निश्चित हुआ है। इस अवसर पर श्री युत माननीय बाबू सम्पूर्णानन्द जी शिक्षा-मन्त्री संयुक्तप्रान्त, रविवार के दिन दीक्षान्त भाषण देंगे

सत्यव्रत
मुख्याधिष्ठाता

वैदिक साहित्य की रक्षा

(ले० श्री पं० श्रीपाद दामोदर सातवलेकर)

लिखित ग्रन्थालय

वेदों की खोज और रक्षा करने के लिए जो शुद्ध ग्रन्थों का मुद्रण करना आवश्यक है, उसके लिये हमारे पास एक बड़ा और विश्वस्त हस्तलिखित ग्रंथों का महान् पुस्तकालय चाहिए। इन ग्रन्थों को सुरक्षित रखने के लिए पर्याप्त व्यय करना होगा और भारतवर्ष में स्थान २ पर जाकर हस्तलिखित ग्रन्थ लाने के लिए मनुष्य और धन इतना चाहिए कि जिसका विचार सामान्य मनुष्य कर ही नहीं सकता।

व्यय के अन्दाजे के लिये हम यहां कह सकते हैं कि ऐसे जल और अग्नि के भय से रहित मकान बनाने के लिये कम से कम एक लाख रुपया लगेगा और नानाविध हस्तलिखित ग्रन्थों का सुयोग्य पद्धति से संग्रह किया जाय तो दस लाख रुपये भी थोड़े ही होंगे। क्योंकि किन ग्रन्थों के लिये कितना रुपया पड़ेगा, इसकी कोई कल्पना नहीं, और किस समय कितने ग्रंथ मिलेंगे यह भी कोई नहीं कह सकता। भारतवर्ष में इतने ग्रंथ छिपे पड़े हैं कि उनको प्राप्त करना भी लाखों रुपयों के व्यय का कार्य है।

ग्रन्थों की खोज के लिये ग्राम-ग्राम और घर-घर में घूमने वाले भी विद्वान् लोग चाहियें। साधारण अनाड़ी का यह कार्य नहीं है। उनको धन भी पर्याप्त चाहिये, धन दिये बिना घर से कोई ग्रंथ बाहर कोई भी नहीं दे सकता। मान लीजिये कि आपने दस विद्वान् ग्रंथ संग्रह करने के लिए नियुक्त किये तो उनका वेतन, प्रवास का व्यय, ग्रंथ खरीदने का व्यय, पुस्तकालय के स्थान पर सुरक्षित भेजने का व्यय, वहां सुव्यवस्था से रखने का व्यय, वहां के विशेष विद्वान् ज्ञाता पुस्तकाध्यक्ष का वेतन, पुस्तकालय के कर्मचारियों का वेतन, यह सब मिलकर प्रतिमास हजारों रुपये का व्यय होगा, तभी यह ग्रंथसंग्रह बन सकेगा। यह कोई बिनामूल्य होने वाला कार्य नहीं है। लाखों रुपये खर्च करने पर भी और अधिक खर्च करने की आवश्यकता इसमें होगी।

परन्तु यह अत्यन्त आवश्यक कार्य है। वेद की खोज के लिये इसके बिना एक पांव भी आगे बढ़ाया नहीं जा सकता। इतने महत्व का यह विषय है। अज्ञानी और शास्त्र को न जानने वाले इसको समझ ही नहीं सकते, इसलिये इस कार्य के लिये उनसे धन मिलना असंभव है। ज्ञानी लोगों के पास धन नहीं होता, इसलिये उनसे धन प्राप्त नहीं हो सकता। यही कठिनता है। धन के बिना लिखित ग्रंथालय बनेगा नहीं, धन के बिना चलेगा नहीं, अज्ञानियों से धन मिलेगा नहीं और ऐसा महान् लिखित ग्रन्थालय न हुआ, तो शुद्ध ग्रंथ छापना और खोज करना असम्भव है। ऐसा यह अन्योन्याश्रित विषय है। इसकी कुछ कल्पना पाठकों को हो, इसलिये यह यहां लिखा है, जो नहीं समझते उनको इसका महत्व समझाना भी अशक्य है। अस्तु।

वेद की खोज करने के लिये इतनी सामान्य तैयारी भी नहीं हुई है। फिर खोज कहां की? वेद का ठीक ठीक अर्थ निश्चय करना तो एक दूर की बात है। वेद में इतने विविध विषय हैं कि उन सब विषयों का ज्ञान आज ही हर एक को होना कठिन है। वेद में कई प्रकार की चिकित्साएं लिखी हैं। उनकी परिभाषा विभिन्न होती है, इसलिये जो पण्डित अर्थ करने लगता है, वह अपने अज्ञान के कारण उसको ठीक तरह खोल नहीं सकता। इस तरह के किसी अर्थ लेखक ने अथर्ववेद का अर्थ करने के समय 'मूत्र' शब्द का अर्थ (सब शब्द ईश्वरवाचक हैं ऐसी कुछ विचित्र कल्पना करके) 'ईश्वर' अर्थ किया था। परन्तु उस मन्त्र में मूत्ररोग चिकित्सा का विषय था। अतः वैद्यक ज्ञान के बिना वह सूक्त या मन्त्र खुल नहीं सका। इसी तरह युद्ध विषयक और सेना व्यूह-विषयक मन्त्रों को खोलना युद्ध-विषय को जानने के बिना हो नहीं सकता। इसीलिये एक एक विषय के पण्डित इकट्ठे मिलकर वेद की खोज करें यही योग्य है और उनको सब साधन मिलने चाहिये और उनके मन परवश भी नहीं रहने चाहिये।

वेद की खोज का विषय इतना गम्भीर है। दुराग्रह-दोष से यहां कार्य चलने वाला नहीं और जिन में यह दोष रहेगा वे अर्थ का अनर्थ भी करेंगे। इस कारण इस दोष से बचना अत्यन्त आवश्यक है।

श्री स्वामी जी महाराज ने जो सार्वभौमिक भारतोत्थान का कार्यक्रम तैयार किया था, उसको अनुयायियों ने ठीक तरह नहीं चलाया। अब एक वेद की बात उस कार्यक्रम में से शेष रही है, वह करने के लिये इतना प्रयास करना आवश्यक है। परन्तु यह बनेगा कैसा, यह हमारी समझ में नहीं आता। क्योंकि जो खोज करने लगता है, वह बहिष्कृत होता है। इसलिये पता तो ऐसा ही लगता है कि यह वेद विषयक कार्य भी ठीक शास्त्रीय पद्धति से होना कठिन है और यदि सचमुच यही परिस्थिति और विचारों की गुलामी और मतवाद की कट्टरता रही तो यह कार्य भी निःसन्देह नहीं होगा, और सचमुच यह भी न हुआ तो श्री स्वामी जी ने जो कार्य शुरू किया था, उनमें से एक भी नहीं हो सकेगा, ऐसा प्रतीत होता है। सोचिये कि कितना दुर्भाग्य है।

एक गुरुकुल प्रेमी का देहावसान

गुरुकुल प्रेमियों को यह सुन कर अत्यन्त दुःख हुआ कि श्रीयुत् लाला मिट्ठन लाल जी मंगलोर निवासी का जो कई साल तक गुरुकुल में अवैतनिक भण्डारी का काम कर चुके हैं, दिसम्बर के तीसरे सप्ताह में वात-व्याधि से देहावसान हो गया। उन्होंने एक छात्रवृत्ति की स्थापना भी की हुई थी। श्रीयुत् मिट्ठन लाल जी के देहावसान से गुरुकुल वासियों को अत्यन्त दुःख है और परम प्रभु परमात्मा से प्रार्थना है कि दिवंगत आत्मा को शान्ति प्रदान करें और उनके सन्तप्त परिवार को सान्त्वना दें।

बम्बई प्रान्तीय स्नातकमण्डल की बैठक

गुरुकुल सूपा के शिष्ट मंडलका अभिनन्दन

गुजरात प्रान्त के गुरुकुल सूपा-जो कि गुरुकुल विश्व विद्यालय कांगड़ी की एक शाखा है—का एक शिष्ट मण्डल अफ्रिका में वैदिक सभ्यता के प्रचारार्थ और धन संग्रहार्थ पहली फरवरी को गया है। इस मण्डल में चार महानुभाव हैं, जो गुरुकुल विश्वविद्यालय के स्नातक हैं।

बम्बई प्रान्तीय स्नातक मण्डल की ओर से ३० जनवरी सोमवार को सायं ६ बजे आर्य समाजमन्दिर गिरगांव में विदेश जाने वाले उपर्युक्त चारों स्नातक भाइयों का अभिनन्दन किया गया और उन्हें विदाई दी गई। श्री पं० रामचन्द्र जी सिद्धान्तालङ्कार प्रधान स्नातक मण्डल ने सभापति का आसन ग्रहण किया। आपने अपने प्रभावशाली भाषण में इस बात पर अत्यन्त हर्ष प्रकट किया कि बम्बई नगर में स्नातक भाइयों की संख्या बढ़ रही है और वे इस नगरी के सार्वजनिक जीवन में भी योग्यतापूर्वक भाग ले रहे हैं। इस प्रसंग में आपने बम्बई के नवीन हिन्दी-दैनिक 'नवराष्ट्र' के संचालक और सम्पादक माननीय स्नातक श्री पं० इन्द्र जी विद्यावाचस्पति का विशेष रूप से धन्यवाद किया जिनके अथक परिश्रम से यह नवीन दैनिक पत्र बम्बई से निकल सका और कई स्नातक भाइयों को बम्बई में ला सका। शिष्ट मण्डल की ओर से श्री पं० केशवदेव ज्ञानी जी के उत्तर देने और जल पान के पश्चात् श्री० पं० इन्द्र जी ने विदेश यात्री भाइयों की सफलता के लिए मङ्गल कामना करते हुए एक संक्षिप्त भाषण दिया।

कांग्रेसी सरकारों से अनुरोधः—

इस बैठक में निम्न प्रस्ताव भी वाद विवाद के पश्चात् सर्व सम्मति से स्वीकृत हुआः—

(१) बम्बई प्रान्तीय स्नातक मण्डल को आश्चर्य है कि कांग्रेसी सरकारों के शासन में विभिन्न राष्ट्रीय विद्यापीठों की उपाधियों को जहां मान्य स्वीकार किया गया है वहां भारतवर्ष के सबसे पहिले राष्ट्रीय विद्यापीठ गुरुकुल कांगड़ी की—जिसने मातृभाषा द्वारा ऊंची से ऊंची शिक्षा देने में देश भर का पथ प्रदर्शन किया है—उपाधियों को अभी तक स्वीकृत नहीं किया गया है। यह मण्डल गुरुकुल-विश्वविद्यालय के अधिकारियों और अखिल भारतीय स्नातक मण्डल से आग्रह करता है कि इस सम्बन्ध में शीघ्र उचित कार्यवाही करें।

(२) यह भी निश्चय हुआ कि बम्बई स्नातक मण्डल की ओर से एक शिष्ट मण्डल गुरुकुल कांगड़ी के आगामी उत्सव पर इस सम्बन्ध में विचार करने के लिए भेजा जावे।

यह प्रसन्नता की बात है कि स्नातक मण्डल की यह बैठक सफलता पूर्वक समाप्त हुई और बम्बई नगर या उपनगरों में रहने वाले सभी स्नातक व उपस्नातक भाई इस अधिवेशन में सम्मिलित हुए—निम्नलिखित भाई उपस्थित थेः—

श्री पं० इन्द्र जी, विवेकानन्द जी, युधिष्ठिर जी, शङ्करदेव जी, रणधीर जी, प्रियव्रत जी, रामचन्द्र जी, केशव जी, परमानन्द जी, नरेन्द्रदेव जी, शिवदत्त जी, दीनानाथ जी, जयचन्द जी, राजेश्वर जी, कृष्णचन्द्र जी, आनन्दकुमार जी, अमृतपाल जी, निरञ्जनदेव जी, विपिनकुमार जी, गणपति जी।

दीनानाथ सिद्धान्तालङ्कार
मन्त्री—गुरुकुल स्नातक मण्डल
बम्बई शाखा।

वीर सत्याग्रही बन्धुओं की गिरफ्तारी

विश्वस्त सूत्र से पता चला है कि १ फरवरी को गुरुकुल कांगड़ी का जत्था जब सिकन्दराबाद पहुंचा तो उस समय स्टेशन के चारों ओर सी०आई०डी० पुलिस का पहरा था। वे हरएक आने जाने वाले पर कड़ी निगाह रखते थे। जब हैदराबाद के सहृदय-सज्जनों ने वहां की भीषण परिस्थिति ब्रह्मचारियों को सुनाई तो वे ज़रा भी भयभीत नहीं हुए, बल्कि उनका उत्साह द्विगुणित हो गया। उसी दिन सायंकाल सत्याग्रही ब्रह्मचारी सिकन्दराबाद से निकल कर, सुलतान, बाज़ार में जा पहुंचे। वहां ७०० की उपस्थिति में उन्होंने अपना भाषण दिया, वक्तव्य पढ़ा और ऋषि दयानन्द तथा आर्यसमाज के जय घोष से बाज़ार को गुञ्जा दिया इतने में पुलिस ने हमला किया और पांच सत्याग्रही ब्रह्मचारियों को गिरफ्तार करके ले गई। उनके नाम ये हैं—श्री इन्द्रसेन श्री उदयवीर, श्री विद्यानन्द, श्री मनोहर, श्री विश्वमित्र।

दूसरे दिन सायंकाल उसी स्थान पर अन्य ६ ब्रह्मचारियों ने ढाई हज़ार की उपस्थिति में सत्याग्रह किया, अपना वक्तव्य पढ़ कर भाषण दिया और जय-जयकार किया। पुलिस आई और उन्हें गिरफ़्तार करके लेगई। उनके नाम ये हैं—श्री क्षेत्रपाल, श्री धीरेन्द्र, श्री सत्येन्द्र, श्री विद्यासागर, श्री देवराज, श्री ओमप्रकाश, श्री सतीश श्री रामनाथ, श्री विजयकुमार।

शेष ब्रह्मचारी मोटर छूट जाने के कारण उस दिन के सत्याग्रह में सम्मिलित नहीं हो सके। बाद का समाचार अभी विदित नहीं हुआ।

स्वास्थ्य समाचार

गत सप्ताह ब्र० वासुदेव २ श उदर शूल ब्र० रमेशचन्द्र २ श वातिक शूल सुरेशचन्द्र २ श गला ब्र० प्रेमप्रकाश २ श गला ब्र० रामदेव २ श गला ब्र० मोहनचन्द्र २ श विषम ज्वर से रोगी हुये। अब सब स्वस्थ है।

चौधरी दुलोसराय के प्रबन्ध से गुरुकुल प्रेस गुरुकुल कांगड़ी में मुद्रित तथा प्रकाशित।

* ओ३म् *

"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत" Reg. No. A. 2927

गुरुकुल

सम्पादक—साहित्यरत्न पं० हरिवंश वेदालङ्कार

एक प्रति का मूल्य -) [गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख-पत्र] वार्षिक मूल्य २॥)

वर्ष ३] गुरुकुल काङ्गड़ी, शुक्रवार ६ फाल्गुन १९९५, १७ फरवरी १९३९ [संख्या ३९

जैसे समुद्र की लहरें !

(श्री सत्यभूषण 'योगी')

"यद् रोदसी रेजमाने भूमिश्च निरतक्षतम्।
आर्द्रं तदद्य सर्वदा समुद्रस्येव स्रोत्याः" ॥ अथर्ववेद ॥

अपना उपकार करने वाले के प्रति कृतज्ञता प्रकट करना स्वाभाविक है। पृथ्वी में पड़ा बीज, उससे रस लेकर हरा-भरा वृक्ष बन जाता है। परन्तु वृक्ष अपनी इस समृद्धावस्था के कारण-भूत पृथ्वी को भूल नहीं जाता। अपनी शाखाएं— अपनी बाहुएं, आलिङ्गन करने के लिए पृथ्वी की तरफ़ फैला देता है। अपने फूल-फल पृथ्वी की भेंट चढ़ाता है।

यह तो हुई वृक्ष की बात। हम आदमी हैं। दिमागी शक्ति और दिल की भावुकता हमारे ख़ास गुण हैं। और हम धरती पर सबसे ज्यादा विकसित हैं। क्या हमने कभी सोचा है कि यह जमीन जो हमारे जीवन का आधार है, जिस से तरह-तरह के स्वादिष्ट अन्न-फल और जल हमें प्राप्त होते हैं, किसने बनाई है ?

क्या हमने कभी सोचा— यह सूर्य जो हमें प्रकाश शक्ति एवं आरोग्य देता है, किसने बनाया है ?

बिजली का आविष्कार करने वाले वैज्ञानिक के चरणों में हमारा सिर श्रद्धा से झुक जाता है। पर दुनिया भर की इकट्ठी की हुई बिजली की रोशनी जिस सूर्य का मुकाबला नहीं कर सकती, उसे बनाने वाले के बारे में हमने कभी सोचा ?

(रेजमाने) गति करते हुए (रोदसी भूमिश्च) द्युलोक अन्तरिक्षलोक और भू लोक (यत् निरतक्षतम्) जिसने बनाए हैं— बनाए हैं (तत् सर्वदा आर्द्रम्) वह सर्वदा आर्द्र है, (अद्य) आज भी आर्द्र है (समुद्रस्य स्रोत्याः इव) जैसे समुद्र की लहरें।

एक सुन्दर मकान सजाने वाले की सुरुचि की हम कितनी तारीफ़ करते हैं। पर हमने कभी सोचा— 'यह संसार-रूपी घर किसने बनाया है ? जिसकी छत तारे रूपी नीलम, हीरे, पन्नों से सजी हुई है। जिसमें ऊषा-सन्ध्या, निर्झर और पर्वतों के दृश्यों के रूप में सिनेमा का प्रबन्ध है। सुन्दर सुरभित फूलों से लदे पौधे जहां मुसका रहे हैं, जिस का हर एक प्रबन्ध हमारी छोटी से छोटी आवश्यकता और सुविधा का ध्यान करके किया गया है।

नहीं, हमने यह कभी नहीं सोचा। ऐसे प्रश्नों पर विचार करना तो, हम फ़ालतू एवं समय का खोना समझते हैं। हां, हमने यह जरूर सोचा है कि उस मित्र ने उस दिन हमारी बड़ी सहायता की ; कितना अच्छा है वह !

जिसने द्युलोक अन्तरिक्षलोक तथा पृथ्वीलोक को बड़ी सावधानी और अनुराग से बनाया है, कोई उसके प्रति कृतज्ञता प्रकट करे या न करे, इस से क्या। वह तो सदा से दयार्द्र चेता रहा है, आज भी है। उसका सरस-हृदय कभी सूख नहीं सकता। भला, समुद्र की लहरें भी कभी सूख सकती हैं !

क्या हम नहीं देखते कि उसकी दया साकार होकर कभी आसमान से रिम-झिम रिम-झिम करने लगती है और वह नटवर मुसका पड़ता है, बिजली चमक जाती है !— हम देखते हैं, फिर भी नहीं देखते !

हम देखें या न देखें, वह प्यारी जगन्माता तो सदा हमें सुख पहुंचाने में लगी हुई है। पुत्र यदि उपेक्षा करता है तो मां गुस्से से उबल थोड़े पड़ती है ! वह तो अपनी सम्पूर्ण शक्ति से, समग्र प्रेम से पुत्र के भले के लिए लगी रहती है। प्रेमी के हृदय को उपेक्षा की आग सुखा नहीं सकती। वह तो आर्द्र है— सरस है— सदा से है— आज भी है— जैसे समुद्र की लहरें !

सत्यशिव की खोज

(ले० श्री सच्चिदानन्द)

ज्ञान का दीपक बुझा हुआ है। चारों ओर अंधियारा है। भूमार्ग दर्शाने वाला कोई नहीं है। मन की मैल मन में ही जमी हुई है। परन्तु उस सच्चे ज्ञान के पिपासु को चैन कहाँ। वह सच्चे ज्ञान की खोज के लिये तिलमिला रहा है। उसका मन उछल कूद कर रहा है। एक दिवस आता है। तमाम देश के नरनारी उसकी खोज के लिये जाते हैं। पितृदेव के साथ वह भी जाने की खुशी प्रकट करता है, उठता है और चल पड़ता है। अभी तक उसको अज्ञान ही सत्यज्ञान प्रतीत होता है। जब वह शिवमन्दिर में प्रवेश करता है अपने बन्धुबान्धवों को जैसा करते देखता है, वैसा वैसा वह भी करता है। आखिरकार रात्रि-जागरण-प्रक्रिया प्रारम्भ होती है। नियमानुसार सबके सब जागने की कोशिश करते हैं परन्तु दिल से नहीं, ऊपरी मन से। परन्तु ज्ञानपिपासु को चैन कहाँ। वह सच्चे दिल से जागने की कोशिश करता है। उसका सारा कुटुम्ब निद्रादेवी की गोद में है। वह अकेला पिपासु जाग रहा है। उसे निद्रा कहाँ। वह पिपासु कूड़े में से सोना निकालने की कोशिश करता है। मतलब कहने का यह है कि उस धोखे वाले शिव में से सच्चे शिव को ढूंढने की कोशिश करता है। रात्रि कुछ शान्त पड़ी है। सबके सब निद्रा देवी की गोद में जा चुके हैं। शिव पर छोटे छोटे चूहे उसके चारों ओर मँडरा रहे हैं। उसके ऊपर चढ़े हुये पवित्र-प्रसाद का आस्वादन कर रहे हैं। ऐसा दृश्य पिपासु के सामने जब आता है तो एक दम से मुख से यह निकलता है कि 'क्या सच्चे महादेव यही हैं जो कि अपने ऊपर पड़े हुये पवित्र-प्रसाद की भी रक्षा नहीं कर सकते'। एक दम से उसका मन तर्क-वितर्क करने लगता है। ये चूहे क्या हैं मानों उस पिपासु के हृदय के ज्ञान के दीपक हैं। तर्क-वितर्क द्वारा हृदय के विचार विस्तृत हो जाते हैं। शिव के पास बैठने को मन नहीं करता है। उठता है, चारों ओर से अपने आप को सावधान करता है। घर को लात मारता है। सच्चे ज्ञान की खोज के लिये जीवन-भर बड़े बड़े वन, पर्वत, नदी, नालों और महाभयंकर जीवजन्तुओं का मुकाबला करता हुआ, अपने तन की कुछ भी परवाह न करता हुआ अपने सामने सत्यज्ञान की प्राप्ति का लक्ष्य बनाता हुआ चला जाता है। सिंह की तरह गर्जना करता हुआ सब से निडर होकर वह वीर अन्त में उस ज्ञान को पाता है और अपने आप उस ज्ञान को पाकर बन्द में संसार ...।

सचमुच जिसका प्रारम्भिक जीवन से ही उस परम पिता की ओर ध्यान रहता हो वह वीर धन्य है। वह वीर कभी भी अपने जीवन में निरुत्साह या लक्ष्यहीन नहीं हो सकता। भगवान ने गीता में कहा है 'जो अपने को मेरे प्रति सौंप देते हैं उनकी मैं स्वयं ही देखभाल कर लिया करता हूँ'। दयानन्द का प्रारम्भ से लेकर अन्त तक का जीवन प्रभु-प्राप्ति में ही लगा रहा। यह ठीक है कि उसने अन्य मत-मतान्तरों के खण्डन इत्यादि सब किये परन्तु उन सबका सार अन्त में सत्य ज्ञान की खोज अथवा ईश्वर प्राप्ति ही था। उसने अन्त में उस सत्यज्ञान की खोज करके ही छोड़ी और इहलोक से परलोक जाते समय उसने कहा कि "हे ईश्वर, तेरी इच्छा पूर्ण हो"। इस वाक्य के कहने से ही ऐसा मालूम पड़ता था कि उसकी इच्छा ईश्वर की इच्छा में मिल चुकी थी और उसको अब किसी भी वस्तु की चाह न था।

निराशा के अंधकार में!

(ले० कनक 'मधुकर' अध्यापक, गुरुकुल, चित्तौड़गढ़)

कौन आता है और निराशा के समय नव जीवन का संचार कर जाता है? दुख को सुख के रूप में परिवर्तित पा कर भी मैं अब तक न जान पाया कि जीवन की इन जटिल समस्याओं को सुलझाने वाला आखिर है कौन?

मानव-जीवन भी एक पहेली है। यह न अब तक सुलझी है और न भविष्य में ही इसके सुलझने की कोई आशा प्रतीत होती है। तभी तो इस जीवन में उतार चढ़ाव के अनेक दृश्य नानाविध रूप में दृष्टिगत होते रहते हैं। और यह क्यों होता है? क्या कोई इसे समझ पायगा?

ओ अमर देवता! दूर क्यों जाते हो? अकर्मण्य को कर्मशीलता का पाठ पढ़ाने वाला, निरुत्साहियों में उत्साह जागरूक करने वाला और लड़खड़ाते को खड़ा करने वाला यह हृदय दीनबन्धु के सिवाय और किस का हो सकता है? इसे समझो, यही तो इन सब का आदि स्रोत है—उसी की प्रेरणा से तो पल-पल में जगत् का यह परिवर्तन अबाध रूप से होता हुआ नजर आता है।

हृदय के एकान्त कोण में—घटाटोप—असीम दुःखों की घोर निशा से व्याप्त उस निराशा के अन्धकार में—उस समय वही तो एक आशा-किरण की ज्योति छिटकाता है कि जिस से निराशान्धकार के उस श्याम पट पर उज्ज्वल अक्षरों में लिखा हुआ यह स्पष्ट झलमलाने लगता है कि 'जीवन में बढ़े चलो, सुख दुःख के इस झमेले में न पड़ो ये तो दिन रात की भांति नित आते और जाते ही रहते हैं। एक साधना की पूर्ति में एक मन से हो कर अपने प्रयत्न में जुटे रहो। सम्भव है, इस तरह से सफलता का यह मंगल प्रभात भी कभी एक दिन अवश्य ही देख पाओगे। देखना है, तुम इस के लिए कितना बल और बलिदान दिखाते हो। भगवान् करे इस समय तुम्हारे हृदयों में आत्म-स्वतंत्रता का प्रदीप पूरा जगमग करने लगे। कौन आता है और निराशा के समय नवजीवन का संचार कर जाता है?

प्रो० देशभक्त कुँ० चांदकरण जी शारदा शोलापुर पहुँच गये।

आर्य जनता में अपूर्व-उत्साह

देश भक्त कुँवर चांदकरणजी का देहली में जोरदार स्वागत-

आर्य सत्याग्रह के दूसरे डिक्टेटर कुं० चांदकरणजी शारदा अजमेर से हिन्दु-सभा की वर्किङ्ग कमेटी में भाग लेने के लिये देहली पहुँचे। स्टेशन पर आर्यसमाज तथा हिन्दु-सभा के कार्य कर्ता ला० गणपतिरामजी और प्रो० सुधाकरजी ने सर्वप्रथम उनको हार पहनाये, इसके बाद हज़ारों आर्य और हिन्दु भाइयों की ओर से फूलमालाएं पहनाई गईं। प्लेटफार्म भीड़ से खचाखच भरा था। लोगों में अपूर्व जोश था और ज़ोरदार स्वागत किया गया। शारदा जी ६ फरवरी को देहली से शोलापुर को रवाना हो गये। चलने समय श्री शारदा जी ने दीवान-हाल में एक प्रभावशाली भाषण दिया और कहा कि आर्य समाज के सामने आज जीवन-मरण की समस्या उपस्थित है। इसका हल करने के लिये नवयुवकों को चाहिये कि वे आगे बढ़ें। आपकी विदाई के समय लोगों में अपूर्व जोश था। तमाम हाल जयघोषों से गूज उठा था।

बयाना में प्रो कुँवर चांदकरणजी—शारदा का अपूर्व स्वागत

आज स्टेशन बयाना पर कुं० चांदकरणजी शारदा और वीर सावरकर का आर्य-समाज बयाना की ओर से लगभग २०० की जनता ने १ बजे फ्रंटियर मेल पर अपूर्व स्वागत किया। वैदिकधर्म, आर्यसमाज, ऋषि दयानन्द, महात्मा नारायण स्वामी, कुं० चांदकरणजी शारदा, वीर सावरकर के जयघोषों से स्टेशन गुंजायमान होगया। दोनों महानुभावों के मस्तकों पर लाला गणेशीलालजी ठे० मन्त्री आर्यसमाज बयाना ने तिलक किया, जनता ने पुष्प मालाओं से दोनों महानुभावों के गले भर दिये। कुंवर साहब को एक थैली भेंट की गई। आपने निम्न बातें कहीं :-

"हैदराबाद में हमारा धार्मिक संग्राम है जो सत्य और अहिंसात्मक है, हमारी अवश्य विजय होगी। जब तक हमारा संग्राम जारी रहे घर २, दुकान २, गली २ में हैदराबाद के जुल्मों का संदेश जनता को सुनाते रहो और धन की सत्याग्रह संग्राम के लिये सहायता करते रहो और जन की भी। वीर सावरकर के प्रश्न पर कि 'क्या हैदराबाद सत्याग्रह के लिये यहां से स्वयंसेवक जा सकेंगे?' जिसका उत्तर जनता ने "हां" में दिया। इस उत्तर से और आर्य-समाज के इस अपूर्व स्वागत से वीर सावरकर जी अति प्रसन्न हुये और आज्ञा दी कि अभी स्वयंसेवकों की आवश्यकता नहीं है केवल धनकी सहायता करते रहिये।

दोनों महानुभावों ने जनता के इस अपूर्व उत्साह को देखकर बड़ी प्रशंसा की। उपरोक्त जयघोषों के बीच गाड़ी रवाना होगई।

युद्ध-शिविर शोलापुर की नई खबर

आर्य-सत्याग्रह के दूसरे डिक्टेटर कुं० चांदकरणजी तथा श्री पं० बुद्धदेवजी मीरपुरी शोलापुर पहुँच गये। स्टेशन पर बहुत जोश के साथ स्वागत हुआ। नित्यप्रति हैदराबाद, गुलबर्गा, लातूर तीनों स्थान पर वीर सत्याग्रहियों के जत्थे जाते हैं और गिरफ्तार होते हैं। हैदराबाद के बत्तीसवें जत्थे के अधिनायक श्री स्वामी भास्करानन्द जी सत्याग्रह करते हुये गिरफ्तार हुये, उनको दो वर्ष की कड़ी कैद सुनाई गई है। गुरुकुल कांगड़ी के वीर सत्याग्रही ब्रह्मचारी हैदराबाद सैंट्रल-जेल में कैद किये गये हैं। दमन पूरे जोर से चल रहा है। सत्याग्रहियों का एक अखिल भारतीय जत्था शिवरात्रि के पुण्य-पर्व के दिन शोलापुर से कूच करेगा, इस जत्थे में शामिल होने के लिये सब आर्य-समाजों को अपना एक २ प्रतिनिधि भेजना चाहिए। ऋषिचरणों में ऐसी जीवनज्योति जगाने वाली श्रद्धांजलि अर्पण करने का फिर ऐसा अलभ्य अवसर नहीं प्राप्त होगा।

शोलापुर में स्वागत

अभी हाल में ही समाचार मिला है कि ६ फरवरी को श्रीमान् देशभक्त कुं० चांदकरणजी शारदा का स्वागत करने के लिये पं० गंगाप्रसादजी उपाध्याय के सभापतित्व में शोलापुर में एक विराट सभा हुई उसमें यह प्रस्ताव पास हुआ कि निजामशाही जब तक अपने अत्याचारी रवैये को नहीं बदलती, पाबन्दियां नहीं उठा लेती है तथा आर्यसमाज की सम्पूर्ण मांगें पूर्ण नहीं कर देती है तब तक हमारा सत्याग्रह बन्द नहीं हो सकता। दूसरे डिक्टेटर कुं० चांदकरणजी शारदा को जत्थे के नेतृत्व का अधिकार सौंपा गया।

गुरुकुल में सार्वजनिक सभा

गुरुकुल कांगड़ी १२ फरवरी—

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के आदेशानुसार कुल-वासियों की एक सभा में आर्यसत्याग्रह के प्रथम अधिनायक म० नारायण स्वामी जी को निज़ाम सरकार द्वारा दुबारा गिरफ्तार किए जाने पर बधाई दी गई तथा निज़ाम-सरकार द्वारा उनके साथ किए गए व्यवहार की घोर निन्दा का प्रस्ताव पास करते हुए आर्य जनता से तन-मन-धन द्वारा इस सत्याग्रह-संग्राम में भाग लेने की अपील की गई।

एक दूसरे प्रस्ताव में नागरिक अधिकारों की प्राप्ति के सम्बन्ध में जयपुर-सरकार द्वारा सेठ जमनालाल जी बजाज तथा जयपुर-प्रजामण्डल पर लगाई गई पाबन्दी पर असन्तोष प्रकट किया गया।

सत्यव्रत
मुख्याधिष्ठाता

गुरुकुल

६ फाल्गुन शुक्रवार १९९५

ऋषि बोधोत्सव कैसे मनाएं ?

आज दक्षिण हैदराबाद में रणभेरी बज चुकी है। वहां से आने वाले सत्याग्रह के समाचारों से ज्ञात होता है कि दोनों दल आर्यसमाज और निजाम सरकार, अपनी २ शक्ति आजमाने का दृढ़ संकल्प कर मैदान में उतर पड़े हैं। 'नारायण' ने अपना 'पाञ्चजन्य' शंख फूंक दिया है। निजाम सरकार जहां वैभव और बल में अपने को उनतीस हज़ार फीट ऊंचे हिमालय से कम नहीं समझती, वहां आर्यसमाज भी अपने अतुलित धैर्य के कारण गम्भीर-गर्जना करने वाले सागर से कम नहीं है। वह समय अब दूर नहीं है जबकि निजामशाही का दर्पोद्धत-मस्तक प्रजाओं के चरणों में झुक जायगा।

हैदराबाद राज्य में गत ६ वर्षों से जो अशान्ति चली आरही है, उसे दूर करने का यत्न वहां की सरकार ने नहीं किया। इस बात को सभी भारतवासी जानते हैं। फिर भी वहां के आर्य भाइयों ने महान् धैर्य के साथ इसके दूर करने की भरपूर कोशिश की और विविध सभाओं में प्रस्ताव, पत्रव्यवहार, डेपुटेशन, प्रार्थना, लेख आदि द्वारा अपना असन्तोष श्रीमान्–निजाम तक पहुंचाया। पर जब फिर भी सफलता प्राप्त न हुई तब आर्यसमाज के अन्दर एक चिनगारी सी उठी और सबका ध्यान पूरी तौर से इस ओर आकृष्ट हो गया। आर्यसमाज का प्रारम्भ से ही यह मोटो रहा है कि 'अत्याचार करने वाले की अपेक्षा अत्याचार का सहने वाला अधिक पापी है।' तदनुसार आर्यसमाज ने अपने जन्म काल से ही अनेक अद्भुत उदार कार्य किये हैं। हिन्दू-मुस्लिम दंगे के ज़माने में आर्यसमाजियों ने जिस तत्परता से हिन्दु-मन्दिरों की रक्षा की और उन्हें अपवित्र होने से बचाया इस बात को प्रत्येक हिन्दू बच्चा २ जानता है। पंजाब में अकालियों के सत्याग्रह में शामिल होकर आर्यसमाजियों ने अपनी जिस उदार भावना तथा अत्याचार-विरोधिता का परिचय दिया, उसे आज भी सिक्ख–वीर बड़े आदर से याद करते हैं। इस प्रकार आर्यों ने अपने कार्यों द्वारा यह सिद्ध कर दिया है कि वे अत्याचार को कभी भी सहन नहीं कर सकते। आर्यसमाज सदा नागरिक अधिकारों का समर्थक रहा है और इसके लिये वह सदा प्रयत्न करता रहेगा। यद्यपि आज हैदराबाद में आर्यों का प्राथमिक अधिकार भी (ओ३म् का झण्डा लगाना, हवन करना, आर्यसमाज मन्दिर बनाना, अपने धर्म का प्रचार करना आदि) प्राप्त नहीं है, किन्तु यह समय सदा ऐसा नहीं रहेगा। इस समय आर्यसमाज ने अपने पारस्परिक झगड़े भुला दिये हैं और वह लड़ाई के लिये कटिबद्ध होकर मैदान में निकल आया है। बहुत अरसे से आर्यसमाज ने किसी ऐसे ठोस कार्य में हाथ नहीं डाला था जिससे उसकी शक्तियां मन्द पड़ गई थीं। पर अब इसकी अग्निपरीक्षा का समय आ गया है।

हमारे भाग्य से ऐसे ही समय ऋषि-बोधोत्सव आ उपस्थित हुआ है। हमारे ऋषि ने इसी दिन सम्पूर्ण अज्ञानान्धकार को भेद कर ज्ञान का निर्मल आलोक देखा था। आज हमें भी कुछ २ उसी प्रकार का आलोक नज़र आ रहा है। हमारी विजय निश्चित है। इस संग्राम में शस्त्र चल चुके हैं। अब पीछे हटने का समय नहीं है। वीरों के लिये संग्राम से बढ़कर त्योहार और कौनसा है? आओ वीरो! आगे बढ़ो, और धीरतापूर्वक युद्ध–क्षेत्र में डटकर अपनी शूरता दिखाओ। यह ऋषि बोधोत्सव हमें जगाने के लिये तथा हममें नवजीवन, नवचेतना, नवस्फूर्ति भरने के लिये ही आया है। जिस प्रकार पुराने ज़माने में वसन्त-पञ्चमी के दिन राजपूत–वीर केसरिया बाना पहिन कर विजय-यात्रा के लिये निकल पड़ते थे, उसी प्रकार आज हम भी निकल पड़ें। यही ऋषि बोधोत्सव मनाने का सच्चा स्वरूप होगा।

क्या हमारा युद्ध साम्प्रदायिक है ?

'हमारा यह युद्ध साम्प्रदायिक नहीं है' ऐसा हम प्रारम्भ से ही ऊंचे स्वर से कहते आ रहे हैं। क्योंकि यह किसी सम्प्रदाय के विरुद्ध नहीं किया गया है। फिर भी कई सम्भ्रान्त कांग्रेसियों ने इसे साम्प्रदायिक कह कर बदनाम करना चाहा है। हम उनकी इस मनोवृत्ति की सराहना नहीं कर सकते। हमारा यह युद्ध विशुद्ध नागरिक अधिकारों की प्राप्ति का युद्ध है। इसमें साम्प्रदायिकता कहीं छू भी नहीं गई है। स्वयं कांग्रेस भी अपने नागरिक अधिकारों को लेने के विषय में सबसे कहती चली आ रही है। जिसका कि आर्यसमाज अपने कार्य द्वारा समर्थन करता रहा है। आर्यसमाज का युद्ध वस्तुतः कांग्रेस के युद्ध का एक भाग है। हमें खेद है कि कुछ कांग्रेसी बन्धुओं ने इस युद्ध के वास्तविक स्वरूप को नहीं पहिचाना है। हमारी उनसे प्रार्थना है कि वे वस्तुस्थिति को समझें। इसको समझ लेने पर उनकी सहानुभूति निश्चित रूप से आर्यसमाज के साथ हो जायगी और एक प्रकार की साम्प्रदायिकता का भ्रम, जो आजकल फैल सा रहा है, वह भी दूर हो जायगा। हमें विश्वास है कि कांग्रेस अपने दक्षिण हस्त-सदृश-बलशाली तथा अपने प्रबल-पावक आर्यसमाज को इस न्यायोचित युद्ध में उत्साह देगी।

निज़ाम सरकार की बर्बरता—

श्री महात्मा नारायण स्वामी जी का ऊंचा व्यक्तित्व किसी भी भारतवासी से छिपा नहीं है। स्वामी जी केवल आर्य समाज के ही पूजनीय नहीं है बल्कि सारे भारत-वासी हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख, ईसाई सभी उन्हें

आदर की दृष्टि से देखते हैं और उनके उच्च विचारों के कायल हैं। यह सुन कर प्रत्येक सभ्य मनुष्य को हार्दिक दुख हुआ है कि निज़ाम सरकार ने उन्हें एक वर्ष की कड़ी कैद की सजा दी है और उनके पैरों में बेड़ियाँ पहिनाई हैं। अंग्रेजी, हिन्दी, उर्दू सभी राष्ट्रीय एवं सामाजिक पत्रों ने निज़ाम सरकार के इस कृत्य पर लज्जा एवं असन्तोष प्रकट किया है। किन्तु निज़ाम सरकार तो पशुता को भी लज्जित कर देने को तैयार है—इसने इन बातों की पर्वाह न करके स्वामी जी का सायंकाल का पावभर दूध भी बन्द कर दिया है। जबकि वे सायंकाल भोजन नहीं किया करते और औषधि के तौर पर पाव भर दूध पानी डाल कर, हलका करके पिया करते हैं। बात यहीं तक समाप्त नहीं हुई, आज की आई ख़बरों से पता चलता है कि जेल में उन्हें बाँस की चिकें बनाने का काम दिया गया है। निज़ाम सरकार के लिए यह शर्म की बात है। शायद वह सोचती होगी कि आर्यों के प्रमुख नेता पर ज़ोर आजमाने से आर्य लोगों पर आतङ्क छा जायगा और वे मुख मोड़ कर भाग जावेंगे। पर उसे समझ लेना चाहिये कि उसने यह निन्दित-कृत्य करके आग भड़काई है और उसे इसका फल भोगना पड़ेगा। आर्यों में डरने वाला कोई नहीं है, युद्ध से भगना तो अलग रहा। यदि अन्य कहीं से आर्यों को कोई सहायता न भी मिली तो भी आर्यों के पास पर्याप्त शक्ति है। आर्यसमाज ने इस युद्ध को अपने भुजबल के भरोसे ही लड़ना प्रारम्भ किया है और इसमें उसका विजयी होना निश्चित है। यद्यपि आर्य वीरों पर दिनों दिन अधिकाधिक अत्याचार हो रहे हैं और उनके आगे गोमांस और पेशाब तक रखा जाता है और विधर्मी होने को कहा जाता है, पर आर्यों के जत्थे निडर होकर द्विगुणित जोश के साथ हैदराबाद पहुंच रहे हैं। अभी तक १६०० गिरफ़्तारियाँ हो चुकी हैं। यह बात आर्यों के प्रचण्ड उत्साह की सूचक है। हैदराबाद की सरकार ने इस आन्दोलन की व्यापकता का पता लगाने के लिए भारत के भिन्न २ भागों में अपने आदमी भेजे हैं। हमें इनकी बुद्धि पर तरस आता है कि इन्होंने अभी तक इस आन्दोलन की गर्मी को ठीक २ नहीं मापा, जब कि कोई तटस्थ पुरुष भी इस भीषण परिस्थिति को बड़ी आसानी से समझ सकता है।

वीरों के प्रति

[ले०—कुमारी अपराजिता देवी, कन्या गुरुकुल देहरादून]

जाओ वीरो जाओ,

वीर गीत ही गाते जाओ हँसते औ' मुसकाते।
अति-पुनीत रस वीर जलधि की लहरों में लहराते॥
जय २ नाद गुंजाते जाओ ऋषि की याद दिलाते।
वीर! दीप बन जलते जाओ ज्ञान प्रदीप जलाते॥
अखिल विश्व के कण २ में नित नव उत्साह बढ़ाते।
समय नहीं बस निद्रा का कह युवक हृदय हुलसाते॥
जाना जाना मानसरोवर ही रण-खेल दिखाते।
या फिर आना हंस विजय कर जीते और जगाते॥
अलि-मत-उर में हार, हार का नेक डालना, आते।
हम डालेंगी जयमाला फिर मंगल मोद मनाते॥
बढ़ो २ बस बढ़ते जाना······!

मरणा—क्रन्दन

श्री 'सूयकुमार'

आज सारा विश्व मिल कर कर रहा उपहास मेरा।

[१]

देख मुझ को फूल हँसते,
जो कि थे अनुकूल, हँसते,
वे खुशी से भूल, हँसते,
और सब कुछ भूल, हँसते,
हैं सभी उल्लास में रत पर लूटा मधुमास मेरा।
आज सारा विश्व मिल कर, कर रहा उपहास मेरा॥

[२]

हाय, मेरे पैर डगमग,
हो गया प्रतिकूल अगजग,
भूल कर निरुपाय हो मग,
आज बन्धन में पड़ा खग,
शुष्क अन्धरों से निकलता गीत बन उच्छ्वास मेरा।
आज सारा विश्व मिल कर कर रहा उपहास मेरा॥

[३]

वह मलय की वायु का स्वर,
चल पड़ा कुछ सान्त्वना भर,
पल्लवों की गोद से पर,
ओस के आंसू गये झर,
सान्त्वना से अश्रु बन कर है निकलता हास मेरा।
आज सारा विश्व मिल कर कर रहा उपहास मेरा॥

[४]

क्या कहूँ अपना कहानी,
हो रही अवरुद्ध वाणी,
ढल रही पीले कपोलों पर—
दुखों की यह निशानी,
आंख का पानी स्वयं हो कर रहा इतिहास मेरा।
आज सारा विश्व मिल कर कर रहा उपहास मेरा॥

[५]

क्या कहा बीमार हूँ, मैं,
इस धरा का भार हूँ मैं,
और क्या प्रतिकार लूं मैं,
यह कि बस मन मार लूं मैं,
किस तरह चुपचाप जगता कर रही परिहास मेरा।
आज सारा विश्व मिल कर कर रहा उपहास मेरा॥

[६]

आज मैं हूँ औ' व्यथा है,
विगत स्वप्नों की कथा है,
फिर नया जीवन मिलेगा—
एक आशा भी तथा है,
है नियन्ता पर हमेशा ही अटल विश्वास मेरा।
आज सारा विश्व मिल कर कर रहा उपहास मेरा॥

क्या देवता अनिश्चित है ?

महर्षि दयानन्द का मत

(ले० श्री पं० लक्ष्मण सिंह जी वेदालंकार)

स्वामी जी के ग्रन्थों के अध्ययन के पश्चात् विदित होता है- कि स्वामी जी ने बिलकुल स्पष्ट कि 'देवता निश्चित है' कहीं भी नहीं लिखा है। परन्तु इसके विपरीत 'देवता अनिश्चित है' भी कहीं नहीं लिखा है। ऐसी अवस्था में हमें उनके विचारों से परिणाम निकालना होगा, कि वे देवता को निश्चित मानते थे या नहीं।

उनकी दृष्टि में देवता का बड़ा महत्त्व था, यह तो इससे ही मालूम होता है कि ऋग्वेदादि- भाष्यभूमिका लिखते हुए उन्होंने सब से पूर्व देवता पर विचार किया है। इसमें सन्देह नहीं कि वेदों का नित्यत्वादि विचार देवता-विचार से भी पहले किया है, परन्तु यह सब ईश्वर व वेदों की सत्ता से सम्बन्ध रखता है। वेदों की नित्य-सत्ता सिद्ध होने के बाद ही देवता का विचार उत्पन्न होता है। परन्तु यदि वेदों का अनित्यत्व सिद्ध हो जाये' तो देवता-विचार व्यर्थ होता है। इसी दृष्टि को रखकर हमने यह लिखा है कि स्वामी जी ने देवता-विचार को सर्वप्रथम स्थान दिया है।

स्वामीजी प्रश्न करते हैं: —

"यज्ञे देवता शब्देन किं गृह्यते? याश्च वेदोक्ताः। अत्र प्रमाणानि। अग्निर्देवता वातो देवता सूर्यो देवता चन्द्रमा देवता वसवो देवता रुद्रा देवताऽऽदित्या देवता मरुतो देवता विश्वे देवा देवता बृहस्पतिर्देवतेन्द्रो देवता वरुणो देवता।" यजु० १४। २०।

अर्थात् यज्ञ में देवता शब्द से किस का ग्रहण होता है? (उत्तर) जो जो वेद में कहे हैं, उन्हीं का ग्रहण होता है। इसमें यजुर्वेद का 'अग्निहोत्र' इत्यादि प्रमाण हैं। इससे स्पष्ट सिद्ध होता है कि स्वामी जी को "वेदमंत्रों का जो अर्थ किया जाता है, वह देवता है।" यह अभिप्रेत नहीं है। यदि ऐसा होता, तो वे वेदमंत्र को उच्चारण करने की जगह यह लिखते। यहां आप कहेंगे कि उन्होंने यह केवल यज्ञों के लिये लिखा है। मैं जानता हूं, परन्तु जो उनका उत्तर है, वह ऐसा प्रतीत होता है, कि वह यज्ञों के लिये तथा औरों के लिये भी है। खैर, कम से कम यहां इतना तो सिद्ध होता है कि स्वामी जी यज्ञों के लिये तो देवता को निश्चित मानते हैं।

परन्तु स्वामी जी ने उपरोक्त भाग के आगे जो निम्न शब्द लिखे हैं, वह तो उनका देवता सम्बन्ध का विचार है, जो न केवल यज्ञों के लिये है, परन्तु देवता का सामान्य विचार है:

'यस्मिन्मंत्रे चाग्निशब्दार्थप्रतिपादनं वर्तते स एव मन्त्रो अग्निदेवतो गृह्यते' इसका अर्थ भी उन्हीं की भाषा में देखिये— 'कि जिन जिन मंत्रों में अग्नि आदि शब्द हैं उन उन मन्त्रों का और उन उन शब्दों के अर्थों का अग्नि आदि देवता नामों से ग्रहण होता है।'

स्वामीजी के इस भाग से बिलकुल स्पष्ट मालूम होता है कि 'अर्थ' देवता नहीं है परन्तु वे अग्नि आदि शब्द ही उन मंत्रों के देवता हैं। क्या इससे उन के मत में देवता का निश्चित होना सिद्ध नहीं होता?

स्वामीजी आगे अग्नि आदि शब्दों के देवता होने में दो 'हेतु' देते हैं।

१. तत्तदर्थस्य द्योतकत्वात्-और

२ परमात्मेश्वरेण कृतसंकेतत्वात् च।

यहां दूसरे हेतु से यह भी सिद्ध होता है, कि उनके देवता होने में ईश्वर ने संकेत किया है। इससे यही कहना होगा कि स्वामीजी के मत में देवताओं के लिये ईश्वर ने संकेत किया है। इतना होने पर फिर स्वामी जी के मत में 'देवता का अनिश्चित' होना कहां ठहरता है।

स्वामीजी और लिखते हैं-

'यानि नामानि मंत्रोक्तानि येषामर्थानि मन्त्रेषु, विद्यन्ते तानि सर्वाणि देवतालिंगानि भवन्ति तद्यथा 'अग्निंदूत पुरोदधे' इत्यादिमन्त्रे 'अग्नि शब्दो लिंगमस्ति। अतः किं विज्ञेयं? यत्र यत्र देवता उच्यते तत्र तत्र तल्लिंगो ग्राह्य इति।'

यहां स्वामी जी स्पष्ट लिखते हैं, कि 'येषां अर्थानि" 'जिनके अर्थ' इससे उन्होंने देवता और उनके अर्थों को अलग अलग कर यह बतला दिया है कि अर्थ देवता नहीं है।

उपरोक्त भाग की हिन्दी बनाते हुए स्वामी जी लिखते हैं।

"जो जो संज्ञा जिन जिन मन्त्रों में जिस जिस अर्थ की होती है, उन मंत्रों का नाम वही देवता होता है।"

स्वामीजी के इस भाग से मालूम होता है कि 'देवता' 'मन्त्र का नाम' है। पर वह नाम हर कोई जिसकी मर्जी में जो आये नहीं कर सकता। इसीको मध्ये नज़र रख कर स्वामी जी आगे लिखते हैं-

"अग्नि दूतं' इस मंत्र में अग्नि शब्द चिह्न है- यहां इसी मंत्र को अग्नि देवता जानना चाहिये।" यहां स्वामी-जी ने यद्यपि सम्पूर्ण मंत्र को देवता मान लिया है, परन्तु उसका नाम कहीं बाहर से उठाकर नहीं रखा। मंत्र में ही जो लिंग है, उसको देवता मान लिया है। इससे यह बिलकुल स्पष्ट है, कि स्वामी जी के मत में 'वेदमंत्रों के अर्थ' देवता नहीं है।

स्वामी जी ने इतने से ही बस नहीं किया। और लिखते हैं-

'जहां जहां मंत्रों में जिस जिस 'शब्द' का लेख है, वही उसका देवता है। इससे स्पष्ट प्रमाण और क्या चाहिये?

स्वामीजी के मत में पर्यायवाची शब्द भी देवता नहीं हो सकते। अर्थात् यदि किसी मंत्र का देवता 'अग्नि' है, तो उसका देवता, 'वह्नि' नहीं हो सकता। इसी प्रकार से जिसका वरुण है, उसका 'जल' नहीं हो सकता आदि।

"सो देवता शब्द से जिस जिस गुण से जो अर्थ लिये जाते हैं, सो सो ब्राह्मणादि ग्रन्थ में अच्छी प्रकार लिखा है"

ब्राह्मणों में वैदिक शब्दों के व देवताओं के अर्थ लिखे हैं, जैसे 'रात्रिर्वरुणः' 'यो वै वरुणः सोऽग्निः' ओर्वै वरुणः' आदि अनेक अर्थ हैं, इसलिये कहीं इनको देवता न समझते स्वामी जी ने लिख दिया, कि ये सब देवतावाची शब्द नहीं है परन्तु देवतावाची शब्दों के अर्थ हैं। सो अर्थ करते हुए उनको ले लेना चाहिये।

इस प्रकार से हम देखते हैं, कि स्वामी जी के मत में भी हमारा ही सिद्धान्त ठीक है अर्थात्—

"देवता निश्चित हैं, वे बदले नहीं जा सकते और उनका निर्देश मंत्र में सीधा होता है। उनका स्थान दूसरा कोई भी शब्द चाहे पर्यायवाची ही क्यों न हो नहीं ले सकता।"

यदि स्वामी जी के मत में अर्थों के अनुसार देवता होते, तो मैं पूछता हूँ कि उनके वेदभाष्य में कितने मन्त्रों के देवता अर्थों के अनुसार हैं। यजुर्वेद में सैंकड़ों मन्त्रों के अर्थ उन्होंने राज्य पक्ष में लगाये हैं, उनमें से कितनों के देवता 'राजा' या 'प्रजा' है। हां इसमें शक नहीं कि जो देवतावाची शब्द हैं उनका अर्थ 'राजा' या प्रजा किया हो। पर इससे उनकी दृष्टि में भी अर्थ देवता नहीं, यह तो स्पष्ट सिद्ध होता है।

इतना विस्तार से लिखने के अनन्तर हमारी आर्य विद्वानों से प्रार्थना है, कि सिद्धान्त के विषय में जोश को कभी काम में नहीं लाना चाहिये। हमें व्यक्ति के नाम, गुण तथा शकल सूरत से भी अलग रहना चाहिये। सिद्धान्त के लिये हमें हमेशा निष्पक्षपात होना चाहिये नहीं तो हम बड़ी आसानी से मूर्ख बनाये जा सकते हैं, जैसा कि आज हो रहा है है।

हमारी आर्यों से प्रार्थना है कि लेखक का नाम पढ़े बिना लेख को पढ़ जाइये और उस वक्त आप यह अनुभव करेंगे कि स्वामी दयानन्द का मत वही था, जो हमारा है। यदि आप को फिर भी वही मालूम हो, तो आप उपरोक्त लेख की पंक्ति पंक्ति का खण्डन कीजिये और इसको शुद्ध तथा पवित्र भावना से पुष्ट कीजिये। जिनके पास प्रमाण न हों, सिद्धान्त के सम्बन्ध में, उन से मेरी प्रार्थना है, कि वे अपनी कलम को नीचे रखें। एक दूसरे के प्रति कि 'अमुक ढोंगी है,' अमुक, अमुकपंथी है, अमुक एक भाष्य में कुछ लिखता है और दूसरे में कुछ, आदि बातों से. सिद्धान्त की पुष्टि या खण्डन नहीं होता। साथ में मेरी पत्र—सम्पादकों से भी प्रार्थना है कि जो लेख एक दूसरे के जीवनों पर छींटे उड़ाने वाले हों उनको पत्रों में प्रकाशित न करें। और जो ऐसा कर रहे हैं, वे धन्यवाद के पात्र हैं। इतना साथ में और कह दूँ कि जो लेख सिद्धान्त की ओर तथा द्वेषपूर्ण न हों, तथा सच्ची भावना से लिखे गये हों, उन्हें प्रकाशित करने में भी पत्रों को चुप नहीं रहना चाहिये। अर्थात् शीर्षक से तो आप कुछ मालूम होता हो, पर पढ़ने से मालूम होता हो कि सिद्धान्त तो एक ओर रक्खा गया है और सिवाय कीचड़ उछालने के उस लेख में कुछ नहीं। केवल ऐसे ही लेखों के लिये हमारा लिखना है, अन्यों के लिये नहीं।

गुरुकुल समाचार

स्वास्थ्य समाचार

गत सप्ताह ब्र० वेदव्रत १४ वीं श्रेणी, ब्र० धर्मप्रकाश १३ वीं श्रेणी कास से ब्र० सुखदेव ४र्थ श्रेणी चोट से पीड़ित हुए। अब स्वस्थ हैं।

श्री ब्र० चन्द्रगुप्त जी की गिरफ्तारी

ता० ६ फरवरी को सायंकाल ५ बजे मुलतान बाज़ार में ३६ वें सत्याग्रही-दल का नेतृत्व करते हुए श्री चन्द्रगुप्त जी गिरफ्तार कर लिए गए। इन्हें अभी सज़ा सुनाई नहीं गई है। इनसे पूर्व पकड़े गए १४ ब्रह्मचारियों को सेन्ट्रल जेल में रक्खा गया है।

श्री जयदेव जी—जो कि गुरुकुल कांगड़ी से पैदल चल कर सत्याग्रह के लिए हैदराबाद पहुंचे थे—पुलिस द्वारा गिरफ्तार कर लिए गए। इन्हें एक वर्ष कड़ी कैद की सज़ा सुनाई गई है। आपके उत्साह तथा प्रयत्न की जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी है

महाराज बड़ौदा का स्वर्गवास

यह समाचार सर्वत्र बड़े दुःख के साथ सुना गया कि बम्बई के राज-महल में लोकप्रिय बड़ौदा नरेश सर सयाजीराव गायकवाड़ का स्वर्गवास होगया। आपने अपनी प्रजा की भलाई के लिये जितना प्रयत्न किया वह सराहनीय है। आपने अपनी प्रजा में शिक्षा-दीक्षा के प्रचार करने के लिए बहुत प्रयत्न किया था। यही कारण है कि जहाँ भारत के अन्य प्रान्तों में शिक्षितों की प्रतिशत संख्या ८ है, वहां बड़ौदा में १८ है। आपका हिन्दी-साहित्य से भी बहुत प्रेम था। अभी कुछ दिन पूर्व आपने हिन्दी साहित्य सम्मेलन को ५०००) का दान किया था। आपके निधन से सभी देशवासियों को हार्दिक दुःख हुआ है।

गांधी वाद या साम्यवाद

श्री युत एम० एन० राय तथा श्री युत सोख्ता के भाषण होंगे।

गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी, हरिद्वार, के ३९ वें वार्षिकोत्सव पर गान्धीवाद तथा साम्यवाद पर मनोरंजक वाद-विवाद होगा। साम्यवाद की ओर से प्रसिद्ध साम्यवादी श्री युत एम० एन० राय तथा गान्धी वाद की ओर से गांधी वाद के प्रसिद्ध व्याख्याता श्री युत मंजिरअली-सोख्ता भाषण देंगे।

चौधरी दुलाराराय के प्रबन्ध से गुरुकुल प्रेस गुरुकुल कांगड़ी में मुद्रित तथा प्रकाशित।

* ओ३म् *

"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत"   Reg. No. A. 2927

गुरुकुल

सम्पादक—साहित्यरत्न पं० हरिवंश वेदालङ्कार

एक प्रति का मूल्य -)   [गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख-पत्र]   वार्षिक मूल्य २||)

वर्ष ३]   गुरुकुल कांगड़ी, शुक्रवार १३ फाल्गुन १९९५; २४ फरवरी १९३९   [संख्या ४०

गुरुकुल की उपाधि का प्रान्तीय-सरकारों द्वारा स्वीकार किया जाना

(ले०— आचार्य अभय देव जी)

यह जान कर मुझे कुछ भी बुरा नहीं लगा कि युक्त-प्रान्तीय सरकार ने काशीविद्यापीठ आदि कई अभीतक अमान्य शिक्षा-संस्थाओं की उपाधियों को तो बी० ए० के बराबर 'मान्य' कर लिए हैं, परन्तु गुरुकुल-विश्वविद्यालय की उपाधि को नहीं माना है। कम से कम अभीतक नहीं माना है, चूंकि मैं इसका कारण और सरकार की कठिनाई को समझ सकता हूँ; परन्तु यह देखकर मुझे ज़रूर बुरा लगता है, दुःख होता है और शर्म आती है कि इस तुच्छ बात के लिये हमारी तरफ़ से आन्दोलन सा किया जा रहा है, सिफारिशें करवाई जा रही हैं या सरकार की खुशामद करने की आवश्यकता समझी जा रही है। क्योंकि ऐसा करना निरर्थक है, अनुचित है और गुरुकुल जैसी उच्च संस्था के आत्म-सम्मान को आघात पहुँचाने वाला है, इसी लिये मुझे निम्न कुछ शब्द लिखने को विवश होना पड़ा है।

वैसे तो प्रान्तों में एक प्रकार का आंशिक स्वशासन स्थापित हो जाने से जो नई आवश्यकता उत्पन्न हो रही है उन में गुरुकुल की क्या स्थिति होगी इस विषय पर मैंने उसी समय, गत वर्ष ही, एक लेख माला 'गुरुकुल' पत्र में लिखी थी जिसमें तीन या चार लेख थे, उसमें यथा-स्थान मैंने यह भी प्रकट किया था कि अपनी उपाधियों को राष्ट्रीय सरकारों द्वारा स्वीकृत किये जाने या न किये जाने के बारे में हमारी क्या स्थिति होगी, या क्या नीति होनी चाहिये। उसे ही फिर दुहराने की आवश्यकता है, क्योंकि मैं देखता हूँ कि इस विषय में जो कुछ कहा सुना जा रहा है वह सर्वथा अशोभाजनक है। और जो कुछ भाव मैं नीचे प्रकट कर रहा हूँ उस में मैं कम से कम गुरुकुल-कांगड़ी के बहुत से स्नातकों का प्रतिनिधित्व कर रहा हूं, यदि उसका एक स्नातक होने के अतिरिक्त मेरा गुरुकुलकांगड़ी से और कुछ अधिक सम्बन्ध न भी समझा जाए।

हमें अपनी विद्यालंकार आदि उपाधियों को सरकार से मान्य कराने की क्यों इच्छा होनी चाहिये? कुलपिता स्वामी श्रद्धानन्द जी ने अभी तक क्यों गुरुकुल को सरकारी नौकरियों के मोह-जाल से जुदा रखा? यदि गुरुकुल की उपाधियों का अब सरकार से स्वीकार किया जाना ज़रूरी समझा जा रहा है तो गुरुकुल को एक जुदा संस्था रखने की ही आज क्या आवश्यकता है। तब तो गुरुकुल को अधिक से अधिक एक डी० ए० वी० कालिज बना देना चाहिये? पर मैं तो समझता हूं कि गुरुकुल शिक्षा प्रणाली के मुक्तरूप में फलने फूलने का समय ही अब आया है और सरकार द्वारा मान्य होने की इच्छा हम में उत्पन्न होती है तो यह हमारे पतन का ही चिह्न है। क्या गुरुकुल माता ने चौदह वर्ष तक पालपोस कर हमें इसी लायक बनाया है कि हम इस पीड़ित देश में कहीं कोई सेवा का स्थान न पा सकें और सरकारी नौकरियों के लिये ही लालायित हों? मुझे तो सरकार से अपनी उपाधि स्वीकार कराने के लिये यह आकुलता समझ में नहीं आती है। हां, यह और बात है कि कोई सरकार, यह कांग्रेसी सरकार या इससे भी आगे आने वाली अधिक स्वाधीन अपनी सरकार, हमारे स्नातकों की सेवा से लाभ उठाना चाहे और तब वह हमारी सेवा से लाभ उठाने के लिये हमारी उपाधि को मान्य कर देना ज़रूरी समझे, तब और बात है। तब यदि अपनी सेवा देना उचित समझें तो अवश्य इस निमन्त्रण को स्वीकार करें। मेरे मन में तो यह है कि तब भी हमें विशेष अवस्थाओं में अपनी सरकार को विशेष मदद पहुँचाने की दृष्टि से अपने कुलपति से अनुमति लेकर ही किसी स्नातक को उधर जाना चाहिये। पर यहां तो बिना मांगें ही "सेवाएं" सरकार पर थोपी जा रही दीखती हैं। यह श्रद्धानन्द के कुल को, कुल-पुत्रों को शोभा देने लायक बात नहीं है। हम अपनी महत्ता को,

अपने उच्च आदर्श को, जगत में अपनी स्थिति को भूल जाते हैं, तभी ऐसे आत्महीनता के भाव हम में आ जाते हैं। गुरुकुल माता ने ऐसे पुत्र भी उत्पन्न किये हैं और कर सकती है जो आवश्यकता पड़ने पर प्रधान-मंत्री या स्वराज्य के राष्ट्रपति की सेवाएं भी दे सकते हैं। पर यह तभी होना चाहिये जब इसकी सच्ची आकांक्षा और आवश्यकता हो। अभी तो दूसरा बहुत सा कार्य है जो हमें पूरा करना जरूरी है, हमारे आगे पड़ा है।

उधर युक्तप्रान्तीय सरकार गुरुकुल को राष्ट्रीयता या अन्य इससे भी ऊंची उसकी दूसरी महत्ता को नहीं जानती, यह बात नहीं है। उसकी मुश्किल का अन्दाजा लगा कर मैं कह सकता हूं कि शायद उसे गुरुकुल में साम्प्रदायिकता की गन्ध आती हो। गुरुकुल को अमान्य समझने का कारण यह हो या न हो मैं यह ज़रूर कह देना चाहता हूँ कि गुरुकुल में एक प्रकार की साम्प्रदायिकता है, कट्टरता है। और वह उचित है। वह गुरुकुल में रहनी चाहिये और उसके कारण हम अमान्य किये जाते हैं तो हमें खुश होना चाहिये। वह है वैदिक संस्कृति की साम्प्रदायिकता। जिसका आधार ब्रह्मचर्य है और जिसकी भित्ति वर्णाश्रम धर्म है। पर यह साम्प्रदायिकता सच्ची राष्ट्रीयता की न केवल विरोधिनी ही है बल्कि बड़ी भारी सहायक है। मेरी तो श्रद्धा है कि सच्ची भारतीय-स्वाधीनता और सार्वभौम सुख-शान्ति इस संस्कृति के बिना असम्भव है। गुरुकुल की यह कट्टरता ऐसी ही है जैसे कि कांग्रेस में कोई अहिंसा की कट्टरता कह सकता है। बहुत से कहते भी हैं। यह और बात है कि गुरुकुल आर्यसमाज, (वैदिकधर्म को मानने वाला समाज) की संस्था है और आर्यसमाज में जो अपने मत की कट्टरता कभी दूसरे मतों के साथ घृणा के रूप में, या अपनी सचाई के प्रचार का जोश कभी दूसरे मत वालों से संघर्ष के रूप में भी परिणत हो जाते हैं, तो आर्यसमाज का यह प्रभाव कभी गुरुकुल पर भी पड़ता है या पड़ सकता है। किन्तु यह आर्यसमाज की स्वाभाविक अवस्था नहीं है। कभी २ होने वाला विकार है। यह ऐसे ही है जैसे कांग्रेस जब स्वाधीनता के लिये जोश उत्पन्न करती है तो वह जोश कभी २ हिंसा का रूप धारण कर लेता है। जो कांग्रेस के ध्येय के विपरीत है। पर जैसे यह कांग्रेस का विकार है, वैसे ही इस प्रकार की अनुचित साम्प्रदायिकता आर्य समाज का विकार है। किन्तु आर्य समाज की साम्प्रदायिकता का भी गुरुकुल पर, जोकि ऊंचे सार्वभौम आदर्श वाली एक शिक्षा संस्था है, कभी ही और बहुत ही कम असर पड़ता है। एक शिक्षा प्रणाली के तौर पर तो अन्य धर्म व सम्प्रदाय वाले भी गुरुकुल को अपना सकते हैं और अपनाते रहे हैं। यह सब बात मैंने गुरुकुल को असाम्प्रदायिक सिद्ध करने के लिये नहीं लिखी है किन्तु साफ तौर से यह बताने के लिये लिखी है कि गुरुकुल किन अर्थों में साम्प्रदायिक है, किन में नहीं। जिस से कोई धोखा न रहे।

गुरुकुलकांगड़ी ने या गुरुकुल के ब्रह्मचारियों अध्यापकों ने या स्नातक-मण्डल ने राष्ट्रीय आन्दोलन में जो भाग बहादुरी के साथ लिया था और आत्मबलिदान किया था वह कोई अपनी उपाधि स्वीकार कराने आदि के किसी प्रतिफल को पाने के लिये नहीं किया था। उस का इस प्रकरण में जिक्र आना, बल्कि स्मरण तक आना नितान्त ओछापन है। और गुरुकुल कांगड़ी के स्नातक आदियों ने स्वाधीनता-संग्राम में जो थोड़ी बहुत आहुति दी है वह यद्यपि सर्वथा कांग्रेस के संगठन में सम्मिलित हो कर, कांग्रेस का अनुयायी बन कर दी (आर्यसमाज के नाम से या कांग्रेस में ही आर्यसमाजी-पार्टी के रूप में नहीं) दी है तो भी मैं कह सकता हूं कि वह सब कार्य उन्होंने ऋषि दयानन्द के सार्वभौम सिद्धान्तों के अनुसार और गुरुकुल की ही उदार शिक्षा के स्वाभाविक परिणाम-स्वरूप किये थे। इसका यह मतलब है कि गुरुकुल हर-प्रकार के स्वतन्त्रता युद्ध में या हमेशा ही कांग्रेस के साथ है यह बात नहीं। जैसे यदि यह युद्ध अधार्मिक हो, अत्याचार या शोषण के लिये हो या जैसे यदि कांग्रेस का वर्तमान ध्येय विपरीत रूप से बदल जाए तब वह साथ नहीं होगा।

तात्पर्य यह है कि गुरुकुल को अपने लिये अपनी उपाधि सरकार से स्वीकार कराने की कोई आवश्यकता नहीं होनी चाहिये। गुरुकुल जिस लिये खोला गया है उस में इस आवश्यकता के लिये कोई स्थान नहीं है। यदि कोई सरकार हमारी उपाधि को स्वयं मान्य करना भी चाहे पर किसी शर्त के साथ—किसी अनुचित या अपमान जनक शर्त के साथ—मान्य करना चाहें तो उसे भी हमें स्वीकार नहीं करना चाहिये। अर्थात् हमें सरकार द्वारा अवसर दिये जाने पर भी इस से तभी लाभ उठाना चाहिये जब कि वह सरकार सचमुच हमारी सेवा चाहती हो और अतएव सम्मान पूर्वक अपनी इस अभिलाषा को हमारे सम्बन्ध में कार्य रूप में परिणत कर रही हो।

निजाम सरकार के प्रति निन्दा का प्रस्ताव

गुरुकुल-वासियों की यह सभा, हैदराबाद सैन्ट्रल जेल में कैद गुरुकुल के ब्रह्मचारियों के वन्दे मातरम् गान तथा सन्ध्या करने पर वहां के अधिकारियों द्वारा उन्हें जो कोड़े लगाने की सज़ा दी गई है उसका घोर प्रतिवाद करती है और विद्यार्थियों को इस कष्ट को सहनेके लिए बधाई देती है इसके साथ ही यह सभा देश भर की आर्यसमाजों से प्रार्थना करती है कि वे विद्यार्थियों के साथ किए गए इस क्रूर-व्यवहार के प्रतिवाद में अपने यहां विरोध सभाएं करें, और प्रस्ताव स्वीकार करें। ताकि भविष्य में निज़ाम की सरकार इस सत्याग्रह युद्ध में ऐसे अमानुषिक उपायों का प्रयोग न कर सके।

—कुल मन्त्री।

हँसते हँसते कोड़े खाए……

(ले०—श्री सत्यभूषण 'योगी')

हँसते हँसते कोड़े खाए;
नहीं एक भी आंसू आया!

(१)

आज पढ़ा अखबार उठा कर
मैंने वह वृत्तान्त तुम्हारा—
देख तुम्हारी सहनशीलता
वह पैशाचिक भी हारा!
लाल रक्त की धाराओं से
तुमने खेली बांकी होली!
कोड़े खाते—खाते भी तुम
बोले इन्किलाब की बोली!!
उस बोली को जड़ दैत्यों के
पत्थर दिल ने भी दुहराया!
हँसते हँसते कोड़े खाए
नहीं एक भी आंसू आया!

क्रूर शत्रु का दिल टूटा;
पर टूटा बिल्कुल दिल न तुम्हारा
बुझता नहीं, दहक उठता है
वायु प्रताड़ित हो अङ्गारा!
सिंह सिंह ही है पिंजरे में
उसको बन्द किया हो चाहे!
गरज उठेगा, नहीं भरेगा
वह निराश हो ठण्डी आहें!!
मानवता की कीर्ति ध्वजा को
तुमने त्रिभुवन में फहराया!
हँसते हँसते कोड़े खाए
नहीं एक भी आंसू आया!

होठों पर मुसकान लिये
आंखों में प्रलयङ्कर चिनगारी
हे सजीवतम, हो अजीव-सम
तुमने निर्दय चोट सहारी!
मां चण्डी ने खुशी खुशी से
की पूजा स्वीकार तुम्हारी!
अश्रु-भरे देवों ने नभ से
बोली जय जयकार तुम्हारी!!
"देवों से बढ़कर तुम मानव"
अमलियन्ता ने यह गाया!
हँसते हँसते कोड़े खाए
नहीं एक भी आंसू आया!

बन्धु यहां सुख सामग्री से
सजे हुए बैठा मैं घर में,
लात मार तुम सुख संपति को
जूझ पड़े स्वातन्त्र्य-समर में!
देख तुम्हारा फोटो लज्जा
से मेरी आंखें झुक जातीं!
और एक पल को मेरी इस
छाती की धड़कन रुक जाती!!
किन्तु बन्धु तुम मेरे
मैंने गर्वोन्नत निज भाल उठाया!
हँसते हँसते कोड़े खाए
नहीं एक भी आंसू आया!

यह कैसा जड़ जीवन, कैसी
प्राण रहित मेरी यह कविता!
तुम कवि हो, वास्तव में कवि हो,
और तुम्हीं हो सच्ची कविता!!
वह कविता, जिसको कवि युगयुग
गाना चाहेंगे, गाएंगे!
नित्य तुम्हारे कीर्ति तरानों में
बेसुध हो लहराएंगे!!
मानव बन तुमने मानवता
को मानव बनना सिखलाया!
हँसते हँसते कोड़े खाए
नहीं एक भी आंसू आया!!

गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ

संस्था का २३ वां वार्षिकोत्सव २४, २५ और २६ फरवरी को धूमधाम से गुरुकुल भूमि में मनाया जावेगा।

उत्सव में एक विराट् आर्य कान्फ्रेंस होगी जिस में हैदराबाद की स्थिति पर गम्भीर विचार किया जायगा।

हाकी मैच, कुश्तियां, खेलें और संगीत को—विशेष मनोरंजन से मनाने का प्रबंध हो रहा है। आर्यसमाज के प्रसिद्ध सन्यासी महात्माओं के उपदेश के अतिरिक्त देश के प्रसिद्ध नेता श्रीयुत् सत्यमूर्ति जी M.L.A. श्रीयुत् लोकनायक एम०एस०राव M.L.A. श्रीयुत् भाई परमानन्द जी M L A. और डा० देशबन्धु जी M.L.A. के आने की पूरी आशा है।

प्राचीन संस्कृति प्रेमी जनता से अनुरोध है कि वह अवश्य अपने धार्मिक मेले में सम्मिलित होकर लाभ उठावें और कार्यकर्ताओं के उत्साह को बढ़ावें।

मुख्याधिष्ठाता

गु रु कु ल

१३ फाल्गुन शुक्रवार १९९५

हैदराबाद और कांग्रेस—

आर्यसमाज ने हैदराबाद में अपने धार्मिक एवं नागरिक अधिकारों की प्राप्ति के लिये जो युद्ध छेड़ा है, उस से आज संसार परिचित है। ऐसे समय कांग्रेस की उदासीनता हमें उचित नहीं प्रतीत होती। आखिर आर्य-समाज भी तो उन्हीं अधिकारों की प्राप्ति के लिए लड़ रहा है, जिसका समर्थन कांग्रेस करती आ रही है। कांग्रेस ने प्रत्येक व्यक्ति को धार्मिक स्वतंत्रता देने की घोषणा की हुई है। आर्य समाज को कांग्रेस की ओर से इस युद्ध को लड़ने के लिए प्रोत्साहन मिलना चाहिए था पर इस मामले म कांग्रेस उदासीन ही नहीं है अपितु इसके लिए विरोध भी प्रदर्शित कर रही है। लुधियाना का देशी-राज्य-प्रजा-परिषद् में कई कांग्रेसी कर्णधारों की उपस्थिति में एक मुसलमान सदस्य के कहने पर यह प्रस्ताव पास हो गया कि आर्य समाज का हैदराबाद में युद्ध असामयिक है। हमें 'असामयिक' शब्द का कुछ तात्पर्य नहीं मालूम देता। हैदराबाद की स्टेट-कांग्रेस भी तो सत्याग्रह का प्रो० बना चुकी थी और सत्याग्रह शुरु किया ही जाने वाला था। यदि कांग्रेस का वह सत्याग्रह प्रारम्भ होजाता तोवह सामयिक होता और यह आर्य समाज का सत्याग्रह असामयिक है? हमें समझ नहीं आता कि कांग्रेस इस युद्ध को साम्प्रदायिक कह कर क्यों बदनाम करने की कोशिश कर रही है। जबकि आर्य समाज के भी सारे के सारे वे ही उद्देश्य हैं जो कि युद्ध छेड़ने पर कांग्रेस के भी होते। ऐसी अवस्था में कांग्रेस ने असामयिकता का जो प्रस्ताव स्वीकृत किया है उसकी हम सराहना नहीं कर सकते। कांग्रेस की यह हिन्दू-विरोधिनी-नीति उचित नहीं प्रतीत होती। इससे हिन्दुओं का किसी प्रकार भला नहीं हो सकता। शायद कांग्रेसी यह समझते होंगे कि हिन्दुओं के साथ ज्यादती और मुसलमानों का पक्ष लेने से मुसलमान खुश हो जावेंगे और सहायता देंगे। किन्तु इनका यह विश्वास शायद मृगतृष्णिका ही साबित हो। पर फिर भी हम इतना कह देना चाहते हैं कि कांग्रेस को पक्षपात से काम न लेना चाहिए। यदि कांग्रेस किसी को बुरा या नाराज़गी को देखकर ही अपना कोई पक्ष निर्धारण करेगी तो अवश्य अपने उद्देश्य से गिर जायगी, और जनता में भी कई प्रकार के भ्रम फैलने की सम्भावना है। हम कांग्रेस से आशा करेंगे कि वह पक्षपात को छोड़ कर अपनी विशुद्ध नीति अख्तियार करे। यदि वह ऐसा करेगी तो उसे आर्य-समाज के युद्ध को साम्प्रदायिक कहने की आवश्यकता न रहेगी। इस समय हैदराबाद के कांग्रेसी भी आर्यसमाज की सहायता करने तथा पुनः अपना सत्याग्रह प्रारम्भ करने का प्रयत्न कर रहे हैं। पर, महात्मा गांधी उन्हें रोक रहे हैं। यदि कांग्रेस की अब भी यही नीति रही तो स्टेट के कांग्रेसी कार्य-कर्ता महात्मा जी को सत्याग्रह करने की आज्ञा देने के लिए विवश करेंगे। यदि महात्मा जी यहूदियों को सत्याग्रह करने की सम्मति दे सकते हैं तो आर्य-समाज की मांगे तो अत्यन्त न्यायोचित है।

आर्य-जनता का कर्त्तव्य—

इस समय युद्ध की प्रगति तीव्रतर होती जा रही है। यह स्मरण रखना चाहिये कि हैदराबाद का प्रश्न आर्य-समाज के जीवन-मरण का प्रश्न है। यदि इस समय कहीं मुंह की खानी पड़ी तो हम संसार में मुंह दिखाने लायक नही रहेंगे। आर्यसमाज और ऋषि दयानन्द के सिद्धान्त चाहे कितने ही ऊँचे क्यों न हों, यदि हमने उन्हें क्रियात्मक रूप में परिणत न किया और जीवन-युद्ध में नहीं जूझे, तो वे धरे के धरे रह जाएंगे। ऋषि दयानन्द के सिद्धान्त तभी चमकेंगे जबकि उनके अनुयायी हम-आर्य, इस युद्ध को विजय करके दिखलावेंगे। हमने जलसों में "सिर जावे तो जावे, 'मेरा वैदिक धर्म न जावे" बहुत गाया है। अब हमें यह दिखला देना चाहिये कि हमने जलसों में कोरी बकवाद ही नहीं की है, समय आनेपर अपने आपको बलिदान भी कर सकते हैं। उठो,! आर्य वीरो! आगे बढ़ो। अब आलस्य और प्रमाद से काम नहीं चलेगा। चलो, युद्धक्षेत्र की ओर दौड़ो। कहीं आप यह सोचते रह गये कि 'समय आयेगा तो हम भी युद्ध में जावेंगे' और इधर हमें शर्मिन्दा करते हुए युद्धसमाप्त होगया। तब हमारी और आपकी क्या दशा होगी। आप इधर अस्त्र तेज़ करते ही रह गये और उधर युद्ध समाप्त भी हो गया। आइये, बढ़िये। जितनी जल्दी हो सके युद्धक्षेत्र की ओर बढ़िये। वह समय आ गया है जिसकी आप प्रतीक्षा कर रहे थे। अब आलस्य और हिचकिचाहट का काम नहीं है। जिस प्रकार भी हो सके तन-मन-धन से जुट जाइये। विजय निश्चित है। गुरुकुल कांगड़ी का जत्था तो जेल को सुशोभित कर ही रहा है, अब महाविद्यालय ज्वालापुर, उपदेशक-महाविद्यालय लाहोर, गुरुकुल-वृन्दावन, गुरुकुल डौरली, मुजफ्फर नगर, मऊ, लखनऊ, प्रयाग आदि स्थानों से जत्थे धड़ाधड़ जा रहे हैं। आप भी अपनी भेंट लेकर उपस्थित होवें। जिससे पीछे यह पछतावा न रह जावे कि हम इस विजय-युद्ध में आने से रह गए।

२४ बेंतों का दण्ड और ब्रह्मचारियोंकी धीरता

अभी हाल में आये हैदराबाद के समाचारों से विदित हुआ है कि गुरुकुल कांगड़ी के आठ ब्रह्मचारियों को सेन्ट्रल जेल में दो-दर्जन बेंतों की सजा दी गई है। उनका अपराध यह था कि वे प्रति-दिन दोनों समय संध्योपासना तथा 'वन्देमातरम्' का गान किया करते थे। जेलर ने उन से कहा कि 'यह रियासत की जेल है, यहां सन्ध्या नहीं होनी चाहिये'। ब्रह्मचारियों ने कहा कि सन्ध्या से जेल के किसी नियम का व्यतिक्रम नहीं होता तथा हमारे मानसिक-स्वास्थ्य के लिये यह नितान्त आवश्यक चीज़

है। इस लिये लाचार, हम सन्ध्या नहीं छोड़ सकते'। दूसरे दिन पुनः उन्होंने सन्ध्योपासना की और देश-भक्ति के गीत गाये, जिस पर वहां के अधिकारियों ने प्रत्येक को दो-दो दर्जन बेंतों की सजा दी। दूसरे दिन प्रातःकाल जब उन पर बेंतें पड़ी तब उन में से किसी ने 'उफ्' तक न की और प्रत्येक बेंत के साथ ऋषि-दयानन्द और आर्य समाज की जय का नाद किया। निजाम सरकार के निर्लज्जता से बधिर कानों में इस विषय की हम कोई शिकायत नहीं पहुंचाना चाहते। क्यों कि हमें अच्छी तरह मालूम है कि उसका अमानुषिक क्रूर-हृदय कभी भी इस पर ध्यान न देगा। हमने आश्वासन उन पीड़ित-हृदय माता-पिताओं को देना है, जिन्होंने अपने कलेजों पर पत्थर रख कर अपने नव-वयस्क लालों को उच्च-भावना के साथ युद्धक्षेत्र में भेजा था। हम समझते हैं कि यह बेंतों की मार वीर सत्याग्रहियों के शरीरों पर उतनी प्रखरता से नहीं पड़ी, जितनी कि उन के माता-पिताओं के हृदयों पर। ऐसी अवस्था में हम वीर सत्याग्रहियों के साथ २ उन के माता पिताओं को अतिशय बधाई देते हैं कि जिन्हें ऐसे २ वीरपुत्रों की जननी और जनक होने का सौभाग्य प्राप्त है। अन्त में हम, वीरों को इस वीरोचित कार्य के लिये पुनः बधाई देते हैं। ईश्वर इन्हें शक्ति दें कि वे अपने कार्य में सफल हो कर लौटें।

गुरुकुल के प्रति

[ले०—कुमारी अपराजिता देवी—
कन्या गुरुकुल देहरादून।]

अनुपम तेरी छटा देख कर
सुर गण हर्षित होते हैं।
शिक्षा जो तेरी पाते हैं
हृदयों के मल धोते हैं॥

सकल विश्व का प्राण बना तू,
भावी सन्तति को दे प्राण।
रसना हार गई करने में
तेरी गुण गणना निर्माण॥

तेरी गोद मधुर फुलवारी
जिसमें हम नित खिलते हैं।
बन्दी होकर सुन्दरता के
पथिक न आगे हिलते हैं॥

जन्म दिया जिसने तुझको है
धन्य हाथ उस माली के।
लगी यहां जो भाग्य जगे, उस
हरियाली विटपाली के॥

क्या बेटी क्या बेटे ऐसे
ऐ! जननी तू गोद खिला।
जिनका झण्डा उड़े गगन में—
शैलों के दे मूल हिला॥

ज्ञान-समर में हटें न पीछे
अन्धकार का गर्व हरें।
तीर तर्क के चला २ कर—
दर्प दम्भ का दूर करें॥

वीरों पर कोड़ों की मार!

श्री सत्यभूषण 'योगी'

[भावुक-कवि ने कोड़ों की मार सहने वाले ब्रह्मचारियों को लक्ष्य करके ये दो कविताएं लिखी हैं। —सम्पादक]

वीरों पर कोड़ों की मार!

ओ मानवतन धारी दैत्यो,
हो तुमको धिक्कार!
याद रखो, ये नहीं उछलतीं
हैं शोणित की धार;
ये भीषण ज्वालाएं हैं
कर देंगी तुमको छार।
करलो, करलो, मनमाने तुम
निर्दय अत्याचार,
उफ़ न करेंगे, सब सह लेंगे
वीर, बिना-प्रतिकार।
किन्तु तुम्हारी नौका पहुंच
न पाएगी उस पार;
वीरों का शव-भार हुआ
देगा उसको मँझधार।
फूंक मार तुम आज बुझाना
चाह रहे अङ्गार!
बच न सकेगी क्रूर तुम्हारी
अब नृशंस सरकार।
लिए प्रलय तूफान हृदय में
है जनता तैयार;
दबा नहीं सकते हो इसको
रख तिनकों का भार।
वीरों पर कोड़ों की मार!

हैदराबाद में

गुरुकुल कांगड़ी के ब्रह्मचारियों का सत्याग्रह

[विस्तृत-समाचार]

३३वां जत्था

गुरुकुल कांगड़ी के ब्रह्मचारियों का एक जत्था गुरुकुल से महात्मा नारायण स्वामी जी की आज्ञानुसार उन के नेतृत्व में सत्याग्रह करने के लिए गुरुकुल से निकला था। प्रोग्राम बनाया था कि स्वामी जी तारीख ३१ जनवरी को सायंकाल के समय हवाई जहाज द्वारा हैदराबाद पहुंच जायेंगे और ब्रह्मचारी भी उसी दिन सायंकाल को वहां पहुंच जायेंगे। परन्तु ता० ३० जनवरी की रात्रि के आठ बजे बम्बई से तार आगया कि हवाई जहाज तो फरवरी तक नहीं मिल सकता। विवश हो स्वामी जी उसी समय रात्रि की ट्रेन से ही हैदराबाद को चल दिए। कोई ऐसी गाड़ी न थी जिससे निश्चित समय पर स्वामी जी पहुंच सकें और उनकी सेना के गुरुकुल के ब्रह्मचारी उनसे मिल सकें। हैदराबाद में वह निश्चित समय से आठ नौ घंटे पूर्व ही पहुंच गये। हैदराबाद में ब्रह्मचारियों के आने से पूर्व ही उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया। अतः ब्रह्मचारी उनके साथ सत्याग्रह में सम्मिलित न हो सके। दो तीन दिन के बाद ब्रह्मचारियों ने बड़े सफल कार्यक्रम के साथ सत्याग्रह किया। ब्रह्मचारियों का उत्साह प्रशंसनीय था और हजारों की संख्या में जनता बड़ी श्रद्धा पूर्वक देखने के लिए आई हुई थी। हैदराबाद ता० २-२-३६ को आर्य-सत्याग्रह समिति का ३३ वां जत्था सायंकाल पांच बजे सुल्तान बाजार में सत्याग्रह कर गिरफ्तार हुआ। इस जत्थे में पांच सत्याग्रही गुरुकुल कांगड़ी से आये हुए १५ ब्रह्मचारियों में से थे और एक व्यक्ति शोलापुर से आया हुआ था। सत्याग्रहियों ने अपना वक्तव्य बांट कर पढ़ा। और जय-घोष लगाते हुए गिरफ्तार हुए। सात आठ सौ व्यक्ति उपस्थित थे। इस जत्थे में ब्र० विश्वमित्र जी ब्र० मनोहर जी, ब्र० विद्यारत्न जी, ब्र० तेजसिंह जी, ब्र० उदयवीर जी थे। इसके अतिरिक्त एक व्यक्ति हैदराबाद का ही था।

ब्रह्मचारियों का ही ३४ वां जत्था

हैदराबाद ता० ३-२-३६ को आर्यसत्याग्रह समिति की ओर से ८ ब्रह्मचारियों ने सायं ५॥ बजे क्लॉक टावर सुल्तान बाजार के निकट सत्याग्रह किया। उपस्थिति २।३ हजार की थी। सत्याग्रही 'आर्यसमाज की जय' 'आर्यसमाज जिन्दाबाद' के गगनभेदी जयघोषों के साथ गिरफ्तार हुए। पुलिस ब्रह्मचारियों को जयघोष लगाने से रोकने के लिये मुंह पर हाथ रख रही थी।

इस जत्थे में ब्र० क्षेत्रपाल जी (जो अभी दो मास पश्चात् ही स्नातक होने वाले थे, परन्तु जाति और धर्म की सेवा के लिये अपनी पदवी को लात मार दी। ब्रह्मचारियों के इस अनुकरणीय त्याग से हमारी छाती गर्व से फूल जाती है और हमारा हृदय आशा के अन्तिम शिखर पर चढ़ जाता है तथा अनुभव करता है कि इस धार्मिक युद्ध में हमारी निश्चित विजय होगी 'संपादक-अंगद') प्रधान थे तथा ब्र० सत्येन्द्र जी, ब्र० धीरेन्द्र जी, ब्र० ओम्प्रकाश जी, ब्र० सतीशकुमार जी, ब्र० देवराज जी, ब्र० रामनाथ जी, ब्र० विजयकुमार जी, ब्र० विद्यासागर जी सभासद थे। ब्र० चन्द्रगुप्त जी मोटर बस पर दो मिनट पीछे पहुंचने के कारण इस जत्थे में सत्याग्रह न कर सके। इसी जत्थे में छः व्यक्ति वह भी थे जिन्हें वाडी स्टेशन पर पुलिस ने पकड़कर मारा पीटा था और पैसे आदि खा खाकर जंगल में छोड़ दिया था। वाडी से हैदराबाद १०० मील से भी अधिक दूर है। ये सारे वीर भूखे प्यासे वाडी से पैदल ही हैदराबाद पहुंचे और जाकर धर्म युद्ध में भाग लिया। [अंगद स]

आर्य-सत्याग्रह समिति के ३४ वें जत्थे के प्रधान-

श्री ब्र० क्षेत्रपाल का वक्तव्य

काश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तक भारत में रहने वाले सारे आर्य हिंदू भाई २ हैं। अगर किसी आर्य भाई पर त्रावणकोर में अत्याचार होगा तो काश्मीर के सारे हिन्दू उसके लिये तड़प जायेंगे। भारतवर्ष अखंडित है। इसको राजनैतिक दृष्टि से भले ही बांट दें किन्तु धार्मिक व सामाजिक दृष्टि से यह बिलकुल अ-खंडित रहेगा। हमें विश्वास हो गया है कि निज़ाम राज्य में आर्यों (हिन्दुओं) के लिये स्वतन्त्रता एक स्वप्न है। उन पर दिन दहाड़े नाना प्रकार के अत्याचार ढाए जाते हैं। हम ने विचार किया कि हुकूमत शीघ्र ही यहां की बहुसंख्यक प्रजा की शिकायतों को दूर करके न्याय करेगी। किन्तु "मर्ज बढ़ता ही गया ज्यूं ज्यूं दवा की" की भांति अत्याचार बढ़ते ही गये। अन्त में सारे आर्य-जगत् ने इस गुत्थी को सुलझाने के लिये महात्मा श्री नारायण स्वामी जी महाराज को प्रथम डिक्टेटर बनाकर शोलापुर भेज दिया, जहां पर आर्य सम्मेलन कर आगामी कार्यक्रम पर विचार किया गया और अन्त में यह प्रस्ताव पास हो गया कि धार्मिक अधिकार की प्राप्ति के लिए सत्याग्रह किया जाय। अतः इस प्रस्तावानुसार हमारे प्रथम डिक्टेटर महात्मा नारायण स्वामी जी महाराज ने ता० ३१-१-३६ को हैदराबाद में प्रवेश कर अपने आपको गिरफ्तार करवा लिया है। अतः हम सब गुरुकुल कांगड़ी के विद्यार्थी महात्मा जी की घोषणा पर निज़ाम राज्य के आर्यों (हिन्दुओं) को धार्मिक स्वतन्त्रता दिलाने के लिये सत्याग्रह कर रहे हैं। हमें न तो निज़ाम साहब से कुछ विरोध है और न किसी अन्य धर्म से वैर है। हम अपने धर्म की रक्षा के लिए लड़ रहे हैं और उस समय तक लड़ते रहेंगे जब तक कि हमारे धर्मबन्धुओं को पूर्ण धार्मिक स्वतन्त्रता मिल जायगी।

क्षेत्रपाल प्रधान

सन्ध्या और यज्ञोपवीत का निषेध

अभी हाल में आए समाचारों से पता लगा है कि हैदराबाद के सेन्ट्रल जेल में ब्रह्मचारियों तथा अन्य सत्याग्रहियों को सन्ध्योपासना करने से रोका जाता है। यदि किसी का जनेऊ टूट जाता है तो उसे नया नहीं दिया जाता तथा पहिने हुए जनेऊ को भी उतारने को कहा जाता है। इसके कारण जेल के सत्याग्रहियों में असन्तोष है। आर्य वीर दल के तीन सत्याग्रहियों ने इसके विरोध में अनशन प्रारंभ कर दिया है।

गुरुकुल समाचार

गत सप्ताह ब्र० राजकुमार १म श्रेणी चोट से तथा ब्र० अर्जुन देव ११ वीं श्रेणी उदरशूल से पीड़ित हुए थे। अब सब स्वस्थ हैं।

इस सप्ताह के प्रारम्भ में यहां अच्छी वर्षा हुई, सूखते हुए खेतों में हरियाली आ गई है। दिन में प्रायः बादल घिरे रहते हैं, जिनके कारण सर्दियों ने पुनः आधिपत्य प्राप्त कर लिया है। तीनों महाविद्यालयों की परीक्षाएं ४ मार्च से प्रारम्भ होंगी। ब्रह्मचारी पढ़ने में अन्य वर्षों की तरह तत्परता नहीं दिखला रहे हैं, क्योंकि सबका ध्यान हैदराबाद की ओर लगा हुआ है। पिछले सप्ताह शिक्षा-पटल की बैठक हुई जिसमें सत्याग्रह में में गये हुए चतुर्दश श्रेणी के श्री क्षेत्रपाल जी तथा श्री धीरेन्द्र जी को पिछले तीन वर्षों के परीक्षा-परिणाम को मद्दे-नज़र रखते हुए, उत्तीर्ण मान लिया गया।

माम्य-अतिथि—गत १६ फरवरी को युक्त प्रान्त के एजुकेशनल-डाइरेक्टर और क्वीन्स-कालेज बनारस के प्रिंसिपल श्री नैपाल सिंह जी पधारे। आपने यहाँ तीन दिन रह कर गुरुकुल का अच्छी तरह निरीक्षण किया तथा यहां से प्रकाशित-साहित्य को अच्छी तरह मनन-पूर्वक पढ़ा। आपका विचार वर्तमान हिन्दी भाषा को परिमार्जन करने का है। आपने ब्रह्मचारियों के स्वावलम्बी-जीवन की पर्याप्त प्रशंसा की।

ज्वालापुर महाविद्यालय का जत्था रवाना—

ज्वालापुर महाविद्यालय का १४ सत्याग्रहियों का जत्था गत रविवार को यहाँ से हैदराबाद के लिये रवाना हो गया। विदाई के समय का दृश्य अत्यन्त उत्साह-वर्धक था। गुरुकुल कांगड़ी के ब्रह्मचारियों ने आकर सत्याग्रहियों का उत्साह बढ़ाया और उन्हें सत्याग्रह का उचित मार्ग दिखलाया। विदाई देते हुए कुलपति श्री पं० नरदेव जी शास्त्री ने बड़े भावुक शब्दों में कहा कि "आप लोग ईश्वर पर विश्वास रख कर जेल जायें। मुझे बड़ा हर्ष है कि विषम परिस्थिति के होते हुए भी वीर-सत्याग्रहियों का जत्था महाविद्यालय से प्रस्थान कर रहा है। आप लोग जेल में भी मुझे भूलेंगे नहीं। आप जब मुझे स्मरण करेंगे तब मुझे अपने पास ही पायेंगे।" विदाई के समय सत्याग्रही अत्यन्त प्रसन्न दीखते थे। माताओं ने पुष्प वृष्टि कर विदाई दी।

गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ

गुरुकुल की ऋतु आजकल बड़ी सुहावनी है। धीरे २ सर्दी कम हो रही है। चिकित्सालय में कोई रोगी नहीं है। सब ब्रह्मचारी स्वास्थ्य-लाभ कर रहे हैं। वार्षिक परीक्षा मार्च के चौथे सप्ताह में होने की संभावना है। सब अध्यापक पढ़ाई में परिश्रम करवा रहे हैं और ब्रह्मचारी भी खूब परिश्रम कर रहे हैं।

गुरुकुल का वार्षिकोत्सव २४, २५, २६ फर्वरी को मनाये जाने की तैयारियां हो रही हैं। श्री मा० गोपाल जी मुख्याधिष्ठाता गुरुकुल के लिये धन संग्रह के डेपूटेशन पर गुड़गावाँ, रोहतक और देहली प्रान्त में भ्रमण कर रहे हैं। आर्य जनता को उदारता से डेपूटेशन का स्वागत करना चाहिये और अधिक से अधिक दान देकर यश और पुण्य का भागी बनना चाहिये।

जी० आई० पी० रेलवे ने देहली और इसके बीच के स्टेशनों में सस्ते वापसी टिकट जारी कर दिये हैं। उन से यात्रियों को लाभ उठाना चाहिये। देहली सेतुगलकाबाद का २ दिन के लिये वापसी किराया केवल ।=) है।

मुख्याधिष्ठाता

उषा

[ले०—श्री जगदीश]

बिन कहे कुछ मुसकाई,
ओस में अञ्चल भिगो कर उड़ चली फिर फड़ फड़ाई।
कांपती सी झांकती सी हाव भावों को दिखाती,
नृत्य के इंगित करों से मधुकरा को यह घुमाती।
इन्द्र धनु को लघुरयसा सी ,ताकती है यह लजीली
ओज की प्रतिमा अनूठी कान्ति की बाला सजीली।
यह लता है वह निराली जो लदी नव पल्लवों से,
यामिनी को चीर आई दामिनी के अधर में से।
स्वर्ग के शुभ द्वार की है मंजु वन्दनवार न्यारी,
कल्पतरु के पत्र सूखे, छाल या उसकी निराली।
सुर विपिन की एक झांकी स्वर्ग की प्रतिक्षिप्त छाया,
या कमल-दल की खिंची है बादलों पर चित्र काया।
वीर नर के रक्त से यह भींग कर नवधूल लाई,
सुर सुवासी यह पिये मादक सुरा उन्मत्त आई।
शशिकला की कौमुदी रख दूसरा निज रूप आई,
जागरण सन्देश ले उस-पार से इस पार आई।
यह कली है जो खिलेगी सूर्य सा नव सुमन बन कर,
और जिसकी उस छटा पर विश्व होगा मुग्ध मधुकर।
मचलता जो घूमता है निशि दिवस हो बद्ध-परिकर,
फूल ले उन आंसुओं का रक्त रंजित चिर लाकर॥

चौधरी दुलाराम के प्रबन्ध से गुरुकुल प्रेस गुरुकुल कांगड़ी में मुद्रित तथा प्रकाशित।

॥ ओ३म् ॥

"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत" Reg. No. A. 2927

गुरुकुल

सम्पादक—साहित्यरत्न पं० हरिवंश वेदालङ्कार

एक प्रति का मूल्य -) [गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख-पत्र] वार्षिक मूल्य २॥)

वर्ष ३] गुरुकुल काङ्गड़ी, शुक्रवार २० फाल्गुन १९९५, ३ मार्च १९३९ [संख्या ४१

हिरण्यगर्भ की पूजा

[लेखक—श्री प० रामनाथ जी वेदालङ्कार]

हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम॥

आओ, हम उस सुख-स्वरूप देव की पूजा करें जो कि 'हिरण्यगर्भ' है, ये सब ज्योतिर्मय पदार्थ जिसके गर्भ में रहते हैं और जो उन सबको उत्पन्न करने वाला है।

वह हिरण्यगर्भ अनादि है और इसीलिये अनन्त है। वह न कभी उत्पन्न होता है और न मरता है। वह इस सृष्टि के पहले से ही है। जब इस सृष्टि-काव्य की भूमिका भी नहीं प्रारम्भ हुई थी उस समय भी वह था; जब यह संसार रचा जा रहा था तब भी वह अपनी असीम महिमा के साथ विद्यमान था और अब इस संसार का पालक, पोषक और नियामक भी वही हो रहा है और जिस समय यह सृष्टि प्रलयोन्मुख होकर प्रकृति के गर्भ में विलीन हो जायगी उस समय भी वह हिरण्यगर्भ वैसा ही अक्षय बना रहेगा। आने वाले आते और चले जाते हैं, ये नश्वर पदार्थ उत्पन्न होते हैं और विनष्ट हो जाते हैं, लेकिन वह सदा एकरस, जन्म-जरा-मरण व्याधि से रहित होकर अपने अलौकिक प्रकाश के साथ भासता ही रहता है। वह ज्योतिःप्रदीप कभी बुझता नहीं, उसकी ज्योति कभी न्यून नहीं होती। आओ, हम उसी हिरण्यगर्भ की पूजा करें, उसी सुखस्वरूप देव के प्रति हवि प्रदान करें!

यद्यपि वह हिरण्यगर्भ अज है, फिर भी हम सब प्रजाओं को उत्पन्न करके मानो उसका भी जन्म होता है, वह हम सबसे जाना जाता है, सब में प्रसिद्ध हो जाता है, इसलिये वह 'जात' है। भले ही लोग उसके अस्तित्व तक से इन्कार करते रहें, पर वह तो वैसा ही प्रसिद्ध है जैसे ये सूर्य, चांद और पृथ्वी। बल्कि उनसे भी अधिक प्रसिद्ध है। इस विशाल सृष्टि रचना में से पेड़ की एक छोटी सी पत्ती ही उसकी प्रसिद्धि को बताने के लिये पर्याप्त है। ऐसा वह परमेश्वर प्राणिमात्र का, जड़-चेतनमय इस सम्पूर्ण विश्व का मुख्य स्वामी, पति और पालक है। इन सब सांसारिक पतियों से ऊंचा पति है, पतियों का भी अधिपति है। आओ, हम उसी हिरण्यगर्भ की पूजा करें, उसी के प्रति, अपनी हवि देवें।

यह देखो, इस पृथ्वी लोक और उस द्युलोक को धारण करने वाला भी तो वही है। यह पृथ्वी जिस 'शेष' के फन पर या जिस 'वृषभ' के शृङ्ग की नोक पर टिकी हुई है वह 'शेष' और 'वृषभ' वह हिरण्यगर्भ ही है और यह द्युलोक का चक्र जिसकी अंगुली पर घूम रहा है वह भी वही हिरण्यगर्भ है। यदि इन लोक-लोकान्तरों का शासक वह न होता तो ये पृथ्वी आदि लोक कभी के चूर-चूर हो चुके होते और यह जलता हुआ द्युलोक कभी का ठण्डा पड़ चुका होता। तो आओ, हम उसी हिरण्यगर्भ की पूजा करें, उसी सुखमय देव की आराधना करें और उसकी हिरण्मयी मूर्ति से ज्योति लेकर अपने आपको भी हिरण्मय बना लेवें।

(हिरण्यगर्भः) हिरण्यगर्भ परमेश्वर (अग्रे समवर्त्तत) सृष्टि उत्पन्न होने के पहले से ही विद्यमान था (जातः) वह प्रसिद्ध परमेश्वर (भूतस्य एकः पतिः आसीत्) सब प्राणियों का एकमात्र पति था और है (स द्याम् उत इमां पृथिवीं दाधार) उसने ही द्युलोक और इस पृथ्वी लोक को धारण किया हुआ है (कस्मै देवाय हविषा विधेम) उस सुखमय देव की हम हवि द्वारा पूजा करें।

बन्दी बन्धु के प्रति—

—श्री सत्यभूषण 'योगी'

हो न बन्धु आंखों के आगे;
पर मैं तुम्हें निहार रहा हूं !

१

काली चारदिवारी के
अन्दर तुम बन्द पड़े हो भाई !
पीस रहे हो चक्की; घूम
रहे हैं चारों ओर सिपाही !!
स्वर्गिक ऊषा हास तुम्हारे
आनन पर प्रिय, झलक रहा है !
काली चारदिवारी का यह
कोना कोना चमक रहा है !!
देख तुम्हारे मानव को मैं
आंखों में साकार रहा हूं !
हो न बन्धु आंखों के आगे;
पर मैं तुम्हें निहार रहा हूं !!

(२)

करते तुम भोजन, रक्खे हैं
काले तसले में दो टिक्कड़;
किन्तु तुम्हारे कर में आ, क्या
जाने उन में जाता है पड़ !
लिए हाथ में अमृत, लज्जित,
लखते सुरगण भोज्य तुम्हारा !
"पी अमृत क्या किया हा, हमने"
यों उनने निज को धिक्कारा !!
मैं भी जबरन मुख में रख हा,
ग्रास विरस दो चार रहा हूं !
हो न बन्धु आंखों के आगे;
पर मैं तुम्हें निहार रहा हूं !!

(३)

सोने चले, जमीं पर, जर्जर
कम्बल पर, पर हो क्यों चिन्तित ?
सोच रहे हो—"होता कोई
बन्धु पास मेरा चिरपरिचित !
कुछ कहता, कुछ सुनता, होता
हलका दिल, कर प्यारी बातें !
जिसके साथ गुजारा करता
था मैं हँसते गाते रातें !!"
तुम न अकेले, माथे पर रख
हाथ तुम्हें कर प्यार रहा हूं !
हो न बन्धु के आंखों के आगे;
पर मैं तुम्हें निहार रहा हूं !!

'मत छेड़ो, कवि को गाने दो'

श्री 'सूर्य कुमार'

इसके दुख के उद्गार यही,
मानस के द्रवित विचार यही
टूटे फूटेगे शब्दों में, जग! जरा निकल तो
जाने दो ।
मत छेड़ो कवि को गाने दो ।

तुम क्या समझोगे इन सबको,
कुछ देखो भालो अपने को,
अपने में लग होकर कवि को, करुणा का—
आश्रय पाने दो ।
मत छेड़ो कवि को गाने दो

मतलब की है दुनिया सारी,
अपना मतलब, दुनियादारी,
मतलब के पुतलो, रहम करो दिल खोल इसे-
दिखलाने दो ।
मत छेड़ो कवि को गाने दो ।

अफ्रीका—यात्रा

[ले०—श्री के. ज्ञानी.]

गत वर्ष गर्मियों की बात है। हम कुछ मित्र लोग मद्रास के सुन्दर समुद्र के तीर पर बैठे सन्ध्या की प्रतीक्षा में थे। एक सिक्ख भाई भगवे वस्त्र पहिने बग़ल में दो—चार पुस्तक व कापियां दबाये हमारे पास पहुंचे। टूटी फूटी अंग्रजी में कहने लगे "हम ज्योतिष जानता हैं। कुण्डली बनाता है। हस्तरेखा बतलाता है। भूत-भविष्यत् सबका ज्ञान है। आप जो चाहें पूछें। हमारे पास बड़े बड़े आदमियों के सर्टिफिकेट हैं। आदि २."

हमारे एक मित्र ने हाथ आगे कर दिया। सिक्ख-ज्योतिषी ने कुछ गप-शप हांकी। फिर हमारी बारी आई। हमारा हाथ देखकर ज्योतिषी ने कहा "आप पूछिये जो चाहें।" क्या पूछें? सोचा। इतने में सामने एक जहाज़ रंगून जाता दिखाई दिया। पूछा "हमें समुद्र—यात्रा लिखी है या नहीं?" ज्योतिषी ने हाथ को इधर उधर घुमा-फिरा कर देखा। फिर अपनी कापी में से कुछ गिनतियां दोहराईं और बड़ी गम्भीरता से कहना शुरु किया "बाबू जी! आप बड़े आदमी बनने वाले हैं। आपके हाथ में सारी दुनिया की यात्रा लिखी है। आप अमरीका जाएंगे, जर्मनी जाएंगे, बड़ा नाम पैदा करेंगे।"

ज्योतिषी तो कुछ पैसे लेकर चला गया। परन्तु विचार रहा कि हममें से प्रत्येक बड़ा आदमी बन सकता है, यदि प्रयत्न करे। आखिर इस संसार में जितने महान् पुरुष सुनाई देते हैं उन सबकी जीवनियों से भी यही बात स्पष्ट होती है।

अस्तु, समुद्र-यात्रा का तो कई वर्षों से विचार हो रहा था। एक बार जापान जाने की तैयारी भी की, परन्तु किन्हीं प्रतिकूल अवस्थाओं से रुकना पड़ा। हां बम्बई से कराची—५०० मीलों की समुद्र-यात्रा कई बार कर डाली।

× × × ×

पाठक भलीभांति जानते होंगे कि गुरुकुल कांगड़ी की एक शाखा गुजरात प्रान्त में गुरुकुल-सूपा नाम से है। इसे आज से लगभग १५ वर्ष पूर्व श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी ने ही स्थापित किया था। पहिले इसके आचार्य श्री प० ईश्वरदत्त जी थे। फिर कुछ समय तक पण्डित वंशीधर जी रहे और अब पं० प्रियव्रत जी विद्यालङ्कार हैं। वर्तमान आचार्य जी के समय में गुरुकुल-सूपा ने पर्याप्त उन्नति की है। इस समय ब्रह्मचारियों की संख्या लगभग २०० है, जिन में ५० के करीब बालकों के पिता सुदूर अफ्रीका प्रदेश में रहते हैं।

कई वर्षों से अफ्रीका प्रवासी गुजरातियों का आग्रह था कि गुरुकुल सूपा की ओर से एक डेपुटेशन वहां भेजा जाय, जो अफ्रीका के समस्त विभागों में भ्रमण करके आर्य संस्कृति और विशेषतः गुरुकुल-शिक्षा का प्रचार करे।

अनेक विघ्न-बाधाओं को पार करके आखिर एक डेपुटेशन तैयार हुआ जिसमें हमें भी सम्मिलित होने की प्रेरणा की गई। हमें हठात् सिक्ख ज्योतिषी की "गप्प" याद आई। कुछ सन्देह तो हुआ। परन्तु कभी कभी घुणाक्षर न्याय से "गप्प" भी ठीक हो जाती है।

हमारा डेपुटेशन पहली फर्वरी १९३९ को बम्बई से चल पड़ा। डेपुटेशन में चारों स्नातक भाई हैं। नाम निम्न हैं:-स्नातक प्रियव्रत जी (आचार्य), केशवदेव जी ज्ञानी (लेखक), स्नातक शंकरदेव जी और स्नातक रणधीर जी। इस डेपुटेशन के नेता श्री आचार्य जी हैं।

बम्बई से अफ्रीका (मुम्बासा) लगभग २५०० मील है। जहाज़ में ९-१० दिन लगते हैं। बम्बई से बी. आई लाइन के चार जहाज इस मार्ग पर जाते हैं। केन्या, करांजा, तैरिया और तकलीवा। पहिले दो जहाज १०,००० टन वज़न के हैं और पिछले दो ८००० टन वजन के। ये जहाज़ बम्बई से प्रति १४ दिन के बाद रवाना होते हैं। हमारी यात्रा तकलीवा जहाज़ में है। यह १म फर्वरी को बम्बई से चला है और १० फर्वरी को मुम्बासा पहुँचेगा।

जहाज़ में रेलगाड़ी की तरह ३ श्रेणियां हैं। पहली, दूसरी और तीसरी। उनके किराये क्रमशः निम्न हैं—२७५), १७५) और ६७)। वापिसी टिकट लेने से पहली और दूसरी श्रेणियों के किराये पर १० फी सदी छूट होती है। ये किराये हमने बम्बई से मुम्बासा के लिखे हैं। डर्बन, जंज़ीबार, दारेसलाम आदि के किराये अधिक हैं।

हमारा डेपुटेशन दूसरी श्रेणी या Second Class में यात्रा कर रहा है। हम चारों को एक ही केबिन मिला है। रेल के डब्बे की तरह उसमें ऊपर नीचे चार सीटें हैं। समीप ही अंग्रेज़ी ढंग की टट्टियां और स्नानागार हैं। भोजन के लिये देसी अंग्रेज़ी दोनों का इन्तज़ाम है। हमारा भोजन गुजराती "विशी" से आता है। जहाज़ में दूध, दही नहीं मिलते। चाय काफी जो देते भी हैं उनमें डब्बे का दूध होता है—मानो मक्खन निकला हुआ।

समुद्र यात्रा की कुछ रुकावटें हैं जिन्हें ध्यान में रखना चाहिए। प्रथम पासपोर्ट के बिना किसी विदेशी स्थान में उतरना न मिलेगा। चेचक (Small Pox) का टीका करा कर उसका सर्टिफ़िकेट लेना भी अत्यावश्यक है। फिर भिन्न २ उपनिवेशों में नये आने वाले यात्रियों से Immigration Act के अनुसार उतरने से पहिले नकद जमानत ली जाती है। उदाहरणार्थ केन्या में २०० शिलिंग, जंज़ीबार में १५० शि०, टांगानीका में १०० पौंड या २००० शि० इत्यादि। इसका उद्देश्य यों कहा जाता है कि उक्त उपनिवेशों में बेकारों की संख्या न बढ़ने दी जाय।

समुद्र-यात्रा में प्रायः उल्टियां होती हैं यदि समुद्र अशान्त हो। बरसात में जहाज़ की मुसाफरी आफत है। सारा वक्त लेटे २ नींबू चूसते बीतता है और न कुछ खाना न पीना। परन्तु आजकल मौसम अच्छा है। समुद्र शान्त है। इसीलिये सब यात्री आनन्द मना रहे हैं।

जहाज़ पर एक बस्ती सी आबाद है। कई सौ स्त्री पुरुष होंगे। हमारे सैकण्ड क्लास में भी ६०-७० मुसाफिर हैं। धीरे २ बहुतों से परिचय होता जा रहा है। हमारे साथ एक बंगाली टोली है जो सेठ गोबिन्ददास जी की "आदर्श चित्र क० लिमिटिड" की ओर से एक जंगल-पिक्चर बनाने के लिये अफ्रीका जा रहा है। उसके डाइरैक्टर श्री हीरेन बास एक ऊंची कोटि के संगीत जानने वाले हैं। आप दिन में कई घण्टे पियानो पर बैठते हैं और उनके कारण प्रायः दिन भर संगीत का वायुमण्डल बना रहता है।

हमारे साथ एक वृद्ध फ्रैञ्च दम्पति हैं जिन्होंने अपनी आयु का बड़ा भाग भारत में ईसाइयत प्रचार में लगाया है। दोनों एक पुस्तक लिखने में व्यग्र हैं जिसका शीर्षक है 'Bible in India' (भारत में इञ्जील)

हमारे साथ कुछ शराबी भी हैं जो जहाज़ पर दिन-रात शराब के नशे में ही डूबे रहते हैं। पीना और पीकर अण्ड-बण्ड बकना ही उनका काम है। उनके अधिक पीने का एक कारण यह भी है कि जहाज़ में शराब बहुत सस्ती मिलती है।

दो गुजराती आर्य सज्जन भी हमारे पड़ोसी हैं। ये रोडेशिया में शिक्षण-कार्य के लिये जा रहे हैं।

सौभाग्य से म० गान्धी जी के सुपुत्र श्री मणिलाल गांधी जी का परिवार भी हमारे साथ के केबिन में है। उनकी पुत्री सीता और पुत्र अरुण, सब यात्रियों के स्नेह-पात्र हैं। बालक अरुण में म० गांधी जी की पर्याप्त प्रतिच्छाया है। वही छोटा कद, वही चौड़ा सिर, वही नासिकाग्र और वही स्त्रैण सुशीलता।

× × × ×

समुद्र में सूर्योदय और सूर्यास्त दर्शनीय हैं। वे

(शेष पृ० ६ पर)

गुरुकुल

२० फाल्गुन शुक्रवार १९९५

राष्ट्रपति का प्रश्न—

देश की राजनीतिक संस्थाओं में कांग्रेस का स्थान बहुत उच्च है। ८ प्रान्तों के मन्त्री उसके आधीन काम करते हैं। देश के सर्वश्रेष्ठ नेता उसका काम चला रहे हैं। लाखों व्यक्तियों ने उसके कहने पर नाना विध कष्ट सहे हैं। गुलामी के बन्धन से छुड़ा कर देश को सर्वश्रेष्ठ राष्ट्रों की श्रेणी में लाने का अतीत गौरव को पुनः प्राप्त कराने का इसका लक्ष्य है। देश के सभी वर्गों की सेवा करने का और सहायता देने का यह प्रयत्न करती रही। राजाओं पर सरकार के अनुचित दबाव का इसने विरोध किया है मुसलमानों के साथ प्रतिज्ञा भंग करने पर सरकार का विरोध किया है, हरिजनों को मनुष्योचित अधिकार दिलाये हैं, किसान मज़दूरों की सहायता की है, महिला आन्दोलन को बढ़ाया है, राष्ट्रीय एकता का प्रयत्न किया है। इसका सभापति राष्ट्रपति कहा जाता है तो उपयुक्त ही है।

कांग्रेस के नियमानुसार उचित शान्तिमय उपायों द्वारा पूर्ण स्वराज्य प्राप्ति के ध्येय को मानने वाला और चार आना वार्षिक चन्दा देने वाला इसका सदस्य हो हो सकता है। ऐसे सदस्य ३०-४० लाख के बीच में है। वे लोग वार्षिक अधिवेशन के लिये जो इस वर्ष त्रिपुरी में होना है-२-३ हजार के बीच प्रतिनिधि चुनते हैं। ये प्रतिनिधि वर्ष भर के लिये एक राष्ट्रपति का तथा अखिल भारतीय कांग्रेस कमिटि के सदस्यों का भी चुनाव किया करते हैं। इन सदस्यों की संख्या ३०० से ऊपर है। राष्ट्रपति ही वर्ष के लिये कार्य समिति बनाया करता है जिसमें, १५ सदस्य होते हैं। ये प्रायः विभिन्न प्रान्तों के प्रमुख नेता होते हैं। कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशन के अतिरिक्त वर्ष में ३-४ बार अखिल भारतीय कांग्रेस कमिटि के अधिवेशन होते हैं। वर्ष के बीच में उठी हुई समस्याओं पर इसके निर्णय अन्तिम माने जाते हैं। बीच २ में लगभग प्रतिमास कार्य समिति का अधिवेशन होता है, जिसमें नेता लोग आवश्यक कार्यों पर परस्पर परामर्श करके राष्ट्रपति को कार्य संचालन में सहायता देते हैं, नवीन समस्याओं पर विचार कर नवीन कार्य पद्धति सोचते हैं, और देश के संघटन को दृढ़ बनाते हैं। राष्ट्रपति इन विभिन्न संस्थाओं द्वारा स्वीकृत नीति को क्रियात्मक रूप देते हैं, उसके अनुकूल वायुमण्डल बनाते हैं तथा विभिन्न परिस्थितियों में उनको ध्यान में रख कर देश को मार्ग दिखाते हैं।

स्वभावतः कांग्रेस विभिन्न प्रश्नों पर राष्ट्रपति के मुख से बोलती है। उसका चुनाव देश के लिये अत्यन्त महत्वपूर्ण चुनाव है। इसवर्ष डा० पट्टाभि सीतारामय्या को हरा कर श्री सुभासचन्द्र बसु राष्ट्रपति चुने गये हैं। इसे महात्मा गांधी जी ने अपनी करारी हार मानी है। दृढ़ शब्दों में अपने अनुयायियों को कांग्रेस की नीति में मौलिक परिवर्तन किये जाने पर कांग्रेस से अलग होने तक की सलाह दी है। इस वक्तव्य के बाद से कांग्रेस में दक्षिण पक्षियों और वाम पक्षियों में फूट पड़ने की चर्चा सुनाई पड़ती रही है। विभिन्न नेताओं के वक्तव्य आते रहे हैं। अभी कार्यसमिति के १३ सदस्यों ने त्यागपत्र दे दिये हैं तथा राष्ट्रपति को कहा है कि परस्पर असमान विचारों को मानने वालों में कृत्रिम समझौते पर चलने वाली कार्यसमिति के स्थान पर जिसके सदस्य परस्पर अविश्वास करते हों, एक विचारों वाली कार्य समिति बनाओ, अपना कार्यक्रम स्पष्ट शब्दों में लेखबद्ध करके रखो अव्यवस्था पैदा करने वाले अंशों को प्रोत्साहित न कर कांग्रेस में विचारों की स्पष्टता लाओ। इस चुनाव का महत्व देश की राजनीतिक दिशा बदलने में स्पष्ट ही बहुत अधिक है। इस वर्ष इस चुनाव का इतना महत्व क्यों है?

गत वर्षों में प्रायः चुनाव से पहले कार्य समिति के प्रमुख सदस्य परस्पर तथा पूज्य गांधी जी के साथ विचार विनिमय करके किसी महान् त्यागी देशभक्त का नाम राष्ट्रपति पद के लिये प्रस्तुत किया करते थे। यदि अन्य किसी का नाम आता भी था तो वह अपना नाम वापिस ले लिया करता था। अतः एक ही नाम अवशिष्ट रहने से वह निर्विरोध चुन लिया जाता था। तथा वह भी राष्ट्रपति बनने के बाद उन्हीं प्रमुख नेताओं को कार्य समिति का सदस्य बना लेता था। इस प्रकार कांग्रेस के सूत्रधार गत २० वर्षों में एक नियत नीति चलाने वाले ही रहे हैं। राष्ट्रपति का चुनाव उसमें मौलिक भेद पैदा नहीं करता था।

गत ३ वर्षों में पहले पं० जवाहरलाल जी नेहरू और फिर श्री सुभासचन्द्र जी बसु जैसे उग्रविचारों वाले राष्ट्रपति थे। इस काल में नवीन शासनविधान के अनुसार प्रान्तों में धारा सभाओं के चुनाव हुए। गवर्मेंट से अपने अधिकार स्पष्ट कराने के बाद मन्त्री बनाये गये। प्रारम्भिक काल में मन्त्रियों के सामने बहुत सारी समस्यायें आईं, जिनमें राजनीतिक चालों में दक्ष ब्रिटिश सरकार ने उन्हें दबाने का प्रयत्न किया। परन्तु समय पर दृढ़ता से विरोध करने से प्रायः सभी बातों में ब्रिटिश सरकार को कांग्रेस के सामने दबना पड़ा। इस काल में मुख्य प्रश्न आन्तरिक कार्य के रहे हैं। नवीन शासन सुधारों का उपयोग कर जनता को अधिकतम लाभ कैसे पहुंचाया जाय, जिससे सदियों से गुलाम हो कर अज्ञान में सोया हुआ देश भी अतिशीघ्र प्रगति-शील तथा एकता में संघटित राष्ट्र बन जाय, अन्य प्रान्तों में भी कांग्रेस की नीति के अनुसार शासन करने वाले मन्त्रिमण्डल बन जावें, देश में साम्राज्य-वाद-विरोधी तथा सामाजिक और आर्थिक क्रान्ति को लाने में सहायक वायुमण्डल पैदा किया जावे, संसार की नवीनतम परिस्थितियों से जानकारी रखते हुए ब्रिटिश साम्राज्य की वर्तमान

कठिनाइयों को देख कर उनका लाभ उठावें अभी तक मिले हुए थोड़े से अधिकारों से ही सन्तुष्ट होकर केवल-मात्र पार्लमेन्टरी कार्यों में लगे रह कर कहीं स्वराज्य के असली ध्येय को न भूल जावें। गत वर्षों के उग्र विचारों वाले राष्ट्रपति इन कार्यों में सब परिस्थितियों को देखते हुए पर्याप्त सफल कहे जा सकते हैं।

इस वर्ष देश में कई नाजुक प्रश्न दिखाई देते हैं। गत वर्षों में सरकार ने संघ शासन के लिये आवश्यक तैयारियां की हैं रियासतों द्वारा उस पर उठाई आपत्तियों पर विचारा है; प्रान्तीय मन्त्रिमण्डलों के कार्यों द्वारा साम्प्रदायिक दंगों का नियन्त्रण कर अल्प संख्यकों का शासन में समुचित भाग देकर, साम्प्रदायिक समस्या को सुलझाने में क्रान्तिकारी आन्दोलन को नियन्त्रित करने में, मजदूर-मालिकों के, किसान-ज़मींदारों के, आसामी-साहूकारों के प्रश्नों में स्वशासन की सफलता देखा है; भविष्य में आनेवाली समस्याओं में अपने स्वार्थ अनुकूल व्यवस्थायें करने की दृष्टि से आर्थिक संघटन में कम्पनी और बीमा कानून बनाये हैं, सेना और रेल पर विचार किया है। ब्रिटेन के साथ व्यापारी सन्धि होने ही वाली है। रियासतों के साथ के सम्बन्ध को प्रान्तीय सरकारों के द्वारा न रख कर केन्द्रीय सरकार ने सीधा अपने हाथ में ले लिया है। इन सब प्रयत्नों द्वारा निर्वाचित संघाय-मन्त्रिमण्डल-शासन में क्रान्तिकारी परिवर्तन करने की मांग न कर सके इसकी तैयारी की है।

सरकार को आशा थी कि प्रान्तीय शासन लेने के बाद कांग्रेस में आन्तरिक फूट पड जायगी साम्यवादी पृथक् आन्दोलन करेंगे, सरकार वर्ग नई-नई पाबन्दियों से तंग आकर पृथक दल खड़ा करेगा, गवर्नरों के विशेषाधिकारों द्वारा या गोरे अधिकारियों के विरोध के द्वारा वहां पर आन्तरिक विरोधों द्वारा कांग्रेसी मन्त्रिमण्डल असफल होंगे, तथा जहां अभी तक मन्त्रिमण्डल नहीं बने हैं उन प्रान्तों में कई व्यक्ति मन्त्रि बनने के लालच में कांग्रेस छोड़कर अन्य दलों के साथ सम्मिलित मन्त्रि-मण्डल बनाने के लिये तैयार हो जावेंगे, परन्तु प्रथम चार मास तक जब तक कांग्रेस ने स्वीकृति न दी थी कोई भी कांग्रेसी मन्त्री बनने के लिये फूट कर, अलग न हुआ। बंगाल आसाम सिन्ध में सरकार के तथा अन्य मन्त्रियों के कई बार प्रयत्न करने पर भी अब तक फूट न पड़ी। कांग्रेसी प्रान्तों में मन्त्रिमण्डल छोड़ने पर दूसरे मन्त्रिमण्डल न बन सके। जमींदारों, साहूकारों, मिल-मालिकों आदि के सम्बन्ध में नये कानून बनने पर भी फूट न पड़ी। किसान सभायें साम्यवादी दल, युवक दल आदि भी संकट के समय इन के साथ मिलगये और कांग्रेस को नित्य नई शक्ति मिलती गई।

इस काल में जनता में अभूतपूर्व जागृति पैदा हुई है। गांवों में कांग्रेस का प्रचार पहुंचा है, जमींदारों, किसानों पुलिस कर्मचारियों का आतंक घटा है। आत्म विश्वास की प्रबल भावना जागी है।, ब्रिटिश भारतीय प्रजाओं में जागृति देखकर रियासती प्रजा में भी अपनी स्थिति सुधारने की इच्छा पैदा हुई है।

काठियावाड, राजपूताना, काश्मीर, उड़ीसा, हैदराबाद, मैसूर, भावनगर, बड़ौदा आदि रियासती केन्द्रों में आन्दोलन उठ रहे हैं। स्थानीय कार्य-कर्ताओं ने प्रजा-मण्डल बना कर प्रयत्न शुरू किया है। गान्धी जी आदि नेताओं ने मार्ग दिखाया, आन्दोलन बढ़ता गया। जनता की जागृति विभिन्न क्षेत्रों में दीख रही है। साम्यवाद का प्रचार हो, इन के द्वारा राष्ट्रिय एकता में बाधा पड़ने की, भारत को सदियों से नाश करने वाली फूट के बढ़ने की सम्भावनायें भी दीखने लगी हैं, कांग्रेस के कई व्यक्ति इसमें वर्तमान नेताओं से असन्तुष्ट होते जा रहे थे।

कांग्रेस भी संघशासन के सम्बन्ध में ब्रिटिश सरकार से अन्तिम लड़ाई के लिये तैयार हो रही है। शराबबन्दी आदि से हुए व्ययों के कारण, मालगुजारी अकाल प्रकोप आदि में छूट के कारण आय में बहुत कमी हो जायगी, ग्राम सुधार, निरक्षरता निवारण, चिकित्सा प्रबन्ध, व्यावसायिक उन्नति आदि रचनात्मक कामों के लिये व्यय की ज़रूरत बहुत है, सभी प्रान्तों में नये २ कर लग रहे हैं। धनियों पर शहरों में कर बढ़े हैं। तथापि रुपयों की सख्त ज़रूरत है, भारतमन्त्री सैनिक व्यय में कमी के लिये, तथा उच्च अधिकारियों की बड़ी २ तनख्वाहों में कमी के लिये तैयार नहीं। सीमाप्रान्त में आये-दिन होने वाले हमलों को दबाने में प्रान्तीय सरकार के सम्मत्यनुसार न चल कर सैनिक दमन द्वारा शान्ति रक्षा में असमर्थ है। सीमाप्रान्त के निचले अधिकारी मन्त्रियों की आज्ञायें नहीं पालते। रियासतों में प्रजा के आन्दोलन को कुचलने के लिये किये गये अत्याचारों से पीड़ित प्रजा भाग भाग कर निकटवर्ती प्रान्तों में वैसे ही आ रही है जैसे एक स्थान पर महामारी के फैलने पर वहां के निवासी अन्यत्र चले जाते हैं। दक्षिण और पूर्व अफ्रिका में बसे हुए भारतीयों के अधिकारों की रक्षा नहीं है। विदेशी व्यवसायियों के सम्बन्ध में भी मतभेद है। इस प्रकार प्रायः आर्थिक, सैनिक, विदेशी और रियासती प्रश्नों में केन्द्रीय और प्रान्तीय सरकारों में शनैः शनैः पारस्परिक विरोध सामने आता जा रहा है। सरकार के संघशासन ज़बर्दस्ती थोपने के प्रयत्न के न होने पर भी इस वर्ष से अनुत्तरदायी केन्द्र और उत्तरदायी प्रान्तों में मतभेद प्रबल होता जायगा। गुलामी के काल में पैदा हुई विभिन्न गंदगियों को एक एक करके दूर करने के प्रयत्न में अन्तिम बाधा दूर करने का समय नज़दीक आ रहा है।

इस संघर्ष के समय स्वभावतः कांग्रेस में आन्तरिक फूट न हो यह आवश्यक था। स्वतंत्रता की सेना में अन्दर २ पार्टियां न हों, पूर्ण स्वराज्य के लक्ष्य पर पहुंचने तक, सब बाधाओं के हटने तक सम्पूर्ण देश को कांग्रेस के झण्डे के नीचे आना चाहिये। अनुशासन पालन करना चाहिये, झूठ सच बोलकर अनुचित तरीकों से पद

प्राप्त करने के लालच में किसी कार्य-कर्ता को न फसाना चाहिये। अधिकतम कार्य करने के लिये ही किसी को चुनाव में खड़ा होना चाहिये या मन्त्री आदि बनना चाहिये। तथा जनता द्वारा चुनाव की मांग होने पर ही सेनापति की आज्ञा पालन के लिये खड़ा होना चाहिये। कांग्रेस को शासन करने वाली एक पार्टी न बना कर सम्पूर्ण देश का दर्पण बनाना चाहिये। कमज़ोरों को सहायता देनी चाहिये, समाज में गुंडों को भी सुधार कर उनकी शक्ति को व्यवस्थित दिशा में लाना चाहिये। दमन द्वारा उनकी आत्मा को कुचलना ठीक नहीं। जनता के स्वाभाविक बल को प्रोत्साहित करना चाहिये। श्रेष्ठ अंगों का जनता का नेतृत्व अपने हाथ में लेना चाहिये। प्रान्तीय अधिकार प्राप्ति के बाद स्वेच्छाचारिता में न चल कर, दंगे आदि न करके चुनावों में गंदगी आदि न लाकर, प्रबल विरोधी ब्रिटिश साम्राज्यवाद के साथ लड़ने के लिये देश को और कांग्रेस को प्रबल प्रयत्न करना चाहिये। इसका संघटन बलवान होना चाहिये। स्वभावतः अनुशासन पालन में कार्यों पर कठोरता भी होगी, उनमें असंतोष भी होगा। प्रजातन्त्र होते हुए भी नियन्त्रण हो।

इस वर्ष के राष्ट्रपति के चुनाव के समय ये सभी बातें सामने आईं। संघशासन के विरुद्ध कांग्रेस आन्दोलन करे या जैसे जैसे राष्ट्रीय पुनर्निर्माण के कार्य में कठिनाइयां आती जावें उन पर दृढ़ता से ब्रिटिश सरकार का विरोध करके एक-एक को दूर कराते जावें। कांग्रेस में प्रजातन्त्रात्मक पद्धति के अनुसार चुनावों के संघर्ष हों या सब विचारों वाले समझौते से काम करें तथा उस समझौते के पालन में नियन्त्रण को बनाये रखें। और यथा सम्भव सभी राष्ट्रीय कार्यक्रम को पूरा करने का प्रयत्न करते हुए बहुमति वालों को कार्य करने में तथा जब तक मौलिक विषयों में मतभेद न हो कार्यकर्ताओं के मार्ग में निरन्तर बाधायें न पैदा करते रहें। इसी प्रकार तामिल तेलुगु में, मराठी-हिन्दी में, बंगाली-बिहारी में पैदा होते हुए मतभेदों को अनावश्यक महत्व दे कर राष्ट्रीय एकता में बाधा डाली जाय या नहीं। देश में जमींदार, मिल-मालिक, राजा आदि अंगों पर राष्ट्रिय एकता की परवाह न कर जिहाद बोल दिया जाय या जनता की जागृति का और राजनैतिक शक्ति का उपयोग कर शनैः शनैः उनकी खराबियां दूर की जाय। उग्रवादी नेता प्रथम मत को मानते हैं तथा गांधी जी तथा उनके अनुयायी दूसरे को। यद्यपि दोनों का लक्ष्य एक है, दोनों ने देश के लिये बहुत त्याग किया है पर दोनों को कार्य-पद्धति पर विशेषतः कितने अंश तक विरोधी को दबाना चाहिये, इस पर मतभेद है। चुनाव में श्री सुभासचन्द्र जीते हैं।

गांधी जी के पीछे कार्य समिति के बारह सदस्यों ने तथा जवाहरलाल जी के पृथक् वक्तव्य द्वारा उनके कार्य की आलोचना करते हुए भी और यथासम्भव सामूहिक हित में सहायता का आश्वासन देते हुए भी स्वयं उत्तरदायित्व लेने से या राष्ट्रपति के काम में बाधा डालने से इनकार की है। श्री सुभास भी राष्ट्रिय एकता के लिये तथा भारत के सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति गांधी जी का विश्वास प्राप्त करने के लिये अपना निश्चय कर चुके हैं। कांग्रेस के आधारभूत सिद्धान्तों में तथा वर्तमान कार्य-क्रम में भेद न करते हुए भी उसने संघ शासन के विरोध का, प्रजातन्त्र की प्रथा का समर्थन किया है। और संभावना है कि रियासतों के आन्दोलन के नेतृत्व के लिये गांधी जी से प्रार्थना करेंगे। देश का यह सौभाग्य है कि इस संकट के साथ भी आधारभूत सिद्धान्तों में सभी दल सहमत हैं। तथा यथासम्भव काम जारी रखने के लिये तैयार हैं। उग्रवादी नेताओं पर भी उत्तरदायित्व आने से आशा है वे अनावश्यक विरोध की प्रवृत्ति छोड़ कर कार्यकर्ताओं की कठिनता को अनुभव करेंगे।

गुरुकुल सूपा का उत्सव

गुरुकुल सूपा का वार्षिकोत्सव ४, ५, ६ मार्च शनि रवि और सोमवार को गुरुकुल भूमि में होगा। जिसमें देश के मान्य नेता साधु-सन्यासीगण तथा अन्य मान्य महानुभाव पधारेंगे।

श्री पं० देशबन्धु जी विद्यालंकार आधुनिक 'अर्जुन' अपने धनुर्विद्या के चामत्कारिक प्रयोग करेंगे। श्री पं० विनयचन्द्र पूना प्राचीन संगीत-कला का दिग्दर्शन करायेंगे। गुरुकुल के ब्रह्मचारी शारीरिक व्यायाम के प्रयोग तथा अभिनय आदि का प्रदर्शन करेंगे। बीच २ में रोहतक वाले भजनीक श्री छज्जूराम जी प्रेमी अपने सुमधुर भजनों से जनता को सन्तुष्ट करेंगे।

दयानन्द उपदेशक विद्यालय में नया प्रवेश—

दयानन्द उपदेशक विद्यालय, गुरुदत्त भवन लाहौर में नये विद्यार्थियों का प्रवेश १ वैशाख १९९६ तदनुसार १३ अप्रैल १९३९ को होगा। जो सज्जन आर्यसमाज के उपदेशक बनना चाहें उन्हें अभी से विद्यालय के आचार्य से छपे हुए प्रवेश-पत्र मंगाकर स्वयं भर शीघ्र भेज देने चाहिएं। प्रार्थी की आयु १८ वर्ष से अधिक होनी चाहिये और योग्यता संस्कृत में प्राज्ञ के बराबर अथवा एण्ट्रेंस पास होना चाहिए। खाली एण्ट्रेंस पास में संस्कृत, फारसी, या अरबी जानने वाले को विशेषता दी जायगी। योग्य प्रार्थियों को विद्यालय से भरण, पोषण की सहायता भी दी जायगी।

प्रियव्रत वेद वाचस्पति
आचार्य दयानन्द उपदेशक विद्यालय लाहौर।

(देखिये पृष्ठ ३ का शेष)

प्रकृति के अनुपम दृश्य हैं। मुझे तो—जबसे जहाज़ में चढ़ा हूं—एक नशा सा है। नीचे विशाल समुद्र और ऊपर अनन्त आकाश। इन दो महान् पाटों के बीच में मानो मेरी लघुता चकनाचूर हो गई है। हृदय उड़ना चाहता है। उसमें विचित्र भावनाएं उठती प्रतीत होती हैं। एक प्रसुप्त ज्वालामुखी है जो धीरे धीरे अन्दर ही अन्दर पृथ्वी की स्तरों को हिला रहा है। ज़रूर एक दिन फटेगा।

स्वास्थ्य समाचार

राजकुमार प्रथम श्रेणी कास, अर्जुनदेव एकादश श्रेणी उदरशूल, विद्यासागर एकादश श्रेणी चोट, रामचन्द्र प्रथम श्रेणी विषम ज्वर, शेष सब ब्रह्मचारी स्वस्थ हैं।

गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ का सफल वार्षिकोत्सव

गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ का २३ वां वार्षिकोत्सव बड़ी धूम-धाम से समाप्त हो गया। इन्द्र देव ने भी उत्सव में विघ्न डालना अनुचित समझ कर तीन दिन के लिए वर्षा रोक ली। कुछ दिनों के लिए यह एकान्त नीरव पर्वत प्रदेश भी बैण्ड की मधुर-ध्वनि, मोटरों की भोंपों, वैदिक धर्म की जयकारों तथा दर्शकों के साधुवादों से मुखरित हो उठा। नई चहल-पहल दिखाई देने लगी। देहली की आर्यजनता तथा ग्रामीण भाइयों का कुलभूमि ने हृदय से स्वागत किया। श्री स्वामी सर्वदानन्द जी महाराज तथा श्री स्वामी ब्रह्मानन्द जी के अमृतमय उपदेशों के अतिरिक्त हैदराबाद सत्याग्रह सम्मेलन तथा वाद-विवाद सम्मेलन से जनता ने पर्याप्त लाभ उठाया। प्रथम सम्मेलन के सभापति पद से, भाषण देते हुए श्री युत अणे महोदय ने आर्यसमाज के सत्याग्रह को उचित एवं नीतियुक्त बताते हुए हिन्दु जनता से इस में सम्मिलित होने के लिए अपील की। इसके बाद सम्मेलन ने निम्न ५ प्रस्ताव स्वीकृत किये —

(१) यह सम्मेलन आर्यसमाज के मान्य नेता श्री नारायण स्वामी जी महाराज को धीरतापूर्ण पथ प्रदर्शन पर बधाई देता है। और उन पर निजाम सरकार द्वारा की गई सख्तियों की तीव्र निन्दा करता है।

(२) यह सम्मेलन हैदराबाद रियासत में आर्यसमाज पर लगाये धार्मिक प्रतिबन्धों को अन्याय युक्त तथा पक्षपात पूर्ण समझता है। इस लिये आर्यकानफ्रेंस शोलापुर में पास हुए प्रस्तावों का समर्थन करता हुआ हिन्दू जनता, विशेषतः आर्य भाइयों से अनुरोध करता है कि वह इस यज्ञ में तन मन-धन से आहुति दें।

(३) यह सम्मेलन उन वीर सत्याग्रही आर्यभाइयों के कार्य की सराहना करता है, जो निजाम सरकार द्वारा अनेक अमानुषिक अत्याचारों को वीरता-पूर्वक सहन करते हुए निजाम हैदराबाद में नागरिक तथा धार्मिक स्वाधीनता के लिये जेल में कष्ट सहन कर रहे हैं।

(४) यह सम्मेलन गुरुकुल कांगड़ी के उन ब्रह्मचारियों को बधाई देता है जिन्होंने आर्यसमाज के शिक्षणालयों को हैदराबाद में स्वाधीनता के संग्राम में भाग लेने के लिये पथप्रदर्शन करते हुए अपने विद्यार्थी जीवन का बलिदान कर बन्दीगृह का स्वागत किया है।

(५) इस सम्मेलन की सम्मति में आर्यसमाज के सत्याग्रह को साम्प्रदायिक समझना सर्वथा भूल है। यह विशुद्ध धार्मिक आन्दोलन है। इस लिये यह सम्मेलन उन लोगों की तीव्र निन्दा करता है जो इस आन्दोलन को असामयिक कह कर सामान्यतया हिन्दुओं तथा विशेषतः आर्यजनता को इस आन्दोलन से पृथक् रहने का उपदेश करते हैं।

श्री अणे के उपरान्त अन्य वक्ताओं ने भिन्न २ प्रस्तावों पर भाषण दिये। दूसरे सम्मेलन के सभापति श्री युत सत्यभूति जी एम एल ए थे। जिसमें "रियासतों में जिम्मेवार हकूमत फैडरेशन को कामयाब बनाने में एक मुख्य साधन है।"

इस विषय पर वाद विवाद हुआ। इस में श्री युत गेंडासिंह एम. एल. ए., श्री युत बद्रीदत्त पाण्डे एम. एल. ए. तथा प्रो० इन्द्रसेन जी पी एच डी प्रभृति वक्ताओं ने पक्ष विपक्ष में भाषण दिये। उक्त दोनों सभापति महोदयों ने गुरुकुल तथा आर्यसमाज के कार्य की प्रशंसा की। इन दो सम्मेलनों के अतिरिक्त ग्राम-सुधार सम्मेलन की आयोजना की गई। जिस में ग्रामोपयोगी प्रस्तावों द्वारा वक्ताओं ने अपने विचार प्रकट किये।

इनके साथ जनता के मनोरञ्जनार्थ संगीत सम्मेलन, कवि सम्मेलन, हाकीटूर्नामैन्ट तथा खेलों का आयोजन भी किया गया था। पायोनियर एण्ड को० देहली की ओर से निर्धारित विजयोपहार श्री युत सत्यमूर्ति जी ने अपने कर कमलों से विजयीदल— गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ 'ए' को — प्रदान किया। शान्तिस्वरूप तथा जयदेव दशम श्रेणी के जिमनास्टिक के व्यायामों को जनता ने बहुत पसन्द किया। अन्त में विजयी पहलवानों को पारितोषिक वितीर्ण करने के बाद यह उत्सव बड़ी धूमधाम से समाप्त हुआ। कुल चार हज़ार के लगभग दान एकत्र हुआ। सभी दृष्टियों से यह उत्सव अत्यन्त सफल हुआ।

खेलों का विशेष प्रोग्राम—

खेलों के विशेष प्रोग्राम के कारण उत्सव की अच्छी श्री वृद्धि हुई। हाकी का पहिला मैच गुरुकुल-इन्द्रप्रस्थ-'बी' टीम तथा देहली स्पोर्टस-क्लब का हुआ। पहले १० मिनटों में गुरुकुल के नए खिलाड़ी दबे रहे, पर शीघ्र ही उन्होंने प्रतिद्वन्दी दल का दाव-पेंच समझ लिया और खेल सँभाल ली। ब्रह्मचारियों पर प्रारम्भ में दो गोल चढ़ गये थे वे खेल के अन्त तक उतर गए। दूसरे दिन को खेल में इन छोटे २ खिलाड़ियों ने अच्छा हाथ दिखलाया और विरोधी- पार्टी पर दो गोल किये। समय की समाप्ति पर ब्र० सत्यपाल, अमरनाथ, तथा विष्णुदत्त की खेल प्रशंसित हुई।

गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ 'ए' टी. का सान्मुख्य—उत्सव के तीसरे दिन देहली के सर्वोत्तम चुने हुए खिलाड़ियों से गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ 'ए' टीम का मैच हुआ। सान्मुख्य में मुकाबला बड़ा ज़बरदस्त था। गेंद बड़ी शीघ्रता से पक्ष-परिवर्तन करती रही। ऐसी अवस्था में किसी दल की भी विजय सन्दिग्ध थी। अन्त में गुरुकुल-दल एक गोल से विजयी हुआ। इस खेल में ब्र० महेन्द्र, केवल कृष्ण तथा हरिवंश ने अपने उस्तादी के हाथ दिखलाये।

वालीबाल का टूर्नामेन्ट भी अत्यन्त सफल रहा।

क्रीड़ा-मन्त्री

चौधरी दुलाराम के प्रबन्ध से गुरुकुल प्रेस गुरुकुल कांगड़ी में मुद्रित तथा प्रकाशित।

* ओ३म् *

"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत" Reg. No. A. 2927

गुरुकुल

सम्पादक—साहित्यरत्न पं० हरिवंश वेदालङ्कार

एक प्रति का मूल्य -) [गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख-पत्र] वार्षिक मूल्य २॥)

वर्ष ३] गुरुकुल काङ्गड़ी, शुक्रवार २७ फाल्गुन १९९५; १० मार्च १९३९ [संख्या ४२

द—द—द

(ले० श्री प० रामनाथ जी वेदालंकार)

एकबार देव, मनुष्य और असुर प्रजापति के पास उपदेश ग्रहण करने गये।

देव विनम्रभाव से श्रद्धायुत होकर गुरु के उपसन्न होकर बोले, भगवन् उपदेश कीजिये। प्रजापति ने इतना ही कहा— 'द' और फिर पूछा, क्यों समझ गये? हां समझ गये, देवों ने कहा, आप ने कहा है— 'दाम्यत'— अपनी इन्द्रियों का दमन करो।

मनुष्य भी करबद्ध होकर आगे बढ़े और उपदेश की प्रार्थना की। प्रजापति ने कहा—'द' और फिर प्रश्न किया, क्या तुम समझे? हाँ समझ गये, मनुष्यों ने कहा, आपने कहा है— 'दत्त' दान किया करो।

अब असुरों की बारी आई। वे भी समित्पाणि होकर आचार्य प्रजापति की शरण में गये और कहा, गुरो! उपदेश से कृतार्थ कीजिये। प्रजापति ने फिर तीसरी बार वही कहा— 'द' और पूछा, क्य तुम समझे? 'हां समझ गये' असुरों ने उत्तर दिया, आपने कहा है— 'दयध्वम्'— दया किया करो।

ठीक है देखो, अन्तरिक्ष में विद्युत् का यह 'द—द—द' शब्द हो रहा है। इसका यही संदेश है— 'दाम्यत-दत्त-दयध्वम्'।

यह उपनिषद् की एक कहानी है। असुर, मनुष्य, देव ये क्रमशः एक दूसरे से ऊंचे हैं। समाज में कुछ लोग असुर-कोटि के, कुछ मनुष्य-कोटि के और कुछ देव-कोटि के होते हैं। असुर कठोर दिल वाले और क्रूर स्वभाव के होते हैं, उनके अन्दर दया का अंश नहीं या बहुत कम होता है। वे स्वार्थ के लिये और कभी तो बिना प्रयोजन ही दूसरों को हानि पहुंचाने और दुःख देने में आनन्द पाते हैं। उनको 'दया' ही की आवश्यकता है। इस लिये 'द' अक्षर से असुरों ने समझा कि प्रजापति उन्हें 'दया' का उपदेश कर रहे हैं।

मनुष्यों में दया का गुण स्वाभाविक होता है। इसी लिये जिसके दिल में दया नहीं होती उसे कहते हैं, 'यह मनुष्य नहीं, राक्षस है' उन्हें दया के उपदेश की आवश्यकता नहीं थी। इसी से उन्होंने 'द' से 'दयध्वम्' नहीं समझा। मनुष्य-कोटि वालों को 'दान' के उपदेश की आवश्यकता होती है। उनके अन्दर कृपणता और अपने लिये संचय करके रखने की प्रवृत्ति प्रायः पाई जाती है। इस लिये उन्होंने जाना कि प्रजापति ने 'द' से उन्हें दान करने का उपदेश किया है।

देव मनुष्यों से और ऊंचे होते हैं। उनमें दया होती है और दान की भावना भी होती है ('देवो दानाद्वा' निरुक्त.) स्वार्थ की मात्रा उनके अन्दर नहीं होती। दया से प्रेरित होकर परोपकार करना ही उनके जीवन का लक्ष्य होता है। इसलिये उनका दया और दान का उपदेश अनावश्यक था। उनके लिये 'दमन' का उपदेश ही उचित था। दमन अर्थात् इन्द्रिय-जय, देवों के लिये भी प्रयत्न-साध्य है। इसीलिये कहा है — 'बलवानिन्द्रियग्रामो विद्वांसमपि कर्षति'। बस, देवों को जिस उपदेश की आवश्यकता थी वही उन्होंने 'द' से समझ लिया— 'दाम्यत' इति। इस प्रकार देव, मनुष्य, असुर तीनों को प्रजापति ने एक ही अक्षर 'द' का उपदेश किया और तीनों ने अपने-अपने अनुकूल उसका अभिप्राय हृदयङ्गम कर लिया।

संक्षेप में, यह कहानी बताती है— जो लोग असुर-कोटि के हैं वे विद्युत् का इस 'द—द—द' गड़गड़ाहट में 'दया' का सन्देश सुनें; मनुष्य-कोटि के लोग इससे 'दान' की शिक्षा लें और जो देव-कोटि के हैं वे इसमें 'दमन' की दिव्य आवाज़ को सुनें। इस प्रकार प्रत्येक मनुष्य, यदि चाहे तो, इस मूक प्रकृति से भी अपने उपयुक्त सन्देश ले सकता है।

हैदराबाद–आन्दोलन

(ले० श्री एम. एम. शुभे)

हैदराबाद में आर्य समाज द्वारा संचालित सत्याग्रह-आन्दोलन न्याय्य तथा उचित है। क्योंकि जितने प्रतिबन्ध, हैदराबाद में आर्यसमाजियों पर लगाये गए हैं, उनके होते हुए किसी भी जाति का जीवित जागृत रहना असम्भव है। वहां पर आर्य समाजियों को हवन-कुण्ड बनाने, झण्डा लगाने तथा वैदिक धर्म का प्रचार करने की आज्ञा नहीं दी जाती है। इसके विपरीत निज़ाम सरकार स्वयं कैदियों अछूतों तथा अन्य जातियों को नानाविध प्रलोभन देकर इसलाम में जबरदस्ती दीक्षित करती है। हिन्दू जनता इसका प्रतीकार करने में अपने आप को असमर्थ अनुभव करती है। आर्य समाज ही एक ऐसी संस्था है, जो अन्य धर्मावलम्बियों को भी शुद्ध करके पुनः अपने धर्म में दीक्षित करती है। इस लिए निजाम सरकार अनुचित उपायों द्वारा हिन्दू जनता को इसलाम में जबरदस्ती दीक्षित करने के अपने कार्य में आर्य समाज को बाधक समझती है। वस्तुतः आर्य समाज सरकार के कार्य में अनुचित बाधा नहीं डालना चाहता। वह केवल वैदिक धर्म के तत्वज्ञान के प्रसार में वही समानाधिकार चाहता है, जो वहां मुसलमानों को प्राप्त है। साथ ही यह भी निवेदन करना चाहता है कि हिन्दू जनता पर अनुचित दबाव व अत्याचार के बल पर धर्म परिवर्तन की नीति को त्याग दें। अबतक आर्य समाज शान्ति पूर्वक उचित उपायों द्वारा अपने वैदिक धर्म के प्रचार का कार्य करता रहा है। परन्तु निजाम सरकार उसके इस कार्य को भी नापसन्द करती है। आर्य समाज के नेताओं ने इस झगड़े को शान्ति पूर्वक सुलझाने का निरन्तर प्रयत्न किया और महात्मा गान्धी जी के परामर्श के अनुसार अपने सत्याग्रह के आन्दोलन को स्थगित करके वायसराय तथा निजाम सरकार के साथ पत्र व्यवहार भी किया। परन्तु उसका कुछ भी परिणाम न निकला। परिणामतः आर्य समाज को महात्मा नारायण स्वामी जी महाराज के नेतृत्व में सत्याग्रह आन्दोलन जारी करना पड़ा। परन्तु आर्य समाज को यह समझ लेना चाहिये कि उसका संघर्ष राजकोट या लिम्बड़ी जैसी छोटी मोटी रियासत से नहीं, प्रत्युत भारतवर्ष की एक सब से बड़ी रियासत से है जिसकी सालाना आमदनी १० करोड़ है और जहां का नवाब संसार के धनियों में से एक है। जिस की सेना और पुलिस भी पर्याप्त है। निजाम सरकार सभी उपायों से आर्य समाज के आन्दोलन को कुचलने की कोशिश करेगी। यह भी स्पष्ट है कि ब्रिटिश सरकार भी मुस्लिम जनता की नाराज़गी से भयभीत होकर आर्य समाज के कार्य में सहायता देने का साहस न करेगी।

परन्तु स्वतन्त्रता एक, अमूल्य वस्तु है और इस के लिए पूर्ण बलिदान की आवश्यकता है। मुझे निश्चय है कि आर्य समाज धर्म की वेदी पर अपनी आहुति देना जानता है। पंजाब में भ्रमण करते हुए आर्य जनता के उत्साह को देखकर मैं इस परिणाम पर पहुंचा हूँ कि आर्य समाज इस अहिंसा-सत्याग्रह के लिये पूरा तैयार है। श्री महात्मा नारायण स्वामी जी का कैद होना एक प्रकार से वैदिकधर्म को कारागार में बाँधना है। क्योंकि वह तो उसी के निमित्त बन्दी किये गये हैं। मेरी सम्मति में तो धार्मिक स्वाधीनता प्राप्त होने पर ही अन्य स्वाधीनताएं उपलब्ध हो सकती हैं। धार्मिक स्वाधीनता उस नागरिक स्वाधीनता का मुख्य अङ्ग है, जिस के लिए कांग्रेस आन्दोलन कर रही है। इसलिए इस धार्मिक-सत्याग्रह-आन्दोलन का, कांग्रेस सञ्चालित नागरिक स्वाधीनता पर बहुत अधिक अनुकूल प्रभाव पड़ेगा। मुझे उन लोगों का तर्क समझ नहीं आता जो इस आन्दोलन को साम्प्रदायिक कह कर इसमें सहयोग देने में संकोच करते हैं।

हैदराबाद रियासत में स्वाधीनता संग्राम के लिए मुसलमान कभी भी साथ नहीं दे सकते। वे लोग वहां पर स्वाधीन तथा निरकुंश हैं और अपने आप को शासक अनुभव करते हैं। वहां केवल हिन्दू ही हैं जो स्वाधीनता संग्राम के सैनिक हो सकते हैं। इसलिये यह निश्चित है कि जब कभी यह स्वाधीनता का संग्राम जारी किया जायगा उस समय निजाम सरकार इस पर साम्प्रदायिकता का दोषारोपण कर मुसलिम जनता को इसके विरुद्ध खड़ा करेगी। अतएव यदि कांग्रेस केवल इसी डर से अपने स्वाधीनता संग्राम को स्थगित कर देगी तो वह चाहे अन्य रियासतों में सफल हो जावे, परन्तु हैदराबाद में कभी नहीं हो सकती। इस लिये कांग्रेस को इस मिथ्याभय के वशीभूत होकर अपने कर्तव्य से विमुख नहीं होना चाहिये। मुझे निश्चय है कि हम आन्दोलन में अवश्य सफल होंगे क्योंकि हमारी लड़ाई न्याय तथा सत्य के लिये लड़ी जा रही है। यदि हमने सत्य और अहिंसा के शास्त्र का परित्याग न किया तो कोई भी शक्ति हमारे इस कार्य में बाधक नहीं हो सकती।

सैनिक बनो

[ले०— श्री सच्चिदानन्द]

किस लिये? यदि इसका उत्तर एक वाक्य में दिया जाय तो इस प्रकार दिया जा सकता है कि 'अपनी प्रतिरोधी शक्तियों पर विजय प्राप्त करने के लिये'।

उत्पत्ति से लेकर मरण-पर्यन्त हमको सैनिक बनने की आवश्यकता है। क्यों? जीवन के मार्ग पर डट कर खड़ी हुई विरोधी शक्तियां हमसे मुकाबला करने को प्रतिक्षण तैय्यार रहती हैं। उनको दबाना, अपने वश में करना, उनको अपने अनुसार चलाना और उन पर विजय प्राप्त करना प्रत्येक सैनिक का कर्तव्य है।

ये प्रतिरोधी शक्तियां कई प्रकार की होती हैं। उनमें से मुख्य २ तीन-चार पर ही प्रकाश डालने की कोशिश की जायगी। उनमें से प्रथम यह है:-

१:- मानव के शरीर से सम्बंध रखने वाली बाहर और अन्दर की प्रतिरोधी शक्ति। मान लीजिये एक आदमी को मक्खन बड़ा अच्छा लगता है। तो किसी दिन बाजार में

घूमता हुआ ऐसी जगह चला जाता है जहां पर मक्खन की बहुत सी टिकियां बनी हुई थाल में चमकती हुई पड़ी हैं। उस दुकान से दुकानदार अपने किसी विशेष कार्य से दुकान को खुली हुई छोड़ कर चला जाता है। इस समय दुकान पर कोई नहीं है। मन ने हाथ को कहा कि तू उस माखन की टिकिया को उठाने के लिये जल्दी से आगे बढ़। आखों ने इधर उधर झाँकी मारी और देखा कि कोई नहीं है। आंख ने हाथ को कहा कि कोई डर की बात नहीं है। तुम निःशंक आगे बढ़ कर झट पट माखन की टिकिया उठाओ और मुंह में दे लो। हाथ साहस कर आगे बढ़ा और माखन की टिकिया को ज्योंही उठाया, त्योंही हृदय धड़कने लगा और हाथ कांपने लगा। मनमें भय शंका उत्पन्न होने लगी और अन्दर से इच्छा उत्पन्न हुई कि माखन की टिकियाको वहीं रख दो। परन्तु मनने कहा कि खा भी लो, कौन देखता है। इस प्रकार प्रतिरोधी शक्तियां आपस में विवाद करती हैं। यदि सैनिक का रूप धारण किया है तो मन को दस बुरे भले शब्द कहकर हम माखन की टिकिया को वहीं रख देंगे। यदि हम डरपोक हैं तो उस टिकिया को मुख में धर लेंगे और उस पाप का हमको ईश्वर की ओर से कोई न कोई प्रतिफल भुगतना पड़ेगा। यह है बाहर और अन्दर की प्रतिरोधी शक्ति।

यहां पर मन और वाह्येन्द्रियों का आत्मा प्रतिरोध कर रहा है। जो सैनिक है वह आत्मा की आवाज़ को सुनता है और मन और वाह्येन्द्रियों पर विजय पाता है। दूसरे प्रकार की प्रतिरोधी शक्ति यह है:-

२:- जानदार वस्तु और प्रकृति की प्रतिरोधी शक्ति। मान लीजिये किसी राजा का जीवन हमेशा भोग विलासों में रहता है। ईश्वर ने जानकर प्रकृति में सुंदर वस्तुएँ रची हैं ताकि वह परीक्षा करे कि कौन व्यक्ति इन चीजों से अपने आप को ऊपर उठा सकता है। उसको यदि इस बात का ज्ञान भी है कि इन चीजों में फंसना फिज़ूल में अपने जीवन को बरबाद करना है। उसका परिणाम यह होता है कि वह राजा न तो अपने को और न अपने कर्मचारियों तथा प्रजाओं को काबू कर सकता है।

उस राजा का राज्य लुट जाता है और उसमें तरह २ की खराबियां पहुंच जाती हैं। परन्तु एक सैनिक राजा चारों ओर की स्थिति को अपने ध्यान में रखता हुआ अपने राज्य का प्रबन्ध करता है और राज्य में आदर पाता है। यहां पर बात यह है कि सैनिक राजा ने प्रकृति के साथ लड़कर अपने आप को वश में कर लिया है और उसकी इन्द्रियां प्रकृति की लोलुपता की ओर न जाकर अपने राज्य के प्रबन्ध की ओर लगी रहती हैं, और प्रबन्ध की सब प्रकार की खराबियों को दूर कर अपनी कीर्ति को दूर-दूर फैलाता है।

तीसरी प्रकार की प्रतिरोधी शक्ति यह है:--

३:-किसी व्यक्ति या जन समाज की प्रतिरोधी शक्ति:-

आजकल निज़ाम और जयपुर राज्य में सत्याग्रह बड़े ज़ोर शोर से चल रहा है। चारों ओर से सैनिकों की पुकार हो रही है। सचमुच जिन्होंने अपने आप को तैय्यार कर लिया है उनको इस समय कूद पड़ना चाहिए। दूसरे धर्म वालों ने अपना कब्जा कर हमारे धर्म को छीन लिया है। इसलिए यह युद्ध चल पड़ा है। हमारी प्रतिरोधी शक्ति (मुसलमान) हमसे युद्ध करना चाहते हैं। हमारे अधिकारों को कुचल कर अपना अधिकार जमाना चाहते हैं। यह कैसे हो सकता है। आज हमें अपनी प्रतिरोधी शक्ति (मुसलमानों) के साथ लड़ना होगा उसके लिये जिन्होंने अपने आप को तैयार कर लिया है। उनको

बाकियों को अपने आप को तैयार करते रहना होगा। घबड़ाने का अवसर नहीं है। धैर्य धरने का अवसर है। यद्यपि आज हम अहिंसात्मक सत्याग्रह रहे हैं परन्तु कोई दिन ऐसा आयगा कि हम अपने इन प्रतिरोधियों की नाक में दम कर देंगे। हम अहिंसात्मक सत्याग्रह प्रभु के भरोसे पर लड़े जा रहे हैं। ये निजाम अत्याचारी सरकार समझती है कि हमें कोई देख नहीं रहा है। परन्तु लोकेश एक २ क्षण को खबर ले रहा है और वह दिवस जल्दी आयगा जबकि इस निज़ाम सरकार को अपनी प्रचण्ड दमन नीति का अन्त करना पड़ेगा ऐसा हमारा विश्वास है। हमको अपने आप को प्रतिक्षण तैयार रखना चाहिये। क्यों कि समय परिवर्तन-शील है न जाने कब हमारा काम पड़जाय। तैयार करने का तरीका यह है कि कि हम अपने जीवन के अन्दर बहुत से बड़े २ कष्टों को सहन करें। अपनी जिन्दगी आराम से न बितावें। त्याग और तपस्या का जीवन व्यतीत करें। अपने शरीर को पत्थर के समान कठोर बनावें ताकि सब कष्टों को प्रसन्नता पूर्वक सहते हुए चले जावें। जब ऐसी २ अवस्थायें होंगी उसी अवस्था में हम अपने व्यक्ति या जन समाज की प्रतिरोधी शक्तियों का मुकाबला कर सकेंगे।

चौथे प्रकार की प्रतिरोधी शक्ति यह है कि:--

(४) एकदम से किसी बाहरी आक्रमण के प्रकोप की प्रतिरोधी शक्ति।

माना आज हरिद्वार में बड़ा भारी मेला लगा हुआ है। लोगों की असावधानी के कारण सारे मेले में हैज़े का प्रकोप प्रबल रूप धारण कर चुका । चारों ओर से रोने धोने की आवाजें आ रही हैं, उस समय डरपोक आदमियों को कौन पूछता है। लोगों को सहायता की आवश्यकता है । निर्भीक सैनिक आदमी ही लोगों को उस दुःख से बचा सकता है।

कहने का तात्पर्य यह कि इस प्रकार की प्रतिरोधी शक्तियां संसार में अनेकों होंगी परन्तु उनमें तीन चार ही पर प्रकाश डालने की कोशिश की है। एक विद्यार्थी को अपने विद्या और शरीर की वृद्धि के लिये इनको विनाश करने वाली शक्तियों का मुकाबला करना पड़ता है। यदि विद्यार्थी सैनिक होने का दावा रखता है तो वह सुगमता से इन शक्तियों मुकाबला कर सकता है और विद्या और शरीर में दिनोंदिन उन्नति कर सकता है।

[शेष पृष्ठ ६ पर]

गुरुकुल

२७ फाल्गुन शुक्रवार १९९५

महात्मा गांधी और हैदराबाद सत्याग्रह

(ले० आचार्य श्री रामदेव जी कुलपति)

महात्मा गांधी और आर्य समाज का सम्बन्ध एक पुरानी घटना है। सर्व प्रथम जब वह भारतवर्ष में आये थे तो उनके आश्रम के छात्र उनके साथ थे, उनके सुपुत्र रामदास गांधी भी उनके साथ थे।

उस समय अहमदाबाद में सत्याग्रह आश्रम खुला भी न था। वे ब्रह्मचारियों के साथ तीन महीने गुरुकुल कांगड़ी में रहे थे। मीरा बहिन (महात्मा गांधी की अंग्रेजी शिष्या) पहले कन्या गुरुकुल फिर गुरुकुल कांगड़ी में रही थीं, और वहीं पर उन्होंने हिन्दी बोलना व पढ़ना सीखा था। श्रीमान् रामदास गांधी की धर्मपत्नी, पुत्री निर्मला गांधी ने भी एक साल कन्या गुरुकुल देहरादून में रह कर हिन्दी साहित्य सम्मेलन इलाहाबाद की दो परीक्षायें पास कीं, फिर भी शायद वह कन्या गुरुकुल में गईं। इस बार कन्या गुरुकुल के वार्षिकोत्सव पर महात्मा गांधी ने अपनी पत्नी माता कस्तूरबाई को भेजा और उन्होंने बड़ा सुन्दर भाषण दिया। श्रीमती रामेश्वरी नेहरू को भी भेजा था। उनका श्री स्वामी श्रद्धानन्दजी के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध था। मेरे साथ भी उनका गहरा सम्बन्ध है, मेरे हृदय में उनके लिए पूजा, श्रद्धा, और प्रेम के भाव बहुत अधिक हैं।

यद्यपि मैंने उनके लेख के विरुद्ध भी एक बार लिखा था और वह उनके पत्र 'यंग इण्डिया' में छपा था। अब हैदराबाद का सत्याग्रह जो विवश होकर आर्य-समाज को करना पड़ा, तो शोलापुर में सरदार पटेल और मिस्टर भूलाभाई देसाई के सहानुभूति-सूचक तार आये। श्री घनश्यामसिंह गुप्त प्रधान आर्यसार्वदेशिक सभा तथा स्पीकर सी० पी० असेम्बली को जो महात्मा जी के प्रिय और अनुयायी हैं, शोलापुर आर्य सम्मेलन के बाद जहां तक मुझे याद है तार द्वारा वर्धा में बुलाया और अपना परामर्श दिया तथा शुभाशीर्वाद भी। इस लिए मैं यह नहीं मानता कि महात्मा जी हमारे विरुद्ध हैं, और हमारे सत्याग्रह की जिसका आधार सत्य और अहिंसा है, सफलता नहीं चाहते। आर्यसमाज के सत्याग्रह में साम्प्रदायिकता की गन्ध तक नहीं है। हम समस्त धर्मावलम्बियों के साधारण नागरिक अधिकारों के लिए लड़ रहे हैं, न हमको निज़ाम से वैर है न इस्लाम से। मेरे विचार में महात्मा जी इस बात को जानते हैं, यद्यपि बीमार होने के कारण गत दो वर्षों से मैं उनके चरणों में उपस्थित नहीं हो सका। इस लिए मुझे "आर्यमुसाफिर" के गत सप्ताह के अङ्क के एक लेख से बहुत दुःख हुआ। मेरे विचार में "आर्यमुसाफिर" को सुनी सुनाई बातों पर भारतवर्ष के गर्व तथा संसार के सर्वश्रेष्ठ पुरुष के विषय में बिना किसी समर्थन के ऐसा नहीं लिखना चाहिए था। मैंने महात्मा गांधी को पत्र लिखा है, आशा है उनके हाथ का लिखा पत्र आजाएगा। आर्य समाज के पत्रकारों के प्रति मेरी प्रार्थना है कि जब तक उत्तर न आजावे, या उनकी लेखनी द्वारा लिखा कोई लेख न पढ़ने को मिले तब तक महात्मा गांधी के विषय में ऐसी वैसी बातें न लिखें। मुझे निश्चय है कि पत्रकार भाई मेरी प्रार्थना को स्वीकार करेंगे।

वैदिक धर्म और आर्यसमाज हमें महात्मा गांधी से अधिक प्यारे हैं। परन्तु धर्म का आधार सत्य को ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने के लिए हमें सदा उद्यत रहना चाहिए। यह ऋषि दयानन्द का आदेश है, अन्याय करना पाप और अधर्म है। विशेषकर एक बड़े महात्मा और सच्चे आर्य के साथ अन्याय करना बड़ा पाप है। यही भेद है धर्म और सम्प्रदायिकता में। इस बात को हमें कभी नहीं भूलना चाहिए। प्रमाण रहित हमें कोई बात नहीं लिखनी या कहनी चाहिए। महात्मा जी का पत्र जब आवेगा तब मैं प्रकाशनार्थ भेज दूंगा। मुझे निश्चय है कि मेरी प्रार्थना पर उचित ध्यान दिया जावेगा।

क्या आर्य समाज का—

हैदराबाद सत्याग्रह आन्दोलन

असामयिक और साम्प्रदायिक है ?

(ले०—श्री शिवदयालु जी भू० पू० प्रधान
जिला कांग्रेस कमेटी मेरठ।)

कांग्रेस के दो प्रमुख नेता पं० जवाहरलाल नेहरू तथा महात्मा गांधी जी ने अपने हाल के भाषण तथा लेख में आर्य समाज के हैदराबाद सत्याग्रह आन्दोलन को क्रमश असामयिक तथा साम्प्रदायिक बतलाया है। मैंने इन दोनों महानुभावों के विचारों का ध्यान पूर्वक कितनी ही बार मनन किया, खेद है कि मैं किसी भी अंश में इनसे सहमत न हो सका।

मुझे लगभग २० वर्ष कांग्रेस में काम करते हुए हो गए और इन २० वर्षों में मुझे कितनी ही बार कांग्रेस के अन्दर जिम्मेदारी के पदों पर रह कर भी काम करने का अवसर मिला। जेलों में भी कई बार जाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है इन बीच में कांग्रेस के अन्दर काम करने वाले आर्य-समाजी अथवा गैर आर्य-समाजी मित्र जब कभी आर्य-समाज के सम्बन्ध में बातें करते थे तो "आर्य-समाज दब्बू हो गया है, कायरता आगई है, अपने मान अधिकारों की रक्षा के लिये उसमें बलिदान करने की क्षमता नहीं रही है।" इत्यादि न जाने क्या कुछ नहीं कहा करते थे। किन्तु आज जब कि लगातार ६ वर्षों तक निज़ाम साहिब से अपने धार्मिक अधिकारों के लिए भिक्षा मांगते मांगते थक कर परमात्मा की कृपा से आर्य-समाज ने सामूहिक रूप से बलिवेदी की ओर

कदम बढ़ाया है और भारतवर्ष की सबसे अधिक बर्बर तथा अत्याचारी रियासत हैदराबाद से टक्कर लेनी आरम्भ की, जिससे टक्कर लेने बड़े से बड़े कांग्रेसी नेता भी हिचकिचाते हैं तो बजाय आर्यसमाज के हौंसले की प्रशंसा करने और उसकी पीठ थपेकने के लुधियाना देशी–राज्य–प्रजा सम्मेलन में जिसके प्रधान श्री पं० जवाहरलाल नेहरू जी थे उसके इस समयोचित कार्य को असामयिक आदि शब्दों से याद किया जाता है। मैं समझता हूं कि आर्यसमाज का सत्याग्रह असामयिक नहीं अपितु प्रजा परिषद् में इस सम्बन्ध में पास किया गया प्रस्ताव ही असामयिक और आर्यसमाज के प्रति अन्याय करने वाला है। मुझे आश्चर्य है कि जो कांग्रेसी नेता कल नाभा राज्य के अकाली सिक्खों के सत्याग्रह में जेल जाते थे और काश्मीर राज्य में अहरारी मुसलमानों के सत्याग्रह को उचित समझते और उसका समर्थन करते थे आज आर्यसमाज के साथ इस बेइन्साफ़ी तथा ज़ुल्म करने पर क्यों उतारू हुए?

मैं समझता हूं कि इसका एक ही कारण है और वह यह कि हम कांग्रेस में काम करने वाले आर्य-समाजी आर्य संस्कृति की उपेक्षा करनेवाले नेताओं के इस प्रकार के आक्रमणों को बराबर करते रहे और अपनी आत्मा का हनन कर आंख मींच के इनके नेतृत्व के नीचे काम करते रहे हैं।

श्री महात्मा गांधी जी ने तो एक कदम और आगे बढ़ाया। आपकी राय में आर्यसमाज का सत्याग्रह ही साम्प्रदायिक होगया है क्योंकि हिन्दू महासभा ने उसका समर्थन कर दिया है, उसके प्रति सहानुभूति दिखलाई है तथा उसके साथ साथ स्वयं अपनी ओर से भी सत्याग्रह आरम्भ कर दिया है। मैं समझता था कि महात्मा गांधी जी जैसे सत्य के अनन्य पुजारी तो जहां सत्य देखेंगे निश्चय साथ देंगे। यदि आर्यसमाज का सत्याग्रह शुद्ध धार्मिक है जैसा कि गांधी जी स्वयं मानते हैं तो फिर चाहे हिन्दू सभा उसका समर्थन करे या कोई और सभा करे महात्मा गांधी जी को तो उसका साथ निश्चित देना ही चाहिये था।

हिन्दू महा सभा कोई विषैला जन्तु नहीं जो छूने ही डस लेगा। यदि हिन्दू महासभा हिन्दुओं की सांस्कृतिक सामाजिक और राजनीतिक अधिकारों की रक्षा के लिए आन्दोलन करती है और आवाज़ उठाती है तो कौनसा भारी पाप करती है। महात्मा गांधी हिन्दू मुस्लिम एकता चाहते हैं और हिन्दू सभा के वीर नेता सावरकर भी एकता चाहते हैं फिर यह नाराज़गी कैसी। एकता के तरीकों में भेद हो सकता है, और है। महात्मा गांधी जी की ओर से २० वर्षों का मेरा अपना अनुभव है, एकता के लिए जितनी भी कोशिशें की गईं प्रायः सब बेकार साबित हुईं। उलटे रोग निरन्तर बढ़ता ही गया। खिलाफ़त आन्दोलन में गांधी जी ने हमें भाग लेने के लिए कहा और हमने आगे बढ़ कर भाग लिया किन्तु परिणाम निकला भयानक। मोपला काण्ड और मुसलमानों में साम्प्रदायिक विष का विस्तार। इसी एकता के नाम पर साम्प्रदायिक निर्णय (Communal award) जैसे घोर साम्प्रदायिक तथा हिन्दू हित नाशक विदेशी साम्राज्यशाही के फैसले का विरोध करने से कांग्रेस को रोका गया। आज इसी एकता के नाम पर भारत की राष्ट्र भाषा हिन्दी का गला घोटा जा रहा है और उर्दू की खुशामद की जा रही है। इसी एकता के नाम पर मुस्लिम मास–कन्टेक्ट कमेटी बना बना कर साम्प्रदायिक मुसलमानों को राष्ट्रीय महासभा में लाकर बेजा तरीकों से उनका हौसला बढ़ाया जा रहा है। क्या महात्मा गांधी जी की यह प्रवृत्तियां साम्प्रदायिक नहीं हैं? अपनी संस्कृति तथा जाति की हितबुद्धि से चालू की गई प्रवृत्तियां भले ही साम्प्रदायिक कही जांय किन्तु वह प्रवृत्तियां सर्वथा वांछनीय हैं और उनमें भाग लेने वालों को झिझकना नहीं चाहिये तथा अपनी संस्कृति और जाति को हानि पहुंचाने वाली और किसी अन्यवर्ग को अवांछनीय साम्प्रदायिकता की ओर प्रेरित करने वाली प्रवृत्तियां निश्चित अवांछनीय साम्प्रदायिक हैं भले ही उनको राष्ट्रिय रङ्ग दिया जाता है।

हिन्दु संस्कृति की रक्षा के लिए आन्दोलन करने वाली हिन्दु महासभा का समर्थन तो आर्यसमाज के सत्याग्रह तक को साम्प्रदायिक बना दे और महात्मा गांधी जी तथा उनके आदेश पर राष्ट्रपति श्री सुभाषचन्द्र बोस मुसलिम लीग के नेता मिस्टर मोहमद अली जिन्नाह के मकान पर जाकर और घुटने टेककर मिन्नतें मांगे और मुसलिम लीग जैसी राष्ट्रीयता विरोधी जमात से पैक्ट करते फिरें किन्तु महात्मा गांधी और कांग्रेस ज्यों की त्यों राष्ट्रीय बनी रहे। क्या ही विचित्र बात है।

मैं समझता हूं कि देश में साम्प्रदायिकता को उभारने की काफी जिम्मेदारी महात्मा जी पर है। यदि वीर शिरोमणि सावरकर जी आज राष्ट्रीय महासभा में काम न करके हिन्दु महासभा की ओर झुकें तो इसका उत्तरदायित्व महात्मा गांधी की उपरोक्त प्रवृत्तियों पर ही है। यदि महात्मा जी ने अपनी एकता सम्बन्धी गति विधि में उचित परिवर्तन न किया और कांग्रेस को अवांछनीय साम्प्रदायिकता की ओर घसीटा जाता रहा तो वह दिन दूर नहीं कि आर्य संस्कृति में आस्था रखने वाले कांग्रेसी कार्यकर्ताओं को अपनी भविष्य की नीति के सम्बन्ध में गम्भीरता पूर्वक विचार करना होगा।

अन्त में मैं फिर कहूँगा कि आर्यसमाज का हैदराबाद सत्याग्रह आन्दोलन शुद्ध धार्मिक एवं राष्ट्रीय आन्दोलन है और सर्वथा सामयिक है। इसको असामयिक और साम्प्रदायिक कहना निश्चय आर्यसमाज के साथ अन्याय करना है। मैं समझता हूँ कि महात्मा गांधी जी ने तथा पं० जवाहरलाल जी आर्यसमाज के साथ अन्याय किया है। इसके विरोध स्वरूप मैंने मेरठ ज़िला, नगर तथा छावनी कांग्रेस कमेटियों का वर्किङ्ग कमेटियों से अपने त्यागपत्र दे दिये हैं।

अभी हमने समाचार पत्रों में पढ़ा है कि संयुक्त-प्रांतीय कांग्रेस कमेटी के मन्त्री ने कांग्रेस मैन आर्य-

समाजियों को हैदराबाद आर्य-सत्याग्रह में भाग न लेने का आदेश दिया है। यदि वास्तव में यह सत्य है तो अब किसी भी स्वाभिमानी आर्य समाजी के लिए कांग्रेस में रहना सम्भव नहीं। मैंने ज़िला कांग्रेस कमेटी के प्रधान जी से लिख कर पूछा है कि क्या २४-२-३६ के हिन्दुस्तान में छपा प्रा० कांग्रेस कमेटी के मन्त्री का वास्तव में कोई आदेश आया है! यदि यह सही है तो फिर मुझ जैसे आर्यसमाजी के लिए कांग्रेस का साधारण सदस्य रहना भी अपना नैतिक पतन करना है।

(पृष्ठ ३ का शेष)

एक विद्यार्थी के लिये विद्या ही मानों एक बड़ा भारी रणक्षेत्र है उसमें विद्यार्थी कूद पड़ा है। उसको घबड़ाने की कोई आश्यकता नहीं है। उस विद्यार्थी का कर्तव्य है कि सैनिकों की तरह विद्या रूपी रणक्षेत्र में उतर उसका मुकाबला कर उसको जीत ले।

किसी को घबराने की जरूरत नहीं है। हरेक को अपनी सामर्थ्यानुसार जिस ज्ञान में जिसकी रुचि हो उसको उसके साथ मुकाबला कर अपने अन्दर ग्रहण करना चाहिये। पता नहीं देश को किस समय, किस ज्ञान की आवश्यकता पड़े। हमेशा देश की सहायता के लिये सैनिक बनकर उस ज्ञान का सन्देश देश को देना चाहिये। तभी उस देश का उद्धार हो सकता है।

कहने का तात्पर्य यह है कि आजकल देश में सैनिकों की बहुत कमी है। प्रत्येक मनुष्य को सैनिक बनने की कोशिश करनी चाहिये। जब देश के अन्दर सैनिक बढ़ेंगे और भारत के प्रत्येक नरनारी के अन्दर देश के सैनिक बनकर देश के लिये मर मिटने के भाव उदय होंगे उसी अवस्था में भारत समृद्धिशाली बन सकता है और अपनी पूर्व दशा को प्राप्त हो सकता है।

गीत

(ले० श्री सत्यदेव)

भ्रमर तुम गाते प्रतिपल गान
बदले में ले जाते हो मधु, तुम नितिक्ष महान्॥
फूल फूल पर जाते हो तुम लूट पुनः अनजान
गाते अपने गान वहीं हो जाते अन्तर्धान॥
भ्रमर... ....
कौन तुम्हारा प्रिय है जग में, सका नहीं मैं जान
देखा केवल उड़ उड़ करते रहते हो मधु पान॥
भ्रमर.........
ज़रा बताओ, बात सुनोगे क्या मेरी भी आन
क्या न सिखाओगे मुझ को भी अपनी अनुपम तान॥
भ्रमर ....
मुझे सिखादो, मैं भी ख़िल से गा गा अपने गान॥
सुन्दर फूलों का रस पीऊँ आ आ हर उद्यान॥
भ्रमर.........
काले भ्रमर साथ ले जाओ, मुझे सिखा दो गान
उड़ना भी कुछ कुछ सिखलादो, फिरूँ पंख निज तान॥
भ्रमर.........

बन्दी बन्धु के प्रति

[श्री सत्य भूषण योगी]

सोच रहे तुम 'हुआ सवेरा'
प्राची में ऊषा रानी अब
झिलमिल झिलमिल नचती होगी!
गाते होंगे तरुण विहङ्गम,
सरसिज-माला खिलती होगी!!
करता होगा सैर सपाटा गङ्गा-तट पर भाई मेरा!
सोच रहे तुम 'हुआ सवेरा'!!

(२)

लेकिन तुम्हें ज्ञात हो प्यारे,
सारी रात मिला हूं तुमसे!
की घुल कर कितनी ही बातें
मैंने तुमसे, तुमने मुझसे!!
आंख खुली अब, निशि की सुख स्मृति ने घन पीड़ा उर को घेरा!
सोच रहे तुम 'हुआ सवेरा'!

(३)

हाय, किसी ने मुझे जगाया
क्यों, मैं बस सोता ही रहता!
बन्धु, बच गईं कितनी बातें
अ-कहीं; जो तुमको मैं कहता!!
दुखित अधूरी इच्छाओं ने आंसू बन आंखों को घेरा!
सोच रहे तुम 'हुआ सवेरा'!

(४)

तुम न दिखोगे तो आंखों को
और न कुछ लखने ये देंगी!
लूं दिन में भी सपना, यों ये
दिन को भी रजनी कर देंगी!!
आंखों के तम में प्रियतम, तुमने ऊषा का हास बिखेरा!
सोच रहे तुम 'हुआ सवेरा'!

(५)

सपना होगा, अपना होगा,
फिर न मुझे कुछ तपना होगा!
भले जगाए कोई मुझे,
न जगना, मेरा जगना होगा!!
तुम्हीं जगाओगे जब आकर होगा तभी सवेरा मेरा!
सोच रहे तुम हुआ सवेरा!'

गुरुकुल समाचार

ब्र० लेखराज १३ उदरशूल, ब्र० योगेश्वर १२ विषमज्वर। विगत सप्ताह ये रोगी हुए थे। अब सब स्वस्थ हैं।

ऋतु अत्यन्त सुहावनी है। वसन्तागमन के कारण चारों ओर खूब हरियाली नज़र आ रही है। ब्रह्मचारियों का स्वास्थ्य अत्युत्तम है। महाविद्यालय के प्रोफेसर-गण धन-संग्रहार्थ डेपूटेशन पर गये हुए हैं। तीनों महाविद्यालयों की वार्षिक परीक्षाएं ४ मार्च से शुरू हो चुकी हैं और अब तक लगभग आधे पर्चे समाप्त हो गये हैं। मार्च के तीसरे सप्ताह तक परीक्षाएं समाप्त हो जावेंगी।

श्री आचार्य जी का शुभागमन—

गत ५ मार्च को श्री आचार्य अभयदेव जी पुनरपि आचार्य के पद पर नियुक्त होकर गुरुकुल पहुंच गये। आपके पदार्पण से प्रत्येक कुलवासी तथा गुरुकुल-हितैषी को आन्तरिक हर्ष हुआ है। आपने आते ही सारा कार्य भार संभाल लिया और ब्रह्मचारियों के रहन-सहन, सन्ध्या-अग्निहोत्र तथा दिनचर्या पर विशेष ध्यान दे रहे हैं।

सत्याग्रही बन्दी बन्धुओं का कुशल समाचार

गुरुकुल कांगड़ी के सत्याग्रही बन्दी-बन्धु हैदराबाद की विभिन्न जेलों में सकुशल हैं। शोलापुर से निकलने वाले साप्ताहिक 'अंगद' सं० १४ के १२ वें पृष्ठ पर श्री क्षेत्रपाल जी को बेंत मारने की खबर जो प्रकाशित हुई थी वह सत्य नहीं है। अभी हाल में श्री मुख्याधिष्ठाता जी के नाम आये उनके पत्र से विदित होता है कि सब ब्रह्मचारी जेल में सकुशल हैं। वह पत्र इस प्रकार है—

सेन्ट्रल-जेल
गुलबर्गा
२-३-३९

श्री पूज्य मुख्याधिष्ठाता जी,

सादर नमस्ते

अबतक कोई पत्र भेजने का अवसर नहीं आया। क्या किया जाय विवशता थी। गुरुकुल से चले हुए हमें पूरा एक महीना हो गया। मैं आपको अपने दल का कोई समाचार न दे पाया। इस समय हम पन्द्रह के पन्द्रह कैद में हैं और सो भी विभिन्न जेलों में। यहां मेरे अतिरिक्त ६ बन्धु और हैं। अवशिष्ट में से ४ निजामाबाद की जेल में और ४ वारंगल की जेल में। हम सबको ६-६ महीने की सज़ा हुई है। एक चन्द्रगुप्त गलती से अकेला पीछे रह गया था-उसे २ साल की कैद हुई। संक्षेप से यही हमारा समाचार है।

विनीत शिष्य—
क्षेत्रपाल।

इसके साथ ही श्री महात्मा नारायण स्वामी जी का भी एक पत्र श्री मुख्याधिष्ठाता जी के नाम आया है। वे लिखते हैं

श्री मुख्याधिष्ठाता जी,

नमस्ते।

आपके ब्रह्मचारियों में से सात ब्रह्मचारी हैदराबाद से यहां आगये हैं और मेरे समीप ही ठहरे हैं और सब प्रकार से कुशल पूर्वक हैं।

शुभचिन्तक—
नारायण स्वामी।
१-३-३९

गुरुकुल कुरुक्षेत्र—

हैदराबाद सत्याग्रह के लिये १२५)

प्रथम हैदराबाद-दिवस पर गुरुकुल के मुख्याधिष्ठाता पंडित सोमदत्त जी के बाहर गये होने के कारण कोई धन संग्रह न हो सका था। २२ फरवरी को द्वितीय हैदराबाद दिवस बड़ी धूम-धाम से मनाया गया। गुरुकुल के प्रत्येक छोटे बड़े कर्मचारी तथा ब्रह्मचारियों ने सत्याग्रह के सहायतार्थ धन दिया इस प्रकार लगभग १२५) की पहली किश्त सत्याग्रह के लिये भेजी जा रही है। ब्रह्मचारियों ने प्रत्येक सप्ताह में एक दिन बिना घी का भोजन करके उसका मूल्य सत्याग्रह में भेजने का निश्चय किया। ब्रह्मचारियों के अलावा अन्य कर्मचारियों ने भी संग्राम के अन्त तक मासिक सहायता का वचन दिया। इस प्रकार शुरू में १२५) तथा बाद में २५) प्रति मास भेजने का निश्चय किया गया। ब्रह्मचारी इससे भी अधिक त्याग करना चाहते थे और उनमें से कई संग्राम में भाग लेने के लिये भी उत्सुक थे। पर अधिकारियों ने अभी इसे स्वीकार नहीं किया।

गुरुकुल का सालाना जलसा २४-२५-२६ मार्च को बड़ी धूम-धाम से मनाया जायगा। जलसे को कामयाब बनाने की पूरी तय्यारियां हो रही हैं।

वार्षिक परीक्षायें १५ मार्च से शुरू होंगी।

गुरुकुल मुलतान उत्सव के समाचार—

ता०१७, १८, १९ फरवरी को बड़े समारोह के साथ गु०उत्सव समाप्त हो गया। उत्सव में श्री पं० भीमसेन जी मंत्री सभा तथा श्री पं०सोमदत्त जी मुख्याधिष्ठाता गुरुकुल कुरुक्षेत्र और श्री स्वामी केवलानन्दजी आदि के व्याख्यान हुये। तीनों दिन दर्शकों की अच्छी भीड़ रही। ता० १९ को श्री पं० सोमदत्तजी की अपील पर नकद तथा वायदे मिलाकर लगभग दो हज़ार रु० एकत्रित हुआ। सोमवार ता० २० को ७ ब्रह्मचारियों का वेदारम्भ संस्कार हुआ।

ता० १८ को श्री पं० भीमसेनजी के सभापतित्व में एकशिक्षा सम्मेलन हुआ जिसमें दो प्रस्ताव स्वीकृत हुये।

विष्णुमित्र
मुख्याधिष्ठाता

चौधरी हुलासराय के प्रबन्ध से गुरुकुल प्रेस गुरुकुल कांगड़ी में मुद्रित तथा प्रकाशित।

* ओ३म् *

"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत" Reg. No. A. 2927

गुरुकुल

सम्पादक— साहित्यरत्न पं० हरिवंश वेदालङ्कार

एक प्रति का मूल्य -) [गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख-पत्र] वार्षिक मूल्य २॥)

वर्ष ३] गुरुकुल काङ्गड़ी, शुक्रवार ४ चैत्र १९९५, १७ मार्च १९३९ | संख्या ४३

गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी का

वार्षिकोत्सव आ गया

सम्भवतः आर्यजगत् को यह भली-भांति ज्ञात होगा कि इस वर्ष गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी का ३७ वां वार्षिकोत्सव ७ से १० अप्रैल तक गुरुकुल की सुरम्य भूमि में अपूर्व उत्साह एवं समारोह के साथ मनाया जायगा। आप जिस दिन की प्रतीक्षा उत्सुक-नयनों द्वारा एक साल से कर रहे थे वह दिन आने ही वाला है। यह समाचार जानकर सारी आर्यजनता—विशेषतः उत्साही पंजाबी आर्य भाइयों—के हृदयों में अपार हर्ष उमड़ पड़ेगा। प्राचीन ऋषियों द्वारा शतशः प्रशंसित इस मायापुरी की तपोभूमि में पदार्पण करते हुए आपका हर्ष क्यों न उमड़ेगा? इस समय गुरुकुल कांगड़ी सा सच्चा तीर्थ आपको ढूंढने पर भी इस भूमण्डल पर न मिलेगा। आधुनिक तीर्थ तो गुण्डों के अड्डे बन गये हैं। गुरुकुल का इतना विशुद्ध-वातावरण और हिमालय के उत्तुङ्ग-धवल शिखरों के बीच वेदशास्त्रों का चिन्तन, कितना आनन्ददायी है, यह आप अनुभव करके ही जानेंगे इतनी सुन्दर गंगा की धार और प्रकृति की अनुपम शोभा आपको अन्यत्र कहां से उपलब्ध होगी और उस दृश्य की ज़रा कल्पना कीजिये जब कि ऐसे पुनीत स्थान पर गुरुकुल में वार्षिकोत्सव होगा जिसमें आर्यसमाज के उच्चतम कोटि के संन्यासियों एवं विद्वानों के उपदेश तथा व्याख्यान होंगे। सोने में सुगन्ध होना इसी का नाम है। हमारा आपसे साग्रह निवेदन है कि आप इस अवसर को न चूकिये और अपने बन्धु-बान्धव, इष्ट-मित्र, पुत्र-कलत्र के साथ नियत तिथि को गुरुकुल अवश्य पधारिये। आपके यहां आने पर ठहरने का, स्नान ध्यान तथा खान-पान आदि सभी बातों का समुचित सुप्रबन्ध रहेगा और आपको किसी प्रकार का कष्ट न हो इसका पूरा प्रयत्न किया जायगा।

कई सामयिक परिस्थितियों के कारण इस वर्ष का उत्सव विशेष महत्ता लिये हुए होगा। उत्सव को रोचक आकर्षक और शिक्षाप्रद बनाने का अधिकारी वर्ग भरपूर प्रयत्न कर रहे हैं। आशा है इस महोत्सव का देश पर स्थायी प्रभाव पड़ेगा। हैदराबाद सम्मेलन, सरस्वती सम्मेलन, वेद सम्मेलन आदि-आदि विविध सम्मेलन विशेष महत्वपूर्ण होंगे। ९ अप्रैल को दीक्षान्त संस्कार होगा और नवस्नातकों को उपाधि प्रदान की जायगी। दीक्षान्त भाषण के लिये युक्तप्रान्त के शिक्षा-मन्त्री श्री बा० सम्पूर्णानन्द जी से प्रार्थना की गई है। हर्ष का विषय है कि उन्होंने हमारी प्रार्थना स्वीकार करली है।

उपर्युक्त बातों को दृष्टि में रखते हुए हम तो आपसे यही अपील करेंगे कि प्रत्येक आर्य भाई को अपने परिवार तथा इष्ट मित्रों समेत इस महोत्सव में आना चाहिये और इस सारे प्रोग्राम का लाभ लेकर ही लौटना चाहिये। अन्त में हम पुनः आशा करते हैं कि आर्य जनता अधिक से अधिक संख्या में भाग लेकर गुरुकुलोत्सव को पूर्णरूपेण सफल बनाने का प्रयत्न करेगी। इस उत्सव पर होने वाले सम्मेलनों का नाम-निर्देश इस प्रकार है. -

वेद सम्मेलन का महत्वपूर्ण अधिवेशन इन्दौर के प्रसिद्ध विद्वान् श्री पं० दीनानाथ जी शास्त्री के सभापतित्व में होगा। व्यायाम सम्मेलन के प्रधान महाराजाधिराज शाहपुराधीश होंगे। गान्धीवाद तथा साम्यवाद पर श्री मज़रअली सोख्ता और एम० एन० राय बोलेंगे सभापति यू० पी० के न्याय सचिव डाक्टर कैलाशनाथ काटजू होंगे। संगीत सम्मेलन में दिल्ली के मास्टर मोहन और मास्टर मदन भाग लेंगे। इसके अतिरिक्त हैदराबाद सम्मेलन, कविता सम्मेलन और सरस्वती सम्मेलन भी होंगे।

—श्री पं० हरिवंश वेदालङ्कार

भगवान् तथागत के कुछ अमूल्य उपदेश

(ले० श्री पं० ब्रह्मानन्द जी)

जिस प्रकार वधू जिस दिन पहले पहल स्वामी के घर लाई जाती है उसी दिन उसे तीव्र लज्जा रहती है सास, ससुर स्वामी, यहां तक कि नौकर-चाकर से भी लज्जा, भय और संकोच करती है, वही दूसरे समय अधिक परिचय और विश्वास के हो जाने से सास, ससुर और स्वामी को भी ऐसा कहती है कि-"हटो तुम क्या जानते हो ?" वैसे ही एक भिक्षु जिस दिन घर से निकल कर प्रव्रजित होता है उस दिन भिक्षुओं, भिक्षुणियों, उपासकों और उपासिकाओं से तथा नव-प्रव्रजितों से लज्जा, भय और संकोच करता है, वही दूसरे समय परिचय और विश्वास को प्राप्त कर आचार्य और उपाध्याय को इस प्रकार कहता है- "हटो, तुम क्या जानते हो ?' अतः हे भिक्षुओ ! तुम्हें ऐसी शिक्षा लेनी चाहिये कि नवागत वधू के सदृश हम विनम्र चित्त वाले हों।

× × × ×

चार कर्मों से आदमी नरकगामी होता है। जो बिना सोचे-विचारे प्रशंसा के अयोग्य मनुष्य की प्रशंसा करता है। दूसरे, बिना सोचे-विचारे प्रशंसा के योग्य मनुष्य की निन्दा करता है। तीसरे, बिना सोचे-विचारे जिस स्थान पर प्रसन्नता नहीं प्रदर्शित करनी चाहिये उस स्थान पर प्रसन्नता प्रदर्शित करता है। चौथे, बिना सोचे विचारे प्रसन्नता के योग्य स्थान पर अप्रसन्नता प्रदर्शित करता है।

× × × ×

संसार में चार प्रकार के मनुष्य होते हैं। १- न अपनी भलाई करे और न दूसरे की। २- दूसरे की भलाई करे, अपनी नहीं ३- अपनी भलाई करे, दूसरे की नहीं। ४- अपनी भी भलाई करे और दूसरे की भी।

ये उत्तरोत्तर एक दूसरे से श्रेष्ठ हैं।

× × × ×

चार प्रकार के मनुष्य होते हैं १- अपने चित्त के अन्दर वर्त्तमान राग द्वेष और मोह को दूर करने के लिये प्रयत्न करता है, दूसरे को इस के लिये शिक्षा नहीं देता। २- अपने अन्दर वर्त्तमान राग, द्वेष और मोह को दूर करने के लिये प्रयत्न नहीं करता, लेकिन दूसरे को इसके लिये शिक्षा देता है। ३- न अपने अन्दर विद्यमान राग, द्वेष और मोह को दूर करने का यत्न करता है, और न दूसरे को इसके लिये शिक्षा देता है। ४- अपने अन्दर विद्यमान राग, द्वेष और मोह को दूर करने के लिये प्रयत्न करता है और दूसरे को भी इसलिये शिक्षा देता है।

× × × ×

चार प्रकार के मनुष्य होते हैं— १- कल्याणकारी बातों को शीघ्र समझने वाला होता है समझ कर धारण करता है, धारण करके उनके अर्थ की परीक्षा करता है अर्थ का ज्ञान कर तदनुसार आचरण करता है; किन्तु वह उपदेश देने में कुशल नहीं होता, वक्तृत्व-कला उसे नहीं मालूम होती। २- स्वयम् अच्छी तरह नहीं समझता पर उसे वक्तृत्व कला का ज्ञान होता है अतः दूसरे को उपदेश दे सकता है। ३- न स्वयं समझता है और न दूसरों को उपदेश देसकता है। ४- स्वयं अच्छी तरह समझता है और वक्तृत्व कला में कुशल होने से सुन्दरता से उपदेश भी कर सकता है।

× × × ×

चार प्रकार के सर्प होते हैं— १- आगतविष (जिस का विष शीघ्र ही प्रभाव करे पर वह चिरस्थायी और उत्कट न हो) हो, पर घोर विष (जिस का विष चिर स्थायी और उत्कट हो) न हो। २- घोर विष हो, आगत विष न हो। ३- आगत विष भी हो और घोर विष भी। ४- न आगत विष हो और न घोर विष हो।

इसी प्रकार इन चार सर्पों के सदृश चार प्रकार के मनुष्य संसार में होते हैं। १- बारम्बार क्रोध करता है पर उसका क्रोध चिरस्थायी नहीं होता। २- बारम्बार क्रोध नहीं करता पर उसका क्रोध चिरस्थायी होता है। ३- बारम्बार क्रोध करता है और उसका क्रोध चिरस्थायी होता है। ४- न बार बार क्रोध करता है और न उसका क्रोध चिरस्थायी होता है।

× × × ×

चार प्रकार के घोड़े होते हैं—१- कोड़े की परछाईं ही को देखकर सचेत हो जाता है। २- कोड़े की छाया देख कर सचेत नहीं होता, अपितु जब कोड़ा उसके रोएँ तक चोट पहुंचाता है तब सचेत होता है। ३-जब कोड़े की चोट उसकी खाल तक पहुंचती है तब सचेत होता है। ४- जब कोड़े की चोट हड्डी तक पहुंचती है तब सचेत होता है।

ऐसे ही चार तरह के मनुष्य होते हैं — १- सुनता है कि उस गांव या जिले का स्त्री पुरुष दु:खित है या उसकी मृत्यु हो गई, यह सुन कर ही उसे वैराग्य हो जाता है, विरक्त होकर इन दु:खों के कारण का अनुसन्धान करता है, और परम सत्य का साक्षात्कार करता है। २- स्वयम् किसी स्त्री या पुरुष को दु:खित या मृत्यु को प्राप्त देखता है। देखने से वैराग्य हो जाता है। ३- उस का निकट सम्बन्धी दु:खित या मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। उसको उससे वैराग्य हो जाता है। ४- स्वयम् शारीरिक तीव्र पीड़ाओं से पीड़ित होता है। उस को उससे वैराग्य हो जाता है।

केशीनामक एक घोड़ों का मालिक भगवान् बुद्ध के पास आया। नमस्कारादि के अनन्तर उससे भगवान् ने कहा— 'तुम घोड़ों के नियन्ता हो, घोड़ों को किस प्रकार अनुशासित करते हो ?' उसने कहा —" मैं घोड़ों को कोमलता से भी सिखाता हूं, और कठोरता से भी और कोमलता और कठोरता, दोनों के मिलावट से भी। भगवान् ने कहा- "जो इन तीनों में से किसी भी उपाय से किसी भी प्रकार वश में नहीं आता, उसे

क्या करते हो ?" उसने कहा—'उसे मैं मार देता हूँ जिस से कि मेरे आचार्य कुल की अप्रतिष्ठा न हो" भगवान् ने कहा—"मैं भी मनुष्यों को कोमलता से, कठोरता से, और कोमलता और कठोरता दोनों के मिलावट से शिक्षा देता हूं। १- कोमलता से इस प्रकार कि, यह शारीरिक सत् कर्म है, उस का परिणाम ऐसा होता है, ऐसे ही वाचिक और मानसिक सत्कर्मों और उनके परिणामों का उपदेश करता हूं। २- कठोरता से इस तरह कि ये शारीरिक, मानसिक और वाचिक दुष्कर्म हैं और इन के ये बुरे परिणाम होते हैं। ३- कोमलता और कठोरता, दोनों के मिलावट से इस प्रकार कि, ये शारीरिक, वाचिक मानसिक सुचरित तथा दुश्चरित हैं, और इनके ये अच्छे और बुरे परिणाम होते हैं।"

केशीने पूछा- "जो इन तीनों में से किसी प्रकार से भी नहीं मानता, उसे आप क्या करते हैं ?"

"उसे मैं मार देता हूँ।"

"आप तो प्राणिवध नहीं कर सकते।"

"यह सत्य है केशी ! कि मैं प्राणिवध नहीं कर सकता। किन्तु आर्यों की शिक्षा में यह वध के समान है कि ऐसे मनुष्य को उस के साथी उपदेश देने योग्य नहीं समझते, बात चीत करने योग्य नहीं समझते।'

केशी ने कहा—"मैं आपका शरणागत हूँ। आप मुझे अपनी शरण में लीजिये।"——

हैदराबाद सत्याग्रह के चौथे डिक्टेटर की विदाई—

कल शाम को ८ बजे दीवान हाल में आर्य युवक दल की संरक्षता में हैदराबाद सत्याग्रह के चौथे डिक्टेटर राजगुरु श्री धुरेन्द्र शास्त्री जी न्यायतीर्थ को विदाई देने के लिये देहली के हिन्दुओं की एक विराट सभा हुई। हाल जनता से खचाखच भरा हुआ था। मंच पर नगर के प्रमुख व्यक्ति विराजमान थे, जिनमें से श्री रामचन्द्र जी देहलवी, प० व्यासदेव जी शास्त्री, श्री नारायणदत्त जी, प० सुरेन्द्रशर्मा जी मन्त्री संयुक्तप्रान्तीय आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। सभापति का आसन श्री पं० रामचन्द्र देहलवी ने सुशोभित किया था। श्री सुरेन्द्रशर्मा जी ने राजगुरु श्री धुरेन्द्र जी शास्त्री का थोड़े से परन्तु मार्मिक शब्दों में जनता से परिचय कराया। इसके बाद शास्त्री जी ने बड़े ओजस्वी और हृदयग्राही शब्दों में हैदराबाद की परिस्थिति पर भाषण दिया। आपने अपने भाषण में कहा कि मैं स्वयं कांग्रेस की प्रतिष्ठा की रक्षा करने के लिए जेल जा चुका हूं। परन्तु इस समय उसने हैदराबाद के सम्बन्ध में जो नीति धारण की है उससे प्रत्येक कांग्रेसी आर्यसमाजी को क्षोभ है। अतः वह समय दूर नहीं जबकि सब आर्यसमाजी कांग्रेस को तिलाञ्जली देने को बाध्य हो जाएंगे। अब समय आ गया है कि हम हिन्दू संस्कृति, सभ्यता और हिन्दू धर्म की रक्षा के लिए सब कुछ न्योछावर कर दें। हैदराबाद का सत्याग्रह एक परीक्षा होगी और वह आर्य और दस्युओं का वास्तविक अन्तर बता देगी। आपके भाषण के बाद श्री प० व्यासदेव जी शास्त्री प्रधान आर्य युवक संघ ने १०१) की थैली शास्त्री जी को भेंट की।

बन्दी बन्धु के प्रति

[दो गीत]

सत्यभूषण 'योगी'

बन्दी ! बन्दी है कवि तेरा !
हाथों में तेरे हथकड़ियां,
पैरों में हैं पड़ी बेड़ियां,
काली, छोटी, एक कोठरी
ही है तेरा बस्ती डेरा !
बन्दी ! बन्दी है कवि तेरा !

२

शासक कितना न्याय परायण !
पहनाए तुझको आभूषण !!
कितना सरल हृदय ! दिखलाया
स्पष्ट 'राज्य अंधेरा मेरा' !
बन्दी ! बन्दी है कवि तेरा !

३

तम में दिखता तुझे उजेरा !
मुझे उजेरे में अन्धेरा !!
बन्दी ! तू क्या जाने तेरे
बन्दी को किस दुख ने घेरा !
बन्दी ! बन्दी है कवि तेरा !

× × ×

बन्दी ! तू क्या करता होगा !
चक्की की सुन घर घर घर घर,
याद तुझे आता होगा घर !
अपने प्यारों की स्मृति में तू
ठण्डी आहें भरता होगा।
बन्दी ! तू क्या करता होगा।

२

बन्द कोठरी के तू अन्दर,
प्यारे, अपने नयन बन्द कर,
सूना-सा बैठा जाने क्या,
बन्दी ! सोचा करता होगा !
बन्दी ! तू क्या करता होगा !

४

दुःखी विरही लोग बिताते
तारे गिन गिन लम्बी रातें,
लेकिन, बन्दी ! तुझे न तारे
भी तो गिनना मिलता होगा
बन्दी ! तू क्या करता होगा !

गु रु कु ल

४ चैत्र शुक्रवार १९९५

गुरुकुल का उत्सव—

'गुरुकुल' का यह अंक जब पाठकों के हाथ में पहुंचेगा तब उत्सव में केवल १८ दिन शेष रह जावेंगे। गुरुकुल विश्व विद्यालय कांगड़ी का वार्षिकोत्सव आर्य समाज का सब से बड़ा मेला है। इस अवसर पर भारत के कोने-कोने से प्रतिवर्ष सहस्रों नर-नारी श्रद्धा-भक्ति-भाव से आते हैं और उपदेशामृत से हृदय को परितृप्त कर लौटते हैं। गुरुकुल विश्व विद्यालय कांगडी न केवल आर्य समाज की सबसे बड़ी और शानदार संस्था है बल्कि भारत में राष्ट्रीय शिक्षा का सबसे बड़ा केन्द्र भी है। यह संस्था आर्य समाज के बड़े गौरव की वस्तु है। इसकी शान आर्य जनता की शान है। लुप्त होती हुई आर्य संस्कृति तथा भारतीय सभ्यता का पुनरुद्धार करने वाला गुरुकुल शिक्षणालय ही है। यह वह वाटिका है जिसे आर्यों ने कठिन परिश्रम करके सींचा है। इसे हरा-भरा देखने की किसे प्रबल इच्छा न होगी? इस शिक्षणालय के ब्रह्मचारियों ने इस वर्ष हैदराबाद में सर्वप्रथम अग्नि-परीक्षा देकर जो पथ-प्रदर्शन किया है वह आर्य समाज और गुरुकुल दोनों की ही गरिमा का द्योतक है। हर्ष का विषय है कि आप के अत्यन्त प्रिय उसी गुरुकुल का वार्षिक-महोत्सव ११मास की लम्बी प्रतीक्षा के बाद पुनः आरहा है। आपकी यह गुरुकुलोत्सव-यात्रा वास्तविक अर्थों में तीर्थ यात्रा होगी। गुरुकुल के समान सच्चा तीर्थ सम्प्रति इस भारत में कौन सा है? आइये, इष्ट-मित्र, बन्धु-बान्धवों तथा सकल परिवार के साथ पधारिये। विद्वानों और महात्माओं के अमूल्य उपदेश श्रवण कर लाभ उठाइये।

इसके साथ ही हम आपका कर्त्तव्य भी स्मरण करा देना चाहते हैं। गुरुकुल इस समय एक छोटा-मोटा शिक्षणालय नहीं, अपितु विश्वविद्यालय का रूप धारण कर चुका है। इस का वार्षिक खर्च लगभग एक लाख साठ हज़ार है। इस वार्षिक व्यय का भार निःसन्देह गुरुकुल प्रेमियों पर ही है। हमें आशा ही नहीं किन्तु पूरा निश्चय है कि आर्य जनता अपनी जिम्मेवारी को समझकर धन-संग्रह के कार्य में जुट जावेगी और ऋषि दयानन्द के लक्ष्य की ओर निरन्तर बढ़ने वाली इस संस्था पर किसी प्रकार का घाटा न आने देगी। गुरुकुल की उन्नति में आप की उन्नति है और गुरुकुल की शान में आपकी शान। इस लिये सभी आर्य भाइयों से हमारी प्रार्थना है कि वे गुरुकुल की आवश्यकताओं को समझें और उसकी पूर्ति के लिये तन-मन-धन से जुट जावें। यदि आप कटिबद्ध हो जावेंगे तो इस अर्थ-राशि का थोड़े समय में ही एकत्र होना कोई बहुत मुश्किल बात नहीं है। यह उत्सव ज्यों २ समीप आता जावे आप द्विगुण-त्रिगुण उत्साह से गुरुकुल की सहायता के लिये कार्य आरम्भ कर दीजिये। एक बार आप तैय्यार होकर जुट जाइये, फिर आप देखेंगे कि आप ने आधा कार्य कर लिया है।

अन्त में आर्य जनता को हमारा निमन्त्रण है कि वह अधिक से अधिक संख्या में गुरुकुलोत्सव में सम्मिलित होकर कुलवासियों के उत्साह में वृद्धि करे तथा अधिक से अधिक आर्थिक सहायता पहुंचा कर कार्य कर्त्ताओं का हाथ बटायेगी।

गुरुकुलोत्सव पर उपस्थित होना केवल मनोविनोद या उपदेश-श्रवण की दृष्टि से ही नहीं अपितु एक कर्त्तव्य पालन और उत्तरदायित्व की दृष्टि से भी परमावश्यक है। इसलिये आप गुरुकुल चलने की शीघ्र ही तैय्यारी कीजिए।

हैदराबाद में विजय निश्चत है—

हैदराबाद का सत्याग्रह दिनोंदिन ज़ोर पकड़ता जारहा है। किन्तु अभी तक निज़ाम साहिब और सर अकबर-हैदरी सो ही रहे हैं। आर्य समाज के सत्याग्रह को भारत के सभी भागों और सभी सम्प्रदाय वालों से सहायता मिल रही है। हिन्दू महासभा तो बहुत दिनों से सहायता दे ही रही है-अब सिक्खों और अकालियों का जत्था भी हैदराबाद को रवाना हो रहा है। कांग्रेस के कुछ सम्भ्रान्त-व्यक्ति भी अब कांग्रेस का कार्य छोड़कर इस संग्राम में कूद पड़े हैं। इनमें श्री घनश्यामसिंह गुप्त का नाम विशेष उल्लेखनीय है। अन्य भी बहुत से कांग्रेसी कार्य-कर्त्ताओं का विचार अब शीघ्र ही इस सत्याग्रह में भाग लेने का है। यहां तक कि सुन्नी सम्प्रदाय के मुसलमान भी इस सत्याग्रहको न्यायोचित बतारहे हैं और आर्य समाजको सहायता देने का विचार कर रहे हैं। हम इस विषय में इनके इस निष्पक्ष विचार की प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकते। अब निज़ाम सरकार को सचेत होकर दूरदर्शिता से काम लेना चाहिये और कोई योग्य हल ढूंढ निकालना चाहिये। भलाई इसी में है कि वह हैदराबाद के निवासियों को नागरिक स्वतन्त्रता के सब अधिकार दे दे। नहीं तो यह आन्दोलन और भी विस्तृत तथा व्यापक हो जायगा। फ़िजीआदि देशों से जत्थे आने की खबरें आ ही चुकी हैं।

महात्मा जी का अनशन भंग—

गत ७ मार्च को २॥ बजे दिन को महात्मा गान्धी जी ने अनशन भंग किया। इस संवाद को जानकर प्रत्येक व्यक्ति का हृदय हर्षित हुआ है। वायसराय ने राजकोट के मामले में हस्तक्षेप करके तथा महात्मा जी को न्याय का आश्वासन देकर प्रशंसा का कार्य किया है, जिसके लिये वे धन्यवाद के पात्र हैं। साथ ही वायसराय के इस हस्तक्षेप से रियासतों के कान खड़े हो गए हैं। पहिले तो सरकार रियासतों की प्रजाओं को कुचलने के लिये ही दखल देती थी पर इस बार प्रजाओं के हित के लिये सरकार को रियासतों में दखल देना पड़ा गया है। इससे देशी नरेशों को यह तो स्पष्ट हो ही गया

होगा कि सरकार सदा साथ नहीं दे सकेगी और प्रजा की पुकार, रियासतों को नियन्त्रित करने के लिये वायसराय को विवश करेगी। साथ ही नरेशों ने यह भी जान लिया है कि राजकोट के मामले को बढ़ाकर उन्होंने अपनी कुछ स्वतन्त्रता खोई ही है, प्राप्ति कुछ भी नहीं की। जयपुर के सत्याग्रह पर भी इसका बहुत कुछ असर पड़ा है और इस रियासत को दबना पड़ रहा है। आशा की जाती है कि अब भी देशी नरेश प्रजा के हाथ में शासन-सूत्र देकर बुद्धिमत्ता प्रदर्शित करेंगे नहीं तो अब जमाना अनुकूल नहीं पड़ेगा।

जहाज़ में १० दिन।

[ले० श्री के. ज्ञानी]

बम्बई से मुम्बासा (अफ्रीका) लगभग २५०० मील है। इस दूरी को जहाज़ दसवें दिन पूरी करता है। हम पहली फर्वरी को बम्बई से रवाना हुए थे। आज ६ फर्वरी है। कल इस समय तक जहाज़ पूर्व अफ्रीका के किनारे जा लगेगा।

जहाज़ पर चढ़ने से पहले हमारा डाक्टरी निरीक्षण हुआ था। चेचक के टीके के निशान और सार्टिफ़िकेट देखे गये थे। जहाज़ पर स्वास्थ्य और सफाई का बहुत ध्यान रखा जाता है। किसी रोगी को या मैले कुचैले को चढ़ने नहीं दिया जाता। जहाज़ के डाक्टर भी बड़े सतर्क रहते हैं। कहीं किसी लापरवाही से जहाज़ पर कोई बीमारी न आजाए।

जहाज़ की सफाई पर तो हम मुग्ध हैं। ठीक प्रातः पांच बजे दर्जनों मांझी अपनी नीली पोशाक में हमारे डेक पर आजाते हैं। मिट्टी जैसा एक विषनाशक चूना छिड़क कर, पानी डालते हुए सारे फर्श को खूब रगड़ते हैं। दो घण्टों के कठिन परिश्रम के पश्चात् डेक ऐसा साफ़ हो जाता है मानो आज ही नया बना हो। इसी प्रकार लकड़ी के जंगले और दीवारें, लोहे के गर्डर और रेलिंग, दरवाज़े, खिड़कियां आदि सब साफ़ की जाती हैं। फिर मेज़ों, कुर्सियों तथा अलमारियों को पोंछा जाता है। फिर पीतल के हत्थों, कब्ज़ों आदि पर पालिश होती है। इतने में सूरज भी सिर पर आ जाता है।

जहाज़ की टट्टियां और स्नानागार अंग्रेज़ी ढंग के हैं। स्नानागार में बड़े बड़े टब नहाने के लिये रखे रहते हैं। गरम और ठण्डे – दोनों जलों के नलके लगे हैं। यदि आप चाहें तो समुद्र के खारे पानी में भी नहा सकते हैं। इससे त्वचा के रोग दूर होते हैं ऐसा कहा जाता है।

भोजन की भी पर्याप्त सुव्यवस्था है। देसी-विदेशी दोनों ढंग का खाना मिलता है। मेज-कुर्सी लगी है। छुरी-कांटे पड़े हैं। मजे में मरज़ी के मुताबिक खाइये।

देसी भोजन का ठेका एक गुजराती का है। उसका प्रतिनिधि 'लालजी' नाम से हमारी देखभाल करता है। सुबह छः बजे ही चाय काफ़ी आ जाती है। ११ बजे मध्याह्न भोजन। ३ बजे फिर चाय। शाम को सात बजे रात्रि भोजन और ६ बजे रात फिर चाय या काफी। लोग सोते ११-१२ बजे हैं।

जहाज़ पर दूध-दही का सर्वथा अभाव है। भोजन गुजरातियों की दृष्टि से तो अच्छा है। परन्तु पंजाबी बेचारे तेल की बनी दाल-भाजियों से परेशान हैं। इसीलिये तीसरी श्रेणी के अनेक मुसाफिर अपना खाना स्वयं बनाते हैं। हमें तो दूसरे दरजे की अमीरी ने मार दिया है। पहिले तो हमारे केबिन में जगह ही नहीं और यदि जगह हो भी जाय तो हाथ से पकाने में शरम आती है।

जहाज़ में एक स्टीवार्ड (Steward) नामक प्राणी होता है। इसकी बड़ी महिमा है। हमारे केबिन पर भी एक तैनात है। आप घण्टी बजाइये फौरन हाज़िर होगा आप जो कहें करेगा। जो मंगाएं लायगा। जितनी बार जहां जो चाहे भेजें, जायगा और चूं तक न करेगा। हमारा स्टीवार्ड हम सबके बिस्तरे बनाता है। कपड़े लपेटता है चीजें ठीक करता है, झाड़ू देता है, बूट पालिश करता है, पानी भरता है और न जाने क्या २ करता है। जाते समय इसे बख़्शीश देना न भूलना चाहिये। ये इसका हक है।

अंग्रेज लोग खेल (Sport) के शौकीन हैं। ये जहां भी जायंगे इसका प्रबन्ध करना न भूलेंगे। फर्स्ट क्लास वालों का तो कहना ही क्या! हमारे सैकण्ड क्लास में भी अनेक व्यवस्थाएं की गई हैं। प्रथम तो स्वास्थ्य के सर्वोत्तम व्यायाम "चलने" (walking) की जगह बनाई गई है। आप यदि चाहें तो जहाज़ के ऊपरी डेक पर चल फिर कर ही मीलों का चक्कर लगा सकते हैं। फिर एक रस्सी के छल्ले (Rings) फेंकने का खेल है। ये जहाज़ छोटा होने से बड़े टैनिस की जगह तो नहीं, हां! टेबिल-टेनिस का अच्छा इन्तज़ाम है। आपसे जितनी बालें (Balls) चाहे समुद्र में जा गिरें, इसकी परवाह नहीं। कैरम बोर्ड तो आजकल सर्व-व्यापक हो रहा है। रहा ताश! उसका पूछना ही क्या!

मन-बहलाव के लिये पियानो और ग्रामोफ़ोन हैं। समाचारों के लिये बेतार की तार (Wireless News Service) का प्रबन्ध है। रेडियो की कमी थी। उसके लिये हम लोगों ने मिलकर जहाज़ के प्रबन्धक "मैसर्स मैकिनान मैकाञी" से प्रार्थना की है आशा है हमारे लौटते तक वह भी हो जाएगा।

फिर यात्री भी तो दिल बहलाव का थोड़ा सामान स्वयं जुटाते हैं। गाना-बजाना, खेलना-कूदना दिनभर लगा ही रहता है। आखिर जहाज़ पर और काम ही क्या है? कल शाम को तो बड़ी हलचल रही। पहिले दो सिख, जो चिड़ियां, कबूतर और तोते अफ्रीका ले जा रहे हैं, उन्होंने अपने सिखाये पक्षियों के खेल दिखलाए। फिर गुजराती स्त्रियों ने गर्बा गाया। फिर हमारे साथ ही सफर करती हुई सिनेमा पार्टी ने एक संगीत-सम्मेलन किया। और उधर फर्स्ट-क्लास में योरोपियन

(शेष पृ० ७ पर)

आर्यसमाज और हैदराबाद

[ले०—श्री सच्चिदानन्द जी]

आर्यसमाज उस बीज से वृक्ष बना है जिस बीज की नींव अपने आप बड़ी दृढ़ थी। इसमें आर्यसमाज का गौरव है और आर्यसमाज ने अपने आपको उस बीज की सन्तान माना है। जिस प्रकार कांग्रेस का नाम महात्मा गांधी के साथ जुड़ा हुआ है उसी प्रकार आर्यसमाज का नाम हैदराबाद के साथ जुड़ गया है और जब तक कांग्रेस की एक एक शक्ति पृथ्वी पर विद्यमान है तब तक महात्मा गांधी का नाम और यश विद्यमान रहेगा इसमें कोई शक नहीं है। इसी प्रकार आर्यसमाज के नाम भी हैदराबाद के साथ जुड़ जाने के कारण अमर कीर्ति को प्राप्त हो गया है। आपस में आर्यसमाजों के चाहे कितने ही झगड़े रहे हों, चाहे आर्यसमाजों ने इन अन्दरूनी झगड़ों के कारण जनता द्वारा कटु और हृदय को विदीर्ण करने वाले वचन सुने हों परन्तु समय आने पर आर्यसमाज उसी प्रकार अपने धर्म पर दृढ़ है जिस प्रकार कि आर्यसमाज शुरू में था।

किसी भी धर्म के चलाने की नींव जो रक्खी जाती है उस नींव के रक्खे जाने में सब प्रकार से दृढ़ता रहती है इसमें नींव के रखने वाले बुराई कर ही नहीं सकते हैं। यह दूसरी बात है कि उसके चलाने वालों में दृढ़ता न हो कि इतनी दृढ़ नींव को अपने हाथों में थाम सकें। आर्यसमाज का जन्मदाता दयानन्द था। उसने जो कुछ आर्यसमाज के नियम स्थिर किये वे अब एक इतने उच्च आदर्श की ओर ले जाने वाले हैं जो कि आर्यसमाज के एक एक बालक व पुरुष के लिए अनुकरणीय है। आज आर्यसमाज की परीक्षा हो रही है। स्वर्गलोक से दयानन्द चुपचाप रूप से अपनी दृष्टि को इधर उधर फेंक रहे हैं। देख रहे हैं कि क्या मेरे वीर सैनिक उन बताये हुये धर्म का अनुसरण कर रहे हैं अथवा नहीं।

यदि सचमुच आज हम आर्यसमाज के साथ दयानन्द का सम्बन्ध जोड़ना चाहते हैं तो हमको यह दिखला देना होगा कि हम उसके वीर सैनिक हैं जिस प्रकार वो निर्भीक व्यक्ति अपने देश के लिए मर मिटा है उसी प्रकार हम भी अपने आपको देश के लिए न्योछावर करने को सर्वथा उद्यत होवें। तभी हम आर्यसमाज और दयानन्द के नाम को रोशन कर सकेंगे और उनसे सच्चा सम्बन्ध स्थापित कर सकेंगे।

आज हैदराबाद में नाना प्रकार के अत्याचार हो रहे हैं परन्तु ये अत्याचार आज से नहीं, पता नहीं कब से हो रहे हैं और न जाने कब तक होते रहेंगे। इन अत्याचारों को दबाने के लिए जनता तन, मन, धन से अपना सर्वस्व प्रदान कर रही है। मैथिलीशरणगुप्त के अनुसार आज हैदराबाद के ऊपर एक बड़ी भारी भारी आफत आई हुई है वे लिखते हैं कि—

संसार में किसका समय है एकसा रहता सदा।
है निशि दिवासी घूमती सर्वत्र विपदा सम्पदा॥
जो आज एक अनाथ है नरनाथ कल होता वही।
जो आज उत्सव मग्न है कल शोक से रोता वही॥

अब हैदराबाद अपने अधिकारों को छिनवा कर अनाथ हो जायगा। है हैदराबाद के ऊपर रात दिन एक विपत्ति सी छा गई है। वह चिन्तित है। उसको समझ नहीं पड़ती कि विपत्ति का मुकाबला किस तरह से किया जाय। ये सब समय का ही फेर है। ये अत्याचार कई वर्षों से किये जा रहे हैं, परन्तु समय ने उनको अन्धकार में डाले रक्खा और अन्धकार में पड़ कर हम भी यह भूल गये कि कोई हमारे साथ अत्याचार भी कर रहा है अथवा नहीं। परन्तु आज उसी समय ने हमको यह बतलाया कि भाई ये अत्याचार हैं इनके प्रतिरोध में तुम उठ खड़े होओ। कस कर कमर बांधो और रणक्षेत्र में कूद पड़ो।

आजकल देश में दो चर्चायें चल रही हैं। राजनीति और धर्मयुद्ध। धर्मयुद्ध का राजनीति के साथ यदि विचार किया जाय तो कोई किसी प्रकार का संबंध प्रतीत नहीं होता है। अतः धर्मयुद्ध को राजनीति से परे ही रखना चाहिये। यदि राजनीति के साथ ही धर्मयुद्ध की मांगें रखनी थीं तो धर्मयुद्ध छेड़ने की जरूरत ही न थी। क्योंकि राजनीति वालों ने अपनी मांगें रखनी ही थीं उसमें एक मांग अपनी धार्मिक रख देते। अब जब यह धर्मयुद्ध छिड़ चुका है तो इस वक्त इस तरह कोई किसी प्रकार की गड़बड़ उत्पन्न न होनी चाहिये कि अब इसमें कोई परिवर्तन किया जाय। अब तो धर्मयुद्ध को विजय प्राप्त करके ही छोड़ना चाहिये इसमें चूक नहीं। यदि सचमुच हम सत्य पर डटे हैं तो कोई शक्ति ऐसी नहीं है जो कि हमको सत्य से डिगा सके और जो आज हम अधिकारों के छिन जाने से अनाथ हो गये हैं कल वही सत्य हमको सनाथ कर देगा। अर्थात् हम अधिकारों सहित अपनी सत्ता को लेकर आवेंगे और जनता को यह दिखला देंगे कि वास्तव में हमारी मांग ठीक थी जिसके लिए हम युद्ध कर रहे थे। यह धर्म से संबंध रखने वाला सत्याग्रह विशुद्ध धार्मिक है और इसमें प्रत्येक व्यक्ति को भाग लेने का अधिकार है। कांग्रेस से भी जिनका ध्यान इधर खिंचा है वो इस बात को स्वीकार करते हैं कि यह विशुद्ध धार्मिक युद्ध है और इसमें व्यक्तिगत रूप से सब भाग ले सकते हैं। हैदराबाद में हवन करना और संध्या इत्यादि का सामूहिक रूप से प्रचार करना मना है। और दूसरे पुराने मन्दिरों की मरम्मत और नवमन्दिरों का निर्माण भी मना है। अपने धर्म के लेक्चरबाजी इत्यादि के द्वारा प्रचार करना भी मना है।

ये कितनी छोटी छोटी बातें हैं। जिन पर कि आज आर्यसमाज युद्ध कर रहा है।

यह सब छोटे-छोटे अधिकार निजाम को बिना मांगे ही दे देने चाहिये थे। क्योंकि हमारे यह जन्म सिद्ध अधिकार हैं। यदि हम अपने धर्मग्रन्थों का सामूहिक रूप से प्रचार और धर्म को उन्नत करने के लिये उत्तम उत्तम विचार जनता में फैलाते हैं तो यह समझ में नहीं आता

कि इसमें निजाम का क्या बिगड़ता है। यदि निजाम इन छोटे छोटे अधिकारों को देने के लिये देर पर देर करती जायगी तो इसमें संदेह नहीं है कि निजाम का भविष्य अन्धकारमय है। निजाम को आखिरकार अधिकार जरूर देने पड़ेंगे। क्योंकि ये अधिकार शुद्ध अधिकार हैं और उन अधिकारों के साथ परमात्मा शब्द जुड़ा हुआ है। हमारा धर्मयुद्ध बिलकुल सत्य है। और यह भी निश्चित है कि अन्तमें सत्यकी ही विजय होगी। सिद्धि-मन्त्र यह है कि जब जब किसी देश या जाति ने स्वतन्त्रता प्राप्त की है तो उसको अनेक बलिदान करने पड़े हैं। इसी प्रकार आज हैदराबाद सत्याग्रह में काफी बलिदानों की जरूरत है। यदि हममें से ये बलिदान लगातार होते रहेंगे तो वह दिन निकट ही है कि उसको अपनी नीति परिवर्तन करनी पड़ेगी। इन बलिदानों का अभिप्राय निजाम सरकार को यह चेतावनी देना है कि तुम शीघ्र से शीघ्र अपनी नीति परिवर्तित करो और हमको हमारे अधिकारों को दो जिससे कि हम में और तुममें दोनों में शान्ति स्थापन हो।

गुरुकुल-समाचार

गत सप्ताह ब्र० वीरेन्द्र ३ य श्रेणी विषमज्वर, ब्र० धर्मेन्द्रनाथ (जगालपुर) ४ श्रेणी अतिसार, सत्यव्रत ५ श्रेणी चोट से रोगी हुए थे। अब सब स्वस्थ हैं।

ऋतु सुहावनी है। ब्रह्मचारी गण परीक्षा में लगे होने के कारण सायं काल नहर के किनारे कुछ दूर तक भ्रमण कर आते हैं। तीनों महाविद्यालयोंकी लिखित परीक्षायें १८ मार्च को समाप्त हो जावेंगी। ब्रह्मचारियों का स्वास्थ्य अच्छा है और वे गुरुकुल के वार्षिकोत्सव की तैयारी में लग रहे हैं। उत्सव पर होने वाले व्यायाम सम्मेलन के लिये प्रतिदिन अभ्यास किया जा रहा है। उत्सव के अन्य विविध सम्मेलनों में भी ब्रह्मचारी सोत्साह भाग लेने की तैयारी कर रहे हैं।

गुरुकुल कुरुक्षेत्र का वार्षिकोत्सव

गुरुकुल कुरुक्षेत्र का २६ वां सालाना जलसा २४ २५ २६ मार्च को बड़ी धूमधाम से मनाया जायगा। उत्सव पर श्री पं० रामचन्द्र जी देहलवी, पं० बुद्धदेव जी श्री महता जैमिनी जी, श्री स्वामी अभय देवजी, पं० प्रियव्रत जी, पं० यशपाल जी प० मनसाराम जी आदि महानुभावों के व्याख्यान होंगे। देश के प्रसिद्ध नेता प० कृष्णकान्तजी मालवीकेसभापतित्वमें हैदराबाद सत्याग्रह सम्मेलन होगा। कविता सम्मेलन में हिन्दी तथा उर्दू के प्रसिद्ध २ कवि भाग लेंगे। ब्रह्मचारियों के शारीरिक व्यायाम के खेल भजन तथा व्याख्यान के अलावा ब्रह्मचारी गण'वीर अभिमन्यु' का अभिनय करेंगे। इलाके के मशहूर पहलवानों की कुश्तियें तथा फुटबाल टूर्नामेंट होगा। आर्य भाइयों को बड़ी तादाद में इस उत्सव में पहुंचना चाहिये।

दुकानदारों को सूचना

उत्सव की समीपता के कारण दुकानों का स्थान प्रायः भर गया है। जिन्होंने दुकान रिज़र्व करवानी हों वे २५ मार्च तक करवालें। —प्रबन्धकर्त्ता,

*हैदराबाद सत्याग्रह और गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ

गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ के ब्रह्मचारियों और कर्मचारियों में हैदराबाद सत्याग्रह के लिए विशेष जोश है। गत मास प्रत्येक कर्मचारी ने ५) % के हिसाब से दान हैदराबाद फण्ड के लिये दिया था। कई ब्रह्मचारी और कर्मचारी धर्मयुद्ध में भाग लेने के लिये उत्सुक हैं परन्तु अधिकारियों की आज्ञा अभी नहीं मिली।

आज ११ मार्च को श्री पं० ज्ञानचन्द्र जी बी. ए आर्य सेवक का हैदराबाद सत्याग्रह के सम्बन्ध में शोलापुर जाते समय गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ के ब्रह्मचारियों और कर्मचारियों द्वारा तुगलकाबाद स्टेशन पर विशेष उत्साह से स्वागत किया गया। गुरुकुल के सब ब्रह्मचारी और कर्मचारी उपस्थित थे। वैदिक धर्म की जय, आर्य वीरों की जय, हैदराबाद सत्याग्रह के अधिनायकों की जय से आकाश गूंज उठा। श्री पं० ज्ञानचन्द्र जी और उनके साथी सत्याग्रही वीरों का तिलक और फूलों से स्वागत किया गया और १५१) की थैली सत्याग्रह फण्ड के लिये भेंट की गई।

[पृष्ठ ५ का शेष]

स्त्री-पुरुषों ने ग्रामोफोन के आर्केस्ट्रा गान पर सुन्दर नाच किया।

सैकण्ड-क्लास की बैठक (Smoking Room) में एक जहाजी नकशा लगा है। इसमें दिशाएं और रेखाएं डिग्रियों में दिखलाई गई हैं। जहाज के आने-जाने के मार्ग चिन्ह हैं। पानी की गहराई अन्दर की चट्टानों आदि का भी वर्णन है। कैप्टेन की ओर से हमें प्रतिदिन सूचना मिल जाती है कि आज हमने कितने मीलों का सफर तय किया है और जहाज की वर्तमान दिशा क्या है। कल आठ फर्वरी को बोर्ड पर निम्न सूचना थीः—

सफर तै किया = ३२१ मील। दिशाः—लैटिट्यूड १-२१ उत्तर, लांगीट्यूड ४६°-२६° पूर्व। हमारा जहाज पहिले दक्षिण-पश्चिम जा रहा था। अब कुछ दिशा भेद हुआ। प्रतीत होता है भू-मध्य-रेखा को हमने ७ फर्वरी की रात को पार किया था। उसके इर्द-गिर्द गरमी वस्तुतः अधिक रही।

ज्यों २ हम पश्चिम की ओर जा रहे हैं समय भी पीछे होता जा रहा है। अब तक लगभग तीन घण्टे घड़ियां पीछे की जा चुकी हैं।

× × × ×

कल इस समय हम जहाज से उतर जाएंगे। उतरने का ख़याल करके थोड़ा दुःख होता है। दिल करता है अभी कुछ दिन और रह सकते। अभी तो समुद्र से परिचय ही हुआ था। प्रथम परिचय के पश्चात् प्रेम का पौदा पनपने लगा था और अभी वियोग? धीरे से समुद्र की ठण्डी हवा कानों के पास आकर कहती है "यात्री! यही संसार का नियम है। यहां आवागमन - आना, जाना सदा लगा रहता है। इसीलिये तो कवि ने कहा है "संयोगा विप्रयोगान्ताः"।

गुरुकुल कांगड़ी की प्रसिद्ध औषधियां

सिद्ध मकरध्वज

स्वर्ण घटित ! कस्तूरी मिश्रित !!

नया खून पैदा करता है। वीर्य को पुष्ट करता है। नस २ को तेज और स्फूर्ति देता है।

मूल्य २४) तोला

सुगन्धित हवन सामग्री

॥) सेर

ब्राह्मी तैल

स्नान के बाद सिर पर लगाने के लिए यह सुगन्धित तैल अत्युत्तम है। इससे दिमाग तरोताजा रहता है, स्मरण शक्ति बढ़ती है।

मूल्य ॥) शीशी

च्यवनप्राश

शक्तिदायक ! स्वादिष्ट !! रसायन !!!

स्वास्थ्य तथा बल बढ़ाने के लिए बच्चे, बूढ़े, जवान स्त्री पुरुष सभी को इसका सेवन करना चाहिए। मूल्य ४) सेर

सत शिलाजीत

पेशाब का बार २ आना ... में धातु का गिरना, दर्द-कमर ... गुर्दों, जिगर की कमजोरी आदि रोगों में विशेष लाभदायक है।

मूल्य ॥।) तोला

क्षुधा वर्धक द्राक्षासव

१।) पौंड

पता—आयुर्वेदिक फार्मेसी गुरुकुल कांगड़ी (सहारनपुर)

चौधरी हुलासराय के प्रबन्ध से गुरुकुल प्रेस गुरुकुल कांगड़ी में मुद्रित तथा प्रकाशित।

* ओ३म् *

"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत"

Reg. No. A. 2927

गुरुकुल

सम्पादक—साहित्यरत्न पं० हरिवंश वेदालङ्कार

एक प्रति का मूल्य -) [गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख-पत्र] वार्षिक मूल्य २॥)

वर्ष ३] गुरुकुल काङ्गड़ी, शुक्रवार ११ चैत्र १९९५; २४ मार्च १९३९ [संख्या ४४

निमन्त्रण

मान्यवर ?

आपको यह जान कर प्रसन्नता होगी कि गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी का ३९ वां वार्षिकोत्सव २५, २६, २७, २८, चैत्र संवत् १९९५ तदनुसार ७, ८, ९, १० अप्रैल १९३९ को बड़े समारोह के साथ गुरुकुल-भूमि में मनाया जावेगा। मैं बड़े प्रेम और आग्रह से आप को इस उत्सव में सम्मिलित होने के लिये निमन्त्रित करता हूं।

गुरुकुल भारत का सब से बड़ा राष्ट्रीय शिक्षणालय है। यहां वैदिक और संस्कृत साहित्य के साथ साथ इतिहास, अर्थशास्त्र, राजनीति, फिलासफी, रसायन आदि विविध विषयों की उच्चतम शिक्षा राष्ट्रभाषा हिन्दी के माध्यम द्वारा दी जाती है। गुरुकुल में उच्च मानसिक शिक्षा के अतिरिक्त ब्रह्मचर्य के नियमों और आश्रम-प्रणाली द्वारा विद्यार्थियों के चरित्र सुधार के लिये विशेष उद्योग किया जाता है। इस समय गुरुकुल कॉगड़ी तथा उसकी शाखाओं में एक हज़ार से ऊपर विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। गुरुकुल में शिक्षा प्राप्त कर जितने भी विद्यार्थी अब तक स्नातक हुए हैं, उनका बड़ा भाग देश, जाति, धर्म और साहित्य की सेवा में अपना जीवन व्यतीत कर रहा है।

इस अनुपम शिक्षणालय का वार्षिकोत्सव अपना एक विशेष स्थान रखता है। आर्यसमाज का यह सब से बड़ा वार्षिक मेला है। इस में दूर दूर से हज़ारों नर-नारी सम्मिलित होते हैं। इस वर्ष गुरुकुल का उत्सव बहुत महत्वपूर्ण होगा। ईस्टर की छुट्टियों में जब सर्वत्र आप के दैनिक कार्य स्थगित से होंगे गुरुकुल के इस उत्सव पर आइये और अपनी आत्मा तथा मन को तृप्त कीजिये। मुझे पूर्णविश्वास है कि आप अपने परिवार, बन्धु तथा इष्ट-मित्रों के साथ पधार कर उत्सव की शोभा बढ़ावेंगे।

आपका दर्शनाभिलाषीः-

सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार

मुख्याधिष्ठाता गुरुकुल कांगड़ी।

उत्सव की विशेषताएँ

गुरुकुल के ३९ वें वार्षिकोत्सव के विशेष कार्यक्रम का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

१ सरस्वती सम्मेलन—इस बार उत्सव में सरस्वती-सम्मेलन की दो बैठकें होंगी। प्रथम बैठक में संस्कृत में वाद विवाद होगा। दूसरी बैठक में वैदिक विषयों पर महत्वपूर्ण निबन्ध पढ़े जायेंगे।

२. वाद-विवाद सम्मेलन -'गान्धीवाद व समाजवाद में देश के लिये कौन हितकर है' इस विषय पर ज़ोरदार वाद विवाद होगा। गान्धीवाद की ओर से श्री मज़िरअली सोख़्ता तथा समाजवाद की ओर से श्री एम० एन० राय भाषण करेंगे। सभापति युक्तप्रान्त के न्याय व उद्योग-मन्त्री श्री डाक्टर कैलाशनाथ काटजू होंगे।

३ हैदराबाद सम्मेलन—यह सम्मेलन बड़े धूमधाम के साथ किया जायगा जिसमें आर्यसमाज के धुरन्धर विद्वान्, पूज्य सन्यासीगण तथा देश के मान्य नेता भाग लेंगे।

४ दीक्षान्त संस्कार—इस वर्ष का दीक्षान्त महत्वपूर्ण होगा। युक्तप्रान्त के शिक्षा-सचिव श्री बा० सम्पूर्णानन्द जी दीक्षान्त भाषण देंगे। इनके अतिरिक्त देश के अन्य भी कई मान्य नेता पधार कर स्नातकों को आशीर्वाद देंगे।

५. व्यायाम सम्मेलन—इस सम्मेलन में ब्रह्मचारी अपने शारीरिक खेल दिखलावेंगे। व्यायाम के अन्य विशेषज्ञ भी पधार कर अपना अद्भुत कौशल दिखलावेंगे। इस सम्मेलन के सभापति श्रीमान् महाराजाधिराज शाहपुराधीश होंगे।

६ संगीत सम्मेलन—इस सम्मेलन की शोभा बढ़ाने के लिये देश के प्रसिद्ध संगीतज्ञ पधारेंगे। मास्टर मोहन और मास्टर मदन भी इसमें भाग लेने के लिये आ रहे हैं। इस सम्मेलन के सभापति श्रीमान् महाराजाधिराज आवागढ़ नरेश होंगे।

इसके अतिरिक्त वेद सम्मेलन और कविता सम्मेलन भी होंगे। गुरुकुल के प्रेमियों से प्रार्थना है कि भारी संख्या में पधारकर उत्सव की शोभा बढ़ायें।

गु रु कु ल

११ चैत्र शुक्रवार १९९५

गुरुकुल का उत्सव—

इस उत्सव के साथ गुरुकुल अपने जीवन का एक अन्य वर्ष समाप्त कर रहा है। यद्यपि कहने को कुल का जीवन केवल ३७ वर्ष का है किन्तु इस थोड़े ही काल में हमारे देश ने शिक्षा क्षेत्र में चतुर्मुखी उन्नति की है। एक समय था जबकि शिक्षा के माध्यम, आश्रम जीवन आदि अनेक बातों में हमारे देश की शिक्षा-संस्थाएँ गुरुकुल से बहुत पिछड़ी हुई थी। तब हमें गर्व था कि हमारा गुरुकुल शिक्षा-जगत् में एक नयी क्रान्ति का उपासक किंवा पथ-प्रदर्शक है। धीरे २ हमारे देखा देखी अथवा समय के प्रभाव से देश की शिक्षा-संस्थाओं ने सिद्धान्तरूप में उन सब बातों को स्वीकार कर लिया कि जिनके आधार पर गुरुकुल की शिक्षा अवलम्बित है। इस समय भारतीय शिक्षा के विकास में दूसरा युग आया। बनारस में हिन्दू विश्वविद्यालय, विजगापट्टम में आन्ध्र विश्वविद्यालय, व हैदराबाद में जामिया उस्मानिया का जन्म इसी युग में हुआ था किन्तु उन्हीं दिनों महात्मा गांधी के नेतृत्व में वह प्रचण्ड लहर भी देश में आई जिसमें खुले रूप में देश का ध्यान राष्ट्रीय शिक्षा की ओर आकृष्ट हुआ। इसी जमाने में काशी, गुजरात, विहार व जामिया मिलिया आदि विद्यापीठ कायम हुए। यह सन्तोष की बात है कि इन सब विद्यापीठों ने गुरुकुल के शिक्षा-क्रम व आश्रम जीवन को काफ़ी हद तक अपनाया। दिल्ली के निकट यमुना के पवित्र तट पर छोटे विद्यार्थियों के लिये जामिया मिलिया द्वारा स्थापित नये आश्रम हमारी इस बात के ज्वलन्त-प्रमाण हैं। और अब— जबकि दो वर्ष से भिन्न २ प्रान्तों में प्रान्तीय स्वतंत्रता का अधिकार हुआ है— देश के शिक्षाक्रम में एक नयी क्रान्ति होने जा रही है। क्रान्ति की इस उथल-पुथल में हमारा गुरुकुल क्या भाग ले सकता है इसका निर्णय करना हरेक गुरुकुल प्रेमी का कर्त्तव्य है। गुरुकुल का वार्षिकोत्सव उसी पुनीत-कर्त्तव्य की याद दिलाता है। हम आशा ही नहीं निश्चय है कि सब भारी संख्या में उपस्थित होकर जहां इस उत्सव को सफल बनायेंगे वहां गुरुकुल की उन्नति के लिए भी सक्रिय परामर्श देकर हमें अनुगृहीत करेंगे।

उत्सव में डेरों का किराया

१— छोलदारी बड़ी किराया ४)

जिसमें ५ या ६ आदमी रह सकें

२— डेरा ई० पी० सिंगल

किराया ८)

वार्षिकोत्सव की तैयारी

गुरुकुल कांगड़ी का ३७ वां वार्षिकोत्सव बड़ी धूमधाम से ईस्टर की छुट्टियों में ७ से १० अप्रैल तक मनाया जायेगा। इस अवसर पर युक्तप्रान्त के शिक्षा-मन्त्री श्री बाबू सम्पूर्णानन्द जी, न्याय-मन्त्री डा० कैलाशनाथ काटजू, श्री एम० एन० राय, महाराजाधिराज शाहपुर तथा अनेक आर्यसामाजिक धार्मिक व राजनैतिक नेता गुरुकुल पधार रहे हैं। इनमें से श्री० बा० सम्पूर्णानन्दजी दीक्षान्त भाषण देंगे। डा० कैलाशनाथ काटजू वाद-विवाद सम्मेलन के अध्यक्ष होंगे, जिसमें "गांधीवाद व समाजवाद में से कौनसा देश के लिये अधिक लाभदायक है" इस विषय पर बहस होगी। इस सम्मेलन में श्री० मंजिरअली सोख्ता गांधीवाद की स्थापना करेंगे व प्रसिद्ध समाजवादी नेता श्री० एम० एन० राय समाजवाद के पक्ष में बोलेंगे। इसके अतिरिक्त अन्य अनेक समाजवादी नेता भी इस वाद-विवाद में भाग लेंगे। व्यायाम सम्मेलन महाराजाधिराज शाहपुराधीश का अध्यक्षता होगा। इसमें गुरुकुल के विद्यार्थियों के शारीरिक प्रदर्शन होंगे। इन सम्मेलनों के अतिरिक्त एक संगीत-सम्मेलन भी होगा जिसमें श्री० मास्टर मदन व मास्टर मोहन भाग लेंगे। इस सम्मेलन के सभापति श्रीमान् महाराजाधिराज आवागढ़ नरेश होंगे। महाराज की अपनी संगीत-मंडली भी इस सम्मेलन की शोभा बढ़ायेगी। इसी प्रकार स्वामी सत्यानन्द जी महाराज, स्वामी अभयदेव जी, आचार्य रामदेव जी, पं० प्रियव्रत जी, प्रो० धर्मेन्द्रनाथ जी, श्री० महेन्द्रप्रताप जी व पं० बुद्धदेव जी आदि के धार्मिक व सामाजिक विषयों पर महत्वपूर्ण भाषण होंगे। ईस्टर के अवसर पर भारतवर्ष की सभी रेलवे कम्पनियां रियायती टिकट जारी करती हैं अतः उम्मेद की जाती है कि गुरुकुल के इस अवसर पर जनता काफी संख्या में पहुंचेगी। इस अवसर पर नये विद्यार्थियों का भी गुरुकुल में प्रवेश होगा।

मुख्याधिष्ठाता

गुरुकुल कांगड़ी।

आवश्यकता

गुरुकुल महाविद्यालय वैद्यनाथधाम के लिये एक योग्य, अनुभवी, सच्चरित्र, शिक्षित, प्रबन्ध-कार्य में प्रवीण तथा पूर्ण आर्य विचारों के मुख्याधिष्ठाता (प्रबन्धकर्त्ता) की आवश्यकता है। वेतन योग्यतानुसार ५०) रु० तक दिया जायगा। अपने प्रमाण पत्रों सहित आवेदन पत्र ता० ७ अप्रैल १९३९ तक निम्न पते पर भेजें—

मन्त्री, गुरुकुल वैद्यनाथधाम

पोस्ट गुरुकुल वैद्यनाथ

संथाल परगना

उत्सव का कार्यक्रम

६ अप्रैल गुरुकुल जन्मोत्सव

७ अप्रैल १९३९

प्रातः—

७-३०-से ८-३० हवन तथा भजन

८-३०-से ९- उपदेश—स्वामी अभयदेव जी

९ से १०-३० संस्कृत में वाद विवाद
विषय—"धर्मः शान्तेः कारणमशान्तेर्वा"।

१०॥ से ११ छोटे ब्रह्मचारियों की अन्त्याक्षरी

मध्याह्न—

१—से १-३० भजन

१-३० से २-३० व्याख्यान
श्री प० चन्द्रगुप्त जी वेदालंकार

२-३० से ४॥ हैदराबाद सम्मेलन

रात्रि—

७॥ से ८ तक भजन

८ से ९ तक व्याख्यान
श्री पं० सुखदेव जी दर्शनवाचस्पति

९ से १० तक व्याख्यान श्री पं० महेन्द्रप्रताप शास्त्री
विषय—'वैदिक ईश्वर का स्वरूप"

८ अप्रैल १९३९

प्रातः—

७ से ८ तक भजन

८ से १० तक वेद-सम्मेलन

सभापति—पंचांग निर्माता ज्योतिषाचार्य श्री पं० दीनानाथ जी शास्त्री इन्दौर
(१) पं० विश्वनाथ जी वेदोपाध्याय
(२) पं० बुद्धदेव जी विद्यालङ्कार
(३) प० जयदेव जी विद्यालङ्कार के
वैदिक विषयों पर निबन्ध होंगे।

१० से ११ तक व्याख्यान
श्री पं० यशःपाल जी सिद्धान्तालंकार

मध्याह्न—

१—से १-३० तक भजन

१-३० से ३॥ तक गांधीवाद व समाजवाद पर वाद-विवाद। सभापति—माननीय श्री डा० कैलाशनाथ काटजू न्यायमन्त्री यू०पी०

(१) श्री एम. एन. राय समाजवाद का प्रतिनिधित्व करेंगे।

(२) श्री मंज़रअली सोख़्ता गांधीवाद का प्रतिनिधित्व करेंगे।

३॥ से ५—तक व्याख्यान पं० बिहारीलाल जी काव्यतीर्थ

रात्रि—

७ से ८ तक भजन

८ से ९ तक व्याख्यान
पं० धर्मेन्द्रनाथ जी तर्क शिरोमणि।

९ से १० तक व्याख्यान
श्री पं० बुद्धदेव जी विद्यालङ्कार

९ अप्रैल १९३९

प्रातः—

७ से ११ तक दीक्षान्त संस्कार

माननीय बा.बू सम्पूर्णानन्द जी शिक्षा-मन्त्री यू०पी० दीक्षान्त भाषण देंगे।

मध्याह्न—

१॥ से २ तक भजन

२ से ३ तक गुरुकुल सम्मेलन
सभापति—श्री आचार्य रामदेव जी।

३ से ४ तक व्याख्यान तथा अपील
पं० प्रियव्रत जी वेदवाचस्पति।

रात्रि—

७ से ८ तक भजन

८ से १० तक व्यायाम सम्मेलन
सभापति—महाराजा शाहपुराधीश

१० अप्रैल १९३९

प्रातः—

७ से ९-३० तक वेदारम्भ संस्कार

९-३० से ११ तक वेद सम्मेलन की दूसरी बैठक

मध्याह्न—

१ से २ तक भजन

२ से ३ तक व्याख्यान—ला० हरदयाल जी एम.ए.

३ से ४ तक व्याख्यान

रात्रि—

संगीत सम्मेलन
सभापति—श्री आवागढ़ नरेश

छोटे पंडाल में

८ अप्रैल रात्रि—कविता सम्मेलन।

गुरुकुल—स्थापना की कहानी

[ले० श्री द्विरेफ]

संध्या समय गगन मण्डल में-
छाई थी अनुपम लाली,
नीरवता को बढ़ा रही थी-
गंगाध्वनि कलकल वाली ।१।
व्योम शान्त था, शान्त विहग थे,
प्रकृति शान्त थी मतवाली,
धरती-तल पर मृदुल मनोरम-
बिछी हुई थी हरियाली ।२।
इसी काल निज-श्रान्त हयों को-
लघु-विश्राम दिलाने को,
उतर गया रवि गंगा तट पर,
संध्या-विधि कर लेने को ।३।
अंशुमालि-के अस्त समय ने-
पश्चिम का मुख म्लान किया,
पर सहसा किस दिव्य देव ने
उसे ज्योति का दान दिया ।४।
तत्क्षण सुर-सरि के पुलिनों पर-
सूर्य बिम्ब सा उदित हुआ ।
द्वात्रिंशत छोटे बिम्बों से-
जो समोद अनुगमित हुआ ।५।
दौड़ पड़ी वनदेवी पुलकित,
पहिनाई सुरभित माला ।
होड़ लगी, गंगा ने पहिले-
पद-पंकज था धो डाला । ६।
गुरुवर की प्रिय शिष्य-मंडली-
खड्डे के नीचे आई,
ओ३म् नाम की पुण्य-पताका-
ने बढ़कर शोभा पाई । ७
शुक-शावक ने किंशुक दल से-
मुख निकाल पूछा माँ से:- ।
"हैं ये कौन ? यहाँ क्यों आए ?
निकल पड़े हैं क्यों घर से ? । ८।
पुण्य-राशि, इन महा मुनि का
शुचि अवदात महानन है ।
जिसे देखकर क्रूर जन्तु का-
भी होता कोमल मन है । ९
महातपा जाबाली हैं या-
ऋषि अगस्त्य गौरवशाली ।
त्यागी, शुचि दधीचि मुनि क्या यह
वाल्मीकि प्रतिभा शाली । १०
अथवा त्याग-तपपुञ्ज भगीरथ-
सुर सरिता लाने वाले ।
महा महिमया मुनिमरीचि हैं-
सृष्टि-सृजन करने वाले" । ११
माँ बोली- "प्रिय वत्स ! नहीं अब--
शिवि-दधीचि हैं इस भू पर ।
सभी जा चुके स्वर्ग लोक को-
बीते बहुत लाख वत्सर ।१२।
वसुधा-तल के सकल-मलों के-
नाशनार्थ भूपर सत्वर,
धर्म ध्वजा फहराने आये-
मुंशी-राम ये हैं यतिवर ।१३।
धन्य भाग्य हैं वत्स ! हमारे-
इनका दर्शन-लाभ हुआ,
वन-पर्वत सब धन्य धन्य जिन-
का इनसे अनुराग हुआ । १४ ।
गंगा इनकी चरण-धूलि से-
निश्चय अति पावन होगी,
प्रकृति वनों की फल पुष्पों से-
निरवमान सुषमा होगी" ।१५।
मृदु बोली सुनकर शुक-कुल की-
स्मित ज्योत्स्ना मुख पर छाई,
ऋषिवर बोले फुल्ल वदन से-
शान्त गिरा थी सुखदाई ।१६।
"सुनलो, खग-मृग विटप-लताजन-
गुरुकुल का स्थापन होगा,
मुदित शान्त इस रम्य मही में-
कभी नहीं क्रन्दन होगा" ।१७।
कह ऐसा, आचार्य-प्रवर ने
झंडा फहराया अपना,
बहुत युगों के बाद हुआ फिर-
पूरा वह सुन्दर-सपना ।१८।
अदम-उमंग-मुदित फिर बढ़कर-
गाड़ी ध्वजा विशाल महा
सबने मिलकर तुमुल-नाद से-
दयानन्द जयकार कहा ।१९।

गुरुकुल समाचार

ऋतु अत्यन्त सुहावनी है । महाविद्यालय के ब्रह्मचारियों की वार्षिक परीक्षायें समाप्त हो चुकी हैं, विद्यालय की परीक्षायें एक सप्ताह में शुरु हो जायेंगी । सब ब्रह्मचारी उत्सव की तैयारियों में ज़ोर शोर से लगे हुए हैं ।

श्री पं० चन्द्रमणि जी का प्रस्थान —

हैदराबाद में सत्याग्रह करने के लिये जाते हुए आर्य जगत् के प्रसिद्ध विद्वान व महारथी श्री पं० चन्द्रमणि जी विद्यालंकार २१ मार्च को गुरुकुल पधारे । देहरादून के अन्य १३ व्यक्ति भी आप के अधिनायकत्व में सत्याग्रह करने जा रहे हैं । जब आप गुरुकुल पहुंचे तब आप का कुल वासियों ने हृदय खोल कर स्वागत किया और बैण्ड बाजे के साथ सभा भवन में लाये । श्री प्रो० विश्वनाथ जी तथा श्री पं० सत्यव्रत जी मुख्याधिष्ठाता ने अपने गम्भीर एवं विजयोल्लास पूरित भाषणों द्वारा सत्याग्रहियों का उत्साह बढ़ाया । अन्त में श्री पं० चन्द्रमणि जी ने अपना मार्मिक एवं ओजस्वी भाषण दिया । उसी दिन आप समस्त कुलवासियों की विजयाशाओं के साथ हैदराबाद को रवाना हो गए ।

मुद्रक—गुरुकुल प्रेस, गुरुकुल कांगड़ी ।

* ओ३म् *

"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत" Reg. No. A. 2927

गुरुकुल

सम्पादक--साहित्यरत्न पं० हरिवंश वेदालङ्कार

एक प्रति का मूल्य -) [गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख-पत्र] वार्षिक मूल्य २॥)

वर्ष ३] गुरुकुल काङ्गड़ी, शुक्रवार १८ चैत्र १९९५; ३१ मार्च १९३९ [संख्या ४५

गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी में —

३७वें वार्षिकोत्सव की तैयारियां हो गईं

"अब विलम्ब केहि कारण कीजै"

आर्य जगत् को यह भली भांति विदित होगा कि गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी में ७ से १० अप्रैल तक होने वाले वार्षिकोत्सव की तैय्यारियां बड़े ज़ोर शोर से हो रही हैं। इस अवसर पर भारत के प्रत्येक भाग से सहस्रों की संख्या में नर-नारी आकर एकत्र होते हैं और उत्सव के चार दिनों का लाभ लूट कर जब अपने २ घरों की ओर रवाना होते हैं तब अपने हृदयों में अनुपम शान्ति और आनन्द अनुभव करते हैं। साल भर नून-तेल-लकड़ी की चिन्ता में झुलसने वाली अपनी अन्तरात्मा को इस 'चार दिन की चान्दनी' का भी आनन्द लेने दीजिये। याद रखिये कि यह 'चार दिन की चान्दनी' बाद में आने वाली अन्धेरी रातों में भी रोशनी दिखा कर आपको पथभ्रष्ट होने से बचाती रहेगी तथा आपके आगामी वर्ष को प्रकाशवान् बनाएगी। यहां के वार्षिकोत्सव पर प्रति बार आने वाले सज्जनों में से कुछ सज्जन ऐसे भी हैं जो गुरुकुल के प्रथम वार्षिकोत्सव से लेकर अब तक प्रति वर्ष बिना चूके पधारते हैं। और ऐसों की संख्या तो सैकड़ों तक पहुंचती है जो १५-२० वर्षों से लगातार गुरुकुल कांगड़ी के उत्सव पर आ-आकर अपनी आध्यात्मिक पिपासा को शान्त करते हैं। इन्हें बड़े से बड़ा घरेलू झंझट रोक नहीं सकता और ये अपने कर्त्तव्य का स्मरण कर गुरुकुल के उत्सव पर नियत तिथि को अवश्य पहुंचते हैं। इसके अतिरिक्त इस अवसर पर पञ्जाब, युक्त प्रान्त, बिहार आदि प्रान्तों की कितनी ही आर्यसमाजों के प्रतिनिधि आते हैं और अपनी २ समाजों के लिए भावी-वर्ष का कार्यक्रम यहीं से तैयार करके ले जाते हैं। आप भी इस उत्सव पर आइये और अपने अग्रिम वर्ष को सक्रिय, उत्साहपूर्ण तथा स्मरणीय बनाइये। अब विलम्ब न कीजिये, शीघ्र ही गुरुकुल चलने की तैयारी कीजिये।

इधर एक वर्ष से कांग्रेसी राज्य में परिस्थितियों की अनुकूलता के कारण ज्यों-ज्यों शिक्षा में सुधार हो रहा है त्यों-त्यों जनता का ध्यान गुरुकुल की ओर आकर्षित हो रहा है और यह संस्था प्रतिदिन प्रतिष्ठित तथा सर्व-प्रिय होती जा रही है। गुरुकुलीय-सिद्धान्तों को हिन्दू ही नहीं बल्कि मुसलमान-अंग्रेज़ आदि भी बड़ी तेज़ी से अपनाते जा रहे हैं। ऐसी अवस्था में गुरुकुल का ही कर्त्तव्य है कि वह आगे बढ़ कर इन सभी संस्थाओं का पथ प्रदर्शन करे और उनमें आ सकने वाली बुराइयों से उन्हें बचावे। हर्ष का विषय है कि इस बार के वार्षिकोत्सव में इस विषय पर गम्भीरता पूर्वक विचार होगा और एतत्सम्बन्धी छोटी से छोटी बातों की भी विस्तृत विवेचना की जायगी।

९ अप्रैल को -

दीक्षान्त संस्कार होगा। दीक्षान्त-भाषण यू० पी० गवर्नमेंट के शिक्षा-सचिव श्री बाबू सम्पूर्णानन्द जी देंगे। आर्यजगत् के उच्चतम कोटि के व्याख्याताओं और सन्यासियों के अतिरिक्त उत्सव पर श्री माननीय डा० कैलाशनाथ काटजू न्याय मन्त्री यू० पी०, श्री मज़िर अली सोख्ता, श्री एम० एन० राय, श्री शाहपुराधीश, श्री आवागढ़ नरेश आदि पधार कर उत्सव की शोभा को बढ़ाएंगे। अन्त में हम बड़े प्रेम और आग्रह से आपको इस उत्सव में सम्मिलित होने के लिए सादर निमन्त्रित करते हैं। आशा है आर्यजनता भारी संख्या में आकर उत्सव की श्री वृद्धि करेगी।

गुरुकुल-सेवा का संकल्प

[ले०—श्री स्वामी अभयदेव जी आचार्य]

विद्या सभा ने फिर मुझे गुरुकुल की सेवा का अवसर प्रदान किया है। इस तरह मुझे इसलिए लिखना पड़ता है चूंकि गत बार जब मैंने गुरुकुल का त्याग किया तो वह इस भाव के साथ किया कि अब मुझे गुरुकुल से कुछ सम्बन्ध नहीं रखना, गुरुकुल को भूल जाना है। ऐसा भाव होने का एक मुख्य कारण यह था कि मैंने देख लिया था कि जिन परिस्थितियों में मेरी गुरुकुल सेवा कुछ लाभदायक हो सकती है वे परिस्थितियां पैदा होना असम्भव सा है। पर घटना-चक्र बदला। मेरे गुरुकुलीय सेवा कर सकने की अनुकूल परिस्थितियों या शर्तों पर विचार करने के लिए जो उपसमिति स्थापित की गई थी वह सफलता पूर्वक समाप्त हुई। उस समिति के सदस्यों का—विशेषतः श्री माननीय प० विश्वम्भरनाथ जी का मैं इस प्रकार से सार्वजनिक रूप से धन्यवाद किए बिना नहीं रह सकता कि उन्होंने मेरी बातों को ध्यान से, सहृदयता से और उदारता के साथ सुना और स्वीकार किया तथा मेरी सहायता करने का हार्दिक आश्वासन प्रदान किया। सामान्य रूप से विद्या सभा ने मेरे पाण्डीचेरी जाने की बात के बारे में जिस उदारवृत्ति का परिचय दिया उसके लिये वह भी विशेषतः धन्यवाद की पात्र है। विद्या सभा की उस वृत्ति का मुझ पर असर हुआ है और मैं आशा करता हूं कि मैं उसके असली आशय को पूरा करने वाला साबित होऊंगा।

विद्या सभा का प्रस्ताव

इस सम्बन्ध में विद्यासभा ने जो प्रस्ताव स्वीकार किया है उसका सार्वजनिक रूप से उपयोगी भाग इस प्रकार है:-

(क) "स्वामी अभयदेव जी का गुरुकुल-सञ्चालन-नीति सम्बन्धी पत्र ता० २७-२-३६ पढ़ा गया, निश्चय हुआ कि गुरुकुल सञ्चालन सम्बन्धी यह नीति ठीक है और गुरुकुल के आरम्भ से यही नीति रही है।

(ख) उक्त स्वामी जी का गुरुकुल में कार्य करने सम्बन्धी पत्र व्यवहार पेश हुआ और उन से विचार विनिमय भी हुआ। स्वामी अभयदेव जी का विचार है कि उक्त नीति को अधिक बल-पूर्वक चलाया जावे, क्यों कि इस सभा को भी यही अभीष्ट है इसलिये यह सभा स्वामी जी से प्रार्थना करती है कि वे गुरुकुल के आचार्य पद को ग्रहण कर के गुरुकुल को अपने आदर्श तक पहुंचाने के लिये सभा की सहायता करें।

(ग) निश्चय हुआ कि यह सभा गुरुकुल के वर्तमान कार्य कर्त्ताओं से दृढ़ आशा रखती है कि वे उक्तनीति को कार्य रूप में परिणत किये जाने में अधिक से अधिक सहायक होंगे।" विद्या सभा के इस प्रस्ताव में गुरुकुल-सञ्चालन सम्बन्धी जिस पत्र के पढ़े जाने का जिक्र है, जिस नीति को ठीक और (गुरुकुल के प्रारम्भ से चली आयी) कहा गया है तथा जिसे अधिक बल-पूर्वक चलाये जाने के मेरे विचार का वर्णन करते हुवे कहा गया है कि यही सभा को अभीष्ट है वह मेरा पत्र निम्न लिखित है:—

गुरुकुल संचालन की नीति

अन्तर्विकास करता हुआ गुरुकुल इस समय ऐसी अवस्था में आ गया है कि यदि अब गुरुकुलीय सेवा पद्धति में निम्न बातों पर विशेष ज़ोर न दिया जाय तो गुरुकुल का आगे अग्रसर होना सम्भव नहीं।

[१] गुरुकुल के सब गुरु (अध्यापक और विशेषतः उपाध्याय) गुण कर्म स्वभाव से ब्राह्मण ही होने चाहियें।

[२] अतएव यहां वेतन की अधिकता अब प्रतिष्ठा या उच्च पद का चिह्न नहीं समझा जाना चाहिये।

[३] यहां के गुरुओं का जीवन सादे से सादा होना चाहिये, उनकी भौतिक आवश्यकतायें कम से कम होनी चाहियें। अर्थात् वे अपरिग्रही होने चाहियें। अतः देश की स्थिति की दृष्टि से भी अब गुरुकुलीय अध्यापक उपाध्यायों (गुरुओं) का वेतन अधिक से अधिक ७५) तथा विशेष अवस्था में १००) मासिक तक होना चाहिये।

[४] यह भी स्पष्ट है कि गुरुकुल में सेवा की स्थिरता करने वाला बन्धन अधिक रुपये नहीं किन्तु गुरुकुलीय आदर्शों से प्रेम होना चाहिये अर्थात् गुरुकुलीय सेवा करने वाला प्रत्येक सेवक ऐसा होना चाहिये जो न केवल अधिक वेतन मिलता देख कर गुरुकुल की सेवा को छोड़ नहीं देगा किन्तु किसी समय भूखा रह कर भी गुरुकुल की सेवा में ही लगा रहेगा।

[५] यथा शक्ति यह यत्न किया जाय कि गुरुकुल का प्रत्येक सेवक स्थिर (आजीवन) सेवक हो। पर आजीवन सेवक बनने का हेतु उसका गुरुकुलीय आदर्शों से ज्ञानयुक्त और सक्रिय प्रेम ही हो, न कि आर्थिक दृष्टि से निश्चिन्तता आदि कोई अन्य हेतु। अतएव आजीवन सदस्यता का निश्चय सेवक को कई वर्ष (साधारणतया ५ वर्ष) अच्छी तरह देख लेने के बाद ही होना चाहिये।

[६]क. गुरुकुलीय आदर्शों से किसी का कितना प्रेम है इसका निश्चय किन्हीं भी बाह्य निश्चित चिन्हों से नहीं हो सकता। यद्यपि वे सन्ध्या अग्निहोत्र करें, खादी ही पहिनें, उनका भोजनाच्छादन रहन सहन, सादा शुद्ध सुन्दर और संयत हो, वे अपने बालक गुरुकुल में ही पढ़ायें इत्यादि कुछ नियम बनाए जा सकते है पर ये सब कार्य बिना सच्ची भावना के भी किये जा सकते हैं। अतएव एकमात्र बाहरी चिन्हों पर भरोसा नहीं रक्खा जा सकता। किन्तु दूसरी तरफ यह भी ठीक है कि यह प्रेम छिपा भी नहीं रह सकता। अतः इतना कहा जा सकता है कि जो ऊँचे दर्जे के सदाचारी और ज्ञानी हों, जो गुरुकुल को सचमुच अपना परिवार समझें, जो ब्रह्मचर्य से रहते हों और जिनका जीवन वैदिक संस्कृति

से स्वभाविकतया रंगा हुआ हो वे गुरुकुलीय आदर्शों से प्रेम रखने वाले माने जावेंगे। और उन्हीं के जिम्मे गुरुकुल में ब्रह्मचारियों के शिक्षण व अध्यापन का कार्य सौंपा जाना चाहिये। और उन्हें ही गुरुकुल का सेवक स्वीकार करना चाहिये।

ख इस प्रकार सेवकों को स्थिर सदस्य बनाए जाने का अन्तिम निश्चय गुरुकुल के आचार्य अथवा उसकी सलाह से कुलपति या विद्यासभा के प्रधान या विद्यासभा से नियुक्त कोई समिति करेगी (जैसा जिस समय उचित समझा जाय)।

[७] कुल भावना की दृष्टि से नकद रुपयों की अपेक्षा अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के रूप में वेतन लिया जाना अधिक अच्छा समझा जाय। अर्थात् जो स्थिर सेवक निर्वाहमात्र लेवें उनको रुपया मकान और उनकी परिस्थित्यनुसार एक या दो बालकों का गुरुकुल में रुपया शिक्षण इत्यादि रूप में सहायता देना अधिक अच्छा समझा जायेगा। इससे गुरुकुल के साथ एकात्मता बढ़ती है।

[८] गुरुकुलीय शिक्षा पद्धति की एक बड़ी विशेषता यह है कि वहां बाहर के प्रतिकूल वायुमण्डल से बचा कर अपने बनाए शुद्ध वायुमण्डल में वह ब्रह्मचारियों का पालन पोषण करती है। अतः गुरुकुलीय वायुमण्डल की शुद्धता को निरन्तर कायम रखने की दृष्टि से यह आवश्यक है कि किसी घटिया या अवांछनीय व्यक्ति को गुरुकुल में शिक्षक का स्थान न दिया जाय, इसके लिए चाहे कभी कुछ काल के लिए किसी खास विषय की पढ़ाई भी बन्द रखनी पड़े। क्योंकि गुरुकुलीय वायुमण्डल से तो ब्रह्मचारी का जीवन (श्वास प्रश्वास) चलता है, पढ़ना लिखना तो खाने पीने के समान है जिसे कुछ समय के लिये छोड़ा भी जा सकता है पर प्राण वायु को नहीं खराब किया जा सकता।

[९] जैसे कि अधिक से अधिक वेतन ७५) है या (विशेष अवस्था में १००) तक) वैसे कम से कम वेतन की भी मर्यादा होनी चाहिये जिससे कि कम में मनुष्य अपना जीवन निर्वाह ठीक प्रकार नहीं कर सकता। वर्तमान स्थिति में गुरुकुलीय सेवकों के लिये यह मर्यादा २०) २५) मासिक होनी चाहिये।

प्रथम वैशाख (१३ अप्रेल)

गुरुकुल संचालन सम्बन्धी मेरे इस पत्र पर विद्यासभा ने जो उपर्युक्त निश्चय किया है उसके अनुसार मैंने यह संकल्प कर लिया है कि मैं प्रथम वैशाख (१३ अप्रैल) के दिन गुरुकुल का कार्य भार ग्रहण करूंगा। इस दिन मैं व्रती होकर गुरुकुल को भगवान् के अर्पण करूंगा और गुरुकुल संचालन को भगवान् का काम समझ 'उसी की कृपा से यह सफल हो सकता है' यह जानते हुये इसी निरहङ्कार-भाव से गुरुकुल सेवा करने का व्रत ग्रहण करूंगा। मैं चाहता हूं कि इस भारी उत्तर-दातृत्व को लेते समय वैशाखी के पुण्य दिवस पर मुझे परमेश्वर का आशीर्वाद प्राप्त होवे, अतएव मैं यह भी इच्छा करता हूं कि इस वृहत् परिवार के सभी सदस्यों की—न केवल गुरुकुल के ब्रह्मचारियों और कर्मचारियों की किन्तु स्नातकों और संरक्षकों की भी तथा सभी आर्य महानुभावों की, बल्कि सभी वैदिक (भारतीय) संस्कृति के पुनरुद्धार में तथा गुरुकुल शिक्षा-प्रणाली में विश्वास रखने वाले महानुभावों की—इस दिन शुभ-कामना मुझे प्राप्त हो सके। अपनी तरफ से उस आशीर्वाद तथा उन शुभ कामनाओं को पाने का अधिकारी बनने का शक्ति भर सतत यत्न करता हुआ ही मैं उपर्युक्त विनती करता हूँ।

बन्दी बन्धुओं का समाचार

अभी हाल में हैदराबाद सेन्ट्रल जेल से छूटे हुए श्री नारायणराव आर्य का एक पत्र श्री मुख्याधिष्ठाता जी के नाम आया है आप लिखते हैं—

श्रीमान् मुख्याधिष्ठाता जी,

सादर नमस्ते।

जेल में सब ब्रह्मचारी आनन्द प्रसन्न हैं। ब्र० सत्येन्द्र जी, ब्र० देवराज जी तथा ब्र० विजयकुमार जी को चक्की पीसने का काम दिया गया है। ब्र० क्षेत्रपाल जी और ब्र० विद्यासागर जी को कपड़ा बुनने का। शेष ब्र० धीरेन्द्र जी, ब्र० इन्द्रसेन जी, ब्र० ओमप्रकाश जी, ब्र० उदयवीर जी, ब्र० सतीशकुमार जी, ब्र० रामनाथ जी ब्र० मनोहर जी, ब्र० विद्यारत्न जी, ब्र० विश्वमित्र जी और ब्र० चन्द्रगुप्त जी पत्थर कूटते हैं।

कृपाभिलाषी—
नारायणराव आर्य,
कलमकर, निजाम स्टेट

छुट्टी की सूचना—

ग्राहकों से निवेदन है कि वार्षिकोत्सव के कारण ७म अंक का अंक प्रकाशित नहीं होगा। —सम्पादक

गुरुकुल

१८ चैत्र शुक्रवार १९९५

हैदराबाद का आर्य 'सत्याग्रह' और कांग्रेस

[ले० — श्री स्वामी अभयदेव जी]

(१)

आर्यसमाज की इस सत्याग्रह (शान्तिमय लड़ाई) के बारे में मैं अभी तक चुप रहा हूँ। कई बार चुप रहना बोलने की अपेक्षा अधिक सेवाकारक होता है। चुप रहने का एक स्वाभाविक कारण यह था कि जब तक सब स्थिति को अच्छी तरह अध्ययन न कर लिया जाय पूरी तरह समझ न लिया जाय तब तक कुछ बोल पड़ना अनुचित होता है। अब ऐसी अवस्था होगयी है कि मैं समझता हूँ कि मैं बोलने द्वारा भी कुछ सेवा कर सकता हूं अतः इस सत्याग्रह के संचालकों की सम्मति से इस प्रथम लेख द्वारा कुछ लिखना प्रारम्भ किया है।

इस बार 'यह सत्याग्रह और कांग्रेस' इसी विषय तक अपने को परिमित रखूंगा। दुःख है कि आर्यसमाज के कुछ उपदेशक और कुछ पत्र भी इस विषय में कांग्रेस को बुरा भला कहने तक उतर आते हैं। कई वक्ता और लेखक तो कांग्रेस को और गांधी जी को तथा अन्य कांग्रेस नेताओं को (मुसलमानों को तो कहना ही क्या) बिना कोसे अपना पक्ष पोषण ही नहीं कर सकते हैं- ऐसा प्रतीत होता है। इस बारे में मैं तो अभी इतना ही कह सकता हूं कि इस प्रकार के असंयम से पवित्र उद्देश्य के लिये प्रारम्भ की गई यह धार्मिक लड़ाई उस-हद तक कलुषित हो जाती है, लाभ कुछ भी नहीं होता। ऐसा करने वाले आर्यसमाज के उत्तरदायी नेता लोग हैं या अनुत्तरदायी और उत्तरदायी हैं तो किस हद तक उत्तरदायी हैं-इस विवाद में इस समय न पड़कर इतना ही निश्चित रूप से कहा जाना उचित है कि कम से कम यह सार्वदेशिक सभा की नीति नहीं है। अतः यदि हम चाहते हैं कि यह लड़ाई कलुषित न हो, पवित्र बनी रहे तो इस सम्बन्ध में व्याख्याताओं और लेखकों को सार्वदेशिक सभा की नीति का ही कठोरता के साथ पालन करना चाहिए—दूसरे शब्दों में श्री पूज्य स्वा० सत्यानन्द जी महाराज या श्री प्रो० सुधाकर जी (मंत्री सार्वदेशिक सभा), ला० देशबन्धु जी, म० कृष्ण जी आदि अपने मान्य-नेताओं के दिये भाषणों और लेखों का अनुगमन करना चाहिये। यदि कोई उनका अनुगमन करने में असमर्थ हो तो उसे चुप रहना चाहिये। इस प्रकार के अनुशासन या आत्मनियन्त्रण के बिना कोई लड़ाई नहीं लड़ी जा सकती, धार्मिक लड़ाई तो कभी भी नहीं। अस्तु, यह तो एक प्रारम्भिक बात हुई जिसके बिना मैं 'कांग्रेस और अपना सत्याग्रह' इस विषय पर ही नहीं आ सकता था।

यह ठीक है कि महात्मा गांधी तथा कांग्रेस के नेता इस सत्याग्रह के बारे में लगभग चुप हैं। इसी से ही खिज कर लोगों को उन्हें और कांग्रेस को बुरा भला कहने की उकसाहट होती है। पर यदि हमारा पक्ष सत्य है और हमारी मांग तथा उसे पूरा कराने के उपाय धार्मिक तथा उचित हैं तो हमें इसकी क्यों चिन्ता होनी चाहिये कि कांग्रेस वाले या कोई और हमारे पक्ष का समर्थन क्यों नहीं करते। कांग्रेस राजनैतिक संस्था है, हमारा सत्याग्रह धार्मिक है। धार्मिक पुरुष तो परमेश्वर के सिवाय और किसी भी अन्य की सहायता पर भरोसा नहीं रखता है। कांग्रेस के जी में आवे तो वह हमारी सहायता या समर्थन करे, पर यदि वह नहीं करती है तो उससे हमें क्या? इस पर हमारा क्रुद्ध होना किसी तरह समझ में आने लायक बात नहीं है। इस प्रकरण में हमारी जो वृत्ति होनी चाहिए उसके उदाहरण के रूप में मैं नीचे श्री ला० नारायणदत्त जी का यह भाषण उद्धृत करता हूँ जो कि उन्होंने अभी १० मार्च की शाम को देहली से दोहाने के जत्थे को विदायी देते हुये किया था। मैं उस दिन देहली में ही था। इस भाषण से पता लगेगा कि हमारा गांधी जी तथा कांग्रेस के प्रति क्या उचित वृत्ति होनी चाहिए। लाला जी ने यह ज़िकर करते हुए कि आज वे महात्मा गांधी से मिलकर और सत्याग्रह के बारे में बातें करके आये हैं और अनुभव करते हैं कि सत्याग्रह कितनी पवित्र और ऊंची वस्तु है, सत्याग्रहियों को संबोधन करते हुए कहा "तुम्हें पूर्ण-शुद्ध धार्मिक भाव से, तपस्या के लिए ही हैदराबाद जाना चाहिए। सत्याग्रह के दिव्य हथियार को संसार को देने वाले महात्मा गांधी ही हैं, अतः सत्याग्रह करते हुये हमें उन्हीं सत्य अहिंसा के आदर्शों का पालन करने का प्रयत्न अपनी शक्ति भर करना चाहिये जिन्हें कि महात्मा गांधी ने प्रतिपादन किया है। अन्य बहुतों की तरह मैं भी पहिले यह मानता था कि कांग्रेस ने हैदराबाद में जो अपना सत्याग्रह बन्द कर दिया वह उसने बुरा किया। मैं उनके इस कृत्य से अप्रसन्न था। पर अब मैं मानता हूँ कि उन्होंने यह बिलकुल ठीक किया। मैं तो समझता हूँ कि हमने कांग्रेस से सहायता मांगने में भी गलती की। किसी भी राजनैतिक संस्था से—बल्कि परमेश्वर के सिवाय किसी भी अन्य से—सहायता मांगना अनुचित था। यदि कांग्रेस का राजनैतिक सत्याग्रह चलता रहता तो हमारे धार्मिक सत्याग्रह की शुद्धता कायम नहीं रह सकती थी। वैसा होना बहुत बुरा होता। मैं शोलापुर में भी किसी कांग्रेस आदि की सहायता मांगने के विरुद्ध था। मेरा यह विचार गांधी जी से मिलने से और पुष्ट हो गया है।" अन्त में फिर सत्याग्रहियों के लिये सत्य, धार्मिकता, अहिंसा पर पूर्ण बल देने की चर्चा करके भाषण समाप्त किया।

आर्यसमाज के इस आन्दोलन पर महात्मा गांधी का चुप रहना (अतएव अन्य कांग्रेस नेताओं का भी

चुप रहना) बुरा नहीं है, यह सप्रयोजन है। मैं तो यह भी कह सकता हूं कि यही हैदराबाद-सत्याग्रह के सञ्चालकों के लिए अधिक अनुकूल है। अतः गांधी जी आदि के मौन को—इस दृष्टि से भी—बुरा नहीं किन्तु अच्छा माना जा सकता है किन्तु कई लोग कहेंगे कि गांधी जी ने और जवाहरलाल जी ने इसे साम्प्रदायिक बना दिया है—यह बात है जो बुरी है और इस पर उन्हें क्रोध आता है। पर गांधी जी ने तो आर्यसत्याग्रह को शुद्ध धार्मिक कहा है, पर हिन्दु सभा के साथ के कारण इसमें साम्प्रदायिक रंग चढ़ गया है ऐसा बतलाया है। जवाहरलाल जी ने भी आर्यसमाज की मांग को सर्वथा उचित बताया तथा हैदराबाद रियासत के रवैय्ये की निन्दा की है। फिर भी जो इन्होंने साम्प्रदायिक रंग आ जाने की चर्चा की है उसका स्पष्ट इतना ही मतलब है कि यह ख़तरा है कि यह आन्दोलन हिन्दु-मुस्लिम दंगे का रूप धारण न कर ले जिसे कि शायद कोई भी आर्यनेता नहीं चाहता। इसीलिये सार्वदेशिक सभा तथा आर्यनेता यह कहते हैं कि हमारी यह लड़ाई हिन्दु और मुसलमानों की लड़ाई नहीं है किन्तु एक रियासत में (वह इस समय दुर्भाग्य से मुसलमानी रियासत है) अपने धार्मिक अधिकारों के प्राप्त करने की लड़ाई है। अतः यदि अपनी लड़ाई को साम्प्रदायिक द्वेषभाव से सर्वथा जुदा रखकर सावधानता और कुशलता के साथ इस तरह चलायें कि यह हिन्दु मुसलमानों की लड़ाई का साम्प्रदायिक रूप न धारण कर ले (और मेरी समझ में असली धार्मिक सत्याग्रह में इस संभावना की गुंजायश भी नहीं होनी चाहिये) तो जवाहरलाल जी और गांधी जी को प्रसन्नता ही होगी। उन्होंने तो केवल एक आशंका प्रकट की है जिसकी संभावना हो सकती है क्योंकि उन्हें सारे देश की दृष्टि से देखना होता है। तो इसमें गांधी जी या जवाहरलाल जी से नाराज़ होने की क्या बात है ?

असली बात यह है कि कांग्रेस का एक भी नेता ऐसा नहीं है जो आर्यसमाज की मांगों को सर्वथा उचित न समझता हो और जो आर्यसमाज की सफलता न चाहता हो। आप किसी भी नेता से बात करके देख लीजिये। कांग्रेस के तत्कालीन जनरल सेक्रेटरी श्री कृपलानी जी ने इस पर जो अपनी सम्मति लिखी है उसके होते हुए कांग्रेस से नाराज़गी की क्या बात रहती है यह समझ में नहीं आता है। यदि किन्हीं आर्यसमाजियों ने श्री कृपलानी जी का वह पत्र नहीं पढ़ा है तो वे पढ़ लें। राजेन्द्रबाबू जी से जब पूछा गया तो उन्होंने भी वही जवाब दिया। वह भी अखबारों में छप चुका है। अतः अन्य नेताओं से पूछा जायगा तो वे भी वैसा ही जवाब देंगे। तो फिर हम कांग्रेस के नेताओं से और क्या चाहते हैं ? यदि कोई आर्यसमाजी गांधी जी द्वारा दी गई इस सहायता की कद्र करना चाहे तो मैं उन्हें यह भी सूचित करना चाहता हूं कि महात्मा नारायण स्वामी जी के पैरों का कैदियों का कड़ा उतारा जाना तथा उनके भोजन में सुधार किया जाना यह गांधी जी के द्वारा किये गये प्रयत्न का ही फल है।

अन्त में मैं पाठकों का ध्यान इस लेख के नीचे प्रकाशित उस वक्तव्य की तरफ आकर्षित करना चाहता हूँ जिसमें कांग्रेस में काम कर चुके और कर रहे आर्यसमाजियों की तरफ से इस आर्यसत्याग्रह के प्रति कांग्रेस का क्या उचित रुख होना चाहिये और (उनकी सम्मति में) है उसे अच्छी तरह प्रकट किया गया है। उसे पाठक अवश्य पढ़ें। इस सम्बन्ध में मेरा सब अभिप्राय उस वक्तव्य में आगया है।

हैदराबाद का सत्याग्रह और कांग्रेस

(२)

[कांग्रेस के आन्दोलन में काम कर चुके और काम कर रहे कांग्रेस के कुछ प्रमुख कार्य कर्त्ताओं की तरफ से एक वक्तव्य]

हैदराबाद के आर्य सत्याग्रह के प्रति आर्य समाजी कांग्रेस जनों का तथा सभी कांग्रेस जनों का क्या रुख होना चाहिये इस विषय में कुछ मति विभ्रम उत्पन्न होगया प्रतीत होता है। पर असल में ऐसे मति विभ्रम की कुछ भी गुंजाइश नहीं है। यह बिलकुल स्पष्ट है कि आर्य समाज का यह सत्याग्रह शुद्ध धार्मिक भाव से और अपने धार्मिक अधिकारों की रक्षा के लिये ही प्रारम्भ किया गया है। इस लिये इस सत्याग्रह में सम्मिलित होने का अधिकार प्रत्येक कांग्रेसी आर्य समाजी को भी है, जैसे गैर कांग्रेसी आर्य समाजी को। पक्के से पक्का कांग्रेसी होना और वैसा ही दृढ़ आर्यसमाजी होना यह एक साथ चल सकते हैं इसमें कुछ भी विरोध नहीं। अतः आर्य समाजी कांग्रेस जन न केवल आर्य समाजी होने के कारण किन्तु अन्ततः कांग्रेसी होने से भी इस सत्याग्रह में भाग ले सकते हैं – उनका कांग्रेस में होना इसमें जरा भी बाधक नहीं हो सकता।

कांग्रेसी होना ऐसी बातों में बाधक हो ही कैसे सकता है ? कांग्रेस तो सभी धर्मों के व्यक्तियों की एक ऐसी देश व्यापी राष्ट्रीय संस्था है जोकि सभी धर्मों के अधिकारों की रक्षा के लिये वचन-बद्ध है। इसी में उसका बल है। इसलिये कांग्रेस ने अपने करांची अधिवेशन के मौलिक अधिकारों वाले प्रस्ताव में सभी धर्मावलम्बियों को अपने विश्वास को रखने और विधि विधानों व धर्म-कृत्यों के करने की स्वाधीनता की गारंटी की है। इसलिये यह तो कांग्रेस का कर्त्तव्य है कि वह जब देखे कि किन्हीं धर्मावलम्बियों के इन मौलिक अधिकारों का इतनी बुरी तरह अपहरण किया जा रहा है जितना कि हैदराबाद रियासत ने करके एक हृदय-द्रावक और भयंकर अवस्था उत्पन्न करदी है तो वह उसकी रक्षा के लिये सक्रिय प्रतिकार भी करे।

और कांग्रेस ऐसा करती भी रही है। अपने मुसलमान भाइयों के खिलाफत आन्दोलन में- जोकि एक सर्वथा धार्मिक प्रश्न था- कांग्रेस पूरी तरह लड़ती रही है। इस निवेदन के नीचे हस्ताक्षर करने वाले हम

सब इस आर्य समाजी खिलाफत के लिये भी लड़ते रहे हैं और अपने मुसलमान भाइयों के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर इसके लिये सब कष्ट सहते रहे हैं और जेल भी गये हैं। इस लिये यदि हम इस अवसर पर अपने राष्ट्रीय (असाम्प्रदायिक) मुसलमानों से यह आशा करें कि वे इस समय आर्य समाज के धार्मिक अधिकारों की रक्षा के लिये आगे बढ़ें तो यह ज़रा भी अनुचित नहीं है। विशेषतः जबकि यह सत्याग्रह एक मुसलमानी शासन की रियासत में हो रहा है, उनकी सहायता और भी आवश्यक है। इस सत्याग्रह के शुद्ध धार्मिक होते हुवे भी जो इसमें कुछ सांप्रदायिक रंग चढ़ गया है उसे दूर कर देना जितना हमारे मुसलमान भाइयों के इसमें हिस्सा लेने से हो सकता है उतना और किसी उपाय से नहीं हो सकता। अस्तु इसी प्रकार सिक्खों की धार्मिक लड़ाई में— गुरुका बाग तथा जैतो के आन्दोलन में भी— कांग्रेस सक्रिय भाग लेती रही है। तो इस समय आर्य-समाज के इस धार्मिक सत्याग्रह में कांग्रेस का विमुख होना या सर्वथा उदासीन रहना कुछ समझ में नहीं आता है।

यह सभी जानते हैं कि हैदराबाद रियासत के आर्य समाज की मांगें बहुत ही मामूली हैं और विशुद्ध धार्मिक हैं। ये ऐसी हैं जिन्हें कोई भी सभ्य सरकार इन्कार करने की हिम्मत नहीं कर सकती। और इन मौलिक अधिकारों के अपहरण को अपनी शिकायतों को छै साल तक दूर करने के सब यत्न वैध उपायों द्वारा करते करते जब कुछ परिणाम न निकला तभी मजबूर होकर उसे सत्याग्रह करना पड़ा है इसलिये आर्य समाज ने कोई जल्दबाज़ी की है या इस दृष्टि से यह असामयिक है यह भी कोई नहीं कह सकता। एवं यह लड़ाई हैदराबाद रियासत से होने के कारण मुसलमानों के विरुद्ध है यह ख्याल कर लेना भी अनुचित है। आर्य समाज अपने धार्मिक अधिकारों की लड़ाई हिन्दु रियासतों में भी लड़ चुका है। पटियाला में और धौलपुर में भी आर्य वीरों ने धर्म के लिये जो कष्ट सहन किये थे उन्हें जनता फिर आज याद कर सकती है। अब की आर्य समाज की लड़ाई हैदराबाद रियासत में आ पड़ी है तो इससे रियासत वालों के लिये बेशक इसे साम्प्रदायिक रूप दे देना बहुत आसान होगया है पर उनका ऐसा करना और लोगों का ऐसा समझ लेना आर्य समाज के साथ भारी अन्याय करना है।

कांग्रेसी आर्य समाजियों के प्रति हम यह भी कहना चाहते हैं कि हैदराबाद की स्टेट कांग्रेस ने महात्मा गांधी की सलाह से जो अपना राजनैतिक सत्याग्रह स्थगित किया है उसका यह मतलब कभी नहीं निकलता कि आर्य समाज के इस धार्मिक सत्याग्रह में कांग्रेसी आर्य समाजी भी धार्मिक सत्याग्रही के रूप में भी भाग न लें। राजनैतिक सत्याग्रही के रूप में वे भाग न लें इसका इतना ही मतलब है। इसी तरह लुधियाने की प्रजा-परिषद् में यद्यपि बहु-सम्मति से इस आर्य सत्याग्रह को, 'असामयिक यह विशेषण दिया जा सका सका है तो भी उस प्रस्ताव से आर्यसमाजियों द्वारा— वे चाहे कांग्रेसी हों— इस सत्याग्रह में शामिल होने के औचित्य पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। वे प्रस्ताव केवल रियासतों की दृष्टि से हैं और वहां उत्तरदायी शासन स्थापित करने की दृष्टि से हुवे हैं। पर यह सत्याग्रह आर्य समाज के धार्मिक अधिकारों के लिये लड़ा जा रहा है और केवल रियासती जनता के लिये ही परिमित नहीं है। इन दोनों बातों पर हमारा यह स्पष्ट अभिप्राय है।

यह ठीक है कि आर्य समाज के किन्हीं मामूली कार्य कर्त्ताओं या स्वयंसेवकों की तरफ से विशेषतया हिन्दु-महासभा के कार्य-कर्त्ताओं के कारण इस लड़ाई में साम्प्रदायिकता की रंगत आगयी है, जिसको सर्वथा दूर करने का दृढ़ निश्चय आर्य सत्याग्रह की सञ्चालक समिति ने कर लिया है। तो भी यह स्पष्ट है कि अबतक भी आर्य समाज के जिम्मेदार कार्यकर्त्ताओं और नेताओं की तरफ से भाषण व लेखन द्वारा या किसी अन्य प्रकार का ऐसा कोई कार्य नहीं हुवा है जिसे कि साम्प्रदायिक कहा जा सकता हो बल्कि इसके विपरीत ऐसे उदाहरण विद्यमान हैं कि यदि किसी व्यक्ति ने ऐसा कुछ भी करना चाहा है तो उसे रोका गया है और किया है तो उसको डांटा गया है।

इसलिये हम निवेदनकर्त्ता इस निवेदन द्वारा राष्ट्रीय विचार रखने वाले सभी देश वासियों से विनम्र भाव से यह अपील करना चाहते हैं कि वे इस आर्य सत्याग्रह की मजबूरी आवश्यकता, औचित्य और पवित्रता को पूरी तरह अनुभव करें तथा दूसरों को भी अनुभव कराने की की कृपा करें और कम से कम अपना नैतिक साहाय्य निःसंकोच भाव से इस आन्दोलन को प्रदान करें। विशेषतः मुसलमान नेताओं से हम प्रार्थना करते हैं कि वे इस आन्दोलन का सही-ठीक रूप मुसलमान जनता को बतायें और यदि उनकी अन्तरात्मा गवाही दे तो वे इस आन्दोलन में आर्य समाजियों के साथ सत्याग्रह में भी उचित स्थान पर हाथ बटावें। यह सही है कि इस आर्य सत्याग्रह को सांप्रदायिक रंग जितना उन मुसलमान जनता के कारण मिलता है जोकि अज्ञान के कारण इस आन्दोलन को अपने विरोध में समझती है और अतएव इसमें अनावश्यक रूप से खिज जाती है उतना दूसरे किसी अन्य कारण से नहीं मिलता। अतः मुसलमान नेताओं का इस में सक्रिय सहायता और सहानुभूति इस आन्दोलन के साम्प्रदायिक हो-सकने की सम्भावना को ही खतम कर दे सकती है। इस लिये मुसलिम नेताओं से हमारा यह विशेष निवेदन है। अन्त में हम आर्य सत्याग्रह के संचालकों से भी अपील करते हैं कि वे इस आन्दोलन में थोड़ी बहुत भी और किसी भी रूप में साम्प्रदायिकता आगयी हो उसे वे तुरन्त और कठोरता के साथ दूर कर देवें। इसी तरह इस सत्याग्रह की सफलता न केवल आर्य समाज के लिये किन्तु अन्ततः सारे देश के लिये और सब धर्म

वालों के लिये वरदान साबित हो सकती है नहीं तो खतरनाक भी साबित हो सकती है। यह स्पष्ट है कि इस आर्य सत्याग्रह में विजय प्राप्त हो जाने पर हैदराबाद की जनता को यह बल मिल जायगा कि वहां उत्तरदायी शासन के लिये किये जाने वाला अग्रिम सत्याग्रह भी बहुत आसान हो जायगा। अतः सभी देशवासियों को कांग्रेसी, गैर कांग्रेसी, मुसलमान या हिन्दू सभी को अपने अपने तरीके से यथोचित रूप से इसमें सहायता देनी चाहिये और भगवान से इसकी शुभ सफलता के लिये कामना करनी चाहिये।

गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ में हैदराबाद सत्याग्रहियों का स्वागत

२४ मार्च को श्री पं० चन्द्रमणि जी विद्यालंकार के नेतृत्व में देहरादून निवासी आर्य भाइयों का सत्याग्रही जत्था गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ में पहुंचा। उनका शानदार स्वागत किया गया और सभा हुई, जिसमें हैदराबाद आर्य सत्याग्रह आन्दोलन को न्यायोचित तथा शुद्ध धार्मिक बताते हुये श्री मुख्याधिष्ठाता जी का प्रभावशाली भाषण हुआ। अन्त में श्री प० चन्द्रमणि जी ने इस आन्दोलन के महत्व को बताते हुये इसमें सम्मिलित होने की अपील की। इस सभा में कसूर का एक सत्याग्रही जत्था भी सम्मिलित था।

२० मार्च से ६म-१०म श्रेणियों की वार्षिक परीक्षा प्रारम्भ हो गई हैं। २७ मार्च से ६ष्ठ, ७म, ८म श्रेणियों की परीक्षाएं भी शुरू हो जाएंगी। गुरुकुल मुलतान से श्री प० जगन्नाथ जी वेदालंकार की अध्यक्षता में तीन विद्यार्थी परीक्षा के लिये आ गए हैं। गुरुकुल कुरुक्षेत्र के विद्यार्थी २७ मार्च को पहुंचेंगे। ५ अप्रैल को सब परीक्षाएं समाप्त हो जाएंगी।

ब्र० वेदभूषण १०म Herpes रोग से पीड़ित है। शेष कोई रोगी नहीं।

गोपाल
मुख्याधिष्ठाता

गुरुकुल गुलशन

[ले०—श्री सत्यभूषण 'योगी']

मंजुल गुरुकुल-गुलशन में हम आज सैर करके आए!
वृद्ध हिमाचल की गोदी में बसी एक सुन्दर बस्ती,
गङ्गा उसे चूमती, गाती, बहती है नचती हँसती!
दिग्दिगन्त में कलि फूलों की मादक, मधु गन्ध महकती!
पत्ती पत्ती में अलियों की विस्मृत-सी तान थिरकती!
सुषमा सखियों के सँग आकर जीवन के गाने गाए!
मंजुल गुरुकुल गुलशन में हम आज सैर करके आए!

[२]
प्रेमी! उस गुलशन में बारहमास फूल फूला करते!
फूल फूल डालों पर अलिगण अपने को भूला करते!!
निशिदिन जागरूक रह कितने घूमा करते प्रिय माली!
तन मन धन से करते हैं वे तापस उसकी रखवाली!
उनके स्नेह सलिल से सिंचित गुलशन वेसुध लहराए!
मंजुल गुरुकुल गुलशन में हम आज सैर करके आए!

[३]
ऊषा मुसकाती आती है पूजा का सामान लिए!
विहग-राग के साथ साम का आदि मनोहर गान लिए!
साम-गान की मधुर तान का एक समा बँध जाता है!
दूर दूर भी जाता राही पलभर को रुक जाता है!!
उस 'महान-गायक' की वाणी सुनकर कौन न लहराए!
मंजुल गुरुकुल गुलशन में हम आज सैर करके आए!!

[४]
संध्या जाती है मुसकाती, कहती है आओ, आओ!
रजनी अगणित दीप जलाकर कहती है आओ आओ—
देखो, देखो, गुरुकुल गुलशन, मुनियों का पुण्य तपोवन!
देखो चुपके से, सोते हैं इसमें अभिवन्द्य तपोधन!!
कहीं न नींद, तुम्हारा कोलाहल सुन, इनकी खुल जाए!
मंजुल गुरुकुल गुलशन में हम आज सैर करके आए!!

[५]
गुरु शिष्यों को प्रेमभाव से जीवन-ज्ञान सिखाते हैं!
छिपे रहस्यों के पर्दों को खोल उन्हें दिखलाते हैं!!
कभी न रीते रीते होते, ऐसे अक्षय सागर हैं!
पर ऊपर से देखो तो लगते छोटी-सी गागर हैं!!
उनके सादे जीवन में है जीवन की सुन्दरताएं!
मंजुल-गुरुकुल-गुलशन में हम आज सैर करके आए!!

[६]
जब भारत को मनोदासता के बन्धन काले काले
जकड़े बैठे थे, वैदेशिक शिक्षा के हम मतवाले
सात समुद्र पार की भाषा पढ़ इठलाते फिरते थे!
और मातृभाषा अपनाने में अपमान समझते थे!
अपनेपन का अलख जगाने श्रद्धानन्द यती आए!
मंजुल-गुरुकुल-गुलशन में हम आज सैर करके आए!!

[७]
"निज गुलशन में हम ज़हरीली हवा नहीं बहने देंगे!
अपनी खिलती कलियों को हम बद्ध नहीं रहने देंगे!!
उन्हें स्वतन्त्र होकर खिलना औ' जीना हम सिखलायेंगे!
हम क्या हैं, हम हम होकर इस दुनिया को दिखलायेंगे!"
आज़ादी के उस गायक ने प्रतिपल ये गाने गाए!
मंजुल-गुरुकुल-गुलशन में हम आज सैर करके आए

[८]
निकल पड़ा वह घर से, पहन फकीरों का सुन्दर बाना!
(अकलमन्द लोगों ने उसको समझा पागल दीवाना!!)
निशिदिन एक किए उसने औ' खून पसीना एक किया!
नहीं भूल सकते हैं उसकी कृति कभी निःसीम दया!!
उसकी आत्मा की छवि से ही गुलशन खिल खिल मुसकाए!
मंजुल-गुरुकुल-गुलशन में हम आज सैर करके आए!!

चौधरी हुलासराय के प्रबन्ध से गुरुकुल प्रेस गुरुकुल कांगड़ी में मुद्रित तथा प्रकाशित।

* ओ३म् *

"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत" Reg. No. A. 2927

गुरुकुल

सम्पादक—साहित्यरत्न पं० हरिवंश वेदालङ्कार

एक प्रति का मूल्य -) [गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख-पत्र] वार्षिक मूल्य २॥)

वर्ष ३] गुरुकुल काङ्गड़ी, शुक्रवार २ वैशाख १९९६; १४ अप्रैल १९३९ [संख्या ४६

अभिनन्दन-पत्र

[गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी के ३७ वें वार्षिकोत्सव के अवसर पर माननीय श्री सम्पूर्णानन्द जी, मन्त्री शिक्षा विभाग यू० पी० की सेवा में निम्नलिखित अभिनन्दन पत्र पढ़ा गया] —सम्पादक

आदरणीय अतिथि महोदय,

आज चिरप्रतीक्षा के बाद आपको अपने बीच में पाकर हम सब कुलवासी जिस अलौकिक आनन्द का अनुभव कर रहे हैं उसे लेखनी या वाणी द्वारा वर्णन नहीं किया जा सकता। आपके इस अनुग्रह के लिए हम हृदय से आभारी हैं और आपका शतशः धन्यवाद करते हैं। इस अवसर पर हम आपका अपने हृदयतल से अभिनन्दन और स्वागत करते हैं। शायद हमारे इस स्वागत में आपके मन्त्रीपद व प्रतिष्ठा के अनुरूप राजसी ठाठ और साजोसामान दृष्टिगोचर न होता हो लेकिन, निःसन्देह, हमारे इस सात्विक और सरल स्वागत के पीछे हमारे समस्त हृदय की स्नेहसिक्त मूक-भावना तरङ्गित हो रही है। आशा है, आप हम कुलवासियों के अकिंचन पत्र-पुष्प, शवरी के बेर समझ कर, स्वीकार करेंगे।

इस विद्यामन्दिर में हम लोग, अपने प्रकाश के अनुसार, प्राप्त ज्ञान के प्रसार और नवीन ज्ञान की अभिवृद्धि का प्रयत्न कर रहे हैं। हमें इस बात का गर्व है कि हमारे प्रान्त की शिक्षा-नीति का सूत्र आप जैसे शिक्षानुभवी, कर्मठ और भारतीय संस्कृति के प्रेमी के हाथ में है। इस उत्तरदायित्व को अपने सबल कन्धों पर लेने के बाद आपने प्रान्त के शिक्षा जगत् में क्रान्ति मचा दी है। सर्वसाधारण जनता को शिक्षित करने और प्रान्त की शिक्षा प्रणाली व पाठ्यक्रम में सुधार करने का आप जो सराहनीय प्रयत्न कर रहे हैं उसमें हम आपकी पूर्ण सफलता चाहते हैं और अपनी अकिंचन सेवायें समर्पित करने को सर्वदा उद्यत हैं।

मान्यवर, आज जिस संस्था को आपने अपने शुभागमन से पुनीत किया है उसकी स्थापना, जैसा कि आपको विदित है, ३७ वर्ष पूर्व स्वनामधन्य स्वर्गीय श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज ने की थी। इस संस्था का मुख्य ध्येय देश के सन्मुख आदर्श भारतीय शिक्षाप्रणाली उपस्थित करना था; जिसके द्वारा राष्ट्र के नवयुवकों को अपनी पुरातन सभ्यता संस्कृति और ज्ञान-विज्ञान से परिचित कराया जा सके, उन्हें नवीन ज्ञानविज्ञान की शिक्षा दी जा सके और उनके शरीर, मन व आत्मा के स्वस्थ्य विकास द्वारा उन्हें सच्चरित्र नागरिक बनाया जा सके। साधनों के अत्यन्त परिमित होने पर भी आज तक यह विश्वविद्यालय अपने इसी महान् उद्देश्य को सिद्ध करने का प्रयत्न करता रहा है।

हम अपनी मातृभाषा द्वारा विद्यार्थियों को उच्चतम प्राचीन और अर्वाचीन शिक्षा निःशुल्क प्रदान कर रहे हैं। अब तक यहां से लगभग साढ़े तीन सौ स्नातक शिक्षा प्राप्त कर चुके हैं और इस समय यहां तथा इसकी ८ अन्य शाखाओं में एक हज़ार के लगभग विद्यार्थी विद्याध्ययन कर रहे हैं। इस समय इस विश्वविद्यालय में वेद वेदांग, आधुनिक विज्ञान और आयुर्वेद के शिक्षण के लिए तीन महाविद्यालय विद्यमान हैं। स्थान और धन की कमी के कारण अभी तक हम शिल्प महाविद्यालय कृषिमहाविद्यालय, और सैनिक-शिक्षण की अपनी योजनाओं को क्रियान्वित नहीं कर सके हैं, यद्यपि इनकी प्रारम्भिक शिक्षा का प्रबन्ध इस समय भी विद्यमान है। हमें आशा है कि गुरुकुल प्रेमियों के सहयोग और आप जैसे सदाशय महानुभावों के आशीर्वाद व मंगलकामनाओं से हम शीघ्र ही इस ओर भी अगला कदम उठा सकेंगे। विद्यार्थियों की सहायता और सुविधा के लिए यहां पर पुस्तकालय व वाचनालय (जिसमें १५००० से अधिक पुस्तकें हैं और ११ दैनिक, ३१ साप्ताहिक तथा ५१ मासिक पत्र आते हैं), वैज्ञानिक व आयुर्वेद की प्रयोगशालाएं, चिकित्सालय, औषधनिर्माणशाला, व्यायामशाला, क्रीड़ाक्षेत्र आदि समस्त साधनों का यथासम्भव प्रबन्ध किया गया है। गुरुकुल का स्थिर कोष १० लाख रुपये है। वार्षिक व्यय १ लाख ५६ हज़ार है, जिसमें से ३० हज़ार दान से प्राप्त होता है।

इसके अतिरिक्त यहां पर विद्यार्थियों के चरित्रनिर्माण उनके जीवन को धार्मिक बनाने और उनके दृष्टिकोण को उदार और राष्ट्रिय बनानेकी ओर विशेष ध्यान दिया जाता है। इस संस्था को इस बात का अभिमान है कि प्रारम्भ से ही समय २ पर अनेक प्रमुख हिन्दु, मुसलमान, ईसाई व अन्य धर्मावलम्बी महानुभाव अपने शुभागमन से इस भूमि को पवित्र करते रहे हैं, और अद्यावधि उनके हमारे साथ घनिष्ठ सम्बन्ध बने हुए हैं। राष्ट्रिय क्षेत्र में भी पूजनीय महात्मा गांधी जी के अफ्रीका सत्याग्रह से लेकर आज तक, जब २ समय आया है, गुरुकुल ने सदा धनजन से अपनी तुच्छ आहुति प्रदान की है। अफ्रीका के सत्याग्रह-आन्दोलन के समय, जबकि देश में महात्मा गांधी जी को कोई जानता भी न था तब, यही संस्था थी जिसके विद्यार्थियों ने टोकरी ढोकर कमाये धन से उनकी सहायता की थी। सन् १९२१,१९३० और १९३२ के राष्ट्रिय आन्दोलनों में गुरुकुल महाविद्यालय के समस्त ब्रह्मचारियों ने कार्य किया था तथा १८ ब्रह्मचारियों और ५० स्नातकों ने कृष्णमंदिर की यात्रा भी की थी। पुरानी प्रान्तीय सरकार ने इसी राष्ट्रसेवा के दण्डस्वरुप पूर्व स्वीकृत सुविधाओं से हमें वंचित कर दिया था। अपनी राष्ट्रियता को कलुषित न होने देने के लिए ही अबतक हमने अपनी संस्था को विदेशी सरकार के प्रभाव व प्रलोभनों से सर्वथा स्वतंत्र रखा है, यद्यपि अब ज्यूं २ देश की राजनीतिक स्थिति बदल रही है और शासनसूत्र राष्ट्रिय नायकों के हाथ में आ रहा है त्यूं २ हमारे पार स्परिक सबन्ध भी बदल रहे हैं और हम अपने शासकों के साथ पहले की अपेक्षा आत्मीयता का अनुभव करने लगे हैं, जिसका स्पष्ट प्रमाण आज आपका यहां शुभ गमन है।

श्रीमन, यहां पर यह निवेदन करना अनुचित न होगा कि साधनों के परिमित होने व अन्य अनेक बाधाओं के होने पर भी गुरुकुल का अपने कार्य में पर्याप्त सफलता प्राप्त हुई है। इसका अतीत गौरवान्वित है और भविष्य भी उज्वल तथ आशामय है, क्योंकि इसके आदर्श ऊंचे हैं; कार्यकर्ताओं में लगन और आत्मविश्वास है और यह देश व जाति की आवश्यकताओं और आशाओं को पूर्ण कर रहा है। इस संस्था को इस बात का गर्व है कि इसके स्नातकों ने जिस किसी भी कार्यक्षेत्र में प्रवेश किया है वहा अपने विद्या बल और चरित्रबल से अपनी कुलमाता के मुख को उज्वल किया है। ये स्नातक साहित्यसेवी, पत्रकार, शिक्षक, समाजसेवक व अन्य विभिन्न रुपों में देश की सेवा कर रहे हैं। इन्होंने अपनी योग्यता के बल पर ही अनेक वैदेशिक विश्वविद्यालयों से और भारतीय-विद्वत्समाज में सम्मान प्राप्त किया है।

माननीय बाबू जी, इतने सामान्य दिग्दर्शन के बाद, अन्त में, हम सब कुलवासी फिर आपका गद्गद हृदय से श्रद्धानन्द की इस तपोभूमि में स्वागत और अभिनन्दन करते हैं। और आशा करते हैं कि आज इस मंगल मुहूर्त में जो शुभ संबन्ध आपके और हमारे बीच स्थापित हुआ है वह उत्तरोत्तर दृढ़ होता चला जायगा। हम सबकी मंगलमय भगवान से प्रार्थना है कि वे आपको स्वास्थ्य और चिरायुष्य प्रदान करें, ताकि आपके पथप्रदर्शन में यह प्रति दिन शिक्षा के क्षेत्र में दिन दूनी रात चौगनी उन्नति कर सके।

हम हैं आपके विनयावनत
कुलवासी

वनों में भ्रमण का आनन्द

(ले०- श्री प० शिवशर्मा जी)

वनों में भ्रमण करना वस्तुतः बहुत आनन्ददायी है। इसमें शरीर बलिष्ठ और स्फूर्तिवान् होता है। हृदय अपूर्व उत्साह से भरपूर होकर उन्नत हो जाता है। ऋषि-दयानन्द ने भूमण्डल को हिला देने वाला अद्भुत आत्मिक-बल हिमालय और नर्मदा के जङ्गलों में घूम-घूमकर ही प्राप्त किया था। स्वामी रामतीर्थ ने प्रेम-प्रसन्नता और निर्भीकता का पाठ टिहरी-गढ़वाल के विकराल वनों में ही सीखा था। सघन वनों की नीरवता या स्तब्धता में एक प्रकार का जो अवर्णनीय आनन्द है उसे सब मनुष्य नहीं अनुभव कर सकते। यह वह आनन्द है जिसे प्राचीन-काल के ऋषिगण सुना करते थे और इसे सुनते-सुनते ही तल्लीन हो जाते थे। सुना है कि प्रकृति में अप्रतिहत और निरवच्छिन्न रूप से प्रवाहित होने वाला यह संगीत ईश्वरीय है और इसे वे ही जन सुन सकते हैं जिनका हृदय निर्मल और स्वच्छ है। मैंने भी थोड़े दिन जंगलों में भ्रमण किया है और उसके आधार पर ही मैं यह यह प्रकट कर देना चाहता हूँ कि ऊपर कही हुई बातें सिर्फ सुनी-सुनाई कोरी गप्पें ही नहीं अपितु इनमें सत्य का भी अंश है।

जंगलों में भ्रमण करने से मन को सचमुच शान्ति और उत्साह प्राप्त होता है और बेचैनी उदासीनता आदि मानसिक विकार बहुत थोड़े समय में ही नष्ट हो जाते हैं, ऐसा मेरा निजी अनुभव है। जब कभी मेरा मन किन्हीं कारणों से उदासहोता है अथवा दफ़तरों के नीरस कार्यभार से चित्त ऊब जाता है, तब मैं अपने पुराने अभ्यास के अनुसार हाथ में भाला लेकर, अकेले जंगल की ओर निकल पड़ता हूं। शहर के कोलाहल से निकल कर जब मैं गङ्गा के रेतीले पथरीले मैदानों में पहुंचता हूँ, तब हृदय में अपार खुशी उमड़ पड़ती है। स्वच्छवायु के प्रवेश कारण छाती फूल कर तन जाती है और शरीर में बल द्विगुण हो जाता है। उस समय जब मैं पर्वतराज हिमालय की दूर तक फैली हुई अखण्डित शोभा को मुग्ध-नेत्रों से निहारता हूं तब मेरा सारा शरीर सिहर उठता है। नीले-नीले पर्वतों की हरी-भरी तराइयों में उगे हुए वृक्ष दूर से ही अपने विशेष इशारों द्वारा मुझे बुलाते से प्रतीत होते हैं। जंगल में पहुंचने पर मुझे ऐसा मालूम होनेलगताहै कि मैं दुनियाँ की निचलीसतह से एक मंजिल ऊपर उठ गया हूं। चारों ओर से सुनाई देने वाला भोले पक्षियों क कलरव और हवा से हँसते हुए पत्तों की मर्मर-ध्वनि मन मुग्ध कर देती है। गङ्गा की ओर से आता हुआ शीतल-

पवन जब त्वचा पर अमृतमय-स्पर्श करता है तब इसके सामने अन्य सांसारिक सुख नाचीज़ जँचते हैं। मैं अपने को बड़ा सौभाग्यशाली समझता हूँ कि संसार का इतने उत्कृष्ट दर्जे का सात्विक आनन्द मुझे उपलब्ध हुआ है। प्रकृति का यह आनन्द वास्तविक आनन्द है जोकि गिरते हुए मानव को भी ऊपर उठा सकता है। अन्य सांसारिक आनन्दों में यह क्षमता नहीं है। वे तो मनुष्य को गिराते ही हैं उठाते नहीं।

घने जंगलों को पार करता हुआ मैं अधिक सघन जंगलों की ओर बढ़ता जाता हूं। पीछे शहर की ओर घूमकर ताकता ही नहीं। शायद यह सोचकर कि मैं हिमालय की जिस नैसर्गिक छटा का चित्र अपने हृदय रूपी कैमरे में ले रहा हूँ उसमें कहीं मनहूस शहर का भी प्रतिबिम्ब न आ जाए। और मैं बिना मुंह फेरे अधिकाधिक घने जंगल की ओर बढ़ता चला जाता हूं।

यह सारा वन कितना सौम्य प्रतीत होता है। यहां कितनी अखण्ड शान्ति विराजती है। यहां चारों ओर फैला हुआ उल्लास कितना स्थिर और कितना प्रसादोत्पादक है। यहां जंगल में सबके सब मेरे खूब परिचित हैं। क्या वृक्ष क्या पर्वत, क्या नाला यहां तक कि शून्य-नीलाम्बर भी मेरा सुपरिचित प्रतीत होता है। इन्हीं मित्रों से मिलने के लिए तो प्रति रविवार को मैं यहां आया करता हूं। वे हरे रंग के लाल चोंच वाले दो पक्षी जो प्रतिवार मुझे नाले के मोड़ पर जल के किनारे किलोलें करते हुए मिलते हैं और सुमधुर वाणी बोलकर मुझ से अपना परिचय जताते हैं, मुझे कितने प्यारे लगते हैं! इन्हें देखते ही मेरा हृदय गद्गद हो जाता है, और मैं इस पक्षि-युगल को आशीर्वाद देता हूं- "हे मेरे प्यारे पक्षियो! तुम दोनों चिरजीवी होओ। तुम्हारी इस प्रेम-लीला में कभी विघ्न न आवे"। यदि इन दोनों पक्षियों में से किसी एक को कोई नीच शिकारी अपनी बन्दूक का निशाना बना ले तो मुझे कैसी अन्तर्दारुण वेदना होगी। ऐसी ही किसी मर्मान्तिक-वेदना ने आदि कवि वाल्मीकि की हृत्तन्त्री के तारों को अकस्मात् ही छेड़ दिया होगा। इसी लिये जब भी मैं इन से मिलता हूं तब इनकी कुशल-खैरियत पूछ लेता हूं और आगे की कुशलता के लिये परमात्मा से मंगल-कामना करता हूं।

ऐसे ही वन में कितने ही प्रकार के अन्य हरिण आदि प्राणी भी हैं जिनसे मैं मैत्री का व्यवहार रखता हूं और जिन्हें देखते ही मेरा रोम-रोम हर्षित हो जाता है। पर मेरे कुछ ऐसे मित्रगण भी जंगल में रहते हैं जो बल में और आकार में मुझ से बड़े हैं और जिनका प्रेम मुझको कभी महंगा पड़ सकता है मैं ऐसे मित्रों को दूर से ही सलाम करता हूँ और कभी पास नहीं फटकने देता। इन मित्रों में भालू, तेन्दुआ हाथी और शेर मुख्य हैं। ऐसे दोस्तों से मैं सदा होशियार और चौकन्ना रहता हूं। जहां झाड़ी में कुछ खड़का हुआ कि मेरे कान खड़े हो जाते हैं और मैं परखने लगता हूं कि यह किस श्रेणी का दोस्त है। महंगे दोस्तों के लिये मेरे हाथ में सदा सुनीक्ष्ण भाला तैयार रहता है। यदि कभी इनसे मेरी मुलाकात किसी नाले में हो जाती है और ये मुझे डरा हुआ नहीं पाते प्रत्युत प्रहार करने के लिये तत्पर देखते हैं तो झटपट पहाड़ की ओर नौ-दो-ग्यारह हो जाते हैं। ये ही वन के वे क्रूर सत्व हैं जो वन में जाने वाले मनुष्य को अप्रत्यक्ष रूप से उत्साही बलिष्ठ एवं निर्भय बनाते हैं। स्वामी दयानन्द जी ने विन्ध्याचल के जंगलों में अनेक बार रीछों का मुकाबला किया। वे घंटों तक सघन-द्रुमश्यामल वनों के बीच बैठकर प्रकृति का वही निरवच्छिन्न-नीरव संगीत सुना करते थे— जिसमें वे इतने आकृष्ट थे और आत्मिक शक्ति प्राप्त किया करते थे। स्वामी रामतीर्थ भी २-३ वर्ष संसार में कार्य करने के पश्चात् आध्यात्मिक शक्ति एकत्र करने के लिये अज्ञात-वास स्वीकार कर भयावह वनों में चले जाते थे और वनों से अनेक गुना शक्ति उपार्जन कर लौटते थे। उनकी यह बात सर्व विदित ही है।

आप यह न सोचिये कि वन भ्रमण के लाभ आपको वाटिका भ्रमण से मिल जायेंगे। क्योंकि विविध-विहगम कूजित, कुसुम-सुवासित किसी भी बड़े भारी उद्यान की सैर में, और वन भ्रमण में बहुत अन्तर है। वाटिका का भ्रमण थोड़ी ही देर में थका देने वाला और सदा नूतन न रहने वाला होता है। पर वन भ्रमण इससे उलटा प्रतिक्षण शरीर में नवस्फूर्ति भरने वाला और सदा नवीन रहता है। इस लिये चाहे अन्युक्त विचार से न भी सही, वनों में भ्रमण करना अतिशय लाभदायक है। यदि आप जंगलों में अकेले भ्रमणार्थ जावेंगे तो आपको वास्तविक आनन्द अवश्य प्राप्त होगा।

मौन-कथा

(श्री वनवासी)

कुल की कौन कहे।

नगरी है इक माँ श्रद्धा की अंचल गंग बहे॥
रावी को उदयाचल निशिदिन चहुंदिशि शान्ति रहे।
नव पलाश की शोभा राजे केसर रंग लहे॥
नेह वसन्त व्रती हैं पाते गुरु से ज्ञान गहे।
हरियाली वह सुग्ध द्रुमाली के कंटक कष्ट सहे॥
तप सेवा की चारु धूलि में लोट-पोट निबहे।
वज्र देह जहँ वर्णी विचरें क्रोध काम दहे॥
वनमाली है चित्र बनाता रचना रम्य छहे।
अणु अणु में-आंगन में अपने गाये, मौन हुए॥

संरक्षक भाइयों से निवेदन

प्यारे संरक्षक भाइयों, आपको यह पता है कि पिछले नौ सालों से गुरुकुल के ब्रह्मचारियों के रहन सहन पठन-पाठन स्वास्थ्य अथवा अन्य सर्व प्रकार की सुव्यवस्था के लिये गुरुकुल संरक्षक सभा बनी हुई है और हर एक संरक्षक उसका मेम्बर है इस सभा का कार्य सम्पादनार्थ प्रत्येक संरक्षक से एक रुपया वार्षिक लेना नियत किया गया था। अब संरक्षक सभा ने यह पास किया है कि यह एक रुपया वार्षिक चन्दा गुरुक-

(शेष पृ०७ पर)

गु रु कु ल

२ वैशाख शुक्रवार १९९६

गुरुकुलोत्सव पर एक दृष्टि

गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी का ३७ वां वार्षिकोत्सव गुरुकुल की सुरम्य भूमि में जिस समारोह और सफलता के साथ मनाया गया, उसकी जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी है। जिस दृष्टि से देखिये इस वार्षिकोत्सव की सफलता ही सफलता दिखलायी देगी। कुछ लोगों का ऐसा विचार रहा करता है कि ऐसे वार्षिकोत्सवों पर कोई ठोस या गम्भीर कार्य नहीं होता, पर हमारी राय में तो इस उत्सव में श्री बा० सम्पूर्णानन्द जी, कैलाशनाथ काटजू, मज़िरअली सोख़्ता प्रभृति कांग्रेस एवं देश के बड़े २ राजनैतिक नेताओं का पधारना स्वयम् एक बड़े ठोस कार्य का परिचायक है। जिस उत्सव में ऐसे २ ठोस कार्यकर्त्ता किसी विशेष भावना एवं उद्देश्य को लेकर ही आये हों वह उत्सव यों ही चला जाय, यह कैसे हो सकता है। इसके अतिरिक्त इन चार दिनों में पूज्य सन्यासियों और मान्य विद्वानों का सत्संग क्या कुछ अर्थ नहीं रखता? हम तो समझते हैं कि इस उत्सव पर व्यायाम सम्मेलन, वाद-विवाद सम्मेलन और हैदराबाद सम्मेलन आदि सम्मेलनों में जनता का जैसा जोश प्रकट हुआ है वैसा अन्यत्र कहीं नहीं देखा गया। इस अवसर पर आर्यजनता ने यह बात भले प्रकार सिद्ध कर दी है कि वह शिथिल और अचेत नहीं है। वह ऋषि दयानन्द और आर्यसमाज के पवित्र नाम पर सोत्साह अपना बलिदान कर सकती है। उसमें जीवन है और जागृति भी। वह बुझी हुई राख की ढेरी नहीं बल्कि दहकती हुई आग की चिनगारी है, जिसे कभी २ शिथिलता का आवरण ढक लेता है। किन्तु जब उसे तेज़ हवा लगती है तब वह केवल स्वयं ही नहीं जलती बल्कि आस पास की सभी वस्तुओं को ज्वाला में लपेट लेती है। आर्यसमाज की यह जीवित जागृत शक्ति इस बार के उत्सव पर हमें भली भांति देखने को मिली।

इस बार के उत्सव पर मान्य अतिथियों के अतिरिक्त इन्दौर के प्रसिद्ध ज्योतिषाचार्य-पंचांग निर्माता श्री पं० दीनानाथ जी शास्त्री पधारे। आपने बड़ी योग्यता से वेद सम्मेलन का सभापतित्व करते हुए अपने विद्वत्तापूर्ण व्याख्यान में सिर्फ वेद मन्त्र का आधार लेकर अनेक नक्षत्रों की बड़ी सफलता पूर्वक विवृति की। आपके व्याख्यान को सुनकर ज्योतिष के बड़े २ विद्वानों ने दांतों तले अंगुली दबाई। आपकी विद्वत्ता का लोहा आज योरोपीय विद्वान् भी मानने लगे हैं।

इनके अतिरिक्त स्वामी सत्यानन्द जी भी गुरुकुलोत्सव पर पधारे थे। आपने अपने अमृतवर्षी उपदेशों से समस्त जनता को कृतार्थ किया।

कुलपति श्री आचार्य रामदेव जी अस्वस्थ होने पर भी उत्सव पर पधारे और आराम कुर्सी पर बैठे २ ही चारों दिन की कार्यवाही बड़े ध्यान से सुनते रहे। दीक्षान्त संस्कार के दिन बैठे २ ही नवस्नातक बन्धुओं को हार्दिक आशीर्वाद दिया।

इस बार के उत्सव पर प्रबन्ध विभाग का कार्य अत्युत्तम रहा जिसके कारण आई हुई आर्यजनता को किसी प्रकार का कोई कष्ट नहीं हुआ। चिकित्सा का समुचित प्रबन्ध था। दिन रात अनवरत परिश्रम करते तथा अपने स्वास्थ्य की भी कोई पर्वाह न करते हुए डाक्टरों और वैद्यों ने बीमारों की जो सेवा की वह सराहनीय है। उत्सव के बाद किसी प्रकार की किसी बीमारी की शिकायत नहीं सुनी गई।

पण्डाल का प्रबन्ध भी उत्तम था। ध्वनि वर्धन के लिये लाउड स्पीकर तथा रोशनी के लिये बिजली का प्रबन्ध किया गया था। विशाल पण्डाल चारों दिन जनता से खचाखच भरा रहता था। इस प्रकार गुरुकुल कांगड़ी का ३७ वां वार्षिकोत्सव बड़ी धूमधाम के साथ समाप्त हुआ। इस साल आर्थिक दृष्टि से भी गुरुकुल को कोई घाटा नहीं हुआ अपितु लाभ ही रहा।

शिक्षा-पद्धति

[ले०—श्री धीरेश विद्यालङ्कार]

वह दिन भारतीय शिक्षा के क्षेत्र में शुभ था जब कि ऋषि दयानन्द ने हमारे प्राचीन आदर्शों को मूर्तरूप देने के लिये आर्य शिक्षा पद्धति का आदर्श फिर से उपस्थित किया था। एक शब्द में उनकी पुकार 'गुरुकुल' की थी। इस पुकार को दिवंगत स्वामी श्रद्धानन्द जी ने स्पष्ट रूप से सुना था। उन्होंने आर्यबन्धुओं तथा आर्यप्रतिनिधि सभा का प्रेम और सहयोग प्राप्त किया था। इस कारण उन्हें उस विचार को समयानुसार मूर्त-रूप देने में सफलता प्राप्त हुई। उनके तथा आर्यसमाज के श्रम के फलस्वरूप आज गुरुकुल शिक्षा प्रणाली की नींव देश में जम गई है।

इसमें सन्देह नहीं कि गुरुकुल शिक्षा के क्षेत्र में काम कर रहा है। भारतीय जागृति के इस युग में देश में कई एक प्रायः एक दूसरे के अनुकरण में तथा कहीं परस्पर विरुद्ध भी, शिक्षा पद्धतियां प्रचलित हुईं। एक तरफ लॉर्ड मेकाले द्वारा ईज़ाद शिक्षा पद्धति को संचालित करने का भार गवर्नमेण्ट शिक्षणालयों के रूप में सरकार ने यूनिवर्सिटियां खोलकर अपने प्रबल कन्धों पर उठाया तो उसी पद्धति के अनुकरण में अनेक भारतीय सुधारकों ने अपने २ मत व विचार की छाप अपने छात्रों पर बिठाने के लिये ईसाई-हिन्दू-मुस्लिम-सिक्ख-पारसी आदि नाम से शिक्षणालयों को खोला। इन शिक्षणालयों ने नये युग की रोशनी हम तक पहुंचाने में बहुत काम

किया। इन्होंने पाश्चात्य विज्ञान तथा सभ्यता का क्रियात्मक और भावनात्मक रूप हमारे सामने भरपूर पेश किया यद्यपि इनके द्वारा पाश्चात्य भौतिक विज्ञान की श्लाघनीय देन जो कि क्रियात्मक प्रयोगों पर निर्भर करती थी, हमें न के बराबर ही प्राप्त हुई। नहीं कह सकते कि इस उपादेय क्रियात्मक विज्ञान की पहुंच हम तक क्यों न हो सकी ?-क्या हम इसके सर्वथा अयोग्य थे या इनको सीख जाने से पाश्चात्य सभ्यता को किसी भावी हानि की संभावना थी ? फलतः पाश्चात्य आविष्कारों तथा उनके उपयोग के लिये-सभी सामग्रियों की प्राप्ति के लिये हमें उन्हीं पर निर्भर रहना पड़ा। हम उन वस्तुओं का उपयोग करने वाले तो बने परन्तु बनाने वाले नहीं। हम खाने वाले तो बने पर सामग्री जुटाकर पकाने वाले नहीं। हम उन्हें सराहने को तो रहे पर रचना और सृजन के बारे में कोरे रहकर।

यह थी पाश्चात्य संस्कृति व शिक्षा की सबसे भारी कमी। जिसका प्रत्यक्ष या प्रच्छन्न असर हमारे देश के शिक्षित समुदाय पर पड़ा। इस अनुकरणात्मक 'शिक्षा-पद्धति' से भारत में मुख्यतः दो व्यक्तियों को सन्ताप न हुआ। एक थे स्वामी श्रद्धानन्द जी तथा दूसरे विश्वकवि रवीन्द्र। इन्होंने लगभग आज से ४० वर्ष पूर्व अपनी २ साधना और धारणा के अनुसार भारतीय शिक्षा के क्षेत्र में प्रवेश किया और पथ-दर्शक बने।

विश्वकवि रवीन्द्र की शिक्षा पद्धति संक्षेप में शिक्षा के मौलिक तत्वों को जो कि हमें पश्चिम के विचारकों द्वारा प्राप्त हुए हैं—आत्मसात् करने में अपना भला समझती है। परन्तु साथ ही वह पश्चिम के अथवा भारत सरकार के उन प्रयोगों को जिनसे कि शिक्षा के ढांचे को कठोर तथा यान्त्रिक कला को तरह कसने वाला बना दिया गया है इसी नीति का (Mechanization of Present Education) घोर विरोध करती रही है जिसके फलस्वरूप 'विश्वभारती-श्री निकेतन' में शिक्षा का एक उदार तथा सार्वभौमिक सा रूप दृष्टिगोचर होता है। दूसरी तरफ 'गुरुकुल शिक्षा पद्धति' है जो कि हमारे प्राचीन आदर्शों को तथा पूर्वजों की सांस्कृतिक देन को जिनकी बदौलत हमारा धार्मिक व जातीय जीवन आज भी अक्षुण्ण बना है–अवहेलना करने के लिए कदापि तैयार नहीं। साथ ही इसके पश्चिम से प्राप्त हो रहे पदार्थ विद्याओं को अपनाने में यह पद्धति भी सर्वदा तय्यार है। पाश्चात्य संस्कृति व सभ्यता की जो देन विश्व के लिये हुई है जिससे सर्वाङ्गीन मानव संभव है उसको पा लेना किसको प्रिय न होगा। अतः सत्य और शिव की प्राप्ति जहां से भी हो उसे अपनाना इसको अभीष्ट है।

इसके अतिरिक्त शिक्षा का अधिकाधिक प्रसार हो–वह सार्वजनीन हो जाए इसके लिये महात्मा गांधी ने अन्य शिक्षाशास्त्रियों की सहायता से 'वर्धा शिक्षा-पद्धति' का निर्माण किया है। इसका उद्देश्य उद्योग धन्धों के द्वारा बालकों को प्राथमिक शिक्षा देना है जिसका परिणाम यह होगा कि शिक्षार्थी क्रियात्मक शिक्षा प्राप्त कर लेने के कारण देश को वर्तमान गरीबी और खौफनाक आर्थिक संकट का मुकाबला करने में समर्थ हो सकेगा। सन्देह नहीं कि इस शिक्षा पद्धति की योजना देश और जाति की मौजूदा ज़रूरियात को ध्यान में रख कर हुई है। नहीं कहा जा सकता कि यह डाक्टर्स डाक की तरह घरेलू उद्योग धन्धा शाला (Cottage Industries modal Schools) के रूप में सफलता प्राप्त करेगी या एक स्वतन्त्र शिक्षा-पद्धति के रूप में।

'गुरुकुल प्रणाली' के पोषकों का कहना है कि वर्धा प्राथमिक शिक्षा का उद्देश्य बालक की उत्पादन शक्ति (क्रियात्मक व रचनात्मक Optitude in handicrafts) को प्रेरित करना मुख्यतया कहा जा सकता है अथवा बालक की बौद्धिक, मानसिक तथा हस्तपादादि संचालित (ऐन्द्रियिक) रचनात्मक शक्ति को जागृत कर देना मात्र है। इन दोनों पद्धतियों की समानता तथा विभेद प्रकट हो जायगा। पहिले में कहा तो यही जाता है कि उद्योग धन्धों द्वारा बालक को शिक्षित करना है। अर्थात् इसके हाथ पांव और आंख कान का रचनात्मक उपयोग लेते हुए उसके बौद्धिक केन्द्रों को प्रेरित अथवा शिक्षित करना है। परन्तु लेखक का विचार है कि वर्धा पद्धति का ध्येय स्वयं शिक्षाशास्त्र का ध्येय नहीं क्योंकि वर्धा पद्धति स्वयमेव जिस मूलतत्व (अर्थात् उद्योग धन्धा द्वारा बालक को रचनात्मक शिक्षण देना) की प्रतिष्ठा करती है परिणाम में वही मूलतत्व शिक्षा को केवल मात्र स्वावलम्बन का हेतु बनाकर यान्त्रिक कठोरता और कला के ढांचे में जकड़ लेता है। इसका स्वाभाविक परिणाम यह होगा कि शिक्षा का साध्य और साधन अभिन्न होकर (मानव का चौमुखा विकास की जगह) स्वावलम्बन व उपजाऊ होना ही रह जायगा। गुरुकुल-प्रणाली में गुरु, गुरु की परम्परा (संस्कृति धर्म-सभ्यता आदि) केन्द्र है। समय की आवश्यकतानुसार मानव का देशिक व जातीय शरीर में सदुपयोग इसकी प्रक्रिया है-शैली है। अतः इसमें शिक्षा का यान्त्रिक उपयोग होने की कदापि संभावना नहीं हो सकती।

किंवा शिक्षा का ध्येय रोटी-रोजी की समस्या को सुलझाना नहीं। चूंकि शिक्षा से प्रायः यह समस्या हल हो जाती है इस लिये शिक्षा की व्यावहारिक उपादेयता बढ़ जाती है (आज कल की शिक्षा से तो यह समस्या भी हल नहीं होती) इस लिये यह यह शिक्षा का आनुषङ्गिक प्रयोजन हुआ। मुख्य प्रयोजन तो फिर भी यही कहा जावेगा कि शिक्षा मनुष्य को मनन शील बनावे, सभ्य बनावे, सुनागरिक बनावे, धार्मिक बनावे, कर्त्तव्य पालन का अभ्यासी और संयमी बनावे और देश जाति की सामयिक मांग को पूरा करने के योग्य भी बनावे। इस दृष्टिकोण से यदि हम इस विषय पर विचार करते हैं तो गुरुकुल शिक्षा प्रणाली में न केवल प्राच्य और प्रतीच्य शिक्षा के नाना उपयोगी तत्त्वों को समाविष्ट होता देखते हैं अपितु भारत में प्रचलित शिक्षा पद्धतियों की उपयोगिता तथा अच्छाइयों को सजीव और उदार भावना से ग्रहण करने में तत्पर हुआ

देखते हैं। गुरुकुल पद्धति के मूलतत्व जोकि बहुत सुन्दर हैं और उपादेय हैं, अपने आप में आधुनिक शिक्षा-शास्त्र की विशेषता है। गुरु शिष्य का (पिता-पुत्र की तरह) का आश्रमवास, विद्यार्थियों में समानता का व्यवहार, आश्रम के सब सम्बन्धों में पवित्र भावना, श्रम-तपस्या-ब्रह्मचर्य-स्वाध्याय तथा नैतिक अनुष्ठान शिक्षा को कितना दिव्य बना सकते हैं यह कहना की बात नहीं, परन्तु क्रियात्मक तौर पर अनुभव करने का विषय है। शिक्षा-विज्ञ कहता है- "मैं शिक्षा से बालक की नाना प्रसुप्त शक्तियों को जागृत कर दूंगा-विकसित कर दूंगा-और उन्हें रचनात्मक अतएव उपादेय बना दूंगा।" ठीक है, उस की धारणा ..... । लेखक पूछता है कि क्या गुरुकुल से सुन्दर वातावरण, इससे अच्छी प्रयोगशाला उसे कहीं प्राप्त हो सकती है-जहां जाकर वह प्रयोग करे-सिखाये और स्वयं सीखे जंगल में, एकान्त में, गांव में, शहर के पड़ोस में जहां चाहे वहां जीवित जागृत पिण्डों में शिक्षा की रूह फूंक सकता है, जिससे कि उसके बनाये पिण्ड चलते फिरते-खेलते-पढ़ते गाते, ज्ञानामृत पीते और पिलाते, नव नव रचना और क्रियात्मक शक्ति का उपयोग करने वाले मानव बन सकें। गुरुकुल इन्हीं भावनाओं को धर्म-देश-समाज तथा विश्व मानव के नाते यथा शक्ति पूरा करने में लगा हुआ है और यही इसका उद्देश्य है यही इसकी जान है- इसका सर्वस्व है।

केन्या कालोनी

[श्री ज्ञानी]

हमारा जहाज़ दस दिन की दौड़ के बाद आखिर मुम्बासा आ लगा। यह स्थान मुम्बई से लगभग २५००मील की दूरी पर है। इसे- मुम्बासा को- ही पूर्वीय अफ्रीका का सिंहद्वार कहते हैं। यह एक छोटा सा टापू है। यहां स्वाभाविक हार्बर (बन्दरगाह) बना है। भारत तथा अन्य देशों से सैंकड़ों जहाज़ यहां आते हैं। जब हम पहुँचे तो यहां एक भीमकाय जर्मन जहाज़ और दूसरा अंग्रेज़ी बेड़ा लंगर डाले पड़े थे।

मुम्बासा पहुँचते समय का दृश्य अत्यन्त सुहावना था। प्रातः बाल-रवि की सुनहली किरणों में चारों ओर की हरी-भरी घाटियां बहुत भली लगती थीं। फिर जहां तहां अपने सफ़ेद पालों को फहराए हुए छोटे २ मल्लाह बड़े वेग से इधर उधर चक्कर काट रहे थे। सामने एक पुराने किले के खण्डरात दिखाई दिये जो पोर्चुगाल़ राज के स्मृति चिह्न थे। सन् १४९८ ई० में सुप्रसिद्ध यात्री वास्कोडी. गामा ने यहां पदार्पण किया और उसके बाद सदियों तक पोर्चगीज़ लोगों का यहां प्रभुत्व रहा।

मुम्बासा एक छोटा सा शहर है। इसकी आबादी लगभग ६००००है जिसमें १३००० भारतीय, ७००० अरब, १३१६ अंग्रेज़ी और शेष हब्शी हैं। शहर का नया हिस्सा पश्चिमीय ढंग से बना है। चौड़े बाजार ऊँची इमारतें, बाग़-बगीचे, मोटरें लारियां दिन रात दौड़ती फिरती हैं। आदमी अक्सर विदेशी पोशाक-कोट, पतलून में हैं। विदेशी सभ्यता मानो फूट रही है।

मुम्बासा में एक सरकारी हाई स्कूल है। कार्वे जी का कन्याविद्यालय है। आर्य समाज की पुत्री पाठशाला भी है। क्योंकि यहां लण्डन मैट्रिक और कैम्ब्रिज जूनियर, सीनियर की परीक्षाएं दिलाई जाती हैं इसलिये विद्यालयों में प्रायः अंग्रेज़ी का वायुमण्डल है।

आर्यसमाज का अपना मकान है। बाग़ के लिये लम्बा चौड़ा आंगन है। खेलने को मैदान हैं। और यह सब सेठ नान्जी कालीदास महता के दान का फल है। उन्होंने यहां की समाज को लगभग ३० हज़ार शिलिंग का दान दिया है।

मुम्बासा से एक नई जाति के दर्शन शुरु होते हैं। ये अफ्रीकन या हबशी जाति बिल्कुल जंगली है। इसके स्त्री पुरुष अबतक भी जंगलों में अलफ़ नंगे रहते हैं। शहरों में अलबत्ता कुछ चीथड़े पहन लेते हैं। इनके रंग गहरे काले, क़द नाटे, मुंह गोल, होंठ मोटे, नाक चौड़े और आंखें छोटी। सिर के बाल मोटे और छोटे २ गुच्छों में मानो पथरीली भूमि पर बिखरी झाड़ियां। यहां के पुरुषों की दाढ़ी मूंछें नहीं के बराबर और स्त्रियों की तो भवें भी दिखाई नहीं देतीं। एक तो परमात्मा ने ही इन्हें ये भौंडी सूरतें दी हैं इस पर वो इन्हें मुंह पर ही नीला-पीला गोंदवा कर और भयंकर बना लेते हैं।

यहां के हबशियों की सभ्यता के विषय में पूछने पर भी कुछ पता नहीं चला। हां! इनकी पांच-चार जंगली बोलियां हैं जिन्हें स्वाहली, किकुयु, लुगाण्ड लोथोश्वाना, जुलु आदि नामों से पुकारते हैं। इनकी लिपि नहीं है और नांही कोई ग्रन्थ अफ्रीकन-साहित्य के हैं। इनका धर्म कुछ देवों व भूत-प्रेतों तक सीमित है। अरब और मिश्र के सम्पर्क में आने से इनमें इस्लाम फैला और अब एक सौ सालों से ईसाई मिशनिरी इनमें प्रचार-कार्य कर रहे हैं।

केन्या कलोनी का मुख्य नगर नैरोबी है। यह स्थान मुम्बासा से ३३०मील की दूरी पर है। केन्या-युगाण्डा रेलवे ले जाती है। दोनों ओर मैदान, जंगल पहाड़ न घटियां आती हैं। सैकड़ों मील भूमि अछूती पड़ी है। जानवरों की भरमार है। मार्ग में शुतुर-मुर्गों के झुन्ड, नील-गायों के रेवड़, ज़िराफ़ों की पंक्तियां और हिरणों के समूह दिखाई देते हैं। पहले यहां शेरों और चीतों की भी बहुतायत थी और रेलवे-लाइन बनाते समय सैकड़ों कुली इनके शिकार बने। परन्तु अब वो आम जगहों पर नहीं पाए जाते।

नरोबी से ४० मील पहिले "मचाकोस" नामक एक गांव आता है। ये जंगली शिकार का बड़ा केन्द्र है। कई प्रसिद्ध शिकारी यहां रहते हैं। आज से अनेक वर्ष पूर्व आपने स्नातक बन्धु श्री चन्द्रगुप्त जी विद्यालंकार ने "मचाकोस का शिकारी" नाम से एक उत्तम कहानी लिखी थी।

नैरोबी शहर दर्शनीय है। बड़ी खुली आबादी है। सुन्दर मकान हैं। सिटी-पार्क नाम से एक विशाल उद्यान है। यहां के एक धनी सज्जन ने अपना एक चिड़िया घर भी बनाया है जो देखने योग्य है। नैरोबी शहर में हबशियों को छोड़ कर लगभग २१,०००लोग बसते हैं जिनमें ८०फीसदी भारतीय और २०फीसदी अंग्रेज हैं। यहाँ भी दक्षिण-अफ्रिका के समान केन्या-हाइलैंड का प्रश्न है। यहां के अंग्रेज अपने जाति-गौरव की रक्षा के लिये भारतीयों से दूर २ रहना चाहते हैं।

केन्या कालोनी का भारत से व्यापार अधिकांश में गुजरातियों, कच्छियों और खोजों के हाथों में है। पंजाबी प्रायः रेलवे और पी. डब्लू. डी. के दफ्तरों में है। इधर पांच-छः स्नातक बन्धु भी काम कर रहे हैं जिनमें विशेष उल्लेखनीय श्री प० सत्यपाल जी हैं जो कई वर्षों से इस ओर हैं। आप आ. प्र. नि. सभा नैरोबी के आधीन रहकर बड़ी सफलता से वैदिक-धर्म का प्रचार कर रहे हैं। आप के कार्य से गुरुकुल की बड़ी प्रतिष्ठा हुई है।

यहां का सिक्का शिलिंग और सैण्ट है। तीन शिलिंग के २) होते हैं और एक शिलिंग के सौ सैण्ट। एक सैण्ट पांच सै० और दस सै० के तांबे-पीतल के गोल सिक्के होते हैं। जिनके केन्द्र में एक छिद्र होता है जिसमें रस्सी डाल कर छोटे २ बंडल बना लिये जाते हैं। हबशी लोग इन्हें कमर में बांध कर लटका लेते हैं। आधा शिलिंग और एक शिलिंग का चांदी मिला सिक्का है। उसके ऊपर पाँच, दस, बीस, पचास, सौ, पांच सौ शिलिंगों आदि के नोट हैं।

नैरोबी से २५७ मीलों की दूरी पर किसुमु नामक शहर है। यह विक्टोरिया झील के किनारे पर बड़ा सुन्दर बसा है। "इम्पीरियल एयरवेज"का मुख्य स्थान है। यहाँ से डाक और यात्री दुनिया के किसी हिस्से तक जा सकते हैं। केन्या में वायर लैस, टैली फोन, ट्रंक टैलीफान सब का प्रबन्ध है।

केन्या का शासन लन्दन से नियुक्त एक गवर्नर करता है जिसकी सहायता के लिये एक लैजि. कौन्सिल है। इसमें ४१ सभासद होते हैं जिनमें भारतीय केवल ५ हैं। फिर भी केन्या का शासन अच्छा है। भारतीय समृद्ध और सुखी हैं। परन्तु भविष्य कुछ अन्धकारमय दिखाई देता है।

'गांधी'

[श्री 'सूर्य कुमार']

हे विश्व-वंद्य ! हे महामान्य,
हो देश प्राण तुम ही गांधी,
विश्वानुरक्त, निस्पृह, उदार,
निर्लेप, निरंजन तुम गांधी।
चिर-निन्दित जाति बहिष्कृत ये,
अस्पृश्य और अन्त्यज,अछूत,
हरिजन कह अपनाये तुमने,
कर-आर्य अनोचित शिष्ट पूत।
यह विरति विमिश्रित विपुल शोक,
दुख दावानल का द्रवित ओक,
युग का अभिशाप, हेय जिससे-
संत्रस्त क्षीण जन विवुध लोक
शुभ सत्याग्रह सन्देश सुना,
शासन का छाया तीव्र तोम,
करते उच्छेदन हो निशि दिन
बन प्रखर भानु हे सौम्य सोम !
वह चक्र सुदर्शन धारी तुम,
प्रिय, मोदक मोहन हो ललाम,
तुम सत्य अहिंसा व्रत धारी,
हो पूज्य तुम्हें शतशः प्रणाम ॥

कोई जलता मरता............

[श्री सत्यभूषण 'योगी']

ये स्फुलिङ्ग नभ में जाते हैं !
देख रहे हैं नभ के तारे
विस्मित अपनी आंख पसारे-
भू से पास हमारे, कैसे
आज चले तारे आते हैं
ये स्फुलिङ्ग नभ में जाते हैं !

(२)

तड़ तड़ रोई मूक लकड़ियां !
जग समझा इनको फुलझड़ियां !!
कोई जलता मरता; कोई हँसते हैं मौज मनाते हैं !
ये स्फुलिङ्ग नभ में जाते हैं !

[शेष पृष्ठ ३]

निधि के साथ गुरुकुल द्वारा आप लोगों से लिया जाया करे। इसलिए कृपा करके शुल्क के साथ ही एक रुपया गुरुकुल द्वारा देने की कृपा करें। यहअत्यावश्यक है।

आपका शुभचिन्तक
दौलतराम ।
मन्त्री संरक्षक सभा—
सुलतानपुर लोधी
(कपूर्थला) पंजाब

संरक्षक-सभा गुरुकुल कांगड़ी का नवम अधिवेशन गुरुकुल के उत्सव पर १ अप्रैल को हुआ और निम्न-लिखित अधिकारी चुने गये।

ला० छज्जूराम जी 'सिलवरटन' डाकखाना महिम बम्बई — प्रधान

प० रामकुमार जी (ओवरसीयर) हवेली लखां जि० मिन्टगुमरी — एक्टिंग प्रधान

ला० कुलदीप चन्द जी अग्रवाल प्रधान आर्यसमाज पठानकोट — उप प्रधान

म० लक्ष्मण सिंह जी- मुखाना डा० मंगलौर जिला सहारनपुर — उप प्रधान

दौलतराम बी० ए० वकील सुलतानपुर लोधी (कपूर्थला) — मन्त्री

निवेदकः- दौलतराम मन्त्री
संरक्षक सभा.

गुरुकुल कांगड़ी की प्रसिद्ध औषधियां

सिद्ध मकरध्वज

स्वर्ण घटित ! कस्तूरी मिश्रित !!

नया खून पैदा करता है। वीर्य को पुष्ट करता है। नस २ को तेज और स्फूर्ति देता है।

मूल्य २४) तोला

सुगन्धित हवन सामग्री ॥) सेर

ब्राह्मी तैल

स्नान के बाद सिर पर लगाने के लिए यह सुगन्धित तैल अत्युत्तम है। इससे दिमाग़ तरोताज़ा रहता है, स्मरण शक्ति बढ़ती है।

मूल्य ॥) शीशी

च्यवनप्राश

शक्तिदायक ! स्वादिष्ट !! रसायन !!!

स्वास्थ्य तथा बल बढ़ाने के लिए बच्चे, बूढ़े, जवान स्त्री पुरुष सभी को इसका सेवन करना चाहिए।

मूल्य ४) सेर

सत शिलाजीत

पेशाब का बार २ आना पेशाब में धातु का गिरना, दर्द-कमर व गुर्दा, जिगर की कमजोरी आदि रोगों में विशेष लाभदायक है।

मूल्य ॥।) तोला

क्षुधा वर्धक द्राक्षासव १।) पौंड



पता—आयुर्वेदिक फार्मेसी गुरुकुल कांगडी (सहारनपुर)

चौधरी दुलासराय के प्रबन्ध से गुरुकुल प्रेस गुरुकुल कांगड़ी में मुद्रित तथा प्रकाशित ।

* ओ३म् *

"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत"

Reg. No. A. 2927

गुरुकुल

सम्पादक—साहित्यरत्न पं० हरिवंश वेदालङ्कार

एक प्रति का मूल्य -) [गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख-पत्र] वार्षिक मूल्य २॥)

वर्ष ३] गुरुकुल काङ्गड़ी, शुक्रवार ९ वैशाख १९९६; २१ अप्रैल १९३९ [संख्या ४७

दीक्षान्त अभिभाषण

[गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी के ३७ वें वार्षिकोत्सव के अवसर पर माननीय श्री सम्पूर्णानन्द जी, मन्त्री शिक्षा विभाग युक्तप्रान्त ने नवस्नातकों के प्रति निम्नलिखित दीक्षान्त अभिभाषण दिया। —सम्पादक]

इस समावर्तन संस्कार के अवसर पर सम्मिलित होने के लिये निमन्त्रित करके गुरुकुल के अधिकारियों ने मुझ पर जो अनुग्रह किया है उसके लिये मैं उनका ऋणी हूँ। उनकी इस कृपा से मेरी एक बहुत दिनों की इच्छा पूरी हो गई।

आर्यसमाज ने इस देश में अपनी जो जो कृतियां स्थापित की हैं उनमें गुरुकुल भी है। इन कृतियों की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा आर्यसमाज का सदस्य हुए बिना भी की जा सकती है। मैं स्वयं सनातनधर्मावलम्बी हूँ परन्तु मेरे जैसे सहस्रों ऐसे पढ़े-लिखे व्यक्ति मिलेंगे, जिनके जीवन पर आर्यसमाज और उससे सम्बन्ध रखने वाले महान् व्यक्तियों का बहुत बड़ा प्रभाव पड़ा है। एक बहुत बड़ी संख्या तो ऐसे लोगों की है जो अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित हुए हैं। आर्यसमाज के जो अपने सिद्धान्त हैं उनको कोई माने या न माने पर यह तो ध्रुव सत्य है कि हिन्दुओं के आध्यात्मिक, मानसिक जगत् के वातावरण पर आर्यसमाज का गहरा प्रभाव पड़ा है और प्रत्येक शिक्षित हिन्दू के अन्तःकरण पर इस वातावरण की छाप है। कल जिन सामाजिक सुधारों के लिये आर्यसमाज पर आक्षेप होते थे आज उन्हें प्रायः समस्त हिन्दू जनता ने अपना लिया है। यही कारण है कि अब वह पहिले सा विद्वेष नहीं रह गया। सनातन धर्मावलम्बी और आर्यसमाजी एक ही आप्तवाक्य के प्रामाण्य में विश्वास रखते हैं, एक ही आचारशास्त्र के मानने वाले हैं एक ही संस्कृति पर दोनों को गर्व है। उपासना और दार्शनिक सिद्धान्तों का मतभेद ऐसी वस्तु नहीं है जिसके लिए आपस में युद्ध ठाना जाय। जो लोग जगन्मात्र को लक्ष्य करके कहते हैं 'एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति' वह आपस में ही लड़ें, इससे बढ़कर लज्जास्पद बात और क्या होगी। यह हर्ष की बात है कि अब हम इस मूर्खता का अतिक्रमण कर गये हैं।

इतना ही नहीं, आर्यसमाज के क्षेत्र में काम करने वालों में कुछ ऐसे व्यक्ति हो गये हैं जिनकी स्मृति में उन लोगों के सिर भी झुकते हैं जो उनके विचारों से कदापि सहमत नहीं थे। लगन, तपस्या, त्याग, सहिष्णुता, धैर्य, स्वदेशानुराग की जब तक समाज में प्रतिष्ठा होगी तब तक ला० लाजपतराय, स्वामी श्रद्धानन्द, महात्मा हंसराज जैसे व्यक्तियों का नाम आदर के साथ लिया जायगा।

जैसा कि मैंने थोड़ी देर पहिले कहा था, आर्यसमाज की कृतियों में ही गुरुकुल है। आज इस प्रकार की कई और संस्थाएं काम कर रही हैं पर जहां तक मैं जानता हूँ यह संस्था इस प्रकार के विद्यापीठों में पहिली है। सभी लोग इस प्रयोग को औत्सुक्य के साथ देख रहे हैं। हमारा देश, और विशेषतः हमारा प्रान्त, प्राचीन काल से विद्या का प्रेमी रहा है। अब भी हमारे यहां ऐसे विद्या-केन्द्र हैं जिनकी बराबरी पश्चिम के 'यूनिवर्सिटी टाउन' नहीं कर सकते। उदाहरण के लिये मैं आपको उस नगर की स्मृति दिलाता हूँ जहां के साधारण नागरिक होने का मुझे गौरव प्राप्त है। मेरा संकेत काशी की ओर है। आज भी वहां भारत की पुरानी पठन पाठन पद्धति की झलक देख पड़ती है। कई सहस्र विद्यार्थी आज भी सभी विषयों की उच्चतम शिक्षा पा रहे हैं और विद्वज्जन उनको प्रेम से पढ़ा रहे हैं, इसलिये नहीं कि उनको पाठशालाओं से वेतन मिलते हैं, वरन् इसलिये कि जिस विद्या का उन्होंने अपने छात्रकाल में अपने गुरुओं से आदान किया था उसका प्रदान करना वह अपना पवित्र कर्तव्य समझते हैं। परन्तु राजाश्रय न होने से इनके जीवन-प्रवाह में शिथिलता आती जा रही है।

आपने गुरुकुल के द्वारा एक नया प्रयोग किया है। वर्तमान काल में वर्तमान काल की व्यवस्था से प्राचीन आदर्शों को सामने रखकर एक विश्वविद्यालय चला रहे हैं। आजकल पाश्चात्य ढंग के विश्वविद्यालय होने चाहियें, जैसे कि बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी है या पुराने ढंग के गुरुकुल, यह एक विवादास्पद प्रश्न है। इसीलिये वह सब लोग जो इस देश की शिक्षा में अभिरुचि रखते हैं,

आपके इस प्रयोग को, जिसके द्वारा आपने प्राची और प्रतीची, दर्शन और विज्ञान, के समन्वय करने का प्रयत्न किया है उत्सुकता से देखते हैं, इस प्रयोग में कई विशेषतायें हैं। आपने केवल साधारण बस्तियों से दूर हिन्दी के माध्यम से ऊंची शिक्षा देने का आयोजन नहीं किया है। विशेष बात यह है कि आप अपने अन्तेवासियों की वेष भूषा, दिनचर्या भी प्रायः वही रखते हैं जो प्राचीन काल में था। यह विचारणीय विषय है। साधारणतः ब्रह्मचर्याश्रम गृहस्थाश्रम का प्रवेश द्वार होता है। ब्रह्मचारी उस जीवन के लिये अपने को सज्जित करता है, जो उसे आगे चलकर बिताना है। प्रायः उसकी वेषभूषा, उसकी चर्या उसको जिस समाज में रहना और काम करना है उसके अनुरूप होती है। प्राचीन काल का ब्रह्मचारी गुरुकुल में प्रायः वानप्रस्थाश्रमियों के बीच में रहता था और उसका रहन सहन उसी ढंग का था जैसा कि तत्कालीन समाज में भद्र कुलों में प्रचलित था आज वह अवस्था नहीं है। गुरुकुल के बाहर और भीतर के रहन-सहन में बहुत बड़ा अन्तर है। मैं स्वयं कोई सम्मति नहीं देता पर यह विचारणीय है कि यह अन्तर कहां तक ठीक है। जहां ऐसा अन्तर होता है वहां दो में से एक बात का डर रहता है। उन लोगों में जो विशिष्ट परिस्थिति में रक्खे जाते हैं या तो वह मनोवृत्ति उत्पन्न हो जाती है जिसे निम्न भाव (Inferiority Complex) या वह दूसरी वृत्ति जिसे श्रेष्ठय भाव (Superiority Complex) कह सकते हैं। दोनों ही हानिकर हैं। पहिली अवस्था में यह भ्रम हो जाता है कि लोग मुझे विचित्र, छोटा, असभ्य आदि समझते हैं। इसके परिणामस्वरूप एक विचित्र सी सतर्कता, छोटी छोटी सी बात पर अपने अपमान का अनुभव, साधारण आलोचना को अनुचित आक्षेप समझने की कुटेव पड़ जाती है। दूसरी अवस्था में अपने को बड़ा, औरों से ऊंचा समझने का स्वभाव पड़ जाता है। मनुष्य की प्रकृति ऐसी है कि उसे समाज में रहना अच्छा लगता है और समाज में रहने के लिये समानता आवश्यक है। विलक्षणता, असमानता, विषमता खटकती है, अपने ही चित्त को चुभती है। इसलिये उसके लिये कोई न कोई कारण ढूंढ़ लिया जाता है, तब जाकर शान्ति होती है। दूसरों से विलक्षण रहने में ही मेरे जैसे लोगों की शोभा है या लोग मुझको छोटा समझते हैं मैं उनको दिखला दूंगा कि मैं उनसे छोटा नहीं हूं -यह दोनों भाव समाज में मिल जुलकर रहने में बाधक होते हैं। मैं आशा करता हूं कि आप इस बात पर ध्यान रखते होंगे।

शिक्षा पद्धति और शिक्षण विषय के सम्बन्ध में मैं कुछ विशेष नहीं कह सकता। आजकल कई प्रकार के विचारों में संघर्ष चल रहा है। केवल विज्ञान की शिक्षा देना श्रेयस्कर है या विज्ञान के साथ साथ साहित्य और काव्य का भी अध्ययन होना चाहिये? प्रत्येक विद्यार्थी का सभी मुख्य विषयों में चक्षुप्रवेश कराने का प्रयत्न करना चाहिये या नहीं? चुने विषयों का विशेष अध्ययन किस अवस्था में होना चाहिये? दर्शन के अध्ययन की कोई उपयोगिता है या नहीं? यह सब उन प्रश्नों में से हैं जिन पर सर्वत्र विचार हो रहा है। किसी भी शिक्षण-संस्था की शक्ति असीमित नहीं है। प्रत्येक विद्यालय और विश्वविद्यालय को यह सोचना ही पड़ता है कि हम किसको पढ़ायें, क्या पढ़ायें, कैसे पढ़ायें। मैं समझता हूं कि आप भी इन प्रश्नों पर विचार करते होंगे। आज हमारे देश में कई नये प्रयोगों की ओर ध्यान गया है। उदाहरण के लिये वर्धा-पद्धति को लीजिये। हम अपने प्रान्त में भी इस प्रश्न पर विचार कर रहे हैं। अगले वर्ष अर्थात् जुलाई से हम इस ओर आगे बढ़ना चाहते हैं। यह ठीक है कि यह प्रयोग प्रारम्भिक शिक्षा के क्षेत्र में होगा पर इसका प्रभाव उच्च शिक्षा पर भी पड़ेगा।

इस सम्बन्ध में मैं एक बात की ओर संकेत कर देना अनुचित नहीं समझता। यह मांग की जा रही है कि हम गुरुकुल की उपाधियों को स्वीकार कर लें। युक्तप्रान्तीय सरकार के सामने यह प्रश्न है और हमारा निर्णय शीघ्र ही प्रकट होगा।

एक बहुत बड़ा प्रश्न आज शिक्षा-संस्थाओं के सामने है और प्रत्येक ऐसे व्यक्ति को जो शिक्षा के विकास के महत्व को समझता है इस ओर ध्यान देना होगा। वह प्रश्न यह है कि शिक्षा के ऊपर राजनीतिक नियंत्रण कहां तक हो? या, व्यावहारिक रूप में, शिक्षा पर सरकार का कहां तक नियंत्रण रहना चाहिए। जहां तक नियन्त्रण का अर्थ है हिसाब पर देख-रेख रखना या यह देखना कि संस्था वही काम कर रही है जिसके लिये वह स्थापित हुई थी वहां तक तो दो सम्मति हो नहीं सकती। देश की सरकार जनता की प्रतिनिधि है और उसे यह देखना ही चाहिए कि सार्वजनिक सम्पत्ति का अपव्यय नहीं होता। जो संस्थाएं सरकार से आर्थिक सहायता पाती हैं और जो नहीं पातीं, जो रजिस्टर्ड हैं और जो नहीं हैं, जिन शिक्षार्थियों की उपाधि सरकार द्वारा स्वीकृत है और जिनकी नहीं है, उन सबको इतना अंकुश तो अपने ऊपर रखना ही होगा। शासन को यह अधिकार तो रहना ही चाहिए कि इस बात को देख सके कि जो संस्थाएं उसकी सुव्यवस्था से लाभ उठाकर सम्पन्न होती हैं और अपना काम स्वच्छन्दता से कर सकती हैं वह इस स्वच्छन्दता का दुरुपयोग नहीं करतीं। पर आजकल नियंत्रण इससे कहीं आगे जाता है। उदाहरण के लिये आप जर्मनी की ओर दृष्टिपात करें। वहां नीचे से लेकर ऊपर तक सारी शिक्षा सरकार के बनाये हुए एक विशेष सांचे में ढली हुई है। सरकार इतना ही निश्चय नहीं करती कि कितने लड़के पढ़ें, कितने बरस तक पढ़ें, वरन् क्या-क्या पढ़ें, कैसे पढ़ें, कौन पढ़े, कौन पढ़ाये इत्यादि भी उसी के निश्चय के अनुसार होता है। पढ़ाने वाले और पढ़ने वाले आर्य हों अर्थात् वह इतना सिद्ध कर सकें कि उनके प्रपितामह और प्रपितामही, प्रमातामह और प्रमातामही तक में कोई यहूदी नहीं था। फिर दर्शन हो या विज्ञान, साहित्य हो या कला, किसी भी पुस्तक, किसी भी पाठ से यह बात न निकलनी चाहिए कि अनार्यों, मुख्यतया यहूदियों, से मनुष्य समाज का कभी कोई भला हुआ है।

इतना ही नहीं, सारी शिक्षा ऐसी होनी चाहिए कि पढ़ने वालों के हृदय में आर्य्य, दूसरे शब्दों में जर्मन जाति के गौरव और नात्सी विचारशैली के महत्व की अमिट छाप पड़ जाय। मैंने छोटे बच्चों के पढ़ाने के व्याकरण, भूगोल आदि के पाठों के कुछ अवतरण देखे हैं। सब इस एक लक्ष्य को सामने रखकर लिखे गये हैं और विश्वविद्यालय तक यही बात चली गई है। इसका कैसा प्रभाव पड़ सकता है उसका कुछ अनुभव हमको है। यहां अप्रत्यक्ष रूप से ही प्रयत्न किया गया पर जो इतिहास लड़कों को अब तक पढ़ाया गया है उसका यह तो प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ा है कि हिन्दू और मुसलमान अपने को एक दूसरे से पृथक् मानने लगे, लोगों में यह धारणा जम गई कि भारतवासी दुर्बल, युद्ध में अकुशल रहे हैं और विदेशी शासन में ही इनको चैन और शान्ति प्राप्त हो सकती है और हुई है। भारतीयों का आत्मविश्वास जाता सा रहा। फिर जहां सरकार खुलकर संगठित प्रयत्न करेगी वहां क्या होगा? जर्मनी में एक नये प्रकार की मनोवृत्ति वाले मनुष्य की सृष्टि हो रही है। सोचने की बात है कि यह कहां तक उचित है। जिन देशों में आज डिक्टेटरशिप है उनमें तो दिन रात उठते बैठते यही राग अलापा जाता है कि हमारी जाति सर्वश्रेष्ठ है, उसके नैसर्गिक विशेष अधिकार हैं, हमारी ही संस्कृति जगन्मात्र के लिए कल्याणकारी है, यदि दूसरे राष्ट्र हमारी बातें सीधे से न मान लें तो हमारा कर्तव्य है कि उनसे बलात् मनवायें। यह धारा हमको कहां ले जायगी? इससे तो निरन्तर कलह फूट बढ़ेगा। और फिर जब सरकारी नीति के अनुसार पठन-पाठन करना होगा तब तो प्रत्येक देश का एक पृथक् आचार शास्त्र, पृथक् दर्शन, पृथक् समाजविज्ञान होगा? ऐसी अवस्था में सत्य का भी कोई रूप माना जायगा, उसकी भी कोई व्यवस्था होगी, या नहीं? सत्य, असत्य, अच्छा, बुरा, इन सब बातों की कोई कसौटी होनी ही चाहिए, नहीं तो परस्पर का व्यवहार कैसे चलेगा?

इसी से मिलता जुलता एक दूसरा प्रश्न है। शिक्षा को कहां तक किसी विशेष धार्मिक विचारधारा के अनुकूल चलाना चाहिये। आप लोग यहां जो कुछ शिक्षा देते हैं वह सब उन विश्वासों के अधीन ही हो सकती है जो आर्यसमाज के आधारस्तम्भ हैं। आप श्रुति को आप्तवाक्य मानते हैं। वह आपके लिये स्वतःप्रमाण है। और सभी सिद्धान्त परतःप्रमाण हैं। यदि कोई सिद्धान्त आपकी श्रुति व्याख्या के अनुसार नहीं है तो आप उसे असिद्ध और निराधार मानेंगे। ऐसी अवस्था में दो बातें प्रायः होती हैं। जो लोग धर्मग्रन्थों का आदर श्रद्धा नहीं वरन् परम्परा के कारण करते हैं—और ऐसे लोगों की संख्या अधिक होती भी है—वह तो व्याख्या को तोड़ मोड़कर यह दिखलाने का प्रयत्न करते हैं कि हमारे धर्मग्रन्थों में सभी वैज्ञानिक आविष्कार भरे पड़े हैं। जो लोग अन्धश्रद्धालु होते हैं या किसी गूढ़ राजनीतिक या अन्य अर्थ को सिद्ध करने के लिये धार्मिकता का स्वांग भरते हैं, वह विज्ञान को और वैज्ञानिक शिक्षा को ही बहिष्कृत करते हैं। पहिली प्रवृत्ति धर्मग्रन्थों की मिट्टी खराब करती है, दूसरी प्रवृत्ति आविष्कार, खोज, ज्ञान के प्रसार पर बाधा डाल देती है। दोनों ही बातें बुरी हैं पर दूसरी बात तो बड़ी ही हानिकर है। इसने वैज्ञानिकों के प्राणों की आहुतियां दिलवायी हैं। आज भी प्रगतिशील अमेरिका में कई शिक्षालयों में विकासवाद नहीं पढ़ाया जा सकता। आश्चर्य नहीं कि हमारे यहां किसी-किसी प्रख्यात विश्वविद्यालय में कुछ ऐसा ही प्रयत्न हो और अध्यापकों और छात्रों के धार्मिक विचारों और विश्वासों की परीक्षा की जाय। ऐसी बातों से अज्ञान की वृद्धि होती है और दम्भ और झूठ का बोलबाला होता है। मैं तो समझता हूं कि ऐसा प्रयत्न हेय है। विज्ञान को इस प्रकार बांधना मूर्खता है। वैज्ञानिक के सामने यह विस्तृत जड़ाजड़ जगत् है। वह इसके दृग्विषयों को देखे, उनके तत्त्व का अन्वेषण करे, अपने सिद्धान्त निर्धारित करे। अवश्य ही सत्य एक होगा। विज्ञान की प्रयोगशाला का सत्य और धर्मग्रन्थ के पृष्ठों का सत्य पृथक् और स्वतन्त्र नहीं हो सकते। यदि वह धर्मग्रन्थ सचमुच आप्तवाक्य है पर हठात् सामञ्जस्य करना विज्ञान और धर्म दोनों के लिये बुरा है। यह आशा करनी चाहिये कि विस्तृत खोज अन्तर्हित सत्य को समय पाकर प्रकाशित कर देगी और उस सत्य के ज्ञान से वास्तविक धार्मिकता को पुष्टि ही होगी।

परन्तु जहां मैं यह कहता हूँ कि शिक्षा पर राजसत्ता और साम्प्रदायिक विचारों का हठात् बोझ न डालना चाहिये वहां मैं यह भी समझता हूं कि उसको लक्ष्यहीन भी न होना चाहिये। आज शिक्षा जहां स्वच्छन्द छोड़ दी गयी है वहां लक्ष्यहीन भी है। इसका कारण यह है कि आज समाज का सारा संगठन, समाज का सारा जीवन, लक्ष्यहीन है व्यक्ति का लक्ष्य है धन कमाना, सफल होना। यदि ऐसा करने में उसे दूसरों के जीवन को छिन्न भिन्न करना पड़े तो वह ऐसा निःसङ्कोच होकर करता है। मनुष्य की उन्नति मनुष्य के शोषण पर, राष्ट्र की राष्ट्र के शोषण पर, निर्भर है। प्रतियोगिता वृद्धि का मूल-मन्त्र है। सम्पत्ति, वेतन, योग्यता का मापदण्ड है। इसीलिये युद्ध पर युद्ध होते हैं, सन्धि पर सन्धि टूटती है।

यदि मनुष्यों में संस्कृति का नाम बचा रहना है, यदि हमें सभ्य जीवन बिताना है, यदि आज तक के सहस्रों, प्रत्युत लाखों वर्षों के परिश्रम पर पानी नहीं फेरना है, तो सामाजिक जीवन का कोई न कोई लक्ष्य स्थिर होना चाहिये। नीति, आचार, व्यापार, शासन, सब उस लक्ष्य को ध्यान में रखकर परिचालित होने चाहियें। शिक्षा उसी लक्ष्य के अनुकूल होनी चाहिये। आज से बहुत दिन पहिले, कितना पहिले मैं नहीं कह सकता, आर्यों ने समाज का एक चित्र खींचा था। वह चित्र आजकल के लिये यथातथ्येन उपयुक्त हो या न हो परन्तु तत्कालीन परिस्थिति में सर्वाङ्गसुन्दर था। प्रत्येक व्यक्ति के लिये स्थान था, प्रत्येक स्थान के लिये व्यक्ति था। व्यापार, व्यवसाय, शासन, सभी इस संगठन के अधीन

थे; व्यक्ति को बहुत बड़ी स्वतन्त्रता दी गई थी। उससे कोई यह नहीं पूछता था कि वह एकेश्वरवादी है, बह्वीश्वरवादी है या अनिश्वरवादी है, पर उसका सारा जीवन एक परिधि के भीतर था और वह परिधि थी वर्णाश्रम धर्म। आज यूरोप में एक दूसरे लक्ष्य का उदय हुआ है। यह वह लक्ष्य है जो समाजवाद के आचार्यों, मार्क्स और एञ्जेल्स और लेनिन, ने हमारे सामने रक्खा है। इसमें भी राष्ट्र की, व्यक्ति की, सभी प्रवृत्तियां एक परिधि में लायी गयी हैं। इन दोनों विचार धाराओं में एक समानता है और वही समानता उस विजातीयता की द्योतक है जो इनको सब प्रकार के नात्सी और फ़ासिस्ट वादों से पृथक् करती है। न तो वर्णाश्रम-धर्म और न समाजवाद किसी राष्ट्र विशेष, किसी जाति विशेष, की श्रीवृद्धि को अपना ध्येय मानते हैं। यह दोनों ही सार्वभौम हैं। दोनों ही अपरिग्रह त्याग, लोकसंग्रह को सभ्य जीवन का आधार मानते हैं। इस कहने का तात्पर्य्य यह नहीं है कि दोनों एक दूसरे के पर्य्याय हैं पर हमको, आपको, समस्त सभ्य जगत् को सोचना चाहिये कि हम कैसा समाज चाहते हैं, मनुष्य मनुष्य में कैसा सम्बन्ध चाहते हैं और फिर इस चित्र के आधार पर शिक्षा का स्वरूप होना चाहिये। यदि समाज के सामने कोई व्यापक लक्ष्य होता तो आज जैसी दुरवस्था न देख पड़ती। ऐसे-ऐसे आविष्कारों के होते हुए भी पृथ्वी से दरिद्रता, शोषण, विषमता न उठ सकी; विज्ञान के प्रचण्ड पण्डित अपनी विद्या को धनिकों के स्वार्थ-साधन की सामग्री बनाने में लज्जित नहीं होते और ज्ञान और धनमयी जो विभूति धरातल को स्वर्गोपम बना सकती है वह निःशङ्क होकर नरसंहार में लुटा दी जाती है। व्यक्ति और समाज का अवयवावयवी भाव किसी के सामने नहीं है। विराट् पुरुष की कल्पना के लिये कोई स्थान नहीं है। विज्ञान विशारद को जो आजकल का ब्राह्मण है यह नहीं सिखलाया गया है कि वह शासकों और धनिकों से बड़ा है और समाज मात्र का गुरु, त्राता मार्गदर्शक है; उसे उन लोगों की भांति आचरण नहीं करना चाहिये जो 'वानरीमिव वाग्देवीं, नर्तयन्ति गृहे गृहे' वरन् भारती का आदर करना चाहिये, उसका सत्कार्य्य के लिये सदुपयोग ही, प्रयोग करना चाहिये अन्यथा यह कुप्रयोक्ता को और समाज को भस्मसात् कर देगी। यह कहने से काम नहीं चल सकता कि व्यक्ति समाज के लिये है। क्योंकि अन्ततोगत्वा समाज व्यक्तियों का समूह है; यह कहना भी अपर्याप्त है कि शिक्षा का लक्ष्य व्यक्ति का पूर्ण विकास है क्योंकि समाज के बिना व्यक्ति का जीवन अपूर्ण रहता है। व्यक्ति को तो समाज में ही अपने जीवन की सार्थकता और पूर्णता मिलती है और शिक्षा के द्वारा पूर्ण व्यक्ति और पूर्ण समाज की सृष्टि होनी चाहिये।

इसके लिये एक व्यापक दर्शन की आवश्यकता है। आर्य संगठन वेदान्त और धर्म्म सिद्धान्त की भित्ति पर खड़ा था। समाजवादी संगठन की नींव द्वंद्वात्मक अनात्मवाद और इतिहास की अनात्मवादी व्याख्या है। सम्भव है यह दोनों ही आधार अंशतः सत्य हों, सम्भव है दोनों असत्य हों पर जबतक समाज किसी दार्शनिक आधार पर स्थिर न किया जायगा तब तक वह अव्यवस्थित रहेगा और व्यक्ति व्यक्ति, व्यक्ति समाज, तथा राष्ट्र राष्ट्र को ग्रथित करने वाला कोई सूत्र न रहेगा। यह सूत्र क्या हो यह इस युग की सबसे आवश्यक खोज है। पर इस खोज में तभी सफलता होगी जब लगन, जिज्ञासा, के साथ साथ सचाई और निष्पक्षता भी होगी; वैज्ञानिक का भाव होगा। यह सिद्धान्त शिक्षा के स्वरूप को भी निर्धारित कर देगा।

अब मैं चार शब्द स्नातकों से कहना चाहता हूँ। आप लोग आयुष्मान हों समस्त दैवी सम्पत् आप को प्राप्त हो आपका पुरुषार्थ चतुष्टय सिद्ध हो, श्रुति के शब्दों को थोड़ा परिवर्तित करके

अभयं वः करत्यन्तरिक्षं, अभयं द्यावापृथिवी उभे इमे।
अभयं पश्चादभयं पुरस्तादुत्तरादधरादभयं वोऽस्तु।

मैं इसके पहिले कह चुका हूँ। कि मनुष्य अपने जीवन को समाज के द्वारा ही परिपूर्ण कर सकता है। मेरी कामना है कि आप का जीवन परिपूर्ण हो, आप के द्वारा समाज भी समुन्नत हो। कुछ बातें तो ऐसी हैं जो किसी भी देश और काल में स्नातकों से कही जा सकती हैं; सत्यं वद, धर्म्मं चर, मातृदेवो भव, पितृदेवो भव, आचार्य्य देवो भव, प्रजातन्तुँ मा व्यवच्छेत्सीः ऋणत्रय को चुकाना अपना परम कर्तव्य समझो, इत्यादि उपदेश तो ठीक ही हैं पर इसकी व्याख्या आप को देशकाल के अनुसार करनी होगी। आप किस काल में स्नातक हुए हैं, भारतवर्ष ही नहीं सारी पृथ्वी आज कैसी अवस्था में है, इसका पूरा विचार करके ही आप अपने कर्तव्य स्थिर कर सकेंगे। हमारा देश अब द्रुतगति से स्वतन्त्रता की ओर बढ़ रहा है। मेरा तो ऐसा विश्वास है कि ऐसी कोई शक्ति नहीं है जो हमको अब बहुत दिनों तक स्वराज्य से वञ्चित रख सके। परन्तु अभी उसके लिये त्याग और तपश्चर्या की आवश्यकता है। आप अब कार्य-क्षेत्र में आये हैं। अपने गुरुकुल में आपने अपने समय का कहां तक सदुपयोग किया है इसकी परीक्षा तो अब होगी। स्वराज्य की प्राप्ति से बढ़ कर कठिनता स्वराज्य की रक्षा में है और वह परीक्षा और भी कठिन है। आप सब लोग एक ही व्यवसाय में संलग्न नहीं होंगे। सबके कार्यक्षेत्र अलग-अलग होंगे, सब का अपना निजी कौटुम्बिक दायित्व होगा। परन्तु मातृभूमि के चरणों पर तो सबके ही धन, सबके ही ज्ञान भेंट प्रतीक्षा सदी रहनी चाहिये। भारत के सुख में आपका सुख, उसकी सम्पन्नता में आपकी सम्पन्नता होनी चाहिये। 'त्वदीयं वस्तु देशेन्द्र, तुभ्यमेव समर्पये' आप का भाव होना चाहिये। असाधारण चरित्रबल की आवश्यकता है। अज्ञान, दुराग्रह, अनाचार, द्वेष से अहर्निश लड़ना सहज काम नहीं है। जिनको सार्वजनिक जीवन का कुछ भी अनुभव है वह जानते हैं कि यह कैसा कड़वा काम है, सचमुच 'क्षुरस्य धारम्' पर चलना

होता है, पर किसी को तो इस मार्ग पर चलना ही है। पदे पदे प्रेय और श्रेय का संघर्ष होगा पर आप को 'कर्तव्यमिति' बुद्धि से प्रेय को ठुकराकर, लोकापवाद को हंसते हंसते शिरोधार्य करके, आगे बढ़ना होगा यों तो जिस किसी भी देश में राजनीतिक क्रान्ति होती है वहां विघटन के पीछे संघटन करना होता है और ध्वंस की अपेक्षा रचना काम कठिन होता है। परन्तु हमारी समस्याएं तो बड़ी ही कठिन हैं। इतना बड़ा देश, उसमें इतने विभिन्न मतों के अनुयायी बसे हुए, सारे निवासियों की सांस्कृतिक अवस्था एक सी नहीं। चीन और रूस में भी विभिन्न मतों के और विभिन्न सांस्कृतिक अवस्था के लोग बसते हैं पर वहां इनके अलग अलग प्रदेश हैं। यहां यह सुगमता नहीं है। एक हमारे ही प्रान्त को ले लीजिये। यहां हिन्दुओं की बहुत बड़ी संख्या है, पर मुसलमानों की भी संख्या नगण्य नहीं है। यहीं हिन्दू-संस्कृति और मुस्लिम संस्कृति के केन्द्र काशी प्रयाग, अयोध्या, मथुरा, हरद्वार, आगरा लखनऊ हैं। यहां आपको परम सभ्य उद्भट विद्वान् भी मिलेंगे और जंगल-पहाड़ों में रहने वाले भी। ऐसी ग्रंथि को यदि हम सुलझा सकें तो हम सारे जगत् के सामने एक आदर्श रख सकेंगे। एक भारतीय संस्कृति, एक भारतीय भाव स्थापित करने का उद्देश्य महान् उद्देश्य है। हम देख रहे हैं कि वातावरण कैसा दूषित हो रहा है। हमको उस साम्प्रदायिक विद्वेष के, जो हमारे सार्वजनिक को कलुषित कर रहा है, कारणों को ढूंढना होगा। हिन्दू और मुसलमान के धार्मिक विचार भले ही भिन्न हों पर दोनों की जाति एक है। हिन्दू मुसलमान हो सकता है, मुसलमान हिन्दू बन सकता है। दोनों के पूर्वज एक थे। खान-पान प्रायः एक सा है। पर आज ऐसे दस हिन्दू मिलने कठिन हैं जिन पर मुसलमानों का प्रेम हम मुसलमान मिलने कठिन हैं जिन पर हिन्दुओं का विश्वास हो। ऐसा क्यों होता है? हिन्दू हिन्दू बना रहे मुसलमान मुसलमान बना रहे, फिर भी दोनों को एक दूसरे के साथ मनुष्यों की भांति तो रहना ही है। जो लोग बात बात में साम्प्रदायिक भेदों को बढ़ाते हैं जो लोग आज यह नया राग अलाप रहे हैं कि हिन्दू मुसलमान अलग-राष्ट्र हैं और देश को इसमें बांट देना चाहिये वह देश का और अपने सहधर्मियों की भयानक हानि कर रहे हैं। साम्प्रदायिक द्वेष के लिये इनकी बहुत बड़ी ज़िम्मेदारी है। कैसे दुःख की बात है कि थोड़े से स्वार्थी व्यक्ति करोड़ों का अहित कर रहे हैं। ऐसे अवसर पर उन लोगों का जो हिन्दू हैं कर्तव्य बहुत कठिन हो जाता है पर उनका दायित्व अधिक है क्योंकि वह बहुसंख्यक हैं। उनको 'तरोरिव सहिष्णुनाम्' का परिचय देना है। अपने सिद्धान्तों पर दृढ़ रहते हुए, अपने भूले भाइयों के कटाक्षों और प्रहारों की चिन्ता न करके उनको यह दिखला देना है कि अल्पसंख्यकों के सभी सच्चे हित, उनकी संस्कृति, उनके देवस्थान, उनकी जीविका सुरक्षित हैं। उनको अपनी ओर से इस बात का पूरा-पूरा प्रयत्न करना है कि हमारे देश में लोकतंत्रात्मक शासन सफल हो। लोकतंत्र कई प्रकार का हो सकता है। हम को यूरोप के किसी देश विशेष की नक़ल नहीं करनी है। हम अपने संस्कारों के अनुसार अपने लिये शासन पद्धति स्थिर करें पर यदि हम यह नहीं चाहते कि एक व्यक्ति या एक गुट के हाथ में सारा आधिपत्य आ जाय तो फिर ऐसी परिस्थिति तो उत्पन्न करनी ही होगी जिसमें अल्पसंख्यक और बहुसंख्यक एक साथ उसी प्रकार रहें जैसे आज मिश्र में मुसलमान और ईसाई रह रहे हैं। यदि ऐसा न हुआ तो हमारी सारी शक्ति निरन्तर यादवीय में नष्ट हो जायगी और स्वराज खपुष्प की भांति एक बार देख पड़कर जहां का तहां विलीन हो जायगा।

कितना अज्ञान, कितना मूढ़ग्राह, कितनी विषमता, कितना दारिद्र्य दूर करना है। समस्या की जटिलता को सोचकर जी घबरा उठता है पर आप को ही यह काम करना है। और फिर यह भी भरोसा नहीं है कि बाहर हमारा कोई सहायक है। सारे जगत् में दावानल प्रदीप्त हो रहा है। बड़े राष्ट्रों ने, जो छोटों के स्वत्वों के रक्षक हो सकते थे, विश्वासघात करके छोटे वीर राष्ट्रों की स्वाधीनता को शिकारियों के चंगुल में सौंप दिया। यदि इंग्लैण्ड और फ्रांस अपने वचनों पर दृढ़ रहते तो अबिसीनिया, ज़ेकोस्लोवाकिया, स्पेन और चीन का इतिहास दूसरा ही होता। रूस ही एक आदर्शवादी राष्ट्र था। उसको इन दोनों देशों ने जर्मनी और इटली को प्रसन्न करने के लिये यूरोपियन राजनीति का अछूत बना दिया। परिणाम जो होना था वह हुआ। व्याघ्र के मुंह में खून लग गया और अब इन स्वार्थी देशों के लाले पड़ रहे हैं। नहीं कहा जा सकता कि क्या होगा पर लोकतंत्र की दुहाई दी जायगी और हम, जो अपने देश में परतंत्र हैं, जो अपने देश की सेना में दायित्व के पदों पर नहीं हो सकते, जो प्रान्तीय शासन तक में पूरा अधिकार नहीं रखते, लोकसत्ता के, उस लोकसत्ता के जिस का आस्वाद हम नहीं करते, रक्षण के लिये बाध्य होंगे। ऐसी अवस्था में हम क्या करना चाहिये यह प्रश्न तो राजनीतिक संस्थाओं के विचार करने का है पर मैं चाहता हूं कि आप इस चित्र को अपने सामने रक्खें। इसी जगत् में आपका भारत है, इसी में आपको काम करना है। यदि यों ही अन्तर्राष्ट्रीय युद्ध होते रहे, यों ही सबल राष्ट्र दुर्बल राष्ट्रों के राजनीतिक और आर्थिक स्वातंत्र्य का अपहरण करते रहे, यदि यों ही राष्ट्रों की सारी शक्ति संहारसामग्री के सम्पादन में लगती रही तो भारत स्वतन्त्र होकर भी सुखी नहीं रह सकता। हमें भी औरों की भांति करना होगा और हम भी लाख लाख विधवाओं और अनाथों के आंसुओं, करोड़ों भूखों और नंगों रोगियों और भिक्षुओं के आर्तनाद के दायी होंगे। कल्याण न तो हमारा होगा न दूसरों का. पर स्वार्थ और अज्ञानमय इस महामेघ में संस्कृति और सभ्यता का सदा के लिये लोप हो जायगा।

यह तो असह्य है, अतः आपको इस ओर भी ध्यान देना होगा। मनुष्यों को फिर से मनुष्य बनाना है। लोभ और मोह को दूर करके उनको यह सिखलाना है कि सब

का कल्याण परस्पर सहयोग में है। व्यक्तियों और व्यक्ति-पुजों से शोषण को एक-मात्र निर्मूल करना है। ऐसे समाज का निर्माण करना है जिसमें सबको अपनी योग्यता के अनुसार उन्नति करने का अवसर मिले, सेवाभाव एक-मात्र प्रेरक हो, सबके कल्याण में अपना कल्याण समझा जाय। सम्भव है यह स्वप्न हो पर ऐसा स्वप्न है जिससे जागृतावस्था में मूर्त करने का प्रयत्न करना मनुष्य के लिये शोभा की बात है। यही आर्य-संस्कृति का मूल है। मनुष्य सदा से यह स्वप्न देखता आया है। पुराण उत्तरकुरु का वर्णन करते हैं। अन्य देशों में कई प्रकार की यूटोपिया कल्पित हुई हैं। आप से मैं असम्भव को सम्भव करने का प्रस्ताव नहीं करता पर यह कहता हूं कि अपनी सारी शक्ति लगाकर ऐसे समाज के निर्माण की नींव डालिये जिसमें शोषण, दासता, परोपजीविता न हो, जिसमें श्रम प्राकृतिक प्रतीत हो और जीवन कलमय हो, जिसमें उत्पीड़न से पराङ्मुखता दण्ड के भय से नहीं प्राणिमात्र के साथ अपने तादात्म्य के अनुभव के कारण हो। ऐसे ही समाज में प्रत्येक व्यक्ति अपना आध्यात्मिक अभ्युदय कर सकता है, आत्मतत्त्व को पहिचान सकता है। जो प्रताड़ित, प्रपीड़ित है, वह क्या आत्मचिन्तन करेगा? नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः।

आप इस प्रयत्न में सफल हों, यह मेरी हार्दिक कामना है।

इति शम्

हैदराबाद सत्याग्रह के सम्बन्ध में गांधी जी का पत्र

[ले०—आचार्य स्वामी अभयदेव जी]

गत लेख में मैंने लिखा था कि हैदराबाद सत्याग्रह पर गांधी जी का मौन ठीक ही है और यह भी प्रकट किया था कि कांग्रेस के सभी नेता इस हमारे आन्दोलन को न्याय्य समझते हैं और इसकी सफलता चाहते हैं अतः उनसे यदि पूछा जाय तो वे सभी वैसा ही अनुकूल उत्तर देंगे जैसा कि श्री कृपालानी जी ने दिया है या देशरत्न श्री राजेन्द्र बाबू दे चुके हैं। मेरे इस कथन की पुष्टि करने वाला इस सप्ताह एक और सुन्दर समाचार आ गया है। गांधी जी को इसी बारे में एक माता ने पत्र लिखा था उसके उत्तर में गांधी जी ने जो लिखा वह पढ़ने लायक है—

गांधी जी का वह जवाब नीचे दिया जाता है पर उससे पहले पाठक ज़रा यह जान लें कि जिस पत्र के जवाब में गांधी ने वह लिखा है वह पत्र किसने, किन परिस्थितियों में किस आशय से लिखा था तभी पाठक गांधी जी के उत्तर का स्वाद अच्छी तरह ले सकेंगे।

गुरुकुल से प्रारम्भ में जो जत्था ब्रह्मचारियों का हैदराबाद गया था उन में से दो ब्रह्मचारी चतुर्दश श्रेणी के थे जो कि अभी कुछ महीने में स्नातक होने वाले थे ब्र० क्षेत्रपाल और ब्र० धीरेन्द्र जिन्होंने दो मास के बाद गुरुकुल की अन्तिम परीक्षा देनी थी और स्नातक हो जाना था और पढ़ने में इतने अच्छे थे कि सदा पहिले दूसरे रहते थे उनका ऐसे समय यह सब छोड़ कर सत्याग्रही बन कर जेल चले जाना वस्तुतः सुन्दर त्याग था।

और ऐसी हालत में अपने ब्रह्मचारियों को जो माता पिता जेल जाने दें, जीवन की बाज़ी लगाने दें उनकी प्रशंसा किये बिना कौन रह सकता है। उन्हीं ब्रह्मचारियों में से एक धीरेन्द्र की माता जी हैं जिन्होंने गांधीजी को यह पत्र लिखा है। ये श्रीमती भगवती देवीजी देहली की एक प्रसिद्ध कार्य कर्त्री हैं। उन्होंने अपने विस्तृत पत्र में लिखा है कि

'मैं एक तुच्छ देश सेविका हूं जिसे कई बार राष्ट्रीय-संग्राम में जेल जाने का भी सौभाग्य प्राप्त हुआ है। क्या मैं कभी अपने बच्चे को सांप्रदायिक मामले में सत्याग्रह करने की खुशी से आज्ञा दे सकती थी।

अभी इन विद्यार्थियों की उम्र लगभग २० या २१ वर्ष के अन्तर्गत है। गुरुकुल का स्नातक बनने में केवल दो मास शेष थे कि उन विद्यार्थियों ने लगभग १४ वर्ष के अध्ययन से बाद दो मास बाद मिलने वाली उपाधि (डिग्री) की परवाह न कर अपनी प्राणकी बाज़ी लगा दी है और मैंने भी स्वयं उसे अपनी आज्ञा से भेज दिया।'

इन्होंने अपने पत्र में गांधी जी को यह याद दिलाकर कि यदि आप रियासत हैदराबादमें हो और आपकी प्रातः और सायंकाल की सम्मिलित प्रार्थना को रियासत के अधिकारी जबरन बंद कर दें तो उसके लिये आप का सत्याग्रह कैसा होगा। करांची कांग्रेस के प्रस्ताव उद्धृत कर के हैदराबाद सत्याग्रह का औचित्य पूछा था और उत्तर मांगा था।

पत्र के उत्तर में महात्मा गांधी जी के प्राईवेट सेक्रेटरी श्री प्यारेलाल जी द्वारा लिखा महात्मा गांधी जी का जवाब निम्न है:-

बिड़ला हाऊस नई दिल्ली
२३ मार्च, १९३९

श्रीमती जी,

आपका पत्र घनश्याम दास जी बिड़ला की हाज़री में गांधीजी को मैंने सारांश में पढ़ सुनाया। उन्होंने वह सुना। वह धार्मिक स्वतंत्रता हर किसी के लिये चाहते हैं परन्तु इसकी प्राप्ति के लिए उनके पास साधन-रूप मात्र सत्य और अहिंसा ही हैं-वह इसके द्वारा आर्य-समाज वालों को भी अपने धर्माचरण के लिए रास्ता साफ करने का उपाय बता रहे हैं।

बाकी सत्याग्रह में जो लोग जेल जाते हैं उनके लिये तो जेलगमन यात्रा रूप बन जाता है। उस पर खेद क्या और अधीरपन क्या?

भवदीय
प्यारेलाल

इस पर अधिक कुछ टीका टिप्पणी करने की ज़रूरत नहीं। साफ है कि गांधी जी धार्मिक स्वतंत्रता हर किसी को चाहते हैं। हैदराबाद में आर्य समाजियों की भी स्वतंत्रता चाहते हैं, पर यह एक मात्र सत्य और अहिंसा द्वारा प्राप्त करनी चाहिये। अतः यदि आर्य समाज

यथोचित पूरी २ सत्य और अहिंसा द्वारा इस सत्याग्रह को कर रहा है तो गांधी जी भी उसके साथ हैं। और जिनके सम्बन्धी इस लड़ाई में सत्याग्रही बनकर जेल चले गये हैं उन्हें उनके जेल चले जाने से दुःखी, खिन्न अधीर नहीं होना चाहिये किन्तु यह समझना चाहिये कि वे तीर्थ यात्रा जैसी पुण्य पवित्र यात्रा करने गये हैं अतः प्रसन्न होना चाहिये बड़े कल्याण की आशा करनी चाहिये।

गुरुकुल वार्षिकोत्सव

प्राकृतिक असुविधाओं का मुकाबला कर उत्सव प्रबन्धकों ने पण्डाल आदि का यथा समय प्रबन्ध कर दिया था। ७-८ अप्रैल को उत्सव की कार्यवाही काफी चहल पहल के साथ हुई। ७ अप्रैल को प्रातः महाविद्यालय के ब्रह्मचारियों का संस्कृत वाद-विवाद तथा छोटे ब्रह्मचारियों की अन्त्याक्षरी हुई। दोपहर को आचार्य स्वामी अभयदेव जी के सभापतित्व में हैदराबाद सम्मेलन हुआ। इसमें अनेक उपयोगी प्रस्तावों के द्वारा रियासत में धार्मिक पाबन्दियों को हटाने के लिए आर्य-सत्याग्रह का समर्थन किया गया तथा वीर सत्याग्रहियों को बधाई दी गई। रात्रि के समय में पण्डित प्रियव्रत जी वेदवाचस्पति तथा पण्डित सुखदेव जी दर्शनवाचस्पति के 'अहिंसा की वैदिक-व्याख्या' पर महत्वपूर्ण भाषण हुए।

८ अप्रैल को प्रातः युक्त प्रान्त के शिक्षामन्त्री माननीय सम्पूर्णानन्द जी का स्टेशन तथा कुलभूमि में गुरुकुल की ओर से स्वागत किया गया। राष्ट्रीय सप्ताह के उपलक्ष में आपने कुल की उस तिरंगा-राष्ट्रीय पताका को फहराया जो कि सन् १९३० के प्रसिद्ध सत्याग्रह में बड़ी शान से फहराती रही था। शिक्षा मन्त्री ने राष्ट्रीय पताका को राष्ट्र सम्मान का द्योतक चिन्ह बताया और कहा प्रत्येक भारतीय को इसके सम्मान की रक्षा प्राणपण से करनी चाहिये।

तीसरे पहर गुरुकुल के विशाल पण्डाल में माननीय सम्पूर्णानन्द जी को मानपत्र भेंट किया गया। जिसके उत्तर में मन्त्री जी ने कहा 'आप और मैं एक ही संस्कृति के उपासक हैं। आपसे इसी संस्कृति विषयक शिक्षण पाने तथा आप लोगों के बीच में बैठ कर कुछ दिन बिताने के लिए मैं यहां आया हूं। राष्ट्रीयता ने देश में कुछ हद तक विजय पा ली है तथापि अभी देश को स्वराज्य के मार्ग में बहुत कुछ करना है। गुरुकुल राष्ट्रीय कार्य करने के कारण पिछली सरकारों की नजरों में खटकता रहा है किन्तु अब अनेक प्रान्तों में राष्ट्रीय सरकारों के स्थापित होने से गुरुकुल वासियों को उनसे सहानुभूति व सहायता की आशा हो सकती है।

युक्तप्रांत के न्याय उद्योग मन्त्री माननीय डा. कैलाश नाथ काटजू को तीसरे पहर कुलभूमि में पधारने पर मानपत्र भेंट किया गया। जिसके उत्तर में आपने गुरुकुल के प्रति अपना प्रेम प्रदर्शित किया तथा विद्यार्थियों को चरित्रउन्नत करने व भावी संघर्ष में शामिल होने के लिए प्रेरित किया। इसके बाद आपकी अध्यक्षता में गान्धीवाद व समाजवाद पर बहस हुई। बहस का श्रीगणेश डा० सत्यकेतु विद्यालङ्कार ने किया। आपने साम्यवाद का समर्थन करते हुए कहा कि २० साल के अर्से में एक मात्र गांधी जी ही गान्धीवाद के सिद्धान्तों को अपना सके हैं। इसका अभिप्राय यह हुआ कि यह सिद्धान्त अक्रियात्मक है। इस युक्ति का खण्डन करते हुये श्री मंज़र-अली सोख्ता ने कहा कि गान्धीवाद से ही हम अब तक राजनैतिक उन्नति कर सके हैं। श्री गोविन्द सहाय, श्री खुर्शीदलाल श्री देवेश्वर सिद्धान्तालंकार तथा प० सुखदेव जी विद्यालङ्कार के भी भाषण हुए। अन्त में डा० काटजू जी का भाषण हुआ। वाद विवाद के बाद आपने गुरुकुल के सब विभागों का निरीक्षण किया और छोटे परिमाण में यहां तैय्यार किए जाने वाले स्याही, फिनायल, खद्दर व औषध निर्माण आदि उद्योग धन्धों की प्रशंसा की। रात को डा० काटजू साहब गुरुकुल में रहे, प्रातः वे कुल से अपने सरकारी दौरे पर रवाना हो गए।

९ अप्रैल को प्रातः दीक्षान्त संस्कार था, इस वर्ष कुल से १८ स्नातक निकले हैं जिनमें से दो स्नातक हैदराबाद सत्याग्रह के सिलसिले में जेल के सींखचों में बन्द हैं। माननीय सम्पूर्णानन्द जी ने दीक्षान्त-अभिभाषण देते हुए गुरुकुल के शिक्षा परीक्षण को प्राची तथा प्रतीची के सुन्दर समन्वय रूप में वर्णित किया तथा उन्होंने गुरुकुल की शिक्षा को शुद्ध निर्मल धारा रूप में बहाने की प्रेरणा की। आपके बाद श्री मंज़र अली सोख्ता, सरदार सन्तसिंह एम. एल. ए. स्वामी सत्यानन्द जी आदि ने नवस्नातकों को आशीर्वाद दिया। तीनों के ही आशीर्वाद बहुत भावपूर्ण तथा हृदयग्राही थे। सरदार सन्तसिंह जी ने हैदराबाद के सत्याग्रह के साथ पूर्ण सहानुभूति प्रकट की। आप ने कहा गुरुकुल का खास उद्देश्य है और उसे हमें ध्यान में रखना चाहिए। आचार्य जी तथा मुख्याधिष्ठाता जी ने नवस्नातकों को दीक्षा दी इस समय पण्डाल ठसाठस भरा हुआ था। प० केशवदेव जी ज्ञानी, चन्द्रप्रभा जी विद्यालंकृता ने नवस्नातकों का स्वागत किया। प० सत्यभूषण जी ने उसका प्रत्युत्तर दिया। प० विशम्भर नाथ जी ने जनता की सच्ची सेवा का संदेश दिया।

तीसरे पहर आचार्य रामदेव जी की अध्यक्षता में गुरुकुल सम्मेलन हुआ। इसमें सर्व श्री शिक्षा मन्त्री जी, शिब्बनलाल सक्सेना एम. एल. ए. डा० सत्यकेतु जी, प० सत्यव्रत जी, राय साहब अमृत राय जी आदि के भाषणों द्वारा गुरुकुल शिक्षा प्रणाली की महत्ता और नवीनता पर प्रकाश डाला गया। स्वामी अभयदेव जी ने अपील की। इस वर्ष ५२ हजार रुपया एकत्र हुआ।

९ अप्रैल की रात को गुरुकुल के भरे पण्डाल में व्यायाम सम्मेलन हुआ। इस में गुरुकुल के छोटे विद्यार्थियों के लेज़म, लाठी व स्तूप निर्माण के खेल तथा बड़े ब्रह्मचारियों के मलखम्ब, छुरी, तलवार, जुजुत्सु आदि के कसरती प्रदर्शन हुए। माननीय मंत्री सम्पूर्णानन्द जी ने इन व्यायामों में बड़ी दिलचस्पी ली और इस दिशा में गुरुकुल द्वारा किए जाने वाले प्रयत्नों की

सराहना की । इस अवसर पर गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ के श्री० मजूमदार व उनकी छोटी कन्या ने अपने अद्भुत व्यायाम प्रदर्शनों द्वारा उपस्थित जनता को आनन्दित किया। उनको तथा कुछ विद्यार्थियों को इस समय कुछ पदक भी भेंट किए गए।

१० अप्रैल को प्रातः वेदारम्भ संस्कार हुआ। इसवर्ष ६५ नए विद्यार्थी शिक्षाके लिये प्रविष्ट हुए हैं। इनमें से १० छात्र आवागढ़ के राजा ने भिजवाए हैं। पिछले ६ वर्ष से गुरुकुल में प्रविष्ट होने वाले विद्यार्थियों में यह संख्या सब से अधिक है।

गुरुकुलीय साहित्य परिषद् की ओर से किए गए वेद सम्मेलन के सभापति इन्दौर के प्रसिद्ध वेदज्ञ श्री ज्योतिषाचार्य श्री पण्डित दीनानाथ जी शास्त्री थे। इस अवसर पर गुरुकुल के बड़े ब्रह्मचारियों ने वैदिक विषयों पर निबन्ध पढ़े तथा गुरुकुल के उपाध्याय पण्डित विश्वनाथ जी विद्यालंकार तथा वागीश्वर जी विद्यालंकार ने उनकी आलोचना की। अन्त में विद्वान् सभापति ने वेद की कुछ उलझी गुत्थियों को सुलझाने का प्रयत्न किया।

तीसरे पहर लाला हरदयालु जी एम. ए का विद्वत्ता पूर्ण भाषण हुआ।

पहले और चौथे दिन तीसरे पहर के समय गुरुकुल के उत्साही स्नातक पण्डित चन्द्रगुप्त जी ने हैदराबाद की यथार्थ परिस्थिति का दिग्दर्शन कराते हुए आर्य जनता से आर्य-सत्याग्रह में भाग लेने का अनुरोध किया, आपकी अपील पर पण्डाल से हैदराबाद सत्याग्रह के लिये ३००) एकत्र होगया।

अन्तिम दिन रात्रि को सङ्गीत तथा कविता सम्मेलन हुए। सङ्गीत सम्मेलन में हिस्सा लेने के लिए दिल्ली से मास्टर मोहन तथा मास्टर मदन की पार्टियां आई हुई थीं जालन्धर से प्रज्ञाचक्षु सङ्गीताचार्य भगत मगतराम जी अपने दल के साथ आए हुए थे- देहरादून से भी एक संगीत मण्डली सम्मेलन में भाग लेने आई हुई थी। सब ने यथा योग्य गायन वादन के करिश्मे दिखाकर एक अजीब समा बान्ध रखा था।

कवि सम्मेलन में पण्डित सत्यभूषण जी 'योगी' वेदालंकार की कविता बहुत अच्छी रही। अन्य कवियों ने भी मर्म की कुछ कविताएं सुनाईं। अन्त में जलसा शान्ति-पाठ तथा विजय घोषों के साथ सफलता पूर्वक सम्पन्न हुआ।

इस वर्ष वार्षिकोत्सव पर स्वामी सत्यानन्द जी, स्वामी अभय देव जी जैसे पूज्य सन्यासी, पण्डित बुद्धदेव जी पण्डित प्रियव्रत जी पण्डित दीनानाथ जी जैसे आर्यसमाजिक विद्वान, डाक्टर कैलाशनाथ जी काटजू, माननीय सम्पूर्णानन्द जी, श्री मज़र अली सोख्ता, सरदार सन्त सिंह जी जैसे देशनेता व्यक्ति पधारे थे उपस्थिति भी चारों दिन पर्याप्त रही। आर्थिक दृष्टि से तथा नए प्रविष्ट ब्रह्मचारियों की संख्या देखते हुए यह जलसा कामयाब कहा जा सकता है।

गुरुकुल समाचार

उत्सव के बाद नव वर्ष के नूतन उल्लास के साथ पढ़ाइयां प्रारम्भ हो गई हैं। गर्मी भी बढ़ रही है तैराक भाई भागीरथी के सुन्दर स्वच्छ जल में तैर कर अपनी कला का प्रदर्शन करने लगे हैं। गुरुकुल की सभी सभाओं के नए चुनाव भी हो गए हैं। गुरुकुलीय साहित्य परिषद् के मंत्री ब्र० नरेन्द्र तथा उपमंत्री ब्र० आनन्द चुने गए हैं। वाग्वर्धिनी सभा के मंत्री ब्र० सत्यव्रत हिन्दी साहित्य मण्डल के (गांधी) ब्र० ब्रह्मदत्त ब्रह्मचारी स्वाहिनी के मंत्री ओमप्रकाश तथा कालिज यूनियन मंत्री ब्र० आनन्द चुने गये हैं। नए मन्त्रियों ने नए उत्साह के साथ कार्य करना प्रारम्भ कर दिया है।

स्वास्थ्य समाचार

गत सप्ताह ब्र० सुखदेव तृतीय श्रेणी कटुविष, ब्र० कपिलदेव द्वितीय श्रेणी चोट, ब्र० तिलकराज तृतीय श्रेणी चोट, ब्र० रामचन्द्र १म श्रेणी विषम ज्वर, ब्र० भगवद्दत्त चतुर्थ श्रेणी विषम ज्वर, ब्र० ज्ञानचन्द्र द्वितीय श्रेणी विषम ज्वर, ब्र० वीरेन्द्र चतुर्थ श्रेणी अतिसार, ब्र० कान्ती कृष्ण द्वितीय श्रेणी ज्वर, ब्र० इन्द्रसेन द्वितीय श्रेणी ज्वर से रोगी हुए थे अब सब स्वस्थ हैं।

"उद्बोधन"

[ब्र० भागवत दशवीं श्रेणी गु० वैद्यनाथ धाम]

वीरो ! आगे कदम बढ़ाओ
स्वतन्त्रता की बलिवेदी पर
हँस हँस के चढ़ जाओ
माया मोह शोक को तजकर
समराङ्गण में आओ । वीरो०

सोओ नहीं हिन्दु सन्तानो,
जागृति निज मन लाओ ।
वीर बनो रणधीर बनो अब-
धर्म सेवी कहलाओ । वीरो०

हो सन्तति राणा प्रताप के
शत्रु दलन कर आओ
आर्य बन्धु के संकट लखके
अविरल अश्रु बहाओ । वीरो०

अत्याचार आततायी का-
होवे मत घबराओ
हिन्दु संस्कृति के रक्षाहित
अपना प्राण गंवाओ । वीरो०॥

चौधरी दुलारालाय के प्रबन्ध से गुरुकुल प्रेस गुरुकुल कांगड़ी में मुद्रित तथा प्रकाशित।

* ओ३म् *

"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत"   Reg. No. A. 2927

गुरुकुल

सम्पादक—साहित्यरत्न पं० हरिवंश वेदालङ्कार

एक प्रति का मूल्य -)   [गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख-पत्र]   वार्षिक मूल्य २॥)

वर्ष ४]   गुरुकुल काङ्गड़ी, गुरुवार २१ वैशाख १९९६; ५ मई १९३९   [संख्या १

गुरुकुल में नव वर्षारम्भ की

प्रार्थना

[प्रथम वैशाख को आचार्य अभयदेव जी ने गुरुकुल का कार्य भार सम्भालने का दिन कुछ विशेष प्रकार से मनाया। प्रातःकाल सब कुलवासियों का सम्मिलित यज्ञ हुआ जिसमें ईश्वर स्तुति, स्वस्तिवाचन के बाद बड़ा यज्ञ किया गया। इस यज्ञ में मंत्र बोलने तथा यज्ञ के अन्त में प्रार्थना करने के अतिरिक्त शेष समय श्री आचार्य जी मौन रहे। इस यज्ञ के अतिरिक्त तीन बार और - प्रातः ६ बजे विद्यालय के ब्रह्मचारियों के अध्यापकों से आध घण्टा तक, दोपहर महाविद्यालय के ब्रह्मचारियों से पौन घण्टा तक तथा रात को महाविद्यालय के उपाध्याय महोदयों से आध घण्टा तक—एवं तीन बार जो कुछ आवश्यक भाषण किया उसके अतिरिक्त उनका मौन रहा। अपने इन भाषणों को आन्तरिक बना सकने के लिए ही उनका वह मौन था। प्रातः के यज्ञ के उपरान्त ८। बजे आध घण्टे तक इन्होंने जो नववर्षारम्भ का गुरुकुल के लिए प्रार्थना की वह 'गुरुकुल' के पाठकों के लिए नीचे दी जाती है। —सम्पादक]

भगवन्! आज नए सत्र का, नए वर्ष का हम प्रारम्भ करने लगे हैं, गुरुकुल आज एक नए वर्ष में प्रविष्ट हो रहा है, गुरुकुल ही क्या, यह भारत देश बल्कि सारा संसार नए सौर संवत् में पदार्पण कर रहा है। प्रथम वैशाख न केवल सौर संवत्सर का किन्तु इस चालू युग का प्रारम्भ दिवस माना जाता है। फिर से आये इस शुभ अवसर पर हम, हे भगवन्! तुम्हारी शरण चाहते हैं, भक्ति भाव से तुम्हारे चरणों में पड़ते हैं। इस नए वर्ष में पैर रखने के लिए तुम्हारे आशीष मांगते हैं। जैसे नित्य प्रातःकाल जागने पर हम अपने को तरोताजा अनुभव करते हैं, नयी स्फूर्ति और नया जीवन पाते हैं और इस प्रकार नए दिन का उत्साह से प्रारम्भ करते हैं वैसे ही, हे कालदेव! हम इस दिव्य दिन में, नए संवत्सर में, नए उत्साह, नए जीवन, नए प्रकाश के साथ प्रवेश करें। इसके लिए यह गुरुकुल, यह समस्त गुरुकुल—नवप्रविष्ट हुए अबोध बालक (जिन्हें कि पता भी नहीं है कि गुरुकुल क्या होता है) से लेकर बड़े से बड़े पण्डित ज्ञानी कहलाने वाले (जो गुरुकुल शिक्षा-प्रणाली का व्याख्यान कर सकते हैं) गुरुओं तक सब के सब—तुम्हारे चरणों में उपस्थित हैं, तुम्हारे अर्पण हैं। गुरुकुल का छोटे से छोटा सा अवयव, इसका प्रत्येक अङ्ग, इसका प्रत्येक पुर्जा इसका जड़ और चेतन प्रत्येक भाग—तुम्हारे समर्पित है। यह सब तुम्हारा है और तुम हमारे हो। इसी सम्बन्ध में इस हवन की अग्नि को प्रदीप्त करके, वेद मन्त्र द्वारा तुम्हारी स्तुति उपासना करके तुमसे चाहते हैं कि तुम गुरुकुल के उच्च आदर्श रूपी अग्नि को इसी तरह आगामी वर्ष में बढ़ाते जाओ जैसी कि यह यज्ञ वेदी की पवित्र अग्नि हमारी घृत की आहुतियां पाकर समिद्ध होती गयी है। बिना आहुति डाले अग्नि प्रदीप्त नहीं होती, बिना आत्म बलिदान किए आदर्श की तरफ अग्रगति कायम नहीं रह सकती। अनादि काल से यही होता आया है कि जब जब ऋषियों, महात्माओं को आगे बढ़ना कठिन होगया, मार्ग में भारी बाधायें उपस्थित हो गईं तब तब वे यज्ञ करके या भारी आत्म-बलिदान करके ही तुम्हारा नाम लेते हुए उन रुकावटों को दूर करते रहे हैं। तो आज हम भी अपने ध्येय की तरफ बढ़ने के लिए आत्मबलिदान कर सकने की, स्वार्थत्याग कर सकने की शक्ति तुमसे मांगते हैं। हम इस कुल में प्राचीन महान् गुरुओं का आदर्श सामने रखें, यहां सच्चा आन्तरिक गुरु शिष्य सम्बन्ध स्थापित हो, यहां ब्रह्मचर्य का प्रबल पुनीत वायुमण्डल बन हो तथा यह स्थान दुनियां के लिए वैदिक (भारतीय) संस्कृति का केन्द्र बन जाए—इस आदर्श की तरफ आने के लिए जिस किसी आत्मबलिदान या स्वार्थत्याग की जरूरत हो उसे करने का एक सङ्कल्प रखते हुए हम तुमसे नए वर्ष के मंगलमय होने की प्रार्थना करते हैं।

हे प्रभो! तुम्हारी इच्छा के बिना, तुम्हारी करुणा और दया के बिना जगत् का तुच्छ से तुच्छ कार्य भी सिद्ध नहीं हो सकता। इसलिए हम तुम्हारा ही स्मरण करते हैं—तुम्हारे बिना किसी भी दूसरे का, अन्य वस्तु या अन्य शक्ति का भरोसा नहीं करते हैं। यह ठीक कि तुम्हारे इस अनादि अनन्तकाल में (जिसमें कि हमारी अजर-अमर जीवात्मायें असंख्य जन्मों में विहार

करती रही है और करती रहेगी) इस आने वाले नए एक वर्ष की क्या सत्ता है और तुम्हारे अनन्तों ब्रह्माण्डों में जिनके कि तुम संचालक और प्रभु हो यह एक हमारा भूलोक और उसमें यह भारत देश और उसमें भी यह गुरुकुल कितनी तुच्छातितुच्छ वस्तु है। तो इस तुच्छ प्रार्थना का स्वीकार करना तुम्हारे लिए क्या कठिन है? तुम्हारे लिए यह गुरुकुल (इसका आदर्श) और यह नया वर्ष चाहे कितना तुच्छ हो, पर हमारे लिए तो यही सब कुछ है। तुम्हारे सब ब्रह्माण्डों के चालक, सर्व कालव्यापी महान् स्वरूप को हम क्या जानें? उस अगम में हमारी कैसे गति हो, अतः हम तो तुम्हें भी 'उस दिव्य शक्ति के रूप में ही पहिचानते हैं जिसने गुरुकुल का विचार लोगों के मस्तिष्कों में दिया है और जो ही अकेला गुरुकुल के उस आदर्श तक हम गुरुकुल उपासकों को ले जा सकती है। हम तो तुम्हें भी उस ऊंचाई से उतार कर गुरुकुल को चलाने वाली उस दिव्य शक्ति के रूप में ही उपासते हैं जिसे कि हम बहुत बार अपने गानों में 'गुरुकुल माता' के नाम से पुकारते हैं। वह गुरुकुल माता जो कि आज इस जमाने में जबकि प्राचीन गुरु-पद्धति केवल मज़ाक उड़ाने की चीज़ रह गई है 'गुरुकुल' इस जादू भरे नाम से लोगों को आकृष्ट और संगठित कर रही है, वह गुरुकुल माता जो कि इस ज़माने में जबकि भाई भाई और पिता पुत्र में भी सिवाय पैसों के या अन्य भौतिक स्वार्थों के अन्य किसी सम्बन्ध में विश्वास नहीं रखता उस ज़माने में भी 'गुरु शिष्य सम्बन्ध' का मधुर नाद कानों में गुञ्जा रही है, वह गुरुकुल माता जोकि इस जमाने में जबकि भोगविलास ही जीवन का ध्येय है और जीवन के प्रारम्भ से अन्त तक इसी के साधन जुटाने में मनुष्य मस्त रहता है उस जमाने में ब्रह्मचर्य का झण्डा लिए खड़ी है, उसी गुरुकुल माता के रूप में हम तुझको पहिचानते हैं। तू वह शक्ति है जो भारत में भारतीय संस्कृति का पुनरुज्जीवन कर रही है। इसी रूप में हम तुझे भारत जननी भी कहते हैं और इस जगत् का तू जिस विशाल शक्ति के साथ विशाल क्षेत्र में इसी रहो संस्कृत हुई सभ्यता के लिए जगत् को तैय्यार कर पुनः है उस रूप में तुझे ही हम जगत्-जननी नाम से भी पुकारते हैं। इसलिए हे मातः! हे शक्ति! हम तो तुम्हें अपनी दृष्टि से ही देखते हैं और कहते हैं कि हमारे लिए गुरुकुल ही तू है। तेरे लिए हमारी मांग चाहे कितनी तुच्छ हो पर हम जिस स्थूल परिमित जगत् में रहते हैं वहां तो हमारा यह कार्य हमें बड़ा ही कठिन लगता है। इसलिए हम याचना करते हैं कि हम हमारे कठिन ध्येय में सफलता प्रदान करो—नये-वर्ष को इस दृष्टि से मंगलमय करो।

जैसे कि कमल सूर्य के उदय होने पर खिल जाता है, वैसे ही इस नये वर्ष के प्रभात में यह गुरुकुल तुम्हारा स्पर्श अनुभव करके आज खिल रहा है, खुल रहा है। बिना खुले हम तुम्हारी शक्तिसंचार को अपने में कैसे प्राप्त कर सकते हैं, अतः यह गुरुकुल आज प्रत्येक अङ्ग अवयव में तुम्हारे सामने खुला रखा है, बिलकुल खुल कर तुम्हारे लिए अर्पित है, तुम कृपा करो इसे अपनी कृपा करुणा का पात्र बनाओ, इसे पूरी तरह अपनाओ, इसे अपने दिव्य प्रकाश, ज्ञान और शक्ति से भर दो।

मेरी यह प्रार्थना सुनी जायेगी कि नहीं यह तो भविष्य बतायेगा। पर हे करुणानिधान! इसमें शक नहीं है कि यह मेरी प्रार्थना सच्ची और आन्तरिक है, जहां तक मैं अपने को जान सकता हूं यह मेरी प्रार्थना सच्ची और हार्दिक है। और सच्ची प्रार्थना तेरे दरबार में कभी निष्फल नहीं जा सकती है। फिर भी यदि यह जल्दी ही—कुछ महीनों या वर्ष भर में—सुनी न गई तो यही समझूंगा कि हमारे अर्पण में कुछ कमी है, अभी गुरुकुल पूरी तरह तुम्हारे अर्पित नहीं हुआ है या सब अङ्गों में पूरी तरह तुम्हारे प्रति खुला नहीं है। हमारा यत्न जारी रहेगा। इसमें ज़रा भी शक, कभी भी शंका नहीं है कि चाहे कुछ देर भी लगे पर गुरुकुल की प्रार्थना—अपने आदर्श की प्राप्ति के लिए वेग से अग्रसर होने की प्रार्थना—स्वीकृत ही होनी है। यह तुम्हारा काम तुमने ही पूरा करना है।

मुझे ऐसा विचार रखने में बड़ा सुख मिलता है कि १ वैशाख के दिन गत वर्ष मेरा नया जन्म हुआ था, और आज मैं तेरे एक बालक की तरह दूसरे वर्ष में प्रविष्ट हो रहा हूँ—पर अब आज 'मैं' और 'मेरा' कहना मुझे पसन्द नहीं है। गुरुकुल के साथ एकात्मता करके मैं अपने 'अहं भाव' को इस नए प्रकार से खो देने के लिए आज उपस्थित हूं। आज से मैं जो कुछ करूंगा वह गुरुकुल के लिए है। गुरुकुल माता और भारत माता के द्वारा, हे जगज्जननि! तेरे लिए है। नित्य प्रातः की जाने वाली मेरी प्रार्थना का निम्नश्लोक अब इसी अर्थ में मुझसे बोला जायेगा।

''प्रातः प्रभृति सायान्तं सायाद्या प्रातरेव च।
यत्करोमि जगन्मातःतस्तदेव तव पूजनम् ॥"

इस समय मैं जो यह मुँह से मौखिक प्रार्थना कर रहा हूँ यह तो केवल उस प्रार्थना का प्रारम्भ है जो कि वर्ष भर अपने सब कर्मों द्वारा तेरा पूजन करते हुए निरन्तर चलेगी। इस समय से गुरुकुल की ही मुख्यतः सेवा में अपना सब शारीरिक, मानसिक, आत्मिक, प्रयत्न करूंगा और चौबीसों घण्टों के अपने मन वाक काय के कर्मों द्वारा तेरा पूजन करूंगा—इस तरह तेरी प्रार्थना उपासना क्रिया रूप से सतत करता रहूँगा।

इसलिए अन्त में एक बार फिर अपने को गुरुकुल में एक करके प्रार्थना करता हूं कि यह नया वर्ष शुभ हो और तेरे पूजन के लिए की जाने वाली मेरी यह गुरुकुल सेवा सफल हो तेरे आशीर्वाद से सम्यकृतया सिद्धिप्रदायिनी हो।

———

बन्दी से—

बन्दी ! तेरे दृग मतवाले !

[१]

उन रक्षा पुरुषों ने आकर
बांध लिये थे जब तेरे कर;
झूल रही थी तेरे अधरों
पर ऊषा मृदु झूला डाले !

बन्दी ! तेरे दृग मतवाले !

[२]

तेरी आंखों में हाला थी ?
या प्रलयङ्कारी ज्वाला थी ?
दोनों थीं , थे दो— प्रेमी
औ, शासक उन्हे देखने वाले !

बन्दी ! तेरे दृग मतवाले !

[३]

तू चला विश्व का भार लिये,
दृग तेरे मेरे चार हुए,
क्या हुआ और क्या नहीं हुआ,
क्या जानें वे शासक मदवाले !

बन्दी ! तेरे दृग मतवाले !

—श्री सत्यभूषण 'योगी'

कोयल

'श्री आनन्द'

सघन पादपों के झुरमुट में, एक आम्र का वृक्ष विशाल,
छिपा छिपा सा खड़ा हुआ है, लटकाये विषाद से भाल:
उसकी डाल डाल आपस में, मानों दिये हुए गल बांह,
बरसों से करती आती है, वसुन्धरा पर ठण्डी छांह।
उसी आम्र पर, रोज नियम से, एक कोकिला आती है,
नियत समय से नियत समय तक, कुछ गाना गा जाती है;
मैं बैठा ताका करता हूँ उस कोयल का श्यामल वर्ण,
और सुना करता हूँ उसकी मधुर रागिणी हो उत्कर्ण।
कह न सकूँगा, कौन हेतु है छिपा हुआ उस गाने मे,
तथा नित्यप्रति उसी वृक्ष पर, उस कोयल के आने में;
पर कितना सकरुण लगता है, वह पंछी का कोमल गान,
इतनी करुणा! इस नन्हीं सी चिड़िया में!! है दयानिधान!
कोयल लहराने लगती है, मेरा दिल हिल उठता है,
जाने किस अखण्ड रोदन के रव में रव मिल उठता है;
हम दोनों के हृदय कदाचित् जुड़े हुए हैं तारों से,
भरे हुए हैं किन्हीं अविस्फुट दर्द भरी झनकारों से।

ताज

' श्री सूर्य कुमार '

तुम ताज प्रेम की प्रकटित पुण्य कहानी,
मुमताज महल की मृदिता तुम्हीं निशानी,
सुख साज आज तुम उन्नत भाल उठाये,
किस राज देवि की करते हो अगवानी।

(२)

शुभ स्नेह मार्ग पर चले हुवे दो राही,
दोनों ने तुझ में अमित शान्ति है पाई,
अञ्जलि लेकर यह स्नेह सलिल की पगली,
कालिन्दी भी चल चरण चूमने आई॥

टांगानीका (अफ्रीका)

[श्री ज्ञानी]

आज योरोप में युद्ध के काले बादल छा रहे हैं और उनकी गहरी छाया यहां पूर्व अफ्रीका में दिखाई देती है। और उसका विशेष कारण "टांगा नीका" प्रदेश के लिये हर हिटलर की मांग है। सन् १९१४-१८ के युद्ध के समय तक यह प्रदेश जर्मन साम्राज्य के अन्तर्गत था। परन्तु युद्ध में हारने के कारण "लीग-आफ-नेशन्स" की ओर से यह प्रदेश अंग्रेज़ों के सिपुर्द हुआ। तब से अंग्रेज़ों का यहां राज है। एक ब्रिटिश गवर्नर यहां नियुक्त है जिसके नीचे २३ मैम्बर हैं १३ सरकारी और १० गैर सरकारी। इनमें तीन भारतीय भी हैं। यहां चुनाव का सिस्टम नहीं है।

टांगा नीका प्रदेश का क्षेत्रफल ३,६०,००० वर्ग मील है। जिसमें २०,००० वर्ग मील पानी है। इसके पूर्वीय किनारे पर ५०० मील की लम्बाई में भारत-महा-सागर है। पश्चिम में न्यासा और टांगा नीका दो झीलें हैं। उत्तर में विशाल विक्टोरिया झील है। और दक्षिण में पोर्चुगीज़ पूर्व अफ्रीका है।

इसकी आबादी में २५,००० भारतीय, ६,००० अरब, ४,००० जर्मन, ५,००० अन्य योरोपीय और ५१ लाख अफ्रीकन हैं। सन् १९३७ के जो आंकड़े मिलते हैं उनके अनुसार उस वर्ष में केवल ४०६ जर्मन यहां नये आबाद हुए हैं।

पैदावार के लिहाज़ से सीसल (Sisal), रूई और काफ़ी की अधिकता है। खनिजों में सोना, अभ्रक, टीन आदि निकलते हैं। परन्तु बहुत परिमित मात्रा में। जर्मन-सैटलर प्रायः खेती करते हैं। उसमें भी कुछ अधिक ज़मीन उनके पास नहीं। क्यों कि लगभग बीस लाख एकड़ ज़मीन जो यहां आबाद की गई है उसमें केवल ४ लाख के करीब जर्मन लोगों के पास है। शेष अंग्रेज़ों, भारतीयों डचों आदि की है।

धर्म के लिहाज़ से टांगा नीका में ३ लाख मुसलमान, ६ लाख ईसाई और शेष अन्य हैं। यहां लगभग २१ ईसाई

[शेष पृष्ठ ५ पर]

गुरुकुल

२३ वैशाख शुक्रवार १९९६

उन्नति के पथ-पर गुरुकुल

[गुरुकुल वार्षिकोत्सव पर कुल पति श्री आचार्य रामदेव जी ने गुरुकुल सम्मेलन के सभापति की हैसियत से निम्नाशय का भाषण दिया—सम्पादक]

गुरुकुल का विचार एक बाल ब्रह्मचारी के मस्तिष्क में पैदा हुआ, तथा उसको कार्य रूप एक संन्यासी के हाथों द्वारा दिया गया। गुरुकुल की स्थापना के मूल में चार विचार कार्य कर रहे थे।

ब्रह्मचर्य, धर्म, सांप्रदायिकता का विनाश तथा राष्ट्रीयता। चारों में ही यह परीक्षण सफल हुआ। आज कैसे गर्व तथा हर्ष का विषय है कि जिस नन्हें से बच्चे को इस कुल माता ने अपनी मीठी लोरियों और थपकियों से पाल कर 'देवशर्मा' के रूप में जनता जनार्दन के चरणों में अर्पित किया था वह आज अपने बालब्रह्मचर्य के अखण्ड तेज से प्रदीप्त होते हुये, स्वामी अभयदेवजी के नाम से इसके आचार्य पद का सुशोभित कर रहे हैं मुझे याद है स्वामी श्रद्धानन्दजी ने अपने पत्र में उनकी बड़ाई करते हुये लिखा था कि 'धन्य है वह गुरु जिसके शिष्यों के जीवन से गुरु भी शिक्षा ले सके हैं मुझे ऐसा ही शिष्य 'देवशर्मा' के रूप में प्राप्त हुआ है।" यह हैं उनके अपने शब्द। निःसन्देह धन्य है यह कुल जहां की शिक्षा ने भारत को एक ऐसा संन्यासी वरदान रूप प्रदान किया है।

यह तो एक ही बात हुई। परन्तु यहां एक ही नहीं और भी देखते चलिये। स्वामी व्रतानन्दजी जो चित्तोड़ में बड़ी सफलता पूर्वक अपना गुरुकुल चला रहे हैं। ये एक ऐसे संन्यासी हैं जिनकी टक्कर के स्वामी भारत में बहुत ही कम मिलेंगे। आर्यसमाज को भी गुरुकुल का गर्व है। पं० बुद्धदेव जैसे आदर्श चरित्रवान् मिशनरी विद्वान जिस संस्था ने पैदा किये हैं उस संस्था पर किसे गर्व न होगा। पं० प्रियव्रत जैसे वेद के विद्वान् आर्य के सफल सम्पादक के अगाढ़ पाण्डित्य से कौन अपरिचित होगा। आर्य संसार में उनके जैसे मधुर तथा धारा-प्रवाह लैक्चरार कम ही होंगे। पण्डित धर्मदेव वेदवाचस्पति बैंगलोर वाले जिन्होंने हजारों ईसाइयों को आर्यसमाजी बनाया, उनकी विद्वत्ता तथा अखण्ड कार्य क्षमता का कौन कायल न होगा। 'केशवदेव ज्ञानी' जो मद्रास आर्यसमाज को कई वर्षों से चला रहे हैं तथा अभी हाल ही अपने प्रचार कार्य के सम्बन्ध में ही जो अफ्रिका जाकर आये हैं। जिनका सुन्दर सारपूर्ण भाषण आप लोग अभी सुन चुके हैं क्या गर्व करने लायक वस्तु नहीं हैं। कहां तक गिनायें—पं० धर्मवीर जी जो श्रद्धानन्द फण्ड में काम कर रहे हैं,—पण्डित विश्वनाथ जी वेद के रिसर्च के सम्बन्ध में जिनका नाम पर्याप्त प्रसिद्ध हो चुका है—पण्डित जयदेव जी—जो चारों वेदों का आर्ष प्रणाली से भाष्य कर बहुत प्रसिद्धि प्राप्त कर चुके हैं—यह सब भी पर्याप्त मात्रा में गर्व किये जाने के लायक हैं। तथा कुल को इन पर सच्चे अर्थों में अभिमान करना भी चाहिये।

अब दूसरी बात है सांप्रदायिता का अन्त। यह बात भी गुरुकुल में प्रारम्भ से ही इस सस्था में मौजूद रही है। यह हिन्दुओं की पहली संस्था है जिस में भंगियों तथा चमारों तक के लड़के भी बराबरी के व्यवहार के साथ शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। डाक्टर 'जाकर हुसैन' हमारे यहां आये। इस प्लेटफार्म से दीक्षान्त के समय नवस्नातकों को आशीर्वादादि भी दिये। डाक्टर 'यंग' सेण्ट-स्टीफन्स कोलेज दिल्ली के प्रिंसपल एक बार हमारे यहां आये। दयानन्द ऋषि उत्सव के प्रधान बनाये गए उनसे कुछ बोलने के लिये कहा गया, उन्होंने उत्तर दिया मैं क्या बोलूं—मैं तो ईसाई हूं। मैंने कहा कि अवश्य बोलिये। आप कोई गैर नहीं, हम में से ही एक हैं। इस पर वह बोले। और उन्होंने कहा कि यहां पर मैं धार्मिक उदारता को देख कर बहुत प्रभावित हुवा हूं।

जामा मिलिया दिल्ली के लड़के अपने प्रिंसिपल के साथ यहां आये भोजन के समय उन्होंने हमसे कहा कि हम भोजन कहां करें। मैंने उत्तर दिया लड़के लड़कों के साथ भोजन करेंगे तथा आप हमारे साथ। इस बात को सुन कर वे इतने प्रभावित हुये तथा कहने लगे कि—मुझे आज ही पता चला है हिन्दुओं में भी 'आर्य समाज नाम से एक ऐसी सस्था है जिस में सांप्रदायिक भावना मिट गई है। हमें यहां आकर हार्दिक आनन्द प्राप्त हुआ है।" और भी 'रैमज़ मैकडानल्ड' यहां आये। उसके बाद योरुप जा कर उन्होंने एक किताब लिखी जिस में उन्होंने लिखा "गुरुकुल मैकाले के पाश्चात्य शिक्षाप्रणाली के खिलाफ एक जबरदस्त प्रोटेस्ट है। इस लिये आर्य लोग सरकार के बागी भी हैं। पर ऐसी बगावत को मैं पसन्द करता हूं।" गुरुकुल पहिला विश्वविद्यालय है जहां हिन्दी को माध्यम बनाया गया। यहां 'कलकत्ता यूनिवर्सिटी परिषद्' आयी। डाक्टर 'आशुतोष मुकर्जी' ने यहां कहा था—

"केवल यहां आकर ही हमने कुछ सीखा है। और कमीशन की सिफारिश पर गुरुकुल का भारी प्रभाव है। कमीशन के प्रधान डा० 'सैडलर' ने मुझे पत्र लिखा और बताया कि कमीशन की सिफारिशों का फैसला हो गया है कि हिन्दी शिक्षा का माध्यम हो सकती है। श्री निवास शास्त्री यहां आये उन्होंने कहा—"मैं नहीं मानता था कि हिन्दी भी शिक्षा का माध्यम हो सकती है। पर अब ब्रह्मचारियों की डिबेट सुन कर समझता हूं कि हिन्दी सिर्फ माध्यम हो सकती है इतना ही नहीं परन्तु अवश्यमेव हिन्दी ही शिक्षा का माध्यम होनी चाहिये। सरदार बल्लभ भाई पटेल और काका साहेब कालेलकर इसी पण्डाल में दीक्षान्त भाषण के पश्चात् कहते हैं—

"प्राचीन शिक्षा प्रणाली के उद्धार का विचार ऋषि दयानन्द के मन में सब से प्रथम पैदा हुआ तथा क्रियात्मक रूप स्वामी श्रद्धानन्द ने दिया। इस लिये महात्मा गांधी को राष्ट्रीय शिक्षा का प्रथम प्रचारक कहना भूल है।"

उन्होंने इस बात को हजारों की संख्या के सामने कहा। कहानियां आपने बहुत सुन रखी हैं। एक आप बीती भी सुन लीजिये।

मिस्टर कुक ज्वाइन्ट मजिस्ट्रेट रुड़की, दो लारियां पुलिस की भर कर आये कि हम गुरुकुल से राष्ट्रीय झंडा उतार फेंकेंगे। इसे अराष्ट्रीय संस्था घोषित कर देंगे" उनका पिता मेरा मित्र था। मैंने उनसे कहा 'भाई देखो यह ब्रह्मचारी वही करते हैं जो मेरी आज्ञा होती है। तुम भी मेरे मित्र के पुत्र हो इस लिये तुम्हें भी मेरी आज्ञा माननी चाहिये। यह राष्ट्रीय झंडा मत उतारो"। वे वापिस लौट गये।

इस प्रकार और भी कई बार इसे Unlawful करने का प्रयत्न किया गया था। पर असफल हुआ। फिर आज तो यह साक्षात् राष्ट्रीय सरकार द्वारा आदर की दृष्टि से देखी जा रही है। इसके दो दो प्रधान मन्त्री उत्साह के साथ हमारे उत्सव में भाग ले रहे हैं।

आज कल गुरुकुल की डिग्रियों को सरकारी मान लिया जाय इस विषय में भी बहुत चर्चा है। अन्त में मैं आप से क्या कहूं।

परन्तु मेरी राय में तो हमें इस सम्बन्ध में पर्वाह न करनी चाहिये। हमारी संस्था राष्ट्रीय है। हमारा काम राष्ट्र की राष्ट्रीयता को सुदृढ़ बनाना है। डिग्रियां सरकारी हों या न हों इस से हमारे लक्ष्य में कुछ फर्क नहीं आयेगा। हमें सरकार को इतना आश्रित कर अपनी मनोवृत्ति बिगाड़नी न चाहिये। सरकार की मर्जी स्वीकृत करे या न करे। हमें इस विषय में मौन रहना चाहिये। आज सुबेरे स्वामी सत्यानन्द जी ने मेरे लिये कहा कि इन्होंने गुरुकुल बनाने में अपना जीवन लगा दिया है। पर सच तो यह कि मैंने गुरुकुल को नहीं बनाया गुरुकुल ने मुझे बनाया। मैंने अपनी सब सन्तानें गुरुकुल। को अर्पित कर दीं। मेरा एक पुत्र पहिले ही स्नातक बन चुका तथा एक आप लोगों के आशीर्वाद के साथ आज प्रातः ही स्नातक बना है। मेरी दो पुत्रियों को छोड़ जो कि कन्या गुरुकुल खुलने के समय Over-age हो चुकी थीं बाकी सब गुरुकुल में ही पढ़ी हैं।

आज भी मुझे हार्दिक दुःख है कि शारीरिक अस्वस्थता के कारण मैं स्वयं आज खड़ा नहीं हो सका। इस रोग के असुर ने मेरी वाणी पर हमला किया हुआ है। परन्तु मैं फिर भी बाज आने वाला नहीं। मेरे इन पुत्र और पुत्रियों जो देवों के रूप में मुझे प्राप्त हुए हैं। उनके मुख से मैं अपने विचार अवश्य ही आप तक पहुंचाता रहूँगा। अन्त में मेरी यही हार्दिक मङ्गल कामना है कि यह गुरुकुल दिनों दिन फूलता फलता चले क्षण प्रतिक्षण इसकी श्रीवृद्धि हो। संसार में दुःखियों के घावों को भरने के लिये यहां के स्नातक मरहम का काम दें। अंधकार को विच्छिन्न करने के लिये एक दिव्य प्रकाश स्तम्भ तथा संसार में निर्भीक होकर आगे बढ़ते हुये अपनी सभ्यता और संस्कृति को अनन्त काल तक अक्षुण्ण बनाये रखें।

(पृष्ठ ३ का शेष)

मिशन कार्य कर रहे हैं। उनका प्रचार-क्षेत्र अफ्रीकन लोगों में ही है। इसी प्रकार अरब और ईजिप्ट के मुसलमानों का भी इधर काफी प्रभाव है। यद्यपि आर्यसमाज को यहां आये चौथाई सदी हो गई परन्तु अभी तक वो एक भी अफ्रीकन को आर्य न बना सके। ठीक है कि ब्रिटिश-गवर्नमैण्ट इन नेटिव लोगों में धर्म-प्रचार नहीं करने देना चाहती। फिर भी यह दशा आर्य-समाज की प्रतिष्ठा के सर्वथा विपरीत है।

× × × ×

यह लेख हम टांगानीका की राजधानी दार-सलाम में बैठ कर लिख रहे हैं। यहां का बन्दरगाह स्वाभाविक और सुरक्षित है। किनारे २ सरकारी इमारतें बनी हैं। सड़कें चौड़ी और सुन्दर हैं। व्यापारियों ने खूब कमाया है। हिन्दुओं के दो मन्दिर हैं। आगाखानियों का एक स्कूल है। आर्य समाज की पुत्री पाठशाला है। इसमें लगभग ३०० के कन्याएँ हैं। समाज का भी अपना आलीशान मकान है। व्यायाम शाला और पुस्तकालय भी है। समुद्र के किनारे प्रायः प्रति दिन प्रातः काल सैकड़ों बाल, युवा और वृद्ध स्नानार्थ जाते हैं। शाम को आराम करने के लिये सरकार की ओर से घासी मैदान बनाए गये हैं। अच्छी चहल पहल रहती है।

हम जहां २ इस प्रदेश में गये वहां २ यही प्रश्न था कि टांगानीका का क्या होगा? भारतीय व्यापारियों की दृष्टि में तो इतनी चिन्ता की बात नहीं। परन्तु खोजा लोगों के ख़याल से यह विकट समस्या है। क्यों कि उनके धर्म गुरु हिज़ हाइनेस आगाखान और जर्मन नेता हर हिटलर के ताल्लुकात बहुत तने हुए हैं। यदि जर्मन राज्य इधर आया तो खोजा लोगों से टांगानीका में वही व्यवहार होगा जो जर्मनी में यहूदियों से हुआ। इसलिए खोजा-कौम में आतंक छा रहा है। यही कारण है कि आगाखान साहिब म० गांधी की सहायता चाहते हैं। खोजा लोगों की जायदाद यहां करोड़ों में होगी।

परिस्थितियाँ भी विषम हो रही हैं। अबीसीनिया में इटली की फौजें मौजूद हैं। पश्चिमीय अफ्रीका और टांगानीका पर जर्मनी का दावा है क्यों कि योरोपीय महायुद्ध से पूर्व ये इलाके उसी के थे। इस प्रकार दो शत्रुओं के बीच में फंस कर अंग्रेज़ कहीं अपने अफ्रीका के राज्य को न गंवा बैठें। अफ्रीका विशाल प्रदेश है। इसमें सोने और हीरे की खानें हैं। रुई सीसल और काफी की बहुतायत है। चरागाह के लिये तो हजारों मील जंगल खाली पड़े हैं। पशुओं की भी प्रचुरता है। और ज़मीन नाम मात्र की कीमत से मिलती है। यहां आकर बसने वाले चाहियें। इस लिए बढ़ती हुई जर्मन और इटालियन प्रजा के विस्तार का यहां सुवर्ण अवसर है। फिर अफ्रीकन कौम को युद्ध शिक्षा देकर आसानी से तोपों का खाद (Cannon fodder) बनाया जा सकता है। इसके अतिरिक्त जर्मनी को अपने तैयार माल के लिये यहां

विशाल मार्केट मिल जायगी। और साथ ही कच्चे माल की नई भूमियाँ।

अब देखना यही है कि ऊँट कि करवट बैठता है। अंग्रेज़ लोग बातें तो बड़ी २ बनाते हैं। सम्मेलन भी बड़े२ करते हैं। परन्तु परिणाम कुछ नहीं निकलता। शायद अंग्रेज़ों के भी पतन के दिन समीप आ गये हैं। उनका सूर्य भी अस्त होना चाहता है।

टांगा नीका में भी भारतीयों को कुछ कष्ट हैं। उन्हें व्यापार आदि की पूरी सुविधायें नहीं। उनके साथ व्यवहार में भी प्रायः अपमान किया जाता है। अफ्रीकनों को भारतीयों के विरुद्ध उकसाकर वायु मण्डल को विषाक्त बनाया जाता है। परन्तु अब इसका रोना क्या? जब भारत में ही भारतीयों को पद्दलित किया जाता हो तो विदेशों में और क्या आशा हो सकती है। अब तो केवल यही उपाय है कि भारतीय संगठित होकर कांग्रेस के एक छत्र के नीचे आकर, योरपीय-युद्ध के छिड़ते ही पूर्ण असहयोग के अस्त्र से देश में संपूर्ण-क्रांति का वायु-मण्डल पैदा कर दें। तभी दासता की जंजीरों से मुक्त होने की आशा हो सकती है। और तभी भारत पूर्ण स्वतंत्र हो सकता है।

आर्य वानप्रस्थाश्रम ज्वालापुर

की

प्रशस्त—आयोजना

गत वर्ष हरिद्वार कुम्भ के शुभ अवसर पर आर्य वानप्रस्थाश्रम ज्वालापुर की कार्यकर्तृ सभा ने श्री पूज्य महात्मा नारायण स्वामी जी महाराज प्रधान की पवित्र अध्यक्षता में आर्यनगर की स्थापना की आयोजना की थी। उसी समय वानप्रस्थाश्रम में सम्पूर्ण चारों वेदों द्वारा किये गये यज्ञ की पूर्ण आहुति के पश्चात् ओ३म् की पताका पूज्य म० नारायण स्वामी जी के कर कमलों से बड़े समारोह के साथ लहराई गई थी। (२) आर्यजनता का यह जान कर बड़ी प्रसन्नता होगी कि अब इस आर्य नगर की भूमि में एक कूप श्रीमती शिवदेवी जी धर्मपत्नी स्वर्गीय महाशय गुरदास राय जी बैरिष्टर मरी निवासी तथा माता श्रीमती डा० शकुन्तला देवी जी M.B.B.S म्युनिसिपल कमिश्नर रावलपिण्डी के प्रशस्त दान से निर्माण किया जा रहा है। सौभाग्य से इसका जल अति उत्तम और मीठा निकला है। और यह कूप मई के शुरु सप्ताह में तैय्यार हो जायेगा। तत्पश्चात् मकानात बनने आरम्भ हो जायेंगे। (३) धर्मप्रेमियों को यह जान कर के भी बड़ी खुशी होगी कि इस आश्रम के एक दानशील वानप्रस्थी ने जिन्होंने पहिले श्रीपाद दामोदर सातवलेकर जी को २०००) का दान धर्मभाव से दिया है ताकि ऋग्वेद का शुद्ध मुद्रण हो और वेद प्रेमियों को अति सस्ता दिया जा सके, अब उन्होंने यह शिव संकल्प कर लिया है कि आर्य नगर के पास बहती हुई नहर तट पर एक स्नानघाट बनवा देंगे। जिससे वानप्रस्थाश्रम और आर्यनगर निवासियों के देवियों और पुरुषों के लिए सेवाकारी हो।

(४) आर्यनगर भूमि कनखल रोड पर वानप्रस्थाश्रम के अति समीप है। यहां का जलवायु अति उत्तम है। इस आश्रम में नित्य सत्संग में वेद कथा होती रहती है। इसके अतिरिक्त एक वाचनालय भी है जिसमें दैनिक समाचार आया करते हैं। अब इस आश्रम में एक हस्पताल भी श्री डा० लालचन्द्र जी उपप्रधान की अध्यक्षता में खोला गया है। जिससे वहां की जनता व आश्रम निवासी लाभ उठा रहे हैं। आस पास गुरुकुल कांगड़ी महाविद्यालय ज्वालापुर आदि आर्य संस्थायें हैं। अतः यहां का शान्त वायु मण्डल होने के कारण जो आर्य भाई बहिनें एकान्त में ईश्वर भजन सत्संग आत्मचिन्तन में समय व्यतीत करने के इच्छुक हैं या जो वायु परिवर्तन के लिए बाहर जाया करते हैं अथवा कुछ एकान्त जीवन बिताने की इच्छा रखने वाले हैं या जो गुरुकुल उत्सव आदि अवसरों पर हरिद्वार आते रहते हैं इन सबके लिए इस आर्यनगर में अपना मकान बनाना अति उत्तम और उपयोगी है।

(५) प्रत्येक प्लाट (३६×५०) का है जिसका मूल्य २००) है। खरीदार और उनके मालिकों को मकान के बेचने का भी पूरा अधिकार होगा। केवल बेचते समय सभा की आज्ञा लेनी होगी ताकि कोई भाई किसी धर्म विरोधी अथवा दुराचारी को अपना मकान न बेच सके। यह नाम मात्र अधिकार सभा ने केवल शान्तिमय वायुमण्डल को सुरक्षित रखने की भावना से रक्खा है। खरीदार को एक वर्ष के अन्दर अथवा सभा की स्वीकृति से अधिक से अधिक तीन वर्ष के अन्दर अपने मकान को बनवा लेना चाहिये। आज तक आर्य जनता ६५ प्लाट रिजर्व करा चुकी है। आर्यजनता ने इस आयोजना को सहर्ष स्वागत करते हुए सभा को उत्साहित किया है। इसलिए सभा ने २०० प्लाटों के प्रबन्ध करने का निश्चय कर लिया है।

(६) चन्द खरीदारों ने मेरे सन्मुख यह प्रस्ताव रक्खा है कि सभा की स्वीकृति के अतिरिक्त खरीदारों को भूमि की रजिस्ट्री करा देना उचित है। उनके इस प्रस्ताव में मेरे सहयोगी ने भी पूर्ति की है। इसके अतिरिक्त आर्यसमाचार पत्रों में ऋषि दयानन्द के भक्तों ने यह आन्दोलन भी किया है। और मेरे पास बहुत पत्र भी आये हैं कि इस आर्यनगर का नाम 'दयानन्दपुरी' रक्खा जाये। इसलिए मैं उन भाइयों और खरीदारों की सभा में निवेदन करता हूँ कि मैं यह दोनों प्रस्ताव श्री पूज्य महात्मा नारायण स्वामी जी महाराज प्रधान की सेवा में उनकी हैदराबाद जेल यात्रा की समाप्ति पर रखूंगा और उस पर विचार किया जायेगा।

(७) आर्य जनता को सूचनार्थ निवेदन है कि आर्य नगर ज्वालापुर स्टेशन के सामने है। हरिद्वार स्टेशन से १॥ मील, हरिद्वार शहरसे २॥ मील, कनखल से १: मील, ज्वालापुर से १ मील की लगभग दूरी पर है। सब्जी

फल आदि आने जाने के वास्ते सवारी रास्ते में होने के कारण हर समय प्राप्ति होती रहती है। आर्य नगर की भूमि स्वच्छ सुथरी बिना किसी गड्ढे के है। प्लाटों के तीन तरफ खुली सड़कें हैं।

(८) चूंकि आर्य वानप्रस्थाश्रम में ऐसे २०० प्लाटों का प्रबन्ध किया जा रहा है इसलिए यहां और दो कूप बनवा देने की आवश्यकता रहेगी। इसलिए दानी महानुभावों के लिए यह शुभ अवसर है कि वह इस पवित्र तपोभूमि में अपनी पुण्य स्मृति में कूप बनवा कर सौभाग्य प्राप्त कर सकेंगे। इसके अतिरिक्त अधिकारिणी देवियों के लिए एक महिला आश्रम भी बनवा देने का विचार है। जहां एक कुटी २५०) की लागत से तैय्यार हो सकती है। आशा है कि दानी महानुभाव इस तरफ ध्यान देंगे।

(९) आर्य नगर में मकान बनाने के इच्छुक आर्य जनता मेरे साथ पत्र व्यवहार करें और मुझसे नियमावली तथा नकशा ।) का टिकट भेज कर मंगवा सकते हैं।

भवदीय

सुन्दरदास आर्य वानप्रस्थी,

मंत्री आर्य नगर विरक्त आर्य आश्रम,

पो० ज्वालापुर जि० (सहारनपुर)

गुरुकुल समाचार

गत सप्ताह विद्यानन्द १२वीं श्रेणी विषम ज्वर, जयदेव ११ वीं श्रेणी चोट से पीड़ित थे। अब सब स्वस्थ हैं।

इन दिनों गुरुकुल में ऋतु की विषमता अपना प्रभाव दिखा रही है। दिन में हृदय को व्याकुल कर देने वाली भीषण गर्मी पड़ती है और रात्रि के अन्तिम प्रहर में शरीर को सिकुड़ा देने वाली दो कम्बलों की अच्छी खासी सर्दी। ऋतु की इस विषमता का प्रभाव ब्रह्मचारियों के स्वास्थ्य पर भी पड़ा है और कुछ एक को श्लेष्म ज्वर की शिकायत हुई है। फिर भी आस पास के इलाकों की अपेक्षा यहां का स्वास्थ्य पूर्ण संतोष जनक है।

अधिकारी श्रेणी तथा बाइटन-कप टूर्नामेण्ट में खेलने गए हुए गुरुओं के लौट आने पर आज कल हौकी और बौली बौल सम्मुख बड़े उत्साह के साथ हो रहे हैं। लगभग १ मास के बाद नहरों में पंचपुरी नवगियों का सम्मुख होगा। जिसके लिये ब्रह्मचारियों पर्याप्त उत्साह है। नहर में स्नान करने तथा २-३ मील से तैर कर आने का शौक बढ़ता जा रहा है। ब्रह्मचारियों के स्वास्थ्य के लिये यह गङ्गा-स्नान अत्यन्त लाभदायक सिद्ध हो रहा है।

बाइटन-कप टूर्नामेन्ट—पिछले दिनों गुरुकुल का हाकी का 'अ' दल कलकत्ते में होने वाले 'बाइटन-कप-टूर्नामेन्ट' में भाग लेने के लिए गया और बी० एन० आर० की लोक विश्रुत-टीम (जिसने अब फाइनल में बौम्बे-कस्टम को १ गोल से हरा कर, बाइटन-कप जीता है) से एक गोल से पराजित होकर वापस लौट आया। यद्यपि गुरुकुल का यह दल हार गया किन्तु कलकत्ता, मद्रास, पटना आदि के राष्ट्रीय और गैरराष्ट्रीय सभी पत्रों ने गुरुकुल दल के खेल की मुक्त-कण्ठ से प्रशंसा की है। इस टूर्नामेण्ट के लिये ब्रह्मचारियों की खद्दर की वेश भूषा भी एक निराली एवं आकर्षक वस्तु थी। 'गुरुकुल दल' का डिफेन्स मजबूत था। सन् १९३६ की ओलम्पिक टीम के ३ खिलाड़ियों ने इस टीम में खेल कर सम्मिलित रूप से हमारे गोल पर अनेक आक्रमण किये किन्तु हमारे डिफेन्स को न डिगा सके। गुरुकुल दल के फारवर्ड भी अच्छे थे किन्तु खेल में उचित तारतम्य (Combination) न बन सकने के कारण वे गेन्द को हस्तगत करने में पूरी तरह समर्थन न हुए। फिर भी खेल बहुत अच्छा हुई और अधिक समय तक गुरुकुल दल ने बी० एन० आर० को दबाये रक्खा। इस हार से गुरुकुल दल निरुत्साहित नहीं हुआ है अपितु इसके विपरीत आगामी वर्ष इस टूर्नामेण्ट को जीत लेने के लिए सब का उत्साह द्विगुणित हो गया है।

गोष्ठी सभा—विगत शनिवार को गोष्ठी सभा का पाक्षिक अधिवेशन बड़ी संजीदगी के साथ महाविद्यालय आश्रम की छत पर किया गया। अनेक गल्पकों और कवियों ने अपनी मधुर कृतियाँ सुनाकर साहित्य-रसिकों को आह्लादित किया। अन्त में सभापति श्री प्रो० वागीश्वरजी ने सब की रचनाओं पर गम्भीर एवं उपयोगी समालोचना करते हुए कहा कि हमारी कविता की धारा एक ही ओर को नहीं जानी चाहिए बल्कि इसका क्षेत्र विस्तृत होना चाहिये। इसमें सब तरह के रसों और भावों का समावेश होना चाहिये।

गुरुकुल कमालिया

१. सब ब्रह्मचारी आनन्द प्रसन्न हैं। मौसम बहुत सुहावना हो रहा है। वाटिका फल फूल रही है। ब्रह्मचारी नए वृक्ष लगा रहे हैं। इस वर्ष लगभग ३ किला ज़मीन में गन्दम बोई गई थी। फसल अच्छी है।

२. आठ ब्रह्मचारियों का वेदारम्भ संस्कार १६ चैत्र १९९५ को कराया गया था। बहुत से संरक्षकों की चिट्ठियां आई थीं कि वह इस तिथि पर न पहुंच सकेंगे, ईस्टर की छुट्टियों में ब्रह्मचारियों को लेकर आयेंगे इसलिए उन सज्जनों के लिए १५ एप्रिल की तिथि को संस्कार कराया गया।

३. कमेटी ने अपनी मीटिंग १६-१२-९५ में निश्चय किया है कि यदि कोई संरक्षक अपने दो ब्रह्मचारी इकट्ठे एक समय में गुरुकुल में प्रवेश करें तो उन दोनों का मासिक शुल्क बजाये २०) रु० के १८) रु० और यदि कुछ समय पश्चात् या उसी समय वही सज्जन अपना तीसरा ब्रह्मचारी प्रवेश करा देवें तो मासिक शुल्क बजाये ३०) के २५) लिए जाया करें।

४. कमेटी ने यह भी निश्चय किया है कि श्री आचार्य गुरुकुल कांगड़ी से उनका अपना पहलवान एक दो मास के लिए लेकर ब्रह्मचारियों को कुश्ती, गतका, लाठी आदि खेलें सिखला दी जावें। —मुख्याधिष्ठाता

चौधरी दुलाराराय के प्रबन्ध से गुरुकुल प्रेस गुरुकुल कांगड़ी में मुद्रित तथा प्रकाशित।

* ओ३म् *

"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत" Reg. No. A. 2927

गुरुकुल

सम्पादक—साहित्यरत्न पं० हरिवंश वेदालङ्कार

एक प्रति का मूल्य -) [गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख-पत्र] वार्षिक मूल्य २॥)

वर्ष ४] गुरुकुल काङ्गड़ी, शुक्रवार ३० वैशाख १९९६; १२ मई १९३९ [संख्या २

हैदराबाद में हमारी धार्मिक लड़ाई तथा उसमें अन्यों की सहायता

[ले० श्री आचार्य अभय देव जी]

यह ठीक है कि धार्मिक पुरुष को सिवाय परमेश्वर के अन्य किसी की भी सहायता पर भरोसा नहीं करना चाहिये। पर सच्ची सहायता उसे जहां से भी मिलती हो उसे उसको नम्रता पूर्वक, परमेश्वर से आयी सहायता समझकर धन्यवाद पूर्वक स्वीकार भी करना चाहिये, अभिमान के साथ उसे अनंगीकृत नहीं करना चाहिये यह भी ठीक है।

अतः हमारी इस हैदराबाद की लड़ाई में किसकी तरफ से मिली और कैसी सहायता सच्ची सहायता है, सचमुच सहायता पहुँचाने वाली है उस पर कुछ विचार कर लेना लाभ- दायक दीखता है।

कांग्रेस से सहायता लेने के बारे में मैं एक गतलेख में लिख चुका हूँ। कांग्रेस एक राजनैतिक संस्था है, अतः धार्मिक संस्थाओं जैसा घनिष्ट या विपरीत सम्बन्ध हमारा उससे नहीं हो सकता, किन्तु उदासीनता का सा सम्बन्ध ही हो सकता है। इसीलिये हम देखते हैं कि आर्यसमाज में जहां ऐसे आर्यसमाजी भी काफी हैं जो नफरत के साथ कहते हैं कि "कांग्रेस से हमारा क्या सम्बन्ध? हम तो ऋषि दयानन्द से प्रकाश लेते हैं, गांधी की पूछ बनना हम नहीं चाहते हैं। जो लोग ऐसे हैं या जो इस आर्य सत्याग्रह के बारे में कांग्रेसी नेताओं से सलाह करते फिरते हैं वे आर्यसमाज को तबाह कर रहे हैं" तो दूसरी तरफ (सेठ के भाई शिवदयालु जी की तरह के) ऐसे आर्यसमाजी भी हैं जो कांग्रेस से इस लिये नाराज़ हैं कि कांग्रेस उनकी इस मामले में खुलकर अच्छी तरह सहायता क्यों नहीं करती या गान्धी जी राजकोट, जयपुर आदि के सत्याग्रहों की तरह इस हमारे सत्याग्रह को भी क्यों नहीं अपनाते। सही या गलत ऐसे दोनों प्रकार के आर्यसमाजी आर्यसमाज में हैं। एक वे जो राजनैतिक आन्दोलन से बिलकुल अस्पृष्ट रहे हैं और दूसरे वे जो राजनैतिक लड़ाई में पूरी तरह से भाग लेते रहे हैं। उन दोनों प्रकार के आर्यसमाजियों की जो दो विरोधी प्रकार की प्रतिक्रियायें कांग्रेस पर हो रही हैं उसके कारण से भी कांग्रेस का कांग्रेस के तौर पर हमारे इस सत्याग्रह के प्रति उदासीन होना स्वाभाविक प्रतीत होता है। पर असल में ये दोनों ही वृत्तियें विकार युक्त हैं। न तो हमें कांग्रेस से नफ़रत करनी चाहिये तथा नफ़रत के कारण यह भाव रखना चाहिये कि कांग्रेस की मदद हमें किसी हालत में लेनी ही नहीं है, और न ही हमें कांग्रेस के प्रति क्रुद्ध होना चाहिये कि वह हमें सब तरह की सहायता नहीं देती तथा उससे यह आशा लगानी चाहिये कि वह हमें जैसा हम चाहते हैं वैसा सहयोग देती हो। ठीक, उचित वृत्ति यह है, धार्मिक भावना का तकाज़ा यह है कि हम अपने ही बल पर—अपनी धार्मिक शक्ति पर—अपने प्रभु पर ही एक मात्र भरोसा रखकर यह लड़ाई लड़ते चलें, फिर यदि कांग्रेस या कोई अन्य संस्था दिल से हमारी सहायता करना चाहे तो (यदि वह सहायता सचमुच हमारे धार्मिक युद्ध में सहायता हो तो) उसे उस अंश तक जहां तक वह वस्तुतः सहायक हो हम स्वीकार करें, परमेश्वर से आई सहायता मानकर हम स्वीकार करें, अभिमान वश उसे यों ही ठुकरा न दें।

जो बात कांग्रेस से मिल सकने वाली सहायता के विषय में कही है वही बात सिद्धान्ततः अन्य सहायताओं के विषय में भी ठीक है। भेद इतना है कि कांग्रेस की सहायता एक राजनैतिक संस्था की सहायता है पर हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख, ईसाई आदि से मिलने वाली सहायता धर्म, सम्प्रदाय वालों की सहायता है। हमारे सत्याग्रह में राजनैतिक संस्थाओं की अपेक्षा धार्मिक संस्थायें ही वास्तविक रूप में सहायक हो सकती हैं और उनमें भी मुसलमान-धर्म-सम्प्रदाय वाले यदि सहायता करना चाहें तो उनकी सहायता सब से अधिक कीमती है। मैं तो यहां तक कहूंगा कि यदि हमारा सत्याग्रह सच्चा सत्याग्रह है तो उसकी सफलता की कसौटी यह होगी कि बहुत से मुसलमान भाई हमारे सत्याग्रह को उचित समझें और उसे अपनावें। साधारणतया तो यही ठीक है कि आर्य समाज के सत्याग्रह में जेल

आदि का कष्ट सहने वाले आर्य समाजी ही होने चाहियें पर यदि दूसरे लोग भी जेल जाने को तैयार हों और हम उनकी सहायता लेना स्वीकार करें तो सबसे पहले मुसलमान भाइयों को ऐसी सहायता देने का अवसर होना चाहिये। उसके बाद ईसाई सिक्ख या हिन्दुओं का अवसर होना चाहिये। इसका कारण स्पष्ट है। यदि हमारा यह धार्मिक स्वतन्त्रता प्राप्त करने की लड़ाई किसी हिन्दु रियासत में—जैसे धौलपुर में— चल रही हो तो बेशक वहां हिन्दुओं का हमारे साथ होना सबसे अधिक आवश्यक और सत्याग्रही दृष्टि से मूल्यवान होता। इस लड़ाई में तो हिंदू-सभा का हमारे साथ होना केवल इस भाव को ही बढ़ाने में मददगार होता है कि यह हमारा लड़ाई मुसलमानों के विरुद्ध है अर्थात साम्प्रदायिक है। जैसा कि अबतक हो रहा दीखता है, हिन्दू महासभा का इस तरह से हमारी लड़ाई में 'साथ देना' हमारी लड़ाई की धार्मिकता को और हमारे सच्चे बलिदान को भी धक्का पहुँचा रहा है। इसलिये यदि हम सचमुच सत्याग्रह करना चाहें अर्थात् विशुद्ध आत्म बलिदान द्वारा विरोधी का हृदय बदलना चाहें—न कि ज्यादह से ज्यादह लोगों द्वारा जेल भरने का या उसे दूसरी तरह परेशान करने का आसुरी दबाव डालना चाहें—तो हमें इस बात में विवेक करना चाहिये कि हमारा धर्म-साम्प्रदायिक लोगों से सहायता लेने का क्रम मुसलमान, ईसाई, सिक्ख और हिन्दू होना चाहिये या हिन्दू, सिक्ख, ईसाई, मुसलमान होना चाहिये।

यह स्पष्ट है कि हमें अपनी शक्ति हिन्दुओं को हैदराबाद के जुल्मों के विरुद्ध भड़काने की अपेक्षा जहां तक संभव हो मुसलमान भाइयों में इस विषयक चर्चा करने में, उनको सही बात समझाने में और उन्हें कायल करने में लगानी चाहिये, इस प्रकार मुसलमानों की तरफ से जो थोड़ी सी भी सहायता आती है या आयेगी, वह दिव्य होगी। उसमें मुझे ईश्वरीय सहायता स्पष्ट दिखाई देती है। जोश में भड़के हुए हिन्दुओं की तरफ से आई हुई सहायता में मुझे ऐसी कोई चीज नहीं दिखाई देती। यह एक ऐसी बात है जिसकी तरफ मेरी समझ में बहुत अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है। मुझे यह देखकर बहुत दुख होता है कि गांव वाले मामूली लोग हिन्दू और मुसलमान दोनों ही—मैंने गाव से आने वाले दो एक हिन्दुओं और मुसलमानों से इस विषय में बात करके देखा है—इस हैदराबाद की लड़ाई को हिन्दू-मुसलमानों की लड़ाई ही समझते हैं। यह अच्छा चिह्न नहीं है।

सारांश यह है कि कांग्रेस जैसी राजनैतिक संस्था से तो हमें किसी सक्रिय नहीं किन्तु केवल नैतिक सहायता की आशा करनी चाहिये और साधारणतया कष्ट-सहन का कार्य आर्यसमाजियों को ही और उसमें भी विशेषतः रियासती आर्य समाजियों को करना चाहिये। अन्य धर्म सम्प्रदाय वालों की कई प्रकार के प्रदर्शनों द्वारा सहानुभूति की सहायता ही साधारणतया स्वीकार करनी चाहिये, पर यदि सक्रिय कष्ट सहने में तथा अन्य सक्रिय कार्य में दूसरे धर्म सम्प्रदाय वालों की सहायता को स्वीकार किया जाय तो उसमें हिन्दू, सिक्ख आदि की अपेक्षा मुसलमानों से अपना अधिक घनिष्ठ सम्बन्ध जोड़ कर प्राप्त की गयी सहायता को ही अधिक महत्व देना चाहिये।

निरहङ्कारता और व्यावहारिक जीवन

[लेखक—श्री पं० ब्रह्मानन्द जी]

हम लोग समझते हैं कि बिना अहङ्कार के प्रवृत्ति हो ही नहीं सकती। यह ठीक है, पर जब हम अहङ्कार का परित्याग करते हैं तब वह अज्ञान रूप में प्रवृत्ति का कारण होता है। जब वह पूर्णतया अज्ञान हो जाता है तब प्रवृत्ति का वेग बहुत बढ़ जाता है। इस प्रकार विचारने से यह विदित होता है कि अहङ्कार तो प्राकृतिक प्रवृत्तियों में कारण होने के बदले और रुकावट डालता है। उसका जितना ही अभाव होता है उतना ही प्रवृत्ति निष्प्रतिबन्ध हो जाती है। पर क्या वह अज्ञानरूप में कारण नहीं रहता? जब वह अज्ञानरूप में रहता है तब 'नहीं' के समान हो जाता है। यद्यपि ऐसा आभास होता है कि निरहङ्कारता तो जड़ता का पर्यायवाची शब्द है, पर वस्तुतः निरहङ्कारता पूर्ण चेतनता है। कैसे? इस तरह कि अहङ्कार होने पर हमारी चेतनता संकुचित-क्षेत्र में सीमित रहती है पर निरहङ्कारता जैसे २ बढ़ती है वैसे २ हमारा वेदन अधिकाधिक व्यापकता को प्राप्त करती है। यह कैसे? यह इस तरह कि अहङ्कार किसी व्यक्ति तथा सीमा बद्ध पदार्थ में होता है, अतः वह हमारी वेदना को सीमित करता है, निरहङ्कारता होने पर हमारी वेदना के प्रतिबन्ध का कोई कारण नहीं रहता, अतः वह सर्वव्यापिनी हो जाती है। किन्तु क्या हम पूर्ण निरहङ्कार हो सकते हैं? अहङ्कार के अभाव में यह प्रश्न ही नहीं हो सकता। यह प्रश्न अहङ्कार का का सूचक है। निरहङ्कारता तो अपनी पराकाष्ठा की प्राप्ति के लिए सतत, शान्त अनन्त मौन प्रयत्न के लिए प्रेरित करती है।

हमारा प्रयत्न ही हमारे कार्य में रुकावट है। हमारे प्रयत्न की दिशा निष्प्रयत्न होने की ओर होनी चाहिये। जितना ही अधिक हम निष्प्रयत्न होंगे उतना ही हमें सफलता होगी। तो क्या हम अकर्मण्यता का अभ्यास करें? क्या प्रमाद, आलस्य, निद्रा को निमन्त्रण दें? नहीं, अकर्मण्यता तमोगुण से भी प्राप्त होती है और सत्वगुण से भी, किन्तु सत्वजनित अकर्मण्यता में बाह्य क्रियाओं की कमी हो जाती है और ज्ञानमय कर्म, जो कि वास्तविक कर्म है, की वृद्धि हो जाती है। अतः इस सात्विक अकर्मण्यता, जिसके अन्दर अप्रत्यक्ष रूप से उच्चकोटि की ज्ञानमयी कर्मनिष्ठता निहित है, की प्राप्ति प्रमाद आदि तामसी प्रवृत्तियों के अभ्यास से कदापि नहीं हो सकती। तमोगुण में तो बाह्य कर्मण्यता, का भी सामर्थ्य नहीं रहता, तब बाह्य कर्मों की अपेक्षा इस

[शेष पृष्ठ ९ पर]

अंगारे

(ले० श्री सत्यभूषण 'योगी' वेदालंकार)

समझो मत हमको ठंडे; हम दहक रहे अंगारे हैं;
भूल जायँगे बढ़े चढ़े जो गर्व गुमान तुम्हारे हैं;
आई ऊपर राख, और ही असली रूप हमारे हैं।
समझो मत हमको ठंडे, हम दहक रहे अंगारे हैं!

(२)

जल जल कर ही प्रतिपल हमने स्वयं, जलाना है सीखा;
पर न किसीको भी बेमतलब कभी सताना है सीखा,
मानवता को हमने केवल सुख पहुँचाना है सीखा।
जल जल कर ही प्रतिपल हमने स्वयं, जलाना है सीखा!

(३)

सच है हम चुपचाप पड़े रहते, न किसी को कुछ कहते,
पर न कभीभी हम अपना अपमान तनिक भी हैं सहते
जो हम पर आकर पड़ता है वह मरता है दहते दहते!
सच है हम चुपचाप पड़े रहते, न किसी को कुछ कहते!

(४)

हम करते कभी तनिकभी सपनेमें भी कुछ अभिमान नहीं,
क्योंकि किसीका भी दुनिया में इष्ट हमें अपमान नहीं;
किन्तु न इससे समझो अपनी हमें शक्ति का ज्ञान नहीं!
हम करते कभी तनिक भी सपने में भी कुछ अभिमान नहीं!

(५)

हमीं शंभु की आंखो में थे जिनसे मन्मथ राखहुआ,
बाणों में थे हमीं राम के जिनसे दशमुख खाक हुआ!
हमें छेड़ने वालों को रख सकती कोई भी न दुआ!
हमीं शंभु की आंखों में थे जिन से मन्मथ राख हुआ!

(६)

दुःशासन ने नहीं छुआ था पांचाली के आंचल को,
उसने छेड़ा था उस रोज हमारे ही क्रोधी दल को?
हमें आज छेड़कर कोई देख कभी पाया कल को?
दुःशासन ने नहीं छुआ था पांचाली के आंचल को!

(७)

वीर प्रताप शिवाजी का हमने ही रक्त उबाला था,
झांसी की रानी ने पिया हमारा जलता प्याला था,
लाल हमारी ही ज्वाला पर भगतसिंह मतवाला था!
वीर प्रताप शिवाजी का हमने ही रक्त उबाला था!

(८)

हमही गांधी की चेतनता, जिसमें मैल विकार नहीं;
जिसे बुझा सकता है मिलकर भी सारा संसार नहीं;
जो असत्य के मल कूड़ को दहक दहक कर क्षार रही!
हम ही गांधी की चेतनता जिसमें मैल विकार नहीं!

(९)

देशभक्त, जो सीली कोठरियों में बन्द सड़ा करते;
ठंडी ठंडी रातों में जो नंगे ही ठिठुरा करते;
हमही उनके देहों में तब गर्मी ताप भरा करते
देशभक्त जो सीली कोठरियों में बन्द सड़ा करते!

१०.

सूने मरघट में निशिदिन हम बैठे गाया करते हैं;
उच्च नीच सबके स्वागत को हाथ बढ़ाया करते हैं!
सबको अगले जीवन का संदेश सुनाया करते हैं!
सूने मरघट में निशिदिन हम बैठे गाया करते हैं।

११

रजनी में वे आसमान में कितने अंगारे जलते!
वाष्प उन्हीं के सलिलबिन्दु बन रोज धरा पर हैं ढलते!
'रहो धधकते प्रतिपल' वे संदेश यही देते रहते!
रजनी में वे आसमान में कितने अंगारे जलते!

१२.

लाल लाल प्रातः पूरब में जलता अंगारा आता!
स्नेह दृगों से हमें देखकर नीरव कुछ कहता जाता—
तुम्हीं प्रतीक मेरे धरती पर तुम्हें देख मैं हरषाता!
लाल लाल प्रातः पूरब में जलता अंगारा आता!

१३

हटो शराबी, क्यों आए हो लेकर हाथों में प्याला?
लाल लाल तुम हमें देखकर समझे हो मादक हाला?
दूर हटाओ, धधक रही है भीषण प्रलयङ्कर ज्वाला!
हटो शराबी, क्यों आए हो लेकर हाथों में प्याला?

१४

फिर न कभी उठने पाओगे, ऐसी नींद सुला देंगे!
शर्म घोलकर पिया हुआ हम यह सब नशा भुला देंगे!
अरे, राख भी नहीं बचेगी यों हम तुम्हें जला देंगे!
फिर न कभी उठने पाओगे ऐसी नींद सुला देंगे!

१५

हां एक हमारी चिनगारी से बड़े बड़े वे राख महल!
महल, अरे क्या सब त्रिभुवन में छा जाए वह घोर अनल!
शीत समुन्दर में भी लग जाए वह भारी बडवानल!
हां एक हमारी चिनगारी से बड़े बड़े वे राख महल!

१६

ढका राख से हमें देख कर तुमने हाथ उठाया है!
समझो तुमने स्वयं मौत का दरवाजा खटकाया!!
अब न तुम्हारी खैर, धधकती लखो हमारी काया है!
ढका राख से हमें देख कर तुमने हाथ उठाया है!

१७

कहीं न ऐसा वैसा हमको, भाई, कभी समझ रखना!
जो कहते हैं वह करते हैं, सीखा न कभी झूठा बनना!
हम यों ही नहीं जला करते, कुछ मतलब रखता है जलना!
कहीं न ऐसा वैसा हमको, भाई, कभी समझ रखना!

१८

सचमुच कितने बेवकूफ तुम, हमें पकड़ना चाह रहे!
तुम नाचीज हमारे आगे आज अकड़ना चाह रहे!
तिनके पत्ते अंगारों से आज अकड़ना चाह रहे।
सचमुच कितने बेवकूफ तुम, हमें पकड़ना चाह रहे!

१९

नहीं फूल हम, जो कि हमें चुपचाप उठाने पाओगे!
हम गुलाब-से सुन्दर हैं, पर नहीं चुराने पाओगे!
बस दूर रहो, हम सच कहते, तुम तड़प तड़प भुन जाओगे!
नहीं फूल हम, जो कि हमें चुपचाप उठाने पाओगे!

२०

नहीं हमारी लपटों से परवानो, बचने पाओगे!
आए अपनी इच्छा से पर नहीं लौटने पाओगे!
आदत से लाचार अरे, हम, अब तो जल ही जाओगे!
नहीं हमारी लपटों से परवानो, बचने पाओगे!

गु रु कु ल

३० वैशाख शुक्रवार १९९६

यूरोप का ज्वालामुखी—

पिछले कुछ ही समय में जर्मनी ने संसार की राजनीति में अपना एक महत्वपूर्ण स्थान बना लिया है। पिछले महायुद्ध के बाद विजयी मित्र राष्ट्रों ने जर्मनी को पंगु-शक्तिशून्य बनाने में कोई कसर न छोड़ी थी। उस समय यह समझा जाता था कि शक्तिशाली जर्मन-साम्राज्य सदा के लिए अस्त हो गया। जर्मन राष्ट्र को छिन्न भिन्न कर टुकड़े २ कर दिए गए थे, उपनिवेश भी तीन तेरह हो गए थे और अपमानजनक आर्थिक मांग को जर्मनी के सिर पर ज़बरदस्ती लादा गया था। जर्मनी कुछ समय के लिए यूरोपीय राजनीति से बिलकुल बाहर कर दिया गया। किन्तु सन् १९३९ का जर्मनी शक्तिशाली जर्मन राष्ट्र के रूप में सन्नद्ध है। आज के बृहत्तर जर्मनी में आस्ट्रिया, बोहेमिया, मोरेविया, स्लोवेकिया तथा मेमलैण्ड के प्रदेश सम्मिलित हैं। जर्मनी की सैनिक, राजनैतिक क्षमता आज बहुत ज्यादह है। यूरोप का कोई भी फैसला बिना जर्मनी के रुख को जाने हुए करना आज टेढ़ी खीर है। जर्मनी के इस अभ्युदय में एक मात्र कर्तृत्व यदि किसी एक व्यक्ति का कहा जा सकता है तो वह व्यक्ति है हर हिटलर।

शक्तिशाली जर्मन राष्ट्र की बहुत सी समस्याएं हैं जिन्हें हल किए बिना इसकी सुख समृद्धि की आशा करना वृथा है। जर्मनी की मुख्य समस्याएँ आर्थिक हैं। बृहत्तर जर्मनी के ८ करोड़ निवासियों के लिए रोटी एवं अन्न की समस्या है। बढ़ती हुई जर्मन आबादी के लिए सीमित साधनों के द्वारा इस समस्या को हल करना असम्भव है। जर्मनी को अपने से बाहर इस समस्या का उत्तर देखना होगा। महायुद्ध में छिने हुए उपनिवेशों पर भी जर्मनी की इसीलिए नज़र जाती है। जर्मन-वासियों में अफ्रीका के उपनिवेशों में बसने की न तो कोई उत्सुकता ही है और ना ही शिल्प तथा व्यापार में लगी जर्मन जाति को वहां बसने के लिए अवकाश ही है। जर्मनी उपनिवेशों को राजनैतिक तथा सैनिक महत्व की दृष्टि से लेना चाहता है।

जर्मनी अपनी बढ़ती आबादी को संतुष्ट करने का यत्न किस प्रकार करे इस समस्या का हल उसने यूक्रेन के धन धान्य से भरे प्रदेश तथा रुमानिया के खनिज धनों के द्वारा पूर्ण करने का निश्चय किया है। जर्मनी इस प्रकार आर्थिक समस्या को हल करने के लिए पूर्व में बढ़ना चाहता है।

यह यूक्रेन प्रदेश स्लाव भाषा को बोलने वाला शताब्दियों से परतन्त्र राष्ट्र है। इस समय यह रूस, पोलैण्ड तथा रुमानिया में बंटा हुआ है। इसका कुछ हिस्सा जो पहले रुथानिया नाम से जेकोस्लोवाकिया में मिला हुआ था, कार्पेथो यूक्रेन नाम के एक प्रान्त के रूप में हंगरी को दे दिया गया है।

जर्मनी यदि अपने इस स्वप्न को चरितार्थ करले तो इससे जहां रूस, पोलैण्ड तथा रुमानिया को धक्का पहुंचेगा वहां इङ्गलैण्ड तथा फ्रांस की शक्तियों को भी भविष्य में आने वाली विपत्ति की आशङ्का हो सकती है। क्योंकि आगे उन्हीं की बारी आएगी।

इङ्गलैण्ड विश्व में फैले बड़े भारी साम्राज्य का स्वामी है। उसे नए युद्ध से कुछ मिलने की आशा नहीं है, कुछ खोने का ही डर ज्यादह है। इङ्गलैण्ड वर्तमान भूमि विभाजन में ही सन्तुष्ट है। नए युद्ध के खतरे से उसे जहां साम्राज्य का ख़तरा है वहां उसे पिछली कई शताब्दियों में एकत्रित पाश्चात्य संस्कृति सभ्यता के विनाश का भी ख़तरा है। यही ख़तरा जर्मनी को है। युद्ध के द्वारा जर्मनी को कुछ प्राप्त कर सकने में सन्देह है। इसलिए युद्ध के भय को दूर रख कर केवल गीदड़ भभकियों के द्वारा काम बनाने में ही उसे सफलता दृष्टिगोचर होती है। इसी मार्ग का अवलम्बन करते हुए बिना एक भी गोली छोड़े हिटलर ने बृहत्तर जर्मनी का वर्तमान स्वरूप दे दिया है।

इङ्गलेण्ड जर्मनी को जहां इस बात से घबराता है वहां वह साम्यवादी रूस को अपने साम्राज्यवाद के लिए ख़तरा समझता है। अगले दिनों का भविष्य इङ्गलैण्ड के इसी रुख पर आश्रित है कि वह रूस के साथ सन्धि कर डिक्टेटर शाही को खत्म करना चाहता है या यूरोप के बचे खुचे प्रजातन्त्रों का भी दूसरे म्यूनिच के द्वारा खात्मा। यूरोप के दहकते ज्वालामुखी के फूटने के बारे में कोई भविष्यवाणी करना कठिन है।

राष्ट्रीय महासभा को नई जिम्मेदारी:—

राष्ट्रीय महासभा के त्रिपुरी में हुए अधिवेशन से तथा श्रीयुत् सुभास बाबू के दुबारा राष्ट्रपति चुनने से जो भयानक संकट का काला बादल भारतीय राजनैतिक गगन में छा गया था, डाक्टर राजेन्द्रप्रसाद के कलकत्ता में राष्ट्रपति चुने जाने से समाप्त होगया है। सुना है कि सुभास बाबू राष्ट्रिय महा सभा के अन्दर एक प्रगतिगामी दल की योजना बना रहे हैं। विभिन्न कार्यक्रम और विचार वाले सम्प्रदायियों को प्रजातन्त्र के सिद्धान्त के झण्डे के नीचे इकट्ठा करना देखने में बहुत ही सुन्दर विचार लगता है। किन्तु क्रिया रूप में परिणत करना यह असम्भव सा लगता है। वर्तमान परिस्थितियों को देखते हुए बंग केसरी श्री सुभास बाबू का यह परम कर्त्तव्य हो जाता है कि भविष्य में आने वाले संकट के मुकाबले में राष्ट्रिय महासभा की बिखरी शक्तियों को मिलाने का यत्न करें। इसी में भारत का आशा भरा भविष्य है।

ज़ंज़ीबार का टापू

(श्री ज्ञानी)

दारेसलाम से ज़ंज़ीबार केवल ४० मील है। जहाज़ में तीन घण्टे लगते हैं। हम शाम को यहां पहुँचे थे। पश्चिम दिशा में सूर्य अपनी किरणें समेट कर कुछ सकुचाता हुआ, कुछ मुसकाता हुआ समुद्र के काले परदे के पीछे जा रहा था। सामने पूर्व दिशा में ज़ंज़ीबार का ६४० वर्ग मील का टापू खड़ा था। नारियल के असंख्य वृक्ष अपनी बाहें (शाखाएं) ऊपर उठाए यात्री को सप्रेम निमन्त्रण दे रहे थे।

आज से सदियों पहिले पहिले जब "मोटरशिप" या "स्टीमशिप" नहीं बनी थीं, पूर्व-उत्तरी हवा के सहारे अपने पालों का फैलाए सैंकड़ों ढाओ (किश्तियां) पर्शिया अरेबिया और ईजिप्ट के दिलेर व्यपारियों को उठाए इस टापू के किनारे आया करती थी। सन् १४९८ में वास्को-डा-गामा केप को पार कर के इधर आया था। और उसके बाद १५० वर्ष तक पोर्चुगीज लोगों का इस टापू पर राज्य रहा।

परन्तु अरब और फारस के मुसलमान बराबर हमले करते रहे और आखिर टापू मुसलमान बादशाहों के हाथ आया। इस सम्बन्ध में मस्कट के सैयद् सैद-बिन-सुलतान का नाम स्मरणीय है जिसने (१८०४ से १८५६) लगभग ५२ वर्षों तक राज्य किया और जिसके राज्य-काल में इस टापू ने विशेष उन्नति की।

कई लड़ाइयों और सन्धियों के बाद सन् १८९० में इस पर अंग्रेजों का कब्जा हुआ और तब से उन्हीं के आधीन है। सुलतान के वंशज यद्यपि अब भी यहां है और उनकी निशानियां—महलात और कब्रिस्तान आज भी बीती बातों की याद दिलाते हैं। परन्तु सुलतान के अधिकार नहीं। उसे सन्धि शर्तों के अनुसार १[illegible],००० पौण्ड सालना दिया जाता है। शासन कार्य के लिये एक ब्रिटिश-रैजीडैंट नियुक्त है। उसकी २ कौंसिलें हैं जो शासन में सहायता करती हैं।

सन् १९३१ की गणना के अनुसार ज़ंज़ीबार की मनुष्य संख्या लगभग २,५०,००० के है जिस में २ लाख अफ्रीकन, ३३ हजार अरब १५ हजार भारतीय, २५० अंग्रेज और शेष अन्य हैं।

ज़ंज़ीबार में बन्दर के किनारे आर्य समाज का आलीशान मन्दिर बना है। सदियों पहिले ठीक इसी जगह पर गुलामों की मण्डी थी। हजारों अफ्रीकन गुलाम बेड़ियों में कस कर यहीं से विदेशों में भेजे जाया करते थे। हमें जब इस स्थान पर खड़े होकर व्याख्यान देने के लिये कहा गया तो हठात् स्वामी दयानन्द के वचन याद आए। "मैं संसार को कैद से छुड़ाने आया हूं।"

ब्रिटिश—राज में टापू ने काफी उन्नति की है। सैंकड़ों मीलों की सुन्दर सड़कें बनी हैं। नई इमारतें और चौड़े बाजार। फिर भी पुरानी तंग गलियां अपने इतिहास का खुद बखान कर रही हैं। और उन गलियों में मकानों के नीचे वाले तहखाने दास-प्रथा के दीनचिन्ह हैं जिन्हें विदेशी यात्री बड़े उत्साह से देखते हैं और मुकाबले में अपनी पश्चिमी सभ्यता पर अभिमान का सुख-श्वास लेते हैं।

क्यों कि बन्दरगाह गहरा नहीं है इस लिये बड़े स्टीमर पांच-चार फर्लांग की दूरी पर लंगर डालते हैं। ज्यों ही हमारा जहाज़ (करांजा) ठहरा कि १५-२० अफ्रीकन अपनी २ किश्तियां खेते हुए आए और कपड़े उतार कर पानी में कूद पड़े। पानी लगभग १०० फीट गहरा होगा आप आने-दो आने पानी में फेंकिये और ये लोग समुद्र की सतह से उसे उठा लाएंगे। ये पानी में ऐसे ही तैरते और डुबकियां लगाते हैं मानों पानी के बाशिन्दे हों।

× × ×

१८ वीं सदी तक ज़ंज़ीबार गुलामों, नारियल और सीपियों आदि के लिये ही मशहूर था। परन्तु अब यहां लौंग का व्यपार अधिक है। संसार का लगभग ८० फी सदी लौंग यहीं पैदा होता है। प्रति वर्ष १० हज़ार टन लौंग यहां से संसार के प्रत्येक कोने में पहुंचता है। लौंग की बड़ी मण्डियां भारत (३,१०० टन), डच-ईस्टइण्डीज (४००० टन) और योरोप अमेरिका (२५०० टन) है। लौंग पान के साथ खाने, सिगरेट या तम्बाकू बनाने और शराब बनाने, दवाइयों के काम आता है। लौंग का इतिहास भी अजीबो गरीब है। इसके लिये अनेक लड़ाइयां हुईं। चोरियां-डकैतियां हुईं और अभी तक राजनैतिक चालें जारी हैं।

पाठकों को स्मरण होगा कि लगभग एक वर्ष पूर्व भारत में ज़ंज़ीबार के लौंगों के लिये कांग्रेस ने आवाज उठाई थी। उसका कारण यह था कि ब्रिटिश गवर्नमैण्ट ने लौंगों के व्यपार को हथियाने के लिये ५ ६ डिक्रियां निकाली थीं। जिन के अनुसार भारतीय व्यापारी इसे छोडने के लिये मजबूर थे। लगभग ३-४ वर्षों तक जद्दो जहद चलती रही। हजारों-लाखों मन लौंग ज़ंज़ीबार में में अटक गये। इधर भारत ने बायकाट किया। दाम टूटने लगे। अंग्रेजों ने मजबूर होकर डिक्रियां वापिस लीं भारतीयों के व्यपारिक अधिकार बहाल रहे। परन्तु इस अरसे में ज़ंज़ीबार गवर्नमैण्ट को काफी नुकसान न हुआ। न केवल माल ही बाहर न गया बल्कि मडगास्कर और मारीशस के व्यपारियों ने भारत की मण्डियों को हथिया लिया और एक बार व्यापार टूटने पर फिर उसे जमना काफी मुश्किल होता है।

अस्तु शाम हो गई है। लौंग के हजारों बोरे जहाज में लद चुके हैं। जहाज लङ्गर उठा रहा है। धीरे धीरे चलने लगा। अब किनारे की बिजली की बत्तियां समुद्री हवा के साथ कांप रही हैं। बन्दरगाह इतना ज़ाहिर (Open) है कि हमें भय होता है कि एक दिन ईटैलियन या जर्मन बैटलशिप (लड़ाई का जहाज) इधर आएगा और गोला-बारी करके आसानी से इस टापू पर अपना कब्जा कर लेगा। फिर दुनिया के नक्शे में इसका

लाल-रङ्ग न रहेगा। शायद इसी चिन्ता में सुदूर नारियल के वृक्षों पर भी विषाद की गहरी काली छाया दिखाई देती है।

[पृष्ठ २ का शेष]

अतिदुष्कर ज्ञानमय कर्म के लिए उसमें कैसे सामर्थ्य प्राप्त हो सकता है? समस्त ब्रह्माण्ड के कार्य के प्रति द्रष्टा, साक्षी और अनुमन्ता के रूप में महान् ज्ञानमय कर्म करने के लिए हम अपने क्षुद्र अहङ्कारजनित प्रयत्न का परित्याग कर रहे हैं, न कि अकर्मण्य बनने के लिए। कर्म तो अपने आप हो रहा है, हमारा अहङ्कार और प्रयत्न उसमें सहायक होने के बदले और रुकावट डाल रहा है। इसी अकर्मण्यता को दूर करने के लिए हमें अहङ्कार और अहङ्कारजनित प्रयत्न से रहित हो समस्त विश्व की प्रवृत्ति में अनुमन्ता, साक्षी के रूप में अपार कर्ममय जीवन बिताने के महान् लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए महान् प्रयत्न करना है। इसके लिए सांसारिक दृष्टि से प्रतीत होने वाली कर्मण्यता का, जो कि वस्तुतः कर्मण्यताभास अकर्मण्यता है, समस्त प्रवृत्तियों को विश्वेश्वरेच्छाजनित समझ उनसे अपने अहङ्कार को हटा कर परित्याग करना होगा। यह बड़ी आश्चर्यजनक बात है कि हमारा अहङ्कार और प्रयत्न कार्य में सहायक होने के बदले उसमें रुकावट है, अतः जिसे हम कर्मण्यता समझते हैं वह अकर्मण्यता है। इसीलिए गीता में कहा है कि—

"कर्मण्यकर्म यः पश्येदकर्मणि च कर्म यः।
सबुद्धिमान् मनुष्येषु, सयुक्तः कृत्स्नकर्मकृत्॥"

पर हम लोगों को निरहङ्कार स्थिति की प्राप्ति असम्भव प्रतीत होती है। इसका भी कारण ज्ञान का ही अभाव है।

यह सोचता हूं कि इतना बौद्धिक विचार मुझे क्रियात्मक जीवन में निरहङ्कार बनाने में कृतकार्य क्यों नहीं होता? यह एक बड़ा गम्भीर प्रश्न है। मेरी बुद्धि जिस बात को सत्य समझती है उसे मैं व्यावहारिक रूप में क्यों नहीं परिणत कर सकता? यह एक बड़ी विकट समस्या मुझे लगती है। पर वस्तुतः 'व्यावहारिक जीवन में यद्यपि मैं वैसा नहीं करता तथापि उसका मुझे बौद्धिक ज्ञान है', यह मान लेना ही भ्रमात्मक है। व्यावहारिक जीवन में अपने ज्ञान को लाने में असमर्थता इस बात का द्योतक है कि हमारे उस ज्ञान में ही अभी कमी है। यह समझ कर हम अपने जिस ज्ञान को व्यावहारिक जीवन में नहीं ला सकते, उस पर पुनः धीरतापूर्वक विचार करना चाहिये। और यह देखने का यत्न करना उचित है कि उस ज्ञान में क्या कमी है जिससे कि हम उसे व्यावहारिक जीवन में कार्यरूप में नहीं परिणत कर सकते। घबराने से काम नहीं चल सकता। जब २ हमारे मन्तव्यों का व्यावहारिक जीवन से असमन्वय दिखाई दे, तब २ बड़ी धीरता के साथ उस असमन्वय के कारणों का अनुसन्धान करना चाहिये। यह नहीं समझना चाहिये कि हमें यद्यपि यथार्थ ज्ञान प्राप्त हो गया है तथापि किसी अन्य कारण से हम उस ज्ञान का व्यावहारिक जीवन से समन्वय नहीं कर सकते। अपितु, वह असमन्वय हमारे ज्ञान की न्यूनता से प्रादुर्भूत है, ऐसा समझना चाहिये। इस प्रकार धैर्य पूर्वक प्रयत्न से हम अपने बौद्धिक विचारों और व्यावहारिक जीवन में असमन्वय को दूर कर सकते हैं।

बहुधा मुझे ऐसा अनुभव होता है कि मैं पहले अपने किसी कार्य में किसी बाह्य वस्तु को सहायक या विरोधी समझता था, पर पीछे विचारने पर ऐसा प्रतीत हुआ कि उस कार्य में सहायक या विरोधी मेरे अन्दर ही स्थित हैं। बाह्य वस्तु में किसी प्रकार का भी परिवर्तन न होने पर मैं अपने विचारों के कारण पहले जिसे अपने कार्य में बाधक समझता था, थोड़े से विचार परिवर्तन से वह वस्तु बाधक न रही। यह अनुभव हमें ऐसा निर्णय करने के लिए प्रेरित करता है कि जो कुछ भी मेरे लिए प्राप्तव्य है वह सब अन्दर ही है, बाहर कुछ भी प्राप्तव्य नहीं है, अतः अपनी अपनी अभिलषित वस्तु का अपने अन्दर ही अनुसन्धान करना चाहिये।

गुरुकुल महाविद्यालय वैद्यनाथधाम को हैदराबाद के लिये सहायता

गुरुकुल महाविद्यालय वैद्यनाथधाम में हैदराबाद सत्याग्रह के लिए सक्रिय सहयोग का पूर्ण प्रयत्न किया जा रहा है। यहाँ के निवासी अपना भाग प्रदान करने के लिए पूर्ण उद्यत हैं। ब्रह्मचारियों ने अपने दैनिक भोजन में घी छोड़ कर और जलपान बन्द करके आर्थिक सहायता देने का सराहनीय कार्य किया है। अध्यापक महानुभाव अपने वेतन का ३ प्रति शतक दान रूप में दे रहे हैं। सब लोगों का मिला कर लगभग ६०-७० रुपया हो जाता है जो मासिक रूप में जायेगा। इस मास के चालीस रुपये शोलापुर भेजे जा चुके हैं। यद्यपि गुरुकुल में पढ़ने वाले विद्यार्थी छोटी अवस्था के हैं तथापि वे आन्दोलन में सत्याग्रही-रूप में जाने के लिए उत्साह प्रदर्शित कर रहे हैं और इस के लिए अपने अभिभावकों से पत्र व्यवहार कर रहे हैं। आवश्यक आज्ञा प्राप्त होने पर वे अपने प्रान्त के अगले अधिनायक (डिक्टेटर) के आधीन जाने की इच्छा रखते हैं।

कुछ दिन पूर्व यहां पर सत्याग्रह दिवस धूमधाम से मनाया गया। गुरुकुल के सब ब्रह्मचारी और अध्यापक जलूस बना कर गीत गाते हुए वैद्यनाथ धाम के शिव मन्दिर के खुले प्राङ्गण में होने वाली सार्वजनिक सभा में सम्मिलित हुए। सभा में गुरुकुल निवासियों का पूर्ण सहयोग रहा। ब्रह्मदत्त और ब० इन्द्रदेव ने अपने जोशीले भाषण से सब के हृदय में वीरता की भावना भर दी। श्री पं० वीरेन्द्र जी विद्यावाचस्पति (आचार्य गुरुकुल महाविद्यालय वैद्यनाथ धाम) पं० जयनारायण जी व्याकरणाचार्य की वक्तृता तथा पं० जगन्नाथ शर्मा जी काव्यतीर्थ की समयोचित भावपूर्ण कविता ने जनता को बहुत प्रभावित किया। सभा में उपस्थिति बहुत अधिक थी।

शहर के गण्यमान्य व्यक्ति उपस्थित थे। विद्यार्थियों के त्याग की सब ने प्रशंसा की।

दीपनारायण दीप विद्याभूषण
प्रधान कुल मन्त्री

गुरुकुल समाचार

ब्र० नवरत्न १४ वीं श्रेणी श्लेष्म ज्वर, योगेन्द्र ११ वीं ज्वर, धर्मवीर १३ वीं कास, कान्तिकृष्ण २ य आन्त्र-ज्वर, श्रीनिवास ४र्थ व्रण तथा रामचन्द्र १म कास रोग से पीड़ित हुए थे।

उपरोक्त ब्र० गत सप्ताह रोगी हुए थे। ब्र० नवरत्न तथा योगेन्द्र अभी रुग्ण हैं। शेष अब सब स्वस्थ हैं।

इन दिनों ग्रीष्म ऋतु पूर्ण यौवन पर आ रही है। हिमालय से बरफ़ पिघल २ कर प्रचुर मात्रा में गंगा में आ रही है जिसके कारण गङ्गा का जल अत्यन्त शीतल हो गया है। दिनोंदिन जल बढ़ता जा रहा है। पानी का रङ्ग नालेपन से बदल कर शर्बती हो गया है। ब्रह्मचारी प्रति दिन गंगा स्नान कर स्वास्थ्य लाभ कर रहे हैं। एक मास बाद गुरुकुल में अखिल भारतीय तैरी साम्मुख्य करने का आयोजन किया जा रहा है—जिसके लिए क्रीड़ा मन्त्री ब्र० गोविन्दसिंह जी धन एकत्र कर रहे हैं। गोष्ठी सभा की ओर से २० मई को कवि-दर्बार किया जायेगा—जिसकी तैय्यारी में विद्यार्थी बड़ी तत्परता के साथ सोत्साह संलग्न हैं। इस साल गुरुकुल सूपा से ६ ब्रह्मचारियों के आ जाने पर महाविद्यालय आश्रम का अवशिष्ट भाग भी भर गया है। महाविद्यालय में ब्रह्मचारियों की संख्या १०० हो गई है। आश्रम के पार्श्व में साफ-सुथरी हवादार तीन कुटियों के बन जाने के कारण पिछले सप्ताह से पढ़ाई का कार्य सुव्यवस्थित रूप से चल रहा है। हाकी और वौलीबाल के श्रेणी-साम्मुख्यों में, त्रयोदश श्रेणी हाकी में और चतुर्दश श्रेणी वॉलीबाल में सर्व विजयी मानी गई। नये मन्त्रियों के चुनाव हो जाने के कारण महाविद्यालय की संस्कृत, हिन्दी और अंग्रेज़ी की सभाओं के अधिवेशन नियमित रूप से हो रहे हैं।

श्री पं० बुद्धदेव जी का प्रस्थान—

६ मई को श्री पं० बुद्धदेव जी विद्यालङ्कार हैदराबाद के दौरे के प्रसङ्ग में गुरुकुल पधारे। आपका गुरुकुल वासियों ने दिल खोल कर स्वागत किया। समस्त कुल-वासियों की सभा में आपको मानपत्र दिया गया और पुष्पवृष्टि के साथ बधाई दी गई। इसके बाद आपने एक मार्मिक भाषण दिया जिसे सुन कर श्रोताओं की आंखों में आंसू आ गए। आपके साथ लगभग ५०० व्यक्ति सत्याग्रह करने जायेंगे। जिनमें से १५० व्यक्तियों के किरायेका आपने इस अल्पकाल में ही प्रबन्ध कर लिया है। आपका जत्था सम्भवतः म० कृष्ण जी से पूर्व ही गिरफ्तार हो जायेगा। आप प्रथम व्यक्ति हैं जिन्होंने हैदराबाद सत्याग्रह में साधारण व्यक्ति की हैसियत से जाने की इच्छा से रखते हुए भी एक डिक्टेटर का सन्मान प्राप्त किया है। इसके लिए कुल को आप से आपको बधाई है। सभाके अन्तमें कुलवासियों की ओर से पत्र-पुष्प के तौर पर आपको १०१) की थैली भेंट की गई। रात्रि को आप संयुक्त प्रान्त के दौरे के लिए रवाना हो गए।

गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ

गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ के सब ब्रह्मचारियों का वार्षिक परीक्षा परिणाम निकल चुका है। नये वर्ष की पढ़ाइयां प्रारम्भ होगई हैं। धीरे२ गर्मी की ऋतु आ रही है। २५मई से ग्रीष्मावकाश प्रारम्भ होगा। इस वर्ष सब ब्रह्मचारी अल्मोड़ा-नेनीताल की सुरम्य स्वास्थप्रद पहाड़ियों की यात्रा पर जायेंगे। ६ष्ठ से १०म श्रेणी तक के सम्बन्धक भी दिये आने ब्रह्मचारी के यात्रा मार्ग-व्यय अर्थ १०) गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ भिजवा देवें।

श्री स्वामी ब्रह्मानन्द जी हैदराबाद सत्याग्रह में जाने से पूर्व गुरुकुल में पधारे। आप के स्वागत के उपलक्ष में सभा हुई। श्री स्वामी जी ने एक ओजस्वी भाषण हैदराबाद सत्याग्रह पर दिया। श्री मा० गोपाल जी ने श्री स्वामी जी का स्वागत करते हुवे उनकी गुरुकुल और आर्य समाज की सेवाओं पर प्रकाश डाला। ऐसे वृद्ध सन्यासियों का त्याग और तप अवश्य फल लायेगा।

गुरुकुल मुलतान

ब्रह्मचारी सब आनन्द प्रसन्न हैं। कोई रोगी नहीं।

इस वर्ष गुरुकुल मुलतान के अष्टम श्रेणी के तीन ब्रह्मचारी परीक्षार्थ गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ देहली गए थे। ब्र० सत्यदेव ३६ ब्रह्मचारियों में ९२५ में से ७६७ नम्बर पाकर सर्व प्रथम रहा। दूसरे नम्बर के ब्रह्मचारी से इसके ११८ नम्बर अधिक हैं। शेष दोनों ब्रह्मचारी भी ६ठे और और १६ वें नम्बर पर रहे हैं। इस सन्तोषजनक परीक्षा परिणाम के उपलक्ष्य में मैं अपने सहयोगी वर्ग को बधाई दिये बिना नहीं रह सकता।

इस समय गुरुकुल की तरफ से मा० सत्यनारायण जी और पं० मनोहरलाल जी आ.ज़ाद प्रचार कार्य तथा धन संग्रह का कार्य कर रहे हैं। वर्ष का प्रारम्भ है जो सज्जन बालकों को प्रविष्ट करना चाहें अभी कर सकते हैं। तीन २ रुपये के चार वज़ीफ़े दानियों ने दिये हैं इनसे जो लाभ उठाना चाहें वह प्रवेशार्थ प्रार्थना पत्र में स्पष्ट लिखें। उत्सव पर म० जमनादास जी ने गोशाला के मकान के लिए १००) देनेका वचन दिया था वह धन पहुंच गया है शेष ८००) की ज़रूरत है। यदि चार दानी पुरुष एक २ सौ रुपया भेज दें तो मकान बनवाना शुरू होजाए। जिसकी बड़ी ज़रूरत है। मकान पर दानियों के नाम का पत्थर लगा दिया जायगा।

भूल संशोधन—पिछले अंक के प्रथम पृष्ठ, २य कालम की चौथी पंक्ति में पाठक 'गुरु' शब्द के स्थान पर 'गुरुकुल' करलें। २य पृष्ठ, प्रथम कालमकी ३२,३३ पंक्तियोंके अन्तिम शब्दों को ("रहे" और "पुनः" को) ऊपर नीचे परिवर्तित कर के पढ़ें। —सम्पादक

चौधरी दुलाराम के प्रबन्ध से गुरुकुल प्रेस गुरुकुल कांगड़ी में मुद्रित तथा प्रकाशित।

* ओ३म् *

"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत" Reg. No. A. 2927

गुरुकुल

सम्पादक—साहित्यरत्न पं० हरिवंश वेदालङ्कार

एक प्रति का मूल्य -) [गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख-पत्र] वार्षिक मूल्य २॥)

वर्ष ४] गुरुकुल काङ्गड़ी, शुक्रवार ६ ज्येष्ठ १९९६; १९ मई १९३९ [संख्या ३

श्री आचार्य जी का "सर्वमित्र" के लिए संदेश:—

[गुरुकुल के महाविद्यालय से ब्रह्मचारियों द्वारा हस्तलिखित रूप में निकलने वाले 'सर्वमित्र' नाम के साप्ताहिक-पत्र के प्रथम अंक के प्रथम पृष्ठ पर श्री आचार्य जी ने अपना जो संदेश संपादक के मांगने पर अपने हाथ से लिख दिया है वह निम्न प्रकार है:—
सम्पादक]

यह साप्ताहिक महाविद्यालय के ब्रह्मचारियों में सौजन्य, कर्त्तव्यनिष्ठा, प्रेम, सहयोग, विचारों तथा भावों का संतुलन और सुरुचि को जगाने वाला होवे, क्योंकि ये ही बातें सर्वमित्रता को उत्पन्न करती हैं। 'सर्वमित्र' को अमित्र तो किसी के प्रति होना ही नहीं चाहिए। अतः यह पत्र अपने इस लक्ष्य को कभी भी न भूलता हुआ अपने पथ पर अग्रसर होगा। यह आशा करता हुआ इसके पुनरुदय के लिए शुभ कामना करता हूँ।

'अभय'
८-१-९६

आशीर्वाद

[गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ की साहित्य संजीवनी सभा के लिये निम्नलिखित आशीर्वाद श्री आचार्य अभयदेव जी ने दिया है:—]

ब्रह्मचारी रामनाथ,

तुमने साहित्य संजीवनी सभा के वार्षिक उत्सव के लिए मेरा संदेश और आशीर्वाद मांगा है। तुम्हें शायद मालूम नहीं है कि अपने विद्यार्थी काल में यदि मेरा किसी सभा से सम्बन्ध रहा है तो वह साहित्य संजीवनी सभा ही है। आज से २५ वर्ष पूर्व (अर्थात् १९१४ और १९१५ में) मैं नवम श्रेणी के मध्य से दशम श्रेणी के अन्त तक डेढ़ साल पर्यन्त इस सभा का मंत्री रहा हूँ इसके बाद यह सभा स्थिर तौर से विद्यालय (नवम दशम) की सभा हो गयी और मैं महाविद्यालय में जाकर भी किसी दूसरी सभा का सदस्य नहीं बना। इस इतिहास से साहित्य संजीवनी सभा से मेरा जो प्रेम प्रकट होता है उसके कारण तुम यह समझ सकते हो कि एक स्नातक के तौर पर ही इस सभा के लिये मेरा मूक आशीर्वाद बिना मांगे ही प्राप्त है और आचार्य के तौर पर अपने ब्रह्मचारियों के हरेक उत्तम कार्य के लिए तो आशीर्वाद होता ही है।

पर संदेश की बात टेढ़ी है। वह भी यदि बिना दिये पहुंच सकता होता तो अच्छा था। पर मेरा ख्याल यही है (और यह दिनों दिन दृढ़ होता गया है) कि वाचिक संदेश की अपेक्षा जीवन से मिलने वाला मूक संदेश बड़ा ज़बरदस्त होता है। क्या तुम यह नहीं देखते कि हम लोग जो तुम्हें अच्छी अच्छी बातें सुनाते हैं उनकी अपेक्षा चारों तरफ जो दुनिया का जीवन है उसका तुम पर बलात् असर होता है। मेरा अभिप्राय यह है कि साहित्य जो वाणी रूप होता है उसका संजीवन केवल वाणी व्यापार या वाणी साधना से नहीं हो सकता, किन्तु जीवन से (जो कि मूक किन्तु ज़बरदस्त वाणी है) होता है या जीवन मूलक वाणी से। दुनियां के किसी भी कोने में या किसी भी भाषा में जो साहित्य कृतियां अमर हुई हैं, जिन्होंने जगत् को हिलाया है, उपनिषद् व गीता आदि की तरह जो ताज़े वचनों जैसी आज भी आध्यात्मिक तृप्ति पहुंचा रही हैं उनके मूल में जीता जागता ऊंचा प्रबल जीवन था। वाणी प्रवाह का स्रोत आत्मा में है। उसमें सब प्रकार का रस और सौन्दर्य है। इसलिये यदि तुम साहित्य के निर्माता या संजीवक बनना चाहते हो तो लच्छेदार चटपटी भाषा लिखना बोलने की चेष्टा करने की उतनी आवश्यकता नहीं जितना कि अपने आप को, अपने जीवन को, अपने चरित्र को दृढ़, स्फूर्तियुक्त और जीवन पूर्ण बनाने की आवश्यकता है। जब अपनी आत्मा द्वारा मनुष्य-जीवन पूर्ण हो रहा होता है तब उसकी वाणी स्वयमेव नाना प्रकार के काव्यादि रूप में फूट निकलती है। वही साहित्य साहित्य है। जैसा जीवन होगा वैसा ही साहित्य उससे निकलेगा, पवित्र या मलिन, प्रबल या मुर्दा। शुद्ध पवित्र और जीवनदायी साहित्य के लिये प्यासा यह जगत् जो कुछ चाहता है उसे पूरा करने वाले साहित्य सेवी क्या साहित्य संजीवनी सभा से सीख कर निकलने वाले स्नातक होंगे?

शुभाकांक्षी—'अभय'

गुरुकुल कांगड़ी

[यह श्री सेवानन्द जी के उस लेख का हिन्दी अनुवाद है जो कि कई गुजराती पत्रों में छपा है और जिसका उत्तर आचार्य काका कालेलकर जी ने दिया है तथा जिस पर श्री आचार्य जी ने एक टिप्पणी लिखा है—सम्पादक]

स्वामी श्रद्धानन्द जी के समय का पुराना गुरुकुल तो अब रहा नहीं है और आज के गुरुकुल को देख कर उसकी कल्पना करना भी मुश्किल है। वास्तविक गुरुकुल—भारतवर्ष की प्रथम राष्ट्रीय शिक्षण संस्था—१९२४ई० सन् में गंगा के प्रलयकारी जलप्रवाह में नष्टप्राय होगया जो थोड़ा सा हिस्सा बच पाया है, उसका मेरे सुनने के अनुसार गौशाला के तौर पर उपयोग होता है। वर्तमान गुरुकुल गंगा की दूसरी ओर लेकिन गंगा के प्रवाह से २॥ मील दूर कनखल और ज्वालापुर के बीच में से बहती हुई गंगा की एक नहर के किनारे बसा हुआ है और स्वामी श्रद्धानन्द जी द्वारा पाली हुई आर्य-गुरुकुल की भव्य कल्पना से—बाह्य कलेवर में और आत्मा में भी—बहुत दूर निकल गया है। कलकल ध्वनि करती गंगा के किनारे हिमालय की श्यामल छाया के नीचे और हाथी शेर और चीतों की गर्जनाओं से गूंजते अरण्य में प्राचीन तपोवन और आरण्यक विश्वविद्यालयों के आदर्श से प्राणवान् बना हुआ गुरुकुल आज गंगा की कृत्रिम नहर के किनारे गाड़ी, घोड़ा, भों भों करती मोटर गाड़ियां धूंआ फैंकती रेल गाड़ियों के शोर से गूंजती सड़क से थोड़ी दूर, पश्चिम की स्थापत्य शैली से बने हुए बंगलाकृति के मकानों में आकर बस गया है। सड़क और गुरुकुल की सीमा के बीच में आये हुए थोड़े से शाल वृक्षों में से आगे निकलने पर आज के गुरुकुल पर दृष्टि पड़ते ही अपनी कल्पना के गुरुकुल के साथ उसका तीव्र विरोध प्रतीत हुआ कि जिससे मेरी आत्मा को एक भारी आघात पहुँचा और जिसने मुझे स्वप्न सृष्टि में से जगा कर वास्तविक भूमि पर घसीट लिया। उत्पन्न हुई निराशा की पीड़ा से अपना कलेजा दबाता मैं गुरुकुल के दफ्तर में घुसा और सब कर्मों में से वृद्ध जैसे लगते एक महाशय से मैंने विनती की कि मुझे गुरुकुल देखना है।

उन्होंने एक चपरासी को मुझे सब जगह फिराकर गुरुकुल दिखाने की आज्ञा दी। रास्ते में चलते २ मैंने पथ-प्रदर्शक से जान लिया कि यहां प्राथमिक शाला और महाविद्यालय दो ही हैं। माध्यमिक शाला के वर्ग यहां से उठाकर इन्द्रप्रस्थ ले गये हैं। मैं प्राथमिक शाला के वर्गों की ओर मुड़ा। एक कमरे में लड़के पूनियां बना रहे थे। दूसरे में तकली कात रहे थे। श्री विश्वम्भर सहाय जो कि अखिल भारतीय चर्खा संघ के सदस्य हैं उन्हीं की निगरानी में यह प्रयोग हो रहा है। एक वर्ग में संस्कृत सिखाई जा रही थी। मैंने दो चार सवाल पूछ कर उनकी परख की। लड़कों के 'अरे भूल गया!' से आश्चर्य हुआ। ब्रह्मचारियों के संस्कृत उच्चारण भयंकर थे। पीछे से मैंने देखा कि कोई कोई वेदालंकार भी वेदमन्त्रों का इतना अशुद्ध उच्चारण करते हैं कि सुनकर 'स्मैलिंग साल्ट' सूंघने की इच्छा हो आती है। कारण कि मुझे डर मालूम होता है कि कहीं मुझे मूर्छा न आजाय। ब्रह्मचारियों को कर्ता, कर्म विभक्तियों का बिलकुल ज्ञान नहीं था। वे हिन्दी की तीसरी श्रेणी में पढ़ रहे थे। एक खास सीमा तक मातृभाषा सिखाने से पहले संस्कृत का शिक्षण शुरु करने की प्रवृत्ति आर्यसमाजी भाइयों के हठ का यह परिणाम है। दूसरे एक वर्ग में अंग्रेजी पढ़ाई जा रही थी। वह भी संस्कृत जैसी ही। ब्रह्मचारियों के मुख पर मैंने तेज नहीं देखा। प्रसन्नता की झलक का अभाव मुझे बहुत खटका। अंग्रेजी में जिसे (Smartness) कहते हैं वह चुस्ती मैंने किसी में भी नहीं देखी। शिक्षक (एक विश्वम्भर सहाय को छोड़ कर) और शिष्य दोनों मुझे सुस्त निर्जीव जैसे दीख पड़े। प्राणवान् उत्साही शिक्षक सारे वर्ग के वातावरण को अपनी प्राणशक्ति से भरपूर कर देता है और लोहे के टुकड़ों को जैसे लोहचुम्बक अपनी ओर खींच लेता है वैसे ही सब विद्यार्थियों के लक्ष्य को अपनी ओर खींचे रखता है, वैसा मैंने कुछ न देखा एक शब्द में प्राथमिक वर्गों का वातावरण मन्द था।

उसके बाद महाविद्यालय की ओर जाते २ मैंने वाचनालय और पुस्तकालय पर एक तेजी से नज़र फेर ली। वाचनालय के टेबल पर जो पत्र-पत्रिकाएँ थीं वे संख्या और विविधता की दृष्टि से महाविद्यालय के लिए बहुत ही कम कही जा सकती हैं। गुरुकुल का लक्ष्य जब तुलनात्मक दृष्टि से धर्म और दर्शनों के अवलोकन के ऊपर है तो उनको धर्म, प्राचीन साहित्य और पुरातत्वों के विषयों में होते हुए आविष्कारों से परिचित रखना चाहिये। हिबर्ट जनरल, इण्डियन फिलोसाफिक रिव्यू, इण्डियन एण्टिक्वेरी तथा रायल एशियाटिक सोसायटी के मुख पत्र उनके सामने होने आवश्यक हैं। लेकिन इनमें से मैंने एक भी नहीं देखा। मैंने पुस्तकों की अलमारियों पर नजर डाली तो दुनियां के अन्तिम से अन्तिम प्रकाशनों का मैंने अभाव देखा। प्राचीन हस्तलिखित पुस्तकों पोथियों सिक्कों चित्रों आदि का संग्रह है कि नहीं, ऐसा प्रश्न जब मैंने लाइब्रेरियन से पूछा तो जैसे उसे इस प्रश्न की अनावश्यकता लगी हो और गुरुकुल में ऐसी उपाधियां न होनी चाहियें ऐसा मुझे बिना पूछे समझ लेना चाहिये था ऐसी भावयुक्त मुख-मुद्रा करके उसने मुझे नकारात्मक उत्तर दिया। मैं आगे चलता गया।

महाविद्यालय छात्रावास इस समय छात्र हीन था ग, छात्रावास के प्रत्येक कमरे में चार २ विद्यार्थी रह सकें ऐसी व्यवस्था थी। लेकिन मैंने उनमें लकड़ी के तख्तपोशों के साथ २ स्प्रिंग वाले लोहे के तख्तपोश भी देखे तब मेरे मन में पूछने की इच्छा हुई कि ब्रह्मचारियों के लिए यह क्या कहलायेगा। महाविद्यालय के वर्गों के खण्ड जब मैंने छोटे २ देखे और मेरा मार्गदर्शक "यह है हमारा विद्यालय" इधर बारहवीं श्रेणी, उधर चौदहवीं श्रेणी ऐसा मुझे कहता गया तब तो मुझे

पूछना ही पड़ा कि तुम्हारे यहां कुल विद्यार्थी कितने हैं? उसने मेरी भूल सुधारते हुए कहा—सब मिलाकर ७० ब्रह्मचारी! मेरे मन में बहुत बार यह उठता है कि आर्यसमाजी संस्थायें इस 'ब्रह्मचारी' शब्द के लिए क्यों इतना ज्यादा आग्रह रखती है? सादा सरल सार्वजनिक व्यवहार में आने वाला विद्यार्थी शब्द क्या खराब है? किसी जानकार ने मेरे कान में कहा कि जिसके पास जिस चीज का अभाव होता है उसे उसी वस्तु के लिए आग्रह होता ही है?

सबसे अन्त में जो चीज उसने बताई वह गुरुकुल का विज्ञान मन्दिर था। वहां का साज सामान और विज्ञान सीखने के साधनों को देख कर मुझे जान पड़ा कि इस समय तो अच्छे हाई स्कूल के पास भी इससे अधिक ऊंचे प्रकार के महंगे और विविध साधन जुटाए पड़ते हैं और यह तो कांगड़ी विश्वविद्यालय है। मैंने निराशा का अन्तिम निःश्वास यहीं छोड़ दिया। अपने पथ प्रदर्शक की बुद्धि-समझ के अनुसार मेरा गुरुकुल का दर्शन पूरा हो गया। वह तो मुझे ईंट चूने के निर्जीव मकानों को दिखाने के लिए आया था। मुझे इतने से ही सन्तोष नहीं हो सकता था। मुझे गुरुकुल के स्थूल शरीर के दर्शन करके नहीं लौटना था।

कार्यालय में आकर मैंने एकबार फिर उन 'महाशय' से प्रार्थना की कि मेरा आधा जीवन शिक्षण के काम में गया है शिक्षण संस्थाओं की स्थापना में और उसके कार्य-भार को वहन करने में या व्यवस्था में मैंने सहायता दी है और गुजरात विद्यापीठ की नियामक सभा का भी मैं कुछ समय तक सभ्य रहा हूँ। मैं गुरुकुल के ईंट चूने के बने हुए मकान नहीं देखने आया। मकान देखने होते तो मैं किसी राजा के महलों को देखने न जाता? मैंने तो जो देखा है उसको अपने मन में नोट कर लिया है और अब उसके विषय में तुम्हारे आचार्य जी के साथ चर्चा करनी है। जबतक यह न होगा मैं समझूंगा मैंने गुरुकुल नहीं देखा और यहां से जाऊंगा नहीं।

'आचार्य जी उपस्थित नहीं हैं ऐसा मुझे जवाब मिला तब मुझे फिर दृढ़ता पूर्वक कहना पड़ा कि आचार्य जी की अनुपस्थिति में किसी भी प्राफेसर के पास मुझे लेकर जाना होगा। आखिर लाचारी में मुझे फिलासोफी के अध्यापक के बंगले में चपरासी ले गया और मेरे आने का उद्देश्य बताकर चपरासी वहां से चला गया।

अब मैं और प्रोफेसर साहेब एक दूसरे को आंखों द्वारा भांपने लगे। उनके वस्त्रों को स्वच्छ तो नहीं कहा जा सकता, धोती पर चिकने दाग थे। कमरे में मक्खियों की हाजरी अच्छी थी और वे उनके शरीर पर आराम लेने भी आकर बैठी थीं। एक भीतर ताजा पान की पिचकारी का रेला उतर रहा था। अभी तो सर्दियां थीं गर्मियों में क्या होता होगा? गुरुकुल के मकानों में भी ऐसी अवस्था थी। इस प्रकार होने के कुछ कारणों में से पंजाबियों की कुछ असंस्कृत आदतें भी हैं। उदाहरण के तौर पर उन्हें आम खाना नहीं आता। कसाई जिस प्रकार मरे हुए पशु की खाल को उतारता है उसी प्रकार ये लोग पके आम की छाल को उतारते हैं और फिर रस से भरी गुठली चूसने लग पड़ते हैं। चूसते हुए उनके मुंह से रस के रेले उतरते हैं और जमीन पर बूंदें टपकती रहती हैं। खाने के बाद ये लोग मुख साफ करने की तो क्या पानी में हाथ धोने की आवश्यकता नहीं समझते। दोनों हाथ मसल लेते हैं, चिकने हाथ सिर पर पोंछ कर तेल का काम निकाल लेते हैं या साफे के लटकते छोर से पोंछ लेते हैं। लेकिन ······ बस विषयान्तर हो रहा है।—

मैंने प्राफेसर साहेब से पूछने के प्रश्न तैयार कर रखे थे। उनको मैंने उनपर झड़ी लगा दी और उनके टेबल पर से कागज पेन्सिल लेकर उनके उत्तर लिख लेने के लिये तैयार हो गया।——

"गुरुकुल की स्थापना हुए कितने वर्ष हुए?

'लगभग ३० वर्ष।'

'इस बीच में कितने स्नातकों को पदवी दान किया?'

'लगभग ढाई सौ।'

'वे लोग इस समय क्या करते हैं किन किन धन्धों को करते हैं, उनकी आर्थिक स्थिति क्या है, उन में से कितने साहित्य सेवा, समाज सेवा अथवा देश सेवा की ओर गये हैं? उसकी आप के पास डाईरेक्टरी है? पुराने और नये विद्यार्थियों के स्नेह सम्मेलन होते हैं?'

'नहीं'

'कुल Faculties (मन्दिर) कितने हैं?'

'दो—आर्ट्स और सायन्स'।

सायन्स में पदार्थ विज्ञान सिखाया जाता है?

'नहीं'

'आपको मालूम तो होगा कि ऊंची प्रकार की रसायन-विद्या शिक्षण का पदार्थ विज्ञान के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है और दोनों एक दूसरे से अलग नहीं किये जा सकते।'

'नहीं यह मेरा विषय नहीं है।'

'आपका यह अज्ञान क्षम्य है। ठीक तौर से उच्च प्रकार का गणित शास्त्र सिखाया जाता है?'

नहीं

'अब तो मैं आपको कह देता हूं कि उच्च प्रकार की सायन्स उच्च प्रकार के गणित शास्त्र की मदद के बिना सिखाया ही नहीं जा सकता। मोमबत्ती जलाकर चूने के पानी को सफेद करने के प्रयोग ही करने हों तो गणित के बिना काम चलाया जा सकता है। अच्छा, विश्वविद्यालय में कोई मासिक पत्र चल रहा है?'

'नहीं'

'कोई रिसर्च वर्क होता है'?

'नहीं'

'औद्योगिक और व्यवहारोपयोगी शिक्षण दिया जाता है'?

'अभी थोड़े समय से 'टाइप राइटिंग' सीखने की शुरुआत हुई है और आयुर्वेद विद्यालय है जिसमें ब्रह्मचारी वैद्यक सीखते हैं।'

'वैद्यक शास्त्र के सक्रिय ज्ञान के लिये क्या व्यवस्था है?'

विद्यालय का हस्पताल है। Botanical Garden औषधि निर्माण शाला (फार्मेसी) है।

ब्रह्मचारी और अन्य गुरुकुल वासी बीमार पड़ते हैं। उस समय उतना ही अनुभव मिलता है। गार्डन यहीं है,

[शेष पृष्ठ ७ पर]

गु रु कु ल

६ ज्येष्ठ शुक्रवार १९९६

श्री स्वामी सेवानन्द जी के लेख का काकासाहिब कालेलकर द्वारा प्रत्युत्तर

(गुजराती से अनुवादित)

"कांगड़ी गुरुकुल मां नीपजता वेदीआ ब्रह्मचारिओ" इस शीर्षक से "पूर्णा" नामकी गुजराती पत्रिकामें लिखे गए लेख की प्रतिलिपि मेरे पास पहुंची है और मुझ से इस लेख के विषय में सम्मति मांगी गई है। इस लेख के लेखक श्री सेवानन्द जी का गुजराती विद्यापीठ से सम्बन्ध है, यह उसी ही लेख में बतलाया गया है। सेवानन्द जी का पूर्वाश्रम का नाम क्या है, यह मैं निश्चित रूप से जानता होता तो मैं इस पर कुछ प्रकाश डाल सकता।

सुन्दर शैली में लिखे होने पर भी इस लेख को पढ़कर मुझे आनन्द नहीं आया। ऐसा टीका तो कोई भी मनुष्य किसी भी संस्था के विषय में करसकता है। गुरुकुल में उच्च कोटि का 'पदार्थ विज्ञान' सिखाया नहीं जाता, वहां व्यापार, कानून, कृषि, एन्जीनियरिंग आदि सिखाया नहीं जाता, स्नातकों के लिए 'कैरीयर' जैसा कुछ है ही नहीं, इत्यादि कलंक और न्यूनताएं गिना कर लेखक ने युवकों की ओर से लिखा है कि "युवक हृदय में स्वाभाविक उदात्त आकांक्षाएं होती हैं, संसार में आगे बढ़ने का शौक होता है पांच पैसे पाकर आराम से जीवन बिताने की अभिलाषा होती है, और गुरुकुल की शिक्षा उनके आगे बढ़ने के सारे रास्ते बन्द कर देती है"।

आज के युवक पांच पैसे पाकर आराम से जिन्दगी बसर करने का दिल रखते हैं या नहीं, यह तो वे ही कह सकेंगे।

गुरुकुल के विद्यार्थी आगे नहीं बढ़े हैं, ऐसा नहीं है। कइयों ने विदेश जाकर वहां की उपाधि प्राप्त की है, इसका श्रेय श्री सेवानन्द जी गुरुकुल को भले ही न दें, पर गुरुकुल की डिग्री को विदेशों की युनिवर्सिटियों ने स्वीकार किया है, यह तो वे जानते होंगे।

पर, मुझे गुरुकुल का बचाव नहीं करना है। घुड़दौड़ में दौड़ने वाले घोड़े दूध नहीं देते और गौ घुड़दौड़ में दौड़ नहीं सकती, ऐसी आलोचना जितनी ठीक होती है उतनी ही अप्रस्तुत होती है।

स्वामी श्रद्धानन्द जी जब महात्मा मुन्शीराम के नाम से विख्यात थे उस समय का गुरुकुल भी मैंने देखा है। आचार्य रामदेव जी इसको चलाते थे उस समय भी मैंने देखा है और अब पण्डित देवशर्माजी (श्री स्वामी अभय देव जी) चला रहे हैं यह भी देखा है और अब हरद्वार के पास गंगा की नहर के किनारे नया बसा हुआ गुरुकुल भी देखा है। पुराने गुरुकुल की शोभा अनुपम थी परन्तु बाढ़ संकट में सारी संस्था के बहजाने पर उसी स्थान पर पुनः वैसी ही संस्था खड़ी करदी होती तो इस में कुछ भी बुद्धिमत्ता न थी। देश के बालकों और युवकों को शिक्षा देने वाली संस्था की प्रकृति के अनुरूप से जितना रक्षा हो सके उतना रक्षा करना ही चाहिए। केवल झोंपड़ियों में संस्था चलाना अशक्य नहीं है। पर, स्थायी संस्था को झोंपड़ी की सादगी मंहगा पड़ता है। प्रतिवर्ष मरम्मत के लिए धन और समय का व्यय नहीं किया जा सकता है, यह बात अनुभवी लोग जानते हैं। गुरुकुल में बिजली नहीं लगी होती तो चल सकता था, खिड़की और दरवाजे की शैली कुछ भिन्न होती तो अधिक शोभा देती ये सब टीकाएं ठीक होती तो भी इतने से ही सारी संस्था को— अपने ही समाज की स्वदेशी संस्था को—हम उड़ाती देश के लिए हितकर नहीं। गुरुकुल की इमारतें वैदिक शैली की नहीं है इतना तो लेखक ने ही स्वीकार किया है। स्वच्छता और रचना सौन्दर्य की दृष्टि से पुरानी शैली में परिवर्तन करना ही पड़ता है और दान से चलने वाली संस्था में दानवीरों की अभिरुचि की ध्वनि पड़े बिना नहीं रहती। पुरानी परम्परा के साथ पुराने नाम भी आते ही हैं। लेखक को "ब्रह्मचारी" शब्द से इतनी घृणा क्यों है। "विद्यार्थी" और "ब्रह्मचारी" दोनों शब्दों का मूल अर्थ एक ही है। 'ब्रह्म यानी वेद, उसके अध्ययन की जो दीक्षा लेता है वह ब्रह्मचारी। गुरुकुल के विद्यार्थियों में ब्रह्मचर्य यानी इन्द्रियसंयम नहीं है ऐसा कहने से लेखक ने क्या सिद्ध किया है यह पता नहीं लगता है। "जैसा युग वैसा जोगी" जैसा समय होता है वैसे ही विद्यार्थी होते हैं। माता पिता और समाज के पास से जैसे संस्कार प्राप्त करते हैं वैसे ही संस्कार लेकर विद्यार्थी गुरुकुल में प्रविष्ट होते हैं। समाज से जैसे शिक्षक प्राप्त होते हैं वैसे ही रखे जाते हैं ऐसा सामग्री प्राप्त करके ऐसी सामग्री का गुरुकुल जैसी संस्थाओं में क्या उपयोग होता है इसी पर संस्था की योग्यता का आधार है। गुरुकुल का आदर्श और रहन सहन विलासक नहीं है इतना तो हम निश्चय से जानते हैं। इससे भी अधिक उन्नति के लिए गुरुकुल के कार्यकर्ताओं के अनुसार उस संस्था के हितेच्छु समाज को चलना चाहिए। गुरुकुल का परीक्षण निष्फल नहीं है। ऐसी मेरी राय है।

जब जब मैं गुरुकुल में गया हूँ तब तब मैंने वहां के विद्यार्थियों को उत्साही, प्रसन्न, सेवा परायण एवं उद्योगशील देखा है। जिस चालाकपने को सेवानन्द इतना महत्व देते हैं वह यहां नहीं है, ऐसा मानना आवश्यक नहीं है। कई लड़के चालाक होते हैं कई सीधे होते हैं। भोले और हुड़भू लड़कों का प्रमाण हरेक संस्था में होता ही है। ऐसे लड़कों को रखकर उन्हें संस्कारी बनाने वाली संस्था ही समाज की आदरपात्र होती है। गुरुकुल के

अध्यापकों के घरों में खादी अभी छू तक नहीं गई है इस पर ध्यान खींचने की अपेक्षा गुरुकुल में उत्तरोत्तर खादी के बर्तने का प्रयत्न अधिकाधिक सफल होता जा रहा है। इस ओर हम क्यों ध्यान न दें? विद्यार्थी और अध्यापक तो खादी पहिनते ही हैं। परन्तु वार्षिकोत्सव पर आने वाला जन समूह भी खादी ही पहिने ऐसा आचार्य अभयदेव जी का प्रयत्न है।

उत्तर हिन्द में संस्कृत का उच्चारण जैसा चाहिए वैसा नहीं होता यह बात कुछ अंश में सत्य है। परन्तु एक समय ऐसा भी था जब कि गुजरातियों के विषय में भी ऐसा ही कहा जाता था। इतना ही नहीं बल्कि महाराष्ट्र भी इन टीका टिप्पणियों से मुक्त नहीं थे। किसी भी देश या प्रान्त का उच्चारण सुधारना हो तो इसका उपाय अपने पास Smelling salt की सूंघनी रखना ठीक नहीं है परन्तु उच्चारण शुद्धि से यह चारित्र्य शुद्धि जितनी ही महत्व की वस्तु है इसकी छाप जनता के मन पर जमाने के लिए हज़ारों मनुष्यों को सेवा की दीक्षा लेनी चाहिए और संन्यासी के तौर पर इसी वस्तु का प्रचार करते रहना चाहिए। यदि सचमुच देश प्रेम हो तो लोगों को टीकानन्द वादानन्द और लेखनानन्द यह सब कम करके सेवानन्द को ही बढ़ाना चाहिए और जहां कमियां दीखें वहां अपने आपको अर्पण करके सुधार करने चाहिए।

श्री अभयदेव जी मानते हैं कि इस लेख में लिखी हुई कई बातें निराधार हैं। ऊपर २ से देखकर मन में विरोध लाकर, ऊपर २ से देखकर संस्था के सम्बन्ध में प्राप्त की हुई सामग्री के आधार पर अनुमान करने से ऐसा ही होता है। मुझे ध्यान देने योग्य बात तो यह है कि हमें देश की अपनी सन्तान द्वारा चलाई हुई और अपने उच्च आदर्श को दृष्टि के आगे रखने वाली संस्थाओं के प्रति मन में तुच्छ बुद्धि नहीं रखनी चाहिए। गुरुकुल के स्नातकों ने विविध क्षेत्रों में विविध प्रकार से अपना पुरुषार्थ सिद्ध किया है।

प्रस्तुत लेख में जो वृत्ति और वातावरण दिखाई देता है। ऐसा वातावरण आजकल सभी प्रान्तों में दिखाई देता है। गुजरात में इसका प्रभाव न आवे ऐसा हम सब ज़रूर चाहते हैं।

सज्जनता रख कर विनोद पूर्वक की हुई आलोचना उन्मार्गगामी होकर ऐसा वातावरण पैदा करती है। ऐसा यदि शुरू से विचार होता तो मेरे जैसे व्यक्ति प्रारम्भ से संभलकर चलते। आलोचना और विनोद दोनों इष्ट हैं पर दोनों के पीछे सद्भाव सदभिरुचि और आत्मीयता होनी चाहिए।

श्री सेवानन्द जी का लेख

[ले० श्री स्वामी अभयदेव जी आचार्य]

श्री स्वामी सेवानन्द जी का एक लेख गुजराती पत्रों में गुरुकुल कांगड़ी की वर्तमान अवस्था पर प्रकाशित हुआ है। इस लेख का उत्तर देने के लिये बहुत से पत्र गुरुकुल में आये हैं। इससे यह तो प्रकट होता है कि गुरुकुल कांगड़ी की इस प्रकार की आलोचना लोगों को सह्य नहीं है। इस प्रकार का जब पहिला पत्र मुझे मिला तब तक मेरे इस लेख के विषय में कुछ भी लिखने की इच्छा नहीं हुई। यह इच्छा हुई कि स्वामी सेवानन्द जी का पता लगा कर उनको एक पत्र लिखूं। परन्तु वे आजकल कहां हैं, यह बात बहुत चिट्ठी-पत्री करने पर भी अभी तक मालूम नहीं हुई और इस के बारे में बहुत से मित्रों के पत्र आते रहे हैं तो इस लेख को दो तीन बार पढ़ कर मैंने यह निश्चय किया कि इस लेख को गुरुकुल पत्र में भी प्रकाशित कर दूं जिससे इस लेख द्वारा यदि कुछ लाभ उठाया जा सकता हो तो वह उठाया जा सके। (और गुरुकुल के पाठक जो प्रायः गुरुकुल की स्तुति सुनने के ही अभ्यासी हैं, उन्हें गुरुकुल की आलोचना सुनने का भी रसास्वादन प्राप्त हो सके)।

सेवानन्द जी के इस लेख के विषय में आगे भी कुछ लिखने का मेरा विचार है पर वह इस लेख के उत्तर के रूप में नहीं। गुरुकुल के अधिकारी द्वारा उत्तर दिया जाना जिसे आमतौर से उत्तर दिया जाना समझा जाता है--शोभा नहीं देता। उत्तर तो काका साहेब कालेलकर ने दे दिया है; जो संभवतः गुजराती पत्रों में छप गया होगा। काका साहेब के उस उत्तर का हिन्दी अनुवाद भी इसी अङ्क में प्रकाशित हो रहा है। काका साहेब देश के प्रसिद्ध विद्वान् और प्रमाणिक लेखक हैं। गुजरात विद्यापीठ के आचार्य रहे हैं और गुरुकुल को पुराने समय में--जब कि यह उस पार था--बाद में और वर्तमान समय में भी देख चुके हैं। इसी तरह और भी कई महानुभाव, जो कि गुरुकुल को देख चुके हैं, आवश्यकता समझेंगे तो उत्तर दे देंगे। मेरा काम तो उस लेख की उन बातों पर प्रकाश डालना—जिन पर कि गुरुकुल से घनिष्ठ संबन्ध रखने के कारण मुझ द्वारा ही प्रकाश पड़ सकता है-- तथा उनकी आलोचना को ठीक अर्थ में लेकर आत्म-निरीक्षण करना है।

परन्तु इस बात पर आश्चर्य प्रगट किये बिना मैं नहीं रह सकता कि श्री सेवानन्द जी ने अपना गुरुकुल निरीक्षण करने का जो वर्णन किया है वह जब संवत् १९८३ का है अर्थात् अबसे ६ वर्ष पहिले का है तो उस पर आज ६ वर्षों के बाद लेख लिखने की क्या आवश्यकता हुई? इन ६ वर्षों में तो कई ऐसे परिवर्तन हो चुके हैं; जिन पर कि वे अब लिखते तो और तरह से लिखते। इसी तरह उन्होंने अपने इस लेख में जो कई जगह तीव्र कटाक्ष किये हैं और हंसी उड़ाई है, उसे देखकर बहुतों को ऐसा प्रतीत होना स्वाभाविक है (यह कहां तक ठीक है मैं नहीं कह सकता) कि यह लेख विरोध-भाव से लिखा गया है। परन्तु मुझे यही विश्वास करना पसन्द है कि उनसे इस प्रकार का लेखन मज़ेदार भाषा लिखने के जोश में या लोभ में हो गया है, विरोधभाव से नहीं। तो भी इस लेख में पञ्जाबियों और आर्यसमाजियों के प्रति जो एक स्पष्ट नफ़रत का भाव दिखाई देता है,

उसकी आशा मैं स्वामी सेवानन्द जी से या किसी भी गुरुकुल जैसी संस्था पर कलम उठाते व्यक्ति से नहीं कर सकता।

सेवानन्द जी के लेख पर इस टिप्पणी द्वारा सामान्य तौर से जो शब्द लिखने आवश्यक थे; उन्हें इस प्रकार लिखकर लेख के अन्दर की विस्तार की बातों पर जो कुछ लिखना होगा उसे अगले अंक के लिये बचा कर रखता हूँ।

वापिस भारत को

(अज्ञानी)

प्रोग्राम तो मैं छः महीनों का बनाकर गया था। और शायद एक वर्ष भी लग जाता। परन्तु कि हीं आवश्यक कारणों से जल्दी लौटना पड़ा। अस्तु।

दारे-सलाम से वापिसी यात्रा हुई। मार्ग में ज़ंज़ीबार, मुम्बासा और सीशल्स (टापू) में जहाज़ थोड़ी देर ठहरकर बड़े वेग से बम्बई की ओर बढ़ने लगा। इस यात्रा में लगभग ३००० मीलों का फ़ासला तै करना था। हमारा कराआ स्टीमर यद्यपि दस हज़ार-टन वज़न का और अच्छी ताकत वाला है फिर भी इसे ३ हज़ार मील पार करने में १० दिन लग जाएंगे। आज कल हवाएं शुद्ध हैं। लहरें भी ज़ोर पकड़ रही हैं। इसी लिये कई यात्री- जो मिचलाने और उल्टी आने की शिकायत से बिस्तरों पर लोट रहे हैं। अपने राम को तो समुद्री वायुमण्डल अनुकूल है।

ज्यों २ जहाज़ आगे बढ़ रहा है त्यों २ हमारा मन खिन्नसा है। कारण? इसकी अतृप्त इच्छाएं हैं। अभी दो महीनों में हमने केवल पूर्वीय अफ्रीका को भी पूरी तौर से न देख पाया था। फिर दक्षिण अफ्रीका तो अत्यधिक सुन्दर है। केप आफ़-गुड होप का सुहावना प्राकृतिक दृश्य, जोहन्सबर्ग की समृद्ध सोने की कानें, ट्रान्सवाल का क्रूगर नेशनल पार्क, दक्षिण रोडेशिया के सुप्रसिद्ध विक्टोरिया फ़ाल', नील नदी का प्राचीन मार्ग, मन्चिसन प्रपात, जंगली जानवरों की मांदें, कलिमञ्जारो की दर्फीली चोटियां और जंगलों में रहने वाले आदिम अफ्रीका-निवासी, ये सब अभी देखने बाकी हैं। न जाने कब किस्मत खींच कर फिर इधर लाएगी और कब हम अपनी अतृप्त वासनाओं को पूरा करेंगे!

मनुष्य की वासनाएं भी क्षितिज के समान हैं। दूर से प्रतीत होता है कि वहां पहुँच कर, उसे पाकर सन्तोष हो जाएगा। परन्तु जब वहां पहुंचते हैं, जब उसे पा लेते हैं कुछ सन्तोष तो प्रतीत होता है पर असन्तोष बढ़ जाता है। आशा और आगे चलने को कहती है। वासना भी चाबुक लगाती है। सन्तोष भी हम से दो कदम आगे मृग-मरीचिका के समान दौड़ता, फिरता दिखाई देता है। इसी दौड़-धूप में दिन ढलने लगता है। शरीर भी थक कर चकना चूर हो जाता है। हम हार मान कर गिर पड़ते हैं। फिर जीवन निशा अपने काले आवरण में हमेशा के लिये हमें सुला देती है।

× × × ×

आज यात्रा का पांचवां दिन है। लगभग आधा रास्ता तै हो गया है। भूमध्य रेखा भी पार कर चुके हैं। शीघ्र ही भारत का किनारा दिखाई देगा। परन्तु अब अधीरता बढ़ने लगी है। स्टीमर की तंग चार-दीवारी काटने को आती है। चारों ओर का अनन्त जल-सागर जो पहले सुन्दर और सरस प्रतीत होता था अब शुष्क और नीरस मालूम होता है। गुजराती "बोसी"का भोजन भी गले के नीचे नहीं जाता। उसमें कभी नमक और कभी हलदी ज्यादह लगती है। रोज़ बेचारे रसोइये को सुननी पड़ती हैं। बैठक (स्मोकिंग रूम) में भी अब वह रौनक नहीं। यात्रियों के चेहरों पर मुरदनी है। वे अधीर हैं कि कब बम्बई पहुँचें और कब मुक्ति हो।

× × ×

अंग्रेज़ी में कहावत है कि "कदम २ करके लम्बी मंज़िल भी ख़त्म हो जाती है।" आख़िर दस दिन बीते। ३००० मीलों का विशाल समुद्र भी समाप्त हो गया। बम्बई का किनारा दीखने लगा। 'पाइलट' (Pilot) ने जहाज़ का चार्ज लिया। स्टीमर धीरे २ कैनाल में से गुज़रा। किनारे पर खड़े दर्शकों ने रूमाल हिलाने शुरू किये। यात्रियों की मुरझाई हुई स्मृति फिर ताज़ा हुई। जहाज़ में मानों नई जान आई। इतने में इमिग्रेशन अफ़सर और डाक्टरों ने अपना काम ख़त्म किया।

सगों—सम्बन्धियों, मित्रों-परिचितों ने मानों स्टीमर पर हमला बोल दिया। कहीं कोई माता-पिता अपने बिछुड़े पुत्र से मिल कर गद्‌-गद हो रहे हैं। कहीं कोई बहिन अपने भाई से। और कहीं कोई पत्नी परदेस से लौटे पिया को प्रेम से निहार रही है। कहीं यार-दोस्त मुद्दत के बाद मिल कर कहकहे लगा रहे हैं और हाथ मिला कर पीठ ठोकते हैं। हम भी मन्त्र मुग्ध से खड़े देख रहे हैं। शायद सोच रहे हैं कि कोई हमारा भी आया होगा। कोई हम से भी हाथ मिला कर कहेगा 'कहो भाई! कैसे रहे?" कहीं किसी ने हमारी प्रतीक्षा में गिन २ कर दिन बिताए होंगे? कहीं किसी ने हमारे वियोग में आधी २ रात नीरव-आकाश में खिल-मिल तारिकाएं देखी होंगी। और कहीं किसी ने स्वप्न में ही हम से मिल कर ... ...।

परन्तु, यह क्या? एक कुली ने कर्कश ध्वनि से कहा "सामान उठाऊं?" "कहां जाओगे?" सुख-स्वप्न टूटा। आंखें मसल कर देखा सब यात्री एक २ करके जा रहे हैं। मुझे भी जल्दी जाना होगा। सामान सम्भाला। टोपी सिर पर रखी और कुछ सोचता हुआ सीढ़ियां उतरने लगा।

बन्दरगाह से बाहर निकला हुआ कि एक मुरदा दिखाई दिया। कुछ मोटे तोन्द वाले उसे कन्धों पर उठाए लिए जा रहे थे। हठात् स्मरण आया—चार वर्ष पूर्व का वह दिन जब मैंने भी अपनी स्त्री और बच्चे को जो क्वेटा-भूचाल की लपेट में आ गए थे, इसी तरह कन्धों पर उठा कर श्मशान-भूमि छोड़ आया था। तबसे

मैं अकेला हूँ, बिल्कुल अकेला। शहरों में जाता हूँ। बाजारों में घूमता हूँ। लेकिन फिर भी अकेलापन-सूनापन नहीं जाता। चाहता हूँ कोई साथी मिले। पर "पर"। शायद मिलेगा। कहां ? क्षितिज के उस पार। वहीं! वहीं!!

स्वास्थ्य समाचार

ब्र० वय नन्द २य श्रेणी विषमज्वर, सूर्यप्रकाश २यश्रेणी विषमज्वर, वेदव्रत २य श्रेणी उदरशूल, भामसेन ३य श्रेणी श्लेष्मज्वर, श्यामस्वरूप १म श्रेणी गला, गत सप्ताह ये ब्रह्मचारी बीमार हुए थे, अब सब स्वस्थ हैं।

आजकल दुपहर पर्याप्त गर्मी हो जाती है। गत सप्ताह गुरुकुल भूमि में अधिकतम तापमान १०६° फा तथा न्यूनतम तापमान ८०° फा. रहा। पिछली रात्रि कुछ ठंड हो जाती है।

ब्र० का स्वास्थ्य अच्छा है। महाविद्यालय के तीन ब्र० को टाइफायड है। परन्तु अब उन्हें आराम हो रहा है। आशा है कि इस सप्ताह स्वस्थ हो जावेंगे।

लाहौर से श्री डा० धर्मवीर जी ने गुरुकुल पधार कर ब० का दो दिन स्वास्थ्य निरीक्षण किया। उनकी सम्मति में यहां के ब्र० का स्वास्थ्य अच्छा है, टोंसल की शिकायत के लिए विशेषज्ञ, तथा साधारण स्वास्थ्य की उन्नति तथा भोजनादि पर अपनी अमूल्य सम्मति देकर सबको लाभ पहुंचाया।

गुरुकुल समाचार

गर्मी दिनों दिन भीषणता धारण करती जारही है दोपहर को तेजी से लू चलती है। गुरुकुल की विभिन्न वाटिकाओं में लगाये गये पौधों की विशेष परवरिश की जा रही है, जिससे वे गर्म मौसम के शिकार न बन जायें। यद्यपि दिन में खूब गर्मी पड़ती है तथापि रात्रि के अन्तिम प्रहर में इतनी ठंड होजाती है कि बिना कम्बल ओढ़े गुजारा करना कठिन हो जाता है।

ब्रह्मचारियों की पढ़ाई नियम पूर्वक हो रही है। और महाविद्यालय में विद्यार्थियों की संख्या १०२ हो गई है। विगत सप्ताह ११ वीं १२वीं, १३वीं श्रेणियों का वार्षिक-परीक्षा का परिणाम प्रकाशित हो गया। अत्यन्त हर्ष की बात है कि इस बार महाविद्यालय की सारी श्रेणियों में कोई भी परीक्षार्थी अनुत्तीर्ण नहीं हुआ और परिणाम सन्तोष जनक रहा।

मान्य अतिथि—विगत १६ मई को लाहौर से डा० धर्मवीर जी एफ० आर० सी० एस० गुरुकुल पधारे। आपने अनेक वर्ष तक यूरोप में रह कर ज्ञानार्जन किया था और इस देश में भी आपने बहुत ख्याति प्राप्त की है। गुरुकुल शिक्षा पद्धति को देखने के लिये ही आप यहाँ पधारे थे। आपने सब विभागों का बड़े मनोयोग पूर्वक अवलोकन किया और परम सन्तुष्ट हुए। बुधवार को १० बजे दिन को आपने एक अत्यन्त उपयोगी व्याख्यान स्वास्थ्य के सम्बन्ध में दिया। अनेक ब्रह्मचारियों और प्रोफेसरों ने कई मनोरंजक प्रश्न पूछे जिनका आपने रोचक उत्तर दिया। बुधवार को रात्रि की गाड़ी से आप विदा हुए।

[दूसरे पृष्ठ ३ का शेष]

फ. मैसी तीन मील दूर है।

अब मैं समझ सका था कि यह संस्था 'वैदिया, ही तैयार करती है। यहां के स्नातक या तो शिक्षक हो सकते हैं और वे भी ऐसे गुरुकुलों में ही अथवा वेद का प्रचार करने निकल पड़ते हैं इन दोनों कामों के सिवाय समाज के लिये उपयोगी हो सकें ऐसा कोई भी काम करने की उन्हें शिक्षा ही नहीं मिलती। उनके योग क्षेम का प्रश्न तो उपस्थित ही रहता है। हिन्दुस्तान के सम्पादक श्री सत्यदेव जी विद्यालंकार, प्रो० प्राणनाथ, पंडितजयचन्द्र और अभी Paris से डी लिट् की पदवी लेकर आये हुए डा० सत्यकेतु इन सब ने अपनी विशेष योग्यता गुरुकुल की बाड़ में से बाहर निकल कर अपने पुरुषार्थ द्वारा ही प्राप्त की है। स्नातकों के लिये C……जैसा कुछ भी नहीं है। इस लिये स्नातक होने के बाद फिर सरकारी युनिवर्सिटियों की मैट्रिक की परीक्षा में बैठकर कितने ही स्नातकों ने गुरुकुल के गौरव को धक्का पहुंचाया है। लेकिन और हो क्या? जवान हृदय को महत्वकांक्षाएँ होती हैं, संसार में आगे बढ़ने की इच्छा होती है, पांच पैसे पैदा करके आराम से जिन्दगी बिताने की अभिलाषा भी होती है और गुरुकुल की शिक्षा उनके सम्पूर्ण आगे बढ़ने के रास्तों को बन्द कर देती है। पत्रकारित्व, व्यापार, कायदा, कृषि, एन्जिनियरिंग इनमें से किसी भी सीढ़ी पर पैर रखने के लिये गुरुकुल उन्हें तैयार नहीं करता। तो वे फिर मैट्रिक न करें तो क्या करें? आचार्य देवशर्मा भले ही नाराज़ हों लेकिन अकेली भावना पर सब लोग थोड़े समय के लिये भी जी नहीं सकते। जीवन मार्ग निश्चित करने के लिये भावनाओं के सिवाय आर्थिक परिस्थितियाँ भी विशेष भाग लेती हैं। लंकाशायर के मिल मजदूरों के शरीर पर जापान के कपड़े क्यों देखने में आते हैं? क्योंकि वे सस्ते हैं।

सन् १९३३ के साल में सहारनपुर जिले के हरिजनसेवक संघ के कार्य वाह के रूप में, मेरा गुरुकुल कांगड़ी में बहुतबार आना जाना होता था। क्योंकि हमारे जिले के प्रमुख प्रो० विश्वनाथ वहां के एक अध्यापक हैं। मैंने देखा कि सन्ध्या हवन के लिये समाज इतना ज्यादा आग्रह रखता है वह संध्या हवन अध्यापकों के खानगी निवास में मैंने नहीं देखा। मैं समझता हूं नियम पूर्वक किये जाने वाले कर्म-काण्ड कभी सफल नहीं होते। परन्तु आर्य समाज इस विषय में विचार करे तो अच्छा है। विद्यार्थी में इन दोनों कर्मों के सम्बन्ध में उपेक्षा करने लगा है यह होता ही चाहिए। स्वदेशी के विषय में अध्यापक स्त्री-बच्चे लगभग सब अराष्ट्रीय हैं लेकिन उसके लिये तो समाज की अप्रवृत्ति ही दोष पाती है। देवशर्मा जी को निमन्त्रण पत्रिका में लिखना पड़ता है कि 'अधिक नहीं तो गुरुकुल के उत्सव के तीन दिनों में तो सब खद्दर पहनें' यह क्या कम शोचनीय है? और ब्रह्मचर्य की बात ही क्या? प्रोफेसरों के घरों में बरस डेढ़ बरस में नये-नये बालक पैदा होते हैं और उन्हें 'ब्रह्मचारी' देखते हैं तो उनके मन में क्या २ विचार न आते होंगे?

चौधरी दुलारराय के प्रबन्ध से गुरुकुल प्रेस गुरुकुल कांगड़ी में मुद्रित तथा प्रकाशित।

* ओ३म् *

"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत" Reg. No. A. 2927

गुरुकुल

सम्पादक—साहित्यरत्न पं० हरिवंश वेदालङ्कार

एक प्रति का मूल्य -) [गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख-पत्र] वार्षिक मूल्य २||)

वर्ष ४] गुरुकुल काङ्गड़ी, शुक्रवार १२ ज्येष्ठ १९९६; २६ मई १९३९ [संख्या ४

उड़ीसा के माननीय प्रधान मन्त्री गुरुकुल में—

गत २२ मई को उड़ीसा के प्रधान मन्त्री श्री विश्वनाथ दास जी प्रातः ९ बजे तपस्वी वेश में गुरुकुल में पधारे। गुरुकुल विश्वविद्यालय के उपाध्यायों और विद्यार्थियों ने आपका बड़े उत्साह से शानदार स्वागत किया। विश्वविद्यालय के बैण्ड बाजे के साथ आपका जलूस निकाला गया और रास्ते भर फूलों व मालाओं से स्वागत किया गया। रास्ते के दोनों ओर पुष्पभार से लदे हुए वृक्षों ने भी मूक-वाणी से आपका भरपूर स्वागत किया। जलूस की समाप्ति पर आप आतिथ्य भवन में गये। ११॥ बजे महाविद्यालय के ब्रह्मचारियों का निमन्त्रण स्वीकार कर आप उनके भंडार में गये और भोजनोपरान्त वहां की उचित व्यवस्था और स्वच्छता देखकर परम प्रसन्न हुए। इसके बाद आपने गुरुकुल के अन्य सब विभाग भी बड़े मनोयोग पूर्वक एक के बाद एक करके देखे और बड़े प्रसन्न तथा प्रभावित हुए। दो बजे समस्त कुलवासियों की सभा में आपको मानपत्र दिया गया। अभिनन्दन पत्र दिये जाने से पूर्व आपके स्वागत में श्री आचार्य जी ने निम्न शब्द कहे —

"जिन माननीय अभ्यागत के स्वागत और सम्मान के लिए आज हम सब कुलवासी एकत्रित हुवे हैं, वे यद्यपि अपने जीवन में पहली बार ही आज इस कुल में पधारे हैं तो भी उनमें कुछ भी अजनबीपन मुझे नहीं लगता है। ऐसा मालूम पड़ता है कि वे न जाने कब के हमारे परिचित हैं। यह क्यों है? इसका कारण मेरा हृदय ढूंढता है तो यह समझ में आता है कि उनके हमसे दूर रहते हुए भी उनके साथ हमारी कोई एकता है। ऐसा मालूम पड़ता है कि जिसकी तलाश में हम यहां इस गुरुकुल में ३७ वर्ष से तपस्या कर रहे हैं, उसी की तलाश उनका हृदय भी किसी और रूप से यहां से दूर रहते हुए भी करता रहा है।

अब से पहले दो बार उनसे भेंट करने का मुझे सुअवसर मिला है। सवा वर्ष से अधिक हुआ, गत वर्ष उड़ीसा के डेलांग नामक स्थान पर जो गांधी सेवा-संघ का सम्मेलन हुआ था तब वहां इन्हें एक स्वयंसेवक की सी सादगी और नम्रता से आवश्यक काम करते हुए, लोगों में मिलते जुलते हुए देख कर प्रसन्नता होती थी। शासक और शासित में जो एक बड़ी भारी खाई समझी जाती है और होती है वह इनके सम्बन्ध में सेवा द्वारा पाट दी गई है; ऐसा अनुभव होता था। इससे भी पहले कई वर्ष हुवे जब वर्धा में, गान्धी जी के सभापतित्व में शिक्षा—सम्मेलन में गया हुआ था, तब इनका प्रथम साक्षात्कार हुआ था। आप सब यह जानते ही होंगे कि आप उड़ीसा के प्रधानमन्त्री ही नहीं हैं किन्तु शिक्षामन्त्री भी हैं उस सम्मेलन में आपने जो भाषण दिया था, उसमें भी आपने गुरुकुल का जिक्र किया था। इससे पहले अपने प्रान्त में ही दिये हुए आपके एक दो भाषणों में गुरुकुल शिक्षापद्धति का और कभी जाकर गुरुकुल देखने का जो वर्णन किया था, उससे तो हम सब परिचित हैं ही। तभी से हमने आपके साथ आत्मीयता का अनुभव करना शुरू कर दिया था। वर्धा-सम्मेलन की समाप्ति पर मैंने आपकी सेवा में गुरुकुल का वह अङ्क भेंट किया था जिसमें गुरुकुलीय शिक्षा-पद्धति की दृष्टि से हमारी कांग्रेसी सरकारें किन बातों को स्वीकार कर सकती हैं, इस विषय पर लेख प्रकाशित हुआ था। इस भेंट को आपने उस समय प्रेमपूर्वक स्वीकार किया था और अपनी इस इच्छा को दोहराया था कि मैं कभी गुरुकुल में आना और उसे देखना चाहता हूँ।

दो तीन दिन हुए जब अखबारों से हमें यह मालूम हुआ कि आप शिमला जा रहे हैं और गुरुकुल भी पधारेंगे, तो मैंने सोचा कि अब हमारी इच्छा और उनका वायदा पूरा होगा। इच्छा हुई कि आपको तार देकर निमन्त्रण दिया जाए और कब आ रहे हैं यह पूछा जाए; पर तार कहां देते? और आप बिना बताए ही आना चाहते थे। आपसे बात करने पर पता लगा कि अखबारों में जो आपके गुरुकुल में आने की खबर छपी थी, वह आपकी तरफ से नहीं दी गई थी। इसी लिए आज

स्टेशन पर मैंने आपसे कहा था कि आप अपने यहां 'अतिथि' हैं; क्योंकि बिना निमन्त्रण के ही आ गए हैं।

जब मैंने देखा कि उड़ीसा के प्रधानमन्त्री "मैं गुरुकुल देखना चाहता हूं" यह कहते हुए सन्मुख आ रहे हैं तो मैं सोचने लगा कि गुरुकुल में उन्हें क्या दिखाऊंगा। ये गुरुकुल में क्या देखेंगे। यहां के ये स्थान और मकान ये तो गुरुकुल नहीं हैं। ब्रह्मचारियों और शिक्षकों में क्या उन्हें क्या दिखाया जावे? असली गुरुकुल उन्हें कैसे दिखाया जाय? गुरुकुल क्या है? फिर ख्याल में आता था जिसको गुरुकुल से इतना प्रेम है, उसका हृदय छिपे हुए गुरुकुल को भी देख ही लेगा?

असली बात यह है कि यह भारत देश खास तौर से पिछली आधी शताब्दि से उत्तरोत्तर अन्तर्मुख होता हुआ अपने प्राचीन गौरव को फिर से प्राप्त करने की चेष्टा कर रहा है और वह अपनी चेष्टा में कुछ सफल भी हुआ है। इसी का परिणाम है कि आज हम देखते हैं कि हमारे मान्य अतिथि से--ऐसे पुरुष जो कभी बड़े खराब खतरनाक और जेल में डाले जाने लायक समझे जाते थे उनके ही हाथ में विदेशी सरकार के द्वारा शासन की बागडोर किसी अंश तक दे दी गई है। उसी प्रकार की एक और साधना और शायद उससे और भी आवश्यक साधना इस कुल में—अब से ३० वर्ष पूर्व एक पागल कहे जाने वाले क्रान्तदर्शी पुरुष ने अन्तर्मुख होकर यह देखा कि भारत अपने प्राचीन आत्म गौरव को फिर से प्राप्त करे, इसके लिए भी यह आवश्यक है कि भारतीय संस्कृति का पुनरुद्धार किया जावे और इस संस्कृति की आवश्यक रूप से आधारभूत होने वाली उस शिक्षा-प्रणाली का प्रारम्भ किया जावे जिसका कि प्राचीन नाम "गुरुकुल" है। गुरुकुल शिक्षा प्रणाली इसके सिवाय और कुछ नहीं है कि जिसमें गुरु का उच्च कोटि का होना आवश्यक है, जिसमें गुरु और शिष्य एक पवित्र आध्यात्मिक सम्बन्ध द्वारा जुड़ते हैं; ब्रह्मचर्य जिसका प्राण होता है, तथा भारतीय (वैदिक) संस्कृति से बना हुआ जिसका शरीर है। अपने महान् संस्थापक के इन चारों आदर्शों को लेकर हम यथाशक्ति आगे बढ़ने का यत्न कर रहे हैं—बस यही गुरुकुल है।

भारत की अपने प्राचीन आत्म गौरव को फिर से प्राप्त करने की प्रेरणा का और गुरुकुल का इस प्रेरणा का अन्दर-अन्दर से एक घनिष्ठ सम्बन्ध है। बाहिरी तरफ से तो गुरुकुल का यह महान् कार्य चारों तरफ की (बाह्य संसार का ही नहीं किन्तु अपने भारत देश की ही) कितनी विपरीत परिस्थितियों में किया जा रहा है इस बात को कोई भी देखने वाला हमारे चेहरों को देखकर जान सकता है। हमारे चेहरे जहां यह प्रकट करते हैं कि हम लगातार एक संघर्ष में से गुजर रहे हैं, वहां हम ये चेहरे शायद आत्म-विश्वास, अपने आदर्शों में श्रद्धा और सतत आगे बढ़ते जाने की भी गवाही देते होंगे। यही सब कुछ है जिसे जीवित जागृत रूप में दिखाने के लिये हम आज अपने मान्य अतिथि के सामने रख सकते हैं। उत्कल के इन यशस्वी नेता को—गुरुकुल के इन मित्र को—मैं जो कुछ समझ सका हूं वे एक सच्चे आदर्शवादी हैं, आन्तरिक भाव से काम करने वाले हैं, बड़े भावुक हैं, प्रेम करने वाले हैं, भक्त हैं—और उनमें एक प्रकार की मस्ती है। इसके साथ ही इन्हें वे ही आदर्श आकृष्ट कर रहे हैं, मुग्ध कर रहे हैं जिनकी उपासना करने के लिए हम कुल के रूप में इकट्ठे हुये हैं। यही बन्धन है जो इन्हें हमारे साथ जोड़ता है। बेशक हम सब कुलवासी कुलसेवक उनको अपनी तरफ से एक अभिनन्दन-पत्र पेश करेंगे। पर यह अभिनन्दन पत्र एक तुच्छ वस्तु है। वे जो कुछ हमसे चाहते हैं मांगते हैं, वह भी वे अपने भाषण में बतलायेंगे। उनको देना, उसको पूरा करना ही उनका असली अभिनन्दन होगा। इसलिए मैं उनसे प्रार्थना करता हूँ कि वे अपने भाषण द्वारा जहां हमें अपने इस कठिन कार्य को करते जाने के लिए उत्साहित करेंगे वहां वे यह भी बतलाने की कृपा करेंगे कि हमारी कहां क्या त्रुटि है, कहां हमें क्या संशोधन करना चाहिए, किस जगह कैसे हमें संभलना चाहिए। उनसे यह सब बतलाये जाने की आशा करता हुआ मैं सब कुलवासियों की तरफ से इस कुल सभा में फिर एक बार अपने अभिनन्दनीय अभ्यागत का हार्दिक स्वागत करता हूँ।

इसके पश्चात् कुलमन्त्री ने अभिनन्दन पत्र पढ़ा, जिसका उत्तर प्रधानमन्त्री ने सबको सम्बोधित करते हुए इस प्रकार दियाः—

आचार्य जी, उपाध्याय वृन्द और ब्रह्मचारियो!

मेरा यह परम दुर्भाग्य है, और मुझे इसके लिये अफसोस है, कि मैं एक ऐसी भाषा में आपके सामने अपने विचार उपस्थित कर रहा हूं जो न आपकी है और न मेरी है। मुझे इस बात का और भी अधिक अफसोस है कि मैं आपके द्वारा और फिर हिन्दी भाषा में, दिए गए एक मानपत्र का विदेशी भाषा में उत्तर दे रहा हूं। और फिर आप यहां पर जो गुरुजन और ब्रह्मचारीगण एकत्र हैं वे सब हमारी प्राचीन सभ्यता संस्कृति के सन्देश वाहक हैं। आपको कुछ भी कहने में मैं अपने आपको असमर्थ पाता हूं। मैं आपके प्रेम, सौजन्य और स्वागत से भी अभिभूत हो गया हूं, अतः कुछ कहना कठिन प्रतीत होता है। लेकिन फिर भी दो चार शब्द आपकी सेवा में कहूंगा।

मैं आपके गुरुकुल को एक पवित्र तीर्थस्थान समझता हूं, और यह मेरा खुश किस्मती है जो आज यहां आने का अवसर प्राप्त हुआ है। मुझे अपने वे दिन भली भांति स्मरण हैं जब मैं आपके गुरुकुल से प्रकाशित होने वाली Vedic Magazine का नियमित पाठक था। इसमें मैं आपके महान् और पूजनीय आचार्यों के लेख पढ़ता था। मुझे मानना चाहिये कि उनका मेरे ऊपर बड़ा प्रभाव पड़ा। उन लेखों ने मेरे अन्दर आस्था को पैदा किया और अनेक बुराइयों को दूर किया। मैं सोचता हूं कि जब मेरे ऊपर लेखों का इतना प्रभाव हुआ तो आप ब्रह्मचारियों पर अपने गुरुजनों का कितना अधिक प्रभाव होता होगा जिनके सतत सम्पर्क में रहने का आपको सौभाग्य प्राप्त है।

मित्रो, आपका उत्तरदायित्व महान् है। आप जिस परिस्थिति और जिस युग में रह रहे हैं उसने आपके उत्तरदायित्व को और अधिक महान् बना दिया है। स्वर्गीय स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज ने इस संस्था की स्थापना रोटी की समस्या हल करने के लिये नहीं की थी, अपितु उनका उद्देश्य भारतीय संस्कृति का पुनरुद्धार और प्रचार था। वे इस संस्कृति का पुनरुद्धार केवल भारतवर्ष के लिये नहीं चाहते थे, जो कि सब धर्मों की जन्म भूमि है; अपितु विश्वमात्र के लिये चाहते थे। हमारी संस्कृति सदियों पुरातन है। स्वामी जी ऐसी संस्था स्थापित करना चाहते थे जो अन्धकार में मानव समाज को इस संस्कृति-मसाल को लेकर पथ-प्रदर्शन करे।

मैं देखता हूं कि बहुत से भारतीय अपनी पुरातन संस्कृति के पतन को देखकर अपनी संस्कृति पर ही शर्मिन्दा हैं। मैं उनमें से नहीं हूं। उत्थान और पतन तो काल का क्रम है। एक समय था जब कि भारतीय सभ्यता और ज्ञान विज्ञान न केवल भारत या बृहत्तर भारत तक फैले हुए थे अपितु सारा संसार उसमें द्योतित था। हमारा देश एक समय संसार का धर्म गुरु था। हमारी सभ्यता के अवशेष दूर २ देशों में प्राप्त हुए हैं। यह काल का फेर है कि हम गिर गए। लेकिन इससे शर्मिन्दा होने या अपनी सभ्यता को हीन समझने की क्या बात है! इसी अपने पुराने आदर्श का पुनरुद्धार करने में स्वामी जी महाराज ने अपना जीवन, अपनी शक्ति लगाई थी। यह संस्था उनके इसी प्रयत्न का मूर्त रूप है। इसीलिये मैं कहता हूं कि आप जो लोग यहां एकत्र हैं उनका महान् उत्तरदायित्व है। बाहिर के कालेजों में शिक्षा प्राप्त नवयुवक तो Byproducts हैं।

आप लोगों का उत्तरदायित्व इस लिए भी महान् है क्योंकि बाहिर निकल कर आपने ऐसी दुनियां का सामना करना है कि जिसमें आज असत्य और हिंसा का ताण्डव नृत्य हो रहा है। आज की सभ्यता विनाशक और एक दूसरे का गला काटने वाली है। अन्तर्राष्ट्रीय व्यवहार और राजनीति में सत्य और अहिंसा का स्थान नहीं रहा है। ऐसे निराशापूर्ण जगत् में इस संस्था के आचार्यों, गुरुओं और स्नातकों को भारतीय सभ्यता और आशा के सन्देशवाहक का कार्य करना है। स्वामी श्रद्धानन्द जी और उनके बाद महात्मा गांधी जी इसी संस्कृति के अग्र दूत कहे जा सकते हैं। मुझे यह जान कर प्रसन्नता हुई कि आपने एक साथ अपने पाठ्यक्रम में गांधीवादी अर्थशास्त्र और फिलासफी को स्थान दिया हुआ है। आपको अपनी उपज को एक खतरनाक संसार में पेश करना है। मैंने आपको मार्ग में आने वाली कुछ बाधाओं से सावधान किया है और चेतावनी दी है। मुझे विश्वास है कि आपके अन्दर जो बुनियाद आपके आचार्यों ने डाली है उसके आधार पर आप इन बाधाओं पर विजय प्राप्त करोगे।

एक बात मैं और कहना चाहता हूं। आपके आचार्यों की तरह मैं प्राचीन धर्मशास्त्रों का कोई विद्वान् नहीं हूं। लेकिन थोड़ा बहुत मैंने इनको जो देखा है उससे मुझे एक विचित्र बात मालूम होती है। वेदों से लेकर पुराणों तक हमारे प्राचीन धर्मशास्त्रों में कहीं पर मनुष्य के अधिकारों और दावों की परिभाषाएं नहीं मिलतीं। सम्भवतः हमारे ऋषि इनकी आवश्यकता को नहीं समझते थे। वे इसके खतरों को जानते थे। उन्होंने अधिकारों के स्थान पर मनुष्य के उत्तरदायित्व और कर्त्तव्यों पर बल दिया है। उन्होंने गुरु-शिष्य, पिता-पुत्र पति-पत्नी, राजा-प्रजा के कर्त्तव्यों पर बल दिया है, लेकिन इनके अधिकारों पर नहीं, क्योंकि यह संघर्ष की जड़ है। उनका यह उपदेश, उनकी यह शिक्षा महान् और श्रेष्ठ है। यदि मनुष्य अपने कर्त्तव्यों पर ही ध्यान दे तो सब कार्य संसार में अपने स्थान पर समानान्तर रूप से चलते रहें। उनमें संघर्ष की गुञ्जायश ही नहीं रहती यह सबक मैंने अपने शास्त्रों से सीखा है।

हम देखते हैं कि पश्चिम में सब लोग अपने अधिकारों पर बल देते हैं, कर्त्तव्यों पर नहीं। उनकी राजनीति, अर्थ शास्त्र, समाज शास्त्र फिलासफी—सबका यही आधार है। पिता-पुत्र, पति-पत्नी गुरु-शिष्य, राजा-प्रजा—सबके सम्बन्ध अधिकारों को लेकर हैं। इसलिए पश्चिमी देशों में संघर्ष है। यह तो वहां की सभ्यता का अनिवार्य परिणाम है। वहां राष्ट्रों में, जातियों में, नागरिकों में सर्वत्र संघर्ष दृष्टिगोचर होता है। वहां हज़ारों कानूनों के बावजूद कभी भी शान्ति स्थापित नहीं हो सकती? यह आदर्शों का भेद है।

हमारी फिलासफी, विचार और आदर्श भिन्न हैं। हमें अपने कर्तव्यों पर ध्यान देना है, अधिकारों पर नहीं। हिन्दुओं के घर में पति-पत्नी का जो सुन्दर और प्रेममय सम्बन्ध होता है वह संसार में अन्यत्र कहीं दृष्टि गोचर नहीं हो सकता। इस आदर्श सभ्यता को विश्वव्यापी बनाने का दायित्व आप के कन्धों पर है। इसे आप अपने कुलपिता स्वामी जी महाराज की वसीयत समझें। आप लोगों ने विश्व के नागरिक बनना है। विश्व का परोपकार आपका ध्येय होना चाहिये। इस पर तुमको गर्व होना चाहिये कि तुम्हें यहां गुरुकुल में रह कर इसकी तैयारी का अवसर मिल रहा है। इसे अपना विशेषाधिकार समझो। इस बात को कभी विस्मृत मत करो कि आपने अपनी मातृभूमि को दासता के बन्धन से मुक्त कराना है। हिंसा से नहीं, अहिंसा से। उन लोगों के प्रभाव से अपने को स्वतन्त्र करना है जिनको अहिंसा पर विश्वास नहीं है, जिनके साम्राज्य की भित्ति हिंसा पर खड़ी है।

मित्रो, आपने अपने मान पत्र में उत्कल प्रांत के लिये कुछ कृपापूर्ण शब्द कहे हैं। इनके लिये मैं आपका आभारी हूँ। मैं तो दरअसल एक निर्धन प्रान्त का प्रतिनिधि हूँ। उत्कल प्रान्त अंग्रेजी हकूमत के प्रारम्भ से ही उपेक्षित रहा है। इसकी दुर्दशा और दरिद्रता का वर्णन करने की जरूरत नहीं। एक समय था जब कि उत्कल भी उन्नति के शिखर पर था। १६ वीं सदी में इसने मुगल बादशाहों

(शेष पृष्ठ ९ पर)

गुरुकुल

१३ ज्येष्ठ शुक्रवार १९९६

"स्वामी सेवानन्द जी के लेख पर विचार"

(१) हमारी कठिनाईयां

स्वामी सेवानन्द जी के कथन की सद्भावना से लेते हुये जो बात प्रारम्भ में मैं कहना चाहता हूं, वह यह है कि गुरुकुल का कार्य इतने ऊंचे लक्ष्य से शुरु किया गया है कि उसे दूसरे लोगों को अभी एक परस्पृ के रूप में ही देखना चाहिये। इसलिये जैसे एक चित्रकार अपना अभीष्ट चित्र बनाना प्रारम्भ करते समय इधर-उधर इस तरह से अपनी तूलिका को चलाता है कि उसको देखने वाला कोई अनजान पुरुष उससे यही अन्दाज़ करेगा कि इन धब्बों से यह अमुक प्रकार का चित्र कैसे बन सकता है, यद्यपि जानने वाला आदमी उस चित्र की प्रारम्भिक अवस्था को देख कर उस प्रकार विकल नहीं होवेगा। गुरुकुल को चलते ३७ वर्ष बीत जाने पर भी अभी यह प्रारम्भिक अवस्था में ही है और यद्यपि इसे देखने आने वाले नाना प्रकार के लोग अपनी नाना प्रकार की दृष्टियों से इसे देखते और अपनी अपनी आलोचना करते रहेंगे; तोभी असली बात यह है कि गुरुकुल का चित्र अभी पूरा होने को है। इसलिये जो लोग जानकार हैं वे ही गुरुकुल की भावी पूर्णता को अपने ध्यान में रखकर इसकी वर्तमान आकृति को समझ सकते और इसका उचित मूल्य प्रदान कर सकते हैं।

आख़िर सेवानन्द जी ने अपने लेख में मुख्यतया दो ही बातें कही हैं। पहली बात है कि वर्तमान गुरुकुल स्वामी श्रद्धानन्द का गुरुकुल नहीं रहा है, जैसा कि यह उस पार में था। यह उन्होंने एक आदर्शवाद की बात कही है। दूसरी बात उन्होंने कहा है कि यहां का शिक्षण विद्यार्थियों को वर्तमान संसार के योग्य नहीं बनाता, उनका Career नहीं बनाता अर्थात् ठीक प्रकार शिक्षित नहीं करता। यह व्यवहारिक वाद की बात हुई। आदर्शवाद और व्यवहार वाद दोनों ही अपने अपने स्थान पर ठीक होते हैं परन्तु न जाने क्या स्वामी सेवानन्द जी ने, जो आदर्शवाद का विषय है उसे व्यावहारिकता की दृष्टि से देखा है और जो व्यावहारिकता का विषय है उसे आदर्शवाद की दृष्टि से। मानो उन्होंने गुरुकुल के चित्र को एक खास स्थान पर खड़े होकर एक पार्श्व से और वह भी आंखों को संकुचित करते हुये देखा है। गुरुकुल विषयक उनके वर्णन से मुझे यही प्रतीत हुआ है।

हम भी आदर्शवाद की दृष्टि से अब भी गुरुकुल के उस पार जा सकने की बातें करते हैं और सच्चे दिल से करते हैं; पर इसके अव्यावहारिक होने के कारण चुप हो जाते हैं। उस पार के मकान बहुत से कच्चे थे, कुछ पक्के थे; यह भेद तो था; पर स्थापत्यकला की दृष्टि से तो इधर के मकानों में और उन पुराने मकानों में कोई भेद न था। रेल यदि वहां नज़दीक आ सकती तो उससे स्वामी श्रद्धानन्द जी को भी खुशी होती। हमें याद है जब हम पुराने गुरुकुल में बालक थे तो एक बार यह ख़बर उड़ी थी कि चण्डी की तरफ से गंगा पर पुल बनेगा और गुरुकुल तक रेलवे लाइन हो जायगी। तो इस सम्भावना पर सभी ने खुशी मनाई थी क्योंकि तब भी व्यावहारिक दृष्टि से ऐसा होना अच्छा ही समझा जाता था। इसी तरह लेखक महोदय मेरे इस आदर्शवाद की बेशक आलोचना करें कि मैं दुनयावी दृष्टि से स्नातकों के भविष्य को वर्तमान जगत् की दृष्टि से बरबाद नहीं करता (यद्यपि यह बात भी ठीक नहीं है) तो भी मैं उनका ध्यान खींचना चाहता हूं कि गुरुकुल विद्यालय के जिन तत्कालीन मुख्याध्यापक श्री विश्वम्भर सहाय जी की सेवानन्द जी ने भी स्तुति की है वे भी एक आदर्शवादी व्यक्ति थे और इसीलिये वे गुरुकुल में एक सफल मुख्याध्यापक थे।

छोटे ब्रह्मचारियों को कर्त्ता, कर्म का ज्ञान नहीं था और अंग्रेज़ी भी संस्कृत जैसी ख़राब थी, यह भी कुछ दृष्टि का भेद है। शायद सेवानन्द जी का भी इससे यह मतलब नहीं कि गुरुकुल के बालक संस्कृत और अंग्रेजी के पाठ्यक्रम में निर्धारित योग्यता प्राप्त करते ही नहीं हैं, क्यूं कि सभा से नियुक्त दो निरीक्षकों के अतिरिक्त उनकी पढ़ाई के निरीक्षण के लिए और कई साधन भी बर्ते जाते हैं। बाहिर के और पुरुष भी निरीक्षण करते रहते हैं। इसलिये यदि कभी किन्हीं बालकों की पढ़ाई में कोई वस्तुतः त्रुटि होती है तो वह अस्थायी होती है और पूरी हो जाती है। और यह भी जानने की बात है कि कर्मकर्त्ता के ज्ञान से लेखक का मतलब इन शब्दों के ज्ञान से है या इस विषय से।

छोटे ब्रह्मचारी सुस्त निर्जीव हैं, इस विषय में जिस प्रकार काका साहिब कालेलकर का सेवानन्द जी से मतभेद है, उस तरह और न जाने कितनों का मतभेद होगा, क्यूंकि इस प्रकार की शिकायत अभी तक किसी और से हमने नहीं सुनी। अभी जो उड़ीसा के प्रधानमन्त्री गुरुकुल में आये, तो वे हमारे बिना पूछे ही कई बार यह बात कहते रहे कि आपके छोटे ब्रह्मचारी मुझे बहुत ही अच्छे खुश और सजीव लगते हैं। दूर दूर से, देश के कोने कोने से माता-पिताओं को छोड़कर आये विद्यार्थियों को इतना प्रसन्न और आनन्द से काम में लगे हुये देखकर इस बात का वर्णन करने की इच्छा उन्हें कई बार हुई। यह भी नहीं कहा जा सकता कि इस प्रकार के सब लोग हमें खुश करने के लिये ही अपनी ऐसी राय प्रकट करते हैं। मुझे गुरुकुल के बड़े ब्रह्मचारियों के विषय में तो कभी २ यह शिकायत होती है कि वे निरुत्साह अप्रगतिशील, कुछ नया काम करने के लिये सुगमता से न तय्यार होने वाले हो जाते हैं। पर छोटे बालकों के विषय में ऐसी शिकायत मुझे कभी नहीं हुई। मेरा

मतलब यह है कि उनको हमारे छोटे बालक ऐसा क्यों दीखे—यह मेरे लिये कुछ अधिक जानने की बात है।

पुस्तकों, पत्र-पत्रिकाओं का संग्रह आदि गुरुकुल में वैसा न होने का कारण जैसा कि सेवानन्द जी चाहते हैं—कुछ अंश में वही है जिसे किकाका साहिब के शब्दों में इस प्रकार कह सकते हैं कि हमारी शिक्षा का ध्येय ऐसे व्यक्ति तय्यार करना है जो गौओं के समान दूध दे सकें चाहे वे घुड़दौड़ में घोड़ों के समान दौड़ न सकें। साथ ही इसका गौण कारण अर्थ संकोच भी होता है।

हमारी दोहरी कठिनाई यह है कि एक तो हमारी साधना के वर्तमान बाह्य जगत् में विपरीत प्रकार की होने के कारण बाह्य जगत् में धन आदि सहायता हमें वैसी नहीं मिल सकती जैसे कि समयसेवी लोगों या संस्थाओं को मिलती है। पर उस पर भी जहां हमें आलोचक भी विपरीत दृष्टि से देखने वाले मिल जाते हैं, तो हमारी कठिनाई और भी बढ़ जाती है।

(२) ग़लत और भ्रमात्मक बातें

सेवानन्द जी ने लिखा है कि महाविद्यालय के छात्रावास में उन्होंने स्प्रिंग वाले लोहे के तख्तपोश देखे। पर मालूम नहीं कि उन्होंने वे स्प्रिंग वाले तख्तपोश कहां से देख लिये! किस भ्रम से देख लिये? महाविद्यालय के छात्रावास में तो ऐसी कोई स्प्रिंग वाली लोहे की खाट है ही नहीं, पर परिवार गृहों में भी ये कहीं नहीं मिलेंगी।

गुरुकुल के विज्ञान मन्दिर के सामान को उन्होंने High School के विज्ञान के सामान से भी कम देखा है, या तो उन्होंने इसके एक अंश को देखा है, या उच्च रसायन के लिये (गुरुकुल महाविद्यालय में अब कुछ वर्षों से रसायन नहीं किन्तु औद्योगिक रसायन Industrial chemistry पढ़ायी जाती है। विषय का यह परिवर्तन स्नातकों की भविष्य की दृष्टि से ही किया गया है) कितने विद्यार्थियों के लिये कितना सामान चाहिए, इसका उन्हें अन्दाज़ नहीं है। एक बार एक बाहिर के सज्जन तो यह कहते थे कि क्या ये सब रसायन द्रव्य (Chemical) आपके काम में आते हैं, आपके यहां ये रसायन द्रव्य बहुत ज्यादा दिखायी देते हैं।

स्नातकों की स्थिति, सेवा आदि के बारे में कुछ वर्षों बाद पूछताछ की जाती रही है। गुरुकुल की वार्षिक रिपोर्ट भी हरसाल लिखी जाती और सभा में स्वीकृत होती है। यद्यपि आर्थिक संकोच के कारण उसे हरसाल छपवाया नहीं जाता। स्नातकों, पुराने और नये विद्यार्थियों का स्नेह-सम्मेलन जन्माष्टमी पर तथा दीक्षान्त के दिन होता है। गुरुकुल के स्नातकों का अपनी मातृ-संस्था से जितना स्नेह होता है उतना अभीतक किसी और संस्था में नहीं पाया जाता यह बात बिना किसी खण्डन के भय के कहा जा सकती है। श्री सेवानन्द जी ज़रा गहराई में जाते तो उन्हें इसका पता लग जाता। जिन कुछ सफल स्नातकों के नाम लेखक ने गिनाये हैं (उनकी संख्या तो बहुत बढ़ा कर गिनायी जा सकती है) वे अपनी योग्यता का श्रेय अवश्य ही बहुत कुछ गुरुकुल माता को ही देते हैं यह भी उन्हें पता लग जाना चाहिये।

उच्च पदार्थ विज्ञान अधिक धन साध्य होने के कारण हमारे बस का नहीं है पर उच्च गणित तो गुरुकुल में बहुत से वर्षों तक पढ़ाई भी जाती रही है। पर व्यावहारिक दृष्टि से लाभप्रद न होने से उधर विद्यार्थियों की प्रवृत्ति न होने के कारण उसे हटा देना पड़ा। एक दो विद्यार्थियों के लिये इतना व्यय करना हमारे लिये कठिन था। गणित की महिमा तो हम भी जानते हैं। स्वयं मुझे उच्च गणित से बहुत प्रेम है। गुरुकुल के एक ब्रह्मचारी की सच्ची रुची देख कर एक बार केवल उसी ब्रह्मचारी के लिये उच्च गणित की शिक्षा का मैंने प्रबन्ध किया था।

स्वामी श्रद्धानन्दजी का तो 'ब्रह्मचारी' शब्द पर बहुत आग्रह था। वे कहा करते थे कि हमें इस शब्द से उद्बोधन मिलता है। पर अब गुरुकुल में विद्यार्थी शब्द भी बहुत काफी व्यवहृत होता है। यदि सेवानन्द जी ज़रा भी अन्दर घुस कर देखते तो तुरन्त उन्हें इसका पता लग जाता। बाकी, यह परिवर्तन गुरुकुल की ब्रह्मचर्य की दृष्टि से उन्नति का सूचक है या अवनति का—इस का विचार स्वा० सेवानन्द जी स्वयं करलें।

गुरुकुल का ध्यान वेद के रिसर्च, प्राचीन इतिहास के रिसर्च तथा हिन्दी सम्बन्धी रिसर्च की तरफ़ है। इन तीनों दिशाओं में कुछ न कुछ काम भी हुआ है। यद्यपि स्वयं हमें भी उस काम से पूरा सन्तोष नहीं है, पर इन रिसर्चों के अपनी इच्छानुसार प्रगति न कर सकने में कुछ समुचित कारण है।

औषधि निर्माण शाला (Pharmacy) गुरुकुल से तीन मील दूर नहीं है, गुरुकुल में ही है। जब कुछ काल के लिये यह तीन मील दूर रक्खी गई थी, तब औषधियों की बिक्री ज्यादह हो इस विचार से रक्खी गई थी।

वनस्पति-वाटिका (Botanical Garden) गुरुकुल में विद्यमान है।

ये सब बातें हैं, जो कि सेवानन्द जी के लेख द्वारा उलटी लिखी गई हैं और इनमें भ्रम फैलता है। इन बातों का संशोधन गुरुकुल के अधिकारी द्वारा ही किया जा सकता है और किया जाना चाहिये। इस लिये मैंने यह सब लिखना अनिच्छा होते हुए भी ज़रूरी समझा। यदि श्री सेवानन्द जी पाश्चात्य दर्शन के उपाध्याय जी से पाश्चात्य दर्शन के विषय में ही कुछ बातें करते तो उन्हें निस्सन्देह लाभ होता और उनकी जानकारी बढ़ती। प्रबन्ध विषयक बातों का उन्हें सब ज्ञान होना आवश्यक नहीं था। यदि आचार्य जी उस प्रथम दिन गुरुकुल में नहीं थे तो श्री सेवानन्द जी उनके आने पर उनसे ये सब बातें पूछ सकते थे (चूंकि उन्होंने लिखा है कि "सहारनपुर जिले के हरिजन सेवक-संघ के कार्य कर्ता के रूप में मेरा गुरुकुल में आना जाना बहुत दफ़े होता था") और यदि उन दिनों में भी गुरुकुल के आचार्य जी या मुख्याधिष्ठाता जी से नहीं

बातचीत कर सके तो इस ६ साल के लम्बे अवसर में अपने भ्रमजनक बातों से पूर्ण इस लेख को लिखने से पूर्व कभी भी उनसे मिल लेते बल्कि एकबार फिर गुरुकुल को देख लेते और अच्छी तरह समझ लेते तो गुरुकुल के साथ ऐसा अन्याय करने के कारण न बनते जैसा कि अब वे बने हैं।

३. आत्म निरीक्षण

शेष उन बातों पर मैं कुछ भी न लिखता हुआ, जिन बातों का उत्तर कोई भी बाहर से आकर देखने वाला आदमी देख कर पा सकता है, अन्त में गुरुकुल के एक अधिकारी की दृष्टि से यह कहना चाहता हूं कि निम्न बातों पर हमें अवश्य ही ध्यान देना चाहिये।

(क) वेदमन्त्रों का मिल कर ठीक स्वर के साथ पाठ। यह एक ऐसी कमी है जो कि आर्यसमाज में प्रायः पाई जाती है और गुरुकुल में भी है। आर्यसमाज द्वारा वेद मन्त्रों का सब के लिये सुलभ कर देने के बाद अब समय आगया है कि हम वेद की प्रतिष्ठा के लिये अवश्य ही वेद मन्त्रों के मिल कर ठीक प्रकार उच्चारण करने की तरफ ध्यान दें। गुरुकुल के कोई वेदालंकार वेद मन्त्रों का उच्चारण अशुद्ध करते हैं यह तो मुझे अभी तक मालूम नहीं है यह मुझे सत्य नहीं लगता। पर शायद श्री सेवानन्द जी का भी शुद्ध उच्चारण करने से आशय यही है कि मिल कर एक स्वर से, जहां ठहरना चाहिये वहां ठहरते हुये विधिवत् स्पष्ट उच्चारण किया जाय।

(ख) शायद लेखक महाशय गुरुकुल के एक उपाध्याय के घर का वर्णन करते हुये लिखने के जोश में ही ऐसा कह गए हैं कि गुरुकुल की सफाई भी ऐसी ही थी। तो भी यह ठीक है कि हम भारतवासियों में सफाई के प्रति वह दृष्टि नहीं है जो कि होनी चाहिये। गुरुकुल की सफाई की तरफ उस विभाग द्वारा नाना प्रकार से सदा यत्न किया जाता है, तो भी यह कहा ही जा सकता है कि सफाई की ओर अधिक ध्यान किये जाने की पर्याप्त गुञ्जाइश है।

(ग) गुरुकुल के सब अध्यापक या तो आजीवन ब्रह्मचारी हों या वानप्रस्थी (वा सन्यासी) हों, यह इच्छा गुरुकुल के प्रारम्भ से ही गुरुकुल के संचालकों में रही है। पर इसका पूर्ण होना अभी तक संभव नहीं हुआ है। फिर भी इस दिशा में मेरे विचार से गुरुकुल ने पहले की अपेक्षा कुछ उन्नति ही की है। हमारा यह दोष हो सकता है कि हम उस प्रकार के ब्रह्मचारी या वानप्रस्थी शिक्षकों को आकृष्ट करने में समर्थ न हों। पर दूसरा अधिकतर कारण गुरुकुल के लिये सब दृष्टियों से उचित वानप्रस्थियों का—ब्रह्मचारी शिक्षकों का—न मिल सकना ही प्रतीत हुआ है। अस्तु, यदि कोई इस विषय में गुरुकुल की आलोचना करता है तो उसके कारण हमें नाराज़ होने की आवश्यकता नहीं है।

प्रधान रामकृष्ण जी का देहावसान

२२ तारीख को दोपहर के पश्चात् गुरुकुल के मुख्याधिष्ठाता को आर्य प्रतिनिधि पंजाब के मन्त्री का तार मिला जिसमें श्री प्रधान रामकृष्ण जी जालन्धर निवासी के देहावसान का जिक्र था। यह खबर पाते ही गुरुकुल के वायुमण्डल में सन्नाटा छा गया। अगले दिन प्रातः काल पढ़ाई को प्रार्थना के पश्चात् कुल में शोक सभा मनाई गई और सब उपस्थित व्यक्तियों ने खड़े होकर निम्न लिखित प्रस्ताव स्वीकृत किया:—

"गुरुकुल वासियों की यह सभा आर्यसमाज के वयोवृद्ध नेता, उत्साही कार्यकर्ता, आर्यप्रतिनिधि सभा पंजाब के भूतपूर्व प्रधान तथा गुरुकुल के मुख्याधिष्ठाता श्री रामकृष्ण जी के आकस्मिक देहावसान पर हार्दिक शोक प्रकट करती है, तथा उनके संतप्त परिवार के साथ समवेदना प्रकट करती हुई परमेश्वर से प्रार्थना करती है कि उस दिवंगत आत्मा को सद्गति प्रदान करे।"

प्रधान रामकृष्ण जी का देहावसान लाहौर में प्रातः ४॥ बजे के लगभग हुआ। देहावसान का कारण हृदय की गति का रुक जाना था। आप इस समय ८४ वर्ष के थे और शरीर से पर्याप्त क्षीण हो चुके थे। प्रधान रामकृष्ण जी आर्य समाज के मूलस्तम्भों में से एक स्तम्भ थे। स्वर्गीय स्वा० श्रद्धानन्द जी तथा महात्मा देवराज जी के सहयोगी कार्य कर्ता थे। गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय की तथा कन्या महाविद्यालय जालंधर की स्थापना में आप भी एक प्रमुख व्यक्ति थे। आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब और बिलोचिस्तान के प्रधान-पद को आपने लगातार २४ वर्षों तक सुशोभित किया। यद्यपि इनके प्रधानत्व-काल में आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब में कई दलबन्दियां थीं इसके होते हुए भी आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब का सुचारु रूप से चलाने में आप सफल सिद्ध हुए। इस में मुख्य कारण यह था कि आप किसी भी दलबन्दी के साथ पक्षपात नहीं रखते थे और निष्पक्ष होकर अपना निर्णय देते थे। आप शान्त स्वभाव के धैर्यवान् विचार शील तथा बहुत ही कम बोलने वाले व्यक्ति थे। प्लेट फार्मों पर भाषण देना तथा अखबारों दुनियां में लेखों द्वारा हल चल मचाने से आप सदा ही परे रहते थे। आपका वैय्यक्तिक जीवन धार्मिक प्रकृति का और प्रभाव शाली रहा है। आप के जीवन से कई आर्यसमाजियों के जीवन बने हैं। आप दैनिक अग्निहोत्र तथा सन्ध्या करने वाले थे और आर्य समाज के सिद्धान्तों को इन्होंने अपने जीवन में ढाला हुआ था। आप बहुत ही सोच विचार के बाद किसी विवादास्पद प्रश्न पर अपना निर्णय देते थे। आर्यसमाज जालन्धर के भी आप बहुत देर तक प्रधान रहे हैं। कई स्कूलों की

प्रबन्ध समितियों में भी आप प्रमुख कार्य करते रहे हैं। अपनी विचार शीलता के परिणाम स्वरूप ही आप 'जालन्धर-बार एसोसियेशन' के प्रधान भी रहे हैं। आपकी निष्पक्ष सम्मति की इतनी धाक थी कि जालन्धर के अच्छे से अच्छे वकील भी आपसे सलाह मशवरा किया करते थे। आपके हृदय में आर्यसमाज की वास्तविक उन्नति के सम्बन्ध में सच्चा प्रेम था। इस आन्दोलन में आपका भी बड़ा हाथ था कि आर्यसमाज के वार्षिक जलसों के नगर कीर्तनों में आर्य सभासदों की मण्डलियां ही भजन द्वारा नगर कीर्तन किया करें और इन नगर-कीर्तनों में व्यावसायिक भजनीकों को ज्यादा उत्साहित न किया जाय। इस प्रकार के नगर कीर्तनों में आप ही मुखिया बनकर नगर कीर्तन करते थे। गुरुकुल शिक्षा-पद्धति में आपकी अगाध भक्ति थी। आर्यप्रतिनिधि सभा पंजाब के शिक्षाविभाग की दृष्टि से तो आपका गुरुकुल के साथ सम्बन्ध था ही। परन्तु गुरुकुल के साथ आपके दृढ़ सम्बन्ध को बनाये रखने में गुरुकुल के प्रति आपका हार्दिक अनुराग ही मूल कारण था। कुछ काल के लिए जबकि महात्मा मुंशीराम जी रुग्ण होने के कारण गुरुकुल छोड़ गये थे तो आपने गुरुकुल के मुख्याधिष्ठातृत्व का भार अपने कन्धों पर लेकर गुरुकुल का संचालन किया था। आप अपने जीवन के अन्त काल तक गुरुकुल के सच्चे प्रेमी रहे हैं। हिन्दी भाषा और वैदिक सभ्यता के आप सच्चे उपासक थे। ऐसे धार्मिक, सुयोग्य, प्रेमी, त्यागी तथा विचारशील व्यक्ति के उठ जाने से आर्य-समाज को एक भारी हानि पहुँची है। आर्यसमाज इनकी जुदाई को हृदय से अनुभव करता है।

स्वास्थ्य समाचार

गत सप्ताह ब्र० विद्याभूषण ११ श्रेणी ज्वर, ब्र० सत्यपाल ११ श्रेणी ज्वर, ब्र० हरिश्चन्द्र ११ श्रेणी ज्वर, ब्र० विश्वनाथ ११ श्रेणी ज्वर, ब्र० गोविन्द १४ श्रेणी कास, ब्र० ओम्प्रकाश ४ श्रेणी विषमज्वर, ब्र० सूर्यप्रकाश २ श्रेणी ज्वर व कास, ब्र० वेदव्रत २ श्रेणी नेत्राभिष्यन्द से रोगी हुए थे, अब सब स्वस्थ हैं।

पिछले रोगियों में से महाविद्यालय के तीन ब्रह्मचारियों को टाइफायड आन्त्र ज्वर था। जिनमें ब्र० नरोत्तम तथा योगेन्द्र ११ श्रेणी को आराम है। ब्र० नवरत्न १४ श्रेणी को अभी ज्वर तथा खांसी की शिकायत है। ज्वर आगे से आराम है। आशा है कि ब्रह्मचारी शीघ्र ही स्वस्थ हो जावेगा।

आजकल गर्मी पर्याप्त है। अधिकतम तापमान १०६° रहा।

—सत्यपाल

संरक्षकों से निवेदन—

जिन संरक्षक महानुभावों को अपने ब्रह्मचारियों के फोटो की आवश्यकता हो वे निम्न पते से प्राप्त कर सकते हैं।

श्रेणी का फोटो १) १ प्रति

अकेले ब्रह्मचारी का फोटो १।।) ३ प्रति

अलंकार चित्रशाला गुरुकुल कांगड़ी।

(पृ० ३ का शेष)

को शरण दी। इसे बंगाल और हैदराबाद के नवाबों के साथ संघर्ष करना पड़ा। अब तो मैं अपने प्रान्त को भारत में सबसे अधिक दरिद्र प्रान्त कहता हूँ। अबका उत्कल ५०० साल पूर्व के उत्कल से बहुत भिन्न है। अब वह नालन्दा विश्वविद्यालय वाली बात कहाँ है। हां, अब भी महा प्रसाद के ग्रहण में उत्कल में ब्राह्मण और परिया में भेद नहीं है। मैं आप सब को आचार्यों और ब्रह्मचारियों को निमन्त्रण देता हूं कि आकर उजड़े हुए उत्कल के ध्वंसावशेषों को देखें। नालन्दा विश्वविद्यालय और उड़िया कारीगरी के विस्मृत अवशेषों को देखें। पश्चिमी देश अपनी इञ्जीनियरी के लिये प्रसिद्ध हैं। लेकिन बर्किंघम के इञ्जिनियरिंग एसोसियेशन के सभापति ने उत्कल की प्राचीन इञ्जिनियरी की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है। आइये, और उस तीर्थधाम को भी देखिये। इससे हमारे सम्बन्ध और प्रगाढ़ होंगे।

अन्त में मैं यही कहना चाहता हूँ कि आप लोग पाश्चात्य विचारों और आदर्शों से जल्दी प्रभावित न हों। मैं जब शिक्षणालयों में हड़तालें होते देखता हूं तो दुःखी होता हूं। आपने मेरे प्रांत के मेडिकल स्कूल की हड़ताल के समाचार पढ़े होंगे। यह आदर्श खतरनाक हैं। हमारे शास्त्रों में जो भी भली बातें हैं उनके ये विरुद्ध हैं। आप से तो मुझे यह कहने की जरूरत नहीं कि इस पवित्र भूमि में इन बातों से आप अपने सुन्दर गुरु-शिष्य सम्बन्ध को खराब नहीं करेंगे।

मित्रो, आज आप से मिल कर मैं ने अनुपम आनन्द अनुभव किया है। आपके सौजन्य और हार्दिक स्वागत ने मुझे मुग्ध कर दिया है। मैं आपकी संस्था को बिना बताये सहसा आकर देखना चाहता था। अपनी ओर से मैंने ऐसा ही प्रयत्न किया। मैं आपका सच्चे अर्थों में अतिथि हूं। फिर भी आप ने मेरा जो स्वागत किया है उसकी मैं आशा नहीं रखता था। इसके लिये मैं आपका हार्दिक धन्यवाद करता हूँ।

अन्त में मैं इस संस्था के विद्यार्थियों को आशीर्वाद देता हूं और कहता हूं कि तुम पर देश और विश्व की आशायें लगी हुई हैं। मेरी तो यही अपील है कि स्वामी जी ने जो तुम से आशा बांधी थी उसे पूरा करो। यही कार्य बड़ा महान् है। अपने जीवन को विद्या में लगाओ। इस विश्वविद्यालय के आचार्यों को मैं प्रणाम करता हूं।

गुरुकुलीय स्नातकों का प्रस्थान—

गुरुकुल कांगड़ी से स्नातकों का एक दल हैदराबाद सत्याग्रह के लिये लाहौर को प्रस्थान कर रहा है। वहां से यह दल म० कृष्ण जी के साथ सत्याग्रह के लिये जायगा। श्री पं० बुद्धदेव जी भी जत्था तैयार कर शीघ्र ही प्रस्थान करेंगे। श्री पं० केशवदेव जी वेदालंकार रामामण्डी से ६ सत्याग्रहियों का जत्था लेकर हैदराबाद को प्रस्थान कर चुके हैं। अन्य स्नातक बन्धुओं से भी निवेदन है कि जिन्होंने सत्याग्रह में जाने के लिये अपने नाम लिखाये हैं या जाने के इच्छुक हैं, उन्हें जत्थों से पृथक् रूप से भी हैदराबाद पहुंच जाना चाहिये।

चौधरी दुलाचराम के प्रबन्ध से गुरुकुल प्रेस गुरुकुल कांगड़ी में मुद्रित तथा प्रकाशित।

* ओ३म् *

"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत" Reg. No. A. 2927

गुरुकुल

सम्पादक—साहित्यरत्न पं० हरिवंश वेदालङ्कार

एक प्रति का मूल्य -) [गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख-पत्र] वार्षिक मूल्य २।।)

वर्ष ४] गुरुकुल काङ्गड़ी, शुक्रवार २० ज्येष्ठ १९९६, २ जून १९३९ [संख्या ५

दिल की आग

ले०– श्री प्रो० लालचन्द जी उपाध्याय

यदग्ने स्यामहं त्वं त्वं वा घा स्या अहं
स्युष्टे अस्या इहा शिषा ।

एक दिन एक नौजवान एक पुस्तक पढ़ रहा था जिसका नाम था 'दिल की आग'। मैं सोचने लगा यह 'दिल की आग' क्या है, सोचते सोचते दिल में कई विचार पैदा हुए।

स्वामी रामतीर्थ जी ने एक जगह कहा है, All desire is love and love is God, सब इच्छा वास्तव में प्रेम है और प्रेम परमात्मा है, वेद में जगह-जगह परमात्माको अग्नि नामसे पुकारा गयाहै और यह भी बताया गया है कि यह अग्नि चोरकी तरह वस्तु२ और व्यक्ति २ में छिपा बैठा है, चोर वेश बहुत बदला करते हैं कहीं यह अग्नि ही तो दिल की आग बनकर दिल में नहीं आ बैठा।

ख़ानए दिल में छिपा था मुझे मालूम न था,
पर्दा गफ़लत का पड़ा था मुझे मालूम न था।
मिस्ल आहू के मैं सर गर्दा फिरा सहरा में,
नाफ़ में नाफ़ा छिपा था मुझे मालूम न था।
हैफ़ नादानी में जाम-जाम को कहा आबे हयात,
दिल ही में आबे बका था मुझे मालूम न था ॥

एक सूफ़ी कवि ने इस दर्द का, इस कस्तूरी का, इस अमृत का, इस आग का कैसा सुन्दर वर्णन किया है।

रफ़्तम ब तबीबगो गुफ़्तम अज़ दर्दे निहां,
गुफ़्त किज़े ग़ैर दोस्त बर बन्द ज़बां।
गुफ़्तम कि ग़िज़ा गुफ़्त हमीं ख़ूने जिगर,
गुफ़्तम पर्हेज़ गुफ़्त अज़ हर दो जहां
-फ़रूके ख़ालिसे ख़ुद- ख़ुद कि शराबे बेह अज़ीं नेस्त,
दन्दां ब जिगर ज़न कि क्बाबे बेह अज़ीं नेस्त ॥

अर्थात् मैं हकीम के पास गया और अपनी छिपी हुई दर्द की बाबत कहा, हकीम ने कहा, कि सिवाय दोस्त के और किसी की चर्चा मत कर। मैंने कहा भोजन क्या करूं। उसने कहा यही जिगर का खून, मैंने कहा परहेज़ क्या करूं उस ने कहा दोनों लोकों से, अपना शुद्ध खून पी कि इससे बेहतर शराब नहीं है अपने जिगर में दाँत मार कि इस से बेहतर कोई कबाब नहीं है।

इस सब का अभिप्राय क्या है, दिल की आग बुझाने वाला अमृत दिलमें है। दिल की प्यास बुझाने वाला अमृत दिल में है, प्रेम जिस सौन्दर्य के लिये तड़पता है वह स्वयं प्रेम है, बाहर भटक भटक कर अनेक जन्मों में अनेक बार सम्बन्ध जोड़ता और तोड़ता हुआ यह प्रेम अन्त में अपने पास आता है और अपने आप को सब से सुन्दर पाता है, तभी वह सब कामनाओं को छोड़ कर अपने आप में रमण करता है और अपना लुत्फ़ आप उठाता है।

वेद में एक बड़े सुन्दर मंत्र में लिखा है "हे अग्ने अब मैं तू हो जाऊं या तू मैं हो जाये तो तेरे उस लोक में मुझे सब आशीर्वाद सत्य हो जाएं।

फारसी में इसी एकता के भाव को यों कहा है।

मन तो शुदम, तू मन शुदि, मन तन शुदम तू जां शुदि
ता कस न गोयद बाद अज़ीं मन दीगरम तू दीगरी

अर्थात् मैं तू हो गया तू मैं हो गया, मैं तन हो गया तू जान हो गया ताकि इसके बाद कोई यह न कहे कि तू और है मैं और हूं।

यह अग्नि जिसके साथ हमने एक होना है वह क्या है, इसकी विशेषताएँ क्या हैं, इसके साथ हम एक कैसे हो सकते हैं और इस एकता से हमें क्या लाभ होंगे, यह वे प्रश्न जिनके बारे में मैं अगले लेख में कुछ प्रकाश डालने का यत्न करूंगा।

उपनिषदों का अद्वैतवाद

[ले० श्री धर्मवीर]

कौरव-पाण्डवों के गुरु द्रोणाचार्य अपने शिष्यों की धनुर्विद्या की परीक्षा लेने के लिये सब को एक वृक्ष के नीचे ले गये। वृक्ष पर एक कृत्रिम पक्षी को टांग कर उन्होंने सब शिष्यों को आदेश दिया कि इस पक्षी की आंख को बींधो। सब से पहले युधिष्ठिर तीर मारने को आगे बढ़ते हैं। आचार्य उनसे पूछते हैं कि तुम्हें वृक्ष पर क्या २ दीख रहा है।

युधिष्ठिर—पक्षी, पक्षी की आंख और वृक्ष इत्यादि—

आचार्य द्रोण—युधिष्ठिर परे हो जाओ, तुम इस योग्य नहीं कि पक्षी की आंख को बींध सको।

इस प्रकार अन्य शिष्य भी परीक्षा स्थल पर आते हैं। आचार्य द्रोण उन सब से वही प्रश्न पूछते हैं जो कि युधिष्ठिर से पूछा था। सब का एक सा उत्तर पाकर के सब को परे करते जाते हैं। अन्त में अर्जुन आया। द्रोणाचार्य ने अर्जुन से भी वही प्रश्न किया कि तुम्हें क्या नज़र दीख रहा है।

अर्जुन—'एक आंख'

द्रोणाचार्य—पक्षी, वृक्ष, कौरव, पाण्डव इत्यादि भी नज़र आ रहे हैं या नहीं ?

अर्जुन—नहीं

द्रोणाचार्य—जिस वृक्ष पर पक्षी टंगा है, उस का कोई अंश तो दीखता होगा ?

अर्जुन—बिल्कुल नहीं।

द्रोणाचार्य—पक्षी तो दीखता होगा ?

अर्जुन—मुझे तो आंख के अतिरिक्त कुछ भी नहीं दीख रहा।

यह उत्तर सुनते ही द्रोणाचार्य प्रसन्न होकर के अर्जुन को तीर छोड़ने की आज्ञा देते हैं। तीर सीधा जाकर पक्षी की आंख पर लगता है।

ठीक यही तीर मारने की अवस्था ब्रह्मज्ञ पुरुष की होती है। जिस अवस्था में उस का लक्ष्य ब्रह्म होता है और हरेक पदार्थ में उसे ब्रह्म के ही दर्शन होते हैं इसी लिये ब्रह्म में मस्त हुआ २ व्यक्ति कहता है कि "सब ब्रह्म ही ब्रह्म है"। इस पक्षी के उदाहरण से यह स्पष्ट है कि जब तक कोई व्यक्ति ब्रह्म के अतिरिक्त अन्य किसी भी सांसारिक विषय की तरफ ध्यान लगाता है, तब तक वह ब्रह्म को प्राप्त नहीं कर सकता।

जिस प्रकार से अर्जुन ने पक्षी की आंख को बींधने के लिये अपने आप को ऐसी अवस्था में रक्खा कि उसे पक्षी की आंख के सिवाय और कुछ न दीखने पावे, उसी प्रकार एक योगी उस एक-रस, आनन्दमय ब्रह्म को प्राप्त करने के लिये इस प्रकार का अभ्यास करता है कि उसे उस एक-रस आनन्द मय ब्रह्म के सिवाय कुछ दृष्टि गोचर न हो। जब वह उस अवस्था में सफल हो जाता है तो इसे पारमार्थिक अवस्था कहते हैं, तब इस अवस्था में उसे हरेक पदार्थ में ब्रह्म ही ब्रह्म नज़र आता है। उस अवस्था में वह योगी सहसा कह उठता है कि "सर्वं खल्विदं ब्रह्म" 'अरे, यह तो सब ब्रह्म ही ब्रह्म है।' इस ब्रह्ममयी अवस्था में अगर कोई व्यक्ति यह कहे कि "क्योंकि उसे ब्रह्म के अतिरिक्त कुछ नज़र ही नहीं आता, इसलिये सब मिथ्या अर्थात् भ्रम है" यह कहना उतना ही मूल्य रखता है जितना यदि कोई अर्जुन के तात्कालिक अनुभव के आधार पर यह कहे कि जब अर्जुन तीर चला रहा था, उस समय केवल आंख ही थी, तदतिरिक्त पक्षी कौरव पाण्डव इत्यादि कोई भी न था।

एक दूसरा उदाहरण लीजिये। मैं एक पुस्तक को बहुत ध्यान से पढ़ रहा हूं। मेरे सामने से गाड़ी चली जाती हैं मोटरें चली जाती हैं। परन्तु मेरा उधर ध्यान ही नहीं जाता, क्योंकि मेरे लिए उस समय जो कुछ भी है, वह पुस्तक ही है। ऐसी स्थिति में मोटर तथा गाड़ी का गुज़र जाना, मेरे लिये न गुज़रे हुए के समान है। क्योंकि मेरा ध्यान ही उधर को नहीं गया, परन्तु मैं उनके गुज़रने से इन्कार नहीं कर सकता। ठीक उसी प्रकार ब्रह्म में लीन हुए २ व्यक्ति को अगर यह सम्पूर्ण जगत् नज़र ही नहीं आता तो इसके आधार पर यह कह देना कि "यह संसार ही नहीं" हमारी मूर्खता को ही सिद्ध करेगा।

२.

भृण्ड या ततैया एक कीड़े को जिसकी आकृति उससे सर्वथा भिन्न होती है, पकड़ कर मिट्टी के खोल में बन्द कर देता है। किसी प्रकार का बाह्य प्रभाव उस पर नहीं पड़ने देता। केवल अपना ही प्रभाव उस पर डालता है। परिणामतः कुछ काल बाद उस कीड़े की आकृति, रंग ढंग सब कुछ भृण्ड के समान हो जाता है।

प्रकृति सत् है, जीव सत् चित् है, ब्रह्म सच्चिदानन्द है। जिस प्रकार वह कीड़ा भृण्ड के प्रभाव में आ जाता है, ठीक उसी प्रकार सत् चित् यह जीव उस सत् चित् आनन्द ब्रह्म के प्रभाव में बैठकर सत् चित् आनन्द हो जाता है। वह अपनी दृष्टि सब ओर से हटाकर उस ब्रह्म में लगा देता है। आनन्दमय परिस्थिति में बैठा हुआ यह जीव सच्चिदानन्द बन जाता है। आनन्द न था, वह भी आ गया। वह भी सच्चिदानन्द यह भी सच्चिदानन्द। जिस प्रकार दो मित्र जो कि बहुत समय से अलग २ हुए थे, एक दूसरे को देखकर के आनन्द अनुभव करते हैं, अभिन्न हृदयता अनुभव करते हैं, ठीक उसी प्रकार यह जीव अपने आपको सच्चिदानन्द अनुभव करने लगता है और ब्रह्म में अपने से अभेद अनुभव करता है। ऐसी अवस्था में वह मस्ताना ब्रह्मज्ञ पुरुष अनुभव करता है।

"योऽसावसौ पुरुषः सोऽहमस्मि" अर्थात् मेरे चारों ओर जो दिव्य सच्चिदानन्द पुरुष है, मैं भी वही हूं। 'नेह-नानास्ति किंचन"। पहुंचा हुआ गुरु अपने शिष्य को कहता है कि तू भी इस ब्रह्म को जान और अनुभव कर

कि 'तत्त्वमसि" तू भी वही सच्चिदानन्द है। "ऐतदात्म्यमिदं सर्वम्" इस अवस्था में सब कुछ एकमय ही नज़र आता है। भला सोचिये तो सही कि अनन्त जल समुद्र में पड़े हुए को जल के अतिरिक्त और नज़र भी क्या आवेगा। इसी का नाम अद्वैत है।

समुद्र-मन्थन

[श्री ज्ञानी]

बी—पचीस दिन समुद्र के वक्षस्थल पर यात्रा करने से जो भावनाएं हमें सूझी हैं उन्हें हम संक्षेप में नीचे अंकित करते हैं।

× × × ×

समुद्र में लहरें हैं। लहरों में गति है। गति में लय है। लय में संगीत है और संगीत में आनन्द है। समुद्र के आनन्द का अनुभव करने के लिये हमें उसके संगीत में अपना सुर मिलाना चाहिए। उसकी गति में अपनी गति और उसके लय में अपना लय एक करना चाहिये। लय में लीन होना, विलीन होना इसी में सुख है। इसे ही योग अथवा मिलना कहते हैं।

× × × ×

समुद्र अगाध है। उसकी गहराई मापी नहीं जाती। समुद्र अनन्त है। उसका आर-पार नहीं। इतनी जलराशि कहां से आया? कहां जायगा? इस रहस्य को कौन जानता है? सूर्य आता है। प्रचण्ड अग्नि बरसाता है। जल वाष्प बनकर उड़ने लगता है। परन्तु जल-निधि के खज़ाने में कमी नहीं। हवाएं ज़ोरों से बहती हैं। समुद्र की सतह पर लहरियां उठती हैं। दर्शक समझता है शायद तूफ़ान आये परन्तु समुद्र की गम्भीरता में किञ्चिन्मात्र भी परिवर्तन नहीं।

× × × ×

नीचे अनन्त समुद्र है। ऊपर व्यापक आकाश। इन दोनों के बीच में दुनिया है। ऐसे ही मानो दो चक्की के पाटों के बीच में दाने। उछलते हैं, फुदकते हैं और थोड़े समय बाद अपनी हस्ती खो देते हैं—चकनाचूर हो जाते हैं। मैं भी इन दो विशाल पाटों के बीच खड़ा हुआ देख रहा हूं, हैरान हो रहा हूं। इस व्यापक, अनन्त आकाश व समुद्र के सामने मेरी क्या हस्ती है! पहाड़ के सामने राई बराबर भी नहीं। फिर भी अभिमान इतना है कि मैं अपने आपको संसार का केन्द्र मानता हूं। समझता हूं कि दुनियां शायद मेरे ही सन्तोष के लिये बनी है। मैं एक चीज़ हूं। परन्तु सच तो यह है कि इतने दिन इस विश्वव्यापी विशालता के समीप रहने से मेरी लघुता भी अब नष्ट होने लगी है। जीवन-दृष्टि में कुछ परिवर्तन आ रहा है। मानों वायु के वेग से समुद्र में जो लहर उठी थी और उसकी उछल कूद में जो बुलबुला बना था वह फट कर फिर लहर में मिल जायगा और लहर समुद्र की अपार जल-राशि में लीन हो जायगी। इस विशालता में लघुता के लय को, समष्टि में व्यष्टि के अन्तर्गत होने का अद्भुत आनन्द—नहीं उसकी छायामात्र दिखाई देने लगी है।

× × × ×

समुद्र का गहरा नील-श्याम वर्ण मुझे रंगमञ्च के मोटे परदे की याद दिलाता है। शायद यह है भी संसार की रंगस्थली का काला परदा। इसके नीचे नेपथ्य है। सन्ध्या समीप है। थोड़ी देर में तारिकाओं (स्टार्स) का एक गण (हॉलीवुड की फ़ैशन-परेड की तरह) नाचता कूदता परदे की ओट से बाहिर आएगा। पाकर मण्डलों (ग्रुप्स) में विभक्त होगा। और फिर अपने "हीरो" (नायक) की प्रतीक्षा में मूक-गान करेगा। इतने में पंचमी का चन्दा भी सुन्दर चन्दीली पोशाक पहिनकर, छैल-छबीलों की सी तारे-वाली टोपी पहिने, अकड़ता हुआ रंगमंच पर आ पहुंचेगा। तारिकाएं एक सुन्दर हार से उसका स्वागत करेंगी। नायक आंखें घुमा-फिरा कर सब को देखेगा। इशारे से अपनी पसन्द ज़ाहिर करेगा। जहां एक गर्व से फूलेगी वहां दूसरी ईर्षा से जलेगी। यह अन्तरिक्ष की प्रेमलीला कुछ समय तक चलेगी। पट-परिवर्तन का समय आएगा। हलकी सी टकोर होगी। तारिकाएं रंगमञ्च से दौड़ने की करेंगी। नायक-चान्द भी अपने पार्ट की अदायगी पर मुस्कराता हुआ काले परदे की ओट में चला जाएगा। थोड़ी देर के लिये सन्नाटा—मानों हॉफ़-टाइम हो गया हो। शीघ्र ही फिर घण्टा बजेगी। चिड़ियां चहचहाएंगी। कुक्कुट बोलेगा और अंशुमाली सूर्य-भगवान् अपने सुनहरे रथ पर सवार हो मन्द-मन्थर गति से मञ्च पर पधारेंगे। एक २ करके वह अपनी रंगीन पोशाक उतार देंगे और युद्ध के लिये आह्वान देंगे। वरुण-देव पधारेंगे। वेग से वायु चलेगी। मानों इस बड़े दीपक को फूंकों से बुझाना है। लेकिन जल्दी ही थक कर शान्त हो जाएगी। फिर इन्द्र और मित्र आएंगे। अपना २ ज़ोर आज़माएंगे। परन्तु उन्हें भी चित्त होकर मैदान छोड़ना पड़ेगा। इतने में प्रहसन (कामिक) के तौर पर बादल नाना-विध वेश धारण किये ताल ठोकते सूर्य को आह्वान (चैलेंज) देते हैं। कभी आगे और कभी पीछे। कभी दायें और कभी बायें। परन्तु ज्योंही सूर्य अपनी आंख उठाता है कि वो उधर भाग खड़े होते हैं। इतने में सांझ होने को आती है। सूर्य अपनी सुन्दर, सात रंगों वाली सर्वोत्तम पोशाक पहिन कर सामने आता है। झुककर सभास्थली को प्रणाम करता है और दर्शकों की करतल ध्वनि (पशु पक्षियों की मीठी तानों) के साथ रात्रि का काला परदा पड़ जाता है।

× × × ×

रात्रि की नीरवता है। सब सो गये हैं। मैं अकेला ऊपर (डैक पर) खड़ा न जाने क्या सोच रहा हूं। समुद्र का महा-संगीत जारी है। उसकी लहरों में सतत-उत्थान और पतन है। हमारा स्टीमर समान-गति से बढ़ा जा रहा है। सोते हुए मनुष्य के हृदय की तरह जहाज़ का एंजिन भी धक धक चल रहा है और अपने निश्चित स्थान पर बैठा हुआ कप्तान (Captain) उस की निरन्तर गति-निर्देश कर रहा है। सबके सोने पर भी वह जागता है। सब के चेष्टाहीन हो जाने पर भी उसमें सतत चेष्टा है, गति है, और चैतन्य है। उसे अपने लक्ष्य का सदा-सर्वदा ज्ञान है। [समाप्त]

गु रु कु ल

२० ज्येष्ठ शुक्रवार १९९६

हैदराबाद सत्याग्रह —

पिछले कई महीनों से हैदराबाद सत्याग्रह शान्तिमय तथा अहिंसात्मक आधार पर निर्विघ्न रूप से चलता गया है। शोलापुर में हुई प्रान्तीय मुसलिम लीग की बैठक और उसमें हुए उत्तेजनात्मक भाषणों से सत्याग्रह को धक्का पहुँचने की सम्भावना की जाती थी। शहर में साम्प्रदायिक दंगा हो गया। कुछ प्राण हानि हुई। निर्दोष रक्त से भारत की भूमि एक बार और रंगी गई। पूना से गोरी फौज बुलाई गई। आर्य सत्याग्रहियों को १२ घण्टे में शोलापुर जिला छोड़ने की आज्ञा दी गई। इन सब के कारणों के अन्दर न जाते हुए हमें जिला अधिकारियों की आर्य सत्याग्रहियों के लिए दी गई इकतर्फा आज्ञा से असन्तोष था। बम्बई सरकार के गृह सचिव माननीय श्री मुन्शी जी ने दिल्ली में आर्य नेताओं को सरकारी आज्ञा पर पुनर्विचार का आश्वासन दिया है। जिस से आशा की जाती है निकट-भविष्य में शोलापुर में आर्य सत्याग्रहियों पर से सब प्रतिबन्ध हट जाएंगे।

इस सारे मामले में आर्य सत्याग्रहियों ने सरकारी आज्ञा को शान्ति पूर्वक मान लिया, यह तो आर्य समाज की सुन्दर परम्परा के अनुरूप ही हुआ है। हमें विश्वास है भविष्य में आर्य सत्याग्रही सदा उपद्रव से उपद्रव आग दिखाए जाने पर भी शान्त रहेंगे। सत्याग्रह की सफलता तथा असफलता हमारी भविष्य की कार्य-प्रणाली पर आश्रित है। विरोधी हम जोश भी दिलाएंगे, उकसाएंगे भी, हमारा कर्त्तव्य होना चाहिए कि हम अधिक शान्त रहें। सत्याग्रह का मूल-मन्त्र सत्य और अहिंसा है। क्षणिक जोश हमारे महीनों के प्रयत्न को थोड़ा देर में मटियामेट कर सकता है। यदि हम शान्त रह कर इस बड़ी लड़ाई में लगे रहेंगे तो हमें शत्रु से उपद्रव मोका मिलेगा, हमारा ध्यान भी अन्य छोटी छोटी बातों में न उलझेगा।

आर्य समाज में उत्साह तथा जागृति है, इस का प्रमाण देश भर से आई विज्ञप्तियां अपने आप कह रही हैं। हमारी सफलता निकट भविष्य में निश्चित है— यह हमें विश्वास है। इसके लिये उत्तम पथ प्रदर्शन की आवश्यकता है। यह प्रसन्नता की बात है, सार्वदेशिक सभा तथा सर्वाधिकारी खूब सोच समझ कर एक कदम आगे बढ़ा रहे हैं। आशा है आर्य सत्याग्रह का भविष्य उज्ज्वल होगा।

म० कृष्ण जी का प्रस्थान

हैदराबाद सत्याग्रह में भारत वर्ष के प्रत्येक कोने से आर्य जनता बड़े उत्साह से भाग ले रही है। आर्य समाज का उत्तर भारत में ही अभी तक उपद्रव कार्य क्षेत्र रहा है, विशेष कर पंजाब तो आर्य समाज का दुर्ग कहा जा सकता है। हैदराबाद सत्याग्रह में पंजाब प्रान्त से धन जन की सहायता की विशेष आशा की जा सकती थी। सत्याग्रह के प्रथम ६ सर्वाधिकारियों में से दो— सर्व श्री खुशहाल चन्द्र जी खुर्सन्द तथा महाशय कृष्ण जी पंजाब प्रान्त के प्रसिद्ध आर्य सामाजिक नेता हैं। आर्य प्रतिनिधि सभा तथा आर्य प्रादेशिक सभा पंजाब प्रान्त की आर्यसामाजिक प्रगति के पिछले ५० वर्षों के लिए जिम्मेदार कही जा सकती है। महाशय कृष्ण जी तथा श्री खुशहाल चन्द्र जी का कर्तृत्व ही इन सभाओं की पिछली कुछ प्रगतियों एवं सफलताओं के लिए गौरवास्पद ठहराया जा सकता है।

श्री खुशहालचन्द्र जी खुर्सन्द कभी के यशस्वी हो हैदराबाद सरकार के मेहमान हो चुके हैं। अब महाशय कृष्ण जी भी कृष्ण मन्दिर की ओर चले हैं। महाशय कृष्ण जी लेखनी तथा वाणी में सिद्धहस्त रहे हैं, इन्हीं की बदौलत पंजाब के सामाजिक कार्य क्षेत्र में आज नव-जीवन का सञ्चार हो गया है। पंचनद की वीरभूमि ने महाभारत युद्ध के उपदेष्टा कृष्ण के समान म० कृष्ण जी के आशा भरे संदेश से जाग कर हैदराबाद सत्याग्रह में अपना हिस्सा अदा करना प्रारम्भ कर दिया है।

जन शक्ति तथा धन शक्ति की समृद्धि के लिए पंजाब की भूमि प्रसिद्ध है। इन का सदुपयोग ही इन का सब से बड़ा लाभ कहा जा सकता है। ७५०००) की प्रचुर धनराशि तथा स्वयंसेवकों की बड़ी संख्या पंजाब की भूमि की विशाल हृदयता की सूचना देती है।

महाशय कृष्ण जी ने पंजाब में नए जोश तथा उत्साह का वातावरण पैदा कर दिया है। प्रान्तभर में सर्वत्र सत्याग्रह के लिए हलचल दिखाई पड़ती है। आबाल वृद्ध सब में, इस बड़ी लड़ाई के लिए जूझ पड़ने का भाव तीव्र पड़ता है। आर्य समाज का पुर्जा-पुर्जा स्वयमेव सत्याग्रह में अपना हाथ करने के लिए तत्पर है। यह प्रगति और यह उत्साह क्यों? जन्म सिद्ध धार्मिक अधिकारों की प्राप्ति के लिए। हमारा सौभाग्य है कि हमें महाशय कृष्ण जी सा अनुभवी नेता सेनानायक रूप में मिला है। इससे हमारा हृदय आशा से पूर्ण हो उठता है। हम पूर्ण आशा है महाभारत के गीतोपदेष्टा कृष्ण की न्याईं हमारे सर्वाधिकारी कृष्ण जी भी चल रहे महाभारत में विजय पा शीघ्र ही पुनः आवेंगे। उनके इस स्तुत्य एवं वीर कार्य पर हम अपनी श्रद्धांजलि चढ़ाते हैं।

ब्रह्म की कला

(ले०— श्री राजकुमार)

प्रसिद्ध है, ब्रह्म सब से बड़ा कलाकार या कवि है— 'कवि र्मनीषी परिभूः स्वयम्भूः'।

उत्पन्न होते ही मनुष्य अपने चारों ओर प्रकृति का जो प्रसार देखता है वह अलौकिक है ऐसा दार्शनिक बतलाते है। यह ही ब्रह्म की व्यक्त कला है जो शाश्वत है। इस शाश्वत कला पर मनुष्य शाश्वत काल से मुग्ध

होता रहा है, इसका उन के हृदय पर एक विचित्र प्रभाव अर्थात् अनुभूति होती है। वह उसको अपने हृदय में धरोहर करके नहीं रख पाता, उसमें आत्माभिव्यञ्जन की प्रचण्ड प्रवृत्ति होती है, उस ही अनुभूति को वह अपनी भिन्न भिन्न भावनाओं से संयुक्त करके प्रकाशित या अभिव्यक्त करता है। सृष्टि के आदि से ही प्रकृति की विभिन्नताओंके साथ मानव हृदयके न भावों का समन्वय होता आरहा है। इसी कला के आविर्भाव के द्वारा पर्दे के पीछे छिपा हुआ कलाकार साक्षात्कृत होता है। साक्षात्कार ही कलाकार का उद्देश्य था जो पूर्ण हो गया। इसी से कहा है— 'पश्य देवस्य काव्यं न ममार न जीर्यति'। प्रकृति को प्रत्यक्ष करके ही ब्रह्म का अनुमान होता है। वास्तव में ब्रह्म की यह पूर्ण अभिव्यक्ति अपने पीछे विश्वहृदय की झलक रखता है जिसके मूल में ब्रह्म का अनन्त करुणायें, अनन्त भावनायें समाई हुई है।

प्रकृति के अनन्त सौन्दर्य पर मुग्ध होकर मानव ने जो जो भावनायें ग्रहण की हैं, उनका प्रत्येक मानव ने अपनी शक्ति के अनुसार भिन्न २ उपायों से प्रकटीकरण किया है। जिस भी उपाय से किया गया है वही कला है। ब्रह्म की कला का भी अभ्युदय-प्रकार ऐसा ही है—

'स ऐक्षत बहुःस्यां प्रजायेय'

कलाकार के हृदय में आने को अभिव्यक्त करने की या दूसरों से भी वीक्षित होने की तीव्र वेदना हुई। 'बहु स्याम्' का अभिप्राय 'बहुभिः दृष्टः स्याम्' ही तो है और अभिव्यक्त की ही दृष्टि हो सकती है। 'ऐक्षत' का अर्थ तो 'अकामयत' है ही जैसा कि इस पंक्ति के अन्य संस्करणों से ज्ञात होता है। इस प्रकार से अनुभूत तीव्र वेदना को यथाप्रकृति वह संभाल न सका और 'प्रजायेय' अपने आप को उसने व्यक्त कर दिया ठीक कलाकार की ही तरह।

मानव अपने विचारों का, भावों को विविध उपायों से व्यक्त करता है— उन उपायों के अनुसार काव्य-कला के अतिरिक्त अन्य भी कलायें स्पष्ट ही हैं। काव्यकार जिन भावनाओं से प्रेरित होकर शब्दों द्वारा अपनी अभिव्यक्ति करता है, चित्रकार या मूर्तिकार शब्दों का आश्रय न लेकर कूची, कागज, कटनी या प्रस्तरखण्ड आदि अन्य उपकरणों से उन्हीं भावों को व्यक्त करता है। दोनों में तात्त्विक भेद नहीं, केवल शैली या साधनों का ही भेद है। इसी प्रकार ललित कलाओं की सृष्टि होती है। इन कलाओं के जो गुण अत्यन्त स्पष्ट हो सकते हैं, वे ब्रह्म की कला में भी हैं ऐसा सभी का स्पष्ट अनुभव हो सकता है।

कला सजीव वस्तुओं को निर्जीव सी कर देती है। सङ्गीत कला की ध्वनियुक्त मूर्च्छनाओं से, रसिक श्रोता उन तानों में विलीन हो जाता है, मुग्ध हो जाता है, उसे किसी चीज की भी सुधबुध नहीं रहती— दूसरे शब्दों में वह निर्जीव हो जाता है। एक कवि ने लिखा है—

"तड़पन के मेरे नर्तन ने
कम्प, ताल, स्वर गायन ने,
हृदय मूल को शून्य किया,
फिरमुग्ध शून्य औ' विरहित प्राण!
प्रिय, अब मत गाओ वे गान"॥

कला निर्जीव पदार्थों को सजीव कर देने की क्षमता रखती है। वास्तुकला ने 'ताजमहल' को इतना सजीव कर दिया है कि वह अपनी कहानी आप ही मूक स्वरों में कह रहा है। उस काल की सारी स्थितियों को, शाहजहां का पत्नी के प्रति अतुल एवं शाश्वत अनुराग को स्पष्ट वह नीरव राग में गा रहा है। चित्रकला उस निर्जीव पत्र को एक शक्ति प्रदान करती है जिससे चतुर चितेरा अपनी भावनाओंको प्रत्येक द्रष्टा तक पहुंचाता है।

इसकी कला के ये गुण अनन्त सीमा को प्राप्त हुए हैं, इसी से ब्रह्म उत्तम कलाकार है— कलाकार की कसौटी यह ही होनी चाहिये।

महाराणा प्रताप और मुगलों की नीति

('श्री नरेन्द्र')

काउंसिल ऑफ स्टेट (राज्य परिषद्) की कांग्रेस पार्टी के अध्यक्ष श्रीयुत् रामदास जी पन्तलु ने एक बार एक इतिहास शिक्षण संस्था के विद्यार्थी से पूछा था— भला अंगरेजों के शासन में अधिक हुआ है या मुस्लिम काल में। एक विद्यार्थी ने एक दम उत्तर दिया— मुस्लिम काल में भारत का अधिक भला हुआ है। माननीय पन्तलु जी ने कहा इस बारे में तुम कोई प्रमाण उपस्थित कर सकते हो? वह विद्यार्थी पहले कुछ हिचकिचाया फिर उसने कुछ डरते हुए कहा— मेरे पास इस बारे में कोई प्रमाण नहीं है कोई ऐतिहासिक साक्ष्य नहीं है जिस के द्वारा मैं अपनी बात को सिद्ध कर सकूं किन्तु इतना जरूर कह सकता हूं कि मुस्लिम शासन में प्रजा और राजा के सम्बन्ध का माध्यम तलवार थी— अंगरेजों के शासन में वही माध्यम कूटनीति रूप में परिवर्तित हो गया है।

माननीय पन्तलु जी ने हंस कर कहा— मुख में राम बगल में छुरी' अंगरेजों की नीति है और मुस्लिम शासन का आधार शक्ति में निहित था। पन्तलु जी ने कहा— मैं तुम्हारे इन विचारों से पूर्ण सहमत तो नहीं हूं पर इतना जरूर हूं कि मुस्लिम शासन ने स्वतः प्रजा को शासन का विरोध सिखाया और अंगरेजी शासन में यह प्रतिक्रिया शासन से सीधी सम्बन्धित नहीं है।

× × × ×

मुस्लिम शासन भारत में शताब्दियों तक रहा है इसका आधार मुख्यतया तलवार रहा है, मुस्लिम शासन शक्तिशाली केन्द्रीय आधार पर खड़ा था, केन्द्रीय शक्ति जब तक मजबूत रहती थी, शासन चक्र अच्छी तरह चलता जाता था, सरकार की बागडोर जब कमजोर हाथों में पड़ जाती थी सारी व्यवस्था छिन्न भिन्न हो जाती थी। यही कारण है मुस्लिम शासन का इतिहास गुलाम, खिलजी, तुगलक, लोदी, मुगल आदि विभिन्न वंश व जातियों के शक्ति प्राप्ति का इतिहास है। एक वंश कमजोर होता था दूसरा तैय्यार होकर उसका स्थान ले लेता था।

मुस्लिम शासन की इस सफलता को देखने में ही अकबर की महान् नीति को देखा जा सकता है। अकबर ने यह देख लिया था कि बिना हिन्दू प्रजा की सद्भावना के मुगल शासन स्थिर नहीं हो सकता है उस ने हिन्दू प्रजा से सहिष्णुता की नीति को व्यवहार में बरता, उसने सदियों से मुस्लिम राज्यों में प्रचलित जजिया कर को उठा दिया। हिन्दुओं पर से अनुचित यात्रा कर भी बन्द करवा दिया, सारे राज्य में गोवध सर्वथा निषिद्ध कर दिया, सती और बालविवाह की कुरीतियों को रोकने का यत्न किया, और सब से ज्यादह क्रान्तिकारी योजना उसने हिन्दु मुस्लिम अन्तःजातीय विवाह को कुछ अंश में कम से कम अपने जीवन में अपना कर की।

अकबर भारतीय समाज को हिन्दु मुस्लिम जातियों की सद्भावना की नींव पर स्थिर रखना चाहता था। अकबर का दृष्टिकोण एक विदेशी मुसलमान का दृष्टिकोण न था, वह भारतीय दृष्टिकोण से अपनी राजकीय धार्मिक, सामाजिक नीति को चलाना चाहता था। यही कारण है कि Sir William Sleemen ने कहा था "Akbar has always appeared to me among sovereigns what shakespeare was among poets"

अकबर की सहिष्णुता की नीति जबतक उसके उत्तराधिकारियों ने अपनाई मुगल शासन की जड़ें पाताल तक स्थिर होती रहीं, औरंगजेब की धर्मान्धता की नीति ने जब इसका स्थान ले लिया तो मुगल शासन के सब से बड़े आधार राजपूत मुगलों से अलग हो गए।

राजपूत लोग स्वाभिमानी होते थे। हो सकता है उन सब में राणा प्रताप सा शौर्य न रहा हो, यह भी हो सकता है कि उन में हिन्दु धर्म व संस्कृति के प्रति कोई जबरदस्त भावना न रह गई हो किन्तु राजपूतों में स्वामी के प्रति विश्वासघात का कोई भाव न था। वे मुगल शासन के वर्षों तक मुख्य सहायक रूप में रह और और सीमा प्रान्तों की व्यवस्था करते रहे, सहिष्णुता तथा सद्भावना की नीति से ही राजपूतों के हृदय जीते जा सके मुगल शासकों में जब यह भाव नष्ट हो गया, शासन का मुख्य आधार भी उसी समय खिसक गया।

× × × ×

मुगलों की अकबर द्वारा प्रचलित इस नीति को दो रूप में देखा जा सकता है। विशुद्ध हिन्दु संस्कृति का पुजारी जो कि पुरातन भारतीय आर्य परम्पराओं को अक्षुण्ण रूप में रखना चाहता है वह अकबर के इस प्रयत्न में भारतीय संस्कृति को सर्वथा नष्ट करने की दुरभिसन्धि की बू पाता है। दूसरी ओर हिन्दु मुस्लिम एकता-पुजारी अकबर को एकता के महान् देवता रूप में देखता है, वह समझता है यदि अकबर का यत्न सफल हो जाता तो भारत का अगला इतिहास सुनहले अक्षरों में लिखे जाने योग्य होता।

प्रश्न होता है कि इन अवस्थाओं में हिन्दु मुस्लिम-मिलन का सूत्रधार अकबर ठीक था, या विशुद्ध भारतीय संस्कृति की आन पर मर मिटने वाला प्रताप ठीक था।

× × ×

कई राष्ट्रवादी इस समय वीर प्रताप की आलोचना करते हुए कहते हैं कि यदि राजपूत भी मुस्लिम कन्याओं को अपने परिवारों में ले लेते तो आज हिन्दु मुस्लिम एकता में बाधा न होती। ठीक है, यदि यह किसी रूप में सम्भव हुआ होता। शासक शासितों की चीज को जबरदस्ती भी ले लेते हैं शक्ति ही शासक-जाति का आधार होता है शासक शासितों से इस तरह के सम्बन्ध सद्भावना के आधार पर नहीं किया करते अपने शासक के दबाव से ही वे इनका समर्थन किया करते हैं। अकबर के वैवाहिक सम्बन्ध कुछ छोटे रजवाड़ों के एक महान् साम्राज्य में अपनी आहुति चढ़ाना होता है। इसे हम सद्भावना का मूल आधार नहीं कह सकते।

राष्ट्रीयता के मूल मन्त्र का समर्थक इस पर अकबर की अन्य क्रान्तिकारी सुधारणाओं का हवाला दे सकता है। अकबर की सामाजिक सुधारणाएं तथा राजनैतिक सुविधाएं एक आवश्यक राजनैतिक समस्या का एक सुन्दर हल थीं। इन सुधारणाओं के द्वारा अकबर अपनी राज्य व्यवस्था के आधार दृढ़ करना चाहता था, और इन का परिणाम भी कालान्तर में यही हुआ।

राणा प्रताप इस मुगल नीति में हिन्दु जाति तथा संस्कृति का नाश देखता था। वह अनुभव करता था। हम रा धर्म किसी ऊँचे आधार पर है। हमारी संस्कृति पवित्र वं शुद्ध आर्य संस्कारों के शताब्दियों के प्रयत्नों का फल है। प्रणवीर प्रतापने यह अनुभव अच्छे तरह कर लिया था। उसे विरासत में केवल मात्र एक प्रसिद्ध घराने की कीर्ति तथा यश मिले थे। उसके पास न राज्य था, न खजाना था और न कोई राजधानी। सगे सम्बन्धी भी साथ छोड़ कर शत्रु पक्ष में चले गये। प्रताप के पास एक मात्र उसका अदम्य साहस था, जिसके बल बूते पर वह अपने समय के संसार में सब से बड़े शासक से टक्कर लेने के लिए खड़ा हो गया।

प्रताप अपनी माता के दूध को सदा के लिए उज्ज्वल करने के लिए अपनी आन पर, लगातार २५ वर्ष तक मुगल साम्राज्य की सम्पूर्ण शक्ति के सामने जूझता रहा, वर्षों भीलों के साथ अरवली की सूखी पहाड़ियों में घूमता रहा, उसके दिन के रहने का कोई ठिकाना न था न रात के बसेरे का कोई पता। घास की रोटी भी जिन्हें जंगली जानवरों के कारण न नसीब हो फिर भी आन पर डटे रहना कोई छोटी बात नहीं है।

प्रताप का महत्व उसके मुगल साम्राज्य की बाढ़ में डटे रहना है। तूफान आते हैं चले जाते हैं पर असली प्रकाश स्तम्भवाली दृढ़ चट्टान वही है जो आंधी तूफानों बरसाती नालों आदि से मुकाबला करके भी स्थिर रहे। प्रताप हिमालय की चट्टान था, उस पर मुगल साम्राज्य की शक्ति के रेलेपर रेले आये, परन्तु चट्टान वहीं स्थिर रही। प्रताप की अपनी आन पर स्थिति जहां प्रताप के गौरव को दिखाती है वहां उस से यह भी मालूम पड़ता है कि अकबर की नीति सद्भावना या प्रेम का हिन्दु जाति से तकाजा था या कोरी कूट-नीति का एक गहरा दांवपेंच।

स्वास्थ्य समाचार

ब्र० राजेन्द्र चतुर्थ Chicken pox, रमेशचन्द्र चतुर्थ, सुरेशचन्द्र चतुर्थ, गुरुदेव चतुर्थ अभिमन्यु चतुर्थ, खसरा, कृष्णचन्द्र चतुर्थ, केशवदेव पंचम खसरा से ग्रस्त हुए नारायणदत्त पंचम श्रेणी मलेरिया, रामप्रकाश तृतीय श्रेणी, विश्वनाथ तृतीय श्रेणी ज्वर।

गत सप्ताह उपरोक्त ब्र० रोगी हुए थे। अब सब स्वस्थ हैं। ब्र० केशवदेव को Chicken pox अभी प्रारम्भ होने से ज्वर है। शेष को अब ज्वर नहीं आता। दाने भी बैठ गये हैं। इन्हें धर्मशाला में अलग रखा गया है। ताकि अन्य ब्रह्मचारियों को यह रोग न हो।

हरिद्वार ज्वालापुर में इन दिनों चेचक (Small pox) का प्रकोप है। अतः सावधानी के लिए सब ब्रह्मचारियों को टीके करवा दिये गये हैं।

इन दिनों दुपहर गर्मी पर्याप्त होती है। इस सप्ताह अधिकतम तापमान १०८ फा० तथा न्यूनतम ८२ फा० रहा। पिछली रात्रि ठण्ड हो जाती है।

प्रधान मन्त्री का सन्देश:—

उड़ीसा के प्रधान मंत्री श्री विश्वनाथ दास जी ने गुरुकुल से जाने के बाद ब्रह्मचारियों के लिये निम्न सन्देश भेजा है:—

मेरे नौजवान दोस्तो,

"मैं तुम्हें केवल एक सन्देश दे सकता हूँ। वह सन्देश हमारे शास्त्रों का संदेश है। हमारे शास्त्र अपने कर्तव्य और उत्तरदायित्व की भावना को अपने में उत्पन्न करने पर बल देते हैं, अधिकारों की मांग की सर्वथा उपेक्षा करते हैं, जिस पर पश्चिम में इतना बल दिया जा रहा है। इसे हमारे शास्त्रों में धर्म कहा गया है। पश्चिम के सब कष्टों का कारण अपने अधिकारों पर आग्रह करना है। इससे वहां मतभेद, असन्तोष और अनैक्य उत्पन्न होगया है। पश्चिमी संस्कृति को मानव संहार का साधन बनाने में भी यही जिम्मेवार है। अतः ब्रह्मचारियों को अपनी उस संस्कृति और सभ्यता का प्रकाशवाहक बनना चाहिये जिस पर स्वामी श्रद्धानन्द जी और गान्धी जी जैसे महात्मा बहुत बल देते हैं।"

विश्वनाथ दास

प्रधान मंत्री, उड़ीसा

चौधरी हुलासराय के प्रबन्ध से गुरुकुल-प्रेस गुरुकुल कांगड़ी में मुद्रित तथा प्रकाशित।

* ओ३म् *

"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत" Reg. No A. 2927

गुरुकुल

सम्पादक—साहित्यरत्न पं० हरिवंश वेदालङ्कार

एक प्रति का मूल्य -) [गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख-पत्र] वार्षिक मूल्य २॥)

वर्ष ४] गुरुकुल काङ्गड़ी, शुक्रवार २७ ज्येष्ठ १९९६; ९ जून १९३९ [संख्या ९

हैदराबाद सत्याग्रह के विषय में सार्वदेशिक सभा के निश्चय

[श्री आचार्य– अभयदेव जी]

३० और ३१ मई को देहली में सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभाका जो एक विशेष अधिवेशन बुलाया गया था उसमें कई महत्व पूर्ण निश्चय किये गये हैं। सार्वदेशिक सभा के सदस्यों के अतिरिक्त हरेक प्रान्त से हैदराबाद सत्याग्रह पर विचार करने के लिये कुछ अन्य महानुभाव भी निमन्त्रित किए गए थे।

सभापति का आसन सार्वदेशिक सभा के प्रधान श्री घनश्याम सिंह जी ने ग्रहण किया था। सब लोग यह अनुभव करते थे कि आर्य समाज एक असाधारण परिस्थिति में से गुज़र रहा है आर्य समाज लड़ाई के मैदान में है। अपनी लड़ाई के सब पहलुओं पर विचार करते हुए पहले दिन यह सभा जिस सर्व-सम्मत निश्चय पर पहुंची वह यह था कि इस असाधारण अवस्था में सार्वदेशिक सभा के सब अधिकार प्रधान जी को दे दिये जाएँ। यह निश्चय जहां लड़ाई की भावना के सर्वथा अनुकूल है वहां इस बात का भी द्योतक है कि आर्य समाज एक नई दिशा में भी जागृत हो गया है। लड़ाई के समय में साधारण सभाओं का बार २ होना सम्भव नहीं होता और कई बार सेनापति के लिये (या लड़ाई के सूत्र धार के लिये) एक दम ही कुछ नया निश्चय कर देना आवश्यक हो जाता है जिसके लिये सभा बुलाने का अवसर भी नहीं रहता। इस लिये सभी लड़ाइयों में लड़ाई के संचालकों को—युद्ध सचिव को—या प्रधान मन्त्री को विशेष अधिकार दिये जाते हैं। सारे राष्ट्र की तरफ से बोलने का अधिकार दिया जाता है। इङ्गलैण्ड का विदेश-मंत्री अकेला ही इटली में जाकर राष्ट्र की तरफ से अवसर पड़ने पर कुछ निश्चय कर आता है और राष्ट्र उसे विस्तार-पूर्वक कारण न बताये जाने पर भी विश्वास के साथ स्वीकार करता है। भारतवर्ष की राजनीतिक सत्याग्रह की लड़ाई में भी कांग्रेस ने महात्मा गांधी को कई बार ऐसे विशेषाधिकार दिये हैं। इस समय भी स्वराज्य के लिये सत्याग्रह का अधिकार एक मात्र गांधीजी में कांग्रेस ने सीमित कर रखा है। मतलब यह है कि लड़ाई को सफलता पूर्वक चलाने के लिये जहां अन्य कई बातें आवश्यक हैं वहां अपने नेता में पूर्ण विश्वास होना यह भी अत्यावश्यक है। नेता को अच्छी तरह खूब सोच समझ कर चुनना चाहिये पर जब उसे चुन लिया तब उस पर पूर्ण विश्वास रखना चाहिये, यहां तक कि यदि वह कुछ ग़लती भी कर जाय तो उसे उसकी ग़लती नहीं किन्तु अपनी सब की ग़लती समझनी चाहिये अर्थात् उसे सर्वथा सह लेना चाहिए। नहीं तो कोई संगठित कार्य चलना असम्भव है। देहली में इकट्ठे हुए आर्य महानुभावों ने विशेषतः छठे सर्वाधिकारी श्री म० कृष्ण जी के सारगर्भित और प्रभावकारी भाषणके पश्चात् लड़ाईके इस आवश्यक तत्वको अनुभवकर लिया और सार्वदेशिक सभा की अन्तरंग के सब अधिकार इस लड़ाई के काल के लिये प्रधान श्री घनश्यामसिंह गुप्त को दे दिये गये।

पर सार्वदेशिक सभा के इस निश्चय से मेरा ध्यान आर्य समाज की जिस नवीन चेतना पर आकृष्ट हुआ है वह और बात है और उसका ही मैं विशेष उल्लेख करना चाहता हूं। आर्य समाज में सैनिक भाव है, जोश है और कष्ट के समय उसको निवारण करने के निमित आत्म-बलिदान के लिये दौड़ पड़ने की भावना है। इस सबका परिचय तो अभी तक आर्यसमाज देता रहा है। पर इतना ही विजय पाने के लिये काफी नहीं है। लड़ाई छिड़ते ही आर्य समाज में से बहुत से वीर जेल जाने के लिये और प्राण तक देने के लिये निकल पड़े हैं, यह ठीक है। परन्तु मैं देखता हूं कि केवल इस बात में तो सिक्ख या मुसलमान भी हमारे समान हैं, किसी तरह हम से कम नहीं हैं। शिया, सुन्नियों के झगड़े में शायद आर्य समाज की लड़ाई चलने जितनी देर हुई है उससे भी कम समय में ८-९ हज़ार शिया जेलों में जा पहुंचे हैं। उत्साह और

वीरता निरर्थक जाती है यदि उन्हें उत्तम नेतृत्व न मिले। पिछले दिनों में मुझके २ कान में यह आवाज़ पड़ती रही है कि आर्य समाज लड़ाई तो खूब शान से लड़ रहा है, धन और जन बिना विशेष यत्न के आते जा रहे हैं पर स्वामी श्रद्धानन्द जी जैसा कोई शानदार नेता आर्य समाज में दृष्टि गोचर नहीं होता। यह लड़ाई बिना नेता के ही चल रही है। इस कानाफूसी में कहाँ तक सचाई का अंश है, इसमें यदि हम न पड़ें तो भी अब यह हर्ष समाचार ऐसा कहने वालों को सुनाया जा सकता है कि आर्यसमाज अपने नेता को भी समय पर पैदा कर सकता है, अपनी नेतृत्व शक्ति को भी प्रकट कर सकता है यह बात सार्वदेशिक सभा के इस निश्चय से पता लग गया है। घनश्यामसिंह जी का पूर्ण विश्वास के साथ सब अधिकार दे देना इसी बात का लक्षण है। सार्वदेशिक सभा का यह निश्चय न केवल लड़ाई की दृष्टि से सर्वथा उचित है परन्तु आर्य समाज की एक बड़ी आवश्यकता की पूर्ति का भी शुभलक्षण है। हमें केवल सैनिक बनना ही नहीं सीखना चाहिए किन्तु अपना सेनापति बनाना भी सीख लेना है। क्या हम आशा करें कि आर्य समाज सचमुच इन्हें अपना सेनापति अग्रणी बनना बना लेगा? हमारे प्रधान जी ने सभा के इस निश्चय को बड़ी गम्भीरता के साथ स्वीकार किया था और बड़े मार्मिक शब्दों में, पूर्ण अपनेपन के साथ सहयोग की अपील की थी, तो क्या हम आशा करें कि देश भर के और विदेशों के भी आर्य समाजें अपने नेता की आज्ञा का पालन करेंगे उनके कहे अनुसार पूर्ण अनुशासन में रहेंगे और निरन्तर उन्हें अपना सच्चा सहयोग प्रदान करते रहेंगे।

दूसरा महत्व पूर्ण प्रस्ताव शोलापुर की दुर्घटना के सम्बन्ध में था। इस प्रस्ताव द्वारा सार्वदेशिक सभा ने जहां इस दुर्घटना के लिये हार्दिक खेद प्रकाशित किया है और इतना नैतिक साहस दिखलाया है कि इस घटना में हमारे स्वयं सेवक भी किसी अंश में सत्याग्रह के ऊंचे आदर्श से च्युत हुए हैं इसे स्वीकार किये हैं (जैसा कि आर्य समाज जैसी धार्मिक संस्था के लिये सर्वथा शोभा जनक ही है) वहां बम्बई सरकार के और शोलापुर के मजिस्ट्रेट के बयान का खण्डन करते हुए यह साफ बतला दिया है कि इस लड़ाई-दंगे में आर्य सत्याग्रहियों की तरफ से कुछ भी उत्तेजना देने वाला या हिंसा का कृत्य नहीं किया गया है और इस सब झगड़े का उत्तर दायित्व विरोधी लोगों पर ही है। इस प्रस्ताव में सत्याग्रह संचालकों द्वारा बम्बई सरकार की बहुत अनुचित विश्वाजनक आज्ञा का भी उस समय मान लेने की प्रशंसा की गई है।

इसी तरह पंजाब सरकार की हैदराबाद सत्याग्रह के समाचारों और विचारों को न छापने की चेतावनी का ठीक २ जवाब देने वाला प्रस्ताव, तुलजापुर आदि स्थानों में आर्यवीरों ने परमेश्वर का नाम लेते हुए और ज़रा भी भौतिक प्रतिकार न करते हुए जो हैदराबाद की पुलिस द्वारा किये गए तथा पुलिस की प्रेरणा से मुसलमानों द्वारा किये गये आक्रमणों को धैर्य के साथ सह कर जो वीरता दिखाई है उसके लिये उन्हें बधाई देने का प्रस्ताव और आर्य समाज द्वारा इस लड़ाई में उत्साह के साथ धन और जन की जो सहायता दी जा रही है उसके लिये सन्तोष का प्रस्ताव आदि कई प्रस्ताव स्वीकृत किये गये।

आशा है कि सार्वदेशिक सभा के विशेष बैठक में हुए इन प्रस्तावों से आर्य जनता लाभ उठावेगी।

दिल की आग

(२)

(ले० — श्री प्रो० लक्ष्मचन्द्र जी उपाचार्य)

"हे अग्न जब मैं तू हो जाऊं और तू मैं हो जावे, तो तेरे इस लोक में दिये सब आशीर्वाद सफल हो जावें।"

परमात्मा को अग्नि नाम से पुकारा है क्योंकि परमात्मा अग्रणी है, आगे ले जाने वाला है और गर्मी और प्रकाश अर्थात् शक्ति और ज्ञान का पुञ्ज है, जो अग्नि-परमात्मा के साथ एक होना चाहता है उसे कर्म ज्ञान और उपासना से उसके पास पहुँचना चाहिये। उसे शक्ति और तेज से युक्त होना चाहिये और संसार को आगे ले जाने वाला होना चाहिये, अर्थात् उसे अपना विकास करना चाहिये और औरों के विकास में सहायता करनी चाहिये, जो आदमी शुद्धाचारी है, जो सदा कर्त्तव्य पालन करने के लिये कमर कसे रहता है, जो सदा अपना ज्ञान बढ़ाने में तत्पर रहता है, जिस का कदम सदा आगे ही आगे जाता है जो किसी न किसी क्षेत्र में मानवी ज्ञान की वृद्धि करता है या मानवीय कल्याण के लिये अग्रसर होता है। जो अपने-आप कल्याण मार्ग का पथिक बनता है और औरों को भी बनाता है, जो छोटे क्षेत्र में या बड़े क्षेत्र में लोगों का संगठित करता है और उनकी आत्मा बनकर उनका उत्थान करता है, जो साधन सम्पन्न हो कर, अपने चित्त को शुद्ध करके औरों का अपने सत्संग से, सद्-उपदेश से तारता है वह ही अग्नि स्वरूप परमात्मा के साथ एक हो सकता है, अग्निस्वरूप परमात्मा के साथ एक होना कोई मखौल बात नहीं है। बहुत से सुस्त निकम्मे आदमी ब्रह्म बनने का ढोंग कर लेते हैं और अपने आपको सिद्ध पुरुष समझ बैठते हैं। वे अपने आप को भी धोखा देते हैं और लोगों को भी ठगते हैं। अग्निरूप परमात्मा के साथ एक होने की महत्वाकांक्षा रखने वाले को रात दिन आग की तरह जलते रहना चाहिये जिस से उसके सब अन्दर के मल और बाहर (समाज के वातावरण के मल दग्ध हो जावें जिससे वह सदा सबके अन्दर नव जीवन का संचार करता रहे और संसार के अन्दर ज्योति स्तम्भ हो कर भटकों का पथ प्रदर्शक बन सके। उत्साह और ज्ञान से युक्त होकर सदा अपनी और औरों की उन्नति में लगे रहने वाला कभी निकम्मा नहीं बैठ सकता, ज्ञान की वृद्धि करने वाले ब्राह्मण, उत्तम शासन और राम राज्य को फैलाने वाले क्षत्रिय, संसार के धन को बढ़ा कर संसार के कल्याण में लगा देने वाले वैश्य, सब अपने अपने ढंग से अग्नि स्वरूप परमात्मा के साथ एक हो रहे हैं।

अग्नि के अन्दर ताप और प्रकाश के जो दो गुण हैं उन का आपस में सम्बन्ध विचारणीय है। गर्मी न हो तो प्रकाश न हो, इसी तरह यदि उत्साह से अपने कर्म में तल्लीनता न हो तो नयी सूझ, नया बोध, नया ज्ञान नहीं मिल सकता, सच्चे ज्ञान में चाहे किसी क्षेत्र में हो उन्नति का एक मात्र और सच्चा उपाय यह है कि मनुष्य जितना जानता है उसे अमल में लाये। जितना सच्चा पुरुषार्थ होगा उतना सच्चा प्रकाश बढ़ेगा, केवल किताबें पढ़ते रहने से लोगों की राय तो बहुत पता लग जायगी और बड़े बड़े आदमियों के Quotation देकर आदमी औरों पर अपनी पण्डिताई का रोब भी जमा सकता है पर रहता है अन्दर से कोरा। जैसे कोई वैज्ञानिक बिना प्रयोगशाला में प्रयोग किये सच्चा वैज्ञानिक नहीं बन सकता ऐसे ही कोई ज्ञानी बिना उस ज्ञान के अनुसार कर्म करने के सच्चा ज्ञानी नहीं बन सकता। हर एक क्षेत्र में वही नेता बनते हैं जो अनुभवी हैं, जो केवल किताबी इल्म जानते हैं उन का कौन पूछता है। मनुष्य के अन्दर जितना ज्यादा उत्साह और अपने कार्य में तल्लीनता होती है उतना ज्यादा उसको Inspiration मिलता है। लेखक जब लिखते २ अपने आप को भूल जाता है तो उसके कलम से ऐसे सुन्दर वाक्य निकलते हैं जिन पर वह स्वयं पीछे आश्चर्य करता है। वक्ता जब बोलते-बोलते भाव से खूब भरपूर हो जाता है तो ऐसे गज़ब के वाक्य बोलता कि सब वाह २ करने लग जाते हैं। सभी रचनात्मक कार्य करने वालों का यह अनुभव है कि उत्साह, तल्लीनता और एकाग्रता के बिना शुद्ध प्रकाश नहीं मिल सकता। एडिसन जिसने ग्रामोफान का ईजाद किया है एक जगह लिखता है Genius is 99 perspiration and one percent inspiration कि प्रतिभा निन्यानवे प्रति शतक पुरुषार्थ है और एक प्रतिशतक स्फुरणा। इस वाक्य से स्पष्ट है कि बिना पुरुषार्थ के प्रकाश नहीं मिलता।

जो लकड़ी गीली है वह बांदी है। उससे प्रकाश नहीं मिलता, वह तो धुआं देती है, जो लोगों की आंखों और फेफड़ों को खराब करता है। इसी तरह कई बिना तप किये, बिना अपने दोषों को दूर किये, लोक सेवा के मैदान में आ उतरते हैं। ऐसे आदमी अग्नि नहीं बन सकते। अग्नि के साथ एक नहीं हो सकते और उनके कार्य से बजाए इसके कि लोगों को सन्मार्ग प्रदर्शन और उत्साह मिले लोगों में भ्रान्ति, वैमनस्य और कलह बढ़ता है। जैसे गीली लकड़ी भी यदि बड़ी भारी आग के अन्दर डाल दी जावे तो जल्दी ही उसकी नमी सूख जाती है और वह भी ताप और प्रकाश देने लग पड़ती है, ऐसे ही जिसके अन्दर वासनायें होते हुए भी प्रभु भक्ति, शक्ति और तेज़ होता है उस के दोष जल्दी ही धुल जाते हैं और वह लोगों के लिये अग्नि बन जाता है। भक्ति, सत्सग और स्वाध्याय यदि शुद्ध भाव से किये जावें तो एक ऐसी जबरदस्त आग पैदा होती है जो चित्त की वासनाओं को हटाकर चित्त को शुद्ध निर्मल बना देती है। जिस का चित्त निर्मल हो जाता है वह भगवान् को वस में कर लेता है, जिस मंत्र की मैं व्याख्या कर रहा हूँ उसके दूसरे भाग में लिखा है "हे अग्ने जब तू मैं हो जाये अर्थात् तू भक्त बन जाय और मैं भगवान् बन जाऊं तो तेरे सारे आशीर्वाद सफल हो जायें" कबीर जी ने क्या खूब कहा है—

"कबिरा मन निर्मल भयो जैसे गंगा नीर,
पाछे लागा हर फिरे, कहत कबीर कबीर ॥

प्रेम की अजीब लीला है कहां तो कबीर 'हर-हर' का जाप करता था और अब हर 'कबीर-कबीर' का जाप करता है। मतलब यह है कि प्रेम के ऐक्य में कोई ऊंच नीच का भेद नहीं रहता, न कोई बड़े छोटे का भेद रहता है, एक और बात गौर करने की है वह यह है कि जितना प्रेम सूक्ष्म होता है उतना वह नाना रूप धारण कर सकता है और इस लचक में तो लुत्फ़ है। मिसाल के तौर पर एक सच्चा मित्र भिन्न भिन्न समय में माता पिता भाई इत्यादि सब का प्रेम धारण कर अपने मित्र की सहायता करता है, प्रेम एक है पर उसके रूप अनेक हैं और जिसका प्रेम जितना सूक्ष्म होगा उतने ही ज्यादा वह अनेक रूप धारण कर सकेगा। परमात्मा का प्रेम सब से सूक्ष्म है तभी कहते हैं--

"त्वमेव माता च पिता त्वमेव त्वमेव बंधुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव त्वमेव सर्वं मम देव देव" ॥

जब भक्त भगवान् के साथ एक हो जाता है तो उस का प्रेम भी ऐसा ही हो जाता है। जब ऐक्य स्थापित हो गया तो फिर सब आशीर्वाद सफल हो गए।

बाइबल में लिखा है "Seek you first the Kingdom of God and everything else will be added unto you" पहले प्रभु के राज्य की खोज करो, फिर सब कुछ अपने आप मिल जायगा। गीता में लिखा है कि जो अनन्य भाव से प्रभु की भक्ति करता है, प्रभु उसका क्षेम खुद करते हैं। कबीर जी फर्माते हैं--

"प्रभुता को सब कोई भजे, प्रभु को भजे न कोय।
कह 'कबीर' प्रभु को भजे प्रभुता चेरी होय"

सारांश यह है कि 'दिल की आग' की तड़प उसी अग्नि का एक रूप है उसी के लिये यह तड़प है। यह सुन्दर यह स्वय है। इस को साक्षी रखते हुए इस को कर्म, ज्ञान, उपासना से, हर एक चेष्टा से रिझाने का प्रयत्न करना चाहिये। इसके साथ ऐक्य स्थापित करना चाहिये, स्वयं अग्नि बन जाना चाहिये अर्थात् शक्ति और प्रकाश का पुञ्ज बन कर प्रजाओं में नया जीवन संचार करना चाहिये और उनको कल्याण मार्ग का पथिक बनाना चाहिये।

गु रु कु ल

२७ ज्येष्ठ शुक्रवार १९९६

हैदराबाद की लड़ाई में आर्य समाज और हिन्दूसभा

(ले० श्री० आचार्य अभयदेव जी)

इस आर्य सत्याग्रह में हिन्दू महासभा के साथ के विषय में जो हम अपने विचार प्रकट कर चुके हैं वे यद्यपि कई भाइयों को कुछ कटु प्रतीत हों पर वे सर्वथा सत्य हैं। यह जान कर प्रसन्नता होती है कि प्रायः सब प्रसिद्ध आर्यनेता हिन्दू सभा के साथ को न केवल नापसन्द करते हैं किन्तु यह भी अनुभव करते हैं कि हिन्दू महासभा के साथ होने के कारण आर्य समाज का बहुत सा त्याग, कष्टसहन और तपस्या निरर्थक जा रही है। वह पवित्र यज्ञीय अग्नि में आहुत होने की जगह "भस्मनि हुत" हो रही है। इस विषय में एक तटस्थ आदमी (जो कि न आर्य समाजी है न हिन्दू सभाई) का कथन हमें प्रकाश दे सकता है। महाराष्ट्र प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष श्री एस० बी० गोखले ने कांग्रेस की दृष्टि से अपने एक वक्तव्य में जो कुछ कहा है उसमें आर्य समाज और हिन्दू महासभा का भेद प्रकट हो जाता है। उन्होंने उसमें आर्य-नेताओं की उस सहिष्णुता की तारीफ की है, जो उन्हों ने शोलापुर जिला मजिस्ट्रेट की आज्ञा जारी होने पर दिखाई। आपने कहा कि आर्य समाज के नेताओं ने अपने सत्याग्रह आंदोलन को बड़ी गम्भीरता और जिम्मेदारी के साथ चलाया है। यह उनकी महान् कुशलता का द्योतक है। आगे आपने कहा कि "आर्य समाज की एक भी मीटिंग में कांग्रेस या गांधी जी के लिये एक भी अपशब्द नहीं बोला गया। इस मामले में आर्य समाजी और हिन्दू महासभा के नेताओं में महान् अन्तर है, हालां कि हिंदू महासभा वाले भी सत्याग्रह कर रहे हैं। जिम्मेदार आर्य नेताओं ने बम्बई सरकार की दिक्कतों को महसूस किया है। उनकी लड़ाई बम्बई सरकार के खिलाफ नहीं, निजाम सरकार के खिलाफ है। बम्बई सरकार ने भी काफी राजनैतिक दबाव डाले जाने के बावजूद भी आर्य समाज की न्यायपूर्ण कार्यवाहियों में हस्तक्षेप करने से इंकार कर दिया।"

"लेकिन हिन्दू महासभा की तरफ से महाराष्ट्र में जो हैदराबाद विरोधी आन्दोलन किया जा रहा है, उसमें कांग्रेस को बदनाम करने की नित्य चेष्टायें की जाती हैं।" अन्त में आपने हिंदू महासभा वालों से अपील की कि वे प्रस्तुत कार्य में लगें, कांग्रेस, महात्मा गांधी और बम्बई सरकार पर व्यर्थ के आक्रमण न करें। इससे लाभ के बजाय हानि होगी और ब्रिटिश भारत में साम्प्रदायिक कटुता बढ़ेगी।

हैदराबाद—सत्याग्रह और विद्यार्थी

आर्य सत्याग्रह के छठे सर्वाधिकारी और पञ्जाब आर्य-प्रतिनिधि सभा के उ०प्र० श्री मान्य म० कृष्ण जी २६ अप्रैल को जब गुरुकुल में पधारे थे और एक सर्वाधिकारी के तौर पर आपके सम्मान करने का सुअवसर गुरुकुल को प्राप्त हुआ था तब स्वागत सभा में दिए अपने भाषण के अन्त में उन्होंने हैदराबाद सत्याग्रह के लिए एक प्रकार की अपील करते हुए कहा था "तुम जो यहां ब्रह्मचारी बैठे हुए हो उन्हें तो मैं सत्याग्रह में जेल जाने के लिए नहीं कहता, उन्हें तो यहां अपना अध्ययन या तैयारी करनी चाहिये और यहां रह कर ही किसी त्याग या सेवा के कार्य द्वारा इस सत्याग्रह में भी मदद करनी चाहिए. अन्य विद्यालयों में चलने वाले कांग्रेस के सत्याग्रहों में भी विद्यार्थियों को जेल जाने से रोका गया है ....।" ऐसा कह कर महाशय जी ने जिस बात की तरफ़ हमारा ध्यान खींचा है उससे गुरुकुल के अधिकारी पहिले से सहमत हैं। यह भी स्पष्ट है कि ऐसा कहने में महाशय जी ने पञ्जाब आर्य प्रतिनिधि सभा (जो गुरुकुल की स्वामिनी सभा है) की नीति को ही प्रकट किया है। यही कारण है कि गुरुकुल कांगड़ी से ब्रह्मचारियों का दूसरा जत्था हैदराबाद नहीं भेजा गया। ब्रह्मचारी तो जैसे पहिले जत्थे के लिए तैयार थे वैसे ही दूसरे जत्थे के लिए तैय्यार हैं और हो सकते हैं। अपनी इस तरह की तैयारी गुरुकुल के विद्यार्थियों ने प्रारम्भ में ही प्रकट की थी। उसी तैयारी को जान कर प्रथम सर्वाधिकारी श्री पूज्य नारायण स्वामी जी ने गुरुकुल के प्रथम जत्थे को जेल जाने के लिए तार द्वारा बुला लिया। उनका तार आने पर इतना अवसर नहीं था कि सत्याग्रह में विद्यार्थियों के भाग लेने के विषय में क्या नीति होनी चाहिये इस विषय में लिखा-पढ़ी हो सकती। इसलिए सैनिक के तौर पर उनकी इस आज्ञा को शिरोधार्य करना ही गुरुकुल के अधिकारियों ने अपना कर्त्तव्य समझा और गुरुकुल कांगड़ी के प्रथम जत्थे को पूज्य नारायण स्वामी जी के साथ सत्याग्रह करने का सुअवसर प्राप्त हुआ। ऐसा मालूम पड़ता है कि गुरुकुल कांगड़ी के ब्रह्मचारियों द्वारा रास्ता दिखाए जाने के कारण अन्य संस्थाओं के विद्यार्थी भी इस सत्याग्रह में सम्मिलित होने लगे बल्कि किस संस्था के अधिक से अधिक जत्थे जाते हैं इसकी होड़ सी लग गई। ऐसी अवस्था में हम यह आवश्यक समझते हैं कि हमारे सत्याग्रह में विद्यार्थियों के जेल जाने के विषय में क्या नीति होनी चाहिये इस बात को स्पष्ट रूप से हम अपनी तरफ से वर्णन कर दें।

यह बात स्पष्ट है कि साधारणतया विद्यार्थियों को सविनय अवज्ञा आन्दोलन में नहीं पड़ना चाहिये।

विद्यार्थी काल में उन्हें मुख्यतया अध्ययन में या तैयारी में या आस पास के रचनात्मक सेवा कार्य में समय लगाना चाहिये। पर विशेष अवस्था में जब कि पुरुष सविनय अवज्ञा के लिए न मिलते हों, प्रायः सब जेल जा चुके हों और सविनय अवज्ञा को जारी रखना भी आवश्यक हो तभी विद्यार्थियों को सविनय अवज्ञा में सम्मलित होने का कर्त्तव्य प्राप्त होता है। इसी तरह स्त्रियों को भी एक विशेष अवस्था में और पीछे से ही सविनय अवज्ञा में भाग लेने की अनुमति दी जा सकती है।

कांग्रेस के पहले आन्दोलनों में विद्यार्थियों को सविनय अवज्ञा में जाने दिया गया है ऐसा जो कहा जाता है उस विषय में भ्रम निवारण कर देना भी आवश्यक है। शायद पाठकों को मालूम न हो कि राजकोट, जयपुर आदि के रियासती सत्याग्रहों में गांधी जी और सरदार पटेल ने जब विद्यार्थियों का भाग लेने से रोका तब उनसे भी कई कांग्रेसी कार्यकर्त्ताओं ने पूछा कि "पिछले सन् २२ और ३२ के आन्दोलनों में आपने विद्यार्थियों को सविनय अवज्ञा में भाग लेने से क्यों नहीं रोका।" तब गान्धी जी ने स्पष्टीकरण किया था कि "उस समय तो मैं असहयोग आन्दोलन चला रहा था, तब सरकारी स्कूलों कालिजों को विद्यार्थी छोड़ें उनसे असहयोग करें यही मुख्य बात थी। जब उनसे स्कूल कालिज छुड़ाये गए तब उनसे कोई काम लेना भी आवश्यक था इसलिए जेल जाने की भी अनुमति दे देनी स्वाभाविक थी।"

अस्तु, तात्पर्य यह है कि हमारे सत्याग्रह में भी विद्यार्थियों को तभी अनुमति दी जानी चाहिये जबकि बहुत असाधारण अवस्था हो जाय, जबकि अति कठोर दमन या ऐसे किसी कारण से मनुष्य सत्याग्रही निकलने बन्द हो जायें (जैसा कि सन् ३३ के कांग्रेस के सत्याग्रह आन्दोलन में अवस्था आ गई था), नहीं तो विद्यार्थियों का अपनी संस्था में रहते हुए ही इस आन्दोलन में सहायता देने के लिए कुछ रचनात्मक सेवा-कार्य करने में ही अपनी उचित कर्त्तव्यता समझनी चाहिये। विशेषतः अपना अवकाश और छुट्टी के समय को इसी तरह की सेवा में लगाना चाहिए। यह सब कार्य मुख्यतया अपनी धार्मिक मांगों की, अपनी सत्याग्रही लड़ाई की बातों का लोगों में सच्चा प्रचार करना, विशेषतः मुसलमानों से इस सम्बन्ध में अपना सम्पर्क बढ़ाना, इस आन्दोलन को हिन्दू मुस्लिम वैमनस्य का रूप देने से रोकना तथा सत्याग्रह के लिए स्वयं त्याग करना एवं दूसरों से भी धन अन्न आदि का संग्रह करना इत्यादि हो सकते हैं। पर सबसे बड़ी और उत्कृष्ट कोटि की सेवा या सहायता (जैसा कि मैं पहिले भी कहता रहा हूं) विद्यार्थी भी यह कर सकते हैं कि वे अपने आपको धार्मिकता में ऊँचा उठायें, संध्या-अग्निहोत्र आदि अपने धार्मिक कृत्यों को (जिसके लिए कि यह लड़ाई है) और प्रार्थना को हार्दिकता और अधिक अन्तर्मुखता के साथ करें। इसका हमारे धार्मिक सत्याग्रह पर जितना असर पड़ सकता है वह कल्पनातीत है।

आशा है इन्हीं सेवा, तपस्या और त्याग के कामों को करते हुए आर्य विद्यार्थी गण यह अनुभव कर सकेंगे कि इनके द्वारा ही वे इस धार्मिक युद्ध में अपना उचित और पूरे से पूरा भाग ले रहे हैं।

हैदराबाद की जेलों में मृत्यु

आये दिन ये समाचार हमें पढ़ने को मिलते हैं कि 'हैदराबाद रियासत में अमुक सत्याग्रही की मृत्यु हो गई'। ये ऐसे समाचार हैं जिन्हें पढ़कर कोई भी पुरुष हैदराबाद की सरकार को क्षमा नहीं कर सकेगा। इस सत्याग्रह के बारे में किसी की चाहे कुछ भी सम्मति हो पर इसमें दो मत नहीं हो सकते कि जब कोई सभ्य सरकार किसी व्यक्ति को अपनी जेल में ले लेती है तो उसके स्वास्थ्य और जीवन की रक्षा की जिम्मेवारी भी तत्क्षण अपने ऊपर ले लेती है तो जनता को यह जानने का अधिकार है कि हैदराबाद की जेलों में इतनी मौतें क्यों हो रही हैं। इन तीन-चार महीनों में १० मौतें हो जाना किसी भी प्रकार समझ में आने लायक नहीं है। उन्हें आकस्मिक कहकर टाला नहीं जा सकता। इसका यही मतलब निकलता है कि हैदराबाद की सरकार जेलखाने रखने की अधिकारिणी नहीं है। लोगों को जेल लिये जाने की जिम्मेवारी अपने ऊपर उठाना आसान काम नहीं है। यह जो कहा जा रहा है कि मृत्युओं का कारण कैदियों से सख्त काम लेना, उनकी ठीक देखरेख न होना, और उनके साथ अनुचित व्यवहार करना है, तो इन शिकायतों को अविलम्ब दूर करना या इस सम्बन्ध में अन्य कुछ उचित कदम उठाना ही अब हैदराबाद की रियासत को अधिक पतित और बदनाम होने से बचा सकता है यह बात रियासत के भले के लिये चेतावनी के तौर पर प्रकट कर देना हम अपना कर्त्तव्य समझते हैं। नहीं तो जो आर्यवीर इस तरह से बलिदान हुए हैं वे तो धर्म के मार्ग पर बलिदान होने के कारण अमर हो ही जायेंगे पर साथ ही हैदराबाद रियासत पर इनके कारण लगा हुआ कलंक का टीका भी बहुत देर तक मिटाये न मिट सकेगा।

स्वा॰ सेवानन्द जी के लेख पर——

गुरुकुल पत्र में प्रकाशित स्वामी सेवानन्द जी के लेख के विषय में, गुरुकुल के पाश्चात्य दर्शन के उपाध्याय श्री प्रो॰ नन्दलाल जी खन्ना का एक पत्र हमें प्रकाशनार्थ प्राप्त हुआ है। इस पत्र को अविकल रूप में प्रकाशित करने की तो अब कोई आवश्यकता नहीं है। संक्षेप में इतना जान लेना पाठकों को पर्याप्त है कि श्री प्रो॰ जी ने अपने पत्र में कुछ घटनाओं का उदाहरण देकर के यह बताया है कि उस लेख में बहुत सी बातें असत्य और घटना के विरुद्ध हैं। और कुछ बातें तो ऐसी हैं जो कि उनके कथन के अनुसार सम्भव भी नहीं हैं, या हास्यास्पद हैं।

इसी तरह श्री लक्ष्मीनिधि जी शास्त्री वाचस्पति अध्यापक गुरुकुल कमालिया, सुपुत्र टेकचन्द जी ने भी एक लेख श्री सेवानन्द जी के प्रत्युत्तर में हमारे पास प्रकाशनार्थ भेजा है जिसमें उन्होंने विस्तार से उनके कथन की आलोचना की है। परन्तु अब अनावश्यक होने के कारण उस लेख को भी हम प्रकाशित नहीं करते। आशा है लेखक महाशय हमें क्षमा करेंगे —सम्पादक

गान्धी सेवासंघ वृन्दावन

(ले० श्री प० हरिदत्त जी वेदालंकार)

बिहार बाढ़ों का प्रान्त है। बंगाल की खाड़ी की मानसून पवनें हिमालय की ढालों पर पहुंचीं, वर्षा हुई और सारे प्रान्त में जलप्रलय का दृश्य समुपस्थित होगया। गर्मी में हलकी बाढ़ें और वर्षा में प्रलयंकर जलप्रवाह बिहार इन दोनों का अभ्यस्त हो चुका है। प्राकृतिक परिस्थिति ने मनुष्य की प्रवृत्ति पर भी प्रभाव डाला है। सामूहिक कार्य भी बाढ़ों की तरह होते हैं। मई मास के प्रारम्भ में, जनता जनार्दन के सेवकों—गान्धी सेवा संघ के सदस्यों, मान्य नेताओं तथा पूज्य महात्माजी के वृन्दावन (चम्पारन) पहुँचने पर वहां एक ऐसा प्रबल जनप्रवाह आया जिसने सात दिन तक वृन्दावन की भूमि को आप्लावित किये रखा।

बाढ़ों को नियन्त्रित करने के लिये बड़े बड़े बांध बनाये जाते हैं। वृन्दावन के प्रबन्धकों ने भी जनता की विशाल बाढ़ को व्यवस्थित करने के लिये बड़े भारी पण्डाल की व्यवस्था की थी। ३ मई को जब राष्ट्रपति ने इस पण्डाल में राष्ट्रिय पताका को फहराया तथा महात्मा जी ने प्रदर्शनी का उद्घाटन किया तो ऐसा लगता था कि पण्डाल बहुत बड़ा बनाया गया है। लाख से ऊपर श्रोताओं के लिये बनाये मण्डप में कुछ हज़ार की भीड़ अखरती थी। महात्मा जी ने अपने भाषण में पुरुषों की तथा विशेषतः स्त्रियों की बहुत कम उपस्थिति पर एक दो परिहास भी किये। उपस्थिति कम होने का कारण यह था कि एक व्यक्ति ने संघ के मुख्य प्रबन्धक प० प्रजापति मिश्र के नाम से वृन्दावन में प्लेग फैलने के समाचार की एक विज्ञप्ति छपवा कर बंटवा दी थी। किन्तु पहले दिन जो बाढ़ नहीं आयी—८ मई को वही बाढ़ इतने भीषण रूप में आयी कि नियन्त्रण न हो सका। जल प्रवाह के सम्मुख जो आया वह बह गया। स्वयंसेवकों का घेरा टूट गया और चारों ओर की दीवार भी टूट गयीं। उस दिन चम्पारन में महात्मा जी का अन्तिम दर्शन था। वैशाख मास की कड़कती धूप में, गरमी और लू की परवाह न करती हुई ग्रामीण जनता कई २ कोस चलकर शाम को वहां पहुंची थी। किस लिये? उनका दर्शन करने के लिये, उनके प्रति मूकभाव से अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित करने के लिये और अपने प्रति किये गये उपकारों के लिये कृतज्ञता प्रकट करने के लिये।

× × × ×

चम्पारन प्राचीन काल में वृज्जियों और लिच्छवियों का प्रदेश था, जिसमें भगवान् बुद्ध ने पैदल भ्रमण करते हुए लोगों को 'चत्वारि आर्यसत्यानि' तथा 'अष्टांग मार्ग' का उपदेश दिया था। पशु हिंसा के विरुद्ध ज़ोरदार आवाज़ उठाकर लोगों की प्रसुप्त चेतना को उद्बुद्ध किया था। आज भी इस देश में वर्त्तमान अशोक के शिलालेख उस गौरवपूर्ण प्राचीन काल की स्मृति अक्षुण्ण बनाये हुए हैं तथा बुद्ध की भूतदया के जीवित साक्षी के रूप में मौजूद हैं।

सदियों तक सोये रहने वाले इस देश ने २० वीं शताब्दी के प्रथम चरण में जब राष्ट्रीय यज्ञ प्रारम्भ किया तो उस का प्रथम शंख ध्वनि चम्पारन के ही आकाश में गूंजी था। हमारी स्वराज्य यात्रा का पहला पड़ाव यही प्रदेश है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिये चल रहे 'महाभारत' का आदि पर्व की लीला भूमि यही है। १९१५-१६ की बात है, महात्मा जी दक्षिणी अफ्रीका के सत्याग्रह संग्राम में विजय लाभ कर भारत लौटे थे। फिर भी वे हिन्दुस्तान के लिये कुछ नये थे और हिन्दुस्तान विशेषतः उत्तर भारत उनके लिये नया था। एक बूढ़ा किसान उन्हें लखनऊ से यहां खींच लाया। गोरों के अत्याचारों की करुण कथायें सुनकर उनका हृदय पसीज उठा। उन्होंने इसका अन्त करने का निश्चय किया।

शाक्य बुद्ध की भूमि में नये 'बुद्ध' का पदार्पण हुआ। बुद्ध ने पशुओं के विरुद्ध की जाने वाली हिंसा का विरोध किया था, किन्तु उसी भूमि में दैव के दुर्योग से मनुष्य भी पशु बना डाले गए थे। उनके साथ पशुओं से बढ़ कर अत्याचार होते थे। इस जीव हिंसा के विरुद्ध महात्मा जी ने आवाज़ उठायी और विद्रोह का झण्डा खड़ा किया। सत्याग्रह के शस्त्र का भारत में सर्व प्रथम उपयोग किया गया। महात्मा जी के रूप में चम्पारन के किसानों को एक त्राता मिला और इस आन्दोलन में उन्हें पूर्ण सफलता मिली। चम्पारन के बूढ़े लोग आज भी उन अत्याचारों और दारुण दुःखों की कहानियां कहते हैं और गांधी जी के उपकारों को स्मरण करते हैं।

अतः यह स्वाभाविक ही था कि बिहार प्रान्त में यदि गांधी जी के सिद्धान्तों के अनुसार जन सेवा करने वालों का यदि सम्मेलन किया जाय तो चम्पारन में ही किया जाय। बम्बई के प्रधान मन्त्री श्री बी० जी० खेर ने ठीक ही कहा था कि चम्पारन सत्याग्रहियों के लिये ऐसी ही पवित्र भूमि है जैसे मक्का मुसलमानों के लिए, जेरुसलम ईसाइयों के लिए तथा काशी हिन्दुओं के लिये है। चम्पारन जिले के वृन्दावन गांव में गांधी सेवासंघ का पांचवां अधिवेशन हुआ।

गांधी सेवा संघ के उद्देश्य तथा कार्य-प्रणाली को ठीक २ न समझने के कारण इसके बारे में बहुत सी भ्रान्त धारणायें प्रचलित हैं। आश्चर्य है बड़े २ जिम्मेवार आदमी भी इन भ्रान्त धारणाओं में विश्वास रखते हैं। कई लोग इसे गांधीवादियों का राजनैतिक दल समझते हैं और कई गांधी जी के अन्ध पूजकों का एक पन्थ। एक वर्ग कहता है—महात्मा गान्धी के विरुद्ध जो देश में आंधी चल रही है उसे रोकना ही इसका उद्देश्य है और दूसरी कोटि के लोग कहते हैं कि जिस प्रकार भारत में

कबीर, राधा स्वामी आदि पंथों की संगत लगती है उसी प्रकार इनकी भी बैठक साल में एक बार लगती है। परन्तु दोनों ही भ्रम में पड़े हुए हैं। गांधी सेवासंघ न तो कोई राजनैतिक दल है और न ही कोई रूढ़िवादी धार्मिक पन्थ। इसका उद्देश्य है "महात्मा गांधी के सिखाये हुये सिद्धान्तों के अनुसार जनता की सेवा करना।" महात्मा गांधी के सिखाये हुए सत्याग्रह के सिद्धान्त हैं—'सत्य की अनन्त और विनम्र खोज और उसकी सिद्धि के लिए निम्न लिखित तथा तत्समान दूसरे साधनों का मनसा वाचा कर्मणा उत्तरोत्तर प्रगतिशील अभ्यास। अहिंसा (जिसमें प्रेम अन्तर्भूत है), ब्रह्मचर्य (जिसमें सभी इन्द्रियों का संयम अन्तर्भूत है), अपरिग्रह, अस्तेय, अभय, अस्वाद, शरीरश्रम, स्वदेशी, धर्म, अस्पृश्यता निवारण (जिसमें ऊंच नीच भावना का परित्याग अन्तर्भूत है) सर्वधर्म-समभाव और अधर्म प्रतिकार आदि।

उपरोक्त उद्देश्य की सिद्धि के लिए खादी प्रचार, ग्राम सेवा अर्थात् ग्रामीण जनता के उद्योग का पुनरुद्धार राष्ट्रीय शिक्षा, राष्ट्र भाषा प्रचार, मद्य निषेध साम्प्रदायिक एकता, स्त्रीजाति उद्धार, रोगनिवारण, संकट निवारण, गोसेवा आदि का काम इस संघ के सदस्य करते हैं।

संघ के सदस्यों के तीन वर्ग हैं - सेवक, सहयोगी, और सहायक। परन्तु संघ का सदस्य बनने के लिये यह प्रतिज्ञा करना आवश्यक है कि वह उपरोक्त उद्देश्य मानता तथा सत्य और अहिंसा को श्रद्धापूर्वक स्वीकार करता है। इस निश्चयके साथ खादी पहनना आवश्यक है क्योंकि यह हिन्दुस्तान के देहातियोंके लिये अनिवार्य रूपसे अवश्य सहायक उद्योग है। मद्य आदि से बचने वाला, हरिजनों के साथ समान व्यवहार करने वाला तथा कौमी एकता बढ़ाने वाला ही इसका सदस्य हो सकता है। सेवक वर्ग के सदस्य के लिये यह आवश्यक है कि "उसे हिन्दुस्तानी का काम चलाऊ ज्ञान हो, वह सेवा के योग्य तथा उद्यत हो, अपने जीवन और वर्ताव में गांधी जी के बताये सिद्धान्तों का अमल करने की निरंतर कोशिश करता हो, शारीरिक विवशता की अवस्था को छोड़ कर प्रतिमास कम से कम १ हज़ार गज दस से अधिक अंक का, सम और मजबूत सूत काते। ऊपर बताये खादी प्रचार आदि कार्यों में से किसी एक कार्य में अपना सारा समय दे और कार्य वाहक समिति की आज्ञा के बिना अपने व्यक्तिगत अर्थ लाभ या फायदे के कोई काम न करे।"

सहयोगी सदस्य वे हैं जो खादी प्रचार, ग्रामोद्योग, राष्ट्रीय शिक्षा आदि के एक या अनेक कामों में नियमित रूप से भाग लें, संघ का अनुशासन मानें और १०००गज दस से अधिक अंक का, सम मज़बूत सूत प्रतिमास काता करें। सहायक सदस्य वे हैं जो संघ को नियमित आर्थिक सहायता प्रदान करते हैं।

उपरोक्त नियमों से स्पष्ट है कि संघ के सदस्यों को सार्वजनिक सेवा का कठोर व्रत किस प्रकार पालन करना पड़ता है। वास्तव में यह संघ त्याग और तपस्या की आग में कुन्दन बने हुए सारे देश सेवकों का एक समुदाय है। देश के प्रथम कोटि के नेताओं में से राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र प्रसाद, सरदार वल्लभ भाई पटेल, खान-अब्दुल गफ्फार खां आदि अनेक मान्य व्यक्ति इस संघ के सदस्य हैं। इसी तथ्य से इस संस्था का कुछ महत्व आंका जा सकता है।

इस वर्ष संघ के सदस्यों की संख्या कुल २०६ थी। इन में से १४४ सेवक सदस्य हैं और शेष सहयोगी और सहायक। यदि सदस्यों को प्रान्तों की दृष्टि से विभाजन किया जायतो महाराष्ट्रके सदस्य सबसे अधिक अर्थात् ३८ हैं। इसके बाद गुजरात, बिहार और युक्त-प्रान्त के सदस्यों की संख्या क्रमशः ३७, २., और २० है। कार्यों की दृष्टि से यदि सदस्यों का विभाजन किया जाय तो ग्रामसेवा, हरिजन सेवा, खादी प्रचार में काम करने वालों की संख्या ४६, ४८ तथा ३५ है। गांधी जी रचनात्मक कार्य का सदा महत्व देते रहे हैं। आज भी देशी रियासतों के बारे में 'नवीन प्रकाश' के अनुसार जो नीति उन्होंने निर्धारित की है। उसमें रचनात्मक कार्य को सर्वोपरि स्थान दिया है। कांग्रेस द्वारा पद ग्रहण किये जाने के बाद देश की स्थिति कुछ बदल गयी है। महात्मा जी बताये हुए राष्ट्रीय शिक्षा, मद्यनिषेध, खादी आदि के कार्यों को सरकारें पूरा करने का प्रयत्न कर रही हैं। उस कार्य में सहायता करने के लिये कुछ कार्यकर्त्ताओं का जाना आवश्यक था अतः संघ के कुछ सदस्य राजनीति में भी भागलेते हैं। डेलांग उड़ीसा में इसी दृष्टि से संघ ने सदस्यों को राजनीति में प्रवेश की अनुमति दी था। इस पर अखबारों में बहुत आलोचना हुई थी और सुभाष बाबू ने तो यहां तक कह दिया था कि यह दक्षिणपन्थी लोगों का एक संगठन है। किन्तु २०६ सदस्यों में से अधिकांश कांग्रेस के ४ आना वाले भी सदस्य नहीं हैं। केवल ४२ सदस्य ऐसे हैं जो कांग्रेस की प्रतिनिधि संस्थाओं-अखिल भारतीय महासमिति, प्रान्तीय तथा जिला कांग्रेस कमेटियों में हैं। इन अंकों से स्पष्ट है कि गांधी सेवासंघ का राजनीति से बहुत ही थोड़ा सम्बन्ध है और वह सम्बन्ध संघ का रचनात्मक कार्य पूरा करने के लिये ही है। महात्मा जी ने तो इस बार स्पष्ट कहा था कि 'त्रिपुरी में क्या हो रहा है'। संघ के सदस्यों को इसकी जरा भी चिन्ता नहीं करनी चाहिये।

गांधी सेवासंघ तो एक उद्देश्य से प्रेरित होकर कार्य करने वालों का परिवार है जिसके लोग सारे देश में फैले हुए हैं। वर्ष में एक बार वे दूर २ से इकठे होते हैं। अपनी २ कठिनाईयां पेश करते हैं, एक दूसरे की दिक्कतों का हल सुझाते हैं तथा महात्मा जी के आगे अपनी शंकायें पेश करते हैं। अगले साल के लिये वहां से रचनात्मक कार्यके लिये नया उत्साह, नवीन उल्लास और नई उमंगे लेकर लौटते हैं। ७ दिन तक यह स्नेह सम्मेलन चलता रहता है। पता नहीं लोगों ने इसको किस तरह शक्तिलोलुप, स्वार्थी तथा कांग्रेस में अपना प्रभुत्व कायम रखने वाला दल समझा है। अगले अंक में हम इस स्नेह सम्मेलन पर होने वाले महत्वपूर्ण कार्यों का उल्लेख करेंगे।

—०—

चौधरी दुलाराराय के प्रबन्ध से गुरुकुल प्रेस गुरुकुल कांगड़ी में मुद्रित तथा प्रकाशित।

* ओ३म् *

"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत" Reg. No. A. 2927

गुरुकुल

सम्पादक—साहित्यरत्न पं० हरिवंश वेदालङ्कार

एक प्रति का मूल्य -) [गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख-पत्र] वार्षिक मूल्य २॥)

वर्ष ४] गुरुकुल काङ्गड़ी, शुक्रवार २ आषाढ़ १९९६; १६ जून १९३९ [संख्या ७

सत्याग्रही का स्वाध्याय

[आज जब कि आर्यसमाज अपनी सब शक्ति एक धार्मिक सत्याग्रह में लगा रहा है उस समय कुछ ऐसे आप्त वचनों का स्वाध्याय आर्यसमाज के लिए विशेष कल्याणकारी हो सकता है जो आर्यसमाज में सत्याग्रही वायुमण्डल को बनाने वाले हैं। इसलिए इस शीर्षक के नीचे हम क्रमशः ऐसे ही आप्त वचनों का छोटा सा संग्रह पाठकों को भेंट करने का विचार रखते हैं। इस बार थोड़ा सा दयानन्द वचनामृत पान कीजिये। —अभय]

प्रार्थना शक्ति—

१ "इसलिए परमेश्वर की स्तुति प्रार्थना व उपासना अवश्य करनी चाहिये। इससे इसका फल पृथक् होगा, परन्तु आत्मा का बल इतना बढ़ेगा कि वह पर्वत के समान दुःख प्राप्त होने पर भी न घबरायेगा और सबको सहन कर सकेगा। क्या यह छोटी बात है?"

२. "परमेश्वर भी सबके उपकार करने की प्रार्थना में सहायक होता है, हानिकारक कर्म में नहीं।"

३. "ऐसी प्रार्थना कभी न करनी चाहिये, और न परमेश्वर उसको स्वीकार करता है जैसे हे परमेश्वर! आप मेरे शत्रुओं का नाश, मुझको सबसे बड़ा, मेरी ही प्रतिष्ठा और मेरे आधीन सब हो जायें" इत्यादि।

४. "परमेश्वर की शरण लेने से मन निर्मल होता है, प्रार्थना करने से मनुष्य को पापों से पश्चात्ताप हो जाता है, आगे को पाप कर्म की ओर उसका झुकाव नहीं रहता। उसमें सत्य और प्रेम दो गुण सुदृढ़ हो जाते हैं।"

५ "जो जो पाप मैंने जानते हुए वा अनजानपन में किये हों, उनसे छुड़ाने वाला, इस संसार में, हे प्रभु! आपके बिना दूसरा कोई भी नहीं है। हमारे अविद्यादि सब पाप छुड़ा कर हमें शीघ्र शुद्ध कीजिये। आपकी इच्छा से हमारा सारा पाप नष्ट हो जाये। जिससे हम निष्पाप होकर आपकी भक्ति में और आज्ञापालन में तत्पर रहें।"

६ "जीवन अल्प है और परमेश्वर महान् है।"

सत्य अहिंसा सर्वमान्य धर्म है—

सभी देशों के जनों और मतावलम्बी सज्जनों को सत्य बोलना अनुकूल है, वे नहीं चाहते कि उनके साथ कोई मिथ्या व्यवहार करे, छल कपट से बर्ते, उनको हानि पहुँचाये, पीड़ा दे, सतावे, उनके धन धान्य का अपहरण करे, उनकी मान मर्यादा की ओर ताके। बस ऐसे ही कर्म सर्वमान्य समान धर्म के हैं। यह धर्म सबके अनुकूल है। इसे सब स्वीकार करते हैं।

धर्म का स्वरूप परोपकार है—

"परोपकार करना धर्म, और परहानि करना अधर्म कहलाता है। जैसे अपने ऊपर यदि कोई उपकार करे तो आनन्द होता है उसी प्रकार दूसरों का उपकार करने में भी आनन्द मनाना चाहिये। क्या भूगोल भर में कभी कोई मनुष्य ऐसा था, अब है अथवा आगे होगा जो परोपकार रूप धर्म और परहानि रूप अधर्म के बिना धर्माधर्म का कोई अन्य स्वरूप सिद्ध कर सके।"

सत्य

१ "सत्य का निवास मन, वचन और काया इन तीनों में होना उचित है। मनुष्य सत्य सोचे, सत्य बोले और सत्य कर्म ही करे।"

२ "मनुष्य का मनुष्यपन यही है कि झूठे व्यवहारों को सर्वथा छोड़ कर सदा सच्चे व्यवहारों को ग्रहण करे। सदा सत्य की ही विजय होती है, झूठ का अन्त में पराजय ही हुआ करता है। ऋषि जन सत्य पर ही चल कर सत्य के निधान भगवान् को प्राप्त करते हैं। इस कारण सब मनुष्यों को सत्य पर अवश्यमेव आरूढ़ होना चाहिए। यह निश्चित सिद्धान्त है कि सत्य से बढ़ कर धर्म का अङ्ग दूसरा नहीं है। वे जन धन्य हैं जो अपने व्यवहारों को सत्य के अनुसार ही चलाते हैं।"

३ "सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए।"

४ "सब काम धर्मानुसार, अर्थात् सत्य और असत्य का विचार कर करने चाहियें।"

परस्पर एकता—

"एक दूसरे की हानि करने से पृथक् रह, परस्पर सब को लाभ पहुँचाना हमारा मुख्य कर्म है।"

२ "यदि लोग हमारी अँगुलियों को बत्तियाँ बना कर जला दें तो भी कोई चिन्ता नहीं है। मैं वहां जाकर अवश्य सत्योपदेश करूँगा।"

३ "मनुष्य उसी को कहना जो मननशील होकर स्वात्मवत् अन्यों के सुख दुःख और हानि लाभ को समझे। अन्यायकारी बलवान् से भी न डरे, और धर्मात्मा निर्बल से भी डरता रहे। इतना ही नहीं अपने सर्व सामर्थ्य से धर्मात्माओं की चाहे वे महा अनाथ, निर्बल, गुण रहित क्यों न हों, उनकी रक्षा, उन्नति प्रियाचरण करे, और अधर्मी चाहे चक्रवर्ती, सनाथ, महा बलवान् और गुणवान् भी क्यों न हो उनका नाश, अवनति और अप्रियाचरण सदा किया करे। अर्थात् जहां तक हो सके वहां तक अन्यायकारियों के बल की हानि और न्यायकारियों के बल की उन्नति सर्वथा किया करे, इस काम में चाहे उसको कितना ही दारुण दुःख प्राप्त हो, चाहे प्राण भी भले ही जायें परन्तु इस मनुष्यपन रूप धर्म से पृथक् कभी न होवे।"

आत्मनिरीक्षण—

प्रथम अपने दोष देख, निकाल के, पश्चात् दूसरे के दोषों पर दृष्टि देवे, निकाले।

हमारी निर्बलता

"विदेशियों के आर्यावर्त में राज्य होने का कारण आपस की फूट, मत भेद, ब्रह्मचर्य का सेवन न करना, विद्या न पढ़ना और पढ़ाना, व बाल्यावस्था में अस्वयंवर विवाह, विषयासक्ति, मिथ्याभाषणादि कुलक्षण, वेद-विद्या का अप्रचार आदि कुकर्म हैं। जब आपस में भाई-भाई लड़ते हैं तभी तीसरा विदेशी आकर पञ्च बन बैठता है।

सत्य का आग्रह

१ "सत्य के लिए कारावास कोई लज्जाजनक बात नहीं है। धर्मपथ पर आरूढ़ होकर मैं ऐसी बातों से सर्वथा निर्भय हो गया हूं। प्रतिपक्षी लोग यदि अपने प्रभाव से ऐसा कष्ट दिलायेंगे तो वहां कष्ट सहते हुए मेरे चित्त में शोक की कोई तरंग भी न उत्पन्न होगी, वहां मैं अपने प्रतिपक्षियों की अकल्याण कामना भी कभी नहीं करूँगा।"

श्री सेवानन्द जी का लेख

(ले०—प्रो० नन्दलाल जी खन्ना, प्रो० पाश्चात्य दर्शन)

'गुरुकुल पत्र' में श्री सेवानन्द नाम के किसी महाशय का एक लेख गुरुकुल कांगड़ी के सम्बन्ध में छपा है। गुरुकुल की वर्तमान अवस्था और नीति के विषय में जो कुछ लिखा गया है उसके सम्बन्ध में श्री आचार्य जी कुछ लिख चुके हैं, अतः मेरे कुछ लिखने की आवश्यकता नहीं है, मैं केवल यह कहना चाहता हूँ कि लेख में बहुत सी बातें असत्य और घटना विरुद्ध हैं जिनके मैं कुछ उदाहरण देना चाहता हूँ।

लेखक महाशय लिखते हैं कि गुरुकुल कांगड़ी की गङ्गा पार की पुरानी इमारत गोशाला के तौर पर प्रयोग में आ रही है। परन्तु वास्तव में बात यह है कि पुरानी भूमि की गोशाला के अतिरिक्त किसी इमारत में गोशाला तो क्या शायद एक भी पशु नहीं है। विद्यालय, महाविद्यालय, कार्यालय आदि की जो इमारतें बनी हुई हैं वे कभी भी गोशाला के तौर पर प्रयुक्त नहीं की गईं। गोशाला के लिए एक अलग इमारत थी, पशु आदि सदा उसी में रक्खे जाते थे। आगे चल कर लेखक महाशय लिखते हैं कि मैं नई भूमि में जब गुरुकुल देखने गया तो श्री आचार्य जी बाहर गए हुए थे और मैं गुरुकुल के सम्बन्ध में बातचीत करना चाहता था अतः मुझे फ़िलासफ़ी के अध्यापक के पास ले जाया गया। पिछले उन्नीस वर्ष से गुरुकुल कांगड़ी में फ़िलासफ़ी का अध्यापक मैं ही हूँ। और नई भूमि में गुरुकुल को आए हुए नौ ही वर्ष हुए हैं, अतः जिस समय का लेखक महाशय जिकर करते हैं उस समय भी फ़िलासफ़ी का अध्यापक मैं ही था। मैंने अपनी स्मृति को अच्छी तरह टटोला है। (और मेरी स्मृति कोई निर्बल स्मृति नहीं है) परन्तु मुझे यही निश्चय है कि श्री सेवानन्द जी मेरे पास कभी नहीं आए, मैंने आज तक उनके दर्शन भी कभी नहीं किए, और गुजराती में उनके इस लेख से पहले उनका नाम भी कभी नहीं सुना। उनके प्रश्नों के जो उत्तर वह कहते हैं कि मैंने दिए उनसे मेरा निश्चय और भी बढ़ जाता है कि वह मेरे पास कभी नहीं आए। उदाहरण के लिये वह लिखते हैं कि मैंने प्रोफ़ेसर साहब की मेज से कागज़ पेन्सिल उठा ली और उत्तर नोट कर लिए। मैं निश्चयपूर्वक कह सकता हूं कि गुरुकुल की दीर्घ सेवा के सारे काल में मेरे पास कभी कोई व्यक्ति नहीं आया, जिसने मेरी मेज से कागज़ पेन्सिल उठा कर गुरुकुल सम्बन्धी मेरे प्रश्नों के उत्तरों को नोट कर लिया हो।

फिर लेखक महाशय लिखते हैं कि मैंने पूछा क्या पदार्थ विज्ञान गुरुकुल में पढ़ाया जाता है, और क्या आपको मालूम है कि पदार्थ विज्ञान और गणित का उच्च रसायन से सम्बन्ध है? उत्तर मिला कि यह मेरा विषय नहीं है। इसके सम्बन्ध में मैं यह कहना चाहता हूं कि मैंने इस प्रकार का उत्तर दिया होगा इस को न मैं मान सकता हूँ, और न कोई मुझे जानने वाला विश्वास कर सकता है। मैंने रसायन और गणित विषय लेकर ही बी० ए० पास किया था, उस के पश्चात् कई वर्षों तक गुरुकुल में रसायन पढ़ाता रहा, जो समिति रसायन का कोर्स नियत करती है उसका लगभग गत सोलह वर्ष से मैं सदस्य हूं। ऐसी अवस्था में मैंने यह उत्तर दिया हो कि मेरा यह विषय नहीं, यह विश्वास करने योग्य बात नहीं। फिर लेखक महाशय लिखते हैं कि फार्मेसी गुरुकुल

से तीन मील दूर है। जब गुरुकुल नई भूमि में आया था तो इमारतें पर्याप्त नहीं थीं, कुछ महीनों के लिये फार्मेसी मायापुर वाटिका में रक्खी गई थी, परन्तु अब तो कई वर्षों से फार्मेसी गुरुकुल की इमारत के अन्दर है। अतः लेखक महाशय को यह बात इन अर्थों में असत्य है कि उन्होंने यह जानने की पर्वाह नहीं की कि जो कुछ मैं लिख रहा हूं वह सत्य है या असत्य। लेखक महाशय ने मेरे वस्त्रों के विषय में लिखा है कि वह बहुत स्वच्छ नहीं थे। मेरा तो विचार है कि मैंने लेखक महाशय के कभी दर्शन भी नहीं किये। संभव है उन्होंने मुझे कभी देखा हो। मैं इस विषय में केवल इतना कहना चाहता हूँ कि स्वच्छता तथा शौकीनी दो भिन्न-भिन्न वस्तुएं हैं। कई लोग शौकीनी को स्वच्छता समझते हैं। मैं स्वच्छता को एक अच्छी चीज़ समझता हूँ, शौकिनी को नहीं। इस के अतिरिक्त यह कह देना भी अप्रासंगिक न होगा कि प्रत्येक वस्तु सीमा के भीतर रहनी चाहिए। सुन्दर वस्तु भी सीमा का उल्लंघन कर कुरूप हो जाती है। किसी कवि ने कहा है,

'जो ख़ाल (तिल) हद से गुज़रा वह बेशक मसा हुआ।'

स्वच्छता से भी सीमातीत प्रेम हो जाए तो वह स्त्रैणपन हो जाता है। मैं स्वीकार करता हूं कि मुझे स्वच्छता से इतना प्रेम नहीं है जितना स्त्रियों को होता है, और मैं समझता हूँ कि स्वच्छता अच्छी चीज़ होते हुए भी विद्या, बुद्धि, सत्य सेवा आदि नैतिक और आध्यात्मिक गुणों से बहुत गौण चीज़ है।

श्री सेवानन्द जी ने पञ्जाबी लोग की अस्वच्छता पर कुछ हंसी उड़ाने का भी यत्न किया है, और कहा है कि उन्हें आम खाना नहीं आता, वे आम खाकर हाथ सिर से पोंछ लेते हैं। पञ्जाबियों को जानने वाले गवाही देंगे कि श्री सेवानन्द जी की यह बात कितनी असत्य है। मैंने तो अब तक किसी पञ्जाबी को आम खाकर सिर से हाथ पोंछते नहीं देखा। अंग्रेजी में कहावत है कि 'Mockery is the fume of small minds.' ऐसी हंसी केवल लेखक के हृदय की संकीर्णता की सूचक है। श्री सेवानन्द जी को मालूम होना चाहिये कि जवाब में भी अनेक प्रकार से ऐसी हंसी उड़ाई जा सकती है। क्या यह नहीं कहा जा सकता कि श्री सेवानन्द जी की जाति को चावल खाना नहीं आता। चावल और दाल को मिलाकर हाथों में ऐसा भींचते हैं कि उनका कचूमर निकल जाता है, उङ्गलियों में से पिचकारियां बह निकलती हैं। हाथ की मैल और पसीने में इस प्रकार गूंध कर गोले बना लेते हैं और फिर उन्हें दूर से ही मुंह में फेंकने लगते हैं कि कहीं मुख के स्पर्श से हाथ दूषित न हो जाए और फिर बिना चबाये ही निगल जाते हैं। जल पीना हो तो गिलास को आध गज़ ऊपर रखकर पानी मुँह में डालते हैं कि कहीं गिलास अपवित्र न हो जाए। इस प्रकार की अनेक बातें कही जा सकती हैं। परन्तु उपरोक्त प्रकार की कोई बात कहना अत्यन्त अनुचित और अन्याय है। यदि कोई किसी नगर में एक अंधा देखकर अनुमान करले कि इस नगर में सब अंधे हैं तो यह तर्क अशुद्ध होगा। परन्तु श्री सेवानन्द जी का तर्क भी ऐसा ही है जिन्होंने किसी एक आध आदमी को देखकर सारी पञ्जाबी जाति पर कलङ्क लगा दिया।

श्री सेवानन्द जी के आक्षेपों को पढ़ने से प्रतीत होता है कि उनके आक्षेप अत्यन्त तुच्छ प्रकार के हैं। उदाहरण के लिये वे लिखते हैं कि मैंने पूछा कि स्नातक लोग किन २ धन्धों में लगे हुये हैं। उत्तर मिला नहीं। क्या कोई विश्वास कर सकता है कि इस प्रकार के प्रश्न का ऐसा उत्तर मिल सकता है। आक्षेप तथा उत्तर ऐसे तो होने चाहियें जिन पर कोई विश्वास कर सके। क्या कोई विश्वास कर सकता है कि गुरुकुल के प्रोफेसर से पूछा जाय कि गुरुकुल के स्नातक क्या २ कर रहे हैं और इस प्रश्न का उत्तर वह कुछ दे ही न सके! इस पर श्री सेवानन्द जी बड़े गर्व से लिखते हैं कि मैंने प्रश्न तैय्यार कर रखे थे और मैंने उनकी झड़ी लगा दी। ऐसी डींग को पढ़ कर हंसी आती है, भर्तृहरि ने ठीक कहा है:—

"न हि गणयति क्षुद्रो जन्तुः परिग्रह फल्गुताम्"

एक और बात मेरी समझ में नहीं आई। श्री सेवानन्द जी ने गुरुकुल देखने के ८-६ वर्ष पश्चात् यह लेख क्यों लिखा? इतने वर्षों तक चुप क्यों रहे? इतने काल के पश्चात् लिखने से तो यह अनुमान स्वाभाविक है कि उनका इस समय कोई प्रयोजन होगा! और यदि प्रयोजन हो तो यह बहुत सन्देहास्पद हो जाता है कि गुरुकुल के सम्बन्ध में उनका वर्णन यथार्थ और बनावट से रहित हो!

विश्व कवि

एक बनाई कविता मैंने
जिसमें कुछ तुक मिली समान।
गर्व हुआ, छाती कुछ फूली,
मुख पर झलक पड़ी मुस्कान।

मानव ग्रन्थ लिखा जिस कवि ने
जिसके सन्मुख नर नादान।
कैसा अजब निराला वह कवि
नहीं गर्व है, ना मुस्कान।

सारा विश्व रचाया उसने
झलमल करता व्योम महान।
निशिदिन खग हैं गुण बखानते-
नहीं उसे इसका कुछ ध्यान।

चन्द्रकिरण का चादर ओढ़े
सोती प्रकृति वनों में मौन।
व्यजन डुलाकर, तान सुनाकर
सुख से उसे सुलाता कौन ?

उसकी छांह वनों मे देखो
ढूंढो उसे गुफा के द्वार-
झरना जिस प्रभु की वीणा का
प्रतिनादित करता झंकार।

'श्री द्विरेफ'

गुरुकुल

२ आषाढ़ शुक्रवार १९९६

गुरुकुल प्रेमियों के आशीर्वाद

प्रथम वैशाख के दिन गुरुकुल के लिए शुभ कामना करने की जो मैंने गुरुकुल प्रेमियों से प्रार्थना की थी वह निष्फल नहीं गई है, काफी अंश में सफल हुई है। उस दिन बहुत से धार्मिक वृत्ति वाले गुरुकुल प्रेमी महानुभावों ने चुपचाप गुरुकुल की सफलता के लिए परमेश्वर से प्रार्थना की। इसमें दो तीन ऐसे स्वनाम धन्य उच्च कोटि के महात्मा भी सम्मिलित हैं जिनकी प्रार्थना का बहुत भारी प्रभाव है। उन्होंने न केवल प्रार्थना की है किन्तु उसके साथ कृपा करके अपने आशीर्वाद तथा शुभ कामनायें लिखित रूप में भेज कर भी गुरुकुल को कृतार्थ किया है। जिन भाइयों ने मन ही मन प्रार्थना की है उनके लिए कुछ लिखने की आवश्यकता नहीं है उनका यह पवित्र कृत्य अपने आप फल लावेगा और उसका ज़िक्र करना शायद उसके महत्व को कम करने वाला हो। परन्तु जिन भाइयों ने अर्थात् कुछ संरक्षकों, कुछ स्नातकों तथा अन्य गुरुकुल प्रेमी बुज़ुर्गों ने उस दिन मुझे पत्र लिख कर अपनी शुभकामनाओं द्वारा मुझे उत्साहित किया है उनका सार्वजनिक रूप से आभार मानना मेरा कर्त्तव्य हो जाता है। मैं उनका हृदय से धन्यवाद करता हूं।

उनमें से जिन्होंने अपने पत्रों में मेरी कुछ स्तुति की है, मेरे द्वारा गुरुकुल की अपेक्षित उन्नति होगी इसकी आशा दिखाई है, और इसी प्रकार की बातें लिखते हुए प्रेम प्रदर्शित किया है, उनके पत्रों के विषय में तो कुछ लिखने की आवश्यकता नहीं। परन्तु कई भाइयों ने—और वे भाई प्रायः स्नातक भाई हैं अपनी शुभ-कामनाओं और प्रेम के साथ गुरुकुल के ठीक संचालन के लिए कुछ आवश्यक निर्देश भी मुझे दिए हैं। यह इस बात का चिन्ह है कि उनकी यह शुभ-कामना केवल व्यावहारिक नहीं है किन्तु हार्दिक है। मैं उन सब भाइयों को यह विश्वास दिलाना चाहता हूं कि उन्होंने जो कुछ निर्देश दिए हैं, उन पर अच्छी तरह सोच विचार कर मैंने उन्हें यथा स्थान संभाल कर रखा है। उनमें कुछ बातें ब्रह्मचारियों की समझाने की हैं, कुछ देख रेख सम्बन्धी हैं, कुछ अपने आपको ठीक करने की हैं, कुछ प्रबन्ध विषयक सुधार की हैं। मैं इतना कह सकता हूं कि उन सब पर मैंने उचित ध्यान दिया है। और सबके विषय में अपना कर्त्तव्य निश्चय कर लिये हैं और अभी इस लेख द्वारा आज उनको धन्यवाद देने को और आभार मानने को तैय्यार हुआ हूँ। क्योंकि मैं भी धन्यवाद देना और आभार मानना रिवाज़ी तौर पर नहीं किन्तु ईमानदारी और सचाई के साथ करना चाहता हूँ।

गुरुकुल की वास्तविक पूंजी—

पर गुरुकुल के एक स्नातक भाई के पत्र का एक अंश नीचे देकर मैं सार्वजनिक तौर पर भी थोड़ा सा आत्म-निरीक्षण करना चाहता हूँ।

"गुरुकुल संचालन की नीति के सम्बन्ध में आपने जिन बातों का ज़िक्र किया है, वे यदि कार्यरूप में परिणत हो जाएं तो गुरुकुल एक आदर्श संस्था बन सकता है और पुनः जनता के हृदय में स्थान प्राप्त कर सकता है। बहुत समय से मैं अनुभव करता था कि जनता के हृदय में गुरुकुल के लिये वे आदर भाव नहीं रहे जो पहले थे। सार्वजनिक संस्थाओं की पूंजी तो जन-सेवा है। और यदि कोई संस्था अपनी सेवा द्वारा जनता का आदर और सम्मान प्राप्त नहीं कर सकती और जनता की प्रेम पात्र नहीं बन सकती तो वह संस्था चाहे कितनी ही बड़ी हो उसे बन्द हो जाना चाहिए। यही 'जन तन्त्र" संस्थाओं के लिए नियम हैं। महात्मा गान्धी जी के त्याग और तपस्या ने जनता के हृदय की आशाओं को बहुत बढ़ा दिया है, और वह सार्वजनिक संस्थाओं से बहुत ऊंची आशायें रखने लगी है। इस लिए......।"

पंजाब में काम करने वाले एक स्नातक भाई के इन वाक्यों का उद्धृत करता हुआ मैं परमेश्वर से प्रार्थना करता हूं कि वह हम सब कुल वासियों को प्रत्येक शिक्षक, ब्रह्मचारी और कर्मचारी को सच्चे अर्थों में जनता का सेवक बनावे।

एक खुली चिट्ठी—

सुना है कि मेरठ के भाई शिवदयालु जी ने मुझसे गम्भीर मत भेद दिखलाते हुये कोई लेख या पत्रिकायें प्रकाशित की हैं जैसे कि दिल्ली से निकलने वाले "हिन्दु" पत्र में तथा 'आर्यमित्र' में भी कुछ लिखा जाता रहा है। उनमें क्या क्या लिखा गया है इससे मैं अनभिज्ञ हूँ, और अभिज्ञ होने में कुछ लाभ भी नहीं समझता, परन्तु भाई शिवदयालु जी ने एक खुली चिट्ठी 'गुरुकुल' पत्र के लिये डाक से मुझे भेजने की कृपा की है जिसका उत्तर वे चाहते हैं कि मैं 'गुरुकुल' में प्रकाशित कर दूं तो अच्छा है। वह अन्यत्र भी प्रकाशनार्थ भेजी गई है। उस चिट्ठी का जो मुख्य विषय है वह वह विज्ञप्ति है जो कि कांग्रेसी आर्य समाजियों द्वारा हस्ताक्षर किये जाने के लिए 'गुरुकुल' में प्रकाशित की गई थी। 'गुरुकुल' के पाठक जानते हैं कि वह विज्ञप्ति तो अब अनावश्यक होने से वापिस ली जा चुकी। अतः वह विषय अब समाप्त हो चुका है, परन्तु उसके आधार पर जो अन्य बातें श्री शिवदयालु जी ने अपने पत्र में कही हैं, उनपर यदि मैं अपने विचार लिखूं या कहीं-कहीं अपने कथनों का

स्पष्टीकरण करूं (जो कि उस पत्र का उत्तर देने के लिये आवश्यक होगा) तो यह एक बड़ा लम्बा लेख हो जायेगा, पर उससे पाठकों का या आर्य जनता का कुछ भी लाभ सिद्ध नहीं होगा। साथ ही मैं देखता हूं यदि हम आर्य समाज के ऊंचे आदर्श को तथा अपने ध्येय को स्पष्ट सामने रखें तो यह भी प्रतीत होगा कि उसके सामने ये सब बातें, ये मत भेद बहुत अस्थायी हैं, और बहुत क्षुद्र हैं तथा यदि हम अपने लक्ष्य के प्रति सच्चे रहेंगे तो हमारे इन अस्थायी मत भेदों के कारण आर्यसमाज की कुछ भी हानि नहीं होगी। इन सब कारणों से उनकी खुली चिट्ठी के विषय में कुछ भी वाद-विवाद के रूप में लिखने की जरा भी आवश्यकता नहीं देखता। अतः उनकी चिट्ठी की केवल उन अन्तिम चार-पांच पंक्तियों को उद्धृत कर देना चाहता हूँ जिन द्वारा उन्होंने मुझसे अपनी असली कामना या अभिलाषा प्रकट करदी है:—

"महर्षि दयानन्द के पावन मिशन के परम-भक्त वीर श्रद्धानन्द की गद्दी पर आप पुनः प्रतिष्ठित हुये हैं, इसके लिए आपको हार्दिक बधाई है। मैं तो यह ही कामना करता हूँ कि आपका प्रत्येक कार्य आचार्य दयानन्द की छाप को लिए हुये हो, तथा वीर श्रद्धानन्द के भावों की मांग करने वाला ही हो"।

और जो कुछ भी हो भाई शिवदयालु जी के इस शुभ-कामना को पूरा करने का मैं सतत प्रयत्न करूगा। उनकी इस खुली चिट्ठी के उत्तर में मैं उनको यही विश्वास दिलाना चाहता हूँ।

पुराने गुरुकुल की स्मृति

(ले० श्री पं० वागीश्वर जी विद्यालंकार)

[उपर्युक्त शीर्षक से एक लेख माला 'गुरुकुल' में तीन वर्ष पूर्व प्रकाशित हुई थी। उस समय दुर्भाग्य से लेखों के गुम हो जाने के कारण वह बन्द करनी पड़ी। हर्ष का विषय है कि वे पुनः प्राप्त हो गये हैं। हम उस उपयोगी लेख माला को पुनः प्रकाशित करते हैं।

—सम्पादक]

विद्यालय

श्री आचार्य रामदेवजी

जिस वृक्ष को आज आप इतना बड़ा देख रहे हैं वह एकदिन बीज और उसके बाद एक छोटा सा अंकुर था। उस समय बाहर की आपत्तियों से बचाने के साथ २ उचित जल खाद आदि देकर किसी माली ने यदि इसका पालन पोषण न किया होता तो आज यह वृक्ष अपने फल फूल छायादि द्वारा लोगों का उपकार इस प्रकार कर रहा होता इसमें सन्देह है। गुरुकुल के जिस विशाल रूप को आप अभी देख चुके हैं उसे एक छोटी संस्कृत-प्रधान पाठशाला की अवस्था से सुव्यवस्थित हाईस्कूल, उत्तम कालेज और उत्तम भी विश्वविद्यालय का रूप देने में जिन स्वार्थत्यागी महानुभावों ने अपना पसीना बहाया है, अपना जीवन लगा दिया है उनमेंसे प्रथम ये गुरुकुल के आचार्य तथा मुख्याधिष्ठाता श्री प्रो० रामदेवजी बी. ए. हैं। सदा से आर्य समाज और गुरुकुल की सेवा ही इनके जीवन की सबसे बड़ी महत्वाकांक्षा रही है। खाते-पीते, सोते जागते, इन्होंने गुरुकुल का ही स्वप्न देखा है। संसार के सब प्रलोभनों को लात मार २३, २४ की नई उमर में इस तपोभूमि में आकर इन्होंने गुरुकुल-महायज्ञ में अपने आप को आहुत कर दिया। इस निष्काम सेवा में ही, आज ३० वर्ष पश्चात् हम इनके बालों में सफेदी, चेहरे पर झुर्रियां दिन रात की दौड़धूप, चौबीस घण्टे की चिन्ताओं से जर्जर और झुके हुए कन्धों पर गुरुकुल का भारी बोझ देख रहे हैं। किन्तु यह न समझना कि इस वृद्ध शरीर में आत्मा भी वृद्ध है। वह तो युवाओं से भी युवा है। यह उक्ति इन्हीं पर तो चरितार्थ होती है—

> नित्यं स्वभावसरलेन हृदा शिशुर्यः
> सोत्साह कार्य करणात्तरुणश्च भाति।
> सद्विद्यया च वयसा च भवन्ति वृद्धा
> स्वेकोऽपि यस्त्रिदशतां वहति क्रियासु॥

अर्थात् स्वभाव से ही सरल हृदय के कारण जो नित्य शिशुरूप हैं, बड़े उत्साह से काम करने के कारण जो तरुण दीखता है, विद्या तथा आयु से वृद्ध होता हुआ जो एक ही तीन अवस्थाओं वाला, अथवा देवता सा प्रतीत होता है। अद्भुत स्मृति, विचित्र तर्कशक्ति, असीम-ग्रन्थानुशीलन, असाधारण वक्तृत्व तथा वैदिक धर्म का प्रेम अंग २ से फूटा सा पड़ता है। कहीं चैन नहीं— एक ही लगन है। सन् १९१७ के प्रारम्भ में महात्मा मुन्शीराम जी ने इन्ही के विश्वासयोग्य समर्थ, अनुभवी हाथों में अपने प्यारे कुल का उत्तरदायित्व दे निश्चिन्तता पूर्वक सन्यास की दीक्षा ली थी और सन्यास ले स्वामी-श्रद्धानन्द बनकर मातृभूमि की पुकार सुन, गोरों की संगीनों के आगे अपनी छाती अड़ा दी थी। फिर सिक्खों के ऊपर अत्याचार होता देख गुरु के बाग में सत्य ग्रह कर, जेल जा, अपनी लोकप्रियता का परिचय दिया था और पीछे अछूतों के उद्धार का बीड़ा उठा बिछुड़े भाइयों मलकानों– को गले लगा धर्म और देश की सेवा करते हुए २३ दिसम्बर सन १९२६ को एक भटके हुए धर्मान्ध भाई की गोली से ७० साल के वृद्ध शरीर का त्याग निर्वाण को प्राप्त हुए थे। कुछ थोड़े से व्यवधान के साथ तब से अब तक गुरुकुल का संचालन मुख्यतया ये ही कर रहे हैं, किन्तु अब इन्हें भी अपने योग्य उत्तराधिकारी की चिन्ता होना स्वाभाविक है—

> विद्वानसि.मुग्धशीलं विभूमा वयमिति शिथिलभुजः।
> भरभुग्नविनथ बाहुषु गोपेषु हसन् हरिर्जयति॥ सुबन्धु॥

आचार्य रामदेव जी का ऐतिहासिक अनुशीलन बड़ा महत्व पूर्ण है। भारतीय प्राचीन इतिहास के सम्बन्ध में आपका विशाल ग्रन्थ प्रकाशित हो ही चुका है। इतिहास के क्षेत्र में आपके विचार क्रान्तिकारक हैं। ये ग्रन्थ वर्षों के निरन्तर अध्ययन तथा गवेषणा बुद्धि के

फलस्वरूप शिक्षित जनता के हृदय में बड़ी तीव्रता के साथ अपना स्थान बनाते जा रहे हैं।

इसी प्रसंग में स्वर्गीय मुख्याध्यापक श्री मास्टर गोवर्धन जी बी. ए. जिन्होंने निस्वार्थ भाव से हिन्दीभाषा में सबसे पहले पाठ्योपयोगी विज्ञान की पुस्तकें प्रकाशित कर मातृभाषा की सेवा के क्षेत्र में गुरुकुल को यशस्वी बनाया तथा अपने शुभनाम को गुरुकुल के साथ सदा के लिये जोड़ दिया, नहीं भुलाया जा सकता। आप शिक्षा कला के बड़े अनुभवी तथा प्रेमी थे। आपका व्यवहार सभी के साथ बड़ा ही शिष्ट था। व्यवस्था स्वच्छता, तथा नियम पालन की तो आप मूर्ति ही थे। यह सब होते हुए भी सदा फूलसा खिला हुआ प्रसन्न मुख, चौड़ा माथा मानों सोने में सुहागा था। तीसरा नाम जो याद आ रहा है श्री मास्टर सुखराम जी बी ए. का है। इन्हीं सब महानुभावों ने अपने अनथक परिश्रम से इस विद्यालय विभाग को इस उन्नत दशा तक पहुँचाया है। यहां पढ़ने वाले दशम श्रेणी के विद्यार्थी संस्कृत के विषयों में 'पंजाब' के शास्त्री के लगभग योग्यता प्राप्त करने के साथ २ आधुनिक विषयों में भी मैट्रिक स्टैंडर्ड के हो जाते हैं। इतना मानसिक परिश्रम करने पर भी सब स्वस्थ शरीर, प्रसन्नमुख हैं। डेढ़ सौ विद्यार्थियों में केवल दो चार की आंखों पर ही ऐनक दीखती है। यह भी गुरुकुल शिक्षाप्रणाली की विशेषता है।

विद्यालय आश्रम

विद्यालय विभाग के सब बच्चे यहां रहते हैं। एक-एक कमरे में एक एक श्रेणी है। कोई श्रेणी बहुत बड़ी हो गई तो उसे दो भागों में भी बांट दिया है। प्रत्येक श्रेणी में दो-दो अधिष्ठाता हैं। वे बच्चों की सब प्रकार की देख रेख करते हैं दिन रात उनके साथ रहते हैं। उन्हीं में खेलते, उन्हीं में खाते पीते, उन्हीं में सोते हैं। सब बालक खूब सवेरे उठकर आवश्यक कार्यों से निबट व्यायाम, स्नान, सन्ध्या-हवन करते हैं। सुबह का कलेवा कर पढ़ने चले गये। पढ़कर दोपहर का भोजन और विश्राम कर इच्छानुसार कुछ पढ़ लिया। शाम को हाकी फुटबाल, कबड्डी में सबको भाग लेना आवश्यक होता है। खेल कर फिर प्रातःकाल की तरह ही स्नान, सन्ध्या-हवन आदि कर भोजन करते हैं और साढ़े आठ व नौ बजे सब सो जाते हैं। घी दूध फल किसी चीज की कमी नहीं ओढ़ने, बिछाने, पहनने,के कपड़े भी काफी, किन्तु सब सादे हैं। सोने के लिये खाट नहीं लकड़ी का तख्त है। इससे शरीर पुष्ट होता है। गुरुकुल शिक्षाप्रणाली की बहुत बड़ी विशेषता यह आश्रम व्यवस्था ही है वर्त्तमान शिक्षाप्रणाली का अध्ययन करने वाले धीरे २ इसके महत्व को अनुभव कर रहे हैं। गुरुकुल ने इस विषय में संसार को मार्ग दिखाया है। दूषित प्रभाव से बचकर इच्छित अभ्यास डालने के लिये आवश्यक है कि बच्चों को शहरों से दूर शुद्धपरिस्थिति में रक्खा जावे। इसके बिना चरित्र निर्माण असम्भव है। यह एक ओर विद्यालय का भोजन भण्डार है। सब ब्रह्मचारी एक साथ बैठकर भोजन करते हैं। जात पात, ऊंच नीच, छूत-छात का किसी को स्वप्न में भी विचार नहीं। यह बीच में गोल यज्ञशाला है। सम्मिलित यज्ञ उपदेश आदि इसीमें होते हैं। यह कार्यालय है। गुरुकुल के सम्बन्ध में जो कुछ पूछना हो यहां पूछिये। पाई-पाई का हिसाब मौजूद है। यह साथ में ऊंची लाल इमारत जो आश्रम के मुख्य द्वार पर बनी हुई है, इसमें गुरुकुल के मुख्याधिष्ठाता अपना कार्य करते हैं। छोटा सा किन्तु सुन्दर स्थान है। सामने विस्तृत वाटिका है। नाना प्रकार के फूलों के वृक्ष लग रहे हैं। कहीं शाक भाजी भी बोई हुई है। फूलों की कैसी बहार है? ये खेत में ब्रह्मचारी काम कर रहे हैं। किसी के हाथ में खुरपा किसी के फावड़ा है। कोई कुछ सजा रहे हैं, कोई क्यारी बना रहे हैं। यह रास्ता सीधा कूप तथा स्नानागार के सामने होता हुआ कनखल को चला गया है। बाग से निकलते ही इस रास्ते के दोनों ओर दो विस्तृत क्रीड़ा क्षेत्र हैं। इन्हीं में बड़े ब्रह्मचारी नियम पूर्वक हाकी और फुटबाल खेला करते हैं। किसी २ ब्रह्मचारी की मोटी मोटी टांगों को देख मत सोचना कि यह क्या खेलते होंगे? मेरठ के टूर्नामैंट और दिल्ली के मिशनकालिज के क्रीड़ा क्षेत्र आज भी इनकी विजय के उपलक्ष में बजाई गई जनता की तालियों से प्रतिध्वनित हो रहे हैं। सामने पूर्व की ओर गौशाला और उससे आगे परिवार गृहों का विस्तृत-वर्गाकार घेरा है। यह बिल-वृक्ष का निकुंज कैसा सुहावना है? यही वह स्थान है जहां गुरुकुल की स्थापना के समय पहिले पहिल छप्पर बनाये गये थे। स्वनामधन्य श्री मुन्शी अमन सिंह जी का निवास गृह वह दिख रहा है। उधर गुरुकुल के प्रेस को देखकर परिवार गृहों के पीछे से वहां चलिये जहां वार्षिकोत्सव होता है।

गीत

[ले०—श्री आनन्द]

नाथ मैं शिशु सा दुर्बल दीन।
लाख कोशिशें करता हूँ,
पर हाय नहीं हो पाताबिलकुल—
मैं तुममें तल्लीन।

मेरी अधम वासनाएँ सब,
मुझे सदा भटकाती रहती।
कैसे कहूँ प्रभो, मैं कितना
हूँ सामर्थ्य विहीन !

तड़फ रहा हूँ, तड़फ रहा हूँ,
देव, तुम्हारी अनुकम्पा के—
बिना, बिना पानी के जैसे-
तड़फा करता मीन।

दौड़ पड़ो द्रुत हे जगदीश्वर !
करलो मुझ दुखिया को सत्वर,
अपने उस मधु मुग्ध अंक में,
अम्बा सम आसीन।
नाथ, मैं शिशु सा दुर्बल दीन !

गुरुकुल समाचार

ब्र० रामप्रकाश १२ श्रेणी Typhoid fever ब्र० राजेन्द्र २ श्रेणी टाइफाइड, ब्र० रमेशचन्द्र १२ श्रेणी श्लेष्म ज्वर, ब्र० नारायण ४ श्रेणी कर्णशूल ब्र० प्रजापत ३ श्रेणी कर्णशूल, ब्र० प्रताप५ श्रेणी कास, ब्र० योगेन्द्र १ श्रेणी कास, ब्र० कुँवरभान १ श्रेणी मलेरिया ज्वर, ब्र० हरिकृष्ण ५ श्रेणी Chicken pox, ब्र० भगवद्दत्त ४ श्रेणी Chicken pox, ब्र० कृष्णप्रसाद ४ श्रेणी Chicken pox, ब्र० दीपनारायण २ श्रेणी Chicken-pox।

गत सप्ताह उपरोक्त १० रोगी हुए थे। ब्र० रामप्रकाश तथा राजेन्द्र को अभी ज्वर है। शेष सब स्वस्थ हैं।

गत सप्ताह प्रारम्भ में अधिकतम तापमान १०६ फा० तक रहा। न्यूनतम ८२° फा था। अब वर्षा होने से लू नहीं चलती। तापमान भी घट गया है।

दो चार अच्छी वर्षा के हो जाने के कारण ऋतु सुहावनी हो गई है। पढ़ाइयाँ नियमपूर्वक हो रही हैं पर कभी २ मनोहर दिन हो जाने के कारण ब्रह्मचारी अवकाश ले लेते हैं और दूर २ जंगलों में भ्रमण कर आते हैं। पिछले सप्ताह ब्रह्मचारियों ने जंगल से एक अजगर सांप पकड़ा है।

आयुर्वेद महाविद्यालय

इन दिनों गुरुकुल का आयुर्वेद महाविद्यालय दिनों दिन तरक्की कर रहा है। आउट-डोर अस्पताल में प्रति दिन एक बड़ी संख्या में रोगी आते हैं और गुरुकुल की उत्तम चिकित्सा से शीघ्र ही स्वास्थ्य लाभ कर घर लौटते हैं।

प्राकृतिक चिकित्सा की पढ़ाई

पिछले साल से गुरुकुल के आयुर्वेद महाविद्यालय में प्राकृतिक चिकित्सा की नियम पूर्वक पढ़ाई प्रारम्भ कर दी गई। चारों साल का कोर्स निश्चत किया जा चुका है और इस विषय का अध्यापन साहित्य तथा प्राकृतिक-चिकित्सा के प्रसिद्ध विद्वान् श्री पं० भवानी प्रसाद जी सफलता पूर्वक कर रहे हैं। इस विषय के ज्ञान से ब्रह्मचारियों की चहुंमुखी उन्नति की आशा की जाती है।

श्री आचार्य रामदेव जी का स्वास्थ्य—

गत १० जून को देहरादून में श्री आचार्य रामदेव जी के स्वास्थ्य के एकाएक अधिक खराब हो जाने की खबर आई थी। आर्य जनता को यह जान कर हर्ष होगा कि अब उनका स्वास्थ्य अच्छा हो गया है। तीन दिन से तापमान नार्मल है। कुछ एक डाक्टरों का कहना है कि उन्हें Sun-Stroke हुआ था जिससे 'ब्लड-प्रैशर' बहुत अधिक हो गया था। १०२° से अधिक बुखार भी हुआ था पर अब हालत ठीक है, चिन्ता की कोई बात नहीं है।

श्री स्वा० सत्यदेव जी परिव्राजक का आगमन

यूरोप भ्रमण के पश्चात् श्री स्वा० सत्यदेव जी यहां पधारे हैं। आप जर्मनी तथा समस्त यूरोप के सामाजिक और राजनैतिक परिस्थितियों के विषय में गुरुकुल विश्वविद्यालय में एक अत्यन्त उपयोगी व्याख्यान माला दे रहे हैं। आपके व्याख्यानों को सुनने के लिये प्रतिदिन दूर दूर से चलकर लोग एक बड़ी संख्या में गुरुकुल आते हैं और मनोविनोद के साथ भरपूर लाभ उठाते हैं। अबतक आपके ४ व्याख्यान हो चुके हैं। आशा है इस व्याख्यान माला से ब्रह्मचारियों और शिक्षित जनता को बहुत लाभ पहुंचेगा।

गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ

गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ के ६ठी, ७ वीं श्रेणियों के ब्रह्मचारियों की यात्रा नैनीताल से कुछ उत्तर की ओर एक सुरम्य एवं स्वास्थ्य प्रद बजूण नामक स्थान पर हुई है। (पोस्ट आफिस डागाली और जिला अलमोड़ा है)। सब ब्रह्मचारी आनन्द प्रसन्न हैं। संरक्षकों को किसी प्रकार की चिन्ता करने की जरूरत नहीं है।

८ म श्रेणी की यात्रा डलहौजी हुई है। वे सब ब्रह्मचारी भी सर्वथा सकुशल हैं।

मुझको नरक नहीं मिल पाया !

(१)

नरक भयङ्कर ज्वाला वाला !
बेदिल सूखी आंखों वाला !!
मैं उसका प्रेमी परवाना
जग में दीवाना कहलाया !
मुझको नरक नहीं मिल पाया !!

(२)

सुन्दर सुमन सुवासित नन्दन,
करने को मेरा अभिनन्दन
आगे आया, आंख फेर कर
पर मैंने उसको ठुकराया !

(३)

आई अब जीवन की संध्या;
सोच रहा हूं मैं विस्मृत-सा-
क्या क्या किया, किया क्यों मैंने,
जग में क्या खोया क्या पाया !
मुझको नरक नहीं मिल पाया !!

—श्री सत्यभूषण 'योगी' वेदालंकार

चौधरी हुल्लासराय के प्रबन्ध से गुरुकुल प्रेस गुरुकुल कांगड़ी में मुद्रित तथा प्रकाशित।

* ओ३म् *

"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत" Reg. No. A. 2927

गुरुकुल

सम्पादक—साहित्यरत्न पं० हरिवंश वेदालङ्कार

एक प्रति का मूल्य -) [गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख-पत्र] वार्षिक मूल्य २।।)

वर्ष ४] गुरुकुल काङ्गड़ी, शुक्रवार ९ आषाढ़ १९९६; २३ जून १९३९ [संख्या ८

धार्मिक सत्याग्रह के विषय में

महात्मा गांधी के विचार

[ले०—श्री आचार्य अभयदेव जी]

[गांधी जी के निजी मन्त्री श्री प्यारेलाल जी ने 'हरिजन' में गांधी जी के उपवास के दिनों की और उसके बाद की जो दिनचर्या लिखी है उसमें से हम नीचे उस अंश को उद्धृत करते हैं जिसमें कि गांधी जी ने सत्याग्रह के विषय में, विशेषतः धार्मिक सत्याग्रह के विषय में अपने विचार प्रकट किये हैं ।]

१६ मार्च—

आर्यसमाजी नेताओं के उस दल को जो कि पिछले दिन भी उनसे मिला था, गांधी जी लौकिक उद्देश्य की पूर्ति के लिए परिचालित सत्याग्रह से विभिन्न, धार्मिक उद्देश्य की सिद्धि के लिए किए जाने वाले सत्याग्रह की शर्तें विस्तारपूर्वक समझा रहे थे । "धार्मिक कार्य की अपेक्षा अन्य कोई कार्य सत्याग्रह-शस्त्र के लिए अधिक उपयुक्त नहीं है । किन्तु इसी कारण से साधारण सत्याग्रह की अपेक्षा यह अधिक नियन्त्रण तथा शुद्धता की अपेक्षा करता है ।"

"किसी भी किस्म के सत्याग्रह में उद्देश्यों का मिश्रण हानिकर है, परन्तु धार्मिक सत्याग्रह में यह सर्वथा प्रतिषिद्ध है । धार्मिक सत्याग्रह को उससे दूरवर्ती राजनीतिक या लौकिक हित के साधन या आवरण के रूप में प्रयुक्त करना या प्रयुक्त होने देना घातक होता है ।"

उन्होंने (गांधी जी ने) यह निर्देश नहीं किया कि मुलाकातियों (आर्य नेताओं) का भी अपने सत्याग्रह में कोई अन्य उद्देश्य था । उन्होंने केवल धार्मिक सत्याग्रह की शर्तों का वर्णन किया ।

"सत्याग्रह की इस किस्म में उद्देश्य की भांति साधनों की भी अमिश्रित (विशुद्ध) पवित्रता अत्यन्त आवश्यक है । ऐसे आन्दोलन का नेता गम्भीरतया आध्यात्मिक जीवन वाला व्यक्ति होना चाहिये, यदि विवाहित या अविवाहित ब्रह्मचारी हो तो और भी अच्छा है । उसे उन विशेष धार्मिक कृत्यों में विश्वासशील तथा उनका अभ्यासी होना चाहिये जिनके लिये आन्दोलन उठाया गया है—जैसा कि वस्तुतः ऐसे आन्दोलन में भाग लेने वाले प्रत्येक व्यक्ति को होना चाहिए । नेता को सत्याग्रह के विज्ञान में निष्णात होना चाहिये । सत्य और अहिंसा ही उसकी वाणी द्वारा प्रकाशित होने चाहियें । उसके सब कार्य अवश्य ही पूर्णतया पारदर्शक (स्वच्छ) होने चाहियें । कूटनीति और साज़िश का उसके शस्त्रागार में कोई स्थान नहीं हो सकता ।"

"अहिंसा और ईश्वर में पूर्ण विश्वास ऐसे सत्याग्रह की अनिवार्य शर्त है ।"

"धार्मिक सत्याग्रह में आक्रमण, प्रदर्शन, और दिखावे के लिए कोई जगह नहीं हो सकती । जो व्यक्ति इसमें भाग लेते हैं उन्हें अपने से भिन्न धार्मिक विश्वास रखने वाले व्यक्तियों के धार्मिक विश्वासों और भावनाओं के प्रति समान आदर और सम्मान का भाव रखना चाहिये । उनकी व्यवहार-दृष्टि में तनिक सी भी संकीर्णता विरोधी में कई गुनी विस्तृत होकर प्रतिफलित हो सकती है ।"

"सब से बढ़ कर बात यह है कि धार्मिक सत्याग्रह आत्म-शुद्धि की प्रक्रिया है । यह केवल संख्याओं और बाह्य सहायताओं को तुच्छ समझता है क्योंकि ये सत्याग्रही की आत्म-शुद्धि में सहायता नहीं दे सकतीं । इनके स्थान पर यह एक मात्र परमेश्वर पर जो सारी शक्ति का आदि स्रोत है, भरोसा रखता है । अतएव, धार्मिक सत्याग्रह, परमेश्वर के उस सच्चे पुत्र या उस ईश्वरीय मनुष्य के नेतृत्व में सब से अच्छी तरह सफल हो सकता है जो अपने जीवन की पवित्रता, अपने ध्येय की नितान्त निःस्वार्थता और बाह्य-दृष्टि की विशालता से अपने विरोधी के भी आदर और प्रेम को आकृष्ट कर लेता है ।"

[इससे पिछले दो दिन अर्थात् १४ और १५ मार्च को जयपुर और त्रावणकोर के राजकीय सत्याग्रह के बारे में गांधी जी ने वार्तालाप में जो कुछ कहा वह भी सत्याग्रह विज्ञान की दृष्टि से हमारे बड़े काम का है

और हम उससे बहुत लाभ उठा सकते हैं - अतः उसे नीचे उद्धृत किया जा रहा है ।]

१४ मार्च—

श्री हरिभाऊ उपाध्याय और कई अन्य कार्यकर्त्ता गांधी जी से गाड़ी में मिले और उनके साथ जयपुर की स्थिति पर बहस की। एक जिज्ञासा पैदा हो गई। वे चाहते थे कि यदि सम्भव हो तो आन्दोलन को 'प्रबल बनाया जाय।' गांधी जी ने बड़े ध्यान से उनकी बातों को सुन कर उनके सामने 'प्रबलता' के बारे में अपना विचार स्पष्ट किया। जयपुर में सत्याग्रह चला कर उन्होंने एक नई भूमि में हल चलाया है। हमारी सब बताओं और आशाओं से भी बढ़ कर जनता की तरफ से उत्तर मिला है। यहां तक तो बहुत अच्छा हुआ। परन्तु एक अच्छे घोड़े को मौत के मुंह में भगा ले जाना एक बड़ी घुड़सवारी है। आकार को अधिक फैलाने के प्रयत्न के स्थान पर, उन्हें अब नींव को गहरा करने और भीतरी शक्ति का संचय कर लेने में लग जाना चाहिये। गांधी जी ने आगे से सत्याग्रह में भाग लेने की अनिवार्य शर्त के तौर पर कुछ कठोर परीक्षाएं तथा प्रारम्भिक शिक्षण प्रस्तावित किया। "मेरे द्वारा नियत किए हुए न्यूनतम माप की प्राप्ति तक सत्याग्रह का सविनय अवज्ञा रूप भाग स्थगित रक्खा जा सकता है, किन्तु इसका अर्थ स्वतः सत्याग्रह का स्थगित करना नहीं होगा।"

१५ मार्च—

मध्य न्हार पर उन्होंने ट्रावनकोर की स्थिति के संबन्ध में फिलीपोज के साथ विचार-विनिमय किया। उनका यह निश्चय अधिकाधिक स्थिर होता गया कि उनके परामर्श से स्थगित सविनय-अवज्ञा आन्दोलन को हलके दिल से पुनरुज्जीवित नहीं करना चाहिये। "सत्याग्रह सविनय अवज्ञा से ही शुरु और इस पर ही समाप्त नहीं होता है। हमें तपश्चर्या जो कि सत्याग्रह का सार है कुछ और अधिक करनी चाहिये। यदि सत्याग्रह स्थगित करने के प्रश्न पर इस प्रकार विचार करें तो इससे आन्दोलन को कोई हानि नहीं पहुंच सकती। जब हम अपने प्रतिपक्षी की आशाओं के अनुसार कार्य नहीं करते हैं, किसी भी आतिशबाजी प्रदर्शन से इन्कार कर देते हैं या उसके गुण्डों के पाशविक आक्रमणों को सह लेने के लिए सर्वथा उद्यत रहते हैं, तब वह जान जायेगा कि उसकी बैट्री (शक्ति-घर) खाली हो गई है। हमें उसके सब उत्तेजक और दमनकारी क़ानूनों का ठण्डे दिल से तथा अनुकरणीय आत्म-संयम से मुकाबिला करना चाहिये, चाहे हम पर कायरता का दोष मढ़े जाने का भी खतरा क्यों न हो। यदि हम में कुछ भी कायरता नहीं है, तो हम सुरक्षित हैं, अन्त में हमारा ही कार्य दुर्लभ वीरता का माना जायेगा।"

"इस बीच में हमें यह ध्यानपूर्वक देखना चाहिए कि घटनायें किस प्रकार अपना रूप धारण कर रही हैं। उन आतङ्कवादी उपायों को दृष्टि में रख कर जिन्हें कि कुछ रियासतों ने अपना लिया दीखता है, मैं आन्दोलन को चलाने की नई योजनाएं सोच रहा हूं। हमने शान्त नागरिकों के विरुद्ध छोड़ गुण्डों के प्रयोग को निष्फल कर देने वाली इस कला को विकसित करना है।

"एक योग्य सेनापति सदा अपने चुने हुए रणाङ्गण में और अपने अभीष्ट समय में एक युद्ध को प्रारम्भ करता है। इस मामलों में बागडोर को वह सदा अपने पास सुरक्षित रखता है और इस शत्रु के हाथों में कभी नहीं जाने देता।"

"सत्याग्रह की लड़ाई में लड़ाई का ढंग और व्यूह-रचना का चुनाव उदाहरणार्थ, आगे बढ़ना है या पीछे हटना है, सविनय-प्रतिरोध करना है या रचनात्मक कार्य तथा पूर्णतया निःस्वार्थ लोक कल्याणकारी सेवा के द्वारा अहिंसक शक्ति को संगठित करना है—ये बातें स्थिति की आकस्मिक आवश्यकताओं के अनुसार निर्धारित की जाती हैं। एक सत्याग्रही को अपने लिए नियत किसी भी योजना को शान्त निश्चय के साथ, उत्तेजना या निराशा के सामने न झुकते हुए अमल में लाना चाहिये।"

"सत्याग्रही के लिए सिर्फ एक ही उद्देश्य हो सकता है, अर्थात् अपने कर्त्तव्य को फिर चाहे वह कुछ भी हो, पालन करने में अपने जीवन की बाजी लगा देना। यही उत्तम फल है जिसे वह पा सकता है। जिस ध्येय के लिए ऐसे योग्य सत्याग्रही सैनिक हों वह कभी असफल नहीं हो सकता।

ईश्वरीय ज्ञान-वेद

[ले० आचार्य पं० चन्द्रकान्त जी वेद वाचस्पति, वेद मनीषी गुरुकुल महाविद्यालय सोनगढ़ काठियावाड़]

इस लेख में तत्व की दृष्टि से ईश्वरीय ज्ञान के विषय में विचार किया गया है। वनस्पति, पशु-पक्षी, मनुष्य आदि योनियां परमात्मा की विशेष २ रचनाएँ हैं। पाश्चात्य विचारकों की दृष्टि में पशु जगत् से मनुष्य जगत् को भिन्न करने वाली निम्न तीन बातें हैं:—

१. शस्त्र-व्यवहार (Use of tools)

२. अग्नि-व्यवहार (Use of fire)

३. व्यक्तभाषा प्रयोग (Use of articulate language)

'अत्यधिक असंस्कारी मनुष्य-समाज में भी व्यक्त-भाषा का अभाव मानना, यह कल्पना से परे की बात हो सकती है। हमारे सामने यह प्रश्न उठता है कि मनुष्य न अपने भावों को दूसरों के सामने व्यक्त करने के लिये-विचार करने के लिये-शक्ति कहां से [illegible]।?

अभिनव बालक प्रारम्भ में कुछ भी बोल या विचार नहीं सकता। आयु की वृद्धि के साथ उसके अन्दर माता-पिता और गुरु आदि के संसर्ग से विचारने की तथा अपने हिताहित के समझने की शक्ति आती है। क्या मनुष्य, क्या पशु-पक्षी सब में खान-पानादि के सम्बन्ध में सामान्य ज्ञान अवश्य होता है परन्तु विशिष्टज्ञान भिन्न-भिन्न योनियों में, फिर २ कोटि के मानवों में विशेष

निमित्त से ही आता है। पशु और मनुष्य में भोग्य शक्ति समान रूप से है परन्तु मनुष्य के सिवाय अन्य किसी भी प्राणी में भोग्य पदार्थ की उत्पत्ति, वृद्धि और रक्षा का ज्ञान नहीं होता। यदि आत्म के स्वाभाविक ज्ञान से ही यह सब हो जाता हो, तब तो पशु में भी आत्मा है, वह क्यों भोग्य पदार्थों की उत्पत्ति, वृद्धि तथा रक्षा का कार्य न कर सके? अकेला मनुष्य ही अन्य चेतनादि के निमित्त से तथा उसकी सहाय से स्वाभाविक ज्ञान में वृद्धि करता है। गृह बनाना, वस्त्र बनाना आदि अनेक क्रियायें वह नैमित्तिक ज्ञान के आधार पर ही करता है। हम देखते हैं कि गौ-भैंस आदि के बच्चे स्वभाव से ही तैरना जानते हैं परन्तु मनुष्य संतान बिना सिखाये तैरना नहीं जानती। संभव है कि स्वाभाविक ज्ञान अथवा सामान्य सहज-ज्ञान पशुओं में मनुष्य की अपेक्षा अधिक हो, परन्तु मनुष्य नैमित्तिक ज्ञान की प्राप्ति तथा वृद्धि की योग्यता से ही पशुओं से उच्च गिना जाता है। जीवात्मा का ज्ञान-चैतन्य-एक गुण है। जीवात्मा ज्ञान प्राप्त कर सकता है। परन्तु किस तरह से? हमारी चक्षुओं में दृष्टि-शक्ति है परन्तु वह सूर्य की ज्योति के बिना उपयोग में नहीं आ सकती, और बिना आंखों के सूर्य का प्रकाश भी निरर्थक और निरास्तित्व लगता है। इस तरह जीवात्मा में शक्ति होने पर भी अन्य निमित्त से ज्ञान उत्पन्न होता है। यदि निमित्त बिलकुल न हो और केवल शक्ति ही हो तब भी ज्ञान उत्पन्न नहीं होता। मनुष्य के देह के भोग और कर्म के लिए ज्ञान अपेक्षित रूप से है। यह ज्ञान आज भी अनेक प्रयत्न करने पर माता-पिता आदि चेतन रूप निमित्त के बिना प्राप्त नहीं हो सकता, तो फिर सृष्टि के प्रारम्भ में जीवात्माओं को किसी भी चेतन रूप निमित्त के बिना कैसे ज्ञान प्राप्त हुआ होगा?

कतिपय विकासवादी विचारक मानते हैं कि मनुष्यों में आवश्यकतानुसार विचार उत्पन्न हुए और उसकी वृद्धि होती गई; परन्तु इस विषय में कोई भी पुष्ट प्रमाण नहीं है महान् से महान् विपदा में भी मनुष्य-संतान ने दूसरों से शिक्षण प्राप्त किये बिना ज्ञान का आविष्कार नहीं किया। इस विषय को आधुनिक समय में अनेक परीक्षणों से प्रमाणित किया जा सकता है। एक लड़का एक सेठ के यहां पैदा हुआ है परन्तु जब तक उसे शिक्षण न दिया जाय, तब तक वह कुछ भी सीख नहीं सकता। आवश्यकता, अवसर और परिस्थिति अपने आप स्वतंत्र रूप से ज्ञानोत्पत्ति में कारण रूप नहीं बन सकती। यदि कोई चेतन शक्ति ज्ञान को उत्पन्न करने में निमित्त रूप बनती है तब ही आवश्यकता, अवसर और परिस्थिति ज्ञान की वृद्धि में कारण रूप बनती है। इसलिये सृष्टि के प्रारंभ में भी जीवात्माओं ने किसी निमित्त भूत चेतन-शक्ति के द्वारा ही ज्ञान प्राप्त किया होगा - ऐसा कहना असंगत नहीं, परन्तु युक्ति-युक्त है। पतंजलि मुनि ने योगदर्शन के समाधिपाद के २६ वें सूत्र में ईश्वर को "पूर्वेषामपि गुरुः" कहा है अर्थात् ईश्वर में कालकृत सीमाओं के न होने से ब्रह्मा, अग्नि, वायु, आदित्य अंगिरा आदि ऋषियों का भी वह गुरु है। वेदान्त-शास्त्र में इसी लिए ईश्वर को शास्त्रयोनि ('शास्त्रयोनित्वात्' १-१-३) कहा गया है।

हमने देखा कि सृष्टि के आरंभ में जीवात्माओं को नैमित्तिक-ज्ञान की आवश्यकता है और नैमित्तिक ज्ञान चेतन की सहायता से मिल सकता है – वह चेतन परमात्मा है, दूसरे शब्दों में कहें तो सृष्टि के आदि में ईश्वर-प्रेरित अर्थात् अपौरुषेय (पुरुष = मनुष्य) ज्ञान की सत्ता अवश्य होनी चाहिए।

सामान्यतया ज्ञान के तीन विभाग हो सकते हैं:- (१) स्वाभाविक, (२) नैमित्तिक और (३) काल्पनिक। इसके अन्दर सृष्टि के आरंभ का ईश्वरीय ज्ञान नैमित्तिक कोटि का है। स्वाभाविक ज्ञान से मनुष्य के मस्तिष्क में ऐसी शक्ति उत्पन्न नहीं हो सकती कि जिससे वह अपना ज्ञान विस्तृत बना सके। संस्कारहीन और जंगली जातियां इस बात की साक्षी रूप हैं। हम जगत् में जो महान्-ज्ञान देखते हैं वह ज्ञान प्रथम श्रेणी के ज्ञान का विकास नहीं है; इस प्रकार प्रारंभिक ज्ञान काल्पनिक कोटि का भी नहीं है कि यदि ईश्वर की तरफ से हमें सब कुछ बता दिया जाय तो मनुष्य की स्वतंत्र शक्ति तथा व्यक्तित्व का कोई भी अर्थ नहीं रहता और इस कारण मनुष्य के विचारों के प्रवेश द्वारा उस दिशा में प्रतिबंध हो जाते हैं। इस लिए सृष्टि के आदि में ईश्वर-प्रदत्त ज्ञान नैमित्तिक कोटि का अर्थात् प्रारंभिक ज्ञान की कोटि का होना चाहिए। ईश्वरीय ज्ञान के सम्बंध में हम तीन बातों की कल्पना कर सकते हैं:—

(1) यह ज्ञान सृष्टि के प्रारम्भ में ही मिला और उस समय के मनुष्यों के लिये यह ज्ञान गुरुओं का स्थान पूर्ति करता है।

(ii) कालक्रम में विशिष्ट २ व्यक्तियों के द्वारा ईश्वरीय ज्ञान विशेष २ ग्रन्थों के रूप में प्रादुर्भूत होता है।

(iii) किसी भी प्रकार के माध्यम के बिना समय २ पर विशिष्ट व्यक्तियों को ईश्वरीय-ज्ञान प्राप्त होता है।

इन तीनों कल्पनाओं में प्रथम कल्पना ही युक्ति युक्त है, क्यों कि सृष्टि के प्रारम्भ में आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये ईश्वरीय ज्ञान प्राप्त होने के बाद भी ऐसे ज्ञान की उपलब्ध हो ऐसी कल्पना में ईश्वर की सर्वज्ञता तथा न्याय-प्रियता खण्डित हो जाती है। फिर ईश्वरीय ज्ञान में कितना ठीक करना और कितना बिगाड़ना (Abrogate) यह सब ईश्वर के ईश्वरत्व में ही बन्धन रूप में आता है। इस लिये सब से प्रथम कल्पना ही बुद्धि-युक्त और युक्ति युक्त है।

अब हमारे सामने प्रश्न उपस्थित होता है कि निराकार और निरंजन परमेश्वर जीवात्माओं को ज्ञान किस प्रकार से देता है? मनुष्य जब शुभ कर्म करना चाहता है तब उसके संकल्प करने के साथ ही उसमें उत्साह और प्रसन्नता उत्पन्न होता है। और जब अशुभ कर्म करने की इच्छा करता है तब संकल्प मात्र से ही भय और शंका उसमें उत्पन्न होती हैं। दोनों अवस्थाओं में मनुष्य में उत्पन्न हुए उत्साह, भय-शंकादि, भावों को हम वाणी से नहीं कह सकते। इसी प्रकार कानों से सुन भी नहीं

[देखिए पृष्ठ ६ पर]

गु रु कु ल

६ आषाढ़ शुक्रवार १९८६

"मैंने अपने बच्चे को क्यों गुरुकुल में प्रवेश कराया"

(श्री आचार्य अभयदेव जी)

गुरुकुलीय ब्रह्मचारियों के जिन संरक्षकों से मेरा अच्छा परिचय हो जाता है उनसे मैं कभी कभी पूछा करता हूं कि आपने अपने बालक को क्यों गुरुकुल में प्रवेश कराया, किस भावसे प्रेरित होकर प्रवेश कराया? यह मैं इसलिये पूछता हूं कि जिससे उसी भाव या विचार की दृष्टि से मैं उस ब्रह्मचारी की तरफ विशेष ध्यान दूं। पर इससे यह भी पता लग जाता है कि माता पिता अपने २ बालकों को कितने ऊँचे २ ख्याल से गुरुकुल में प्रविष्ट कराते हैं।

इसी तरह का प्रश्न दो वर्ष हुए मैंने जब एक गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ के ब्रह्मचारी के संरक्षक महोदय से पूछा तो उत्तर में जो घटना उन्होंने सुनाई वह मुझे इतनी अच्छी लगी कि अब तक मुझे याद रही। आज गुरुकुल के पाठकों की सेवा में भी वह कहानी उस संरक्षक भाई के शब्दों में ही उपस्थित करता हूँ।

"५ मई १९३० को श्री पूज्य महात्मा गांधी जी अचानक पकड़े गये। यह समाचार आते ही समस्त नगर बन्द हो गया, हड़ताल होगई और एक बड़ा जलूस इस गिरफतारी के विरोध में निकाला गया। जिस समय जलूस शान्तिपूर्वक सब जगह होता हुआ काश्मीरी दरवाजे के सामने पहुंचा जयघोष सुनकर मैं भी देखने आया। ५ मिनट के बाद ही क्या देखता हूँ कि पुलिस के बहुत से आदमी जलूस की भीड़ पर लाठी चला रहे हैं, जिसके फलस्वरूप बहुत से आदमी जख्मी हो-होकर जमीन पर गिर पड़े। यह रोमांचकारी दृश्य देखा न गया। बहुत प्रकार के संकल्प-विकल्प मन में उठने लगे और इसी उधेड़ बुन में सायंकाल का समय हो गया। सायंकाल को नियमानुसार संध्या करने को मैं बैठ गया। संध्या के पश्चात् एक प्रश्न प्रभु से पूछा कि क्या हमारी यही दुर्दशा होती रहेगी और हम यों ही पिटते रहेंगे। मैं सच कहता हूँ कि अन्दर से आवाज़ आई कि "वेदों में सबका इलाज है, वेदों में सबका इलाज है" कैसे मालूम हो कि स्वराज्य प्राप्ति का इलाज कौनसे मंत्र में है? संध्या से निवृत्त हुआ, उठा, निगाह मेज़ की तरफ गई, मेज पर यजुर्वेद श्री स्वामी दयानन्द जी कृत-भाष्य रखा हुआ था, कभी २ देखा करता था। वेद में सबका इलाज है और वेद मेरी मेज पर रखा हुआ है उसको खोल दिया। खोलते ही वही वेद-मन्त्र सामने आया जिसमें मेरी बात का उत्तर था यानी स्वराज्य पाने का उपाय। मंत्र का शीर्षक था "यदि स्वराज्य चाहते हो तो क्या करो" वेद मन्त्र का भाष्य करते स्वामी जी ने जो भावार्थ दिया है उसमें लिखा है "यदि स्वराज्य चाहते हो तो ब्रह्मचर्य का व्रत धारण करो"। दो बातें और हैं पर मैं इस पहली बात को ही मुख्य समझता हूँ, यह पढ़ लिया कि "यदि स्वराज्य चाहते हो तो ब्रह्मचर्य का व्रत धारण करो"। विचारा कि क्या स्वराज्य के वास्ते ब्रह्मचर्य का होना जरूरी है। समझ में आया 'हां'। स्वराज्य के प्राप्त करने के वास्ते और उसको रखने के वास्ते ब्रह्मचर्य का होना बड़ा आवश्यक है। भारतवर्ष की अधीनता का कारण ब्रह्मचर्य का अभाव है। यह ऐतिहासिक घटना है, किसी से छिपी नहीं है। बस उसी समय संकल्प किया कि बच्चों को ऐसी जगह भेजना चाहिये जहां पर वह रह कर अध्ययन भी कर सकें और ब्रह्मचारी भी रह सकें। अगले ही दिन एक मित्र से सलाह ली और फिर लड़के को जो घर में उस समय एक ही था फौरन गुरुकुल भेज दिया। मैं तो अपना कर्तव्य कर चुका अब आगे कर्तव्य गुरुकुल के अधिकारियों का है कि वह उन बच्चों के ब्रह्मचर्य की कहां तक रक्षा करते हैं, जिनको माता पिता ने अपनी गोद से निकाल कर उनको दिया है। इस समय मेरे पांच लड़के और एक लड़की है, २ लड़के मेरे गुरुकुल में पढ़ रहे हैं। मैं सबको ही गुरुकुल में पढ़ाना चाहता हूँ। पर आर्थिक कठिनाइयां इतनी हैं कि मैं शायद अपने मनोरथ में सफल न हो सकूं"।

यह तो भविष्य बतलायेगा कि इन संरक्षक भाई का मनोरथ गुरुकुल द्वारा पूरा होगा, अर्थात् इनके सब बालक गुरुकुल के स्नातक होकर भारत में सच्चे आर्य स्वराज्य को स्थापित करने में सहायक होने वाले ब्रह्मचारी सिद्ध होंगे कि नहीं, किन्तु तबसे उस बालक को देखकर मुझे यह याद आ जाता है कि हमारा कर्तव्य और हमारी जिम्मेवारी कितनी अधिक है। परमेश्वर इसके लिये हमें बल दें।

पर उस बालक का क्या, और भी गुरुकुल में ऐसे बालक हैं, और रहे हैं जिनके माता पिता ने अपने इकलौते बालक को गुरुकुल में दिया है, या अपने सब बालकों को गुरुकुल में दिया है, बड़े ऊंचे ख्याल से गुरुकुल में प्रविष्ट कराया है,। बालक के प्रवेश कराने के लिये कोई विशेष प्रेरणा उन्हें हुई है या प्रवेश कराने के साथ कुछ अद्भुत सी कहानी या घटना का संबन्ध है। यह सब बातें हमें हमारे भारी कर्तव्य का स्मरण दिलाती हैं, या दिला सकती हैं। इसलिए मैं चाहता हूं कि अन्य संरक्षक भाई भी – यदि लिखने लायक समझें (कई संरक्षकों के बारे में मैं जानता हूं कि लिखने लायक हैं) – "मैंने अपने बालक को क्यों गुरुकुल में प्रवेश कराया, अन्य स्कूल आदि में क्यों नहीं पढ़ा लिया" इस विषय पर अपने उत्तम विचार तथा अन्य वक्तव्य लिख भेजने की

कृपा करें। ज़रासा कष्ट उठाकर लिख भेजें। इससे काफी लाभ होगा। इससे जहां हम गुरुकुल के संचालकों को ऊंचे प्रकार की प्रेरणा मिलेगी वहां उस के ब्रह्मचारियों को और सभी ब्रह्मचारियों को भी उत्कृष्ट बनने की प्रेरणा मिलेगी और इस तरह गुरुकुल का वायुमण्डल भी नये जीवन और उत्साह से अनुप्राणित बन सकेगा।

गान्धी सेवासंघ वृन्दावन

(ले० श्री पं० हरिदत्त जी वेदालंकार)

[२] तीन सवन

हमारे प्राचीन ऋषियों ने प्रातः सवन, माध्यन्दिन सवन और सायतन सवन तीन, सवनों का विधान किया है। सवन या यज्ञ का अर्थ है परोपकार के लिये किया गया कार्य। संघ के सदस्यों के दैनिक कार्यक्रम में एक अद्भुत ढंग से तीन सवनों की झलक मिलती थी। इन्हीं का इस लेख में वर्णन किया जायगा।

प्रातःकाल के सुहावने समय में, प्रार्थना के बाद हाथ में टोकरी पकड़ तथा कन्धे पर कुदाल रखे, वृन्दावन गांव के लोगों के उपकार के लिये, एक तालाब खोदने के लिये जाते हुए सदस्यों का दर्शन एक अनिर्वचनीय दृश्य था। हरेक को उस स्थान पर पहुँचने की जल्दी है। वह देखिये अब्दुल गफ़्फ़ार खां साहिब पीछे रह गये थे, तेजी से कदम बढ़ाते उधर चले जा रहे हैं। जितना लम्बा कद है, डग भी उतने लम्बे पड़ रहे हैं। दूसरे नेता भी उसी दिशा में प्रस्थान हो चुके हैं। डेलीगेट कैम्प खाली हो गया है, पास के गांवों की कुछ भीड़ भी इस तमाशे को देखने के लिये एकत्र हो गयी है। महात्मा गान्धी ने अपने कृश करों से कुदाल का प्रथम प्रहार किया और तालाब की खुदाई का कार्य प्रारम्भ होगया। बीसियों फावड़े चलने लगे। सदस्यों ने कार्य को नियमित करने के लिये अपने को दो टोलियों में बांट लिया है। एक टोली मिट्टी खोदकर टोकरियों में भरने वाली है और दूसरी टोकरियों को उठा कर उन की मिट्टी दूर फेंकने वाली है।

कहावत है, उदाहरण उपदेश से बेहतर है (Example is better than precept) संघ के सदस्य ग्रामीण जनता के आगे सामूहिक श्रम का यह उत्तम आदर्श स्थापित कर उन्हें सैंकड़ों उपदेशों से कहीं अधिक लाभ पहुंचा रहे थे। इसका फल शीघ्र ही दृष्टि गोचर हुआ। पहले दिन का तमाशबीन जन समुदाय दूसरे दिन से उनका सहयोग करने लगा। अन्तिम दिनों में तो काम करने वालों की संख्या इतनी अधिक होगयी थी कि नियन्त्रण असंभव हो चला था। यही तथ्य इस बात का सूचक है कि वे अपने उद्देश्य में कितने अधिक सफल हुए।

आजकल अखबार में चित्र निकलवाने के लिये २ मिनट तक कुदाल और टोकरी के साथ खड़े होकर फोटो खिंचवाने वालों की कमी नहीं है। किन्तु कमी है सच्चे कार्यकर्ताओं की—जो दिल से शरीर श्रम के सिद्धान्त को मानते हों और पूरी शक्ति से उसे अमल में लाते हों। वहां ऐसे जनसेवकों की मण्डली इकट्ठी हुई थी। सदस्यों का कार्य कोई दिखावे का कार्य नहीं था। पूरे ३ घंटे, ६ से ९ बजे तक सभी सदस्य पूर्ण उत्साह से इस कार्य में जुटे रहते थे। हमारा वर्तमान शिक्षा और सभ्यता हमें हाथ के काम से घृणा सिखाती है। जो स्कूल में चार श्रेणी भी पढ़ लेता है, मिट्टी ढोने में लज्जा अनुभव करता है। सदस्यों का यह कार्य इसका क्रियात्मक खण्डन था। यहां एक प्रश्न हो सकता है-गांव वाले तो पहले ही से शरीर-श्रम करते हैं उन्हें यह तमाशा दिखाने की जरूरत क्या है। यह ठीक है कि उनमें शारीरिक श्रम है किन्तु उनमें सहयोग और परोपकार की भावना से अनुप्राणित सामूहिक शारीरिक-श्रम बिलकुल नहीं है। संकुचित स्वार्थ ने उन में इतना घर कर लिया है कि वे सामुदायिक हित को सोच ही नहीं सकते। आज यदि गांव वालों में इस भावना के लवलेश का भी प्रवेश हो सके तो उनको निराशाजनक अधःपतन के गाढ़ान्धकार में वह उत्साह वर्धक उन्नति की एक उज्ज्वल आशा की किरण होगी।

इसलिये प्रतिवर्ष संघ के सदस्य गांव वालों में यह भाव उत्पन्न करने के लिये सार्वजनिक हित के किसी कार्य को पूरा किया करते हैं। पिछले वर्षों में सड़क बनाने, तालाब खोदने आदि के कार्य होते रहे हैं।

यह था सदस्यों का प्रातः सवन।

× × ×

दो बजे दूसरा सवन प्रारम्भ होता था। इसे सूत्र यज्ञ का नाम दिया जाता था। ऊपर लिखा जा चुका है कि परोपकार के लिये किये जाने वाला प्रत्येक कर्म सवन या यज्ञ है। देहात के करोड़ों ग़रीबों के उपकार तथा उनसे जीवित संबन्ध बनाये रखने का यज्ञ सूत्र द्वारा ही हो सकता है। अतः सब सदस्य यरवदा चक्र या तकलियों के डब्बे लिये हुये आध घण्टे तक मौन भाव से दरिद्र नारायण की आराधना करने के लिये फूस के बनाये सभा मन्दिर में एकत्र होते थे। मंच पर महात्मा जी राजेन्द्र बाबू आदि नेता चर्खा चला रहे होते थे और नीचे, उनके सामने संघ के सदस्य सूत कात रहे होते थे। सब अपना तार निकालने में इतने अधिक व्यस्त होते थे कि उन्हें किसी अन्य वस्तु का ध्यान भी न रहता था। सब का यही प्रयत्न होता था कि इस आध घण्टे में अधिक से अधिक कातें क्यों कि उन्हें इस आध घंटे का एक विवरण-पत्र पर हिसाब लिखना पड़ता है और यह सूत इकट्ठा करके किसी उत्तम कार्य के उपयोग में लगाया जाता है। चर्खे वाले सम्भवतः अधिक सूत कातते थे और तकली वाले कम। पर थोड़ा हो या ज्यादा, सारा सूत निष्ठा से काता जाता था। उस सर्वथा शान्त और नीरव मण्डप में चर्खों का शब्द एक मधुर संगीत की तरह कानों में अमृत उड़ेलता सा जान पड़ता था। आज सारा हिन्दुस्तान इतनी तल्लीनता, एकाग्रता, भक्ति और निष्ठा के साथ सूत्र-यज्ञ को सम्पन्न करना शुरू कर दे तो अविलम्ब भारत स्वतन्त्र हो जाय। उस को नौकरशाही से लड़ाई-लड़ने या

संघर्ष करने की जरूरत न रहे। जिस व्यापार की नींव पर अंग्रेजी राज्य का प्रासाद खड़ा है-नींव खोखली हो जाने से वह विशाल प्रासाद स्वयमेव धराशायी हो जायेगा। अस्तु।

सूत्र यज्ञ के बाद प्रवचन होता था। इस अवसर पर महात्मा जी अपने सदस्यों को अपने सिद्धान्त समझाते हैं। इस वर्ष राजकोट में चल रहे गांधी जी के प्रयोगों के कारण यह अवसर और भी महत्व पूर्ण हो गया था। सत्याग्रह का प्रयोग करने का यदि चम्पारन को गौरव प्राप्त है तो उसे इसका असाधारण विकास करने का भी महत्व मिलना चाहिये। महात्मा जी को जो 'नया भान' हुआ उसकी व्याख्या और न्यायर निर्णय का लाभ परित्याग करने की पूर्व सूचना उन्हों ने यहीं दी थी। यद्यपि उस समय किसी ने अधिक ध्यान नहीं दिया। चर्खा, सत्य, अहिंसा, सत्याग्रह की योग्यतायें आदि बातों पर प्रति दिन गाँधी जी प्रकाश डालते थे तथा सदस्यों के प्रश्नों का उत्तर और शंकाओं का निवारण किया करते थे। अन्तिम दिनों में इस मौके पर सरदार पटेल, राष्ट्रपति राजेन्द्र बाबू तथा आचार्य कृपलानी के भी व्याख्यान हुए।

यह था माध्यन्दिन सवन

× × ×

दिवस का आरम्भ और अवसान प्रार्थना से होता था। प्रार्थना महात्मा जी के जीवन का अंग बन गई है, वह तो एक तरह का आध्यात्मिक भोजन है जिस के बिना उनका जीवन चल ही नहीं सकता। प्रातः काल प्रातःसवन का पूर्ण अंग प्रार्थना ठीक पांच बजे 'प्रातः स्मरामि हृदि संस्फुरदात्मतत्वं सच्चित्सुखं परम हंसगतिं तुरीयम्' से प्रारम्भ कर एकादश व्रतों की प्रतिज्ञा दोहराई जाती थी। गीता के निश्चित हिस्सों के पाठ के पश्चात् सूर, तुलसी, मीरा, कबीर नानक आदि सन्तों के भक्तिपदों में से किसी एक पद का एक व्यक्ति सस्वर गाता था। 'जैसे राखहु वैसे ही रहौं' आदि गीतों की तान प्रार्थना करने वालों के हृदयों को झकृत करती हुई दूर २ तक उस उषःकालीन वायुमण्डल में कम्पन उत्पन्न करती थी। सबके हृदयों पर यह स्वर लहरी एक विशेष प्रभाव अंकित करती थी। गीत के बाद 'जय राम, जय २ राम' तथा 'रघुपति राघव राजाराम पतित पावन सीताराम' के कीर्तन के साथ इसकी समाप्ति होती थी।

सायं काल शाम को प्रार्थना के लिये भक्त समुदाय फिर जुटता था। 'यं ब्रह्मावरुणेन्द्र रुद्र मरुतः' के बाद 'स्थितप्रज्ञस्य का भाषा समाधिस्थस्य केशव' आदि श्लोकों का पाठ होता था और प्रातः काल की तरह एक भजन तथा 'जय २ राम' की धुन हुआ करती थी।

यह कुछ दुःख की बात है कि प्रार्थना में पूरी शांति और गम्भीरता नहीं रह सकी। महात्मा जी प्रार्थना सदा खुली जगह में करते हैं। उनके दर्शन के लिये यह स्वर्ण संयोग सदा प्राप्त रहता है। अतः दोनों समयों में गांव वालों की अनियन्त्रित, उच्छृंखल, कोलाहल-प्रिय और नासमझ भीड़ उस शांति में बाधा डालती रहती थी। हाथ में डंडे लिये बिहार ग्रामीण एक दूसरे को 'रौवा केने जानानी' (आप कहां जाते हैं), 'हेने आवो (इधर आवो)' 'हेने से ठीक लौकुता' (यहां से ठीक दीखता है) आदि वाक्य कहते हुए बहुत शोर मचाते थे। कहने पर भी चुप नहीं होते थे। उन्हें प्रार्थना से तो कोई मतलब नहीं था, सिर्फ बापू के दर्शन की लालसा थी। वह दर्शन जहां से ठीक हो सके, बस डन्डों से रास्ता बनाते हुये उधर चल देते थे। स्वयं-सेवक उन्हें रोकने को दौड़ते पर कभी विशाल जल प्रवाह बांधों का अनुशासन मानने को तैय्यार होता है ?

यह था सायंतन सवन

× × ×

इस प्रकार इन तीनों सवनों को सम्पन्न करते हुये सदस्य नयी स्फूर्ति नये उल्लास और नये आनन्द का अनुभव करते थे। उनको इस प्रकार तीनसमय आदर्शों में अपना विश्वास दृढ़ करते हुए मुझे सहसा उन प्राचीन ऋषियों की याद आ जाती थी जो तीनों सवनों में श्रद्धा का आह्वान करते हुए निम्न मन्त्र का गान किया करते थे-

"श्रद्धां प्रातर्हवामहे, श्रद्धां मध्यंदिनम्परि।
श्रद्धां सूर्यस्य निम्रुचि, श्रद्धे श्रद्धापयेहनः॥"
[ऋ० १०, १५१, ५]

[पृष्ठ ३ का शेष]

सकते। यह भाव केवल हृदय में ही उत्पन्न होता है और ऋषि उसे हृदय से ही समझते हैं। इस विषय में अनेक तत्वज्ञों की सहमति है। जिस प्रकार Hypnotizer सामने के व्यक्ति के मुख से केवल मानसिक प्रेरणा के आधार पर ऐसी २ भाषा के शब्द बुलवाता है कि जो शब्द उस मनुष्य ने कभी भी सुने नहीं। इस प्रकार सर्वव्यापक और सर्वशक्तिमान् परमात्मा सृष्टि के आदि के मानवों के हृदयों में ज्ञान का प्रकाश करता है।

(अग्रिम अंक में समाप्य)

पते चाहियें

गुरुकुल कांगड़ी की स्थापना सन् १९०२ में हुई थी। अब सन् १९३९ है। पिछले इन सैंतीस वर्षों में गुरुकुल कांगड़ी तथा इसकी मुलतान, कुरुक्षेत्र, कमालिया, सूपा, रायकोट, भटिन्डा आदि भिन्न २ शाखाओं में रहकर हजारों विद्यार्थियों ने विद्या-लाभ किया है और सैंकड़ों स्नातक भी बने हैं। हम ऐसे सब सज्जनों के वर्तमान पतों की आवश्यकता है जो अपने बालजीवन के कुछ न कुछ दिन यहां व्यतीत कर चुके हों। इन पतों के पाने पर गुरुकुल के अधिकारी अपने छात्रों से पुनः सम्बन्ध स्थापित कर सकेंगे। आशा है कि गुरुकुल कांगड़ी के सभी पुराने छात्र अपना २ वर्तमान पता भेजकर हमें अनुगृहीत करेंगे।

भवदीय
दीनदयालु
स० मुख्याधिष्ठाता।

गुरुकुल समाचार

पावस के आगमन के साथ ही चारों ओर से शीतल हवाएँ चलने लगी हैं। दिन भर आकाश में घटाएँ छाई रहती हैं। हरी भरी घासों से धीरे २ भूमि ढकने लगी है। सामने हिमालय को मण्डलाकार वेष्टित करने वाले बादलों का दृश्य अत्यन्त सुहावना प्रतीत होता है। ब्रह्मचारियों की पढ़ाइयां नियम पूर्वक हो रही हैं। गत बुधवार को श्री पं० सत्यकेतु जी विद्यालंकार डी. लिट्. का यूरोप के विषय में एक मनोरञ्जक तथा शिक्षा के लिये अत्यन्त उपयोगी व्याख्यान हुआ। सब कुलवासी उसमें सम्मिलित हुए।

वीरेन्द्र ४र्थ चोट, देवेन्द्र (कमौली) ४र्थ नेत्र रोग से तथा प्रेमप्रकाश ३य, लाजपतराय ३य, रामचन्द्र २य, मलेरिया ज्वर से पीड़ित हैं।

गत सप्ताह उपरोक्त ब्र० रोगी हुए थे। अब सब स्वस्थ हैं।

दो स्नातक बन्धुओं का अनुकरणीय प्रस्थान

गत १६ जून को गुरुकुल कांगड़ी के अर्थशास्त्रोपाध्याय श्री पं० केशवदेव जी वेदालङ्कार तथा नवस्नातक श्री पं० अनन्तानन्द जी आयुर्वेदालङ्कार प्रात काल ४ बजे पवित्र भावना के साथ हैदराबाद के लिए चुपचाप, पैदल ही रवाना हो गए। आप दोनों अपने लिए किसी प्रकार का कोई प्रदर्शन नहीं कराना चाहते थे इसीलिए बिना किसी को जगाए और निश्चित समय बताए रात्रि के निविड़ अन्धकार में प्रस्थान कर दिया। आप दोनों के स्वधर्म प्रेम, उत्साह व लगन की जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी है। प्रथम व द्वितीय दिन क्रमश २६ और २८ मील चल कर आप मुज़फ्फर नगर पहुंचे, जहां पर अमृतसर से आने वाले जत्थे में आप दोनों ने शामल होना था। आप दोनों के स्वागत के लिये अमृतसर में अच्छी तैयारी की गई थी। वहाँ के प्रधान जी ने बड़े पोस्टरों पर दोनों के नाम देकर शहर भर में लगवाये थे। श्री प० जगन्नाथ जी 'पथिक' भी जो कि गुरुकुल कांगड़ी में १२ वीं श्रेणी तक पढ़ चुके हैं इसी जत्थे में साथ जा रहे हैं। अमृतसर के जत्थे के यथा समय न पहुंचने पर दोनों स्नातक रेल द्वारा देहली पहुँचे। यहां से वे इसी जत्थे के साथ हैदराबाद जावेंगे।

गुरुकुल कुरुक्षेत्र समाचार

कुरुक्षेत्र १५ जून

ऋतु सामान्य तथा उत्तम है। ७ जून को कुछ वर्षा हुई और उसके बाद भी १-२ बार मामूली बूंदा-बांदी होचुकी है। गर्मी पहिले से बहुत कम हो गई है। ३-४ खांसी तथा १-२ मलेरिया के बीमारों के अलावा और कोई रोगी नहीं है।

ब्रह्मचारियों की षाण्मासिक परीक्षायें २३ जुलाई से शुरु होंगी और दीर्घावकाश १ अगस्त से प्रारम्भ होगा। छुट्टियों में छोटे ब्रह्मचारी हमेशा की तरह यात्रायें पहाड़-पहाड़ पर जायेंगे और बड़े ब्रह्मचारी पंजाब के मुख्य २ शहरों में हैदराबाद सत्याग्रह सम्बन्धी प्रचार तथा धन संग्रह का कार्य करते हुए काश्मीर जायेंगे

गुरुकुल के व्यायाम शिक्षक पं० विक्रम जी व्यायाम सम्बन्धी और अधिक शिक्षा प्राप्त करने के लिये मा० माणिक राव जी के पास व्यायामशाला में गये हुए हैं। ब्रह्मचारियों की शिल्प शिक्षा के लिये शीशे पर तैल चित्र बनाना आसन बुनना दरी बुनना आदि कार्य प्रारम्भ किये गये हैं और भी कई कार्य प्रारम्भ करने का विचार है।

गुरुकुल कुरुक्षेत्र के कर्मचारियों का निश्चय सत्याग्रह की सहातार्थ दान

गुरुकुल कुरुक्षेत्र जि० करनाल के सब कर्मचारियों ने निश्चय किया है कि जब तक हैदराबाद का आर्य सत्याग्रह जारी रहेगा वे अपनी मासिक आय में से -) फी रुपया के हिसाब से सत्याग्रह फंड में (सार्वदेशिक आर्य प्रतिधि सभा की आज्ञानुसार) देते रहेंगे। इससे पहले भी गुरुकुल की ओर से २५) पाक्षिक सत्याग्रह अर्थ भेजा जा चुका है। अब यह राशि बढ़कर लगभग ६०) प्रति मास हो जायगी।

आवश्यकता

एक जागीर दार की ३ कन्याओं को पढ़ाने के लिये एक ऐसे पंडित की आवश्यकता है जो आयु में ४५ से अधिक का हो। अष्टाध्यायी इतिहास भूगोल अंग्रेज़ी आदि पढ़ासकें। वेतन योग्यतानुसार ५०। (मकान तथा लकड़ी फ्री) तक दिया जासकेगा। प्रार्थना पत्र अति शीघ्र भेजें।

पता - श्री राजकुमार धर्मचन्द जी
मार्फतचिरंजी लाल बजाज
ठिकाना अमरगढ़
पो० सपोटरा
स्टेशन—वाया गंगापुर सिटी। बी. बी. एन्ड-सी. आई.।

संरक्षकों से निवेदन

जिन संरक्षक महानुभावों को अपने २ ब्रह्मचारियों के फोटो की आवश्यकता हो वे निम्न पतेपर प्राप्त कर सकतेहैं।

दाम:— कार्टर साईज १॥) ३ प्रति
कैबिनिट साईज ३) ३ प्रति
अलंकार चित्रशाला गुरुकुल कांगड़ी।

चौधरी दुलारराय के प्रबन्ध से गुरुकुल-प्रेस गुरुकुल कांगड़ी में मुद्रित तथा प्रकाशित।

॥ ओ३म् ॥

"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत"

Reg. No A 2927

गुरुकुल

सम्पादक—साहित्यरत्न पं० हरिवंश वेदालङ्कार

एक प्रति का मूल्य -) [गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख-पत्र] वार्षिक मूल्य २॥)

वर्ष ४] गुरुकुल काङ्गड़ी, शुक्रवार १६ आषाढ़ १९९६; ३० जून १९३९ [संख्या ९

सत्याग्रही का स्वाध्याय

(वेद-वचनामृत)

[ले० —श्री आचार्य अभयदेव जी]

हमारे ज्ञान और कर्म प्रभु प्रेरित हों—

ओ३म् भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्।

ऋक्०, यजु०, साम०।

अर्थ—(सवितुः) प्रेरक, उत्पादक (देवस्य) परमात्मदेव के (तत्) उस (वरेण्यं) वरने योग्य (भर्गः) शुद्ध तेज को (धीमहि) हम धारण करते हैं, ध्यान करते हैं (यः) जो धारण किया हुआ तेज (नः) हमारी (धियः) बुद्धियों को, कर्मों को (प्रचोदयात्) सदा सन्मार्ग पर प्रेरित करता रहे।

आत्म बलिदान करने वाले का कल्याण निश्चित है—

ओ३म् यदङ्ग दाशुषे त्वमग्ने भद्रं करिष्यसि।
तवेत् तत् सत्यमङ्गिरः॥ ऋक्०॥

अर्थ—(अङ्ग) हे प्यारे! (अङ्गिरः) मेरे जीवनसार (अग्ने) प्रकाशक देव! (यत् त्वं) जो तू (दाशुषे) आत्मबलिदान करने वाले का (भद्रं) कल्याण (करिष्यसि) करता है (तत्) वह (तव) तेरा (सत्यं इत्) सच्चा, न टलने वाला नियम है।

सर्वत्र अभय

ओ३म् इन्द्र आशाभ्यस्परि सर्वाभ्यो अभयं करत्।
जेता शत्रून् विचर्षणिः॥ ऋक्० अथर्व०॥

अर्थ—(इन्द्रः) इन्द्र परमेश्वर, मुझे (सर्वाभ्य आशाभ्यः परि) सब दिशाओं से (अभयंकरत्) अभय करदे। (शत्रून् जेता) जो परमेश्वर शत्रुओं को जीतने वाला है। (विचर्षणिः) और सब कुछ [हर एक प्राणी के हर एक कर्म को] पूरी तरह देखने वाला है।

तेरा सखा कभी नष्ट नहीं होता

ओ३म् त्वं नः सोम विश्वतो रक्षा राजन् अघायतः।
न रिष्येत् त्वावतः सखा॥

अर्थ—(सोम) हे सोम! (राजन्) हे राजा! हे असली राजा! (त्वं नः) तू हमें (अघायतः) पाप चाहने वालों से (विश्वतः) चारों तरफ से (रक्षा) रक्षा कर। (त्वावतः सखा) तेरे जैसे से मित्रता रखने वाला (न रिष्येत्) कभी नष्ट नहीं होता।

तू कौन है

शुक्रोऽसि, भ्राजोऽसि, स्वरसि ज्योतिरसि।

अथर्व०

अर्थ—तू शुद्ध है, तू तेज रूप है, तू आनन्द वाला है, तू प्रकाश स्वरूप है।

शत्रु भी हमारी अच्छाई से प्रभावित हो

ओ३म् उत नः सुभगाँ अरि र्वोचेयु र्दस्म कृष्टयः।
स्यामेत् इन्द्रस्य शर्मणि॥ ऋक्०॥

अर्थ—(दस्म) हे पापनाशक इन्द्र! (अरिः उत) शत्रु भी (नः सुभगान् वोचेयुः)) हमारी अच्छाइयों को, हमारे सौभाग्यों को कहें। (कृष्टयः वोचेयुः) सामान्य मनुष्य तो कहें ही। फिर भी हम (इन्द्रस्य इत्) तुझ परमेश्वर के ही (शर्मणि) सुख में (स्याम) रहें, होवें।

मेरी पुकार सुनो

ओ३म् इमं मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृडय।
त्वामवस्युराचके॥ यजु०॥

अर्थ—(वरुण) हे वरुण! (मे) मेरी (इमं) इस (हवं) पुकार को (श्रुधी) सुन लो। (अद्य च) आज तो मुझे (मृडय) सुखी कर दो (त्वां अवस्युः) मैं तुम्हारी शरण में आया हुआ, तुमसे रक्षा चाहता हुआ (आचके) प्रार्थना कर रहा हूँ।

मुझे दृढ़ करो

ओ३म् दृते दृंह मा, ज्योक्ते संदृशि जीव्यासम्।
ज्योक्ते संदृशि जीव्यासम्॥ यजु०॥

अर्थ -(दृंह) हे समर्थ परम दृढ़ परमेश्वर! (मा) मुझे (दृंह) दृढ़ बना दे, जिससे कि मैं (ते संदृशि) तेरे संदर्शन में, तेरी ठीक दृष्टि में (ज्योक्) चिरकाल तक (जीव्यासं) जीता रहूं (ते संदृशि ज्योक् जीव्यासं) तेरे सम्यक् दर्शन में दीर्घ आयु तक जीता रहूं।

सत्य की शक्ति

ओ३म् ऋतस्यहि शुरुधः सन्ति पूर्वीः,
ऋतस्य धीतिर्वृजिनानि हन्ति ।
ऋतस्य श्लोको बधिराततर्द
कर्णा वुधानः शुचमान आयोः ॥ ऋक्० ॥

अर्थ —(ऋतस्यहि) सत्य की (शुरुधः) शोक निवारक सम्पत्तियां (पूर्वी सन्ति) सनातन हैं। (ऋतस्य धीतिः) सत्य का धारण करना (वृजिनानि) पापों का, वर्जनीय वस्तुओं का (हन्ति) नाश कर देता है। (ऋतस्य) सत्य की (वुधानः) जगाने वाला और (शुचमानः) दीप्यमान (श्लोकः) आवाज़ (बधिरा) बहरे (आयोः) मनुष्य के (कर्णा) कानों में भी (आततर्द) पहुंच जाती है।

जिसके बिना विजय नहीं मिलती

ओ३म् यस्मान्न ऋते विजयन्ते जनासो,
यं युध्यमाना अवसे हवन्ते ।
यो विश्वस्य प्रतिमानं बभूव,
यो अच्युत च्युत् स जनास इन्द्रः ॥
ऋक्० अथर्व ॥

अर्थः— (जनासः) हे मनुष्यो (इन्द्रः स) परमेश्वर वह वस्तु है (यस्मात् ऋते जनासः न विजयन्ते) जिसके बिना मनुष्यों को कभी विजय नहीं मिलती और (यं युध्यमाना अवसे हवन्ते) जिसको कि युद्ध करते हुए मनुष्य रक्षा के लिये पुकारते हैं तथा (यो विश्वस्य प्रतिमानं बभूव) जो विश्व का प्रतिमान अर्थात् उसके प्रत्येक पदार्थ का निर्माता होकर, सब विश्व को अपने में रखकर, तद्रूप हुवा-हुवा है (यः अच्युत च्युत्) और जो न डिगने वाले बड़े दृढ़ पदार्थों को भी डिगा देता है।

आत्मिक बल कहां से आता है

ओ३म् य आत्मदा बलदा यस्य विश्व,
उपासते प्रशिष यस्य देवाः ।
यस्यच्छायाऽमृतं यस्य मृत्युः,
कस्मै देवाय हविषा विधेम ।
ऋक्०, यजु०, अथर्व० ॥

अर्थ— (यः आत्मदाः) जो आत्म स्वरूप को देने वाला और (बलदाः) शक्ति को देने वाला है। (यस्य विश्व उपासते) सब जिस की उपासना करते हैं और (यस्य देवाः प्रशिषं [उपासते]) देव भी जिसके प्रशासन के आश्रित हैं-उस की सर्वोच्च आज्ञा में चलते हैं। (यस्यच्छाया अमृतं) जिसकी शरण या आश्रय पाना अमर होना है और (यस्य मृत्युः) जिसकी [जिससे दूर होना ही] मृत्यु है (कस्मै देवाय) उस "क" [सुख स्वरूप] देव का हम (हविषा विधेम) आत्म-त्याग द्वारा पूजन करते हैं।

मैं द्वेष के उत्तर में द्वेष करना बन्द करता हूं

ओ३म् इदमुच्छ्रेयो अवसान मागां, शिवे
मे द्यावा पृथिवी अभूताम
असपत्नाः प्रदिशोमे भवन्तु, न वैत्वा द्विष्मो
अभयं नो अस्तु ॥ अथर्व० ॥

अर्थ— (इदं उत् श्रेयः) अब यह ही कल्याणकर है कि (अवसानं आ अगां) मैं अब समाप्ति पर आजाऊं, द्वेष-परम्परा का विराम कर दूं। अतः हे शत्रु! (त्वां) तेरे साथ (न वै-द्विष्मः) मैं तो द्वेष करना छोड़ ही देता हूँ। (द्यावा पृथवी) द्यौ और पृथवी भी (मे) मेरे लिये (शिवे अभूताम्) अब कल्याणकारी हो जायं (प्रदिशः मे असपत्नाः भवन्तु) सभी दिशायें मेरे लिये शत्रु रहित हो जायं (नः अभयं अस्तु) मेरे लिये अब अभय ही अभय हो जाए।

रक्षक इन्द्र को पुकारता हूं

ओ३म् त्रातारमिन्द्रमवितारमिन्द्रं, हवे हवे
सुहवं शूरमिन्द्रम् ।
ह्वयामि शक्रं पुरुहूतमिन्द्रं, स्वस्ति नो मघवा
धात्विन्द्रः ॥ ऋक्०, यजु०, सा०, अथर्व० ॥

अर्थ— (त्रातारं इन्द्रं) पालन करने वाले इन्द्र को, (अवितारं इन्द्रं) रक्षा करने वाले इन्द्र को (हवे हवे सुहवं) एक एक संग्राम में सुख से पुकारने योग्य (शूरं इन्द्रं) उस सर्वशक्तिमान् इन्द्र को (पुरुहूतं इन्द्रं) जिसे कि असंख्यों सत्पुरुषों ने समय समय पर पुकारा है—उस इन्द्र को मैं भी (ह्वयामि) पुकारता हूँ, बुलाता हूं। (मघवाइन्द्रः) वह ऐश्वर्यवान् इन्द्र (नः स्वस्ति धातु) हमारा कल्याण करे।

निष्कपटता

यदन्तरं तद्बाह्यं यद्बाह्यं तदन्तरम्
अथर्व० ॥

अर्थ— जो तेरे अन्दर हो वही बाहिर हो और जो बाहिर हो वही अन्दर हो।

ईश्वरीय ज्ञान—वेद

(२)

[ले० आचार्य पं० चन्द्रकान्त जी वेद वाचस्पति, वेद मनीषी गुरुकुल महाविद्यालय सोनगढ़ काठियावाड़]

आदि ज्ञान तथा आदि भाषाः—

ज्ञान शब्द से हम दो प्रकार के भाव समझते हैं—एक तो विचार अथवा भाव, और दूसरा उस विचार को सूचक भाषा। मनुष्य में किसी भी प्रकार का विचार कोई विशिष्ट भाषा के आधार के बिना उत्पन्न नहीं होता; केवल दूसरों पर अपने भाव व्यक्त करने के लिए ही भाषा की आवश्यकता है—ऐसा नहीं है परन्तु अपने अन्तरात्मा में भी विचार, भाषा के बिना नहीं रह सकते। प्रसिद्ध भाषा शास्त्री प्रोफेसर मेक्समूलर अपने 'भाषा-विज्ञान' नामक पुस्तक में लिखते हैं किः—

We never meet with articulate sounds except as wedded to determinate ideas, nor do we ever, I believe, meet with determinate ideas except as embodied forth in articulate sounds. I therefore declare my conviction as explicitly as possible that thought in the sense of reasoning is not possible without language.

इस प्रकार Schelling भी लिखते हैं: — Without language it is impossible to conceive philosophical, nay even any human Consciousness. अर्थात् भाषा के आधार के बिना मानवीय ज्ञान उत्पन्न नहीं हो सकता। भाषा से यहां पर कोई देश, जाति अथवा काल विशेष की भाषा नहीं समझनी चाहिए, परन्तु भाषा से यहां बोलने की शक्ति का अर्थ अभिप्रेत है और जो शक्ति मनुष्य को सृष्टि के प्रारम्भ में ही प्राप्त हुई है। वह शक्ति किस प्रकार आई? अनुभव और दृष्टान्त हमें बताते हैं कि बालक बिना सिखाये कोई भी भाषा नहीं बोल सकता। माता पिता आदि से सुन कर ही वह मातृ भाषा को बोलने व समझने में समर्थ होता है।

सामान्यतः हम देखते हैं कि संसार में एक दूसरे से भिन्न ऐसी हज़ारों भाषायें हैं और जिनमें हम विचार करते हैं कि आवश्यकता और परिस्थितियों से भिन्न २ जातियों ने भिन्न २ समय में ये भाषाएं प्रकट की हैं। और इसी प्रकार प्रारम्भ में भी भाषा विकसित हुई होगी, परन्तु ऐसी धारणा अशुद्ध है क्योंकि भाषा-शास्त्रियों ने यह साबित किया है कि संसार में प्रचलित कोई भी भाषा नई नहीं है। उन सबकी उत्पत्ति कोई एक ही मातृभाषा से हुई है। अब हमारे सामने विचारणीय प्रश्न यही है कि सर्व भाषाओं की मूल भाषा कौनसी है, और उसका विकास कैसे हुआ?

भाषा की उत्पत्ति के संबन्ध में कतिपय मतों का पर्यालोचन।

इस विषय का विवेचन करने से हमारे सामने दो विचार उपस्थित होते हैं- एक तो यह है कि 'भाषा का विकास क्रमशः हुआ है; और दूसरा यह है कि- 'ज्ञान के समान भाषा भी कोई दैवीय शक्ति द्वारा हमें मिली है।' विकासवादी अपने मत को सिद्ध करते हुए निम्न तीन कल्पना बताते हैं।

(१) भाषा की उत्पत्ति के संबन्ध में सर्व प्रथम कल्पना Theory of convention की है। इसके आविष्कर्ता महाशय लौक थे। एडमस्मिथ ने भी इसका अच्छी तरह से समर्थन किया है। इस कल्पना के अनुसार प्रारम्भ में सब प्राणी गूंगे थे; अपने भावों को व्यक्त करने के लिये वे शरीर के भिन्न २ संकेत करते थे, परन्तु कालान्तर में विचार इतने अधिक बढ़े कि उनको संकेतों से बताना कठिन हो गया। तब कितने ही कृत्रिम चिन्ह निश्चित किये गये और उनके अर्थ पारस्परिक व्यवहार से निश्चित किये गये। इस कल्पना को विचारने से यह दोषयुक्त प्रतीत होती है, क्योंकि जब शब्द और अर्थ दोनों अपूर्ण थे तब परस्पर का व्यवहार, किस माध्यम से स्वीकृत किया गया? यह प्रश्न उपस्थित ही रहता है।

(२) द्वितीय कल्पना Onomatopoetic theory से पहिचानी जाती है। इस कल्पना के अनुसार माना जाता है कि प्रारम्भ में जब मनुष्य ने बोलना आरम्भ किया तब उसने अपने आस पास के चेतन प्राणियों के शब्दों का अनुकरण किया और बाद में वे ही शब्द, जोकि जिसके अनुकरण से बने थे, उन २ पदार्थों के लिये प्रयोग में लाये गए। परन्तु किसी भी भाषा का इतिहास इस बात की पुष्टि नहीं करता। हम कोई भी भाषा का विचार करें उसमें प्राकृतिक जगत् में होने हुए आवाजों के साथ साम्य रखने वाले शब्द बहुत ही कम देखने में आते हैं परन्तु यदि एक शब्द मिल भी जाय तब भी उससे यह मत साबित नहीं होता।

३. तीसरी कल्पना Bow-Vow तथा Interjectional theory के नाम से प्रसिद्ध है। इसके अनुसार मनुष्य के मानसिक भाव वेगयुक्त होकर उसके मुख में से स्वभाविक शब्दों द्वारा व्यक्त होने गये। इस प्रकार भाषा की उत्पत्ति धीरे धीरे हुई। मनुष्य दुःख में 'हा! हा!' और आनन्द में 'वाह! वाह!' करने लगा। इस विषय के लिए केवल इतना ही लिखना बस होगा कि संसार की प्रत्येक भाषा में इस प्रकार के शब्द नाम मात्र के हो मिलते हैं और वे भाषा के अंगभूत नहीं होते। साथ में यह बात भी निस्सत्व लगती है कि मनुष्य के मुख में से जैसे-तैसे शब्द निकल पड़े, उन को दूसरे मनुष्यों ने किसी निश्चित अर्थ में कैसे जान लिया? इसलिए हम अन्त में इस परिणाम पर आते हैं कि सृष्टि के प्रारम्भ में ईश्वर ने शब्द और उसके अर्थ तथा दोनों में सम्बन्ध बताने का ज्ञान प्रदान किया है। प्रो. मेक्समूलर इसी सत्य को अपने 'भाषा विज्ञान' नामक पुस्तक में इस प्रकार से बताते हैं- 'मनुष्यों में तथा अन्य प्राणियों में भाषा भेद ऐसा है कि उसे दूर नहीं किया जा सकता। संसार में ऐसा कोई भी दृष्टान्त नहीं मिलता कि जिस में यह बताया गया हो कि कोई पशु उन्नति करते २ मनुष्य की श्रेणी में पहुँचा हो और वह मनुष्य की भाषा का उपयोग करता हो! इससे विपरीत यह बात स्पष्ट है कि मनुष्य अभ्यास से पशुओं की भाषा बोल सकता है परन्तु पशुओं के लिए ऐसा अनुकरण करना अशक्य है।' (भाषा विज्ञान १ भाग पृ० १३) (असमाप्त)

परमात्मा का स्वरूप

(ले० जयपति शास्त्री गुरुकुल कमालिया)

'तो चेदवेदीदथ सत्यमस्ति न चेदिहावेदीन्महती विनष्टि'

उपनिषद् में कहा है कि यदि इस जीवन में ईश्वर का साक्षात् कर लिया तो जीवन सत्य है; यदि नहीं, तो इसका बड़ा भारी विनाश है। परन्तु परमात्मा-प्राप्ति

[शेष पृष्ठ ६ पर]

गु रु कु ल

१६ आषाढ़ शुक्रवार १९९६

स्नातक-बन्धुओं का गुरुकुल से सम्बन्ध

(श्री आचार्य अभयदेव जी)

इस कुल परिवार में स्नातक बन्धुओं का एक विशिष्ट और उत्कृष्ट स्थान है। जैसे कि एक वृक्ष की पहिचान उसके फलों से की जाती है ऐसे ही गुरुकुल अच्छा है या बुरा, सफल हुआ है या असफल, इसका निश्चय आम जनता स्नातकों के द्वारा ही करती रहती है और करती रहेगी। इसलिए यद्यपि स्नातकबन्धु गुरुकुल वृक्ष से जुदा हो चुके हैं तो भी उनका गुरुकुल से जो घनिष्ठ सम्बन्ध है—माता और पुत्र का सम्बन्ध है—वह भुलाया नहीं जा सकता है। यदि कोई स्नातक भाई स्नातक हो कर चले जाने के बाद फिर कभी गुरुकुल में दर्शन न देवे या चिट्ठी पत्री न रक्खें बल्कि मन से भी गुरुकुल को भूल जायें तो भी कम से कम जनता की दृष्टि से उनका गुरुकुल से सम्बन्ध टूट नहीं सकता।

गुरुकुल के (अधिकारी रूप से सेवा करने वाले) वर्त्तमान सेवकों की इच्छा है कि स्नातक बन्धुओं का जो यह कुल माता से सहज सम्बन्ध है वह दृढ़, वास्तविक और उपयोगी हो इसके लिए कुछ यत्न किया जाय। आशा है स्नातक-बन्धु भी हमारी इस इच्छा का स्वागत करेंगे। इसके लिए हमें क्या करना चाहिए इस विषय में अन्य कुछ आवश्यक निर्देश यदि कोई स्नातक भाई देंगे उससे तो लाभ उठाया ही जाएगा, पर इस इच्छा को क्रिया में परिणत करने के लिए जो कम से कम बातें हमने आवश्यक समझी हैं उन्हें बताने के लिए तथा उनमें से जो बातें स्नातकों के करने की हैं उन्हें वे अवश्य करें यह अपील करने के लिए ही यह लेख लिखा जा रहा है। ये तीन बातें हैं:-

१ सब स्नातकों के विषय में गुरुकुल में कुछ आवश्यक जानकारी रहे। सब स्नातकों के पते तो गुरुकुल कार्यालय में रहते हैं—पर पता बदलने पर स्नातक भाई इसकी सूचना गुरुकुल में देनी जरूरी नहीं समझते अतएव ये पते भी सदा सर्वथा ठीक नहीं रक्खे जा सकते। पर हम तो चाहते हैं कि जो स्नातक नहीं हो पाए हैं बीच में चले गए हैं उनके भी पते हम रख सकें। इसी तरह वैयक्तिक सम्बन्ध के कारण हम लोग बहुत से स्नातकों के विषय में जानते हैं कि वे कहां कैसा कार्य कर रहे हैं—पर यह ज्ञान व्यवस्थित रूप से नहीं रक्खा जाता और सबके बारे में नहीं रक्खा जाता (ऐसे भी बहुत से स्नातक हैं जिनके हालचाल हम गुरुकुल वाले भी बहुत कम या न के बराबर जानते हैं)।

इसके लिए मैं अपने निरीक्षण में अपने कार्यालय के साथ एक स्नातक विभाग खोल रहा हूँ जो कि यथासम्भव सब स्नातकों के विषय में आवश्यक जानकारी रक्खेगा। इसके लिए मेरा विचार यह है कि सब स्नातक बन्धुओं के पास एक छोटी सी प्रश्नावली अब तक के सब पूर्ववृत्त के लिए तथा फिर प्रति वर्ष उस वर्ष के वृत्त के लिए भेजी जाय और आगे प्रति वर्ष भेजी जाया करे। पर यह सब आयोजन सफल तभी हो सकता है जब कि उस प्रश्नावली का उत्तर देना प्रत्येक स्नातक भाई अपना आवश्यक कर्त्तव्य समझे। इसमें आलस्य न करे या कष्ट न माने। बहुधा देखा जाता है कि स्नातक गण उत्तर देने की कृपा नहीं करते।

(२) स्नातकों के योग्य कार्यों की जानकारी रखना और यथा संभव उन्हें कार्यादि प्राप्त कराने में सहायता देना—यह कार्य भी अव्यवस्थित तरीके से अब भी होता है। स्नातकों को जिन्हें जरूरत होती है वे कभी कभी हमें लिखते हैं और जिन स्नातकों को काम की जरूरत होती है वे भी कभी २ अपनी खबर देते हैं। पर इस काम को व्यवस्थित रूप से चलाने के लिये यह आवश्यक है कि:-

(क) जो स्नातक काम चाहते हैं कैसा काम चाहते हैं वह इस बात की खबर हमें देवें-उन्हें यदि कुछ समय बाद अपने आप ही काम मिल जाय तो इसकी भी सूचना हमें अवश्य दें कि उन्हें कहाँ क्या काम मिल गया है।

(ख) प्रत्येक स्नातक बन्धु अपने अपने क्षेत्र में, अपने आसपास या अपने प्रभाव की जगह कहीं यदि दूसरे स्नातकों को उपयुक्त कार्य दिला सकें तो वह उसका अवश्य पूरा ध्यान रखें तथा उस काम के लिये किस प्रकार का स्नातक चाहिये इसकी सूचना हमें दें।

(ग) लोगों को अच्छी तरह विदित हो कि स्नातक जैसे योग्य और विशेष प्रकार के सेवक कार्यकर्त्ताओं की जरूरत हो तो गुरुकुल में चिट्ठी पत्री करनी चाहिये।

(३) तीसरी बात यह है कि गुरुकुल से निकलने वाले साप्ताहिक पत्र 'गुरुकुल' का प्रत्येक स्नातकको ग्राहक होना चाहिये। इसके द्वारा ही बड़ी आसानी से प्रत्येक स्नातक का गुरुकुल से यथोचित संबन्ध बना रह सकता है। गुरुकुल से-अपने घर से-आयी चिट्ठी की तरह यह साप्ताहिक पत्र स्नातकों को गुरुकुल के शुभ समाचार तथा प्रसन्नता देने वाला हो सकता है। अभी गुरुकुल पत्र के स्नातक ग्राहक ३२५ में से केवल ६२ हैं। यह मैं जानता कि गुरुकुल को पढ़ने वाले स्नातक इससे अधिक हैं, क्यों कि जहां कई स्नातक इकट्ठे रहते हैं वे एक 'गुरुकुल' से काम चला लेते हैं, कई स्नातक अपनी आर्य समाज या अपने वाचनालय द्वारा 'गुरुकुल' पढ़ लेते हैं या पढ़ सकते हैं। वैसे तो वर्ष में केवल २॥) गुरुकुल को देना किसी स्नातक भाई के लिये कुछ कठिन बात नहीं हो सकती तो भी मैं अंदाज कर सकता हूं कि कुछ विरले स्नातक ऐसे भी हो

सकते हैं जो कि ऐसी स्थिति में हों कि वे अपनी जेब से २॥) वार्षिक भी न दे सकते हों—वे जेब ही न रखते हों पर ऐसे विरले स्नातक भी अपने किसी मित्र को प्रेरित कर ग्राहक बनाकर या ऐसे अन्य किसी मार्ग से गुरुकुल के अप्रत्यक्ष ग्राहक बन सकते हैं। तात्पर्य यह कि हमारी इच्छा है कि गुरुकुल का प्रत्येक ही स्नातक गुरुकुल-पत्र द्वारा अपना निरन्तर संबन्ध अपने कुल से जोड़े रखे तथा गुरुकुल में हो रही कार्यवाही से यथाशक्ति परिचित रहें।

पुराने गुरुकुल की स्मृति

(ले० श्री पं० वागीश्वर जी विद्यालङ्कार)

उत्सव मण्डप

वह गुरुकुल की पहली धर्मशाला और उसके पास उत्सव मण्डप है। यहां मामूली कनातों के नीचे आधी धूप आधी छाया में बैठकर पच्चीस-पच्चीस हज़ार की संख्या में एकत्र आर्यजनता ने, सूई भी गिरे तो आवाज़ सुनाई दे, वाले सन्नाटे में, मोहिनी-मुग्ध हो अमृत वर्षाओं में स्नान कर शान्ति प्राप्त की है, यहां बाल्टी और परातों की धनवृष्टि से आन की आन में भर देने वाली आर्य जनता की जीवित-हृदयता को चकित लोचनों से देख महात्मा गान्धी ने दांतों तले उंगली दबाई है। यहां, जेब काटने या चोरी करने के लिए आये कितने ही आजन्म पापियों ने ज्ञान की गंगा में डुबकी लगा, अज्ञान रूप मल धोने के लिये अपने पापों का प्रायश्चित्त किया है। यहीं, चौदह-वर्ष कठोर व्रतधारण कर, विद्या पढ़, दीक्षान्तस्नान कर, आचार्य को सिर झुका, कुल माता की स्नेह मयी गोद से बिछुड़ते हुवे नव स्नातकों की मुग्धमुखमुद्रा को, निछावर होते हुवे आर्य नरनारियों ने दूर २ तक दोनों ओर पंक्तिबांध खड़े हो निर्निमेष दृष्टि से निहारा है। यह स्थान बड़ा पवित्र है, बड़ा दिव्य है, बड़ा मंगलमय है। चारों ओर विकसित किंशुकों के रूप में खड़े, कषाय वस्त्रधारी वशिष्ठ, विश्वामित्र, वाल्मीकि आदि प्राचीन ऋषि अपनी पवित्र भावनाओं की तरंगों, अपने आशीर्वादों से इस स्थान को आप्लावित कर रहे हैं। 'नमः परमर्षिभ्यो नमः परमर्षिभ्यः।'

गंगा की बाढ़

सन् १९२४ का सितम्बर का महीना समाप्ति पर था। गुरुकुल में दो महीने की छुट्टियां इन्हीं दिनों होती हैं। सब छोटे ब्रह्मचारी, अध्यापक, उपाध्याय बाहर गये हुवे थे। महाविद्यालय के कुछ ब्रह्मचारी लौट कर वापिस आ गये थे। इन्हीं दिनों वर्षा की ऐसी झड़ी लगी कि चारों ओर पानी ही पानी हो गया। बादल ऐसा घना था कि दिन में भी अंधेरा दीखता था, रात की तो बात ही क्या? तीन चार दिन तक निरन्तर मूसलधार पानी बरसता रहा। एक क्षण के लिये भी न रुका। गुरुकुल चारों ओर से तो जल से पहिले ही घिरा हुवा था अब वर्षा से सर्वत्र ही जल-जल दीखने लगा। एक दिन तीसरे पहर ऐसा प्रतीत हुआ कि वर्षा का ही नहीं नदी का भी जल ऊपर चढ़ आया है। निश्चय करने के लिये नदी की ओर चले तो आगे न बढ़ सके। कांगड़ी ग्राम और गुरुकुल भूमि के मध्य में एक बरसाती नाला चला करता था वह इतना उग्ररूप होगया कि उसकी क्रुद्ध सी तरंगें देखने वाले के हृदय में भय उत्पन्न करने लगीं। देखते ही देखते नाले के किनारे खड़ी प्रेस की इमारत को अपने गर्भ में विलीन कर लिया। अपनी प्रथम विजय पर अट्टहास करता हुआ जल तेजी से आगे बढ़ने लगा। किसी को कोई उपाय नहीं सूझता था। अन्त में यही निश्चय किया गया कि कच्ची इमारतों का सब सामान तमेड़ों द्वारा ढो-ढो कर पक्की इमारतों में पहुंचा दिया जाये। वही किया जाने लगा। अंधेरा घिर गया। परिवारों के बच्चे और स्त्रियां गौशाला की पक्की इमारत में इकट्ठी हो गईं। बड़े ब्रह्मचारी, स्थानापन्न मुख्याधिष्ठाता पं० चन्द्रमणि जी विद्यालंकार तथा तात्कालिक मुख्याधिष्ठाता श्री पं० विश्वम्भर नाथ जी बाग के कुवें के चबूतरे पर जा बैठे। खाने पीने का कोई ढंग न था। रात भर भीगे कपड़ों में ठिठुरते बैठे रहे। पानी लगातार बढ़ता जा रहा था यदि चबूतरे पर भी पानी चढ़ आया तो क्या होगा? तैरना भी कहां तक सम्भव है? पानी में गाय भैंस बिच्छू सांप-न मालूम क्या २ बहा चला जा रहा है? कल सुबह कौन कहां होगा? किन्तु- पानी और बढ़ गया। यह तोप छूटने का सा धड़ाका कैसा? ओह! दूर पर पानी की धार से कोई दीवार गिरी है। इधर से, उधर से- चारों ओर से धड़ाधड़ दीवारें गिरने की भयंकर आवाज़ें आने लगीं। कभी २ बिजली की टौर्च से अपनी करतूत को देख कालमेघ विकट हास्य कर उठता था। पानी दो अंगुल और बढ़ गया। अब चबूतरे पर चढ़ आने में कुछ कसर नहीं। उधर रात्रि आपत्ति दशमलव या द्रौपदी के चीर की तरह बढ़ती ही जा रही थी- मालूम हुआ पानी एक दो कुछ उतर गया है। सब ने ईश्वर का धन्यवाद किया। पानी बरसना बन्द हो गया था। पूर्व की ओर आकाश कुछ खुलतासा दीखने लगा। उषा की लाली झलकने लगी। प्रकाश फैल गया। चबूतरे से उतर कर, सब लोग यह देखने के लिये कि रात में क्या बचा क्या बिगड़ गया, चले। किन्तु यह क्या? कमर-कमर तक दल दल में धस गये। ज्यों त्यों कर चारों तरफ़ चक्कर लगाया। किसी मकान की एक दीवार गिर गई। कोई सारा ही बैठ गया। कहीं ईंट का भी निशान नहीं दीखता। दृष्टि जिधर जाती है विध्वंस ही विध्वंस। मानों मस्त हाथियों के झुंड ने किसी उद्यान को उजाड़ डाला। वर्षों का किया कराया कुछ घण्टों में बिगड़ गया। अब कहां से इतना धन आयेगा? कौन इसे फिर बनायेगा? किन्तु, नहीं- जो एक बार बना वह फिर भी बन सकता है। बनाने वाला आदमी चाहिये।

स्थान—परिवर्त्तन

स्वामिनी सभा ने गुरुकुल के स्थान परिवर्त्तन का निश्चय कर दिया। सिर पर कसी पगड़ी, गले में खद्दर

का कुरता, नीचे धोती, पैरों में देसी जूता, हाथ में डंडा लिये कनखल के बाज़ार में यह कौन चला जा रहा है? आदमी तो भले घर का दीखता है पर मालूम होता इसे कोई काम नहीं तभी तो दिन भर कनखल से ज्वाला पुर, ज्वालापुर से मायापुर, मायापुर से गुरुकुल- इसे इधर उधर घूमता ही देखते हैं। ये हैं गुरुकुल के मुख्याधिष्ठाता- पं० विश्वम्भर नाथ B.A.L.L.B.। गुरुकुल की नई इमारत बनाने के लिये ज़मीन लेनी है। जिस किसी से भी इस काम में सहायता मिलने की आशा है इन्हें उसके पास जाने में संकोच नहीं, जितनी बार आना पड़े- ये हारते नहीं। धूप छाया, सुबह शाम मानों इन की दृष्टि में अपनी सत्ता ही नहीं रखते। ऐसे कर्त्तव्यपरायणों के रहते नये गुरुकुल का बन जाना कौन बड़ी बात है?

[पृष्ठ ३ का शेष]

का स्वरूप क्या है? यह बिलकुल स्पष्ट है कि अनेक पदार्थों में एक सा नहीं है, जिसको श्रेणी बद्ध करके हम अपनी सम्पत्ति बना सकें, जो राजनीतिक युद्ध, धनसंग्रह, तथा सामाजिक स्पर्द्धा में हमारी सहायता कर सके। हम परमात्मा को उस सूची में नहीं रख सकते, जिस में कि हम अपने भवन, मोटर-कार या बैंक का रुपया आदि सम्पत्ति को रखते हैं

हमें यह समझने की कोशिश करनी चाहिये कि जब मनुष्यात्मा अपने परमात्मा की कामना करती है, तो उसकी इस इच्छा का क्या भाव है? क्या वह इस वास्ते है कि वह अपनी सम्पत्ति में अधिक मूल्यवान वृद्धि करे? सम्पत्ति की निरन्तर वृद्धि करना, इस थकाने वाले काम का कोई अन्त नहीं। वास्तव में जब आत्मा परमात्मा को तलाश करता है तो इस निरन्तर कमाने और इकट्ठा करने से मुक्ति चाहता है। यह कोई ऐसा पदार्थ नहीं जिसे कि वह तलाश करता है। परन्तु वह 'नित्योऽनित्यानां चेतनश्चेतनानाम्" अर्थात् अस्थायों और चेतनों में भी चेतन को ढूंढता है। "रसानां रसोत्तम" अर्थात् उसको कि जो सब रसों में उत्तम है। अब जब उपनिषदें हमें यह शिक्षा देती हैं कि हम ब्रह्म को प्रत्येक वस्तु में साक्षात् करें, इसका अभिप्राय यह नहीं कि हम कोई पृथक् वस्तु ढूंढते हैं या किसी नई चीज़ का निर्माण करते हैं।

'ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्" इस मन्त्र का भी यही आशय है। इस जगत् में जितने पदार्थ हैं, उनमें ईश्वर निवास करता है। जो कुछ उसने दिया है उसका उपभोग लालच से मत करो। जब तुम यह जानते हो कि जो कुछ भी मौजूद है उस सब में ईश्वर है, और जो कुछ हमारे पास है वह सब परमात्मा की देन है तब तुम अन्त वाली चीज़ों में अनन्त को देखते हो।

तब तुम जानते हो कि इन सम्पूर्ण पदार्थों का एक ही तात्पर्य है कि वे एक अद्वितीय सत्ता का प्रकाश करें और तुम्हारी सारी सम्पत्ति केवल भोग के लिये नहीं है बल्कि मुख्यतया वह इसलिये है कि तुम्हारा सम्बन्ध अनन्त के साथ स्थापित होवे। इसलिये यह नहीं कहा जा सकता कि ब्रह्म को वैसे ही प्राप्त करें जैसे हम दूसरे पदार्थों को ढूंढते हैं। तो यह ठीक नहीं है उसको एक चीज की अपेक्षा दूसरी में या एक स्थान की अपेक्षा दूसरे स्थान में ढूंढना कोई अर्थ नहीं रखता। प्रातः काल की रोशनी के लिये हर किसी परचून की दूकान पर नहीं जाना पड़ता, हम अपनी आंखें खोलते हैं और वह मौजूद है। अतः उस ब्रह्म को सब जगह पाने के लिये हमें आत्मसमर्पण की आवश्यकता है और यही कारण है कि बुद्ध भगवान् ने इसपर बल देते हुए कहा है "तुम अपने आप को स्वार्थी जीवन के कारागार से मुक्त करो" यदि इस कारागार के स्थान में कोई पूर्ण और प्रेम जनक वस्तु नहीं है, तो यह उपदेश निरर्थक है। कोई मनुष्य भी इस उपदेश को सुनने के लिये अथवा कार्य में लाने के लिये तैय्यार न होगा, कि चाहे वह अपना सबकुछ विसर्जन कर दे, पर उस के बदले उसे कुछ न मिले। इसलिये हमारी उस परमात्मा के प्रति जो भक्ति है उसको शनैः २ प्राप्त करने का साधन नहीं, प्रत्युत् हमारे मार्ग में आनेवाली रुकावटों को दूर करते हुए; जो वस्तु एकता में बाधा डाले उसका ज्ञान कराने वाली है। उपनिषद् में कहा है कि "जीवात्मा बाण की भांति परमात्मा रूपी लक्ष्य के अन्दर तन्मय हो जाता है और अपने आपको उसमें निमग्न देखता है।" यह केवल मन की एकाग्रता ही नहीं है प्रत्युत यह हमारे समस्त जगत् के उसमें तन्मय हो जाने की अवस्था है। हमें अपने सारे जीवन के समस्त कार्यों और विचारों में इस अनन्त की पूजा करनी चाहिये। हमारे जीवन के प्रत्येक दिन में इस सचाई का आसान तरीका बतो जावे कि "को हि एवान्यात् कः प्राण्यात्, यदेष आकाश आनन्दो न स्यात्" अर्थात् संसार में कौन चल फिर सकता और कौन श्वास ले सकता यदि इस आकाश में वह परमात्मा व्यापक न होता।

हमारे शारीरिक सुखों की सीमा परिमित है। जब हम भोजन खाते हैं, और भूख को निवृत्त करते हैं, यह पूर्ण ग्रहण का काम है जब तक भूख निवृत्त नहीं हुई है, तब तक खाने में सुख है, क्योंकि उस हालत में हमारे खाने का सुख प्रत्येक क्षण में अनन्त का स्पर्श कर रहा है। परन्तु जब क्षुधा की निवृत्ति हो जाती है, या हमारे खाने की इच्छा उस सीमा पर पहुंच जाती है, जहां उसके लिये आगे जाने का कोई स्थान नहीं उस समय खाने के स्वाद का भी अन्त हो जाता है। हमारे मानसिक सुखों की परिधि अधिक विस्तृत और सीमा बहुत दूर है। हमारे सम्पूर्ण जीवन में प्राप्ति और अप्राप्ति साथ२ चलती है एक भक्त अपने भजन में प्रभु को कहता है "मैं ऐसा अनुभव करता हूँ कि अपने जन्म से ही तुम्हारे मुख के सौन्दर्य को देख रहा हूँ, परन्तु मेरी आंखें अभी भी भूखी हैं, जैसे लाखों वर्षों से मैं अपने हृदय से लगाये हुआ हूँ परन्तु मेरा हृदय अभी तक सन्तुष्ट नहीं हुआ।"

इस बात से यह स्पष्ट है कि हम अपने सुखों में उसी अनन्त की तलाश कर रहे हैं जो वास्तव में

अनन्त हैं। धनी होने की हमारी कामना किसी विशेष धन की मात्रा तक परिमित नहीं है, किन्तु अनिश्चित है और हमारे क्षणिक सुख उस अनन्त के साथ क्षणिक-स्पर्श करते हैं। हमारे जीवन में दुःखदाई बात यही है कि उन वस्तुओं को असीम बनाने की कोशिश करते हैं, जो कि कभी असीम हो ही नहीं सकतीं। इस बात से यह स्पष्ट है कि हमारी आत्मा की सच्ची कामना सारी सम्पत्तियों से परे होने की है, सांसारिक चीजों से घिरी हुई आत्मा चिल्लाती है कि मैं इनको एकत्रित करते २ थक गई हूँ, वह कहां है जो कभी प्राप्त नहीं होता।

मनुष्य के इतिहास में हम सब जगह देखते हैं कि मनुष्यता की सब से गहरी इच्छा 'त्याग की भावना है"। जब आत्मा किसी पदार्थ के सम्बन्ध में यह कहती है मुझे इसकी आवश्यकता नहीं मैं इससे ऊपर हूँ" तब वह उस बड़ी सचाई का प्रकाश करती है, जो इसके अन्दर है। जब एक लड़की का जीवन उसकी गुड़ियों से ऊपर हो जाता है तो वह उन्हें स्वयं ही छोड़ देती है इस प्रकार आत्मा भी जब किसी पदार्थ से ऊपर उठ जाती है तो वह उनका परित्याग कर देती है। इसी बात को मैत्रेयी ने अनुभव किया था। जब उसका पति याज्ञवल्क वानप्रस्थ आश्रमको ग्रहण करते समय उसे धन देने लगा तो मैत्रेयी ने उससे पूछा "क्या यह सांसारिक पदार्थ उस परमात्मा की प्राप्ति में सहायक हो सकते हैं, या दूसरे शब्दों में, क्या ये पदार्थ मेरी आत्मा से बढ़कर हैं? क्या इनका मूल्य मेरी आत्मा से बढ़कर है? जब उसके पति ने उत्तर दिया कि ये तुम्हें सांसारिक सम्पत्ति में धनी बनायेंगे तो सहसा मैत्रेयी ने कहा "कि मैं इन चीजों को लेकर क्या करूंगी"? यह तभी हो सकता है जब एक मनुष्य इन धनादिकों की वास्तविकता को जानता हो। तब उसे प्रतीत होता है कि मेरी आत्मा तो इनसे बढ़कर है, और उसके साथ सम्बद्ध है जो कि इनका स्वामी है और असीम है। इस प्रकार वह बन्धन से मुक्त होकर आत्मा का वास्तविक साक्षात्कार करता है।

इस प्रकार त्याग की भावना से आत्मा अनन्त की ओर गति करता हुआ आनन्द प्राप्त कर सकता है, और प्रतिक्षण अनुभव करता है कि अनन्त-प्राप्ति की सीमा को पहुँचना ही परमानन्दप्रद और मुक्तिदायक है।

गुरुकुल समाचार

इस सप्ताह दो-तीन दिन अच्छी वर्षा हो जाने के कारण गर्मी बहुत कम हो गई है। चारों ओर हरियाली छा रही है। कभी २ धूप के निकलने पर विशेष गर्मी अनुभव होती है, फिर भी ऋतु आनन्ददायक है। आमों का मौसम होने के कारण विद्यालय तथा महाविद्यालय के ब्रह्मचारियों को पर्याप्त मात्रा में फल दिये जा रहे हैं। गत मास के तोल में छोटे ब्रह्मचारियों की सन्तोषजनक भार वृद्धि हुई है। सब ब्रह्मचारियों की पढ़ाइयां नियम पूर्वक हो रही हैं। श्री प० केशवदेव जी वेदालङ्कार के हैदराबाद-सत्याग्रह में चले जाने के कारण उनका विषय श्री प० हरि दत्त जी वेदालंकार नियमित रूप से पढ़ा रहे हैं। पिछले दिनों हिन्दी के प्रसिद्ध विद्वान डा० मंगल देव जी के 'वर्ण व्यवस्था' विषय पर खोज पूर्ण २-३ व्याख्यान हुए, जिन से विद्यार्थियों को बहुत लाभ पहुँचा। गत २७ जून को गुरुकुल विश्वविद्यालय में 'महाराजा-रणजीत सिंह शताब्दी' बड़ी तैयारी के साथ मनाई गई। जिस में विद्यार्थियों और प्रोफेसरों के गवेषणा पूर्ण व्याख्यान हुए।

स्वास्थ्य समाचार

रामचन्द्र २ य श्रेणी विषम ज्वर, भानुदेव ३ य खुजली, रामचन्द्र १ म श्लेष्म ज्वर, युधिष्ठर १ म चोट, महेन्द्रपाल ४ र्थ शोथ, चेतन देव ३ य चोट।

गत सप्ताह उपरोक्त ब्रह्मचारी रोगी हुए थे, अब सब स्वस्थ हैं।

गुरुकुल मुलतान

गुरुकुल मुलतान के ब्रह्मचारी यात्रा पर—

१४ जून को त्रैमासिक परीक्षा समाप्त हो गई। १५ जून से १॥ मास के लिए छुट्टियाँ कर दी गई। १७ जून को प्रातः की गाड़ी से चल कर १८ जून को सभी ब्रह्मचारी क्वेटा पहुंच गए। मार्ग में किसी प्रकार का कष्ट नहीं हुआ। १७ जून की शाम को समासट्ट-समाज के आर्य पुरुषों ने स्टेशन पर भोजन सहित ब्रह्मचारियों का आतिथ्य सत्कार किया, जिसके लिए मैं उनका बहुत २ धन्यवाद करता हूँ। इस समय सभी ब्रह्मचारी आनन्द प्रसन्न हैं और ये शहर से बाहर रेलवे स्टेशन के दूसरी ओर रेलवे कालिनी सिख-गुरद्वारे के पास आर्यसमाज मन्दिर में ठहरे हुए हैं।

इस समय क्वेटा में फलों की बहार है। प्रतिदिन ब्रह्मचारियों को खुरमानी हरे बादाम, आलूबुखारा, अलूचा आदि दिए जाते हैं।

गुरुकुल सोनगढ़

हैदराबाद सत्याग्रह के लिए गुरुकुल के कार्यकर्त्ताओं और ब्रह्मचारियों ने मिल कर मासिक ५०) भेजना प्रारम्भ किया है। गुरुकुल के आचार्य पं० चन्द्रकान्त जी ने छुट्टियों में एक महीना चरोतर प्रान्त (गुजरात) में घूम कर हैदराबाद सत्याग्रह के लिए प्रचार कार्य किया। उनके भाषणों का जनता पर अच्छा प्रभाव पड़ा, यहां तक कि मुसलमान भी उनके व्याख्यानों को सुन कर हैदराबाद सत्याग्रह के लिए सहानुभूति प्रगट करते थे। और सत्याग्रह का सच्चा मर्म समझ कर खुश होते थे इस प्रकार गुरुकुल के और भी कार्यकर्त्ताओं ने हैदराबाद के लिए प्रचार किया।

चौधरी दुलाराय के प्रबन्ध से गुरुकुल प्रेस गुरुकुल कांगड़ी में मुद्रित तथा प्रकाशित।

* ओ३म् *

"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत" Reg. No. A. 2927

गुरुकुल

सम्पादक—साहित्यरत्न पं० हरिवंश वेदालङ्कार

एक प्रति का मूल्य -) [गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख-पत्र] वार्षिक मूल्य २।।)

वर्ष ४] गुरुकुल काङ्गड़ी, शुक्रवार २३ आषाढ़ १९९६; ७ जौलाई १९३९ [संख्या १०

सत्याग्रही का स्वाध्याय

[ले०—श्री आचार्य अभयदेव जी]

[गांधी जी के वचन तो सत्याग्रह के बारे में बहुत हैं। उनके कुछ 'सत्याग्रही की अहिंसा' का दिग्दर्शन कराने वाले वचन ही—जो आसानी से मिल सके—दिए जाते हैं। और ये ही पर्याप्त होने चाहिएं। यदि ये पर्याप्त नहीं हैं तो बहुत होने पर भी पर्याप्त नहीं होंगे। —अभय]

'अगर हम सच्चे अहिंसक हैं तो जो अपने को हमारा शत्रु मानता है उसका दिल हमारी अहिंसा के सामने प्रतिदिन पिघलना चाहिये।' ३ मई १९३९।

'सविनय भङ्ग करने का अधिकार तभी आयेगा जब हम अपने बनाए कानून अपनी खुशी से पालन करेंगे।' ५ मई १९३९

'हमने जिस अहिंसा को सिद्धान्त रूप से स्वीकार किया है उसका कारण यह नहीं है कि हम निहत्थे हैं। यह तो वीर पुरुषों की अहिंसा है।' २७-३-१९३८

अहिंसक पुरुषार्थ

'अपने हृदयमंथन के परिणाम स्वरूप मैंने जो शोध की वह यह है:—राज्य से लड़ कर आप चाहे जो अधिकार हासिल करें, पर उन्हें आप उतनी ही हद तक पचा सकेंगे, जितनी हद तक आप राज्य के हृदय में परिवर्तन करा सके होंगे, इससे अधिक नहीं। अधिकार हासिल करने के लिए अगर आपको सफल सत्याग्रह करना है तो आपकी भाषा में सुधार होना चाहिये। फिर आपके आचार, आपके विचार एक भिन्न ही रूप के होंगे। अहिंसा डरपोक का शस्त्र नहीं है। यह तो परम पुरुषार्थ है। वीरों का धर्म है। सत्याग्रही बनना है, तो आपका अज्ञान, आलस्य सब दूर हो जाना चाहिये। समग्र जागृति आप लोगों में आनी चाहिए। तन्द्रा जैसी चीज़ ही नहीं रहनी चाहिए। तभी अहिंसा चल सकती है। सच्ची अहिंसा आने के बाद आपकी वाणी से, आपके आचार से, व्यवहार से अमृत झरने लगेगा, और इच्छा से या अनिच्छा से 'शत्रु' उससे अपरिचित नहीं रह सकेगा।' २३—४—३९

पहिली बात

स्पार्टा का उदाहरण लीजिए। वे शस्त्रधारी तो थे। थोड़े भी मर गए लेकिन हटे नहीं। हमारे अन्दर उनसे बहुत ज़्यादह बहादुरी होनी चाहिए। अगर हम यह समझते हैं कि एक हज़ार आदमी के बिना हम यह काम नहीं कर सकते तो हमारी अहिंसा कोई चीज़ नहीं है। अगर वह बहादुरी हमारे अन्दर नहीं है, तो हम अहिंसा का नाम न लें। उसको कलंकित न करें। अहिंसा एक ऐसा शस्त्र है कि जिसके सामने तलवार काम नहीं कर सकती। और न कोई शक्ति काम कर सकती है। एक ओर करोड़ आदमी हों और दूसरी ओर अहिंसा का पुजारी अकेला खड़ा हो, तो भी वह यह नहीं कहेगा कि मैं शस्त्र-बल के अधीन हो जाऊँगा। वह बता देगा कि अहिंसा के सामने ज़हरीली वायु और दूसरे सारे शस्त्रास्त्र बेकार हैं। हिटलर के सामने आस्ट्रिया जिस तरह झुक गया, वैसा वह झुकेगा नहीं। इसलिए यह चीज मैं आप लोगों के सामने रखना चाहता हूँ। यह सबसे पहली चीज है।' २५-३-३८

अहिंसा की शर्त

अहिंसा की यह व्याख्या यदि आपके बूते के बाहर हो, तो आप मुझ से ऐसा कह सकते हैं, और अपना मार्ग आप ग्रहण कर सकते हैं। मुझसे बाहर से जितनी सहायता हो सकेगी करता रहूंगा। पर अगर अहिंसा के पथ पर ही चलने का आपने निश्चय कर लिया हो तो आपको यह समझ लेना चाहिए कि सम्पूर्ण आत्म-शुद्धि के प्रयत्न में मर मिटना, यह अहिंसा की शर्त है। चौबीसों घण्टे अहिंसा की स्तुति करने वाले साधक के रूप में, मैं इसे अपना धर्म समझूंगा कि अन्दर में भरे हुए दोषों को निकाल कर आप लोगों के समक्ष रख दूं। ऐसा करते हुए आपको मदद देने की मेरी शक्ति हज़ार गुनी बढ़ जाएगी।' २३-४-३९

प्रकृति परिवर्तन

'हिंसा के मुंह में अपने आप चले जाने में ही सच्ची

अहिंसा है। गायों में यदि इस प्रकार की बुद्धि पैदा की जा सकती कि उनमें से पर्याप्त संख्या में शेर के मुंह में जाने के लिए तैयार हो जातीं तो शेर को जो गो मांस खाने का चस्का लगा हुआ है उसे वह छोड़ देता और उसकी प्रकृति में परिवर्तन हो जाता।'

'हरिजन सेवक' से

ईश्वर में जीवित श्रद्धा

मैं तो पहले ही कह चुका हूँ कि सत्याग्रही का बल संख्या में नहीं, आत्मा में है। दूसरे शब्दों में ईश्वर में है। इसीलिए मैं हरएक सत्याग्रही से यह आशा करता हूँ कि उसकी ईश्वर में ज़िन्दा श्रद्धा होनी चाहिए। सत्याग्रही को दूसरा कोई बल नहीं है। ईश्वर का बल तभी आता है जब उसमें अनन्त श्रद्धा हो। जब ईश्वर में ऐसी श्रद्धा न हो तो कोई सत्याग्रह कैसे कर सकता है? जो यह कहे कि मुझे ईश्वर में ऐसी श्रद्धा नहीं है, उसे संघ को छोड़ देना चाहिए और सत्याग्रह को भूल जाना चाहिए।'

हृदय-परिवर्तन में श्रद्धा

'हमारा तो यह दावा है कि हम राजाओं का रक्षण करेंगे, भक्षण नहीं करेंगे। हम तो उनके भी हृदय-परिवर्तन की बातें करते हैं। लेकिन मुझे डर है कि हम हृदय-परिवर्तन की बात केवल इसलिए करते हैं कि वह एक रिवाज हो गया है। अपने दिल में उसे नहीं मानते। यह हमारी हिंसा की निशानी है। मनमुच तो हम अपने दिल में यह आशा भी नहीं करते कि इन राजाओं का दिल कभी बदलेगा। कांग्रेस में जो हमारे दूसरे भाई हैं उनके लिए भी हमारा यही सवाल है। मैं आपसे साफ कहना चाहता हूं कि यह सब हिंसा की निशानी है और इसीलिए कांग्रेस में इतना तिरस्कार पैदा हो रहा है।'

अविरत अहिंसक युद्ध

'लड़ाई में पीठ दिखाना—"पलायनम्"—कायरता है। वह सिपाही को शोभा नहीं देती। यह जानी हुई बात है कि जब सशस्त्र योद्धा अपने हथियारों को गवां देता है, या जब वे निकम्मे हो जाते हैं तो वह नए हथियार खोजता है। उन्हें लाने के लिए वह लड़ाई का मैदान छोड़ कर जाता है। अहिंसक योद्धा तो लड़ाई छोड़ना जानता ही नहीं। अपने मन में एक क्षण के लिए भी बुरे विचार को आश्रय न देते हुए वह हिंसा के मुंह में लपकता है। अगर आपको ऐसी अहिंसा असम्भव लगती हो तो कम से कम हम अपने प्रति तो सच्चे रहें और उसे छोड़ दें। मेरे लिए तो लड़ाई बन्द करना असम्भव है। मैं ऐसा हर्गिज नहीं कर सकता। मैंने जिस योद्धा का वर्णन किया है वह योद्धा मैं स्वयं बनने की कोशिश कर रहा हूँ, और यदि ईश्वर चाहेगा तो मैं किसी जन्म में बन भी जाऊंगा। ऐसा योद्धा तो अकेला भी लड़ सकता है।'

× × ×

'इस उत्कट खोज की धुन में मैं कई ऐसे काम करता होउंगा जो लोगों को अटपटे लगते होंगे। अपने सच्चे विश्वास के कारण अगर हरेक आदमी मुझे छोड़ दे तो भी मैं कुड़कुड़ाऊंगा नहीं। 'कुछ न कुछ ज़रूर होगा' इस अन्धविश्वास से कोई मुझसे चिपटा न रहे। ऐसे लोगों की बदौलत हमारे उद्देश्य की प्रगति होने के बदले उसमें बाधा होगी।' १७ जून,१९३९।

मन को काबू करने की ज़रूरत है

'आप क्या मानते हैं? तोप चलाकर सैकड़ों को मार डालने में हिम्मत की ज़रूरत है, या हंसते हुए तोप के आगे जाकर मरने में? जो स्वयं मौत को सिर पर लेकर घूमता है वह रणधीर है, या वह जो दूसरों की मौत अपने हाथ में रखता है? नमर्द आदमी कभी सत्याग्रही नहीं हो सकता, यह निश्चित समझिये। अलबत्ता, यह मैं कबूल करूंगा, शरीर से दुबला पतला आदमी भी सत्याग्रही हो सकता है। सत्याग्रह एक आदमी भी कर सकता है और लाखों भी। पुरुषों की तरह स्त्रियां भी सत्याग्रही हो सकती हैं। इसके लिए फौज तैयार करने की ज़रूरत नहीं पड़ती, पहलवानी की भी इसके लिए कोई जरूरत नहीं है। इसके लिए तो बस अपने मन को काबू में करने की ज़रूरत है। जो अपने मन को काबू में कर ले वह फिर वनराज सिंह की तरह निर्भय हो सकता है और उसकी दहाड़ से दुश्मनों की छाती फटती है।'

'हिन्द स्वराज्य से'

कायरता हिंसा से गयी गुज़री है

क्या आप इतनी दूर तक मेरे साथ जाने को तैयार हैं? क्या जो कुछ मैं कहता हूँ वह आपकी बुद्धि को जचता है? यदि हां, तो हमें अपने भीतरी से भीतरी विचारों में से भी हिंसा को निकाल देना चाहिये। लेकिन यदि आप मेरे साथ न चल सकें, तो आप अपने ही रास्ते खुशी से जावें। अगर आप किसी दूसरे रास्ते से अपने मुकाम को पहुंच सकते हों, तो बेशक जावें। आप मेरी बधाइयों के पात्र होंगे। क्यों कि मैं कायरता तो किसी हालत में सहन नहीं कर सकता। मेरे गुज़र जाने के बाद कोई यह न कहने पाये कि गांधी ने लोगों को नामर्द बनना सिखाया। अगर आप सोचते हों कि मेरी अहिंसा कायरता के बराबर है,या उससे कायरता ही पैदा होगी, तो आप को उसे छोड़ देने में ज़रा भी हिचकना नहीं चाहिये। आप निपट कायरता से मरें इसकी अपेक्षा आपका बहादुरी से प्रहार करते हुए और प्रहार खाते हुए मरना मैं कहीं बेहतर समझूंगा। मेरे सपने की अहिंसा अगर मुमकिन न हो तो अहिंसा का स्वांग करने की अपेक्षा यह बेहतर होगा कि आप उस सिद्धान्त को ही तर्क करदें। १७ जून, १९३९,

क्रान्ति अहिंसक ही क्यों?

मैं मानता हूं कि दुनिया सशस्त्र विद्रोह से उकता

गई है। मैं यह भी मानता हूँ कि दूसरे देशों की बात चाहे जो हो, मगर हिन्दुस्तान में तो रक्तपात की क्रान्ति सफल होगी ही नहीं। लोग उसका साथ नहीं देंगे। जिस आन्दोलन में जनता का सक्रिय हिस्सा न हो उससे उसको कुछ भलाई नहीं हो सकती। रक्तपातमय सफल क्रान्ति से तो जनता का दुःख और भी बढ़ेगा। क्योंकि जनता के लिये तो तब भी विजातीय शासन ही रहेगा। मैं जो अहिंसा सिखाता हूँ, वह बलिष्ठों की सक्रिय अहिंसा है। लेकिन निर्बल लोग उसमें भी हिस्सा ले सकते हैं। उससे वे अधिक निर्बल होने के बदले कुछ बलवान् ही होंगे। पहले के किसी ज़माने की अपेक्षा जनता आज अधिक निडर है। अहिंसक लड़ाई के लिये जनता-व्यापी रचना की आवश्यकता है। इसलिये उससे तामस या अंधेरा, या निष्क्रियता पैदा नहीं हो सकती। वह तो राष्ट्रजीवन को और भी सचेतन बना देती है। वह आन्दोलन आज भी जारी है। खामोशी से या करीब करीब नामालूम तौर से भले ही हो, मगर जारी है जरूर।

हैदराबाद सत्याग्रह के आठवें डिक्टेटर श्री पं० विनायकराव विद्यालंकार का शुभागमन

गत ३ जुलाई को गुरुकुल कांगड़ी के यशस्वी स्नातक श्री पं० विनायक राव विद्यालंकार बार.एट.ला गुरुकुल में पधारे। आपका समस्त कुलवासियों ने फूलों व मालाओं से अच्छी तरह स्वागत किया। दूर्वा-दल-श्यामल कुल-भूमि में आपका बैंड बाजे के साथ जुलूस निकाला गया और प्रचुर मात्रा में पुष्प वृष्टि की गई। सभा-भवन पहुँचकर जलूस समाप्त हुआ जहां समस्त कुलवासियों तथा अन्यान्य बहुत से दर्शनार्थ आये सज्जनों के बीच में श्री मुख्याधिष्ठाता जी ने प्रभावशाली शब्दों में आपका परिचय कराया और २५०) की थैली भेंट की। जिसमें १०१) महाविद्यालय के ब्रह्मचारियों ने अपने वस्त्रों से बचत करके दिया था। आचार्य जी के संक्षिप्त एवं सारगर्भित वक्तव्य के पश्चात् आपको यह मानपत्र दिया गयाः--

अभिनन्दनपत्र

आदरणीय कुलबन्धु !

आज बहुत वर्षों पश्चात् आपको अपने बीच पाकर हम कुल बन्धु जिस अलौकिक आनन्द और आत्मीयता का अनुभव कर रहे हैं वह वर्णनातीत है। हम स्नेह-गद्गद हृदयों से आपका इस कुलभूमि में स्वागत करते हैं आपके लिए प्रशंसा के कुछ शब्द कहते हुए हमें अत्यन्त संकोच हो रहा है कि ऐसा करते हुए हम शायद अपनी ही प्रशंसा कर रहे हैं; तथापि आर्य सत्याग्रह के अष्टम सर्वाधिकारी जैसे गौरवास्पद पद पर आपको आरूढ देखकर हम जिस हर्ष और अभिमान को अनुभव कर रहे हैं उसे प्रकाशित किए बिना नहीं रह सकते। जिन सुयोग्य स्नातकों ने कुलमाता के मुख को उज्ज्वल किया है और जिन पर हमें उचित अभिमान है आप उन उनमें से अन्यतम हैं। आज आपने हैदराबाद आर्यसत्याग्रह के सर्वाधिकारी के रूप में पधारकर इस कुलभूमि को पवित्र किया है। इसके लिये हम हृदय से आपके अनुगृहीत हैं तथा आपका अभिनन्दन करते हैं।

यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि हैदराबाद रियासत में आर्य समाज की प्राणप्रतिष्ठा करने में तो आपके परिवार का प्रमुख भाग है, किन्तु रियासत की हिन्दुविरोधिनी धर्मान्ध नीति के विरुद्ध हिन्दु जनता को, विशेषतया आर्यसमाज को जागृत तथा संगठित करने का श्रेय यदि किसी एक व्यक्ति को दिया जा सकता है तो आपको ही। यह जानते हुए भी कि आपने भविष्य में भी हैदराबाद में रहना है और यह भी कि आप को इस आन्दोलन के कारण रियासत के अधिकारियों का कोप-भाजन बनना पड़ेगा, आप कर्त्तव्य पालन से विचलित न हुए। आप वस्तुतः ही अपनी जान को हथेली पर लिए हुए आर्य जाति के धार्मिक अधिकारों की रक्षा का यत्न कर रहे हैं। आपने अपने इस आत्मोत्सर्ग, त्याग, तथा धर्मानुराग से जहां आचार्य श्री श्रद्धानन्द जी को यशस्वी किया है वहां मार्ग भी दिखाया है।

आज हैदराबाद रियासत एक यज्ञवेदी बनी हुई है यह समय आर्य समाज के लिये कठोर अग्नि-परीक्षा का है। वर्षों तक आवेदनपत्रादि भेजकर रियासत के अधिकारियों के हृदय-परिवर्तन के लिए अनेक प्रकार के प्रयत्न किये गये परन्तु उन सब के असफल होने पर ही इस अन्तिम उपाय सत्याग्रह का आश्रय हमें लेना पड़ा है। अब तक आर्यसमाज ने बड़े बड़े सन्यासी, वानप्रस्थी घर बार छोड़ कर जाने वाले त्यागी गृहस्थी और ब्रह्मचारी सभी की आहुति दी है। माताओं और बहनों में नया उत्साह तरंगित हो रहा है। आर्यजाति के अंग-प्रत्यंग में नवीन जीवन का संचार हो गया है। आर्यसमाज के केन्द्र से इतनी दूर चल रहे इस सत्याग्रह को भी सफल बनाने के लिये आज आर्यजाति का बच्चा २ अपना सर्वस्व वारने को उत्सुक है। ऐसे अवसर पर आप सरीखे मनस्वी, रियासत की आर्यसमाजिक प्रगति के कर्णधार, ऋषि दयानन्द के अनुयायी, वैदिक संस्कृति के भक्त, कुल माता के वीर पुत्र के लिए निष्क्रिय बैठ रहना कैसे संभव था। आपने इस धर्म यज्ञ में अपनी आहुति देकर अपने साथ हम सब को भी यशस्वी किया है; इसके लिए हम आपका धन्यवाद करते हैं। यहां हम यह भी कह देना चाहते हैं कि आपके इस कुल ने प्रथम सर्वाधिकारी श्री महात्मा नारायण स्वामी जी के आदेशानुसार इस यज्ञ में सब से प्रथम अपना पवित्र आहुति देने का गौरव लाभ किया है और भविष्य में भी आवश्यकता पड़ने पर वह इससे भी अधिक के लिए सदा उद्यत है।

[शेष पृष्ठ ६ पर]

गु रु कु ल

२३ आषाढ़ शुक्रवार १९९६

पं० बुद्धदेव जी का सन्देश

(श्री आचार्य अभयदेव जी)

हैदराबाद सत्याग्रह में जाते हुए पं० बुद्धदेव जी विद्यालङ्कार ने देहली के तथा अन्य स्थानों के अपने भाषण में जिस एक बात की तरफ हमारा ध्यान विशेष तौर से खींचा था वह आर्यसमाज के भविष्य के लिए निस्संदेह बहुत महत्वपूर्ण बात है। श्री पण्डित जी ने अनुभव किया है कि आर्यसमाज ने अभी तक राजनीति से जुदा रह कर अच्छा नहीं किया है इससे हानि हुई है। वैसे तो ऋषि दयानन्द के महान् उद्देश्य को समझने वाले और विशाल दृष्टि रखने वाले कुछ सच्चे धार्मिक आर्यसमाजिक महानुभाव पहले भी आर्यसमाज का ध्यान इस बात की तरफ आकृष्ट करते रहे हैं और कइयों ने तो इस बीच में निराश होकर आर्यसमाज से—विशेषतः आर्यसमाजिक राजनीति से—अपना सक्रिय सम्बन्ध भी त्याग दिया और उदासीनता की वृत्ति धारण कर ली। अतः यह प्रसन्नता की बात है कि अब पण्डित बुद्धदेव जी जैसे ऋषिभक्त, विद्वान् और कट्टर समझे जाने वाले आर्य नेता ने इस बात को आर्यसमाज के लिए आवश्यक अनुभव किया है। उन्होंने देहली के भाषण में अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति का विवेचन करते हुए कहा "मैं यह स्वप्न देखता हुआ जीवित हूँ कि आजकल की अशान्त दुनिया को, हिटलर और मुसोलिनी की नंगी तलवारों से बचाने वाला यदि कोई है तो दयानन्द है। लेकिन यह स्वप्न कब पूरा होगा? हमने सब काम किये, परन्तु स्वामी दयानन्द के छठे समुल्लास को हमने भुला दिया और राजनीति से अपने को अलग कर लिया। मैं यदि जीवित लौट आया, तो आर्यसमाज को स्वामी जी की इस आज्ञा को पूरा करने में लगाऊँगा। नहीं तो आर्य युवकों से मेरा अनुरोध है कि वे इस आज्ञा को पूरा करें। हमें कांग्रेस के साथ लड़ाई नहीं लड़नी है, बल्कि कांग्रेस में रह कर लड़ाई लड़नी है। उससे अलग रह कर हमें शिकायत करने का न मौका है न अधिकार। आर्यसमाज को चाहिए कि वह राजनीति को अपनाए। उसमें लग कर यह बताए कि हम राजनीतिक काम भी किस खूबी के साथ कर सकते हैं।"

पण्डित बुद्धदेव जी के इस सन्देश में से भी "हमें कांग्रेस के साथ लड़ाई नहीं लड़नी है बल्कि कांग्रेस में रह कर लड़ाई लड़नी है. उससे अलग रह कर हमें शिकायत करने का न मौका है और न अधिकार" इन शब्दों की तरफ वर्तमान परिस्थिति में पाठकों का ध्यान विशेष रूप से आकृष्ट करना आवश्यक है। क्योंकि हिन्दू महासभा की नीति का अनुसरण कर हमारे कुछ आर्यसमाजी भाई भी आर्यसमाज को एक कांग्रेसविरोधिनी संस्था बनाने का यत्न करने लगे हैं। हमारे लिए यह नीति बड़ी घातक है। आर्यसमाज न तो कोई साम्प्रदायिक समाज है और न ही आर्यसमाज का धर्म कोई संकुचित साम्प्रदायिक धर्म है। यदि हमने ऐसा समझना है तो ऋषि दयानन्द का नाम लेना छोड़ देना चाहिये। जो लोग विशाल दृष्टि से नहीं देख सकते और जो दुर्बल हैं; अतएव जिन्हें साम्प्रदायिकता प्रिय लगती है और इसे छोड़ने में असुरक्षितता मालूम पड़ती है, वे महान् ऋषि के अनुयायी बनने के योग्य नहीं हैं। जो ऋषि दयानन्द स्वराज्य और चक्रवर्ती साम्राज्य के स्वप्न देखा करते थे उनके अनुयायी भारतीय स्वाधीनता के इस संग्राम में हिस्सा न लें यह कितनी विडम्बना है। हमें कांग्रेसी आर्यसमाजी और गैर कांग्रेसी आर्यसमाजी यह भेद आज करना पड़ता है, यह कितने खेद की बात है। स्वाधीनता संग्राम में लगी हुई भारत की राष्ट्रीय महासभा (Congress) से कोई ऋषिभक्त आर्यसमाजी कैसे जुदा रह सकता है, उसका विरोधी होना तो दूर रहा। यदि हमारी राष्ट्रीय महासभा गलती से कोई ऐसा काम करती है जो वैदिक धर्म की भावना के विरोध में जाता है तो उसका संशोधन हमें कांग्रेस का सभासद होते हुए कांग्रेस के अन्दर रहते हुए करना चाहिये, न कि उससे जुदा होकर या उससे लड़ कर अपनी राष्ट्रीयशक्ति को कमज़ोर करना चाहिये।

मैं तो एक और बात देखता हूं जिसके कारण अब वर्तमान समय में तो अवश्य ही आर्यसमाज को (बेशक वैयक्तिक रूप में ही न कि संस्था के तौर पर) कांग्रेस में पूरा हिस्सा लेना चाहिये। यह ठीक है कि महात्मा गांधी के नेतृत्व में राष्ट्रीय महासभा ने हमारे देश में हमारी भारतीय (आर्य) संस्कृति के पुनरुद्धार करने का बड़ा भारी काम किया है। गान्धी जी से पहले बहुत से भारतीय स्वराज्य चाहने वाले नेता भी केवल राजनैतिक स्वराज्य की बातें करते थे, पर अपने रहन-सहन रीति-रिवाज़ बोलचाल में विदेशी संस्कृति को अपनाते जा रहे थे। पर गांधी जी ने स्वराज्य का संग्राम ही इस ढंग से चलाया जो कि भारतीय संस्कृति के सर्वथा अनुकूल था जिसके कारण उनका यह स्वराज्य-आन्दोलन भारत के गांव गांव में और झोंपड़ी-झोंपड़ी में पहुंच गया। गांधी जी की तरह हम आर्य समाजी भी भारत के सांस्कृतिक स्वराज्य को ही असली स्वराज्य समझते हैं। अपनी संस्कृति को मिटा कर मिला हुआ केवल राजनैतिक (या आर्थिक भी) स्वराज्य हमारे लिए कौड़ी काम का न होगा। जब तक गांधी जी जीवित हैं तब तक हमारी राष्ट्रीय महासभा पर उनका प्रभाव बना रहेगा और हमारा स्वराज्य संग्राम ठीक दिशा में चलेगा, यह भरोसा किया जा सकता है। परन्तु जो विरोधिनी शक्तियां (अर्थात् ऐसे नेता लोग जो भारतीय संस्कृति

की हंसी उड़ाते हैं और पश्चिम के किन्हीं अनीश्वरीय तरीकों में वेदवाक्य की तरह श्रद्धा रखते हैं और इसी में अपनी दृष्टि से भारत का हित समझते हैं ऐसे लोगों की शक्तियां) अभी से कांग्रेस पर प्रभुत्व जमाने का यत्न करने लगी हैं। इस आनेवाले संकट से अपना राष्ट्रीय महासभा को आसानी से मुक्त किया जा सकता है यदि सच्चे धार्मिक, असाम्प्रदायिक और राष्ट्रभक्त आर्य-समाजी अधिक से अधिक संख्या में कांग्रेस को अपनाएं। मैं तो विशेषतः इस आने वाले भविष्य की दृष्टि से भी प० बुद्धदेव जी के सन्देश का पूरे बल के साथ समर्थन करता हूँ। मैं निवेदन करना चाहता हूँ कि हमारा धर्म केवल ऐतवार से या पुस्तक पढ़ लेने से या चौके से या केवल समाज सुधार से ही सम्बन्ध रखने वाली वस्तु नहीं है किन्तु एक विशाल वस्तु है जो कि सम्पूर्ण ही वैयक्तिक और सामाजिक जीवन से सम्बन्ध रखने वाली है। राजनीति भी हमारे जीवन का एक आवश्यक अङ्ग है। इसलिए आर्यसमाज को अपनी धार्मिकता की ऊँचाई पर सदा कायम रहते हुए-धार्मिक संस्था रहते हुए भी—राजनीति को भी अपनी धार्मिकता से प्रभावित करना चाहिए, जैसे कि अन्य सब बातों को भी प्रभावित करना चाहिए। इसी तरह आर्यसमाज उस ध्येय को पूरा कर सकेगा जिसके लिए क्रांतदर्शी ऋषि ने इस संस्था को जन्म दिया था।

हमारे इस सत्याग्रह की लड़ाई का प्रयोजन क्या है ? क्या यह मुसलमानों को मिटाने के लिये है ?

अपने देहली वाले भाषण में पण्डित बुद्धदेव जी ने हमारी लड़ाई किन से है इस प्रश्न का उत्तर देते हुए कितने सुन्दर शब्दों में कहा है कि "हमारी लड़ाई न निज़ाम के साथ है और न इस्लाम के, बल्कि दोनों के दुश्मनों के साथ"। आपने इस्लाम के इतिहास, कुरान की आयतें, पैगम्बर की जीवनी और खलीफाओं के चरित्र से यह बतलाया कि इस्लाम तलवार से नहीं फैला, वह सचाई ईमानदारी त्याग, तपस्या, और सेवा से फैला है। उनके पैगम्बर पक्के सत्याग्रही थे जिन के जीवन का यह सब प्रताप है। लेकिन इस्लाम के मानने वाले औरंगजेब सरीखों ने जब तलवार से काम लेना चाहा तब उन्होंने उसकी कब्र खोद दी। वैसे ही कुछ लोग निज़ाम में जा पहुंचे हैं जिनकी कैद से हम निज़ाम और इस्लाम को मुक्त कराना चाहते हैं"।

सच्चे मुसलमान आर्य सत्याग्रह को किस दृष्टि से देखते हैं ?

सतारा के मौलाना शेख निजामुद्दीन कमरुद्दीन साहिब ने आर्य सत्याग्रह के सम्बन्ध में एक लेख लिखा है। उस लेख में उन्होंने पैगम्बर की नीति का वर्णन करके कहा है "हिन्दुस्तान के अनेक बादशाहों ने भी पैगम्बर की इसी नीति के अनुसार काम किया। स्वर्गीय निज़ाम ने भी इसी रिवाज़ को जारी रखा। लेकिन मौजूदा रोशनी के जमाने में उन आर्यसमाजियों के रास्ते में रोड़े अटकाये गये जो मुसलमानों की तरह ही एकेश्वरवादी हैं। यह तरीका काबिले ऐतराज है, क्योंकि इससे हिन्दुओं के मन में इस्लाम के प्रति नफरत पैदा हो जाती है। उन आर्यों व सिक्खों की मुखालफत करने से इस्लाम की कितनी बेइज्ज़ती है, जो एक ईश्वरवाद और मूर्ति पूजा विरोध की दृष्टि से इस्लाम से मुतफरिक हैं। इन्साफ यह है कि इस्लाम को हिन्दुओं के साथ सहयोग करते हुवे उनके प्रति हमदर्दी दिखानी चाहिए। आखिरकार हिन्दुओं से मुखालफत करने से फायदा ही क्या है ?"

"एक ईश्वर की पूजा करने के लिहाज से आर्यसमाजी हमारे नजदीक हैं और हमें उन्हें और ज्यादा नजदीक करने की कोशिश करनी चाहिये। हमारे पैगम्बर का तो यही तरीका है।"

"हिन्दू लोग निज़ाम की मखलूक हैं। इसलिये बादशाह की हैसियत से उसे उन्हें सब हकूक दे देने चाहिएं। मौजूदा ज्यादतियों से किसी को फायदा नहीं। पैगम्बरों और खलीफाओं के जमाने में हर किसी को अपने धर्म के मुताबिक प्रार्थना करने की पूरी आज़ादी थी। हर एक मुसलमान को यह सचाई मालूम होनी चाहिये। हमारे पैगम्बर ने बराबरी और इन्साफ के बूते पर इस्लाम को फैलाया था। हैदराबाद सरकार के तौर-तरीके मुस्लिम भावनाओं के प्रतिकूल हैं, क्योंकि इससे इस्लाम के खिलाफ असद्भावना पैदा होती है।"

यदि हिन्दू लोग पण्डित बुद्धदेव जी जैसे नेताओं का तथा मुसलमान लोग मौलाना कमरुद्दीन साहिब जैसे नेताओं का अनुसरण करें तो हिन्दू मुसलमानों का बेड़ा पार हो जाय।

काश्मीर का गत आन्दोलन और हैदराबाद का वर्तमान सत्याग्रह

इसी तरह जम्मू और काश्मीर के प्रसिद्ध मुसलमान नेता मुहम्मद अब्दुल्ला साहिब ने 'हमदर्द' में उपर्युक्त विषय पर एक लेख लिखा है। इसके प्रारम्भ में उन्होंने यह बताते हुवे कि सब रियासतें एक जैसी हैं यह अपील की है कि जैसे रियासतों के लोग, चाहे वे हिन्दू हों या मुसलमान, मिल करके प्रजा के आन्दोलन को कुचलना चाहते हैं वैसे ही सब रियासतों की प्रजा को भी—वह चाहे हिन्दू हो या मुसलमान—संगठित होकर काम करना चाहिये। फिर यह कहते हुवे कि हैदराबाद में काश्मीर के आन्दोलन की पुनरावृत्ति हो रही है, आर्य सत्याग्रह के बारे में निम्न विचार प्रकट किये हैं:—

प्रत्येक नागरिक को अपनी आत्मा की आवाज़ के अनुसार प्रत्येक धार्मिक कार्य करने की पूरी आज़ादी है। अगर आर्यसमाजियों को हैदराबाद में उक्त अधिकार प्राप्त नहीं, तो निज़ाम हैदराबाद को एक जांच कमीशन मुकर्रर करना चाहिये

'अगर १९३१ में काश्मीर में नागरिक व धार्मिक स्वाधीनता के लिये मुसलमानों का आन्दोलन न्यायोचित था, तो हम हैदराबाद सत्याग्रह का विरोध क्यों करें!"

[पृष्ठ ३ का शेष]

मान्य बन्धुवर ! अन्त में हमारा यही आवेदन है कि आप अपने दृष्टान्त से हम में और भी अधिक स्फूर्ति उत्पन्न कीजिये जिससे हम भी आपके समान अपने उद्देश्य की अग्नि में निरन्तर प्रज्वलित हो सकें और धर्म पर संकट के समय एक सच्चे आर्यवीर के कर्तव्य को पूरा कर सकें

आइये ! श्रद्धानन्द की इस तपोभूमि में हम आप का पुनः अभिनन्दन करते हैं।

हम हैं आप के:—
कुलवासी गण
१६-३-३६।

इसके बाद आपने मानपत्र का उत्तर देते हुए सब को सम्बोधित करते हुए निम्न शब्द कहे:—

श्री आचार्य जी ! माताओ ! तथा भाइयो !

आज आप लोगों के सामने अपने को पाकर मुझे बहुत खुशी हो रही है। आप लोगों ने मेरा जिस प्रकार स्वागत किया है, मैं उसके लिए यहां नहीं आया था। मैं यहां एक सत्याग्रह का डिक्टेटर न होकर एक सामान्य कुल बन्धु के नाते अपनी कुल माता का आशीर्वाद प्राप्त करने आया था। मुझे आप से स्वागत कराने की बिलकुल इच्छा नहीं है, इस बार के दौरे में भिन्न २ स्थानों पर मेरा जलूस के रूप में स्वागत किया गया है, उसमें पहले भी मेरा कई बार स्वागत किया जा चुका है।

आज यद्यपि यहां सब कुछ परिवर्तन हो चुका है, न वह भूमि है, न वह गुरुवृन्द ही है जिनकी छत्र छाया में रह कर मैंने अपने बाल्य जीवन के स्वर्गिक समय को खेल कूद कर बिताया था - न वह गङ्गा की धारा ही यहां है। आज तो चारों ओर एक आश्चर्यकारी परिवर्तन नज़र आता है, किन्तु फिर भी इस कुल में वही आत्मा है, वही स्वरूप है। आज से २० वर्ष पूर्व जब मैं गुरुकुल का स्नातक होकर अपने प्रान्त में चला गया था, तब से अब तक समयाभाव से मुझे अपनी कुल माता के दर्शन करने का सौभाग्य भी प्राप्त नहीं हुआ। भाइयो ! मैं आपको अपना एक रहस्य बताना चाहता हूं, आज से कई वर्ष पूर्व जब मैं लन्दन से बैरिस्टरी की परीक्षा पास करके यहां आया था तो हमारे कुल पिता स्वामी श्रद्धानन्द जी ने मेरे पिता जी से कहा था कि इस लड़के को मुझे दे दीजिए"। पिता जी ने जवाब दिया था कि यह लड़का १४ साल तक गुरुकुल में आपके पास रहा है अब कुछ दिन इसे मेरे पास भी रहने दीजिए"। अब वे दोनों नहीं रहे, किन्तु मेरा विचार है कि जिस कार्य के लिये उन्होंने मुझे मांगा था, या १४ साल तैयार किया था, मैं उसके लिये अब पूरी तरह सन्नद्ध हूं। जिस कुल माता ने मेरे बाल्य जीवन में मेरे अन्दर इतनी भावना भरी थी, मैं एक बार फिर उसी का संदेश और आशीर्वाद लेने के लिये यहां आया हूं और श्री आचार्य जी से प्रार्थना करता हूं कि आचार्य जी! आप आशीर्वाद दीजिए, माताओ ! आप आशीर्वाद दो, मेरे छोटे और बड़े भाइयो ! तुम भी आशीर्वाद दो-ताकि मैं अपने इस धर्म-युद्ध में सफल हो सकूं।"

इसके पश्चात् श्री आचार्य जी के कहने पर आपने हैदराबाद की आन्तरिक परिस्थिति पर बड़ा मनोरंजक एक व्याख्यान दिया। सायंकाल आप देहरादून के लिये रवाना हो गए।

एक और दुःखदाई मृत्यु

संरक्षक सभा के मन्त्री श्री दौलतराम जी के सुपुत्र देशराज को १॥ मास हुए गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ में एक दम एक संक्रामक रोग (गर्दन तोड़ बुखार) का आक्रमण हुआ। सब प्रकार अनथक सेवा कार्य जारी रहते हुये भी दो दिन बाद देहली के सिविल-हॉस्पिटल में उसका देहावसान हो गया। उसी समय गुरुकुल के भक्त, प्रेमी और कृपा रखने वाले श्री राजरूप जी के सुपुत्र देवराज को आन्त्र ज्वर (टायफायड) की शंका हुई और उसके पिता जी उसे देहली में अपने घर रखकर अच्छे से अच्छा इलाज कराते रहे तो भी कुछ दिनों बाद यह दुःखसमाचार पाकर कि 'उसका देहावसान हो गया' गुरुकुल में शोक छा गया। इन दोनों दुःख-जनक मृत्युओं का कष्ट अभी हटने नहीं पाया था कि इतने में पटियाले के सुप्रसिद्ध स्नातक पं० विद्यारत्न जी के होनहार पुत्र श्री प्रकाश को टायफायड से परलोक वास हो जाने का समाचार यह अखबार छपते हुये मिला। सब गुरुकुल वासी तीसरी बार शोक निमग्न अवस्था में परमेश्वर से प्रार्थना करने को एकत्रित हुए। श्री पं० विद्यारत्न जी का पुत्र ७ दिन की छुट्टी पर घर पटियाले गया था, घर जाते ही वह बीमार पड़ गया। कुछ दिनों में पता लगा कि आन्त्रज्वर है। ब्रह्मचारी बेहोश रहने लगा और एक महीने की बीमारी चिन्ता और व्याकुलता के बाद पं० विद्यारत्न जी को अपने प्रिय पुत्र के इस लोक से चले जाने का समाचार देना पड़ा। परमेश्वर उन दिवगत आत्माओं को शान्ति प्रदान करें, सम्बन्धियों को सान्त्वना दें, और हम कुलवासियों को शक्ति और समझ दें जिससे अब आगे इस कुल में इस प्रकार अकाल मृत्यु का प्रसंग उपस्थित न हो। परमेश्वर महान् है। कम से कम इस दुःख के समय हम सब उसके आगे झुकें और अपनी कमज़ोरियों और बुराइयों से शुद्ध होने के लिये उसकी शरण ग्रहण करें।

ईश्वरीय ज्ञान—वेद

(३)

[ले० श्री आचार्य पं० चन्द्रकान्त जी वेद वाचस्पति वेद मनीषी
गुरुकुल महाविद्यालय सोनगढ़ काठियावाड़]

हमने आगे देखा है कि शब्दों में विशेष अर्थ स्थापित करने की शक्ति ईश्वर ने हमें दी है; इसलिए हम कह सकते हैं कि सृष्टि के आरम्भ में प्राणियों को नैमित्तिक ज्ञान और भाषा ईश्वर की तरफ से दी गई है, अब हमें विचारना यह है कि वह अपौरुषेय ज्ञान कैसा और कौन सा हो; और वह कौनसी भाषा में प्रकट हुआ। युक्ति और प्रमाणों के आधार पर विचारने से पता लगता है कि

ईश्वरीयज्ञान वेद ही हैं। वेद के अतिरिक्त अन्य ग्रन्थ कुरानादि ईश्वरीयज्ञान रूप से साबित नहीं होते, क्योंकि ईश्वरीयज्ञान की परीक्षा में वेदही न्याययुक्त प्रतीत होते हैं।

(१) चारो वेदों की अन्त साक्षी तथा अन्यशास्त्रों की अन्त साक्षी से यह स्पष्ट होता है कि वेद यह एक ईश्वर-प्रेरित ज्ञान है।

(२) ईश्वरीय ज्ञान का प्रकाश सृष्टि के आरम्भ में ही होना चाहिए—यदि ऐसा मानने में दोष आए तो ईश्वर की न्याययुक्तता खण्डित हो जाती है।

(३) ईश्वरीय ज्ञान किसी देश विशेष की भाषा में नहीं होना चाहिए कि जिससे उसे समझने में सबको समान श्रम करना पड़े।

वेद ऐसी भाषा में है जो कि सब आर्य भाषाओं की मातृभाषा है। भाषा विज्ञान के विद्वानों ने इस बात को साबित किया है कि प्रचलित सब भाषाओं में प्राचीनतम भाषा वैदिक भाषा है और इस वैदिक भाषा में से ही अनेक भाषाओं का विकास हुआ है। इस पर से हम जान सकते हैं कि प्रारम्भ में ईश्वर का दिया हुआ ज्ञान वैदिक भाषा में होना असम्भव नहीं।

(४) यह ज्ञान सृष्टि के नियमों से विपरीत नहीं होना चाहिए।

(५) इस ज्ञान में सर्व-सत्य-विद्याओं के मूल तत्व अवश्य होने चाहिये।

वेद उपरोक्त पांच कसौटियों में से पास होकर अपनी योग्यता साबित करता है। ब्राह्मण ग्रन्थ वेदों के व्याख्या ग्रन्थ हैं, वे ग्रन्थ याज्ञवल्क्यादि ऋषियों के द्वारा बनाए गए हैं। इस प्रकार के ग्रन्थ मनुष्यकृत होने से ईश्वरीय ज्ञान की कोटि में नहीं आ सकते।

यहां पर एक स्वाभाविक प्रश्न होता है कि यदि ईश्वर ही वेदों का कर्त्ता हो तो मन्त्रों में आए हुए ऋषियों को क्या गिना जाय? ऋषि और मुनियों के नाम, सूक्त और मन्त्रों के साथ सम्बन्ध रखते हैं, क्या उन्हें वेदकर्त्ता नहीं मान सकते? इस विषय में हम इतना ही कहेंगे कि ऋषि लोग वेदकर्त्ता नहीं है परन्तु द्रष्टा हैं वे वेद के ज्ञाता हैं निर्माता नहीं। इस विषय में कतिपय प्रमाण दिए जाते हैः—

(१) "नमो ऋषिभ्यो मन्त्रकृद्भ्यो मन्त्रपतिभ्यः"
(तैत्तरीय.आरण्यक-४-१७)

इस पर सायण ने निम्न भाष्य किया है—

मंत्रकृद्भ्यः मंत्र कुर्वन्तीति मन्त्रकृतः। यद्यप्यपौरुषेये वेदे कर्तारो न सन्ति तथापि कल्पादावीश्वरानुग्रहेण मन्त्राणां लब्धारो मंत्रकृतः इत्युच्यन्ते।" इसमें सायण मन्त्रों के ग्रहणकर्त्ता ऋषियों का मन्त्रकृत शब्द से सम्बोधन करते है।

(२) 'सर्वऋषिर्मन्त्रकृतः।' (ऐतरेय ब्राह्मण ६-१-१

इस पर सायण भाष्य करते है कि 'ऋषिः अतीन्द्रियार्थमन्त्रकृत् (कृधातुस्त्वत्र दर्शनार्थः) मन्त्रस्य द्रष्टा" अर्थात् मन्त्रकृत् का अर्थ मंत्रद्रष्टा है।

(३) आचार्य यास्क ने लिखा है किः—

"ऋषि दर्शनात् स्तोमान्ददर्शेत्यौपमन्यवस्तद् यदेनां तपस्यमानान् ब्रह्मस्वयम्भू अभ्यानर्षत् तत् ऋषयोऽभवन् तदृषीणां ऋषित्वमिति विज्ञायते।" २-३-२ ॥

इसमें भी यास्काचार्य ने ऋषियों को मंत्रद्रष्टा के तौर पर ही स्वीकार किया है। ऐसे अनेक प्रमाणों से स्पष्ट होता है कि वेदमंत्रों के रचयिता ऋषि नहीं परन्तु वेद तो ईश्वर प्रेरित ही हैं। ऋषि संसार के गुप्त रहस्यमय मंत्रों ((secret Ideas)) के ज्ञाता हैं, द्रष्टा हैं। 'सिद्धान्तसार' नामक पुस्तक में मणिभाई नभुभाई लिखते हैं कि:- 'सप्तसिन्धु प्रदेश में आकर बसे हुए आर्यों का शाखा का मूल धर्मपुस्तक वेद नाम से प्रसिद्ध हैं। कुरान, बाईबिल आदि जैसे पुस्तक वाची नाम हैं वैसे वेद पुस्तकवाची शब्द नहीं है। विद् अर्थात जानना, ज्ञान प्राप्त करना। विद् धातु से व्युत्पन्न वेदशब्द ज्ञान मात्र का भण्डार, इस अर्थ का वाची है। सर्वज्ञता का स्वरूप वेद ही है, इसलिये वेद ईश्वर-प्रणीत है। मूसापयगम्बर को ईश्वरने दश आज्ञाएं लिखाई थीं तथा मुहम्मद को जिब्र इल नामक फरिश्ते ने कुरानके पैरे प्रसंग २ पर कहे थे। परन्तु वेद इस प्रकार उतरा है ऐसा नहीं कहा जाता। वेद ईश्वरदत्त नहीं, परन्तु ईश्वर प्रेरित कहा जाता है। वेद-मंत्र भिन्न २ ऋषियों के ज्ञान रूप में प्रतीत होते हैं। दृष्टा हुए हैं इसलिये वे ऋषि मन्त्र द्रष्टा कहे गये। ऋषियों के ज्ञान में प्रतीत होना और ऋषियों ने ही बनाये इन दो अर्थों के बीच में इस प्रकार सूक्ष्म भेद मानकर प्राचीन पंडितों ने वेदमंत्रों को अनादि माना है इसलिये वे ज्ञान रूप में प्रतीत होते है। (असमाप्त)

गुरुकुल समाचार

ऋतु साधारणतया उत्तम है। चारों ओर की हरियाली से कुलभूमि का सौन्दर्य बहुत बढ़ गया है। गुरुकुल की सब इमारतों के चारों ओर यूकलिप्स के वृक्षों को लगवाने का प्रबन्ध श्री मुख्याधिष्ठाता जी कर रहे हैं। इससे जहां वायु की परिशुद्धि होगी वहां साथ ही साथ कुलभूमि की शोभा भी बहुत बढ़ जायगी। इन्हीं वृक्षों के कारण गुरुकुल का पारिवारिक चिकित्सालय एक अच्छा सैनिटोरियम सा हो रहा है। वृक्षों के बड़े हो जाने पर यह गुरुकुल पुराने गुरुकुलों की कल्पना को पूरा करने में समर्थ हो सकेगा। ऐसी पूरी सम्भावना है। अधिकारी इसके लिये प्रयत्नशील हैं।

नया उद्यान—

गुरुकुल के दक्षिण में वाह्य-चिकित्सालय के पास लम्बी चौड़ी भूमि में गुरुकुल की ओर से एक बड़ा-बाग लगाया जा रहा है जिसमें आम आदि विविध फलों के वृक्ष लगाये जावेंगे। कुलभूमि में जहां दो-तीन साल पूर्व वृक्षों का अभाव खटकता था वहां अब दो-तीन साल बाद चारों ओर फल समृद्ध वृक्ष और बाग ही बाग नज़र आवेंगे।

स्वास्थ्य समाचार

गत सप्ताह ब्र० रामप्रकाश ३ श्रेणी फोड़ा, ब्र० राजेश्वर ४ श्रेणी मोच, ब्र० विद्याभूषण ११ श्रेणी विषमज्वर से रोगी हुए थे। अब सब स्वस्थ हैं।

चौधरी हुलासराय के प्रबन्ध से गुरुकुल प्रेस गुरुकुल कांगड़ी में मुद्रित तथा प्रकाशित।

* ओ३म् *

"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत" Reg. No. A 2927

गुरुकुल

सम्पादक– साहित्यरत्न पं० हरिवंश वेदालङ्कार

एक प्रति का मूल्य –) [गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख-पत्र] वार्षिक मूल्य २॥)

वर्ष ४] गुरुकुल काङ्गड़ी, शुक्रवार ३० आषाढ़ १९९६; १४ जौलाई १९३९ [संख्या ११

सत्याग्रही का स्वाध्याय

[ले०—श्री आचार्य अभयदेव जी]

वेद वचनामृत (२)

ओ३म् देवो देवानामसि मित्रो अद्भुतो वसुर्वसूनामसि चारुरध्वरे।
शर्मन्त्स्याम तव सप्रथस्तमेऽग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥ अथर्व०।

अर्थ— (अग्ने) हे परमेश्वर! (देवानां देवः असि) तू देवों का देव है (अद्भुत मित्रः) तू अद्भुत मित्र है (वसूनांवसुः असि) तू सब वसुओं का वसु, धनों का धन है! (अध्वरे चारु) यज्ञ में तू शोभायमान है। अतः हम चाहते हैं कि (वयं) हम (तव) तेरी (सप्रथस्तमे शर्मन्) विस्तीर्ण तम शरण में (स्याम) होवें, और (तव सख्ये) तेरे सख्य में (मा रिषामा) हम नष्ट न होवें।

ओ३म् तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पतिं धियंजिन्वं अवसे हूमहे वयम्।
पूषा नो यथा वेदसामसद् वृधे रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये ॥ ऋक्० यजु०॥

अर्थ— (तं) उस (जगतः तस्थुषः पतिं) जंगम और स्थावर संसार के पति (धियंजिन्वं) बुद्धि व कर्म के प्रीणन करने वाले (ईशान) ईश्वर को (वयं) हम (अवसे हूमहे) रक्षा के लिये पुकारते हैं। (पूषा) वह पोषक (यथा) जहां (नः) हमारे (वेदसां) धनों की (वृधे) वृद्धि के लिये (असत्) हुआ है वहां वही (स्वस्तये) हमारे कल्याण के लिये (अदब्धः रक्षिता पायुः) [हमारे धनों का] अहिंसित रक्षक और पालक भी होवे।

ओ३म् स इन्महानि समिथानि मज्मना कृणोति युध्म ओजसा जनेभ्यः।
अधाचन श्रद्दधति त्विषीमत इन्द्राय वज्रं निघनिघ्नते वधम् ॥ ऋक्०।

अर्थः— (स इत्) वह इन्द्र ही (युध्मः) योद्धा होकर (मज्मनाओजसा) अपने पवित्रकारक ओज से (महानि समिथानि) बड़े २ संग्रामों को (जनेभ्यः) मनुष्यों के लिये (कृणोति) करता है। परन्तु लोग (अधा चन) अनन्तर ही, पीछे से ही (त्विषीमते इन्द्राय) उस महा तेजस्वी इन्द्र में (श्रद्दधति) श्रद्धा करते हैं, जो कि (वधं) संसार के सब वध को, सब हिंसा को (वज्रं निघनिघ्नते) वज्र मारता है, अपने वज्र से हनन किया करता है।

ओ३म् अवधीत् कामो मम ये सपत्ना उरुं लोकमकरन्मह्यमेधतुम्।
मह्यं नमन्तां प्रदिशश्चतस्रो मह्यं षडुर्वी घृतमा वहन्तु ॥ अथर्व०।

अर्थः— (कामः) मेरे संकल्प-बल ने (मम ये सपत्नाः) मेरे जो प्रति द्वन्द्वी बाधक हैं उन्हें (अवधीत्) नष्ट कर दिया है, (मह्यं) मेरे लिये (उरुलोकं) विस्तृत खुला हुआ लोक (अकरत्) कर दिया है, (एधतुं) [अकरत] मेरे लिये वृद्धि व विस्तार कर दिया है। अब (मह्यं) मेरे लिये (चतस्र प्रदिशः) चारों उपदिशायें (नमन्तां) झुक आवें और (षट् उर्वी) छहों विस्तृत दिशायें (मह्यं) मेरे लिये (घृतं) क्षरित हुए फल को (आवहन्तु) ले आवें।

ओ३म् विजेषकृदिन्द्र इवानवब्रवो अस्माकं मन्यो अधिपा भवेह।
प्रियं ते नाम सहुरे गृणीमसि विद्मा तमुत्सं यत आबभूथ ॥ ऋक्० अथर्व०॥

अर्थः— (मन्यो) हे मन्यो! (तंउत्संविद्मः) हम उस स्रोत को जानते हैं। (यतः आबभूथ) जहां से तुम उत्पन्न होते हो। तुम (विजेषकृत्) विजय करने वाले हो और (इन्द्रः इव अनवब्रवः) इन्द्र 'आत्मा' की तरह तुम भी कभी न दबायी जा सकने वाली आवाज़ वाले हो। (इह अस्माकं अधिपा भव) तुम इस संसार में अधिष्ठाता पालक होओ। (सहुरे) हे सहुरि! हे सहनशील! (ते प्रियं नाम गृणीमसि) हम इस तेरे प्यारे नाम से तेरी स्तुति करते हैं।

ओ३म् मधुमन्मे निक्रमणं मधुमन्मे परायणम् ।
वाचा वदामि मधुमद् भूयासं मधुसन्दृशः ॥
अथर्व० ॥

अर्थः – (मे) मेरा (निक्रमणं) निकट जाना, प्रवृत्ति (मधुमत्) माधुर्यमय होवे तथा (मे) मेरा (परायणं) दूर हटना, निवृत्ति भी (मधुमत्) माधुर्यपूर्ण होवे । मैं (वाचा) वाणी से (मधुमत्) माधुर्ययुक्त ही (वदामि) बोलता हूं इसलिये [हे मधुस्वरूप] मैं (मधुसन्दृश) माधुर्य का सर्वत्र मधु को ही देखने वाला (भूयासम्) हो जाऊं ।

ओ३म् ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमुपाघ्नत ।
इन्द्रोह ब्रह्मचर्येण देवेभ्यः स्वराभरत् ॥
अथर्व ॥

अर्थ — (देवा) देव, ज्ञानी पुरुष (ब्रह्मचर्येणतपसा) ब्रह्मचर्य के तपोबल से (मृत्यु) मौत को (अपाघ्नत) मार डालते हैं । (इन्द्र) परमेश्वर व आत्मा (ह) भी निश्चय से (ब्रह्मचर्येण) अपने ब्रह्मचर्य के द्वारा ही (देवेभ्यः) देवों के लिये (स्वः) सुख व तेज को (आभरत्) लाता है, प्राप्त कराता है ।

ओ३म् उदगादयमादित्यो विश्वेन सहसा सह ।
द्विषन्तं मह्यं रन्धयन्, मो अहं द्विषते रधम् ॥
ऋक्० ॥

अर्थः — देखो, (अयम्) यह (आदित्यः) आदित्य, परमसूर्य (मह्य) मेरे लिये (द्विषन्तं) शत्रु को, दुष्ट अन्यायकारी शत्रु को (रन्धयन्) नाश करता हुआ, वशवर्ती करता हुआ (विश्वेन सहसा सह) अपने सम्पूर्ण तेज व बल के साथ (उद् अगात्) उदित हुआ हुआ है, इसलिये (अहं) मैं (द्विषते) शत्रु को (मो) मत (रधम्) हिंसा करूं, शत्रु के वशवर्ती न होऊं ।

जिह्वाया अग्रे मधु मे जिह्वामूले मधूलकम् ।
ममेदह क्रतावसो मम चित्तमुपायसि ॥
अथर्व० ॥

अर्थः— (मे) मेरी (जिह्वायाः अग्रे) जिह्वा के अग्रभाग में (मधु) मिठास होवे, और (जिह्वामूले) जिह्वा के मूल में (मधूलकम्) और भी अधिक मिठास, मिठास का भरना होवे । हे मधु ! तू (इत् अह) अवश्य ही (मम) मेरे [क्रतौ] प्रत्येक कर्म में, प्रत्येक यज्ञ में [असः] विद्यमान रह और तू [मम] मेरे [चित्तं] अन्तःकरण के चित्त प्रदेश तक [उपायसि] पहुँच जा, व्याप्त हो जा ।

ओ३म् श्रद्धयाग्निः समिध्यते श्रद्धया हूयते हविः ।
श्रद्धां भगस्य मूर्धनि वचसा वेदयामसि ॥
ऋक्० ॥

अर्थः— [श्रद्धया] श्रद्धा से [अग्निः] अग्नि [समिध्यते] प्रदीप्त होती है और [श्रद्धया] श्रद्धा से ही [हविः हूयते] हवि दी जाती है आत्म-बलिदान किया जाता है । [भगस्य] सब भजनीय वस्तु के, भाग्य के, धर्म के, ऐश्वर्य के [मूर्धनि] मूर्धा में [श्रद्धां] श्रद्धा को हम लोग [वचसा] वाणी द्वारा, वेद वाणी द्वारा [वेदयामसि] घोषित करते हैं, प्रकट करते हैं ।

ओ३म् दृष्ट्वा रूपे व्याकरोत् सत्यानृते प्रजापतिः
अश्रद्धामनृते दधात् श्रद्धां सत्ये प्रजापतिः ॥
यजु० ॥

अर्थः — (प्रजापतिः) प्रजापति ने (दृष्ट्वा) देखकर (रूपे) सब रूपों को दो विभागों में (सत्यानृते) सत्य और अनृत सच्चा और झूठा इन दो विभागों में (व्याकरोत्) स्पष्ट जुदा जुदा कर दिया है । (प्रजापतिः) उस प्रजापति ने (अनृते) अनृत में, झूठ में (अश्रद्धां) अश्रद्धा को (दधात्) रक्खा है और (सत्ये) सत्य में, सचाई में (श्रद्धां) श्रद्धा को रक्खा है ।

ओ३म् सख्ये त इन्द्र वाजिनो माभेम शवसस्पते ।
त्वामभि प्रणोनुमो जेतारमपराजितम् ॥
ऋक्० ॥

अर्थः — (शवसस्पते) हे बल के स्वामी ! (इन्द्र) परमेश्वर ! (ते) तेरी (सख्ये) मित्रता में आकर (वाजिनः) बल, ज्ञान से युक्त हुए हम (मा भेम) अब भयभीत न होवें, निर्भय हो जावें । (जेतारं) सदा जीतने वाले (अपराजितं) कभी भी पराजित न हो सकने वाले (त्वा) तेरे (अभिप्रणोनुमः) हम बार-बार सर्वप्रकार स्तुतिगान करते हैं ।

ओ३म् धृतव्रताः क्षत्रिया यज्ञनिष्कृतो बृहद्दिवा
अध्वराणामभिश्रियः ।
अग्निहोतार ऋतसापो अद्रुहः, अपो असृजन्ननु
वृत्रतूर्ये ॥ ऋक्०

अर्थः— [धृतव्रताः] व्रत धारण किये हुए [क्षत्रियाः] सच्चे अर्थों में क्षत्रिय [यज्ञनिष्कृतः] यज्ञकर्मों को निःशेषता करने वाले [बृहद्दिवा] महा तेजस्वी [अध्वराणां अभिश्रियः] अहिंसामय कृतियों के सेवन करने वाले, उन से शोभने वाले [अग्निहोतारः अग्नि का हवन या आह्वान करने वाले [ऋतसापः] सत्य से समवेत हुए हुए [अद्रुहः] कभी द्रोह न करने वाले पुरुष ही [वृत्रतूर्ये] पाप नाशक संग्राम में [अनु] तदनुकूल [अपः] कर्मों को [असृजन्] करते हैं ।

ओ३म् अहमस्मि सहमान उत्तरो नाम भूम्याम् ।
अभीषाडस्मि विश्वाषाड् आशामाशां विषासहिः ॥
अथर्व०

अर्थः— [अहं] मैं [सहमानः] सहन करने वाला [अस्मि] हूं, [भूम्यां] इस भूमि पर [उत्तरः नाम] उत्कृष्टतर प्रसिद्ध हूं । मैं [अभीषाड्] मुकाबले में आये हुए को सहने वाला [अस्मि] हूं, [विश्वाषाड्] सब कुछ सहने वाला हूँ, [आशां आशां] प्रत्येक दिशा में प्रत्येक इच्छापूर्ति के लिये सब कुछ [विषासहिः] विशेषतया बार बार सह सकने वाला हूं ।

ईश्वरीय ज्ञान—वेद

(४)

[ले० श्री आचार्य पं० चन्द्रकान्त जी वेद वाचस्पति, वेद मनीषी

गुरुकुल महा विद्यालय सोनगढ़ काठियावाड़]

अनन्तयुग, अनन्तकल्प चले गये परन्तु वेद तो वैसे के वैसे ही हैं। उनका कर्त्ता किसी के स्मरण में नहीं, अतः वे नित्य हैं अनादि हैं, अपौरुषेय हैं, ईश्वर-प्रेरित हैं, ईश्वररूप हैं। मीमांसक तो शब्द की नित्यता सिद्ध करके वेद की नित्यता सिद्ध करते हैं।'

उपरोक्त दृष्टान्त से स्पष्ट होता कि वेद ईश्वर-प्रेरित हैं। ऋषि मुनियों की स्वतन्त्र कृति न होने के कारण पौरुषेय नहीं किन्तु अपौरुषेय हैं, इसलिये सायणाचार्य 'ऋग्भाष्यभूमिका' में वेद का लक्षण निम्न प्रकार से करते हैं कि "अपौरुषेयं वाक्यं वेदः"। वेदशब्द ज्ञान का वाची है। मनुष्य जाति के सब से पुराने इन ग्रंथों में सर्व-विद्याओं के मूलतत्व बीजरूप में विद्यमान हैं। ऋषियों ने अपनी स्वतन्त्र बुद्धि से यह ज्ञान उत्पन्न नहीं किया परन्तु अंतर्यामी रूप में विद्यमान सर्वव्यापक ईश्वर के द्वारा हृदय की प्रेरणा के रूप में यह ज्ञान प्राप्त किया हुआ है। इसलिये ही उसे श्रुति भी कहा जाता है।

हमारे प्राचीन दर्शन ग्रन्थों में भी वेद की पौरुषेयता-अपौरुषेयता पर अनेक विचार भिन्न २ दृष्टि से उपस्थित करने में आये हैं। मीमांसक कहते हैं कि नित्य शब्द वाले वेद किसीसे पैदा नहीं हुए, ऋषियों ने उनका दर्शन किया है परन्तु उन्होंने बनाये नहीं। इस कारण ही वेद अनादि-नित्य और अपौरुषेय हैं। सांख्यकार मानते हैं कि सूर्य चन्द्रादि के समान वेद भी प्रकृति के नियमानुसार ही उत्पन्न हुए हैं। उनके रचयिता ज्ञात न होने से वे वेद अपौरुषेय हैं। सांख्य मतानुसार वेद स्वतः प्रमाण हैं क्यों कि वे ईश्वररूप 'पुरुष' द्वारा प्रादुर्भूत हुए हैं "निजशक्त्यभिव्यक्तेः स्वतः प्रामाण्यम्" (५-५) अर्थात् वेदों में ऐसी स्वाभाविक शक्ति है कि जिससे वे अपने अर्थों को सिद्ध करने में अन्य प्रमाणों की अपेक्षा नहीं रखते, उनके रचयिता ज्ञात न होने से उन्हें अपौरुषेय मानने में आता है (नापौरुषेयत्वात्तु पुरुषस्याभावात् ५-४६) प्राचीन नैयायिकों के मतानुसार वैदिक शब्दों को लौकिक भाषा के शब्दोंके अनुसार ही मानना चाहिए। वेद के शब्द कूटस्थ नित्य नहीं हैं, परन्तु प्रवाह से नित्य अवश्यमेव हैं। जिस प्रकार आयुर्वेद आप्त है और उसका प्रत्यक्ष प्रमाण भी है इसी प्रकार वेद के विषय में भी जानना चाहिए। उनके मतानुसार वेद पौरुषेय हैं। (मन्त्रायुर्वेदप्रामाण्यवच्च तत्-प्रामाण्यम्, आप्तप्रामाण्यात् २-१-६८ न्यायसूत्र,) इससे मिलता जुलता मत वैशेषिक का भी प्रतीत होता है। उसके अनुसार शब्द स्वरूप वेद अनित्य और अपौरुषेय हैं। परन्तु अर्थरूप में विद्यमान विद्याएं नित्य और अपौरुषेय हैं। (तद्वचनादाम्नायस्य प्रामाण्यम् १-१-३ वै० सू०) वैयाकरणों में से पतञ्जलि और कैयट का भी ऐसा ही विचार है। इस प्रकार हमारे प्राचीन दर्शनोंमें अपौरुषेयता शब्द का व्यवहार हमने देखा। सबने भिन्न २ दृष्टि से उसका अर्थ किया है। इस अवस्था में कभी २ हमें सामान्य दृष्टि से-दर्शनों में एकवाक्यता का लोप हुआ हो ऐसा लगेगा, परन्तु यदि तात्त्विक बुद्धिसे विचारेंगे तो मालूम होगा कि वेद ईश्वर प्रेरित है। इस कारण पौरुषेय नहीं। पुरुष शब्द को यदि ईश्वर में लगाया हुआ समझा जाय तबतो उसे पौरुषेय माना जासकता है। परन्तु यदि उससे ऋषि-मुनियों का ग्रहण किया जाय तो पौरुषेयता में दोष आता है।

इस प्रकार हमने तत्व की दृष्टि से इस बातको प्रतिपादन करने का यत्न किया कि वेद ईश्वर प्रेरित है। अपौरुषेय हैं। इससे विपरीत ब्राह्मण ग्रन्थ मानव-निर्मित होने से ईश्वर-प्रेरित नहीं है। संसार के समस्त आधारभूत ज्ञान का भंडार वेदही हैं। इनके द्वारा हीसंसार में ज्ञान का विकास हुआ है। एडवर्ड कार्पेन्टर ने अपनी पुस्तक 'Art of creation के सातवें पृष्ठ में लिखा है कि:-' A new philosophy we can hardly expect or wish for, since, indeed the same germinal thought of the Vedic authors come all the way down History even to Schopenhaur and Whitman inspiring philosophy after philosophy and religion after religion.. ...and it is only to-day that science with its huge conquets in the material plane is able to provide for these world old principles......, somewhat of a new form and so wonderful a garment of illustration and expression as it does

इस दृष्टि से वेदों की महत्ता स्पष्ट प्रतीत होती है। अपौरुषेय ईश्वर प्रेरित ज्ञान की महिमा किसलिये न गाई जाए? अस्तु

क्या आप को अपने बच्चों के लिये शिक्षक की आवश्यकता है?

गुरुकुल कांगडी के एक योग्य स्नातक श्री पं० गुरुदेव जी विद्यालंकार ने अपने पिछले दो तीन वर्ष छोटे बच्चों की शिक्षा के अभ्यास में व्यतीत किये हैं। बाल शिक्षण की नवीन पद्धति (माण्टीसरी सिस्टम) का अभ्यास प्रसिद्ध बाल शिक्षा विज्ञ स्वर्गीय श्री आचार्य गिजुभाई के चरणों में बैठकर प्राप्त किया है और नवीन-बाल-शिक्षक का प्रमाण पत्र पाया है। मैं चाहता हूँ कि वे हिन्दी भाषा-भाषी बालकों की सेवा करें। इस लिये यदि कोई सज्जन किसी बालशाला में या अपने ही बालकों को इस प्रकार की शिक्षा दिलाना चाहें तो वह मुझ से पत्र व्यवहार कर सकता है। यह बाल शिक्षा ढाई वर्ष से ७ वर्ष तक की उम्र के बालकों के लिये विशेष उपयोगी है। अर्थात् जिसे प्राथमिक शिक्षा कहते हैं उससे भी पूर्व अवस्था में जो बालकों की आधारभूत तैयारी कराना चाहते हैं वे श्री पं० गुरुदेव जी से विशेष लाभ उठा सकते हैं। "अभय"

आचार्य गुरुकुल कांगड़ी।

गुरुकुल

३० आषाढ़ शुक्रवार १९९६

गुरुकुल के—

सफाई करने वाले सेवक

(श्री आचार्य अभयदेव जी)

भंगी शब्द घृणा भाव का द्योतक हो चुका है, इसलिए अपने इन भाइयों को जिस शब्द से पुकारना चाहिये वह ठीक २ तो मेरी समझ में 'सफाई करने वाले सेवक' यह शब्द है। परन्तु इस शब्द के लम्बा होने के कारण मैं भी 'हरिजन' इस सुन्दर शब्द का ही प्रायः प्रयोग करूंगा जो कि कुछ वर्षों से दलित और अस्पृश्य माने जाने वाले लोगों के लिए व्यवहार में आने लगा है।

अस्पृश्यता तो गुरुकुल में प्रारम्भ से ही नहीं रही है। इन सफाई करने वाले सेवकों को छूना तो मामूली बात है पर इनके साथ भोजन करना, या इनका बनाया हुआ भोजन करना भी गुरुकुल में कुछ खास बात नहीं मानी जाती। हरिजन गुजरात के साथ भोजनशाला में भी काम करते रहे हैं। तो भी यह नहीं कहा जा सकता कि अस्पृश्यता की दृष्टि से न सही, अन्य किन्हीं दृष्टियों से इन्हें हीन नहीं समझा जाता, अथवा कुल के वास्तविक अङ्गभूत व्यक्तियों से जैसा व्यवहार किया जाना चाहिये वैसा व्यवहार इनसे होता है। इस दिशा में हमने गुरुकुल में आगे क्या किया है या क्या करना चाहते हैं, इसी का कुछ दिग्दर्शन इस लेख द्वारा करने का इरादा है।

गुरुकुलीय हरिजनों के साथ अधिक सम्पर्क में आने का अवसर मुझे कैसे मिला इसकी कहानी भी कुछ सुनाने लायक है। गुरुकुल कांगड़ी की आर्यसमाज का प्रारम्भ से ही मैं निरन्तर चन्दा देने वाला आर्य सभासद रहा हूँ। दो या तीन वर्ष हुए पंजाब आर्य प्रतिनिधि सभा के निर्देशानुसार हमारी गुरुकुलीय आर्यसमाज ने यह नियम बनाया कि आर्यसमाज की सदस्यता कायम रखने के लिए आर्यसमाज के साप्ताहिक अधिवेशनों में २५ प्रतिशतक उपस्थिति होना आवश्यक है। इससे पहले मैंने ब्रह्मचारियों के साप्ताहिक सत्सङ्ग में जाना अधिक आवश्यक समझ कर गुरुकुल आर्यसमाज के सत्सङ्ग में सदा जाने से छुट्टी ले रक्खी थी, और किसी २ विशेषाधिवेशन में ही मैं सम्मिलित हुआ करता था। पर इस नये नियम का पालन करने की दृष्टि से अब मैंने आर्यसमाज के साप्ताहिक सत्संग में भी निरन्तर जाना प्रारम्भ कर दिया। पर कुछ समय बाद मैंने देखा कि उस सत्संग में तो केवल ५, ७ सज्जन इकट्ठे होते हैं और सम्मिलित हवन तथा भजनगान आदि करते हैं उस में बैठने से न तो मुझे कुछ विशेष लाभ होता है और न मुझ द्वारा उन सब का। और वे जब यह चाहते हैं कि उस सत्संग में मैं कुछ उपदेश करूं तो और भी कठिनाई उपस्थित हो जाती है। उन थोड़े से पढ़े लिखे भक्तों को मैं क्या उपदेश करूं? वे सब कुछ जानते हैं, बहुत उपदेश सुन चुके हैं और स्वयं उपदेश दे सकते हैं, इस तरह के विचार मन में उठने लगते। मैंने सोचा कि जब समाज में मुझे बोलने को ही कहा जाता है तो मैं क्यों न ऐसा समाज बनाऊं जहां कि मुझ द्वारा बोले जाने की वस्तुतः आवश्यकता है, जिससे मेरे समय का अधिक ठीक उपयोग हो। गुरुकुल के छोटे कर्मचारी इस समाज में नहीं आते थे और न आ सकते थे। और सब से ज्यादह छोटे समझे जाने वाले जिनकी कि सामाजिक दृष्टि से बिलकुल उपेक्षा की जाती है वे ये गुरुकुल की सफाई करने वाले सेवक ही हैं जो कि अधिवेशन के समय भी सफाई में लगे रहते हैं। और ये ही ऐसे हैं जो अज्ञान के कारण विशेषतया बहुत दुःख पाते हैं अतः उन्हें ज्ञानोपदेश दिया जा सके इसका प्रबन्ध करना गुरुकुलीय आर्यसमाज की दृष्टि से हमारा सब से पहिला कर्तव्य है। यह सोच कर मैंने गुरुकुलीय आर्यसमाज के प्रधान जी से यह अनुमति मांगी कि मुझे रविवार को हरिजनों के मुहल्ले में ही रात को जब उन्हें फुर्सत होती है साप्ताहिक सत्संग लगाने की अनुमति दें और इसे अपनी गुरुकुलीय आर्यसमाज की एक शाखा समझें, इस तरह मुझे आर्यसमाजिक सत्संग लगाने का जितना आत्मसन्तोष प्राप्त होगा उतना अन्य प्रकार से नहीं हो सकता।

इस प्रकार मैंने कुछ सप्ताहों तक गुरुकुलीय सफाई करने वाले सेवकों के घरों के आंगन में जाकर बैठने का और उन भाइयों से अच्छी तरह बातचीत करने का अवसर प्राप्त किया, जो अब भी किसी रूप में जारी है। इन भाइयों को गुरुकुल में कुल के अंगभूत होकर ही रहना चाहिए यह विचार तो मेरे अन्दर बहुत वर्षों से काम कर रहा था और इसके बिना कुल की दृष्टि से बहुत अपूर्णता रहती है यह भी मैं सतत अनुभव करता था, पर इनको गुरुकुल का अंग बना देना जितना आसान पहले मैं समझता था, वह इतना आसान नहीं है यह इस प्रथम सम्पर्क से ही मुझे मालूम पड़ गया। यद्यपि वे गुरुकुल में रहते हैं परन्तु उनकी दुनियां हमसे बिलकुल भिन्न प्रकार की है, यह स्पष्ट मालूम होगया। गुरुकुल क्या है यह भी वे नहीं समझते थे। अपने देश के बारे में, आर्य समाज के बारे में, देश में चलने वाले प्रगतिशील आन्दोलनों के बारे में, मनुष्य के रूप में उनके कर्तव्य या अधिकार के बारे में और हरिजन आन्दोलन के बारे में भी उनके विचार प्रायः गलत या अत्यन्त अधूरे और भ्रमपूर्ण थे। उन्हें समझाना बड़ा कठिन था। कुछ दिनों की बातचीत के बाद यह समझ में आया कि इन्हें अधिक समझा सकना शायद कठिन है जब तक कि इन्हें साक्षर न कर दिया जाए और इनकी पढ़ाई का बाकायदा प्रबन्ध

न कर दिया जाए। हरिजनों के कुछ बालक पहले से भी ब्रह्मचारियों से कभी कभी पढ़ते-सीखते थे, कुछ हरिजन भी पहले से साक्षर हो चुके थे पर यह सब अव्यवस्थित रूप से हुआ था अतः ये सब के सब पढ़ें, कोई निरक्षर न रहे और नियम पूर्वक पढ़ें इसका सिलसिला चलाया। परन्तु उनकी कठिनाइयों और दुःखों की अधिक खोज करने पर उनकी आर्थिक जांच की जाने की आवश्यकता इससे भी अधिक आवश्यक सी मालूम पड़ी। इस जांच से पता लगा कि सब हरिजनों पर बहुत २ कर्ज़ (८ परिवारों पर लगभग दो हज़ार रुपया) है। जिस पर कि उन्हें दुअन्नी रुपए तक का सूद देना पड़ता है। वर्षों से सूद ही दे रहे हैं और असल उतारने का मौका ही नहीं आने पाता। कई उत्तमर्ण अपना कर्ज चुकाने के लिए इन्हें राहों पर खूब पीटते हैं, धमकी देते हैं और अपनी स्त्री को बेच कर कर्ज चुका दो ऐसी प्रेरणा तक करते हैं और बहुत बाधित करते हैं। इससे इनकी कई ऐसी सामाजिक कुरीतियों का पता लगा जिनकी तरफ़ पहले ध्यान न गया था। अस्तु। उनका साप्ताहिक सत्सङ्ग में जो शिक्षा दी जाती थी वह मुख्यतया यह थी –

"तुम्हें लुक-छिप कर भी या अपने सम्बन्धियों के यहां जाने पर भी और विवाह शादी के मौके पर भी मांस-शराब आदि का सेवन नहीं करना चाहिये (गुरुकुल में रहते हुए तो मांस, शराब का सेवन शुरू से निषिद्ध रहा है, और ऐसा जुर्म किसी ने किया है तो पता लगने पर उसे निकाल दिया जाता रहा है)। तुम्हें स्वयं साफ रहना चाहिए, अपने घर और अड़ोस पड़ोस को साफ रखना चाहिए, तुम सब गुरुकुल की सफाई के जिम्मेवार हो अतः तुम में सफाई की स्वाभाविक प्रवृत्ति और रुचि होनी चाहिए, गुरुकुल को अपना घर समझना चाहिए, अपनी बिरादरी के खराब रीति-रिवाजों को छोड़ कर, उनसे इस बारे में असंबन्धित होकर गुरुकुल के सब सेवकों का जैसा रीतिरिवाज, रहन सहन है उससे अपना सम्बन्ध जोड़ना चाहिए। हुक्का पीना भी छोड़ना चाहिए। ब्याह शादी में बहुत खर्च नहीं करना चाहिए। अपना काम कर्त्तव्य बुद्धि से ईमानदारी के साथ ठीक २ करना चाहिए। मिल कर ईश्वर-स्तुति के भजन गाने चाहिए, पढ़ना चाहिए। संस्कार करने चाहिएं। अपने कर्त्तव्य और अधिकार समझने चाहिएं। कोई भी मनुष्य जन्म से नीच नहीं है सब परमेश्वर के पुत्र हैं। यह अच्छी तरह से जान लेना चाहिए। अपने देश की हालत से परिचित होना चाहिए" इत्यादि।

यह जानते हुए भी कि उनको सुधारने के लिए ऐसे उपदेशों की अपेक्षा इनकी आर्थिक अवस्था सुधारना अधिक उचित उपाय है या कम से कम उपदेश के साथ २ ही उनकी आर्थिक अवस्था भी अवश्य सुधरनी चाहिए, मुझे उस समय यह हिम्मत तो नहीं हुई कि मैं उनका वेतन एकदम बढ़ाए जाने की सिफारिश करूँ और इसके लिए ऊपर यत्न करूँ। परन्तु कर्ज़ के कारण जो उनकी करुणाजनक स्थिति थी उससे उन्हें मुक्त करने का कुछ उपाय किए बिना मुझे चैन नहीं आया। अतः गत वर्ष ग्रीष्म ऋतु में हरिजनों के उत्तमर्णों को बुला २ कर मैंने समझाना शुरू किया। इन्हीं दिनों युक्त प्रान्त में कर्जे स्थगित करने का कानून भी बन रहा था अतः समझाने में सहायता मिली। परिणामस्वरूप बहुत से उत्तमर्ण यह मान गए कि यदि उन्हें असल रुपए का $\frac{3}{4}$ एक दम मिल जाए तो वे शेष सूद को भी छोड़ देंगे और हमारे सेवकों को ऋण मुक्त कर देंगे। तब मैंने कुछ परोपकारी मित्रों से बिना सूद रुपया लेकर अपने हरिजनों पर चढ़े हुए कुल १६६६) ऋण में से ८८८॥) इतना ऋण उतार दिया। अर्थात् ८८८॥) बिना सूद का ऋण अपने ऊपर ले लिया। इससे अधिक रुपया उनका कर्ज उतारने को उस समय नहीं मिल सका। अब गुरुकुल में पुनः आने पर १५०) वापिस हुए हरिजनों के रुपयों से तथा १६६) और मित्रों से बिना सूद दिए रुपयों से उनका ऋण और उतार दिया। और हरिजनों पर किसी बाहर के आदमी का ऋण अब केवल ढाई सौ रुपए के लगभग रह गया है।

अस्तु। अब इस बार पुनः गुरुकुल में आने पर अपने इन सफाई करने वाले सेवकों की वेतन वृद्धि भी करने का तथा उन्हें सुधारते हुए शीघ्र से शीघ्र गुरुकुल के वास्तविक अङ्गभूत बनाने का यत्न करने की इच्छा से जो योजना मैंने बनाई है और जो कुछ थोड़ा सा काम शुरू किया है उसे अन्त में पाठकों की सेवा में उपस्थित करता हूँ। सम्भव है इस दिशा में सेवा करने वाले अन्य कार्य कर्त्ताओं को इससे कुछ लाभ मिल सके।

१—किसी हरिजन का वेतन १५) से कम से नहीं शुरू होना चाहिए और २५) तक यदि वह ठीक काम करता रहे तो १) या २) प्रतिवर्ष वृद्धि करते हुए अवश्य पहुंचना चाहिए। लगभग ४) हरिजनों की पत्नियां परिवार गृहों में काम करके कमा लेती हैं, अतः ऐसा कहना चाहिए कि ११) से कम से किसी हरिजन का वेतन नहीं शुरु होना चाहिए।

अर्थात् जिनका वेतन ११) से कम है उनका ११) कर देना चाहिए। गुरुकुल में इससे कम वेतन वाले ८ में से दो हरिजन थे। उनका वेतन बढ़ाया गया है।

२--हरिजनों के सब बालकों को दुपहर के समय एक दो घण्टा पढ़ाने का स्थिर प्रबन्ध किया गया है। जो दो हरिजन स्वयं भी निरक्षर हैं उन्हें भी दुपहर के समय पढ़ने के लिए आना आवश्यक किया गया है।

३ -जो हरिजन ईमानदारी से काम करें, ठीक काम करें, सफाई से रहें, हुक्का पीना छोड़ें तथा अन्य प्रकार से अपना व्यवहार ठीक रक्खें उन्हें ही वेतन वृद्धि दी जावेगी, ऐसा बार २ समझाया गया है।

४—यह व्यवस्था की गई है कि हरिजनों को साल में दो बार गुरुकुल की तरफ से वर्दियां दी जायें, जिन्हें कि वे काम करते समय पहनें। एक वर्दी दिवाली पर और दूसरी गुरुकुल के जन्मोत्सव के अवसर पर बांटी जाए। इससे वे गुरुकुलीय जीवन से अपने आपको अधिक

संबद्ध समझने लगेंगे। और नकद रुपया देने की अपेक्षा वस्तुओं के रूप में देना वैसे भी अच्छा है।

५—गुरुकुल के हस्पताल में रात को एक २ सप्ताह तक एक २ हरिजन को स्नान का व्रत पूरा करना होता है। जिसका जिस सप्ताह व्रत हो उसको उस सप्ताह भोजन गुरुकुलीय भण्डार से मिल जाया करे यह सुविधा दी गई है।

६—हरिजनों के रहने की जगह में जो टीन के मकान हैं उन्हें शीघ्र से शीघ्र ईंटों के बनवा दिए जाएं। यह निश्चय कर लिया गया है।

७—इनका कर्जा चुक जाने के बाद इनके वेतन में से कुछ प्रतिमास काट कर इनके लिए रुपया जमा रखा जाए कि वह या उसका कुछ अंश इन्हें खास आवश्यकता के समय में एक दम दिया जा सके।

गुरुकुलीय राष्ट्र-प्रतिनिधि सभा

इस वर्ष की पार्ल्यामेंट (राष्ट्र प्रतिनिधि सभा) हर साल की अपेक्षा कुछ अनोखी थी। राष्ट्र प्रतिनिधि सभा का अधिवेशन इस वर्ष धुआं-धार तूफ़ानी कहा जा सकता है। वर्षा ऋतु में होने वाली इस वर्ष की पार्ल्यामेंट में कुल वासियों ने खूब दिलचस्पी से भाग लिया था।

गुरुकुलवासियों की पार्ल्यामेंट ८, ९, १० जुलाई को हुई थी। प्रो० वेदव्रत जी वेदलंकार पार्ल्यामेंट के स्पीकर (सभापति) थे। अग्रगामी दल के नेता ब्र० ब्रह्मदत्त प्रधान मन्त्री थे। अग्रगामी दल की ओर से 'भारतीय उद्योग विधान' का मसविदा उपस्थित किया गया था जो कि प्रथम निर्वाचन में ही ५०-४२ बहुमत से गिर गया था। जिसके परिणाम स्वरूप अग्रगामी दल के मन्त्री-मण्डल की जगह विरोधी दल के नेता ब्र० वासुदेव ने आर्य दल का मन्त्री-मण्डल बनाया। पार्ल्यामेंट के प्रथम दिन ब्र० रामदेव की ओर से 'विद्यार्थी-भोजन विधान' का गैर सरकारी मसविदा उपस्थित किया गया था जो कि सिलेक्ट-कमेटी तथा खुले अधिवेशन में भारी बहुमत से पास किया गया।

पार्ल्यामेंट की समाप्ति से पहले स्वतन्त्र दल के नेता ब्र० लेखराज की ओर से आर्य दल के मन्त्री मण्डल में अविश्वास का प्रस्ताव उपस्थित किया गया जो कि गरमागरम बहस के बाद १ के बहुमत से पास हो गया। अग्रगामी दल ने आर्य दल का साथ दिया था। स्वतन्त्र दल को ३८ वोट मिले थे और आर्य दल तथा अग्रगामी दल को मिलाकर ३७ वोट। स्वतन्त्र दल को मन्त्री मण्डल बनाने का अवसर दिया गया। ब्र० लेखराज प्रधान मन्त्री हुए।

इस वर्ष की पार्ल्यामेंट तूफ़ानी वातावरण में हुई थी, यही कारण था कि कोई भी स्थायी मन्त्री मण्डल इस साल न था। इस वर्ष का सर्वश्रेष्ठ वक्ता तथा व्यवस्थापक का प्रथम पदक श्री देवेन्द्र कुमार द्वादश को दिया गया। मान्य उपाध्यायों ने भी इस वर्ष बहुत बड़ा भाग लिया। श्री शास्त्री दीनदयालु जी, श्री उपाध्याय सुखदेव जी, श्री उपाध्याय विश्वनाथ जी, श्री उपाध्याय वागीश्वर जी, श्री डा० सत्यपालजी आदि ने शुरू से अन्त तक भाग लिया।

मन्त्री—साहित्य परिषद्

आयुर्वेद की अपार क्षति
गुरुकुल कांगड़ी में शोक सभा

गुरुकुल कांगड़ी १२ जुलाई—

आयुर्वेद के प्रसिद्ध विद्वान्, अनेक प्रतिष्ठित वैद्यों के सम्माननीय गुरु जयपुर निवासी श्री स्वामी लक्ष्मीराम जी आयुर्वेदाचार्य के आकस्मिक देहावसान की खबर सुन गुरुकुल आयुर्वेद महाविद्यालय में एक दम शोक छा गया। शीघ्र ही स्वामी जी के प्रति श्रद्धाञ्जलि तथा शोक प्रकट करने के लिए श्री स्वामी अभयदेव जी के सभापतित्व में शोक सभा का आयोजन किया गया, जिसमें आयुर्वेद महाविद्यालय के अध्यक्ष पं० धर्मदत्त जी ने इनके जीवन का परिचय कराते हुए उनके प्रति अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित की तथा उन्हें भारत के सर्वोच्च वैद्यों में से एक बताया। सभा की समाप्ति पर निम्न प्रस्ताव सर्व सम्मति से स्वीकृत हुआ।

"गुरुकुल वासियों की यह सभा आयुर्वेद के प्रसिद्ध विद्वान् श्री पूज्य स्वामी लक्ष्मीराम जी आयुर्वेदाचार्य के आकस्मिक देहावसान पर हार्दिक शोक प्रकट करती है। आपकी आयुर्वेद सम्बन्धी सेवाएं अमूल्य थीं। आपके देहान्त से आयुर्वेद-जगत् को भारी हानि पहुंची है। यह कुल सभा उनके सन्तप्त परिवार से सहानुभूति प्रकट करती हुई, दिवंगत आत्मा तथा उनके परिवार के सदस्यों की आत्मा की शान्ति के लिए मङ्गलमय भगवान् से प्रार्थना करती है"

सत्यव्रत

मुख्याधिष्ठाता, गुरुकुल कांगड़ी

संरक्षक भाइयों से निवेदन

प्यारे संरक्षक भाइयो, आपको यह पता है कि पिछले नौ सालों से गुरुकुल के ब्रह्मचारियों के रहन सहन पठन-पाठन स्वास्थ्य अथवा अन्य सर्व प्रकार की सुव्यवस्था के लिये गुरुकुल संरक्षक सभा बनी हुई है और हर एक संरक्षक उसका मेम्बर है। इस सभा का कार्य सम्पादनार्थ प्रत्येक संरक्षक से एक रुपया वार्षिक लेना नियत किया गया था। अब संरक्षक सभा ने यह पास किया है कि यह एक रुपया वार्षिक चन्दा शुल्क निधि के साथ गुरुकुल द्वारा आप लोगों से लिया जाया करे। इसलिए कृपा करके शुल्क के साथ ही एक रुपया गुरुकुल द्वारा देने की कृपा करें। यह अत्यावश्यक है।

आपके शुभचिन्तकः—
दौलतराम।
मन्त्री संरक्षक सभा-
सुलतानपुर लोधी
(कपूर्थला) पंजाब॥

संरक्षक-सभा गुरुकुल कांगड़ी का नवम अधिवेशन गुरुकुल के उत्सव पर १ अप्रैल को हुआ था और निम्न

निम्लिन अधिकारी चुने गये।

ला० छज्जूराम जी 'सिल्वरटन' डाकखाना महिम-बम्बई प्रधान

पं० रामकुमार जी [ओवरसीयर]

हवेली लखां जि० मिन्टगुमरी एकटिंग प्रधान

ला० कुलदीप चन्द जी अग्रवाल

प्रधान आर्यसमाज पठानकोट उपप्रधान

म० लक्ष्मण सिंह जी-मुलाना

डा० मगलौर, जिला सहारनपुर उपप्रधान

दौलतराम बी० ए० वकील

सुलतानपुर लोधी [कपूर्थला] मन्त्री

निवेदकः — दौलतराम मन्त्री

संरक्षक सभा.

गुरुकुल समाचार

ऋतु उत्तम है। विद्यालय तथा महाविद्यालय की पढ़ाइयां नियम पूर्वक हो रही हैं। महाविद्यालय के चारों श्रेणियों की षाणमासिक परीक्षा १२ अगस्त से प्रारम्भ होगी। दीर्घावकाश २१ अगस्त से प्रारम्भ होकर २५ अक्टूबर तक रहेगा। इस प्रकार विजय दशमी की छुट्टियों के बाद दूसरा सत्र प्रारम्भ होगा। सरस्वती यात्रा के लिये ब्रह्मचारियों के दल तैयार हो रहे हैं। क्वैटा, काश्मीर, नेपाल, दार्जिलिंग जाने के लिये पार्टियां तैय्यार हो रही हैं। बीच-बीच के ऐतिहासिक स्थानों के देखने के लिये ब्रह्मचारी प्रोफेसरों से जानकारी प्राप्त कर रहे हैं।

स्वास्थ्य समाचार

ब्र० कर्मेन्द्र १ श्रेणी विषमज्वर, ब्र० कर्मवीर ५ श्रेणी विषमज्वर ब्र० देवेन्द्र (हैदराबाद) ३ श्रेणी विषमज्वर, ब्र० गुरुदेव ५ श्रेणी विषम ज्वर, ब्र० लाजपत ३ श्रेणी विषम ज्वर ब्र० वेदभूषण ३ श्रेणी विषम ज्वर, ब्र० वेदप्रकाश २ श्रेणी विषम ज्वर, ब्र० भूमित्र ४ श्रेणी मोच, ब्र० धर्मपाल ११ श्रेणी अर्शरोग।

गत सप्ताह उपरोक्त ब्र० रोगी हुए थे। परन्तु अब सब स्वस्थ हैं। ब्र० धर्मपाल को बवासीर की शिकायत थी। जिसका operation हुआ है। ब्र० अब ठीक है। गत दो सप्ताह से वर्षा न होने से बड़ी गर्मी होगई है। आजकल अधिकतम तापमान १०० अंश रहता है।

गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ

ग्रेड मास के ग्रीष्मावकाश के पश्चात् गुरुकुल विद्यालय नियमित रूप से २४ आषाढ़ १६ को खुल गया है। आश्रम की पढ़ाई के सब कार्य नियमपूर्वक आरम्भ हो गए हैं। ऋतु अच्छी है परन्तु वर्षा के अभाव का अनुभव किया जा रहा है।

चिकित्सालय में यशपाल ७म टाईफाइड से रोगी है परन्तु अब उसका ज्वर उतर रहा है और शेष सब स्वस्थ हैं।

ग्रीष्मावकाश के बीच श्री म० कृष्णजी उपप्रधान आर्यप्रतिनिधि सभा (छठे सर्वाधिकारी आर्य सत्याग्रह हैदराबाद) को देहली के स्वागत में २०१) की थैली भेंट की गई और आर्यसमाज के तपस्वी विद्वान् महोपदेशक श्री प० बुद्धदेव जी को उनके हैदराबाद सत्याग्रह जाने के स्वागत में १०१) की थैली भेंट की गई। गुरुकुल के ब्रह्मचारियों तथा कर्मचारियों में सत्याग्रह के लिए विशेष उत्साह है।

गुरुकुल कुरुक्षेत्र

श्री पं० बुद्धदेव जी को १०१) की थैली—

ऋतु बहुत उत्तम है, सब ब्रह्मचारी स्वस्थ एवं सानन्द हैं। पढ़ाई नियम पूर्वक हो रही है। पिछले दिनों श्री पं० बुद्धदेव जी विद्यालङ्कार हैदराबाद सत्याग्रह के दौरे पर करनाल पधारे। उनके स्वागत के लिए २० ब्रह्मचारी गये। बड़े उत्साह के साथ पण्डित जी का जलूस निकाला गया। सभा में ब्रह्मचारियों ने मान पत्र पढ़ा और ५१) की थैली भेंट की। श्री पं० सोमदत्त जी मुख्याधिष्ठाता जी ने भी ५१) की थैली आर्यसमाज कुरुक्षेत्र की तरफ से भेंट की। सभा में भिन्न भिन्न संस्थाओं की ओर से आपको ६ मानपत्र तथा आर्यसमाज करनाल की ओर से ५००) भेंट किए गए।

ब्रह्मचारियों की षाण्मासिक परीक्षा २२ जुलाई से शुरू होगी। १ अगस्त को छोटे ब्रह्मचारी पहाड़ पहाड़ को तथा बड़े काश्मीर को यात्रार्थ रवाना होंगे।

गुरुकुल सूपा

बहुत दिनों की लम्बी प्रतीक्षा के बाद मेघराज ने अब कृपा की है। दो तीन दिन हुए वर्षा की झड़ियां लग गई हैं। चहुं ओर की भूमि हरी भरी नजर आती है। सर्वत्र खेतों में बीजारोपण हो रहा है। गुरुकुल के घाट पर अब नाव आगई है।

हैदराबाद सत्याग्रह के ७वें सर्वाधिकारी श्री ज्ञानेन्द्रजी सिद्धान्त भूषण को जोकि गुजरात के प्रसिद्ध नेता हैं गुरुकुल की ओर से विदाई के समय एक मानपत्र और ३५०) की थैली समर्पित की गई थी।

गत सप्ताह बाल शिक्षण के आदि पिता श्री गिजूभाई का और गुजरात के प्रसिद्ध पत्रकार श्री कन्हैयालाल कोठारी के दुःखद अवसान पर शोक सभा हुई और उसमें मृत आत्मा की शान्ति और सम्बन्धियों को दुःख सहन करने की शक्ति के निमित्त प्रार्थना की गई।

ब्रह्मचारियों को बाहरी दुनिया का परिचय कराने के लिए और संसार के विविध समाचारों का ज्ञान कराने के लिए प्रातः प्रार्थना के बाद दैनिक समाचार सुनाए जाते हैं। इससे विद्यार्थियों का व्यावहारिक एवं राजनैतिक ज्ञान बढ़ेगा ऐसी आशा है।

पढ़ाइयाँ नियमपूर्वक चल रही हैं। दीर्घावकाश से सभी ब्रह्मचारी आ चुके हैं। आश्रम तथा विद्यालय का कार्य नियमानुसार हो रहा है। ब्रह्मचारी स्वस्थ और प्रसन्न हैं।

चौधरी दूलासराय के प्रबन्ध से गुरुकुल प्रेस गुरुकुल कांगड़ी में मुद्रित तथा प्रकाशित।

* ओ३म् *

"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत"

Reg. No. A 2927

गुरुकुल

सम्पादक - साहित्यरत्न पं० हरिवंश वेदालङ्कार

एक प्रति का मूल्य -) [गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख-पत्र] वार्षिक मूल्य २॥)

वर्ष ४] गुरुकुल कांगड़ी, शुक्रवार ६ श्रावण १९९६, २८ जौलाई १९३९ [संख्या १२

सत्याग्रही का स्वाध्याय

(श्री आचार्य अभयदेव जी)

[ये अङ्क इस लिए दिये जा रहे हैं [illegible] कि यदि हम [illegible] सत्याग्रही [illegible] सकते हैं।

अमृतबिन्दु —अभय]

(१)

भगवान् के विस्तृत बाहुओं में आश्रय ग्रहण कर लेने से सब कठिनाइयां हल हो जाती हैं। कारण, उसके बाहु प्रेम से सदा हमें अपनी शरण में ले लेने के लिए सदा खुले हुए हैं॥

(२)

भगवान् की ओर अभिमुख होओ, तुम्हारे सब दुःख-दर्द विलीन हो जाएँगे।

यह भगवान् के चरणों में सच्चे भाव से अपने आपको अर्पित कर देना है, जिससे कि हम अपने अनगिनत मानवीय दुःखदर्दों से छुटकारा पा सकते हैं॥

(३)

शान्ति असीम होनी चाहिए, अत्यन्त ही गहरी और प्रशान्त इसी तरह स्थिरता अविचल होना चाहिए और भगवान् में भरोसा नित्य बढ़ने वाला॥

(४)

भगवान् के प्रति कृतज्ञता प्रकाशित करने का इससे अधिक अच्छा और कोई तरीका नहीं कि चुपचाप आनन्दमग्न रहा जाय॥

(५)

उसे सदा प्रसन्नता पूर्वक स्वीकार करो जो कुछ तुम्हें भगवान् की ओर से दिया जाता है॥

(६)

ओ प्रभो! यह जो भी कुछ है और जो भी कुछ आगे होगा, उस सब की गहराई में तेरी दिव्य और एकरस मुस्कराहट विद्यमान है॥

(७)

एक मुस्कराहट का कठिनाइयों पर वही असर होता है, जो कि सूर्य का बादलों पर—वे उन्हें छिन्न भिन्न कर देते हैं॥

(८)

अपने सुख के लिए चिन्ताशील होना दुःखी होने का निश्चिततम उपाय है॥

(९)

सुख जीवन का लक्ष्य नहीं है। साधारण जीवन का उद्देश्य अपने कर्त्तव्य को पूरा करना है। आध्यात्मिक-जीवन का लक्ष्य परमात्मा को प्राप्त करना है॥

(१०)

निरन्तर सुख का जो स्थान है वह अन्तरात्मा में है॥

(११)

इस पार्थिव प्राणी के अन्दर कुछ भी नित्य व स्थिर नहीं है, सिवाय अन्तरात्मा के॥

(१२)

यदि हम सचमुच भगवान् से प्रेम करना है, तो हमें आसक्तियों से ऊपर उठ जाना होगा॥

(१३)

केवल भगवान् का चिन्तन रखो तो भगवान् तुम्हारे साथ हो जायेंगे॥

(१४)

हमारा सम्पूर्ण ही जीवन भगवान् के प्रति की गई प्रार्थनारूप होना चाहिए॥

(१५)

एकमात्र भगवत्कृपा पर ही आश्रित रहना, और सभी परिस्थितियों में इसकी सहायता का आवाहन करना, यह हमें सीखना होगा तब यह निरन्तर चमत्कार दिखलायेगा॥

(१६)

हमारा भगवान् में जितना भरोसा है, उसके ही अनुपात में भगवत्कृपा हमारे लिए काम कर सकती और सहायता पहुँचा सकती है॥

(१७)

कामना को तृप्त कर लेने की अपेक्षा कामना पर विजय पा लेना कहीं अधिक सुखदायक है॥

(१८)

उस बात से बचने के लिए हमें बहुत ही सावधान रहना चाहिए, जो हमारे अन्दर दिखाने के भाव को प्रोत्साहन दे सकती हो ॥

(१९)

सच्चे साहस में न तो अधीरता ही होती है, न ज़ल्दबाज़ी ॥

(२०)

बिना जल्दी मचाये हम आगे आगे चल रहे हैं। कारण हम अपने भविष्य के बारे में सुनिश्चित हैं ॥

(२१)

जो प्रतीक्षा करना जानता है, वह कालदेव को अपने पक्ष में रखता है ॥

(२२)

मनुष्य उस ही के समान होता जाता है, जिससे कि वह प्रेम करता है ॥

(२३)

हम सदा उन वस्तुओं से घिरे रहते हैं जिनका हम चिन्तन करते हैं ॥

हैदराबाद सत्याग्रह व गुरुकुल

आर्य समाज का जन्म धार्मिक व सामाजिक सुधारणा के लिए हुआ था। आर्य समाज का छोटा सा जीवन सुधार, प्रचार और संघर्ष का रहा है। सुधारक किसी विरोध के लिए ही जन्म लेता है और इसी लिए जीता है, मरता है भी तो केवल सुधार में आई हुई बाधाओं दिक्कतों का विरोध करने के लिए। विभिन्न कुरीतियों को दूर करने के लिए शास्त्रार्थ करने के कारण असहिष्णु कह कर आर्य समाज को बदनाम भी किया जाता रहा है। विभिन्न समाज सुधार आन्दोलनों का प्रवर्तक होने का सेहरा भी इसके सिर पर बान्धा गया है। आर्यसमाज कुरीतियों का विरोधी है चाहे वे धार्मिक हों या सामाजिक हों, अथवा पूर्णतया राजनैतिक प्रतिबन्ध के कारण पैदा हुई हों। अब तक आर्य समाज को सामाजिक व धार्मिक सुधारों में ही व्यस्त रहना पड़ा है, सौभाग्य से आर्य समाज को अब अपने जन्म सिद्ध धार्मिक अधिकारों की प्राप्ति के लिए अब एक राजनैतिक शक्ति से भी टक्कर लेना पड़ा है। इस से पहले भी धार्मिक अधिकारों की प्राप्ति के लिए राजकीय शक्ति से आर्यसमाज को टक्कर लेनी पड़ी थी पर वह बहुत छोटे पैमाने पर।

हैदराबाद सत्याग्रह से आर्य समाज के जीवन का एक नया अध्याय प्रारम्भ होता है। १९ वीं सदी के धर्मान्ध शासकों के अन्यायपूर्ण धार्मिक अत्याचारों की पुनरावृत्ति करने के लिए ही धार्मिक सहिष्णुता के सिद्धान्त में विश्वास रखने वाली इस बीसवीं शताब्दी में भी हैदराबाद राज्य में आज धार्मिक असहिष्णुता का वातावरण तैय्यार किया गया है। प्रजा के धर्म को ठुकराकर राजा के धर्म को महत्ता दी गयी है। इतना ही होता तो भी गनीमत थी। प्रजा के धर्म पर राजकीय कर्मचारियों द्वारा अन्यायपूर्ण प्रतिबन्ध लगाये जाते हैं। परमेश्वर की उपासना भी राज्य से इजाजत लेकर हो सकती है। परमेश्वर का प्रतीक झण्डा बिना भौतिक अधीश्वर की स्वीकृति के फहरा नहीं सकता। आर्यसमाज को आर्यसमाज रूप में रह कर रियासत हैदराबाद में जीने की स्वाधीनता नहीं है।

आर्यसमाज इन अन्यायपूर्ण प्रतिबन्धों को हटाने के लिए लगातार ६ वर्ष तक सब तरह के शान्तिमय उपाय बरत चुकी है। नम्रता से भरे आवेदनपत्र मनुष्यता के नाम पर अपील, लम्बी २ सुलह शान्ति की सन्धि-चर्चाएं सब कुछ असफल हुए।

× × ×

शोलापुर कांफ्रेंस के ऐतिहासिक निर्णय को भी जब निजाम की न्यायशील सरकार ने ठुकरा दिया उस समय आर्यसमाज का सिवाय सत्याग्रह के और कोई अन्य शान्तिमय उपाय न था। अन्त में इसका अवलम्ब लेकर एक दिन आर्यसमाज के वीतराग सन्यासी महात्मा नारायण स्वामी जी ने रणभेरी बजा दी। उस समय इस तपस्वी महात्मा के पास धन, जन का कोई भी बल न था, कोई आशा की किरण थी तो वह यही थी कि आर्यसमाज में जीवन था। आन पर मर मिटने की प्रतिज्ञा थी। तपस्वी के २२ जनवरी वाले इस तेजस्वी आह्वान को सुनकर समस्त आर्यजनता में बिजली सी कौंध गई। सर्वत्र उत्तेजना व आश्रय का वातावरण दीख पड़ता था। हां उस समय आर्यजगत् चौंक सा उठा, सबका ध्यान शोलापुर के उस वीर मन्त्र की ओर लग गया। आर्यसमाज अपने नेता को उत्तर क्रियात्मक रूप में देने के लिए तैयार था। पर नेता, आर्यसमाज का वृद्ध अनुभवी नेता, समग्र विश्व में फैले हुए आर्यसामाजिकों से कोई मांग पूरा न करवाना चाहता था, वह सत्याग्रह की पहली बलि कुछ पवित्र अनूठी ही चाहता था। सेनापति को हजारों की सन्नद्ध आर्यसामाजिक सेना में श्रीगणेश करने वाला धर्म में अनन्य निष्ठा वाला एक परखा हुआ दल चाहिए था।

सर्वत्र दृष्टि डालने पर वीर सेनानी की भागीरथी के पवित्र तट पर महामहिम हिमालय के आंचल में बसे एक कुल पर जिसे कि उसी की तरह के एक वृद्ध वीतराग सन्यासी ने बसाया था कुछ आशा बंधी। उसने क्रान्तिकारी कुलपिता अमर शहीद स्वामी श्रद्धानन्द के पवित्र हाथों से संस्थापित गुरुकुल कांगड़ी से खून की प्रथम आहुति मांगी।

× × × ×

गुरुकुल कांगड़ी धर्म में निष्ठा रखने वाली एक राष्ट्रीय संस्था है। इसके अमर संस्थापकों ने इसकी स्थापना कुछ स्वप्नों को चरितार्थ करने के लिए ही की थी। इस महान् संस्था से निकले स्नातकों से आशा की जाती है

कि वे देश व धर्म के लिए सत्य मार्ग का अवलम्बन करते हुए पुरातन भारतीय पुरखाओं के आदर्शों को एक बार फिर जगाएंगे। गुरुकुल की सफलता तथा असफलता का आंकना तथा निर्णय करना सत्य समालोचकों पर है, उससे हमें कोई वास्ता नहीं।

गुरुकुल को जब निमन्त्रण मिला, पूछा गया इस आह्वान का उत्तर देने के लिए कितने कुलपुत्र तैयार हैं। मालूम पड़ा एक बड़ा भारी हिस्सा इस मांग का उत्तर देने के लिए तैयार है। पर नहीं, सेनानी को केवल १५ चुने हुए सैनिकों की आवश्यकता थी। १५ वीर चुन लिये गये और बिना किसी विज्ञापन के महात्मा नारायणस्वामी जी के आदेशानुसार सीधे हैदराबाद भेज दिए गए। यह गुरुकुल की सत्याग्रह में प्रथम मूक पर शानदार आहुति थी। इसके बाद तो आर्य जगत् में सत्याग्रह के लिए अपार जोश उमड़ा पड़ता था, प्रबन्धकों को इस तरह बढ़ी हुई उत्सुकता को विभिन्न प्रतिबन्धों द्वारा रोकना पड़ा। इस समय तक सत्याग्रह में ११ हजार के लगभग वीर आर्य सत्याग्रही योद्धा जा चुके हैं। ऋषि दयानन्द को गुरु मानने वाले प्रत्येक आर्य सामाजिक का इस आड़े समय में कर्तव्य था कि वह आगे बढ़े। इस में कितने ज्यादह भाग लिया किसने कम यह प्रश्न कोई ज्यादह महत्व नहीं रखता। फिर भी आर्य-जनता इस गुरुकुल से कुछ आशा रखती थी। आर्य जनता की इस आशा का कुल ने अभी तक अच्छी प्रकार से उत्तर दिया है।

पण्डित बुद्धदेव जी आर्य सत्याग्रह में कोई सर्वाधिकारी पद पर आसीन व्यक्ति न थे। यह होते हुए भी पंजाब, दिल्ली, युक्तप्रान्त मध्यभारत में जैसा शानदार स्वागत इस वीर को प्राप्त हुआ उसके लिये कई राजा भी तरसते होंगे। पण्डित बुद्धदेव जी सर्वाधिकारी न होते हुए भी सर्वाधिकारी की शान से गए।

और आज तो आर्य सत्याग्रह का आठवां सर्वाधिकारी एक स्नातक ही है जिस कि आज प्रत्येक आर्य बच्चा जानता है। बैरिस्टर विनायक राव जी विद्यालंकार को कौन नहीं जानता।

पण्डित चन्द्रमणि जी वेदों के प्रसिद्ध विद्वान हैं। उनके पाली तथा संस्कृत के अगाध ज्ञान की धाक को हर कोई स्वीकार करता है। सत्याग्रह के बिल्कुल प्रारम्भ में बिलकुल शान्त रूप से सत्याग्रह करने वाले पण्डित चन्द्रमणि जी की आहुति आर्य सत्याग्रह की पवित्रतम आहुतियों में से एक है।

गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी के स्नातक अर्थशास्त्र के उपाध्याय पण्डित केशवदेव जी अत्यन्त सादे तथा शान्त विद्वान थे। आप एक रात्रि को किसी को खबर तक दिए बिना ही पण्डित अनन्तानन्द जी आयुर्वेदालंकार के साथ आर्य सत्याग्रह में चले गये। इस आहुति को क्या नाम दिया जाए, पुण्य या शान्त।

पण्डित सत्यानन्द जी विद्यालंकार, पण्डित केशवदेवजी वेदालंकार पंजाब आदि बहुत से स्नातक चुपचाप आर्य सत्याग्रह में भाग लेते हुए कृष्ण मन्दिर में चक्कियां पीस रहे हैं।

पण्डित क्षेमपाल जी वेदालंकार, पण्डित धीरेन्द्र जी विद्यालंकार, पण्डित अनन्तानन्द जी आयुर्वेदालंकार जो कि इसी वर्ष स्नातक हुए हैं, भविष्य के निश्चित मार्ग को छोड़ते हुए आज जेलों की कोठरियों में बन्द हैं। यह भी आर्य सत्याग्रह की कुछ पवित्रतम आहुतियों में से एक है।

इसके अतिरिक्त विभिन्न स्नातक जैसे पण्डित धर्मवीर जी, पण्डित चन्द्रगुप्त जी, पण्डित जगन्नाथ जी पण्डित धर्मदेव जी बिलकुल शान्त भाव से सत्याग्रह के लिये मैदान तैयार कर रहे हैं तथा निम्न १४ विद्यार्थी अपने विद्याध्ययन काल में ही अपने कर्तव्य का स्मरण कर सत्याग्रह के लिये चले गए—सर्व श्री ब्र० विद्यासागर, ब्र० इन्द्रसेन, ब्र० देवराज, ब्र० सत्येन्द्र, ब्र० ओम्प्रकाश ब्र० उदयवीर, ब्र० सतीशकुमार, ब्र० रामनाथ, ब्र० विजय कुमार, ब्र० मनोहर, ब्र० विद्यारत्न, ब्र० विश्वमित्र, ब्र० सुरेन्द्र, ब्र० चन्द्रगुप्त। साथ ही लगभग १ दर्जन गुरुकुल में आधेपढ़े हुए विद्यार्थी भी सत्याग्रह में भाग ले जेलों में गए हैं। गुरुकुल के बड़ी कक्षाओं के विद्यार्थी इस वर्ष की छुट्टियां आर्य सत्याग्रह में ही लगाने का निश्चय कर रहे हैं। एक शिक्षा संस्था की इस कृति को बलिदान कहना चाहिये या केवलमात्र कर्तव्य पूर्ति।

'श्री नरेन्द्र'

राजनीति में कहानी

(ले० श्री पं० हरिदत्त जी वेदालंकार)

अत्यन्त प्राचीन काल से, पूर्व में और पश्चिम में, राजनैतिक शिक्षा और प्रचार के लिये कथाओं का आश्रय लिया जाता रहा है। सुदूर भूतकाल में, भारतवर्ष में जब महिलारोप्य नगरी का राजा अपने पुत्रों की मूर्खता से दुःखी होकर निःसन्तान रहना अच्छा समझ रहा था तो ८० वर्ष के बूढ़े पण्डितमण्डली के शिरोमणि श्री विष्णुशर्मा ने यह सिंहनाद किया था 'यद्यहं षण्मासाभ्यन्तरे तवपुत्रान्नयशास्त्र प्रत्यनन्यसदृशान् करिष्यामि ततोनार्हति देवो देवमार्गं सन्दर्शयितुम्।" पञ्चतन्त्र के पढ़ने वाले जानते हैं कि यह भीष्मप्रतीज्ञा पूरी हुई। वे राजपुत्र नियत अवधि में राजनीति के प्रवीण पण्डित हो गये। निःसन्देह, यह एक चमत्कार था किन्तु यह चमत्कार कथाओं की सहायता से ही सम्पन्न हो सका। करटक और दमनक भले ही कहानी में शृगाल रहे हों किन्तु उनकी नीतिज्ञता चाणक्य और टेलीरेण्ड से किसी कदर कम नहीं है। भले ही राजपुत्र कौटिल्य अर्थशास्त्र पढ़ने में असमर्थ रहे हों, पर विष्णुशर्मा ने मित्रभेद से उन्हें दो अन्तरंग मित्रों को फोड़ने के वही तरीके बता दिये जो उक्त ग्रन्थ में वर्णित हैं। राजनीति में मित्र प्राप्त करने की समस्या बहुत जटिल है। आज भी ब्रिटेन और फ्रांस मित्रों की तलाश में हैं। गतमहायुद्ध मित्रदल

[शेष पृष्ठ ५ पर]

गु रु कु ल

६ श्रावण शुक्रवार १९९६

जिनके ब्रह्मचारी—
आयुर्वेद महाविद्यालय में
पढ़ते हैं उन संरक्षकों की सेवा में—

(श्री आचार्य अभयदेव जी)

गुरुकुल के आयुर्वेद महाविद्यालय को उन्नत करने के लिये कई प्रकार के विशेष प्रयत्न किये गये हैं। इस सिल सिले में विद्यासभा ने गत उत्सव के अवसर पर हुये अपने अधिवेशन में कुछ महत्वपूर्ण निश्चय किये हैं। यह ठीक है कि ये सब निश्चय कई अनिवार्य कठिनाइयों के कारण पूरे तौर पर अभी तक अमल में नहीं लाये जा सके हैं, और इसलिए गुरुकुल के आयुर्वेद महाविद्यालय को जैसा हम देखना चाहते हैं उससे यह अभी दूर है तो भी उधर यत्न लगातार जारी है। और इस दिशा में सब संरक्षक महोदयों का भी हमें पूरा सहयोग करना चाहिए। उन निश्चयों में से एक निश्चय उन सब संरक्षक महानुभावों से संबन्ध रखता है जिनके ब्रह्मचारी गुरुकुल के आयुर्वेद महाविद्यालय में पढ़ते हैं। वह निश्चय प्रतिमास ५) का अतिरिक्त व्यय देने का है। यह ५) मासिक का अतिरिक्त व्यय क्यों लिया जाता है? इससे क्या लाभ? इत्यादि कई प्रश्न कुछ संरक्षकों की तरफ से पूछे गये हैं। इसी बात को स्पष्ट करने के लिए यह निवेदन प्रकाशित किया जा रहा है।

आयुर्वेद महाविद्यालय की शिक्षा में क्रियात्मक शिक्षा की बहुत अधिक महत्ता है। क्रियात्मक शिक्षा में कमी होने पर आयुर्वेद जैसी शिक्षा निष्फल हो जाती है। परन्तु क्रियात्मक शिक्षा विशेष व्यय साध्य है। अतः आयुर्वेद के ब्रह्मचारियों की तरफ से भी यह इच्छा प्रकट की गई थी कि चाहे हम से इसका व्यय ले लिया जावे पर क्रियात्मक का प्रबन्ध अच्छा हो जावे। इसलिए जहां आयुर्वेद महाविद्यालय की उन्नति के लिए चार वर्ष की जगह पांच वर्ष का पाठ्यक्रम होना आदि कई अन्य नवीनतायें की गई हैं वहां क्रियात्मक के लिए ५) मासिक का अतिरिक्त व्यय का लिया जाना भी निश्चय किया गया है। लग-भग ५५ विद्यार्थियों के इस ५) मासिक के अतिरिक्त शुल्क से जो आय होगी वह आयुर्वेद महाविद्यालय के बजट में दिखाई गई है। और व्यय में एक उपाध्याय की वृद्धि तथा क्रियात्मक के सामान में वृद्धि दिखाई गई है। क्रियात्मक दृष्टि से बाहर के चिकित्सालय (श्रद्धानन्द सेवाश्रम) का अच्छा होना, वहाँ रोगियों का अधिक संख्या में आना और रहना ब्रह्मचारियों के सीखने के लिए सबसे अधिक आवश्यक हैं। इसलिये इस अतिरिक्त शुल्क द्वारा पहला प्रबन्ध तो यह किया है कि इस चिकित्सालय के लिए एक पृथक् डाक्टर रख लिए गये हैं। पहले इस चिकित्सालय में कोई जुदा डाक्टर नहीं होते थे। इस नये प्रबन्ध के द्वारा श्रद्धानन्द सेवाश्रम पहले की अपेक्षा स्पष्टतया उन्नत दशा में है। इस अतिरिक्त व्यय का दूसरा उपयोग यह किया जा रहा है कि शरीर विकृति विज्ञान (pathology) की प्रयोग शाला में लगभग १ हजार रुपये का नया सामान मंगवाया गया है, जिससे कि इस दिशा में क्रियात्मक ज्ञान के प्रबन्ध की जो बड़ी भारी कमी अनुभव की जा रही थी वह पूरी हो जायगी। इस तरह से आयुर्वेद के ब्रह्मचारियों से अतिरिक्त लिये गये शुल्क का अच्छे से अच्छा उपयोग किया गया है। अतः आशा है इस विषय में अब कोई भ्रम किन्हीं संरक्षक महानुभाव को नहीं रहेगा। और वे ५) मासिक का अतिरिक्त व्यय नियम पूर्वक गुरुकुल को भेजते रहेंगे जिससे कि आयुर्वेद महाविद्यालय की उन्नति में उनकी तरफ से किसी कर्तव्य के न पालन होने के कारण से कमी न हो।

इसके साथ ही यह भी स्पष्टतया विदित होना चाहिये कि ५) मासिक का अतिरिक्त शुल्क सभी आयुर्वेद के ब्रह्मचारियों के लिये है। जिन्होंने अपने बालक अस्थिर छात्रवृत्ति पर अर्थात् २२००) रुपये इकट्ठा देकर गुरुकुल में प्रवेश कराया है उनके लिये भी यह अतिरिक्त व्यय उसी तरह से लागू है जैसे २२) मासिक शुल्क देने वालों के लिए। और इसका औचित्य भी स्पष्ट है। क्योंकि मासिक शुल्क के स्थान पर ही इकट्ठी छात्रवृत्ति देकर विद्यार्थी को प्रविष्ट कराने का नियम बनाया गया है। बल्कि विद्यासभा ने तो यह भी निश्चय किया है कि इस प्रकार की छात्रवृत्ति वाले विद्यार्थी अन्यों की तरह १४ वर्ष तक ही इस छात्रवृत्ति से शिक्षा पा सकेंगे। अतः अब आयुर्वेद महाविद्यालय का पाठ्यक्रम एक वर्ष अधिक होने के कारण यदि उनमें से किसी को उस ५ वें वर्ष (अर्थात् १५ वें वर्ष) गुरुकुल आयुर्वेद महाविद्यालय में शिक्षा पानी होगी तो उसके लिये अन्यों की तरह २२+५ अर्थात् २७) मासिक शुल्क उस वर्ष और देना होगा। आशा है आयुर्वेद महाविद्यालय के ब्रह्मचारियों के संरक्षक-गण इससे सूचित रहेंगे और इस अतिरिक्त व्यय को देने के लिये यथोचित प्रबन्ध रखेंगे।

प्रान्तीय सरकारों द्वारा स्नातकों की नियुक्ति—

हर्ष का विषय है कि संयुक्त प्रान्त, बम्बई तथा बड़ौदा की सरकारों द्वारा ग्रामों की सेवा के लिए खुले हुये चिकित्सालयों में गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी के आयुर्वेद महाविद्यालय से पढ़े हुये अनेक स्नातक इन चिकित्सालयों में सेवाकार्य के लिए नियुक्त हुये हैं उनकी संख्या इस प्रकार है। संयुक्त प्रान्त में ३, बम्बई में ३ और बड़ौदा स्टेट में १।

[पृष्ठ ३ का शेष]

ने ही जीता था। इस समस्या को उसने मित्रसंप्राप्ति में सुलझाया। इसी तरह साम, दान, दण्ड, भेद तथा संधि-विग्रह आदि का ज्ञान कथाओं द्वारा ही दिया गया था। हितोपदेशकार की प्रारम्भ में ही प्रतिज्ञा है कि 'कथाच्छलेन' बालकों को राजनीति का ज्ञान देना है।

पश्चिम में राजनैतिक कथाओं का आविर्भाव उस समय हुआ जब ग्रीस में चारों ओर निरकुंश राजाओं की सत्ता जम गयी। उन की स्पष्ट आलोचना करना अपने को खतरे में डालना था। आलोचकों के लिये सर्वोत्तम स्थान जेलखाना था। उस समय वहां कथाकारों का जन्म हुआ जो कहानियों के द्वारा राजकीय कृत्यों की आलोचना किया करते थे। इन में ईसप अत्यन्त प्रसिद्ध है। जब एक नगर के धनालोलुप निरकुंश शासक ने प्रजा को अत्यधिक करों के बोझ से पीड़ित किया तो ईसप ने उस सोने के अण्डे देने वाली मुर्गी और उसके लालची मालिक की कथा कह सुनाई। एक नगर में प्रजातन्त्रराज्य था– वहां के लोग अन्य नगरों की देखादेखी एक निरकुंश शासक की मांग करने लगे तो ईसप ने उन्हें समझाने के लिये 'मेंढक और राजा' की कथा सुनाई। उसकी ये कथायें बहुत प्रचलित हुईं और अन्त में एक कथा की बदौलत ही उसे अपनी जान गवांनी पड़ी। मध्यकाल में भी योरोप में अनेक ऐसे कथा लेखक हुए। इन में एक का नाम प्रायः सब स्कूल के लड़के जानते हैं और वह है जोनाथन स्विफ्ट। इसका 'विचित्र विवरण' (गुलिवर्स ट्रैवल्स) जिस में लिलीपुट आदि की यात्राओं का हाल है वास्तव में इंगलैण्ड की ह्विग और टोरी पार्टियों की मज़ाक है।

१६ वीं सदी में प्रजातन्त्र का सिद्धान्त योरोप में सर्वमान्य हो रहा था। प्रजातन्त्र में व्यक्ति तथा प्रेस की स्वतन्त्रता एक पवित्र चीज़ माना जाती है अतः राज्य के अनुचित कार्यों की खुली आलोचना होने लगी। कथाओं का प्रचार बन्द हो गया जिन में प्रहार छिपकर किया जाता था और जो शासकों के लिये रेशमी शाल में लिपटे जूते होते थे। मनोविज्ञान ने यह बताया कि पशुपक्षी जिन कहानियों में बात करते हों ऐसी कहानियां अस्वाभाविक होने से बच्चों के लिये खतरनाक हैं। कुछ बरस पहले एक लेखक ने लिखा था कि ईसप का भविष्य खतरे में है, प्रजातन्त्र में उसकी कोई महत्ता नहीं है।

परन्तु इतिहास अपने को दोहराता है। आज जिन देशों में अधिनायक तन्त्र (डिक्टेटरशिप) स्थापित है वहां के निवासियों की अवस्था ग्रीस के पुराने स्वेच्छाचारी राजाओं की प्रजा से भी बुरी है। स्वतन्त्र आलोचना तथा वाणी और लेख की स्वाधीनता को बुरी तरह से कुचल दिया गया है। इस अवस्था में ईसप जैसे कथाकारों का पुनर्जन्म हो रहा है। नीचे हिटलर की आलोचना की दो कथायें दी जाती हैं।

पहली कथा

हिटलर जब एकबार स्वर्ग की तरफ गया तो उसने दरवाजे से अन्दर घुसने का प्रयत्न किया। द्वार पर सैण्ट-पीटर खड़ा हुआ था। वह स्वर्ग में जाने वालों के उत्तम कार्यों की कड़ी जांच करता है। जिसने वास्तव में पुण्य कार्य किये हों उसे ही भीतर जाने देता है। हिटलर से भी उसने वही सवाल किया– 'किन पुण्यों के आधार पर अन्दर जाना चाहते हैं?" यह प्रश्न उसे कुछ विचित्र लगा। वह बोला "क्या तुम्हें मेरे पुण्यों का नहीं पता? उन्हें तो मेरे देश का बच्चा २ जानता है।" सैण्ट पीटर ने बिलकुल अनभिज्ञता प्रकट की। इस पर हिटलर ने जर्मन जाति की भलाई के लिए किये कार्यों को विस्तार से बताया और कहा कि अब मुझे अन्दर जाने दो। सैण्टपीटर ने कहा– "मैं इनकी जांच करना चाहता हूँ" और अपने एक दूत को जर्मनी भेजा। दूत ने बन्दीगृहों में सड़ते होनहार युवकों को देखा, बेकारी से भूखे मरते लोगों को देखा और निरपराधों की जायदादें कुर्क होते देखा। चारों तरफ हाहाकार ही हाहाकार देखकर लौट आया और सैण्टपीटर से कहा कि यह स्वर्ग प्रवेश का अधिकारी नहीं है। हिटलर ने पूछा–'तुम कहां कहां देखने गये थे जो इस प्रकार कहते हो।' देवदूत बोला - मैं बन्दीगृहों, गांवों और कस्बों में घूम कर इस परिणाम पर पहुंचा हूँ। हिटलर गरजकर बोला– तुमने इतना घूमने-फिरने की तकलीफ व्यर्थ उठायी। अखबारों के संवाद दाताओं से क्यों नहीं पूछ लिया?

दूसरी कथा

एक बार एक सुअर, एक कुत्ता और एक बकरी किसी जगह इकट्ठे हुए। उन्होंने सलाह की कि चलो जर्मनी चलकर रहें।

सुअर जल्दी ही जर्मनी से लौट आया। बोला 'उंह, वहां रहना तो बड़ा कठिन है। सारी गन्दगी तो लोगों को ही खिला दी जाती है। मैं किस प्रकार गुज़ारा कर सकता हूं।'

कुत्ता भी थोड़ी देर बाद वापिस आ गया। कहने लगा 'वहां रहने में बड़ी कठिनाई है। भौंकने ही नहीं दिया जाता। सिर्फ एक आदमी ही भौंक सकता है।'

६ महीने बाद बकरी भी लौट आयी। उसके बाल मुंडे हुए थे और हालत बहुत खराब थी। दोनों ने पूछा– 'क्या बात है? तेरी यह दशा क्यों है? बकरी ने दुःख से जवाब दिया 'सीमा पर पहुंचते ही पहरेदार ने मेरी दाढ़ी और नाक से मुझे यहूदी समझा और बन्दीगृह (Concentration camp) में डाल दिया। अब बड़ी मुश्किल से छुटकारा हुआ है।'

—※—

महाराजा रणजीतसिंह और सिक्खों का साम्राज्य

[यह लेख 'महाराजा रणजीतसिंह शताब्दी' के दिन गुरुकुल की 'साहित्य परिषद्' में पढ़ा गया था।]

[लेखक—ब्र० धर्मपाल]

महाराजा रणजीतसिंह ने कहीं भी नियमपूर्वक शिक्षा-दीक्षा नहीं ली थी। रणजीतसिंह का शौर्य-पराक्रम-साहस-शक्ति-बुद्धि आदि गुण दूसरे से दी हुई शिक्षा से विकसित नहीं हुये थे। इन सब गुणों का विकास उनमें स्वयं हुआ था। उन्होंने अपनी सेना को इतना सुशिक्षित तथा रणकुशल बनाया था कि विरोधी की बड़ी से बड़ी सेना भी उससे लोहा लेने में डरती थी। रणजीत सिंह की वीरता और शस्त्रास्त्र चलाने में निपुणता सोने में सुहागे का काम करती थी। रणजीत सिंह जब लड़ते थे तो बिल्कुल सिंह के समान शत्रु सेना में अपना रास्ता बनाते चले जाते थे, और शत्रु के पांव उखड़ जाते थे। वे दांतों तले उंगली दबाकर उनके इस अलौकिक कृत्य को आंखें फाड़ २ कर देखते थे मानो वह कोई भ्रम जाल-युक्त मेस्मेरिजम का खेल कर रहे हों। उनकी वीरता का गुण गान करते हुये विदेशी इतिहास लेखकों ने लिखा है कि रणजीत सिंह वास्तव में सिंह के समान थे, और सिंह के समान ही उन्होंने इस लोक को त्यागा था।

महाराजा रणजीतसिंह के समय सिक्ख साम्राज्य पूरे ओज पर था, रणजीत सिंह को अपने शासन पर इतना विश्वास और गर्व था कि वह अक्सर कहा करते थे कि दस वर्ष तक मेरी जूती मेरे पीछे राज्य करेगी।

रणजीतसिंह का अपने प्रत्येक सरदार और प्रजागण पर इतना रोब था कि यद्यपि वह पक्षाघात से रोगी पड़े थे, मुंह से एक शब्द नहीं बोल सकते थे, उठने में असमर्थ थे तो भी कोई व्यक्ति उनके विरुद्ध बगावत का झण्डा खड़ा नहीं कर सकता था।

मुस्लिम काल का अध्ययन करने से पता चलता है कि अभी पहला राजा मरा भी नहीं कि उसकी बीमारी का समाचार पाते ही, उसके लड़के अपनी २ फौजें लेकर बूढ़े और निर्बल राजा पर चढ़ाई कर देते थे, तथा आपस में भी मार-कट कर अपने नाम तथा काम को कलंकित कर देते थे। यहां तक देखने में मिलता है, कि अपने पिता को कारावास में डालकर उसकी हत्या तक कर दी जाती है। यह है मुसलमानों की शूरवीरता, पितृभक्ति और न्यायकारिता। वह तो राजगद्दी पर केवल सुखोपभोग के लिये और विलास से अपने जीवन को बर्बाद करने के लिये बैठते थे।

लेकिन हमारी दृष्टि में ऐसा सिक्ख नरेश नहीं आता, जो किसी नीच उद्देश्य से राजगद्दी पर बैठे। रणजीतसिंह इसके उदाहरण हैं। उनको अपनी प्रजा से उत्कट प्रेम था; वह नगर के बच्चे २ से प्रेम पूर्वक खेलते थे। यहां तक सुना गया है कि जब उनकी सवारी शहर में से निकलती थी तो छोटे २ बच्चे 'रणजीतसिंह काणा' 'रणजीतसिंह काणा' की रट लगाते हुए एक नया जलूस खड़ा कर देते थे।

किसी मुस्लिम बादशाह के कानों में यह शब्द पड़ जाता तो वह दांत किटकिटाकर नाक भौंह चढ़ाकर सरदार को आज्ञा देता कि पकड़ो इन शैतानों को और शैतानी का मजा चखाओ। वह उन्हें जीते २ कुत्तों के आगे फिंकवा देता। लेकिन रणजीतसिंह उन्हें बुलाते, गोदी में बिठाते, पुचकारते और मिठाई खाने को देते और इस तरह उनकी आदत पर विजय पाते थे। इसी गुण के कारण उनसे सारी प्रजा खुश थी। टैक्स भी पर्याप्त कम था। उनकी न्यायकारिता तथा शासन विधान इतना उच्च था कि कभी विद्रोह नहीं उठा।

इस प्रकार कई साल तक सुचारु रूप से राज्य करके २७वीं जून सन् १८३९ को वह देदीप्यमान सूर्य चारों दिशाओं को अपनी कीर्ति रूपी लालिमा से आप्लावित करता हुआ अस्त हो गया। वह दिन केवल पंजाब के लिये ही नहीं, अपितु सम्पूर्ण भारत के लिये स्मरणीय तथा पवित्र है। रणजीतसिंह की कीर्ति तथा वीरता आबाल वृद्ध वनिता प्रत्येक की वाणी पर चढ़ी हुई थी, उनके गुणों से मोहित होकर लोगों ने उन्हें पंजाब-केसरी की उपाधि से आभूषित किया था।

महाराजा रणजीतसिंह की जीवनी तथा गुणों की स्तुति करने के बाद हमारा यह भी कर्तव्य हो जाता है कि सिक्खों के जीवन पर दृष्टि डालें। जिस प्रकार कोई जल-प्रवाह अत्यन्त तीव्र गति से बहा चला जा रहा हो उसको रोकना पर्याप्त मुश्किल होता है, उसी प्रकार जब कोई जाति उन्नति के उत्तुङ्ग शिखर पर पहुंच जाती है, तो भौतिक शक्तियों को उसके अस्तित्व को मिटाना काफ़ी मुश्किल होता है; कुछ साल उसमें लगते ही हैं।

यही हम सिक्ख जाति के लिये देखते हैं, सिक्ख जाति का अब तक अस्तित्व विद्यमान है और वह भारत की सब जातियों से बढ़कर वीर गिनी जा रही है। सिक्खों की अपने धर्म के प्रति अटूट श्रद्धा है, इसका उदाहरण हम गुरु गोविन्दसिंह के दोनों पुत्रों को दे सकते हैं जिन्होंने मुख तक ईंटों से चिने जाने पर भी मुसलमान बनना स्वीकार न किया।

सिक्खों की अत्यन्त उन्नति का कारण उनके नौवें गुरु गोविन्दसिंह जी हैं। उन्होंने सिक्खों के पांच ककके बनाये थे। केश-कंघा-कटार-कच्छा-कड़ा। यह एक सैनिक के लिये अत्यन्त उपयोगी चीजें हैं। इस प्रकार उन्होंने सिक्खों को एक धार्मिक टुकड़ी को वीर सैनिकों की टोली में बदल दिया। इस प्रकार सिक्ख जाति वीरता में किसी से कम नहीं रही है। सिक्खों में राजभक्ति की मात्रा की भी कमी नहीं है। आजकल सिक्ख अत्यन्त विश्वास के पात्र हो रहे हैं क्योंकि हम देखते हैं कि किसी भी विश्वस्त पद के लिये पहले सिक्खों की ही मांग होती है।

सिक्खों में वीरता थी पर एकता का अभाव था, सिक्खों में धीरता थी पर संगठित शक्ति न थी, सिक्ख बलशाली थे कर्तव्य परायण थे पर कूट नीति के पुतले न थे। सिक्खों में देश भक्ति कूट कूट कर भरी थी। प्रायः प्रत्येक सिक्ख का यह विश्वास था कि—

मरना भला है, उसका जो अपने लिये जिये।
जीता है, वह जो मर चुका निज देश के लिये॥

सिक्खों की विजय निश्चित थी, यदि वह धन के लालच में न पड़ते। उन में बुद्धि की कमी थी।

सिक्खों में यद्यपि अनेक गुण थे लेकिन केवल इसी दुर्गुण ने उन्हें डुबो दिया, उन में यही कमी थी कि वह अपने को चन्द्रमा के समान उज्ज्वल न बना सके। जिसमें कलंक भी शोभायमान होता है, यदि सिक्ख अपने कलंक को भी गुणों में छिपा पाते, तो वह कलंक भी शायद उनकी कीर्ति को शोभायमान कर देता है।

गुरुकुल समाचार

स्वास्थ्य समाचार

ब्र० गिरधर १२वीं श्रेणी टाईफायड ज्वर, महेन्द्र १४वीं श्लेष्मज्वर महेशचन्द्र १४वीं मलेरिया ज्वर, सुदर्शन ५म, गोविन्द ५म, सत्यपाल ३य, कर्मेन्द्र १म, रामचन्द्र ७म, मलेरिया ज्वर, से पीड़ित हैं।

गत सप्ताह उपरोक्त ब्रह्मचारी रोगी हुए थे। इनमें से ब्रह्मचारी गिरधर तथा कर्मेन्द्र को अभी ज्वर है। शेष सब स्वस्थ हैं। आशा है कि इन दोनों को भी शीघ्र आराम आ जाएगा। इस सप्ताह वर्षा दो तीन दिन के अन्तर से होती रही। वर्षा न होने पर पर्याप्त गर्मी हो जाती थी। अधिकतम तापमान ९५ से १०० तक था। यद्यपि इस वर्ष आम आशा से कम हुआ तब भी ब्रह्मचारियों को तुरहर तथा सत्य आम पर्याप्त मिलते रहे।

पिछले दिनों डा० मङ्गलदेव जी शास्त्री ने गुरुकुल विश्वविद्यालय में 'वर्ण व्यवस्था' विषय पर एक व्याख्यान माला दी।

हमारे सवाददाता के प्रमाद से गुरुकुल समाचार की संख्या ९ में डा० मङ्गलदेव शास्त्री को केवल हिन्दी का प्रसिद्ध विद्वान लिखा गया था। प्रशासन डा० महोदय हिन्दी के प्रसिद्ध विद्वान् होने के अतिरिक्त संस्कृत के प्रकाण्ड पण्डित और पञ्जाब यूनिवर्सिटी के शास्त्री (आनर्स संस्कृत) हैं तथा प्रसिद्ध आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय के डाक्टर आफ लिटरेचर हैं। सम्प्रति आप बनारस संस्कृत कालिज के प्रिंसिपल तथा रजिस्ट्रार के प्रतिष्ठित पद पर विराजमान हैं।

गुरुकुल कांगड़ी में महाविद्यालय भवन का निर्माण आरम्भ

दानियों के लिए स्वर्ण अवसर

गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी की स्थापना अमर-शहीद श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज ने १९०२ ई० में की थी। सरकारी शासन से स्वतन्त्र, भारतीयों द्वारा निर्मित, और सञ्चालित विश्वविद्यालयों में प्रथम होने का गौरव इसी विश्वविद्यालय को प्राप्त है। गुरुकुल का उद्देश्य है भारतीय संस्कृति का पुनरुज्जीवन! गुरुकुल की शिक्षा का मूल सूत्र ब्रह्मचर्य है। इस एक शब्द में वे सब साधन आ जाते हैं जिन से निर्दोष सुदृढ़ सदाचार संगठित किया जाता है। गुरुकुल की पाठ-प्रणाली में संस्कृत का स्थान सर्वोच्च है और मातृभाषा हिन्दी को माध्यम बना कर प्राचीन तथा अर्वाचीन विषयों की शिक्षा दी जाती है।

सम्प्रति गुरुकुल में महाविद्यालय भवन के बनाए जाने का निश्चय हो गया है और मन्दिर निर्माण का कार्य बड़े वेग से आरम्भ कर दिया गया है। ईंटों के भट्टे का समुचित प्रबन्ध हो रहा है और लकड़ी, लोहा, कोयला तथा अन्य इमारती सामान के मंगाए जाने की व्यवस्था आरम्भ हो गई है। इस विशाल भवन के निर्माण के लिए कितने भारी धन की आवश्यकता है यह तो जनता स्वयं विचार सकती है। परमपिता परमात्मा का सहारा लेकर और उसी आर्य जनता पर भरोसा कर इस महान् कार्य को आरम्भ कर दिया गया है। ऐस्टीमेट एक लाख रुपए के ऊपर है। इसमें ३६×२४, २४×१८, १६×२०, और १६×१४ के कमरे तथा ६०×३। का एक विशाल हाल होगा, जिन पर क्रमशः ३०००), २५००) २०००) १५००) तथा बीच का भवन (हाल) पर २१०००) से ऊपर लागत आयेगी।

गुरुकुल के भक्त और विद्या प्रेमियों ने अपने अपने कमरे रिजर्व करा भी लिए हैं और करा रहे हैं। कुछेक के संकल्प पूरा होने में कुछ राशि शेष है। अतः धर्म प्रेमी जनता से हमारा अनुरोध है कि धनी मानी सज्जनों के लिए यह स्वर्ण अवसर है। अपनी या अपने नातेदार अथवा अपने प्यारे की यादगार में स्मृति-चिन्ह बनवाने के लिए अनुपम संयोग है। ऐसी विश्व विख्यात संस्था में स्मारक बनवाना जितना हितकर है उससे कहीं बढ़ कर श्रेयस्कर भी है क्योंकि इस भवन में बैठ कर ब्रह्मचारी गण वेद, शास्त्र और उपनिषद् आदि धार्मिक ग्रन्थों की शिक्षा लेंगे। विद्या दान सर्व दानों से श्रेष्ठ है। यहां पर देश के सभी गण्य और मान्य नेता, साधु, महात्मा आकर विश्राम लेते हैं। दानी महानुभावों को कमरे रिजर्व कराने में शीघ्रता करनी चाहिए ताकि चलते कार्य में और विस्तार कर दिया जाय। मुझे विश्वास है कि राष्ट्रीय शिक्षा के इस महान् केन्द्र में सहायता कर जहां आपके द्वारा हमारी एक आवश्यकता पूरी होगी वहां आपका नाम भी सदा चिरस्थायी रहेगा और आप अक्षय पुण्य के भागी बनेंगे।

कमरों पर दानियों के नाम के पत्थर भी लगाये जावेंगे।

आशा है उदार जनता मेरा इस अपील पर सहानुभूति से विचार करेगी।

निवेदक—
सत्यव्रत
मुख्याधिष्ठाता
गुरुकुल कांगड़ी।

चौधरी दुलामराय के प्रबन्ध से गुरुकुल प्रेस गुरुकुल कांगड़ी में मुद्रित तथा प्रकाशित।

* ओ३म् *

"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत" Reg No A 2927

गुरुकुल

सम्पादक- साहित्यरत्न पं० हरिवंश वेदालङ्कार

एक प्रति का मूल्य -) [गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख-पत्र] वार्षिक मूल्य २॥)

वर्ष ४] गुरुकुल काङ्गड़ी, शुक्रवार १२ श्रावण १९९६; २८ जौलाई १९३९ [संख्या १३

सत्याग्रही का स्वाध्याय

वेदवचनामृत (३)

(श्री आचार्य अभयदेव जी)

ओ३म् मन्ये त्वा यज्ञियं यज्ञियानां मन्ये त्वा च्यवनं अच्युतानाम् । मन्ये त्वा सत्वनामिन्द्र केतुं मन्ये त्वा वृषभं चर्षणीनाम् ॥ ऋक् ॥

अर्थ--(इन्द्र) हे इन्द्र ! मैं (त्वा) तुझे (यज्ञियानां-यज्ञियं) यज्ञार्हों का यज्ञार्ह (मन्ये) मानता हूं, (त्वा) तुझे (अच्युतानां च्यवनं) च्युत न होने वालों का भी च्यावयिता (मन्ये) मानता हूं। (त्वा) तुझे (सत्वनां) बलशाली प्राणियों में (केतुं) बहुत ऊंचा उठा हुआ, झंडा (मन्ये) देखता हूं, और (त्वा) तुझे (चर्षणीनां) मनुष्यों का (वृषभं) सब कामनाओं का देने वाला, बरसाने वाला (मन्ये) अनुभव करता हूँ ॥

न ऋते श्रान्तस्य सख्याय देवाः ॥ ऋक् ॥

बिना स्वयं परिश्रम किये, बिना थके, देवों की मैत्री नहीं मिलती है ॥

ओ३म् क्व स्य ते रुद्र मृडयाकुर्हस्तो यो अस्ति भेषजो जलाषः । अपभर्ता रपसो दैवस्य, अभी नु मा वृषभ चक्षमीथाः ॥ ऋक्० ॥

अर्थ—(रुद्र) हे रुद्र ! दुःख रोगनाशक ! (ते) तेरा (स्यः) वह (मृडयाकुः) सुखदायक (हस्तः) हाथ (क्व) कहां है, (यः) जो कि (भेषजः) औषधमय और (जलाषः) आनन्दजनक (अस्ति) है, जो (दैवस्य) देव सम्बन्धी (रपसः) पाप का, रोग का (अपभर्ता) दूर करनेवाला है ? (वृषभ) हे सुखवर्षक ! तू (नु) अब तो (मा) मुझे (अभिचक्षमीथाः) क्षमा कर, सहन कर ॥

ओ३म् वयं घा ते त्वे इद्विन्द्र विप्रा अपि ष्मसि । न हि त्वदन्यः पुरुहूत कश्चन मघवन्नस्ति मर्डिता ॥

ऋक्० ॥

अर्थ—(इन्द्र) हे परमेश्वर ! (वयं) हम (घ) निश्चय से (ते) तेरे हैं, और (त्वे) तुझमें; तेरे आश्रय से (इत् उ) ही हम (विप्राः) ज्ञानी, विप्र (अपि) भी (स्मसि) होवें। (पुरुहूत) हे बहुतों से पुकारे गये ! (मघवन्) हे ऐश्वर्य वाले ! (त्वत्) तुझसे (अन्यः) अन्य (कश्चन) कोई (मर्डिता) सुख देने वाला (हि) निश्चय से (न) नहीं (अस्ति) है ॥

ओ३म् स नः शक्रश्चिदाशकद् दानवां अन्तराभरः । इन्द्रो विश्वाभिरूतिभिः ॥ ऋक् ॥

अर्थ—(सः) वह (शक्रः) शक्तिमान् (नः) हमें (चित्) भी (आशकत्) शक्तियुक्त करे, समर्थ करे। क्योंकि वह (दानवान्) दान देने वाला (अन्तराभरः) अन्दर के अन्तस्तल को भरने वाला, अन्दर के अन्तर (छिद्र, कमी) को भरने वाला है। (इन्द्रः) वह परमेश्वर अपनी (विश्वाभिः) सब (ऊतिभिः) रक्षाओं आदि से [हमें शक्तियुक्त करे, समर्थ करे।]

ओ३म् अयुद्ध इत् युधावृतं शूर आजति सत्वभिः । येषामिन्द्रो युवा सखा ॥ ऋक्० साम०॥

अर्थ - (येषां) जिनका (युवा) सदा युवा, नित्यशक्ति (इन्द्रः) परमेश्वर (सखा) सखा है, (शूरः) शूर होकर वह (अयुद्ध इत्) युद्ध विद्या न जानने वाला, युद्ध का अनुभव न रखने वाला भी (युधावृतं) योद्धाओं से घिरे हुए शत्रुबल को (सत्वभिः) अपने आत्मिक सत्वों से, सात्विक भावों से (आ अजति) परास्त कर देता है ॥

ओ३म् मा चिदन्यत् विशंसत सखायो मा रिषण्यत । इन्द्रमित् स्तोता वृषणं सचा सुते मुहुरुक्थ्या च शंसत ॥ ऋ०, सा०, अथर्व०॥

अर्थ—(अन्यत्) अन्य किसी के स्तोत्रों को (मा चित्) कभी मत (विशंसत) उच्चारण करो, और इस तरह (सखायः) हे सखाओ, मनुष्य भाइयो ! (मा) मत (रिषण्यत) अपने को विनष्ट करो। (सुते) इस संसार यज्ञ में, प्रत्येक यज्ञ कर्म में (सचा) मिलकर, तन्मग्न होकर (वृषणं) अभीष्टों को बरसाने वाले, सर्वशक्तिमान् (इन्द्र)

परमेश्वर की (इत्) ही (स्तोत) स्तुति करो (च) और (मुहुः) बारम्बार (उक्था) [उसके हो] भजनों का (शसत) उच्चारण करो ॥

ओ३म् यतो यतः समीहसे ततो नो अभयं कुरु ।
यजु० ॥

अर्थ—(यतः यतः) जहां जहां से तुम (समीहसे) सम्यक् चेष्टा करते हो (ततः) वहां से (नः) हम (अभयं) अभय (कुरु) कर दो ॥

ओ३म् अभ्यूर्णोति यन्नग्नं भिषक्ति विश्वं यत् तुरम् ।
प्रेमन्धः ख्यत् , निःश्रोणोभूत् ॥ ऋक्०॥

अर्थ—(यत्) जो (नग्नं) नग्न है उसे (सोम प्रभु) (अभ्यूर्णोति) ढक देता है, आच्छादित कर देता है, और (यत्) जो (तुरं) आतुर, रुग्ण है (विश्वं) उस सबकी, सब संसार की वह (भिषक्ति) चिकित्सा कर देता है। उसकी कृपा से (अन्धः ईं) अन्धा भी (प्रख्यत्) देखने लगता है और (श्रोणः) लूला भी (निर्भूत्) चल निकलता है ॥ [समाप्त]

स्वास्थ्य संरक्षा

स्वास्थ्य का स्वरूप

[ले०—प्रो० भगवान प्रसाद जी, प्राकृतिक—
चिकित्सोपाध्याय गुरुकुल–विश्वविद्यालय]

स्वास्थ्य संरक्षा-ज्ञान के प्रचारकों के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा यह है कि जन-साधारण स्वास्थ्य के विषय में बहुत ही उदासीन तथा प्रमादी हैं। अर्थात् वे स्वाभाविक स्वास्थ्य को स्थिर रखने व उन्नत करने के उचित उपायों की ओर बहुत ही कम ध्यान देते हैं। सर्वसाधारण की मिथ्या भावना है कि उनका अच्छा स्वास्थ्य उनकी पितृ परम्परा से प्राप्त उनकी अक्षय निधि है। युवा पुरुष चाहे वे संसार के जीवन संघर्ष में विलासिता का मार्ग ग्रहण करें या कठोर परिश्रम के पथ के पथिक बनें, स्वास्थ्य के विषय में अपने कर्त्तव्य से एक समान ही विमुख रहते हैं। वस्तुतः जब वे रोग शय्या पर पड़ जाते हैं तभी वे किसी चिकित्सक की खोज करते हैं। और तब भी वे किसी चिकित्सक के पास इसलिए नहीं जाते हैं कि अपने रोग का कारण ढूंढ निकालें या अपने रोगोत्पादक पापों या भूलों का प्रायश्चित करें, किन्तु वे केवल इस बात में चिकित्सक की सहायता चाहते हैं कि किसी न किसी प्रकार उनके रोग की तत्काल लीपा-पोती हो जाय और वे अपने अभ्यस्त जीवन की डगर पर यथापूर्व पड़ जायं। जिन जनों का कुछ अधिक ज्ञान है वे भी अपने इस लोभ का संवरण नहीं कर सकते कि उनकी तात्कालिक रोग निवृत्ति हो जाय, चाहे वह अप्राकृतिक उपायों द्वारा हो क्यों न हो। उनको तो केवल यह चाहिए कि उनके प्रति दिन के कार्यों का जो सूत्र चल रहा है, उसको वे यथा सम्भव अविलम्ब ग्रहण कर सकें।

इससे यह स्पष्ट हो है कि जनसाधारण वास्तविक स्वास्थ्य का मूल्य स्वाभाविक जन्मसिद्ध स्वत्व के रूप में नहीं आंकते हैं। और वे स्वास्थ्य को केवल रोग के अपसारण के रूप में ही देखते हैं। सत्य तो यह है कि स्वास्थ्य मनुष्य को स्वतः सिद्ध वास्तविक वस्तु है।

बहुधा, स्वास्थ्य और दीर्घ जीवन को एक ही वस्तु समझने में गड़बड़ की जाती है। स्वास्थ्य और दीर्घ जीवन साथ २ चलने वाली वस्तुएँ नहीं हैं। उदाहरणार्थ, श्वास (दमा) के रोगी और अन्य जीर्ण रोगों से पीड़ित मनुष्य अपने रोगों के कारण जीवन का सुख भोगने में समर्थ नहीं होते और न ही वे स्व जीवन में अपना कोई प्रयोजन ही प्राप्त कर सकते हैं। किन्तु वे बहुधा दीर्घजीवी होते हैं।

साधारणतः स्वास्थ्य और माँस-पेशियों के बल को भी एक ही समझ लिया जाता है। कई जन स्वास्थ्य का यह स्वरूप समझते हैं कि वे नाना प्रकार के सुस्वादु भोजनों को– उनका कोई तात्कालिक बुरा या दुःखदायक प्रभाव हुए बिना–प्रचुर मात्रा में खा सकें।

स्वाभाविक स्वास्थ्य हमारी सत्ता की वह समष्टि है, अर्थात् उससे हमारे जीवन के वे विविध अंग आते हैं जिनके अन्तर्गत न केवल दीर्घजीवन और शारीरिक बल ही हैं किन्तु उसमें युक्त युक्त मात्रा में जीवन के सुखोपभोग की सामर्थ्य भी सम्मिलित है। किन्तु मैं पाठकों का ध्यान इस ओर दिलाना चाहता हूँ कि वे वास्तविक स्वास्थ्य को अकाल मृत्यु से पूर्ण रूप से बचाने वाली वस्तु न समझ लेवें।

भीषण ज्वर और अन्य उग्र रोग बड़े २ हृष्ट पुष्ट पुरुषों को भी मार डालते हैं और यह केवल चिकित्सा-व्यवसायियों के अज्ञान-जन्य अध्यापचार का दुष्परिणाम होता है। वस्तुतः इन हृष्ट पुष्ट पुरुषों में स्वस्वास्थ्यसाधक जीवनी शक्ति का अभाव नहीं होता है किन्तु इस शक्ति को मिथ्योपचारों के प्रयोग द्वारा जो बहुधा अट-शट उग्र औषधों के सेवन के रूप में होता है दबा दिया जाता है। परन्तु यदि रोगों की चिकित्सा बलात् रोगों को दबाने वाली प्रक्रिया से न की जाय और यदि उसकी चिकित्सा, आवश्यक हो पड़े, तो वह युक्तियुक्त प्राकृतिक उपचारों द्वारा की जाय तो स्वाभाविक स्वास्थ्य का अर्थ दीर्घजीवन और इन्द्रिय सुखों के प्राप्त और उनके उपभोग की सामर्थ्य होता है।

मनुष्य के लिये दीर्घजीवन का कितना महत्व है इस बात को हृदयंगम करने के लिये उसके एक मुख्य तथ्य पर विचार करना चाहिये। वह तथ्य यह है कि मनुष्य को स्वजीवन के उद्देश्य और ध्येय को ठीक २ समझ पाने की बुद्धि और उसकी पूर्ति के लिये आवश्यक शक्तियों की पूर्णता की प्राप्ति में ३० वर्ष के लगभग लगते हैं। यह अवधि मनुष्य के सम्पूर्ण जीवन का प्रायः चतुर्थांश है। जो जन उन्नततर कक्षा के हैं उनको अपने जीवन की वास्तविक योग्यता का ज्ञान आयु के पिछले भाग में पूर्व

नहीं होता है। अर्थात् वे स्वजीवन के दीर्घ अनुभवों के पश्चात् ही अपनी कार्य कारिणी शक्ति को समझ पाते हैं। जीवन की इन अनुभव-पूर्ण वर्षों के पश्चात् ही बुद्धि की परिपक्वता और अपने उद्देश्य के स्पष्ट रूप से दर्शन का अवसर आता है। और यही मनुष्य के कर्मण्य वा क्रियाशील जीवन का भाग है। इसी समय वह कर्मयोग में प्रवृत्त हो सकता है और यदि वह स्वजीवन की पूर्णता-प्राप्ति के इस अवसर वा उससे पूर्व ही मर जाय तो उसकी विकसशील वा उन्नति के पथ पर आरूढ़ आत्मा को बड़ी हानि पहुंचती है।

मनुष्य का स्वाभाविक स्वास्थ्य रोग से सुरक्षित रहने का एकमात्र युक्ति युक्त निश्चायक साधन भी है। और इसी लिये प्राकृतिक चिकित्सा सम्प्रदाय के अनुयायी जन औषधि-चिकित्सकों वा एलोपैथ डाक्टरों के विपरीत इस प्रकार के स्वाभाविक स्वास्थ्य की प्राप्ति के तथ्य और साधनों को समझ पाना अपना मुख्य ध्येय बना लेते हैं। प्राकृतिक चिकित्सा की शिक्षा का एक मुख्य सिद्धान्त यह है कि रोगों की सत्ता की दो अवस्थाएं गुप्त और प्रकट रूप से होती हैं। प्रथम अवस्था में रोग बीज रूप वा गुप्त रूप में विद्यमान रहते हैं और वे इस अवस्था में ही प्रकट वा प्रादुर्भूत होने से पूर्व अधिकाश बरसों तक पड़े रहते हैं। रोग की यह गुप्त अवस्था और जीवन क्षय (नाश) एक ही बात है। इस प्रकार रोगी प्रकट रूप से रुग्ण पड़ने से बहुत पूर्व ही अस्वस्थ हो जाता है। प्राकृतिक चिकित्सा में यह दृष्टि बिन्दु बहुत बड़ा महत्व रखता है। क्योंकि इसके द्वारा हम स्वाभाविक स्वास्थ्य का विकासन करने और उसके द्वारा बीज रूप में रोगों की वृद्धि को रोकने की आवश्यकता का प्रत्यक्ष अनुभव कर सकते हैं। इसी से हम रोगों को प्रकट रूप में विकसित होने से सफल रीति से रोक सकते हैं। हमको इस बात की आवश्यकता नहीं है कि हम रोग के प्रकट रूप में प्रादुर्भाव की प्रतीक्षा करें। बहुत से मनुष्य स्वाभाविक स्वास्थ्य और रोग की उत्पत्ति के मध्यवर्ती सम्बन्ध को न जान कर ही ऐसा समझ बैठते हैं कि रोग के प्रादुर्भाव से पूर्व ही इसके रोक थाम की आवश्यकता नहीं है। जब तक मनुष्य शरीर में रोग बीज रूप में विद्यमान रहता है तब तक मनुष्य उसकी उक्त विद्यमानता की उपेक्षा करता रहता है और केवल उसी समय उसे जानता है जबकि वह प्रकट रूप धारण कर लेता है और किसी विशेष रोग के रूप में उसकी पहिचान वा निदान हो सकता है और उसका कोई नाम रख कर उसके विशेष लक्षण निर्धारित किए जा सकते हैं।

[शेष अग्रिम अङ्क में]

छन्दों के वैदिक नाम

[लेखक— श्री पं० लक्ष्मण सिंह जी वेदालङ्कार, (प्रतिष्ठित) एम० आर० एस०]

६ फाल्गुन सम्वत् १९९५ के अङ्क के 'गुरुकुल' में हमने 'देवता' के सम्बन्ध में महर्षि दयानन्द सरस्वती का मत प्रकाशित किया था। और यह बतलाया था कि महर्षि की दृष्टि में देवता निश्चित हैं।

हमने छन्दों के ऊपर तथा ऋषि व स्वर के ऊपर भी एक २ लेख उसी विचार धारा को लेकर जिसके अनुसार हमने वैदिक धर्म के गत वर्ष के आश्विन के अङ्क में देवता के सम्बन्ध में विचार किया है—लिखने का विचार किया था। परन्तु किन्हीं कारणों से रह गया। अस्तु।

ता० ३ फरवरी सन् १९३९ के 'आर्यमार्तण्ड' में 'वेद संस्थान के अध्यक्ष' शीर्षक से एक लेख लिखा गया है। उस प्रकाशित लेख की समालोचना हमने यहां नहीं करनी।

उस लेख में 'सन् १९३८ के आर्य विद्वानों' का छन्द विषयक विचार प्रकाशित किया गया है। यद्यपि वह विचार पिछले एक वर्ष में अपना स्वरूप बहुत बदल चुका है। पर यदि हम वैसा ही मान लें जैसा कि उसमें छपा है, तब भी हमारी दृष्टि में वह वैदिक मत नहीं हो सकता। हमारे शब्दों में उनका सिद्धान्त इस प्रकार रक्खा जा सकता है।

"छन्दों के गायत्र्यादि नाम जो वेद संहिताओं में छपे हुए हैं वे अनिश्चित हैं।" अर्थात् उनके हम दूसरे भी नाम रख सकते हैं। जैसे छन्दों में गायत्री छन्द (२४ अक्षरों में वा सामान्यतः) सबसे छोटा है अतः यदि हम इसका नाम 'लघु' रख दें और 'अग्निमीळे' मन्त्र का छन्द 'गायत्री' न छाप कर 'लघु' छापें—तो इसमें कोई आपत्ति नहीं। ऐसा महर्षि के नाम पर 'सन् १९३८ के आर्यविद्वानों' का मत है। हमारी दृष्टि में महर्षि का नहीं।

इस समय हम केवल इतना ही आर्यजनता को बतलाना चाहते हैं कि हमारे वेद मन्त्रों के छन्द निश्चित हैं, अर्थात् गायत्र्यादि ही हैं और लघ्वादि नहीं। और ये नाम वैदिक हैं, जिनके बदलने से वेदों का 'स्वतः प्रमाण्य' नष्ट होता है। अतः हम इन्हें बदल नहीं सकते।

छन्दों को बदलने से हानि होती है या नहीं, इससे वेदमन्त्र में किसी प्रकार का अन्तर आता है या नहीं—इत्यादि प्रश्नों का कोई उत्तर न देते हुए, हम यजुर्वेद के त्रयोदश अध्याय का ५३ वां मन्त्र उद्धृत कर यह बतलाएंगे कि हमारे ये छन्दों के नाम प्रभु के द्वारा प्रदत्त हैं।

गायत्रेण त्वा छन्दसा सादयामि,
त्रैष्टुभेन त्वा छन्दसा सादयामि।
जागतेन त्वा छन्दसा सादयाम्यानुष्टुभेन
त्वा छन्दसा सादयामि पाङ्क्तेन त्वा
छन्दसा सादयामि ॥ इत्योम् ॥

और इससे अगले पांचों मन्त्रों में क्रम से गायत्री, त्रिष्टुप्, जगती, अनुष्टुप् तथा पंक्ति छन्द नामों का उल्लेख है। इसी प्रकार बृहती आदि छन्दों का नाम भी

[शेष पृष्ठ ६ पर]

गुरुकुल

१३ श्रावण शुक्रवार १९९६

गुरुकुल में वर्धा-शिक्षा योजना

(श्री आचार्य अभय देव जी)

जब से प्रान्तीय-शासन राष्ट्रीय महासभा के देशहित-कारी सेवक हाथों में आया है तब से भारतीय समस्याओं को हल करने के लिए प्रान्त की कांग्रेसी सरकारों ने जहां गम्भीरता पूर्वक देश की अन्य कई वास्तविक आवश्यकताओं की तरफ ध्यान दिये हैं तथा शराबबन्दी जैसे क्रान्तिकारी परिवर्त्तन किये हैं वहां उन्होंने देश के बालकों की शिक्षा के जटिल प्रश्न की तरफ भी गम्भीरतापूर्वक ध्यान दिया है। इस भारत देश के प्रत्येक बालक को आधारभूत शिक्षा (बुनियादी तालीम) किस प्रकार की दी जानी चाहिए इस पर विचार करते हुये राष्ट्रीय महासभा ने जिस शिक्षा पद्धति को स्वीकार किया है वह देश में आज वर्धा-शिक्षा-योजना नाम से प्रसिद्ध है। इस नई पद्धति का तत्व इस बात में है, कि शिक्षा किसी मूलोद्योग द्वारा दी जावे अर्थात् हमारे देश का प्रत्येक बालक अपने सातवें वर्ष से १४ वें वर्ष तक अनिवार्यरूप से एक मूलभूत उद्योग को सीखे और उसी के द्वारा शेष सब बौद्धिक शिक्षा ग्रहण करे। सातों कांग्रेसी प्रान्त अपने प्रान्तों में इस नई शिक्षा पद्धति का प्रारम्भ कर चुके हैं। तथा कई अन्य प्रान्त और रियासतें भी इसे स्वीकार कर चुकी हैं। यह स्वाभाविक है कि गुरुकुल जैसी राष्ट्रीय संस्था इस पद्धति को अपनावे। पाठकों को यह जानकर प्रसन्नता होगी कि गुरुकुल के प्राथमिक विभाग में इस वर्ष से इसका प्रारम्भ कर दिया गया है।

गत वर्ष श्री पं० दीनदयालु जी शास्त्री ने विद्यासभा में इस आशय का एक प्रस्ताव रखा था। उसके अनुसार इस वर्ष एक विद्यालय पटल का निर्माण किया गया है। इस पटल ने तथा फिर शिक्षा-पटल ने सिद्धान्ततः वर्धा शिक्षा को चलाना स्वीकार किया है। तथा इस वर्ष प्रथम श्रेणी में इसे जारी कर देने की आज्ञा प्रदान की है।

गुरुकुल के प्राथमिक विभाग में तकली द्वारा सूत कताई तो बहुत वर्षों से होती था। अतः अभी गुरुकुल में इस नई पद्धति के लिए मूलोद्योग के रूप में कताई-बुनाई को ही स्वीकार कर लिया गया है।

वर्धा पद्धति में अपने सब अध्यापकों को शिक्षित करने के लिए यह आयोजन किया गया है कि दो गुरुकुल के सुयोग्य स्नातकों की सेवायें इस काम के लिए प्राप्त की गई हैं। श्री पं० जगन्नाथ जी वेदालङ्कार तथा श्री पं० हरिदत्तजी वेदालङ्कार ये दोनों ही अपनी श्रेणियों में सर्व प्रथम रहने वाले स्नातक थे, दोनों शिक्षा के विषय में विशेष रुचि रखते हैं, दोनों स्नातक होने के बाद कुछ न कुछ शिक्षा सम्बन्धी कार्य ही करते रहे हैं। पं० जगन्नाथ जी पहले गुरुकुल के समीपस्थ एक ग्राम की पाठशाला में और फिर गुरुकुल मुलतान में वर्धायोजना द्वारा शिक्षा देने का यत्न करते रहे हैं। और पं० हरिदत्त जी काश्मीर राज्य की शालाओं के लिए पाठ्यपुस्तक निर्माण का काम करते रहे हैं। अब ये दोनों गुरुकुल में इस कार्य के लिये आगये हैं। बिहार सरकार ने गांधी सेवा-संघ सम्मेलन के अवसर पर जो एक १५ दिन का वर्धा-शिक्षण का केन्द्र खोला था, उसमें भी आप दोनों ने शिक्षा पाई है तथा आगे भी अगस्त, सितम्बर, अक्तूबर में ये वर्धा में रहकर इस विषयक विशेष शिक्षण पा-सकेंगे इसका प्रबन्ध किया गया है।

इसी तरह गुरुकुल विद्यालय के मुख्याध्यापक पं० विश्वनाथ जी देहली के जामिया मिलिया में खुले शिक्षण केन्द्र में शिक्षा लेंगे। विचार यह है कि उक्त दोनों सुयोग्य स्नातकों तथा श्री मुख्याध्यापक जी की देख रेख में गुरुकुल में ही वर्धा-शिक्षण का एक केन्द्र खुल जाय। और उसमें जहां हम अपने सब प्राथमिक विभाग के अध्यापकों को शिक्षित कर सकें, वहां गुरुकुल की अन्य शाखाओं के अध्यापकों को भी (और यदि सम्भव हो तो अन्य शिक्षार्थियों को भी) वर्धा योजना में शिक्षित किया जा सके। इस प्रकार गुरुकुल कांगड़ी गुरुकुलीय वर्धा-शिक्षा का केन्द्र बन सके यह हमारी इच्छा है।

यह तो कहने की आवश्यकता नहीं है कि हम प्रकाशित हुई वर्धा शिक्षा के पाठ्यक्रम को अक्षरशः अपना नहीं रहे। उसके सिद्धान्त और तत्व को स्वीकार करके उसकी दूसरी बातों को अपने सिद्धान्त और आदर्श के अनुकूल परिवर्तित करके हम अपना रहे हैं। जैसे कि हम इतिहास के पाठ्यक्रम को जो पहले से ही ठीक प्रकार का है अपने ढंग पर ही रख रहे हैं। इसी प्रकार हमारी धर्मशिक्षा अपने ही प्रकार की वैदिक छाप रखती है। और संस्कृत भाषा की शिक्षा अतिरिक्त रूप में पूर्ववत् जारी रहेगी। गुरुकुल में छात्रों के चौबीसों घंटे गुरु के साथ रहने के कारण हम जहां संस्कृत के एक अतिरिक्त विषय को भी अपने शिक्षा-क्रम में अच्छी तरह से स्थान दे सकते हैं, वहां और कई वांछनीय परिवर्तन भी कर सकते हैं और कर रहे हैं। मेरी तो यह भी महत्वाकांक्षा है कि प्राचीन समय में जैसे गो सेवा करते २ शिष्य लोग गुरुओं से सब ज्ञान पा लेते थे उसी तरह अब भी गुरुकुल (जहां विद्यार्थी दिनरात अपने घर की तरह रहते हैं) गो-पालन के उद्योग के द्वारा भी शिक्षा क्रम का विकास कर सके। तात्पर्य यह है कि इस वर्धा-शिक्षा द्वारा 'गुरुकुल' अधिक 'गुरुकुल' हो जायगा। अथवा यूं कहें कि स्वाभाविक और जीवन-व्यापी उद्योग द्वारा सब ज्ञान की शिक्षा देना यह गुरुकुल की अपनी ही चीज है। शायद यही कारण है कि हरिपुरा कांग्रेस में वर्धा-शिक्षा

के प्रस्ताव को पेश करते हुए श्री माननीय पुरुषोत्तम दास टंडन ने अनायास गुरुकुल का जिक्र किया था। और मध्यप्रान्त की विद्या-मन्दिर योजना जो कि इस प्रान्त में वर्धाशिक्षा योजना का नाम हो गया है। पर बोलते हुये वहां के प्रधान मन्त्री प्राचीन गुरुकुल प्रणाली का स्मरण करते रहे हैं। उड़ीसा के प्रधान मन्त्री का गुरुकुल सम्बन्धी उल्लेख प्रसिद्ध ही है। अतः हम यह गर्व पूर्वक समझ सकते हैं कि देश के प्रान्त २ में वर्धा-शिक्षा का प्रसार होना एक तरह से गुरुकुल-शिक्षा प्रणाली का विस्तार होना है। तो गुरुकुल में तो हमें अवश्य ही वर्धाशिक्षा को (उद्योग-द्वारा ज्ञान शिक्षा को) श्रद्धा द्वारा और पूरा ध्यान देकर सफल करना ही चाहिये। इस सफलता में आने वाली एक बहुत भारी सफलता का बीज विद्यमान है।

यह ठीक है कि यह नई शिक्षा-पद्धति अभी परीक्षण के रूप में है। यह कसौटी पर कसी जा रही है। बहुत से लोगों को सन्देह है, कि यह सफल भी होगी या नहीं। क्यों कि अबतक की प्रचलित केवल बौद्धिक ज्ञान वाली शिक्षा में यह क्रान्ति करने वाली है। और इस शिक्षा के लिये इतने अच्छे शिक्षकों की जरूरत है जो ज्ञान-प्रतिभा और हस्त-कौशल दोनों में कुशल हों। ऐसी अवस्था में जब कि देश शिक्षा का एक बड़ा परीक्षण कर रहा है, गुरुकुल जैसी सुप्रतिष्ठित राष्ट्रीय शिक्षण-संस्था इस शिक्षा पद्धति को सफल करके बहुत बड़ी देश की सेवा कर सकती है। श्री आर्यनायकम् जो कि इस नवीन शिक्षा पद्धति के सञ्चालक हैं तथा अन्य कई शिक्षाविशेषज्ञ नेताओं का यह विश्वास ठीक है कि इस नई शिक्षा पद्धति को सरकारी शिक्षणालयों की अपेक्षा राष्ट्रीय स्वतन्त्र शिक्षणालय ही अधिक आसानी से अपना सकते हैं और इसे सफल कर दिखा सकते हैं। अतः गुरुकुल जैसे राष्ट्रीय शिक्षणालयों को ही इस पद्धति को सफल करके सरकारी शिक्षणालयों के मार्ग प्रदर्शक बनना चाहिए। सरकारें स्वभावतः ही धीरे २ चलती हैं। सरकारी शिक्षणालयों का पुराना चलता आ रहा ढांचा एक बहुत बड़ी, न संभलने वाली मेशीनरी की तरह है जिसके कल पुर्जों को आसानी से नहीं बदला जा सकता। यदि उसमें कहीं एक जगह भी कोई खास परिवर्तन कर दिया जाये तो उससे सारी मेशीनरी ही बन्द हो जाने का डर हो जाता है। दूसरी तरफ गुरुकुल जैसा राष्ट्रीय संस्था हाथ की मशीन की तरह है, जिसमें कि किसी नया प्रणाली को आसानी से और सफलता के साथ जारी किया जा सकता है। अतः आशा है गुरुकुल के अध्यापक गण श्रद्धान्वित होकर और तत्परता के साथ काम करते हुए उद्योग द्वारा शिक्षा की इस योजना को गुरुकुल में इतनी अच्छी तरह सफल करके दिखायेंगे कि इस विषय में भी गुरुकुल अन्य संस्थाओं के लिये अनुकरणीय और मार्ग दर्शक हो सकेगा।

महाकवि कालिदास का कौशल

(ले० श्री द्विरेफ)

कालिदास की प्रतिभा सर्वतोमुखी थी। 'अभिज्ञान शाकुन्तल' में उन्होंने अपना सर्वश्रेष्ठ कौशल दिखलाया है। यही कारण है कि 'शकुन्तला' में आज भी अपने प्रथम दिन की वही नवीनता, रोचकता और वही आकर्षण बना हुआ है। हजारों वर्ष बीत गये पर इसके भाव वैसे ही प्रभावोत्पादक और नवीन बने हुए हुए हैं- मानों कवि ने आजकल के जमाने को देखकर ही इस काव्यों की रचना की हो। महाकवि कालिदास ने प्रकृति का और भिन्न २ मनुष्यों के भावों का जैसा सूक्ष्म चित्रण किया है वह देखने योग्य है। प्रथम अंक के ७ वें श्लोक "ग्रीवाभङ्गाभिरामम्" को देखिये। हिमालय के जङ्गलों में चौकड़ी भरते हुए चौकन्ने हरिणों को भागते हुए देखने का आनन्द जिन्होंने कभी लिया है, वे इस श्लोक के पठन मात्र से उस आनन्द को ले सकते हैं। यह है कालिदास का सुन्दर शब्दचित्रण।

भावों की सूक्ष्म दर्शिता का उदाहरण भी देखिये। शकुन्तला अपने आश्रम से विदा होकर पतिगृह को जा रही है। सारा आश्रम शोक-व्यथित हो रहा है। हरिण कोकिल आदि से लेकर वृक्षलताओं तक सभी विरह-वेदना से व्याकुल हो रहे हैं। इस अवस्था को वर्णन करने के लिये कालिदास ने जो शैली पकड़ी है, वह कितनी स्वाभाविक, सरल और मार्मिक है।

आश्रम से विदाई लेती हुई शकुन्तला के पांव आगे नहीं पड़ते। और वह अपने इस भाव को प्रियंवदा से कहती है प्रियंवदा उत्तर देती है:—

"शकुन्तले! केवल तुझे ही शोक नहीं है, ज्यों-ज्यों तेरे विदा होने होने का समय निकट आता है तेरे विरह से वन में व्यथा सी छाई जारही है। देख हरिणियों ने घास चरना छोड़ दिया है मोर नाचना भूल गए हैं वृक्षों के पत्ते तेरे विरह की आग से पीले होकर जब गिरते हैं तब ऐसा मालूम होता है कि वृक्ष आंसू गिरा रहे हैं।"

"उद्गलित दर्भकवला मृग्य, परित्यक्त नर्तना मयूराः।
अपसृत पाण्डुपत्रा, मुञ्चन्त्यश्रूणीवलताः॥"

-शाकु० ४-११।

रघुवंश के १४ वें सर्ग में सीता-विलाप के प्रसंग में भी कवि ने ऐसी ही मार्मिक उक्ति कही है:—

"नृत्यं मयूराः कुसुमानि वृक्षाः दर्भानुपात्तान्विजहुर्हरिण्यः
तस्याः प्रपन्ने समदुःखभावमत्यन्तमासीद्रुदितं वनेऽपि॥"

रघु० १४-६६

शकुन्तला की विदाई के प्रसंग में कालिदास के चार श्लोक तो इतने सर्वप्रिय हुए हैं कि किसी २ ने तो यहां तक कहा है—

"कालिदासस्य सर्वस्वमभिज्ञानशकुन्तलम्।
तत्रापि हि चतुर्थोऽङ्कस्तत्र श्लोक चतुष्टयम्"॥

वे चार ये हैं:—

जब शकुन्तला की विदाई का समय आता है तब

महर्षि कण्व का हृदय भी—जो कि उमर-भर तपस्या करते २ जड़ होगया है, जिसमें कोई कोमल भावना अवशिष्ट नहीं रह गई है-भर जाता है। वे कहते हैं—

१-"आज शकुन्तला जायगी यह विचार कर मेरा मन बहुत उदास हो गया है। हृदय स्नेहवश आसुओं से भरा जाता है। बेटी को विदाई देते हुए जब मुझ वनवासी की यह दशा है तब गृहस्थियों की क्या गति होती होगी।" (अनुवाद—यास्यत्यद्यशकुन्तलेति० ४।५)

वे तो पिता 'कण्व' तपोवन के वृक्षों को सम्बोधित करते हुए कहते हैं:—

२-'हे तपोवन के वृक्षो, जिस शकुन्तला ने तुम्हें बिना सींचे कभी जल भी नहीं पिया और जिसे यद्यपि पुष्प-पत्र से अपना अलंकार करने का बड़ा चाव था, परन्तु प्यार के कारण तुम्हारे फूल पत्ते कभी न तोड़े। जब तुम मौसम आने पर पुष्पभार से लद जाते थे तब जिसके हर्ष का पारावार नहीं रहता था, वही शकुन्तला आज अपने पतिगृह को जा रही है, तुम इसे जाने की अनुमति दो!' (अनुवाद—पातुं न प्रथमम्' ४।८)

इसके बाद कोयल के शब्द में वन देवियां शकुन्तला को जाने की आज्ञा देती हैं। विदाई का समय निकट आता है और कण्व अपने पास कोई ऐसी रत्नादि सम्पत्ति नहीं देखते जिसे लड़की के साथ दहेज में दे सकें। वे अपने शिष्य शार्ङ्गरव से कहते हैं:—

३-पुत्र शार्ङ्गरव, जब तुम राजा के सम्मुख पहुंचो तब शकुन्तला को आगे करके राजा से कहना कि हम तो केवल तपस्या के धनी हैं। अपने श्रेष्ठ कुल का विचार कर इस शकुन्तला पर भी वही स्नेह रखना जो अन्य रानियों पर रखते हो। इससे अधिक हम कुछ नहीं कहते। क्योंकि इससे भी विशेष प्यार पाना तो भाग्य के आधीन है।" (अनुवाद—अस्मान्साधुविचिन्त्य० ४।१६)

अन्त में विदाई देते हुए कण्व पिता की हैसियत से कन्या को योग्य शिक्षा देते हैं:—

४-"पुत्री, यहां से चलकर जब तू अपने पति की गृहिणी बनना तब अपने जेठ-जेठानी की सेवा करना। सौतों से प्यारी सखी का सा वर्ताव करना। यदि कभी पति तिरस्कार भी करदे तो कभी उसका विरोधी आचरण न करना। नौकर चाकरों को एक सा समझना और भोगों में कभी लिप्त न होना। इन गृहस्थ नियमों का पालन करने वाली युवतियां गृहिणी बनती हैं और इनका विरोधी आचरण करने वाली अपने कुल को हंसाती है।"

पतिगृह को जाने वाली कन्या के लिये इससे सुन्दर शिक्षा और क्या हो सकती है! कालिदास के वे अमूल्य चार श्लोक ये ही हैं।

कालिदास का निपुण प्रकृति निरीक्षण

कालिदास ने मानव और पशु दोनों की प्रकृति (मनोविज्ञान) का गम्भीर अध्ययन किया था। इसमें सन्देह नहीं कि कालिदास अनेक बार हिमालय के जंगलों में (चण्डी के आसपास) शिकार के लिये विक्रम के साथ गये थे। क्योंकि दुष्यन्त की राजधानी हस्तिनापुर से हरिद्वार-श्यामपुर का जंगल सबसे नज़दीक पड़ता है। कण्व ऋषि का आश्रम भी यहीं कहीं होगा। इस इलाके में जंगली भैंसों और सुअरों की अधिकता है जिनका शिकार प्राचीन राजागण बड़ी बहादुरी से करते थे। विदूषक के कहने से उस दिन दुष्यन्त ने शिकार का प्रोग्राम रद्द करते हुए कहा-

"आज भैंसों को तालाब में लोटने दो, हरिणों को छाया में बैठकर रोमन्थ करने दो, सुअरों को अधसूखे पोखरों में मोथे की जड़ खोद २ कर खाने दो। आज मेरे धनुष की प्रत्यञ्चा ढीली हो गई है। आज इसे भी विश्राम मिलेगा।" (अनुवाद—गाहन्तां महिषाः २।६)

भैंसों, हरिणों और सुअरों का आनन्दित अवस्था का कितना सुन्दर और यथार्थ चित्रण है।

बचपन से ही वनों में रहने वाले ऋषि कुमार जब दुष्यन्त की राजधानी में पहुंचते हैं तब उन्हें कैसा विचित्र सा अनुभव होता है, इसकी कल्पना आजकल के गुरुकुल के ब्रह्मचारी भी कुछ २ कर सकते हैं। शार्ङ्गरव और शारद्वत जब शकुन्तला को लेकर दुष्यन्त के यहां पहुंचे तब शार्ङ्गरव कहता है-"भई शारद्वत, इस राजा के यहां कोई कमी तो आवे निरादर किसी का नहीं होता। परन्तु मेरा चित्त सदा सांसारिक बातों से विरक्त रहा है, इसलिए आज बहुत से मनुष्यों में आने से मन घबराता है। मनुष्यों से भरा हुआ यह मकान मुझे ऐसा लगता है मानो इसमें आग लग रही हो।"

शारद्वत कहता है—"भोग विलास में जिन्दगी बिताने वाले इन शहर के आदमियों को मैं उसी दृष्टि से देखता हूँ जिस दृष्टि से एक स्नान करके आने वाला साफ-सुथरा पुरुष एक कीचड़ से पुते हुए को देखता है या जागृत व्यक्ति सोये पड़े हुए आलसी व्यक्ति को जिस दृष्टि से देखता है या स्वतन्त्र व्यक्ति जिस दृष्टि से कैदी को देखता है।" (अनुवाद—अभ्यक्त मिवस्नातः ५।११)

इनकी मनोवृत्ति का चित्रण कवि ने किस खूबी के साथ किया है।

(पृ० ३ का शेष)

अथर्व तथा अन्य वेदों में स्थान २ पर आता है—जिस सबका उल्लेख आज हमने नहीं करना। हमने संकेतमात्र किया है। यदि अवसर प्राप्त हुआ तो छन्दों का विस्तार से कभी विचार किया जाएगा।

आज हमारा इससे केवल मात्र उद्देश्य इतना ही है कि हम आर्यजनता को वेदों का सत्य सिद्धान्त, जिसके विरोध में महर्षि एक अक्षर नहीं लिख सकता—आप सबको बतलादें। यह तो हम जानते ही हैं कि 'सन् १९३८ के आर्य विद्वान्' इसका भी समाधान करेंगे। प्रथम तो शुद्ध तर्क के अनुसार सिद्ध होगा या नहीं यह भी एक विचारणीय बात है। परन्तु इतना अवश्य है कि यदि हम गायत्र्यादि छन्दों के स्थानों पर ऋष्यादि छन्द कर देंगे तो 'वेद की स्वतः प्रमाणता' की आधार-शिला का खण्डन हो जायगा। यो होने को तो 'पुत्र' भी सिद्ध हुआ ही। पर वेद उसे स्वीकार नहीं कर सकता।

और हम रे लिए वेद के सम्मुख तर्क प्रतिष्ठित नहीं है।

स्वास्थ्य समाचार

ब्र० सत्यमित्र श्रेणी २ विषम ज्वर, ब्र० रघुवंश ९ श्रेणी विषम ज्वर, ब्र० योगेन्द्र १ श्रेणी विषम ज्वर, ब्र० नरेन्द्र ११ श्रेणी विषम ज्वर, ब्र० शान्ति स्वरूप ११ श्रेणी उन्माद।

गत मास इ उपरोक्त ब्र० रोगी हुये थे अब सब स्वस्थ है।

गुरुकुल समाचार

वर्षा के कारण चारों ओर वन-पर्वतों पर हरियाली छाई हुई है। गंगा का जल दिनोंदिन बढ़ता जा रहा है। कुलभूमि हरी-हरी घास से आच्छादित हो गई है। दृश्य अत्यन्त सुहावना होगया है। कुलभूमि में वृक्षों के लगाने की योजना जारी है। सर्वत्र ईंटों के गमले लगाये जा रहे हैं। आशा की जाती है कि कुछ दिनोंमें इस से स्थान की शोभा बहुत बढ़ जायगी।

गुरुकुल नई व्यायामशाला बनकर तैयार हो रही है। जब यह पूरी तरह बनकर तैयार हो जायगी तब गुरुकुल में एक दर्शनीय वस्तु होगी। इसके लिये व्यायामसम्बन्धी अधिक से अधिक उपकरणों के जुटाने का प्रबन्ध किया जा रहा है।

'सर्वमित्र' का कवितांक -

यह पाक्षिक पत्र गुरुकुल महाविद्यालय के ब्रह्मचारियों द्वारा हस्तलिखित रूप में निकला जाता है। प्रस्तुत अंक 'कवितांक' है। इस अंक में गुरुकुल के ब्रह्मचारियों की विविध विषयों पर मनोहर एवं स्वाभाविक रचनाएं हैं। इनके अतिरिक्त हिन्दी के अनेक सुप्रसिद्ध कवियों की भी उत्तम रचनाएँ इस 'कवितांक' की सुशोभित कर रही हैं। अपने इस परिश्रम और अध्यवसाय के लिये इस पत्र के सम्पादक श्री अशोक कुमार जी धन्यवाद के विशेष पात्र हैं। आशा है यह पत्र आगे और भी अधिक उन्नति करेगा।

दो अजगरों का शिकार

पहिला शिकार—

पिछले दिनों गुरुकुल कांगड़ी के ब्रह्मचारी अजगरों को पकड़ने के उद्देश्य से जंगल में गये। इधर कुछ दिनों से अजगरों के उपद्रव की चर्चा आसपास के जंगली इलाकों में हो रही थी। दिन अच्छा था, आकाश में बड़े २ काले बादल छाये हुए थे जिन के कारण हराभरा वन श्यामायमान प्रतीत हो रहा था। सघन वनों को पार करते हुए ब्रह्मचारी सतर्क होकर आगे बढ़े। एकाएक सबकी दृष्टि एक विशालकाय अजगर पर पड़ी, जिस ने एक हरिण को दबोच रक्खा था और उसे निगलने का कोशिश कर रहा था। वह हरिण ब्रह्मचारियों के आने के पूर्व ही अजगर के बलिष्ठ शिकंजे में पड़कर अपने प्राण गंवा चुका था इसलिये उसे बचाना व्यर्थ था। घटना को क्यों न से देखा जाय इस विचार से ब्रह्मचारी उसके पीछे-पीछे जा पहुंचे और सर्प के उदर-पूरण का लोमहर्षण कृत्य देखने लगे। थोड़ी सी देर में ही उसने अपने मुख को अधिकाधिक फैला कर हरिण को पूरी तरह निगल लिया। पीछे से मनुष्यों की आहट पाकर वह चौंका और घन जंगल की ओर सावधानी के साथ भाग चला। ब्रह्मचारियों ने उसे चतुराई और साहस से घेरा और पकड़कर गुरुकुल ले आए।

दूसरा शिकार

गुरुकुल कांगड़ी की व्यायाम शाला और शवच्छेदन गृह के पिछवाड़े, वृक्षों के सघन झुरमुटों में से एक अन्य अजगर सांप पकड़ा गया जिसकी लम्बाई १२ फीट ८ इंच थी। लोग कहते हैं कि यह सर्प कभी २ मनुष्यों पर भी झपट्टा मारा करता था। पिछले साल इसी सर्प ने एक गीदड़ को मार डाला था और उसे खाते समय ब्रह्मचारियों द्वारा पकड़ लिया गया था। ढाई मास कारावास में रहनेके पश्चात् एक रात्रि को यह भाग निकला और अब पूरे एक वर्ष बाद फिर हाथ आया। यह घटना इस प्रकार घटी कि एक दिन ३०-४० बन्दरों का एक गिरोह आम खाने के लिये समीप के बाग में प्रविष्ट हुआ माली कहीं अन्यत्र गया हुआ था। थोड़ी देर में पेट भरकर बन्दर इधर उधर स्वच्छन्द विचरण करने लगे एक मोटा बन्दर जो कि शरीर की बनावट से उस झुण्ड का सरदार प्रतीत होता था, एक जामुन वृक्ष के पास से गुजरा। इतने में ही अजगर ने उछल कर उसे दबोचा। उसकी भय मिश्रित आवाज़ को सुनकर बन्दरों का सारा झुण्ड बात की बात में वहां आ पहुँचा और अजगर की पीठ पर चिपट कर दांतों और नाखूनों से उसे काटने लगा। किन्तु अजगर ने पूरे क्रोध के साथ उस मोटे बन्दर को इतनी जोर से जकड़ा कि वह तत्काल मर कर शिथिल पड़ गया। अजगर ने अपने शिकार को मृत समझकर छोड़ दिया और उस समस्त झुण्ड का मुकाबला करने के लिये तैयार हो बैठ गया। इधर २ से फुफकार छोड़कर उसने सबको ललकारा किन्तु वानर मण्डली पहिले ही पलायन कर चुकी थी उनमें से कोई भी पास न फटका। क्रोधातुर सर्प बार २ अपना मुँह जमीन पर पटकता था। थोड़ी देर में भूखा अजगर अपने शिकार को उदरस्थ करने के लिये आगे बढ़ा, किन्तु माली के लड़के ने ब्रह्मचारियों को इसकी खबर करदी और वह पकड़ लिया गया। आजकल वह पिंजरे में है। इस समय पिंजरे में तीन अजगर हो गए हैं।

चौधरी हुलासराय के प्रबन्ध से गुरुकुल प्रेस गुरुकुल कांगड़ी में मुद्रित तथा प्रकाशित।

* ओ३म् *

"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत" Reg. No A. 2927

गुरुकुल

सम्पादक—साहित्यरत्न पं० हरिवंश वेदालङ्कार

एक प्रति का मूल्य -) [गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख-पत्र] वार्षिक मूल्य २॥)

वर्ष ४] गुरुकुल कांगड़ी, शुक्रवार २० श्रावण १९९६, ४ अगस्त १९३९ [संख्या १५

जीवन की दिशा

(ले०—श्री अम्बालाल पुराणी)

[भाई अम्बालाल पुराणी श्री अरविन्दाश्रम के उन दो चार प्रारम्भिक साधकों में से हैं जो कि इस आश्रम के खुलने से बहुत पहिले से ही श्री अरविन्द के साथ योगसाधन के लिये रहने को पॉण्डिचेरी में आ गये थे और रहते थे। इससे पूर्व पुराणी जी गुजरात में व्यायाम प्रचारक के रूप में बहुत प्रसिद्ध रहे हैं और अब भी अरविन्द के योग पर तथा अन्य विषयों पर गुजराती में लिखने वाले लेखक के तौर पर प्रख्यात हैं। श्री अरविन्द की रचनाओं का ये गुजराती में बहुत कुछ अनुवाद कर चुके हैं और करते रहते हैं। श्री अरविंदाश्रम से कुछ भी सम्बन्ध रखने वाला व्यक्ति इन पुराणी जी से अपरिचित रहे यह कदाचित् ही सम्भव है। ऐसे अनुभवी व्यक्ति के अध्यात्म संबन्धी लेख बहुत काम के हो सकते हैं। यह एक लेख है। आशा है गुरुकुल के पाठकों को उनके अन्य लेख भी कभी कभी भेंट किये जा सकेंगे।

--अभय]

तुम्हें जीवन में दुःखद आघातों का अनुभव हुआ है? जीवन सम्वेदना में से कोई प्रश्न बार बार तुम्हारे आगे आकर खड़ा होता है जिसका हल भी तुम्हें न सूझता हो? 'यह क्या है?' 'इसका क्या अर्थ है?' 'जीवन क्या है?' "मृत्यु क्या है?" इस प्रकार के सनातन प्रश्नों की दीवार पर तुमने भी माथा पटका है? और परिणाम स्वरूप निरुत्साह, शोक और निराशा की खाई में कभी गिरे हो? मानव शक्तिहीन है, पामर है, वह भला जान ही क्या सकता है इस प्रकार की शङ्काशीलता और अश्रद्धा की अवधि में से गुजरे हो न?

पर यह न समझ बैठना कि यह अनुभूति ही अन्तिम है। ऐसी मर्मभेदक सम्वेदना का भी हल है। अन्तर की गहरी श्रद्धा की आवाज, जो, वह तुम्हें बता रही है कि इसका भी हमारे जीवन में कुछ न कुछ अर्थ तो है ही। पर यह श्रद्धा कब फलीभूत होगी? अबतक मानव जीवन के मूल्यांकन की पद्धति में समूल परिवर्तन नहीं हो जाता तब तक तो इसकी चाबी हाथ आती दिखाई नहीं देती। अन्धेरे में टटोलते हुए, जीवन के नीरस और सूखे मार्ग में भी कोई दिव्य, गाढ़ और अत्यन्त सामीप्य रखने वाला, अत्यधिक परिचित प्रेम समाया हुआ है। कोई दिव्य प्रणयी जीवन की इस महा दुःखद यात्रा के अन्त पर, शायद इसके उद्देश्यरूप बैठा अनन्त काल से हमारी राह देख रहा है। उसकी एक चितवन ही हमारी अनन्त काल की पीड़ाओं और मुसीबतों को भुलाकर आनन्द विभोर कर देने के लिये काफी है। वहां मोह कैसा, उसके आगे जीवन का शोक कहां! उसकी एक एक चितवन में वह ज्ञान ज्योति भरी है कि उसे निहारते ही हमें एक बार सोचना पड़ जाता है कि क्या वास्तव में ऐसे ऐसे कारण भी हमें दुखी कर देते थे?

यह परम प्रेम प्रेरित, ज्ञान ज्योतिपूर्ण, करुणामय दिव्य शक्ति हमारे ऊपर अपना साम्राज्य तभी फैलाती है जब स्वयं हमें उसकी चाह हो। जब तक हम स्वेच्छा पूर्वक उसकी ओर नहीं जाते तब तक वह भी अपनी सर्वशक्तिमत्ता के बल पर हम से आज्ञा पालन नहीं करवाता। जब तक हम अपने आप अपना सब कुछ उसके चरणों पर न्यौछावर नहीं कर देते अपना अन्तर और बाह्य उसे ही सौंप नहीं देते-- तब तक वह हमारे अन्तर के द्वार खड़ा प्रतीक्षा किये जाता है, हमारी राह देखे जाता है। उसके अटूट धैर्य और अपार करुणा में हमारे भूतकाल का कोई लेखा है ही नहीं। उसकी प्रेम दृष्टि के आगे हमारा विषाद और हमारा क्रोध, हमारा सुख और हमारे दुःख कैसे हेच लगते हैं।

जीवन की मर्मवेदनाओं में से हम उस की ओर को चल पड़ें तो कैसा अहोभाग्य! कोई हंसता खेलता उस ओर जा रहा है, कोई बिना जाने ही उस ओर चल पड़ा है, कोई निश्चय पूर्वक जा रहा है तो किसी ने व्रत लेकर यात्रा शुरू कर दी है और हां कितने सारे गीत गाते, नयनों में नीर लिये उसी राह पर चलते चले जा रहे हैं। सभी मार्ग उसके हैं न?

जिज्ञासुओं की कुछ सेवा

(श्री आचार्य अभय देव जी)

[कई बार कुछ महानुभाव सच्चे हृदय से कुछ ऐसी जिज्ञासायें करते हैं जिनका उत्तर कुछ समय निकाल कर भी दे देना उचित होता है। उसके लिये समय तो देना ही पड़ता है लिखा भी जाता है और बहुधा उनके प्रश्न भी इस प्रकार के होते हैं जो और भी बहुतों के मन में उठा करते हैं इसलिये यह विचार किया है कि इस प्रकार की प्रश्नोत्तरी को यथासंभव. जिज्ञासुओं की कुछ सेवा' इस स्थिर शीर्षक के नीचे कभी कभी गुरुकुल के पाठकों के सामने में भी प्रस्तुत कर दिया करं। संभव है कुछ उपयोगी हो।

आज एक ऐसे मान्य मित्र के कुछ प्रश्नों को जो कि अपने एक पुत्र के देहावसान हो जाने के कारण कुछ दुःखी और विचार मग्न हैं अपने उत्तरों सहित नीचे दिया जाता है-- -अभय]

प्रश्न सं० १

क्या हर एक प्राणी को नियत काल के लिये जीवन मिला है। यदि यह ठीक है तो १०० वर्ष तक और इससे अधिक काल तक जीवन के लिये प्रार्थना करने का क्या प्रयोजन है?

उत्तर— किसी प्राणी को जीवन कितने काल के लिये मिला है यह बात हम लोग किसी के मरने पर ही कह सकते हैं। इसलिये जीवन एक नियत काल के लिये ही मिला है. ऐसा हम लोगों को नहीं समझना चाहिये। हमें तो यह समझना चाहिये कि पुरुषार्थ द्वारा जीवन बढ़ाया जा सकता है, जैसे कि दुरुपयोग द्वारा घटाया जा सकता है। इस लिये १०० वर्ष तक जीने की प्रार्थना करना सर्वथा उचित है। बल्कि १०० वर्ष से भी ज्यादह जीने की प्रार्थना करनी चाहिये और इसका यत्न करना चाहिये।

अकाल मृत्यु कोई चीज़ होती है या नहीं इस विषय पर विचार करना अन्त में भाग्य और पुरुषार्थ के विवाद में परिणत हो जाता है। और यह एक ऐसा विषय है जिस पर कि हमेशा ही चर्चा होती रही है और होती रहेगी। भाग्य और पुरुषार्थ का भेद असल में दो प्रकार की दृष्टियों और मनोवृत्तियों का भेद है; वास्तविक भेद नहीं है। मनुष्य के लिये ठीक दृष्टि या मनोवृत्ति यही है कि भाग्य पुरुषार्थ का बना हुआ है, जैसा हम पुरुषार्थ करेंगे वैसा भाग्य होगा।

प्रश्न सं० २

श्री स्वामी दयानन्द जी भी १०० वर्ष की आयु प्राप्त न कर सके तो औरों का क्या कहना। शायद यह आदर्श एक जीवन में नहीं तो अधिक में पहुँचा जा सकता है।

उत्तर— स्वामी दयानन्द जी भी १०० वर्ष की आयु न प्राप्त कर सके तो इससे हमें घबराना नहीं चाहिये। क्योंकि दीर्घायु होना ही एक लक्ष्य नहीं है। कई बार किसी बड़े लक्ष्य की प्राप्ति के लिये दीर्घायुष्य को बलिदान करना होता है। स्वामी दयानन्द जी की १०० वर्ष से कम आयु होने का कारण इसी में पाया जाता है, जैसे कि और भी बहुत से महापुरुष हुए हैं। दीर्घायुष्य होना एक यज्ञ है, और इस यज्ञ द्वारा अर्थात् इस यज्ञ को भी हवि बनाकर एक बड़े यज्ञ को पूरा करना होता है। 'यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवाः' का एक उदाहरण यह भी है। इसका यह मतलब हुआ कि साधारणतया यदि इस तरह आत्म-बलिदान करने की आवश्यकता न हो तो मनुष्य की आयु १०० वर्ष से ऊपर पहुँचनी चाहिये।

वैसे तो मैं यहां तक समझता हूं कि मनुष्य १०० वर्ष तक क्या हज़ारों वर्षों तक जीवित रह सकता है। और जब संसार में इतने दीर्घ जीवन की आवश्यकता होगी तब मनुष्य के अन्दर परमेश्वर की वह शक्ति भी जाग जायेगी जिस से कि इतना बड़ा जीवन सम्भव होता है। असली वस्तु इच्छामरणी होना है। मनुष्य का आत्मा जब चाहे तब यह चोला बदले। नहीं तो आत्मा का अजरता-अमरता के द्वारा अपने शरीर को भी यथेच्छ काल के लिये अजर अमर बना लेवे।

प्रश्न सं० ३—

यह देखने में आता है कि जो पापी हैं वे उनसे अधिक सुखी हैं जो अच्छे काम करते हैं। इसका उत्तर यह दिया जाता है कि पिछले जन्मों के कर्मों के कारण ऐसा होता है। मेरा प्रश्न यह है कि कर्मों का फल उसी जन्म में तुरन्त क्यों नहीं दिया जाता ताकि कर्म करने वाले को मालूम हो जावे कि अमुक दुःख-सुख अमुक कर्म का फल है। पिछले जन्मों के कर्मों का और अगले जन्म के भोगों का कोई विरला ही जानता है।

उत्तर— कर्म की गति बड़ी गहन है। 'कर्म का फल उसी जन्म में क्यों नहीं दिया जाता' इस बारे में महर्षि पतञ्जलि का तो यह विचार है कि भिन्न भिन्न प्रकार के कर्मों के फल का काल भिन्न भिन्न होता है। जैसे उत्कट पुण्य या पाप का फल तो उसी जन्म में ही मिल जाता है ताकि 'कर्म करने वाले को मालूम हो जावे कि अमुक दुःख-सुख अमुक कर्म का फल है'। अन्य साधारण पुण्य व पाप सञ्चित होते रहते हैं और एक प्रारब्ध बनाते हैं जिसके अनुसार अगले जन्म में या उसके भी बाद के जन्मों में भोग भोगने पड़ते हैं। भिन्न भिन्न कर्मों का फल कुछ दिनों, महीनों या वर्षों में मिलता है यह बात भी संसार में अनुभव में आती है।

आपने जो यह लिखा है कि "जो पापी हैं वे उनसे अधिक सुखी हैं जो अच्छे काम करते हैं। इसका उत्तर यह दिया जाता है कि पिछले जन्मों के कर्मों के कारण ऐसा होता है" इस सम्बन्ध में मुझे यह बताना है कि आप द्वारा निर्दिष्ट लोक-प्रचलित उत्तर भी कुछ हद तक ठीक है। साथ ही यह भी समझ लेने की बात है कि चाहे शुरु

में पापी अधिक सुखी और पुण्यात्मा अधिक दुःखी दिखाई देते हैं किन्तु अगर अन्त में होने वाले परिणाम की दृष्टि से देखा जाय (जो परिणाम कि बहुत बार उसी जन्म में ही प्रत्यक्ष दीख पड़ता है) तो पुण्यात्मा अधिक सुखी हो जाते हैं और पापी अत्यन्त दुःख में फंस जाते हैं।

यह भी सोचने की बात है कि सच्चे सुख की दृष्टि से कौन अधिक सुखी है। एक सच्चे पुण्यात्मा को जो आत्म संतोष रूप सुख मिलता है, वह पापी को होने वाले बाहरी विषयों के क्षणिक सुख से बहुत ऊंचा होता है। सुख-दुःख का अनुभव भी आत्मा और मन से सम्बन्ध रखता है। अतः आत्मा के ऊंचे सुखों से पापी को मिलने वाले सुखों की तुलना भी नहीं की जा सकती।

कर्म फल के गहन विषय को पूर्णतया तो योगी के सिवाय कोई नहीं जान सकता, किन्तु एक विशेष आध्यात्मिक अवस्था में पहुंच कर मनुष्य को इस विषय के प्रश्नों का संतोष जनक हल अपने अन्दर से ही मिल जाता है।

४ प्रश्न सं० ४

क्या परमात्मा कर्मों का फल दुःख-सुख में दिये बिना सुधार नहीं कर सकता? सभ्य देशों के जेलों में बिना दुःख दिये कैदियों का सुधार करने का यत्न किया जाता है। या वास्तव में परमात्मा किसी को सुख-दुःख नहीं देता। सुख-दुःख आन्तरिक स्थिति का परिणाम है। पुत्र की मृत्यु पर किसी को कम, किसी को बहुत दुःख होता है और किसी को शायद बिलकुल न होता हो।

उत्तर—यह परमात्मा की असीम दया है कि वह हमें कर्मों का फल सुख-दुःख के रूप में देकर कर्म के बन्धन से मुक्त कर देता है तथा आगे के लिये दुःखदायी कर्मों के करने से सावधान करता है। आपने अपने चौथे प्रश्न में कर्मों का फल तुरन्त मिल जाने में प्राणियों का हित माना है और इस प्रश्न में सुख-दुःख भोगने से घबरा कर उस को लेने से इन्कार किया है। असल में सुख-दुःख का भोग ही हमें जन्म-मरण के चक्र से छुड़ाने वाला अधिक सरल साधन है। आप लिखते हैं कि परमात्मा को बिना सुख-दुःख दिये हमारा सुधार करना चाहिये। पर ऐसा संभव नहीं है। सुख दुःख प्रकृति के विकार हैं, प्रकृति से ही उत्पन्न होने वाले और हमारे प्रकृति रूप शरीर से ही संबन्ध रखने वाले हैं। आत्मा तो अज्ञान या अविवेक से ही अर्थात् प्रकृति की और आत्मा की चीजों में भेद न करने से सुख-दुःख को अपने गुण या स्वभाव समझ बैठता है। इस लिये जैसा कि आपने लिखा है सुख-दुःख आन्तरिक स्थिति का परिणाम है यह बात एक अर्थ में ठीक है। जो मनुष्य अपने आत्मा को सुख-दुःख से निर्लिप्त अनुभव कर लेते हैं वे महान् शारीरिक कष्ट के आने पर भी अपने अन्दर में स्वस्थ और सुखी रहते हैं। साथ ही इस आन्तरिक अवस्था के फल स्वरूप उनके चेहरे पर दुःख का कोई चिन्ह नहीं दिखाई देता। वे सुख-दुःख की अवस्थाओं में अन्दर और बाहर से निर्विकार ही रहते हैं। अपने अन्तर में मग्न रहने से वे बाहरी दुःख को अनुभव ही नहीं कर रहे होते।

आप कर्म-फल रूप सुख-दुःख से घबराये हुए लगते हैं। किन्तु जिस लौकिक सुख-दुःख की आप चर्चा कर रहे हैं उस की दृष्टि से अगर संसार को देखा जाय तो उस में सुख ही अधिक है। हां, इस में भी संदेह नहीं कि लौकिक सुख सदा दुःख के साथ मिला रहता है। लोक में शुद्ध सुख कहीं नहीं मिल सकता। सुख-दुःख पर जब आप लौकिक दृष्टि से विचार करते हैं तब तो आपको दुःख का स्वागत ही करना चाहिये क्यों कि लौकिक सुख न तो दुःख के बिना मिलता ही है और न ही वह अच्छा लगता है।

कैदियों को जब समझा बुझा कर सुधारा जाता है तब उनके मन में अपने कर्मों के लिये जो पश्चात्ताप का भाव पैदा होता है, वह शारीरिक दुःख की अपेक्षा अधिक दुःखदायक होता है। शारीरिक दुःख तो क्षण भर अनुभव होकर फिर शून्य सा होजाता है, किन्तु पश्चात्ताप की वेदना बहुत देर तक चुभती रहती है जब तक कि मन धुल कर साफ़ नहीं हो जाता। इस प्रकार आन्तरिक संताप से भी सृष्टि में सुधार की प्रक्रिया जारी रहती है।

आप जानते हैं कि कई पाप हम मन द्वारा तो कर चुकते हैं किन्तु शरीर की चेष्टा से करने में बचे रहते हैं। उन पापों का भी ईश्वर के अटल न्याय से फल मिलता है और स्थायी आन्तरिक पश्चात्ताप के रूप में ही होता है। किन्तु शरीर द्वारा भी बुरे कर्मों से बचाने के लिये आत्मा के चोले इस शरीर को कष्ट देना आवश्यक होता है जैसे कि आन्तरिक मल को धोने के लिये पश्चात्ताप की वेदना भोगनी पड़ती है।

प्रश्न सं० ५—

जब हम बुरा कर्म करने लगते हैं तो परमात्मा ज़बर्दस्ती क्यों नहीं रोक देते? हमें बुरा कर्म करने की स्वतन्त्रता नहीं चाहिये।

उत्तर—जब हम बुरा कर्म करने लगते हैं तो परमात्मा हमारे अन्तरात्मा या अन्तः करण में प्रबल प्रेरणा करते हैं जिससे कि हम उस कर्म से हट जायें। किन्तु हम अपने किसी क्षणिक स्वार्थ वा सुख में बाधा पड़ती देख कर अन्तरात्मा की उस आवाज़ को अनसुनी कर देते हैं। हम उस प्रेरणा के प्रतिकूल काम कर डालते हैं। हमारा अन्तरात्मा उस प्रथमवार से कमज़ोर होना शुरू होता है। अगली बार भी जब कोई बुरा कर्म हम करने लगते हैं तो अन्तरात्मा पहले से कुछ धीमी आवाज़ से हमें टोकता है। पर यदि उस बार भी हम पहले जैसा विरोध करते हैं तो अन्तःकरण और कमज़ोर पड़ जाता है इस प्रकार कई बार अन्तरात्मा की आवाज़ अनसुनी करते रहने पर हमारा अन्तरात्मा दब जाता है, सो जाता है। उसकी आवाज इतनी मद्धम पड़ जाती है कि हमें सुनाई तक नहीं देती। इस प्रक्रिया को समझ लेने पर हमें यह मानना पड़ता है कि परमात्मा प्रबल प्रेरणा से हमें बुरे कामों से रोकते हैं किन्तु हम ही ईश्वरीय प्रेरणा को जबर्दस्ती

(शेष पृष्ठ ५ पर)

गु रु कु ल

२० श्रावण शुक्रवार १९९६

मैंने अपने बालक को गुरुकुल में क्यों प्रविष्ट कराया ?

(श्री आचार्य अभय देव जी)

इस विषय पर दो संरक्षक महोदयों के पत्र नीचे दिये जाते हैं। इनके बालक चतुर्थ श्रेणी में पढ़ते है। पहिले पत्र में से तीन वाक्य निकाल दिये हैं जो मेरी प्रशंसा में थे और अनावश्यक थे। दोनों पत्रों में कहीं-कहीं शब्द शुद्ध रूप में कर दिये हैं, बाकी सब पत्र (नाम पता छोड़कर) अविकल रूप में दिये गये हैं। पहिला पत्र मध्यप्रान्त से आया है, दूसरा राजपूताने से। पाठक देखें कि भिन्न भिन्न प्रकार के विचारों वाले और भिन्न भिन्न प्रदेशों के रहने वाले भी व्यक्ति किस एक प्रकार के भाव से— उस भाव को जगाने के बाह्य कारण भी चाहे भिन्न भिन्न होते हैं— प्रेरित होकर गुरुकुल की तरफ आकृष्ट होते हैं। वही गुरुकुल की आत्मा है (जिसको अन्य बातों को गौण करके) सर्व यत्न से रक्षित रखना और बढ़ाना गुरुकुल की वास्तविक उन्नति करना है।

—अभय]

(१)

श्रीमान् आचार्य जी। ता० १३-७-३९

सादर नमस्ते।

आपके "गुरुकुल" पत्र में "आपने अपना बालक गुरुकुल क्यों भेजा" 'इस सम्बन्ध मे हरएक संरक्षक अपना विचार प्रगट करे' यह पढ़कर बड़ी खुशी हुई।

आचार्य जी,पिता अपने बच्चे को पढ़ने के लिये भेजने के पेश्तर उसके भविष्य जीवन को सोचता है। मैंने भी यही सोचा। मेरा तो यह ख्याल है कि बच्चों को ऐसे विद्यालय में भेजना चाहिये जिससे उसका इस संसार में आने का कार्य सुफल हो, याने वह पहले यह जान सके कि परमात्मा ने मुझे इस संसार में क्यों भेजा है और मुझे क्या करना चाहिये। ऐसा विद्यालय में ढूंढते २ थक गया। जहां देखा पेटपालू के सिवाय कुछ भी नही सिखाया जाता है। कर्म-धर्म की बात कोई नहीं सिखलाता है। कुछ रोज़ पेश्तर श्रीमान् पुरुषोत्तमदास टंडन ने प्रयाग में विद्यापीठ खोला था वहां दो बच्चे भेजे। एक लड़का शान्तिनिकेतन भी भेजा, मगर दिल को कहीं भी तसल्ली नहीं हुई। हां गुरुकुल भेजकर अपने दिल को शान्त करना चाहता था मगर वहां आर्थिक कठिनाई पेश आती थी-अब अपने आख़री अर्थात् पांचवें बच्चे को अपनी पेंशन Commute कराकर आप की सेवा में भेजकर दिल को शान्त किया है।

....

मैं कहां तक लिखूं अपने बच्चे को भेजने के पेश्तर अपने धर्म गुरु से भी सलाह लिया था। उन्होंने यही फरमाया कि बच्चा वहां भेज सकते हो। मुझे उम्मीद है कि मेरा यह पांचवां बालक आप के गुरुकुल में अपनी पढ़ाई पूरी करके मेरी आत्मा को शान्त करेगा और अपना जीवन संसार में अपना कर्त्तव्य पालन करते हुए बितावेगा। परमात्मा आप को अमर बनावे जिससे हम सरीखे विचार वाले लोगों की मंशा पूरी हो,यही विनय है ।

(२)

श्रीमान् आचार्य जी, ता० १२-७ ३९

गुरुकुल कांगड़ी।

गुरुकुल के पत्र में एक लेख था जिसमें यह लिखा हुआ था कि संरक्षक अपने २ विचार लिखें कि उन्होंने गुरुकुल में बालकों को क्यों प्रवेश कराया। उसके उत्तर में मैं नम्र निवेदन करता हूं।

मैं सन् १९२७ में मेट्रिक की परीक्षा देने को देहली गया था। वहां से फिर पवित्र गंगा के दर्शनार्थ हरिद्वार आया। हरिद्वार में यह सुना कि पूज्य महात्मा श्री गांधी जी गुरुकुल कांगड़ी के वार्षिक उत्सव पर पधारेंगे। तो मैं भी गुरुकुल पहुंचा। उस समय गुरुकुल पवित्र गंगा के किनारे पर था। श्री महात्मा जी तो नहीं पधारे, किन्तु गुरुकुल के ब्रह्मचारियों के दर्शन हुए जो पीले २ धोती पहिने हुए थे। चेहरों पर ब्रह्मचर्य के प्रताप से बहुत तेज था। ऐसा दृश्य देखकर सहसा मन में विचार हुआ कि यदि मैं भी यहां पर, विद्याअध्ययन करता तो कितना भाग्यशाली होता और जिस प्रकार इन ब्रह्मचरियों के हृदय में देश-सेवा का प्रेम भरा है वह मेरे हृदय में भी होता। ठीक यही विचार लेकर वापिस लौटा। ईश्वर की कृपा से कुछ समय बाद घर में पुत्र उत्पन्न हुआ। जब वह अपनी किशोर अवस्था को प्राप्त कर चुका तो उसे गुरुकुल में प्रवेश कराकर अपने को सौभाग्यवान समझा। गुरुकुल के ब्रह्मचारियों की परिपाटी कुछ अंशों में भारत के पूर्व ब्रह्मचारियों की प्रणाली प्रतीत होती है, जिस प्रकार भगवान श्री रामचन्द्र जी ने बाल्यकाल में ऋषि विश्वामित्र के आदेश अनुसार विद्या अध्ययन किया और यज्ञशालाओं की रक्षा की थी वो ही त्याग आज गुरुकुल के ब्रह्मचारियों ने दिखाया है।

भवदीय

....

स्नातक बन्धुओं की सेवा में—

स्नातक बन्धुओं की सेवा में निवेदन है कि "गुरुकुल" पत्र का २॥) वार्षिक चन्दा जिनका अबतक नहीं आया है उन के पास हम अगला अंक वी० पी० द्वारा भेज रहे हैं। मान्य स्नातक बन्धु वी० पी० छुड़ाकर इस पुण्य कार्य में अवश्य सहयोग देंगे। — सम्पादक

स्वास्थ्य संरक्षा

स्वास्थ्य का स्वरूप

(ले०—प्रो० प्रमाद जी, प्राकृतिक चिकित्सोपाध्याय
गु० कु० कांगड़ी विश्वविद्यालय)

(गतांक से आगे)

(२)

स्वाभाविक स्वास्थ्य की प्राप्ति का एक मात्र साधन यह है कि हम प्राकृतिक जीवन के विधान (नियमावली) का ज्ञान प्राप्त करें और उस पर चलें। उसके अनुसार अपना जीवन बना कर हम उस शक्ति के विकास को पूर्ण अवकाश या क्षेत्र प्रदान करते हैं, जो कि हमारे स्वास्थ्य की स्थिति और वृद्धि के लिये हमारे शरीर को स्थिर रखती है और उसको कार्य में प्रवृत्त करती है। प्राकृतिक जीवन का यह विधान (नियमावली) हमारे आभ्यन्तरीय जीवन और संसार में व्यापक बाह्य-जीवन की शक्तियों के मध्य में स्वाधीन और स्वाभाविक सहयोग का विधान मात्र है। संसार के बाह्य-जीवन की यह व्यापक शक्तियाँ सृष्टि के आदि कारण सूक्ष्म पंच महाभूतों—पृथिवी, जल, तेज(अग्नि)वायु—और आकाश की शक्तियाँ हैं।

हम प्राकृतिक जीवन के सब विभागों में प्राकृतिक नियमों का इतने दीर्घकाल से उल्लंघन करते आ रहे हैं कि अब हमारे लिए यह भी अनुभव कर सकना कठिन बन गया है कि हमारे जीवन अस्वाभाविक वा अप्राकृतिक हैं। हमारा मोक्ष या दुःख मोचन तभी हो सकता है जब कि हम प्रकृति की ओर पुनः लौटें। अर्थात् प्रकृति के नियमों पर पुनः चलना सीखें इस प्रकार प्रकृति के पथ पर प्रत्यागमन ही प्राकृतिक-चिकित्सा के सिद्धान्तानुसार, स्वास्थ्य-संरक्षा विद्या का समग्र शिक्षा है। इसी के द्वारा हम स्वस्थ रहने के अपने जन्म सिद्ध अधिकार को प्राप्त कर सकते हैं। प्रकृति के पथ पर प्रत्यागमन वा पुनः आरूढ़ता में सबसे पहिले जिस बात पर हमारा पूर्ण ध्यान जाना चाहिये, वह हमारा आहार (भोजन) है। आहार का उपयोग अप्रयोग और दुरुपयोग हमारे विचार के मुख्य विषय हैं।

इस पर कोई प्रश्न कर सकता है हम यह सब कष्ट क्यों उठायें? प्रकृति के पथ पर प्रत्यागमन में जो तपस्याएं करनी पड़ती हैं, उसकी आवश्यकता ही क्या है? हम चिरकाल से चल आते हुए अपने अभ्यासों का डगर-दुगण

[पृष्ठ ३ का शेष]

दबा देते हैं। वरना प्रभु की तो सदा यही इच्छा है कि हम अन्तरात्मा की पुकार के अनुसार बुद्धि-पूर्वक बुरे कामों से बचे रहें।

आप कहते हैं कि हमें बुरा काम करने की स्वतन्त्रता नहीं चाहिये। परन्तु अच्छा कर्म करने की तो स्वतन्त्रता और बुरा कर्म करने की न हो, इस प्रकार की आंशिक स्वतन्त्रता आत्मा के विषय में कल्पना नहीं की जा सकती। आत्मा स्वभाव से ही स्वतन्त्र है, चाहे वह जीव आत्मा हो या परमात्मा।

पथ या लीक पर क्यों न चले जायें? हमारे ये चिराभ्यास ही तो हमारी प्रकृति बन गए हैं। यदि औषध—चिकित्सक या हमारे डाक्टर हमको हमारा खोया हुआ स्वास्थ्य न भी दे सकें, तो कम से कम, वे उसकी गांठ मरम्मत करके उसको नया स्वास्थ्य सा तो बना ही देते हैं। पुनः हमको इस चिन्ता में पड़ने की आवश्यकता ही क्या है कि हम दीर्घ जीवी होते हैं वा नहीं? बहुत काल तक जीते हैं वा नहीं। यदि हम सुख पूर्वक अपना जीवन बिताते हैं और "यावज्जीवेत् सुखं जीवेत" की उक्ति को चरितार्थ कर रहे हैं, तो हमको दीर्घ जीवन की चिन्ता या परवाह ही क्या है? सुख पूर्ण स्वल्प कालिक जीवन उस दीर्घ जीवन से निश्चय ही कहीं अच्छा है, जिस में स्वाधीन सुख भोग का उत्तेजक स्वाद नहीं है। इन शंकाओं का समाधान निम्न लिखित हैः—प्रथम बात तो यह है कि हमारे आक्षेप कर्त्ता वा पूर्वपक्षी की उठाई हुई शंकाएँ अधिकांश काल्पनिक वा मन-गढ़न्त हैं। इस निबन्ध को पढ़ कर आप यह स्पष्ट समझ जायँगे कि प्राकृतिक जीवन सन्यासियों वा तपस्वियों का जीवन नहीं है। वह तो वास्तविक इन्द्रिय-सुख वा यथार्थ सांसारिक आनन्द से परिपूर्ण (भरपूर) जीवन है। इसके अतिरिक्त आज कल सभ्यम्मन्य जीवन स्वपथारूढ़ जनों को वस्तुतः कितना सुख प्रदान करता है प्राकृतिक जीवन-यापन में उस से कहीं अधिक गुण और रस है। प्राकृतिक जीवन के पथ पर प्रत्यागमन के लिये प्रारम्भ में ही कुछ प्रयास और प्रयत्न करने की अपेक्षा वा आवश्यकता है। यह प्रयास और प्रयत्न केवल प्राकृतिक जीवन यापन के मूल्य को समझ लेना और समझ कर उसके ज्ञान को अपनाना मात्र है। मनुष्यों में इस ज्ञान का प्रसार ही प्राकृतिक जीवन दर्शन वा प्राकृतिक चिकित्सा के प्रचारकों का एक मात्र उद्देश्य है। प्रारम्भ में हम इन्द्रियों के अप्रिय भोगों की जितनी मात्रा में छोड़ते हैं पीछे से हम, वास्तविक स्वाभाविक इन्द्रिय सुखोपभोग की सुगमता-प्राप्ति पर उससे सैकड़ों गुणा वास्तविक आनन्द उठाते हैं। (शेष अगले अङ्क में)

वेद और महर्षिदयानन्द

(ले०—श्री धर्मवीर)

महर्षि दयानन्द के समय वेदों की अवस्था का उल्लेख करने के लिये पाठकों के सम्मुख आज से ५० वर्ष पूर्व की एक घटना का उल्लेख करना अप्रासंगिक न होगा। अभी महर्षि दयानन्द को मैदान में उतरे हुए १२ वर्ष से अधिक व्यतीत न हो पाये थे। हरिद्वार-कुम्भ के मेले पर पाखण्ड-खण्डनी पताका गाड़े अभी थोड़ा ही समय हुआ था। इतने थोड़े ही समय में जगह २ शास्त्रार्थ कर चुके थे। उनकी प्रबल अभिलाषा थी कि कोई भी स्थान ऐसा न रहे जहां वेद सूर्य की रश्मि पहुँचने से रह जाय। मुरादाबाद, बरेली, बदायूं इत्यादि स्थानों पर प्रचार करते हुए शाहजहांपुर पहुँचे। शाहजहांपुर में जगह शास्त्रार्थ के पर्चे बांटे। पर्चे क्या थे, पौराणिकों और मूर्त्तिपूजकों को शास्त्रार्थ का खुला चैलेंज था। पण्डित लक्ष्मण शास्त्री कोई ऐरे-गैरे पण्डित न थे। माने हुए

धुरन्धर विद्वान् थे। पर्चा पढ़ा और तैश में आकर शास्त्रार्थ का चैलेंज स्वीकार कर ही तो लिया। ठीक समय पर सभा-मण्डप में शास्त्रार्थ के लिये पहुँचे।

स्वामी दयानन्द— कहिये कैसे कष्ट किया?

शास्त्रीजी— मूर्तिपूजा के विषय में शास्त्रार्थ की इच्छा है।

स्वामी दयानन्द—बहुत अच्छा। मूर्तिपूजा के बारे में कोई वेद का प्रमाण हो तो कहिये।

शास्त्री जी— वेद! वेदों को तो शंखासुर उठाकर ले गया उसका प्रमाण कहां से लाया जाय।

स्वामी दयानन्द—लीजिये। आपके आलस्य और प्रमाद रूपी शंखासुर का वध करके हमने जर्मनी से वेद मंगवा लिये हैं। इसमें से ढूंढ करके कोई प्रमाण उपस्थित कीजिये। यह सुनते ही लक्ष्मणशास्त्री भौंचक्के से रह गये। सारी सभा हंस पड़ी। आखिर वे करते भी तो क्या। शंखासुर की एक कहानी सुन रखी थी जब और कुछ न बन पड़ा तो अकस्मात् मुख से वही कहानी निकल पड़ी। वेदों की कैसी दयनीय दशा थी।

इसी प्रकार प्रचार करते हुए विद्या के केन्द्र काशी में छः बार बड़े २ दिग्गज विद्वानों से शास्त्रार्थ हुआ, परन्तु वेद के विषय में सब का कोरा पाया। जन साधारण का तो फिर कहना ही क्या था। वैदिक संस्कृति के केन्द्र भारतवर्ष में वेदों का मिलना तक दुर्लभ हो गया था। आखिर विश्व नियन्ता को अपना नियन्त्रण बनाये रखना था। एक उद्धारक आया और उसने जर्मनी से वेदों को मंगवाया और शंखासुर को नष्ट करके शंखासुर का अन्त किया।

माना कि यूरोपीय विद्वानों ने उस समय वेद विषयक अन्वेषण आरम्भ कर दिये थे, परन्तु अर्थों का अनर्थ कर डाला था। सचाई तो यह है कि उनके सामने वेदों के अर्थ करने की शैली की भी बड़ी भारी समस्या थी। उनको मालूम नहीं था कि वेदों का यथार्थ अर्थ किस ढंग से किया जाता है। 'गतानुगतिका लोकाः' के अनुसार उन्होंने भी सायण और महीधर की शैली को अपनाया। आखिर वे भी क्या करते, उनका तो इतना प्रयत्न ही सराहनीय है। क्योंकि उन्हों ने तो जो भी उस समय प्रचलित शैली मिली उसी को अपना लिया। वास्तविक दोष तो हमारा है जिन के कि वेद प्राण थे, सर्वस्व थे, और हम ही उन वेदों की तरफ से बेसुध हो चुके थे। महर्षि दयानन्द ने आकर वेदों को पुनरुज्जीवित किया, उन्हीं की ही कृपा से आज ईश्वरीयज्ञान वेद हमें जगह २ उपलब्ध हो रहा है। आज आर्य समाज उनके ऋण को वस्तुतः महसूस करता हुआ दिखाई देता है।

आज बहुतों के मुख से महर्षि दयानन्द के भाष्य पर यह आक्षेप सुनाई दे रहा है कि महर्षि दयानन्द के अर्थ मन गढ़न्त और कपोल-कल्पित हैं। ऐसे प्रश्न वही लोग उठाते हैं जो वेद रूपी महासमुद्र के किनारे बैठे हुए हैं और जिन्हों ने वेद में प्रविष्ट होने का कष्ट नहीं किया। आज से कुछ वर्ष पूर्व मेरा भी ऐसा ही ख्याल था। मेरा तो यह पूरा विचार बन चुका था कि महर्षिदयानन्द ने जान बूझ कर वास्तविक अर्थों से आंख मीचने का प्रयत्न किया है। परन्तु आज मैं इस परिणाम पर पहुँचा हूँ कि वेदों को समझने के लिये और महर्षिदयानन्द के भाष्य को समझने के लिये मनन करने की ज़रूरत है। अगर महर्षि के भाष्य को आप दूसरी हिन्दी की पुस्तकों की तरह बांच जायंगे या संस्कृत के महाभारत आदि काव्यों की तरह वेदों को बांच जायंगे तो आप को ऐसा मालूम होगा कि महर्षि ने जगह २ खींच तान की है और वेदों में अनाप शनाप ही लिखा हुआ है। परन्तु, सचाई इससे कोसों दूर है। महर्षिदयानन्द ने तो प्राचीन गोता-खोरों की तरह से वेदों में से रत्न निकालने की तरकीब ही बताया है। उन्होंने बताया कि वेदों को समझने के लिये हमारा लौकिक संस्कृत साहित्य से काम न चलेगा। उदाहरण के तौर पर लोक में वह्नि शब्द आग के लिये प्रयुक्त होता है, परन्तु अब आप निरुक्त को उठाकर देखेंगे तो आप को आश्चर्य होगा कि "वह्नि" शब्द घोड़े के लिये वैदिक साहित्य में प्रयुक्त होता है। पुरीष शब्द लोक में विष्ठा के लिये प्रयुक्त होता है, परन्तु वेद में जल के लिये पुरीष शब्द का प्रयोग किया गया है। इस प्रकार वैदिक और लौकिक साहित्य के अनेकों शब्दों में आकाश पाताल का अन्तर है।

स्वामी जी के वेद भाष्य को समझने के लिये गहराई में जाना आवश्यक है। कभी २ उनके अर्थों को पढ़ते हुए बड़े २ विद्वान चक्कर में पड़ जाते हैं और सहसा कह उठते हैं कि सरासर मनगढ़न्त हैं। आप इनके अर्थों को पढ़ते चले जाइये, और निरुक्त से उन शब्दों के अर्थों को मिलाते जाइये तो आप को अर्थ ठीक लगेगा। परन्तु ज्यों ही भावार्थ पर पहुंचे नहीं कि एक विचित्र सी बात सामने आ जायगी। ऐसे अवसरों पर झट मुंह से निकल पड़ता है कि खींचातानी है। परन्तु नहीं, वेदों के मनन करने वाले जानते हैं कि वही, और ठीक वही भाव है, इस के अतिरिक्त और कुछ हो ही नहीं सकता था। मैं अपने अनुभव के आधार पर कहता हूं कि बहुत से व्यक्तियों ने बहुत से भाष्य किये और मन्त्रों का भावार्थ भी लिखा और बिलकुल सीधा साधा भावार्थ लिखा। साथ ही महर्षि दयानन्द ने भी भावार्थ लिखा। जब तक दूसरे भाष्यों के भावार्थ पढ़े तो वे बिलकुल स्पष्ट थे, परन्तु महर्षि दयानन्द के भावार्थ इतने स्पष्ट न थे। उनके भावार्थों को मनन करने के बाद ही सहसा मुख से निकल पड़ा कि वस्तुतः यही भावार्थ है और अन्य व्यक्तियों के भावार्थ तो इसी के हो अन्तर्गत हैं। तब मालूम पड़ा कि वस्तुतः यही और केवल यही भावार्थ है, शेष भावार्थ तो ऊपर का छिलका मात्र है जिसको गलत तो नहीं कहा जा सकता क्योंकि इसी का ही एक अंश है, परन्तु पूर्ण भी नहीं कहा जा सकता। पूर्ण भावार्थ तो महर्षिदयानन्द का ही है और उस भावार्थ को पढ़ते ही मन में सन्तोष अनुभव होता है। कहने का तात्पर्य यह है कि स्वामी जी के भाष्य को समझने के लिये गहराई में जाना पड़ेगा। उथले पानी में तैरने वाला व्यक्ति स्वामी जी के भाष्य को समझ ही नहीं सकता।

आइये, महर्षि दयानन्द ने वेदों के आधार पर जिस साहित्य का निर्माण किया है, उस पर भी थोड़ा विचार करें ? आज सुधारों का बोलबाला है। मैं पूछता हूँ कि यह सब किस के प्रताप से है ? शायद आप कहें कि यह महात्मा गांधी के प्रताप से है। मैं महात्मा गांधी जी की कम इज़्ज़त नहीं करता, उन्हें संसार की एक उच्च विभूति समझता हूँ परन्तु यह कहने से इन्कार नहीं किया जा सकता कि महर्षि दयानन्द ही एक व्यक्ति थे जिन्होंने इन सब सुधारों का बीजारोपण किया था। सत्यार्थ प्रकाश को उठा कर देखिये, सत्यासत्य की परीक्षा हो जायगी। आप को "यथेमा वाचं कल्याणीं" में अछूतोद्धार की दुकालत मिलेगी। बालविवाह का निषेध मिलेगा। भारत के उद्धार का एक मात्र उपाय 'गुरुकुल शिक्षा-प्रणाली" का बीज उसमें मिलेगा। स्त्री पुरुषों का समानाधिकार की चर्चा उसमें मिलेगी। स्वदेशी प्रेम के दर्शन होंगे, संगठन का उपदेश मिलेगा और मिलेगी चक्रवर्ती राज्य स्थापन करने की एक विस्तृत स्कीम। स्कीम भी कैसी ? सिवाय शान्ति के जिस में अशान्ति का नाम नहीं। अमरीका इंगलैण्ड, फ्रांस, जर्मनी इत्यादि देशों की स्वराज्य पद्धतियां और राजनीतियां जिसके सामने पानी न भरने लगें तो दयानन्द का नाम नहीं। अभी कुछ दिन पूर्व ही आप ने पढ़ा होगा कि वेद की दृष्टि में स्वराज्य-प्राप्ति का एक मात्र उपाय उस देश की सन्तति को उन्नत करना है। आज के सभ्य देश भी आज इस बात को मानने लगे हैं। महर्षि दयानन्द यजुर्वेद भाष्य में एक मन्त्र की व्याख्या करते हुए उस का भावार्थ लिखते हैं कि स्वराज्य प्राप्ति के लिये तथा स्वराज्य की स्थिरता के लिये एक मात्र ब्रह्मचर्य ही मुख्य अंग है। आज के सभ्य देश "ब्रह्मचर्य" इत्यादि शब्दों पर भले ही मज़ाक करते रहें परन्तु यह तो उन्हें भी मानना पड़ेगा कि देश की उन्नति के लिये रुपये पैसे की अपेक्षा वहां की संतति का उन्नत होना अधिक आवश्यक है, यही तो महर्षि दयानन्द की विशेषता है कि जिस चीज़ को आज की दुनियां समझने का प्रयत्न कर रही है, महर्षि दयानन्द आज से ५० वर्ष पूर्व उस से होने वाले परिणामों का उल्लेख कर गये हैं। कहने का मतलब यह है कि महर्षि दयानन्द ने जिस मार्ग का और जिस राजनीतिक स्कीम का आज से ५० वर्ष पूर्व उल्लेख किया था आज हम उसे समझने का प्रयत्न कर रहे हैं। इतनी उत्कृष्ट राजनीति होते हुए भी उसमें अपना एक अक्षर भी नहीं। जो कुछ भी है वह सब वेद की विभूति, ब्रह्मा से लेकर जैमिनि पर्यन्त ऋषि मुनियों के अलौकिक दिमाग़ की उपज। विदेशी बिजली की चुंधियाई हुई आंखें इस भले ही कूप-मण्डूक की टर्र-टर्र कहें, परन्तु मेरी तो उनसे करबद्ध इतनी ही प्रार्थना है कि वे भी दयानन्द की भांति वेद महासागर में डुबकी लगाने का कष्ट करें तो उनको उस में से इस प्रकार के अनेकों महारत्न मिलेंगे जो कि हर प्रकार की उन की मानसिक पिपासा को शान्त करने के लिये पर्याप्त होंगे।

गुरुकुल समाचार

इस सप्ताह वर्षा कम हुई, फलतः गर्मी पर्याप्त रही। ब्र० भीष्म १२ श्रेणी सुखदेव ४ श्रेणी राम प्रकाश ३ श्रेणी मलेरिया ज्वर और उदयवीर ४ श्रेणी उदरशूल। शेष सब स्वस्थ हैं। सब ब्र० दत्तचित्त होकर अध्ययन में लगे हुए हैं। षाण्मासिक परीक्षा १२ अगस्त से प्रारम्भ होगी। प्रथम से पंचम श्रेणी तक के छोटे ब्र० की यात्रा रमणीक पर्वत धर्मशाला ज़ि० काङ्गड़ा होगी। महाविद्यालय के ब्र० भी ऐतिहासिक एवं स्वास्थ्य प्रद स्थानों पर यात्रार्थ जायेंगे।

गुरुकुल महाविद्यालय वैद्यनाथ में प्रान्तीय तृतीय अधिनायक का आगमन

१६–७–३९ को हैदराबाद सत्याग्रह संग्राम के बिहार प्रान्तीय मनोनीत तृतीय अधिनायक (डिक्टेटर) श्री प० सिद्धेश्वर प्रसाद जी का कुलभूमि में पदार्पण हुआ। इस शुभअवसर पर आचार्य श्री पं० धीरेन्द्र जी " विद्या वाचस्पति" के सभापतित्व में सभा हुई। छोटे २ ब्रह्मचारियों के सुललित स्वागत-गान के बाद श्री पं० जगन्नाथ जी "काव्यतीर्थ" ने पूज्य अधिनायक जी का परिचय दिया। श्री पं० सीताराम जी ने स्वरचित संस्कृत की एक कविता में उनका अभिनन्दन किया। श्री आचार्य जी ने अपने भाषण द्वारा अधिनायक का स्वागत किया तथा ३०) भेंट रूप में प्रदान किया साथ ही ५१) शीघ्र पूरा कर देने का वचन दिया। इस राशि को ब्रह्मचारियों ने अपने जलपान और घृत छोड़कर तथा अध्यापकों ने वेतन से काट कर दिया है। अधिनायक के भाषणोपरान्त सभा समाप्त हुई। अधिनायक ने अपने भाषण के सिलसिले में यह कहा कि मैं या तो हैदराबाद से विजय वैजयन्ती को लेकर लौटूंगा या वहीं अपने प्राणों को अर्पित करदूँगा। आपने अपने भाषण द्वारा ब्रह्मचारियों के तथा अध्यापकों के त्याग की भूरी भूरी प्रशंसा की।

निवेदकः—
ब्र० धर्मेन्द्रनाथ
"कुलमन्त्री"

गुरुकुल कांगड़ी में टाइप राइटरों की आवश्यकता

गुरुकुल कांगड़ी के ब्रह्मचारियों को व्यापारिक शिक्षा देने के लिये यह आवश्यक है कि वे टाइप राइटर मशीन पर टाइप कर सकते हों। इस काम के लिये कम से कम दस टाइप राइटर मशीनों की आवश्यकता है। अगर व्यापारी लोग गुरुकुल को १० टाइप राइटर दान दे सकें तो इन मशीनों पर ब्रह्मचारी टाइप करना सीख सकेंगे। संभव है कि व्यापारी महानुभावों तक गुरुकुल की यह मांग सीधे न पहुंचे। इसलिये गुरुकुल-प्रेमियों से अनुरोध है कि वे अपने जानने वाले व्यापारियों को जिन के पास ऐसी मशीनें हों उन्हें गुरुकुल को दान देने के लिये प्रेरित करें ताकि ब्रह्मचारी टाइप करना सीख सकें।

सत्यव्रत
मुख्याधिष्ठाता, गुरुकुल कांगड़ी।

चौधरी हुलासराय के प्रबन्ध से गुरुकुल प्रेस गुरुकुल कांगड़ी में मुद्रित तथा प्रकाशित।

* ओ३म् *

"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत"   Reg. No. A. 2927

गुरुकुल

सम्पादक—साहित्यरत्न पं० हरिवंश वेदालङ्कार

एक प्रति का मूल्य -)   [गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख-पत्र]   वार्षिक मूल्य २॥)

वर्ष ४]   गुरुकुल कांगड़ी, शुक्रवार २७ श्रावण १९९६; ११ अगस्त १९३९   [संख्या १५

श्री अरविन्द क्या करते हैं ?

(ले० —श्री आचार्य अभयदेव जी)

[१५ अगस्त को श्री अरविन्द का जन्म दिवस है। उस अवसर पर निकलने वाले एक विशेषांक के लिये यह लेख आचार्य अभयदेव जी ने लिखा है। —सम्पादक]

यह जान कर कि मैं पाण्डिचेरी के अरविन्दाश्रम में बहुत दिन रह कर आया हूं; जो एक प्रश्न आम तौर पर पूछा जाता है वह है —"यह तो बताइये कि श्री अरविन्द के फिर कार्यक्षेत्र में आने की भी सम्भावना है? वे अपनी साधना खतम करके फिर मैदान में कब आयेंगे। वे अब कुछ काम क्यों नहीं करते ?"

इस प्रश्न को सुन कर मैं प्रायः मन में कहता हूं (कभी कभी बोल भी पड़ता हूँ) "इसका मतलब तो यह हुआ कि मानो श्री अरविन्द अब तक पाण्डिचेरी में निठल्ले पड़े हुये हैं या चैन आराम से दिन बिता रहे हैं।" यह नहीं कि प्रश्न कर्त्ताओं का मतलब मैं नहीं समझता, पर मेरा ध्यान उस समय मनुष्य की उस दुर्बलता की तरफ आकृष्ट हो जाता है जिसके कारण जिस प्रकार के कार्य को कुछ मनुष्य बड़ा जरूरी और उपयोगी समझ कर स्वयं कर रहे होते हैं, जब तक वैसे ही या उनसे मिलते जुलते ही कार्य को दूसरे लोग भी न करते हों तब तक वे मनुष्य उन दूसरे लोगों को निरर्थक काम करने वाले मूर्ख या समय खोने वाले निठल्ले समझते हैं। अतः यदि श्री अरविन्द भी देश विदेश में दौरे करें, उन के जलूस निकलें, वे भाषण देवें, सम्मेलनों का सभापतित्व करें और हर रोज नहीं तो दूसरे तीसरे दिन अपने वक्तव्य प्रकाशित कराते रहा करें, तभी उन लोगों का मन सन्तुष्ट होगा कि "हाँ श्री अरविन्द भी कुछ काम कर रहे हैं।"

यह भी मैं जानता हूं कि प्रायः उपर्युक्त प्रश्न लोग श्री अरविन्द में श्रद्धा रखने या उनसे आशा लगाने के कारण ही प्रेम और आदर भाव से पूछते हैं। कभी कभी उन में देश का उपकार करने के उनके अपने विचारों के कारण और श्री अरविन्द को वैसा उपकार करता हुआ न देख कर एक प्रकार का रोष भी होता है, पर उनका वह रोष भी ईमानदारी का और हार्दिक होता है। इस लिये ऐसे लोगों के लिये ही मैं इस लेख द्वारा कुछ निवेदन करने का प्रयत्न करने लगा हूँ।

मेरे इतना कहने से तो कुछ बनेगा नहीं कि "अकेले रहते हुये भी श्री अरविन्द बहुत भारी काम कर रहे हैं।" मुझे उनका काम दिखाना होगा। तो पहिले मैं यह कहना चाहता हूँ कि वे एक ऐसे योगाश्रम को चला रहे हैं जिस में लगभग २०० साधक (और साधिकाएं) रहते हैं। जिनके कि खाने-पीने रहन-सहने अर्थात् सब शारीरिक और भौतिक भी, न केवल मानसिक और आध्यात्मिक, आवश्यकताओं की पूर्त्ति की जिम्मेदारी अपने ऊपर स्वभावतः ले रक्खी है। यदि मेरे जैसे किसी संस्था के चलाने वाले के बारे में यह कहा जा सकता है कि मैं गुरुकुल का आचार्य या मुख्याधिष्ठाता होने के कारण बड़ा काम कर रहा हूँ (यद्यपि गुरुकुल के ब्रह्मचारियों के प्रति मेरी वैसी उच्च आध्यात्मिक जिम्मेवारी नहीं है—न आशा की जाती है और न मुझ में उस की सामर्थ्य है जैसी बड़ी दुःसाध्य गहन और अवर्णनीय जिम्मेवारी वे अपने आश्रमवासी २०० साधकों की तथा अपने अन्य बाहर के शिष्यों की भी उठाते हैं) तो यह तो नहीं समझा जाना चाहिए कि वे कुछ काम नहीं कर रहे हैं। एक संस्था चलाना ही बहुत भारी काम है, यदि हम इस बात की तरफ न भी ध्यान दें कि वह संस्था अपने अति महान् उद्देश्य के कारण कितनी बड़ी और कितनी असाधारण है।

यह और बात है कि संस्था संचालन के इस काम को वे बिना किसी बाहिरी प्रयत्न के चुपचाप, स्वाभाविक रूप से करते हैं। वे किसी साधक से बातचीत करना तो दूर रहा—साल में तीन दिन के सिवाय कभी किसी साधक को दर्शनतक नहीं देते और दर्शनके तीन अवसरों पर भी मौन ही रहते हैं। फिर भी देश विदेश से आये २०० साधक उन के चरणों में बैठ कर अपनी आध्यात्मिक उन्नति प्राप्त-कर रहे हैं। उनको वहां कुछ मिल रहा है तभी तो वे लोग वहीं ठहरे हुये हैं नहीं तो उन्हें आश्रम छोड़ कर चले जाने से रोकने वाली अन्य कोई बात नहीं है। इन साधकों का श्री अरविन्द से सम्बन्ध जोड़ने वाला यदि कोई भौतिक

साधन है तो वह चिट्ठी-पत्री है। हर एक साधक चिट्ठी पत्री द्वारा श्री अरविन्द से प्रति दिन बातचीत कर सकता है। श्री अरविन्द साधकों की चिट्ठियों का जो रोज जवाब देते हैं उससे मैंने सुना है कि उनके ५-६ घण्टे खर्च हो जाते हैं। यदि हम उनका इतना ही, ५-६ घण्टे लिखने का ही काम देखें तो भी वह पूरा काम है। क्यों कि दिन में ५-६ घण्टे काम करना प्रोफेसरी अध्यापकी सम्पादकी, अफसरी आदि बहुत से ऊंचे पेशों में भी पूरा काम समझा जाता है।

और मैं तो यह भी कहना चाहता हूँ कि हम लोग तो दिन रात में ७-८ घण्टे सो कर भी अपना समय काट लेते हैं। पर श्री अरविन्द तो एक-आध घण्टा यौगिक विश्राम लेने के अतिरिक्त चौबीसों घण्टे सोते भी नहीं हैं कुछ काम ही करते रहते हैं। तो वे हमारी अपेक्षा कितना अधिक काम स्थूल-रूप से करते हैं इसका कुछ अन्दाजा लगाया जा सकता है।

पर शेष समय वे क्या करते हैं? पाठक यह जानना चाहेंगे। पर इसका कुछ उत्तर देना कठिन है। जो कुछ भी कहा जा सकता है वह यह है कि यदि केवल आश्रम की दृष्टि से देखें तो वे साधकों को उन्नत करने के लिये उनको नाना विध कठिनाइयों में से उन्हें निकालने के लिए अपनी आध्यात्मिक शक्ति की सहायता पहुंचाया करते हैं; विश्व की दृष्टि से देखें तो वे इस पृथिवी पर एक नयी सृष्टि रचने के काम में—भगवान् की दिव्य विज्ञानमयी शक्ति को अवतरित कर जगत् का एक दिव्य रूपान्तर करने के बड़े ऊंचे और अति विशाल कार्य में तत्पर हैं। पर इन बातों का यहां वर्णन करना निरर्थक सा हो जाता है—क्यों कि केवल लेख द्वारा इस कथन का समझा सकना संभव नहीं है। इसके लिए आध्यात्मिक जगत् का कुछ अनुभव होना आवश्यक है।

यहां पर विश्व कवि रवीन्द्रनाथ की एक कविता याद आती है जिसका आशय निम्न प्रकार से वर्णन किया जा सकता है।

एक बच्चा रवि बाबू के लिखने के अनुकरण में उनकी डेस्क पर बैठकर कागजों पर लकीरें निकालने लगा, लिखना तो वह जानता ही न था। जब उसे डांटा गया तो वह गम्भीर होकर कहने लगा कि यही काम दादा (अर्थात् रवि बाबू) रोज करते रहते हैं, तो उन्हें कोई नहीं डांटता, मैंने किया तो सब नाराज हो रहे हैं। वह बच्चा अपने द्वारा कागज खराब किये जाने का और रविबाबू द्वारा कोई ग्रन्थ या कविता लिखे जाने का एक ही बात समझता था। जैसे वह बच्चा नहीं जान सकता था कि लेखन द्वारा वाणी-शक्ति का प्रसार होता है और रवि बाबू के काव्य और उनके ग्रन्थ लेखन द्वारा सारे जगत् में प्रभाव उत्पन्न करते हैं अतः वह उनके लिखने को भी अपने जैसा कागज खराब करना समझ सकता था, वैसे ही हो सकता है कि हम लोग भी अध्यात्म-जगत् से अनभिज्ञ होने के कारण वहां की सम्भावनाओं और शक्तियों से अपरिचित होने से श्री अरविन्द के बड़े भारी जगत्व्यापी आध्यात्मिक कार्य को (जो वे अकेले, जगत् से स्थूल सम्बन्ध तोड़ कर, स्थूल दृष्टि से कुछ भी कार्य न करते हुवे) कर रहे हैं, उसे हम अपने आलस्य या व्यर्थ कालयापन की तरह व्यर्थ में समय बरबाद करना या अकर्मण्यता समझ रहे हों। और जैसे वह बच्चा बड़े होकर लेखन का महत्व—उस पर भी रवि बाबू के लेखन का महत्व—समझ सकता है और शायद समझा होगा, वैसे हम भी आध्यात्मिकतया विकसित होकर श्री अरविन्द के कार्य की महत्ता को अनुभव कर सकेंगे।

एक बार एक गांव का आदमी हम पढ़े लिखे लोगों की मजाक उड़ाता हुआ कहता था कि जब हम हल चलाते हैं तो हमें यह काम करते देखकर आप जैसे लोग जिन्होंने कभी हल चलाकर नहीं देखा, समझते हैं कि यह काम बड़ा आसान है इसकी मूठ पर हाथ रखे रखो और दूसरे हाथ से चाबुक से बैलों को हांकते जाओ—बस। पर फाल को जमीन में ठीक धसाये रखने में जो बड़ा जोर पड़ता है—जो श्रम खर्च होता है—उसे तुम लोग नहीं जानते, वह कलम घिसना नहीं है। और वह ठीक कहता था। उसी तरह मैं कहता हूँ कि जो लोग समझते हैं कि श्री अरविन्द या उनके शिष्य (या कोई दूसरे योगी) आराम से संसार के संघर्ष से जुदा बन्द कमरे में या सुरक्षित आश्रम में रहते हैं, उनका जीवन कितना आसान है, वे यह नहीं जानते कि आन्तरिक जीवन में प्रविष्ट हो जाने पर ठीक दिशा में उसे चलाने के लिए बलात् उन पर दिन रात कितना ज़ोर पड़ता है—कितना शक्ति खर्च होती है—जिससे बहुत से लोग घबरा जाते हैं। वे यह नहीं जानते कि असल में सारी दुनिया अन्दर है दुनिया का असली संघर्ष अन्दर है, अन्दर की दुनिया कोलाहलपूर्ण है और बड़ी जबरदस्त है अतः वे यह नहीं जानते कि श्री अरविन्द एकान्त में रहते हुवे भी एक बड़ी भारी लड़ाई लड़ रहे हैं, सारे जगत् के कल्याण के लिए, मनुष्य जाति के दिव्य उत्थान के लिये दिन रात लड़ाई के मैदान में हैं और विजय पर विजय कर रहे हैं। यदि यह ठीक है तो यह समझना भ्रम है कि श्री अरविन्द कुछ उपकार नहीं कर रहे। असल में उपकार करने वाले तो परमेश्वर ही हैं मनुष्य का तो केवल अहंकार ही है। पर यदि जिस द्वारा उपकार कार्य होता है उसे उपकार-कर्त्ता समझा जाए तो मैं जहां तक देखता हूँ कि इस समय श्री अरविन्द जिस विश्वव्यापी महाकल्याण के साधन बन रहे हैं उसकी दृष्टि से उन जैसा उपकार कर्त्ता दूसरा कोई नहीं।

तत्व ज्ञान की गूढ़ बातें करना इस लेख का उद्देश्य नहीं है। अतः तत्व विवेचन में बिना पड़े आम लोगों के अनुभव में आने योग्य भाषा में यह कहना चाहता हूँ कि ज्यों २ अन्दर सूक्ष्मता में प्रवेश किया जाता है त्यों २ चंचलता (जिसे हम जरूरी कर्मण्यता या बड़ा भारी काम समझते हैं) घटती जाती है पर सच्ची शक्ति, क्षमता, प्रभाव, बल बढ़ते जाते हैं। जैसे सब जगत् में अपार कर्म करता हुआ, सब ब्रह्माण्ड को प्रतिक्षण अपनी शक्ति से हिलाता हुआ परमेश्वर बिल्कुल शान्त,

कुछ भी न करता हुआ 'न' के तुल्य दिखाई देता है, वैसे ही परमेश्वर के नजदीक पहुँचे हुवे, जगत् की अन्तरात्मा के पास काम करने वाले अन्तः प्रविष्ट विरले योगी यद्यपि बड़ा भारी काम कर रहे होते हैं पर उनका कर्म हम स्थूल पुरुषों का दृष्टि गोचर नहीं होता। महात्मा गांधी को तो कोई अकर्मण्यता, अपरापकार-रतता का दोषी नहीं ठहरा सकता। पर ज्यों २ वे अधिक मौन रखते हैं— आजकल तो वे मौन को बढ़ाते जा रहे हैं और आधा दिन मौन रहते हैं- त्यों २ उनकी कार्यक्षमता, लेखों की शक्ति, आत्मिक बल बढ़ता जाता है। यह उनके साथी भी अनुभव करते हैं, वे स्वयं तो कहते ही हैं। गांधी जी ने तो बहुत बार शांति और स्थिरता की महिमा गाई है। उन्होंने कहा है 'शान्ति ही प्रवृत्ति है' 'जो अपने आप को पत्थर की तरह बनाकर शान्त रह सकता है वह एक ही जगह बैठा हुवा सारे संसार को हिलाया करता है'। अपने विषय में भी वे कहा करते हैं कि ज्यों-ज्यों मेरी आन्तर शक्ति बढ़ती जायगी त्यों २ मेरी बाहिरी क्रिया-कम होती जायगी। तो हमें भी एक ऐसे महात्मा पुरुष के अनुभव की सत्यता स्वीकार करनी चाहिए और उससे लाभ उठाना चाहिए जिन्हें हमने अपने सन्मुख में आने लायक बहुत भारी कार्य करते हुवे साक्षात् देखा है और उनका भी अनुभव यही हुवा है

और नहीं तो हम यह समझ सकते हैं कि जैसे भौतिक विज्ञान (सायंस) के वेत्ता लोग बीसियों वर्ष या जीवन भर किसी खोज में लगे रहते हैं और उनके विषय में यह नहीं समझा जाता है कि वे निरर्थक समय खो रहे हैं वैसे भौतिक विज्ञान से बहुत अधिक विशाल, बहुत अधिक सच्चे और अतएव बहुत अधिक शक्तिशाली आध्यात्मिकज्ञान- असली विज्ञान-के भारी परीक्षणों में लगे हुवे श्री अरविन्द भी जगत् के लिये कुछ उपयोगी कार्य साध रहे हैं।

आशा है मेरे इस सब निवेदन से यह अनुमान लगाया जा सकेगा या इसका आभास मिल सकेगा कि श्री अरविन्द जो ३० बरसों से पाण्डीचेरी में बैठे हुवे हैं और १२, १३ वर्षों से उनके चारों तरफ एक आश्रम भी बन गया है वह सब बेकार नहीं है।

श्री चाँदकरण जी शारदा का गुरुकुल कांगड़ी के ब्रह्मचारियों को 'संदेश'

प्रिय आर्य विद्यार्थियो !

आज हमें अभिमान है कि आपके सहपाठी विद्यार्थियों ने गुरुकुल से हैदराबाद की जेलों में जाकर स्वातन्त्र्य, ज्योति का और सभ्यता का जाज्वल्यमान दीपक जलाया है। उन्होंने अनेक यातनायें सहते हुये, अहिंसा और सत्य की तलवारों से युद्ध करके निजाम राज्य के भाइयों को स्वतन्त्रता का पाठ पढ़ाया है। इस गुरुकुल की इन चिनगारियों ने भारतीय सभ्यता का महान् आदर्श अक्षुण्ण कर दिया है; और मेरे मुंह से यही निकलता है।

"मरते मरते मर गये, लेकिन न छोड़ा आन को।
आके देखो दोस्तो ! इन आर्य वीरों की शान को॥"

अपने शत्रुओं से घिरे रह कर भी तथा पराधीनता की उमड़ती हुई काली घटाओं को निज़ाम की जेलों में देख देख कर भी आर्य सत्याग्राही वीरों ने जीवन ज्योति जगाई है। और संसार के सामने शौर्य और साहस का अपूर्व उदाहरण उपस्थित किया है। आर्य समाज सारे संसार में आर्य सभ्यता और वैदिक धर्म का प्रचार करना चाहता है। और यह हमारा दृढ़ निश्चय है कि इस आर्य सभ्यता का चक्रवर्ती साम्राज्य होगा। और इसी से सारे संसार में सुख शान्ति फैलेगी। इसी वास्ते प्राचीनकाल से संसार में कौनसी ऐसी वस्तु है जो आर्य सभ्यता की रक्षा के लिये आर्यों ने बलिदान नहीं की। अन्धकार-पूर्ण दिनों में जब कुछ भूले-भटके लोग राष्ट्रीयता के नाम पर और झूठे हिन्दू-मुस्लिम एकता के बहाने हिन्दू और आर्यों की स्वतन्त्रता बेचने को तत्पर हो गये, और आर्य संस्कृति का नाश करने को उतारू हो गये तो आदर्श पर मरने वाले वीर आर्य समाजियों ने ही वैदिक आदर्शों की झिलमिलाती हुई लौ को अपना बलिदान देकर प्रज्वलित रक्खा है। पहिले धर्मवीर लेखराम जी ने, फिर अमर शहीद स्वामी श्रद्धानन्द जी ने और हाल में सोलह आर्य सत्याग्रहियों ने निज़ाम की जेलों में अपने रुधिर की आहुतियें देकर आर्य जाति को जीवन प्रदान किया है जिस के लिये सारा संसार उनका ऋणी रहेगा। आर्य-समाज का वर्तमान युद्ध केवल हैदराबाद के उत्थान के लिये नहीं है परन्तु मनुष्य जाति जहां जहां पददलित और दुखी है उस के उत्थान के लिये है। और विद्यार्थियों का नाम मनुष्य जाति के पुनरुत्थान के इतिहास में सदा स्वर्ण अक्षरों में लिखा जायगा।

प्रिय आर्य विद्यार्थियो ! आप उस प्राचीन आर्य सभ्यता के उत्तराधिकारी हैं। अतः वीर आर्यों की उस शान को और आन को कायम रखने के लिये सदा अपना खून बहाने के लिये तैयार रहो। और प्रत्येक स्थान पर शक्तिशाली, तेजस्वी आर्य वीरों में और सबसे पहिले आगे बढ़ने वालों में आपका और आपकी संस्था का नाम लिया जाय। यही मेरा शुभ आशीर्वाद है।

गुरुकुल कांगड़ी की फार्मेसी को सरकार ने प्रमाणित किया

युक्तप्रान्त की कांग्रेसी सरकार ने पिछले दिनों सरकार द्वारा प्रमाणित आयुर्वेदिक फार्मेसियों की तालिका अखबारों में प्रकाशित कराई थी। उस में गुरुकुल कांगड़ी की आयुर्वेदिक फार्मेसी का नाम भूल से रह गया था। अब चार अगस्त को उक्त सरकार ने जो संशोधित तालिका प्रकाशित की है उस में गुरुकुल कांगड़ी की फार्मेसी को सर्व प्रथम स्थान दिया है।

मुख्याधिष्ठाता गुरुकुल कांगड़ी।

गु रु कु ल

२७ श्रावण शुक्रवार १९९६

'आर्य-समाज ज़िन्दाबाद'

[लेखक–प्रो० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार, मुख्याधिष्ठाता गुरुकुल कांगड़ी]

आठ अगस्त को नागपुर में सार्वदेशिक सभा ने हैदराबाद में चलाये आर्य सत्याग्रह को इस लिये बन्द कर दिया क्योंकि निज़ाम सरकार ने आर्य समाज की प्रायः सभी शर्तें स्वीकार कर लीं। आर्य समाज की इस समय जो विजय हुई है वह आर्य जनता के त्याग और तपस्या का परिणाम है। जिस दिन से सत्याग्रह शुरू हुआ उसी दिन से आर्य जनता ने धन और जन से इस संग्राम को चलाने में किसी प्रकार की कसर नहीं उठा रखी। अगर अभी साल भर और इस संग्राम को चलाने की आवश्यकता होती तो भी, आर्य समाज में इतना उत्साह दिखाई देता था कि इसे सफलता पूर्वक चलाया जा सकता। पिछले दिनों भिन्न २ रियासतों में कई सत्याग्रह प्रारम्भ हुए। देश के बड़े २ नेताओं ने इन सत्याग्रहों की बागडोर अपने हाथ में ली। राजकोट में तो महात्मा गांधी तक ने अपने प्राणों की बाज़ी लगा दी। परन्तु इन सब सत्याग्रहों के मुकाबिले में जिस शान से आर्य समाज का सत्याग्रह सफल हुआ, और जिस सफलता के बाद उसे बन्द किया गया, ऐसी शान और ऐसी सफलता थोड़े ही आन्दोलनों को नसीब हुई होगी। आर्य समाज का इतिहास पहिले ही उज्वल अध्यायों से लिखा गया है, उन में हैदराबाद के सत्याग्रह का इतिहास सब से उज्वल अध्याय समझा जायगा और आगामी सन्तति इस अध्याय को आत्म-सम्मान और-आत्म गौरव से पढ़ा करेगी।

एक दृष्टि से हैदराबाद का सत्याग्रह भारत में अब तक चले सब सत्याग्रहों से विलक्षण था। कांग्रेस के आन्दोलन के समय प्रत्येक शहर ने अपना २ मोर्चा लिया था, इसलिये स्वयं सेवकों को संगठित करने और उन्हें जेल भेजने में कार्य कर्त्ताओं का कोई विशेष खर्च नहीं करना पड़ता था। हैदराबाद के सत्याग्रह में तो लाहौर से हैदराबाद तक एक स्वयंसेवक के भेजने में ही कम से कम बीस रुपये खर्च होते थे। ऐसी परिस्थितियों में भारत के कोने २ से दस हज़ार स्वयं सेवक जेलों में भेज देना और दो हज़ार को हैदराबाद की सरहद पर जेल जाने के लिये तैयार रखना आर्य समाज की असाधारण संगठन शक्ति का द्योतक है। इसके अतिरिक्त एक मुसलमान रियासत के अन्यायों के विरुद्ध इतना तीव्र आन्दोलन खड़ा करके, मतान्ध मुसलमानों के बार २ धमकियां देने के बावजूद किसी प्रकार के दंगे फ़िसाद होने की सम्भावना को न पैदा होने देना, आर्य समाज के सत्याग्रह आन्दोलन की सत्यता और शुद्धता को प्रकट करता है। एक संस्था का अपने कार्य क्षेत्र से इतनी दूर, महान् आर्थिक तथा सामाजिक कठिनाईयों के होते हुए, इतना भारी आन्दोलन खड़ा कर देना और उसे सफलता के परले पार पहुंचा देना आर्य समाज का ही काम था, और इसी लिये इस आन्दोलन को अब तक चले हुए अन्य सब सत्याग्रहों से विलक्षण कहा जा सकता है।

जब हैदराबाद सत्याग्रह प्रारम्भ हुआ था तब शुरू २ में कुछ लोगों को इस के सफल होने में सन्देह था। कई तो साम्प्रदायिक सत्याग्रह कह कर इसे एक निकृष्ट कोटि का सत्याग्रह कहते थे और अपने पत्रों में इस आन्दोलन के सम्बन्ध में खबरें छापना भी गवारा नहीं करते थे। दे. ने २ सिनेमा के दृश्यों की तरह जनता की मनोवृत्ति बदलती चली गई और हैदराबाद सत्याग्रह के विषय में समाचार जानने की जनता की इच्छा इतनी तीव्र हो उठी कि इस विषय की खबरें न देना किसी भी पत्र के लिये असम्भव हो गया। हज़ारों आर्य भाइयों ने घर-बार छोड़कर हैदराबाद की काल-कोठरियों में बैठकर जो तपस्या की, दर्जनों ने धर्म की वेदी पर जो आत्म बलि दी वह सब बेकार नहीं जा सकती थी। इसी का यह परिणाम हुआ कि भारत के कोने २ में ही नहीं, सात समुद्र पार ब्रिटेन की पार्लियामेंट में भी आर्यवीरों की कुर्बानी की कहानियां सुनाई जाने लगीं। कांग्रेस के सत्याग्रह के दिनों में गांव-गांव और शहर-शहर में जो धूम दिखलाई देती थी वही धूम वही जोश और वही उत्साह गांव गांव और शहर शहर में आर्य समाज के सत्याग्रह के दिनों में दिखाई देने लगा था और चारों तरफ़ 'आर्य समाज ज़िन्दाबाद' के नारे सुनाई देने लगे थे। जिन लोगों का किन्हीं कारणों से ख्याल बन चला था कि आर्य समाज एक मृतप्राय संस्था हो गई है उन्हें अपने विचारों को एकदम तब्दील करना पड़ा, और आर्यसमाज के शत्रुओं ने भी यह माना कि यह संस्था जीवन के अक्षय भंडार को अपने भीतर छिपाये हुए है।

गुरुकुल को इस बात का गौरव प्राप्त है कि इस धर्म-युद्ध में गुरुकुल के स्नातकों तथा ब्रह्मचारियों ने अपना पूरा हिस्सा अदा किया। महात्मा नारायण स्वामी जी पहले डिक्टेटर थे। उन्हें गुरुकुल से लिख दिया गया था कि ब्रह्मचारियों का एक जत्था माता-पिता से आज्ञा लेकर उनके साथ जेल यात्रा के लिये तैयार है। स्वामी जी ने तार दिया, और ब्रह्मचारी चल दिये। उन्हें एक दिन भी बीच में आराम करने को नहीं मिला। इसके बाद सत्याग्रहियों का तांता बन्ध गया। गुरुकुल के ब्रह्मचारियों का मैदान में निकल पड़ना प्रत्येक आर्य संस्था के लिये एक इशारा था। प्रत्येक संस्था से जत्थे पर जत्था जाने लगा और आत्म-त्याग का एक अपूर्व दृश्य उपस्थित हो गया। गुरुकुल के

स्नातकों में से गुम नाम जो गये सो गये ही, परन्तु पं० बुद्धदेव जी और प० विनायकराव जी का नाम तो बच्चे २ की ज़बान पर है। आर्य समाज के इस जीवन-मरण के संग्राम में गुरुकुल के ब्रह्मचारियों तथा स्नातकों ने जो रास्ता दिखलाया उससे अब यह निश्चय पूर्वक कहा जा सकता है कि आर्य समाज पर जब कभी भी सङ्कट उपस्थित हो उस समय गुरुकुल माता के पुत्र कभी पीछे कदम नहीं रखेंगे और दूसरों से दो कदम आगे बढ़ कर अत्याचारों का मुकाबिला करेंगे।

हैद्राबाद के आर्य सत्याग्रह से एक बात स्पष्ट हो गई। आर्य समाज जीवित संस्था है, आर्य समाज शक्तिशालिनी संस्था है। जितनी जागृति आर्य समाज ने पिछले आठ महीने के संग्राम में दिखलाई है इतनी जागृति आर्य समाज के सम्पूर्ण इतिहास में पहले कभी देखने में नहीं आयी। इस समय आर्य समाज में जीवनी-शक्ति का एक फव्वारा फूट पड़ा है। प्रश्न यह है कि इस उमड़ते हुए जीवन के प्रवाह को किस तरह संभाला जाय। 'गुरुकुल' के अगले अंक में हम इस विषय में अपने कुछ विचार जनता के सम्मुख रखेंगे।

स्वास्थ्य संरक्षा

स्वास्थ्य का स्वरूप

(ले० - प्रो० प्रसाद जी, प्राकृतिक चिकित्सोपाध्याय गु० कु० कांगड़ी विश्वविद्यालय)

(गतांक से आगे)

(३)

चिराभ्यासों की प्रकृति वा स्वभाव के रूप में परिणति में हल्के से बढ़ कर और कुछ नहीं है। प्राणियों की मूल प्रकृति व स्वभाव कभी नहीं बदलता। वह अपने पूरे बल के साथ स्थिर बना रहता है। चिराभ्यासों का प्रभाव उस को केवल ढांप वा दबा लेता है। यदि प्रकृति वा स्वभाव को पुनः अवसर मिले तो, वह सुगमता से और शीघ्रता से अपने वास्तविक मूल रूप को पुनः धारण कर लेता है। हमने इस बात को सुधार प्रारम्भ करने वालों और निर्बल रोगियों की अवस्थाओं में बार २ अनुभव करके देखा है।

औषध-चिकित्सक वा डाक्टर हमारे लिये जो कुछ कर सकते हैं इस विषय में जनता में घोर अज्ञान फैला हुआ है। डाक्टरों को तो, उस समय से बहुत पीछे बुलाया जाता है जब कि नैसर्गिक स्वास्थ्य को भयंकर हानि पहुंच चुकती है। डाक्टर लोग कुछ समय और किसी सीमा तक ही रोग के पीड़ा-प्रद लक्षणों को औषधियों की सहायता से दबा सकते हैं। किन्तु, यह कार्य भी वे रोगी में किसी मात्रा में अवशिष्ट कुछ स्वास्थ्य को हानि पहुंचा कर ही करते हैं। सम्प्रति प्रचलित औषधों के अनिश्चित प्रभावों पर जो प्रतिकूल सम्मतियां इस विषय के प्रकाण्ड पण्डितों ने प्रकट की हैं। उनके यहां उद्धृत करने से प्रकरणान्तर हो जायगा। उनको किसी दूसरे निबन्ध में आप देख सकते हैं। डाक्टर लोग हमारे रोगी देहों को गांठगूंठ कर नया सा भी नहीं बना सकते। रोग का स्वरूप अपने गुप्त रूप में अनन्त प्रकार का होता है और उसका प्रभाव मन और देह पर न्यूनाधिक समान रूप से ही पड़ता है। मान लो कि औषधों द्वारा हमको देह पर के रोग के प्रभावों से छुटकारा मिल जाता है। यह छुटकारा हमको—जैसा कि अभी वर्णन किया गया है—हमारे भावी स्वास्थ्य को हानि पहुंचा कर ही प्राप्त होता है। किन्तु यहां तक ही कुशल नहीं है। जिस सीमा तक देह को रोग से छुटकारा मिलता है, उसी सीमा तक हमारा मन उक्त रोग का आखेट बन जाता है। और अब, उसको अकेला ही वह सारा कष्ट भोगना पड़ता है। जिसके सहने में पूर्व शरीर भी भाग लेता वा हाथ बटाता था। इस विषय का यहां कुछ अधिक व्याख्या अपेक्षित है। प्रकृति हमारे पापों के प्रभाव का नियमन करने के लिए अपने विशेष विधान को काम में लाती है। उसका सदा यह उद्देश्य रहता है कि वह हमारी सत्ता के अत्यन्त बहुमूल्य अंश को हानि से बचाय। हमारी सत्ता के इस अंश का नाश हमारे इस पार्थिव स्थूल देह के साथ नहीं होता है। स्थूल देह की तुलना में वह अनश्वर वा अमर है। इसी को सूक्ष्म शरीर कहते हैं। यह असंख्य जन्म जन्मान्तरों में बराबर स्थिर रहता है। वह उस समय तक उन्नति करता रहता है जब तक कि हमको मोक्ष नहीं मिल जाता। अर्थात् जब तक हमारा आत्मा जन्म-मरण के बन्धन से मुक्त नहीं हो जाता है। हमारा यह पार्थिव शरीर तो प्रत्येक जन्म में नष्ट हो जाता है और प्रत्येक नवीन जन्म में उसको नवीन पार्थिव देह धारण करना पड़ता है। हमारे पाठक आवागमन के इस तत्व को भली भांति जानते और मानते ही हैं। इस प्रकार प्रकृति आगामी उपयोग के लिए मनोमय इस सूक्ष्म शरीर को अक्षुण्ण (हानि से सुरक्षित) रखना चाहती है। यह इस प्रकार होता है कि वह हमारे अप्राकृतिक जीवन के बुरे प्रभावों को हमारे पार्थिव शरीर पर ही पड़ने देती है। और मन को उनसे यथा शक्ति सुरक्षित रखती है। यदि इन बुरे प्रभावों को औषधि नामधारी विषों के प्रयोग से निष्प्रभाव वा निरर्थक बना दिया जाय, वा यूं कहिए कि दबा दिया जाय तो अप्राकृतिक जीवन वा मिथ्याचार के सारे कुप्रभाव कम से कम कुछ काल के लिए और कदाचित् कई जन्मों तक मन पर ही पड़ते हैं। इस प्रकार मन सदोष और कुत्सित अवस्था को प्राप्त हो जाता है और जीवन का स्थान विषाक्त बन जाता है। इसके द्वारा केवल दीर्घ जीवन को हानि पहुँचाकर सुखमय जीवन यापन की सम्भावना तो दूर रही, इससे ठीक उल्टा परिणाम ही प्रायः प्राप्त होता है। प्रकृति अपने दुर्दम्य उच्छृंखल बालकों को इस रूप में दण्ड देती है कि वह उनके जीवन को स्वल्प कालिक न बनाकर प्रथम उनको रोग की घोर यातनाओं का सामना कराती है। और फिर उनको इतना असमर्थ, पंगु और असह्य यन्त्रणाओं का आखेट बना देती है कि वे पापी जन सदैव व्यर्थ ही

मृत्यु की कामना किया करते हैं, जिससे कि वे निराश दुःखी जन अपनी इन मर्मान्त पीड़ाओं से छूट जायें।

आशा है कि पाठकों को अब यह स्पष्ट हो गया होगा कि हमारे लिए अवलम्बित यही है कि हम प्रारम्भ या मङ्गलाचरण करने के लिये ही कम से कम एक या दो महत्व पूर्ण बातों में प्रकृति के विधान के विरुद्ध पापाचरण का परित्याग कर देवें और तब तक इस ओर अधिकाधिक अग्रेसर होते जायें जब तक कि प्राकृतिक जीवन की ओर हमारी अच्छी प्रगति न हो जाय।

यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि हमारे रहन-सहन में भलाई की ओर थोड़ा सा परिवर्तन भी समीपवर्ति भविष्य में हो हमारे लिये भारी मङ्गलमय कल्याणमय अन्तर उपस्थित कर देगा।

"स्वल्पोऽप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्" (गीता)

इस विषय पर अधिक सविस्तर विचार अगले लेख में पढ़िये। (असमाप्त)

सत्याग्रह-संग्राम का पुण्यफल

(ले०—श्री पं० जगन्नाथ जी वेदालंकार)

यदृच्छया चोपपन्नं स्वर्गद्वारमपावृतम्।
सुखिनः क्षत्रियाः पार्थ लभन्ते युद्धमीदृशम्॥
—गीता।

आर्य-सत्याग्रह धार्मिक स्वत्वों की प्राप्ति के लिये है। मनुष्य में एक बार धार्मिक स्वराज्य पाने की आन्तरिक इच्छा पैदा होने हो वह उसे तत्काल प्राप्त कर लेता है धर्म तो मुख्यतया आन्तरिक ही है। जिस पुरुष के हृदय में धर्म-भाव तरङ्गित हो उठे हैं, वह अपने अनित्य शरीर के बलिदान की कामना से भी नित्य धर्म की रक्षा कर के आत्म सन्तोष का लाभ करेगा। इस में सन्देह नहीं कि यह एक उच्च स्थिति है परन्तु सत्याग्रह के धर्मयुद्ध में भाग ले रहे धर्म प्रेमी क्षत्रिय अपनी अपनी धर्मभावना की तीव्रता के अनुसार आत्मसन्तोष अवश्य पायेंगे। फिर जो धर्म-वीर इस धर्म-क्षेत्र में लड़ते लड़ते शहीद हो गए हैं वे तो 'हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गम्' अर्थात् 'यदि तू धर्मयुद्ध में मर जायगा तो स्वर्ग पायेगा' गीता की इस प्रतिज्ञाके अनुसार आत्मिक स्वर्ग के आनन्द को प्राप्त कर ही चुके हैं। और वैसे भी सर्व साधारण में धार्मिक स्वत्वों की प्राप्ति के लिये इच्छा पैदा होना कोई मामूली बात नहीं है। प्रबल शुभ इच्छा या सङ्कल्प के साथ सफलता जुड़ी हुई है ही। इस के साथ ही यह धार्मिक इच्छा स्वभावतः शान्ति दायिनी होती है और अपना फल अपने आप है। आर्यधर्म की यह बड़ी भारी विजय है कि उसके लाखों अनुयायियों में आज धर्म पर बलिदान होने की भावना जागृत हो उठी है। वे सब प्रकार के त्याग और तपस्या के लिये खुशी से तैयार हैं। यह तो हुई अलौकिक फल की बात।

इस युद्ध का प्रत्यक्ष फल भी कम महत्व पूर्ण नहीं है। न केवल भारतवर्ष के, बल्कि संसार भर के आर्य जगत् में नवजीवन का सञ्चार हो गया है। धार्मिक एवं सामाजिक जागृति की लहर बिजली की भांति एक सिरे से दूसरे सिरे तक दौड़ गई है। आज से कुछ वर्ष पूर्व आर्य समाज के मञ्च (प्लेटफार्म) इस चर्चा के स्थल बन रहे थे कि आर्य समाज की कोई आवश्यकता नहीं है। इसके सामने कोई प्रोग्राम ही नहीं है। परन्तु परमात्मा ने इस विवाद की निरर्थकता को सिद्ध करने के लिये और संसार के सामने आर्य समाज के प्रसुप्त सिंह की शक्ति का प्रदर्शन करने के लिये एक दैवी संग्राम भेज दिया। आज संसार भर में जहां भी आर्य समाज का प्रवेश है, वहीं लोगों के सामने आर्य-समाज की प्रसुप्त शक्ति प्रकट हो गई है। कितनों ही को तो आर्य समाज की यह शक्ति चमत्कार प्रतीत होती है। पर असल में यह बात नहीं। सच तो यह है कि लगभग ६० साल तक आर्य प्रचारकों के पुकार-पुकार कर प्रेम, संगठन और यज्ञ का प्रचार-करते रहने से-विशेषतः आर्यों में—और साधारणतया हिन्दू मात्र में एक प्रभावशालिनी शक्ति सञ्चित होती रही है और आवश्यकता के समय बटन दबाने से इस प्रकार फूट निकली है जैसे कि विद्युत संचायक (Accumulator) में से बिजली बह निकलती है। विद्युत की ही भांति इसे नियन्त्रित भी कर लिया गया है। जिस से यह बहुत उपयोगी बन गई है। आज आर्यों के बच्चे बच्चे के अन्दर उत्साह, साहस, त्याग, तपस्या और बलिदान की जो भावना दृष्टिगोचर हो रही है वह अद्भुत है, चमत्कार पूर्ण है। न केवल नर अपितु नारियां भी अपने अदम्य उत्साह का प्रदर्शन कर अपनी धर्म परायणता तथा निर्भयता का परिचय दे रही है। आर्य मातायें और बहने दुःखित हृदय से पूछती हैं कि हमें अपने पुत्रों के साथ इस धर्मयुद्ध में भाग लेने के लिये क्यों नहीं जाने दिया जाता? हम पुरुषों की अपेक्षा अधिक सुगमता तथा प्रसन्नता से मर सकती हैं। क्या आर्य देवियों के ये शब्द हमें महारानी पद्मिनी, महारानी करुणावती और झांसी की रानी लक्ष्मीबाई के दिनों की याद नहीं दिला देते? जिन देवियों को अबला कहा जाता है आज हम उन्हें अबलता के स्थान पर सुपरिचित और सम्पन्न देख रहे हैं। क्या इस समय देवियों में जागी हुई वीर भावना उन्हें पचासों वर्षों तक गुण्डों व विधर्मी धूर्तों के चंगुल से अपने को बचाने के लिये शक्ति न देती रहेगी?

इस संग्राम का एक और भी महान् फल हमें दिख रहा है। वह है हिन्दू मात्र में, विशेषतया आर्यों में संगठन-बल की वृद्धि। वैदिक धर्म की दृष्टि से संग्राम

भी यज्ञ माने जाते हैं। यज्ञ में संगठन-तत्व का होना अनिवार्य है। यज्ञ की सफलता या असफलता यजमानों और पुरोहितों के परस्पर संगठन पर निर्भर करती है। आज सत्याग्रह यज्ञ में आर्यों का जो अपूर्व संगठन दीख रहा है उस पर सारा देश, यहां तक कि हमारे विरोधी भी मुग्ध एवं चकित हैं। सच्चा वीर वही है जिसकी विरोधी भी प्रशंसा करें। आज गुरुकुल और कालिज विभाग की समाजों का मतभेद ऐसा लुप्त होगया है मानो कि कभी रहा हो न हो। इतना ही नहीं, अपितु आर्यों के इस संगठन के रंग से हिन्दुमात्र रंगा दिखाई देता है। क्या सनातनी, क्या सिक्ख और क्या हरिजन हिन्दूधर्म के सभी अङ्ग एक समष्टि शरीर के रूप में संगठित हो गये हैं और सब के सब एक सूत्र में पिरोये हुए एक उद्देश्य के लिये युद्ध कर रहे हैं। यह ठीक है कि आर्य समाज का युद्ध वैदिक धर्म और संस्कृति की रक्षा का युद्ध है, जिसका हिन्दू-सभा के सत्याग्रह संग्राम से कोई सीधा संबन्ध नहीं है। किन्तु हिन्दू भाई होने के नाते सिक्ख व सनातनी भी कन्धे से कन्धा मिलाकर जिस प्रकार से आर्य सत्याग्रह या हिन्दूसभा के सत्याग्रह का साथ दे रहे हैं उससे यह बात साफ निकलती है कि सारे देश में हिन्दुमात्रों (या वस्तुतः जिन्हें आर्य नाम कहना चाहिये क्यों कि आर्यजाति का ही कालान्तर में हिन्दू नाम चल पड़ा है) की जागृति होकर हिन्दूमात्र के हृदय संगठित हो गये हैं। उनमें सच्चा संगठन कायम हो गया है जिसका फल हिन्दू जाति सदियों तक पाती रहेगी। कारण यह कि हमारा यह संगठन एक आदर्श संगठन है। हज़ारों स्वयं-सेवक एक ही सेनापति के इशारे से सैकड़ों हज़ारों मील दूर स्थित धर्मक्षेत्र में अपने भाइयों का साथ देने के लिये बिना ननुनच किये सब प्रकार के कष्ट सहने के लिये तैयार हैं। परन्तु उन में सिपाही के अयोग्य वह उच्छृङ्खलता भी नहीं कि सेनापति की आज्ञा को पर्वाह न करें।

आर्य संगठन का अनुशासन

इस विषय में कई ताज़े उदाहरण पेश किये जा सकते हैं। अभी निजाम सरकार द्वारा सुधार-घोषणा उद्घोषित होने के बाद सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के मन्त्री श्री प्रो० सुधाकर जी ने सुधार घोषणा से उत्पन्न परिस्थिति पर विचार करने के लिये २४ जुलाई १६३६ को सार्वदेशिक सभा की अन्तरंग की एक अत्यावश्यक मीटिंग बुलाने का निश्चय किया और यह आवश्यक समझा कि उस मीटिंग का निर्णय प्रकाशित होने तक कोई जत्था सत्याग्रह के लिये न भेजा जाय और न ही केन्द्रों पर पहुंचे हुए जत्थे सत्याग्रह करें। इस निश्चय के अनुसार उन्होंने ७ दिन तक सत्याग्रह के क्रम को स्थगित रखने की घोषणा कर दी और सम्बद्ध व्यक्तियों को इस की तार द्वारा सूचना भी भिजवा दी। दिल्ली के द्वितीय डिक्टेटर श्री पं० देवेन्द्रनाथ जी शास्त्री को खड़वा में स्पैशल ट्रेन के अन्दर जब ऐसा तार मिला तो उन्होंने अपनी स्पैशल वहीं रुकवा ली। क्या मजाल कि वे अपने नेता के अङ्गुली द्वारा किये संकेत को भी टाल दें। इसी प्रकार बाबा सुमेर सिंह जी काली कमले वाले ने सूचना पाते ही अपने जत्थे को झांसी में रोक लिया। इससे भी बढ़ कर शानदार अनुशासन की मिसाल आर्य सत्याग्रह के ८ वें सर्वाधिकारी श्री पं० विनायक राव जी विद्यालंकार ने पेश की है। वे २२ जुलाई को ही सत्याग्रह करने के लिये अत्यन्त उत्सुक थे। उनकी इस उत्सुकता का कुछ उचित कारण भी था। फिर वे ठहरे भी डिक्टेटर। परन्तु उन्हें भी जब प्रो० सुधाकर जी का हुक्म मिला तो उन्होंने एकदम हाल्ट कर दी। सत्याग्रह के इतने बड़े नेता ने भी संगठन तथा नियन्त्रण के उसूल पर अपनी वैयक्तिक इच्छा की बली दे दी। वे समझते हैं कि सार्वदेशिक सभा के प्रधान वा मन्त्री मेरे सेनापति हैं। मैं तो उनको अनुशासित सेना का एक योग्य सिपाही हूं। जब सत्याग्रह के सर्वाधिकारी सैनिक नियमों का सम्मान-पूर्वक पालन करते हैं तो दूसरे छोटे सिपाही ऐसा क्यों न करेंगे।

पूर्ण अनुशासन आदर्श संगठन की कुंजी है यह हमारे हाथ लग गई है। हमें इसे खो नहीं देना चाहिये। अगर हमने अपने बल का नियन्त्रण और अनुशासन के बगैर सेनापति द्वारा निश्चित सत्य और अहिंसा के सिद्धान्तों के प्रतिकूल प्रयोग किया तो उससे हम अपना ही नुकसान कर बैठेंगे।

स्वास्थ्य समाचार

ब्र० भीमदेव १२ श्रेणी आन्त्र ज्वर, ब्र० दया-शंकर १४ श्रेणी आन्त्र ज्वर ब्र० शान्ति स्वरूप ११ श्रेणी उन्माद, ब्र० गुरुदत्त १२ श्रेणी उदरामय ब्र० सत्यव्रत ५ श्रेणी विषम ज्वर ब्र० महावीर ३ श्रेणी विषम ज्वर, ब्र० रामप्रकाश ३ श्रेणी विषम ज्वर, ब्र० धर्मपाल ४ श्रेणी चोट, ब्र० युधिष्ठिर १ श्रेणी चोट, ब्र० भूपेन्द्र ५ श्रेणी विषम ज्वर, ब्र० मदन मोहन २ श्रेणी विषम ज्वर, ब्र० देवव्रत २ श्रेणी विषम ज्वर।

गत सप्ताह उपरोक्त ब्रह्मचारी रोगी रहे थे अब सब स्वस्थ हैं।

ब्र० जगदीश चतुर्थ श्रेणी तथा ब्र० भीष्मदेव १२ श्रेणी व ब्र० दयाशंकर १४ वीं श्रेणी आन्त्र ज्वर तथा (Typhoid)-रोग में रोगी हैं।

चौधरी दुलासराय के प्रबन्ध से गुरुकुल प्रेस गुरुकुल कांगड़ी में मुद्रित तथा प्रकाशित।

* ओ३म् *

"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत"   Reg. No A. 2927

गुरुकुल

सम्पादक—साहित्यरत्न पं० हरिवंश वेदालङ्कार

एक प्रति का मूल्य -)   [गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख-पत्र]   वार्षिक मूल्य २॥)

वर्ष ४]   गुरुकुल काङ्गड़ी, शुक्रवार २ भाद्रपद १९९६, १८ अगस्त १९३९   [संख्या १६

आर्य सत्याग्रह की विजय

(ले०—श्री पं० जगन्नाथ जी वेदालंकार)

आर्य-सत्याग्रह का जैसा सुखद अन्त हुआ है उस पर कौन आर्य समाजी हर्ष और अभिमान प्रगट नहीं करेगा। आर्य समाज को जो शानदार सफलता प्राप्त हुई है वह उसके ही अनुरूप है। महात्मा गांधी जी के नेतृत्व में राजनीतिक सत्याग्रह में अनेक बार सफलता मिली है, किन्तु आर्य सत्याग्रह की आन्तरिक सफलता उससे भी कहीं बढ़ गई है। प्रारम्भ में आर्य सत्याग्रह को महात्माजी का समर्थन प्राप्त नहीं था। उनका यह ख्याल था कि आर्य-समाजी सत्य और अहिंसा पूर्वक सत्याग्रह-अस्त्र का प्रयोग नहीं कर सकेंगे। हिन्दू महासभा का सत्याग्रह भी साथ ही जारी हो जाने से उन्हें यह भी खतरा था कि आर्य सत्याग्रह साम्प्रदायिक युद्ध का रूप धारण कर लेगा तथा हिन्दुस्तान भर में, विशेषतया रियासत हैदराबाद में साम्प्रदायिक तनातनी पैदा कर देगा। परन्तु आर्यों ने तो सत्याग्रह को अपने युद्ध का मनोनीत साधन चुना था। उसके शास्त्र को वे भली भांति जानते थे। आर्य सार्वदेशिक सभा के प्रधान श्री घनश्यामसिंह जी गुप्त जिन्हें कुछ समय के बाद सत्याग्रह-परिचालन के सम्बन्ध में पूर्ण अधिकार दे दिये गए थे, सत्याग्रहास्त्र पर पूर्ण विश्वास रखते थे और चलाने में भी चतुर थे। उन के हाथों में सत्याग्रह की बाग डोर सुरक्षित थी। परिणामतः ज्यों २ समय बीतता गया, सत्याग्रह संग्राम जोर पकड़ता गया और अपने विरोधियों की प्रशंसा का पात्र बनता गया। इसका कारण था सत्याग्रह की आन्तरिक शुद्धता अर्थात् सत्य और अहिंसा के सिद्धान्तों के अनुकूल सत्याग्रह की प्रगति। छः महीने के लम्बे सत्याग्रह में आर्यों ने सक्रिय अहिंसा का जो आदर्श पेश किया है वह कांग्रेस के सत्याग्रहों में भी देखने में नहीं आया।

जगह २ मुसलमानों द्वारा उत्तेजना देने पर तथा घातक आक्रमण किये जाने पर भी आर्य स्वयं सेवक सदा शान्त एवं अहिंसक बने रहे। शोलापुर, रोहतक, कैथल आदि स्थानों में जहां २ भी दंगे हुए वहां आर्य वीर सर्वथा निर्दोष साबित हुए। शोलापुर दंगे के सम्बन्ध में बिठाई गई निष्पक्ष जांच कमेटी ने आर्य सत्याग्रहियों को सर्वथा निरपराध तथा अनुशासन प्रिय घोषित किया और फलस्वरूप बम्बई सरकार ने अपनी पहली आज्ञाओं को वापिस ले लिया।

आर्य सत्याग्रही जेलों में भी नियन्त्रण एवं अनुशासन में रहे हैं। हम जानते हैं कि राजनैतिक आन्दोलन के समय जेलों में कांग्रेसी या दूसरे राजनैतिक कैदी जेल के अधिकारियों पर आक्रमण तक कर देते थे, उन्हें तरह २ से सताते थे जिससे कि वे कैदियों से सदा भयभीत रहते थे। इतनी दूर जाने की ज़रूरत नहीं, आज भी शान्तिमय कांग्रेस-शासन में न केवल जेल अधिकारियों पर अपितु राज्य मन्त्री पर एक शिया ने हमला किया है। परन्तु हमारे आन्दोलन की अवस्था इससे बिलकुल विपरीत रही है। किसी आर्य सत्याग्रही ने किसी जेल अधिकारी पर कोई छोटा-मोटा भी हमला किया हो ऐसा सुनने में नहीं आया। वे जेलों में अधिकारियों के नियन्त्रण में खुशी से सब प्रकार के कष्ट सहन कर रहे हैं।

आर्य सत्याग्रहियों की सचाई और दृढ़ता भी आर्य समाज के इतिहास में सदा स्मरणीय रहेगी और स्वर्णाक्षरों में लिखी जायगी। जहां अन्य आन्दोलनों में सत्याग्रही गिरफ्तार होकर मुकद्दमे के समय माफी मांगकर लौट आते हैं या जेल में कुछ समय रह कर वहां के अत्याचारों से घबरा कर माफी मांग लेते हैं—जैसे कि शहीदगञ्ज, जयपुर, लखनऊ के आन्दोलनों में हज़ारों व्यक्ति माफ़ी मांगकर छूट आये—वहां हमारे आन्दोलन में अवधि से पहले छोड़े गये या पूरी कैद काट चुके सत्याग्रहियों ने भी प्रायः उसी केन्द्र या दूसरे केन्द्र से पुनः सत्याग्रह किया। पूर्ण विजय-प्राप्ति से पहले उन्होंने चैन का नाम नहीं लिया। यह दूसरी बात है कि सैकड़ों सत्याग्रही धोखा देकर या किसी ऐसे वैसे बहाने से जेल से पृथक् कर दिये गये।

सत्याग्रह की इस आन्तरिक शुद्धता ने महात्मा गांधी जी को भी प्रभावित एवं आकृष्ट कर लिया। इसी लिये सरकार द्वारा सुधार-घोषणा उद्घोषित होने के बाद परामर्श मांगने पर महात्मा जी ने यही कहा कि अगर

निज़ाम सरकार आर्य समाज की धार्मिक मांगों के सम्बंध में घोषणा के अन्तर्गत सुधारों का स्पष्टी करण न करे तो आर्य समाज को अपना सत्याग्रह जारी रखना चाहिए। हां, तब इसको शक्ति शाली बनाने के लिए बड़े से बड़े धर्मवीर आर्य नेताओं को अपनी आहुति दे देनी चाहिए कि सत्याग्रह अधिक से अधिक शुद्ध होकर शीघ्र प्रभाव उत्पन्न कर सके। महात्माजी के इसी परामर्श से आर्य समाज के सत्याग्रह की आन्तरिक सफलता का अन्दाज़ लगाया जा सकता है। महात्मा जी ने जहां अन्य अनेक रियासतों में सत्याग्रह के नेताओं को आन्दोलन स्थगित करने की सलाह दी, वहां आर्य सत्याग्रह को जारी रखने की सलाह दी। आर्य सत्याग्रह के प्रारम्भ-काल के बाद आर्य नेताओं ने गांधी जी को इस प्रकार से विचार परिवर्तन कर उनकी बहुमूल्य सम्मति प्राप्त कर ली। कारण यह कि गांधी जी ने छः महीने के गत सत्याग्रह में यह देख लिया था कि आर्य-समाज अहिंसा का पूरा पूरा पालन कर के सच्चे उद्देश्य की प्राप्ति के लिये लड़ रहा है।

आर्य सत्याग्रह की आन्तरिक सफलता निज़ाम सरकार द्वारा उद्घोषित नये घोषणा पत्र से भी स्पष्ट झलकती है जहां कुछ दिन पहले के घोषणा पत्र में तथा हिन्दुओं के आवेदन पत्र के वायसराय द्वारा दिये उत्तर में आर्य समाज की शिकायतों को असत्य एवं अयथार्थ बताया गया था, वहीं इस नये घोषणा पत्र में आर्यों की एक एक मांग का जिक्र कर उसे पूरा किया गया है। इससे यह साफ अर्थ निकलता है कि निज़ाम सरकार ने हमारी शिकायतों की सत्यता को खुले आम स्वीकार किया है। आर्य सत्याग्रह सत्य पर आश्रित है इस बात को प्रतिद्वन्द्वी निज़ाम सरकार ने भी माना है। हमारी शिकायतों को पूरी तरह दूर कर निज़ाम सरकार ने अपनी सद्भावना का परिचय दिया है। सत्याग्रह द्वारा हृदय-परिवर्तन के जिस सिद्धान्त में गांधी जी का अटल विश्वास है, उसकी प्रत्यक्ष विजय का एक और उदाहरण संसार के सामने प्रस्तुत हुआ है। वर्तमान सम्मानपूर्ण संतोषजनक समझौते में निज़ाम सरकार की परिवर्तित मनोवृत्ति का चित्र है।

हैदराबाद रियासत के लिये भावी कार्य क्रम

हमें इस शानदार विजय को प्राप्त कर इस के आनन्द उल्लास में अपने भावी कर्तव्य को भुला नहीं देना चाहिये। इस समय आर्य समाज को अपनी विजय को कार्य रूप में परिणत करने के लिये कटिबद्ध हो जाना चाहिये। हमें अपनी धार्मिक और सांस्कृतिक प्रचार की जो पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त हुई है, उस का यदि हम प्रयोग नहीं करते तो इतने बड़े संघर्ष का कुछ अर्थ नहीं रह जाता। यह तो ठीक है कि सत्याग्रह से पूर्व सब तरह की पाबन्दियां होते हुए भी कितने ही वर्षों से आर्य समाजी अपनी जान को हथेली पर धर कर गुप्त प्रचार करते रहते थे। पर अब जब कि धार्मिक कृत्यों के अनुष्ठान तथा धार्मिक व सांस्कृतिक प्रचार की पूरी आज़ादी मिल गई है, हमें अपने धर्म का जी-जान से प्रचार करना चाहिये। ९० प्रतिशत हिन्दू जनता में जो ब्रिटिश राज्य की प्रजा से भी कम शिक्षित है, शिक्षा का प्रसार करने के लिए प्रोग्राम बनाना चाहिये। हिन्दूमात्र में अपने धर्म और संस्कृति के प्रति दृढ़ अनुराग तथा श्रद्धा उत्पन्न करने के लिये हमें कुछ वर्ष की प्रचार-योजना तैयार कर उस पर शीघ्रातिशीघ्र अमल प्रारम्भ करना चाहिये।

किन्तु सिर्फ धर्मप्रचार से ही हैदराबाद के हिन्दुओं का कल्याण नहीं होने का। आर्य समाज को उनके राजनैतिक अधिकार प्राप्त करने के लिये भी संघर्ष करना होगा। राजनीति धर्म का एक आवश्यक अङ्ग है। उसके बिना धर्म अपूर्ण एवं पंगु है। सत्याग्रह से हमारे धर्म में भी नवजीवन आया है। हम महर्षि दयानन्द को 'चक्रवर्ती-राज्य' प्राप्त करने की धार्मिक आज्ञा को भूल चुके हैं। ऐसा करके हम ने महर्षि द्वारा प्रतिपादित उदार एवं व्यापक धर्म को समझने में ग़लती की है तथा अनजाने में वैदिक धर्म का अपमान किया है। अब हमें यह समझ लेना चाहिये कि मनुष्य समाज की सर्वांगीण उन्नति के लिये सतत प्रयत्न करना ही धर्म है। सब प्रकार के कल्याण कारी समाज, जाति व राष्ट्र का धारण करने वाले कर्तव्यों की समष्टि ही धर्म है। इन कर्तव्यों को पूर्ण करने के लिये हमें अब पुनः धन-जन की आवश्यकता है। धर्म और जाति के सेवकों को अब मैदान में उतरना चाहिये और अपने धर्म की क्रियात्मक विजय का झण्डा फहराकर ही दम लेना चाहिये।

रचनात्मक कार्यों द्वारा-प्रचार व संगठन द्वारा-भूमि तैयार होने के बाद सत्याग्रह का संघर्ष प्रारम्भ होता है। सत्याग्रह की सफलता के पश्चात् भी रचनात्मक कार्य का समय आता है। अन्यथा सत्याग्रह द्वारा प्राप्त विजय स्थिर नहीं रह सकती और क्रियात्मक रूप में लाभदायक नहीं हो सकती। सकती। रचनात्मक कार्य सत्याग्रह का प्राण है। इसी से सत्याग्रह का जीवन प्रारम्भ होता है और इस से ही कायम रहता है।

हमें बड़ी प्रसन्नता होनी चाहिये कि आर्य सार्वदेशिक सभा ने अपनी अन्तरंग सभा में रियासत हैदराबाद के लिये भावी कार्यक्रम पर विचार किया है और धार्मिक व संस्कृतिक प्रचार के लिये दृढ़ निश्चय किया है। आशा है आर्य समाज के विद्वान् प्रचारक तथा लोक सेवक आर्य समाजी इस अवसर पर अपने अपने कर्तव्य को पहिचानेंगे और उसकी पूर्ति के लिये कुछ उठा नहीं रक्खेंगे।

कविवर गुप्त जी की दृष्टि

(ले०—श्री आनन्द)

आज हम कविवर मैथिली शरण गुप्त की विचार धारा की तह तक पहुँच कर संक्षेप में, गुप्त जी की फिलोसफी क्या है, इस बात पर कुछ पंक्तियां लिखना चाहते हैं।

गुप्त जी की दृष्टि में यह संसार केवल एक कर्मक्षेत्र है। मनुष्य को इस बात पर आग्रह करने का अधिकार नहीं है कि अमुक कार्य का अमुक फल मुझे मिलना ही चाहिये। जो कुछ भगवान मनुष्य को देता है उसको मूक भाव से स्वीकार करके निरन्तर कर्म करते जाना ही मानव जीवन की सफलता है।

जीवन और मरण कुछ नहीं सिवाय इसके कि काम करना और थोड़ी देर के लिये विश्रान्ति लेना।

मनुष्य का जीवन फूलों की सेज नहीं है। सुनहला कण्टक कुल स्थला में से मनुष्य के जीवन मार्ग का निर्माण हुआ है। इस कण्टक पूर्ण जीवन मार्ग में एक से एक बढ़कर कठिन कर्त्तव्य उपस्थित होते हैं, उन कठोर कर्त्तव्यों के पालन में हृदय की कोमल भावनाएं ही सबसे अधिक बाधक होती हैं। जो लोग कोमल भावनाओं के सामने अपने कठोर कर्त्तव्यों को पदिलत कर देते हैं, जैसे कि इसी युग में सम्राट अष्टम एडवर्ड ने लेडी सिम्पसन के लिये राज्यभार का परित्याग कर दिया, वे निकृष्ट कोटि के व्यक्ति हैं। किन्तु जो व्यक्ति इन कोमल भावनाओं को निष्ठुरता पूर्वक पराजित कर के अपने कठोर कर्त्तव्यों से तिलमात्र भी इतस्ततः नहीं होता वह धन्य है, वह वीर है, वह महान् है और पूज्य है। माता का वात्सल्य, भाइयों का प्रेम, पिता का स्नेह, पत्नी का अनुराग, तथा इतर कुटुम्बियों की ममता, ये सब कठोर कर्त्तव्य के पालन से विचलित करने वाली हृदय की कोमल भावनाएं हैं।

ये कोमल भावनाएं अपने आप में अत्यन्त पवित्र एवम् आदरणीय हैं। ये बुरी नहीं हैं बुरी तभी हैं जब ये जीवन के कर्त्तव्य पूर्ण मार्ग में रोड़ा अटकाने के लिये उद्यत हो जायं। अर्थात् इन भावनाओं के कारण मनुष्य कर्त्तव्य से च्युत होकर इन्हीं में आसक्त हो जाय। यदि अनासक्ति पूर्वक मनुष्य इन भावनाओं से सम्पृक्त या सम्भुक्त रहे तो यही भावनाएं उसको ऊंचा उठाने में सहायक बन जाती हैं।

अतः कर्त्तव्य के मार्ग में, आसक्ति पूर्वक सम्भुक्त होने वाली हृदय की कोमल भावनाएं ही बाधक समझी जानी चाहियें। सब नहीं

मनुष्य अत्यन्त परतन्त्र है। एक डग भी चलने के लिये उसे दूसरी शक्तियों का अवलंबन करना ही पड़ता है। उसकी दिली इच्छा होती है कि मैं अमुक काम करूं; किन्तु उसे अनेक बार अपनी उस उत्कट इच्छा के विरुद्ध भी कार्य करने के लिये विवश होना पड़ता है। कौन चाहता है कि, अपने प्रिय परिजनों का त्याग कर के, किसी एकान्त अरण्य का आश्रय ले? लेकिन उसकी मर्जी हो या न हो, जिस शक्ति के इङ्गित पर संसार भर की सम्पूर्ण 'एक्टिविटीज़' नाच रही हैं, उसकी मर्जी के मुआफिक काम करना ही पड़ता है? और वह भी झख मार के!

पर इसका मतलब यह नहीं कि, मनुष्य के अपने हाथ सर्वथा रिक्त ही हैं मनुष्य में भी अनन्त शक्ति विद्यमान है मनुष्य में भी इतनी शक्ति है कि वह उस असीम शक्ति को भी, जिसके सम्मुख मनुष्य नितान्त पराधीन है धौंस दे सकता है। फिर भी धौंस धौंस ही है।

दुनिया में हमें जो भी पदार्थ दिखाई देता है, प्रत्येक के दो पार्श्व हैं। हम जिस पदार्थ को उज्ज्वल रूप में देखते हैं हमें भूल नहीं जाना चाहिये कि उस पदार्थ का एक दूसरा भी पार्श्व है; जिसे हम 'डार्क साइड' कह सकते हैं। इसलिये हमको प्रत्येक कार्य करते वक्त बहुत ही सावधानी से काम करना चाहिये। अनेक बार ऐसा होता है कि, जिसे हम अपना समझते हैं अपने दिल के निगूढ़ से निगूढ़ रहस्यों को भी जिन पर प्रकट करने के लिये नहीं हिचकिचाते, उन्हीं के द्वारा छला हो जाना है। इन सब बातों को भली प्रकार अवलोकन करके जो व्यक्ति अपने मार्ग पर आगे बढ़ता जाता है, वह विजयी है। इस प्रसंग में गुप्त जी लिखते हैं –

"कीट पूर्ण हैं कुसुम,
कण्टकित है मही;
जो इन में बच निकल
चले विजयी वही॥"

जो व्यक्ति, जीवन के कठोर कर्त्तव्यों से पराङ्मुख होकर आत्मघात करने की कोशिश करता है वह कायर है। मनुष्य को दीर्घजीवन दीर्घ दुःखों की प्राप्ति के लिये बनाये रखना चाहिये। आत्म शुद्धि के लिये इन दीर्घतर दुःखों का स्वागत करना अनिवार्य है। संसार के दुःखों से चिर विमुक्ति प्राप्ति का साधन कर्मफल के तौर पर उपलभ्यमान इन दुःखों का अङ्गीकरण ही है।

मानव जीवन की परिसमाप्ति आत्म समर्पण में है। अपने आपको उस असीम शक्ति के हाथों सौंपकर दुःखों का मुकाबिला करते जाना ही परम कर्त्तव्य है।

हमारी दृष्टि में गुप्त जी की फिलोसफी का संक्षिप्त रूप यही है।

गु रु कु ल

२ भाद्रपद शुक्रवार १९९६

हैद्राबाद के बाद

[लेखक—प्रो० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार, मुख्याधिष्ठाता गुरुकुल कांगड़ी]

आर्य समाज ने हैदराबाद के सत्याग्रह संग्राम में जिस अन्तर्निहित शक्ति का परिचय दिया है उसे देख कर समाज के प्रत्येक शुभ-चिन्तक के हृदय में स्वाभाविक तौर पर प्रश्न उठता है कि आर्य समाज की इस महान् शक्ति का संचय तथा सदुपयोग किस प्रकार किया जा सकता है? आर्य समाज की शक्ति के यकायक फूट पड़े प्रवाह को अगर ठीक दिशा में प्रवाहित न किया गया तो कहीं ऐसा न हो कि इतने त्याग और इतनी तपस्या के बाद आर्य समाज फिर चादर तान कर सो जाय, और राह चलतों को अपने ज़िंदा या मुर्दा होने की फबतियां कसने का अवसर दे! इस लिये आवश्यक है कि जल्दी-से-जल्दी आर्य-समाज के भावी कार्य क्रम का निश्चय किया जाय और उन निश्चयों को क्रियात्मक रूप देने के लिये समाज के संगठन को दृढ़ किया जाय।

आर्य कांग्रेस

आर्य समाज के किसी भी निर्णय को अखिल भारतीय रूप देने के लिये आवश्यक है कि वह निर्णय भारत भर की आर्य समाजों के प्रतिनिधि मिल कर करें। इस के लिये जितनी जल्दी हो सके 'आर्य कांग्रेस' को बुलाने का आयोजन करना चाहिये। जिस प्रकार आर्य सत्याग्रह प्रारम्भ करने से पूर्व शोलापुर में 'आर्य कांग्रेस' हुई थी, और उस कांग्रेस द्वारा सम्पूर्ण आर्य जगत् में अपने अधिकारों की लड़ाई लड़ने की प्रबल लहर चारों तरफ़ दौड़ गई थी, इसी प्रकार अगर इस समय 'आर्य कांग्रेस' को फिर से बुलाया जाय तो जहां वर्तमान विजय के परिणाम स्वरूप होने वाली शिथिलता का अभी से इलाज किया जा सकता है वहां आगामी के लिये कोई निश्चित प्रोग्राम भी निर्धारित किया जा सकता है और सब से बड़ी बात यह, कि उस प्रोग्राम को पूरा करने की भावना भी सम्पूर्ण आर्य जगत् में उत्पन्न की जा सकती है। अगर इस समय 'आर्य कांग्रेस' बुलाई गई तो वह अन्य आर्य-कांग्रेसों से अधिक महत्वपूर्ण होगी। इस समय प्रत्येक आर्य के हृदय में कुछ ठोस कार्य करने की प्रबल अभिलाषा उत्पन्न हो चुकी है, और चारों तरफ़ 'कुछ-न-कुछ कर जायेंगे' का वातावरण बना हुआ है। लोहा जब तपा हुआ हो तब चोट न दी जाय तो वह ठण्डा पड़ जाता है, और ठण्डे लोहे को ढालना कठिन ही नहीं, असम्भव होता है। इस समय जिस 'आर्य कांग्रेस' का संगठन होगा उस में प्रत्येक आर्य समाज उत्साह से भाग लेगा, और कांग्रेस की समाप्ति पर उससे दुने उत्साह से कांग्रेस के निश्चयों को क्रियात्मक रूप में लाने का प्रयत्न करेगा। सार्वदेशिक सभा का केन्द्र दिल्ली में है और दिल्ली में ही प्रस्तावित 'आर्य कांग्रेस' का बुलाना अधिक उपयुक्त रहेगा।

कार्य क्रम

'आर्य कांग्रेस' के सम्मुख क्या कार्यक्रम होगा? किस कार्य-क्रम को लेकर आर्य समाज की वर्तमान जागृत शक्ति को एक रचनात्मक दिशा में डाला जा सकता है, और समाज की संगठन शक्ति का सदुपयोग किया जा सकता है? इस विषय में प्रत्येक आर्य भाई कुछ न कुछ सोच रहा होगा, परन्तु 'आर्य कांग्रेस' में इस प्रकार के सब विचारों पर सामूहिक रूप से सोचने का एक अवसर प्राप्त हो जायगा। जिन बातों पर विचार करना आवश्यक प्रतीत होता है उन में से कुछ बातों की तरफ यहां संकेत कर देना अप्रासंगिक न होगा।

[१]

सब से पहली बात यह है कि हैदराबाद में हमारी जो मांगे स्वीकृत की गई हैं उनकी परख करना आवश्यक है। इतना कह देने मात्र से कि हमें सब प्रकार की सुविधा होगी कुछ नहीं बनता। निज़ाम सरकार ने यह कभी नहीं माना कि आर्य समाज पर हैद्राबाद में किसी भी प्रकार के प्रतिबन्ध थे। हमारी तरफ से जो कुछ कहा जाता रहा उस का उनकी तरफ़ से उत्तर दिया ही जाता रहा। इस लिये यह आवश्यक प्रतीत होता है कि सार्वदेशिक सभा अपना एक स्थिर कार्यालय हैदराबाद में खोले जो मुख्यतः हैद्राबाद में तथा साधारणतः सम्पूर्ण दक्षिण भारत में आर्य समाज के प्रचार का केन्द्र हो। इस कार्यालय का काम आर्यसमाज की स्वीकृत मांगों के क्रियात्मक रूप में पूरा होने या न होने की देख-रेख करना हो। इस प्रस्ताव का यह अभिप्राय नहीं कि हमें निज़ाम सरकार के अभिप्राय में किसी प्रकार का सन्देह है। जहां भी कहीं अधिकारों की लड़ाई होती है वहां सब कहीं ऐसी कमेटियों का निर्माण कर दिया जाता है जो स्वीकृत मांगों के साथ क्रियात्मक-व्यवहार क्या हो रहा है इस बात को परखती रहें और इसी आधार पर इस प्रकार के सार्वदेशिक सभा से सम्बन्धित एक कार्यालय का हैद्राबाद में स्थापित किया जाना अत्यन्त आवश्यक है।

[२]

हैदराबाद के सत्याग्रह से आर्य समाज का दक्षिण भारत में स्वतः बड़ा ज़बर्दस्त प्रचार हो गया है। इस प्रकार का लाभ उठा कर अगर शीघ्र ही 'दक्षिण भारत

प्रचार संघ' की इस समय स्थापना कर दी जाय तो जो काम पिछले सालों की सिरतोड़ कोशिश के बावजूद सार्वदेशिक सभा नहीं कर सकी उस काम को वेग से चलाया जा सकता है। 'आर्य सत्याग्रह' के सिलसिले में सार्वदेशिक सभा के पास पुष्कल धन-राशि एकत्रित हो गई है। इस रुपये को बैंक में रखने के बजाय यह समय है जब कि दक्षिण भारत में अबतक आर्य समाज का जो सन्देश नहीं पहुँचाया जा सका उसे दक्षिण के कोने २ तक पहुँचा दिया जाय। इस रुपये का जो सत्याग्रह के लिये आया था, दक्षिण भारत में प्रचार कार्य के लिये 'आर्य कांग्रेस' ही लगा सकती है क्योंकि इसमें भारत भर की समाजों का प्रतिनिधित्व होगा, इसलिये भी 'आर्य कांग्रेस' का बुलाया जाना अत्यन्त आवश्यक प्रतीत होता है।

[३]

सत्याग्रह संग्राम में जिन वीरों की आहुति पड़ गई है उन के परिवारों की सहायता के लिये कम से कम एक लाख रुपया इकट्ठा करके उनकी सहायता का स्थिर प्रबन्ध करना भी एक आवश्यक विषय है। आर्य-समाज के संगठन की खूबी इसी में गिनी जायगी कि सामयिक सहायता का प्रबन्ध करने के स्थान में स्थिर सहायता का प्रबन्ध किया जाय। इस विषय पर भी 'आर्य कांग्रेस' में विचार हो सकता है।

[४]

इन सब बातों के अतिरिक्त एक और बहुत ही महत्वपूर्ण विषय है जिस पर 'आर्य कांग्रेस' में विचार होना चाहिये। हमने पिछले सत्याग्रह में देखा कि कांग्रेस की हिन्दू विरोधिनी नीति के कारण हमें कांग्रेस का सहयोग नहीं प्राप्त हुआ। महात्मा गान्धी कुछ विरोध में न लिख दें, इसी खतरे से कइयों को कई बार वर्धा और इधर-उधर भागना पड़ा। शोलापुर से आर्य कैंप उठा दिया गया, मद्रास में सभाओं पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया, देहरादून में प्रतिवाद के तौर पर जुलूस नहीं निकाला गया। यह सब इसलिये हुआ कि आर्य-समाज ने बहुत देर से देश की राजनीति से अपने को अलहदा रखा हुआ है, और देश के राजनीतिक कार्यकर्ता इसे एक साम्प्रदायिक संस्था ही समझते हैं।

हमारी सम्मति में अब समय आगया है जब कि आर्य समाज को राजनीति से पृथक् रहने की अपनी नीति को बदल देना चाहिये। ऋषि दयानन्द ने अपने विधान में 'राजार्य सभा' को स्थान दिया है। इस सभा का फ़ौरन निर्माण करके आर्य समाज को अपने सिद्धान्तों के अनुकूल राज्यव्यवस्था की स्थापना का प्रयत्न जारी कर देना चाहिये। भारत की वर्तमान राजनीति का संचालन भिन्न २ वर्गों की तरफ से हो रहा है। मुसलमान लोग मुसलमानी दृष्टि कोण से, हिन्दू सभा के लोग हिन्दू दृष्टि कोण से, साम्यवादी साम्यवाद की दृष्टि से और गान्धीवादी गांधीवाद की दृष्टि से भारत की भावी राष्ट्र व्यवस्था का निर्माण करना चाहते हैं। ऐसे समय जब कि भिन्न २ दृष्टिकोणों का परस्पर संघर्ष चल रहा है आर्य समाज को अपना दृष्टिकोण पीछे नहीं रहने देना चाहिये। इस समय, हमारे दुर्भाग्य से, जहां मुसलमानों की संख्या अधिक है वहां तो खुल्लमखुल्ला हिन्दू विरोधिनी प्रवृत्तियां काम कर रही हैं, और जहां मुसलमानों की संख्या अधिक नहीं है—जहां कांग्रेस का शासन है— वहां मुसलमानों को बेजा खुश करने की प्रवृत्ति दिखाई दे रही है। परिणाम यह है कि 'हिन्दुत्व' जो पहिले ही दुर्बल था, और दुर्बल पड़ता जा रहा है, और हिन्दू संस्कृति का ह्रास होता जा रहा है। आर्य समाजका मुख्य लक्ष्य हिन्दू संस्कृति को बचाना था, परन्तु आज अवस्था ऐसी उत्पन्न होगई है कि हमारे राजनीति से अलग रहने पर यह संस्कृति बच नहीं सकती। इस गम्भीर विषय पर सोचना आवश्यक है, फिर यह दूसरी बात है कि सोचने के बाद आर्य समाज यह भले ही निश्चय करले कि राजनीति से अलग रहना ही आर्य समाज के लिये हितकर है।

ऊपर जिन चार बातों का उल्लेख किया गया है उन पर विचार करने के लिये 'आर्य कांग्रेस' का बुलाना आवश्यक प्रतीत होता है। वैसे तो 'कांग्रेस' को बुलाये बग़ैर भी इन बातों पर विचार हो सकता है, परन्तु एक जन-समूह के मिलकर निश्चय करने से इन विचारों को क्रियात्मक रूप देने में जो बल प्राप्त हो सकता है वह बल दूसरी तरह नहीं प्राप्त हो सकता। आशा है, हमारे उक्त विचारों को आर्य जनता पुष्ट करेगी और शीघ्र ही किसी उचित स्थान पर 'आर्य कांग्रेस' के संगठित किये जाने का विचार क्रियात्मक रूप धारण करेगा।

—o—

पुराने गुरुकुल की स्मृति

नई भूमि

[ले० श्री पं० वागीश्वर जी विद्यालङ्कार]

(नए गुरुकुल के आबाद होने के समय यह लेख लिखा गया था

—सम्पादक)

पुल से उतरते ही एक रास्ता सीधा कनखल को चला गया। दूसरा, दायें हाथ की ओर जाता रास्ता गुरुकुल को जाता है। किनारे पर ही यह इमारत कैसी है? इसका नाम है मुक्ति पीठ। पुराने गुरुकुल की आधार-शिला रखने वाले महानुभावों में श्री पं० गङ्गादत्त जी का नाम चिरस्मरणीय रहेगा। आप व्याकरण के धुरन्धर विद्वान् थे। गुरुकुल में व्याकरण पढ़ाने के लिये आपने ही बड़े परिश्रम से 'अष्टाध्यायी वृत्ति' की पुस्तक तय्यार की थी। आप सच्चे ब्राह्मण थे। गुरुकुल में ब्रह्मचारियों का स्वास्थ्य रक्षा तथा शारीरिक उन्नति के विषय में यदि किसी को सब से अधिक चिन्ता थी तो आपको ही। आपने बहुत दिनों बड़े प्रेम से गुरुकुल की सेवा की। परन्तु अन्त में कुछ मत भेद हो जाने के कारण आपने गुरुकुल छोड़ दिया। सन्यास लेकर आपने अपना नाम शुद्धबोध तीर्थ रक्खा। यह मुक्ति पीठ आपका ही

आश्रम है। आपका स्वर्गवास हुए चार पांच वर्ष हो गए हैं।

वह देखिये—श्रद्धानन्द नगरी अर्थात् नये गुरुकुल के भवन यहीं से दीखने लगे। यह श्वेत मन्दिर सा—गुरुकुल की यज्ञशाला है। चांदनी रात में इसकी शोभा दर्शनीय होती है। मालूम होता है, जगह जगह बिखरी वृक्षों की छाया में छिपी, अन्धकार की टुकड़ियों से लोहा लेने के लिये चांदनी ने मोरचा बांधा है। इसकी शुभ्रता देखने वाले के हृदय में भी बलपूर्वक शुभ्रता का सञ्चार सा करती प्रतीत होती है। यह यज्ञशाला लखनऊ के महाशय ला० पन्नालाल जी रस्तोगी ने बड़े शौक से बनवाई है। इसके पास ही यह कूवा और स्नानशाला अभी तैयार हुवे हैं। कूवे पर वाटर रेज़रवायर बना कर सारे गुरुकुल में नलकों द्वारा जल पहुंचाये जाने का प्रबन्ध किया जा रहा है। यह हो जाने पर पानी का बड़ा सुभीता हो जावेगा। इस स्नानागार तथा कूवे का सब खर्च अमृतसर निवासिनी श्रीमती रत्नदेवी जी ने धर्म-भाव से प्रेरित होकर दिया है। यह सामने छोटे बच्चों का भोजन-भण्डार है। भोजन करने के लिये दो बड़े हाल बने हुवे हैं। नीचे पक्का फर्श है। दरवाजों तथा खिड़कियों में जाली लगी है। भोजन बनाने का प्रबन्ध अलग है। इस बात का यत्न किया जाता है कि भोजन खूब स्वच्छ और स्वास्थ्य वर्धक बने। सफ़ाई का ध्यान रक्खा जाता है ताकि भोजन की सामग्री पर मक्खियां न बैठ सकें। छोटे बच्चे इस बात का यत्न कर रहे हैं कि वे अपने भण्डार के योग्य भाजी स्वयं पैदा कर लिया करें। चलिये उनके खेत देखिये। कोई पानी दे रहा है, कोई घास उखाड़ रहा है, कोई नला रहा है। अभी तो अङ्कुर ही फटे हैं। ये बड़ी उत्सुकता से उस दिन की प्रतीक्षा कर रहे हैं जब इन की मूलियां और गोभी तैयार होकर भण्डार में जावेंगी, उस दिन के भोजन में इन्हें और ही आनन्द प्रतीत होगा।

वह देखिये—कैसा हो हल्ला मच रहा है? घबराइये नहीं। ये छोटे ब्रह्मचारी अपने आश्रम से निकल उछलते कूदते खेलने के लिये जा रहे हैं। यह समय ही आनन्द का है। जो खुल कर हँसे खेलें नहीं तो बच्चे ही क्या? इन्हें अपना घर कभी याद नहीं आता। सब भाई भाई की तरह बड़े प्रेम से रहते हैं। लड़ाई झगड़ा भी हुआ ही करता है पर क्षणिक। यह इनका आश्रम है। प्रत्येक ब्रह्मचारी को लोहे का एक एक तख्त, एक अलमारी, एक खिड़की मिली हुई है। अलमारी में ये अपनी पुस्तकें और कपड़े रखते हैं। रुपये पैसे की इन्हें कोई ज़रूरत नहीं। यह बीच में यज्ञशाला बन रही है। वर्षा धूप आदि के समय यहां बैठना बड़ा आनन्द दायक होता है। चारों ओर से खुली हवा। ब्रह्मचारी अतिरिक्त समय में चरखा भी चलाते हैं। आज भारत दारिद्र है। उसे दरिद्रता से छुड़ाने में कभी यह चर्खा ही कामयाब होगा। सब ब्रह्मचारी शुद्ध खद्दर के कपड़े पहिनते हैं। यह एक ओर झूला लग रहा है। इस पर बच्चे झूलने का आनन्द लेते हैं। बीच में ब्रह्मचारियों ने फूल लगा लिये हैं जिन्हें वे बड़े चाव से पानी देते हैं। किस पौदे में कितनी शाखायें और कितने फूल हैं—इसका हिसाब ये बालक आपको बड़े उत्साह से देंगे। इन्होंने कई बार इस प्रश्न पर बहस की है कि फूल प्रातः काल मन्द प्रकाश में ही खिलते हैं दिन में सब के सामने क्यों नहीं? किसी का पौदा इस लिये अच्छा है कि उस में पहले फूल खिला था तो दूसरे का इस लिये कि उस में पीछे तक खिलते रहेंगे। मतलब यह है कि लड़ाई में किसी की जीत, तो किसी की हार होनी भी आवश्यक है यह सिद्धान्त अभी इन बच्चों पर नहीं लगा है। यहां सब की जीत ही जीत है ये बच्चे समय पर खूब खेलते हैं तो समय पर पढ़ते भी खूब हैं।

विद्यालय

वह ठीक सामने इनके पढ़ने का स्थान है। प्रत्येक श्रेणी के कमरे में छोटा डेस्कें ढंग से लगी हुई हैं ताकि लिखने में इन्हें नीचे को झुकना न पड़े। दीवारों में तरह २ के चित्र और नक्शे आदि टंग रहे हैं। इनसे ब्रह्मचारियों की ज्ञानवृद्धि में बड़ी सहायता मिलती है। बच्चों ने स्वयं भी बहुत से चित्र तथा मिट्टी के खिलौने आदि बनाये हैं। जाड़े की ऋतु में बच्चे धूप में बैठकर पढ़ना अधिक पसन्द करते हैं अतः वैसा ही प्रबन्ध कर दिया गया है। बच्चे पढ़ते २ थक न जावें इस बात का पूरा ध्यान रक्खा जाता है। विषय बदलते रहते हैं। बीच में ही कवायद, लाठी-चलाना आदि की शिक्षा भी दी जाती है जिससे तबियत में ताजगी आ जाती है। यह एक श्रेणी लेज़म के साथ व्यायाम कर रही है। लेज़म की मीठी झंकार के साथ कवायद में एक संगीत पैदा हो जाता है जिससे बच्चे उसे शौक से करते हैं। लाठी के हाथ सीखने से उनका उत्साह बढ़ जाता है। उनमें वीरता उत्पन्न होती है। गुरुकुल की शिक्षा में राष्ट्रियता तथा धार्मिकता को पृथक् नहीं किया जा सकता। राजनीति ऋषि दयानन्द के धर्म से बाहर नहीं। इस शिक्षा का मूल आधार ब्रह्मचर्य तथा सदाचार है। पहली पांच श्रेणियों के ब्रह्मचारी जो संख्या में लगभग २१० हैं यहां शिक्षा पाते हैं। ६ ठी श्रेणी से १० वीं तक का विभाग दिल्ली के समीप 'इन्द्रप्रस्थ-गुरुकुल' के नामसे चल रहा है। बच्चों की शिक्षा के संबन्ध में आर्य पुरुषों ने छात्रवृत्ति, स्थिर राशि आदि के रूप में गुरुकुल की बड़ी सहायता की है। तथापि श्री टेकचन्द जी नागिया जैसे श्रेष्ठदानियों से अभी कुल को बहुत आशा है।

चिकित्सालय

देखिये, ज़रा मन्द कर चलिये। बच्चे हौकी खेल रहे हैं। कहीं गेंद इधर को न आ जाये। कैसा जोश है? यह 'हिट' लगी। वह गई गेंद गोल में। गोल हो......। नहीं बीच में रोक ली किसी ने। यह ब्रह्मचारी खड़ा क्यों है? मालूम होता है चोट लगी है। सिर से खून जा रहा है। चिकित्सालय सामने ही है। चलो, ले चलें इसे। डाक्टर साहब बरामदे में खड़े थे। झमेला देख कर आप ही चले आ रहे हैं। अब कोई चिन्ता नहीं। कम्पाउण्डर ने देखते ही देखते मरहम पट्टी का सब सामान कर दिया। टांके लग गये। ब्रह्मचारी ने 'सी' तक न की। डाक्टर साहब की प्रसन्न मुखमुद्रा तथा मधुर वार्तालाप से ही रोगी का आधा कष्ट दूर हो जाता है। उस पर लगन और कर्त्तव्य परायणता मानों सोने में सुहागा है। प्राचीन आयुर्वेद तथा नवीन चिकित्सा-पद्धति-दोनों में आपकी गति है। आप हो डा० सत्यपाल जी आयुर्वेदालंकार हैं। सारा चिकित्सालय स्वच्छ है। बाहर का सहन फूलों के पौधों तथा वृक्षों से अलंकृत है। जगह जगह गमले रक्खे हैं। इस सब सामग्री का रोगियों के स्वास्थ्य पर बड़ा अनुकूल प्रभाव पड़ता है। रोगी-भाई की सेवा-शुश्रूषा में ब्रह्मचारी दिनरात एक कर देते हैं। क्यों न हों—आज से २५, २६ वर्ष पूर्व स्वनाम धन्य श्री डा० सुखदेव जी तथा उस समय के बड़े ब्रह्मचारियों ने छोटे भाई स्वर्गीय नवीन चन्द्र की मृत्यु शय्या के सिरहाने बैठ, किसी भी प्रकार की सेवा में संकोच न कर, अपनी भूख प्यास नींद का हराम समझ यहां उस दिव्य परिपाटी को प्रचलित कर दिया जो आज भी इस कुल की विशेषता बना हुई है। जीवन और मृत्यु पर परमेश्वर के सिवा किसी का वश नहीं। तथापि अल्प शक्ति, अल्पज्ञ मनुष्य से जो कुछ बन सकता है उसमें यहां कसर नहीं हो सकती।

ब्रह्मचारी मनोहरजी और सत्येन्द्र जी की रिहाई, चांदा में स्वागत।

चांदा १२ अगस्त.

गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी के दो ब्रह्मचारी—ब्र० मनोहरदेव जी तथा ब्र०सत्येन्द्र नाथ जी अपनी ६-६ मास की सज़ा पूरी करने के बाद करीमनगर जेल से मुक्त होकर चांदा शिविर में पहुंच गए हैं। चांदा की सार्वजनिक सभा में उक्त दोनों ब्रह्मचारियों का यथोचित स्वागत किया गया। यह स्मरण रहे कि गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी के ब्रह्मचारियों ने इस धर्म युद्ध के प्रथम सर्वाधिकारी पूज्य महात्मा नारायण स्वामी जी के आदेश पर हैदराबाद में सर्व प्रथम सत्याग्रह किया था।

गुरुकुल के आचार्य श्री अभयदेव जी 'चांदा शिविर' में उक्त ब्रह्मचारियों को मिलने आये। श्री आचार्य जी के दर्शनों के लिए चांदा के प्रतिष्ठित सज्जन आते रहे। उनका 'आदर्श शिक्षा' पर एक प्रभाव शाली व्याख्यान चांदा के सब स्कूलों के अध्यापकों और छात्रों में हुआ। श्री आचार्य जी 'चांदा शिविर' के प्रबन्ध को देखकर प्रसन्न हुए।

मन्त्री:—
आर्य सत्याग्रह समिति, चांदा।

गुरुकुल समाचार

इस सप्ताह एक बार वर्षा हुई। दिन में कुछ गर्मी हो जाती है। रात के समय ठंडी हवा चलती है। कुलभूमि का प्राकृतिक दृश्य अत्यन्त रमणीक है। महाविद्यालय के ब्रह्मचारियों की यात्राएं २१ अगस्त से प्रारम्भ होंगी। ब्रह्मचारियों का एक दल गंगोत्री की यात्रा करने के लिये श्री प्रो० लालचन्द जी उपाचार्य की अध्यक्षता में जा रहा है। दूसरा दल श्री पं० रामेश्वर जी विद्यालंकार की अध्यक्षता में काश्मीर जा रहा है तीसरा दल श्री पं० हरिवंश जी की अध्यक्षता में दार्जिलिंग की ओर प्रस्थान कर रहा है। चौथा दल श्री पं० गणपति जी की अध्यक्षता में क्वेटा जा रहा है। इन सरस्वती यात्राओं से ब्रह्मचारियों की पर्याप्त वृद्धि होगी।

गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ

आज कल वर्षा ऋतु में यहां का दृश्य रमणीक है। अभी तक बीमारी का विशेष प्रकोप नहीं है। केवल ३-४ विद्यार्थी चिकित्सालय में बीमार हैं।

२७ जौलाई को देहली से वर्धा जाते हुवे महात्मा गांधी जी के दर्शन करने के लिए गुरुकुल के ब्रह्मचारी फरीदाबाद स्टेशन पर पहुँचे। स्टेशन पर ६ मिनट गाड़ी ठहरी। महात्मा जी ने भोजन खाना छोड़ कर, प्रेम पूर्वक गुरुकुल के विषय में हाल चाल पूछा। अत्यन्त निकट से महात्मा जी के दर्शन कर ब्रह्मचारी बहुत प्रसन्न हुये। ५) रु० प्रस्तुत करके अपने हस्ताक्षर तथा सन्देश देने की प्रार्थना पर महात्मा जी ने मुस्कराते हुवे निम्न शब्द—"सत्य कभी मत छोड़ो"—मो० क० गांधी 'संजीवनी' पत्रिका में अंकित किये। अन्त में यह पूर्ण आशा प्रकट करते हुवे कि- सब ब्रह्मचारी अपने हाथ से थाली कौल मांजते होंगे और कपड़े धोते होंगे, महात्मा जी ने इसके लिये विशेष जोर दिया।

इसके अतिरिक्त श्री घनश्यामसिंह गुप्त जी ने 'भारत के वीर पुत्र बनो' शब्दों में अपना संदेश दिया।

२९ जौलाई को गुरुकुल कांगड़ी के भूतपूर्व मुख्याधिष्ठाता श्री पं० विश्वम्भरनाथ जी गुरुकुल पधारे। आपने सारे गुरुकुल का निरीक्षण किया तथा आर्यसमाज का हैदराबाद सत्याग्रह उचित है या नहीं, इस विषय पर ब्रह्मचारियों का विवाद सुनकर प्रसन्न हुये। अन्त में ब्रह्मचारियों को उपदेश देते हुये आपने बताया कि प्रत्येक व्यक्ति अपनी उन्नति में मनुष्य समाज का ऋणी है। अतएव मनुष्य समाज की सेवा करना प्रत्येक का कर्तव्य है। यही गुरुकुल का उद्देश्य है। आपका आगमन गुरुकुल के लिये अत्यन्त लाभ कर सिद्ध हुआ।

चौधरी दुल्लासराय के प्रबन्ध से गुरुकुल प्रेस, गुरुकुल कांगड़ी में मुद्रित तथा प्रकाशित।

* ओ३म् *

"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत"   Reg. No. A. 2927

गुरुकुल

सम्पादक—साहित्यरत्न पं० हरिवंश वेदालङ्कार

एक प्रति का मूल्य -)   [गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख-पत्र]   वार्षिक मूल्य २॥)

वर्ष ४]   गुरुकुल काङ्गड़ा, शुक्रवार ६ भाद्रपद १९९६,-२५ अगस्त १९३९   [संख्या १७

वैदिक वर्ण-व्यवस्था

[ले०—श्री धर्मवीर जी]

जब कोई प्रथा अपनी बुराई की चरम सीमा पर पहुंचती है, चाहे वह व्यक्तिगत हो चाहे समष्टिगत हो, वह लोगों को धीमे २ चुभने सी लगती है। ऐसी परिस्थिति में अगर कोई तीव्र बुद्धि, उत्कट इच्छा शक्ति और मज़बूत दिल वाला व्यक्ति होता है तो वह उस बुराई को समाज से समूलोन्मूल करने का प्रयत्न करता है। गौतम बुद्ध को जिस समय चारों ओर यज्ञ यागादि में हिंसा मालूम दी, तो उन्होंने यज्ञ यागादि के साथ ही ईश्वर की भी अत्यन्त उपेक्षा की, यद्यपि उस समय को दृष्टि में रखते हुए उन्होंने ईश्वर की सत्ता से बिल्कुल या बहुत स्पष्ट रूप में इन्कार नहीं किया। ठीक ऐसी विकृत अवस्था आज वैदिक-वर्णव्यवस्था की है। वैदिक वर्णव्यवस्था आज सैकड़ों जात पात के पचड़ों में विभक्त हो गई है और वर्तमान हिन्दू सुधारकों को यह चुभने लगी है। आज से कुछ वर्ष पूर्व स्वर्गीय मोतीलाल जी नेहरू ने कहा था कि अगर भारतवर्ष पूर्ण आज़ादी चाहता है तो उसे वर्ण-व्यवस्था सदृश निकृष्ट चीज़ को समाज से बिल्कुल समूलोन्मूल कर देना होगा। आजकल जात पांत तोड़क-मण्डल यही करने का प्रयत्न कर रहा है। जात-पांत-तोड़क-मण्डल ने बहुत प्रयत्नों के पश्चात् यहां तक किया है कि आगामी १९४१ की जन संख्या में कोई भी हिन्दू अपनी जाति इत्यादि न लिखावे और इस प्रकार हिन्दू जाति को संगठित करने का सराहनीय प्रयत्न किया है। इसके साथ ही भारतवर्ष में नया वाद साम्यवाद के नाम से चला है जो कि इस ऊँच नीच के भाव को बर्दाश्त करना नहीं चाहता। इनकी समालोचनात्मक दृष्टि से व्याख्या करने से पूर्व यह कह देना आवश्यक है कि इस प्रकार के अन्य भी कई वाद और मण्डल हैं जो कि इस सामाजिक बुराई को अपने उग्र थपेड़ों से तहस नहस कर देना चाहते हैं। मैंने जहां तक इनके विचारों का अध्ययन किया है, मैं इसी परिणाम पर पहुंचा हूँ कि ये लोग अपने अन्तःकरण को साक्षी करते हुये पूर्णतया ईमानदार हैं। इन्होंने हिन्दू समाज की इन बुराइयों को अत्यन्त उग्र रूप से महसूस किया है। हिन्दू सङ्गठन और स्वराज्य प्राप्ति के लिए इस जात पांत को बड़ी भारी दीवार महसूस करते हुये ही इन लोगों ने इतना बड़ा आन्दोलन शुरू किया है। कहने का तात्पर्य यह है कि ये लोग अपने हृदय से पूर्णतया ईमानदार हैं। केवल इसीलिए, यद्यपि मैं इनके विचारों से सहमत नहीं हूं, मैं इनके विचारों से पूर्ण सहानुभूति रखता हूं, क्योंकि इन्होंने हिन्दुओं के सङ्गठन को तथा स्वराज्य प्राप्ति के उपायों को मद्देनज़र रखते हुए एक साहसपूर्ण कदम उठाया है। इतना होते हुए भी क्योंकि मेरा यह विचार है कि ये गलत रास्ते पर जा रहे हैं, भाई-भाई होने के नाते उनको ठीक रास्ता बता देना मेरा फ़र्ज़ है। मेरा विचार है कि अगर हिन्दू समाज इस गलत रास्ते पर चला गया, तो वह किसी दिन एक अन्धकार के गर्त में जा गिरेगा, जहां से लौट कर उसे फिर इसी वैदिक-वर्णव्यवस्था के प्रकाशमय मार्ग पर आना पड़ेगा, जिसका कि आज से लगभग ६० वर्ष पूर्व महर्षि दयानन्द ने उपदेश किया था, और आर्यसमाज लगातार उसी मार्ग की ओर जाने का प्रयत्न कर रहा है। इसमें सन्देह नहीं कि वर्णव्यवस्था आज एक अत्यन्त विकृत रूप में हमें दृष्टिगोचर हो रही है, परन्तु इसको नष्ट करने के स्थान पर इसमें सुधार करना हिन्दू समाज के लिए अधिक उपयोगी होगा।

वर्तमान काल को देखते हुए उस पवित्र और आदर्श वैदिक कर्मानुसार वर्णव्यवस्था पर कुछ लिखते हुए संकोच होता है। कुछ व्यक्ति इस वर्ण व्यवस्था को "कूप मण्डूक की टर्र टर्र" कह कर कुछ बुरे भले शब्द कह देंगे। कुछ लोग इसे पुरानी रूढ़ियां कह कर के मज़ाक करेंगे। परन्तु किन्हीं व्यक्तियों की गालियों से डर कर किन्हीं सत्य सिद्धान्तों का प्रगट न करना कायरता है। "सम्पूर्ण संसार एक ओर हो जाय, तो भी दयानन्द किसी से डरने वाला नहीं है।" हम तो महर्षि के इन वाक्यों के कायल हैं। इसी के आधार पर आज मैं भी कह सकता हूं कि सम्पूर्ण संसार एक ओर हो जाय और आर्यसमाज एक ओर हो जाय, तो भी आर्यसमाज

इस वैदिक-वर्णव्यवस्था के युग को लाकर ही रहेगा, उस वैदिक वर्णव्यवस्था का स्वरूप यजुर्वेद के ३१ वें अध्याय के ११ वें मन्त्र में उत्कृष्ट रूप से समझाया गया है।

यत्पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन्।

मुखं किमस्यासीत् किं बाहू किमूरू पादाऽउच्येते॥

यजु० ३१।१०॥

इस मन्त्र में उस सर्वान्तर्यामी "पुरुष" परमात्मा का स्वरूप पूछा गया है। परमात्मा का मुख क्या है, बाहु क्या है इत्यादि प्रश्न पूछ कर अगले मन्त्र में उस निराकार परमात्मा के मुख इत्यादि का वर्णन किया गया है। पाठक वृन्द स्वयं समझ सकते हैं कि उस निराकार 'पुरुष" परमात्मा के क्या अङ्ग हो सकते हैं। फिर भी एक आदर्श राष्ट्र में परमात्मा की भिन्न २ शक्तियों का वर्णन करते हुए भिन्न २ अङ्गों का प्रतिपादन किया है। इस प्रकार आध्यात्मिक आधिभौतिक और आधिदैविक जगत् में परमात्मा के स्वरूप का वर्णन किया गया है। आदर्श राष्ट्र की व्याख्या करने के कारण मैं इस समय परमात्मा की भिन्न शक्तियों का एक आदर्श राष्ट्र में क्या स्वरूप हो सकता है, इसी की ही व्याख्या करने का प्रयत्न करूंगा, शेष मन्त्रों की नहीं। इससे अगला मन्त्र है—

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्बाहू राजन्यः कृतः।

ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत॥

यजु० ३१।११॥

महर्षि दयानन्द ने शतपथ ब्राह्मण के आधार पर इसका जो अर्थ किया है, उसी का ही भावार्थ मैं यहां उद्धृत कर देना उपयुक्त समझता हूँ। क्या परमात्मा निराकार है इस लिए उसके मुख आदि अङ्ग सम्भव नहीं हैं। इसलिए महर्षि लिखते हैं—(अस्य) मनुष्य या परमात्मा की इस सृष्टि के जो मुख स्थानापन्न हैं वे ब्राह्मण हैं, जो वीर्यवान् तथा बलशाली हैं वे क्षत्रिय हैं। (बाहुर्वै बलं बाहुर्वै वीर्यं—शतपथ) जो सब प्रदेशों में ऊरु का अधिक प्रयोग करता है अर्थात् व्यापार तथा कृषि आदि अधिक करता है वह वैश्य है और जो नीचे के अङ्ग के सदृश मूर्ख है, अनपढ़ है अर्थात् जो जैसा दूसरे विद्वान् लोग कहें वैसा करता है वह शूद्र है। इस प्रकार ये चार भाग हरेक समाज को मानना अत्यन्तावश्यक है। जो लोग ऐसा कहते हैं कि ये विभाग तो हरेक देश में स्वतः सिद्ध हैं, इस लिये इनका इस प्रकार आविर्भाव करना अनावश्यक है, वे सख्त गलती कर रहे हैं और अपने अनुयायियों को भी गलत रास्ते पर ले जा रहे हैं। इसका दिग्दर्शन हम आगे चल कर करायेंगे, यह तो केवल भूमिका मात्र है। अगली लेखमाला में दूसरे दृष्टिकोणों की समालोचना के साथ २ हम वैदिक-वर्णव्यवस्था की उपयोगिता दर्शाने का प्रयत्न करेंगे।

नई भूमि

[ले०—श्री पं० वागीश्वर जी विद्यालंकार]

कार्यालय

इतने बड़े प्रबन्ध को चलाने के लिये एक अच्छे कार्यालय की आवश्यकता है। चलिये गुरुकुल का कार्यालय भी देखलें। चिकित्सालय के आगे ही कार्यालय है। यहां लाखों के आय व्यय का हिसाब रोज होता है। हिसाब का ढङ्ग ऐसा है कि भूल की कम से कम सम्भावना है। प्रत्येक ब्रह्मचारी के घर से मासिक शुल्क १५), २०), २५) मंगवाना, विभागों के बिलों की पड़ताल, दान का हिसाब, गुरुकुल की स्थिर सम्पत्ति का प्रबन्ध आदि सब काम यहीं होते हैं। एक ओर सहायक मुख्याधिष्ठाता तथा दूसरी तरफ प्रस्तोता (Registrar) का कार्यालय भी यहीं है। स्वामिनी सभा की ओर से हिसाब निरीक्षक आकर सारे हिसाब की पड़ताल प्रति वर्ष कर के रिपोर्ट देते हैं। गुरुकुल के वर्तमान सहायक मुख्याधिष्ठाता श्री डा० रघुवरदयाल बी० ए० तथा श्री देवराज सेठी एम० ए० दोनों ही बड़े प्रेम तथा परिश्रम से कुल की उत्तरोत्तर उन्नति के लिये सदा यत्नवान रहते हैं। गुरुकुल का यन्त्रालय तथा आयुर्वेदिक फार्मेसी कनखल-हरद्वार मार्ग पर है। इस फार्मेसी की ओषधियां शास्त्रोक्त विधि से योग्य वैद्यों द्वारा तय्यार की जाती हैं। व्यापारिक दृष्टि की अपेक्षा लोक सेवा तथा आयुर्वैदिक प्रणाली में जनता का विश्वास पुनः उत्पन्न करना इस फार्मेसी का मुख्य उद्देश्य है। गुरुकुल का जो वर्तमान रूप नई भूमि में दृष्टिगोचर हो रहा है। इस के श्रेय का अधिकतर भाग श्री सेठी जी को ही है। छोटे से छोटे काम में दिलचस्पी तथा अनथक परिश्रम आपके विशेष गुण हैं।

महाविद्यालय आश्रम

यह आश्रम महाविद्यालय के छात्रों के रहने का स्थान है। लगभग ७० से ऊपर विद्यार्थी यहां रह रहे हैं। पढ़ने लिखने तथा अपनी शारीरिक एवं आत्मिक उन्नति के अतिरिक्त किसी बात की चिन्ता उन्हें नहीं रहती। सन्ध्या हवन दोनों समय नित्य नियम पूर्वक होता है। गुरुकुल शिक्षा प्रणाली की मुख्य विशेषता सदाचार तथा चरित्र निर्माण है। इस उद्देश्य की सिद्धि के लिये 'अनभ्यास परीक्षा' की प्रणाली यहां चलाई गई है। समय पर कार्य करना, आज्ञा पालन, सत्यभाषण आदि सद्गुणों का अभ्यास डालने के लिये उनके अङ्क रख दिये गये हैं। जिससे उन्नति के साथ विद्यार्थियों का उत्साह भी खूब बढ़ता है। ब्रह्मचारी पढ़ाई के साथ रात्रि-सभाओं तथा हस्त लिखित पत्र पत्रिकाओं के प्रकाशन में खूब भाग लेते हैं। जिस से लेख, भाषण, चित्र कला तथा कविता में ब्रह्मचारी सदा उन्नतिशील रहते हैं।

वक्तृत्व-प्रतियोगिता में श्रद्धानन्द विजयोपहार इस की सफलता का प्रमाण है। हिन्दी भाषा के श्रेष्ठतम कवियों ने ब्रह्मचारियों की सरस, भावपूर्ण,ओजस्विनी अपूर्व कविता को सुन कर शत शत मुख से उनकी प्रशंसा की है। गुरुकुल के स्नातक इतने ऊंचे साहित्य को उत्पन्न कर आज मातृ भाषा की सेवा कर रहे हैं यह किसी से छिपा नहीं है।

गुरुकुल की आधार शिला

तीन वर्ष हुये, गुरुकुल के सालाना जलसे के मौके पर इस नई भूमि में गुरुकुल के इन भवनों की आधार-शिला का न्यास ऋषि दयानन्द के अनन्यभक्त शाहपुराधीश श्री सर नाहरसिंह जी के कर कमलों द्वारा बड़ी धूम-धाम से किया गया था,यह स्थान उसी की स्मृति है। श्रीमहाराजाशाहपुर का गुरुकुल के साथ विशेष प्रेम है। अत्यन्त वृद्ध शरीर के होते हुवे भी आप गुरुकुल के प्रेम से खिंचे हुये यहां आते ही रहते हैं। आपने तीस चालीस हजार रुपया गुरुकुल को आर्यभाषा की स्थिर गद्दी पुस्तक प्रकाशन तथा बृहत्तर यज्ञशाला आदि के लिये दान दिया है। श्री महाराज उम्मेद सिंह जी का भी गुरुकुल से कुछ कम प्रेम नहीं।

व्यायाम शाला

शरीर स्वस्थ में ही स्वस्थ मन का निवास हो सकता है, इस लिये ब्रह्मचारियों के खेल, कूद,व्यायाम आदि का बहुत ध्यान रखा जाता है। ब्रह्मचारी समयानुसार बाहर टूर्नामेंटों में भी भाग लेने जाया करते हैं। इस में मनोरंजकता पूर्वक व्यायाम करने की बहुतसी सामग्री एकत्र की गई है जिस से ब्रह्मचारियों का उत्साह खूब बढ़ा है। इसी लक्ष्य को दृष्टि में रख कर एक नाव भी बनाई गई है जो ब्रह्मचारियों के खेल के काम आती है। व्यायाम का व्यायाम तथा मनोरंजन का मनोरंजन। यह नाव गुरुकुल के घाट पर रहेगी। स्नान आदि की सुविधा के लिये नहर पर यह घाट गुरुकुल ने अपने व्यय से बनवाया है। सामने हरे भरे वृक्षों की झुकी हुई शाखायें नहर के दर्पण तुल्य निर्मल जल में अपनी शोभा देख कर आप ही मुग्ध हो रही हैं। तरह २ के विकसित पुष्पमय सहस्रों लोचनों से लतावृक्ष यहां की मनोहरता को निहार रहे हैं। चारों ओर हरियाली ही हरियाली है। दृश्य देख कर आंखों में शीतलता आ जाती है। चलिये यह दृश्य देखते हुवे गुरुकुल लौट कर वहां के विद्वान्, त्यागी, उपाध्यायों का भी दर्शन करें।

यह गुरुकुल भारत की एकमात्र राष्ट्रीय तथा धार्मिक संस्था है जो पिछले ३० वर्षों से भारतीय शिक्षा के क्षेत्र में क्रान्ति कर रहा है। युरोप तथा अमेरिका के यात्री इसकी कार्य प्रणाली को देखकर चकित तथा प्रभावित हुवे हैं। इन्होंने अपने यात्रा वृत्तान्तों में इस संस्था पर कम से कम एक अध्याय लिखे बिना आगे बढ़ना उचित नहीं समझा। देश के बड़े २ नेताओं की आंखें तो स्वर्गीय श्री स्वामी श्रद्धानन्द की एकमात्र स्मृति रूप इस संस्था पर सदा ही लगी रहती हैं। गुरुकुल के कितने ही स्नातक गले में झोली डाल वैदिकधर्म की सेवा से दीक्षित हो उत्तर से लेकर दक्षिण तक समस्त भारत में ऋषि के सन्देश को पहुँचा रहे हैं। कितने ही समुद्र पार जाकर भी गुरुकुल के नाम को उज्वल कर आये हैं। कितने ही देश में रह कर अपनी २ शक्ति के अनुसार देश तथा जाति की सेवा कर अपने कर्त्तव्य का पालन कर रहे हैं। वृक्ष अपने फलों से पहचाना जाता है। गुरुकुल एक कृतकार्य परीक्षण है या नहीं— इसका निश्चय इसके फलों से ही हो रहा है और होगा।

मातृभूमि की बलिवेदी पर

सन् १९२९ में महात्मा गान्धी ने भारतीय स्वातन्त्र्य संग्राम का संचालन किया। देशके आबालवृद्ध नरनारियों ने उसमें सहयोग दिया। दमन चक्र उग्र रूप में चलने लगा परन्तु मातृभूमि के योग्य पुत्रों ने कदम पीछे न हटाया। गुरुकुल के स्नातक भी ऐसे समय पीछे क्यों रहते। 'यदर्थं क्षत्रिया सूते तस्य कालोऽयमागतः।' उन्होंने एक जत्था बनाया और कर्त्तव्य पालन करते हुवे जेल की यात्रा की। अपने बड़े भाइयों को इस प्रकार आग में कूदते देख महाविद्यालय के ब्रह्मचारियों से भी न रहा गया। गुरुकुल के अधिकारियों ने बहुत समझाया कि विद्यार्थी जीवन तय्यारी का समय है इस समय संग्राम के लिये अपने को योग्य बनाना चाहिये, परन्तु उन्होंने एक न सुनी। गुरुकुल के तात्कालिक कुलमन्त्री, १८, १९ साल के होनहार बालक सर्वमित्र ने एक संगठन बनाया। बहुत से ब्रह्मचारी श्रेणियों से अपना नाम कटवाकर उस दल में भर्ती हो गये। यह छोटा सा उत्साही दल जिला सहारनपुर में अपना काम प्रचार-संगठन आदि करने लगा। गर्मी की बड़ी कड़ी धूप में एक गांव से दूसरे गांव को कोसों का चक्कर काटना, रूखा सूखा जो कुछ मिलगया वही खा लेना, न उठने बैठने का ढंग, न सोने जागने का ढंग— आराम की बात ही दूर। दिन भर दौड़ धूप। जो देखता था इन कर्मवीर नौजवानों की लगन क्रियाशीलता, सादगी, देश प्रेम पर निछावर होता था। थोड़े से ही दिनों में जो काम इन इने गिने नौजवानों ने किया वह आज भी उन गांवों में जाकर देखने से पता लगता है। गांवों में काम करना अत्यन्त कठिन है। वहां सैर करने के लिये मोटरें, रहने को कोठियां खाने को फल मिठाई तथा नाम पाने का हजारों की उपस्थिति वाली सभाएं या जलूस कुछ नहीं है। वहां तो शान्त, अज्ञान, कठिन सत्य व्रत; त्याग तथा कष्ट के सिवाय कुछ नहीं है। ब्रह्मचारियों ने ऐसे क्षेत्र में काम किया। अन्त में एक दिन ब्र० सर्वमित्र गांव से गांव भटकता हुआ हैजे का शिकार हो गया। रुड़की में अच्छी से अच्छी चिकित्सा की गई परन्तु सब व्यर्थ। वह बोलती चिड़िया देखते ही देखते उड़ गई। वह प्रतिभा, वह उत्साह, वह देश भक्ति, वह सुशीलता की मूर्ति हम से छिन गई। जिसकी यहां चाह है उसकी ही वहां चाह है। दैव को इतने से ही सन्तोष न हुवा। दूसरा

[शेष पृष्ठ ७ पर]

गुरुकुल

६ भाद्रपद शुक्रवार १९९६

अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति और हिन्दुस्तान

आज संसार के रंगमञ्च पर डानजिग सब से अधिक आकर्षक पात्र बना हुआ है। इधर एशिया में जापान चीन पर अपने खरोंच लगाने में प्रयत्नशील है। उधर अमरीका, इंग्लैण्ड आदि लोकतन्त्र देशों के साथ शान्त-सहानुभूति रखता हुआ भी निश्चेष्ट है। इंग्लैण्ड, फ्रांस आदि लोकतन्त्र देशों के सामने रूस जर्मन पैक्ट ने एक घातक समस्या उपस्थित कर दी है।

यह तो निर्विवाद निश्चित है कि आंग्ल-फ्रांसीसी-रूसी सैनिक-स्टाफ-वार्त्तालाप के स्तब्ध होने की सारी जिम्मेवारी इंग्लैण्ड पर है और यदि इंग्लैण्ड उसमें आधा भी प्रयत्न रूस को अपनी तरफ मिलाने का करता जितना कि उसने फैसिस्ट और नात्सी देवताओं की पूजा के लिए किया है तो आज लोकतन्त्र देशों की स्थिति इतने असहाय खतरे में न पड़ जाती जितनी कि अब रूस और जर्मनी दो चिर-दुश्मनों के मिल जाने से पड़ गयी है।

लेकिन 'देर आयद् दुरुस्त के आयद्' के अनुसार यदि अब भी इंग्लैण्ड का वर्त्तमान मन्त्रिमण्डल अपने देश की दशा और प्रभाव को सुरक्षित करना चाहता है तो उसे सम्भावित युद्ध में मनुष्य शक्ति प्राप्त करने के लिए अपने उपनिवेशों की मांगों पर अधिक आंख खोलकर विचार करना चाहिए।

विशेष रूप से हिन्दुस्तान की ओर से एक अकेले आदमी की सहायता की भी आशा इंग्लैण्ड को नहीं करनी चाहिए, यदि उससे पहले इंग्लैण्ड के चतुर राजनीतिज्ञ हिन्दुस्तान को अपनी वैधानिक-सभा चुनने का अधिकार देने को सहमत होकर यह अधिकार न दे दें।

हिन्दुस्तानी लोग या हिन्दुस्तान देश विश्व शान्ति सुरक्षित रखने के लिए अपनी जिम्मेवारी को किसी स्वतन्त्र देश की अपेक्षा कम गम्भीरता से अनुभव नहीं करता। किन्तु हमारे लिए सबसे पहली समस्या अपनी स्वाधीनता है। हम मन्दिर में दिया जलाकर अन्धेरे घर में रहने को तैयार नहीं हैं।

कोई भी वर्त्तमान राजनीति का विद्यार्थी वर्त्तमान अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति में लोकतन्त्र देशों के पलड़े में भारत के भार की अवहेलना नहीं कर सकता। और भारतवर्ष लोकतन्त्र शासनप्रणाली का अनुगामी भी होने के नाते अपने कर्त्तव्य और उत्तर दायित्व को पूर्णतया समझता है। लेकिन साथ ही यह भी पहचानता है कि इन लोकतन्त्र देशों-(विशेषतः इंग्लैण्ड) की असहायावस्था में हमारा किस प्रकार का महत्त्व है।

अब भी समय है कि इंग्लैण्ड भारतीय राजनीतिज्ञों के मनोभावों को समझे और शीघ्र से शीघ्र अपने शैतानी पंजे को यहां से हटाकर भारतवर्ष को अपने कर्त्तव्यों को पूरा करने के लिए स्वयं उत्तरदायी छोड़ दे। इसी में इंग्लैण्ड का और विश्व का भी वास्तविक कल्याण है। क्योंकि तभी भारतवर्ष विश्व शान्ति के लिए वास्तव में अपना कुछ हिस्सा अदा कर सकता है। अन्यथा भारतवर्ष की सहायता पर आश्रित रहना मृगमरीचिका के जल से अपनी ग्रीष्मऋतु की प्यास बुझाने के समान होगा।

वीरों का है स्वागत होता !

(१)

जनता ले फूलों की डलिया
बरसाती सुखमय फुलझड़ियां,
जिन्हें देख कर मैं दिल ही दिल स्वागत का कुछ
साज सँजोता !
वीरों का है स्वागत होता !

(२)

मैं क्या करूँ, करूँ क्या तेरा ?
कुछ भी पास न मेरे मेरा,
यही सोच कर हर्षित क्षण में भी मेरा मन अनमन रोता !
वीरों का है स्वागत होता !

(३)

लो— युग २ से प्यासी भूखी
फैली बँधी हुई पर रूखी
युग बाहों की माल पिन्हाता और स्वयं को तुम में खोता !
वीरों का है स्वागत होता !

——'श्रीकुमार'

इसको कहते हैं आकर्षण !

-१-

तारे भू पर आना चाहें ;
बेकल बेबस अश्रु बहाएं,
कोई कोई पागल तारा करता आ भू का आलिङ्गन !
इसको कहते हैं आकर्षण !

-२-

जन्म, पुष्टि, तरु फल की करना ;
अपना पन सब उसमें भरना,
छोड़ उसे पर वह भू का ही करने आता आत्म समर्पण !
इसको कहते हैं आकर्षण !

-३-

मैंने खोया है अपनापन
विप्लव की ज्वाला में भीषण;
जग कहता पागल, मैं जलते जलते हंस पड़ता विस्मित मन !
इसको कहते हैं आकर्षण !

—सत्यभूषण 'योगी' वेदालंकार

स्वास्थ्य संरक्षा

सुधार सिद्धान्त

(ले०—प्रो० प्रसाद जी, प्राकृतिक-चिकित्सोपाध्याय
गु० कु० कांगड़ी विश्वविद्यालय)

(गतांक से आगे)

मनुष्यों के सारे जीवन के सारे दुर्व्यसनों वा कुलतों (कुटेवों) को जो मिल कर रोग नामक देह और मन की अस्वस्थ अवस्था को उत्पन्न करते हैं और जिन से रोग नाम धारी कष्टों का जन्म स्वभावतः अवश्यम्भाव है, यदि एक शब्द में कहना हो तो वह है वह है सभ्यता। सभ्यता का वास्तविक और शाब्दिक अर्थ तो मनुष्य की सभा के योग्य साधु व्यवहार वा बर्ताव की योग्यता ही है, परन्तु काल के चक्र से सभ्यता कृत्रिमता का पर्याय बन गई है वर्तमान सभ्यता सब प्रकार की कृत्रिमताओं वा बनावटों का समूह मात्र है। वह हमको उस प्रकृति माता की प्रेमपूर्ण गोद से शनैः शनैः दूर लेजा रही है और हम को इस से अधिकाधिक अपरिचित (अजनबी) बना रही है जिसके विधान (नियमों) का पूरा पालन ही हमारी स्वस्थता और समर्थता का एक मात्र सुनिश्चित साधन और संरक्षण है। दूसरे शब्दों में सभ्यता को सुखोपभोग और इन्द्रियारामता की प्राप्ति के लिए सरपट दौड़ धूप भी कहा जा सकता है। सभ्य मनुष्य ने समुचित और स्वाभाविक सुखोपभोग के स्थान में इन्द्रियों की उच्छृंखल वासनाओं की तृप्ति को ही स्वजीवन का मुख्य उद्देश्य और प्रधान प्रयोजन बना लिया है।

मनुष्य जीवन का मुख्य उद्देश्य तो अपनी प्रसुप्त नैतिक वा धार्मिक वा आध्यात्मिक शक्तियों को विकसित करके पूर्णता को पहुंचाना है।

वस्तुतः प्राकृतिक वा स्वाभाविक जीवन स्वयमेव सदा बने रहने वाले सुखोपभोग वा आनन्दोपभोग (Pleasure)का जीवन है और वह इन्द्रियारामताके पीछे दौड़ने से प्राप्त नही हो सकता। मनुष्यकी आत्मा स्वयमेव स्वभावतः आनन्दमय है और उसका यह प्राकृतिक वा स्वाभाविक गुण इन्द्रियों की वासनाओं के पीछे भागने से नष्ट हो जाता है। वासनाओं के पीछे भाग कर हम अपनी आनन्दमयी मूल प्रकृति से ही इन्कार कर देते हैं और हमको उसका दण्ड इस आनन्दमयी प्रकृति के क्रियात्मिक ह्रास के रूप में मिलता है।

आत्मा की यह आनन्दमयी प्रकृति केवल दार्शनिक विचार का ही विषय नहीं है—वह दार्शनिक सिद्धान्त-मात्र नहीं है। वह सृष्टि की वास्तविकता है। उसको प्रत्येक मनुष्य स्वस्थ शिशुओंके व्यवहारों में जगल के जन्तुओं के प्राकृतिक रहन सहन में और उन संयमी सन्तों के जीवनों में देखा जासकता है जो जीवन मुक्तमहापुरुष कहलाते हैं।

सभ्यता के उत्साही समर्थकों में से एक महाशय ने सभ्यता का वर्णन यह किया है कि 'वह आवश्यकताओं को अधिकाधिक बढ़ाती जाती है', यदि सभ्यता की यह परिभाषा मानी जाय तो सभ्यता आत्मा के मौलिक आनन्दमय स्वभाव का निषेध (इन्कार) है और उससे मनुष्य संसार के उन बन्धनों में जकड़ा जाता है जिस के मोचन में सहायता देना ही सब धर्मों का एक मात्र उद्देश्य है।

एक विचार से सभ्यता का यह दृष्टि बिन्दु ठीक भी है क्योंकि मनुष्य ज्यूं ज्यूं अधिकाधिक सभ्य बनता जाता है त्यं त्यूं वह अनैतिक साधनों द्वारा उच्छृंखल सुखोपभोगों के समूह की ढूंढ में दौड़ता रहता है।

मनुष्य का सत्य स्वभाव वा वास्तविक प्रकृति उसको उन क्षणिक सुखोपभोगों से स्वतन्त्र बनाती है और सरल जीवन के द्वारा इसको आनन्द का संतुलन प्रदान करती है।

इन्द्रियों का सुख भी उसको उसकी स्वाभाविक आवश्यकताओं की पूर्ति द्वारा यथा समय प्राप्त होता रहता है। वह इस यथावसर प्राप्त इन्द्रिय सुख को प्रकृति माता के वरदान के रूप में ग्रहण करता है। वह इन्द्रिय सुख को स्वजीवन का उद्देश्य नहीं बना लेता है। इस लिये उसके सामने स्वप्रकृति के नियमोल्लंघन का प्रलोभन इस प्रकार नहीं आता है जैसा कि सभ्यम्मन्य मनुष्यों का भुक्त भोगों के स्मरण द्वारा वह सताया करता है।

इन्द्रिय सुखोपभोग स्वयमेव कोई पाप नहीं है क्यों कि वह मनुष्य जीवन से पृथक् नहीं किया जा सकता। इस भूमण्डल पर जीवन के लिये आवश्यक प्रत्येक क्रिया सुखावह है। उदाहरणार्थ सब को ज्ञात है कि आहार सुखावह है। किन्तु सब मनुष्यों ने शायद यह नहीं विचार किया है कि यदि वह स्वतन्त्र और रुचिर हो तो सुखावह है।

हमारे सारे इन्द्रिय व्यापार, यदि उनका दुरुपयोग न किया जाय तो, हम को सुख वा रस प्रदान करते हैं। इसी बात में मनुष्य का कल्याण का सारा विधान विद्यमान है। प्रकृति के प्रयोजनानुसार इन्द्रिय-सुख ही इन्द्रिय व्यापारों का प्रेरक है वा औचित्य विधायक नहीं है। प्रकृति का यह प्रयोजन नहीं है कि हम अपने इन्द्रियों से इस लिये काम लेवें कि वे हमको रस वा सुख प्रदान करें। इन्द्रियों से उचित अवसर पर केवल इस लिए काम लिया जाता है कि उनका वह कार्य स्वाभाविक वा प्राकृतिक है और हमारी ईश्वर प्रदत्त प्रकृति द्वारा अनिवार्य रूप से होना चाहिए और वह हमारे धर्म का अङ्ग है। धर्म का शाब्दिक अर्थ धार्य वा न धारण किये जाने के कारण हमारी प्रकृति वा स्वभाव है और प्रकृति द्वारा निर्दिष्ट हमारे जीवन विधान (नियम) धर्म के अन्तर्गत हैं। हमारे इन्द्रिय व्यापार हमारे द्वारा इसी अवसर पर होने चाहयें जब इनके करने के लिए प्रकृति हमको प्रेरित करे। हमको उन कामों को अपनी उच्छृंखल वृत्तियोंके वशी भूत होकर न कर डालना चाहिये। हमारा

आहार वही होना चाहिए और उसको उसी समय हमको करना चाहिए जिसके लिए और जिस समय हमको प्रकृति से पूर्ण प्रेरणा मिले। प्रकृति के नियमों का पालन करके हम स्व स्रष्टा-सर्जनहार-के प्रयोजन की पूर्ति करेंगे।

प्रकृति के नियमों के पालन में हमको जो रस वा इन्द्रिय सुख (मज़ा) मिलता है, वह तो आनुषङ्गिक वा बीच की पैदावार (By product.) है और हमको चाहिए कि हम उसको स्वजीवन के वास्तविक प्रयोजन समझने की गड़बड़ न करें। हमारे जीवन का यह अन्तिम उद्देश वा ध्येय इतना भारी महत्व रखता है और वह हमारे साधारण अनुभव से इतना दूर है कि हम उसको शब्दों द्वारा ठीक २ व्यक्त करने में असमर्थ से हैं। किन्तु वह इतना वास्तविक है कि हम उसकी उपेक्षा करने की धृष्टता भी नहीं कर सकते। प्रत्येक सत्यानुरागी मनुष्य को स्वजीवन के उद्देश का कुछ न कुछ आभास रहता है और वह उद्देश वर्तमान समय में उसके लिए पर्याप्त स्पष्ट रहता है। यदि मनुष्य अपने इस जीवन के पीछे अपने ज्ञान के अनुसार चलता रहे, तो उसको उसके द्वारा इन्द्रिय सुख का आनन्द मिले बिना न रहेगा और वह उसको अरबूर प्राप्त होता रहेगा। इस लिये हमको इन्द्रिय सुख को बिना ढूंडे हुए स्वयमेव अपने पास आने देना चाहिए। हमको प्रकृति द्वारा निर्दिष्ट मार्ग से केवल इन्द्रिय सुखोपभोग के लिए विचलित न होना चाहिये। यदि हम इसी नियम को भोजन व्यापार में लगायें, तो हम प्राकृतिक भोजन व्यापार को सुखदायक वा रसप्रद पायेंगे और इस रस का स्वाद सभ्यंमन्यों के भोजन से कहीं बढ़कर होगा। किन्तु प्रकृति के अनुसार आहार में हमको इन्द्रियसुखोपभोग को प्रायः बिलकुल भूल जाना होगा। एक प्रकार से हमको इसको त्यागना ही पड़ेगा। अन्यथा आहार के रसास्वाद का ध्यान हमारे मन में अवश्य विकार पैदा करेगा। और हमको पाप में प्रवृत्त किए बिना न रहेगा। इसकी प्रतिक्रिया हमारे प्राकृतिक स्वाद की अनुभूति पर इस प्रकार होगी कि वह इसको हमारा नितान्त अविश्वस्त पथ-प्रदर्शक बना डालेगी। वह इसे हमारा ऐसा वैरी बना देगी, जिससे हमको सदैव सतर्क और सावधान रहना पड़ेगा और प्रत्येक प्रसंग पर हमको उसका विरोध करना पड़ेगा। एक समय आयगा--और बहुतों के लिए वह समय आ चुका है कि हमारी वास्तविक सत्य रसास्वाद की अनुभूति ही कुंठित हो जायगी और हम प्राकृतिक आहार का स्वाद तब तक न ले सकेंगे जब तक इसको घोर कृत्रिम और अतएव अहितकर प्रकार से न बनाया जाय अर्थात् उस में अत्यन्त उत्तेजक मसाले मिर्च, राई और सिरका आदि न डाले जायँ।

प्राकृतिक जीवन का मौलिक भाग वा आधार-स्तम्भ उचित आहार का नियम ही है। हमारे आहार के गुण पर ही हमारी सारी सत्ता आश्रित है। छान्दोग्य उपनिषद् बतलाती है कि हमारा मन अन्नमय है अर्थात् वह हमारे आहार के तत्त्वों से बना है। हिन्दी में कहावत है कि "जैसा खाय अन्न, वैसा बने मन" इस लिए हम योग शास्त्र के इस सिद्धान्त को सुगमता से समझ सकते हैं कि:—

तावज्जितेन्द्रियो न स्यात्
विजितेन्द्रियः पुमान् ।
न जयेद्रसं यावत्
जितं सर्वं जिते रसे ॥

अर्थ—जितेन्द्रिय मनुष्य, तब तक जितेन्द्रिय नहीं कहलाया जा सकता, जब तक उसने जीभ के स्वाद को नहीं जीता है। क्यों कि स्वाद जीत लिया गया तो सब कुछ जीत लिया गया।

अन्यच्च— यस्य जिह्वा वशे नास्ति
सुखाशा तस्य निष्फला ॥

जिसकी जीभ वश में नहीं है, उनकी सुख की आशा निरर्थक है।

श्रेयान्योगोलो भुक्तः तप्तोऽग्नि शिखोपमः
यच्चेद् भञ्जीत दुःशीलो राष्ट्रपिण्ड मसंयतः ।

धम्मपद ।

जो कुलनों में फंसा हुआ जन मन को वश में न रख कर, राष्ट्र के अन्न को खाता है, उसके लिये तो अच्छा यह है कि वह आग में तपे हुए, आग से लाल लोहे के गोले को खाय।

अवश्यं यातारश्चिरतरमुषित्वापि विषया
वियोगे को भेदस्त्यजति न जनो यत्स्वयममून् ।
व्रजन्तः स्वातन्त्र्यादतुल परितापाय मनसः
स्वयं त्यक्ता ह्येते शमसुखमनन्तं विदधति ।

भर्तृहरि वैराग्य शतकम् १६ ।

इन्द्रियों की वासनाएं तो चिरकाल रहकर भी चली तो अवश्य जायेंगी, परन्तु यदि मनुष्य इनको स्वयं न त्यागे तो इनके स्वयं जाने में कोई विशेषता न होगी। हां उनके स्वयं जाने पर मन को उनके वियोग का दुःख अवश्य होगा कि हा! मुझ में इनके भोगने का सामर्थ्य न रहा किन्तु यदि इनको मनुष्य स्वयं अपनी इच्छा से त्याग देवे तो उसको शांति का अनन्त सुख मिलता है।

आपदां कथितः पन्था इन्द्रियाणामसंयमः ।
तज्जयः सम्पदां मार्गो येनेष्टं तेन गम्यताम् ॥

इन्द्रियों को वश में न किया जाय तो दुःखों का मार्ग हमारे सामने है और यदि हमारी इन्द्रियां हमारे वश में हैं तो सुख सम्पद् का पथ हमारे लिए खुला हुआ है। इनमें से जिस मार्ग से चाहो तुम चले आओ।

आहार का दुरुपयोग वा मिथ्याहार ही सब प्रकार के मानसिक और दैहिक रोगों का कारण है। वह सब प्रकार की कुत्सित वासनाओं को उत्तेजित करता है और हमारी बुद्धि और विवेक को भी नष्ट कर देता है। दूसरा ओर युक्ताहार एक ऐसा साधन है, जिस से हमको स्व-जीवन में पूर्ण सफलता मिल सकती है और यह सफलता वास्तविक होगी, दिखावे वा सौदे की सफलता नहीं। यह सफलता परमपिता के परम पद 'तद्विष्णोःपरमम्पदम्' के प्रयाण (मंजिल) में हमारा प्रथम पग होगी। क्रम के

सन्त टालस्टाय का भी यही मत है। इस निबंध में हमारे वर्त्तमान व्यसनों वा लतों में जिस परिवर्त्तन की आवश्यकता है उसकी कम से कम मात्रा की व्याख्या यहां की जायगी यह परिवर्त्तन की वह मात्रा है जो कि प्रकृति की ओर प्रत्यावर्त्तन (वापसी) "Return to Nature" में हमारा प्रथम पग कहलाया जा सकता है।

[पृष्ठ ३ का शेष]

ब्रह्मचारी सत्यभूषण भी इसी सेवा के व्रत में दीक्षित हो कठोर तपस्या करता हुआ रोगी होगया। सेवा सुश्रूषा औषधोपचार सब कुछ किया गया पर सब विफल। परमेश्वर ने उसे भी अपने पास बुला लिया। नवयुवक दल का हृदय चकनाचूर हो गया। उसकी सब से बहुमूल्य सम्पत्ति उससे छिन गई। अब वह क्या भेंट करें। किन्तु नवयुवक और निराश– ये दो विरुद्ध दिशाएं हैं। जब तक सम्भव हुआ ब्रह्मचारियों ने अपने कर्त्तव्य का पालन किया और यह सिद्ध कर दिया कि गुरुकुल की सच्ची शिक्षा पद्धति में राष्ट्रियता तथा धार्मिकता की भेदक रेखा नहीं खींची जासकती।

गुरुकुल समाचार

ऋतु अत्यन्त रमणीक है। वर्षा अच्छी तरह हो रही है। महाविद्यालय के ब्रह्मचारी यात्राओं पर जाने को उद्यत हैं। २४ अगस्त को प्रातःकाल हैदराबाद के सत्याग्रही छूट कर कुलभूमि में आये, जिनका बड़े धूमधाम से स्वागत किया गया। एक सार्वजनिक सभा में इन वीर सत्याग्रहियों को इस वीरोचित कार्य के लिये बधाई दी गई।

स्वास्थ्य समाचार

ब्रह्मचारी ओम्प्रकाश १३ श्रेणी श्लेष्म ज्वर; ब्रह्म० महेन्द्रनाथ १३ श्रेणी श्लेष्म ज्वर, ब्र० धर्मवीर १४ श्रेणी पुरुषोत्तम १३श्रेणी, ब्र० रमेशचन्द्र १३ श्रेणी, ब्रह्मचारी सत्यव्रत १३ श्रेणी ब्र० रवीन्द्र १२ श्रेणी, ब्र० अमर सिंह ११ श्रेणी, ब्र० शान्ति स्वरूप ११ श्रेणी, ब्र० हरिवंश ११ श्रेणी, ब्र० तेजसिंह ५ म श्रेणी ब्रह्मचारी देवराज ५ म श्रेणी ब्र० आनन्दमोहन ५म श्रेणी, ब्र० कृष्णकान्त ५म श्रेणी ब्र० महेन्द्र ४र्थ श्रेणी ब्र० वीरेन्द्र ४र्थ श्रेणी, ब्र० प्रद्युम्न कुमार ४र्थ श्रेणी, ब्र० सत्यव्रत ४र्थ श्रेणी, ब्रह्म० विश्वनाथ ३य श्रेणी ब्र० ओम्प्रकाश ३य श्रेणी, ब्र० सत्यपाल ३य श्रेणी, ब्र० बलराज ३य श्रेणी, ब्र० कपिलदेव ३य श्रेणी, ब्र० देवव्रत २य श्रेणी, ब्र० रामचन्द्र २य श्रेणी, ब्र० मनमोहन १म श्रेणी, ब्रह्मचारी श्याम बिहारी १म श्रेणी मलेरिया ज्वर से रोगी हुए।

गत दो सप्ताहों में उपरोक्त ब्रह्मचारी रोगी हुए अब सब स्वस्थ हैं। ब्रह्मचारी ओमप्रकाश १० श श्रेणी को आन्त्र ज्वरके कारण अधिक तकलीफ हो गई थी। अब उन्हें भी आराम है। मलेरिया के लिए आश्रम में भी सावधानी के तौर पर दवाई पिलाई जा रही है। वर्षा रुक २ कर हो रही है। बीच २ में गर्मी पर्याप्त हो जाती है।

गुरुकुल कुरुक्षेत्र

१:—षाण्मासिक परीक्षायें समाप्त हो चुकी हैं और परिणाम संरक्षक महाशयों के पास भेजा जा चुका है। १म से ५म तक के ब्रह्मचारी यात्रार्थ पहाड़ पहाड पर और बड़े ब्र० आनगर की यात्रा के लिये चले गये हैं। गुरुकुल में वर्षा प्रारम्भ में अच्छी होती रही– पर अब बहुत दिनों से नहीं पड़ रही। डर है कि कहीं गत वर्ष की तरह ही फिर सूखा न पड़ जाय।

२:—छुट्टियों में कुछ अध्यापक अवकाश पर गये हैं। श्री पं० रघुवीर जी शास्त्री को मधुमक्षिका पालन के व्यवसाय की शिक्षा लेने के लिये देहरादून भेजा गया है। गुरुकुल के व्यायाम शिक्षक मा० पूर्णचन्द्र जी को देहली पेंटिंग तथा ड्राइंग की विशेष शिक्षा के लिये भेजा गया है।

गुरुकुल चित्तौड़गढ़

सब गुरुकुल निवासी ब्रह्मचारी एवं अध्यापक-मण्डल स्वस्थ प्रसन्न हैं। वर्षा के अभाव में कृषक समुदाय व्याकुलता पूर्वक जल वृष्टि की प्रतीक्षा कर रहा है। चारे का बिलकुल अभाव हो गया है। गुरुकुल की गौशाला में इस समय १५ पशु हैं जिनके लिये चारा प्राप्त करने में बहुत कठिनाई हो रही है। इसलिये हम धनी मानी गौ-हितैषी सज्जनों से अपील करते हैं कि ऐसे सङ्कट के समय में गायों के लिये चारे का प्रबन्ध करने में हमें धन द्वारा सहायता करें।

श्रावण मास से दो प्रकार की पढ़ाई आरम्भ हो गई है (१) श्री महर्षि दयानन्द जी प्रतिपादित और (२) गुरुकुल कांगड़ी वृन्दावन आदि शिक्षण संस्थाओं में वर्तमान में प्रचलित। जिनका प्रबंध संरक्षक की इच्छा एवं बालक की योग्यतानुसार किया जायगा। जो सज्जन अपने बालक को इस गुरुकुल में प्रविष्ट कराना चाहें वे सितम्बर मास के अन्त तक आवेदन-पत्र गुरुकुल कार्यालय में भेज देवें; निर्धनों के साथ उचित रियायतें भी की जावेंगी। जो सज्जन अपनी सन्तान को प्राचीन शिक्षा शैली से शिक्षित कराना चाहते हैं उनको इस शुभावसर से लाभ उठाना चाहिए।

आवश्यकता

इस समय गुरुकुल के लिये एक ऐसे अध्यापक महोदय की आवश्यकता है जो दशम कक्षा तक अंग्रेजी, गणित भूगोल तथा इतिहास भली भान्ति योग्यतापूर्वक पढ़ा सकें। जो वेतन भी अधिक न लेवें, स्वभाव उत्तम सुशील तथा गुरुकुल की सेवा करने के सर्वथा उपयुक्त हों। सुदृढ़ और कर्मनिष्ठ आर्य समाजी हों।

व्रतानन्द

मुख्याधिष्ठाता गुरुकुल चित्तौड़

चौधरी दुलाराय के प्रबन्ध से गुरुकुल प्रेस गुरुकुल कांगड़ी में मुद्रित तथा प्रकाशित।

* ओ३म् *

“ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत” Reg. No. A. 2927

गुरुकुल

सम्पादक—साहित्यरत्न पं० हरिवंश वेदालङ्कार

एक प्रति का मूल्य -) [गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख-पत्र] वार्षिक मूल्य २॥)

वर्ष ४] गुरुकुल काङ्गड़ी, शुक्रवार १६ भाद्रपद १९९६, १ सितम्बर १९३९ [संख्या १८

मन रूपी पक्षी की ओर

[ले० — श्री ब्र० सच्चिदानन्द एकादश श्रेणी]

अनन्त सीमा वाला महान आकाश हमारी आंखों के सामने प्रत्यक्ष रूप से अपनी शोभा को दर्शा रहा है। इस आकाश के अन्दर एक पक्षी चहचहा रहा है। अपने पंख फड़फड़ा रहा है। भिन्न भिन्न प्रकार से उड़ कर हमारे मन को लुभा रहा है।

क्या सुन्दर आकाश है। इस आकाश की महिमा का गुणगान मैं क्या करूं। आकाश अपनी महिमा का गुणगान अपने आप कर रहा है। आकाश प्रकृति की एकमात्र शोभा है। हमारे सामने यदि आकाश अपना कोई स्वरूप प्रगट करता है तो सिर्फ इतना ही "एक बहुत दूर तक चमकता हुआ स्थान" जो कि हमारी दृष्टि को पार करके अनन्त दूरी पर पहुंचा हुआ है। इस प्रकार से इस आकाश के अन्दर पक्षी स्वतन्त्र रूप से विचरण कर रहा है। उसे कोई रोकने वाला नहीं है। यह सब क्यों है? क्या कोई पक्षी की भी अपनी शक्ति है। यदि नहीं तो यह सब हमको क्यों दिखाई पड़ता है। यदि है तो वह इतनी सीमित क्यों है जिससे कि वह कुछ थोड़ी बहुत ही निश्चित क्रियायें कर सकता है अन्य नहीं। सोचने से इसका हेतु यह प्रतीत होता है कि पक्षी की क्रिया पूर्ण रूप से पराश्रित है। इस प्रकार क्यों है?

संसार एक चक्र है। यदि इस चक्र को कल्पना में लाया जाय तो इस प्रकार से लाया जा सकता है कि संसार एक घूमता हुआ गोल झूला है। जिस प्रकार से एक गोल झूला बना कर उसको घुमाया जाय तो उस अवस्था में हम यह देखते हैं कि झूले पर बैठे हुए व्यक्ति बार बार फिर फिर कर उसी स्थान पर आते जाते हैं उसी प्रकार से यह संसार है। इस संसार में नाना प्रकार की यूनियां हैं। भोग रूपी गोल झूला बना कर नाना प्रकार की यूनियों में से गुजरता जाता है फिर गुजरता गुजरता अपने उसी स्थान पर आ जाता है।

अन्तिम और सौभाग्यशाली यूनि मनुष्य की है। कीड़ा, मकौड़ा, पशु, पक्षी, पतंग चिऊंटी इत्यादि सैकड़ों यूनिओं में से गुजरता हुआ यह मनुष्य आता है। यह यूनि सब यूनियों में से पवित्र मानी गई है। अब विचारना यह है कि इस यूनि में और यूनिओं की भांति क्या कोई उपाधि हमारे साथ लगी है अथवा नहीं।

पहली बात यह है कि मनुष्य को पक्षी की भांति नहीं बनाया गया है। हमने ऊपर अभी कहा था कि पक्षी पराश्रित है। मनुष्य को परमात्मा ने पैदा होते ही बुद्धि दी है। वह जिस तरह से चाहे अपनी बुद्धि का उपयोग कर सकता है। परन्तु फल पाना उसके आधीन नहीं रक्खा गया है। अब यह विचारना है कि मनुष्य के अन्दर पक्षी के समान भी कोई उड़ने वाला जीव जन्तु है अथवा नहीं। विचार से मालूम पड़ता है कि परमात्मा ने इस मानव शरीर के अन्दर भी एक जीव ऐसा बनाया है जो कि पक्षी की भांति उड़ता फिरता है उसका नाम मन है।

मन का स्वरूप क्या है अर्थात् उसका बाह्य रूप और आन्तरिक रूप क्या है यह हमारी कल्पना से परे का विषय है। परन्तु इस मानव यूनि में मन रूप उपाधि हमारे साथ जुड़ी हुई है। यह उपाधि प्रतिक्षण नचाने के सिवाय हमको और कुछ नहीं करती है।

नाना प्रकार की सुन्दर परमात्मा द्वारा रचित सृष्टि में यह मन रूप उपाधि दौड़ी २ फिर रही है। इस उपाधि ने सैकड़ों और करोड़ों वस्तुओं का स्वरूप अपने अन्दर स्थित किया हुआ है। शान्त अवस्था में, चञ्चल अवस्था में, दुःख और सुख की अवस्थाओं में और कहां तक कहें सभी अवस्थाओं में यह मन रूपी पक्षी की गति बड़ी तीव्र है। जीव के क्षण क्षण में मनोभावों को इस प्रकार उलटती पुलटती रहती है कि जीव भौंचक्का सा रह जाता है। यह मन जीव को क्षण में दुःखी, क्षण में सुखी और क्षण २ में राग, विराग और वैराग्य के भावों को इस प्रकार से पलट देता है कि मनुष्य अपने आपको भूलकर इस मन रूपी उपाधि की ही शरण में हो जाता है और मन के वांछित फल की पूर्ति करता है।

मन की गति विद्युत के समान तीव्र है इस प्रकार यदि कहा जाय तो इसमें कोई अत्युक्ति न होगी। यह

चलायमान मन जगत के नाना पदार्थों में घूमता है और साथ २ जीव को भी घुमाता है। मन की इच्छायें अनन्त हैं। वे कभी पूर्ण होने में नहीं आतीं। मन उन इच्छाओं में ही सारे जीवन भर पड़ा रहता है और उसको जीव द्वारा पूर्ण करवाता है। तो इस प्रकार से मन का कार्य इच्छा करना हुआ और जीव का कार्य उसको पूरा कर देना इतना ही सिद्ध हुआ।

परमात्मा ने मन को इस जीव में स्थान क्यों दिया? यदि इस विषय में मनुष्य की ओर ध्यान देकर देखा जाय तो यह प्रतीत होता है कि मनुष्य को परमात्मा ने बुद्धि दी। उस बुद्धि का उचित उपयोग मनुष्य कहां तक कर सकता है और कठिन परिस्थितियों में भी उस बुद्धि का उचित उपयोग कर सकता है कि नहीं इस बात की परख के लिये परमात्मा ने मन का निर्माण किया और स्वभाव से ऐसा चञ्चल बना दिया जिससे कि मनुष्य की बुद्धि पूर्ण रूप से कार्य करती हुई भी उस मन रूपी फंदे में फंस जाय और फिर निकल न सके। तात्पर्य यह है कि परमात्मा मनुष्य की परीक्षा लेना चाहता है। उसने मन रूपी पक्षी को भोग विलास रूपी विषय देकर यह कहा है कि मानव को जाकर परीक्षा लो कि यह मानव कहां तक अपनी बुद्धि का उचित उपयोग करता है।

मन रूपी पक्षी हमेशा परीक्षक बनकर आता है। नाना प्रकार के भोग विलास रूपी विषयों के भोगने की इच्छा को प्रकट करता है और हमको इतना तंग करता है कि जीव लाचार हो जाता है और उन विषयों में फंस जाता है और मन की इच्छा पूरी करता है। मन रूपी पक्षी प्रसन्न होता है। जीव परीक्षा में फेल हो जाता है। उसके बदले में उसको अनेक प्रकार के कष्ट भोगने पड़ते हैं। जैसे तैसे कष्टों को भोगता है। जब कष्ट भोग चुकता है फिर उसमें फंस जाता है और फिर भोगता जाता है। इस प्रकार यह चक्र चलता रहता है। परमात्मा दुःख देकर यह बतलाते हैं कि यह दुःख तुम्हारे किसी दुष्कर्म का फल है। यह दुष्कर्म मन रूपी पक्षी ही हमसे करवाता है। हम दुष्कर्म को जानते भी होते हैं तब भी अज्ञान रूपी पर्दा डालकर यह पक्षी हमसे दुष्कर्म करवा ही लेता है।

हे मन रूपी पक्षी यह जीव तुम्हारे ही आश्रय पर सारी क्रियायें कर रहा है। जब से उत्पन्न हुआ है तब से तुम्हारे ही गुणों और अवगुणों को बखान रहा है तुम सदमार्ग पर उड़ो और जीव को उड़ाओ। तुम जीव को बुरे मार्गों से हटाओ। उसको ज्ञान का रास्ता दिखाओ। यह सारी शरीर रूपी नगरी तुम्हारे ही ऊपर अवलम्बित है। अतः हे मन रूपी पक्षी तुम स्थिर और शान्त होकर वेद के मन्त्र के अनुसार (तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु) खुद उत्तम विचारों वाला हो और इस जीव में उत्तम विचारों को भर दे ताकि कुमार्ग में न जाकर सुमार्ग पर चलता हुआ अपने जीवन को सफल बनाये।

स्नातक बन्धुओं के लिए प्रश्नावली

[नीचे वह प्रश्नावली दी जाती है जिसका वर्णन मैंने १६ श्रावण (३० जून) के 'गुरुकुल' (अङ्क सं०८) में "स्नातक बन्धुओं का गुरुकुल से संबन्ध" इस शीर्षक लेख में इस प्रयोजन के लिये कही गयी तीन बातों में से पहली बात के प्रकरण में किया गया है। आशा है इस प्रश्नावली के संबन्ध में यदि कोई भाई और कुछ निर्देश देना चाहेंगे तो वह भी देने की अवश्य कृपा करेंगे।]

—अभय

(१) स्नातक बनने के बाद से आज तक अपने एक या भिन्न भिन्न काम व व्यवसाय किये हैं? उनसे आपको तब तब कितनी मासिक आय होती रही है?

(२) स्नातक बनने के बाद अपने व्यवसाय के अतिरिक्त अब तक आप किन्हीं सार्वजनिक काम में (राजनैतिक, आर्यसामाजिक या समाज सुधार या शिक्षा सम्बन्धी, किन्हीं भी काम में) भी अवैतनिक रूप में भाग लेते रहे हैं?

(३) क्या आप किन्हीं संस्था (आर्यसमाज, कांग्रेस कमेटी, प्रतिनिधि सभा, किसी प्रबन्धक सभा, ट्रस्ट, बोर्ड आदि) के सदस्य या पदाधिकारी रहे हैं?

(४) क्या आपने कुछ पुस्तकें भी लिखी हैं? क्या उनमें से कोई अप्रकाशित भी है?

(५) क्या आपने विदेश यात्रा भी की है? की है तो किस प्रयोजन से और उससे क्या लाभ हुआ?

(६) स्नातक बनने के बाद आपने कोई बाहर की परीक्षा भी दी है या नहीं, या सिर्फ अपनी ज्ञानवृद्धि के लिये स्वतन्त्र स्वाध्याय जारी रक्खा है?

(७) जीवन के संघर्ष में आपके सामने कोई कठिनाइयां तो उपस्थित नहीं हुई? अगर हां, तो उनका आपने कैसे सामना किया?

(८) अपने गुरुकुल जीवन से आपको क्या लाभ या हानियां हुई हैं?

(९) क्या आपका विवाह हो चुका है? अगर हां तो कितनी उम्र में? विवाह करते हुए क्या आपने जात-पांत का भी ध्यान रक्खा था? जात पांत का ध्यान नहीं रक्खा, तो किस हद तक?

(१०) अगर आपके कोई शिक्षा योग्य आयु के बालक हैं तो आपने उनकी शिक्षा का क्या प्रबन्ध कर रक्खा है?

(११) क्या आप संध्या, अग्निहोत्र या किसी प्रकार का ईश्वरभजन नियम पूर्वक या अनियम पूर्वक करते रहे हैं या नहीं?

दयानन्द उपदेशक विद्यालय

दयानन्द उपदेशक विद्यालय के सभी विद्यार्थियों के हैदराबाद सत्याग्रह में चले जाने के कारण विद्यालय अनिश्चित काल के लिये बन्द कर दिया गया था। अब विद्यालय में १८ सितम्बर से पुनः पढ़ाई प्रारम्भ होगी। जो विद्यार्थी जेलों से छूटकर अपने घरों में चले गये हैं उन्हें पढ़ाई के दिन से २-३ दिन पहले ही विद्यालय में पहुंच जाना चाहिये।

प्रियव्रत वेदवाचस्पति
आचार्य उपदेशक विद्यालय, लाहौर

स्वास्थ्य संरक्षा

सुधार सिद्धान्त

(प्रो० प्रसाद जी, प्राकृतिक-चिकित्सोपाध्याय)

(गतांक से आगे)

यह प्रकृति की ओर वापसी (Return to nature) का वह मार्ग ही है जिसके बिना न तो स्वास्थ्य में वास्तविक उन्नति सम्भव है और न ही भविष्य में होने वाले दारुण असाध्य रोगों की परम्परा से सुरक्षित रखने का विश्वास (गारण्टी) दिलाया जा सकता है।

जब यह प्रथम पग दृढ़तापूर्वक ठीक २ उठा लिया जाय तो यथासम्भव अन्य पगों के भी उठाने की आगे आवश्यकता पड़ेगी। किन्तु यह प्रथम पग ही हमारे कल्याण के लिये इतना समर्थ है कि अधिकांश मनुष्यों के लिए, जो वस्तुतः रोगी व निर्बल नहीं हैं केवल यह अकेला ही कम से कम आने वाले प्रचुर समय के लिए पर्याप्त है।

इसके साथ ही युक्त जीवन का यह भाग जब हमारे अधीन हो जायेगा तो उत्साही प्राकृतिक जीवन के अनुयायी के लिए प्रकृति की ओर प्रत्यावर्तन के मार्ग में अगले पगों का उठाना और भी सुगमतर हो जाता है। श्रीमद्भगवद्गीता के इस पद्यार्थ में 'स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतोभयात्' अर्थात् इस धर्म का थोड़ा सा भी पालन भारी भय से रक्षा करता है इस पहले पग के मूल्य को भले प्रकार दर्शाया गया है। मैं इसी प्रथम पग की पुष्टि इसलिए भी कर रहा हूँ कि यह उन पुरुषों को भी उत्साह प्रदान करता है-जो प्राकृतिक चिकित्सकों की बतलाई हुई युक्ताहार की सारी योजना को देख कर अनुत्साहित हो चुके हैं।

युक्ताहार के बहुत से विभाग हैं जो मुख्यतः निम्न लिखित चार हैं:-

१ हमारा आहार क्या हो।

२. हम अपने आहार को किस तरह पकाएं।

३. आहार कब किया जाय।

४. आहार किस प्रकार किया जाय।

मैंने यह विषय विचार तर्क सम्मत प्रणाली के अनुसार उसी क्रम से किया है। जैसा कि यह प्राकृतिक जीवन विषयक किसी निबन्ध में होना चाहिये। किन्तु प्रकृति की ओर प्रत्यावर्तन के मार्ग में स्वाभाविक क्रमानुसार अन्तिम दो विषयों—१ आहार कब किया जाय और आहार कैसे किया जाय—का विचार प्रथम होना चाहिये। कुछ मनुष्य यहीं रुक जाने का प्रयत्न करेंगे। और प्रथम के दो विषयों—(१) हमारा आहार क्या हो, और (२) हम अपने आहार को किस प्रकार पकाएँ—की बिलकुल उपेक्षा कर देंगे। मैं उनसे सहमत नहीं हूं। मेरी सम्मति है कि प्राकृतिक जीवन के उत्साही अनुयायी जन को अपने प्रयत्नों को प्रथम अन्तिम दो विषयों पर प्रारम्भ में ही केन्द्रित करना चाहिये और तत्पश्चात् अन्य दो विषयों की ओर ध्यान देना चाहिये।

जिन सिद्धान्तों और नियमों का आगे चल कर समर्थन किया जायगा, वे अंशतः आहार शास्त्र के क्षेत्र के अन्वेषक अमेरिका निवासी दो भिन्न प्रख्यात पुरुषों डा० डेवी (Dr. Edward Hooker Dewey) और मि० होरेस फ्लैचर (Mr. HoraceFletcher) के उद्घाटित किए हुए हैं। यह ठीक है कि उक्त प्रख्यात महापुरुष इन सिद्धान्तों के प्रथम आविष्कारक नहीं हैं। आगे चल कर पाठक देखेंगे कि हमारे पूर्व पुरुष इन सिद्धान्तों को भले प्रकार समझते थे और तदनुसार आचरण भी करते थे और हमारे पथप्रदर्शन के लिये हमारे धर्मग्रन्थों में उनका विधान भी किया गया है किन्तु यह हमको मानना ही पड़ेगा कि इस देश में पूर्व और पश्चिम के प्रथम सम्पर्क के कारण इन सिद्धान्तों के समझने में भारी गड़बड़ और घोर अज्ञान फैला हुआ था। और डा० डेवी सरीखे महापुरुषों द्वारा पश्चिम से प्राप्त प्रकाश ने ही इस अन्धकार को दूर किया था।

डा० डेवी हमारे प्राचीन हिन्दू धर्म की शिक्षा 'लंघनं परमौषधम्' (उपवास सर्वोपरि औषध है) का पुनराविष्कारक था। पहले वह पुरानी चिकित्सा एलोपैथी-सम्प्रदाय का अनुयायी था और उसके प्रति अपनी नियत श्रद्धा के परित्याग पूर्वक अपने प्राकृतिक चिकित्सक बनने के कारण किन्तु डा० विकास की कथा का चित्रण उसने अपने ग्रन्थ (No Breakfast Plan and the Fasting Curue) नामक ग्रन्थ में बड़ीसुन्दरता से किया है। और उसका यह ग्रन्थ आकर ग्रन्थों (classics) की श्रेणी में रक्खे जाने योग्य है।

उक्त डा० महाशय ने औषधियों की नितान्त व्यर्थता प्रारम्भ में ही जान ली थी और इस बात का भी अनुभव कर लिया था कि औषधियाँ स्वास्थ्य की शत्रु हैं।

डा० डेवी ने सर्वप्रथम इस तथ्य का उद्घाटन किया कि रोगियों की चिकित्सा का एक मात्र स्वाभाविक (प्राकृतिक) सुरक्षित नियम यह है कि जब तक उनको सच्ची भूख न लगे, उस समय तक उनके आहार का परित्याग करा दिया जाय। उन्होंने शनैः २ अपने सतर्क विचार को पूर्णता को पहुंचाया। और अन्त में उन्होंने इस विषय के सिद्धान्तों को पूर्णतया समझ लिया वे वर्षों तक अपने ग्रन्थ के प्रकाशन के लिये धैर्य पूर्वक किसी ग्रन्थ प्रकाशक की खोज में रहे। काल पाकर उनको एक ऐसा प्रकाशक मिल गया जिसको उनके समान ही इन पुण्य रक्षक तत्वों के प्रचार की लगन थी। आगे की पंक्तियों में प्रकृत विषय विशेषप्रकार से पाठकों के सामने प्रस्तुत किया जायगा। और उसमें कुछ ऐसे संशोधन और सुधार भी सम्मिलित होंगे, जिनका आधार लेखक के अनुभव और अन्वेषण हैं। पाठकों का ध्यान यथार्थ तृप्ति के उन निषेधात्मक चिन्हों को

[शेष पृष्ठ ६ पर]

गु रु कु ल

१६ भाद्रपद शुक्रवार १६६६

निजाम हैदराबाद और आर्यसत्याग्रह का सफलता

(सच्चिदानन्द एकादश श्रेणी)

समय की चाल अजीब है। एक समय था कि तुच्छ से तुच्छ अधिकार भी निजाम आर्यों को देने में घबराता था। जो कि मनुष्य के जन्मसिद्ध अधिकार थे जिन अधिकारों को छीनने में एक तरह का ईश्वर की दृष्टि में तो पाप के सिवाय और कुछ भी नहीं गिना जा सकता। उन में से मुख्य अधिकार जो था वह ईश्वर की भक्ति था। आज समय पलटा खाता है। निजाम को अधिकार देने पड़ते हैं और अपनी हार माननी पड़ती है।

× × ×

निजाम राज्य में अत्याचारों की भरमार थी। चारों ओर अत्याचार ही अत्याचार नजर आते थे। इन अत्याचारों से यदि कोई शक्ति बचा सकती थी तो वह ईश्वर की कृपा के सिवाय और कुछ न था। परमात्मा की न्याय पूर्ण शक्ति इन अत्याचारियों के अन्याय पूर्ण कृत्यों को क्षण क्षण देखा करती थी। आखिर एक समय ऐसा आया जब कि अन्याय पूर्ण शक्ति का विनाश हो गया और न्याय पूर्ण शक्ति चमकी न्याय पूर्ण शक्ति के चमकते ही विस्तृत प्रकाश फैला जिसने अन्धकार के कण कण को नष्ट कर दिया और और अपना उज्वल स्वरूप हमारे समाने रखाना।

× × ×

निजाम के विरोधियों ने सत्य और अहिंसा का सिद्धान्त अपने सामने रक्खा। उसी को अपना सच्चा शस्त्र माना। और निहत्थे होकर इसी सत्य और अहिंसा केवल पर उन अपने विरोधियों से जा भिड़े। विजय अवश्यम्भावी थी। भविष्य का परिणाम सब को दीख रहा था। आखिरकार एक दिवस आया जिस दिवस पर यह घोषणा हुई कि ये अधिकार जिनको कि तुम मांग रहे हो तुमको दिये जाते हैं। यह बात सुन सारा देश खुशी के मारे उछल पड़ा और खास कर हैदराबाद। जो कि निजाम के नीचे रह कर इतने काल से निजाम के अत्याचारों को सह रहा था।

× × ×

निजाम हैदराबाद ने इस बात को अनुभव किया कि ये अधिकार जिनको कि आर्य माग रहे है बिलकुल तुच्छ से अधिकार हैं और इन्हें देने में हमारा कुछ भी नहीं बिगड़ सकता है। तो ये अधिकार क्यों न दे दिये जायें। अनुभव शील पुरुष जरूर बातों को अनुभव करता है परन्तु जब ही जब कि उसकी अनुभव करने की शक्ति जागृत हो। यदि सचमुच देखा जाय तो हमको ऐसा प्रतीत होता है कि अब तक निजाम की अनुभव करने की शक्ति प्रसुप्त अवस्था में थी। आर्यों ने सत्याग्रह रूपी अस्त्र के द्वारा उस शक्ति को जगाया। उसकी शक्ति जागी। उसने देखा कि ये चारों ओर क्या हाहाकार मच रहा है। उसने उस पुकार को सुना और सुनकर उसका विचारा और विचार कर उनको उचित अधिकार प्रदान कर दिये जिनको कि आर्य लोग बहुत समय से अपने हाथ फैलाकर मांग रहे थे।

× × ×

सत्य और अहिंसा का पूर्ण सम्बन्ध परमात्मा के साथ है। यदि हम सत्य और अहिंसा के अस्त्र को धारण करते हैं दूसरे शब्दों में हम परमात्मा की शक्ति को लेकर किसी विरोधी शक्ति का मुकाबला करने को उतरते हैं। यह निश्चित है कि यदि हमारा परमात्मा की शक्ति में पूर्ण विश्वास होगा तो कोई शक्ति ऐसी नहीं है जो कि हमारे इस अटल विश्वास को छिन्न भिन्न कर सके। दूसरी विरोधी शक्ति पहले पहल तो कुछ देर मुकाबला अवश्य करेगी परन्तु बाद में जब वह देखेगी कि वो हमारी शक्ति से भी कोई अत्यन्त प्रबल शक्ति है तो उसका पीछा छोड़ देगी और अपनी हार मान लेगी।

× × ×

निजाम हैदराबाद में जिस समय सत्याग्रहियों के ऊपर अत्याचार हो रहे थे उस समय जिन व्यक्तियों को निजाम की पुलिस द्वारा कठिन पीड़ायें पहुँचाई जाती थी अर्थात् जिनको लाठी और बेंत इत्यादियों के प्रहार से उनके शरीरों को घायल किया जाता था और वे इस पर हार न मानते थे वे बार बार निजाम के अत्याचारों को सहने के लिये अपनी कमर कस कर रणक्षेत्र में आते थे। जब पुलिस के आदमी उनके घायल शरीरों पर जगह जगह पट्टी बंधे हुए देखा करते थे तो उस समय उनके अन्दर भी एक दया का भाव जागृत होता था और वे घायल सत्याग्रहियों के पुनः कुछ न कहते थे। यह दया का भाव इस बात को साबित करने लगा था कि सचमुच अब इन्हीं की ही विजय होगी। दूसरी बात यह साबित करता था कि विजय शीघ्र ही होगी।

× × ×

हैदराबाद में जो आजकल झगड़ा चल रहा था यह कोई नया झगड़ा नहीं था यह एक बहुत पुराना झगड़ा था। बहुत समय से लगातार सार्वदेशिक सभा के लोग इस बात के प्रयत्न में लगे हुये थे कि ये जो आर्यों के साथ अन्याय किया जा रहा है ये उचित नहीं है। जब सार्वदेशिक सभा के बहुत कहने पर भी निजाम की ओर से कोई संतोष जनक उत्तर न मिला और निजाम अपने उसी मार्ग पर डटा रहा। उस समय निजाम की नीति को पलटने के लिये यह सत्याग्रह रूपी युद्ध चलाया गया।

× × +

कई लोगों का विचार है कि आर्यों ने शायद मुसलमानों से द्वेष होने के कारण उनको तंग करने के लिये यह युद्ध रचा होगा। परन्तु यह विचार बिलकुल गलत है। भला हमको मुसलमानों से चाहिये ही क्या था। और द्वेष भी क्यों होता। हम यह थोड़े ही कहते हैं कि मुसलमान अपनी मसजिद न बनायें उनमें पूजापाठ न करें और अपने मत का प्रचार न करें हमारा तो यह कहना है कि ये काम तुम सब कुछ करो परन्तु हमें भी करने दो। तुम अपने अल्लाह की पूजा करो हम अपने अल्लाह की पूजा करें। ये फिजूल का वादविवाद किस लिये उठा रक्खा है। तो यह कहना कि हमको कोई मुसलमानों से द्वेष था यह बात गलत सिद्ध होती है। हां हमारा सत्याग्रह का सिर्फ इतना ही उद्देश्य था कि तुम्हारा ठीक रास्ते पर आजाना।

× × ×

हैदराबाद में मुसलमानों की अपेक्षा कहीं ज्यादह हिन्दुओं की संख्या है। ८५ प्रतिशतक हिन्दुओं की संख्या होते हुये भी हिन्दुओं पर अत्याचार की भरमार ऐसी अवस्था में क्या हिन्दुओं को व्यर्थ में ही इन अत्याचारों को सहते जाना चाहिये था। जब ऐसी बात नहीं है तो फिर अपने अधिकारों के लिये लड़ना इनका उचित ही था। मान लीजिये यदि मुसलमानों की ऐसी हालत होती जैसे कि आज हैदराबाद में हिन्दुओं की थी तो उस अवस्था में क्या मुसलमान कुछ भी नहीं करते। वो तो बुरे तरीके से राक्षसों की तरह अपने विरोधियों को खाने दौड़ते और उनका बुरा हाल करते।

× × ×

हिन्दुओं और मुसलमानों में आपस में भाई भाई का सम्बन्ध समझा जाता है। दोनों को ऐसा माना जाता है कि दोनों की उत्पत्ति और जन्म मरण यहीं पर होता है। कई मुसलमान तो वास्तव में अपने आपको यहां का समझते हैं और इस देश से प्रेम करते हैं और कई कहते हैं कि हमारा असली देश अरब मक्का मदीना इत्यादि है। भारत देश हमारा नहीं है। परन्तु ऐसा कहने वाले बहुत कम हैं। जब मुसलमान अपने आपको भारत देश का मानते हैं और यह भी कहते हैं कि हिन्दू हमारे अपने भाई हैं तो यह समझ में नहीं आता कि इतना लड़ाई झगड़ा कहां से होता है। वास्तव में बात तो यह है कि ऊपरी दिल से बेशक मुसलमान हमें अपना भाई समझते हों परन्तु अन्दर से वही कूटनीति कार्य करती हुई दिखलाई पड़ती है। जब तक मुसलमानों का हिन्दुओं के प्रति आन्तरिक और बाह्य दिल से समझौता नहीं होगा तब तक ये निश्चित तौर पर नहीं कहा जा सकता है कि मुसलमानों का हिन्दुओं के साथ कोई सहानुभूति है। अब भी जो हैदराबाद में अधिकार दे दिये गये हैं उन अधिकारों के प्रति कुछ कुछ सन्देह बना हुआ है कि शायद कुछ समय के बाद फिर कहीं ऐसा झगड़ा न उठ खड़ा हो जिससे यह अधिकार छिने हुये से प्रतीत हों।

× × ×

आज निजाम जो कि बहुत दिनों से एक गाढ़ निद्रा में सो रहा था अपनी उस निद्रा से जागा है। जाग कर देखा कि मैं किस रास्ते पर जा रहा हूं। उसे अपना रास्ता गलत प्रतीत हुआ। उसने उसी समय ठीक रास्ते पर कदम रक्खा अपने से प्रतिरोधियों की बातों को ध्यान पूर्वक सुना और उसमें उसको सत्यता प्रगट हुई। जब सत्य उसके सामने आया तो उसने उसी समय यह घोषणा करवा दी कि हिन्दुओं को जो कि वे अधिकार मांगते हैं दे दिये जाते हैं। उन अधिकारों का सबको अधिकार है और ये अधिकार सबके जन्म सिद्ध अधिकार है।

× × ×

आज निजाम को अधिकार प्रदान करने की खुशी में हम निजाम का हृदय से धन्यवाद करते हैं और परमात्मा से साथ में यह भी प्रार्थना करते हैं कि आगे के लिये निजाम की बुद्धि में कोई इस प्रकार की गड़बड़ उत्पन्न न हो जिससे कि यह सारा का सारा बना बनाया काम बिगड़ जाय।

× × ×

आज निजाम के यहां के सब कैदी छूट छूट कर अपने अपने स्थान पर आ रहे हैं सचमुच इन कैदियों ने जो जो कष्ट जेल में रह कर भोगे हैं उन कष्टों को असली तौर से जानने वाला या तो ये कैदी हो सकते हैं अथवा परमात्मा। इनके सिवाय और जो हैं वे सब सुनी सुनाई बात ही कहेंगे। जो जिसमें बीतती है असल में वही उसके तत्व को जानता है। सत्य और अहिंसा की लड़ाई लड़ते हुये इन कैदियों के शरीरों में जो जो क्षति हुई है वो उनके शरीरों की क्षति शीघ्र से

शीघ्र पूरी हो जाय। ऐसी प्रार्थना हम परमात्मा से करते हैं।

× × ×

आज निजाम का समाचार सुन कर निजाम हैदराबाद ही नहीं बल्कि देशदेशान्तर खुशियां मना रहे हैं। संसार के एक कोने से लेकर दूसरे कोने तक खुशी का वातावरण छाया हुआ है। आज आकाश के देवतागण भी निजाम के ऊपर फूलों की वर्षा कर रहे हैं और आनन्द मना रहे हैं। पशु पक्षी सब मीठे स्वर से निजाम का गुणगान कर रहे हैं।

× × ×

अधिकार प्रदान करने के बाद अब आर्यों का अन्तिम कर्तव्य यह रह जाता है। कि वहां खूब आर्यधर्म का प्रचार किया जाय। एक कमेटी हैदराबाद में इस प्रकार की रक्खी जाय कि जो कि यह देखती रहे कि निजामने जो अधिकार दिये हैं उन अधिकारों पर निजाम कहां तक अमल करती है। और कहां तक नहीं। इन सब बातों का ध्यान रक्खा जाय। यदि ये सब बातें आर्य लोग हैदराबाद में करें तभी हैदराबाद का सत्याग्रह पूर्ण सफल कहा जा सकता है। अन्यथा अधिकार घोषित करने के बाद यदि हमारा कोई कर्तव्य नहीं रह जाता है तो यही समझना चाहिये कि शायद निजाम का भविष्य पुनः कहीं अन्धकार में न पड़ जाय। तो उसके भविष्य को अन्धकार से हटाने के लिये और यह दिखाने के लिये कि हमको वास्तव में इन अधिकारों की चाह थी ये सब उपरिलिखित कर्तव्य आवश्यक हैं तभी हम सफल हो सकते हैं।

स्वागत सभा पर एक छोटा सा

वक्तव्य

[श्री सच्चिदानन्द जी एकादश श्रेणी]

कुल की कीर्ति को बढ़ाने वाले देदीप्यमान दीपको, जिस कुलमाता की गोद में तुमने निवास करके बत्ती और तेल को इकट्ठा किया और जिस महान् नेता रूपी दियासलाई के द्वारा किसी खास प्रदेश में जलाये गये और तुम अन्त तक उसी प्रकार दिये के बन्धन रूपी जेल में जलते रहे। जब तक कि तुमने उस प्रदेश के अन्धकार को दूर न कर दिया।

यह सारा दृश्य देख कर हमारे हृदयों में आज अनन्त उल्लास की भावना जागृत होती है।

स्वागत के सच्चे भावना का स्वरूप शब्दों में कभी नहीं प्रगट किया जा सकता है। उसका सम्बन्ध हृदय के साथ है। यदि एक वाक्य में कुछ तुम्हारा हृदय से स्वागत कर सकूँ तो सिर्फ इतना ही कह सकता हूँ—कि कुल के कुछ बहुमूल्य क्षण जो कि तुमने कभी कुल में रह कर बिताये थे उन क्षणों का यदि सचमुच किसी ने मूल्य समझा है तो अब तक तुमने समझा है और आगे के लिये ईश्वर तुम्हारे अन्दर उत्साह दे कि जो तुमने इन बहुमूल्य क्षणों का मूल्य समझा है उसका समय समय पर उचित प्रयोग करते रहो और उसको कभी विस्मित मत करो।

देवासुर संग्राम

[श्री सच्चिदानन्द एकादश श्रेणी]

(१)

निकलती ज्वालायें विकराल।
भस्म करती मानस अशान्ति॥
पान करती संसृति सुखसार।
मिटाती ताप वेदना भ्रान्ति॥

(२)

नाना विचार अनेक कल्पना
यही हृदय का है व्यापार॥
कभी उपजता कभी सिसकता।
अन्तकाल होता तार तार॥

(३)

हृदयस्थल की दैवीय भावना।
जब रथ पर चढ़ने आती॥
उसी समय आसुरी भावना।
आ निज विजय गान गाती॥

(४)

प्रकृति देवि के प्रेमपाश में।
फंस जाता मेरा मन मीन॥
पता न चलता निशिवासर का।
हो जाता इतना तल्लीन॥

(५)

हे अन्तःस्थल के प्रदीप तुम।
मिटा सभी आसुरी भावना॥
मेरे रग रग में भर दे फिर।
तम नाशक दैवीय भावना॥

(६)

यही प्रार्थना यही भावना।
यही हृदय की अभिलाषा॥
एक बार कम से कम कर दो।
मेरी पूरी अभिलाषा॥

[पृष्ठ ३ का शेष]

और आकृष्ट किया जाता है जो कि डाक्टर देवी के प्रातराश वर्जित आहार विधि में बढ़ाए गए हैं वह शुद्ध इकारों का आना है। और उसके साथ ही हेतुओं सहित अहोरात्र में एक आहार (एक बार के आहार) का विधान भी है। डाक्टर एडीसर यद्यपि डा० देवी के प्रातराशवर्जित आहार से सहमत नहीं है। किन्तु उसने डाक्टर देवी के मुख्य सिद्धान्त को स्वीकार कर लिया है। (और इसी का हम यथार्थ

क्षुधा का प्रतिलक्षण बार ओहमा कह सकते हैं) और उक्त सिद्धान्त में उसने कुछ नियत नियमों सहित चर्वण की क्रिया की वृद्धि की है। डाक्टर डेवी ने डा० फ्लीचर के कार्य को स्वीकार की उदारता पूर्वक गुण ग्राहकता प्रदर्शित की है । और उसको समुचित स्थान पर प्रतिष्ठित किया है। डाक्टर फ्लीचर ने अपने नये सिद्धान्तों का जिन में यथार्थ क्षुधा के प्रतिलक्षण का प्रधान नियम सम्मलित है, जो विस्तृत और सबल प्रचार किया है। उसके लिये वह विशेष सम्मान का पात्र है।

यह तो सर्व साधारण को भी ज्ञात था कि अध्यशन वा अतिभोजन बुरा है। किन्तु ये लोग स्वाभाविक आहार की समुचित वा ठीक २ सीमाओं और दशाओं को न जानते थे । इस निबन्ध में यह दिखलाने का प्रयत्न किया गया है कि उक्त सीमाओं और अवस्थाओं को जानने का कितना बड़ा महत्व है। और सर्वोपरि परिणाम पर पहुंचने को सुनिश्चित बनाने के लिये ठीक २ निर्देश किए गए हैं।

गुरुकुल समाचार

विद्यासार १४ सन्धि ज्वर नरेन्द्र ११ मलेरिया ज्वर सत्यदेव ५ धर्मेन्द्र [ज्वालापुर] ५ देवेन्द्र ४ रामकृष्ण४ प्रेमपाल ४ देवेन्द्र [अम्बाला] ३ ३ राजकिशोर ३ वासुदेव गुरुवीर ३ रामनन्दन २ राजेन्द्र (बिहारी) १ जगन्नाथ १ धर्मपाल चोट १ योगेन्द्र १ ईश्वरदत्त ४ गत सप्ताह उपरोक्त ब्र० रोगी हुए थे। अब सब स्वस्थ हैं। इस सप्ताह गर्मी अधिक नम तापमान ६६ फा० रहा है।

तारीख २८-७-३६ को प्रातः ज्वाला पुर स्टेशन पर हैदराबाद सत्याग्रह के सर्वप्रथम नेता नारायण स्वामी जी जेल से छूट कर अपने स्थान पर वापिस आ गये। जब ज्वालापुर स्टेशन पर उतरे तो आपका अपूर्व स्वागत किया गया। जनता के हृदय में उनके स्वागत के प्रति पूर्ण उत्साह और साहस भरा हुआ था। जनता ने स्वामी जी के ऊपर फूलों की अपार वर्षा की और एक जलूस वानप्रस्थाश्रम तक निकाला गया।

यहां आकर एक गुरुकुल के ब्रह्मचारियों की तरफ से दूसरा महाविद्यालय ज्वालापुर की तरफ से और तीसरा वानप्रस्थाश्रम की ओर से तीन अभिनन्दन पत्र दिये गये। कुछ आदमियों के लेक्चर भी हुये और सभा समाप्त कर दी गई। सभा के अन्त में नारायण स्वामी जी ने कहा कि जिस तरह से जनता ने अपने जन और धन की परवाह न करके इस युद्ध में भाग लेकर युद्ध को सफल बनाया है। अब आगे के लिए कार्य यह शेष रह जाता है कि हैदराबाद स्टेट में स्कूल खोले जायें जिसके द्वारा वहां की भाषा का अध्ययन करवाया जाय ताकि वहां के लोग उस उपदेश को समझ सकें। इस तरह से आर्यधर्म का प्रचार हैदराबाद में भी कुछ सालों में ऐसा हो जाय जैसा कि अन्य स्थानों पर है। सभा समाप्त हो गई। प्रसन्नता से भरे हुये लोग अपने अपने स्थानों पर चले गये।

महाविद्यालय और विद्यालय विभाग की यात्रायें शुरू हो गई हैं। एक पार्टी शिमला, एक काश्मीर, एक दार्जिलिङ्ग और एक गङ्गोतरी जा चुकी है। एक पार्टी क्वेटा को भी प्रस्थान कर चुकी है। बहुत से ब्रह्मचारी अपने अपने घरों को भी चले गये हैं।

छोटे विद्यार्थियों की छुट्टियां १ सितम्बर से आरम्भ हैं और वे कांगड़ा की ओर प्रस्थान करेंगे।

गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ

२२ अगस्त के प्रातः ५ बजे तक सब ब्रह्मचारियों तथा कुलवासियों ने हैदराबाद सत्याग्रह से लौटते हुए विजयी सातों मर्यादाधिकारियों का फरीदाबाद स्टेशन पर स्वागत किया फरीदाबाद गुरुकुल से ५ मील की दूरी पर है। सब ब्रह्मचारी और कर्मचारी ३ बजे प्रातः उठ कर फरीदाबाद पहुँचे थे। उनकी सेवा में अभिनन्दन पत्र भेंट किया गया सब को पुष्प मालायें पहनाई गईं। ट्रेन के प्लेटफार्म पर आते ही जय घोषों से स्टेशन गूंज उठा सब कुलवासी अपने विजयी वीरों के स्वागत के लिये पहुंचे हुए थे।

२३ अगस्त को गुरुकुल कांगड़ी के ब्रह्मचारियों का जत्था गुरुकुल पधारा। उनके स्वागत में विद्यालय बन्द रहा। और सत्याग्रही श्री प० चन्द्रमणि जी विद्यालंकार (भूतपूर्व उपाध्याय गु०कु० कांगड़ी) की अध्यक्षता में सभा हुई, जिस में श्री पं० क्षितीशकुमार जी वेदालंकार का भाषण बड़ा मार्मिक था। सबने अपने जेल के अनुभव बतलाये। जिस बहादुरी से इन सत्याग्रही वीरों ने रियासत में प्रवेश किया और जो यातनायें जेल अधिकारियों ने इन्हें दीं उन को सुन कर सब ब्रह्मचारी तथा कर्मचारी बड़े प्रभावित हुए। इन युवकों ने जेल में तकलीफ सहकर कुल-माता के गौरव को स्थापित रक्खा। सभा के पश्चात् इनके स्वागत में सम्मलित सहभोज हुआ।

गुरुकुल मुलतान

सभी ब्रह्मचारी आनन्द प्रसन्न हैं। कोई भी रोगी नहीं। गर्मी कुछ कम है दोपहर के समय कुछ अधिक हो जाती है। इस वर्ष १६ जून से आखीर जौलाई तक दीर्घावकाश के दिनों में सभी ब्रह्मचारी कोयटा गये थे। कोयटा में ब्रह्मचारियों का काफ़ी स्वागत हुआ। लगभग पौने दो सौ रु० वहां से दान भी मिला। वहां से २ अगस्त को राज़ी ख़ुशी सभी ब्रह्मचारी लौट आए और ३ से पढ़ाई आरम्भ हो गई है।

चौधरी हुलासराय के प्रबन्ध से गुरुकुल प्रेस गुरुकुल कांगड़ी में मुद्रित तथा प्रकाशित।

* ओ३म् *

"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत" Reg. No. A. 2927

गुरुकुल

सम्पादक साहित्यरत्न प० हरिवंश वेदालङ्कार

एक प्रति का मूल्य -) [गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख-पत्र] वार्षिक मूल्य २॥)

वर्ष ४] गुरुकुल कांगड़ी, शुक्रवार २३ भाद्रपद १९९६ = सितम्बर १९३९ [संख्या १९

वैदिक-वर्णव्यवस्था

[ले०—श्री प्र० धर्मवीर जी चतुर्वेदी]

(२)

वर्णाश्रम-व्यवस्था हिन्दू धर्म की एक विशेषता रही है। यूँ तो धार्मिक सिद्धान्तों के ठोस सत्य प्रत्येक धर्म में लगभग एक से ही होते हैं। ईसाइयों की बाइबिल, मुसलमानों के कुरान तथा आर्यों के वेद के मुख्य २ सिद्धान्तों में एकता होते हुए भी वैदिक धर्म की अगर कोई मुख्य विशेषता है जो कि दूसरे धर्मों में नहीं पाई जाती, वह है वैदिक वर्णव्यवस्था। आश्रम व्यवस्था (ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास) जिनको कि हमारे ऋषियों ने जीवन के चार मुख्य स्टेशनों (Junction stations) का नाम दिया है, उसकी अधिक व्याख्या न करता हुआ मैं केवल वर्णव्यवस्था को ही लेता हूं, जिसको कि आर्यसमाज हिन्दू-समाज का आधार-स्तम्भ मानता है और जिसके बिना हिन्दू-समाज दिन प्रतिदिन बड़ी तेज़ी के साथ ह्रास की ओर जा रहा है।

मैंने पिछले लेख में यह बताने का प्रयत्न किया था कि साम्यवादी तथा जात पात तोड़क मण्डल के सदस्य वर्णव्यवस्था को मानने को तैय्यार नहीं है, क्योंकि वे समझते हैं कि वर्णव्यवस्था को या तो पुनः प्रचलित करने की आवश्यकता ही नहीं है, क्योंकि हिन्दू समाज इसकी भयङ्कर बुराइयों को अब समझने लगा है अथवा यह स्वयंसिद्ध है, खुद ही है इसलिए इसके प्रचार की आवश्यकता नहीं है। इस का उत्तर तो हम आगे चल कर देंगे, परन्तु इसके अतिरिक्त एक और भी समाज है जिससे कि आर्यसमाज का वास्ता पड़ता है, वह है पौराणिक समाज। ये लोग जन्म से ही वर्णव्यवस्था मानते हैं अर्थात् जो ब्राह्मण के घर में उत्पन्न हो वह ब्राह्मण जो क्षत्रिय के घर में उत्पन्न हो वह क्षत्रिय और इसी प्रकार जो वैश्य और शूद्र के घर में उत्पन्न हो वह वैश्य और शूद्र कहाता है। आर्यसमाज इस प्रथा का कट्टर विरोधी है क्योंकि इसी प्रथा ने आज उज्ज्वल भारतीय इतिहास को कलुषित कर दिया है। मेरा तो यह विचार है कि आज जो भारतवर्ष में वर्ण-व्यवस्था के विरोध में आवाज़ सुनाई दे रही है, उसका कारण भी यही जन्मानुसार वर्णव्यवस्था है। इस पौराणिक व्यवस्था के अनुसार शूद्र को पढ़ने का अधिकार नहीं है शूद्र को गायत्री जाप का और ईश्वर भजन का अधिकार नहीं है। ये लोग यद्यपि पुराण और वेद दोनों को प्रमाण रूप से मानते हैं परन्तु शूद्रों के साथ न्याय करते समय यजुर्वेद के इस पवित्र वाक्य को भूल जाते हैं

> यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः।
> ब्रह्म राजन्याभ्याᳪ शूद्राय चार्याय
> च स्वाय चारणाय॥

इस मन्त्र में परमात्मा की ओर से स्पष्ट निर्देश है कि इस कल्याणमयी वेदवाणी को मैंने ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र अपने तथा पराये सभी आदमियों के लिए उपदेश किया है।

आर्यसमाज का तो यह दावा है कि कोई भी व्यक्ति चाहे वह वैश्य, शूद्र, मुसलमान, पारसी, ईसाई कुछ भी हो वेद पढ़ने का उतना ही अधिकार रखता है जितना कि कोई ब्राह्मण रख सकता है। साथ ही कोई भी व्यक्ति ब्राह्मण या क्षत्रिय के घर में जन्म लेने मात्र से ब्राह्मण या क्षत्रिय नहीं होता। कोई भी व्यक्ति अगर ब्राह्मण के कार्य करता है तो वह ब्राह्मण है, क्षत्रिय के कार्य करता है तो क्षत्रिय वैश्य के कार्य करता है तो वैश्य और शूद्र के कार्य करता है तो शूद्र कहाता है कोई भी व्यक्ति जन्म से ब्राह्मण या क्षत्रिय नहीं होता। आर्यसमाज तो स्मृति के इस वाक्य का कायल है कि —

> जन्मना जायते शूद्रः संस्काराद्द्विज उच्यते।

अर्थात् जन्म से सभी व्यक्ति शूद्र होते हैं और तब तक कोई व्यक्ति ब्राह्मण या क्षत्रिय कहाने का अधिकारी नहीं है जब तक कि वह इन २ वर्णों के योग्य कार्य नहीं करता है। (क्रमशः)

कृष्णचरित्र पर संक्षेप से एक दृष्टि

[लेखक—सच्चिदानन्द एकादश]

महापुरुषों का चरित्र एक महान उद्देश्य की रचना किया करता है। बचपन से ही एक बालक के अन्दर यह ज्ञात होने लगता है कि यह आगे चलकर अपने नाम की कीर्ति को संसार के कोने कोने में फैलाने वाला होगा।

परन्तु जब कृष्णचरित्र के ऊपर हमारी दृष्टि दौड़ती है तो हम यह देखते हैं कि उनको ओरियन के व्यवहार और चरित्र को तिरस्कृत किया जाता है। कृष्ण का गोपियों के साथ एकान्त में विहार करना, बचपन में मक्खन चुराना इत्यादि बहुत से दोष कृष्णचरित्र के ऊपर लगाये जाते हैं। परन्तु ये कहां तक सत्य हैं। परन्तु पीछे आने वाले कृष्णचरित्र के भक्तों ने युक्तियों द्वारा यह सिद्ध करने की कोशिश की है कि ये जो कृष्ण के ऊपर दोष लगाये जाते हैं ये नितान्त असत्य हैं। उनका कहना है कि गीता के बनाने वाले कृष्ण इस प्रकार कभी नहीं कर सकते थे।

घटनाचक्र अजीब होता है। संसार में हरेक वस्तु का अपवाद भी मिलता है। जहां महापुरुषों के गुण उसके बचपन से ही प्रतीत होने लगते हैं वहां पर ऐसा भी हो सकता है कि उसके बचपन में वे गुण प्रतीत न हों आगे चलकर के प्रतीत हों। तो इस तरह से श्रीकृष्ण के बारे में निश्चित तौर पर कहा ही नहीं जा सकता है कि उनके अन्दर बचपन से ही महापुरुष के गुण थे हो सकता है आगे चलकर उत्पन्न हो गये हों।

मनुष्य दोषपूर्ण है। जब बालक उत्पन्न होता है उस समय बालक बिल्कुल शुद्ध होता है। परन्तु ज्यों ज्यों सांसारिक वातावरण में पड़ता जाता है त्यों त्यों उसके हृदय में सांसारिक वातावरण की दोषपूर्ण प्रतिमा अपना स्थान जमाने झट आ पड़ती है और उसी समय से थोड़ा थोड़ा स्थान जमाना शुरु करती है। परिणाम यह निकलता है कि अन्त में बालक दोषपूर्ण हो जाता है और सांसारिक प्रवाह में बहने लगता है।

इस युक्ति को लेकर देखा जाय तो ऐसा प्रतीत होता है कि जब कृष्ण छोटे थे तब उनके अन्दर भी दोष समा गये हों और उन्होंने भी सांसारिक प्रवाह में बहकर अपने आपको बाद में संभाल लिया होगा। खैर जो कुछ भी हो इस विषय को यहीं समाप्त कर और ज्यादह बहस न कर कृष्ण की अन्य बातों पर आते हैं।

श्रीकृष्ण के दो प्रकार के भक्त लोक में दिखाई पड़ते हैं एक तो वे हैं जो कि श्रीकृष्ण के अवगुणों पर श्रद्धा रखते हैं और दूसरे वे हैं जो उनके गुणों पर श्रद्धा रखते हैं और अपने अन्दर भी उन गुणों को लाने की कोशिश करते हैं। पहले प्रकार के भक्त सनातनी इत्यादि हैं जो कि उनकी मूर्ति बनाकर पूजन और उनके अवगुणों अर्थात् उसी तरह गोप गोपिकाओं के साथ विहार करते हैं। ऐसे व्यक्ति मथुरा, वृन्दावन और गोकुल इत्यादि में दिखाई पड़ते हैं।

दूसरे प्रकार के हमारे आर्यसमाजी लोग हैं जो कि कृष्ण पर श्रद्धा रखते हैं और उसके गुणों का गान करते हैं और अपने चरित्रों को भी उसके जैसा बनाने की कोशिश करते हैं।

सचमुच इन दोनों परिस्थितियों में जो उचित और सत्यमयी है वह तो यही है कि हम कृष्णचरित्र के गुणों का गान करें। अवगुणों का त्याग करें।

कारण यह है कि हरेक वस्तु का प्रभाव हमारे शरीरों के ऊपर पड़ता है। यदि हम अवगुणों के लेने की कोशिश करेंगे तो यह निश्चित जानना चाहिये कि हम अवगुणी बन जायेंगे। क्योंकि उन अवगुणों का असर हमारे मन के ऊपर पड़ेगा और मन को प्रायः विषयों से राग होता है विषयों के अन्दर जाकर मन एक विशेष प्रकार के स्वाद का अनुभव करता है। इसलिये हमको कृष्णचरित्र के गुणों पर ही ध्यान देना चाहिये और इसी आधार को लेकर संक्षेप रूप से हम कृष्णचरित्र के बारे में अपने कुछ विचार प्रगट करें।

(१) भगवान श्रीकृष्ण ने लोकोपकारार्थ जो गीता का निर्माण किया है सचमुच उस गीता के सार को आज तक भी बहुत कम लोगों ने समझा होगा। उस गीता के अन्दर जहां जहां हमको लड़ाई की शिक्षा का पाठ पढ़ना मिलता वहां वहां हम यह भी देखते हैं कि उन श्लोकों में ऐसा भाव भरा पड़ा है कि उस भाव की झलक हमको आध्यात्मिकता की ओर भी ले जाता है। कोई यहां पर यदि यह शंका करे कि कृष्ण जो अर्जुन को लड़ने का उपदेश कर रहे थे तो उसमें आध्यात्मिकता की झलक कहां से आई। इसका उत्तर यह हो सकता है कि गीता के बनाने वाले कृष्ण में एक इस प्रकार का चातुर्य था कि उसने से शान्ति और लड़ाई दोनों की झलक दिखाई पड़े।

(२) गीता में हमको त्रिविध प्रकार की सृष्टि मिलती है। आध्यात्मिक आधिदैविक और आधिभौतिक अर्थों का यह त्रिविध सृष्टि गीता के महत्व को बढ़ाती है और गीता के नाम को ऊंचा करती है।

(३) हमने देखा कि जितने बड़े २ ग्रन्थ होते हैं उन ग्रन्थों को किन्हीं किन्हीं योग्य व्यक्तियों ने पढ़ा और उनके ऊपर टीका टिप्पणी भी की और उन ग्रन्थों को असत् बतलाया। परन्तु गीता के ऊपर आज तक किसी की टिप्पणी की कुछ नजर नहीं आती। उसको आर्यसमाजियों ने अपनाया सनातनियों ने अपनाया, बड़े बड़े नेताओं ने अपनाया और भी अन्य कृष्ण भक्तों ने अपनाया परन्तु आज तक किसी ने कोई टीका टिप्पणी नहीं की सबने अपने अपने अनुसार गीता के श्लोकों का अर्थ निकाल लिया और संतुष्ट हो गये। इससे कृष्ण की बुद्धि के चातुर्य का ज्ञान होता है।

कृष्ण की बुद्धि का चातुर्य महाभारत युद्ध के समय में भी प्रगट हुआ। इस समय कृष्ण की घटनाओं का वर्णन न करके सिर्फ इतना ही कहूंगा कि यदि अर्जुन की ओर कृष्ण न होता तो पाण्डवों की विजय कदापि नहीं हो सकती थी। कृष्ण ने प्रारम्भ से लेकर विजय समाप्ति तक अपनी बुद्धि द्वारा इस प्रकार के कार्य रचे कि अन्त में कौरवों की पार्टी की हार हो गई और पाण्डवों की

विजय हो गई। यह सब बातें हमको महाभारत के अध्ययन करने से स्पष्ट होती हैं।

जहां कृष्ण की मूर्ति हमको एक योद्धा के रूप में मिलती है वहां दूसरी ओर "योगेश्वर कृष्ण" इस उपाधि रूप में भी मिलती है। योग का अर्थ है (योगः कर्मसु कौशलम्) अर्थात कर्म करने में कुशलता अर्थात खूब निपुण होना। दूसरा योग का अर्थ है कि "योगश्चित्तवृत्तिनिरोध" कि चित्त की वृत्तियों का रोक लेना।

वास्तव में इन दोनों का अर्थ एक ही है। यदि चित्त की वृत्तियों को रोक करके कोई कर्म किया जाय तभी उस कर्म में अच्छी सफलता मिल सकती है। कई बार मनुष्य का ध्यान कहीं और होता है और कर्म कोई और कर रहा होता है उस समय प्रायः यह देखा गया है कि उस कार्य में उसका कुछ न कुछ गड़बड़ हो ही जाती है। तो यह आवश्यक बात सिद्ध होती है कि कर्म करने में कुशल अर्थात निपुण होने के लिये अपनी चित्तवृत्तियों को भी उसी कर्म के प्रति फेंक दिया जाय तभी सफलता मिल सकती है। कृष्ण के अन्दर ये दोनों गुण थे उसी समय वह योग के ठीक ठीक महात्म्य को समझा था। और अपनी बुद्धि के अनुसार इतने बड़े कार्य का निर्माण कर गया जिसका कि संसार में आज इतना गुणगान किया जा रहा है। इस तरह से हम महात्माओं के गुणों के ऊपर जितना विचार करें उतना थोड़ा है। महात्माओं के गुण अनन्त होते हैं फिर भी आज कुछ थोड़े से गुणों को सामने रखकर हमने इस बात का यत्न किया है कि उन गुणों के अन्दर क्या महत्ता थी जिसने कि ये गुण उनको महापुरुष की पदवी तक ले गये।

मैंने अपने बच्चे को गुरुकुल में क्यों प्रवेश कराया

मेरे ऊपर स्वर्गीय श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी की बड़ी कृपा दृष्टि रहा करती थी। मैं सन् १९[illegible]५ से गुरुकुल कांगड़ी के वार्षिकोत्सव पर जाता रहा हूँ और अब तक जाता रहा हूँ। इस समय मैंने बहुत से सज्जनों को जो कि आर्य समाज तथा गुरुकुल के कट्टर विरोधी थे उनको अपने साथ गुरुकुल कांगड़ी के जलसों पर लाकर आर्य समाज तथा गुरुकुल का कट्टर भक्त बना देने के अतिरिक्त उन महानुभावों से रुपया भी गुरुकुल को दान दिलवाया है।

गुरुकुल में एक समय श्री पण्डित इन्द्र जी विद्यावाचस्पति (सुपुत्र स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज) और पण्डित गिरधर शर्मा जी में और फिर दूसरी बार गुरुकुल में ही श्री स्वामी अच्युतानन्द जी महाराज और फिर गुरुकुल की रजत-जयन्ती का महोत्सव तो बिल्कुल निराली शान से हुआ था। अब तक के समय में गुरुकुल रूपी माता ने बड़े २ धुरन्धर विद्वान् त्यागी और धर्मात्मा रत्न पैदा किये हैं

श्री पण्डित बुद्धदेव जी विद्यालंकार जिन के विद्या, त्याग तथा तपोबल से आर्य समाज और गुरुकुल को तो बड़ा भारी गौरव प्राप्त हुआ है ही किन्तु सनातन धर्मी विद्वान् भी इनका बड़ा मान करते हैं। उक्त पण्डित जी ने देहली में छः रोज तक सनातन धर्मी विद्वानों से वृहद् शास्त्रार्थ करके आर्य-समाज की धाक बिठा दी। फिर सन् १९३५ में ग्राम माजरा जिला रोहतक में उक्त पण्डित जी ने अखिलानन्द और भीमसेन आदि सनातन-धर्मी विद्वानों से ४ रोज बड़े शास्त्रार्थ करके इलाके हरियाने में आर्य समाज की वह धाक बिठाई कि सारा हरियाना प्रान्त आर्य्य समाज का अनुयायी बन गया और लोगों के दिलों में गुरुकुल के प्रति श्रद्धा हो गई प्रत्येक मनुष्य की जिह्वा से यही शब्द निकलते हैं उस में अपनी सन्तान को अवश्य पढ़ाना चाहिये उक्त पण्डितजी के अतिरिक्त श्री पूज्य पण्डित जयदेव जी पण्डित चन्द्रमणि जी, पण्डित रामेश्वर जी पण्डित यशपाल जी पण्डित विनायकराव जी विद्यालंकार बार एट लॉ भी इसी गुरुकुल माता ने पैदा किये। इन सब महानुभावों से प्रभावित हो कर परम पिता परमेश्वर से यही प्रार्थना करता हूँ कि यदि परमेश्वर मुझे एक भी पुत्र प्रदान करे तो मैं अवश्य उसको गुरुकुल में प्रविष्ट कराऊंगा।

करुणामय जगदीश्वर ने मेरी प्रार्थना स्वीकार की और अपनी असीम और अपार दया से मुझको एक पुत्र प्रदान किया। जिसको मैंने अपने संकल्प के अनुसार गुरुकुल कांगड़ी में प्रविष्ट करवा दिया। यद्यपि मेरे पास अब कोई दूसरा पुत्र या पुत्री नहीं है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि आर्य-सभ्यता और आर्य संस्कृति की रक्षा और संसार का कल्याण भी इसी प्यारे गुरुकुल कांगड़ी द्वारा ही होगा। जिस में त्यागमूर्ति वर्तमान आचार्य स्वामी अभयदेव जी महाराज तथा श्री पण्डित सत्यव्रत जी जैसे महाविद्वान् सरल स्वभाव तथा सर्वप्रिय महात्माओं के चरणों में बैठ कर ब्रह्मचारी वेद-ज्ञान प्राप्त करके 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' वाक्य को पूरा करेंगे। जिसका साक्षात् प्रमाण हैदराबाद सत्याग्रह रूपी यज्ञ में प्रथम आहुति इसी प्यारी गुरुकुल माता के सुपुत्र ब्रह्मचारियों ने दी है।

वैदिक-धर्म का सेवक पोहकरमल मास्टर·
मिडिलस्कूल जिहाजगढ़, जिला रोहतक।

सूचना

विद्यालय के ब्रह्मचारी १ सितम्बर १९३९ को यात्रा पर धर्मशाला जिला कांगड़ा चले गये हैं। अतः ब्रह्मचारियों की कुशलादि के सम्बन्ध में संरक्षक महानुभावों को धर्मशाला में निम्न पते पर पत्र व्यवहार करना चाहिए।

मुख्याधिष्ठाता
पताः—गुरुकुल कैम्प अपर धर्मशाला
जिला कांगड़ा (पंजाब)

गुरुकुल

२३ भाद्रपद शुक्रवार १९९६

सदा बालक बने रहो

(श्री आचार्य अभयदेव जी संन्यासी)

गुरुकुल सूपा के छोटे ब्रह्मचारियों की 'शिशु' नामक पत्रिका के श्रीकृष्णांक के लिये लिखा गया।

तुम जानते हो कि 'बालकृष्ण' का क्या मतलब है? जहां योगिराज श्री कृष्ण हिन्दुओं में भगवान के रूप में पूजे जाते हैं वहां उस के रूप भी क्यों बनाये और दर्शनीय माना गया है। उस का यह रहस्य है कि बालकृष्ण उस 'अन्तरात्मा' के प्रतिनिधि भूत हैं जो कि मनुष्य के हृदय में एक सनातन शिशु की तरह भगवती माता की गोद में और अपने प्रभु पिता के प्रेम में निरन्तर आनन्द मग्न रहता है। कितना अच्छा हो यदि तुम भी आज बालकृष्ण का स्मरण करते हुए कृष्ण जी के जीवन से यह कला सीख लो जिस से तुम सम्पूर्ण जीवन भर बालक ही बने रहो, 'शिशु' बने रहो अर्थात् अपने हृदय में बसने वाले अन्तरात्मा रूपी उस सनातन शिशु का तुम पर ऐसा प्रबल प्रभाव हो जाये कि तुम आज से सदा ही बालक की तरह सरल, सच्चे और अपने प्रभु (पूज्य पिता) के प्रति एक अनन्य प्रेम में ही मस्त रहने वाले; विशुद्ध बने रहो।

अन्तरात्मा रूपी विश्व दर्शन

(सच्चिदानन्द एकादश श्रेणी)

अब हम उस विश्वदर्शन की ओर अन्तरात्मा को ओर भी घटाते हैं जो विश्वदर्शन कि श्री कृष्ण ने अर्जुन को कराया था। यह जीव रूपी शरीर ही मानों एक विश्व है। इसके अन्दर सद्भावना तथा कुभावना ही अर्थात देव तथा असुर ही मानों योद्धा हैं। उन योद्धाओं के अस्त्र शस्त्र ही मानों विषयभोग हैं तो इस तरह से यह विश्व रूपी युद्ध हमारे शरीरों में भी चल रहा है। इसको देखने के लिये दिव्य चक्षु की जरूरत है। वह दिव्य चक्षु क्या है इसको कोई कोई जान सकता है। उस दिव्य चक्षु का स्वरूप यदि हम एक शब्द में कह सकें तो इस प्रकार से कह सकते हैं कि "योग की क्रियायें द्वारा अपने अन्तःकरण के मल को परे फेंक देना और अपनी अन्तरात्मा को एक शुद्ध दर्पण की भांति बना लेना ताकि उसमें ठीक वस्तु का शुद्ध प्रतिबिम्ब पड़ सके और सब आन्तरिक क्रियायें अपने स्वरूप में दिखाई दें यही इस शरीर रूपी विश्व दर्शन का सच्चा स्वरूप है।" परन्तु यह विश्व दर्शन बड़ा महंगा है। हम सब का यह कर्तव्य है कि हम इस विश्व दर्शन के स्वरूप को देखने की ही कोशिश करनी चाहिये।

श्रीकृष्ण चरित्र के एक अङ्ग की आलोचना

(प्रो० प्रसाद जी, प्राकृतिक-चिकित्सोपाध्याय गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय)

आज श्री वसुदेव तथा श्रीमती देवकी के आत्मज और नन्द यशोदा के पालित प्रियपुत्र, गोकुल के गोपसखा गोपाल, मथुरा और वृन्दावन के प्राण, कंस, जरासंध, शिशुपाल, कालयवन आदि के काल पुराणों की सप्त पुरियों में सुप्रसिद्ध द्वारकापुरी के निर्माता पाण्डवों के परित्राता, श्रीमद्भगवद्गीता में वर्णित धर्मतत्व के उपदेष्टा, नीति निपुण धर्मभ्रष्ट क्षत्रियकुल के संहारक, धर्मराज्य के संस्थापक, दीनों के उद्धारक, वेदशास्त्र पारंगत चतुरशिरोमणि, सर्वगुणागार, सकलसदाचारादर्श मृत्युञ्जय, योगीश्वर, आनन्दकन्द भगवान् श्रीकृष्ण के पांचसहस्र एक सौ सड़सठवें (५१६७) जन्मोत्सव के पुण्य अवसर पर उनके चारु चरित्र की किञ्चित् चर्चा अवसरोचित ही है।

आजकल अधिकांश जनता में योगिराज श्रीकृष्ण का चरित्र उनकी बाललीला और यौवन के विलास के रूप में ही दिखलाया जाता है, परन्तु तात्विक दृष्टि से विचार किया जाय, तो उनके चरित्र का उपर्युक्त प्रचलित रूप अधिकांश उनके भक्तों की मनः कल्पना और अतिरंजना का ही प्रतिबिम्बमात्र है।

जनसाधारण की कुछ प्रवृत्ति ही ऐसी है कि वह अपने उपास्यदेव को अपनी ही भावना और चरित्रचर्या का रूप दे डालती है। संसार के मतमतान्तरों के इष्टदेवों के रूप इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं।

जनता जिसप्रकार अपने राजा को राजसभा में राजसिंहासन पर बैठ कर अपनी प्रजा का न्याय करते हुए देखती है, उसी प्रकार उसने परमपिता परमात्मा को भी प्रलय के पश्चात् न्याय सिंहासन पर बिठला कर, सारे मृतपुरुषों को पुनः अपने अपने शरीर धारण करा कर और उसके सामने उसकी न्याय सभा में खड़ा करके उनके अतीत जन्मों के सब कर्मों के न्याय का निपटारा करने की कल्पना की हुई है।

मनुष्य जिस प्रकार के आहार विहार के अभ्यासी हैं, अपने इष्ट देवों को भी उन्होंने उसी आहार विहार में निरत किया है। मांसाहारी और मद्यपी उसका मांसाहारी और मद्यप ही पाते हैं और उसको मद्यमांस के भोग लगाते हैं मिश्री और माखन-मिश्री खाने वाले मनुष्य अपने इष्ट देव को इन्हीं पदार्थों का भोग समर्पित करते हैं। इस अवस्था में संसार के जिस संसार की माया में फंसे हुए शिश्नोदर परायण जन यदि अपने उपास्य देव श्रीकृष्ण का दर्शन इसी रूप में करें तो इसमें आश्चर्य ही क्या है। यही कारण है कि आजकल जहां भी देखिए, श्रीकृष्ण बाललीला में माखन मिश्री उड़ाते हुए पाए और ग्वालगोपों के साथ क्रीड़ा करते हुए देखे जायेंगे। यदि इस बाल क्रीड़ा पर ही इति

भी होती तो कुछ अधिक हानि न थी, उसमें अति रञ्जना का ही कुछ दोष आ जाता था।

किन्तु श्रीकृष्ण के अन्धभक्तों ने उनका यौवन के उच्छृङ्खल और उद्दाम विलास में विलीन प्रदर्शित करके और गोपियों के साथ उनकी रासलीला और कामक्रीड़ा दिखला कर जनता को इन्द्रियों की उच्छृंखल उपासना और शृङ्गारिक जीवन में प्रेरित तथा प्रवृत्त करके उनके मन और देह को जो अतुल हानि पहुंचाई है, वह प्रत्यक्ष ही है।

श्रीकृष्ण जी के जो चित्र आजकल देखे जाते हैं, वे भी प्रायः विलासी युवा के ही रूप में चित्रित होते हैं। अपितु वीरयोद्धा श्रीकृष्ण या गीता के उपदेष्टा वयोवृद्ध प्रायः सत्तर वर्ष की अवस्था वाले श्रीकृष्ण जी के चित्र देखने को कदाचित् ही कहीं मिलें।

भारत वर्ष के सुपथ प्रवर्तक सुकवियों और चित्रकारों का यह परम कर्तव्य होना चाहिये कि वे श्रीकृष्ण जैसे अपने आराध्य आदर्श-देवों वा इष्ट देवों के शब्दचित्र और रेखाचित्र जनता के लिए सदुपदेशप्रद और उनके चरित्र के सदनुशायक रंगरूप में रचकर दिखलाया करें। इसी रूप में श्रीकृष्ण महाराज के जन्मोत्सव के अवसर पर उनके चारुचरित्र और चित्र की चारुचर्चा हमारे लिये लाभदायक और उपयोगी सिद्ध हो सकती है। आशा है कि हमारे नेता इस प्रकार की चर्चा का प्रचार अधिकाधिक करके राष्ट्रोन्नति के पथ को प्रशस्त बनायेंगे।

महापुरुष के गुणों की महानता

(ले०— श्री सच्चिदानन्द एकादश श्रेणी)

जब हम महापुरुष के जीवन पर विचार करने बैठते हैं उस समय हमारे सामने यह प्रश्न उठता है कि कौन से ऐसे गुण हैं जो कि हमको महापुरुष की पदवी तक पहुंचा सकते हैं। संसार में कौन व्यक्ति ऐसा होगा जो कि महापुरुष बनना न चाहता हो। परन्तु सब के सब महापुरुष बन नहीं सकते हैं। उसका कारण यह है कि सब के स्वभाव तथा विचार एक जैसे नहीं होते हैं। पूर्णरूप से व्यक्ति महापुरुष बन भी नहीं सकता है क्योंकि ऐसा आज तक कोई भी व्यक्ति संसार में नहीं हुआ है जो कि बिलकुल गलतियां न करता हो। कुछ न कुछ गलतियां प्रत्येक मनुष्य के कार्य में होती हैं चाहें उसने उसको कितनी ही बार क्यों न शोध लिया हो। परन्तु जो पुरुष अपनी गलतियों को स्वीकार करता है और उसको समझने की कोशिश करता है और समझ कर उसको आगे आने वाले जीवन में उसका उचित उपयोग उठाता है उसी को हम महापुरुष कहने लगते हैं।

× × × ×

मनुष्य गलतियों का भण्डार है न जाने अपने जीवन में मनुष्य अनन्त गलतियों को करता होगा। परन्तु जो उन गलतियों के प्रति झुक जाता है अर्थात् प्रार्थना इत्यादि करके अपनी गलतियों के प्रति एक महान् शक्ति से क्षमा याचना करता है और अपनी उस गलती के प्रति प्रायश्चित करता है वह व्यक्ति उस गलती से एक तरह से मुक्त सा हो जाता है और उसी समय से उसके अन्दर दिव्य भावनाओं का संचार प्रवाहित होने लगता है तो इस तरह से सब से प्रथम महापुरुष में यह गुण होना चाहिये कि वह अपनी गलतियां स्वीकार करके अपने हृदय को सब ओर से शुद्ध कर ले। यह तभी हो सकता है जबकि मनुष्य सत्यवादी हो। सत्यवादी मनुष्य अपनी गलतियों को स्वीकार करने में कभी भी नहीं हिचकिचाता है और सहर्ष स्वीकार करता है। इसके विपरीत असत्यता मनुष्य को गढे में गिराने वाली होती है और मनुष्य के लिये कुमार्ग प्रदर्शक बनती है। तो इस तरह से सर्वप्रथम गुण मनुष्य को जो कि महापुरुष की पदवी तक पहुंचाता है सत्यता हुआ।

× × × ×

सत्यता का गुण संसार में सब से महान है। यदि यह सर्वप्रथम गुण है तो सब में अन्तिम भी यही है। कारण यह है कि जो सत्यता का गुण है उसका संबंध परमात्मा के साथ है। पूर्ण सत्य इस संसार का न तो कोई वस्तु है और न कोई जीव है वह तो परमात्मा के सिवाय और कुछ है ही नहीं। जब महापुरुष अपना ध्यान सत्य में लगाता है और ध्यान लगाते लगाते उसको आत्म समर्पण कर देता है उस समय वह एक प्रकार से उस सत्य में से ही प्रगटित हुई हुई एक छोटी सी शक्ति का रूप होता है और उस महान् शक्ति में से ही अपने अन्दर शक्ति लेता रहता है।

× × × ×

जब मनुष्य के अन्दर सत्यता आ जाती है उसके बाद सदाचार इत्यादि तो यों ही उसके साथ साथ चक्कर लगाते रहते हैं। अर्थात् ये गुण तो सत्यता के होते ही अपने आप प्रगट हो जाते हैं।

× × × ×

सत्यता के बाद यदि कोई दूसरा गुण है तो वह शान्त मनोवृत्ति का होना है। शान्ति एक ऐसी वस्तु है जो कि मनुष्य यदि अपने अन्दर धारण कर ले तो वही उसके आनन्द को जान सकता है शान्तता का स्वरूप महापुरुष के अन्दर सम्पूर्ण रूप से विकसित होना चाहिये। मन, वचन, कर्म और जीवन की प्रत्येक क्रिया में शान्ति होने से मनुष्य का जीवन पूर्ण रूप से सफल हो सकता है।

× × × ×

चञ्चल प्रकृति का पुरुष अपने जीवन के अन्दर कभी भी सफलता नहीं प्राप्त कर सकता है। यदि कुछ सफलता

प्राप्त कर भी लें तो कुछ देर के लिये ही। शान्ति वाला पुरुष प्रत्येक बात को अच्छी प्रकार सोच विचार सकता है और अपने जीवन को ठीक मार्ग पर डाल सकता है। महापुरुष जब शान्त प्रकृति का हो जाता है तब उसके अन्दर भी उस शक्तिमयी मूर्ति का स्वरूप अपनी प्रदीप्त किरणों को लेकर महापुरुष के अन्तःकरण में प्रवेश करता है और महापुरुष की सम्पूर्ण आन्तरिक और बाह्य शरीर रूपी नगरी में शान्ति स्थापित कर देता है। इस तरह से दूसरा बड़ा गुण शान्तमयी स्थिति का होना हुआ।

× × × ×

यह दोनों गुण बड़े महान् हैं। इन दोनों गुणों का संबंध एक बड़ी भारी शक्ति के साथ जुड़ा हुआ है जो कि परमात्मा की शक्ति कहलाती है। हमने अभी ऊपर कहा था कि पूर्ण रूप से व्यक्ति महापुरुष बन भी नहीं सकता है। परन्तु हां यह हमारा दावा है कि जिस के अन्दर यह दोनों गुण अधिक से अधिक मात्रा में उत्पन्न होते जायेंगे वह महापुरुष की उच्च से उच्च सीमा तक पहुंच सकता है। अन्य सब गुण गौण हैं। इन दोनों गुणों के आ जाने से ही सब छोटे छोटे और गुण हमारे अन्दर आ सकते हैं यह हमारा पूर्ण विश्वास है।

× × × ×

अब हम साधारण पुरुष और महापुरुष के बारे में कुछ भेद दर्शाने की कोशिश करेंगे। यह भेद एक तरह से हम को महापुरुष के गुणों का ही परिचय करायेंगे। और यह बतलायेंगे कि इस प्रकार के भेद होने के कारण भी पुरुष महापुरुष की पदवी तक पहुंच सकता है।

पहला भेद यह है कि—

पुरुष की शक्ति सीमित होती है। पुरुष के हरेक कार्य में एक हद निश्चित होती है उसके पूरे हो जाने पर वह इतना प्रसन्न होता है कि मानों उसने सब कुछ पा लिया हो परन्तु महापुरुष की शक्ति अनन्त है। उसे कभी शान्ति नहीं होती और न कभी वह पुरुष की तरह संतुष्ट होता है।

दूसरा भेद यह है कि—

पुरुष यह कभी नहीं चाहता कि मेरे ऊपर बहुत सा बोझा लाद दिया जाय। उसको अपना परिवार सम्भालना ही बड़ा कठिन कार्य हो जाता है। वह रात दिन यही सोचता रहता है कि यह मेरा छोटा सा परिवार सुखपूर्वक रहे परन्तु महापुरुष अपने परिवार की कोई भी परवाह न करके अपने दिल में सदा "वसुधैव कुटुम्बकम्" की भावना का संचार करता रहता है।

तीसरा भेद यह है कि—

पुरुष अपने परिवार के आदमियों को या अपने मिलने जुलने वाले आदमियों को ही एक प्रेम तथा आदर की दृष्टि से देखता है। परन्तु महापुरुष का अपना कौन उसके तो सभी अपने हैं। वह सबको समदृष्टि से देखता है। कहने का तात्पर्य यह है कि यदि पुरुष की दृष्टि में थोड़े से आदमी कृपा पात्र हैं तो महापुरुष की दृष्टि में सभी लोग कृपा पात्र बनते हैं। वह सबकी पुकार को सुनता है और सुनकर अपनापन अनुभव करता है। और उसी तरह से जिस तरह से कि वह अपनी बात को महत्व देता है उसी तरह से दूसरों की बातों को भी महत्व देता है।

चौथा भेद यह है कि

पुरुष की अन्तरात्मा प्रायः गिरावट की ओर होती है और महापुरुष की अन्तरात्मा उसको उच्च जीवन का पथ प्रदर्शक बनाती है। इस की पहचान इस प्रकार से हो सकती है कि पुरुष का रहन सहन और बोल चाल किन व्यक्तियों के साथ है। उस के भाषण में उसके विचार किस प्रकार के हैं। वह अपने जीवन में अपने आपको कहां तक उच्च बनाने की कोशिशें कर रहा है। कौनसी ऐसी क्रियायें हैं जिनको करता हुआ पुरुष घबड़ाता नहीं है। क्या वह कभी अच्छी क्रियायें करते हुये लोगों से शर्माता या घबराता तो नहीं है।

यदि विचार अच्छे हैं। रहन सहन ठीक है। अच्छी क्रियायें करते हुये घबराता नहीं है तो उसका अन्तरात्मा उच्च जीवन की ओर जा रहा है और यही उच्च जीवन उसको अन्त में महापुरुष की पदवी तक ले जायेगा।

× × × ×

यह तीन चार मोटे २ भेद पुरुष और महापुरुष के अन्दर पाये जाते हैं। इनको छोड़ कर और भी हैं परन्तु तीन चार पर ही प्रकाश डालने की कोशिश की गई है।

× × × ×

अब थोड़ा सा महापुरुषों के कार्य करने के मैदानों का वर्णन कर हम अपने इस विषय को समाप्त करेंगे जब इस तरह महापुरुष ने अपने अन्दर अच्छे २ गुणों का संचय कर लिया उस समय हमारे सामने दो वस्तुयें दिखाई पड़ती हैं जिन की ओर महापुरुष अपना कदम उठा सकता है। एक ईश्वर द्वारा रचित प्राणियों की सृष्टि और दूसरा स्वयमेव परमात्मा। महापुरुष का अन्तिम उद्देश्य ईश्वर तक पहुंचना होता है। वह इन्हीं दो तरीकों द्वारा पहुंच सकता है या तो प्राणियों की सेवा करके अर्थात् देश या जाति के लिये अपना तन, मन, धन सब न्योछावर करने को तैयार हो जाय अथवा जिस परमात्मा ने उसे जन्म दिया, पाला पोसा और बड़ा किया उसके देखने की इच्छा करना और योगविद्या इत्यादि द्वारा अपने दिल को इतना निर्मल और दर्पण सदृश बना लेता है कि अन्तःकरण की स्व वस्तुओं का स्पष्ट साक्षात्कार होना और हृदय में शुभ प्रेरणाओं का होना यह सब बातें इस बात को सिद्ध करती हैं कि यह एक महापुरुष के ही लक्षण हो सकते हैं और उसने जीवन का महत्व जान लिया है।

जब देश या जाति के ऊपर घोर देश या जाति विषयक आपदायें आती हैं तो उसी समय कोई न कोई महापुरुष इस भूतल के ऊपर उस परम पिता परमात्मा की कृपा से जन्म लेता हुआ देखा गया है। परमात्मा जब यह

देखता है कि मेरी रचित सृष्टि में प्राणियों पर इस प्रकार की आपदाओं का आना उचित नहीं है क्यों कि देश में अशान्ति और गड़बड़ उत्पन्न करेंगी तो वह अपने आप ही इसका उपाय करता है और उनको तत्काल आपदाओं से बचाता है और अपने प्राणियों की रक्षा करता है।

हे परम पिता हम सब के अन्दर ऐसी शक्ति दो जिस शक्ति के द्वारा हमारे में से प्रत्येक प्राणी देश जाति और धर्म के ऊपर आने वाली आपत्तियों में कुछ न कुछ सहायक अवश्य हो और हमारे अन्दर ऐसी शक्ति दो कि हम सत्य मार्ग की खोज करते हुये इन आने वाली आपत्तियों का मुक़ाबला करें और सदा विजय पावें उसी समय हम महापुरुषों के गुणों की महानता को ठीक प्रकार समझ सकते हैं और उस महापुरुष की पदवी तक पहुंच सकते हैं।

गुरूकुल समाचार

आजकल विद्यार्थियों के चले जाने से गुरुकुल में शान्ति स्थापित हो गई है। जहां पहले ज्ञानचर्चा हुआ करती थी वहां अब प्रकृति ने शान्ति का राज्य स्थापित कर दिया है। गुरुकुल के वातावरण में आकाश में बादलों की भरमार और वर्षा का आधिक्य होने से इसकी शोभा बढ़ गई है और चारों ओर से वातावरण हरा भरा हो गया है। प्रकृति की शान्त अवस्था में गड़गड़ाते हुए बादल और चहचहाते हुए पक्षी हम बचे हुए कुलवासी (जोकि यहीं पर निवास कर रहे हैं) उनके मनों को सब प्रकार से खुश कर रहे हैं।

× × × ×

विद्यार्थी यात्राओं पर चले गये हैं। मन के अन्दर प्रसन्नता की भावना उनके चेहरों से टपक रही थी। ऐसा मालूम पड़ता था कि जब वे लौट कर आयेंगे तो कोई न कोई नया ज्ञान ज़रूर साथ लायेंगे।

वनस्पति वाटिका— गुरुकुल की वनस्पति वाटिका निरन्तर उन्नति कर रही है। इस वाटिका का मुख्य उद्देश्य गुरुकुल के आयुर्वेद महाविद्यालय के विद्यार्थियों के लिए आयुर्वेद में प्रयुक्त होने वाली औषधियों का संग्रह किए रखना है ताकि विद्यार्थी औषधियों को साल की जुदा २ मौसमों में देख सकें। औषधियों के फूलों, फलों, बीजों, पत्तों आदि पञ्चांगों को देख सकें और उनके पहिचानने में निपुणता प्राप्त कर सकें। इस वाटिका का दूसरा उद्देश्य यह है कि उपरोक्त महाविद्यालय में दी जाने वाली वनस्पति शास्त्र की शिक्षा भली प्रकार दी जा सके। इस वाटिका का तीसरा उद्देश्य पुष्पोद्यान का है। अर्थात् गुरुकुल वासियों के भ्रमणार्थ यह वाटिका पुष्पोद्यान का काम भी देती है। और इस लिए इसमें नाना प्रकार के पौदे भी लगाये जाते हैं। अब इस वाटिका को कुछ बढ़ाकर एक छोटी सी Nursery प्रारम्भ करने का विचार है। इस Nursery में ब्रह्मचारियों को आमों की कलमें लगा कर कलमी आम बनाना, निम्बुओं के पौदों में आंखें लगा कर नारङ्गी संतरे बनाना, शीशम के पौदों के बड़े लगाना आदि कृषि शास्त्र के उपयोगी कार्यों का ज्ञान भी दिया जायेगा। इस वाटिका से गुरुकुल के पुराने स्नातक भी लाभ उठा सकते हैं। अब इस वाटिका में ४०० के लगभग औषधियाँ हैं। वैद्य गण तथा आयुर्वेद के पुराने स्नातक आकर इस वाटिका को देख सकते हैं और इसमें लगाई औषधियों के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त कर सकते हैं। अन्यान्य आयुर्वेदिक संस्थाओं के छात्र भी इस वाटिका से लाभ उठा सकते हैं। परन्तु छात्रों तथा वैद्यों को इस वाटिका से लाभ उठाने के लिए आने से पूर्व अध्यक्ष गुरुकुल वनस्पति वाटिका को पत्र लिखकर सूचित कर देना चाहिए ताकि उनकी रिहाइश का संतोष प्रद प्रबन्ध किया जा सके।

नोट:—इस वाटिका में विद्यमान औषधियों की सूची गुरुकुल के किसी अगले अङ्क में दी जा सकेगी।

स्वास्थ्य समाचार

ब्र० दयाशंकर चतुर्दश व० भीष्म एकादश ये दोनों ब्रह्मचारी टाइफाइड से रोगी हुये थे अब सब स्वस्थ हैं।

ब्रह्मचारी धर्मपाल पहली श्रेणी चोट का रोगी है। यह भी अब धीरे धीरे ठीक हो रहा है।

गुरुकुल में श्रावणी उपाकर्म

तारीख २६-८-२६ दिन सोमवार को गुरुकुल महाविद्यालय वैद्यनाथ धाम के श्रावणी उपाकर्म बड़े समारोह के साथ मनाया गया। सर्वप्रथम एक बृहद् यज्ञ हुआ। नवीन नव ब्रह्मचारियों का उपनयन संस्कार सम्यकतया संपन्न हुआ। तदुपरान्त आचार्य श्री प० वीरेन्द्र जी विद्यावाचस्पति साहित्याचार्य के सभापतित्व में एक सभा हुई। जिस में श्रावणी उपाकर्म के विषय में भिन्न भिन्न वक्ताओं ने सारगर्भित तथा मनोरंजक भाषण दिये।

अन्त में श्री सभापति जी ने श्रावणी की प्राचीनता तथा संस्कृत अध्ययन की आवश्यकता प्रदर्शित करते हुए अपना स्थान ग्रहण किया।

इस पर्व के उपलक्ष में एक विशेष भोजन का भी आयोजन कुल की ओर से किया गया था।

जन्माष्टमी के उपलक्ष्य में—

गुरुकुल एक सप्ताह का अवकाश लेता है अतः अगला अंक १५ सितम्बर को न निकल कर २२ सितम्बर को प्रकाशित होगा

चौधरी दुलासराय के प्रबन्ध से गुरुकुल प्रेस गुरुकुल कांगड़ी में मुद्रित तथा प्रकाशित।

रजि० नं० ए २६२७

गुरुकुल

सम्पादक —
वर्ष ४] साहित्यरत्न पं० हरिवंश वेदालङ्कार [संख्या २४ + २५

शुक्रवार ४ कार्तिक सं० १९९६ वि०; ता० २० अक्तूबर १९३९

विजयादशमी

[लेखक—साहित्यरत्न पं० हरिवंश जी वेदालङ्कार,
शास्त्री-काव्यतीर्थ-विद्यारत्न गुरुकुल काङ्गड़ी]

विजयदशमी का पर्व प्रति वर्ष शरद् ऋतु के प्रारम्भ में कि आकाश स्वच्छ, नदियों का प्रवाह निर्मल और सरोवरों में ल कमलों का हास विकसित हो उठता है, आता है। प्राचीन में आज के दिन राजा गण विजय यात्रा के लिये अपने घरों से ल पड़ते थे। जिन्हें की आवश्यकता नहीं पड़ती थी वे सघन में जाकर सिंह-व्याघ्र आदि हिंसक पशुओं का शिकार करके प्रजा की भलाई किया करते थे। राजपूताने में आज भी यह ति चली आती कि विजय दशमी आने पर राजपूत-गण नकली किले पर धावा करके उसे विजय करते हैं।

[illegible]जारों वर्ष बीत गए जब कि मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् [illegible] आज ही के दिन शैतानों के सर्दार लंकापति-रावण का [illegible] संसार में सत्य, धर्म, न्याय और सदाचार की पुण्य पताका [illegible]। तभी से आर्य जाति इस पर्व को बड़ी तत्परता के साथ [illegible]। इतने युगों के बाद भी इस त्यौहार की शान अभी तक ज्यों की त्यों बनी हुई है। विजयादशमी शक्ति-पूजन का त्यौहार इसके आते ही आज भी मृतप्राय क्षत्रिय जाति की रगों में वही रक्त बड़े वेग से दौड़ने लगता है। वस्तुतः मर्यादा पुरुषोत्तम [रा]म्चन्द्र का आदर्श चरित्र— जिसका सम्बन्ध इस पर्व से है— उदात्त है कि इसका प्रभाव मनुष्य के जीवन पर पड़े बिना [न]हीं सकता। सत्युग से लेकर आज तक हमारे [illegible] इस [illegible]

[illegible] की दृढ़ता और उनका सत्य प्रतिज्ञत्व "रामो द्विर्नाभिभाषते" [illegible] वाक्यों से वाल्मिकि ने अपनी रामायण में स्थान २ पर [illegible]या है। उनकी सागर की सी गम्भीरता और हिमालय की तरह [अच]ल धैर्य हमारे लिये सदा अनुकरणीय है। अभी राज्याभिषेक की [तै]यारियां हो रही हैं, दो घंटे बाद पिता की आज्ञानुसार उन्हें [१४] वर्ष के लिये वन में जाना पड़ता है। पर धन्य है राम का जिसके कारण उनके चेहरे पर जरा भी सिकुड़न नहीं। सुख के समय न हर्ष झलका और न दुःख के उदासी प्रकट हुई।" यह था राम का महान् धैर्य। [वस्तुत]ः यदि देखा जाय तो राम में वे सारे के सारे गुण [विद्यमा]न् थे जो कि एक आदर्श नेता में होने चाहियें। महर्षि [वाल्मी]कि ने कितनी खूबी के साथ उनमें नेता के योग्य गुण [दर्शाये] हैं:—

"वे प्रियदर्शन हैं, उनके कन्धे विशाल हैं, भुजयें बड़ी २ [उ]नकी गर्दन शंख के समान सुगठित है, वे महाहनु हैं। बुद्धिमान्, नीतिवान् और योग्य वक्ता हैं। धर्म का मर्म जानते हैं, सत्यप्रतिज्ञ हैं और दिन-रात प्रजा की भलाई में लगे रहते हैं। वेद-वेदांग तथा सर्वशास्त्रों के तत्त्वज्ञ हैं। संसार में अद्वितीय धनुर्धर हैं। सर्वलोक के प्रिय हैं, दीनबन्धु हैं, अलौकिक प्रतिभा सम्पन्न हैं।"

वाल्मीकि के उपर्युक्त वचनों से प्रतीत होता है कि उनका शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक विकास पूर्ण था और उन्होंने अपने काल में सच्चा नेतृत्व दिखलाया था। राम के ये सारे गुण आज यदि किसी नेता में आ जायें तो उसका प्रभाव हमारे लिए अतर्क्य होगा। राम का वैयक्तिक और पारिवारिक जीवन भी कितना अनुकरणीय और अपने आप में पूर्ण है इस बात को वाल्मीकि ने वन-गमन के प्रसंग में कितनी उत्तमता से दिखलाया है। माता कैकेयी को जो विनम्र उत्तर उन्होंने दिया है उसे सुनकर कौन गद्गद न हो जायगा।

रामायण में राम के आदर्श चरित्र के अतिरिक्त एक से एक बढ़कर सुन्दर चरित्र अंकित हैं। यदि आपको आदर्श-भ्रातृत्व, असीम साधना, अटूट धैर्य, त्याग तपस्या व लगन की शिक्षा लेनी हो तो अपने सामने भरत का चरित्र रखिये। यदि भ्रातृत्व और वीरता की देदीप्यमान मूर्ति के दर्शन करना चाहते हैं तो लक्ष्मण के रूप में उसे देखिये। यदि लोकोत्तर प्रभुभक्ति को साकार रूप में देखना चाहते हों तो हनुमान का कार्य स्मरण कीजिये। देवियों के लिये सीता का पातिव्रतधर्म युग युगान्तरों तक पथ प्रदर्शक बना रहेगा। विभीषण में भ्रातृ स्नेह के साथ २ न्याय की अदम्य भावना है। सुग्रीव और अंगद की प्रभुभक्ति प्रशंसनीय है।

भगवान् राम की कथा आज सम्पूर्ण भारत में ही नहीं, विश्व भर में विदित है। भारत में आज के दिन बड़े २ स्वांग रचे जाते हैं। कोई लड़का राम बनता है, कोई लक्ष्मण और कोई हनुमान। स्टेज [पर] खूब उछल-कूद मचती है, तरह २ नाच रंग होते हैं। रामलीला [illegible] अपने को पहिले के समान ही कोरा का कोरा [illegible] वाह-वाहियां लूटीं पर हाथ [illegible] हमने राम का नाटक खेला था जिसकी परिसमाप्ति विनाद [illegible] सीमित थी। तमाशा तमाशे के साथ ही समाप्त होता है। यदि हम भगवान् राम के चरित्र का शतांश भी अपने जीवन में ढालने का यत्न करते तो हमारा जीवन सोना बन जाता। यदि हम सचमुच राम के भक्त हैं तो हमें उनका अनुसरण कर के अपने जीवन को ऊंचा उठाना चाहिये। ऐसा करने से ही हम अपने को राम का भक्त, प्रेमी और अनुयायी कहलाने का गौरव प्राप्त कर सकते हैं; और तभी विजयादशमी का मनाना भी सार्थक होगा। यों तो प्रतिवर्ष विजयादशमी के दिन कागज़ का रावण फूंका जाता है। पर, क्या इससे आज संसार में पापों की कमी हुई है? यदि नहीं तो हमें ऊपर कही हुई बात को अपने आचरण से पालन करना चाहिये और उनके आदर्श चरित्र को अपने जीवन के सांचे में ढालना चाहिये।

रसायन औषधियां

[लेखक—कविराज श्री सत्यदेव जी वि० अ० वैद्यभूषण गुरुकुल कांगड़ी]

आयुर्वेद में औषधियों के दो भेद किये गये है। प्रथम वे जिनका उपयोग स्वस्थ अवस्था में करने से रस इत्यादि धातु उत्तम बनते हैं और ओज, बल व मेधा आदि की प्राप्ति होती है। दूसरी वे जो मुख्यतः रोग की अवस्था में काम आती है। इनमे से प्रथम प्रकार की औषधियों को रसायन और दूसरी औषधियों को रोगनुत् कहा गया है। चरक ने लिखा है कि—

स्वस्थस्योर्जस्करं किंचित् किंचिदार्तस्य रोगनुत्।
स्वस्थस्योर्जस्करं यत्तु तद्वृष्यं तद्रसायनम् ॥
दीर्घमायुः स्मृतिं मेधामारोग्यं तरुणं वयः।
प्रभावर्णस्वरौदार्यं देहेन्द्रियबलं परम् ॥
वाक्सिद्धिं प्रणतिं कान्तिं लभते ना रसायनात्
लाभोपायो हि शस्तानां रसादीनां रसायनम् ॥

अर्थात् स्वस्थ पुरुष को बल व ओज देने वाली औषधियां रसायन होती हैं। प्रशस्त व श्रेष्ठ रसादि धातुओं की प्राप्ति के उपाय को रसायन कहा जाता है। रसायन के सेवन से दीर्घ आयु, स्मृति, मेधा, आरोग्य, यौवन, प्रभा, कांति, बल और स्वर की मधुरता प्राप्त होती है। इसलिये स्वस्थ अवस्था में भी रसायन औषधियों का सेवन करते रहना चाहिए।

रसायन का अधिकार आज कल यत्र तत्र सर्वत्र रसायन व पौष्टिक औषधियों के विज्ञापन दृष्टिगोचर हो रहे हैं। जनता भी अपनी गाढी कमाई का पैसा रसायन सिद्धि के लिए तरह २ की दवाइयों में खर्च करती है। पूरा लाभ न होने पर निराश होकर रसायन-शास्त्र की ही निन्दा करती है। परन्तु इसमें रसायन औषधियों का दोष नहीं। किसी भी वस्तु से लाभ उठाने के लिए उसका अधिकारी होना आवश्यक है। आजकल रस[ायन का] प्रयोग अधिकतर इन्द्रियों को स्वतंत्र [करने के] लिए हो रहा है। रसायन का व्यय अधिक से अधिक विषय भोग के लि[ए किय]ा जा रहा है। परन्तु रसायन प्रयो[ग के लिए] आदि ऋषियों ने लिखा है कि—

तपसा ब्रह्मचर्येण ध्यानेन प्रशमेन च
रसायन विधानेन कालयुक्तेन आयुषा
स्थिता महर्षयः पूर्वं, नहि किंचिद्रसा[यनम्]
ग्राम्यानामन्यकार्याणां सिध्यत्यप्रयतात्मनाम्

अर्थात् महर्षि लोग तप, ब्रह्मचर्य तथा शम दम आदि साधनों के साथ [रसा]यनों का सेवन करते हुए दीर्घ आयु [का] उपभोग करते थे। विषयों में आसक्त को रसायन से कोई लाभ नहीं होता। रसायन औषधियों से लाभ उठाने के [लिए] जीवन को पवित्र, सरल, शान्त बनाना [चाहिए] तथा ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए।

अवस्था रसायन औषधियों [का सेवन] किसी भी आयु में किया जा सकता [है।] इसमें आयु का कोई नियम नहीं है।

रसायनविधि—रसायनविधि के [दो] भेद है। प्रथम—कुटीप्रवेशविधि—अर्थात् धूप, वायु व वर्षा आदि से बचकर कु[टी]

कर रसायन का सेवन करना। द्वितीय— वातातपिक अर्थात् जिसमें हवा और धूप आदि कोई बचाव नहीं किया जाता। इनमें कुटीप्रावेशिक विधि मुख्य व अधिक लाभदायक है पर कठिन है और सब लोगों के लिए यत्न साध्य नहीं है।

कुटीप्रवेशविधि—पवित्र तथा सुवासित स्थान में जहां कि सब साधन प्राप्त हो सकें इस विधि के अनुसार रसायन सेवन किया जाता है। इसके लिए नगर के पूर्व या उत्तर में कुटी बनवाए। कुटी उत्तम रीति से लम्बी चौड़ी और ऊंची होनी चाहिए। उसमें क्रम से एक के भीतर दूसरा और दूसरे के भीतर तीसरा इस प्रकार तीन कमरे होने चाहिएं। कमरों में सूक्ष्म झरोखे भी होने चाहिएं। कुटी ऋतु के अनुकूल स्वच्छ तथा [illegible] होनी चाहिए। कुटी में अप्रिय शब्द व स्त्रियों का प्रवेश न होना चाहिए। श्रेष्ठ वैद्य औषधियों व उपयोगी उपकरणों का [illegible] प्रबन्ध होना चाहिए।

पूर्व कर्म—जिस प्रकार मलिन वस्त्र पर रंग ठीक नहीं चढ़ता इसी प्रकार मलयुक्त मलिन शरीर पर रसायन औषधियों का ठीक प्रभाव नहीं पड़ता। इस लिए रसायन सेवन करने से पूर्व संशोधन करना चाहिए। [illegible] इस नियम पर विशेष ध्यान नहीं [illegible] जाता। [illegible]

संशोधन के लिए [illegible] वैद्य के आदेशानुसार तीन से सात दिन तक घृत व तेल का [illegible] करना चाहिए। इसके अनन्तर स्वेदन [illegible] चाहिए। स्वेदन के लिए कमरा बन्द [illegible] के नीचे अंगीठी पर पानी का [illegible] रखकर रसायनार्थी को खाट पर लिटा [illegible] आवश्यकतानुसार कपड़ा ओढ़ लेना [illegible] चाहिए। आंखों को बचाना चाहिए। भली प्रकार पसीना आजाने पर शरीर को पोंछ कर [illegible] दें। इस प्रकार शरीर के मल शिथिल हो जाते हैं और शोधन द्रव्यों से सुगमता से निकलने के योग्य हो जाते हैं। अब हरड़, आमला, गुड़, सैंधानमक, वच, विडङ्ग, हल्दी, पिप्पली तथा सोंठ का चूर्ण २ तो० मात्रा में गरम जल से तीन या पांच दिन [illegible]। इन दिनों में केवल [illegible] घृत के साथ जौ [illegible]

इस प्रकार कोष्ठ शुद्ध हो जाने पर अवस्था प्रकृति तथा सात्म्य को विचार कर उचित रसायन का प्रयोग करना चाहिए।

इतनी भूमिका के पश्चात् अब मुख्य २ रसायन औषधियों के प्रयोग लिखते हैं—

हरीतकी—हरड़ एक उत्कृष्ट रसायन है। यह उष्ण है और इसमें लवण के अतिरिक्त शेष पांचों रस विद्यमान हैं। इसके सेवन से मलबन्ध, उदावर्त, उदरकृमि, बवासीर, प्रमेह, ग्रहणी, पाण्डु आदि रोग नहीं होते। यह जठराग्नि को दीप्त करती है और बल वीर्य एवं आयु को बढ़ाती है। एक वर्ष तक निरन्तर सेवन करने से बाल श्वेत नहीं होते।

भूख प्यास तथा गर्मी से पीड़ित मनुष्य को इसका सेवन नहीं करना चाहिए। रूक्ष भोजन करने वाले के लिए भी हरीतकी हानिकारक है। इसी प्रकार प्रबल अजीर्ण की अवस्था में भी इसका प्रयोग निषिद्ध है।

सेवनविधि—हरीतकी का सेवन वर्षा ऋतु में सैंधव लवण, शरद् में खाण्ड, हेमन्त में सोंठ, शिशिर में पिप्पली, वसन्त में शहद और ग्रीष्म में गुड़ के साथ करना चाहिए। इसको ऋतु हरीतकी कहते हैं।

मात्रा— २ से ८ रत्ती तक

अनुपान—वसन्त तथा शरत् ऋतु में [illegible] पानी, ग्रीष्म में ठण्डा पानी।

[illegible] रसायन है यह शीत वीर्य है। इसमें [illegible] का अंश अधिक होता है जिससे कि रक्त अधिक पुष्ट होता है और हृदय बलवान् होता है। चरक ने लिखा है कि आयु को स्थिर करने वाली औषधियों में आमला सबसे श्रेष्ठ है।

सेवनविधि—आमले के चूर्ण में सम भाग मिश्री मिला कर शहद तथा घृत के साथ मिला कर चाटें।

आमलकी चूर्ण को इक्कीस बार आमले के ही रस से भावना दें और छाया में सुखावें। इसमें चौथा भाग पिप्पली और चौथाई भाग खाण्ड मिलाकर मट्टी के घड़े में डालकर वर्षा के प्रारम्भ में धान्य राशि या राख के ढेर में रखदें। वर्षा की समाप्ति पर इस का सेवन [illegible]

बुद्धि, स्मृति बल तथा आयु की वृद्धि होती है।

अनुपान— गाय का दूध

मात्रा ३ से ६ माशा।

त्रिफला—स्वस्थ तथा रुग्ण दोनों ही अवस्थाओं में इसका प्रयोग बहुत अधिक होता है। इसके सेवन से कोष्ठ शुद्ध होता है, अपान वायु का अनुलोमन होता है और वात पित्त तथा कफ तीनों ही दोषों की शान्ति होती है।

सेवनविधि—(क) भोजन के पहिले दो बहेड़ों का चूर्ण, भोजन के बाद चार आमलों का चूर्ण और भोजन के पच जाने पर एक बड़ी हरड़ का चूर्ण मधु और घृत के साथ खाए।

(ख) मुलहठी वंशलोचन, पिप्पली तथा मधु एवं घृत के साथ त्रिफला का सेवन करने से भी बल वीर्य की वृद्धि होती है और कास श्वास तथा प्लीहा आदि रोग दूर होते हैं।

(ग) लोह, अभ्रक, रजत व स्वर्ण इनकी भस्मों एवं वचा, विडङ्ग, पिप्पली, इन औषधियों के साथ पृथक् २ त्रिफला का सेवन करना भी लाभदायक है। यह भी घृत तथा मधु के साथ लिया जाता है। इस रसायन से रक्त आदि धातुएं पुष्ट होती हैं और [illegible]

पिप्पली—यह भी रसायन है और कास श्वास क्षय, बवासीर, संग्रहणी, पाण्डु, विषम ज्वर तथा तिल्ली और जिगर के रोगियों के लिए विशेष उपयोगी है।

सेवनविधि—पिप्पली चूर्ण को पलाश क्षार से भावित करके प्रति दिन प्रातःकाल मधु तथा घृत के साथ १॥ माशे की मात्रा में एक वर्ष तक निरन्तर खाया करें।

(ख) पांच छः, सात या दस पिप्पलियां प्रतिदिन एक वर्ष तक घृत शहद से खाया करें। दोनों समय भोजन से पहिले आधी मात्रा में लेना चाहिए; अर्थात् यदि पांच का सेवन करना चाहें तो अढ़ाई पिप्पली प्रातः और अढ़ाई साय को भोजन से पहिले लिया करें।

च्यवन प्राश— यह एक अत्यन्त प्रसिद्ध रसायन है। आमला, वंशलोचन, पिप्पली इन औषधियों की इस में मुख्यता है। बूढे च्यवन ऋषि इसके व्यवहार से फिर युवा हो गए थे; इसलिए इस का नाम च्यवनप्राश प्रसिद्ध है। इसका सेवन भी एक वर्ष तक करना चाहिए। यह खांसी, दमा, क्षय, दिल की धड़कन तथा मूत्र रोगों को दूर करता है। कुटी प्रवेश विधि से इस का प्रयोग करने से अभीष्ट रसायन की सिद्धि होती है। कुटी प्रवेश के बिना भी यह पर्याप्त प्रभाव दिखाता है।

उषः पान— प्रातः काल सूर्योदय से कुछ पहिले मुख या नासिका के द्वारा जल पीने से प्रतिश्याय तथा कास आदि रोग दूर होते हैं और आखों की दर्शनशक्ति बढती है। मुख की अपेक्षा नाक से जल पीना अधिक लाभदायक है।

शिलाजीत व मकरध्वज भी उत्तम रसायन हैं परन्तु उनका पूरा विवरण देने के लिए एक स्वतन्त्र लेख की आवश्यकता है अतः उनको भविष्य के लिए छोड कर अब कुछ मेधावर्धक रसायनों का वर्णन किया जाता है—

शंखपुष्पी—बुद्धि वर्धक औषधियों मे शंख पुष्पी श्रेष्ठ है। शंखपुष्पी चूर्ण १॥माशा स्वर्णभस्म ¼-½ रत्ती मिला कर शहद के साथ चाटलें और दूध पीलें। इस से बुद्धि, स्मृति तथा मेधा की वृद्धि होती है।

ब्राह्मी— शंखपुष्पी से भी ब्राह्मी का महत्व अधिक है। ब्राह्मी और मण्डूक पर्णी यद्यपि दो भिन्न २ औषधियां हैं तथापि दोनों के गुण एक से हैं। प्रातःकाल इसका स्वरस दो तीन काली मिर्चों के चूर्ण के साथ पीना चाहिए। ताजी ब्राह्मी न मिले तो सूखी ब्राह्मी को पानी में भिगो कर रस निकाल कर पिएं।

(ख) गर्मियों में बादाम, चारों मगज, [illegible] ३-४ माशे ब्राह्मी घोट कर छान कर मिश्री मिला कर पिए।

(ग) एक पाव गाय के दूध मे १ सेर पानी डालकर दो तोला ब्राह्मी पकाए। पानी के जल जाने पर दूध को छान कर मिश्री मिला कर पिए।

(घ) सूखी ब्राह्मी को कूट कर कपड छन कर लें, और २-३ माशे तक गाय के दूध के साथ फांक लें।

(ङ) ब्राह्मी घृत तथा सारस्वतारिष्ट आदि शास्त्रीय प्रयोग भी विशेष लाभदायक है।

वचा— भूल रोग या दिमाग की कमजोरी के लिए यह भी उत्तम रसायन है। वचा को कूट कर ब्राह्मी के रस से भावना देकर छाया में सुखालें। डेढ माशा [illegible] के दूध से प्रातःकाल लिया करें।

शिशुओं के लिये रसायन—

(क) वचा, ब्राह्मी और इला[illegible] चूर्ण कपड छन कर एक या दो च[illegible] घी और शहद के साथ चटाए।

(ख) शहद में शुद्ध सोना घिस[illegible]

(ग) आमले का चूर्ण १ [illegible] स्वर्णभस्म ½ चावल घी और शहद मे[illegible] कर चटाएँ।

(घ) बडे बालकों को च्यवनप्रा[illegible] माशा से तीन माशा तक शहद के सा[illegible] चाहिए।

आयुर्वेद का पुरातनत्व

[लेखक—श्री डा० इन्द्रसेन जी प्रभाकर, आयुर्वेदालंकार
B.A.,M.B.B.S,D.T.M. प्रोफेसर आयुर्वेदिक कालिज, गुरुकुल कांगड़ी]

पाठकों ने आयुर्वेद के पुरातनत्व के सम्बन्ध में भारतीयों के विचार तो पुस्तकों तथा पत्र पत्रिकाओं में पढ़े ही होंगे पर इस लेख में पाश्चात्यों के विचारों का प्रदर्शन कराया जाता है। अनेकों पश्चिम देशवासियों ने आयुर्वेद के सबसे पुराने होने के दावे को भी माना है। डाक्टर मूथु उन्हीं में से एक सज्जन हैं। उनके विचारों को ही प्रथम बार इस लेख में प्रस्तुत कर रहा हूं। चूंकि ये विचार पाश्चात्य देशवासी के हैं इसलिए इनका विशेष महत्व है।

"भूमिका—मैं जनसाधारण का भारतीयों की चिकित्सा पद्धति से परिचय कराना चाहता हूं। प्रायः यूरोपियन विद्वान् अभी तक आधुनिक भारत की पराधीनता की स्थिति के कारण उसकी सभ्यता के पुरातनत्व को स्वीकार करने का साहस न करते थे। परन्तु हड़प्पा और मोहनजोदड़ो में जो गवेषणाएं हुई हैं उनसे [illegible] की सभ्यता का पासा पलट गया है। [illegible] सभ्यता के सबसे पुरानी होने में [illegible] भी सन्देह न रहा है।

"सदियों के पीछे सदियां बीत गईं कि [illegible] से सिन्धु दरिया में हर साल आने [illegible] तूफानों से आज तक उसके समीपवर्ती [illegible] जलाप्लावित होते रहे थे। न [illegible] होते ही रहे थे, परन्तु वे प्रदेश हर साल [illegible] और रंग में नए ही ढङ्ग के नजर आते [illegible] उन पर मट्टी की अनेकों तहें चढ़ चुकी [illegible] इस सरिता के उदर में कितनी ही वैभव [illegible] आबादियां समा चुकी थीं। इस के [illegible] वक्षस्थल के अन्तस्तल में आज [illegible] साल पुराने हमारे पूर्व पुरुषों के [illegible] कारनामे और वर्तमान इतिहास से भी [illegible] भारतीय सभ्यता छिपी पड़ी थी। इस [illegible] किसे मालूम था? मोहन मार्शल के [illegible] भारतीयों के पसीने और उसके प्रयत्न से इस दरिया का उदर चीर दिया गया और यह सब कुछ मालूम हुआ।

"मोहनजोदड़ो की खुदाई क्या हुई, कि नगर पर नगर निकले और निकलते ही चले गये। इस प्रकार उन साहसी एवं परिश्रमी अन्वेषकों ने कई नगर निकाल डाले। उन्होंने उन भूगर्भ से निकाले आलीशान शहरों के अन्दर क्या पाया? हाट, बाजार, निवास-मन्दिर, गलियां, कूचे और कूवें। कूवें भी ऐसे जो कि ईंटों के पक्के फर्श वाले स्नानगृहों से संयुक्त थे कि जिन स्नानगृहों के गन्दे पानी के निकलने का संतोषप्रद प्रबन्ध था। आज की बीसवीं सदी का Water carriage system जिसके कि ईजाद करने का इस सदी वालों को अभिमान है उन ५ हजार पूर्व के नगरों में मिलना अभूतपूर्व घटना थी। उन अन्वेषकों ने वहां से रत्नों के तरह २ के सामानों, सोने और चांदी के कर्णाभूषणों, हाथ के कंगनों, शरीर के विचित्र विचित्र अलंकारों, अत्युत्कृष्ट हस्तकौशल की द्योतक मोहरों, छोटे बड़े और विविध (Artistic) शकलों के मट्टी के बर्तनों और अन्य अद्भुत वस्तुओं को पाया।

"जोहन मार्शल अपने शब्दों में कहते हैं कि—'सोने के आभूषण आकार प्रकार, रंग ढंग, नक्काशी, कारीगरी और सफाई व खुदाई में ऐसे थे कि लण्डन की बोण्ड स्ट्रीट के जौहरियों के जवाहिरातों को मात करते थे।' और ये थे आज के इतिहास से भी ५००० साल पुराने जमाने के। वास्तव में, ये असाधारण रूप से सुदृढ और सुन्दर आवास, स्नानागार, चमत्कारिक अलंकार एवं सफाई के लिए आधुनिक समुन्नत सभ्यता से टक्कर खाने वाली प्रणाली विधि (Drainage system) तथा अन्य रहस्यमय अनुसन्धान, इस बात के पक्के सबूत हैं कि कभी विलासिता तथा सामाजिक सम्बन्धों में भारतीय, मोसोपोटेमिया और मिश्र से आगे बढ़े हुए थे। यही नहीं पर यह भी कि अर्वाचीन सभ्यता के मदमातों के कदमों से भी कदम मिलाते थे।

"जहां तक ज्ञात है— मोहन मार्शल और उसके सहायकों ने भूमि के गर्भ में विलीन हुए केवल नौ नगरों का ही उस गम्भीर सिन्धु की उदर दरी से उत्थान किया था। अब भी यह अनुमान किया जाता है कि और कई नगर अभी अन्दर दबे हुए हैं, जिन्हें कि खोदा जाय तो उनका समय ७००० या ६००० ईसवी से पहिले का ही ठहराना होगा। जब तक कि वे नगर दृष्टिगोचर नहीं होते तब तक इस प्रकार के मन बहलाव के वृथालापों से क्या? निःसन्देह यह भूगर्भ-विज्ञान की गवेषणाएं प्राचीन भारत के इतिहास के कोरे पड़े हुए कुछ पन्नों को पूरा करने में बहुत मदद करेंगी और साथ ही साथ भारतीयों के इस दृढ़ विश्वास को और भी पुष्ट करेंगी कि हमारे पूर्वजों ने ही इस सप्त-सिन्धु (सातनदियों का देश) प्रदेश को अपने चरणों से पवित्र किया था। इसे ही अपना निवासालय चुना था अर्थात् यही आर्य सभ्यता का पहिला पलना बना था।

"चूंकि इन खोजों में सिन्दूर भी मिला है जो कि न केवल यही बताता है कि पहिले पहिल आर्यों को ही ज्ञात था कि इससे पारा कैसे तिर्यक् पातित किया जाता है परन्तु इससे भारतीय इस बात का दावा भी भर सकते हैं कि पारद और उसके प्रयोगों को बनाने का श्रेय उन्हीं को ही है और संसार के किसी दूसरे देश वासी को नहीं।

"भारतीय आर्य-सभ्यता का पुरातनत्व—समुपस्थित समय में प्राप्त होने वाली सामग्री को स्मृति से न भुलाते हुए यदि सचमुच निष्पक्षपात की दृष्टि से देखें तो आयुर्वेद के इतिहास का उद्गम सृष्टि-उत्पत्ति के प्रारम्भ से मानना पड़ता है। भारतवर्ष वैज्ञानिक, दार्शनिक, पौराणिक, धार्मिक, व्यावसायिक तथा शिल्प और कविता के ही क्या प्रत्येक क्षेत्र में अग्रगण्य रहा है। इसकी चकाचौंध कर देने वाली वस्तुएं और हरेक विद्या की दक्षता, इसकी उज्ज्वल कीर्ति को दिदिगन्त में, फैला

रही हैं। इनके बूते डंके की चोट से उद्घोषित किया जा सकता है कि संसार में भारत ने ही सब से पहिले इन विज्ञानों और विद्याओं की ओर हाथ बढ़ाया था। इनको हस्तगत करने के लिए इसी ने पहिले पहिल साहस और पराक्रम के आश्चर्य जनक कृत्य किए थे वे यूरोपियन दिमाग जो कि इस की विद्या और विज्ञान के मूल को कहीं यूनान से खोज निकालने के आदी हुए हुए हैं, हो सकता है कि अन्धकार में पड़े हुए भारतीयों के इस दावे के महत्व को कि 'आयुर्वेद सब से पुराना है" न समझ सकें। पर यह सब है कि डाक्टर वाइज और न्यूबेर्जर जैसे व्यक्तियों ने कभी का यह एलान किया हुआ है कि वर्तमान समय की कुछ चिकित्सा-पद्धतियों में भारतीयों की चिकित्सा-पद्धति ही सब से पुरानी है। विल्सन, हेनी, एल्सले, रोयले, दत्त, ठाकुर साहब, जौली, होर्नले प्रभृति अनेकों विद्वानों ने भी यही पुष्ट किया है कि संसार का आदि इतिहास भारतवर्ष का इतिहास ही है।

यद्यपि यह सर्वसम्मत हो चुका है कि बुद्ध के समय (ईसा से पूर्व की छठी शताब्दी में) आयुर्वेदीय चिकित्सा पद्धति काफ़ी ज़ोरों पर प्रचलित थी पर हमने तो इस से भी कहीं पूर्व के समय की ओर दृष्टि डाली है। वर्तमान युग में भी हिन्दुओं की सभ्यता का सबसे पुराना होना रस्मों व रिवाज़ों के आधार पर स्वयं सिद्ध है पर विलक्षण मति के कुछ पाश्चात्य विद्वानों ने इसे संशय का विषय बनाए रखने की ही जिद्द ठाने रक्खी है। पर हाल ही में इतिहास के तथा संस्कृत भाषा के प्रखर पण्डित कुछ भारतीय विद्वानों ने अपनी गवेषणाओं से 'भारतीय सभ्यता सब से पुरानी है' इस आशय को पत्थर की लकीर बना दिया है। वस्तुतः इनके प्रशंसनीय कार्यों से जो नींव पड़ी है वह बहुत पक्की है। तिलक, दास, मुकर्जी, बेनर्जी, सरकार, आदि प्रसिद्ध भारतीय इतिहासज्ञों ने ऋग्वेद के आधार पर (जो ऋग्वेद कि संसार का सब से पुराना ग्रन्थ है और आर्यों के विचारों का दर्पण है) आर्यों की जीवन का सृष्ट्युत्पत्ति के समय से जो सम्बन्ध था उसे संसार की आंखों के आगे कर दिया है। जैसे कि बेबीलोनिया और असीरिया के इतिहास शिलालेखों, खण्डरातों और बचे खुचे चिन्हों से खोजे जा चुके हैं उसी प्रकार इन वैदिक साहित्य के विद्वानों ने मानवीय शक्ति के क्रमिक विकास को दिखाते हुए प्राचीन आर्यों की सभ्यता संस्कृति व चिकित्सा-पद्धति के प्रादुर्भाव तथा उन्नति के इतिहास का अनुसन्धान कर लिया है।

भारतीयार्य-सभ्यता की प्राचीनता—

आर्यों की चिकित्सा पद्धति का इतिहास उनकी सभ्यता के इतिहास से पृथक् नहीं किया जा सकता। अतः आयुर्वेद के इतिहास के अनुशीलन के लिए आर्यों की पूर्व-पुरातन सभ्यता के इतिहास का ज्ञान भी नितान्त आवश्यक है। जैसे कि जौ-र्टनर्न का कहना है कि— 'कोई भी राष्ट्र इस समय सभ्यता तथा धर्म की पुरातनता के सान्मुख्य में भारतीयों से आगे नहीं बढ़ सकता'—बिल्कुल ठीक है। इस में ज़रा भी सन्देह नहीं कि विश्व के आदि इतिहास में सर्व प्रथम स्थान भारत का ही है। बैक्टीरियन कागज़ात जो कि काश्मीर से प्राप्त हुए थे और जिन्हें कि विलियम जोन्स यूरोप ले गए थे (भारतीय राजाओं की वंशावली थे) वे इस बात के प्रमाण स्वरूप हैं कि भारत की सभ्यता ईसा से ६००० वर्ष पूर्व भी अपने उन्नत स्वरूप में विद्यमान थी। इस के बाद इसी बात की सिद्धि वैदिक मन्त्रों और सूक्तों से प्राप्त इतिहास से हो रही है। ये सूक्त या मन्त्र इस बात का मण्डन कर रहे हैं कि आर्यों ने एक स्थान से फैल कर भूमण्डल के भिन्न भिन्न भूभागों पर अपनी वंश वृद्धियां कीं। वेही भूभाग समय आया अपनी अपनी सभ्यता के केन्द्र कहलाने लगे। ये आर्यों के उपनिवेश पहिले फारस, चीन, मिश्र फिनीशिया और बैबिलोनिया देशों में बसे। तदनन्तर यूनान और रोम में; और काफी समय बाद, सुदूर पूर्व में अर्थात् पीगू, सियाम, कम्बोडिया, जावा, सुमात्रा, बोर्नियो मलाया, और प्रशान्त महासागर के द्वीप समूहों में। ऐसा भी विचार है कि इंगलैण्ड के ड्रूइड बौद्धमतावलम्बी भारतीय ब्राह्मण थे और

गणित की एक दो तीन आदि संख्या के आविष्कारक तथा दशमलव सिद्धान्त के जन्मदाता भारतीय ही थे। जैसा कि प्रो० मोनियर विलियम का कहना है— कि भारत ने ही बीजगणित और रेखागणित को दे कर ज्योतिष के सिद्धान्तों के साथ सम्बन्ध किया था, सोलहों आने सत्य है। ध... तो कहना ही क्या। इसके पीछे तो इतना पड़े थे कि अपने दैनिक जीवन को धार्मिक प्रबन्धों का पुतला बना डाला परिणामतः निःसंकोच भाव से कहा जा... है कि भारतीयों के ज्योतिष, गणित शारीर आदि विज्ञान अत्यन्त प्राचीनतम के हैं और सर्वप्रथम हैं। आज दिन भी के कासिनी, बेल्ली, जेन्टिल और प्ले... प्रभृति विद्वान् एक स्वर से कह रहे हैं हिन्दुओं के ज्योतिष सम्बन्धी कुछ निरी... (Observations) ऐसे हैं जो कि निः... ईसा से कम से कम ३ ०० वर्ष पूर्व ही गए होंगे। इन निरीक्षणों का इस समय ... का होना संभव ही नहीं है। न इतना बल्कि यह भी कि इन निरीक्षणों करने के लिए ज्योतिष का पर्याप्त समुन्नत में होना लाज़मी है। इसमें भी क्या श... कि ज्योतिष के इस उन्नति के शिखर आरूढ़ होने के लिए आर्यमण्डल... कितनी ही सदियां ली हों। सब पुरानी जा... में भारत ही केवल है कि जो अहोरात्र ... काल के विभागों और आने वाले काल की परिक्रियों का बिलकुल ठीक ... रखता था। भारतीय ज्योतिष की मौलि... भी इसके बहुत पुराना होने में अत्यन्त प्रमाण है ईसा से १२ सदी पीछे पर ... से कई शताब्दी पहिले भारत में भा... नामी विद्वान् गुरुता शक्ति के नियम ... Differential Calculus के सिद्धान्तों बता गया है। रेखागणित का ४७ साध्य जो कि पिथेगोरस के दिमाग की उ... समझा जाता है, हिन्दुओं ने पिथेगोरस कई सौ साल पहिले ही सिद्ध कर लिया हु... था। उन पुराने भारतीयों ने हितोपदेश ... पुस्तकों में बच्चों की शिक्षा के लिए जो ... और सुबोध कथा कहानियां गाथाएं व ...

में अनूदित होगई; और आज तक जगत् में निर्विवाद बच्चों की शिक्षा श्यक अंग बनी हुई हैं।

जो कहां वैदिक समय, और उस समय भारतीय लेखनकला से अभिज्ञ थे। ये पाश्चात्यों की पक्षपात की आंखो से भी के अनुसार भी ४००० ई० पू० का है। जौनेस्टर्नी भी इतना तो निर्विवाद है कि भारतीय २८०० ई० पू० में धार्मिक पुस्तकें लिखित रूप में रखत ार्यों ने ऐसी भाषा—संस्कृत को—निर्माण था जो कि वर्तमान काल के समृद्ध के समृद्धि-शाला देशों की सभ्य भाषाओं ा की दृष्टि से कई कई दर्जे अच्छी है में क्या, बोलने मे क्या, अलंकार, सौन्दर्य, वाक् माधुर्य, श्रुतिसाम्य आदि गुणों में सर्वांग सम्पूर्ण है। भारत की भाषाओं की मा है। यूरोपियन भाषाओं । निर्विवाद है। ईसवी सन शुरू होने से पहिले भारत में रुई का कागज बनता था। हिन्दुओं के धार्मिक ग्रन्थ वेद, उपनिषदें, गीता और कई अन्य ग्रन्थ आधुनिक जगत् में कुल संसार के साहित्य में अग्रगण्य हैं। यह बात तो किसी से भी छिपी नहीं कि पूर्व ऋषियों के दार्शनिक चामत्कारिक गुणों को दुनियां खुले दिल से गा रही है। उन भारतीय पूर्वजों की व्यावसायिक प्रगति ऐसी ही बढ़ी चढ़ी थी जैसे कि भारत के विज्ञान और दर्शन। वे पूर्वज इतने बड़े बड़े सामुद्रिक पोतों (जहाजों) का निर्माण करते थे कि सैकड़ों आदमी तो जिनके केवल खेने वाले ही होते थे। पुनः इन जहाजों से वे बड़ी २ सामुद्रिक यात्राएं करते और निर्विघ्न समाप्त करते थे। वे इस तरह चांदी सोना, शाल, दुशाले, मखमल, कौशेय, चीन इत्यादि तरह २ के ऊनी रेशमी सनी और सूती कपड़ों का व्यापार करते थे। मोतियों, लाल, नीलम और अनेकों मणियों व रत्नों को दूर दूर देशान्तरों में भेजते थे। उसी भारत से सोलोमन राजा अपने व्यापारी जहाजों में भारत से चन्दन, हाथीदांत बहुमूल्य रत्न, बन्दर मोर, आबनूस और सोना भरकर ले गया था। उसके समय से पूर्व भी भारत का दूसरे देशों खाल्डिया, बेबीलोन, असीरिया पैलेस्टाइन इत्यादि से मसालों सुगन्धित द्रव्यों सुगन्धों, मूल्यवान् रत्नों का बहुत व्यापार था। अलेक्ज़ेण्डर के समय भी भारत के बड़े बड़े धनिक महाजन व व्यापारी व्यवसाय के लिए मिश्र, फारस यूनान और रोम को जाते थे। तो इस सबसे यह बिल्कुल स्पष्ट है कि दुनिया के कोने कोने में जहां तहां सर्वत्र ही सभ्यता का प्रचार उत्तर भारत के इस सप्त सिन्धु देश से हुआ है। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि संसार की आदि सभ्यता का प्रथम स्रोत यही देश है। (क्रमशः)

गुरुकुल फार्मेसी की औषधियों पर
हजारों में से कुछ सम्मतियां

श्री जगदत्त जी एस. डी. ओ. डालटन गंज पलामूं

मुझे यह प्रमाणित करते हुए हर्ष होता है कि मैंने आयुर्वेदिक फार्मेसी गुरुकुल कांगड़ी की कुछ औषधियां का परीक्षण किया है और अनुभव पर वे बिलकुल शुद्ध और लाभदायक सिद्ध हुई हैं। मुझे गुरुकुल को देखने का भी सौभाग्य प्राप्त हुआ है और मैं यह साहस पूर्वक कह सकता हूं कि यहां अन्य शिक्षा के साथ २ आयुर्वेद की शिक्षा भारत के प्राचीन गौरव को फिर से जीवित करने के उद्देश्य से दी जाती है किसी व्यापारिक दृष्टि से नहीं।

श्री डा० वी कृष्ण मेनार, जनरल हस्पताल कोचीन स्टेट

मैंने आयुर्वेदिक फार्मेसी गुरुकुल कांगड़ी की कुछ भस्मों की तुलना अंग्रेजी कम्पनियों की भस्मों के साथ की है। मेरा विश्वास होगया है कि अंगरेजी कम्पनियों में बनी भस्मों के (विशेषतः स्वर्ण, चांदी व लोहे की भस्म) स्थान पर इनका प्रयोग बहुत सफलता पूर्वक किया जा सकता है।

श्री प्रो० मदनलाल कपूर, प्रो० रसायन गवर्नमेंट-हाई स्कूल सिबी (बिलोचिस्तान)

ब्राह्मी तैल मैं कुछ रोज़ से इस्तेमाल कर रहा हूं, उस से मुझे बहुत अधिक लाभ हुवा। एक दिन तो ऐसा हुआ कि मेरा सिर बहुत चकरा रहा था और आंखों में दर्द हो रही थी, मैंने थोड़ा से तेल सिर पर मला। इसने जादू का असर किया। तुरन्त आंखों में रोशनी आगई। इस तेल को मैं रोज़ इस्तैमाल करता हूं, अब समाप्त हो गया है, कृपया शीघ्र भेजिए।

श्री रघुवंश लाल बिरदपुर जि० बस्ती

कृपया १० तोले सत शिलाजीत शीघ्रातिशीघ्र भेजिए। इससे मेरे मूत्र में शर्करा व खांड की प्रतिशतक मात्रा बहुत कम हो गई है।

डा० मन्तराम जी भण्डारी पी. एम. प्रैक्टिशनर पो० नबीसर टाऊन मीरपुर खास (सिंध)

निवेदन है कि बन्दा ने आप से एक शीशी भीमसेनी सुरमा की मंगवाई थी। इसे कुछ मरीजों पर आजमाया था। सुरमा निहायत मुफीद साबित हुवा। लिहाज़ा अब २ शीशियां वी. पी. से भेजकर मशकूर फरमावें।

डा० कविराज श्री सोमप्रकाश जी आयुर्वेदालङ्कार क्वेटा (बिलोचिस्तान)

मैं गुरुकुल कांगड़ी की कुछ एक औषधियों के सम्बन्ध में लिखे बिना नहीं रह सकता—

दाद का मलहम—मैंने बहुत पुराने रोगियों पर इसका परीक्षण किया। मलहम ने जादू का असर किया। परिणाम स्वरूप वे यहां बैठते हैं इसकी प्रशंसा करते हैं।

भीमसेनी दन्तमञ्जन पायोरिया के एक बहुत पुराने मरीज़ पर इसे आजमाया गया। इसको डाक्टरों ने दान्त निकलवा देने की सम्मति दी थी। लगातार प्रयोग करने का परिणाम यह हुवा कि अब सब दांत ठीक हैं।

सारिवाद्यासव— इस औषधि का विशेष स्थान है। मैंने बहुत से खून खराबी के रोगियों पर इसका व्यवहार किया है। कुछ पुराने सिर के दाद के रोगी, कुछ शरीर के अन्य स्थानों पर खुजली के रोगियों को देने से नब्बे प्रतिशतक सन्तोषजनक परिणाम रहा।

राजवैद्य डाक्टर वर्मा घण्टाघर जोधपुर—

आपने जो इच्छाभेदी की गोलियां भेजी हैं, वे अत्युत्तम विधि से निर्माण की गई हैं। मुझे बड़ी खुशी है कि भारतवर्ष में विधि पूर्वक दवाइयां तयार होने लगी हैं, इससे आयुर्वेद की बड़ी उन्नति होगी। गुरुकुल जैसी संस्था ने यह कार्य हाथ में लिया तो इसमें कोई शक नहीं कि दवाइयां बनने में त्रुटि न रहेगी।

ठाकुर जगन्नाथसिंह एम. डी. वी बरखेरा हरदोई

इस साल गुरुकुल उत्सव पर मैंने ब्राह्मी तेल खरीदा था। इससे उत्तम तेल बालों के लिए मैंने नहीं पाया।

ठा० कावलासिंह तहसीलदार किश्तवाड़ काश्मीर (स्टेट)

मुझे यह लिखते हुए अत्यन्त प्रसन्नता होती है कि आप के भीमसेनी सुरमे ने मेरी माता की आंखों को ठीक करने में आश्चर्य जनक लाभ किया है।

चिकित्सक

(कविता)

[श्री सत्यभूषण 'योगी' वेदालङ्कार]

अर्ध निशा है, सां सां की आवाज़ सुनाई पड़ती है
और खग मृग सब सोये हैं औ' सोई पीड़ित धरती है।
कौन अरे, देखो वह सुन्दर मोहन सात्विक भाल लिये है
दृढ़ निश्चय से गर्वित, मद से माती बांकी चाल लिये है।
चला जा रहा निर्जन पथ पर मिटने का अरमान लिये है
श्वेत केशमय वृद्ध देह में यौवन का तूफ़ान लिये है।
अनिश दाम करता है फिर कुछ भी नहीं थकान छुये है
यह धन्वन्तरि, जान डाल दे मुर्दों में वरदान इसे है।
इसकी कठिन तपस्या की क्या उपमा त्रिभुवन बीच कहीं है
उसकी स्नेह सुधा ही सूखे तप्त जगत को सींच रही है।
सूर्य बड़ा उपकारी है वह दिन भर कठिन तपस्या करता
राह दिखाता भटकों को सब अग जग में नवजीवन भरता।
पर वह भी रजनी आने पर थकित विसुध हो सो जाता है
निद्रा की प्यारी गोदी में पड़ जाता है खो जाता है।
फिर उसको परवाह न रहती कोई भटके मरकर आहें
मुंदे दुखित कमलों की श्रेणी चाहे कितने अश्रु बहाए।

पर यह बड़ा हुआ सूरज से रजनी में भी जगता रहता
बबस दुःखित मानवता की पीड़ाओं को हरता रहता।
दुनियां भर के अन्धकार को सूर्य प्रतापी दूर भगाता
फिर भी कितने भग्न दिलों में घोर अन्धेरा रह ही जाता।
भग्न दिलों के घोर निराशा-तम को यह ही दूर भगाता
होगा ईश्वर स्वर्ग विधाता, धरती का तो यही विधाता।
मेरा प्रतिद्वन्द्वी यह भू पर ईश्वर को बस खौफ यही है
रस्साकशी रहती दोनों में कोई खेल मखौल नहीं है।
कई बार बेचारे ईश्वर को मुंह की खानी पड़ती है
उसकी ईश्वरता लज्जित हो धरती में ही जा गड़ती है।
खून पसीना एक बना कर यह मानवता को पनपाता
गरम आंसुओं से दुखियों की पीड़ा को कर सेवा मिटाता।
मीठे निज अनमोल वचन से सुधा सिन्धु बेमोल लुटाता
और दवाई की क्या महिमा इसका दर्शन रोग भगाता।
इसे देख ही बीमारी की बिल्कुल जान निकल जाती है
वह बेजान लाश फूंकने औषध काष्ठ काम आती है।

शिशु का सर्वोत्तम पेय

[लेखक—डा० पी. बी. मुल्तानी गुरुकुल कांगड़ी]

सृष्टि के आदि में जीवन के लिए संघर्ष न था। उस समय जीवनोपयोगी वस्तुएं आसानी से और अत्यन्त साधारण परिश्रम से उपलब्ध हो जाती थीं। हजारों वर्षों से जन-संख्या के साथ २ जीवनोपयोगी वस्तुएं अधिक परिश्रम से प्राप्त होने लगीं। यही आज का जीवन संग्राम है। इस जीवन संग्राम के युग में दो मुट्ठी चने नसीब होना खुशकिस्मती की निशानी समझी जाती है। यह बीसवीं सदी है, इसमें नई रोशनी के सुधारक मनिष्य की सन्तान को मजबूत करने के लिए बल देते हैं। गरीब भारतीय दूध कहां से लाएं? वे तो दो मुट्ठी अनाज के लिए भी तरसते हैं। दुःख का विषय है कि समर्थ भारतीय जिन्हें ईश्वर की कृपा से दोनों समय भर पेट रोटी मिल जाती है, वे भी दूध के विषय में काफी असावधान रहते हैं। स्तनपायी प्राणी के बच्चे के लिए दूध ही सर्वोत्कृष्ट भोजन है। इसी दूध को पीकर बच्चा भावी जीवन के लिए समर्थ बनता है। माता का महत्व शायद इसी-लिए अधिक आंका जाता है कि वह अपने हृदयगत रक्त को पेय रूप में पान कराके मांस के पिण्ड को भी एक समर्थ पुरुष बना देती है। नवजात शिशु के लिए अशुद्ध दूध कितना हानिकर होता है और उसका निराकरण किस प्रकार किया जाता है इस का विवेचन करना ही इस लेख का विषय है।

वर्तमान वैज्ञानिक भोजन के मूलभूत तत्वों को छः विभागों में बांटते हैं। इन्हें प्रोटीन, कार्बोज, वसा, लवण, जल और विटामिन नाम से पुकारते हैं। प्रायः प्रत्येक भोजन में ये छहों चीजें किसी न किसी अंश में विद्यमान होती हैं। इसीलिए इनके मिश्रण को भोजन' कहा जाता है। जिस भोजन में उपर्युक्त छः प्रकार के तत्व पूर्ण रूप में पाये जाते हों उसे 'पूर्णभोजन' कहते हैं। अभी तक वर्तमान वैज्ञानिक इस श्रेणी के दो ही भोजनों का पता लगा सके हैं। शाकाहारियों के लिए दूध और मांसाहारियों के लिए अण्डा।

दूध के पूर्णभोजन होने का मुख्य कारण यह है कि दूध किसी भी प्राणी के बच्चे का भोजन है। जब बच्चा पैदा होता है तो उसके दांत नहीं होते और साथ में उसका पेट भी बहुत नरम होता है, इस कारण से उसके लिये किसी भी भोजन का चबा सकना कठिन होता है। परमात्मा ने इस बेचारे की गुजर के लिए माता के स्तन में दूध की उत्पत्ति का प्रबन्ध किया है। इसी दूध ने ही उस बच्चे के शरीर को मजबूत करना होता है। इसीलिए इस दूध का पूर्ण भोजन होना वस्तुतः ईश्वरीय देन है। बच्चा, पैदा होने के बाद जो दूध माता के स्तन से पीता है वह दस्तावर होता है। यह भी भगवान् की असीम कृपा है क्योंकि माता के पेट में स्थित बच्चे की आंतों में पर्याप्त मल होता है। प्रसव के बाद उसकी आंतों में से मल [illegible]लना आवश्यक हो जाता है और वह दस्तावर दूध के पीने से निकल जा[illegible]

दुग्धपान और प्रसूता—य[illegible] प्रसूता स्त्री के स्वास्थ्य से भी सम्बन्[illegible] है। बच्चा पैदा होने के बाद जब गर्भाशय खाली हो जाता है तो वह स्तन के लिये उत्तेजक होती है। इ[illegible] की उत्तेजना से गर्भाशय अपेक्षया सिकुड़ता है। इसलिए जो माता अप[illegible] को जितना अधिक दूध पिलाती है [illegible] उसका स्तन अधिक उत्तेजित होता[illegible] माता को किसी भी प्रकार की पीड़ा का अनुभव नहीं होता, न ही वह होने पाती है। इसके साथ ही माता प्रसन्न और निश्चिन्त रहेगी, उतनी ही उत्पत्ति अधिक होगी और दूध गुणों वाला बन सकेगा। इसी तरह सन्तान भी अच्छी बनेगी। परन्तु [illegible] देखते हैं कि बच्चा पैदा होते ही म[illegible] है या दो तीन मास बाद मरता है। य[illegible] भी रहे तो न जाने कितनी बीमारिय[illegible] पीछे लगी रहती हैं। हमारी सन्तानें दिन निर्बल होती जाती हैं। हमारी का दूध या तो बढ़ता ही नहीं बढ़ता भी है तो शीघ्र ही [illegible] जाता है। [illegible] भी हो तो वे कम पसन्द करती हैं। दाइयों से [illegible] दूध पिलवाती हैं। इससे उनको हानि है और साथ में उनके बच्चों को भी माताओं को महज अपनी आराम पस[illegible] कारण भारत की भावी सन्तान को इ[illegible] से बरबाद नहीं होने देना चाहिए।

बच्चे को आयु की दृष्टि से निम्नलिखित तालिका के अनुसार एक बार दूध पिलाना हेए। इससे अधिक दूध शिशु के पेट में आ नहीं सकता।

तालिका

समय	कितना पेट में आ सकता है।
पैदा होने के समय	२॥ से ४ तोला
पहिले महीने के अन्त में	एक छटांक
चौथा महीना	ढाई छटांक
छटा महीना	तीन सवा तीन छटांक
आठवां महीना	लगभग एक पाव
साल के अन्त में	सवा पाव

कितनी बार दूध पिलाया जाय ?

समय	बार
पहला महीना	१० बार
दूसरा तीसरा	८ बार
चौथा पांच ।	७ बार
छः से बारह तक	६ बार

निम्नलिखित अवस्थाओं में माता को दूध न पिलाना चाहिये —

१— आग के पास से उठने के आध घन्टा बाद तक।

२— बच्चे को उबटन लगाने या सेकने के आध घण्टा बाद तक।

३ नहलाने के ठीक पहिले या बाद।

४ जब मां को ज्यादा जुकाम हो अथवा पेट में पीड़ा बदहज्मी या तेज बुखार हो।

५ पेट में कोई फोड़ा हो जाय।

स्त्री और गाय के दूध में भेद— अब हमारे सामने यह प्रश्न है कि बच्चे को माता के दूध के अभाव में किसी अन्य प्राणी का दूध पिलाना चाहिए या नहीं ? इसके लिए जो दुग्ध माता के दुग्ध से सब से अधिक मेल खाता हो वह पिलाना चाहिए। इस दृष्टि से गाय का दुग्ध पिलाया जा सकता है लेकिन वह भी माता के दुग्ध के ही समान हो। इसीलिए लिखा है कि 'स्तन्याभावेपयश्छागं गव्यं वा तद्गुणं पिबेत्'। गाय के दुग्ध का विधान इसलिए है क्योंकि इसमें विद्यमान मूल तत्वों की राशि माता के दूध से अधिक मिलती जुलती है। नीचे लिखे चित्र पट से आप दोनों के दूध में विद्यमान मूल भोजनों की राशि में भेद को अच्छी तरह समझ सकेंगे।

हम लोग साधारणतया जो दूध पीते हैं वह पेट में जाकर फुट्टियों के रूप में परिवर्तित हो जाता है। माता के दूध की फुट्टियां जरा नरम और गाय के दूध की कठोर होती हैं।

आम तौर पर देखा जाता है कि बच्चा पैदा होने पर कई बार जननी मर जाती है या उसके दूध में विषैलापन आजाता है। कई बार सिर्फ दूध के विषैलेपन के प्रभाव से ही बच्चों की जानें हजारों की संख्या में व्यर्थ

दूध क्या है ?

यह पहले बताए गए छ प्रकार के मूल [illegible]नों का सम्मिश्रण है इसमें सबसे अधिक [illegible] में जल होता है। इसके अतिरिक्त [illegible]न चर्बी और खाण्ड भी होती है। चर्बी [illegible] खाण्ड भी होती है। चर्बी को हम [illegible]मक्खन रूप से पृथक भी कर सकते हैं। इसके [अति]रिक्त दूध में कई प्रकार के लवण भी हैं जिनमें से कैलशियम, फास्फोरस, तैलादि अधिक प्रसिद्ध हैं। विटामिन्स इसमें पर्याप्त होते हैं।

गाय और स्त्री के दूध में भेद

मूलभोजनतत्व	स्त्री का दूध प्रतिशतक	गाय का दूध प्रतिशतक
प्रोटीन	१.७	३.५
खाण्ड	६.२	४.६
लवण	०.२	०.७
चर्बी	३.४	३.७

ही नष्ट हो जाती हैं। यदि इस विषय में थोड़ी सी सावधानी से काम लें तो सहज ही उपर्युक्त व्यर्थ नाश से बच्चों को बचा सकेंगे। कई बार माता के मर जाने पर या दूध के विषैले होने पर बच्चों को गाय का दूध पिलाते देखा गया है। जो कि सर्वथा उचित और अनिवार्य है। परन्तु अभी हमने चित्रपट पर देखा था कि गाय के दूध में प्रोटीन और लवण अधिक मात्रा में होते हैं और उसकी फुट्टियां अधिक कठोर होती हैं जिससे कि बच्चे को उन्हें पचा सकना कठिन हो जाता है। इसलिए गाय का दूध माता के दूध के समान (Humanized milk) बनाकर ही देना चाहिए।

इसके लिए गाय के दूध में अथवा बकरी के दूध में थोड़ा पञ्चमूल का काढ़ा मिलाकर पिलाना चाहिए। गर्मियों में आध पाव पानी में शालभस्म ३ माशा डालकर हिलाकर निथारे हुए पानी को थोड़ा दूध में मिलाकर पिला दें। पंचमूल के काढ़े के स्थान पर सादा उबला हुआ पानी या सौंफ का पानी भी डाला जा सकता है। अथवा जितना दूध बच्चे को पिलाना हो उसमें आधा पानी डाल कर थोड़ी सी दूध की खांड (Lactose) मिलानी चाहिए। गाय के दूध की मलाई और विटामिन बाजार से मोल लेकर उचित मात्रा में मिला लें या इसे दवाई के रूप में दे दें। फुट्टियों को नरम करने के लिए सोडाबाई-कार्ब (सर्जक्षार), पोटाशियम सिट्रेट या सोडियम सिट्रेट (१ औंस दूध में २-३ ग्रेन) दूध में मिलाना चाहिए। इस विधि से गाय का दूध बिलकुल माता के दूध के समान गुण वाला हो जायगा और बच्चे को भी इससे हानि की सम्भावना नहीं रहेगी। विटामिन की पूर्ति फलों का रस पिलाने से भी हो सकती है। इसके लिए सन्तरे या निंबू का रस भी मिलाया जा सकता है। ए और डी विटामिन की पूर्ति के लिए पालक के पत्तों का रस दिया जा सकता है।

माता के दूध को उत्तम तथा मात्रा में अधिक करने के लिए विदारीकन्द और शतावरी सर्वश्रेष्ठ औषध हैं। इनका चूर्ण ३ माशा की मात्रा में गाय के कवोष्ण दूध के साथ फांकना चाहिए अथवा इनमें से किसी एक को २तो० की मात्रा में एक पाव दूध व १ पाव पानी में पकाकर दूधमात्र रह जाने पर छानकर मिश्री मिलाकर पीना चाहिए। शतावरी घृत भी इसके लिए एक उत्तम प्रयोग है।

सम्भव है कि कई पाठकों को उपर्युक्त वर्णित कार्य कठिन मालूम हों, परन्तु वस्तुस्थिति यह है कि स्वतन्त्र देशों में इस प्रकार का दूध सरकार की ओर से मूल्य वितरित किया जाता है परन्तु लोगों के दुर्भाग्य से हमें ऐसा सुअवसर नहीं है। यदि पाठक ऊपर लिखी बातों पर ध्यान देंगे तो उनकी सन्तानें निश्चिन्त हो सकेंगी और वीर होंगी और इस परतन्त्र भारत की बेड़ियां खुलवाने में बहुत कुछ सहायक हो सकेंगी।

भो ज न

[लेखक—श्री डा० सत्यपाल जी आयुर्वेदालंकार
चिकित्सक गुरुकुल कांगड़ी]

आजकल शिक्षा तथा सभ्यता बढ़ने के साथ २ भोजन की जानकारी के लिये प्रत्येक व्यक्ति की उत्सुकता बढ़ गई है कि खाद्य पदार्थ क्या २ हैं। शरीर पोषण के लिए किस २ का क्या महत्व है। अन्त में भोजन की ठीक व्यवस्था न होने से ही बहुत से रोग हमें सताते हैं। हमारे शरीर में हृदय की गति द्वारा रक्त का सारे शरीर में पहुंचना, फेफड़ों में Oxygen का जाना और उससे Carbondioxide का बाहर निकलना, पाचन-क्रिया द्वारा पोषण तथा अन्त में मल विसर्जन सब भोजन पर आश्रित हैं। उपरोक्त प्रक्रिया में जो ऊष्मा पैदा होती है उससे शरीर की गर्मी बनी रहती है। भोजन जीवनशक्ति बनाता है।

वैज्ञानिक परिभाषा में भोजन प्रोटीन, फैट, कार्बोहाइड्रेट तथा लवण आदि हिस्सों में बांटा गया है। ये पदार्थ शरीर रचना में मकान की ईंट चूना, रेत, लकड़ी की तरह कहे जा सकते हैं। मानो इनसे रचना होती है। लेकिन जैसे राज मिस्त्री के बिना मकान नहीं बनता वैसे ही Vitamin के बिना उपरोक्त पदार्थ शरीर की रचना नहीं कर सकते। वस्तुतः Vitamin ही पोषण की कुंजी है। यहां कहना है कि इस नये युग में इसका बड़ा नाम होगया है। यह नहीं कि इसका पता ही अब लगा है। वास्तव में विटामिन प्रकृति की देन एक तरह की जीवन-शक्ति है जो कि खाद्य पदार्थों में मौजूद है। परन्तु ज्यों २ सभ्यतावश भोजन बनाने व खाने के अस्वाभाविक तरीके चल पड़े उनमें यह नष्ट होता रहा जिससे तरह २ के रोग सताने लगे तब पता लगा कि विटामिन ही उपरोक्त खाद्य पदार्थों को यथास्थान ठहराता है; जिसे हम खाने के अशुद्ध तरीकों से नष्ट कर देते थे। परन्तु इसके अतिरिक्त प्रकृति में अन्य वस्तुएं भी सहायक हैं जिनके बिना प्रक्रिया ठीक नहीं चलती। जैसे लकड़ी कोयले के जलने से पानी की भाप steam बनकर इंजिन को चलने की शक्ति मिलती है; उसी तरह शरीर में लकड़ी कोयले का काम वसा fat तथा निशास्ता Carbohydrates देते हैं। शरीर की अग्नि जो हमें दीखती नहीं पर गर्मी के रूप में अनुभव होती है, वायु आदि से प्रज्वलित होकर शक्ति पैदा करती है; जिसके बनाने में शरीर के पानी का बड़ा भाग है। यह शक्ति हमें सूर्य से भी मिलती है। इसलिए सूर्य का सेवन भी बड़ा आवश्यक है। इसके अलावा हवा में से Oxygen मिले बिना अग्नि नहीं जल सकती है। अतः वायु का खुला सेवन भी उतना ही आवश्यक है।

इस प्रकार हमने देखा कि भोजन में खाद्य सामग्री के अलावा हवा, सूर्य-रश्मि या प्रकाश तथा पानी भी आवश्यक हैं। इसके साथ २ स्वास्थ्य के लिए व्यायाम तथा नींद भी जरूरी है। अब एक २ पर संक्षेप से विचार करना उत्तम होगा।

वायु—वायु से ओक्सिजन फेफड़ों द्वारा रक्त में जाकर वहां भोजन से आये ईंधन रूप वसा निशास्ता आदि को जलाकर गर्मी पैदा करती है और परिणाम में धुएं की जगह बनी विषैली गैस रक्त द्वारा फिर फेफड़ों में आकर सांस द्वारा बाहर निकल जाती है। खुली हवा में फिरना, हवादार कमरों में सोना उत्तम है। सर्दी में वैसे भी कपड़े से मुंह ढक कर सोना, बन्द कमरों में सोना या पर्दे में रहना हानिकारक है। गहरा सांस या प्राणायाम अधिक लाभदायक है।

धूप—मनुष्य तथा पशु का जीवन वनस्पति पर आश्रित है; जबकि वनस्पति का जीवन धूप से है। इसकी उपस्थिति में पौदे हवा और जमीन से हमारे लिए प्रोटीन, वसा, निशास्ता तथा विटामिन अपने में जमा करते हैं। हमारे से छोड़ी गई विषैली गैस लेकर हमारे लिए ओक्सिजन देते हैं। इसके अतिरिक्त सूर्य हमारे शरीर में भी विटामिन डी पैदा करता है जो कि हड्डियों के लिए जरूरी है। जो बच्चे सूर्य स्नान नहीं करते या अंधेरे कमरों में रहते हैं उन्हें अस्थिवक्रता Rickets हो जाते हैं। तेज धूप से हानि होती है। पर्दे आदि में रहना बड़ा हानिकर है।

जल—शरीर का $\frac{3}{4}$ हिस्सा पानी ही है। पानी द्वारा ही भोजन तत्व सारे शरीर में पहुंचता है और भिन्न २ रूप में मल, श्वास पसीना, पेशाब तथा शौच के रूप में बाहिर निकलता है; और पसीने द्वारा बदन को ठण्डा भी रखता है। इसलिए ही विशेषतः गर्मियों में पानी पर्याप्त पीना चाहिए। दिन में कम से कम दो सेर। पानी कम पीने से रोगी हो जाते हैं। बच्चों को दूध के बीच में, हमें प्रातः उठते ही तथा दोनों भोजनों के बीच पानी अवश्य पीना चाहिए। इससे मलबन्ध आदि की शिकायत न होगी और शरीर की पीवें; ताकि हैजा, टाइफायड, प्रवाहिका आदि रोग न सतावें।

प्रोटीन—जैली की तरह का पदार्थ है। शरीर रचना में इसका बड़ा भाग है। यह जान्तव तथा वानस्पतिक दो तरह का है। जान्तव शरीर के अधिक अनुकूल है। प्रोटीन से शरीर मजबूत होता है, रोगों से लड़ने की शक्ति बढ़ती है। उत्तम प्रोटीन पर्याप्त न लेने से शरीर कमजोर, बढ़नी का रुकना, लड़ने भिड़ने का कड़ा श्रम न हो सकना तथा अधिक रोगी होने की शिकायत होती है। यही कारण है कि पंजाब से नीचे उत्तरोत्तर प्रोटीन भोजन में कमी या निकृष्ट होने से जातियां कमजोर होती हैं। उत्तम ढंग की प्रोटीन हम दूध, दही, पनीर, लस्सी तथा हरे शाकों से ले सकते हैं। कम अनुकूल या मध्यम दर्जे की प्रोटीन गेहूं, जौ, बिना पालिश के चावल, मटर, लोभिया, दालें, चना, सूखा मेवा, आलू, गाजर, शलजम, सागूदाना तथा फलों से ले सकते हैं। मैदा, मक्का तथा पौलिशी चावल में निकृष्ट प्रोटीन है। उत्तम तथा मध्यम मिलाकर लेना चाहिए। उसमें महंगे का सवाल भी हल होजाता है।

खनिज लवण—शरीर बनाने में इनका दूसरा नम्बर है। इस श्रेणी में चूना, फौस्फेट, गन्धक, नमक आदि २० तरह के हैं। जो हड्डी और दांत में बहुत तथा मांसपेशी, रक्तादि अन्य द्रवों में भी उचित मात्रा में उपस्थित हैं। ये रक्त की क्षारीयता को बनाये रखते हैं। जिससे नीरोगता बनी रहती है। दुग्ध में लोहे को छोड़कर शेष सभी लवण उपस्थित हैं। दाल, मेवा, गेहूं तथा चावल आदि में नमक खटाई पैदा करने वाले हैं जबकि हरे शाक तथा फलों के क्षारीय गुण रखते हैं। अतः ये हितकर हैं। यही कारण है कि आमवात तथा आन्त्रज्वर आदि में क्षारीय गुण वाली वस्तु शाक फल रस दिये जाते हैं। पर ध्यान रहे कि ये लवण गेहूं चावल के छिलकों व ऊपरी परत में ही अधिक होते हैं। अतः मशीन के चावल तथा मैदा हमारे शरीर को नमक और विटामिन दोनों से ही वंचित रखते हैं। कैल्सियम के लिए दूध, लस्सी, पनीर, मस्तु whey, मेवा, दालें, फल तथा हरे शाक लेने और बच्चों को अधिक पीना चाहिए। फास्फोरस दुग्ध तथा इसके पदार्थ, दाल, मेवे, गेहूं, जौ, पालक, मूली, गाजर, गोभी में अच्छा है। रक्त को लाल रखने वाला लोहा दालों, सब तरह के साबत दानों, पालक, सलाद, प्याज, मूली स्ट्रौबेरी, खरबूज तरबूज, शलजम के पत्ते तथा टमाटर में पर्याप्त हैं। सैंधा नमक भी चुटकी भर लेना चाहिए। उपरोक्त पदार्थ उचित मात्रा में खाने से लवणों की कमी शरीर में नहीं होती। अन्यथा रोगी होकर औषधि रूप में लेने पड़ते हैं। जो अस्वाभाविक होने से कम जज़्ब होते हैं और बहुत सी मात्रा व्यर्थ जाती है। शाक आदि पकाने में पानी उतना डालना चाहिए जो उसमें जज़्ब हो जावे। उबालकर पानी फेंकने से लवण भी साथ ही बह जाते हैं।

वसा या FAT—यह चिकनाई घी, मक्खन चर्बी तथा तेल के रूप में है। जो कि शरीर में ईंधन का कार्य देती है और शक्ति भी देती है। यह शरीर में जमा भी हो जाती है और समय पड़ने पर खर्च होती है। शरीर को गर्म रखती हैं। कोमल अंगों के चारों तरफ परत बनाकर उनकी रक्षा करती है साथ ही शरीर के पोपले स्थानों को भरती है जिससे शरीर में सुन्दरता आती है। यह भी जान्तव तथा वानस्पतिक दो तरह की है जिसमें जान्तव उत्तम तथा वानस्पतिक निकृष्ट है क्योंकि पिछले में विटामिन ए नहीं होता है। जो गरीब आदमी मक्खन घी आदि नहीं ले सकते उन्हें वनस्पति घी के साथ विटामिन ए की पूर्ति के लिए हरे पत्तों का शाक, टमाटर गाजर तथा अंकुरित दाने पर्याप्त लेने चाहियें अधिक श्रम वालों को चिकनाई की अधिक आवश्यकता रहती है। आवश्यकता से अधिक खाने से शरीर में अधिक मोटापा आजाता है जो हानिकर है।

कार्बोहाइड्रेट्स—इसमें निशास्ता तथा खांड है यह भी ईंधन का कार्य करते हैं। चावल, गेहू, सागूदाना, गुड, शक्कर खांड, तथा शहद रूप में मिलते हैं। यदि फल, गन्ना, तथा शहद आदि पर्याप्त मात्रा में लें तो खांड की आवश्यकता न हो क्यों कि फलों मे यह Glucose के रू

कि मशीनी खांड में जिगर को परिश्रम ना पड़ता है। गुड़ और शक्कर में भी कोज पर्याप्त है। इस अनुभव के आधार ही गतवर्ष से पंजाब के स्वास्थ्य विभाग ने ड की जगह गुड़ प्रयोग में लाने का प्रचार म्भ किया है। पिछले गीत रिवाजों में अधिक श्रम के बाद जैसे प्रसूति के पीछे किसी तरह की थकान के बाद गुड़ खाया ता था। अधिक मात्रा में कार्बोहैड्रेट्स हानि करते हैं क्योंकि तब प्रोटीन दि कम खाये जाने से शरीर कमजोर, का न बढ़ना, अजीर्ण होना हैजे आदि शिकायत होती है। अधिक मंड सार मल (Carbohydrates) का अधिक योग तथा प्रोटीन आदि कम खाने से र बलवान नहीं होते। अधिक खाने वाले iabetes मधुमेह के शिकार होते हैं। इन अधिकता से दांत भी खराब होते हैं।

विटामिन—पहिले कहा जा चुका है ये शरीर में जीवन शक्ति के रूप में हैं। ानि ों ने इनके ए बी सी डी आदि भेद ये हैं। ए—विटामिन वाले पौधे जब पशु ता है तो यह उसकी चर्बी तथा जिगर में हो जाता है और फिर दूध द्वारा बच्चे चला जाता है। यह प्रकृति की देन है। चों के शरीर की वृद्धि के लिए ए बड़ा ...। जो गौ भैंस हरा चारा न खाकर । भूसा आदि खाती हैं उनके दूध में ामिन ए की कमी होने से वे स्वयं तथा के बच्चे कमजोर होते हैं। इसी तरह जो ायें भोजन में ए विटामिन नहीं लेती वे ... बच्चों सहित कमजोर रहती हैं। ी नहीं उनके बच्चों की मृत्यु भी अधिक ी है। विटामिन ए दूध, मक्खन, घी, शाक शलजम मूली के कोमल पत्तों, बांस अंकुर, पालक, ककड़ी, खीरा, सलाद, बन्द ... में बहुत होता है। पीली जड़ें जैसे तुर्ं गाजर, टमाटर, मक्का, अंकुरित चने दालों में भी होता है। गरीबी में दूध खन जैसी महंगी वस्तु की जगह चने भिगो अंकुरित होने पर उनसे ए विटामिन स मिल सकता है। इसकी कमी से आंख, कान, गला फेफड़े गुर्दों के रोग होजाते ... जैसे ... है। तिलोपिया

तपेदिक, पथरी, नाटापन तथा शोथ की शिकायत हो सकती है।

बी B—यह पौधों में, बीजों में अधिक मात्रा में होता है। इसके अतिरिक्त टमाटर, सलाद, पालक, शलजम, मूली की कोंपल, ककड़ी खीरा में अधिक तथा आटा गेहूं, लोबिया, मक्का, मटर, दाल, चना, सोयाबीन, अलसी बन्दगोभी गाजर, प्याज, तथा दूध में भी पर्याप्त होता हैं। यह ध्यान रहे कि कि बी विटामिन बाहर की परत में ही अधिक होता है। इसलिए पिसे आटे के स्थान पर मशीनी आटा या मैदा, ऊखली में कुटे धान की जगह पालिशी चावल में यह नहीं रहता। इसी तरह चावल धोने या उबालकर उसका पानी फेंक देने से तथा शाक उबाल कर पानी फेंक देने से यह नष्ट हो जाता है सब्जी में जितना जज्ब हो सके इतना ही पानी डालना चाहिए। मोटा आटा बिना पालिशी चावल तथा उपरोक्त ढंग से शाक खायें तो इसकी कमी से होने वाले बेरीबेरी, मलबन्ध, अजीर्ण, भूख का न लगना, पेट दर्द, तथा अतिसार आदि रोग नहीं होते हैं। चावल में यह कम होता है उसके साथ २ छटांक दाल भी लेनी चाहिए।

विटामिन सी (C)—यह हरे शाक, ताजे फल तथा नये अंकुरों में बहुत होता है। यदि साबत दाल या चनों को २४ घंटे पानी में भिगोकर गीले कपड़े में रख दिया जावे और पानी छिड़कते रहें तो दो दिन में इनमें अंकुर फूट आते हैं। तब इनमें वटामिन सी पर्याप्त मात्रा में पैदा हो जाता है। जो गौ भैंस या बकरी हरा चारा खाती हैं उनके दूध में भी होता है। परन्तु सूखा चारा खाने वाले पशु के दूध में यह नहीं होता। विटामीन सी शाक व दूध उबालने से नष्ट हो जाता है। जितना अधिक गर्म करें उतना ही यह नष्ट होता है। इसलिए ताजे फलों का रस विशेषतः नारंगी तथा हरे शाक तथा टमाटर का रस भी लेना चाहिए। इसकी कमी से मसूड़ों का सछिद्र होना या मांस खोरा, भूख न लगना, पाण्डु, भार में कमी, दिल का धड़कना, दांतों का खराब होना, तथा जोड़ों में दर्द आदि की शिकायत हो जाती है। ताजी कच्ची बन्द गोभी के पत्ते, पालक, अंकुरित दालें, मटर, चना, नीम्बू तथा संतरे सलाद, खीरा, शलजम की कोंपल, कच्चे आलू, हरेशाक, शाक-रस आदि में भी यह पर्याप्त होताहै। दूध में बहुत कम होता है। रक्त को शुद्ध रखने तथा दांत और आंतों को स्वस्थ रखने के लिए यह आवश्यक है।

विटामिन डी (D)—यह दूध मक्खन, व घी में पर्याप्त होता है। यह त्वचा पर सूर्य की क्रिया से भी पैदा

होता है। विशेषतः जब धूप में तेल की मालिश करके कुछ देर धूप में ही रहा जावे। यही कारण है कि हिन्दुस्तान में सूर्य में घूमने के कारण इसके अभाव के रोग नहीं होते जब कि विलायत में धूप कम मिलने से बहुत होते हैं। यहां भी पर्दे या अन्धेरे कमरों में रहने वालों को रोग हो जाते हैं। डी के अभाव में कैल्सियम भी बदन में नहीं ठहरता। अतः हड्डियों के कमजोर व नरम होने और दांतों के खराब होने की भी शिकायत होती है। इसके अभाव में रक्त शुद्ध नहीं रहता; पाण्डु हो जाता है। आक्षेप प्रतिश्याय व फेफड़ों के रोग होजाते हैं। इन रोगों से बचने के लिए हमें दूध के साथ रसीले फल व हरे शाक लेने चाहिए।

इससे ज्ञात होता है कि हमें दूध व इस के पदार्थ दही, पनीर, मक्खन लस्सी, पर्याप्त मात्रा में लेने चाहियें। क्योंकि दूध एक ऐसा आदर्श भोजन है जिस में सब तरह के पोषण तत्व पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं। परन्तु यह शुद्ध होना चाहिये। इसे बहुत गरम करके काढ़ना न चाहिये। क्योंकि उससे कुछ तत्व विशेषतः विटामिन नष्ट हो जाते हैं। साथ ही दूध उन गौ का लें जो हरा चारा खाती हो, स्वस्थ हो, क्योंकि अस्वाभाविक भोजन से दूध भी निकृष्ट हो जाता है। अपने शास्त्रों में लाल गाय प्रशस्त कही गई है। सम्भवतः उस में सूर्य की बैंगनी किरणें अधिक प्रविष्ट होती हैं। ये किरणें स्वास्थ्य के लिए बड़ी उपयोगी हैं। गेहूं घर की चक्की व खरास में पीसें ताकि उनके आटे में सब तत्व रहें। इसही प्रकार ओखली में कुटा चावल वर्तना चाहिये; पालिशी चावल नहीं। चावल की मांड निकालनी नहीं चाहिये इससे पीछे फोक ही रह जाता है।

सब्जीशाक में पानी उतना ही डालें जो उसमें ही जज्ब हो जावे। उबालकर पानी फेंकने से आवश्यक तत्व उसमें से बह जाते हैं। इसके अतिरिक्त भोजन में या अलग कुछ कच्ची चीजें टमाटर मूली, गाजर, खीरा ककड़ी, सलाद व बन्दगोभी के पत्ते, शलजम मूली चांप की कोंपलें तथा अंकुरित चने व दालें भी समय २ पर ऋतु अनुसार लेनी चाहिएं। ऋतु अनुसार फल—सन्तरा, निंबू, केला, अनार, सेब अंगूर नाशपाती आदि तथा मेवा मूंगफली, अंजीर, बादाम किशमिश, खजूर, चिलगोजे आदि लेने आवश्यक है। घी भोजन में शुद्ध वर्तना चाहिए। वानस्पतिक घी में चिकनाई तो है परन्तु उसमें विटामिन नहीं होता। अतः यदि उसे गरीबी के कारण खाना भी पड़े तो उसके साथ हरे तथा कच्चे शाक, अंकुरित दाने आदि खाकर विटामिन की कमी पूरी करनी चाहिए। इस प्रकार हम इस विचार पर पहुंचते हैं कि भोजन में सभी तरह के पोषक तत्व रखने के लिए आवश्यक है कि हम भोजन और खाद्य पदार्थों का एक सम्मिश्रण रखें; जिसमें दूध दही, मक्खन, लस्सी, पनीर, घी, चावल गेहूं दाल, शाक व फल यथावसर सभी वस्तु हों। इससे सब पोषक तत्व मिलने से हम अधिक स्वस्थ रह सकेंगे। भोजन स्वादु रुचिकर बनाने तथा भूख लगाने में सहायक मसाला भी उपयुक्त मात्रा में लेना हितकर है।

भोजन समय पर करना चाहिए। जहां तक हो सके प्रातः हलका भोजन यानी नाश्ता दुपहर तथा सायं बड़ा भोजन करना चाहिए। रात्रि के उपवास के बाद प्रातः उचित नाश्ता करना बड़ा जरूरी है। जो लोग नाश्ता नहीं करते वे अपने को रोगों के अधिक अनुकूल बनाते हैं। परन्तु नाश्ता बहुत भारी या दोपहर भोजन की तरह नहीं होना चाहिए; क्योंकि इससे फिर कार्य में बाधा पड़ती है। दोपहर भोजन के बाद विश्राम अवश्य करना चाहिए। सायं भोजन के बाद हल्की सैर अच्छी है। भोजन जालीदार साफ सुथरे कमरे में करना चाहिए। पाचक नीरोग तथा साफ कपड़ों होना चाहिये। यदि भोजन पर पर्याप्त ध्यान दिया जावे तो बहुत से रोगों से हम बच सकते हैं। इसके लिये प्राकृतिक भोजन अधिक उपयोगी है।

पुस्तक–समालोचना

[समालोचनार्थ भेजी जानेवाली पुस्तकों की दो-दो प्रति आनी चाहिये]

वैदिक विनय (तीन भाग)—लेखक आचार्य अभयदेव जी। पृष्ठ सं० ३०० प्रति भाग। मूल्य–१) प्रति भाग। मिलने का ...ा, पुस्तक भण्डार गुरुकुल कांगड़ी।

लेखक के नाम से जनता भली भांति परिचित है, आपके लेखों और पुस्तकों से धार्मिक और भक्त जनता को बहुत लाभ ...ा है। वैदिक विनय आपकी लेखनी की जीवन कृति है। बड़ी खोज और चिरकाल के वेदाध्ययन से आपने अपने जेल जीवन के दिनों में अनुपम ग्रन्थ की रचना की है।

यह पुस्तक तीन खण्डों में समाप्त हुई है। प्रत्येक खण्ड में चार-चार मास के लिये वैदिक प्रार्थनाएं छांट कर रखदी गई हैं। ... दिन के लिये एक प्रार्थना नियत है। पहले वेद मन्त्र दिया गया है, उसके बाद मन्त्र द्वारा एक विनय (प्रार्थना) की गई है और अन्त शब्दार्थ दे दिया है। प्रत्येक मास के आरम्भ में व्यायाम की भी एक विधि लिख दी गई है। गुजरात के एक मान्य सज्जन ने इस ...थ की उपयोगिता को अनुभव कर इसका गुजराती अनुवाद भी कर दिया है। इस पुस्तक के कई संस्करण हो चुके हैं। देश के मान्य ...ओं, आर्य समाज के प्रसिद्ध विद्वानों और समाचार पत्रों ने मुक्त कंठ से इस ग्रन्थ की प्रशंसा की है। उत्तम गाइप और बढ़िया कागज ...यह ग्रन्थ छपा है।

सोमसरोवर—लेखक श्री पं० चमूपति जी एम. ए.। पृष्ठ सं० २७५ मूल्य—सजिल्द १॥) अजिल्द १।)। मिलने का ..., पुस्तक भण्डार गुरुकुल कांगड़ी।

यह ग्रन्थ सामवेद के पवमान पर्व का सुललित भाष्य है। इस पुस्तक का पाठ पाठक के हृदय में कभी अद्भुत तरंग, कभी वीर ... और कभी शान्त तरंग प्रवाहित करके हृदय को आलोडित कर देता है, इन्हीं तीन तरंगों में अठखेलियां करता हुआ भक्त अपने प्रियतम ...स्य देव के आनन्द में ध्यान मग्न हो जाता है।

सामवेद भक्तों के लिये भक्ति स्रोत है। पाठक भक्तिरस के इस झरने का पयःपान करें, निश्चिन्तता से अध्ययन करें, मनन करें। ...क की सजीव भाषा, बढ़िया कागज, छपाई सफाई सब उत्तम है।

वेद गीताञ्जलि— संग्रह कर्ता मुख्याधिष्ठाता गुरुकुल कांगड़ी। पृष्ठ संख्या–२४४ मूल्य २), मिलने का पता, पुस्तक ...ार गुरुकुल कांगड़ी।

...वेद मन्त्रों के आशय को अभिव्यक्त करने वाले गीतों का इस पुस्तक में संग्रह है। वेद के कुछ चुने हुए मन्त्रों के शब्दार्थ उन पर हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवियों द्वारा हिन्दी में भावात्मक सुन्दर गीत इस पुस्तक में दिये गये हैं। यह अपने ढंग की निराली ...क है। स्थान २ पर भावों को अभिव्यक्त करने वाले चित्र भी दिये गये हैं। प्राचीन भावों के साथ नए विचारों का छन्दोमयी भाषा ...संगम, त्रिवेणी संगम है।

स्वामी श्रद्धानन्द जी के उपदेश (दो भाग): संगृहीता लाला लब्भूराम जी नैय्यड़ पृष्ठ सं० ११४+१०८ ... बारह आना, प्रति भाग। मिलने का पता, पुस्तक भंडार गुरुकुल कांगड़ी।

यह पुस्तक श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज के उच्च, गम्भीर, आत्म... को उठाने वाले धर्मोपदेशों का संग्रह है। प्रत्येक ... पुस्तकालय में इस पुस्तक की एक २ कापी का होना आवश्यक है।

सन्ध्या रहस्य –लेखक– प्रोफेसर विश्वनाथ जी विद्यालंकार। पृष्ठ संख्या १६६। मूल्य १) मिलने का पता, पुस्तक ...ार गुरुकुल कांगड़ी।

सत्यार्थ प्रकाश, संस्कार विधि, ऋग्वेदादि–भाष्य–भूमिका, सन्ध्योपासना और पंचमहायज्ञ विधि आदि ग्रन्थों के भिन्न २ ...ों में सन्ध्या मन्त्रों की पद्धतियां जो बिखरी पड़ी हैं, उन सब का संग्रह इस पुस्तक में कर दिया गया है। साथ ही सन्ध्या के मन्त्रों की ...ख्या भी इस पुस्तक में विस्तार पूर्वक की गई है ताकि सन्ध्या करने वालों के सन्मुख सन्ध्या मन्त्रों के गूढ़ भाव स्पष्ट हो सकें। ...र शब्द की पूर्ण व्याख्या की है। मुख्य शब्दों की व्युत्पत्ति और उनके अर्थ बड़े रोचक ढंग से समझाया गया है। जहां ज्योतिष ...म्बन्ध है वहां आकाश-मण्डल का पूरा विवरण और उसकी स्थिति बतला दी है। राशियों का स्वरूप एवं सम्पातों का ठीक निर्देश ...ने के लिए कुछ चित्र भी दिए गये हैं। पुस्तक में सब दृष्टियों से सन्ध्या का महत्त्व दर्शाने की पूरी चेष्टा की गई है। पुस्तक ... जिज्ञासु और अध्ययन शील व्यक्ति के लिये पठनीय है।

ब्रह्मचर्य सन्देश लेखक श्रीयुत पं० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार। पृष्ठ सं० २५१, मूल्य दो रुपया। मिलने का पता, पुस्तक भण्डार गुरुकुल कांगड़ी। 'ब्रह्मचर्य' जैसे नाजुक विषय पर इससे अच्छी दूसरी पुस्तक हिन्दी साहित्य में नहीं है। खण्डवा के 'कर्मवीर' की सम्मति है कि- 'इस विषय पर हिन्दी में सब से अधिक प्रामाणिक, सब से पवित्र भाव पूर्ण और सब से अधिक ज्ञातव्य विषयों से भरी हुई यही पुस्तक देखने में आई है।

यह पुस्तक ऐसी है जिसे पिता को पुत्र के हाथ में और शुभ चिन्तकों को अपने नवयुवक मित्रों के हाथ में जल्दी से जल्दी दे देना चाहिये। अंग्रेजी में यह पुस्तक 'Confidential talks to young men' के नाम से प्रसिद्ध है। प्रस्तुत पुस्तक, इसका दूसरा संस्करण है

शिक्षा-मनोविज्ञान—लेखिका श्रीमती चन्द्रावती लखनपाल एम०ए० बी०टी०। पृष्ठ सं० २३:, छपाई सफाई अत्युत्तम है मूल्य ३॥)। मिलने का पता पुस्तक भण्डार गुरुकुल कांगड़ी। बच्चों को शिक्षा किस प्रकार देनी चाहिए, बालक का मानसिक विकास किस प्रकार होता है, इस बात को समझ कर यदि उसको शिक्षा दी जाय, तो वह एक पुष्प की तरह खिलने लगता है। आजकल हमारे बालक मुरझाये हुये क्यों दिखलाई देते हैं, इसका कारण यह है कि माता, पिता और शिक्षक बालक के मानसिक विकास का अध्ययन किये हुए नहीं होते।

यदि आपके कोई बालक है अथवा आपके हाथों में बालकों की शिक्षा का महत्त्व पूर्ण कार्य है तो आप 'शिक्षा-मनोविज्ञान' का अवश्य अध्ययन करें।

इस विषय पर हिन्दी में कोई दूसरी पुस्तक नहीं है। गत पांच छः वर्ष में जितनी पुस्तकें प्रकाशित हुईं, उन सब में यह उत्तम मानी गई है। इसी कारण हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने इस पर १२००) का मंगलाप्रसाद पारितोषिक दिया है और नागरीप्रचारिणी सभा ने २००) का बल्देव पुरस्कार दिया है।

ट्रेनिंग स्कूलों और कालेजों के लिये इससे अच्छी दूसरी पुस्तक किसी भाषा में नहीं निकली।

इस पुस्तक में शिक्षा के नवीनतम सिद्धान्तों को खूब खोलकर समझाया गया है।

स्त्रियों की स्थिति—लेखिका श्रीमती चन्द्रावती लखनपाल एम०ए० बी० टी०। पृष्ठ सं० १८२, छपाई सफाई उत्तम मूल्य १।)। मिलने का पता, पुस्तक भण्डार गुरुकुल कांगड़ी। स्त्रियों के पढ़ने के लिये यह सबसे उत्तम पुस्तक समझी गई है। स्त्रियों को उपहार में देने के लिये, कन्या पाठशालाओं में इनाम बांटने के लिये इससे अच्छी दूसरी पुस्तक नहीं मिल सकती।

पुस्तक इतनी अच्छी है कि हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने इस पर ५००) का पुरस्कार दिया है। ऐसी उत्तम पुस्तक को कौन न पढ़ना चाहेगा। पुस्तक की लोकप्रियता का पता इसी से लग सकता है कि पुस्तक का यह द्वितीय संस्करण है।

सन्ध्यासुमन - लेखक श्री पं० नित्यानन्द जी वेदालंकार। पृष्ठ संख्या १५६, छपाई सफाई उत्तम। मूल्य ।)। मिलने का पता, पुस्तक भण्डार गुरुकुल कांगड़ी।

इस पुस्तक के विद्वान् लेखक कई वर्षों तक शिमला आर्य समाज में पुरोहित के प्रतिष्ठित पद पर रहे हैं। यही कारण है कि प्रस्तुत पुस्तक में सन्ध्या जैसे गूढ़ विषय पर बड़ी स्पष्टता एवं मार्मिकता के साथ प्रकाश डाला गया है। यह ग्रन्थ अपने विषय का अनमोल रत्न है। प्रत्येक भक्त व जिज्ञासु को इस पुस्तक का एक बार अवश्य अवलोकन करना चाहिए।

जल चिकित्सा विज्ञान—लेखक श्रीयुत पं० देवराज जी विद्यावाचस्पति। पृष्ठ संख्या ५००। मूल्य १।)। मिलने का पता पुस्तक भण्डार गुरुकुल कांगड़ी।

आज कल रोगियों और चिकित्सकों का ध्यान प्राकृतिक चिकित्सा की ओर बड़े वेग से बढ़ रहा है। लेखक ने जल चिकित्सा के सिद्धान्तों का त्रिदोष के आधार पर विचार किया है। हिन्दी भाषा में यह पुस्तक बहुत लाभदायक प्रकाशित हुई है। पुस्तक चिकित्सकों और रोगियों दोनों के लिये उपयोगी है।

हिन्दी निरुक्त भाष्य लेखक पालीरत्न श्रीयुत चन्द्रमणि विद्यालंकार। पृष्ठ संख्या ८७४। मू० ७), मिलने का पता पुस्तक भण्डार गुरुकुल कांगड़ी।

वेद के मर्म को समझने के लिये निरुक्त भाष्य का अध्ययन आवश्यक है। लेखक ने निरुक्त के गूढ़ मर्मस्थलों को सुस्पष्ट तथा विवाद शून्य बना दिया है।

रायल एशियाटिक सोसायटी लंदन, श्रीयुत चिन्तामणि विनायक वैद्य एम०ए०, वाइसचान्सलर इलाहाबाद यूनिवर्सिटी आदि महानुभावों ने मुक्त कण्ठ से इस ग्रन्थ की प्रशंसा की है वेद प्रेमियों को यह पुस्तक अवश्य पढ़नी चाहिए।

इनके अतिरिक्त निम्न पुस्तकें भी समालोचनार्थ प्राप्त हुई हैं जो गुरुकुल पुस्तक भण्डार से मिल सकती हैं:

१. ब्राह्मण की गौ, मू० — ॥)

२. त्याग की भावना — ॥)

३. भारत वर्ष का इतिहास प्रथम भाग— १॥) २य भाग— १॥।) ३य भाग— २)

४. पुराणमत पर्यालोचन— ३)

५. गुरुकुल प्रार्थना एकादशी—)॥।

फिरंग रोग (Syphilis या आतशक)
श्री डा० इन्द्रसेन जी आयुर्वेदालंकार गुरुकुल कांगड़ी के सुयोग्य स्नातक हैं। उन्होंने पाश्चात्यायुर्वेद की M.B.B.S D.T.M आदि उपाधियां भी बड़े परिश्रम से प्राप्त की हैं। उनकी लिखी फिरंग रोग नामक पुस्तक बहुत उत्तम है। इसमें विषय को सरल और सुबोध भाषा में बड़ी उत्तम रीति से लिखा गया है। पुस्तक के अन्त में आयुर्वेदोक्त फिरंग पर भी पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। पुस्तक प्रत्येक वैद्य को पढ़नी चाहिए और हमेशा अपने पास रखनी चाहिए।

मूल्य केवल दो रुपये

एक्स रे (X Ray) डा० इन्द्रसेन जी की दूसरी पुस्तक एक्स-रे है। इसमें उन्होंने सरल भाषा में यह बताया है कि एक्स-रे क्या है। इसका उपयोग रोगविज्ञान में किस प्रकार किया जाता है। एक्स रे की फोटुओं को कैसे पढ़ सकते हैं। चित्र भी दिये हुए हैं। इस पुस्तक का मूल्य एक रुपया रक्खा गया था। पर वैद्य समाज के आग्रह के कारण घटा कर ॥) कर दिया गया है

पाश्चात्य चिकित्सासार - यह डाक्टर जी की तीसरी पुस्तक है। इसमें उन्होंने अपने विषय का भली प्रकार प्रदर्शन किया है। चूंकि इस समय डाक्टर जी गुरुकुल आयुर्वेद महाविद्यालय में उपाध्याय का कार्य कर रहे हैं इसलिए उन्होंने विद्यार्थियों की तथा नये प्रैक्टीशनरों की कठिनाइयों का ध्यान में रखते हुए सब कठिन बातों को बहुत अच्छी तरह समझा दिया है। पुस्तक में सब अच्छे २ पाश्चात्य चिकित्सा के योग दिये गए हैं पुस्तक हमेशा पास रखने योग्य है। इस पुस्तक से पाश्चात्य-चिकित्सा का उपयोगी भाग हस्तामलकवत् हो जाता है। मूल्य ३)

तीनों पुस्तकों के मिलने का पता—

मैनेजर गुरुकुल पुस्तक भण्डार,
गुरुकुल कांगड़ी
(जि० सहारनपुर)

गुरुकुल फार्मेसी की औषधियों का सूचीप

—रस प्रकरण—

अग्निकुमार रस— रसेन्द्र सा० सं० संग्रहणी, दस्त और पेट के फूलने के लिए उपयोगी है। मू० ।-) तोला

अग्नितुण्डी वटी— रसेन्द्र सा० सं० यह पाचक अंगों को ताकत देती है और मन्दाग्नि, शूल तथा निर्बलता के लिए लाभदायक है। मू० ।=) तोला

आनन्द भैरव— भैषज्य र०—ज्वर और दस्तों में इसका इस्तैमाल किया जाता है। मू० ।-) तोला

इच्छाभेदी—भैषज्य० र०—उदर रोग। यह तेज जुलाब की औषधि है। सख्त कब्जी होने पर प्रयोग करना चाहिये।

मू० ।-) तोला

कफकेतु—रसेन्द्र० सा० सं० । कफ रोगों की उत्तम औषधि है । जुकाम, खांसी इन्फ्लुएन्जा में बहुत प्रयोग होता है।

मूल्य -) तोला

कर्पूररस—भैषज्य० र० अतिसार। यह दस्तों की बहुत उत्तम दवा है।

मूल्य ।।=) तोला

कस्तूरी भैरव रसेन्द्र सा० सं० ज्वर। श्लेष्म ज्वर, (इन्फ्लुएन्जा) श्वास ज्वर (निमोनिया) में इसके व्यवहार से विशेष लाभ होता है। मूल्य १) तोला

कृमिमुद्गर रस— भैषज्य र० कृमि रोग। पेट के कीड़ों को नष्ट करता है।

मूल्य -) तोला

खदिर वटी—चक्र० मुखरोग। मुख, जिह्वा, तालु और गले आदि के पक जाने तथा दांतों की कमजोरी में विशेष गुणकारी है। मूल्य ।-) तोला

चतुर्मुख रस—रसेन्द्र० सा० स० वात० व्याधि। वातनाड़ियों की निर्बलता तथा उत्तेजना को दूर करता है। मूल्य ६) तोला

चन्द्रप्रभा वटी—भैषज्य र० अर्शो-विकार। बवासीर खून की कमी, कमजोरी, तथा प्रमेह की अत्युत्तम दवा है। इस में शिलाजीत और लोह भस्म डाली गई है, इस के सेवन से बदन में चुस्ती फिर आने लगती है। मूल्य ।।=) तोला

श्री जयमंगल रस— भैषज्य र० ज्वर। जीर्णज्वर और विषम ज्वर में इसका प्रयोग किया जाता है। मूल्य १) माशा

ज्वरांकुश— रसेन्द्र सा० सं० ज्वर। पुराने बुखार में ज्वर के साथ खांसी होने पर दिया जाता है। मूल्य ।।) तोला

पूर्णचन्द्ररस (बृहत्)-रसेन्द्रस० सं० रसायन। अम्लपित्त, संग्रहणी आदि रोगों तथा साधारण अवस्था में शरीर की ताकत के लिये इसे देना चाहिए।

मूल्य ३) तोला

प्राणदा गुटिका भै० र० अर्शोरोग। बादी बवासीर के लिए लाभदायक है।

मूल्य -)।। तोला

बृहत् वातचिन्तामणि— भै० र० वात रोग। वातज दुर्बलता (Nervous debility) की उत्तम दवा है। मूल्य १।।) माशा,

रामबाणरस—रसेन्द्र सा० सं०। अजीर्ण रोग की उत्तम दवा है। दस्तों की प्रारंभिक दशा में इससे बहुत लाभ होता है।

मूल्य ।) तोला

बृहत् लवंगादिवटी—भै० र० अग्नि०। यह पाचक अग्नि को दीप्त करती है। दर्द के साथ दस्त होना, ढीला दस्त होना पेट का अफराना इत्यादि में तुरन्त लाभ होता है।

मूल्य ।।) तोला

वातगजांकुश—र० सा० सं० वातरोग। वायु की दर्द के लिये उत्तम है। मूल्य ।।।) तोला

संजीवनी वटी— शा० त्रिदोष। कै, दस्त, हैजा में दी जाती हैं। मूल्य ।) तोला

हिंगुलेश्वर—रसेन्द्र सा० सं० ज्वर। आमज्वर में शरीर में दर्द होने पर इस से बहुत लाभ होता है। मूल्य ।-) तोला

श्वासकुठार—र० सा० सं० दमे के लिये उत्तम औषधि है।

मूल्य ।

स्वर्णमालती वसन्त—यो० र० मलेरिया, पुराने बुखार तथा क्षयरोग यह बहुत उपयोगी है

मूल्य १।) माशा, १२

बसंतकुसुमाकर—भै० र० यह बहुमूत्र और मधुमेह रोग की औषध है और शरीर की नसों की व को हटा कर समर्थ तथा बलवान् करता

मूल्य १८)

मृत्युञ्जयरस — र० सा० सं० चढ़े बुखार को उतारने के लिए है।

मूल्य ।

महाशंखवटी—भै० र० अग्नि पेट का फूलना, पेट दर्द केवल या साथ दस्त आता खट्टे डकारों के लि अच्छी है अजीर्ण के रोगियों को सद पास रखनी चाहिए। मूल्य ।-)

लक्ष्मीविलास रस—रसेन्द्र सा रसायन सब तरह की खांसी, दमा को दूर करता है। जुकाम और सिर लिए भी बहुत अच्छी दवा है।

मूल्य १)

बृहत्लोकनाथ रस—भै० र० प्लीहाविकार। बढे हुए जिगर और के लिए बहुत अच्छी दवा है। थोड़ी म बच्चों के लिये भी उपयोगी है।

मूल्य १)

रजःप्रवर्तनी वटी—भै० र० स्त्री यह आर्तव प्रवर्तक है, मासिकधर्म के या कष्ट से होने की दशा में बहुत लाभ है। मूल्य १)

धात्रीलोह— भै० र० अम्लपित्त जलन के डकार) की उत्तम दवा है।

मूल्य ।।=)

योगराजगुग्गुलु [लघु]—चक्र० मवात। यह वातिक रोगों की अकसीर दवा। जोड़ों की दर्द, गठिया, अर्धाङ्ग (फालिज), पक्षाघात (लकवा), हाथ पैरों का कम्पन, ..., जांघ आदि का दर्द, हाथ पांव की ..खता और जोड़ों का अकड़ना आदि वायु बीमारियों में इसके समान कोई दवा नहीं। ..को शुद्ध करने के लिए भी फायदेमन्द है।

मूल्य १) छटांक

योगराजगुग्गुलु (बृहत्)—शा० सं० मवात। यह लघु योगराज की अपेक्षा ..क लाभदायक है।

मूल्य १)

नवायस लौह—चरक सं० पाण्डुरोग। ..की कमजोरी, कामला, प्रमेह और ..ने बुखार में इसका सेवन किया जाता है। ..से जिगर की कमजोरी दूर होती है और ..अधिक बनता है। बच्चों के लिए भी बहुत लाभदायक है।

मूल्य १) तोला

पञ्चामृत लौह मण्डूर— भै० र० ..रोग। संग्रहणी, खून की कमी और शोथ की उत्तम दवा है।

मूल्य ॥।=) तोला

कुमार कल्याण रस—भै० र० बाल- ..बच्चों के लिए ताकत की उत्तम दवा ..दस्त, उल्टी, बुखार आदि के कारण ..के कृश हो जाने पर ... चाहिए। ..इसे बच्चों को देने से उनका शरीर पुष्ट है।

मूल्य १) माशा

प्लीहशार्दूल रस—रसेन्द्र सा० सं० ..रोग। तिल्ली रोग की उत्तम औषधि है।

मूल्य ।-) तोला

स्वर्ण सिन्दूर (मकरध्वज)—भैष० र० ..में ..भिन्न २ अनुपानों के साथ इसका ..करने से आश्चर्यदायक लाभ होता है। ..ता के लिए विशेष उपयोगी है।

मूल्य ५) तोला

रस सिन्दूर—स्वर्ण सिन्दूर मकरध्वज ..ह यह भी भिन्न २ रोगों में काम आता ..मकरध्वज की अपेक्षा यह हीन वीर्य है।

मूल्य १।) तोला

रस पर्पटी—संग्रहणी में लाभदायक है।

मूल्य ॥) तोला

पंचामृत पर्पटी—अतिसार, प्रवाहिका (पेचिश), संग्रहणी, पाण्डु और तिल्ली के लिए बहुत अच्छा है।

मूल्य १) तोला

स्वर्ण पर्पटी—संग्रहणी, पुराने दस्त, शोथ तथा क्षय रोग में इसका सेवन करने से विशेष लाभ होता है।

मूल्य १) माशा, १०) तोला

लौह पर्पटी—संग्रहणी रोग में खून की कमी हो जाने पर इस से विशेष लाभ होता है।

मूल्य १) तोला

स्वर्णवंग—शुक्रमेह (Spermatorrhoea) तथा प्रमेह के लिए उत्तम दवा है। चार पांच दिन में ही लाभ मालूम होने लगता है।

मूल्य २) तोला

श्वेत पर्पटी— खट्टे डकार, गले व छाती में जलन और पेशाब का जलन से आना इत्यादि कष्टों में इसके सेवन से तुरन्त लाभ होता है।

मूल्य ॥) तोला

चन्दनादि लौह—रसेन्द्र० ज्वर०। मलेरिया के बाद कमजोर हलका ज्वर आता हो तो इसके सेवन से बहुत शीघ्र आराम होता है।

सर्वज्वरहर लौह—रसेन्द्र० ज्वर०। जिगर व तिल्ली के बढ़ जाने से बुखार पुराना हो गया हो तो इसका व्यवहार करना चाहिए, साधारण ज्वर के बाद कमजोरी दूर करने के लिए भी इसका सेवन किया जाता है।

मूल्य १।) तोला

बृ० यकृदरि लौह—भै० र० यकृत्-प्लीहाधिकार। बढ़े हुए जिगर व तिल्ली की उत्तम दवा है।

मूल्य १।) तोला

महालक्ष्मीविलास—भै० र० रसायन। उत्तम रसायन है। सिर दर्द, खांसी, जुकाम, निर्बलता, दिमागी कमजोरी, योनिविकार आदि के लिए बहुत उत्तम है।

मूल्य ५) तोला

पीयूषवल्लीरस—र० सा० संग्रहणीरोग। पुराने दस्त, खूनी दस्त, आंव और खून मिले दस्त, संग्रहणी आदि रोगों के लिए बहुत लाभदायक है।

मूल्य ॥) तोला

नृपतिवल्लभ रस—भै० र० ग्रहणी-रोग। ग्रहणी रोग में शोथ तथा खांसी आदि उपद्रव होने पर इसका व्यवहार करना चाहिए।

मूल्य ॥।) तोला

तारकेश्वर रस—भै० र० मूत्रकृच्छ्र रोग। मूत्र का दर्द के साथ या रुक रुक कर आने की अवस्था में यह देना चाहिए।

॥।) तोला

राजमृगाङ्क—र० सा० सं० क्षयरोग। तपेदिक की किसी भी अवस्था में देने से बहुत लाभ करता है। क्षय रोग की बहुत प्रसिद्ध तथा उत्तम औषध है।

मूल्य १२) तोला

एलादि गुटिका—चक्र० रक्तपित्त। अरुचि, खांसी, खांसी के साथ गले या फेफड़े से खून आना आदि रोगों के लिए उत्तम है।

मूल्य –)॥ तोला

रस राजरस—भै० र० वातरोग। पक्षाघात अर्दित आदि वातरोगों में इसका प्रयोग होता है। वातिक निर्बलता के लिए भी अत्युत्तम है।

मूल्य १२) तोला

कांचनार गुग्गुलु—चक्र० गलगण्ड रोग। कण्ठमाला और गिल्हड़ रोग के लिए विशेष लाभदायक है।

मूल्य १) छटांक

सप्तविंशिति गुग्गुलु—भै० र० भगन्दर। बवासीर, नासूर आदि रोगों में इसके खाने से बहुत उपकार होता है।

मूल्य १) छटांक

योगेन्द्र रस—भै० र० वातरोग। मूर्छा उन्माद, पक्षाघात आदि रोगों के लिए बहुत अच्छा है।

मू० २४) तोला

सर्वाङ्ग सुन्दर रस—र० सा० सं० यक्ष्मारोग। क्षय रोग, जीर्ण ज्वर, ग्रहणी तथा प्रमेह आदि रोगों में इसके प्रयोग से बहुत लाभ होता है।

मूल्य १॥) माशा

चन्द्रकला रसः—भै० र० प्रमेह। प्रमेह की अच्छी दवा है।

मूल्य ॥।) तोला

वातकुलान्तकरसः—भै० र० अपस्मार। इसके सेवन से अपस्मार, मूर्छा वात व्याधि आदि रोग नष्ट होते हैं। अपस्मार [मृगी] में इससे बढ़कर कोई रस नहीं है।

मूल्य ६) तोला

चतुर्भुजरस—भै० र० उन्माद रोग। पागलपन, मृगी, क्षय रोग, हाथ, पैर व सिर का कांपना, आदि रोगों में इसका विशेष व्यवहार होता है।

मू० २४) तोला

चन्द्रामृत रस— र० सा० सं० कास रोग। खांसी, खांसी के साथ रक्त आना और श्वास रोग के लिए बहुत उपयोगी है।

मू० ॥) तोला

वसन्ततिलकरस—मै० र० काश रोग। यह एक उत्कृष्ट पौष्टिक रसायन है। पुरानी खांसी, जीर्ण ज्वर, प्रमेह, पांडु तथा ग्रहणी आदि रोगों में बहुत लाभदायक है। मूल्य २४) तोला

ग्रहणीकपाट रस—भै० र० ग्रहणीरोग। ग्रहणी, रक्तातिसार, और अग्निमान्द्य के लिए उत्तम है। पौष्टिक रसायन है। मूल्य १५) तोला।

विडङ्ग लौह—भै० र० कृमिरोग। उदर में कृमि होने पर इसका व्यवहार किया जाता है।

मूल्य १) तोला

लीलाविलास रस— यो० र० अम्लपित्त। खट्टे डकार, जलन व वमन में उपयोगी है।

मूल्य १) तोला

प्रवाल पञ्चामृत—यो० र० गुल्म रोग। पेट दर्द, पेट का फूलना वायु गोला तथा अम्लपित्त की उत्तम औषध है। मूल्य १०) तोला

भस्म प्रकरण

अभ्रक भस्म—यह उत्तम रसायन है। खांसी, दमा, क्षय आदि रोगों में तथा निर्बलता में खास तौर पर दी जाती है। मू० ३) तोला

लोहभस्म— जिगर की कमज़ोरी, खून की कमी हृद्रोग, क्षय तथा साधारण निर्बलता के लिए उत्तम है। इसके सेवन से खून बनता है। मू० २) तोला

मुक्ता भस्म—खांसी, क्षय, दमा तथा साधारण निर्बलता में उपयोगी है। मू० ३६) तोला

मुक्ताशुक्ति भस्म—क्षय और संग्रहणी के लिए उत्तम है। मूल्य ॥) तोला

स्वर्णभस्म – क्षय रोग, संग्रहणी और हृदय तथा वीर्य को निर्बलता में विशेष उपयोगी है।

मू० ६०) तोला

रजत भस्म—साधारण निर्बलता में लाभदायक है। मू० ५) तोला

बंग भस्म—प्रमेह को खास दवा है।

मूल्य १) तोला

नाग भस्म—मूत्र सम्बन्धी रोगों के लिए बहुत अच्छा है। मूल्य ॥) तोला

यशद भस्म— रक्तस्राव तथा मूत्रसम्बन्धी रोगों के लिए लाभदायक है। मूल्य ॥) तोला

ताम्र भस्म—बुखार, खांसी तथा दमे के लिए उपयोगी है। मूल्य ॥=) तोला

प्रवाल भस्म—क्षयरोग,खांसी तथा ज्वररोग में अधिक बरती जाती है। मू० ।=) तोला

शंख भस्म—पेट के दर्द, आंव या खट्टे डकार आना आदि के लिए विशेष हितकारी है। मू० ।) तो०

वराट भस्म—भूख न लगना, दस्त, पेट दर्द आदि के लिए उत्तम है। मूल्य ≡) तोला

गोदन्ती हरताल— खांसी और बुखार के लिए बहुत उत्तम है। मूल्य ।) तोला

स्वर्ण माक्षिक भस्म—प्रमेह, पाण्डु, हृदय की निर्बलता और गदर्द माला में उपयोगी है।

मूल्य ॥) तोला

मण्डूर भस्म—जिगर की खराबी, पित्त की अधिकता, खून की कमी, पांडु व कामला की विशेष औषध है। मूल्य ॥=) तोला

कासीस भस्म—पांडु व कामला में विशेष उपयोगी है। मूल्य ।=) तोला

कुरंगशृंग भस्म—पसलियों की दर्द के लिए लाभदायक है। मूल्य ।) तोला

चूर्ण

अविपत्तिकर चूर्ण— भै० र०। अम्लपित्त के लिये रामबाण है। खट्टे डकार आना, छाती व गले में जलन होना, उलटी आना आदि शिकायतें शीघ्र ही दूर होती हैं। मूल्य ।) का १=), शीशी ३॥ तोले ≡)

अष्टांगलवण—चक्र०मदात्यय। मदात्य रोग की अच्छी दवा है। मूल्य ।) का १) शीशी ३॥ तो० ≡)

गंगाधर चूर्ण— शा० सं० अतिसार। दस्तों को बन्द करता है और पाचन शक्ति को बढ़ाता है।

मूल्य ।) का १) शीशी ३॥ तो० ≡)

जातीफलादि चूर्ण—शा० सं० संग्रहणी रोग। पुराने दस्तों के लिए बहुत मुफ़ीद है।

मूल्य ॥) पाव ; शीशी ३॥ तोले ≡)

तालीशादि चूर्ण— चरक० क्षय। खांसी मन्दाग्नि तथा अरुचि के लिए बहुत अच्छा है।

मूल्य १।) पाव, ३॥ तो० ≡)

त्रिकटु चूर्ण—वायु और कफ की दर्द, खांसी सर्दी आदि में बहुत अच्छा है।

मूल्य १॥) पाव, शीशी ३॥ तोला ≡)

त्रिफला चूर्ण...यह चूर्ण पेट को नियमित रखता है। मन्दाग्नि, मलबन्ध, पुराने दस्त, पेट दर्द में बहुत बरता जाता है। खून की उलटी आने पर भी लाभदायक है। आंखों के रोगों में इस के खाने से विशेष लाभ होता है।

मूल्य ॥=) पाव, शीशी ३॥ तोला =)

लवणभास्कर चूर्ण—चक्र०अग्निमान्द्य। हाजमे के लिए यह एक प्रसिद्ध चूर्ण है। इसके सेवन से भूख लगने लगती है। अरुचि दूर होती है और दस्त साफ आता है। मूल्य ॥) पाव, शी० ३॥ तोला ≡)

सारस्वत चूर्ण –भै० र० उन्माद। मृगी तथा पागलपन के लिए बहुत उपयोगी है।

मूल्य १।) पाव, शी० ३॥ तोला ≡)

सितोपलादि चूर्ण—चक्र० यक्ष्मा। खांसी, पुराना बुखार, अरुचि और हाजमे की निर्बलता के लिये अति उत्तम दवा है।

मूल्य १॥) पाव, शीशी ३॥ तोला ।)

सुदर्शन चूर्ण—यो० र० ज्वर। जिगर, तिल्ली मलेरिया ज्वर के लिये यह चूर्ण बहुत लाभदायक है।

मूल्य १) पाव शीशी ३॥ तोले ≡)

पुष्यानुग चूर्ण—यो० र० योनिरोग। सफेद लाल प्रदर आदि की रोगों में विशेष तौर पर बरता जाता है। मूल्य १।) पाव, शीशी ३॥ तोला ≡)

शतावर्यादिचूर्ण—शा० स० वाजीकरण। धातु की निर्बलता में विशेष तौर पर लाभदायक है। पेशाब का जलन या दर्द से आना भी इसके सेवन से बन्द हो जाता है।

मूल्य १॥) पाव, शीशी ३॥ तोला ।)

बालचातुर्भद्र चूर्ण—चक्र० बालरोग। बच्चों के दस्त, बुखार खांसी तथा उलटी आदि रोगों में इसका बहुत व्यवहार होता है।

मूल्य १।) पाव शीशी ३॥ तोला ≡)

व्योषादि चूर्ण—भै० र० नासा रोग। जुकाम में नाक के बन्द रहने पर यह चूर्ण देना चाहिये।

मूल्य १।) पाव, शीशी ३॥ तोला ≡)

शृंग्यादि चूर्ण—चक्र० हिक्का। श्वास खांसी जुकाम, दमा तथा हिक्का आदि रोगों के लिए या चूर्ण विशेष लाभदायक है। इससे बलगम तर होकर निकलने लगती है जिससे कि दमे का वेग शान्त रहता है।

मूल्य १।) पाव, शीशी ३॥ तोला ≡)

हिंग्वष्टक चूर्ण—चक्र० अग्निमान्द्य। अपच दस्तों का आना वायुगोला, पेट का अफरना तथा दर्द आदि के लिए उत्तम है।

मूल्य १।≡) पाव, शीशी ३॥ तो० ।)

लशुनाष्टक चूर्ण- मन्दाग्नि, अजीर्ण, पेट फूलना, पुराने दस्त तथा हैजे के लिये उपयो[गी] है। मूल्य १।≡) पाव शीशी ३॥ तोले ।)

पञ्चनिम्ब चूर्ण— शा० सं० कुष्ठ रोग रक्त तथा त्वचा की बीमारियों के लिए उ[त्तम] है। फोड़े फुन्सी, खाज, दद्रु तथा कोढ़ आदि में इसके सेवन से बहुत लाभ होता है।

मूल्य १।) पाव, शीशी ३॥ तोला ≡)

चित्रकादि चूर्ण—भै० र० संग्रहणी। भूख बढ़ाता है और दस्त को बांध कर लाता है

मूल्य १।) पाव, शीशी ३॥ तोला

मधुयष्ट्यादि चूर्ण—कब्ज़ियत के [लिए] बहुत अच्छा है। ज्वर में भी पेट साफ करने के प्रायः दिया जाता है।

मूल्य १) पाव, शी० ३॥ तोला

लवंगादि चूर्ण—भै० यक्ष्मारोग। [क्षय] में अरुचि, अजीर्ण, अतिसार व खांसी के लि[ए] ...चाहिए। मूल्य १) पाव, शी० ३॥ तो[ला]

दाडिमाष्टक चूर्ण—भै० र० ग्रहणी भूख बढ़ाता है, मल को बांधता है और खांसी को दूर करता है। मूल्य १) पाव, शी० ३॥

हिंग्वादि चूर्ण—यो० र० गुल्म। [पेट] फूलना, वायुगोला बवासीर रोगों के लिए हि[तकारी]

मूल्य २) पाव, शी० ३॥

यमानीषाडव—च० अरुचि रो[ग] स्वादिष्ट रोचक चूर्ण है। इससे खाने में रुचि और भूख अधिक बढ़ती है। मू०१) पाव शी०

न्यग्रोधादि चूर्ण—भै० र० प्र[मेह] सम्बन्धी रोगों के लिए बहुत उत्तम है। मूत्र ... है और प्रमेह के कारण होने वाली फुंसियों ... करता है। मूल्य १॥) पाव शीशी ३॥ तोले

अश्वगन्धादि चूर्ण—शा०सं० इन्द्रिय दुर्बलता के लिए उत्तम है।

मूल्य १॥) पाव

आसवारिष्ट

अभयारिष्ट—भै० र० अर्शस् जिगर की बीमारियों तथा कब्ज़ को हटा[ता] बवासीर के मस्सों को सुखाता है।

अशोकारिष्ट—भै० र० प्रदर श्वेतप्रदर और सब प्रकार की योनि रो[गों की] दवा है। इससे गर्भाशय सन्तान के यो[ग्य] ...

मूल्य

अमृतारिष्ट—भै० र० ज्वर। ... तथा मलेरिया के सब प्रभावों को हटा[कर] ... हुई तिल्ली को घटाता है।

कनकासव—मै० र० श्वास। दमा और खांसी के लिए बहुत उपयोगी है। मूल्य ।।।) पाव

कुटजारिष्ट—मै० र०। ग्रहणी या पुराने दस्त। को रोकता है। मूल्य ।=) पाव

कुमार्यासव—यो० र० गुल्मरोग। जिगर के रोगों के लिये विशेष उपयोगी है। कब्ज, अफारा, बवासीर में अधिक बरता जाता है। जिन स्त्रियों को मासिक धर्म कम और तकलीफ से होता है उनके लिए भी बहुत लाभप्रद है। मूल्य ।।। पाव

चन्दनासव—मै० र० शुक्रमेह। सुजाक में पेशाब की जलन को हटाता है। पेशाब में खून या पीप आते हों तो उन्हें रोकता है। मूल्य ।।।) पाव

दशमूलासव—मै० र० वाजीकरण। खांसी, अग्नि, इन्द्रिय दुर्बलता के लिए उत्तम है। प्रसूता स्त्रियों के लिए विशेष उपयोगी है। मूल्य १ पाव

द्राक्षासव—मै० र० क्षय रोग। पुरानी खांसी, दिक, भूख न लगना, कब्ज, थकावट तथा कमजोरी पर निहायत मुफीद है। मूल्य ।।।) पाव १।) पौंड

लोहासव—शा० स० पाण्डु रोग। जिगर व तिल्ली के विकार या ज्वर के कारण पाण्डु रोग होने पर विशेष लाभदायक है। मूल्य ।।।) पाव

सारस्वतारिष्ट—मै० र० स्वरभंग। ब्राह्मी आदि और स्मृतिवर्धक औषधियों से बनता है। गले का, दिमाग का थकना तथा बात भूल जाना आदि में फायदा होता है और स्मृति तथा ज्योति बढ़ती है। मूल्य १ पाव

अश्वगन्धाद्यासव—मै० र० [illegible] रोग। ..., बवासीर, खून की कमी तथा कमजोरी के लिए उत्तम है। मूल्य ।।=) पाव

अश्वगन्धारिष्ट—मै० र० मूर्छा रोग। मूर्छा, (पागलपन) साधारण निर्बलता, ज्ञान तन्तुओं तथा और वायु की बीमारियों में यह फायदा करता है। मूल्य ।।।) पाव

खदिरारिष्ट—शा० सं०। कुष्ठ। त्वचा की बीमारियों के लिए बहुत उत्तम है। ।।।) पाव

रोहितकारिष्ट—मै० र० यकृत्प्लीहा। जिगर, तिल्ली आदि उदर रोगों के लिए लाभदायक है। मूल्य ।।।) पाव

...रिष्ट—मै० र० वातरोग। वातिक दुर्बलता में बहुत अच्छा है। मूल्य ।।।) पाव

घृत और तैल

तिक्त घृत—मै० र० विसर्प। फोड़े, फुंसी और त्वचा की खराबी से होने वाले रोगों के लिए ...। मूल्य १।।।) पाव

त्रिफला घृत—चक्र० नेत्र रोग। आंखों के ... कारण पढ़ने लिखने से दिमाग के थक जाने में चक्कर आने आदि के लिए बहुत ...। मूल्य २) पाव

... घृत—चरक० अपस्मार। स्वरभंग मृगी तथा हिस्टीरिया आदि रोगों में प्रयुक्त होता है। मूल्य २) पाव

...घृत—चक्र० योनि रोग। जिन स्त्रियों के गर्भ ... गिरता, या ठहर कर गिर जाता है या ... होती है उन के लिए यह बड़ा ही ...। मूल्य २।।) पाव

वासादि घृत—चक्र० रक्तपित्त। शरीर के ... खून आना, सिर या किसी अङ्ग से जलन होना, मुख या नाक से खून आना और धातु क्षीणता आदि रोगों के लिए बहुत लाभदायक है। मूल्य २ पाव

सुकुमारकुमार घृत—चक्र० मूत्रकृच्छ्र। पेशाब का कष्ट से आना, कब्ज, कमर दर्द, योनिशूल आदि के लिए विशेष उपयोगी है। मूल्य २) पाव

कासीसादि तैल—शा० स० अर्श रोग। बवासीर खुनखूद, मुख्पाक तथा घाव के लिये यह तैल बहुत उपयोगी है। मूल्य १।।) पाव

गुडूची तैल—चक्र० वातरोग। वायु के कारण खून के बिगड़ जाने पर यह तैल लगाया जाता है। मूल्य १।। पाव

माष तैल—चक्र० वातरोग। कमरदर्द, सिरदर्द हाथ पैर तथा सिर का कांपना और शरीर का सूखना आदि रोगों के लिये मशहूर है। मूल्य १।।) पाव

मरिचादि तैल—मै० र० कुष्ठ रोग। खाज फोड़े फुंसी तथा दाद वगैरह के लिए मशहूर है। मू०१।)

विषगर्भ तैल—यो० र० वातरोग। शारीरिक दर्दों के लिए बहुत लाभदायक है। मूल्य १।।) पाव

महालाक्षादि तैल—मै० र० ज्वर। पुराने बुखार और क्षयरोग इस तैल की मालिश करने से ज्वर तथा जलन दूर होते हैं। बालक वृद्ध आदि कमजोरों के बाद इस तैल के इस्तेमाल से निर्बलता दूर होती है। कमजोर बच्चे इसकी मालिश करने से हृष्ट पुष्ट होते हैं। मूल्य १।।) पाव

महानारायण तैल—चक्र० वात रोग। पक्षाघात, अर्धाङ्ग शरीर के किसी भाग का बेकार होजाना गठिया आदि सब तरह के वायु रोगों की प्रसिद्ध औषध है। मूल्य ३) पाव

भृङ्गराज तैल—मै० र० क्षुद्ररोग। यह तैल भांगरा तथा त्रिफला आदि केशवर्धक औषधियों से तैयार किया जाता है। इसके लगाने से बाल सफेद नहीं होते और उनकी जड़ें मज़बूत होती हैं। मूल्य १) पाव

षड्बिन्दु तैल—चक्र० शिरो रोग। पुराने जुकाम, सिर दर्द तथा आंखों की कमज़ोरी में इसका व्यवहार किया जाता है। मूल्य १।। पाव

अश्वगन्धा तैल—चक्र० वात रोग इस तैल की मालिश करने से वातिक रोग नष्ट होते हैं और शरीर हृष्ट पुष्ट होता है मूल्य २।।) पाव

बिल्व तैल—कर्ण रोग। कान से कम सुनना या कान का बहना इत्यादि रोगों में विशेष उपयोगी है। मूल्य १।) पाव

आस्यादि तैल—शा० सं० नाड़ी रोग। जख्म नासूर, तथा फोड़े फुंसी पर लगाने के लिए यह तैल अत्यन्त उपयोगी है।

धत्तूर तैल—मै० र० कृमिरोग। सिर पर लगाने से जुएं नहीं रहतीं। मूल्य १।) पाव

निर्गुण्डी तैल—मै० र० नाड़ी व्रण। नासूर गांठ कण्ठमाल आदि में यह तैल लगाया जाता है। मूल्य १(') पाव

दशमूल तैल—मै० र० शिरोरोग। सब प्रकार की सिरदर्दों में यह तैल सिर पर लगाया जाता है और इसका सुंघाव भी लिया जाता है। मूल्य १।।)पाव

लाक्षा चन्दनादि तैल—मै० र० काय रोग। खांसी, क्षय रोग में या मुख से खून आने की दशा में इसकी मालिश की जाती है। मूल्य २।।) पाव

सैंधवादि तैल—मै० र० वात व्याधि। वातिक दर्दों तथा गृध्रसी (Sciatica) के लिए अक्सीर होता है। मूल्य =) छटांक

कुङ्कुमादि तैल—चक्र० क्षुद्र रोग। इसे मुख पर लगाने से झाईं वगैरह दूर होती है और मुख की कान्ति बढ़ती है। मूल्य १।।) छटांक

अवलेह तथा पाक

कण्टकार्यवलेह—शा० कास। खांसी दमा आदि छाती के रोगों के लिए विशेष उपयोगी है। मूल्य १।) पाव

कुटजावलेह—चक्र० अर्श रोग। खून के दस्त, पुराने दस्त और खूनी बवासीर के लिए उत्तम है। मूल्य १) पाव

वासावलेह—मै० र० कास रोग। दमा पुराना खांसी के साथ खून आना, ज्वर और तपेदिक में इसके सेवन से बहुत लाभ होता है। मूल्य ।।।) पाव

च्यवनप्राश—(चरक रसायन) यह कमजोरी की प्रसिद्ध दवा है। गले का बैठना, पुरानी खांसी दमा, फेफड़ों की कमज़ोरी, धातु की क्षीणता, हृदय की धड़कन, क्षयरोग तथा पेशाब की बीमारियों के लिए विशेष हितकर है। मूल्य ४) सेर

सुपारी पाक—यो० र० प्रमेह। प्रमेह और स्त्रियों के जिरयान रोग की बहुत ही मशहूर ताकत की दवा है। मूल्य १।।) पाव

भारंगीगुड़—मै० र० हिक्का श्वास। खांसी दमा और स्वरभंग की मशहूर दवा है। इसके सेवन से जठराग्नि दीप्त होती है; दस्त साफ होता है और वायु का अनुलोमन होता है। मूल्य १) पाव

हरीतकी खंड—मै० र० शूल। स्थायी मलबन्ध (कब्ज) अजीर्ण तथा अम्लपित्त के लिए हरीतकी का यह योग बहुत अच्छा है। मूल्य ।=) पाव

हरिद्राखण्ड बृहत्—भैष० कृमिरोग। यह पेट के कीड़ों, दाद, खुजली, चंबल आदि त्वचा तथा खून की बीमारियों के लिए सर्वोत्तम दवा है। मू० १।) पाव

सौभाग्य शुण्ठी—मै० र० स्त्री रोग। बच्चा होने के बाद यह पाक स्त्रियों के लिए अमृत तुल्य है। गर्भाशय को शुद्ध कर इस समय होने वाली सब तकलीफों से बचाता है। मूल्य १।।) पाव

व्याघ्री हरीतकी—चक्र० कास। खांसी, दमा के लिए बहुत उपयोगी है। इससे दस्त भी साफ होता है मू० १।।) पाव

वासाखण्डकूष्माण्ड—मै० र०; रक्तपित्त। खांसी, दमा क्षयरोग, रक्तपित्त (फेफड़ों में खून आना) दिल की कमज़ोरी व धड़कन और अम्लपित्त के लिए बहुत अच्छा है। १।।) पाव

रसोन पिण्ड—चक्र० आमवात। मृगी, उन्माद तथा गठिया की उत्तम दवा है। मू० ।।) छटांक

कल्याणावलेह—चक्र० स्वरभंग। आवाज न बोलना, तुतलाना आदि रोगों में इसका व्यवहार होता है। मूल्य १।।) पाव, यो० र० मौसा ।)

कुशावलेह—मै० र० प्रमेह। प्रमेह, पथरी व मूत्राघात (मूत्र रुक रुक कर आना) के लिए विशेष उपयोगी है। मू० १।।)

चित्रक हरीतकी—चक्र० पीनस। पुराने जुकाम के लिए बहुत अच्छा है। मूल्य १।।) पाव

संशोधन—

	पृष्ठ	कालम	पंक्ति	अशुद्धि	शुद्धि
	१०	२	१२	सेवा	सेक

॥ ओ३म् ॥

"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत"

गुरुकुल

सम्पादक—साहित्यरत्न पं० हरिवंश वेदालङ्कार

एक प्रति का मूल्य -) [गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख-पत्र] वार्षिक मूल्य २॥)

वर्ष ४] गुरुकुल काङ्गड़ी, शुक्रवार ६ भाद्रपद १९९६, २२ सितम्बर १९३९ [संख्या २

अन्तर की चाह

अन्तःकरण व्याकुल है। तड़फड़ा रहा है। छटपटा रहा है। पता नहीं क्यों? क्या कोई आफत का पहाड़ आ टूटा है? क्या जीवनलीला समाप्त होने वाली है? पता नहीं चलता क्या हेतु है! बस मत पूछो हृदय की एक अवर्णनीय दशा है।

× × × ×

ऐसा प्रतीत होता है कि जीव किसी प्रियतम वस्तु की इच्छा कर रहा है। जगह २ घूमने जाता है। पहाड़ों पर, नदियों के संगमों पर, प्रसिद्ध प्रसिद्ध तीर्थों पर, बड़े २ योगी महात्माओं के पास, परन्तु उसे प्रियतम की वस्तु की प्राप्ति नहीं होती है। व्याकुल होकर लौटता है और आकर अपने स्थान पर शोचनीयावस्था में स्थित हो जाता है।

× × × ×

उस प्रियतम वस्तु के न मिलने से पागल हो जाता है। कभी अपने आपको कोसता है। कभी अपने जन्म को गाली देता है। कभी उठता है। कभी बैठता है। कभी चलने लग पड़ता है। कभी दौड़ता है। कभी रोता है। कभी हंसता है। कभी अपना सिर पीटने लगता है। कहने का तात्पर्य यह है कि एक अव्यवस्थित अवस्था में उसका जीवन उसको बार बार इधर से उधर झुलाता है। परन्तु इन सब क्रियाओं को करते हुए भी उसको प्रियतम की रट नहीं भूलती है।

× × × ×

हे प्रियतम तुम कहां हो? तुमको इस जग के कोने कोने में ढूंढा परन्तु तुम्हारा कहीं पता न पाया। यह जीव तुम्हारे दर्शनों का भूखा है। तुम दर्शन देकर इसकी भूख मिटाओ। तुम्हारा क्या रूप है? सृष्टि के विचित्र विचित्र प्राणी देखे. उनमें तुम्हें भी देखने की इच्छा की परन्तु तुम न दिखाई दिये। आज तुम्हारे लिये यह जीवन सर्वस्व दान कर दिया है। हे प्रियतम अपने इस प्यारे के लिये भी दर्शन न दोगे तो किसके लिये दोगे।

× × × +

प्रियतम के प्रति चिल्लाता चिल्लाता थक जाता है। वाणी रुक जाती है। बेहोश होकर गिर पड़ता है। कई घण्टों बेहोश पड़ा रहता है उठता है फिर वे ही विचार उसको तङ्ग करते हैं। व्याकुल होकर फिर गिर पड़ता है। फिर उठता है और फिर गिरता है। इसी तरह तीन चार बार होने पर अन्त में जब यह बिलकुल निःशक्त हो जाता है तो एक लम्बी समाधि में स्थिर होकर बैठ जाता है और लगातार कई घण्टों तक बैठा रहता है।

× × × ×

अन्त में एक आवाज़ उसे सुनाई पड़ती है। हे प्रिय जिसके लिए तुम इतना कष्ट उठा रहे हो वह सर्वत्र है। वह सीमा बन्धन से रहित होता हुआ अनन्त है। वह अनन्त शक्तिशाली है। उसका रूप कोई नहीं है। वह निराकार है। वह इस जग का रचयिता है। तुम्हारा रचयिता भी वही है। वह अन्तःकरण में भी स्थित है। यदि सचमुच तुम उसको देखना चाहते हो तो अन्तःकरण में ही देखने की कोशिश करो। इधर उधर मत दौड़ो। उसे देखने का सबसे अच्छा तरीका अन्तःकरण ही है। उसका नाम प्रभु है।

× × × ×

परन्तु उस पियासे की प्यास अभी कहां मिटे। जब तक कि वह अपनी शक्ति को उसकी शक्ति के साथ पूर्ण रूप से मिला न दे। वह उसमें पूर्ण रूप से मिल जाने का यत्न करता है। रास्ता अपने आप साफ होता चला जाता है। पहले पहल कठिनाइयां उसके सामने आती हैं। कभी कभी मन विचलित भी होता है। परन्तु वह सबको ठोकरें मारता जाता है और अन्त में उसको एक ऐसी शक्ति मिलती है जो शक्ति एक अनन्तकाल की लम्बी समाधि तक उसकी सहायता करती है। वह उस अनन्त समाधि में ही अपने प्रियतम को याद करता है। उसको सुख अनुभव होता है। अन्त में उसी को याद करता हुआ उसमें जा मिलता है और अपने इस जीवन के क्षणों को सफल मानता है। जब उससे योग होता है उस समय उसकी अन्तर की चाह पूर्ण होती है उसके बाद उसकी आत्मा भी अपने प्रियतम के साथ विचरण करती है।

अविज्ञात वीर

श्री "विराज"

"हूं, अगर मर भी गए तो क्या हुआ ?" रामनाथ जी ने कहा। मैं तो अब भी चकित हूँ कि एक शिक्षित युवक जिसकी आयु २० वर्ष है पूछता है "अगर मर भी गए तो हुआ क्या ?" मेरे हृदय से प्रश्न उठता है कि आगे और होने को बचा भी क्या ? हैदराबाद सत्याग्रह से पूर्व मैं उस वाक्य का अर्थ नहीं समझ पाया था। पर अब स्पष्ट प्रतीत होरहा है कि ऐसे भी महाप्राण व्यक्ति होते हैं जिनके लिए हम भाग्यहीनों का 'सब कुछ' भी 'कुछ नहीं' ही होता है।

रामनाथ जी वही थे। वे इस "क्या हुआ" का क्रियात्मक उत्तर देने को उतारू थे। और अन्त में बतला गए कि हमारे लिए मरना जीना "कुछ भी नहीं" है। उन की बात पर अड़जाने का स्वभाव अब भी याद दिला देता है कि उन्हें मरने की तिल भर भी परवाह नहीं थी। उनके महत्प्राण जीवन की असंख्यात घटनाओं का उल्लेख तो आगे पुस्तकाकार होगा ही पर कुछ घटनाएं तो भुलाए न भूलें ऐसी हैं।

अभी जब सत्याग्रह के प्रारम्भ में हमारा जत्था हैदराबाद जेल में था तो कोई अधिकारी मिलने आए। बातचीत के सिलसिले में उन्होंने अपने साथी से कहा कि ये लोग तो खून लगा कर शहीद होने आए हैं।" वह समय ऐसा था कि अधिकारियों से बोलने की लोगों को हिम्मत नहीं होती था। तब रामनाथ जी ने चट से कहा "तो फिर औरों को खून लगाने के लिए हमारी गर्दनें लीजिए न, हम तैयार हैं।" यह कर उन्हें गुरुकुल कांगड़ी के अपने १५ साथियों की ओर संकेत किया। अधिकारी महोदय 'बोलो मत, बोलो मत' कहते हुए तेज़ी से गुज़र गए। शामको उनके पैरों में डण्डा बेड़ी डाल दी गई।

एक बार जेल में एक वकील निरीक्षण के लिए आए और पूछने लगे कि कोई तकलीफ है ? तो रामनाथ जी बोले कि 'बस सबसे बड़ी तकलीफ यही है कि आप जैसे निरीक्षक आजाते हैं, न आया करें तो अच्छा हो।" उसने हैरत में पड़कर पूछा क्यों ? तो रामनाथ जी ने जवाब दिया "तकलीफें तो जो हैं सो तो है ही ; किन्तु जब आप सरीखे निरीक्षक आते हैं और पूछते हैं तो हम अपना तकलीफें बयान कर देते हैं। इस पर जेलर सख्ती बढ़ाता है कि हम शिकायत क्यों करते हैं।" वकील महोदय "तुमसे कश्मीर का बदला लिया जायगा कहते" हुए चले गए। बाद में उन्हें तन्हाई की सज़ा दी गई।

इस प्रकार दो चार नहीं, अनेकों उदाहरण हैं और कितने ही आगे भी होते, पर, हाय "देव कुलप्रिय मर जाते हैं युवक ही।" एक अच्छे साथी, सच्चे मित्र, आदर्श सैनिक और राष्ट्र के एक होनहार युवक का धार्मिक सत्याग्रह में घोर कष्ट सह कर जेल से बाहर आने पर देहावसान होगया। यह भी विधि का ही विधान था। किन्तु फिर भी दिल को कुछ सहारा बँधता है कि वे अपने जीवन का उस राह पर लीक, जिस ओर कोई भी आदर्श प्रिय युवक उन्हें अपना आदर्श मानकर चल सकता है।

दिवंगत आत्मा के प्रति—

हमें छोड़ अज्ञात दिशा को
बन्धु, कहां तुम चले गए।
उस निष्ठुर विधना के हाथों
हम सब बेबस छले गए।

(२)

खिलती कलिका क्रूर मरुत ने
असमय हाय! गिराई।
उसको लतिका, साथी फूलों
पर कुछ भी दया न आई।

(३)

वह प्रतिपल मुसकाता आनन
क्रियाशील सुन्दरतम तन मन
बलिवेदी पर हँसते हँसते
करना नीरव आत्म-समर्पण।

(४)

उस भीषण कारा में तुमने
हँसते हँसते सब दुख झेले।
निर्दय कोड़ों की चोटों से
तुम बेसुध मस्ती में खेले।

(५)

बन्धु आज तुम नहीं यहां हो।
अरे कहां हो? अरे कहां हो?
बोल पड़ो तुम एक बार तो
छिपे हुए प्रिय बन्धु जहां हो।

(६)

हाय, अभी ही स्वर्णिम ऊषा
मुसकाई इठलाई !
इतनी जल्दी घन घन माला
काली क्रूरा छाई !

(७)

इस काले पर्दे के पीछे
किसका नीरव गान ?
विश्व विधाता की लीला को
मर्त्य सके क्या जान ?

(८)

प्रभु हमको वापिस करदो, यह
धन अनमोल हमारा।
इससे कोई बढ़ न जायेगा
अक्षय कोप तुम्हारा।

(९)

बन्धु, हमारे हुए आज तुम
उस अनन्त में लीन;
किन्तु हमारा हृदय दुःख से
व्याकुल जर्जर क्षीण।

- सत्यभूषण 'योगी'

शोक सभा

कुलवासियों की यह सभा ब्र० रामनाथ के असामयिक देहावसान पर शोक प्रगट करती है और परम प्रभु से प्रार्थना करती है कि वह दिवंगत आत्मा को शान्ति प्रदान करें किंवा उनके सन्तप्त परिवार को सान्त्वना प्रदान करें।

कुलमन्त्री

× × × ×

हम सब आर्य भाईयों की यह शोक सभा हैदराबाद आर्य-सत्याग्रह में भाग लेने वाले सर्व प्रथम गुरुकुल कांगड़ी के जत्थे के होनहार नवयुवक ब्रह्मचारी रामनाथ त्रयोदश के अमर बलिदान पर उनके शोक-संतप्त परिवार से गहरी सहानुभूति प्रकट करती है और उस विश्व नियन्ता से प्रार्थना करती है कि धर्म की वेदी पर बलि होने वाले इस वीर तरुण की दिवङ्गत आत्मा को सद्गति प्रदान करे।

मंत्री
आर्य समाज कोटा

हाय राम

[ले०-श्री पं० क्षितीशकुमार जी वेदालङ्कार]

"भाई जी! आप कहां जा रहे हैं?"-उस दिन एक छोटे से बालक ने पूछा।

"हम हैदराबाद जा रहे हैं।"

"वहां क्या करेंगे?"

"सन्ध्या हवन करेंगे।"-बच्चे को समझाने के लिए सरलता से मैंने कहा।

"यहां आपको सन्ध्या हवन नहीं करने देते"?—उसने कुछ आश्चर्यभरी मुद्रा में, मानों न जाने के लिए आग्रह-सा करते हुए अपनी उत्सुक आंखों से उत्तर की प्रतीक्षा की।

"नहीं यहां तो सन्ध्या हवन करने देते हैं, पर वहां हैदराबाद में नहीं करने देते वह मुसलमानों की रियासत है। वहां का राजा भी मुसलमान है।"

"मुसलमान तो बड़े निर्दयी होते हैं। वे तो आपको खूब तड़पायेंगे, खूब मारेंगे और खाने को रोटी नहीं देंगे?"

"नहीं, रोटी हमें खाने को कहीं-न-कहीं से मिल जावेगी।"

वहां कहां से मिलेगी? यहां से अपने साथ बांध कर ले जायेंगे क्या?"-उसने अपनी बाल-सुलभ कल्पना से कहा।

मैंने, अपनी हंसी रोकते हुए कहा-"नहीं रोटी तो वे हमें अवश्य ही देंगे-उन्हें देनी पड़ेगी, पर मार-पीट भी खूब करेंगे।"

उसने एक दम गम्भीर होकर कुछ व्याकुलता के साथ कहा-"अच्छा, भाई जी! यदि आप मर जावें तो हमें सूचना अवश्य दे देना। हम भी रोयेंगे।"

बच्चे की इस भोली बात को सुन कर मेरी आँख का कोना गीला हो गया और साथ ही ओंठों पर हँसी भी फूट निकली। मैंने कहा-"अच्छा"-और वहां से चल दिया।

× × × ×

आज ६ महीने बाद।

एक समय वह था कि हम १५ कुलबन्धु हैदराबाद के सत्याग्रह में अपनी प्रथम आहुति देने के लिए गए थे, और आज ६ महीने बाद हम उस संग्राम में विजय प्राप्त करके पुनः कुलभूमि में लौटे हैं। पर हाय! कैसे कहूँ कि जब हम गए थे तब १५ थे और अब लौट कर आए हैं तो हम में से एक नहीं है! ...

रामनाथ! तुम चले गए। बिना कुछ कहे चले गये! उस दिन कुलभूमि में स्वागत का उत्तर देते हुए मैंने सबके सामने उस बच्चे से कहा था—"मुझे हर्ष है कि हम सब कुल-बन्धु सकुशल जीवित लौट आये हैं। मुझे किसी के मरने की सूचना नहीं देनी पड़ी।"

पर राम! तुम मुझे झूठा कर गए। मुझे उस बच्चे के सामने जाते हुए शर्म आती है। क्या मुंह लेकर जाऊं?

किस मुँह से सूचना दूं कि मैं मर गया हूं!
राम! तुम्हीं बचाओ।
हाय राम!

स्वास्थ्य संबन्धी लेख लिखने वालों को सूचना

१—एक सोने का तमगा जो कि "राय शम्भूदयाल साहिब का सोने का तमगा" कहलाता है, हर साल स्वास्थ्य विषय सम्बन्ध पर सबसे अच्छा लेख लिखने वाले को दिया जाता है।

२—इस साल लेख का विषय यह है:—देहातों में शारीरिक सुधार की योजना।

३—लेख संयुक्त प्रान्त के आम लोग, वैद्य, हकीम, डाक्टर, विद्यार्थी और सभी पढ़े लिखे लोग भेज सकते हैं।

४—लेख सरल हिन्दी भाषा में लिखा जायगा और इसका विस्तार ३,००० शब्दों से ज्यादा न होना चाहिए।

५—लेख मेडिकल अफसर इन्चार्ज प्राविंशियल हाईजीन इन्स्टीट्यूट यू०पी० लखनऊ के पास १५ नवम्बर सन् १९३९ ई० तक पहुंच जाना चाहिए।

६—हर एक लेख पर भेजने वाले का नाम और पूरा पता साफ २ अक्षरों में होना चाहिये और लिफाफे के बायें कोने पर "इनाम का लेख" लिखा होना चाहिए।

७—लेखों की जांच करने वाले इस सूबे के स्वास्थ्य विभाग के डायरेक्टर महोदय होंगे और तमगा देने के सम्बन्ध में उनकी राय आखिरी समझी जायगी।

८—लेख के संबन्ध में कोई लिखा पढ़ी नहीं की जायेगी।

९—कोई लेख लौटाया नहीं जायगा।

गु रु कु ल

६ भाद्रपद शुक्रवार १९९६

श्री स्वामी अभयदेव जी द्वारा श्री सेवानन्द जी से चिट्ठी पत्री

'गुरुकुल' के पाठकों को मेरे समान ही, यह जानकर प्रसन्नता होगी कि श्री सेवानन्द जी का (उनके लेख पर अपने विचार प्रकट करने से पहिले न हो सका तो उसके बाद सही) पता मालूम हो गया है अतएव मुझे उनके साथ चिट्ठी पत्री करने का सुअवसर प्राप्त हो गया है। मुझे मिले उनके अन्तिम पत्र के प्रारम्भ और अन्त के कुछ वाक्य मैं नीचे उद्धृत करता हूँ।

शिकयारी

२०-८-३९

"पूज्य स्वरूप स्वामी अभयदेव जी;

सादर नमस्ते। आपका अन्तिम पत्र मिला। यह कहने की जरूरत तो नहीं है फिर भी मैं लिखने के लालच को नहीं जीत सकता कि आपका पहिला और दूसरा दोनों पत्र पढ़कर मेरे मन में आप के विषय में पहिले से ही जो भाव थे वह दृढ़ हो गए हैं। आप सत्य और अहिंसा के सच्चे उपासक हो। आप के पत्रों में प्रकटती हुई अहिंसा और सत्य की झलक मुझ को यहां बैठे प्रभावित कर देती है। अस्तु..............मैं सीमाप्रान्त के एक छोटे से गांव में छोटे पैमाने पर आश्रम बनाकर रहता हूं। आप कभी पंजाब के दौरे पर निकल पड़ें और दर्शन देने की कृपा करें तो थोड़े समय के लिये तो आप के पुण्य संसर्ग से मुझ समान मलिन जीव भी पवित्र हो जायगा, इसमें क्या आश्चर्य ? यदि मैं युवा होता तो आपके पास विद्योपार्जन के लिये ही नहीं परन्तु चारित्र्य गठन के लिये भी आकर रहता पर वह अवस्था अब नहीं रही।

कृपाकांक्षी

सेवानन्द का वन्दे मातरम्

श्री सेवानन्द जी के पत्र के दो उपर्युक्त उद्धरण मैंने इस लिये दिये हैं कि उनके गुरुकुल सम्बन्धी उस तीव्र लेख के कारण पाठकों के मन में उनके विषय में जो एक 'आलोचक' केवल 'आलोचक' की धारणा बैठ गई हो वह ढीली हो जाए, बल्कि ठीक हो जाए।

अब मैंने गुरुकुल पत्र में काका साहब कालेलकर के उत्तर के साथ उस उत्तर के विषयभूत श्री सेवानन्द जी का लेख भी छाप दिया था तो मुझे कई महानुभावों ने कहा कि मुझे श्री सेवानन्द जी का मूल लेख नहीं छापना चाहिये था। यह भी कहा गया कि काका साहब का जवाब भी मामूली सा है कोई करारा, जैसे को तैसा मजेदार जवाब नहीं दिया गया। दूसरी तरफ श्री सेवानन्द जी ने मुझे अपने पहले पत्र में लिखा कि उन्होंने जो 'पूर्णापत्रिका में काका साहब के लेख का उत्तर दिया है तथा 'आर्य समाज किस ओर' शीर्षक लेख से कुछ और भी उत्तर दिया है उन्हें भी मैं गुरुकुल में प्रकाशित कर दूं। उन के शब्द ये थे "आप कृपा पूर्वक 'पूर्णा' के मई और जून के अङ्क मंगवा कर पढ़ें। यदि आवश्यक हो तो मेरे दोनों उत्तरों को या उनके कुछ अंश को गुरुकुल में स्थान दें। सत्य का तो यह तकाजा है कि काका साहब के लेख के जवाब में मैंने जो लिखा है वह भी गुरुकुल के पाठकों के समक्ष रखना चाहिये।

मैंने श्री सेवानन्द जी से निवेदन किया कि मैं तो पहले ही न्याय कर चुका हूं। आप का पहला लेख भी काका साहब के उत्तर के साथ छाप चुका हूं। आगे विवाद बढ़ाने से लाभ नहीं दीखता पर यदि काका साहब आप के लेख के प्रत्युत्तर में कुछ लिखना चाहें तो मैं एक बार फिर आपका उत्तर और काका साहब का प्रत्युत्तर प्रकाशित कर दूंगा। काका साहब ने फिर कुछ लिखना ठीक नहीं समझा। श्री सेवानन्द जी ने भी कृपा पूर्वक मेरे कथन को उचित मान आग्रह नहीं किया। बल्कि मैं तो उन के दूसरे लेख 'आर्य समाज किस ओर ?' को गुरुकुल में प्रकाशित करने को उद्यत था, परन्तु श्री सेवानन्द जी ने लिखा कि यह लेख उन्होंने गुजराती आर्य समाजी भाइयों के लिये लिखा है, हिन्दी पाठकों को इस में कुछ नूतन सामग्री न मिलेगी। अतएव उस लेख को भी मैंने गुरुकुल में नहीं दिया। वैसे मैंने इन दोनों ही लेखों को हिन्दी अनुवाद करा कर प्रकाशित करने के लिये तैयार कर रखा था।

श्री सेवानन्द जी के उन लेखों में दो बातें ऐसी हैं जिनको गुरुकुल के पाठकों के सन्मुख रख देना मैं आवश्यक समझता हूं। वह न रखी जांय तो श्री सेवानन्द जी के साथ अन्याय होगा। पहली बात यह है कि श्री सेवानन्द जी ने वह लेख गुरुकुल पर ही कुछ लिखने के लिये, गुरुकुल की आलोचना करने के लिये नहीं लिखा था। वह उनकी उस लम्बी लेखमाला का एक अंश था जो कि उन्होंने अपने सूरत से उत्तराखण्ड तक और फिर सीमाप्रान्त तक की अपनी यात्रा के कुछ अंश के वर्णन में 'मेरी यात्रा डायरी के कुछ पृष्ठ' इस शीर्षक से लिखी थी। उसी के एक अध्याय में हरद्वार के दर्शनीय स्थानों के तौर पर श्री रामकृष्ण सेवाश्रम तथा गुरुकुल के विषय में लिखा है। अतः श्री सेवानन्द जी पर यह दोष नहीं लगाया जा सकता कि उन्होंने ६,७ साल के बाद जान बूझ कर गुरुकुल को अपनी आलोचना का विषय बनाया है। मैं ने भी गुरुकुल में टिप्पणी करते हुए जो इस बात पर आपत्ति की है उसे मैं सहर्ष वापिस लेता हूं।

दूसरी बात यह है कि 'प्रजा बन्धु' आदि पत्रों ने गुरुकुल से निकलने वाले 'जेदिया ब्रह्मचारी' या 'स्वामी श्रद्धानन्द जी का गुरुकुल आज निस्तेज हो गया' आदि जोरदार और लड़ाका मनोवृत्ति वाले शीर्षक दे दिये। ये शीर्षक

श्री सेवानन्द जी के दिये हुए नहीं थे और उन के पत्र से पता लगता है कि ऐसे शीर्षक देना उन्हें कदापि अभीष्ट नहीं था।

यद्यपि श्री सेवानन्द जी ने अपने उत्तर के प्रारम्भ में यह कह कर कि गुरुकुल वालों ने मुझ प्यादे के सामने काका साहब जैसे महारथी को खड़ा कर दिया है, अपने पूर्व कथन का स्पष्टीकरण और समर्थन ही किया है और अन्त में अपने को खराब रक्त चूसने वाली जोंक की हीनोपमा देते हुये कहा है 'समाज और संस्थाओं में क्या क्या दोष हैं उसे जानने और सुधारने के लिये मेरे जैसे दोषदर्शी विवेचक का विवेकी पुरुषों को उपयोग कर लेना चाहिए' पर यह सब उनकी नम्रता है। मैं तो गुरुकुल के आचार्य के तौर पर यही कहना चाहता हूँ कि श्री सेवानन्द जी के लेख में मुझे जो कुछ सत्य मिला है उसे अपनाने को मैं ने यत्न किया है और आगे भी शक्तिभर यत्न करूंगा, और मैं उनसे आशा करता हूं—सचमुच आशा करता हूँ कि वे (भाई सेवानन्द जी) गुरुकुल के हित चिन्तक अतएव रचनात्मक आलोचक रहते हुए गुरुकुल के कठिन कार्य में—गुरुकुल को उसके बड़े दुर्गम लक्ष्य तक पहुँचाने के कार्य में—हमारी सहायता करते रहेंगे—कभी असहायता नहीं।

कन्या गुरुकुल का उत्सव

कन्यागुरुकुल का १२ वां वार्षिकोत्सव विजयादशमी (दशहरे) की छुट्टियों में ता० ११ से २३ अक्टूबर तक दिन बृहस्पति शुक्र शनि रवि और सोमवार को गुरुकुल भूमि कोठी नं० ६० राजपुर रोड में बड़े समारोह से मनाया जावेगा। इस शुभ अवसर पर पधारने के लिए आर्यसमाज के सुप्रसिद्ध संन्यासी महात्मा विद्वान् तथा विदुषी देवियों को निमंत्रित किया गया है, जो अपने सदुपदेशों तथा शिक्षाप्रद व्याख्यानों से जनता की सेवा करें। ब्रह्मचारिणियों का प्रवेश भी उत्सव पर होगा। जो सज्जन अपनी कन्याओं को प्रविष्ट कराने के इच्छुक हों, उनसे निवेदन है कि वे कन्यागुरुकुल कार्यालय नं० ६० राजपुर रोड देहरादून से प्रवेशफार्म तथा नियमावली की प्रति मंगा कर तुरन्त पत्रव्यवहार करके निश्चय करलें। कन्याओं का चुनाव ता० १९ अक्टूबर को होकर ता० २२ अक्टूबर को वेदारम्भ संस्कार होगा और नवस्नातिकाओं का दीक्षान्त संस्कार ता० २१ अक्टूबर को होगा।

आचार्य रामदेव जी की अपील

सेवा में निवेदन है, कि मैं लगभग २॥ वर्ष से लकवे के कारण रोगी चला आ रहा हूं। इस वर्ष मुझे आशा थी कि मैं डैपूटेशन पर कन्यागुरुकुल के लिए धन एकत्रित करने बाहर जा सकूं, किन्तु दैव इच्छा प्रबल है क्योंकि मैं वर्ष के प्रारम्भ में ही अधिक रोगी होगया और तब से अभी तक स्वस्थ नहीं हो पाया हूँ। धीरे २ स्वास्थ्य लाभ कर रहा हूँ और यदि कोई चिन्ता न रही तो शीघ्र स्वस्थ होने की आशा है। परन्तु कन्यागुरुकुल की आर्थिक अवस्था तथा उसकी वर्तमान विशेष आवश्यकतायें मुझे चिन्ता-मुक्त नहीं रहने देतीं और कभी २ मेरे चित्त में ऐसी उद्विग्नता कर देती हैं कि मैं इसी दशा में ज्यों का त्यों करके बाहर निकलूं और अपनी भिक्षा की झोली अपने हाथ में संभालूं, परन्तु खेद है कि डाक्टरों की सम्मति ऐसा करने को रोकती है इसलिए इस समय बाधित होकर कन्यागुरुकुल के संरक्षक महानुभावों के सन्मुख ही गुरुकुल की आवश्यकतायें प्रस्तुत कर उनसे अपील करता हूँ कि इन पर विचार करके स्वयं अपने पास से अथवा दानी महानुभावों से धन एकत्रित करके भिजवाने की शीघ्र कृपा करें।

कन्यागुरुकुल की मुख्य आवश्यकतायें निम्न प्रकार हैं:

(१) स्नानगृह—पर लगभग ५०००) व्यय होंगे। अभी टीनों के बने हुये स्नानगृह में कन्यायें स्नान करती हैं। जाड़ों में ब्रह्मचारिणियां गर्म पानी से स्नान करती हैं, परन्तु टीनों के छेदों से अन्दर हवा चली जाती है और प्रायः कन्यायें बीमार हो जाया करती हैं। इसलिए अपनी पुत्रियों को सुरक्षित रखने के लिए यदि आप सब महानुभाव २०) या २५) एक बार भेज दें तो स्नानगृह जाड़ों तक तैयार हो सकता है।

(२) भोजनशाला—पर भी लगभग ५०००) व्यय होंगे। यह भी बनना उतना ही आवश्यक है जितना कि स्नानगृह है। आजकल भोजनशाला टीनों की बनी हुई है, इसके नीचे बैठकर ब्रह्मचारिणियां भोजन करती हैं। परन्तु यह टीन जाड़ों में तो अधिक सर्द और गर्मियों में अधिक गर्म हो जाते हैं। वर्षा ऋतु में तो इन टीनों के नीचे बैठकर भोजन करना बड़ा दुःखदायी हो जाता है क्योंकि वर्षा का पानी टीनों तथा बौछार से आकर बैठने की जगह में कीचड़ कर देता है जिससे कि कन्याओं को भोजन करने में बड़ा कष्ट होता है अर्थात् किसी ऋतु में भी कन्याओं को टीनों के नीचे बैठकर भोजन करने में आराम नहीं मिलता। इसलिए इस ओर विशेष ध्यान देने की तुरन्त ही आवश्यकता है।

(३) विद्यालय भवन निर्माण—के लिए कम से कम ४०,०००) की आवश्यकता है। इसके लिए एक दम धन आना तो कठिन है, परन्तु धीरे २ तीन चार कमरे प्रति वर्ष बनते जावें तो चार पांच वर्ष में यह कार्य भी सुगमता से पूरा हो सकता है। कन्याओं की संख्या अधिक बढ़ जाने से कोठी जिस में विद्यालय लगता है उसमें पर्याप्त स्थान नहीं है और कमरों में सटकर बैठने से पढ़ाई में भी अड़चन होती है और संक्रामक रोग भी फैलते हैं स्थानाभाव के कारण जिस उद्देश्य के लिए गुरुकुल खुला है उसकी पूर्ति भी नहीं हो पाती। इसलिए इस

वर्ष (५ कमरे ७०००) की लागत के बनाने का निश्चय किया है अतः उनकी पूर्ति के लिए भी भरसक प्रयत्न होने की आवश्यकता है।

आप महानुभाव गुरुकुल के रक्षक तथा स्तम्भ हैं और ऐसे आड़े समय में गुरुकुल की रक्षा करना आपका मुख्य कर्तव्य है, इसलिए आपको विशेष कष्ट दिया जा रहा है। इस सामयिक सहायता से मेरे स्वास्थ्य की रक्षा के साथ २ आपकी पुत्रियों को स्वास्थ्य तथा खान पान की दृष्टि से अधिक सुविधा इस प्रकार से हो जायगी।

आशा है कि आप सब महानुभाव इस गम्भीर विषय पर शीघ्र विचार करके उदार हृदय से संस्था की सहायता करने में प्रयत्नशील होंगे। जिन संरक्षक महानुभावों की आर्थिक स्थिति ऐसी नहीं है कि वे स्वयं अपनी जेब से सहायता कर सकें, उन से निवेदन है कि वे पुरुषार्थनिधि की पुस्तकें कन्यागुरुकुल कार्यालय से शीघ्र मंगवाकर अपने चन्दे का अधिक से अधिक (Quota) कोटा पूरा कर दें और जिन महानुभावों की आर्थिक स्थिति ईश कृपा से उत्तम है उनसे प्रार्थना है कि वे अपनी स्थिति के अनुसार अधिक से अधिक सहायता प्रदान कर अनुगृहीत करें। आप से यह भी निवेदन है कि इस अपील के पहुंचते ही शीघ्र सूचित करें कि आपने कितना धन अपने पास से अथवा चन्दे से भेजने का शुभ संकल्प किया है।

जिन संरक्षक महोदयों के पास पुरुषार्थ निधि की पुस्तकें पिछले वर्षों से पड़ी हुई हैं उनसे प्रार्थना है कि वे उन्हें शीघ्रातिशीघ्र भर कर धन सहित लौटा दें।

गुरुकुल कमालिया का त्रैमासिक रिपोर्ट

१ सब ब्रह्मचारी बिलकुल आनन्द प्रसन्न हैं। त्रैमासिक परीक्षा (जिसकी रिपोर्ट हर एक संरक्षक को भेज दी गई थी) के पश्चात् ग्रीष्मावकाश प्रारम्भ हो गया था। जो कि अब समाप्त हो चुका है और विद्यालय का कार्यक्रम १ भाद्रपद से प्रारम्भ हो गया है। सब ब्रह्मचारी षाण्मासिक परीक्षा के लिए खूब ज़ोर-शोर से पढ़ाई कर रहे हैं।

२. इन तीन महीनों में निम्नसज्जनों ने गुरुकुल का निरीक्षण किया था जिनकी सम्मतियां इस प्रकार से हैं:-

(क) हकीम सिकन्दर खिज़र अमृतसर

ब्रह्मचारियों में सेवाभाव-प्रेम, डिसिप्लिन कूट कूट कर भर दिया गया है। काश, कि ऐसे विद्यालय पंजाब में नहीं लेकिन भारतवर्ष के हरएक शहर में हों।

(ख) डाक्टर सैफुद्दीन किचलू प्रधान पंजाब कांग्रेस—

इस गुरुकुल के विद्यार्थियों की जिसमानी, रूहानी, अख़लाकी, तालीम का बिहतरीन इन्तज़ाम है। जिसको देख कर मैं बहुत खुश हुआ हूँ।

(ग) श्री महात्मा टेकचन्द जी वानप्रस्थी--

मैंने ब्रह्मचारियों की शारीरिक अवस्था, पढ़ाई भोजन-आच्छादन को सात्विक तथा अनुकूल पाया है। मैं जनता को हमेशा अपने ब्रह्मचारियों को इस गुरुकुल में प्रवेश कराने की प्रार्थना करता रहा हूं। मैं प्रबन्ध को देखकर बहुत प्रभावित हुआ हूं।

(घ) श्री हितैषीसिंह जी कर्मचारी देवसमाज--

मैं ब्रह्मचारियों को खेतों में काम करते देख कर बहुत खुश हुआ हूं। भोजनशाला, गौशाला देखने के बाद ब्रह्मचारियों के अच्छे स्वास्थ्य को देख कर बहुत खुश हुआ हूं।

३. श्री एडिटर साहब ने सम्वत् १९९५ की रिपोर्ट भेजी है; जिसमें लिखा है कि इस गुरुकुल का हिसाब-किताब बिलकुल ठीक है तथा परिणाम संतोषजनक है।

४. हैदराबाद सत्याग्रह का विजयोत्सव दिवस ब्रह्मचारियों ने ३ सितम्बर को यज्ञशाला में मनाया। रात्रि को पटाखे तथा गोले छोड़े गये थे। वायु के वेग के कारण से दिवाली न की जा सकी।

५. ऋग्वेद तथा सामवेद के यज्ञ समाप्त हो चुके हैं। अथर्ववेद अभी जारी है। चारों वेदों के यज्ञ की पूर्णाहुति वसन्तोत्सव पर दी जायेगी।

सुखदयाल

मुख्याधिष्ठाता

गुरुकुल समाचार

धर्मशाला (पंजाब) में विद्यालय विभाग की पांच श्रेणियों के विद्यार्थी पहुंच गये हैं। पहले दस दिन की वर्षा के कारण विद्यार्थियों को कष्ट रहा। अब वे प्रतिदिन आसपास के पहाड़ों व नदी नालों पर घूमने के लिये जा रहे हैं। शुरु में सफर के कारण जिन्हें बुखार आ गया था वे भी अब स्वस्थ हो गये हैं। धर्मशाला का मौसम आजकल बड़ा मनोहर है।

गुरुकुल से जो पार्टी गंगोत्री गई थी वह लौट कर आ चुकी है। निम्न विद्यार्थी गंगोतरी गये थे जिन के नाम ये हैं— सुखदेव, धर्म प्रकाश, महेशचन्द्र, रणवीर, सत्यदेव, वासुदेव और केवल कृष्ण। इनके श्री उपाचार्य लालचन्द्र जी अध्यक्ष बन कर गये थे। सचमुच उपाचार्य जी का इतनी बड़ी अवस्था में गंगोतरी जाना और कुशलता पूर्वक लौट आना एक बहुत बड़ा प्रशंसनीय कार्य है।

× × × ×

गंगोतरी पहाड़ की यात्रा करना कोई बहुत सुगम कार्य नहीं है। कई कई जगह तो पहाड़ों का रास्ता दिखाई ही नहीं पड़ता है और बहुत सी जगहों पर ऐसे ऐसे भयंकर दृश्य आते हैं जिनको देखकर कि मनुष्य का दिल अत्यधिक घबड़ा जाता है ऐसी अवस्था में हमारे विद्यार्थियों ने गंगोतरी की पहाड़ियों पर प्रसन्नता पूर्वक भ्रमण करके पर्वतीय दृश्य का जो आनन्द लूटा है अथवा तकलीफें सही

हैं उन सबका मजा तो वे ही लूट सकते हैं। जिस कार्य के लिये कदम उठाया था उसको पूरा करके वे अब लौट आये हैं। सचमुच विद्यार्थियों का भी यह कार्य बड़ा प्रशंसनीय है।

× × × ×

विद्यार्थी गंगोतरी के सिवाय गोमुख और जमनोत्तरी भी हो आये हैं जिनका रास्ता बड़ा खराब है और यात्रियों को जाने में बड़ी तकलीफ उठानी पड़ती है। एक प्रशंसनीय कार्य यह भी है कि विद्यार्थियों ने पहाड़ों पर पर्याप्त जिह्वासंयम किया। तण्डुल और सूप का उन्होंने बहुत ज्यादह प्रयोग किया और अन्य वस्तुओं का नाममात्र। इससे विद्यार्थियों में संतोष की पर्याप्त मात्रा का ज्ञान होता है।

× × ×

ब्रह्मचारी राम नाथ जिससे कि भविष्य में बहुत बड़ी बड़ी आशायें की जा सकती थीं अपनी इस छोटी सी २० २१, वर्ष की उमर में हैदराबाद सत्याग्रह से विजयी होकर अभी घर लौटा ही था और अपने दर्शन से गुरुकुल माता को प्रसन्न भी न करने पाया था कि यमने उसको अपने पास बुला लिया। सचमुच जिस त्याग और तपस्या से उसने देश में अपनी आहुति दी वह उसकी त्याग और तपस्या गुरुकुल के इतिहास में सदा चिरस्मरणीय रहेगी और सदा गुरुकुल माता के नाम को रोशन करती रहेगी।

सचमुच जो देश के ऊपर आत्म समर्पण ब्रह्मचारी रामनाथ ने किया है वह केवल गुरुकुल के लिये ही नहीं परन्तु तमाम जनता के लिये एक प्रशंसा के पात्र के योग्य है। खासकर हैदराबाद के लिये। जिसमें कि वह वीर अपनी जान की परवाह न करके तन मन धन सहित अपना सर्वस्व देकर हैदराबाद सत्याग्रह की विजय में सहायक हुआ और अपने नाम पर सदा के लिये अमिट छाप लगा गया।

× × ×

आजकल गुरुकुल की ऋतु बड़ी उत्तम है आकाश में प्रायः बादल छाये रहते हैं। जिनको देखकर यहां के निवासीगण अतीव प्रसन्न हैं और सब अपने कार्य में संलग्न हैं। केवल गुरुकुल चिकित्सालय में मलेरिया ज्वर के तीन रोगी हैं। वे अब स्वस्थ हो रहे हैं।

गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ

३ सितम्बर रविवार को श्रीमती आर्यप्रतिनिधि सभा पंजाब की आज्ञानुसार "हैदराबाद बधाई दिवस" बड़े समारोह से मनाया गया। प्रातः सबका सम्मिलित बृहद्यज्ञ हुआ। "ओ३म्" पताका का आरोहन किया गया और एक बृहद् सभा की आयोजना की गई। सब ब्रह्मचारियों तथा अध्यापकों ने कविता तथा व्याख्यान में आर्यसमाज के पवित्र उद्देश्यों का वर्णन किया। श्री प्रो० गोपाल जी मुख्याधिष्ठाता ने श्री प्रधान जी सार्वदेशिक सभा के प्रस्ताव पढ़कर सुनाए, जो सर्वसम्मति से स्वीकृत हुए और प्रधान जी का सन्देश पढ़कर सुनाया आपने आर्यसमाज के पवित्र आदर्श तथा मिशन को बड़ी उत्तमता से वर्णन किया, जिसका ब्रह्मचारियों पर विशेष प्रभाव पड़ा। दोपहर को सबका सम्मिलित सहभोज हुआ। रात को बड़ी शानदार दीपमाला की गई। वैदिक धर्म का जय, आर्यवीरों की जयघोषों के बीच सब कार्यक्रम समाप्त हुआ।

७ सितम्बर को यहां "कृष्ण जन्माष्टमी" का उत्सव बड़ी धूमधाम के साथ मनाया गया। प्रातः सम्मिलित बृहद् यज्ञ हुआ। तत्पश्चात् गीता का पाठ हुआ। फिर श्री पं० आत्मानन्द जी विद्यालङ्कार की अध्यक्षता में एक सभा हुई। सब अध्यापकों तथा ब्रह्मचारियों ने उत्तम २ व्याख्यानों तथा कविताओं द्वारा श्रीकृष्ण जी के गुणों का कीर्तन किया। श्री प्रो० गोपाल जी ने गीता के मुख्य मुख्य उत्तम सिद्धान्तों का बड़ा उत्तम रीति से प्रतिपादन किया, तथा श्री ला० हरदयाल जी एम.ए. ने श्रीकृष्ण जी की महाभारत में प्रतिपादित नीतियों का वर्णन किया, जिसका ब्रह्मचारियों पर अच्छा प्रभाव पड़ा। अन्त में श्री सभापति जी का एक सुमधुर व्याख्यान हुआ और सभा विसर्जित हुई। दोपहर को सम्मिलित सहभोज हुआ। सायंकाल देसी खेलों की आयोजना की गई।

रविवार १० सितम्बर को लगभग ६ बजे सायंकाल अचानक दानवीर श्री सेठ जुगलकिशोर जी बिरला का शुभागमन हुआ। आप बड़े प्रेम से गुरुकुल के सब अध्यापक कर्मचारी वर्ग से मिले। आप आश्रम तथा विद्यालय के आंगन में लगाये गये वृक्षों की पंक्तियों को देखकर बड़े प्रसन्न हुए और यह इच्छा प्रगट की कि गुरुकुल की कुल जमीन में कीकर, नीम, फालसा, पपीता तथा शहतूत आदि के वृक्ष लगवाये जावें। आपने निर्देश किया कि गुरुकुल के भवन प्राचीन आर्य आर्यविश्वविद्यालय के ढंग के होने चाहिए और आपने बड़ी प्रसन्नता से Architect भेजकर भवनों को प्राचीन ढंग के अनुसार परिवर्तित करने की इच्छा जाहिर की है। आपने ब्रह्मचारियों के शरीरों को भलीभांति देखा और कहा कि इनको अधिक बलवान् और क्षात्र तेज वाला होना चाहिए। आपने ब्रह्मचारियों की शारीरिक उन्नति के लिए तीन मास के लिये पहलवान नियुक्त करने के अर्थ १००) दान दिया है। आप चाहते हैं कि आर्यजाति के नौजवान बलवान् और पराक्रमी हों और अपनी संस्कृति तथा मान की रक्षा में सदा कटिबद्ध रहें।

श्री सेठ जी का यह शुभ आगमन ब्रह्मचारियों तथा संस्था के लिये विशेष शिक्षाप्रद और उन्नतिप्रद सिद्ध हुआ है। हम परमात्मा से प्रार्थना करते हैं कि गुरुकुल अपने पोषकों की इच्छानुसार उन्नति करता हुआ धर्म, देश और जाति के कार्य में अग्रसर रहे।

गुरुकुल के अधिकारी श्रीमान्य सेठ जी के पधारने और उत्तम निर्देशों के लिये बड़े कृतज्ञ हैं। और आशा रखते हैं कि यदि श्री सेठ जी की कृपा दृष्टि इस प्रकार बनी रही तो संस्था विशेष उन्नति को प्राप्त करेगी।

चौधरी हुलासराय के प्रबन्ध से गुरुकुल प्रेस गुरुकुल कांगड़ी में मुद्रित तथा प्रकाशित।

* ओ३म् *

"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत" Reg. No. A. 2927

गुरुकुल

सम्पादक—साहित्यरत्न पं० हरिवंश वेदालङ्कार

एक प्रति का मूल्य -) [गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख-पत्र] वार्षिक मूल्य २॥)

वर्ष ४] गुरुकुल काङ्गड़ी, शुक्रवार १३ आश्विन १९९६; २९ सितम्बर १९३९ [संख्या २१

अमर काव्य

[ले० श्री प्रो० ज्ञानचन्द्र जी उपाध्याय]

अन्ति सन्तं न जहाति, अन्ति सन्तं न पश्यति।
देवस्य पश्य काव्यं, न ममार न जीर्यति॥

मनुष्य (अन्ति सन्तं) सदा समीप ही विद्यमान (ईश्वर को (न जहाति) कभी त्यागता नहीं और (अन्ति सन्तं ; समीप ही विद्यमान उसे (न पश्यति) देखता भी नहीं। हे मनुष्य ! तू देवस्य) उस परमात्मा देव के (काव्यं) काव्य को (पश्य) देख, जो कि (न ममार) कभी मरता नहीं और जो (न जीर्यति) कभी जीर्ण भी नहीं होता।

इस साल जब छुट्टियों में गंगोत्री जमनोत्री के लिये ब्रह्मचारियों की पार्टी तय्यार हुई तो ऊपर लिखे वेदमंत्र से प्रेरित होकर मैंने भी उस पार्टी के साथ जाने का निश्चय किया। हम आर्यसमाजी तीर्थयात्रा के कुछ विरुद्ध से हो गये हैं पर मेरे विचार में जिन बुज़ुर्गों ने हमारे प्यारे भारत के भिन्न भिन्न स्थानों में तीर्थ निश्चित किये हैं वह आंखें बन्द करके नहीं किये। नहीं, वह तो प्रकृति के बड़े प्रेमी थे और जहां जहां प्रकृति के आइने में उन्हें परम प्यारे प्रभु की झलक मिली वहां वहां उन्होंने प्रेम में मुग्ध होकर आश्चर्य और पूजा से स्तब्ध होकर मस्तक झुका दिया और तीर्थ बना दिया।

यही आशिकों की नियाज़ है यही दिल जलों का निमाज़ है
जहां देखा यार का नक्शे पा पए सिजदा सर को झुका दिया।

मेरे साथी जहां थकते थे, बैठ जाते थे। मैं जहां स्तब्ध हो जाता था वहां रुक जाता था, वहां झुक जाता था, वहां ही स्वाभाविक पूजा कर लेता था। पण्डे और पुजारियों से हमारा भले ही मत भेद हो पर प्रकृति माता-से हमें कदापि विमुख नहीं होना चाहिये और अपने प्रकृति प्रेमी बुज़ुर्गों के चुने हुए तीर्थों में जाकर और सरल स्वाभाविक पूजा करके अपने आप को तारना चाहिये। प्रभु हमारे इतना निकट है कि हम कदापि उससे जुदा नहीं हो सकते। वह हमारे आत्मा की आत्मा है, पर इतना पास होते हुए भी कोई विरला ही भाग्यवान होता है जो निर्विकल्प समाधि में उसका अनुभव करता है। तो क्या बाकी की प्रजायें अपने परम पिता परमेश्वर के दर्शन से वंचित रह जायेंगी। नहीं, स्थूल चित्त वालों के लिये स्थूल दर्शन हैं। यह सूर्य चन्द्रमा उस की आंखें हैं, यह दिशायें उसकी बाहु हैं, यह आकाश उसका हृदय है। यह विराट् जो विविध प्रकार से वस्तु वस्तु और व्यक्ति व्यक्ति में चमक रहा है उसके दर्शन करने हों तो शहरों की गिलाज़त से निकल कर उन तीर्थों को चलो जहां अभी रेल नहीं गई। पैदल उन रमणीक स्थानों में जा कर प्रकृति के निर्मल आइने में उस प्यारे प्रभु के दर्शन करो जिस के बारे में वेद भगवान् में लिखा है।

यस्येमे हिमवन्तो महित्वा,
यस्य समुद्रं रसया सहाहुः।
यस्येमाप्रदिशो यस्य बाहू,
कस्मै देवाय हविषा विधेम।

अर्थात् यह हिमालय पर्वत पृथ्वी के साथ एवं समुद्र जिसकी महत्ता की प्रशंसा कर रहे हैं और जिस के बाहु इन दिशा उपदिशाओं में रक्षा कर रहे हैं उस आनन्द स्वरूप परमात्मा की ही उपासना यज्ञ द्वारा हम सब को करनी चाहिये।

प्रभु की लीला अनन्त काल से चल रही है और अनन्त काल तक चली जायगी। उसकी लीला में लीन होना सीखो, उसके अजर अमर काव्य के उन सुन्दर स्थलों में विचरना सीखो जहां हमारे बुज़ुर्ग विचरा करते थे और प्रभु की स्वाभाविक भक्ति किया करते थे।

इंग्लैंड का प्रसिद्ध कवि ग्रे जिसकी ऐलिजी संसार की सर्वोत्कृष्ट कविताओं में से एक है ऐल्प्स पहाड़ की सैर करता हुआ एक स्थान पर लिखता है—

There are precipices here that would awe an athiest into belief without the help of other argument.

अर्थात् यहां अनेक ऐसी कंदराएं हैं जिन्हें यदि कोई नास्तिक देख ले तो बिना किसी युक्ति के सुनने के अनायास प्रभु की सत्ता में विश्वास करले।

हमें गंगोत्री यात्रा में वैसे तो अनेक चिरस्मरणीय दृश्य मिले पर दो दृश्य तो कभी भूल नहीं सकते जब तक इस तन में प्राण है। एक तो वह स्थान जहां जाह्नवी और गंगा का संगम है और दूसरे गोमुख जहां से गंगा जी निकलती हैं, इन दोनों स्थानोंका वर्णन कैसे किया जाये यह समझ में नहीं आता। प्रकृति प्रेमियों को स्वयं जाकर देखना चाहिये।

सीमान्त गांधी से भेंट

("क्षितीश" क्वेटा)

कांग्रेस कार्यसमिति में सम्मिलित होने के बाद सीमान्त के गांधी श्री अब्दुलगफ्फारखां साहब बलोचिस्तान का दौरा करने निकले हैं। इससे पूर्व भी कई बार उन्होंने इस प्रदेश में आने का प्रयत्न किया, पर वे निष्फल रहे कई बार तो यहां तक हुआ कि मध्य मार्ग से ही वापस लौटा दिये गये। पर इस बार बलोचिस्तान की गवर्नमेंट की कृपा से उनके साथ ऐसा व्यवहार नहीं किया गया और सारे बलोचिस्तान का दौरा करने की उन्हें आज्ञा मिल गई।

१६ ता० को वे क्वेटा में दुपहर को १२॥ बजे की ट्रेन से उतरे। स्टेशन पर 'अंजुमने वतन' के कार्य-कर्ताओं के साथ हमारे ब्रह्मचारी भी उपस्थित थे। २० ता० की रात को पब्लिक-पार्क में उनका भाषण हुआ– उनका भाषण सुनने के लिये सारा-का-सारा क्वेटा जैसे टूटा पड़ता था। भाषण की समाप्ति पर हमने भेंट करने के लिये समय मांगा तो उन्होंने प्राइवेट-सेक्रेटरी से पूछ कर अगले दिन सवेरे ८ बजे का समय दिया।

२१ सितम्बर, प्रातः ८ बजे। जहां हमारा यात्री-दल ठहरा हुआ है– शहर से बिलकुल बाहर– स्टेशन के पास, वहां से उनका आवास स्थान लग भग २ मील दूर पड़ता था। सवेरे २ बजे उठ कर स्नानादि से निवृत्त होकर प्रभात-कालीन शिशिर पवन के झोंके लेते हुये उनके आवास पर ८ बजे से ५ मिनट पहले ही पहुंच गये। खां साहब अभी सैर करके लौटे थे। द्वार पर आकर अब्दुलसमद साहब ने स्वागत किया– खां साहब उन्हीं के अतिथि थे-- और अन्दर कमरे में ले जाकर बिठलाया। ठीक ८ बजते ही खां साहब कमरे में घुसे और हमारे बीच में ही ज़मीन पर बिछी दरी पर बैठ गये। दोनों ओर से कुशल-क्षेम के प्रश्नोत्तर के पश्चात् यूरोप के महायुद्ध के कारण सद्यः उत्पन्न भारत की विषम परिस्थिति और दारुण भविष्य के ऊपर वार्तालाप हुआ। हम प्रश्न करते जाते थे और खां साहब अपनी गम्भीर, भव्य मुखमुद्रा से अत्यन्त प्रेम के साथ उनका उत्तर देते हुये हमें इस प्रकार समझाते जाते थे जैसे कि अपने बच्चों को समझा रहे हों।

कांग्रेस के विषय में, सुभाष बाबू और जिन्हा के विषय में, श्री अणे केलकर के विषय में कुछ प्रश्नोत्तर होने के बाद और देशी रियासतों के प्रति कांग्रेस क्या रुख रखना चाहती है— इसके पश्चात् पौलेण्ड— जर्मनी और रूस की राजनीति के विषय में उनको बहुत अधिक विस्तार में जाने के भय से कुछ टालता हुआ सा देखकर हमने सामाप्रान्त के ईपी के फ़कीर के विषय में प्रश्न किया। खां साहब ने इस प्रश्न का साधिकार वाणी में उत्तर देते हुए लगभग १५ मिनट लगाये और यह स्पष्ट किया कि ईपी के फकीर के विषय में समाचार पत्रों में जो प्रोपेगैण्डा किया जा रहा है, वह एक दृष्टि से बिलकुल असत्य है और इसका मूल कारण वह तीसरी शक्ति है जो हिन्दुस्तान में 'बन्दर-बांट' के सिद्धान्त से अपने शासन को कायम रखना चाहती है।

इस प्रकार लगभग आध घण्टा तक वार्तालाप करने के पश्चात् हमने गुरुकुल के ब्रह्मचारियों के नाम संदेश मांगा। आपने सम्बोधन करते हुए कहा— बच्चो! तुम नौजवान हो, पर इस बदनसीब मुल्क में साम्प्रदायिकता के ज़हर ने इस देश की आज़ादी को कितना नुकसान पहुंचाया है, इसके विषय में शायद तुम अधिक न जानते हो। आज सारा का सारा संसार एक भयंकर भविष्य की प्रतीक्षा कर रहा है। यदि इस देश में साम्प्रदायिकता का इतने ही ज़ोरों से प्रचार किया जाता रहा तो एक भयानक 'सिविल वार' होगा। यूरोप का यह युद्ध प्रभु की देन है। जिस प्रकार हवा का झोंका आता है और गन्दगी को बहा कर ले जाता है उसी प्रकार प्रभु ने संसार से गन्दगी को निकालने के लिये साम्राज्यवादी और स्वार्थी संसार कोपवित्र करने के लिये यह युद्ध भेजा है। इस युद्ध में वे ही बचेंगे जो सच्चे हैं, जो निस्वार्थ हैं और दूसरों का भला चाहने वाले हैं। तुम भावी भारत के नागरिक हो। अपने देश से गन्दगी को दूर करो और प्रयत्न करो कि इस अग्नि परीक्षा में यह अभागा गुलाम देश पूरा उतरे और स्वतन्त्र होकर संसार को प्रेम और शांति का संदेश दे सके।

आग्रह किया—कुछ लिखित सन्देश दीजिए।

एक काग़ज़ पर उन्होंने लिख दिया—

'धर्म, प्रेम और सत्य का नाम है।'

– और कहा कि मेरा तो यही सन्देश है और हरेक को मैं यही सन्देश दिया करता हूँ।

हमारे साथ एक कैमरा भी था। अन्त में विदा होने से पहले एक फोटो के लिये प्रार्थना की। दूसरे कमरे में अन्य कई गण्य-मान्य नागरिक खां साहब से किन्हीं आवश्यक विषयों पर वार्तालाप करने के लिये काफी देर से प्रतीक्षा कर रहे थे। खां साहब के हमारे प्रति प्रेम ने ही उनको इतनी देर तक प्रतीक्षा करवाई थी। फोटो के लिये प्रार्थना की स्वीकृति देते हुए वह लम्बी देवदूत की सी आकृति हँसती हुई सामने स्वयं धूप में जाकर खड़ी होगई और कहने लगी 'जल्दी करो।' एक मिनट। बटन दबाया। नम्र भाव से प्रणाम और विदा।

× × ×

हम अपने निवास स्थान पर लौट आये और उनके दिल से निकले शब्दों को याद करते रहे–'धर्म, प्रेम और सत्य का नाम है।'

गीत

"श्री कुमार"

देख संध्या काल साथी !

(१)

दिवस का अवसान होता !
हृदय-वन शम-शान रोता !
दूर पच्छिम में रही जल चिता की ज्वाल साथी !
देख संध्या काल साथी !

(२)

बैठ कोने में विटप के
चीखता खग सिकुड़ कँपके,
काल करता है प्रतीक्षा मुख निकाल कराल साथी !
देख संध्या काल साथी !

(३)

जगत् का अथ और इति क्या ?
बाद को गति और स्थिति क्या ?
किन्तु खुश है देवता हित टूट कुसुमित डाल साथी !
देख संध्या काल साथी !

विचार-बुद्बुद

१.

"तुम चुप क्यों हो ?" मैंने आसमान से पूछा जो कि एक ऊँचे मचान पर बैठा हुआ था। उसके मौन ने मेरे हृदय में उत्तर दिया, "तुम्हारी शंका की मीमांसा के लिए मैं अपना मौन तोड़ने नहीं लगा हूँ।" पता नहीं इसे क्यार२ पता हो, जब इसका मौन टूटेगा तभी पूछूंगा।

× ×

२

सूर्य आता है। कमल खिल जाते हैं तारे छिप जाते हैं। कमलों का जीवन और तारों की आभा रवि के आगमन पर निर्भर है। कमलों की प्रत्येक पखड़ी आदित्य की नवरश्मि के लिए लालायित है। तारे दिन का प्रत्येक पल सूर्यास्त की प्रतीक्षा में काटते हैं। पर सूर्य को किसकी परवाह है। उसे पता नहीं कि उसके आने पर कितने कमल खिलते हैं, और जाने पर कितने तारे निकलते हैं। पूज्य, पुजारी, इष्ट इच्छुक, बड़ों और छोटों में यही भेद है।

× ×

३

किनना भीषण है मानव ?

उसकी भीषणता से भयाकुल जगत तो दूर, 'जड़' तक हाहाकार कर उठे हैं। जड़ता ने घबराकर चीत्कार प्रारम्भ कर दिया है। इसे स्पष्ट कर रही हैं तोपें, बन्दूकें और बम। महत्वाकांक्षाएँ उसकी शासक वृत्ति को सहारा देकर उसे हिंसा पथ में अग्रसर कर रही हैं। संसार में अशान्ति की भीषणता रात्रि के अन्धकार की भांति कोने कोने में व्याप रही है।

कोने २ से गर्जना हो रही है, कोने २ में विद्रोह हो रहे हैं। एक दूसरे को दबाना चाहता है और दूसरा दबना चाहे भी क्यों ? जय पराजय का निर्णय करने वाली अन्त में शक्ति होगी। शक्ति के आधार पर मानव— मानव से पशु का काम भी लेगा। उसकी भीषणता उसकी शक्ति से और भी अधिक डरावनी हो जायगी।

"तो फिर ये रहे आने वाले धर्म किस मर्ज की दवा हैं।

"विराज"

पुस्तक समालोचना

फिरंग रोग—

(सिफलिस या आतशक) श्री डा० इन्द्रसेन जी आयुर्वेदालंकार गुरुकुल कांगड़ी के सुयोग्य स्नातक हैं। उनकी लिखी 'फिरङ्ग रोग' नामक पुस्तक बहुत उत्तम है। इसमें विषय को सरल और सुबोध भाषा में बड़ी उत्तम विधि से लिखा गया है। पुस्तक के अन्त में आयुर्वेदोक्त फिरङ्ग पर भी पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। पुस्तक प्रत्येक वैद्य को पढ़नी चाहिए और हमेशा अपने पास रखनी चाहिए। मूल्य केवल दो रुपये।

एक्स-रे —

(एक्स-रे) डा० इन्द्रसेन जी की दूसरी पुस्तक एक्स-रे है। इसमें उन्होंने सरल भाषा में यह बताया है कि एक्स-रे क्या है ? इसका उपयोग रोग-विज्ञान में किस प्रकार किया जाता है। एक्स-रे की फोटुओं को कैसे पढ़ सकते हैं ? चित्र भी दिये हुए हैं। इस पुस्तक का मूल्य एक रुपया रक्खा गया था परन्तु वैद्य समाज के आग्रह के कारण घटा कर ॥) कर दिया गया है।

पाश्चात्य-चिकित्सासार —

यह डाक्टर जी की तीसरी पुस्तक है। इसमें उन्होंने अपने विषय का भली प्रकार प्रदर्शन किया है। चूंकि इस समय डाक्टर जी गुरुकुल आयुर्वेद महाविद्यालय में उपाध्याय का कार्य कर रहे हैं इस लिये उन्होंने विद्यार्थियों की तथा नये प्रैक्टीशनरों की कठिनाईयों को ध्यान में रखते हुए सब कठिन बातों को बहुत अच्छी तरह समझा दिया है। पुस्तक में सब अच्छे २ पाश्चात्य-चिकित्सा के योग दिये गए हैं। पुस्तक हमेशा पास रखने योग्य है। इस पुस्तक से पाश्चात्य-चिकित्सा का उपयोगी भाग हस्तामलकवत् हो जाता है। मूल्य ३)

तीनों पुस्तकों के मिलने का पताः—

मैनेजर गुरुकुल पुस्तक भण्डार,

पो० आ० गुरुकुल कांगड़ी

(जि० सहारनपुर)

गुरुकुल

१३ आश्विन शुक्रवार १९९६

गांधी गांधी है

[ले०— श्री आचार्य अभय देव जी]

यह फ़ैशन चाहे बहुत दिनों न चले पर बहुत से लोगों में ऐसा कहने का आजकल एक फ़ैशन सा हो गया है "हम तो हिटलर को मानते हैं," जब तक भारत वर्ष में कोई हिटलर नहीं पैदा होता तब तक इस देश का उद्धार नहीं हो सकता। हमारे एक मित्र तो यहां तक कहते हैं कि वह हिटलर वीर सावरकर जी के रूप में हमारे देश में पैदा भी हो चुके हैं यद्यपि देश ने उन्हें अभी तक पहचाना नहीं है।

जर्मनी के हर हिटलर वस्तुतः एक अद्भुत व्यक्ति हैं। गत महायुद्ध में पूरी तरह नीचा दिखाये गये जर्मनी को केवल दस पंद्रह वर्ष में ही फिर एक महाशक्ति बना देना उनका ही काम था। यूरोप में पिछले दिनों उन्हों ने जो जर्मनी के लिये एक के बाद दूसरी सफलता प्राप्त करके दिखाई है उसे देख कर लोगों के मुंह से 'वाह' निकलना स्वाभाविक हो था। पर ऐसा हिटलर जर्मनी में ही पैदा हो सकता था और वह भी उस जर्मनी में जिस को वारसाई की संधि द्वारा अन्य राष्ट्रों ने मिलकर दबा दिया था। मतलब यह कि पश्चिमी देशों की स्वार्थमयी राजनैतिक चालों की जो प्रतिक्रिया जर्मनी पर हुई उसकी ही स्वाभाविक उपज जर्मनी का हिटलर है, इसके सिवाय हिटलर और कुछ नहीं।

तो भारत वर्ष हिटलर के पैदा होने की जगह नहीं। भारत में गांधी ही उत्पन्न हो सकता है। ऐसा गांधी जो यूरोप जायगा तो अपनी खद्दर की लंगोटी में हो, और जिसे ज़रा सा शासनाधिकार बरतने का अवसर मिलेगा तो वह बड़ा भारी आर्थिक घाटा सहकर भी सब से पहले शराब को देश निकाला देगा, और जिसे अपने देश भारत की स्वाधीनता भी इस लिये चाहिये क्योंकि वह उसके असली ध्येय परमेश्वर के पाने के रास्ते में पड़ती है। यदि ऐसे गांधी को पाकर भी भारत अपनी स्वाधीनता न पा सका और जगत् में जो उसका कर्तव्य भाग है उसे पूरा न कर सका तो अधिक से अधिक यही कल्पना की जा सकती है कि इस दुर्बल भारत को शायद इससे भी बड़े किसी गांधी की ज़रूरत है। पर ज़रूरत गांधी की है गांधी की या सवाई गांधी की न कि हिटलर या सुपर-हिटलर की।

यह ठीक है कि इस देश में आज यदि किसी एक आदमी की सबसे अधिक चलती है तो वह गांधी है। इस लिये कइयों को उसे हिन्दुस्तान का हिटलर कहने का भी प्रलोभन हो जाता है। पर कहां हिटलर जो इस नयी सदी के नवीनतम आविष्कारों से सुसज्जित सैन्य का स्वामी, जिसे चाहे उसे फांसी पर चढ़ा देने की शक्ति रखने वाला जर्मनी का डिक्टेटर — और कहां गांधी, जो किसी की तरफ़ उंगली तक न उठाने वाला, और अपना एक मत (वोट) देने तक की शक्ति न रखने वाला भारत का सूत्रधार। बस, गांधी गांधी ही है। उसे किसी अन्य से उपमा देना व्यर्थ है।

जैसे वीर सावरकर (क्योंकि सावरकर जी का भी देश में एक उचित स्थान है कट्टर मुसलमानों की जो प्रतिक्रिया हिन्दू सम्प्रदाय पर स्वभावतः होती है उसके वे मूर्त प्रतिनिधि हैं) उस हिन्दू सम्प्रदाय के हैं, वैसे हिटलर जर्मनी का है, वैसे गान्धी भारत वर्ष का है यह कहना भी कठिन है। गान्धी बेशक भारत में पैदा हुआ है, पर वह सारे जगत् के लिये पैदा हुआ दीखता है। सारे जगत् के लिये उसके पास एक सन्देश है। यह ठीक है कि वह अपने उस सन्देश को भारत के द्वारा ही जगत् को देना चाहता है, एक स्वाभाविक महापुरुष की तरह वह अपना सन्देश जगत् को अपने देश के द्वारा ही दे सकता है, इस लिये बेशक यह कहा जा सकता है कि गांधी भारत का है, पर क्या सचमुच भारत इस अवस्था में है कि वह यह अभिमान कर सके कि गांधी भारत का है?

भारत का वह एक अनूठा आदमी है जो आज जब कि इस पृथ्वीतल पर राष्ट्र कहलाने वाले सब के सब राष्ट्र असंख्यों रुपया खर्च करके एक से एक बढ़िया घातक शस्त्रों को अधिक से अधिक तय्यार करने की पैशाची होड़ में दौड़ रहे हैं तब वह "अहिंसा अहिंसा" कहने की हिम्मत कर रहा है और जो इस मैशीनरी के ज़माने में अपना चर्खा लेकर खड़ा हुआ है। वह भारत को तो अपना यह सन्देश निरन्तर सुनाता सुनाता अब बुड्ढा हो गया है, आज वह अपने ७१ वें में प्रवेश कर रहा है। पर दुःख है कि अभी तक भारत स्वाधीन नहीं हुआ है और भारत के पैंतीस करोड़ गुलामों में उसकी (गांधी की) भी गणना है। अब तो यह अवस्था सही नहीं जाती है। जो चाहता है कि इस अहिंसा और खादी का सन्देश अब तो भारत को झोंपड़ा २ में इतनी अच्छी तरह पहुँच जाये कि भारत वर्ष इन थोड़े दिनों में, उस के जीते जी हो, स्वाधीन होकर दुनियाँ को यह दिखला देवे कि "हां, सचमुच भारत वर्ष भारत वर्ष ही है और उसका गांधी गांधी ही है"।

मालवीयजी का अवसरग्रहण

पिछले सप्ताह महामना मालवीय जी ने काशी विश्व विद्यालय के कुलपति पद (वाइस चान्सलर) से अवसर ग्रहण कर लिया। इस उपलक्ष्य में विश्वविद्यालय के अधिकारी व छात्रोंने जिस रूप में उनका अभिनन्दन किया था वह सबके लिये अनुकरणीय है। हमारे देश की उन विभूतियों में मालवीयजी सर्व प्रमुख हैं जिन्होंने जीवन का सर्वस्व निज देश व जाति के उत्थान में न्योछावर

कर दिया है। पिछले पचास वर्ष से हमारे महामना जिस त्याग, एकाग्रता व अतुल शक्ति के साथ देश के सार्वजनिक जीवन में भाग लेते रहे हैं उसने नवीन कार्यकर्त्ताओं के लिये एक अनुपम आदर्श उपस्थित कर दिया है। राष्ट्रसेवा, शिक्षा, संगठन व स्वदेशी प्रचार मालवीय जी के प्रमुख कार्यक्षेत्र रहे हैं। पहले अधिवेशन के अतिरिक्त मालवीय जी राष्ट्रीय महासभा कांग्रेस के सभी अधिवेशनों में शामिल होते रहे हैं और दो बार तो उसके सभापति पद को भी सुशोभित कर चुके हैं। अब भी रुग्णावस्था के कारण वे हरिपुरा व त्रिपुरी की कांग्रेसों में नहीं आसके। क्या हमारे देश का कोई जीवित व मृत नेता ऐसा है जो लगातार इतने वर्ष देश सेवा में रत रहा हो। शिक्षा के क्षेत्र में काशी विश्वविद्यालय महामना मालवीय जी की ही एकांत कृति है और सत्य तो यह है कि इस के निर्माण व अभ्युदय में उन्होंने अपना तन, मन, धन सभी अर्पित कर दिया है। यह मालवीय जी की ही तपस्या का फल है कि आज काशी का यह विश्वविद्यालय न केवल हमारे देश के किन्तु संसार के अन्य विश्वविद्यालयों में भी प्रतिष्ठा पा सका है। मालवीय जी पिछले बीस वर्ष से इस विश्वविद्यालय के कुलपति पद पर चले आ रहे हैं। उनके जीवन का एक सुख स्वप्न था— विश्वनाथ की पुरी में, शिक्षा के प्राचीन केन्द्र काशी में एक ऐसे विद्यापीठ का कायम करना जो उसकी प्रसिद्धि के अनुरूप हो और जहां प्राचीन व नवीन विद्यायें समान रूप में अपना विकास पा सकें। इसी दृष्टि से उन्होंने पिछले बीस वर्ष में इस विश्वविद्यालय को पाला पोसा व बड़ा किया है और आज सारे देश को गर्व है कि वह मालवीय जी की कृपा से काशीक्षेत्र में सर्वविद्याओं के उत्कृष्ट केन्द्र को इस विशाल रूप में उन्नत होता देख सका है। अब ७८ वर्ष की बड़ी उम्र में, रोग से जर्जर शरीर में मालवीय जी विश्वविद्यालय की सतत सेवा से अवसर ग्रहण कर रहे हैं किन्तु उनका आशीर्वाद तथा कृपा का हाथ काशी विश्वविद्यालय पर सदा बना रहेगा यह निश्चय है। इस पुण्य अवसर पर "गुरुकुल" भी महामना मालवीय जी का अभिनन्दन करता है और उनके दीर्घायुष्य के लिये मंगल कामना करता है।

सर राधाकृष्णन

मालवीय जी के अवसर ग्रहण करने पर आन्ध्र देश के महापण्डित सर्वपल्ली सर राधाकृष्णन काशी विश्वविद्यालय के कुलपति चुने गये हैं। सर्वपल्ली अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के विद्वान हैं और प्राचीन व नवीन दर्शनों के प्रगाढ़ पण्डित हैं। इस से पहले वे आन्ध्र विश्वविद्यालय के कुलपति रह चुके हैं और आजकल इंगलैंड के आक्सफोर्ड नामी प्रमुख विश्वविद्यालय में "तुलनात्मक धर्म" विषय के विशिष्ट आचार्य हैं। काशी विश्वविद्यालय के ये सौभाग्य हैं कि महामना मालवीय जी के बाद उसे श्री राधाकृष्णन जैसे सर्वसम्मत विद्वान कुलपति पद के लिये प्राप्त हुए हैं। श्री राधाकृष्णन जी की देख रेख में प्राचीन व नवीन विद्याओं के विकास में यह विश्वविद्यालय अधिक अग्रसर हो सकेगा ऐसा हमारा विश्वास है। हम सर्वपल्ली को इस नवीन नियुक्ति के लिये हृदय से बधाई देते हैं।

नवाह में हरिजनसेवा

आज से आठ वर्ष पूर्व सन् १९३२ की २४ सितम्बर को यरवदा जेल की एकान्त कोठरी में बैठ कर हमारे देश की सर्वोत्तम विभूति ने हरिजनों के कल्याण यज्ञ में अपने प्राणों की आहुति डालने का संकल्प किया था। देश के ये सौभाग्य थे कि हमारी निरंकुश सरकार उस विभूति के इस दृढ़ निश्चय के आगे जल्दी ही विचलित हो गयी और उसने पूर्णाहुति से पहले ही उनकी मांग को स्वीकार कर लिया। २ अक्तूबर को हमारे देश की उसी विभूति महात्मा गांधी का जन्मदिन है। २४ सितम्बर से दो अक्तूबर तक नौ दिन होते हैं। उस महायज्ञ की स्मृति में प्रतिवर्ष सारे देश में नवाह मनाया जाता है। इस साल वह नवाह पुनः आ उपस्थित हुआ है। सन् १९३२ में ब्रिटिश सरकार ने अपने साम्प्रदायिक फैसले में सवर्ण व अवर्ण हिन्दुओं के दो भेद कर उठती हुई हिन्दुजाति की राष्ट्रीयता पर आघात करना चाहा था। हमारे महात्मा ने ब्रिटिश सरकार की "द्विधा भिक्षा" वाली इस नीति के प्रतिकार के लिये ही यरवदा में महातपस्या का वह मार्ग ग्रहण किया था। उनकी इस तपस्या में बल था अतः वह कामयाब रहे और हारकर ब्रिटिशसरकार को सवर्ण व अवर्ण हिन्दुओं में भेद करने की नीति का त्याग करना पड़ा। आज उसी गान्धी नवाह के पुण्य अवसर पर हमें यह स्मरण रखना चाहिये कि हम ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र व हरिजन सब हिन्दू एक हैं और हरिजन भी हमारे समाज का उतना ही आवश्यक अंग हैं जितना कि वेदपाठी ब्राह्मण। यदि आज हरिजन कहलाने वाले ये भाई उस ऊंचे पद के पथिक नहीं हैं जिस के कि हम हैं तो इस में भी हम अहम्मन्य सवर्ण भाई ही अधिकतर ज़िम्मेवार हैं। क्योंकि हमारी उपेक्षा, उदासीनता किंवा विरोध के कारण ही वे हमसे बिछुड़ कर पीछे जा रहे हैं। इस गान्धी नवाह में हम सवर्ण हिन्दू अपने पुराने को भुलावें, किये का शोधन करें और— सदा यह ध्यान में रक्खें कि अपने हरिजन भाइयों को उन्नत करना, उन्हें शिक्षा देना, साफ़ सुथरा रहने के लिये प्रेरित करना आदि सतत कार्यों से ही हम अपने इन दलित भाइयों की शुद्ध सेवा कर सकते हैं और हृदय से गान्धी नवाह की स्मृति ताज़ा रख सकते हैं। वह दिन धन्य होगा जबकि हमारे इन प्रयत्नों से हमारे यह दलित भाई हममें आ मिलेंगे और हमारे कोष में से हरिजन (जिसमें कुछ वैसा भाव आ जाता है) का शब्द ही उड़ जायेगा तथा सारी हिन्दू जाति एक रस, एक मत व एक भाव की होकर देशोत्थान में लग सकेगी।

एक बात और

इस हरिजन सेवा के साथ २ खादी का प्रचार भी इस गान्धी सप्ताह का मुख्य अंग है। यथार्थ में हरिजन सेवा व खादी प्रचार दोनों एक वस्तु हैं— नाम में भेद अवश्य है। जिस प्रकार धार्मिक दृष्टि से अछूतपन हिन्दू जाति का कोढ़ है उसी प्रकार सर्वसाधारण की गरीबी भी हमारे देश की एक विषम समस्या है। खद्दर उसी गरीबी का सरल, सस्ता किंवा सुलभ इलाज है। पिछले १८, १९ वर्ष में खादी के द्वारा जहां देश के करोड़ों भूखों व गरीबों को अन्न मिला है वहां इसके द्वारा सैंकड़ों लक्ष्मीपुत्रों को भी कल्याण मार्ग का पथिक बनने में सहायता मिली है। इस दृष्टि से यदि हम विचार करें तो निसन्देह कहा जा सकता है कि जैसे हरिजन सेवा द्वारा हिन्दुओं के एक विशिष्ट अंग का उत्थान मिलता है वैसे ही खादी द्वारा देश के दरिद्रनारायण को अभ्युदय का मार्ग प्रदर्शन होता है। संक्षेपतः, सर्वांश में देश के दरिद्रनारायण की सेवा ही गान्धी सप्ताह का पुण्य प्रतीक है। इस सप्ताह के साथ ही महात्मा गांधी अपने जीवन के ७१ वें वर्ष में प्रवेश कर रहे हैं। उन को दीर्घायुष्य प्राप्त हो, वे चिरायु होकर हमारे दलित देश का मार्ग प्रदर्शन कर सकें यही मंगलकामना है।

कन्या गुरुकुल का उत्सव

गुरुकुल कांगड़ी में भिन्न २ विद्याओं के शिक्षण के लिये तीन महाविद्यालय हैं। इसी प्रकार का एक महाविद्यालय देहरादून में भी है जिस में केवल कन्याओं की उच्च शिक्षा का प्रबन्ध है। और इन चारों महाविद्यालयों की शिक्षा दीक्षा का कार्य गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी की देख रेख में होता है। गुरुकुल कांगड़ी के भूतपूर्व आचार्य रामदेव जी आजकल इस कन्या गुरुकुल के मुख्याधिष्ठाता हैं और आचार्या हैं श्रीमती विद्यावती सेठ जिन्होंने नारी जागृति व स्त्री शिक्षा को ही अपने जीवन का एक मात्र ध्येय बना लिया है। यही नहीं — कन्या गुरुकुल की स्थापना से लेकर आज तक वे ही (१६ वर्ष) इसका योग्यता से सञ्चालन कर रही हैं। इस लम्बे काल में श्रीमती विद्यावती सेठ ने कन्या गुरुकुल की चहुँमुखी तरक्की करने में अपना जीवन भी होम दिया है और आज क्षीण स्वास्थ्य को लेकर भी वे अपनी उसी साधना में निरन्तर लगी हुई हैं। पिछले दो वर्ष से आचार्य रामदेव जी भी अपनी धुन में अपने स्वास्थ्य को पूर्णतया खो बैठे हैं। ऐसी अवस्था में कन्या गुरुकुल व स्त्री शिक्षा के सब प्रेमियों का यह कर्तव्य हो जाता है कि वे इस द्विविधा के समय में कन्या गुरुकुल की तन, मन व धन से मदद करें ताकि आर्यसमाज द्वारा स्थापित स्त्री शिक्षा का यह सर्वोच्च शिक्षणालय जनता की अनुकूल मदद पाकर फलफूल सके। हर्ष का विषय है कि कन्या गुरुकुल का बारहवां उत्सव दशहरे की छुट्टियों में देहरादून में होने जा रहा है। आशा है कि गुरुकुल शिक्षा प्रणाली के भक्त हजारों की संख्या में उपस्थित होकर और धनद्वारा सहायता कर इस उत्सव को पूर्णतया सफल बनायेंगे।

हिन्दी साहित्य सम्मेलन

हिन्दी साहित्य सम्मेलन का वार्षिक अधिवेशन इस बार अक्तूबर की १५, १६, १७ तारीख को बनारस में होने जा रहा है। महामना मालवीय जी इस वर्ष स्वागताध्यक्ष हैं और सम्मेलन के प्रधान हैं कलकत्ते के प्रसिद्ध पत्रकार श्री अम्बिकाप्रसादजी वाजपेयी। सम्मेलन की मुख्य बैठक के साथ २ साहित्य, इतिहास, विज्ञान व दर्शन आदि विषयों के सम्मेलन करने का आयोजन भी किया जा रहा है। हमारा अनुभव है कि मुख्य सम्मेलन व इसके साथी इन छोटे सम्मेलनों की कार्यवाही में आम जनता उतनी दिलचस्पी से भाग नहीं लेती जितनी कि उसे लेनी चाहिये। बाज २ मौके ऐसे आते हैं कि खूब विज्ञापित इन सम्मेलनों में एक डेढ़ दर्जन से अधिक हाजरी नहीं हो पाती। इसका एक कारण तो यह है कि कि इस देश में तेरह करोड़ हिन्दी भाषा भाषियों के होते हुए भी इस आबादी की शिक्षा का स्तर अधिक ऊंचा नहीं है। देश की मनुष्य गणना के आंकड़ों को यदि उठा कर हम देखें तो यह स्पष्टतः पता चलता है कि शिक्षा की दृष्टि से हिन्दी भाषा भाषी प्रान्त हमारे देश के सब से पिछड़े प्रान्त हैं। यहां तक कि दुनियां भर का बदनाम सूबा सरहद भी हिन्दी भाषियों से कहीं आगे है। इसके साथ ही शिक्षा की दृष्टि से पिछड़े हुए होने पर भी हिन्दी भाषियों में अभी अपनी मातृभाषा के प्रति वह प्रेम नहीं उपज सका है जो प्रेम गुजरात महाराष्ट्र व बंगाल वालों का अपनी मातृभाषा के प्रति है। बंगाल के सर्वोत्कृष्ट लेखक व कवि अपनी उत्कृष्ट रचनायें पहले अपनी मातृभाषा बंगला में करते हैं फिर वे रचनायें इंगलिश में अनूदित होती हैं। महात्मा गांधी ने अपनी आत्मकथा सर्वप्रथम गुजराती में लिखी थी, फिर उसका अंगरेजी में भाषान्तर हुआ। इन सब के विपरीत हम हिन्दीभाषियों के प्रमुख लेखक श्री जवाहरलाल नेहरू जब "मेरी कहानी" लिखने बैठते हैं तो उन्हें स्वभावतः इंगलिश में लिखने की रुचि होती है। यही बात अन्य अनेक प्रमुख हिन्दीभाषी लेखकों के विषय में भी कही जा सकती है। यद्यपि श्री गौरीशंकर जी ओझा, श्री जयचन्द्रजी विद्यालंकार व श्री राहुल जी आदि अनेक सुयोग्य लेखकों ने इस प्रथा में अपवाद कर दिया है किन्तु अभी भी हिन्दी भाषियों के लिये यह अपवाद ही है नियम नहीं बन पाया है। हम तो यह भी जानते हैं कि साहित्य सम्मेलन के जो प्रमुख कर्णधार प्रयाग में रहते हैं और जिनका वहां के विश्वविद्यालय से विशिष्ट सम्बन्ध है वे भी अपने ग्रन्थ हिन्दी की अपेक्षा अंगरेजी में ही लिखना अधिक पसन्द करते हैं। और तो और सम्मेलन की ओर से जो विज्ञप्तियां समय २ पर प्रकाशित होती हैं वे भी अंगरेजी में अधिक कद्र से देखी, पढ़ी व भेजी जाती हैं। ऐसी हालत में यदि हिन्दीसाहित्यसम्मेलन व तत्सम्बन्धी अन्य

सम्मेलनों में सर्वसाधारण जनता अधिक दिलचस्पी न ले तो इसमें आश्चर्य ही क्या है? हमें आशा ही नहीं निश्चय है कि महामना मालवीय जी के आशीर्वाद व वाजपेयी जी जैसे प्रसिद्ध पत्रकार (जनता का सच्चा प्रतिनिधि) के नेतृत्व में इस बार का सम्मेलन इस समस्या का गम्भीर विवेचन करेगा और तब ही वह सच्चे मायनों में हिन्दीभाषी जनता का प्रतिनिधित्व कर सकेगा अन्यथा आज की भांति वह एक श्रेणी का ही कार्यक्षेत्र रह जायेगा।

श्री चतुर्वेदी जी

हिन्दी साहित्य सम्मेलन के प्रथम लाहौर अधिवेशन के सभापति श्री पण्डित जगन्नाथप्रसाद जी चतुर्वेदी का पिछले दिनों अपनी जन्म भूमि मुंगेर में लम्बी सांघातिक बीमारी के बाद देहान्त हो गया। चतुर्वेदीजी हिन्दी में हास्यरस के प्रसिद्ध लेखक थे और थे संस्कृतमयी हिन्दी के पक्षपाती। अंगरेजी के ढंग पर आजकल जो हिन्दी लिखी जाती है उस का समय समय २ पर आप खूब मजाक उड़ाया करते थे। हमें याद है कि जब वे साहित्यिक मण्डली के साथ लाहौर से गुरुकुल पधारे थे तो उन्होंने अपने भाषण में "मुख्याधिष्ठाता गुरुकुल कांगड़ी" शब्दों का विरोध किया था और इस शब्दावलीका अर्थ मुख्याधिष्ठाता का गुरुकुल कांगड़ी किया था तो सभामंडल में काफी कहकहा सुनने में आया था। हिन्दी व्याकरण के अनुसार "गुरुकुल कांगड़ी के मुख्याधिष्ठाता" को उन्होंने ठीक बतलाया था। श्री चतुर्वेदी जी के निधन से हिन्दी संसार को विशेष क्षति पहुंची है, इसमें कोई सन्देह नहीं। हम चतुर्वेदी जी के परिवार के साथ इस विपत्ति में हृदय से सहानुभूति प्रगट करते हैं।

भिक्षु उत्तम

भिक्षु उत्तम बरमा के प्रसिद्ध राष्ट्रवादी बौद्ध साधु थे। पृथक्करण से पूर्व उस देश में कांग्रेस के ध्येय व कार्य को फैलाने में भिक्षुउत्तम का विशेष हाथ था। इसके लिये उन्हें कई बार कारावास का दण्ड भी भोगना पड़ा था। सन् १९२२—२३ में चीन में डा० सनयात सेन के समाधि उत्सव पर भिक्षुउत्तम कांग्रेस के प्रतिनिधि बन कर गये थे। बाद में उनका रुख हिन्दू सभा की ओर भी हुआ था क्योंकि वे हिन्दू व बौद्धों को एक ही धर्म की दो शाखाओं का उपासक मानते थे और इसी लिये एशिया भर के हिन्दू व बौद्धों को एक विशाल सगठन में संगठित देखना चाहते थे। शायद इसी लिये भिक्षुउत्तम ने बर्मा में जाकर हिन्दू सभा की अध्यक्षता भी स्वीकार कर ली थी। बरमा के पृथक्करण के बाद भी भिक्षु उत्तम भारत व बरमा में सद्भाव स्थापित करने का प्रयत्न करते रहते थे। ऐसे साधु भिक्षु का पिछले दिनों देहान्त हो गया यह विशेष दुःख की बात है।

गुरुकुल समाचार

इन्द्रसेन १४ श्रेणी टाईफाइड, विजय १३ अतिसार, वेद प्रकाश १२ श्रे० विषम ज्वर, सत्यवीर ११ श्रेणी विषम ज्वर। ये ब्रह्मचारी गत सप्ताह रोगी हुए थे अब स्वस्थ हो गए हैं। ब्रह्मचारी इन्द्रसेन अभी स्वास्थ्य लाभ कर रहे हैं।

काश्मीर, दार्जीलिंग तथा क्वेटा की पार्टियां एक मास की यात्रा समाप्त कर गुरुकुल को लौट रही हैं।

एक सप्ताह से वर्षा का अभाव अनुभव किया जा रहा है। इस समय महाविद्यालय विभाग में केवल तीन श्रेणियां हैं। श्री आचार्य जी १५ अक्तूबर को यहां पहुंच जायगे।

गुरुकुल-इन्द्रप्रस्थ

गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ की ऋतु उत्तम है। धीरे२ ऋतु परिवर्तन हो रहा है। मलेरिया का महीना होने हुए भी मलेरिया का बिलकुल प्रकोप नहीं है।

१० अक्टूबर से सब श्रेणियों की षाण्मासिक परीक्षाए प्रारम्भ हैं। सब अध्यापक ब्रह्मचारियों को विशेष परिश्रम करवा रहे हैं। ब्रह्मचारी भी परीक्षा की तैयारी में खूब लगे हुए हैं।

श्री प्रो० गोपाल जी आर्य समाज कसौली के वार्षिकोत्सव पर गये थे। आपने वहां पर दो तीन व्याख्यान दिये, जिनसे वहां की आर्यजनता विशेष प्रभावित हुई। श्री प० हरिशरण जी शिमला आर्यसमाज के वार्षिकोत्सव पर गये थे। आपने वहां विद्वत्त पूर्ण ४ व्याख्यान दिये। शिमला की जनता इन व्याख्यानों से बड़ी प्रभावित हुई। इसी प्रकार गुरुकुल के मुख्याधिष्ठाता जी और अध्यापकवर्ग गुरुकुल प्रचारार्थ समय२ पर आर्य समाजों के वार्षिकोत्सवों पर जाते रहते हैं।

गुरुकुल वैद्यनाथधाम

गुरुकुल महाविद्यालय वैद्यनाथधाम की नवीन निर्वाचित अन्तरङ्ग सभा की बैठक गुरुभूमि में ता० १६-१७ सितम्बर को हुई। सभा में राय बहादुर ब्रजनन्दनसिंह जी रिटायर्ड कमिश्नर एक्साईज़, पं० सुरेन्द्र नाथ जी विद्यालंकार और बा० हरगोविन्द जी गुप्त आदि प्रमुख सदस्य उपस्थित थे। सभा ने गुरुकुल की उन्नति के अनेक विचार तथा निश्चय किये। सदस्यों ने गुरुकुल की आन्तरिक उन्नति (शिक्षा और प्रबन्ध) पर पूर्ण सन्तोष प्रगट किया।

सेठ रघुमलट्रस्ट के मुकदमे के कारण जो आर्थिक कठिनाई गुरुकुल पर आई है, उसको दूर करने के लिये, अनेक उपाय सोचे गये। गुरुकुल का दान संग्रहार्थ शिष्ट मण्डल यथासमय बंगाल और बिहार के उदार दानियों के पास पहुंचेगा। इस समय श्री बा० रामेश्वर प्रसाद गुप्त रांची आदि स्थानों पर धन संग्रहार्थ गये हुए हैं। आशा है, आर्य जनता उन्हें पूरा सहयोग देगी।

गुरुकुल में इस समय ८० ब्रह्मचारी नियम पूर्वक विद्याध्ययन कर रहे हैं। नौ पूर्ण योग्य विद्वान विद्याध्यापन करा रहे हैं। कृषि, फुलवारी तथा टेलरिङ्ग क्लास खोली जा रही है, जिससे विद्यार्थी वर्षायोजना का लाभ उठा सकें। जनता को इस संस्था के दर्शन कर लाभ उठाना चाहिये।

वीरेन्द्र विद्यावाचस्पति एम० ए०
मुख्याधिष्ठाता गुरुकुल वैद्यनाथधाम संथाल परगना

चौधरी दुलाराम के प्रबन्ध से गुरुकुल मुद्रणालय गुरुकुल कांगड़ी में मुद्रित तथा प्रकाशित।

* ओ३म् *

"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत" Reg. No. A. 2927

गुरुकुल

सम्पादक—साहित्यरत्न पं० हरिवंश वेदालंकार

एक प्रति का मूल्य -) [गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख-पत्र] वार्षिक मूल्य २॥)

वर्ष ४] गुरुकुल काङ्गड़ी, शुक्रवार २० आश्विन १९९६, ६ अक्तूबर १९३९ [संख्या २२

ऊर्ध्वरेता कैसे हों ?

[जिज्ञासुओं की कुछ सेवा]

[लेखक—आचार्य अभयदेव जी]

एक मित्र जो अच्छी शिक्षा पाये हुए हैं और साधना का जीवन व्यतीत करते हैं, पूछते हैं:—

प्रश्न—ऊर्ध्वरेता कैसे हुआ जा सकता है? क्या पूर्ण ऊर्ध्वरेता होना, सर्वथा अस्खलित वीर्य होना सम्भव है? योग साधनों, आसन प्राणायाम आदि क्रियाओं से इस विषय में पूर्ण लाभ हो जाता है ऐसा सुना है पर अभी तक कुछ अनुभव में नहीं आया। इस विषय में आपका क्या विचार है इस बारे में अवश्य लिखिये।

उत्तर—ऊर्ध्वरेता होने के सम्बन्ध में मैं कोई नई बात आपको बता सकूंगा यह मैं नहीं समझता। फिर भी क्योंकि मैं स्वयं इसके लिये यत्न कर रहा हूं और इसे सर्वथा सम्भव और शक्य समझता हूं अतः अपना अभिप्राय संक्षेप में लिख भेजता हूं।

ऊर्ध्वरेता होना मामूली दुनिया से उल्टा चलना है यह बात ऊर्ध्वरेता बनना चाहने वाले को समझ लेनी चाहिए। इसलिये उसे आम दुनिया के पीछे चलना छोड़ देना चाहिये, उसे दुनियावी लहरों में बहने वाला नहीं होना चाहिए किन्तु आत्मनिष्ठ होना चाहिए।

ज्ञान द्वारा या भक्ति द्वारा—असल में इन दोनों द्वारा, क्योंकि आगे जाकर यह दोनों बातें एक ही हो जाती हैं—विषयों से वैराग्य होना ऊर्ध्वरेता होने के लिये आवश्यक है। यही मेरा दुनिया से उल्टे चलने से मतलब है। अर्थात् सच्चा वैराग्य ही इसका एक मात्र उपाय है। सच्चे वैराग्य के बिना ब्रह्मचर्य के लिये की गई सब अन्य बाह्य-क्रियाएं हमें दूर तक नहीं ले जाएंगी। इसलिए बुद्धि द्वारा वैराग्य का साक्षात् अनुभव और उसके द्वारा मन में विषयों की तरफ से शान्ति की स्थापना इन दो बातों के लिये यत्नशील होना चाहिए। मन की शान्ति के लिये प्राणायाम बहुत अच्छा साधन हो सकता है। अतः राजयोग की दृष्टि से प्राणायाम तथा मूर्धा में ध्यान करना वीर्य को ऊपर ले जाने में स्पष्टतया उत्तम उपाय है। एवं शीर्षासन, सिद्धासन, वज्रौली क्रिया, मूलबन्ध आदि हठयोग के साधन भी वीर्यरक्षा करने वाले हैं और इनसे बहुत कुछ लाभ प्राप्त किया जा सकता है। परन्तु जैसा कि मैंने ऊपर कहा है अन्तिम और स्थिर विजय तभी प्राप्त होती है जब कि काम विकार का बीज नाश कर दिया जाय अर्थात् चित्त के अवचेतन (Subconcious) भाग के अन्धेरे में पड़ी हुई वासनाओं का (वहां पर भी सत्य वैराग्य के प्रकाश को पहुंचा कर) विलय कर दिया जाय। इसमें बेशक बहुत देर लगती है पर यही सच्चा और निश्चित उपाय है। तभी विषयों के या प्रलोभन के उपस्थित होते हुए भी, स्वप्न में भी विकार के उत्पन्न होने की गुंजाइश नहीं रहती। इसलिए एक सूत्र में कहें तो वैराग्य ज्ञान के प्रकाश को यहां तक बढ़ाते जायें कि वह हमारी अवचेतना को भी प्रकाशित कर दे। यदि शरीर की, प्राण की, मानसिक, बौद्धिक तपस्या की जाय तो इस तपस्या की अग्नि से वीर्य (रेतस्) निश्चित ऊर्ध्वगामी होगा, उसके अधोगामी होने का कोई भय न रहेगा। यह भी स्पष्ट है कि ऐसा तभी किया जा सकता है जब कि जीवन किसी बड़े ध्येय के लिये एक लक्ष्य हो।

आर्यसमाज और साम्प्रदायिकता

(ले०— श्री पं० विद्यानन्द जी वेदालंकार,
पुरोहित आर्यसमाज कलकत्ता)

आर्यसमाज अवतार का खंडन करता है। वह उन को ऋषि महात्मा, गुरु, सत्य का प्रकाशक, पैगम्बर आदि के रूप में देखता है। वह ईश्वरपुत्र के विचार का भी खंडन करता है। वह मानता है कि प्रत्येक-हृदय में प्रभु मौजूद है। वे सभी को सत्य का ज्ञान देते हैं। परन्तु मनुष्य उनकी आवाज को अपने स्वार्थ एवं इच्छा के वशीभूत होकर दबा देता है। परन्तु ये महात्मा उसे बड़ी तत्परता तथा ध्यान से सुनते हैं। वे एक २ बात को प्रकाश करते हैं। वे तदनुसार जीवन भी बनाते हैं तब सारा संसार उनकी बात सुनता है। उनका आदर करता है। उनकी

एक २ बात को संग्रह करता है।

यही संग्रह उपदेश, धर्मपुस्तक, गुरुग्रन्थ आदि नाम कर प्रसिद्ध होता है। परन्तु मूलस्रोत वही प्रभु का दिया सत्यज्ञान रहता है। परन्तु दुनियां में चन्द्रमा के प्रकाश द्वारा सूर्य को नहीं पहचाना जाता है। यद्यपि महात्माओं में अवतरण तो सत्य का ही होता है। जिस के द्वारा प्रभु ने महात्मा को दर्शन दिया था। परन्तु लोग उसी को भगवान् समझ कर अवतार मान कर पूजने लग जाते हैं। परन्तु प्राचीन ऋषि, उस प्रभु की सलाह को 'मन्त्र या वेद' कहकर व्यक्ति की चीज नहीं बनने देते थे।

परन्तु शनैः २ यह प्रथ एवं भाव संसार से उठ गया। वह सत्यज्ञान लोगों को गुरु, ईश्वरपुत्र, पैगम्बर तथा अवतार बनाने लगा। इन व्यक्ति विशेषता वादियों के कारण संसार में ज्ञान एवं वेद का स्थान गुरुपूजा तथा अवतारवाद ने ले लिया। इस प्रकार के भक्तों के कारण एक पृथक् श्रेणी पुरोहितों की इन महात्माओं के नाम पर पैदा पैदा करने लगी। इनका काम इन महात्माओं की प्रशंसा सुनाना था। अतः इन लोगों ने इन महात्माओं को अवतार, ईश्वर पुत्र, खुदा का पड़ासी पैगम्बर, देवता आदि बना डाला। इस प्रकार उस एक सत्य को इन महान् पुरुषों के नाम पर पृथक् २ सम्प्रदायों की चीज़ बना डाला। इस प्रकार एक ही सत्य भिन्न २ सम्प्रदाय, पुस्तक तथा महात्माओं की वाणी समझा जाने लगा।

आर्यसमाज की तीव्र खण्डनात्मक प्रचारधारा ने पारस्परिक जांच पड़ताल के साथ सत्य की एकता को ढूंढने की ओर हिन्दू मुसलमान सभी को झुका दिया है। यह धार्मिक जगत् की महान् क्रान्ति है। जिसे राजनैतिक उद्देश्य रखने वाले हिन्दुसभा तथा मुस्लिम लीग के नेताओं ने जनता को दलबन्दी में डालकर बदनाम कर दिया है।

आर्यसमाज धार्मिक दलबन्दी के कारण को पेश करके सब धर्मों में सत्य की एकता तथा उसकी ओर झुकने के लिये आवश्यक छानबीन करने की प्रवृत्ति पैदा कर रहा था। अतः कम पढ़े गुरु आवश्यक छानबीन की ओर न झुककर केवल जनता में बदनाम करने की कोशिश करने लगे। यही हाल मौलवियों का भी था। परन्तु दोनों इस प्रयत्न में कामयाब न हो सके। तब आर्यसमाजियों से शास्त्रार्थ एवं मुबाहसा कर सकने वाले पण्डितों तथा मौलवियों की खोज होने लगी। वास्तव में यह क्रान्ति की दूसरी सीढ़ी थी। परन्तु यह धारा बीच में ही राजनैतिक उद्देश्य रखने वालों ने बदनाम कर दी। अन्यथा धार्मिक जगत की यह दलबन्दी मिट जाती। अब आर्यसमाज का यह प्रयत्न, वैमनस्य की आंच में नीरस हो चुका है। यहां तक कि आज आर्यसमाज पर मुस्लिमस्टेट्स में प्रतिबन्ध तक लगवाने की कोशिश की जाती है। जिस के कारण निज़ाम ने आर्यसमाज की परीक्षा लेने के बाद अपने राज्य में प्रचार करने की इजाज़त दी है। परन्तु मुस्लिम लीग के नेता अपने राजनैतिक उद्देश्य से हिन्दू द्वेष को दिखाने के लिये मुसलमानों को निज़ाम के १९ वीं मदी के सुधारों के भी विरुद्ध भड़काने का प्रयत्न कर बैठे थे। आर्यसमाज हिन्दुओं की दलबन्दी नहीं चाहता, किन्तु जागृति चाहता है। आर्य समाज ईसा, बुद्ध, मुहम्मद सभी को प्रभु की सलाह या मन्त्र को ईश्वरीयज्ञान के रूप में पहचानने वाला ऋषि मानता है। संसार में प्रभु का ज्ञान जिन मनुष्यों द्वारा पहचाना जाता है वे ही ऋषि कहे जाते रहे हैं। स्वामी दयानन्द जी को भी इसी लिये ऋषि कहा जाता है। ऋषि प्रभु के शिष्य को कहते हैं, न कि अवतार को। जिसे प्रभु के ज्ञान के कारण ही प्रभु मान लिया जाता है और उन्हें अवतार कहा जाता है। इसी कारण लोग अपने को प्रभु की जगह कृष्ण, ईसा, बुद्ध, राम आदि का भक्त कहने लगते हैं।

आर्यसमाज इस अवतारवाद का पूर्ण विरोधी है। साथ ही गुरुडम का भी विरोध करता है। दादूपन्थी कबीरपन्थी, नानकपन्थी, शंकर रामानुज वल्लभ आदि गुरुओं के चेले सब आर्यसमाज की इस गुरुडम विरोधी नीति के कारण काफी घबराते रहे हैं। खुदा का संदेशवाहक श्री मुहम्मद साहेब का नाम भी कलम में पढ़ने के कारण मौलवियों से आर्यसमाज बहस करता है क्यों कि ईसाई बौद्ध आदि कहकर अन्य गुरुओं से उनको विशेष मानने का भाव गुरुडम तथा सम्प्रदायों का पोषक है। आर्यसमाज मानता है कि हरेक ऋषि या गुरु समयानुसार किन्हीं खास सत्यों पर बल देता है तथा पुष्टि करता है। इस प्रकार वह उस सत्य का प्रतिनिधि तथा ऋषि कहा जाना चाहिये। भारत में ख़ासकर वैदिक समय में ऋषियों का इतिहास यही बताता है। इसी लिये आपस में गुरु प्रशंसा करते हुए वे एक दूसरे की विशेषता कहते जाते हैं और निर्णय कुछ नहीं कर पाते। आर्यसमाज उनको ऋषि मानते हुए यह भी ख्याल में रखने को कहता है कि वे किस विषय के ऋषि थे। इस प्रकार हरेक गुरु का इतिहास विषय सुरक्षित हो जाता है तथा संप्रदाय भेद को कायम करने वाला गुरुडम भी खतम हो जाता है। साथ ही गुरुओं के नाम पर चलने वाला पारस्परिक द्वेष भी ख़तम हो जाता है।

आर्यसमाज अपने गुरुमन्त्र में प्रभु को ही गुरु मानने की शिक्षा देता है। इस प्रकार गुरुडम की जड़ ही साफ कर देता है।

इस क्रान्ति का अग्रदूत संप्रदायों के प्रचार से ही तंग आकर मैदान में कूदा था।

छुट्टी की सूचना— 'गुरुकुल' के प्रेमी पाठकों की सेवा में निवेदन है कि २० अक्टूबर को 'गुरुकुल' का विशेषांक आयुर्वेदांक के रूप में निकलने जा रहा है। अतएव १३ अक्टूबर का अंक प्रकाशित नहीं होगा।

अहिंसामय गांधी

(श्री सर्वज्ञ)

आज जगद्वन्द्य महात्मा अपनी आयु के ७० वें वर्ष को सानन्द समाप्त कर ७१ वें वर्ष में प्रवेश कर रहा है। हम इस अवसर पर अपने जीवन के लिये कुछ शिक्षा लेना चाहते हैं, क्या शिक्षा लें? गांधी मास हर प्रतिवर्ष नियमित रूप से आकर चला जाता है। गांधी जी की शिक्षा, उनके आदेश और उपदेश वही के वही हैं वे कोई नए नहीं हो गये हैं अब भी इस महात्मा के रोम २ से प्रकट होती हुई आवाज अपनी सम्पूर्ण शक्ति के साथ मानव प्राणी को सत्य और अहिंसा का शान्तिमय उपदेश दे रही हैं। गांधी जी की आत्मा अब भी पूर्ववत इस बात के लिये अत्यन्त उत्सुक है कि किसी तरह से वह अपने सत्य और अहिंसा के दृढ़ सिद्धान्तों को विश्व द्वारा क्रियात्मक रूप में सम्पादित करा सके। परन्तु प्रति वर्ष आने वाले इस दिन हम नई चेतना और जागृति के साथ जब इन सिद्धान्तों को स्मरण करते हैं तब इनमें कुछ आभा और नूतनता अनुभव करते हैं तथा प्रति वर्ष इन सिद्धान्तों पर हमारा विश्वास दृढ़ और दृढ़तर होता चला जाता है। आज संसार की वर्तमान नाजुक दशा में केवल गांधी जी ही हमारे एकमात्र अव-लम्ब हैं।

गांधी जी ने सत्य के आग्रह के लिये अहिंसा को अपना कर अपने सारे जीवन को उसकी प्रयोग शाला बना दिया है।

गांधी जी की साधना इतनी पराकाष्ठा को प्राप्त कर गई है कि आज उनके सिद्धान्त, सत्य और अहिंसा, सेवा और खादी उनके सम्पूर्ण जीवन के पर्यायवाची शब्द बन चुके हैं।

गांधी जी केवल न मारने को अहिंसा नहीं समझते किन्तु मानव की पूर्णता को अहिंसा समझते हैं। अभा पोलों के प्रति सहानुभूति प्रकट करते हुए लिखा था कि पोल जनों की यह हिंसा अहिंसा से भी आगे बढ़ गई है।

गांधी जी के जीवन को और उनके सिद्धान्तों को यदि सूत्र रूप में जानना चाहें तो वह "अहिंसा" है। उनके जीवन का एकमात्र ध्येय यही है. वे इस मार्ग पर अकेले भी चलने को तैयार हैं. हाल ही में लिखे उनके एक लेख से यह स्पष्ट है। उन्होंने लिखा था कि मैं —"जानता हूं कि अहिंसा की प्रगति स्पष्ट रूप से बहुत धीमी प्रगति है। परन्तु अनुभवों ने मुझे बतलाया है कि हमारे सम्मिलित लक्ष्य का यही सब से निश्चित मार्ग है। युद्ध और शस्त्रास्त्र से न तो भारत को मुक्ति मिल सकती है न संसार को। हिंसा तो न्याय–प्राप्ति के लिए निष्फल सिद्ध हो चुकी है। अपने इस विश्वास के साथ, अहिंसा में पूरी श्रद्धा रखने से अगर मेरा कोई साथी न हो, तो मैं अकेला ही इस पथ पर चलने के लिये भी तैयार हूं।" परन्तु हम इस सप्ताह को मनाते हुए इस महान् व्यक्ति को विश्वास दिलाते हैं कि उसे अकेला नहीं चलना पड़ेगा। समय आयगा जब सारा विश्व उनके पद चिन्हों पर चल कर उनके स्वप्न को सत्य सिद्ध कर दिखायेगा।

आज का गांधी केवल सीमित भारत का न रहकर विश्व का गांधी बन गया है, मानवता का पुजारी गांधी आज मानव के लिये आराध्य है, इस सुअवसर पर राष्ट्र के प्राण वर्तमान युग के निर्माता महान् गांधी के प्रति हम अपनी भक्ति भरी श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हैं। और मंगलमय शक्तिशाली प्रभु से प्रार्थना करते हैं कि यह अवसर भविष्य में भी चिरकाल तक प्राप्त होता रहे।

दार्जिलिंग की यात्रा

(ले०– श्री पं० हरिवंश जी वेदालंकार)

प्रस्थान

दार्जिलिंग की प्रशंसा हमने अपने मित्रों से अनेक बार सुनी थी, इस लिये वहां जाकर प्राकृतिक दृश्यों की रमणीयता का आनन्द लूटने की इच्छा बहुत दिनों से थी। ईश्वर की कृपा से वह सुअवसर हाथ आया और मैं आचार्य जी आज्ञानुसार दार्जिलिंग जाने वाले १५ ब्रह्मचारियों का अध्यक्ष बनकर जाने को तैय्यार हो गया। गुरुकुल में छोटे-बड़े सभी ब्रह्मचारियों को इस प्रकार की लम्बी यात्राएं प्रति वर्ष कराई जाती हैं जिस के कारण भूगोल और विज्ञान की पुस्तकों में पढ़ा हुआ उनका ज्ञान 'कोरा ज्ञान' ही नहीं रह जाता अपितु वे इन यात्राओं में ठोस ज्ञान का उपार्जन करते हैं गुरुकुल की यात्राएँ वन पर्वतों में ही विशेष तौर पर कराई जाती हैं जिससे ब्रह्मचारियों को ज्ञान और स्वास्थ्य लाभ के साथ २ आध्यात्मिक स्फुरणा भी मिले। वस्तुतः हिमालय के वन-पर्वतों में जो मूक-संगीत बिखर रहा है, जो आह्लाद प्रस्फुटित हो रहा है उसे प्रत्येक मनुष्य अनुभव कर सकता है। इसी उद्देश्य को सम्मुख रखकर ब्रह्मचारी पहाड़ों की यात्राओं पर भेजे जाते हैं। किन्हीं खास अवसरों पर ऐतिहासिक स्थानों की यात्रा करने की भी अनुमति मिल जाती है।

गत २५ अगस्त १९३९ को प्रातःकाल गुरुकुल की एक पार्टी ने श्री उपाचार्य जी की अध्यक्षता में गंगोत्री की ओर प्रस्थान किया। हमारी दार्जिलिंग पार्टी यह नहीं चाहती थी कि यात्रा के लिये प्रस्थान करते हुए वह किसी दूसरी पार्टी से पिछड़ जाय। अतः सुबह से शाम तक वस्त्रों पुस्तकों तथा नाश्ते समान का उचित बन्दोबस्त कर हमारी पार्टी रात्रि की गाड़ी से जाने को उद्यत हो गई। हम में से प्रत्येक ने अपने साथ सामान बहुत ही थोड़ा लिया था। १ दरी, २ चादर, ३ कुर्ते, २ धोती, २ निकर, २ लंगोट और १ उपवस्त्र लेकर शीघ्रता से हम स्टेशन की ओर रवाना हुए। १० बजकर १६ मिनट पर हमें

[शेष पृष्ठ ६ पर]

गुरुकुल

२० आश्विन शुक्रवार १९९६

सूर्योदय

[आचार्य अभयदेव संन्यासी]

उठो जागो, अबतक भी सोने वालो, उठो। जरा यह दृश्य, देवों के भी देखने योग्य भव्य दृश्य देखने के लिये ही, जरा जागो। देखो, पूर्व की दिशा में सूर्यनारायण उदित हो रहे हैं। कैसा हृदय को प्रफुल्ल करने वाला, अन्तरात्मा को उद्बुद्ध करने वाला, मन में शुद्ध और नव प्राण का सञ्चार कर देने वाला दृश्य है, यदि परमेश्वर ने मुझे कवित्व शक्ति प्रदान की होती तो आज सूर्योदय का वर्णन कर उसे कृतकृत्य करता। अभागे हैं वे पुरुष जो अब भी निद्रा में हैं जबकि पूर्व दिशा में प्रकट होते हुए बालसूर्य अपनी सुनहली रश्मियों की स्वर्गीय छटा से चारों दिशाओं को आलोकित कर रहे हैं, जब कि पूर्व दिशा में दिव्य उषा का उज्ज्वल उदयन हो रहा है।

यह भौतिक सूर्योदय भी कोई मामूली घटना नहीं है। यद्यपि अपने २४ घंटे के प्रत्येक अहोरात्र में एक बार होते देखते रहने के कारण इस घटना को इसका ठीक महत्त्व देने की शक्ति हम खो बैठे हैं। पर इस से इसका असली महत्त्व कम नहीं हो जाता। ज़रा हम सोचें यदि सूर्य उदय ही न हो तो कैसा हो? या हम लगातार अंधेरे में, सूर्य प्रकाश से हीन लोक में रहते हों और सूर्योदय को जानते तक न हों तब यदि अचानक कभी सूर्य का उदय हो जाए तो हमें कैसा लगे? सचमुच रात के घोर अन्धकार के बाद चतुर्दिक व्यापी दिव्य उजाला हो जाना बड़ी अद्भुत और आश्चर्य कर घटना है।

और हम सूर्य प्रकाश का प्रतिदिन अनुभव करने वाले भी देखते हैं कि चोर डाकू राक्षस, नाना विध रोग और आजकल के कीटाणुओं का उपद्रव, यह सब बलाएं रात्रि के अन्धकार में ही फलीभूत होती हैं, सूर्य प्रकाश हो जाने पर नहीं टिक सकतीं। इसी तरह यद्यपि सूर्य के अस्त हो जाने पर हम लोग इस पृथ्वी पर अग्नि और बिजली की रोशनी से अपना काम चलाते हैं और आकाश में भी तारा-गणनक्षत्र अपने क्षुद्र प्रकाश में टिमटिमाने लगते हैं (मानो चक्रवर्ती महाराज के हट जाने से छोटे छोटे राजा अपनी छोटी छोटी रियासतों में चमकते दीखने लगे हों) तथा चन्द्रमा भी— जो कि सूर्य के अभाव में हमारे लोक के लिये सूर्य का ही प्रतिनिधित्व करता है — बेशक अपनी घटती बढ़ती कला के साथ कम से कम बढ़ती के दिनों में रात में चांदनी फैला देता है तथापि ये सब प्रकाश— दीपक से लेकर चन्द्रमा तक ये सब प्रकाश— सूर्य के प्रचण्ड प्रकाश के उगते ही एक दम पीछे पड़ जाते हैं और विलीन हो जाते हैं, सूर्य प्रकाश से इनका क्या मुकाबिला?

यह सब तो भौतिक सूर्य का वह माहात्म्य है जो स्थूल दृष्टि से भी दीखने में आसकता है। पर सूक्ष्मता में जाएं तब तो मालूम पड़ता है कि इस जगत् के अग्नि-विद्युत आदि सब प्रकाश और ताप तथा अन्य भौतिक शक्तियों का ही स्रोत हमारा भौतिक सूर्य नहीं है किन्तु इस पृथ्वी के स्थावर जंगम प्राणी मात्र के जीवन और प्राण का भी स्रोत वही है। सूर्य के और सूर्य-किरणों के इस माहात्म्य को तथा अन्य सूक्ष्मतम माहात्म्य को अनुभव करने के कारण ही प्राचीन काल में सभी देशों के ज्ञानी लोग सूर्य को देव भगवान्, नारायण करके मानते और उसकी सक्रिय सफल उपासना करते आए हैं। सच तो यह है कि अपने उदय-अस्त द्वारा हमारे दिन रात के बनाने वाले इन सुपरिचित भौतिक सूर्य देव की ही महिमा का वास्तविक वर्णन कर सकना मनुष्य की वाणी की शक्ति के अगोचर है।

भगवन् सूर्य! तुम क्यों यह भ्रमण कर रहे हो? एक नियत समय पर और नियत रूप में क्यों निरन्तर उगते जाते रहते हो, उदय अस्त होते रहते हो? तुम कभी विश्राम करने नहीं बैठ जाते? इन लोकों में घूमते हुए कभी किसी सुन्दर वस्तु को देखने के लिए ही क्षण भर ठहर नहीं जाते और देर नहीं कर देते? यह तुम्हारा कठोर समय पालन— कि गणना करने वाला आज भी कह सकता है कि सौ वर्ष बाद तुम अमुक दिन इतने बजकर इतने मिनट इतने सेकेण्ड पर उस जगह उदय होंगे —किस लिये है? पहरा देने वाला सन्तरी तो मालिक के या राजा के डर से, दण्डित होने के भय से ठीक ठीक घूमता है पर तुम्हें किस का डर है? तुम तो स्वतन्त्र देव हो। तुमने क्यों अपने आपको इतने कठोर नियम में बान्ध लिया है? या तुम भी किसी देव की, देवों के देव की आज्ञा में हो? यह तो बताओ कि क्या तुम कभी उकता नहीं जाते? अपने उसी एक रस सूखे मार्ग का अतिक्रमण करते करते कभी जी बहलाव के लिये व्यतिक्रम क्यों नहीं कर देते? क्या तुम किसी व्रत में हो, किसी साधना में हो? तुम किस की उपासना में यह उग्र तपस्या कर रहे हो? किसे रिझाने किसे पाने के लिये यह तुम्हारा अनवरत, न जाने कब से चला आता, अनुष्ठान है? मेरे जन्म के पूर्व से, मेरे अनगिनत पुरुखाओं के समय से तुम चक्कर लगा रहे हो, मेरी उम्र चाहे सैकड़ों वर्ष की क्यों न हो तुम्हारा यह क्रम जारी रहेगा यह देह छूट जाने के सैंकड़ों वर्ष बाद तक तुम उगते और अस्त होते रहोगे। हे महान् देव! यह किस लिये है? और तुम कौन देव हो, तुम्हारा मुझ से क्या सम्बन्ध है? क्या कुछ भी सम्बन्ध नहीं? तुम हर रोज आते हो और चुपचाप— केवल हम पर प्रकाश डालकर— चले जाते हो। क्या तुम कुछ कहने के लिये आते हो या तुम कुछ कह भी जाते हो जिसे हम सुन और समझ नहीं सकते? नहीं तो यह तुम्हारी मौन अविश्रान्त, अविरत, रहस्यमय गति किस लिये है?

× × ×

हां मैं जानता हूँ, और अब मैं यह किसी से छिपा कर नहीं रखना चाहता, कि तुम इस चराचर जगत् के पिता हो, तुम मेरे भी पिता हो जैसे कि यह पृथ्वी माता है। तुम्हारा और मेरा पिता पुत्र का सम्बन्ध है। निःसन्देह तुम भी किसी देवों के देव की आज्ञा में हो जिस परम देव के विषय में कहा है – "भयादस्माद्ग्निस्तपति,भयात्तपति सूर्यः।" अवश्य ही वह सूर्य का भी सूर्य है जिससे कि तुम भी, हे प्रकाश के राजा! अपना यह जगत्-प्रकाशक प्रकाश ग्रहण करते हो।

"न तत्र सूर्योभाति न चन्द्र तारकम्।
नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्नि॥
तमेव भान्तमनुभाति सर्वम्।
तस्य भासा सर्वमिदं विभाति॥"

उसी की आज्ञा से रहने में तुम्हें असीम सुख मिलता है, इसी लिये तुम यह दुनिया को नीरस और विकट दीखने वाला अपना काम- यह अपना व्रत पालन- परमानन्द की मग्नता में बड़े सौख्य के साथ गाते गाते कर रहे हो। हां, सचमुच सहज आनन्द से उत्पन्न होने वाला एक निरन्तर गान, विशाल सामगान, तुम से निकल रहा है और अपनी इन स्वर लहरियों से जगत् को हिला रहा है। उस स्वर्गीय गान के प्रति अभिमुख होते ही मेरा तो रोम २ नाचने लगता है। तुम केवल प्रकाश नहीं देते हो न जाने कितनी प्रकार की शक्तियों की वर्षा कर देते हो, तुम केवल अपना गान नहीं सुनाते हो न जाने और क्या क्या कर करा जाते हो। सच कहूँ तो मुझे तो तुम विह्वल कर देते हो, क्योंकि तुम्हारा ध्यान आते ही मुझे तुम्हारे महान ध्येय का स्मरण हो आता है और मुझ में तुम्हारे ध्येय की महत्ता, उसको पूरा हुआ देखने की मेरी तीव्र उत्कण्ठा और अपनी दयनीय असमर्थता इन सब भावों की प्रबल तरङ्गें उथल पुथल मचा देती हैं। मैं जानता हूँ, हे सूर्य देव; तुम्हारा यह ध्येय, उस परम देव की आज्ञा में होने वाला तुम्हारा यह गम्भीर कार्य तबतक पूरा न होगा जबतक इस अन्धकारमय जगत का एक एक कोना शुद्ध आनन्दमय चैतन्य के प्रकाश से जगमगा नहीं उठेगा। आ! यह कब होगा, यह कैसे होगा, मैं लोगों को क्या बताऊँ कि तुम्हारी रश्मियों का स्पर्श मुझ में कैसी वेदना पैदा कर जाता है।

यह जो दोपहर को आकाश में अपनी सहस्रों रश्मियों से तपता हुआ जगत को तपाता हुआ, प्रचण्ड दुर्निरीक्ष्य प्रकाशपिण्ड स्थूल दृष्टि से दिखाई देता है यह तो असली सूर्य का केवल भौतिक स्थूल देहमात्र है, स्थूल देह की भी एक अवस्था है। इसके अन्दर सूर्यदेव का जो प्राणमय, जो मनोमय शरीर है और जो पीछे अभौतिक आत्मा छिपा हुआ है वही असली सूर्यनारायण है। हम तो अभी तक उनके स्थूल भौतिक प्रकाश का ही पूर्ण उपयोग नहीं प्राप्त कर रहे हैं। उसके आन्तर महान प्रकाश से हमारे प्राण और मन तो लगभग अछूते हो पड़े हैं। उसका आन्तर प्रकाश—लाखों सूर्यों के इकट्ठा चमकने से भी अधिक तेजस्वी उनका आन्तर प्रकाश—इतना प्रचण्ड है कि हमारे दुर्बल प्राण और मन उसे सहन नहीं कर सकते हैं इसीलिए सूर्य भगवान का वह तेजोमय आन्तर रूप हमारे सामने अभी तक प्रकट ही नहीं होता है। पर यह ठीक है कि वह वह प्रकाश है जिसमें जगत का प्रत्येक प्राणी, प्रत्येक जीव, प्रत्येक पदार्थ अपने सत्य में यथावत ठीक ठीक दिखाई देने लगता है, इसलिए वहां राग द्वेष आदि विकारों और काम क्रोध आदि आवेगों के लिये कोई स्थान नहीं रहता, उस प्रकाश में यह दुनियावी जीना मरना एक बराबर हो जाता है, अपना अजर, अमर, अभय स्वरूप तब प्रकट दीखता है, अनन्त प्रकाश में अनन्त चैतन्य में अनन्त आनन्द में यह सांसारिक दुःख व्याधि जरा मृत्यु अपनी सत्ता खो देते हैं। यद्यपि उस आन्तर प्रकाश के हमारे मानसिक क्षेत्र में उदय और अस्त होने से ही हम मनुष्यों के आन्तरिक (स्वल्प या दीर्घकालिक) अहोरात्र बनते हैं, व्यक्तियों के ही नहीं, किन्तु राष्ट्रों के या मनुष्य जाति के जो उज्ज्वल या अधकारमय लम्बे लम्बे काल आते हैं वे भी इसी आन्तर ज्योति के उदय और अस्त के कारण होते हैं और इस प्रकार यह पृथ्वी या इसके विभाग या भिन्न २ राष्ट्र अपने अपने जुदा जुदा अहोरात्रों में से गुजरते रहते हैं, परन्तु इससे आगे, इससे ऊपर एक वह सूर्य का असली अपना लोक है जहां कभी सूर्यास्त नहीं होता। जहां अमृत, अजस्र ज्योति है, जहां अखण्ड असीम प्रकाश पारावार है। वहां किसी असत्य, भ्रम, अंधकार, छाया या मिथ्यात्व की पहुंच नहीं हो सकती। क्योंकि सूर्यदेव के स्थूल देह प्राण तथा मन के पीछे जो उसका आत्मा है वह सत्यस्वरूप है। उस अक्षय सत्य-स्थान से ही सब प्रकार का प्रकाश निकलता है, उत्पन्न होता है। वह सत्य केवल प्रकाशकारक नहीं है वह शक्तिदायक भी है, वह स्वयं प्रकाश है वह स्वयं शक्ति है। उस सत्यस्वरूप के सामने कोई अन्धकार कोई विरोधी शक्ति टिक नहीं सकती। वही असली सूर्य है जो हमारा पिता है, वह सत्य प्रकाश है, वह सत्य शक्ति है वह सत्यदेव है।

वह सूर्य जब उदय होता है उसकी ज्योति जब पूर्णतया मनुष्य में पहुंचती है तब उसके मन में सत्य का ही – शुद्ध सत्य का ही प्रकाश हो जाता है, उसके प्राण में सत्य भाव ही-उठता है और उसके शरीर द्वारा सत्य कृति ही निकलती है। उस सत्य प्रकाश में पहुँच कर किया हुआ आन्तर या बाह्य कर्म कभी निष्फल नहीं हो सकता, वह सत्य होता है वह अमोघ होता है।

भाइयो! पृथ्वी माता के हम पुत्र बहुत काल से अन्धेरे में हैं युगों से हम पर रात्रि छाई हुई है। बेशक इस अन्धेरे भी हम अपनी चित्त वृत्ति रूपी अग्नियों के धुंधले प्रकाश का या सचेत प्राण-मन रूपी बिजली के प्रकाश का आयोजन कर अपने काम चला रहे हैं और सन्तोष मान रहे हैं तथा ऊपर से आने वाले घटते-बढ़ते किन्तु नियमित विमल बुद्धि रूपी चान्द्रमस प्रकाश को पाकर भी हम खुश रहते हैं और इस से भी अपना

निर्वाह करते आते हैं, पर इन सब प्रकाशों से रात्रि नहीं मिट जाती। क्या वह वास्तविक सत्य प्रकाश जिसके अंश को पाकर ही यह सब हमारे मलिन प्रकाश चमकने की शक्ति प्राप्त करते हैं हमारे भाग्य में नहीं है? क्या इस रात्रि का अन्त नहीं होगा? बहुत से लोग सचमुच इस मलिन प्रकाश, इस अन्धकार भरे उजाले से ऊब चुके हैं और किसी अज्ञात नए प्रकाश के लिये चिरकाल से पुकार कर रहे हैं। देखो, उधर पूर्व दिशा में जो एक अदृष्टपूर्व बिल्कुल नए प्रकार का स्वर्गीय प्रकाश उभरता हुआ दृष्टिगोचर हो रहा है वह उन पुकारों का ही फल तो नहीं है? अवश्य भगवान सूर्य के उगने का समय अब आ गया है। आओ, हम सब भाई इस सूर्योदय का स्वागत करें, नत मस्तक होकर स्वागत करें, नत-मस्तक नत हृदय और नतात्मा होकर इस सूर्योदय का स्वागत करें।

[पृष्ठ ३ का शेष]

लेकर हावड़ा-एक्सप्रेस हरद्वार से रवाना हुई। प्रातःकाल नींद खुलने के दो घंटे बाद हम लखनऊ आ पहुँचे। वहां के इमामबाड़े आदि दर्शनीय वस्तुएं देखकर हमने सारनाथ के लिये प्रस्थान किया। काशी का हिन्दूविश्व-विद्यालय देखकर सारनाथ गए। वहां का दृश्य देख कर हृदय मानों द्रवीभूत हो गया। महात्मा बुद्ध के जीवन की सारी घटनाएं आंखों के आगे से गुज़र गईं। वहां का 'मूलगन्धकुटी विहार' विशेष प्रभावोत्पादक है। काशी में 'भारत माता का मन्दिर' भी दर्शनीय है। काशी में सारनाथ देखकर बुद्ध-गया देखना भी आवश्यक है जहां पर महात्मा बुद्ध को फल्गु के तीर पर वट वृक्ष के नीचे ज्ञान-लाभ हुआ था। इस स्थान के चारों ओर हमें सचमुच कुछ अद्भुत सी शान्ति अनुभव हुई। गया से चलकर हमारा दल खान-सम्बन्धी ज्ञान प्राप्त करने के लिए झरिया पहुँचा और वहां से रांची। रांची का पागलखाना (Mental Hospital) दर्शनीय है। टाटा नगर का विश्वविख्यात कारखाना देखने की हमें स्वीकृति न मिल सकी क्योंकि उन दिनों महायुद्ध छिड़ चुका था। यहां तक का यात्रावृत्त हमने जान बूझकर अति संक्षेप में लिखा है, जिससे कि पाठकों को हमारे मार्ग की कुछ रूप-रेखा का पता लग जाय और 'दार्जिलिंग यात्रा' दूर न खिंचती जाय।

सिलीगुड़ी

कलकत्ते से २४ मील उत्तर नैहाटी जंक्शन से हम रात्रि को १०॥ बजे दार्जिलिंग-एक्सप्रेस में सवार हुए। सौभाग्य से रेल में एक कम्पार्टमेन्ट खाली मिल गया। उसमें ऊपर नीचे बिस्तर लगाकर हम सब सो गये। सवेरे जब नींद खुली तब धान के खेतों का सुहावना दृश्य दीख पड़ा। रेल के दोनों ओर जहां तक दृष्टि जाती थी शस्य-श्यामला भूमि को देखकर हमारी आंखें तर होगईं। दोनों ओर के जलाशयों में खिले हुए कुसुमों के इर्द गिर्द प्रातःकालीन भ्रमरों का गुंजार करना मन को मोह लेता था। मैं खिड़की के पास बैठा हुआ निर्बाध गति से धान्य-श्री को देखता जाता था। कहीं २ खेतों में से बगुलों की पंक्तियां अकस्मात् रेल का शब्द सुनकर फुर्ती से अपने श्वेत पंखों को फड़फड़ाती उड़ जाती थी, वह दृश्य बड़ा मनोरञ्जक प्रतीत होता था। एक बंगाली सज्जन से पता लगा कि अब सिलीगुड़ी केवल एक स्टेशन रह गया है। हमने सामान को व्यवस्थित करना प्रारम्भ कर दिया। सामने हिमालय पर्वत की लम्बी २ श्रेणियां मानों हम लोगों को सस्नेह बुला रही थीं। गाड़ी तेज़ी से उत्तर दिशा में उन पर्वतों की ओर भागी जा रही थी। क्रमशः ५ मील पार करने के बाद सिलीगुड़ी स्टेशन आया।

सिलीगुड़ी छोटा सा शहर है। सफाई और जलवायु की दृष्टि से उत्तम है। यहां से दार्जिलिंग ५२ मील है। रेल और मोटर दोनों की सड़कें दार्जिलिंग तक जाती हैं। रेल का किराया १॥=) है। कलकत्ते से आने वाली बड़ी लाइन सिलीगुड़ी में समाप्त हो जाती है। रेल से आगे जाने वालों को "दार्जिलिंग-हिमालयन रेलवे" की छोटी २ गाड़ियों का शरण लेनी पड़ती है, जो कि बड़ी मज़ेदार हैं और जिसकी सवारी किये बिना दार्जिलिंग की यात्रा अधूरी ही समझी जानी चाहिए।

(अग्रिम अङ्क में समाप्य)

कन्यागुरुकुल देहरादून

आवश्यक सूचना

कन्यागुरुकुल का १२ वां वार्षिकोत्सव दशहरे की छुट्टियों में ता० १६ से २३ अक्टूबर तक होना निश्चित हुआ था किन्तु कई अनिवार्य कारणों से तिथियाँ बदलनी पड़ी हैं और अब महोत्सव ता० १० से प्रारम्भ होकर ११ नवम्बर तक समाप्त होगा। आशा है कि गुरुकुल प्रेमी सज्जन परिवर्तित तिथियाँ नोट कर लेंगे।

दीक्षान्त भाषण श्रीमती राजकुमारी अमृतकौर देंगी। और दीक्षान्त के समय संयुक्त प्रान्त के प्रधान-मन्त्री माननीय श्री गोविन्दवल्लभ पन्त जी प्रधान पद को सुशोभित करेंगे। उत्सव पर आर्य समाज के सुप्रसिद्ध सन्यासी महात्मा नारायण स्वामी जी तथा आर्यसमाज के सुप्रसिद्ध नेता श्री युत महाशय कृष्ण जी बी० ए०, श्री राजगुरु धुरेन्द्र शास्त्री जी, श्रीमान् पंडित बुद्धदेव जी विद्यालंकार, श्री पंडित प्रियव्रत जी वेदवाचस्पति ने पधारना स्वीकार कर लिया है। आर्य महोपदेशक श्रीमान् पंडित रामचन्द्र जी देहलवी तथा अन्य विदुषी देवियों को भी आमन्त्रित किया गया है। इस वर्ष का उत्सव बड़ी धूमधाम से दीपावली के अवसर पर होगा। इसलिए गुरुकुल प्रेमी सज्जनों तथा देवियों से निवेदन है कि उस अवसर पर दर्शन देकर कृतार्थ करें।

दर्शनाभिलाषिणी:—विद्यावती सेठ बी० ए०
आचार्या कन्या गुरुकुल देहरादून, ६० राजपुर रोड।

गुरुकुल समाचार

आजकल ऋतु बड़ी सुहावनी है। सारी कुलभूमि हरी-हरी घास से आच्छादित हो गई है। प्रातःकाल घास पर पड़ी ओस की बूंदें मोतियों का भ्रम उत्पन्न करती हैं। गुरुकुल की गुलाबी इमारतें आजकल की हरियाली में अत्यन्त सुन्दर तथा भव्य प्रतीत होती हैं। रात्रि को जाड़ा पर्याप्त होता है।

शरद् ऋतु के शुभागमन के साथ ही साथ दिशायें साफ हो गई हैं। गंगा का जल अत्यन्त शीतल तथा निर्मल हो गया है। आकाश में जहां तहां श्वेत बादल दृष्टिगोचर होने लगे हैं। हर के किनारे गुरुकुल की सड़क के दोनों ओर सागौन के वृक्षों की छटा अवर्णनीय है। सायंकाल उस सड़क पर भ्रमण करने वाले ब्रह्मचारी अपने को काश्मीर-कवेटा यात्रियों से कम नहीं गिनते और प्रतिदिन भ्रमण और व्यायाम द्वारा अच्छा स्वास्थ्य लाभ कर रहे हैं। प्रथम तो गुरुकुल भूमि के हिस्से प्राकृतिक-सौन्दर्य बहुत अधिक पड़ा है, उस पर गंगा और हिमालय की समीपता ने सोने में सुहागे का काम किया है। सात मास के बाद हिमालय का जगमग करता शुभ्र भाल पुनरपि दृष्टिगोचर होने लगा है।

गुरुकुल के चिकित्सालय में गत सप्ताह के सब रोगी स्वास्थ्य लाभ कर चुके हैं। सिर्फ ब्र० रमेश १३ श्रेणी को कुछ ज्वर है। आशा की जाती है कि ब्रह्मचारी २-३ दिन में स्वस्थ हो जायगा।

ब्रह्मचारी अधिकाधिक संख्या में यात्राओं तथा घरों से लौटकर गुरुकुल पधार रहे हैं, इस समय महाविद्यालय आश्रम में ब्रह्मचारियों की संख्या ३२ होगई है। छोटे ब्रह्मचारी धर्मशाला से च कर १५ अक्टूबर तक गुरुकुल पहुंच जावेंगे। गत २ अक्टूबर को महाविद्यालय के ब्रह्मचारियों ने "गान्धी-दिवस" मनाया। दिन भर चर्खा-तकली आदि चला कर यह यज्ञ पूरा किया गया।

गुरुकुल-इन्द्रप्रस्थ

श्री ला० हरदयाल जी एम ए तथा श्री पं० आत्मानन्द जी विद्यालंकार निरीक्षक गुरुकुल निरीक्षणार्थ यहां पधारे। आप दोनों ने निम्न सम्मतियां सम्मति पुस्तक में दर्ज की—

श्री ला० हरदयाल जी की निम्न सम्मति है—

"मैं चिकित्सालय में प्रविष्ट रोगियों की अत्यल्पसंख्या को देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ हूं। ६ष्ठ, ७म श्रेणी में लकड़ी की दस्तकारी की शिक्षा को देखकर बड़ी खुशी हुई है। आंग्लभाषा सब श्रेणियों में अच्छी प्रकार से पढ़ाई जाती है। गणित उच्च श्रेणियों में सन्तोषजनक है और मध्य श्रेणियों में साधारण सन्तोषजनक है।"

गुरुकुल की सफाई, सुव्यवस्थित-प्रबन्ध तथा स्वास्थ्य को देखकर आप बहुत प्रसन्न हुए। आपने आश्रम और विद्यालय के बीच में लगाये गये वृक्षों को अत्यन्त उपयोगी जाहिर किया है और इसके लिये बड़ी प्रसन्नता प्रगट की।

श्री पं० आत्मानन्द जी विद्यालंकार की सम्मति इस प्रकार है—"भवन सुन्दर, भव्य और स्वच्छ है। विद्यार्थी शिष्ट और विनीत हैं। स्वास्थ्य उत्तम है। गुरुवर्ग विद्वान् विनीत और जिज्ञासु हैं। संस्कृत पढ़ाने की शैली उत्तम है। धर्मशिक्षा का अध्यापन संतोषजनक है।"

"प्रकाश" लाहौर का "ऋषि अंक"

पंजाब के ३४ वर्ष के पुराने और आर्य समाज के एक मात्र प्रसिद्ध पत्र "प्रकाश" का नव वर्षांक दीवाली के अवसर पर अक्तूबर के तीसरे सप्ताह में प्रकाशित होगा, जो राष्ट्रीय नेताओं के सन्देशों, उच्चकोटि के विद्वानों और पंडितों के विद्वत्ता और ओज पूर्ण लेखों कहानियों, नज़्मों और ड्रामों व कई तिरंगे और एक रंग के चित्रों से सुसज्जित होगा॥

विज्ञापन दाता-इस हज़ारों की संख्या में छपने वाले विशेष अंक में विज्ञापन देकर लाभ उठावें इस नम्बर को भारत भर की आर्य समाजें हजारों की संख्या में मंगा कर मुफ्त बांटती हैं। यह भारत की समाजों में ही नहीं विदेशों में भी भारी संख्या में जाता है। Rates भी उचित और कम ही हैं। पत्र व्यवहार करके फैसला करलें।

एजेन्ट और आर्य समाजें अधिक से अधिक कापियों का अभी से आर्डर भेज दें ताकि समय पर पछताना न पड़े॥ कमीशन २५%॥

वार्षिक मूल्य ४) रु० ऋषि अंक का मूल्य १ आना प्रति॥

मैनेजर 'प्रकाश' साप्ताहिक लाहौर

'प्रकाश की रेखा' से

[श्री सत्यभूषण 'योगी' वेदालङ्कार]

—१—

मन की बात न छिप पाती है!
शून्य गगन है हँसता रहता;
उर का दुख न किसी से कहता,
पर निशि में उसकी दृगधारा भू को गीला कर जाती है!
मन की बात न छिप पाती है!

—२—

अस्ताचल पर खड़ा हुआ रवि
दिखलाता निज मुसकानी छवि,
पर उसके थर थर कँपते तन से पीड़ा कुछ कह जाती है!
मन की बात न छिप पाती है!

—३—

कवि ने अपना प्यार छिपाया,
अन्तर का संसार छिपाया,
पर उसकी कविता अनजाने जग को सब कुछ कह जाती है,
मन की बात न छिप पाती है!

—०—

चौधरी [illegible] के प्रबन्ध से गुरुकुल मुद्रणालय गुरुकुल कांगड़ी में मुद्रित तथा प्रकाशित।

* ओ३म् *

"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत" Reg. No. A. 2927

गुरुकुल

सम्पादक—साहित्यरत्न पं० हरिवंश वेदालङ्कार

एक प्रति का मूल्य -) [गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख-पत्र] वार्षिक मूल्य २॥)

वर्ष ४] गुरुकुल काङ्गड़ी, शुक्रवार ११ कार्तिक १९९६; २७ अक्तूबर १९३९ [संख्या २५

बस हमको जी भर हसने दो

[श्री सत्यभूषण 'योगी']

उपवन में डाल पर झूलता हुआ फूल बोला—
'बस हमको जी भर हसने दो !'

जीवन में कितनी समस्याएं हैं, जिनमें मानव उलझा रहता है, कितनी चिन्ताएं हैं; जिनमें जला करता है, कितने प्रतिकूल प्रवाह हैं; जिनमें बहा करता है, जीवन कितनी सुलझी चीज है; पर कितनी उलझी !

एक दिन एक छोटा-सा शिशु मां की गोदी में ना जाने कहां से आकर खेलने लगता है ! विधाता कहता है— 'यह मेरी रचना है—बहुत सुन्दर ! बहुत पूर्ण !! और तभी आसमान सेकोई कह उठता है कितनी कुरूप ! कितनी अपूर्ण !! ये जीवन के दो पहलू हैं—एक सफेद और दूसरा काला !

हां तो मैं हंसने की बात कहता था— तारों ने कहा— हम हमेशा हंसते हैं। सरिता ने कहा मैं हमेशा गाती हूं, तितली ने कहा मैं हमेशा नाचती हूं, पर मानव ने कहा— 'मैं रोते रोते हंसता हूं'। यह रोते रोते हंसना बहुत करुण है। रोते रोते हंसना और हंसते हंसते रोना यही तो जीवन का क्रम है। इसी क्रम में तो सब घूमते हैं।

दुख, दुनिया में किसको नहीं होते ? जब दुनिया में दुःखों ने रहना ही है और हमें सहना ही है तो रोते रोते क्या सहना।

और असल में देखा जाए तो दुःख आदमी अपने आप ज्यादा बनाता है।

मन एक ताल(लैन्स) है। एक तरफ से देखें तो चीज बड़ी दिखाई देती है और दूसरी तरफ से देखें तो छोटी। यह देखने वाले पर निर्भर है, कि वह किस तरफ से देखे।

कई लोग होते हैं जो एसे दुख को बहुत बड़ा समझ लेते हैं, और इस प्रकार समझने से वह बड़ा हो भी जाता है—जिसने मन को बस में कर लिया उसने दुनिया को बस में कर लिया। कहते हैं—

'मन के हारे हार है मन के जीते जीत'।

इस लिए सदा खुश रहने के लिए जरूरी है कि मन को स्वामी बना जाए।

स्नेहमयी जगन्माता ने यह दुनिया हंसने खेलने के लिए बनाई है—सुन्दर सुन्दर फूल, मीठे मीठे फल, नाचती हुई सरिताएं, तारों से झिलमिलाता आकाश, इतनी सुखकर चीजें हमें उसने दी है और कहा है— बच्चो, खेलो, हंसो, कूदो, नाचो, जीवन को खेल समझो !

फिर यह प्रश्न उठता है कि ये दुःख हैं ही नहीं ! मालूम देता है कि दुःख है। बच्चे को माँ जब रगड़-रगड़ नह-लाती है तो बच्चा रोने लगता है, चिल्ला उठता है ! पर मां बच्चे को दुख तो नहीं देरही। डाक्टर जब नश्तर से फोड़े को चीरता है तो रोगी चीख उठता है। पर डाक्टर सुख ही दे रहा है। एवं, यदि हम विस्तृत दृष्टिकोण से देखें तो हमें दुनिया में सुख ही सुख दिखाई देगा। स्नेहमयी जगन्मा से यह देखा नहीं जाता कि मेरा बेटा मैला कुचैला रहे— इसीलिए वह उसे तरह तरह से शुद्ध करती है और हम समझते हैं कि हमें दुःख हो रहा है—

इसलिए, हंसते हंसते हमें शुद्ध होना चाहिए, अन्त में भला ही होगा। हमारा बुरा कैसे हो सकता है, जब कि प्रेममयी मां हजारों हाथों से, स्नेह भरे नयनों से हमारी रक्षा में तत्पर है। इसलिए हँसो, हंसो, खूब हंसो, दिल खोल कर हंसो और सबको हंसाओ, और हमको भी जी-भर हंसने दो।

गुरुकुल और राष्ट्रीयता

[ले०—श्री पं० सुखदेव जी वेदालङ्कार]

आज से सैंतीस वर्ष पूर्व एक महापुरुष ने इस सिद्धान्त को समझ कर कि देश की उन्नति वा अवनति का आधार शिक्षा है, गुरुकुल शिक्षा प्रणाली को देश की उन्नति तथा जाति के कल्याण के लिये पुनरुज्जीवित किया था। वह महात्मा समझता था कि जाति की उन्नति के लिये हमारे नवयुवकों में सदाचार और ब्रह्मचर्य का होना अनिवार्य रूप से आवश्यक है। गुरुकुल शब्द की व्याख्या तो बहुत विस्तृत की जा सकती है, किन्तु मुख्यतया आध्यात्मिक उन्नति तथा देश की उन्नति का शिक्षण जिस प्रणाली द्वारा हो उसको निर्विवाद रूप से

गुरुकुल शिक्षा प्रणाली कहा जा सकता है। वैयक्तिक आत्मिक उन्नति तो प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य है तथा समाज की उन्नति इसलिये आवश्यक है कि प्रत्येक व्यक्ति पर समाज का जो ऋण है, उससे वह मुक्त हो सके।

वर्तमान समय में देश की सामाजिक तथा राजनैतिक अवस्था अच्छी नहीं है, तथा देश के लिये संकट का समय उपस्थित है। इस अवस्था में गुरुकुल का मार्ग कौन सा होना चाहिए, इस समस्या पर एक बार तो गुरुकुल के संचालकों को अवश्य ही गम्भीर रूप से विचार लेना पड़ेगा, देश की परिस्थिति इतनी तेज़ी से बदल रही है कि कोई कितनी ही बड़ी संस्था क्यों न हो, यदि वह आत्म-निरीक्षण न करेगी तो समय की दौड़ में पिछड़ जायेगी तथा उसकी सत्ता भी भविष्य में सन्देहास्पद हो जायेगी। संसार में तो उपयोगितावाद का सिद्धान्त अपना महत्वपूर्ण स्थान रखता है, अर्थात् जो वस्तु वर्तमान में उपयोगी है तथा भविष्य में भी उपयोगी सिद्ध हो सकती है वही संसार में अपना भविष्य उज्वल रख सकती है। गुरुकुल में दो प्रकार की विचारधारायें हैं—एक तो धार्मिक तथा दूसरी राजनैतिक। इनका समन्वय आवश्यक है तथा किस प्रकार किया जावे यह समस्या है। गुरुकुल के पक्ष में दोनों बातें कही जाती हैं कि गुरुकुल धार्मिक है, तथा गुरुकुल को राष्ट्रीय भी कहा जाता है। यद्यपि सिद्धान्त की दृष्टि से तो कहा जासकता है कि धार्मिकता के अन्दर ही राष्ट्रीयता निहित है क्योंकि धर्म तो सार्वभौम वस्तु है तथा राष्ट्रीयता किसी देश विशेष तक ही सीमित है; परन्तु इस कथन से क्रिया अथवा व्यवहार में समस्या का कुछ भी हल नहीं होता, और एक बात साथ यह है कि धर्म की सार्वभौमिकता तथा इस प्रकार की बातें करने वाले वे लोग होते हैं जो कि उपरोक्त उक्ति का अपनी क्रिया द्वारा ही खण्डन कर रहे होते हैं. अतएव जो कि इस दावे को करने के अधिकारी नहीं हैं। वस्तुस्थिति तो यह है कि ऊंची २ बातें करके असली समस्या से आंखें बन्द करने का प्रयत्न ही अधिकतर किया जाता है, अगर बिल्ली के सामने कबूतर आंख बन्द करके समझ ले कि बिल्ली तो सामने दीखती ही नहीं अतः मैं सुरक्षित हूँ तो यह बात उस बुद्धि-शून्य पक्षी के प्रति ही सह्य हो सकती है। किन्तु जिस मानव योनि में उत्पन्न व्यक्ति को परमात्मा ने मस्तिष्क के साथ कुछ विचारशक्ति भी दी है उसके लिये संकट का उपरोक्त हल सम्य नहीं हो सकता। देश में यदि पुरानी संस्थायें समय की मांग को पूरा करने में असमर्थ सिद्ध होंगी तो नई संस्थायें उनका स्थान लेंगी। संसार का नियम है कि वस्तु की आवश्यकता वस्तु को बना देती है, यह नियम इतनी दृढ़ता से काम करता है कि इसने आज तक किसी व्यक्ति, संस्था, समाज अथवा देश का इसलिये लिहाज नहीं किया कि वह पदार्थ बड़ा था। सन् १९३० में तथा १९३२ में जब देश में सत्याग्रह का आन्दोलन चल रहा था तथा सारी जाति का उत्कृष्ट अंश उस राष्ट्र यज्ञ में अपनी आहुति दे रहा था, उस समय कुछ धार्मिक संस्थाओं ने अपने भौतिक शरीर की रक्षा के लिये ही सच्चे मार्ग का त्याग किया और देशद्रोह किया, तथा अपने आदर्शस्वरूप आत्मा का हनन किया। यह तो विवादास्पद विषय हो सकता है कि राजनैतिक आन्दोलनों में धार्मिक शिक्षणालयों का अपना बलिदान कितने अंश तक करना चाहिए किन्तु तुच्छ भयों के कारण अपने आदर्शों का हनन भी तो नहीं करना चाहिए; अन्ततोगत्वा ये संस्थायें अपना निर्वाह देश की तथा जनता की सम्पत्ति से ही करती हैं तथा जब समय आता है तब अपने को 'राष्ट्रीय' पद द्वारा सुशोभित भी किया जाता है, इसका लाभ उठाया जाता है, इस अवस्था में यह विषय गम्भीरता पूर्वक हमारे सामने आता है कि हमारे धार्मिक शिक्षणालयों में राष्ट्रीयता कितने अंशों में होनी चाहिए।

दूर व्यवहार से बहुत दूर जाये बिना ही कुछ मर्यादाएं बनानी होंगी कि इतनी राष्ट्रीयता (राजनीति से सम्पर्क) हमारी संस्थाओं में होनी ही चाहिए, जिससे कि हम अपने राष्ट्रीयता के दावे के प्रति सच्चे तथा देश के ऋण से उऋण होने के योग्य वास्तविक अर्थों में हो सकें हम अपना मार्ग बड़े स्पष्ट शब्दों में निश्चित करना पड़ेगा तथा इस सबके सामने अपने आचरण द्वारा स्पष्ट करना होगा। जिन कामों को राजनैतिक कहा जाता है तथा जो हमारे सच्चे धार्मिक शिक्षण के अनुकूल भी कहे जा सकते हैं, उनका प्रवेश हमारे गुरुकुलों में होना चाहिए।

सबसे मुख्य प्रश्न हमारे सामने खद्दर का आता है महात्मा गांधी जी ने तो खद्दर पर बोलते हुए यहाँ तक कहा था कि जिसने खद्दर का तत्त्व नहीं पहचाना उसका जीवन व्यर्थ है, किन्तु इतनी बात तो स्पष्ट है कि वैयक्तिक रूप से कोई यह भी कहे कि उसको देश की उन्नति में खद्दर की अनिवार्यता समझ में नहीं आती तो भी वर्तमान समय में सब पक्षों ने खद्दर के महत्व को स्वीकार कर लिया है, और खद्दर से स्पष्ट इतना अभिप्राय तो समझना ही चाहिये कि सूत कातना, खद्दर बुनना और उसको धारण करना।

इसके बाद हमारे गुरुकुलों में जिस बात की आवश्यकता है वह है देश के वर्तमान राजनैतिक वातावरण से सम्पर्क रखना। यह एक तो इस रूप में हो सकता है कि सामयिक समाचारों को भी शिक्षा में स्थान हो, तथा दूसरा स्थान २ पर भ्रमण द्वारा प्रत्यक्ष रूप से वास्तविक स्थिति को जानने का प्रयत्न किया जाये। इस से, देश के सच्चे सेवक पैदा करना जो कि गुरुकुल का मुख्य उद्देश्य है, उस में हमारी संस्थायें अधिक सफल हो सकेंगी, तथा जब हमारे नवयुवक शिक्षा समाप्त कर के देश के वातावरण में प्रविष्ट होंगे तब अपने को अजनबी या अपने ही देश में अपने को अपरिचित अनुभव नहीं करेंगे जिस से अपना जीवन संग्राम भी वे सुगमता से चला सकेंगे।

आजकल शिक्षा में जिस वस्तु की आवश्यकता अनुभव की जाती है वह हाथ से काम करना तथा औद्योगिक शिक्षण है यद्यपि दोनों में कुछ शाब्दिक भेद है तथापि दोनों एक दूसरे के पूरक तथा दोनों के उद्देश्य

में समता होने से दोनों एक हो हैं। आजकल की सरकारी शिक्षा को बेकार पैदा करने की मशीन कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी तथा उस बेकारी का निवारण हाथ का काम करने तथा औद्योगिक शिक्षा द्वारा ही हो सकता है। इसके साथ ही देश की समृद्धि के लिये तो यह अनिवार्य ही है।

क्योंकि संसार में किसी भी भावना का कोई न कोई प्रतीक रखना आवश्यक होता है अतः राष्ट्रीय भावना का प्रतीक राष्ट्रीय झण्डा राष्ट्रीय भावना को उत्पन्न करने, जागृत रखने, तथा बढ़ाने के लिये आवश्यक है। हमारे शिक्षणालयों में राष्ट्रीय झण्डे का विधि पूर्वक स्थापन, उसके विषय में मान उत्पन्न करने के लिये समय समय पर उसका फहराया जाना तथा नियत समयों पर अभिवादन करना आदि बातें भी होनी चाहियें। इसके लिये हमें देश सेवकों (राष्ट्र सेवकों) को खुल कर उनके विस्तार इस विषय में जानना भी आवश्यक होगा, जिससे कि अन्य लाभ भी हमें मिल सकेंगे, जो कि व्यक्तित्व के सम्पर्क से हुआ करते हैं।

एक और महत्व पूर्ण बात है राष्ट्रीय उत्सवों का को उचित मात्रा में आवश्यक रूप से मनाया जाना। क्यों कि जातिक जीवन में वीर पूजा का अपना महत्व पूर्ण स्थान है। कई राष्ट्रीय उत्सव इस प्रकार के हो सकते हैं जिनका व्यक्ति विशेष से सम्बन्ध न हो परन्तु उनमें जो वीरत्व की भावना है, हमारे लिये तो वही ग्राह्य है और हमारा उद्देश्य तो उसी को अपने में जागृत करना है। इतिहास हमें बताता है कि उन्हीं देशों ने उन्नति की है जिन्होंने कि अपने में क्षात्र धर्म की उन्नति तथा विकास किया और जब किसी देश से क्षात्र बल निकल गया या क्षीण होगया तब उस का भी पतन होगया, इस बात की साक्षी वर्तमान काल भी दे रहा है, और क्षात्रबल का असली स्थान तो मन है, यद्यपि शरीर भी उसका निवास स्थान है; अतएव क्षत्रियत्व के उचित विकास के लिये वीर पूजा आवश्यक है, जिसका कि सामूहिक रूप से करना अनिवार्य है।

यहां पर संक्षेप से कुछ बातों की आवश्यकता प्रतिपादित की गई है, जिनका कि समय की गति को ध्यान में रखने पर गुरुकुलों में होना आवश्यक है। यद्यपि अन्य भी अनेक बातें गुरुकुल शिक्षाप्रणाली की प्राणस्वरूप हैं जिनका कि यहां उल्लेख नहीं किया गया, किन्तु यहां राजनैतिक अंश का ही विचार किया गया है और उसमें भी जो बातें कि गुरुकुलों में मूलतः हैं उनका वर्णन नहीं किया गया। क्योंकि देश में गुरुकुल शब्द की प्रतिष्ठा है अतः हमें अपना मार्ग स्पष्ट करना चाहिये और संगठित रूप से ऐसी व्यवस्था करनी चाहिये कि कुछ नियत गुणों तथा आदर्शों को धारण करने वाली संस्थाएं ही गुरुकुल कही जा सकें जिससे गुरुकुल शब्द का दुरुपयोग न हो और यह पवित्र नाम अपनी पवित्रता अक्षुण्ण रख सके।

मां के निधन पर

(लेखक—श्री वीरेश विद्यालंकार)

माँ तुम कहां हो? तुम्हें ढूंढते २ मैं हारा, कितना पुकारा, कितनी विनती की, पर कहीं तुम्हारा पता न चला। बालक जब रोकर तुम्हें पुकारता है तब तुम्हारी अमृतमयी गोदी उसके लिये सदा निछावर होती है। आर्तजन जब आहें भरते हैं तब तुम उनका करुण-क्रन्दन सुन उनको आश्रय और विश्राम देती हो। तुम्हारे लिये वृद्ध और रोगाहत मनुष्य जब जीवन की आशा छोड़ अन्तिम सांसों पर विराम ले रहे होते हैं तब तुम्हारी सेवा सान्त्वना उनके लिये दिव्य रस बन औषध का काम करती है— पर मां मुझ अबोध बालक की पुकार को तुम क्यों नहीं सुनती।

माँ तुम जगत की जन्म दात्री हो, जीवन दात्री हो, प्राणदात्री हो; यही नहीं तुम आत्मदा, अन्नदा और प्रेमदा भी हो। तुमने क्या कुछ नहीं दिया। समान भाव से राव-रंक, धनी-निर्धन, विद्वान-मूर्ख और पुरुष-पशु सब पर महती कृपा करके जो कुछ भी अपना था सब कुछ दिया। जैसे पुत्र वत्सल पिता पुत्र की हित-कामना से संपूर्ण सम्पत्ति पुत्र पर निछावर कर सन्तुष्ट होता है उसी प्रकार मां तुमने सब कुछ दिया— हमने सब कुछ पाया, तुमसे नाना वस्तुओं को, दिव्य और पार्थिव दोनों को लेते २ हमने सब कुछ पाया पर अन्त में अपने अभाग्य से तुम्हें न पाया। तुम्हारे दिये भोग सुख और आश्रय को पाकर तुम्हें भुला दिया—तुम्हें अपने पास न रख सके।

किधर गई माँ, किस ओर ओझल होगई। तुम्हारे निःश्वास से यह जीवन उत्पन्न हुआ, तुम्हारी छत्रछाया में फला-फूला, तुम्हारी देख-रेख में सुरक्षित रहा; पर अब तुम्हीं अपनी रचना को भूल गयीं, इसे पाल पोस कर वियोग वन में छोड़ गयीं। तुम कहती थीं कि मैं तुम्हें छोड़ कर कहीं नहीं जाता, अब इतनी अनमनी होकर क्यों चली गई। मां आज तुम्हारा प्रेम भी तुम्हारे अभाव में अभिशाप होगया है। तुम्हारी अज्ञात की ओर एकाएक यात्रा हमें दुःख वन्हि से दग्धकर रही है। हृदय मानता नहीं कि तुमने चिर विदाई ली है पर यह अभाव का दुःख कठिन होकर कह रहा है कि तुम इस जीवनपथ की अन्तिम सीमा को पारकर कहीं दूर चली गई हो, हमें वह अभाव देकर जो कभी पूरने का नहीं।

तुम जन्मदात्री थी, तन मन प्राण की अधिष्ठात्री देवी थी। तुमने यह सब कुछ दिया— और अन्त में निस्सङ्ग होकर अपने आप विदा ली। यह सब किस लिये? इसीलिये न कि अनन्तकाल से चली आरही मात की सर्वस्व समर्पण की भावना को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिये। इतने वर्षों के निरन्तर सहवास के बाद तुमने सिखाया कि "मां आत्म समर्पण की प्रतिमा है— सर्वस्व समर्पण की भावना है; मां वह ईश्वरीय शक्ति है जो कि दिव्य प्रेम बनकर इस लोक में अवतरित होती है। जड़-जंगम का जीवन इसके प्रेम दान का फल है— जिसका

[शेष पृ० ६ पर]

गु रु कु ल

११ कार्तिक शुक्रवार १९९६

देश में क्या हो रहा है ?

जब से यूरोप में रणचण्डी चेती है, भारत के राजनैतिक वातावरण में भी हलचल मच गई है। वायसराय ने युद्ध प्रारम्भ होते ही देश के नेताओं से मुलाकात का एक लम्बा सिलसिला सा बांध दिया। दूसरी ओर देश की राजनैतिक संस्थाओं ने अपने विचार के प्रतिनिधित्व करने के लिये विशेष सम्मेलन, कमेटी आदि का निर्माण किया। परिणामस्वरूप सरकार की ओर से वायसराय की प्रतीक्षित घोषणा हुई और कांग्रेस वर्किंग कमेटी ने कांग्रेस मन्त्रिमण्डलों को आठ प्रान्तों में पदत्याग का आदेश दिया। मुस्लिम लीग ने कुछ शर्तों के साथ सरकार को सहायता का आश्वासन दिया। दो एक सप्ताह में इस प्रकार कांग्रेस-मन्त्रिमण्डल स्तीफा दे देंगे। सम्भवतः मुस्लिम लीग सहायता देने में कोई आनाकानी न करेगी।

कांग्रेस ने पिछले वर्षों में भारत-राष्ट्र निर्माण में जो कार्य किया है उससे वह आज भारत की सबसे बड़ी और प्रभावशालिनी संस्था है। पिछले सालों में कई बार अवसर मिलने पर कांग्रेस ने साम्राज्यवाद के प्रसारक युद्धों के विरोध में अपनी आवाज़ बुलन्द की थी। राष्ट्र की कई अन्य राजनैतिक संस्थाओं ने भी इसी सिद्धान्त पर चलने का निर्णय किया था। यूरोप में लड़ाई छिड़ने पर कांग्रेस सरीखी संस्थाओं के सामने यह एक विकट समस्या थी कि वह इस युद्ध में ब्रिटेन के साथ सहयोग करे या न करे? कहा जाता है, ब्रिटेन प्रजातन्त्र की रक्षा के लिये पोलैण्ड की रक्षा के लिए इस युद्ध में कूदा है। इंगलैण्ड का यह कार्य मानव हित की दृष्टि से प्रशंसनीय समझा जाना चाहिए। महात्मा गान्धी तथा कांग्रेस प्रजातन्त्र के उसूल को मानते हुए प्रजातन्त्र की रक्षा के लिये किये गये किसी भी प्रयत्न को बुरा न समझेंगे, और किसी भी समझदार लोकोपकारी संस्था व मानव को बुरा समझना भी न चाहिए। कांग्रेस की ओर से इस लड़ाई में इंगलैण्ड के उद्देश्यों के स्पष्टीकरण की तथा भारत-राष्ट्र को युद्ध के बाद सहायता स्वरूप क्या मिलेगा— इसका भी स्पष्टीकरण करने की मांग पेश की गई।

वायसराय की घोषणा में कांग्रेस की मांग का टका सा जवाब दिया गया है। घोषणा के बाद भी भारत की वही स्थिति है, जो पहिले थी। इस घोषणा से किसी भी प्रगतिशील राजनैतिक दल को सन्तोष नहीं हुआ। कांग्रेस ने आठ प्रान्तों में अपने मन्त्रिमण्डलों को त्यागपत्र देने की आज्ञा देकर जहां एक भयंकर वैधानिक संकट पैदा किया है, वहां उसने सरकारी रुख के प्रति भी अपना गहरा असन्तोष प्रकट किया है। कांग्रेस ने साथ ही देश से अपील की है कि वह भविष्य में आने वाले समय पर प्रत्येक जोखिम को उठाने के लिये तैयार रहे।

कांग्रेस इस समय कोई क्रियात्मक पग नहीं उठा रही है, वह प्रतीक्षा कर रही है, सरकार देश की आवाज का उचित उत्तर दे देवे। सरकार की ओर से निकट भविष्य में इस प्रकार के किसी जवाब की आशा नहीं है। कांग्रेस उस दशा में क्या करेगी यह तो भविष्य ही बतलायेगा, इसके कहने या लिखने की कोई आवश्यकता नहीं।

देश की आवाज को सरकार को सुनाकर कांग्रेस ने एक बार और देश का प्रतिनिधित्व किया है। इस समय दलों को पारस्परिक शत्रुता का भाव भुला कर एक साथ काम करने की जरूरत है, तभी देश की आवाज का ठीक जवाब मिल सकेगा। सरकार को इस समय भारत से सैनिक सहायता की अपेक्षा है, इसको प्राप्त करने के लिये उससे कांग्रेस ने जो मांग की थी उसका उसे नकारात्मक जवाब मिल ही चुका है। कांग्रेस से सहायता न पाकर सरकार ने अन्य दलों से सहायता की मांग की थी उसका उसे आशा भरा उत्तर मिल रहा है। अन्य राजनैतिक दलों के इस कार्य को यदि भारतवासी उचित न समझें तो उन्हें इस अवसर पर मिलकर कार्य करना चाहिए, तभी कोई अच्छा परिणाम निकल सकता है।

रमते-राम

[श्री ज्ञानी]

"तुम्हारे पैरों में भी चक्कर है" एक मित्र ने कहा। "साल के शुरु में तुम अफ्रीका गये, फिर बम्बई लौट कर सारा भारत लांघते हुए क्वेटा—बिलोचिस्तान पहुंचे। वहां भी तुम्हें आराम न आया तो काश्मीर की सूझी। काश्मीर के बाद फ्रण्टीयर प्राविन्स के तमाम शहर—ऐबटाबाद, पेशावर, लण्डीकोत्तल, कोहाट, बन्नू, कालाबाग, रावलपिण्डी आदि की ख़ाक छानी। उसके बाद हरिद्वार, फिर नैनीताल, अल्मोड़ा, भवाली गये। अब देहली जा रहे हो।"

मैंने कुछ झेंप कर कहा "भाई! जब किस्मत ने ही मेरी किश्ती के लंगर तोड़ दिये हैं तो भला! मैं क्यों बंधकर एक ही जगह पड़ा रहूँ? तुम अपनी घर-गृहस्थी बाल बच्चों में सुख ढूंढते हो, और मैं जगह-ब-जगह घूम फिर कर अपना ग़म-ग़लत करने की कोशिश करता हूं।"

× × × ×

अफ्रीका से लौटकर मैं ३-४ मास क्वेटा ठहरा। भूचाल से भूमिसात हुए क्वेटा को फिर से नया बनते देखा। नये मकान नई दुकानें, नए बाग, नई आबादी। पुराने क्वेटा की कब्र पर नये क्वेटा की इमारत बनी है। मानो यह क्वेटा नगर का पुनर्जन्म है। नया क्वेटा नये ढंग से भूचाल-प्रूफ मकानों का बन रहा है। अगले पांच सालों में सब मुकम्मल हो जायगा। साफ़सुथरा और सुन्दर। लोग पुराने क्वेटा को याद भूल जायेंगे। हां!

कभी कोई कोई विधवा या विधुर अपने किसी प्रिय-जन के लिए, जिसकी मृत्यु भूचाल की दुर्घटना से हुई थी, उसके २ चार बूंद अश्रु-जल के "तर्पण" रूप में बहा देंगे।

× × × ×

इतने दिन क्वेटा रहते २ जी ऊब गया। नाना विध फल—आडू, अंगूर, सरदा, सेब आदि खाते २ भी पेट भर गया। हाथ-पैरों में खुजली हुई। "चलो काश्मीर चलें" दिल ने कहा। क्वेटा छोड़ जम्मू पहुँचे। वहां से दो सौ मील का सफर मोटर में तै किया। रास्ते में एक रात रुके। वह भी मजबूरन। रामबन के समीप, अति वृष्टि के कारण, पहाड़ टूटने से सड़क बंद थी। परन्तु रुकना अच्छा ही हुआ। चौदहवीं का चांद पहाड़ों के पीछे से निकल रहा था। धीरे २ आकाश भी बिलकुल साफ हो गया। चारों ओर सुन्दर घाटियां। नीचे कल-कल करती नदी। समीप ही गिरता हुआ सुन्दर झरना। इर्द-गिर्द हरे भरे वृक्ष। ऊपर से चान्दी बरसाता हुआ चन्द्रमा। दृश्य ने हमें मोह लिया। प्रकृति का वो सुन्दर रूप इतना भला लगा कि उसके सामने अन्य सब रूप फीके पड़ गये।

अगले दिन श्रीनगर। यह काश्मीर की राजधानी है। इसकी विशेषता डल-लेक और जेहलम- नदी से है। रहने के लिये हौस-बोट, सैर के लिए शिकारे और यात्रा के लिए बड़ा डोंगिया। प्राचीन श्रीनगर नदी के दोनों किनारों पर बसा है। यहां के निवासी प्रायः सारा कारो-बार किश्तियों में ही करते हैं। शाम के समय नदी की शोभा दर्शनीय होती है।

सौभाग्य से गुरुकुल महाविद्यालय के कुछ ब्रह्मचारी श्रीनगर में मिल गये थे जिनके साथ काश्मीर के अनेक दर्शनीय स्थानों को देखा। पहलगाम, अच्छाबल, अनन्त नाग, वेरीनाग, वुलर-झील, गुलमर्ग, आदि उल्लेख योग्य हैं। बागों में चश्मे-शाही, शालामार और निशात बे-मिसाल हैं।

हमारे कुछ एक साथी पहलगाम से अमरनाथ भी गये। परन्तु हमने तो चन्दनवाड़ी की चढ़ाई और बरफ के पुल को देख कर अपने को कृत्य-कृत्य माना।

काश्मीर की घाटियां हरी-भरी और धन-धान्य पूर्ण हैं। परन्तु काश्मीरी सर्वथा निर्धन और बलहीन। राजा-प्रजा के बीच एक गहरी खाई। राजा महलों में रहते, मोटरों में दौड़ते और ऐश की जिन्दगी बसर करते। प्रजा मेहनत-मज़दूरी से थकी, लगान के बोझ से दबी, शिक्षा और संगठन के अभाव में नारकीय जीवन बिता रहा है।

× × × ×

श्रीनगर से ऐबटाबाद लगभग १६० मील है। कई पहाड़ियों को लांघना पड़ता है। चढ़ाई-उतराई में हमारी शैवरलैट गाड़ी मज़े में दौड़ती रही ७-८ घंटों में हम ऐबटाबाद पहुंच गये।

मिलिटरी -स्टेशन होने से शहर साफ सुथरा है। हर जगह घासी मैदान और वृक्षों की श्रेणियां दिखाई देती हैं। सैर के लिये चारों ओर की पहाड़ियां खुली हैं। आबो-हवा न बहुत सर्द न बहुत गरम। आर्य समाज का मन्दिर आलीशान है। एक हाई-स्कूल और पुत्री पाठशाला भी हैं।

यहां से पेशावर १२० मील। मार्ग में तक्षशिला और पंजा साहिब दर्शनीय हैं। पक्की सड़क उम्दा बनी है। हमारी गाड़ी ४० मील फी घण्टा की रफ्तार से चलती रही। अटक का किला और सिन्धु नदी का पुल भी देखने योग्य हैं।

पेशावर से ४० मील दूर लण्डीकोतल है। इसे भारत की उत्तर-पश्चिमी सीमा कहना चाहिये। यहां से आगे अफगानिस्तान का इलाका प्रारंभ होता है।

पेशावर से कोहाट होते हुए हम बन्नू पहुंचे। यह मार्ग भयानक है। पठानों के झुण्ड के झुण्ड कन्धों पर बन्दूकें रखे मंडराते नज़र आते हैं। फौजी बन्दोबस्त के बावजूद भी लूटमार और पकड़-धकड़ इस इलाके की मामूली बातें बन चुकी हैं। जिस दिन हम सफ़र कर रहे थे उस दिन भी वज़ीरी डाकुओं ने एक लारी को लूटा। औरतों के ज़ेवरात उतारे और आठ हिन्दुओं को उठा कर ले गये। हम बच गये, इसे किस्मत ही समझना चाहिये।

× × ×

लाहौर पहुंचे। अभी गरमी १०० डिग्री से अधिक की थी. दिल किया चलो नैनीताल ही हो आएं। फिर ई. आई. रेलवे ने भी पूजा-कन्सेशन कर रखे थे, चल पड़े। काठगोदाम तक रेल से। और आगे २२ मील मोटर में। नैनीताल अत्यन्त रमणीय स्थान है। बीच में झील है। और चारों ओर ऊंची २ पहाड़ियां। चीना-पीक, स्नो-व्यू-पीक आदि शिखर दर्शनीय हैं। यहां से सैकड़ों मीलों तक के दृश्य दिखाई देते हैं। यदि आकाश अच्छा हो तो नन्दा-देवी की २५ हजार ऊंची बरफीली चोटी भी साफ नजर आती है।

नैनीताल से अल्मोड़ा ८० मील के करीब है। मार्ग में भवाली सैनेटोरियम और रानीखेत देखने योग्य है।

अल्मोड़ा कुमायूं लोगों का गढ़ है। इसकी सीमा देश की सीमा समझनी चाहिये। आगे तिब्बत का प्रारम्भ है। स्थान सुन्दर है। जल वायु स्वास्थ्यकर है। चारों ओर की पहाड़ियों में कुछ अनोखी दिव्यता है। अनेक साधु-महात्मा ग्रीष्म ऋतु में यहां निवास करते हैं। स्वामी विवेकानन्द जी का मायावती आश्रम भी यहीं है। श्री नारायण स्वामी जी की भी रामगढ़ (१८ मील परे) में एक कुटिया है। जगत्प्रसिद्ध नाट्य कलाकार श्री उदय शंकर जी ने भी अपना संस्कृति केन्द्र यहीं बनाया है। दिल तो हमारा भी करता है कि एक झोंपड़ी हम भी डाल लें। पर अभी वैराग्य कच्चा है। भय होता है कि कहीं सन्यास से फिर गृहस्थ में न लौटना पड़े।

अस्तु। अब बादल मंडराने लगे हैं। हवा भी ठण्डी बहने लगी है। ऋतु-परिवर्तन के चिन्ह हैं। चलो हम भी नीचे उतरें और घर का रास्ता पकड़ें। परन्तु घर! घर कहां?

(पृ० ३ का शेष)

...निधान इस जगत में आज तक न हो सका।" माँ तू क्या सान्त्वना की छाया है जिसके आश्रय में यह सब लोक ... है और जिसका आश्रय न रहने से सब मर-सा जाता है।

माँ का अपना कुछ भी न था, स्वत्व-स्वार्थ ममता-माया से अज्ञात थी। अहंकार मात्सर्य और दिखावा उसे न रुचा। सामान्य ... और सादगी उसके आजन्म संगी थे। सरल ... स्पष्ट वादिता और सेवा उसकी पूंजी थी। अपना तुच्छकर्म स्वाभाविक पूजा लगाकर जो कुछ जीवन में उसने कमाया थोड़ा था, वही उसका पुण्य था, उसका ... सत्यामत्य था—यह तो उसके संगी थे और कुछ भी उसका अपना न था सिवाय गुरु सेवा के।

मूर्तिमती माँ जब जगत की आदि जन्मदा है, वह क्लेश कष्ट और कठिन यातना सहन करने वाली देवी है? यह किस लिये? मनुष्य को चैतन्य देने के लिये, मनुष्य को मनुष्य बनाने के लिये। क्या कभी मनुष्य प्रतिदान तथा उऋण होने का अर्थ समझता, अथवा दान और ऋण के बोझ को अनुभव करता यदि माँ मूर्तिमान त्याग बनकर, सेवा और वेदना के रूप में दाखिल होकर इस जगत् में न आती।

माँ का मातृत्व यही था कि माँ ठिया जाने के बाद भी स्वत्व और प्रतिदान की आकांक्षा कभी मन में न आने दी। प्रत्याशा और प्रतिदान जगत की पुरातन इच्छाओं में से एक है—पर माँ इस रूढ़ि को न मानती थी। इस लोभ का संवरण करके वह अपने मातृत्व की रक्षा करती। और रूढ़ि कोई मनवाता तो कैसे, मातृत्व का प्रेममय तकाजा ऐसा ... उसे रोकता था।

माँ तो गई अपने पथ से, अगले पड़ाव की ओर चल दीं। यह जाना तो एक न एक दिन होना था। वह कहती थी कि "यात्रा करना चाहती हूँ— जिसकी मर्जी हो बैठे" और ... साथ को अपना ऐहिक जीवन निवेदित कर "यथा ... पितर ... पश्या अनुस्वा..." सब के अनुसार कहा परम धाम को चली गई। जिस दिन के पीछे रात्रि और रात्रि के पीछे दिन आता है— वैसे ही जन्म मरण और संयोग-वियोग पूर्वापर क्रम से इस आयु को ... है। माँ ने हमारे हृदय-स्पन्दन और अश्रु बिन्दुओं के साथ विधाता के इस नियम में शरण ली।

केवल अब उसका स्मृति अवशेष है। स्मृति क्या है? मातृत्व के उन सहज स्वाभाविक गुणों की झलक है जो कि दुःख दर्द, क्लेश-कष्ट, सेवा-शुश्रूषा और ... यातनाओं को सहने में स्नेह-दया और हमदर्दी के रूप में प्रकट होती है। माँ, उस माता और मातृत्व की दिव्यता के बदले में हम मनुष्यों के पास केवल तुच्छ सी श्रद्धा और भक्ति ... है जो कि तुम्हारी पूजा के लिये पर्याप्त नहीं!

गुरुकुल समाचार

स्वास्थ्य समाचार

ब्र० मनोहर १३, ब्र० धर्मवीर १२, ब्र० विद्यानन्द १२, ब्र० दयानन्द २, ब्र० युद्धवीर ३, ब्र० रमनेश १, ब्र० इन्द्रदेव २ श्रेणी मलेरिया ज्वर, ब्र० राजकुमार १ श्रेणी कास ज्वर, ब्र० योगेन्द्र कुमार १ श्रेणी मलेरिया ब्र० हरिशरण ४ श्रेणी रक्तातिसार।

गत सप्ताह उपरोक्त ब्र० रोगी हुए थे। अब सब स्वस्थ हैं। ब्र० मनोहर को ज्वर है। आशा है कि शीघ्र आराम हो जावेगा।

सत्रान्तावकाश समाप्त हो चुका है। इस समय सभी ब्रह्मचारी कुलभूमि में आ गए हैं। अवकाश के दिनों का सूनापन अब प्रतिदिन के कलरव से दूर भाग गया है विद्यालय में पाठ्यक्रम नियम पूर्वक शुरू हो गया है। सब ब्रह्मचारी नये उत्साह से अपने अध्ययन में लग गए हैं और यात्राओं के अनुभवों से लाभ उठा रहे हैं।

दशहरे के दिनों को ब्रह्मचारियों ने बहुत उत्साह से गुजारा। प्रतिदिन के खेल का प्रबन्ध अत्यन्त समुचित था। इसके लिये क्रीड़ामन्त्री ब्र० शंकरदेव जी धन्यवाद के पात्र हैं।

फुटबाल में ब्र० विद्याव्रत और वौलीबाल में पं० गणपति जी का दल जीता। हाकी के दोनों दल Final में समान रहे। रात को छोटे ब्रह्मचारियों ने लंका विजय में अच्छा उत्साह दिखाया।

अन्तिम दिन दशहरे के उपलक्ष्य में कुलसभा बड़े समारोह से मनाई गई। सभा के बाद हवन किया गया तदनन्तर हैदराबाद में अपनी जेल-यात्रा समाप्त कर लौटे हुए ब्रह्मचारियों को सार्वदेशिक सभा से भेजे गए प्रशस्ति-पत्र आचार्य जी ने दिए। वह दृश्य कितना सुन्दर था जब एक शान्त सौम्य मूर्ति अपने हाथ में प्रशस्ति पत्रों का पुलिन्दा लिये सबके बीच में खड़ी थी और सामने विनीत भाव से एक सत्याग्रही प्रशस्ति पत्र को लेकर झुका हुआ था, करतल ध्वनि उसका स्वागत कर रही थी। पास ही के कुण्ड में से आहुत पदार्थों का धूम उठ २ कर सुगन्ध फैला रहा था।

अन्त में आचार्य जी ने प्रवचन किया कि आज तुम्हें ये प्रशस्ति-पत्र दिए जा रहे हैं, और मैं आशा रखता हूं कि भविष्य में तुम देश के लिये जीवित-जागृत प्रशस्ति-पत्र बनकर निकलोगे, जब ब्र० रामनाथ को देने के लिये उन्होंने प्रशस्ति-पत्र हाथमें लिया तो उन्हें स्मरण हुआ कि वह तो धर्म के लिये अपने प्राणों की बलि दे चुका है अतः आचार्य जी ने सिर्फ इतना ही कहा कि उसे परमात्मा ने ही प्रशस्ति पत्र दे दिया है, उसे कागज़ के प्रशस्ति-पत्र की क्या आवश्यकता है? फिर उन्होंने उस पत्र को एक ओर रख दिया।

विद्यालय के प्रथम दिन प्रार्थना के बाद ब्र० रामनाथ के निधन के उपलक्ष्य में सभा हुई। ब्र० रामनाथ द्वादश श्रेणी का एक ब्रह्मचारी था। जिसको हैदराबाद की जेलों में कमरों में बन्द करके पीटा गया था और मलमूत्र उठाने के लिये बाधित किया गया था। जिसने बिना उफ़ किये हन्टर २ कोड़े खाए, जूतों की मार खाई, गन्दी गालियों को सहा, और जेल से छूट कर कुछ ही दिनों के बाद जिसे प्रभु ने अपने पास बुला लिया। अगर वह बन्धु अब इस जगत में होता तो उसके शरीर पर जगह २ जूतों

के, और कोड़ोंके निशान देखे जा सकते थे। उस जोशीले उत्साही वीर कुलबन्धु के अवसान के कारण दिनभर कुल में उदासी छायी रही और गुरुकुल के सब विभाग बन्द रहे। सभा में उसकी वीरता के कार्य अन्य सत्याग्रहियों ने सुनाए। जिसे सुनकर ऐसा प्रतीत हुआ कि समाज का एक रत्न अब नहीं रहा।

कुल में उसका एक स्मृति-चिन्ह शीघ्र ही स्थापित किया जाने वाला है।

गुरुकुल-इन्द्रप्रस्थ

श्री दानवीर सेठ जुगल किशोर बिड़ला का अपूर्व दान

लगभग एक मास हुआ दानवीर सेठ जुगल किशोर जी बिड़ला गुरुकुल में पधारे। आपने गुरुकुल के भवनों को देखकर अनुभव किया था कि भवन प्राचीन आर्यविद्यालयों के ढ़ंग के नहीं हैं। आपने अपने Architect को भेजकर नकशा तैयार करवाए, और अब एक सप्ताह से आपकी तरफ से भवनों को प्राचीन विश्वविद्यालयों की तरह रूप देने के लिए कार्य प्रारम्भ है। दोनों बुर्जों के ऊपर आप शानदार बुर्ज बनवा रहे हैं और विद्यालय और आश्रम में प्राचीन संस्कृति के अनुकूल परिवर्तन करवा रहे हैं। एक मास पश्चात् आर्य हिन्दु जनता गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ को 'आर्य-कुल-दिवाकर' माननीय श्री सेठ जुगल किशोर जी के पवित्र दान से नये रूप में परिवर्तित देख कर बड़ा प्रसन्न होगी और उनके प्रति कृतज्ञता के भाव प्रकट करेगी। आशा है श्री माननीय सेठ जी और अन्य दानी महोदय अपनी संस्था के प्रति कृपा और दया के भाव बनाये रक्खेंगे।

भवदीय
मुख्याधिष्ठाता।

गुरुकुल कुरुक्षेत्र

कुरुक्षेत्र ६ अक्तूबर

१: दीर्घावकाश समाप्त हो चुके हैं। सब ब्रह्मचारी तथा अध्यापक पुनः कुलभूमि में आ गये हैं। बड़े ब्रह्मचारी सकुशल अपनी काश्मीर यात्रा समाप्त कर के तथा छोटे पछाद (नाहन) यात्रा समाप्त करके लौट आये हैं। अक्तूबर के प्रारम्भ से नियम पूर्वक पढ़ाई शुरू हो गई है।

२-२ अक्तूबर को कुल में महात्मा गान्धी जी की जयन्ती धूमधाम से मनाई गई। स्थानीय कांग्रेस कमेटी की ओर से राष्ट्रीय पताका का अभिवादन किया गया और शाम को सभा में महात्मा जी की जीवनी पर कई वक्ताओं के भाषण हुए। महात्मा जी के दीर्घ जीवन के लिये परमात्मा से प्रार्थना की गई।

३:- गतवर्ष तो अनावृष्टि के कारण इलाके में दुर्भिक्ष पड़ने के कारण गुरुकुल को भी आर्थिक कठिनाई का सामना करना पड़ा था— इस वर्ष भी शुरू में तो समय पर वर्षा पड़ी और आशा हो गई थी कि इस वर्ष अकाल न पड़ेगा- पर पीछे से वर्षा न पड़ने से फिर सब फसलें बरबाद हो गईं।

४:- लगातार दो वर्ष तक दुर्भिक्ष पड़ने के कारण तथा युद्ध से अत्यन्त मंहगी के कारण गुरुकुल में शुल्क का जो मौजूदा दर है उसमें वृद्धि करनी पड़ेगी। इलाके में दुर्भिक्ष पड़ने के कारण पिछले वर्ष ब्रह्मचारियों के पालन पोषण पर शुल्क से प्राप्त धन से १५००) अधिक खर्च हुआ था। और इस वर्ष और भी अधिक खर्च बढ़ने की सम्भावना है। शुल्क की बढ़ती की सूचना शीघ्र संरक्षक महाशयों को दी जायगी।

इण्डियन पब्लिक स्कूल

४, माल रोड, दिल्ली

हमें यह जानकर प्रसन्नता हुई है कि गुरुकुल कांगड़ी के एक स्नातक श्री पं० सत्यकेतु विद्यालंकार डी. लिट्. (पेरिस) ने इण्डियन पब्लिक स्कूल नाम से एक नये विद्यालय की स्थापना की है। इस स्कूल का उद्देश्य भारतीय सभ्यता के वायु मण्डल में आधुनिक प्रणाली से शिक्षा देना है। स्कूल में बच्चों के रहन सहन, भोजन, शिक्षा आदि का समुचित प्रबन्ध है। स्कूल में शिक्षा वही है, जो सरकारी यूनिवर्सिटियों द्वारा स्वीकृत है। विद्यार्थी मैट्रिकुलेशन की परीक्षा देते हैं। कुल खर्च ७२ रु० महीना पड़ता है। अधिक जानकारी के लिये नियमावली निम्नपते से मंगाइये।

सत्यकेतु विद्यालंकार
इण्डियन पब्लिक स्कूल
४ माल रोड, दिल्ली

माता की शरण में

मां तुम ऐसा वर दो।
रोग शोक संताप मिटें सब,
जीवन ऐसा करदो॥

जन्म-मरण है फांस पुरानी,
मिलन-विरह की अजब कहानी,
सुख-दुख माया में लपटानी,
यह जीव करे क्या नादानी,
तन मन पीर विलग हो॥
मां तुम ऐसा वर दो॥

बेसुध हो दिन रैन बितानी,
विषय विपय में चित्त फंसानी,
जन-सेवा प्रभु भक्ति न मानी,
ज्ञान-दान-तप-त्याग भुलानी,
चिर परिताप निलय हो॥
मां तुम ऐसा वर दो॥

'श्री कमीला'

चौधरी हुलासवर्मा के प्रबन्ध से गुरुकुल मुद्रणालय गुरुकुल कांगड़ी में मुद्रित तथा प्रकाशित।

* ओ३म् *

"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत" Reg. No. A. 2927

गुरुकुल

सम्पादक—साहित्यरत्न पं० हरिवंश वेदालङ्कार

एक प्रति का मूल्य -) [गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख-पत्र] वार्षिक मूल्य १॥)

वर्ष ४] गुरुकुल काङ्गड़ी, शुक्रवार १८ कार्तिक १९९६; ३ नवम्बर १९३९ [संख्या २६

हैदराबाद के जेल यात्री ब्रह्मचारियों के बीच में

[विजय-दशमी के अवसर पर हैदराबाद के जेलयात्री ब्रह्मचारियों को प्रशस्ति पत्र देने के अवसर पर दिया गया आचार्य अभयदेव जी का भाषण]

इसे मैं अपना सौभाग्य समझता हूं कि इस प्रशस्ति-पत्र वितरण के अवसर पर मैं भी तुम्हारे बीच में उपस्थित हूं। इस से पहिले मुझे तुम सब से सम्मिलित रूप में मिलने का कोई अवसर नहीं मिला। प्रशस्ति पत्र वितरण का काम तो किसी बाहर के प्रतिष्ठित महानुभाव के हाथों होना यह मैं चाहता था, इसके लिये मैंने कोशिश भी की पर सफलता नहीं मिली। मेरे हाथों से प्रशस्ति पत्र दिया जाना तो ऐसा है जैसे तुमने अपने ही हाथों से प्रशस्ति पत्र पा लिये। पर इस अवसर पर उपस्थित रहना ही मेरे लिये आनन्द का विषय है।

इस जगत् के अनादि अनन्त प्रवाह को देखें तो उस में हैदराबाद-सत्याग्रह की विजय एक बहुत ही मामूली घटना है। इस विशाल भूत और भावी को हम देख सकें तो न जाने कितनी शानदार विजय हो चुकी हैं और आगे होनी हैं। पर भूत और भावी को देखने वाला पुरुष भी प्रत्येक समय वर्तमान में ही रहता है। इसी लिये वर्तमान का बहुत भारी महत्व है। और इस वर्तमान की दृष्टि से हैदराबाद सत्याग्रह की विजय का भी बहुत महत्व है इसी लिये इस सत्याग्रह के विजयी हुवे तुम वीरों का अभिनन्दन करने का अवसर पाकर मुझे इस समय महान् आनन्द अनुभव हो रहा है।

इस सत्याग्रह की विशेषता के बारे में बहुत कुछ कहा और सुना जा चुका है इस लिये मैं इस पर और कुछ नहीं कहूंगा। फिर भी अपने कुल की दृष्टि से एक बात है जिसे इस समय कहे बिना मुझ से रहा नहीं जाता। जेल-यात्री ब्रह्मचारियों से जब मैं उन की जेल कहानी सुन रहा था इन्हें वहां कैसे २ कठिन अवसर आये, किस तरह उनका मुकाबला किया, क्या २ मनोरञ्जक बातें हुई और कैसे-कैसे कठिन कष्ट सहे, इस प्रकार की प्रेमपूर्वक बातें हो रही थीं, उन बातों में एक जेल यात्री ने एक ऐसी बात कही जो मुझे बहुत प्रिय लगी, और देर तक कानों में गूंजती रही। उस ने कहा बृटिश जेलों को तो राष्ट्रीय-सत्याग्रह के दिनों में हमारे बड़े भाईयों ने जूठा कर दिया था, इस लिये हम नई और उनसे कहीं अधिक कठोर हैदराबाद की रियासती जेलों का स्वाद [illegible] गए थे। वास्तव में बृटिश जेलों में रहना उतना कठिन नहीं था। आखिरकार वहां कुछ न कुछ कायदे कानून थे जिनका जेल के अधिकारियों को दिखावटी रूप में ही सही पालन करना आवश्यक होता था और इससे बहुत बचाव हो जाता था। पर हैदराबाद रियासत की जेलों में तो बिलकुल अन्धेर था। जब जिसको चाहा गंजी (Solitary cell) में डाल दिया। न उसका कुछ कारण और न अवधि। जब चाहा मारा पीटा बेड़ियां डालीं या बेतें लगाई। पर इन वीरों ने उन जेल यातनाओं को भी शान के साथ सहा, इन कठिन आफतों का अभूतपूर्व तरीके से आस्वादन किया और रियासती स्वतन्त्रता के भी गहन रास्ते को अपनी कठोर जेल यातना द्वारा साफ किया। राष्ट्रीय युद्ध में जो हमारे स्नातक और कुछ ब्रह्मचारी गए थे उन्होंने भी कुछ कम कष्ट नहीं सहे थे। उनकी कहानी भी सुनने लायक है। उनकी वीरता और अदम्यता का वर्णन सरकारी कागजातों तक में मौजूद है। मुझे एक बार एक ऊंचे सरकारी अफसर द्वारा बताया गया गुरुकुल के सत्याग्रहियों का वर्णन जानने का अवसर हुआ था जिसमें कहा गया था कि ये लोग जहां खड़े हो जाते हैं वहां पुलिस के लाठी-प्रहार बेकार हो जाते हैं, इन्हें मृत्यु या शरीर पीड़ा का भय विचलित नहीं कर सकता इस लिये जहां ये सत्याग्रह कर रहे होते हैं या ये जिस जेल में होते हैं इनके मोर्चे को परास्त करना अशक्य होता है। उन कुल पुत्रों ने इस तरह राष्ट्रीय संग्राम में जिन बृटिश जेलों को अपनी तपस्या द्वारा पवित्र किया उनको हैदराबाद के ये जेल यात्री मानों अतिक्रमण करना चाहते थे और उनसे अधिक कठोर आपत्तियों के स्थानों को, रियासती जेलों को भी तपस्या के द्वारा पवित्र करने के लिये अग्र-

सर हुए थे। यह विचार मुझे बहुत ही आनन्द दायक और प्रिय लगता है। मैं नहीं जानता कि जिस तरह ब्रिटिश सरकारी अफसरों में उन बड़े भाइयों की स्तुति करने वाले लोग मिल गये उस तरह हैदराबाद के इस युद्ध को देखने वालों में उनसे भी अधिक कष्ट सहने वाले इन कुल पुत्रों की कदर करने वाले भी कोई निकलेंगे या नहीं। पर हमें इसकी कोई परवाह नहीं होनी चाहिये। क्योंकि जब ये प्रशस्ति पत्र मेरे हाथ से दिये गये हैं तो मैं यह तो ज़रूर कहूँगा कि तुम स्वयं ऐसे बनो कि ये कागज के प्रशस्ति पत्र तुम्हारा मान बढ़ाने वाले न हों किन्तु तुम्हारे जीवन द्वारा इनका मान बढ़े इस प्रशस्ति पत्र को पाकर तुम्हारा प्रशस्त जीवन समाप्त न हो जाए किन्तु अधिक बड़े प्रशस्त जीवन का प्रारम्भ हो। तुम्हारा अपना निःस्वार्थ, प्रेमभरा सेवामय जीवन ही जीता-जागता प्रशस्ति पत्र हो। धर्म के लिये युद्ध और उसमें सफलता तुम्हारे जीवन में उत्तरोत्तर बढ़ने यें। यदि गुरुकुल के असली पुराने आदर्श को तुम अपने सामने रखो तो उसके अनुसार अपने को ढालने में जितनी कठिन तपस्या की आवश्यकता है वह हैदराबाद जेलों की तपस्या से कहीं अधिक कठिन है। तुम्हें इस बात का अभिमान भी नहीं होना चाहिये कि तुम सत्याग्रही होकर जेल यात्रा कर आये हो (जैसा कि अकसर होता है)। तुम नम्र होगे तो देखोगे कि तुम्हें अभी बहुत सी विजय प्राप्त करनी है। उसके लिये लगातार तुम यहां आन्तरिक लड़ाई में लगे रहो और जब इस तरह अन्दर से विकसित होते हुए तुम गुरुकुल की तपस्या पूरी करके बाहर जाओ तो तुम जहां भी रहो वहां तुम्हारा जीवन इतना प्रशस्त हो कि उसे देखकर सब लोग कहें कि जिस शिक्षणालय ने इन्हें शिक्षित किया है, जिस कुलमाता ने इन्हें जन्म दिया है, वह धन्य है। मैं तो तब समझूंगा कि तुमने प्रशस्ति पत्र पाया।

आर्य सत्याग्रह में गुरुकुल की आहुति

(ले०—श्री क्षितीश वेदालंकार)

२८ जनवरी का दिन था—

अभी दो दिन पहिले "वसन्तपचमी" मना कर चुके थे। चारों ओर बसन्ती रंग के दर्शन किये थे—पुरुष में भी और प्रकृति में भी—जिस प्रकार छोटे छोटे ब्रह्मचारियों ने बसन्ती रंग की धोतियां पहनी थीं और उपाध्याय वर्ग ने बसन्ती रंग का दुपट्टा गले में डाला था उसी प्रकार प्रकृति भी पीत पुष्प-गुच्छ का परिधान पहन कर सज धज कर खड़ी थी। उस दिन हमने शिवाजी, राणा प्रताप, गुरु गोविन्द सिंह जैसे महा पुरुषों को याद किया था, जिन्होंने प्रभु से प्रार्थना की थी—'मेरा रङ्ग दे बसन्ती चोला'—और फिर न केवल स्वय ही केसरिया बाना पहना था, किन्तु अपने असंख्यों अनुयायियों को भी उसी रंग में सराबोर कर दिया था। और फिर एक आंसू उस वीर हकीकत राय की स्मृति पर गिराया था, जिसने धर्म की बलि वेदी पर अपने प्राणों की आहुति दे दी थी और अपने नाम के साथ इस पर्व को भी अमर कर दिया था।

उससे और दो दिन पहले २२ जनवरी को 'हैदराबाद-दिवस' मना कर चुके थे। उस सुदूर दक्षिण की मुस्लिम रियासत के अनेक अत्याचारों की, धार्मिक कृत्यों पर पाबन्दी की और नागरिकता के अपहरण की बड़े जोश के साथ हमने चर्चा की थी। और साथ ही सार्वदेशिक सभा की सत्याग्रह-घोषणा भी सुनी थी।

फर्वरी मास के अन्तिम दिनों में विश्वविद्यालय की वार्षिक परीक्षा होने वाली थी। केवल एक महीना बचा था कि मैं भी अपने सहपाठियों के साथ स्नातक बनता—मेरे भी संरक्षक औरों की तरह सगे-सम्बन्धियों को प्रभूत संख्या में इकट्ठा करके वार्षिकोत्सव पर समावर्तन-संस्कार देखने आते और मैं अपनी एक माता की गोद से दूसरी माता की गोद में कुल माता की असंकुचित गोद से भारत माता की विस्तृत गोद में, जा पहुँचता। किन्तु ऐसा न होने पाया।

और अचानक ही २८ जनवरी को आर्य समाज के सर्वप्रथम सर्वाधिकारी श्री पूज्य महात्मा नारायण स्वामीजी का तार आ पहुँचा और सत्याग्रही सैनिकों का आह्वान किया गया।

आर्य समाज की प्राण भूत संस्था से मांग की गई। हैदराबाद में आर्य समाज पर संकट है। सेनापति ने बिगुल बजाया और इधर एक इशारे पर बाल पन्थी सिपाही कमर बांध कर तय्यार हो गए। न भूत देखा न भविष्य। और उसी रात को कुछ दीवाने चुपचाप अपने माथे पर कुङ्कुम का रक्त-तिलक लगा कर, पीयूषवाहिनी मन्दाकिनी का शुभ्रअञ्चल अपने अन्तिम नमस्कारों से अभिषिक्त करके, और चिर-अचल भारतीय संस्कृति के अमर संदेश वाहक वृद्ध पिता हिमालय के चरणों में अपना प्रणतम प्रणाम कर उद्देश्य-पूर्ति के लिये गाड़ी पर बैठ गये।

उस समय की बात कह रहा हूँ जिस समय इस विषय में समाचार-पत्र सर्वथा मूक थे-दुनियां के कानों को पता भी नहीं था कि यज्ञ की प्रथम आहुति पड़ चुकी है!

दिल्ली पहुंचे। संरक्षक अपने बालगोपालों को इस अद्भुत रणसज्जा के लिये कटिबद्ध देख कर विस्मित रह गये, यह क्या! अभी तो समाचार-पत्रों में कोई खबर भी नहीं कि सत्याग्रह शुरू हो गया है! सब से पहिले तुमको कैसे भेज दें—जान बूझ कर आग की भट्टी में कैसे झोंक दें, उस नृशंस अत्याचारियों की रियासत में, जहां कोई 'उत्तरदायी शासन' नहीं है, जहां कोई धार्मिक सहिष्णुता का नाम लेने वाला नहीं है, जहां हरेक हिन्दू काफिर समझा जाता है और दिन-दहाड़े क़त्ल होते रहते हैं—वहां यदि किसी ने चलते फिरते पेट में छुरा भोंक दिया तो क्या होगा?"

"क्या होगा, यह तो हम नहीं जानते। हम तो केवल इतना जानते हैं कि हमारे सेनानी ने हमें बुलाया है और इस समय एक सच्चे सैनिक का कर्तव्य यही है कि वह बिना ननुनच किये चुपचाप अपने सेनापति के आदेश का पालन करे। आर्य समाज में हमने जन्म लिया है, उसी ने हम पाला है और पुष्ट किया है और चौदह साल तक हम आर्य समाज की एक मात्र संस्था गुरुकुल में शिक्षा पाते रहे हैं। फिर यह कैसे हो सकता है कि आज, जब कि आर्य समाज पर संकट आया है—परीक्षा का समय है, तो हम पीछे हट जायें! यह नहीं हो सकता। हमारा निश्चय अटल है। अब जो कदम आगे बढ़ गया है वह पीछे नहीं हट सकता।"

घण्टों उपदेश-घण्टों वाद-विवाद। बड़े २ बुजुर्गों ने समझाया—'विद्यार्थी-जीवन तपस्या के लिये है। अभी देश को और समाज को तुम से बड़ी बड़ी आशायें हैं!' किन्तु सबका एक ही उत्तर—"हम नहीं जानते। हमें तो बुलाया गया है। सैनिक का काम सोच-संकोच का नहीं है।" और फिर तारों पर तारें—कोई मांता जी की कोई किसी का। पिता क्रुद्ध हो गये—'कुपूत है नालायक है, कहना नहीं मानता'—कह कर घर से निकाल दिया। पर निश्चय फिर भी अटल रहा।

जब सब की सुनी अनसुनी करके सबके सब शाम को ५ बजे स्टेशन पर पहुंच हो गये—तो माताओं की पछाड़ पहुंचे पछाड़ खाकर गिर पड़ी और अन्य सम्बन्धी किंकर्तव्यमूढ़ होकर दिशायें ताकने लगे।

कोई स्वागत-सत्कार नहीं कोई जलूस-प्रदर्शन नहीं, एक भी फूल की माला नहीं, और चुपचाप—क्योंकि ऐसा ही वह अवसर था और ऐसा ही सेनापति का आदेश था। सार्वदेशिक सभा के मन्त्री श्री प्रो० सुधाकर जी ने बिदाई दी, किसी ने लोटा दी और हम सब हाथ में एक थैला और कन्धे पर एक कम्बल लेकर मद्रास-एक्सप्रेस में चढ़ बैठे। गाड़ी चल दी। जो सगे सम्बन्धी स्टेशन पर छोड़ने आये थे वे जाने कितनी हसरत भरी निगाहों से, जाने कितनी देर तक, जिस दिशा में गाड़ी गई थी उस दिशा में देखते रहे।

× × ×

दिल्ली से पन्द्रह विद्यार्थियों का जत्था चला था। मेरे साथ जो अन्य चौदह विद्यार्थी थे उनके नाम निम्न हैं—

धीरेन्द्रकुमार चतुर्थ वर्ष, विद्यासागर ३य वर्ष, इन्द्रसेन ३य वर्ष, सत्येन्द्र ३यवर्ष, ओम्प्रकाश ३य वर्ष, देवराज ३य वर्ष, सतीश कुमार २य वर्ष उदयवीर २य वर्ष, मनोहर २य वर्ष, रामनाथ २य वर्ष, विद्यारत्न २य वर्ष चन्द्रगुप्त १म वर्ष और विश्वमित्र १म वर्ष।

पूरी रात और पूरा दिन—गाड़ी में। चौबीस घण्टे तक लगातार सफर—धूआं, कोयला और निरन्तर छुक् छुक्-छुक्-छुक् की कर्णकटु ध्वनि—परेशानी। ३० जनवरी की शाम को ठीक ६ बजे वर्धा के स्टेशन पर उतरे—दिल्ली से वर्धा तक का टिकट लिया था, हैदराबाद तक सीधा जानबूझ कर नहीं लिया।

स्टेशन के पास ही श्री जमनालाल बजाज की धर्मशाला में ठहरे। चौकीदार ने पूछा—'कहां से आये हो?' बता दिया—'नागपुर से।' पूछा—'कहां जाना है?' उत्तर में वर्धा से अगले स्टेशन का नाम ले दिया। शिक्षा मन्दिर देखने गये—कुछ अवर्णनीय-सा इम्प्रेशन मन पर लेकर आये।

रात को चांदनी में खुली छत पर मीटिंग बैठी—अच्छा, यहां तक तो बिना किसी बाधा के पहुंच गये। अब आगे? सारी समस्या तो आगे ही है।.....वेष बदल कर जाना पड़ेगा। पर १५ विद्यार्थी आखिर कौन-कौन सा वेष बदल कर जावें। परामर्श हुआ और फिर निर्णय हुआ। हरेक ने अपना अपना वेष चुन लिया। और अगले दिन सवेरे ही धोती फाड़कर अचकन और पजामे सिलवाये गये—तुर्की टोपी और हैट एवं अन्य तरह तरह की टोपियां खरीदी गईं। किसी ने कुछ किया, किसी ने कुछ किया। लेखक अचकन और तुर्की टोपी पहन कर पूरा मुसलमान बन गया। एक साथी हैट और पतलून पहन कर अंग्रेज बन गया। एक साथी सिर के जटाजूट में कंघा अटकाये और हाथ में लोहे का कड़ा पहने 'सरदार जी' बन गया। एक महाशय रामनामी दुपट्टा ओढ़, गले में माला और माथे पर तिलक लगाये 'पण्डित जी' बन गये। एक अपनी बड़ी तोंद को कुछ और बड़ा बनाकर, ढीली-ढाली धोती बांध कर सेठ जी बन गये—और एक अत्यन्त मैले कुचैले कपड़े पहन कर गरीब सी शकल बनाये सेठ जी के नौकर बनगये, जवाहर कट कुर्ती पहन कर कोई सोशलिस्ट बना, और कोई गलकट कुर्ता पहन कांग्रेस-मैन। इस प्रकार यह बहुरूपियों की सेना ३१ की शाम को फिर वर्धा से आगे के लिये सवार हो गई।

और सवेरे से लेकर शाम तक यह दिन बड़ी व्यस्तता से बीता था—सवेरे २ वर्धा से ४ मील दूर सेगांव हो आये, फिर मगनवाड़ी और बालवाड़ी भी घूम कर चले आये। और लेखक दुपहर की कड़ी धूप में श्री काका कालेलकर और दादा धर्माधिकारी के पास जाकर यज्ञ की इस प्रथम आहुति के लिये आशीर्वाद भी ले आया।

× × ×

लगभग १० बजे—बल्हारशाह स्टेशन से हैदराबाद रियासत की हद शुरू।

हरेक स्टेशन पर सुनसान, काली रात, काली वर्दी, काली शकल—सिवाय इन यमदूतों के स्टेशन पर और कोई नजर ही नहीं आता। और ये यमदूत हरेक डिब्बे में आ आकर झांकते हैं—कहीं कोई संदिग्ध व्यक्ति

मैं अपने दो तीन साथियों के साथ अन्त के डिब्बे में चिन्ता के मारे नींद नहीं। इन यमदूतों के हावभाव से बेहद घबराहट। सब डायरी या नोटबुकें—जिनपर अपना नाम या 'गुरुकुल कांगड़ी' लिखा हुआ था, फाड़ फाड़कर फेंकदी कहीं तलाशी न लें इसलिये।

इतने ही में एक स्टेशन पर एक यमदूत ने पुनः खिड़की के अन्दर झांका, आधी रात—और पूछा 'कहां जाना है?' मैंने कहा 'सिकन्दराबाद' और चुप हो गया।

गु रु कु ल

१८ कार्तिक शुक्रवार १९९६

मातृभूमि पोलैण्ड की ओर

प्रिय भाई.........

...... आज मेरे मन में एक विचित्र सी भावना उठ रही है। आन्तरिक वेदना असह्य हो उठी है। आज मेरी माँ मुझे बुलाने के लिये चिल्ला रही है। मुझे ज्ञात है कि मैं देश जाकर कुछ कर न सकूंगी पर फिर भी मैं कम से कम अपने रक्त से मां के चरण तो धो ही सकती हूं। ठीक है कि मैंने भारतवर्ष को अपना लिया है और अब मैं भारत को भी अपनी मां मानती हूं पर फिर भी प्यारे पोलेण्ड की अवस्था अब देखी नहीं जाती। उसकी विपदा के समय उसका साथ देना और नहीं तो कम से कम अपने आपको उस पर न्यौछावर कर देना तो मेरा कर्तव्य है ही। मैं जहाज में बैठी हुई तुम्हें पत्र लिख रही हूं। उफ! मेरा चित्त कितना व्याकुल हो उठा है। अन्दर से कितनी जोर का चीत्कार सुनाई दे रहा है। खैर विदा ......

... हां, यह तो तुम जानते ही होगे कि पोलेण्डवासी भारतवासियों के साथ कितने मिलते जुलते हैं। दोनों कृषि प्रधान धार्मिक देश हैं। हमारे आचार विचार भी काफी मिलते हैं। भारत में शक्ति की कितनी पूजा होती है। तुम्हें यह जानकर हर्ष होगा कि मेरा पोलेण्ड भी देवी का, शक्ति का ही पुजारी है। हिन्दू राजा (यदि वह धर्मानुसार चले) अपने आपको राज्य का स्वामी नहीं मानता। असली स्वामी तो वह परमेश्वर ही है राजा अपने आपको उसका सेवक-मात्र समझता है। पोलेण्ड भी पिछली तीन चार शताब्दियों से इसी बात को मानता आया है। वहां भी 'मां' के ही नाम से राज्य चलता है। वहां के राजा या प्रेसीडेण्ट तो केवल 'मा' के सेवकों का हैसियत से काम करते आए हैं। अच्छा भाई अब विदा। प्रभु तुम्हें अपने प्रयास में सफल करें, कभी कभी अपनी इस बहिन को भी याद कर लिया करना।

तुम्हारी बहिन,
उमा।

इस आशय का पत्र पढ़कर किसके मन में उसकी लेखिका के लिये सम्मान की भावना पैदा न होगी। बहिन उमादेवी का गुरुकुल कांगड़ा के साथ काफी घनिष्ट सम्बन्ध रहा है। पोलेण्ड से महात्मा गांधी के यहां होती हुई ये सीधी गुरुकुल आई थीं और वहां लगभग दो तीन महीने निवास किया था। उन दिनों वे मिस वाण्डा डायनोस्का थीं। मिस डायनोस्का आध्यात्मिक प्यास बुझाने के लिये लगभग चार वर्ष पहिले भारत आई थीं और इन चार वर्षों में वे पूरी तरह भारतीय बन गई थीं। स्वास्थ्य खराब होते हुए भी उन्होंने सारे भारतवर्ष का चक्कर लगाया। महात्मा गांधी का अहिंसा और सत्य का आदर्श उन्होंने अपना लिया और इसी के द्वारा भारतवर्ष की सेवा करने का उन्होंने निश्चय कर लिया। जिन लोगों ने फैजपुर, लखनऊ, हरिपुरा और त्रिपुरी कांग्रेस की प्रदर्शनियों में उन्हें काम करते देखा है वही जान सकते हैं कि इस बूढ़ी युवती में कितनी कार्यक्षमता थी। उनके स्वभाव में पूरी तरह से भारतीयता की पुट लग चुकी थी। अन्याय और हिंसा के विरोध में उनके अन्दर एक ज्वाला धधकती थी और उसी का परिणाम है कि इस खतरे के समय जब पोलेण्ड का अपहरण हो चुका है वह अपने आपको अपनी मां की वेदी पर चढ़ाने के लिये, भारतवर्ष से रवाना हो गई हैं। उमा को अपनी ७०-८० वर्ष की मां या अपने मित्रों की चिन्ता नहीं है क्योंकि वे तो पहिले ही वारसा में बम्ब और मशीनगनों के सुपुर्द हो गये, उनकी तो शायद राख भी न मिले। पर उमा को विश्वास है कि मनुष्य की तरह देश के भी आत्मा होती है और उसी "घायल आत्मा के चरणों को धोने के लिये" वह अपना रक्त बहाना चाहती है।

यह ठीक है कि उमा कमजोर और बीमार है और शायद वह कोई बहुत शारीरिक सेवा न कर सकेगी। पर फिर भी उसका साहस और उसके आत्म बलिदान की भावना देख कर श्रद्धा से उसके आगे सिर झुकाना ही पड़ता है। उसे विश्वास है कि पोलेण्ड अपने लिये नहीं लड़ रहा। वह अपने आपको 'सत्य, न्याय और स्वतन्त्रता' की वेदी पर चढ़ा रहा है और इसी पर वह भी पागल हो उठी है। वह स्वप्न ले रही है कि पोलेण्ड की धधकती हुई हुई भट्टी सारे संसार के अन्याय और अत्याचार को भस्मसात करके रहेगी। प्रभु करे उसका स्वप्न सिद्ध हो। महात्मा गांधी के शब्दों में "यदि पोलेण्ड के अन्दर वीरता अपनी पराकाष्ठा को पहुंची हुई है और वह पूर्णतया निःस्वार्थ भाव से लड़ रहा है तो इतिहास उसकी हिंसा को भूल जायगा। उसकी हिंसा भी अहिंसा के ही समान गिनी जायगी।"

बहिन उमादेवी जी

गुरुकुल के एक स्नातक का लिखा हुआ ऊपर का छोटा सा लेख 'मातृभूमि पोलेण्ड की ओर' पाठकों ने पढ़ लिया होगा। बहिन उमा जी ने पोलेण्ड जाते हुवे जहाज से अपने सुपरिचित उक्त स्नातक भाई को जो पत्र लिखा है वह सचमुच चमत्कृति पूर्ण और ऊंची भावनाओं को जगाने वाला है। महात्मा गांधी जी को इस बहिन ने जाते समय जो इसी प्रकार का एक पत्र लिखा है वह उन्होंने 'हरिजन' में उद्धृत किया है और उस पर वैसी ही उत्तम टिप्पणी भी कर दी है। पर जब मैं सोचता हूं कि भारत को भी अपनी मातृभूमि मानने वाली यह अध्यात्म पिपासु बहिन फिर भारत में अब अपने इस जन्म में शायद ही लौट सके तो उसके लिये एक आध शब्द लिखे बिना जी

नहीं मानता। लगभग चार वर्ष हुवे जब पोलिश महिला मिस वांडा एक दूसरी अंग्रेज महिला के साथ पहिली बार गुरुकुल आयी तभी अध्यात्म जिज्ञासा संबन्धी इनकी बातें सुनकर मुझे जो आश्चर्य, उत्साह और आनन्द हुआ था वह अब भी ताजा हो आता है। ये फिर दुबारा अकेली गुरुकुल आयीं और यहां कई महीने रहीं। उमादेवी हो जाने के बाद भी इनसे चिट्ठा पत्री तथा कई अवसरों पर भेंट होती रही। पिछले एक दो वर्ष से ये एक बड़ी पुस्तक रचना में भी व्यग्र थीं जिसमें भारत की सर्वतोमुखी नवजागृति का सच्चा वर्णन हो। इसमें दयानन्द, आर्यसमाज तथा गुरुकुल और कन्या गुरुकुल नाम के चार अध्याय भी अपने अपने स्थान पर निश्चित किये गये थे। मुझे ऐसा लगने लगा था कि आज अन्दर ही अन्दर इस पृथ्वीतल के सब देशों को ठीक तरह मिलाने का भी जो एक काम चल रहा है उसमें इस बहिन ने भी एक हिस्सा अदा करना है। इसीलिये पोलेण्ड पर आपत्ति आयी है जिसका सारे संसार पर असर पड़ेगा यह तो सुना ही था, पर कुछ दिन बाद यह सुनकर कि इस बहिन की अन्तरात्मा इस आपत्ति के समय पोलैण्ड जाने को उछल रहा है और वह अपनी बड़ी उमर का भी ध्यान न करके पोलेण्ड चल पड़ी है, मुझे कुछ खेद हुआ। जो हो, परमेश्वर इस अध्यात्म प्रिय बहिन की पोलैण्ड, भारत तथा अन्य जगत् संबन्धी ऊंची-ऊंची अभिलाषा को जिस किसी तरह पूरी करे ऐसी प्रार्थना स्वभावतः हृदय से निकलती है।

'अभय'

समय का मूल्य

(ले० — श्री प० मनोहर विद्यालंकार)

प्रत्येक अच्छी चीज अपना मूल्य जताने के लिये समय के अधीन है। अगर हमारे पास उपभोग करने के लिये समय न हो; तो मित्र, पुस्तक, स्वास्थ्य, भ्रमण का आनन्द और घर की प्रसन्नता—ये सब व्यर्थ हैं। प्रायः समय को धन कहा जाता है। लेकिन यह धन से अधिक कीमती है, यह जीवन है। तो भी बहुत से लोग, जो जीवन चाहते हैं, समय के बरबाद करने की कुछ परवाह नहीं करते।

लार्ड शेरब्रुक के अनुवाद में शिलर ने लिखा है कि बुद्धिमान से पूछो, और वह कहेगा कि "बीते हुए समय को अनन्तशक्ति भी वापिस नहीं ला सकती।" और महाकवि दान्ते के शब्दों में—जो जितना अधिक ज्ञानी है, उसको समय का अपव्यय उतना ही अधिक दुःख देता है।

इसका यह मतलब नहीं कि नीरस जीवन हमारा आदर्श होना चाहिए। इसके बिलकुल विपरीत निष्काम और बौद्धिक मनोरञ्जन में, स्वास्थ्यवर्धक खेलकूद में, और सामाजिक या पारिवारिक बातचीत में; समय का व्यय सद्व्यय है। उसके लिये पछतावा करना भूल है। खेलें न केवल शरीर को स्वस्थ रखती हैं, अपितु इनसे अङ्गों और पट्ठों पर नियन्त्रण आता है। इसके अतिरिक्त कठिन व्यायाम बहुत से प्रलोभनों का योग्यतापूर्वक मुकाबला करने के लिये, हमें सामर्थ्य प्रदान करती है।

वे मनुष्य आलसी हैं, जो यह शिकायत करते हैं कि हमारे पास अपने विचारों को क्रिया में परिणित करने के लिये समय नहीं है। सत्य तो यह है कि जो मनुष्य कुछ करना चाहता है, वह उस काम के लिये समय निकाल सकता है। ऐसे मनुष्यों में इच्छाशक्ति की कमी है, समय की कमी नहीं है। खाली समय का सबसे बड़ा लाभ यह है, कि हमें अपनी इच्छा के अनुकूल काम चुन लेने की छूट है। यह अपने आप में कोई बड़प्पन की चीज नहीं है।

"समय भिन्न २ (मुख्तलिफ़) आदमियों के साथ भिन्न २ गति से चलता है। मैं तुम्हें बताऊंगा कि समय किन आदमियों के साथ हवा की तरह से होजाता है, किनके साथ सरपट भागता है, किनके साथ दुलकी चलता है और किनके साथ शान्त खड़ा हो जाता है।"

(शेक्सपियर)

महत्ता इस चीज की नहीं है कि हम कितने घण्टे काम करते हैं, महत्ता तो इसकी है कि हम किस तरह उनका उपयोग करते हैं।

"उस वृत्त की प्रशंसा नहीं होती जो परिधि में बड़ा होता है, बल्कि उस वृत्त की प्रशंसा होती है जो बिलकुल गोल होता है। इसी तरह से उस जीवन की प्रशंसा की जाती है, जो चाहे बहुत समय नहीं जीवित रहता; लेकिन जितना जीवित रहता है, उतने समय का उपयोग करता है।"

जरमी टेलर कहता है "आलस्य दुनिया में सबसे अधिक फिजूलखर्ची है। यह एक ऐसी चीज को फेंक देता है, जो वर्तमान के लिहाज से अमूल्य है, और जिसके गुजरने के बाद, कमी पूरी नहीं की जा सकती; और जिसको प्रकृति या कला की कोई भी शक्ति वापिस नहीं बुला सकती।"

जीवन को लम्बाई की अपेक्षा गहराई से, और समय की अपेक्षा विचार और क्रिया से नापना चाहिये। पीटर कहता है "हमें नाना रूपों वाले सुन्दर जीवन के थोड़े से गिने हुए श्वास मिले हैं। इतने थोड़े से श्वासों में हम वह सब कुछ कैसे देख सकते हैं? हम प्रतिक्षण हरेक बिन्दु पर बड़ी तेजी से चलने के साथ २ उसके केन्द्र पर जहां कि अधिक से अधिक समर्थ शक्तिपुञ्ज अपने शुद्धतम रूप में एकत्रित होते हैं; कैसे उपस्थित हो सकते हैं? इस अग्निमय भगवज्ज्वाला के साथ प्रज्वलित होने, और इस परमानन्द को प्राप्त करने में ही जीवन की सफलता है।

मैं लार्ड चैस्टरफील्ड के शब्दों को अपनी रक्षा के लिये उद्धृत नहीं करूंगा, लेकिन उसने निस्सन्देह अपने पुत्र के प्रति 'समय-सम्बन्धी' दिये हुए उपदेश में बुद्धिमत्ता से काम लिया है। "एक २ क्षण जो तुम खो रहे हो, वह तुम्हारा अवसर और आचरण नष्ट हो रहा है और इसके विपरीत एक २ क्षण जिसका तुम सदुपयोग कर रहे हो, बुद्धिमत्तापूर्ण तरीके से चक्रवृद्धि ब्याज के लिये सुरक्षित कर रहे हो।" और फिर "यह बड़ी विस्मयजनक बात है कि कोई मनुष्य अपने भाग्य में आये हुए थोड़े से समय

का एक भी क्षण, पूर्ण आलस्य में फिजूल खर्च कर सके।"

"अगर तुम संजीदा हो, तो इसी पल को पकड़ लो; और जो कुछ तुम कर सकते हो या तुम समझते हो कि तुम कर सकते हो, उसे एक दम प्रारम्भ कर दो।"

एक तुर्क कहावत है कि शैतान आदमियों को प्रलोभन देता है, लेकिन आलसी मनुष्य तो शैतान को ही मुग्ध कर लेते हैं।" हिलार्ड कहता है 'मुझे एक कविता याद है जिसमें शैतान को मनुष्यों के लिये कांटा डालते हुए और अपने शिकार को फंसाने के लिये उनके स्वाद और स्वभाव के अनुरूप भोज्यसामग्री(Bait)को बनाते हुए दर्शाया गया है। लेकिन आलसी मनुष्य उसके फन्दे में बड़ी सुगमता से आजाते हैं, क्योंकि वे तो नंगे कांटे को भी निगल जाते हैं।"

"आलसी मनुष्य का मन स्वयं अपना शिकार करने लगता है।" मानव हृदय मिल के पीसने वाले पाट की तरह से है, जब तुम इस में गेहूं डालते हो तो यह घूमता है, उसे पीसता है और उसको कुचल २ कर गेहूं का आटा बना देता है। लेकिन अगर तुम उस में गेहूं नहीं डालते तो भी यह रुकता नहीं, घूमता ही रहता है"।

मनुष्य को काम नहीं मारता, मारती तो चिन्ता है। इसी लिये मेरा ख्याल है कि हमें कहा गया है 'कल के बारे में कुछ मत सोचो'। बाग में आने वाले 'लिली' के बारे में सोचो वे कैसे उगते हैं, वे परिश्रम नहीं करते और नाही कोई स्कीम बनाते हैं, और तो भी सोलोमन जैसा प्रतापी राजा भी अपनी सम्पूर्ण शान शौकत में भी इन की तरह से नहीं सजता था। इस लिये अगर परमेश्वर ने आज घासको इस लिबास से सजाया है, और कल फिर मुरझा देगा, तो क्या हे अल्प श्रद्धा वाले मनुष्य! तुझे वह अनूठे ढङ्ग से नहीं अलंकृत करेगा? यह ख्याल करना वास्तव भूल होगी कि 'लिली' आलसी या अदूरदर्शी हैं। इस के विपरीत वृक्ष वनस्पति बहुत ही उद्यमी होते हैं, और लिलीअपने पेचीदा कलियों में अपने वर्ष भर के पुष्टिकारक पदार्थों का बहुत सा हिस्सा जमा करते हैं, ताकि अगले वर्ष वृद्धि और तेजी से हो सके। दूसरी तरफ वे चिन्ता से वाकिफ तक नहीं।

"घण्टों के पंख लगे हुए हैं, और यह अपने रचियता के पास, हमारे समय के उपयोग का समाचार लेकर भागे जा रहे हैं। हमारी सारी प्रार्थनाएँ, उन में से एक को भी न तो वापिस ही बुला सकती है और ना ही उस की रफ्तार में कुछ कमी कर सकती हैं। हमारे एक एक क्षण का दुर्व्यय, स्वर्ग में हमारे विरुद्ध एक २ गवाही है। अगर हम इस तरह से सोचने लगें, तो निश्चय से हम उन्हें अपने सम्बन्ध में अच्छी २ रिपोर्ट देकर विदा करेंगे। उन्हें खाली हाथ, या हमारे प्रति खतरनाक बुद्धि लिये हुए नहीं उड़ने देंगे। यह कितनी सुख कर बात है कि वे न केवल हमारे सन्देश ले जाते हैं, बल्कि भलाई के परिणाम भी ले जाते हैं, और प्रभु के भव्य सिंहासन के सामने हमारी सिफारिश करते हैं।"

आम तौर पर कहा जाता है कि समय उड़ता है। लेकिन समय इतना नहीं उड़ता, जितना हम इसे नष्ट करते हैं और खोया हुआ समय, समयाभाव से बहुत बुरा है। शेक्सपियर ने रिचर्ड से कहलवाया है "मैंने समय को नष्ट किया था, और अब समय मुझे नष्ट कर रहा है।"

मनुष्य का औसतन जीवन ७० वर्ष है, लेकिन वास्तव में हम बहुत थोड़े से हिस्से के मालिक हैं। यदि हम उस समय को निकाल दें, जो हमारे सोने, खान पान, कपड़ा पहिनने और खेलने में व्यय होता है, तो उसके बाद हमारे पास कितना थोड़ा समय अवशिष्ट रह जाता है!

एक बार लैम्ब ने कहा था "मेरी आयु ५० वर्ष है, लेकिन इस में से अगर तुम उन घण्टों को निकाल दो, जिन में मैं दूसरों के लिये काम किया है, अपने लिये नहीं, तो तुम मुझे एक नवयुवक के रूप में देखोगे"

लेकिन, वे घण्टे, जिन में हम दूसरों का काम करते हैं, अपव्यय में शामिल नहीं है! अपव्यय में तो उन बेशुमार घण्टों को गिनना चाहिये, जिन में हम कोई काम ही नहीं करते, न अपने लिये और न दूसरों के लिये।

कुछ घण्टे तो हमारे से मांग लिये जाते हैं कुछ घण्टे चुरा लिये जाते हैं, और कुछ पल ऐसे हैं जो हमारे हाथ से फिसल जाते हैं। हम उन्हें किसी तरह भी खोएं, वे दुबारा तो वापिस मिल नहीं सकते। यह देख कर अचरज होता है कि हम कितना कुछ अपनी बेध्यानी से बरबाद कर देते हैं।

एक पूर्वीय लोकोक्ति में कहा है कि दैवीय, आपत्तियों का प्रतिकार किया जा सकता है, लेकिन उन आपत्तियों से छुटकारा असम्भव है, जिनको हम स्वयं बुलाते हैं। कुछ वर्ष हुए मैं, प्रसिद्ध स्तूप कला विशारद मि० मोरलोट के साथ स्विट्ज़रलैण्ड में झील के किनारे बसे हुए गांवों को देखने गया था। मुझे यह जानकर आश्चर्य हुआ कि इन गांवों के लोग अपनी वार्षिक आमदनी (जो सिर्फ १०० पौण्ड थी) में से एक हिस्सा अजायब घर बनाने में खर्च करते थे। मैंने उस अजायब घर के प्रबन्धक से पूछा कि तुम इस तरह से किसी ऊंचे पद को प्राप्त करने की आशा करते हो! उसने भोलेपन से उत्तर दिया, नहीं महाशय! मैं तो अपने खाली समय और अवसरों को चांदी और सोने से भी कीमती समझता हूं और इसको मैं रुपया पैदा करने में बरबाद करना नहीं चाहता।

समय एक दैवीय देन है, और प्रत्येक दिन एक छोटा सा जीवन है। जरा अपनी सुविधाओं को तो विचारो! हमारे पास दुनिया के साहित्य की बहुतायत है; हम अपने राष्ट्रीय संग्रहालय में अपने पुरखाओं की सुन्दर कृतियों का अवलोकन कर सकते हैं, और रोयल एकेडमी वगैरह स्थानों पर जीवित कलाकारों की कृतियों का आनन्द उठा सकते है। शायद ऐसा कोई मनुष्य ढूंढने परभी नहीं मिलेगा जिसने (British Musium) को पूरी तरह से देखा हो: जरा विचारो इस में क्या २ है? प्राप्य और अप्राप्य प्राणियों और पौधों का संग्रह, सुन्दर २ पक्षी और खनिज पदार्थ, आकर्षक अवशेष, भिन्न २ जातियों को दर्शाने वाले नमूने, नाना तरह के रत्न, सिक्के, शीशे, मिट्टी, तरह २ के संगमरमर; पूर्वजों के पत्थर के बने हुए

औजार, असीरिया और ईजिप्ट के स्मारक, मैमथ जैसे अप्राप्य जानवर और ग्रीस तथा रोम की कला के नमूने।

दुःख और कष्ट तो सभी पर आते हैं, लेकिन निठल्ला पड़ा रहने के लिये क्या बहाना है, और फिर भी बहुत से आदमी निठल्ले पड़े रहते हैं। ऐसे निठल्ले आदमी प्रायः कहा करते हैं कि समय आने वाला है, जब दुनिया आराम की जिन्दगी बसर करेगी, इतनी मेहनत नहीं करनी पड़ेगी। सर आर्थर हेल्प्स ने बड़े सुन्दर शब्द कहे थे "हे मूर्ख मनुष्य जब तक तुझे यह नहीं मालूम कि लिलीको किसने सुन्दर बनाया है, गुलाब में इतनी महक किसने भरदी है, तब तक तू निठल्ला कैसे बैठ सकता है? जब तुझे सम्पूर्ण प्रकृति अपने साथ बात चीत करने, समझने और काबू करके उपभोग करने के लिये निमन्त्रित कर रही है, तब तक तू निठल्ला क्यों कर बैठ सकता है? हे मनुष्य! उठ, विद्वानों का संगकर, कुछ सीख और काम कर। इस के बाद तेरे निठल्लेपन की शिकायत नहीं आनी चाहिये"*

* उत्तिष्ठत, जाग्रत, प्राप्य वरान्निबोधत।

गुरुकुल समाचार

ब्र० वीरेन्द्र कुमार १२ श्रेणी, ब्र० पुरुषोत्तम १३ श्रेणी, ब्र० मनोहर १३ श्रेणी, ब्र० सत्यव्रत ५ श्रेणी, ब्र० महावीर ३ श्रेणी, ब्र० सर्वमित्र २ श्रेणी, ब्र० रघुनाथ १ श्रेणी मलेरिया ज्वर। ब्र० भगत सिंह ३ श्रेणी कास।

गत सप्ताह उपरोक्त १० रोगी हुए थे। अब सब स्वस्थ हैं।

गुरुकुल में वर्धा-शिक्षा-योजना पहिले सत्र से लागू हो चुकी है। छुट्टियों के प्रारम्भ में पं० हरिदत्त जी वेदालङ्कार और पं० जगन्नाथ जी वेदालङ्कार, वर्धा-शिक्षा-पद्धति का विशेष अध्ययन करने के लिये वर्धा भेजे गए थे, अब वे आधार-भूत-शिक्षा के राष्ट्रीय सम्मेलन में भाग लेने के लिये पूना गए हैं। इस संस्था का आगामी वर्ष का अधिवेशन आचार्य स्वामी अभयदेव जी के निमंत्रण पर गुरुकुलमें ही मनाया जाना निश्चित हुआ है।

१६ सितंबर को श्री रामदास जी गुलाटी का "ग्राम्य-जीवन की तैयारी" इस विषय पर सुन्दर, अनुभवयुक्त भाषण हुआ। गुलाटी जी का सारा जीवन ग्रामों में ही जनता की सेवा में बीता है। आपका जीवन बहुत सादा और संयमपूर्ण है। आप गत कई वर्षों से राष्ट्रीय महासभा (कांग्रेस) के वार्षिक अधिवेशनों में नगर-रचना के मुख्य अध्यक्ष रहे हैं।

इस सप्ताह एक और महत्वपूर्ण व्याख्यान श्री स्वामी व्रतानन्दजी, आचार्य-गुरुकुल चित्तौड़ का "मनुष्य जीवन की सफलता के उपाय" विषय पर हुआ। आप ने यहां की प्रथम पांच श्रेणियों को २॥ घंटे तक बालोपयोगी उत्तम उपदेश दिया।

'प्रकाश की रेखा' से

[श्री सत्यभूषण 'योगी' वेदालङ्कार]

[१]
रजनी यह तेरा अन्तस्तल
करता रहता झिलमिल झिलमिल !
इन्दु तारिका करती हैं तुझ में बेसुध उन्मुक्त लास !
इतना प्रकाश फिर भी निराश !

[२]
कैसा यह तुझ में सूनापन !
कैसी तेरे उर में तड़पन !
मझको रोता-सा लगता है यह तेरा अभिराम हास!
इतना प्रकाश फिर भी निराश !

[३]
मैं बिलकुल अंध प्रकाश हीन !
पर रहता नित्य विलास लीन !
क्यों इतने अनियत चलते हैं इस दुनियामें ये रुदन त्रास ?
इतना प्रकाश फिर भी निराश !

प्रेमी, जल बहता जाता है !

[१]
प्रेमी जल बहता जाता है !
इस में प्राणों का मृदु स्पन्दन;
इस में यौवन का पागलपन,
समझ न कोई पाता, ना जाने यह क्या कहता जाता है !
प्रेमी, जल बहता जाता है !

[२]
यह अन्तर की अस्फुट भाषा !
इस की भी कोई परिभाषा !
जो कुछ यह कहता है इसके अन्दर ही रहता जाता है !
प्रेमी जल बहता जाता है !

[३]
पटका पटका सिर पत्थर पर
गाता यह किस करुणा के स्वर!
यह उर के निःसीम दाह को शीतल हो सहता जाता है !
प्रेमी, जल बहता जाता है !

सूचना— 'गुरुकुल' के प्रेमियों को यह जानकर अत्यन्त हर्ष होगा कि गुरुकुल का आगामी २७ वां अंक 'ऋष्यंक' के रूप में १० नवम्बर को निकलेगा।

चौधरी दुलाराय के प्रबन्ध से गुरुकुल मुद्रणालय गुरुकुल कांगड़ी में मुद्रित तथा प्रकाशित।

* ओ३म् *

मूल्यङ्क   "ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत"   Reg. No. A. 2927

गुरुकुल

सम्पादक—साहित्यरत्न पं० हरिवंश वेदालङ्कार

एक प्रति का मूल्य -)   [गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख-पत्र]   वार्षिक मूल्य २॥)

वर्ष ४]   गुरुकुल काङ्गड़ी, शुक्रवार २५ कार्तिक १९९६; १० नवम्बर १९३९   [संख्या २७

दयानन्द

वह मनुष्य और उसका कार्य

[ले०—श्री अरविन्द, पाण्डीचेरी]

उन विशेष महत्वशाली व्यक्तियों की पंगत में जिन्हें आने वाली संतति भारत के पुनरुद्धार करने वालों में अग्रणी करके गिनेगी, एक व्यक्ति है जो अपनी अनूठी और अपनी अनुपम विशेषता के कारण स्पष्ट औरों से जुदा खड़ा हुवा दृष्टिगोचर होता है, वह अपने ढंग का निराला है जैसे कि वह अपने काम में भी औरों से निराला है। यह ऐसा है जैसे कोई बहुत समय तक एक पर्वत शृङ्खला के बीच घूमता है जिसमें के पर्वत यद्यपि कम और अधिक ऊंचाई के हैं पर वे सब दूर तक एक जैसे आकार-प्रकार वाले हरियाली से आच्छादित हैं, उनकी अधिक से अधिक बढ़ी चढ़ी और ध्यान आकर्षित करने वाली ऊंचाई भी आंखों को खलती नहीं है। किन्तु उन सबके बीच में एक पहाड़ है जो उसे स्पष्ट जुदा ही दिखाई देता है। मानो निरा बल ही मूर्त्तिमान् होकर पहाड़ के रूप में खड़ा होगया है, खुला और सुदृढ़ ठोस चट्टान का एक विशाल ऊंचा ढेर जमा है, हरियाली से भरी हुई इसकी चोटी पर खड़ा एक सनोवर का वृक्ष आकाश से बातें कर रहा है, शुद्ध, प्रबल और उपजाऊ शक्ति वाले जल का एक सुविशाल जल-प्रपात मानो उसके इस शक्तिपुंज में से ही फूट फूट-कर निकल रहा है जो कि इस सारी घाटी भर के लिये पानी का ही क्या किन्तु स्वयं स्वास्थ्य और जीवन का ही झरना है। यह है छाप जो मेरेपन पर दयानन्द के व्यक्तित्व की पड़ती है।

यह काठियावाड़ की भूमि थी जिसने इस महा शक्तिशाली पुनरुद्धारक और नव-निर्माणकर्त्ता को जन्म दिया। और इस विलक्षण भूमि के स्वभाव का, इसकी आत्मा का ही मानो कुछ अंश इसकी आत्मा में प्रविष्ट होगया था; गिरनार का, इसकी चट्टानों और पहाड़ का कुछ अंश, उस समुद्र की शक्ति और गर्जन का कुछ अंश जो आवाज़ करता हुवा इस प्रदेश के किनारों पर टकराता है; और कुछ अंश वहां की उस मानवता का जिसे प्रकृति देवी ने अपने अकलुषित और विशुद्ध तत्व से बनाया दिखायी देता है, जो शरीर में सुन्दर और बलिष्ठ है, अम्लान नूतन प्राण-शक्ति से उज्जीवित है और जो अविकसित प्रकृति में अपरिपक्व अवस्था में है पर एक विकसित प्रकृति वाले पुरुष में रमणीय निर्माण कर सकने की महाशक्ति बनने की योग्यता रखती है।

जब मैं अपनी भावना का अपने सन्मुख ब्यौरा उपस्थित करने का यत्न करता हूं और अपने पर पड़ी छाप को ठीक-ठीक रूप देने की चेष्टा करता हूं तो इस पुरुष के उन दो महान और सुप्रकट विशेष गुणों से प्रारम्भ करता हुवा अपने को पाता हूं जो विशेष गुण इसे अपने समकालीनों और साथियों से स्पष्ट जुदा लक्षित करते हैं। अन्य महान भारतीयों ने जाति के आध्यात्मिक उपादान में अपने आप के एक प्रकार के उंडेलने द्वारा आज के भारत के बनाने में सहायता दी है। उन्होंने एक चलायमान और अनिर्धारित द्रव्य में अपने आपका आध्यात्मिक निषेचन किया जो द्रव्य एक दिन स्थिरता में आयगा और प्रकृति के एक महान दृश्य जन्म के रूप में प्रकट होगा। उन्होंने एक प्रकार का जामन दे दिया, आकार रहित हलचल और संक्षोभ की एक शक्ति दे दी जिसमें से आकारों का प्रकट होना आवश्यक था। वे स्मरण किये जायेंगे ऐसी महान आत्माओं और महान प्रभावों के रूप में जो भारत की आत्मा में निवास करते हैं। वे हमारे अन्दर हैं और उनके बिना निःसन्देह हम वह न होते जो कि आज हम हैं। परन्तु किसी ठीक ठीक आकार को लेकर यह नहीं कहा जा सकता कि यह है जो उस मनुष्य को अभिप्रेत था, यह कह सकना तो दूर रहा कि यह आकार है जो कि उस आत्मा का ही ठीक मूर्त्त रूप है।

इस विलक्षण क्रिया के नमूने के तौर पर, जो क्रिया कि एक बृहत् और जटिल रचना कार्य के समय बिलकुल आवश्यक होती है, मेरे मन के सामने महादेव गोविन्द रानाडे का दृष्टान्त आ उपस्थित होता है। यदि कोई विदेशी हमसे पूछे कि इन महाराष्ट्रीय अर्थशास्त्री, सुधारक देशभक्त ने कौनसा वह विशिष्ट कार्य किया है जिसके कारण तुम अपनी स्मृति में उन्हें इतना ऊंचा स्थान देते हो तो हमें

उत्तर देने में कुछ कठिनाई प्रतीत होगी। हमें मनुष्यों के समवाय की उन हलचलों की तरफ संकेत करना पड़ेगा जिनमें कि उनकी आत्मा और विचार एक अमूर्त्त निर्माता के रूप में विद्यमान थे, हमें आज के भारत के उन महान व्यक्तियों की तरफ इशारा करना पड़ेगा जिन्होंने इनकी आत्मा से आये हुवे प्राण को ग्रहण किया था और अन्त में हमें ऐसा प्रति प्रश्न करके अपने उत्तर को समाप्त करना होगा "भला, महादेव गोविन्द रानाडे के बिना आज का महाराष्ट्र क्या होता? और महाराष्ट्र के बिना आज का भारत क्या होता?" परन्तु उन लोगों के विषय में भी जो वस्तुओं और मनुष्यों पर अपना दबाव पड़ने में इनकी अपेक्षा कम आकाररहित और बिखरने वाले थे, उन कार्यकर्त्ताओं के विषय में भी जो अधिक सुप्रकट शक्ति और क्रिया वाले थे मेरे मन पर मूलतः यही छाप पड़ती है।

यदि कोई शक्ति की आत्मा हो सकती है तो विवेकानन्द शक्ति की आत्मा ही थे, वे मनुष्यों के बीच में साक्षात् सिंह थे, पर जो कुछ निश्चित कार्य वे पीछे छोड़ गये हैं वह उनकी रचना करने की शक्ति और सामर्थ्य की हम पर पड़ी छाप की दृष्टि से बिलकुल असम-परिमाण है। हम उसके प्रभाव को अब भी बहुत बड़ी मात्रा में काम करता हुआ अनुभव करते हैं, हम अच्छी तरह नहीं जानते कैसे, हम अच्छी तरह नहीं जानते कहां, किसी वस्तु में जो अभी तक आकार में नहीं आयी है कुछ कुछ सिंह सदृश, महान्, अन्तः प्रेरणा करने वाली, ऊपर उठाने वाली वस्तु अनुभूत होती है जो भारत की आत्मा में प्रविष्ट हो गयी है और हम कहते हैं 'देखो, विवेकानन्द अपनी माता की आत्मामें उनके पुत्रों की आत्माओं में अभी तक जीवित हैं"। यही बात सब के विषय में है। न केवल ये पुरुष अपने कार्यों की इयत्ता की अपेक्षा अधिक महान् थे, किन्तु इनका प्रभाव इतना फैला हुआ और अमूर्त्त था कि इसका इनके किसी मूर्त्त कार्य के साथ जिसे ये पीछे छोड़ गये हैं कुछ विशेष संबन्ध स्थापित नहीं किया जा सकता।

दयानन्द की कार्य शैली बिलकुल भिन्न थी। वह मनुष्य था जिसने वस्तुओं की अनिर्धारित आत्मा में आकाररहित तौर पर अपने आपका निषेचन नहीं किया था किन्तु वस्तुओं और मनुष्यों पर अपनी आकृति की अमिट तौर पर, जैसे पीतल में मुद्रा अङ्कित कर दी हो, छाप लगादी थी। वह मनुष्य था जिसके साकार कार्य उसके आत्मिक शरीर से उत्पन्न उसके पुत्र ही थे, सुन्दर बलिष्ठ और प्राण से परिपूर्ण, बिलकुल अपने जन्मदाता की प्रतिकृति-रूप पुत्र थे। वह वह मनुष्य था जो निश्चित तौर पर और साफ साफ उस कार्य को जानता था जिसे करने के लिये वह भेजा गया था, जिसने आत्मा की साधिकार दिव्य दृष्टि से देखकर अपना साधन सामग्री का चुनाव किया तथा अपनी स्थिति को निर्धारित किया था और फिर अपने परिकल्पित विचार को एक जन्मसिद्ध कार्यकर्त्ता की शक्तिशालिनी सिद्धहस्तता के साथ क्रियारूप में परिणत किया था। जब मैं परमेश्वर के कारखाने के इस भयावह कारीगर की मूर्ति का ध्यान करता हूँ तो मेरे सामने झुण्ड के झुण्ड चित्र आने लगते हैं जो चित्र सब के सब लड़ाई के, कार्य के, विजय के, विजयी परिश्रम के चित्र हैं। तब मैं अपने आपको कहता हूँ यह है दिव्य प्रकाश का सैनिक, परमेश्वर के जगत् का योद्धा, मनुष्यों और संस्थाओं को बनाने वाला शिल्पकार, और आत्मा के सन्मुख प्रकृति जो कठिनाइयां उपस्थित करती है उनका निर्भीक और अदम्य विजेता। इस सब कुछ को, यदि सारांश में कहदूं, तो जो जबर्दस्त छाप मुझ पर पड़ती है वह है आध्यात्मिक व्यवहार्यता की। आध्यात्मिक और व्यवहार्यता ये दो शब्द, जो कि आम तौर पर हमारी विचार कल्पना में एक दूसरे से इतने विपरीत समझे जाते हैं इन दो शब्दों को जोड़ कर बोल देना मेरी समझ में दयानन्द की परिभाषा ही कर देना है।

उसने जो काम किया उसका वास्तविक रूप क्या था इस के विचार को भी यदि हम जाने दें तो भी केवल यह तथ्य ही कि उसने इसी भावना से काम किया और इसी प्रयोजन से काम किया उसे हमारे महान संस्थापकों में एक अद्वितीय स्थान प्रदान कर देता है। उसने राष्ट्रीय चरित्र में प्राचीन आर्यतत्व का फिर से स्थापन किया। यह तत्व है जो हमें दयानन्द की यह बात बतला देता है जो मेरी दृष्टि में उसे अन्यों से भिन्न करने वाला उसका दूसरा विशेष गुण है। यह दूसरा गुण पहिले का रहस्य है। हम अन्य लोग प्रभावों की एक धारा में रहते हैं और इन प्रभावों को हम अपने अन्दर आने देते और इनके अनुसार अपने को ढलने देते हैं, इससे कुछ वस्तु आकार ग्रहण करती है और उसमें से कार्य की एक स्वल्प मात्रा उत्पन्न होती हैं, शेष सब प्रभाव बिखर जाता और फिर प्रभाव-धारा में चला जाता है। हमने किस दिशा को ग्रहण करना है इस विषय में हम अनिर्धारित मति होते हैं, अतः जो अवस्थायें और परिस्थति सामने आती हैं किसी तरह कर उनके अनुकूल ही हम अपने को बना लेते हैं। जब कभी हम खुशी से लड़ाका और संधि न करने की वृत्ति धारण करते हैं उस समय भी हम वास्तव में बहती हुई अवस्थामें और अवसरवादी होते हैं। दयानन्दने जो कुछ उसकेअन्दर प्रविष्ट हुवा उस सभी को ग्रहण कर लिया, अपने अन्दर उसे धारण किया, सिद्धहस्तता के साथ उसे वह आकार प्रदान किया जिस आकार में इसका होना उसने उचित देखा और फिर उसे उन आकारों में बाहर फैंक दिया जिन आकारों में उसका होना उसने उचित समझा। दयानन्द में जो हमें एक लड़ाकापन और आक्रामकपन लगता है वह उसके आत्म-निर्धारण के बल का ही एक भाग था।

वह न केवल प्रकृति के महान हाथों के प्रति स्वयं नमन शील था, किन्तु उसने जीवन और प्रकृति को भी एक नमन शील सामिग्री के तौर इस्तेमाल करने के अपने अधिकार और शक्ति को स्थापित किया था। हम कल्पना कर सकते हैं कि दयानन्द आज भी हम लोगों में पौरुष और क्रिया की अपर्याप्त उन्नति को देख कर हमें पुकार कर कह रहे हैं "हे भारतीयो! केवल असीम भाव में रहने तथा अनिश्चित भाव से बढ़ने से संतुष्ट मत होओ किन्तु देखो कि परमेश्वर तुम्हें क्या बनाना चाहते हैं, उसकी प्रेरणा के प्रकाश में निर्धारित करो कि तुमने आगे यह बनना है। उसे देखते हुवे उसके अनुसार अपने आप को घड़ो, जीवन में से घड़कर उसे तैयार करो। विचारक बनो, पर साथ ही करने वाले भी बनो। आत्मा बनो पर साथ मनुष्य भी बनो, परमेश्वर के सेवक बनो पर साथ प्रकृति के स्वामी भी बनो"। क्या कि यह वही है जो वह स्वयं था, वह एक मनुष्य था, जिस की आत्मा में परमेश्वर था, जिस की आंखों में दिव्य दृष्टि थी और जिस के हाथों में उस दिव्य दृष्टि के अनुसार जीवन में से आकृतियों को घड़ देने की शक्ति थी। 'घड़ना' शब्द उपयुक्त है। क्यों कि वह स्वयं चट्टान था, और उसने मानो चट्टान में भारी भारी चोटें पहुंचा कर वस्तुओं की आकृति को घड़ घड़ कर बनाया था।

दयानन्द के जीवन में हमें हमेशा इस आध्यात्मिक व्यवहार्यता का शक्तिशाली प्रवाह दिखाई देता है। सर्वत्र उसके काम पर एक स्वाभाविक शक्ति और निश्चयात्मकता की छाप है। प्रारम्भ में ही हम देखते हैं, व्यवहार्य अन्तःदृष्टि की यह कितनी दिव्य झांकी है कि वह फिर से तेज़ी के साथ भारतीय जीवन और संस्कृति के मूल तक पहुंचा और इसके आमूल नवीन जन्म के लिये उसने इसके सबसे प्रथम निकले फूल से बीज प्राप्त किया। और कैसे महान् बौद्धिक साहस का यह कार्य था कि उसने इस धर्म पुस्तक वेद का उद्धार किया जो कि अज्ञान-भरे भाष्यों से विकृत हो चुकी थी और जिसके असली अभिप्राय को भूल कर लोग गलतफहमी के कारण अपने दर्जे से घटा कर पुरानी जंगली जातियों के लेखों के बराबर समझने लगे थे। उसने वेद की इस वास्तविक श्रेष्ठता को पहचाना कि यह वह धर्मपुस्तक है जिस में इस देश और राष्ट्र को बनाने वाले पूर्वजों की गहरी और प्रबल भावना छिपी हुई है और जो दिव्य ज्ञान दिव्य पूजा और दिव्य कर्म की चर्चा से ओतप्रोत है। मैं नहीं जानता कि दयानन्द का ज़बरदस्त और मौलिक भाष्य वेद पर प्रामाणिक शब्द के रूप में सर्वमान्य होगा या नहीं। मैं खुद सोचता हूं कि इस अगाध और आश्चर्य जनक ईश्वरीय ज्ञान वेद के अन्य रूपों के खुलासा करने का कुछ सूक्ष्म कार्य अब भी शेष है। लेकिन इसका बहुत महत्व नहीं है। मुख्य बात तो यह है कि उसने वेद को भारत की युगों की चट्टान के रूप में ठीक २ पकड़ लिया और इस में अपनी सूक्ष्मदर्शी दृष्टि द्वारा जीवन की सम्पूर्ण शिक्षा, सम्पूर्ण मनुष्यता और सम्पूर्ण राष्ट्रीयता को तय्यार कर इस चट्टान पर इन के भवन को बनाने का साहसपूर्ण विचार किया। एक अन्य महान् और उत्साही कार्यकर्त्ता राममोहन राय ने बंगाल पर हाथ रखा जो सरिताओं और धान के खेतों के पास सोया पड़ा था और उसे लम्बी सुस्ती की नींद से हिला कर किस महान ध्येय तक पहुंचा दिया!! पर राममोहन राय थोड़ी दूर चल कर उपनिषदों पर ही ठहर गये दयानन्द ने उस से पार तक देखा और यह पहचाना कि हमारा वास्तविक मूलभूत बीज 'वेद' है। उसके अन्दर राष्ट्रीय स्वाभाविक अनुभूति (Instinct) थी और वह इसे समझ कर स्वभाविक अनुभूति के स्थान पर अन्तःदृष्टि (Intuition) बनाने में समर्थ हुआ। इस लिये उन ग्रन्थों को जो उसने बनाये हैं, चाहे कितने ही वे प्रचलित परम्पराओं के विरुद्ध हों, अवश्य ही गहरे रूप में राष्ट्रीय होना चाहिये।

राष्ट्रीय होने का अभिप्राय एक स्थान पर रुक जाना नहीं है। बल्कि, भूत की सञ्जीवनी शक्ति का ग्रहण कर के उसे वर्त्तमान जीवन की धारा में डाल देना ही वास्तव में पुनर्निमाण और नवीन सृजन का सबसे अधिक शक्त उपाय है। दयानन्द का कार्य वर्त्तमान सांचे में जीवन भरने के लिये इस प्रकार के नियम और भूत की भावना को फिर से लाता है। और देखो, जैसे जीवन में वैसे ही अपने ग्रन्थों में उसने उस भूत को ग्रहण किया हुआ है जो निर्मल शक्ति के प्रथम प्रवाह के रूप में है, अपने निकास के समान पवित्र है और अपने मूलभूत नियम के समीप है अतएव नित्य और हमेशा नवीन किये जा सकने योग्य है।

और जैसे उस मनुष्य में वैसे ही उस के कार्य में हम उस स्वाभाविक निश्चित परिश्रम और विशाल रचना की उस शक्ति को पाते हैं जो पूर्ण स्पष्टता, सत्य और ईमानदारी के आत्मिक तत्त्व से आती है। किसी व्यक्ति का अपने मन में साफ होना, अपने प्रति और दूसरों के साथ पूर्णतया सच्चा और सरल होना, और अपने कार्य की परिस्थितियों तथा साधनों के साथ पूरे तौर से ईमानदार होना यह हमारी टेढ़ी पेचीदा और लड़खड़ाने वाली मनुष्य-जाति में एक दुर्लभ देन है। आर्य कार्य-कर्त्ता की यह भावना है और महान् सफलता का यह एक निश्चित रहस्य है। क्यों कि प्रकृति अपने दर्वाजे पर हमेशा एक स्पष्ट सच्चे और पहचानने योग्य खटखटाने को जान लेती है और परिणाम में सजग होकर तथा पूरे यत्न से उत्तर देती है। और यह उचित ही है कि उस आचार्य की आत्मा अपने अनुयायियों पर ऐसी छाप को अपना छोड़ जाय कि भारत में किसी स्थान पर ऐसी संस्था हो जिस के बारे में यह कहा जा सके कि जब कभी कोई ऐसा काम दिखाई देगा जो आवश्यक हो और उचित हो तो उसे करने के लिये मनुष्य आगे आयेंगे, साधन मिलेंगे, और वह काम अवश्य पूरा होगा।

सत्य एक सरल सी वस्तु लगती है, फिर भी अत्यन्त कठिन है। सत्य ही वैदिक शिक्षा का मूल शब्द था

(शेष पृ० ७ पर)

गु रु कु ल

२४ कार्तिक शुक्रवार १९९६

दिवाली और आर्यसमाज

भारतीय अनुश्रुति के अनुसार, लाखों वर्ष पहले राम राज्य स्वप्न के मूर्त चित्र रूप प्रतापी राम प्रजापीड़क रावण पर विजय करके आये थे। राम पत्नी सीता को छुड़ा कर, आततायी को उचित दण्ड दे कर चौदह वर्ष के बनवास को पूर्ण कर जब अयोध्या में विराट् स्वागत समारम्भ के साथ आए थे, कहा जाता है, उस समय भारतीय प्रजा ने अपने राम राजा के स्वागत में जो प्रसन्नता प्रकट की थी, रोशनी की थी, उसी का अवशेष आज भी दीवाली के रूप में बचा हुआ है।

इतिहास तथा काल की लम्बी दौड़ में व्यक्तिगत कृति मानव जाति पर अनन्त काल तक अपने प्रभाव को अक्षुण्ण रक्खे, यह प्रायः देखने में नहीं आता। मनुष्य अपनी कृति से शाश्वत काल तक अपनी याद तो बनाये रख सकता है, पर अपनी याद से मनुष्य जीवन को सदा के लिये ओतप्रोत नहीं कर सकता। मानव जीवन समष्टि रूप से उसी समय प्रभावयुक्त होता है, जब उसके साथ किन्हीं आदर्शों का भी समन्वय हो। लंका विजय यदि राम राजा की व्यतिगत कृतिमात्र होती, तो उसकी महत्ता व्यक्तिगत ख्याति तक ही परिमित रह जाती। इतिहास-ग्रन्थों में उसका उल्लेख मात्र ही रह जाता। पर आज राम की दीवाली की इतनी हेय स्थिति नहीं है, यह आज भी भारतीयों का एक मुख्यतम पर्व है इस समय हिन्दूजाति हर्ष से पागल हो उठती है, रोशनी से अमावस को भी चमका कर, सदियों से घर कर गये वैराग्य को इस समय खुशी में भुला कर अपने वर्ष भर के आर्थिक लेखे का सिंहावलोकन करती है। इतने महत्व का पर्व ऐसे ही चल पड़ा हो, केवलमात्र एक व्यक्ति की प्रशस्ति को ही इतना महत्व दे दिया गया हो, यह समझ में नहीं आता। वास्तव में यह उस सभ्यता और संस्कृति की विजय का प्रतीक पर्व था, जिसका राम प्रतिनिधि था। उस भारतीय सभ्यता व संस्कृति का प्रतिनिधि, जिसने लाखोंवर्ष पहले सुदूर दक्षिण में जाकर वहां की विकसित सभ्यता व संस्कृति पर विजय पाई थी। यह एक सांस्कृतिक विजय थी, जिसे भारत राष्ट्र ने अपने सुनहरे काल के प्रथम परिच्छेद में किया था। अयोध्या की दीवाली भारत राष्ट्र का दीपमालिका कैसे बनी, उस की तह में यही सांस्कृतिक विजय निहित है। यह ठीक है, ईसा आदि महात्माओं का दीवाली भी मनाई जाती है, किन्तु वहां धार्मिकता के वश होकर यह मनाई जाती है। अयोध्या की दीवाली लाखों वर्षों के बाद भी आज उसी रूप में हर वर्ष नये जोश के साथ मनाई जाती है, इस में कोई ऊंचा आदर्श ही रहा होगा।

दीवाली बृहत्तर भारत के विस्तार में किये गये प्रयत्नों के प्रारम्भ का सूचक पर्व था। अयोध्या इस समय धन धान्य से भरी गयी थी, एक बड़ी विजय से विजयी राष्ट्र को जो शक्ति व धन की प्राप्ति होती है, उसकी चकाचौंध से अयोध्या विस्मित हो उठी थी। अयोध्या ने इस दीवाली पर बनवास के सालों का, उस के बाद की प्राप्ति का जो सिंहावलोकन किया था, उसीको आज भी लक्ष्य में रख कर एकहिन्दू अपने आर्थिक लेखे को देखता है। अयोध्या की दीवाली में भारतीयों के प्रसिद्ध रामराज्य का प्रारम्भ हुआ था, दीवाली के संदेश को ग्रहण कर हम भी रामराज्य का प्रारम्भ कर सकते हैं।

* * * *

अमावस की घनी अन्धेरी रात को एक दिन जब भारत राष्ट्र, मर्यादा पुरुषोत्तम राम की सांस्कृतिक विजय की खुशी में परम्परागत दीवाली को मना रहा था, उसी समय रजवाड़ों के बीच में आना सागर के किनारे, राजपुताने के प्रसिद्ध विजय स्तम्भ के पास प्रबुद्ध भारत का अरुण रूप दयानन्द अपने जीवन की अन्तिम सन्ध्या मना रहा था।

उन्नीसवें शतक के जागरूक भारत में सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक क्रान्ति करने वाले ऋषि दयानन्द ही थे। ऋषि दयानन्द ने भारत में धार्मिक व सामाजिक सुधारणा की नई लहर पैदा कर भारत के राजनैतिक विचारों में भी एक उथल पुथल मचा दी थी। * * *

ऋषि दयानन्द का ऋण समग्र भारत पर है। राष्ट्र इसे किस रूप में चुकायेगा, और इस ऋण को किस रूप में मानता है, यह प्रबुद्ध भारत का भावी इतिहास ही बता सकेगा। दयानन्द को अपना नेता व आदर्श समझने वाला आर्यसमाज ही एसा संस्थान है, जो ऋषि के सिद्धान्तों का, ऋषि के जीवन का कायल होता हुआ इस के अनुसार चलने का दावा करता है।

वैसे तो दीवाली के दिन प्रत्येक भारतीय को इस पुण्य पर्व से प्रेरणा व विचार लेने चाहिए. आर्यसमाज का इस दिन विशेष कर्त्तव्य हो जाता है, वह अपने वर्ष भर के कार्य का, पिछले सालों की कार्यपद्धति का निरीक्षण कर भविष्य के विषय में कार्य तथा कार्यपद्धति का निर्णय करे। * * *

रामराज्य ने भी दीवाली के दिन बनवास को भुला कर, भविष्य की समृद्धि को दृष्टि में रखते हुए खुशी मनाई थी।

ऋषि दयानन्द ने भी इसी दीवाली के दिन सम्पूर्ण जीवन का सिंहावलोकन कर अपनी जीवन की दीवाली मनायी थी।

आर्यसमाज अपने को रामराज्य का भी संदेश वाहक समझता है और ऋषि दयानन्द का भी वह उत्तराधिकारी है, क्या यह उसका कर्तव्य नहीं हो जाता कि दीवाली के दिन वह अपने जीवन का सिंहावलोकन कर भविष्य का मार्ग निश्चित किया करे।

उसी समय सच्ची दीवाली सम्भव हो सकेगी।

महर्षि दयानन्द में आर्षदृष्टि

[ले०—श्री प्रो० विश्वनाथ जी विद्यालङ्कार वेदोपाध्याय, गुरुकुल कांगड़ी]

महर्षि दयानन्द की पुण्यस्मृति को जागृत करने का सुअवसर आज पुनः प्राप्त हुआ है। दिवाली का दिन उसके स्वर्गवास का स्मारक है। भारत के क्षेत्र में महर्षि ने जो बीज बोया है उससे भारत में नवजीवन का शनैः २ विकास हो रहा है। संसार के सच्चे सुधारक तथा संसार को वास्तविक उन्नति के पथ पर डालने वाले वे ही महान् आत्माएं होते हैं जो कि सुधार और उन्नति के रहस्यों को वस्तुतः जानकर संसार को उस मार्ग का पथगामी बनाते हैं। यह सत्यज्ञान जो कि संसार में नवजीवन को अंकुरित करता है उपदेष्टा के आन्तरिक जीवन का परिचायक होता है। वर्तमान समय में भारतवर्ष में बड़े बड़े विद्वानों तथा राजनीतिज्ञों की संख्या कम नहीं। परन्तु भारतवर्ष की विषम परिस्थिति के सुलझाने में जो महात्मा गांधी की सूझ काम दे रही है उसके सामने राजनीतिज्ञों की राजनीतियां कुण्ठित सी प्रतीत हो रही हैं। महात्मा गांधी का यह सूझ उसके बहुत पढ़ने लिखने का परिणाम नहीं, अपितु उसके आन्तरिक आध्यात्मिक जीवन का परिणाम है। ये सूझें महात्मा गांधी की प्रखर तर्कना और ऊहापोह के परिणाम नहीं अपितु उसकी विशुद्ध आत्मा की ये विशुद्ध तथा स्वाभाविक स्फुरणाएं हैं। यह आर्षदृष्टि महर्षि दयानन्द में विशुद्ध रूप में विद्यमान थी। महर्षि दयानन्द ने विद्या के क्षेत्र में भी अच्छा नाम पाया है। परन्तु महर्षि की सफलता का वास्तविक रहस्य उस में प्रदीप्त होने वाली उसकी यह दिव्य शक्ति ही है। भारत की उन्नति में जो वस्तुएं आज विघातक रूप में उपस्थित हो रही हैं उनका स्पष्ट वर्णन महर्षि ने अपने लेखों में आज से कई वर्ष पूर्व कर दिया था। तथा जिस मार्ग पर चलकर भारतवर्ष वास्तव में अपनी उन्नति कर सकता है उस मार्ग का निदर्शन भी महर्षि ने अपनी पुस्तकों में कर दिया हुआ है। मतवादों, सामाजिक विषमताओं तथा छूआछूत के झगड़े भारत को जर्जरित कर रहे हैं। भारत के जीवन के रस को इन्होंने सुखा दिया है। इनके होते भारत का उन्नति की ओर पग बढ़ता नहीं दिखलाई देता। महर्षि ने सत्यार्थ प्रकाश में इन बाधक परिस्थितियों का स्पष्ट उल्लेख किया है, और इन परिस्थितियों को दूर करने के उपाय भी उसने सत्यार्थप्रकाश में दिखलाए हैं। भारत वर्ष की ये परिस्थितियां भारत को स्वतंत्र न होने देंगी यह सचाई महर्षि ने अपनी आर्ष दृष्टि से अपने जीवन काल में ही जान ली थी।

भारतवर्ष जब अभी गहरी नींद में सोया हुआ था उस समय महर्षि ने स्वराज्य तथा स्वतंत्रता का बिगुल बजाया था। महर्षि दयानन्द ने आर्यों की प्रार्थनाओं तथा स्तोत्रपाठों में स्वराज्य तथा स्वतंत्रता के गीत भर दिये थे, आर्यों के सामाजिक सत्संगों के गान स्वराज्य तथा स्वतंत्रता की उत्कट भावनाओं से ओत प्रोत थे। राजपूताना के राजाओं, महाराजाओं को स्वतंत्रता की राजनीति पढ़ानी महर्षि ने प्रारम्भ कर दी थी।

देश के शिल्प, कारीगरी तथा खद्दर की ओर भी उनका कम ध्यान न था। विदेशों के साथ किये गये उनके पत्र व्यवहार इस बात के साक्षी हैं कि महर्षि भारतवर्ष को स्वावलम्बी तथा स्वतंत्र रूप में देखना चाहता था। शाहपुरा के वर्तमान राजाधिराज के स्वर्गीय पिता को विशुद्ध खद्दर के पहनने की ओर महर्षि ने प्रेरित किया था और राजाधिराज ने खद्दर के वस्त्र बनवाये भी थे। स्वर्गीय राजाधिराज महर्षि के बहुत भक्त थे। महर्षि का ख्याल था कि राजाधिराज के इस ओर प्रेरित हो जाने से उनकी प्रजा भी इस ओर प्रेरित हो जायगी। महर्षि दयानन्द के सभी विचार मौलिक थे। ये विचार भारत की तात्कालिक परिस्थितियों के स्वाभाविक परिणाम चाहे न हों परन्तु आज से लगभग ६० या ७० वर्ष पूर्व इन विचारों को विशुद्ध रूप में भारत की उन्नति में कारणभूत समझ लेना और उन्हें क्रिया में परिणित करने का भी यत्न करना बिना महर्षि में आर्षदृष्टि के रहते सम्भव नहीं था। वर्तमान समय में महात्मा गांधी में भी यही आर्षदृष्टि काम कर रही है। इसीलिये भारत की वर्तमान विषम स्थितियों के सुलझाने में महात्मा गांधी सर्वोपरि समझे जाते हैं।

महर्षि के स्मारक दिन पर हमें इस आर्षदृष्टि का महत्व समझना चाहिये। विद्या अर्थात् प्राकृतिक विद्या बहुत उत्तम गुण है। इसका उपार्जन अवश्य करना चाहिये। बड़े यत्न और परिश्रम से इसका उपार्जन करना चाहिये। प्राकृतिक विद्या भी मनुष्य को आर्ष दृष्टि की थोड़ी बहुत झांकी दिखा देती है। पढ़े लिखे और अनपढ़ में स्पष्ट भेद दिखलाई देता है। पढ़ा लिखा व्यक्ति उपस्थित समस्याओं पर सोचता विचारता है और समस्याओं को सुलझाता है, परन्तु बिना पढ़े-लिखे के लिये ये समस्याएं—न हल हुई अवस्थाएं—सदा ही विद्यमान रहती हैं। प्राकृतिक विद्या भी आत्मा पर चढ़े हुए आवरण का छेदन-भेदन करती है और आर्षदृष्टि का थोड़ा बहुत स्वरूप दिखलाती है, परन्तु आर्ष-दृष्टि पैदा करने के सीधे और साक्षात् उपाय हैं, जिनका कि वर्णन आर्य सभ्यता में स्पष्ट मिलता है। महर्षि दयानन्द ने प्राकृतिक विद्या के उपार्जन के साथ २ आर्ष दृष्टि के उपार्जन के उपायों को भी अपनाया था; और बड़े यत्नों से अपनाया था। मनुष्य में यदि आर्ष दृष्टि विद्यमान हो जाय तो उस के जीवन में सफलता का अवश्य राज्य होगा। ऐसा व्यक्ति जहां अपना भला कर सकता है, साथ २ वह संसार का भी भला करता है। बिना आर्ष दृष्टि के उपदेश परम्परा का होना मानों अन्धे लीडरों का अन्धे अनुयायियों को रास्ता दिखाना है। इस लिये आज के दिन हमें सङ्कल्प करना चाहिये कि हम इस आर्ष दृष्टि के उपार्जन के लिये भी यत्न करते रहेंगे। यदि हम इस ओर यत्न करेंगे तो दिवाली का यह दिन हमारे लिये अवश्य सौभाग्य का दिन होगा और आज के दिन महर्षि की पुण्यस्मृति सफल समझी जायगी।

हमारी वेदार्थ शैली

[ले० श्री पं० विद्यानन्द जी वेदालङ्कार]

"परमेश्वर सबका भला करे" यह वाक्य सबके हित के लिये एक प्रार्थना है। किन्तु, व्यवहार में, हम इसे इस अर्थ में बहुत कम प्रयोग करते हैं। प्रायः लोग इसे अपनी निराशा का आवरण बनाते हैं।

एक आदमी ने युद्ध में अपना नाम लिखाया—अन्त में जाते समय वह परिवार वालों से विदाई मांगने लगा, तो, रोते हुए गले के साथ हंस कर उसने कहा—"नमस्ते! परमेश्वर सब का भला करे।" "प्रभु! तुम्हें सकुशल रक्खे।" इस प्रार्थना को माता ने उसके जाने के बाद आस्मान की ओर ताक कर कहा। ये दोनों ही वाक्य निराशा में प्रभु का सहारा मान कर आशा की ओर झुकने के प्रयत्न हैं। वास्तव में व्याकरण एवं शब्दार्थ-शैली के मुताबिक जो बात कामना की गई है सुनने वाले उस से ठीक भिन्नभाव लेते हैं। संगी साथी सज्जन, माता को समझाने लगे—"वीर पुरुष है। देश के लिये जाता है। परमेश्वर ज़रूर उसका भला करेंगे। चलो!, घर चलो!! खाओ, पिओ! फिकर छोड़ो!!"

प्रायः "तुम्हारा भला हो" "सब का भला करे" निराशा में ही कहा जाता है। परन्तु कभी २ विरोध के लिये भी कहा जाता है। दो आदमी बहस करते हैं—एक बेबस होजाता है। वह कहता है—"खुश रहो भाई! तुम्हारी ही बात ठीक है। बस करो" "चुप भी हो जाओ" परन्तु दूसरा इसे सुन कर नाराज़ हो जाता है, चुप नहीं होता। आखिर, उस के अन्य सभी श्रोता विरोधी हो जाते हैं। वे कहते हैं "अब चुप भी हो जाओ, उसने तुम्हारी बात तो मान ही ली" इत्यादि। वह इसे झूठ समझता हुआ भी दस आदमियों के कहने से चुप हो जाता है।

वास्तव में उसके असन्तोष का कुछ कारण यहां है। परन्तु वह भाव में है, वाक्य में नहीं। दस आदमी या राज्य किसी व्यक्ति की 'क्रिया—या जाहिर विचार' पर कानून लगाते हैं, इच्छा पर नहीं। अतः दस आदमी उसके असन्तोष को गैरवाजिब बताते हैं

आप बच्चे को प्यार से थप्पड़ मारते हैं और कहते हैं, "बड़ा दुष्ट है परन्तु वह हंसता है। किन्तु यदि कभी नाराज़ होकर डांटते हुए कह देते हैं,"बड़ा दुष्ट है" तो वह रोने लगता है। अब "बड़ा दुष्ट है" वाक्य तो एक ही बोलते हैं। परन्तु तो भी स्वर भेद के कारण वह मनोभाव का व्यक्त करके, थप्पड़ तथा डांट में थप्पड़ का ही मुलायम एवं अच्छी चीज़ जाहिर करता है। थप्पड़ से प्यार किन्तु डांट से भय कितना बड़ा भेद है। जो केवल स्वरभेद का परिणाम है। ठीक इसी प्रकार "तुम्हारी बात ठीक नहीं, तुम बहुत बोलते हो" इत्यादि भाव रख कर कहे वाक्य में तथा "तुम खुश रहो भाई! तुम्हारी ही बात ठीक है।" "बस करो" "चुप भी होजाओ" इनका जो सीधा सादा अर्थ स्वर, लहजा Tone का बिना ख्याल किये दस आदमियों ने किया—उस में बहुत फर्क है। वास्तव में भाव या इच्छा सदा वाक्य तथा क्रिया में जाहिर होती रहती है। किन्तु स्वर, (लहजा एवं Tone) के ज्ञान के अभाव में हम ख्याल नहीं करते। अतः हमारा कानून तथा निर्णय सन्तोषप्रद नहीं होता। वर्तमान में, तो कानून की वैज्ञानिक आधार शिला में भी उसकी उपेक्षा की जाती है। यही कारण होता है, कभी२कोई आदमी दस आदमियों को दोषी बताने लगता है। तब लोग उसे ज़िद्दी, और मूर्ख पता नहीं क्या २ साबित कर देते हैं। वास्तव में यह अयोग्यों का निर्णय है। इस के लिये Tone लहजा या स्वर का ज्ञान तथा मनोभाव को समझने की बुद्धि होनी आवश्यक है।

इस प्रकार आपने देखा, कि, वाक्यार्थ करने के लिये केवल व्याकरण एवं निरुक्त से ही काम नहीं चल सकता किन्तु स्वर विज्ञान तथा मनोविज्ञान भी आवश्यक है।

एक बार एक आदमी एक अपने साथी को झूठा साबित कर रहा था। वह युक्ति देता था कि "वह गुस्से वाला आदमी है।" कई उदाहरण देकर उसने यह साबित भी किया "उसने राह चलते मुझे रोक कर ये बात कहीं थीं" तब वह उसे झूठा कहकर मुझसे सम्पति मांगने लगा। मैंने कहा-कि-"मैं उसे गुस्सेवाला मान सकता हूं- किन्तु, झूठा नहीं।" वह काफी ज़ोर देकर कहने लगा, किन्तु मैं समयाभाव से रुका नहीं चलता गया।

मुझे पता चला था कि एकबार किसी ने आर्यसमाज कलकत्ता की अन्तरंग-सभा में कहा कि "वे व्याख्यान देने में अयोग्य साबित हुए हैं-अतः प्रबन्ध एवं हिसाब किताब के निरीक्षण के काम में भी अयोग्य ही रहेंगे।" यद्यपि दोनों का कोई सम्बन्ध नहीं।

निन्दा तथा खुशामद के वातावरण में हमारी आदत यही है कि हम एक के भाव के समान ही अपने भाव बनाकर वोट दे देते हैं। बहु सम्मति बनाकर हम अपने को सच्चा मान लेते हैं। यह दार्शनिक ज्ञान शून्य अविद्वान लोगोंकी ग़लती है। अतः दर्शन अनुभव इतिहास, भाषा विज्ञान, मनोविज्ञान, व्याकरण, निरुक्त एवं भौतिक-विज्ञान आदि सभी विषयों का ज्ञान होने पर ही किसी विषय पर कहे वाक्य को ठीक समझ सकते हैं। अतः केवल वैयाकरणों को वेदार्थ करनेमें नहीं लगाया जासकता न केवल निरुक्त एवं व्याकरण के जानकार को किन्तु इन सभी विषयोंके जानकार का हमें वेदार्थमें लगाना होगा।

आजकल वेदार्थ में बहुत पंडित लगे हैं और कोशिश पूर्वक कई व्याकरण की बदौलत ही तथा कई व्याकरण एवं निरुक्त की बदौलत अपनी धाक जमाकर वेदार्थ कर लेते हैं। परन्तु यह शैली हमारी बहुत सी कोशिशों को बेकार साबित करेगी। हमें इन सब विषयोंके विद्वानों का वेदार्थ लेखक तथा इन में से एक २ विषय के विद्वान् को उनका सहायक नियुक्त करना चाहिये। इस विवेचना से आप भली प्रकार समझ सकेंगे, कि वेदार्थ ज्ञान के लिये

गुरुकुल शिक्षा कितनी उपयुक्त है। मैं कह सकता हूँ कि इस विषय में सदा सावधानी पूर्वक गुरुकुल स्नातकों के नेतृत्व में वेदार्थ-कार्य सम्पन्न कराना चाहिये। वर्तमान में सर्वोत्तम विचार एवं शैली उन्हीं की होगी। क्योंकि गुरुकुल का "वेदालंकार" इन सभी विषयों से परिचित होता है। साथ ही आर्य समाज के सिद्धान्त वह नाना देशी तथा विदेशी धर्मों की तुलना द्वारा सीखता है। जो इस विषय के लिये सर्वोत्तम होने की प्रामाणिक गारण्टी है। साथ ही वह आपके सामने जिम्मेवारी-आर्यसमाजी होने की दृष्टि से, तो देता ही है। साथ ही पूर्ण समझदारी तथा योग्यता के साथ होने की जिम्मेवारी भी उठाता है। आजकल भाष्यों में यूरोप के विचार जिनका कभी वही पण्डित दूसरे मन्त्रों की व्याख्या में खण्डन करते हैं—किसी मन्त्र की व्याख्या में उसकी पुष्टी भी कर देते हैं। यहां तुलनात्मक अध्ययन से निर्लीन विचारों वाले विद्वान्-स्नातकों की कमजोरी नहीं हो सकती। आशा है कि प्रामाणिक भाष्य के लिये हम ओछे प्रयत्न का सिर्फ त्याग ही नहीं करेंगे-किन्तु मेरे लिये गुरुकुल के स्नातकों तथा गुरुकुल के नेतृत्व में ही आशा करेंगे। यदि व्यावहारिक कोई कठिनाई इस विषय में हो तो सार्वदेशिक सभा, प्रान्तीय सभाओं एवं प्रादेशिक सभा के अनुभवी अधिकारी-वर्ग, तथा वेदभाष्य में लगे जिम्मेदार व्यक्ति तथा विद्वान् मिलकर निश्चय कर लेंगे। मैं आशा करता हूँ कि सभी का ध्यान विषय की ओर जायगा; ताकि इस महान् कार्य में मतैक्य तथा संगठन की विरोधी भिन्न २ भाष्यों को प्रामाणिक मान कर चलने वाले दल बनाने की भावना न पैदा हो- जो हमें बौद्धों की तरह कई दलों में बांट दे। यह समय है, इसमें सुधार हो सकता है। अन्यथा हम आर्यसमाजी मतैक्य एवं संगठन की कमी की भयंकर वातावरण का जिम्मेदारी संभालनी मुश्किल हो जायगी। मैंने इसीलिये विषय को बहुत सरल एवं विषय सूक्ष्मता में जाने से अपने को बचा कर लिखा है। ताकि सभी समझ सकें और विचार कर सकें।

बहुत से लोग समाज में अच्छा व्याख्याता होने से ही कइयों से अपने को अधिक विद्वान समझ लेते हैं। प्रायः इच्छा करते हैं कि उन्हीं की नियुक्ति की जाय। वास्तव में वेदभाष्य में अच्छी व्याख्या की जरूरत महसूस होने पर ही ऐसे लोगों को जगह दी जा सकती है। मैं कई विश्व विश्रुत-व्याख्याताओं को जो सर्वोत्तम कोटि के विद्वान् भी हैं- वेदभाष्य के लिये अनुपयुक्त समझता हूँ। लेख समाप्त करते समय ऐसे विचार का प्रतिनिधित्व एक व्यक्ति ने किया। मैं उसके लिये उचित तर्क पेश कर जनता को इस पर विचार करने के लिये कहता हूँ। आशा है कि विवादास्पद विषयों पर विद्वान जनता की समझ का ख्याल रखकर सरल उदाहरणों के साथ पत्रों में लिखेंगे। विषय पर विचार का समय अभी ही है, इस समय ध्यान न देने पर पीछे कठिनाई अधिक अनुभव होने लगेगी। भाष्यों के छपने के बाद समर्थन देने के कारण, पैसा खर्च करने के कारण, प्रान्तीय या उनकी प्रामाणिक सभा का होने के कारण, इसी प्रकार अन्य कारणों के कारण गलतियों पर ध्यान दिलाना तथा मत भेद का उचित स्पष्टीकरण तैयार करना तथा कराना महान् जटिल प्रश्न होगा। सार्वजनिक हित की दृष्टि से प्रबन्ध पर ही अधिक ध्यान देने का स्वभाव अधिकारियों में छोटे से समाज से बड़ी सभा तक है। विचारात्मक विद्या सम्बन्धी क्षेत्र में वे सहायता देने का जरा कम ख्याल करते हैं। इसका भी कारण उनकी रुचि है। ऐसे विषयों पर उचित निर्णय के लिये जोर देना तथा तदनुसार होने वाले काम में सहायता देने में भी रुचि पैदा होनी चाहिये। आशा है कि विद्वान लोग उस कमी को भी दूर करेंगे। जिससे इस विचारणीय विषय पर विचारने का समय न निकल जावे।

पृष्ठ ३ का शेष

आत्मा में सत्य, दृष्टि में सत्य, इरादे में सत्य और क्रिया में सत्य। क्रियात्मक सत्य, 'आर्यत्व' आन्तरिक पवित्रता, दृढ़ सत्यता, वाणी और कर्म में स्पष्टता और पूर्ण विश्वास का होना, यह प्राचीन आर्य नैतिक आदर्श का स्वभाव था। यह एक शुद्ध और अविकृत शक्ति का रहस्य है और इस बात का चिह्न है कि मनुष्य प्रकृति में बहुत पर नहीं हट गया है। यही ईश्वर के पुत्र-'दिवस्पुत्र'-की दक्षता है। यही वह रूप थी जिसे दयानन्द अपने पीछे छोड़ गया और यही उसका अपना चित्र और प्रतिमा होनी चाहिये जिसके द्वारा कि कोई कार्य यह उस से-प्रवर्तित है इस रूप में पहचाना जा सके। ईश्वर करे उसकी भावना शुद्ध अविकृत, अपरिवर्तित रूप से भारत में काम करे और उस वस्तु को फिर से हमें देने में सहायक हो जिसकी हमारे जीवन में अत्यन्त आवश्यकता है—अर्थात् शुद्ध शक्ति उच्च-स्पष्टता, सूक्ष्मदर्शी आंख, कुशल हाथ और श्रेष्ठ तथा पूर्ण सचाई।

गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ

पाण्मासिक परीक्षा का परिणाम निकल चुका है। वर्तिक मास के तोल के साथ सब संरक्षकों के पास परिणाम पहुंच जावेगा। ऋतु स्वास्थ्यप्रद और उत्तम है। चिकित्सालय में कोई रोगी नहीं है।

विजयदशमी उत्सव विशेष समारोह से मनाया गया। चार दिन देसी खेलें, हाकी फुटबाल के सम्मुख्य बड़े जोश से होते रहे। अन्तिम दिन विजया दशमी उत्सव की सभा श्री स्वामी आत्मानन्द जी (भूतपूर्व डा० कोटा राज) को अध्यक्षता में बड़ी धूमधाम से मनायी गयी। ब्रह्मचारियों और अध्यापक महानुभावों ने वीरोत्सव में अपनी श्रद्धाञ्जलि पेश की। श्री पं० गोपाल जी का उपदेश निहायत उत्तम और शिक्षाप्रद था।

पहली नवम्बर को श्री महात्मा गांधी जी के देहली जाते समय मार्ग में तुगलकाबाद स्टेशन पर सब ब्रह्मचारियों और अध्यापक-कर्मचारी वर्ग ने उनसे भेंट की और दर्शन किये। ब्रह्मचारियों ने ५) भेंट कर श्री महात्मा गांधी जी के हस्ताक्षर लिये और अपनी सब पत्रिकायें उनको दिखलाई।

चौधरी दुलासराय के प्रबन्ध से गुरुकुल मुद्रणालय गुरुकुल कांगड़ी में मुद्रित तथा प्रकाशित।

* ओ३म् *

"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत" Reg. No A. 2927

गुरुकुल

एक प्रति का मूल्य -) [गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख-पत्र] वार्षिक मूल्य २॥)

सम्पादक—साहित्यरत्न पं० हरिवंश वेदालङ्कार

वर्ष ४] गुरुकुल काङ्गड़ी, शुक्रवार २ मार्गशीर्ष १९९६; १७ नवम्बर १९३९ [संख्या २८

पूना की बुनियादी तालीम परिषद्

[यह लेख श्री पं० हरिदत्त जी वेदालंकार का लिखा हुआ है। व तथा श्री पं० जगन्नाथ जी गुरुकुल की तरफ से प्रतिनिधि होकर इस परिषद में सम्मिलित हुए थे। गुरुकुल के पाठक इन दोनों सुयोग्य स्नातकों से परिचित हैं। ये दोनों वर्धाशिक्षा को गुरुकुलमें कार्यरूपमें परिणत करनेके लिये जहां जहां जाना जरूरी है उन सब स्थानों में जाकर अपनी विशेष शिक्षा लगभग समाप्त कर चुके हैं। अब गुरुकुल में वर्धा शिक्षण पद्धति को सफलतापूर्वक चलाना बहुत कुछ इन्हीं की योग्यता और अध्यवसाय पर अवलम्बित होगा। आशा है परिषद के इस सजीव वर्णन को पढ़कर शिक्षा में रस लेने वाले सभी पाठक विशेष लाभ उठाएंगे। —अभय]

पूना न केवल बम्बई सरकार की ग्रीष्मऋतु की राजधानी है, किन्तु दक्खन के पठार की शिक्षा की भी राजधानी है। उसे दक्खन का काशी या आक्सफोर्ड कहा जाय तो कोई अत्युक्ति नहीं। इस शिक्षा केन्द्रमें पिछले महीने के अन्त में देश भर के शिक्षाशास्त्रियों का एक महत्वपूर्ण सम्मेलन हुआ। दुःख की बात है राजनैतिक परिस्थिति संकटपूर्ण होने से इस ओर देश ने उचित ध्यान नहीं दिया है।

परिषद् बड़े अशान्त और विक्षुब्ध राजनैतिक वातावरण में प्रारंभ हुई पर यहां का वातावरण बिल्कुल शान्त रहा। कांग्रेस कार्य समिति ने यह तय कर दिया था कि मंत्रिमण्डल त्याग पत्र दे दें। १ नवम्बर को बम्बई का मन्त्रिमण्डल जिसके निमन्त्रण पर परिषद् पूना में हो रही थी त्याग पत्र देने वाला था। बीचमें एक वार सम्मेलन स्थगित करने को तार भी दिया जा चुका था। फिर भी सम्मेलन २९, ३०, ३१ अक्तूबर तथा १ नवम्बर की पहिले से ही निश्चित की हुई तिथियों पर हुआ। परिषद् में अशान्ति या अनिश्चितता की झलक नहीं थी। परिषद् के कार्यक्रम से एक बात बिलकुल निश्चित प्रतीत होती थीकि मन्त्रिमण्डल रहे या न रहे-वर्धा शिक्षा का कार्य तो चलता रहेगा।

२९ ता० को खुले आकाश के चंदवे के नीचे, टीचर्स-ट्रेनिंग कालेज में, परिषद् की बैठक प्रारंभ हुई। कार्यक्रम का श्री गणेश 'हे प्रभो आनन्ददाता ज्ञान हमको दीजिये' की प्रार्थना से हुआ। बालिकाओं के विद्याधरों अर्थात् शिक्षाशास्त्रियों के स्वागतगानके पश्चात् संदेश के बाद महात्मा जीका हिन्दुस्तानी में लिखा सन्देश पढ़ा गया। सन्देश में रसायन औषधि की तरह वर्धा शिक्षा के सभी तत्वों को अनुपात निश्चित रखने पर बल दिया गया था। बाल गंगाधर खेर ने जो अभी तक बम्बई सरकार के भूतपूर्व प्रधान मंत्री नहीं बने थे- अपने स्वागत भाषण में बम्बई के विभिन्न विभागों गुजरात, महाराष्ट्र और कर्नाटक में वर्धा शिक्षा की प्रगति का वर्णन किया। बाद में आपने वर्धा शिक्षा के मार्ग में आने वाली कठिनाइयों का बयान कर परिषद् से उनका हल बताने की प्रार्थना की। उन्होंने कहा 'सब से बड़ी कठिनाई शिक्षकों की है-जब राजगोपालाचारियर जैसे व्यक्ति भी अपने को योग्य वर्धा शिक्षा का योग्य गुरु समझने में सन्देह प्रकट करते हो तो सामान्य शिक्षकों की तो बात ही क्या है। वर्तमान समय में प्राथमिक शालाओं में मेट्रिक के दर्जे के शिक्षक होते हैं पर वर्धा योजना का पाठ्यक्रम इतना विस्तृत है कि उनसे अधिक योग्यता वाले शिक्षकों की आवश्यकता होगी। दूसरी कठिनाई धन की है। वर्धा शिक्षा में पिछली योजनाओं से बहुत अधिक धन लगाना पड़ता है। इन बाधाओं के दूर हो जाने पर योजना की प्रगति और भी तेज होगी।

इसके बाद परिषद् के उस रोज के सभापति श्री कृपलानी जी ने अपना भाषण प्रारम्भ किया। वह भाषण संभवतः परिषद् के चारों दिनों की सब बैठकों में दिये गये सर्वोत्तम भाषणों में से एक था। भाषण का विषय था- वर्धा योजना का दार्शनिक आधार। महात्मा जी के समन्वयात्मक दर्शन के साथ फासिज्म और साम्यवाद के एकांगी दर्शन की तुलना करते हुए आपने यह बताया कि इन दोनों में किस प्रकार व्यक्ति और समाज में सामंजस्य नहीं हो पाता। समाज व्यक्ति पर हावी हो जाता है। यह एक अन्त (Extreme) है, व्यष्टिवाद दूसरा अन्त है।

जिसमें व्यक्ति समाज पर हावी हो जाता है। दोनों ही बुरे हैं। सामाजिक व्यवस्थाओं के लिये गांधीवाद का मध्यममार्ग ही श्रेयस्कर है। उस व्यवस्था को लाने के लिये ही इस शिक्षा योजना का जन्म हुआ है। इस शिक्षा योजना का आदर्श सहयोग के आधार पर आश्रित समाज है जिसमें व्यक्ति और समाज दोनों का बराबर स्थान है। आज तक शिक्षा का आदर्श दफ्तरों के लिये क्लर्क पैदा करना था: अब शिक्षा का आदर्श उपरोक्त समाज की सृष्टि करना है। आदर्श के परिवर्तन के साथ २ पद्धति में भी परिवर्तन हुआ है। पहले की पद्धति अवैज्ञानिक थी–नूतन पद्धति सर्वथा वैज्ञानिक है।

किन्तु दुःख की बात तो यह थी कि जिस वर्धा शिक्षा में शिक्षा का आधार मातृभाषा रखा है- और अंग्रेजी को कोई स्थान नहीं दिया गया उसके समर्थन में ये सब भाषण अंग्रेजी में हो रहे थे। महात्मा जी ने अपना संदेश भी हिन्दुस्तानी में लिखा था- पर फिर भी सब कार्यक्रम अंग्रेजी में चल रहा था। काका साहब ने परिषद् का ध्यान इस ओर खींचते हुए सबको धन्यवाद दिया और 'सारे जहां से अच्छा हिन्दोस्तां हमारा' के गीत से पहले दिन की कार्यवाही समाप्त हुई।

सन्ध्या हो चुकी थी। आकाश में तारे झिलमिलाने लगे थे। 'ऊर्ध्वादिग्बृहस्पतिरधिपतिः' के मन्त्रखण्ड को शब्दशः चरितार्थ करते हुए ठीक शिरोभाग पर ज्योतिष्मान् बृहस्पति ग्रह अद्भुत कांति से चमक रहा था। ऋग्वेद में ज्ञान के अनेक सूक्तों का देवता बृहस्पति माना गया है। उस दिन वास्तव में ज्ञान का देवता बृहस्पति विद्याधरों का अधिष्ठाता बनकर सब पर प्रकाश की किरणें फैला रहा था।

२

अगले दिन से कार्यवाही Businesslike ढंग से हुई। हर रोज प्रातःकाल ७से११ तक, मध्याह्न में २ से ५ तक तथा रात्रि में ६से११ तक परिषद् की बैठकें होने लगीं। सांयकाल ६से ७ तक किसी प्रमुख शिक्षाशास्त्री का व्याख्यान भी होता था। बैठकों का प्रोग्राम पहले से तय कर लिया गया था। हरेक बैठकमें एक२ समस्या को लिया जाताथा। उस समस्या पर सब शिक्षाशास्त्री अपने २ विचार और अनुभव बताते थे। निबन्ध पढ़के अन्त में सब विचारों अनुभवों और निबन्धों के सब सामान्य तत्वों को इकट्ठा कर प्रस्ताव बना दिया जाता था। इस प्रकार बहस पहले होती थी और प्रस्ताव पीछे बनता था। यह ढंग बहुत ही उपयोगी सिद्ध हुआ। इसी कारण सम्मेलन थोड़े से समय में ही इतने अधिक विषयों पर विचार करके किन्हीं निर्णयों पर पहुंच सका। इन दिनों में परिषद् के सभापति जम्मू व काश्मीर राज्य के शिक्षा विभाग के डायरेक्टर ख्वाजा गुलाम सैयदीन बने।

२६ ता० को पहली बैठक में अध्यापकों के शिक्षण की समस्या ली गयी। निःसन्देह यह समस्या सबसे महत्व पूर्ण है। इसी पर शिक्षा का भविष्य अवलम्बित है। बहस को शुरू करने वाले अलाहाबाद ट्रेनिंग कालेज के डा० खां साहब थे। उन्होंने हिन्दुस्तानी में तकरीर करते हुए फर्माया कि वे किस प्रकार अपने प्रान्त में वर्धा योजना के शिक्षकों को तय्यार कर रहे हैं। १८००० प्रायमरी स्कूलों के ३० हजार शिक्षकों को वे कुछ ऐसे नुस्खे देरहे हैं जिनसे स्कीम बड़ी कामयाबी से चल सके। पहले ४५ स्नातक शिक्षित किये गये। वे नार्मल स्कूलों में गये और अब दूसरे शिक्षकों को वे तय्यार कर रहे हैं। १ नवम्बर १९३९ को १७५० शिक्षकों का पहला दल तय्यार हो जायगा। पढ़ाई में वे केवल कताई पर ही बल नहीं देते किन्तु गत्ते के काम बागवानी और चित्र कला को भी महत्व देते हैं। इस प्रकार शिक्षा के अनेक केन्द्र होजाते हैं। चित्र कलापर उन्होंने बहुत बल दिया और अन्त में यह कहा कि यू०पी० सरकार इस योजना पर ३, ४ लाख रुपया खर्च कर चुकी है और डायरेक्टर साहब ने मुझे चलते समय कहा था कि अब चाहे काँग्रेसी मन्त्रि-मंडल बने या बिगड़े हमने इस स्कीम को चलाना ही है। इसके बाद बम्बई के एक सज्जन ने बम्बई में अध्यापकों को दिये जाने वाले शिक्षण पर प्रकाश डाला और यह बहस ११ बजे तक चलती रही। बहस में मुख्यतः प्रश्न ये थे जिन पर विचार हुआ।

अध्यापक किस योग्यता के हों, वर्तमान स्थिति में मैट्रिक के या मिडल दर्जे तक पढ़े शिक्षक प्राथमिक शालाओं में कार्य करते हैं। जामिया मिलिया ने अपने यहां स्नातकों को ही शिक्षण देने का नियम बनाया है किन्तु यह नियम सार्वत्रिक नहीं हो सकता। इसमें अनेक कठिनाइयां हैं। अतः अध्यापक तो मैट्रिक दर्जे के ही रखने पड़ेंगे किन्तु उनको योजना की सारी बातों का ज्ञान दे देना चाहिये।

अध्यापकों का शिक्षण अल्पकालिक हो या दीर्घ कालिक इस समस्या पर बहुत विवाद हुआ। अल्पकालिक शिक्षा में दो बार बुलाने का झंझट रहता है और दीर्घ-कालिक में स्कीम की प्रगति बहुत मन्द पड़ जाती है। वर्धा शिक्षण पद्धति के अनुसार पढ़ाने की योग्यता अल्पकालिक शिक्षण में संभव नहीं हो सकती। इस समय देश में अध्यापकों को शिक्षित करने के जो कोर्स चल रहे हैं वे प्रायः ३ या ६ महीने के हैं। जाकिर हुसैन कमेटी की रिपोर्ट में १ साल की व्यवस्था बतायी गयी है। इसी को कायम रखने के पक्ष में बहुमत जान पड़ता था यद्यपि कई लोग इसे ३ साल तक भी बढ़ाना चाहते थे। अन्त में यही तय हुआ कि यह बात शिक्षकों की योग्यता पर निर्भर है। वे योग्य हैं तो उन्हें देर तक रोकना बेकार है।

शिक्षक की योग्यता में सबसे बड़ी योग्यता ग्रामोन्मुखता समझी गयी। अर्थात् शिक्षक का ध्यान गांव की तरफ होना चाहिये। यदि वह शहरी आदर्शों को महत्व देने वाला हुआ तो यह योजना नहीं चल सकती। वर्तमान शिक्षा ने शहरों का आकर्षण पैदा कर दिया है। अध्यापकों में तथा अध्यापकों से बच्चों में शहरों को अच्छा समझने और वहां जाने की इच्छा पैदा हो जाती है। परिणाम यह होता है कि शहर बढ़ रहे हैं और गांव उजड़ रहे हैं। इस शिक्षा का उद्देश्य ग्रामों का पुन-

नवजीवन भी है। अतः शिक्षकों को गांवों में रुचि रखने वाला और उन्हें उन्नत बनाने का प्रयत्न करने वाला होना चाहिये। यह भी आवश्यक जान पड़ता है कि अध्यापकों को शिक्षित करने की संस्थायें शहरों में न होकर गांवों में होनी चाहिये। इन संस्थाओं द्वारा गांवों की उन्नति के कार्य किये जाने चाहिये।

अध्यापकों की शिक्षण पद्धति कैसी हो इस पर बहुत बहस हुई पर निर्णय नहीं हो सका। श्रीमती आशादेवी जी का यह कहना था कि अध्यापकों की शिक्षण पद्धति भी उसी तरह मूलोद्योग से समवेत हो जिस प्रकार लड़कों की शिक्षा है। इस समय शिक्षण केन्द्रों में द्वैत पद्धति है उद्योग तथा अन्य विषयों के शिक्षक भिन्न २ हैं। हमें इस द्वैत के स्थान पर अद्वैत की स्थापना करना है। जब बच्चों का सारा शिक्षण अखण्ड Integral रखना है तो शिक्षकों का सारा शिक्षण भी अखण्ड होना चाहिये। किन्तु अधिकांश सज्जन इस विचार से सहमत न थे।

इस बात पर बहुत बल दिया गया कि प्राथमिक शाला के अध्यापक की समाज में प्रतिष्ठा बढ़ानी चाहिये। इस समय वह गांव का सबसे अभागा प्राणी है। जर्मनी में प्रारम्भिक शाला के अध्यापक का वेतन २००) है। पर यहां किसी को २०) भी मिले तो गनीमत है। परिणामतः दफ्तर में कलम घिसने वाले क्लर्क की भावी राष्ट्र निर्माण करने वाले अध्यापक से कहीं ज्यादा प्रतिष्ठा है। भारत सरकार के एजुकेशन कमिश्नर ने इस बात को बहुत महत्व दिया।

(३)

अगली बैठक में समवाय या अनुबन्ध पर विचार हुआ। समवाय की महत्ता बताने की जरूरत नहीं। वर्धा-शिक्षा पद्धति पुरानी शिक्षा पद्धति से इस अंश में सर्वथा भिन्न है। पुरानी शिक्षा पद्धति और उद्योग पृथक् पृथक् थे। नयी पद्धति में उद्योग द्वारा शिक्षा है। उद्योग के साथ पाठ्य क्रम के विषयों का समवाय किस प्रकार करना है— यह समस्या प्रायः अध्यापकों को परेशान किये रखती है। विभिन्न विषयों को उद्योग के साथ समवेत करने के प्रकारों पर कई महानुभावों ने अपने निबन्ध पढ़े। पहला निबन्ध 'समवेत गणित अध्यापन' पर था। इस निबन्ध में बताया गया था कि किस प्रकार पूनियों से जोड़ना, घटाना, सूत के फेरों से गुणा, सूत के नंबर से भाग, सूत की टूट तथा नष्ट भाग से प्रतिशतक सिखाया जा सकता है। इसके साथ ही, यह काम स्कूल में लेखा रखने के लिये भी उपयोगी हो सकता है। इसके बाद सामान्य विज्ञान और उद्योग, सामाजिक अभ्यास और मूलोद्योग तथा मूलोद्योग और भाषा के विषय पर निबन्ध पढ़े गये। यह अनुभव किया गया कि गणित के साथ समवाय करने में कोई दिक्कत नहीं है। भाषा में भी यह कुछ दूर तक चल सकता है। पर बाकी विषयों को उद्योग द्वारा संबद्ध करने में कुछ कठिनाई है। इतिहास में समवाय बहुत कठिन है। अकबर और तकली दोनों का जोड़ना आसान नहीं। समवाय स्वाभाविक होना चाहिये। यदि समवाय कृत्रिम हुआ तो उसका कोई लाभ नहीं होगा बहस कुछ नीरस सी होरही थी कि एक महानुभाव ने उठकर यह कहना शुरु किया कि समवाय केवल भ्रम तथा हेत्वाभास मात्र है। उनकी युक्तियों का सार यह था कि "समवाय शब्द भ्रामक है। समवाय के शब्द से ही द्वैत सूचित होता है— एक ओर उद्योग है तथा दूसरी ओर विषय। हमने इन दोनोंको जोड़ना है। जब हम यह कहते हैं कि हमने उद्योग के साथ विषय जोड़ने हैं तो अर्थापत्ति से हम विषयों का महत्व सूचित करते हैं। वास्तविक स्थिति यह है कि उद्योग महत्व पूर्ण है। उद्योग ही जीवन है। अतः समवाय को बिल्कुल भ्रामक जानकर हमें इसका परित्याग करना चाहिये"। पर उनको अपने विचारों का समर्थक कोई दूसरा व्यक्ति नहीं मिला। सारी शिक्षा, उद्योग को केन्द्र बना कर देना अशक्य नहीं तो कठिन अवश्य है। इसलिये दो अन्य केन्द्रों को भी शैक्षणिक संभावनाओं से समान रूप से पूर्ण जानकर उनके उपयोग की आज्ञा दी गयी। वे दो केन्द्र हैं— सामाजिक परिस्थिति तथा प्राकृतिक परिस्थिति। शिक्षा की परिधि इन तीनों केन्द्रों के चारों ओर घूमनी चाहिये। रामनवमी या विजयादशमी का त्यौहार है तो शिक्षक रामायण को उस से संबद्ध कर के पढ़ा सकता है। वर्षा का दिन है तो शिक्षक पानी का भाफ बनकर उठना, बादल बनना और बरसना यह सब प्राकृतिक घटनायें उस दिन से समवेत करके बता सकता है।

जो ज्ञान किसी प्रकार समवेत न होसके, उसके साथ क्या करना चाहिये, उसे छोड़ देना चाहिये या साधारण रीति से पढ़ाना चाहिये, इन प्रश्नों का कोई निर्णय नहीं हुआ।

रात को कोटिलेशन के उपयुक्त अनुवाद पर चर्चा हुई। काकासाहब इसका अनुवाद 'अनुबंध' से करना चाहते हैं बिनोबाजी 'समवाय' शब्द से तथा आचार्य अभयदेव जी 'परस्पर संबन्ध' 'सहसंबन्ध' या 'मिथः संबन्ध' से। तीनों शब्द हिन्दुस्तानी नहीं हैं यानी बोलचाल की भाषा में नहीं बोले जाते। मुसलमानों के लिये बहुत क्लिष्ट हैं। 'कोटिलेशन' के सब शब्दोंको रत्तन से बनाते हैं जो हिन्दी भाषा भाषियों के लिये कठिन है। इन दोनों के बीच का कोई मध्यम मार्ग ढूंढना पड़ेगा, किन्तु अभी तक वह मार्ग नहीं ढूंढा जासका। (अग्रिम अंक में समाप्य)

गुरुकुल कांगड़ी के ब्रह्मचारियों को स्वामी शिवानन्द जी का सन्देश

प्रिय अमृत पुत्रो,

तुम्हारे में मातृ भूमि के भविष्य की आशा निहित है। तुमने आगे चल कर नागरिक बनना है। तुम्हें सदा जीवन के उद्देश्य का चिन्तन कर, उस पर पहुंचने के लिये जीवन यापन करना चाहिये। जीवन का उद्देश्य सब प्रकार के दुःखों से छुटकारा पाना या जीवन मरण के आवागमन से छूट कैवल्य को पाना है। एक सुनियन्त्रित नैतिक जीवन बिताने का व्रत करो। नैतिक बल आध्यात्मिक साधना का मुख्य अंश है। ब्रह्मचर्य के द्वारा प्राचीन देवों ने अमरता को प्राप्त किया है। यह नवीन बल, तेज, प्राण—

देखिए पृष्ठ ७ पर

गु रु कु ल

२ मार्गशीर्ष शुक्रवार १९९६

दयानन्द और वेद

[ले०—श्री अरविन्द पाण्डीचेरी]

दयानन्द ने वेद को दृढ़ आधार शिला बनाया। वे इसको अपने जीवन का मार्गदर्शक, अपने अन्तस्तत्व का नियम और बाह्य कार्य का प्रेरक समझते थे। इतना ही नहीं पर वे इसको शाश्वत सत्य का वचन मानते थे जिसके द्वारा मनुष्य को ईश्वर के विषय में तथा अपना दिव्य पुरुष एवं अपने सहवर्तियों से सम्बन्ध के विषय में ठीक ठीक और दृढ़ ज्ञान प्राप्त हो सकता है। बहुत से लोग कहते हैं कि वेद की यह नित्य चट्टान है ही नहीं, इसमें सिवा पुराने काल के गडरियों के गीतों के और कुछ नहीं, यह केवल प्राकृतिक घटनाओं को पुरुष मानकर की गई भद्दी पूजा है बल्कि इसमें भी घटिया यह कहा जा सकता है कि इसमें कर्मकाण्ड में बोले जाने वाले अधार्मिक या अर्ध जादू भरे स्तोत्र हैं और इनको पढ़कर आदि काल के अन्ध श्रद्धालु पशु प्राय मानव आशा करते थे कि इनसे सुवर्ण, अन्न और पशु मिलेंगे, हम अपने शत्रुओं का निर्दयतापूर्वक नाश कर सकेंगे, अपने को रोगों, अनर्थों एवं राक्षसी प्रभावों से बचा सकेंगे और इस प्रकार इहलौकिक स्वर्ग के स्थूल आनन्द को भोग सकेंगे। इसके साथ हमें परम्परा गत दृष्टिबिन्दु को भी विचारना चाहिए जो कि सायण के भाष्य से पैदा हुआ है। इस दृष्टिकोण से, वेद के तत्व की क्रियापरक अशिष्ट व्याख्या की गई है तथापि—या, क्या इसी कारण?—इस प्रारम्भिक गड़बड़ वाली चीज को धार्मिक शास्त्र और पवित्र कर्म के ग्रन्थ के रूप में श्रेष्ठ माना जाता है।

अब यह विषय केवल विद्वानों का प्रश्न नहीं बना रह सकता। इसकी महान महिमा है। और वह महिमा केवल दयानन्द के कार्यों का अन्दाज़ लगाने के लिये ही नहीं बल्कि हमारे भविष्य बनाने वाले भूतकाल के अनुभवों और ज्ञान के लिये भी है। राष्ट्र का भावी उन्नति उस शक्ति पर निर्भर है जो उसके पास भूतकाल में थी तथा इस समय है। इस उन्नति में ज्ञान व अज्ञान पूर्वक राष्ट्र के कर्जों का हिसाब करने का समय आता है। ऐसे समय राष्ट्रीय आत्मा अपने विकास एवं भावी कार्यों के लिये द्रव्य और पूंजी की आवश्यकतानुसार जो उसके पास था और इस समय पा रहा है—उस सब में चुनाव, परिवर्तन, अस्वीकार और परित्याग करना है। इस प्रकार के समय में हम अब भी रह रहे हैं तथा दयानन्द इसका महान एवं मूर्तमान आत्माओं में से एक था। परन्तु हमारे भूतकाल के समस्त पदार्थों में वेद सबसे अधिक पूज्य हैं और प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से सबसे अधिक प्रतिभाशाली रहे हैं। उस समय भी जबकि इसका भाव समझ में न आता था, और इसकी परम्परायें पौराणिक रंग रूप के पीछे नष्ट हो चुकी थी, अज्ञान में रहते हुए भी इसको एक प्रामाणिक दैवी प्रकाश और ज्ञान का ईश्वरीय पुस्तक तथा समस्त प्रमाणों एवं सारे सत्य के मापक बिन्दु के निकास के नाते पर आदर दिया जाता था।

परन्तु वेद के विषय में हमेशा से यह दुहरी और परस्पर असंगत परम्परा रही है। कई लोग इसे पौराणिक कथा की पुस्तक मानते हैं तथा कई उसे दैवीय ज्ञान का ग्रन्थ मानते हैं। पहली परम्परा का ब्राह्मण तथा दूसरी को उपनिषद् पुष्ट करते हैं। पीछे से शिक्षितों ने इसको कर्मकाण्ड के तत्व का ग्रन्थ माना। वे विशुद्ध ज्ञान की प्राप्ति के लिए अन्य शास्त्रों का सहारा लेते थे। परन्तु जाति का सहजवृत्ति, वेदों को उच्च मानने वाली परम्परा की अदम्य एवं अस्पष्ट स्मृति के कारण इसके सामने झुकती थी और जब हमारे युग में, इस सम्मान करने हुए की गई भूल के पर्दे के पीछे, वेदों की धुंधली महत्ता प्रकट की गई तो पुनः वैसा ही दृश्य उपस्थित होता है। जब पाश्चात्य विद्वानों ने सायण के निर्देशों का विस्तार करते हुए कर्मकाण्ड परक स्तोत्रों को प्राकृतिक देवता परक करके श्रेणीकरण किया तो जाति के विद्वानों ने दयानन्द की आंखों से देखते हुए अनेक शताब्दियों की भूल को दबा और अनन्त काल के दैवी प्रकाश के अन्त नि तथा मानव जाति को दिये गये दैवी सत्य को सिद्ध किया। किसी भी अवस्था में हमें एक पक्ष का चुनाव करना पड़ेगा। हम अब अधिक देर तक वेदों को अज्ञान पूर्ण आदर की तह में लपेटकर या धार्मिक आत्म-रक्षना से रक्षित करके दृढ़ता पूर्वक पवित्र नहीं मान सकते। अगर वेदों को सायण के कथनानुसार माना जाए तो हमें इनको सत्य के लेश एवं बुद्धिगम्य विषयों से रहित पौराणिक कथा तथा कर्मकाण्ड के ग्रन्थ के रूप में छोड़ देना होगा और यदि वेदों को पाश्चात्यों के कथनानुसार माना जाय तो इनको अद्र असभ्य जाति की पूजा का निराली यादगार के रूप में भूतकाल के अवशेषों में स्थान दे देना होगा और यदि वेद दैवीय ज्ञान का ग्रन्थ है तो हमारे लिए उसका जानना और सुनना सर्वोपरि महत्व का हो जाता है।

दयानन्द कृत वेद के अर्थों पर आरोप लगाया जाता है कि यह सत्य अर्थ नहीं है पर बुद्धियुक्त एवं प्रतिभासम्पन्न कल्पना की मनमानी कपट रचना है। उसकी शैली को दोष दिया जाता है कि यह धर्मान्धता पूर्ण तथा समालोचनात्मक तर्क से अस्वीकार्य है। उसके वेद का ईश्वरीय शास्त्र कहने पर आपत्ति उठाई जाती है कि यह विचार अन्धविश्वास है जिसे दुनिया ने छोड़ दिया है तथा शिक्षित मनुष्य के लिए इसकी स्वीकृति एवं गम्भीरता से घोषणा करना असम्भव है। मैं इस समय दयानन्द कृत वेदभाष्य में ठीकपन है या नहीं यह नहीं देखूंगा। इस भाष्य पर भावी में क्या न्याय दिया जायगा उसकी भविष्यवाणी नहीं करूंगा और दैवी प्रकाश के

सिद्धान्त पर विवाद नहीं छेड़ूंगा। मैं केवल ग्रन्थःस्थित विस्तृत सिद्धान्तों तथा मेरे सामने प्रस्तुत दयानन्द के वेद विषयक विचार का वर्णन करूंगा। क्योंकि मेरी समझ में महान् आत्मा या महान् व्यक्ति के कार्य और विचार में, वेदों को जो इसने रूप दिया वह नहीं पर अपने कार्य में जो सहायक शक्ति उसने सामने रखी वह है। तथा उसका महात्म्य उस सहायक शक्ति के द्वारा प्रकट होता है जो उसने मानवीय प्राप्ति और दैवीय शक्ति के अत्यद्भुत भण्डार में मिलाया अथवा संगृहीत किया है।

दयानन्द के कार्यों को अस्वीकार करते हुए कौन से समालोचक उस के वेद विषयक वर्णन को धर्मान्ध एवं कपोल कल्पित कह कर अपवाद करते हैं? सायण की परम्परागत व्याख्या को मानने वालों के मुख में यह अपवाद नहीं सजता। क्यों कि यदि स्वच्छन्द पाण्डित्य पूर्ण कल्पना तथा महान् अध्ययन का कोई स्मृति चिन्ह हो तो वह निःसन्देह सायण का भाष्य है जिस में सच्चे न्याय, सुरुचि, विश्राम पूर्ण समालोचना, तुलनात्मक निरीक्षण, सीधी दृष्टि और प्रायःसादी साधारण समझ को तलाक दिया गया है तथा प्राक्कल्पित सिद्धान्त से जबर्दस्ती समता स्थापित करने के लिए मूल ग्रन्थ को ठीक ठीक बैठाने के लगातार प्रयत्न दीखते हैं। तथापि दूसरी ओर यह भाष्य प्रभावोत्पादक पाण्डित्य पूर्ण एवं परिश्रम सिद्ध है। पाश्चात्य विद्वानों के आधुनिक परिश्रम को अन्तिम परिणाम मानने वालों के मुख में भी यह अपवाद नहीं सजता। क्यों कि यदि व्याख्या करने का कभी ऐसा भ्रम किया गया था जिस में कल्पित सिद्धान्त के लिए लगाम ढीला छोड़ दी गई हो, सन्दिग्ध निर्देशों को निश्चित प्रमाण मान लिये गये हों, अत्यन्त तुच्छ न्याय पर आग्रह करके साहस पूर्ण परिणाम निकाले गये हों, बड़ी बड़ी आपत्तियों की परवाह न की गई हो मूल ग्रन्थ के स्पष्ट और प्रायः स्वीकृत निर्देशों के असहमत होने पर भी प्राक्कल्पित कल्पनाओं का प्रतिपादन किया गया हो तो वह निःसन्देह यह भ्रम है जो कि दूसरी ओर पाश्चात्य वैदिक विद्वानों द्वारा लम्बी शताब्दी तक किया गया है तथा अपने उद्योग, उत्सुकता एवं खोज की शक्ति के कारण सर्वसम्मत मान देने के योग्य है।

इस बात में मुख्य विचारणीय विषय क्या है? वेद की व्याख्या की सफलता या असफलता, वैदिक धर्म के एतद्विषयक केन्द्रीय विचार एवं वेद के अपने आप दिये गये अन्तः प्रमाणों के परिणाम पर निर्भर है। यहां दयानन्द का दृष्टिकोण स्पष्ट है इसका आधार अचल है। वैदिक स्तोत्रों में एक देवता का अनेक नामों से कहा गया है और वे प्रयुक्त नाम उस देवता के गुण एवं शक्ति को प्रकट करने का उद्देश्य भी लिये होते हैं। क्या दयानन्द का यह विचार उसकी अत्यन्त प्रवीण कल्पना का मनमाना मिथ्यागर्व है? कभी नहीं, अपितु ज्ञान की खान ऋषि लोग कहते हैं कि एक ईश्वर है उसको इन्द्र, यम, मातरिश्वा और अग्नि आदि अनेक नामों से पुकारते हैं। हम समझ सकते हैं कि वैदिक ऋषि लोग राय और मैक्समूलर की अपेक्षा अधिक ज्ञान रखते थे और उनका ज्ञान ऐसा है।

हम जानते हैं कि आधुनिक विद्वान् प्रमाणों का किस प्रकार तोड़ मरोड़ करते हैं। वे कहते हैं, यह स्तोत्र पीछे की पैदायश है, उदात्त आदर्श जो इस में इतनी दृढ़ता से प्रकट किया गया है किसी प्रकार से पीछे के आर्यों के मन में उठा अथवा उन अग्नि, सूर्य एवं आकाश के अज्ञानी पूजकों ने इसे अपने सभ्य और दार्शनिक द्रविड़ शत्रुओं से पाया था। परन्तु हम वेदों में इस अर्थ के अनुरूप स्तोत्र और स्पष्टीकरण पाते हैं! अग्नि, इन्द्र या अन्य देवताओं को स्तोत्र में अन्य सब देवताओं के साथ एक देवता की तरह कहा जाता है। एक अग्नि में अन्य सब दैवीशक्तियां हैं, एक मरुत् के, अन्य सब देवों की तरह वर्णन किया गया है, एक देवता को अपने नाम के साथ अन्य सब देवताओं का भी विशेषण दिया जाता है या बहुत करके एक ही देवता को विश्व के राजा व स्वामी की तरह केवल सर्वोपरि देव के लिए प्रयुक्त होने वाले गुण भी दिये जाते हैं। पर, आधुनिक विद्वान् कहेंगे कि इसका अर्थ "एक ईश्वर पूजा" नहीं हो सकता, नहीं होना चाहिए और नहीं होगा। इसके लिए हमें एक नये शब्द (Henotheism) का प्रयोग करना चाहिये तथा स्वीकार करना चाहिए कि ऋषि लोग इन्द्र या अग्नि को सर्वोपरि देव नहीं मानते थे परन्तु किसी भी देवता को या प्रत्येक देवता के साथ सर्वोपरिदेव की तरह तात्कालिक व्यवहार करते थे। शायद इसका कारण यह हो कि वे लोग समझते थे कि इस प्रकार से वह देव अपनी अधिक प्रशंसा को अनुभव करे और इस अतिशयोक्ति पूर्ण अभिनन्दन के वचन को दया पूर्वक सुने। पर हमारा प्रश्न है कि इस नवनिर्मित भयंकर Henotheism की अपेक्षा इन वैदिक विचारों का आधार स्वभाविक एकेश्वरवाद क्यों न होना चाहिए? दूसरी बात यह है कि प्रारम्भिक असभ्य लोग इतने ऊंचे विचार तक नहीं पहुंच सकते और यदि उन्हें वहां तक पहुंचा हुआ माना जाय तो हमारे विकास वाद सम्बन्धी मानवीय उन्नति की अवस्थाओं के सिद्धान्त पर पानी फिर जाता है तथा हमारे वैदिक स्तोत्रों के अर्थ विषयक सारे विचार एवं भाव का जाति के इतिहास में स्थान नहीं रहता। पर सत्य अपने आप अपनी रक्षा करेगा, मैं इस समय पूछता हूं कि दयानन्द और पश्चात्य विद्वानों में से मूल ग्रन्थ के अधिक अनुकूल वर्णन कौन करता है?

पर यदि दयानन्द का यह मुख्य आशय स्वीकार किया जाय तथा वैदिक ऋषियों द्वारा कथित देवताओं के स्वरूप को मान लिया जाय तो जब कभी स्तोत्र अग्नि व इन्द्र के विषय में कहता हो तब उन्हें उस नाम के पीछे, ऋषियों के विचारानुसार, सदा वर्तमान एक सर्वोपरिदेव अथवा उसके अपने सहवर्ती गुणों एवं कार्यों के साथ उसकी अन्यतम शक्ति को मानने के लिये बाधित होना पड़ेगा। इसके साथ ही दयानन्द द्वारा दी गई युक्ति से वेदों के सब गुण ठीक ठीक हो जाते हैं और सायण की

केवल कर्मकाण्ड, पौराणिक कथा एवं अनेक देवता वाद विषयक व्याख्या का तथा पाश्चात्य विद्वानों की केवल भौतिक विद्या एवं प्रकृतिवाद परक व्याख्या का विनाश हो जाता है। इसके बदले में हमारे पास एक वास्तविक शास्त्र है जो दुनियां की पवित्र पुस्तकों में से एक है तथा एक उदात्त एवं शिष्ट धर्म का दैवी वचन है।

[अग्रिम अङ्क में समाप्य]

गौरी-शंकर की छत्रछाया में

(ले० श्री पं० हरिवंश जी वेदालंकार)

दार्जिलिंग की ओर

उस दिन सिलीगुड़ी के डाक बंगले से जब हमारी दृष्टि अकस्मात् हिमालय पर घुमड़ते हुए बड़े २ मेघों पर पड़ी तो हृदय में हर्ष का पारावार उमड़ आया। इस अकल्पित सौन्दर्य का नयनों से पी कर हमने परम पिता को सौ-सौ बार धन्यवाद दिया। कहां वह कलकत्ते की दम घोटने वाली भीषण गर्मी, धुंए से भरा मटमैला आसमान, जन-समुदाय के आर्तरव से गूंजता सा वातावरण और कहां यह हिमालय का शीतल पवन, मेघों की स्निग्ध छाया, आनन्दोल्लास से परिपूरित प्रकृति का एक-छत्र राज्य। प्रकृति के इस अवर्ण्य लावण्य को देखते हुए मारे-आनन्द के हमें नशा-सा आने लगा। अपने उज्ज्वल-आकाश और शीतल हवा के लिये दार्जिलिंग विश्व भर में प्रसिद्ध है। यहां से दीखने वाला कञ्चन जंगा पर्वत, अपने विशाल मुकुट और सुनहरी आभा से किस का मन मुग्ध नहीं कर देता। व्याघ्र शिखर (Tiger Hill) पर चढ़ कर जिन्होंने गौरी शंकर (Mont Everest) को देखा है क्या वे उस दृश्य को अपने जीवन भर कभी भूल सकेंगे। दार्जिलिंग से हिमालय का जितना अच्छा हिमपात दृश्य (Snow View) दीखता है उतना अच्छा दृश्य भारत भर में शायद ही कहीं से नजर आता हो। सामने २९००२ फीट ऊंचा गौरी शंकर का भव्य भाल, हम पद्दलित भारतीयों को माथा ऊंचा रखने का मंत्र क्रियात्मक रूप से सिखाता सा प्रतीत होता है। वृक्ष-वनस्पतियों की विभिन्नता की दृष्टि से दार्जिलिंग की पर्वत माला नैनीताल, मसूरी, शिमला, कुल्लू, डलहौजी, काश्मीर आदि की पर्वत श्रेणियों से अनेक अंशों में भिन्न है। इस पर्वत माला का सौन्दर्य स्वच्छ-शीतल झरनोंके कारण बहुत बढ़ गया है। थोड़ी थोड़ी दूरी पर झरनों से दुग्ध प्रवाह सा झरता मालूम देता है। सिलीगुड़ी से दार्जिलिंग तक के इस छोटे से मार्ग में झरनों की इतनी अधिकता यात्री में एक दिव्य आनन्द भर देती है।

ता० ५ सितम्बर को प्रातःकाल ६ बजे सिलीगुड़ी से दार्जिलिंग जाने वाली छोटी सी गाड़ी में हम सवार हुए। इस दार्जिलिंग-हिमालयन रेलवे के इंजन और डिब्बे बहुत छोटे २ हैं। एक इंजन दो डिब्बों को बहुत कठिनाई से खींचता हुआ पहाड़ पर चढ़ता है। जब गाड़ी सिलीगुड़ी से रवाना हुई, ठंडा बयार बहने लगी। सामने उत्तर दिशा में हिमालय के शिखरों के साथ घर्षण-सुख का अनुभव करते हुए काले २ मेघ धीरे धीरे इधर उधर संचरण कर रहे थे। गाड़ी सघन-द्रुमावलियों में से होती, पर्वत की परिक्रमा करती धीरे २ ऊपर चढ़ने लगी। दाहिने ओर के ऊंचे पहाड़ से एक से एक सुन्दर झरने झर रहे थे जिन में से कितनों की धारायें रेल की छत पर आकर गिरती थी और खिड़की के बन्द कर लेने पर भी हमारे वस्त्रों को भिगा रही थी। पर्वतीय विहगों की चहक और झरनों के मृदु-गम्भीर संगीत को प्रकृति नीरवनिस्तब्ध होकर सुन रही थी। इस सारे दृश्य को देख कर हमें बड़ा पछतावा हुआ कि इस रमणीक मार्ग से हमने पैदल यात्रा क्यों न की! किन्तु अब पछताने से क्या होता। १९ विद्यार्थियों की एक पार्टी के वहां पर एकाएक उतर पड़ने पर प्रबन्ध सम्बन्धी दिक्कतों का सामना करना पड़ता और यात्रा का सारा मजा किरकिरा हो जाता। अस्तु, बादलों के रिमझिम के साथ हम तेजी से आगे बढ़ चले।

कुर्सियांग

३॥ घंटे चढ़ाई चढ़ने के बाद कुर्सियांग पहुँचे। यह छोटा किन्तु साफ सुथरा स्थान है। चाय के खेत दूर तक नज़र आते हैं। चारों ओर वन-पर्वतों का दृश्य बहुत भला मालूम देता है। आस-पास के सुन्दर झरनों के कारण इस स्थान की शोभा बहुत कुछ बढ़ गई है। यहां पहुँचते ही मैदान से आने वाले यात्री अपने गर्म वस्त्रों की तलाश करने लगते हैं और हमें भी यह करना पड़ा। किन्तु यहां के निवासी प्रायः नवम्बर के अन्त तक ठंडे कुर्ते ही धारण करते हैं। अभ्यास के कारण इन्हें ठण्ड कम लगती है। दार्जिलिंग की ओर गाड़ी जाने में अभी १ घंटा देरी थी इस लिये हमें स्टेशन पर ही ठहर जाना पड़ा। इन्हीं दिनों यूरोप में महायुद्ध छिड़ जाने के कारण दार्जिलिंग की गोरा-पलटन कलकत्ते की ओर भेजी जा रही थी। उसकी एक टुकड़ी ने उस दिन कुर्सियांग स्टेशन पर जो बर्बरता दिखलाई उसे देखकर सहज में ही अनुमान हो गया कि इनमें दीन भारतीयों की रक्षा करने का भाव कितने उत्कृष्ट रूप में विद्यमान है। एक बिस्कुट बेचने वाला गरीब-ग्रामीण, अपनी सांझ की रोटी के लिये पैसे जुटाने की चिन्ता में रेल के डिब्बों के आस-पास फिर कर बिस्कुट बेच रहा था। डिब्बे के अन्दर बैठे हुए भारत रक्षार्थ जाने वाले उन गोरे सैनिकों की गृध्र-दृष्टि बिस्कुट के खोमचे पर थी। ज्यों ही सीटी देकर गाड़ी आगे चली कि खिड़की के रास्ते ३-४ हाथों ने खोमचे पर भरपूर झपट्टा मारा। कहने की आवश्यकता नहीं कि वह गरीब भौंचक्का सा रह गया और उसके हाथ से खोमचा छूट कर प्लेट फार्म पर आ गिरा। उनके इस काले कारनामे को देखकर मन में यह विचार दौड़ गया कि जब ये सैनिक स्टेशन पर भी इस प्रकार की कार्रवाई कर सकते हैं तो इनकी छावनी के आस पास के ग्रामीणों पर इनके कारण न जाने क्या २ आफतें आती होंगी।

उस दिन अपने एक-दो साथियों की तबियत कुछ खराब हो जाने के कारण हमने रात्रि कुर्सियांग की धर्मशाला में ही बिताई। अगले दिन प्रातःकाल ७ बजे

दार्जिलिंग की ओर रवाना हुए। सिलीगुड़ी से रेल की सड़क के साथ २ मोटरों की सड़क भी काली नागिन सी बलखाती पार्वत्य हरियाली और स्वच्छ-शीतल प्रपातों को अपनी कुण्डली में लपेटती दार्जिलिंग तक चली गई है। किसी ऊंची चोटी से नीचे को ओर देखने पर सड़क का दृश्य अति सुहावना प्रतीत होता है। कुर्सियांग से आगे पार्वत्य ग्रामीणों को गाय भैंस पालने का शौक है और इनके दूध से वे प्रतिदिन पर्याप्त पैसा कमा लेते हैं। इनका दूध कुर्सियांग और दार्जिलिंग दोनों जगह खूब बिकता है। दार्जिलिंग पहुंचते २ प्रातःकाल की गाड़ी का प्रत्येक डिब्बा दूध के पीपों से भर जाता है। गाड़ी के चलने पर दूध के छलकने से हमारे वस्त्रादि भीग गये।

घूम

इस रास्ते में 'घूम' सब से ऊंची जगह है। चक्करदार सड़क से यहां तक पहुंचते २ अनभ्यस्त यात्री का सिर एक बार तो अवश्य घूम जाता है। शायद इसी कारण इस स्थान का नाम 'घूम' रक्खा गया है। इस स्थान की ऊंचाई ८ हजार फीट है। सर्दी गजब की है। हमारे तो दांत मारे शीत के दिनों में भी बजने लग गये थे। यहां से दार्जिलिंग की दूरी सिर्फ ५ मील है। रास्ता उतार का है। सात सौ फीट उतरने पर हम दार्जिलिंग आ पहुंचे।

दार्जिलिंग

खिलखिलाती धूप और शीतल-ताजी हवा दार्जिलिंग की ये दो विशेषतायें कभी भुलाई नहीं जा सकतीं। टाइगर हिल (व्याघ्र शिखर) से सूर्योदय का दृश्य तो अनुपम और अवर्णनीय है। कञ्चन जंगा का स्वर्ण प्रासाद और गौरी शंकर का गगन भेदी शिखर संसार में अपना सानी नहीं रखता। खूब तड़के (प्रातःकाल ४॥ बजे के करीब, गौरी शंकर का सुनहला शिखर एक दीप-शिखा के समान रात्रि की तमोराशि का विच्छिन्न कर जब नेत्रों के सम्मुख प्रकट होता है उस समय कौन ऐसा मनुष्य होगा जो अपने को बड़भागी न कहेगा। किन्तु हमारे भाग्य कुछ बहुत अच्छे न थे। क्यों कि थोड़ी देर में बादलों ने आकर सारे दृश्य पर पटाक्षेप कर दिया।

—

(पृ० ३ का शेष)

शक्ति व जीवन में कृतकार्यता का मूल है और परलोक में अनन्त आनन्द का प्राप्त का साधन है, प्रारम्भिक क्षय वा मृत्यु समानार्थक हैं। वीर्य के अधिक नाश से ही रोग दुःख वा असमय में मृत्यु हो जाती है। इस लिये वीर्य रक्षा के लिये विशेष रूप से प्रयत्नवान् रहो।

कुछ भी हो सत्य को न छोड़ो। किसी भी प्राणी को मन, वचन, व कर्म से नुकसान न पहुंचाओ। अध्यापकों माता पिता व अपने बड़ों का कहना मानो। तुम्हारा आचार व व्यवहार आदर्श होना चाहिये। अपने विद्यालय के पाठ को नियम से पढ़ो और अपने अध्यापकों के साथ विनीतता से व्यवहार करो। अपने सहाध्यायियों से प्रेम करो। कभी लड़ो नहीं। नियम पूर्वक ४ बजे उठो। शयन से पूर्व व जागरण के प्रारम्भ में ईश का चिन्तन करो। प्रातः ४ से ६ बजे तक परमेश्वर से प्रार्थना करो व उस के पवित्र नामों का श्रद्धा भक्ति पूर्वक जप करो। दैनिक संध्या करो और गायत्री का जप करो ताकि तुम्हारी बुद्धि का विकास हो व ईश प्रेम की प्राप्ति हो। अपनी अशुद्धियों के लिये पश्चात्ताप करो। अपने अपराधों को मुक्त कण्ठ से स्वीकार करो। कभी भी उन्हें व्यर्थ बहाने से व असत्य भाषण से छिपाने की कोशिश न करो।

प्रकृति के नियमों के अनुसार चलो। प्रति दिन पर्याप्त शारीरिक व्यायाम करो। अपने निश्चित कर्तव्यों को नियत समय पर पालन करो। सदा परमेश्वर के पवित्र नामों का स्मरण करो और दिव्य आनन्द के समुद्र में और परमेश्वर के सम्पर्क में रहो। तुम सदा समृद्ध व सम्पन्न बनो।

प्रेम, आनन्द, शान्ति, प्रसन्नता व अमरता के आशीर्वाद को देता हूं। स्वामी शिवानन्द।

गुरुकुल समाचार

गत सप्ताह ब्र० देवेन्द्र ३य श्रेणी खुजली, रामप्रकाश खुजली, दानवीर ५म विषमज्वर, सुरेन्द्र कुमार ५म कास, वासुदेव १४ चोट, रघुनाथ १३ चोट से रोगी हुए थे। अब सब स्वस्थ होगये हैं। शेष सब ब्रह्मचारी सकुशल हैं।

शरद् ऋतु आजाने के कारण दिनोंदिन शीत बढ़ता जा रहा है। छोटे तथा बड़े ब्रह्मचारियों को यथासम्भव शीघ्र गर्म वस्त्र देने की व्यवस्था की जा रही है। पिछले दिनों गुरुकुल विश्वविद्यालय में दीपावली का महोत्सव बड़े समारोह के साथ मनाया गया। दीपावली और ऋषि निर्वाण दिवस की सभाओं में ब्रह्मचारियों ने ओजस्वी एवं मनोहर भाषण दिये। रात्रि को दीपावली की गई। हाकी, वालीबाल, फुटबाल आदि के मैचों के साथ यह पर्व सानन्द सम्पन्न हुआ।

नवीन कुलमन्त्री का चुनाव—पुरानी प्रथा के अनुसार दीपावली के बाद नवीन कुलमन्त्री का चुनाव हुआ। सर्वसम्मति से ब्र० सतीशकुमार जी १३ वीं श्रेणी कुलमन्त्री चुने गये। ब्रह्मचारियों की ओर से भूतपूर्व कुलमन्त्री ब्र० वीरेन्द्र जी का धन्यवाद तथा नवीन कुलमंत्री का अभिनन्दन किया गया।

समवेदना

पिछले दिनों यह समाचार जानकर कुलभूमि में शोक छा गया कि स्वामी श्रद्धानन्द जी के अनन्य-भक्त तथा गुरुकुल शिक्षा प्रणाली के बहुत बड़े प्रेमी ला० लब्भूराम जी नैयड़ की धर्मपरायणा धर्मपत्नी का स्वर्गवास होगया है। लाला जी की इस विपत्ति में सिर्फ गुरुकुल ही नहीं किन्तु आर्यजनता व्यथित है। इस विषम परिस्थिति में ईश्वर लाला जी को दारुण-दुःख सहने की शक्ति और दिवंगत आत्मा को शान्ति प्रदान करें यही प्रार्थना है।

चौधरी दुलाराराम के प्रबन्ध से गुरुकुल मुद्रणालय (गुरुकुल कांगड़ी) में मुद्रित तथा प्रकाशित

* ओ३म् *

"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत" Reg. No. A. 2927

गुरुकुल

एक प्रति का मूल्य -) [गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख-पत्र] वार्षिक मूल्य २॥)

सम्पादक—साहित्यरत्न पं० हरिवंश वेदालङ्कार

वर्ष ४] गुरुकुल काङ्गड़ी, शुक्रवार ९ मार्गशीर्ष १९९६; २४ नवम्बर १९३९ [संख्या २९

पूना की बुनियादी तालीम परिषद्

(४)

अगली विचारणीय समस्या अर्थ की थी। भूतकाल में बहुत अच्छी २ स्कीमें सोची गयी पर जब उनको क्रियारूप में परिणत करने का अवसर आया तो आर्थिक कठिनाइयों के विचार से उन्हें छोड़ना पड़ा। आर्थिक कठिनाई एक ऐसी चट्टान रही है जिसपर सब स्कीमों की नौकायें टक्कर खाकर टूटती रही है। क्या धनाभाव के कारण इस योजना की भी वही अवस्था होगी जो पहली योजनाओं की हुई है?

महात्मा जी ने शुरु से ही अपनी योजना को इस खतरे से बचाया है। उन्होंने यह कहा कि शिक्षा स्वावलम्बी होनी चाहिये अर्थात् उद्योग से जो पैदावार हो—उससे पाठशाला का चलता खर्च यानी शिक्षक का वेतन अवश्य निकलना चाहिये। 'हरिजन' में उन्हों ने लिखा था 'स्वावलम्बित्व' इस योजना की अग्नि परीक्षा (Acid Test) है। प्रारम्भ में यह आशा थी कि इस योजना में धन की कठिनाई उपस्थित नहीं होगी।

किन्तु इस शिक्षा में प्रारम्भिक खर्च बहुत अधिक है। स्कूल की इमारत पहले से बड़ी होनी चाहिये, उसमें ओटने धुनने के कमरे चाहिये, अध्यापक का वेतन भी बढ़ाना है, उद्योग के उपकरण तथा कच्चा माल भी देना है। इस प्रकार पिछली प्राथमिक शिक्षा से इस प्राथमिक शिक्षा पर व्यय अधिक होगा। यह अधिक व्यय कहां से पूरा किया जाय?

यदि हम इस चीज पर विचार करें कि वर्धा-शिक्षा वर्त्तमान शिक्षा के मैट्रिक दर्जे तक पहुंचती है तो यह कठिनाई नहीं रहती। इस समय जो खर्च प्राथमिक और माध्यमिक विभाग पर हो रहा है—भविष्य में वह खर्च सिर्फ प्राथमिक विभाग पर होगा। माध्यमिक विभाग का खर्च यदि प्राथमिक विभाग को मिल जाय तो आर्थिक समस्या बहुत कुछ हल हो सकती है।

खर्चा पूरा करने का दूसरा साधन पाठशाला में तय्यार माल को बेचना है। महात्मा जी का कथन है कि यह माल सरकार को अपने हाथ में ले लेना चाहिये। पाठशाला के अध्यापक को—जो ब्राह्मण है—बनिया बनाने का प्रयत्न नहीं होना चाहिये। बिक्री का काम सरकार के स्टोर-परचेज विभाग का होना चाहिये। सरकार को अपनी आवश्यकताओं के लिये बहुतसा माल खरीदना पड़ता है। मान लीजिये स्कूलों में कताई का उद्योग है तो सरकार तय्यार सूत को जेल आदि में वर्दी देने के लिये खरीद सकती है। किन्तु बच्चों का तय्यार किया हुआ सूत उत्तम नहीं होता। बाजार में उसे बेचने में बड़ी दिक्कत होगी। यदि चर्खा संघ इस सूत को ले ले तो समस्या हल हो सकती है पर चर्खा संघ को इस प्रकार छोटा होने की संभावना होगी। मध्यप्रान्त में अभी तक चरखासंघ स्कूल का तय्यार सूत ले रहा है। किन्तु घाटे की सूरत में वह देर तक सूत नहीं ले सकता। इस लिये अ. भा. चरखासंघ ने यह प्रस्ताव पास किया है कि वे इसी शर्त्त पर स्कूलोंका सूत लेने को तय्यार है कि सरकार चरखा संघ में घाटा होने पर उसकी मदद करेगी।

किन्तु इतने से समस्या हल नहीं होती। आज कल खादी मशीन के माल की प्रतीयोगिता में नहीं ठहर सकती। वह मँहगी पड़ती है। स्कूल में तय्यार की हुई वस्तुयें भी मँहगी पड़ेंगी। अतः जब तक भारत में एक नयी आर्थिक व्यवस्था का जन्म नहीं होता जिस में बड़े - व्यवसायों का स्थान ग्रामोद्योग को प्राप्त हो— तब तक स्कूलों का माल खपने की समस्या बनी रहेगी।

इस विषय पर किसी निर्णय पर पहुंचना कठिन था। यही सोचा गया कि इस योजना को चलाने का खर्च केन्द्रीय सरकार से मांगा जाय।

(५)

एक बैठक का विषय था 'वर्धा शिक्षा योजना में निरीक्षण तथा परीक्षा की व्यवस्था कैसे हो' अगली बैठक में यह विचारणीय प्रश्न रखा गया कि यह तो स्पष्ट है कि वर्त्तमान काल के निरीक्षकों से काम न चलेगा। आज कल का दोषैकदृक् निरीक्षण तो

दोषपूर्ण है। निरीक्षक शिक्षकों के हितैषी समालोचक तथा सन्मार्ग दर्शक होने चाहिये। तकली चर्खे की कला में तो उन्हें शिक्षकों से भी अधिक निष्णात होना चाहिये क्योंकि तभी वे शिक्षकों कुछ बता सकेंगे। अतः निरीक्षकों का भी शिक्षकों की भांति एक विस्तृत पाठ्यक्रम होना चाहिये।

परीक्षा के सम्बन्ध में कोई निर्णय नहीं किया गया। पुरानी परीक्षा पद्धति खराब है—इस में तो दो सम्मतियां हो ही नहीं सकती—पर उसके स्थान पर नयी परीक्षा पद्धति क्या हो—इसे निश्चित करना बड़ा कठिन है। इस शिक्षा पद्धति द्वारा हम सहयोग की भावना पर आश्रित एक नये समाज की सृष्टि करना चाहते हैं। वर्त्तमान समय प्रतियोगिता का है अतः इस में परीक्षायें भी प्रतियोगिताओं से होती हैं। भविष्य का सहयोग-प्रधान सामाजिक व्यवस्था में परीक्षायें संघर्षात्मक या प्रतियोगितात्मक नहीं रह सकती किन्तु उन परीक्षाओं का स्वरूप अभी से निश्चित नहीं किया जा सकता।

सबसे महत्त्वपूर्ण बैठक तो वह हुई जिसमें भिन्न २ स्थानों में वर्धा–स्कीम के प्रयोग करने वालों ने अपने २ अनुभव सुनाये। गुजरात के थामणा गांव में किये जा रहे शिक्षा के प्रयोग का श्री नरहरि पारिख तथा सेगांव के प्रयोग का श्रीमती आशा देवी जी ने वर्णन किया। सेगांव के प्रयोग ने सब को बहुत प्रभावित किया। वर्धा शिक्षा गांवों की किस प्रकार कायापलट कर सकती है— इसकी उसमें एक झांकी थी। इस शिक्षा का शाला में पढ़ाये जाने वाला अंश कम है किन्तु सिखाया तथा कराया जाने वाला अंश अधिक है। बच्चे साफ सुथरे रहें, मिल कर काम करें, एक दूसरे की सहायता करें, अनुशासन प्रिय हों, सेवा की भावना से ओत प्रोत हों-यदि ये बातें बच्चों में आगयी तो शिक्षा का उद्देश्य पूरा हो गया। फिर इस बात की जरूरत नहीं रहता कि उन्हें पुनः शेष का कहानी बताया ही जाय। सेगांव के प्रयोग का विस्तृत वर्णन इस मास के नयी तालीम के अंक में प्रकाशित हुआ है अतः उस पर विस्तृत रूप से प्रकाश डालने की आवश्यकता नहीं। आन्ध्र, मध्यप्रान्त, कर्नाटक, महाराष्ट्र, काश्मीर, बिहार संयुक्त प्रान्त आदि विभिन्न प्रान्तों में जो प्रयोग चल रहे हैं- उनका भी तत्तत्स्थानीय संस्थाओं के अध्यक्षों ने रोचक वर्णन सुनाया।

अन्तिम दिन, १ ता० को काका साहब ने परिषद् के सम्मुख एक प्रस्ताव उपस्थित किया। प्रस्ताव का आशय यह था कि 'बुनियादी पाठशाला में ७वीं कक्षा तक अंग्रेजी बिल्कुल न हो तथा अन्य पाठशालाओं के अधिकारियों से प्रार्थना की जावे कि वे अपने यहां अंग्रेजी की पढ़ाई ७ वीं कक्षा के बाद से शुरू करें। इस प्रस्ताव पर बोलते हुए उन्होंने कहा कि मैं अंग्रेजी का दुश्मन नहीं। मैंने अंग्रेजों से ही यह चीज सीखी है कि स्वभाषासे प्रेम करना चाहिये। यदि मैं अपनी स्त्री से प्रेम करूं तो इसे पड़ोसी की स्त्री से वैर रखना नहीं कहा जा सकता।' इस प्रस्ताव को रखने का सब से बड़ी जरूरत यह थी कि यद्यपि अब हम अंग्रेजों के साम्राज्य के समर्थक नहीं रहे किन्तु अंग्रेजी के साम्राज्य के समर्थक अब तक बने हुए हैं। कई प्रान्तों में बुनियादी स्कूलों में भी ५ वीं के बाद अंग्रेजी रखने के निश्चय हो रहे हैं। यदि बुनियादी स्कूलों में अंग्रेजी हो जाय किन्तु दूसरे स्कूलों में बनी रहे तो इस योजना को बड़ा हानि पहुंचेगा। लड़के पहली पांच श्रेणियों की पढ़ाई जैसे तैसे समाप्त कर अंग्रेजी जल्दी से जल्दी पढ़ने का प्रयत्न करेंगे। वे पहले पांच वर्षों को एक कैद समझा करेंगे। परिणाम यह होगा कि उनको पहले पांच वर्षों का शिक्षा तथा उद्योग ठीक तरह न होगा और अगले दो वर्षों में थोड़-बहुत सीखे उद्योग को भी भुला देंगे। वर्धा शिक्षा को इस बड़े खतरे से बचाने के लिये उपरोक्त प्रस्ताव पेश किया गया और बहुसम्मति से पास हुआ।

६

परन्तु परिषद् के सारे व्याख्यानों और बहसों से भी अधिक महत्वपूर्ण थी परिषद् की प्रदर्शनी। वह अपने ढंग की एक निराली प्रदर्शनी थी। व्यापारिक प्रदर्शनी के इस युग में महात्मा जी ने ठोस कार्य प्रदर्शित करने वाली प्रदर्शनियों की जो पद्धति चलाई है- वह सर्वथा उस के अनुरूप थी। प्रदर्शनी में अलाहाबाद के चित्र, वर्धा का गर्भ का सामान, जामिया मिलिया के संबद्ध पाठ, आन्ध्र का सूत और काश्मीर की कला दर्शकों का ध्यान हठात् अपनी ओर आकृष्ट कर लेती थी। इन कामों को जिसने देखा, उसने सराहा। साथही, शालाओं के चार्ट्स और आलेख भी टंगे हुए थे। चार्ट्स में यह दिखाया गया था कि स्कूल में कितने घण्टे काम हुआ, कितनी पैदावार हुई, क्या आय हुई- और प्रतिविद्यार्थी की कमाई की औसत क्या पड़ी। ये चार्ट्स इस बात की गवाही दे रहे थे कि वर्धा शिक्षा को कहां तक स्वावलम्बी बनाया जा सकता है। इन से सूचित होता था कि किस स्कूल ने कितनी प्रगति की है, कौन उन्नति की दौड़ में आगे है और कौन पीछे। स्कूलों के लेखा रखने के अतिरिक्त बहुत से चार्ट अनुबंध या समवाय के अभिप्राय को भी स्पष्ट कर रहे थे। आलेखों में स्कूलों के विद्यार्थियों की वैयक्तिक व सामूहिक प्रगति का मासिक विवरण दिया हुआ था। दीवारों पर लड़कों के हाथों की कती हुई सूत की गुंडियां तथा अल्मारियों में उन के कते सूत का बना हुआ कपड़ा रखा गया था। कई लोग तकली के 'वस्त्रपूर्णा देवी' होने में संदेह प्रकट करते हैं और यह विश्वास नहीं कर सकते कि छोटी सी तकली से हम चर्खे के बराबर सूत कात सकते हैं और कपड़े की सब आवश्यकतायें पूरी कर सकते हैं। नालवाड़ी आश्रमके कातने वाले व्यक्ति प्रत्यक्ष रूप से उनके संदेहों को दूर कर रहे थे।

प्रदर्शनी भवन में मुख्य द्वार के सम्मुख, कृष्ण पट्ट पर भारत का एक चित्रपट बना हुआ था। इस चित्रपट में भारतवर्ष के वे नगर अंकित किये हुए थे जिन में वर्धा-शिक्षा पद्धति के शिक्षण केन्द्र हैं। प्रदर्शनी में एक विहंगम दृष्टि डालने तथा चित्रपट का अवलोकन करने से यह स्पष्ट हो जाता था कि यह योजना देशव्यापी हो गयी है।

अटक से कटक तक तथा काश्मीर से कन्याकुमारी तक सर्वत्र इसका प्रचार और प्रसार हो रहा है। देश का कोई ऐसा भाग नहीं जहां इसका प्रयोग शुरू न हुआ हो। २ वर्ष पहले महात्मा जी ने अपने करकमलों से जिस योजना का बीज वपन किया था तथा श्री आर्यनायकमजी और श्रीमती आशादेवी जी ने जिस का परिश्रम से सिंचन किया है, वह इतना शीघ्र फलदायी होकर फैलने लग जायगा यह एक आशातीत घटना थी। समालोचकों का समालोचनाओं की धूप उसे मुलसा नहीं सकी, प्रतिकूल परिस्थितियों का घास फूस उस नन्हें पौधे को ढांप कर उसकी बढ़ती नहीं रोक सकी- देखने वालों के लिये यह एक महान आश्चर्य था। निःसन्देह परिषद् एक आशातीत आश्चर्यमयी घटना थी। देश का राजनैतिक परिस्थिति चाहे कुछ हो- यह पौधा बढ़ता ही जायगा। भारत सरकार के एजूकेशन कमिश्नर सरजान ने करतल ध्वनि के बीच में यह कहा था कि 'यह परिषद् भविष्य में होने वाली बहुत परिषदों की अग्रगन्ता होगा'। हमें विश्वास है कि समय इस भविष्य-वाणी को अक्षरशः पूर्ण करेगा।

कांग्रेस निर्णय

[ले०—श्री पं० विद्यानन्द जी वेदालंकार]

'मुस्लिमलीग' के मना करने पर भी हजारों मुसलमान आजादी के लिये खड़े होजायेंगे। क्योंकि उनको 'मुस्लिम-लीग' की बजाय आजादी को अधिक चाह है।

'कांग्रेस' मजबूत दल है। इसलिये नहीं, कि वह अधिक आदमियों को अपने साथ रखती है। किन्तु इसलिये कि वह देश की आवाज को अपने साथ रखती है। उसके दल में तो सैंकड़ों में एक मेम्बर है। परन्तु प्रत्येक मेम्बर जब देश की आवाज गुंजाता है तो सैकड़ों भारतीयों का प्रतिनिधि एवं नेता बन जाता है।

कांग्रेस के आजादी के विचार के मुकाबिले 'मुस्लिम-हित' एवं 'हिन्दु हित' की बात करना केवल वकालत करना है। जिस पर जज ही फैसला कर सकता है। किन्तु जनता का सहयोग एवं नेतृत्व नहीं कायम रखा जा सकता। मेरी तुच्छ सम्मति में तो भारत इस समय सभी दलों की सचाई, सेवा एवं देश प्रेम की खोज में है। इस प्रकार वह सभी दलों को (न केवल कांग्रेस को) आजादी के लिये एक दूसरे से आगे बढ़ जाने का मौका दे रहा है। ब्रिटेन इसी की चाह में है। क्योंकि भारत की एकता इसी 'चाह' में है। इस समय आजादी के लिये ब्रिटेन खड़ा है। भारत भी आजादी पर खतरे को मिटाना चाहता है—अतः आजादी पर खड़ा होना ही आजकल की नीति है न कि सरकारी पद पाने के लिये एक दूसरे को गिराने की।

मैं तो आर्यसमाजी हूं। किसी राजनैतिक दल का मेम्बर नहीं हूं। मेरे समान लाखों समाजी हैं। जो आजादी के लिए लड़े हैं। ब्रिटेन से सत्याग्रह संग्राम में प्रेम पूर्वक आजाद करने के लिये अपील करते हुए जेल गये हैं। न तो उनको मिनिस्ट्री की चाह थी न सरकारी पद की। आज भी किसी दूसरी चाह के बिना भारत की आजादी चाहते हैं, भविष्य में भी चाहते रहेंगे। हां दूसरे दलों को होड़ लगाकर आजादी के लिये सेवा करने में पीछे छोड़ जाने की इच्छा उनमें जरूर है। वे सदा एक चैलेञ्ज देते हैं।—"धर्म तथा देश की सेवा करने में कोई हमसे मुकाबिला करले।" चाहे वह 'हिन्दुसभा' हो या 'मुस्लिम लीग'। उनका गुरु या नेता वही है, जो इस क्षेत्र में उन्हें हरा दे। हम 'मुसलमानों' को देश सेवा के लिये चैलेञ्ज देते हैं। यदि वे स्वीकार करेंगे तो हम 'मुसलमान हिन्दु एकता' को पूर्ण निश्चय से गारण्टी कर सकते हैं। जिसकी चाह करके श्री जिन्ना महोदय हैदराबाद से चले थे। हैदराबाद में अल्पमत को बहुमत से खतरा नहीं किन्तु कांग्रेसी प्रान्तों में है—इसे जिन्ना महोदय बता सकते हैं? हमें तो मुसलमानों के बजाय—मुसलमानों नेताओं के वोट पाने के स्वार्थ से खतरा प्रतीत होता है। हमें तो विश्वास है कि चुनाव जन्म की जाति हिन्दु मुसलमान न मानकर गुण कर्म पर होने लगे तो कितने हिन्दु नेता अपनी सेवा एवं देश सेवा की बदौलत मुसलमानों से वोट पाने में भी अनेकों मुसलमान नेताओं को पछाड़ दें।

गांधी जी ने अल्पमत (Minority) तथा बहुमत (Majority) पर सर्वोत्तम तर्क एवं वास्तविक हालत को पेश किया है। इस विषय पर यह वैज्ञानिक आविष्कार है। जो धुंधले प्रकाश के रूप में अभी तक लोगों की निगाह में था। परन्तु गांधी जी की लेखनी के साथ वह सामने आगया है। आशा है कि इस वैज्ञानिक उत्तर को वायसराय स्वीकार करेंगे और भारत तथा ब्रिटेन को आजादी के प्रति प्रेम रखने का समान हक प्रदान करेंगे।

कांग्रेस ने मन्त्री मण्डलों को इस्तीफा दिलवा दिया है। यह प्रश्न व्यावहारिक है। इसे समय एवं देश-दशा के मुताबिक परिस्थिति के अनुकूल प्रभावपूर्ण बनाने के लिये सभी प्रान्तों में भिन्न भिन्न तरीके से काम लेना चाहिये।

इस अवसर का मुकाबिला करने के लिये, जो लोग 'मुस्लिम लीग' को बढ़ावा देकर शासन करना चाहते हैं वे 'लीग' को आग में पतिङ्गा बनाने की फ़िक्र में हैं। यदि ऐसा हुआ, तो, मुझे पूर्ण यकीन है कि, 'लीग' की जड़ हिल जायगी। किसी भी पार्टी के नेता की यह कोशिश उसे भारत में रावण और कंस की तरह बदनाम करदेगी, जिन्होंने प्रजा की आजादी के सवाल पर हमला किया था यही जन-मत मैं बराबर सुन रहा हूं। आशा है, नेताओं को यह देश की हालत से परिचित करायेगा।

गु रु कु ल

६ मार्गशीर्ष शुक्रवार १९९६

हिन्दु और कांग्रेस

देहली की आय युवक संघ के मन्त्री जी ने तीन प्रश्न पूछे हैं। उनका जो उत्तर दिया है वह मंत्री जी की अनुमति से नीचे दिया जाता है। मंत्री जी चाहते हैं कि अन्य महानुभाव भी इन पर अपनी सम्मति दे सकें तो अच्छा है अतः उनका पत्र भी प्रारम्भ मे दे दिया गया है।

—'अभय'

मन्त्री जी का पत्र

"इस समय भारत भर के हिन्दुओं में निम्न कारणों से कांग्रेस के प्रति क्षोभ उत्पन्न हो रहा है। वे कारण संक्षेप में यह है—

(१) कांग्रेस अपनी विशेष नीति के कारण हिन्दू जगत के साथ न्याय का बर्ताव नहीं कर रही है।

(२) वर्धाशिक्षा द्वारा नागरी लिपि में से उ, इ, ए, के इस शुद्ध स्वरूप को मिटाकर अु, अी, अे ऐसा लिखना आरम्भ कराया है।

(३) वर्धाशिक्षा द्वारा इतिहास की सूचि में आर्य जाति के केवल पांच महापुरुष—बुद्ध, गांधी, कबीर, दादू नानक लिखे हैं, परन्तु मसलमानों के १४ महम्मद, अली, हुसैन, मुहम्मद बिन कासिम आदि २।

कृपया इन कारणों के सम्बन्ध में अपनी सम्मति लिख कर भेजने का कष्ट करें, और यह भी लिखें कि क्या हमें, (आर्यसमाज को) कांग्रेस हाई कमान्ड से स्पष्टी करण के लिये अनुरोध करना चाहिये ?"

उत्तर

सेवा में निवेदन है कि २६-१०-३९ का आपका पत्र मिला। इस में आपने वे तीन कारण लिखे हैं जिन से हिन्दुओं में कांग्रेस के प्रति क्षोभ उत्पन्न हुआ आप अनुभव करते हैं। इस विषय में आप मेरी सम्मति जानना चाहते हैं और यह भी जानना चाहते हैं कि क्या आर्यसमाज को कांग्रेस High Command से इन विषयों में स्पष्टी करण के लिए अनुरोध करना चाहिए या नहीं। मेरी सम्मति आपके लिए विशेष मूल्य की होगी या नहीं यह मैं नहीं जानता, क्योंकि मैं जहां कांग्रेस का तीन चार वर्षों से मामूली सभासद भी नहीं हूं वहां आर्यसमाज की भी 'पालिटिक्स' (Politics) से अस्पृष्ट अवस्था में रहता हूं और अपने गुरुकुल के कार्य से ही मतलब रखता हूँ। फिर भी क्योंकि मैं देश की इन सब अवस्थाओं का ध्यान से अध्ययन अवश्य कर रहा हूँ (और तटस्थता के कारण शायद मेरा यह अध्ययन अधिक सत्य भी हो) आपके पूछने पर मैं अपनी सम्मति देने में कोई संकोच नहीं करता। यदि मैं स्वयं समझता कि मेरी सम्मति कुछ भी लाभ की नहीं हो सकती तो मैं आपको ऐसा ही कह देता। अस्तु— आपकी लिखी तीनों बातों पर मेरा वक्तव्य निम्नलिखित प्रकार से है—

(१) मुझे ज्ञात नहीं कि "कांग्रेस की विशेष नीति" स आपका क्या मतलब है जिसके कारण वह कांग्रेस हिन्दु जगत् के साथ न्याय पूर्ण बर्ताव नहीं कर रही। शायद आपका यह अभिप्राय हो कि कांग्रेस मुसलमानों को रियायत देती है उनके मुकाबले में हिन्दुओं को दबाती है या हिन्दुओं का पक्ष न्याय्य होते हुए भी खुशामद के तौर पर मुसलमानों की अन्याय्य मांग को भी स्वीकार करती है। क्योंकि शिकायतें मैंने और भी हिन्दू सभा के भाइयों से सुनी हैं इसलिए मैं अनुमान करता हूं कि आपका भी यही अभिप्राय होगा। पर मुझे जहां तक मालुम है कांग्रेस की ऐसी कोई नीति नहीं है। कम से कम कांग्रेस के सूत्रधारों (High-Commands) की मुसलमानों के प्रति जो नीति है वह उपरोक्त वर्णन में नहीं आती। इतना मैं इसलिए कहसकता हूँ क्योंकि मुझे (HighCommand) माने जाने वाले पूज्य गांधी जी, राजेन्द्र बाबू, तथा सरदार वल्लभ भाई आदि के इस विषय में बहुत बार विचार सुनने का मौका हुआ है। इन लोगों का प्रेम या अहिंसा की नीति के कारण इनका मुसलमानों के प्रति भी प्रेमभाव अवश्य विद्यमान है और रहेगा, तथा रहना चाहिए। पर इसका मतलब जैसे तैसे या नीति (Policy) के तौर पर खुश करने या खुशामद करने के लिए मुसलमानों को अन्याय्य मांगों को मान लेना नहीं है। ऐसा करना प्रेम नहीं है। मेरा विश्वास है कि बहुत बार जो हमें हिन्दुओं का अनुचित रूप से दबाया जाना या मुसलमानों के प्रति पक्षपात प्रतीत होता है वह पूरी अन्दर की बात न जानने के कारण होता है। इस लिए इस बारे में (HighCommand) के विचारों में कहीं कोई त्रुटि है यह तो मैं नहीं समझता, पर उनकी नीति पर अमल करने वाले प्रान्तीय कार्य कर्त्ताओं के अमल में कभी कोई त्रुटि हो यह सम्भव है। ऐसी बातों का तरफ ठीक ठीक पता लगा कर ध्यान आकर्षित करना अवश्य हमारा कर्तव्य है। पर साथ ही कांग्रेस के नेताओं के प्रति जो बहुतसी भ्रमात्मक बातें हिन्दू जनता में फैलती हैं उन्हें न फैलने देना और ठीक करना भी हमारा कर्त्तव्य है। यह तो साफ है कि कांग्रेस को न्याय करना चाहिए। कांग्रेस में विद्यमान हिन्दू और मुसलमान नेताओं को अपने प्रभाव में आने वाले हिन्दू और मुसलमान जनता को संयम में रखने का प्रयत्न करना चाहिए। उदारता बहुत उत्तम गुण है। परन्तु (गांधी के शब्दों में) यदि डर कर अथवा चालाकी के रूप में बहुत कुछ दे दिया जाय तो वह उदारता नहीं है और उसका दूसरे पर कभी उत्तम परिणाम नहीं होता। हिन्दुओं को मुसलमानों के प्रति सच्ची उदारता रखनी चाहिए। परन्तु डर कर या कूटनीति के तौर पर उनकी अन्याय्य मांगों को नहीं पूरा करना चाहिए, इस से दोनों का नुक़सान होता है।

(२) हिन्दी के उ इ ए के शुद्ध स्वरूप के स्थान पर अु अि अे का तो कांग्रेस से कोई सम्बन्ध नहीं है और न मुसलमानों से संबन्ध है। न ऐसा करने के लिये कांग्रेस की तरफ से कभी किसी को कहा गया है। इसका प्रचार करने वाले काका कालेलकर आदि महानुभाव हैं। जो सरलता के लिए लिपि में ऐसा परिवर्तन चाहते हैं। किसी बालक को क ख आदि व्यञ्जनों के साथ इ उ ए आदि की मात्रायें (ि, ु, े) क्यों होती हैं यह समझाना तब आसान है यदि उन्हें उ इ ए के अक्षर ही अु अि अे इस रूप में लिखना सिखाया जाय। भारत में साक्षरता बहुत कम है। अब अभी करोड़ों को साक्षर करना बाकी है और जगत् में अपनी लिपि की श्रेष्ठता को स्थापित करना अभीष्ट है तब अपनी लिपि में इन बुद्धि के अनुकूल परिवर्तनों को स्वीकार कर लेना सब प्रकार से उत्तम ही है। इस से तो न हिन्दी भाषा का कोई बिगाड़ होता है और न हिन्दुत्व का। बल्कि इसके प्रसार में बहुत अनुकूलता प्राप्त हो जाती है। यदि आप क्षमा करें तो मैं आप को यह कहूंगा कि आप ने जो अपने हस्ताक्षर आर० एस० शर्मा इस रूप में किए हैं, इससे अवश्य अपनी भाषा का बिगाड़ होता है और अपने हिन्दुत्व व आर्यत्व को हम हीन समझते है, यह प्रगट होता है। हिन्दी के अक्षरों की जगह अङ्गरेज़ी अक्षरों को पसन्द करना इसी बात का द्योतक है।

(३) वर्धा शिक्षा के उसकी पहिली कमेटी द्वारा सूचित विस्तृत पाठ्यक्रम में इतिहास का जो पाठ्य क्रम सूचित किया गया है वह मुझे भी कुछ नापसन्द है और इस बारे में अब तक मैं इसके निर्माण करने वालों से बात न करलूं तब तक कुछ अधिक नहीं कह सकता। कम से कम गुरुकुल में तो हमने वर्धा पद्धति के सिद्धान्त को स्वीकार करते हुये भी इतिहास के पाठ्यक्रम को पहले जैसा ही रखना पसन्द किया है, जहां अन्य कई विषयों के पाठ्य क्रम को भी हमने गुरुकुलीयता के अनुसार स्थापित किया है। इसी तरह युक्त प्रांत में जो वर्धा शिक्षा के अनुसार प्रांतीय सरकार ने इतिहास का पाठक्रम रखा है वह भी उन्होंने अपने प्रांत के ऐतिहासिकों की (जिनमें प० जयचन्द्र जी विद्यालङ्कार भी शामिल हैं) सम्मति से बनाया है अर्थात् वह सर्वथा वही पाठक्रम नहीं है जो प्रारम्भिक कमेटी ने सूचित किया है। मतलब यह कि वर्धा शिक्षा की मुख्य बात तो उद्योग द्वारा शिक्षा, हिन्दी माध्यम से शिक्षा आदि हैं। इतर विषयों का पाठक्रम वर्धा शिक्षा का असली अङ्ग नहीं है। मुझे यह देख कर आश्चर्य और दुःख होता है कि इस तरफ मुसलमान इस शिक्षा का विरोध करते हैं केवल 'विद्या मंदिर' नाम होने से और दूसरी तरफ हिन्दु विरोध करते हैं पाठक्रम के किसी उतने ही गौण अंश पर। वर्धा शिक्षा की असली और तत्व की बात को न लेकर व्यर्थ इतनी उत्तम और अत्यावश्यक वस्तु का विरोध किया जा रहा है।

तो यह बात भी ऐसी नहीं है जिस पर कि 'हाई-कमांड' से स्पष्टी करण की कुछ ज़रूरत हो।

दयानन्द और वेद

[श्री अरविन्द, पाण्डिचेरी]

(२)

इस आधार भूत विचार से ही दयानन्द के शेष सारे सिद्धान्त पैदा होते हैं। यदि देवताओं के नाम एक सर्वोपरि देव के गुणों को प्रकट करते हैं तथा ऋषि लोग इसे मानते और अपनी प्रेरणाओं को उसी ओर झुकाते थे तो अनिवार्यतया वेदों में दैवीप्रकृति की अध्यात्म विद्या, मनुष्य की परमात्म से सम्बन्ध रखने की मनोवृत्ति एवं उसके प्रभु के प्रति आचार को बतलाने वाले नियमों के लगातार निर्देशों का एक बहुत बड़ा भाग होना चाहिए। दयानन्द इस प्रकार के नैतिक तत्व की वेदों में उपस्थिति बताते हैं तथा उन में परमात्मा द्वारा मनुष्य को दिये गये जीवन के नियमों को पाते हैं। और यदि वैदिक देवता, संसार के सृजनहार, शासक एवं पालक सर्वोपरिदेव की शक्तियों को प्रकट करते हैं तो निःसन्देह वेदों में सृष्टि विद्या अथवा उत्पत्ति व सृजन के नियमों का एक बहुत बड़ा भाग होना चाहिए। दयानन्द कहते हैं कि वेद में इस प्रकार का विश्व विषयक तत्व है तथा वे उन में सृजन के रहस्य एवं जिस के द्वारा सर्वज्ञ संसार की व्यवस्था करता है उस प्रकृति के नियम को भी पाते हैं।

पाश्चात्य विद्वत्ता और कर्मकाण्डी पाण्डित्य दोनों में से कोई भी वैदिक स्तोत्रों की आध्यात्मिक एवं नैतिक महत्ता को विनष्ट करने में सफल नहीं हुआ, पर यह दोनों इस की विभिन्नता अंशों में कम करने में प्रवृत्त रहे। पाश्चात्य विद्वान् इसकी महत्ता को इस प्रकार कम करते हैं कि जब कभी इन प्रारम्भिक वचनों में ऐसे आदर्श–जो आदिकाल के नहीं हो सकते स्पष्ट रूप से दिखाई देते हैं तो वे बेचैनी अनुभव करते हैं, और इस से वे जो व्याख्या उनके अपने शब्दशास्त्र एवं समालोचनात्मक तर्क द्वारा अवश्य स्वीकार की जानी चाहिए तथा, जिसको अन्यत्र स्वीकार भी कर चुके हैं, उसको भी अमुक स्थानों में छोड़ देने में नहीं हिचकिचाते, क्यों कि वे लोग उन गम्भीर एवं सूक्ष्म आत्मविद्या के विचारों को कैसे स्वीकार करें जो प्रारम्भिक मनों में नहीं आ सकते। सायण इस महत्व को इस लिए कम करता है कि उसकी वेद विषयक सीमा आचारिक और आत्मिक फल वाली नैतिक धार्मिकता नहीं थी अपितु कर्म काण्ड की अस्वाभाविक रचना थी। परन्तु इन दबाने के प्रयत्नों के होने पर भी वेद के उदात्त आदर्श कल्पित प्रकृतिवाद एवं भद्दे कर्मकाण्ड के कथित भावों के अद्भुत विरोध में, अपने आप को अब तक प्रकट करता है। वैदिक देवताओं का स्तोत्रों में लगातार ऐसा वर्णन आता है कि वे ज्ञान, शक्ति और पवित्रता के स्वामी, पवित्रकर्ता, दुःख और बुराई के नाशक पाप और झूठ के विध्वंसक तथा सत्य के योद्धा हैं। और ऋषि लोग उन से सदा प्रार्थना करते हैं कि हमारे दुःखों का नाश करो, हमें पवित्र करो, हमें ज्ञान के द्रष्टा और

सत्य के पालक बनाओ, हमें दैवी नियम के अनुसार ऊपर उठाओ, हमें बल मान रत्ना और शक्ति का दान और सहाय करो। वेदों के इस दैवीयधर्म एवं सत्य को दयानन्द बाहिर से नहीं लाये। वेद यहूदियों की बाईबल तथा पारसियों का अवस्ता के समान हों या उस से भी अधिक दैवीय नियम की पुस्तक है।

वेद में विश्व सम्बन्धी तत्व कम स्पष्ट नहीं है। ऋषि लोग हमेशा से कहते रहे हैं कि अनेक संसार तथा उनके नियामक दृढ़ नियम हैं। और नामबद्ध जगत् में दिव्य कार्य भी होते हैं। पर,दयानन्द इससे भी आगे बढ़ते हैं, वे कहते हैं आधुनिक भौतिक विज्ञान के सत्य, वैदिक स्तोत्रों में प्राप्य हैं। केवल इसी आधार भूत सिद्धान्त के विषय में हम उसे भ्रम उचित कहा जा सकता है। मैं यहां अपनी कोई निश्चित राय प्रगट करने में असमर्थ हूं पर, इतना कहना आवश्यक है कि प्राचीन संसार के विषय में आज कल के ज्ञान की प्रगति, दयानन्द के विचार को निरन्तर पुष्ट कर रही है। पुरातन संस्कृति में अनेक वैज्ञानिक रहस्य थे जिन में से कईयों को आधुनिक विद्या ने पुनः पाया है तथा विस्तृत, अधिक सफल एवं कम बद्ध किया है परन्तु अन्य रहस्य अब भी पाये नहीं गये। इस प्रकार दयानन्द के विचार में तनिक भी धर्मान्धता नहीं है कि वेदों में धार्मिक सत्य के समान ही वैज्ञानिक सत्य भी निहित है। मेरा विश्वास है कि वेदों में अन्य भी वैज्ञानिक सत्य है जिन पर वर्तमान संसार का किसी प्रकार का भी अधिकार नहीं हो सका। और उस अवस्था में दयानन्द ने वैदिक विद्या की गम्भीरता एवं विस्तार के विषय में अधिक की अपेक्षा कम ही वर्णन किया है।

शब्द शास्त्र तथा व्युत्पत्ति के आधार पर व्याख्या करने की रीति जिस के द्वारा उसने यह परिणाम निकाला है तथा विशेषतः देवता वाची नामों के उसके वर्णन पर आपत्ति उठाई जाती है। पर मैं निश्चित रूप से अनुभव करता हूं कि यह आपत्ति उठाना हमारी भारी भूल है। उस भूल का कारण यह है कि हम प्राचीन भाषाओं का अध्ययन करते हुए आधुनिक भाषा विषयक प्राप्त विचार एवं ज्ञान को सामने रखते हैं। हम आज कल के लोग शब्द का प्रयोग सिक्के की तरह करते हैं और उसके उत्पादक भावों, योग्यता एवं स्मृति का ध्यान नहीं रखते। जब हम बोलते हैं तो हमारे ध्यान में कथित पदार्थ आता है, परन्तु प्रकाशक शब्द कभी नहीं आता, वह तो हमारे लिए एक मृत और पशुवत् चीज है, केवल एक क्रिया पद से बना हुआ प्रचलित सिक्का है, जिसका अपना खुद कोई मूल्य नहीं है। इसके विपरीत प्राचीन भाषाओं में, शब्द, एक महत्व की तात्विक शक्ति के साथ जीता हुआ पदार्थ था, इसके धात्वीय अर्थ याद किये जाते थे क्यों कि उनका प्रयोग होता था, यह बल रूप धन, वक्ता के मानस में स्पष्ट रूप से उपस्थित रहता था। हम कहते हैं—'भेड़िया" और केवल एक पशु हमारे ध्यान में आता है, अन्य कोई आवाज ऐसा ही मतलब देती यदि उस आवाज के उपयोग की प्रथा पड़ गई होती,प्राचीन लोग कहते थे 'फाड़ने वाला' और इसका महत्व उनके सामने उपस्थित हो जाता था। हम कहते हैं 'अग्नि' और हमें आग का ध्यान आता है, इसके सिवाय हमारे पास इसका और कोई उपयोग नहीं है। पर प्राचीन लोगों के लिए 'अग्नि' के अन्य अनेक अर्थ हैं। उसके धात्वीय अर्थों में से एक या उससे अधिक, इस भौतिक अग्नि के परिचायक हैं इस लिए 'अग्नि' कहने पर अन्य अनेक अर्थों के होते हुए भी यह भौतिक अग्नि ध्यान में आती है। हमारे शब्द निश्चित रूप से एक या दो भावों को देने में समर्थ है। उनके लिए, अग्नि, वरुण, वायु जैसे शब्दों की तरह अनेक सम्बद्ध एवं पेचीदा विचारों का-एक ध्वनि सूचक के रूप में शब्द के उपयोग करने के लिए चुनाव करना बिलकुल सरल है। निसन्देह ऋषि लोग उन की भाषा की इस महान् शक्तिशालिता का लाभ उठाते थे जैसा कि गौ, चन्द्र आदि शब्दों के वर्णनों में पता लगता है। निरुक्त में शब्दों की इस शक्ति का प्रमाण है। ब्राह्मण और उपनिषदों में हम इन शब्दों के स्वतन्त्र एवं सूचक प्रयोगों की स्मृति को पाते हैं जो कि इस शक्ति को हथियापन हुई था।

निःसन्देह दयानन्द को वह लाभ प्राप्त नहीं था जो पाश्चात्य विद्वानों को भाषाओं के तुलनात्मक अध्ययन से प्राप्त है। पुराने निरुक्त में कुछ दोष है जिन को नया ज्ञान, जो दुर्भाग्य से दोष पूर्ण है फिर भी पूरा करने में सहायक है। भविष्य में हम दोनों इन प्रकाश के निकासों का वेद की व्याख्या के लिए उपयोग करेंगे। फिर भी यह दयानन्द की व्याख्या के आधार भूत सिद्धान्तों पर प्रभाव नहीं डालता इस का प्रभाव तो विस्तार की बातों पर ही पड़ता है। व्याख्या का विस्तार बुद्धि एवं विद्वत्ता का काम है और बौद्धिकराय तथा विद्वत्ता में अन्त तक मति भेद रहता ही है। पर सब मुख्य सिद्धान्तों में और उन महान् एवं आधार भूत निश्चयोंमें जिनमें अन्तश्चक्षुकी सहायता आवश्यक है तथा बुद्धि के कार्यों में, वेद के अपने तत्व से, तर्क एवं युक्तियों के आधार पर तथा मानव जाति के भूत काल के विषयमें बढ़ने हुए ज्ञानके द्वारा दयानन्द निर्दोष ठहरते हैं। वेद अनेक नाम और शक्ति वाले एक देवता की स्तुति करता है, दैवी नियम तथा उसके पालन में मनुष्यों की प्रवृत्ति की प्रशंसा करता है और हमें सृष्टि का नियम बताने का आशय रखता है।

दैवी प्रकाश के प्रश्न पर लिखने के लिए मैं स्थान नहीं घेरना चाहता। इतना कहना पर्याप्त है कि दयानन्द यहां पर भी पूर्णतया तर्क संगत है। यह एक विलक्षण बात होगी की उसको इस सिद्धान्त पर विश्वास तथा इस की घोषणा करने के कारण झूठा ठहराया जाय। यदि हम किसी प्रकार भी सत्ता को मानते हैं तो हमें परमात्मा, प्रकृति और इन जीवन आधार भूत सत्वों को स्वीकार करना पड़ेगा। तथा इनके सम्बन्धों को जानना पड़ेगा। जैसे दयानन्द पर्याप्त दृढ़ कारणों से मानते थे, वेद परमात्मा को, प्राकृतिक नियम को और जीव का परमात्मा एवं प्रकृति से सम्बन्ध को प्रकाशित करता है तो यह सिवाय दैवी सत्य के प्रकाश के और क्या है? और

यदि उसे दयानन्द स्वीकार करते थे, वेद हम इनको हमारे सामने पूर्णतया एवं निर्दोषता से प्रकट करता है तो उसने इस निर्दोष शास्त्र के विषय में ठीक ही ठीक कहा है। अब देवी प्रकाश के रोकने का, इनारा जातियों में देवा वर्णनों का तथा मनुष्यों की मनोवृत्ति एवं शक्तियों के विषय में प्रश्न शेष रह जाता है। आधुनिक विचार प्रकृति एवं नियम को सिद्ध करते हुए तथा परमात्मा का निषेध करते हुए देवी प्रकाश का भी निषेध करते हैं। पर इस प्रकार से अन्य भी बहुत सी बातों का निषेध हो जाता है जिनका अधिकतर आधुनिक विचार पुनः सिद्ध करने में अत्यन्त संलग्न है। एक बड़े मनुष्य के विषय में हम नहीं सोच सकते कि वह अपने आप में, गंवारपन से में प्राप्त अभिप्राय और तात्कालिक नश्वर सिद्धान्तों का दास हो, उसकी महानता का परमतत्त्व यही है कि वह परली सीमा तक देखता है, वह गहराई से देखता है।

मेरा विश्वास है कि वैदिक व्याख्या के विषय में, चाहे अन्तिम पूर्ण व्याख्या कोई दूसरी ही हो फिर भी दयानन्द का सत्य-विचार के प्रथम आविष्कर्ता के तौर पर आदर किया जायगा। पुरातन अज्ञान तथा लम्बे युग की नासमझी के गोल माल और अन्धकार के बीच में से दयानन्द के प्रत्यक्ष द्रष्टा चक्षु ने सत्य को विद्ध किया और उस तत्व को दृढ़ किया। उसने काल द्वारा बन्द किये गये द्वार की चाबी पायी और बन्द निर्झरों पर लगी मुद्रा को फाड़ कर अलग कर दिया।

वह कवि वह महान, चित्रकार।

वह कवि महान, वह चित्रकार,
उसकी महिमा का है न पार।

फूलों में भरता वही रंग,
खिल उठता उनका अंग अंग,
नित नया रूप, जग देख दंग,
वह करता प्रकृति का सिंगार।
वह कवि महान, वह चित्रकार।

ऊषा औ' संध्या के विशाल,
पर्दों से सजती नाट्य शाल,
फिर करता वह अभिनय कमाल,
वह निराकार, वह महाकार।
वह कवि महान, वह चित्रकार।

रजनी में नीरव आसमान,
वह तान चन्द्रिका का वितान,
धर उसमें तारक दीप प्राण,
लखता है उसकी राह, प्यार।
वह कवि महान, वह चित्रकार।

वह दूर दूर, वह पास पास,
वह जग का स्वामी और दास,
'योगी' क्यों रोता तू उदास,
कर उस प्रियतम से आंख चार।
वह कवि महान वह चित्रकार।
उसकी महिमा का है न पार।

श्री सत्यभूषण 'योगी,

गुरुकुल समाचार

ब्र० देवेन्द्र ३य श्रेणी खुजली ब्र० सुरेन्द्र कुमार ५म श्रेणी खुजली, ब्र० रामप्रकाश ४र्थ श्रेणी खुजली, ब्र० दानवीर ५म श्रेणी विषमज्वर, ब्र०विद्याधर १मश्रेणी मोतीज्वर, ब्र जितेन्द्र ३य श्रेणी विषम ज्वर, ब्र० भानुदेव ३य श्रेणी फोड़े।

गत सप्ताह ये ब्र० रोगी हुए थे अब सब स्वस्थ हो गए हैं। शेष सब सकुशल हैं।

गत सप्ताह में स्नातक पं० बुद्धदेव जी विद्यालङ्कार गुरुकुल पधारे। आपने यहां दो मनोरञ्जक तथा उपयोगी व्याख्यान दिये। पहले व्याख्यान में आपने आर्यसमाजियों को सत्यार्थ प्रकाश के छठे समुल्लास का भली प्रकार पारायण कर राजनीति में प्रवेश करने की सलाह दी। दूसरे व्याख्यान में कतिपय वेद मन्त्रों का योग्यता पूर्वक भाष्य करते हुए आपने सायण, महीधर, मैक्समूलर आदि के भाष्यों की निरर्थकता दिखाई। इस प्रसङ्ग में कई मन्त्रों के ऐसे नवीन और युक्तियुक्त अर्थ आपने किये कि श्रोतृ-वृन्द चकित हो गए।

इनके अतिरिक्त श्री पं० सत्यव्रत जी विद्यालंकार के दो व्याख्यान 'अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति और भारत' तथा 'हिन्दु मुस्लिम समस्या' विषय पर हुए। माननीय पण्डितजी ने बड़ी योग्यता से इन विषयों पर प्रकाश डाला।

श्री जयदेव जी शास्त्री के दो व्याख्यान हैदराबाद की जेल यात्रा पर हुए।

नये बालकों का प्रवेश

गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी (हरिद्वार) में नए बालकों का प्रवेश गुरुकुल के वार्षिकोत्सव के अवसर पर होगा। अपने बालकों को गुरुकुल में प्रविष्ट कराने वाले सज्जन शीघ्र ही प्रार्थना पत्र भेजकर स्वीकृति प्राप्त कर लें।

नियमावली और प्रवेश फार्म 'कार्यालय गुरुकुल कांगड़ी' (सहारनपुर) से मंगवाइये।

सत्यव्रत
मुख्याधिष्ठाता
गुरुकुल कांगड़ी

सूचना— श्री आचार्य अभय देव जी एक मास के अवकाश पर पाण्डीचेरी चले गये हैं अतएव संरक्षक तथा अन्य महानुभावों से निवेदन है कि वे वैयक्तिक पत्रादि 'श्री अरविन्दाश्रम, पाण्डीचेरी' के पते से भेजें। गुरुकुल कार्य सम्बन्धी पत्र 'गुरुकुल कांगड़ी' के पते पर ही भेजें।

श्री ला॰ हुलासराय के प्रबन्ध से गुरुकुल मुद्रणालय गुरुकुल कांगड़ी में मुद्रित तथा प्रकाशित।

* ओ३म् *

"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत" Reg. No. A. 2927

गुरुकुल

एक प्रति का मूल्य -) [गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख-पत्र] वार्षिक मूल्य २॥)

सम्पादक—साहित्यरत्न पं० हरिवंश वेदालङ्कार

वर्ष ४] गुरुकुल काङ्गड़ी, शुक्रवार १६ मार्गशीर्ष १९९६; १ दिसम्बर १९३९ [संख्या ३०

वेद के ऋषि

(श्री धर्मराज वेदालङ्कार)

वेद के ऋषि क्या हैं, इस विषय में तीन पक्ष हैं—

१–मन्त्रकर्तृत्व

२–आकस्मिक मन्त्रद्रष्टृत्व

३–नित्य मन्त्रद्रष्टृत्व

१–इन तीनों में क्रमशः उत्तरोत्तर पक्ष कम प्रचलित है। प्रथम पक्ष मन्त्रकर्तृत्व पक्ष है। इसके अनुसार वेद के ऋषि मन्त्रों के कर्त्ता अथवा रचयिता हैं, वेद मन्त्र परमात्मा के बनाये हुए नहीं परन्तु ऋषियों के बनाये हुए हैं। यह पक्ष केवल विदेशी लोग मानते हों, ऐसी बात नहीं, अपितु वेद तथा अन्य शास्त्रों में पूरी श्रद्धा रखने वाले कितने ही आर्य विद्वान भी इस पक्ष के पोषक हैं और साधारण बुद्धि द्वारा भी यही पक्ष मानने योग्य हो सकता है। इस पक्ष का विरोध किसी प्रबल आधार पर ही किया जा सकता है।

२–आकस्मिक मन्त्रद्रष्टृत्व पक्ष को मानने वालों का यह मन्तव्य है कि वेद मन्त्रों के ऋषि मन्त्रों की रचना करने वाले नहीं हैं, उन्होंने केवल मन्त्रों का दर्शनमात्र किया है—'ऋषयो मन्त्रद्रष्टारः'। योग समाधि में बैठे हुए ऋषियों को मन्त्ररूप में ज्ञान की प्राप्ति हुई, जिस मन्त्र का ज्ञान अथवा दर्शन जिस ऋषि को हुआ वही उस मन्त्र का ऋषि भी कहलाया। मन्त्र की रचना में ऋषि की अपनी बुद्धि का कोई भी उत्तरदायित्व नहीं है। ऋषि तो हृदयस्थ परम आत्मा के ज्ञान को बाहर मन्त्ररूप में अभिव्यक्त करने में उपकरण मात्र है। हां, कृतज्ञता प्रदर्शित करने के लिये समाज ने मन्त्रों के स्मरण के साथ साथ मन्त्र द्रष्टा ऋषि का स्मरण रखना भी उचित समझा। इस पक्ष को 'आकस्मिक मन्त्रद्रष्टृत्व' नाम इस लिये दिया गया है कि इसके अनुसार मन्त्र के अर्थ का ऋषि के व्यक्तित्व से कोई विशेष सम्बन्ध नहीं, एक घटना के रूप में ऋषि ने किसी समय मन्त्र का साक्षात्कार किया, मन्त्र में वर्णित पदार्थ के विषय में ऋषि का यत्किञ्चित् भी कर्त्तृत्व नहीं है, और न ही ऋषि के नाम का सम्बन्ध मन्त्र के अर्थ से है। मन्त्रकर्त्तृत्वपक्ष में तो यह सम्भव भी है कि ऋषि के नाम और व्यक्तित्व का सम्बन्ध उस ऋषि के मन्त्रों के साथ हो। जिस प्रकार आधुनिक ग्रन्थों में लेखक के जीवन की घटनाओं का वर्णन अथवा असर होता है या ग्रन्थ के ही किसी भाग में लेखक अपने व्यक्तित्व का नाम द्वारा या अन्य किसी प्रकार सङ्केत कर देता है, इसी प्रकार मन्त्रकर्त्तृत्व पक्ष के अनुसार वेद मन्त्रों में भी नाम निर्देश आदि हो सकता है। कितने ही मन्त्र ऐसे उपलब्ध होते हैं जिन में उनके ऋषियों के नामों का भी उल्लेख है। कई ऋषि ऐसे हैं जिनके नाम का उनके मन्त्रों में कई बार उल्लेख है। मन्त्रकर्त्तृत्व पक्ष में इस नामोल्लेख का समाधान बड़ी आसानी से हो जाता है, अर्थात् जिस प्रकार अन्य कवि अपनी रचनाओं में अपने नाम का निर्देश करते हैं, इसी प्रकार वेद के ऋषि कवियों ने भी अपने मन्त्रों में अपने नाम का उल्लेख किया है यह कोई अनहोनी बात नहीं है। परन्तु आकस्मिक मन्त्रद्रष्टृत्व पक्ष नामोल्लेख की समस्या का हल सीधे और सरल ढंग से करने में असमर्थ होने के कारण निरुक्त प्रक्रिया का आश्रय लेकर मन्त्रों में आए हुए नामसूचक शब्दों की व्युत्पत्तिमूलक व्याख्या करने का प्रयत्न करता है। परन्तु समस्या केवल नामोल्लेख की ही नहीं है, पर्याप्त मन्त्रों में जरा ध्यान लगा कर अध्ययन करने से साधारण पाठक को भी ऋषि के नामानुगत व्यक्तित्व की छाप मन्त्रों में दृष्टिगोचर हो सकती है, इन सब बातों का समाधान आकस्मिक मन्त्रद्रष्टृत्व पक्ष के पास कोई नहीं है।

द्वितीयपक्ष केवल एक ही अवस्था में युक्तियुक्त हो सकता है, और वह यह कि मन्त्रों में ऋषि के व्यक्तित्व का कोई प्रभाव न हो, जिस प्रकार देवता का मन्त्रार्थ से प्रगाढ़ सम्बन्ध होता है, मन्त्र के अर्थ के साथ ऋषि का इस तरह से कोई सम्बन्ध आकस्मिक मन्त्रद्रष्टृत्व पक्ष में नहीं होना चाहिये। यदि यह सम्बन्ध विशद रूप से दिखला दिया जाय तो आकस्मिक मन्त्रद्रष्टृत्व पक्ष की हेयता बहुत स्पष्ट हो जायगी।

३-तृतीयपक्ष नित्य मन्त्रद्रष्टृत्व मानता है। इसके अनुसार मन्त्र तथा उसके द्रष्टा का आकस्मिक नहीं, प्रत्युत नित्य तथा अन्तरङ्ग सम्बन्ध है। आकस्मिक पक्ष के समस्त दोषों का निराकरण इसके द्वारा हो जाता है। तृतीय पक्ष के पोषक न केवल मन्त्रों में आए हुए नामों की व्याख्या व्युत्पत्ति के आधार पर करते हैं, बल्कि मन्त्रों के साथ परम्परा से आए हुए ऋषियों के नामों का भी व्यक्ति विशेष की संज्ञा न मानते हुए उन शब्दों का अर्थ निर्वचन द्वारा करते हैं। संक्षेप में ऐसा कह सकते हैं कि ऋषिवाचक शब्द तृतीय पक्ष की दृष्टि में व्यक्तिवाचक संज्ञाएं (Proper Noun) न होकर जातिवाचक संज्ञाएं (Common Noun) हैं। ऋषिवाचक शब्दों का इस रूप में लेने से क्या फर्क पड़ता है यह हम एक उदाहरण से समझ सकते हैं। किसी मन्त्र का ऋषि अत्रि है। यदि अत्रि किसी विशेष ऐतिहासिक ऋषि का नाम हो और वह ऋषि मन्त्र का कर्त्ता न होकर केवल द्रष्टा हो तो अत्रि की वैयक्तिक बातें उसका नाम आदि मन्त्रों में साधारणतया न आना चाहिये, परन्तु ऐसा होता है।

अत्रि

जिन सूक्तों का ऋषि अत्रि है उन सूक्तों में ही अत्रि शब्द अनेक वार आया है। यहां हम कुछ उद्धरण देते हैं—

(१) "तस्मा उ ब्रह्मवाहसे गिरो वर्धन्त्यत्रयो
गिरः शुम्भन्त्यत्रयः।" ऋ० ५।३९।५

यहां 'अत्रयः' और 'गिरः' में समानाधिकरण भाव है। शतपथ ब्राह्मण १४-५-२-२ में कहा है—

"वागेवात्रिर्वाचा ह्यन्नमद्यतेऽत्रिर्ह वै नामैतद् यद् आत्रिरिति"

'गिरः' का एक वचन 'गीः' है। 'गीर्वाग् वाणी सरस्वती' इस 'अमर' वाक्य के अनुसार 'गीः' का अर्थ वाक् है। वाक् और अत्रि को शतपथ ने पर्यायवाची माना है। इस अवस्था में यह कैसे हो सकता है कि यहां 'अत्रि' शब्द किसी व्यक्तिविशेष का अभिधायक हो? वेद में 'अग्नि' अनेक स्थानों पर हविर्भक्षक अग्निदेव के लिये आया है। अग्नि और वाक् का सम्बन्ध प्रसिद्ध ही है। ब्राह्मणों में इस सम्बन्ध को सूचित करने वाले अनेक वाक्य उपलब्ध होते हैं—

'अग्निर्मे वाचि श्रितः।' तैत्तिरीय।

'सा या सा वाग् अग्निस्सः।' जैमिनीय उपनिषद्।

'सा या सा वाग् आसीत् सोऽग्निरभवत्।'
जैमिनीय उपनिषद्।

'या वाक सोऽग्निः।' गोपथ।

'वाग् एवाग्निः।' शतपथ।

ये वाक्य अग्नि और वाक् के ऐकात्म्यको उज्ज्वल रूप में घोषित कर रहे हैं। उद्धृत मन्त्र जिस सूक्त का है उसका देवता इन्द्र है। इन्द्र और अग्नि का सहचारित्व निरुक्त में यास्काचार्य ने प्रदर्शित किया है। सूक्त में इन्द्र से सब प्रकार के ऐश्वर्य की प्रार्थना की गई है। प्रार्थना उसी की सफल हो सकेगी जिसकी गिरः—स्तुतियां—इतनी समर्थ हों कि वे इन्द्र को रिझा सकें, वाग्देव अग्नि द्वारा अधिष्ठित पुरुष की स्तुतियों में ही यह बल हो सकता है।

प्रसङ्ग वश हम यहां एक और बात की ओर भी संकेत कर देना चाहते हैं। सूक्त का ऋषि अत्रि है, इस अत्रि का परिचायक नाम 'भौमः' दिया है। 'भौमः' का अर्थ है भूमिपुत्र। भूमि का पुत्र मङ्गल है, इसी लिये मङ्गलवार को 'भौमवार' भी कहते हैं। मङ्गल के पर्यायवाची नामों की गणना करते हुए अमर कोश में 'अग्नि' 'अङ्गारक' 'कुज' 'भौम' आदि शब्दों का भी समावेश है। मङ्गल, अग्नि और वाक् के पारस्परिक सम्बन्ध का प्रकरण विषयान्तर के भय से नहीं छेड़ते।

हम दिखलाना यही चाहते हैं कि मन्त्र के ऋषि का देवता तथा सूक्त के प्रतिपाद्य विषय के साथ कितना गहरा सम्बन्ध है, इसी दृष्टि को लेकर अगले उद्धरणों में भी हम विवेचन करेंगे।

(२) "यस्त्वा सूर्य स्वर्भानुस्तमसाविध्यदासुरः
अक्षेत्रविद् यथामुग्धो भुवनान्यदीधयुः

स्वर्भानोरध यदिन्द्र माया
अवो दिवो वर्तमाना अवाहन्
गूढं सूर्यं तमसापव्रतेन तुरीयेण ब्रह्मणाविन्ददत्रिः।
मा मामिमं तव सन्तमत्र
इरस्या द्रुग्धो भियसा नि गारीत्
त्वं मित्रो असि सत्यराधास्
तौ मेहावतं वरुणश्च राजा।
ग्राव्णो ब्रह्मा युयुजानः सपर्यन्
कीरिणा देवान् नमसोपशिक्षन्
अत्रिः सूर्यस्य दिवि चक्षुराधात्
स्वर्भानोरप माया अघुक्षत्
यं वै सूर्यं स्वर्भानुस्तमसा विध्यदासुरः
अत्रयस्तमन्वविन्दन् न ह्यन्ये अशक्नुवन्।

५; ४०, ५-९

इन पांच मन्त्रों में से तीन में अत्रि शब्द आया है, परन्तु सम्बद्ध प्रकरण को स्पष्ट करनेके लिये बाकी दो मन्त्र भी दे दिए गये हैं। पहले मन्त्र का देवता सूर्य है। सूर्य के प्रति कहा गया है कि 'हे सूर्य, असुर की सन्तान स्वर्भानु ने जब तुझे अपने वश में कर लिया तब सब लोग मुग्ध अर्थात भौंचक्के हो गये और उन्हें अपने अपने घर भी दिखाई देने बन्द होगये।' अमर कोश में 'विधुन्तुद राहुः स्वर्भानुः सैंहिकेयो विधुन्तुदः'। इस पंक्ति द्वारा स्वर्भानु को राहु बतलाया है। सूर्य ग्रहण के समय जब राहु सूर्य को आच्छादित कर लेता है तब इतना अन्धकार हो जाता है कि दिन में भी आकाश में तारे दिखाई देने लग जाते हैं, घनघोर अंधेरे में अपने अपने घर का रास्ता भी नहीं

सूझ पाता। चौथे मन्त्र में कहा है कि 'अत्रि ने घुत्राक-सूर्य को, अस्त्र श्री और स्वर्भानु की माया का निवारण किया। इसी प्रकार पांचवें मन्त्र में भी इसी बात को दूसरे शब्दों में इस प्रकार कहा है कि 'जिस सूर्य का स्वर्भानु ने अन्धकार से बांध दिया था, अत्रियों ने उसे फिर प्राप्त कर लिया, लेकिन और लोग ऐसा करने में समर्थ नहीं हुए।

पिछले उद्धरण में हम सिद्ध कर चुके हैं कि अत्रि अग्निरूप वाणी का प्रतिनिधि है। वाग् या सरस्वती जिस पुरुष में प्रतिष्ठित है, उसके आगे किसी भी प्रकार के अज्ञान का आवरण नहीं रह सकता। जब सूर्य ग्रहण हुआ, तब पशु पक्षी घबराकर जैसे प्रलय ही हो रहा हो, इधर उधर भागने लगे, तरह तरह की भय सूचक आवाजें करने लगे, मूर्ख और अविद्वान् लोग भी सन्त्रस्त होकर कुछ का कुछ सोचने लगे, ऐसे समय सरस्वती के उपासक विद्वान् अत्रि ने अपने ज्योतिष शास्त्र के ज्ञान के आधार पर लोगों के भ्रम को दूर किया, उन्हें सान्त्वना दी और असली परिस्थिति का ज्ञान करवाया।

(शेष अग्रिम अङ्क में)

मानव जीवन की सफलता के साधन

(श्री स्वामी व्रतानन्द जी आचार्य गुरुकुल चित्तौड़गढ़)

ज्ञान का आदि स्रोत जब से फूटा है, मानव का नग्न सत्य जिसे लेकर वह संसार में आया था, सभ्यता से ढक गया है। मनुष्य की प्रकृत सचाई सभ्यता में छिप गई है। जिस के कारण आज सभ्यता की अपेक्षा सत्यता को गौण समझा जाता है। वास्तव में तो सभ्यता की अपेक्षा सत्यता अत्यन्त जरूरी है। किन्तु देखने में क्या आरहा है, सभ्यता के नाम पर विदेशी वस्त्र पहने जाते हैं। शराब सिगरेट, सिनेमा का प्रचार सभ्यता के नाम पर खूब हो रहा है। बीसवीं सदी की सभ्यता में चोटी तक भी साफ कराना फैशन का अङ्ग बन गया है।

मानव की आत्मा सत्य की अपेक्षा करती है पर मानव उसे सभ्यता के आवरण में भुला देना चाहता है। यदि सत्यता से आत्मा को अपने सहज स्वाभाविक रूप में लाना है तो आवश्यक है कि आत्मा की पवित्रता बढ़ाई जाय, जो कि विद्या व तपस्या से ही प्राप्त होती है। सुख की चाहना करने वाले के पास विद्या सम्भव नहीं, विद्यार्थी को सुख का मोह छोड़ देना चाहिये।

मानव जीवन की सफलता के लिये इस प्रकार हम देखते हैं विद्या और तप महान् आवश्यक वस्तुएं हैं। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में हम इस का प्रभाव देखते हैं, एक तरह से इनका प्रभाव संसार व्यापी कहना चाहिये। विद्या शान्ति की प्रतिमा है तो तप शक्ति का प्रतीक। शक्ति और शान्ति का विचार करने पर हम इन में अटूट सम्बन्ध देखते हैं। प्रत्येक क्रिया इन दोनों से व्याप्त दीखती है। विचार शीलता, विनय, नियम पालन, स्वार्थ त्याग आदि विशेषताएं यदि शान्ति में व्याख्यात की जा सकती हैं तो दूसरी ओर निर्भयता, अदीनता, आत्मोन्नति को हम शक्ति कह सकते हैं।

संसार में यदि प्रीति से व्यवहार आवश्यक है तो पहले सत्यता चाहिये, पर कड़वा सत्य न बोलना चाहिये इस के साथ मधुरता होनी चाहिए, पर इतनी मधुरता से भी लाभ नहीं जिस से अपने को हीं दबना पड़े, इस लिये मन्यु भी आवश्यक है। 'अभयं सह वेद' दोनों का ज्ञान तथा आचरण मानव जीवन की उन्नति के लिये परमावश्यक है।

शक्ति और शान्ति की तुलना करने पर मालूम पड़ता है इन में शक्ति अधिक आवश्यक है। शक्ति का ही सर्वत्र आज राज्य दीख पड़ता है पर यह ठीक नहीं। यह ठीक है कि शक्ति उन्नति के लिये सर्वोत्तम वस्तु कही जा सकती है पर शान्ति की उपेक्षा से भी काम नहीं चलेगा। यदि शान्ति पर ही ध्यान दिया जाय तो आदमी तमोगुणी बन जाता है। दूसरी ओर शक्ति पर ध्यान देने से मानव रजोगुणी हो जाता है। हम देखते हैं दोनों का, शक्ति और शान्ति का सम्बन्ध ही मनुष्य को उन्नति की सीढ़ी पर चढ़ा सकता है। इस समन्वय के साथ शक्ति का परिपाक होना आवश्यक है। राम और कृष्ण जो शान्ति का संदेश लेकर पृथ्वी पर आये थे शक्ति के द्वारा ही अपने उद्देश्य को पूर्ण करने में सफल हुए थे। डाकू रत्नाकर जो शक्ति से दुनिया को त्रास पहुंचाता था, आदि कवि वाल्मीकि के रूप में अपनी वीरता व उग्रता के कारण ही परिवर्तित हो सका।

विद्या को तीर मानें तो तप धनुष है। इन दोनों के द्वारा हमें प्रणव लक्ष्य पर पहुंचना होगा यह तभी हो सकेगा जब 'प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा' द्वारा 'ब्रह्म तल्लक्ष्य' पर पहुंच जांय।

इसलिये जीवन सफल करने के लिये हमें निश्चित उद्देश्य को 'लक्ष्य' रखकर उन्नति करनी चाहिये।

पुण्यस्य फलमिच्छन्ति पुण्यं नेच्छन्ति मानवाः।
न पापफलमिच्छन्ति पापं कुर्वन्ति यत्नतः॥

मनुष्य की तो यह दशा है, इसलिये उस के लिये आवश्यक है वह वेद तथा विद्वानों से कहे मार्ग पर चलता हुआ पुण्य फल प्राप्त करे, तभी उसको पापफल से मुक्ति होगी।

यत्तदग्रे विषमिव परिणामेऽमृतोपमम्
तत् सुखं सात्विकं प्रोक्तं, आत्मबुद्धि प्रसादजम्॥
पाप पुण्य के त्रिभुज दो, हे नर तू पहिचान॥
कटुक नोक है पुण्य की, मधुर पाप की जान॥
नोक मात्र को देखकर, ग्राह्य हेय मत जान।
नोक छोड़ कर शेष सब, उस से उलटा जान॥

पाप पुण्य की कसौटी के लिये मनुष्य को विवेकशील होना आवश्यक है। विवेकशीलता आने पर मनुष्य सदसद् विवेक से ही उन्नति कर सकेगा।

(शेष पृ० ६ पर)

गु रु कु ल

१६ मार्गशीर्ष शुक्रवार १९९६

यह विचित्र युद्ध और राष्ट्रीय महासभा

ठीक तीन महीने हुए, यूरोप में महायुद्ध का दावानल भड़के हुए। उस समय से हिटलर का सशस्त्र जर्मनी, जर्मन जाति पर हो रहे अत्याचार के निवारण के नाम से तथा पिछले किये गये अन्यायों का प्रतिकार करने के लिये युद्ध के मैदान में कूदा हुआ है। जर्मनी ने युद्ध की घोषणा करते हुए कहा था, वह जर्मन जाति पर हो रहे अत्याचार के उन्मूलन करने के लिये सतत प्रयत्न शील रहा है, किन्तु पोलैण्ड ने अब उस के प्रयत्न पर विघ्न डालते हुए जर्मन जाति पर अत्याचार करना प्रारम्भ कर दिया है। जर्मन जाति के सर्वेसर्वा हिटलर ने इसी तरह की घोषणा करते हुए एक दिन पोलैण्ड पर धावा बोल दिया था। यूरोप के पश्चिमी प्रजातंत्रवादियों, ब्रिटेन और फ्रांस ने प्रजातंत्र का इस प्रकार विनाश होते देख, प्रजा के जन्मसिद्ध अधिकार स्वतंत्रता की रक्षा करने के नामपर पोलैण्डको सहायता का वचन दे दिया। जर्मनी के पोलैण्ड पर आक्रमण करने पर पहले ब्रिटेन ने फिर फ्रांस ने युद्ध की घोषणा जर्मनी के विरुद्ध कर दी। यह एक नवीन महायुद्ध की शुरूआत थी।

जर्मनी की नियंत्रित, सुशिक्षित तथा आधुनिक यंत्रों से सजी हुई सेना के जल, थल व नभ के लगातार आक्रमणों के सामने दुर्बल पोलैण्ड टिक न सका। सत्रहवें दिन ही पोलैण्ड की इस भारी हमले से कमर टूट चुकी थी, प्रत्याक्रमण या पुनः विजय की आशा रूस की लाल सेना के द्वारा किए गये पिछली ओर के हमले से जाती रही। पोलैण्ड की बची खुची सेनाओं ने या तो आत्म समर्पण कर दिया अथवा तितर-बितर हो गईं। नाजी जर्मनी और साम्यवादी रूस ने पोलैण्ड का एक बार और विभाजन कर लिया। पोलैण्ड के उद्योग प्रदेश, कल कारखाने, बन्दरगाह जर्मनी को मिले इस प्रदेश में जहां जर्मन थे वहां पोलिश लोगों की भी आबादी थी, दूसरी ओर यूक्रेन तथा सफेद रूसी लोगों का तैल तथा लकड़ी की बहुतायत वाला उपजाऊ काली मिट्टी वाला पोलैण्ड का पूर्वी भाग रूसी भालू को मिला। पोलैण्ड के इतिहास में यह राजनैतिक विभाजन तीसरी बार हुआ है। इस प्रकार पोलैण्ड यूरोप के मानचित्र से मिटा दिया गया।

पूर्वी रणक्षेत्र से आक्रमणात्मक कार्य कर चुकने पर जर्मनी ने अपनी सेनाओं का बड़ा भाग पश्चिमी मोर्चे पर जमा दिया। दूसरी ओर ब्रिटेन और फ्रांस को सेनाएं किसी भी हमले को रोकने के लिये सन्नद्ध खड़ी थी, दुनिया किसी भारी आक्रमण, युद्ध, विनाश की आशा कर रही थी।

पर यह सब न हुआ। आशा की गयी थी, इस बार पिछले महायुद्ध की अपेक्षा भी भयानक रूप से मानव संहारक यंत्रादियों का प्रयोग किया जायगा, देश में महामारी, युद्ध, रोग, आर्थिक मन्दी आदि चीजें परिणाम स्वरूप फैल जायंगी। युद्ध के विषय में सभी किसी अनिष्ट परिणाम की आशंका कर रहे थे। देखने में क्या आया, पश्चिमी मोर्चे पर किसी तरह का आक्रमण या प्रत्याक्रमण नहीं हो रहा है, कहा गया था जर्मनी के हवाई बेड़े के बेड़े आकर फ्रांस और ब्रिटेन की नागरिक जनता का जीवन दूभर कर देंगे और देशों को तबाह कर देंगे। पोलैण्ड में अवश्य ही भीषण नर संहार हुआ है, वहां की जनता विषैली गैसों से, हवाई आक्रमणों के कारण, रोग से, प्रहारों से क्षतविक्षत हो चुकी है। पोलैण्ड में युद्ध का देवता खूब खुल कर खेला, दूसरी ओर पश्चिमी मोर्चे पर हमें पूर्ण शांति दृष्टि गोचर होती है, वहां सिवाय कुछ इक्के दुक्के हवाई हमलों के और कोई हलचल दृष्टिगोचर नहीं होती।

यह यूरोप का द्वितीय महायुद्ध अपने वर्तमान रूप में बड़ा विचित्र कहा जा सकता है। इस महायुद्ध में लड़ाकू देश प्रमुखतः जर्मनी, साम्राज्यों सहित ब्रिटेन और फ्रांस हैं। अभी तक इनमें से कोई भी आक्रमणात्मक भाग युद्ध में नहीं ले रहा है, इसका यह भी कारण हो सकता है प्रत्येक पक्ष आक्रमण में हानि अनुभव कर रहा है, यह समझता है आक्रमण में विनाश का खतरा है। इस समय दोनों पक्ष संसार भर में अपने पक्ष का प्रचार कर सार्वजनीन सहानुभूति अपने पक्ष में करना चाहते हैं। प्रत्येक पक्ष अपने को सचाई का ठेकेदार साबित करने का प्रयत्न करता है, दूसरे को एक दम मक्कार, विश्वासघातक सिद्ध करने की कोशिश कर रहा है। समझा जाता है, यह प्रचार का युग है, जो पक्ष विश्वसहानुभूति को अधिक से अधिक अनुकूल बना लेगा, उसे सफलता मिलने की सम्भावना अधिक मालूम पड़ती है। जर्मनी अपनी जलीय सुरङ्गों के द्वारा ब्रिटेन को एक घेरे में बन्द कर देना चाहता है, दूसरी ओर इंगलैण्ड जर्मनी के व्यापार-आयात निर्यात को सर्वथा रोक कर उसे भूखा मारना चाहता है। दोनों पक्ष चाहते हैं, अपनी कम से कम हानि सहते हुए दूसरे को अधिक से अधिक क्षति पहुंचाई जाय। इसी नीति पर चलते हुए जर्मनी जलीय सुरंगे डाल रहा है तो ब्रिटेन शत्रु का व्यापार नष्ट करने के लिये सतत प्रयत्नशील है।

यही इस नये यूरोपियन युद्ध की विभिन्नता है। इसमें दोनों पक्ष लड़ाईके लिये सन्नद्ध जरूर हैं, पर कोई आक्रमण का परिणाम भुगतने को तैयार नहीं है। इस युद्धका परिणाम भयंकर हो सकता है, देश बिगड़ सकते हैं, साम्राज्य रसातल में जा सकते हैं, और परिणाम में प्राप्ति की कुछ आशा नहीं। सबसे ज्यादह डर की बात दोनों लड़ाकू पक्षों को यह है, उन्हें मालूम पड़ता है कि इस युद्ध के परिणाम स्वरूप यूरोपियन सभ्यता, जिसकी चकाचौंध से आज समग्र विश्व अपने को पराभूत अनुभव करता है' एक बारगी ही नष्ट हो जायगी। यह विकसित यूरोपियन

सभ्यता किसी भांति नष्ट होने जा रही है, यह कल्पना करते ही यूरोपियन राष्ट्र कांप उठते हैं। ब्रिटेन, फ्रांस को इसी कारण नाजीवाद पर भारी आक्रमण करने से डर लगता है, उन्हें साम्यवाद का भूत तंग कर रहा है तो हिटलर को भी विजय की सम्भावना नहीं दीख पड़ रही है।

युद्ध चल रहा है, पर युद्ध सा वातावरण नहीं है। बन्दूकें तनी हुई हैं, पर अभी उन में बारूद भरनेकी इजाजत नहीं है। यही है यह विचित्र युद्ध।

× × × ×

यूरोप की किसी घटना का प्रभाव भारत में न पड़े जबकि उसमें ब्रिटेन भी शामिल हो, यह असम्भव है। यह कोई आश्चर्य की बात नहीं थी, भारत को भी इस युद्ध में लड़ाकू देश घोषित किया जाता, भारत पराधीन था, शासक जैसा चाहते, शासित देश को उसी के अनुसार चलना था। भारत का सेनाएं, भारतीय नरेश और बहुत से दूसरे नरम विचार वाले इस समय ब्रिटिश सरकार के साथ सहयोग करने के लिये तैय्यार हैं। ब्रिटिश सरकार इनकी सहायता का उपयोग करने जा भी रही है। दूसरी ओर प्रगतिशील राजनैतिक दल जिनकी अग्रणी राष्ट्रीय महासभा है, जिस का भारतीय जनता पर बहुत ज्यादह असर है, कह रहे हैं ब्रिटेन को अपने युद्ध सम्बन्धी उद्देश्यों की स्पष्ट घोषणा कर देनी चाहिये। वायसराय पिछले दिनों राष्ट्रीय महासभा के प्रतिनिधियों से तीन मुलाकातें भी कर चुके हैं। इनके बाद की गयी वायसराय की घोषणा से मालूम पड़ता है कि ब्रिटिश सरकार वायसराय की कार्य कारिणी में कुछ जगहें राजनैतिक दलों के प्रतिनिधियों को देने को तैय्यार है। दूसरी ओर राष्ट्रीय महासभा ने मांग की है, ब्रिटेन यदि पालैंण्ड की आज़ादी के लिये हो रहे युद्ध में भारत की सहायता प्राप्त करना चाहता है तो उसे भारत को भी आज़ाद करने में किसी तरह की झिझक अनुभव न होनी चाहिये। वह जो कार्य यूरोप महाद्वीप के एक पराधीन देश के लिये करना चाहता है वह उसे अपने साम्राज्यान्तर्गत भारत के लिये भी करना चाहिये। ब्रिटेन की ओर से इसके जवाब में कहा जाता है, भारत में अबतक साम्प्रदायिक विद्वेष का भूत घर किये हुए है, उस समय तक किसी तरह की आज़ादी देने का सवाल ही नहीं उठता, और भारत का राजनैतिक उद्देश्य औपनिवेशिक स्वराज्य प्राप्त करना है। राष्ट्रीय महासभा इसका उत्तर देती है, भारतीय साम्प्रदायिक वातावरण कोई मुख्य समस्या नहीं है। यह तो स्वतंत्रता मिलने के बाद स्वतः ही निबट जायगी, असली समस्या तो स्वराज्य की है। भारत को आज अपनी स्वतंत्रता प्राप्त करनी है, यह कोई सौदा नहीं है कि स्वतंत्रता के बदले सहायता दी जायगी, यह तो भारत की जनता के लिये जीवन मरण का प्रश्न है। जिस प्रकार पोल जनता के लिये यह प्रश्न यूरोप में है।

युद्ध के उद्देश्यों को स्पष्ट न किये जाने पर अपने को विचित्र दशा में पाती हुई राष्ट्रीय महासभा की आठ सरकारों ने त्यागपत्र दे दिये हैं, आसाम को छोड़ कर बाकी सब जगह का शासन विधान स्थगित कर दिया गया है, और आसाम की बनी हुई नई सरकार के पीछे कोई बहुमत नहीं है—यह अभी तक आये हुए समाचारों से मालूम पड़ता है।

राष्ट्रीय महासभा ने शासनसूत्र छोड़ कर अब रचनात्मक कार्यक्रम पर ज़ोर देना प्रारम्भ कर दिया है, वह किसी भी संकट का सामना करने के लिये तय्यार हो रही है उसकी ओर से समझौते का दरवाज़ा खुला हुआ है। ब्रिटिश सरकार भारतीय लोकमत का स्वीकारात्मक उत्तर देती है या कोरे 'नहीं' में, यह इसपर निर्भर करता है कि यूरोप का युद्ध किसी बड़ी भयंकर लड़ाई में परिवर्तित होता है या दोनों पक्षों में कोई समझौता हो जाता है।

रमते राम

[श्री ज्ञानी]

हरिद्वार से देहली, हैद्राबाद दक्षिण और मद्रास। दो हजार मीलों से अधिक फासला है। मेल और ऐक्स प्रैस में भी पूरे ३ दिन और ३ रातें लगती हैं। आगे "यम" का राज्य है। परन्तु इतनी कठिन तपस्या के पश्चात भी नचिकेता (रमते-राम) को वर-प्राप्ति का आशा नहीं, यही तो दुःख है।

अस्तु, देहली पहुँचे। शाम का समय था। घूमते फिरते सिनिमा के नज़दीक से गुज़रे। "सन्त तुलसीदास" के बड़े २ पोस्टर चिपक रहे थे। तमाशाइयों की खासी भीड़ जमा थी। हमारे दिल में भी आया कि चलो हम भी लगे हाथों श्री तुलसी दास जी की रामायण कथा में शरीक होकर "रघुपति राघव राजाराम" की धुन में कुछ अपना परलोक सुधार लें। अभी यह सोच ही रहे थे कि एक "मास्टर ब्यूक" मोटर गाड़ी सिनेमा के गेट पर लगी। दरवाजा खुला और एक देसी साहब और उनकी देसी मेम बाहिर निकले। मेम-साहिबा की चौड़ी ज़री की किनारी उनकी अमीरी का विज्ञापन कर रही थी। साहब भी पूरे "इवनिङ्ग सूट" में थे। सब की नज़रें इन्हीं दो पर थीं। मानों यही स्टेज के नायक और नायिका हों। इतने में दो तीन लूले-लंगड़े भिखमंगे भी, जो मानों इन्हीं की इन्तज़ार में थे, आ मंडराने लगे। बड़े दीनता पूर्ण शब्दों में इन अमीरों की कोमल भावनाओं को जाग्रत करने का प्रयत्न किया। भिखमंगों की भी अपनी कलायें हैं। इनका ऐक्टिङ्ग भी कमाल का होता है। परन्तु इसके विषय में फिर कभी विस्तार से लिखेंगे। हां! एक बुढ़िया जिसकी उम्र ७०—८० वर्ष की होगी, जिसके मुख पर पड़ी अनन्त रेखायें अपना समस्त इतिहास स्वयं अंकित कर रही थीं ज्यों त्यों करके अपने भार-रूप शरीर को मोटर तक खेंच कर लाई और मेम साहिबा के पुत्र की दुहाई देकर एक पैसा मांगा। दुर्भाग्य वशात् उस बुढ़िया का हाथ श्रीमती की सुन्दर साड़ी के अञ्चल से छू गया। बस, फिर क्या था। मेम साहिब का पारा ११० डिग्री के भी ऊपर चढ़कर थर्मामीटर को तोड़ना चाहता था कि इतने में उनके

श्रीमान् ने अपनी कीमती छड़ी से निर्धन बुढ़िया को दो चार रसोद कीं। भीड़ को बढ़ते देखकर उन्होंने अपने ड्राइवर को "इन्सट्रक्शन" दीं और अन्दर स्पैशल बौक्स में जा विराजे। ड्राइवर ने भी बुढ़िया को गालियों की बौछार और चरण-प्रहार देकर अपनी स्वामिभक्ति का प्रदर्शन किया।

खेल प्रारम्भ हुआ। दृश्य बदलने लगे। शृङ्गारी प्रेम, बरसाती नाले की तरह जोरों की तरह शीघ्र ही प्रशान्त-वाहिनी भक्ति रूपी गङ्गा नदी में जा मिला। अब उसमें उथल-पुथल नहीं। विजय-वेगों की चञ्चलता नहीं। शान्त, गम्भीर, आनन्द की धारा समान गति से अपने स्वामी अनन्त समुद्र की ओर बही जा रही है। "हाफ़ टाइम" में हम बाहिर आये। देखा, जोरों की बारिश हो रही है। हठात् हमारी दृष्टि दरवाजे के एक ओर पड़े गठड़ी से शरीर पर गई। नजदीक जाकर देखा तो वही बुढ़िया है जो मेम-साहिब से पैसा मांग रही थी। हमने उसे आवाज दी। वो चुप थी, मानो उसने सुना नहीं। हमने उसके सिर को छुआ, ठण्डा था। हाथ-पैर भी सिकुड़ रहे थे। अभी श्वास बन्द न हुआ था। शायद बुढ़िया भी सन्त तुलसीदास की प्रतीक्षा में थी; अन्त समय "राम-नाम-संकीर्तन" द्वारा स्वर्ग की भीख मांगना चाहती थी।

× × × ×

देहली से चले। वर्षा भी साथ हो ली। अनेक यात्री आए और गये। कभी गाड़ी इतनी भर गई की लोग खड़े थे। और कभी यह हाल कि हमारे लेट जाने पर भी जगह खाली थी। एक अङ्गरेजी कविता याद आई जिसमें कवि ने नदी को लक्ष्य रखकर कहा है:- "आदमी आयें या जायें परन्तु मैं सदा बहती चली जाती हूं।"

ग्वालियर से झांसी तक का रास्ता रमणीय है। कहीं पहाड़ियां, कहीं जङ्गल और कहीं दरिया। वर्षा ऋतु में तो इस इलाके की शोभा दुगनी हो जाती है। नहाए हुए हरे वृक्ष, उगते हुए सूरज की सुनहरी किरणों में कितने भले मालूम होते हैं! दुःख तो यही है कि प्रायः यात्री अपनी विषम समस्याओं में इतना उलझा रहता है कि उसे प्रकृति के सुखद सहवास का अवकाश ही नहीं मिलता।

प्रातः ६ बजे के करीब हम इटारसी पहुंचे। अभी बूंदाबांदी हो रही थी। हठात् "महात्मा गांधी की जय" की आवाज़ ने हमारा ध्यान खींचा। प० जवाहर लाल नेहरू, मौलाना अब्दुल कलाम आज़ाद, आचार्य कृपलानी तथा का.का कालेलकर आदि नेताओं ने प्लेटफ़ार्म पर प्रवेश किया। ये सब इलाहाबाद से वर्धा जा रहे थे।

पं० नेहरू श्वेत खादी के वेश में खूब सज रहे थे। बंगाली कुड़ता, मराठी धोती, पेशावरी चप्पल और गांधी टोपी। हां, जवाहर-जैकेट भी। सादा और सुन्दर। तो यह है कि "किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम्।"

पचास वर्ष की आयु में भी जवाहर लाल स्वस्थ और सशक्त हैं। टांगों में लचक, रीढ़ सीधी, सीना तना हुआ और मस्तक विशाल। आंखों में चमक भी है। पर होठों की मुस्कराहट धीरे २ लुप्त होती जा रही है। अबके तो हमने उनके चेहरे पर चिन्ता के निशान भी पाए। कांग्रेस का नेतृत्व और देश के राजनैतिक कार्यों का भार मानो उनके सहज हास्य और विनोदी स्वभाव को कुचले डाल रहा है। उन्हें अभी महात्मा गांधी से "ईश्वर-विश्वास" के पाठ को पढ़ना है। "मैं कर्त्ता हूं" इस भ्रम को भुला कर भगवान्-भरोसे अपनी किश्ती के पतवार छोड़ने का अभ्यास करना है। अन्यथा, सार्वजनिक कार्यों का भार बहुत जल्दी कमर तोड़ डालेगा।

इटारसी से नागपुर, वर्धा होते हुए गाड़ी काज़ीपेट पहुंची। यहां से हम हैद्राबाद-दक्षिण के लिये रवाना हुए। आर्य-सत्याग्रह के पश्चात् यहां के हिन्दुओं व आर्यों की क्या अवस्था है इसके विषय में पुनः विस्तार से लिखेंगे।

हैद्राबाद से मद्रास। अभी बारिश जारी है। रेलवे लाइन के दोनों ओर पानी के तालाब बन रहे हैं। एक दिन में १३ इंच वर्षा। गरीबों की झोंपड़ियां पानी से तर-ब-तर हैं। बेचारे पशु वृक्षों के नीचे खड़े ठिठुर रहे हैं। किसान अपने पक्के खेतों को पानी में डूबा देख कर अन्धकारमय भविष्य की कल्पना से चिन्तित है। इन्द्रदेव ऊपर आकाश से इस प्रलय-लीला को देखते हैं और बादलों की गड़गड़ाहट व बिजली की कौंद में अट्टहास्य कर रहे हैं! रमते राम भी पृथ्वी और आकाश की इस विकट प्रेम-लीला पर मुस्कराने लगे हैं।

(पृ० ३ का शेष)

मनुष्यकी वैयक्तिक उन्नति के लिये आवश्यक है वह अपने अतीत का स्मरण किया करे इस के लिये चरित्र निर्माण संचिका बनानी चाहिये। तदनन्तर यह प्रक्रिय- जीवनोद्देश्य का निश्चय। स्वार्थत्याग। कर्तव्य का विचार करने के बाद उसे लिखना। कर्तव्य पालन में सजग रहने के लिये सत्संग, सावधानता, स्वाध्याय, आत्म निरीक्षण। प्रार्थना, और उसके साथ पुरुषार्थ। अन्त में समय समय पर गुजरे काल का सिंहावलोकन।

यदि मनुष्य इस प्रक्रिया में से गुजरेगा तो उसे निसन्देह सफलता मिलेगी।

गुरुकुल समाचार

महावीर तृतीय श्रेणी विषम ज्वर, रणवीर प्रथम श्रेणी उदरशूल, भारतभूषण तृतीय श्रेणी विषम ज्वर, प्रेमचन्द द्वितीय श्रेणी अतिसार, विष्णुमित्र चतुर्थ श्रेणी चोट, गत सप्ताह जो ब्रह्मचारी रोगी हुए थे सब स्वस्थ होगये हैं शेष सब सकुशल हैं।

सर्दी दिनों दिन बढ़ती जा रही है ब्रह्मचारियों का स्वास्थ्य अत्युत्तम है।

गुरुकुल सूचना

दीपमालिकोत्सव बड़े उल्लास, उत्साह और स्नेह के साथ मनाया गया। इस प्रसंग पर छात्रवृन्द ने अनेकविध रोचक, शोभावह, उपयोगी और शिक्षाप्रद आयोजनों का उपक्रम किया था। क्रिकेट, वॉलीबॉल, के सामुख्यों में गुरुकुल दल ने सर्वत्र विजय प्राप्त की। तीन दिन तक रात्रि को संवाद, अभिनय, संगीत आदि के मनोहर प्रयोग प्रस्तुत किए गए थे। जिन में दुर्गादास और अन्धे की गाड़ी नामक अभिनय बहुत सुंदर बन पड़े थे। दीवाली के दिन विद्यालय भवन के आंगन में स्थित उद्यान के नारियल वृक्षों पर टांगे हुए आकाश दीपों (कंदील) की शोभा अपूर्व थी। उपासना मन्दिर में समवेत होकर सबने बृहद् यज्ञ रचाया था और महर्षि निर्वाण दिवस की सभा में छात्रों ने महर्षि के जीवन कार्यों तथा उनके मिशन पर व्याख्यान दिए और निबन्ध पढ़े। पण्डित यज्ञदत्त जी की अध्यक्षता में ब्रह्मचारियों ने जादू के वैज्ञानिक खेल प्रदर्शित किए।

सागर के प्रति

(पं० धर्मदेव सिद्धान्तालङ्कार विद्यावाचस्पति मद्रास)

[१]

हे सागर तव ओर चित्तमम, चंचल दौड़ा आता है
तेरे दर्शन करने को यह, अतुरता दिखलाता है।
तू मुझको अनन्त गुणसागर, की ही याद दिलाता है
याद दिला मेरे प्यारे की, मुझ को मस्त बनाता है॥

[२]

यही चाहता चित्त है मेरा, रहूं देखता तेरी ओर
मेरे मनको मुग्ध बनातीं, तेरी लहरें तेरा शोर।
शुभ आनन्द तरङ्गे मेरे, अन्दर भी तब उठती हैं
चित्त वृत्तियां सुख सागर की, ओर सभी बह उठती हैं॥

[३]

इस से बढ़ कर क्या सुख जो मैं, सुख सागर की लहरों में-
नित कल्लोल करूं निशिवासर, करुणा सागर लहरों में
बिन्दु तुल्य ये तुच्छ जलधिके सन्मुख सब लौकिक आनन्द
तेरे साथ करें कल्लोलें, मिल जाता तब परमानन्द॥

[४]

मुझे दीखता मेरा प्यारा, हो सवार इन लहरों पर
मेरे चित को प्रमुदित करता, साथ बिठा इन लहरों पर।
यही भावना मुझको अतिशय देती है अद्भुत आह्लाद
दूर भगा देती चिन्ताएं, शोक सकल अरु सर्व विषाद॥

[५]

शाश्वत सुख आनन्द गहें हम, यह ही तो जीवन का ध्येय।
तभी पूर्ण हो सकता है जब, सुखसागर को जानें ज्ञेय।
करुणानन्द शान्ति के सागर, मेरे अन्दर भर जाओ
मेरा मन भरपूर शान्ति रस, से विश्वम्भर कर जाओ॥

ऋषि की निर्वाण—समाधि पर—

गीत

[गुरुकुल में दीपमालिकोत्सव के अवसर पर यह कविता गाई गई थी। —सं०]

तुम दिव्य देव थे बन कर जग में आए!

तुम में वैदिक वह काल विमल था नाचा,
वे भूत-नृत्य थे तुमको बहुत सुहाए।
❀ ❀

तुम भूत काल के पूर्ण शुभ्र थे दर्पण—
जिस पर जा पूरा वर्तमान भी छाए!
❀ ❀

तुम में दैवी सङ्गीत और मधु-स्वर था—
जिसको जग का उर बार बार दुहराए।
❀ ❀

तेरे मुख पर थी ब्रह्मचर्य की सुषमा—
जिससे विकार—यम भी डरकर छिप जाए।
❀ ❀

तेरे हाथों में दण्ड, हृदय में करुणा,
तेरे जीवन में ज्ञान स्रोत लहराए।
❀ ❀

तेरी आँखों में दया सजल थी झरती,
जब अधरों ने आनन्द-मेघ बरसाए।
❀ ❀

तुम पर थी गैरिक शाटी की परिपाटी,
इस तिमिरित जग में क्रान्ति भानु से भाए।
❀ ❀

तुम सन्यासी थे जग से क्या था नाता,
फिर भी तुम से यह जग सारा हरषाए!
❀ ❀

तुम क्षुद्र जगत् के भी थे बने सहायक
सन्तों के उर में शङ्कर बन मँडराए।
❀ ❀

दीपावलि को लखकर विलास का मेला,
उच्छ्वास, प्राण, बन आँसू, बाहर आए।
❀ ❀

मैं दृग-दीपों का तुमको स्नेह बनाऊँ,
जो जलकर जग में जगमग ज्योति जगाए!
❀ ❀

तेरे स्वच्छन्द छन्द-मय गीत मनोहर—
इस पावन-स्मृति पर मैं गाऊँ, जग गाए।

'श्री कुमार'

चौधरी दुलाराराय के प्रबन्ध से गुरुकुल मुद्रणालय गुरुकुल कांगड़ी में मुद्रित तथा प्रकाशित।

* ओ३म् *

"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत"   Reg. No A. 2927

गुरुकुल

एक प्रति का मूल्य -)   [गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख-पत्र]   वार्षिक मूल्य २॥)

सम्पादक—साहित्यरत्न पं० हरिवंश वेदालङ्कार

वर्ष ४]   गुरुकुल काङ्गड़ी, शुक्रवार २३ मार्गशीर्ष १९९६; ८ दिसम्बर १९३९   [संख्या ३१

वेद के ऋषि

(श्री धर्मराज वेदालङ्कार)

(२)

(३) त्वं चिदत्रिमृतजुरमर्थमश्वं न यातवे,
कक्षीवन्तं यदी पुना रथं न कृणुथो नवम्।

१० । १४३ । १

इस मन्त्र का ऋषि अत्रि है जिसका परिचायक नाम 'सांख्य' है। 'सांख्य' शब्द संख्या से बना है। संख्या का अर्थ है सम्यग् ज्ञान, इस सम्यग् ज्ञान से सम्पन्न पुरुष सांख्य है। अत्रि का अर्थ 'सरस्वती का उपासक' इस प्रकार पहले ही कर चुके हैं। इस उद्धृत मन्त्र में अत्रि का विशेषण 'ऋतजुर' है। सायण ने इसका अर्थ 'ऋतं यज्ञः स्तोत्रं वा तेन जीर्यन्तं सर्वदा परिचरणशालम्' इन शब्दों से किया है। इससे विदित होता है कि सायण की दृष्टि में भी 'उत्तम प्रकार से स्तुति करना' यह विशेषता अत्रि की है। सरस्वती के साधक अत्रि की यह विशेषता होने में आश्चर्य ही क्या है ?

अब तक हमने उन स्थलों का अनुशीलन किया है जहां अत्रि ऋषि के मन्त्रों में ही अत्रि शब्द आया है। ऋषि और देवता मन्त्रों में किसी चीज की प्रधानता सूचित करते हैं। यदि सोम किसी मन्त्र का देवता है तो इसका इतना ही अभिप्राय है कि सोम का उस मन्त्र में विशेष रूप से प्रधानतया वर्णन है। अन्य देवताओं का भी गौण वर्णन हो सकता है। लेकिन देवता वही कहलायगा जिसका मुख्यतया वर्णन हो। यही बात ऋषियों के विषय में भी लागू होती है। एक ऋषि के मन्त्रों में अन्य ऋषि का गौण रूप से सम्बन्ध हो सकता है। अत्रि का उल्लेख उन मन्त्रों में भी है जहां अत्रि स्वयं ऋषि नहीं है, ऋषि कोई और है। परन्तु अन्य ऋषि के मन्त्रों में आए हुए अत्रि के वर्णन से भी अत्रि के स्वरूप या गुणधर्म को जानने में सहायता मिल सकती है। अब हम कुछ उदाहरण ऐसे पेश करेंगे जहां अत्रि ऋषि नहीं है परन्तु अत्रि का किसी अन्य प्रसङ्ग में जिकर मौजूद है—

[१] जहि विश्वान् रक्षस इन्दो,
अत्रिणो बृहद्वदेम विदथे सुवीराः।

९—८६—४८

इसका साधारण अर्थ यह है– हे सोम, सब राक्षसों का तू नाश कर दे, स्तोत्र पढ़ने में कुशल–अपना मां के इस सुयोग्य पुत्र यज्ञ में खूब स्तुति करें।

अत्रि–सुवीरों का कार्य यहां यज्ञ में खूब स्तुति करना है, इस अवस्था में अत्रि विशेषण का क्या तात्पर्य हो सकता है, यह स्पष्ट है।

[२] दध्यङ् ह मे जनुषं पूर्वो अङ्गिराः प्रियमेधः,
कण्वो अत्रिर्मनुर्विदुस्ते मे पूर्वो मनुर्विदुः।

१–१३९–९

इस मन्त्र का अर्थ करते हुए सायण ने ऋषियों के नामों की व्याख्या व्युत्पत्ति के आधार पर की है—

'स च पूर्वः पूरकः सर्वस्य पुरातनो वा अङ्गिरा. अंगारस्तद्वेचस्वी इत्यर्थः, यद्वा अंगारा एवांगिरसोभवन् येऽङ्गारा आसंस्तेऽङ्गिरसोभवन्निति श्रुतेः (ऐतरेय ब्राह्मण ३.३४.)। अंगिरा अंगारा अञ्चना इति निरुक्तम्।.. प्रियमेधः मेधाप्रियः। कण्वः मेधावी" स च अत्रिः दुःखत्रयरहितः अत्रिर्न त्रय इति निरुक्तम् (३.१७) मनु भगवान्।'

सायण का अर्थ करने की इस शैली से स्पष्ट विदित हो जाता है कि इनकी सम्मति में ऋषिसूचक नामों के वेद में आने पर उनका अर्थ निर्वचनपद्धति के अनुसार यौगिक शब्द मान कर करना चाहिये। इस उद्धरण में अत्रि का अर्थ 'आध्यात्मिक आधिदैविक और आधिभौतिक तीनों प्रकार के दुःखों से रहित' इस तरह किया गया है। सरस्वती के आश्रय से समस्त देवताओं को आराधित कर अपने वश में कर लेने वाला स्तुतिकुशल अत्रि दुःखों के पाश में कैसे फंसा रह सकता है ?

[३] अत्रिमनु स्वराज्यमग्निं मुक्थानि वावृधुः
विश्वा अधिश्रियो दधे ।

२. ८. ५ ।

इस मन्त्र में 'अत्रिम का' अर्थ 'शत्रूणां अभानां वा भक्षकम्' ऐसा किया गया है। यहां अत्रि अग्नि का विशेषण है। और अग्नि को 'उक्थानि वावृधुः'— स्तोत्र द्वारा आराधित करते हैं। अग्नि और अत्रि के ऐकात्म्यको तथा अत्रि के साथ स्तोत्र के सम्बन्ध को पहले ही विशद रूप से बतला चुके हैं।

[४] प्र विश्वसामन्नत्रिवदर्चा पावकशोचिषे
यो अध्वरेष्वीड्यो होता मन्द्रतमो विशि ।

१. २२. १.

इस मन्त्र का ऋषि 'विश्वसामा आत्रेय' है। विश्वसामा वह है जिसे सब प्रकार के साम अथवा स्तुतियां आती हैं, जो हरेक तरह का साम या सङ्गीत गा सकता है। विश्वसामा आत्रेय है अर्थात् अत्रि का पुत्र है। वाग्देवता के अवतार अत्रि के पुत्र में विश्वसामा बनने की योग्यता होनी चाहिये। इस मन्त्र का देवता अग्नि है।

अत्रि के पुत्र विश्वसामा को सम्बोधन करके कहा गया है कि—हे विश्वसामन! जिसकी ज्वालाएं सबको पवित्र करती हैं, यज्ञों में यज्वा लोग जिसकी स्तुति करते हैं, देवों को जो बुला कर लाने वाला है इस प्रकार के स्तुत्यतम अग्नि को प्रसन्न करने के लिये तू भी अत्रि—अपने पिता के समान अर्चना कर– स्तुति कर।

[५] तंत्वा सुशिप्र दम्पते स्तोमैर्वर्धन्त्यत्रयो
गीर्भिः शुम्भन्त्यत्रयः ५. २२. ४.

इस मन्त्र का देवता भी अग्नि है। ऊपर की पंक्तियों में अत्रियों द्वारा स्तुति पूर्वक अग्नि के आराधन का वर्णन है।

(६) यथा वामत्रिरश्विना गीर्भिर्विप्रो अजोहवीत्
ना सत्या सोमपीतये नमन्तामन्यकेसमे ।

'विप्रः प्राज्ञोऽत्रिर्यथा गीर्भिः स्तुतिभिः अजोहवीत्' सायण के इस अर्थ से अत्रि का जो अर्थ हम कर रहे हैं वह भली भांति पुष्ट होता है।

[७] चित्रं ह यद्वां भोजनं न्वस्ति
न्यत्रये महिष्वन्तं युयोतम्

यो वामोमानं दधते प्रियः सन् । ७.६८-५ ।

यहां 'प्रियः सन' का अर्थ करते हुए सायण ने अपने भाष्य में कहा है—

"योऽत्रिः प्रियःसन् स्तोतृत्वात् युवाभ्यां
प्रियभूतः सन्"

अत्रि अश्विनौ का प्यारा इसलिये है क्योंकि वह स्तुति करना जानता है।

एवं वेद मन्त्रों के अनेक प्रमाणों के आधार पर हमने यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि ऋग्वेद का अत्रि ऋषि कोई ऐतिहासिक पदार्थ नहीं, अत्रि यदि मन्त्रों का रचयिता होता तो उसके नाम के अर्थ का अनुसरण करने वाला मार्ग वेद के समस्त अत्रि प्रकरणों में उपलब्ध न होता। हम देखते हैं कि अत्रि शब्द के साथ एक विशेष अभिप्राय जुड़ा हुआ है, अत्रि अग्नि की वाक् शक्ति का मूर्त्तरूप है, सरस्वती की समृद्धि से सम्पन्न विद्यावदात पुरुष अत्रि है, दिव्य पदार्थों की स्तुति प्रार्थना उपासना को पूर्णता से करने में अत्रि का अत्रित्व है। जिस किसी भी प्राणी में अत्रित्व का यह गुण परिपक्व अवस्था में फलित होगा, उसे ही अत्रि ऋषि कहा जा सकता है। प्रत्येक मानव को अत्रित्व की साधना करनी चाहिये। जिस दिन अत्रित्व की सिद्धि हो जायगी उसी दिन अत्रि ऋषि का पद व उच्चासन भी प्राप्त हो जायगा। सिद्ध पुरुष उसी दिन मन्त्र द्रष्टृत्व की मर्यादा से भी विभूषित होने का अवसर उपलब्ध करेगा।

वेद का प्रत्येक ऋषि अत्रि के समान एक एक दिशा में सिद्धि का मूर्त्त आदर्श है, मनुष्य ने इन मूर्त्त आदर्शों तक पहुंचकर नाना ऋषियोंकी पदवियों को हासिल करना है।

जिस प्रकार हमने अत्रि ऋषि के विषय में लिखा है। इसी प्रकार ऋग्वेद के अन्य ऋषियों के विषय में भी क्रमशः समय पर लिखेंगे। इस अनुसन्धान की दिशा नवीन है, इस लिये जो पाठक हमें उचित निर्देश भेजकर अनु-गृहीत करेंगे, उनका हम स्वागत करेंगे।

आर्य सत्याग्रह में गुरुकुल की आहुति

(ले०—श्री क्षितीश वेदालंकार)

(२)

वैसे तो ट्रेनमें दिल्ली से एक सीधा हैदराबाद का डिब्बा लगता है। पर यदि हम उसमें बैठ जाते तो इसका अभिप्राय यही होता कि हम हैदराबाद जा रहे हैं। इस लिये जान-बूझ कर ही हम दिल्ली से उस डिब्बे में नहीं बैठे थे, और जो हमने दिल्ली से वर्धा का और वर्धा से सिकन्दराबाद का टिकट लिया था वह भी इसलिये लिया था कि यदि सीधा हैदराबाद का टिकट लेंगे तो पकड़े जाने का अन्देशा है।

फलतः काजीपेट में गाड़ी बदलनी थी। रात को तीन बजे गाड़ी काजीपेट पहुंची। साथी सब पैर पसार कर निश्चिन्तता के साथ सो रहे थे। पर यहां फिक्र के मारे नींद कहां? रह रहकर ख्याल आ रहा था कि हम किस अन्धकार की ओर बढ़ते चले जा रहे हैं—कोई जान-पहचान का नहीं, कोई संगी-साथी नहीं, कोई सहायक नहीं! चारों ओर, जहां तक दृष्टि जाती है, अन्धकार ही अन्धकार है। सचमुच, हमने अथाह सागर के नील-वक्ष पर अपनी यह छोटी-सी नौका छोड़ दी है—कोई इसका मल्लाह नहीं, कोई इसकी पतवार नहीं, और किस दिशा में जाना है यह कुछ पता नहीं।...पर यह सब सोचने का भी अवसर कहां है?

साथियों को जगाया और झोला हाथ में लेकर डिब्बे से बाहर निकले। उस आधी रात की नीरवता में-साथी आंखे मलते हुए मेरे साथ-साथ कुछ क़दम आगे बढ़े। जिस डिब्बे पर 'हैदराबाद' लिखा था उसके सामने आकर ठिठक गये। इतने में पीछे से आवाज आई—"हां, यही डिब्बा है। चढ़ जाओ, चढ़ जाओ।" पीछे मुड़कर जो देखा तो हैरानी की हद न रही-वही काली वर्दी और काली शक्ल लिये यमदूत हमारा पीछा करता आ रहा है और अब हैदराबाद के डिब्बे के सामने ठिठकता देखकर आदेश दे रहा है कि चढ़ जाओ यही डिब्बा है। निश्चय ही उसने भांप लिया है कि हम हैदराबाद जा रहे हैं। अब क्या किया जाये? चुपचाप बिना कुछ कहे सुने उस डिब्बे में चढ़ गये। कुल चार तो मेरे साथ थे ही-जब देखा कि हमारे इस डिब्बे में बैठ चुकने पर वह भी निश्चिन्तता से इधर-उधर भटक रहा है और उसका ध्यान हमारी ओर नहीं है, तो हम दो लड़के फिर उस डिब्बे से निकल भागे। लेखक तो गाड़ी के ठीक दूसरे छोर पर पहुंचा और जल्दी से एक डिब्बे में घुसकर चुपचाप खड़ा हो गया। खड़ा होगया इसलिये कि कहीं बैठने की जगह नहीं थी। खचा-खच भीड़ भरी पड़ी थी और इस समय सबके सब यात्री बेहोश होकर सो रहे थे, कुछ ऊंघ रहे थे। यदि किसी को जगह देने के लिये जगाता और कुछ कहासुनी हो जाती-क्योंकि सोकर उठा हुआ आदमी अपने आप में कम रहता है-तो व्यर्थ में ही शोर मचता और यदि कहीं बात बढ़ जाती-क्योंकि मुसलमान तो थे ही 'अक्सर मुसलमान' बड़ी जल्दी गरम हो ही जाते हैं—तो फिर प्लेटफ़ार्म पर घूमने वाले यमदूत से मुठभेड़ होती, और अपने राम इसी से बच बचकर निकलना चाहते थे।

थोड़ा देर बाद ही एक साथी दौड़ा दौड़ा आया और उसने भराये हुए गले से कहा—"जल्दी चलो, बुला रहे हैं। पुलिस आगई है।" मैंने देखा कि उसकी भयभीत आकृति पर घबराहट के चिन्ह हैं और वाणी में किंकर्तव्य-विमूढ़ता नाच रही है। मुझे गुस्सा आया कि मैं तो इतनी मुश्किल से बच-बचाकर यहां छिपकर खड़ा हुआ हूं-अब जब कि हरेक की अपनी जिम्मेवारी अपने ऊपर थी और किसी न किसी तरह हैदराबाद पहुंचना ही हरेक का उद्देश्य था-फिर यह मुझे उस उद्देश्य से क्या विचलित करने के लिये मेरे पास आया है! पर फिर स्थिति की गम्भीरता को और उसके भयभीत चेहरे को देखकर मेरे मनमें विचार आया कि जो लगातार चौदह साल तक एक साथ रहे हैं, एक साथ जिन्होंने खान-पान किया है और पाठ पढ़ा है, और अब तक जो हमेशा सुख में या दुःख में एक साथ ही व्यवहार करते आये हैं, वे अब अचानक ही अपने उस चिरन्तन अभ्यास को कैसे भुला सकेंगे और अपनी आपत्ति को अकेले सहार सकेंगे?

और फिर यह सोच कर कि चाहे कुछ भी क्यों न हो-रहेंगे तो सब साथ ही, और छोटी श्रेणियों में पढ़ी हुई एक कहावत—"Death with friends is a festival"—को याद कर मैं उसके साथ हो लिया और उसी हैदराबाद वाले डिब्बे के पास जाकर देखा कि उस डिब्बे को पुलिस ने चारों ओर से घेरा हुआ है। जिस यमदूत ने इस डिब्बे में हमें चढ़ते हुए देखा था वह एक दम जाकर पुलिस इन्स्पेक्टर को बुला लाया। पीछे बचे हुए तीनों साथी घिर गये और उनसे कहा गया कि पहले अपने सब साथियों को यहां उपस्थित करो और अपने नाम तथा पूरे पते लिखवाओ।

इसी परिस्थिति में वह मुझे बुलाने गया था—क्योंकि वह स्वयं पुलिस को देखते ही घबरा गया था और निश्चय नहीं कर पाया था कि क्या करे-नाम और पता लिखवाये या न लिखवाये।

पुलिस इन्स्पेक्टर के डराने-धमकाने से वह अन्य भी सब साथियों को बुला लाया, और धीरे धीरे पूरे पन्द्रह के पन्द्रह वहां उपस्थित होगये।

पुलिस इन्स्पेक्टर ने कहा—"अपने नाम-पते लिखवाइये।"

"क्या आप हरेक यात्री का नाम और पता लिखते हैं? इस डिब्बे में और भी तो इतने यात्री हैं, आप उनमें से किसी को जगाकर उसका नाम और पता नहीं पूछते? .. और यदि आप परिचय ही चाहते हैं तो आपके लिये इतना ही काफी होना चाहिये कि हम सब 'स्टूडेन्ट्स' हैं और 'हिस्टारिकल टूर' पर जा रहे हैं।"

इस पर उसने तेज होकर कहा—"आपको अपने नाम और पते लिखवाने पड़ेंगे। जबतक आप नहीं लिखवायेंगे तब तक गाड़ी आगे नहीं जायेगी।"—और उसने सिपाही से इंजन-ड्राइवर को बुलवाकर हमारे सामने ही कह भी दिया कि आज गाड़ी आगे नहीं जायेगी। हम देख रहे थे कि इस हुज्जतबाजी में गाड़ी आध घण्टा पहले ही लेट हो चुकी है। यह भी क्या विचित्र तमाशा है कि आज इनके कहने से गाड़ी भी आगे नहीं जायगा! अपने घर की जो गाड़ी हुई। और फिर उसने रुक कर कहा—"और यदि आप तब भी नहीं लिखवायेंगे तो देखिये, यह है वारण्ट, आपको पुलिस इन्स्पेक्टर की हैसियत से गिरफ्तार कर सकता हूं।"

हैदराबाद बिना पहुंचे और सत्याग्रह बिना किये ही गिरफ्तार हो जावें-यह तो हमें इष्ट नहीं था। इसलिये लाचार होकर नाम लिखवाने शुरू किये। लेखक ने अपना नाम लिखवाया— सतीश चन्द्र और अपने बाप का लालचन्द। पूछा-कहां से आ रहे हो? कह दिया- बम्बई से। वहां क्या करते हो?-नालवाड़ी में पढ़ता हूं। फिर उस विद्यारत्न ने-जो सिक्ख बना हुआ था, अपना नाम लिखवाया-रतनसिंह और अपने बाप का नाम जोरावर सिंह। इन्द्रदत्त ने लिखवाया-तेजासिंह और हुक्म सिंह। सत्येन्द्र ने - जो अंग्रेज बना हुआ था, लिखवाया-सेण्ट पौल और सेण्ट पीटर्स। कोई 'श्री भिक्षु' और अखिलानन्द-इत्यादि इत्यादि। रहने का स्थान सबका अलग-अलग-कोई वर्धा में रहता है, कोई नागपुर में, कोई सी. पी. में कोई यू. पी. में, कोई दिल्ली, कोई पेशावर। फिर उसी हिसाब से सब पढ़ने भी अलग-अलग ही हैं—कोई शिक्षामन्दिर में, कोई विविध

(शेष पृ० ५ पर)

गु रु कु ल

२३ मार्गशीर्ष शुक्रवार १९९६

गुरुकुलीय वर्धा शिक्षा योजना और महात्मा जी

(ले०—प० हरिदत्त जी वेदालंकार)

(गत १५ नवम्बर को लेखक ने तथा श्री जगन्नाथ जी ने सेगांव में पूज्य महात्मा जी के साथ गुरुकुल कांगड़ी में वर्धा शिक्षा चलाने के विषय में वार्त्तालाप किया था। यहां पर, प्रश्नोत्तर के ढंग, से उस वार्त्तालाप को यथा संभव अविकल रूप में ही दिया जा रहा है। वार्त्तालाप या भेंट प्रकाशित करने के नियम के अनुसार इसे छपाने से पहले महात्मा जी को दिखाना आवश्यक था किन्तु अनिवार्य परिस्थिति से ऐसा संभव नहीं हो सका, क्योंकि अगले ही दिन महात्मा जी कार्य समिति की बैठक के लिये इलाहाबाद चले गये और उनके सेगांव लौटने से पहले ही लेखक को वर्धा से चलना पड़ा। लेखक को विश्वास है कि इस में कोई गलत बयानी नहीं है जिस से किसी प्रकार का भ्रम उत्पन्न होने की संभावना हो। आशा है, गुरुकुलीय वर्धा-शिक्षा योजना में दिलचस्पी रखने वाले पाठकों के लिये यह वार्त्तालाप उपयोगी होगा—लेखक]

प्रश्न—गुरुकुल कांगड़ी में वर्धा शिक्षा पद्धति चलाने का निश्चय किया गया है। साथ ही, हम गुरुकुल की एक मुख्य विशेषता अर्थात् प्राचीन संस्कृति को समझने के लिये आवश्यक संस्कृत, व्याकरण और वैदिक धर्म के अध्यापन को भी कायम रखना चाहते हैं। मूलोद्योग कताई द्वारा इन विषयों की शिक्षा देते हुए यदि गुरुकुल की शाला चलायी जाय तो क्या वह आप की सम्मति में वर्धा शिक्षा योजना की शाला हो सकती है या संस्कृत आदि विषयों की पढ़ाई छोड़ कर, पूरे ३ घंटे २० मि० कताई आवश्यक है?

उत्तर—संस्कृत छोड़ने को कौन कहता है। उसे पढ़ाइये और बड़ी खुशी से पढ़ाइये। आपको उसे तो पढ़ाना ही चाहिये। उस योजना को इससे थोड़ा ही पहुंचने वाला है। पर उसे मूलोद्योग द्वारा पढ़ाओ। यह तो बहुत उत्तम ढङ्ग होगा। जैसे भिन्न भिन्न प्रान्तों वाले अपनी मातृ भाषा उद्योग द्वारा सीखते हैं, उसी प्रकार आपके यहां के बच्चे संस्कृत को मूलोद्योग द्वारा सीखेंगे। बच्चे इस में खूब रस लेंगे। कभी आपके यहां का कोई चंचल बालक कहीं दूसरी जगह पर जायगा तो वह हैरान होगा—'ऐं, यह क्या? ये लोग संस्कृत इस ढङ्ग से पढ़ते हैं। इन की पढ़ाई तो बिलकुल किताबी है। हम लोग तो उद्योग से ही यह भाषा पढ़ते हैं।'

प्र०—किन्तु पूज्य विनोबा जी प्रारम्भिक कक्षाओं में एक साथ दो भाषाओं के पढ़ाने के पक्ष में नहीं हैं उनका कहना है कि इस से शिक्षा की स्वाभाविकता जाती रहती है।

उ०—मैं उन के मुंह से बात सुन लूं, तभी कुछ कह सकता हूं; लेकिन मैंने अपनी राय तो कह दी है। किन्तु मैं आप की इस बात से कुछ चौंका कि आप संस्कृत आदि विषय पढ़ाने के लिये उद्योग का समय कम करना चाहते हैं। जब सारी शिक्षा उद्योग द्वारा देनी है तो उद्योग के समय को कम करने का प्रश्न ही नहीं उठता।

प्र०—यदि उत्पादन में पूरी क्षमता लाने का प्रयत्न किया जाय तो भी क्या आप ३ घंटे २० मि० पर आग्रह करेंगे। पूज्य विनोबा जी का आशय कुछ ऐसा प्रतीत होता था कि यदि उद्योग को एक या डेढ़ घंटा देकर जाकिर-हुसैन, कमेटी में बतायी उत्पत्ति का तिगुना या आधा भाग पूरा हो जाता है तो कम समय से भी काम चल सकता है। मुख्य वस्तु तो क्षमता है, यदि थोड़े समय में भी पूरा ध्यान देकर पूरी क्षमता प्राप्त हो सके तो यह कुछ बुरा नहीं।

उ०—मैं तो नहीं मानता। मेरा तो यह कहना है कि उद्योग को ३ घंटे २० मि० भी कम समय है। इस से ज्यादा समय होना चाहिये। हमें यह भय क्यों है कि उद्योग को सारा समय देने से शिक्षा अधूरी रह जायगी। जब शिक्षा उद्योग द्वारा देनी है तो सारा समय उद्योग कराते हुए सारी शिक्षा दे सकते हैं। शिक्षा के लिये तो अलग समय रखने की जरूरत ही नहीं होनी चाहिये। सारी शिक्षा तो उद्योग में से ही निकलनी है। उस दिन आप विद्या मन्दिर में थे जब मैंने स्थानीय संस्थाओं के प्रतिनिधियों में भाषण दिया था। मैंने वहां बतलाया था कि किस प्रकार उद्योग में से ही सारी शिक्षा निकल सकती है। कपास ही को ले लीजिये। कपास के जरिये मैं बच्चों को हिन्दुस्तान का इतिहास पढ़ाऊंगा उन्हें बताऊंगा कि पुराने जमाने में कपास का काम कितना अच्छा था, कारीगरी कितनी उन्नत थी, वह किस तरह नष्ट हुई, अंग्रेजों की हकूमत हिन्दुस्तान पर किस प्रकार हुई। कपास की पैदावार कहां २ होती है, इससे भूगोल सिखाऊंगा। इस तरह और भी विषयों की तालीम दूंगा।

प्र०—किन्तु वर्धा के विद्या मन्दिर में तो उद्योग को ३ घंटे २० मि० के स्थान पर दो घंटे से अधिक नहीं दिये जाते!

उ०—वह तो मैंने सुना है। पता लगा है, दूसरी जगहों में भी ऐसा चलता है। इससे तो काम चलने का नहीं। मैंने तो आर्य नायकम् जी से कह दिया है कि मुझे तो पूर्णतया वर्धा पद्धति चाहिये। चाहे एक ही लड़का सीखे पर पूरी वर्धा पद्धति से ही सीखे। पूना सम्मेलन के अपने संदेश में मैंने लिखा था—"जो इसे चलाना चाहते हैं वे समझ कर अच्छी तरह जान कर ही चलायें। तभी यह शिक्षा पद्धति सफल हो सकती है।"

प्र०—जाकिरहुसेन कमेटी की रिपोर्ट में ३ घं०२०मि०के समय में उद्योग के साथ २ दूसरे विषयों को भी अनुबद्ध

कर के पढ़ाने की व्यवस्था की गयी है किन्तु अनुभव से ज्ञान हुआ है कि इस से विद्यार्थियों का ध्यान बंट जाता है। सूत भी अच्छा नहीं निकलता तथा विषयों का भी पूरा ज्ञान नहीं हो पाता।

उ०—ठीक है। उद्योग के समय में रामायण की कथा सुनाने से अपेक्षित उत्पादन पूरा नहीं होता।

प्र०—किन्तु यन्त्र शास्त्र का ज्ञान तो दिया जा सकता है?

उ० यह तो दिया ही जायगा। उस के बिना भला उद्योग कैसे होगा? गति किस तरह बढ़ानी है, टूटे तार को कैसे जोड़ना है, लपेटना किस तरह से है—यह सब तो उसी समय में बताना होगा।

प्र०—जब १ घण्टे २०मि० में हम ध्यान बटनेके डर से अन्य विषयों की शिक्षा उद्योग के साथ २ नहीं दे सकते, और इस समय को भी आप बहुत कम मानते हैं तो क्या बाकी बचे हुए थोड़े समय में सारी दुनियां के इतिहास का ज्ञान तथा वर्धा योजना के पाठ्यक्रम को पूरा किया जा सकता है?

उ०—हमने किताबें थोड़े ही पढ़ानी हैं। इतनी किताब पढ़ ली तभी उस विषय का ज्ञान हो सकता है ऐसा तो नहीं है। मैं तो बच्चों को थोड़े में कहानी कह दूंगा बस इतिहास हो गया। इसी तरह दूसरे विषय हो जायंगे। वर्धा योजना का पाठ्यक्रम बनाने वाले अनुभवी लोग तो नहीं हैं। अभी तो यह चीज चली है। दो ही बरस हुए हैं। धीरे २ अनुभव बढ़ता जायगा तो पाठ्य क्रम ठीक हो जायगा।

प्र०—उपनिषदों में ऐसी कथायें आती हैं कि गोपालन के उद्योग से जाबालि—सत्यकाम आदि ने ब्रह्मज्ञान प्राप्त किया था। क्या इस प्राचीन संस्कृति के अनुकूल उद्योग से हम सारी शिक्षा नहीं दे सकते?

उ०—नहीं। गोपालन दस्तकारी (हस्तोद्योग) थोड़े ही है जो उस से शिक्षा दी जाय। वह तो कृषि का सहायक धन्धा है। मैं जो शिक्षा देने को कहता हूं वह तो Education through village handicraft है। ऐसा ही मैंने लिखा भी है। मेरा बल सिर्फ उद्योग पर नहीं किन्तु Handicraft यानी हाथ के उद्योग पर भी है। शिक्षा हाथ के काम से ही होनी चाहिये। हाथ हमें परमात्मा ने बहुत बड़ी चीज दी है। आदमी और पशु में यह ही तो भेद करता है। हाथ से ही आदमी ने इतनी तरक्की की है। बड़ी २ चीजें बनायी हैं। मेरा तो यह कहना है कि उस हाथ से ही सारी शिक्षा हो। गोपालन तो ऐसा हाथ का काम नहीं है। फिर हम उस से कैसे शिक्षा दे सकते हैं। "गोपालन कृषि के अङ्ग रूप में रह सकता है। यह स्वतन्त्र रूप में शिक्षा का वाहन बन सकता है—ऐसी मुझे संभावना नहीं है। तुम परीक्षण करो। पर यह ग्राम्य हस्तोद्योग तो नहीं है।

प्र०—आप सारी शिक्षा यथा सम्भव उद्योग द्वारा ही देने को कहते हैं। जो चीजें उद्योग से सम्बद्ध न हों, उन के बारे में आप वर्जन पद्धति का आश्रय लेने को कहते हैं। इस में पूना सम्मेलन ने उद्योग, सामाजिक परिस्थिति तथा प्राकृतिक परिस्थिति तीनों को शिक्षा का केन्द्र बनाया है। क्या। आप सम्मेलनके इस निर्णय से सहमत हैं?

उ०—मैं तो सहमत नहीं। मैं शिक्षा सिर्फ उद्योग द्वारा देना चाहता हूं। वर्जन पद्धति की सलाह अब भी देता हूं। जो उद्योग द्वारा सम्बद्ध नहीं हो सकता वह बालक के लिये जरूरी नहीं। मैं तो उसी चीज़ का ज्ञान देना चाहता हूं जो बच्चे के जीवन के लिये उपयोगी हो, उस काम दे। ऐसी चीजें, जिनकी जरूरत नहीं, उन्हें पढ़ाने का क्या फायदा? अभी अनुभव कम है। इस लिये थोड़ा बहुत तो दूसरे ढंग से सिखाना ही पड़ेगा। अक्षर ज्ञान को ही लीजिये। मैं अभी तक यह नहीं सोच पाया हूं कि उद्योग से अक्षर ज्ञान कैसे दिया जायगा। पर हमें सोचना तो चाहिये।

प्र०—पाठ्यक्रम में हिन्दुओं के साथ बहुत अन्याय हुआ है। सामाजिक अभ्यास का (Social studies) का एक यह भी उद्देश्य है कि सर्व धर्म समभाव हो किन्तु पाठ्यक्रम में जहां इस्लाम के सभी सन्तों तथा खलीफाओं का विस्तृत रूप से वर्णन है वहां हिन्दु धर्म के प्राण-स्वरूप राम कृष्ण का नामोल्लेख तक नहीं है। हिन्दुओं के आदर्श पुरुषों प्रताप, शिवाजी दयानन्द आदि का बिल्कुल वर्णन नहीं है।

उ०—राम और कृष्ण तो हिन्दुधर्म की जड़ हैं उन्हें कैसे छोड़ा जा सकता है। मैंने तो पूरे विस्तार का पाठ्य क्रम नहीं देखा पर इनको कभी नहीं निकाला जा सकता। सब प्रान्तों और जातियों में इस शिक्षा की विभिन्नता होगी। आवश्यकतानुसार परिवर्तन होंगे किन्तु दृष्टि सदा ऐसी रहनी चाहिये कि हम दूसरे सम्प्रदायों को सहानुभूति से देखें। उनके प्रति हमारा आदर का भाव और सहिष्णुता बनी रहे।

(पृ० ३ का शेष)

कालिज में, कोई हिन्दूयूनिवर्सिटी बनारस में और कोई कोई ऋषिकुल आयुर्वेदिक कालिज में ही सही। लिखते २ वे अपना सन्देह प्रकट करते जा रहे थे— बनावटी नाम समझकर, और इधर हमें मनमें हँसी आ रही थी। उनका ख्याल था कि उस्मानिया यूनिवर्सिटी से जो विद्यार्थी 'वन्देमातरम्' गीत गाने के कारण निकाले गये थे और नागपुर यूनिवर्सिटी में जाकर प्रविष्ट हुए थे, वे ही अब यूनिवर्सिटी छोड़कर सत्याग्रह करने आये हैं। उनके इस सन्देह का कारण यह था कि हम नागपुर और वर्धा वाली लाइन से आ रहे थे। हम हरिद्वार से चलकर आ रहे हैं यह तो उन्होंने कभी कल्पना भी नहीं की थी।

इस तरह मानमती जब कहीं की ईंट और कहीं का रोड़ा अपने कागज़ पर नोट करके कुनबा जोड़ चुकी, तो गाड़ी चली। किन्तु गाड़ी चलने से पहले उन्होंने हमारे पूरे पन्द्रह टिकट भी गिन कर अपने पास रखने के लिये मांगे—टिकट चेकर और गार्ड के हस्ताक्षर लेकर हमने भी दे देने में कोई हानि नहीं समझी। उनको डर था कि कहीं कोई रास्ते में ही न उतर पड़े! × × ×

दुस्वप्न की-सी दुश्चिन्ताओं से भरी यह रात बीती। प्रातः ६ बजे सिकन्दराबाद स्टेशन पर उतरे। टिकट हमें लौटा दिये गये। जब प्लेटफार्म से बाहर निकलने लगे तो हमारे दोनों ओर पुलिस थी और बीचमें हम। (असमाप्त)

रमते राम

[श्री ज्ञानी]

श्री अरविन्द का सिद्धि दिवस २४ नवम्बर को मनाया जाता है। उस दिन सैंकड़ों साधक व भक्त श्री अरविन्द के दर्शनों के लिये दूर २ से आते हैं। हम भी आज्ञा प्राप्त करके पाण्डिचेरी आश्रम पहुँचे।

अभी बरसात होकर चुकी थी। मार्ग के दोनों ओर बड़े २ तालाबों की शक्ल में पानी जमा था। धान के हरे हरे खेत भरपूर जल-राशि प्राप्त करके सन्तुष्ट प्रतीत होते थे। जमीदार और किसान भी प्रसन्न थे। वे भी सुन्दर भविष्य के स्वप्न ले रहे थे।

लगभग ५०० दर्शकों को इस बार आज्ञा प्राप्त हुई थी। अनेक भक्त बम्बई, कलकत्ता, हैदराबाद आदि दूर स्थानों से आए थे। हमारे साथ मद्रास से आने वाले भी ४०-५० थे। सायंकाल ५ बजे "दर्शन" खुला और लगभग ६-३० पर बन्द हुआ।

श्री अरविन्द एक कुर्सी पर बैठे थे। उनके दाहिने ओर माता जी थीं। दर्शक आते, क्षण-भर रुक कर प्रणाम करते, गुरु महाराज का मूक आशीर्वाद पाकर आगे बढ़ जाते। पत्र-पुष्प अथवा दान-दक्षिणा के लिये एक खुला सन्दूक रखा था।

श्री अरविन्द की आयु इस समय ६६ वर्ष की होगी। माता जी भी ५०-५५ के करीब होंगी। श्री अरविन्द के चेहरे पर यद्यपि वृद्धावस्था के चिन्ह हैं परन्तु आंखों की चमक और शरीर की कान्ति, अन्तः कार्य करती हुई दैवीय शक्ति का जीवित प्रमाण हैं। यही हाल श्री माता जी का है।

लोग दर्शनों के लिये क्यों आते हैं? जब कि श्री अरविन्द किसी से बात नहीं करते। दर्शन भी क्षण-भर के लिये होता है। अब तो चरण-स्पर्श करने व फूल माला चढ़ाने की भी आज्ञा नहीं।

दिन भर यह प्रश्न हमारे मन में रहा। हम प्रत्येक दर्शक के मुख पर इसका उत्तर पढ़ने का प्रयत्न करते रहे। कइयों के नानाविध रोगों व चिन्ताओं से मुरझाये हुए चेहरे कह रहे थे कि हमारे कष्टों ने हमें यहां भेजा है। श्री अरविन्द के आशीर्वाद से हम सुखी हो जाएंगे। कइयों को वर्तमान धर्मों व धर्माचार्यों के सिद्धान्तों से सन्तोष न था। वे अपनी अन्दर की खोज मिटाने के लिये यहां आए हैं। कई बरसों से योग का प्रयत्न कर रहे थे। उनके मार्ग में कुछ विघ्न बाधाएं प्रतीत होती थीं। उन्हें अनुभवी गुरु की आवश्यकता थी। अनुकूल वातावरण भी चाहते थे। शायद इसी लिये वे इतने दूर से श्री अरविन्द के चरणों में चले आए हैं। कुछ हमारे जैसे भी थे, जिनसे जब यह प्रश्न पूछा गया कि "तुम यहां क्यों आए?" पहिले तो वो चुप रहे। उन्हें सूझा ही नहीं कि क्या जवाब दें। शायद यह प्रश्न उनके सामने आया ही न था। परन्तु थोड़ी देर ठहर कर कहा "यों ही आ गये। और लोग आ रहे थे, हम भी चले आए।"

सामान्य मनुष्य के जीवन में "यों ही" बहुत से काम हुआ करते हैं। अच्छे और बुरे दोनों। जैसे लोग तीर्थ यात्रा पर जाते हैं। देखा देखी दर्जनों तैयार हो जाते हैं। कुछ, अन्दर में अंध श्रद्धा होती है कुछ रोज़ मर्रा के झंझट से बचने की ख्वाहिश। बस बोरिया बिस्तर बांध निकल खड़े होते हैं। ठीक यही दशा श्री अरविन्द के अनेक दर्शकों की है। अन्दर किसी कोने में आध्यात्मिक प्रवृत्ति दबी पड़ी है। बाहर काम धन्धे की चिन्ता है। चतुर मन कुछ समय के लिये बचना (Escape) चाहता है। इसी कारण इन मौकों से लाभ उठाता है।

लेकिन क्षण-भर के दर्शन से क्या लाभ? हम पूछते हैं कि प्रत्येक आनन्द भी तो क्षण भर का है। फिर उससे क्या लाभ? क्यों लोग उस क्षणिक आनन्द के लिये एड़ी चोटी का पसीना बहाते हैं। उचित अनुचित भी नहीं देखते। भयंकर भावी परिणामों की भी उपेक्षा कर देते हैं!

सच तो यह है कि यद्यपि प्रत्येक आनन्द क्षण मात्र के लिये होता है परन्तु उससे पूर्व का समय सुन्दर आशा में और पश्चात् का समय मधुर स्मृति में बीतता है। इस प्रकार एक क्षण भी एक दीर्घ अवधि का रूप धार लेता है। यही दशा "दर्शन" की है। कई दिनों पूर्व से ही देव दर्शन का विचार उदय होता है। और कई दिन पीछे तक उस दर्शन-घड़ी की याद ताज़ा रहती है। फिर इस दीर्घकाल में दर्शन सम्बन्धी भावना एक मस्ती पैदा करती है। उस मस्ती की मूड (Mood) में आदमी नीचे ले जाने वाली पाशविक वृत्तियों को भुला कर देवाभिमुख होने के लिये ऊपर उठने का प्रयत्न करता है।

दर्शन के पश्चात् हम समुद्र-तट पर आए। अथाह जल-राशि अनन्त तक फैल रही थी। ऊपर असीम आकाश में शरत् त्रयोदशी का चांद चमक रहा था। शीतल पवन बह रहा था। एक तो यों ही दर्शन द्वारा चित्त की चञ्चलता दूर हो चुकी थी और फिर ये अनुकूल प्राकृतिक वातावरण। दिल किया कि बैठ जाय और बैठे बैठे इस अद्भुत शान्तिमय आनन्द का अनुभव लें। ऐसे समय मनुष्य देश-काल को भूल जाता है। उसे किसी बात की सुध-बुध ही नहीं रहती। वह मानों "सूक्ष्म" होकर इस अनन्त आकाश में उड़ा जा रहा हो। किसी अन्तः चेतना द्वारा दैवीय-आनन्द को पा रहा हो। भौतिक बन्धनों को भुला कर मुक्तावस्था में पहुँच गया हो।

समुद्र से लौटे तो मन ने पूछा 'क्यों! क्या समझे? क्षण-भर कल्पना जगत् में विचरने से कहीं महात्मा तो नहीं बन गये!' उत्तर मिला "देखो! हर वक्त और हर चीज़ का मज़ाक अच्छा नहीं। इन भौतिक इन्द्रियों की सीमा से भी परे कुछ है, भला तुम्हें (मन को) क्या मालूम! तुम तो कूप-मण्डूक की तरह सब कुछ इस शरीर की चार-दीवारी में ही समझते हो। अच्छा! अब तुम्हारे लिये भी एक नियम बनाया गया है। जहां तुम्हारा (मन का) बुद्धि का परस्पर विरोध होगा वहां तुम्हारी उपेक्षा की जाएगी।"

मन मुस्किराया। दबी जबान से बोला "आखिर बुद्धि भी तो मेरे इशारे पर नाचती है।" "सो देख लेंगे।" आवाज़ आई। "तुम दोनों ही साधन हो, चेतनता हीन हो अधिष्ठाता की अपेक्षा करते हो।"

इसी उधेड़बुन में रात हो गई। सुबह उठा तो श्री अरविन्द का निम्न विचार स्वयमेव स्मरण आ रहा था:—

"यदि मन शान्त न हुआ तो योग मार्ग पर चलना असम्भव है। भले ही क्षणिक अनुभव हो जांय, पर उनकी स्थिरता व निरन्तरता के लिये चित्त की अनिश्चलता और मानसिक शान्ति की आवश्यकता है। उच्च, आध्यात्मिक चैतन्यता के प्रति आपने आपको सौंपने के लिये भी सब प्रकार की मानसिक चपलता को छोड़ना होगा।"

आत्ममंथन

(ले० प्रभात कुमार)

प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में एक ऐसा समय अवश्य आता है जब उसे अपनी आत्मा की आवाज़ सुनाई नहीं देती। वह अपने जीवन का ध्येय भूल जाता है, आनन्द तथा मनोरंजन में पड़ जाता है, इतना ही नहीं पर कई बार तो वह पाप और अपयश का जीवन भी बिताता है। परन्तु अन्त में एक क्षण ऐसा भी आता है जब उसमें पुनः आत्माभिमान जागृत होता है, उसे अपने जीवन का ध्येय और अपना धर्म याद आ जाते हैं। इसी प्रकार एक राष्ट्र को भी देखा जा सकता है। प्रत्येक राष्ट्र के जीवन में भी ऐसे ही उतार चढ़ाव के समय आते हैं।

हमारे देश के विषय में भी यह उत्कर्ष और अपकर्ष की क्रिया स्पष्ट दिखाई देती है। इतिहास में एक समय ऐसा भी था जब भारतवर्ष गुलाब की तरह खिल रहा था, जिसकी महक दूर २ देश देशान्तरों में फैली थी। तब उसने सम्पूर्ण एशिया को सत्य और अहिंसा का मंत्र पढ़ाया था। यह सन्देश साइबेरिया से लोकाम तक और कन्धार से स्याम तक फैला था। ऐसे २ बहुत से देशों में भारतीय भिक्षुओं द्वारा बुद्ध धर्म का प्रचार हुआ था और आज भी उनके लाखों अनुयायी दृष्टिगोचर होते हैं। यहां यह बात विशेष ध्यान देने योग्य है कि ऐसा व्यापक धर्मप्रचार एक भी रक्तबिन्दु गिराये बिना अथवा किसी भी प्रकार की क्रान्ति के बिना किया गया था। उस समय भारत के पराक्रम और सत्ता का सूर्य मध्याकाश में चमक रहा था, तब भी भारत ने दूसरे देशों को हस्तगत करने की इच्छा नहीं की थी।

इसके बाद अपकर्ष या ह्रास का समय आया। हिन्दुओं की धर्मभावना और जोश शांत हो गये, इस्लाम के आते हुए प्रवाह के सामने वे न ठहर सके और परदेशियों के आधीन रहकर उन्होंने अनेक अवगुणों का संचय किया। भारत ने अपना आत्मविश्वास और महत्ता भुला दी, देश में अनेक विभाग हो गये, प्रत्येक विभाग ने अपना ही स्वार्थ देखा और इसके लिये मुस्लिम सम्राटों के साथ अनेक सन्धियां कीं। भारत की प्राचीन सभ्यता की स्मृति स्वप्न की तरह उड़ गई।

सुषुप्त भारत में ब्रिटेन की विजय के बाद पश्चिम ने जो नये जीवन का आकर्षण भारत के सम्मुख उपस्थित किया, वह भारत के आदर्श से बिल्कुल विरुद्ध होते हुए भी इतना आकर्षक था कि भारत ने उसका अन्धे होकर अनुकरण करना प्रारम्भ किया। यूरोप की गुलामी में ही उसने अपना उत्कर्ष देखा। परन्तु यह भ्रम देर तक न रहा, भारत ने देखा कि यूरोप की संस्कृति अपूर्ण है और पश्चिम वासियों का समझा हुआ आदर्श सत्य नहीं।

पश्चिम की अपूर्णता को देखकर भारत ने पुनः आत्म-मंथन आरंभ किया। भारत की विस्मृत भव्यता तथा प्राचीन महत्ता का पुनः संशोधन करने वाला प्रथम पुरुष स्वामी दयानन्द था। उसने प्राचीन हिन्द के जीवन के भव्य आदर्शों को पुनर्जागृत किया। उसने ही सब प्रथम अछूतों का उद्धार किया। स्वामी दयानन्द के बाद किए गये प्रयत्नों में सब से महान् प्रयत्न महात्मा गांधी का है। उसने प्राचीन हिन्द के संस्कारों की पुनः स्थापना की। उसका सत्याग्रह का सिद्धांत जीवन के आदर्श को पुनः स्थापित करता है। कांग्रेस के तिरंगी झंडे के नीचे भारतीयों ने अपनी गुलामी को दूर कर दिया है। पश्चिम की अन्धभक्ति को दूर कर संसार की संस्कृति में पुनः अपना स्थान प्राप्त कर लिया है। भारत का भविष्य शुक्ल-पक्ष में बढ़ते हुए चन्द्र की तरह दिन प्रति दिन उज्ज्वल होता हुआ दिखाई दे रहा है। महात्मा गांधी के नेतृत्व में भारतीयों ने बहुत कुछ प्राप्त कर लिया है और शीघ्र ही पूर्ण स्वतन्त्रता भी प्राप्त कर लेंगे।

गुरुकुल समाचार

ब्र० विष्णुमित्र ४ र्थ कोट, ब्र० सूर्य प्रकाश २ य उत्तर ब्र० भीष्मदेव ११ उत्तर गत सप्ताह ये ब्रह्मचारी रोगी हुए थे। अब सब स्वस्थ हैं।

विगत शनिवार को श्री आचार्य जी के निमन्त्रण पर पूज्य महात्मा नारायण स्वामी जी गुरुकुल पधारे। आपने स्वाध्याय सम्मेलन में महाविद्यालय के ब्रह्मचारियों को आध घंटा धार्मिक उपदेश दिया।

गत रविवार को आयुर्वेद महाविद्यालय के ब्रह्मचारियों का एक दल देहरादून के जंगलों से बूटियों का ज्ञान प्राप्त कर लौट आया है। श्री प्रो० इन्द्रसेन जी की अध्यक्षता से ब्रह्मचारियों को बहुत लाभ पहुंचा है।

गुरुकुल कुरुक्षेत्र में नये बालकों का दाखला

गुरुकुल कांगड़ी की सबसे बड़ी शाखा गुरुकुल कुरुक्षेत्र में नये बालकों का दाखला प्रारम्भ हो गया है। जो महानुभाव अपने बालकों को भर्ती कराना चाहते हैं वे इस समय से लेकर सालाना जलसे तक (जो कि फरवरी के अन्तिम सप्ताह में होगा) करा सकते हैं इस गुरुकुल का जलवायु बहुत उत्तम और शुल्क दर बहुत कम है। १ म से ४ र्थ तक १२) और आगे ८ म तक १८) मासिक।

निवेदक प्रबन्धकर्ता गुरुकुल कुरुक्षेत्र

भूल सुधार—'गुरुकुल' के पिछले २८-२६ अङ्कों में पाठक निम्न अशुद्धियों को सुधार कर पढ़ें-२८ वें अङ्क में पृष्ठ २, कालम २ पं० ८ 'गरजे' के स्थान पर 'गरजें'। पृ० ३, का० २, पं० २८,३३ कोटिकेशन के स्थान पर-'कोरिलेशन'। २६वें अङ्क में पृ० १ का० २ पं० १३, 'छोड़ा' के स्थान पर 'तोड़ा'। पृ० २, का २, पं० ४, 'हो जाए' के स्थान पर 'हट जाए' होना चाहिये।

चौधरी हुलासराय के प्रबन्ध से गुरुकुल मुद्रणालय गुरुकुल कांगड़ी में मुद्रित तथा प्रकाशित।

श्रद्धानन्द-बलिदान-जयन्ती

ब्रह्मचारियों के नाम नेताओं के सन्देश

'कुल पिता' और उसका 'कुल'

तुमने बलिदान महोत्सव के लिए सन्देश मांगा है। कुल पिता का जीवित सन्देश उनका 'कुल' है। आर्यवर्त की स्वाधीनता, आर्य संस्कृति की रक्षा और जाति की दृढ़ता के लिए कुलपिता ने सैनिकों की आवश्यकता समझी, और उस आवश्यकता को पूरा करने के लिए गुरुकुल की स्थापना की।

कुल के स्नातक और अन्तेवासी कुल पिता की उस कामना को पूरा करने का प्रयत्न करते रहेंगे। इसी में गुरुकुल का यश है, और गुरुकुल के यश से ही कुल पिता के सन्देश की पूर्ति होगी।

इन्द्र विद्यावाचस्पति

हिन्दु जाति का उद्धारक

हिन्दु जाति का उद्धारक-श्रद्धानन्द का जीवन ही हिन्दुओं के लिए स्फूर्ति-दायक है। उन में एक गुण सर्व प्रधान था, जब उन्हें किसी आन्दोलन ने अपील की तब वे उस के लिए सर्वस्व-त्याग करने पर तैयार हो गये। उन्हें गुरुकुल शिक्षा प्रणाली उत्तम मालूम हुई तो इसके लिए अपना सब कुछ छोड़ दिया और कुछ विद्यार्थी लिए जंगल में जा बैठे। जब उन्हें सांसारिकता के त्याग में अपना कर्त्तव्य नज़र आया तो उन्होंने सन्यास ले लिया। जब देश के राजनैतिक आन्दोलन में बलिदान की ज़रूरत मालूम हुई तब वे अपनी छाती गोली के सामने तान कर खड़े हो गये। जब हिन्दुओं पर मुसलमानों ने अत्याचार शुरु किए तो उन्होंने संगठन और शुद्धि का कार्य अपने सिर पर ले लिया। जब पंजाब के अकालियों ने सत्याग्रह किए तो वे उनके लिए जेल जाने पर तैयार हो गये। उनका जीवन एक सच्चे शूरवीर हिन्दू का था उनका अन्त वैसा ही प्रभावशाली हुआ जैसे एक महात्मा का हो सकता है।

उनकी खड़ी की हुई संस्था-गुरुकुल कांगड़ी के विद्यार्थियों से मैं यही पूछना चाहता हूँ कि वे हुतात्मा श्रद्धानन्द के उद्देश्य की पूर्ति के लिए कुछ कर रहे हैं या नहीं?

भाई परमानन्द

स्वामी श्रद्धानन्द जी के इस पुण्य स्मरण के अवसर पर मैं शतशः प्रणाम और श्रद्धांजलि भेजना चाहता हूं।

बाल गंगाधर खेर

(भू० पू० प्रधान सचिव बम्बई)

स्वामी जी का कार्य

इन दिनों जब देश की स्थिति बहुत ही विकट है स्व० श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी का स्मरण विशेष रूप से होता है। श्री स्वामी जी ने हमारे देश में राष्ट्रीय शिक्षा की नींव डाली। त्याग और निर्भयता की नींव पर चरित्र और सेवा का कैसा विकास हो सकता है इसका ज्वलन्त उदाहरण हमारे सामने रखा। हरिजन उद्धार का कार्य अपना कर उन्होंने हिन्दु धर्म की जो सेवा की है वह हिन्दू समाज कभी भी नहीं भूलेगा। कांगड़ी गुरुकुल और आचार्य श्री अभयदेव जी जैसे उनके सत् शिष्य स्वामी जी का स्मारक भी हैं और उनका सन्देश भी हैं।

स्वामी श्रद्धानन्द जी के भक्तों को राष्ट्र-भाषा का प्रचार का काम विशेष रूप से अपनाना चाहिए।

काका कालेलकर

स्वामी श्रद्धानन्द न केवल एक प्रभावशाली कवि थे अपितु अपने आप में एक संस्था भी थे। उनका जीवन अपार निस्स्वार्थता तथा स्वार्थ त्याग से परिपूर्ण था। वे हिन्दू विचार और संस्कृति के उच्चतम नमूनों में से एक थे। वे समूची हिन्दू जाति का गौरव थे। वे उस महान कार्य के लिये शहीद हुए जिसके लिए उन्होंने अपनी सारी जिन्दगी बिताई थी तथा मेहनत की थी। उन्होंने जैसा शानदार जीवन बिताया वैसे ही शानदार मौत पाई। परमात्मा करे उनकी महान और उदात्त आत्मा शाश्वत शान्ति और आनंद से रहे।

एल. बी. भोपटकर

मैं श्री स्वामी जी का अनन्य भक्त हूं। मैंने बहुत श्रद्धा से उनके चरणों में बैठ कर जीवन की राह पाई है। श्री स्वामी जी को आर्यसमाज के कुछ स्वार्थी नेताओं ने बहुत हानि पहुंचाई। दुःख तो यह है कि जो उनका नाम लेकर गुमनामी के गढ़े से ऊपर पांव धरते ही वह स्वामी जी की बढ़ी हुई इज़्ज़त पर हाथ डालने लगे। मैंने अपनी युवा अवस्था के कई साल स्वामी जी के प्रेम छाया में गुजारे हैं और मुझे मालूम है कि वे आर्यसमाजी जिन को इस संस्था से आर्थिक लाभ भी बेहद हुआ है और जिनका मान मर्तबा सब स्वामी जी की कृपा से बढ़ा है वे स्वामी जी के विरोधी हो गए। मगर महान् पुरुष इन बातों को कब निगाह में लाते हैं। जब तक गुरुकुल ज़िंदा है स्वामी श्रद्धानन्द का नाम ऊँचा रहेगा। कोई कुछ ही कहे कोई कुछ ही करे। भगवान् आपको बल दें कि आप इस महान् पुरुष के सच्चे भक्त बनें। मेरा मन सदा स्वामी जी के गुण गाता रहता है।

डा० सत्यपाल

सत्य में निर्भीकता

(ले०— श्री दीनबन्धु एण्डूज़)

मैं अभी तक बीमार हूं, डाक्टर मेरी चिकित्सा कर रहा है और उसने मुझे पूर्ण विश्राम लेने को कहा है, फिर भी मै संक्षेप से लिखने से रुक नहीं सकता जबकि स्वामी श्रद्धानन्द जी की बरसी एक दफा फिर आ रही है। क्योंकि वे मेरे प्यारे मित्रों में से एक थे, जो कभी मुझे इस संसार में प्राप्त हुए हैं। और उनकी स्मृति को ताजा रखने के लिए जो कुछ मैं सम्भवतया कर सकता हूं, करना चाहता हूं।

वे सदाचार की मूर्ति थे। और उन्होंने स्वय मुझे बताया था कि जो कुछ मैं हूं उसका श्रेय ऋषि दयानन्द को है। जिनके दर्शन मैने उस समय किये थे जबकि मैं एक युवक था। ऋषि ने मेरा सारा जीवन परिमार्जित कर दिया और जो कुछ मैं हूं उसी के कारण हूं।

जब मैंने स्वामी जी से पूछा कि वह विशेष वस्तु क्या थी जो आपने ऋषि दयानन्द से सीखी तो उन्होंने मुझे बताया कि "सत्य में निर्भीकता" थी। उनके अपने आचार में जो निर्भयता थी उसका स्रोत भी वे ऋषि को ही समझते थे।

यदि मुझ से पूछा जाय कि महात्मा मंशीराम के आचार में तुम्हें कौनसी चीज विशेष प्रसंशनीय प्रतीत होती थी (४० वर्ष हुए जब मेरा पहिला उनसे परिचय हुआ तब उनका नाम मंशीराम था।) तो मैं फौरन कहूंगा कि यह निर्भीक सत्यता का गुण था। जोकि उन्होंने अपने गुरु से सीखा था। उनके आचार में एक पितृवत् प्रेम का गुण भी था जिसके कारण वे गुरुकुल में अपने प्रत्येक शिष्य से एक वैयक्तिक प्रेम रखते थे। यह प्रेम उनका मेरे प्रति भी प्रचुर मात्रा में था। और जबतक वे जीते रहे हमारा एक दूसरे के साथ सम्बन्ध सगे भाइयों का सा था। इसके अतिरिक्त यदि मुझ से पूछा जाय कि स्वामी श्रद्धानन्द जी का इन छोटी आयु के लोगों के लिए सन्देश क्या है जो अब बढ़कर मनुष्य और स्त्रियां बन रहे हैं। तो मैं एक दम कहूंगा कि वे चाहते है कि हम में से प्रत्येक 'सत्ययुक्त' और 'दयाशील' हो। शायद सत्य और अहिंसा निकटतम शब्द हैं जो मेरे भाव को प्रगट करते हैं। उनके सन्देश को समझने के लिए यह सोचना पर्याप्त न होगा कि सत्य बोलना चाहिए। केवल सत्य बोलना पर्याप्त न होगा क्योंकि सत्य विवाद की रीति से भी बोला जा सकता है जिससे लाभ की अपेक्षा हानियां अधिक हैं। सत्य में अनुकूल जोना आवश्यक है। सत्य हमारे जीवन में प्रगट होना चाहिए। इसलिए मुझे यह देखकर प्रसन्नता है कि आज कल आर्य समाज ने अपने शास्त्रार्थ के बुरे तरीके को छोड़ दिया है जो हिंसामय थे। और अब सत्य को उसी रूप में प्रगट करने लगी है, सत्य का प्रेम और दया के साथ जैसे यह नजर आता है और ज्ञात होता है। जिससे लोगों के दिलों में चोट नहीं पहुंचती प्रत्युत वे इसकी ओर आकर्षित होते हैं।

स्वामी श्रद्धानन्द-दिवस

[ले० श्रीमती उमा नेहरू]

आजकल जबकि हमारे देश में आपस में अनबन और बिगाड़ का इतना जोर है—हमें श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी की याद आ रही है। हमारी इस समय पर यह कोशिश होनी चाहिए कि हम आपस में एकता व प्रेम के भाव पैदा करें। जब तक हम यह न कर पावेंगे तब तक हम स्वामी जी के विचारों को सिद्ध नहीं कर सकते हैं। हमें हर समय सारे राष्ट्र की सेवा का आदर्श अपने सामने रखना लाजमी है। अफसोस तो यह है कि हमारे देश में कितनी ज्यादा ताकत दूसरों के धर्मके खण्डन करने में गंवाई जारही है। हमे किसी को भी बुरा कहने का क्या हक है। जो जाति या व्यक्ति हमारे विश्वासों से लाभ उठाना नहीं चाहते न चाहें हमें तो सिर्फ सच्चाई से, केवल सेवा करने का हक है। हमारा निज का धर्म—स्थानीय धर्म और साम्प्रदायिक धर्म, राष्ट्रीय धर्म से किसी प्रकार उत्तम नहीं कहा जा सकता सारे राष्ट्र की भलाई के लिये सेवा करना वास्तव में ईश्वर की पूजा है। ईश्वर सिद्धि के लिये संन्यास भाव का होना जरूरी है। यानि भारत माता की महान् आत्मा में अपनी आत्मा मिला देना यही श्री स्वामी जी की शिक्षा हमारे समझ में आती है।

ब्राह्मण, क्षत्रिय, और वैश्य सबको वह काम अपने हाथ से करना जरूरी है जो कभी पवित्र-शूद्रों के सुपुर्द था। संन्यास भाव को और पवित्र शूद्रों के हाथों मिल जाने की कोशिश करना स्वामी जी के सिद्धान्तों को जीवित रखना है।

आज कल लोग प्रभाव के पीछे दौड़ते दिखाई देते हैं। जब हमारी आत्मा सारे राष्ट्र की आत्मा से एक दिखाई देती तो कितना प्रचण्ड प्रभाव हम प्राप्त कर लेंगे। केवल जबान से या ढीले दिल से दूसरों को अच्छा समझना वा दूसरों के लिये उदारता रखने से काम नहीं चलेगा। भारत के बच्चे २ को राष्ट्रीयता के जोरदार भाव फैलाने के लिये काम करना पड़ेगा।

श्री स्वामी जी ने निज—धर्म, गृह धर्म को समाज-धर्म को राष्ट्र धर्म पर बलि दे दिया था। उनके बलिदान का मुकाबला वीरता नहीं कर पाई।

महान् आत्मा का दिवस मनाने का तरीका यह ही है कि हम अपने में शान्ति, धीरज, ज्ञान, और बल पैदा करें। ताकि हम देश सेवा में पूरे उतरें। हम बड़ी से बड़ी ताकत का मुकाबला कर सकें और मार्ग को साफ करते हुए देश को आजाद करें।

जो इन शब्दों को पढ़ेगें उनको स्वामी जी का उस समय का प्रेम युक्त चेहरा याद आ जायगा जबकि वे बड़े हो गए थे, वे सब के प्रति कितना प्रेम करने वाले थे और अन्त तक उनका जीवन कितना शुद्ध रूप से निस्स्वार्थ था।

परमात्मा से प्रार्थना है कि उनके उच्च जीवन का प्रभाव निरन्तर पड़ता रहे।

गु रु कु ल

८ पौष शुक्रवार १९९६

एक युग बीत गया !

[ले०—श्री आचार्य अभयदेव जी]

आज इस श्रद्धानन्द दिवस पर श्रद्धानन्द जी को भौतिक देह छोड़े पूरे १२ वर्ष हो जाते हैं, एक युग समाप्त हो जाता है। बारह वर्ष की अवधि का मेरे मन पर एक विशेष असर पड़ता है। ऐसा मालूम पड़ता है आज मानों मुझसे कोई पूछ रहा है, कुलपुत्र के नाते मुझसे जवाब तलब कर रहा है कि "कुलपिता को अपना काम बीच में छोड़ कर विदा लिये बारह वर्ष हो गये, इस बीच में तूने उनके काम को कहां तक बढ़ाया? उनके लिये क्या किया?"

तो इस अन्दर के पूछने वाले को जो कुछ उत्तर दे सकता हूँ वह आज दे रहा हूं, बल्कि दे चुका हूं। पर मैं समझता हूं कि ऐसा प्रश्न आज हम सभी से पूछा जा सकता है। न केवल गुरुकुल के ब्रह्मचारियों तथा गुरुकुल के सेवकों और स्नातकों से जो सबके सब इस विशाल व्यक्तित्व वाले पुरुष में इस परिवार की दृष्टि से कुलपिता की भावना रखते हैं किन्तु देश में विभिन्न क्षेत्रों में काम करने वाले उन सब कार्यकर्ताओं से भी जिन्होंने अपने अपने क्षेत्र में इस संन्यासी से कुछ भी प्रेरणा, बल, साहस और ज्ञान प्रकाश पाया है और जो किसी भी अंश में अपने को इस नेता का ऋणी समझ सकते हैं।

वह साम्प्रदायिक एकता का पौदा जिसे वे अन्तिम समय में अपने अमूल्य उष्ण रुधिर से सींच गये थे इन बारह वर्षों में कितना बड़ा है, कितना फला फूला है? और हमारे प्रयत्न इसके बढ़ाने में कितने उत्तरदायी है? या हम कभी कभी इस भूमि पर दिखाई देने वाले उस जैसे शहीद का भारी जलूस निकाल कर ही शेष सब कुछ भूल गये, सो गये? क्या सचमुच मुसलमानों की भी खुशी में खुश होने वाले और दुःख में दुःखी होने वाले उस श्रद्धा के पुतले महान आत्मा की चिरपरिपोषित आकांक्षाओं की यही गति उनके बलिदान हो चुकने के पश्चात उसके अनुयायिओं के हाथों होनी है? "नहीं, यह नहीं होसकता। श्रद्धानन्द ने अपना आत्मा ही जिसमें उंडेली है ऐसे हम कुलपुत्रों और दूसरे उनके सच्चे भक्तों के रहते यह नहीं हो सकता कि आज साम्प्रदायिक विद्वेष के विष के कारण देश की प्रगति रुकी रह सके, यह नहीं हो सकता कि श्रद्धानन्द की असीम श्रद्धा से निकला हुआ और हमारे अन्दर बहने वाला आत्म बलिदान, तत्पर प्रेम और सहिष्णुता के अमृत का झरना उस विष को बहा देने में असमर्थ रह सके" यह हैं आत्म विश्वासपूर्ण और दृढ़ उत्तर जिसे श्रद्धानन्द के शिष्यों से सुनने के लिये आज इस देश के पृथ्वी और आकाश व्याकुल हैं, यदि श्रद्धानन्द सचमुच महापुरुष हुआ था और यदि उसके सच्चे शिष्य पृथ्वी पर अभी तक जीवित हैं।

जिन सामाजिक सुधारों की नींव महात्मा मुंशीराम ने उस समय रखी थी जब उनकी तरफ कोई भी नेता विशेष ध्यान नहीं देता था और जिन सुधारों को बढ़ाने के लिये उसने संन्यासी होने पर भी अपना जीवन खपाया था क्या वे सुधार इन बारह वर्षों में पूरे हो चुके? क्या अछूतपन का नाम मिट चुका? क्या बालविवाह, जातपात, धर्मान्धता, स्त्रियों की अशिक्षा, विदेशी भाषा का मोह आदि बातें भूतकाल की वस्तुएं हो गई? नहीं, हरिजन तथा सामाजिक कुरीतियों और अत्याचार के शिकार हुए अन्य इस देश के प्राणी श्रद्धानन्द के शिष्यों से आज भी कुछ अधिक आशा कर रहे हैं, यह भी कहा जा सकता है, कि इसी आशा पर जी रहे हैं।

अन्तिम वर्षों में राजनैतिक क्षेत्र में काम करते हुए इस एक सच्चे राष्ट्रीय नेता ने राष्ट्रीय कार्यकर्ताओं की, बल्कि राष्ट्रीय सैनिकों की जिन आन्तरिक दुर्बलताओं को अनुभव किया था और जिनकी तरफ देश का ध्यान खींचा था क्या वे दुर्बलताएं जाती रहीं? क्या यह सच नहीं है कि अब्रह्मचर्य, ईर्ष्याद्वेष, पदलोलुपता, स्वार्थपरता, दुराग्रह आदि दुर्बलताएं आज भी राष्ट्र जहां तक बढ़ना चाहता है वहां तक उसे बढ़ने नहीं दे रही हैं? हमने इस दिशा में कितना ठोस काम किया है? क्या श्रद्धानन्द के आज्ञापालक अनुयायिओं के लिये यह लज्जा की बात नहीं है कि जिन बुराइयों की तरफ उस समय श्रद्धानन्द ने हमारा ध्यान खींचा था आज १२ वर्ष बीत जाने पर भी गांधी जी को फिर उन्हीं बुराइयों से राष्ट्रीय महासभा को शुद्ध करने की परम, अपरिहार्य और प्रथम आवश्यकता अनुभव हो रहा है।

और वह आर्यसमाज जिसकी श्रद्धानन्द ने आजीवन सेवा की, उसके हम सभासद भी अपने से पूछें। क्या आर्यसमाज को जो वे एक उदार, विशाल वैदिक सत्य के सन्देश को इस देश को ही नहीं किन्तु ऊंचे ज्ञान का अभिमान करने वाले पश्चिम को भी सचमुच दे सकने वाला समर्थ समाज देखना चाहते थे आज भी वह आर्य-समाज जगत् में अपनी उस स्थिति को प्राप्त कर सका है, समर्थ हुआ है? पिछले यूरोपीय महायुद्ध के समय श्रद्धानन्द जी पछताते हुए कहा करते थे कि वैदिक धर्म के सत्य को हम यूरोप को दे सकते तो वहां ऐसा पशुता का नग्न नृत्य सम्भव न होता, पर आज तो दूसरा महायुद्ध उससे भी भयंकर और पशुता भरा महायुद्ध हमारे सिर पर सवार है और शायद हम श्रद्धानन्द की उस वाणी की बुरी तरह याद दिला रहा है। उस आर्य नेता के अनुयायी जरा सोचें कि वैदिक महान सत्य को रखने का दावा करने वाले हमारे आर्यसमाज ने इस लम्बे बारह वर्ष के बीच में क्या किसी भी या कितनी देश या विदेशों की उत्कृष्ट आत्माओं को अपनी तरफ आकृष्ट किया है।

और अन्त में यह गुरुकुल, उस महापुरुष की सर्वोत्कृष्ट कृति, उस का सर्वस्व, उसकी असल में एक मात्र और सच्ची यादगार, इसे ले लीजिये। मैं दावे के साथ कह सकता हूं कि श्रद्धानन्द ने जो भी कोई बड़े से बड़े, भारी प्रभाव पैदा करने वाले, दुनिया को सामने दीखने वाले शानदार काम किये। वे सब के सब गौण थे, वे शाखा प्रशाखा थे, बाहिरी थे, उसका असली काम जिसके लिये वह जन्मा था और अत एव जो उसे अमर बना सकता है वह तो उसका गुरुकुल का काम था। अन्य क्षेत्रों में काम करते हुए अन्तिम दिनों उसने स्वयं अनुभव भी किया था कि वे सब अस्थायी काम हैं, देश की तात्कालिक पीड़ा को अस्थायी आराम पहुंचाने के लिये हैं ऊपर ऊपर से दशा को कुछ काम लायक सुधार देने वाले हैं, पर जिस से निश्चित, स्थायी रोग निवारण हो सकता है, जड़ से देश का सुधार हो सकता है, नये और असली भारत का निर्माण हो सकता है वह तो आदर्श शिक्षा प्रणाली अर्थात् गुरुकुल शिक्षा प्रणाली ही है 'इस लिये गुरुकुल की किसी प्रकार की ठीक दिशा में सेवा श्रद्धानन्द की सब से प्रिय सेवा है, उन की आज्ञा पालन या इच्छा पूर्ति है। अतः गुरुकुल ने उनकी यादगार में 'श्रद्धानन्द निधि' खोल कर जो आम जनता को भी गुरुकुल की कुछ तुच्छ आर्थिक सेवा ही कर सकने का तथा गुरुकुल के सम्बन्धित होने का अवसर दिया है यह ठीक ही दिया है। क्योंकि इस देश में ही आगे चाहे श्रद्धानन्द दिवस मनाया जाए या न मनाया जाए, उनके विषय में सभाएं करके उनके गुणगान किये जाएं या न किये जाएं, उनके बारे में इस तरह लेख लिखे जाएं या न लिखे जाएं पर यदि यह गुरुकुल ठीक उस दिशा मे विकसित होता जाए जिसका स्वप्न उसकी आत्मा ने देखा था तो श्रद्धानन्द अजर अमर होगा, उसकी कीर्ति इस देश में ही नहीं किन्तु जगत् में फैलेगी और उसे कोई रोक न सकेगा। जो श्रद्धानन्द को जिन्दा रखना या मारना हमारे हाथ में है, हम गुरुकुल वालों के हाथ में है जिनके ऊपर गुरुकुल को ठीक तरह चलाने की पवित्र और महान जिम्मेदारी (विशेषतः जबकि आचार्य रामदेव जी का हाथ भी हमारे सिर पर नहीं रहा है) परमेश्वर की तरफ से आ पड़ी है। वह बिचारा अनजान रशीद श्रद्धानन्द को क्या मार सकता था, उसके तो उस स्थूल कृत्य ने श्रद्धानन्द के उज्वल जीवन को अन्त में और भी अधिक उज्वल कर दिया। पर, हम, उसके पुत्र, या शिष्य या अनुयायी कहलाते हुए भी यदि गुरुकुल को गुरुकुल न रखें तो उसे मार देंगे, सदा के लिये खतम कर देंगे। यह है अति गम्भीर विचार जिस में निमग्न होकर, यह है उत्कट भावना जिससे ओत प्रोत होकर मैंने आज अपना उत्तर (अपना तुच्छ निश्चय) उस अन्दर के पूछने वाले के सन्मुख प्रस्तुत कर दिया है। पर "क्या श्रद्धानन्द का गुरुकुल आज से बारह वर्ष पूर्व जहां था अब भी वहीं है या वस्तुतः आगे बढ़ा है? आगे बढ़ा हो या न बढ़ा हो पर इसके बढ़ाने में मेरा कितना निःस्वार्थ और सच्चा प्रयत्न हुआ? क्या कुल-पिता के दिवंगत हो जाने पर कुल के प्रति मेरा जो कर्तव्य है उसे मैंने निभाया है?" यह प्रश्न है जोकि मैं समझता हूं आज श्रद्धानन्द ज्यन्ती के दिन किसी कुल पुत्रके सामने आकर उसे परेशान करता होगा और जिसका उत्तर दिये बिना उसे शान्ति नहीं मिल सकेगी। हम चाहें इस प्रश्न का कुछ भी उत्तर दें पर यदि सचाई के साथ उत्तर दें, हमारा उत्तर चाहे जरा भी हां में न होता हुआ बिलकुल नकार ही में हो पर वह यदि सच्चे पश्चाताप पूर्ण अश्रुओं से सिञ्चित नकार में है तो भी कुछ बात नहीं। तब भी, ऐसा उत्तर देने पर भी हमें अवश्य शान्ति मिल जाएगी और हम श्रद्धानन्द के बारहवें बलिदान पर्व के आशीर्वाद पाने के अधिकारी हो सकेंगे। क्योंकि सचाई ही सब कुछ है। और शायद तब, जैसे वे ऐसे अवसरों पर अपने जीवित काल में अपने विशाल हाथों से आश्वासन देते हुए प्रभावोत्पादक स्वर में बोला करते थे, उनकी यह गम्भीर वाणी भी हमें सुनाई दे, "पुत्र! यदि तुम अभी तक कुछ नहीं कर सके तो कुछ बात नहीं, यदि तुम्हारी भावना सच्ची है तो तुम आगे अवश्य बहुत कुछ कर सकोगे निराश होने की कोई बात नहीं। परमेश्वर की कृपा से सब सम्भव है। 'उठो पुत्र।"

महान् आत्मा

पूज्य स्वामी जी देश और जाति के महान् नेता एवं सुधारक थे उस महान् आत्मा की दिव्य भावनाओं को यदि हम धारण कर सकें और उनके चरण चिन्हों पर चलते हुए राष्ट्र, धर्म तथा विश्व की सेवा कर सकें तो यह आर्य-समाज के लिये बड़े गौरव की बात होगी।

इस महान् आत्मा ने शिक्षा के क्षेत्र में भी बड़ा काम किया है शिक्षा का माध्यम मातृभाषा का होना जो आज प्रायः सब स्वीकार करते हैं गुरुकुल के प्रथम स्थापना वर्ष में जब महात्मा मुन्शीराम ने वह कार्य आज से लगभग ३५ वर्ष पहिले आरम्भ किया तब लोग उसको असम्भव मानते थे जो कार्य उस महान व्यक्ति ने शुरु किया उसे अब लोग शुरु करना सोच रहे हैं। जलियान वाला बाग के पश्चात अमृतसर के कांग्रेस की सफलता का श्रेय स्वामी जी महाराज को ही है। हरिजन उद्धार और शुद्धि के संगठित और विशाल प्रयत्न का श्रेय भी इन्हीं को है।

आर्यसमाज के वर्तमान समस्याओं को हल करने में इनकी दृढ़ता, लगन और त्याग हमारा पथ प्रदर्शक हो।

—घनश्यामसिंह गुप्त

प्रधान, सार्वदेशिक आ०प्र० सभा

मुझे प्रसन्नता है कि गुरुकुल में स्वर्गीय स्वामी श्रद्धानन्द का बलिदान दिवसोत्सव मनाया जाने वाला है। गुरुकुल कांगड़ी सच्चे अर्थों में स्वामी जी का स्थिर स्मारक है। स्वामी श्रद्धानन्द प्राचीन शिक्षा-पद्धति और ब्रह्मचर्य के बहुत बड़े पोषक थे और अपनी इस कामना की पूर्ति के लिये उन्होंने अपना सर्वस्व न्यौछावर कर दिया। उनका जीवन त्याग और तपस्या का जीवन था। इन गुणों की शिक्षा प्रत्येक को उन का स्मृति दिवस मनाते हुए लेनी चाहिये।

नारायण स्वामी

आदर्श शिष्य और आदर्श गुरु

(ले०— श्री उपा० लालचन्द जी एम० ए०)

स्वामी श्रद्धानन्द आदर्श शिष्य था और आदर्श गुरु, स्वामी दयानन्द जी से जो ला० मुन्शी राम जी की भेंट हुई उसका परिणाम महात्मा मुन्शीराम जी हुए, इस चमत्कार में मुख्य भाग किस का है यह कहना कठिन है, महात्माओं से भेंट बहुतों की होती है पर चमत्कारिक परिवर्तन किसी किसी में आता है, परमहंस रामकृष्ण जी ने एक विवेकानन्द पैदा किया, स्वामी विरजानन्दने एक दयानन्द पैदा किया, स्वामी दयानन्द ने एक श्रद्धानन्द पैदा किया, असल बात यह है कि महापुरुष पैदा नहीं किये जाते, जगाए जाते हैं उनके अन्दर असीम शान्ति पहले से ही मौजूद होती है, सत्संग से जग जाती है, या यों कह सकते हैं कि उस अदम्य शक्ति की दिशा बदल जाती जाती है, जो बहुत शरारती है वह बहुत बड़ा मनुष्य बन सकता है, असल चीज शक्ति है, मैं गुरु के उपकार की अवहेलना नहीं करता मगर मै यह कहता हूं कि किसी शिष्य के चमत्कारिक परिवतन में मुख्य भाग शिष्य का ही होता है, शिष्य की शक्ति और शिष्य की श्रद्धा में वह तासीर है कि गुरु ज्ञान न देना चाहे तो भी शिष्य ले लेता है, जैसे एक लव ने द्रोणाचार्य से ले लिया, शिष्य की शक्ति और शिष्य की श्रद्धा मुन्शी राम में भी थी तभी तो वह महात्मा मुन्शी राम बने और फिर स्वामी श्रद्धानन्द, असली शक्ति संकल्प शक्ति है, और असली श्रद्धा गुरु के इशारे पर नाचती है, इस शक्ति और इस श्रद्धा से तो शिष्य सुसज्जित होता है उस शिष्य के अन्दर चमत्कारिक परिवर्तन आ जाता है, यह बताने की आवश्यकता नहीं कि गुरु में श्रद्धा भक्ति के कारण ला० मुन्शी राम जी ने जो दृढ़ संकल्प किया तो सब विषयकामनायें एक दम भगा दीं, उसका कहते हैं 'सच्ची श्रद्धा' जहां सच्ची श्रद्धा होती है वहां अमल होता है कोरी बातें नहीं होतीं, वहां एक बार जो बुरा आदत छोड़ दी सो हमेशा के लिये छोड़ दी। सवाल यह है कि अपना वासनाओं से ज्यादा प्रेम है या गुरु के साथ, यदि गुरु के साथ ज्यादा प्रेम है तो वासनाओं को खतम होना पड़ेगा। वीर मुन्शी राम की यह बात मुझे चकित करती है कि जिस ओर एक बार पीठ मोड़ दी उधर फिर मुड़ मुड़ कर हसरत भरी निगाह से नहीं देखा। नहीं, वह कल्याण मार्ग का पथिक हलका हो कर चला, सब पापों का बोझा पटक के चला, तेज चला, अपने गुरु के पद चिन्हों पर चला और अपने लक्ष्य पर पहुंचा। वह शिष्य क्या हुआ जो द्विज न बना, जिस का जीते जी दूसरा जन्म न हुआ जो वासनाओं के बंधन से मुक्त न हुआ। हे प्रभो! हमको भी ऐसा द्विज बना, ऐसा शिष्य बना, ऐसी श्रद्धा बना, ऐसा संयमी, तपस्वी और गुरु भक्त जैसा शेर श्रद्धानन्द था।

जैसा वह आदर्श शिष्य था ऐसा ही वह आदर्श गुरु बना। आदर्श शिष्य बने बिना कोई आदर्श गुरु बन भी कैसे सकता है। जीवन से जीवन बनता है, दिये से दिया जलता है। जो तपस्या और संयम स्वयं करता है वही अपने शिष्यों से तपस्या और संयम करा सकता है। गुरु पूजा की कमी नहीं गुरुओं की कमी है, गुरु बनना कितना कठिन है, गुरु बनना मरना है, जो मर कर तो 'मै' और 'मेरी' को मार कर, अभिमान और स्वार्थ का त्याग कर सच्चे अर्थों में द्विज नहीं बना, वह दूसरों को द्विज कैसे बना सकता है। सचमुच आचार्य मृत्यु है वह मारता है वह भयंकर से भयकर तपस्यायें कराता है, शरीर को कठोर, मन को बलवान बनाता है। चित्त की पुरानी केंचली उतार कर उसके अन्दर नये अन्दर नये जीवन का संचार करता है। क्योंकि आचार्य मृत्यु तो है ही पर सोम भी है। गुरु श्रद्धानन्द तपस्यायें भी कराता था और प्रेम भी करता था वह वज्र से ज्यादा कठोर था और कुसुम से ज्यादा कोमल। जहां शिष्यों के लिये उस जैसा शिष्य बनना कठिन वहां गुरुओं के लिये उस जैसा गुरु बनना भी कठिन है। हे प्रभो! हमें सामर्थ्य दो कि हम भी गुरु श्रद्धानन्द की तरह संयमी, तपस्वी, त्यागी बनें, उसी की तरह अपने शिष्यों से प्रेम करें, उनके तप्त हृदयों को शान्त करें, उन को प्रेम से सन्मार्ग पर चलावें उनकी ज्ञान पिपासा को शान्त करें और रात दिन उनके कल्याण और रक्षा को सोच करें शिष्यों और गुरुओं के लिये श्रद्धानन्द एक ही संदेश है 'मरो'। 'मरे बिना कोई तर नहीं सकता, तरे बिना नहीं तार सके।'

अमर शहीद स्वामी श्रद्धानन्द जी के जीवन से हमें त्याग तप और बलिदान के भाव आर्य हिन्दू जाति में भर देने चाहिये। शुद्धि संगठन तथा दलितोद्धार से ही भारत का कल्याण होगा और हम हिन्दू संगठन से ही स्वतंत्रता प्राप्त करेंगे। वर्तमान कांग्रेस की मुस्लिम पक्षपातिनी नीति राष्ट्र घातक है हिन्दू (आर्य) संस्कृति का नाश करने वाली है अतः इसको भी ठीक मार्ग पर लाना हमारा कर्त्तव्य है। मैं श्रद्धानन्द सप्ताह जो आप मना रहे हैं उसकी पूर्ण सफलता चाहता हूं और आशा करता हूं कि आप शक्ति संचय के लिये आर्यवीर दल का संगठन अवश्य करेंगे।

जहाज में — चांदकरण शारदा

रंगून जाते हुए — उपप्रधान अ० भा० हिन्दू महासभा

१६।१२।३६

स्वामी श्रद्धानन्द जी समस्त आर्य धर्मी हिन्दुओं के नेता थे। धार्मिक, सामाजिक तथा राजनीतिक उत्थान के वे पथप्रदर्शक थे। वे राष्ट्रीय कांग्रेस के भी नेता थे किन्तु उनकी राष्ट्रीयता का अर्थ हिन्दुओं का अधिकार लुटाते रहने का नहीं था। वह जितने निर्भीक थे उतने ही स्पष्टवादी भी थे। हिन्दुओं की निर्बलता तथा उन पर होने वाले अत्याचारों से वे बड़े चिन्तित रहते थे इसी लिये उन्होंने कांग्रेस के बाहर रहकर हिन्दू संगठन का कार्य आरम्भ किया था। स्वामी जी की सब से अच्छी स्मृति यही होगी कि उनके दिखाये हुये मार्ग पर चलते हुये हिन्दू संगठन के कार्य को पूरा किया जाय।

जुगल किशोर बिड़ला

ऋण से उऋण कैसे हों ?

[ले०—श्री स्वा० सत्यदेव जी परिव्राजक]

उस रोज जब म० कृष्ण जी ला० नारायणदत्त जी के साथ मेरे सत्य ज्ञान निकेतन में मुझसे मिलने के लिये आये और उनसे आचार्य रामदेव जी के स्वर्गवास होने का दुःखद समाचार मुझे मिला तो फिर मेरी अतीत स्मृतियों ने मेरे सामने घटना चक्रों का नक्शा खड़ा कर दिया, किस प्रकार विद्यार्थी रामदास स्वामी श्रद्धानन्द जी द्वारा रामदेव पद को प्राप्त हुए। और किस प्रकार उनके स्नेह भाजन बनकर उन्होंने गुरुकुल विश्वविद्यालय की निष्काम सेवा की, और अपना जन्म सार्थक कर लिया। सच है पारस के साथ लोहा भी कुन्दन बन जाता है। महानुभावों का सत्संग बड़े भाग्य से ही मिलता है। जिन्हें उनकी सेवा करने की घड़ियां प्राप्त होती हैं वे सचमुच बड़े ही सौभाग्यशाली हैं।

स्वर्गीय स्वामी श्रद्धानन्द जी चले गये।......दूर दूर ......अब हमें उस दीर्घकाय व्यक्ति के दर्शन दुर्लभ हैं किन्तु उनके कार्य उनकी ख्याति को सदा बनाए रक्खेंगे, यही है जीवन की सफलता, जिसमें पुण्य स्मृतियां सदा उस आत्मा की यादगार को ताजा रखती है और आने वाले पथिकों के लिए प्रकाशस्तम्भ बनकर जीवन पथ दिखलाती हैं। गुरुकुल के प्रत्येक विद्यार्थी को अपने उस आचार्य की ख्याति को बढ़ाने का सदा प्रयत्न करना चाहिए और दिल में दृढ़ निश्चय कर लेना चाहिए कि हम उस आर्य संस्कृति के प्यारे गुरुकुल के जन्मदाता के आदर्श की पूर्ति के लिए अपनी सारी शक्ति लगा देवें। जब २ श्री स्वामी जी गुरुकुल के लिए धन संग्रह के लिए गये तो उन्होंने आर्यजनता को यही विश्वास दिलाया कि कांगड़ी ग्राम का यह विश्वविद्यालय प्राचीन आर्यों की संस्कृति का पुनरुद्धार करेगा और संसार में आर्य संस्कृति के सन्देश का प्रचार कर विश्वशान्ति की स्थापना करेगा। हमें आज उस आदर्श को स्मरण कर अपना कर्तव्य निश्चित करना चाहिए ताकि हम गुरुकुल के उस अमर शहीद के ऋण से उऋण हो सकें।

स्वामी जी हिन्दु संगठन के पुजारी थे। इसके लिए उन्होंने अनेकों कष्ट सहे। अन्तिम समय उन्होंने अपने प्राण भी इसी पुनीत कार्य में दिये। हिन्दु संगठन के लिए उन्हें कांग्रेस को भी छोड़ना पड़ा। इस महान् कार्य के लिए उन्होंने किसी विघ्न बाधा की पर्वाह नहीं की। यदि हम स्वामी जी के जीवन से कुछ शिक्षा ग्रहण करना चाहते हैं तो स्वामी जी के अधूरे कार्य को पूरा करने का निश्चय करना चाहिए। हमको इसके लिए किसी को नाराज करने में भी संकोच नहीं करना चाहिए क्योंकि हमारा उद्देश्य पवित्र है।

—चन्द्रगुप्त वेदालङ्कार

सूचना

श्रद्धानन्द-सप्ताह की छुट्टियों के कारण अगले सप्ताह 'गुरुकुल' पत्र प्रकाशित नहीं होगा। पाठक नोट कर लें।

'बलिदान' या 'नरहत्या'

[ले०—डा० बी. एस. मुञ्जे]

आप स्वामी श्रद्धानन्द जी का बलिदान दिवस मनाने जा रहे हैं। आप जिसे 'बलिदान' कहते हैं वह बलिदान नहीं है। वह तो नितान्त 'नरहत्या' है। इस हत्या को बलिदान का नाम देना अपनी मूर्खता और कायरता है। मुसलमानों ने पूज्य स्वामी श्रद्धानन्द की हत्या की। हमें चाहिए कि उसका बदला हम लेवें। परन्तु बलिदान शब्द का उपयोग करने से बदला लेने की भावना उत्पन्न नहीं हो सकती। इसका आप विचार करें।

आर्यसमाज ने वेदों का सन्देश आधा लिया किन्तु पूरा नहीं। वेदों का संदेश यह है कि एक हाथ में वेद का ग्रन्थ और दूसरे हाथ में तलवार लेकर वेदों का प्रचार करना चाहिए। ऐसा ही प्रचार मुसलमानों ने किया और प्रचार का वही रास्ता वेद भी अपने मूल अर्थों में बतलाता है। परन्तु हम हिन्दुओं पर भगवान बुद्ध और जैनियों का असर पड़ा और हमने खाली वेदग्रन्थों की स्मृति रखी। तथा वेदों के द्वारा बतलाई हुई तलवार की विस्मृति कर दी। आर्यसमाज ने भी यह रास्ता पकड़ा। अतः मेरी यह सूचना है कि जिस अर्थ में आर्यसमाज वेदों का पुनरुद्धार और पुनरुज्जीवन करने के लिये प्रयत्न कर रहा है उसी अर्थ में उतनी ही श्रद्धा से वेदों के बतलाये हुए तलवार का भी प्रचार आर्यसमाज को करना चाहिए। इसके सिवाय आर्यसमाज वेदों का पूर्ण कार्य कर रहा है यह समझा जाना अशक्य है।

आपने मुझे संदेश देने के लिए कहा और मुझे जैसा उचित मालूम हुआ मैं यह संदेश भेजता हूं। आप इसका यथायोग्य उपयोग करें।

"अग्रतश्चतुरो वेदाः पृष्ठतः सशरं धनुः।
इदं ब्राह्ममिदं क्षात्रं शापादपि शरादपि ॥"
शास्त्रेष्वकुण्ठिता बुद्धिर्मौर्वी धनुषि चातता॥"रघुवंश।

ये श्लोक वेदों के मन्त्रों के व्यतिरिक्त, वेदों का उपदेश प्रचार में कैसा लाया जाता था, यह दिखलाते हैं।

गुरुकुल समाचार

इस वर्ष श्रद्धानन्द सप्ताह बड़ी धूमधाम से मनाया जा रहा है। इसके लिए सब कुलवासियों में एक विशेष उत्साह की भावना दृष्टिगोचर होती है। प्रतिदिन का कार्यक्रम महाविद्यालय आश्रम में 'कुलपताकाभिवादन' से प्रारम्भ होता है। उसके बाद सुबह शाम हाकी, फुटबाल तथा वालीबाल आदि खेलों के साथ २ ढाक कबड्डी, रस्साकशी कुर्सी दौड़, ऊंची कूद, तेज दौड़ आदि देसी खेलों का प्रोग्राम बनाया गया है। बुधवार को उपाध्यायों तथा महाविद्यालय के ब्रह्मचारियों में रस्साकशी में साम्मुख्य हुआ जिसमें दोनों पक्ष अन्त में समतुलित रहे। यह साम्मुख्य विशेष मनोरञ्जक रहा।

स्नातक परीक्षा तथा महाविद्यालय के विद्यार्थियों की वार्षिक परीक्षा १५ फरवरी से प्रारम्भ होगी।

आचार्य अभयदेव जी २५ दिसम्बर को पाण्डिचेरी से गुरुकुल में वापिस पहुंच रहे हैं।

* ओ३म् *

"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत"　　Reg. No. A. 2927

गुरुकुल

एक प्रति का मूल्य -)　　[गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख-पत्र]　　वार्षिक मूल्य २॥)

सम्पादक—साहित्यरत्न पं० हरिवंश वेदालङ्कार

वर्ष ४]　　गुरुकुल काङ्गड़ी, शुक्रवार २९ पौष १९९६, १२ जनवरी १९३९　　[संख्या ३६

पोडिचेरी—वास

[दो मास की छुट्टियों के बाद दिया गया श्री आचार्य अभयदेव जी का पहिला भाषण]

शिष्यता का आनन्द

तुम लोग आज कल अनुभव सभा की बैठकों में दो मास की छुट्टियों के यात्रा के तथा अपने अन्य कार्यों के अनुभव सुना रहे हो, तो मैं भी अपने पांडीचरी वास का इस बार का अनुभव सुना दूं। एक वाक्य में कह दूं तो इस बार मैंने शिष्यता का आनन्द खूब लूटा है।

तुम समझते होगे कि गुरु बनने में खूब आनन्द है। मैं आचार्य हूं तो जब जिसको चाहा निकाल दिया, ब्रह्मचारियों और कर्मचारियों को दण्ड दे सकता हूं और मेरी आज्ञाएं तुम्हें माननी होती हैं। मेरे इन अधिकारों के आधार में जो कठोर धर्म है जिस का मुझे जागरूकता के साथ पालन करना पड़ता है, जो कर्तव्य हैं जिन्हें सचिन्त होकर पूरा करना पड़ता है, आज कल की भाषा में कहूं तो जो जिम्मेदारियां हैं जिन का बोझ उठाना पड़ता है उनकी तरफ यदि तुम ध्यान न दो, उन्हें भूल जाओ और यही समझो कि गुरु बनने में आनन्द ही आनन्द है तो भी आज तुम्हें मैं अपना अनुभव यह सुनाना चाहता हूं कि मेरे लेखे तो गुरु रहने की अपेक्षा शिष्य रहने का आनन्द बहुत अधिक है। तुम देखते हो कि मैं आजकल दोनों आनन्दों का आस्वादन करता हूं। यहां गुरु बन कर इस आसन पर बैठ हुकूमत करता हूं तो पांडीचरी में शिष्य भाव से उस स्थान के कर्तव्य पूरे करता हूं। तो इन दोनों में से इस आसन पर बैठने की अपेक्षा श्री अरविन्द के चरणों में सिर झुकाने का आनन्द मुझे सहस्रों गुणा अधिक लगता है। शायद इस का कारण यह है कि मैं असल में हूं ही शिष्य। मैं जो गुरु कहलाता हुआ तुम्हारी सेवा कर रहा हूं यह भी असल में शिष्यता के कर्तव्य को ही पूरा करता हुआ कर रहा हूं, क्योंकि यह काम मैं अपने गुरु की अनुमति से और उन ही का काम समझ कर कर रहा हूं, बल्कि यह कहना भी अनुचित न होगा कि अन्दर से उन्हें ही समर्पित करता हुआ कर रहा हूं। जो हो मुझे शिष्यता का आनन्द बहुत अधिक लगता है और इस बार यह आनन्द विशेषतया आया। जैसे कि चबाने लायक वस्तु खाने में एक विशेष मजा आता है वैसे ही इस बार आश्रम की कुछ मुश्किल सी लगने वाली और जिनकी आशा नहीं था ऐसी आज्ञाओं को शिरोधार्य करने में आया।

[यहां पर आचार्य जी ने श्री अरविन्दाश्रम में साधकों के लिये कम खर्ची करने को जो बहुत सी आज्ञाएं दी गई हैं, दूध जैसी मंहगी चीजों के खान पान में या बाहर से आने वाली वस्तुओं के इस्तेमाल में तथा पानी और बिजली (प्रकाश) के उपयोग में भी मितव्ययता करने की आज्ञाएं दी गई हैं उन का वर्णन किया और अपना सर्वस्व अर्पण करने वाले पूर्व के धनी साधक भी इनको कितने अच्छे भाव से पालन करते हैं तथा सभी बिना जरा भी ननुनच किये इन्हें सहज भाव से स्वीकार करते हैं इसका वर्णन किया। यह भी बताया कि जैसे यहां ब्रह्मचारियों की चिट्ठियां देखी जाती हैं वैसे वहां उन्हें भी अपनी चिट्ठियां बिना बन्द किये देखी जाने के लिये रखनी पड़ती थीं इत्यादि। इसके बाद वहां की अपनी दिनचर्या का वर्णन करते हुए उन्होंने आगे कहा]

वेदाध्ययन

वहां रहते हुए नित्य कर्मों के अतिरिक्त, नियमित रूप से किये गये चर्खा कातने और ध्यान भजन के भी अतिरिक्त जो एक मुख्य काम मैंने किया है वह है वेदाध्ययन। इन दो मासों में मैंने श्री अरविन्द की लिखी Secret of Veda नाम की लेख माला का और इनके अनुसार बहुत से ऋग्वेद के सूक्तों का अच्छी तरह अध्ययन किया। इस का अध्ययन करने की मुझे देर से इच्छा थी। और इसे पढ़ कर बड़ा आनन्द मिला। वेद सम्बन्धी पाश्चात्य विद्वानों के वादों का जैसा युक्ति युक्त और सप्रमाण खण्डन उन्होंने किया है वैसा मैंने अन्य कहीं नहीं देखा। हम आर्यसमाजियों की दृष्टि से वह और भी बहुत अधिक महत्व का है। यह तो तुम लोग जानते हो कि श्री अरविन्द ने बहुत पहिले गुरुकुल की अंग्रेजी

मासिक पत्रिका वैदिक मैगज़ीन के लिये दयानन्द और उनके वेद भाष्य पर जो लेख लिखे थे। उस में उन्होंने दयानन्द के वेद विषयक दृष्टिकोण को सर्वथा ठीक और उन के वेद भाष्य को सर्वोत्कृष्ट बताया है (इन दोनों लेखों का हिन्दी अनुवाद गुरुकुल के गत २७,२८,२९ तीन अंकों में सम्पूर्ण रूप से प्रकाशित किया जाचुका है—सम्पादक) इस लेख माला मे भी उन्होंने पाश्चात्य विद्वानों तथा सायण आदि के सनातनी भाष्यों को वेद के असली आशय को बिलकुल खो देने वाला तथा वेद की महिमा को नष्ट करने वाला बताया है। एक जगह उन्होंने लिखा है कि अच्छा हुआ मैंने सायण का भाष्य पहिले नहीं पढ़ रखा था, सीधा वेद को ही पढ़ा, नहीं तो मेरी दृष्टि इतनी विकृत हो जाती कि मैं वेद के असली आशय को न देख सकता। वेद का असली आशय आध्यात्मिक है यह उन्होंने पाया है और इसे ही सप्रमाण सिद्ध किया है। वेद में प्रवेश होने की अपनी कहानी बताते हुए उन्होंने इस लेख माला में लिखा है कि एक बार उनके ध्यान में तीन देवियां आईं, इडा, सरस्वती और भारती। ये तीनों क्या हैं इस को उन्होंने पहिले पौराणिक और पाश्चात्य देवताख्यान (माइथोलोजी) के द्वारा सुलझाने का यत्न किया, पर इनका असली स्वरूप वेद मंत्रों के अध्ययन से ही विदित हो सका। ऐसा लगता है कि ऋग्वेद को तो उन्होंने छान मारा है। वेद विषयक उनका इतना सूक्ष्म और विस्तृत ज्ञान देख कर मुझे आश्चर्य हुआ। तुम्हें यह जान कर आश्चर्य होगा कि अपने कथन को पुष्टि मे तथा अन्य स्थलों पर उन्हों ने लगभग एक हज़ार ऋग्वेद के मंत्रों का अर्थ (भाष्य) भी कर दिया है जिस का बहुत सा भाग Selected Hymns शीर्षक से उन के 'आर्य' में Secret of Veda के साथ साथ छपता रहा है। मैंने इस लेखमाला के २२ अध्यायों के साथ इन श्री अरविन्द द्वारा व्याख्या किये गए वेद मंत्रों का भी अध्ययन इन दो मासों में किया है। मुझे तो आश्चर्य है कि श्री अरविन्द की इस विद्वत्ता पूर्ण और बड़ा प्रकाश देने वाली वेद विषयक लेखमाला की तरफ वेद के विद्वानों का ध्यान अभी तक क्यों आकृष्ट नहीं हुआ है। मेरा विचार है कि अपने अगले पांडीचरी वास के दिनों में इस लेख माला का और उनके वेद भाष्य का हिन्दी में अनुवाद करने का काम प्रारम्भ कर दूंगा। इसके लिये श्री अरविन्द की अनुमति प्राप्त हो चुकी है।

प्रकरणवश यहां यह भी कह दूं कि जो भाई मेरे पांडीचरी में अधिक रहने को—अर्थात् छुट्टियों के दो मासके अतिरिक्त जाड़ों के सत्र में भी दो बार एक एक मास रहने को—नापसन्द करते हैं उन्हें भी यह जान कर सन्तोष होगा कि ऐसा होने से मुझे वेद विषयक काम करने का अवसर मिलता है, वेद का काम होता है। वैसे तो पांडीचरी आश्रम में रहने से जो मेरा गुरुकुल के एक सेवक के तौर पर आध्यात्मिक विकास होना है वही गुरुकुल का एक बड़ा भारी लाभ है, गुरुकुल का सच्चा और ठोस लाभ है। पर वहां तक दृष्टि न जाती हो या वह दृष्टि स्वीकृत न हो तो वेद के काम के लिये एकान्त सेवन करना तो उचित है ही। शायद तुम जानते होंगे कि जब वैदिक विनय लिखी और छपाई जारही थी तब भी आचार्य होता हुआ मैं कई वर्षों तक दो दो महीने गुरुकुल से बाहर रह कर यह काम करता रहा था। तब तो लगातार दो मास बाहर रहना था, अब दो बार में एक एक मास कर के रहता हूं। यह तो पहिले से भी अधिक अच्छा है। अतः अब जो इसमें बाह्य दृष्टि से भी किसी को आपत्ति को कुछ बात नहीं रहनी चाहिये। अस्तु।

सच्चा और प्रेम पूर्वक समर्पण

हां, तो इस सब कार्य में भी बड़ा आनन्द मिला और वह आनन्द था शिष्यता का आनन्द। इस आनन्द का स्वरूप क्या है? बेशक गुरु होने का भी एक आनन्द है और शिष्य होने का भी आनन्द है और इन दोनों आनन्दों का परस्पर सम्बन्ध है। पर साधारणतया जो तुम गुरु होने का और शिष्य होने का आनन्द समझते हो वह वह नहीं है। गुरु होने का जो आनन्द है वह तो शायद पूर्ण रूप से परमेश्वर को ही प्राप्त है या किसी विरले परमेश्वर सदृश पुरुष को भी हो। योग दर्शन में तो परम गुरु परमेश्वर को ही माना गया है, मनुष्य तो आखिरकार शिष्य ही है। यह मनुष्य— बड़े से बड़ा भी मनुष्य—जिस आनन्द को अच्छी तरह खुल कर चख सकता है वह उस का शिष्यता का ही आनन्द है। तो भी हम गुरु के आनन्द की भी कुछ कल्पना कर सकते हैं और उस का कुछ रसले सकते हैं। गुरु का आनन्द मुझे ऐसा लगता है जैसा कि माली अपने पौधों को बढ़ते फूलते और फलते देख कर आनन्द पाता है या उन्हें सींचने तथा नाना तरह रक्षित रखने के प्रेम पूर्वक किये गए कर्म में पाता है। अथवा जब सूर्य निकलता है, तो उस का प्रकाश पा कर जैसे पृथ्वी भर के कमल खिल उठते हैं तो उन्हें खिलता देखने में या इस काम के लिये अपना प्रकाश देने में जो आनन्द सूर्य को आता है वह गुरु का आनन्द है। तुम शायद समझते होगे कि गुरु का आनन्द हुकूमत करने या आज्ञा चलाने में है। पर गुरु का आनन्द इस से कितना भिन्न है! इसी तरह शिष्य का आनन्द वैसा है जैसा कि माली की निगरानी में स्वयं विकसित होने में या उसका दिया हुआ सिंचन आदि आहार ग्रहण करने में पौधों को मिलता है अथवा जो आनन्द कमल को सूर्य रश्मि के संस्पर्श मात्र से स्वयं खिल उठने में या उस संस्पर्श को ग्रहण करने में आता है। मोटे रूप में कहें तो गुरु का आनन्द देने में और शिष्य का आनन्द ग्रहण करने में है इसीलिए वेद में गुरु और शिष्य का सम्बन्ध वरुण और मित्र का सम्बन्ध कहा गया है। जैसा कि मैंने कहा हम सब साधारण मनुष्य तो शिष्य ही हैं अतः हमें तो शिष्य के आनन्द से, ग्रहण करने के आनन्द से मतलब है। यह आनन्द हमें कैसे मिले यही हमारे लिये अच्छी तरह जान लेने की बात है। देने को तैयार हो और सतत दे रहा हो (जैसा कि परम गुरु दे रहा है) तो भी यदि ग्रहण करने की, लेने की सामर्थ्य न हो तो ग्रहण नहीं हो सकता और उसका आनन्द नहीं मिल सकता,

क्योंकि ग्रहण समर्थ होने के लिए भी कुछ शर्त पूरी करना जरूरी है। यह मजेदार बात है कि लेने के लिये पहिले अपने आपको देना होता है, सौंपना होता है, आत्म समर्पण करना होता है। प्रेम पूर्वक समर्पण जितना सच्चा और पूरा होगा उतना ही अधिक ग्रहण सामर्थ्य होगा, उतना ही भारी शिष्यता का आनन्द मिलेगा। मुझे तो शिष्यता के आनन्द का यही रहस्य समझ में आया है। तुम समझते होगे कि शिष्यता का आनन्द गैर जिम्मेदारी का और बेफिक्री का आनन्द है, ऐसा ही आनन्द लेने का तुम में से कुछ यत्न भी करते हैं। पर यह शिष्यता का आनन्द नहीं, कुछ और है। यह ठीक है कि समर्पण कर देने पर एक भारी निश्चिन्तता प्राप्त होती है और बड़ी भारी जिम्मेदारी अपने ऊपर से उतर कर गुरु पर चली जाती है। पर फिर भी शिष्यता का आनन्द तामसिक आनन्द, जड़ता या निष्कर्मण्यता का आनन्द हर्गिज नहीं है। इस आनन्द में यदि वह मस्त होगा तो उसका पतन हो जाएगा, विकास बन्द हो जाएगा, शिष्यत्व खतम हो जाएगा। इसलिए शिष्य के असली आनन्द की तरफ ध्यान आकृष्ट करने को मैंने पौधे और कमल का दृष्टान्त दिया है। शिष्य का असली आनन्द तो गुरु की सुरक्षा देने वाली छाया में, अपना विकास प्राप्त करने में, गुरु से आये प्रकाश द्वारा स्वयं खिलते जाने में है। इसके लिये उसे सतत प्रयत्न और कर्म करना होता है, अपने समर्पण का सतत अक्षुण्ण और जागृत और प्रेममय बनाए रखने के लिये ही उसे सदा प्रयत्नशील और कर्मण्य रहना होता है और फिर एक सात्विक निश्चिन्तता का आनन्द भी इसके साथ रहता है। तो हमें अपने गुरु के प्रति सच्चे और प्रेममय समर्पण को सदा बनाये रखने के प्रयत्न को कभी नहीं छोड़ना है। यही शिष्यता का आनन्द पाने का रहस्य है। परम गुरु की ऐसी कृपा हो कि हम सब उसके सच्चे शिष्य बने रहें, शिष्यता का आनन्द पा सकें अर्थात् वे जो प्रतिक्षण हम पर अपनी दिव्य देनों की वर्षा कर रहे हैं उसको यथा शक्ति ग्रहण करने का आनन्द पाते रह सकें।

आर्य सत्याग्रह में गुरुकुल की आहुति

सिकन्दराबाद में दो रातें

[ले०—क्षितीश वेदालंकार]

(३)

हाँ, सिकन्दराबाद पहुंचे तो कहीं कोई जान-पहचान नहीं थी। पूछ-ताछ करके बड़ी मुश्किल से एक धर्मशाला का पता लगा— पुरुषोत्तमदास नरोत्तम दास की धर्मशाला— जो शायद सारे सिकन्दराबाद में सबसे बड़ी थी— में पहुंचे। उसके मालिक से ठहरने की जगह मांगी तो उसने कहा 'यहां कहीं जगह खाली नहीं है।' बड़ा निराश होना पड़ा। असली बात थी यह कि उसके मालिक को शक हो गया था कि कहीं यह सत्याग्रही न हों—नहीं तो इतने नौजवान विद्यार्थी आजकल के दिनों में इकट्ठे कैसे आते। इस लिये वे जगह देने को तय्यार नहीं हुए। और भी कई धर्मशालायें देखीं-कोई तो ठहरने लायक ही नहीं थी, कहीं जगह ही नहीं थी, और कहीं यह सोचकर कि ये सत्याग्रह करने आये होंगे—सबने जगह देने से इन्कार कर दिया। लोग डरते थे कि सत्याग्रहियों को ठहराया तो पुलिस हमारे पीछे पड़ जायगी और तंग करेगी। इस आंतक को देख कर हैरानी हुई—देखा कि लोग बात भी इतने धीमे करते हैं कि कहीं कोई सुन न ले। यह तो स्पष्ट लगता था कि हरेक हिन्दू के मन में हमारे प्रति सहानुभूति थी, किन्तु अपनी सहानुभूति को किसी भी तरह वह क्रियात्मक रूप से प्रकाशित नहीं कर सकता था। देखा कि सड़क पर चलने वाले जो हँस रहे हैं, खुश हैं, मस्त हैं और खूब शानदार कपड़े पहने हुए हैं—वे सब के सब मुसलमान हैं। किसी भी हिन्दू के चेहरे पर रौनक नहीं, खुशी का निशान नहीं। यद्यपि इस शहर की आबादी ७५ % हिन्दू है, पर फिर भी यदि कोई हिन्दू कहीं नजर आते हैं— तो वे हैं दुकानदार, जो चुपचाप अपने आप को अपनी दुकान के वातावरण में ही सिकोड़ कर मानों बैठे हुए हैं। लगता था कि एक ऐसा भय का राज्य चारों ओर छाया हुआ है जिसके कारण उनकी हँसी बाहर नहीं निकल सकती—कहीं हँसे कि एकदम पकड़े गये, मानों हँसना भी पाप हो?

आखिर उसी धर्मशाला के बरामदे में—जो खाली पड़ा था, ठहरने की स्वीकृति मिलगई। हमें भी कोई आपत्ति नहीं थी, क्योंकि सामान तो कुछ था नहीं। देखते ही देखते सी. आई. डी. के दो आदमी धर्मशाला के मुख्यद्वार पर दोनों ओर आकर बैठ गये, दो सड़क के ऊपर, और दो हमारे साथ ही अन्दर—हमारी हरेक क्रिया का निरीक्षण करने के लिये और प्रत्येक गति-विधि की जाँच करने के लिये।

दुहपर को १० बजे हमें थाने में बुलाया गया। करीब घण्टे भर प्रतीक्षा करने के बाद थानेदार साहब आये और हमारे नाम-पते पूछने लगे। हमने वही पुराने नाम-जो काजीपेट में लिखवाये थे—लिखवा दिये। पूछा—किस लिये आये हो? कह दिया—सैर के लिये आये हैं। पूछा—कब तक ठहरोगे? कह दिया—तीन चार दिन सैर करके चले जायेंगे। थानेदार-साहब अपने असिस्टेण्ट के सामने हमारी सचाई के विषय में सन्देह प्रकट करने लगे—और उनके इस सन्देह पर मन में हँसते हुए हम वापिस धर्मशाला में लौट आये।

× × ×

एक मुश्किल और आ गई। हम दिल्ली से जितने रुपये लेकर चले थे वे सारे रुपये भी समाप्त हो गये। जानपहचान किसी से थी नहीं— यह पहले ही कह चुका हूं। समस्या सामने थी—क्या किया जाये? समाधान कोई था नहीं।

अकस्मात् ही ध्यान में आया कि हैदराबाद में गुरुकुल के सुयोग्य स्नातक श्री बैरिस्टर विनायकराव जी विद्यालङ्कार रहते हैं— उनके पास किसी तरह खबर भिजवाई जावे। इधर-उधर पूछताछ की तो पता लगा कि उनको जानते तो

[शेष पृष्ठ ६]

गुरुकुल

२६ पौष शुक्रवार १९९६

प्रभात आश्रम

पं० बुद्धदेव विद्यालङ्कार का स्वप्न

[लेखक—श्री सत्यभूषण वेदालङ्कार 'योगी']

टीकरी ग्राम के समीप और गंगा की नहर के किनारे विशाल भूमि में एक संस्था खोली गई है, जिसका नाम 'प्रभात आश्रम' है। इसके संस्थापक आर्यसमाज के सुपरिचित दीवाने पं० बुद्धदेव विद्यालंकार हैं। यह प्रभात आश्रम प्रभात नगर का मूल रूप है। मेरठ से बागपत जाने वाली सड़क पर ११ मील चलकर गंगा नहर पर ज्ञानी का पुल आता है। वहां से नहर के किनारे दो मील चल कर यह आश्रम बसा हुआ है। आश्रम को देखकर गुरुकुल कांगड़ी के प्रारम्भ की याद आ जाती है। दीवाने मुंशीराम ने आज से ३७ वर्ष पूर्व हिमालय की उपत्यका में गंगा के किनारे गुरुकुल का आरम्भ इसी रूप में किया था। दीवाने गुरु के दीवाने चेले ने अब उसके बचे हुए काम को पूरा करने की ठानी है। मंशीराम ने ब्रह्मचारियों के लिए आदर्श आश्रम की स्थापना की। उनकी प्रबल इच्छा थी कि इसी प्रकार गृहस्थियों के लिए एक आदर्श नगर की स्थापना की जाये। गुरु की इच्छा अब पूरी होगी। यही आश्रम एक दिन नगर का रूप धारण करेगा। इसके बीच में एक पुस्तकालय होगा और उसके चारों ओर आठ ब्राह्मणों के योग्य निवास स्थान होंगे। ब्राह्मण निम्न आठ विषयों का अध्ययन किया करेंगे—

(१) ब्रह्म विद्या (मैटाफिजिक्स)
(२) जीव विद्या (सोशल साइंस)
(३) प्रकृतिविद्या (मैटीरियल साइंस)
(४) आहार विद्या अथवा अर्थवेद (प्रोडक्टिव साइंस)
(५) रक्षण विद्या अथवा धनुर्वेद (प्रोटक्टिव साइंस)
(६) आयुर्वेद (मैडिकल साइंस)
(७) गान्धर्व वेद (फाइन आर्ट्स)
(८) वेद।

पं० बुद्धदेव विद्यालंकार ने वेदभाष्य का कार्य प्रारम्भ कर दिया है। अथर्ववेद के प्रथम काण्ड का भाष्य हो चुका है। इसी प्रकार शतपथ ब्राह्मण के प्रथम काण्ड के अर्ध-भाग का भाष्य भी हो चुका है। अन्य सात विद्वानों से उन्हें वेदभाष्य में बहुत मदद मिलेगी और प्रभात आश्रम आदर्श शिक्षा केन्द्र बनेगा।

आजकल आर्यसमाज में सब कुछ सोने की तराजू पर तोला जाने लगा है। सर्वस्व त्यागी आदर्श ब्राह्मणों की कोई पूछ नहीं। सब खुदी में लगे हुए हैं। स्वामी दयानन्द और श्रद्धानन्द की स्प्रिट नजर नहीं आता। क्या बात है? इसका कारण आर्यसमाज के दुर्भाग्य के सिवाय और क्या हो सकता है।

पर यह निश्चित है कि ब्राह्मण पूंजीपतियों के दास नहीं बनेंगे। प्रभात आश्रम इसका क्रियात्मिक प्रमाण है। पं० बुद्धदेव जैसे त्यागी ब्राह्मण के प्रयत्नों से आर्यसमाज पूंजीपतियों के नेतृत्वको छोड़कर आदर्श ब्राह्मणों के नेतृत्व में आएगा। पंडित जी का स्वप्न है कि प्रभात आश्रम को सम्पूर्ण विश्व का शिक्षाकेन्द्र बना दिया जाय। सयाने लोग इस पर हंसेंगे, पर सयाने और दीवानों में तो हमेशा मत-भेद ही रहा है। जब दिवाना श्रद्धानन्द गुरुकुल की स्थापना के लिये निकला था तब भी सयानों के मुंह से निकला था—'असम्भव'। अब जब उस दिवाने का शिष्य उसके काम को पूरा करने बढ़ा है तो सयानों के मुंह से वही पेटेन्ट शब्द निकलता है 'असम्भव'। पर आगे-आगे देखना है, होता क्या।

प्रभात आश्रम वर्णाश्रम संघ की अध्यक्षता में रहेगा। यह एक संस्था है, जिसकी स्थापना और रजिस्ट्री सन १९३७ में लाहौर में हुई थी। इसकी शासन परिषद् में इस समय निम्न महानुभाव हैं—

[१] श्री पं० बुद्धदेव जी विद्यालंकार [अध्यक्ष] [२] श्री आचार्य अभयदेव जी गुरुकुल कांगड़ी [३] श्री पं० ज्ञानचन्द जी बी० ए० [४] श्री पं० प्रियव्रत जी वेदवाचस्पति [५] श्री पं० भगवद्दत्त जी वेदालंकार [६] श्री सत्यबन्धु जी एम० ए० [७] श्री विनयचन्द्र जी संगीतालंकार प्रिंसिपल गन्धर्व महाविद्यालय देहली।

मेरठ निवासी श्री रिसाल सिंह जी, श्री खुशीराम जी बी.ए. और श्री सत्यबन्धु जी एम. ए. इन तीन सज्जनों के अनवरत उद्योग से आश्रम को बहुत विशाल भूमि दान में मिली है। इस सात्विक दान की जितनी प्रशंसा की जाय, थोड़ी है। 'पात्रे दीयते यद् तद्दानं सात्विकं विदुः'।

नई दिल्ली के प्रसिद्ध ठेकेदार श्री रलाराम मेलाराम जी ने प्रभात आश्रम के पुस्तकालय के भवन के निर्माण का वचन दे दिया है, जिस पर लगभग ५०००) रुपया होगा। पं० बुद्धदेव जी की प्रबल इच्छा थी कि इस पुस्तकालय की आधार शिला सर्वस्व त्यागी आदर्श विद्वान स्वर्गीय आचार्य रामदेव जी रखें, पर उनके असमय में दिवंगत होने से अब पुस्तकालय उनके नाम से होगा और आधारशिला किसी महापुरुष के कर कमलों से रखाई जायगी। इस पुस्तकालय के बन जाने के बाद श्री पं० बुद्धदेव जी के पुस्तकालय की सब पुस्तकें इसमें आ जायेंगी। भवानाकलां के सेठ जयन्तीशरण जी ने अपने स्वर्गीय श्री पूज्य पिता जी के पुस्तकालय की पुस्तकें आश्रम को दे दी हैं।

आश्रम के भवनों के निर्माण में सरलता, उपयोगिता और कला (सत्यं, शिवं सुन्दरम्) का पूरा ध्यान रखा जायगा।

रमते राम

[श्री ज्ञानी]

श्री उदय शंकर भारत के सुप्रसिद्ध नाट्याचार्य हैं। इनका "कला-केन्द्र" अभी पिछले दिनों हमने अल्मोड़ा के समीप देखा था। गत सप्ताह इनकी नाट्य-कला देखने का यहीं (मद्रास में) सुवर्ण अवसर प्राप्त हुआ। श्री उदय शंकर के "ट्रूप" में लगभग २० व्यक्ति हैं जिनमें देवेन्द्र, रवीन्द्र, सिमकी और ज़ोहरा मुख्य हैं। सिमकी एक फ्रेंच महिला हैं जो कि बरसों से श्री उदय शंकर की पार्टी में काम कर रही हैं। इसे स्टेज पर काम करते हुए देख कर कोई अनुमान भी नहीं कर सकता कि ये विदेशी हैं।

श्री उदय शंकर यद्यपि राजपूत, मारवाड़ी और महाराष्ट्र नृत्यों का सम्मिश्रण करना चाहते हैं तथापि इन की विशेष रुचि प्राचीन भरत--नाट्य और कथा-काली की ओर है। इनके केन्द्र में श्री गुरु शंकरन नम्बूदरी पाद आचार्य-स्थानी हैं। ये अपने विषय के प्रकाण्ड पण्डित हैं और भरत-नाट्य के परम प्रमाणिक (Highest Authority) माने जाते हैं।

नृत्य और संगीत का सचमुच चोली-दामन का साथ है। श्री उदय शंकर के कला-केन्द्र में संगीत को भी मुख्य स्थान मिला है और इसके लिये सौभाग्य से मैहर के मशहूर उस्ताद अलाउद्दीन खान साहिब स्थिररूप से इनकी पार्टी में रहते और संगीत का निर्देश करते हैं।

× × × ×

उस दिन खचाखच भीड़ था। खुद गवर्नर साहिब श्री उदय शंकर का नाच देखने पधारे थे। सारा मद्रास शहर उमड़ रहा था। रमते-राम भी यथाकथं पहुंच गये। कार्य-क्रम प्रारम्भ हुआ। सुन्दर संगीत के साथ भिन्न २ पात्र अपना नृत्य-प्रदर्शन करने लगे। कहने की आवश्यकता नहीं कि श्री उदय शंकर जहां अपनी पार्टी के नेता हैं वहां नृत्य-कला के भी सफल आचार्य हैं। उनका सुन्दर, लचकीला शरीर मानो नृत्य के लिये ही बना है। उनकी चौड़ी आंखें कलाकी अन्तरात्मा को प्रकट करने का सफल प्रयत्न करती हैं। उनके नृत्यों में संपेरा, भस्मासुर और ताण्डव उल्लेख योग्य हैं।

संगीत और नृत्य में इतना आकर्षण है हमने इस से पूर्व न समझा था। अन्य आर्य समाजियों की तरह हम भी इसे केवल मात्र कुत्सित वासनाओं के उद्दीपन का साधन समझते थे। परन्तु श्री उदय शंकर की कला देख कर हम मन्त्र मुग्ध से रह गये। लय और ताल में क्या अद्भुत शक्ति है यह हमने अभी जाना।

दुर्भाग्य से भारत की कोमल-कलायें ऐसे व्यक्तियों के हाथों में आई जिन में चारित्र्य-बल का अभाव सा था। परिणाम यह हुआ कि सर्व-सामान्य ने उन्हें घृणित कह कर छोड़ दिया। इस लिये इन कलाओं का स्वाभाविक विकास भी रुक गया।

अब दशा बदलने लगी है। नाटक, संगीत, नृत्यादि प्राचीन कलाओं की ओर देश के प्रमुख व्यक्तियों का ध्यान खिंच रहा है। कई सर्व-मान्य नेता भी अपने २ ढंग से इन ललित कलाओं की सेवा कर रहे हैं। कविता और नाटक के क्षेत्र में विश्वकवि श्री रवीन्द्रनाथ टागौर का नाम जगद्विख्यात है। संगीत के लिये स्वर्गीय विष्णु दिगम्बर तथा उनकी शिष्य मण्डली के प्रयत्न हमारी स्मृतियों में अभी ताज़े हैं। नाट्य-कला में श्री उदय शंकर, श्री गोपीनाथ तथा अन्य माननीय सज्जन पूरा उद्योग कर रहे हैं।

× × × ×

किसी देश अथवा समाज की उन्नति प्रायः सर्वतोमुखी होती है। भारत की भी आज यही दशा है। राजनीतिक क्षेत्र में महात्मा गांधी तथा अन्य कांग्रेसी नेता ज़ोर लगा रहे हैं। सामाजिक क्षेत्र में, आर्य समाज, ब्रह्म समाज आदि संस्थाएं प्रयत्न शील हैं। आर्थिक व व्यापारिक दृष्टि से ताता-वर्क्स, किर्लोस्करवाड़ी, डालमियां नगर तथा बम्बई, अहमदाबाद आदि की मिलें देश को समृद्ध करने के कार्य में लगी हैं। आध्यात्मिक क्षेत्र में श्री अरविन्द घोष, श्री रमण महर्षि, रामकृष्णमिशन के अनेक स्वामी और आर्य समाज के कई सन्यासी तथा अन्य महात्मा अपने ढङ्ग से प्रयत्न कर रहे हैं।

सामूहिक रूप के भिन्न २ सोसाइटियों के नेता और शिक्षा के लिये अनगिनत संस्थाएं चल रहा हैं।

इन सब के बावजूद भी भारत जैसे विशाल देश को उठाना, संगठित करना, स्वतन्त्र और समृद्ध बनाना आसान नहीं। इस महायज्ञ में सबको आहुति देनी होगी। रमते-राम आजकल इसी चिन्ता में डूब रहे हैं कि वो कौन सी आहुति डालें।

हमें तो देश-भाइयों की "भेड़-चाल" पर कभी२ रञ्ज होता है। दिल करता है कि उन्हें स्वतन्त्र विचार शक्ति का पाठ पढ़ाएं। सदियों से भाग्य-सिद्धान्त की जो ज़ंजीरें उनके पैरों को आगे बढ़ने से रोक रही हैं उन्हें तोड़ कर आत्म विश्वास और आत्म चिन्तन की ओर प्रवृत्त करें।

इसके अतिरिक्त हमें सभा, सोसाइटियों की गुलामी और सहस्रों वर्ष पूर्व के धर्म ग्रन्थों धर्माचार्यों का प्रभुत्व आज के युग में कुछ अखरता सा है। परन्तु इस विषय में "गुरुकुल" में लिखना उचित नहीं।

अस्तु, संक्षेप में हम इतना ही कहना चाहते हैं कि मानव-समाज एक विस्तृत उद्यान के समान है। इस में प्रत्येकवृक्ष-वनस्पति, बेल-बूटे की अपनी उपयोगिता है। भले ही हम उसे न जानते हों। अतएव प्रत्येक का कर्त्तव्य है कि वह अपनी स्थिति को समझ कर अपने अनुकूल कार्य का स्वयं निश्चय करे। जिस वृत्ति व व्यापार में उसे स्वाभाविक सन्तोष मिले, जिस में उसका आन्तरिक विकास होता प्रतीत हो, और जिसके द्वारा वह अपने आदर्श की ओर अग्रसर हो सके, वही उसका कार्य है और वही इस विशाल सृष्टि रचना में उसका स्थान है। गीता का "स्वधर्म" भी इसी अभिप्राय में प्रयुक्त हुआ है, ऐसी हमारी मान्यता है।

[पृ० ३ शेष]

सभी हैं, क्योंकि वे स्टेट के सबसे बड़े कार्यकर्ता हैं, किन्तु उनके पास खबर पहुंचाई कैसे जाये ? हमारे चारों ओर सी. आई. डी. का पहरा है। हम एक कदम भी धर्मशाला से बाहर नहीं रख सकते, किसी से बात नहीं कर सकते। तो फिर ?

पान खाने के बहाने एक पनवाड़ी को अन्दर बुलाया और उसको तय्यार किया कि वह हमारी चिट्ठी लेकर विनायकराव जी के पास पहुंचा दें। वह तय्यार हो गया, नौजवान था, हमारी चिट्ठी ली और साइकिल लेकर सीधा हैदराबाद पहुंचा- हैदराबाद वहां से चार मील दूर तो था ही। लगभग दो घण्टे बाद वह उसका उत्तर लेकर सकुशल वापिस आगया-लिखा था- 'घबराने की कोई बात नहीं। अभी दो आदमी तुम से मिलने आयेंगे वे सब प्रबन्ध करेंगे।'

यथा समय वे दोनों आये। पान देने के बहाने पनवाड़ी अन्दर आया और बता गया कि वे दोनों आगये हैं, एवं इस समय पास वाले होटल में बैठे हैं। मैं भी उस होटल मे पहुच गया-तीनों ने चाय के प्याले मंगवा लिये, और चाय की ओट में बातें करने लगे। उसको बताया कि किस किस तरह यहां तक पहुंचे, और आगे क्या करें-यह हमें कुछ पता नहीं। हमारी परस्थिति अच्छी समझ कर वे उसी दिन फिर रात को मिलने का वायदा करके लौट गये।

दिन कैसे गुजरा-कुछ कहा नहीं जा सकता। आपस में बात नहीं कर सकते-क्योंकि सिर पर सी. आई. डी. तैनात है। इधर उधर कहीं बाहर नहीं जा सकते-क्यों. कि दरवाजे पर भी यमदूत बैठे हैं और सड़क पर भी। निराशा-उदासी-राम और भविष्य की कल्पनायें। मन इतना भारी हो गया जैसे कि उसमें उड़ने की शक्ति रही ही न हो-विचार-शून्य-जड़।

रात के ग्यारह बजे। सड़क की रोशनी से दूर--एक घना पेड़--नीचे अंधकार--न जाने कितनी गलियां घूम घूम कर मैं वहां पहुंचा था--कोई पीछा न कर सके इसलिये--ये दोनों फिर मिले। विचार-विनिमय हुआ कि किस तरह हैदराबाद पहुंचें और सत्याग्रह करें--कई स्कीमें बनीं, किन्तु हरेक में कोई न कोई दोष निकल आता। अन्त में अगले दिन के लिये स्थगित करके वे लौट गये।

अगला दिन। हमने सवेरे से ही शहर में घूमना शुरू कर दिया--पन्द्रह लड़के-कोई किसी ओर और कोई किसी ओर-इधर से उधर, उधर से इधर, कभी धर्मशाला एक दम बिल्कुल खाली, कभी एकदम सारे के सारे वहां उपस्थित। हमारी गति-विधि जांच करने वाले और हमारा पीछा करने वाले सी. आई. डी. के आदमी तंग हो गये। कहा तक पीछा करते-कब तक पीछा करते। उनकी ड्यूटी बदली, उनकी संख्या भी दुगनी हो गई-यहां तक कि एक एक लड़के के पीछे एक एक- किन्तु हमने निरुद्देश्य घूमना नहीं छोड़ा। शहर की सारी गलियां छान मारीं। एक-एक बार नहीं, बीस-बीस बार, फिर भी हम बिना थके घूमते ही चले गये! और इस घूमा घूमी में लेखक एक साथी को साथ लेकर--वेष बदल कर-हैदराबाद पहुंचा-बैरिस्टर विनायक राव जी से मिल आया और सारा शहर घूम आया और देख लिया कि कहां मुसलमान बाजार है, कहां आर्य समाज है, कहां थाना है, कहां कहां पुलिस की चौकियाँ हैं-इत्यादि। आर्य समाज में ताला लगा हुआ था। हरेक मुख्य मुख्य सड़क के हरेक मोड़ पर अक्रोन-बन्द पुलिस की चौकियां पड़ी थीं, जहां से किसी भी संदिग्ध और अपरिचित आदमी का जाना खतरनाक था। और इस खतरे को हमने इतनी आसानी से पार कर लिया कि मन में हंसी आ रही थी।

शाम को जब साथियों ने हम दोनों को सकुशल वापिस लौटा हुआ पाया तो उन्हें तसल्ली हुई- उन्हें डर था कि कहीं ये गिरफ्तार न हो जायें।

फिर बैठकर कुछ चिट्ठियां गुरुकुल को लिखी, कुछ घर को लिखी और एक महात्मा गांधी को लिखी कि एक तो हिन्दुस्तान का रियासतों में वैसे ही अन्याय और अत्याचार का बोलबाला है, उस पर यह निज़ाम हैदराबाद तो साम्प्रदायिक पक्षपातों मे बाकी सब रियासतों को पार कर गया है-यहां की जनता जानती ही नहीं कि नागरिक स्वतन्त्रता किसे किसे कहते हैं- ऐसे कठिन समय में स्टेट-कांग्रेस का सत्याग्रह बन्द करवा कर क्या आपने उचित किया है ?-इत्यादि। और यह सब चिट्ठियां भी बड़ी तिगड़म बाजी से लैटरबक्स में डलवाई।

सिकन्दराबाद में दो रातें ऐसी बीतीं जैसे किसी जासूसी उपन्यास की घटनाएं हों। (असमाप्त)

पुस्तक समालोचना

गीता परिशीलन—लेखक, विद्याभास्कर रामावतार शास्त्री वेदान्ततीर्थ मीमांसारत्न। प्रकाशक, तत्वज्ञान मन्दिर अमलनेर। जिल्द, कागज़, छपाई उत्तम। पृष्ठ ४८२। मूल्य ३॥)

प्रस्तुत पुस्तक में लेखक ने अद्वैत सिद्धान्त के अनुसार गीता की व्याख्या की है। मूल श्लोक के नीचे अन्वय, अर्थ और भावार्थ दिया गया है। परिशिष्ट में ११५ पृष्ठों में अपने मन्तव्य के मूलभूत मन्तव्यों पर ३३ प्रकरणों में स्वतन्त्र विचार किया है। लेखक के मत में आत्मा एक है, सब देहों का एक ही देही है। पुनर्जन्म परलोक, स्वर्ग, नरक की प्रचलित कल्पना निराधार है। कर्मानुसार देहप्राप्ति का मन्तव्य गीता को मान्य नहीं है. कर्मफल मिलने की कल्पना भ्रान्त है। शरीरों की उत्पत्ति शुभाशुभ कर्मों का फल नहीं है, यह तो आत्मा का स्वभाव है। इस जन्म में अनासक्त स्थिति को पा लेना ही मुक्ति है। मृत्यु के अनन्तर होने वाली मुक्ति की कल्पना निराधार है, मुक्ति जीवन-काल में होती है, मृत्युकाल में नहीं। अनासक्ति ही आत्मा का असली रूप है और आत्मा का स्वरूपस्थ हो जाना ही ईश्वर प्राप्ति है।

अन्य प्रकरणों में लेखक ने गीतोक्त कर्मयोग, ज्ञान, कर्म, भक्ति, यज्ञ, इन्द्रियनिग्रह, अनासक्ति का स्वरूप,

सन्यास, लोकसंग्रह, अवतारवाद, वर्णव्यवस्था, श्री कृष्ण का 'अस्मत्' शब्द आदि विषयों पर विचार किया है। इन प्रकरणों में बताया गया है कि गीता में कर्मसन्यास की महत्ता नहीं है, बल्कि अनासक्त कर्मयोग ही गीता का प्रतिपाद्य विषय है। ज्ञान, कर्म और भक्ति एक ही स्थिति के सूचक हैं. ये परस्पर विरोधी नहीं हैं। गीता से अवतारवाद सिद्ध नहीं होता है। विश्वरूपदर्शन अर्जुन का मानस दर्शन था। श्री कृष्ण का अस्मत् शब्द व्यापक आत्मतत्व का वाचक है, सन्यास का अभिप्राय कर्मसन्यास नहीं है। लोकसंग्रह का प्रचलित अर्थ स्वीकार्य नहीं हो सकता। प्रचलित वर्णव्यवस्था का सिद्धान्त सृष्टिव्यवस्था के अनुकूल नहीं है। इन मन्तव्यों को सामने रखकर ही लेखक ने गीता के श्लोकों का भाष्य किया है।

लेखक के सम्पूर्ण मन्तव्यों से सहमत न होते हुए भी यह निःसङ्कोच कहा जा सकता है कि इस ग्रन्थरत्न से गीता-साहित्य के भण्डार में एक अमूल्य वृद्धि हुई है। लेखक ने गीता पर अब तक प्रचलित परम्पराओं को ही भाषान्तर या प्रकारान्तर में रखने का प्रयास नहीं किया है, बल्कि समस्त रूढ़िवाद और मतवादों को छोड़ कर विद्वत्समाज के सम्मुख नवीन शैली में स्वतन्त्र विचार पेश किया है। अद्वैत या एकात्मवाद अपने आप में एक पूर्ण सिद्धान्त है या नहीं अथवा गीता में इसी को स्वीकार किया गया है या नहीं यह एक स्वतन्त्र विषय है और इस पर दूसरे दृष्टिकोण से भी विचार किया जा सकता है, लेकिन क्योंकि लेखक का सारा भाष्य और अवान्तर सिद्धान्त इसी पर टिके हुए हैं इसलिये इस विवाद को छोड़कर जब हम भाष्य पर आते हैं तो यह कहा जा सकता है कि प्राचीन और नवीन जो भी अद्वैतमूलक भाष्य हुए हैं उनमें यह एक उत्कृष्ट कोटि का भाष्य है। कई विषयों का स्पष्टीकरण और कई श्लोकों का भावार्थ बहुत अच्छा हुआ है जहां कि मतभेद की गुंजाइश नहीं है। ग्रन्थ की भाषा सुबोध है और पाठक के हृदय पर तुरन्त चोट करती है। हम यह अवश्य कहना चाहते हैं कि इस ग्रन्थ के पाठक को लेखक के आधारभूत सिद्धान्त को आँखों से ओझल नहीं कर देना चाहिये नहीं तो उसे पग-पग पर असह्य और युक्ति विरुद्ध नवीनता दीख सकती है। हम आशा करते हैं कि गीता प्रेमी विद्वत्समाज इस ग्रन्थ पर निष्पक्ष होकर विचार करने की उदारता दिखलायेगा।

[श्री पं० रामनाथ वेदालंकार]

गुरुकुल समाचार

पिछले पक्ष में बिजनौर के लब्धप्रतिष्ठ डा० ओमप्रकाश जी विद्यालंकार होम्योपैथ गुरुकुल पधारे। आपने दो मनोरञ्जक एवं ज्ञान वर्धक व्याख्यान गुरुकुल में दिये और होमियोपैथी की नई दिशा की ओर सब का ध्यान आकृष्ट किया। इस प्रसङ्ग में आपने कुछ नए सिद्धान्त भी पेश किए। इनके अतिरिक्त पं० देवराज जी 'मुनि' ने ज्योतिष तथा अन्य धार्मिक विषयों पर ४ व्याख्यान दिये जिससे समस्त कुलवासियों ने पूरा पूरा लाभ उठाया। श्री स्वा० सत्यानन्द जी गुरुकुल में ३ दिन तक श्री आचार्य जी के अतिथि बन कर रहे और दर्शनार्थियों को सदुपदेश देते रहे। ता० ८ जनवरी को डाक्टर मुकर्जी का 'आयुर्वेद' के सम्बन्ध में उपयोगी व्याख्यान हुआ।

गत २३ दिसम्बर को कुलभूमि में श्रद्धानन्द सप्ताह बड़ी तैयारी तथा उत्साह के साथ मनाया गया। इस अवसर पर ब्रह्मचारियों ने विविध प्रकार के खेलों का आयोजन किया था। कुछ प्रतियोगिता सम्बन्धी खेलों में निम्न महानुभाव प्रथम रहे:—

तेज दौड़ १०० गज को···श्री हरिवंश ११श्रेणी(११ सेकंड में)
लम्बी कूद·········श्री हरिवंश ११ श्रेणी (१७ फीट)
ऊँची कूद······श्री पं० वेदरत्न जी (४ फीट १० इंच)
बांस कूद······श्री रामचन्द्र १४ श्रेणी (६ फीट १ इंच)
गेंद फेंकना······श्री रमेशचन्द्र १२ श्रेणी (६३ गज)
गोला फेंकना···७। सेर का श्री बलदेव १२ श्रेणी (२५गज)
कुश्ती···श्री पं० गणपति जी तथा श्री वासुदेवजी १४श्रेणी।

इस प्रकार सब प्रतियोगिताओं का परिणाम सन्तोष जनक रहा। —क्रीड़ामंत्री।

स्वास्थ्य समाचार

ब्रह्मचारी महावीर १३ श्रेणी कामला, ब्र० इन्द्रसेन १४ श्रेणी वातक शूल, ब्र० मनोहर १२ श्रेणी श्लेष्मज्वर, ब्र० नेत्रसिंह ५ श्रेणी श्लेष्मज्वर, ब्र० सुखदेव ५ श्रेणी श्लेष्मज्वर, ब्र० शिवकुमार ५ श्रेणी श्लेष्मज्वर, ब्रह्मचारी दानवीर ५ श्रेणी श्लेष्मज्वर, ब्र० धर्मेन्द्र (जलालपुर) ५ श्रेणी श्लेष्मज्वर, ब्र० धर्मपाल ४ श्रेणी श्लेष्मज्वर, ब्र० सत्यानन्द ४ श्रेणी श्लेष्मज्वर, ब्र० महेन्द्र ४ श्रेणी श्लेष्म ज्वर, ब्र० सुभाष ४ श्रेणी श्लेष्मज्वर, ब्र० देवेन्द्र (हैदराबाद) ३ श्रेणी श्लेष्मज्वर, ब्र० सुरेशचन्द्र ३ श्रेणी श्लेष्मज्वर, ब्र० अरुण ३ श्रे० श्लेष्मज्वर, ब्र० जीवनप्रकाश ३ श्रेणी श्लेष्मज्वर, ब्र० चन्द्रकान्त ३ श्रेणी श्लेष्मज्वर, ब्रह्मचारी धर्मदत्त प्रथम श्रेणी श्लेष्मज्वर

गत सप्ताह उपरोक्त ब्रह्मचारी रोगी हुए थे। अब सब स्वस्थ हैं। ब्र० महावीर रोगी हैं। आशा है कि शीघ्र स्वस्थ हो जायगा। —०—

मानव, अपना अपमान न कर!

इससे बढ़ कोई पाप नहीं;
मानवता पर अभिशाप नहीं,
तू अपने को पहचान जरा, यों परवशता का गान न कर!
मानव, अपना अपमान न कर!

—२—

तू परवश औ' लाचार नहीं,
विधि को तुझ पर अधिकार नहीं,
तू ईश्वर है, ओछी गन्दी इस माया का सन्मान न कर!
मानव, अपना अपमान न कर!

—३—

तू ने निज को लाचार कहा
सब त्रिभुवन ने धिक्कार कहा;
तेरा अपनापन चीख उठा, औ' चीख उठे अरमान विधुर!
मानव, अपना अपमान न कर!

—सत्यभूषण 'योगी'।

चौधरी दुलाराम के प्रबन्ध से गुरुकुल मुद्रणालय गुरुकुल कांगड़ी में मुद्रित तथा प्रकाशित।

* ओ३म् *

"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत"

Reg. No. A. 2927

गुरुकुल

एक प्रति का मूल्य -) [गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख-पत्र] वार्षिक मूल्य २॥)

सम्पादक—साहित्यरत्न पं० हरिवंश वेदालङ्कार

वर्ष ४] गुरुकुल काङ्गड़ी, शुक्रवार ६ माघ १९९६, १९ जनवरी १९४० [संख्या ३७

गुरुकुल में गोशाला

[ले०—श्री आचार्य अभयदेव जी]

गुरुकुल के सब प्रेमियों और संरक्षकों, ब्रह्मचारियों से लेकर अधिकारियों तक सबकी यही इच्छा रही है कि गुरुकुल में एक उत्तम गोशाला हो और ब्रह्मचारियों को शुद्ध, ताजा, स्वास्थ्यकर और असली दूध मिल सके। स्वर्गीय डा० धर्मवीर जी भी गुरुकुल में आन्त्रज्वर (टाईफाईड) फैलने के कारणों का अनुसन्धान करने के लिये आकर अभी कुछ समय हुआ देखकर अपनी जो सम्मति दे गये थे उसकी दो मुख्य बातों में एक बात अपनी गोशाला का सुरक्षित दूध देने की बात ही था। तो भी कुछ क्रियात्मक कठिनाइयों के कारण अभी तक गुरुकुल में गोशाला का काम प्रारम्भ नहीं हो सका। परन्तु अब प्रतीत होता है कि इसका समय आ गया है।

श्री डाक्टर रामस्वरूप जी

पहिले तो गुरुकुल के प्रेमियों को यह सुनकर प्रसन्नता होगी कि गोशाला संचालन के लिये एक बड़े उपयुक्त पुरुष की सेवाएं गुरुकुल को प्राप्त हो गई हैं। श्री डा० रामस्वरूप जी एक निवृत्त पशु चिकित्सक हैं और गोरखपुर के कृषि कालिज में दुग्धालय (डेयरी) के विषय के अध्यापक भी रहे हैं। आप इस सरकारी पद पर एक प्रख्यात पुरुष रहे हैं। पर पशु चिकित्सा तथा दुग्धालय के ज्ञान के अनुभवी होने के अतिरिक्त आपकी बड़ी विशेषता यह है कि आप सच्चे गोभक्त और निस्वार्थ सेवक हैं। आप गुरुकुल में अवैतनिक रूप से काम करेंगे। आप से थोड़ो देर बातचीत करने से ही पता चल जाता है कि गो सेवा गोरक्षा विषयक सुस्पष्ट विचारों से आपका हृदय कितना भरा हुआ है। आप उन पुरुषों में से हैं जिनकी श्रद्धा यह है कि भारतवर्ष को असली समस्याओं का हल तब तक नहीं होगा जब तक ठीक तरह गोवंश सुधार के प्रश्न को हाथ में न लिया जाएगा। वे इसे भारत की भौतिक और आध्यात्मिक दोनों प्रकार की उन्नति के लिये आवश्यक समझते हैं। इसके अतिरिक्त श्री डाक्टर जी साधना करने वाले भगवत् भक्त और परमेश्वर परायण पुरुष हैं। अन्त में उनको गुरुकुल से जो प्रेम है उसके उदाहरण स्वरूप यह बता देना भी अप्रासंगिक न होगा कि आपके दो पुत्र स्नातक हो चुके हैं जिनमें से एक गोरखपुर के प्रसिद्ध यशस्वी वैद्य और सार्वजनिक कार्यकर्ता श्री पं० भीमसेन जी आयुर्वेदालंकार हैं तथा दूसरे दीपचन्द्र जी आयुर्वेदालंकार हैं जो कि आजकल अपने गांव (सांपला, जिला रोहतक) में अपने पिता जी के साथ काम कर रहे हैं। ऐसे पुरुष का गुरुकुल की गोशाला के लिये प्राप्त हो जाना मैं बड़े सौभाग्य की बात समझता हूं। क्योंकि किसी कार्य के लिये जुटाया गया धन और अन्य सब सामग्री बेकार है जब तक कि उस कार्य का ठीक संचालन कर सकने वाला उपयुक्त पुरुष नहीं मिलता।

गोशाला के विषय में अब तक क्या हो चुका है?

यह बात है जो कि पाठक स्वभावतः जानना चाहेंगे। इसके उत्तर में प्रसन्नता पूर्वक यह समाचार दिया जा सकता है कि गोशाला की नयी इमारत बनने का सब सामान प्रस्तुत हो चुका है अर्थात् गोशाला का नकशा सभा द्वारा स्वीकृत हो चुका है तथा ईंटों का प्रबन्ध भी पूरा हो गया है, यद्यपि अभी तक के विचार से यही निश्चय बना है कि अभी कुछ समय गोशाला की पुरानी इमारत से ही काम चला कर परीक्षण करके देख लिया जाय और उसके उपरान्त नया भवन बनाया जाय। गोशाला चलाने के लिये प्रारम्भ में जो व्यय अनिवार्य है उसके लिये धन भी प्राप्त हो चुका है अर्थात् गोशाला की इमारत के काम चलाऊ भाग के लिये धन पहिले से था और उत्तम गौओं के खरीदने के लिये भी दानवीर श्री जुगलकिशोर जी बिड़ला की कृपा से तथा कुछ अन्य सज्जनों की उदारता से धन विद्यमान है। कांग्रेस के इंजीनियर श्री रामदास जी गुलाटी ने जहां गोशाला का नक्शा बना देने और सब सलाह आदि देने की कृपा की है वहां महात्मा गांधी की सेगांव की गोशाला के एक गो सेवक श्री बलवन्त सिंह जी ने भी महात्मा जी की आज्ञा से गुरुकुल आकर और यहां सात दिन ठहर कर अपनी कीमती सलाह दी है। इन दोनों तथा डा० रामस्वरूप जी ने गुरुकुल की सब जमीनें

देखकर गौओं के चारे आदि के प्रबन्ध के विषय में अपने विचार निश्चित कर लिये हैं तथा उनके अनुसार कार्य शुरू हो रहा है।

उस पार की भूमि

पाठकों को यह जानकर भी प्रसन्नता होगी कि सबकी राय में गुरुकुल गोशाला की मूर्खा गौओं के लिये तथा कुछ अंश में चारे के लिये गुरुकुल की पुरानी पार की भूमि का बहुत अच्छा उपयोग हो सकता। श्री बलवन्तसिंह जी और डा० रामस्वरूप जी एक दिन पार की भूमि में इसी दृष्टि से रहकर और देखकर आये हैं। गुरुकुल की उस पार की भूमि के विषय मे हमारे बहुत से स्नातकों संरक्षकों तथा अन्य गुरुकुल के प्रेमियों के हृदय में एक खास पावनता और प्रेम का भाव विद्यमान है। और इसी कारण उस स्थान को बिलकुल उजड़ता बिगड़ता और सर्वथा उपेक्षित देखकर वेदना होती है। परन्तु आशा है इस गोशाला विषयक प्रबन्ध से बहुत अंश में इस समस्या का भी हल हो जायगा। अब वह स्थान सजीव अवश्य हो जायगा। श्री डा० रामस्वरूप जी का तो यह भी इच्छा है कि वे अपना अधिक से अधिक समय उस पार की भूमि में ही बिताने का यत्न करें।

तात्कालिक आवश्यकता

परन्तु गुरुकुल गोशाला की जो तात्कालिक आवश्यकता है उसकी तरफ ध्यान आकर्षित करना आवश्यक है। यह निश्चय किया गया है कि फिलहाल हरियाने की ८, १० उत्तम गौओं से कार्य प्रारम्भ किया जाये। यह सुविदित है कि गोशाला और दुग्धालय की सफलता बहुत कुछ उत्तम नस्ल की गौओं पर निर्भर करता है। परन्तु उत्तम गौओं का प्राप्त करना आसान काम नहीं है। इसके लिये अन्य कई पशु विज्ञ महानुभाव जैसे (लाहौर के श्री भगवानदास जी) तथा फीरोजपुर के श्री छोटूराम जी ने अपनी सेवाएं प्रदान कर रखी है। तो भी अन्यों की सहायता भी आवश्यक है। अतः सभी सज्जनों से और विशेषतः हरियाना प्रान्त के निवासियों तथा उस प्रान्त में प्रभाव रखने वाले व्यक्तियों से प्रार्थना है कि वे हरियाना प्रान्त की कम से कम दस सेर दूध देने वाली उत्तम नस्ल की गौओं तथा दो तीन बरस की उत्तम बछियों को प्राप्त करने में मदद करें। श्री डा० रामस्वरूप जी आजकल हरियाना प्रान्त में उत्तम गौओं की तलाश में लगे हुए हैं।

भावी सम्भावनाएं

गुरुकुल में उत्तम, आदर्श, अनुकरणीय गोशाला का होना गुरुकुल में सच्चे वैदिक वायुमण्डल को उत्पन्न करने वाला होगा और गुरुकुल में उद्योग महाविद्यालय द्वारा जो उद्योगों को सिखाये जाने की योजनाएं बन रही हैं उनके अनुसार ब्रह्मचारियों को गोपालन तथा दुग्धालय संचालन के उद्योग की शिक्षा का दिया जाना भी अब सम्भव हो जायगा तथा इसका उत्तम प्रबन्ध हो सकेगा। मेरे मन में तो यह भी इच्छा है कि भारतवर्ष में प्रचलित हो रही नई बुनियादी राष्ट्रीय शिक्षा जो वर्धा योजना नाम से प्रसिद्ध है उसे केवल कताई बुनाई द्वारा ही न देकर गोपालन के द्वारा भी दिया जा सके। इसका क्रियात्मक प्रारम्भ गुरुकुल कर सके। भविष्य की इन योजनाओं का पूरा करना तो परमेश्वर की कृपा पर निर्भर करता है। पर इन सदिच्छाओं का प्रकट करने का समय तो आ हा गया दिखाई देता है। और यह भी विश्वास है कि अच्छी, जगत क्रम के अनुकूल जो इच्छाएं उत्पन्न होती हैं वे पूरी होने के लिये ही उत्पन्न होती हैं।

गुजरात प्रान्तीय स्नातक मण्डल की श्रद्धाञ्जलि

गुजरात प्रान्तीय स्नातकमण्डल गुरुकुल-शिक्षा-प्रणाली के अन्यतम महारथी, कांगड़ी गुरुकुल विश्वविद्यालय के कुलपति, देहरादून कन्या गुरुकुल के मुख्याधिष्ठाता, इतिहास तत्वज्ञ, आर्यसमाज के प्रकाण्ड विद्वान, विचारक और उन्नायक तथा महान् शिक्षाशास्त्री मान्य श्री आचार्य रामदेव जी के अकाल अवसान पर गहरा दुःख अनुभव करता हुआ, मातृभूमि, मातृभाषा और मातृ संस्कृति के उत्कर्ष के क्षेत्र में की गई उनकी महान सेवाओं के प्रति अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित करता है। मंडल उनके अभाव को गुरुकुल के जातीय परिवार एवं आर्यजगत् की एक महान और अपूरणीय क्षति समझता है। साथ ही उनके आत्मीय जनों के प्रति अपनी हार्दिक समवेदना प्रदर्शित करता हुआ परमात्मा से प्रार्थना करता है कि वह उनकी दिवंगत आत्मा को चिरशान्ति प्रदान करें।

यह स्नातक मंडल कांगड़ी गुरुकुल विश्वविद्यालय के संचालकों के समक्ष अपना विनम्र परामर्श उपस्थित करता है कि विश्वविद्यालय के तत्वावधान में स्वर्गवासी आचार्य रामदेव जी की एक विस्तृत और प्रामाणिक जीवन कथा, अपने स्नातक पत्रकार श्रीयुत सत्यदेव जी विद्यालंकार (जो कि पुण्यश्लोक कुलपिता स्वा० श्रद्धानन्द जी की जीवनी लिखने में यश लाभ कर चुके हैं) द्वारा तैयार कराने की व्यवस्था शीघ्र ही प्रारम्भ करें।

रो न, मत मेरे हृदय, रो!

यह दुखों का भार भीषण;
मूक यह चीत्कार भीषण,
किन्तु आंसू की नदी में आज मत निज को, हृदय, खो!
रो न, मत मेरे हृदय, रो!

—२—

सौख्य में अब तक रहा तू!
स्वर्ग सपनों में बहा तू,
आज नंगी वास्तविकता देख मत डर कर विमुख हो!
रो न, मत मेरे हृदय, रो!

—३—

बस, जरा सा मुसकरा दे,
पागलों-सा खिल खिला दे!
देख फिर ये दुख न घेरे रह सकेंगे अधिक तुमको!
रो न, मत मेरे हृदय, रो!

सत्यभूषण 'योगी'

चिता की ज्वाला

(अपने पूज्य पिता आचार्य रामदेव जी की स्मृति में)

सत्यभूषण 'योगी' वेदालङ्कार

उसका उद्भासित चुम्बन कर
यह ज्वाला हँसती है रानी!

—१—

है शान्त वृक्ष, है शान्त गगन,
है यह सारा संसार शान्त,
निश्चेतन-सी शान्ति विराजी है,
सूने मरघट का प्यार शान्त,
इस वेला मेरे दिल में
भीषण हाहाकार गरजता है,
पर मैं भी शान्त खड़ा हूं
सन्मुख प्राणों का प्रिय जलता है।
मैंने ही अपने हाथों से दीं
घृत की आहुतियां रानी!
उसका उद्भासित चुम्बन कर
यह ज्वाला हँसती है रानी।

—२—

मर गया अरे, इस हँसते तन से
कौन कहाँ पर चला गया?
उठ कर वह मुँह अंधेरे ही
किस दूर दिशा को चला गया?
वह चला गया, वह चला गया,
किस निष्ठुर से मैं छला गया!
मेरी आंखों के आगे ही
कोई उसको ले चला गया!
पिघला न सका उसको मेरी
इन आँखों का तपता पानी!
उसका उद्भासित चुम्बन कर
यह ज्वाला हँसती है रानी!

—३—

उठती है ऊपर ऊपर यह
मण्डल में घूम रही ज्वाला
उन्मद सी नाच रही ज्वाला,
पागल-सी झूम रही ज्वाला!
बेसुध विस्मृत खिल खिला रही
यह भू से ध्रुव की ओर चली,
यह लोहित नयना मदमाती
मुझको सूने में छोड़ चली!
यह अपनेपन में मस्त लीन,
यह रँगीली में दीवानी!
उसका उद्भासित चुम्बन कर
यह ज्वाला हँसती है रानी!

—४—

मंजु कांति ज्वाला का ही वह
जीवन भर रहा उपासक था,
ज्वाला थी उसके मानस में,
ज्वाला का ही वह गायक था,
अन्त समय ज्वाला सुन्दरि के
बँधा हुआ आलिङ्गन में,
ऊपर गगन विहार कुञ्ज में
चला गया भोलेपन में!
इस मिलन महोत्सव वेला में
दो फूल चढ़ा दें हम रानी!
प्रिय का उद्भासित चुम्बन कर
यह हँसती है ज्वाला रानी!

कुलपुत्र की स्मृति

[आचार्य रामदेव जी की स्मृति में]

क्या भूलूं, क्या याद करूं?
यद्यपि अध्यापक कठोर था।
औ' विद्वत्ता में विभोर था।
बालक के संग बालक बनकर,
तू भी तो, हमसा किशोर था।
तेरे वयोवृद्ध बचपन का, फिर कैसे आस्वाद करूं॥
जब मेरा कुछ खो जाता था।
कुछ का कुछ जी हो जाता था।
प्राप्त तुम्हारा आश्वासन कर-,
तब चुपके से सो जाता था।
किन्तु तुम्हीं अब हाय? खो गये, किससे सुख संवाद करूं॥
दो वर्षों का कारा जीवन-
तब, करता गर्वित मेरा मन।
उसका प्रतिक्षण भर देता था,
मेरे जीवन में नव यौवन।
किसकी जयध्वनि से गुञ्जित, अब निज मन के प्रासाद करूं॥

—ब्र० जगदीश १०म।

गुरुकुल काङ्गड़ी का ३८ वां वार्षिकोत्सव

गुरुकुल विश्वविद्यालय काङ्गड़ी का ३८ वाँ वार्षिकोत्सव २२-२३-२४-२५ मार्च १६४० को ईस्टर की छुट्टियों में विशेष समारोह से मनाया जायगा। इस अवसर पर अनेक उपयोगी सम्मेलन किये जायेंगे, और विद्वानों तथा राष्ट्र नेताओं के उपदेश व भाषण होंगे। उत्सव की सफलता के लिये अभी से कार्य प्रारम्भ कर दिया गया है। इस वर्ष पुस्तकों की दुकान छत सहित १२×१२ फुट का किराया १०) होगा और विशेष दुकान का किराया १५) प्रति दुकान होगा। इस बार ५ दुकानें विशेष नम्बर की रक्खी गई हैं। जिस क्रम से किराया प्राप्त होगा उसी क्रम से दुकानें रिज़र्व की जावेंगी। कृपया इस बात को नोट कर लीजिए कि पूरा किराया अगाऊ मिलने पर ही दुकान स्थिर तौर से रिज़र्व की जावेगी।

उत्सव सम्बन्धी विशेष सूचनाएं समय समय पर दी जाया करेंगी।

मुख्याधिष्ठाता

गुरुकुल

६ माघ शुक्रवार १९९६

यह पतझड़ !

सर्दी का मौसम थोड़े समय में बीत जायगा पतझड़ आयेगा और साथ ही आयेगा वसन्त। प्रत्येक ऋतु अपना २ विशेष प्रभाव रखती है। गर्मी का अपना खास असर है तो वर्षा की भी कुछ अपनी ही अनोखी देन है। जहां इन का प्रभाव है वहां सर्दी का भी अपना ही विशेष क्षेत्र और कार्य है। ऋतुओं का मानव जीवन पर तथा इस मनुष्य मात्र पर विशेष प्रभाव पड़ता रहता है। गर्मी में प्रकृति का प्रचण्ड रूप दीखेगा तो सर्दी में सर्वत्र शान्त वातावरण।

सर्दी गर्मी का, वसन्त का, पतझड़ का, प्रत्येक ऋतु परिवर्तन का न केवल भौगोलिक प्रभाव है इनका राजनैतिक असर भी देखा जा सकता है।

यूरोपियन महायुद्ध को छिड़े हुए आज लगभग ५ मास हो गये इक्के दुक्के हमले के सिवाय, छोटे मोटे युद्धों के अतिरिक्त अभी तक कुछ नहीं हुआ। पोलैण्ड का ४ चार मास पहले ही जनाजा निकल चुका है, रूसी भालू फिनलैण्ड पर अपने पञ्जे पसारने का प्रयत्न कर रहा है। यूरोप भूखण्ड के बड़े २ राष्ट्र तो किसी न किसी युद्ध में जुटे हुए हैं, इस समय संसार की महाशक्तियों में से महायुद्ध से अछूती बची हुई शक्तियां संयुक्त राज्य अमेरिका, इटली और जापान ही हैं।

यह महायुद्ध कब तक चलेगा यह प्रश्न आज विश्व-शान्ति को चाहने वाली सम्पूर्ण मानव जाति के सामने है। महायुद्ध का असर केवल यूरोप पर ही हो, यह समझना गलत होगा, पृथ्वी की इस विस्तीर्ण रंगभूमि पर होरहे नाटक के छोटे से छोटे अभिनय का, खेल का सम्पूर्ण मानवजाति पर असर पड़ता है। यूरोप के इस युद्ध का बाजारों पर, राष्ट्रों की आर्थिक, राजनैतिक व सामाजिक स्थिति पर भी असर पड़ा है। इसलिये इस यूरोपियन युद्ध के विषय में प्रश्न कि यह महायुद्ध कितने समय तक चलेगा, उठना स्वाभाविक ही है। यूरोप के कई राजनीतिज्ञ समझते हैं यह युद्ध लम्बा न चलेगा। उनका कहना है जर्मनी का मित्रराष्ट्रों की अपेक्षा आर्थिक संगठन बहुत कमजोर है, आस्ट्रिया, चेकोस्लोवेकिया तथा पोलैण्ड में और जर्मनी के आन्तरिक हिस्सों में भी क्रान्ति हो जायेगी और जर्मनी घुटने टेक देगा। उनकी समझ में यह भी हो सकता है कि जर्मनी को कच्चा माल मिलना बन्द होजाय, रूस, इटली, रूमानिया तथा बाल्कन राष्ट्रों से उसका सम्पूर्ण व्यापारिक व राजनैतिक सम्बन्ध टूट जाय, उस दशा में नाजी जर्मनी का पतन अवश्यम्भावी है,

दूसरी ओर ब्रिटेन के प्रधान मन्त्री श्री चैम्बरलेन तथा ब्रिटेन के संयुक्त राज्य अमेरिका में स्थित राजदूत लार्ड लोथियन ने इस युद्ध के जल्दी समाप्त होने में सन्देह प्रकट किया है। उनका कहना है कि अभी तो युद्ध भी प्रारम्भ नहीं हुआ है, जल, थल, नभ में छुटपुटे हमलों के सिवाय अभी कोई मार्के का युद्ध नहीं हुआ है। जर्मनी की प्रसिद्ध हवाई शक्ति को किसी भी बड़ी लड़ाई से अलग रक्खा गया है, जर्मनी की सुशिक्षित सुनियंत्रित स्थलीय सेना पोलैण्ड के अभियान के बाद अभी तक किसी भी बड़े युद्ध में नहीं लगी है। इंगलैण्ड के राजनीतिज्ञों की नींद अभी भी जर्मनी के हवाई व जलीय हमलों से हराम नहीं हुई है। जर्मनी के सम्भावित आक्रमण से बैल्जियम, हालैण्ड, रूमानिया में त्रास पैदा किया जा रहा है। यह कहा जा रहा है जर्मनी की सेनाएं कसी भी हुई कदम पर चलने के लिये सन्नद्ध हैं। सिग-फ्रिड लाईन, जो जर्मनी की सैनिक रक्षात्मक दीवार है, उस को अधिक से अधिक पक्का कर लिया गया है, जर्मनी अपनी आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिये इन दिनों विशेष प्रयत्नशील रहा है। फ्रांस और ब्रिटेन भी अपने राष्ट्रीय धन का युद्ध के लिये उपयोग करने में लगे हैं, वे संयुक्त राज्य अमेरिका से आवश्यक हवाई जहाज तथा विध्वंसक शस्त्रादि खरीद रहे हैं। यह सामरिक रणसज्जा आज अपने पूरे वेग में चल रही है। इटली इस समय अपनी नीति तथा अपने पक्ष का निर्णय करने में झिझक रहा है, वह यह देख कर ही इस समराङ्गण में हाथ डालेगा कि उसका क्या फायदा होगा? वह जर्मनी तथा रूस के गठबन्धन को भी अस्थायी तथा कमजोर अनुभव कर सकता है तथा मित्रराष्ट्रों की ओर जाने में भी फायदा देख सकता है। यह भी हो सकता है इटली का तानाशाह मुसोलिनी जर्मनी के पक्ष में रह कर ही उपनिवेशों के स्वप्न को चरितार्थ होता हुआ देखे। अमेरिका जहां अपने आर्थिक स्वार्थ को इस राजनैतिक दांव पेंच में सब से प्रमुखता देगा, वहां वह दोनों पक्षों में शान्ति करवाने के लिये मध्यस्थ होने के लिये सदा तैय्यार रहेगा। पूर्व में जापान को चीन में मनमानी करने के लिये बहुत बड़ी छूट इस यूरोपियन महायुद्ध ने दे दी है।

अभी तक बर्फ के कारण, अत्यधिक शीत के कारण बाध्य होकर लड़ाकू राष्ट्र चुप रहे थे। यह पिछले कुछ मास सशस्त्र शान्ति के थे। अब शीत काल बीतते ही पतझड़ प्रारम्भ होने के साथ ही युद्ध के नक्शे में कुछ न कुछ परिवर्तन होने की आशा की ही जा सकती है। मेजिनो लाइन के पीछे फ्रांस और इंग्लैण्ड तथा सिगफ्रिड सीमा से परे जर्मनी बहुत देर तक शान्त नहीं रह सकते।

भारत में भी अगले कुछ दिनों में राजनैतिक वातावरण में परिवर्तन आना आवश्यक है। सात कांग्रेसी प्रान्तों में शासन विधान अधिक से अधिक ६ मास के लिए स्थगित रह सकता है, इससे अधिक के लिये ब्रिटिश सरकार को ब्रिटेन की पार्लियामेंट से मंजूरी लेनी होगी। ब्रिटिश सर-कार भारतीय जनता की मांग को इस पेचीदे समय पर

अधिक समय तक ठुकरा न तो अपने पक्ष को ही कमज़ोर करना चाहती है और न ही संसार के प्रगतिशील लोकमत को ज्यादह समय तक भुलावे में रख सकती है।

ब्रिटिश सरकार के सामने इस समय कुछ ही रास्ते खुले हुए हैं, एक तो यह कि वह भारतीय प्रबुद्ध जनता को कुछ अधिकार देकर सन्तुष्ट करने का प्रयत्न करे। दूसरा रास्ता यह है कि बुद्ध भारतीय जनता को विभक्त कर पारस्परिक विग्रह का—अधिकारों का संघर्ष करवाने का प्रयत्न करे। ये दोनों रास्ते इस समय असफल सिद्ध हो रहे प्रतीत होते हैं पहला इसलिये कि भारत की प्रमुख राजनैतिक संस्था राष्ट्रीय महासभा पूर्ण स्वाधीनता के सिवाय और कोई ध्येय नहीं रखती। वह इसी के लिये आवाज बुलन्द कर रही है। दूसरे सरकार ने घोषणा की थी 'पारस्परिक मतभेद का सुलझाने वाली सर्वसम्मत मांग पर अमल करेगी।' उसे आशा थी ऐसा नहीं होगा। राष्ट्रीय महासभा ने सरकार के इस प्रयत्न में दुरभिसंधि को बू पाई थी, और इस योजना को फिलहाल अमान्य और टाले जाने वाला बता कर पूर्ण स्वाधीनता की मांग की है। सरकार और राष्ट्रीय महासभा के सामने इस समय लड़ाई और शान्ति दो ही पथ रह गये हैं। शान्ति का मतलब है भारत को कुछ राजनैतिक अधिकार मिल जाना। लड़ाई या सत्याग्रह का मतलब यह है कि यूरोपियन महायुद्ध के साथ २ भारत में भी एक बड़े भारी मोर्चे की तैयारी हो जाना।

इस पतझड़ के प्रारम्भ के साथ विश्व में युद्ध, विग्रह, लड़ाई का रंग जमेगा या संसार में शान्ति के साथ २ मानव के जन्मसिद्ध अधिकारों का स्थापन हो सकेगा यह अत्यन्त सन्निकट भविष्य बताने जा रहा है। इस पतझड़ की देन मे, जो कि अपना स्थान अमर बनाने जा रही है, कौन सही अर्थों में बचे रहने का दावा कर सकता है?

आर्य सत्याग्रह में गुरुकुल की आहुति

गिरफ्तार हो गये.

[ले०—श्री क्षितीश वेदालंकार]

(४)

समय स्वयं एक बड़ा भारी उपचार है। जब क्षण-क्षण की चिन्ता-व्याकुलता और किंकर्त्तव्यविमूढ़ता से भरी दो पूरी रातें उस सिकन्दराबाद की धर्मशाला में काली हो चुकीं, तो उस कालिमा में से स्वयमेव प्रकाश की झलक आने लगी और जिस विभीषिका का पर्दा आँखों पर छाकर मन में दुविधाओं को सृष्टि कर रहा था, वह खिसकने लगा। अपने कार्य में अचल और चतुर गुप्तचरों के कारण हमें डर था कि कहीं हमें अपने उद्देश्य की सिद्धि में विफलता न हो, क्योंकि वे हमारी प्रत्येक गति-विधि का निरीक्षण करते थे और ऊपर रिपोर्ट पहुंचाते थे। इन दो दिनों के अन्दर ही अन्दर उनकी ड्यूटियां कई बार बदल चुकी थीं, क्योंकि हमने भी उनको कोई कम परेशान नहीं किया था। सवेरे से निकलते और शाम तक लगातार घूमते ही रहते—कभी इस गली और कभी उस गली—सारी गलियां छान डालीं। और मजा यह कि हरेक अलग २ जाता था। वे भी विचारे पीछा करते करते परेशान होगये। किस किस का पीछा करते!

तीसरे दिन सूर्योदय होने से पहिले ही भाग्यनगर के घर-घर में छोटी-छोटी चिटों पर साइक्लोस्टाइल से छपी हुई गुप्त विज्ञप्तियाँ पहुंचा दी गईं कि आज शाम को ५ बजे गुरुकुल-कांगड़ी के १५ विद्यार्थियों का एक जत्था सुलतान बाजार के चौक में सत्याग्रह करेगा। लोग हैरान रह गये कि अकस्मात् ही यह क्या हो गया! किसी ने उन विद्यार्थियों को देखा नहीं, किसी ने उनके विषय में सुना नहीं कि वे स्टेट में आ भी गये हैं या नहीं। फिर अचानक ही भारतवर्ष के ठीक उत्तर से इस इतनी दूर दक्षिण में एक दम शाम को कैसे टपक पड़ेंगे! लोग यह भी नहीं जान पाये कि वह कौनसी चिड़िया थी जो दुनियां की आंखें खुलने से पहले ही घर घर में यह अनहोनी खबर बांट आई। काश! निज़ाम राज्य के दिल-खास हैदराबाद में, मकड़ी के जाले की तरह बिछा हुआ वह गुप्तचरों का जाल उस चिड़िया को पकड़ पाता!

लोगों को ग़लतफ़हमी हो जाती है, वे अपने आपको परले सिरे का चालाक समझने लगते हैं। पर उन्हें पता नहीं कि कभी कभी सेर को सवासेर से भी पाला पड़ता है।······ तीन बजे के लग भग एक मोटर मारुति-मन्दिर के पीछे आकर खड़ी हो गई, न जाने कहां से! कितनी गलियों की घुम्मरघेरी के बीच में था वह देवालय। सामान्य जनता की दृष्टि से दूर और सी. आई. डी. की दृष्टि से तो और भी दूर! धीरे धीरे एक एक करके पांच आदमी आये— न जाने किसी रास्ते से, और आकर उस मोटर में चढ़ गये। मोटर भी हरेक मोड़ पर पुलिस के नाके को बचाती हुई न जाने किस किस सड़क पर होकर। पांच बजते न बजते सुलतान बाजार के सिरे पर जाकर रुक गई। उसमें से निकले पांच वीर—जैसे कि गुरुगोविन्द सिंह ने अपने हाथ से रक्त-तिलक लगाकर सबसे पहले 'पांच सिक्ख' तैयार किये थे—आर्य-जागृति के इतिहास में अमर बनकर जिन्होंने सिक्ख जाति का पथ प्रदर्शन किया था। किन्तु·· किन्तु इनके माथे पर तो कोई रक्त-तिलक नहीं है, इनके वेष में कोई विशेषता नहीं है?··· हां, ये ऐसे ही वीर हैं—इनके वेष में या बाह्य किसी चीज में कुछ भी विशेषता नहीं है। जो कुछ विशेषता है वह इनके अन्दर है। जरा अन्दर घुसकर देखो—देखो, वह रहा लाल लाल रक्त-तिलक······नहीं रक्त तिलक नहीं, लाल लाल चिनगारी—छोटी सी चिनगारी उस महा ज्वाला की, जो इनके अन्दर लगातार जल रही है। आवें—अन्याय और अत्याचार अपनी सेना के साथ सजधजकर इसको बुझाने के लिये आवें—और फिर देखें कि इस ज्वाला में पड़कर वे ज्वाला को बुझाते हैं या अपने आप बुझ जाते हैं!

× × ×

दो फर्वरी—इन्द्रसेन, विद्यारत्न, मनोहर, उदयवीर और विश्वमित्र गिरफ्तार होगये। उस दिन और मोटर का प्रबन्ध नहीं हो सका, इस लिये हम नहीं आ सके। सोचते रहे रात भर-अपने उन सौभाग्यशाली बन्धुओं के विषय में, जिन्होंने भाग्यनगर में जाकर अपने भाग्य के साथ जूआ खेला था—हमसे पहले-सबसे पहले !

और फिर तीन फरवरी-दिन भर घूमना तो काम था ही-निकल पड़े। दुपहर को खूब डटकर भोजन किया-फल भी, मिठाई भी-खूब; न जाने फिर कब नसीब हो। होते होते बलि का समय निकट आगया। पांच पांच के दो गुट बनाये-लेखक ने एक अपने साथ रखा और दूसरा अपने सहपाठी धीरेन्द्र के साथ। सारा पुरोगम तैयार कर लिया-कि किस तरह बिना एक भी शब्द बोले इशारे मात्र से सारे काम करने हैं।

आवश्यक वेष-परिवर्तन किया। किन्तु अब इस नये वेष में दरवाजे से बाहर कैसे जावें- वहां सी. आई. डी. के रूप में यमदूत बदस्तूर कायम हैं। धर्मशाला के पीछे के चोर-द्वार से एक एक करके निकले। सारा सामान वहीं का वहीं छोड़ा। सूई की नोक में से दोनों का निकलना मुश्किल था। एक ग्रुप पहुंचा रानागंज और दूसरा स्टेशन, क्योंकि मोटरों के यही दो अड्डे थे। वे हमारे पहरेदार वहां न जाने कबतक बैठे रहे होंगे !

सुल्तान बाजार में जाकर उतरे तो देखा कि दूसरा ग्रुप हमसे पहले पहुंचा हुआ है, और हरेक भीड़ में ऐसा गायब हो गया है कि ढूंढना मुश्किल। और भीड़ ?-उसका न पूछो-सड़क पर दुकानों पर, छज्जों पर और छतों पर-चारों ओर नरमुण्ड ही नरमुण्ड। घुड़सवार पुलिस भी तैनात है और बड़ी मुस्तैदी से थोड़ी थोड़ी देर बाद भीड़ को तितर-बितर करने के लिये लाठी-चार्ज कर रही है। पर तमाशा ! भीड़ फिर भी लगातार बढ़ती ही चली जा रही है। पुलिस हैरान है कि अकस्मात् ही इतना मजमा कैसे इकट्ठा हो गया !

सारे बाजार में एक बार घूमकर सब साथियों को निर्दिष्ट स्थान पर पहुंचने का इशारा किया। सब इसी की इन्तज़ार में तो थे ही, क्षण भर में इकट्ठे होगये। बीच-बाजार-चौक-सामने टावर- घुड़सवार और संगीन-राइफलों से सुसज्जित सिपाही।... जैसे किसी ने बिजली का स्विच दबा दिया हो "जो बोले सो अभय, वैदिक धर्म की जय !" "आर्यसमाज जिन्दाबाद !"

-और इन गगनभेदी नारों की प्रतिध्वनि जनता में गूंज उठी।

फर्र-फर-फर्र-निकर और पाजामों की जेबों में छिपे हुए पर्चे निकल पड़े। जनता में लूट मच गई। उसमें लिखा था: "काश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तक सारा हिन्दुस्तान एक है। सांस्कृतिक दृष्टि से उसके दो भाग नहीं किये जा सकते। उसके एक अंग पर किये गये अत्याचार से यह सारा का सारा आर्यावर्त-शरीर कराह उठा है।...... जब तक हमें नागरिक और धार्मिक अधिकार नहीं मिलेंगे, हम अन्तिम दम तक लड़ते चले जावेंगे......"

पर यह सब पढ़कर सुनाने का मौका भी कहां था ! सामने से घुड़सवार दौड़ पड़े। संगीनें तान ली गईं और आकर जबर्दस्ती मुंह बन्द कर दिये गये।

× × ×

जब गिरफ्तार करके थाने की ओर ले चले तो हजारों की भीड़ साथ चली ! (असमाप्त)

यथार्थ ज्ञान और मौलिकता

[लेखक—श्री पं० ब्रह्मानन्द जी]

अपने को बिल्कुल दूसरों के प्रभाव से रहित कर लेना आत्म तृप्ति है, और पूर्णता का वास्तविक रूप है। जब तक किसी ज्ञान पर अपने व्यक्तित्व की पूर्णतया छाप न हो, तब तक वह वास्तविक ज्ञान नहीं है; क्यों कि उसके साथ तादात्म्य प्राप्त नहीं हुआ है। जितना वह अपने व्यक्तित्व से भिन्न रूप में प्रतीत हो रहा है, उतना वह वस्तुतः अप्राप्त है। इसी लिये तो तोता-रटन्त ज्ञान को विफल समझा जाता है। जो ज्ञान अपने व्यक्तित्व से पूर्णतया घुल मिल नहीं गया है, और उसमें परकीयता का आभास होता है; वह भी सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर तोता रटन्त का सजातीय ही प्रतीत होता है और अपने व्यक्तित्व से घुले-मिले हुए थोड़े भी वास्तविक ज्ञान का आनन्द प्राप्त होने पर, वह ज्ञान अवाञ्छनीय प्रतीत होने लगता है, और उससे विरक्ति होने लगती है। वास्तविक ज्ञान का यह स्वरूप है कि वह अपने व्यक्तित्व से एकीभूत हो जाता है; न कि पानी में घी के समान व्यक्तित्व से अलग उतराता रहता है। इस दृष्टि से देखने पर जितने भी पुस्तकीय ज्ञान हैं वे सब अवास्तविक सिद्ध होते हैं। क्योंकि उनका मनुष्य के व्यक्तित्व के साथ एकीभाव नहीं होता। प्रत्येक व्यक्ति असाधारण है, अतः उस के व्यक्तित्व के साथ एकीभूत ज्ञान में असाधारणता होगी। और एकीभाव जितना विशेष होगा,ज्ञान की असाधारणता तथा नवीनता या मौलिकता भी उतनी होगी। यद्यपि व्यक्तियों में समानता भी है। अतः उनके विचारों में समानता का भी होना सम्भव है; तथापि उनकी असाधारणता का मिश्रण होने से उनमें असाधारणता भी अवश्य आवेगी। बल्कि हमारे व्यक्तित्व की सर्वविलक्षणता की छाप उस ज्ञान में आनी चाहिये। 'चिति' शक्ति एक है, पर वह बहुरूप में अभिव्यक्त होती है। उसका उस बहुता में ही वास्तविक एकता है। बहुता उसकी अनन्त शक्तियों के कारण है, पर चितिशक्ति के रूप में सब एक हैं। और इस विवाद में जाने की विशेष आवश्यकता नहीं है। यहां विवक्षित तो यह है कि अपने व्यक्तित्व के साथ एकीभूत ज्ञान ही वास्तविक ज्ञान है। अनेकों भूत ज्ञान से अपने को ज्ञानवान् समझना, और दूसरे को उसे देना अपनी अज्ञानता का द्योतक है।

ज्ञान भी दूसरों से लेने का प्रयत्न नहीं करना चाहिये। क्योंकि दूसरों से लेने में वस्तुतः हमारी पूर्णता में वृद्धि नहीं होती, किन्तु ह्रास होता है। दूसरों से ज्ञान लेने का

प्रयत्न करने पर, मौलिक ज्ञान का स्थान अमौलिक ज्ञान ले लेते हैं। इस प्रकार हम अपने ज्ञान से भी वञ्चित हो जाते हैं, और दूसरों के ज्ञान तो दूसरों के हैं ही। फिर हमारी वही गति होती है कि—

"यो ध्रुवाणि परित्यज्य, अध्रुवाणि निषेवते।
ध्रुवाण्यपि विनश्यन्ति, अध्रुवं नष्टमेव हि॥"

इस प्रकार हम देखते हैं कि अन्य वस्तुओं के सदृश ज्ञानके लिये भी परमुखापेक्षी नहीं होना चाहिये। उसमें भी परमुखापेक्षी होने से हानि ही रहती है। हां, पर जब तक अपने अन्तर्निहित ज्ञान का अनुसन्धान करने की शक्ति न हो, तब तक हमें दूसरों से प्राप्त होने योग्य ज्ञान की भी आवश्यकता है ही जिससे हमें अपने अन्तर्निहित ज्ञान-भण्डार को पाने की शक्ति प्राप्त हो। हमारा प्रयत्न तो आत्मस्थ तथा मौलिकज्ञान के लिये ही होना चाहिये। बाह्यज्ञान अपने आप मिलते रहेंगे। पर वे सब उस स्थिति में आत्मीय होकर मिलेंगे, जब कि हमारा प्रयत्न एकमात्र आत्मस्थ मौलिक ज्ञान के लिये होगा। क्यों? क्योंकि वस्तुतः तो सब कुछ आत्मभूत ही है। छान्दोग्योपनिषद् का वाक्य है—"आत्मैवेदं सर्वम्।" पर जब हम बहिर्मुख होते हैं, तब सब हमारे लिये अनात्मभूत सा हो जाता है। अतएव गीता में कहा है कि—

"आपूर्यमाणमचलप्रतिष्ठं, समुद्रमापः प्रविशन्ति यद्वत्।
तद्वत् कामाय!प्रविशन्ति सर्वे,स शान्ति माप्रोतिनकामकामी"

हमें सर्वदा अपने को दूसरों के प्रभाव से रहित रखने का प्रयत्न करना चाहिये। पूर्ण निरपेक्ष बनने का प्रयत्न करना चाहिये। यही वास्तविक ज्ञान का मार्ग है। अन्यथा दूसरों के प्रभाव से अपने को प्रभावित होने देने पर तो हम अज्ञानता की ओर जाते हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि जहां तक हम दूसरों के प्रभाव से प्रभावित हैं, वहां तक अज्ञान-ग्रस्त हैं। विचारमय प्रभाव से भी प्रभावित होना ज्ञान की प्राप्ति में बाधक है; भौतिक प्रभाव का तो कहना ही क्या? विश्वकवि रवीन्द्रनाथ टागोर ने गीताञ्जलि में कहा है कि हमें वह ज्ञान प्राप्त हो, जो कि मनुष्यों के प्रभाव से अप्रभावित रूप में हो सकता हो। लेकिन हठ पूर्वक अपने को प्रभाव रहित करने का प्रयत्न नहीं करना चाहिये। अपितु अपनी संकल्प-शक्ति के द्वारा नैसर्गिक रूप से इस प्रकार विचार करने से यह प्रतीत होता है कि पूर्ण निरपेक्षता ज्ञान की पराकाष्ठा है। अतएव योगदर्शन के व्यासभाष्य में कहा है कि—"ज्ञानस्य परा काष्ठा वैराग्यम्"।

मैं श्री अरविन्द के इस विचार से अपने लेख का उपसंहार करता हूं कि—

"मनुष्य को पुराने विचारों को अपने अन्दर से सर्वथा बाहर निकाल देना चाहिये। पुरानी स्थापनाओं को अपने दिल से निकाल कर बिल्कुल नये सिरे से चिन्तन करना चाहिये। तभी मानवीय शक्ति का यथोचित उपयोग हो सकता है।"

गुरुकुल समाचार

इस सप्ताह सर्दी का प्रकोप कम रहा। एक दिन वर्षा भी अच्छी तरह हुई। गत १५ जनवरी को गुरुकुल के उद्यमी निस्वार्थ सेवक पं॰ भद्रसेन जी की विदाई के उपलक्ष्य में सभा हुई। आपने १४ साल तक अथक रूप से गुरुकुल की की सेवा की थी। ब्रह्मचारी आपको स्टेशन तक पहुंचाने के लिये गए थे। पिछले पक्ष महाविद्यालय के विभिन्न विभागों के मंत्रियों का चुनाव हुआ। निम्न ब्रह्मचारी अपने ७ उपयुक्त पदों के लिये चुने गए:— ब्र० विद्यारत्न क्रीड़ा मन्त्री, ब्र० रघुनाथ मन्त्री आयुर्वेद परिषद्,।

स्वास्थ्य समाचार

रणवीर १३ श्लेष्मज्वर, हरिप्रकाश ५ श्लेष्मज्वर, शशिकुमार ५ श्लेष्मज्वर, सूर्यदेव ४ श्लेष्मज्वर, योगेन्द्र १ श्लेष्मज्वर, मोहन १ श्लेष्मज्वर,।

गत सप्ताह उपरोक्त ब्र० रोगी हुए थे। अब सब स्वस्थ हैं। पिछले पक्ष अच्छी सर्दी तथा मौसम ठीक न होने से श्लेष्मज्वर, का प्रकोप हो गया था। अब पर्याप्त आराम है।

चूनीबाई टेकचन्द नागिया छात्रवृत्ति

डेरा गाज़ी खाँ निवासी श्रीमान् भाई टेकचन्द जी नागिया ने २५०००) गुरुकुल कांगड़ी को इस लिये दान दिया हुआ है कि इस छात्रवृत्ति पर गरीब और होनहार बालक गुरुकुल काङ्गड़ी में प्रविष्ट किए जाएं।

१ आधी छात्रवृत्ति पाने वाले सज्जन ही प्रार्थना पत्र भेजें।

२ बालक तथा उसके संरक्षक के योग्य अधिकारी प्रमाणित होने तक छात्रवृत्ति निरंतर दी जायगी। अन्यथा बन्द कर दी जायगी।

३. संरक्षक महाशय को अपने प्रार्थना पत्र के साथ छात्रवृत्ति का अधिकारी होने सम्बन्धी अपनी निर्बल आर्थिक अवस्था का प्रमाण पत्र वहाँ की समाज के प्रधान महाशय का भेजना जरूरी है।

४ उत्तर के लिये डाक व्यय प्रार्थना पत्र के साथ भेजना जरूरी है।

५. प्रार्थना पत्र सीधे ही भाई टेकचन्द जी नागिया ब्लाक 'जे' डेरागाजीखाँ के पते पर भेजने चाहिएं।

६. जवाबी लिफ़ाफे या कार्ड पर अपना पूरा पता स्वय लिख कर भेजें ताकि उसके द्वारा उसी पते पर उनको उत्तर दिया जा सके। बाज़ दफ़ा उनका पता ठीक नहीं पढ़ा जाता। इसलिये खाली लिफाफा या कार्ड पर पता ग़लत हो जाता है। उनके अपने पते न लिखने से अगर चिट्ठी उनको न मिलेगी तो यह उनका अपना कसूर होगा।

७. गुरुकुल की नियमावली तथा प्रवेश फार्म कार्यालय गुरुकुल काङ्गड़ी (ज़िला सहारनपुर) से मंगाइये।

सत्यव्रत
मुख्याधिष्ठाता, गुरुकुल काङ्गड़ी।

चौधरी हुलाससराय के प्रबन्ध से गुरुकुल मुद्रणालय गुरुकुल कांगड़ी में मुद्रित तथा प्रकाशित।

* ओ३म् *

"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत" Reg. No. A. 2927

गुरुकुल

एक प्रति का मूल्य -) [गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख-पत्र] वार्षिक मूल्य ३॥)

सम्पादक—साहित्यरत्न पं० हरिवंश वेदालङ्कार

वर्ष ४] गुरुकुल काङ्गड़ी, शुक्रवार १३ माघ १९९६; २६ जनवरी १९४० [संख्या ३८

गुरुकुल के ब्रह्मचारियों के लिये यान्त्रिक शिक्षा का प्रबन्ध

सब शाखाओं के सप्तम अष्टम नवम श्रेणी के विद्यार्थी (१४ से १८ वर्ष तक की आयु वाले) इससे लाभ उठा सकते हैं।

गुरुकुल छोड़कर गये हुए विद्यार्थी भी प्रविष्ट किये जा सकते हैं।

[ले० श्री आचार्य अभयदेव जी]

देहली क्लॉथ मिल के प्रसिद्ध मिल मालिक श्रीमान् लाला श्रीराम जी जिन्होंने जहां और कई उपकार के कार्य किये हैं वहां हाल ही में उन्होंने गुरुकुल के ब्रह्मचारियों के लिये प्रारम्भिक यान्त्रिक शिक्षा का भी रास्ता खोलकर एक उत्तम उदाहरण स्थापित किया है। लाला श्रीराम जी का गुरुकुल से सम्बन्ध क्रमशः बढ़ता गया है। गुरुकुल के प्रसिद्ध स्नातक श्री पण्डित देशबन्धु जी विद्यालंकार उनके मजदूरों में चिरकाल से सेवा का कार्य कर रहे हैं। कुछ महीने हुए उन्होंने मिल के कार्यकर्त्ताओं के छोटे छोटे बालकों को उनके अनुकूल उद्योग द्वारा शिक्षा देने के लिये एक स्नातक की मांग की थी। उसके उत्तर में गुरुकुल सूपा के सहायक आचार्य श्री पं० परमानन्द जी विद्यालंकार को प्राप्त करके वे बहुत प्रसन्न हैं। आशा है कि गुरुकुल के स्नातकों की योग्यतापूर्ण सेवा का लाभ उठाने का उनका तरीका सफल होगा और अन्य लोगों के लिये दृष्टान्त-स्वरूप होगा।

यान्त्रिक शिक्षणालय

इसी प्रकार श्रीमान् लाला श्रीराम जी की कुछ समय से इच्छा थी कि वे मातृभाषा के माध्यम द्वारा देश के लिये उपयोगी किन्तु साधन रहित बालकों को यान्त्रिक कार्य की शिक्षा देने का कुछ प्रबन्ध करें। वैसे तो उनका यह विचार अपनी मिलों के लिये उत्तम इञ्जीनियर प्राप्त कर सकने में सहायक होने के लिये भी है परन्तु परोपकार का भाव भी इसमें स्पष्ट निहित है। इस शिक्षा के लिये पहले उनका विचार देशी भाषा के मिडिल पास विद्यार्थियों को लेने का हुवा। परन्तु पीछे उनको यह ख्याल आया कि इस काम के लिये गुरुकुल के विद्यार्थी अधिक अच्छे रहेंगे क्योंकि उनका साधारण ज्ञान अधिक होता है और अच्छे वायुमण्डल में वे रहे होते हैं। उनके इस प्रस्ताव को आवश्यक वार्त्तालाप हो जाने के बाद गुरुकुल के अधिकारियों ने सहर्ष और धन्यवाद पूर्वक स्वीकार कर लिया।

पाठ्यक्रम

इस शिक्षणालय का पाठ्यक्रम अभी तीन वर्ष का रखा गया है। वैसे तो तीन वर्ष बाद और दो वर्ष का पाठ्यक्रम भी प्रस्तावित है और जो विद्यार्थी इस दिशा में विशेष होनहार प्रतीत होंगे उनके इस दो बरस के भी पाठ्यक्रम में से गुजर जाने पर उन्हें ऐसी मिलों के इञ्जीनियर के पद तक पहुँचने का अवसर प्राप्त हो सकेगा परन्तु सामान्य पाठ्यक्रम तीन वर्ष का ही है। इसमें विद्यार्थी एक यान्त्रिक मिस्त्री का काम अच्छी तरह से जान सकेगा और अपना स्वतन्त्र रोजगार करने के योग्य हो सकेगा। सभी प्रकार के मामूली यन्त्रों के बनाने सुधारने और चलाने में वह समर्थ हो जायगा।

यह भी विचार है कि इन तीन वर्षों के पाठ्यक्रम के बाद विद्यार्थी को गुरुकुल की कुछ उपाधि दी जा सके तथा गुरुकुल के अन्य विभागों में प्रविष्ट होने का भी रास्ता रखा जा सके।

यह तो कहने की जरूरत नहीं है कि उनका रहन-सहन देहली की एक मिल के साथ सम्बद्ध होता हुआ भी गुरुकुल के ढंग का होगा। उनके लिये आश्रम का विशेष प्रबन्ध होगा जिससे विद्यार्थी गुरुकुलीय वायुमण्डल में ही रह सकें।

प्रवेश

इस शिक्षणालय में अभी २० विद्यार्थी प्रविष्ट किए जायेंगे और प्रति वर्ष इसी तरह प्रवेश हुआ करेगा।

गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ, सूपा, कुरुक्षेत्र, मुल्तान, कमालिया, भटिण्डा, रायकोट, मटिण्डू आदि सब शाखाओं से विद्यार्थी प्रविष्ट हो सकेंगे। जो विद्यार्थी सातवीं आठवीं श्रेणी से बौद्धिक शिक्षा में असफल होने के कारण या शुल्क न दे सकने के कारण कुछ काल पूर्व घर चले गये हैं उन्हें भी प्रविष्ट किया जा सकेगा।

छात्रवृत्ति

इन सब विद्यार्थियों से किसी प्रकार का भी शुल्क नहीं लिया जायगा। शिक्षा तथा रहन सहन दोनों निःशुल्क होंगे। सब को १५) मासिक छात्रवृत्ति मिलेगी अर्थात् उनके सम्मिलित भोजन आच्छादन आदि पर १५) प्रति व्यक्ति खर्च किया जायगा।

शीघ्रता की आवश्यकता है

यह शिक्षणालय दस पन्द्रह दिन में प्रारम्भ हो जाय ऐसा सङ्कल्प है। इस लिये किसी भी शाखा के उपर्युक्त आयु के जो विद्यार्थी प्रविष्ट होना चाहें या जो संरक्षक महाशय अपने इस आयु के ब्रह्मचारियों को इस यान्त्रिक शिक्षणालयों में प्रविष्ट कराना चाहें वे एक सप्ताह के अन्दर अन्दर अपना प्रार्थनापत्र गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ के मुख्याधिष्ठाता जी के पास भेजदें। और ४ फ़रवरी तक विद्यार्थियों को गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ पहुंच जाना आवश्यक है। इस तारीख़ को उनका चुनाव होगा। चुनाव में शारीरिक स्वास्थ्य तथा सामर्थ्य भी देखा जायगा। आशा है इस प्रकार के हाथ के काम में शौक रखने वाले सभी गुरुकुलों के विद्यार्थी इससे लाभ उठाएंगे।

आर्य सत्याग्रह में गुरुकुल की आहुति

जेल की ओर

[ले०—श्री क्षितीश वेदालंकार]

(५)

"अच्छा, आप सब तालिम-इल्म (विद्यार्थी) हैं। कहां पढ़ते हैं?"

"गुरुकुल कांगड़ी हरिद्वार।"

"हैं! इतनी दूरी से आ रहे हैं! समझ में नहीं आता कि आप लोग पढ़े-लिखे समझदार होकर फिर इतनी दूर से इस फ़ालतू काम के लिये क्यों आये? कोई अनपढ़ बेवकूफ हो तो उसको आसानी से बहकाया जा सकता है, किन्तु आश्चर्य है कि आप 'कालिज स्टूडेण्ट' होकर भी कुछ लोगों के बहकाये में आगये"—अमीन साहब ने अपनी ओर से बड़ी समझदारी दिखाते हुए कहा।

"आपके इस उपदेश के लिये धन्यवाद। परन्तु क्योंकि हम पढ़े लिखे हैं और समझदार हैं, इस लिये जानबूझ कर आये हैं। यदि पढ़े-लिखे न होते तो शायद यहां आने की बेवकूफी कभी न करते। आप अपना काम करिये, हमने अपना काम किया है।"

हमें बैंच पर बैठा कर थाने में अमीन साहब यों बड़ी सभ्यता से सवाल-जवाब कर रहे थे। हम बड़े हैरान थे कि पुलिस के अफसर इतनी सभ्यता से बात करते हैं।

परन्तु अगले ही क्षण—

एक पूरा सात फीट का लम्बा-चौड़ा जवान हाथ में हण्टर लिये हुए आया। अमीन साहब सवाल जवाब करते करते न जाने किधर खिसक गये। उस जवान ने दरवाजे में घुसते ही फुलझड़ी की तरह मुंह से वह बौछार छोड़ी—गालियों की—इतने सुन्दर शब्दों में कि उन शब्दों का प्रयोग यदि Anatomy के बाहर कहीं भी किया जाये तो सभ्य-समाज दांतों तले अंगुलि दबा लेगा। और न फिर गालियां-बल्कि हाथ के हण्टर का भी ऐसी बेहरमी की करामात से प्रयोग किया जाने लगा कि रूह कांप उठी। यह क्या? कहां तो अमीन साहब ने आदर से बैञ्च पर बैठाया था और 'आप-आप' कर के बातें कर रहे थे, और कहां यह साक्षात् यमदूत बिना बात के ही गाली देता हुआ, हण्टर मारता हुआ, और जो ज़रा सी आनाकानी करे उसे गर्दनिया देकर बूट की ठोकर मारता हुआ जबर्दस्ती ज़मीन पर बैठा रहा है।

शिक्षा का और यौवन का यह अपमान! नहीं सहन हो सकता—नहीं हरगिज़ नहीं।···पर क्या तुम्हें याद है कि तुम सत्याग्रही हो, अहिंसा के व्रत के व्रती। तुम्हें हिंसा नहीं करनी है-स्वप्न में भी नहीं। सहना होगा, सब चुप-चाप—और अपना हाथ नहीं उठाना है।

रात को आठ बजे लारी में बन्द किया—हरेक के साथ एक-एक संगीन-राइफल से लैस सिपाही। लारी चारों ओर से बन्द—मानों बुर्क़ापोश स्त्रियां जा जा रही हों।

हवालात में पहुंचे। सब को पंक्ति में खड़ा किया गया। केवल एक कपड़ा पहने रहने दिया, बाकी लंगोट तक सब कपड़े उतरवा लिये। कोई भी चीज़ पास नहीं रहने दी—कागज़ पेंसिल, रुपया-पैसा कुछ भी नहीं। फिर खाना-तलाशी शुरू हुई—मुँह खुलवा कर हाथ ऊपर को उठवा कर और फिर गुप्ताङ्गों में भी क्या छिपा कर रखा होगा!

फिर एक एक-करके जो कोठरी में धकेलने वाला सिपाही था, उसने पहले ही व्यक्ति भाई सतीश की, अन्दर बन्द करने से पहले फिर तलाशी ली, और गले में डले हुए उस तीन तार के यज्ञोपवीत को उसने एक झटके में तोड़ डाला। अरे! यह देख, हिन्दुत्व की एकमात्र निशानी यह यों छिन्न-भिन्न की जा रही है और तू खड़ा-खड़ा देख रहा है! बोल क्या अब भी तेरी अहिंसा तुझे चुपचाप खड़ा रहने को कहती है?

शिक्षा का कोई आदर न करे तो यह सहा जा सकता है, यौवन को भी यदि कोई उचित मान न दे तो यह भी सहा जा सकता है; किन्तु नहीं सहा जा सकता—आर्यत्व का अपमान नहीं सहा जा सकता! जिस यज्ञोपवीत की रक्षा के लिये राजपूतों का इतिहास रक्त से आप्लावित हो उठा है और अपना सर्वस्व गंवा कर भी धर्मप्राण पूर्वजों ने जिस की रक्षा की है, क्या उस वेदोपदिष्ट

चित्र के मूर्तरूप यज्ञोपवीत को हम इस प्रकार टूट जाने देंगे!

तन कर खड़े हो गये। हम तलाशी नहीं देंगे।......

और तब उन्हें हार माननी पड़ी-यज्ञोपवीत नहीं तोड़ा जायगा। टूटा हुआ लौटा दिया गया।

सबको एक कोठरी में बन्द कर दिया। उन दिनों सर्दी थी—ओढ़ने-बिछाने के लिये केवल तीन कम्बल से कैसे काम चलेगा? इतने आदमी तीन कम्बलों में कैसे सोयेंगे?

किसी तरह सोये। मन में खुशी थी कि इतनी दूर से जिस काम के लिये आये थे, आज वह पूरा हो गया अब कोई गुप्तचर हमारे पीछे नहीं है—अब कोई दुविधा नहीं है कि किस तरह उनको धोखा देना होगा-किस तरह हैदराबाद में घुस कर सत्याग्रह कर सकेंगे—इत्यादि। परन्तु केवल एक चिन्ता है और यह चिन्ता ही इतनी भारी बन कर पड़ रही है कि चैन नहीं लेने देती। हमारा एक भाई चन्द्रगुप्त-जो किसी कारण हमारे साथ गिरफ्तार नहीं हो सका-कहां जायगा! उसका क्या होगा!

४ जनवरी। दुपहर को १२ बजे कोठरी में से बाहर निकाला। बीच में एक बार छोटी २ दो-दो पूरियां भी दी गई थीं, पर वह पेट के किस कोने में चली गई-यह बड़ी कोशिश करने के बाद भी नहीं पता लगा।

फिर लारी में बन्द किया-वही संगीन और राइफलें साथ। नाज़िम साहब अभी सो रहे थे। घण्टे-भर से ज्यादह इन्तज़ार करनी पड़ी। वहीं बैठ कर वारण्ट तय्यार किये गये। उस से पहले दिन हवालात में रात को बारह बजे उठा उठाकर हमारे बयान लिये गये-हरेक को लगभग दो-दो घण्टे तक उनके सवालों का जवाब देने के लिये माथापच्ची करनी पड़ी थी। फिर सवेरे ही सवेरे एक और साहब आये थे जो हरेक के शरीर की खास खास निशानियां और शक्ल-सूरत का पूरा हुलिया लेकर गये थे। अब यहां नाज़िम साहब की कोठी पर फिर वही सब का सब दुहराया गया। फिर झड़ती (खाना तलाशी) ली गई। और जब नाज़िम-साहब अपनी दुपहर की नींद समाप्त करके उठे तो उनके सामने पेश किया गया—वारण्टों के साथ हम सब को।

जब उन्होंने उर्दू-ग्रामर के अनुसार शब्दों के बहु वचनों का हमसे सवाल करते हुए प्रयोग किया तो हमारे लिये अपनी हंसी रोकना मुश्किल होगया और हम खिलखिला कर हँस पड़े। पीछे खड़े हुए सिपाही चिल्लाये'शी!शी!शी'; पर हमारी हंसी रुकने में नहीं आती थी—कोई अफसर होगा तो अपने घर का होगा, हम तो हंसी की बात पर बिना हँसे रह नहीं सकते।

प्रश्नोत्तर के बाद जब उन्हें पता लगा कि ये उस संस्था से आये हैं जिसके संस्थापक श्री स्वामी श्रद्धानन्द थे, तो उनके कान खड़े हो गये।

पूछा—"ज़मानत दोगे?"

"नहीं।"

"माफीनामा लिखोगे?"

"हरगिज़ नहीं।"

तो उसने चुपचाप हमारे वारण्टों पर लिख दिया—'भारत के इन वीरों को उचित दण्ड दिया जाये।' और अदालत में पेशी की तारीख भी लगा दी।

भारत के वीरों को उचित दण्ड देने के लिये ले चले जेल की ओर!

शहीद श्रद्धानन्द का सच्चा श्राद्ध

कुलपिता का अमोघ आशीर्वाद

बड़ौदा हॉकी टूर्नामैण्ट में गुरुकुल सूपा की अपूर्व विजय

(लेखक—एक खिलाड़ी)

प्रत्येक शिक्षण संस्था में विद्यार्थियों के बौद्धिक विकास के साथ २ शारीरिक विकास पर भी अनिवार्य रूप से ध्यान देना आवश्यक होता है। दिन भर बौद्धिक कार्य करने के बाद अन्त में दिमाग थक जाता है इसलिये उस को भी आराम देने के लिये अनेक साधन उपयोग में लाये जाते हैं। ये साधन भी विभिन्न हैं। विद्यार्थी अपनी रुचि के अनुसार उनका उपयोग लेता है। ऐसा यदि वह न करे तो उसका बौद्धिक विकास रुक जायगा। इन्हीं उभय-विध शारीरिक और बौद्धिक विकासों के लिये संस्थाएं शिक्षणात्मक शारीरिक विकास करने वाली यात्राएं करती हैं। परीक्षाओं के पास होते हुये भी आचार्य श्री पं० प्रियव्रत जी विद्यालंकार ने ऐसी ही लाभप्रद यात्रा करने का विचार किया और बड़ौदा में होने वाले अखिल गुजरात प्रान्तीय पैरिन वाड़िया हॉकी कप टूर्नामैंट में संस्था के हॉकी दल को ले जाने का निर्णय किया। इस टूर्नामैंट में गुजरात, कच्छ तथा काठियावाड़ की कोई भी टीम (मिलीटरी तथा पुलिस के सिवाय) सम्मिलित हो सकती थी। महागुजरात में बड़ौदा ही समस्त खेलों का केन्द्र समझा जाता है। इसलिये यह टूर्नामैंट भी बड़ौदा में ही होना स्वाभाविक था। यद्यपि गुजरात में क्रिकेट खेल बहुत प्रचलित तथा प्रिय खेल है तो भी कुछ वर्षों से हाकी निरन्तर अपना क्षेत्र और आकर्षण बढ़ाती चली जारही है। महाराज गायकवाड़ ने अपने राज्य के समस्त हाईस्कूलों तथा कालिजों में हॉकी का खेल आवश्यक रूप से खेलने का ऐलान किया है। इसलिये ऐसी आशा है कि गुजरात भी कुछ ही वर्षों में हॉकी का गढ़ बन जायेगा।

हमारा गुरुकुल दल प्रतिवर्ष नवसारी सूरत तथा भरूच हॉकी मैच खेलने जाता रहता है इसलिये इन प्रदेशों में तो पहिले से खूब ख्याति फैली हुई थी परन्तु बड़ौदा जाने का यह प्रथम ही अवसर था, इसकारण वहां भी कुल का नाम कायम रखने के लिये विशेष तैय्यारी की जरूरत थी। खेल के अतिरिक्त जनता हमारे रहन-सहन आचार-व्यवहार

शेष पृ० ४ पर

गु रु कु ल

१३ माघ शुक्रवार १९९६

हैदराबाद सत्याग्रह और उसके बाद

आर्य समाज के इतिहास में हैदराबाद सत्याग्रह के पृष्ठ भी अपना एक महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। समाज सुधारक आर्यसमाज को शान्ति पूर्ण सुधार के मार्ग में एक राजनैतिक शक्ति द्वारा रोड़े अटकाये जाने पर सत्याग्रह का मार्ग ग्रहण करना पड़ा था। आर्य समाज को अपने धार्मिक कृत्यों पर पाबन्दी, एक नागरिक के प्रारम्भिक अधिकारों पर ही कुठाराघात, किस प्रकार सहन हो सकते थे, बातचीत से हैदराबाद की सरकार जब धार्मिक पाबन्दियों को उठाने के लिये तैयार नहीं हुई, तो आर्यसमाज ने हैदराबाद के नुक्कड़ पर ही शोलापुर में आर्य-कांफ्रैंस इस समस्या पर विचार करने के लिये बुलाई। शोलापुर की ऐतिहासिक कान्फ्रैंस ने शान्ति पूर्ण उपाय द्वारा समझौते का अन्तिम रास्ता खुला रख कर किसी भी हल के न निकलने की दशा में २२ जनवरी सन् १९३९ को हैदराबाद दिवस मनाने का आदेश दिया।

आज हैदराबाद दिवस को मनाये हुए एक वर्ष बीत चुका है। इस बीच में सत्याग्रह भी प्रारम्भ हुआ, हजारों जोशीले धर्मप्राण आर्य नवयुवक सैकड़ों मील दूर के युद्धस्थल-मोर्चे पर अपनी बलि देने गये। सम्पूर्ण भारत में आर्य सत्याग्रह की धूम मच गई। शत्रु मित्र सभी जिन्हें पहले आर्य सत्याग्रह के चलने में ही सन्देह था, इससे सहानुभूति पूर्ण विचार प्रकट करने लगे। कुछ आहुतियां भी सत्याग्रह की बलिवेदी पर काम आईं, इन सबके परिणाम स्वरूप निजाम की हैदराबाद सरकार को सुधारों की घोषणा करनी पड़ी। 'सुधार अपर्याप्त तथा धार्मिक विषयों में अस्पष्ट हैं'— आर्य सार्वदेशिक सभा की इस मांग पर निजाम की सरकार ने सन्तोषजनक परिवर्तन अपनी सुधार घोषणा में किये। इसके परिणाम स्वरूप ८ अगस्त को हैदराबाद सत्याग्रह सफलता पूर्वक समाप्त हो गया।

सम्पूर्ण देश ने सत्याग्रह के अपने, उद्देश्यों में सफल हो जाने पर हर्ष मनाया तथा आर्यजनता के इस प्रयत्न को सराहा। आर्य जनता को इस धर्म-विजय से प्रसन्नता होना ही थी, उसने अपने वीर-सत्याग्रहियों का, सेना के सर्वाधिकारियों का दिल खोल स्वागत किया। बड़े २ शहरों में विजयी वीरों के विजय-जलूस निकाले गये।

सत्याग्रह बीत गया। आर्यसमाज की कर्णधार संस्था सार्वदेशिक-आर्य-प्रतिनिधि सभा ने सत्याग्रह के प्रभाव को स्थायी प्रचार के रूप में परिवर्त्तन करने के लिये हैदराबाद में तथा दक्षिण भारत में आर्य सामाजिक शिक्षा तथा धार्मिक सुधारणाओं की योजना बनाकर इस के अनुसार कार्य करना प्रारम्भ किया। हैदराबाद में जिस उत्साह के साथ कार्य करने की जरूरत था, ६ मास से सत्याग्रह के समाप्त हो जाने पर भी— वह उत्साह तथा वह कार्य अभी तक भी देखने में नहीं आता।

आर्य समाज एक जीवित संस्थान है, तथा सुधार के लिये ही यह पैदा हुआ था, सुधार करते हुए—जनसाधारण में सदियों से आये सामाजिक व धार्मिक कुसंस्कारों को दूर करते हुए ही इसने अपनी वर्तमान स्थिति को बनाया है। जिसका शैशव संघर्ष में बीता, जो संघर्ष में ही बढ़ कर इस महान् स्थिति में पहुंचा हो, उसे जीवित रहकर ही—संघर्ष करते हुए ही जीना होगा। यह संघर्ष अन्याय एवं अत्याचार से करना होगा। सामाजिक सुधार व धार्मिक विचारों का प्रसार करना होगा, एक प्रान्त में ही आर्यसमाज का क्षेत्र सीमित नहीं है, उसे सर्वत्र देश में—परदेश में—समस्त भूमण्डल पर अपना कार्यक्षेत्र बनाना होगा। आर्य समाज को निरन्तर अपने पुरोगम पर चलते हुए आर्य-सिद्धान्तों का सर्वत्र प्रचार करना होगा, हैदराबाद सत्याग्रह आदि तो बीच रास्ते के पड़ाव थे— आर्य समाज को तो बहुत दूर जाना है, ऋषि दयानन्द की दी थाती को अपने तक ही सीमित न रख मानव मात्र को देना होगा।

सत्याग्रह की वर्षी से आर्यसमाज को अपने भविष्य के कार्यक्रम पर विचार कर अपनी अपनी कार्य पद्धति को निश्चित करना होगा। आर्य जगत् को हैदराबाद-दिवस की वर्षी से इसी दिशा में विचार करना होगा।

पुनश्च—

हैदराबाद सत्याग्रह में गुरुकुल की प्रथम आहुति थी। विगत वर्ष २८ जनवरी को, सत्याग्रह के प्रथम सर्वाधिकारी श्री नारायण स्वामी जी के आह्वान पर, गुरुकुल के पन्द्रह वीर धर्मप्राण ब्रह्मचारियों का जत्था चुपचाप—प्रदर्शन-शून्य ठेठ निजाम की राजधानी में सत्याग्रह करने चला गया था। सत्याग्रह जिस शान से इस जत्थे ने किया उससे 'गुरुकुल' के पाठक अच्छी तरह परिचित ही हैं। इन सत्याग्रहियों को ६—६ मास की सजा हुई थी, इनकी सजायें ८ फरवरी से प्रारम्भ होती थीं—और ठीक ६ मास की सजा समाप्त हो जाने पर, ठीक ८ अगस्त को यह वीर जब जेल के सींखचों से बाहर आए, तब सत्याग्रह सफलता पूर्वक विजय रूप में परिवर्तित होकर समाप्त हो चुका था।

गुरुकुल को इस दिन का गर्व है, जिस दिन उसके कुल-पुत्र धर्म जाति तथा राष्ट्र के आह्वान पर केवल आगे ही नहीं आये विजय का सेहरा भी अपने ही सिर पर बन्धाया। इस वीर सत्याग्रही जत्थे का एक नवयुवक ब्र० रामनाथ सत्याग्रह में ही अमर हो गया उसकी स्मृति तथा स्मारक को हम उस जैसा वीर बन कर ही स्थिर रख सकेंगे, उसी दशा में हैदराबाद सत्याग्रह की वास्तविक भावना भी स्थिर रह सकेगी।

वेदों में मूर्त्त-प्रकृति

[ले०—श्री आनन्द]

आज हम वेदों के अन्दर, मूर्त प्रकृति के सम्बन्ध में क्या २ भाव उद्‌गीर्ण हुए हैं, इस पर संक्षेप में कुछ प्रकाश डालना चाहते हैं।

इससे पहले कि, हम अपने यथार्थ विषय पर कुछ पंक्तियां प्रस्तुत करें, यह आवश्यक प्रतीत होता है कि, इस विषय का स्वरूप क्या है, इसे स्पष्ट कर दें।

आपने कभी दूर पर विद्यमान उन उन्नत काय बड़े २ पर्वत शिखरों को, असंख्य वृक्ष वनस्पतियों से व्याकीर्ण एवं हिंस्र श्वापदों से समाकुल बड़े २ जंगलों को, निर्मल जल वाली एवं कल कल करके बहती हुई जलधाराओं को और इसी तरह अन्यान्य प्राणि-समाज से व्यतिरिक्त आश्चर्य के समान संस्थित पदार्थों को देखा होगा। इन्हीं पहाड़ों, जंगलों, नदी नालों और चट्टानों को हम मूर्त्त प्रकृति का नाम देते हैं।

यह सम्पूर्ण चर और अचर सृष्टि भावुकता का भाण्डागार है। मनुष्य का हृत्पिण्ड इन सभी पदार्थों का प्रत्यक्ष करके, इनके साथ भावुकता से भरी हुई आत्मीयता का सम्बन्ध स्थापित करने के लिये आकुल रहता है। बग़ैर किसी के साथ घनिष्ठता स्थापित किये मनुष्य के हृदय को चैन ही नहीं पड़ती।

आजकल शायद हम अचेतन पदार्थ की अपेक्षा किसी चेतन पदार्थ से घनिष्टता स्थापित करने में अधिक आनन्द अनुभव करते होंगे; इन निर्जीव पहाड़ों, नदी नालों और फूल पत्तों के सौन्दर्य के बजाय हमको, किसी चलती फिरती सजीव मूर्त्ति का सौन्दर्य अधिक अपनी ओर आकृष्ट करता होगा। किन्तु सृष्टि की प्रारम्भ वेला में, मनुष्य का इस मूर्त्त प्रकृति को छोड़ कर और दूसरा था ही कौन? यह ठीक है कि, आज भी मनुष्य प्रकृति के इस महामहिम सौन्दर्य पर मुग्ध है, आज भी यह मूक और सरव प्रकृति मनुष्य के परिवार का एक प्रधान अंग है, तो भी समष्टि रूप से हमारा इस प्रकृति के साथ उतनी ही घनिष्ठता, उतनी ही आत्मीयता से भरा अनुराग नहीं रह गया है, जितना कि निसर्ग के प्रारम्भ में था।

वेद का कवि, उसी काल का कवि है; अतः हम देखते हैं कि उसका हृदय इन पहाड़ों और नदी नालों को देख कर एक विशेष अनुराग से स्पन्दन कर उठता है। भावुकता से भरे हुए, न जाने कितने गान प्रकृति का कण्ठभेदन कर, आज भी इस अनन्त आकाश में संचरण कर रहे हैं।

वेद के कवि का प्रकृति के साथ कितना उत्कट स्नेह है! जब वह आदर और श्रद्धा से अवनतमूर्द्ध होकर उस महान् 'किंस्वरूप देव' के चरणों में अपना नमस्कार उपस्थित करने जाता है, तब उसके सुख दुःख एवं हास्य रोदन की चिर संगिनी यह प्रकृति भी मूक भाव से उसके साथ नमस्कार करती है।

> यस्येमे हिमवन्तो महित्वा,
> यस्य समुद्रं रसया सहाहुः।
> यस्येमाः प्रदिशो यस्य बाहू
> कस्मै देवाय हविषा विधेम॥

इस मंत्र में देखिये, किस स्नेह और अनुराग से, ये विशुभ्र बर्फ से लदी हुई पहाड़ों की ऊँची २ चोटियाँ, माणिक्य और मुक्ताओं के द्रव सी उज्ज्वल सरिताओं की मुखर एवं मधुर धाराएँ, हिल्लोल कल्लोलित उद्वेल जलनिधि की असंख्यात तरंग मालाएँ और ये दूर दूर तक फैली हुई विराट् दिशाएँ, कवि के साथ साथ उस 'किंस्वरूप देव' के चरणों में नमस्कार कर रहीं हैं!

वेद में इस तरह के बहुत से सूक्त हैं और बहुत बड़े २ हैं, जिन में मूर्त्त प्रकृति पर अपने उद्गार प्रकट किये गये हैं। उन सबको यहाँ उपस्थित कर सकना संभव नहीं और कदाचित् अभीष्ट भी नहीं। हम यहां केवल निदर्शन के तौर पर मन्त्रों की कुछ कणिकाएँ ही उपस्थित कर सकते हैं। इस बात का दावा करना कि जो मंत्र हम यहां लिख रहे हैं, वे अपने विषय के चुने हुए सर्वोत्कृष्ट मंत्र हैं मुझ जैसे के लिये अनधिकार चेष्टा होगी! हमने तो अभी वेदों का गन्ध ग्रहण मात्र किया है। जब तक सम्पूर्ण वेदों का अथ से लेकर इति तक अध्ययन न हो जाय, तब तक मंत्रों का चुनाव अधूरा ही रहेगा।

अस्तु। अब हम आज के विषय को दो मख्य २ खण्डों में विभक्त करते हैं। प्रथम विभाग में, हम मूर्त्त प्रकृति का चित्रण वेदों में किस तरह किया गया है, यह लिखेंगे और दूसरे में प्रकृति की लीलाओं के सम्बन्ध में वैदिक कल्पनाओं को उद्धृत करेंगे।

ऋग्वेद के दशम मंडल में १४६ वां सूक्त है। उसमें प्रकृति का संक्षिप्त दिग्दर्शन कराया गया है। देखिये—

> सविता यंत्रैः पृथिवीमरम्णात्,
> अस्कंभने सविता द्यामदृंहत्।
> अश्वमिवाधुक्षद्धुनिमन्तरिक्षम्,
> अतूर्ते बद्धं सविता समुद्रम्॥
> यत्रा समुद्रः स्कभितो व्यौनत्
> अपां नपात् सविता तस्य वेद।
> अतो भूरत आ उत्थितं रजो,
> अतो द्यावा पृथिवी अप्रथेताम्॥

उस सूक्त के पाँच मंत्रों में से दो मंत्र हमने ऊपर लिख दिये हैं। इन मंत्रों के अन्दर यह आया है कि, सविता देव ने पृथिवी का, द्युलोक का, हवा का, तथा पानी का निर्माण किया है। हम जिसे मूर्त्त प्रकृति कह रहें हैं, वह क्या है, यही तो चीजें हैं।

[पृष्ठ ३ का शेष]

तथा योग्यता की भी परीक्षा करती है। इन चीजों का अनुभव हम इससे पूर्व भी करते रहे थे इसलिये इसबार विशेष रूप से सतर्क थे। सभ्य तथा उच्च वर्ग की जनता के साथ सम्पर्क साधन के लिये वैसा ही वेष भी आवश्यक है। समय तथा स्थान देखकर उचित वेश धारण करना कुल के गौरव को बढ़ाता ही है। इन सब दृष्टियों को ध्यान में रखकर हमने तैय्यारी की और १५ दिसम्बर को आचार्य श्री पं० प्रियव्रत जी की अध्यक्षता में बड़ौदा के लिये प्रयाण किया। टूर्नामेंट में जाने का यह प्रथम ही अवसर था इसलिये जिम्मेवारी का बोझ असह्य और दारुण रूप में उपस्थित हुआ। हार जीत का परिणाम व्यक्ति तक ही सीमित न रहकर समस्त कुल व्यापी था इसलिये मन में तर्क वितर्क उठने स्वाभाविक ही थे।

आखिर सायंकाल हम बड़ौदा पहुंचे। हमारे कुल में पढ़े हुवे भाई नरवीर तथा डा० सुरेन्द्रनाथ जी ने पहिले

मे सब व्यवस्था ठीक कर रखी थी। हमारा प्रथम मैच अहमदाबाद के गुजरात कॉलिज से १८ दिसम्बर को होना था। १५-१६ और १७ दिसम्बर को बड़ौदा में सुप्रसिद्ध नवानगर दल तथा बड़ौदा स्टेट दल का क्रिकेट मैच था। अमरसिंह, बैनरजी, सी. एस. नायडू, अधिकारी आदि क्रिकेट जगत् के विख्यात महारथियों का खेल देखा। हररोज लगभग १०-१५ हजार मनुष्य देखने आते थे। खैर, आखिर १८ तारीख भी आ पहुँची और सायंकाल सब प्रकार से सज्जित हो हमारा दल भी ग्राउन्ड में पहुंच गया। ४-३० बजे खेल प्रारम्भ होना था। इससे पूर्व दोनों दलों का आपस में परिचय कराया गया और खेल प्रारम्भ हुवा। प्रारम्भ में हमारा दल कुछ दबा परन्तु ज्यों ज्यों हमारे हाथ पैर खुले त्यों त्यों हमने खेल पर काबू पा लिया हमारा खेल खूब व्यवस्थित होगया और हमने आगे बढ़ना शुरू किया। हाइस्टिक की बाबत में रेफरी आवश्यकता से अधिक कठोर थे। हमारा हरेक शूट अनियमित घोषित कर दिया जाता था। गाल में जाकर अनेकों शूट मारे पर सब फिजूल। आखिर हमने हिट मारना बिल्कुल बन्द कर दिया यहां तक कि अपनी गोल सीमा (डी) पर से भी स्कूप ही करते थे। इससे जहां हमको काफी नुक्सान उठाना पड़ा वहां थोड़ा फायदा भी हुवा और वह यह कि सारी खेल शान्ति और व्यवस्थित रूप से चलने लगी। गुजरात कालिज तो Hard Hitting करता रहा परन्तु उसकी हम ने दाल न गलने दी और हाफ टाइम तक २ गोल चढ़ा दिये। इसके बाद फिर ताजगी के साथ खेल प्रारम्भ हुई। परन्तु कॉलिज दल पस्त होचुका था। खेल के अन्त में उन्हें ६ गोल से हारना पड़ा। आज की स्कूपिंग की खेल देखकर जनता बहुत खुश तथा चकित हुई। सारे शहर में हमारी खेल की चर्चा हुई। लोग कल का खेल देखने के लिये लालायित होने लगे।

हमारा दूसरा मैच बड़ौदा कॉलिज से था। यह टीम खूब मजबूत थी। हमारी खेल को देखकर इन्होंने अपनी टीम को खूब मजबूत कर लिया। आज के दिन को खेल तो कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण थी। अनेक भावनाओं से जन समूह ग्राउन्ड की ओर बढ़ा जा रहा था। कालिज दल होने के कारण हजारों विद्यार्थी शाबाशी देने के लिये उमड़ रहे थे। सबसे बड़ी बात तो यह थी कि आज बड़ोदा स्टेट की मानहानि का प्रश्न था। कहीं गुरुकुल दल स्टेट की राजधानी में ही स्टेट की नाक तो नहीं काट लेगा यही प्रश्न सबके मन में कुतूहल मचाये हुवे था। आज बड़ौदा स्टेट की इज्जत का सवाल था इसलिये रेफरी भी कमर कसकर आये हुवे थे। बृटिश भारत से आई हुई विदेशी टीम हमारे देखते देखते कालिज दल को कैसे हरा जाये यह विचार ही उनके दिलों में शूल के समान चुभता था।

आज ग्राउण्ड खूब भरा हुआ था। ठीक ४-३० बजे खेल प्रारम्भ हुई। परम्परानुसार हमारी टीम दब गई और कुछ अस्त व्यस्त सी हो गई। बड़ोदा कालिज के फारवर्ड बहुत अच्छे थे। उनके इतनी जोर से धावे हुवे कि हम उनको न रोक पाये और उन्होंने हम पर १ गोल चढ़ा दिया। इस असफलता का कारण यही था कि हमारा हरेक शूट अनियमित घोषित हो जाता था। इसलिये गेंद हमारे गोले में से निकलती ही न थी। खूब सावधानी से मारी हिट पर भी सीटी बज जाती थी। यह तो हमारे लिये हाथ कट जाने के बराबर ही शापरूप था। हमारे लिये तो यह बड़ी परेशानी और विवशता की समस्या थी। रेफरी तो न्यायाधीश होता है वह तो अपने और पराये के भाव से परे होता है। परन्तु क्या करें विवश थे। हमारी शिक्षा-दीक्षा में उद्दण्डता का अभाव था। हम समझते थे इसका आश्रय लेना अशोभन है। ऐसी विकट स्थिति में पवित्र श्रद्धानन्द सप्ताह में—कुलपिता के धैर्य और आत्मविश्वास के अमोघ पाठ को यादकर हम जुट गये। हमारी नसों में संतप्त खून हिलोरें लेने लगा—कुलपिता की पवित्र निधन संवत्सरी को कुलपुत्र पराजित होकर मनायेंगे? नहीं नहीं। दम रहते २ यह कलंक का टीका मां के उज्ज्वल मुख को देर तक विकृत न कर पायेगा। बस, इन्हीं भावों से प्रेरित हो हमने जोश और एक दिल के साथ खेलना प्रारम्भ किया। खेल का रंग ही बदल गया। न जाने कहां से हमारे हाथों में शक्ति और स्फूर्ति अवतरित हुई। ५-७ मिनट के अन्दर ही भाई देवनाथ जी ने तुमुल हर्षध्वनि के बीच गोल उतार दिया। दर्शकसमूह में उमंग और खुशी की लहरें उठन लगीं। मुर्झाये चेहरे खिल उठे। स्कूपिंग के कारण खेल खूब व्यवस्थित हो गई। हाफबेक के दिये हुवे 'पास' को फारवर्ड बड़ी आसानी से लेते थे। उनको जहां तहां गेंद के लिये दौड़ना न पड़ता था इसलिये व्यर्थ की थकावट भी न आई। अब सारी टीम की शक्ति गोल चढ़ाने के लिये केन्द्रित हो गई थी। भगदड़ और अस्त व्यस्तता का नाम तक न था। इसका फल भी तुरन्त मिला और कुछ ही समय में ब्र० चन्द्रकान्त ने कालिज दल पर १ गोल चढ़ा दिया। विद्यार्थी जगत् में मातम छा गया। निष्पक्ष जनता को हमारी शान्त तथा उत्तम खेल ने मंत्रमुग्ध कर दिया। सब ओर से साधुवाद होने लगा। यह क्या? अभी तो पिछले गोल की हर्षध्वनि लुप्त भी न हो पाई थी कि ब्र० चन्द्रकान्त ने दूसरा गोल भी चढ़ा दिया। बस, अब तो निर्णय हो चुका था। बुझता दीआ अन्तिम बार तीव्र रूप से टिमटिमाया और फिर वही गाढ़ अन्धकार। आज की खेल बड़ी कशमकश की थी। हमारे दल की योग्यता कसौटी पर कसी गई। भगवान की दया से हम उत्तीर्ण हुवे। आज से पूर्व जिसने हमारी संस्था का नाम तक न सुना था ऐसे व्यक्ति भी बड़ी उत्सुकता से हमें घेर कर परिचय पा रहे थे।

आज २३ दिसम्बर का दिन है। आज के दिन ही हमारे कुलपिता ने वीरता का सजीव पाठ पढ़ाया था। आज हमारा भी परीक्षा दिन है। स्वर्गस्थ कुलपिता स्नेहार्द्र नयनों से हमारी झांकी ले रहे थे। उनके निश्शब्द ओष्ठों से विजय का मंगल गान कानों को गुञ्जायमान कर रहा था। कुलपुत्रो! देखना कुल की धवल कीर्ति-पताका झुकने न पाये। आज स्वर्गस्थ कुलपिता की आत्मा को अनुपम अर्ध्य द्वारा तृप्त करना है।

आज १ मिनट १ घण्टे के समान प्रतीत होता था। कालचक्र बड़ी तेजी से घूम रहा था। देखते २ विशाल

अब खुम्भी मीनार से ३ बजने की टकोरें सुनाई दीं। आज तो फाइनल है इसलिये ४ बजे ही खेल शुरु हो जायेगा। आवश्यक कार्यों से निवृत्त हो ३॥ बजे ग्राउन्ड में पहुंच गये। आज तो ग्राउन्ड का दृश्य निराला है। विजेताओं को पारितोषिक देने के लिये दीवान श्री कृष्णमाचारी आने वाले थे। सब ओर शाही साज सजा हुवा था। राज्य के बड़े २ अफसर, प्रोफेसर, वकील आये हुवे थे। दीवान साहब से दलों का परिचय कराया गया और ठीक ४ बजे खेल शुरु होने की सीटी बजी। एक ओर से प्रतिद्वन्द्वी कैम्प यूनियन बड़ौदा उतरा और दूसरी ओर से हमारा दल। आज हमारी मनोदशा अजीब थी।

आज पिछले मैच जैसी बात न थी। बड़ौदा कालिज सफाई और शान्ति से खेलने वाला दल था। आज तो जादू दल था। हमारी स्कूपिंग की खेल से घबरा कर इन्होंने भी दूर दूर से खिलाड़ी बुला रक्खे थे। कैम्प यूनियन ने लाठी के बल पर हमारा पासिंग तोड़ने का निश्चय किया हुवा था। खैर, खेल शुरु होते ही इन्होंने तो अपना गुप्त अस्त्र चलाना शुरु किया परन्तु यह काम हमारी टीम को खूब आता था। ईंट का जवाब पत्थर से दिया। आज के तो रेफरी भी दोनों पक्षों के लिये समान व्यवहार करने वाले थे। खेल खेल न रहकर कुछ और रूप धारण कर गई। इस में हमारा भी क्या दोष? जैसे को तैसा देना तो युद्ध समय में विहित है। यह मैच जैसा सुन्दर होना चाहिये था न हो पाया और आखिर हमने यूनियन को १ गोल से हरा दिया। मैच समाप्त हुवा। विजय के उच्च हर्षनाद के साथ हमारे दल ने पुलिस से सुरक्षित घेरे में प्रवेश किया। दीवान साहब ने हमारी खेल की भूरि २ प्रशंसा की और विजेता होने के कारण गुरुकुल दल को १ बड़ा चांदी का कप तथा प्रत्येक खिलाड़ी को १-१ पदक दिया। इसके साथ ही संस्था में स्थायी रूप से रखने के लिये १ छोटा कप भी हमें भेंट में मिला।

आज हमने श्रद्धानन्द सप्ताह का सच्चे अर्थ में मनाया है। कुलपिता की आत्मा को योग्य अर्घ्य दिया है। समस्त बड़ौदा तथा दूर दूर से आई टीम के व्यक्तियों की जीभ पर एक ही शब्द "गुरुकुल सूपा" विराजमान है। वर्षों प्रचार करने से जिन आदर्शों और सिद्धान्तों को हम बड़ौदा में न फैला सकते थे वे आज ७ ही दिन में जीवित जागृत रूप में हम फैला सके हैं। क्या यह कोई छोटी बात है? बौद्धिक विलक्षणता के अतिरिक्त शारीरिक विलक्षणता भी जनता को उत्कट रूप में आकर्षित करती है।

सुदूर बड़ौदा में खेले जाते मैच की खबरों के लिये कुलबन्धु भी अत्यधिक उत्सुक रहते थे। हम प्रत्येक मैच के समाचार सविस्तर लिख भेजते थे। जब उनको पता चला कि हम फाइनल में पहुंच गये हैं तो उनकी खुशी का ठिकाना न रहा। फाइनल का समाचार जल्दी से जल्दी पाने के लिये उन्होंने रातों रात दो आदमी तार घर में भेज दिये थे। विजय का समाचार पाते ही समस्त कुल खुशी से बांसों उछल पड़ा। विजयी वीरों के स्वागत की तैय्यारियाँ ज़ोर शोर से शुरु हो गईं। कुल के सब मार्ग झन्डियों से सजा दिये गये। स्थान २ पर वन्दनवार बनाये गये। मुख्य मार्ग पर सुगन्धित जल छिड़का गया था। नन्हे २ बच्चे हाथों में फूल लिये शुभ घड़ी की प्रतीक्षा कर रहे थे। मुख्य द्वार से सभा मण्डप तक मार्ग के दोनों ओर ब्रह्मचारी, उपाध्यायों, माताओं तथा दर्शकगण की पंक्ति खड़ी हुई थी। विजयी-दल का पहिले नवसारी में फूल मालाओं द्वारा स्वागत हुआ। सारे शहर में मोटर घुमाई गई और फिर वहाँ से ३ बजे मोटर गुरुकुल पहुंची। मोटर के पहुंचते ही समस्त कुल में आनन्द की लहरें उछलने लगी। मोटर से उतर कर खिलाड़ी दो दो की पंक्ति में सभा मण्डप की ओर चले। सारे मार्ग में पुष्प वर्षा होती रही। सभा मण्डप में पहुंच कर कुल मंत्री भाई नलिन कान्त ने सब के तिलक लगाये और फूल माला पहिना कर समस्त कुल की ओर से विजयी वीरों का स्वागत किया। सभा में श्री आचार्य प्रियव्रत जी तथा खिलाड़ी भाइयों ने मनोरञ्जक व्याख्यान दिए और भविष्य में भी जीतने के लिये सब को उत्साहित किया।

गुरुकुल स्वास्थ्य समाचार

ब्र० वेदराज १३ श्रेणी व्रण, ब्र० कर्मवीर ५ श्रेणी श्लेष्मज्वर, ब्र० कृष्णचन्द्र ४ श्रेणी श्लेष्मज्वर, ब्र० राजेन्द्र १ श्रेणी श्लेष्मज्वर, ब्र० रघुनाथ १ श्रेणी मलेरिया ज्वर। गत सप्ताह उपरोक्त ब्र० रोगी हुए थे। अब सब स्वस्थ हैं।

गुरुकुल कांगड़ी का

३८ वां वार्षिकोत्सव

गुरुकुल कांगड़ी का ३८ वां वार्षिकोत्सव २२-२३ २४-२५ मार्च १९४० को ईस्टर की छुट्टियों में विशेष समारोह से मनाया जायगा। इस अवसर पर अनेक उपयोगी सम्मेलन किये जायेंगे, और विद्वानों तथा राष्ट्र नेताओं के उपदेश व भाषण होंगे। उत्सव की सफलता के लिये अभी से कार्य प्रारम्भ कर दिया गया है। इस वर्ष पुस्तकों की दुकान छत सहित १२×१२ का किराया १०) होगा। और विशेष दुकान का किराया १५) प्रति दुकान होगा। इस बार ५ दुकानें विशेष नम्बर की रक्खी गई हैं। जिस क्रम से किराया प्राप्त होगा उसी क्रम से दुकानें रिज़र्व की जावेंगी। कृपया इस बात को नोट कर लीजिये कि पूरा किराया अगाऊ मिलने पर ही दुकान स्थिर तौर से रिज़र्व की जावेंगी।

उत्सव सम्बन्धी विशेष सूचनायें समय समय पर दी जाया करेंगी।

सत्यव्रत
मुख्याधिष्ठाता

चौधरी दुलारराय के प्रबन्ध से गुरुकुल मुद्रणालय गुरुकुल कांगड़ी में मुद्रित तथा प्रकाशित।

* ओ३म् *

"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत"

Reg. No. A. 2927

गुरुकुल

एक प्रति का मूल्य -) [गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख-पत्र] वार्षिक मूल्य २॥)

सम्पादक—साहित्यरत्न पं० हरिवंश वेदालङ्कार

वर्ष ४] गुरुकुल काङ्गड़ी, शुक्रवार २० माघ १९९६; २ फरवरी १९४० [संख्या ३९

ब्रह्मचर्य

(ले० महात्मा गांधी)

हमारे व्रतों में तृतीय व्रत ब्रह्मचर्य का है। वस्तुतः देखा जाय तो अन्य सारे व्रत एक सत्य के व्रत में से ही उत्पन्न होते हैं और उसी के लिये पाले जाते हैं। जिसने सत्य को अपना लिया और उसी की उपासना करता है, वह यदि अन्य किसी भी वस्तु की आराधना करे तो वह व्यभिचारी हुआ। तो फिर विकार की आराधना कैसे की जा सकती है? जिसकी प्रवृत्तिमात्र सत्य के दर्शन करने के हेतु है वह प्रजोत्पत्ति कार्य में या गृह संसार चलाने में कैसे प्रवृत्त हो सकता है? भोग विलास से किसी को सत्य उपलब्ध हुआ हो इसका एक भी उदाहरण अबतक हमें उपलब्ध नहीं हुआ है।

अथवा अहिंसा के पालन को लें तो उस का पूर्ण पालन ब्रह्मचर्य के बिना असम्भव है। अहिंसा से अभिप्राय है सर्वव्यापी प्रेम। जहां पुरुष ने एक स्त्री को या स्त्री ने एक पुरुष को अपना प्रेम दिया वहां उसके पास अन्य के लिये क्या रहा? इसका अर्थ ही यह हुआ कि 'हम दो पहले और शेष सब बाद में'। पतिव्रता स्त्री पुरुष के लिये और पत्नीव्रत पुरुष स्त्री के लिये सर्वस्व अर्पित करने को उद्यत होंगे। इसकारण उस से सर्वव्यापी प्रेम का पालन हो ही नहीं सकता यह स्पष्ट है। वह सारी सृष्टि को अपना कुटुम्ब नहीं बना सकता। क्योंकि उसके पास 'अपना' माना हुआ एक कुटुम्ब मौजूद है अथवा तय्यार हो रहा है। उसकी जितनी वृद्धि होगी उतना ही सर्वव्यापी प्रेम में विक्षेप होगा। ऐसा हम सारे संसार में देख रहे हैं। इस कारण अहिंसा व्रत का पालन करने वाले [illegible] विवाह न करना चाहिये फिर विवाह के बाहर के विकार का तो कहना ही क्या?

तब जिसका विवाह हो चुका है उनका क्या होगा? क्या उसको सत्य किसी दिन भी उपलब्ध नहीं हो सकता? क्या वह सर्वार्पण नहीं कर सकता? हमने उस का मार्ग भी ढूंढ निकाला है। विवाहित को अविवाहित सदृश हो जाना चाहिये। इस दिशा में मैंने इतना सुन्दर अन्य कोई अनुभव नहीं किया। इस स्थिति का रस जिन्होंने चखा है वे ही इसमें साक्षी रूप से खड़े हो सकते हैं। आज तो इस प्रयोग की सफलता सिद्ध हो गई है ऐसा कहा जा सकता है। विवाहित स्त्री पुरुष एक दूसरे को भाई बहिन समझने लग जांय तो इस रूप से सब झंझटों से वे मुक्त हो सकते हैं। संसार की स्त्रीमात्र बहिन है, माता है, बेटी-लड़की है, यह विचार ही मनुष्य को एकदम उच्चता पर लेजाने वाला है। बन्धन में से मुक्ति देने वाला हो जाता है। इसमें पति पत्नी कुछ खोते (गंवाते) नहीं अपितु अपनी पूंजी में कुछ वृद्धि ही करते हैं। परिवार बढ़ाते हैं, प्रेम को भी विकार रूपी मैल निकालने से बढ़ाते हैं। विकार हट जाने से एक दूसरे की सेवा अधिक अच्छी हो सकती है, एक दूसरे के बीच में झगड़े के प्रसंग कम होते हैं। जहां स्वार्थी, एकांगी प्रेम है वहां झगड़े- फिसाद के लिये अधिक स्थान रहता है।

ऊपर का प्रधान विचार करने के अनन्तर तथा उसके चरितार्थ कर लेने के अनन्तर ब्रह्मचर्य से होने वाले शारीरिक लाभ, वीर्य लाभ आदि अत्यन्त गौण प्रतीत होते हैं। इरादतन पूर्वक भोग विलास के खातिर वीर्यहानि करना और जान बूझकर शरीर को निचोड़ना ये कैसी मूर्खता है? वीर्य का उपयोग दोनों की शारीरिक और मानसिक शक्ति बढ़ाने के लिये है। उसका विषय भोग में उपयोग करना यह उसका अत्यन्त दुरुपयोग है, और इसी कारण यह अनेक रोगों का मूल हो जाता है।

ऐसा ब्रह्मचर्य मन, वचन और शरीर से पालना चाहिये। व्रत मात्र को इसी रूप से समझना व सोचना चाहिये। जो शरीर को वश में रखता है किन्तु मन से विकार को पुष्ट करता रहता है वह मूढ़ मिथ्या चारी है, ऐसा हमने गीता में देखा है; सबने यह अनुभव किया होता है। मन को विकारी रहने देना और शरीर को दबाने (वश में करने) का प्रयत्न करना—इसमें भी नुकसान ही है। जहां मन है वहां शरीर अन्त में गये बिना नहीं रह सकता। यहाँ एक भेद समझ लेने की आवश्यकता है। मन को विकार-वश होने देना यह एक बात है; मन स्वयं

अनिच्छा से, बलपूर्वक विकृत हो जाय या होता रहे ये दूसरी बात है। इस विकार में यदि हम सहायभूत न होवें तो अन्त में विजय ही है। शरीर हाथ में रहता है किन्तु मन नहीं रहता ऐसा हम प्रतिक्षण अनुभव करते हैं। इस कारण शरीर को एक दम वश में कर मन को वश में करने का नित्य प्रयत्न करना चाहिये, इस तरह हमने कर्तव्य पालन कर लिया। मन के वश हुए तो शरीर और मन का विरोध हुआ, और मिथ्याचार का प्रारम्भ हुआ। जबतक मनोविकार को दबाते रहते हैं तब तक दोनों साथ साथ जाने वाले (सहचर) हैं ऐसा कहा जा सकता है।

यह ब्रह्मचर्य का पालन बहुत मुश्किल, लगभग अशक्य माना गया है। इसके कारणों को खोजने पर ऐसा देखने में आया है कि ब्रह्मचर्य का अर्थ बहुत संकुचित-अर्थ (Sense) में किया जाता रहा है। जननेन्द्रिय विकार का निरोध, इतना मात्र ब्रह्मचर्य का पालन, ऐसा समझा जाता है। मेरा ख्याल है कि यह अपूर्ण और अशुद्ध व्याख्या है। विषय मात्र का निरोध यही ब्रह्मचर्य है। जो अन्य इन्द्रियों को इधर-उधर भटकने देकर, एक ही इन्द्रिय को रोकने का प्रयत्न करता है- वह निष्फल प्रयत्न करता है। इसमें क्या शक है? श्रोत्र से विकार की बातें सुने, आंख से विकारोत्पादक वस्तु देखे, जिह्वा से विकारोत्तेजक वस्तु का स्वाद ले, हाथ से विकारोत्तेजक वस्तु का स्पर्श करे और फिर भी जननेन्द्रिय को रोकने (वश में) करने का प्रयत्न करने का इरादा करे यह तो वन्हि में हाथ डालने के बाद उसे न जलने देने के प्रयत्न करने के समान है। इस कारण जो व्यक्ति जननेन्द्रिय को रोकने का निश्चय करे उसे इन्द्रियमात्र को उनके विकारों से रोकने का निश्चय करना चाहिये। ब्रह्मचर्य की संकुचित व्याख्या से हानि हुई है ऐसा मुझे सर्वदा प्रतीत हुआ है। मेरा तो दृढ़ अभिप्राय है और अनुभव है कि यदि हम सब इन्द्रियों को एक साथ वश में करने का अभ्यास करें (आदत डालें) तो जननेन्द्रिय को वशीभूत करने का प्रयत्न तुरन्त सफल हो सकता है। इसमें मुख्य वस्तु स्वादेन्द्रिय है, और इसी कारण, इसके संयम को हमने अलग स्थान दिया है। उसका फिर कभी विचार करेंगे।

ब्रह्मचर्य का मूल अर्थ सब को स्मरण रखना चाहिये। ब्रह्मचर्य का अभिप्राय, ब्रह्म के- सत्य के अन्वेषण में चर्या मतलब उससे सम्बन्धित आचार। इस मूल अर्थ में से सर्वेन्द्रिय-संयम यह विशेष अर्थ निकलता है। केवल जननेन्द्रिय-संयम ऐसा अपूर्ण अर्थ तो भुला ही (विस्मृत ही कर) देना चाहिये।

—अनुवादक श्री नवीन

परिश्रम और विश्राम

[ले० —श्री विद्यालङ्कार]

जीवन की विकृतों में परिश्रम को शामिल करने की कोई जरूरत नहीं है। वास्तविक परिश्रम और कठोर परिश्रम भी सीमा के अन्दर किया जाये तो सुख प्राप्ति का एक बहुत बड़ा साधन है। इस बात को हरेक अनुभव करता है कि जब हम किसी काम में व्यस्त होते हैं, समय बड़ी तेजी से गुजर जाता है, और जब हम निठल्ले होते हैं तो समय काटना दूभर हो जाता है। कार्य व्यग्रता जीवन की चिन्ताओं और छोटे२ दुःखों को दूर भगा देती है। कार्य व्यग्र मनुष्य को छोटे२ बातों पर ध्यान देने के लिये फुर्सत नहीं होती।

"परिश्रम से मनुष्य हलका हो जाता है। दिन भर परिश्रम करने से रात्रि में विश्राम का वास्तविक सुख मिलता है। धन के अभाव में परिश्रम ही स्वर्ग के खजाने का वास्तविक धन-शान्ति और स्वास्थ्य को देता है"। —पे.

यह उक्ति खेत और दुकान के परिश्रम के लिये खास तौर से लागू होती है। अगर यह परिश्रम यश के लिये नहीं है, तब तो कर्तव्य पालन का सन्तोष-और स्वास्थ्य रूपी अमूल्य आशीर्वाद-इसके आवश्यक फल हैं।

एमर्सन ने जीवन में प्रविष्ट होने वालों के लिये कहा है "तुम्हारे यौवन को अलंकृत करने के लिये विजय मुकुट के पहिनाने वाले देवता—परिश्रम सत्य और पारस्परिक विश्वास—सदा तुम्हारे साथ रहते हैं"।

एक पुरानी कहावत जो अक्षरशः सत्य है, कहती है 'संसार की प्राप्तव्य वस्तुओं को प्राप्त करने के लिये, परमेश्वर ने परिश्रम ही उन का मूल्य रख दिया है।' यद्यपि हम प्रायः भूल जाते हैं—लेकिन धैर्य की आश्चर्य कारिणी शक्ति से कोई इन्कार नहीं कर सकता। सम्पूर्ण प्रकृति इस बात का हमें सदा उपदेश करती रहती है।

परिश्रम पूर्वक लिखने से पढ़ना बहुत सुगम हो जाता है। कहा जाता है कि 'अफलातून' ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'रिपब्लिक' का पहला पृष्ठ १३ बार लिखा था। हमें बताया गया है कि Carlo Maratti ने Antinous के सिर की वास्तविक प्रतिकृति को बनाने से पहले उसे ३०० बार बनाया और बिगाड़ा था।

किसी वस्तु को बिना उपयोग के जङ्ग लगाने से, उसे उपयोग में लाकर घिस देना बहुत अच्छा है।

"और एक धूल ऐसी है जो किनारों की तरह हृदय पर भी जमती रहती है"। —जैफरीज

वर्तमान समय में, यद्यपि कुछ खास कमियां आ गई हैं, तो भी हमें अपना काम करने के लिये अपने पूर्व पुरुषों की अपेक्षा बहुत अधिक सहूलियतें प्राप्त हैं। हम पहले की अपेक्षा अधिक निश्चिन्त और सुरक्षित हैं। हमारे परिश्रम का फल आसानी से नहीं छीना जा सकता।

यद्यपि मनुष्य के लिये परिश्रम अच्छा है, लेकिन इसको अति तक पहुँचाया जा सकता है, और दुर्भाग्य से बहुत बार अति की जाती है। बहुत से इस अति परिश्रम से दब कर प्रश्न किया करते हैं कि जीवन में इतने परिश्रम की क्या आवश्यकता है?।

सौलोमन ने कहा था कि सब चीजों का अपना २ समय है। खेलने के समय खेलना चाहिये, और काम करने के समय काम करना चाहिये। अगर हम अपने व्यवहार में उचित परिवर्तन करदें तो अच्छी तरह काम कर सकते हैं और समय को बचाना भी काम की एक बड़ी देन है।

'इच्छा आविष्कार की जननी है' यह बड़ी सुन्दर कहावत है; इस लिये इच्छा करना बहुत अच्छा है, लेकिन काम का स्थान भी इच्छाओं को दे देना अनुचित है।

मनुष्य किसी क्षेत्र में जाये, उसे मुख्यतया अपने पर निर्भर रहना चाहिये। हमारी दूसरे सहायता कर सकते हैं लेकिन काम तो हमें ही करना है। हमारे बदले कोई देख नहीं सकता। हमें अपनी सहूलियतों से फायदा उठाने के लिये आत्मा की उस लालटेन से उपयोग लेना सीखना चाहिये—"जिससे हाथ में लेने वाले के सिवाय कोई दूसरा नहीं देख सकता।" —टेनीसन.

सच्चा काम कभी भी निष्फल नहीं हो सकता, इसमें अत्युक्ति नहीं है। अगर हमें अपने खेत में खाई खोदने पर भी काल्पनिक खजाना नहीं मिलता तो हमारी खेत की पैदावार तो बहुत फलती फूलती है।

प्रकृति मनुष्य से कहती है 'सदा काम करते रहो। उसका फल तुम्हें मिले या न मिले। तुम सिर्फ इस बात का ध्यान रक्खो कि तुम खाली नहीं बैठे कुछ न कुछ कर रहे हो, और यह नहीं हो सकता कि तुम्हें परिश्रम का कुछ फल न मिले।'

तुम्हारा काम सूक्ष्म हो या स्थूल, तुम बड़े २ काव्य लिखते हो या मजदूरी करते हो, लेकिन अगर तुम अपना काम इतने ध्यान से करते हो कि तुम्हारा आत्मा उसकी ईमानदारी में गवाही देता है, तो इसका इनाम इन्द्रियों और मन दोनों को जरूर मिलेगा।

"चाहे कितनी ही बार असफलता मिले, लेकिन निराश मत होओ। तुम्हारी विजय निश्चित है। किसी चीज़ को अच्छी तरह करने का इनाम—उसको पूरा कर लेना है"। —एमर्सन

बड़ी से बड़ी सफलता और अच्छे से अच्छा काम जीवन के इनाम को चुका नहीं सकता।

बड़े से बड़े अध्ययनशील और सफल व्यक्ति को भी मानना पड़ेगा कि—हजारों काम पड़े हैं, जिनको हमने अभी तक प्रारम्भ भी नहीं किया है।

अनेकों चीजें हैं—जिनको हम देख भी नहीं सकते—लेकिन उनकी उम्मीद है।

बहुत से संग्राम हैं जिनको हमे जीतना है—लेकिन अभी तक जिनका कोई निशान भी नहीं दीखता। विलियम मौरिस

पुराने जमाने में, अध्ययन करने वालों के लिये आज कल की अपेक्षा बहुत दिक्कतें पेश आया करती थीं। पुस्तकें बहुत मंहगी और गिनती की थीं; और कहीं तो वे डेस्क पर जञ्जीर के साथ बंधी रहती थीं। बड़े २ विद्वान् बहुत गरीबी की हालत में रहते थे। इरेस्मस चांदनी में पढ़ा करता था, क्योंकि वह मोमबत्ती नहीं खरीद सकता था, और पढ़ने के प्रेम की वजह से—न कि दान के प्रेम की वजह से—दर २ भीख मांगा करता था।

समय की कमी निठल्ला बैठे रहने के लिये तो कुछ बहाना नहीं है। अर्मीटेलर ने कहा था "हमारा जीवन इतना लम्बा नहीं है कि हम राजकुमार या दूसरों का हक छीनने वाले विद्रोही की महत्वाकांक्षाओं को पूर्ण कर सकें। हमारे पास इतना समय कहां है जो हम धन कमायें और विदूषक के अभिमान को पूरा करें और अपने ठीक व ग़लत मतलबों के लिये अपने शत्रुओं का मान मर्दन करें। लेकिन नैतिकता को प्राप्त करने के लिये, सादगी से रहने के लिये और धार्मिक कृत्य करने के लिये हमें परमात्मा ने बहुत समय दे रक्खा है, अगर हम अपने जीवन के प्रातःकाल और सायंकाल अर्थात् बचपन और बुढ़ापे को भी अपने जीवन में शामिल करें।

हमारे जीवन में कार्य इतना अनिवार्य है कि यह प्रश्न ही नहीं उठ सकता कि हम काम करेंगे या नहीं; यहां तो प्रश्न यह है कि हम किस तरह के काम करते हैं। एक पुरानी कहावत है जो स्वयं काम नहीं करते, उनके लिये शैतान काम ढूंढता रहता है। और एक तुर्क कहावत है कि शैतान कार्यव्यग्र आदमियों को लुभाता है लेकिन निठल्ला आदमी शैतान को भी लुभा लेता है।

अगर हमारी जाति कभी सफल हुई है तो इसका एक महत्वपूर्ण कारण यह है कि हम सदा कठोर परिश्रम करते रहे हैं। केवल इतना ही नहीं बल्कि हमने प्रकृति को भी अपनी सेवा के लिये बाधित किया है। एमर्सन कहता है परिश्रम की शक्ति ने हमारे महान व्यक्तियों के आचार को बनाया है। हमारे में से बहुतों को इस बात का अभिमान है कि—इतिहास में हमारे (अङ्गरेजों के) साम्राज्य के तुल्य कोई दूसरा साम्राज्य नहीं मिलता।

वर्डस्वर्थ के शब्दों में हमारे लिये यह कहा जा सकता है कि "हमारे साथ बहुत बड़ी दुनियां है; लेकिन हम कमाते हुए और खर्च करते हुए बहुत शक्ति अपव्यय कर रहे हैं"।

हां! यह ठीक है! लेकिन वह कैसी दुनियां है? हम चाहें या न चाहें, दुनिया तो हमारे साथ होगी; लेकिन यह दुनियां हमारे लिये किस तरह की होगी, यह हम पर निर्भर है।

हमें बताया गया है कि—दुनियां को छोड़ने की नहीं बल्कि बुराई को छोड़ने की प्रार्थना करनी चाहिए।

दुनिया निसन्देह जीवन, शब्द और गति से पूर्ण है। लेकिन हमें इससे घबराना न चाहिये। दाई, बच्चे को पालने में झुलाते समय, सुलाने के लिये गाती भी रहती है। इसी तरह से बुद्धिमान आदमी को बड़े से बड़े नगर, जीवन और गति के बीच में शान्त रहना चाहिए।

और सब से बड़ी बात यह है कि परिश्रम का सब से कीमती इनाम विश्राम है। "हमें इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि हमारा विश्राम पत्थरों की तरह का विश्राम न हो जाय। उनकी तरह जब तक कोई तूफान या आंधी न आ जाए हम निश्चल ही न पड़े रहें, और जब वह बहाव उतर जाए या आंधी गुजर जाए, हम फिर निठल्ले और आलसी न बन जाएं। हमें तो सततवाहिनी धारा की तरह सदा कार्य व्यग्र बन जाना चाहिये"। —रस्किन

जब हम अपने पूर्ण सामर्थ्य और ईमानदारी से काम कर लें, तब हमें निश्चिन्त होकर उसके परिणाम की प्रतीक्षा

शेष पृष्ठ ६ पर

गुरुकुल

२० माघ शुक्रवार १९९६

वार्षिकोत्सव समीप हो है

गुरुकुल का वार्षिकोत्सव आर्य जनता का वर्ष भर में सम्मिलित होने का सब से बड़ा उत्सव कहा जाता है। इस अवसर पर आर्य स्त्री पुरुष इकट्ठे होकर आर्यसमाज का वर्ष भर की गति-विधि पर विचार करते हैं, साथ ही इस समय उत्सव पर जनता अपनी संस्था-गुरुकुल की उन्नति के विषय में भी हो रहे कार्य को अपनी ही आंख से देखती है।

गुरुकुल आर्यसमाज की सबसे बड़ी संस्था है, इसके वार्षिकोत्सव पर आर्य-जनता भारी संख्या में इकट्ठा होती हो, इसमें आश्चर्य की बात क्या है। किन्तु पिछले वर्षों में यह अनुभव किया जाता रहा है कि आर्य स्त्री-पुरुष जिस उत्साह से बड़ी संख्या में पहले आते थे, उतनी संख्या में पिछले वर्ष नहीं आए। हो सकता है कि पिछले वर्ष जिस समय गुरुकुल का वार्षिकोत्सव हो रहा था, उस समय आर्य जनता की समस्त शक्ति-आर्यसमाज का सम्पूर्ण जन धन बल हैदराबाद-सत्याग्रह में लग रहा था। गुरुकुल का ध्यान भी दूर दक्षिण में हो रहे इसी युद्ध में लगा हुआ था। गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी के ब्रह्मचारी, स्नातक, तथा अन्य गुरुकुल से सम्बन्धित सज्जन भी इसी युद्ध में लगे हुए थे। गुरुकुल का वीर ब्र० रामनाथ इसी युद्ध के कारण स्वर्गीय एवं हुतात्मा कहलाया दूसरे ब्र० भी अपने शरीर पर जो वहां के चिह्न लाये उस सब को आज याद करने से लाभ नहीं है। आर्यसमाज के लिये हैदराबाद का प्रश्न जीवन मरण की समस्या से कम न था। गुरुकुल ने शिक्षा संस्था होते हुए भी इस संग्राम में अपना पूरा हिस्सा अदा किया, इस पर गुरुकुल गर्व ही क्या करे, यह तो उसका कर्तव्य ही था। इस समय तो सत्याग्रह में विजय पाये हुए भी सात मास होने को आये, इस बीच में आर्यजनता अधिकतर चेष्टा शून्यही रही। अब समय आगया है आर्यजनता पुनः एकत्र हो, जहां ऐसे अवसर पर भविष्य के आर्य-कार्य क्रम पर विचार करना होगा, वहां उसे अपने पिछले सत्याग्रह में किये गये प्रयत्न का सिंहावलोकन कर देखना होगा कि उसकी शक्ति का कितना उपयोग हुआ और कितना दुरुपयोग। आर्यजनता के इकट्ठे होकर विचार विमर्श करने के लिये जिस प्रकार पिछले सैंतीस सालों से गुरुकुल का वार्षिकोत्सव सब से अच्छा अवसर रहा है, अब भी वह उसी तरह है। गुरुकुल का वार्षिकोत्सव अब भी आर्यजनता का सबसे बड़ा उत्सव है, उसे इस अवसर पर अवश्य ही बड़ी संख्या में गुरुकुल कांगड़ी आना चाहिए।

गुरुकुल कांगड़ी निश्शुल्क शिक्षा देने वाली राष्ट्रीय संस्था है। इसके फलने फूलने में आर्य समाज का तो महान् हाथ रहा ही है, साथ ही राष्ट्रीय-शिक्षा में आस्था रखने वाला प्रत्येक व्यक्ति इसके निर्माण में सहयोग देता रहा है।

गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी प्रबुद्ध भारत की सब से महान् कृति है। जिस संस्था के संस्थापक तथा संचालक अमर शहीद स्वामी श्रद्धानन्दजी रहे हों, और जिसके लिए जीवन अर्पण करने वाले आदर्श ब्राह्मण स्वर्गीय आचार्य रामदेव जी सरीखे व्यक्ति हों, वह संस्था अपना कुछ महत्व तो रखती ही होगी। गुरुकुल कांगड़ी की जो कुछ भी स्थिति बन सकी है, वह आर्यजनता के प्रयत्नों के फल स्वरूप ही।

इस वर्ष गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी का वार्षिकोत्सव ११, १२, १३, १४ चैत्र तदनुसार २२, २३, २४, २५ मार्च को ईस्टर तथा होलिकोत्सव के अवसर पर होना निश्चित हुवा है। गुरुकुल के अधिकारी इसको सफल बनाने में लगे हुए हैं।

गुरुकुल के वार्षिकोत्सव की सफलता तो तभी समझी जा सकती है, जबकि गुरुकुल कम से कम अपनी वर्ष भर की आर्थिक समस्या को ही इस समय सुलझा सके। गुरुकुल की आवश्यकताएं महान् तभी तक हैं, जब तक प्रत्येक आर्य स्त्री पुरुष अपने कर्तव्य का अनुभव न कर ले। यदि आर्य जनता अपने कर्तव्य का तथा अपनी संस्था का ध्यान रक्खे उस दशा में आर्थिक समस्या से मुक्त हो गुरुकुल की शक्ति का केवलमात्र शिक्षा-कार्य में ही उपयोग होगा। आशा है आर्यजनता इस बार जहां गुरुकुलोत्सव पर भारी संख्या में आयेगी, वहां वह अभी से ही गुरुकुल की आर्थिक आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिये अपना हिस्सा देने में किसी तरह का विलम्ब न करते हुए यथा-शक्ति छोटी बड़ी आर्थिक सहायता सीधी गुरुकुल में भेजेगी।

तालाब—जिसका पानी सड़ गया है

[ले०—श्री क्षितीश वेदालंकार]

संसारिक लोग एक—को बहुत पसन्द करते हैं—वे चाहते हैं कि कंकरीले, कंटीले, रेतीले या सीधे, जैसे भी किसी रास्ते पर उनके जीवन की गाड़ी घिसटती आ रही है उसी पर चुपचाप घिसटती जावे!'

परन्तु यह [illegible]त्व की निशानी है। और अपने राम तो इस सिद्धान्त के हैं कि यदि कोई उन्हें स्वर्ग में भी लेजा कर पटक दे और कह दे कि अब हमेशा यहीं रहना होगा तो तत्काल सविनय आज्ञा-भंग आन्दोलन प्रारम्भ कर दें।

इस लिये रविवार का दिन आते ही ऋषिकेश की ओर चल दिये—पांच-सात विद्यार्थी भी शामिल हो लिये।

रात को आठ बजे के लगभग बाबा काली कमली

वाले की धर्मशाला में पहुंचे। ठहरने और रात को सोने का प्रबन्ध कर-करा के जब गौड़ भोजनालय में हाथ पैर धोकर पहुंचे तो चौके में घुसते ही रसोइया चिल्लाया—

"अरे! ये तो पजामा और निक्कर पहने हैं! यहां कैसे आगये!!" हमको चौके में यह देख कर हैरानी हुई कि केवल पजामा या निक्कर पहनने के कारण ही हम चौके में बैठने के योग्य नहीं रह पाये।

आखिर गुरुकुलीयता का पट्टा देख कर बिठाये तो चौके में ही गये। अलग अलग क्यारियां बनी हुई थीं। इन ठण्ड के दिनों में भी सारा फ़र्श गीला था। आदेश हुआ कि किसी का कोई अङ्ग क्यारी से बाहर नहीं जाना चाहिये-मानों यह वह रेखा थी जो लक्ष्मण ने सीता के चारों ओर खींच दी थी, उससे बाहर होने पर न जाने क्या अनिष्ट हो जाता! ....उकड़ूं बैठना पड़ा।

फिर आई पतली दाल, मिर्चों वाला शाक और रोटी सब एक थाली में ही इकट्ठे हो कर मिल गये—मानों पेट में सबने मिलना ही है फिर क्यों न पहले से ही उसको मिला लिया जावे।

दोनों ओर दो पंगतें—बीच में एक पगदण्डी-सी, जिस पर चलता हुआ रसोइया दोनों ओर की थालियों में रोटी खूब ऊंचे से फेंकता जा रहा था—

मानों कहीं किसी कुत्ते के झपटने का डर हो!

रसोइयों में—जो गौड़ ब्राह्मण थे और इस लिये पण्डित होना जिन का जन्म सिद्ध अधिकार था—वाद विवाद चला "देखो जी! वह अपने आपको पण्डित कह रहा था! उसे इतना तक तो पता नहीं कि भोजन खाने के पश्चात् बीच वाली पगदण्डी में से नहीं गुजरना चाहिये और पण्डित बनने चला है! वेद-शास्त्र तो क्या पढ़ा होगा! अजी आजकल के पण्डित तो......"

मैं सोचने लगा कि उस बीच की पगदण्डी में और पण्डिताई में परस्पर कोई अविनाभाव सम्बन्ध है क्या?

अगले दिन सवेरे उठ कर लक्ष्मण झूला गरुड़-चट्टी देखने गये। मार्ग में अनेक मन्दिर—सुन्दर असुन्दर छोटे बड़े ध्वस्त और आलीशान मिले। दरवाजों पर लिखा हुआ है—"इस मन्दिर के दर्शन का सब से अधिक महत्व है। आइये, दर्शन करके जन्म-जन्मान्तर के पापों से मुक्ति पाइये।" हरेक के ही द्वार पर लिखा है—"इसका सब से अधिक माहात्म्य है?" समझ में नहीं आता कि फिर कम माहात्म्य किस के दर्शन का है? अचानक ही मन में ख्याल हो आया कि जिस प्रकार हरेक अंग्रेजी के अखबार पर लिखा होता है—"Largest Circulation in India"—भारत में सब से अधिक प्रचलित—कहीं वैसा ही हिसाब यहां भी तो नहीं, वैसा नहीं हो सकता। अखबार-नवीसी तो एक व्यापार है और मन्दिरों में कोई व्यापार थोड़े ही होता है!

पर कैसे कहूं कि यह भी एक व्यापार नहीं है—देखता हूँ कि जब सामने दरवाजे पर खड़ा हुआ पुजारी यात्रियों को इस प्रकार अपनी ओर खींच रहा है जिस प्रकार दुकानदार अपने ग्राहकों को खींचता है?

फिर देखा रास्ते में वृद्धों को वृद्धाओं को, युवकों को युवतियों को बालकों को—भीख मांगते हुए, जीर्ण शीर्ण-वस्त्र, किसी का हाथ टूटा, किसी पैर, नंगे अपाहिज किन्तु कोई २ बिलकुल स्वस्थ-हट्टे कट्टे-नौजवान-उनको हाथ पसारे देख कर अपने जातीय-जीवन पर शर्म आई। और जब ऐसे ही किसी झुण्ड के सामने से गुज़रते तो हरेक चिल्लाता-"अरे ओ धर्मात्मा! अरे ओ भगवत? कुछ दान पुण्य कर जा। गरीब को पैसा दे, भला होगा।" पर जब हम बिना किसी को कुछ दिये यों ही निकल गये तो एक भिखारी ने कहा—"अरे! यह इतने बड़े २ बाबू लोग आये, पर तीरथ में एक पैसा भी पुण्य नहीं कर के गये!" फिर दूसरे ने बड़ा मनोवैज्ञानिक ढङ्ग अख्त्यार किया, वह चिल्लाया—"नहीं, देख, वह आया। वह आया। धर्मात्मा ज़रूर आएगा। हो नहीं सकता कि धर्मात्मा तीरथ में बिना पुण्य किये चला जावे!" पर हमने तो धर्मात्मा बनना ही स्वीकार न किया—न जाने क्यों-यद्यपि देख रहे थे कि और यात्रियों ने खूब सारी पाइयां थैली में भरी हुई हैं और हरेक भिखारी को एक-एक पाई देते जाते हैं!

मैं यह तो नहीं कहता कि चौका लगाना पाप है-हो सकता है कि पजामा पहन कर घुसने से वह भ्रष्ट हो ही जाता हो। यह भी कहना है कि मन्दिरों में मूर्ति के दर्शन नहीं करने चाहियें या भिखारियों को दान नहीं देना चाहिये, पर इतना अवश्य कहता हूँ किसी समय से कोई लोग किसी बात को यदि आवश्यक समझ कर उसको जातीय नियम बना देते हैं तो अन्य समय में उसी बात को अनावश्यक होते हुए भी लादते चले जाना कोई बुद्धिमानी नहीं है। मैं मानता हूँ कि हिन्दू-धर्म के इन रीतिरिवाज़ों को चलाने वाले वे साधु और ऋषि लोग थे जिन्होंने दुनियां के गहन तत्त्वों को अपनी क्रान्तिदर्शी दृष्टि से परखा था। और जाना था—पर कौन जानता है कि वे रीति-रिवाज प्रारम्भ में क्या और कैसे रहे होंगे? मुझे इस तथ्य के मानने से भी कोई इन्कार नहीं है कि यह हिन्दू-धर्म उतना ही पुराना है जितना कि हिमालय और भगवती भागीरथी गंगा। और सच तो यह है कि यह अभीतक हिमालय के समान ही अटल-अचल और अलंघ्य बना हुआ है, सही, किन्तु इस में गंगा के समान प्रवाह अब नहीं रहा। अब तो यह ऐसा तालाब बन गया है—जिसका कि पानी सड़ गया है, कारण इसका यह कि उसका कोई निकास नहीं। सड़ांद, बदबू और कीचड़ के कारण इस के पानी का उपयोग करने वाले को बीमारी घेर लेती है।

ऋषि दयानन्द ने इस तालाब का निकास खोलकर बीमारी अच्छा करने की दवाई बनाई। यह और बात है कि हम जान-बूझ कर ही अपनी बीमारी से चिपटे रहें और और दवाई की उपेक्षा करदें—क्योंकि हमें एक-रसता। पसन्द है।

[पृष्ठ ३ का शेष]

करनी चाहिये ।

"जिसने इन सब बातों को समझ लिया है, वह बड़े निश्चिन्त हृदय के साथ, बड़ी सुगमता से अपना जीवन यापन कर सकता है। वह हरेक बात की सम्भावना रखता है और जो हो जाय उसको सहने का सामर्थ्य रखता है। क्या तुम यह चाहते हो कि मैं निर्धनता को सहन करूं ? आओ ! और तुम्हें पता लगेगा कि एक निर्धन का पार्ट अदा कर सकने वाले आदमी के साथ निर्धनता का क्या अर्थ है ? क्या तुम मुझे शक्ति शाली देखना चाहते हो ? मुझे सामर्थ्य और साथ २ इसके उत्तरदायित्व के कष्ट दो। अच्छा, देशाटन ? मैं जहां भी जाऊंगा खुश रहूँगा" ।

—रस्किन

रस्किन कहता है " हम बहुत चीजों की कमी अनुभव करते हैं। हम धन चाहते हैं, स्वतंत्रता चाहते हैं और Votes (सम्मतियां) चाहते हैं। लेकिन हम में से कौन आदमी ऐसा है जो यह जानता है कि उसे शांति चाहिये" ?

"अगर तुम शान्ति चाहते हो तो इसे प्राप्त करने के दो उपाय हैं। प्रथम उपाय तो सम्पूर्णतया तुम्हारे आधीन है—तुम्हें अपने को अच्छे २ विचारों का घर बनाना चाहिये- लेकिन हम में से कोई नहीं जानता, और जान भी कैसे सकता है जब हमें जवानी में कुछ सिखाया ही नहीं गया कि हम अपने सुन्दर विचारों से बड़े विशाल महल बना सकते हैं और हर तरह की आपत्तियों से सुरक्षित हो सकते हैं।

उज्वल कल्पनाएं, सन्तुष्ट स्मृतियां, भव्य इतिहास, सत्योक्तियां बहुमूल्य और विश्रामदायक विचारों के ये ऐसे घर हैं, जिन्हें चिन्ताएं क्षुब्ध नहीं कर सकतीं। कष्ट जिनको शोकातुर नहीं बना सकते, और, निर्धनता जिन्हें हम से छीन नहीं सकती। जिन को बनाने के लिये हाथों से परिश्रम भी नहीं करना पड़ता- ये दिव्य घर ही हमारी आत्मा के निवास स्थान हैं।"

बौद्ध अगले जन्म में बहुत से दण्डों में विश्वास रखते हैं। लेकिन धार्मिकता और नैतिकता का उच्च से उच्च इनाम निर्वाण या अनन्त और शाश्वत विश्राम है। Ashmanezer की शान्ति से विश्राम कर देने के लिये की हुई अपील बहुत ही प्रभाव शाली है। यह अपील सीडोन में उसकी कबर पर खुदी हुई है:—

"अपने शासन के १४ वें वर्ष, फूलों के महीने में, मैं- बादशाह अशमैनेजर, सीदोनियनों का राजा और बादशाह Tabuith का लड़का निम्न घोषणा करता हूं 'मैं अपने समय से पूर्व ही चुरा लिया गया हूं। महान् Whilom गूंगा हो गया है। परमात्मा का पुत्र मर चुका है और मैं इस कबर में, जो मैंने ही बनवाई थी, विश्राम कर रहा हूं। मेरी यह सब राज-कर्मचारियों व प्रजा से प्रार्थना है "कोई मनुष्य मेरे इस विश्राम स्थान को न खोले और नाही कोई खजाने के ख्याल से इस जगह की तालाश करे, क्योंकि मेरे पास कोई खजाना नहीं है। कोई मनुष्य मेरे इस निद्रा निवास में खलबली डालकर मुझे किसी तरह का कष्ट न पहुंचाए। क्योंकि कोई भी मनुष्य जो इस विश्राम स्थली को तोड़ेगा, या इधर उधर ले जाएगा अथवा किसी तरह का कष्ट पहुंचाएगा; अपने बिछड़ों के साथ शान्ति से नहीं रह सकेगा, उनको कोई कबर में नहीं गाड़ेगा। और उनके पीछे उन का पुत्र या वंशज नहीं बचेगा— उनके लिये न तो नीचे कोई जड़ होगी और न ऊपर कोई फल होगा और नाही साथियों में मान होगा।"

आलसी मनुष्य विश्राम के आनन्द को अनुभव नहीं कर सकता, क्योंकि वह इसे अपने परिश्रम से नहीं प्राप्त करता। कठिन परिश्रम, न केवल हमारे शरीर को विश्राम देता है, बल्कि इससे भी अधिक महत्वपूर्ण तो वह शान्ति है जो हमारे मनको मिलती है। अगर हम जो अपनी सामर्थ्य से कर सकते हैं, करलें, और जैसा बन सकते हैं, बनलें तो हम शान्ति के साथ विश्राम कर सकते हैं।

उस परम पिता की इच्छा में हमारी शान्ति है और ऐसी शान्ति में ही मन को वास्तविक आनन्द मिल सकता है। क्योंकि:-सब चिन्ताओं के सो जाने के बाद आत्मा जागती है। यौवन में, प्रतिस्पर्धा, परिश्रम और संग्राम का विचार उत्साहप्रद और आनन्ददायक होता है, लेकिन ज्यों २ वर्ष गुजरते जाते हैं, शान्ति और विश्राम की आशा व किरणें धीरे २ दृढ़ होती जाती हैं और जब बाल सफेद पड़ जाते हैं। जीवन की अन्तिम उषाएं आ रही होती हैं और जीवन के परिश्रम और विश्राम पूर्ण हो चुकते हैं। उस समय परिश्रमी आदमी, नकि आलसी और निकम्मे सच्चे शान्ति के मिठास को अनुभव करते हैं।

बचपन

बीत चुका वह मेरा बचपन।
जिसको जग कहता नव जीवन ॥

माता की वह प्यारी थपकी
मुझको याद दिलाती तब की
कर चरणों को पटक पटक कर जब करता था मैं अति क्रन्दन।
बीत चुका वह मेरा बचपन।
जिसको जग कहता नवजीन ॥

जब मैं दुख से पीड़ित होता
रोने का इक क्षण ही रहता
माता करती करतल ध्वनि से मेरा पल पल पर अभिनन्दन।
बीत चुका वह मेरा बचपन।
जिसको जग कहता नवजीवन ॥

खटिया पर दिन बीता करता
मैं तो आखें मींचे रहता ॥
ज्ञात नहीं मुझको अब तक भी क्याथा जीवन क्या था बचपन।

बीत चुका वह मेरा बचपन।
जिसको जग कहता नवजीवन ॥

ब्र० भुवनकुमार १० म श्रेणी।

गुरुकुल समाचार

ब्रह्मचारी रमेशचन्द्र १३ श्रेणी चोट, ब्र० श्रीकृष्ण ४श्रे० श्लेष्मज्वर, ब्र० रणजीत ३ श्रेणी श्लेष्मज्वर, ब्र० युद्धवीर ३ श्रेणी मलेरिया, ब्र० सत्यपाल ३ श्रेणी Burn

उपरोक्त ब्र० गत सप्ताह रोगी हुये थे। अब सब स्वस्थ हैं। ब्रह्मचारी सत्यपाल का जख्म भी पहिले से अच्छा है। आशा है कि शीघ्र ही स्वस्थ हो जायेगा।

वार्षिक परीक्षाओं के समीप होने के कारण तीनों महाविद्यालयों के विद्यार्थी अपनी पढ़ाई में दत्त चित्त हो कर लगे हुए हैं। १५ फरवरी से परीक्षायें प्रारम्भ हो जावेंगी। गत २६ जनवरी को स्वतंत्रता-दिवस को राष्ट्रीय पताका अभिवादन के अनन्तर समस्त कुल वासियों की सभा हुई, जिसमें ब्रह्मचारियों और उपाध्यायों के प्रभावशाली और मनोरञ्जक भाषण हुए। सभा के उपरान्त चर्खा और तकली का दंगल हुआ जिसमें ब्र० शान्तिस्वरूप सर्वविजयी हुए। इन्होंने आध घण्टे में चर्खे से १८२८ फीट तथा तकली से ५०० फीट सूत काता। गत रविवार को गङ्गा-पार के जङ्गलों से ब्रह्मचारियों ने एक अन्य अजगर सांप बिल में समाकर पकड़ा है। उसकी लम्बाई ६ फीट है। उसे अन्य अजगरों के सदृश पालतू बनाया जा रहा है।

'नवमासिक रिपोर्ट गुरुकुल कमालिया'

गुरुकुल कमालिया के सब ब्रह्मचारी आनन्द प्रसन्न हैं। नवमासिक परीक्षा के लिये खूब मेहनत कर रहे हैं। यह परीक्षा पौष के अन्त तक समाप्त हो जाएगी। गुरुकुल की अपनी गौशाला से बच्चों को ताजा दूध, दही, लस्सी, मक्खन दिया जाता है। ताजी सब्जी वाटिका में से प्रति दिन वर्ती जाती है। क्रिस्मस टूर्नामैन्ट पर जो हर साल गुरुकुल भूमि में हुआ करता है, मूलियां खूब बिकी थीं। टूर्नामैन्ट में गुरुकुल ने हर एक खेल में हिस्सा लेकर जीता है।

२. आचार्य रामदेव जी का मृत्यु दिवस बड़े शोक के साथ तथा स्वामी श्रद्धानन्द जी का बलिदान दिवस बड़े उत्साह के साथ यज्ञशाला में मनाया गया था। गुरुकुल के भोजन शाला की माता यशोदा बाई जिसने दस साल के करीब बच्चों की सेवा की थी और इस समय सेवा न करने के कारण घर पर थी, उनका स्वर्गवास हो गया है। ब्रह्मचारीगण इस माता के मरने से दो चार दिन पहले नमस्ते आदि कर आये थे। माता ने बच्चों का मिठाई से सत्कार किया। अब उसके स्थान पर दो मातायें बच्चों का भोजन बड़े प्रेम से बनाती हैं।

३. गुरुकुल कमालिया की जलवायु बहुत ही उत्तम है। ४२ब्रह्मचारियों का नौ महीने का औषधालय का खर्च केवल ६रु० १३आ० हुआ है। इसमें भी अधिकतर दवाइयां अभी हस्पताल में मौजूद पड़ी हैं। बच्चों की सेहत बहुत उत्तम है। गुरुकुल में ऐसे ब्रह्मचारी पर्याप्त हैं जिनको सात २ आठ २ साल पढ़ते हुए कोई रोग नहीं हुआ है। सब सज्जनों को इस लिहाज से अपने बच्चे यहां भेजने चाहियें।

४. गुरुकुल में पाठविधि गुरुकुल कांगड़ी की चलती है इसके अतिरिक्त शिल्प का काम व खेती का काम भी बच्चों से कराया जाता है। चारों वेदों का यज्ञ जारी है, इस समय अथर्व वेद से यज्ञ किया जा रहा है। पूर्णाहुति वसन्त के दिन २ फाल्गुन को डाली जायेगी। महात्मा टेकचन्द जी इस आहुति को पूर्ण करेंगे। यज्ञ के प्रेमी उस दिन दर्शन देवें।

५. गुरुकुल का मासिक खर्च सब गुरुकुलों से सस्ता है। भोजन, वस्त्र, पुस्तकों आदि के लिये पांचवीं श्रेणी तक १०) और छठी से आठवीं तक १२) मासिक लिया जाता है। नये ब्रह्मचारियों का दाखला चैत्र में हुआ करता है। विशेष बातचीत पत्र व्यवहार द्वारा मुख्याधिष्ठाता गुरुकुल कमालिया से कर सकते हैं।

शान्ति सागर

(ले०—पं० धर्मदेव विद्यावाचस्पति साहित्य भूषण मद्रास)

[भावुक-हृदय कवि ने यह कविता समुद्र तट पर बैठ कर लिखी है]

(१)

आनन्द सागर है हृदय में, आज मेरे भर रहा।
शान्ति सागर शोक को, सन्ताप को है हर रहा॥

(२)

मस्त हो मैं प्रेम सागर, के गुणों को गा रहा।
वह दया घन शान्ति दायिनि—हर्ष वर्षा कर रहा॥

(३)

जिस तरफ भी देखता हूँ, देवलीला दीखती।
देख कर उस को हृदय से, शान्ति झरना झर रहा॥

(४)

काम चिन्ता शोक का क्या, जब कि माता सब जगह।
गोद में मैं बैठ उसकी, पान अमृत कर रहा॥

(५)

मातु मम मङ्गल मयी, उस पर अचल विश्वास धर।
नाम नौका के सहारे, शोक सागर तर रहा॥

(६)

आँधियां चलती रहें, उन की नहीं पर्वाह है।
शांति का आनन्द का, सागर है भीतर भर रहा॥

(७)

प्रार्थना दिन रात यह, तेरी शरण में मैं रहूँ।
ज्योति के भण्डार तेरा, तेज मुझ में भर रहा॥

नये बालकों का प्रवेश

गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी का अड़तीसवां वार्षिकोत्सव इस वर्ष ईस्टर की छुट्टियों में तारीख २२ मार्च से २५ मार्च १९४० तक मनाया जावेगा। इस अवसर पर नए बालकों का चुनाव तारीख २२, २३ को होगा। जो सज्जन अपने बालकों को गुरुकुल में प्रविष्ट कराना चाहते हैं उन्हें अपने प्रार्थना पत्र भेज कर स्वीकृति प्राप्त कर लेनी चाहिए।

गुरुकुल की नियमावली तथा प्रवेश फार्म कार्यालय गुरुकुल काँगड़ी जिला सहारनपुर से मंगाइये।

सत्यव्रत
मुख्याधिष्ठाता गुरुकुल कांगड़ी।

चौधरी हुलासराय के प्रबन्ध से गुरुकुल मुद्रणालय गुरुकुल कांगड़ी में मुद्रित तथा प्रकाशित।

* ओ३म् *

"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत"

Reg. No. A. 2927

गुरुकुल

एक प्रति का मूल्य -)

[गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख-पत्र]

वार्षिक मूल्य २॥)

सम्पादक—साहित्यरत्न पं० हरिवंश वेदालङ्कार

वर्ष ४] गुरुकुल काङ्गड़ी, शुक्रवार २७ माघ १९९६, ९ फरवरी १९४० [संख्या ४०

'तत्चक्षु:' से एकता

(ले०— श्री प्रो० लालचन्द जी उपाचार्य)

ओ३म् तच्चक्षुर्देवहितम् पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्,
पश्येम शरदः शतं,जीवेम शरदः शतम् ।
शृणुयाम शरदः शतं, प्रब्रवाम शरदः शतम्,
अदीनाः स्याम शरदः शतं, भूयश्च शरदः शतात् ॥

(तत्) वह (चक्षु) सर्व द्रष्टा, (देव हितं) देवों का हितकारी (शुक्रं) शुद्ध, पवित्र (पुरस्तात्) हमारे सामने (उच्चरत्) उदय हुआ हुआ है। उस को हम (शतं शरदः) सौ वर्ष तक (पश्येम) देखें, उसको देखते हुए हम सौ वर्ष तक (जीवेम) जियें, उसकी महिमा और उसकी वाणी को हम सौ वर्ष तक (शृणुयाम) सुनें, सौ वर्ष तक हम (प्रब्रवाम) उसकी वेद वाणी का प्रचार करें, सौ वर्ष तक हम अदीनाः स्याम (अदीन रहें)। (शतात्-शरदः भूयश्च) सौ वर्ष से अधिक भी हम अदीन हो कर जीते रहें।

सन्ध्या मंत्रों में यह एक अद्भुत मंत्र है, यह एक उपासना का मंत्र है। ध्यान करते करते प्रभु के पास आ बैठने का, प्रभु की समीपता को अनुभव करने का, प्रभु को स्पष्ट साक्षात् करने का मंत्र है। यह मंत्र और इससे अगला गायत्री मंत्र दोनों 'तत्' से शुरु होते हैं, इसमें 'तत्' चक्षु की ओर इशारा करता है, गायत्री मंत्र में 'तत्' भर्गः की ओर इशारा करता है, 'तत्' बहुत महत्व पूर्ण है, मानो भक्त का निशाना ठीक लग गया और वह पुकार उठता है 'तत्' वह देखो, विश्व की आंख देवों का हित करने वाली और शुद्ध तेज से देदीप्यमान हमारे सामने उदय हुई हुई है। आंखों पर मरने वालो; इस आंख से आंख मिला लो। सूक्ष्म से सूक्ष्म सौंदर्य को इस आंख से तेज मिला है और इसी आंख से सब आकर्षण। इस आंख के नशे, इस आंख के प्रेम, इस आंख के कृपा कटाक्ष से ही सब जग लहलहा रहा है। सब ओर आनन्द के झरने झर रहे हैं। प्यारे; क्या चाहता है कि यह आंख सदा तुम पर अपनी कृपा बनाए रखे तो याद रख कि जो देवासुर संग्राम तेरे अन्दर और बाहर लगा है उसमें अपने आप को देव साबित कर, यह आंख देवों की हितकारी है, नेक वीरों का कल्याण करने वाली है उसी आंख से उनको, उत्साह और स्फुरणा मिलती है। उसी आंख से उन पर आशीर्वाद बरसता है। इस आंख की कृपा पाने का एक मात्र साधन है—असुरों का संहार। मगर इस समय तो मंगल-मिलन हो रहा है, परम देव के संग से भक्त भी देव बन रहा है, जिस जीवन में उसको अपने प्रभु के दर्शन हुए हैं उस जीवन को पूरा बिताना चाहता है। मगर पूरा जीने से भी पहले उसको सदा सन्मुख रखने के लिये तपड़ता है, उधर 'तत् चक्षुः' है तो इधर सब से पहले 'पश्येम शरदः शतम' सौ वर्ष तक देखें। जीना, सुनना, बोलना सब पीछे आयगा, पहले तो जी भर के देख लें 'सदियों की थी जो हसरत वह आज मिट रही है।' सब प्यारी आंखों को प्यारा करने वाली आंख अपने में मुझे समा ले। तू मेरी नजर से कभी ओझल न हो। तेरे प्रकाश और तेरी कृपा से युक्त हो, तुझे सौ साल देखते हुए ही सदा तुझे अपने समीप अनुभव करते हुए ही मैं जीऊं। वह जीना बेकार है जिसमें प्यारा देख न पाये। उसको देख लें और उसको देखते हुए जीयें तो फिर दुख दर्द कैसा। सारा जीवन इक सरूर है, उसको देखें, उसको रिझाने के लिये जीयें, उसकी वेद वाणी सुनें, उसकी भक्ति के भजन सुनें, उसको अच्छी तरह अनुभव करें तब उसका बखान करें। 'प्रब्रवाम' सब से पीछे आया है। जब देख लिया,सुन लिया, अनुभव ले लिया, तभी प्रवचन का प्रभाव है। जिसने न कुछ देखा, न कुछ सुना, न कुछ अनुभव किया उसका बोलना निरर्थक ही नहीं हानि कारक भी हो सकता है। अन्धा अन्धों को क्या रास्ता दिखायेगा, दोनों गढ़े में गिरेंगे। जिस क्रम से सौ वर्ष तक देखने, जीने, सुनने और अन्त में बोलने की प्रार्थना की है उसमें बहुत सौन्दर्य है। आंखों से तुझे अपने अन्दर देखें, तुझे बाहर प्रकृति में प्रतिबिम्बित देखें, वेद की, सद् शास्त्रों की उत्तम उभारने वाली पुस्तकों का स्वाध्याय करें। तेरे आदेश के अनुसार तुझे सदा पास अनुभव करते हुए तुझे रिझाने के लिये, तेरा कृपा पात्र बनने के लिये हम जीयें। तेरी वेद वाणी, तेरे स्तोत्र हम कानों से सुनें, तेरे प्यारे नाम ओ३म

का जाप, गायत्री मंत्र का जाप, वेद मंत्रों का अर्थ समझते हुए शुद्ध उच्चारण, तेरी भक्ति के गीत, तेरी चर्चा, तेरी वाणी का प्रचार हम करें। यह है ब्रह्मचर्य, ब्रह्म में विचरना केवल इन्द्रियों को रोक लिया और बस, यह ब्रह्मचर्य नहीं है। ब्रह्मचर्य तो है ब्रह्म का साक्षात् करना, ब्रह्म का अनुभव करना, ब्रह्म के इशारे पर नाचना, शरीर, कर्मेन्द्रियां, ज्ञानेन्द्रियां सब ब्रह्म की सेवा में लगा देना। इस ब्रह्मचर्य से मनुष्य अदीन होता है। वह चक्षु है, वह आदित्य है। आदित्य ब्रह्मचारी की आंख में भी वही तेज है, वही पवित्रता है। जो जितना ज्यादा ब्रह्मचारी होगा उतना ज्यादा अदीन होगा, उतना ज्यादा निर्भय होगा, उतना ज्यादा उसका रोब होगा। उसके अङ्ग अन्त तक बलवान रहेंगे, वह अन्त तक आत्म सम्मान के साथ जीयेगा। वह सौ वर्ष तक और इससे भी अधिक शेरों की तरह जीयेगा और कोई उसकी तरफ आंख उठा कर नहीं देख सकेगा, क्योंकि वह 'ब्रह्मचक्षु' से एक हो गया है।

गुरुकुलों की समस्या पर एक दृष्टि

[ले०—पं० सुखदेव जी वेदालङ्कार]

गत वर्ष जब कि मैं गुरुकुल सूपा के समीपस्थ एक ग्राम में विवाह संस्कार पर गया हुवा था; तब मेरा एक सज्जन से गुरुकुल विषयक वार्तालाप हुआ; जिससे मुझे मालूम हुआ कि सामान्य जनता के विचार गुरुकुल सूपा जैसे सार्वजनिक शिक्षणालयों के प्रति कितने अशुद्ध तथा वास्तविकता से रहित होते हैं। मुझे गुरुकुल का आदमी समझ कर एक सज्जन मुझ से कहने लगे कि मैं गुरुकुल सूपा को प्रति वर्ष ५) दान दिया करता था किन्तु अब मेरा विचार बदल गया है तथा भविष्य में नहीं दूंगा। मैंने उन से कारण पूछा तो उन्हों ने कहना शुरू किया कि प्राचीन समय में तो गुरुकुल पर्ण कुटीरों में हुआ करते थे, किन्तु आजकल तो बड़े २ मकान गुरुकुलों में बनने लगे हैं, जो शहरों के मकानों को भी मात करते हैं। जो आक्षेप उन्होंने किया था उसको शायद वह सज्जन अन्तः करण से ठीक समझते हों; केवल शुष्क वाद विवाद करने का उनका विचार न था। मैंने उन से निवेदन किया कि प्राचीन समय में भी बड़े बड़े गुरुकुल होते थे, जिनमें कि प्रत्येक में दस सहस्र ब्रह्मचारी ब्रह्मचर्य की शिक्षा अपने गुरुओं तथा आचार्यों से लेते थे, तथा स्मृति-वाक्य हमें बताते हैं कि जो मनुष्य दस सहस्र बालकों के कुल का संचालन करता हो और उसका नियामक हो उस आचार्य को कुलपति कहा जाता है। उस प्राचीन समय में इतने महान् विश्वविद्यालय कभी झोंपड़ियों में होते होंगे, यह नहीं कहा जा सकता, तथा साथ में मैंने तक्षशिला के विश्वविद्यालय का भी निर्देश किया। इस प्रकार की बातों में मैंने उनको बताना चाहा कि लोग अपने मन में सार्वजनिक संस्थाओं की भिन्न २ कल्पना कर लेते हैं तथा प्रत्येक आदमी यह आशा करता है कि संस्था उसके काल्पनिक स्वरूप के अनुरूप ही होनी चाहिये, यह कितनी विचित्र स्थिति है, प्रथम यह ही कठिन है कि कोई एक ही संस्था भिन्न २ मनुष्यों द्वारा कल्पित अनेक स्वरूप एक ही समय में कभी धारण ही नहीं कर सकती, तथा उस अवस्था में तो यह बात और भी कठिन हो जाती है जब कि प्रत्येक कल्पना वास्तविक स्थिति को सर्वथा उपेक्षा करके की जाती हैं। जब शिक्षकों का प्रश्न आता है तब कहा जाता है कि ब्रह्मचर्याश्रम में गृहस्थों का क्या काम? ऐसे स्थानों पर तो वानप्रस्थी ही होने चाहियें। इस बात को सर्वथा उपेक्षा कर दी जाती है कि वर्तमान समय में आदर्श वानप्रस्थी नाम का कोई पदार्थ ही उपलब्ध नहीं होता, तो वर्तमान में क्या गुरुकुल-चलाने बन्द कर दिये जायें? अथवा पहले वानप्रस्थी नामक पदार्थ बनाने की कल बनाने का प्रयत्न किया जाये और उसके बाद शिक्षणालयों की समस्या का समय आयेगा। इस प्रकार की विचार-धारा के अनुसार यदि काम किया जाये तो प्रथम कुछ समय तक बाल शिक्षण स्थगित करना पड़ेगा और प्रौढ़-शिक्षण के लिये समय लगाना पड़ेगा।

संसार में जब कोई कार्य किया जाता है तब उसके लिये सामग्री उसी अपूर्ण संसार से लेनी होती है जो कि आदर्श से बहुत दूर है और जिसमें अनेक दोष तथा न्यूनतायें होती हैं, यही बात गुरुकुल के विषय में भी है। गुरुकुलों में जो कार्य-कर्त्ता काम करते हैं, वे वही लौकिक व्यक्ति होते हैं जो कि वर्तमान संसार के प्राणी होते हैं, जिनमें कि वे सब गुण दोष सम्भावित हो सकते हैं जो कि एक औसतन मनुष्य से आशा किये जाते हैं, क्योंकि कठिनता यह होती है कि संस्था का मुख्य संचालक अपनी संस्था के संचालन के लिये कुछ आदमियों की अपेक्षा करता है—तथा जो आदमी संस्था में काम करने आते हैं उनकी योग्यता अथवा अयोग्यता का परिचय तो उनके संस्था में काम करने के बाद ही हो सकता है, उससे पूर्व तो उनकी उपाधियों के विषय में ही जान सकते हैं, इससे अधिक कुछ भी जानना कठिन होता है, तदनन्तर जब कि किसी मनुष्य को उसकी अयोग्यता के कारण संस्था की सेवा से वञ्चित किया जाय, तो प्रथम तो इस कार्य में भी कुछ बाधायें होती हैं तथा कुछ मर्यादायें भी बांधनी होती हैं। इसके उपरान्त आगामी व्यक्ति की योग्यता वा अयोग्यता के विषय में किसी भी प्रकार की सम्भावना की जा सकती है। इस प्रकार संस्था संचालन में प्रथम कठिनता तो कार्यकर्त्ताओं की होती है, जिन पर संस्था का भविष्य बहुत अंश तक निर्भर होता है।

जो बालक गुरुकुलों में प्रविष्ट होने के लिये आते हैं, वे अपने २ जन्म जन्मान्तरों के संस्कार लिये हुए होते हैं, उसके उपरान्त उन पर पैतृकता का प्रभाव होता है तथा जब वे गुरुकुल में प्रविष्ट होते हैं उससे पूर्व वे इस संसार में अपनी आयु का सबसे नाजुक भाग (आयु के प्रारम्भिक आठ या दस वर्ष) भिन्न २ परिस्थितियों में बिता चुके होते

हैं, उस समय में भी उन बालकों में अपने २ स्थानिक वातावरण का उनके मस्तिष्क पर असर पड़ चुका होता है। इस प्रकार अनेक प्रकार के भिन्न२संस्कारों, योग्यताओं, शारीरिक अवस्थाओं से युक्त बालक गुरुकुलों में प्रविष्ट होते हैं। तदनन्तर उनकी शिक्षा दीक्षा शुरु होती है।

अब नई कठिनता यह उपस्थित होती है कि प्रत्येक ब्रह्मचारी का संरक्षक अथवा अभिभावक यह आशा रखता है कि उसके ब्रह्मचारी को छोड़ कर अन्य सब ब्रह्मचारी आदर्श बनें, क्यों कि अपने ब्रह्मचारी की न्यूनताओं को तथा शक्तियों को तो वह जानता है, किन्तु औरों के विषय में वह पर्याप्त नहीं जानता तथा जब कभी अवसर आता है तब वह संरक्षक वात्सल्य के कारण अपने ब्रह्मचारी को ब्रह्मचारी की नियत मर्यादाओं का उल्लंघन भी अधिक मात्रा मे करा देता है। जैसे अवकाश के समय में ब्रह्मचारी की दिनचर्या का भंग,भोजन के नियमों का उल्लंघन,वस्त्रादि वस्तुओं के प्रतिबन्धों का व्यतिक्रम करना तो सामान्य बात समझी जाती है, किन्तु कई संरक्षक तो अवकाश के दिनों में ब्रह्मचारी के ब्रह्मचर्य व्रत में बाधक वस्तुओं के प्रति भी उपेक्षा करते हैं। तथा परिणामस्वरूप संस्था को अपने आदर्श की ओर प्रगति करने में सहायक होने के स्थान में वात्सल्य कारण के अधिक संरक्षक तो बाधक ही हो जाते हैं, तथा संस्था संचालन के नियन्त्रण में जहां अन्य बातें महत्व पूर्ण हैं वहां संरक्षकों का वर्ताव भी अपना स्थान रखता है। अतः जब इस प्रकार की संस्थाओं पर विचार हो तो इस बात की भी उपेक्षा नहीं की जा सकती।

जहां इस प्रकार की संस्थाओं में अन्य अनेक—बातें अपना स्थान रखती हैं वहां पर जनता का सहयोग भी अपना महत्व पूर्ण स्थान रखता है—क्योंकि संस्था के भौतिक शरीर का आधार जनता का सहयोग है, जो कि सामान्यतः दो प्रकार का है—एक तो आर्थिक सहयोग तथा दूसरा अपनी चेष्टाओं तथा प्रयत्नों द्वारा संस्था का प्रचार स्वरूप सहयोग। आर्थिक सहयोग यद्यपि सामान्य जनता से भी प्राप्त होता है किन्तु धनिकों का इस में विशेष स्थान होता है। इस अवस्था में दान देने वाले की रुचि वा इच्छा के अनुरूप दान का उपयोग होना आवश्यक होजाता है, प्रत्येक दाता यह आशा रखता है कि उसके धन का अच्छे से अच्छा उपयोग किया जाये तथा वह उपयोग इस प्रकार होना चाहिये कि जनता की आँखों में दानी महोदय का स्थान अधिक से अधिक उच्च हो सके। अतः जब मकानादि बनाने के लिये कोई दान देता है तब यह आवश्यक होता है कि मकान की रचना सुन्दर तथा आकर्षक भी हो जिससे कि दानी अपने दान का सदुपयोग समझे. अतः मकानों में सुन्दरता तथा आकर्षण यदि हो तो संस्था को दोष देना उचित नहीं प्रतीत होता, तथा सुन्दरता, आकर्षण या कला का होना कोई दोष भी तो नहीं है। और इन गुणों के कारण दानियों के दान देने की भावना को भी प्रोत्साहन मिलता है। तथा जनता के क्रियात्मिक सहयोग की उपेक्षा नहीं की जा सकती, अतः परिणाम स्वरूप संस्था का सामयिक और देशकी गति विधि में अनुकूल होना भी आवश्यक हो जाता है जब कि कभी २ संस्था के स्वरूप में भी परिवर्तन कुछ न कुछ मात्रा में आही जाता है।

अन्त में एक बात और सामने आती है कि गुरुकुल जैसी संस्थाओं के स्वरूप निर्माण में प्राचीनता तथा नवीनता का सम्मिश्रण करना होता है. और यह निश्चय करना होता है कि प्राचीनता तथा नवीनता का मेल किस अनुपात में तथा किस स्वरूप में किया जाये ? यह एक बड़ी भारी समस्या है, जोकि संस्थाओं के सामने आती है।

इसप्रकार यहाँ पर यह विचार करने का प्रयत्न किया गया है कि जो महानुभाव गुरुकुलों जैसी संस्थाओं को समालोचना की दृष्टि से देखना चाहें वे कहीं संस्थाओं तथा कार्यकर्ताओं के प्रति अन्याय न कर जायें, संस्था संचालन की कठिनताओं को भी सामने रखें। यहाँ पर विचार करने का उद्देश्य यह नहीं है कि इसप्रकार की संस्थाओं में दोष नहीं है अथवा इन संस्थाओं में अधिक प्रगति हो ही नहीं सकती; अपितु यहां केवल एक स्नातक होने के नाते दृष्टि देने का प्रयत्न किया है, जिससे गुरुकुलों का भविष्य उज्वल हो जो इन संस्थाओं पर विचार करते समय अनुपेक्षणीय है।

स्वर्गीय आचार्य रामदेव जी के प्रेमियों तथा भक्तों के प्रति नम्र निवेदन

श्री पूज्य आचार्य रामदेव जी की असामयिक मृत्यु पर उनके प्रेमियों तथा भक्तों के अनेक लगातार समवेदना सूचक पत्र आ रहे हैं, उनके लिये हम सब कन्यागुरुकुल वाले, श्री आचार्य जी के परिवार के लोग उनके बड़े कृतज्ञ हैं। हम सब को उन से बड़ी सान्त्वना मिली है।खेद है कि हृदय की वेदना और एकदम जिम्मेवारी का बोझ सिर पर पड़ जाने के कारण मैं प्रत्येक को पृथक् पृथक् उत्तर न दे सकूंगी। अतः समाचार पत्रों में इस पत्र द्वारा उन सबके प्रति कृतज्ञता प्रकाशित करती हूं।

श्री पूज्य भ्राता आचार्य रामदेव जी की असामयिक जुदाई से व्यक्तिगत रूप से तथा कन्या-गुरुकुल के हित की दृष्टि से जितनी महान् क्षति हुई है वह लेखनी द्वारा अवर्णनीय हैं। जिम्मेवारी का ख्याल होते ही कमजोर हृदय कांप उठता है। किन्तु विधि का विधान मानकर प्रभु की इच्छा के आगे सिर झुकाना पड़ता है। धैर्य्य धारण कर कर्तव्य-पथ पर चलते हुए महानुभवों के लोकहित प्रारम्भ किये गये यज्ञों को पूर्ण करने की चेष्टा करना हमारा कर्त्तव्य है। कन्यागुरुकुल द्वारा भारत तथा विशाल भारत की कन्याओं और महिलाओं की शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक उन्नति का मार्ग खोलदेना स्वर्गीय आचार्यराम-देव जी के अन्तिम वर्षों का कार्य रहा है। इस धुन में वे रोग ग्रस्त होते हुए भी चैन से बिस्तरे पर लेटे नहीं रह सकते थे और इस संस्था की उन्नति का प्रयत्न करते रहे थे। उन्होंने प्राणों की आहुति देदी है। कन्यागुरुकुल के

[शेष पृष्ठ ७ पर]

गु रु कु ल

२७ माघ शुक्रवार १९९६

साम्प्रदायिक समस्या

एक पुरानी कहानी है कि एक बार एक शृगाल और लम्बकर्ण में मित्रता हुई। दोनों ने यह निश्चय किया कि हम मिलकर खेती करेंगे। गेहूं की खेती की गयी। जब फसल पक चुकी और दोनों ने उसे काट लिया तो बंटवारे का सवाल उठा। सियार ने लम्बकर्ण को कहा कि मैंने ज्यादा लेकर क्या करना है? ऊपर का थोड़ा सा भाग मुझे दे दो और बाकी सब कुछ तुम ले लो। गधा उसकी बातों में आ गया। गेहूं के बाल सियार ने लिये और डंठल गधे ने। अगले साल फिर दोनों ने मिलकर ईख की खेती की। जब हिस्सा बांटने का समय आया तो सियार ने यह कहा कि पिछले साल तुमने फसल के नीचे का और मैंने फसल के ऊपर का हिस्सा लिया था। न्याय यही कहता है कि इस बार तुम ऊपर का और मैं नीचे का हिस्सा लूं। न्यायपरायण सियार की यह बात गधे को लाचार होकर माननी पड़ी। फंगल गधे के हिस्से में पड़े और गन्ने सियार के हिस्से में।

भारत वर्ष की साम्प्रदायिक समस्या पर विचार करते हुए हमें कई बार यह कहानी याद आई है। जब १९३५ का गवर्नमैण्ट आफ इंडिया एक्ट बन रहा था तो मुसलमानों ने यह मांग की कि हम बहुत से प्रान्तों में अल्प संख्या में हैं अतः हमें संरक्षण मिलना चाहिये। इसका फल यह हुआ कि उन्हें अपनी संख्या के अनुपात से कहीं ज्यादा अधिकार मिल गये। जिन प्रान्तों में वे बहुसंख्या में थे वहां उन्होंने बहुसंख्या का लाभ उठाया। इस प्रकार दोनों जगह उन्हें फायदा रहा और हिन्दु घाटा उठाते रहे।

किन्तु फिर भी केन्द्रीय शासन में अपना बहुमत करना मुसलमानों के लिये सम्भव न हो सका। सम्भवतः इसी कारण मुस्लिम लीग फेडरेशन की प्रस्तावित योजना का शुरु से विरोध करती रही है। भारत-सरकार केन्द्रीय व्यवस्थापिका परिषद् में पूरा बल लगाने पर भी नवीन शासन विधान के संघशासन वाले हिस्से पर अनुकूल मत नहीं प्राप्त कर सकी क्योंकि मि० जिन्ना की पार्टी ने इस अवसर पर कांग्रेस के साथ वोट दिया था।

अब मुस्लिम लीग की जो सब से नयी मांगें हैं और जिन के लिये यहां तक कहा गया है कि इन मांगों की अवहेलना कर यदि कोई शासन विधान बनाया गया तो वह मुस्लिम जनता को कदापि मान्य न होगा- उनके देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि वे साम्प्रदायिकता की जटिल समस्या को सुलझाने में विशेष रूप से सहायक नहीं हैं। सियार और गधे वाली पुरानी चाल ही खेली जा रही है। मुसलमान अल्प संख्या और बहुसंख्या का पूरा फायदा ले चुके हैं। अब वे स्वतंत्र राष्ट्र का लाभ उठाना चाहते हैं। मुस्लिम लीग की उन मांगों का सार यही है कि मुसलमानों का एक स्वतंत्र राष्ट्र है, वे अल्प संख्या में नहीं। उन्हें भाग्य-निर्णय का पूरा अधिकार होना चाहिये और उनका एक पृथक् राष्ट्र बनना चाहिये।

प्रत्येक देश की जनता को अपने भाग्य के निर्णय का अधिकार है- इस में किसी को विप्रतिपत्ति नहीं हो सकती। किन्तु मुसलमानों का एक स्वतंत्र राष्ट्र है- यह घोषणा अवश्यमेव विचारणीय है। अभी कुछ दिन पहले श्री जिन्ना ने महात्मा गान्धी को एक पत्र में लिखा था कि आपका यह भ्रम है कि हिन्दुस्तान एक राष्ट्र है वह तो एक उपमहाद्वीप है जिसमें अनेक राष्ट्र निवास करते हैं। उनमें दो मुख्य राष्ट्र हैं- हिन्दु और मुसलमान।

धर्म के भेद से राष्ट्र का भेद हो जाता है यह कोई बात नहीं है। श्री जिन्ना से पहले सरकारी अधिकारियों ने बीसियों दफा भाषणों में और लेखों में यह विचार प्रकट किया है। हिन्दुस्तान में अनेक जातियां, धर्म और भाषायें हैं, इस लिये हिन्दुस्तान एक राष्ट्र नहीं बन सकता। श्री जिन्ना के मुह से यह बात फबती भी नहीं। क्या यह वही मि० जिन्ना हैं जिन्होंने इम्पीरियल कौन्सिल में और बाद में केन्द्रीय व्यवस्थापिका परिषद् में भारत को इस प्रकार दो टुकड़ों में बांटने का तीव्र विरोध किया था, सरकारी रुख की कड़ी आलोचना की थी और साम्प्रदायिक नेताओं की घोर निन्दा की थी।

इन बातों को जाने दीजिये। विचारों में परिवर्त्तन होता रहता है। सम्भव है, मि० जिन्ना के विचारों में परिवर्त्तन हो गया हो। हमें तो केवल यह देखना है कि क्या धर्म भेद से राष्ट्र भिन्न हो जाते हैं? इसी समस्या को दूसरे शब्दों में कहें तो धर्म क्या राष्ट्रीयता का उपादान है?

राष्ट्रीयता पर विचार करने वाले राजनीतिशास्त्र वेत्ता हमें बतलाते हैं कि राष्ट्रीयता का सब से बड़ा उपादान एक राष्ट्र होने की इच्छा है। धर्म, भाषा संस्कृति, इतिहास परम्परा आदि की समानता तो गौण है। यदि धर्म राष्ट्रीयता का उपादान होता तो योरोप के सारे ईसाई राष्ट्रों में हमें आज का महाभारत न देखने को मिलता। स्पेन का खूनी गृह युद्ध न होता। बौद्ध धर्म अङ्गीकार करने वाले जापान और चीन इस तरह न झगड़ते। फिर हिन्दुस्तान के मुसलमान तो वास्तव में हिन्दु हैं। अरब से आये मुसलमानों की संख्या तो उंगलियों पर गिनी जा सकती है। नवाब छतारी और मुहम्मद इकबाल हिन्दु राजपूत और ब्राह्मण वंशों के हैं। इस प्रकार केवल धर्म परिवर्त्तन से राष्ट्रीयता नहीं बदल जाती।

कांग्रेस अल्पसंख्यक मुसलमानों को तो उनके अधिकारों की रक्षा का पूरा अभयदान देने को तैयार थी; पर नवजात इस मुस्लिम राष्ट्र के साथ वह क्या व्यवहार करे। पहले तो समझौते की कोई आशा भी थी किन्तु अब तो कोई ऐसा आधार नहीं रहा जिस पर समझौता किया जा सके।

निराशा के इस घोर अन्धकार में भी जो आशा की किरण दिखाई देती है—वह है फजलुल हक आदि मुस्लिम लीग के नेताओं के दृष्टि कोण में परिवर्तन। सर सिकन्दर हयात खां यह समझते हैं कि साम्प्रदायिक प्रश्न तो केवल कुछ पद लोलुपों का प्रश्न है। श्री हक बङ्गाल में एक गोलमेज परिषद् बुलाने को तैयार हैं। इस प्रकार समझौते की आशा की एक हलकी किरण अवश्य है। यदि मतभेद की बातों को भुलाकर एकता की बातों पर बल दिया गया तो सफलता की आशा अवश्य करनी चाहिये। मुसलमान किसान और हिन्दु किसान के आर्थिक स्वार्थ एक ही हैं। धर्म का भेद तो कृत्रिम और अस्वाभाविक है। संकुचित मनोवृत्ति वाले हिन्दु और मुस्लिम नेता यदि इसको समझ गये तो देश का बड़ा कल्याण होगा।

गुरुकुल की वाग्वर्धिनी सभा का संक्षिप्त

इतिहास

[ले०—श्री पं० हरिदत्त जी वेदालङ्कार]

किसी भी विश्वविद्यालय के सामाजिक जीवन में सभाओं का स्थान न केवल ऊंचा है, परन्तु अत्यन्त महत्व पूर्ण भी है। सम्भवतः, इस कथन में कोई अत्युक्ति नहीं कि उनका महत्व पढ़ाई से भी अधिक है। विद्यार्थियों के भावी-जीवन की तैयारी इन्हीं सभाओं में होती है। इङ्गलैण्ड के प्रमुख राजनीतिज्ञ पार्लियामैण्ट में होने वाली बहसों का पहला पाठ अपने विश्वविद्यालयों की सभाओं में पढ़ते हैं। प्रसिद्ध लेखक सभाओं की पत्रिकाओं से लेख लिखना आरम्भ करते हैं। मैकाले के बारे में कहा जाता है कि 'कैम्ब्रिज डिबेटिंग सोसाइटी' में उसने जिस भाषण-शैली का अभ्यास किया वही उसके लेख का सौन्दर्य हुई। इसी प्रकार स्टीवन्सन आदि लेखकों का उदाहरण दिया जा सकता है। इन सभाओं की ओर से प्रकाशन होने वाले पत्रों के सम्पादक ही देश के प्रमुख पत्रों के सम्पादन का कार्य करते हैं। पाठ्यक्रम, पुस्तकों तथा पढ़ाई के घण्टों से भी अधिक आवश्यक एवं महत्वपूर्ण इन सभाओं में विद्यार्थी आत्माभिव्यक्ति के विविध-प्रकारों तथा अनेक जीवनोपयोगी गुणों को सीखते हैं। यदि शिक्षा का अन्तिम उद्देश्य विद्यार्थियों का सर्वाङ्गीण विकास है तो इन्हीं सभाओं द्वारा प्राप्त शिक्षा ही वास्तविक शिक्षा है। पढ़ाई के घण्टे तो विद्याग्रहण के हैं। विद्यार्थी गुरुओं में अगाध ज्ञान-भण्डार की कतिपय रहस्यमयी गूढ़ ग्रन्थियों का श्रवण कर तथा अनेक पुस्तकों के अध्ययन से अनेक महत्व पूर्ण-तत्वों को समझ कर अपने मानसिक कोश में उन्हें संचित करता जाता है। मधु-मक्षिका की तरह वह बिन्दुशः ज्ञान का सञ्चय करता रहता है। परन्तु केवल संचय निष्प्रयोजन है। ज्ञान की सच्ची उपयोगिता आदान में नहीं पर प्रदान में है। ज्ञान, भूमि में गड़ी हुई सम्पत्ति नहीं किन्तु सत्कर्म में विनियुक्त पूंजी है। विद्या की सफलता इसी में है कि वह दूसरों को दी जाय। जिस ज्ञानाञ्जन से हमारी दृष्टि निर्मल हुई है उस से दूसरों का भी अन्धकार दूर किया जाय। अपने चारों ओर का वातावरण और समाज ज्ञान द्वारा उन्नत किया जाय। यदि हम अपने ज्ञान को ग्रहण कर दूसरों को उसका लाभ नहीं पहुँचा सकते तो हमारी ज्ञान-प्राप्ति निरर्थक है। 'ग्रहण-प्रतिदान' लेन-देन आदान-प्रदान का सम्बन्ध सनातन काल से चला आया है। हजारों वर्ष पहले की भगवती श्रुति सम्प्रदायों की आदान-प्रदान परम्परा से ही आज तक जीवित है। महाकवि कालिदास कह गये हैं आदानं हि विसर्गाय सतां वारिमुचामिव फिर स्मृतिकारों ने विद्या के दान को तो सर्वश्रेष्ठ कहा है (सर्वेष्वेव दानेषु विद्यादानं विशिष्यते) परन्तु इस प्रदान का उत्तम ढङ्ग क्या है? वह कौनसी कला है जिसके द्वारा व्यक्ति अपने ज्ञान को दूसरों तक पहुंचा कर उन्हें ज्ञान का लाभ पहुंचा सकता है? वह किस प्रकार-'स्व' की अभिव्यक्ति कर सकता है? इसका उत्तर शायद एक ही है और वह है—भाषण और लेखन की कला। इन दोनों कलाओं के अभ्यास से विद्यार्थी अपने ज्ञान के प्रतिदान के उत्तम उपायों को सीखता है। पढ़ाई के घण्टों में वह जो ज्ञान उपार्जन करता है; सभाओं के समय में उसे वह अच्छे ढङ्ग से दूसरों को देना सीखता है। वह अपने विचारों को व्यक्त करने के प्रभाव-जनक माध्यम को पा लेता है। प्रजातन्त्र के युग में भाषण कला की महत्ता स्पष्ट है। लेखन कला के विषय में इतना कहना पर्याप्त होगा कि इङ्गलैण्ड में 'टाइम्स' के सम्पादक का वही महत्व है जो वहां के प्रधान मन्त्री का है। अतः ज्ञान-प्रदान एवं भावी-जीवन की दृष्टि से इन सभाओं की महत्ता का स्वयमेव सुगमता से अनुमान किया जा सकता है।

सभाओं के द्वारा होने वाले ज्ञान-प्रदान के इस मुख्य कार्य के अतिरिक्त अनेक जीवनोपयोगी गुणोंकी शिक्षा भी उन्हीं सभाओं द्वारा दी जाती है। इन द्वारा नागरिकता के अनेक आवश्यक तत्वों का परिज्ञान होता है। सभाके वाद-विवादों में मर्यादा, औचित्य, शिष्टता, अनुशासन, विरोधी के प्रति-सहिष्णुता और उदारता, विचारोंकी स्वतन्त्रता प्रत्येक चीज़ को पक्षपात रहित हो अनेक पहलुओं से देखना, अन्धविश्वास शून्यता, विचार पूर्वक सम्मति बनाना आदि अनेक उपयोगी गुण सीखे जाते हैं। सभाओं का संचालन करते हुए विद्यार्थी व्यवस्था-सम्बन्धी अनेक गुणों का अभ्यास करते हैं। उन में प्रबन्ध शक्ति की अनेक योग्यताओं का विकास होता है। अद्भुत संगठन शक्ति, अदम्य उत्साह तथा निःस्वार्थ, सार्वजनिक सेवा के भाव उद्बुद्ध होते हैं। सभाओं के संचालन से उत्पन्न उत्तरदायित्व की बुद्धि महाविद्यालय की आयु में पाई जाने वाली स्वाभाविक उच्छृंखलता पर अंकुश का कार्य करती है। इन सभाओं में प्रमुख रूप से भाग लेने वाले विद्यार्थी जो आज स्वच्छन्द का नेतृत्व करते हैं कल वही समाज के अगुआ बन-

सकते हैं।

उपर्युक्त बातों के अतिरिक्त सभायें विश्वविद्यालय में एक पढ़ाई का वातावरण बनाये रखती हैं। इन से विद्यार्थियों के सामान्य ज्ञान का धरातल बहुत ऊंचा बना रहता है। उनकी शिक्षा एकांगी और अधूरी नहीं रहती वरन वह सर्वाङ्गीण और सम्पूर्ण हो जाती है। सभाओं बिना विद्यार्थियों का ज्ञान इतना अपूर्ण और हास्यास्पद हो जाता है कि उनको बुद्धू या भोंदू कहना-उनका अपमान करना नहीं. परन्तु वास्तविक स्थिति का कथन होता है। सभाओं का फायदा न उठाने वाले विद्यार्थियोंसे इस प्रकार के उत्तर पाना असम्भव नहीं है कि "लार्ड लिनलिथगो फ्रांस का बादशाह है", "हिटलर इटली का है अधीश्वर है" "हिन्दूमहासभा और मुस्लिम लीग राष्ट्रीय महासभा (कांग्रेस) के दो भाग हैं" "जापान भारतवर्ष उत्तर में ईरान के साथ लगा हुआ एक प्रदेश है।" "जर्मनी योरुप के एक बड़े शहर का नाम है।" सापेक्षवाद (थ्यूरी आफ रिलेटिविटी) रसायन शास्त्र की महत्वपूर्ण गवेषणा है।" परन्तु सभाओं में भाग लेने वाले विद्यार्थी से इन बेहूदा उत्तरों की शायद कल्पना भी नहीं हो सकती। कारण स्पष्ट है कि सभाओं में राजनैतिक और सामाजिक, आर्थिक और वैज्ञानिक, नैतिक और दार्शनिक,ऐतिहासिक और साहित्यिक, धार्मिक और मनोवैज्ञानिक सभी तरह के विषयों पर बहसें होती हैं, व्याख्यान दिये जाते हैं तथा निबन्ध पढ़े जाते हैं। आज यदि "योरुपकी राजनैतिक स्थिति" पर व्याख्यान है तो कल "समाज-सुधार आवश्यक है या राजनैतिक स्वतन्त्रता" इस विषय पर वादविवाद है। उससे अगले दिन "अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार और विनिमय" इस विषय पर एक निबन्ध पढ़ा जाता है। सभाओं में विद्वानों का समागम होता रहता है। आज यदि विद्यार्थी एक पुरातत्वविद् से 'सुमेरिया मिश्र और मोहेंजदरो की सभ्यताओं के तुलनात्मक अध्ययन' पर कोई व्याख्यान श्रवण करते हैं तो कल कोई वैज्ञानिक विद्यार्थियों को "भौतिक-शास्त्र की नई खोजें" "अल्ट्रावायलेट और कास्मिकरेज़" के रहस्यों से अभिज्ञ कराता है। अगले दिन एक दार्शनिक शङ्कर और हेगेल के चिद्वाद (आइडियलिज़्म) का भेद स्पष्ट कराता है। यह वातावरण विद्यार्थियों के मानसिक क्षितिज को विस्तृत करता रहता है। पढ़ाई के समय अपना विशेष विषय अध्ययन करते हुए वे अन्य विषयों का भी पर्याप्त ज्ञान सम्पादन करते रहते हैं। इस प्रकार शिक्षा का यह महान् आदर्श पूरा होता रहता है—"एक विषय का सम्पूर्ण ज्ञान तथा अन्य विषयों का सामान्य ज्ञान।'

अतः सभाओं को विश्वविद्यालयों रूपी चक्र में होने वाले सब कार्यों का केन्द्र(उनके सामाजिक जीवन की धुरा) कहा जाय तो इस में कोई अत्युक्ति नहीं। इन सभाओं का महत्व केवल विश्वविद्यालय की दृष्टि से ही नहीं अपितु सार्वजनिक जीवन की दृष्टि से भी बहुत है। यही सभायें देश को उच्च कोटि के वक्ता, लेखक, सम्पादक, कवि गाल्पिक और सार्वजनिक जीवन के नेता प्रदान करती हैं। ऑक्सफोर्ड और कैम्ब्रिज की वादविवाद सभाओं का इस प्रकार के कार्यों का रिकार्ड ऐसा है जिस पर वह गर्व कर सकती है। भारतवर्ष में इस प्रकार के विश्वविद्यालय तथा वादविवाद सभाओं का सर्वथा अभाव नहीं। यहां पर हमने इसी प्रकार की एक सभा के विकास का इतिहास देखना है। राष्ट्रिय-शिक्षणालयों में गुरुकुल कांगड़ी का एक विशेष स्थान है। उस विश्वविद्यालय की अनेक सभाओं में यदि किसी को मुख्यता दी जा सकती है तो वह वाग्वर्धिनी सभा को। इङ्गलैण्डकी उपरिलिखित सभाओंकी तरह इसे यह गर्व है कि इसने हिन्दी साहित्यको अनेक प्रसिद्ध सम्पादक,लेखक, कवि और गाल्पिक प्रदान किये हैं। आर्यसमाज को शास्त्रार्थ-महारथी और उत्तम वक्ता दिये हैं, देश को निस्स्वार्थ भाव से सेवा करने वाले सत्-कार्यकर्ताओं का अमूल्य दान किया है। अतः सभा के जन्मोत्सव के अवसर पर उसके गौरव पूर्ण इतिहास का पर्यवेक्षण इस दृष्टि से बहुत महत्व रखता है। उस सभा के भूतकाल का निरीक्षण कर वर्तमान काल में भूतकाल से भी अधिक उन्नति करने की योजना बनाने तथा भविष्य को भूत और वर्तमान की अपेक्षा अधिक उज्वल बनाने में हम समर्थ हों।

इतिहास के उपादान—: (१) लिखित सामग्री (२) मौखिक सामग्री।

१ लिखित सामग्री—निःसन्देह ऐसी महत्वपूर्ण सभा का इतिहास हमारे लिए शिक्षाप्रद और मनोरंजक है। किन्तु उस का ठीक २ उपलब्ध करने के साधन हमारे पास बहुत कम हैं। सभा के कार्यक्रमों की पुरानी पंजिकाओं से इतिहास की रूप रेखा तैयार हो सकती थी पर मन्त्रियों की असावधानता से पुरानी पंजिकायें बिलकुल विलुप्त हो चुकी हैं। 'राजहंस' की पुरानी संख्याओं से इसके भूत पर कुछ प्रकाश पड़ सकता था पर वे संख्यायें एक या दो बार नहीं बल्कि तीन बार के अग्निकाण्ड में भस्मसात् हो चुकी हैं। उनका राख का ज़र्रा ज़र्रा अलग हो चुका है। इस समय सभा का इतिहास सकलन करने के लिए जो लिखित सामग्री प्राप्त हो सकी है वह केवल गुरुकुल के कुछ पुराने वार्षिक-वृत्तान्त तथा उपाध्यायों के गृहों में सुरक्षित पुरानी पत्रिकाओं के दो चार अङ्क हैं। इस प्रकार पुराने काल पर लिखित सामग्री का सर्वथा अभाव है। परन्तु नये काल के विषय में लिखित-सामग्री की बिलकुल कमी नहीं। सन् १९२३ से १९३८ के तक कार्यक्रम की पत्रिकाएं बिलकुल सुरक्षित अवस्था में हैं। 'राजहंस' की कुछ अधूरी संख्यायें भी प्राप्त हुई हैं।

मौखिक सामग्री—कहते हैं कि मुसलमानों का पवित्र ग्रन्थ 'कुरान' श्रद्धालु भक्तों की ध्वनियों से लेख बद्ध किया गया था। वाग्वर्धिनी सभा के प्रारम्भिक वर्षों का इतिहास भी सभाओं के कार्यों में मुख्य भाग लेने वाले मान्य-स्नातक बन्धुओं के पुराने संस्मरणों से संगृहीत किया गया है। हमारा विश्वास है कि कुलमाता का पारिवारिक इतिहास भी इसी तरह लिखा जा सकता है। लिखित सामग्री के साथ २ यह मौखिक-सामग्री भी हमारे लिए

बहुत उपयोगी सिद्ध हुई है। अनेक नये तथ्य जो शायद इकट्ठे न किये जाते तो सदा के लिए विलुप्त हो जाते-इस प्रकार लेख बद्ध होकर सुरक्षित हो गये हैं। मनुष्य को उस की स्मृति धोखा दे सकती है,वह अन्य कालों को न जानते हुए अपनी बात को सुनहला बना सकता है-प्रौ खक साक्षी में इस तरह के अनेक दोषों की संभावना हो सकती है। अतः मौखिक साक्षी के साथ यथा संभव लिखित साक्षी की तुलना करते हुए हमने इन दोषों से बचने का प्रयत्न किया है। (असमाप्त)

[पृष्ठ ३ का शेष]

साथ आर्यसमाजी तथा राष्ट्रीय नेता और जनता का बहुत हित है। उसको उन्नत दशा में फूला फला देखने की उनकी एक बड़ी अभिलाषा है। उसके लिये स्मारक कमैटी ने दो लाख रुपये एकत्र करके श्री आचार्य रामदेवजी के दो प्रिय कार्य वेदप्रचार और खासकर कन्यागुरुकुल को पुष्ट करने का विचार किया है। कन्यागुरुकुल को जीवित रखने के लिये इस समय कम से कम दो लाख रुपयों की अत्यन्त आवश्यकता है। विद्यालयभवन, भोजनालय तथा स्नानगृह के नकशे तो उनके सामने ही बन कर तैयार हो चुके थे और आधार-शिला रक्खी जा चुकी थी। धन की प्रतीक्षा में बनाने का कार्य अभी प्रारम्भ न हो सका था। उसके लिये ५० हजार रुपयों की अत्यन्त आवश्यकता है। और निश्शुल्क शिक्षा देते रहने के कारण चालू खर्च के लिए ५० हजार रुपये कम से कम चाहिए ही। स्वर्गीय आचार्य रामदेव जी की प्रबल इच्छा थी कि एकबार वह स्वस्थ हो जाएं तो उस संस्था को पुष्ट करदें। वे कहा करते थे कि मैं अच्छा हो रहा हूं अच्छा होते ही धन एकत्र कर दूंगा। गुरुकुल से बढ़कर उनका स्मारक और क्या बन सकता है। आशा है कि आप भी सहमत होंगे ही। इसलिये आप जो भी अपना सहयोग इस यज्ञ को पूर्ण करने में दे सकते हों चाहे वह दान के रूप में हो अथवा दान के अपील करने के रूप में हो अवश्य देकर इस राष्ट्रीय एवं धार्मिक संस्था को पुष्ट कर स्वर्गीय आचार्य रामदेव जी के प्रति की गई श्रद्धांजलि में भाग लेकर हमारा हाथ बटावेंगे और सच्ची श्रद्धा और सहृदयता का परिचय देंगे।

आपकी
विद्यावतीसेठ आचार्या
कन्यागुरुकुल।

गुरुकुल मुलतान का वार्षिकोत्सव

इस वर्ष गुरुकुल का वार्षिकोत्सव १६—१७ मार्च को होना निश्चित हुआ है। इस अवसर पर या इस से पहले जो सज्जन अपने बालकों को दाखिल करना चाहें वह प्रवेश प्रार्थना पत्र (दाखिले के फार्म) और नियमावली नीचे लिखे पते से मगवालें।

भवदीय
विष्णुमित्र
मुख्याधिष्ठाता, गुरुकुल मुलतान।

गुरुकुल 'स्वास्थ्य समाचार'

ब्र० जितेन्द्र ३ श्रेणी मलेरिया ज्वर, चन्द्रकेतु ३ श्रेणी मलेरिया ज्वर।

गत सप्ताह उपरोक्त ब्रह्मचारी ज्वर से रोगी हुए थे। अब स्वस्थ हैं।

गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ का २४ वां वार्षिकोत्सव

गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ का २४ वां वार्षिकोत्सव २३,२४,२५-फरवरी शुक्र, शनि, और रविवार को मनाये जाने की तैय्यारियां विशेषरूप से प्रारम्भ हो गई हैं। उत्सव में सम्मिलित होने वाले आर्य भाई तथा यात्री गुरुकुल आश्रम को नये रूप में देखकर प्रसन्न होंगे और श्री दानवीर सेठ जुगलकिशोर जी बिड़ला का धन्यवाद करेंगे। आपके उदार दान से गुरुकुल के भवन प्राचीन आर्यसंस्कृति-भवन-निर्माण-कला के अनुसार परिवर्तित हो गये हैं। आशा है, इसी तरह श्री सेठ जी की कृपा दृष्टि बनी रहेगी और शीघ्र गुरुकुल आश्रम एक आदर्श प्राचीन आश्रम बन जायगा।

श्री पं० गोपालजी मुख्याधिष्ठाता शीघ्र ही उत्सव के लिये धन-संग्रह का कार्य प्रारम्भ करने वाले हैं। वे प्रत्येक आर्य बन्धु के पास भिक्षा के लिये पहुचेंगे। आशा है, प्राचीन संस्कृति के प्रेमी आर्यहिन्दु भाई उदार हृदय से उनके प्रयत्न में भरसक सहयोग देने की कृपा करेंगे।

उत्सव में आर्यसमाज के उच्च कोटि के विद्वान् सन्यासी पण्डित तो पधारेंगे ही, और देश के प्रसिद्ध राष्ट्रीय नेताओं के पधारने की भी पूरी आशा है।

इस उत्सव में सामयिक परिस्थिति के अनुकूल कई विशेष सम्मेलनों का आयोजन होगा। सब आर्य-हिन्दुओं को इस पवित्र मेले में शामिल होकर लाभ उठाना चाहिये।

भवदीय
गोपाल
मुख्याधिष्ठाता।

आवश्यक सूचना

केप्टन रामचन्द्र जी रिटायर्ड सिविल सर्जन पहली मार्च से १५ मार्च १९४० तक गुरुकुल मेडिकल कालिज के हस्पताल में प्रत्येक प्रकार के बड़े तथा छोटे आपरेशन मुफ्त करेंगे। गुरुकुल की ओर से रहने का स्थान सब को मुफ्त दिया जावेगा। बीमारों को अपना बिस्तर अपने साथ अवश्य लाना चाहिये। मोतिया बिन्द के बीमारों को चाहिये कि वह अपने साथ एक सहायक को अवश्य लावें। खाने आदि का प्रबन्ध बीमारोंको स्वयं करना होगा।

सत्यव्रत
मुख्याधिष्ठाता
गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार।

चौधरी दुलारराम के प्रबन्ध से गुरुकुल मुद्रणालय गुरुकुल कांगड़ी में मुद्रित तथा प्रकाशित।

* ओ३म् *

"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत" Reg. No A 2927

गुरुकुल

एक प्रति का मूल्य -) [गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख-पत्र] वार्षिक मूल्य २॥)

सम्पादक—साहित्यरत्न हरिवंश वेदालङ्कार

वर्ष ४] गुरुकुल कांगड़ी, शुक्रवार ५ फाल्गुन १९९६; १६ फरवरी १९४० [संख्या ४१

रामदेव-स्मारक-निधि

(ले०— श्री मनोहर विद्यालंकार)

आचार्य रामदेव जी के निधन समाचार को सुन कर किस आर्य का हृदय एकबार दङ्ग नहीं रह गया ? उनकी मृत्यु इतना अकाल-मृत्यु है, कि स्वयं प्रत्यक्ष कर लेने पर भी विश्वास करने को देर मना करता है। संसार में कई घटनाएं बहुत अप्रत्याशित होती हैं। उनको इतना अधिक अविश्वास्य समझा जाता है कि उनके होजाने के बाद भी उन पर विश्वास नहीं होता, और उनको स्वयं प्रत्यक्ष करने की आवश्यकता प्रतीत होती है। यदि कोई बिल्कुल बुद्धू आदमी जज बना दिया जाये, या एक, सदा असफल रहने वाला विद्यार्थी, प्रथम हो जाय अथवा अत्यन्त पतित मनुष्य धर्मात्मा बन जाये; तो इन बातों को सुनकर भी हम तब तक नहीं मानते जब तक स्वयं न देख लें। इसी प्रकार आचार्य रामदेव जी का निधन भी इतना असामयिक है कि बुद्धि द्वारा उसके पुष्ट हो जाने पर, हृदय इसको नहीं मानना चाहता। लेकिन इस, कटुसत्यों से पूर्ण दुनियाँ में किस के दिली अरमान पूरे हो पाते हैं ? मनुष्य कुछ सोचता है, लेकिन विधाता को कुछ अन्य ही इष्ट होता है। तब हमें, परमेश्वर की इच्छा में ही अपना कुछ अप्रत्यक्ष-हित निहित समझ कर सन्तोष करना पड़ता है। 'Filicaja' के शब्दों में—

"And even if it denies what seems our right,
Either denies because' it would have us ask,
Or seems but to deny, and in denying grants"

हमें अपने दैवीय अहित या दुःख में भी सन्तोष करना चाहिये। इसके अतिरिक्त हमारे पास और उपाय भी क्या है ?

आचार्य जी का त्यागमय जीवन हरेक के लिये अनुकरणीय था। उनकी विद्वत्ता की न केवल भारतीय विद्वानों ने, अपितु पाश्चात्य विद्वानों ने भी मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है। वैदिक मैगजीन में उनके लिखे हुए लेखों ने, लोगों में आर्यसमाज के सिद्धान्तों के प्रति बड़ी रुचि उत्पन्न की है। आर्य समाज को उनके अभाव से जिस अगाध और सर्वविषयक पाण्डित्य तथा अथक और अजेय वक्तृत्व की क्षति हुई है, उसका पूरा किया जा सकना असम्भव प्रतीत होता है।

यदि हम आज उनके लिये शोक मनाते रहें, और कुछ रचनात्मक कार्य न करें, जिससे उनकी आत्मा को शान्ति मिले और उनकी स्मृति भी बनी रहे ; तो हम निःसन्देह अपने आचार्य को गुरुदक्षिणा न देकर कृतघ्नता के अपराधी बनेंगे। उनकी सबसे उपयुक्त स्मृति तो यही है, कि हम स्वयं उनके अभाव से होने वाली क्षति को पूरा करें। लेकिन हमें यह भी याद रखना चाहिये, कि अपने मृत गुरु को अमर बना देना, हरेक शिष्य का कर्त्तव्य है। और किसी भी व्यक्ति को अमर बना देना, उसपर उतना ही निर्भर नहीं होता, जितना उसके अनुयायी व सच्चे प्रशंसक पर होता है। आज राम क्यों अमर हैं ? क्योंकि उनका सच्चा उपासक वाल्मीकि विद्यमान् था। इसी प्रकार हमें आचार्य जी को भी कोई ऐसी स्मृति कायम कर देनी चाहिये, कि जब तक एक भी विद्वान्, जिसे सत्य में विश्वास है, और सत्य को पाना चाहता है; जीवित है उनको स्मरण करके अपने को कृतकृत्य समझे।

उनकी स्मृति को अमर बनाने के लिये कई उपाय सुझाये गये हैं। निःसन्देह वे बहुत ही उपयोगी और सद्भावनापूर्ण हैं। लेकिन मैं समझता हूं कि उनमें बहुत बड़ी धनराशि की आवश्यकता है। यह बहुत बड़ा उद्देश्य है, जिससे उसके प्रचारकों को पूरा करने में-बहुत समय लगने की संभावना है। लेकिन मेरी यह हार्दिक इच्छा है कि वे अपने लक्ष्य में सफल हों, और आचार्य जी को अमर बना सकें।

इस सम्बन्ध में मेरा आर्यजनता तथा गुरुकुल के अधिकारियों के प्रति एक निर्देश है; अगर वे इस को क्रियात्मक समझें, तो बड़ी सुगमता से कर सकते हैं। इसके द्वारा न केवल आचार्य-जी की स्मृति बनी रहेगी, बल्कि विद्वत्समाज का बड़ा लाभ होगा, और साथ ही गुरुकुल को भी कुछ न कुछ आर्थिक

सहायता मिलेगा। मेरा यह तात्पर्य है कि-जिस प्रकार गुरुकुल कांगड़ी में "श्रद्धानन्द स्मारक निधि" स्थापित है और इसमें से प्रति वर्ष एक पुष्प प्रकाशित होता है। यह उन सज्जनों को भेंट किया जाता है, जो १०) वार्षिक देने की प्रतिज्ञा करके इस निधि के सदस्य बन जाते हैं। इस की उपयोगिता को बताने की तो कोई आवश्यकता नहीं। इसका एक २ ग्रन्थ, अपने विषय का स्टैन्डर्ड ग्रन्थ हैं। इनमें से कई ग्रन्थों का तो आर्य समाजों में नित्य पाठ होता है, और धार्मिक पत्र पत्रिकाओं में नियमित रूप से उद्धृत किये जाते हैं। इस तरह यह निधि जहां लोगों को ब्रह्मदान करती है, वहां गुरुकुल को भी इससे कुछ थोड़ा लाभ है।

यदि इसी प्रकार गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ में "रामदेव-स्मारक-निधि" स्थापित कर दी जाये तो आम जनता को बहुत बड़ा लाभ है और आचार्य जी की भी वास्तविक स्मृति बन जायेगी। उस अद्वितीय विद्वान् की स्मृति भी ऐसी ही होनी चाहिये जो कुछ न कुछ विद्या का दान दे सके। इसकी क्रियात्मकता में सन्देह नहीं हो सकता। दूसरे इसमें व्यय भी अधिक नहीं होगा।

गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ- को हमने इस लिये चुना है, क्योंकि वह उनको बहुत प्रिय था। यह ठीक है कि वे अपने जीवनकाल में इस गुरुकुल में बहुत कम आया करते थे। लेकिन उनका यहां न आसकना उनकी कार्य व्यग्रता के कारण था। उनका प्रेम तो इससे स्पष्ट है कि- बीच में जब गुरुकुल- इन्द्रप्रस्थ के स्थान परिवर्तन का चर्चा हो रही थी, उस समय वे बड़े दुःखी रहा करते थे; और उन्हीं के प्रयत्न से गुरुकुल सदा के लिये स्थिर हो गया। दूसरे, गुरुकुल कांगड़ी में एक निधि स्थापित है। वहां पर दूसरी निधि स्थापित करना कुछ अजीब सा मालूम पड़ता है।

एक शब्द सदस्यों से! मेरा विचार है कि इस निधि के सदस्यों का वार्षिक दान १५) होना चाहिये। इसका एक कारण है। पुस्तक प्रकाशन में कई तरह की दिक्कतें पेश आती हैं। कई बार अच्छे लेखकों को ढूढ सकना भी मुश्किल हो जाता है। इसलिये यदि उनको कुछ देना हो तो वह भी इसमें से निकल सके, और गुरुकुल पर बोझ न पड़े तो बेहतर है; वैसे तो इस निधि में से प्रकाशित होने वाले ग्रन्थ के लेखक को भी इतना त्याग करना ही चाहिये?

इसके साथ २ गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ के उन स्थायी दानियों से- जो १० या ५) वार्षिक देते हैं, मेरी यह प्रार्थना है कि वे भी इस निधि के सदस्य बनकर गुरुकुल को सहायता दें। इससे उनको जहां सात्विक दान करने का पुण्य मिलेगा, वहां साथ २ उत्तम २ ग्रन्थों का अध्ययन करने का भी अवसर मिलेगा। इस अध्ययन से उन की आत्मा उन्नत होगी और वे अपने परम लक्ष्य की तरफ एक कदम और आगे बढ़ सकेंगे।

अन्त में मेरी परमेश्वर से प्रार्थना है कि वे दानियों को सुबुद्धि प्रदान करें, ताकि वे अपने धन का उत्तम से उत्तम प्रयोग कर सकें। एक समाज के निस्वार्थ सेवक, सच्चे ब्राह्मण और धुरन्धर विद्वान् की-विद्यादानमय स्मृति को कायम करने में धन लगाने की अपेक्षा, और कौनसा उत्तम दान हो सकता है? इस लिये आर्यसमाज और गुरुकुल के प्रेमियों को अधिक से अधिक संख्या में इस निधि का सदस्य बनकर और दूसरों को बना कर, पुण्य का भागी बनना चाहिये।

"वसन्त-वेणु"

(ले०-वीरेश विद्यालङ्कार)

(लेखक की चैत्र सम्वत् १९९१ में लिखित, पर अप्रकाशित कृति-एकाङ्की अभिनय-का एक पृष्ठ)

[बन देवता और बन देवि का प्रवेश]

(पार्श्व में अशोक वृक्ष की शाखा को थामे वसन्त तथा वेणु)

—दोनों स्तब्धभंगी द्वारा प्रणाम करते हैं।

बनदेवता- अहा! तुम यहां आपहुंचे हो, सो अच्छा ही हुआ।

बन देवि- आप ही ने आदेश किया था कि जाओ वसन्त और वेणु, तुम वनों में जाकर खिलो-खेलो, गांवों में नाचो-गाओ और सबको खुश करो।

बन देवता- सो ये अब अपने काम में मस्त हैं।

वन देवि- प्रसन्न हैं और खूब काम कर रहे हैं। देखिये चारों ओर वसन्त का रंग छागया है और वेणु का वन्य गान बरस रहा है।

वन देवता- वसन्त! कैसा रंग है कुछ कहोगे?

वसन्त- श्री चरणों की अपार कृपा है। (गाता है)

तुम प्रभु वन माली!
मैं प्रसून हूं मधु रस भरकर ले आऊँ लघु प्याली।
सुमन २ मुसकाता वन में मैं बलि जाऊँ आली।
रस रँग राग गन्ध सूने में बिखर रही मधु पाली।
शाख २ पै पञ्छी बोले कुहुके मुदित पिकाली।
नव जीवन की इस वनिका में उठती उमँग निराली॥

वन देवि- और तुम वेणु!

वेणु— श्री चरणों की अक्षय दया है।

तुम वनदेवि उदार।
अखिल विश्व यह रम्य हुआ है लेकर तव मनुहार॥
पात पात में स्नेह सना है फूल फूल रस सार।
वन वन में सुषमा फैलायी किरण किरण बलिहार॥
प्रेम मंत्र में उमगित जन-मन मधुर मोद आगार।
नन्हे से आँगन में मोरे मुग्ध वसन्त बहार॥

वन देवता-मुग्ध है।

वन देवि- मनोहर है।

वन देवता- बालको! अपना काम किये चलो। शुष्क को सरस बना दो। नीरंग में रंग भर दो। अचल को चित्रित कर दो। अपावन को पवित्र कर दो और इस मौन में वह संगीत भर दो जिससे यह प्यारे का पसारा सुन्दर हो जाय, आनन्दमय हो जाय।

वन देवि- और रस का धाम बन जाय। शिशु! देखना यह सब पुराना नवीन होजाय, नव चेतन हो जाय। उत्साह और प्रेम से काम करते रहो।

वन देवता- तत्परता से लगे रहो

(अशीर्वाद देकर प्रस्थान)

वेद के ऋषि

(क्रमागत)

वसुर् भारद्वाजः

[श्री धर्मराज जी वेदालंकार]

ऋग्वेद नवम मण्डल के ८०, ८१ और ८२ वें सूक्तका ऋषि वसु भारद्वाज है। इन तीनों सूक्तों में कुल १५ मन्त्र हैं।

इस ऋषि के मन्त्रों में 'वसुः' शब्द कहीं नहीं आया। ८१ वें सूक्त में 'वसु' और 'वसने' ये पद उपलब्ध होते हैं। मन्त्र इस प्रकार है:—

आ नः सोम पवमानः किरा
वस्विन्दो भव मघवा राधसो महः।
शिक्षा वयोधो वसवे सुचेतुना
मा नो गयमारे अस्मत्परा सचः।

यहां सायण ने वसु का अर्थ 'वासकं धनं गवादिरूपम्' किया है। 'वसु' का अर्थ 'वासकाय परिचरते मह्यम्' ऐसा किया है। यहां यह बात ध्यान देने योग्य है कि 'वसवे' यह रूप पल्लिङ्ग ऋषिवाचक 'वसु' का ही बन सकता है।

कण्व घौर ऋषि के रुद्र देवताक का मन्त्र में भी वसु ऋपि का उल्लेख है—

यः शुक्र इव सूर्यो हिरण्यमिव रोचते।
श्रेष्ठो देवानां वसुः।'

ऋ० १, ४३, ५

यहां 'वसु' का अर्थ है, 'निवास हेतुः—वासयति सर्वमिति वसुः, वस निवासे, अन्तर्भावितण्यर्थः।' यह वसु रुद्र का विशेषण होकर आया है।

इसी मण्डल के 'नोधा गौतम' ऋषि वाले अग्नि-देवताक ६० वें सूक्त के चतुर्थ मन्त्र का एक भाग यह है—

उशिक्पावको वसुर्मानुषेषु
वरेण्यो होताधायि विक्षु

यहां 'वसुः' अग्निका विशेषण है और इसका अर्थ 'निवासयिता' ऐसा किया गया है।

प्रथम मण्डल के 'गोतमो राहूगणः' ऋषि वाले ७६ वें सूक्त के अग्नि देवताक निम्न मन्त्र में भी वसु निवास-यिता के अर्थ में अग्नि का विशेषण है।—

स इधानो वसुष्कविरग्निरीळेन्यो गिरा
रेवदस्मभ्यं पुर्वणीक दीदिहि।

प्रथम मण्डल के ६४ वें सूक्त के अग्नि देवता क १३ वें मन्त्रके—

देवो देवानामसि मित्रो अद्भुतो
वसुर्वसूनामसि चारुरध्वरे

इन चरणों में भी वसु का अर्थ निवासयिता है।

चतुर्थ मण्डल के वामदेव गौतम ऋषि वाले सूर्य देवता क ४० वें सूक्त के ५ वें मन्त्र में—

वसुरन्तरिक्षसत्

ये शब्द आए हैं, इनका अर्थ है—'सर्वस्य वासयिता वायुः सन्नान्तरिक्षसद् अन्तरिक्षसंचारी।'

दशम मण्डल के इन्द्र देवताक २२ वें सूक्त के १५ वें मन्त्र में 'वसवान वसुः सन्' इन शब्दों का अर्थ 'हे वसवान वसूनां धनानामाच्छादयितः वसुःप्रशस्तःसन्' इस प्रकार है।

इसी तरह अन्य भी अनेकों मन्त्रों में पल्लिङ्ग वसु शब्द आया है। प्रायः सर्वत्र इसका अर्थ 'निवास को देने वाला' है। नपुंसकलिङ्ग में विद्यमान वसु धनवाचक हैं। धन को भी वसु इसी लिये कहते हैं क्यों कि धन द्वारा उत्तम प्रकार से निवास किया जा सकता है। नपुंसक लिङ्ग का यह वसु शब्द ऋग्वेद में सौमियों स्थानों पर आया है परन्तु इसका सर्वत्र वसु ऋषि से कोई विशेष सम्बन्ध प्रतीत नहीं होता। दोनों का मूल 'वस' धातु होने से अर्थ-सादृश्य अवश्य है।

वसु ऋषि का परिचायक नाम 'भारद्वाज' है। वसु ऋषि वाले नवम मण्डलके ८०वें सूक्त के द्वितीय मन्त्र में:—

"य त्वा वाजिन्नघ्न्या अभ्यनूषत

ऐसा कहा गया है। यहां सोम को वाजी अर्थात् बल प्रदान करने वाला कहा है। इसी सूक्त के चतुर्थ मन्त्र में 'पवते मदिन्तम ऊर्जं वसानः' यह एक चरण है। यहां ऊर्जं वसानः' यह सोम का एक विशेषण है। वाज और ऊर्क् में पर्याप्त समानार्थकता है।

वसु ऋषि के ही ६-८२-२,५ मन्त्रों में क्रमशः 'वाजम् अर्षसि' और 'पर्यया वाजमिन्दो' ये शब्द हैं। इनसे सोम वाज को देने वाला है, यह सिद्ध होता है।

'भारद्वाज' का अर्थ है 'भरद्वाजस्यापत्य पुमान्' और भरद्वाज का शब्दार्थ है 'जिस में वाज भरा हुआ है'।

वसु ऋषि वाले सूक्त का देवता 'पवमान सोम' है। सोम का आधिभौतिक अर्थ है सोमलता। सोमलता को पवित्र किया जाता है। सोम निकालने के लिये छानने कूटने आदि द्वारा साफ़ किया जाता है। इसी लिये सोम का विशेषण—'पवमान' है। आधिदैविक दृष्टि से सोम 'यज्ञ' है और अध्यात्म में सोम सवन ज्ञानका अपने अन्दर विकास है। साधक का ज्ञान साधना द्वारा धीमे धीमे अधिकाधिक पवित्र निर्दोष एवं व्यापकComprehensive होता जाता है। इसे ही पवमान सोम कहा गया है। इस त्रिविधि सोम के सवन से तीन प्रकार के फल की प्राप्ति होती है। सोम रस के पान से शरीर में अमरता और नवयौवन प्रगट होता है, यज्ञार्थक सोम से सांसारिक समृद्धि जो इस लोक की उन्नति के लिये आवश्यक है, प्राप्त होती है और ज्ञान रूप आध्यात्मिक सोम से अन्तरात्म रूप धनकी उपलब्धि होती है। यह त्रिविध फल 'वसु' कह लाता है। वसु जिस के पास हो उसे भी लक्षण से 'वसु' कहेंगे। सोम सवन करने वाला वसु बन जाता है, सवत्र उसका वास होता है, तीनों प्रकार के जगत् में उसका अबाधित अधिकार होता है। शरीर मन और आत्मा वाज अर्थात् बल शक्ति स्फूर्ति और उत्साह से लबालब भरा होता है। इस लिये उसे भरद्वाज कहते हैं। जो भी कोई सोम सवन करने में सफल होगा वही वसु भारद्वाज के पद का भी अधिकारी हो सकेगा।

गु रु कु ल

५ फाल्गुन शुक्रवार १९९६

स्वर्गीय आचार्य रामदेव जी

वह एक दिवाने थे। स्वयं तो दिवाने थे ही पर अपने ध्येय के लिये उससे भी अधिक दीवाने थे। उनका दीवानापन उनकी समस्त काया में दीखता था। उनकी उन्मुक्त सी वेश-भूषा और व्यवहार की सादगी, दीवानापन का सबसे बड़ा सबूत था। दीवाना तो वह है जो अपने दीवानेपन की झांकी सबको करा दे, अपने गुणों की मिठास सबको चखा दे, अपनी विद्या-बुद्धि की छाप दूसरों पर बिठादे, अपने कन्धों को दूसरों का भार वहन करने के लिये लगा दे; और तो क्या-अपने दीवाने पन को परकाज के लिये खपादे, निछावर कर दे और फिर यह सब यों ही नहीं-किसी ध्येय के लिये-ऊंचे उद्देश्य और अपने आदर्श को लक्ष्य में रख कर।

वह जीवन दीवानापन का प्रतीक था। उस में आरम्भ से अन्त तक एक अपनापन था-एक वैयक्तिक विशेषता थी जो कहीं भी अन्यत्र ढूंढने से न मिल सकती थी। उस अपनेपन की पुट में न केवल विद्वानों की विद्वत्ता और बहुज्ञता थी पर थी एक उपदेशक की, मिशनरीकी, बल्कि कहिये कि ब्राह्मणकी निरीह आत्मा थी। वह परिवार पालन के झंझटों तथा अन्य उत्तर दायित्व के कार्यों में उलझी सी रह कर भी इन से ऊपर अपने आप को उठा कर रख सकती थी। ग़रीबी जीवन को एक कष्टप्रद अनुपान के रूप में मिली है पर सच्चा ब्राह्मण तो वह है जो इसे भी सुख से जन्म भर पीता रह कर प्रलोभनवश अपने मार्ग से इधर उधर नहीं होता। सचमुच यह काम विरले ही यशः शरीर वाले महात्माओं का है। और इन सब झमेलों से ऊपर उठा कर रखने वाली वह क्या चीज़ थी जो इस जीवन में थी? वह थी आदर्श के लिये पूजा का भाव तथा उसे प्राप्त करने के लिये सतत यत्नशील रहने की प्रक्रिया। यह दो गुण उस जीवन में समाये हुए थे जो अपने दीवानेपन की कहानी चलते-फिरते उठतेबैठते खाते-पीते सोते-जागते सब को सुनाया करते थे।

जीवन एक झांकी है। जिसने इस झांकी को लेने का कष्ट किया उसने देखा तो सही पर सुन भी पाया। दूसरे जिन्होंने इसे पाने का कष्ट न किया उन्होंने धुन्धला ही देखा और अधूरा सुना। जिसने अपना जीवन तत्व विवेचन के लिये, अन्वेषण के लिये और दर्शन के लिये खपा दिया-उसका दर्शन कितना रहस्यमय होगा यह कौन कह सकता है? पर हां उसने जो देख पाया है उस की झांकी हम उस जीवन को देख कर ले सकते हैं। वह गाय का बछड़े की तरह विद्या के प्रति अनुराग; मधुमक्खि का की तरह सब ओर से ज्ञान संचय की प्रवृत्ति, अध्यापक-उपदेशक की तरह परस्पर संवाद- वार्ता-चर्चा करने की आदत, पांडित्य को पुष्ट करने वाली तुलनात्मक विवेचना-शक्ति, किस बुद्धिमान भाग्यवान् को इकट्ठी ही प्राप्त होती हैं। किसी परीक्षण-प्रक्रिया में अपने आप को भुला देने और तन्मय होजाना कितना सुन्दर यज्ञिय कर्मयोग का दृष्टान्त है। व्याख्यान देते समय व्याख्यान रूप हो जाना, ऊहापोह करते हुए स्वयं तर्क शास्त्र बन जाना, अध्ययन (स्टडी) करते समय लेखक के भावों को तल्लीनता से ग्रहण कर सकना यह व्यवहार-योग का कितना स्वाभाविक उदाहरण है। यह वही बना सकते हैं जिनको यह गुण सहज सिद्ध हुए हों। इन गुणों का प्रकाशन तथा विज्ञप्ति ही उनके जीवन की झांकी है।

जीवन, उत्सर्गकी मूक कहानी है। वह इस कहानी को लिखते रहने में निरन्तर यत्नवान थे। गुरुकुल शिक्षा प्रणाली का सतत पोषण तथा वैदिक सिद्धान्तों का अथक-समर्थन इस जीवन-कहानी के उपक्रम तथा उपसंहार बने थे। यह सारी कहानी आशावाद और जीवनोत्सर्ग करने की प्रक्रियाओं की प्रतिलिपि थी। आचार्य के संपूर्ण जीवन की सफलता इन दो वाक्यों में समाई हुई थी; "क्या ही सादा सा जीवन और कितना महान् अध्ययन।" यही उन का विद्या कोष था, उनकी समस्त संपत्ति थी जिसकी थाती वे कुल में सुरक्षित कर गये। वह कोष जिसे बटोर २ कर वह जोड़ा करते थे और जोड़ २ कर सब कहीं बांट देते और आश्चर्य तो यह था कि जितना बांटते उतना ही बढ़ता जाता था, और इसी कारण तो मृत्यु के पहिले के सालों में भी "एवोल्यूशन एण्ड द वेदाज़" जैसा बृहत्काय ग्रन्थ-रत्न का लेखन संभव हो सका।

ऐसे निरीह आचार्य्य की आत्मा को शतशः वन्दना हो। इनकी आत्म साधनाकी तृप्ति ज्ञान-क्षेत्र और विद्या-मन्दिरों द्वारा ही हो सकती है।

श्री वीरेश विद्यालंकार

मत छेड़ो; कवि गायेगा ही ॥

चाहे कहदो उस को पागल,
दुष्ट समझ कर कर दो घायल,
पर वह कविता सुना सुना कर तुम सब को तरसायेगा ही ॥
चाहे नीचे हों खेत खेत,
चाहे नीचे हो रेत रेत,
पर वह बादल आंख मूंद कर अपना जल बरसायेगा ही ॥
नीम सभी को कड़वी लगती,
'कड़वी'कह कह दुनियां भगती,
किन्तु निंगोली जब आयेगी, तब तो अरे लुभायेगा ही ॥
मत छेड़ो कवि गावेगा ही ॥

—'श्री नवीन'

मातृ-भाव का सच्चा आदर्श

[ले०—श्री ब्र० सहदेव अधिकारी श्रेणी]

[यह लेख श्रीमती माता यशोदाबाई जी कमालिया निवासिनी के देहावसान पर लिखा गया है]

आर्यसमाज का आदर्श प्रारम्भ से ही उत्तम इन्सान पैदा करने का रहा है। गुरुकुल कांगड़ी, मुलतान, रायकोट, मटिण्डू इत्यादि संस्थाएं जिन लोगों ने उद्घाटित की हैं वे वस्तुतः आदर्श के पुञ्ज थे। भारतवर्ष में गुरुकुलों की संख्या पञ्जाब प्रान्त में ही अधिक है। मुलतान कमिश्नरी में केवल मुलतान गुरुकुल ही आज से १३ वर्ष पूर्व अपनी निराली शान रखता था। मुलतान के अतिरिक्त और किसी भी जिले अथवा नगर में गुरुकुल दिखाई नहीं देते थे। किन्तु १९८४ वि० में आर्यसमाज कमालया के ३ महानुभावों ने गुरुकुल कमालिया की स्थापना की और गुरुकुल की आधारशिला श्री पूज्य स्वर्गीय आचार्य रामदेव जी के पवित्र कर कमलों द्वारा रखी गई थी।

गुरुकुल की स्थापना से पूर्व कमालिया नगर के बाहर एक आश्रम था जिसका सञ्चालन गुरुकुल कमालिया के वर्तमान मुख्याधिष्ठाता महाशय सुखदयाल जी किया करते थे। क्योंकि मैं इस आश्रम के विगत इतिहास से सर्वथा अपरिचित हूँ फिर भी जो कुछ मेरी स्मृति में विद्यमान है उसका दिग्दर्शन करवा देना चाहता हूं। आश्रम विभाग के तत्कालीन नियम क्या थे इससे भी मैं अपरिचित हूं क्योंकि उस समय मैंने वहां शिक्षा ग्रहण नहीं की। केवल आश्रम विषयक कुछ किस्सा ही मालूम है। जिस समय आश्रम का प्रबन्ध अभी सुव्यवस्थित नहीं हुआ था। उस समय आश्रम के विद्यार्थी (Government high school Kamalia) में ही शिक्षा पाते थे। किन्तु उन का रहन-सहन आश्रम में ही होता था और प्रातः स्मरणीय महाशय सुखदयाल जी विद्यार्थियों का नियन्त्रण करते थे और भोजन प्रबन्ध आश्रम में ही था। आश्रम में कोई भृत्य नहीं था केवल एक बुढ़िया माता श्रीमती यशोदाबाई जी भोजन पकाया करती थीं

संसार में कोई विरली ही माता अथवा नारी होगी जो अपने गार्हस्थ सुखों को त्यागकर किसी दूसरे घर में जाकर डेरा डाले। किन्तु माता यशोदाबाई जी ने अपने घर का परित्याग करके आश्रम विभाग की हार्दिक सेवा की। वस्तुतः यह कार्य कितना दुर्धर्ष था यह माता का हृदय ही जानता होगा। अस्तु, १९८४ वि० में ला०सुखानन्द जी रईस की प्रदान की हुई भूमि में गुरुकुल की स्थापना हुई। वहां भी भोजनशाला के विकट प्रश्न को श्रीमती माता जी ने पूर्ववत् हल किया और विद्यार्थियों की सेवा में दत्तचित्त होकर लग गई।

गुरुकुल में मेरा प्रवेश १९८६ वि० सम्वत् में हुआ था। ज्यों ज्यों मेरा बाल्यकाल बीतने लगा मुझे माता का अविश्रान्त परिश्रम देख कर मन में विस्मय होने लगा कि इस वार्धक्यकाल में भी वे किस प्रकार तन मन से गुरुकुलकी सेवा में रत हैं। इसके अतिरिक्त वेदारम्भसंस्कार के अनन्तर हम नवीन ब्रह्मचारियों को आचार्य ने माता यशोदाबाई जी की ओर संकेत करते हुए यह उपदेश किया था 'यही तुम्हारी माता हैं और इनके साथ तुम्हारा मातासदृश व्यवहार होना अनिवार्य है" सम्भवतः हम उस समय शिशुता के गम्भीर मानस में रमण करते होंगे। यद्यपि हम उस समय अज्ञानी थे परन्तु फिर भी आचार्य के सदुपदेश ने हमारे दिल में माता के प्रति गम्भीर भक्ति का विन्यास किया और मैं तो यह अब भी कह सकता हूं कि ६ वर्ष के गुरुकुलीय जीवन काल में "मातृदेवो भव" इस वेद के कथन का पूर्णतया पालन किया। यह केवल मेरा शब्दाडम्बर ही नहीं अपितु मेरे अन्तरात्मा की सच्ची प्रतिध्वनि है। सम्भवतः मैंने ही नहीं अपितु अन्य विद्यार्थियों ने भी पूर्णतया पालन किया होगा। हमारा शैशव व्यतीत हुआ और हम ने श्री माता जी में अन्य गुणों को भी परख की। वस्तुतः माता के अन्दर जो गुण होने चाहिएं वे उनमें विद्यमान थे। मानव जीवन का आधार जिन गुणों पर होता है वे गुण अपनी माता में हमने प्रत्यक्षतया देखे हैं।

श्रद्धाभक्ति

गुरुकुल विद्यालय में जो नियम हुआ करते थे उनकी परिपालना माता जी ने आजीवन की है। वे चार बजे प्रातः जागरण करके विद्यार्थियों के लिए मक्खन बनाया करती थीं। हम भी ५ बजे उठा करते थे और माता के मुखारविन्द से उच्चरित गीता के पावन एवं श्रुतिमधुर पद्यों का श्रवण किया करते थे। वे रोटी पकाते समय और अन्य कृत्यों के समय भी सदा रामायण गीता आदि धार्मिक ग्रन्थों के पद्यों का मधुरगान किया करती थीं। जहां उनमें भगवान के लिए भक्ति थी वहां त्याग का भी समन्वय दृष्टिगोचर होता था। भक्ति श्रद्धा के साथ सत्यता की भी विद्यमानता पूर्णतया थी। वस्तुतः गीता के पद्यों का उन्होंने तोता-रटन्त ही नहीं किया परन्तु अपने जीवन में भी यथासम्भव पालन किया। तुल्यनिन्दास्तुतिर्मौनी सन्तुष्टो येनकेनचित्" गीता के ये शब्द श्री माता जी के जीवन में पूर्णतया अवतरित हुए थे। यही श्रद्धा भक्ति तथा सत्यता आदि गुण ही उनके कार्यों में सहायक मालूम देते थे।

प्रेम मधुरसम्भाषण

वस्तुतः माता का प्रेम और मधुरसम्भाषण ही मानव समाज के हृदय में उसके प्रति अगाध आस्था उत्पन्न कर देता है। यदि पिता अपने बालक को निर्भर्त्सना पूर्वक दुत्कार भी दे तो बालक को अपना आश्रय माता की गोद में ही मिलता है। माता का प्रेम बालक के दिल में भक्ति पैदा करता है। यही कारण है कि माता-पिता की तुलना में माता का स्थान ऊँचा ठहराया जाता है। श्री माता यशोदाबाई जी के प्रेम का अभिव्यक्ति हमें तब होती थी जब वे विद्यार्थियों के आश्रम में पदार्पण करती थीं और

जिस विद्यार्थी ने भोजन नहीं किया होता था उसे भोजन के लिए प्रेरित करती थीं। यदि किसी विद्यार्थी का दिल किसी भी प्रकार ऊब जाता था तो विद्यार्थी माता के पास ही शरण ढूंढता था। मेरा प्रायः सारा समय गुरुकुल भण्डार में माता के चरणों में ही बीता है। साथ ही साथ माता के काम में सहायता भी देता था और माता प्रेम-पूर्वक वार्तालाप से मेरा दिल बहलाया करती थीं। सम्भाषण में केवल प्रेम ही नहीं परन्तु माधुर्य भी समाविष्ट था। "ऊर्जा मधुमतीवाक् मधुमती वाचमुदेयम" ये वैदिक शब्द वस्तुतः हमने माता के जीवन में प्रत्यक्ष देखे हैं। वे जिस किसी के साथ वार्तालाप करती थीं सदा मधुरतापूर्वक करती थीं अपने सम्भाषण में वे दूसरों को उद्विग्न करने वाले शब्द का प्रयोग नहीं करती थीं। उनकी सत्यवादिता के साथ प्रिय सत्य विद्यमान था। वस्तुतः यह कहने में हमें अत्युक्ति न होनी चाहिए कि उनके जीवन में गीता के वाङ्मयतप का प्राचुर्य था।

परिश्रम

संसार की नींव परिश्रम पर ही आश्रित है यदि परिश्रम न हो तो उदरभरण सम्भव ही कैसे हो सकता है। यह परिश्रम ही माता जी का जीवनावलम्ब था। सम्भवतः यदि वह अपने परिश्रम में मन्दता न लातीं तो जहां वे ८४ वर्ष अपनी जीवन यात्रा कर सकीं वहां १०० वर्ष से भी अधिक लम्बी आयु व्यतीत कर सकती थीं। यह उन के शब्द थे कि "मैं परिश्रम पर ही आश्रित हूं"। संसार में कौन ऐसा व्यक्ति होगा जो ६० मनुष्यों का भोजन दोनों समय एकाकी ही तय्यार कर ले। ८० वर्ष की कौन-सी बुढ़िया नारी होगी जो मुल्तान प्रदेश के ग्रीष्म ऋतु में भी आविर्शकट भाड़ में रोटी पकाए और अपने देह को कृश करे। यह कितना बड़ा उपकार है कि थोड़ा-सा निर्वाहमात्र रुपया-पैसा लेकर माता यशोदाबाई जी ने गुरुकुल कमालिया की निरन्तर सेवा की।

गुरुकुलों के उत्सव तो प्रतिवर्ष हुआ ही करते हैं किन्तु गुरुकुल कमालिया के वार्षिकोत्सव में कुछ विशेषता अवश्य प्रतीत होती थी। सचमुच उस उत्सव के समय प्राचीन-कालीन गुरुसंदीपन के आश्रम का दृश्य आंखों के आगे आ जाता था। अतिथि लोग माता के परिश्रम को देखकर दान्तों-तले अङ्गुली दबाते थे। भोजन भण्डार के काम के लिए उनकी कल्पना उन्हें अन्यमनस्क नहीं कर सकती थी। इस सेवा के साथ वे थोड़ा-सा वेतन पाती थीं और उसी में आत्मसन्तुष्टि समझती थीं। हमारे सामने "वित्तेरमस्व बहुमन्यमानः" ऋ. १०। ३४। १६। वेद का यह कथन माता जी के जीवन में पूर्णता को प्राप्त होता है। सचमच मेरे विचार में इसी परिश्रम के कारण ही हम चिर काल तक माता के दर्शन कर सके हैं। इन गुणों के हेतुभूत माता यशोदा बाई जी की कीर्ति गुरुकुल कमालिया अथवा कमालिया नगर की चरमसीमा तक ही नहीं अपितु माता द्वारा परिपोषित सभी विद्यार्थियों के अन्तस्तल में भी सीमित रहेगी। हमें माता ने पुत्रों की तरह परिपालित किया। माता की तरह दूध पिलाया, भोजन खिलाया और हम में सद्भावों की उत्पत्ति की। हम पुत्रों को उनके देहावसान पर हार्दिक शोक है। हमें आशा है कि परमदेव परमेश्वर माता की आत्मा को सद्गति प्रदान करेंगे।

वस्तुतः समाज में ऐसी ही माताओं का समावेश होना चाहिए जो विद्यार्थियों को उत्तम शिक्षा-दिक्षा दे सकें। तथा बाल्यकालीन शिशुओं के मनोभावों को पवित्र बना सकें। तभी समाज और व्यक्ति की उन्नति अवश्यम्भाविनी होगी।

अन्त में हम फिर उन की सद्गति की प्रार्थना करते हैं।

गुरुकुल कांगड़ी हरिद्वार का ३८ वां वार्षिकोत्सव ईस्टर की छुट्टियों में

इस वर्ष ईस्टर की छुट्टियों में गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी हरिद्वार का ३८ वां वार्षिकोत्सव २२: २३: २४: २५ मार्च १६४० को बड़ी धूमधाम से मनाया जायगा। उत्सव की तैयारियां अभी से प्रारम्भ हो गई हैं। नवीन प्रविष्ट होने वाले ब्रह्मचारियों का दाखिला भी शुरू हो गया है। गुरुकुल में प्रार्थना पत्र इतने आते हैं कि ब्रह्मचारियों की नियत संख्या ही ली जा सकती है। इस लिये जो महानुभाव अपने बालकों को प्रविष्ट करना चाहें वे अभी से प्रयत्न करें। ६ वर्ष से ऊपर के बालक नहीं लिये जाते। सात से नौ वर्ष की आयु के बालकों को ही प्रविष्ट किया जाता है।

इस साल अनेक नवीन योजनाएं की जा रही हैं देश के अनेक गण्य मान्य नेता पधार रहे हैं।

सत्यव्रत

मुख्याधिष्ठाता, गुरुकुल कांगड़ी हरिद्वार।

गुरुकुल कुरुक्षेत्र

ऋतु अत्युत्तम है। इस मास प्रायः सभी ब्रह्मचारियों का भार खूब बढ़ा है। कई ब्रह्मचारियों का तो इसी मास में ६—७ पौण्ड तक भार बढ़ा है। चिकित्सालय रोगियों से प्राय खाली है।

गुरुकुल का वार्षिकोत्सव फरवरी के अन्तिम सप्ताह में २३-२४-२५ फरवरी को मनाया जायगा। गुरुकुल के आचार्य पं० सोमदत्तजी धन संग्रह के कार्य में लग गये हैं। वार्षिक परिक्षायें मार्च के तीसरे सप्ताह में उत्सव के बाद होंगी।

कलकत्ते के दानी सेठ मूलचन्द जी ने गुरुकुल में एक अच्छी धर्मशाला बनाये जाने के लिये १२००) भेज दिया है। धर्मशाला का कार्य शीघ्र शुरू हो जायगा—आशा है उत्सव तक धर्मशाला बनकर तैयार हो जायगी।

जो महानुभाव गुरुकुल में अपने बालक प्रविष्ट कराना चाहें उन्हें अभी से फार्म भर कर भेज देने चाहियें। वार्षिकोत्सव पर नवीन प्रविष्ट ब्रह्मचारियों का वेदारम्भ संस्कार होगा।

प्रबन्ध-कर्त्ता

गुरुकुल समाचार

गत सप्ताह के रोगी स्वास्थ्य लाभ कर रहे हैं। कोई नवीन रोगी चिकित्सालय में नहीं आया। शेष सब स्वस्थ हैं। पन्द्रह-बीस दिन की वर्षा के बाद अब अच्छी धूप निकलने लगी है।

वसन्त-पञ्चमी—गत १३ फरवरी को समस्त कुलवासियों ने गुरुकुल की पुरानी भूमि में जाकर अपूर्व उत्साह के साथ वसन्तोत्सव मनाया। यद्यपि महाविद्यालय के ब्रह्मचारियों की वार्षिक परीक्षा में केवल १ दिन शेष था और सब को यह उम्मीद थी कि बड़े ब्रह्मचारी गङ्गा पार न जा सकेंगे, इस लिये इस बार वसन्त का त्यौहार फीका पड़ जायगा—तथापि उक्त दिवस के आते ही बड़े ब्रह्मचारी बड़ी तादाद में पार पहुंच ही गये। भला, यह कैसे हो सकता था कि जिस उत्सव को पुराने गुरुकुल में इतने उत्साह के साथ मनाया जाता था उस उत्सव के आने पर किसी के दिल में कोई उमङ्ग ही न उठे। पुराने गुरुकुल के पास गंगा के रेतीले और पथरीले मैदानों में अपने इतने विशाल परिवार को देख कर प्रत्येक कुलवासी का हृदय पुलकित हो उठा। सब ने एकत्र होकर सम्मिलित गायन के साथ कुलपताका अभिवादन किया। कुलमाता को लक्ष्य कर गाये गए "हिमशैल तुल्य ऊँचा, भागीरथी सा पावन" "तेरे वनों की स्तब्धता में दिव्य कोई राग है" गीतों से वन-पर्वत गूंज उठे। कुछ खेलों और बदरी-फल भक्षण के अनन्तर सब का गंगा के पत्थरों में बैठ कर सहभोज हुआ। भोजनोपरान्त महाविद्यालय की छत पर कविता सम्मेलन के साथ संगीत सम्मेलन हुआ जिस में कांगड़ी पाठशाला के बालकों एवं पं० धर्मेश्वर जी और मूलचन्द जी के भजन हुए। "धन है वो माता, धन उसकी तकदीर" इस भजन द्वारा उक्त दोनों महानुभावों ने स्वामी श्रद्धानन्द जी के जीवन की विशेष घटनायें छन्दोमयी भाषा में प्रभावोत्पादक ढंग से वर्णन कीं। सायंकाल समस्त कुलवासी विविध मार्गों से वनों में भ्रमण करते हुए गुरुकुल लौट आये।

गुरुकुल—इन्द्रप्रस्थ का धार्मिक-मेला

गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ का २४ वां वार्षिकोत्सव जो २३-२४ और २५ फरवरी को मनाया जाना है; विशेष रूप से उसके लिये तैयारियां प्रारम्भ हो गई हैं।

श्री पं० गोपाल जी मुख्याधिष्ठाता के डेपूटेशन को बावजूद मुल्क की आर्थिक कठिनाइयों के देहली शहर में पर्याप्त सफलता प्राप्त हो रही है। अब यह डेपूटेशन गुड़गांव जिले में काम करेगा और आशा है वहां की हिन्दू जनता भी उनके डेपूटेशन का स्वागत करेगी और गुरुकुल की सहायता करेगी।

इस बार वस्तुएं महंगी होने के कारण रुपयों की कमी को बहुत अनुभव किया जा रहा है इस लिये आर्य जनता से सानुरोध निवेदन है कि अगले वर्ष का व्यय चलाने के लिये कम से कम उत्सव से पूर्व दस हजार रुपये इकट्ठा करा देने में सहायक हों।

ब्रह्मचारियों के संरक्षकों से पत्रों द्वारा अपील की जा चुकी है, जिस में यह अनुरोध किया गया है कि कम से कम २५) इस वर्ष गुरुकुल को अवश्य दान दें। उस दान से यहां पर एक बगीचा लगाने की आयोजना की गई है; ताकि ब्रह्मचारियों को ताज़ी सब्ज़ी उपलब्ध हो सके।

गोपाल
मुख्याधिष्ठाता।

गुरुकुल आयुर्वेद महाविद्यालय में बाहर के विद्यार्थियों का प्रवेश

पहले आयुर्वेद महाविद्यालय गुरुकुल कांगड़ी में बाहर के विद्यार्थी नहीं लिये जाते थे अब आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब ने बाहर के ऐसे विद्यार्थियों का लिया जाना स्वीकार कर लिया है:—

(१) जो अविवाहित (वाग्दान भी न हुआ हो) सदाचारी, उपवीत हों तथा गुरुकुल के सब प्रकार के नियम पालन करने के लिये उद्यत हों।

(२) जिनकी आयु १५ वर्ष से कम और १८ वर्ष से अधिक न हो।

(३) जो:—

(i) संस्कृत में—प्राज्ञ या अन्य शिक्षणालयों की उसी दर्जे की परीक्षा पास हों या प्रवेश के समय प्राज्ञ परीक्षा की साहित्य तथा व्याकरण की पुस्तकों की परीक्षा देकर उसमें उत्तीर्ण हों।

(ii) अंग्रेजी में भारत के किसी विश्वविद्यालय की मैट्रिक परीक्षा उत्तीर्ण हों या प्रवेश के समय अंग्रेजी की अधिकारी या उस दर्जे की परीक्षा देकर उत्तीर्ण हों।

(iii) हिन्दी और विज्ञान में श्री आचार्य जी को सन्तोष दे सकें कि उनको इन विषयों का पर्याप्त ज्ञान है।

विद्यार्थियों का चुनाव गुरुकुल वार्षिकोत्सव के अवसर पर तारीख २२ से २५ मार्च तक होगा, जो सज्जन अपने विद्यार्थियों को गुरुकुल आयुर्वेद महाविद्यालयों में प्रविष्ट कराना चाहते हैं, उन्हें अपने प्रार्थना-पत्र शीघ्र ही भेज देने चाहिएं। गुरुकुल के नियम तथा दाखले का फार्म "कार्यालय गुरुकुल कांगड़ी" जिला सहारनपुर से मिल सकेंगे।

मुख्याधिष्ठाता

नये बालकों का प्रवेश

गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी का ३८ वां वार्षिकोत्सव इस वर्ष ईस्टर की छुट्टियों में तारीख २२ से २५ मार्च १९४० तक मनाया जायेगा। इस अवसर पर नये बालकों का चुनाव तारीख २२, २३ मार्च को होगा। समय बहुत थोड़ा रह गया है, जो सज्जन अपने बालकों को गुरुकुल में प्रविष्ट कराना चाहते हैं उन्हें प्रार्थना-पत्र भेज कर स्वीकृति प्राप्त कर लेनी चाहिए, गुरुकुल की नियमावली तथा प्रवेश फार्म "कार्यालय गुरुकुल कांगड़ी" ज़िला सहारनपुर से मिल सकेंगे।

मुख्याधिष्ठाता, गुरुकुल कांगड़ी।

चौधरी हुलासराम के प्रबन्ध से गुरुकुल मुद्रणालय गुरुकुल कांगड़ी में मुद्रित तथा प्रकाशित।

॥ ओ३म् ॥

"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत"

Reg. No. A. 2927

गुरुकुल

एक प्रति का मूल्य -) [गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख-पत्र] वार्षिक मूल्य २॥)

सम्पादक—साहित्यरत्न हरिवंश वेदालङ्कार

वर्ष ४] गुरुकुल काङ्गड़ी, शुक्रवार ३ चैत्र १९९६; १५ मार्च १९४० [संख्या ४५

गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी का

वार्षिकोत्सव आगया

आपको यह जान कर अपार हर्ष होगा कि गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी का ३८ वां वार्षिकोत्सव ईस्टर की छुट्टियों में २२ से २५ मार्च तक बड़े धूमधाम से गुरुकुल-भूमि में मनाया जायगा। इस शुभ अवसर पर सम्मिलित होने के लिये हम आप सब सज्जनों को सादर आमन्त्रित करते हैं।

गुरुकुल आर्यसमाज की सबसे सफल और शानदार संस्था है। गुरुकुल खोलकर आर्यसमाज ने न केवल शिक्षा-क्षेत्र में अभूत-पूर्व क्रान्ति की है अपितु संसार को एक सन्मार्ग भी दिखाया है। गुरुकुल आर्यसमाज की दीप्तिमान भावनाओं का जीता-जागता नमूना है। आर्य समाज के त्याग, उत्साह और धैर्य का गुरुकुल मानो एक दर्पण है जिसमें आर्य जनता के ये गुण प्रतिबिम्बित देखे जा सकते हैं। प्रातः स्मरणीय स्वामी श्रद्धानन्द जी और आचार्य रामदेव जी इस गुरुकुल उपवन को अपने खून और पसीने से सींच गए हैं। उनकी लगाई हुई यह वाटिका सदा फलती फूलती रहेगी।

स्थापना से लेकर अब तक गुरुकुल ने शिक्षा के विभिन्न क्षेत्रों में अनेक आश्चर्यकारी परीक्षण किये हैं। इस समय गुरुकुल एक छोटा-मोटा शिक्षणालय नहीं अपितु विश्वविद्यालय का रूप धारण कर चुका है। गुरुकुल कांगड़ी तथा उससे सम्बद्ध संस्थाओं में लगभग डेढ़ हजार विद्यार्थी ब्रह्मचर्य पूर्वक शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। गुरुकुल में वेद, शास्त्र, उपनिषद्, संस्कृत-साहित्य, आयुर्वेद आदि प्राचीन विषयों के अतिरिक्त इतिहास, अर्थशास्त्र, राजनीति शास्त्र रसायन, पाश्चात्य-दर्शन पाश्चात्य चिकित्सा आदि आधुनिक विषयों की भी उन्नतम शिक्षा राष्ट्रभाषा हिन्दी के माध्यम द्वारा दी जाती है। इस समय गुरुकुल विश्वविद्यालय भारत का सब से बड़ा राष्ट्रीय शिक्षणालय है। यहां के विद्यार्थियों में भारतीय संस्कृति, समाज सेवा, स्वदेश प्रेम आदि गुण उत्कट रूप में पाये जाते हैं। यह संस्था आर्य समाज की बड़े गौरव और शान की वस्तु है। इसे आर्य जनता ने अपने तन, मन, धन से सींचा है। इस वाटिका को लहलहाता देखने को किस आर्य बन्धु को इच्छा न होगी। इसकी शान आर्य जनता की शान है।

गुरुकुल को सफल बनाने का काम केवल आर्यसमाज का ही नहीं सम्पूर्ण भारत वर्ष का भी है। आर्य समाज ने गुरुकुल की स्थापना की, उसे पाला पोसा और यौवन तक पहुँचाया। भारत की आर्य (हिन्दु) जाति ने हृदय खोल कर इसका स्वागत किया, धन को सहायता दी और सबसे बढ़कर अपने गोद के लाल देश-सेवा-कार्य के लिये दिये। गुरुकुल में ब्रह्मचारी केवल पञ्जाब से ही नहीं आते, पञ्जाब के अतिरिक्त युक्त प्रांत, गुजरात बम्बई, बिहार, बंगाल हैदराबाद, मद्रास आदि सभी प्रान्तों के विद्यार्थी यहां प्रविष्ट होते हैं। इसलिये गुरुकुल पर जितना स्वत्व आर्य समाज का है, उतना ही आर्य (हिन्दु) जाति मात्र का भी है।

हर्ष का विषय है कि आपके प्रिय उसी गुरुकुल का वार्षिक महोत्सव कई मास की प्रतीक्षा के बाद पुनः आ रहा है। आपकी यह गुरुकुलोत्सव यात्रा सच्चे अर्थों में तीर्थ यात्रा होगी। गुरुकुल के समान सच्चा तीर्थ आज कल इस भारत में कौनसा है? आधुनिक तीर्थ तो अब यथार्थ तीर्थ नहीं रहे हैं। हिमालय की उपत्यका के सघन-रमणीय वनों से घिरे हुए गंगा के पवित्र तट पर वेदध्वनि से पूर्ण गुरुकुल के विशुद्ध वातावरण में आर्य समाज के उन्नतम कोटि के विद्वानों और महात्माओं के सत्संग से बढ़कर आनन्द की चीज इस संसार में और क्या हो सकती है? 'सन्त-समागम' और 'हरिकथा' दोनों अत्यन्त दुर्लभ वस्तुएं यहां पर आपको एक स्थान पर मिलेंगी। इसलिये आपसे साग्रह निवेदन है कि आप इस अवसर को न चूकिये और अपने पुत्र-कलत्र, बन्धु-बान्धव, इष्ट मित्रों के साथ नियत तिथि को गुरुकुल अवश्य पहुंचिये। गुरुकुल में आपके ठहरने का, स्नान-ध्यान तथा खान पान आदि सभी बातों का समुचित सुप्रबन्ध रहेगा और आपको

किसी प्रकार का कष्ट न हो इसका पूरा ध्यान रखा जायगा।

अन्त में जनता को हमारा पुनः सादर निमन्त्रण है कि वह अधिक से अधिक संख्या में गुरुकुलोत्सव में सम्मिलित होकर जहां इस उत्सव को सफल बनायेगी वहां गुरुकुल की उन्नति के लिये भी सक्रिय परामर्श देकर हमें अनुगृहीत करेगी।

गांधी सेवा संघ का पुनः संगठन

(ले० श्री पं० जगन्नाथ वेदालंकार)

महात्मा गांधी जी ने गांधी-सेवासंघ को तोड़ कर कोई नई बात नहीं की है। कुछ वर्ष पूर्व साबरमती आश्रम को भी उन्होंने इसी प्रकार समाप्त कर दिया था। अपने द्वारा स्थापित एवं पालित पोषित संस्था को एक दम बन्द कर देना किसी साधारण व्यक्ति के सामर्थ्य से बाहर की बात है। किन्तु महात्मा जी तो इस युग के एक लोकोत्तर पुरुष हैं। उन्हें जब कभी भी अपनी कृति में कोई त्रुटि दिखाई दी, उसे तोड़ फोड़ कर उन्होंने तुरन्त नई रचना के लिये प्राणपन से प्रयत्न किया। गांधी-सेवासंघ के वर्तमान स्वरूप को नष्ट करना भी उनके इस स्वभाव का एक ताजा उदाहरण है।

संघ को बन्द करने का निर्णय एकाएक इसी सम्मेलन के फलस्वरूप हुआ हो ऐसा नहीं कहा जा सकता। संघ के पिछले दो वर्षों के कार्य-विवरण को पढ़ने से ज्ञात होगा कि 'संघ की आवश्यकता है या नहीं' इस विषय की चर्चा पिछले दो सम्मेलनों में भी हुई थी। इस चर्चा के प्रारम्भ होने का कारण यह था कि जब संघ की स्थापना हुई थी तब, १६१६ में नियत किये हुए कांग्रेस के रचनात्मक कार्यक्रम को चलाने वाली विविध संस्थाएं—हरिजनसेवा-संघ, चर्खा संघ, ग्रामउद्योगसंघ आदि-विद्यमान नहीं थीं। किन्तु इस समय तो ये संस्थाएं अपने विकसित रूप में दिखाई देती हैं। इतना ही नहीं अपितु मजदूर संघ, हिन्दुस्तानी तालीमी संघ, हिन्दी प्रचार सभा, राष्ट्रभाषा-प्रचार समिति आदि अन्य अनेक संस्थाएं भी भिन्न २ रचनात्मक कार्यक्रम को अपनी पूरी शक्ति से चला रही हैं। ऐसी अवस्था में सिर्फ रचनात्मक कार्यक्रम को चलाने के लिये संघ की हस्ती की कोई जरूरत समझ में नहीं आती थी। इसके अतिरिक्त संघ की एक यह आवश्यकता बताई जाती थी कि लोक सेवा करने वाले छोटे-बड़े अनेक कार्यकर्त्ताओं को संघ की जायदाद तथा पूंजी से आर्थिक आश्रय मिलता है। संघ के न रहने पर अनेक सेवकों पर से यह आश्रय उठ जायेगा। परन्तु केवलमात्र आर्थिक सहायता की व्यवस्था के लिये एक व्यापक संघ के बिना एक छोटे से ट्रस्ट से भी काम चल सकता है। सन् १६३४ में संघ को व्यापक रूप मिलने से पहले भी इस प्रकार की व्यवस्था एक ट्रस्ट द्वारा सुचारू रूप से चल रही थी।

मलिकन्दा-सम्मेलन में संघ के अध्यक्ष श्री किशोरलालभाई ने अपने लिखित भाषण में सदस्यों के सामने संघ के अस्तित्व के सम्बन्ध में विभिन्न पहलुओं से विचार पेश किये। उनमें से उपर्युक्त दो-दलीलें सर्व साधारण के समक्ष में आने लायक हैं।

सम्मेलन के पहले दिन हुए अध्यक्ष के भाषण के परिणाम स्वरूप 'संघ का अस्तित्व रहना चाहिये या नहीं, रहना चाहिये तो किस रूप में' यह विषय सम्मेलन की चर्चा का मुख्य विषय बन गया। अध्यक्ष जी के भाषण से यह तो स्पष्ट हो गया था कि इस विषय में उनकी निजी राय यह थी "अगर हम अहिंसा को, एक व्यक्तिगत सिद्धि के रूप में नहीं, बल्कि समाजव्यापी शक्ति के रूप में संगठन चाहते हों, तो अहिंसा में विश्वास रखने वाले लोगों का किसी न किसी रूप में सहयोग या संगठन होना जरूरी है।......मगर फिर भी जो केवल किसी व्यक्ति के लिहाज से या पुराना सम्बन्ध तोड़ने के प्रति अरुचि के कारण, या संघ से मिलने वाली आर्थिक सहायता की वजह से अपना सदस्यता कायम रखते हैं वे अगर उस संस्था को कोई हानि नहीं पहुंचाते तो उसका कोई लाभ भी नहीं करते हैं। उसके नियमों का वे उत्साह से पालन नहीं कर सकते। किसी संस्था में ऐसे सदस्यों की संख्या जितनी अधिक होती है उतनी वह संस्था अधिक निष्प्राण बनती जाती है। जब ऐसी परिस्थिति आवे तो उस संस्था को तोड़ देने में ही हित होता है। क्योंकि उसे तोड़ देने पर जिन्हें वैसी संस्था की जरूरत मालूम होती हो, वे अपनी रुचि के अनुसार दूसरी योजना बनाने के लिये स्वतन्त्र हो जाते हैं।"

अध्यक्षजी को इस राय से प्रतीत होता है कि वे इस छोटे से संघ के अन्दर भी कांग्रेस की तरह उत्पन्न हो रही गन्दगी को अनुभव कर रहे थे। वे संघ को आत्मशुद्धि के लिये भी वर्तमान संघ का बन्द हो जाना श्रेयकर मानते थे। इन सबसे भी बढ़कर एक और प्रबल कारण था जो संघ को समेटने के मूल में काम कर रहा था। 'गांधी-सेवा-संघ के सदस्यों को राजनीतिक कामों में—यानी कांग्रेस तथा धारा-सभा आदि संस्थाओं में— कितना और किस तरह का हिस्सा लेना चाहिये, इस प्रश्न में से ही वस्तुतः संघ के बन्द करने या न करने का सवाल उठा था। क्योंकि इन कामों को करते हुए अहिंसा के सिद्धान्त का पूर्णरूपेण पालन करना समाज की वर्तमान अवस्थाओं में, लगभग असंभव है। राजनीतिक संस्थाओं में पद-लिप्सा के लिये अगर गांधी-सेवा-संघ के सदस्य एक दूसरे के विरुद्ध या किसी तीसरे व्यक्ति के विरुद्ध खड़े हों तो वे अपनी विजय के लिये सत्य और अहिंसा की भी बलि दे देते हैं क्या ऐसी अवस्था में वे सत्य और अहिंसा को मूल सिद्धान्त मानने वाले संघ के सदस्य बने रह सकते हैं? अहिंसा का स्वरूप ही ऐसा है कि वह हिंसा को कभी बढ़ने नहीं देती। इसके विपरीत उक्त प्रकार के सदस्य पारस्परिक वैमनस्य, दलबन्दी तथा द्वेषाग्नि को बढ़ाने में मददगार होते हैं। यहां तक कि जवाहरलाल जी जैसे प्रभावशाली जिम्मेदार व्यक्ति भी ऐसे परिणाम देख कर संघ को राजनीतिक दल के रूप में देखने लगे हैं और अपने प्रैसवक्तव्य में ऐसा प्रकट करते हैं। ऐसी गलतफहमी को और अधिक फैलने देना वाञ्छनीय नहीं था। गांधी सेवासंघ प्रारम्भ से ही राजनीतिक संस्था होने के दावे

से बचता रहा है। यह वस्तुतः सत्य और अहिंसा की-अपने व्यवहार में साधना करने वाले व्यक्तियों का एक अध्यात्म संघ रहा है। 'गांधीवाद' नाम से किसी सम्प्रदाय को चलाना या अग्रगामी,साम्यवादी आदि दलों की तरह कांग्रेस के समकक्ष किसी राजनीतिक दल को कायम करना इस का उद्देश्य नहीं रहा है।

इसी लिये बापू जी ने इस सम्मेलन में अपने प्रारम्भिक भाषण में इस अहिंसा-विरोधी तत्त्व की पूरे विस्तार से चर्चा की और राजनीतिक कामों में भाग लेने वाले सदस्यों को संघ से पृथक् हो जाने या राजनीतिक कामों को छोड़ देने की सलाह दी। महात्मा जी के भाषण पर सदस्यों ने अपने २ विचार प्रकट किये तथा शङ्का-समाधानात्मक चर्चा भी की। फलतः सब सदस्यों की राय से संघ को रूपान्तरित करने का निश्चय किया गया। संघ के नये रूप को निर्धारित करने के लिये सब अधिकार कार्यवाहक समिति को सौंप दिये गये। कार्य वाहक समिति में भी नयी नीति के अनुसार परिवर्तन कर राजनीतिक कामों में भाग लेने वाले सदस्यों के स्थान पर नये सदस्यों को नामजद किया गया। इस समिति ने भावी संघ की मोटी रूपरेखा नियत करने के लिये घण्टों तक विचार-विमर्श कर एक प्रस्ताव संघ के अधिवेशन में विचारार्थ प्रस्तुत किया। यह प्रस्ताव एक दो शब्दों के हेरफेर से स्वीकार कर लिया गया। संघ के पञ्च वार्षिक सम्मेलन का सम्पूर्ण निष्कर्ष इस में निहित है। प्रस्ताव अविकल रूप में नीचे दिया जाता है-

"पिछले कई वर्षों के अनुभव ने यह प्रकट कर दिया है कि गांधी सेवा संघ के सदस्यों द्वारा राजनीतिक संस्थाओं में अधिकार-ग्रहण अवाञ्छनीय है। अतः संघ की यह समिति निर्णय करती है कि संघ के वे सदस्य जो ऐसी संस्थाओं में निर्वाचित पदों पर हैं और उन्हीं पर रहकर सेवा करना चाहते हैं, उन्हें संघ की सदस्यता से अलग हो जाना चाहिये। इसका यह अर्थ नहीं कि ऐसे सदस्य या इस प्रकार का राजनीतिक काम कोई निचले दर्जे की वस्तु है। इस निश्चय पर पहुँचने का प्रबल कारण यह हुआ है कि संघ-सदस्यों के राजनीति में सक्रिय भाग लेने से बहुत कटुता उत्पन्न हुई है, जो इस बात का प्रमाण है कि उनका अहिंसा का पालन अपर्याप्त रहा है। शुद्ध अहिंसा का स्वरूप ही ऐसा है कि वह हिंसा को कभी बढ़ने नहीं देती।

"संघ का सदा से ही यह दृढ़ विश्वास रहा है कि भारत के करोड़ों गरीबों की उन्नति रचनात्मक काय के बिना होनी असंभव है। इसी में ही आम जनता सीधे तौर पर भाग ले सकत है। अतएव भविष्य में संघ को क्रिया-शक्ति रचनात्मक कार्य तक ही सीमित रहेगा और इसका सम्बन्ध रचनात्मक कार्यक्रम के उस भाग से होगा जो वर्तमान में चर्खासंघ, ग्रामोद्योग संघ आदि के क्षेत्र में नहीं आता; उदाहरणार्थ, रचनात्मक कार्यक्रम का अहिंसा के साथ क्या संबन्ध है तथा इस कार्यक्रम का व्यक्तियों और समाज पर क्या असर होता है इस विषय का पर्य-वेक्षण, स्वाध्याय और अनुसंधान। और क्योंकि आज इस विशेष कार्य के योग्य पर्याप्त कार्यकर्ता नहीं हैं अतः जब तक उक्त स्वाध्याय व अनुसंधान के लिये उपयुक्त व्यक्ति नहीं मिल जाते हैं तब तक संघ के फण्ड का प्रबन्ध, उसका वैतनिक कार्यकर्त्ताओं में तथा अन्यत्र विभाजन और मासिक 'सर्वोदय' का प्रकाशन—इन कार्यों के अतिरिक्त संघ की अन्य सभी प्रवृत्तियों को स्थगित रक्खा जायगा।

"आज से संघ की सदस्यता केवल निम्न व्यक्तियों तक परिमित रहेगी और ये ही व्यक्ति संघ की कार्यवाहक समिति का भी काम करेंगे।

श्री कृष्णदास जाजू	अध्यक्ष और ट्रस्टी
" रघुनाथ श्रीधर धोत्रे	मन्त्री और "
" किशोरलाल मश्रूवाला	सदस्य और ट्रस्टी
" गोपबन्धु चौधरी	"
" अभयदेव जी	"
" सतीशचन्द्रदास गुप्त	"
" दिलखुश दीवान जी	"
" सीताराम पटवर्धन	"
" कृष्णदास गांधी	"

और अन्य सब सदस्यों का त्यागपत्र समझा जायगा। यह भी निश्चय किया जाता है कि इस कार्यवाहक समिति को संघ के विधान को संशोधित या परिवर्तित करने के सभी अधिकार रहेंगे। संघ के अन्य सब अधिकारों का भी यह समिति उपयोग कर सकेगी।"

महात्मा जी ने इस प्रस्ताव पर अपना भाषण देते हुए सदस्यों से कहा कि यद्यपि अब आप संघ के सदस्य नहीं रहे हैं किन्तु आप में से प्रत्येक व्यक्ति संघमान्य सत्य और अहिंसा के आदर्शों का प्रतिनिधि बन कर रहेगा ऐसी मेरी श्रद्धा है। आप में से प्रत्येक को जङ्गम गांधी सेवासंघ बन जाना चाहिए। 'एक' की बजाय २५० जङ्गम संघ बन जाने से संघ से होने वाला लाभ और अधिक बढ़ जायगा। आप सबकी रचनात्मक कार्य करने की शक्ति भी बढ़ेगी।

संघ का यह विघटन वस्तुतः अधिक पवित्र एवं उदात्त भावी संघटन का सूचक है।

सूचना

आयुर्वेद सम्मेलन—

गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी के ३८ वें वार्षिकोत्सव के अवसर पर एक बृहत् 'आयुर्वेद सम्मेलन' का आयोजन किया गया है जिसका सभापतित्व श्री पं० शिवशर्मा आयुर्वेदाचार्य करेंगे। आप 'निखिल भारतीय आयुर्वेद महामण्डल' के सभापति हैं और अपना सारा जीवन आयुर्वेद के लिये अर्पित कर चुके हैं। वैदिक काल के ऋषियों की पाठन-पद्धति और प्राचीन आयुर्वेदिक चिकित्सा-पद्धति पर सम्मेलन में आप अपने विचार प्रकट करेंगे। उस आदर्श पद्धति को पुनरुज्जीवित करने के लिए उत्साह रखने वाले सब वैद्य, विद्यार्थी और आयुर्वेद के प्रेमी सज्जन उसमें साग्रह निमन्त्रित हैं।

कविता सम्मेलन—वार्षिकोत्सव के इस मनोरंजक सम्मेलन के सभापति कविवर श्री भगवतीचरणवर्मा होंगे।

गुरुकुल सम्मेलन—इस सम्मेलन के सभापति श्री गंगाप्रसाद जी चीफ जज टिहरी होंगे।

गु रु कु ल

३ चैत्र शुक्रवार १९९६

स्व० आचार्य रामदेव जी

[ले० श्री रणजीत जी आयुर्वेदालङ्कार]

परिस्थिति ने उसे प्रकाश में न आने दिया; देश और काल ने उसके क्षेत्र को सीमित कर दिया; मजहब के अन्धों ने उसे और उसकी जन्मदात्री संस्था को साम्प्रदायिक कह कर दुनिया की नजरों में गिराने की कोशिश की। पर इससे क्या?

धुन के धनी भी कभी डिगते देखे हैं? पानी का प्रवाह भी किसी के रोके रुका है?

क. ईप्सितार्थस्थिरनिश्चयं मनः
पयश्च निम्नाभिमुखं प्रतीपयेत् (कालिदास)

मक्का और मदीना में वेटिकन और वेस्ट मिनिस्टर में ओ३म् का झण्डा फहराऊंगा।' उसका सपना था—उसकी दिली तमन्ना थी।

पवित्र होम-धूम का स्थान तोप के गोलों के धुएं और जहरीली गैसों ने ले लिया है।

'मित्रस्य चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे' और 'वसुधैव कुटुम्बकम्' जपने की चीज रह गये हैं।

आश्रमों के प्रशान्त वातावरण ने मिलों की भस भस और मोटरों की भौं भौं के लिए जगह खाली कर दी है।

मां की घुटी के साथ 'कृतं मे दक्षिणे हस्ते जयो मे सव्य आहितः' (सफलता मेरे दायें हाथ में और जय बांए हाथ में धरे हैं) का पाठ करने वाले युवा आज पस्त हिम्मत पड़े हैं! काल का कैसा कुटिल परिवर्तन!!

दुनिया बहुत भटक चुकी। अब तो लौट चलो वेदों की ओर—Back to the Vedas. सिवा इसके निस्तारा नहीं।

यह धकापेल—यह कशमकश नहीं मिटेगी जब तक सादा रहन सहन और उच्च विचार— 'Simple living and high thinking' मानव जीवन की भूमिका नहीं बनते।

उसका जिगर अन्दर ही अन्दर चीख उठा, जब उस चेतन आत्मा ने जीवन की पहिली सीढ़ी पर पैर रखा।

× × ×

मेरा राम—फलां हाईस्कूल में ऊँचो ग्रेड का मास्टर, फिर हेडमास्टर—फिर कहीं प्रिन्सिपल और......औरफिर न जाने क्या क्या? पिता आशा के हिण्डोले में झूल रहे थे। उनके मन प्रेय मार्ग के अनुसरण में जीवन की इति-कर्तव्यता थी।

उधर तरुण 'राम' की धमनियों में द्वन्द्व मच रहा था। वह किन्हीं जुदे परमाणुओं का बना था—

खब्त और पागलपन, दुनिया की ठोठी और सगों की उपेक्षा, फाके और गुरबत जिनके प्रधान लक्षण हैं— पर साथ ही जीवित दशा में अभिमान और आशा से उन्नत मस्तक और बाद को कल्पान्तस्थायी कीर्ति। और सचमुच आचार्य रामदेव ने अपनी जिन्दगी में ये दिन देखे हैं।

पिता जी को आज्ञा शिरोधार्य। पर आत्मा कीआवाज को दबाकर? 'असंभव—त्रिकाल में असंभव!'

आत्मा की आवाज तो सुननी ही पड़ेगी। 'आत्मा वाऽरे श्रोतव्यः······ 'शास्त्र का आदेश है।

तो फिर पेट?······पेट की रक्षा धर्म करेगा। मेरा काम धर्म की रक्षा करना है। 'धर्मो रक्षति रक्षितः' (मनु)

और सचमुच धर्म महात्मा मंशीराम (अमरकीर्ति स्वा० श्रद्धानन्द) का रूप धर कर आया।

पिता ने पुत्र की धार्मिक प्रवृत्तियों से रुष्ट होकर घर से निकल जाने की धमकी दी—निराश्रित होने पर उसकी अक्ल खुद ठिकाने आजायगी, इस धारणा से। कैसी बेहूदगी! कैसी विडम्बना!!

रामदेव नगर के एक पार्क में जाकर बैठ गया—घर को सर्वथा न लौटने का निश्चय करके। पिता जी ने आकर लाख मनाया—सगे संबन्धियों और बुजुर्गों ने हजार समझाया—पर नहीं। अब अपनी बारी थी। सबको सीधा था उत्तर—'पूज्य पिता जी की आज्ञा कैसे टालूँ?'

महात्मा मंशीराम जी को खबर हुई। तुरन्त पहुंचे। इस प्रथम समागम ने और उसके भी पहिले ही वाक्य ने कट्टर विरोधी होते हुए भी रामदेव जी के हृदय में महात्मा जी के लिए घर कर लिया। महात्मा जी ने उन्हें अपने यहां आश्रय दिया।

ज्ञान और कर्म का कैवल्य की सिद्धि के लिये संयोग होगया। और इसके बाद आर्यसमाज और विशेषतः गुरुकुल कांगड़ी का इतिहास बहुत कुछ इस जोड़ी का इतिहास है।

× × ×

हिन्दुस्तान ने अनेक सम्राटों की विजय यात्राएं देखी हैं, अनेक राजघरानों को कदमबोसी की है। पर शर्त जो एक भी हिन्दुस्तान से हिन्दुस्तानियत को मिटा सका हो। उलटे यहां आकर यहां के रंग में रंग गये। क्या सिकन्दर क्या अकबर।

पर अब के सामना विकट था। सात समुद्र पार से उठी हुई आंधी का पहिला हमला हमारी संस्कृति पर था धरती के टुकड़ों पर पीछे।

यूरोप और अमेरिका से पादरियों के यूथ के यूथ समूचे भारत को बत्तीस वर्षों में ईसाई बनाने की योजना कर खेमे डाले जा रहे थे।

लार्ड मैकाले ने जिस पाश्चात्य शिक्षा का सूत्रपात किया था वह उन्हीं के शब्दों में 'हिन्दुस्तानियों को रंग रूप से हिन्दुस्तानी, पर रुचि, गति मति, वाणी और बुद्धि से अंग्रेज बनाने जा रही थी'।

ऋषि दयानन्द ने उन लोगों के रास्ते में जबर्दस्त चट्टान खड़ी करदी।

'भारत भूमि रत्नगर्भा है, इस केलालों को किसी चीज के लिये दूसरों के आगे हाथ पसारने की जरूरत नहीं।'

उनके उपदेशों का सार था।

'तुम्हारे यहां कुछ नहीं' हमें दिखाया जा रहा था। 'हमारे यहां सब कुछ है, जो तुम्हारे यहां है, और होगा।' ऋषि ने प्रतिगर्जना की।

ऋषि की स्पिरिट को उनके पीछे आर्य समाज ने झेल लिया। ब्रिटिश-सिंह बेहद दहाड़ा चिल्लाया। मगर यह एक अनिवार्य प्रतिक्रिया थी।

× × ×

ब्रिटिश साम्राज्य के भूतपूर्व प्रधान मंत्री रेम्जेमेकडोनल्ड ने एक बार लिखा था—

'मैकाले की स्थापना पर वाचिक हमला करने वाले तो बहुत निकले, पर यदि किसी ने उसका अमली तौर पर विरोध किया है तो गुरुकुल कांगड़ी के निर्माताओं ने।'

महात्मा गांधी गुरुकुल कांगड़ी को आर्य समाज की सब से उत्कृष्ट प्रसूति मानते हैं।

गुरुकुल कांगड़ी भारतवर्ष में पहिली संस्था है, जो इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है कि मातृभाषा में ऊँची से ऊँची शिक्षा दी जा सकती है।

मङ्गलाप्रसाद पारितोषिक के विजेताओं में अधिकांश आर्यसमाजी हैं—जिनका बड़ा हिस्सा गुरुकुल कांगड़ी से सम्बन्ध रखता है।

\+ + + +

गुरुकुल के नाम से घबराइये नहीं। हम कब कहते हैं कि आप विद्यार्थियों को पाणिनि का व्याकरण या पतञ्जलि का योगदर्शन पढ़ाइये? जब हम 'गुरुकुल' शब्द का प्रयोग करते हैं तो हमारा अभिप्राय एक खास शिक्षा प्रणाली से होता है।

आप एक आदर्श में जाति को अनुस्यूत देखा चाहते हैं?—तो फिर हटाइये जाति के बच्चों को—भावी पीढ़ी को—पुराने, आदर्श के विपरीत वातावरण से! उनके लिए नया वातावरण खड़ा कीजिये। बस गुरुकुल होगया; फिर चाहे आप उसे जंगल में रखें या भर बस्ती में।

और यही गुरुकुल के सही मानी हैं। इन मानी में आज आठ करोड़ का जर्मनी एक विशाल गुरुकुल है, जहां का कठोर नियन्त्रण विदेशी ब्रोडकास्ट सुनने पर चार वर्ष की कैद सुना सकता है। समझे? और इसी राह पर गुरुकुल कांगड़ी चलाया जा रहा है।

यदि १९२४ की बाढ़ ने गुरुकुल को लाखों के नुकसान में न उतार दिया होता तो वहां एक आदर्श औद्योगिक महाविद्यालय (इण्डस्ट्रिअल कालिज) की स्थापना कब की हो चुकी होती। प्राच्य और पाश्चात्य चिकित्सा शास्त्र की शिक्षा देने के लिये आयुर्वेद महाविद्यालय तो देर से चल ही रहा है।

इस तेजोदीप्त संस्था गुरुकुल कांगड़ी में, महात्मा मुंशीराम के सर्वमेध ने आत्मा डाली तो मुख्यतः आचार्य रामदेव जी ने उसका शरीर निर्माण किया।

\+ + + +

गत ६ दिसम्बर १९३९ को आर्य समाज के इस महारथी का शरीरपात हो गया।

आचार्य रामदेव जी को खो कर आर्यसमाज ने गुरुदत्त विद्यार्थी के पीछे सब से प्रचण्ड स्वाध्यायी और लेखक, सबसे अधिक प्रभावशाली वक्ता, वैदिक धर्म का सब से बढ़कर विदेशों में संदेश पहुंचाने वाला, गुरुकुल शिक्षा-प्रणाली का सब से बड़ा पोषक, और सबसे ज़ियादह मनसा वाचा कर्मणा समाज सुधारक खो दिया।

१९३२ के सत्याग्रह संग्राम में आचार्य जी ने समस्त आर्यसमाजों को संग्राम में कूदने की सलाह दी थी और स्वयं भी पञ्जाब के डिक्टेटर के रूप में २॥ वर्ष के लिये कृष्णमन्दिर के अतिथि हुए थे। बड़े बड़े राष्ट्र नेताओं की आचार्य के प्रति श्रद्धाञ्जलियों के साथ हम भी अपनी नम्र अञ्जलि आचार्य के चरणों में अर्पित करते हैं। आदरणीय कुलबन्धु पण्डित बुद्धदेव जी विद्यालंकार के शब्दों में—

'आचार्य जी का कुछ ही दिनों का सहवास इस बात ज्वलन्त निदर्शन होता था कि—

'लक्ष्मी सच्चे ब्राह्मण के पास बार बार आती है और हर बार दरवाजे पर से ही ठुकरा कर लौटा दी जाती है।'

आर्य सत्याग्रह में गुरुकुल की आहुति

अदालत में

(७)

[ले० श्री क्षितीश वेदालंकार]

अगले दिन सवेरे जब रोटी खाने के बाद हम अपना तसला-चम्मू साफ़ कर रहे थे और यह कोशिश कर रहे थे कि देखें कि कौन अपना तसला ज्यादा चमकाता है—क्यों कि यह जानते हमें देर नहीं लगी कि अपना तसला चम्मू सबसे अधिक चमकदार रखना भी जेल में एक प्रतिद्वन्द्विता की चीज़ है; उसी समय हमारा बुलावा आया। दो-दो की पंक्ति [जिसे वहां 'जोड़ी' कहा करते थे] में बैठा कर हमें हमारे टिकट बांटे गये। हम समझ गये कि आज अदालत में हमारी पेशी है।

सिग्रिगेशन वार्ड से निकाल कर पुनः जेल के मुख्यद्वार के अन्दर धकेले गये। वहां हाजिरी हुई—अपने और अपने संरक्षकों के अनहोने नाम सुनने को मिले-धीरेन्द्र का 'धीरानन्द' विद्यासागर का 'दरियासागर' और सत्येन्द्र का सत्ता बन्दर। या तो वे सिपाही काले अक्षर और भैंस में अन्तर नहीं जानते थे या फिर उर्दू भाषा ही इतनी वाहियात है कि उस में लिखो कुछ और पढ़ो कुछ।

लारी आई और उसमें ठूँस दिये गये। एक अजीब तमाशा था। एक के ऊपर एक फिर दो—फिर तीन, और इस प्रकार करते २ उस बीस सवारियों की लारी में पूरे पचास कैदी ठूंस दिये गये—मानों कि यह कोई मालगाड़ी का डब्बा हो जिस में ऊपर से नीचे तक बोरियां ठूंस ठूंस कर भरनी हों। ऊपर से तुर्रा यह कि इस

सिपाही उसमें और बैठाये गये—सशस्त्र। सिपाही सीटों पर बड़े आराम से बैठे और कैदी एक दूसरे के ऊपर लदे हुए सांस लेने के लिये तरसने लगे। इस वातावरण को और गहरा करने के लिये मोटर के चारों ओर पर्दा लगा दिया गया—क्यों कि शहर में से होकर गुज़रते समय डर था कि कैदी नारे लगा कर नागरिकों को कहीं उत्तेजित न कर दें।

अदालत के द्वार के सामने उतरे। ज़रा सांस लेने का अवकाश मिला। मन ही मन भाग्य नगर के भाग्य की सराहना करने लगे जहां मनुष्य को पशुओं से भी नीच भाग्य का शिकार बन कर रहना पड़ता है। और फिर भी यह अधिकार उसका नहीं है कि शिकायत कर सके!

५ फर्वरी। दिन भर कटघरे में बन्द रहे और प्रतीक्षा करते रहे कि देखें कब हमारा बारी आती है। कटघरे के अन्दर बाहर चारों ओर उन सिपाहियों की बीड़ी सिगरेटों की दुर्गन्ध भरी हुई थी, जो कैदियों के नियन्त्रण के लिए पहरा देने बात बात में गालियों की बौछार कर रहे थे। लाचार होकर चुपचाप एक कोने में प्राणायाम का अभ्यास करते हुए सिकुड़े बैठे रहे। एक बार पेशी की नौबत आई तो हाथों में हथकड़ियां डालकर पेश किया जाने लगा, किन्तु हम अदालत की पूरी तरह झांकी भी न लेने पाये थे कि वापिस लौटा दिया गया। पेशी की तारीख बदल गई।

× × × ×

आठ फर्वरी। अदालत के अन्दर-मजिस्ट्रेट के सामने। मजिस्ट्रेट ने यह जान कर कि हम सब विद्यार्थी हैं, अपनी न्यायपरायणता को प्रमाणित करने के लिये पूछा "क्या हिन्दुस्तान का नक़्शा देखा है?"

"हां।"

"क्या रङ्ग है?"

"लाल।"

"यदि लड़ना था तो वहीं लाल रंग से क्यों नहीं लड़े? लड़ाई तो उसके साथ थी जो पेरा गैरा नत्थुखैरा तीसरा आदमी हमारे बीच में आ घुसा है। आपस में लड़ने से क्या फायदा?"

मजिस्ट्रेट साहब के मुख से ऐसी उदारता-पूर्ण बुद्धिमानी की बात सुनकर आश्चर्य हुआ। लेखक ने उत्तर दिया—

"मजिस्ट्रेट साहब! आपने बात बड़े पते की कही है। किन्तु यदि आपने थोड़ा-सा और ध्यान दिया होता तो शायद आप ऐसा न कहते। इस समय हम उन अधिकारों के लिये लड़ने आये हैं जो किसी भी जाति और किसी भी राष्ट्र के लिये जन्मसिद्ध समझे जाते हैं। यदि वे जन्मसिद्ध अधिकार हम ब्रिटिश भारत में प्राप्त न होते, तो हम वहां लड़ते। किन्तु जो चीज वहां हमें प्राप्त है, वह यहां नहीं है। क्या आप नहीं जानते कि हिमालय से कन्या कुमारी तक सारा भारतवर्ष एक देश है, एक राष्ट्र है। उसके किसी एक भाग पर यदि अन्याय और अनीति का ताण्डव होता है, तो न केवल हम विद्यार्थियों का, किन्तु आपका और प्रत्येक भारतवासी का कर्त्तव्य है कि वह उसको दूर करे। हैदराबाद की जनता को नागरिक स्वतंत्रता प्राप्त नहीं है। यदि आप "नागरिक स्वतन्त्रता" की परिभाषा जानना चाहते हैं तो मैं अपने प्रोफेसर के शब्दों में कहूँगा कि "प्रेस और वाणी की स्वतन्त्रता का ही नाम नागरिक स्वतन्त्रता है। आज हैदराबाद के निवासियों को न तो प्रेस की स्वतन्त्रता है और न ही वाणी की। किसी भी नागरिक के ये आदिम अधिकार हैं, इनके बिना वह सभ्य नहीं कहला सकता।"'मत समझिये कि यह साम्प्रदायिक प्रश्न है। यह तो मानवता का प्रश्न है—इसमें पक्षपात की गुंजायश ही नहीं हो सकती। यह और बात है कि हैदराबाद की जनता अस्सी प्रतिशत हिन्दू है इसलिये ये सारे अत्याचार हिन्दुओंके ऊपर जाकर पड़ते हैं। किन्तु मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि यदि काश्मीर में या ऐसी ही किसी अन्य रियासत में जिसमें, अधिकतम आबादी मुसलमानों की होती और वहां अत्याचार होते, यदि वहां इस प्रकार मानवता का अपहरण होता तो, जिस प्रकार हैदराबाद में सब से पहले सत्याग्रह करने वाला गुरुकुल कांगड़ी का जत्था है, उसी प्रकार वहां भी सब से पहला सत्याग्रही जत्था गुरुकुल कांगड़ी का ही होता!'''इसी लिये हम उस लाल रंग को छोड़ कर इस पीले रंग से लड़ने आये हैं।"

सारी अदालत में स्तब्धता छा गई। बाहर बहुत भीड़ इकट्ठी हो गई थी और उत्सुकता से प्रतीक्षा कर रही थी कि इस केस का क्या फैसला होता है। उधर आंख उठा कर देखा–कोई हिन्दू नजर नहीं आया क्यों कि सिपाही इतना स्वेच्छाचार से काम लेते थे कि हिन्दुओं को पहले से ही द्वार में नहीं घुसने देते थे।

अमीन साहब ने उठ कर हमारे वारन्ट पेश किये। धारा १२६, १२२, १५ और २८ के अनुसार हमें गिरफ्तार किया गया था। बयान देते हुए उन्होंने झूठे झूठे अभियोग लगाये कि किस तरह इन्होंने जनता को बरगलाया, उत्तेजित किया, साम्प्रदायिक वैमनस्य फैलाया और अफ़वाहें उड़ाईं। जब गवाह की आवश्यकता हुई तो यों ही गली में से जिस को किराया देकर लाये थे और एक एक शब्द घुटवा रखा था, उसे हाजिर किया। जब उस से जिरह की गई तो वह दिशायें ताकने लगा और कुछ ऐसा असम्बद्ध बातें कह गया कि उनका सम्बद्ध करना अमीन साहब के लिये भी मुश्किल पड़ गया। उन अमीन साहब पर हैरानी हो रही थी जो गिरफ्तार करते समय बड़े सभ्य शिष्टाचार-युक्त और समझदार बन रहे थे, किन्तु अब वही परले सिरे के झूठे के भी कान काटते थे। कोई और गवाह पेश करने की मांग की तो वे एक से अधिक गवाह भी पेश नहीं कर सके।

मजिस्ट्रेट साहब हममें से प्रत्येक से अलग २ बयान लेने लगे। कहा—तुम पर ये अभियोग हैं—जलसा किया, जलूस निकाला और जनता को भड़काया एवं विद्रोहात्मक पर्चे बांटे (धारा १२६, १२२ १५ और १८,), इनके उत्तर में जो कुछ कहना हो, कहो।

प्रत्येक ने अपने ढंग से युक्ति पूर्वक इन अभियोगों

की निस्सारता सिद्ध की और कहा कि न तो हम ने कोई जलूस निकाला, नहीं जलसा किया और नहीं जनता को भड़काया । हां, सत्याग्रह बेशक किया है, बस आप इनमें से कुछ भी समझ लें । यह तो हम पहले ही जानते हैं, कि आप के यहां की अदालतें न्याय के नाम पर ढोंग रचती हैं । यहां भी वारण्ट कटते हैं, गवाह पेश किये जाते हैं और जिरह भी होती है ; किन्तु परिणाम वही होता है जो कि पुलिस चाहती है । यहां की पुलिस और न्यायालय दोनों एक हैं । इस लिये न्याय की आशा से और निज को निर्दोष सिद्ध करने के लिये हम कुछ भी नहीं कहना चाहते । कहना चाहते हैं तो केवल इतना कि इस रियासत के पक्षपात-पूर्ण कानूनों को बदलने के लिये हम जो कुछ कर सकते थे, हमने किया है । अब हमको विद्रोह का दोषी करार देकर आप जो करना चाहते हैं, आप करिये ।

"क्या कोई वकील करना चाहते हो ?"—मजिस्ट्रेट साहब ने पूछा ।

"नहीं ।"

"कोई गवाह पेश करना चाहते हो ?"

"नहीं । मजिस्ट्रेट साहब ! गवाह तो हम पेश करें कहां से ? क्यों कि—इस रियासत में हम अजनबी मेहमान हैं । किसी भी आदमी को हम नहीं-जानते । क्योंकि हमतो पहली बार ही इस रियासत में आये हैं । हां, जानते हैं तो केवल एक व्यक्ति को—वे हैं हमारे अमीन साहब । पर दुःख यही है कि सारी रियासत में जिस एक मात्र व्यक्ति को हम जानते हैं, वे अमीन साहब ही हमारे उल्टे पड़ गये हैं और आज झूठ बोलने पर तुले हुए हैं [हँसो] और वकील हम करें क्यों? क्योंकि हम हरिद्वार से —इतनी दूर से जो यहां आये हैं, सो झूठ बोलने के लिये नहीं आये । और क्यों कि हम पढ़े-लिखे कॉलिज के विद्यार्थी हैं, इस लिये यह कल्पना भी नहीं की जा सकती कि हम किसी के बहकाने से आगये हैं । जो कुछ हमने किया है, उतना हम स्वयं मानते हैं, जो नहीं किया है उसे मानेंगे भी नहीं-चाहे कुछ ही कर लीजिये । अब आप जो सजा देना चाहें—दें, हमारा काम समाप्त हो गया ।

× × ×

चार घण्टे की बहस के बाद-'लञ्च' का समय आगया। लञ्च के बाद फैसला सुनाया गया । २८ धारा हटादी गई बाकी हरेक धारा के लिये ६-६ महीने का सख्त कारावास —कुल डेढ़ साल । किन्तु तीनों सजायें इकट्ठी चलेंगी, इसलिये ६ महीनों में तीनों समाप्त ।

लौटते समय ५० के बजाय २० ही कैदी लारी में बैठे, क्योंकि अदालत में मजिस्ट्रेट के सामने पुलिस-इंस्पेक्टर ने स्वीकार कर लिया था कि आदमी की जान की अपेक्षा सरकार का पेट्रोल अधिक महँगा नहीं है ।

गुरुकुल-समाचार

ब्र० सत्येन्द्र १४ श्रेणी, धर्मप्रकाश १४ श्रेणी श्लेष्म-ज्वर, महेन्द्रपाल ४र्थ चोट, देवेन्द्र ३य मलेरिया ज्वर ।

गत सप्ताह उपरोक्त ब्रह्मचारी रोगी हुए थे । अब सब स्वस्थ हैं ।

यह सप्ताह बहुत विशेष महत्व का रहा । ७ मार्च को ऋषिबोधोत्सव तथा १२ तारीख को पं० लेखराम दिवस आचार्य स्वामी अभयदेव जी की अध्यक्षता में बड़े उत्साह से सफलता पूर्वक मनाये गये । १२ तारीख को बिजनौर जिले के प्रसिद्ध कांग्रेसी कार्यकर्ता म० गोविन्द सहाय का 'वर्त्तमान युद्ध के कारण' इस विषय पर बड़ा मनोरञ्जक तथा सारगर्भित व्याख्यान हुआ । १३ तारीख को अमियचन्द्र चक्रवर्ती का 'शान्ति निकेतन' विषय पर व्याख्यान हुआ । उत्सव समीप आ रहा है सब उस की तैयारी में लगे हुए हैं ।

गुरुकुल श्रद्धानन्द सेवाश्रम का कार्य केप्टिन रामचन्द्र जी रिटायर्ड सिविल सर्जन की अध्यक्षता में बड़े जोर शोर से हो रहा है । चिकित्सा करवाने के लिये रोगी प्रतिदिन अधिक संख्या में आ रहे हैं ।

स्नातक बन्धुओं को सूचना

बम्बई के बोर्ड आफ-इंडियन मेडिसिन (देसी-चिकित्सा-बोर्ड) ने गुरुकुल की आयुर्वेद की डिग्री को स्वीकार कर लिया है । सेवा का विचार रखने वाले बम्बई और गुजरात के स्नातक इससे लाभ उठा सकते हैं ।

सत्यव्रत
मुख्याधिष्ठाता
गुरुकुल कांगड़ी

छुट्टी की सूचना

प्रेमी पाठकों से निवेदन है कि वार्षिकोत्सव आ जाने के कारण २२ मार्च को 'गुरुकुल' का अंक प्रकाशित न हो कर २९ मार्च को प्रकाशित होगा ।

आर्यसमाजों के पुस्तकालयों के लिये उपयोगी पुस्तकें

श्री सूर्यकुमारी ग्रन्थावली का द्वितीय ग्रन्थ

बृहत्तर भारत

[ले० श्रीयुत पं० चन्द्रगुप्त वेदालंकार]

भारतीय संस्कृति का विदेशों में प्रचार अर्थात् चीन, जापान, जावा, कम्बोडिया, तुर्किस्तान, अफ्रीका और अमेरिका प्रभृति देशों में, हमारे देश के धर्म और संस्कृति का प्रचार किस प्रकार हुआ, भारतवर्ष के धर्मप्रचारकों ने विदेशों में जाकर अपने धर्मको किस प्रकार फैलाया, यह सब इस पुस्तक में पाठकों को मिलेगा। 'बृहत्तरभारत' भारत के अतीत इतिहास की सुवर्णमय झांकियों का एक सुन्दर संग्रह है, इसे पढ़ कर प्रत्येक भारतीय का हृदय अपने पूर्व पुरुषाओं के कारनामों की याद से प्रफुल्लित हो उठेगा और अपनी प्राचीन सभ्यता के गौरव को याद से गद्गद् हो जायगा। इस विषय पर हिन्दी में और कोई अधिक प्रमाणिक पुस्तक आपको न मिलेगी। पुस्तक बढ़िया एन्टिक कागज पर छपी है। मूल्य ५॥) सजिल्द, अजिल्द, ५) रु०

आत्म-मीमांसा

श्रद्धानन्द-स्मारक निधि का एकादश पुष्प

[ले—श्री युत प्रो० नन्दलाल जी खन्ना]

यह अपने ढंग की अद्वितीय पुस्तक है। विद्वान् लेखक ने 'जीवात्मा' के सम्बन्ध में हरएक पहलू पर बड़े विस्तार से विचार किया गया है। 'आत्मा' जैसे गूढ़ विषय को उदाहरणों के साथ इतने मनोरंजक ढंग के साथ लिखा है कि पुस्तक हाथ से छोड़ने की इच्छा नहीं होती। इसको खूबी पढ़ने पर ही मालूम होगी। पुस्तक की सजीव भाषा, बढ़िया कागज, छपाई सफाई उत्तम, पृ० सं० ३००।

वैदिक-विनय

(लेखक—आचार्य श्री पं० देवशर्मा जी 'अभय')

लेखक के नाम से जनता भली भांति परिचित है, आपके लेखों और पुस्तकों से धार्मिक और भक्त जनता को बहुत लाभ पहुंचा है। वैदिक विनय आपकी लेखनी की जीवनकृति है। बड़ी खोज और चिरकाल के वेदाध्ययन से आपने अपने जेल जीवन के दिनों में इस अनुपम ग्रन्थ की रचना की है।

यह पुस्तक तीन खण्डों में समाप्त हुई है। प्रत्येक खण्ड में चार चार मास के लिये वैदिक प्रार्थनायें छांट कर रख दी गई हैं। एक दिन के लिये एक प्रार्थना नियत है। पहले वेद मन्त्र दिया गया है, उस के बाद मन्त्र द्वारा एक विनय (प्रार्थना) की गई है और अन्त में शब्दार्थ दे दिया है। प्रत्येक मास के आरम्भ में व्यायाम की भी एक विधि लिख दी गई है, इस से पुस्तक की उपयोगिता और भी बढ़ गई है। देश के समाचार-पत्रों ने मुक्तकंठ से इस ग्रन्थ की प्रशंसा की है। उत्तम टाइप और बढ़िया कागज पर यह ग्रन्थ छपा है। मूल्य १) प्रति खण्ड

आर्य सत्याग्रह में गुरुकुल की आहुति

[ले० श्री पं० क्षितीश वेदालंकार]

योग्य लेखक ने इस पुस्तिका में सजीव भाषा में बड़े सुन्दर ढंग से आर्य सत्याग्रह में गुरुकुल के ब्रह्मचारियों की दिलेरी और वीरता का तथा जेल के विभिन्न अनुभवों का दिग्दर्शन कराया है। प्रत्येक गुरुकुल प्रेमी को यह पुस्तक अवश्य पढ़नी चाहिये। पृष्ठ संख्या ५०, मूल्य ।)

प्रबन्धकर्ता—गुरुकुल पुस्तकभण्डार, पो० गुरुकुल कांगड़ी, सहारनपुर।

चौधरी हुलासराय के प्रबन्ध से गुरुकुल मुद्रणालय गुरुकुल कांगड़ी में मुद्रित तथा प्रकाशित।

* ओ३म् *

"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत"

Reg. No. A. 2927

गुरुकुल

एक प्रति का मूल्य -) [गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख-पत्र] वार्षिक मूल्य २॥)

सम्पादक—साहित्यरत्न हरिवंश वेदालङ्कार

वर्ष ४] गुरुकुल काङ्गड़ी, शुक्रवार १२ फाल्गुन १९९६, २३ फरवरी १९४० [संख्या ४२

मित्रता

[अनु०— श्री विद्यालंकार]

"जिस तरह सूर्य[1] के बिना जगत् निरानन्द और अन्धकारमय हो जायेगा, उसी तरह मित्र रहित जीवन नीरस और आनन्द रहित है। क्योंकि परमेश्वर के असंख्य दानों में मित्र का दान सबसे अधिक आनन्दप्रद है"।

—सिसरो।

पुस्तकों की प्रशंसा में जिसने भी लिखा है, उसे इनकी व्यापकता को बताने के लिये, मित्रों के सिवाय कोई वस्तु तुलना करने के लिये उपयुक्त नहीं मालूम हुई।

एकबार सुकरात ने कहा था कि हरेक मनुष्य भिन्न २ वस्तुओं की अभिलाषा रखता है। अपनी परिस्थितियों के अनुसार किसी को धन की महत्वाकांक्षा है, और किसी को यश की। लेकिन मैं इन सबकी अपेक्षा एक अच्छे मित्र को अधिक पसन्द करूंगा। और फिर मनुष्य अपनी वस्तुओं की—चाहें वे बेशुमार हों—संख्या जानता है; लेकिन अपने मित्रों की, यद्यपि वे बहुत परिमित हैं, निश्चित संख्या नहीं जानता; और अगर उनको गिनने का प्रयत्न भी करता है, तो अपने बहुत से मित्रों को यह कहकर छोड़ देता है, कि ये तो पहिले कभी मित्र थे। अपने मित्रों के सम्बन्ध में मनुष्य बहुत ही कम विचारता है तो भी मनुष्य की सब सम्पत्तियों में से किसी से भी मुकाबला किये जाने पर मित्र सदा ही अधिक मूल्यवान् प्रतीत होगा"।

"अन्य वस्तुओं के मूल्य आंकने में— मनुष्यों की सम्मति भिन्न २ होती है"। सिसरो कहता है "लेकिन मित्रता के सम्बन्ध में हरेक की एक ही सम्मति है। इससे अधिक मूर्खता की बात क्या हो सकती है कि एक मनुष्य— अपनी सम्पत्ति, शक्ति और आमदनी के प्रभाव से— घोड़े, दास, भड़कीले कपड़े आदि—ऐसी वस्तुएं एकत्रित करे, जो धन की सहायता से मिल सकती हैं; और मित्रों को प्राप्त करने की तरफ ध्यान ही न दे, जोकि जीवन में सबसे अधिक मूल्यवान् और सुन्दर आभूषण हैं"। आगे चलकर वह कहता है "तो भी हरेक मनुष्य यह बता देगा कि मेरे पास कितनी बकरियां या गायें हैं, लेकिन यह न बता सकेगा कि मेरे कितने मित्र हैं"।

एक कुत्ते या घोड़े को भी पसन्द करने या चुनने में हम बहुत सावधानी से काम लेते हैं। हम इसके वंश, इस की शिक्षा और इसके आचरण की जांच करते हैं; लेकिन हम अपने मित्रों के चुनाव को— जोकि बहुत महत्व की वस्तु है, जिनके द्वारा हमारे सारे जीवन पर भलाई अथवा बुराई की तरफ़ प्रवृत्त होने में असर पड़ता है— भाग्य पर छोड़ देते हैं।

यह निस्सन्देह सच है कि हम स्वयं जबतक किसी मनुष्य की उपस्थिति को न चाहते हों तो हरेक मनुष्य एक आफ़त मालूम पड़ता है। थोमस ब्राउन ने बड़े विचित्र ढंग से कहा है "अविवेकी मनुष्य जिन्हें एकान्त सेवन की आदत नहीं है; अकेले होने पर कैद अनुभव करने लगते हैं; दूसरी ओर इसके विपरीत, जिन के विचार बहुत अस्थिर और जल्दबाजी में होते हैं, अपने विचारों की भीड़ से उनका दम घुटने लगता है, और वे किसी दूसरे के पास जाकर विश्रान्त होने के लिये घबरा उठते हैं" तो भी मैं एमर्सन के "विचारक मनुष्य दूसरों से मिलने के लिये अपने उच्च विचारों से नीचे उतरता है" इस विचार को पूरी तरह समझने में असमर्थ हूं। एक दूसरे स्थान पर वह अपनी स्थापना में संशोधन करता है और कहता है "प्रायः हरेक मनुष्य अपने उच्च विचारों से नीचे उतरता है, ताकि वह दूसरों से विचार विनिमय कर सके। लेकिन मुझे अब भी, विशेषकर प्रकरण को देखते हुए इस स्थापना में सन्देह है"। वह कहता है "प्रत्येक संगठन समझौते के रूप में होता है; और इससे भी बुरी बात तो यह है कि मनोहर प्रकृति का प्रत्येक फूल और उसकी सुगन्ध, एक दूसरे के सम्पर्क में आते ही गायब हो जाते हैं" कितना बुरा विचार है! क्या वास्तव में ऐसा है? क्या ऐसा होना चाहिये? और अगर ऐसा हो तो क्या कोई मित्रों का लाभ रह जायेगा? लेकिन मुझे विश्वास है कि मित्रों का प्रभाव, इसके ठीक विपरीत है। मनोहर प्रकृति के पुष्प विकसित हो उठते हैं, और उनके

१— संस्कृत में मित्र का अर्थ—मित्र और सूर्य दोनों हैं।

रंगों में चमक आ जाती है जब मित्रता का प्रकाश और उष्णता इनको प्रगति प्रदान करते हैं।

यह कहा जाता है, कि हरेक मित्र के साथ व्यवहार करते हुए यह याद रखना चाहिये, कि वह शत्रु भी बन सकता है, और हरेक शत्रु के साथ व्यवहार करते हुए, यह याद रखना चाहिये कि सम्भव है, यह कभी मित्र बन जाए। इस युक्ति के पहिले हिस्से के बारे में भी बहुत कुछ सोचा जा सकता है, परन्तु उत्तरार्ध में निश्चय से बहुत बुद्धिमत्ता निहित है। बहुत से मनुष्य मित्र बनाने की अपेक्षा शत्रु बनाने में बहुत कष्ट अथवा आनन्द अनुभव करते हैं। प्लूटार्क ने पैथगोरस की "बहुतों के साथ हाथ नहीं मिलना चाहिये" इस उक्ति को बहुत अनुमति पूर्वक उद्धृत किया है। लेकिन जहां तक मित्रों का सम्बन्ध है, वहां तक यह अधिक ठीक है।

"अगर किसी के हजारों मित्र हैं, तो भी पर्याप्त से अधिक समझ कर उनमें से किसी को गंवाना, भूल है। और यदि एक भी शत्रु है तो वह पर्याप्त है और उसे सब जगह उससे मुकाबला करना पड़ेगा।

दुर्भाग्य से घनिष्ठ मित्र बहुत कम होते हैं, लेकिन कोई शत्रु कभी तुच्छ नहीं होता।

तो भी मैं दुबारा "यह" यदि उनका चुनाव सोच समझ कर किया गया है" कहकर अपना बचाव करता हूं। मनुष्य, अपने जीवन में बहुत से ऐसे मनुष्यों के सम्पर्क में आता है, जिनकी नीयत पर आक्षेप नहीं किया जा सकता, और नाहीं वह जानबूझ कर हमें पथभ्रष्ट करना चाहते हैं; लेकिन वे अपने अन्तरात्मा को जानने का कष्ट तो करते ही नहीं, बल्कि अपने मानसिक विचारों की उपेक्षा करके बात चीत को सिर्फ गप्पों अथवा बच्चों की सी बातों का रूप दे देते हैं। वे यह अनुभव नहीं करते कि बड़े स्वल्प प्रयत्न से, बिना किसी पाण्डित्य के, बातचीत को बहुत ही उपयोगी और मनोरञ्जक बनाया जा सकता है। अन्यथा यह बात चीत गन्दे विचारों और व्यर्थ के शब्दों की दलदल के सिवाय, और कुछ न रह जायेगी। ऐसे बहुत थोड़े मनुष्य हैं—अगर वे केवल हमें कुछ बताने का कष्ट करें—जिनसे हम कुछ भी न सीख सकते हों। इतना ही नहीं, बल्कि वे हमें कुछ न सिखाएं, तो भी केवल हम से कुछ बुद्धिमत्तापूर्ण प्रश्न पूछ कर और सहानुभूति दिखा कर हमारी सहायता कर सकते हैं। लेकिन अगर वे इस में कुछ भी नहीं करते तो उनकी मित्रता यदि उसे मित्रता कहा जा सकता है- केवल समय को बर्बाद करना है; और उनके बारे में यह कहा जा सकता है "इनसे अपरिचय ही रहता तो अच्छा था"।

निस्सन्देह हमारे जीवन के, पवित्रता और सुख, बहुत करके मित्रों के चुनाव पर आश्रित हैं। अगर वे बुरे हैं, तो अनिवार्य रूप से हमें भी नीचे घसीट ले जाएंगे, और अगर वे अच्छे हैं, तो हमें भी कुछ न कुछ ऊंचा कर जायेंगे। तो भी बहुत से मनुष्य समझते हैं कि मित्र बनना नियति के आधीन है। हम जिसके सम्पर्क में आएं, उसके साथ नम्रता का व्यवहार करना बहुत अच्छा और उचित है लेकिन उनको वास्तविक मित्र बनाना—बिल्कुल दूसरी चीज है। बहुत से मनुष्य किसीको- क्योंकि वह उनके पास रहता है, उनका और उसका एक ही पेशा है, या वह प्रायः उसी लाइन पर यात्रा करता है, जिस पर वे, अथवा अन्य किसी मामूली सी बात के लिये—मित्र बनाना चाहते हैं, या बनाने का प्रयत्न करते हैं। लेकिन इससे बड़ी भूल और कोई नहीं हो सकती। प्लूटार्क के शब्दों में यह सब उदाहरण, केवल "मित्रता की नकल या प्रतिकृति-मात्र हैं"।

हरेक को मित्र बना लेना असम्भव है। लेकिन हरेक के साथ बुरे व्यवहार की अपेक्षा मित्रता का व्यवहार करना बेहतर है; और जिन्होंने कभी किसी से वास्तविक प्रेम किया है उनके हृदय में हरेक के लिये कोमलता और सहानुभूति के भाव सदा कायम रहते हैं। हरेक मनुष्य में कुछ न कुछ अच्छाई होती है। 'निसमथ' ने अपने जीवन चरित्र में लिखा है "मैंने दुनियां की स्वार्थता और अकृतज्ञता के सम्बन्ध में बहुत सुना है। अगर मैं भी यह अनुभव कर सकता, तो अच्छा होता, लेकिन दुर्भाग्य से मैंने इन दोनों में से किसी भी बुरी अवस्था का अनुभव नहीं किया" मेरा निजी अनुभव भी यही है।

[असमाप्त]

आर्य सत्याग्रह में गुरुकुल की आहुति

चंचलगुडा

[ले०—श्री क्षितीश वेदालङ्कार]

(६)

चञ्चलगुडा—हैदराबाद की सेण्ट्रल जेल।

मुगलकाल के किलों का सा भारी भरकम द्वार। उसमें एक छोटी सी खिड़की। एक एक करके अन्दर घुसे। लम्बा चौड़ा डील डौल, लम्बी काली दाढ़ी, विचित्र वेश, हबशियों की सी कालिमा—जिसे देखकर भय का सञ्चार हो—ऐसा था पहरेदार। उसने मेघ-गम्भीर स्वर में अपने कर्ण-कटु कर्कश कण्ठ से गिनना शुरू किया—ओकटि, रेण्डु, मूडु, नालुगु (एक, दो, तीन, चार)……तोम्मिदि—पूरे नौ।

पहले कभी जेल के द्वार के अन्दर की दुनियां को देखने का सौभाग्य नहीं मिला था। हम प्यासी आंखों से ऊपर नीचे, इधर उधर ताकने लगे। दीवारों पर धूल। छत पर मकड़ी के जाले, सामने के बोर्ड पर एक पंक्ति में बड़े बड़े ताले टंगे हुए—नम्बर लगे थे, ऊपर लिखा था—'डे लॉक्स' (Day Locks) दूसरी ओर 'नाइट लॉक्स' (Night Locks) थे। जिस प्रकार आदमियों की ड्यूटियां बदलती रहती हैं—किसी की दिन में किसी की रात में—इसी प्रकार इन जड़ तत्वों की भी बदलती रहती हैं। अच्छा ही है! मशीन की तरह मनुष्य से काम लेकर यह युग मनु की सन्तान को जड़ बनाता जा रहा है, तो जड़ चीजें भी पीछे क्यों रहें—वे दिन और रात में अलग अलग ड्यूटियां बदलकर मनुष्य की तरह काम करेंगी।

कोने में एक ओर, द्वार के पास ही एक बड़ा सा रजिस्टर। एक आदमी उसमें लगातार कुछ घसीटता जा

रहा था। बारी बारी से हमारे और हमारे वालिदों के नाम घसीटे गये।

और जेल प्रवेश-संस्कार प्रारम्भ होगया।

सामने के कमरे में—जो शायद जेलर का कमरा था, हथकड़ियों और डण्डा बेड़ियों की प्रदर्शनी सी लगी हुई थी। ऊपर सबसे हलकी-हलकी, फिर क्रमशः भारी और उससे भी और भारी। हरेक को विचित्र भय से देखते देखते जब सबसे भारी डण्डा बेड़ी की ओर नजर गई तो सहज-विश्वासी मन भी यह विश्वास नहीं कर सका कि ये इतनी भारी डण्डाबेड़ियां मनुष्य के पैर में पहनाई जाती होंगी। मनुष्य तो क्या—ये तो शायद पशुओं को भी भारी पड़ें। पर नहीं, हम गलती कर रहे हैं। हमें याद रखना चाहिये कि अब हम एक ऐसी दुनियां में हैं जिसे सभ्य संसार 'जेल' कहकर पुकारता है और जहां दोपाये प्राणी की उतनी भी कीमत नहीं जितनी कि परमात्मा की रची सृष्टि में चौपाये प्राणियों की समझी जाती है।

पास ही रखी हुई थी टिकटिको—ऊपर हाथ बांधने के लिये उसमें दोनों ओर एक एक लोहे का कड़ा और नीचे पैर बांधने के लिये भी दोनों ओर एक एक लोहे का कड़ा और बीच में शरीर के मध्यभाग को टिकाने के लिये चमड़े की छोटी सी गद्दी—स्थान स्थान पर खून के धब्बे। पास ही रखी हुई कई दर्जन बेंतें—कुछ तेल में भीगती हुई।……सुना तो बहुत बार था, पर अब तक कभी देखा नहीं था। इस सबको देखते ही आंखों के सामने वह दृश्य नाचने लगा—जबकि जेल के अधिकारियों के अन्यायों का अपनी मृदुल वाणी से विरोध करता हुआ कोई सत्याग्रही इसके साथ बांध दिया जायेगा, फिर उसको नंगा कर दिया जायेगा और कोई जल्लाद संसार की सारी निर्दयता को अपने हाथ की कलाई में भरकर जोर से बेंत को हवा में लहराता हुआ उसके कोमल गुप्त अंग पर……

अब्रह्मण्यम्! अब्रह्मण्यम्! स्मरण करते करते ही शरीर में सिर से पैर तक कंपकंपी छागई।

इस वातावरण में प्रवेश संस्कार की क्रिया आगे बढ़ी—एक डेस्क के पास बैठे हुए क्लर्क ने पूछ पूछ कर लिखना शुरू किया—आपका नाम, बाप का नाम, पेशा अपना और अपने बाप का, आयु, निवासस्थान इत्यादि। फिर एक एक करके सारे कपड़े निकलवाये—उनको अलग २ लिखा। हरेक चीज, जिसके पास जो भी कुछ था—कोई कागज का टुकड़ा, कोई पेन्सिल भी नहीं छोड़ी गई। जो ऐनक पहनने वाले थे उनकी ऐनक भी छीन ली गई। वे बिचारे बिना आंखों के हो गये। बहुत कहा कि बिना ऐनक के ये फैलाया हुआ अपना हाथ भी नहीं देख सकते। किन्तु उसका एकदम दो टूक जवाब दिया गया—"हम क्या करें, जेल का कानून नहीं है।" हमें हैरानी हुई कि जेल के कानून भी कैसे होते हैं!

प्रसंगवश, इतना और कह दूं कि जेल में रहते रहते जिन कैदियों को कई साल हो जाते हैं वे ही पुराने होने के कारण विश्वासपात्र बन जाते हैं और वे ही जमादार नम्बरदार और पहरेदार के रूप में जेल रूपी मैशीनरी के पुर्जे बनकर उस अत्याचार के राज्य को चलाने में सहायक होते हैं। जो कोई कैदी पढ़ा लिखा होता है वह क्लर्क आदि का पद पाता है जो जेल में अति सम्मानास्पद समझा जाता है और फिर ये पद पाये हुए कैदी अपने आपको और कैदियों से ऊंचा समझने लगते हैं और इधर का उधर और उधर का इधर लगाकर अपनी पोस्ट पक्की किये रहते हैं। उनको छोटी मोटी सुविधायें भी मिल जाती हैं। यह कैसा विचित्र मनुष्य का स्वभाव है कि उसको यदि अपने साथियों से कुछ अधिक सुविधायें दे दी जावें तो वह सहर्ष अपने साथियों के ऊपर अत्याचार करने के लिए तैयार हो जाता है। सभ्यता और संस्कृति चाहे कितनी ही उन्नति क्यों न करलें पर वह सृष्टि के आदि का गुफावासी मनुष्य, मनुष्य के मन में से शायद ही कभी हट पाये।

× × × ×

इधर से निवृत्त हुए तो दूसरी ओर स्टोर की तरफ ले जाये गये। दरवाजे के सामने ही लोहे की एक अटरन रखी थी। बहुत देर तक अपनी जिज्ञासा को दबाना नहीं पड़ा—एक एक को बुलाकर बारी बारी से उस अटरन पर पैर रखवाकर हथौड़े की चोट से भारी सा लोहे का कड़ा पैर में डाला जाने लगा। हां, प्रवेश संस्कार में यह भी एक आवश्यक क्रिया है! एक पैर में यह नया बोझ एक दम अप्रिय सा लगा। किन्तु जब सबके ही पैरों में वह लोहे का भारी २ कड़ा शोभित होने लगा और अन्य भी आते जाते कैदियों के पैरों में उसी तरह का कड़ा देखा तो पता लगा कि यह लोहे का कड़ा कैदी का आभूषण है। बिना इस आभूषण के कैदी Qualified नहीं होता और जिसके पैर में यह जितना ही भारी होता है वह उतनी ही शान से अकड़कर चलता है। इस लोहे के कड़े को धारण करके चलने में मुश्किल पड़ती है और तेजी से नहीं चला जा सकता—भागने की तो फिर बात ही क्या! पर जो जान-बूझकर कैदी होते आये हैं उन्होंने भागकर करना ही क्या था! पीछे आगे जाकर लगभग दो महीने बाद जब समाचार-पत्रों में आन्दोलन मचा और अधिकारियों ने उस आन्दोलन से परेशान होकर हमारे पैरों में से इन लोहे के कड़ों को निकाल डाला तो एक बार हमारे पैर फिर आभूषण-शून्य होगये और हमें तब अपने पैर उससे कहीं अधिक हलके लगने लगे थे जितने कि अब इन कड़ों को पहिनने से पहले थे। सिर्फ यह याद है कि उन कड़ों के निकल जाने के बाद उनसे बने हुए घाव बहुत दिनों तक दर्द करते रहे थे!

फिर एक पतला सा कम्बल दिया गया—काला और फटा हुआ। एक टाट दिया गया—जिसकी चौड़ाई किसी भी हालत में दो बालिश्त से ज्यादा नहीं थी। बिस्तर तैयार होगया। कहा गया—अपना अपना बिस्तर उठाओ। हम बगल में बिस्तर लेकर खड़े होगये—जैसे कहीं यात्रा के लिए जाने को तैयार हों।

फिर एक लोहे का तसला और एक लोहे का गिलास—जिसको वहां की भाषा के अनुसार हम भी 'चम्बू' कहा करते थे और जिसकी आकृति हूबहू वही थी जो कि च्यवनप्राशादि दवाइयों के डिब्बों की होती है।

(शेष पृ० ७ पर)

गु रु कु ल

१२ फाल्गुन शुक्रवार १९९६

गुरुकुल का उत्सव—

'गुरुकुल' का यह अङ्क जब पाठकों के हाथ में पहुंचेगा तब उत्सव में केवल एक मास शेष रह जावेगा। गुरुकुल-विश्वविद्यालय कांगड़ी का वार्षिकोत्सव आर्य समाज का सबसे बड़ा मेला है। इस अवसर पर भारत के कोने-कोने से प्रतिवर्ष सहस्रों नर-नारी श्रद्धा-भक्ति-भाव से आते हैं और उपदेशामृत से हृदय को परितृप्त कर लौटते हैं। गुरुकुल विश्व विद्यालय कांगड़ी न केवल आर्य समाज की सबसे बड़ी और शानदार संस्था है बल्कि भारत में राष्ट्रीय शिक्षा का सबसे बड़ा केन्द्र भी है। यह संस्था आर्य समाज के बड़े गौरव की वस्तु है। इसकी शान आर्य जनता की शान है। लुप्त होती हुई आर्य-संस्कृति तथा भारतीय सभ्यता का पुनरुद्धार करने वाला गुरुकुल शिक्षणालय ही है। यह वह वाटिका है जिसे आर्यों ने कठिन परिश्रम करके सींचा है। इसे हरा-भरा देखने की किसे प्रबल इच्छा न होगी? इस शिक्षणालय के ब्रह्मचारियों ने गत वर्ष हैदराबाद में सर्व प्रथम अग्नि-परीक्षा देकर जो पथ-प्रदर्शन किया है वह आर्य समाज और गुरुकुल दोनों की ही गरिमा का द्योतक है। हर्ष का विषय है कि आप के अत्यन्त प्रिय उसी गुरुकुल का वार्षिक-महोत्सव ११ मास की लम्बी प्रतीक्षा के बाद पुनः आ रहा है आप की यह गुरुकुलोत्सव-यात्रा वास्तविक अर्थों में तीर्थ यात्रा होगी। गुरुकुल के समान सच्चा तीर्थ सम्प्रति इस भारत में कौनसा है? आइये, इष्ट-मित्र, बन्धु-बान्धवों तथा सकल परिवार के साथ पधारिये। विद्वानों और महात्माओं के अमूल्य उपदेश श्रवण कर लाभ उठाइये।

इसके साथ ही हम आप का कर्त्तव्य भी स्मरण करा देना चाहते हैं गुरुकुल इस समय एक छोटा- मोटा शिक्षणालय नहीं, अपितु विश्वविद्यालय का रूप धारण कर चुका है। इस संस्था का वार्षिक खर्च लगभग एक लाख साठ हजार है। इस वार्षिक व्यय का भार निस्सन्देह गुरुकुल प्रेमियों पर ही है। हमें आशा ही नहीं किन्तु पूरा निश्चय है कि आर्य जनता अपनी जिम्मेवारी समझकर धन संग्रह के कार्य में जुट जावेगी और ऋषि दयानन्द के लक्ष्य की ओर निरन्तर बढ़ने वाली इस संस्था पर किसी प्रकार का घाटा न आने देगी। गुरुकुल की उन्नति में आप की उन्नति है और गुरुकुल की शान में आप की शान। इस लिये सभी आर्य भाइयों से हमारी प्रार्थना है वे कि गुरुकुल की आवश्यकताओं को समझें और उसकी पूर्ति के लिये तन-मन-धन से जुट जावें। यदि आप कटिबद्ध हो जावेंगे तो इस अर्थ-राशि का थोड़े समय में ही एकत्र होना कोई बहुत मुश्किल बात नहीं है। उत्सव ज्यों २ समीप आता जावे आप द्विगुण-त्रिगुण उत्साह से गुरुकुल की सहायता के लिये कार्य आरम्भ कर दीजिये। एक बार आप तैय्यार होकर जुट जाइये, फिर आप देखेंगे कि आप ने आधा कार्य कर लिया है। गुरुकुल का डेपूटेशन भारत के भिन्न २ भागों में धन संग्रहार्थ जा चुका है। आशा है आर्य भाई तन, मन, धन से उसका सहयोग देंगे।

अन्त में आर्य जनता को हमारा सादर निमन्त्रण है कि वह अधिक से अधिक सख्या में गुरुकुलोत्सव में सम्मिलित होकर कुलवासियों के उत्साह को बढ़ायेगी तथा अधिक से अधिक आर्थिकसहायता पहुंचा कर कार्य-कर्त्ताओं का हाथ बटायेगी।

गुरुकुलोत्सव पर उपस्थित होना केवल मनोविनोद या उपदेश-श्रवण की दृष्टि से ही नहीं अपितु एक कर्त्तव्य पालन और उत्तरदायित्व की दृष्टि से भी परमावश्यक है। इसलिये आप गुरुकुल चलने की शीघ्र ही तैय्यारी कीजिए।

वाग्वर्धिनी सभा का संक्षिप्त
इतिहास

(ले०- श्री पं० हरिदत्त जी वेदालङ्कार)

काल विभाग—प्राप्त सामग्री के आधार पर प्रवृत्तियों के भेद से हम इस सभा के इतिहास को तीन कालों में बांट सकते हैं।

(१) प्राचीनकाल (१९०४ से १६ तक)—इस काल में वाग्वर्धिनी सभा केवल एक वाद-विवाद के रूप में ही थी।

(२) मध्यकाल—(१९१७ से २६ तक) यह विशेषाधिवेशन का काल था। इसके दो मुख्य भाग थे, साहित्यक और राजनैतिक।

(३) आधुनिक काल (१९२७ से ४० तक)—इस काल में कुल के बाहर जा कर अन्तर्विश्वविद्यालय-वाद-विवाद सम्मेलनों में भाग लेने की प्रवृत्ति का विशेष विकास हुआ है।

अब हम क्रमशः इन कालों का विस्तार से वर्णन करेंगे।

(१) प्राचीन कालः—सभा के मूल के बारे में हमें मूक रहना पड़ता है। वेद के शब्दों में कहा जाय तो "को अद्धा वेद क इह प्रवोचत" विशाल वट वृक्ष के भूमिस्थ जड़ों की तरह इसका मूल अदृश्य है। जहां वास्तविक तथ्य नहीं उपलब्ध होते वहां लोग कल्पना के घोड़े दौड़ाने लगते हैं। भारतवर्ष का प्राचीन इतिहास इस का बहुत बुरा शिकार हुआ है। हम इतिहास में कल्पना का स्थान न मानते हुए भी यहां पर कल्पना करने को बाध्य हैं। सभा के मूल के बारे में सब से प्रामाणिक कल्पना यही समझी जा सकती है कि गुरुकुल स्थापना के दो वर्ष पश्चात् ही सन् १९०४ में विद्यार्थियों को उत्तम वक्ता एवं शास्त्रार्थ-महारथी बनाने के लिए इस सभा का जन्म हुआ। सभा की स्थापना महात्मा मुन्शीराम जी के कर कमलों से हुई थी। उन दिनों आर्य समाज में शास्त्रार्थों का जमाना था। स्थान २ पर

सनातनी पण्डितों, मौलवियों और पादरियों से शास्त्रार्थ होते थे। मौलवियों और पादरियों से टक्कर लेने वाले विद्वान तो आर्यसमाज में थे परन्तु सनातन पण्डितों से धारा प्रवाह संस्कृत में शास्त्रार्थ करने वाले विद्वानों का अभाव था। यहां पर इसका एक प्रमाण देना पर्याप्त होगा। महात्मा जी को गुरुकुल में जब वेद, व्याकरण, दर्शन तथा संस्कृत साहित्य की उज्ज्वल शिक्षा देने वाले उपाध्यायों की आवश्यकता हुई तो उन्हें सारे आर्यसामाजिक जगत् में बड़ी कठिनता से एक ही संस्कृतज्ञ आर्य विद्वन् प० शिवशङ्कर जी शर्मा प्राप्त हुए। लाचार होकर महात्मा जी को अधिक वेतन देकर सनातनी पण्डितों को गुरुकुल में रखना पड़ा ताकि उन विषयों का अध्यापन कराया जा सके। इस प्रकार की स्थिति का सम्भवतः एक कारण यह था कि आर्यसमाज के सिद्धान्तों को सब से पहले जिन लोगों ने स्वीकार किया वे ब्राह्मणेतर वर्ग के थे। आर्यसमाज 'सनातन धर्म' का प्रबल प्रतिद्वन्द्वी था। 'सनातनधर्म' का रक्षक या ठेकेदार ब्राह्मण वर्ग ही था। ब्राह्मण वर्ग के स्वार्थों पर आर्यसमाज सीधा हमला करता था। उनका मूर्तिपूजा, श्राद्ध, तीर्थ, गंगा आदि नदियों की पवित्रता तथा सैकड़ों प्रकारों के पाखण्डों का वह जोरदार खण्डन करता था। अतः आर्यसमाज में पहले दीक्षा ग्रहण करने वाले स्वभावतः ब्राह्मणेतर वर्ग के लोग थे। परन्तु मध्यकाल से सैकड़ों वर्षों की परम्परा के कारण वेदादि का अध्ययन ब्राह्मणों का एक विशेषाधिकार समझा जाता था और उन्हीं तक सीमित था। इस लिए आर्यसमाज में पण्डितों की कमी थी। प्राचीनकाल में बौद्ध और ईसाई धर्म में भी हम यह क्रम देखते हैं। पहले साधारण जनता धर्म स्वीकार करता है। तदनन्तर पण्डित एवं पुरोहित वर्ग उसका अङ्गीकार करता है। स्वार्थों पर आघात पहुंचाने के अतिरिक्त इस बात का दूसरा कारण शायद पण्डितों की रूढ़िप्रियता तथा मर्यादारक्षा का भाव भी है। अन्य व्यक्ति जिस तत्परता, तेजी और फुर्ती से धर्म परिवर्तन कर सकते हैं उतनी तत्परता तेजी और फुर्ती उनमें नहीं हो सकती। अन्य व्यक्ति चलते हैं तो ये रेंगते हैं। वे भागते हैं तो ये खिसकते हैं। कुछ भी कारण हो उस समय आर्यसमाज में पण्डित वर्ग की बहुत कमी थी। गुरुकुल आर्यसमाज की सारी आशाओं का केन्द्र था। आर्यसमाज के अभावों को पूर्ण करना इसका प्रथम कर्तव्य था। महात्मा जी को आर्यसमाज की इस कमजोरी का अच्छी तरह ज्ञान था। अतः उन्होंने विद्यार्थियों की वाक् शक्ति बढ़ाने तथा शास्त्रार्थ की योग्यता को उत्पन्न करने के लिए इस सभा की स्थापना की। उस समय केवल वादविवाद करना ही इस सभा का कार्य समझा जाता था। वादविवाद के विषय स्वाभाविक रूप से आर्यसामाजिक और धार्मिक थे। सभा के प्रथम अधिवेशन का विषय था—'मूर्तिपूजा होनी चाहिए या नहीं'—दूसरी बैठक में 'श्राद्ध' पर बहस हुई।

वाग्वर्धिनी सभा शीघ्र ही अपने उद्देश्य में सफल हुई। महात्मा जी की इच्छा पूर्ण हुई। विद्यार्थी शास्त्रार्थ कला में इतने दक्ष हो गये कि उस समय के प्रमुख आर्यसमाजी पण्डितों ने भी उनसे हार मान ली। अपने इस कथन को हम दो घटनाओं द्वारा प्रमाणित करेंगे। श्री पं० जगन्नाथ जी निरुक्तरत्न आर्यसमाज के बड़े भारी पण्डित हैं। उन दिनों भी उनकी बड़ी धाक थी। आर्यसमाज को उनकी शास्त्रार्थ की योग्यता में बड़ा गर्व था। जब वे कलकत्ते से निरुक्त का अध्ययन समाप्त करके पंजाब लौटे तो गुरुकुल में भी आये। विद्यार्थियों से बहस छिड़ गयी, पर उन्हें संस्कृत बोलने का अभ्यास न था। थोड़ी देर की बहस के बाद ही उन्होंने यह सम्मति प्रदान की कि यहां पर शास्त्रार्थी मेढ़े तैयार किये जाते हैं। दूसरी घटना स्वर्गीय पं० आर्यमुनि जी से सम्बन्ध रखती है। अपना संस्कृताध्ययन समाप्त कर काशी से लौटते हुए वे भी गुरुकुल में पधारे। शाम का समय था—गङ्गा के किनारे घूमते जाते हुए विद्यार्थियों से उनकी भेंट हो गयी। उन्होंने कहा—'अम्बु गच्छति'। बस फिर क्या था। बहस छिड़ गयी। उनके इसी वाक्य पर आध घण्टा वाद-विवाद होता रहा। महात्मा जी को मिलते ही उन्होंने कहा 'महात्मा जी! आपने इन्हें पण्डित तो बनाया है किन्तु शिष्टाचार नहीं सिखाया'।

इस समय एक और महत्वपूर्ण घटना हुई। न केवल वाग्वर्धिनी के भविष्य पर इसका बहुत अधिक प्रभाव पड़ा, किन्तु गुरुकुलके भविष्य पर इसका बहुत अधिक प्रभाव पड़ा। अतः इस घटना का विस्तार से विचार करना आवश्यक जान पड़ता है। गुरुकुल के सामने उन दिनों एक महत्वपूर्ण प्रश्न था। क्या गुरुकुल धार्मिक एवं दार्शनिक विषयोंके प्रकाण्ड पण्डित किन्तु पाश्चात्य विद्या एवं व्यावहारिक ज्ञान से बिलकुल शून्य-विद्वान् उत्पन्न करने वाली काशी की पाठशालाओं का अनुगमन करेगा या शिक्षा-क्षेत्र में नवीनता को उत्पन्न करेगा? निःसन्देह उस समय के उपाध्याय और विद्यार्थी इसे काशी की एक पाठशाला बनाना चाहते थे। बाहर के सरकारी स्कूलों तथा कॉलिजों का अन्धानुकरण गुरुकुल के लिए न तो संभव था, और न ही उचित। अतः पण्डितों और ब्रह्मचारियों की दृष्टि में एक ही लक्ष्य था—काशी का पण्डित बनना। विद्यार्थी गुरुकुल से असन्तुष्ट हो गये एक दिन सबने मिल कर सलाह की कि गुरुकुल में दर्शन, व्याकरण आदि कुछ नहीं पढ़ाया जाता। अतः गुरुकुल छोड़ कर काशी चलना चाहिए। उनकी सभा ने सर्वसम्मति से फैसला कर दिया पर महात्मा जी को जाकर कौन कहे? म्याऊँ का ठौर कौन पकड़े। अन्त में एक डेपुटेशन भेजने का निश्चय हुआ। स्वामी जी कार्यालय में बैठे हुए कार्य कर रहे थे। एक २ करके लड़के दफ्तर में गिरोह बांध कर खड़े हो गये। जब उन्होंने ऊपर नज़र उठाई तो लड़कों का झुण्ड देख कर हैरान हुए। मुस्कराते हुए पूछने लगे—क्या बात है? सहसा अपना अभिप्राय प्रकट करने की किसी में हिम्मत न हुई। बार २ पूछते हुए परेशान हो गये। अन्त में एक विद्यार्थी ने अपना सारा साहस बटोर कर डरते २ और हाँफते २ एक सांस में सारी बात कह डाली। महात्मा जी बोले—'बस यही बात थी'। उत्तर मिला, 'हाँ यही बात थी'। उन्होंने पूछा—'कौन २ काशी जाना चाहते हैं'। सब

ने स्वीकृतिसूचक हाथ खड़ा कर दिया। वे मनोविज्ञान के पण्डित थे। जल्दी ही सारी स्थिति भांप गये। विद्यार्थियों को यह कह कर भेज दिया कि अगले सप्ताह तुम्हें काशी भेज दिया जायगा।

इसी बीच में एक दिन सायंकाल के समय महात्मा जी ने विद्यार्थियों को कहा कि—'देहरादून की यात्रा होगी'। विद्यार्थी प्रसन्नता से फूले न समाये। फौरन अपना २ सामान जुटा कर बिस्तर बांधने लगे। सारी रात उन्होंने जागने और पौह-फटने की इन्तज़ार में काटी। अगले दिन सूर्य की प्रथम किरण के साथ गंगा की रेती पर कन्धों पर बिस्तर लादे, पीली 'गाती' धोती बांधे कतार बना कर चलता हुआ, काफ़िले जैसा गुरुकुल के ब्रह्मचारियों का एक दल सरस्वती यात्रा के लिये चला। कौन जानता था यह यात्री दल गुरुकुल के भविष्य का निर्माण करने वाला होगा? गुरुकुल में बहुतसी सरस्वती यात्राएँ हुई हैं और आज तक होती है, विद्यार्थी बहुत बार पीली धोतियां बांध कर कतारों में निकले हैं परन्तु वैसी ऐतिहासिक, वैसी महत्व पूर्ण कोई यात्रा हुई है-इसमें सन्देह है। भविष्य में ऐसी यात्रा होगी-इसकी आशा नहीं।

गुरुकुल में यह पहली सरस्वती यात्रा थी। यात्री दल हरद्वार के स्टेशन पर पहुँचा। गाड़ी प्लेटफार्म पर आई हुई थी, पर उसके चलने में अभी देरी थी। महात्मा जी विद्यार्थियों को लिये हुए इञ्जन के पास पहुंचे-ड्राइवर से विद्यार्थियों को सारी कलें-दिखाने और समझाने को कहा। जब उसने सीटी की कल दबाई तो सब के चेहरे प्रसन्नता से खिल उठे। मानों कोई चमत्कार हो गया हो। अवश्य अन्दर कोई भूत या प्रेत बैठा होगा, नहीं तो सिर्फ कल दबाने से सीटी कैसे बज उठी। जब ड्राईवर ने सेफ्टीवाल्व से अधिक भाफ निकाली तो भाफ के शब्द से उनके विस्मय का पारावार न रहा। आखिर यह सब माज़रा है क्या? देव, जिन' या भूत किसे इञ्जन में काबू किया हुआ है जो यह जादू के चमत्कार कर रहा है। फिर जब ड्राईवर ने उन्हें धीरे धीरे यह समझाना शुरू किया कि इस में देव या जिन कुछ भी नहीं। यह तो वाष्प का खेल है। इञ्जन कोयला खाता है और पानी पीता है। बस, इतने मे ही वह इतनी लम्बी गाड़ी को, इतने अधिक यात्रियों और इतने भारी बोझ को पटरी पर खींच कर भागता हुआ चला जाता है। गाड़ी चलने का समय हो गया था। विद्यार्थी अपने डिब्बे में आ बैठे। पर सब के दिल आश्चर्य सागर में उतर रहे थे। आज उन्होंने नयी दुनियां के दर्शन किये थे। अब तक उनको दुनियां 'घटत्वावच्छेदकावच्छिन्न'ही थी—वे 'ठिङ्डाणञ्' 'दाधार्ति-दर्धर्ति' और 'गुणोरनाको' ही जानते थे पर आज उन्होंने जाना कि इनके अतिरिक्त भी बहुत कुछ ज्ञातव्य है। जो कुछ हम जानते हैं वह इतना कीमती, इतना उपयोगी नहीं जितना कि यह दुनियां का ज्ञान है। यात्री दल देहरादून पहुंचा। महात्मा जी ने वहां की मिलें, फैक्ट्रियां, कल-कारखाने और मशीनें दिखाईं। अब विद्यार्थियों को धीरे धीरे समझ आ रहा था कि 'साइन्स' भी कोई चीज़ है। आज की दुनियां 'आख्यात' 'उपसर्ग' 'गुण' और 'वृद्धि' से नहीं शासित हो रही किन्तु 'साइन्स' द्वारा शासित हो रही है। यात्रा समाप्त हुई—विद्यार्थी गुरुकुल लौटे। उनकी आंखें खुल चुकी थीं। दूसरे ही दिन उन्हीं विद्यार्थियों का झुण्ड महात्मा जी के पास एक नई प्रार्थना लेकर पहुंचा। महात्मा जी ने मुस्कराते हुए पूछा—क्या बात है? इस बार कोई डर, झिझक या शरम नहीं थी। उन्हें दुबारा पूछने की भी ज़रूरत न पड़ी। विद्यार्थियों ने तत्काल जवाब दिया-महात्मा जी, हम विज्ञान पढ़ना चाहते हैं। इस विषय के अध्यापन का प्रबन्ध कर दीजिए। महात्मा जी ने कहा-'बहुत अच्छा जल्दी ही इसका प्रबन्ध हो जायगा" वह क्षण गुरुकुल के इतिहास में महत्वपूर्ण था। इस बात का निश्चय हो गया कि गुरुकुल में पूर्व के शास्त्रों के साथ पश्चिम के विज्ञानों की भी शिक्षा दी जायगी। गुरुकुल न तो बुद्धू पैदा करने वाली एक चटशाला होगा और न ही पश्चिमी सभ्यता के प्रवाह में बहने वाला और उसका अन्धानुकरण करने वाला एक कालिज होगा। वह पूर्व और पश्चिम की संस्कृतियों का संधिस्थल होगा। वह दोनों संस्कृति का जन्मदाता होगा। संक्षेप में उस में पूर्व और पश्चिम के सर्वोत्कृष्ट एवं सार भूततत्वों (दी बैस्ट अव् दी ईस्ट एण्ड दी वैस्ट आव् दि वेस्ट) की शिक्षा दी जायगी।

गुरुकुल समाचार

ब्रह्मचारियों का स्वास्थ्य उत्तम है। इस समय चिकित्सालय में कोई ब्रह्मचारी रोगी नहीं है।

ऋतु उत्तम है। वसन्त की बहार गुरुकुल के चारों और खूब नज़र आती है। महाविद्यालय के ब्रह्मचारियों की परीक्षायें हो रही हैं। आशा है मार्च के पहले सप्ताह में समाप्त हो जायंगी। वार्षिकोत्सव के लिये गुरुकुल में तैयारियाँ हो रही हैं।

शोक-समवेदना

हमें यह जान कर बड़ा दुःख हुआ है कि सोलन आर्यसमाज के प्राण-स्वरूप लाला रामशरणदास जी का गत २८ जनवरी को ७२ वर्ष की उमर में स्वर्गवास हो गया। आप का सारा जीवन आर्य-संस्कृति के प्रचार और प्रसार में बीता है। आप का घर प्रत्येक आर्य भाई के लिये अपने घर के समान था। आपके दिवंगत होने से आर्य समाज की बड़ी क्षति हुई है। आप अपने पीछे अपनी दो सुयोग्य सन्तानें (पं० धर्मदत्त जी आयुर्वेदालंकार और कुमारी ब्रह्मवती जी विद्यालंकृता, साहित्यरत्न) आर्यजनता की सेवा के लिये छोड़ गए हैं। ईश्वर आप की आत्मा को सद्गति प्रदान करें और दुःखित परिवार को धैर्य सहन करने की शक्ति दें।

(पृष्ठ ३ का शेष)

जब पूरे साजोसामान के साथ दो दो की पंक्ति में खड़े हुए, तो चेहरों पर सच्चे सैनिक की मुस्कराहट थी और जब एक सिपाही आगे और एक पीछे होकर हमें आगे चलने के लिये कहने लगे तो हम भी एक अजीब मस्ती के साथ मन-मन में 'डबल मार्च' कहते हुए आगे बढ़े। उस बड़े द्वार को पार किया, सामने सुन्दर सड़क। सड़क के दोनों ओर काल कोठरियां (Solitary Cells), कुछ कोठरियों के द्वार खुले हुए, उनमें बिलबिलाते हुए कैदी। हम जब सामने से गुजरे तो वे अंगुलियों से हमारी ओर इशारा करने लगे। अत्यन्त धीमे कानाफूसी के से स्वर में उनके मुंह से कुछ प्रश्नवाचक शब्द निकले जिनको हम नहीं समझ पाये।

अपने २ चम्बू में पानी भर कर लाये। फिर सड़क पर ही बैठा दिया गया—एक पार्श्व में बिस्तर और सामने तसला। काली २ वर्दी पहने हुए दो कैदी आये—बड़ी २ बाल्टियां और बड़ी २ कड़छियां। तसले में बारी बारी से कुछ गोबर सा लुचलुचा पदार्थ—जो शाक था और हाथों में बड़े २ काले टिक्कड़। वह रोटी पता नहीं किस अनाज की थी और शाक भी पता नहीं किस चीज का था—किन्तु शाक में प्याज, लहसन, तेल और मिर्च की भरमार अत्यन्त स्पष्ट था।...... शर्त लगाई कि देखें कौन सबसे अधिक खाता है। नया उत्साह था, बड़े जोश के साथ खाना शुरू किया। भूख भी बड़े जोर की लग रही थी किन्तु हममें से कोई भी हजार कोशिश करने पर भी, उस दिन आधी से ज्यादा रोटी नहीं खा सका।

× × × ×

भोजन खाने के बाद फिर पंक्ति। अंधेरा हो चला था। जेल के बाहर पास ही था 'सिग्रिगेशन वार्ड' (Segregation bard), उसकी ओर हमें ले गये। करीब आधा फर्लाङ्ग जाने के बाद वैसा ही किले का सा भारी भरकम द्वार। खिड़की खुली, अन्दर घुसे एक भयानक वार्डर ने स्वागत किया। एक दम एक छोटी सी कोठरी का ताला खोला उसमें पांच साथियों को घुसेड़ दिया। उसके साथ की दूसरी कोठरी में बाकी चार। पहले लोहे की मोटी २ सलाखें, फिर जाली और फिर टीन के पत्तर। द्वार बन्द होते ही अंधेरा घुप्प! टाट बिछाया, सिरहाने पर तकिये की जगह तसला और काला कम्बल ओढ़ कर पड़ गये। जहां से कम्बल फट गया था वहां से पैर बाहर निकल गये। जूयें अलग। जो कोठरी एक के लिये थी उसमें पांच। एक कोने में शौच के लिए गमला—दुर्गन्ध। करवट बदलने की भी गुञ्जाइश नहीं। जिस पैर में कड़ा पड़ा था, उसे कभी दूसरे पैर के ऊपर रखकर, कभी सिकोड़कर, कभी फैलाकर तरह तरह से कोशिश की कि दर्द न करे—पर वह भारी २ जिधर पड़ता था उधर ही दर्द करता था और फिर लगने लगी सर्दी।

अब तक पुस्तकों में जेलों की कहानियां ही पढ़ी थीं। जेल की वास्तविकता को इतने पास से देखने का अवसर कभी नहीं मिला था। इसीलिए आज हरेक चीज बड़ी रहस्य पूर्ण लग रही थी—न जाने एक २ चीज के ऊपर कितनी पुस्तकें लिखी जा सकती हैं।

किन्तु यह तो 'इब्तिदाए' है। आगे न जाने और क्या क्या सहना होगा। सारी रात यही सोचते रहे। और नींद? फटा टाट, फटा कम्बल, पैर का कड़ा, सर्दी और करवट का अनवकाश—इतने सारे शत्रुओं के बीच में खड़ी खड़ी वह बिचारी प्रभात की प्रतीक्षा करती रही।

रात की नीरवता में चारों ओर श्वास की प्रतिध्वनि लगातार सुनाई देती रही।

पुस्तक समालोचना

हवन यज्ञ प्रदीपिका— ले० मा० नत्थन लाल आर्य, प्रकाशक—वैदिक पुस्तकालय देहली, मिलने का पता— मा० नत्थन लाल आर्य, जगाधरी जि० अम्बाला। पृ० सं० २३६। छपाई सफाई उत्तम। मूल्य २)

योग्य लेखक ने बड़े परिश्रम से यह पुस्तक लिखी है। हवन के मन्त्रों का सरल और सुन्दर भाषा में अर्थ किया है और प्रत्येक विधि की विस्तार से व्याख्या की है। पुस्तक वैज्ञानिक ढंग से लिखी गई है। विविध प्रकार की हवन-सामग्रियों द्वारा तपेदिक आदि बीमारियों को दूर करने का उपाय भी बताया है; इसकारण पुस्तक की उपयोगिता बढ़ गई है। हवन यज्ञ के ऊपर यह उत्तम कोटि की पुस्तक लिखी गई है। पुस्तक के अन्दर मन्त्रों में कहीं २ प्रूफ की गलतियां खटकती हैं। आशा है लेखक महोदय अगले संस्करण में यह सुधार कर देंगे। पुस्तक सब प्रकार से उपादेय है।

—श्री धर्म वीर।

नये बालकों का प्रवेश

गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी का ३८ [illegible] वां वार्षिकोत्सव इस वर्ष ईस्टर छुट्टियों में तारीख २२ से २५ मार्च १९४० तक मनाया जावेगा, इस अवसर पर नए बालकों का चुनाव तारीख २२, २३ मार्च को होगा। समय बहुत थोड़ा रह गया है, जो सज्जन अपने बालकों को गुरुकुल में प्रविष्ट कराना चाहते हैं उन्हें प्रार्थना-पत्र भेज कर स्वीकृति प्राप्त कर लेनी चाहिये। गुरुकुल की नियमावली तथा प्रवेशफार्म "कार्यालय गुरुकुल कांगड़ी" ज़िला सहारनपुर से मिल सकेंगे।

मुख्याधिष्ठाता
गुरुकुल कांगड़ी।

गुरुकुल मुलतान

ब्रह्मचारियों का स्वास्थ्य अत्युत्तम है। इस समय कोई भी ब्रह्मचारी रोगीगृह में नहीं। गत सारे मास में कोई भी ब्रह्मचारी रोगी नहीं हुआ। एक दो ब्रह्मचारियों का तोल बराबर रहा है शेष सभी का तोल बढ़ा है लगभग मार्च के पहले सप्ताह ब्रह्मचारियों की वार्षिक परीक्षा होगी जिसकी पूरी तैयारी हो रही है।

इस वर्ष १६-१७ मार्च को वार्षिकोत्सव होने की सम्भावना है। अतः जो सज्जन अपने बालकों को प्रविष्ट कराना चाहें नियमावली तथा प्रवेशार्थ प्रार्थनापत्र नीचे लिखे पते से मंगवा लें। यदि कोई सज्जन उत्सव से पूर्व भी अपने बालक को प्रविष्ट करना चाहें कर सकते हैं।

विष्णुमित्र
मुख्याधिष्ठाता गुरुकुल मुलतान

चौधरी दुलाराम के प्रबन्ध से गुरुकुल मुद्रणालय गुरुकुल कांगड़ी में मुद्रित तथा प्रकाशित।

* ओ३म् *

"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत" Reg. No. A 2927

गुरुकुल

एक प्रति का मूल्य -) [गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख-पत्र] वार्षिक मूल्य २॥)

सम्पादक—साहित्यरत्न हरिवंश वेदालङ्कार

वर्ष ४] गुरुकुल काङ्गड़ी, शुक्रवार १९ फाल्गुन १९९६, १ मार्च १९४० [संख्या ४३

क्रिया योग

[लेखक—श्री प्रो० लाभचन्द्र जी उपाचार्य]

(१)

क्रिया, योग का दृढ़ आधार है। क्रिया-योग के तीन अंग हैः—

१. तप २. स्वाध्याय ३. ईश्वर प्रणिधान। मनुष्य के दो पक्ष हैं शक्ति और ज्ञान, जिन के द्वारा मनुष्य ने उड़ कर ब्रह्म लोक तक पहुंचना है। शक्ति को तप से शुद्ध और तीव्र करना है, ज्ञान को स्वाध्याय से शुद्ध और उन्नत करना है और तप और स्वाध्याय द्वारा ऐसे शुद्ध और विकसित ज्ञान व शक्ति द्वारा ईश्वर प्रणिधान अर्थात् कर्मों को ईश्वरार्पण करना है। जितने बड़े व्यक्ति के लिये भेंट ले जानी हो उतनी बढ़िया भेंट होनी चाहिये। इसलिए यदि ईश्वर को कुछ अर्पण करना हो तो जो उसने हमें शक्तियां दी हैं उन्हें समुन्नत करके उस के आगे भेंट धरनी चाहिये। जिस से भेंट देने और भेंट लेने में दोनों को आनन्द आये। असल में क्रिया योग का मार्ग आरम्भ से अन्त तक आनन्द ही आनन्द का मार्ग है और हर कदम पर आनन्द बढ़ता है। तप का अपना आनन्द है, स्वाध्याय का अपना आनन्द है और तपस्वी, स्वाध्याय शील, सामर्थ्यवान और देदीप्यमान मनुष्य का अपने कर्मों को प्रभु के अर्पण करने का अपना विलक्षण आनन्द है।

तप स्वाध्याय का आधार है, सहायक है। तप के बिना स्वाध्याय केवल जबानी जमा ख़र्च है। तप और स्वाध्याय के बिना ईश्वर प्रणिधान मजाक है। पिलपिले रोगी शरीर और कमजोर दिमाग़ कूड़े दान में फैंकने के लायक हैं। इन्हें भगवान को अर्पण कर अपना उपहास मत कराओ, पूजा के लिये बेदाग़ बलि चाहिये।

यह मार्ग सुस्तों, निर्बलों, कायरों का नहीं है। यह मार्ग तो बहादुरों उद्यमी पुरुषार्थी मनुष्यों का है। सुस्त, निर्बल तप क्या करेगा यदि उसे बाधित कर के तप कराओगे तो वह रोते-झींकते तप करेगा। ऐसा तप बेकार है। जो सुस्त है तमाच्छादित है वह स्वाध्याय क्या करेगा और यदि उसे स्वाध्याय करा भी दिया तो उससे लाभ क्या होगा। गुरुकुलों में जो विद्यार्थी खुशी खुशी तप और स्वाध्याय करते हैं वह तर जाते हैं। जो रोते झींकते करते हैं वह कोरे के कोरे निकल जाते हैं।

मैंने कहा तप, का अपना आनन्द है। तप क्या है? संक्षेप में द्वन्द्व-सहन। सर्दी गर्मी, भूख प्यास, मान अपमान, सुख दुख, यह द्वन्द्व हर एक पर हमला करते हैं। तपस्वी इन्द्र इन से दबता नहीं, इनको दबाता है। झुकता नहीं झुकाता है। झुकने में हारने में गुलामी है, ज़िल्लत है। झुकाने में, विजय में, प्रभुत्व में जीवन का आनन्द है। चट्टान पर समुद्र की लहरें हमला करती हैं पर चट्टान का कुछ बिगाड़ नहीं सकतीं। प्रलोभन, मुसीबतें, कठिनाइयें तपस्वी को विचलित करने की कोशिश करती हैं पर सच्चा तपस्वी दृढ़ वाणिया बोलता हुआ उनको दबा देता है, वह इन्हें केवल सहता ही नहीं उसे तो इनके साथ युद्ध करने में आनन्द आता है। अपनी अचलता, अपने प्रभुत्व को अनुभव करने में अपनी अदम्य शक्ति की व्यायाम करने में आनन्द आता है। जितना तीव्र विरोध, उतना तीव्र आनन्द। वह द्वन्द्वों को ललकारता है, उनका स्वागत करता है, उनका पीछा करता है। उनको वह गत बनाता है कि वह सदा याद रखें। इच्छा पूरी करने में वह मजा कहां जो इच्छा पर काबू पाने में है। जबरदस्त घोड़े हमें भगा के ले जायें और हम उसे काबू न कर सकें यह तो दैवीय अवस्था है। मजा तो तब है कि ज़बरदस्त घोड़े पर उस से भी ज़बरदस्त सवार चढ़ा हो उसे काबू किया हो और उसे जिधर चाहे ले जा सके।

इस तप का गीता के १७ वें अध्याय के १४, १५, १६, श्लोकों में बहुत सुन्दर और सविस्तर वर्णन है—

देव, ब्राह्मण, गुरु, विद्वानों की सेवा, पूजा, आज्ञा-पालन, वीर्य रक्षा, सफाई, रहन सहन, खानपान में सरलता, अहिंसा यह शारीरिक तप है। मीठा हितकारक बोलना, वेदशास्त्रों का पठन पाठन यह वाचिक तप है। मन प्रसन्न रखना, मन का संयम करना, भावना की शुद्धि, मनन करना यह मानसिक तप है।

संक्षेप में शुद्ध और प्रसन्न चित्त से द्वन्द्वों से युद्ध करना और भले कामों में अग्रसर होना तप है।

गुरुकुल गंगा में गोता

(ले०—राजगुरु श्री पं० धुरेन्द्र जी शास्त्री)

पौष पूर्णिमा को रात्रि के समय एकान्त में भगवती-भागीरथी के तट पर पद्मासन लगाये हुए एक साधु बैठे थे। चन्द्रमा की चांदनी चहुं ओर चमक रही थी उस चमकती हुई चांदनी में गंगा के निर्मल जल की गति जन-मन मोदन के लिये प्रभूत प्रयत्न कर रही थी। कैसा सौन्दर्य सम्पन्न गंगा का दृश्य है! वह साधु एकान्त में बैठकर इस दृश्य के आनन्द का अनुभव कर रहा है ऐसा सोचकर कुछ भावुक भक्त उस महात्मा के पास पहुंचे और शान्त होकर महात्मा के गाने को सुनने लगे। साधु मधुर स्वर में गा रहा था— "गुरुकुल गंगा में गोते लगाने चलो" भावुक भक्तों ने महात्मा को नत मस्तक हो नमस्ते की और बैठकर पूछने लगे कि महात्मा जी पतित पावनी भगवती भागीरथी के किनारे बैठकर किस गुरुकुल गंगा का गान कर रहे हो। वह कौनसा गंगा है और वह कहां है ? उसमें स्नान करने का कौनसा समय है ?

साधुः—बैठ जाओ। मैं जो कुछ कहूं उसको शान्ति से श्रवण करो ! इस गंगा को पतित पावनी कहना भारी भूल है। हां ! शरीर मल वाहनी कहना ठीक है। गुरुकुल गंगा ही पतित पावनी है। उसमें गोता लगाने से पतित प्रभूत पवित्र हो जाते हैं।

भक्तः—महाराज ! वह गुरुकुल गंगा कहां है। उसमें स्नान किस दिन होता है।

साधुः—प्राचीन ऋषियों की तपोभूमि, हिमालय की उपत्यका में हरिद्वार के पास पतित पावनी गुरुकुल गंगा है। २२ से २५ मार्च तक उसका उत्सव होता है। वही उस गंगा के स्नान का समय है।

भक्तः—महाराज ! गुरुकुल में स्नान करने से पतितों का पावन कैसे हो जाता है। यह हमारी समझ में नहीं आया है।

साधुः—सुनो। वहां बड़े २ साधु सन्त, महात्मा मुनि पधारेंगे। उनके उपदेश सुनने से मनुष्यों का मलिन मन मल-मुक्त हो जाता है। सात्विक सद्-भावनाओं का संचार होने लगता है और पापनिष्ठ पिशाचिनी चित्त प्रवृत्ति परे हट जाती है।

भक्तः—क्या उत्सव में बड़ी भीड़ होती है। ठहरने और भोजन के लिये भी वहां कुछ प्रबन्ध रहता है ?

साधु—प्रान्त के कोने-कोने से हजारों स्त्री पुरुष उपदेशामृत पान करने के लिए वहां जाते हैं। भोजनादि के लिए दुकानें लगती हैं और ठहरने के लिए समुचित प्रबन्ध रहता है। यदि तुम लोग इस वर्ष गुरुकुल गंगा में गोता लगाने जाओगे तो सदा के लिए इस गोते लगाने को भूल जाओगे। तुम लोग वहां चलने के लिए अभी से तैयारी करो। अपने इष्ट मित्रों को भी साथ ले जाना। मैं तो आज ही से उस ओर जा रहा हूँ।

भक्त—महाराज ! उपदेश के अतिरिक्त वहां क्या क्या होता है ?

साधु—ब्रह्मचारियों के व्यायाम का बड़ा ही सुन्दर प्रदर्शन होता है, भिन्न-भिन्न प्रकार के शारीरिक खेल होते हैं। सामयिक सुधार सम्बन्धी सम्मेलन और भाषण होते हैं, विविध विषयों पर निबन्ध पढ़े जाते हैं और सामयिक विषयों पर वाद-विवाद प्रतियोगिता होती है। मैं कहां तक कहूं वहां जाकर देखने पर ही सब कुछ प्रतीत होगा।

भक्त—बहुत अच्छा महाराज हम लोग अवश्यमेव गुरुकुल गंगा में गोता लगाने के लिए जायेंगे। महात्मा से नमस्ते कर सब अपने अपने स्थान पर चले गये और गुरुकुल चलने की तैयारी करने लगे।

मित्रता

[अनु० —श्री विद्यालंकार]

(२)

"मनुष्य-प्रायः किसी के हृदय को निर्दय अथवा किसी की भलाई के बदले में बड़ी उपेक्षा से प्रत्युत्तर दिये जाने की बातें कहते हुए सुने जाते हैं। लेकिन मैं तो प्रायः मनुष्यों को कृतज्ञता के बोझ में दब कर रोया करता हूं"

मैं एमर्सन से सहमत नहीं, जब वह कहता है "दुनियां में हम अकेले हैं और वे मित्र, जिन्हें हम चाहते हैं, स्वप्न या कहानी की चीजें हैं। लेकिन एक उच्च आशा कि जगत् के किसी अन्य क्षेत्र (स्वर्ग) में कुछ आत्माएं हैं, जो काम करती, सहती और साहस करती हैं, ये हमें प्रेम कर सकती हैं, और हम इन से प्रेम कर सकते हैं—एक कृतज्ञ और विश्वासी हृदय को सदा प्रफुल्लित बनाये रहती हैं।"

इसमें सन्देह नहीं कि एक योग्य मित्र जीवन के सुख और मूल्य को बहुत बढ़ा देता है; तो भी हमें मुख्य रूप से अपने पर ही निर्भर रहना चाहिये। और मनुष्य स्वयं अपना सबसे बड़ा मित्र अथवा सबसे बड़ा शत्रु है।

बेकन की यह स्थापना "समवयस्कों की मित्रता प्रायः संकुचित होती है; अ-समान मित्रों में ही एक का ऐश्वर्य दूसरे को निहाल कर सकता है" बहुत ही दुःखदायी है। लेकिन इस स्थापना को उसकी विवेचना पूर्ण सम्मति नहीं कहा जा सकता' क्योंकि अन्यत्र उस ने कहा है "लेकिन हम और आगे बढ़ सकते हैं, और निज-कुल सत्यता से कह सकते हैं कि सच्चे मित्र जिनके बिना यह संसार सूना मालूम होता है—याने के लिए एक मात्र एकाकीपन की आवश्यकता है" वह सिर्फ यह नहीं जोड़ता कि मित्रता "विचारों की उलझन और अन्धकार को समझने के लिए दिन का सा प्रकाश" देती है, बल्कि यह "बड़े तूफानों और आंधियों के प्रेम को दिन बना देती है" और अन्त में मनुष्य अपने मित्र के साथ "बड़ी सुगमता से अपना विचार विनिमय कर सकता है, उनको सुन्दर क्रम में ढाल सकता है, और यह देख सकता है कि शब्दों में व्यक्त करने पर वे कैसे लगते हैं; और सबसे मुख्य बात तो यह है कि वह एक घण्टे की बात चीत से ही

इस से भी कहीं अधिक बुद्धिमान् बन जाता है, जितना वह दिन भर के विचार करने के बाद बनता"। "लेकिन मनुष्य एकान्तता के सच्चे अभिप्राय को बहुत कम समझता है; और उसके विस्तार के बारे में तो बहुत ही नासमझ है; क्योंकि प्रेम और चाह के अभाव में, जीवित चेहरे चित्रों का समूह और बातचीत अस्पष्ट सा चिह्न मालूम होने लगते हैं; और बहुत बड़ी भीड़ भी साथी नहीं कहला सकती"।

इस अन्तिम स्थापना से मैं पूर्ण सहमत नहीं हूं। क्योंकि कभी २ अजनबी व्यक्ति भी बड़े दिलचस्प होते हैं। बहुत लोग, डा० जॉन्सन से सहमत होंगे, जबकि एक सायंकाल का वर्णन करते हुए, वह कहता है "महाशय ! आज हमने खूब बातें कीं"

Epictetus ने उन सामान्य विषयों से, जो आम तौर पर चुने जाते हैं; बचने के लिये कहा है। यह उपदेश बहुत सुन्दर है, और फिर अपनी सलाह दी है कि यह बात चीत "दंगल, घुड़दौड़, कुश्तियां, खान पान आदि सामान्य विषयों पर तो कभी न होनी चाहिये। और विशेष कर किसी मनुष्य की निन्दा करना" लेकिन जब वह कहता है 'या प्रशंसा करना अनुचित है' तब मुझे इसकी सत्यता में कुछ सन्देह मालूम होता है। Marcus Aurelius ने अधिक बुद्धिमत्तापूर्ण सलाह दी है "जब तुम अपना मनोरञ्जन करना चाहो तो अपने आस पास रहने वालों के विशेष गुणों का ध्यान करो-उदाहरण के लिये एक की कर्मशीलता, दूसरे की नम्रता, तीसरे की उदारता और चौथे की कोई अन्य विशेषता। क्योंकि दूसरों का विशेषताओं के उदाहरणों से बढ़कर, और किसी चीज से इतनी खुशी नहीं होती, और जब यह विशेषताएं हमारे चारों तरफ रहने वाले व्यक्तियों के जीवनों में बहुतायत से दृष्टिगोचर हों सकें तब तो कहना ही क्या है ? इसलिये उनको हमें सदा अपने सामने रखना चाहिये" लेकिन प्रायः, जिन्हें हम अपना मित्र कहते हैं, उनका दर्शन या श्रवणमात्र करते हैं, उनके मन या आत्मा से बिलकुल अनभिज्ञ रहते हैं।

हमें मित्रों के चुनाव में सावधान रहने की जितनी आवश्यकता है, उतनी ही उनको बनाये रखने में भी सावधानी रखनी चाहिये। अगर एक मनुष्य दूसरे के सम्बन्ध में जो कुछ कहता है; वह हरेक जान जाये; तो पास्कल का विश्वास है कि "दुनियां में चार मित्र भी ढूंढने से नहीं मिलेंगे"। मेरा विश्वास है कि यह उक्ति बहुत कठोर और अत्युक्ति पूर्ण है, लेकिन तो भी हमें उन चार में से एक होने का प्रयत्न करना चाहिये। और अगर तुम्हें कोई मित्र मिल गया है; तो उसे असावधानी से कभी खो मत दो। एक पौरस्त्य कहावत है "अगर तुम्हारा कोई मित्र है, तो उससे मिलते रहो, क्योंकि जिस रास्ते पर यातायात नहीं होता, उसपर झाड़ झङ्खार उग आते हैं। प्रेम क्षणिक "रैनबसेरा" नहीं होना चाहिये।

मित्रता के फल स्वरूप होने वाला कोई भी परिणाम अवाञ्छनीय नहीं होता। बहुत से लोग अपने मित्रों को खोये बिना उनकी वास्तविक उपयोगिता व महत्ता नहीं समझते।

"लेकिन कोई भी मनुष्य---जो अपने साथी की कबर के पास खड़े होकर, सदा के लिये समाप्त हुई मित्रता पर विचारता है; उसे यही अनुभव होता है कि हमारे अतीत के वे सारे स्वच्छन्द प्रेम और महान् कष्ट की स्मृतियां, इस स्पन्दन रहित हृदय को एक पल के लिये भी प्रसन्न करने में असमर्थ हैं, तथा उसके प्रति किये गये अकृतज्ञता पूर्ण कृत्यों की क्षतिपूर्ति करना उनके सामर्थ्य से बाहिर है; वह कभी भी ऐसा ऋण अपने सिर पर लेने को तैय्यार नहीं होगा, जिस से मृत व्यक्ति के हृदय को जरा भी ठेस पहुंचे"।

मृत्यु, भी मित्रता का विच्छेद नहीं कर सकती। सिसरो ने कहा था "मित्र चाहे अनुपस्थित हों लेकिन वे सदा उपस्थित ही रहते हैं, वे ग़रीब हों तो भी श्रीमान् लगते हैं, कमजोर होते हुए भी स्वस्थ दीखते हैं, और इससे भी अजीब बात, जिस पर विश्वास करना कठिन है, वे मर जाने के बाद भी जीवित रहते हैं"

यह एक (Paradox) पहेली मालूम होती है, लेकिन क्या इसकी व्याख्या में इससे अधिक सत्य नहीं है? "मेरे लिये स्किपिओ अभी जीवित है, सदा जीवित रहेगा, क्योंकि मैं उसके गुणों से प्यार करता हूं, और वे गुण अभी तक नष्ट नहीं हुए हैं।......मुझे भाग्य या समय ने जितनी भी चीजें दी हैं, मैं उनमें से किसी की भी स्किपिओ की मित्रता से तुलना नहीं कर सकता"

यदि हम अपने मित्रों का चुनाव, धन की दृष्टि की उपेक्षा करके योग्यता के आधार पर करें; लेकिन साथ ही हम इस महान् उपहार के सच्चे अधिकारी हों, तो वे सदा हमारे साथ रहेंगे-अनुपस्थिति में और मृत्यु के बाद भी।

सूचना

शल्य चिकित्सा के प्रसिद्ध अनुभवी कैप्टन डाक्टर रामचन्द्र जी भूतपूर्व सिविल सर्जन १ मार्च से १५ मार्च तक गुरुकुल कांगड़ी के हस्पताल में हर प्रकार के छोटे बड़े हर्निया, पथरी, मोतियाबिन्द आदि के आपरेशन करेंगे। जो सज्जन उनकी सेवा से लाभ उठाना चाहें वे शीघ्र ही गुरुकुल पहुँच जायं। रोगियों को अपना बिस्तर और तीमारदार साथ लाना चाहिए।

मुख्याधिष्ठाता
गुरुकुल कांगड़ी।

उत्सव में डेरों का किराया

१— छोलदारी बड़ी जिसमें ५ या ६ आदमी रह सकें किराया ४)
२— डेरा ई० पी० सिंगल ८)
३— छोटी छोलदारी किराया २)

गु रु कु ल

१६ फाल्गुन शुक्रवार १९९६

गुरुकुल का ३८ वां वार्षिकोत्सव

आर्यजनता को यह जानकर प्रसन्नता होगी कि गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी का ३८ वां वार्षिकोत्सव ईस्टर की छुट्टियों में २२ मार्च से २५ मार्च तक बड़े धूमधाम से मनाये जाने की तैयारियां हो रही हैं। आइये, हम सब गुरुकुल की ज्ञान-गंगा में गोता लगाकर अपनी आत्मा को पवित्र करें।

गुरुकुल की स्थापना आर्यसमाज के इतिहास में सबसे महत्व की घटना है। गुरुकुल खोलकर आर्यसमाज ने शिक्षा के क्षेत्र में अद्भुत क्रान्ति पैदा कर दी। अन्य क्षेत्रों के समान शिक्षा के क्षेत्र में भी आर्यसमाज के कुछ विशेष आदर्श हैं। ऋषि दयानन्द ने अपने समय में प्रचलित शिक्षा पद्धति में अनेक दोष अनुभव कर एक नवीन शिक्षा-प्रणाली का प्रतिपादन किया था। ऋषि ने इसे गुरुकुल शिक्षा प्रणाली का नाम दिया है। उस समय भारत में शिक्षा की मुख्यतया दो प्रणालियां प्रचलित थीं। एक भारत के ब्रिटिश शासकों द्वारा प्रारम्भ की गई थी और दूसरी पुरानी परम्परा के अनुसार पण्डित-मण्डली में प्रचलित थी। सरकार द्वारा प्रचलित प्रणाली भारत के राष्ट्रीय तथा धार्मिक आदर्शों के प्रतिकूल थी। उसमें भारतीय भाषा, धर्म, सभ्यता, संस्कृति तथा साहित्य की सर्वथा उपेक्षा की गई थी। पण्डित मण्डली की शिक्षा-पद्धति समय की आवश्यकताओं को पूर्ण नहीं करती थी। उसमें वर्तमान युग के ज्ञान-विज्ञानों को कोई स्थान प्राप्त न था। चरित्र-निर्माण के लिये ब्रह्मचर्य, त्याग, तपस्या आदि जिन आदर्शों का पालन आवश्यक है उनका दोनों प्रणालियों में कोई महत्व न था। ऋषि दयानन्द ने अनुभव किया कि भारत में प्राचीन गुरुकुल प्रणाली का उद्धार कर इन दोषों को दूर किया जाना चाहिए और अपनी संस्कृति को अपनी भाषा द्वारा सिखलाना चाहिये। निःसन्देह ऋषि दयानन्द के ये विचार शिक्षा के क्षेत्र में अत्यन्त क्रान्तिकारी विचार थे।

ऋषि दयानन्द के इन्हीं विचारों को लेकर स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज ने सन् १९०२ में गुरुकुल की स्थापना की। जन्म लेते ही गुरुकुल सिर्फ भारतीय अन्तरिक्ष में ही नहीं अपितु भूमण्डल के आसमान में एक चमकते तारे के रूप में उदय हुआ और शीघ्र ही सर्व प्रिय होगया। अपने जीवन के ३८ वर्ष के इस अल्पकाल में शायद ही किसी अन्य संस्था ने इतनी प्रतिष्ठा प्राप्त की होगी जितनी कि गुरुकुल ने। इसके उज्वल भविष्य का यही सब से बड़ा प्रमाण है। गुरुकुल की नकल पर इसाइयों और मुसलमानों ने भी जामिया-मिलिया सरीखी संस्थाएं खोल दी हैं जिनमें स्पष्टतया गुरुकुल के आधार भूत सिद्धान्तों को अपनाया गया है। हमें यह देख कर सन्तोष होता है कि जिस प्रकार प्राचीन गुरुकुल विश्व-विद्यालय संसार को नित्य नया-नया सन्देश देकर पथ-प्रदर्शन करते थे उसी प्रकार आज हमारा गुरुकुल भी शिक्षा संस्कृति के क्षेत्र में समस्त संसार का मार्ग दर्शक हो रहा है। इस से बढ़ कर खुशी की बात और क्या हो सकती है।

स्थापना से लेकर अब तक गुरुकुल ने शिक्षा के विभिन्न क्षेत्रों में अनेक उपयोगी परीक्षण किये हैं। इस समय गुरुकुल एक छोटा-मोटा शिक्षणालय नहीं अपितु विश्व-विद्यालय का रूप धारण कर चुका है। गुरुकुल कांगड़ी तथा उससे सम्बद्ध संस्थाओं में लगभग डेढ़ हजार विद्यार्थी ब्रह्मचर्य पूर्वक शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। गुरुकुल में वेद, शास्त्र, उपनिषद्, संस्कृत-साहित्य, आयुर्वेद आदि प्राचीन विषयों के अतिरिक्त इतिहास, अर्थशास्त्र, राजनीति शास्त्र रसायन, पाश्चात्य-दर्शन पाश्चात्य चिकित्सा आदि आधुनिक विषयों की भी उच्चतम शिक्षा राष्ट्रभाषा हिन्दी के माध्यम द्वारा दी जाती है। इस समय गुरुकुल विश्वविद्यालय भारत का सब से बड़ा राष्ट्रीय शिक्षणालय है। यहां के विद्यार्थियों में भारतीय संस्कृति, समाज सेवा, स्वदेश प्रेम आदि गुण ठोस मात्रा में विद्यमान पाये जाते हैं। यह संस्था आर्य समाज की बड़े गौरव और शान की वस्तु है। इसे आर्य जनता ने अपने तन, मन, धन से सींचा है। इस वाटिका को लहलहाता देखने की किस आर्य बन्धु को इच्छा न होगी। इसकी शान आर्य जनता की शान है। गतवर्ष हैदराबाद-संग्राम में यहां के १६ ब्रह्मचारी जिस शेरों की सी दिलेरी के साथ कूदे और अपने जानों का बाजी लगा कर बेंतों की यातनायें भोगते रहे और अपने निश्चय से डिगे नहीं। इस बात की भूरि भूरि प्रशंसा सत्याग्रह के अनेक सर्वाधिकारियों ने भी की थी।

हर्ष का विषय है कि आपके प्रिय उसी गुरुकुल का वार्षिक महोत्सव कई मास की प्रतीक्षा के बाद पुनः आ रहा है। आपकी यह गुरुकुलोत्सव यात्रा सच्चे अर्थों में तीर्थ यात्रा होगी। गुरुकुल के समान सच्चा तीर्थ आजकल इस भारत में कौनसा है? आधुनिक तीर्थ तो अब यथार्थ तीर्थ नहीं रहे हैं। हिमालय की उपत्यका के सघन रमणीय वनों से घिरे हुए गंगा के पवित्र तट पर वेद ध्वनि से पूर्ण गुरुकुल के विशुद्ध वातावरण में आर्य समाज के उच्चतम कोटि के विद्वानों और महात्माओं के सत्संग से बढ़कर आनन्द की चीज इस संसार में और क्या हो सकती है? 'सन्त-समागम' और 'हरिकथा' दोनों अत्यन्त दुर्लभ वस्तुएं यहां पर आपको एक स्थान पर मिलेंगी। इसलिये आपसे साग्रह निवेदन है कि आप इस अवसर को न चूकिये और अपने पुत्र-कलत्र, बन्धु-बान्धव, इष्ट मित्रों के साथ नियत तिथि को गुरुकुल अवश्य पहुंचिये। गुरुकुल में आपके ठहरने का स्नान ध्यान तथा खान पान आदि सभी बातों का समुचित सुप्रबन्ध रहेगा और आपको किसी प्रकार का कष्ट न हो इसका पूरा ध्यान रखा जायगा।

कई सामयिक परिस्थितियों के कारण इस वर्ष का

उत्सव विशेष महत्ता लिए हुए होगा। देश के अनेक गण्य मान्य नेता और महात्मा उत्सव पर पधार रहे हैं जिनके व्याख्यानों और उपदेशों से जनता भरपूर लाभ उठायेगी। विस्तृत प्रोग्राम बाद में प्रकाशित किया जायगा।

अन्त में आर्यजनता को हमारा सादर निमन्त्रण है कि वह अधिक से अधिक संख्या में गुरुकुलोत्सव में सम्मिलित होकर जहां इस उत्सव को सफल बनायेगी वहां गुरुकुल की उन्नति के लिये भी सक्रिय परामर्श देकर हमें अनुगृहीत करेगी।

गुरुकुल की वाग्वर्धिनी सभा का संक्षिप्त

इतिहास

(२)

(ले०— श्री हरिदत्त जी वेदालङ्कार)

गुरुकुल में राजनीति का प्रवेशः—गुरुकुल में यह क्रान्तिकारी परिवर्तन था। सब क्षेत्रों में इसका असर स्पष्ट दिखाई देने लगा। पाठ्य क्रम में पौरस्त्य विषय की महत्ता पहले जैसी न रही। वाग्वर्धिनी सभा के विषय अब केवल धार्मिक एवं शास्त्रार्थोपयोगी न रहे वैज्ञानिक विषयों का भी प्रवेश हुआ। इसी समय गुरुकुल में राजनीति प्रविष्ट हुई। राजनीति की चर्चा करने का श्रेय श्री प० श्री पाद-दामोदर सातवलेकर जी को है। उन दिनों राष्ट्रियमहासभा में नरम-गरम दल का झगड़ा जोर का था। नरम दल के प्रमुख नेता गोपालकृष्ण गोखले थे तथा गरम दल का नेतृत्व श्री बालगङ्गाधर तिलक कर रहे थे। दोनों महाराष्ट्री थे, ब्राह्मण थे, तथा प्रारंभ में एक ही संस्था में काम करने वाले थे परन्तु दोनों के विचारों में आकाश पाताल का अन्तर था। गोखले का दृढ़ विश्वास था बृटिश सरकार ईश्वर की इच्छा से भारतीयों की भलाई के लिए ही भारत में प्रतिष्ठापित है। उसका विरोध करना न केवल राजद्रोह अपितु ईश्वरद्रोह भी है। किन्तु दूसरे पक्ष की दृढ़ धारणा थी कि बृटिश सरकार भारतीयों को हानि पहुंचाने के लिए यहां कायम है। ऐसे अत्याचारी शासन का अन्त करना न केवल हमारा राजनैतिक अपितु धार्मिक कर्तव्य भी है। गोखले कहते थे-'अधिकारों के लिए प्रार्थना पत्र भेजो'। तिलक का कहना था—'अधिकारों के लिए लड़ो'। भारत के राजनैतिक वातावरण में गर्मी पैदा हो गया। सन् १६०७ में सूरत में दोनों दलों का जबरदस्त टक्कर हुई। इसका असर गुरुकुलीय जीवन पर भी पड़ा। श्री सातवलेकर भी महाराष्ट्री थे। उन्होंने महाराष्ट्र की राजनीति का गुरुकुल में प्रवेश कराया। वह तिलक को अपना राजनैतिक गुरु मानते थे। महात्मा मुन्शीरामजी गोखलेकी नीति को अधिक उपयुक्त समझते थे। विद्यार्थियों को दोनों पक्ष सुनने का मौका मिलता था। स्वभावतःराजनीति धार्मिक विषयों की अपेक्षा अधिक आकर्षक थी। उसमें अधिक दिलचस्पी ली जाने लगी।

सभा के नियमः—उन दिनों वाग्वर्धिनी सभा के अधिवेशनों के कोई निश्चित नियम न थे। एक निश्चित स्थान पर इकट्ठे होकर बाकायदा एक सभापति का चुनाव करके क्रम से विद्यार्थियों के भाषण न होते थे किन्तु रात को भोजन के बाद इकट्ठा बैठ कर इन राजनैतिक विषयों पर चर्चा हुआ करती थी। इसे एक गोष्ठी ही कह सकते हैं। इन अनियमित अधिवेशनों में सभा वाद-विवाद की अवस्था से आगे नहीं बढ़ा। विशेषाधिवेशनों का अभी जन्म न हुआ था। वादविवादों के अतिरिक्त कुल में पधारने वाले मान्य व्यक्तियों का व्याख्यान भी हुआ करते थे इन व्याख्यानों का स्थान प्रायः यज्ञशाला होती थी।

गुरुकुल के इतिहास में यह युग संस्कृत एवं पण्डितों का युग था। यद्यपि पाश्चात्य विद्वानों का प्रवेश हो चुका था किन्तु अभी उसका स्थान बहुत तुच्छ समझा जाता था। हिन्दी में लिखना आदि हीनता की दृष्टि से देखा जाता था। संस्कृत में बात चीत और व्यवहार करना गौरव की बात समझी जाती थी। बाहर के कॉलिजों में जो स्थान अंग्रेजी को मिला था वह उस समय यहां पर संस्कृत को प्राप्त था। हिन्दी दोनों स्थानों में एक उपेक्षित भाषा थी। अतः यह स्वाभाविक था कि वाग्वर्धिनी की अपेक्षा संस्कृतोत्साहिनि. का अधिक महत्व समझा जाय। उस काल की शुद्ध संस्कृत की हस्त लिखित तथा छपी हुई पत्रिकाओं में-'साहित्यामृतवर्षिणी' 'साहित्यसुधा' 'आशा' 'उषा' आदिका नाम तो सुनाई पड़ता था किन्तु शुद्ध हिन्दी की कोई भी हस्तलिखित पत्रिका नहीं दिखाई देती थी। वाग्वर्धिनी सभा की सब से पहली पत्रिका 'चन्द्रिका' थी और इसमें संस्कृत और हिन्दी दोनों भाषाओं के लेख हुआ करते थे।

सभाओं की समाप्तिः—सन १६०८ के जून या जुलाई के महीने में इस सभा पर अनभ्र-वज्रपात हुआ। गुरुकुल के एक प्रमुख अधिकारी ने सभा को गैर कानूनी करार दे कर बन्द करने की आज्ञा देदी। उस समय वही अधिकारी गुरुकुल के सर्वेसर्वा थे अतः उनके विरुद्ध कहीं 'अपील' भी न हो सकती थी। सभा बन्द हो गई। महाविद्यालय विभाग के दो टुकड़े कर दिये गये। अर्थात् उन्हें दो भिन्न २ स्थानों पर रहने की आज्ञा दी गयी। बङ्गभङ्गकी तरह महाविद्यालय का अङ्गभङ्ग कर उन्हें आशा थी कि अब विद्यार्थी संगठित होकर बगावत न कर सकेंगे। अगले ४॥ वर्ष का इतिहास उस प्रमुख अधिकारी के संघर्ष की एक रोचक कथा है। सभा महाविद्यालय का प्राण थी। इसके बिना विद्यार्थियों का सामाजिक जीवन समाप्त हो रहा था। उन्होंने बार बार निवेदन किया कि सभा के न रहने से हमारी वाक्शक्ति नष्ट हो रही है। हमें फिर सभा की आज्ञा दी जाय। जब बहुत शोर मचा तो उन अधिकारी ने एक नियमावली बना कर भेजी और कहा कि इन नियमों के अनुसार सभा फिर बनाई जा सकती है। विद्यार्थियों ने वह नियमावली अस्वीकृत कर दी। महीनों वह नियमावली अधिकारी से ब्रह्मचारियों तथा ब्रह्मचारियों से अधिकारी की ओर फुटबाल की तरह फेंकी जाती रही। मख्यतः

विवाद इस प्रश्न पर था कि सभाका प्रधान अधिकारीहो या ब्रह्मचारी। ब्रह्मचारियोंकी मांग थी कि-सभाका प्रधान ब्रह्मचारी होना चाहिए। अधिकारी के सभापति होने से हम अपने विचार खुल कर नहीं प्रकट कर सकते। नौसिखिये विद्यार्थी तो शरम के कारण अपनी जबान भी नहीं खोल सकते। दूसरे पक्ष का कथन था कि अधिकारी के सभापति होने से ब्रह्मचारियों पर नियन्त्रण रहेगा। वे उच्छृंखल होकर अधिकारियों की आलोचना नहीं कर सकेंगे। वास्तव में यही बगावत थी जिस के कारण सभा बन्द की गई थी। हम यहां इस बहस में नहीं पड़ना चाहते कि कौन पक्ष न्याय्य था। सम्भवतः दोनों पक्ष कुछ अंशों में सच्चे थे। विद्यार्थियोंकी स्वतन्त्रताको बिलकुल नष्ट कर देना वांछनीय नहीं हो सकता परन्तु उन्हें बेलगाम छोड़ देना भी खतरे से खाली नहीं। इस बात का ध्यान रखना आवश्यक है कि उन्हें दी गई स्वतन्त्रता उच्छृंखलता में परिणत न हो जाय। हमने विस्तार से इस घटना को इस लिए लिखा है कि कई-कई बार सभा के मध्यकाल में भी इसी प्रश्न को लेकर झगड़ा उठा है। यह प्रश्न इतना जटिल और नाजुक है कि इस पर कोई सम्मति कायम करना असम्भव नहीं तो कठिन कार्य अवश्य है। अस्तु, जो कुछ हो १६०८ सन में यह झगड़ा बढ़ता ही गया। तनातनी इतनी बढ़ गयी कि समझौते की आशा बिलकुल जाती रही। ४॥ साल तक सभा का कोई अधिवेशन नहीं हुआ। (असमाप्त)

गुरुकुल आयुर्वेद महाविद्यालय में बाहर के विद्यार्थियों का प्रवेश

पहले आयुर्वेद महाविद्यालय गुरुकुल कांगड़ी में बाहर के विद्यार्थी नहीं लिये जाते थे। अब आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब ने बाहर के ऐसे विद्यार्थियों का लिया जाना स्वीकार कर लिया है :—

(१) जो अविवाहित (वाग्दान भी न हुआ हो) सदाचारी, उपवीत हों तथा गुरुकुल के सब प्रकार के नियम पालन करने के लिये उद्यत हों।

(२) जिनकी आयु १५ वर्ष से कम और १६ वर्ष से अधिक न हो।

(३) जो :—

(i) संस्कृत में- प्राज्ञ या अन्य शिक्षणालयों की उसी दर्जे की परीक्षा पास हों या प्रवेश के समय प्राज्ञ परीक्षा की साहित्य तथा व्याकरण की पुस्तकों की परीक्षा देकर उत्तीर्ण हों।

(ii) अंग्रेजी में किसी विश्वविद्यालय की मैट्रिक परीक्षा उत्तीर्ण हों या प्रवेश के समय अंग्रेजी को अधिकारी या उस दर्जे का परीक्षा देकर उत्तीर्ण हुए हों।

(iii) हिन्दी और विज्ञान .. आचार्य जी को सन्तोष दे सकें कि उनको इन विषयों का पर्याप्त ज्ञान है।

विद्यार्थियों का चुनाव गुरुकुल वार्षिकोत्सव के अवसर पर तारीख २२ से २५ मार्च १६४० तक होगा। जो सज्जन अपने विद्यार्थियों को गुरुकुल आयुर्वेद महाविद्यालय में प्रविष्ट कराना चाहते हैं, उन्हें अपने प्रार्थना-पत्र शीघ्र ही भेज देने चाहिएं। गुरुकुल के नियम तथा दाखले का फार्म "कार्यालय गुरुकुल कांगड़ी" ज़िला सहारनपुर से मिल सकेंगे।

मुख्याधिष्ठाता
गुरुकुल कांगड़ी।

दो गीत

[१]

अरे, ये फूल किसको दूँ?
जो रहा अनुकूल अब तक
अब बना है क्रूर अन्तक
व्यर्थ यौवन तरुण मेरा—चल महीतल आप खोदूँ?
अरे, ये फूल किसको दूँ?
हाय! भूतल भी कहां है?
सभी पर का हो रहा है!
क्या करूं कैसे? यहां क्या वस्तु है अवशेष जो दूँ?
अरे, ये फूल किसको दूँ?
आज बनती शाप काया!
दे रही सन्ताप छाया!
मरूँ, जीऊँ, क्या करूँ मैं? हँसू, गाऊँ, या कि रोदूँ?

[२]

माली! तुम बनो अनुकूल;
कुछ विहसती मुसकराती;
कुछ कसकती छटपटाती;
कलियों में छिपे तुम, थे गा रहे मशगूल!
माली, तुम रहे अनुकूल!
खलकते वे फूल भाये
तोड़ कर मैंने गिराये
सजल कुसुमाञ्जलि चढ़ाने देवता के कूल!
माली, तुम रहे अनुकूल!
हाय, कोई भी न लेता!
मुँह बनाता, जिसे देता!
लो तुम्हें लौटा रहा हूँ वे तुम्हारे फूल!
माली, तुम बनो अनुकूल!

—'श्री कुमार'

गीत

जीवन की यह झाँकी है॥
वह जो अपने मन को मिटा मिटा कर लेना फांसी है।
जल कर बुझ कर जोत जगाना-आना जाना हाँसी है॥
जीवन भी इक झाँकी है॥
कर में उर में विमल ध्येय की निष्ठा रहती बांकी है।
तन मन जीवन यश औ' वैभव अर्पण करना, मां की है।
जीवन की यह झांकी है॥

"श्री मराल"।

गुरुकुल समाचार

सब ब्रह्मचारियों का स्वास्थ्य अत्युत्तम है। पिछले मासों में ब्रह्मचारियों के भार में सन्तोषजनक वृद्धि हुई है। महाविद्यालय के ब्रह्मचारी अपनी परीक्षाओं को समाप्त कर वार्षिकोत्सव की तैयारी में लगे हैं। विद्यालय के ब्रह्मचारियों की परीक्षा ८ मार्च से प्रारम्भ होगी। अधिकारी परीक्षाएं गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ और गुरुकुल सूपा में ४ मार्च से प्रारम्भ होंगी।

नये बालकों का प्रवेश

गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी का ३८ वां वार्षिकोत्सव इस वर्ष ईस्टर छुट्टियों में तारीख २२ से २५ मार्च १९४० तक मनाया जावेगा, इस अवसर पर नए बालकों का चुनाव तारीख २२, २३ मार्च को होगा। समय बहुत थोड़ा रह गया है. जो सज्जन अपने बालकों को गुरुकुल में प्रविष्ट कराना चाहते हैं उन्हें प्रार्थना-पत्र भेज कर स्वीकृति प्राप्त कर लेनी चाहिये। गुरुकुल की नियमावली तथा प्रवेशफार्म "कार्यालय गुरुकुल कांगड़ी" ज़िला सहारनपुर से मिल सकेंगे।

मुख्याधिष्ठाता
गुरुकुल कांगड़ी।

गुरुकुल कुरुक्षेत्र
वार्षिकोत्सव समारोह

गुरुकुल का वार्षिकोत्सव बड़ी सफलता के साथ समाप्त होगया। २३ तारीख को थानेसर शहर में बड़ी धूमधाम से नगर कीर्तन द्वारा प्रचार किया गया। ६ भजन मण्डलियां गली-मुहल्लों में प्रचार कर रही थीं। २४ को प्रातः कुल-पताका का उद्घाटन श्री आचार्य सोमदत्त जी ने किया और बाद में नवीन प्रविष्ट ११ ब्रह्मचारियों का वेदारम्भ संस्कार हुआ। मध्यान्ह को श्री प० नेकीराम जी शर्मा तथा श्री पं० ज्ञानचन्द्र जी बी.ए. का मनोहर व्याख्यान तथा भजनीकों के भजन हुए। रात्रि का ब्रह्मचारियों ने सुधारक समाज नामक एक ड्रामा किया जिसे पब्लिक ने बहुत पसंद किया। इसके बाद कविता सम्मेलन हुआ। बाहर से ८ १० योग्य कवि पधारे हुए थे। जनता ने इसमें बड़ी रुचि प्रदर्शित की। २६ को प्रातः सन्ध्यादि के बाद वादविवाद सम्मेलन हुआ। जिसमें ब्रह्मचारियों के अतिरिक्त बाहर के कई वक्ताओं ने 'कांग्रेस की नीति मुस्लिम पक्षपातिनी है या नहीं' इस विषय पर वादविवाद में भाग लिया। मध्यान्ह को श्री पं० रामगोपाल जी सम्पादक 'अर्जुन' तथा पं० प्रियव्रत जी आचार्य उपदेशक विद्यालय के व्याख्यान तथा अपील हुई। बाद में मशहूर पहलवानों की कुश्तियां हुईं। रात्रि में सबसे पहले ब्रह्मचारियों की लाठी, भाला, तलवार, जिम्नास्टिक आदि के खेल हुए और फिर संगीत विद्या के आचार्य प्रो० चिरंजीलाल जी गायनाचार्य के सभापतित्व में संगीत सम्मेलन बड़ी सफलता से हुआ। म० धर्मवीर जी श्रीयुत नरसिंह जी और सभापति जी तथा उनके शिष्य का गायन बहुत पसंद किया गया। इस प्रकार उत्सव अपूर्व सफलता से समाप्त हुआ। गुरुकुल के लिये लगभग ५०००) दान आया।

गुरुकुल वैद्यनाथ धाम का वार्षिकोत्सव

गुरुकुल महाविद्यालय वैद्यनाथधाम का २१ वां वार्षिकोत्सव १७,१८,१९ मई १९४० को पूर्ण समारोह के साथ मनाया जायगा। इस अवसर पर आर्य्यधर्म सम्मेलन का आयोजन किया जा रहा जिसमें बंगाल और बिहार दोनों प्रतिनिधि सभाओं के आर्यसदस्य मिल कर गुरुकुल की भविष्य की उन्नति के लिये विचार करेंगे। "राष्ट्र भाषा सम्मेलन" में वर्तमान प्रगति और हिन्दुस्तानी के सम्बन्ध में गम्भीर विचार किया जायगा। "कवि सम्मेलन" में योग्य कवि अपनी कविता से हृदयों में उत्तम भावों का समावेश तथा मनोरञ्जन करेंगे। "सरस्वती सम्मेलन" में गुरुकुल के ब्रह्मचारी संस्कृत अंग्रेजी तथा हिन्दी में भाषण तथा प्रहसन आदि का प्रदर्शन करेंगे। इस अवसर पर उपस्थित होने के लिये प्रसिद्ध नेताओं उपदेशकों तथा भजनीकों को निमंत्रित किया जा रहा है। आने की स्वीकृति मिलने पर पूरा प्रोग्राम प्रकाशित किया जायगा। आर्यजनता के दान की सहायता से गुरुकुल वर्त्तमान समय में बहुत उत्तम रूप से संचालित हो रहा है। प्रत्येक दिशा में उन्नति दृष्टिगोचर हो रही है। आशा है आर्यजनता बहुत बड़ी संख्या में वार्षिकोत्सव पर पधार कर अपने सींचे हुए पौधे को विकसित होते देखेगी और कार्य कर्त्ताओं का उत्साह बढ़ायेगी।

नये ब्रह्मचारियों के प्रवेश के लिये संरक्षकों को आवेदनपत्र और नियमावली निम्न पते पर पत्र व्यवहार कर मंगानी चाहिये।

वीरेन्द्र विद्यावाचस्पति एम० ए०
मुख्याधिष्ठाता
पो० गुरुकुल वैद्यनाथधाम, बिहार।

सूचना

लखनऊ स्थित गुरुकुल के स्नातकों, हितैषियों तथा गुरुकुल में (महाविद्यालय विभागों में) पढ़े हुए सज्जनों की एक मीटिंग गुरुकुल फार्मेसी लखनऊ ब्रांच के दफ्तर में—(श्री राम रोड लखनऊ में) हुई और निश्चय हुआ कि गुरुकुल कांगड़ी के स्नातक मंडल की शाखा लखनऊ में स्थापित की जाय जिसका उद्देश्य यू० पी० प्रान्त में स्नातकों का संगठन करना तथा गुरुकुलों और विशेषतः गुरुकुल कांगड़ी के प्रबन्ध में उचित सहायता तथा परामर्श देना हो। इस मीटिंग में स्थानीय स्नातक मंडल का चुनाव भी हुआ और पं० नवरत्न जी विद्यालंकार इसके मन्त्री चुने गये। गुरुकुल हितैषी तथा गुरुकुल के स्नातकों को इस संबंध में निम्न पते से पत्र व्यवहार करना चाहिये।

नवरत्न विद्यालंकार
मन्त्री लखनऊ स्नातक मंडल।
c/o गुरुकुल फार्मेसी
श्रीराम रोड, लखनऊ।

चौधरी हुलासराय के प्रबन्ध से गुरुकुल मुद्रणालय गुरुकुल कांगड़ी में मुद्रित तथा प्रकाशित।

* ओ३म् *

"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत"

Reg. No. A. 2927

गुरुकुल

एक प्रति का मूल्य -) [गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख-पत्र] वार्षिक मूल्य २॥)

सम्पादक—साहित्यरत्न हरिवंश वेदालङ्कार

वर्ष ४] गुरुकुल काङ्गड़ी, शुक्रवार २६ फाल्गुन १९९६, ८ मार्च १९४० [संख्या ४५

निमन्त्रण

मान्यवर ?

आपको यह जान कर प्रसन्नता होगी कि गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी का ३८ वां वार्षिकोत्सव १०, ११, १२, १३, चैत्र संवत् १९९६ तदनुसार २२, २३, २४, २५, मार्च १९४० को बड़े समारोह के साथ गुरुकुल-भूमि में मनाया जावेगा। मैं बड़े प्रेम और आग्रह से आप को इस उत्सव में सम्मिलित होने के लिये निमन्त्रित करता हूं।

गुरुकुल भारत का सब से बड़ा राष्ट्रीय शिक्षणालय है। यहां वैदिक और संस्कृत-साहित्य के साथ साथ इतिहास, अर्थशास्त्र, राजनीति, फिलासफी, रसायन आदि विविध विषयों की उच्चतम शिक्षा राष्ट्रभाषा हिन्दी के माध्यम द्वारा दी जाती है। गुरुकुल में उच्च मानसिक शिक्षा के अतिरिक्त ब्रह्मचर्य के नियमों और आश्रम-प्रणाली द्वारा विद्यार्थियों के चरित्र सुधार के लिये विशेष उद्योग किया जाता है। इस समय गुरुकुल कांगड़ी तथा इसकी शाखाओं में एक हजार से ऊपर विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। गुरुकुल में शिक्षा प्राप्त कर जितने भी विद्यार्थी अब तक स्नातक हुए हैं, उनका बड़ा भाग देश, जाति, धर्म और साहित्य को सेवा में अपना जीवन व्यतीत कर रहा है।

इस अनुपम शिक्षणालय का वार्षिकोत्सव अपना एक विशेष स्थान रखता है। आर्यसमाज का यह सब से बड़ा वार्षिक मेला है। इसमें दूर दूर से हजारों नर-नारी सम्मिलित होते हैं। इस वर्ष गुरुकुल का उत्सव बहुत महत्वपूर्ण होगा। ईस्टर की छुट्टियों में जब सर्वत्र आप के दैनिक कार्य स्थगित से होंगे गुरुकुल के इस उत्सव पर आइये और अपनी आत्मा तथा मन को तृप्त कीजिये। मुझे पूर्ण विश्वास है कि आप अपने परिवार, बन्धु तथा इष्ट-मित्रों के साथ पधार कर उत्सव की शोभा बढ़ावेंगे।

आपका दर्शनाभिलाषी:—

सत्यव्रत सिद्धान्तालङ्कार

मुख्याधिष्ठाता, गुरुकुल कांगड़ी।

उत्सव की विशेषताएं

१. सरस्वती सम्मेलन—इस बार उत्सव में सरस्वती सम्मेलन की दो बैठकें होंगी, एक बैठक में श्री पं० बुद्धदेव-जी विद्यालंकार के सभापतित्व में वेद सम्मेलन होगा जिस में वैदिक विषयों पर महत्वपूर्ण निबन्ध पढ़े जायंगे। एक अन्य बैठक में धारा प्रवाह संस्कृत में वाद विवाद होगा।

२. वाद विवाद सम्मेलन—'क्या भारतीय स्वराज्य प्राप्ति साम्प्रदायिक एकता के बिना सम्भव है ?' इस विषय पर मनोरंजक वाद विवाद होगा। इस वाद विवाद में कांग्रेस तथा हिन्दू सभा के दृष्टि कोणों को प्रकट करने के लिये अनेक महानुभाव भाग लेंगे। सभापति का पद देश के प्रसिद्ध नेता ग्रहण करेंगे।

३. आयुर्वेद सम्मेलन—इस सम्मेलन में देश के प्राचीन तथा अर्वाचीन चिकित्सा के बड़े २ विशेषज्ञ भाग लेंगे। जिसमें "प्राचीन और अर्वाचीन चिकित्सा पद्धतियों में से कौन सी पद्धति श्रेयस्कर है" (शल्य चिकित्सा पद्धति को छोड़ कर) विषय पर मनोरंजक वाद-विवाद होगा।

४. दीक्षान्त संस्कार—इस वार का दीक्षान्त भाषण महत्वपूर्ण होगा। बरार के एक मात्र नेता और केन्द्रीय एसेम्बली को कांग्रेस नेशनल पार्टी के नेता श्री माधव श्री हरि अणे दीक्षान्त अभिभाषण देंगे। इसके अतिरिक्त अनेक प्रतिष्ठित महानुभाव नव स्नातकों को आशीर्वाद देंगे।

५. कविता सम्मेलन—इस वर्ष कविता-सम्मेलन में आस पास के कवियों के अतिरिक्त प्रयाग के प्रसिद्ध कवि श्री बच्चन जी तथा श्री सुमित्रा नन्दन पन्त आदि भाग लेंगे।

६. संगीत सम्मेलन—उपर्युक्त सम्मेलनों के अतिरिक्त संगीत सम्मेलन भी होगा। जिसमें भारत के प्रख्यात संगीताचार्यों के संगीत होंगे।

७. व्यायाम सम्मेलन—इस सम्मेलन में ब्रह्मचारी अपने शारीरिक खेल दिखलावेंगे। व्यायाम के अन्य विशेषज्ञ भी पधार कर अपना अद्भुत कौशल दिखलावेंगे।

इसके अतिरिक्त अन्य भी कई सम्मेलनों का आयोजन किया जा रहा है। गुरुकुल प्रेमियों से प्रार्थना है कि भारी संख्या में पधार कर उत्सव की शोभा बढ़ायें।

गु रु कु ल

२६ फाल्गुन शुक्रवार १९९६

गुरुकुल चलिये

सम्भवतः आर्य जगत् को यह भली-भांति ज्ञात होगा कि इस वर्ष गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी का ३८ वां वार्षिकोत्सव २२ से २५ मार्च तक गुरुकुल की सुरम्य भूमि में अपूर्व उत्साह एवं सजधज के साथ मनाया जायगा। आप जिस दिन की प्रतीक्षा उत्सुक-नयनों द्वारा एक साल से कर रहे थे वह दिन आने ही वाला है यह समाचार जानकर सारी आर्यजनता के हृदयों में अपार हर्ष उमड़ पड़ेगा। प्राचीन ऋषियों द्वारा शतशः प्रशंसित हरिद्वार की इस तपोभूमि में पदार्पण करते हुए आपका हर्ष क्यों न उमड़ेगा? इस समय गुरुकुल-कांगड़ी जैसा सच्चा तीर्थ आपको ढूंढने पर भी इस भूमण्डल पर न मिलेगा। आधुनिक तीर्थ तो दूषित हो चुके हैं। गुरुकुल का इतना विशुद्ध-वातावरण और गंगा के किनारे हिमालय को उपत्यका में वेदशास्त्रों का चिन्तन, कितना आनन्दायो है यह आप अनुभव करके ही जानेंगे। इतनी सुन्दर गंगा की धार और प्रकृति को अनुपम शोभा आपको अन्यत्र कहां से उपलब्ध होगी और उस दृश्य की जरा कल्पना कीजिये जबकि ऐसे पुनीत स्थान पर गुरुकुल में वार्षिकोत्सव होगा जिसमें आर्य समाज के उच्चतम कोटि के सन्यासियों एवं विद्वानों के उपदेश तथा व्याख्यान होंगे। सोने में सुगन्ध होना इसी का नाम है। हमारा आप से साग्रह निवेदन है कि आप इस अवसर को न चूकिये और अपने बन्धु-बान्धव, इष्ट-मित्र, पुत्र-कलत्र के साथ नियत तिथि को गुरुकुल अवश्य पधारिये। आपके यहां आने पर ठहरने का, स्नान-ध्यान तथा खान-पान आदि सभी बातों का समुचित सुप्रबन्ध रहेगा और आप को किसी प्रकार का कष्ट न हो इसका पूरा ध्यान रखा जायगा।

इस उत्सव के साथ गुरुकुल अपने जीवन का एक अन्य वर्ष समाप्त कर रहा है। यद्यपि कहने को कुल का जीवन केवल ३८ वर्ष का है किन्तु इस थोड़े ही काल में हमारे देश ने शिक्षा-क्षेत्र में चहुंमुखी उन्नति की है। एक समय था जब कि शिक्षा के माध्यम, आश्रम जीवन आदि अनेक बातों में हमारे देश को शिक्षा-संस्थाएँ गुरुकुल से बहुत पिछड़ी हुई थीं तब हमें गर्व था कि हमारा गुरुकुल शिक्षा जगत् में एक नयी क्रान्ति का उपासक किंवा पथ-प्रदर्शक है। धीमे २ हमारे देखा देखी अथवा समय के प्रभाव से देश की शिक्षा-संस्थाओं ने सिद्धान्त रूप में उन सब बातों को स्वीकार कर लिया कि जिन के आधार पर गुरुकुल की शिक्षा [illegible] है। इस समय भारतीय शिक्षा के विकास में दूसरा युग आया। बनारस में हिन्दू विश्वविद्यालय, विजगापट्टम में आन्ध्र विश्वविद्यालय, व हैदराबाद में जामिया उस्मानिया का जन्म इसी युग में हुआ था किन्तु उन्हीं दिनों महात्मा गान्धी के नेतृत्व में वह प्रचण्ड लहर भी देश में आई जिससे खुले रूप में देश का ध्यान राष्ट्रीय शिक्षा की ओर आकृष्ट हुआ। इसी जमाने में काशी, गुजरात, बिहार व जामिया मिलिया आदि विद्यापीठ कायम हुए। यह सन्तोष की बात है कि इन सब विद्यापीठों ने गुरुकुल के शिक्षा-क्रम व आश्रम जीवन को काफ़ी हद तक अपनाया। दिल्ली के निकट यमुना के पवित्र तट पर छोटे विद्यार्थियों के लिये जामिया मिलिया द्वारा स्थापित नये आश्रम हमारी इस बात के ज्वलन्त प्रमाण हैं और अब देश के शिक्षाक्रम में एक नयी क्रान्ति होने जा रही है। क्रान्ति की इस उथल-पुथल में हमारा गुरुकुल क्या भाग ले सकता है इसका निर्णय करना हरेक गुरुकुल प्रेमी का कर्त्तव्य है। गुरुकुल का वार्षिकोत्सव उसी पुनीत कर्त्तव्य की याद दिलाता है। हमें आशा ही नहीं निश्चय है कि सब भारी संख्या में उपस्थित होकर जहां इस उत्सव को सफल बनायेंगे वहां गुरुकुल की उन्नति के लिए भी सक्रिय परामर्श देकर हमें अनुगृहीत करेंगे।

कई सामयिक परिस्थितियों के कारण इस वर्ष का उत्सव विशेष महत्ता लिये हुए होगा। उत्सव को रोचक, आकर्षक और शिक्षाप्रद बनाने का अधिकारी वर्ग भरपूर प्रयत्न कर रहे हैं। आशा है इस महोत्सव का देश पर स्थायी प्रभाव पड़ेगा। सरस्वती सम्मेलन, कविता सम्मेलन, वेद सम्मेलन आदि-आदि विविध सम्मेलन विशेष महत्त्व-पूर्ण होंगे। २२ मार्च को दीक्षान्त संस्कार होगा और नवस्नातकों को उपाधि प्रदान की जायगी दीक्षान्त भाषण के लिये बरार के एक मात्र नेता और केन्द्रीय एसेम्बली की नेशनल पार्टी के नेता श्री माधव श्री हरि अणे से प्रार्थना की गई है। हर्ष का विषय है कि उन्होंने हमारी प्रार्थना स्वीकार करली है। उपर्युक्त बातों को दृष्टि में रखते हुए हम तो आप से यही प्रार्थना करेंगे कि प्रत्येक आर्य भाई को अपने परिवार तथा इष्ट मित्रों समेत इस महोत्सव में आना चाहिये और इस सारे प्रोग्राम का लाभ लेकर ही लौटना चाहिये। अन्त में हम पुनः आशा करते हैं कि आर्य जनता अधिक से अधिक संख्या में भाग लेकर गुरुकुलोत्सव को पूर्णरूपेण सफल बनाने का प्रयत्न करेगी।

उत्सव का कार्यक्रम

२१ मार्च १६४० तदनुसार ६ चैत्र १६६६

प्रातः ८ बजे गुरुकुल जन्मोत्सव

२२ मार्च १६४० तदनुसार १० चैत्र

प्रातः—

७-३० से ८-३० हवन तथा भजन

८-३० से ६ तक उपदेश स्वामी व्रतानन्द जी

६ से १०-३० तक सरस्वती सम्मेलन की प्रथम बैठक संस्कृत में वाद-विवाद। विषय—"धर्मस्यैक्यमनिवार्यं न वा"।

सभापति—श्री पं० प्रियव्रत जी विद्यावाचस्पति।

१०-३० से ११ तक छोटे ब्रह्मचारियों की अन्त्याक्षरी

मध्यान्ह:—

१ से १-३० भजन

१-३० से २-३० तक व्याख्यान श्री० पं० सुखदेव जी दर्शन वाचस्पति।

२-३० से ३-३० तक व्याख्यान श्री पं० वेदव्रत जी वानप्रस्थ

३-३० से ४-३० तक व्याख्यान श्री पं० जगन्नाथ जी निरुक्त रत्न

रात्रि—

७-३० से ८ तक भजन

८ से ६ तक व्याख्यान श्री० बिहारीलाल जी काव्य-तीर्थ विषय:-'स्वामी जी और स्वराज्य'

६ से १० तक व्याख्यान श्री० स्वामी केवलानन्द जी महाराज विषय—'निवृत्ति या प्रवृत्ति'

२३ मार्च १६४०

प्रातः—

७ से ८ तक भजन

८ से १० तक सरस्वती सम्मेलन की दूसरी बैठक वेद सम्मेलन—

सभापतिः—श्री० पं० बुद्धदेव जी विद्यालंकार

पं० धर्मवीर जी वेदालंकार — वेदों में इतिहास

ब्र० आनन्द १४ वीं श्रेणी — वेद और आत्म समर्पण

ब्र० ओम्प्रकाश १४ वीं श्रेणी — वेदों में दार्शनिक तत्त्व

ब्र० भीष्म १३ वीं श्रेणी — वेद और देवतावाद

ब्र० धर्मपाल १२ वीं श्रेणी — वेद और विविध विद्या

१० से ११ तक व्याख्यान श्री० पं० यशपाल जी सिद्धान्तालंकार

मध्यान्ह—

१-से १-३० तक भजन

१-३० से ३ तक "क्या भारतीय स्वराज्य प्राप्ति सम्प्रदायिकता के बिना सम्भव है" विषय पर वाद-विवाद होगा।

३—३० से ५ तक व्याख्यान श्री पं० बुद्धदेव जी विद्यालंकार

रात्रि—

७ से ८ तक भजन

८ से ६ तक व्याख्यान पं० धर्मेन्द्र नाथ जी तर्क-शिरोमणि

६ से १० तक व्याख्यान श्री पं० इन्द्र जी विद्यावाचस्पति

विषयः— आर्य संस्कृति और गुरुकुल

२४ मार्च १६४०

प्रातः—

७ से ११ तक दीक्षान्त संस्कार। दीक्षान्त अभिभाषण केन्द्रीय असेम्बली के कांग्रेस नैशनलिस्ट पार्टी के नेता श्री माधव श्री हरि-अणे देंगे

मध्यान्ह—

१ से १—३० तक भजन

१—३० से २—३० तक व्याख्यान श्री० पं० प्रियव्रत जी वेद वाचस्पति

२—३० से ३—३० तक गुरुकुल सम्मेलन

३—३० से ४—३० तक व्याख्यान तथा अपील श्री पं० सत्यव्रत जी सिद्धान्तालंकार मुख्याधिष्ठाता गुरुकुल कांगड़ी।

रात्रि—

७ से ८ तक भजन

८ से १० तक व्यायाम सम्मेलन

२५ मार्च १६४०

प्रातः—

७ से ६—३० तक वेदारम्भ संस्कार

६—३० से ११ तक जात-पांत तोड़क सम्मेलन

मध्यान्ह—

१ से १—३० तक भजन

१—३० से २—३० तक व्याख्यान ला० हरदयाल जी एम० ए०

२—३० से ४—३० तक दलितोद्धार सम्मेलन सभापति—श्री० ठक्कर बाजी मन्त्री अखिल भारतीय हरिजन सेवा संघ।

रात्रि—

संगीत सम्मेलन।

छोटे पंडाल में

२२ मार्च को आयुर्वेद सम्मेलन

२३ मार्च को कविता सम्मेलन

चौधरी दुलाराम के प्रबन्ध से गुरुकुल मुद्रणालय गुरुकुल कांगड़ी में मुद्रित तथा प्रकाशित।

* ओ३म् *

"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत"

Reg. No A. 2927

गुरुकुल

एक प्रति का मूल्य -) [गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख-पत्र] वार्षिक मूल्य २॥)

सम्पादक—साहित्यरत्न हरिवंश वेदालङ्कार

वर्ष ४] गुरुकुल काङ्गड़ी, शुक्रवार १७ चैत्र १९९६: २९ मार्च १९४० [संख्या ४९

दीक्षान्त अभिभाषण

[गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी के ३८ वें वार्षिकोत्सव के अवसर पर लोकनायक श्री माधव श्री हरि अणे ने निम्नलिखित दीक्षान्त अभिभाषण दिया —सम्पादक]

श्री आचार्य जी, उपाध्यायगण, ब्रह्मचारियो, देवियो और सज्जनो !

गुरुकुल विश्वविद्यालय के दीक्षान्त अभिभाषण के लिए मुझे इस वर्ष बुलाकर जो सम्मान आपने दिया है, मैं उसके लिये प्रारम्भ में आपको हार्दिक धन्यवाद देता हूं। अनेक प्रतिष्ठित समाज सेवक, शिक्षा-शास्त्री, विद्वान् इस कार्य को पूर्ववर्ती वर्षों में करते रहे हैं, इसलिये सुहृद्वर प्रो० इन्द्र जी के इस कार्य के लिये निमन्त्रण देने पर पहले मैंने झिझक अनुभव की।

अन्ततोगत्वा, यह अनुभव करके कि इस कार्य से कम से कम थोड़े समय के लिये तो अवश्य ही मैं उन उदारमना व्यक्तियों के साथ सम्पर्क में आ जाऊंगा, जिन्होंने शिक्षा के पवित्र यज्ञ में अपनी आहुति दी हुई है तथा जो हमारे प्राचीनतम काल से ऋषियों की थाती को सुरक्षित रूप में रक्खे हुए हैं, मैंने इस सम्मान को स्वीकृत कर लिया है। जीवनभर के शारीरिक तथा मानसिक पापों की शुद्धि के लिये पुण्यतोया भागीरथी में एक डुबकी ही पर्याप्त कही जाती है। मेरा विश्वास है कि सज्जन पुरुषों के सम्पर्क से पार्थिव लोक से दिव्य लोक में तथा भौतिक संसार से आध्यात्मिक जगत में जाया जा सकता है। मुझे यह भी भ्रम न था कि मैं कुछ शिक्षा देने के लिये आया हूं। मैंने अनुभव किया कि इस शुभावसर से मैं कुछ सीख ही लूंगा। इस प्रबल इच्छा को रोकने में मैं असमर्थ रहा, और प्रो० इन्द्र जी के आग्रह ने विजय पाई। फलतः आज मैं आप के सम्मुख उपस्थित हूं।

सज्जनो, शिक्षा के उद्देश्यों तथा परिणामों के ऊपर विद्वानों में विभिन्न ऊहापोह होते रहे हैं। यदि हम अत्युक्ति से बचने के लिये अल्पोक्ति से भी काम लें तब भी मानना पड़ेगा कि प्रतिवर्ष कम से कम एक सहस्र विद्वान किसी न किसी रूप में शिक्षा के विषय पर वक्तृता देते हैं। इन विद्वानों के भाषा सम्बन्धी भेद तथा उनके विभिन्न रूपों में प्रकट होने से वे एक साधारण आदमी के लिये दुर्बोध होती हैं। यदि वे सब किसी एक ही व्यक्ति के द्वारा पढ़ी जायें तो उसे १ दिन में तीन वक्तृताओं से कम न पढ़ना होगा, उस दशा में शारीरिक तथा भौतिक आवश्यकताओं को पूर्ण करने में जागरूकता कठिन हो जायगी। यदि इस समस्या पर गम्भीरता से विचार किया जाय तो मुझे विभिन्न भाषाओं के देने वाले परमात्मा की यह असीम कृपा ही दिखायी है, इसमें किसी प्रकार के बुरे परिणाम की कल्पना ठीक नहीं। यदि सम्पूर्ण विश्व एक ही भाषा का प्रयोग करता होता तो सभ्यता में सबसे उन्नत देश के लिये भी यह कठिन हो जाता कि वह पूरा पुस्तकालय रख सके। मुझे सन्देह है कि विश्व की एक भाषा किसी सुखद परिणाम तथा पारस्परिक सौहार्द का कारण होती। सम्भवतः इसका उल्टा ही परिणाम होता।

गहरी शास्त्रीय चर्चा को छोड़ कर साधारण दृष्टि से मैं समझता हूं कि शिक्षा शास्त्रियों द्वारा स्वीकृत प्रत्येक शिक्षा प्रणाली कुछ निश्चित उद्देश्य रखती है, जिन्हें पूर्ण करना उसका लक्ष्य होता है। उद्देश्यरहित शिक्षा-परिपाटी विश्व की रंग-भूमि में किसी भी महत्त्वपूर्ण कार्य करने में असमर्थ नवयुवक ही तैयार करेगी। भारत के अधिकतर विश्वविद्यालयों में प्रचलित शिक्षा-प्रणाली का कोई निश्चित ध्येय नहीं है। यह प्रणाली विद्यार्थी के हृदय पर अपना असर नहीं छोड़ती। १५ या १६ वर्ष के अध्ययन के बाद भी वह कोरा कागज ही होता है। लेख तथा वर्णन की रचना चातुरी में दक्ष कोई भी खिलाड़ी उन्हें अपने प्रभाव में लाने में समर्थ हो जाता है। वह लेखकों तथा उसके ग्रन्थों की आलोचना में असमर्थ होता है। मानवीय उद्देश्यों की सत्ता, प्रतिष्ठा, तथा उनकी जिम्मेदारी का ज्ञान अध्ययन समय पर न किये जाने से विद्यार्थी

किसी भी तरह के मानसिक, नैतिक तथा आध्यात्मिक विचार करने में असमर्थ होकर दूसरों के विचारों को परख नहीं कर सकते। उनका अधिकांश समय मन को बहलाने वाले साहित्य के पठन-पाठन में व्यतीत होता है। गम्भीर विषय से तो उन का थोड़ा सा ही सम्पर्क होता है। परिणाम यह होता है कि भारतीय शिक्षित युवक विद्याध्ययन-काल के पश्चात् प्रायः शून्य हृदय होकर बाहर आता है। वह यह जानने में असमर्थ रहता है कि—मैं क्या हूं मुझे क्या होना चाहिये और मेरे जीवन का उद्देश्य क्या है? वह युवक इन बातों से अनभिज्ञ होता है कि उसे किधर जाना है और क्या करना है? वह एक ऐसा व्यक्ति है, जिसके आगे एक लक्ष्य नहीं, कोई साहसिक भावना नहीं और कोई कार्यक्रम नहीं। एक बच्चे की तरह उसे अब भी चम्मच से खिलाने की आवश्यकता रहती है। उसे किसी की ओर से आजीविका मिलती रहनी चाहिये, अन्यथा वह भूखों मर जायगा। यह एक अत्यन्त करुणाजनक और दयनीय चित्र है, किन्तु है यह वास्तविक, जिस के आगे आंखें मींच कर अन्धा नहीं बना जा सकता।

इस प्रकार आधुनिक उद्देश्य-विहीन शिक्षा-प्रणाली के दोषों का धुंधला सा चित्र खींच कर मैं कुछ विचार इस विषय पर रखूंगा कि किस प्रकार की शिक्षा-प्रणाली उपयोगी हो सकती है।

मेरी सम्मति में, शिक्षाक्षेत्र में द्वित्व प्रतिपादक महत्वपूर्ण सिद्धान्त को स्वीकार करना आवश्यक है और जिसे भारतीय दार्शनिक प्रायः जड़ और चेतन कहकर पुकारते हैं। पहला, विनाशशील और दूसरा अविनश्वर है। शिक्षा का उद्देश्य होना चाहिए कि उससे मानव जीवन के इन दोनों तत्वों के विकास का पूरा पूरा अवसर मिल सके। शिक्षा के उद्देश्य के लिये मनुष्य को आत्मा और शरीर में भेद करना परमावश्यक है। शिक्षा-प्रणाली में दोनों के ज्ञान के लिये उचित व्यवस्था होनी चाहिये। शिक्षा के लिये कोई भी पाठ-विधि या नियम बनाने से पूर्व यह आवश्यक है कि आत्मा (चैतन्य) और देह (जड़) सम्बन्धी विचारों का परिशीलन और स्पष्टीकरण कर लिया जावे। प्रत्येक मानव की आत्मा उसी अविनाशी (परम) आत्मा का एक अंश है, जो कि संसार का प्रादुर्भाव, स्थिति और प्रलय का एक मात्र कारण है। 'जन्माद्यस्य यतः'—यह परिभाषा बादरायण ने अपने वेदान्त सूत्र में दी है। आध्यात्मिक और धार्मिक शिक्षा का लक्ष्य यह होना चाहिये कि वह व्यक्ति की अन्तरात्मा में व्यापक आत्मा के साथ, जो कि चराचर प्रकृति का अनुद्भूत आदि कारण है, एकत्व की भावना को जगा दे और जीवन का मार्ग ऐसा बना दे कि वह इस महान और पवित्र सत्ता के विचारों से सञ्चरित हो। शिक्षा-प्रणाली के इस भाग को मैं बहुत महत्वपूर्ण और आवश्यक समझता हूं। उत्पादक शक्ति के साथ मनुष्य का सम्बन्ध है और मनुष्य की प्रकृति-जगत् में स्थिति का उचित विचार मानव को अपना पार्ट अदा करने के लिये आवश्यक है। यदि हम आध्यात्मिक शक्ति को उचित रूप से विकसित होने के विषय में ध्यान न दिया गया, तो मानव समाज विश्व-शान्ति और विश्व भ्रातृत्व के लिये कोई वास्तविक प्रगति कर सकेगा, इसकी बहुत कम सम्भावना है। शिक्षा प्रणाली में वास्तविक धार्मिक शिक्षा के लिये उदासीनता इतनी स्पष्ट हो चुकी है कि वह उन बहुत से दोषों के लिये उत्तरदायी ठहराई जा सकती है, जिन्होंने मानवीय स्थिति को शोचनीय बना दिया है और जिनके कारण मानव इतिहास निरन्तर लड़ाइयों और अनवरत संघर्षों से भरा पड़ा है। भारतीय ऋषियों ने मानव प्रगति के इस दृष्टिकोण से अमित मूल्य को ही नहीं आंका था, अपितु इसको अनिवार्यता और प्रभु की दी हुई विचारों की महान देन को भी पहचाना था। ब्रह्मचर्याश्रम के पालन के लिए शास्त्रों में लिखे हुए कठोर नियमों के पालन का ध्यान रखते हुए धार्मिक साहित्य और दार्शनिक व्यवस्थाओं के गहरे अध्ययन को वह आवश्यक समझते थे।

निस्सन्देह यह अध्ययनकाल आध्यात्मिक मानव निर्माण में आवश्यक चरित्र सम्बन्धी उच्च तथा सूक्ष्म भावनाओं के विकास में सहायक होता है। इस तरह के मनुष्य सर्वोच्च शक्ति परमात्मा से सीधा सम्बन्ध स्थापित कर और उससे एकत्व अनुभव कर वैदिक संस्कृति में श्रद्धा लाते हैं। कम्यूनिस्ट विचारक अपनी शिक्षाओं तथा अपनी संस्था द्वारा पिछले वर्षों में परमात्मा की स्थिति तथा परमात्मा के बोधक धार्मिक ज्ञान की आलोचना करते रहे हैं। यह कम्यूनिस्ट विचारधारा मानव संस्कृति और सभ्यता की जड़ों पर कुठाराघात करेगी। परमात्म-श्रद्धा ही इस लोक में सतत आनन्द तथा समृद्धि का अनन्त स्रोत है—वैदिक संस्कृति यही कहती है। यह कोरे सिद्धान्त ही नहीं हैं, किन्तु वैदिक तथा दार्शनिक साहित्य के अध्ययन के परिणाम रूप तथा ब्रह्मचर्याश्रम के नियमित जीवन-व्यापक नियम हैं। वैदिक शिक्षाओं "सत्यं वद, धर्मं चर, स्वाध्यायान्मा प्रमदः" (सच बोलो, धर्माचरण करो, वैदिक ज्ञान तथा वैदिक धर्म के प्रतिपादन करने वाले वेद तथा शास्त्रों का अध्ययन करो) का सम्यक्तया जब तक परिपालन नहीं किया जाता, मनुष्यों की आध्यात्मिक शिक्षा की समस्या सुलझ नहीं सकती।

सज्जनो, मैंने इस महान् गुरुकुल विश्वविद्यालय की नियमावली तथा पाठविधि का अनुशीलन किया है, इसमें शिक्षा के इस पहलू पर उचित बल देखकर मुझे हार्दिक प्रसन्नता हुई है।

अब तक मैंने उसके अन्तर्वर्ती स्थिर चैतन्य की शिक्षा के सम्बन्ध में चर्चा की है, इसके आगे मैं उसके नश्वर जड़ शरीर की शिक्षा के बारे में निवेदन करूंगा। मनुष्य के शरीर की यही उपयोगिता है कि वह आत्मा का निवास स्थान है। मनुष्य के देह की उपमा उन कपड़ों से दी जाती है जिन्हें वह परिस्थितियों के अनुसार बदलता या उतार भी देता है। शिक्षा के जो विषय विज्ञान साहित्य या कला के शीर्षकों के नीचे आते हैं, उन्हें हम भौतिक शिक्षण के दायरे में ला सकते हैं। यहां शिक्षा के

शाम को कुश्तियां तथा हाकी, वाली-बाल के मैच हुए। अपार जन-समुदाय उमड़ रहा था। खूब चहल-पहल दिखाई देती थी। देहली निवासी भाइयों की उपस्थिति पिछले वर्षों से भी अधिक थी।

रात को ब्रह्मचारियों के जमनास्टिक तथा लाठी की खेलें हुईं। जनता ने उन्हें बहुत पसन्द किया और ब्रह्मचारियों को मैडल प्रदान किये गये। तदनन्तर श्री जे० एन० राय की अध्यक्षता में संगीत सम्मेलन हुआ। इस वर्ष देहली के गान्धर्व-विद्यालय के श्री विनयचन्द्र जी, मास्टर मदन व मास्टर मोहन तथा अखिल-भारतीय हिन्दूसंगीत व्यायाम पार्टी के रात १२ बजे तक मधुर संगीत होते रहे।

तीसरे दिन श्री स्वामी केवलानन्द जी महराज ने अपने कर-कमलों से उत्कृष्ट ब्रह्मचारियों को पारितोषिक वितरण किया। हाकी तथा वाली-बाल में क्रमशः गु० कु० इन्द्रप्रस्थ तथा आर्यकुमार मोर-सराय की विजयी पार्टियों को विजयोपहार (Cup) तथा सब खिलाड़ियों को एक २ पदक दिये गये। तदनन्तर श्री पं० इन्द्र जी ने गुरुकुल के लिये अपील की और श्री प्रो० गोपाल जी ने गु० कु० इन्द्रप्रस्थ का गत वार्षिक वृत्तान्त सुनाया। अपील पर मकानात समेत लगभग १० हजार रुपया एकत्र हुआ। श्री दानवीर सेठ जुगलकिशोर जी बिरला ने ५ हजार रुपया मकान के लिये दिया। इसके पश्चात् श्रीयुत एम० एस० अणे की अध्यक्षता में 'आर्य-सर्वधर्म सम्मेलन' हुआ। इसमें बौद्ध-धर्म की ओरसे श्री रेवरेण्ड आप्पा जी, सिक्ख-धर्म के प्रतिनिधि श्री हरनाम सिंह जी ज्ञानी तथा आर्यसमाज की ओर से श्री पं० हरिशरण जी सिद्धान्तालंकार के उत्तम २ व्याख्यान हुए। अन्त में श्री सभापति जी ने सबका समन्वय करते हुए यह बतलाया कि सब धर्म एक वट-वृक्ष की शाखायें हैं। इनमें परस्पर विरोध नहीं है। परन्तु समय की आवश्यकता के अनुसार भिन्न२ रूप से मनुष्य-जाति की सेवा करने को है।

रात को अन्त में श्री पं० ज्ञानेन्द्र जी सूफी के व्याख्यान से यह उत्सव बड़ी धूम-धाम तथा सफलता के साथ समाप्त हुआ।

रजत-जयन्ती समारोह

आर्य जनता को यह जानकर अपार हर्ष होगा कि आगामी वर्ष गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ का २५ वां वार्षिकोत्सव 'रजत-जयन्ती' के रूप में बड़े धूमधाम से मनाया जायगा। श्री सेठ जुगलकिशोर जी बिरला के उदार दान से गुरुकुल के भवन प्राचीन स्थापत्य कला के अनुसार सुन्दर रूप में निर्मित हो गये हैं। आशा है, विद्यालय और आश्रम बीच के अवशिष्ट भवन भी जयन्ती से पूर्व ही तैयार हो जावेंगे। हम आपको सावह आमन्त्रित करते हैं कि आप इस समारोह में सपरिजन सम्मिलित होवें।

गुरुकुल मुलतान

१६-१७ मार्च को उत्सव बड़ी रौनक के साथ समाप्त हुआ। पण्डाल काफी बड़ा बनाया गया था तो भी भरा हुआ था। सैंकड़ों की तादाद में लोग बाहर खड़े थे। लोगों के आने जाने का प्रबन्ध लारियों से था। उत्सव में स्वामी अभयदेव जी आचार्य गुरुकुल कांगड़ी, श्री पं० भीमसेन जी मन्त्री सभा, श्री पं० सोमदत्त जी मुख्याधिष्ठाता गुरुकुल कुरुक्षेत्र तथा पं० तीर्थराम जी सम्मिलित हुए। कविसम्मेलन, हिन्दी भाषा सम्मेलन, वाद विवाद सम्मेलन भी हुए। जिनमें ब्रह्मचारियों ने काफी भाग लिया। पं० सोमदत्त जी की अपील हुई। कुल रुपया लगभग ४ हजार एकत्र हुआ। अपील के बाद ब्रह्मचारियों ने 'अछूतसुधार' नाम का एक अभिनय (नाटक) किया और खेल दिखाये। इसके बाद प्रो० विक्रम जी के धनुर्विद्या के खेल हुए।

गुरुकुल कुरुक्षेत्र

वार्षिकोत्सव समाप्त हो चुका है। २७ फरवरी से नियम पूर्वक पढ़ाइयां प्रारम्भ हो चुकी हैं। ५ म से ७ म श्रेणी तक की वार्षिक परीक्षा १६ मार्च को तथा ८ म की वार्षिक परीक्षा २२ मार्च को समाप्त होगई। ८म के ब्रह्मचारी ८ मार्च को गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ चले गये। संरक्षक महोदयों की इच्छानुसार प्रत्येक ब्रह्मचारी की उदार२ फोटो खिंचवाई गई है जिसका मूल्य लगभग १) है। जो महाशय अपने ब्रह्मचारी का फोटो लेना चाहें वे कार्यालय से मगवालें।

(पृष्ठ ३ का शेष)

द्वारा नवयुवकों को उन पुरातन महान् आर्यों के योग्यतम उत्तराधिकारी बनाने का प्रयत्न कर रहे हैं, जिन्होंने कभी समस्त विश्व में वैदिक-संस्कृति की पताका फहराई थी, युवकों की सैनिक-शिक्षा की आवश्यकता पर बल देंगे।

गुरु द्रोणाचार्य के इस आदर्श को नवयुवकों को अपने समक्ष रखना चाहिए—

अग्रतश्चतुरो वेदान् पृष्ठतः सशरं धनुः ।
इदं ब्राह्ममिदं क्षात्रं शापादपि शरादपि ॥

इसी आदर्श को प्रत्येक ब्रह्मचारी को अपने सामने रखना चाहिये। मुझे विश्वास है कि समय पाकर यह संस्था भारत राष्ट्र को राष्ट्रीय तथा चामत्कारिक शक्ति वाले विज्ञान तथा कला के ज्ञान से प्रदीप्त राष्ट्रगोप पुरोहित व्यक्तियों को देने में समर्थ हो सकेगी।

ऐतरेय ब्राह्मण में कहा है—

यस्यैवं विद्वान् ब्राह्मणो राष्ट्रगोपः पुरोहितः
तस्य क्षत्रेण क्षत्रं बलेन बलमश्नुते।
यस्यैवं विद्वान् ब्राह्मणो राष्ट्रगोपः पुरोहितः
तस्य विशः संजानते ह्येकमनसोऽभुवः ॥

जो राष्ट्र युद्ध और शान्ति की कलाओं में समान रूप से दक्ष राष्ट्रगोप पुरोहितों द्वारा संचालित होता है, उसकी सैनिक जातियां वीरता से परिपूर्ण होंगी तथा इसके परिश्रम के उपभोक्ता, व्यापारी तथा कर्मकर एकमनस्क होंगे। ऐसा देश सब क्षेत्रों में समान रूप से समृद्धि प्राप्त करेगा। अन्त में वैदिक प्रार्थना के साथ मुझे समाप्त करना चाहिये—

यशस्करं बलवन्तं प्रभुत्वन्तमेव राजाधिपतिर्बभूव ।
संकीर्तनागारवपतिर्नराणाम् सुमगवर्य सततं दीर्घमायुः पश्य ॥
भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवाः भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवांसस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु सर्वे सन्तु निरामयाः ।
ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः

चौधरी दुलाराम राय के प्रबन्ध से गुरुकुल प्रेस, गुरुकुल कांगड़ी में मुद्रित तथा प्रकाशित।

* ओ३म् *
"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत"
Reg. No. A. 2927

गुरुकुल

एक प्रति का मूल्य -) [गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख-पत्र] वार्षिक मूल्य २॥)
सम्पादक—साहित्यरत्न हरिवंश वेदालङ्कार

वर्ष ४] गुरुकुल काङ्गड़ी, शुक्रवार २४ चैत्र १९९६, ५ अप्रैल १९४० [संख्या ४७

गुरुकुल कांगड़ी का ३८ वां वार्षिकोत्सव

जन्मोत्सव व अनेक सम्मेलनों की धूम

श्री अणे का आगमन

६७००० रु० एकत्र

गत २१ से २५ मार्च तक हरद्वार के निकट की आर्य सस्थाओं गुरुकुल कांगड़ी महाविद्यालय ज्वालापुर व कन्या पाठशालाओं के उत्सवों के कारण पंचपुरी में बड़ी चहल पहल रही। इनमें भाग लेने के लिये आर्य समाज के अनेक उच्च सन्यासी महात्मा प्रचारक व विद्वान महानुभाव आये थे। इन सब में गुरुकल कांगड़ी का वार्षिकोत्सव प्रसिद्धि व शान के लिहाज से सबसे अधिक महात्वपूर्ण है। इस बार यह उत्सव २१ मार्च को प्रारम्भ हुआ। इस दिन गुरुकुल जन्मोत्सव श्री आचार्य स्वामी अभयदेव जी की अध्यक्षता में धूम धाम के साथ मनाया गया। बाहर के गुरुकुल के स्नातक व अन्य प्रतिष्ठित अतिथि इस उत्सव में शामलि हुए थे। इनमें वीर अर्जुन के व्यवस्थापक पं० इन्द्र जी विद्यावाचस्पति, पं० विश्वम्भरनाथ जी, भाई टेकचन्द नागिया आदि नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

आयुर्वेद सम्मेलन।

२२ मार्च को वार्षिक मेले का प्रथम दिन था। इस दिन म० कृष्ण जी, लाला नारायणदत्त जी, पं० भीमसेन जी विद्यालंकार मन्त्री आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब, महात्मा नारायण स्वामी जी, श्री० महावीर त्यागी एम. एल. ए. भी आगये थे। श्री० पं० सुखदेव जी दर्शन वाचस्पति, श्री बिहारी लाल जी काव्यतीर्थ, स्वामी केवलानन्द जी के प्रभावशाली व्याख्यान हुए किन्तु ज्यादा रोचक कार्यवाही हुई—आयुर्वेद सम्मेलन व कविता सम्मेलन में। आयुर्वेद सम्मेलन के मनोनीत सभापति अखिल भारतीय आयुर्वेद महामंडल के अध्यक्ष पंडित शिव शर्मा जी आयुर्वेदाचार्य थे। इस सम्मेलन में मुख्य विवाद विषय यह था कि 'प्राच्य व पाश्चात्य चिकित्सा पद्धतियों में कौन श्रेष्ठ है'। इस विषय पर पंडित शिव शर्मा जी का एक घंटे तक बड़ा प्रभावशाली भाषण हुआ, जिसमें आपने युक्तियों प्रमाणों व क्रियात्मक दृष्टि से सिद्ध किया कि वर्तमान चिकित्सा पद्धतियों में आयुर्वेद चिकित्सा ही सर्वोत्तम है। इस विषयक बहस में अनेक योग्य वैद्यों व डाक्टरों ने भाग लिया। इस अवसर पर गुरुकुल आयुर्वेद महाविद्यालय के विद्यार्थियों व उपाध्यायों की ओर से पंडित शिवशर्मा जी को निम्न अभिनन्दन पत्र पेश किया गया :—

अभिनन्दन-पत्र

सेवा में—श्री पं० शिवशर्मा जी
आयुर्वेदाचार्य

आज हमारे लिए बड़े सौभाग्य का दिन है कि आप हमारे बीच में पधारे हैं। आपने अपना सारा जीवन आयुर्वेद की सेवा में अर्पित कर दिया है। आपके अथक परिश्रम का परिणाम है कि अखिल भारतवर्षीय केन्द्रीय आयुर्वेद महाविद्यालय की कोटा स्टेट में नींव पड़ चुकी है। हमें पूर्ण आशा है कि यह संस्था आयुर्वेद के आदर्श को अन्य सब आयुर्वेद की संस्थाओं के सन्मुख समुपस्थित करती हुई प्रकाश-स्तम्भ का कार्य करेगी।

आप गत दो वर्षों से अखिल भारतीय आयुर्वेद महामण्डल के संचालन का गुरुतर भार अपने कन्धों पर उठाये हुए हैं और आपने सर्वत्र भारत में आयुर्वेद के प्रति लोक प्रियता को बढ़ाने के लिए प्रत्येक प्रान्त में पर्यटन किया है। अपनी लेखनशक्ति द्वारा आयुर्वेद के गौरव को ऊंचा रखने के लिए आपने देशीय व विदेशीय दोनों भाषाओं केमें ग्रन्थों का सम्पादन किया है और नाना समाचार पत्रों में भी अपने लेखों द्वारा प्रचार किया है। जब कभी किसी एलोपैथी के अन्धभक्त द्वारा आयुर्वेद पर कुठाराघात हुआ है तो आपने अपनी लेखनी द्वारा उसका प्रतिरोध किया है। आप वर्तमान समय में लखपुर में मूलचन्द खैरातीराम संस्था के चालक हैं और आपकी

देख रेख में यह संस्था निरन्तर उन्नति कर रही है। आशा है कि शीघ्र ही आप अपने सतत यत्न द्वारा इस संस्था में की जाने वाली आयुर्वेद चिकित्सा का ज्वलन्त उदाहरण जनता के आगे प्रस्तुत कर आयुर्वेद की उन्नति में बाधक कठिनाइयों का निवारण कर सकेंगे। अब कभी आयुर्वेद के प्रेमी विद्यार्थियों को आयुर्वेद के अध्ययन में कठिनाइयां उपस्थित हुई हैं तो आपने अपना प्रथम कर्तव्य समझकर उनकी सहृदयता पूर्वक सहायता की है।

आयुर्वेद की उन्नति का ही एकमात्र ध्येय रखते हुए आपने श्री डालमियां जी से डालमियां पारितोषिक का संस्थापन कराया है।

आपका जीवन धन्य है। आपने वैद्यों के संगठन में में भी भारी कार्य किया है। हम कुलवासी आप जैसे मान्य अतिथि को अपने बीच में पाकर अपने आपको कृतकृत्य समझते हैं और अपने अन्तस्तल से आपका सानन्द अभिनन्दन करते हैं। आज आप हमारे कुल में पधारे हैं। आज से आपका और हमारा भविष्य के लिये अटूट सम्बन्ध स्थापित हो गया है। परम पिता परमात्मा से यही प्रार्थना है कि वह इसे ऐसा बनाये रक्खे।

हम हैं आपके—

आयुर्वेद महाविद्यालय के ब्रह्मचारी।

इसके उत्तर में पंडित शिवशर्मा जी ने आपने स्वामी श्रद्धानन्दन जी की चुने हुए शब्दों में स्तुति की और कहा कि मुझे वैयक्तिक अनुभव है कि यहां के आयुर्वेदालंकार अन्य स्थानों के वैद्यों की अपेक्षा अधिक योग्य व सफल होते हैं।

कविता सम्मेलन

इस सम्मेलन की कार्यवाही रात के समय एक सुसज्जित पंडाल में हुई। मनोनीत सभापति श्री भगवती चरण जी किन्हीं कारणों से उपस्थित न हो सके थे अतः श्री पंडित बुद्धदेव जी विद्यालंकार ने इस आसन को सुशोभित किया। इस सम्मेलन में दिल्ली, मेरठ व गुरुकुल के प्रमुख कवियों ने भाग लिया। इन कवियों में सर्व श्री० देवदत्त जी शास्त्री, राधेश्याम जी, जगदीश जी, श्री शेष जी, श्री निधि, सत्यभूषण जी योगी, श्री ब्र० आनन्द की कवितायें अधिक पसन्द की गईं। गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ के एक छोटे विद्यार्थी रमेशचन्द्र जी की 'स्वामी श्रद्धानन्द' शीर्षक कविता को तो जनता ने इतना अधिक पसद किया कि उन्हें उसी समय दो पदक दिये गये। अन्त में श्री० पं० बुद्धदेव जी ने अपनी रसमयी कविताओं से जनता को आह्लादित किया और यह सम्मेलन रात बारह बजे समाप्त हुआ।

श्री अणे की आमद

२६ मार्च की प्रातः उत्सव बड़े पंडाल में हुआ जिसमें सर्व श्री धर्मवीर जी वेदालंकार, ब्र० आनन्द व ओम्प्रकाश के वेदों में इतिहास, वेद और आत्म समर्पण तथा वेदों में दार्शनिक तत्व विषयों पर योग्यतापूर्ण निबन्ध हुए। इसी दिन प्रातः काल की गाड़ी से केन्द्रीय असेम्बली की कांग्रेस नेशनल पार्टी के नेता श्री हरि अणे गुरुकुल के मेले में शामिल होने के लिये पधारे। आपका स्टेशन पर फूलमालाओं से स्वागत किया गया।

इस दिन प्रातः काल से ही जनता के मण्डप में निरन्तर आने जाने से मण्डप खचाखच भरा हुआ था। आर्य-जगत के प्रसिद्ध विद्वान और वेदों के प्रसिद्ध ज्ञाता पण्डित बुद्धदेव जी विद्यालंकार के सभापतित्व में सरस्वतीसम्मेलन की दूसरी बैठक 'वेद सम्मेलन' के रूप में हुई। इस सम्मेलन में महाविद्यालय के ब्रह्मचारियों ने वेद सम्बन्धी विविध विषयों पर अपने निबन्ध पढ़े। सब निबन्ध अत्यन्त योग्यता और अध्ययन से लिखे गये प्रतीत होते थे और विविध विवादास्पद विषयों यथा वेद और देवतावाद— पर अधिकार और गवेषणा पूर्ण विवरण देते थे। सभापति श्री पं० बुद्धदेव जी विद्यालंकार का व्याख्यान भी वैदिक विषयों पर योग्यता पूर्वक प्रकाश डालने वाला और अत्यन्त उपयोगी हुआ। दोपहर में सबसे मनोरंजक कार्यक्रम उस वाद विवाद का रहा जिसका विषय था कि— "क्या भारतीय स्वतन्त्रता के लिये साम्प्रदायिक एकता अनिवार्य है?

श्री पं० विश्वम्भर नाथ जी उपप्रधान आर्यप्रतिनिधि सभा पञ्जाब, ने सभापतित्व किया। सर्व प्रथम स्वीकार पक्ष के वक्ताओं में से प्रो० इन्द्र विद्यावाचस्पति ने अपने पक्ष को रखते हुये राजनैतिक और अन्य युक्तियां उपस्थित कीं तथा सिद्ध किया कि भारतीय स्वतन्त्रता के मार्ग में साम्प्रदायिक एकता का अभाव ही एकमात्र रोड़ा है। नकार पक्ष के मुख्य वक्ता पं० बुद्धदेव जी विद्यालंकार थे। स्वीकार पक्ष से बोलने वालों में श्री महावीर त्यागी एम. एल. ए. तथा प्रो० वेदव्रत जी वेदालंकार इतिहासोपाध्याय गुरुकुल कांगड़ी तथा विपक्ष में पं० भीमसेन जी विद्यालंकार मन्त्री आर्यप्रतिनिधि सभा पञ्जाब तथा ब्र० विद्यासागर जी चतुर्थ वर्ष, गुरुकुल कांगड़ी के नाम उल्लेख योग्य हैं। सारे समय जनता ने बड़ी दिलचस्पी से और मनोयोग से उभयपक्षी वक्ताओं के व्याख्यानों को सुना। प्रो० वेदव्रत जी का वक्तृता, भाषण और वाग्मिता दोनों की दृष्टि से बहुत पसन्द किया गया। रात्रि को विद्वानों के व्याख्यान हुये।

अगले दिन दीक्षान्त संस्कार का समारोह हुआ। प्रातः काल ७॥ बजे महाविद्यालय प्रांगण में जलूस निकला। दीक्षान्त अभिभाषण लोकनायक श्री माधव श्री हरि अणे एम.एल.ए. (केन्द्रीय एसेम्बली) ने दिया। आपने उसमें शिक्षा के दो भागों—चैतन्य की शिक्षा और जड़ की शिक्षा—अर्थात् आध्यात्मिक और सैनिक शिक्षा को स्पष्ट करते हुये गुरुकुलीय पाठ्यक्रम में आध्यात्मिक शिक्षा पर उचित बल दिये जाने पर अत्यन्त सन्तोष प्रकट किया। नवस्नातक ब्र० ब्रह्मदत्त आयुर्वेदालंकार का प्रत्युत्तर भाषण अत्यन्त हृदयग्राही था।

मध्याह्न में श्री पं० गंगाप्रसाद जी चीफ जज टिहरी के सभापतित्व में गुरुकुल सम्मेलन की

कार्यवाही हुई। सभापति महोदय ने गुरुकुल शिक्षा प्रणाली की विशेषतायें बताते हुये सब गुरुकुलों के एक सूत्रीकरण के विषय में अपनी एक विचारणीय योजना भी प्रस्तुत की। श्री मुख्याधिष्ठाता जी की अपील पर ६७ हज़ार रुपया इकट्ठा हुआ।

रात्रि को व्यायाम सम्मेलन में विद्यालय और महाविद्यालय के ब्रह्मचारियों ने अपने लाठी, लेज़म, पैरललबार हारजैण्टलबार, शरशय्या आदि के खेल दिखाये। स्तूप निर्माण या प्रपमेकिंग का छोटे ब्रह्मचारियों का अभ्यास बहुत प्रभावकर था। ब्र० रमेशचन्द्र तथा श्री रनजीत मजूमदार को एक एक रजत पदक प्रदान किया गया। मगर सबसे अधिक आश्चर्य जनक खेल ब्र० महेन्द्रनाथ जी चतुर्थ वर्ष ने वह किया जिसमें उन्होंने २८ अश्वशक्ति (हौर्स पावर) की कार को ६० मील प्रति घंटा की चाल पर रोक कर दिखलाया।

२५ मार्च नये ब्रह्मचारियों का प्रवेश संस्कार हुआ। उसके बाद प्रो० इन्द्र जी के सभापतित्व में जात पात-तोड़क सम्मेलन की कार्यवाही हुई जिसमें कई प्रस्ताव स्वीकृत हुये।

मध्याह्न में अखिल भारतीय हरिजन सेवासंघ के मंत्री श्री अमृतलाल वि० ठक्कर जी के सभापतित्व में दलितोद्धार सम्मेलन की कार्यवाही हुई। सभापति महोदय ने गुरुकुल के सुयोग्य स्नातक प० धर्मवीर जी वेदालंकार के रांची ज़िले में किये जाते हुये दलित सेवा के कार्य पर अपनी प्रसन्नता प्रकाशित की और कहा कि और भी ऐसे त्यागी कार्य कर्ताओं की देश को अत्यन्त आवश्यकता है। अन्त में आपने आशा की कि गुरुकुल के अन्य भी ब्रह्मचारी इस ओर अपने को अवश्य लगायेंगे।

रात्रि में श्री पं० विनयचन्द्र जी आचार्य, गान्धर्व महाविद्यालय नई देहली के सभापतित्व में संगीत सम्मेलन हुआ जिसमें पास तथा दूर के बहुत से संगीतज्ञों ने भाग लिया। सभापति महोदय का जलतरंग वादन जनता ने बहुत पसन्द किया।

धन्यवाद !

लुधियाना निवासी श्री ला० लभ्भूराम जी नैयड़ उन पुराने आर्य सज्जनों में हैं जिन्होंने स्थापना से लेकर अब तक गुरुकुल की तन, मन, धन से सेवा की है। वे प्रतिवर्ष अपने मित्रों, मिलने वालों व सहकारियों से धन एकत्र करके गुरुकुल को भेंट करते हैं। उन द्वारा एकत्र यह धन राशि प्रतिवर्ष हज़ारों में पहुँचती है। सबसे अधिक हर्ष की बात तो यह है कि पिछले ३८ वर्ष से श्री नैयड़ जी का यह धर्मयज्ञ जारी है और इस बुढापे की उम्र में भी उनके इस दान में कोई कमी नहीं आई है। आर्यजनता को यह जानकर खुशी होगी कि इस बार भी ला०लभ्भूराम जी नैयड़ ने अपने मित्रों से एकत्र करके कुल ११६१) की बड़ी राशि गुरुकुल को भेंट की है। इसमें १०६१) नकद है और एक सौ के वायदे हैं। यह अनुमान किया जाता है कि पिछले ३५-३६ वर्षों में श्री नैयड़ जी के प्रयत्न से लगभग एक लाख रुपया गुरुकुल कांगड़ी को प्राप्त हुआ है। इस बड़ी दान राशि के लिए गुरुकुल के अधिकारी यथार्थ में लाला जी के धन्यवाद के पात्र हैं और आशा करते हैं कि आर्यसमाज व देश के अन्य भी दानी मानी सज्जन नैयड़ जी के आदर्श का अनुकरण करेंगे तथा अपने प्यारे गुरुकुल के लिए अधिक से अधिक धन राशि एकत्र करके इस धर्म कार्य में सहायक होंगे।

सत्यव्रत
मुख्याधिष्ठाता।

दान पात्र

आर्य जनता ने जो अपार उत्साह हैदराबाद धर्मयुद्ध में दिखाया है, वह अपने व विरोधियों तक के लिए शिक्षाप्रद है। इससे लोगों में आर्यसमाज के प्रति विशेष प्रेम व सहानुभूति उत्पन्न हो गई है। विशेष रूप से इस लिए कि इस धर्मयुद्ध में सर्वप्रथम आर्यसमाज की प्राणप्रिय एकमात्र पवित्र संस्था गुरुकुल कांगड़ी के ब्रह्मचारियों ने इस यज्ञ में प्राणों तक की आहुति दी। इससे देश की धार्मिक तथा राष्ट्रीय संस्था के प्रति जनता का प्रेम और भी आकृष्ट होगया है। साथ ही यह भी प्रगट हो गया है कि यह संस्था देश व जाति के लिए अत्यन्त उपयोगी व लाभदायक है।

अतः इसको दिन प्रतिदिन विकसित होने के लिए सर्वसाधारण व विशेष रूप से आर्य भाइयों की सहानुभूति व सहायता कीआवश्यकता है। मैं आर्य बन्धुओं से हार्दिक अपील करता हूं कि जिस प्रकार उन्होंने हैदराबाद धर्मयुद्ध में उमंग और उत्साह से काम लिया है, उसी ढंग से गुरुकुल की सहायता कर के भी अपनी उदारता का परिचय दें। विशेषरूप से सहायता की ज़रूरत इसलिये भी है कि इस वर्ष बहुत भयंकर अकाल है, व सब वस्तुएं महगी हो गई हैं।

मैं आशा करता हूं और पूरा विश्वास रखता हूं कि आर्य भाई कभी धर्म कार्यों से अलग न रहेंगे। फिर ऐसी धार्मिक व राष्ट्रीय संस्था—जिस पर कि आने वाली संतति के सुधार का आधार हो—को तो विशेष रूप से सहायता करेंगे।

श्री मुख्याधिष्ठाता जी ने गुरुकुल के प्रेमियों के पास सहायता के लिए जो अपील की थी। उसे तो आप पूरा करेंगे ही, इसके अतिरिक्त अन्य धर्मात्मा देश प्रेमी दानियों से मेरी प्रार्थना है कि वे पूरी शक्ति से धन एकत्र कर के गुरुकुल के कार्यकर्ताओं का उत्साह बढ़ावें व यश के भागी बनें और स्वर्गीय स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज की अमर आत्मा का आशीर्वाद ग्रहण करें।

सब आर्यभाइयों का कृपाभिलाषी:—
पोहकरमल मास्टर,
मिडिल स्कूल जहाजगढ़ जि० रोहतक।

गु रु कु ल

२४ चैत्र शुक्रवार १९९६

गुरुकुल का जन्मदिन

[गुरुकुल जन्मोत्सव के लिये लिखित]

आज कुलमाता का जन्मदिन है। एक-दो परिवारों की माता या कुछ के कुटुम्बों की माता का जन्मदिन नहीं, पर उस महिमामयी माता का जोकि गुरुओं के रूप में गुरुकुल-माता हुई है।

माता-पिता जन्म-वंश, गृह-संपत्ति और भोग्य पदार्थों के दाता हैं, उनका उपकार महान है, पर गुरु विद्या-धर्म और संस्कृति-सभ्यता का दाता है-इनका प्रतिनिधि है। गुरु शिक्षा और दीक्षा का दानकर दूसरा जन्म देने वाला है। चूंकि विद्यार्थी में विद्या-धर्मादि के जन्म का कारण और उनका बीज बोने वाला गुरु है इसलिये वास्तव में गुरु ही गुरुकुल माता है, उसके नाना सहचारी गुण-धर्म माता के ही गुणों के विविध रूप हैं।

गुरुकुल का जन्म जैसा कि हमें विदित है एक सामयिक तथा भूत-भविष्यत् में पुनः २ उठने वाली 'पुकार' का उत्तर था, एक अभाव को पूरा करने के लिये हुआ था। आज भी वह पुकार इतने ही जोर से उठी हुई है परन्तु सुनने वाले कान चाहिये जो उसे सुन सकें और प्रेममयी कर्त्तव्य निष्ठा चाहिये जो उसे सुनकर उस में कही गई भावना को पूरा करने में स्वयं को बलि दे सके। आजदिन-हर क्षेत्र में, क्या घर क्या कुल, क्या समाज क्या राष्ट्र, क्या व्यवसाय क्या कृषि, क्या धर्म क्या शिक्षा, क्या राजनीति-क्या अर्थनीति, क्या अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध क्या विश्व समष्टि, समस्या से सभी हलकों में कहीं कोलाहल, कहीं पुकार, कहीं अभाव-अभियोग, कहीं संग्राम, कहीं सहयोग तथा सब कहीं संधि-विग्रह आदि दृष्टिगोचर होते हैं।

ऐसी उथल पुथल और विषम परिस्थिति में साम्य लाने के लिये, इस पुकार को शान्त करने और अभाव को पूरने के लिये हमारे पास क्या साधन हैं, क्या दवा व चिकित्सा है? क्या गुरुकुल-माता उन प्राचीन आध्यात्मिक ऋषि और मुनियों की तरह आधुनिक समय की इन विकट समस्याओं का कोई निश्चित हल जाकि घर और बाहर, देश और दुनियां के सामने पेश किया जासके, उपस्थित करने के लिये अपनी सम्पूर्ण शक्तियों द्वारा कोई साधन कर रही है? क्या वह इस के लिये कोई क्रियात्मिक प्रयोग जिसमें 'यज्ञ' अथवा 'पुरोगम' (Programe) शब्द से कहूं तो उपयुक्त होगा, कर रही है जिसके मन्त्र और हवियां, आज्य और समिधायें, भूमाग्नियें तथा ऋत्विगादि उन सब दुःखों के लिये दवा साबित होंगी जिन के दवाओं के कोनों तक पहुंचने पर देश के कोने २ और गाव २ में जो हाहाकार मचा हुआ है वह शान्त हो सके।

गुरुकुल यदि आर्य परिवारों का सम्मिलित कुल बनने को है तो गुरुकुल शिक्षा प्रणाली के मूल में कुलभावना को जागृत कर रखना अवश्यक है। इसी भावना की सचाई और नेक-नियती से ही जाति और समाज की नूतन रचना तथा साथ ही राष्ट्रसंगठन की आधार शिला रक्खी जा सकती है। इसलिये दूसरी बात जो हमें सीखनी है वह यह कि गुरुकुल शिक्षा प्रणाली की इस सद्भावना से हम अधिक से अधिक चेतना प्राप्त करें। कुलभावना-गुरुकुल शिक्षा का जीवनमूल होकर ही गुरु-शिष्य, पिता-पुत्र, स्वामी सेवकादि दूसरे सब सम्बन्धों का परिष्कार करता है और इसी गुरुमन्त्र के द्वारा ही जाति-समाज-राष्ट्र तथा विश्व में समता, एकता तथा संगठन का पैदा होना सम्भव है और जिसका स्रोत कुल की यह सच्ची और नेक भावना ही तो है।

कुलभावना की तरह ही शिक्षा शास्त्र की भी नाना दिशा तथा शाखायें हैं। परन्तु मुझे सबसे ज्यादह जिसने प्रभावित किया है वह है 'सांस्कृतिक शिक्षा का विकास'। आधुनिक समय में हमारे देश में ता क्या संसारभर में नाना धर्मों, विविध जातियों तथा विभिन्न राष्ट्रों के उत्कर्ष तथा संघर्ष के साथ ही साथ अनेक परस्पर समान तथा विरुद्ध संस्कृति सभ्यताओं का बोल बाला हो रहा है। आर्य संस्कृति (जिसे संकुचित अर्थों में हिन्दू-संस्कृति कह सकते हैं) भी अपनी मन्द तथा निस्तेज अवस्था से अब उठ खड़ी हुई है और इस संस्कृति के घुड़ दौड़ में हिस्सा लेने लगी है। इस कारण हमें आर्य-संस्कृति की विशेषताओं से अपने आपको न केवल परिचित ही करना अपितु उन्हें आत्मसात् कर अपने में ढाल लेना चाहिये और इस की पुरानी कूपमण्डूकता तथा संकुचितपने को दूर कर इसके विस्तार के लिये आगे बढ़कर पथ-प्रदर्शन करना चाहिये। प्राच्य या प्रतीच्य, हिन्दू या मुस्लिम, बौद्ध या ईसाई आदि, संस्कृतियों के हो रहे संघर्ष तथा मिश्रण में हमें इन संस्कृतियों की खूबियों को आत्मसात् कर लेना है तथा न केवल उन्हें अपना कर निजू रंग दे देना है परन्तु नये ढांचे पर अपनी संस्कृति का और भी विशुद्ध विकास करना है कि जिससे दूसरी संस्कृतियां इस कदर प्रभावित हों कि वह आपकी संस्कृति अपनाने में अपना गौरव समझें और नकल कर लेने में भी अपने को कृतार्थ समझें। इस प्रकार करने पर देश तथा विदेश में हमारी सांस्कृतिक विजय अवश्यभावी है और हम न केवल बृहत्तरभारत परन्तु सार्वभौम भारत माता के स्वप्नों को सफल बनाने में सहायक हो सकेंगे।

कुलमाता के जन्मदिन पर इन शब्दों के साथ मैं प्रार्थना करूंगा कि आप कुल के गुरुजन तथा ब्रह्मचारीवर्ग गुरुकुल शिक्षा पद्धति का अधिकाधिक सम्मार्जन तथा संस्कार करने में यत्नशील हों जिससे प्राचीन आर्य तथा आप जिस शिक्षण पद्धति में विश्वास रखते थे और संप्रति रखते हैं उसके प्रति अपनी आस्था और अनुराग दृढ़ बनाते हुए सच्चे अर्थों में गुरुकुल माता के सेवक और दीवाने हो सकें।

—श्री वीरेश विद्यालंकार।

रमते राम

(श्री ज्ञानी)

"मेरे मुंह पर क्या ताकते हो। जाओ कुछ काम करो। हर दफ़ा यों ही चले आते हो। यहां कोई तमाशा है?" श्री अरविन्द ने भर्त्सना पूर्वक कहा।

"क्या करूं भगवन्? कुछ बतलाइये। यही जानने की इच्छा से यहां आया हूं।" मैंने अत्यन्त विनय से पूछा।

"सत्य का आचरण करो। मन, वचन और कर्म से सदा सत्य का ही प्रकाश हो। सत्य में महान् शक्ति है। इससे तुम्हें स्थिरता, निर्भयता और शान्ति प्राप्त होगी।" श्री अरविन्द ने कुछ गम्भीर होकर कहा:—

"माता जी का एक फ्रेंञ्च वाक्य है जो पुस्तकालय व स्वागत-भवन आदि स्थानों पर लिखा रखा है। उसे अनेक बार पढ़ो। स्मरण करो और अपने जीवन का अंग बना लो। उससे तुम्हारे जीवन में परिवर्तन होगा। और फिर तुम योग-मार्ग पर सुगमता से बढ़ सकोगे।" यह कह कर श्री अरविन्द मौन हो गये।

वह फ्रेंञ्च वाक्य निम्न-आशय का है:—

"यदि हम जरा से झूठ को भी जगह देते हैं और वाणी अथवा लेखनी द्वारा उसे प्रकट करते हैं, तब हम सत्य के पूरे सन्देश-वाहक बनने की आशा क्योंकर कर सकते हैं?

"सत्य के पूर्ण अनुचर को चाहिये कि वो अपने में तनिक सी अत्युक्ति, अशुद्धि व बिगाड़ को न आने दे।"

जब से हमने ऊपर के शब्दों को पढ़ा है और उन पर मनन प्रारम्भ किया है, हमें सत्याचरण की कठिनाइयों के साथ २ उसकी योग-सम्बन्धी महान् उपयोगिता का भी पता लग रहा है। अपने जीवन की मिथ्या-चारिता जहां स्पष्ट हो रही है वहां आने वाले सुप्रभात की सुखद झांकी भी दिखाई देने लगी है।

× × ×

अस्तु, २१ फर्वरी का दिन श्री अरविन्द आश्रम में एक विशेषता रखता है। यह श्री माता जी का जन्म-दिन है। आज वो ६२ वें वर्ष में प्रवेश करती हैं।

लगभग ५०० व्यक्ति एकत्रित थे। शाम के पांच बजे दर्शन प्रारम्भ हुए। श्री अरविन्द अपनी शान्त, गम्भीर मुद्रा में बैठे थे। दाहिनी ओर कुछ दूरी पर श्री माता जी विराज रही थीं।

दर्शक आते और अपनी पुष्पाञ्जलि समर्पित करके, मूक आशीर्वाद के साथ आगे बढ़ जाते। हमारी टोली में ५-१० सज्जन थे जिन के नेता श्री अभय देव जी आचार्य कहे जाने चाहियें। वो, उनके पिता, तीन बालक—वेदव्रत रवीन्द्र और हम, पं० गंगा प्रसाद जी टेहरी वाले और उनके भाई श्री प्यारे लाल जी और पूज्य स्वामी सत्यानन्द जी महाराज। श्री स्वामी जी स्वयं उच्च अवस्था के योगी होकर यहां क्यों आए, कुछ सन्देह हुआ। परन्तु आचार्य अभय देव जी को देखकर उसकी निवृत्ति हुई। यह श्री आचार्य जी की प्रेरणा का फल था।

× × ×

कहते हैं श्री अरविन्द मौन रहते हैं, फिर हम से क्यों कर बोले? पाठक जानना चाहेंगे। ठीक वो मौन रहते हैं। परन्तु बोलते भी हैं। स्थूल जिह्वा से नहीं तो मन की वाणी से। ऐसा अनुभव हमारा ही नहीं, अनेक साधकों का भी है।

ज्योंही हम पंक्ति में दर्शनार्थ खड़े हुए, पहिली प्रेरणा हुई "चुप हो जाओ, यदि मेरा सन्देश सुनना चाहते हो।" सीढ़ियों तक पहुंचे तो धीमी आवाज सुनाई देने लगी। ऊपर चढ़े तो आवाज़ भी ऊंची होती गई। सामने पहुंचे तो ऐसा मालूम हुआ मानो कमरा गूंज रहा है। और जब उन्होंने रोष से कहा" मेरे मुंह पर क्या ताकते हो। जाओ कुछ काम करो।" मैं कुछ भन्ना सा गया।

सचमुच कभी २ मौन बहुत जोरों से बोलता है। यह सम्भव है कि हमें वह बोली समझ न आवे और उसका अभिप्राय स्पष्ट न हो। क्या आपने कभी शाम के वक्त समुद्र के किनारे खड़े होकर डूबते सूर्य की रंगीन किरणों को देखा है? क्या वे कुछ नहीं कहतीं? क्या आपने रात के समय तारों से भरे आकाश की ओर टकटकी लगाई है? क्या कुछ नहीं सुना? क्या आपने प्रातः काल खिले हुए गुलाब की कोमल पंखड़ियों को निहारा है? और कोई सन्देश नहीं पाया? तब सचमुच तुम अभागे हो। आंखें रखते हुए अन्धे हो। और कान होते हुए बहरे हो।

× × ×

साधक दर्शन करके लौट रहे थे और मैं, एक किनारे खड़ा, उन्हें ग़ौर से देख रहा था। मैं जानना चाहता था कि उन्हें इस दर्शन से क्या मिला है? क्या वे कोई सन्देश लाए हैं या कोरे ही लौटे हैं?

साधक भी संसार की अन्य सृष्टि के समान अनेक भागों में बांटे जा सकते हैं। पहिले वे आते हैं जो उन्नत कोटि के हैं। उनके मुखों पर तो आह्लाद की छटा थी। मानो उनका हृत्-कमल सूर्य समान गुरु के दर्शन करके खिल उठा हो। दूसरे वे साधक थे जिन्हें हम कमल की उन डोडियों से उपमा दे सकते हैं जो अभी सख़्त हैं। जिन के खुलने में अभी देरी है। इन साधकों के चेहरों पर जिज्ञासा व आश्चर्य के चिह्न थे। इन्होंने मानो "रोरिक" जैसे महान् कलाकार के एक चित्र को देखा हो, यह एक अनुपम कला का नमूना है, ऐसा भी जानते हों, परन्तु उस चित्र का अभिप्राय क्या है, तूलिका के विविध रंगों के नीचे क्या आदर्श छिपा है यह न समझ पाए हों।

तीसरे कागज़ी-कमल के फूल थे। शकल सब की वो। वेश-भूषा भी वही। मुख-मुद्रा भी उन्हीं के अनुकरण में। परन्तु सुगन्ध नहीं। मिठास नहीं। मादकता नहीं। वे ऐसे मुस्कराते और गम्भीर बने आए मानों बड़ी पूंजी पाई हो। पर, हमें निश्चय है कि उनके चैक को कोई बैंक नहीं सकारेगा।

चौथे, हम जैसे कोरे। जैसे आए वैसे गये। तभी तो श्री अरविन्द को हमें भाड़ना पड़ा।

× × ×

दर्शन करके लौटे तो "नलिनी" एक साधक को पश्चिम-आकाश में गुरु और शुक्र का मेल दिखला रहा था। सचमुच वे दोनों उस दिन बहुत समीप थे। शायद् वे भी किसी दर्शन के लिये वहां पहुंचे हों।

रमते राम दर्शन तो कर आए पर पूछते रहे "दर्शन से क्या लाभ ?" लाभ तो करने में है। हां करने से पहिले विचार होता है और विचार से पहिले इन्द्रिय प्रत्यक्ष। यदि महात्माओं का दर्शन किया है तो उस बारे में विचार उठेंगे ही। और विचार के बाद एक दिन कर्म भी अवश्य होगा। रमते राम तो गीता को मानते हैं जहां लिखा है "कोई भी भला काम कभी व्यर्थ नहीं जाता।"

आशा है एक दिन हम भी योगी बनेंगे। सच कहते हैं 'दुनिया उम्मीद पर जाती है।'

आर्यसमाज का वैदिक-साहित्य

(ले०—श्री धर्मवीर वेदालङ्कार)

अगर आज हम उस समय की कल्पना करें जबकि महर्षि दयानन्द अपने कार्यक्षेत्र में उतरे थे, तो उस समय की भयंकर मुसीबतों का, जिनको कि महर्षि दयानन्द ने बर्दाश्त किया था, मन में ख्याल करते ही रोंगटे खड़े हो जाते हैं। वे भयंकर मुसीबतें जिन्हें कि उस बाल ब्रह्मचारी ने अपने स्वार्थ के लिये नहीं अपितु भारतीयों की बुरी अवस्था को सुधारने के लिये सहा था, आज हमें जीवन दायिनी बन सकती हैं और भयंकर से भयंकर कठिनाइयों का मुकाबला करने के लिए समर्थ बना सकती हैं। एक तरफ तो ईसाई और मुसलमानों जैसे विधर्मी लोग हिन्दू धर्म को अपना कवल बनाने के लिए मुंह बाये खड़े हैं और दूसरी ओर वह भयंकर खाई जिसमें कि सदियों से सोई हुई हिन्दू जाति, लगातार दिन दूने रात चौगने वेग से गिरती चली जा रही है, इन दोनों के बीच में अनन्त आपत्तियों को बर्दाश्त करते हुए चट्टान सदृश अचल महर्षि दयानन्द को खड़ा हुआ हम पाते हैं। मुसीबतें आती हैं और उस ब्रह्मचारी पर काबू न पाकर लौट जाती है। सबसे भयंकर मुसीबत उस कामदेव की थी जिसे कि साधारण आदमी बर्दाश्त नहीं कर सकता, परन्तु जिसे उसने पैरों तले रौंद दिया था। उस महर्षि का लगाया हुआ पौधा अगर आज इतनी उन्नति कर पाया है तो अपनी तपस्या और अपनी ही शक्ति का परिणाम है, यह किसी की दया और कृपालुता का परिणाम नहीं है। इतना होने पर भी विपत्तियों से भरे हुए आने वाले भविष्य की ओर आर्यसमाजियों का ध्यान खींच देना आवश्यक जान पड़ता है।

आर्यसमाज का आधार वेद है जिस पर कि यह विशाल और भव्य मन्दिर बनाया गया है। वेद ही आर्यसमाज का सर्वस्व है, परन्तु इसी की ओर हम उदासीन दिखाई देते हैं मुझे यह मानने में संकोच नहीं है कि आर्यसमाज के बहुत से विद्वानों का इस दिशा में हद से भी अधिक ध्यान है, परन्तु मुझे यह स्पष्ट कर देने में संकोच नहीं होना चाहिये कि ऐसे वेदज्ञ विद्वानों की गर्दनें उन धनी वैश्यों के आधीन हैं जिनको कि वेद के बारे में क, ख, ग भी मालूम नहीं है। वर्तमान काल में बहुत सी आर्यसमाजों की यही अवस्था है। इन आर्यसमाजों में रहने वाले वेदवेत्ता उपदेशक तो उन धनी व्यक्तियों की कृपा पर आश्रित हैं जिनके सन्तुष्ट रहने पर ही उसका जीवन निर्वाह हो सकता है। उस उपदेशक का सर्वप्रथम यह कर्तव्य होता है कि वह किसी भी तरह से अपने दाता को प्रसन्न रखे। चाहिये तो यह था कि धनी लोग पुरोहित और वेदवेत्ता के कृपापात्र बनने का प्रयत्न करते परन्तु आज हमें इससे ठीक विपरीत दिशा में आर्यसमाज की प्रगति दिखाई देती है। इस प्रकार हमारी श्रद्धा के भाजन यदि कोई हैं तो इने गिने संन्यासी और कुछ योगाभ्यासी। परन्तु तूफान की तरह गति करने वाला भविष्यत्काल हमें सूचना दे रहा है कि हम रुपये का लोभ देकर संन्यासियों और योगाभ्यासियों को भी अपने अधीन कर लेंगे। इस भौतिक पूंजीवाद का कितना विषाक्त प्रभाव आज सम्पूर्ण संसार पर हो रहा है, इस प्रभाव से बचने के लिये आज आर्यसमाज को अपनी दिशा कुछ बदलनी ही पड़ेगी। इसी भौतिक प्रभाव का ही परिणाम है कि आर्यसमाज में अभी तक कोई प्रामाणिक वेदभाष्य तैयार नहीं हो पाया।

इस समय आवश्यकता इस बात की है कि आर्यसमाज की सारी शक्ति एक विशाल वैदिक साहित्य की उत्पत्ति में लगा दी जाय और वेदों का प्रामाणिक, युक्ति-युक्त और वैज्ञानिक अर्थ जनता के सामने रखा जाय। आज यह बात सूर्य के समान बिल्कुल स्पष्ट है कि बहुत से इस्लाम तथा ईसाइयत के सिद्धान्त विज्ञान की टक्कर से चूर २ हो चुके हैं और हो रहे हैं। यही कारण है कि आज विज्ञान और धर्म की खुले आम टक्कर हो रही है और टक्कर में विज्ञान बहुत दूर तक सफल भी हुआ है। आज आर्यसमाज के पास वैज्ञानिक वैदिक साहित्य बहुत कम मात्रा में है जो कि हम पश्चिमीय देशों को उपहार रूप में दे सकें। इस वैज्ञानिक वैदिक साहित्य की उत्पत्ति के पश्चात् आर्यसमाज जहां विज्ञान की टक्कर से बचकर सम्पूर्ण जगत् के लिये एक प्रकाशस्तम्भ का काम कर सकता है, वहां अपने "कृण्वन्तो विश्वमार्यम्" के उद्देश्यों को भी सफल कर सकता है। अन्त में अगर एक वाक्य में अपने लेख को समाप्त करूं तो मैं यूं कह सकता हूं कि आज आर्यसमाज को अपनी सम्पूर्ण शक्तियों को केन्द्रीभूत करके वैज्ञानिक वैदिक साहित्य को उत्पन्न करने में ही लगा देना चाहिये और वेद के विषय में जहां आज हमें विदेशीय ग्रन्थों का आश्रय लेना पड़ता है उनके स्थान पर भारतीय प्रामाणिक वैदिक कोषों की तैयारी में आर्यसमाज को लग जाना चाहिये। यही एकमात्र उपाय है जिसके द्वारा आज मुझे आर्यसमाज का भविष्य उज्ज्वल और शानदार प्रतीत होता है।

गुरुकुल प्रशस्ति

[दीक्षान्त संस्कार के पश्चात् श्री एम.एस. अणे ने गुरुकुल की प्रशंसा में ये दो मनोहर श्लोक बनाये हैं।]

छात्रैः संकुलमद्भुतम् गुरुकुलम गंगातटस्थम् शुभम्
दृष्ट्वोद्यानमिव प्रफुल्लकुसुमं संसेवितम् षट्पदैः
श्रद्धानन्द सुखास्पदम् द्विजमुखस्वाध्याय संनादितम
संतुष्टः परमेष्ठिनम प्रतिदिनम तद्वृद्धये प्रार्थये ॥१॥
पुण्यश्लोकसमागमाद्भगवतः पादामृतप्राशनात्
धर्मस्याचरणाच्छ्रुतिप्रपठनाच्छ्रौताग्निसंसेवनात्
युक्ताहारविहारसंयमगुणानाम सामहम पालनात्
सद्विद्याव्यसनाच्च भाति भवताम् स्वर्गाधिका भूरियम॥२॥

अर्थ:—

१—भौंरों से भरे खिले हुए फूलों वाले बगीचे की तरह, विद्यार्थियों से युक्त, परम रम्य, गंगातट पर बसे, स्वामी श्रद्धानन्द की दिवंगत आत्मा को शान्ति पहुंचाने वाले और द्विजगणों के स्वाध्याय से निरन्तर शब्दायमान इस अद्भुत गुरुकुल को देखकर मुझे बहुत संतोष हुआ। मैं भगवान् से प्रार्थना करता हूं कि यह सर्वदा फलता-फूलता रहे।

२—प्रातः स्मरणीय महानुभावों के समागम, भगवान् के चरणामृत के प्राशन, धर्माचरण, श्रुति का पठन, श्रौत अग्नि का सेवन, युक्त आहार विहार, संयम आदि गुणों का सापह पालन, और सद्विद्या व्यसन आदि की वजह से आप लोगों की यह भूमि स्वर्ग से भी अधिक शोभायमान हो रही है।

गुरुकुल समाचार

ब्र० देवेन्द्र ३य श्रेणी मलेरिया, सत्येन्द्र ३य मलेरिया, धर्मेन्द्रनाथ ४र्थ मलेरिया, विद्याधर १म टाइफाइड।

गत सप्ताह उपरोक्त ब्रह्मचारी रोगी हुए थे। अब सब स्वस्थ हैं।

उत्सवों की समाप्ति के पश्चात् स्वभावतः समस्त कुल-वासियों की आकृतियों पर एक प्रकार की उदासीनता सी नज़र आया करती है। लेकिन इस वक्त वह सारी उदासीनता की घटा गुरुकुल के आसमान से एक लम्बे अर्से के वास्ते रफ़ा हो चुकी है। गुरुकुल का समस्त वाता-वरण अब प्रसन्न एव उल्लास पूर्ण दृष्टि गोचर हो रहा है। केवल नवस्नातकों की विदाई की याद कभी कभी कुल बन्धुओं के कलेजे में कांटे की तरह खटक कर दर्द पैदा कर देती है।

सभाओं के मन्त्रियों का निर्वाचन:—

इस वर्ष की महाविद्यालय की सभाओं के पदाधिकारियों का निर्वाचन निम्न प्रकार से हुआ है :—

१ वाग्वर्द्धिनी—
मन्त्री—गुरुदत्त १३ श. उपमन्त्री— हरिवंश १२ श.

२. संस्कृतोत्साहिनी—
मन्त्री—वीरेन्द्र (सु.) १३ श, उपमन्त्री-धर्मपाल १२श।

३. कालेज यूनियन
मन्त्री—देवेन्द्र १३श उपमन्त्री—जयदेव १२ श

४. गोष्ठी
मन्त्री—आनन्द १४श, उपमन्त्री—देवेन्द्र १३श

गुरुकुल के मान्य अतिथि

२१ मार्च को कुल भूमि में श्री कविराज प्रतापसिंह जी हिन्दू यूनिवर्सिटी के फार्मेसी विभाग के अध्यक्ष, पधारे। आपका 'कायाकल्प कुटी' पर एक विचार पूर्ण भाषण हुआ।

एक महत्वपूर्ण विदाई

२२ चैत्र को रात्रि के समय महाविद्यालय में एक सभा हुई जिसमें श्री कैप्टिन रामचन्द्र जी को विदाई दी गई। सभा में आचार्य जी, मुख्याधिष्ठाता जी, प्रोफेसरगण, ब्रह्मचारीवृन्द तथा अन्य कुलवासी सम्मलित हुए।

संरक्षक सभा

ता० २३-३-४० को संरक्षक सभा की मीटिंग में नीचे लिखे प्रस्ताव सर्व-सम्मति से पास हुए:—

१. यह सभा ला० दौलतराम जी मन्त्री संरक्षक सभा के सुपुत्र ब्र० देवराज, ब्र० श्री प्रकाश सुपुत्र श्री पं० विद्यारत्न जी पटियाला व ब्र० देवराज सुपुत्र म० राजकुमार जी देहली की अकाल मृत्यु पर शोक प्रकट करती है। और उन के सम्बन्धियों से हार्दिक सहानुभूति प्रकट करती है और प्रभु से प्रार्थना करती है कि वह उन के कुटम्ब को शान्ति व धैर्य्य प्रदान करे।

२. ला० दौलतराम जी भाटिया मन्त्री संरक्षक सभा के सुपुत्र ब्र० देवराज की इस साल गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ में अकाल मृत्यु हो गई है, क्योंकि वह संरक्षक सभा की तन मन धन से सेवा करते रहे हैं इस लिये पं० रामकुमार जी ने अपने चि० ब्र० राजेन्द्रपाल ८ म श्रेणी की कुल संरक्षक की जिम्मेवारी ला० दौलतराम जी को दे दी है। इसलिए संरक्षक सभा गुरुकुल व विद्यासभा से प्रार्थना करती है कि वह अपने कागजात में ब्र० राजेन्द्रपाल का ला० दौलतराम जी भाटिया मन्त्री संरक्षक सभा से सीधा सम्बन्ध कर दे ताकि संरक्षक सभा लाला जी की सेवा से सौभाग्य प्राप्त कर सके।

३. यह सभा सर्व सम्मति से संरक्षक सभा के गत वर्ष के चुनाव को अगले वर्ष के लिये मंजूर करती है।

४. यह सभा सब सम्मति से पास करती है कि गुरुकुल की इस रीति में ब्रह्मचारियों के स्वास्थ्य का निरीक्षण जो त्रैमासिक होता है उस के साथ षाण्-मासिक निरीक्षण हो उस में नेत्र, मुख, नाक, पेट आदि सब का जरूर निरीक्षण किया जावे और उसकी इत्तला संरक्षक महोदय को वार्षिकोत्सव से १५ दिन पूर्व देदी जावे, ताकि संरक्षक महोदय को उस को जांचने में कोई शिकायत न रहे।

५. यह सभा सब संरक्षकों से प्रार्थना करती है कि वह गुरुकुल की आर्थिक अवस्था को ध्यान में रख कर हर वर्ष यथा शक्ति धन संग्रह करके भेजें ताकि गुरुकुल की अवस्था का उत्थान हो सके।

रामकुमार
उप प्रधान
संरक्षक सभा, गुरुकुल कांगड़ी।

चौधरी हुलास राय के प्रबन्ध से गुरुकुल प्रेस, गुरुकुल कांगड़ी में मुद्रित तथा प्रकाशित।

* ओ३म् *

"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत"

Reg. No A. 2927

गुरुकुल

एक प्रति का मूल्य -) [गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख-पत्र] वार्षिक मूल्य २॥)

सम्पादक—साहित्यरत्न हरिवंश वेदालङ्कार

वर्ष ४] गुरुकुल कांगड़ी, शुक्रवार १ वैशाख १९९७, १२ अप्रैल १९४० [संख्या ४८

महत्वाकांक्षा

अनुवादक श्री 'विद्यालंकार'

महत्वाकांक्षा अच्छी भी हो सकती और बुरी भी। महत्वाकांक्षा के लिये मानव जाति ने हजारों कष्ट सहन किये हैं, लेकिन फिर भी हमें इसका ऋणी होना चाहिये।

एक स्थान पर लिखते हुए सिसरो कहता है कि अगर मेरे युवक हृदय में "नाना उदाहरणों, और लेखों के द्वारा, यह सत्य प्रविष्ट न हो चुका होता कि कीर्ति, और ईमान दारी जीवन में प्रिय ही नहीं, बल्कि जीवन का एक मात्र लक्ष्य होने चाहिये, और इनको प्राप्त करने के लिये, इस जड़ शरीर के टुकड़े करना, देश निकाला और मृत्यु का भय तुच्छ हैं—तो मैं तुम्हारी मुक्ति के लिये इतने संघर्षों और प्रतिदिन के झमेलों में न पड़ता। इस शीर्षक से पुस्तकें भरी पड़ी हैं। बुद्धिमानों ने महत्वाकांक्षा का महत्व दिखाने के लिये अनेक उपदेश दिये हैं। पुराने इतिहास में से महत्वाकांक्षा के अनेक उदाहरण ढूंढे जा सकते हैं। इतना होते हुए भी, अगर विज्ञान के सूर्य ने इसको प्रकाशित न किया होता, तो बर्बरता की रात्रि में महत्वाकांक्षा विलीन हो चुकी होती।"

कवि हमें बताता है:—

'हजारों असफल होते हैं, तब कहीं एक सफल होता है"(टेनीसन) पर यह मुश्किल से सत्य है। जिसमें योग्यता है, वह अवश्य सफल होता है, यद्यपि उतनी सफलता नहीं मिलती, जितनी की वह आशा करता है। तुच्छ विजय की अपेक्षा सम्मान पूर्ण पराजय बेहतर है। और अगर कोई मनुष्य हिम्मत ही न हार जाये तो केवल हारने के कारण उसे बुरा या अयोग्य नहीं कहा जा सकता। यदि हम किसी चीज़ को प्राप्त करने की योग्यता नहीं रखते, तो उसके लिये कोशिश करने का भी हमें अधिकार नहीं यह समझना युक्ति युक्त नहीं है।

मोरिस कहता है— "यह मैं अच्छी तरह जानता हूं कि छोटी २ असफलताओं की अपेक्षा बड़े काम में असफलता होना भी कहीं अच्छा है"।

बेकन हमें विश्वास दिलाता है कि "अगर कोई मनुष्य बड़ी सावधानी और दूर दर्शिता से देखता है, तो वह भाग्य को अवश्य ढूंढ लेगा, क्योंकि यद्यपि भाग्य स्वयं अन्धा है लेकिन दूसरों के लिये अदृश्य नहीं है।"

हमें न्यायोचित सफलता से विभूषित होने के लिये, यह अनुभव करने की आवश्यकता है कि हमें कितना प्राप्त करने की आशा करनी चाहिये, और उसके बाद अपने अवसरों से पूरा लाभ उठाना चाहिये।

इन अवसरों में समय का उपयोग सबसे अधिक महत्व पूर्ण है। हमें अपने सारे समय को परिश्रम के कार्यों से भर देना चाहिये। "मौन्टेबीलो की लड़ाई में" नैपोलियन ने कहा था "मैंने केलरमैन को, ७०० घुड़ सवार लेकर आक्रमण करने की आज्ञा दी थी और इन की ही सहायता से, उसने आस्ट्रियन अश्वसेना के देखते देखते ६००० हंगेरियन बारूद बरसाने वालों को तितर बितर कर दिया था। यह अश्वसेना केवल १॥ मील दूर थी, और कार्य क्षेत्र में पहुंचने के लिये, इसे केवल १५ मिनिट का अवसर पर्याप्त था; लेकिन मैं यह अच्छी तरह जानता था कि यह ही युद्धों के भाग्य का निर्णय किया करते हैं" हम साथ में यह और जोड़ सकते हैं कि जीवन-युद्ध के भाग्य का भी निर्णय इनके आधीन है।

हमें दूसरे उपायों में भटकना ही नहीं चाहिये, क्योंकि "जो मनुष्य अमर कीर्ति चाहता है, उसे अपने जीवन की कभी चिन्ता नहीं होनी चाहिये"।

इसके अतिरिक्त, संघर्ष के जोश में, मनुष्य को घावों और प्रहारों का कष्ट भी बहुत कम अनुभव होता है; जो घाव अन्यथा बहुत पीड़ा कर सिद्ध होंगे।

पैसे अपने उद्देश्य के महत्व को तोल लेना इसके मूल्य को सावधानी से आंक लेना और इसके लिये कम से कम ख़तरा Risk उठाना बुद्धिमानी है। लेकिन जब एक बार निश्चय कर लिया, तब पीछे मुड़कर देखना, अपनी तरफ से कोई कसर छोड़ना, या किसी विधि से घबराना कायरता है।

"जो किसी उद्देश्य को पाने के लिये इस डर से साहस नहीं करता कि असफल न होजाय वह या तो

अपने भाग्य से बहुत डरता है, अथवा उसकी योग्यता थोड़ी है" रेनन कहता है "कुछ भी हो, कीर्ति को बिलकुल थोथा तो नहीं कहा जा सकता" लेकिन कीर्ति क्या है ?

मार्कस ओरे लियस कहता है कि "एक मकड़ी अपने जालों में मक्खी फंसा कर अभिमान अनुभव करती है, एक मनुष्य को खरगोश और दूसरे को मछली पकड़ने मे गौरव अनुभव होता है; किसी को सुअर का शिकार करने में और किसी को रीछ का शिकार करने में गौरव मालूम होता है।" यह सब कीर्ति की निःसारता को दिखाता है, लेकिन साथ ही यह इस बात की साक्षी देता है और हमें उत्साहित करता है कि हरेक मनुष्य अगर उसका उद्देश्य युक्ति युक्त है—सफल हो सकता है।

सिकन्दर को— महत्वाकांक्षा के साधारण रूप के नमूने के तौर पर, यद्यपि इसे भी अति तक पहुंचाया गया है—लिया जा सकता है।

उसकी इच्छा वसीयत में पाने, या शासन करने की न थी, बल्कि स्वयं विजय करने की थी। यही कारण था कि जब उसे अपने पिता के किसी शहर पर कब्जा करने या किसी युद्ध को विजय करने का समाचार मिलता था, तो वह खुश होने के स्थान पर अपने साथियों से कहा करता था "इस तरह तो मेरा पिता विजय करता जायेगा, और मेरे तुम्हारे लिये कोई भी असाधारण कार्य करने को न रह जायेगा।" उसके सम्बन्ध में तो यहां तक कहा जाता है कि नक्षत्रों की संख्या को देख कर, इसी विचार से दुःखी हुवा करता था कि मैं एक भी दुनिया को न जीत सका। ऐसी महत्वाकांक्षा तो निराश होने के लिये ही उत्पन्न हुई है।

महत्वाकांक्षा की निस्सारता को बताते हुए, दार्शनिकों के रिमार्क इसी तरह की अनुचित महत्वांकाक्षा की तरफ निर्देश करते हैं, जो सुख से कोई सरोकार नहीं रखती, और नाहीं दूसरों के दुःखों की परवाह करती है। सिकन्दर भी इसी तरह की महत्वाकांक्षा का उपासक था।

बेकन कहता है "कई बार धन की निरन्तर इच्छा में लगे रहना उन मनुष्यों का बहुत समय ले लेता है, जिन्हें दुनिया में अन्य बहुत से कार्य जो धन प्राप्ति से कहीं ऊंचे हैं; करने हैं।" अन्यत्र कहीं वह विचार को और उदार बनाता है और कहता है "किसी मनुष्य की वैयक्तिक सम्पत्ति उसके अस्तित्व का अन्तिम उद्देश्य कभी नहीं हो सकती।" (असमाप्त)

संध्या हवन का प्रयोजन

(लेखक—श्री धर्मवीर वेदालंकार)

दैनिक संध्या हवन से मनुष्य का लाभ तभी हो सकता है, जबकि वह अपनी प्रार्थना को स्वयं समझे। संध्या हवन करने का मुख्य प्रयोजन तो यही है कि मनुष्य उस सर्वशक्तिमान् भगवान् का स्मरण कर के उसके दण्ड के भय से पापों से दूर रहने की प्रतिज्ञा करे। किसी कार्य को शुद्ध हृदय से करने की प्रतिदिन इच्छा करने का प्रभाव शनैः २ मन को बुरे कार्यों से दूर रखने में अत्यन्त सहायक होता है। संध्या करने वाले व्यक्ति के सुधार की यही कुंजी है। वैसे तो यदि हम प्रतिदिन तोते की तरह "तं वो जम्भे दध्मः" रटते रहें, पर यदि शुद्ध हृदय से अपनी संध्या में प्रकट की हुई इच्छाओं पर चलने का प्रयत्न नहीं करते, तो हमारी संध्या फलवती न होगी। इस से भी अधिक शोचनीय दशा तो उन की है जो कि "तं वो जम्भे दध्मः" इत्यादि स्थलों का किसी तरह शुद्ध उच्चारण तो कर लेते हैं पर यह नहीं जानते कि उन्होंने क्या कहा, और उसका क्या अर्थ है। ऐसे व्यक्तियों की संध्या तो समय यापन (Waste of time) के अतिरिक्त कुछ नहीं है। इस प्रकार की सध्या से किसी प्रकार के लाभ की आशा करना बिल्कुल व्यर्थ है। आर्य समाज में तो इस प्रकार की संध्या का होना बहुत अनर्थकारी भी है। वेद मन्त्रों में स्वयं कोई ऐसा जादू तो नहीं भरा हुआ कि उन्हें समझे बूझे बिना ही तोते के समान पाठ करने से पापों की निवृत्ति हो सके।

अब दूसरी तरफ आइये। बहुत व्यक्ति ऐसे हैं जोकि मन्त्रों के साथ ही मन्त्रों का अर्थ भी कण्ठस्थ कर लेते हैं। वे लोग समझते हैं कि संध्या हवन के मन्त्र अगर अर्थ सहित याद कर लिये जायँ तो उसका बहुत लाभ होता है। बहुधा यह कहा भी जाता है कि मन्त्रों को अगर अर्थ सहित याद कर लिया जाय तो उसका पूर्ण लाभ होता है, परन्तु अगर विचार करके देखा जाय तो मेरे विचार में बिना संस्कृत साहित्य तथा विशेषतया वैदिक साहित्य पढ़े किसी खास मन्त्र का न तो शुद्ध अर्थ ही याद हो सकता है और ना ही इस प्रकार रटे हुए मन्त्रों का अर्थ मन्त्र बोलते समय स्मरण होकर सध्या करने वालों का ध्यान उस ओर आकृष्ट कर सकते हैं। यह बात तो निस्सन्दिग्ध है कि संध्या या प्रार्थना का गहरा प्रभाव हृदय पर तभी पड़ेगा जबकि संध्या करने वाला व्यक्ति अपने मन में आने वाले प्रत्येक शब्द को खूब समझकरके अपनी प्रार्थना को परमात्मा के सम्मुख रखे। यदि किसी व्यक्ति को शब्दों का पूर्णतया अर्थ ही मालूम नहीं तो उस व्यक्ति का आत्मिक विकास हो ही नहीं सकता और ऐसे स्थिति में यह संध्या हवन बिल्कुल व्यर्थ ही साबित होगा। मैं संध्या हवन की इस प्रकार की अनर्थकारी परिपाटी को भी अन्ध विश्वास तथा रूढ़िवाद में ही शामिल समझता हूं, क्योंकि यह एक ऐसी परिपाटी है जिसका कि कुछ लाभ नहीं, परन्तु क्योंकि यह परिपाटी चली आ रही है, इस लिये ही संध्या हवन किया जाता है। महर्षि दयानन्द ने आत्मिक उन्नति के लिये आर्यसमाजियों अथवा वैदिक धर्मियों के लिये संध्या हवन को आवश्यक अंग बताया था, परन्तु इस प्रकार के संध्या हवन की अपेक्षा संध्या हवन न करना अधिक अच्छा है। इसी लिये मैं कहता हूँ कि ऐसे युक्ति युक्त संध्या हवन को जिसके कि करने से कुछ भी लाभ नहीं होता, अपितु केवल मात्र इसलिये किया जाता है, क्योंकि यह वैदिक धर्मियों के लिये आव-

श्यक है, केवल मात्र रूढ़िवाद को या अंध परम्परा को ही पुष्टि देना है।

किन्हीं २ समाजों में हवन करने वालों के साथ २ सभी उपस्थित सज्जन भी मन्त्र बोलते हैं, यह अपेक्षाकृत अच्छी परिपाटी है क्योंकि मन्त्रोच्चारण करने से कम से कम सब उपस्थित व्यक्ति का ध्यान तो हवन की तरफ़ रहता है। परन्तु किन्हीं २ समाजों में कर्मकांड की आड़ में कुछ व्यक्ति कहा करते हैं कि जो व्यक्ति यज्ञ कुण्ड के समीप यज्ञ करने तथा आहुति डालने को बैठाये जाते हैं, उनको छोड़कर बाकी सब को चुपचाप ही बैठना चाहिये। हमारा तो विश्वास है कि अगर वह चुपचाप बैठे रहें तो उन लोगों का तो इतना ही सहयोग पर्याप्त है, परन्तु देखा तो यह जाता है कि वे व्यक्ति जो चुप चाप बैठे होते हैं, थोड़ी देर बाद धीमे २ आपस में बातचीत करना शुरू करते हैं और तत्पश्चात् कुछ लोग समाचार पत्र तथा अन्य पुस्तकें पढ़ना प्रारम्भ कर देते हैं। हमारे विचार में तो जो भी व्यक्ति यज्ञ में उपस्थित होता है, उसे अनुभव करना चाहिये कि वह भी यज्ञकर्त्ता है। आहुतियाँ तो केवल मात्र सुविधा की दृष्टि से ही तीन चार व्यक्ति डालते हैं। अगर कोई व्यक्ति आहुति नहीं डालता, उसे मन्त्र तो बोलने ही चाहियें। अगर वह मन्त्र भी नहीं बोलना चाहता तो कम से कम उसे शान्त रह करके ही यज्ञ में सहयोग देना चाहिये। आजकल हम जगह जगह पर बृहत्-यज्ञ होता हुआ देखते हैं। बहुत से यज्ञों में तो चारों वेदों का पाठ भी होता है जिस का कि मेरी समझ में कुछ भी मूल्य नहीं है। उसका कारण यह है कि हम बिना मंत्रों के अर्थों को जाने उनको बाँच जाते हैं, 'निरुक्तकार यास्क, तथा स्वयं वेद के कथनानुसार ऐसे पाठों का कुछ भी मूल्य नहीं। इससे तो यह कहीं अधिक अच्छा है कि थोड़े ही मन्त्रों को यज्ञ में पढ़ा जाय, और उपस्थित जनता को उतने ही मंत्रों का अर्थ समझा दिया जाय यह वेदों की रक्षा का तथा वेदों के प्रचार का सबसे उत्तम तथा सरल उपाय हैं, केवल मात्र प्राचीन लोगों का अनुकरण करते हुए, वेद मन्त्रों के अर्थों को बिना समझे बूझे उच्चारण करते चले जाना रूढ़िवाद तथा अंध परम्परा का ही तो दूसरा स्वरूप है। थोड़ा कारिये और उसको खूब समझिये अपेक्षा इसके कि बहुत किया और बिल्कुल न समझाये। मेरा तो ऐसा विश्वास है कि वेदों का अगर कोई अधिक से अधिक उचित रूप से मूल्य आंकना जानता है तो वह आर्य समाज है, परन्तु आर्य समाज की ऐसी अवस्था को देखकर मुझे दुःख होता है। मेरा तो ऐसा दृढ़ विश्वास है कि आर्यसमाज को चौमुखी उन्नति के लिये यह एक आवश्यक अंग है और महर्षि दयानन्द ने इसी लिये प्रत्येक वैदिक धर्मी के लिये इस का करना आवश्यक लिखा है।

अन्त में एक बात और कह दूँ जोकि अत्यन्त आवश्यक है और जिस के बगैर यह सब अधूरा ही रह जाएगा, वह है इसका उपाय। मेरी समझ में तो इसका एक ही उपाय है, और वह यह कि किसी भी प्रकार से वैदिक शिक्षा तथा वैदिक संस्कृति का नियम पूर्वक अध्ययन करना। वर्तमान काल में ज्यों ही किसी का बच्चा छः या सात वर्ष का होता है तो मां बाप को चिन्ता होती है कि किस लाइन में इसे पढ़ाया जाय ताकि यह अच्छी प्रकार धनोपार्जन कर सके। मैं धनोपार्जन के विरुद्ध तो नहीं हूं और ना ही भोजन की चिन्ता करने के विरुद्ध हूं। भोजन की चिन्ता तो आवश्यक है और इसके बिना तो बड़े से बड़े वेदान्ती भी, जोकि सर्वत्र भोक्ता और भोग्य में भी ब्रह्म की कल्पना करता है, अपने वेदान्त का उपदेश दूसरों तक नहीं पहुंचा सकता। परन्तु आज आर्य समाज में आवश्यकता इस बात की है कि प्रत्येक आर्यसमाजी की रग २ में वैदिक धर्म का सन्देश और वैदिक संस्कृति का उपदेश भरा हुआ हो। इसके लिये आवश्यक है कि प्रत्येक आर्य समाजी अपने बच्चों को वैदिक संस्कृति की शिक्षा दे। और शिक्षा भी ऐसी जिस में कि वह अपना जीवन और मरण समझने लगे और जिसके बिना उसको अपना जीवन भी भारस्वरूप मालूम पड़ने लगे।

कोई भी समाज अपने स्वरूप से चेतन या सजीव नहीं होता। अगर उसमें किसी भी प्रकार चैतन्यता अनुभव होती है तो उस समाज के अपने विचार अथवा सिद्धान्त तथा दूसरे व्यक्तियों का उन विचारों के प्रति प्रेम श्रद्धा और उत्साह ही उस समाज का चैतन्यता का कारण होता है। उदाहरण के तौर पर कांग्रेस अपने आप में कोई सजीव चीज़ नहीं है परन्तु फिर भी हम कहा करते हैं कि कांग्रेस या राष्ट्रीय महासभा एक जीवित जागृत संस्था है। ऐसा क्यों होता है? इसका कारण यही कि राष्ट्रीय महासभा के अपने सिद्धान्त हैं जिनके प्रति सामान्य जनता की श्रद्धा है। उत्कृष्ट विचार तथा सामान्य जनता की उन विचारों के प्रति श्रद्धा ही किसी संस्था को सजीव बना देते हैं। ठीक इसी प्रकार आज आर्यसमाज में भी हमें चैतन्यता अनुभव होती है और उसका कारण भी यही है कि आर्य समाज के सिद्धान्त उत्कृष्ट हैं और सामान्य जनता उनको पसन्द करती है। कहने का तात्पर्य यह है कि कोई भी संस्था या समाज मुख्य रूप से अपने उत्कृष्ट सिद्धान्तों के कारण ही सजीव दिखाई देती है। पौराणिक, मुसलमान तथा ईसाई धर्मों की अपेक्षा आर्य समाज का एक विशेषता है। आर्य समाज के लिये "बाबावाक्यं प्रमाणम्" का कोई मूल्य नहीं और इसका हमारे आचार्य ऋषिदयानन्द ने घोर विरोध किया है। आर्यसमाज उसी बात को मानता है जोकि उसे युक्तिसंगत प्रतीत होती है, और जो बात युक्तिसंगत नहीं होती उसे त्रिकाल में भी मानने को तैय्यार नहीं होता। आर्य समाज की यह विशेषता बहुत महत्त्व पूर्ण है जिससे कि हम वर्तमानकाल में ऋषि दयानन्द की देन कह सकते हैं। दूसरे धर्मों का खण्डन करने समय तो हम इस विशेषता का उपयोग करते हैं परन्तु जब घर की खोज होती है, तो हम सब कुछ भूल जाते है। इसका अगर आपने प्रत्यक्ष प्रमाण देखना हो तो आर्य समाजों में नित्य प्रति होने वाले सन्ध्या हवन तथा संस्कार इत्यादि को आप देख सकते हैं। मेरे विचार में आर्य समाजों तथा कई संस्थाओं में होने वाला सन्ध्या हवन तथा संस्कार इत्यादि का स्वरूप बिल्कुल त्याज्य है। ———

गु रु कु ल

१ वैशाख शुक्रवार १९९७

दीनबन्धु का वियोग

[ले० श्री आचार्य अभयदेव जी]

अभी कुछ दिन हुए गुरुकुल में शान्तिनिकेतन के डा० अमिय चक्रवर्ती पधारे थे, जो कि पिछले लगभग एक मास से कलकत्ता के हास्पिटल में दीनबन्धु एण्डरूज के साथ रहे हैं और जिनके द्वारा दिये जाने को दीनबन्धु अपना अन्तिम संदेश छोड़ गये हैं। उस दिन उनके हाथ हम गुरुकुल वासियों ने दीनबन्धु को उनके रोग से मुक्त होने की परमेश्वर से प्रार्थना करते हुए एक प्रेम का संदेशा भेजा था। पर तब यह क्या मालूम था कि हमारी प्रार्थना नहीं स्वीकार होगी ऐसा परमेश्वर का विधान हो चुका है? तो भी हमने तो सरल और सच्चे हृदय से प्रार्थना की थी अतः जैसा कि अमिय चक्रवर्ती का दृढ़ विश्वास था, गुरुकुल कांगड़ी से भेजे गये इस पत्र को पाकर अवश्य उन्हें कुछ न कुछ सान्त्वना और शान्ति तो मिली ही होगी, यद्यपि हमारे दिल की तो दिल ही में रह गई। क्योंकि दीनबन्धु गुरुकुल में आने की अपनी इच्छा प्रकट कर चुके थे और हमें आशा थी कि अच्छे होने पर ये हमारे चिरपरिचित मान्यबन्धु बहुत वर्षों के व्यवधान के बाद गुरुकुल में फिर आवेंगे और फिर यहां कुछ समय रहेंगे, जैसे कि वे महात्मा मुंशीराम जी के जमाने में गुरुकुल में आकर रहा करते थे। पर ईश्वरीय लीला ने सब कुछ निराशा में परिणत कर दिया। पाठक कल्पना कर सकते हैं कि इस समय उनके उठ जाने से हम गुरुकुल वासियों के हृदयों पर कितना आघात पहुंचा होगा।

हम जब छोटे थे, गुरुकुल में पढ़ा करते थे तब से श्री एण्डरूज की भव्य मूर्ति से परिचित थे। सफेद धुला हुआ धोती-कुर्ता पहने, शान्ति, नम्रता, कोमल हृदयता और प्रेम की मूर्ति वे प्रायः महात्मा मुंशीराम जी के साथ साथ ही आते जाते हुए, गुरुकुल की बहुत सी कार्यवाहियों में सम्मिलित हुआ करते थे। जो भी कोई भारतवर्ष को जानने की विशेष इच्छा से यूरोपियन या अन्य कोई पाश्चात्य महानुभाव इस देश में आते थे, उनमें से बहुतों को गुरुकुल कांगड़ी में लाने वाले और उनका गुरुकुल से विशेष संबन्ध जोड़ने वाले वे श्री एण्डरूज ही थे। इनमें श्री पायर्सन सर्वप्रमुख थे, वे तो एण्डरूज की तरह ही गुरुकुल के हो गये थे। अमेरिकन फेल्पस तथा अंग्रेज नेमिन्सन, फॉक्सपिट, मैकडानल्ड आदि अनेक पुरुषों को गुरुकुल से परिचित कराने वाले हमारे दीनबन्धु एण्डरूज ही कहे जा सकते हैं। और यह भी सब विदित है कि महात्मा गांधी को महात्मा मुंशीराम से जोड़ने वाले सूत्रों में से एक प्रबल सूत्र श्री एण्डरूज बने थे। दक्षिण अफ्रीका में गांधी जी को भारत के जिन तीन महान् व्यक्तियों से मिलने का आग्रह श्री एण्डरूज ने बार २ किया था उनमें एक इस गुरुकुल के संस्थापक महात्मा मुंशीराम जी थे, जबकि शेष दो विश्वकवि रवीन्द्र तथा सेंट स्टीफनसन कॉलिज देहली के प्रिन्सिपल रुद्र थे। जब महात्मा गांधी ने भारत में आकर गंगा के तट पर उस पार के गुरुकुल में प्रथम बार महात्मा मुंशीराम जी को प्रणाम किया तब श्री एण्डरूज द्वारा जोड़े गये इस संबन्ध का भी उन्होंने जिक्र किया। भारतीय सभ्यता को अन्तरात्मा से स्वीकार करने वाले, गुरुकुलीय शिक्षा प्रणाली के प्रेमी, महात्मा मुंशीराम जी के भक्त इन एण्डरूज साहब को हम गुरुकुल वासी कैसे भूल सकते हैं? स्वामी श्रद्धानन्द जी के बलिदान हो जाने पर श्री एण्डरूज ने उनके विषय में जो एक लेखमाला 'यंग इण्डिया' में लिखी थी वह इन दोनों महान् पुरुषों के सम्बन्ध को बताने के लिये हमारे इतिहास में अमर रहेगी।

चार्ल्स फ्रायर एण्डरूज ने भारत को जो नाना तरह से सेवा की है, कहीं भी अत्याचार, पीड़ा और संकट उत्पन्न हुआ है तो ये दीनबन्धु तुरन्त वहां जा पहुंचे हैं, प्रवासी भारतीयों के कष्ट निवारण के लिए यहां से वहां घूमते फिरना इनका मामूली काम रहा है, भारत की सच्ची स्थिति व अधिकार को जताने के लिये जो उत्तम लेख और पुस्तकें लिखकर इन्होंने भारत के लिए संसार को जगाया है, उस सब की चर्चा तो आज देश के सब नेता कर रहे हैं और करेंगे।

एवं उनकी अत्युन्नत मनुष्यता द्वारा तथा उनके प्रेम, ज्ञान और परिश्रम द्वारा उनको जो अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति बन गई थी, उसका वर्णन भी देश विदेश के पुरुषों द्वारा किया जा रहा है और आगे भी जगत् के उदार पुरुष उसका वर्णन करते रहेंगे। परन्तु हम कुलवासी तो आज यह अनुभव करते हैं कि इन दीनबन्धु के वियोग से गुरुकुल को भी क्षति पहुंची है। जहां उनके निधन से भारत को और विशेषतया आजकल की विषम परिस्थितियों में गुजरते हुए जगत् को क्षति पहुंची है वहां इस दुर्घटना से गुरुकुल के व्यापक ध्येय को भी क्षति पहुंची है—यह हम अनुभव किये बिना नहीं रह सकते। अन्त में हम उनके प्यारे और आराध्यदेव जगदीश्वर से नत मस्तक होकर उनकी सद्गति की प्रार्थना करते हैं और आशा करते हैं कि उनकी कृपा से चार्ली एण्डरूज अब भी अपने उदार और प्रेममय कृत्यों और उनके प्रभावों के रूप में इस जगत् में चिरकाल तक जीवित रहेंगे और उससे गुरुकुल का ध्येय भी अपना अंश पाकर फलता फूलता रहेगा।

डाक्टर श्री अमिय चक्रवर्ती का गुरुकुलीय अनुभव

श्री आचार्य जी के लेख में जिन डाक्टर अमिय चक्रवर्ती का जिक्र है, वे १२ मार्च को गुरुकुल में पधारे थे। आप शान्तिनिकेतन के एक बड़े स्तम्भ हैं। विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर के साथ विदेशों में घूमे हैं। बड़े विद्वान् और लेखक हैं। उनकी विद्वत्ता के ही कारण ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी ने उनसे भारतीय संस्कृति पर एक पुस्तक लिखने की प्रार्थना की है। उसी के सिलसिले में वे गुरुकुल पधारे थे। वे यहां पर रहे और सब कुछ देखा। रात को 'एक संस्कृति-केन्द्र के रूप में शान्ति निकेतन' इस विषय पर व्याख्यान भी दिया। उनका गुरुकुल का अनुभव क्या रहा यह उनके अभी आये पहिले पत्र से प्रकट हो जाता है। गुरुकुल के पाठकों के परिचय के लिए वह पत्र नीचे दिया जाता है:—

"मैं नहीं जानता कि मैं अपनी उस गहरी कृतज्ञता और धन्यवाद को किन शब्दों में अभिव्यक्त करूं जिसका अनुभव मुझे गुरुकुल में हुआ था। मेरा हृदय आपके स्नेहपूर्ण आतिथ्य और कृपा की स्मृतियों से भरा हुआ है। जब मैं उस अतीत में दृक्पात करता हूं तो मुझे मालूम होता है कि मैंने आपके विश्वविद्यालय की जो तीर्थयात्रा की है वह सदा जीवन में एक मार्ग प्रदर्शक, प्रेरणाओं के स्रोत का कार्य करेगी।

जो कुछ भी मैंने यहां देखा, सुना और अनुभव किया उस सब में मुझे आध्यात्मिक सत्य और शिव की झलक मिली। इसके साथ, आपके कार्यकर्ता सेवा की सनातन-भारतीय परम्परा भी अक्षुण्ण रखते हैं।

मेरी ईश्वर से यह प्रार्थना है कि आपकी साधना का यह विद्यापीठ फले फूले, बढ़े तथा सत्य और ज्ञान का प्रचार करे।

कृपया अपने साथियों को मेरा सस्नेह स्मरण कहिये तथा मेरा नमस्कार स्वीकार कीजिये।

सदा आपका:—

अमिय चक्रवर्ती।

वेद के ऋषि

(क्रमागत ४)

[ले० श्री धर्मराज वेदालङ्कार]

वाग् आम्भृणी

दसवें मण्डल के १२५ वें का ऋषित्व वाग् आम्भृणी को प्राप्त है। इस ऋषि के मन्त्रों में यद्यपि साक्षात् यह नाम नहीं आया, परन्तु इतना स्पष्ट रूप से प्रतीत होता है कि सूक्त के मन्त्रों में कोई परमा वाक् बोल रही है। सूक्त का देवता 'आत्मा' है, सूक्त में वाणी रूप परमात्मा के उच्चारण किये हुए मन्त्र हैं। परमात्मा की शब्द-ब्रह्म के रूप में कल्पना कुछ अद्भुत नहीं है। वैदिक साहित्य में शब्द के रूप में ब्रह्म का अनेक स्थानों पर अभिधान है। भर्तृहरि आदि वैयाकरण तो शब्द-रूप ब्रह्म से ही सृष्टि आविर्भाव और तिरोभाव स्वीकार करते हैं। 'ओमित्येतदक्षरमिदं सर्वम्' यह एक उपनिषद्वाक्य ही शब्द-ब्रह्मता को प्रमाणित करने के लिये पर्याप्त है।

'वाक' क्योंकि स्त्रीत्व वाचक है, इस लिये मन्त्रों में इसके विशेषण भी स्त्री लिङ्ग में हैं—

अहं राष्ट्री संगमनी वसूनां
चिकितुषी प्रथमा यज्ञियानाम्
तां मा व्यदधुः पुरुत्रा
भूरिस्थात्रां भूर्यावेशयन्तीम्

१२५-३

इस मन्त्र के अङ्कित शब्द निःसन्देह सूक्त की ऋषि-भूत वाक् की ओर सङ्केत कर रहे हैं।

आम्भृणी क्या है, इस विषय में सायण लिखता है—

"अम्भृणस्य महर्षेर्दुहिता वाङ्नाम्नी ब्रह्मविदुषी स्वात्मानं अस्तौद् अतः सा ऋषिः सच्चित्सुखात्मकः सर्वगतः परमात्मा देवता, तेन हि एषा तादात्म्यम् अनुभवन्ती सर्वजगद्रूपेण सर्वस्य चाधिष्ठानत्वेन चाहमेव सर्वं भवामीति स्वात्मानं स्तौति।"

इस उद्धरण से यह सिद्ध है कि सायण के मत में परमात्मा के साथ एक रूपता का अनुभव करती हुई ही कोई ऋषि पुत्री इस सूक्त में स्तुति कर रही है अर्थात् इस सूक्त का वर्णन इस प्रकार का है। मानो परमात्मा स्वयं वर्णन रहा हो।

अब यह देखते हैं कि 'अम्भृण' ऋषि कौन है और उसकी पुत्री का उसके मन्त्रों से क्या कुछ सम्बन्ध है निरुक्त में 'आम्भृण इति महतो नामधेयम्' ऐसा कहा है। मोनियर विलियम्स ने अपने प्रसिद्ध कोश में आम्भृण का अर्थ 'गरजने वाला, बलवान, शक्तिशाली' इत्यादि किया है। आम्भृण की पुत्री में भी यह गुण स्वभावतः आयेंगे। आम्भृणी वाक् ऋषि के मन्त्रों को पढ़ने से यह आसानी से मालूम हो सकता है कि मन्त्र जिस हृदय से निकले हैं उसमें गर्जना, बल और शक्ति तथा महत्ता विलक्षण रूप में विद्यमान है। नमूने के लिये हम यहां दो तीन मन्त्र अर्थ सहित देते हैं—

अहं रुद्रेभिर्वसुभिश्चरामि,
अहमादित्यैरुत विश्वदेवैः।
अहं मित्रावरुणोभा बिभर्मि,
अहमिन्द्राग्नी अहमश्विनोभा।

इस मन्त्र में आम्भृणी वाक् ने दावे के साथ कहा है कि मैं ही रुद्रों, वसुओं और आदित्य आदि समस्त देवों के साथ गति कर रहा हूं। मित्र वरुण, इन्द्र, अग्नि आदि सब का भरण पोषण करने वाली मैं ही हूं।

मया सोऽन्नमत्ति यो विपश्यति
यः प्राणिति य ईं शृणोत्युक्तम्
अमन्तवो मां त उपक्षियन्ति
श्रुधि श्रुत श्रद्धिवं ते वदामि

गे; समझदार यक़ीन करने लायक़ एक बात तुझे सुनाती हूं, ग़ौर कर । इस दुनिया में जो कोई खाता है, देखता है, सांस लेता है या सुनता है, इस सबकी वजह में हो हूं। मेरी ही मर्जी और ताक़त पर ये सब हरकतें होती हैं। और जो मेरी ताक़त के सिक्के को नहीं मानते, याद रख, वे आख़िर तबाह होकर रहेंगे।

यं कामये तं तमुग्रं कृणोमि
तं ब्रह्माणं तम् ऋषिं तं सुमेधाम्

जिसे मेरी मर्जी होती है उसे ही सबसे ज्यादा ताक़तवर बना देती हूँ। अपनी ही इच्छा से किसी को ब्रह्मा अर्थात अखिल संसार का उत्पादक नियुक्त कर देती हूँ, किसी को ऋषि और किसी को प्रतिभाशाली, विद्वान बना छोड़ती हूं।

अहं रुद्राय धनुरातनोमि
ब्रह्मद्विषे शरवे हन्तवा उ
अहं जनाय समदं कृणोमि
अहं द्यावापृथिवी आविवेश

उपद्रव करने वालों का रुद्र विनाश कर सके, इस प्रयोजन से मैं उसके लिये धनुष तैयार करती हूं, सज्जनों की रक्षा के निमित्त मैं लड़ाई लड़ती हूं, जमीन और आसमान में सब जगह मेरा ही अबाधित अधिकार है।

इस बयान से साफ़ यह मालूम होता है कि आम्भृणी सारी दुनिया की रानी है, जो चाहे कर सकती है, अपने राज्य में सज्जनों की रक्षा का उत्तरदायित्व उसके सिर पर है, इसके अलावा राज्य की एक एक चेष्टा में उसका हाथ है।

यद्यपि 'वाक्' शब्द सूक्त में नहीं आया, लेकिन 'अहं राष्ट्री संगमनी' यहां राष्ट्री वाक् का पर्यायवाची है। ऐतरेय ब्राह्मण १-६ में कहा है—

वाग् वै राष्ट्री

अर्थात् निश्चय से वाक् राष्ट्री है।

वाक् शब्द सीधा भी ब्रह्म का वाचक है। इस विषय निम्न लिखित ब्राह्मण वाक्य ध्यान देने योग्य हैं—

वाग् ब्रह्म
गोपथ पूर्वभाग २, १०

वाग्घि ब्रह्म
ऐतरेय२,१५,४,२१

वाग् वै ब्रह्म
ऐतरेय ६.३

वाग् इति तद् ब्रह्म
जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण २,६,६

सा या सा वाग् ब्रह्मैवतत्
जै० ३ ब्रा० २, १३, २

वाग् वै ब्रह्म च तु ब्रह्म चेति
ऐतरेय ३, ६

इन्हीं के समानार्थक अन्य भी अनेक वाक्य हैं। ये सब वाक् और ब्रह्म में अभेद का सिद्ध करते हैं।

इस प्रकार प्रचुर प्रमाणों के आधार पर यह व्यवस्थित होता है कि सूक्त के ऋषि की छाप मन्त्रों की एक एक शब्द पर है। (असमाप्त)

गुरुकुल की प्राथमिक शिक्षा

(ले० श्री पं० देवदत्त जी कावरा)

गुरुकुल की प्राथमिक शिक्षा पांच श्रेणियों में विभक्त है। आमतौर पर ब्रह्मचारी प्रथम श्रेणी में प्रविष्ट होते हैं। प्रथम श्रेणी की शिक्षा पूर्ण कर लेने पर द्वितीय श्रेणी में चढ़ा दिये जाते हैं। इसी तरह द्वितीय से तृतीय, तृतीय से चतुर्थ श्रेणी में और चतुर्थ से पंचम श्रेणी में चढ़ा दिये जाते हैं। यह समझा जाता है कि पञ्चम श्रेणी का विद्यार्थी पिछली चार श्रेणियों की पढ़ाई से पूर्ण अभिज्ञ है।

ब्रह्मचारी की अभिज्ञता जानने के लिये परीक्षायें ली जाती हैं जिन में वार्षिक परीक्षा का विशेष महत्त्व है। वार्षिक परीक्षा में पास होने से ही ब्रह्मचारी एक श्रेणी से सफल उत्तीर्ण होकर द्वितीय श्रेणी में प्रवेश कर पाता है। मेरा विचार है कि वार्षिक परीक्षा से योग्यता नापना और उसके अनुसार एक श्रेणी ऊपर चढ़ा देना या अनुत्तीर्ण कह कर उसी श्रेणी में रहने देना ब्रह्मचारी की शिक्षा के के लिये अहित कर है।

यह वार्षिक परीक्षा प्रणाली अहितकर है इस मत को लेकर "गुरुकुल" में एक लेख पहले भी निकला था परन्तु उस लेख में जिन दोषों का वर्णन किया था वे यद्यपि सत्य हैं परन्तु विशेष हानिकारक नहीं। और वे दोष इस अवस्था के थे जिस में कि ब्रह्मचारी अनुत्तीर्ण हो जाता है। उसके एक साल के परिश्रम के व्यर्थ हो जाने का रोना था। अनुत्तीर्ण होने वाले लगभग तीन या चार होते हैं परन्तु मैं यह दर्शाना चाहता हूं कि अपूर्ण शिक्षा प्राप्त करके परीक्षा में उत्तीर्ण होकर अगली श्रेणियों में चढ़ जाने से उत्तीर्ण विद्यार्थियों का बहुत अधिक अहित होता है। बहुत सारे विद्यार्थी जो प्राथमिक श्रेणियों से माध्यमिक श्रेणियों में अपूर्ण शिक्षित होते हुए केवल मात्र परीक्षा के कुछ प्रश्नों का उत्तर देने से उत्तीर्ण हो जाते हैं ऐसे बहुत से विद्यार्थी माध्यमिक शिक्षा के दिनों में बार बार असफल होने पर गुरुकुल छोड़ने के लिये बाधित हो जाते हैं। ब्रह्मचारी के एक बार अनुत्तीर्ण होकर एक वर्ष खोये जाने से कहीं अधिक अहित अपूर्ण शिक्षित होकर ऊंची श्रेणी में चढ़ जाने से होता है और यह अपूर्णता स्नातक बनने तक वा उसके अनन्तर भी रहती है। इस अपूर्णता को छिपाने के लिये क्या २ किया जाता है उससे चरित्र पर भी प्रभाव पड़ता है। मुख्य प्रश्नों के उत्तर का घोटना, समय असमय का विचार न करके व्रत, उपवास जागरण और अनियमित परिश्रम करना यह सब चरित्र पर हानिकारक प्रभाव डालते हैं।

मेरे विचार में शिक्षा का पाठ्य क्रम, परीक्षा प्रणाली, श्रेणी विभाग में आमूल परिवर्तन करना चाहिये। इस परिवर्तन का उद्देश्य यह होना चाहिये कि ब्रह्मचारी की शिक्षा पूर्ण रहे और योग्यता नापने में वार्षिक-परीक्षा, मापक यन्त्र न रहे।

एक साल के पाठ्यक्रम को ६ विभागों में विभाजित किया जाये। इस विभाग करने में ऋतुओं का भी विचार

किया जाये। प्रत्येक ब्रह्मचारी का एक शिक्षा कार्ड होना चाहिये, जिसमें शिक्षक ब्रह्मचारी की योग्यता जांचकर जिस विभाग में ब्रह्मचारी को पूर्ण अभिज्ञ समझे उसे उसके कार्ड में अङ्कित कर दे। यह भी संभव है कि एक ब्रह्मचारी गणित में ऊंची श्रेणी की योग्यता रखता हो और व्याकरण में नीची श्रेणी की योग्यता रखता हो। उस ब्रह्मचारी के लिये ऐसा ही प्रबन्ध हो कि वह दोनों विषयों की योग्यता के अनुसार योग्य श्रेणी में पठन कर सके। इन्द्रप्रस्थ में जाने से पूर्व वह प्राथमिक शिक्षा के सभी विषयों से पूर्ण अभिज्ञ हो।

पाठ्यक्रम में व्यायाम वा शरीर साधना भी शामिल होनी चाहिये। दौड़, कुश्ती, तैरी, श्वास निरोध, द्वन्द्व सहन करने की शक्ति, क्रोध लोभ आदि शत्रुओं को दमन करने की शक्ति, धैर्य, विनय, अस्तेय, निर्भयता इत्यादि गुणों का विकास शिक्षा के आवश्यकतम अंग समझे जाने चाहियें।

आप लोग यह न समझें कि यह मैं "गुरुकुल" के कालम भरने के लिये लिख रहा हूं परन्तु यह मेरा पूरा विश्वास है कि यह विचार कार्य रूप में भी उपस्थित शिक्षक समूह द्वारा किया जा सकता है। केवल एक दिग्दर्शक की आवश्यकता है।

इस छोटे से लेख में अधिक नहीं लिखा जा सकता। विस्तृत रूप से विचार किसी अगले अंक में करूँगा।

[नोट—लेखक के विचार से गुरुकुल का अधिकारी वर्ग सहमत है और इस दिशा में यथोचित प्रयत्नशील है—सम्पादक]

कुल-माता

[जन्मोत्सव के लिए लिखित]

(गद्य-गीताञ्जलि)

आज कुलमाता का जन्म दिन है। कितना उमगभरा प्रेममय जन्मदिन। एक-एक मां का लाल, हरेक मां का प्यारा, मां के आंचल में मोद मनाता है, गोदी में गौरवान्वित होता है, कभी गाता है और कभी रोता-हंसता है। मां इनकी खुशी में हर्ष मनाती है, इनके गम में दुःख मानती है; अपने जन्म में सबको सुखी करती है।

गुरु की उपदेश भरी मुसक्यान शिष्य के मस्तमंडल पर ज्ञानरश्मियां बन कर आती हैं। शिष्य गुरु-प्रभा में नहाया सा हुआ जन्मदिन के मंगलगान में मस्त है। गुरु-कृपा का प्रभात-गान स्नेहतन्त्री की तरल तानों में आत्म-निवेदन कर रहा है। अनन्त का आवेदन चिर जिज्ञासा की नम्रता में मूक वादन होकर संकल्प-सेवा का प्रणव जाप बन गया है। हृदय के अन्तस्तल में विद्याकल्पों के अंकुर फूट आये। अन्ध गुहा की प्रसूति वेदना जन्मजात की हास्य लतिका में पुष्पित हुई। एक एक पुष्प सद्गुरु का गायत्री-गान है। उनकी पंखुड़ियां प्रणामाञ्जलि हैं। गुरु-मन्त्र ज्ञान की यज्ञाग्नि है। विद्यामृत शिष्य की सोम-भिक्षा है—यज्ञशेष है। गुरु की परितृप्ति मन्त्र-परिमल करने में है, शिष्य की अभ्यर्थना ब्रह्म बिन्दु के में है। गुरु का सर्वस्व विज्ञान की अभिव्यञ्जना-दान शिष्य की जान मन्त्र-मधु के अवलेह में। आज स गायत्री गान में तल्लीन हैं शिष्य उसकी स्वर-श्रुति विस्मृत सा है।

कुल माता का आज जन्म दिन है। समस्त कुल के परिजन प्रसन्न हैं। गुरु की इच्छा है कि यह मंगलमय हो, अनुशासन है कि यह साधना का प्रतीक हो, आशीर्वाद है कि यह तेजस्वी और कल्याणमय हो॥

'श्री कुमार'

गुरुकुल समाचार

सुरेश ५ श्रेणी खसरा, सहदेव १ श्रेणी खसरा, दमनेश २ श्रेणी खसरा, शिवदत्त २ श्रेणी मलेरिया, सत्यव्रत १४ श्रेणी अजीर्ण, गत सप्ताह उपरोक्त ब्र० रोगी हुए थे। अब सब स्वस्थ हैं।

शनिवार २५ चैत्र को रात्रि में गुरुदत्त दिवस के उपलक्ष्य में श्री आचार्य जी के सभापतित्व में एक सभा हुई। इस सभा में विद्यार्थी गुरुदत्त जी की स्मृति के साथ २ दिवंगत श्री दीनबन्धु एण्ड्रूज़ के प्रति भी श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए एक शोक प्रस्ताव पास किया गया।

मंगलवार को रात्रि के समय श्री पूज्य स्वामी सत्यानन्द जी महाराज का मनोरञ्जक एवं सदुपदेश पूर्ण प्रवचन हुआ।

आज प्रातः आर्यसमाज स्थापना दिवस मनाया गया। सांझ को कलकत्ते में होने वाले 'बाइटन कप' टूर्नामेंट में भाग लेने के लिये गुरुकुल के खिलाड़ी ब्रह्मचारियों का दल चल पड़ेगा।

गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ

इस वर्ष की सब श्रेणियों की वार्षिक परीक्षा हो चुकी है। ६, ८, ७ म श्रेणी का परिणाम भी निकल गया है। इसलिये अगले वर्ष की पढ़ाई नियम पूर्वक आरम्भ हो गई है। शेष श्रेणियों का परिणाम भी निकलने वाला है।

ग्रीष्मावकाश इस वर्ष पहली मई से शुरु होगा। इन दिनों सब ब्रह्मचारी धर्मशाला (जिला कांगड़ा) के पहाड़ पर रहेंगे। इसलिये संरक्षक महोदयों से निवेदन है कि वे अपने ब्रह्मचारी के मार्ग व्यय के लिये १५) यथा शीघ्र गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ या कांगड़ी में भेज देवें।

यह जान कर आर्यजनता को अत्यन्त प्रसन्नता होगी कि गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ अपने २४ वर्ष समाप्त करके २५ वें वर्ष में पदार्पण कर रहा है। इसलिये गुरुकुल कांगड़ी के वार्षिकोत्सव पर यह निश्चय हुआ कि अगले वर्ष सम्वत् १९९७ तदनुसार फरवरी १९४१ में गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ की रजत जयन्ती (Silver jubilee) मनाई जावे। इसलिये अभी से यहां पर तैयारियां प्रारम्भ कर दी गई हैं।

चौधरी हुलासराय के प्रबन्ध से गुरुकुल प्रेस, गुरुकुल कांगड़ी में मुद्रित तथा प्रकाशित।